सुषमन सेज बिछायकै, पीतमको पौढाव ।
पियसे मिलकै एकहो, दुरमति दूरि बहाव ।
तभी तेरो जिय सुख पावेरी।अनोखी बहू सीख लेरी
तेरे पीहर होतहैं झूठा सब व्यवहार ।
तेहि तजि पियसे प्रीति करु, कहैं कबीर पुकार ॥
बात ये सुन लेना मेरी॥अनोखी बहू सीख लेरी६५॥

चेतावनी-भजन ।

टुक जिन्दगी बन्दगी करले !
क्या माया मद मस्ताना बे ? ॥ टे० ॥
रथ गाडी सुखपाल पालकी, हाथी घोडे नाना बे।
सबको छोड काठकी घोडी, चढ जावै समसाना बे॥
ऊनी पाट पीताम्बर अम्बर, जरी बाफता बाना बे।
तू तो गर्जी चार गज ओढे, भरा रहे तोशाखानाबे॥
कर तदबीर अखीर खरचकी, मंजिलदूरकीजानाबे।
मारग माहिं मुकाम मिले नहिं, चौकी हाटदुकानाबे।

चेतावनी-भजन।

चादर झीनी हो राम झीनी।
ये तो सदा नामरंग भीनी॥ टे०॥
अष्ट कमलदल चरखा चाले, पांच तत्त्व गुण तीनी।
कर्मकी पूनी कातन बैठी, कुकुरी सुरति महीनी॥
खासको तार संभारके कात्यो, नौमन प्रकृतिप्रवीनी।
सो लै सूत जुगतिसे जगकी, रचना रची नवीनी॥
इंगला पिंगला ताना कीनो, सुषुमन भरनी दीनी।
नव दस मास बीनते लागे, ठोंक ठांककर बीनी॥
लै चादर सुर नर मुनि ओढी, ओढिके मैली कीनी।
ताहिकबीरजुगतिसेओढी, ज्योंकीत्योंधरदीनी७०

भजन।

चादर होगई बहुत पुरानी,
अबतो सोच समुझ अभिमानी॥ टे०॥
अजब जुलाहे चादर बीनी, सूत करमको तानी।

મરને ભાંગી પડે, ભરમાંડ રે.......”

આ પંક્તિમાં ‘મ’ વર્ણની અને ‘ન’ વર્ણની આવૃત્તિ થઈ છે. એ વર્ણ વારંવા
શ્રુતિ સુભગતા સધાય છે. એકાન્તે બેસી આરાધના કરવી, વચનરૂપી દોરમાં
ભાવ મટાડી ગુરુના આદર્શ મુજબ પરિપૂર્ણ યોગક્રિયા કરવી વાસનારૂપમાંથી
દ્ધિવાળાનો સંગ ત્યજીને પાંચે પ્રાણ એક ઘરે લાવવા અને નાડી શુદ્ધ કરી એ દ્વાર
ાત્કાર કરવાની પાનબાઈને શીખામણ આપે છે.

“ડાબી ઈંગલા ને જમણી પિંગલા,

રાખવું સ્વરભેદમાં ધ્યાન રે,

સૂર્યમાં ખાવું, ચંદ્રમાં જળપીવું,

પરીપૂરણ વચનમાં વરતાય રે,

એમ કાયમ રાખવું ધ્યાન રે....”

“રજો ગુણી તમોગુણી વે’વાર ન કરવો ને;

સ્વપ્ને ન કરવી આશ રે,

સત્ત્વગુણી આહાર, કાયમ કરવો જેથી

થાય બેઉ ગુણોનો નાશ.....”

170%

આવા અનેક ઉદાહરણો ગંગાસતીનાં ભજનોમાંથી મળી રહે છે. ગં
ાણિકતા જ હોય છે કે અનુપ્રાસના વિવિધ પ્રકારો આ ભજનોમાં પ્રયોજાયા હો

"જ્યાં લગી લાગ્યા, ભાગ્યાની ભે રહે મનમાં ને.

ત્યાં લગી ભગતી નૈ થાય રે....."

***

"અટપટી ખેલ ઝટપટ સમજાય ને પાનબાઈ,

એ તો જાણવા જેવી છે જાણ રે..........."

આમ, ભક્તિનું સ્વરૂપ ભારે અટપટું છે. જુદા જુદા સંત ભક્તોએ પોતપોતાની રી ભક્તિનું સ્વરૂપ સમજાવવા પ્રયાસ કર્યો છે. આવી ભક્તિનો ઉદ્ભવ કયારથી થયો હશે ? એ પ્રશ્ પણ સહજ રીતે ઉપસ્થિત થાય છે.

ભક્તિ પરંપરાનો આ ઈતિહાસ ઘણો લાંબો છે. સગુણ–નિર્ગુણ એમ બે સ્વરૂપ અ તેમાંથી અનેક ફાટારૂપે વહેતી આવેલી ભક્તિ સમગ્ર મધ્યકાલીન ગુજરાતી ભક્તિ પરંપરા સુધ એટલે કે નરસિંહથી દયારામ સુધીના સંત ભજનિકો, કવિઓ સુધી જળવાતી આવી છે. જેમાંન કેટલીક પરંપરા તો આજ સુધી લોકજીવનમાં જીવંત છે.

આ સંતકવિઓએ ભક્તિ એટલે શું ? ભક્તિના પ્રકારો કેટલા, ભક્તિ કોણ કરી શકે? ક રીતે કરી શકાય ? વગેરે બાબતો તત્ત્વવિચારણા પોતાની વાણીમાં આપી છે.

ગંગાસતીનાં આ ઉપદેશાત્મક ભજનોમાં નિર્ગુણ–નિરાકાર બ્રહ્મની ઉપાસના થયેલી જોવ મળે છે. એમની માન્યતા અનુસાર નિર્ગુણ–નિરાકાર અનિર્વચનીય બ્રહ્મની અનુભૂતિ શૂન્યમંડલમ થાય છે.

"નાભિકમળમાંથી પવન ઉલટાવ્યો ને,

ગયો પશ્ચિમ દિશા માંય રે,

સુરતા ચડી ગઈ શૂનમાં ને રે,

ચિત્ત માંહી પુરુષ ભાળ્યા ત્યાંય રે....."[૩૪]

શૂન્યમંડલમાં જ પરમ જ્યોતિ–પ્રકાશ અથવા બ્રહ્મ સાક્ષાત્કાર થયાનું આ ભજનોમ કહેવાયું છે. જુદાં–જુદાં ભજનોમાં ગંગાસતી ભક્તિ કરનારા ભક્તનાં લક્ષણો આપે છે. એમ

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

THEIR HOLINESSES SRI SADHBELLA TIRATHS MAHATMAS KAY HAR MALA

CC0. In Public Domain. Janganwadi Math Collection, Varanasi

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आंख न मूंदूं कान न रूंधु, काया कष्ट न धारूं।
उघरे नयन से साहिब देखूं, हसि हसि वदन निहारूं।।

शब्द निरन्तर मनुवां रांचे, मलिन वासना त्यागी।
जागत सोवत ऊठत बैठत, ऐसी तारी लागी।।

कहंहिं कबीर यह उन-मुनि रहनी, जो प्रगटे कर गाई।
सुख दुख से वह परे परमपद, सोई सकल सुखदाई।।

(शब्दावलि)

(संतजनों को संबोधित करते हुए सद्गुरु कबीर सहज समाधि को बहुत अच्छा बताते हैं। जब से सद्गुरु की कृपा हुई है और सहज समाधि में ध्यान दिया है तब से सुरति अन्यत्र नहीं जाती। जहां जहां जाता हूं वहीं परिक्रमा और जो कुछ करता हूं वहीं पूजा हो जाती है। गृह और उद्यान एक से दिखते हैं। द्वैतभावना नष्ट हो गई है। आंख-कान बंद नहीं करने पड़ते। काया को कष्ट नहीं झेलना पड़ता। खुले नेत्रों से ईश्वर दिखाई देते हैं। मैं मुदित मन उनकी मनोहारी मुख छवि निहारता हूं। परमात्मा के नाम जाप में अनुरक्त मेरी सभी विषय वासना दूर हो गई है। मन जागते, सोते, उठते-बैठते प्रभु में एकाकार ध्यान मग्न हो गया है। यह योगियों की उन्मन अवस्था है। दिव्य उन्माद जैसी। जिसे कबीर साहेब ने प्रकट किया है। ऐसी अवस्था में योगियों को पूर्णानंद प्रदान करने वाला परम पद प्राप्त होता है।)

35

रस भंवर गुफा में अझर झरै।।

गंगा यमुना मध्य सरस्वती, नाद बिन्दु से गांठ जुरै।
आसन मारि अमृतरस चाखै, दिल की दुविधा दूर करै।।

दस दरबाजे तारी लागी, कोइ-कोइ हंसा ध्यान धरै।
कहंहिं कबीर सुनो भाई साधो, अजर अमर कबहुं न मरै।।

(शब्दावलि)

(सद्गुरु कबीर सहजसमाधि में दिव्य रस अनुभूति कराते हुए कहते हैं कि समाधिकालिक सहस्रदल कमल में योगानंद स्वरूप दिव्य रस अविनाशी रूप से निर्विकार झरता हुआ प्राप्त होता है। गंगा, यमुना, सूर्यचंद्र अर्थात् पिंगला तथा ईड़ा नाड़ी के मध्य सरस्वती अर्थात् सुष्मणा नाड़ी रहती है। अनहद नाद से आनंद रूप रस बिन्दु से सीधे संपर्क हो जाता है। गांठ जुड़ जाती है। समाधि लगाकर योगी ऐसे अमृत रस को चखते हैं और हृदय से आत्मविषयक संशय दूर हो जाता है। योगी दसों द्वार बंद कर समाधि में लीन हो जाते हैं। ऐसी समाधि लगाकर वे अजर अमर हो जाते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

—बृहत्काव्य दोहन, भाग ७, पृ० १

पद ५

आत्मा निरख्यो रे निरवाण, आत्मा ॥ टेक

सत् गुरु के परताप, ज्ञान अनुभव उर जाग्या ।
पर उतर सद्गुरु कहे, जाकी कला अनंत ।
वेद बुद्धि बुध ना लहे, समजत विरला सन्त ॥ आत्मा०

-१

नाभि पवन का मूल, मन अष्ट कमल दल माही ।
त्रिकुटी वाको स्थान, दोह मील तहाँ समाई ॥
शब्द शून्य उठत हैं, पुन ही शून्य समाय ।
नाद लीन भयो बिंदु मे, बिंदु निरन्तर रहाय ॥ आत्मा
पंच तत्त्व के विषय, मिलि कर जीव कहाया ।
देह इन्द्री मन प्राण, मान सोइ माहे बधाया ॥
साह ब्रह्म अगाध है, लीपे छीपे नही सोय ।
घट घट परगट रम रह्या, चीने वीरला कोय ॥ आत्मा
जीव की शक्ति अज्ञान, शिव की शक्ति माया ।
इन दोनो तैं भिन, अखण्ड अद्वैत उजाया ॥
जीव शिव कहेवा नही, हम तुम नहीं कोइ राम ।
व्यतिरेक पद परमात्मा, निजानन्द निज धाम ॥ आत्मा
ए सद्गुरु को देश, निगम नेती कर गावे,
ब्रह्मा विष्णु महेश, खोज कोइ पार न जावे ।
निजानन्द कु अनुभवी, नाम रूप को नाश,
ब्रह्म मगन होइ बोली आ, अणछुता रविदास ॥ आत्मा

भोजो भगत पद—३

न तो भजन करना मन भाई ।

कर्त्ता-स्थान

संतौ योग अध्यातम सोई।
एक ब्रह्म सकल घट व्यापै दुतिया और न कोई॥
प्रथम कमल जहँ ज्ञान चारि दल तहँ गणेश को बासा।
रिधि सिधि जाकी शक्ति उपासी जप ते होत प्रकासा॥
षट दल कमल ब्रह्म को बासा सावित्री सँग सेवा।
षट सहस्र जहँ पाप जपत हैं इन्द्र सहित सब देवा॥
अष्ट कमल जहँ हरि सग लछमी तीजो सेवक पवना।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं मिटिगो आवा गवना॥
द्वादस कमल में शिव को बासा गिरिजा शक्ती सारँग।
षट सहस्र जहँ पाप जपत हैं ज्ञान सुरति लै पारँग॥
खोड़स कमल में जीव को बासा शक्ति अविद्या जानै।
एक सहस जहँ जाप जपत हैं ऐसा भेद बखानै॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भँवर गुफा जहँ दुइ दल कमला परम हंस कर बासा।
एक सहस जाके जाप जपत हैं करम भरम को नासा॥
सहस कमल में झिलमिल दरसे आपुइ बसत अपारा।
जोति सरूप सकल जग व्यापी अछय पुरुष है प्यारा॥
सुरति कमल पर सतगुरु बोले सहज जाप जप सोई।
छः सै इकइस सहस्रहिं जपि ले बूझै अजपा कोई॥
यही ज्ञान को कोई बूझै भेद अगोचर भाई।
जो बूझै सो मन का पेखै कह कबीर समझाई॥ २५॥

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिना बाजा झनकार उठे जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै॥
बिना ताल जहँ तहँ कँवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उँजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजर परै॥
दसवें द्वारे ताड़ी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगुन जुगुन की तृषा बुझानी करम भरम अघ व्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो अमर होय कबहूँ न मरै॥२६॥

21:23

कर्त्ता-प्राप्ति-साधन

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर
खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़ दे बालके
आय जा भेख भगवंत पाहीं॥
भेख भगवंत की सेस महिमा करै
सेस के सीस पर चरन डारै।
कामदल जीति कै कँवल दल सोधि कै
ब्रह्म को बेधि कै क्रोध मारै॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै
गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोइ संतजन जौहरी
करम की रेख पर मेख मारै॥ २८॥
दो सुर चले सुभाव सेती
नाभी से उलटा आवता है।
बिच इंगला पिंगला तीन नाड़ी
सुषमन से भोजन पावता है॥
पूरक करै कुँभक करै
रेचक करै झरि जावता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कायम कबीर का झूलना जी
दया भूल परे पछितावता है॥ २९॥
मुरशिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सपेद तिलों बिच तारा अबिगत अलख रबी है॥
आँखी मद्धे पाँखी चमकै पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुरबीन लगावे उतरे भौ-जल पारा॥
सुन्न सहर में बास हमारा तहँ सरबंगी जावै।
साहब कबिर सदा के संगी सब्द महल ले आवै॥३०॥

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ।
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, सील सँतोख छमा सत धारो ।
मद्य मांस मिथ्या तजि डारो हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है ।।
धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगत से लाओ ।
कुंभक कर रेचक करवाओ पहले मूल सुधार कार्य्य हो सारा है ।।
मूल कँवल दल चतुर बखानो, जाप कलिंग लाल रँग मानो ।
देव गनेस तहँ रोपा थानो, ऋधि सिधि चँवर ढुलारा है ।।
स्वाद चक्र षट दल बिस्तारो, ब्रह्म सवित्री रूप निहारो ।
उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ शब्द ओंकारा है ।।
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंहासन विष्णु विराजा ।
जाप हिरिंग तासु सुख गाजा, लछमी शिव आधारा है ।।
द्वादश कँवल हृदय के माहीं, संग गौरि शिव ध्यान लगाई ।
सोहं शब्द तहाँ धुन छाई, गन कर जैजैकारा है ।।
दो दल कँवल कंठ के माँहीं, तेहि मध बसे अविद्या बाई ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुलाई, श्रृंग नाम उचारा है ।।
तापर कंज कँवल है भाई, बग भौंरा दुइ रूप लखाई ।
निज मन करत तहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है ।।
कँवलन भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा ।
सतसंग कर सतगुरु सिर धारा, वह सत नाम उचारा है ।।
आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झिंगा शब्द सुनाओ ।
दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है ।।
चंद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ ।
तिरबेनी के संघ समाओ, भोर उतर चल पारा है ।।
घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई ।
ता मध करता निरखो सोई, बंक नाल धँस पारा है ।।
डाकिनी साकिनि बहु किलकारे जम किंकर धम दूत हकारे ।
सत्त नाम सुन भागें सारे, सतगुरु नाम उचारा है ।।
गगन मँडल विच उर्ध मुख कुइयाँ, गुरुमुख साधू भर भर पीया ।
निगुरें प्यास मरे बिन कीया, जाके हिय अँधियारा है ।।
त्रिकुटि महल में विद्या सारा, घनहर गरजें बजे नगारा ।
लाल बरन सूरज उजियारा, चतुर कँवल मँझार ओंकारा है ।।
साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा ।
दसवाँ जाय खोल जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है ।।
आगे सेत सुन्न है भाई, मान सरोवर पैठि अन्हाई ।
हंसन मिलि हंसा होइ जाई, मिलै जो अमी अहारा है ।।
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा ।

हंसन मिलि हंसा होइ जाई, मिलै जो अमी अहारा है ॥
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वादस भानुहंस उँजियारा, षटदल कँवल मंझार सब्द ररंकारा है ॥
महा सुन्न सिंध बिषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी।
व्याघर सिंघ सरप बहु काटी, सहज अचिंत पसारा है ॥
अठ-दल कँवल पार ब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई।
बाएँ दस दल सहज समाई, यों कँवलन निरबारा है ॥
पाँच ब्रह्म पाँचों अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीनो।
चार मुकाम गुप्त तहँ कीनो, जा मध बंदीवान पुरुख दरबारा है ॥
दो परबत के संध निहारो, भँवर गुफा में संत पुकारो।
हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दरबारा है ॥
सहस अठासी दीप रचाए, हीरे पन्ने महल जड़ाए।
मुरली बजत अखंड सदाए, तहँ सोहं झनकारा है ॥
सोहं हद तजी तब भाई, सत्त लोक की हद पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई, जाको वार न पारा है ॥
खोड़स भानु हंस को रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंसा करे चँवर सिर भूपा, सत्त पुरुष दरबारा है ॥
कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुन चंद्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दीदारा है ॥
आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुष की तहँ ठकुराई।
अरबन सूर रोम सम नाँहीं, ऐसा अलख निहारा है ॥
तापर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताही को राजा।
खरबन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है ॥
तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है ॥
काया भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
माया अवगति जाल पसारा, सो कारीगर भारा है ॥
आदि माया कीन्ही चतुराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई।
अवगति रचन रची अँड माहीं, ताका प्रतिबिंब डारा है ॥
सब्द बिहंगम चाल हमारी, कह कबीर सतगुरु दइ तारी।
खुले कपाट शब्द झनकारी, पिंड अंडके पार सो देस हमारा है ॥ ३१ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निरजिव आगे सरजिव थापै लोचन कछुव न सूझै ॥
तजि अमृत बिख काहें अचवो गाँठी बाँधो खोटा।
चोरन को दिय पाट सिंहासन साहुहिं कीन्हो ओटा॥
कह कबीर झूठो मिलि झूठा ठगही ठग ब्यवहारा।
तीन लोक भरपूर रह्यो है नाहीं है पतियारा॥ १२८॥
नैनन आगे ख्याल घनेरा।
अरध उरध बिच लगन लगी है क्या संध्या रैन सबेरा॥
जेहि कारन जग भरमत डोलैं सो साहब घट लिया बसेरा।
पूरि रह्यो असमान धरनि में जित देखो तित साहब मेरा॥
तसबो एक दिया मेरे साहब कह कबीर दिलही बिच फेरा॥१२९॥
जागु रे जिव जागु रे अब क्या सोवै जिय जागु रे।
चोरन को डर बहुत रहत है उठि उठि पहिरे लागु रे।
ररौ खौलि ममो करि भीतर ज्ञान रतन करि जागु रे।
ऐसै जो अजरायल मारै मस्तक आवै भागु रे।
ऐसी जागनि जो कोइ जागै तो हरि देह सोहागु रे।
कह कबीर जागोई चहिए क्या गिरही बैरागु रे॥ १३०॥

उपदेश और चेतावनी

बोलना कासों बोलिए भाई। बोलत ही सब तत्व नसाई॥
बोलत बोलत बाढ़ु बिकारा। सो बोलिए जो परे बिचारा॥
मिले जो संत बचन दुइ कहिए। मिले असंत मौन है रहिए॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्वासोश्वास में भरकर नाम स्मरण किया है । प्रभुनाम के जप द्वारा प्राण योग सिद्ध किया है और अपनी सुरता को शून्य में स्थापित किया है । उसीसे कुंडलिनी शक्ति जागृत की है ।

सामान्य स्थिति में कुंडलिनी सर्पाकार में अधोमुखी होती है । जिसे 'ओहम' श्वास भरके, सोहम श्वास को छोडने के बाद, इंगला नाडी में से दाई पिंगला नाडी में बदलकर उसे सुषुम्णा नाडी में प्राणों को थोडी देर रोककर ईश्वरानुभूति होती है । इस क्रिया को समझाते हुए दासीजीवण कहते हैं कि –

"अबधू दिया नखत पर डंका रे, सो घर सजे पाया रे जी,
नाभी कमले जी नटवर चडिया, पवन पुरुष पलटायो रे जी
वंकनालकी खडकी खोली, उलटा राह चलाया रे जी ।'
"इंगला पिंगला कुषम्णा साधी त्रिवेणी मोलमें आई
कोइ जागंदा आ दिलमांय, झणंक, झालरी वागी ।"
नवे दरवाजा नवी रमत का दशमें मोल ओ देखाई,
सोइ महेल मा मेरम बोले, आप त्यारे ये घर जाय ।"

इस साधना क्रिया द्वारा गगनमंडल के शून्य शिखर के सहस्त्रदल पद्म में बिराजमान परमात्मा ज्योति स्वरूप में प्रकट होते हैं । जो अवर्णनीय हैं । ऐसी स्थिति में अनहदनाद सुनाई देता है । ऐसी अवस्था में साधक स्वयं परब्रह्म में समाहित हो जाता है । इस अनुभुति के लिए दासीजीवण कहते हैं –

जाग्रत स्वप्न सुशोभित तुरिया, उनमुनि मुंदा लागी,
अक्षरातीत आपे नर ओलख्या, तेनी मे भ्रमणा भांगी ।"

अर्थात् अक्षरातीत अविनाशी परमात्मा के दर्शन करके भय, भ्रमणा दूर हो जाती है । अंतर का अंधकार दूर हो जाता हैं । ऐसा अनुभव किसे होता है ? इसका जवाब देते हुए दासीजीवण कहते हैं कि :

"सोहम घर जावे संत सुभागी बीक कछुवे नाय !

21:20

अें जोगीयोंको इस तरहसे रहेना चाहिए, सुणो !

realpatidar.com

दोहा

फाका फीराक उदास दिल । आसण दृढ गंभीर ॥
फीकर फाड कफनी करे । वहाका नाम फकीर ॥

पद २७६ वे

अबदु जुगत जील संतोक पात्र करो । अने दंडा करो विचार ॥
खमीया दयाकी दोई मुद्रा पेरो । गीनान करजो आहार ॥
अबदु ते जोगी जुगमाहे जाको मन दुजा रे नाय ॥ १ ॥
अबदू गुरु मेरा गीनान वैराग्यकी । इंद्रियने संयम करो बभुता ॥
सत धरम साच करी ध्यावो । तो जोगी हे अवधुता ॥ २ ॥
चांदो सुरज दोई रोकी राखो । अने मन चिंत धरो इस दंडी ॥
सुखमणा तंती वाजण लागी । ये भेद किसे ज खंडी ॥ ३ ॥
सब अवगुण तजो त्रिवेणी नहावो । अने अनहद नाद बजाओ ॥
कहे गुरु कबीरदिन जीवता मरीये । तो अवरथ जनम न पावो ॥ ४ ॥

पद २७७ वे

योगीकु दुंढता युग गये । कहो केते दिन भये ॥
साइया मागेगा लेखा । उस योगीकु दुंढता युग गये ॥ १ ॥
योगीके गलेमे हार है । हिरा रतन शुं जडिया ॥
जिसका भाग्य हो उसकु देता । अैसा दिल है दरीया ॥ २ ॥

फाका फिराक-भूक तहान, उपासमार, मान अपमान, अथवा पंथ-संप्रदाय वगैरे. माया-मोहाविषयी उदास चित्त असलेला. आसन दृढ गंभीर-दृढ वैराग्यांचे आसन धारण केलेला. फिकर फाड-उदर निर्वाहाची चिंता फाडून याची कफनी धारण केलेली असेल तोच खरा फकीर, योगी, साधु, सत्साधक जाणावा. जुगत जील-योगी लोकांनी योग साधनांची झोळी करावी. संतोक पात्र-संतोषरुपी पात्र (भिक्षापात्र) घ्यावे. विचार दंडा-सदविचारांचा दंडा हाती घ्यावा. खमीया दया मुद्रा-क्षमा आणि दया ह्या योगमुद्रा धारण कराव्या. गीन्यान आहार-ज्ञान ग्रहण करणे याचा आहार करावा. वैराग्य इंद्रिय संयम बभुत-ज्ञानप्राप्ती नंतर प्राप्त होणाऱ्या वैराग्यरुप अग्निने इंद्रियांच्या विकारांचे भस्म करुन म्ह.इंद्रिय दमनरुपी भस्म धारण करावे. जीवता मरीये-जीवंत असून मेलेल्याप्रमाणे म्ह.मनाच्या पापमूलक सर्व प्रवृत्ती मारुन जीवनमुक्त होणे.

realpatidar.com

तो क्या योगर्षि कभी आध्यात्मिक आचार्य के समक्ष गए ही नही ? इतने आश्रम हैं, तीर्थ हैं वहाँ जाकर सत्संग नही किया ? ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया ? इसके उत्तर में वो इसी कविता के आगे लिखते हैं- **पर्वत, गुफा, जंगल देखा / विछी, गेरूआ विस्तार / मोर को नाचते छत पर झाँका / पोथी पतरा भरमार** / अर्थात, मैं सब जगह गया । पवित्र पर्वत, गुफा और वन में निवास करने वाले एक से एक विछी धारी, गेरूआ धारी साधुओं से मिला । बड़े-बड़े आश्रमों का विस्तार देखा किंतु प्रभु-मोर को तो अपने हृदय की छत पर ही नाचते देखा । वहाँ पोथी-पतरा का भरमार था, शास्त्रीय विवेचना थी परंतु आत्म-साक्षात्कार कहाँ था ?[3] तो फिर कैसे आत्मज्ञान प्राप्त किया ? इस प्रश्न का उत्तर कविता की अगली पंक्तियों में देते है- भँवर घाटी लाँघ गया मैं / पकड़ ज्ञान पतवार / रानी को चेरी बनाया / देकर अनूठा प्यार । अर्थात, ज्ञान की पतवार को पकड़कर माया के इस भँवर और घाटी को मैं लाँघ सका । ये सब उस महारानी महाशक्ति की कृपा है जिसे अपना अनूठा प्रेम समर्पित कर मैने अपना चेरी बना लिया । पुनः अपनी सिद्धि को इंगित करते योगी कवि कहते है- **चढ़ गया हूँ पचतल्ले पर/नभ के देश अपार / गंगा यमुना साँस के डोरे / घटा करे फुहार ।** अर्थात आज पंचतत्वों की शुद्धि को प्राप्त कर मैं आकाश तत्व के लोक में स्वर, अक्षर, शब्द ब्रह्म की सिद्धि प्राप्त कर चुका हूँ । इड़ा रूपी गंगा एवं पिंगला रूपी यमुना की शुद्धि और सिद्धि प्रेम और ज्ञान की फुहार कर रही है जिससे आप्लावित हो उपासकों का कल्याण हो रहा है ।

अपने मार्ग की विशेषता और उपासना-परंपरा को स्पष्ट करते हुए योगर्षि श्रीकपिल ने दुल्हन घूँघट खोले रे नामक कविता में लिखा है- **पाँव घुमाबे हाथ उछाले / पेट-पीठ दिखलाबे / पक्षी कसरत छोड़ के / नभ में भवन बनावे ।** अर्थात् आजकल योगमार्ग के नाम पर बहुतेरे आचार्य स्वयं को योगी घोषित कर शारीरिक व्यायाम का ही प्रशिक्षण देते हैं । हठयोग की प्रारंभिक विधियों से भौतिक आरोग्यता तो प्राप्त हो सकती है किंतु मात्र इन शारीरिक व्यायामों से योग की अंतिम सिद्धि नहीं मिल सकती है । मैने ईश्वरप्राप्ति के साधन हेतु योग-मार्ग का अवलंबन लिया है जिसमें चित की एक-एक वृत्ति शुद्ध होकर दिव्य बनती है; प्रकृति के हरेक तत्व का क्रमिक शुद्धिकरण होता है और अंत में शुद्ध हुए आकाश के लोक में मेरी-आत्मा प्रयाण कर जायेगी ।[4]

अपने योग में भिन्न-भिन्न धर्म एवं अध्यात्म के अन्वेषकों की उपस्थिति को इंगित करते हुए द्रष्टा कवि इसी कविता के आगे लिखते हैं- टोला में लोला बहुत / बोलबाल है भारी / ग्रह, नक्षत्र तारे सभी / करत रहे उजियारी । अर्थात् आज भिन्न-भिन्न धर्म के प्रवर्तक आचार्य, विभूति एवं संतगण मेरे अनुयायी की टोलियों में ईश्वरीय सत्य, दिव्य प्रेम एवं ज्ञान की ज्योति वैसे ही दिखेर रहे है जैसे आकाश में ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि

05:53

[SCRIBD] Search

જી રે લોયણ, એવાં સત્ય વચન રાણીનાં સાંભળિયા જી હો જી,

ત્યારે એને સન્મુખ લીધી હાં...હાં...

જી રે લોયણ, હુકમથી જેણે પવન ઉલટાવ્યા જી હો જી,

સમાધિ પલકમાં કીધી હાં...હાં...

જી રે રાણી, પ્રેમ પ્રકાશીને કુંડલી જગાડી જી હો જી,

ત્યારે સુરતા શૂન્યમાં શામી હાં...હાં...

જી રે રાણી, અનભે વસ્તુને યથારથ જાણી જી હો જી,

ત્યારે વિષય વાસના ગઈ વામી હાં...હાં...

જી રે રાણી, ઈંગળા પીંગળા ને સુખમણા સાધી જી હો જી,

તુરીયાતીતમાં લાગી તાળી હાં...હાં....

જી રે રાણી, પ્રકૃતિ પુરુષથી પાર થઈ સુરતા જી હો જી,

જેણે સાતમી ભૂમિકા ભાળી હાં...હાં...

જી રે રાણી, સમાધિથી ઊતરી પાય લોયણને લાગી જી હો જી,

જેણે સાતમી ભૂમિકા ભાળી હાં...હાં...

જી રે રાણી, સમાધિથી ઊતરી પાય લોયણને લાગી જી હો જી,

જેણે અખંડ લીલા દેખાડી હાં...હાં...

જી રે લોયણ, જે સુખ તમે આગળ કહેતા હતા જી હો જી,

તેમાં જરીએ નથી કાંઈ ખામી હાં...હાં...

જી રે લોયણ, અખંડ પરમાત્મા મેં શૂન્યમાં ભાળ્યા જી હો જી,

એ તો ઘટોઘટ અંતરમમી હાં...હાં...

Overview Related documents

Download

:: ભજન–૫ ::

જી રે લાખા, શ્રીમદ્ ભાગવતમાં એમ લખે છે જી હો જી,

ભક્તિ વિના સંશય નહિ ભાંગે હાં...હાં...

જી રે લાખા, દસમી ભક્તિ પ્રેમલક્ષણા જગાવે જી હો જી,

ત્યારે શૂન્યમાં સુરતા લાગે હાં...હાં...

જી રે લાખા, દેવહુતિને કપિલ મુનિએ બતાવ્યું જી હો જી,

ત્યારે જ્ઞાન હિમાળે મન ગળિયું હાં...હાં...

જી રે લાખા, પ્રાણ અપાનની ગતિ જ્યારે જાણી જી હો જી,

એનું મન ત્યારે બ્રહ્મમાં ભળિયું હાં...હાં...

જી રે લાખા, ગુરુ વિના એકેય સાધન નવ આવે જી હો જી,

ભલે વાંચી વાંચીને અટકે હાં...હાં....

જી રે લાખા, મૈત્રેય ઋષિએ યોગ વિદુરને બતાવ્યો જી હો જી,

પછી એકાંત અભ્યાસ કીધો હાં...હાં....

જી રે લાખા, આસન જીતી તેણી સમાધિ ચડાવી જી હો જી,

તેણે લખ અલખનો લીધો હાં...હાં....

11:28
[S] 76 / 176

:: ભજન–૭ ::

જી રે લાખા, નવધાભક્તિ જે કોઈ સાધે જી હો જી,

એ તો અલખ પુરુષને આરાધે હાં...હાં...

જી રે લાખા, દોડતા મનને કબજે કરીને જી હો જી,

નિજ નામને બેઠો ઈ સાંધે હાં...હાં....

જી રે લાખા, ખાંડાની ધારે ખેલે નર નારી જી હો જી,

એ તો દુરીજનની બીક નવ રાખે હાં...હાં...

જી રે લાખા, ગુરુ વચને સત વસ્તુને જાણો જી હો જી,

એ તો ગુપ્ત રસને ચાખે હાં...હાં...

જી રે લાખા, પૂરેપૂરા જયારે થાય અધિકારી જી હો જી,

અને લક્ષ્યાર્થે ઉરમાં આવે હાં...હાં...

જી રે લાખા, નાભિકમળથી પવન ઉલટાવે જી હો જી,

ત્યારે સુરતા શિખર પર જાવે હાં...હાં...

Ad Download to read ad-free

જી રે લાખા, એવી સુરતા જયારે તમારી પ્રગટાવે જી હો જી,

ત્યારે સંકલ્પ વિકલ્પ મટી જાશે હાં...હાં....

જી રે લાખા, શેલર્ષિની ચેલી સતીલોયણ બોલ્યાં જી હો જી,

ત્યારે વૃત્તિ એકાગ્ર થાશે હાં...હાં....

શબ્દાર્થ :

૨. યોગમાર્ગી વાણી : હરિજન ભક્તોની વાણીમાં યોગ છે. ઈડા, પિંગલા ને સુષુમણા સાધીને, ત્રિવેણીના ઘાટ ઉપર અલખ જગાવીને, કુંડલિનીને જાગૃત કરી, ચક્રો ભેદવાની ક્રિયા તેમાં વર્ણવવામાં આવી છે. બ્રહ્મરંધ્રમાં ચાલતા અનાહત નાદને આ સંતોએ સાંભળેલ છે, તેથી એ નાદને તેઓ બંસરી, મોરલી, જંતર, ઝાલરી, શીંગી તરીકે ઓળખાવે છે. આ બધા ભાષાસંકેતો આનંદ-સમાધિના સૂચક છે. ગગનમંડળ, ઝણકાર–ઝાલરી, અનહદ તૂરાના નાદ, એ બધી યોગની ક્રિયાઓની પરિભાષા છે, જે તેઓની વાણી દ્વારા સ્પષ્ટ થાય છે.

"નાભીકમળથી ઉલટયો આવે, ગગન ધૂન ગરજાના,
ઇંગલા, પિંગલા સુષુમણા સાંધી
ત્રિવેણી તાર મીલાના." –ત્રિકમસાહેબ

"સેજ સુનમેન ત્રીકોટી ધૂનમેં અખંડ જ્યોત રહે સારી." –ભીમસાહેબ

"આસનવાળી સુરતાથી દઢ કીયા, કિયા અગમ ડેરા,
ઇંગલા પિંગલા દોનું સાધકે, સુષમણા ચિત્ત ધર્યા." –નથુરામ

"જાગ્રત, સ્વપ્ન, સુષુપ્ત, તુરીયા, ઉનમુનિ મુંદ્રા લાગી,
અક્ષરાતીત આપે નર ઓળખ્યા, તેની ભે ભરમના ભાંગી." –દાસી જીવણ

ઓહમ્–ઓહમ્‌ના શ્વાસોચ્છ્વાસ દ્વારા નામનું સ્મરણ કરતાં ડાબી ઇંગલા ચંદ્ર-નાડીને જમણી પિંગલા સૂર્યનાડીની વચ્ચે આવેલ સુષુમણા નાડીને સાંધતાં સુલટા પવન ઊલટા કરતાં સુષુપ્ત અવસ્થામાં પડેલી કુંડલિની જાગૃત થતાં બ્રહ્મરંધ્રમાં બ્રહ્મજ્યોતનાં દર્શન થતાં અક્ષરાતીત નરને આ દેહમાં ઓળખી શકાય છે, એમ આ ભક્તકવિઓનું દર્શન છે.

૩. ગુરુમુખી વાણી : સંતપરંપરામાં ગુરુ–માહાત્મ્ય અનેરું છે. ગુરુને બ્રહ્માની કક્ષાએ મૂકવામાં આવે છે. આ ગુરુની કૃપાએ જ પરબ્રહ્મ સુધી પહોંચી શકાય છે. ગુરુગમ મળે તો અજ્ઞાન–તાળું ખૂલે ને અંધકાર ટળે આ ગુપ્ત ચાવીઓ મર્મી ગુરુ દ્વારા મળે છે. તેથી સંતોની વાણીમાં ગુરુકૃપાનો મહિમા છે.

"ગુરુમાં ગોવિંદ, ગોવિંદમાં ગુરુ,
અલખ પુરુષ એક તારા." –ત્રિકમસાહેબ

"ગુરુની સેવાએ અભેપદ પામીએ ગુરુ સેવા વર્ણવી ન જાય,
અનંત મહિમા ગુરુજી તણો સતગુરુ સમરે કારજ થાય."
–દાસી જીવણ

"ભીતર સતગુરુ મળિયા,
વરતાણી આનંદ લીલા." –કરમણ ભગત

ગુરુમહિમા અનંત છે. ગુરુના વચન વગર માનવી ગાંડો ફરે છે. ગુરુની સેવાથી અભયપદ પ્રાપ્ત થાય છે. આ સતગુરુનો પાર કોઇ પામી શકયું નથી. ત્યાં કવિ ગુરુને બ્રહ્મ સુધી લઇ જાય છે.

૪. પ્રેમલક્ષણા વાણી : નારદે ભકિતને પરમ પ્રેમરૂપા અને અમૃતસ્વરૂપા કહી છે. એવી ભકિત પોતાના સમગ્ર આચારવિચારને ઇશ્વરાર્પિત કરવામાં રહેલી છે. એટલું જ નહીં, ઈશ્વરના વિસ્મરણ–માત્રથી પરમ વ્યાકુળતા અનુભવવામાં વસેલી

20:21

"ચારિઉ જુગ ઓ નિગમ ચાર ઓ ગાવે પંથ અપારા,
બિષ્ણુ બેરંચિ રુદ્દ ઋષિ ગાવેં સૈસ ન પાવેં પારા."

ચારે યુગમાં ચારે વેદશાસ્ત્રોએ અને પાર વિનાના ધર્મપંથોએ એનાં ગુણગાન ગાયાં છે. વિષ્ણુ, બ્રહ્મા અને રુદ્ર તેમજ ઋષિમુનિઓ અને સ્વયં શેષનાગ પણ હજાર મુખે એની સ્તુતિ ગાતાં છતાં એનો પાર પામી શકતાં નથી.

"બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, મહેસર થાકે તિનહું ખોજ ન પાયા હૈ,
સેસ સારદા સંકર હારે પઢ રટ બહુ ગુન ગાયા હૈ."–કબીર

આ જ વાતને આપણા આ હરિજન ગામડી, નિરક્ષર સંતોએ એટલી સરળ ભાષામાં સહજતથી મૂકી છે કે તેમાં સત્યને સહેજ પણ આંચ આવવા દીધી નથી.

"બાવન અક્ષરથી બારો બોલે,
નહીં પોથી કે પુરાણ,
ઓહંગ સોહંગ પર અલખ બિરાજે,
ભીતર પ્રગટ રવિભાણ."–ત્રિકમસાહેબ

"નહિ એ નાદનો, નહિ એ બુંદનો,
આપે આપ બની આયો,
પાંચ તત્ત્વ કે તીન ગુનથી ન્યારો,
વેદપુરાણે નહીં પાયો રે." – દાસી જીવણ

"બાવન માંહી બોલતો, અબોલ બાવનથી બાર,
અબોલ અનામી એક છે રે, પરા ઉપર અપાર."–બાળકસાહેબ

અન્ય સંતકવિઓ પણ આ બાબત સાથે સહમત છે જ. તુલસીદાસજી "રામચરિતમાનસ"માં જણાવે છે કે :

"નિજ નિજ મતિ મુનિ હરિ ગુન ગાવહિં
નિગમ સેષ શિવ પાર ન પાવહિં." [૭]

સૌએ પોતપોતાનો અનુભવ ગાયો, હરિગુણ ગાયો. એ આનંદને કોઈ જીરવી શક્યું નહિ વાણી બંધ કરી તો આંસુ વાટે વહ્યો, નૃત્ય વાટે સ્થિર કર્યો.

ઉપનિષદમાં નારદ અને સનત્કુમારનો સંવાદ આવે છે. નારદ મહાવિદ્વાન છે અને સનત્કુમાર સાચા આત્મજ્ઞાની છે.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:24

અથવા પોતાની ગહનતમ અનુભૂતિને વ્યકત કરવા કંઇ પણ શબ્દોનો આશ્રય તો લેવો જ રહ્યો. ભલે શબ્દો સત્યને પૂરેપૂરું અભિવ્યકત ન કરી શકે. પણ સત્યનો સંકેત તો કરી શકે. આ માત્ર સકેત હોય એમ પણ બની શકે.

અથવા ગુરુએ આપેલ મંત્ર ગુપ્ત રાખવાનો હોય છે. આ મંત્ર ગુપ્ત હોઈ એને જ નામ માની વ્યકત ન થવા દેવા માટે એને જુદાં જુદાં વિશેષણથી નવાજવામાં આવેલ હોય. આમ, નામ શબ્દનો ઉપયોગ કયાંક બ્રહ્મ, કયાંક રહસ્ય, કયાંક ૐ કાર, કયાંક સત્ય, એમ વિવિધ રીતે કરવામાં આવ્યો છે.

હરિજન ભકતકવિઓએ આ જુદા જુદા અર્થમાં નામનો ઉલ્લેખ તેઓની વાણીમાં કરેલ છેઃ

“સુન લે સુષ્મના નારી મેં અજબ નામ પર વારી,
અજબ નામ હૈ સબસે ન્યારા ખોજ ખોજ સંસારી.”–ભીમસાહેબ
“અલખ નામની ધૂન લાગી,
ગગનમેં મગન ભયા મન મેરા.”–નથુરામ
“સતનામનો સતાર લીધો,
ને ગુણ તખત પર ગાયો.”–કરમણ
“મન પવનકા મેળા હુવા, નૂરતી નીજ ઘર પાઇ,
સોહી બ્રહ્મ સતનામ હૈ, નહીં ધૂપ છાંઇ વરતાઇ.”–ત્રિકમસાહેબ
“હાં રે ભાઇ એકવીસ વરસંડની ઉપરે ત્યાં નામ છે નીજ નામી રે,
ઉનકા સમરણ સંતો કરી લીયો, પછી આવે નહીં એમાં ખામી રે.”
–રામદાસ

“કોઇ રૂપરંગસે ન્યારા, ઉસમેં કયા જાને સંસારા રે જી,
ઓહં સોહમની ઉપર નીરખો બાર આંગલ છે બારા,
મતિ મૂરતિ નૈણે નીરખો, નીજનામ છે ન્યારા.”–દાસી જીવણ

આ નામને અજબનામ, અલખનામ, સતનામ, સોહીબ્રહ્મ સતનામ, નીજનામ તરીકે ઓળખવામાં આવે છે. આ નામને સંસારથી પર, રૂપરંગથી ન્યારું કહીને સ્પષ્ટ જણાવે છે કે એ નામ તે ઓહમ–સોહમની ઉપર એકવીસ વરમંડની ઉપર બિરાજેલા પરબ્રહ્મ, પરમાત્મા, બ્રહ્મ છે તે જ છે. આ નામની સાધના, આ નામનું સ્મરણ, આ નામની માળા રટવાનું સંતોએ જણાવ્યું છે.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:26

અહીં વચન ઓળખવાની વાત કરી છે. આ વચન એ તો રહસ્યબ્રહ્મ માટે વપરાયેલ છે અને તેને ભક્તિનાં એંધાણ તરીકે પીઠો ભગત ઓળખાવે છે. તો ત્રિકમસાહેબ નિજ–ભક્તિ કોઈ વિરલા જાણે તેમ કહીને આ ભક્તિમાર્ગને પરબ્રહ્મના રહસ્યને પામવાનો, ઘટ–ભીતરની ખોજ કરવાનો વિરલ માર્ગ બતાવ્યો હોય તેમ લાગે છે. અને તેની ઝંખના એ પ્રેમભક્તિ જેટલી જ તીવ્ર હોય છે.

મહામાર્ગમાં અલખધણી અને રામદેવપીરના આરાધ, નવધા ભક્તિ અને જ્ઞાન મહિમાનાં ભજનો ગવાય છે. તેમાં પણ યોગ અને જ્ઞાન કેન્દ્રસ્થાને છે. તેમાં પરિબ્રહ્મને એક રહસ્ય સ્વરૂપે પ્રગટ કરેલ છે. તેમાં લાખો–લોયણ અને ગંગાસતીની જે નવધા ભક્તિ કહેલ છે તે સાકાર હોય તેમ સ્પષ્ટ થતું નથી.

"જી રે લાખા, ઇંગલા પિંગલા સુષમણા સાધો જી,
ચંદ્ર સૂર્ય એક ઘેર લાવો હાં ...
જી રે લાખા, નવધા ભક્તિને કોઇ સાધે જી,
એ અલખપુરુષને આરાધે."–લોયણ

"નવધા ભગતિમાં નિરમળ રે'વું ને
શીખવો વિચનુંનો વશવાસ રે....
ભાઇ રે ! રંગરૂપમાં રમવું નહિ ને
કરવો ભજનુંનો અભિયાસ રે."–ગંગાસતી

લોયણ લાખાને નવધા ભક્તિ સમજાવે છે ત્યારે ઇંગલા, પિંગલા ને સુષુમણા સાંધવાનું કહે છે. સૂર્ય અને ચંદ્ર નાડીને એક ઘેર લાવવાનું કહે છે. તેનો અર્થ એ યોગના સંદર્ભમાં નવધા ભક્તિ સમજાવે છે. તેમાં અલખપુરુષ એટલે કે અગમ્ય પુરુષને ઓળખવાનો છે. ત્યાં ભાગવતની નવધા ભક્તિ હોય તેમ 'લાગતું' નથી. વળી, ગંગાસતી પણ રૂપરંગમાં રમવાની ના પાડે છે, વચનમાં વિશ્વાસ રાખવાનું કહે છે. આ વચન એ તો રહસ્ય–બ્રહ્મ માટે વપરાયેલ શબ્દ છે. નવધા ભક્તિમાં નિર્મળ રહેવાનું જણાવે છે. ત્યાં પણ સગુણ નવધા ભક્તિ હોય તેમ સ્પષ્ટ થતું નથી. તે રીતે આ મહાધર્મને વરેલા સંતોની નવધા ભક્તિ એ ભાગવત અને રામચરિતમાનસની નવધા ભક્તિથી અલગ હોવાનો સંભવ છે. હરિજન સંત પીઠા ભગતે તો સ્પષ્ટ જણાવ્યું છે કે 'વચનને ઓળખવું તેનું નામ ભક્તિ.'

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

મોટો ભાગ યાન્ત્રિક અનુભૂતિઓનું વર્ણન કરે છે. આ યૌગિક માર્ગની જ વાત કરે છે. જેમકે તે લોકો ઇંગલા, પિંગલા અને સુષુમણાની વાત કરે છે. આ યૌગિક માર્ગ જ છે.

સ્વામી વિવેકાનંદ કહે છે કે: "પતંજલિ પછીના સમયમાં થયેલા યોગીઓ માને છે કે માનવશરીરમાં પ્રાણના ત્રણ મુખ્ય પ્રવાહો છે, એક પ્રવાહને ઇડા, બીજાને પિંગલા અને ત્રીજાને સુષુમણા કહે છે. એમની માન્યતા પ્રમાણે કરોડ-રજ્જુની જમણી બાજુએ પિંગલા, ડાબી બાજુએ ઇડા અને મધ્યમાં સુષુમણા આવેલ છે. આ સુષુમણા પોલી પ્રવાહનળી છે. મનુષ્ય-માત્રના શરીરમાં આ ઇડા અને પિંગલાના પ્રવાહો કામ કરી રહ્યા છે. એ પ્રવાહો દ્વારા જીવનમાં તમામ કાર્યો આપણે કરી રહ્યા છીએ. સુષુમણા પણ દરેકમાં રહેલી તો છે, પણ એ માત્ર યોગીના શરીરમાં જ કાર્યશીલ હોય છે" ૧૭

જેની સુષુમણા નાડી જાગૃત થાય છે તેને ભિન્ન-ભિન્ન યૌગિક અનુભવો થાય છે. આ બાબતનું પ્રમાણ હરિજન સંતોનાં પદમાં જોઇએ:

"ઇંગલા પિંગલા સુષુમણા સાધી
ત્રિવેણી તાર મિલાય."–ત્રિકમસાહેબ

"તખ્ત ત્રિવેણી અલોપ છે, ગંગાજમનાને ઘાટે,
સુષુમણામાં જીવણ સાધજો, વળી જાજો એ વાટે."–ભીમસાહેબ

"ઇંગલા પિંગલા અને સુષુમણા, ત્રિકુટીમાં લાગી તાળી,
મુને મતવાલો પ્યાલો પાયો."–લક્ષ્મીસાહેબ

આ પ્રમાણે યોગની ક્રિયા અને નાડીઓ વિશેનું જ્ઞાન આ સંતોમાં જોઈ શકાય છે.

યોગમાં જેમ જેમ આગળ વધવામાં આવે છે તેમ તેમ સાધકને જુદા જુદા અનુભવો થતા જાય છે આ ત્રણે નાડીઓ ઇડા, પિંગલા અને સુષુમણા જેણે સાંધી લીધી, જેણે ત્રિકુટીમાં તાર મિલાવી લીધો એટલે કે નાકની અણી પર અથવા બે ભ્રવાની વચ્ચે જેને ત્રિકુટી કહે છે ત્યાં જો ધ્યાન કેન્દ્રિત થઈ ગયું, તો તેથી જુદીજુદી અનુભૂતિઓ થાય છે.

"અણી અગર પર આસન કીધા, અગમ ભેદ હૈ એમાં."
–ત્રિકમસાહેબ

20:43

હરિજન ભક્તકવિઓની વાણીમાં આ સમગ્ર યોગક્રિયા જુદી જુદી રીતે વર્ણવવામાં આવી છે, તેનાં થોડાં ઉદાહરણો જોઈએ તો :

"અબધુ દીયા તખત પર ડંકા રે, સો ઘર સેજે પાયા રે જી,
નાભિકમલથી નટવર ચડીયા, પવનપુરુષ પલટાયા રે જી,
વંક નાળકી ખડકી ખોલી, ઉલટા રાહ ચલાયા રે."–દાસી જીવણ

"જાગ્રત સ્વપ્ન સુશોપતિ તુરીયા, ઉનમુનિ મુંદ્રા લાગી,
અક્ષરાતીત આપે નર ઓળખ્યા, તેની ભે ભરમનાં ભાંગી."–દાસીજીવણ

"સુન મંડળની શેરીએ અહરનીશ વાજાં વાગે,
ઇ શેરમાં જુઓ તપાસી, કોણ સુતા કોણ જાગે,
તાલ, તંબુરા, મૃદંગ, મંજીરાં, જીણાં ઝાલર વાગે,
સતગુરુની ગાદી ઉપર ટણુણુ ટોકરા વાગે."–કાળો ભગત

"ગગન મંડળમાં વાજાં વાગે, રોમે રોમે રણુંકાર,
ત્રિકુટી મહેલમાં ખોલી દે તાળાં, તો મટી જાઇ ઘોર અંધેરા."

–માણંદ ભગત

વાણી દ્વારા આ સંતોએ ઈડા, પિંગલા ને સુષુમણા સાંધીને સૂર્ય–ચંદ્ર નાડીને ઉલટાવવાની ક્રિયા પણ જણાવી છે. નાભિકમળથી પવનપુરુષને પલટાવવાની ક્રિયા પણ દર્શાવી છે. તેમાં જે મુશ્કેલીઓ આવે તેના સંકેતો પણ આ કવિઓએ કરેલા છે. અંતમાં જે અનાહત નાદ સંભળાય છે તેને પણ મૃદંગ, મંજીરાં, ઝાલરની ઉપમા આપીને દર્શાવવા પ્રયત્ન કર્યો છે ગામડી ભાષામાં અને શાસ્ત્રોક્ત શિક્ષણ મેળવ્યા સિવાય યોગને વાણીમાં પ્રગટ કરી અનેરી સિદ્ધિ દાખવી છે.

૧૦. પ્યાલો : પ્યાલો તો ભજનોનો પ્રાણ છે. ઉમર ખૈયામ એક સૂફી સંત હતો અને એણે જે રૂબાયતો લખી છે એ બધી આધ્યાત્મિક અનુભૂતિથી ભરપૂર એવી વાણી છે. પરંતુ એના જે વિદેશી અનુવાદો થયા, ખાસ કરીને અંગ્રેજી અનુવાદો થયા, તેનાથી રૂબાયતોના અર્થોનું વિપરીત અને વિકૃત અર્થઘટન થયું. એની સાકીને, એની સુરાને અને એની પ્યાલીને આ જગત સાથે કોઈ સંબંધ નથી. એ તો છે અનંત સાથેની એકતાનો નશો. પણ એની ભાષા સમજવા જેટલી જગતની ઉંચાઇ નહોતી, આવો જ પ્યાલો આ હરિજન સંતોએ વારંવાર ગાયો છે. પ્યાલો આત્માનંદની અનુભૂતિનું પ્રતીક છે. બ્રહ્મરસનું પ્રતીક

"ઇંગલા પિંગલા સુષમ્ણા સાધી,
માંહ્ય જળહળ જ્યોતિ જાગી.
ત્રિવેણી તાર મેળવ્યા,
અનહદ નોબત ત્યાં વાગી,
ઘટડામાં જોયું મેં જાગી." – ત્રિકમસાહેબ

"તખત ત્રિવેણી અલોપ છે, ગંગા જમનાને ઘાટે,
સુષમ્ણામાં જીવણ સાધજો, વળી જાજો ઇ વાટે,
અખંડ રણુકાર હોઇ રહ્યા, કર બીન વાજાં વાગે,
સુરતા રાખી જીવણ સાંભળો, ધૂન ગગનમાં ગાજે."

– ભીમસાહેબ

"અબધુ દીયા તખત પર ડંકારે, સો ઘર સેજે પાયા રે જી,
નાભિકમળથી નટવર ચડિયા, પવનપુરુષ પલટાયા રે જી,
વંક નાળકી ખડકી ખોલી, ઉલટા રાહ ચલાયા જી રે."

– દાસી જીવણ

"નુરતે સુરતે તું નિરખ લેને જોગી રે, મનવા,
ગગનમંડળમેં ખેલે કોઇ નર જ્ઞાની,
ત્યાં ધ્યાન ધરી લે તું ધ્યાની રે." –દાસ વાઘો

હરિજન ભક્તકવિઓના પદને આધારે કહી શકાય કે, સતગુરુએ સમજાવેલ સાન પ્રમાણે ઓહમ્–સોહમ્‌ના નાદે નામસ્મરણ કરવાથી નાભિકમળમાં અર્ધસર્પાકારે પડેલ કુંડલિની–શક્તિ જાગૃત થાય છે અને સુલટા પવન ઉલટાવવાથી તે શક્તિ ઊર્ધ્વગામી બને છે. આંખની ડાબી બાજુએ ચંદ્રનાડી ઇડા અને જમણી બાજુએ સૂર્યનાડી પિંગલા દ્વારા ચાલતા શ્વાસને સમ કરી આ બન્ને નાડી વચ્ચે આવેલ સુષમ્ણામાં ગુરુના ઇશારાથી, સુક્ષ્મ બોધથી ઉલટાવવાનો હોય છે. તે સમયે પાયાની બાબત નુરતે–સુરતે નીરખવાનું છે. આ માટે શ્રી મકરંદ દવે કહે છે કે :

"નુરતે–સુરતે એટલે નિ.ર.તિ-ઉદાસીનતા, સુરતિ–તલ્લીનતા. પરમાત્મતત્ત્વની પ્રાપ્તિ માટે આ બે વસ્તુની ખાસ જરૂર અને તે આ શબ્દ જોડકાની જેમ સાથે જ જાય છે. એક તો બધી જ અસાર વસ્તુઓમાંથી મનને હટાવી લેવું અને બીજું એક જ સારતત્ત્વ પરમાત્મામાં મનને જોડી દેવું આ બન્ને પ્રક્રિયા સાથે થાય ત્યારે જીવાત્મા જડથી દૂર અને ચૈતન્યથી નજીક આવતો જાય. જડ પ્રકૃતિની પકડમાંથી નીકળી મુક્ત બનતો જાય. જ્યારે ચૈતન્યમાં સંપૂર્ણ મળી જાય ત્યારે જડ–ચેતનના ભેદ લય પામે. જેમ લુહાર નળી દ્વારા પવન ફૂંકીને આગને પ્રજ્વલિત

રાખે છે તેમ "ઉલટા પવન ચલાયા" નુરત–સુરતની નળીથી સુષુમણા દ્વારા પ્રાણની ઊર્ધ્વગતિ કરી." ૫

20:53

પહેરી પુરુષપણાનું ભાન પણ ભૂલી જાય છે. ત્રિકમસાહેબની વાણીમાં દાસીભાવ અને પ્રેમલક્ષણા ભક્તિ બન્ને જોવા મળે છે. દાસીભાવ નવધા ભક્તિનો એક પ્રકાર છતાં પ્રેમલક્ષણાનો પોષક છે. ભારતીય પરંપરામાં પતિ સ્વામી ગણાયો છે અને પત્ની તેને પૂર્ણ ભાવે સમર્પિત થાય છે, એ સંદર્ભમાં દાસ્યભાવ હીનતામૂલક નહિ, સેવામૂલક છે. કૃષ્ણપ્રેમનો તે પોષક છે.

૨. યોગ : ત્રિકમસાહેબમાં નાથપંથી યોગીઓના સંસ્કાર જોવા મળે છે. યોગી રામગુરુએ ત્રિકમસાહેબને સાન આપી હતી અને ગિરનારમાં ભવનાથની જગ્યા પાસે યોગસાધના કરી હોય તે શક્ય છે. ત્રિકમસાહેબ કબીરસંપ્રદાય સાથે સંકળાયેલા સંતકવિ છે. કબીરમાં યોગપંથની ઝીણીઝીણી બાબતો તેનાં પદમાં જોવા મળે છે હઠયોગના તેઓ વિરોધી હતા, છતાં તેઓની વાણીમાં નિર્ગુણવાદી નાથપંથીઓનો ઘણો પ્રભાવ જોવા મળે છે હરિજન ભક્તકવિઓમાં તેમનાં પદો દ્વારા ફલિત થાય છે કે પ્રભુને બહાર શોધવાની જરૂર નથી. પ્રભુ તો આપણી આ કાયાવાડીમાં સમાયેલો છે. આ અંગે ત્રિકમસાહેબ કહે છે કે :

“નાભિકમલથી ઉલટયો આવે, ગગન ધૂન ગરજાના,
ઇંગલા, પિંગલા, સુષુમણા સાધી
ત્રિવેણી તાર મિલાના.
નામ નિરંજન તેજ અપારા, ટીકા ત્યાં ઠેરાના.”

ઓહમ્-સોહમ્ના શ્વાસોચ્છ્વાસથી નાભિકમલમાં અર્ધસર્પાકારે પડેલ કુંડલિની-શક્તિને જાગૃત કરી, તેને ઉલટાવીને ઊર્ધ્વગામી કરવાની છે. આંખની પાસે ડાબી બાજુ ઇંગલા ચંદ્રનાડી અને આંખની પાસે જમણી બાજુ પિંગલા-સૂર્યનાડી, એ બન્ને વચ્ચે સુષુમણા નાડીનો ત્રિવેણી તાર મિલાવવાનો હોય છે, એટલે કે તેમાં ધ્યાન કેન્દ્રિત કરીને ત્રિકુટી સ્થાનથી આગળ મસ્તિષ્કમાં, ગગનમંડળમાં સહસ્રદલ કમળ છે તેની મધ્યમાં નિરંજન પ્રભુ તેજસ્વરૂપે બિરાજે છે તેનાં દર્શન કરવાનાં છે. આ શિખર ઉપર પહોંચવાનું અઘરું છે, કારણ કે કવિ ત્રિકમસાહેબ કહે છે કે :

“નીત નીત વર્ષે નુરા, શિખર પર પહોંચે વીરલા પૂરા.”

વળી ત્યાં તો અખંડ મોરલીનો મધુર ધ્વનિ સંભળાય છે.

“ઝાંઝ પખાજ વીણા જંતર વાગે મોરલી ઠરે છે મલાર,
શબ્દ શીંગી વાગે શુનમાં ગાજી રહ્યા માંય તુરા.”

આ નાદને સંતો અનહદ (અનાહત) નાદ તરીકે પણ ઓળખાવે છે.

“ઇંગલા પિંગલા સુષુમ્ણા સાધી,
માંઇ જળહળ જ્યોતિ જાગી.
ત્રિવેણી તાર મેળવ્યા,
અનહદ નોબત ત્યાં વાગી.”

યોગવાણી : દાસી જીવણની પ્રેમલક્ષણા ભકિતની સાથે યોગવાણી પણ એટલી જ શકિત ધરાવે છે. ઘટમાં વસેલા પરમાત્માને ઓળખવા માટે ઉત્તમ પ્રકારનો અધ્યાત્મભાવ આ યોગવાણીમાં જોવા મળે છે. કબીર અને ભાણ–સંપ્રદાયના ભકતકવિઓએ જે યોગવાણી આપી છે તેને દાસી જીવણ અનુમોદન આપે છે. જ્યોતિસ્વરૂપ પરમતત્ત્વનાં દર્શન કવિઓ કર્યાં છે. એટલે જ જુદાં જુદાં પદોમાં તેનું વર્ણન કરી શકયા છે.

"સબ ઘટમેં સાયબ દેખ્યા, નજર ભરમ નાંય,
હરખ–શોક વ્યાપે નહિ તનમાં, એસી અદલ ચલાય."

ઘટમાં રહેલા સાયબનાં દર્શન થતાં સુખદુઃખ, હરખ–શોક મટી જાય છે. અજ્ઞાન–અંધારું દૂર થઈ જાય છે. અખંડ લીલાનાં દર્શન થાય છે. આ ગેબી કચેરીની શોભા વર્ણવી શકાય તેમ નથી.

"કોટિક ચંદા ઝગમગે, માંય કોટિક ઊગ્યા સૂર,
કોટિક દીપક દેખિયાને, સતગુરુ પાયા હજૂર રે."

કરોડો સૂર્ય, ચંદ્ર અને દીપક ત્યાં પ્રકાશી રહ્યા છે કોઇ જ્ઞાનીને ગુરુ કૃપાથી આ દિવ્ય દર્શન થાય છે. આ માટે દાસી જીવણ યોગમાર્ગ દર્શાવતાં પદોમાં જણાવે છે કે :

"નાભિકમલથી નટવર ચડિયા, પવનપુરુષ પલટાયા રે જી,
વંકનાળકી ખડકી ખોલી, ઉલટા રાહ ચલાયા રે."

"ઈંગલા પિંગલા સુષુમણા સાધી ત્રિવેણી મોલમે આઇ,
કોઇ જાગંદા આ દિલમાંય, ઝણુંક ઝાલરી વાગી."

"જાગ્રત સ્વપ્ન સુશોપિત તુરિયા, ઉનમૂનિ મુંદ્રા લાગી,
અક્ષરાતીત આપે નર ઓળખ્યા, તેની ભે ભરમનાં ભાંગી."

ઓહમ્–સોહમ્ શ્વાસોચ્છ્વાસ –ક્રિયા દ્વારા નામની માળા રટવાની છે. આ અજપાજાપથી નાભિકમળ નીચે કુંડલિની–શકિત સાડાત્રણ આંટાએ સર્પાકાર અધોમુખી પડી છે, તેને ઓહમ્ શ્વાસ ભરતાં, સોહમ્ શ્વાસ મૂકતાં ડાબી ઈંગલા નાડી ને જમણી પિંગલા નાડી વચ્ચે સુષુમણા નાડીમાં શ્વાસ ત્યાં થોડો સમય ઠેરાય છે, ત્યારે પવનપુરુષને ઉલટાવવાનો હોય છે. ઈંગલા, પિંગલા ને સુષુમણા નાડીનો ત્રિવેણીસંગમ થાય છે ત્યાં ધ્યાન ધરીને યોગીઓ પવનપુરુષ પલટાવી કુંડલિનીને ઊર્ધ્વમુખી બનાવે છે. આમ થવાથી કામક્રોધને જીતી શકાય છે. તે પછી અક્ષરાતીતનાં દર્શને આગળ વધાય છે. આ પરમતત્ત્વનું સ્થાન દર્શાવતાં જીવણ કહે છે કે :

"નવે દરવાજા નવી રમતકા, દશમે મો'લે ઓ દેખાય;
સોઇ મહેલમાં મેરમ બોલે, આપું ત્યાગે ઓ ઘર જાય."

આ કાયામાં સંતોએ દશ દરવાજા કહ્યા છે. દશ નાડીઓનાં દ્વાર, તેમાં જે દશમું દ્વાર એટલે કે એ મહેલમાં મેરમ વસેલા છે. આ ઘર સુધી પહોંચવા 'હું'નો ત્યાગ કરવો પડે છે. એટલે જ કબીર જણાવે છે કે :

"મૈં થા તબ હરિ નહિ થા, હરિ હે તબ મેં નાહિ."–કબીર
"આપ તજે હરિકો ભજે, લાખનમેં વીરલા કોય."–કબીર

'હું'ને છોડીને, અભિમાન છોડીને જવાનું છે. આ સ્થાન માટે દાસી જીવણ કહે છે કે :

"અષ્ટકમળ ખટ શિખર ઉપર આપ વસે અવિનાશી."

મસ્તિષ્કમાં અષ્ટકમળ આવેલું છે તેને સહસ્ત્ર પાંખડીનું કમળ પણ કહે છે. તેના ઉપર અવિનાશી બેઠા છે ત્યાં :

"ઓહમ્ સોહમ્કી ઝલમલ જયોતિ,
ચાંદો સૂરજ માંઇ દીપક ઝરે રે."

ચંદ્ર ને સૂર્ય પ્રકાશી રહ્યા છે અનેક દેવો બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને મહેશ તેની પ્રાર્થના કરે છે. આ પરમ તત્ત્વને મળવા અનેક આત્માઓ તલસી રહ્યા છે. આ ગેબી કચેરીમાં અનેક પ્રકારની રાગ–રાગિણી સંભળાય છે તેને સંતોએ "અનાહત નાદ" તરીકે ઓળખાવ્યો છે.
દાસી જીવણ કહે છે કે :

"ઓઇ દુકાને દડદડ વાગે, કર વિના વાજાં, અહોનિશ વાય.
વિના અરિસે આયાં સૂજે, વિના દીયકે જયોત ઝલાય."
"ઝાલરી ઝણણ ઝણણ ઘૂઘરી ઘનનનન
ત્યાં શીંગી ને નોબત વાગે છે ચોઘરી, અનહદ વાજાંઓ વાગે."

બંગલો : ભક્તકવિઓએ આ કાયાને અનેક ઉપમાઓ આપી છે. આ જુદીજુદી ઉપમાઓ દ્વારા આખર તો આ દેહની રચના સમજાવી, તેમાં રહેલા પરબ્રહ્મતત્ત્વને ઓળખવાનો માર્ગ દર્શાવ્યો છે. રવિસાહેબે ચરખાની ઉપમા આપી છે :

"આ કોણે બનાયો ચરખો ? તમે નૂરતે સુરતે નીરખો !
એના ઘડનારાને પરખો, કોઇ પરિબ્રહ્મને પરખો."

ગોરખ એરણની ઉપમા આપે છે :

"એરણ અજબ બનાયા, મેરા સતગુરુ !
એરણ અજબ બનાયા."

દાસી જીવણ આ કાયાને બંગલાની ઉપમા આપી સમજાવે છે કે :

"બંગલા બેશ બન્યા હદ લેશ, વામેં સાહેબજી બોલે,
પાંચ તત્ત્વકી ઇંટ બનાઇ, તીન ગુનકા ગારા,
પચીસ પ્રકારકી પુરવણી પુરાઇ, રૈનેવાલા ન્યારા.

આ કાયામાં દશ દરવાજા, બીચ પવનકા થંભા,
આવત–જાવત કછુ ન દેખ્યા, ઓહી બડા અચંભા.

ઇંગલા પિંગલા સુખમન નારી, તીનુ તાર મીલાયા,
નૂરત સુરતે ગાવન લાગી, રાગ છતીસે લાયા."

આ કાયાનગરીમાં આપણો શ્યામસુંદર વસેલો છે. તેને બહાર શોધવાની જરૂર નથી. તેથી દાસી જીવણ આ બંગલા પદમાં દેહની રચનાને સમજાવે છે. આ કાયાનગરીમાં પાંચ તત્ત્વ, ત્રણ ગુણ, પચીસ પ્રકૃતિ છે. દશ દરવાજા, ઇંગલા, પિંગલા, સુષુમ્ણાનાડીઓ આવેલી છે. આ કાયામાં બ્રહ્મરન્ધ્રમાં સહસ્ત્રદલ પદ્મ પર અવિનાશી બ્રહ્મ બેઠેલા છે, ત્યાં છત્રીસ રાગરાગિણી વાગે છે જેને અનાહત નાદ કહેવામાં આવે છે. કવિ કહે છે કે ભીમગુરુની કૃપાથી મને તો આ બંગલામાં ખોજ કરતાં પુરુષોત્તમની પ્રાપ્તિ થઈ છે. જીવણ પડકારીને જણાવે છે કે :

"ગુરુને કાયામાં ગોતજો રે, અમને દાસી જાણીને દેજો દિદાર,
દશમાં મ્હોલમાં ડેરી બિરાજે, રાખજો ધોળી ધજાનાં પ્રમાણ."

ઉપરાંત દાસી જીવણનાં પદોમાં મહાભારત, રામાયણ, પુરાણ અને દંતકથાઓના પ્રમાણનો આધાર લીધો છે. ભક્તોના જીવનચરિત્રના પ્રસંગો પણ જોવા મળે છે.

આ પ્રસંગો દ્વારા પદોને લોકભોગ્ય બનાવ્યાં છે. સાથેસાથે કુદરતની અકળ કળાનાં દર્શન પણ કરાવે છે. આ રીતે દાસી જીવણનાં પદોમાં વિવિધ વિષયો જોવા મળે છે.

દાસી જીવણની રચનાઓ કવિત્વથી સભર છે. આ પરંપરાના કવિઓમાં દાસી જીવણનું સ્થાન ઉત્તમ કવિ તરીકેનું છે. પરમ આત્મતત્ત્વને 'મોરલા'નું

રાખે છે તેમ ''ઉલટા પવન ચલાયા'' નુરત–સુરતની નળીથી સુષુમણા દ્વારા પ્રાણની ઊર્ધ્વગતિ કરી.'' ૫

આમ થવાથી ગગનમંડળમાં શૂન્યશિખર સહસ્ત્રદલપદ્મમાં હરપળે બ્રહ્મજ્યોતિનાં દર્શન થાય છે ને ભીતરનો અંધકાર દૂર થઇ જાય છે. ત્યાં અનાહતનાદ સંભળાય છે ને રોમરોમમાં રણકાર જાગે છે. આ અવસ્થામાં સ્વયં બ્રહ્મ બની જવાય છે દાસી જીવણ આ માટે કહે છે કે ''સો ઘર સેજે પાયા રે જી'' આ ઘરનું દર્શન સહજયોગ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ છે.

હરિજન ભક્તકવિઓની વાણી સાથે એક જ અર્થ દર્શાવતી સવર્ણ સંત કવિઓની વાણીમાં ''સહજયોગવાણી'' જોવા મળે છે, જેમકે :

''શશી સૂરમેં, સૂર શશીમેં, અણસારે ઉલટાવે,
નિરખે પલ પલ નૂર નિરંતર, અનહદ નાદ બજાવે.''

– રવિસાહેબ

''ડાબી ઇંગલા, જમણી પિંગલા,
નુરત સુરત કર જોતી,
દેવ ડુંગરપુરી ઓલિયા,
હું હરખે હાર પરોતી.'' – ડુંગરપુરી

ઇંગલા રે પિંગલા સેવા સાધની,
સુષમણા નાડી તોરી સેજે ખડી,
ત્રિકુટી–મ્હેલમેં હુઆ ઉજવાલા,
જલમલ જલમલ જ્યોત જલી.'' –દેવરામ

''ભાઇ રે ! નાભિકમળમાંથી પવન ઉલટાવ્યો ને
ગયો પશ્ચિમ દિશામાંય રે,
સુરતા ચડી ગઇ સૂનમાં ને રે,
ચિતમાંહી પુરુષ ભાળ્યા ત્યાંય રે.'' –ગંગાસતી

એક જ બાબતને સંતોએ જુદા જુદા શબ્દો દ્વારા સમજાવેલ છે. આ સંતવાણીમાં યોગક્રિયાની અટપટી ગલીકુંચીઓ દર્શાવી નથી, પરંતુ ભક્તિના

નગર નેજા રોપાવિયા, પાંચ તલાવડે પ્રકાશ,
લક્ષ્મી જાયા ઘણો લાભ, એ તો પુત્ર પાતા તણા. –૧.

એક લાખ લંગર વાગે, બે લાખ બાજીગર,
તેર લાખ તેલિયા ટપોરિયા, છપ્પન લાખ મનવેરાગી. –૨.

ભાઇ તમે ભડા કમાવ, કંઇક નર ને નમાવ્યા,
ઉગતા ગયા અંકારા, વેધુ નર વીરમ કે વાઘાતણું. –૩.

વીરમ જોગી પાસે વેપાર, બે ઘડી બેસી કંચનનો કરિયે,
અને હૈયે હાર હરિનો, દાસ પૂરણ કહે એને દીઠે કરિયે." –૪.

કાવ્યતત્ત્વની દૃષ્ટિએ વાઘો ભગત ત્રિકમસાહેબ, અને દાસી જીવણના અનુયાયી છે. તેમનામાં યોગવાણીનું તત્ત્વ એકસરખું જોવા મળે છે. નાભિકમળથી ચાલી ઇંગલા, પિંગલા, સુષુમણા સાધીને નુરતખત પર, મેરુશિખર પર દેવ બેઠા છે તેનાં દર્શન કરવાનું જણાવે છે. કવિએ નામની ભક્તિ સ્વીકારી છે.

વાઘા ભગતના પદોમાં 'ચૂંદડી' પદ શ્રેષ્ઠ ગણાય. જે રીતે સંત-સાહિત્યમાં મૂળદાસની 'ચૂંદડી' અનોખી ભાત પાડે છે, તેમ આ પદ ભજનના 'ચૂંદડી' પ્રકારનું બની જાય છે. મૂળદાસે "સુંદર વરની ચૂંદડી" વિવેક–વૈરાગ્યના તાણા·વાણા વણી અને ફાટે પણ ફીટે નહીં એવા પ્રેમના મજીઠી રંગમાં ઝબોળી તૈયાર કરી છે. જ્યારે જિન્દગી આ ચૂંદડી ઓઢે છે ત્યારે તેનો સુંદરવર સાથે હસ્તમેળાપ થાય છે, તે પ્રમાણે વાઘા ભગતની આ ભક્તિની ચૂંદડી, પ્રભુના બાનાની ચૂંદડી કોણે ઓઢી છે તેનાં પ્રમાણ આપે છે. પ્રથમ જુગમાં પ્રહ્‌લાદે, બીજા યુગમાં હરિશ્ચંદ્રરાયે, ત્રીજા જુગમાં યુધિષ્ઠિરરાયે અને ચોથા જુગમાં બળિરાયે ઓઢીને મુક્તિ મેળવી છે. આ ચૂંદડીની ઓળખાણ આપતાં કવિ જણાવે છે કે, સતગુરુએ બી' રોપ્યાં, તેને ભાવેથી, પ્રીતેથી પાણીનું સિંચન કર્યું, તો તેમાં પ્રેમની ડાળો ફૂટી, (અહીં પ્રેમલક્ષણા ભક્તિનો સંકેત કવિ આપી જાય છે) તેમાં દયાના ફૂલ લાગ્યાં, ધર્મનું જીંડવું તૈયાર થયું. તેમાંથી રહેણીકરણીરૂપી રૂ નીપજ્યું. તેને નુરતે–સુરતે કાંતીને કબીરસાહેબે આ ચૂંદડી વણી છે અને નામદેવ ભક્તે તેની ભાત પાડી છે. આ ભક્તિરૂપી અમૂલ્ય ચૂંદડી અખંડવરની છે. આ ચૂંદડી ઓઢવાનું કવિ જણાવે છે. કબીરસાહેબની "ઝીની ચુંદરિયા"ની યાદ અપાવી જાય છે.

દાસ વાઘો વધુ જીવ્યા હોત તો પ્રેમલક્ષણા ભક્તિની ઉત્કટતા તેમનાં પદોમાં સવિશેષ જોવા મળત એનું દૃષ્ટાંત "મુને વ'ત જડી એક નામી" પદમાં "હું થઈ છું દીવાની" એમ કહે છે તેમાં છે. સ્ત્રીભાવે લખેલો આ એક ચરણાર્ધ તેને બીજા 'દાસી જીવણ' તરીકે વિકસવાની ક્ષમતાનો નિર્દેશ કરે છે. અન્યથા તેમની ભક્તિ 'પ્રેમપદારથ' સ્વરૂપની તો છે જ.

“… રે મોતી ભાઈ કોક નરને મળશે,
થાશે ગોવિંદ કેરી ગોપી.”

મોતીને પ્રાપ્ત કરવા ગોવિંદની ગોપી બનવું પડે છે.

શબ્દાતીત બ્રહ્મને માટે બાળકસાહેબ જણાવે છે કે :

“બાવનમાંહી બોલતો ને, અબોલ બાવનથી બાર.”

પરા, પશ્યંતી, મધ્યમા અને વૈખરી; વાણીના ચાર પ્રકાર; તેમાં આ પરાથી પણ અપાર છે, બાવન અક્ષરની બહાર છે, એટલે તેને વર્ણનમાં બાંધી શકાય તેમ નથી. એટલે બાળકસાહેબ કહે છે કે :

“શૂન્ય શિખર કેરી ધૂનમાં, ઉન્મુનિ આસન લગાઈ,
અગમ નિગમ કેરી ઓથમાં, કોઈ વીરલા સંત જાઈ.”

સતગુરુની કૃપાએ વિરલા સંત શૂન્યશિખરે પહોંચી શકે છે. નુગરા તો આ સંસારના ઊંડા દરિયામાં ડૂબી જાય છે.

ઉપદેશનાં પદોમાં ધ્રુવ, પહ્‌લાદ, મીરાં, તોરલ, રૂપાંદે અને પાંડવો તથા કુંવરબાઈનું મામેરું જેવા પ્રસંગો અને પાત્રો દ્વારા લોકભોગ્ય બન્યા છે. સાદી, સરળ ભાષા અને પરિચિત ઉદાહરણો લોકહૈયામાં–સહેલાઈથી વસી ગયાં છે. બાળકસાહેબની વાણી યોગરહસ્યની સાથે ઉપદેશાત્મક રહી છે.

૧૩. પીઠો ભગત

“નામ અમર પીઠા ભગતનું, ગામ વંથલી ગોકુળપરી,
શોભા વખાણું, જૂનાગઢની, જાણે ઇન્દ્રની ઇન્દ્રાપરી.”

જૂનાગઢનું ધાર્મિક સ્થાન તરીકે ઘણું મહત્ત્વ છે. ગિરનારની આ પવિત્ર ભૂમિની ગોદમાં વંથલી આવ્યું છે વંથલી સાથે અનેક પૌરાણિક ઘટનાઓ સંકળાયેલી છે. આગમવાણીના કર્તા દેવાયત પંડિન વંથલીના હતા જનશ્રુતિ દ્વારા જાણવા મળે છે કે :

“મેં મેલે તોય મેઘવાર ન મેલે, બારે દિયે ન ખૂટે,
સત્યા પારખો તમારા સતને, રાજાબળનાં બંધન છૂટે.”

વંથલીમાં સતો અને પરખો બન્ને હરિજન–વણકર ભાઈઓ હતા. બન્ને ધાર્મિક વૃત્તિના અને શ્રાવણ માસમાં સાધુ સંતોને ભોજન કરાવતા હતા. ત્યાં એક વખત સાધુ રાજાબળીને કેદ કરીને લાવે છે. રાજાની કેદ મુક્તિની શરત છે કે જો કોઈ સાધુને રોટી, બેટીને લંગોટી આપે તો રાજાબળીનાં બંધન છૂટે. સાધુના આ બોલને સાંભળીને બન્ને ભાઈઓએ સાધુને ભોજન કરાવ્યું (રોટી). વણાટકાર્ય કરતા જ હતા, તેમાંથી કપડું આપ્યું (લંગોટી) અને મોટાભાઈ સતાની અપંગ દીકરી મેઘડાનાં લગ્ન કરી આપે છે (બેટી). સાધુએ જ્યારે અપંગ

મોટી ગણાવી છે. દાસ હમીરો જોગીઓને જણાવે છે કે "એ જોગેશ્વર સરોદા મત સાધો." નાકમાંથી ચાલતા શ્વાસ ઉપરથી ભવિષ્ય કહેવાની વિદ્યા સાધવા કરતાં નિજારને પંથે ચાલો. ગુરુમહિમા અને મૃત્યુ અનિવાર્ય દર્શાવી કવિએ ઉપદેશ પણ આપ્યો છે. આ કવિ અન્ય કવિપરંપરાથી જુદા નથી.

૨૦. રૂખી રામદાસજી

રૂખી રામદાસજી રૂખી (ભંગી) જ્ઞાતિમાં થયા છે. મૂળ ગામ લીંબડી તાલુકાનું ગોધાવટા ગામ છે. રૂબરૂ મુલાકાતને આધારે જાણવા મળ્યું કે તેમનો જન્મ આશરે વિક્રમ સંવત ૧૯૬૫ માં થયો હતો અને સમાધિ વિક્રમ સંવત ૨૦૦૦ માં રાજકોટ મુકામે લીધેલ છે. વર્તમાનમાં "રૂખી રામદાસ વિશ્રામ મંદિર" રાજકોટ તિલક હરિજનવાસ શેરી-૪ માં આવેલ છે. રૂખી રામદાસે ભંગીસમાજમાં દારૂ, જુગાર, અંધશ્રદ્ધા, અજ્ઞાનતા દૂર કરવા ગામેગામ ફરી 'સત્ય-સંદેશ' પત્રિકાઓ છાપીને ઉપદેશ આપ્યો છે.

રૂખી રામદાસની વાણીમાં આત્મજ્ઞાન છે. તેમનાં ચાર પદમાં આત્માને ઓળખવાનું કહે છે. રહસ્ય-બ્રહ્મ વિશે અન્ય સંતોએ જે શબ્દ, સાહેબ, નામ, શૂન્ય-શબ્દોનો ઉપયોગ કર્યો છે તેમ રૂખી રામદાસજી આ બાબતને સઘનરૂપે માત્ર ચાર પદોમાં પ્રગટ કરી જાય છે.

"શૂન્યમાં સુરતા હવે લાગી, સાધુ અનહદ શબ્દ ગગનમાં ગાજે."

"અમને સાહેબ મળ્યા." "હાં રે ભાઈ, "એકવીસ વરમંડની ઉપરે ત્યાં નામ છે નિજનામી રે." આ સાહેબ તે જ નિજનામનું સ્મરણ કરવાનું કવિ જણાવે છે. રામદાસ આ માટે જણાવે કે મને સતગુરુ મળ્યા ને અજવાળું થયું. મારામાં રવિભાણ પ્રગટ થયા. શૂન્યશિખર ઉપર સુરતા લગાડવાથી અનહદ નાદ ગાજી રહ્યો છે તે સંભળાય છે. પછી તો

ઝરમર ઝરમર અમીરસ ઝરે છે તે જોયું, અને ઝળહળ જ્યોત અખંડ પ્રકાશી રહી છે તે દલભીતરમાં જોઈ, તેઓની વાણીમાં કબીર, રવિ, ભાણની તત્ત્વજ્ઞાનની યોગભૂમિકા જોવા મળે છે.

"સાધુ ઉન્મુનિ મુદ્રાએ જાપ અજપા રે,
તખત ત્રિવેણીમાં હંસા નીર ના'યા રે,
અખંડ વરસે ત્યાં અમીધારા રે."

કવિએ ઓહમ્-સોહમ્‌ના નાદથી ઇડા, પિંગલા, સુષુમણાની તખત ત્રિવેણીમાં તાર મિલાવીને ગગનમંડળમાં ચાલી રહેલ અનાહત નાદ સાંભળીને ઝળહળ જ્યોતિનાં દર્શન કરવાનું જણાવ્યું છે. કવિ ચેતવણી પણ આપે છે કે :

"ચેતન પુરુષ તમે ચેતજો, નામની કરી લિયો ઓળખાણી."

રામદાસનું એક પદ સૃષ્ટિના સર્જન ઉપર રચાયેલું છે. તેમાં જણાવે છે કે, જ્યારે આ પૃથ્વી ઉપર એક પણ જીવ ન હતો ત્યારે નિરંજન નિરાકાર પ્રભુ હતા. તેમણે સૌપ્રથમ શક્તિનું સર્જન કર્યું. આ શક્તિ (સ્ત્રી)એ ત્રણ દેવ (બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, મહેશ)નું સર્જન કર્યું. તે પછી પૃથ્વીના અન્ય જીવો અને સૃષ્ટિની રચના કરી. તે સમયે જ બીજધર્મ-મહાધર્મની સ્થાપના કરવામાં આવી. સૌપ્રથમ આ ધર્મ શિવ-પાર્વતીએ ચલાવ્યો. તે પછી માર્કંડઋષિએ આ ધર્મનો મહામંત્ર જાણ્યો અને તે પછી સમાજમાં ફેલાવ્યો. આ ધર્મ લેખિત રૂપમાં જોવા મળતો નથી. તે વેદ-કુરાનથી બહારો છે. આ પૃથ્વીને ધર્મના મૂળને જણાવી રહસ્ય-યોગ પ્રગટ કરી, રામદાસ ઉચ્ચકોટિના કવિઓમાં સ્થાન મેળવી જાય છે.

બ્રહ્મકુંડ નિજ થાનં,
અજપાજાપ જપતા ગોરખ
આતીત અનુપમ ધ્યાનં.”

તે અજપાજાપનો નાદ સંભળાય છે તે અહીં હરિજન ભક્તકવિઓમાં ઠેરઠેર જોવા મળે છે.

“અણધુ દીયા તખત પર ડંકા રે, સો ઘર સેજે પાયા,
નાભિકમળથી નટવર ચાલિયા, પવન પુરુષ પલટાયા,
વંકનાળકી ખડકી ખોલી, ઉલટા રાહ ચલાયા.”– દાસી જીવણ

ઇડા, પિંગલા અને સુષુમણાને સાધીને નાભિકમળમાંથી પવનપુરુષને પલટાવીને કુંડલિની શક્તિ જે અધોમુખી છે તેને ઊર્ધ્વમુખી કરવાનું આ સંતોએ સમજાવ્યું છે. અષ્ટકમળમાંથી આ શક્તિને પસાર કરાવીને મસ્તિષ્કમાં આવેલા સહસ્રદલ પદ્મમાં વિરાજેલા બ્રહ્મનાં દર્શન અને ત્યાં શૂન્યશિખર ઉપર સંભળાતા અનાહતનાદ સુધી લઇ જાય છે. આ પ્રક્રિયાને સંતોએ સહજ–સમાધિ તરીકે ઓળખાવી છે. ભજન–ધૂનથી આ આનંદસમાધિ કરી છે. આ સંતોએ યોગસાધના કર્યાનું પ્રમાણ મળતું નથી. માત્ર ત્રિકમસાહેબ અને બાળકસાહેબ યોગસાધના કરવા ગિરનારમાં ગયા, તેમ તેમના જીવનચરિત્રમાં જાણવા મળે છે. બાકીના સંતોને ગુરુકૃપા અને ભક્તિના રંગે આ સહજ–સાધના યોગ સુધી લઇ ગઇ હોય તેમ લાગે છે. તેઓની યોગવાણીના શબ્દો સ્પષ્ટ કરી જાય છે કે આ ભક્તો યોગના જાણકાર હતા.

યોગ અને રહસ્ય ગુરુ વગર પામી શકાય નહીં. આ સંતપરંપરામાં મહામાર્ગ–નિરજારપંથ એ ગુપ્ત પરંપરા છે. તેમાં યોગ અને રહસ્ય છે. તેના પાર પામેલા ગુરુ વગર તેનું જ્ઞાન મેળવી શકાય નહીં. કેટલાક ગુપ્ત ભેદ એ ગુરુ જ સમજાવી શકે છે, તેથી ગુરુમાહાત્મ્ય છે. આ સંતપરંપરામાં “ગુરુ એ જ ગોવિંદ” એમ સ્વીકાર્યું છે.

“મારા ગુરુજીની બલિહારી, મેં સત્યનામ પર વારી,
વચન–ભેદ મારા ગુરુએ બતાવ્યો, જોયું તત્ત્વ વિચારી.” –દાસી જીવણ

વચનભેદ અને સતનામ એ ગુરુ વગર પ્રાપ્ત થાય નહીં. અહીં તો ગુરુનો અભિમંત્રિત પ્યાલો પીધા વગર અજ્ઞાન–અંધારું ટળતું નથી. સતગુરુની કૃપાએ જ ભીતરના ગુરુનાં દર્શન થાય છે અને આ દર્શન થયા પછી આત્મવાણી જાગે છે. આ ભક્તકવિઓએ તેના પ્રમાણરૂપે નામાચરણમાં ગુરુકૃપાનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

સાચા ઠાકોર સેવીએ, જપીએ દેવમોરાર,
બીજ ખેતર વાવિયો, ધરણી પાયો ધાર,
ધરણી માથે વરખ મોર્યો, ધરણી પાયો ધાર,
ચેતન નગરી ને પ્રેમ રાજા, બેઠા સુરિજન ચાર.

સુરિજન! શ્યામને સમરીએ, તારે તારણહાર,
જી રે રાણી! પ્રથમ હતો માના પેટને ગરણુદ્ધાર,
હે જી જપીએ દેવ મોરારજી.

જેટલાં તીરથ કીજિયે, તીરથ શરણું હોય,
તીરથ ગંગા ગોદાવરી, જેનાં નરમળાં નીર હોય,

બારા તણાં બાર પૂજો, નૂરત સાંધો સૂરત,
નુરત માળા, સૂરત સમરો સુખમનાને ઘાટ,
કાયાવાડી હંસ ભમરો ખેલે ગઢ મોઝાર,
જી રે રાણી! તીરથરો આ જીવ છે મેમાન,
હે જી જપીએ દેવ મોરારજી.

૨૭૬

શિવ શક્તિ આદિ ઉપન્યાં, કાંકણ ભરિયાં ચાર,
પેલા કાંકણ મેર (મેરુ) માંડયો, ધરણીને અંકાશ.
બીજે કાંકણ પવન પાણી વનસપતી અઢાર,
ત્રીજે કાંકણ ચાંદો સૂરજ મેલ્યા મેઘ મલાર.

ચોથે કાંકણ ધરમ છાંયો, શિવશક્તિ ઘેર વાસ,
જી રે રાણી દુરિજન હૈયામાંથી મેલ્ય,
હે જી જપીએ દેવ મોરારજી.

સુરિજન મેળા મેં સુણ્યા, ગાયા અપરંપાર,
પાનાં ફળિયાં, ચોક પૂર્યા, બેઠા રણુશીરાય,
ધરા જાજમ, અંકાશ તંબૂ, બેઠા નકળંક પાટ,
રંભા નાચે, વેદ વાંચે, હુવો જેજેકાર.

કર જોડી ખીમડિયો બોલ્યા, સિદ્ધા સુરિજન ચાર,
જી રે રાણી પ્રાપત હોય તો પામીએ જી,
હે જી જપીએ દેવ મોરારજી.

કહે ત્રિકમ ખીમ કેરા ચરણે,
વાત પૂછું છું હેમખેમની રે–
મને મારી કટારી પ્રેમની રે.

૩

સતગુરુ મળીયા મારા સેસા ટળીયા ને, મારી ભે ભરમણા ભાગી,
જી હો લેરું લાગી રે....જી.

નાભિકમલમાં નાવ ચલત હૈ– માંઇ જળહળ જ્યોતું જાગી,
બુદ્ધિની બંદૂકડી ને, પ્રેમના પલીતા, જ્ઞાનની ગોળી વાગી–
જી હો લેરું લાગી રે....જી.

જ્ઞાનના ગભરુ મેં કોઇ ન જાણ્યું–સતગુરુ મળ્યા સુહાગી,
કહે ત્રિકમ ગુરું ખીમને ચરણે, ચરણકમલમાં લેર લાગી,
જી હો લેરું લાગી– મારો મનવો વેરાગી....જી.

૪

પ્રેમે વિંધાણા મારા પ્રાણ, સતગુરુએ માર્યાં શબ્દોનાં બાણ.
માનસરોવર મુક્તા–મોતી, મરજીવો ચડે મેરાણ–
હે જી, સતગુરુએ માર્યાં શબ્દોનાં બાણ.

બાવન અક્ષરથી બારો બોલે, નહીં પોથી કે પુરાણ,
ઓહંગ સોહંગ પર અલખ બિરાજે, ભીતર પ્રગટયા રવિ–ભાણ.
હે જી, સતગુરુએ માર્યાં શબ્દોનાં બાણ.

"ત્રિકમસાહેબ" ગુરુ ખીમને ચરણે, નેનુંમાં ગગડે છે નિશાન,
એ નિશાને મરજીવા ચડે મેરાણ,
હે જી, સતગુરુએ માર્યાં શબ્દોનાં બાણ.

21:12

૫

હેજી.... અનસુખ નેડા રે, સતગુરુ મેરા રે–
સબ ઘટમેં સુજત નાર, ગુરુ બીન અંધેરા રે,
એવા અનસુખ નેડા રે.

આ સંસાર સપનેકી બાજી, એમાં ચેતે નર સવેરા રે,
આયાગમનકા ફેરા મિટાવી દે, નામથી કર લે નીવેડા રે.
એવા અનસુખ નેડા રે.

'ત્રિકમસાહેબ' ખીમને ચરણે, ગુરુએ મેલ્યા જંજીરા રે,
સબ ઘટમેં સુજત નાર, ગુરુ બીન ઘોર અંધેરા રે.
એવા સનસુખ નેડા રે.

૬

સદાય રેવે ગુલતાની બાવા, લાગી પ્રિત્યું નઈ રેય અછાની....ટેક

અનહદ નાદ ગગન ધુન ગાજે, ઝાલરી વાગે ઝીણી ઝીણી.
આદ હુવા તે અબ પાયા, પૂછ્છા વાત પ્રીછાની....ટેક
ખીમ ને ભાણુ રવિ રમતા છે, રામા, મીટ જાવે કુરબાની.
અગમ વાત અવાકુ અબુઝે, નીગમ ભરે જલ પાની....ટેક

કુટુંબકબીલાની કુડી છે માયા, છોડ દે કુલ કેરી કાની.
'ત્રિકમસાહેબ' ગુરુ ખીમને ચરણે, વારે વારે જાઉં કુરબાની... ટેક

૭

લિખ દિયા પરવાના, મેરા સતગુરુએ લિખ દિયા પરવાનાજી.

તેરા અગમપંથ નિરવાણા, મેરા સતગુરુએ લિખ દિયા પરવાનાજી.

નાભિકમલથી ઉલટયો આવે, ગગન ધુન ગરજાના,
ઇંગલા પિંગલા સુષુમણા સાંધી, ત્રિવેણી તાર શીલાના,
લિખ દિયા પરવાના.

ખીમ ને ભાણ રવિ રમતા છે, રામા, અલખપુરુષ લા'વ લેજો,
સદ્ગુરુજી મારા નયના આગળ રે'જો.

'ત્રિકમસાહેબ' ખીમ કેરા ચરણે, અંતકાળે અળગા ન રહેજો,
સદ્ગુરુજી મારા નયના આગળ રે'જો.

૧૦

અમર જોગી ઉલટયા આવે, રગોરગ બોલે તાતી,
લીધો સહિરીયે ગોતી, અવનસ વરસે ગોતી.

ઇંગલા–પિંગલા! સુષુમ્ણા લાધી, ઝળહળ ઝળકે જોતી,
હે જી સંતો અવનસ વરસે મોતી.

માનસરોવર મરજીવા ઝીલે, પેરી પ્રેમજળ મોતી,
હે જી સંતો અવનસ વરસે મોતી.

'ત્રિકમસાહેબ' ગુરુ ખીમના ચરણે, મિટ ગઈ કુલ વરણ ભ્રાંતિ,
હે જી સંતો અવનસ વરસે મોતી.

૧૧

નીત–નીત વર્ષે નુરા, શિખર પર પહોંચે વીરલા પૂરા,
નટડી ખેલે, પાવજ મેલે, ન ડગે સુરતા, ન ડગે દોરા.
ઉંચી ચડું તો પ્રેમરસ લાગે, પડું તો ચકમાચુરા,
શિખર પર પહોંચે વીરલા પૂરા.

ઝાંઝ–પખાજ વીણા–જંત્ર વાગે, મોરલી કરે છે મલારા,
શબ્દ શીંગી વાગે સુનમાં, ગાજી રહ્યા માંય તુરા
શિખર પર પહોંચે વીરલા પૂરા.

તન કર તરવારૂ, મન કર ઢાલ–જ્ઞાનકામઠી ચડાવેલ સૂરી,
મન મસ્તાનો માંઇ મારે મરઘલો, હરદમ હાલે હજૂરી.
શિખર પર પહોંચે વીરલા પૂરા.

૧૯

મનવો મારો વેરાગી, મારી ભે ભરમણા ભાગી,
હે જી મનવો મારો વેરાગી.

કુટુંબ-કબિલાની કૂડી છે માયા સતગુરુ સજ્યા સુહાગી,
હે જી મનવો મારો વેરાગી.

ઇંગલા પિંગલા સુષુમણા સાધી, માંઇ જળહળ જોતું જાગી,
હે જી મનવો મારો વેરાગી.

ત્રિવેણી ઉપર તાર મેળવ્યા, અનહદ નોબત ત્યાં વાગી,
હે જી મનવો મારો વેરાગી.

'ત્રિકમસાહેબ' ગુરુ ખીમને ચરણે,
ઘટડામાં જોયું મેં જાગી,
હે જી....મનવો મારો વેરાગી.

૨૦

ત્રિવેણીના તીરે સંતો મોતીડાની હાર છે,
સાધુજન નીજ હંસની હારો,
જેને હીરાનો આહાર છે,
સંતો મોતીડાની હાર છે.
સુરતા-સિંહાસન, પ્રેમ-પાથરણાં,
અવલ ઓશીકાં સાર-
તા પર મારા સદ્દગુરુ બેઠા,
નીરખીને થઇ છું ન્યાલ,
સંતો મોતીડાની હાર છે.
બ્રહ્મમંડલમાં રાસ રચ્યો છે,

૨

સુન લે સુષુમણા નારી, મૈં અજબ નામ પર વારી,
અજબ નામ હૈ સબસે ન્યારા, ખોજ ખોજ સંસારી,
મૈં અજબ નામ પર વારી.

પરાપારમેં અપરમ દેખ્યા, ઐસા હૈ ગિરધારી,
આકડ ભોમ પર, સકડ સોમ હૈ, ગજગુણીકા ઉગારી,
મૈં અજબ નામ પર વારી.

ગરજે ગગના પ્રમતત્ત્વસુ, પ્રેમ હેત કર પ્યારી,
ધ્યાન ધર કર સતગુરુનું શબ્દે હદ, બે હદે બીચારી.
મૈં અજબ નામ પર વારી.

સુરતી કર લે ચૌદ લોક મેં, આર પાર ધૂન ન્યારી,
સેજ સુનમેં, ત્રિકોટી ધૂનમેં, અખંડ જ્યોત રહે સારી,
મૈં અજબ નામ પર વારી.

કહે 'ભીમદાસ' ત્રિકમને ચરણે, વારી વારી જાઉં બલહારી,
શરણમાં રાખો તુમ્હારી, મૈં અજબ નામ પર વારી,
મૈં અજબ નામ પર વારી.

૩

જીવણ જીવને જ્યાં રાખીયે, વાગે અનહદ તુરા,
જ્યોતિ અખંડ ત્યાં ઝળહળે, વરસે નરમર નુરા ...જીવણ

પાંચ તત્ત્વ ત્રણ ગુણસે, પચ્ચીસ જોજો વિચારી,
મથન કરો એનાં મૂળનું તત્ત્વ લેજો તારી....જીવણ

તખત ત્રિવેણી અલોપ છે, ગંગાજમનાને ઘાટે,
સુષુમણામાં જીવણ સાધજો, વળી જાજો ઇ વાટે....જીવણ

અખંડ રણુકાર હોઈ રહ્યા, કર બીન વાજાં વાગે,
સુરતા રાખી જીવણ સાંભળો, ધૂન ગગનમાં ગાજે....જીવણ

અણી અગર પર એક છે, રમતા રહેશે રામા,
નિત નિત નિરખો તનડામાં, સતગુરુ ઉભા છે સામા....જીવણ

નુરતસુરતની સાધના, પ્રેમ વિના નહિ પાવે,
અંધારું ટળે અંતરનું તો, નુર નજરુંમાં આવે....જીવણ

સંદેશડો આ સત તણો, 'ભીમસાહેબ' ભેજ્યો,
પત્ર લખીયો પ્રેમનો, વિધિયે લગનડાં લેજો.
જીવણ જીવને ત્યાં રાખીયે.

સંદેશો

જીવણ, જીવને જયાં રાખીએ
વાગે અનહદ તૂરા રે,
ઝિલમિલ જયોતું ઝળહળે,
વરસે નિરમળ નૂરા રે.

પાંચ તત્ત્વ ને તીન ગુણ છે, પચવીસાં લિયો વિચારી રે,
મથન ગોતો ને મૂળનાં તત્ત્ર લેજો એક તારી રે.
ગંગા, જમુના, સરસ્વતી, તરવેણીને ઘાટે રે,
સુખમન સુરતા રાખીએ, વળગી રહીયે ઇ વાટે રે.
અણી અગર પર એક છે, હેરો રમતા રામા રે,
નિસદિન નિરખો નેનમાં, સતપુરુષ સામા રે.
અધર ઝણુકારા હોઇ રિયા, કર બિન વાજાં વાગે રે,
સુરતા ધરીને તમે સાંભળો, ધૂન ગગનમાં ગાજે રે.
નુરત–સુરતની સાધના, પ્રેમી જન કોઇ પાવે રે,
અંધારું ટળે એની આંખનું, નૂર નજરે આવે રે.
આ રે સંદેશો સતલોકનો, ભીમસાહેબે ભેજ્યો રે,
પત્ર લખ્યો ગુરુએ પ્રેમનો, જીવણ લગનેથી લેજો રે.
જીવણ જીવને જિયાં રાખીએ.

૬ : નથુરામની વાણી

૧

અલખનામની ધૂન લાગી, ગગનમેં મગન ભયા મન મેરા,
આસન વાળી સુરતાથી, દઢ કીયા, દિયા અગમ પર ડેરા,
ઇંગલા પિંગલા દોનું સાંધકે, સુખમણું ચિત દઢ ધાર્યાં.

જે નર કરે અમીના, પાણીકા હે પરપોટા,
તિન તદ્રૂપ સે નામ નિરખ લે, સેરમ ધણી હે મોટા.
જહાં તંત અનહદ કે આગે, અહોનિશ નાદ ઝણકારા,
અનહદ હોત ગર્જના, અહોનિશ અમૃત ઝરના.
સતગુરુએ મંત્ર સુનાવ્યો, મોરલી મધુરી વાગી,
નથુરામ કહે ત્રિકમ ચરણાં, તો અલખ દીયા દિદારા.

જ્ઞાન ગભરૂ કોઇ ન જાણે
પ્રીત પિયુની પરમાણે રે....આઠે૦
'લક્ષ્મીસાહેબ' ગુરુ ત્રિકમ ચરણે
ફેરો સમજુને ફાવે રે.
આઠે પોર આરાધે રે.

૩

સુને મતવાલો પિયાલો પાયો, પીધે પ્રેમ હુદ્દો,
જરણ મરણ વાકો નહિ, સદ્ગુરુ વચને સુધો,
સુને મતવાલો પિયાલો પાયો.

ખટ નાડેથી દમ ચાલીયો, બ્રહ્મ મધ્યે પર વારી,
ઈંગલા પિંગલા અને સુષુમણા, ત્રિકોટીમાં લાગી તાળી,
સુને મતવાલો પિયાલો પાયો.

વિના દીવેટ વિના કોડિયે, ઘ્રથ વિના જાગે છે જ્યોતું,
વિના વાદળ વિના વીજળી, ધમકે મેઘાડમ્બર સોતું,
સુને મતવાલો પિયાલો પાયો.

ગગનમંડળમાં ભઠ્ઠી જલે, વર્ષે અમીરસ ધારા,
ચંદા સૂરજ દોનું સાખિયા, સદ્ગુરુ ઉતારે પારા,
સુને મતવાલો પિયાલો પાયો.

સોહમ નાદે સૂનાકાર હોવે, ધીરા હોવે શ્વાસા,
બ્રહ્મમંડલસે ધારા વરસે, એમ બોલ્યા 'લક્ષ્મીદાસ',
સુને મતવાલો પિયાલો પાયો.

૪

એમાં જૂઠડો નથી રે લગાર, ધાર્યો મેં ધુન ધણી સરદાર,
પાપના ભારા ખડકીને બાંધો, ભાર થશે અપરમપાર,
તજ જેટલી માંહી તણખી નાખો તો, જલીને થાશે અંગાર.
ધાર્યો મેં ધુન ધણી સરદાર.

गुजरात के दादूपंथी संत अखा ने भी वायु के दसों भेदों और शरीर के विभिन्न अंगों में उनकी स्थिति का विस्तृत विवरण अपनी "पंचीकरण" कृति में दिया है । जैसा कि कहा जा चुका है प्राणायाम की क्रिया द्वारा प्राण को सुषुम्ना के माध्यम से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचाया जाता है । अखा की रचनाओं में इस क्रिया के संकेत विद्यमान हैं । एक उदाहरण दृष्टव्य है -

"इंगला पिंगला सुखमणा त्रिवेणी रस लाया जो ।
बंकनाल उलटी बहं दश में द्वार समाया जो ।।[1]

संत कवि लालदास ने भी इस क्रिया की ओर संकेत किया है -

"मन पवन लेई शून्य समावे । एसा उलटा राह-चलावे ।
इंगला पिंगला, सुखमना नारी निज स्वरूप मा रहेत हमारी

इस विषय में जीवणदासजी का कथन इस प्रकार है -

"नाभी कमलथी नटवर चडिया, पवन पुरुष पलटाया रे जो ।
बंकनाली खडकी खोली, उलटा राह चलाया रे ।[3]

प्राणायाम के सिद्ध होने पर इंडा व पिंगला से (चन्द्र-सूर्य) श्वास-प्रश्वास के निरुद्ध हो जाने के कारण इस अवस्था को कालातीत कहा जाता है । अखा ने भी चन्द्र व सूर्य से रहित कालातीत अवस्था का उल्लेख करते हुए कहा है -

"चंदा नहि सूरज नहि हि नहि कोई नवलख तारा जी ।
दीन औ न दीसे नहि थाका तेज अपारा जी ।।[4]

---

1. अ. र. भजन 15 पृ0 119 ।
2. अ.म.सं.प. पृ0 125 ।
3. ...वही...पृ0 177 ।
4. अ. वा. पद 133 ।

06:06

मुद्रा एवं बन्ध :

कुण्डलिनी के जागरण के लिए प्राणायाम के साथ-साथ मुद्राओं एवं बंधों का अभ्यास किया जाता है। हठयोग प्रदीपिका {3-6-7} में मुद्राओं की संख्या दस मानी गई है, जिसमें तीन बंधों का भी समावेश है। इनमें "खेचरी मुद्रा" महत्वपूर्ण है। दृष्टि को भ्रू मध्य देश में स्थिर करके जिह्वा को उलटाकर तालु-विवर में प्रविष्ट कराना ही खेचरी मुद्रा है।[1] इस मुद्रा में योगी ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्रमा से झरनेवाले अमृत का पान करता है। अखाने उसका संकेत किया है -

"अधे मस्तक अभी झरत है सब घटमांहि समाया हो ।

× × × × × ×

पियो है पियूष पच्यो हृदयां महां अनुभव प्रकाश कियो है ।"[2]

संत सुन्दरदास ने मुद्रा एवं बन्ध का विस्तार से वर्णन किया है।[3]

कुण्डलिनी :

सुषुम्ना का मार्ग बंध करनेवाली शक्ति का नाम कुंडलिनी है। पीठ में स्थित मेरूदंड सीधे जहां जाकर पायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है वहीं स्वयंभू लिंग है, जो एक त्रिकोण चन्द्र में अवस्थित है। इसे अग्नि-चक्र भी कहते है। इसी त्रिकोण या अग्नि चक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों या वृत्तों में लपेटकर सर्प की भांति कुंडलिनी अवस्थित है। हठयोग प्रदिपिका {3/104}

---

1. हठयोग प्रदिपिका 3 - 32 ।
2. अ. वा. पद. 95
3. सुन्दरसार पृ0 28 - 29 ।

आलोच्य काव्य में भावमूलक अन्तर्मुखी रहस्यवाद का यही स्वरूप है ।

साधनात्मक रहस्यवाद

सन्त लोग उच्चकोटि के योगी थे । उनकी बानियों में योग की विविध धाराओं के विकसित रूप में दर्शन होते हैं ।* यौगिक बातों की अभिव्यक्ति जब भावना और काव्यत्व के माध्यम से की जाती है तब वे वर्णन यौगिक रहस्यवाद का वर्णन कहा जाता है । जिसे साधनात्मक रहस्यवाद भी कहते हैं । सन्तों की बानियों में हमें हठयौगिक बातों का रहस्यात्मक शैली में निरूपण मिलता है । संतों ने षट्चक्र, कुण्डलिनी, ब्रह्मरन्ध्र आदि के द्वारा यौगिक रहस्यवाद को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । इडा-पिंगला के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी होती है । इसमें मन केन्द्रित करने से समाधि लग जाती है और फिर पुनरावृति नहीं होती । सन्त कबीर दास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है-

गंग जमुन उर अंतरे सहज सून्य ल्यौ घाट ।
तहाँ कबीर मठ रथा मुनिजन जोवैं बार ।।[1]

संत धर्मदास ने भी ब्रह्मरंध्र का वर्णन किया है ।[2] इसी अष्टदल कमल में स्थित भगवान का वर्णन करते हुए संत कबीरदास कहते हैं-

अष्ट कमल दल भतरा तहँ श्रीरंग केलिकराय रे ।[3]

हठयोग की प्राणभूत साधना मन-पवन-साधना है । संतों ने इस मन-पवन को लेकर रहस्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है ।[4] लययोग में नाद लय योग सर्वश्रेष्ठ माना गया है । इस योग में साधक विविध मधुर ध्वनियों को सुनता है । सन्तों ने भी इन

---

1. क. ग्रं., पृ0 18
2. झरि लागै महलिया गगन घहराय । खन गरजै खन बिजली चमकै ।।
   लहर उठै सोभा बरनि न जाय । सुन्न महल में अमृत बरसै ।। सं. बा. सं. भाग2 पृ0 38
3. क. ग्रं., पृ0 88
4. मन पवना सेजासन हो तिरबेनी तीर ।
   इम धेन तहँ बिराजल हो लिहले रघुबीर ।
   सुरति निरति ले जाईब हो पाईब गुरु प्रीति । बु. बा., पृ0 30

गुजराती संतकवियों की भी बानियों में हमें हठयोगिक अनुभूतियों का रहस्यात्मक शैली में निरूपण मिलता है । संत गवरीबाई ने इस अनुभूति का वर्णन इस प्रकार किया है-

---

1. प्री.वा., पृ. 121-23
2. मोरार साहब, र.भा.मो.वा, पृ0 72
3. प्री.वा.पृ0 120 सा. 7
   वस्ता, अ.म.सं.पं., विरह को अंग ।
4. अ.अ.वा., गुज.भजन 38 एवं अ.र., जकड़ी- 6, 13, 30
5. गु.सं.हि.वा.पद 8 पृ0 121

इंगला पिंगला सुषुमणा साधी, जब त्रिवेणी तटे ।
गगन मंडल में अनहद बाजे, सुनत चित वहां लटे ।

शून्य शिखर पर शोभे सामलियो, निरखत नैन न थके ।[1] जीवणदास ने भी कहा है-

नाभी कमलथी थी नटवर चड़िया, पवन पुरूष पलटाया रेजी ।
बंकनालकी खड़की खोली, उलटा राह चलाया रे ।
अटल मोहोलमां पुरूष अभंगी, बंनगी करी बोलाया रे ।
नूरतें सूरतें सहागण खेले, रंग भर रास रमाया रेजी ।[2]

भावात्मक और साधनात्मक रहस्यवाद के अतिरिक्त गुजराती संत कवियों की वाणी में अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद की झांकी भी मिलती है, जिसके अन्तर्गत संतों ने प्रतीकों, उलटवासियों एवं पारिभाषिक शब्दों के सहारे साधारण सी बातों का अद्‌भुत एवं रोचक शैली में वर्णन किया है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि संतों के रहस्यवाद में भावात्मक, साधनात्मक और अभिव्यक्तिमूलक तीनों प्रकार के रहस्यवाद के उदाहरण मिलते हैं । इन तीनों प्रकारों के रहस्यवादों के अतिरिक्त रहस्यवाद के जितने भी प्रकार हो सकते हैं उन सबके उदाहरण उनकी बानियों में मिलते हैं । किंतु प्रधानता उपर्युक्त तीन की ही है । संतों के रहस्यवाद में प्रेम, विरह और अद्वैतानुभूति द्वारा सत्य को सम्पूर्णता में अनुभव करने की प्रवृत्ति है । वास्तव में संतों का रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा के पूर्ण तादात्म्य की कहानी है ।

---

1. गु.सं. हि.वा. पृ. 239
2. वही. पृ. 177

सूर्यभेदन प्रथम द्वितीय उज्जई कहिये ।
शीतकार पुनि त्रितेय शीतली चतुरथ ग्रहिये ।।
पंचम है भस्त्रिका नारी षष्ट सु जानहु ।
मूरछना सप्तमं अष्टमं केवल मानहुं ।।[1]

शिव संहिता में शरीरस्थ वायु के दश भेद माने गये हैं ।[2] सुन्दरदास ने इन वायुओं का वर्णन करते हुए प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय नाम के दस वायुओं के शरीर में स्थान क्रमशः हृदय , गुदा, नाभि, कंठ संपूर्ण, घट, डकार, पलक, क्षुधा और मुख बतलाये है ।[3] इनमें से प्रथम पाँच वायु अन्तस्थ एवं महत्वपूर्ण है । कबीर ने इन पाँच वायु को शोधकर बिन्दु के साथ उन्हें ब्रह्मरन्ध्र में समाहित करने का उल्लेख किया है-

पहली खोजो पंचे धाई, बाइ व्यंद ले गगन समाइ ।क.ग्र.पद 325

अन्य संतों में गुलाल साहब[4], बुल्ला साहब[5] एवं यारी साहब[6] आदि ने प्राणायाम के द्वारा वायु साधना का संकेत किया है । संतों की रचनाओं में नाड़ी साधना का भी बड़ा विस्तृत उल्लेख मिलता है । कबीर ने बहत्तर हजार नाड़ियों को बहत्तर अधारी एवं बहत्तर घर कहा है ।[7] कबीर की रचनाओं में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना के लिए गंगा, यमुना, सरस्वती अथवा चन्दा, सूरज एवं बंकनालि शब्दों

---

1. इडा नाड़ी पूरक करै, कुंभक राखै माहिं ।
   रेचक करिये पिंगला, सब पातक कटि जाहिं ।।
   बीज मंत्र संयुक्त, षोडश पूरक पूरिये ।
   चवसठि कुम्भक उक्त, द्वात्रिंशति करि रेचना ।
   बहुरि विपर्यय ऐसे धारै, पूरि पिंगला इड़ा निकारै ।
   कुम्भक राखि प्राण की जीत, चतुर्वार अभ्यास व्यतीतै।।सुंदरदर्शन पृ0 38
2. प्राण, अपान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त धनंजय-शिवसंहिता 3/4
3. सुन्दरसार, पृ0 27
4. उर्ध्व पवन लै धरौ गगन में बोध करौ विश्राम ।गु.बा.पृ0 7
5. बाँध पवनहि साध गगनहि गरज गरज सुनावहीं ।बु.बा.पृ0 2
6. लैके प्रान अपान मिलावै वाही पवन में गगन गजावै ।पा.बा.पृ0 7
7. बदुआ एक बहत्तर आधारी ।क.ग्रं.,पृ0 308
   बहित्तर घर एक पुरुष समाया । वही, पृ0 273

का प्रयोग हुआ है । प्राणायाम की क्रिया द्वारा प्राण को सुषुम्ना के माध्यम से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचाया जाता है । इसका भी वर्णन कबीरदास ने किया है ।[1] उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि सन्तों ने प्राणायाम की क्रिया को अवश्य अपनाया है । संतों ने प्राणायाम और उससे संबंधित मन पवन-साधना पर विशेष बल दिया है । उनका शब्द सुरतियोग इन्हीं साधनाओं पर आधारित है ।

का प्रयोग हुआ है । प्राणायाम की क्रिया द्वारा प्राण को सुषुम्ना के माध्यम से ब्रह्नरन्ध्र तक पहुँचाया जाता है । इसका भी वर्णन कबीरदास ने किया है ।[1] उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि सन्तों ने प्राणायाम की क्रिया को अवश्य अपनाया है । संतों ने प्राणायाम और उससे संबंधित मन पवन-साधना पर विशेष बल दिया है । उनका शब्द सुरतियोग इन्हीं साधनाओं पर आधारित है ।

गुजराती संत अखा ने भी वायु के दशों भेदों और शरीर के विभिन्न अंगों में उनकी स्थिति का विस्तृत विवरण अपनी 'पंचीकरण' नामक कृति में दिया है ।[2] जैसा कि कहा जा चुका है प्राणायाम की क्रिया द्वारा प्राण को सुषुम्ना के माध्यम से ब्रह्नरन्ध्र तक पहुँचाया जाता है । अखा की रचनाओं में इस क्रिया के संकेत विद्यमान हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

इंगला पिंगला सुषमण त्रिवेणी रस लाया जी ।
बंकनाल उलटी बहैं दश में द्वार समाया जी ।।[3]

संत कवि लालदास ने भी इस क्रिया की ओर संकेत किया है-

मन पवन लेई शून्य समावे । ऐसा उलटा राह चलावे ।
इंगला, पिंगला, सुषुम्ण नारी निज स्वरूप मां रहेत हमारी ।[4]

इस विषय में जीवणदास जी का कथन इस प्रकार है-

नाभी कमलथी नटपर चढ़िया, पवन पुरूष पलटाया रेजी ।
बंकनाली खड़की खोली, उलटा राह चलाया रे ।[5]

प्राणायाम के सिद्ध होने पर इड़ा वपिंगला से (चन्द्र-सूर्य) श्वास-प्रश्वास के निरुद्ध हो जाने के कारण इस अवस्था को कालातीत कहा जाता है। अखा ने भी चन्द्र व सूर्य से रहित कालातीत अवस्था का उल्लेख करते हुए कहा है-

---

1. चन्द सूर दोइ खंभवा बंकनालि की डोर ।
   झूलै पंच पियारियाँ तहाँ झूलै जीय मोर ।।क.ग्रं.,पद 18,पृ0 74
   उलटे पवन चक्रषट बेधा मेर डंड सर पूरा ।
   गगन गरजि मन सुंनि समानां बाजे अनहद तूरा।। वही पद 7
2. पंचीकरण, 75-77
3. अ.र. भजन 15 पृ0 119
4. अ.म.सं.पं.,पृ. 125
5. वही, पृ0 177

चंदा नहि सूरज नहि नहि कोई नवलख तारा जी ।
दीन ऊगै न दीसे नहि थाका तेज अपाश जी ।।[1]

10:59

चंदा नहि सूरज नहि नहि कोई नवलख तारा जी ।

दीन ऊगै न दीसे नहि थाका तेज अपाश जी ।।[1]

मुद्रा एवं बंध

कुण्डलिनी के जागरण के लिए प्राणायाम के साथ-साथ मुद्राओं एवं बंधों का अभ्यास किया जाता है । हठयोग प्रदीपिका ३3/6,7३ में मुद्राओं की संख्या दस मानी गई है, जिसमें तीन बंधो का भी समावेश है । इनमें 'खेचरी मुद्रा' महत्वपूर्ण है । दृष्टि को भ्रू मध्य देश में स्थिर करके जिह्वा को उलटाकर तालु-विवर में प्रविष्ट कराना ही खेचरी मुद्रा है ।[2] इस मुद्रा में योगी ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्रमा से झरने वाले अमृत का पान करता है । कबीरदास ने इसका संकेत किया है-

अवधू गगन मण्डल घर कीजै ।

अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीजै ।।[3]

सुन्दरदास ने मुद्रा एवं बंधों का स्पष्ट वर्णन किया है । उन्होंने दस मुद्राएँ बताई हैं जिनमें क्रम नंबर 5, 6, 7 तीन बंध है- महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्-यानबंध, मूलबंध, जालंधर बंध, विपरीत करणी, व ली, शक्तिचालन ।[4] [illegible] तीन बंधों में से मूलबंध प्राणायाम की तीनों- पूरक, रेचक एवं कंभक-क्रियाओं में लगाये जाने के कारण महत्वपूर्ण है । ऐड़ी से योनि स्थान को दबा कर गुदा का संकोचन करके अपान वायु को ऊपर की ओर खींचना मूलबंध है ।[5] कबीर की

---

1. अ. वा., पद 133
2. ह. प्र., 3/32
3. क. ग्रं., पद 70 पृ0 85
4. सुन्दरसार पृ0 28-29
5. ह. प्र. 2/61-68

रचनाओं में मूल बंध का उल्लेख है और इसके द्वारा प्राण को ऊर्ध्वगामी बनाने एवं कन्द को स्थिर करने का उल्लेख हुआ है ।[1] इसप्रकार संतों की रचनाओं में मुद्रा एवं बंध का निरूपण मिलता है ।

नमक गल कर एक हो जाता है, उसी प्रकार साध्य और साधक में अभिन्नता हो जाती है । जैसे दूध दूध में, घी घी में, जल जल में मिलकर अभिन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार समाधि में भी समझना चाहिए ।[1] कबीरदास ने भी इस अवस्था का चित्रण किया है[2]। संतों ने एक और प्रकार की सहजसमाधि का निरूपण किया है, उसकी चर्चा हम सहज साधना के प्रसंग में करेंगे ।

गुजरात के कबीर कहे जाने वाले संत कवि अखा की रचनाओं में शून्य-मंडल, ज्योति, अनहदनाद या शब्दादि पर ध्यान को केन्द्रित करने के उल्लेख मिलते हैं-

ध्यान शून्यमां शब्द उच्चरे । चि. वि. सं. पृ0 253
जगमग ज्योति अपार हो शून्यमां चुन लागी ।।अ. वा., पद 53
गगन गरजिया के सरवणे सुणियाँ धून में ध्यान लगाया जी।।[3]

संत छोटम ने भी 'त्रिकुटी' पर ध्यान को केन्द्रित करने की आवश्यकता की ओर ध्यानाकर्षण कराते हुए कहा है-

आसन मारी सुरत दृढ धारी, त्रिकुटी ध्यान धरो री ।[4]

गवरीबाई ने भी लिखा है-

त्रिकुटी महल में, सुरत लगी ध्यान की।अ. म. सं. पं. पृ0 240

अखा ने 'गुरु सबद' को अपने ध्यान का विषय बताया है-

अहो निश सद्गुरु शब्द ने भखो तो आपणयुं अवलोकतां रे ।अ. वा. पद

उनके इस ध्यान का विषय, जिसकी भक्ति उन्हें अभीष्ट है वह नारायण या हरि भी है-

---

1. सुंदरसार, पृ0 31-32, छं. 85-86
2. क. ग्रं., पृ0 90 पद 6
3. अ. व. वा. गुज. भ. 27
4. गु. सं. हि. वा., पृ0 334

૯ : દાસી જીવણની વાણી

આત્મજ્ઞાનનાં પદો

૧

અરે તું તો આવડાં રૂપ ક્યાંથી લાવ્યો રે,
મોરલો મરતલોકમાં રે આયોજી. (ટેક)

નહીં એ નાદનો ને નહીં એ બુંદનો, આપે આપ બની આયો,
પાંચ તત્ત્વ ને તીન ગુનથી ન્યારો, વેદપુરાણે નહીં પાયો રે...મોરલો.

નાભિકમળથી ચાલિયોને રે, બંકનાળે ઉલટાયો,
ત્રિવેણીનાં તીરમાં નીરત કરે ને, વિના પાંખે ઉડી ધાયો રે...મોરલો.

લીલો ને પીળો કળ્યામાં ના'વે, અનેક રંગ ભરી લાવ્યો,
દેખ્યો હોય તો કહી સમજાવો, મોર અખંડ ફણ્યો રે...મોરલો.

મેર ભઈ મહારાજની ને, અમર પિયાલો પાયો,
દાસી જીવણ સત ભીમનાં ચરણે, અરસપરસ દરસાયો...મોરલો.

નોંધ : ઉપરોક્ત પદ પાઠાંતરે અને સરખામણી માટે 'સોરઠી સંતવાણી' : મેઘાણી : પાના નં. ૧૨૭ માં નીચે મુજબનું જોવા મળે છે. તેમાં નામાચરણ નથી.

મોર તું તો આવડાં તે રૂપ ક્યાંથી લાવ્યો રે,
મોરલો મરતલોકમાં આવ્યો.

લાલ ને પીળો મોરલો અજબ રંગીલો,
વર થકી આવે વેલો,
સતી રે સુહાગણ સુંદરી રે,
સૂતો તારો શેર જગાયો રે.
મોરલો મરતલોકમાં આવ્યો–મોરલો.

ઈંગલા ને પિંગલા મેરી અરજુ કરે છે રે,
હજી નાથજી કેમ નાવ્યો,
કાં તો શામળીએ છેતર્યો ને કાં તો,
ઘર રે ધંધામાં ઘેરાયો રે,
મોરલો મરતલોકમાં આવ્યો–મોરલો.

૨

એ જી એ તો જીવણની, નજરમાં આયો રે,
મોરલો ગગનમંડળ ઘર આયોજી. (ટેક)

ઉંચો જોયો આસમાનસે, ચોડો જોયો સવાયો,
માય કરું તો માયામાં નાવે, નેનકમળમાં સમાયો... મોરલો.

કાયા નગરમાં ડોલતો ને, વિના પાંવ ચલાયો,
ધ્યાન કરીને ગોત્યો ત્યારે, આપસેં આપ દરસાયો....મોરલો.

સુખમનાને ઘર ચારો ચુગિયો ને, ત્રિવેણીમાં જલ પાયો,
ઓહં સોહંમાં ઉઠત બેસત, વિના મુખે રે બોલાયો....મોરલો.

મેર ભઇ જબ મારાજની રે, ઓઘટ પિયાલો મુને પાયો,
દાસી જીવણ સત ભીમના ચરણે, અરસપરસ દરસાયો....મોરલો.

૩

અજો ગગનથી લહેરું આવે, ઝર ઝર નેણાં અમર ઝરે રે
ઝીણાં ઝીણાં મોતીડાં વરસે, ધ્યાન અખંડી જો ધરે રે જીવો સાધુજી-ટેક

ચહુદીશ ફેર વાસના વ્યાપી, બીજ રૂપિયો નહિ બળે રે,
લાગુ લુંબ ગગનમાં મોરી, ઇ આંબલીયો સુફળ ફળે રે....અજો.

મરજીવા નર ચડે મેદાને, વીણી મોતી સોઇ વળે રે,
પારસમણિનાં એજ પારખાં, નિપજ આવે ખૂબ ખળે રે....અજો.

ઓહં સોહંકી ઝલમલ જયોતિ, ચાંદો સૂરજ માંઇ દીપક ઝરે રે,
પૂરવી ગંગા પછમ પ્રકાશી, ગગન ગુફામેં ગવન કરે રે.....અજો.

ત્રિકુટી મોહોલ મેં કર લે તકીયા, સુખમન સાંધે અરથ સરે રે,
દાસી જીવણ સત ભીમનાં ચરણાં, કિમ્મતવાળા દેશ કળે રે.... અજો.

૪

અબધુ દિયા તખત પર ડંકા રે, સો ઘર સેજે પાયા રે જી (ટેકં)

નાભિકમલથી નટવર ચડીયા, પવનપુરુષ પલટાયા રે જી,
વંકનાળકી ખડકી ખોલી, ઉલટા રાહ ચલાયા રે....સો ઘર૦

જો ઝાલર વાગે બીન હાથે, બીન મોઘરે બજાયા રે જી,
અટલ મોહોલમાં પુરુષ અભંગી, બંનગી કરી બોલાયા રે... સો ઘર૦

નરતેં સુરતેં સુહાગણ ખેલે, રંગભર રાશ રમાયા રે જી,
પ્રેમે પ્રેમે પ્રેમે રસ પાયા, અમ્મર ચીર ઓઢાયા રે....સો ઘર૦

દેવળ તો એક દેહીમાં જ દેખ્યા, ભીમે ભેદ બતાયા રે જી,
દાસી જીવણ ગાઇ ગુલતાના, ઐસા ઘરા સુખ આયા રે....સો ઘર૦

૫

અબધુ રણુ રણુ રણુ રણુ વાગે રે, ગગનમંડળ વર માંઇ રે જી. (ટેક)

અનભે નાદ અખંડ ધૂન ગાજે, ઝલમલ જ્યોતિ ઝાંઇ રે જી,
ધનન ધનન ધન હુવા ધનકારા, તકીયા તિયાં ટકાઇ રે....ગગન૦

એક જોગેશ્વર વા ઘર બેઠા, ઉનસે કર ઓળખાઇ રે જી,
અટળ અભાગી તો પદ પાવે, સૂરતા તીયાં ચડાઇ રે....ગગન૦

મુક્તાફળ પ્રેમકા મેવા, વિણુ વાદળ વરસાઈ રે જી,
ચાર સરોવર સુભર ભરીયાં, નિતનિત અબધુ નાઇ રે....ગગન૦

ભેટયા ભીમ ભરમના ભાંગી, ઓ ઘર દીયા ઓળખાઇ રે જી,
દાસી જીવણ સત ભીમકા ચરણાં, ગુરુ મળ્યા ગુસાંઇ રે....ગગન૦

૬

આ જોને ગગનમાં રે, ગોટકા ખેલે છે જ્ઞાની,
આ જોને ગગનમાં રે. (ટેક)

અટળ અભંગી એવા, પુરુષ અલંગી વાલા,
દશમેં દ્વારે મેં તો, દેખ્યા રે દીવાની જ્ઞાની....આ જોને૦

ઇંગલા ને પિંગલા રે, સુગમનાં સાંધી લે,
જાલમ જોગશ્વરને તું, જોવાને જાને રે જોની....આ જોને૦

અગમ ઘરકી ખડકી ખોલી, જોને અસમાને,
ઉલટા આકાશે ચડી લેને તું, પીછાની જ્ઞાની....આ જોને૦

દાસી જીવણ સંતો, ભીમ કેરા ચરણાં,
માલમ જોગશ્વર મળ્યા, મજરા તો લીધા છે માંની....આ જોને૦

૭

કોઇ જાગંદા આ દિલમાંય, અણુંક ઝાલરી વાગી. (ટેક)

નાભિકમળથી ચલી મેરી ઝાલરી, નિરાધાર ઠેરાઇ,
ઇંગલા પિંગલા સુખમણા સાધી, ત્રિવેણી મોલમેં આઇ....કોઇ૦

જ્યોતિ રૂપે સબ ઝબકી એ ઝાલરી, ગગન મંડળમેં ગાજી,
ઓહં સોહંમાં ઉલટ સમાણી, અજંપા જાપે લાગી....કોઇ૦

જાગ્રત સ્વપ્ન સુશોપતિ તુરીયાણુ ઉનમુનિ મુંદ્રા લાગી,
અક્ષરાતીત આપે નર ઓળખ્યા, તેની ભે ભરમનાં ભાંગી....કોઇ૦

હું નહિ તું નહિ તે પણુ નાહિં, પરપંચ લીધા ત્યાગી,
દાસી જીવણુ સત ભીમને ચરણે, લેહ ગગનમાં લાગી....કોઇ૦

૮

કોઇ રૂપરંગસે ન્યારા, ઉસમેં કયા જાને સંસારા રે જી. (ટેક)

ઓહં-સોહંની ઉપર નીરખો બાર આંગલ છે બારા,
ગુરુ, બાર આંગલ છે બારા,
મતિ મૂરતિ નેણે નીરખો, નીજ નામ છે ન્યારા....ઉસમેં.

ચંદ્ર-સૂરજકી ઉપરે ઠાંઇ જલમલ જલકે તારા,
ગુરુ, જલમલ જલકે તારા,
શિવ-શક્તિકી ઉપરે, ત્યાં અણુઘડકા રણકારા....ઉસમેં.

૯

ગગનમંડળમાં ગડગડ અનહદ વાગે રે જી,
દેખો જોગેશ્વર જનન જનન જન વાગે રે, અબધુ. (ટેક)

નૂર નિરંતર નજરે નિરખ્યા, સતગુરુ બેઠા છાજે રે જી,
બહુરંગી માંઇ વાજાં વાગે, વાવા મોરલી વાજે–વાજે રે....અબધુ.

નટવા હો કે નાચ નચાઇ લે, દોર બાંસ બીન બાજે રે જી,
ત્રગડે ચોટ સાંધ લે સાચી, નીરખે ગુરુ નીવાજે–નીવાજે....અબધુ.

મન પવનાંકા તાક ચીલાઇ લે, દેખો ઓ દરવાજે રે જી,
અખંડ જોગી અણઘડ બોલે, બંગલે સોઇ બીરાજે–બીરાજે....અબધુ.

ઓહં–સોહંકી ઓખદ કરલે, પાળ બાંધ લે છાજે રે જી,
દાસી જીવણ સત ભીમકા ચરણાં,
ભય ભારમના ભાંજે ભાંજે રે....અબધુ.

૧૦

ઘૂઘરી ઘૂઘરી ઘૂઘરી રે,
માંઇ તો ઘનનનન વાગે છે ઘૂઘરી. (ટેક)

પિયુજી પિછાન્યા વિના સાખી કેસેં કાંવે,
ઇ તો ઓળખ વિના રઇ છે ઉગરી....ઘન.

વંકનાળમાં જુવોને વિચારી,
ત્યાં તો ડુંગર ઉપર એક દીસે ડુંગરી....ઘન.

અજબ ઝરૂખે મારા શામ બિરાજે,
ત્યાં ઝલમલ ઝલમલ જ્યોતિ જો ઘરી... ઘન.

દાસી જીવણ સત ભીમ કેરાં ચરણાં,
ત્યાં સીંગી ને નોબત વાગે છે ચોઘરી....ઘન.

૧૧

ઝાલરી ઝાલરી ઝાલરી ઝાલરી રે,
ઝણણ ઝણણ વાગે છે ઝાલરી. (ટેક)

ઇંગલા પિંગલા સુખમણાં સાધી લે,
માંઈ મેરુ સરખા દીસે છે માલરી....ઝણ.

વિના દીપક એક જ્યોતિ જલત હે,
માંઇ ખન ખન ખૂબી દીસે છે બ્યારી....ઝણ.

ઝીણે ઝીણેશ્વર ત્યાં જલમલ જ્યોતિ,
માંઇ તનનન વાગે છે ઝીણી હો તાલરી....ઝણ.

દાસી જીવણ સત ભીમ કેરાં ચરણાં,
નાથજીને નેડલે થઇ છું ન્યાલરી... ઝણ.

૧૨

જા સોહાગણ જા રે, ગગનામાં જયોત ઝલત હે જા. (ટેક)

જા સોહાગણ જા સોહાગણ, ઓ ઘર કર લે વાસા,
સુગરા હોય સો ભર ભર પીવે, નૂગરા જાય પીયાસા રે....ગગના.

કોટીક ચંદા ઝગમગે, માંય કોટીક ઉગ્યા સૂર,
કોટિક દીપક દેખીયા ને, સતગુરુ પાયા હજૂર રે....ગગના.

અનહદ વાજાંઓ ઘર વાગે, શોભા બની છે સારી,
નૂરતે સુરતે આ ઘર ન્યાળો, ત્રિવેણી એક તારી રે....ગગના.

એકસે આયા દૂજે સમાયા, તિસરા ઘરકુ પાયા,
દાસી જીવણ સત ભીમકા ચરણાં, ગુરુમુખ ભેદ બતાયા રે....ગગના.

૧૩

જુગના જીવન વે'લા આવો રે, મારા પ્રાણ પાતળિયા વે'લા આવો રે,
હો તમ વિના મારે અંતરે અંધારુ....(ટેક)

નાભિકમળ ઉપર સૂતા શામળિયા,
અધર તખ્ત પર મારો નાથ બીરાજે,
સુખમણા નારી જો સેજું બીછાવે,
ત્યારે રાહ રચ્યા રંગ ભીના....હો તમ.

સાવ સોનાના હરી વાઘા શામળીયા,
પાનેતરમાં રંગ ભીના ભીના સોહયે રે,
વીલા વીદેખી વરવાને બેઠા,
ત્યારે વીટાણા સો વરમાળા રે....હો તમ.

મધુરી શી મોરલી વાગી શામળીયા,
સુતા મંદિરિયે રાણી રાધાજી જાગ્યાં,
જાદવ કુળને એટલું કે એ,
બે ચાર દહાડા વે'લા આવો....હો તમ.

કોરા કાગળનો કટકો શામળિયા,
મસ મોંઘી લેખાણુ નો'તી,
કુંવરબાઇનાં મામેરાં પૂર્યાં,
તે છાણું ભરીને વે'લા આવ્યા....હો તમ.

સાચું ઘરેણું તમ શામળિયા,
બીજર ઘરેણું મારી નજરમાં ન આવે,
દાસી જીવણ સંતો ભીમને ચરણે... હો તમ.

સતગુરુએ મુને ચોરી શિખવાડી
 તે જ્ઞાન ગણેશિયો વડાયો રે,

પવનરૂપી ઘોડો પલાણ્યો, ઉલટી ચાલ ચલાયો રે,
ગંગા-જમનાના ઘાટ ઉલંઘી, જઇને અલખ ઘરે ધાયો રે....

ધમણ ધમું કે તિયાં વીજું ચમુંકે, અનહદ નોબત વાગે રે,
ઠારોઠાર ત્યાં જ્યોતું જલત હૈ, ચેતન ચોકી માંઇ જાગે રે....

સાંકડી શેરી ત્યાં વાટું વસમી, માલમીએ મુંને મૂક્યો રે,
નામની તો નીસરણી કીધી, જઇને ધણીને મો'લે ઢૂક્યો રે....

શીલ સંતોષનાં ખાતર દીધાં, પ્રેમે પેસારો કીધો રે,
પેસતાંને પારસમણિ લાધી, માલ મુગતિ લીધો રે....

આ રે વેળાએ હું ઘણું જ ખાટયો, માલ પૂરણ પાયો રે,
દાસી જીવણ સત ભીમને ચરણે, મારો ફેરો ફાવ્યો રે....
સતગુરુએ મુને ચોરી શિખવાડી.

૩૧૭

૨૦

સો જોગી જાવે, ગગનમંડળ ઘર માંય. (ટેક)

ઇંગલા પિંગલા સુખમન સાધી, ઉલટા પવન ચડાય,
આશન વાળી બેઠા અબધુ, તકીયા તીયાં ટકાય....સો જોગી.

સબ ઘટમેં એક સાયબ દેખ્યા, નજર ભરમના નાંય,
હરખ શોક વ્યાપે નહિ તનમાં, એસી અદલ ચલાય....સો જોગી.

અખંડ વીલા ખંડિત નહીં, ખંડમેં, પ્રેમે પ્રીત લગાય,
આઠ પ્રહરકા હુવા આનંદા, કાળ કેણુ નહિ ખાય....સો જોગી.

સોહં ઘર જાવે સંત સુભાગી, બીક કશુએ નાંય,
દાસી જીવણ સત ભીમકા ચરણાં, અટળ અભેપદ પાય....સો જોગી.

૨૧

17:05

૨૦

સો જોગી જાવે, ગગનમંડળ ઘર માંય. (ટેક)

ઈંગલા પિંગલા સુખમન સાધી, ઉલટા પવન ચડાય,
આશન વાળી બેઠા અબધુ, તકીયા તીયાં ટકાય....સો જોગી.

સબ ઘટમેં એક સાયબ દેખ્યા, નજર ભરમના નાંય,
હરખ શોક વ્યાપે નહિ તનમાં, એસી અદલ ચલાય....સો જોગી.

અખંડ વીક્ષા ખંડિત નહીં, ખંડમાં, પ્રેમે પ્રીત લગાય,
આઠ પ્રહરકા હુવા આનંદા, કાળ કણુ નહિ ખાય....સો જોગી.

સોહં ઘર જાવે સંત સુભાગી, બીક કછુએ નાંય,
દાસી જીવણ સત ભીમકા ચરણાં, અટળ અભેપદ પાય....સો જોગી.

૨૧

જ્ઞાની તું લે ને ગગનિયામાં ગોતી રે,
તકીયામાં ઝલમલ ઝલકે જ્યોતિ

નાભિકમળસે નાવ ચલત હે,
જી રે તીયાં તપીયો બેઠો એક તંતી રે.

ઇંગલા ને પિંગલા સુખમન ઉપરે,
અખંડ આરતી પણ હોતી રે.

ઈ ગંમ તો કોઇ વીરલા જાણે,
ત્યાં આવી મળ્યા છે અજાતી રે.

દાસી જીવણ ભીમ કેરાં ચરણાં,
મેરમ મળીયા સાચું મોતી રે.

પ્રેમલક્ષણા ભકિતનાં પદો

૧

આજ તો મારે પડીયા છે, તાઇલાં કામ હે કાનુડા તમ સાથે. (ટેક)
થર થર થંભ ધ્રગાવીઓ, હરણાકંશનાં કામ,
પત રાખી પ્રહ્લાદની, ધરીયા'તાં નરસિંહ નામ રે....કાનુડા.

17:12

૧

પ્યાલો મેં પીધેલ છે ભરપૂર, દયા કરીને દીધો પ્રેમરસ પીધો,
નેનુંમેં આયા નૂર, પ્યાલો મેં પીધેલ છે ભરપૂર....(ટેક)

નૂરત સૂરતની સાન ઠેરાણી રે, બાજત ગગનામેં તૂર,
રોમે રોમે રંગ લાગી રિયો'તો, નખસીખ પ્રગટયા નૂર....પ્યાલો૦

સ્થાવર જંગમ જળ સ્થળ ભરિયો રે, ઘટમાં ચંદાને સૂર,
ઘટોઘટ માંહી રાસ રમતા બિરાજે, દીલ હીણાથી રીયા દૂર....પ્યાલો૦

ભાવે પ્રીતે જેને નર ભેટીયા રે, વરસત નિરમળ નૂર,
જે સમજયા સતગુરુની સાનમાં, ભર્યા રિયા ભરપૂર....પ્યાલો૦

ભીમ ભેટયાને મારી ભે સરવે ભાંગી રે, હરદમ હાલ હજૂર,
દાસી જીવણ સત ભીમનાં ચરણાં, આપો તેને ચકનાચૂર....પ્યાલો૦

બંગલા

૧

બંગલા ખેશ બન્યા હદ લેશ, વામેં સાહેબજી બોલે....(ટેક)

પાંચ તત્ત્વકી ઇંટ બનાઇ, તીન ગુનકા ગારા,
પચીસ પ્રકારકી પુરણી પુરાઇ, રેને વાલા ન્યારા....બંગલા૦

આ કાયામાં દશ દરવાજા, બીચ પવનકા થંભા,
આવત જાવત કછુ ન દેખયા, ચોટી બડા અચંભા....બંગલા૦

ઇંગલા પિંગલા સુખમન નારી, તીનું તાર મિલાયા,
નૂરતેં સૂરતેં ગાવન લાગી, રાગ છતીસે લાયા....બંગલા૦

પૂરા ગુરુ પુરુષોત્તમ મળીઆ, ભીમે ભેદ બતાયા,
દાસી જીવણ કે ભીમનાં ચરણાં, ખોજ ખબર કર પાયા....બંગલા૦

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

17:15

પુરવના નર ચેતજો, એમ કહે સતગુરુની બાની,
દાસ વાઘો સાગર પ્રેમને ચરણે વિરલે વાત માની.

૫

મારે દિલે આનંદ બહુ આયા, ગુરુ બૂડતાંની બાંય જાલો.
નાભિકમલ એ સુરતા ચાલી, ગગન પવન ચલાયા રે,
ઇંગલા પિંગલા સુખમણાં સાધી, ત્રિવેણી તાર મિલાયા રે,
નુર તખત પર નામ નિરંતર, પ્રેમે ભેદ બતાયાજી,
મેરૂ શિખર પર મનવો ચડયો, દેવ તિયાં દર્શાયાજી,
ભીમ, જીવણ, ત્રિકમ સાહેબ, પ્રેમ તિયાં પરખાયાજી, ।।
સતગુરુએ મુને ચરણુમાં રાખ્યો, મનવા એક ઘર આયાજી,
દાસ વાઘો સાગર પ્રેમ કેરાં ચરણાં, પુરણ પદવી પાયાજી.

૧૨ : બાળકસાહેબની વાણી

૧

સરસ્વતી માત સમરૂં મા શારદા, પાય રે લાગું ગરવા ગુણપતિ,
કુંવરબાઇનાં વાલે મામેરાં પૂર્યાં, મહેતા રે નરસિંહને ગાંઠે મૂડી નોતી,
નાથ નુરિજન તેરા ઘર અકળ હે, માંડ કરીને નર પહોંચ્યા મથી મથી..

ઓંકાર થકી તને અવતાર આવ્યો છે, પાંખું પણ ઉડી શકયો નહીં,
રાતને દિવસ હાલે પોકારતો, જરા મરણુની તને ખબર નથી.—નાથ.

ધ્રુવ, પ્રહલાદની સુરતા છે સાચી, ગુનકા હતી ત્યાં થઈ સતી,
મીરાં, તોરલ ને રાણી રૂપાંદે, ત્રણુની ભકિત નેશળ હતી.—નાથ.

પાણીની માથે વાલે પાજ તો માંડી, જગડો જીતવા હાલ્યો હનમો જતિ,
રીંછને ભેળા રામને લક્ષ્મણ જતિ, વાળો લાવ્યા તમે સીતા સતિ.—નાથ.

ગુરુ મળ્યા મને ગુપત ગેબી, આગળ તણી ઓળખાણ હતી,
નથુરામ ચરણે બોલ્યા બાળકસાહેબ, રામના ભજન વિના મુકિત નથી,
નાથ નુરિજન તેરા ઘર અકળ હે, માંડ કરીને નર પહોંચ્યા મથી મથી....

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

અખંડ અવિચળ આત્મા, નહિં જાત વર્ણ વિચારો,
જે નિશદિન ઘટમેં ગાજે, મન-પવનથી ન્યારો.

હરદમ મેં હાજર રહેતા, સુરતા કરે સંધારો,
ઓહંગ સોહંગ બે તાર ગાજે, વાગે છે એકતારો.

સતગુરુએ કૃપા કરી, કિયો નામ ઉજીયારો,
ઉગારામ ગુરુદેવ હમારા, હીરસાગર કિનારો.

૨

અખંડ ઝાલર વાગે ઘટમેં, અખંડ ઝાલર વાગે,
કોઇ ગુરુગમ જ્ઞાનિ જાગે, ઘટમાં અખંડ ઝાલર વાગે.

ત્રિગુણ પર ત્રિવેણી તીરે, તારમેં તાર મીલાવે,
ગગનમંડળમેં ગેબી ગાજે, સુરતા ધ્યાન લગાવે.

ત્રિકુટી આગે તે જ સ્વરૂપી, સતગુરુ આપ બિરાજે,
સોહં સ્વરૂપ બન કે પોતે, ગુરુ સ્વરૂપ સમાવે.

ઓહં સોહં રણુંકારમાં, નિશદીન ગુરુગમ જાગે,
ઓમકાર એ નિરાકારમાં, અર્ધ માત્રા આરાધે.

અર્ધ માત્રા સહિત ઓમ, સબીજ શબ્દ સુહાગે,
વેદ નેતિ પોકારે, તે ગુરુ થકી લક્ષ લાગે.

દેવી-દેવતાઓ ઘર ગોતે, પુરાણ કુરાન વિચારે,
કહે ઉગારામ ઉગ્યા ઘટમાં, પ્રગટ જયોતું જાગે.

૩

નિવૃત્તિ પ્રવૃત્તિ પરખી એક, સંકલ્પ દૂર કરો,
જીવન મુકિત જાણી તમો, સંતોષ વરને વરો.

આ અવલ કવલની છે સાધના, તેનું સહેજે સ્મરણ કરજો,
અનાદિ વચન છે ગુરુદેવનું, તેનું ધ્યાન તમે ધરજો.

એ પોતાના પુન્યનાં પારખાં, તે ગુપ્તદાન તમે દેજો,
આમાં શાન્તી, તપ, સોહં છે, તે તમારો આત્મા
ઓળખી લેજો.

એ વૃક્ષ રૂપ એક જ છે, તેમાંથી આ દ્વાદશ પ્રગટયાં ડાળાં,
અનુભવથી ઓળખાતો, સોહંપદ બાવન અક્ષરથી છે બારા.

એ દમ કદમના દોરમાં, નિરખે પદને તમે નિહાળો,
દશમાં સોહમમાં સુરતા લગાવો, તો જરે અખંડીત ઝારો.

એ સતગુરુએ વચન સૂણાવ્યો, જરાઇ નથી જૂઠો,
સતસંગ રૂપી પાટી કરી, વચન વતરણેથી એક જ એકડો ઘૂંટો.

આ અનુભવી સ્કૂલમાં અભયવચન સતગુરુએ સુણાવ્યો,
દાસ ઉગાને સતગુરુ હીરસાગર મળ્યા, આ દેહીમાં દર્શાવ્યો.

17:23

ત્યાં ઓહંગ સોહંગ દો ચલે, શ્વાસા હોઈ મળી એક
જ્યોત કા પ્રકાશા,
ડાબી ઈંગલા જમણી પિંગલા, વચ્ચે સહેજ સુખમણા કા વાસા,
પવન પરખ્યા તો મન પવના, બ્રહ્મ ના દેખ્યા એક જ અવાસા,
દાસ ઉગાને ગુરુ હીરસાગરને સબ્યા, બતાવ્યા સત બ્રહ્મ ઉપદેશા.

૭

જ્ઞાન ગુફામેં બેઠકે મન ગઢીમેં ધ્યાન લગાવો,
સુરતા ભેળવો નુરતમેં, જલહલ જ્યોતિ સતનામની જગાવો.
પાંચ અવસ્થા કુ પરખ લીયો, ઉન્મુનિ મુદ્રા સુ ધ્યાનમાં રાખો,
સુરતા ભેળવો નુરતમાં અને અસી સોહં શબ્દ ચાખો.
એ જ મન મંદિરમાં દેવ, આત્મા મૂર્તિ અખંડ ધ્યાને રાખો,
અનંત જુગથી થયા થંભા, દીધા તે આસન વાળી.
આ જુગત એણે વિગતથી રચાવ્યું, ચૌદ લોક સેવક કીધા,
તે અકલ ગરથ નિજ નામનો, અનહદ બાજાં વાગે.
તે પ્રેમ તખત પર પરમાત્મા, આપી સોહમ્ આપ બીરાજે,
એમ દમ વસે કદમમાં કદમ વસે છે દમમાં,
તેની ગતી તો વીરલા જાણે,
પોતે પોતામાં પોતાનો પાર પરખ્યો નહીં,
તે તક ભૂલ્યા છો ટાણે.

પરિશિષ્ટ—૧

ભક્તકવિઓની વાણીના કેટલાક શબ્દોના અર્થ

. અજપાજાપ— નામનો જાપ મુખેથી કે મનથી પણ થતો નથી અને છતાં પણ શ્વાસોચ્છ્વાસ સાથે અનાયાસ અને નિરંતર થતો જાપ. જીવનની પ્રત્યેક ક્રિયા સાથે સહજ જાપ થતો હોય તે અજપાજાપ.

૨૬. ધ્રુવ– પાટમાં ઉત્તર દિશાનો દીપક.

૨૭. ધૂનો– મહાધર્મ, ધૂનધરમ.

૨૮. નાભિકમળ– નાભિ પાસે જે સૂક્ષ્મ ચક્ર આવેલું છે જેને યોગમાં મણિપૂર ચક્ર કહ્યું છે.

૨૯. નિર્ઝર– કોઇ પણ જાતની વાસના રહિત.

૩૦. નામ– સંતો જેને નામ કહે છે એ તો ગુપ્ત છે. એ નામને સંતો ૐ, નિજનામ, સતનામ, એવા નામથી પણ ઓળખાવે છે. બીજી કેટલીક પરંપરામાં ઊનામ કે બ્રહ્મને પણ નામ તરીકે ઓળખાવે છે.

૩૧. નાદ– અવાજ, (કુંડલિની જ્યારે ઊલટી ગતિએ ઉપર ચઢે છે ત્યારે એનાથી જે સ્ફોટ થાય થાય તેને નાદ કહે છે.) અનાહત નાદના અર્થમાં નાદ છે.

૩૨. નાદ બુંદ– નાદ–ગુરુ શિષ્ય પરંપરા બુંદ–પિતા પુત્રની શિષ્ય પરંપરા.

૩૩. નુગરા– જેને ગુરુ નથી તેવા.

૩૪. નુરત સુરત– નિઃરતિ–સુરતિ, નુરતા–સુરતા. નિઃરતિ–ઉદાસીનતા, સુરતી–તલ્લીનતા (બધી જ અસાર વસ્તુઓમાંથી મનને હટાવી લેવું અને સાર તત્ત્વ–પરમાત્મામાં મનને જોડવું.) નુરત–સુરતની નળીથી સુષુમણા દ્વારા પ્રાણની ઊર્ધ્વગતિ કરી શકાય છે.

૩૫. પરમોદ– પ્રબોધ–ગુરુ જે બોધ આપે છે તે.

૩૬. પિંગલા– નાકની જમણી બાજુની સૂર્યનાડી.

dar.com

શ્રી સદ્‌ગુરુ વાણી

સદ્‌ગોર બ્રહ્માજીને ઓળખ્યા

સદ્‌ગોર બ્રહ્માજીને ઓળખ્યા, મેં તો સુરતા શું કર્યા પ્રણામ રે,
બ્રહ્મ રસ લાગે મીઠડો, મારા અંગ ઉલટ ન માય રે. સદ્‌ગોર.-૧

જ્યોત પ્રકાશીને તેજ કર્યા, તે તો તેજમાં તેજ સમાય રે,
અખંડ જ્યોત ત્યાં જળહળે, નાભી કમળથી કર્યો વિસ્તાર રે. સદ્‌ગોર.-૨

બાર કળા તો બ્રહ્માજીની કહીએ, મેં તો પ્રત્યક્ષ દીઠા છે તેજ રે,
સોળ કળા વિષ્ણુ નર કહીએ, તે જ્યોતમાં સમાય રે. સદ્‌ગોર.-૩

પાંચ તત્ત્વની કાયા કરી, નવ ખંડમાં કીધા વિસ્તાર રે,
કલિજુગમાં તે ગોરનર આવીયા, સેવકોને દેવા દર્શન રે. સદ્‌ગોર.-૪

ઈંગલા પિંગલા સુક્ષ્મણા, તે તો ચઢીયા ત્રિવેણી ઘાટ રે,
ત્રિવેણી સંગ્રામમાં નાહીએ તો, દસમે પામ્યા છે દર્શન રે. સદ્‌ગોર.-૫

સતરમી કળાના તો તેજ જ્યાં, તે તો પિંડ સ્વરૂપી કહેવાય રે,
દસમે દર્શન તે જઈ મળ્યા, તે તો પામ્યા છે અમર પદ રે. સદ્‌ગોર.-૬

કહે ઈમામશાહ સાંભળો, એમ બોલ્યા છે અમૃતવાણી રે,
સદ્‌ગોર બ્રહ્માને ઓળખ્યા, મેં તો સુરતા શુ કર્યા પ્રણામ રે.

realpatid
w.realpatidar.com/library
ealpatidar.com

જ્ઞાન - ૧૩

• તો યોગના મર્મ ના જાણે કોઈ. •

આદે ઉનાદે ઓમકાર ઉપન્યા,
ત્યારે શબ્દ માંહે સર્વ સમાયા;
આદથી ઉપન્યા તે અંતે સમાયા
તો તેજ મધ્યે બાંધી હરિએ કાયા. રે યોગેશ્વરો-
તો યોગના મર્મ ના જાણે કોઈ. ॥૧॥

યોગી તે જે યુક્તિ જ જાણે,
શબ્દ તણું લાવે જ્ઞાન;
ગગન માંહે સાધી મંડલ પ્રકાશે,
તે સુરતા મધે રાખે ધ્યાન. રે યોગેશ્વરો-
તો યોગના મર્મ ના જાણે કોઈ. ॥૨॥

સંધને જાણે ને શબ્દને ઓળખે,
અને યોગની ક્રિયાને સાધે;
અગ્નિ પ્રકાશીને વાની પ્રજાલે,
ગગન પાતાલે સુરતા બાંધે, રે યોગેશ્વરો-
તો યોગના મર્મ ના જાણે કોઈ. ॥૩॥

તાલ તમાસા બેઉ જોડી પ્રકાશે,
સંધ તણી ક્રિયા જાણી;
સદ્ગુરુ મહારાજે ઉપદેશ દીધા,
તો યોગીએ યુક્તિ પ્રમાણી. રે યોગેશ્વરો-
તો યોગના મર્મ ના જાણે કોઈ. ॥૪॥

realpat
www.realpatidar.com/library
@realpatidar.com

21:22

ભાઈ ભત્રીજા તારા કુટુંબ કબીલા, ખોટી થયો ને બધી ઉમર,
મારું મારું કરી તું મરી ગયો મૂરખા,
શ્રવણ કથા તેં સાંભળી નહીં.
કહે રવિદાસ સંત ભાણપ્રતાપે, હરિજન વિના મુકિત નહીં.

- ૭ -

રવિએ રમતો દીઠો રે, બાવો છે ઝીણો છે ઝીણો. (ટેક)
લીલો ને પીળો લાલ બેરંગી, સફેદથી રંગ સારો,
એ પંખીડાને પાંખ જ નહીં, ચૌદ ભુવનથી ન્યારો રે ...બાવો૦
આગળ છાયા, પાછળ છાયા, આ છાયા છે તમારી,
એ છાયામાં છુપાઈ રહ્યો, છાયાથી સદ્‌ગુરુ ન્યારો ...બાવો૦
આપે બાવો આપ સ્વરૂપી, ઝીણા માંહીલો ઝીણો,
કવિ રવિદાસ સંત ભાણપ્રતાપે, બાવન અક્ષર બારો ...બાવો૦

- ૮ -

લોહી માટીકા ચણીઆ રે બંસલ, ખૂબ બણિયા ખૂબ બણિયાજી,
તનસે સાઠ વાંકું ચીરા લગાયા ચોસઠ બંધ બંધાયા.
બહોંતર કોઠા બે માંહી જાળી ઉપર ચમઠા છાયા,
હીરા માણેક જ્યોત અપારા, વરસે અમૃત ધારા.
મરજીવા નર ચઢે મેદાને, નિરખે નિરખનહારા,
એ બંગલા પર છત્ર બિરાજે, વહાં ઉનકા રાજા.
સુખમણા તારી સેજ બિછાવે, બાજે અનહદ બાજા,
માહીક માહીં ન્યારે કા ન્યારા, ઐસા ખેલ રચાયા,
કહે રવિરામ સંતભાણ પ્રતાપે, અક્ષય અમર ઘર પાયા.

- ૯ -

સંતો નિર્ગુણકી ગત ન્યારી,
સમસ્યા હૈ સદ્‌ગુણની એવી, સમજે તો સુખકારી.

23

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

નામરૂપ જબ નીરખિયા, અનહદ ઘર આયા,
ઈગલા પિગલા સુષમણા, સેજેસેજ ઘર પાયા.
ભ્રમર ગુફામેં ભાઠી જળે, ભારે દેખ લાલી,
જુગત જાગીને ત્યાં રહે, બેઠા આસન વાળી.
સદ્‌ગુરુ કેવી સાનમેં, સમજે કોઈક શૂરા,
સમજીને જે સહી દરે, તે પદ આવે પૂરા.
અગમ ગત અવિગત કેરી, વિધિ વિરલે જાણી,
જળતરંગ જળથી ઉપન્યા, જળમાંહી સમાણી.
એક નિરંતર નિરખિયા, નહીં કાયા નહીં માયા,
ઓચિંતા ભાણ દેવ ઓચર્યા, ગેબી ગુણ ગાયા.

- ૧૪ -

હંસો હાલવાને લાગ્યો, કાયાનો ગઢ ભાંગ્યો,
તમે પોંરા પ્રમાણે જાગો, હંસા હાલવાને લાગ્યો. (ટેક)
નિતનિત નિંદ્રા મત કરો નયણે, સૂતાને સાહેબ આઘો,
સુમિરણ કરી લો સાચા ધણીનું, તમે મોજ મુકતાફળ માગો.૧
જાગ્યા સોઈ નર સંસારમાં સીધ્યા,
જેણે ઉજેડ મેલ્યા આઘો,
મારગ ધાયા તે બહોત સુખ પાયા,
તેનો જરા મરણ ભે ભાંગ્યો. ૨
જરા પહોંચી ત્યારે જમડા આવ્યા, દેહડી તણો દલ ભાગ્યો,
કૂડીએ આવી કાયાનો ગઢ ઘેર્યો, ત્યારે અંધો અરજવાને લાગ્યો. ૩
કૂડી છે કાયા ને કૂડી છે માયા, જૂઠનો આ જગ જાણો,
સાચો નામ સાહેબકો જાણો, જાણે લુહાણો ભાણો. ૪

21:28

સદ્‌ગુરુની સનદ પકડ, જકડી હૈયે રાખ રે ભાઈ,
આવન-જાવન મિટે ફેરા, આપું કાઢી નાંખ રે ભાઈ.
આવાગમન માટે પીઓ, રામરસાયન ઘૂંટ રે ભાઈ,
રવિ કહે રાખ નાખીએ નૂરત, સુરત સાદય ત્રિકુટી રે ભાઈ.

- ૪૧ -

એવી ઝણણણણ ઝાલરી વાગી રે,
મેં તો જોયું તખ્ત પર જાગી રે,
મને સંત મળ્યા સોહાગી રે, એની મધુરી શી મોરલી વાગી રે !
મુખ કમળથી ઉપડીને હૃદય કમળમાં બોલે,
નાભિકમળથી મારી સુરતા ચાલી, ઊભી ત્રિવેણીમાં ડોલે રે.

સતનામ ઘોડો શણગારીઓ, અલખની કરી લગામ,
ચાંદો સૂરજ બેય પાવડે એનો ચડનારો ચતુર સુજાણ -રે.
ગગનમંડળમાં ગોખલો, નર સૂતો નિરધાર,
ત્રણ પુરુષ એની સેવા કરે, રામ કબીર રણુંકર -રે.
સદ્‌ગુરુએ અમને ઉરમાં લીધા, માર્યાં મોહનીનાં બાણ,
વિચાર કરો તો વેદ ન જાણે, ભીતર પ્રગટ થયા ગુરુ ભાણ -રે.
સોહં સોહં તારા ઘટમાં વસે, ચુરતાં કરે એની સેવ,
ભાણપ્રતાપે રવિદાસ કહે, મને મળિયા નિરંજન દેવ -રે.

- ૪૨ -

રામ નામનું સુમીરણ સાચું, કાચું નહીં લગાર રે ભાઈ,
સહસ્ર ફેણે શેષનાગ જપે છે, રસનાએ રંકાર રે ભાઈ.
વિશ્વાસે વિશ્વંભર ભજીએ, તજીએ લોકની લાજ રે ભાઈ,
અંબુ પર અર્ધ અક્ષરે, પથ્થર બાંધી પાજ રે ભાઈ.
અજામિલ ગજ ગણિકા, ગોવિંદે તારી કાઢયાં તીર રે ભાઈ,
દ્રૌપદીજીના પલમેં પૂર્યાં, નવસે નવ્વાણું ચીર રે ભાઈ.
ઊઠતાં રામ કહે બેઠતાં રામ કહે, ચાલતાં રામ સંભાર રે ભાઈ,
સોવત રામ, જાગત રામ કહે, સદ્‌ગુરુ શબ્દ વિચાર રે ભાઈ.
સતજુગ ત્રેતાજુગ જગ્ન, દ્વાપરમાં આચાર રે ભાઈ,
કળિયુગમાં રવિદાસ કહે, હોવે નામ થકી નિસ્તાર રે ભાઈ.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

श्वासा सांग अनूप सुहाया, संतदास गूदड़ की माया।
कण्ठी सुमिरण रहनी चादर, श्रध्दा पाटी प्रतीति आदर ।७।
ब्रह्म अंचला धारे अवधूता, शिवविभूति ब्रह्म अनुभूता ।८।
कफनी मर्यादा पालन करनी, सुत संतोष भेष भ्रम जरनी ।
जाप जांघियाँ लज्जा कर्ण कुण्डल, प्रेम पूजा यश तर्पण मुदग्ल
निर्भय नगरहै मठ निराशा, भोजन भाव जीव अविनाशा।६।
शर्त निर्लेप मोरछल लाया, द्वेष हीन जंग डोरा भाया ।
गुण उडयनि स्वाँग सुहाया, अनाहत नादशृंगी नाद बजाया।१०
हरि भक्ति मृगछाला प्यारी, गुरू पुत्र पहने सो ब्रह्मचारी ।
त्रिगुण चकमक भाव भोजना, परम अमृतपेय परम योजना ११
पात्र अपात्र विचार फरूहा, बहुगुणी तूम्बा कमण्डल किस्तूहा
गुरूज्ञान का दीपक पाया, ऋद्धि भण्डार स्थिरता माया ।१२
अमरत्व दण्ड रू धैर्य कुदाली, तप खड्ग तत्व कर झाली ।
वशीकार वैरागण टेका, समद्रष्टी चौगान विवेका ।१३।
मन का घोड़ा विरक्ति का जीना, प्राणायाम पोलो में दीना
इडा पिंगला पागड़े फेरा, ईश्वर नाम कँवल से घेरा ।१४।
सुषुमन से आ डेरा दीया, सीतल साधन भीतर लीया ।
अभरा सभरा सतसंत गाया, जीवत ओढया मूँआ बिछाया १५
तत्व जोड़ा वेश बनाया, निर्गुण ढाल बल बाण सजाया ।
शम दम फर बाणों के लागा, बोद्ध ऋषि संयम शस्त्र जागा १६

एक घड़ी या आधी घड़ी हो, या आधी की आधी।
संगत गुरु की करे चेतकर, मेटे सकल उपाधी ॥ सतसंग में
सतसंगत मानसर समाना, जुड़ मिल हँस जो आये।
सीतल तन मन होगया सारा, अमृत कुण्ड नहाये ॥ सतसंगत में
हँसा बगला चले मानसर, अपने चित अनुमाना।
हँसा तो चुने मोती मुक्ता, बगला मछली खाना ॥ सतसंग में
कोई छन्नी बनकर आवे, कोई छाज के ढँगा।
छन्नी सार वस्तु को त्यागे, छाज सार गहे अंगा ॥ सतसंग में
चित विवेक धरकर सतसंगत, तज मन की दुचिताई।
ततछण पल के सतसंगत में, निश्चय तेरी भलाई ॥ सतसंग में
अमृत बरसे गगन मंडल से, अमृत मय गुरु बानी।
राधास्वामी की बानी सुन, बने सहज निरवानी ॥ सतसंग में

[७३-२६१]

निज मन को सम कर लेना है ॥टेक॥
समता आई ममता भागी, सम का मिला सहारा।
सम को पाइ सुरत हुई निश्चल, लखा शब्द भंडारा ॥ लेना है
सम में ताल ताल में सम जब, राग सुहाना लागे।
बिन सम राग अलाप है मिथ्या, सुनने वाला भागे ॥ लेना है
सम की समझ बूझ नहीं जबलग, नहीं सुन्दर व्यौहारा।
चित की समता बिन नहीं पावे, परमारथ का सारा ॥ लेना है
सुखमन मध्य ढूँढ सम स्थल, सम्यक आसन मारी।
जागी कुण्डलनी पर चढ़ने का, होजा तू अधिकारी ॥ लेना है
नहीं दायें बायें न भटकना, सम्यक हो वाचा मा।
सम्यक करम में सम्यक बानी, सम संकल्प निशाना ॥ लेना है
तिल को छोड़ तोड़ गढ़ त्रिकुटी, जा सुन्न के मैदाना।
सम्यक सहज समाधि रचाले, महासुन्न स्थाना ॥ लेना है

जो आये हैं वह जायेंगे, जो मिले बिछुड़ना है उनको।
जो समझ गये वह भूल के भी, चिन्ता नहीं मन में लाते हैं ॥४॥
संसार नहीं स्थिर भाई, है इसमें नहीं स्थिरताई।
ज्ञानी इस दशा को समझ गये, इसमें नहीं चित को लगाते हैं ॥५॥
जो करना धरना है तुम को, वह करो और अपनी राह लगो।
डरते हो काल से माया से, यह जीव को फाँस फँसाते हैं ॥६॥
यह जान लो कोई नहीं अपना, संसार रैन का सपना है।
सोचो विवेक से निज मन में, झूठे सब रिस्ते नाते हैं ॥७॥
दिन ढला रात की बारी है, कर सोने की अब तय्यारी।
आयु गई नाम जो लेते हैं, भव सागर से तर जाते हैं ॥८॥
सत संगत में सतगुरु के जा, कुछ दिनों शब्द का साधन कर।
राधास्वामी की कृपा से, सेवक नहीं धोखा खाते हैं ॥९॥

[१०]

पृथ्वी मंडल को छोड़ दिया, भक्ति बल ले आकास चढ़ा।
जब ब्रह्मरेन्द्र पर चढ़ आया, फिर सिखर मेरु कैलास चढ़ा ॥१॥
माया ममता घट से भागी, सोई हुई सुरत जागी।
मिट गया अंधेरा अविद्या का, फिर विद्या के प्रकाश चढ़ा ॥२॥
चढ़ने चलने की तय्यारी की, सतगुरु ने मेरी रखवारी की।
दृढ़ता से उदान का आसरा ले, घट गगन में साँसों साँस चढ़ा ॥३॥
सुन्न महासुन्न के पार गया, फिर भँवर की खिड़की जाके घुसा।
सतपद में सतगुरु का दर्शन, ले मन में सच्ची आस चढ़ा ॥४॥
लख अलख अगम की गम पाई, ली राधास्वामी की शरनाई।
यूँ ऊँचा शब्द का डोर पकड़, राधास्वामी का दास चढ़ा ॥५॥

✓[११]

आसा इस भव के कारागार में, सचमुच जम की फाँसी है।
आसा का बन्धन काटे वह, गुरुमुख है गुरु विश्वासी है ॥१॥

भव सागर से तारा गुरु ने, दे प्रेम किया प्यारा गुरु ने।
राधास्वामी अमृत नाम पिया, माया ने उसे नहीं घेरा है ॥५॥

[१७]

दुखियों दीनों पर दया हुई, भव पार किया गुरु प्यारे ने।
निर्धन को भक्ति योग युक्ति का, दान दिया गुरु प्यारे ने ॥१॥
मद मान ने अति भरमाया था, माया के फाँस फँसाया था।
अब घट में जलाया अपनी मेहर से, ज्ञान दिया गुरु प्यारे ने ॥२॥
योनी के हिंडोले झूले थे, अपने आपे को भूले थे।
चित देके चिताया चिताउनी दे, अपना कर लिया गुरु प्यारे ने ॥३॥
चौरासी का खटका मिटा सारा, गुरु दया हुई अपरमपारा।
घट फटगया था दे भक्ति का काँटा, अब तो सिंया गुरु प्यारे ने ॥४॥
सुखमन में ज्योति जली जगमग, सुरत शब्द से प्रगट हुआ घट मग।
राधास्वामी नाम दे अब तो किया, उत्साह हिया गुरु प्यारे ने ॥५॥

[१८]

गुरु दाता दया की दृष्टि करो, जग में नहीं कोई हमारा है।
स्वारथ के सम्बन्धी सब हैं, अब आपका एक सहारा है ॥१॥
तन विकल तो मन अति चंचल है, नस नाड़ियों तक में हलचल है।
शान्ति का कोसों पता नहीं, यूँ काल करम ने मारा है ॥२॥
नहीं योग युक्ति का कोई यतन, नहीं ज्ञान ध्यान का है साधन।
दुविधा दुचिताई ने घेर लिया, इस घेर का वार न पारा है ॥३॥
आपत और विपत का सामना है, क्योंकर इस मन की थामना है।
इस बात का पूरा निश्चय हुआ, दुखदाई महा संसारा है ॥४॥
क्या कहूं कहां आऊँ जाऊँ, किस विधि शान्ति की दशा पाऊँ।
मेरे गले पड़ी दुख की फांसी, यह काल बड़ा हत्यारा है ॥५॥
सत संगत के नहीं वचन सुने, सुन कर भी नहीं होता है मनन।
निष्फल जाता है मेरा जनम, मन हारा हारा हारा है ॥६॥

जाग्रत आई तब विश्व हुआ, इस विश्व को समझे संसारी।
धर्म अर्थ मुक्ति और काम आये, दुख और सुख आठों याम बना॥६॥
यह लोक परलोक के झगड़े हैं, और पाप पुण्य के रगड़े हैं।
इन से फिर भेद दंड प्रगटे, और दाम बना और साम बना॥७॥
जो इनमें फँसा वह मारा गया, वह बचा जो इनसे न्यारा है।
जिसको यह भेद दिया गुरु ने, सत भाव बना सत काम बना॥८॥
राधास्वामी ने समझाया, सुरत शब्द का मारग दरसाया।
इस पन्थ में भाग्य से जो आया, जीते ही जी विस्राम बना॥९॥

[५०]

राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी पल छिन गाना।
राधास्वामी है मूल यत्तन, भक्ति और योग युक्ति ज्ञाना॥१॥
जब से गुरु चरणों में आया, फल नर जीवन का सहज पाया।
छुट गये मान ममता माया, जब निज स्वरूप को पहचाना॥२॥
नहीं कहीं आया नहीं कहीं गया, नहीं जपी तपी बनखंडी भया।
सतगुरु दाता की हुई दया, घट भेद मिला है मन माना॥३॥
सुखमन की सीधी राह चला, इस राह में आकर नहीं टला।
सतगुरु स्वामी की गोद पला, सतगुरु ने कर दिया मस्ताना॥४॥
गुरु जगत में सच्चे दाता हैं, पितु माता धरता बिधाता हैं।
गुरु सम्बन्धी हितु भ्राता हैं, गुरु राधास्वामी को जाना॥५॥

[५१]

राधास्वामी के चरन कमल में, बार बार परनाम करूँ।
तन मन अरपूँ सीस नवाऊँ, स्तुति आठों याम करूँ॥१॥
अपने आपे की सुध भूलूँ, गुरु आपा मेरे चित्त बसे।
यह दोनों मिलकर एक बने, मैं समझ बूझकर काम करूँ॥२॥
सतगुरु का रूप है रूप मेरा, और नाम गुरु का नाम मेरा।
उस रूपका चिंतन मनन करूँ, और नाम सुमिर विश्राम करूँ॥३॥

[८-२२६]

कोई जतन करो सुरत गगन चढ़े ॥टेक॥

गगन चढ़े सुरत गगन चढ़े, कोई जतन करो सुरत गगन चढ़े ॥
पिंड छोड़ जावे ब्रह्मंडा, पहुँचे गुरु दरबारा ।
धुन मृदंग की कान में आवे, ओंकार झनकारा ॥ गगन चढ़े
सुन्न शिखर चढ़ आसन मारे, सहज समाध रचावे ।
मानसोवर करे अश्नाना, हंस की पदवी पावे ॥ गगन चढ़े
भँवर गुफा की खिड़की निरखे, सोहंग सोहंग भाखें ।
सत्त धाम में बीन बजावे, सत सत सत सत आखे ॥ गगन चढ़े
अलख को लख गम अगम की पावे, राधास्वामी पद में बासा ।
आस गुरु की चित में धारे, जग से रहे उदासा ॥ गगन चढ़े
एक जनम में गुरु की सेवा, दूजे नाम का साधन ।
तीजे मुक्ति के धाम बसेरा, चौथे रूप अराधन ॥ गगन चढ़े
राधास्वामी गुरु की दया भई है, शब्द योग को साधा ।
एक जनम में काम बनाया, मेटा सकल उपाधा ॥ गगन चढ़े

[६-२२७]

भाई समझ बूझ व्यौहार करो ॥ टेक

व्यौहार करो व्यौहार करो, भाई समझ बूझ व्यौहार करो ॥
दिन तो खोया जग के धंदे, रात खाय कर सोये ।
नर जीवन का सार न जाना, अन्त पीट सिर रोये ॥व्यौहार
सब कुछ करो विवेक सहित तुम, बिन विवेक व्यौहारा ।
नर के काम सभी हैं निष्फल, समझे कोई गुरु प्यारा ॥ व्यौहार
काम काज से निश्चत होकर, सत्त संगत में जाई ।
प्रेम भक्ति का सौदा करलो, नित नित बढ़े सवाई ॥ व्यौहार
गुरु की भक्ति सदा सुखदाई, कोई कोई विरला जाने ।
बिन जाने परतीत न आने, अनुभव गम गति माने ॥ व्यौहार

एक घड़ी या आधी घड़ी हो, या आधी की आधी।
संगत गुरु की करे चेतकर, मेटे सकल उपाधी ॥ सतसंग में
सतसंगत मानसर समाना, जुड़ मिल हँस जो आये।
सीतल तन मन होगया सारा, अमृत कुण्ड नहाये ॥ सतसंगत में
हँसा बगला चले मानसर, अपने चित अनुमाना।
हँसा तो चुने मोती मुक्ता, बगला मछली खाना ॥ सतसंग में
कोई छन्नी बनकर आवे, कोई छाज के ढँगा।
छन्नी सार वस्तु को त्यागे, छाज सार गहे अंगा ॥ सतसंग में
चित विवेक धरकर सतसंगत, तज मन की दुचिताई।
ततचण पल के सतसंगत में, निश्चय तेरी भलाई ॥ सतसंग में
अमृत बरसे गगन मंडल से, अमृत मय गुरु बानी।
राधास्वामी की बानी सुन, बने सहज निरवानी ॥ सतसंग में

[७३-२६१]

निज मन को सम कर लेना है ॥टेक॥

समता आई ममता भागी, सम का मिला सहारा।
सम को पाइ सुरत हुई निश्चल, लखा शब्द भंडारा ॥ लेना है
सम में ताल ताल में सम जब, राग सुहाना लागे।
बिन सम राग अलाप है मिथ्या, सुनने वाला भागे ॥ लेना है
सम की समझ बूझ नहीं जबलग,नहीं सुन्दर व्यौहारा।
चित की समता बिन नहीं पावे, परमारथ का सारा ॥ लेना है
सुखमन मध्य ढूँढ सम स्थल, सम्यक आसन मारी।
जागी कुण्डलनी पर चढ़ने का, होजा तू अधिकारी ॥ लेना है
नहीं दायें बायें न भटकना, सम्यक हो वाचा मा।
सम्यक करम में सम्यक बानी, सम संकल्प निशाना ॥ लेना है
तिल को छोड़ तोड़ गढ़ त्रिकुटी, जा सुन्न के मैदाना।
सम्यक सहज समाधि रचाले, महासुन्न स्थाना ॥ लेना है

सम्यक शब्द सुने जब घट में, शून्य पार चढ़ जावे।
भँवरगुफा सोहंगम सम्यक, सो सतपद पहुँचावे ॥ लेना है
सुरत शब्द मत गुरु ने बताया,अनुभव सम्यक ज्ञाना।
सम्यक साधन बिन नहीं पावे,अलख अगम निरवाना ॥ लेना है
राधास्वामी सतगुरु आये, घट का भेद बताया।
सम कर सुरत निरत मन चित को,सुरत में रहा समाया ॥ लेना है

राधास्वामी परम सन्त,सृष्टि के आदि अन्त।
देव तोहि सच्चा मन्त्र, संतमंत बौरे॥ मनुआ तू

[६-३३८]

मनुआ चित हिये धार, सतगुरु की बानी ॥टेक॥
काया माया छाया एक, तीनों भरम खानी।
पकड़े नहीं आवे हाथ, यतन योग हानी॥ मनुआ चित
मिथ्या परपञ्च सारा, भ्रांति की निशानी।
जो कोई भूल गया, अन्त पछतानी॥ ”
जागृत स्वप्न है समान, एक मात्र जानी।
सतसंग में बैठ बैठ, तज दे मन मानी॥ ”
पढ़ा लिखा सोचा समझा, आयु सब बितानी।
अब तक नहीं समझा हाय, क्या कहूं बखानी॥ ”
राधास्वामी नाम सुमिर, मन चित कर्म बानी।
सत असत कर विवेक, रूप ले पिछानी॥ ”

[७-३३९]

गगन मंडल धूम मची, देखो सुरत मेला ॥टेक॥
घट की राह अधर चलो, चलने की बेला। गगन मंडल
सुखमन का नाका तोड़, बङ्क नाल ठेला॥ ”
अंस बंस हंस पाँत, करत नित केला। ”
शब्द गुरु सुख समाज, संग सुरत चेला॥ ”
शंख ढोल झांझ बजत, सारंग धुन बेला। ”
राग रंग नाच देख, अद्भुत अति खेला॥ ”
अन्तर आनन्द लहो, बाह्य त्रिपत भेला॥ ”
जगत मोह आस फांस, काल का झमेला। ”
राधास्वामी दीनबन्धु, दया से देत हेला॥ ”

—०:—

[५-३५८]

आया सावन का महीना, झूलें सखियां मिल जुल आय ॥टेक॥
गगन मंडल में पड़ा हिंडोला, अधर ध्वजा फर्राय ॥ आया
सूर्य चांद के गढ़े खम्भ दो, शब्द की डोर बंधाय ॥ ,,
सुरत निरत की चतुर सहेली, प्रेम के पेंग बढ़ाय ॥ ,,
गावे गीत सुहानी धुन के, हिया जिया चित उमगाय ॥ ,,
तन मन की सब सुध बुध बिसरी, अंतर वृत्ति जमाय ॥ ,,
रिमझिम रिमझिम रिमझिम बदरा, बरस बरस बरसाय ॥ ,,
बिजली चमके जोत प्रकाशे, दादुर शोर मचाय ॥ ,,
भीज रही तन मन की चुनरिया, भक्ति बूंद रस पाय ॥ ,,
राधास्वामी झुलावन आये, शब्द का योग बताय ॥ ,,

[६-३५९]

सजनी चलो बाग में पी के, आई सावन की बहार ॥टेक॥
हरी भरी क्यारी लगे सुहावन, फूले फूल अपार ॥ सजनी
कहीं जूही कहीं बेला चम्पा, कहीं केतकी अनार ॥ "
कमल खिलें भँवरा मँडलाने, बिगसे हार सिंगार ॥ "
पिया के गले प्रेम से डालो, गूथ-गूथ के फूल के हार ॥ "
बरसे मेह अखंडित धारा, चहुँ दिस बहे बयार ॥ "
काली काली घटा गगन में छाई, सूझे वार न पार ॥ "
रह रहकर नभ चमके बिजली, भीनी भीनी बरसे फुहार ॥ "
उमड़ उमड़कर सब बह निकले, सागर नद नदी नार ॥ "
बिरह तपन की आग बुझाओ, कर पी का दीदार ॥ "
भाग जगे अवसर शुभ पाया, यह नहिं बारम्बार ॥ "
घुमर घुमर राधास्वामी परिकरमा, गाओ राग मलार ॥ "

19:49

[५-४४९]

न काशी न काबा न कैलास में है।
तू देख अपने घट में तेरे पास में है ॥१॥
तेरे घट के भीतर वह मालिक बसा है।
न मसजिद न मन्दिर न आकास में है ॥२॥
नहीं खाली उससे यह सारा जहां है।
कहां देखता किसकी तलास में है ॥३॥
लगा बन्द तीनों सुरत को चढ़ाओ।
अनहद की धुन घट के आकास में है ॥४॥
गंगा के जल से नहीं होगी तृप्ति।
चलो घाट मन के जो तू प्यास में है ॥५॥
वह व्यापक हो रग रग में आकर समाया।
तेरी जान तन में तेरी सांस में है ॥६॥
भरम में पड़ा तू किधर ढूँढता है।
गुरु तेरे अन्तर वह परकाश में है ॥७॥
कहीं नाम है और कहीं बेनिशां है।
हमारे ही मन के वह विश्वास में है ॥८॥
राधास्वामी ने भेद अपना बताया।
उसे मिलने की युक्ति अभ्यास में है ॥९॥

[६-४५०]

सदा नाम से लौ लगाया करो तुम।
सुफल अपना जीवन बनाया करो तुम ॥१॥
बसाकर गुरु मूरती मन के मन्दिर।
सिर्फ प्रेम दीपक जलाया करो तुम ॥२॥
कभी तो उन्हें भी खबर हो रहेगी।
करुण राग अपना सुनाया करो तुम ॥३॥

राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, प्रेम की सहज उमंगी
हाँ सहज उमंगी हो ॥ मैं होगई

[२०-५४६]

चल घट की ओर सुरत प्यारी, जहाँ नित अमृत जल बरसे ॥टेक
घट की लीला अगम अलौकिक, घट से काज सभी सरसे ॥ जहाँ०
घट में नूर सुरूर शब्द सब, घट का बासी नहीं तरसे ॥ ,,
घट में राधास्वामी चरन निवासा, घट में चरन कमल परसे ॥ ,,

[२१-५५०]

पनिहारी पानी भरन निकरी, पनिहारी ॥टेक॥
औंधा कुवाँ अकाश में पानी, सहज ही सहज भरे गगरी ॥ पनिहारी
कुआँ में तेज पुंज परकासा, जोत ही जोत में जोत जरी ॥ ,,
कुवाँ से अमी धार नित बरसे, रिम झिम रिम झिम लगी झरी ॥ ,,
हरष हरष आनन्द धुन गाती, ऊँचे उड़ी ज्यों उड़े परी ॥ ,,
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, सुरत शब्द में जाय अरी ॥ ,,

[२२-५५१]

सपने की बात निराली है, सपने की ॥ टेक ॥
सपना तीज तेवहार का उत्सव, सपना होली दिवाली है ॥ सपने की
सपना तोप बन्दूक है सपना, सपना खड़ग भुजाली है ॥ सपने की
यह संसार रैन का गड़वा, कभी भरा कभी खाली है ॥ सपने की
सपना माया सपना काया, सपना लोटा थाली है ॥ सपने की
राधास्वामी गुरु मिल भेद बतावें, जग सपना जंजाली है ॥ सपने की

[२३-५५२]

तेरे घट में बिमल बहार, तू बाहर ना जारे ॥टेक॥
तेरे घट में खेत कियारी, घट में गुल गुलजार ॥ तू बाहर
निरख परख लख घट की लीला, अन्तर सोच विचार ॥ तू बाहर
बाहर सुख बन उमर गँवाई, अन्तर सुख चित धार ॥ तू बाहर

नीचा हुआ सो भर भर पिया, अमृत का जीवन नित जिया।
नर शरीर के फल को लिया, ऊँचे को रोये मरेगी ॥ पी पीले०
प्यास बिना क्या होये ग्रानी, प्यासे ही के लिये है पानी।
बिन अधिकार न कोई जानी, अमृत विष की झरी लगी ॥ पी पीले०
अमृत पिये अमर पद पावे, भव योनी में कभी न आवे।
जनम मरन के दोष नसावे, घट की गगरी भरन लगी ॥ पी पीले०
बूँद अमी की गुरु की बानी, जीवन रस का है यह पानी।
राधास्वामी संगत कर मनमानी, डाली प्रेम की हरी लगी ॥ पी पीले०

(२८-५९६)

झूला झूले सुहागिन नार, पिया का घर हृदय में ध्यान ॥टेक॥
प्रेम की घटा गगन घट छाई, भक्ति झरी चहुँ दिस झर लाई।
आनन्द शान्ती मन में आई, पिया का बड़ा अभिमान ॥ पियाका०
बिजली चमके दादुर बोले, पी पी करत पपीहा डोले।
धरन अकास की नाड़ी टटोले, यही है सतगुरु ज्ञान ॥ ,,
सुरत शब्द का गदा हिंडोला, प्रेम की पेंग से ले झकझोला।
सुखमन मध्य में इत उत डोला, आनन्द रस की खान ॥ ,,
शब्द ज्ञान अनुमान प्रमाना, गावे सुरत राग सुहाना।
सुख पाया और हर्ष महाना, कोई करे कैसे बखान ॥ ,,
मधुर रसीली ओम की बानी, राग अनुराग बिराग निशानी।
मंगल दायक और सुखदानी, छिड़ी मल्हार की तान ॥ ,,
अमी धार की बरखा न्यारी, हित चित जिया को लागे प्यारी।
पर कोई मिले जीव हितकारी, करले मोद से पान ॥ ,,
राधास्वामी धाम की आसा मन में, भर सावन रहे इसी यतन में।
सुमिरन ध्यान और शब्द भजन में, सहजे बने सुजान ॥ ,,

ब्यापे क्यों मद मोह, हुये जब सतगुरु रच्छक।
यम काल का भय मिट जाय, यह दोनों विषधर तच्छक ॥ ,,
राधास्वामी करुणा सिंध, आस करो मेरी पूरी।
लो चरन शरन में आप, न हो अब चरन से दूरी ॥ ,,

(५-५७३)

कर सतसंग अस्नान, तीरथ राज यही ॥टेक॥
गंग भक्ति जमुना कर्म धारा, सरस्वती ज्ञान मई।
न्हाये धोये सुरत भई निर्मल, चिन्ता चित न रही ॥ तीरथ
ईडा पिंगला नील रंग छबि, सुखमन स्वेत कही।
केसर तिलक भाल दे न्यारा, प्रेम का रूप लही ॥ ,,
सहस कमलदल मार ले आसन, ओम का मंत्र गही।
सुन्न समाध अखंड रचाले, ध्यान का सार यही ॥ ,,
भँवर गुफा चढ़ जीत काल को, माया मोह दही।
सत पद अलख अगम राधास्वामी, धुर पद धाम वही ॥ ,,
ऐसा तीरथ मिले भाग से, यम की फाड़ भई।
राधास्वामी मौज निरख घट अन्तर, छाछ त्याग ले मही ॥ ,,

(६-५७४)

सब भोगें बारम्बार, अवश फल कर्म किये का।
यह सोच समझ चित धार, मरम जग जगत जियेका ॥टेक॥
सुर नर देवी देव महाऋषी, और ब्रह्म अवतारा।
एक जो कहिये राम महाप्रभू, पुरशोत्तम मर्यादा ॥
गुप्त घाट सरजू जल बूड़े, रामायण सम्वादा ॥ ,,
दूजे कहिये कृष्ण विवेकी, सोलह कला के पूरे।
यदुकुल नाम भील की गाँसी, भये मान मद चूरे ॥ ,,
तीजे युधिष्ठिर धर्मराज की, अकथ अपार कहानी।
भाई भारजा संग गले सो, हिम सब कोई जानी ॥ ,,

8- प्रायः सभी तान्त्रिक साधु अनुष्ठानिक कृत्यों में कूट-पूजा के षोडश उपचारों का प्रयोग करते हैं।

9- कुण्डलिनी-शक्ति को जागृत करने में अभ्यस्त तान्त्रिक साधुओं का प्रतिदिवस का साधनक्रम का विवरण इस प्रकार है —

<u>प्रतिदिन प्रातःकाल चार बजे शय्या त्याग कर देहशुद्धि के पश्चात् 5 बजे से 9 बजे तक का कार्यक्रम</u>

1- भस्त्रि का प्राणायाम दोनों प्रकार का — 5 से 25 प्राणायाम तक ।
2- शक्ति चालिनी मुद्रा उभय प्रकार — प्रत्येक 5 से 10 तक ।
3- ताड़न मुद्रा — 4 प्राणायाम में 101 तक ।
4- परिधानमुक्तिचालन — 4 प्राणायाम में 101 तक ।
5- पश्चात् बाकी समय में षट्चक्रभेदन की मानसिक क्रियाएँ या संयम ।

<u>पुनः सायं 4 से बजे से 9 बजे रात्रि तक ।</u>

1- महामुद्रा — प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
2- महाबन्ध — प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
3- महाबेध — उभय प्रकार का 5 से 10 तक ।
4- विपरीतकरणी मुद्रा — 5 से 10 तक ।
5- शेष समय में षट्चक्र भेदन की क्रियाएँ (राजयोग) ।

कहां के योग कहां के जप तप, कहां के संयम ध्यान ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, मिटगया मन का मान ॥ पाया०

(१०८)

गुरु ने आन छुड़ाया साधु, गुरु ने आन छुड़ाया ॥ टेक ॥
माया काल की बड़ी जेवरी, बन्धन बांध बँधाया ।
गुरु की दया से बन्धन छूटा, यम का फांस कटाया ॥ गुरु०
भव की नदी अथाह भई है, डूब गया जो आया ।
गुरु की कृपा शब्द का बेड़ा, भाग जगे तब पाया ॥ ,,
एक आस विश्वास गुरु का, गुरु ने पार लगाया ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, गुरु गुन चित से गाया ॥

(१०९)

साधु सतगुरु मर्म जताया ॥ टेक ॥
आसन मारा घट के भीतर, कहीं गया नहीं आया ।
हाथ पांव को कौन हिलावे, सहज में योग कमाया ॥ साधु०
पिंगला बनकर परबत लांघे, ब्रह्म सिखर चढ़ आया ।
गूँगा बहु बिधि बानी बोले, अनहद नाद बजाया ॥ ,,
बिन कर कर्म करूँ मैं सब बिधि, बिन पद पन्थ में आया ।
बिन जिभ्या रस स्वाद लेत हूं, सतगुरु कीनी दाया ॥ ,,
जहां मन जाये लगे तहां उन्मन, सुन्न समाध रचाया ।
भँवर गुफा की दुर्गम घाटी, तोड़ सत पद पाया ॥ ,,
भव दुख से नहीं रहूं दुखारी, गुरु पूरे का आज्ञाकारी ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, भक्ति साज सजाया ॥ ,,

(११०)

मनसा मन से निकली साधु, मनसा मन से निकली ॥टेक॥
मनसा मन से वैसे ही प्रगटी, ज्यों बादल में बिजली ।
मकर तार गति उसको जानो, वह नकली नहीं असली ॥ साधु०

[१५३]

उलटा मारग सन्तमता है, समझे कोई सुजाना हो ॥टेक॥
उलटा नाम जपे अन्तर में, उलटी चाल चलाना हो।
यह उलटा मत तब कोई जाने, जब गुरु मिले सियाना हो ॥ उलटा०
घट में सुमिरन भजन ध्यान हो, घट में भक्ति विधाना हो।
गुरु की दया साध की संगत, पावे राह रुकाना हो ॥ ,,
पृथ्वी मंडल का संग त्यागे, उलट चले असमाना हो।
सुरत शब्द की करे कमाई, तब प्रगटे यह ज्ञाना हो ॥ ,,
साधन सुगम सहज है रीती, कठिन पन्थ नहीं जाना हो।
बाहर के पट जब कोई देवे, अन्तर घट दरसाना हो ॥ ,,
घट में सूर चन्द्र और तारे, जगमग ज्योत जगाना हो।
गंग जमन और सरस्वती घट में, घट ही कर अस्नाना हो ॥ ,,
सहसकमलदल लीला परखो, त्रिकुटी ओम निशाना हो।
सुन्न सरोवर आसन मारो, सहज समाध रचाना हो ॥ ,,
भँवर गुफा चढ़ बजे बांसुरी, माया काल दिखाना हो।
सतपद सत धुन बीन सुहावन, अनहद राग सुनाना हो ॥ ,,
बिन बादल जहां पानी बरसे, बिन सुर शब्द महाना हो।
बिना नैन के सबको दरसे, बिन पग पन्थ में आना हो ॥ ,,
रूप रंग रेखा से न्यारा, अलख अगम से न्यारा हो।
राधास्वामी धाम मिले जब, सोई पद निरबाना हो ॥ ,,

[१५४]

बसे मेरे घट में गुरु पूरे ॥ टेक ॥
जगमग ज्योति जरे दिन राती, देख देख मन में हरषाती।
चित्त चरन में जोड़ लगाती, मस्तक धारा पद धूरे ॥ बसे०
काम क्रोध मद लोभ निकारा, तृष्णा आसा सकल विकारा।
इन सब से अब मिला छुटकारा, जर मर बैरी होगये चूरे ॥ ,,
राग सुहाना कान में आया, सुन सुन मेरा जिया ललचाया।

जामें प्रेम प्रीत नहीं देखें. ताका चित न दुखावें।
दया रूप धारा संतने, बिगड़ी बात बनावें ॥ ,,
निंदा अस्तुति की नहीं चिन्ता, जीव उद्धार करावें।
प्रेमजन को अंग लगावें, सत्त रूप दिखलावें ॥ ,,
करुना सागर सब गुन आगर, शब्द जहाज लगावें।
खेवटिया होय तारें सबको, भव के पार करावें ॥ ,,
मिले असाधु मौन बन जावें, साध को बचन सुनावें।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, शब्द सुनाये चितावें ॥ साधो०

[१६०]

साधु जीवन ही मर रहना ॥टेक॥

सुरत शब्द का साधन करना, दुख सुख सिर पर सहना।
करते करम अकर्मक होना, नहीं कुछ सुनना कहना ॥ साधु०
जल में कमल मुर्गाबी रहते, जल को अंग न गहना।
यह गति तो गुरु मुख कोई पावे, तीन ताप नहीं दहना ॥ ,,
सुखमन के मध्य तिल का मारग, जाओ न बायें दहना।
मध्य सुरत चले गुरु की दाया, प्रेम भक्ति धन लहना ॥ ,,
काम क्रोध अहंकार त्याग कर, गुरु मिल जग से निभना।
चेत चेत कर अन्दर धँसना, भव के धार न बहना ॥ ,,
नहीं वह ज्ञान न तुर्यातित है, इनको नहीं कोई चहना।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, प्रेम वस्त्र अब पहना ॥ साधू०

[१६१]

मैं पाया पाया पाया, गुरु नाम अमीरस पाया ॥टेक॥

जब से कृपा भई सतगुरु की, छुटे काल कर्म माया।
चिन्ता डायन अब न सतावे, निस दिन रहुँ हर्षाया ॥ मैं पाया०
वाचक ज्ञान में ज्ञानी भूले, योगी योग भरमाया।
मैं तो गुरु का सेवक पूरा, रहूं चरन की छाया ॥ ,,

बानर रीछ असुर दल साजा, सत रज तम गुनबानी।
त्रिकुटी गढ़ लंका तब जीता, मेघ ओम् सुन बानी॥
जीत से अति सुख मानी॥६॥
गुप्त भया गुप्तार घाट में, ब्रह्म रूप की धारा।
सोई सरयू निरमल जानो, समझ के करो विचारा॥
राधास्वामी कहत बखानी॥७॥

(४-१८१)

कर आंख बन्द घट में तब दर्शन, गुरु स्वामी का पावेगा॥टेक॥
देह में आंख आंख में तिल है, तिल में ज्योत उजाला।
ज्योत निरख कर ज्योत में दर्शन, ज्योत का बोल है बाला॥
बिन आंख बन्द किये लाख यतन कर, कुछ भी नजर न आवेगा। कर०
देह में कान कान आकाशा, शब्द आकाश का बासी।
शब्द को सुनकर भजन शब्द का, बस सुखमन सुखरासी॥
बिना कान बन्द किये अनहद धुन को, कैसे प्रगट करावेगा॥ ,,

देह में रसना रसना अग्नी, अग्नी नाम पसारा।
रूप से पहिले नाम का सुमिरन, नाम का भेद अपारा॥
बिन जीभ बन्द किये अजपा जाप की, विधि क्या कोई समझावेगा॥ ,,
देह में मन मन चित हंकारा, अहंकार बुद्धि खानी।
मन को बस कर शम दम साधन, तभी बने गुरु ज्ञानी॥
बिन इस मन साधन के प्रानी, काल करम भरमावेगा॥ ,,
देह में सिंध सिंध में धारा, धार में बुंद पसारा।
दरिया लहर बुंद लख लीला, जा भव जल के पारा॥
बिना बुन्द सिंध गति समझे, तत्व हाथ नहीं आवेगा॥ ,,
देह में आंख कान और जिभ्या, मन तीनों में व्यापा।
तीन बंद जब लग न लगाये, कैसे सूझे आपा॥
बिना बन्द यह तीन लगाये, आपा लखा न जावेगा॥ ,,
देह में सब कुछ देह में संगत, संगत सतसंगी प्यारे।
सतसंगी मन प्रेम परख हो, राधास्वामी के मतवारे॥
बिन सतसंग विवेक न होगा, सतसंग काम बनावेगा॥ ,,

[२०-२४८]

खेले होली सुरतिया उमंग भरी ॥टेक॥

इंगला पिंगला त्याग के दोनों, सुखमन मध्य सिधाई।
केसर तिलक थाल भ्रू मध्य में, त्रिकुटी गढ़ चढ़ धाई॥ खेले०

घंटा शंख पखावज बाजें, ओम की धुन सुन पाई।
गुरु चेले का साथ हुआ है, सुन्न सरोवर आई॥ खेले०
सारंग सारंग धूम मची जब, भँवर की खिड़की निरखी।
चन्द्र सूर घट तारे चमके, अपनी गति मति परखी॥ ,,
नाची नाच सुहाना घट में, गा गा अनहद बानी।
सतपद गूँज रही धुन बानी, हुई सहज निरवानी॥ ,,
अलख अगम के पार ठिकाना, थिरकत ठुमकत नाची।
राधास्वामी धाम में पाया बासा, भक्ति अंग संग रांची। ,,

(२१-२४९)

सुन्दर फाग रचाया, सुरत मेरी खेले होली ॥टेक॥

होली जलाई खाक उड़ाई, माया की करी ठिठोली।
काल कर्म को माटी मिलाई, चढ़ी शब्द की डोली॥ सुरत०
रज का गुलाल मला मुख ऊपर, मस्तक प्रेम की रोली।
पृथ्वी छोड़ गगन चढ़ धाई, शब्द अनाहद बोली॥ ,,
सतसंगत सत सगुन के संग में, सत सत्ता की बानी।
गुरु के बचन का श्रवन मनन नित, निध्यासन निरवानी॥
सुमिरन भजन ध्यान रस पागी, एकरस जीवन व्यापा।
सुरत शिरोमनि लख निज आपा, परख लिया निज आपा॥ ,,
तीन त्याग चौथे पद आई, गुरु के बचन प्रमाना।
शब्द अनुमान प्रमान लखे सब, प्रगटा हिये सत ज्ञाना॥ ,,
तीन त्रिलोकी का नाता तोड़ा, अ उ म गति बूझी।
सोचा समझा विचारा मन में, अलख अगम की सूझी॥ ,,
तीन त्रिलोकी में नाम कहां है, चौथे नाम का बासा।
कोई कोई जाने साधु विवेकी, त्याग त्रिलोकी आसा॥ ,,
जो कोई तीन की आसा धारे, चौथे पद नहीं आवे।
सुमिरन भजन ध्यान गहि राखे, तब चौथे पद पावे॥ ,,

(१२-३०२)

गुरु पूरे ने दिखाया अपना धाम ॥टेक॥

सहज योग की विधि बतलाई, बख्शा साँचा नाम।
सुमिरन भजन ध्यान निस बासर, व्यापे क्रोध न काम ॥ गु

प्रथम बंद जब तीन लगाये, मन को दिया लगाम।
जब मन गगना चढ़ा सुरत ले, बंद का फिर नहीं काम ॥ ,,

क्यों कोई कान आंख को मूंदे, क्यों चित राखे थाम।
सुरत शब्द का साधन अद्भुत, अन्तर मूल कलाम ॥ ,,

चढ़ी सुरत छोड़ा नौ द्वारा, गगन में किया बिसराम।
पिंड ब्रह्मांड सेऊँची पहुँची, जहां न रूप न नाम ॥ ,,

सहस कमल दल त्रिकुटी मंडल, सुन्न महासुन्न ठाम।
भँवर गुफा सतलोक अलख लख, अगम परे गुरु धाम ॥

राधास्वामी पद में ठौर ठिकाना, वहां सुबह नहीं शाम।
जो कोई घट चढ़ यहां तक पहुँचे, बिसमध आठों याम ॥

मूल योग यह सबका टीका, निर्मल सुगम सुहाम।
राधास्वामी दया से काल दंड का, भेद साम नहीं दाम ॥

(१३-३०३)

नाम रस पीले मेरे भाई ॥टेक॥

ध्रुव प्रहलाद नाम रस माते, माती मीरा बाई।
शिव सनकादिक नाम दिवाने, गनिका सदन कसाई ॥

ब्रह्मा नाम जपे निस बासर, शिव रहे तारी लाई।
विष्णु गनेश नाम आधारा, शेष सहस मुख गाई ॥

नानक जपे नाम गुरु निस दिन, सन्त कबीर बताई।
शबरी भीलनी नाम के पुन से, राम से नेह लगाई ॥

तुलसी जपे प्रभु नाम निरन्तर, जपत सदा लौ लाई।

त्रिगुनात्मक माया को जीते, तब हो पुरुष अविनासी ॥ ,,
माया पारवती सावित्री, माया लक्ष्मी मूरत ।
माया काली कराल बिकराली, माया सारद सूरत ॥ ,,
माया बिन कोई रहे न जग में, माया पाले पोसे ।
कैसा मूरख है वह प्राणी, नित उठ माया जो कोसे ॥ ,,
माया बनी सहाई सबकी, करतब करम सिखाये ।
धरम मरम की राह दिखाकर, सत्तलोक पहुँचावे ॥ ,,
करनी करो तो रहनी आवे, रहनी अनुभव जागे ।
नन्द गुरु सेवा में रह कर, और वस्तु नहीं मांगे ॥ ,,
राधास्वामी मन में आकर, कोई यथार्थ गति बूझे ।
करनी की जब करे कमाई, सार तत्त्व तब सूझे ॥ ,,

धुन २० (४४-३५६)

गुरु ने चिताया जग में आकर ॥टेक॥
नर शरीर सतगुरु ने धारा, जीव निबल को दिया सहारा ।
भवसागर के पार उतारा, अपना सच्चा रूप दिखाकर ॥ गुरु
शब्द योग की विधि बताई, सुखमन मध्य राह दरसाई ।
सोई सुरत को लिया जगाई, दया से अपने अंग लगाकर ॥ ,,
सतसंग द्वारा बचन सुनाया, सहज रीति से जीव चिताया ।
अपना आपा उसे दिखाया, अनहद बानी घट में सुनाकर ॥ ,,
सहस कमल त्रिकुटी लखपाई, सुन्न महासुन्न गति परखाई ।
भँवर में माया काल लखाई, अन्त में सतपद धाम में लाकर ॥ ,,
अगम अलख के पार अनामी, सन्त कहें जिसे राधास्वामी ।
उसके चरन सरोज नमामी, प्रीत रीति प्रतीत दिलाकर ॥ ,,

धुन २० (४५-३५७)

तू ढूँढे किसको प्यारे, मैं तो निसदिन तेरे संग ॥टेक॥
नहीं मैं जोग जुगत में रहता, मैं तेरे अंग संग ।

का हो बल।

खुले अनुभव और ब्रह्म का भेद पाऊँ, वह क्या है वह कैसा है सब को जताऊँ ॥

दया दृष्टि हो दास पर राधास्वामी, कमल पद में निस दिन नमामी नमामी।

धुन १७ (६०-३७२)

धन्य धन्य गुरु देव दया सागर धनी। बख्शा सुरत शब्द भेद किया दिल का गनी ॥

चरन कमल की धूर आंख में जब लगाई। खान खुली निज हृदय में सुख सम्पत पाई ॥

सहस कँवल दल में किया ज्योती का दर्शन। घंटा शंख की नाद का हुआ सहज ही श्रवन ॥

बंकनाल के पार चढ़ त्रिकुटी पद परसा। सुनी ओउम् धुनि घट में ही ओंकार लो दरसा ॥

सुन्न महासुन्न दसम दर मानस अस्नाना। हंसगती जब पाईया चुना मोती ज्ञाना ॥

चार शब्द जहां गुप्त हैं बानी अति निर्मल। अधिकारी कोई सुन हिये सुरत का बल ॥

236/396

भँवर गुफा के मध्य में मुरली धुन गाजी। सुन सुन सुरत हरषती हुई मन में राजी ॥

सोहंग से परचा भया सोहंग गति पाई। अब भव में नहीं मैं फँस गुरु की शरनाई ॥

सतपद में सत धाम है सत बीन का बाजा। सत्त सत्त का शब्द याम आठों तहां गाजा ॥

अलख अगम के पार पार संतन का धामा। राधास्वामी धाम में मिला अब बिस्रामा ॥

धन्य धन्य तू धन्य है यह धन्य कमाई। सहजहि कट गया जाल छुटा जग अगमा पाई ॥

बाहर भीतर एक रस निज रूप पसारा। प्रगटे दीन दयाल दिया मोहि आप सहारा ॥

राधास्वामी नाम कह कह तारी लागी। सुरत शब्द के योग से सुरत भई बिस्माधी।

दोह पतित पावन भय नसावन, दया करुना रूप ।
राधास्वामी सन्त सतगुरु, पद अगाध अनूप ॥
राधास्वामी नाम जो चित से धारे । सहज जाय भव सागर पारे ॥
राधास्वामी नाम हिये से गावे । करम भरम के फन्द कटावे ॥
राधास्वामी नाम नाम निज नामा । जो गावे सो पूरन कामा ॥
राधास्वामी महिमा बरनि न जाय । शेष महेश रहे सकुचाय ॥
राधास्वामी सुमिर सुमिर राधास्वामी । राधास्वामी चरनन सदा नमामी
दोहा बसे हृदय में हमारे, राधास्वामी जान हो ।
राधास्वामी ठहरे मन में, ज्ञान सत अनुमान हो ॥
राधास्वामी सन्त भेष जब धारा । राधास्वामी रूप लगा अति प्यारा ॥
राधास्वामी भाव बसा जब मन में । राधास्वामी छवि छाई नैनन में ॥
राधास्वामी शब्द पड़ा श्रवन में । जाग सुरत लगी शब्द जतन में ॥
कुण्डलिनी शक्ती सुरत वारी । बसी सहसदल मूलाधारी ॥

राधास्वामी शब्द रूप जब परखी । खिसकी अधर धाम गति निरखी
दोहा त्रिकुटी महल में आन पहुँची, ओम् के दरबार ।
धुन मृदंग कानों सुनी, मिला पद ओंकार ॥
राधास्वामी अलख अगम राधास्वामी ।
राधास्वामी ताल सुसम राधास्वामी ॥
राधास्वामी नाम अनाम अनामी ।
राधास्वामी इष्ट धाम निज धामी ॥
राधास्वामी शब्द सुरत के पार । राधास्वामी शब्द शब्द से न्यार ॥
राधास्वामी धुन राधास्वामी राग । राधास्वामी प्रेम भक्ति वैराग ॥
राधास्वामी चमन फूल राधास्वामी । राधास्वामी पौद मूल राधास्वामी ॥
दोहा राधास्वामी नाम में जो, रत रहे दिन रैन ।
राधास्वामी की दया से, पावे आनन्द चैन ॥
सतपद सत्य रूप राधास्वामी । सोहंग भँवर भूप राधास्वामी ॥
निःअच्चर पद शून्याकार । अच्चर धाम रूप ओंकार ॥
चर में सहस सहस के भाव । राधास्वामी नाम से लहे उपाव ॥
आदि अनादि जुगादि अनाम । राधास्वामी अर्थ धर्म सतकाम ॥
राधास्वामी मुक्ति युक्ति निरवान । राधास्वामी भक्ति भजन विज्ञान ॥
दोहा राधास्वामी नाम धन नित, सुरत निरत से गाइये ।
राधास्वामी पद कमल में, अपना सीस झुकाइये ॥

॥ सोरठा ॥

[११०-५४०]

सत चित आनन्द रूप, बुद्धि से जानिये।
तीनों का ले भेद, परम सुख मानिये ॥१॥
बुद्धि ज्ञान प्रकासिया, तब जन होय जाई।
लहे बुद्धि निधि ज्ञान, मिले तब मान बड़ाई ॥२॥
कल्पित मान बड़ाई सब, मिथ्या तज डारो।
तप से ताहि जराय, सत का लियो सहारो ॥३॥

सतपद ठौर ठिकान, वही सतधाम है।
सन्तन किया बखान, सच सतनाम है ॥४॥
सुरत शब्द के जोग में, मन चित ठहराना।
इंगला पिंगला छोड़ कर, सुखमन घर आना ॥५॥
सुखमन के घर राग, राग में अनहद बानी।
अनहद बानी सुहावनी, सुरत शब्द निशानी ॥६॥
सुरत निरत यक अंग कर, मन ले ठहराई।
मन ही सोध ले साधुवा, तब सतपद जाई ॥७॥

दोहा शब्द भेद गुरु से मिले, बिन गुरु काज न होय।
गुरु बिन ज्ञान मिले नहीं, यह भाखे सब कोय ॥
राधास्वामी दया करी, दीन्हा भेद बताय।
मूरख जन चेते नहीं, कौन कहे समझाय ॥

(१११-५४१)

दोहा राधास्वामी सतगुरु, दिया शब्द का भेद।
जो मानें इस शब्द को, मिटे भरम का खेद ॥

॥ चौपाई ॥

दया मेहर गुरु उमड़त आई। परमारथ का पन्थ दिखाई ॥
पन्थ डगर घट भीतर दरसा। हुए प्रसन्न गुरु पद को परसा ॥
गुरु है समरथ अन्तर्यामी। गुरु के चरन सरोज नमामी ॥
गुरु है परम पुरुष घट बासी। अमल बिमल निर्मल सुखरासी ॥
गुरु मूरत निज हृदय धरना। गुरु का ध्यान निरंतर करना ॥
गुरु सुमिरन गुरु ही हैं ध्याना। गुरु है अगम सुगम गम ज्ञाना ॥
गुरु की खोज करो तुम भाई। गुरु की दया जाय कठिनाई ॥
गुरु का भजन गुरु की सेवा। गुरु समान कोई और न देवा ॥

दोहा गुरु की अस्तुति बंदना, गुरु का सुमिरन ध्यान।
गुरु के भजन से साधुवा, उपजे निर्मल ज्ञान ॥

शब्द योग में नहीं कठिनाई । बिगड़ी बात सहज बन जाई ॥
शब्द योग का साधन करना । और योग को चित नहीं देना ॥
शब्द योग साध अनजान । जीते जी पावे निरवान ॥

साखी शब्द योग संजम बना, करे कोई चितलाय ।
दुचिताई दुबिधा मिटे, भरम भ्रान्ती जाय ॥
सहज सहज का भेद है, सहज सहज की रीत ।
सहज सहज में चित लगा, उपजे प्रेम प्रतीत ॥
राधास्वामी की दया, शब्द योग कर ले ।
सहज जनम को सुफलकर, और योग तज दे ॥

(१८१-५८१)

शब्द नाम ऊँचे से आया । ताहि उलट कोई ध्यानी गाया ॥
ब्रह्म रेन्द्र की चोटी चढ़ो । चोटी चढ़कर धुन को सुनो ॥
सुन सुन धुन सुरत हुई मस्तानी । ब्रह्म शिखर चढ़ आसन तानी ॥
उलटी गंगा उलटी जमुना । सरस्वती उलट हुआ मन मगना ॥
मान सरोवर कर अस्नान । हंस रूप लिया सूरत ठान ॥
जो सन्तों के मारग आवे । उलट नाम ले संगति पावे ॥
सीधा मारग सब कोई जाय । उलटे का कोई भेद न पाय ॥
उलटे मारग घर का पन्थ । सो नहीं पावे पढ़कर ग्रन्थ ॥
सीधे मारग है प्रवृति । उलट साध कोई करे निवृति ।

साखी राधास्वामी की दया, पाया सतमत ज्ञान ।
उलटे मारग पर चले, सूझे पद निरवान ॥
सीधे तो सब कोई चले, उलट चले नहीं कोय ।
क्यों पहुँचे घर आपने, चित मन बुद्धि खोय ॥
सुरत शब्द अभ्यास कर, अन्तर धँस सुरत साध ।
दर्शन पाये रूप का, लख लख अगम अगाध ॥

(१४२-५७२)

फिर त्रिकुटी चढ़ आसन मार। देखो बिमल रूप ओंकार ॥
झांझ मृदंग सुनो झनकार। मेघनाद ओम दरबार ॥
बन परबत बाटिका सुहाई। महल अनूप भूप छबि जाई ॥
गंग जमन बिच सरस्वती धारा। न्हाये धोये सुरत करे सिंगारा ॥
वेद मंत्र का निज अस्थान। ब्रह्मा कथे ज्ञान और ध्यान ॥
देखा नूर और सुने कलाम। मूल कलाम का यह निज धाम ॥
तीन रूप लीला बिस्तारी। तीनों की गति लगी अति प्यारी ॥

हिरण्यगर्भ विराट पसारा। अव्याकृत लखि त्रिकुटी द्वारा ॥
वेद तत्व को लीना चीन्ह। फिर आगे चित सुरत दीन ॥

(१३४-५७३)

आया नजर सुन्न मैदान। लामकान लाहूत स्थान ॥
मेरु सुमेरु गिर कैलास। शिव सकनकादिक करे बिलास ॥
मान सरोवर हंस निवास। अमी रहा जुल्मात के पास ॥
आब हयात अमी की धारा। अजरज अद्भुत खेल नियारा ॥
अन्धकार की घाटी दरसी। भेद खुला जब गुरुपद परसी ॥
महासुन्न तिस ऊपर रहे। परब्रह्म पद सब कोई कहे ॥
किंगरी सारंगी धुन नाद। आई मस्ती लगी समाध ॥
भँवरगुफा की खिड़की खोली। सुनी सुरत मैं सोहंगम बोली ॥
मुरली बजी मचाई धूम। ऊँची चढ़ गई सुरत भूम ॥
महाकाल का गढ़ अब टूटा। माया मोह साथ जब छूटा ॥

(१४४-५७४)

सच्च लोक चढ़ सुरत आई। सतपद लखा सच्च ठहराई ॥
सच्च सत का सत आनन्द। यहां न माया काल का द्वन्द ॥
हुई सुरत अब सब से न्यारी। भरम अविद्या छूटी सारी ॥
मिला ज्ञान मेटा अज्ञान। निज स्वरूप का हो गया भान ॥
अगम अलख और लखा अनामी। परे ताहि पद राधास्वामी ॥
गुरु ने पूरा भेद बताया। उलट फेर तिल सबही दिखाया ॥
फेरे तिल और ऊपर चढ़े। रेखा रूप रंग से टरे ॥
क्या कोई उसका करे बखान। गुरु ने बख्शा पद निरवान ॥

(१४५-५७५)

घंटा शंख सुनो धर कान। सहसकँवल चढ़ लाओ ध्यान ॥
त्रिकुटी चढ़ मृदंग बजाओ। ओम् शब्द में चित को लाओ ॥
सुनो गगन में अद्भुत बाजा। अनहद राग जहां नित गाजा ॥

(१६६-५६६)

निर्गुन गुन वाले सभी, सगुन न निर्गुन कोय।
सतसंगत करो साध की, तब विवेक चित होत ॥१॥
गुन से खाली कोई नहीं, पशु पक्षी नर रूप।
निर्गुन तो कोई नहीं, रंक भिखारी भूप ॥२॥
ऐसा जग में कौन है, जो नहीं निर्गुन मीत।
सब गुन नहीं सबमें रहें, समझ के कर परतीत ॥३॥

सगुन अगुन के बीच में, चले सन्त का पन्थ।
यह सुखमन का मार्ग है, समझ बूझ पढ़ ग्रन्थ ॥४॥
लाख कहा समझे नहीं, समझ न आवे बैन।
कैसे हम उपदेश दें, लखे नहीं जब सैन ॥५॥
सैन बैन के बीच में, सत मत सत पथ देख।
सत संगत प्रताप से, सूझे अगम अलेख ॥६॥
युक्ति प्रमाण विचार से, कर गुरु का सतसंग।
गुरु का रंग जब हिये बसे, कभी न होय कुरंग ॥७॥

(१६७-५६७)

एक तहां से सब हुआ, सब में एक समाय।
लीला लहर समुद्र की, समझ प्रतीत बढ़ाय ॥१॥
एक हुआ दूजा बना, दो मिल भये अनेक।
नन्द एक अनेक है, और अनेक है एक ॥२॥
एक न होय तो दो कहां, दो लख परखे ऐक।
नन्द गुरु गम ज्ञान से, मेटे एक अनेक ॥३॥
एक कहूं तो है नहीं, दूजा कहा न जाय।
नन्द चुप हो बैठ रह, द्वैत अद्वैत मिटाय ॥४॥
आया गुरु दरबार में, चित धर अपने एक।
सत संगत प्रताप से, गई एक की टेक ॥५॥
ब्रह्म नहीं माया नहीं, सत नहीं असत न कोय।
नन्द चुप रह मौन बन, समझे ज्ञानी सोय ॥६॥
एक कहा बेहद लखा, बेहद में था हद।
नन्द हद बेहद तजा, रहा न नेक न बद ॥७॥

(१६८-६२८)

सतगुरु कहें भेद दरसाई। मारग घर का दीन बताई ॥
प्रथम शरन गहो सतगुरु की। द्वितीया शरन गहो सतसंग की
गुरु जो भेद बतावें तुमको। धारो बचन कमाओ उनको ॥
तन मन इन्द्री सुरत समेटो। चढ़ आकाश शब्द गुरु भेंटो ॥
सुनो नित्य तुम अनहद बानी। देखो अद्भुत जोत निशानी ॥
जोत फाड़कर सुन्न समाओ। सुखमन होय बंक में आओ ॥
बंक पार त्रिकुटी सुन गीत। काल कर्म दोऊ लेना जीत ॥
सुन्न शिखर चढ़ी सूरत धूम। मानसरोवर पहुँची झूम।
महासुन्न जहां अति अँधियार। गुप्त चार धुन बानी सार ॥
भँवरगुफा जाय लीना चीन्ह। आगे सच लोक चढ़ लीन ॥
अलख अगम को जाकर परसा। शब्द पकड़ लें सूरत सरसा ॥
राधास्वामी नगर निहारा। देखा जाय अगर उजियारा ॥

(१६६-६२६)

गुरु पद परस करो अभ्यास। घट में देखो बिमल उजास ॥
सहसकमलदल सुरत चढ़ाओ। घंटा शंख धुन सुन घट आओ
निरखो अन्दर गुरु का नूर। बाजे अन्दर अनहद तूर ॥
सुन सुन तूर हुआ मन सूरा। त्रिकुटी जाय पाया गुरु पूरा ॥
सुरत ने पाया मूल कलाम। ओंकार पद का वह ठाम ॥
मेघनाद जहाँ बजत मृदंग। सुन सुन सुरत होरही दंग ॥
कुछ दिन ऐसी लीला देखो। आगे का फिर करो परेखो ॥
सुन्न मंडल में गाड़ा थाना। अजब देश अद्भुत मैदाना ॥
मानसरोवर किया असनान। निर्मल हुई सुरत हंस समान ॥
छीर नीर का किया निबेरा। गढ़ कैलाश किया चढ़ डेरा ॥
गंग जमन सरस्वती की धार। देखी घट में बिमल बहार ॥
नहाय धोय सूरत मुसकानी। किंगरी सारंगी सुनली बानी ॥

ठुमक ठुमक आगे को चाली। सुरत जमाई हुई जलाली ॥
भँवरगुफा का परवत देखा। सोहंग पुरुष का पाया लेखा ॥
सोहंग सोहंग बन्सी बाजी। सुन सुन सूरत मन में गाजी ॥
मधुबन में बन्सी की धूम। देख रास लीला गई झूम ॥
झूम झूम हुई अति मस्तानी। देह गेह की सुद्धि भुलानी ॥
तब सतपद में आन बिराजी। साज भक्ति का अनुपम साजी ॥
बीन सुनी सत धाम ठिकान। सतपद देखा मगन मन मान ॥
सत्यम् सत्यम् उठी अवाजा। कहो आये तुम यहां केहि काजा ॥
बोली सुरत प्रेम हुलसाई। काल करम माया दुखदाई ॥
तीन ताप से अति घबरानी। गुर की दया पाई सहदानी ॥
लेकर भेद यहाँ चलि आई। दया पात्र होय शरन समाई ॥
सचखंड अलख अगम तब दरसा। राधास्वामी चरन कमल तब परसा
सुरत सहेली भई निरवानी। अब क्या कहूं यह अकथ कहानी ॥

कुण्डलिनी–श्वास-निरोध के द्वारा कुण्डलिनी को जगाकर ऊपर की ओर प्रेरित करना हठयोग की प्रमुख प्रक्रिया है। मूलाधार चक्र के निकट मेरुदण्ड के मूल में स्थित वह शक्ति जिसके विषय में कहा जाता है कि वह किसी सर्पिणी की भाँति साढ़े तीन कुण्डलों या लपेटों में सुप्त-सी पड़ी रहती है और जो अन्तःसाधना द्वारा प्रबुद्ध की जाती है। जाग्रत होने की दशा में वह सीधी होकर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा क्रमशः ऊपर को अग्रसर होती है और ब्रह्म-रंध्र के निकट पहुँचकर लीन हो जाती है। उसकी इस अन्तिम दशा को शक्ति का शिव के साथ मिल जातना कहा जाता है। उसका जाग्रत होना योगी की सिद्धि का परिचायक है। कुण्डलिनी वास्तव में मूल शक्ति है, जो सर्पिणी के समान मेरुदण्ड के निम्नतम बिन्दु जो वायु और उपस्थ के मध्य भाग में है और स्वयंभू लिंग कहलाता है, उसके त्रिकोणकार अग्नि-चक्र में साढ़े तीन कुण्डली मारकर सोती है। इसीलिए इसे बार-बार साँपिन, नागिन आदि भी कहा गया है। जब तक यह सोती है, तब तक सारा तेज नीचे से क्षरित होता रहता है और प्राणशक्ति क्षीण होती रहती है। पर जब मूलबन्ध लगाकर योगी इसे जगा देते हैं, तब यह मेरुदण्डके सहारे ऊपर चढ़ने लगती है।

मेरुदण्ड में छः चक्र माने गये हैं, जिन्हें आकार की समता के कारण कमल भी कहा जाता है। गुदा के समीप मूलाधार चक्र है जिसमें चार दल हैं। नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है, जिसमें छः दल हैं। इससे तनिक ऊपर दस दल वाला मणिपुर और ह्रदय के पास बारह दल वाला अनाहत चक्र है। कण्ठ के पास विशुद्धाख्या चक्र है जिसमें सोलह दल होते हैं। मध्य में आज्ञा चक्र है, जिसमें दो ही दल है। इस स्थान को त्रिकुटी कहा जाता है और इसकी विशेषता यह है कि इस स्थान पर पहुँचकर दिव्य-दृष्टि की प्राप्ति होती है और फिर साधना में अवरोह का भय नहीं रहता। इन छः चक्रों को बेधकर कुण्डलिनी

अन्तिम चक्र में पहुँचती है, जिसमें सहस्त्र दल हैं, इसलिए उसे सहस्त्रा चक्र या सहस्त्र दल कमल कहते हैं। इसी को शून्य चक्र, शून्य मण्डल या गगन मण्डल, आकाश मण्डल आदि भी कहा गया है और शिव का वास-स्थान होने के कारण इसी में मानरोवर की कल्पना की गयी है, जिसमें निर्लिप्त चित्तरूपी हंस निवास करता है।[18]

षटचक्र भेदन का मार्ग नाड़ियों से होकर जाता है। 'हठयोग प्रदीपिका' में कहा गया है कि वैसे तो शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, पर उनमें से केवल सुषुम्ना ही शक्ति की वाहिका है, शाम्भवी है। सुषुम्ना में से ही कुण्डलिनी ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। सुषुम्ना वस्तुतः तीन नाड़ियों से बनी है। ऊपर व्रजा, उसके अन्दर चित्रणी और उसके अन्दर ब्रह्म नाड़ी है। वस्तुतः ब्रह्म नाड़ी से ही कुण्डलिनी का मार्ग है। सुषुम्ना के बायीं ओर इड़ा और दायीं ओर पिंगला है। इसी को परवर्ती सन्त अनुप्रास मिलाने के लिए 'इंगला-पिंगला' कहने लगे थे। वाम नासापुटका श्वाँस-प्रवाह इड़ा से होता है, दक्षिण नासापुटका श्वाँस-प्रवाह पिंगला से। इड़ा शीतल स्वभाव की है, उसमें चन्द्र का वास है, उसे गंगा माना गया है तथा उसके अधिष्ठाता ब्रह्म हैं। पिंगला उष्ण स्वभाव की है, उसमें सूर्य का वास है, उसे यमुना माना गया है तथा उसके अधिष्ठाता विष्णु हैं। इड़ा को चन्द्र-नाड़ी तथा पिंगला को सूर्य-नाड़ी भी कहते हैं। सुषुम्ना दोनों के मध्य में है, त्रिगुणमयी है, चन्द्र-सूर्य-अग्नि-स्वरूपा है, सरस्वती है तथा इसके अधिष्ठाता शम्भू या शिव हैं। इसे सन्त लोग सुखमान भी कहते हैं। इन तीनों नाड़ियों का संगम या त्रिवेणी ब्रह्मरन्ध्र में होता है। यह ब्रह्मरन्ध्र मस्तक के मध्य में परिकल्पित एक रन्ध्र है। योगियों के प्राण इसी रन्ध्र को बेंधकर निकलते हैं और इसी में उन्हें ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। इसी को दशम द्वार (दसवाँ दुआर) भी कहा गया है, क्योंकि शरीर के अन्य नव द्वार तो सदा खुले रहते हैं। केवल ब्रह्मरन्ध्र बन्द रहता है, जिसे साधना के द्वारा खोलना पड़ता है। इसी ब्रह्मरन्ध्र के खुलते ही सहस्त्रार चक्र से अमृतरस या कैलासवासी शिव के मस्तकस्थ चन्द्रमा से सोमरस झरने लगता है और योगी को अमर काया की उपलब्धि होती है। इसीलिए इस ब्रह्मरन्ध्र को उलटा कुआँ या कूप भी कहा गया है, जिसमें सोमरस या अमृतरस भरा हुआ है।[19]

8·6 तान्त्रिक साधुओं के अनुसार कुण्डलिनी जागरण की विधि

तन्त्र-ग्रन्थों की मान्यता है कि गुरु की प्रसन्नता से जब निद्रिता कुण्डलिनी शक्ति जग जाती है, तब मूलाधार आदि षट्चक्र में स्थित पद्म तथा ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है। इसलिए सर्व प्रकार प्रत्यक्ष से ब्रह्मरन्ध्र के मुख में स्थित उस निद्रिता परमेश्वरी-शक्ति कुण्डलिनी को प्रबोधित करने के लिए प्राणायाम, मुद्रा आदि का अभ्यास करना पड़ता है। बन्धत्रययुक्त प्राणायाम, मुद्राओं तथा भावनाओं द्वारा धीरे-धीरे कुण्डलिनी-शक्ति जागृत होती है। इस शक्ति को जागृत करने के लिए शास्त्रोक्त उपायों के रहते हुए भी परिपक्व अनुभवी उपदेष्टा की विशेष आवश्यकता है, क्योंकि शास्त्रीय उपाय-समूहों की विधि तथा अधिकार, परत्वेन उपयोगिता का विचार उपर्युक्त अनुभवी गुरू ही कर सकता है। इसलिए मुमुक्षु साधकों को चाहिए कि वे अनुभवी सद्गुरू से ही इस शक्ति के जागरण की कुंजी प्राप्त करें। केवल ग्रन्थों पर निर्भर न करें, अन्यथा अनर्थ होने की सम्भावना रहती है।

अब हम यहाँ तान्त्रिक साधुओं की कुण्डलिनी-जागरण की अनुभवसिद्ध प्रणाली का संक्षेप में वर्णन करना चाहेंगे --

1- साधक को सबसे पहले नेती, धोती, वस्ति आदि क्रियाओं द्वारा घट (देह) शुद्धि करनी चाहिए।

2- पश्चात् अष्ट प्रकार के प्राणायाम की शिक्षा लेनी चाहिये। यद्यपि षट्चक्र भेदन में सभी प्रकार के प्राणायामों की आवश्यकता नहीं है तथापि योगियों के लिये सभी प्रकार के प्राणायाम की शिक्षा उपयोगी है और इससे अभ्यास की पटुता भी होती है।

3- प्राणायामों के पीछे मुद्राएँ अर्थात् महामुद्रा, महाबोध, महाबन्ध, विपरीत-करणी, तारण, परिधान युक्तिचालन, शक्तिचालिनी आदि आवश्यक मुद्राएँ भी सीखनी चाहिये। याद रहे, इन सब प्राणायामों को तथा मुद्राओं को सदा बन्धत्रय के सहित ही करना चाहिए, अन्यथा विषमय फल होने की संभावना है।

4- पश्चात् राजयोग की विधि के अनुसार षट्चक्रों में भावनाएँ करनी पड़ती हैं।

8·6·1 प्रतिदिवस का साधनक्रम -- प्रतिदिन प्रातःकाल चार बजे शय्या त्यागकर देहशुद्धि के पश्चात् 5 बजे से 9 बजे तक का कार्यक्रम

1- भस्त्रिका प्राणायाम दोनों प्रकार का - 5 से 25 प्राणायाम तक ।
2- शक्तिचालिनी मुद्रा उभय प्रकार की -- प्रत्येक 5 से 10 तक ।
3- ताड़नमुद्रा -- 4 प्राणायाम में 101 तक ।
4- परिधानयुक्ति चालन -- 4 प्राणायाम में 101 तक ।
5- पश्चात् बाकी समय में षट्चक्रभेदन की मानसिक क्रियाएँ या संयम ।

8·6·2 पुनः सायं 4 बजे से 9 बजे तक का कार्यक्रम

1- महामुद्रा -- प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
2- महाबन्ध -- प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
3- महाबेध -- उभय प्रकार का 5 से 10 तक ।
4- विपरीतकरणी मुद्रा -- 5 से 10 तक ।
5- शेष समय में षट्भेदन चक्र की क्रियाएँ (राजयोग) ।

आचार हैं।

4- वर्तमान समय में इन आचारों एवं व्यवहारों का प्रचलन सार्वभौमिक नहीं है। इनमें पंथीय संरचना के अनुसार तान्त्रिक आचार्यों ने अपने ज्ञान-विज्ञान के अनुसार किंचित परिवर्तित भी किया है।

5- अधिकांश तांत्रिक साधु अपने आराध्य देवता एवं देवी का आवाहन कर पद्मासन की मुद्रा में मन्त्र-जाप करते हैं।

6- प्रति दिवसीय कार्यक्रम के अन्तर्गत वे सर्वप्रथम नेती, धोती, वस्ति आदि क्रियाओं द्वारा घट (देह) की शुद्धि करते हैं, तत्पश्चात् न्यास क्रिया करते हैं, प्राणायाम करते हैं, एवं मन्त्र जाप करते हैं।

7- षट्चक्र-भेदन की क्रिया केवल वे ही तांत्रिक साधु करते हैं जो कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने में प्रयत्नशील होते हैं।

8- प्रायः सभी तान्त्रिक साधु अनुष्ठानिक कृत्यों में इष्ट-पूजा के षोडश उपचारों का प्रयोग करते हैं।

9- कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत करने में अभ्यस्त तान्त्रिक साधुओं का प्रतिदिवस का साधनक्रम का विवरण इस प्रकार है —

<u>प्रतिदिन प्रातःकाल चार बजे शय्या त्याग कर देहशुद्धि के पश्चात् 5 बजे से 9 बजे तक का कार्यक्रम</u>

1- भस्त्रिका प्राणायाम दोनों प्रकार का — 5 से 25 प्राणायाम तक ।
2- शक्ति चालिनी मुद्रा उभय प्रकार — प्रत्येक 5 से 10 तक ।
3- ताड़न मुद्रा — 4 प्राणायाम में 101 तक ।
4- परिधानमुक्तिचालन — 4 प्राणायाम में 101 तक ।
5- पश्चात् बाकी समय में षट्चक्रभेदन की मानसिक क्रियाएँ या संयम ।

<u>पुनः सायं 4 से बजे से 9 बजे रात्रि तक ।</u>

1- महामुद्रा — प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
2- महाबन्ध — प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
3- महाबेध — उभय प्रकार का 5 से 10 तक ।
4- विपरीतकरणी मुद्रा — 5 से 10 तक ।
5- शेष समय में षट्चक्र भेदन की क्रियाएँ (राजयोग) ।

—

07:59

ऐसा ख्याल

यूँ भवसागर बाहिर नीसर,
गुरू मिल्या सुखराम, मिटया भव शंका ।।4 ।।

भजन (34)–राग लंगड़ी, लावणी पद

मदवा घूमत ज्यूँ हाथी ।
अमर पट्टा सतगुरु लिख दीना, जागीरी साची ।।टेर ।।
गुरू गम आँच लगी मेरे मन में, जगी है विरह भाटी ।
सुरत कलाली प्याला फेरे, पीवो सैण साथी ।।1 ।।
पीवत प्याला जेज नहीं, उर भभक तार जागी ।
सोहं तार लगी घट भीतर, सूरत मस्त माती ।।2 ।।
नशा किया तब बकने लागा, अनुभव की बाती ।
कर मतवाल पड़्या भारत में, नहीं छोड़ी बाकी ।।3 ।।
उलटा राह बहै जन शूरा, चढ्या बंक घाटी ।
निशिदिन गोला लगे नाम का, काल फौज नाटी ।।4 ।।

20
Dislike
3
Share
@jayshreeram2990
Remix
मनवा घुमत ज्यूँ हाथी,,,,स्वामी श्री ईसर राम जी कि वाणी,, हरि ॐ,#like ...
Add a comment...

हुआ दास आस सब छूटी, निगुण नजरे आया॥3॥
गुरु जोरावर पूरा मिलिया, मिलियाँ मरहम पाया।
हेमनाथ सतगुरुजी रे शरणे, गरीब होय गुण गाया॥4॥

✻ भजन ✻

साधो भाई मैं जोगी वण ने आया।
पाँचोई ना पकड़ कर लाया, शहरीया में खेल रचाया॥टेर॥
सतगुराँ री संगत किनि, खिलण मंत्र सिखाया।

किशन सुथार

अड़द उड़द बच साजि साधना, नागण नजरे आया॥1॥
नाभी कंवल में नागण सूती, ऊणने जाय जगाया।
पाँचों ने पकड़ पच्चिस वश कीना, एकण राह चलाया॥2॥
वंक नाल होय किया पियाणा, गिगन मंडल गरणाया।
अनहंद बाजा घूरे गिगन में, मुख विना मुरली बजाया॥3॥
वाजी मोंरली हुई आवाजो, शूर नर जोवण आया।
कहे हेमनाथ सुणो भाई साधो, महेरम विरले पाया॥4॥

✻ भजन ✻

साधो भाई जोगी जुगत से न्यारा।
जुगत जंजाल भरमना में भूला, जोगी रहवे निराधारा।
तिर्थ जावे फल में नहावे, जोवे मन्दीर किरतारा।

@jayshreeram2990
#स्वामी श्री हेमनाथ जी महाराज जी
14
19
Dislike
7
Share
Remix

अंधलो आरेसी ने क्या करे क्या करे मूरख माला।
गाफल तस्वीर ने क्या करे ज्या घट घोर अंधारा।।

बिनारे दीपक रे मन्दिर कैसा-कैसा ताटी आडा ताला।
क्रिया बिहुणा जोगी कैसा जैसे नीर भरीया खारा।।

बिना रे फरजन कैसी मावड़ी किसविध आवे रे पेना।
स्वामीजी डूँगरपुरीजी बोलिया संतो थे सही कर मानो

(93)

-हरि दरसण बलीहारी मेरा दाता गुरू शिवरण परवा

जदकी मैहर भई सतगुरू की जद जाये बात बिचारी।
एक नाम गुरू एसो फरमायो ऊँ सोऊँ शिमरण सारी रे

आला पीगंला सुखमण सारी त्रृगटी मे अतियारी।
झिल मिल-मिल जोत जलत हैं अणहद राग ऊँचारी रे

त्रिकुटी महल के माय सुखमणा घर पाऊ ।।३।।

भंवर गुफा के मांय बाजा बज वाऊ ।

वठे झील मिल चमके जोत इमरत बरसाऊ ।।४।।

पद चौथे पर्वाण निर्भय घर पाऊं ।

यो आदूराम आनन्द फन्द में नहीं आऊं ।।५।।

राम राम राम राम राम राम राम राम

(४५)

धरिया चरण कमल का ध्यान ज्ञान गुरूराम से पाया है ।

सतगुरू ऐसा शब्द सुनाया, त्रिपत हो गई तन मन काय

मन का द्वितीय भरम मिटाया,

समझ कर सूता जीव जगाया, गुरू युग तारन आया है ।

सूरता सुम्रण की धुन लागी, नागन नाभ कवल से जागी

आतो बड़ा बड़ा न खा गई ।

इनको मारे संत बड भागी । पवन नाभी पलटाया है ।।२

रोकया खट चक्कर का घाटा, रस्ता बंक नाल का फाट

भवरा त्रिकुटी में नाटा, लागा सुम्रण का सन्नाटा ।

समाधि ध्यान लगाया है ।।३।।

— स्वामी श्री दोल जी महाराज जी कि वाणी

ाई = इन बंगला ने कोई कोई नरखीया. नरखीया हरिजन प्यारा
नरख परख ने निरभय वेग्या. पाया मोक्ष द्वारा है

1) पाँच सात नव तीन है, स्वट दल बारीया है
बावन मिल बंगलो बणियो, जागे मिन्सा अपारा है,

2) चार कलंश दस गर्जना, 16 शंख गुंजारा है
राग छतीस होय रिया, विया अनहद झणंकारा है,

) नो नाडी नल मेलिया, हुवे बहतर हजारा है
अखंड अमीरस ओलरीया, वरषीया अमी फुंवारा है,

) अधर भोम बंगलो बणियो, चिन चिन चोजारा है,
रवि शशि दीपक जोविया, विया अखंड उजाला है,

) बंक नाल बकमी बणी, लागा दस सहारा है,
हाथ मजिल का फेर मे, रचिया सकल अठारा है

) अधार तखत आप बिराजिया, सोई गुरु हमारा है
गुरु चरणा मे लुम्बिया, दोल जी करे पुकारा है,

॥ श्लोक ॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
जन्म मृत्यु जराव्याधि भयं नैवोऽभि जायते॥

॥ दोहा ॥

वासुदेव के भक्त को अशुभ न हो सच जान।
जन्म मरण यम भय मिटे पावे पद निर्वाण॥

शब्द नं. ३ राग–आसावरी

मन तू भगवद् भक्तिः करना।
भक्ती बिना भरम नहिं भागे ले सतगुरु का शरणा॥ टेर ॥
पद्मासण कर बैठ एकान्त में ध्यान हरि का धरणा।
स्वास उसास में ओहं सोंह कर विश्वास सुमरणा॥ मन.॥
काम क्रोध और मान बड़ाई राग द्वेष परिहरणा।
प्रेम भाव से भज भगवत ने इस विधि पार उतरणा ॥ मन.॥
करले भजन भूल मत राखे इक दिन होगा मरणा।
नर तन मिल्यो राम भजबाने फिर जगसे क्या डरना ।॥ मन.॥
मोह जाल कुटुम्ब की फांसी काट पड़ो गुरु चरणा।
कल्याण भारती राम भजन से नहिं होगा दुख भरणा॥ मन.॥

लखमीराम गुरु भेद बतायो, मिटे कर्म के धागे ।
कह हरिराम सीर समुन्द्र की संतं सूरमा थागे ॥ 4 ॥

38 भजन - राग आसावरी

मनरे कर सिमर्ण धर ध्याना, ओहंग सोहंग ।
धुन धार सरोदा अर्द-उर्द सुलझाना ॥ टेर ॥
नेती धोती बस्ती नवली, त्राटक ध्यान धराना ।
गज क्रिया का खेल अजब है, नेति निगम बखाना ॥ 1 ॥
आर्सण पद्म जुगती कर बान्दे, पवन पश्चिम उल्टाना ।
रंग बिरंग तत्वों की झाई, दस में नाद बजाना ॥ 2 ॥
संशय मेट सन्मुख सतगुरु के, पाया देश दिवाना ।
पांच विषय को दूर छपाया, जाग्या भाग पुराना ॥ 3 ॥
लखमीराम गुरु मिलिया योगी, परस्या परम पियाणा ।
हरिराम इडक वो आसण, नहीं कोई आना जाना ॥ 4 ॥

39 भजन - राग आसावरी

बीरा म्हारा सत री संगत में टेलो, आयो खोज भ्रमना
मेटो, गुरु बचन सत झेलो ॥ टेर ॥

तन का छ मसक पात तान गुण का, पवना का पुंग्या बणाई छ अं
बामी मे बामी बामी मे छ नागण पकड़ टपारा में धर लाइओं,
देवाजी माने गुरूजी मिल्या सें गम पाया छ ओंजी।

खान्दड़ दास जी माने मल्या छ जवारी हींरा की खान बताइछ
रामदास जी से पड़ी माने पारख्या तो गुर्जर बक्षुराम जी गुण गा
देवाजी माने गुरूजी मिंल्या से गम पाया छ ओंजी।

टेर : होली खेलगा साद प्रमाणी, या तो अमर लोक की वाण
होली खेलगा साद प्रमाणी,
पांच तत्व का रंग घुलायां, तीर गुण होद भराणी ।
पांच पच्चीस सकया मिल खेलण लागी, धामा धुम मचाणी ।।
होली खेलगा साद प्रमाणी।

घणा दिना की मारी सूरता बलमरी, गुरूजी मिल्या सु माने उ
सवन शिखर पर उड़ छ निशाणा, बंक नालं भर साणी ।।
होली खेलगा साद प्रमाणी।

धरण गगन बीच डोरी लगाई, गुरू गम घोर गर राणी ।
राग छतीसु वाहा बाजा बाजे, रणु कार जब जाणी ।।
होली खेलगा साद प्रमाणी।

कहे हेमनाथ सुणो भाई साधो, अमर लोक करो डेरा ।।4।।

❋ भजन ❋

साधो भाई लागी लगन सो जोंणे।
सोहं शब्द रटो दिन राती, वात कहूँ तंत छाँणे ।।टेर ।।

ओहं सोंहं सब कोई कहेता, अर्थ विरला जाँणे।
सतगुराँ ने बूझ लेणा, तेरी सुरती ठिकोंणे आँणे ।।1।।
जब लग निर नदि में वहेता, तब लग खाँचे ताँणे।
वाँहि निर सायर में मिलिया, नही खाँचे नही ताणे ।।2।।
नाभि कवल से नाव चाली, सोंवन शिखर के पियाँणे।
गेबी वाजा घूरे गिगन में, वाँ सुख हरिजन जाँणे ।।3।।
जिव शिव में जाय समाणा, शूरा माया माँणे।
कहे हेमनाथ गुराँजी रे शरणे, पार ब्रंह्म पिछाँणे ।।4।।

हेमनाथ सतगुरुजी रे शरणे, गरीब होय गुण गाया ॥4 ॥

✲ भजन ✲

साधो भाई मैं जोगी बण ने आया।

पाँचोंई ना पकड़ कर लाया, शहरीया में खेल रचाया ॥टेर ॥

सतगुरां री संगत किनि, खिलण मंत्र सिखाया।

अड़द उड़द बच साजि साधना, नागण नजरे आया ॥1 ॥

नाभी कंवल में नागण सूती, ऊणने जाय जगाया।

पाँचों ने पकड़ पच्चिस वश कीना, एकण राह चलाया ॥2 ॥

वंक नाल होय किया पियाणा, गिगन मंडल गरणाया।

अनहद बाजा घूरे गिगन में, मुख विना मुरली बजाया ॥3 ॥

वाजी मोरली हुई आवाजो, शूर नर जोवण आया।

कहे हेमनाथ सुणो भाई साधो, महेरम विरले पाया ॥4 ॥

✲ भजन ✲

ईड़ा पिंगला फेर सुषमणा लावे,
एसा दीन दयाल पवन उलटावे ।।4।।
आई गुरु की सैन सांच कर ध्यावे,
सत चेतन के माँहि सुरत रमजावे ।।5।।
अखी अखण्डी राम चराचर थावे,
ब्रह्म सकल के माँहि वेद यों गावे ।।6।।
ईसरराम गुरुदेव भ्रम ने ढावे,
सत पूसाराम वो जीव आवे नहीं जावे ।।

भजन (4)–राग लाव

सिरजणहार भजयां बि
बहुत दुर्लभ से पायो
नी मा

म्हारे पिंजरिये में एक ही जिभ्या।
म्हारो अब लागे कांई बागो रे।।4।।
ईसरराम गुरु दियो म्हाने झालोरे।
पूमाराम जाग उठ भागो रे।।5।।

भजन (3)–राग लावणी

गुरु सरीखा देव म्हारे मन भावे,
काटे कर्मों का जाल परम पद पावे।।टेर।।
देख जगत का ख्याल मती मन लावे,
अन्तकाल के मांहि पीछे पछतावे।।1।।
सत शब्द की सार कोई जन चावे,
लगी ज्ञान की चोट हरिगुण गावे।।2।।
सुखसागर के मांहि समझ कर न्हावे,
अर्ध ऊर्ध के बीच में आवे।।3।।

ા સંગીત, ગવન વિના ગાન થાય છે. તેવી જ રીતે દૂધ વગર ગ
લગાવી મૂલ્યવાન માખણ ખાધું અને છાશ જગતમાં વપરાતી
ાયા હોય, જે નર શૂન્ય શિખરના માર્ગે ચાલ્યા તે સૌને પરમાત્મ

ભજન : ૫

કોઇ હરિજન હોય તો જાગે,

કોઇ પ્રેમી હોય તો જાગે જંતર વાગે.

બત્રીસ ગમાકા જંતર બનાયા

નવસો તાર લગાયા રે,

સોળ સહસ્ત્ર રાણીનો રાજા,

એણે જંતર બનાયા રે ... કોઇ૦

ઈંગલા પિંગલા સુષુમણા નારી

સહેજે શૂન્યમાં જાગે રે,

અધર તખત પર અધર બિરાજે

જ્યાં અનહદ વાજાં વાગે રે ... કોઇ૦

વણ તુંબડે વણ ડાંડવે

વણતારે ઝણકારા રે,

સાંભળ શ્રવણે નિરખ નયને

નિરાધાર ના આધાર રે ... કોઇ૦

વનરાવનની કુંજગલીમાં

તરવેણી ઘાટમાં બોલે રે,

જોધા પરતાપે ભણે ભવાનીદાસ

નિજ નામને ભેલ રે ... કોઇ૦

06:08 Vo)) 4G+ LTE1

પંખી ચરતાં જણાય, વગર માતાએ પુત્ર જન્મે, ધાવણ વગર બાળક ધાવે છે. આ અગમ દેશ વિશે જેવા તેવાની ગમ પહોચી શકતી નથી. એટલે અગમ દેશ કહેવાયો. આ દેહમાં દેહ વગરનો પુરુષ સદેહે જોવા મળે અને એ જ પુરુષ સમગ્ર વિશ્વમાં સચરાચર વ્યાપી રહ્યો છે.

ભજન : ૧૪

હું તો ચાલી છું ભરવાને પાણી,

બોલાવે મારા સદગુરુ દાતા જ્ઞાની (૨) - ધ્રુવકડી.

છોડી પિયરિયુ બેની ચાલી સાસરિયે,

એમાં શરમ મને શાની ... બોલાવે૦

ઈંગલા ને પિંગલાનો મારગ મેલી,

મેં તો સુષુમણા મારગે જવાની ...બોલાવે૦

ગગનમંડળમાં ઉન્મુખ કૂવલા,

એમાં ભર્યા છે અમૃત પાણી ... બોલાવે૦

દાસ સતારને ગુરુજ્ઞાની મળ્યા,

મને વાતો બતાવે છાની છાની ... બોલાવે૦

-દાસ સતાર

સમજૂતી :

યોગીઓ ઈડા અને પિંગલા નાડીઓને રોકી પ્રાણવાયુને સુષુમ્ણામાં સંચરિત કરે છે. આ પ્રાણવાયુના સંચારથી સુષુમ્ણાના નિમ્ન છેડે રહેલી મહાકુંડલિની જાગૃત થઇ ઊંચે ચડવા માંડે છે અને જ્યાં ગગનમંડળ છે ત્યાં પહોંચતાં બ્રહ્મરન્ધ્ર ઝણકાર થવા લાગ્યો અને અનેક સિદ્ધિઓ પ્રાપ્ત થાય છે. તે વાત આ રચનામાં ગાવામાં આવી છે.

જ્ઞાની સદ્ગુરુએ આ જ્ઞાન બનાવ્યું. પિયુજી સાથે સગપણ થતાં પિયર છોડ્યું. હવે એમાં શરમ કે સંકોચ જેવું રહ્યું નથી. પરમપદના દર્શન થઇ ગયા પછી તેના વગર ચાલતું નથી. ઇડા અને પિંગલાનો માર્ગ છોડીને હવે સુષુમ્ણાનો પટ ખૂલી જતાં ઝળહળ જ્યોતી સ્વરૂપ સર્વના શીર પર ભ્રૂકુટીના સ્થાને બિરાજમાન પરમાત્મારૂપી પિયુના દર્શન થાય છે. ભ્રૂકુટિ સ્થાને એજ ગગનમંડળ કે બ્રહ્મરન્ધ્રનું સ્થાન છે. ત્યાં ઉન્મુખ (ઊંધા મુખવાળા) કૂવા છે. તેમાં અમૃતરૂપી પાણી ભર્યુ છે. દાસ સતારને જ્ઞાની ગુરુ મળવાથી આ અલૌકિક ચમત્કારિક લાભ થયો.

ભજન : ૧૫

વેદ કિતાબના ભેદ કહિએ રે સમજવાળા ભાઇ

સુખમણ વેદ તમે કોને કહો છો રે સમજવાળા ભાઇ

સ્મરણ વસ્તુ સાચી રે બાકી બધુ બકવાનું રે જી,
અખંડ ઘર છે ન્યારું રે જાણે તેને રહેવાનું રે જી.

સાખીઃ નિજ સુરતીના સંગમાં સન્મુખ સામા લેવાય,
મેરુદંડને સીધા કરી ગગન મંડળ પર લઇ જાય,
અધ્ધર આસન દીધારે નવખંડ અજવાળા રે ... સ્મરણ વસ્તુ૦

સાખીઃ દો કમળ કી અણીપર શબ્દનું નિશાન લેવાય,
નુગરા નરને ખબરના પડે અંધારામાં અથડાય,
જ્ઞાન દીપક કેમ મળશે રે હૈયામાં દીધા બ્રહ્મના તાળા રે ... સ્મરણ વસ્તુ૦

સાખીઃ મુખ કમળને બંધ કરી દાટા દીધે શું થાય ?
પ્રાણ વાયુને ઊંચે ચઢાવી ત્રિવેણી પર લઇ જાય,
ત્યાંથી જમડા છોડે રે ચોરાશીમાં પડવાનું રે ... સ્મરણ વસ્તુ૦

સાખીઃ રામરામ કહીએ પાર ન આવે મણકા ગણે શું થાય?
ગુરુ લાખે જયરામને મળિયા મુનિથી ઓળખાય,
ચેતી લેજો ચતમાં રે બીજું નથી રહેવાનું રે ... સ્મરણ વસ્તુ૦

-જયરામ

સમજૂતી :

પ્રભુનું નામ સ્મરણ કરવું એજ સાચી ભક્તિ છે. બાકીની તમામ બાબતો મિથ્યા બકવાશ છે. અખંડ ઘર એટલે કે જ્યાં પ્રભુ બિરાજમાન છે તેવું પરમધામ એક માત્ર સર્વશ્રેષ્ઠ છે. જે તેણે જાણી લે, પામી લે તે ત્યાં રહી શકે છે.

06:16

ગંગા જુમના સરસ્વતી તરવેણીને ઘાટે રે,
સુખમન સુરતા રાખીએ વળગી રહીએ ઇ વાટે રે.
અણી અગ્ર પર એક છે હેરો રમતા રામા રે,
નિશદિન નિરખો એ છે, સતપુરુષ સામા રે.
અધર ઝણકારો હોઇ રિયા કર બિના બાજાં વાગે રે,
સૂરતા ધરીને તમે સાંભળો ધૂન ગગનમાં ગાજે રે.
નૂરત સૂરતની સાધના પ્રેમીજનને કોઇ પાવે રે,
અંધારુ ઢળે એની આંખનું નૂર નજરે આવે રે.
આરે સંદેશો સતલોકનો ભીમ સાહેબે ભેજ્યો રે,
પત્ર લખ્યો ગુરુએ પ્રેમનો જીવણ લગનેથી લેજો રે.

જીવણ જીવને જીયાં રાખીએ...

-ભીમ સાહેબ

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:18

જ્યાં અનહત વાજાં વાગે રે

વૃંદાવનની કુંજગલિમાં

તરવેણીના ઘાટમાં બોલે રે

યોગી ઈડા, પિંગલા અને સુષુમણાનો એકતાર કરી ભ્રૂકુટિના અધ્ધર આસન પર અધ્ધર બેસીને પરમતત્ત્વ રૂપી રાજા અનહદ વાજાં વગાડે છે. શૂન્ય શિખર પર સુરતાની પકડમાં પરમતત્ત્વ આવ્યું. યોગીને સફળતાની ખુશી મળી જતાં વિના તુંબડે, વિના તારે, વિના ડાંડવે એકતારાના ઝણકાર સંભળાવા લાગ્યા, જેને કાન વડે સાંભળો, આંખ વડે જુઓ. કાયાનગરીની સુષુમણાની ગલીમાં ત્રિવેણી ઘાટ પર જે બોલે છે તે જ પરમતત્ત્વ નિજ સ્વરૂપે વિદ્યમાન છે. યોગી વીરલાઓની પકડમાં તે પકડાય છે.

રવિદાસની યોગસાધનાની રચનામાં આજ ભેદ(રહસ્ય) થોડા જુદો શબ્દોમાં વ્યક્ત થાય છે. અહી સોહાગણ સુંદરી રૂપી સુરતા ઉત્તમ પથારી પાથરી છે. આ અધ્ધર પથારી પર ત્રણ ભુવનનો સ્વામી બિરાજમાન છે. ત્રણ ભુવનમાં તેનો પ્રકાશ ફેલાય રહ્યો છે.

અધ્ધર તખત પર આપ બિરાજે ત્રણ ભુવનમેં તેજાં,

અનહદ નાદ અખંડિત વાજે નિરભે નીરખ્યા નેને

યોગનું આ રહસ્ય છે. જ્યાં અનાહતનો નાદ અવિરત વાગ્યા કરે છે. જે નિર્ભય બનીને નિરખ્યા છે.

શૂન્યની ઉપર સેર સોઝલ્યા વિરલા જાણે વાંકા ભેદો,

સદ્‌ગુરુએ દૃષ્ટે નિરખ્યા હરજીએ દાખ્યા હે જી.

શૂન્ય શિખર પર બિરાજમાન સદ્‌ગુરુને કોઇ વીરલા જ આવા વાંકા ભેદને પારખી શકે. હરજીએ એવા સદ્‌ગુરુને દૃષ્ટિમાં જોયા છે. ગુણ નિરગુણની મધ્યે મહાપદ સ્થાયી છે. જે નહિ બંધ નહિ મુક્ત એવા પિયુ પરમેશ્વરને રવિદાસે સુરતા રૂપી સુંદરી વડે એકાગ્ર ચિત્ત કરીને નિહાળ્યા છે.

દાસ સત્તાર યોગ પ્રક્રિયાને સુંદર રીતે પોતાની ભજન રચનામાં મૂકી આપે છે. પિયુજી સાથે સગપણ થતાં પિયર છોડી સાસરીમાં ચાલી અર્થાત સુરતા પરમપતિમાં ભળી ગઇ તેના વગર તે રહી જ ના શકે.

ઈંગલાને પિંગલાનો મારગ મે’લી,

મેં તો સુષુમણા તે માર્ગ જવાની.

ગગન મંડળમાં ઉન્મુખ કુવલા,

માંહી ભર્યા છે અમૃત પાણી.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

(પ્રથમ સંસારના વ્યાપારોમાં નિષ્કાળજી કરાયા પછી લાંબા કાળ સુધી એકાગ્રપણે વિચારેલા યથેષ્ટ ધ્યાનથી અને એક તત્ત્વનો દૃઢ અભ્યાસ કરવાથી પ્રાણની ગતિ મંદ પડે છે (પ્રાણવાયુ જિતાય છે) તેમજ પરિશ્રમ વિના થયેલા પૂરક વગેરે વાયુના દઢ અભ્યાસથી અને એકાંતે ધ્યાનયોગ કરવાથી મનની ગતિ બંધ પડે છે (મન વશ થાય છે) વળી ૐ કારના ઉચ્ચારણના અંતે શબ્દતત્ત્વનો અનુભવ થવાથી જ્ઞાન દ્વારા સુષુપ્તિનું સ્વરૂપ સમજાય છે ત્યારે પ્રાણની ગતિ રોકાય છે, પ્રાણજય થાય છે.)

આ પ્રમાણે ચિત્તની વૃત્તિઓનો નિરોધ થવાથી એકાંતમાં સતત અભ્યાસ વડે મન અને પ્રાણ પર યોગી વિજય પ્રાપ્ત કરે છે.

(૩) સર્પિણી કુંડલિને શૂન્ય શિખર ચઢાવે
પહોંચાડે દસમે મુકામ
સુરત-નૂરતને ત્રિકુટીમાં થાપે ને
નીરખે અલખ તણું ધામ (રાજર્ષિ-૨૦૧૨-૧૩)

યોગીકવિ અહીં યોગસાધનાના આધાર સમી કુંડલિની શક્તિનો નિર્દેશ કરી જણાવે છે કે, તેને તેના મૂળસ્થાનેથી ચલાયમાન કરી "શૂન્ય શિખર" પર ચડાવવામાં આવે છે, જે દસમો મુકામ ગણાય છે. અહીં "શૂન્ય શિખર" એટલે મસ્તિક પ્રદેશમાં આવેલ બ્રહ્મરન્ધ્રના છિદ્ર સુધીનો સંબંધ સૂચવાયો છે. શરીરમાં કુલ નવ દ્વાર (છિદ્રો) આવેલા ગણાય છે. (બે આંખ, બે કાન, બે નસકોરાં, મોં, ગુદાદ્વાર અને ઉપસ્થ) યોગી પ્રાણોત્થાન વડે કુંડલિનીને જાગ્રત કરી બ્રહ્મરંન્ધ્રના શિખર સુધી પહોંચાડે છે ને તેનું દ્વાર ખૂલી જાય છે. આ છિદ્રને દસમું દ્વાર (મુકામ) કહે છે.

આ અંગે "યોગકુંડલિ ઉપનિષદ"માં જણાવ્યું છે

शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा ।
मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमल कन्दवत् ।। (૧-૮૨)

(કુંડલિની (નાડી) નામની જે શુભ શક્તિ છે તે (કમળમાં રહેલ) બિસતન્તુ કે મૃણાલના તાંતણા જેવી પાતળી અને કોમળ છે તે (સર્પ જેવા આકારની હોઈ) પોતાની ફેણના

૩:૨:૮ મારી સુરતા:

સંતો ! મારી સુરતા સરાડે રે, અગમઘર ચાલી રે હો .. (ટેક)
એ.. માયા કેરી હદ વળોટીને પેઠી બેહદ માંહીં;
એજી ધરણી માથે પગના મેલ્યા, પંખ વિણ ગઈ ત્યાંહીં ... સંતો
એ..હોંચી એ તો ગગનમાં ને લાગી ત્રિકુટી તાળી;
એજી દીઠા ભીતર ખેલ નિરાળા, અજબ નૂરતી ભાળી ... સંતો
એ..વાજિંતર કંઈ વાગે ન્યારા, ગાજે નોબત ભારી;
એજી નાદ અનહદ કેરી લાગી શૂન્યે ધૂન અપારી ... સંતો
એ...મેઘો વરસે વિના વાદળ (ને) વીજ કરે ચમકારી;
એજી બેંકનાળમાં રસની રેલી, પીતાં ચડે ખુમારી ... સંતો
એ...બોલે રે કોઈ બહાર-અંદર,શબ્દ ગેબ ઉચ્ચારી;
એજી બોલૈયાની બોલી રાજર્ષિ બાવનથી યે બા' રી ...સંતો

(રાજર્ષિ ૨૦૧૯, ૧૩૩)

૩:૨:૮:૧ ભજનનું જ્ઞાન નિરૂપણ

યોગસાધનામાં જ્યારે સાધક આગળ વધે છે, ત્યારે યોગમાર્ગનો તેનો અનુભવ અને અનુભૂતિનું વર્ણન છે.

સંતો! મારી સુરતા સરાડે રે અગમઘર ચાલી રે હો....

સુરતા એટલે બ્રહ્મ સાથે જીવની એકાગ્રતા, લય કે ધ્યાન સરાડે રે એટલે સીધે માર્ગે અગમઘર એટલે જે ઘરમાં કોઈ જઈ શકતું નથી તે.

સંતો આમાં અગમનિગમની વાત કરે છે. સાધકની તલ્લીનતા સીધા માર્ગે ઇન્દ્રિયોના ઉપરનો જે બ્રહ્મનો પ્રદેશ છે, ત્યાં પહોંચે ત્યારે ઈશ્વરની પ્રાપ્તિ થાય છે. ઇન્દ્રિયોના નીચેનો પ્રદેશ માયાનો છે. સુરતા ને પગ નથી એ તો વિના પાંખે ઉડી જાય. જ્યારે સાધક બાહ્ય દ્રશ્ય

सोवन सिखर घर महा धर्म रचियो दर्शन विरले पाया।
"स्वामी डूँगरपुरीजी" चरणो री सेवा गुरू वचने फल पाया।। ।।५।।

(98)

टेरः- रहिये वसिये शिव दरबार अणहद वचन उठे रे रणुकार।

काया नगरी रो अविनाशी राजा निर्धनीयो धणी आधार।
घड़ी पलक मे कैसे विसरू हर दम आगे सेत संभाल।। ।।१।

आला पिगला सुख्मण सोजो मेरू डंड घर पवन दुधारू।
कूंची लागी मोरे दसवे द्वार अगम पिछमरा खुलिया किवाड़।।
।।२।

जोजन चार अगम से आगे उड़े न पंशीवारे लगे न पार।
उल्टा पवन गिगन मे डोले झिल मिल ज्योति अगम अपार।। ।।३।

ऊँचा चड़ो अगम गढ निरखो सामी राजा देवे थाने साच समाचरा।
अगम अगोचर दूर पियोणा सनमुख भलक्या कुष्ण मुरार।। ।।४।।

डूँगरपुरीजी चरणो री सेवा नुरत सुरत रा बधिया हैं तार।
ऊँचा चड़ो देखी गिरनार भगवोड़ी धजा फरूके दरबार।। ।।५।।

अवल एसे सुनो दम तसबी गुनो [illegible]
तुर्कान को पीर बनो [illegible] **मुस**[illegible] **सेनो हिन्दू**
सारा बन्दुक की ज[illegible] **कहना सिद्ध**
[illegible] **रख नैना**

यल- अविगत देव अगम से आया प्रेम समायो पंथ।
सांचे गुंरारा लिया परचाणा बड़े घड़े रो सन्त।। ॥

(101)

रोलय

:- **पंडूतर साख देवे रे मारी भक्ति रो भेद वेराग।** ।।टे

र- कौन नगर में जन्मीयो कोण छोड़े असवार।
कौन थारी भक्ति रो साखीयो भक्ति किसे द्वार।। ।

न- काया नगर सू काया उपनी पवन घोड़े असवार।
सत् मारे भक्ति रो साखीयो भक्ति किसे द्वार।। ।

- कौन कंवल से चालीयो कहां पहुंचयो।
कौन ठिकाणे तेरी नौकरी किणमें रेया समाय।। ।

- नाभी कमल से चालियो गिगन पहुंचीयो जाय।
सुख्मण ठीकाणे मारी नौकरी सुन्न मे रेयो समाय।। ।

कौन राजा ऊण देस में कहा पायो थे विसराम।
स्वामी डूँगरपुरीजी बोलिया आगम भेट्यो ओलखाण।। ।

- नां अंछर उण देस मे वहां पायो मे विश्राम।
सांई रोयल बोलिया आगम भेट्यो कल्याण।। ।

चोरी जारी मदमांस ने दारू दुरमति दूर हटाय जी।
केवे ''डूँगरपुरीजीजी'' सुण सांरगगिरी विष्णु भक्ति मन भा
जोगेश्वर।। ।।५।

घर बैठो ही गंगा नाथ नहाय जोगेश्वर भलो।
भयो रे अवधु थारा विक्रम सैज मिटायजी।। ।।६

(97)

टेरः- देव गुरू दरसाया डूँगरपुरीजी कहे हंसराजा। डूंगरपुरी कहे रे ब्रहम मोयेला। ।।टे

मूल मंडाण सैज धुन लागी प्रेम ज्योति प्रकाश।
गुंराजी रा वचन हिरदा मे राखो खोजत खोजत पाया।। ।।

शशीयर भांण हुवा दोनु भेला घर सुखमण रे आया।
आपरो कलस अमीरस भरीयो पीवत पीवत पाया।। ।

त्रृगटी रो ध्यान धर्यो धीरप से नुरत सुरत मीलाया।
रूम रूम धुन गेहरी गाजे अणहद नांद घुराया।। ।

लीवरी डोर शील नट चड़ीयो चड़त निशान घुराया।
रामत मंडी राम थोरे आगे सुरनर जोवण आया।।

केवे ''डूँगरपुरीजीजी'' सुण सांरगगिरी विष्णु भक्ति मन
जोगेश्वर।। ।।

घर बैठो ही गंगा नाथ नहाय जोगेश्वर भलो।
भयो रे अवधु थारा विक्रम सैज मिटायजी।। ।।

(97)

टेरः- देव गुरू दरसाया डूँगरपुरीजी कहे हंसराजा। डूंगरपु
कहे रे ब्रहम मोयेला। ।।

मूल मंडाण सैज धुन लागी प्रेम ज्योति प्रकाश।
गुंराजी रा वचन हिरदा मे राखो खोजत खोजत पाया।।

शशीयर भांण हुवा दोनु भेला घर सुखमण रे आया।
आपरो कलस अमीरस भरीयो पीवत पीवत पाया।।

त्रृगटी रो ध्यान धर्यो थीरप से नुरत सुरत मीलाया।
रूम रूम धुन गेहरी गाजे अणहद नांद घुराया।।

लीवरी डोर शील नट चड़ीयो चड़त निशान घुराया।
रामत मंडी राम थोरे आगे सुरनर जोवण आया।।

को तो उसके करने वाले जानते हैं, न कि लिखने, लिखाने या वांचने वाले। जो इस आनन्द को प्राप्त करेंगे, वे ही इनका अभ्यास करेंगे,

उनको करने वालों का ही मोह, राग, द्वेषादि मिटेगा, आत्मा में उन्हीं का दिल डटेगा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनों का मेल सटेगा, जब कर्मों के पुद्गल आत्मा से हटेगा। देखो, जिन्होंने इस आनन्द को पाया, उन्होंने ही पदोंमें गाया; हमको भी श्रीआनन्दघनजी का पद याद आया, इस जगह लिखाने का अवसर पाया, सब पाठकगणों को दिखाया ,—

"इडा पिङ्गला घर तज भागी, सुषुम्ना का घर वासी।
ब्रह्मरन्ध्र मध्यासन पूरो, बाबा अनहद नाद बजासी ॥१॥"

ऐसा श्रीआनन्दघनजी का फरमाना (कथन) है। इससे प्रतीत होता है कि वे इस मुद्रा के भी अभ्यासी थे। जिन्होंने ऐसा अभ्यास किया है, वे कब किसी के जाल में फसते हैं? आत्मा को भजते हैं, राग-द्वेष को तजते हैं, गच्छादिक के मद में नही धसते हैं। इसी लिये श्रीअभिनन्दन भगवान् के स्तवन मे श्रीआनन्दघनजी महाराज कह गये हैं कि ;—

"दरिशण २ रटतो जो फिरूं, तो रण-रोझ समान।
जेहने पिपासा हो अमृतपाननी, किम भांजे विषपान ॥अभि०॥"

इसका अर्थ ज्ञानसागरजी ने गुजराती भाषा में किया है सो उसी के अनुसार यहां हिन्दी भाषा में कुछ दिखाते हैं ,—

"हे अभिनन्दन प्रभु! आपके दर्शन की, पूर्वोक्त कारण से अप्राप्ति समझकर, मात्र दार्शनिक अर्थात् बौद्ध, न्याय, वेदान्त, सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा आदि मतावलम्बियों से पूछूँ तो वे एकान्त पक्ष ग्रहण करके आपका दर्शन यथावत् कह न सकेंगे। इस लिये उनकी उपेक्षा करके जो वर्तमान काल में स्याद्वाद-शैली के जानकार का नाम धराने वाले हैं, उनसे पूछूँ कि अहो उपकारियों! शुद्ध आत्मिक स्वरूपानुयायी, परम पद की प्राप्ति होने का हेतु ऐसा जो दर्शन है और वह जिस रीति से मेरे हाथ चढ़े अर्थात् प्राप्त हो ऐसी रीति बताओ। इस रीति से यदि इन जैनधर्म के मतभेदियों में पूछता हुआ भ्रमण करूँ अर्थात् जैनधर्म के गच्छ आम्नाय, अथवा दिगम्बरी, श्वेताम्बरी, सम्वेगी, ढूंढ़िया, तेरापन्थी

04:51

या Eternal Bliss । यही है समतारस, यही है ब्रह्मानद । योगिराज ग्रानन्द-घनजी का यह पद ग्रष्टाग योग का दिग्दर्शन कराता है —

आतम ग्रनुभव प्रेम को, ग्रजब सुण्यो विरतत ।
निर्वेदन वेदन करे, वेदन करे ग्रनन्त ।
म्हारो बालुडो सन्यासी, देह देवल मठवासी ॥१॥
इडा पिंगला मारग तज जोगी, सुखमना[22] घर ग्रासी ।
ब्रह्मरध्र मधि ग्रासरणपूरी बाबु, ग्रनहद नाद बजासी ॥२॥
जम नियम ग्रासन जयकारी, प्राणायाम ग्रभ्यासी ।
प्रत्याहार धारणाधारी, ध्यान समाधि समासी ॥३॥
मूल उत्तर गुण मुद्राधारी, परयकासन चारी ।
रेचक पूरक कुभक कारी, मन इन्द्री जयकारी ॥४॥
स्थिरता जोग युगति ग्रनुकारी, ग्रापो ग्राप विचारी ।
आतम परमातम ग्रनुसारी, सीजे काज सवारी ॥५॥

इस पद से यह सुविदित हो जाता है कि योगिराज श्रीमद् ग्रानन्दघनजी महाराज ग्रष्टाग योग के मर्मज्ञ थे । उनका सम्पूर्ण जीवन ज्ञान-भक्ति ग्रौर योग का त्रिवेणी सगम था ।

इस विरले सत के विषय मे ग्रनेक चमत्कार-कथाए प्रचलित है । जोधपुर की महारानी से महाराज रूठ गये । महारानी चितत रहने लगी । उसने सुना कि जोधपुर के समीपवर्ती डूगर मे ग्रानन्दघन नामक योगी भगवद् भक्ति मे लीन रहते हैं । उनकी कृपा से दु ख-दुविधा मिट जाती है । महारानी ने उनके दर्शन किये । वह प्रति दिन उनके दर्शनार्थ जाने लगी । एक दिन उसने योगिराज को ग्रपनी मनोव्यथा सुनाई । सत ने एक कागज के पर्चे पर लिखा 'राजा-रानी दो मिले उसमे ग्रानन्दघन को क्या' । रानी को वह पुर्जा देकर

---

२२ शरीर मे ६२ हजार नाडिया है, ईडा, पिंगला, सुषुम्ना ग्रादि । सुषुम्ना शम्भवी शक्ति है ।
—हिंदी साहित्य कोश प्रकाशक ज्ञान मडल लिमिटेड, बनारस पृष्ठ ६११

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:45
Alakhbani | PDF
scribd.com

'मानव शरीर में मांस का एक टुकड़ा है और उस मांस के टुकड़े में रहस्य है और उस रहस्य में मैं हूँ।'[१]

इस विषय में एक ईश्वरज्ञ का कथन है—

बैत

सम्पूर्ण सृष्टि-पदार्थ उसके एकतत्व (तौहीद) के प्रतीक है,
उनकी मृत्यु उनकी निवृत्ति (तफ़रीद) की प्रतीक है ।

इकटी बिकुटी त्रिकुटी संधि पछिम द्वारे पवना बंधि।
घूटे तेल न बूझै दिया बोलै नाथ निरन्तर हुवा ॥

(**गोरखबानी**, सबदी / १८७)

(अ) तथा (प्र) में इसकी विषद व्याख्या की गयी है। यथा—

'यह साधक की साधनावस्था का वर्णन है। जिस समय साधक ध्यान में डूबता है कमाल को पहुँच जाता है। यह श्वांस की साधना है योगी सामान्यतः इसे भुवंगम कहते हैं और भुवंगम सांप को कहते हैं। फलस्वरूप सांप जिस प्रकार श्वांस छोड़ता है साधक भी उसी प्रकार श्वांस निकालता है। यह मार्ग गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

यहाँ संकेत तीन श्वांसों की ओर है, एक अध, दूसरी उर्ध्व और तीसरी जो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है और इन श्वांसों को एक में मिलाना श्रेष्ठ कार्य है। तीनों श्वांसों को मूल द्वार के स्थान पर बंद किया जाता है। मुरशिद का कथन है कि जितना भी अपने श्वांसों को रोक सकता है रोके और अपने चित्त में अपने अव्यक्त अथवा गूढ़ रूप की कल्पना करे इस विषय में योगियों की धारणा भिन्न है। कुछ लोगों का मत है कि मूल द्वार गुदा है किन्तु **रुश्दनामा** के लेखक की खोज के अनुसार मूल द्वार सिर की चंदिया है क्योंकि वह मस्तिष्क (मग़ज़) का स्थान है और वीर्य वहाँ एकत्र होता है। नवजात् शिशु के तालू की खाल के नीचे उसे देखा जा सकता है। वही मूल द्वार है जब श्वांस भीतर को खींचा जाता है तो उसकी गरमी से वीर्य जल की भाँति स्वच्छ होकर पूरी काया में प्रविष्ट हो जाता है। साधक उसका अनुभव करता है। उसे ऐसा आभास होता है कि श्वांस बादल के समान वर्षा कर रही। यह उस समय होता है जब उसकी श्वांस पुनः उसकी सत्ता में प्रवेश करती है जिस प्रकार श्वांस बाहर जाती है उसी प्रकार भीतर आती है।

एक सिद्ध (आमिल) हिंदवी में कहता है—**उलटी सकति चढ़ै पर बंध** अर्थात् लौट कर श्वांस वापस जाता है और शरीर में प्रविष्ट होता है उस समय साधक की काया ललित हो जाती है। उसे पुण्य पद की प्राप्ति हो जाती है और दैवी रहस्य तथा अव्यक्त जगत् के रहस्य उस पर प्रकट हो जाते है। उस समय स्वयं को मिटा कर दूसरे में खो जाने की अवस्था पैदा हो जाती है। इस साधन के लिए दो बातें अपेक्षित हैं एक पेट को भोजन एवं जल से रिक्त रखना और दूसरे स्थायी एकान्तवास।

तुलनार्थ—'**उलटी सकति चढ़ै ब्रह्मण्ड नव सिव पवनां खेलै सरबंम।**'

(**गोरखबानी**, सबदी / २१७)

१. यह हदीसे-क़ुदसी है जो सूफ़ी जगत् में विशेष प्रचलित है।

21:21
exoticindia.com/book/details/amar-sagar-(

पदचाप नहीं सुनाई पड़ेगी।

अफजल सतगुरू मोहे नवाजीया, साहेब दीय मीलाय।
अब चल पायो बस हय, भव जल अपे हमरी बलाय।। 105

अफजल साहब कहते हैं कि सद्गुरू ने साहब से मिलाप कराकर मेरा उद्धार कर दिया है, मैं अपने पावों पर चल पाने में समर्थ हो गया हूँ, अब भवसागर की धार में मेरी बलाय पड़े।

अफजल पापी का तो पाव न ठहरे, अयसी कठन अगम की गयल।
सतगुरू अधर ले राखिया, चहेड़ी उपर महल।। 106

अफजल साहब कहते हैं कि उस अगम पुरूष तक पहुँचने की राह ऐसी कठिन है कि उस राह पर पापियों के पाँव ठहर ही नहीं पाते लेकिन सद्गुरू ने कृपा करके मुझे उनके महल तक सरलता से पहुँचा दिया है।

अफजल छक छक गई जब छीक पीयाला, अमर खुले कपाट।
दुलोह आया चवक में, चवर ढाले अखट। 107

अफजल साहब कहते हैं कि जब मेरी आत्मा प्रेम का प्याला पी पीकर छक गई तब अमर लोक के कपाट खुल गये। दूलह के रूप में परम पुरुष प्रकट हुए। उनके सिर पर चँवर डुल रही है।

अफजल सोंहम अस्थीर नाल कर, पवन सीकर चड़ाया।
बीकसे कवल भवर गुंजारा, सुख सागर जाय समाया।। 108

अफजल साहब कहते हैं कि प्राणायाम के द्वारा श्वास को ब्रह्म रंध्र तक चढ़ाया और बंकनाल में सोहं को स्थिर किया तो अष्टदल कमल विकसित हो गया उस पर आत्मा रूपी भँवर गूँजता हुआ सुख सागर में समा गया है।

अफजल, सुख सागर पाया, अपे में जब छुट गई दवड़।
वन ढूँडान फंद खाण मा, मनवा रहत येक ठावड़।। 109

अफजल साहब कहते हैं कि जब यह मन सुख सागर में जाकर समा गया तो इसके इधर उधर दौड़ने की भटकन समाप्त हो गई। अब उस परम पुरुष को वन ढूंढने की आवश्यकता नहीं हैं, और न कंद मूल खाने की मन को रहने के लिये एक अच्छा ठिकाना जो मिल गया है।

"विज्ञान दर्पण" अप्रकाशित हस्तलिखित "दिव्यानन्दकोश" से उद्धरित संत कवि के अंतिम निजी अनुभव प्रसूत ग्रंथ है जिसका विषय सम्पूर्ण रचनाओं के उपसंहार के रूप में अनेक गेय राग तथा छन्दों में उपस्थापित किया गया है। फलतः मानव जाति का धर्म, आसुरी पंचमकारी सिद्धि, शब्द-सुरत, सहज समाधि, गुप्त अभ्यास, साधना में गुरु की याद वाणी से पैत-

दर्शन, ब्रह्ममुहूर्त में स्वतः सुषुम्ना प्रवाह, सद्गुरु ध्यान के और सद्गुरु की स्थिति के दर्शन से साधक के मन में दिव्यानंद की ललक सर्वाधिक आवश्यक वाले स्थल हैं।

संत कवि ब्रह्मचारी सुयोगीदास द्वारा विरचित प्रकाशित और अप्रकाशित सभी रचनाओं में सद्गुरु का महत्व मानव जीवन का महत्व, परमात्मा के नाम-रूप-लीला-धाम का वर्णन ज्ञान-योग-भक्ति का विवेचन, सहज प्रेम, सहजसमाधि, सुरत-शब्द-योग, राष्ट्रीय भावना, पुरुषार्थ चतुष्टय, लोक-परलोक दोनों में उन्नति तथा नीति-श्रृंगार-वैराग्य शतक, जैसे तथ्यों का सहज स्वाभाविक वर्णन मिलते हैं। फलतः संतकाव्य के अन्तर्गत परिगणित ये रचनाएं प्रभु-प्रेम को उद्बृंहित करने-वाली हैं।

साधना का तात्पर्य अपनी चंचल चित्तवृत्तियों रूपी घोड़े की लगाम अपने हाथ में ले लेना, अपने आप को साधना, अन्तर्मुखी होना,अपने मूल रूप में स्थित होना, गोस्वामी बनना अर्थात् आत्मरमण में दिव्यानन्द को प्राप्त करना है। अज्ञान रूप अंधकार से निवृत्त हो जाने का नाम ही आत्मसाक्षात्कार अथवा ईश्वर दर्शन है। आत्मा अनन्त शक्तियों से युक्त सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसकी जिस शक्ति को प्रदीप्त, प्रचण्ड एवं प्रस्फुटित बनाया जाय, वह शक्ति एक बलवान देवता के रूप में प्रकट होकर कल्पवृक्ष के समान कार्य करती है। साधना के द्वारा हमारे गुप्तचक्रों, संस्थानों तथाकथित आन्तरिक ग्रंथियों का जागरण होता है और वे ही हमारे श्रद्धा-विश्वास के अनुरूप देवता का रूप धारण करके सामने आ उपस्थित होती हैं। अतः आत्मा के सत्ता-क्रियात्मक को भगवान् कहा गया है। चित्त की चंचलता नियंत्रित करने के लिए प्रायः सभी साधकों ने अभ्यास एवं वैराग्य की महत्ता स्वीकार की है। साधना रूपी कर्मकाण्ड के ज्ञान एवं भक्ति दो भुजाएं हैं। परमात्मा को रिझाने के लिए इन दोनों भुजाओं को मिला कर यानी कर जोड़ कर साधना रूपी कर्मकाण्ड जब अतिशय हार्दिक प्रेम से नतमस्तक हो जाता है, तब परम प्रियतम परमात्मा दिव्यानन्द में सराबोर कर योगक्षेम स्वीकार कर लेते हैं। इसी वैदिक साधना के रहस्य को निरूपित करने के लिए ब्रह्मर्षि संतकवि ब्रह्मचारी सुयोगीदास का वाङ्मय अपनी तोतली वाणी से पाठक-श्रोताओं को दिव्यानन्द में विभोर करने का सत्प्रयास किया है।

नही है। यहाँ अति वृष्टि आदि ईतियो का भय नही है। यहाँ अनीती अनाचार का प्रवेश नही है। ईति रूपी अनीतियाँ यहाँ व्याप्त नही हैं। यहाँ तो आनन्द ही आनन्द का भोग है ॥५॥

योग सिद्धि ७५ राग–रामगिरि

आतम अनुभव प्रेम को, अजब सुण्यो विरतंत।
निरवेदन वेदन करे, वेदन करै अनत ॥ साखी ॥
म्हारो बालूडो सन्यासी, देह देवल मठवासी ॥
इडा पिंगला मारग तजि जोगी, सुखमना घरि आसी।
ब्रह्मरध्र मधि आसण पूरी बाबू, अनहद नाद बजासी ॥म्हारो ॥१॥
जम नियम आसण जयकारी, प्राणायाम अभ्यासी।
प्रत्याहार धारणा धारी, ध्यान समाधि समासी ॥म्हारो०॥२॥
मूल उत्तर गुण मुद्राधारी, परयंकासन चारी।
रेचक पूरक कुंभककारी, मन इन्द्री जयकारी ॥म्हारो०॥२॥
थिरता जोग जुगति अनुकारी आपो आप विचारी।
आतम परमातम अनुसारी, सीझे काज सवारी ॥म्हारो॥४॥

(७५) इस पद की साखी (दोहा) 'अ' और 'इ' प्रति मे नही है। इस पद मे कवि का नाम नही होने से कहा नही जा सकता कि यह किसका है अत यह शंकास्पद है।

पाठान्तर—प्रेम को = रसिकको (क बु) निरवेदन = निर्वेदी (क बु) इडा = इगला (इ) जोगी = योगी (इ उ) सुखमना=सुषमना (उ,क), । घरि= घर। (इ उ) आसी=वासी (क बु)। नाद = तान (इ,क बु)। जम=जिम (आ), यम (इ क बु)। परयंकासन = पर्यंकासन (क), पयकासन (बु) । चारी = वासी (बु)। कुंभककारी = कुंभकसारी (आ उ क बु)। जयकारी = जयकारी

व्यापक एवं देशकालातीत है। इसकी प्राप्ति ही बिन्दुसिद्धि है। इसको प्राप्त करना ही स्वातन्त्र्य का स्फुरण कहलाता है।

इस बिन्दुसिद्धि को प्राप्त करने का अर्थ है अनन्त प्रकार की शक्तियों का उल्लास। यही परम पद है। इस अवस्था का उदय प्रज्ञापारमिता है। अथवा परम शिवत्व प्राप्ति है।

कौल[1] योगी इस स्वरूप को अनुत्तर स्वरूप कहते हैं। कौल मत में बिन्दु के ऊर्ध्वीकरण की अनन्त प्रक्रिया है। प्रकृति-पुरुष के मिलन के समय साधक चित्त और प्राण को एकाग्र करके कन्दभूमि के सङ्कोच-विकास क्रम से शक्ति का उन्मेष सावधानी से करें। यह युगल क्रिया तब तक करते रहें, जब तक उक्त शक्ति का ऊर्ध्वीकरण न हो। कन्दभूमि से स्फुरित इस शक्ति से खेचरी मुद्रा प्राप्त होती है। यह बिन्दु शक्ति द्वादशान्त तक प्रसरित हो जाती है। यही परमशिव भूमि है। इसके परमशिवस्वरूप तक आने के बाद पुनः इसका मूलाधार तक सिञ्चन करना चाहिए। यह परम अमृत है। इस प्रकार बिन्दु को ओज में परिवर्तित कर समस्त चक्रों में आप्लावित करना है। इससे स्पष्ट हुआ कि शुक्र बिन्दु को व्यापक ओजःशक्ति में परिवर्तित करने पर

१. आचार्य अभिनव गुप्त, भास्कराचार्य इत्यादि प्रमुख आचार्य हैं। परात्रिंशिका, तन्त्रालोक २९ आह्निक में, कौलावली इत्यादि ग्रन्थों में कौल प्रक्रिया का विवरण है।

२. नेत्रतन्त्र (७।३१–३२)।

परिसंवाद–१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिद्धावस्था प्राप्त होती है। यह स्पन्दात्मक आनन्दशक्ति स्वरूप है। समस्त देह में एक प्रकार की शक्ति और तेज का अनुभव होता है।

बौद्ध आचार्यों के अनुसार वाम और दक्षिण नाडियाँ ललना एवं रसना कही जाती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ प्रज्ञा और उपाय से सम्बन्ध रखती हैं और पृथक् रूपेण प्रज्ञा एवं उपाय को स्फुरित करती हैं। यही संसारी दशा है। नाडियों में ऊर्ध्व और अधः वायुसञ्चार होता है। इनमें एक प्रकार की शक्ति है। वामनाड़ी का रक्त से सम्बन्ध और दक्षिण का शुक्र से सम्बन्ध है। जब तक श्वास-प्रश्वास इन दोनों नाड़ियों में चलता है तब तक मन में विकल्प अनियन्त्रित रूप से चलते हैं। इनमें यदि विकल्पों को सावधानी से देखा जाए तो सहज ही श्वास-प्रश्वास नियन्त्रित हो जाते हैं। मन की स्थिरता को लाने के लिए एक क्रम यह है कि मातृकाओं को मन के स्तर पर उच्चारण करना। स्वरों का ललना में और व्यञ्जनों का रसना में ध्यान करना चाहिए। इस अभ्यास के फलस्वरूप विकल्पों पर नियन्त्रण आ जाता है। जब शरीर के ऊर्ध्व केन्द्र की तरफ गति का बोध होता है तो तीसरी नाड़ी का अनुभव होता है। यह अवधूती नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रज्ञा और उपाय के संयोजन की परिचायक है। नाभि, हृदय, कण्ठ और सहस्रार में अवधूती नाड़ी निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इनमें चार कमल हैं अथवा चार शक्तिवृत्त हैं, जो कि शक्ति स्तर के निदर्शक हैं। इनमें चार प्रकार का आनन्द है—(१) आनन्द (२) परमानन्द (३) विरमानन्द और (४) सहजानन्द[1]।

सिद्धावस्था प्राप्त होती है। यह स्पन्दात्मक आनन्दशक्ति स्वरूप है। समस्त देह में एक प्रकार की शक्ति और तेज का अनुभव होता है।

बौद्ध आचार्यों के अनुसार वाम और दक्षिण नाडियाँ ललना एवं रसना कही जाती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ प्रज्ञा और उपाय से सम्बन्ध रखती हैं और पृथक् रूपेण प्रज्ञा एवं उपाय को स्फुरित करती हैं। यही संसारी दशा है। नाडियों में ऊर्ध्व और अधः वायुसञ्चार होता है। इनमें एक प्रकार की शक्ति है। वामनाड़ी का रक्त से सम्बन्ध और दक्षिण का शुक्र से सम्बन्ध है। जब तक श्वास-प्रश्वास इन दोनों नाड़ियों में चलता है तब तक मन में विकल्प अनियन्त्रित रूप से चलते हैं। इनमें यदि विकल्पों को सावधानी से देखा जाए तो सहज ही श्वास-प्रश्वास नियन्त्रित हो जाते हैं। मन की स्थिरता को लाने के लिए एक क्रम यह है कि मातृकाओं को मन के स्तर पर उच्चारण करना। स्वरों का ललना में और व्यञ्जनों का रसना में ध्यान करना चाहिए। इस अभ्यास के फलस्वरूप विकल्पों पर नियन्त्रण आ जाता है। जब शरीर के ऊर्ध्व केन्द्र की तरफ गति का बोध होता है तो तीसरी नाड़ी का अनुभव होता है। यह अवधूती नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रज्ञा और उपाय के संयोजन की परिचायक है। नाभि, हृदय, कण्ठ और सहस्रार में अवधूती नाड़ी निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इनमें चार कमल हैं अथवा चार शक्तिवृत्त हैं, जो कि शक्ति स्तर के निदर्शक हैं। इनमें चार प्रकार का आनन्द है—(१) आनन्द (२) परमानन्द (३) विरमानन्द और (४) सहजानन्द[1]।

[2]जननेन्द्रिय में तीन नाड़ियाँ मिलती है। ललना और रसना अधोवर्तिनी हैं। अवधूती ऊर्ध्ववर्तिनी है। इन तीनों के केन्द्र में बोधिचित्त है। इसी जगह शुक्र है। यही बोधिचित्त ब्रह्मरन्ध्र में महासुख और सोम रूप है। जब ललना और रसना नियन्त्रित हो जाती है तो श्वास-प्रश्वास शान्त हो जाता है, तब दोनों प्रवाह नियन्त्रित हो जाते हैं। इनके शान्त होने से बोधिचित्त का उदय होता है। अग्नि, सूर्य और चन्द्र के मिलन से जो अग्नि प्रदीप्त होती है, वह चाण्डाली है। जब यह प्रदीप्त होती है तो नैरात्म्य कहलाती है। इसके और भी कई नाम हैं। यह जब उर्ध्ववाहिनी होती है तो इसको चाण्डाली कहते हैं, जब यह ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है तो इसको 'हं' कहते हैं। तब यह अवधूती द्वारा क्षरित होती है और सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होती है। दूसरे शब्दों में मूलाधार में 'अ' और सहस्रार में 'हं' है। इन दोनों को मिलाने से अहं होता है। यह परमानन्द है। नाभिचक्र में 'अ' बोधिचित्त

१. सेकोद्देश पृ० २६।
२. हेवज्रतन्त्र प्रथमभाग पृ० ३८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी है और नैरात्म्य भी है। इस जगह प्रकृति और पुरुष दोनों हैं। यह सहस्रार के बोधिचित्त का मिलन कराता है। बोधिचित्त एक दृष्टि से स्वयं शुक्र है। अथ च यह प्रज्ञा और उपाय का परिणाम भी है। इसका चार प्रकार के काम से सम्बन्ध है तथा बद्धकाय, सम्भोगकाय, धर्मकाय और निर्माणकाय से सम्बन्ध है।

द्वारा नहीं हो सकता। साधारणतया संसारी जीवों का प्रकृति-पुरुष मिलन बिन्दु-क्षरण किंवा बिन्दुपात के लिए है। किन्तु योगियों का मिलन बिन्दु को स्थिर करने के लिए होता है। संसारी जीव वृत्ति में सुख का अनुभव करता है। वह रूप, रस, गन्धादि के अधीन है और उनमें इसलिए उद्युक्त होता है कि उसमें वह सुख का अनुभव कर सके। वह वृत्ति के सुख से अभिभूत है। अतएव वह पुनः पुनः उसी क्रिया में आसक्ति प्रगट करता है और पुनः पुनः बहिर्मुख और अभावात्मक संकल्प-युक्त हो जाता है। परिणामतः उसका सब व्यवहार वासनामूलक हो जाता है। उसे वृत्तियों में स्थित स्वरूपशक्ति का बोध नहीं होता है। बिन्दुसाधक प्रारम्भिक अवस्था में गुरु के निर्देशानुसार इस व्रत में चलता है। वह भीतर के अनुभव को साक्षी रखकर चलता है। वह भाव, प्राणक्रिया और नाड़ियों का ज्ञान प्राप्त करके बिन्दु की चञ्चलता को रोकता है। यह बिन्दु जिस नाड़ी से अधोमुख प्रवहनशील है, वह साधना द्वारा ऊर्ध्वमुखी हो जाता है। इसमें साधक के अनुभव और प्रगति पर आगे के पथ का निर्णय किया जाता है। यद्यपि उभयमताचार्यगण की क्रिया में अन्तर होने पर भी स्तरगत अनुभव में साम्य है। साधक अवस्था में प्रकृतिस्पर्श से उत्पन्न अनुभव एवं प्रवृत्तियों के अनुसन्धान में एकवाक्यता है। इतना होने पर भी प्रत्येक का भावगत वैशिष्ट्य विलक्षण है। बिन्दुसिद्धि अथवा स्थूल शुक्र का पतन न होने देना—यह अप्राकृतिक लगने पर भी तान्त्रिक विज्ञान का परम सत्य है। अधोमुख प्रवृत्ति पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व की प्रधानता के कारण होती है। हमारे शरीर में कामोद्रेक से उत्पन्न होने वाली उष्णता के कारण बिन्दुपात होता है। अर्थात् यह कामजनित उष्णता शरीरस्थित शुक्र को वीर्यवाही नाड़ी तक लाती है। नाभि के अधः आते ही शुक्र बनता है। इस शुक्र में पञ्चतत्त्व हैं।

जब तक अप् और पृथ्वी प्रधान हैं, तब तक उनमें अधोमुख वृत्ति है। प्राण के माध्यम से पञ्चतत्त्व के रहस्य का अनुसन्धान करने के पश्चात् शरीर स्थित पञ्च-तत्त्व का रहस्य प्रगट होता है और नाड़ियों का रहस्य समझ में आता है। योगी लीलावत् इस क्रिया द्वारा स्थूल शुक्र बिन्दु शुद्ध करके प्रथमतः अधः पतन को रोकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। इसका नामान्तर बिन्दु-स्थिरीकरण है। जब बिन्दु में पृथ्वी एवं अप् का अंश कम होता है तब वह स्थिर होता है। प्राण वायु द्वारा इसमें स्थिरता आती है। कामाग्नि अर्थात् अग्नि तत्त्व की उष्णता से ये दोनों (पृथ्वी, जल) शुष्क हो जाते हैं और ओज में परिणति हो जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में अग्नि और अप् का खेल चलता है। जब तक इस कामाग्नि का ठीक-ठीक उपयोग नहीं करने आता है, पुनः पुनः भीतर अप् तत्त्व द्वारा कामवृत्ति को शान्त किया जाता है। किन्तु यह साधकावस्था में होता है। जब ठीक कामाग्नि का स्वरूप समझ में आ जाता है, तब इस अग्नि को प्रज्वलित रखकर शुक्र के पञ्चभूतों को परिशुद्ध करके बिन्दु को ऊर्ध्व किया जाता है। शुक्र के तेजःस्वरूप बनते ही बिन्दु का ऊर्ध्वज्वलन प्रारम्भ होता है। तब बिन्दु की सूक्ष्म शक्ति स्पन्द शक्ति बनती है। साधक अवस्था में जब तक यह सहज नहीं बनती, तब तक बाह्य प्रकृति का आलम्बन लिया जाता है। फलतः अपने में रहने वाली शक्ति संकल्प द्वारा क्रिया करने लगती है। यह स्थूल बिन्दु का ओजरूपेण रूपान्तरण है। यही बिन्दुसिद्धि का लक्ष्य है। इसको बुद्धकल्प अथवा ईश्वरकल्प अवस्था कहा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलना में समानता के साथ असमानता की बात भी उठ सकती हैं, अतः दोनों साधनाओं में से जहाँ तक कमलकुलिश योग की बात है, वह विन्दु साधना को महत्त्व देती है। वास्तव में बद्ध जीवात्माओं के मन, प्राण एवं शुक्र तीनों ही चञ्चल होते हैं और तीनों इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध हैं कि इनमें से किसी एक के स्थिर होने से शेष दो लगभग निष्प्रयास ही स्थिर हो जाते हैं। मन को स्थिर करने में श्वास अपने आप रुक जाती है। प्राण को मन का पलना तक इसी आशय से कहा गया है। साधकगण इन्हीं तीनों में से किसी एक पर बल देते हैं और उसी की प्रधानतया साधना करते हैं। तान्त्रिक बौद्ध मानते हैं कि चित्त ही एक तत्त्व है—जो शून्यता स्वभाव है। वही संवृत दशा में शुक्र है और पारमार्थिक दशा में बोधिचित्त। चित्त या संवृतचित्त को ही बोधिचित्त के रूप में परिणत करना, महाराग, महासुख, निवारणप्रकाश, अनुत्तरबोधि या बुद्धत्व की उपलब्धि है। बोधिचित्त ही निम्नगामी होकर अन्नमय देह में शुक्र बन गया है। और यही जब और अधःस्खलित होता है तब भौतिक देह की सृष्टि होती है। साधक इसी शुक्र का ऊर्ध्वगामी सञ्चार करता है। अधोगामी रूप में यह चञ्चल तथा संवृत रहता है। और ऊर्ध्वगामी होकर स्थिर तथा विवृत्त। पहले प्रज्ञा तथा उपाय के योग से विन्दु का उद्भव होता है, यही बिन्दुक्षोभ है, जो बोधिचित्त का उद्भव है। इसे ही कुण्डलिनी का जागरण कहा जाता है। उद्बुद्ध विन्दु कहीं वज्रमणि में स्खलित न हो जाय, फलतः उसे निर्माणचक्र में धारण करना पड़ता है। पर यह निरोव कृत्रिम निरोध है। इस चक्र में स्थित शुक्र क्षिति, जल, पावक, समीर एवं गगन पञ्च भूतात्मक होता है। ऊर्ध्वसञ्चार के क्रम में उत्तरोत्तर क्षिति का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में और अन्ततः वायु का गगन में विलय हो जाता है। फलतः गगनोपम विन्दु स्थिर हो जाता है। उष्णीष चक्र में इसका स्थिर होना ही महासुख दशा की उपलब्धि है।

इस रहस्यमय साधना के आरम्भ करने के लिये साधक उपयुक्त गुरु एवं प्रज्ञा की तलाश में रहता है। गुरु का महत्त्व दोनों ही धाराओं में परमात्मा से भी अधिक माना गया है, पर प्रज्ञा या नारी की अपेक्षा, इस धारा की अपनी विशेषता है। विना दीक्षा के सत्यज्ञान का उदय नहीं होता और बिना अभिषेक के उस ज्ञान का सञ्चार नहीं होता। यह अभिषेक पारमार्थिक और संवृत्त दो रूप का होता है। संवृत भी दो प्रकार का है—पूर्व एवं उत्तर। पारमार्थिक अभिषेक ही अनुत्तर अभिषेक कहा गया है। कलश, प्रज्ञा एवं अनुत्तर सेक का प्रयोग विन्दु के आरोह एवं अवरोह पूर्वक समाप्य आवर्तन में होता है। कुण्डलिनी का भी आरोहावरोहपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

आवर्तन होता है। जैसे ब्राह्मणतन्त्रों में जड-त्याग पूर्वक चिदुपलब्धि या आरोह के बाद पुनः अवरोहण में त्यक्त का चिन्मयीकरण होता है, फलतः यात्रा पूरी होती है—ठीक यही स्थिति यहाँ भी है।

उपाय का अत्यधिक विस्तार गुह्यसमाजतन्त्र में उपलब्ध होता है। उपाय है—सेवा, उपसाधन, साधन एवं महासाधन। सेवा भी दो प्रकार की है—सामान्य और उत्तम। उत्तम सेवा में ही षडङ्ग का स्थान है, जिसका प्रयोग बिन्दु के ऊर्ध्व-सञ्चार में विशेष रूप से होता है।

अभिषेक के अनन्तर साधक गुरु के निर्देशन में मण्डल के भीतर प्रज्ञा के साथ प्रवेश करता है और योग का रहस्यात्मक अंश आरम्भ हो जाता है। आसन, बन्ध तथा मुद्रा आदि के द्वारा गुह्याङ्गों के बीच की नसें और नाड़ियाँ अपेक्षित सङ्कोच और प्रसार प्राप्त करती हैं, ताकि उनके द्वारा बिन्दु का ऊर्ध्वसञ्चार किया जा सके। षडङ्ग योग में सर्वाधिक महत्त्व प्राणायाम का इसीलिए स्पष्ट है कि उसी के द्वारा प्राण एवं अपान की विरोधी धाराओं को एकोन्मुख कर मध्यमार्ग में सञ्चरित किया जाता है और इसी के द्वारा गुरुनिर्दिष्ट क्रम से बिन्दु ऊपर की ओर सञ्चारित होता है। उत्तर सेक तथा अनुत्तर सेक से उसे जब नीचे उतारा जाता है तब उसमें इतनी स्थिरता आ जाती है कि निर्माणचक्र से उतर कर भी वज्रमणि में स्खलित नहीं होता। इस बिन्दु से जिस दिव्य देह की उपलब्धि होती है, उसी से सहजानन्द धारण किया जाता है।

षडङ्ग के अन्तर्गत अन्य अङ्गों के अतिरिक्त चार चक्र, चार मुद्रा, चार क्षण, चार आनन्द एवं चार कार्य की भी विशिष्ट चर्चा इस सन्दर्भ में विचारणीय है।

सुरतशब्द योग का वैशिष्ट्य यह है कि यह मार्ग उक्त मार्ग की अपेक्षा सरल है, यद्यपि उक्त मार्ग भी हीनयान, महायान एवं वज्रयान को अपेक्षा सरल है। यहाँ प्रज्ञा (नारी) की आवश्यकता नहीं है। तान्त्रिक बौद्ध साधना का आरम्भ नाभिचक्र से करते हैं, सन्तों ने सहस्रदल कमल या त्रिकुटी से किया है। इन लोगों की यह धारणा है कि सबसे ऊँचा स्थान अनामी अथवा अकह है। इसी स्थान से मालिक की मौज उठी और शब्दरूप होकर नीचे उतरी। वहीं से चलकर सुरत भी भिन्न-भिन्न स्थानों से होती हुई ब्रह्माण्ड में फैली और पिण्ड में उतरी। अनामी-सत्तलोक-सुन्न-त्रिकुटी-सहसदल-कमल। सत्तलोक से दो स्थान छोड़कर सुन्न या दसमद्वार है। इस प्रकार सत्तलोक से सहस्रदल कमल तक पाँच प्रकार के शब्द हैं। पाँचवाँ शब्द सत्तलोक में है और उससे परे जो शब्द की धारा है, वह अनिर्वाच्य है। इन्हीं शब्दों की धुन पकड़कर सुरत या रूह ऊपर चढ़ती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

षडङ्ग के अन्तर्गत अन्य अङ्गों के अतिरिक्त चार चक्र, चार मुद्रा, चार क्षण, चार आनन्द एवं चार कार्य की भी विशिष्ट चर्चा इस सन्दर्भ में विचारणीय है।

सुरतशब्द योग का वैशिष्ट्य यह है कि यह मार्ग उक्त मार्ग की अपेक्षा सरल है, यद्यपि उक्त मार्ग भी हीनयान, महायान एवं वज्रयान को अपेक्षा सरल है। यहाँ प्रज्ञा (नारी) की आवश्यकता नहीं है। तान्त्रिक बौद्ध साधना का आरम्भ नाभिचक्र से करते हैं, सन्तों ने सहस्रदल कमल या त्रिकुटी से किया है। इन लोगों की यह धारणा है कि सबसे ऊँचा स्थान अनामी अथवा अकह है। इसी स्थान से मालिक की मौज उठी और शब्दरूप होकर नीचे उतरी। वहीं से चलकर सुरत भी भिन्न-भिन्न स्थानों से होती हुई ब्रह्माण्ड में फैली और पिण्ड में उतरी। अनामी-सत्तलोक-सुन्न-त्रिकुटी-सहस्रदल-कमल। सत्तलोक से दो स्थान छोड़कर सुन्न या दसमद्वार है। इस प्रकार सत्तलोक से सहस्रदल कमल तक पाँच प्रकार के शब्द हैं। पाँचवां शब्द सत्तलोक में है और उससे परे जो शब्द की धारा है, वह अनिर्वाच्य है। इन्हीं शब्दों की धुन पकड़कर सुरत या रूह ऊपर चढ़ती है।

परिसंवाद–१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्तलोक से सहस्रदल कमल तक छह स्थान आसमानी हैं और उन्हीं की प्रतिच्छाया के रूप में पिण्ड के अन्तर्गत भी छह स्थान हैं, उन्हीं को चक्र कहा जाता है। पहला चक्र दोनों आँखों के पीछे है और यही सुरत अर्थात् रूह का वास माना जाता है। सुरत शब्द योग में इसीलिये इसी स्थान से साधना का आरम्भ होता है। माना गया है कि मानव मात्र के दोनों नेत्रों में आठ अवयव हैं—प्रत्येक में चार-चार अंश हैं—उज्ज्वल तारिका, काली पुतली, छोटी पुतली तथा उसके भीतर स्थिर सुई के छेद के समान चमकीला सूक्ष्म विन्दु। इसी को अग्रदृष्टि या अग्रनख कहा जाता है। सुरत इसी रूप में परिणत होकर अष्टदल कमल का भेदन करती हुई लक्ष्य की ओर बढ़ती है। सुरति जितनी ही अग्रनख के भीतर की ओर अग्रसर होती है, मन उतना ही स्थिर होता है। सुरति अपनी मात्रा में वङ्कनाल से होती हुई धुंधले मण्डल को पार करती है और फिर महाशून्य के छोर पर स्थित भ्रमरगुहा, जो सत्यराज का प्रवेश द्वार है, में प्रवेश करती है। योगीगण यहाँ से विशुद्ध शब्द सुन पाते हैं। इस मार्ग को विहङ्गम मार्ग कहा जाता है—फलतः इसकी तुलना में उसे पिपीलिका मार्ग कहा जा सकता है।

इस प्रकार कमलकुलिश योग तथा सुरत शब्दयोग की असाधारण विशेषताओं के साथ सामान्य विशेषताओं का यथासम्भव उल्लेख किया गया।

• • •

कुण्डली चलाने का उपाय।

इस कुण्डली के, कुण्डलिनी, नागन, बालरण्डा, शक्ति, आदि कई नाम हैं। यह कुण्डलिनी नामक नाड़ी सब नाड़ियों के ऊपर स्थित होकर मणिपूरक चक्र कर्णिका में आवृत करके ब्रह्मरन्ध्र के द्वार का रोक कर सर्वदा रहती है, और सुषुम्ना को नहीं जाने देती है। इस लिये प्राण-वायु और अपानवायु को धोंकने वाला—अर्थात् उत्तेजित करने वाला जो पुरुष है वह उस प्राण और अपान वायु की एकता से उत्तेजित हुई

जो अग्नि उससे जागृत होकर मन और प्राणवायु सहित सुषुम्ना को सूचीवतु न्याय से ऊपर ले जाता है। जैसे सूई में तन्तु पोया हुआ हो तो वह सुई कपडे के अनेक सूतों को भेदकर तन्तु-सहित ऊपर को निकल जाती है। वैसे ही वह करनेवाला पुरुष मन और प्राण वायु के साथ सुषुम्ना नाड़ी को ऊपर ले जाकर अपने आनन्द को प्राप्त होता है।

अथवा, सोते हुए सर्प के समान कुंडली नाड़ी है। उसको जागृत करने के वास्ते पहिले अपानवायु और प्राणवायु से विधिपूर्वक बीच की अग्नि के स्वरूप को तेज करे। अग्नि की तेजीसे उसे जगाकर जैसे अति वेग से चलता हुआ सर्प समान गति को छोड़कर कुटिल गति से जाता है, वैसे ही वह करनेवाला ज्योतिमयस्वरूप होकर सुषुम्ना मार्ग से लय हो जाता है।

जैसे ताले में कुञ्जी लगाने से ताला खुल कर कपाट (किवाड़) खुल जाते हैं वैसे ही कुंडली करके सुषुम्ना रूप कुञ्जी (ताली) से आत्म-स्वरूप कपाट खुल जाता है।

दूसरी रीति से शक्ति-चालनादि का वर्णन।

दूसरा प्रकार यह है कि वज्र-आसन लगाकर हाथों से पगों (पैरों) की एड़ी पकड़ कर कन्द स्थान को दृढ़ता से पीडन करे। और उस वक्त में वज्रासन से ही धोंकनी-कुंभक करके वायु को प्रचलित करे, उस वायु के प्रचलित होने से अग्नि प्रज्वलित होती है, उस प्रज्वलित अग्नि की गर्मी से वह बालरंडा मुख फाड़ देती है। उस समय भी सुषुम्ना करके योगीश्वर अपने स्वरूप का आनन्द पाता है।

अथवा, नाभि स्थान में सूर्य को आकुञ्चन कर कुंडली को चलावे, या चार घड़ी पर्यन्त निर्भय होकर शक्ति चालन करे तो कुंडली कुछ सुषुम्ना में ऊपर को ऊठे तब प्राणवायु आप ही सुषुम्ना में प्रवेशकर जाती है।

इस शक्ति के चलाने में नोलीचक्र, और भस्त्रिका, कुंभक, और महा-

मुद्रा ये तीनों बहुत उपयोगी हैं। जो पुरुष इनका विशेष रूप से अभ्यास करेगा वही इस बालरंडा को जगाकर सुषुम्ना के संग होकर अपने आत्म-स्वरूप आनन्द को प्राप्त होगा। परन्तु ये सब बातें वायु के साधन से होती हैं। इसलिये वायु के नाम दिखाते हैं:-१ प्राण २ अपान ३

नाभि से उलट पश्चिम के मारग मेरूदण्ड सिधलाऊँ।
हृदाकाश में दहराकाश है वहां से नाद प्रगटाऊँ॥ सा.॥
कंठ कमल में टक टक बाणी त्रिकुटी गगन मिटाऊँ॥
सहस्त्रदल में अखण्ड गुरु पाया मनभर दर्शन पाऊँ॥ सा.॥
सुरति कमल है हंस मुखी वहां अजपा चुप्प कराऊँ।
श्वेत धार जहां धर्म राय है किस विध आगे जाऊँ॥ सा.॥
आगे दशवां द्वार शूण्य है तामें जाय समाऊँ।
महा शून्य है विकट भयानक कहो क्या वर्ण बताऊँ॥ सा.॥
भंवरगुफा में सोऽहंसोऽहं ये ध्वनि अखण्ड सराऊँ।
सत्यलोक में सत्य पुरुष है सोही गणपति ध्याऊँ॥ सा.॥
राम भारती जी सामर्थ मिलिया उनको शीश निवाऊँ।
कल्याण भारती कर पुरषारथ आवागमन मिटाऊँ॥ सा.॥

॥ श्लोक ॥

मूलाधारं गुदमित्युक्तं स्वाधिष्ठानंतुलैङ्गिकम्।
मणिपूरकं नाभिदेशं हृदयस्थमनाहतम्॥
विशुद्धः कण्ठ मूले च आज्ञा चक्रवं मस्तकं॥
[योग. कु. ३० श्रुति]

॥ दोहा ॥

मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूरक अनाहत जान॥
विशुद्धः आज्ञा [illegible]

...ास का
...ा प्रारम्भ

॥ रेखता ॥

प्राणको सोध संकोचकर संखनि, पुवनको उलट और पलट फेरो
द्वारनौ बंदकर ध्यानधर सून्यमें होय अनहदशब्द गैब केरो।
झिलमिल ज्योति तहां होत है मधुर सून्यके तख्तपै पीवमेरो।
कल्याणभारती परख इसभेदको निरखदीदार करतार तेरो।

॥ श्लोक ॥

गणाधीशं गणपति गणनाथ गणेश्वर।
सर्वेन्द्रिय गुण प्रेरकं सोहं हंसो चिन्तयेत्॥

॥ दोहा ॥

...शि गणपति प्रभु गणनायक गणईश।
...ी प्रेरक सदा मैं वो मैं योगीश॥ २॥

शब्द नं0 १ राग–आसावरी

...ाई गुप्त गणेश मनाऊँ।
गणपति देव सुमर हिरदा में अनुभव जुगत बताऊँ॥ टेर॥
मूल द्वार को मंजन कर के आसण पदम जमाऊँ।
षटदल कमल नागणी जागी उनमुन ध्यान लगाऊँ॥ सा.॥

अथ योगाभ्यास का अंग प्रारम्भ

॥ रेखता ॥

प्राणको सोध संकोचकर संखनि, पुवनको उलट और पलट फेरो
द्वारनौ बंदकर ध्यानधर सून्यमें होय अनहदशब्द गैब केरो।
झिलमिल ज्योति तहां होत है मधुर सून्यके तख्तपै पीवमेरो।
कल्याणभारती परख इसभेदको निरखदीदार करतार तेरो।

॥ श्लोक ॥

गणाधीशं गणपति गणनाथ गणेश्वर।
सर्वेन्द्रिय गुण प्रेरकं सोहं हंसो चिन्तयेत्॥

॥ दोहा ॥

गणाधीश गणपति प्रभु गणनायक गणईश।
गुण इन्द्री प्रेरक सदा मैं वो मैं योगीश॥ २॥

शब्द नं0 १ राग-आसावरी

साधो भाई गुप्त गणेश मनाऊँ।
गणपति देव सुमर हिरदा में अनुभव जुगत बताऊँ॥ टेर॥
मूल द्वार को मंजन कर के आसण पदम जमाऊँ।
षटदल कमल नागणी जागी उनमुन ध्यान लगाऊँ॥ सा.॥

दरिया सूरति सर्पनी, चढ़ी ब्रह्म के मांय ।
जाय मिली परब्रह्म से, निरभय रही समांय ।।२३।।
दरिया देखत ब्रह्म को, सुरत भई भयभीत ।
तेज पुञ्ज रवि अगनी बिन, जहँ कोई उष्न न सोत ।।
पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोई कर्म न काल ।
जन दरिया जह पड़त है, हीरों की टकसाल ।।२५।।
सुरत निरत परचा भया, अरस परस मिल एक ।
जन दरिया वानक बना, मिट गया जन्म अनेक ।२६।
तज विकार आकार तज, निराकार को ध्याय ।
निराकार में पैठकर, निराधार लौ लाय ।।२७।।
सुरत मिली जाय ब्रह्म से, अपनो इष्ट संभाल ।
जन दरिया अनुभव सब्द, जहँ दीखै काल विसाल ।२८।
सुरत मिली जाय ब्रह्म से, मन बुध को दे पूठ ।
जन दरिया जहँ देखिये, कथनी बकनी झूठ ।।२९।।
दरिया जहँ लग गगन है, जहँ लग सुरत निवास ।
इनके आगे सुन्न है, जहँ प्रेम भाव परकास ।।३०।।
दरिया अनहद अगनी का, अनुभव धूवाँ जान ।
दूरा सेती देखिये, परसे होय पिछान ।।३१।।
मान बड़ा अनुभव सब्द, दूर देशान्तर जाय ।
अनहद मेरा साइयाँ, घट में रहा समाय ।।३२।।

रंजो सास्तर ज्ञान को, अंग रहो लिपटाय।
सतगुरु एक हि शब्द से, दीन्हो तुरन्त उड़ाय ।।

नाम साधना अथवा शब्द साधना मे ध्यान की प्रधानता रहती है। इस साधना में भक्त रात दिन नाम जाप करते करते श्वास-प्रश्वास के साथ नाम जाप करने लगता है। इस अवस्था को श्री दरियावजी महाराज ने "अजपाजाप" के नाम से पुकारा है। इस स्थिति पर पहुँचते ही भक्त के भक्ति के अन्य सभी बाह्य उपादान (माला आदि) निरर्थक हो जाते हैं। निरन्तर ध्यानावस्थित अवस्था मे राम नाम के जाप के प्रभाव से भक्त को जिह्वा के अग्रभाग पर मिसरी जैसा स्वाद अनुभव होने लगता है :—

दरिया सुमिरे राम को, आठ पहर आराध।
रसना में रस ऊपजे, मिसरी जैसा स्वाद ।।

इस अनिर्वचनीय आनन्द का प्रभाव जव रसना से कण्ठ में पहुँचता है तो साधक को निरन्तर ध्यानावस्थित अवस्था मे बैठे रहने के कारण उसके शरीर मे प्रेम की लहरे उठने लगती है लेकिन नियमित आहार एवं जलपान के अभाव में उसका शरीर पीला पड़ जाता है परन्तु मन मे सुख और शान्ति रहती है।

दरिया विरही साधु का, तन पीला मन सूख।
रैन न आवै नींदड़ी, दिवस ना लागे भूख ।।

इसके पश्चात् राम शब्द हृदय में प्रवेश करता है। राम शब्द के यहां पहुँचते ही भक्त के भ्रम, कर्म व सशय सब नष्ट

अधिकारो हि वीर्यस्य प्रसरः कुलवर्त्मनि ।
तदप्रसरयोगेन ते प्रोक्ता ऊर्ध्वरितसः ।।४२।।

अधिकारो हि नाम वीर्यस्य मन्त्रमुद्रासम्बन्धिनः स्फारस्य चरमधातोश्च कुलवर्त्मनि शैष्ये मध्यनाड्यादौ देहमार्गे शाक्ते च आद्याधारे प्रसरः सङ्क्रमणं, स एव एषां नास्तीति एते ऊर्ध्वरितसः प्रोक्ताः स्वात्ममात्र-विश्रान्तिसतत्त्वा एवेत्यर्थः॥४२॥

ननु श्रीदेवीपञ्चशतिकादौ

'निष्क्रियानन्दनाथश्च ज्ञानदीप्त्या सहैकतः ।
विद्यानन्दश्च रक्ता च द्वितीयं कथितं तव ।।
शक्त्यानन्दो महानन्दा तृतीयं सिद्धपूजितम् ।
शिवानन्दस्तथा ज्ञेया समया तच्चतुर्थकम् ।।'

इनके अधिकार विषयक जिज्ञासा का समाधान करते हुए शास्त्रकार कह रहे हैं कि, कुलपद्धति (कौल मार्ग) में वीर्य के प्रसर को ही अधिकार मानते हैं । वीर्य के प्रसर का तात्पर्य अपनी संविदद्वैत की वैद्युतिक ऊर्जा का विश्व में प्रसार है । सारी जनता इससे प्रभावित होकर कुलमार्ग को अपना लेती थी । वही उनका अधिकार था । जिन्होंने ऐसा नहीं किया, जिन्होंने अपने प्रभाव का और अपने व्यक्तित्व का प्रचार-प्रसार कर समाज को प्रभावित नहीं किया, केवल स्वात्म समुत्कर्ष साधना में संलग्न रहते हुए अन्तर्मुखता को प्रधानता दी, वे मात्र ऊर्ध्वरितस बन कर रह गये । आचार्य जयरथ के अनुसार अपनी ओजस्विता के आधार पर समस्त विज्ञानवाद को, मन्त्र-मुद्रादि प्रदर्शन प्रयोगों और क्रिया योग सम्बन्धी चमत्कार द्वारा सद्यः प्रत्यय प्रदान करना ही स्वात्म का वीर्यात्मक प्रसार है ।

यह प्रसर केवल सामाजिक नहीं होता अपितु गुरु द्वारा कुलमार्ग में दीक्षा प्राप्त शिष्यों-प्रशिष्यों में मध्य नाडी के माध्यम से अथवा स्वात्म के देहमार्ग में मूलाधार से उन्मना पर्यन्त प्रसर या स्वात्म के उल्लास की प्रक्रिया से संसरण को शिवमय बना देने की शक्तिमत्ता का प्रभाव भी प्रसर ही है । अधिकार

जैसे हिर्स मिटे प्रभु मोहीं, कहो भेद मांगो कर जोरी ।
हों अबुद्धि अति मति दर हीना, मैं तुमरो किंधर बर दीना ।।
तेहिते हिसे छौडा वहु स्वामी, तुम उदार अन्तर विश्रामी ।
जोग आगम गम क्यों करि पाई, समुझत कहत करत कठिनाई ।।
स्वांस अपरबल थामि न जाई, केहि विधि जोग पुरुष को पाई ।
महा समाधि साधि क्यों होवै, निर्गुन ब्रह्म कौन विधि जोवै ।। १
भीखा के तुम चरण अधारा, हे सतगुरु जी कहहु विचारा ।।

एक और शिष्य अर्ज देखें ---

कंठनाल की धारना, मेरुदण्ड की द्वार ।
हे सतगुरु कृपा करो, केहि विधि खुले केवारा ।।
पश्चिम युक्ति संजोग करि, कृपा देखावहु सोई ।
भीखा की कछु बस नहीं, तुमसे होय सो होय ।

और फिर सतगुरु दया --

भीखा सुनो धारना जेही, समुझतु गुनहु मनहिं मन तेही ।
स्वास के पवन पतालहिं जाई, उलटहिं पवन अर्ध को धाई ।।
धारन कंठनाल को येही, मेरुदण्ड चढि गौनहु तेही ।
धीरज धरि गुरु ज्ञान सम्हारी, पवनगम्य नहिं जहां भिखारी ।।
मरि पचरहु गुरुज्ञान विचारी, कृपा करहिं तब देहिं उघारी । २
भीखा उहां जाई जिवहारी, तबहिं तत्काण खुले किवारी ।।

उक्त पदों को देखते हुए यह निवेदन करने की धारणा बन रही है कि डा० भगवती प्रसाद शुक्ल का कहना उचित है । सम्भवत: इस गुलाल भीखा गुष्ठी

१- महात्माओं की वाणी, पृष्ठ- १८६ ।
२- वही, पृष्ठ- १६४ ।

की रचना गुलाल साहब ने नहीं वरन् भीखा साहब ने ही की थी क्योंकि शिष्य अर्ज तथा श्री गुरुदया दोनों ही प्रश्नकर्ता और उत्तर देने वाले गुलाल साहब नहीं वरन् भीखा साहब ही हैं । ऐसा वाणियों को देखने से लगता है ।

अजब अजब के पाँचो भौर किया पचीस सौं नाता ।
सोरह है जो बारे खेलौं, तीन मिलौं जेहि जाता ।।

-0-0-

बारह अंगुल जेकरे पैगे, सोह सो तहवाँ जाई ।
शाह फकीरा जिन्दा वे हिंया, इहवाँ गैब बनाई ।। [१]

उक्त पद में अजब, अलब, तहवाँ जाई, जिन्दा देहियाँ, इहवाँ ये सभी शब्द भोजपुरी के ही हैं । उनके अन्य पदों में भी भोजपुरी का प्रयोग है । उनका एक सबद है जो इस प्रकार है ---

ध्यान लगावहुं त्रिपुनी द्वार, गहि सुषमना विहंगम सार,
बैठि पताल में पश्चिम द्वार, चढ़ि सुमेर भव उतरेहु पार ।
हृदय कमल नीके हम बूझा, अउयें बिना एको नहिं बूझा,
शाह फकीरा यह सब धन्धे, सुरति लगाऊ पहाँ वह बन्द । [२]

उक्त पद में भी साधना करने की विधि का ही बयान किया गया है । उनकी रचना केशवदास एवं बुला साहब की बानियों को देखने से लगता है कि ये तीनों ही सन्त यारी साहब के साथ काफी लम्बे अरसे तक रहकर इन्होंने साधना की पद्धति सीखी होगी ।

१- महात्माओं की वाणी, पृष्ठ- १२ ।

२- वही, पृष्ठ- १३ ।

संत कबीरदास योग के विषय में कहते हैं-

"ऐसा रे अवधू की वाणी, उपरि कुवता तलि भरि पाँणी। टेक।।

जब लग गगन जोति नहीं पलटै, अबिनासा सुँ चित्त नहीं विहुटै।

जब लग भँवर गुफा नहीं जानें, तो मेरा मन कैसे मानै।।

जब लग त्रिकुटी संधि न जानैं ससिहार कै घरि सूर न आनै।

जब लग नाभि कवल नहीं सोधै, तो हीरै हीरा कैसे बेधैं।।

सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजै बाजा।।

सुषमन कै धरि भया अनंदा, उलटि कबल भेटे गोब्यंदा।

मन पवन जब पर्चा भया, क्यूँ नाले राँपि रस भइया।

कहै कबीर घटि लेहु बिचारी, लौघट घाट सींचि ले क्यारी।।"[1]

इसी प्रकार योग-साधना की चर्चा करते हुए संत गरीबदास का कथन है -

"मूल कँवल की मुद्रा बांधो, बटुवा बिटंब न लीजै।

गोला ज्ञान भभूति रमावो, सुषमण आसन कीजै।।

सहंस इकीसौ उलटि अपूठे, नौ ग्यारह परि द्वार।

सोलह कला संपूर्ण दरसै, उनमन योग अपार।।

नाभ कँवल में पवन समानी, फिर दो दल की घाटी।

द्वादश अंगुल सीमा सिद्धा, सोलह अंगुल फाटी।।

---

1 कबीर ग्रन्थावली, (सं°), दास, श्यामसुन्दर, राग आसावरी, पृष्ठ संख्या-1

जो हम कहैं करै जे कोई, मन धारै सो देखे।

लक्षण योग लखावै निर्गुण, बहुरि धरै नहीं भेयै।।

द्वादश उलटे सोलह सिंधं, बनि जल बिंब भियासा।

त्रिकुटी पैठी सहंज दल खोजै, झिलमिल नूर निवासा।।

मेरडंड का मारग बोलौं, बकं नालि दिखलाऊँ।

जौंरा काल नहीं जहां दोऊ, तहां हस ले जाऊँ।।"[1]

योग में सबसे पहले कुंडलिनी को जागृत किया जाता है। शरीर की बहत्तर हज़ार नाड़ियों में से केवल सुषुम्ना में ही शक्ति का प्रभाव होता है। यह तीन नाड़ियों के योग से बनती है। ऊपर वज्रा है, उसके अंदर चित्रिणी और सबसे नीचे ब्रह्मनाड़ी है। ब्रह्म नाड़ी से होकर कुंडलिनी का मार्ग बनता है। सुषुम्ना के बाईं ओर इड़ा है और दाईं ओर पिंगला जो संतवाणी में इंगला-पिंगला हो गई हैं। इड़ा या इंगला में चन्द्र का वास होता है और पिंगला में सूर्य का। इसलिए इन्हें चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी भी कहा जाता है और गंगा और यमुना की संज्ञा भी दी जाती है। इनके मध्य चन्द्र, सूर्य,

है। इन अभिज्ञाओं का अविर्भाव तब तक नहीं हो सकता जब तक मन्त्र सिद्धि न हो। इसलिए वज्रयानी तान्त्रिक योगी सबसे पहले मन्त्रसिद्धि के लिए उद्यम करते हैं। प्रत्याहार नामक पहले योगांग के द्वारा मन्त्र सिद्धि होती है। आन्तर ध्यान से अभिज्ञाओं का उदय होता है। प्राणायाम से बोधिसत्व भाव की तथा धारणा से वज्रसत्व भूमि की प्राप्ति होती है। अनुस्मृति का फल है प्रभामण्डल में प्रवेश तथा षडंगयोग समाधि का फल है निखिल आवरणों का क्षय या बुद्धत्व की प्राप्ति।

इस प्रकार योगी को उपर्युक्त विधियों द्वारा बिन्दु को उद्बुद्ध कर निर्माण चक्र से उष्णीष कमल तक ले जाना पड़ता है। बिन्दु का उद्बोधन और चाण्डालीशक्ति का जागरण वस्तुतः एक ही व्यापार है। वज्रयानी अनुत्तरयोग तान्त्रिको की परिभाषा में इस जागरण को निर्माण चक्र में स्वशक्ति चाण्डाली का जागरण कहा जाता है। जिस क्षण में चाण्डाली का जागरण होता है उसी क्षण मस्तक चन्द्रबिन्दु से अमृत का प्रवाह शुरू हो जाता है। जब प्रज्ञा अथवा चित्तकमल और सहजानन्द या उपाय ये दोनों परस्पर सम्मिलित होकर साम्य लाभ करते है तभी यह जागरण होता है। यह जागरण या ज्वलन वस्तुतः महासुख–राग का उदय है। इस अनल से भाव तथा अभाव दोनों ही निर्मल हो जाते हैं। बिन्दु के निर्माण चक्र से स्खलित होकर नीचे उतरने से देह की रचना होती है, परन्तु जब बिन्दु की ऊर्ध्वगति होती है तब निम्न सृष्टि का मार्ग रूद्ध हो जाता है। निर्माण चक्रस्थ बिन्दु पश्चभूतात्मक है, परन्तु उसमें पृथ्वी का अंश अधिक परिमाण में होता है। इसलिए वह मध्याकर्षण के प्रभाव से आकृष्ट होता है। परन्तु जब वह बिन्दु मध्यमार्ग का अवलंबन करता हुआ उर्ध्वोन्मुख होता है तब उसमें जलीय अंश प्रधान हो जाता है। पृथ्वी तत्त्व के जल तत्त्व में लीन होने से उसका काठिन्य छूट जाता है, किन्तु यह निर्माण चक्र के ऊपर के चक्र की बात है। बिन्दु का उत्थापन और भी अधिक होने पर वह तेज प्रधान होता है, क्योंकि उसका जलीय अंश शुष्क हो जाता है। उसके बाद और भी अधिक उठने पर वह वायु प्रधान और अन्त में चित्तमात्र अथवा शुद्ध प्रभास्वर रूप में परिणत होकर उष्णीष कमल में लक्षित होता है। उष्णीष कमल में बिन्दु के स्थिर होने के साथ–साथ देह सिद्ध होता है, जिसके फलस्वरूप दिव्यदृष्टि, दिव्यश्रुति तथा सर्वज्ञत्व आदि गुणों का उदय होता है। इसे एक प्रकार से बुद्धत्व लाभ भी कहा जा सकता है।

इडा आणि पिंगला या दोन नाड्यांमध्ये सुषुम्ना आहे. प्राणायामाचे अभ्यासाने सुषुम्ना पंथ शुद्ध होतो व मग कुंडलिनीचालनाभ्यास केल्यावर प्राण त्या मार्गाने सहज वर चढूं लागतो. हिचे मुळाशी कुंडलिनी साडेतीन वेटोळी घालून बसली आहे व हिचे मुख तिने रोधून धरले आहे असे वर्णन आहे.

श्री. प. प. वासुदेवानंद सरस्वती स्वामी महाराज म्हणतात :-

डाव्या नासापुटांत। इडा येऊन संपत॥
उजव्या नासापुटांत। पिंगला येऊन संपत॥
दो मध्ये सुषुम्ना असे। ती ब्रह्मरंध्री संपतसे।
तिचे मुळीं कुंडली वसे। साडेतीन वेटोळ्या देऊनी॥
मुखाने सुषम्ना मुख धरी। म्हणूनी तिच्या अंतरी।
प्राण प्रवेश न करी। म्हणूनी तिला चाळवावी॥

- दत्तमहात्म्य - अ. १४ ओ. ५४

कुंडलिनी उत्थापन

मनोलयाचे अभ्यासाने एक एक मात्रेचा लय होत जाऊन प्राणाचा व मनाचा लय एकमेकांत जसजसा हळूहळू होऊ लागेल तसतशी एक शक्ति उत्पन्न होते व ती एका मध्यरेषेत उपरिनिर्दिष्ट मार्गाने ऊर्ध्वगतीने वाहू लागते. यासच कुंडलिनी सुषुम्ना पंथांत शिरली, सुषुम्नाचे द्वार उघडले वगैरे शब्दप्रयोग योजितात. यासच कुंडलिनीचे उत्थापन म्हणतात. कुंडलिनीचे उत्थापन पुष्कळ प्रकारे होऊ शकते. हटयोगांत जी प्रक्रिया सांगितली आहे

exoticindia.com/book/details/yogasangrah

एतासु जीवेनारूढाश्चरन्ति दशवायवः।। ६२।।
प्राणोऽपानस्तथा व्यान उदानश्च समानकः।
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः।। ६३।।
जीवारूढाश्चरन्त्येते देहेऽस्मिन् दशवायवः।

etāsu jīvenārūḍhāścaranti daśavāyavaḥ ॥ (62cd)
prāṇo'pānastathā vyāna udānaśca samānakaḥ ।
nāgaḥ kūrmaśca kṛkalo devadatto dhanañjayaḥ ॥ (63)
jīvārūḍhāscarantyete dehe'smin daśavāyavaḥ । (64ab)

Ten *Vāyus* governed by *Jīva* move through these *Nāḍīs*. They are: *Prāṇa, Apāna, Vyāna, Udāna, Samāna, Nāga, Kūrma, Kṛkala, Devadatta* and *Dhanañjaya*. Governed by *Jīva*, these ten *Vāyus* move in the body. (62cd-4ab)

प्राणापानौ नाभिमध्ये संश्लिष्टौ तौ परस्परम् ।। ६४।।
सदा प्राणः प्रयात्यूर्ध्वं अधोऽपानः प्रसर्पति ।

prāṇāpānau nābhimadhye samśliṣṭau tau parasparam ॥ (64cd)
sadā prāṇaḥ prayātyūrdhvam adho'pānaḥ prasarpati । (65ab)

Prāṇa and *Apāna* are mutually united in the middle of the navel region. *Prāṇa* always moves up while *Apāna* moves down. (64cd-5ab)

तयोस्सङ्कर्षणाच्छ्वासो जायते सर्वदेहिनाम् ।। ६५।।
हकारो बिन्दुसहितः प्राणादुत्पद्यते गले ।

——:—:——

પદ ૨૨ કાફી રાગધનાશ્રી

સુરતે સોધોરે સત નામ ॥ સુરતે ॥ ટેક ॥
કર ચાર સખી એક ઠોર, પશ્ચમકે ઘર આવો
તબ બાજે અનહદ નાદ નુરકા દર્શન પાવો
ગગન ધુન ગજીં રહીરે પરમ જોત પ્રકાશ
અગમ ખેલ અદભુત હેરે, સોકીયા અખંડ ઘરવાસ ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગળા પીંગલા આઇ સુખમણાકે ઘર જાગો
ત્રીવેણીકી તીર ભરમ ભય સબહી ભાંગો
પરંપાર અપાર હે સો સદગુર દીયા બતાય
જીવ જાલ તો મટ ગયા સો બહોર ન આવે જાય ,, ॥ ૨ ॥
અધર આપ ઘર દેખ, ઇહાં સદગુરૂકા વાસા
જહાં વરસે અમૃત નુર, નહી ત્યાં સ્વાસો સ્વાસા
સનમુખ સાહેબ દેખીયા, અજર અમર અતીત
ભાણ સદગુરૂ ભેટીયારે, સનમુખ સામી તીર ,, ॥ ૩ ॥
તામે સહેજ સમાય, બહોર નહી આવે જાવે
નહી ઉપજે વીલાય, સદગુરૂ આપ કહાવે
પારસ મળી પારસ ભયા, સો દીવે દીવા હોય
ચંદનસે ચંદન ભયા, સો એમ વીચારી જોય ,, ॥ ૪ ॥

——:—:——

પદ ૨૩ આરતી

આરતી રવી રામ તમારી, અબકી બેર મુને લીયો ઉગારી
માન ગળીયા જડીયા નીજ નેડા, મહા પરતીત પોતીયા ઠેકા ॥ ૧ ॥

તન મન પ્રાણ સમર્પણ કીના, સદગુરૂ શબ્દ ભયા લવલીના ॥ ૨ ।
શબ્દમાર ઉપજા નીજજ્ઞાના, વઇરાગ જોગ સત ભકતી નીદાના ॥ ૩ ।
મુળ ઉપદેશ સમાયા સેના મન પવન પહોંચે નહી બેના ॥ ૪ ।
બીજ અજંપા બીન નેનહી સુઝા, હદબેહદ પારહી બુઝા ॥ ૫ ।
ઊંહા નહી ભોગી ઉહાં નહી ભુકતા, ઉહાં નહી બંધ ઉહાં નહી મુકતા ॥ ૬ ।
શીર ઉપર રવીભાણ પ્રકાશા, ખુંટમે ખેલ ખેલ્યા ખીમદાસા ॥ ૭ ।

——:—:——

પદ ૨૪

નામકી આરતી કરો મન મેરા, જાસે તેરા હોય નીસ્તારા
જાસે ઉપકાર હોય ઓધારા ॥ નામકી ॥ ટેક ।
સતગુરૂ શબ્દ દીયા રણુંકારા, લાગ રહ્યા હે જુગસે ન્યારા ॥ નામકી ॥ ૧ ।
ગરજે ગગન ધુન અંનત અપારા, ઝલકે જોત અધર નીરાધારા ,, ॥ ૨ ।
નીરખેગા કોઇ નીરખન હારા, દરીઆ ભરીઆ સોઇભર સારા ,, ॥ ૩ ।

આસોએ આનંદ વાધ્યો સાધ્યો મન રે સદગુરૂજી
ત્રીવેણીમાં દ્રઢ કરીયું આસન મારા ગુરૂજી
સુરત નુરતને મન પવન ઘર આવ્યા રે સદગુરૂજી
સુખમણા દોર અનહદ તાલ બજાયા મારા ગુરૂજી
ઝીનારે બેસી ફેરવ્યા હરદમ દાણારે સદગુરૂજી
વણજીભ્યાએ થાએ ભજન અધાણા મારા ગુરૂજી
વરસે મોતી ઝલમલ ઝલકે નુરરે સદગુરૂજી
પંનર નવ જીહાં વાજે અનહદ તુર મારા ગુરૂજી
પુરૂષ પરશા દો આંગુલ દર્શે રે સદગુરૂજી
કુલીતપાયા કદીએ કાલ ન ગ્રાસે મારા ગુરૂજી
પરમ જ્યોત વીશે જઇ રહ્યા સમાઇરે સદગુરૂજી
સહેજે રહે દુતીયા રહીત સદાય મારા ગુરૂજી
અખંડ ઉન્મુની મુદ્રાએ દીવસ અને રાતી રે સદગુરૂજી
રવીદાસ બ્રહ્મ નીરખ્યા ભુલ્યા ભ્રાંતી મારા ગુરૂજી
દ્વાદશ ઉપર વીતરેક પુરૂષ ન્યારા રે સદગુરૂજી
પુરૂશોતમ છે પંડ બ્રહ્માંડ થી પારા મારા ગુરૂજી
અમર લોક જ્યાં અવીચલ રાજ અભંગ રે સદગુરૂજી
અવીચલ કાયા અવીચલ ગોરંગ મારા ગુરૂજી
રતન જડીત્ર ભુમી સુવર્ણ ગાર રે સદગુરૂજી
સહેજ આનંદ અનંત ચંદ સુર ઉજીયારે મારા ગુરૂજી
રાસ અખંડ ત્યાં વૃંદાવનરે સદગુરૂજી
સુરત સાહેલી ત્યાં જઇ કીયા ગવન મારા ગુરૂજી
સત સરૂપી શોભા સુભગ સોહાવે રે સદગુરૂજી
નીરખતાં મન મથ કોટી લજાવે મારા ગુરૂજી
ગાદી નુરની સપ્ત પુરીને પાર રે સદગુરૂજી
તાપર પીયુજી સદા અખંડ અપાર મારા ગુરૂજી
પોત્યા પ્રગટ અમર રવીદાસ રે સદગુરૂજી
સ્વપ્ન મટીયું સેજે થયો સમાસ મારા ગુરૂજી

તેની કરીએરે સેવા, ગુરૂ સભી સંત નીરંજન દેવા
નીગમ નેતીરે કહે છે, સોહી રામ સંતોના ઘટમાં રહે છે ॥ ૩ ॥
ચીતની ચોરીરે કરીએ, માંડવો મન તણો છાવરીએ
ગીતજ જ્ઞાનનારે કીજે, દાન તે સદગુરૂને દીજે ॥ ૪ ॥
પ્રેમ પટોળીરે પહેરી, ઊપર લેહેની ઓઢી લેહેરી
ધીરજ અંજનરે આંજ્યો, ખ્રમીઆ રૂપી સેંથો સાજ્યો ॥ ૫ ॥
ચઇતન પેર્યોરે ચુડો, વરીએ જગજીવન વર રૂડો
હાથેવાળો રે જોડયો હરીએ, સન્યા સંત જાનઇયા કરીએ ॥ ૬ ॥
અખે અમર વર તારો, આ અનુભવમાં નથી ઊધારો
હરીવર નીરખીરે હું ટાળો, રવીદાસ અખંડ બ્રહ્મને ભાળો ॥ ૭ ॥

———:—:———

પદ ૩૭ **ઝાલરી**

એવી ઝણુણુણુ ઝાલરી વાગીરે, મેતો જોયું તખત પર જાગીરે
મને સંત મળ્યા સોહાગીરે, એવી મધુરીસી મોરલી વાગીરે ॥ટેક॥
સાખી—મુળ કમળથી ઊપડીને રૂદે કમળમાં બોલે
નાભી કમળથી મારી સુરતા ચલી, ઊભી ત્રીવેણી માં ડોલેરે ॥ ૧ ॥
સાખી—સત નામ ઘોડો સણુગારીયો, લેહની કરી લગામ
ચાંદો સુરજ દોનુ પાવડે, એનો ચડનારો ચતુર સુજાણુરે ॥ ૨ ॥
સાખી—ગગન મંડળમાં ગોખલો, નર સુતો નીરધાર
ત્રણ પુરૂષ એની સેવા કરે, રામ કબીર રણુંકારરે ॥ ૩ ॥
સાખી—સદગુરૂએ અમને ઊરમાં લીધાં, માર્યાં મોહનીના બાણુ
વીચાર કરો તો વંદન જાણે, ભીતર પ્રગટ થયા ગુરૂભાણુરે ॥ ૪ ॥
સાખી—ઓહં સોહં તારા ઘટમાં વસે, સુરતા કરે એની સેવ
ભાણુ પ્રતાપે રવીદાસ કહે, મુને મળીયા નીરંજન દેવરે ॥ ૫ ॥

———:—:———

પદ ૩૮ **રાગ ધોળ ફેર**

સદગુરૂ લગન લખાવીઆ અવીનાશીજીરે
પુરૂશોતમ પરણ્યા વરતી નાર, " " ॥ ૧ ॥
ગગન મંડળ મંડપ રચ્યો " "
ગીત ગાય અનહદ નાદ " " ॥ ૨ ॥
તખત ત્રિકુટી તોરણુ ચઢીયા " "
પ્રેમે પોખે સુખમણા સાસુ " " ॥ ૩ ॥
ચીત તણી ચોરી રચી " "
નીજ પ્રીતે બાંધ્યા છે બંધ " " ॥ ૪ ॥

પદ ૯૭ ધોળ રાગ સરવડા

સદગુરૂજી જ્યારે લગન લઇને આવ્યા, સુરતા સખી કેરે મન ભાવ્યા
પ્રેમ રતીએ મોતીડે વધાવ્યાં, પાપ ગયાં પેલા ભવતણાં રે ॥ ૧ ॥
શબ્દ સ્વરૂપી ચાંદલીઓ ચોડયો, નીરવૃતી કન્યાનો વહેવા જોડયો
કાળ ક્રોધનો ભય સબ મોડયો, વહેવાર જોડાયે પ્રીતશુ રે ॥ ૨ ॥
ગગન મંડળ માંડવડો રચીયો, પંચ રંગી રંગે મનોહર મચીયો
અમી રસ દોરીએ દીલમાં દર્શીઓ, છાંયો છે સાચા તારસું રે ॥ ૩ ॥
ઇરે સંડપની સોભા ઘણી સારી, રતન જડાવ જરૂખાને બારી
કોટી કોટી ભામણા લઇ જાંઊ બલીહારી, જલહલ જોતું જલહલેરે ॥ ૪ ॥
હરખ સહીત વર તોરણે પધાર્યા, સુખમણા સાસુ પુખણુ લઇને આવ્યા
ઇંગલા પીંગલા નેવલીએ ચડાવ્યાં, પોખણુ પોખ્યા પ્રેમસુરે ॥ ૫ ॥
નીરવરતી કન્યા ચોરીમાં પધરાવી, ઓહં સોહં હાથે વાળો મીલાવી
રંરંકાર શબ્દની ધુન મચાવી, અનહદ વાજા ગડ હડે રે ॥ ૬ ॥
ભજન કરીને હરી વર વરીયા, આવા ગમનના ફેરા ટળીયા
કહે રવીરામ સાચા સદગુરૂ મલીયા, અખંડ ચુડલો અમર રહ્યોરે ॥ ૭ ॥

———:o:———

પદ ૯૮ સરવડાં ધોળ

પરી બ્રહ્મ સાથે સ્નેહ ન કીધો, મનને સદગુરૂને હાથે ન દીધો
મનુશા દેહનો લાવન ન લીધો, અજ્ઞાને બહુ આથડયો રે ॥ ૧ ॥
કલ્પીત વસ્તુ કારમી જાણી, મન કમ વચને બંધાયો પ્રાણી
ભુલી ગયો તું ભકતી નીશાની, અંધ પડયો ભવ કુપમાં રે ॥ ૨ ॥
વીષય સ્વાદમાં રાતો માતો, પલક એક ન ઊપજે સ્વાંતો
ત્રીવીધ તાપમાં નીશદીન રાતો, શીતલતા સુપને નહીરે ॥ ૩ ॥
રવીદાસ કહે જેણે સદગુરૂ વરીયા, જ્ઞાન દીપક દ્રઢ હરદેમાં ધરીયા
પુનરપી જનમને નહી અવતરીયા, કાલ ચક્રથી ઉગર્યારે ॥ ૪ ॥

———:—:———

પદ ૯૯ સરવડાં ધોળ

જ્ઞાન પ્રકાશ પ્રગટયોછે જેને, હરખ શોક સુપને નહી તેને
ક્ષણુ ભંગુર તે જાણે દેહને, સુખ દુઃખથી તે સંભવેર ॥ ૧ ॥
અભીમાન નહી મનમાં આણે, ઘટ મઠ પટ પરી બ્રહ્મને જાણે
બ્રહ્માનંદ સુખમા એ માણે, અહમ રહીત અણુલીંગીયારે ॥ ૨ ॥
સાક્ષીવંત છકયા રહે શ્રષ્ટે, સર્વ ભુતમે જુવે સમ દ્રષ્ટે
દુઃખ ન પામે દેહને કષ્ટે, અલગા રહે આવણુથીરે ॥ ૩ ॥

પદ ૧૨૦ આશા ગોડી

સંતો ગુરૂ ગમ લહે સો જ્ઞાની, અંતર પ્રેમ ઊજાગર અનભે,
જાકી નીશ્ચલબાની ॥ સંતો ॥ ટેક
ચંચલ મારી નીશ્ચળ હોઇ બેઠા, નીરમળ હોઇ સમાધી
શીલ સંતોષ રહે સમધારણુ, વસ્તુ અગોચર લાધી ॥ સંતો ॥ ૧ ॥

નાભી બેઠ ગગન ઘર જાવે, આઠ પહોર આનંદા
ચલે પાધરે પશ્ચીમ મારગ, મીલાવે સુરજ ચંદા ॥ સંતો ॥ ૨ ॥
શશી સુરમે સુર શશીમે, અણુ સારે ઊલટાવે .
નીરખે પલપલ નુર નીરંતર, અનહદ નાદ બજાવે ॥ ૩ ॥
રહે અડોલા બોલે અબોલા, જાણુ પણા જલ જાઇ
કહે રવીરામ વીરલા સંસારા, ઊલટા કાળકું ખાઇ ॥ સંતો ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૧૨૧ આશા ગોડી

સંતો માયા મુજે નાહી, વીના વીચાર સકલ જગ ભુલ્યા,
જ્ઞાન વીના ગુચવાઇ ॥ સંતો ॥ ટેક
માયા માયા સીધ સાધ પુકારે, અચરજ એજ કહાવે
ભોરીંગ જેસા સીંધરા ભોંયપર, દેખો એ કીસવીધ ખાઇ ॥ સંતો ॥ ૧ ॥
માટી કેરા બના માળીઆ, ચીતર્યો વાઘ ચીતારે
એસો ભ્રમ દેખી જીવ ભટકયા, વાઘ એ કીસ વીધ મારે ॥ સંતો ॥ ૨ ॥
ખેતર ખડા બીના રખવાલા, ઓઢા ઊભા કીના
અકલ બીના ઓઢા નહી ઓળખ્યા, દેખત હરણુ બીના ॥ સંતો ॥ ૩ ॥
માયા નીંદ સ્વપ્નકી જૈસી, બીન ગુરૂ ગમ અંધીઆરા
કહે રવી રામ ચેતન જબ જાગયા, ભયા બ્રહ્મ ઊજીઆરા ॥ સંતો ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૧૨૨ આસા ગોડી

સંતો રમતા રામ હમારા, જીહાં ઠેરાવું ત્યાં હરી નાહી,
એસા અપરંપારા ॥ સંતો ॥ ટેક ॥
કોઇ કહત હે નાભી નીરંજન, કોઇ કહે હૃદય પ્રકાશા
કોઇ કહે નાશાકી અગ્રે, કોઇ કહે ભ્રકુટી વાસા ॥ સંતો ॥ ૧ ॥
કોઇ કહેત હે દશમે દ્વારે, દ્વાદશમેં દરશાવે
કોઇ કહે નેન ઝરૂખે, અકલ કળ્યા કયું જાવે ॥ સંતો ॥ ૨
અનભે કથે અપને અનુમાન, સુન ભડકામે ભુલ્યા
કર્તંવ્ય જોગ માંહી ગુંચવાયા, પાયા નહી નીજ મુલા ॥ સંતો ॥ ૩
રોમ રોમમેં અનંત બ્રહ્માંડા, રગ રગમાં રહી બોલે
આપા ખોયા તબ આપ પારસમણુ, ખબર વીના દુર ખોળે ॥ સંતો ॥ ૪
નીરાધાર નીલેંપ નીરંજન, લેખા વીના અલેખા
રવીદાસ સાન ગ્રહી ગુરૂકી, જયુંકા ત્યું હરી પેખા ॥ સંતો ॥ ૫

પદ ૧૮૭ સામેરી

અસ્ત્રીનો સંગીરે તે તો સ્વારથી, તેને દલ દીધે ઉપજે દોષ
કાઇક ઊપજાવેરે મનને કામના, એતો વસની વાત ફરોસ ॥ ટેક
કામની નાદરે કામી અગલો, તેને શબ્દે પડીગો પાસ
હેત દેખાડીરે જીવને હેળવે, પછી નાખે નર્ક નીવાસ ॥ ૧
ઊંડીને આશેરે અસ્ત્રી ધન કામીની, એતો ટાળા મન નહી ઠીક
વળગેને ડુબેરે કલ્પે બહુ કામીયો, હાંરે એતો પ્રેતનો પુજનીક ॥ ૨
હરીની માયારે હરીને અર્પણ કરો, જેને હરી નામની છે આશ
એવાની સંગેરે પરમ પદ પામીયે, એમ કહે ભાણુ ચરણુ રવીદાસ ॥ ૩

———:o:———

પદ ૧૮૮ પ્રભાતી

દેખ દેખ દેખ દેખ નાથ તેરે નેમમેં,
માયાકે મદમાંય મુરખ જાનત નાહી ધેનમેં ॥ ટેક
ચંદ્ર સુર એક કીનો, ઉલટ સુલટાઇ દીનો
મહા ચઇતન ચીન્યો સમજ દેખ સેનમેં ॥ ૧
તેજકોતો નાહી પાર, ઉલટ ચલે મકરી તાર
ઇડર હે નીરાધાર, નહી દીન રેનમે ॥ ૨
સુરતાતો પોતી સુન, લગી રહી ઊંનમુન
સેજે ઉઠત ધુન, અબોલ બોલ બેનમેં ॥ ૩
વાસના તો ગઇ વીલાય, બ્રહ્મ અગ્નીમેં દઇ જલાય
રવીદાસ રહે સમાય, કબો ન જાઇ કેનમેં ॥ ૪

———:o:———

પદ ૧૮૯ પ્રભાતી

અવનીશ ભજન વીના, લક્ષ તે કેમ લહે, ભકતી દુરલભ તે કેમ આવે
ખેલ એખેડો રમે, સૌ સભાને ગમે, મુઠ છુટે તબ રમત ફાવે ॥ ટેક
જ્ઞાનમાં મન ગળે રોગ બીજા ટળે, ટેક મેલી નવ ટાંક ચાલે
ધ્યાન ધીરજ ધરે, કલ્પના નવ કરે, સર્વ સંસારમાં નાથ ભાળે ॥ ૧
બુદ્ધીએ બોધીએ, શબ્દને શોધીયે, મેલીયે વીરોધ વીકાર બીજા
પલકમાં ખલક આ જગત જાતો ગણ્યો, નામ ઉપાશીતે નામે રીઝયા ॥ ૨
સમ દ્રષ્ટી કરે પ્રપંચને પરહરે, શબ્દ સાચા વરી સતગુરુ કેરા,
અજર જ્યારે જરે, અવીનાશને ઉચરે, ત્યારે ઘાટના મેલવા સર્વે ઘેરા ॥ ૩
હું તું જ્યારે ટળે, શીશ દઇ ગુરુને મળે, દાસ થઇને રેહે દીન ભાખી
કહે રવીદાસજી નામ નીશ્ચે ગ્રહે, થઇ રહ્યા આધીનને આપું નાખી ॥ ૪

પદ ૨૦૯ વસંત

કોઇ મીલે સંત ઉન દેશકા, વાકું પુછું શબ્દ નીજ રહસ્યકા ॥ ટેક ॥
સંત મરાલહે ધીરવાન, તોય છોડ કરે પય પાન
મુકતા ફલકા કરત અહાર, રહેન અહેનકા સહેજ ઠોર ॥ ૧ ॥
પૃથ્વી અંબુ તેજ પવન આકાશ, કાયા કહાં વસત વાસ
ન્યારે ન્યારે બતાવુ ઠોર, મેં પુછતહું કરજોઉ જોડ ॥ ૨ ॥
મન પવનકા ઠામ ઠાએ, ચંદર સુરજ કહાં બસત આયે
દોઉ મીલ કહાં હોત એક, મોહી કૃપા કરી કહો વીધ વીવેક ॥ ૩ ॥
કહાંહે બુંદને કહાં હે નાદ, કહાંહે અંત ને કહાં હે આદ
મધ કહાં કહાં વસ હોય, મહેરબાન બુઝાવો મોય ॥ ૪ ॥
નાદ બુંદકા સાક્ષી કોન, કહાં વસે શબ્દ કહાં હે સુન
કહાં બાજત અનહદ તુર, કહાં ઝલકત હે અખંડ નુર ॥ ૫ ॥
નુર તુર જહાં નહી સુન, સો બોલત હે કે રહત મુન્ય
રવીદાસ સોઇ સત નામ, પંડ બ્રહ્માંડસે રહીત રામ ॥ ૬ ॥

———:o:———

પદ ૨૧૦ વસંત

એસો અખંડ વસંત રમે સંત સુજાણ, મુખી વીવેક વેરાગ જાન ॥ ટેક ॥
ધર્મ શીલ ભેર અભંગા, મગન રહે નીત હરી સો રંગા
વીવેક આગળ શોભે સોય, એ સખા સમોવડ નહી કોઇ ॥ ૧ ॥
પ્રેમ પ્રથમ સત સંતોશ, રમતા પરખન વ્યાપે શોષ
પાંચ પચીસમાનાઇ હાર, પકડી મન લીગો હે માર ॥ ૨ ॥
મોહ રાજા ઓર કપટ કુર, સેના સહીત નીકારે દુર
ગુરૂ શબ્દકા ગઢ ચોગીં ફેર, આવન ન પાવે અહંનેર ॥ ૩ ॥
શોભે અતી અનહદ રાય, સુખકા સીમા કહી ન જાય
વાજીંત્ર વાજે અનંત શોર, હારે સખીયો ચાલી સબલ મન દોર ॥ ૪ ॥
ક્ષમા દયા સુમતી પ્રતીત, શાંતી જરણા પ્રીતી રીત
સબ સખી મનમેં સુરતી સાર, પ્રેમ પડત લીગો બેહ આગર ॥ ૫ ॥
છાંટત અબીર દળીસો ગુલાલ, ઉડાવે સુંદરી થઇ અપને હાલ
સુખમણા સાથી દીની દોટ, કીની સુખમણા લોટ પોટ ॥ ૬ ॥
સુરતી સુખમણા મીલ્યો હે તાર, અમૃત વરખે અખંડાધાર
બાહેર ભીતર દેખ્યા બંધ, દર્શા દરીઆ શબ્દ અંબ ॥ ૭ ॥
જીતી સકલ સુરત નીહાર, સહીત સાહેબી શબ્દ લહાર
નીરાલંબ આનંદ જાહી, ટોળો સકલ મીલ સમાય ત્યાંહી ॥ ૮ ॥
આપા મીટયા તબ રહ્યા આપ, સમ્યા નામમે સબહી વ્યાપ
રવીદાસ ગુરૂ શબ્દહી સાર, થકે વેદ વાણી ઊચાર ॥ ૯ ॥

નાભી પવન અસ્થાન, મન અષ્ટદલ કમલ માહી
ભ્રકુટી વાકા સ્થાન દો મીલ વહાં સમાહી
શબ્દ શુન્નસે ઉઠતહે, ફીર શુન્ન સમાઇ
નાદ લીન ભયા બીંદમેં, બી દ નીરંજન રાય ,, ॥ ૨ ॥
પંચ તત્વ વીષય, મલી કરી જીવ કહાયો,
દેહ ઇંદ્રી મન પ્રાણ, માન માહી બંધાયો
સોહં બ્રહ્મ અગાધ હે રે, લીપે ન છીપે સોય
ઘટ ઘટ પ્રગટ રમી રહ્યા, ચીને વીરલા કોય ,, ॥ ૩ ॥
જીવકી શકતી અજ્ઞાન, શીવકી શકતી માયા
એ દોનુતે ભીન્ન, અખંડ અદ્દૈત અજાયા
જીવ શીવ કેવાય નહી, હમ તુમ નહી કોઈ હામ
ત્ર્યંત્રિક પદ પરમાતમા, નીરાલંબ નીજ ધામ ,, ॥ ૪ ॥
એ સદગુરૂકા દેશ, નીગમ નેતી કરી ગાવે,
બ્રહ્મા વીષ્ણુ શેષ મહેશ, કોઈ પાર ન પાવે,
નીજાનંદકો અનુભવી, નામ રૂપ કો નાશ,
બ્રહ્મ મગન હોઇ બોલીયા, અણુછતા રવીદાસ ,, ॥ ૫ ॥

———:—:———

પદ ૨૩૪ રાગ—પંજાબી

જીન કાયા બ્રહ્મસે ભેળા, સદગુરૂ મેરા હોજી ॥ ટેક ॥
નીશ્ચલ પદકી નીરભે પાઈ, સુરતી અગલ બગલ ન જાઇ,
સદગુરૂ શબ્દે દીયા બતાઇ, મનકુ ઘેરા ॥ જીન ॥ ૧
મુળ કમળકુ બહોત દબાયા, ધીરે ધીરે પવન ચઢાયા,
ઉલટા કમળ સોઇ સુલટાયા, હરદમ હેર્યા ,, ॥ ૨ ॥
કામ કમલ હે ખટદલ જેસા, તામે જાઇ કીયા પરવેશા,
આગે અજરાચેલકો દેશા, ચઢાયા સવેરા ,, ॥ ૩ ॥
નાભી પશ્ચીમસે પરવરીયા, ધરકુ લઈ અધર પર ધરીયા
ઉગ્યા અરકને અમૃત ઝરીઆ, નાભકા નેરા ,, ॥ ૪ ॥
સુન શીખર ધઢ દીયા અસ્થાના, બાજે અનહદ શબ્દ નીશાના
ઝંડા રોપ્યા મુકત મેદાના, ડગે ન ડેરા ,, ॥ ૫ ॥
જાહેર ખોજ કોઇ જોગી પાવે, શીખર ચઢેકી સાન બતાવે
તાકુ રવીરામ શીશ નમાવે, ભાણકા ચેરા ,, ॥ ૬ ॥

———:o:———

પદ ૨૩૫ હોકકા—રાગ પંજાબી.

મેરા સદગુરૂ હે સરવંગી, હોકા પીવેજી ॥ ટેક ॥
પ્રથમ શ્રીફળ પંડ પ્રમાણ, માથે મેરૂ તણા મંડાણ
નીચે પીવે તુર નીરવાણ, સતકા સંગી ॥ મેરે ॥ ૧ ॥

———:o:———

પદ ૨૪૯

સુન અનહદ ગડહડે, સંતો પાયા ભેદ અગાધ ॥ ટેક

સાન બતાઈ સતગુરૂ સહેજમાં, મુજ પર કીની મેહેર,
ચડી ખુમારી ન ઉતરે, આગે પ્રેમ કેરી લહેર ॥ ૧

નાભીસે સુરતાચલીં, સુનમે કીયો મુકામ
પશ્ચીમ ઘાટથી પરવરી, નીરખ્યા નીરગુણ રામ ॥ ૨

આસન હે અનંત ક્રોડકો, તખત ત્રીવેણી તીર
વહાંસે ભેદ ન્યારાં રહે, ઉગ્રજ્ઞામ સુખ શીર ॥ ૩

જોત જલી બીંબ જલહળે, વરસે અમૃત ધાર
ઘાટ અમીકે ઉપરે, પીવે મન મતવાર ॥ ૪

દ્વાદશ પાર પરીબ્રહ્મ હે, નીરખ્યા નીરગુણ સંગ
અણુછતા રવીરામ ઉચર્યાં, સંત મલ્યા સરવંગ ॥ ૫

———:o:———

પદ ૨૫૦ કટારી

સો સાલે નીશદીન રે, મોહી લાગી પ્રેમ કટારી ॥ ટેક

એસી લાગી સતગુરૂ શબદકી, ખુંચી કલેજા માંહી
નીશ દીન પીડા હોત હે, ઘર આગણુ ન સુહાઈ ॥ સો સાલે ॥

બહોત વેદ ભેળા હુવા, કરતા અનેક ઉપાય
તેમ તેમ પીડા મોહી હોત હે, તન મનકી શુધ નાહી ॥ ૨

જાવો જાવો વેદ ઘર અપને, તુમસે દર્દ ન જાઇ
ઉંડી ઉંડી પીડા મોહી અંતરે, સદગુરૂ દયહે પીડા મીટાઈ ॥ ૩

અવીનાશી સદગુરૂ મીલા, મારન હારો માંહી
રવીરામ અમ્રત પીતહે, લહેરમેં લહેર સમાઇ ॥ ૪

———:o:———

પદ ૨૫૧

દેખો ખેલ ગુરૂ અજબ, નાથ નીરંજન હે ન્યારા ॥ ટેક

કોણુ તેરી માત કોણુ તેરા પીતા, કોણુ પુરૂષ કીસકા ચેલા ॥ ૧

સત મેરી માતા ધર્મ મેરા પીતા, આદી પુરૂષકા ચેલા ॥ ૨

કીસ બીધ કરીએ સુમીરન સેવા, કેસે કટે કર્મ મેરા ॥ ૩

શ્વાસો શ્વાસે કરલે સુમરણુ, કટે કર્મ બંધ તેરા ॥ ૪

કહે રવીદાસ સતભાણુ પ્રતાપે, સો સાહેબ સતગુરૂ મેરા ॥ ૫

———:o:———

પદ ૨૫૨ ચલતી

—:o:—

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંધર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે • ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકા તીરા
ગગન ગુફામાં ભીંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સઇયા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળ ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે છુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

—:o:—

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયારે, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીરે ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

—:o:—

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

આરે પાંજરીયું તારૂં અજબ બન્યું છેરે
પડતા નહી લાગે એને વારરે જીવે રામ
હરી ગુરૂ સંતની સેવા ન કીધીરે
ખાસો તમે જમ કેરો માર રે જીવે રામ ॥ ૧ ॥
સુકે સરોવર હંસા કે દીયે ન બેસતારે
માન સરોવર જેનો વાસરે જીવે રામ
ઇરે હંસાને ચારો મોતીનો સોઇયે
અવર નહી દુજો આહાર રે જીવે રામ ॥ ૨ ॥
સુરતા સોહાગણુ ચઢીરે ગગનપર
તરત સંધાંણા એના તારરે જીવે રામ
એરે દોરી મારી કેદીયે નતુટે રે
હલકા છે એના બોજરે જીવે રામ ॥ ૩ ॥
ઇરે રોજી મારી કબહુ નહી ખુટેરે
દીધેલ દીન દયાળ રેજીવે રામ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે

ચંદ્ર ચકોરને પ્રીત બંધાણી બંદા, ચંદો વસે અસમાનરે
દેહ ઉલટાવે તોયે દ્રષ્ટી ન પલટે, જેના નેણામાં ધુરે એ નીશાનરે ,, ॥૩॥
જળ શેવાળને પ્રીત ઘણેરી બંદા, મન વસે જળ માંય
સુક ગયા નીર ત્યારે પ્રાણ વસુટયા, જો જો પ્રીત કર્યાના પરમાણારે ,, ॥૪॥
ઉડ ગઇ રજની ટળી ગયા તીમીર, તોય ન મટયા અભીમાન
કહે રવીદાસ સત ભાણ પ્રતાપે, સ્વપનુ સંસારીયો જાણુરે ,, ॥૫॥

———:૦:———

પદ ૩૦૮ રાગ પરજ

કોણે દીયા ઉપદેશ હુવા પ્રકાશા, એમ ગાય વાણીને વેદ
સતગુરૂ સાચા જેણે દીયા ભેદ અભેદ ॥ ટેક ॥
નાભી કમળમેં મુળ વચનહે, મુળ વચનમાં બ્રહ્મ
બ્રહ્મમાં ત્રણગુણ રહ્યાછે, બ્રહ્મા વીષ્ણુ મહેશ ચોથા શકતી ॥ ૧ ॥
સત રમત માંથી રણુંકાર થયો, પ્રગટયા પાણીને પવન
પવન માંથી એક પુરૂષ પ્રગટયો, ગયાં ગગનની માંય,
અવીનાસીને દેખ્યા, દેખ્યા બાળે વેશ સત ગુરૂસાચા ॥ ૨ ॥
ત્રીપુટીની તખત ઉપરે જલતી જ્યોતી અખંડ
ઇંગલા પીંગલા આવે ન જાવે, આનંદ મળે અપાર
સુખમાણાની સંગે નટવર નકળંક વેસ, હુવા પરકાસા સતગુરૂ સાચા ॥ ૩ ॥
રવી કહે મને રંગ લાગીયો, લાગ્યો ગુરૂજીની સાથ
ગુરૂ હમારા અજર અમર હે, આદી પુરૂશ અવીનાશ
નાસ નહી તેનો હુંતો નીરખુ પદ નીરવાણ સતગુરૂસાચા ॥ ૪ ॥

———:—:———

પદ ૩૦૯ રાગ જોગીયો

જોગીઆ સોઇરે ગગનમે વાસા, સહજ સુનમે કીન પ્રકાશા ॥ ટેક ॥
આસન અધર જુગત રહે બેઠી, પંચહી રંગકી જલેહે અંગીઠી ॥ ૧ ॥
તાત્તા પીવે તપત બુઝાવે, અનીલે નાવે શીતળ પાવે ॥ ૨ ॥
આવે ન જાવે સોવે ન જાગે, તીન લોક જોગી ભીક્ષા માગે ॥ ૩ ॥
લીન અલીન ભેળા નહી ન્યારા, જોગીયાકી ગતી અપરંપાર ॥ ૪ ॥
આપ અકર્તા કરાવન હારા, રવીરામ જોગી સચરાચારા ॥ ૫ ॥

———:૦:———

પદ ૩૧૦ રાગ જોગીયો

જોગીયા સોઇરે નીરંતર બોલે, નવરા ન રેવે થકે નહી ડોલે ॥ ટેક ॥
જેસા જાગ્રત્ત તેસા સુપના, આપે આપ લખ્યા સબ અપના ॥ ૧ ॥
પાંચ પચીસ એકો નહી ધ્યાવે, ઉઠત શબ્દ સો ઉલટ સમાવે ॥ ૨ ॥

એક બ્રહ્મ હોઇ કરે ઇર્ષા, ચેતન છાનારથા ઉનકા
કથા પરગટ પણ પરખ ન આઇ, ગુસ્સે હોઇ કરે ધમકા ॥ ૪
જુગત જગતમે ભગતમે ભકતા, એહી મરમ પરમાતમકા
કહે રવીદાસ સત શબ્દ પકડો, સબ જલજાય અંકુર કર્મકા ॥ ૫

———:o:———

પદ ૩૧૭ રાગ પરજ

સાચ્યા સદગુરૂ જેણે વરીયા, આન દશા નર કયું જાવે ॥ ટેક
ધણી આગન જો સોધે નરેડી, શબ્દ તાપ સદગુરૂ તાવે
સહે શબ્દ ગ્રહી ટેક ન છોડે, સો સદગુરૂકે મન ભાવે ॥ ૧
સદગુરૂકુ સાહેબ કરી જાણે, ભેદા ભેદ મન નહી આવે
સો શીષ સહી સીધાંતમે સમઝે, પરમ પદ સહેજે પાવે ॥ ૨
શબ્દ ચુકે સદગુરૂ કેરા, ગાફલ બહુ ગોથાં ખાવે
સો વરસકી કમાણી પરલે, પડે નર કયુંગીતા ગાવે ॥ ૩
નરનારી મીલ સદગુરૂ સેવો, આજુગકો ફેરા ફાવે
ભાણુ સદગુરૂ નેજાધારી, ઉનકા બાળક રવીદાસ કહાવે ॥ ૪

———:o:———

પદ ૩૧૮ રાગ પરજ

નીરાધાર નીરગુણ નીરવાણી, નીરાલંબ સદગુરૂ મેરા ॥ ટેક
ઉષ્ણશીત વ્યાપે નહી જાકું, કરતાહે સબહી કેરા
સમ દ્રષ્ટી શીતલતા સબસે, પ્રીત ન કરહીનહી નેરા ॥ ૧
ઇગલા પીગલા સુખમના ઘરમે, ઘટ દેખત હુવા નેરા
અણુલંગી અખંડ અવીનાશી, નીરખત તે નર હે ફેરા ॥ ૨
ગગન ગાજે અનહદ વાજે, સુનતાહે સુરતી ચેરા
બીના આકાશ બાદલ બીન વરસે, હીરા માણેક મોતી ઢેરા ॥ ૩
સપ્ત પુરીકે પાર પરમ તત, હરીજન વીરલે હેરા
કહે રવીદાસ વસ્તુ સબમાંહી, સમજે ઘટ સગલે સેરા ॥ ૪

———:o:———

પદ ૩૧૯ રાગ પરજ

સુરતા સખી જેની ચઢી અસમાને, આપ વાત સદગુરૂ જાને ॥ ટેક
પરઘર કેરૂં નહી પ્રયોજન, કયા વાંચુ પરગટ પાને
મનહી માહી મન સમઝાના, સો મુજરા મેરામ માને ॥ ૧
ગુપ્ત સુમરણ ગુપ્ત ગોટકા, કરીયે કોઇ ન સુણે કાને
બાહેર ગાવે ભીતર અંધેરા, લહે કયું આવે બીન ધ્યાને ॥ ૨

પલ પલ મેરા પીયુજીકું નીરખું, ખંડત નહી દીવસ રાતું
તીન ભુવનકા અજવાળા, અહોનીશ વરસતે સ્વાંતુ ॥ ૩ ॥
પ્રેમ ગલીમેં મેરા પીયાજીકું પામી, અનેક સુર તણી કાંતું
પાપ પુન્ય મટી ગયા સખી મેરા, ભુલ ગઇ સરવે શ્રાંતુ ॥ ૪ ॥
તાલી લાગી ભ્રમણા ભાગી, તારે તાર મીલ્યા તાંતુ
કહે રવીદાસ સખી સદગુરૂકા, મન ન દોડે અબ ધાતુ ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૪૧

મુખ કહું તો મહાસુખ હોવે, જ્યાંથી ઉપજી મન વાણી ॥ ટેક ॥
પ્રથમ આદ ગુરૂ અવીગત એકલા, નહી સ્રષ્ટી મન મંડાણી
પ્રકૃતી પ્રાણુ પીંડ નહી વાણી, ન ઉપજે પવન ને પાણી ॥ ૧ ॥
સહેજ સુનથી હંસ પ્રગટીઆ, પ્રાણુ થકી મન ને વાણી
વાણી મનમે મન પ્રાણુમે, પ્રાણ અલખમે અલપાની ॥ ૨
જહાંકા ઊપના તહાં સમાયા, જેણે સાન સદગુરૂકી જાણી
ગોકી જાત જણાય જુજવી, દુધ દેખો એક દર્શાની ॥ ૩
જયારે રવી શશી ઘર આયા, એ પહોચેકી પરવાની
પવન ગગનમે રહ્યા સમાઇ, ઉનમુનીએ ઠેરાની ॥ ૪
નીરખ્યા નીરગુણ નાથ નીરાલંબ, વસ્તુ પુરાતનકી માણી
સદગુરૂ કહે રવીદાસ સમજ લે, વીન સમજે ફીર હે હાંણી ॥ ૫

———:o:———

પદ ૩૪૨ રાગ પરજ

મતકર નીદ્રા જીવ અભાગી, થોડા જીવન સારૂ કયા સોવે ॥ ટેક
મનખા જનમહે રતન પદારથ, એહી જુગત ફીર નહી હોવે
હરી ભજ્યા વીના ધીક હે જીવના, કયા મનખા એજે ખોવે ॥ ૧
સાહેબ સુમરન સાબુ છોડકે, કાદવ કપડા કયું ધોવે
હરી સાગરકું દઇ પાગથી, ખાબોચીયામાં કયું ડોવે ॥ ૨
મુકતા ફળકા ખેત છોડકે, જવાસ તરણા કયું ટોવે
અંબ સરીખા અમૃત પરહરી, થડ થોવરકા કયુ બોવે ॥ ૩
અનભે સરખા અનંદ છોડકે. કરમ ક્રીયામે કયા મોવે
અચ્છા નીર ગંગાજળ કેરા, મુતે મુખડા કયા ધોવે ॥ ૪
એહી શીખામણ સમજુ જનકું, મુરખ મનમે નહી ગોવે
કહે રવીદાસ ભાણુ પ્રતાપે, કરમ કાળ ધોખા ધોવે ॥ ૫

ભ્રકુટી કમલ પર જ્યોત સરૂપી, જીન ઉપર પદ નીરાશા
નીગમ શાસ્ત્ર અનુભવી વીચારો, ભાન ચરણ કહે રવીદાસા ॥ ૪ ॥

———:—:———

પદ ૩૩૫ રા.ગ પરજ

પંડ ખોજા વીના પાર ન પાવે, કયા પઢતા પુસ્તક માંહી ॥ ટેક ॥
નીરભે પદકા નહી નીવેડા, પાખંડ કર પરલે જાઇ
દમડી કારણુ દે પરમોદા, પેટ ભર્યાકી પંડીતાઇ ॥ ૧ ॥
ખટ શાસ્ત્ર ઓર પુરાણુ અઢારા, ભાગવત ગીતા ગાઇ
કહે અદ્વૈતા કર્મ કરે ન ચીંતા, સો નર નરક પડે જાઇ ॥ ૨ ॥
લગે લોભકે લોક સુનાવે, દેત દોટ બીન ધીરજ ભાઇ
બીન વીશ્વાસ સ્વાંગ ધર જુલે, અ તકાળ જમ પુર જાઇ ॥ ૩ ॥
જેસે મસાલચી મસ્ત તેલ ભર, પગડી મસાલ ઉભા આઇ
આપ ઓરનકું કરે અજવાળા આપ અંધેરે અંતરાઇ ॥ ૪ ॥
કાજી કુરાન કીતાબ વખાણે, નીવાજ પંચ વખત જાઇ
સાંજ પડે તબ છુરી ચલાવે, ગુરૂગમ વીન હે ધુમરાઇ ॥ ૫ ॥
કાયા કમાયા બીન કથની કથતહે, મુરખ મનમેં મરડાઇ
કહે રવીદાસ સત નામ ચીન્યા વીના, અંધા આડા અફલાઇ ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૩૬ રાગ પરજ

સુન પરદેશી વચન હમારા, જુગસે પ્રીત કભુ નહી કરના ॥ ટેક ॥
જુગસે પ્રીત કીયે બહોત પસ્તાવા, હરી ભજન હરદે ધરના
કરલે બંદગી સબ છલ છાંડી, ગુરૂ શબ્દ હીરદે ધરના ॥ ૧ ॥
રામ હે તેરા તુંહી રામકા, રમતા રામ તારણુ તરના
સદગુરૂ શબ્દે લગે સમાધી, પદમાસન કુંભક કરના ॥ ૨ ॥
હો અસ્વરા ઉતર ભવ પારા, નુરતે નીરખ ગુરૂ પદ રચના
પુરવકી ગંગા પશ્ચીમ ઉલટાઇ, ભીંજત પૃથ્વી ગગન ઝરના ॥ ૩ ॥
શુભ પ્રકાશ સબ ઘટ વાસા, ત્રીગુણ કાલકા નહી ઉરના
રવીદાસ પહોચે ઉન દેશા, પાવે સત પુરૂશકા ચરના ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૩૭ રાગ પરજ

ઘરઘર પ્રીતસે હોવે ખુવારી, કરસાચા સદગુરૂ સજના ॥ ટેક ॥
રાગ રંગ સબ હરી વીન જુઠા, તાણાતાણી સબહી તજના
લે સરણા સતગુરૂ સંતકા, દીયે ભેદ ગગનુ ગરજના
યે તેરા મન કર ગુરૂ અરપન, અમૃત વચન સંતકુ સજના
કુલ મરજાદા છોડ પસારા, દુષ્ટ લોકસે નહી લજના ॥ ૨ ॥

માત પીતા ભાઇ બેન ભાણેજા, એક બની હે ઘર દારા
એક જનુની જનમ જનાયા, એસા જુગ નીરધારા ॥
સ્થાવર જંગમ કીટ પતંગા, જકુતનકા સબ લારા
કહે રવીદાસ એ મનકી બાજી, તાપર પદ અપરંપારા ॥

———:o:———

પદ ૩૪૬ પરજ

દેખો માયા બહુ બળવંતી, પંડીત પરગટ કર જોડે ॥ ટે
રાજા રંક ફકીર જોગી, માયા દેખી સબ કોઇ દોડે
જ્ઞાની ધ્યાની સબહી માહી, સબહી લીયા ચડતે ઘોડે ॥
અબોલ મુની આસન ધારી, દેખી મહોર મુખહી મોડે
ધન આયા જબ ધીરજ નાહી, એસા તાન માયા તોડે ॥
સરૂપ નારી શોભાવંતી, હરીફને મારે હોડે
કઇ નરપતી નજરમેં લુંટયા, લઇ ખપર માયાં લોઢે ॥
સદગુરૂના બાળક આગળ, માયા કામ કરે કોડે
કહે રવીદાસ સોઇ સંત સીરોમણી, માયાકા બંધન ત્રોડે ॥

———:o:———

પદ ૩૪૭ પરજ

ચરણ ગ્રહ્યાં જેણે સદગુરૂ સાહેબનાં, ત્યાંથી જમડા રહ્યા હારી ॥ ટે
કરણીનો કોટવાળ બેઠો કાયામાં, નામની નોબત વાગી ભારી
ઉલટી ફોજ એક ચડી ગગનમાં, જઇ બેઠી દશમી બારી ॥
નવ દરવાજે નાંગળ નાંખ્યા, વસકીની વસ્તી સારી
ઉસ નગરીકો રાજા પકડયો, તુરત સુરતસે ઘર નીહાળી ॥
શીલ સંતોષ આઇ બેઠા કાયામેં, દોટુ દીયો ત્યાં દયા નાહી
સુખમણા નારી સેજ બીછાવે, ત્યાં નહી લાગે લોભની લારી ॥
રવી ઉપરે રહ્યા અજવાળા, ત્યાં ન ચલે ઓરની કારી
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સોઇ સંતનકું બલીહારી ॥

———:o:———

પદ ૩૪૮

જાગો મન તમે ચેતો આતમ રામ, દેખો નજર પાછળ ફેરી
ઘડી ઘડીના ઘડીયાળા વાગે, કાયાનો ઘટ તારો લેશે ઘેરી ॥ ટે
માતા પીતા તારા કુટુંબ કબીલો, બેની બંધવ સુતની ઘેરી
તેમાંથી કોઇ સંગ નહી ચાલે, નહી ચાલે ઘરની નારી ॥
દશ દરવાજા બંધ કરી લેશે, ચોપદાર ઉભા તારો ચોક ઘેરી
પુન વીના કોઇ પાસ નહી આવે, કોણ કરે વહાં તેરી ॥

પદ ૩૪૯ પરજ

સુણુ એ સુંદરી તેં સબ જુગ ધુતા, મેં સદગુરૂકા અડગ પુતા ॥ ટેક
તેરા માન મોહ નહી મોપે, સહેજ સુન ઘર જઇ સુતા
તીન ભુવનમાં તું મારે તરફોડા, મેં સત શબ્દે રહું રતા ॥ ૧
તેરા માન ત્યાં તેરા પસારા, કરે ચતુરાઇ નાતા ગોતાં
આછા ચોકાને મન મલીના, તા ઘર જઇતું દે ડોટા ॥ ૨
ફોગટ ફુલ્યા ને ભ્રમણાંએ ભૂલ્યા, જમ કીંકરસે જઇ જુતા
અદ્વેત બ્રહ્મકી ખબર પડયા વીન, ખરી વસ્તુમાં જઇ ખુતા ॥ ૩
જાણુ બુઝકે તુજમે વળગ્યા, વીણુ કીયાયે જ્યું કુતા
આ કાળામેં ભોગ કરીને, જઇ સરજે જંગલ ભુતા ॥ ૪
ભાણુ સદગુરૂએ ભેદ બતાયા, મલીયા અવીનાશી અવધુતા
કહે રવીરામ પુરા ગુરૂ પાયા, સબઘટ દેખું એક તુંહી તુંહીતા ॥ ૫

———:૦:———

પદ ૩૫૦ પરજ

દેખો ફુલ ફકીર વેરાગી, કેસા ખેલ મચાયા હે ॥ ટેક
મુળ કમળકું દ્રઢ કરી બંધ્યા, પવન ગગન પર છાયાં હે
નાભી કમળ બીચ કીયા નીવાસા, સોહંતાર મીલાયા હે ॥ ૧
સુખમણા સાસ અજંપા દોરી, બીન બાદલ બરસાયા હે
ચમકે બીજ મોતી ઝડ લાગી, દીલ દરવેશ દરશાયા હે ॥ ૨
ઇંગલા પીંગલા સુખમણા સાધી, ગંગ જમન બીચ આયા હે
ત્રીકુટી સંગમ તાર મીલાયા, નીર્મલ નીરે નાયા હે ॥ ૩
જળહળ જ્યોતી અખંડીત ઝળકે, અનહદ નાદ બજાયા હે
બ્રહ્માંડ ફોડકે આયા મેદાના, તકીયા એક ટેકાયા હે ॥ ૪
તુર તુર જ્યાં કછુ એ નાહી, મહાપદ મન બંધાયા હે
કહે રવીરામ સદગુરૂ જેસા, નામ અનાદી પાયા હે ॥ ૫

———:૦:———

પદ ૩૫૧ પરજ

નીરંતર દેશ નીરંતર વાસા, નીરંતર નામ હે અખંડ નુરા ॥ ટેક
અબ મેરી સુરતા લગી નીરંતર, સોહે પુરૂપ હે ભરપુરા
નુરત સુરત થકી અરથીર ઘરમે, પાય પદનીજ પ્રેમપુરા ॥ ૧

થકયા અજંપા માહી થકી ત્રીવેણી, થકી સુખમણા તુરીયા થાકી
જબ રૂલમલ પુતના સુત લાહુત, આયુ તપ રહે હરી હજુરા ॥ ૨
અસ્થુલને સુક્ષમ સબસે ન્યારા, પવન પાણી નહી ચંદ સુરા
ધરણુ ગગન કછુ નહી નીશાની, સદા સ્વતંત્ર ગુરૂ હે પુરા ॥ ૩
પુરવી ગંગા પછમ જાય ઉલટી, વાકા પ્રકાશ હે અંબુરા
કહે રવીરામ નીરંતર વાસા, નહી ઘર બીતર નહી દુરા ॥ ૪

———:—:———

———:—:———

પદ ૩૫૯ પરજ

લગી પ્રેમકી ઝડી સખીરી, ક્યુ કર નીકસું મેં બહારા ॥ ટેક ॥
જ્ઞાન દીપક દીલ અંદર દીના, અખંડ હુવા ઊજીયારા
ગુરૂ ગમ ગેબ જડયા ગુરૂ શબ્દે, મીટ ગયા સબ અંધીયારા ॥ ૧ ॥
વૈરાગે વ્રેહ સમી ગયા સબહી, શીતળ અંગ હુવા સારા
શશી ઊગ્યો શીરપર મેરે, પંચ ચોર પકડ મારા ॥ ૨ ॥
જોગ કલા સી જુગલે સાધી, ત્રીકુટી પર ઊઘડયા તાળા
દ્રઢ કર આસન વાળી બેઠે, ઊન્મુનીસે લાગ્યા લહારા ॥ ૩ ॥

ઊલટી સુખમન સાધી સુરતસે, પછમકા ખુલીયા બારા
શશી સુરકું જઇ મીલાયા, તેજ હુવા અપરંપારા ॥ ૪
શસી સુર છોડ ચલીયા, માલમ કીયા મે કરતારા
પરમાતમ પરગટહી પેખ્યા, સદગુરૂ કેરી અણુસારા ॥ ૫
લીંગ વાસના નવ તત્વકી, બ્રહ્મ અગનમે પરજારા
કહે રવીદાસ એસા પીયું મેરા, વ્યાપક હે સચરાચારા ॥ ૬

———:—:———

પદ ૩૬૦ પરજ

લહે સદગુરૂકી વરત અલોકીક, લોક વાદ સબહી જુઠા ॥ ટેક
મોહ નીદ્રા મોહ્યા નર સુઠા, માત ઊદર આયે ગુઠા
ભાતે રસાયા નર ભોદઠ, રોદઠ કયું સાહેબ રૂઠા ॥ ૧
સત શબ્દસુ ભયા પરીપુરણ, મન બુદ્ધી ચીત તોરંગ ઊઠયા
અહંકારે અથડાયા આત્મા, ઠગઠગી લગી ઠરીઆ હુંઠા ॥ ૨
કનક કામનીસે ફુલાયા, સરવસ લઇ ઊનકુ સોયા
બાજે બજાવે લોક રીઝાયા. ચીને વીન નહી હરી ત્રુઠા ॥ ૩
હરદમ હેર પરખલો પ્યારા, જીભ્યા હાલત નહી હોઠા
રવીદાસ સમ્યા સદગુરૂમેં, વ્યતીરેક પદ નીજ વૈકુંઠા ॥ ૪

———:o:———

પદ ૩૬૧ પરજ

દેખો પરપંચ અંધક બંધક, જત મત શત સબહી ભાગા ॥ ટેક
સદગુરૂકી દ્રઢ ભકતી ચુકયા, મન અવીદ્યામેં જઇ લાગ્યા
કંચન કેવળ નામ પરહરી, પાખંડ પીતળસે મન લાગ્યા ॥ ૧
દંભે આઇ દેરા દીના, અરડ મરડ કુબુદ્ધીકા કાગા
માન બડાઇ ઇરખા ઊભી, સત પુરૂષકા રૂકા માગ્યા ॥ ૨
મતલબ માયામેં આશકતી, દુબધાકા ડંકા વાગ્યા
મહાનુભાવકા શબ્દ શુણતહી, દેહા ભાવ તત્વ ત્યાગ્યા ॥ ૩
અસ્ત્રીસે પ્રીત જુત હોઇ ભમતા, ધનસે પ્રીત અવતરે નાગા

છતે પંડકા હે દેદાર, શીરપર દેખો સરજન હાર
એસા ભેદ લહો તો ભે ભાંગે, નહીતો વાત પડીછે ઠાગે
મત પાખંડી ખટપટ આચારા, સત રામ વીના સબ જુઠ પસારા॥ ૩૦ ॥
પ્રેમ અગનીમાં તન જારો, વેરાગમાં વસ્તુ વીચારો
ઉંડા અગમ અગોચર એસા, નીરગુણ બ્રહ્મ નીરંતર જેસા
સદગુરૂ શબ્દે જાગી જુવો, નુગરા પલટી સુગરા હોવો ॥ ૩૧ ॥
ઉંધા કમળ સમ કરી રાખો, ચઇતન થઇ સો રસ ચાખો
આતમ પરમાંતમકું પુછો, સાર શબ્દ વીચારી બુઝો
તંત નામ દીપક કર ધરો, જીવ શીવ નીવેરા કરો ॥ ૩૨ ॥
અજવાળે અંધારૂં ટળે, સંતોષી સાહેબ શું મળે
સત ધરમકી ધારણ ધારો, પાંચ પચીસકું અજરા જારો
રરંકારમાં મન મેળાવે, સાચકે ઘર ન્યાય ચલાવો ॥ ૩૩ ॥
બ્રહ્મ ચીને કોઇ બ્રહ્મ જ્ઞાની, ગુરૂમુખ બોલે અમૃત વાણી
ગુરૂ સબ્દતેં એકો રેણા, કાયા ભીતર કીંમત કરણા
રૂપ સરૂપી દર્શી દેવા, સુરત માંહી સુરત સેવા ॥ ૩૪ ॥
શીવ શકતીકા નીશ્ચલ વાસા, પાંચ તંત કીયા પરકાશા
સુરત તુરતકી સાન દેરાણી, ઇંગલા પીંગલા સુખમણા રાણી
કોયલ બોલે અમૃત વાણી, તંત વસ્તુ વીરલે પીછાણી ॥ ૩૫ ॥

તારક મંત્ર ત્રીવેણી બોલે, જન પાયા સો કબુ ન ડોલે
બંકનાળ ઘર સોજો સેરા, ઉગે ભાન મેટે અંધેરા
ગંગા જમુના અમૃત ધારા સુગરા પીવે સનમુખ સારા ॥ ૩૬ ॥
જલમલ જોતી વરસે મોતી, નીરખે હંસા જેની નજર પોતી
હર હરી નરખે પરખણ હારા, તીન ગુણસે ખેલે ન્યારા
ટંકશાલ પર ઘડે જે ઘાટા, કોઇક સાજા કોઇક ફાટા ॥ ૩૭ ॥
ઘંટ ગરજે ઓર વાજે તુરા, લાગે ચોટ ભાજે સો કુડા
ખરા ખોટાકી ખબર કરાવે, સો સાહેબ કો લાલ કહાવે
સત સંગતમે સોબત કીજે, તોલ તપાસી ખરા કરીજે ॥ ૩૮ ॥
ઝીણા મારગ ઝીણા દેશ, મન કાફરકા મુંડો કેશ
પછમ દેશ સાચકા મેળા, ત્યાં ચલો ચઇતન થઇ ભેલા
માન સરોવર માણેક લીજે, અમૃત પ્યાલા ભરભર પીજે ॥ ૩૯ ॥
રતનાગરકી લહેર કરારી, ચલબે પંખી પંખ સમારી
તપત કુંડકી છોડો આશા, દેખો હંસા તખત તમાસા
રંગ મહોલમાં દમ દીદારા, આય દેખો હંસાકા દ્વારા ॥ ૪૦ ॥
તરોજી હંસા તારક તીર, આછાં પીયો નીરમલ નીર
સત્ય નામકી નીરમલ જોતી, પેરો હંસા પ્રેમકી પોતી
મમતા રંડી મેલો રોતી, ગુરૂ નીરંજન લેજો ગોતી ॥ ૪૧ ॥
ગુરૂમે ગરક સેરીમે સરક, લાલ કહેસો મરજીવાકા મરક

———:૦:———

દુશ્મન વેરી વશ કર્યાં, સદગુરૂ સંત જાગ્યા
સમશેર ઝડપ્યા સાચરા, કુડા કપટી ભાગ્યા ॥ ૫ ॥
લગ્યા શલ્ય શરીરમાં, વીંધ્યા આરો પાર
ઝીણા કરવા નીમંલા, સોપાયા કીરતાર ॥ ૬ ॥
રરૂંકાર રંગ મોલમાં, આવો તખત બીરાજે
મરજીવા મોજુ માણસે, સાહેબ સાંચ પતીજે ॥ ૭ ॥
સુરા પુરા પરમારથી, સારન કરણી સુધારીયા
શરણા પાય સત નામરા, ઓરે આવી ઉગરીયા ॥ ૮ ॥
ઇંગલા રાણી ઓળખો, પીંગલા પરખો જોઇ
સુખમણા રાણી સહી કરો, સુરતા સેવો સોઇ ॥ ૯ ॥
આસણ રાસી અણુછતા, સદગુરૂ રવીરામ
અનેક સંત ઓધારીયા, લાલ કરે પ્રણામ ॥ ૧૦ ॥

———:—:———

પદ ૧૨

ઘટમાં આતમ રામ જગાય, કુબુધીને કાઢો તો સુખ થાય
જીવ તારો, જનમ મરણ મટી જાય ॥ ઘટમાં ॥ ટેક ॥
મુળ મહેલમાં ગણપતી થાપું, પુજે પરસન થાય
જ્ઞાન તણા ઘોડા શણગારો, ચઢે નીરંજન રાય ,, ॥ ૧ ॥
તેજ તોપમાં હરદમ દારૂ, ગોલા શબ્દ લગાય
ભજન ભડાકા ધરણી ધરકા, કુડ કપટ ઉડી જાય ,, ॥ ૨ ॥
જરણારા જંબુ, શીલ ગલોલા, પ્રેમ પલીતા પાય
મોહ ભરમકા મોરચા ભાંગો, જીત ઘર થાણા થપાય ,, ॥ ૩ ॥
સતકા રાજા સુનઘઢ ચડીયા, સત શમશેર બજાય
કાળ કરોધકું બાંધ પકડલે, કસણી ખરી કસાય ,, ॥ ૪ ॥
હરીકા બંદા છોડો ફંદા, પોંચે દર્શન થાય
નીરાધાર ગુરૂ અંતર જામી, વાકું શીશ નમાય ,, ॥ ૫ ॥
આપું મીટે સાંસા છુટે, સુરાપુરા સાચ કમાય
હુકમી ચાકર, હજુર રેવે, અમર પટો લખાય ,, ॥ ૬ ॥
દયા મહેર સતગુરૂ સાહેબકી, ખાટે સોનર ખાય
લાલ કહે મેં કછુએ ન જાણું, રવીગુરૂ કબીર ગાય ,, ॥ ૭ ॥

———:—:———

પદ ૧૩

સાહેબ નોધારાં ઓધાર, સાંભળો સાધુના પોકાર ॥ સાહેબ ॥ ટેક ॥
સુવરણ મહેલ સુદામાના કીધા, દયાવંત દાતાર
નરસી મહેતાની હુંડી શીકારી, શામળશા સાહુકાર ,, ॥ ૧ ॥

રવી ભાણુ નવાજે ભવ દુખ ભાજે, સુકૃળ ફળે અવતારા
અખંડ મોજ દેવે અવીનાશી, જુગ જુગ જે જે કારા ॥
અમર લોક આદુ સીંહાસન, રામ કબીર શીરધારા
લાલ ચરનમાં ચાકર રાખો, બંદગીદાર તમારા ॥

———:—:———

પદ ૧૭ રાગ આરાધી

સદગુરૂ એસા રંગ રચાયા, તામે પવન પુરૂષ પધરાયા ॥ ટે
જલકી બુંદ વેલ વીસ્તારા, નખ ચખ નેણુ બનાયા
મુખ કમળ નાસીકા દીયા નરકું, શ્રવણે શબ્દ સુણાયા ॥
કામ કરોધકું કેદ કરીજે, મોહ ભરમકું મારા
આશા તષ્ણા કુબુધ્ધી કલ્પના, વેહુ અગ્ની પરજારા ॥
નાભી કમળમાં નરત કરીજે, તન મન જનમ જગાયા
આતમ ઝાડો અલગ કાઢો, એક નીરંજન ધ્યાયા ॥
ગગન ગુફામાં ધ્યાન લગાયા, પાંસુ અજર અજરાયા
પારખ પાયા કુડ મેટાયા, સાચમાં તંત સમાયા ॥
સુન શીખરમાં સાહેબ સાખી, આપો આપ ઉપાયા
અકલ સરૂપ રહે અવીનાશી, નીરાધાર દરસાયા ॥
આપો આપ અલખ લખાયા, આપો એ જસ ગાયા
સતગુરૂ રવીરામ પ્રતાપે, લાલદાસ લવ લાયા ॥

———:—:———

પદ ૧૮ રાગ કેર

ઘનશ્યામ વાલા, તારી મોરલી લાગે પ્યારી
મોહી સુખમણ નારી ॥ ટે
મોરલી ધુન સુન ઝબકી જાગી, ખરી તો લાગી ખુમારી ॥
અકલ કલા તારી વીરલા કોઇ જાણે, ભેદ તમારો છે ભારીરે ॥
જેને ખોજ્યા તાકુ ખબર મીલેગી, દર્શન દેવ મોરારીરે ॥
પુરણ ભાગ જેણે પીયુવર પામ્યા જો, રંગભર રાસ રમાડી રે ॥
લાલદાસ શરણુ તમારી, દર્શન દ્યો દાડી દાડીરે ॥

———:—:———

પદ ૧૯

સમરથ મેં શરણુ તુમારી આયો, રાખો આ સેવક સવાયોરે ॥ ટે
દયાવંત મહેર કરી ગરીબ નવાજરી, આપ સરૂપ ઓળખાયોરે ॥
ઓળો ઓધાર અમને હરીવર તાહરો, પીયાજીનો પાલવ આલ્યારે ॥
સાંઇ મોરા શીર ધણી, મે તેરા ચાકર વાલાજીના વચને વેચાયોરે

રવિ કહે રાખ નાખીએ નૂરત, સુરત સાદય ત્રિકુટી રે ભાઈ.

- ૪૧ -

એવી ઝણણણણ ઝાલરી વાગી રે,
મેં તો જોયું તખ્ત પર જાગી રે,
મને સંત મળ્યા સોહાગી રે, એની મધુરી શી મોરલી વાગી રે !
મુખ કમળથી ઉપડીને હૃદય કમળમાં બોલે,
નાભિકમળથી મારી સુરતા ચાલી, ઊભી ત્રિવેણીમાં ડોલે રે.

સતનામ ઘોડો શણગારીઓ, અલખની કરી લગામ,
ચાંદો સૂરજ બેય પાવડે એનો ચડનારો ચતુર સુજાણ -રે.
ગગનમંડળમાં ગોખલો, નર સૂતો નિરધાર,
ત્રણ પુરુષ એની સેવા કરે, રામ કબીર રણુંકર -રે.
સદ્દગુરુએ અમને ઉરમાં લીધા, માર્યાં મોહનીનાં બાણ,
વિચાર કરો તો વેદ ન જાણે, ભીતર પ્રગટ થયા ગુરુ ભાણ -રે.
સોહં સોહં તારા ઘટમાં વસે, ચુરતાં કરે એની સેવ,
ભાણપ્રતાપે રવિદાસ કહે, મને મળિયા નિરંજન દેવ -રે.

- ૪૨ -

રામ નામનું સુમીરણ સાચું, કાચું નહીં લગાર રે ભાઈ,
સહસ્ત્ર ફેણે શેષનાગ જપે છે, રસનાએ રંકાર રે ભાઈ.
વિશ્વાસે વિશ્વંભર ભજીએ, તજીએ લોકની લાજ રે ભાઈ,
અંબુ પર અર્ધ અક્ષરે, પથ્થર બાંધી પાજ રે ભાઈ.
અજામિલ ગજ ગણિકા, ગોવિંદે તારી કાઢયાં તીર રે ભાઈ,
દ્રૌપદીજીના પલમેં પૂર્યાં, નવસે નવ્વાણું ચીર રે ભાઈ.
ઊઠતાં રામ કહે બેઠતાં રામ કહે, ચાલતાં રામ સંભાર રે ભાઈ,
સોવત રામ, જાગત રામ કહે, સદ્દગુરુ શબ્દ વિચાર રે ભાઈ.
સતજુગ ત્રેતાજુગ જગ્ન, દ્વાપરમાં આચાર રે ભાઈ,
કળિયુગમાં રવિદાસ કહે, હોવે નામ થકી નિસ્તાર રે ભાઈ.

- ૪૩ -

સુણોને સંસારી રે, સંતજન કહે શાસ્ત્ર પોકારી,
મનુષ્યદેહ તે જનમ, ઉત્તમ દેવને દુર્લભ જેહ.
ગુરુ ગોવિંદ ભજીએ સંતને, સેવાએ સંત શિખામણ એહ.
પાપનો નહીં પાર જીવને, મૂર્ખ માંડી શું કહું ?
પ્રાયશ્ચિત્ત તો મન વચન કર્મે કરે, કર્મ મળીને સહુ.

૧૬. ભજન

(રાગ : ઘૂમતા પધારો ગણપતિ)

અષાડીલા મેઘ મંડાણા રે, અમારા શહેરમાં.
અષાડીલા મેઘ મંડાણા રે, અમારા શહેરમાં...ટેક.
ચારે દિશાયું થઈ, ધંધુકારી વાલા.
પુરાણી પવન ફૂંકાણા રે, અમારા શહેરમાં....અષાડીલા.
ઝબક ઝબક કરે છે રે, વીજળી વાલા.
અનહદ ગાજ સંભરાણા રે, અમારા શહેરમાં....અષાડીલા.
જહાં રે જોઉં ત્યાં, પાણી ને પાણી વાલા.
જગતનાં બીજ ખોવાણાં રે, અમારા શહેરમાં....અષાડીલા.
ગુરૂના પ્રતાપે બાલગીરી કે છે વાલા.
સતગુરૂ એક દરશાણા રે, અમારા શહેરમાં....અષાડીલા.

૧૭. ભજન

(રાગ : ઘુમતા પધારો ગણપતિ)

સત્‌ગુરૂ માંડવે પોખાણાં, અમે તો જ્યારે.
સત્ત્‌ગુરૂ માંડવે પોખાણાં, અમે તો જ્યારે.....ટેક.
ઈંગલા પિંગલા, મોતીડે વધાવે વાલા.
સુષ્મણા સે પ્રેમ દરસાણા, અમે તો જ્યારે.... સત્‌ગુરૂ.
મધુરા મધુરા વાજા રે, વાગે વાલા.
અનભે ઢોલ ટીપાણાં રે, અમે તો જ્યારે..... સત્‌ગુરૂ.
સર્વ સાહેલીઓ, મંગળ ગાવે વાલા.
અમી કેરા છાંટણા છટાણાં રે, અમે તો જ્યારે.....સતગુરૂ.
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે વાલા.
નિજ ઘરે જઈને ઠેરાણાં રે, અમે તો જ્યારે..... સત્‌ગુરૂ.

૧૮. ભજન

(રાગ : ભમરીયા કૂવાને કાંઠડે હો રાજ)

સુણ સાહેલી મારી વાતડી રે લોલ, જોઉં મારા સત્‌ગુરૂની વાટ રે.
મળે સત્‌ગુરૂ લાવ લીજીયે રે લોલ....ટેક.
વૈરાગ્ય સાવરણીયે થી શેરીયું વળાવુ, જ્ઞાનનાં મંડાવું હાટ રે.
મળે સત્‌ગુરૂ લાવ લીજીયે રે લોલ....સુણ.
ઇંગલા પીંગલા અમૃત ઉછાળે, સુષ્મણા રડે ભરી માટ રે.
મળે સત્‌ગુરૂ લાવ લીજીયે રે લોલ...સુણ.
પ્રેમ પટોળા ઓઢુ ચુંદડી, હીંચું હિંડોળા તત્વ ખાટ રે.
મળે સત્‌ગુરૂ લાવ લીજીયે રે લોલ...સુણ
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે, પધરાવું સત્ત્‌ગુરૂ પાટ રે.
મળે સતગુરૂ લાવ લીજીયે રે લોલ....સુણ.

૨૪. ભજન

(રાગ : તમે વિસરાવી નરને)

આજે નિરભઈ નોબતું વાગી, મેરા લાલ હો.
નિજરે મંદિરીયામાં રૂડી જોતું જાગી, હોજી....ટેક.
ઇંગલા ને પીંગલા, આરતી ઉતારે હોજી.
અને સુષ્મણા થઈ રાજી, મેરા લાલ હો...નિજરે.
બ્રહ્મા ને વિષ્ણુ દોનું મંત્ર ઉચ્ચારે હોજી.
અને શંકરે સમેટી બાજી, મેરા લાલ હો....નિજરે.

તેત્રીસ કોટી દેવો આવ્યા પારે હોજી.
અને છડીયુ પોકારે કરી હાજી હાજી, મેરા લાલ હો...નિજરે.
બાલગીરી કે છે ગુરૂદુવારે હોજી.
અને આનંદ લેરૂ આજે લાગી, મેરા લાલ હો....નિજરે.

૨૫. ભજન

(રાગ : ઉપરનો)

આજે વૃત્તિ મારી તલસાણી, મેરા લાલ હો તબરે.
ભાળ્યા મેં તો પુરૂષ પુરાણી હોજી...ટેક.
જોતા જોતા રે મારાં નયન ઠળીયા હોજી.
અને ચડી ગઈ બ્રહ્મ ખુમારી, મેરા લાલ હો તબરે.
હું ને પીયુજી જાણે એકાંતે મળીયા હોજી.
અને જાગું ત્યાં આવે જેઠાણી, મેરા લાલ હો તબરે.
દૂર દૂર કોઈયે ઈશારા કર્યા હો જી.
અને જોવા જાતાં હું ખોવાણી, મેરા લાલ હો તબરે.
ગુરૂના પ્રતાપે બાલગીરી ગાય છે હો જી.
અને ગુરૂના ચરણે ઠેરાણી, મેરા લાલ હો તબરે.

૨૬. ભજન

(રાગ : કનરો)

અરે જીવ અભાગી માયા તુને લાગી,
રામ ભજીને તું આવી જા અગાડી....ટેક.
સગાં સંબંધી તારાં કુટુંબ કબીલો,
સાથે નહિ આવે મામા કે માડી...જીવ.
મેડી મંદિર ને માલ ખજાના,
પડયા રહે છે વાડા ને વાડી ...જીવ.
કંચન જેવી કાયા રે તારી,
બંધ પડી જાશે એક દિન નાડી ...જીવ.
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે,
મૂકી દેને માયામાં ટાંડી....જીવ.

૨૭. ભજન

20:29

૨૮, ભજન

(રાગ : વાગે ભડાકા ભારી)

અજબ શક્તિ નિહાળી જોગીડા તારી,
અજબ શક્તિ નિહાળી રે હે હે હે...ટેક.
પાંચ પાવ ભર ઝુંપડી તારી, મોભ નાખ્યો ઘણો ભારી હે હે હે.
ત્રિગુણી ત્રણ આડિયું નાખી, નળીયા નાખ્યાં ચમકારી...જોગીડા.
ઈરે ઝુંપડીમાં દશ દરવાજા, શેરીયું મૂકી બહુ સારી રે હે હે હે.
ઈંગલાને પીંગલા આવે ને જાવે, સુષ્મણા ચાલે સંભારી જોગીડા.
ઈરે ઝૂંપડીમાં એક જોગણ રેવે, સદાય બાલબ્રહ્મચારી રે હે હે હે.
પલક એકમાં પુત્ર સરજાવે, પલમાં દેવે ભંડારી...જોગીડા.
ઈરે ઝૂંપડીમાં એક અમર દીવો, જાવો મનડાને મારી રે હે હે હે.
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે, જોતાં જાઉં બલિહારી...જોગીડા.

૨૯. ભજન

(રાગ : ઉપરનો)

સત્સંગ કર રૂપાળા હો મનવા,
સત્સંગ કર રૂપાળા રે હે હે હે જી...ટેક.
સત્સંગ કરીને સમજી લે સાચુ, કાઢો પંથ પાળા.. હો મનવા.
લોભ મોહ ને કાવાદાવા, મૂકી દો જુના ઢાળા હે હે હે જી.
સંસારીયાનું સુખડું કાચુ, જાવું મુકીને માળા...હો મનવા.
સત્ય લાવીને સમરો ધણીને, મુકી દો ચિંતના ચાળા, હે હે હે જી.
ભજનનું તો લઈ લો ભાતુ, આગળ વનડા કાળા.. હો મનવા.
આવ્યો મનખો લઈ લો લાવા, ફેરવો રામની માળા હે હે હે જી.
બીજા બધાને કરી દો જાતુ, આ તો ભારા ઉભારા.. હો મનવા.
પ્રેમ લાવીને હરિગુણ ગાવા, મૂકી માયાના ભારા રે હે હે હે જી.
બાલગીરી કે છે ખોલશે ખાતુ, ભલે હોય બુઢા કે બાળા.. હો મનવા.

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

ધ્યાન કરી લે ધરણીધરનું, જમવા આવી શું કરે..ભજી.
પાંચ તત્વનો દેહ મરીને, તે કયાં ભળે...હે જી.
અંતે વસ્તુ એક ને એક છે, અજ્ઞાની મનથી ડરે..ભજી.
રામ ને રેમાન જુદા નથી ને, મૂરખા નોખા ધર્મ ધરે.. હેજી.
એક માટીના પિંડામાંથી, જેમ કુરડી કોડીયા કરે.ભજી.
પુરણ જ્ઞાન જો કોઈ જાણે, અમૂલ્ય રસ તે માણે...હજી.
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે, ભજન કરો આ ટાણે..ભજી

૩૧. ભજન

(રાગ : ઉપરનો)

જોઈ લેને તું આપમા, અંતે આપ વિના નહી જડે.. હેજી.
ધારી લેને ગુરૂ જ્ઞાનથી, ફરી દુજો નવ રંગ ચડે હેજી.જો.
જ્યોત જલે છે દેહીમા, તેમાં સૂર્યનું તેજ શું કરે. હેજી.
ધ્યાન વિનાના હાલે ભટકતા, અંતે અથડાઈ મરે જો,
ડાબી રે ઈંગલા જમણી પીંગલા, સુષ્મણાં જો .. હેજી.
સંકલ્પને જો તજે તો, જન્મ મરણ ફેરા ટળે. જો
ભ્રાંતિ એવી ભુલી ગયા પછી, અમીરસ નૂર બહુ ઝરે.. હેજી.
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે, સંસાર સેજે તરે.. જી

૩૨, ભજન

(રાગ : ઉપરનો)

ચિંતા તું શીદ કરે, પ્રભુજી સૌનો પાલન કરે,
નબળા મનના અરે અધીરા, વિશ્વાસ કેમ નવ ધરે... ટેક.
જઠરાગ્નિમાં જુગતે રાખી, નવ માસ ચોકી ભરે,
એવો પ્રભુ છે દિનદયાળુ, જન્મ્યા મોર દુધ કરે... પ્રભુજી.
પાતાળમાં રહેતા જીવજંતુને, ત્યાં પણ પોષણ મળે,
સોનાની સાંકળ હાથી બાંધો, બેઠા અનાજ મળે...પ્રભુજી.
અજગર જેવું જુઓ જનાવર, ક્યાં જઈ ઉધમ કરે,
કીડીને કુંજર ઉડતા પંખી વાલો, સૌનાં ઊંદર ભરે...પ્રભુજી.
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે, પ્રેમ રસ દિલડામાં ઠરે,
એવો પ્રભુ છે ગરીબનો બેલી, સૌની સંભારૂ કરે પ્રભુજી.

20:30
Vo)) LTE1
35

૩૯. ભજન

(રાગ : ઉપરનો)

હોંશે હરિગુણ ગાઉં અંતરીયામાં,
હોંશે હરિગુણ ગાઉ....ટેક.
આરે કાયામાં રે, ગંગા ને જમુના વાલા,
નિત્ય ગંગાજીમાં નાઉ....અંતરીયામાં.
આરે કાયામાં રે, બ્રહ્મા ને વિષ્ણુ વાલા,
શિવજી કેરા ગુણ ગાઉ...અંતરીયામાં.
આરે કાયામાં રે, પરિબ્રહ્મ પોતે,
જગતમાં કેમ ભરમાવું....અંતરીયામાં.
ગુરુના પ્રતાપે, બાલગીરી કહે છે વાલા,
તેજમાં તેજ સમાઉ....અંતરીયામાં.

૪૦. ભજન

(રાગ : રાખનાં રમકડાં)

પ્રેમને જગાડવા, જગાડવા, ચિત્ત સતગુરુ ચરણે ધરીયે રે
દુનિયા કેરો ભાવ તજી દઈ, આદિત્યમાં ભરીયે....ટેક.
ઇંગલા પીંગલા સિદ્ધ કરીને, સુષ્મણામાં ફરીયે (૨)
નાભિ કમલથી નાવ ફેકીને, મહાસાગરમાં ભરીયે રે..પ્રેમ.
ઓહંગ સોહંગનો તાલ કરીને, મનને મેળામાં કરીયે (૨)
સુરતા શબ્દમાં ફેંકી દઈને, વિઠ્ઠલ વરને વરીયે રે..પ્રેમ.
અખંડ ખુમારી ચડી ગગનમાં, પાણી સાથે ગરીયે (૨)
નામ રૂપનો નાશ કરીને, અખંડ જ્યોતુંને ધરીયે રે..પ્રેમ.
ગુરુ પ્રતાપે બાલગીરી કહે છે, દુરીજનથી કેમ ડરીયે (૨)
જ્યોતિમાં એક જ્યોત કરીને, આનંદ આનંદ કરીયે રે..પ્રેમ.

૪૧. ભજન

(રાગ : ઉપરનો)

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

શંકર શંકર કરી લે, ભજવા ઉમાપતિ મહાદેવને...લાજ.
માન બડાઈ ને ઈર્ષા તજીને, સાચો હૃદયથી શિવ કહીને,
ગરીબી તું માણી લે, ભજવા ઉમાપતિ મહાદેવને....લાજ.
સંત મુનિના ચરણે જઈને, હરિગુરૂની સેવા કરીને,
બાલગીરી કે શિવ ગોતી લે, ભજવા ઉમાપતિ મહાદેવને...લાજ.

૮૫. ભજન

(રાગ : માટઃ આ વખતે આવીને આપજો)

કેમ ભમો છો દિ ને રાત રે, તમે ખોજો શરીર આપ,
પ્રેમ લાવોને દિલની માંય રે, તમે ખોજો શરીર આપ... કેમ.
ઇંગલા પીંગલા સુષ્મણા નાડી, સીધ કરી લેને આજ,
સુષ્મણા તો સુતી છે આડી, ઠોકરે જગાડ આજ રે...કેમ.
મેલ કચરા ને કાંકરા કાઢી, ઉલટા પવન કર આજ,
ધીરજ સાવરણીએ ઝપટીઝાડી, મન કરો નિર્ભય રે....કેમ.
શંખ ભેરી ને ઝાલર ઝાઝી, વાગે દિન ને રાત,
નાગફણી બંકનાડે રે, ચડી જોવા તમાશા આજ રે.કેમ.
એક ચિત્તથી આસન માંડી, કરો તૈયારી આજ,
ગુરૂ પ્રતાપે ધ્યાન લગાડી, બાલગીરી કે છે આજ રે...કેમ.

૮૬. ભજન

કે પ્રભુજી સંદેશો લખી લખી મોકલું રે,
કે લખી લખી થાક્યા મારા હાથે... પ્રભુજી.
કે પ્રભુજી મનને ઘણું હું રોકવું રે,
કે વારે આવો દીનાનાથ...પ્રભુજી.
કે પ્રભુજી વાગે છે માયાનું ઢોલકુ રે,
કે ઉમટે સાંભળવા સૌ સાદ...પ્રભુજી.
કે પ્રભુજી કેમ રે કરીને હું ઓળખુ રે,
કે કે દી આવીને ભરશો બાથ પ્રભુજી.
કે પ્રભુજીનું રોજ રોજ નામ બોલવું રે,
કે બાલગીરીજી સદાય તમારો દાસ...પ્રભુજી.

20:33
35

કે બેસશે તમને તો ગાર...ગુરૂજી.
ગુરૂજી આપની આશા ઉર ધરીએ રે,
કે બાલગીરીજી ચરણે નમે વારંવાર...ગુરૂજી.

૮૮. ભજન

(રાગ જેને સેવ્યા સાચા સંત રે)

જેને મનડું કીધું વશ રે, જેને દિલડું ખોજું આપ રે,
અજબ ખેલ દેહીમાં, તો દરશાણા...જેને.
દેહમાં તપાસતા હે, અંદર લાગે શિવજી રે, ધ્યાન ધરી જોને
સત્ય લાવોને દીલમાં, અસત્ય કાઢો બાર રે,
અજબ ખેલ તો દેહીમાં...જેને.
ઇંગલા પીંગલા ઉલટે હે, સુષ્મણા આવે સાનમાં રે, ધ્યાન ધરી જોને
સુરપણા તો ઉપડે તે, રોકી શકે કોણ રે,
અજબ ખેલ તો દેહીમાં...જેને.
બંકનાડને કાંઠડે, શક્તિ સુતી ઉમંગમાં રે, ધ્યાન ધરી જોને
પવન ઉલટા ચડાવી, સુરતાથી ખોળ રે,
અજબ ખેલ તો દેહીમાં... જેને.
નાગફણી પર ચડીને રે, અંજવાળે માલજો રે, ધ્યાન ધરી જોને
બાલગીરી એમ કે છે, પ્રેમ તો ઉભરાય રે,
અજબ ખેલ તો દેહીમાં...જેને.

૮૯. ભજન

(રાગ : માંડવણે મેણાં બોલાય)

જાગો સંતો શૂરવીરો રે, દેહીમાં શિવ તો જણાય.
પંચભૂત દેહમાં અજ્ઞાન કારણે, શિવ તે જીવ જણાય,
મરેલો હોય તે શિવને દેખે, બીજા ના દેખે જરાય....સંતો.
પંચભૂત દેહીમાં તીરથ ઘણેરા, બાર ફરે શું થાય,
સત્ય વિના ફરી નહીં મળે ને, ખોટા પગ તોડાય....સંતો.
પંચભૂત દેહમાં દેવી ને દેવતા, બાર પૂજે શું થાય,
જ્ઞાન ગરીબી લાવો રે રિદયમાં, નજરે શિવ દેખાય...સંતો.
પંચભૂત દેહમાં મનુષા દેહ, તો માગે દેવ જેવાય,
બાલગીરીજી કે છે, નવ ગુમાવશો અણમૂલ હીરો કેવાય...સંતો.

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

20:34

૯૦. ભજન

(રાગ : જેને વાગ્યાં શબ્દનાં બાણ)

મળ્યાં ગુરૂનાં જ્ઞાન રે, મારા ટળ્યા ત્રિવિધના તાપ,
ગુરૂમાં મગન હો ભાઈ રે, જેને મળ્યા ગુરૂનાં જ્ઞાન....ટેક.
ઈંગલાને તો સિધ કરવી, પીંગલાની કરી જાણ,
સુષ્મણા તો શાનમાં લીધી, બજાવે ત્રિરંગી તાલ....ગુરૂમાં.
માછલીયું તો નિરમળ નાવે, ઉંડા જળની માંય,
બંકનાડેથી હંકાવી નાવડી, લેવા અમૂલ માલ...ગુરૂમાં.
ત્રણ તસુની સર્પણી તો, સૂતી તેની માંય,
ઉલટા પવનની ફુંકથી તો, લાંબી કરાવી તત્કાલ..ગુરૂમાં.
ઉતારી નાવડી ગુરૂએ, મારી સમુદ્રની પેલી પાર,
ગુરૂ પ્રતાપે બાલગીરી કે છે, બળતી બુઝાવી આગ....ગુરૂમાં.

૯૧. ભજન

(રાગ : હૈયાના ફૂટા)

પુરી નગરીમાં પુરૂષોત્તમનુ, મુખડુ આજે જોયુ,
જન્મોજન્મનું પ્રાયશ્ચિત આજે, એકજ પલમાં ધોયુ રે,
મોહનજી પ્યારા , શરીર ભાન આજ ખોયુ....ટેક.
પૂર્વ દિશામાં શ્યામ બિરાજે, ગડગડ નોબતું વાગે,
ઝણણ ઝણણ ઝણ ઝાલર બાજે, ચિત્ત મારૂ પ્રેર્યું રે,
મોહનજી પ્યારા, શરીર ભાન આજ ખોયુ...પુરી.
જગદીશનાં જેણે દર્શન કર્યા, તેના જનમ ફર્યા,
વિના દર્શન ભવોભવ ફર્યા, અંતે શરીર વગોવ્યુ રે,
મોહનજી પ્યારા, શરીર ભાન આજ ખોયુ...પુરી.
અગમ અગોચર રૂપ હે તેરા, ત્યાં કોઈ નહી ઠેરા,
ઠારોઠાર તેરા દેશ, મન મારૂં મોહ્યું રે,
મોહનજી પ્યારા, શરીર ભાન આજ ખોયુ....પુરી.
ગુરૂજીએ દેશ બતાયા, પ્રેમ પ્યાલા પાયા,
બાલગીરી કે લીધા લાવા, જગત મરને રોયું રે,
મોહનજી પ્યારા, શરીર ભાન આજ ખોયુ. પુરી.

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

निर्भय निर्गुण गुण रे गाऊंगा

निर्भय निर्गुण गुण रे गाऊंगा

मूल-कमल दृढ़-आसन बांधूं जी

उल्टी पवन चढ़ाऊंगा
निर्भय निर्गुण ।।

मन-ममता को थिर कर लाऊं जी

पांचों तत्व मिलाऊंगा

निर्भय निर्गुण ।।

इंगला-पिंगला-सुखमन नाड़ी

त्रिवेणी पे हां नहाऊंगा

निर्भय-निर्गुण ।।

पांच-पचीसों पकड़ मंगाऊं-जी

एक ही डोर लगाऊंगा

निर्भय निर्गुण ।।

शून्य-शिखर पर अनहद बाजे जी

राग छत्तीस सुनाऊंगा

निर्भय निर्गुण ।।

कहत कबीरा सुनो भई साधो जी

जीत निशान घुराऊंगा ।

निर्भय-निर्गुण ।।

शून्य गढ शहर घर बस्ती

शून्य गढ शहर शहर घर बस्ती कौन सूता कौन जागे है

In the empty fort, a city, In the city, a settlement; Who sleeps? Who wakes?

लाल हमरे हम लालान के तन सोता ब्रह्म जागे है

उदा०— मन रे मनही उलटि समांनां

गुरु परसादि अकिलि भइ अवरैं जातरू था बेगांनां ।

उलटैं पवन चक्रषट भेदैं सुरति सुन्नि अनुरागी ॥

आवै न जाइ मरैं नहिं जीवैं ताहि खोजि वैरागी ।

नियरैं दूरि दूरि फुनि नियरैं जिनि जैसा करि मांनां ॥

औलौती का चढ़ा वरेंडैं जिनि पीया तिनि जांनां ।

तेरी निरगुन कथा कवन सौ कहिअैं हैं कोई चतुरविवेकी ॥

कहैं कबीर गुरु दिया पलीता सो झल विरलैं देखी । प० १३४

ममता मेटि सांच करि मुद्रा आसन सील दृढ़ कीजै ।

अनहद सवद किंगरी बाजै ताजोगी चित दीजै ॥

सत करि खपर खिमा करि झोरी ग्यांन बिभूति चढ़ाई ।

उलटा पवन जटा धरि जोगी सींगी सुन्नि बजाई ॥ प० १४२

मन उलटी दरिया मिला लागा मलि मलि न्हांन । सा० ९.३३

यद्यपि कबीर ने कुण्डलिनी योग और षट्चक्र भेदन की चर्चा की है परन्तु हठयोगी साधना के प्रति उनकी निष्ठा उतनी नहीं थी जितनी नाथपंथियों की थी । उनका मुख्य लक्ष्य मन को एकाग्र करना था । इस प्रक्रिया में हठयोगी साधना और उसके उपकरणों मुद्रा, झोली, कंथा, बटुआ आदि को उन्होंने व्यर्थ बताया । वे सच्चा योगी उसे मानते हैं जो मन में ही मुद्रा आसन, जप-तप आदि करे : (मन का आसन मन मैं रहना, मन का जप-तप सूं कहना प० २०६) । यह स्थिति तभी प्राप्त होती है जब मन की गति को उलट दिया जाता है । ऐसी दशा में मन निर्मल होकर 'गोरख', 'गोविन्द', 'मधुसूदन' और 'त्रिभुअनदेव' बन जाता है । (अब मन उलटि सनातन हूवा, तब जांनां जब जीवत मूवा—प० १०७) ।

सुरति शब्द योग—द्रष्टव्य : प० १७, १३४, सा० ९.२४, १२.६ ।

सुरति समांनीं निरति मैं, निरति रही निरधार ।

सुरति निरति परचा भया, तब खुलि गया सिंभु दुवार ॥ सा० ९.२४

उलटैं पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुन्नि अनुरागी । प० १३४

सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आंनी ।

सील संतोष पहिरि दोइ कंगन, होइ रहीं मगन दिवांनीं ॥ प० १७

शब्दब्रह्म में कबीर की पूर्ण आस्था थी । रामनाम को ही वे शब्दब्रह्म मानते थे । सुरति वह चित्तवृत्ति है जो शरीर के भीतर होनेवाले अनाहत नाद में लय हो जाती है । रामनाम के अनाहतनाद में लय होना ही सुरतिशब्दयोग है । कबीर की दृष्टि से यह साधन ही है साध्य नहीं । साध्य तो भक्ति ही है । कबीर का लययोग उन्हें राम से मिलाता है । उनका लययोग ही कबीर पंथियों के यहाँ 'सुरति शब्द योग' है । शंकराचार्य ने भी शब्दब्रह्म की महिमा को स्वीकारा है । शब्दब्रह्म का प्रतीक 'ओंकार' या 'प्रणव' है । कबीर ने 'ओंकार' को बहुत महत्त्व दिया है और सुरति को 'साहबस्वरूपा' माना है । 'सुरति' और 'निरति' शब्दों का प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थों में (भी) किया गया है । कहीं तो 'सुरति' साहबस्वरूपा है, कहीं बहिर्मुखी आत्मा का प्रतीक है, कहीं प्रेम और कहीं स्मृतिके

अर्थ में प्रयुक्त है। इसी प्रकार 'निरति' कहीं नृत्य अर्थ में, कहीं समाधि अर्थ में कहीं वैराग्य, कहीं वाह्यमुखी वृत्ति और कहीं प्राप्तव्य आत्मा के अर्थ में। (विस्तृत विवेचन के लिए देखिए) : डॉ० त्रिगुणायत का 'कबीर की विचारधारा' ग्रन्थ : पृ० २७७-८४)।

कबीर मन की साधना द्वारा 'सुरति' को त्रिकुटी एवं ब्रह्मरंध्र में केन्द्रित करने का उपदेश देते हैं। त्रिकुटी में ध्यान केन्द्रित करने के लिए नामजप और अजपाजाप आवश्यक हैं और इसी अवस्था में वाह्यवृत्तियों को अन्तर्मुखी करके उलटी चाल करने का आदेश देते हैं। उसी उलटीचाल में पवन को उलट कर चक्र भेदने पड़ते हैं, तभी 'सुरति' शून्य में लीन हो जाती है।

कुण्डलिनी योग—द्रष्टव्य—प० ५६, ११५, ११७, १३०, १३१, १३४, सा० ९.३८।

उदा०—सुखमनि नारी सहज समांनीं पीवै पीवनहारा। प० ५६

उलटीले सकति सहारं। पैसीले गगन मझारं।
बेधीले चक्र भुअंगा। भेटीले राइ निसंगा। प० ११५
साधै तीर पताल कौं फिरि गगनहिं मारै। प० ११७
अगम द्रुगम गढ़ि रचिऔ वास
जामहिं जोति करै परगास। प० १३०
कंकर कुई पताल पांनियां सोनैं बूंद विकाई रे। प० १३१
औलीती का चढ़ा वरेंडै जिनि पीया तिनि जांनां। प० १३४
आकासैं मुखि औंधा कूवां, पातालैं पनिहारि।
ताका जल कोई हंमा पीवै, विरला आदि विचारि। सा० ९.३८

कुण्डलिनी योग प्राप्त हो जाने पर साधक की साधना पूरी हो जाती है, परंतु इसके लिए कठिन साधना करनी पड़ती है।

चंद्रसूर्यसाधना—इड़ा-पिंगला, चन्द्र-सूर्य, नाद-बिंदु, शिव-शक्ति, गंगा-जमुना, प्रज्ञा-उपाय आदि के योग के रूपक इस प्रकार हैं : द्रष्टव्य प० ११५, १२३, १२७, सा० ९.२०।

उदा० : चूकीले मोह पियासं। तहाँ ससिहर सूर गरासं। प० ११५

मन मंजन करि दसवैं द्वारि। गंगा जमुना संधि विचारि।
विंदहिं नाद कि नादहिं बिंद। नादहिं बिंद मिलै गोविंद। प० १२३
इला पिंगुला सुखमन नारी। वेगि विलोइ ठाढ़ी छछिहारी। प० १२७
सूर समानां चांद मैं, दुहूँ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, कछु पूरवला लेख। सा० ९.२०

सहजसाधना : द्रष्टव्य-प० ५६, ११२, १३०, १३६, सा० ९.४०, १०.७।

उदा० : गंग जमुन के अंतरै सहज सुन्नि लौघाट।

तहां कबीरा मठ रचा मुनिजन जोवैं वाट। सा० १०.७
सहज सुन्नि मैं जिनि रस चाखा सतिगुर हैं सुधि पाई। प० ५६
सहज समाधि विरिख यहु सींचा धरमी जलहरु सोखा। प० ११२
टारयौ न टरै आवै न जाइ। सहज सुन्नि मैं रह्यौ समाइ। प० १३०

कबीर ने सिद्धों के 'सहज' शब्द का प्रयोग वार-वार किया है; परन्तु 'सहज' की व्याख्या उन्होंने सामान्य सहजता के रूप में किया है :

हठयोग के साथ शृंगारिकता और संगीतमयता का अपूर्व सम्मिश्रण कर दिया है :

कैसे दिन कटिहैं जतन बताए जइयो
एहि पार गंगा वही पार जमुना
बिचवां हमको मढ़इया छवाए जइयो।

इसमें गंगा और जमुना इड़ा और पिंगला नाड़ियों के द्योतक हैं। उलट-बासिया रूपकों और अन्योक्तियों को छोड़कर जो उनके विषय की रहस्यमयता के कारण स्वाभाविक हो गये हैं (कबीर ने स्वयं ही कहा है 'सैना-बैना करि समझाओं गूंगे को गुर भाई')। कबीर के अधिकांश पदों में प्रसाद गुण परभूर मात्रा में मिलता है। वे जनता के कवि थे। दीनों और जीवमात्र के उद्धार के लिए वे आए थे— 'साहब को परवाना लाए हंस उबारन आए'। जो लोग जीवन का एक ध्येय लेकर आते हैं और जो जनता में अपने विचारों का प्रचार करना चाहते हैं वे प्रसाद गुण की उपेक्षा नहीं कर सकते। 'सहज मिले सो दूध सम, मांगा मिले सो पानि, कहे कबीर वह रक्त सम जामे ऐंचातानि' जैसा दोहा याचक में स्वाभिमान की भावना का पोषण करता है। 'दुविधा में दोऊ गए माया मिली न राम' इस दोहार्द्ध ने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया है और यह चारों ओर मन भटकानेवाले लोगों को एक निश्चय पर आरूढ़ होने को बाध्य करता है। 'जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ; मैं बौरी ढूंढ़न गई, रही किनारे बैठ' साधक के लिए ये पंक्तियां आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों ही क्षेत्रों में आशा, साहस, और उत्साह के संचार करनेवाली उक्ति बन जाती हैं। कबीर में ऐसे रत्न बिना खोजे ही किनारे पर बैठनेवाले को मिल जाते हैं। कबीर ने अपनी उपमाओं और रूपकों, दृष्टान्तों आदि के फबतेपन के कारण अपनी कविता के प्रसाद गुण को और भी निखार दिया है। उनकी उपमाएं और रूपक अधिकांश में जीवन से ही लिए गए हैं। उनके रूपकों की सांगना हमारे सामने चित्र-सा उपस्थित कर गम्भीर तथ्यों को हृदयंगम कराने में सहायक होती है।

गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है गढ़-गढ़ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे बाहर बाहै चोट॥

माली आवत देख कै कलियन करी पुकार।
फूली-फूली चुन लिए काल्हि हमारी बार॥

कबीर के शृंगारिक रूपकों में माधुर्य गुण छलकता हुआ दिखाई देता है। 'बालम आओ हमारे गेह रे' 'तड़पे बालम बिना मोर जिया', 'कौन रंगरेजवां रंगे मोर चुन्दरी' आदि पदों की पूर्वी भाषा शृंगारिकता को प्रायः और भी गहरा रंग देती है। कबीर के हठयोग तथा तत्वज्ञान सम्बन्धी पदों में हमें ओज के दर्शन होते

यह भी ज्ञातव्य है कि अपने प्रधान शिष्य धर्मदासजी को उन्होंने संबोधित कर कहा है।

"सावन भादव बरिसै मेहा
एते सबद हम कह्यौ विदेहा।"

(एतै सब तुम कथ्यौ विदेहा—यह पाठान्तर है)—"सर्वज्ञ सागर"

मेरे जानते विदेह शब्द का अर्थ यहाँ "मैथिल" है, न कि "जीवनमुक्त।" यह पद तब ही कहा गया था जब कबीरदास जी जीवित थे। पर कबीरपन्थी शंकर के समान जीवन की अवस्था मुक्त होना संभव नहीं मानते। उनकी आत्मा तो शरीर के छोड़ने पर ही परमात्मा से मिल जाती है।

कबीरदास के मैथिल होने का संकेत हमें उनकी इस पंक्ति से भी मिलती है—

"बोली हमरी पूर्व की, हमें लखा नहिं कोइ,
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय॥"

वे काशी में रहते थे। काशी में रह कर उन्होंने यह कहा। अवश्य ही उनकी भाषा काशी के धुर पूरब (दूर पूर्व) प्रदेश की भाषा थी। अर्थात् भोजपुरी क्षेत्र से भी दूर मिथिला में।

हाँ यहाँ एक शंका यह हो सकती है कि यदि कबीरदासजी का जन्म मिथिला में मानने से उपर उद्धृत

"पहिले दरसन मगहर पायो"

इस पंक्ति से विरोध होगा। इसका समाधान यह हो सकता है, "दरसन मगहर पायो" का अर्थ ज्ञानक प्रत्यक्षीकरण है। अर्थात् उन्हें ज्ञान की उपलब्धि मगहर हुई।

इस प्रकार कबीरदासजी जन्म से मैथिल थे, उन्होंने ज्ञानलोक प्रथमवार मगहर में पाया, तथा उसका अभ्यास काशी में किया। हाँ इतना अवश्य रह जायगा कि उनके मगहर में प्रकाश पाने की घटना अनुसन्धेय रह जायगी।

हम विभिन्न हस्तलिखित सूत्रों से संकलित कबीरदासजी के कुछ मैथिली पद यहाँ उद्धृत करते हैं। इन पदों की भाषा विद्यापति की भाषा से सर्वथा मिलती है जैसा कि सहायिका क्रियाओं के अभाव से स्पष्ट है।

१. मंगल

हन्सा पुरुस वर साजि चलल दल, पाँच रतन दल माह हे।
आदि अन्त एकडु नहि दुन्हिकर, अनहद सब्द निसान हे॥
अलखड मण्डिल घर चौक पुराओल, मारग लिलहट दीप हे।
मेरुदण्ड सिर पुरहर थापल, चाँद सुरुज बड़ दीप हे॥
इंगला पिंगला दुहु गंगजमुन वहु, तिरवेन संगम घाट हे।
भौर गुफा के कोहवर थापल, दसमि दुआरिआ ब्रह्मवास हे॥
साहेब कबीर जहाँ रमित रमिआडु, गुरुगमी गुरुगमी जानी हे।
विधि वेवहार एक नहि दुनकहुँ, नामके सिंहुँरा लिलार हे॥

यह भी ज्ञातव्य है कि अपने प्रधान शिष्य धर्म्मदासजी को उन्होंने संबोधित कर कहा है।

"सावन भादव बरिसे मेहा
एते सबद हम कथौ विदेहा।"

(एतै सब तुम कथ्यौ विदेहा—यह पाठान्तर है)—"सर्वज्ञ सागर"

मेरे जानते विदेह शब्द का अर्थ यहाँ "मैथिल" है, न कि "जीवनमुक्त।" यह पद तब ही कहा गया था जब कबीरदास जी जीवित थे। पर कबीरपन्थी शङ्कर के समान जीवन की अवस्था मुक्त होना संभव नहीं मानते। उनकी आत्मा तो शरीर के छोड़ने पर ही परमात्मा से मिल जाती है।

कबीरदास के मैथिल होने का संकेत हमें उनकी इस पंक्ति से भी मिलती है—

"बोली हमरी पूर्व की," हमें लखा नहिं कोइ,
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय॥"

वे काशी में रहते थे। काशी में रह कर उन्होंने यह कहा। अवश्य ही उनकी भाषा काशी के धुर पूरब (दूर पूर्व) प्रदेश की भाषा थी। अर्थात् भोजपुरी क्षेत्र से भी दूर मिथिला में।

हाँ यहाँ एक शंका यह हो सकती है कि यदि कबीरदासजी का जन्म मिथिला में मानने से उपर उद्धृत

"पहिले दरसन मगहर पायो"

इस पंक्ति से विरोध होगा। इसका समाधान यह हो सकता है, "दरसन मगहर पायो" का अर्थ ज्ञानक प्रत्यक्षीकरण है। अर्थात् उन्हें ज्ञान की उपलब्धि मगहर हुई।

इस प्रकार कबीरदासजी जन्म से मैथिल थे, उन्होंने ज्ञानलोक प्रथमवार मगहर में पाया, तथा उसका अभ्यास काशी में किया। हाँ इतना अवश्य रह जायगा कि उनके मगहर में प्रकाश पाने की घटना अनुसन्धेय रह जायगी।

हम विभिन्न हस्तलिखित सूत्रों से संकलित कबीरदासजी के कुछ मैथिली पद यहाँ उद्धृत करते हैं। इन पदों की भाषा विद्यापति की भाषा से सर्वथा मिलती है जैसा कि सहायिका क्रियाओं के अभाव से स्पष्ट है।

१. मंगल

हन्सा पुरुस वर साजि चलल दल, पाँच रतन दल माह हे।
आदि अन्त एकहु नहि हुनिकर, अनहद सब्द निसान हे॥
अलखड मण्डिल घर चौक पुराओल, मारग लिलहट दीप हे।
मेरुदण्ड सिर पुरहर थापल, चौंड मुकुव बड़ दीप हे॥
इंगला पिंगला दुहु गंगजमुन वहु, तिरवेन संगम घाट हे।
भौर गुफा के कोहवर थापल, दसमि दुआरिआ ब्रह्मवास हे॥
साहेब कबीर जहाँ रमित रमिआहु, गुरुगमी गुरुगमी जानी हे।
विधि वेवहार एक नहि हुनकहुँ, नामके सिंदुरा लिलार हे॥

चक्रको भेदकर सहस्रारमें दिव्य पुरुषके साथ एक हो जाते हैं। इसीको परमपदकी प्राप्ति कहते हैं।

भीष्म आदि श्रेष्ठ योगियोंने भी इसी प्रकार देह-त्याग किया था। भागवतमें लिखा है—

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः।
आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत्॥

भीष्मने इस प्रकारसे मन, वाक्, चक्षु आदि इन्द्रियों तथा इन्द्रियवृत्तियोंके द्वारा आत्मस्वरूप श्रीकृष्णमें आत्मसंयोग करके अर्थात् जीवात्माको परमात्मामें आविष्ट कर, प्राण रुद्ध करके महाप्रयाण किया था। "अन्तःश्वास" शब्दकी व्याख्या श्रीधरने इस प्रकार की है—"अन्तरेव लीनो श्वासो यस्य सः" श्वासका प्रकाश तब बाहर प्रकट नहीं होता, वह अन्तर्लीन हो जाता है—इसको ही निरुद्धावस्था कहते हैं।

ब्रह्मरन्ध्र फाड़कर योगीकी जो मृत्यु होती है उसके सम्बन्धमें प्रणवगीतामें जो विवेचना की गयी है, वही यहाँ संक्षेपमें बतलाता हूँ। सुषुम्ना नाड़ी मूलाधारसे उठकर मस्तक-ग्रन्थिमें जाकर दो शाखाओंमें विभक्त हो गयी है। एक शाखा मस्तिष्कके अधस्तलसे कुछ वक्रभावमें आकर भ्रूके पास थोड़ा ऊर्ध्वमुख होकर आज्ञाको भेद करके इड़ा-पिङ्गलाके साथ मिल जाती है। यहाँसे ऊर्ध्वदिशामें थोड़ा उठकर कपालके बीचोबीच आकर, एक अतिसूक्ष्म छिद्रको पार कर, भीतर प्रवेश करके, थोड़ा झूलते हुए, अल्प वक्रगतिसे ऊर्ध्वमुख उठकर ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करती है। दूसरी शाखा मस्तक-ग्रन्थिसे ऊपर शिखर पर्यन्त उठकर सामान्य अर्द्धवृत्ताकारकी तरह ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करती है। सुषुम्नाकी इस शाखाका मुँह बन्द है और दूसरीका खुला हुआ है। अतएव एक शाखाके छिद्रके साथ दूसरी शाखाके छिद्रका संयोग नहीं है। योगी जब योगबलसे प्राणत्याग करनेके लिए उद्यत होते हैं तब सुषुम्ना-स्थित ब्रह्मरन्ध्र-गत बद्ध मुख खुल जाता है और दोनों शाखाओंके छिद्र एक हो जाते हैं, इसको ही ब्रह्मरन्ध्रका फूटना या फट जाना कहते हैं।

अवश्य ही इस प्रकार देह-त्याग करना सब योगियोंके सामर्थ्यमें नहीं है। जिनकी कुण्डलिनी-शक्ति सदा जाग्रत रहती है, उन्हींके लिए यह संभव है। [illegible] शक्ति ही वस्तुतः प्राण-शक्ति है, 'सा देवी वायवी शक्तिः'—इस प्राणके [illegible] ही है, अतएव मन और प्राणके एकत्र संयममें सूक्ष्म प्राण और स्थिर प्राण[illegible] समझमें आता है। तब अनायास ही योगी प्राण-शक्तिको सुषुम्नाचालित करके ब्रह्मरन्ध्रमें प्रविष्ट कराते हैं और तब तड़ित-प्रभाके समान प्राणरश्मि चतुर्दिक बिखर जाती है। उस आलोककी सहायतासे योगीके ब्रह्मरन्ध्रके सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र-पथ प्रस्फुटित आकारमें दीख पड़ते हैं, तब योगी सहज ही मन-प्राणको एक करके उनमें प्रविष्ट होकर ब्रह्मलोकमें पहुँच सकते हैं। जिस-जिस अवस्थाके भीतर जाकर योगी ब्रह्मलोकमें प्रवेश प्राप्त करते हैं, उनकी ही विवेचना 'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः' आदि श्लोकोंमें की गयी है। सूक्ष्मतम प्राणशक्तिके साथ जो अनन्त ब्रह्माण्डका संयोग है, उसको योगी इस

609/1461

देहमें रहकर ही समझ सकते हैं, परन्तु प्राणको जय किये बिना कुछ भी सुगम नहीं होता।

भागवतमें लिखा है—

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः॥

योगशास्त्रमें है—'प्राणवृत्तौ विलीनायां मनोवृत्तिर्विलीयते'—प्राणवृत्तिके विलीन होने पर मनोवृत्ति भी विलीन हो जाती है। इसीसे "ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यास-तत्पराः"—ब्रह्मा आदि सारे देवता प्राणसंयमका अभ्यास करते हैं।

सनकाद्या वसिष्ठाद्याः कचदत्तशुकादयः।
अरुन्धतीप्रभृतयः योगात्सिद्धिमुपागताः॥

योगाभ्यास द्वारा सनकादि ऋषि, वसिष्ठ-शुकादि, अरुन्धती प्रभृतिने सिद्धि प्राप्त की है॥१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद् यतयो वीतरागाः।

यह नादश्रवण बहुत ही महत्वपूर्ण है। चरनदास का कहना है कि इसके प्रभाव से मन वशीभूत होता है। उनका विचार है कि नाड़ियों में सुषुम्णा अनहद की माता है। कुंभको में सर्वश्रेष्ठ केवल कुंभक अनाहद का भ्राता है और सर्वश्रेष्ठ मुद्रा खेचरी उसकी बहन है। इस श्रेष्ठकुल में उत्पन्न अनहद के श्रवण से सेवक स्वामी बन जाता है।[1]

संत कवियों ने जप, अजपाजप एवं बाह्य जप की व्यर्थता आदि पर विस्तार पूर्वक विचार दिया है। जप का सम्बन्ध नामस्मरण एवं भक्ति से है, प्राणायाम से नहीं। प्राणायाम का सम्बन्ध केवल अजपाजप का है और यह श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रतिदिन इक्कीस हजार छ:सौ बार होता है। इस अजपागायत्री का विवेचन संतों ने अनेक स्थलों पर किया है। उनके इस हंस रूप अजपा गायत्री की जप प्रणाली पर नाथपंथियों का प्रभाव माना जा सकता है।

तुलसीदास निरंजनी का विचार है कि सो हंहंसा-जप को जपने वाला व्यक्ति ही ज्योति का स्पर्श कर पाता है।[2] धरमदासजी सोहं का जप साँस से जपने का और मूलकदासजी मन से जपने का उपदेश करते हैं।[3] कबीरदास जी को तो अजपा में जप का एवं सुरति का निरति में लय ही इष्ट था।[4] अजपा का जपरूपी सुमिरन करने से गगन-गुफा में रस की वर्षा सम्भव हो जाती है।[5]

भक्तिसागर, पृ. 66
निरंजनी-सम्प्रदाय और संत तुलसीदास निरंजनी, पृ. 179
मूलकदास की वाणी, भेदवाणी, शब्द 2, धनीधरमदास की वाणी.
बारहमासा, 1-12।
कबीर ग्रन्थावली: पारसनाथ तिवारी, 161, 12, पृ. 8
वहीं. पृ. 85

है।

हिडोलनां तहाँ झूलै आतम रांम।
प्रेम भगति हिडोलनां, सब संतनि कौ विश्राम।।
चंद सूर दोइ खंभवा बंक नालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर।।
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास।।
सहज सुंनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी जो हम झूलै हिंडोल।।
अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कंवल को घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट।।
नाद व्यंद की नावरी, राम नांम कनिहार।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गमि उतरौ पार।।१८।।

शब्दार्थ–हिंडोलना = झूला, चंद सूर = पिंगला और इड़ा नाड़ी, बंक नालि = सुषुम्ना नाड़ी, वक्र नाड़ी, पियारियाँ = ज्ञानेन्द्रियाँ, बिन्दु = वीर्य।

व्याख्या–कबीरदास कहते हैं कि प्रेम-भक्ति रूपी झूला लगा हुआ है। वहीं सभी सन्तों को विश्राम मिलता है। उसमें आत्मा रूपी राम झूल रहे हैं। यह झूला इड़ा और पिंगला नाड़ियों के दो स्तम्भों पर सुषुम्ना नाड़ी की डोरी से बँधा हुआ है। पाँचों इन्द्रियाँ तथा मन इस पर झूलते हैं। ब्रह्म रन्ध्र से ऊपर के सहस्त्रार कमल से अमृत की बरसा हो रही है। द्वादश अंगुल प्राण-पथ के भीतर ही प्राण-पर नियन्त्रण करके सिद्धि रूपी अमृत प्राप्त किया जा सकता है जिसने इस अमृत को चखा है वही मेरा स्वामी या गुरु है। मैं उसका सेवक हूँ। सहस्त्रार स्थित गंगन मंडल (ब्रह्म रन्ध्र) ही मेरी आत्मा रूपी सुंदरी का नैहर है। मेरी आत्मा रूपी सुंदरी यदि इस झूले पर झूल लेगी तो दोनों लोक अर्थात् लोक-परलोक को श्रेष्ठता प्रदान करेगी अर्थात् दोनों लोकों में हमारा अग्रगण्य स्थान हो जायेगा। इड़ा और पिंगला नाम की नाड़ियाँ गंगा-यमुना हैं। मूलाधार चक्र ही उन तक पहुँचाने वाला घाट है। इन दोनों नदियों के मार्ग से षटचक्रों की गागरी या घट को उठाकर भ्रू मध्य स्थित त्रिवेणी (जहाँ तीनों नाड़ियों का संगम होता है) पर पहुँचेगी। नाद बिन्दु ही नौका है अर्थात् अनाहत नाद एवं वीर्य की नाव को खेने वाला राम-नाम है। कबीर दास कहते हैं कि भगवान के गुणों का गान करके और गुरु की कृपा से साधक को इस भव-सागर से पार-उतरना चाहिए।

प्रस्तुत पद में भक्ति और योग का सुंदर समन्वय किया गया है। नाद और बिन्दु योग परम्परा से गृहीत शब्द हैं। वैदिक साहित्य में शब्द को ब्रह्म कहा गया है। नाद मानव शरीर में भी उपस्थित है। यह परमतत्त्व का प्रतीक है। बिन्दु शक्ति का परिचायक है। नाद (शिव) से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति का मिलन प्रत्येक साधक का अभीष्ट है। कबीर ने नाद का प्रयोग ज्यादातर अनाहत नाद के अर्थ में तथा बिन्दु का प्रयोग रजस के अर्थ में किया है।

प्रस्तुत पद में रूपक का सार्थक प्रयोग हुआ है। चन्द्र, सूर्य का प्रतीकात्मक प्रयोग है।

को बीनैं प्रेम लागी रे, माई को बीनैं।
रांम रसांइण मातेरी, माई को बीनैं।।टेक।।
पाई-पाई तू पुतिहाई, पाई की तुरियां बेचि खाईं री माई को बीनैं।
ऐसैं पाई पर विथुराई, लूं रस आनि बनायौ री, माई को बीनैं।
नाचै तांनां नाचै बांनां, नाचैं कूंच पुराना री, माई को बीनैं।।१६।।

शब्दार्थ–माते = मस्त, पुतिहाई = विश्वास हो गया।

22:09 Vo)) LTE1

नरहरि सहजैं हीं, जिनि जांनां।
गत फल फूल तत्त तर पल्लव, अंकुर बीज नसांनां।।टेक।।
प्रगट प्रकाश ग्यांन गुरुगमि तें, ब्रह्म अगिनि परजारी।
ससिहर सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी।।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सर पूरा।
गगन गरजि मन सुंनि समांनां, बागे अनहद तूरा।।
सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वांमी।
पद आनंद काल थैं छूटै, सुख मैं सुरति समांनी।।७।।

शब्दार्थ–तूरा = तुरही या नाद, तारी = ताटक योग।

व्याख्या–जिन्होंने सहज साधना के द्वारा नरहरि (ईश्वर) को जान लिया उनके लिए सांसारिक वृक्ष के फल-फूल अंकुर तथा बीज नष्ट हो जाते हैं। गुरु के पास जाने से मेरे भीतर ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो गया है और ब्रह्माग्नि (ईश्वर का विरह या ज्ञान अग्नि) प्रज्वलित हो गयी है। शशधर (अर्थात् चन्द्रनाड़ी) और सूर्य अर्थात् सूर्य नाड़ी (इड़ा-पिंगला) दोनों नाड़ियाँ एक दूसरे से दूर थीं लेकिन योग ने दोनों को साथ ला दिया। त्राटिकाएँ अर्थात् समाधि की स्थिति प्राप्त हो गयी। प्राण को उलटकर षट्चक्रों का वेधन किया, मेरुदंड में शर संधानित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। इस प्रकार कुंडलिनी को सहस्त्रार चक्र में स्थित ब्रह्मरंध्र में, प्रवेश कराया, फलस्वरूप अनाहत नाद की तुरही बजने लगी। इस प्रकार बुद्धि सुन्दरी अपने स्वामी शिव से मिल गयी। इसका दूसरा अर्थ है कबीर ने सुबुद्धि शरीर को चैतन्य किया तो त्रिकुटी में स्थित ईश्वर का अनुभव होने लगा। इस आनन्दमय पद को प्राप्त करके वह काल से छुटकारा पा गये और उस सुख में उनकी स्मृति समाहित हो गयी।

प्रस्तुत पद में प्रतीक गर्भित रूपक का विधान है। सम्पूर्ण पद में विरोधाभास का चमत्कार है। हठयोग की साधना का वर्णन किया गया है। यौगिक प्रतीक सिद्धों और नाथों की परम्परा से ग्रहण किये गये हैं। दर्शन के क्षेत्र में सहज अवस्था द्वैताद्वैत विलक्षण स्थिति का सूचक है। दर्शन में इसे उस अवस्था का सूचक माना जाता है जिसमें जीव अपने आनंद रूप को पहचान लेता है जो उसका वास्तविक रूप है। यह समाधि की अवस्था होती है। सिद्धों ने सहज को परमपद के पर्याय के रूप में भी ग्रहण किया है। कबीर ने भी सहज को कहीं-कहीं निर्गुण ब्रह्म का पर्याय माना है। उनका सहजवाद भक्ति की सहज प्राप्ति से भी सम्बन्धित है।

मन रे मनहीं उलटि समांनां।
गुरु प्रसादि अकल[1] भई तोकौं नहीं तर था बेगांनां।।टेक।।
नैरै थैं दूरि दर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जाना।
औलौती का चढ़्या बलींडै, जिनि पीया तिनि माना।।
उलटें पवन चक्र षट बेधा, सुनि सुरति लै लागी।
'अमर न मरै' मरै नहि जीवै, ताहि खोजि बैरागी।।
'अनभै' कथा कवन सूं कहिए, है कोई चतुर बवेकी।
कहै कबीर 'गुर' दिया पलीता, सो झल बिरलै देखी।।८।।

पाठान्तर–१. अकिलि, इसकी दूसरी, तीसरी पंक्ति ति० में चौथी, पाँचवीं है।

शब्दार्थ–अकल = विवेक, ज्ञान, नैरै = पास, बलींडै = ऊर्ध्व, बड़ेर स्थान, झल = ज्वाला, ज्वल का महाप्राणी करण झल।

व्याख्या–कबीरदास कहते हैं कि मन उलटकर मन ही में समा गया अर्थात् बहिर्मुखी मन अन्तर्मुखी हो गया। गुरु की कृपा से ही मन को विवेक आया अन्यथा यह आवारा की तरह इधर-उधर भटक रहा था। ज्ञान-स्वरूप ब्रह्म अत्यन्त पास भी है और अत्यन्त दूर भी। जो जैसा जानता है उसे वैसा ही प्रतीत होता है। जो व्यक्ति मन को छप्पर के बड़ेर अर्थात् ऊँचे स्थान पर ले जाने में समर्थ होते हैं अर्थात् मन को ऊर्ध्व पर ले जाते हैं वे ब्रह्म रन्ध्र से निसृत अमृत का पान करके उस पर पूर्ण आस्थावान हो जाते हैं। वायु को ऊर्ध्व मुख करके जो षट चक्रों का वेधन करते हैं उनकी चेतना शून्य शिखर अर्थात् सहस्त्रार चक्र में तल्लीन हो जाती है। वे अमर हो जाते हैं। वे जीवन्मृत हो जाते हैं। हे बैरागी! मन तू उसी अवस्था की खोज कर। कबीर कहते हैं कि इस अद्भुत अनुभूति का वर्णन किससे करूँ, यदि कोई प्रज्ञावान चतुर व्यक्ति मिले तो उसे समझाऊँ। सतुगुरु के द्वारा जो पलीता (वह अग्नि जो बारूद में लगायी जाती है) दिया है उसकी ज्वाला को विरले ही दृष्टिगत कर सकते हैं।

इस पद में हठयोग की प्रक्रिया का जीवन्त चित्रण किया गया है। ग्राम प्रतीकों द्वारा कबीर ने अपनी अभिव्यक्ति को रोचक तथा ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है। 'है कोई चतुर बवेकी' में वक्रोक्ति का विधान है।

मन के मोहन बीठुला, यहु मन लागा तोहि रे।
चरन कंवल मन मांनिया, और न भावै मोहि रे।।टेक।।
षट दल कंवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाई रे।
दहुं कै बीच समाधिया, तहां काल न पासै आइ रे।।
अष्ट कंवल दल भीतरा, तहाँ दस आंगुल का बीच रे।
तहाँ दुवादस खोजि ले, जनम होत नहीं मीच रे।।
बंक नालि के अंतरै पछिम दिसां की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिए, तहाँ भंवर गुफा के घाट रे।।
त्रिवेणी मनाह न्हवाइए, सुरति मिलै जौ हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ, सनकादिक मिलिहै साथि रे।।
गगन गरजि मघ जोइया, तहाँ दीसै तार अनंत।
बिजुरी चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब सन्त रे।।
षोडस कंवल जब चेतिया, तब मिलि गए श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे।
गुर गमि तैं पाईए, झंषि मरै जिनि कोइ रे।
तहाँ कबीरा रमि रह्या, सहज समाधी सोइ रे।।४।।

बीठुला = विट्ठल, विष्णु का एक नाम, षटदल कंवल = छः दलों वाला कमल अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र, अष्टदल कंवल = मणिपुर चक्र, समाधिया = समाधि लगा लिया, श्रीरंग = राम,कदली = केला, रीढ़ की हड्डी के अर्थ में प्रयुक्त। बीच = दूरी, दुवादस = बारह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंखुडियों वाला कमल, अनाहत चक्र, नीझर = निर्झर, अमृत का स्त्रोत, मघ = (मग महाप्राणीकरण के कारण ग का घ रूपान्तर) मार्ग, भंवर गुफा = सहस्त्रार चक्र, सुरति = परमतत्त्व, श्रेयस, घन = अनहद नाद, षोडस कंवल = सोलह पंखुड़ियों वाला कमल = विशुद्धाख्य = (कंठ के पास स्थित चक्र), झंषि = चिन्ताग्रस्त, सनकादिक = सनक, सनन्दन, सनातन, सनत कुमार ये ब्रह्म कुमार ज्ञान रूप माने गये हैं।

व्याख्या–मन को मोहित करने वाले विट्ठल यह मेरा मन तुममें अनुरक्त हो गया है। चरण कमलों पर लुब्ध मन सन्तुष्ट हो गया है, और कुछ उसे अच्छा नहीं लगता। चतुर्दिक दौड़ने वाला मेरा मन षटदल कमल अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र में निवास करने लगा है, (दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि स्वाधिष्ठान चक्र में निवास करते हुए मैंने चारों वाणियों को मिला लिया है।) दोनों नाड़ियों (इड़ा, पिंगला) के बीच मैंने समाधि लगा ली है, वहाँ काल की पहुँच नहीं है, आठ कमल दल अर्थात् मणिपूर चक्र में श्रीरंग (राम) क्रीड़ा कर रहे हैं। सत्गुरु की कृपा से ही राम का दर्शन होता है। नहीं तो सम्पूर्ण जन्म निरर्थक व्यतीत हो जाता है। कदली वृक्ष के समान रीढ़ की हड्डी के बीच नाड़ियों का जो फूलों जैसा जाल फैला हुआ है उसमें मूलाधार चक्र से अनाहत चक्र के बीच की दूरी दस अंगुल मात्र है। यहीं पर यदि द्वादश दल वाले कमल को खोज लेने पर जन्म, मृत्यु का बन्धन टूट जाता है। मेरुदंड में स्थित वक्र नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना के ऊपर बाईं ओर पश्चिम की ओर विस्फोट करें तो वहाँ पर स्थित ब्रह्म रंध्र से अमृत रस झरता है, उसी का पान करना चाहिए फिर मन भंवर गुहा के घाट पर पहुँच जाता है। सुषुम्ना का जो मार्ग है उसे ही पश्चिम मार्ग कहते हैं। उसी के आश्रय से मन ब्रह्म रंध्र रूप घाट तक पहुँचता है। मन को त्रिकुटी (इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना) के मिलन स्थान पर स्नान कराने से ईश्वरीय महाराग, श्रेयस (या परम तत्त्व) की उपलब्धि हो जाती है। फिर कोई मार्ग तलाशने की आवश्यकता नहीं होती। उसका सनकादिक ऋषियों का ज्ञान सहयोगी बन जाता है। तत्पश्चात् अनाहत नाद की गर्जना सुनाई देती है और अनन्त तारों की ज्योति दिखाई देने लगती है। फिर परम ज्योति की विजली चमकती है और राम रस (अमृत रस या भक्ति रस) की वर्षा होती है, जिसमें सन्त जन भीगते हैं अर्थात् ब्रह्म रस का आस्वादन करते हैं। जब साधक सोलह दल कमल अर्थात् विशुद्ध चक्र पर ध्यान देता है तो उसे बनवारी (कृष्ण) का साक्षात्कार होता है। तत्पश्चात् जरा मरण का भ्रम भाग जाता है, पुनर्जन्म का निवारण हो जाता है। इस दशा का रहस्य गुरु के पास जाने से ज्ञात होता है, व्यर्थ चिन्ता से कुछ नहीं होता। कबीर कहते हैं कि मैं इसी दशा में रमण कर रहा हूँ, यही सहज समाधि है।

योग की प्रक्रिया से भक्ति रस की परिणति की व्यंजना की गयी है। यौगिक प्रतीक नाथ सम्प्रदाय से गृहीत हुए हैं। त्रिवेणी, द्वादश कमल, पश्चिम पथ आदि शब्द प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

राग आसावरी

साधो भाई काया अजब नगर है।
सैर करे कोई गुरू का प्यारा क्या कोई करे फक्कर है ।।टेंक।।
सात दीप, इक्कीस ब्रह्मण्ड, नौ खंड काया अन्दर है।
नौ सों नदियाँ सुंभर भरियां, या मं सात समन्दर है ।।१।।
भाई जाप अजपा जपते ये तन रत्न मन्दिर है।
याही में ध्यान धरे नभ माहीं, बंक दिश पकड़ी डगर है ।।२।।
चौदह लोक बसे यम चौदह, याही में धरती अम्बर है।
धौले-धौले तारे दमकें याही मं सूरज चन्दर है ।।३।।
त्रिकुटी सागर अथाह जल भरीयां, बिरला नहाये चतुर है।
दस प्रकार के बज रहे बाजे, सुनते नारी नर हैं ।।४।।
याही में नरक स्वर्ग कहीये या ही में सवन शिखर है।
बिन पानी के छुटें फुव्वारे, बरस रहा बादर है ।।५।।
पारब्रह्म अ वनासी साहिब का नहीं निराला घर है।
बुन्दु कह जो वस्तु बाहर है, सो ही काया भीतर है ।।६।।
दोहा—जो तुम में सोही मुझमें, बरसे अमृत फुहार।
जिनको सतगुरू पूरा मिला, वही करें दीदार ।।

राग आसावरी

साधो भाई ये त...
... सुमरन मानो ।। टेक
... गत लुभानो।
सग है ... र करो गुमानो ।। १ ।।

05:14

facebook Open app Log In

Hari's post

#kabirbhajan #कबीरभजन #kabirbhaj...see more

तम्बूरा सुणले साधो भाई

साखी– कबीर जंत्र न बाजई, टूट गए सब तार।
तंत्र बिचारा क्या करे, चला बजावन हार।।
तम्बूरा सुणले साधो भाई।।टेका।
तेरा किया करम कटजाई, तेरी लख चौरासी मिटजाई
तम्बूरा सुणले साधो भाई

साहेब बन्दगी कबीरभजन

1. परथम गुणपत देव ने सुमरां ने सुमरां शारद माई।
दर्शन देओ गुरु परषण होजो, हिरदे हिम्मत आई।।1।।

2. पांच तत्व का बना रे तम्बूरा², तीन गुण तार मिलाई।
ओहं सोहं रटने को लाग², निर्गुण राह बतलाई।।2।।

3. आप रमीजा आरंभ रचिया², रचियो घट के माई।
गगन मण्डल में थारो बाजे रे तम्बूरो, दशमें द्वार ठहराई।।3।।

4. अनघड़ सुधा घड़ियो तम्बूरो, घड़ियो घाट घट माही।
रुणझुण2 बाजे रे तम्बूरो², इणी बंकनाल केरा माई।।4।।

5. साहब कबीर ने गायो तम्बूरो सब संतन केरा माई।
ज्ञान गरीबी पायो तम्बूरो², संत समझण घर आई।।5।।

Rajubhai Taviyad and 176 others

177 18

Vimla Jolhe

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में पहुंच जाती है तब साधक को समाधि की स्थिति प्राप्त हो जाती है। इस समाधि अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात् योगी अमर हो जाता है।

यद्यपि जैन-साधना में हठयोग को नहीं माना गया है, किन्तु सन्त आनन्दघन में इसके प्रारम्भिक तत्त्व पाए जाते हैं। किन्तु उनकी रचनाओं में हठयोग का बीभत्स रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। हठयोग की प्रारंभिक प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए आनन्दघन का कथन है :

> म्हारो बालूडो संन्यासी, देह देवल मठवासी।
> इडा पिंगला मारग तजि जोगी, सुखमना घरि आसी।
> ब्रह्मरन्ध्र मधि आसण पूरी बाबू, अनहद नाद बजासी ॥[१]

मेरा अल्पवयस्क संन्यासी शरीररूपी मन्दिर में निवास करता है और वह चन्द्रनाड़ी (इड़ा) तथा सूर्यनाड़ी (पिंगला) का परित्याग कर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता है। तदनन्तर योगी अपना आसन स्थिर कर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राणवायु को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर अनहदनाद बजाता हुआ चित्त-वृत्ति को उसमें लीन कर देता है।

लययोग

आत्मा को परमात्मा में लय कर देना ही 'लययोग' कहलाता है। इसके अनेक भेद हैं। यथा—नाद-लय-योग, शब्द-सुरति-योग, सहज लय-योग। आनन्दघन में नादलय-योग से सम्बद्ध रहस्याभिव्यक्ति पाई जाती है। अनहदनाद की चर्चा उन्होंने अनेक स्थलों पर की है। अहनदनाद श्रवण नाद लय की पराकाष्ठा है। अनहदनाद से तात्पर्य है, जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश करता है, जहां पर अपने आपकी पहचान के सहारे वह सभी स्थितियों को पार कर अन्त में कारणातीत हो जाता है। जब अनहदनाद सुनाई पड़ता है तभी साधक को परमतत्त्व के दर्शन होते हैं। योग से प्रभावित होने के कारण आनन्दघन भी अनहदनाद के रूप में उसकी अनुभूति करते थे। इसका संकेत करते हुए उन्होंने कहा है :

> उपजी धुनि अजपा की अनहद जीत, नगारे वारी।
> झड़ी सदा आनन्दघन बरखत, बन मोर एकन तारी ॥[२]

---

१. आनन्दघन ग्रन्थावली, पद ७५।

२. वही, पद ८६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

सेष बेटा हता सागर रे जणे धरण सरी सकरी।
डगी जरे माय रीया उपर जोणे है कतरी।।
आठ पोर सायब ने रटना मत करणा फीकरी।
कहत कबीर सुणो भाई साधु रेहणा वे फीकरी।।

★ भजन ★

अरथ कर अपना में बेठा नाम पकड़ निरकल।
पड़ी पाँच तीना के ऊपर मणी एक दरसेला।।
टेर : संतो पार भ्रम पूगेलो जो।
कांई वेगम के वाटे जन्म मरण सुरेला।।
चड सुरत स्णास के ऊपर हरदा कमल खटकेलो।
बोलीयो बोल तोलकर ऊपर कंठ कमल खटकेलो।
तन का तार लगा त्रिकुटी में सुखमण काज सरेलो।
अनहद घर वेकरी बाजे गगन मंडल गाजेलो।।
लागी थाप नाबी के ऊपर झिल मिल भाण झलेकेलो।
पूरण पुरुष पाट पर बैठा अजर वाणी छटकेलो।।
बोलिया बोल वेखरी बारे सत री सत तरेलो।
चन्दन सा चेत का डंका गयानियां का ज्ञान थकेलो।।

★ भजन राग प्यारी ★

चालो सतगुरु री हाट, ज्ञान गुण लाईए।
लीजे सायब को नाम, पेम पद पाईए।।टेर।।
सायब सब कुछ दीन, देवन कछु ना रीयो।
तुही अभागिनी नार, अमृत तज विष पीयो।।1।।
गई थी पीयाजी के महल, पीया संग ना रमी।
तेरे ह्रदय कपट रह्यो छाय, कुमती लज्जावती।।2।।
जो गुरु रूठा होय, तुरंत, मनाईए।
हो रही दीन अदिन, धुक बकसाईए।।3।।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में पहुंच जाती है तब साधक को समाधि की स्थिति प्राप्त हो जाती है। इस समाधि अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात् योगी अमर हो जाता है।

यद्यपि जैन-साधना में हठयोग को नहीं माना गया है, किन्तु सन्त आनन्दघन में इसके प्रारम्भिक तत्त्व पाए जाते हैं। किन्तु उनकी रचनाओं में हठयोग का बीभत्स रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। हठयोग की प्रारंभिक प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए आनन्दघन का कथन है :

> म्हारो बालूडो संन्यासी, देह देवल मठवासी।
> इडा पिंगला मारग तजि जोगी, सुखमना घरि आसी।
> ब्रह्मरन्ध्र मधि आसण पूरी बाबू, अनहद नाद बजासी ॥[1]

मेरा अल्पवयस्क संन्यासी शरीररूपी मन्दिर में निवास करता है और वह चन्द्रनाड़ी (इड़ा) तथा सूर्यनाड़ी (पिंगला) का परित्याग कर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता है। तदनन्तर योगी अपना आसन स्थिर कर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राणवायु को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर अनहदनाद बजाता हुआ चित्त-वृत्ति को उसमें लीन कर देता है।

लययोग

आत्मा को परमात्मा में लय कर देना ही 'लययोग' कहलाता है। इसके अनेक भेद हैं। यथा—नाद-लय-योग, शब्द-सुरति-योग, सहज लय-योग। आनन्दघन में नादलय-योग से सम्बद्ध रहस्याभिव्यक्ति पाई जाती है। अनहदनाद की चर्चा उन्होंने अनेक स्थलों पर की है। अहनदनाद श्रवण नाद लय की पराकाष्ठा है। अनहदनाद से तात्पर्य है, जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश करता है, जहां पर अपने आपकी पहचान के सहारे वह सभी स्थितियों को पार कर अन्त में कारणातीत हो जाता है। जब अनहदनाद सुनाई पड़ता है तभी साधक को परमतत्त्व के दर्शन होते हैं। योग से प्रभावित होने के कारण आनन्दघन भी अनहदनाद के रूप में उसकी अनुभूति करते थे। इसका संकेत करते हुए उन्होंने कहा है :

> उपजी धुनि अजपा की अनहद जीत, नगारे वारी।
> झड़ी सदा आनन्दघन बरखत, बन मोर एकन तारी ॥[2]

---

१. आनन्दघन ग्रन्थावली, पद ७५।

२. वही, पद ८६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

आज्ञाचक्रामाजीं चढे।' मात्र

जो कां ऋद्धिसिद्धिसी भुलला।
'मी सिद्ध' ये श्वाधे आला।
तो आज्ञाचक्रावरोनि चेवला। फेल्या मुकला कष्टासी॥

असा इशारा एकनाथांनी दिला आहे.
(बा.बो.२-४-९१-९९, वरद.५-१६७-१७७, ए.भा.१२-३४२-३६०)

इ

इडा-पिंगला : सुषुम्ना नाडीच्या डाव्या बाजूस इडा व उजवीकडे पिंगला. दोहोंच्या मधील ती सुषुम्ना अथवा ब्रह्मनाडी. कंठापर्यंत तिन्ही बरोबर असतात. पुढे सुषुम्ना वर मेंदूकडे जाते. इडा-पिंगला घशातून नासिकापुटाकडे जातात. इडा म्हणजे डाव्या नाकपुडीतील कर्मतंतु. तिला 'चंद्रनाडी' असेही म्हणतात. तिच्यातून शीतलता वाहाते. उजव्या नाकपुडीतून पिंगला नाडी उष्मा वाहवते म्हणून तिला अग्निनाडी किंवा 'सूर्यनाडी' असे संबोधतात. श्वास किंवा हवा ओढून आत घेणे व बाहेर सोडणे हे कार्य दोन्ही नाकपुड्यातून ह्या नाड्या करीत असतात. अंगात उष्णता वाढली तर इडा (चंद्रनाडी) चालू करावी. थंडी वाधली तर पिंगला (सूर्यनाडी) उपयोगात आणावी. हा रोगादिकांच्या परिहाराचा योगमार्गी उपाय आहे. यालाच सोमधारणा व अग्निधारणा म्हणतात.

देहीं शीतलता वाढल्या। तीस निवारी अग्निधारण।
देहीं उष्मा वाढल्या पूर्ण। सोमधारण उच्छेदी॥

(ए.भा.अ.२८-६००)

अष्टांगयोगातील 'प्राणायाम' या चौथ्या अंगाशी इडा-पिंगला या नाड्यांचा संबंध येतो. प्राणायाम करताना डावी नाकपुडी बंद करून उजवीने म्हणजे पिंगलेने श्वास आत घेतात व मग फक्त इडेने (डाव्या नाकपुडीने) तो सोडतात. मग इडेने श्वास घेऊन पिंगलेने तो सोडतात.

सर्वसंमत योगलक्षण। इडेने प्राण करावा पूर्ण।
तो कुंभकें राखावा स्तंभून। करावें रेचन पिंगल्या।

(ए.भा.१४-४२२)

श्वास नियंत्रणाच्या निरनिराळ्या पद्धती आहेत त्यांचा म्हणजे प्राणायामाचा स्वतंत्र अभ्यास वा सराव करावा लागतो. (ए.भा.१४-४१९-४२४)

इडा पिंगला व सुषुम्ना यांचा त्रिवेणी संगम भ्रुकुटीमध्यात आहे. हेचि त्रिस्थळी जननी। मोक्षरूपा।' असे सांगून 'बालबोध' कार लिहितात -

इडा वामे मंदाकिनी। विष्णुदेव चंद्रवाहिनी।
ते शक्ती नारायणी। चिदात्मक।
पिंगळा दक्षिण नाडी यमुना। ब्रह्मतत्त्व सूर्यवाहना।
ते ब्रह्माणि सगुणा। आनंदरूपा॥

मधली सुषुम्ना ही सरस्वती असून ती अग्निवाहिनी ईश्वराची भवानी (माया) होय. (बा.बो.२-५-३८-४१)

इंद्रिये: ज्ञानेश्वरीच्या १३ व्या अध्यायातील क्षेत्रविचारामध्ये ज्ञानेश्वरांनी ३६ तत्त्वे सांगितली आहेत. (ज्ञाने.१३-७२-१२०) त्यामध्ये त्रिविध अहंकारांपासून निर्माण झालेल्या सांख्यांच्या २५ तत्त्वांचाही समावेश झाला आहे.

सात्त्विक अहंकारापासून ज्ञानशक्तीच्या आधाराने अंतःकरणपंचक निर्माण झाले असून त्यामध्ये मन हे आंतरइंद्रिय प्रमुख आहे. मन बुद्ध्यादी इंद्रियांना कर्ता, भोक्ता म्हटले जाते. रजोगुणापासून क्रियाशक्तीच्या द्वारा पंचदश तत्त्वे निर्माण होतात. त्यापैकी दहांची इंद्रियात गणना होते.

तरि श्रवण नयन। त्वचा घ्राण रसन।
इयें जाणें ज्ञान। करणें पांचै।

(ज्ञाने.१३-९८)

राजसें अहंकारें जनितु। जो श्रोत्रादी तत्त्वांचा सांघातु।
तो साधन शब्दें बिल्यातु। सकळविषयीं॥

या साधनामध्येच 'वाचा पाणी आणि पांद। चौथे सिश्न पांचवे गुद।' हे कर्मेंद्रियपंचकही येते.

(वि.सि.३-८०-८५)

तमोगुणापासून द्रव्य शक्तीच्या आधाराने पंचमहाभूतें व पंचविषय निर्माण झाले.

तरी स्पर्शु आणि शब्दु। रूपरसगंधु।

निरूपण किया है।

श्रीयोगसंचरशास्त्र में कहा है कि दूसरों की देह में अपनी आत्मा को एवं दूसरों की आत्मा को स्वयं की देह में देखते हुए,हानाद-हाकार के उच्चारण के द्वारा गमागमन करते हुए (स्वदेह से परदेह एवं परदेह से स्वदेह में) नौ छिद्रों में प्रविष्ट एक ही नादयुक्त व्यापक धुव आत्मा का अनुसन्धान करते हुए योगी खचारी अर्थात् खेचरी मुद्राबन्ध से अनुविद्ध हो जाता है (तन्त्रा., ३२. ३०-३१)।

वीरावलिशास्त्र के अनुसार खेचरी मुद्रा के अन्तर्गत अणु, पशुप्रमाता के भीतर विचरण करती हुई तन्मयता को प्राप्त कुलकुण्डलिका अर्थात् मध्यप्राणशक्ति को बांधकर इस संसार में स्थित अज्ञानादि का संहार करने को उद्यत शक्ति को अपने स्थान शाक्ताधार में ऐक्यापत्तिरूप निर्वृत्ति प्राप्त कराई जाती है। साथ ही ज्ञानामृतरसात्मक कन्दपद में सर्वकाम स्वरूप वाले जीव को, मध्यविषधारादि प्रशान्तरूप कंदस्थान में, राव (नाद) करते हुए चिन्तामणि नामक चतुष्कोण जिसमें संजीवनीरूप अमृत स्थित है, तक एवं पिण्डाधार शरीर में पहुँचाया जाता है। उन आधारों को प्राप्त उस कुलकुण्डलिनी को प्रबुद्ध करके अर्थात् मूलस्थान से प्रारम्भ करके प्राणापानरूप चक्रद्वय से संयुक्त करते हुए द्वादशान्त तक पहुँचाया जाता है। योगी इस गति के ज्ञान से उत्पन्न माहात्म्य से ही दुर्भेद्य अज्ञानग्रन्थि एवं वज्र नामक मध्यनाड़ी को विदीर्ण करता है एवं प्राणापानात्मक दोनों शाखाओं के अन्त का आश्रय लेकर जन्माधाररूप त्रिकोण में से निकले हुए, मेढ्र के नीचे स्थित लिंगमूल का भेदन कर देता है। वहीं पर प्राणापानरूप चक्र से ऐक्यरूप होकर भासित होने वाली मध्यप्राणशक्ति का उदय होता है। पुनः विपरीत संचारपूर्वक,अधोगति से वह प्राणशक्ति द्विधाभाव ग्रहण करती है एवं ऊर्ध्व आद्य अंगुष्ठरूप कालाग्नि-पर्यन्त गमन अर्थात् तद्रूप ग्रहण करती है। वही कुण्डलिनी ऊर्ध्व एवं अधःसंचार को छोड़कर प्राणापानरूप लिंगों के द्वारा ज्ञात होने के कारण लिंगिनीरूप में उन - उन आधारों का भेदन करती हुई मध्य-धाम में पहुँचती है और वहाँ पर प्राण एवं अपान इन दोनों पदों के संयोग से संवित् को विकसित करती है। इन समस्त भावों में अनुस्यूत ऊर्मियों के उन्मीलन अर्थात् परासंवित् का विकास करने वाले स्थान के स्वरूप एवं प्रक्रिया का ज्ञान हो

जाने पर योगी में संवित् के रसादान एवं विसर्ग अर्थात् सृष्टि एवं संहार की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। प्राणशक्ति के संचार एवं परासंवित् के उदय का यह क्रम निश्चित नहीं है, इसका व्युत्क्रम भी हो सकता है। जब पराखेचरी योन्याधार से उदित होकर शूलमूलरूप में हठात् शक्ति-व्यापिनीसमनारूप अरात्रय से संयुक्त होकर द्वादशान्त पद को प्राप्त कर लेती है। इस स्थिति में समस्त बाह्य भावों का उच्छेद अथवा क्रोडीकार हो जाता है एवं स्वावमर्शरूप "अ" वर्ण में बाह्यामर्शरूप अन्य समस्त वर्ण लीन हो जाते है (तन्त्रा., ३२. ३२-४२)।

शुद्धात्मा देहस्थित कौलेश (योगी) सर्वप्रथम नादिफान्त - मालिनीरूप सर्वमन्त्रारणिस्वभाव नाद का अपनी देह से अभिन्नरूप में उच्चारण करता है एवं उसी गर्भयुक्त उच्चार्यमाण नाद का आधार लेकर जन्माकाशरूप मर्मस्थान में कौलिनी कुलकुण्डलिनी के पदरूप नाड्यात्मक प्रथम चक्र को पाद अर्थात् अंश से पीड़ित करते हुए, वहाँ किसी तरह प्राणशक्ति का निरोध करके, अवशिष्ट पाँचों चक्रों पर आक्रमण करके ब्रह्मादि कारण-पंचक (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर व सदाशिव) का उल्लंघन कर देता है एवं हृदयस्थित नाडित्रयात्मक शूल एवं द्वादश ग्रन्थ्यात्मक ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर स्थित शक्त्याद्यात्मक शूल के भेदन - क्रम से रुद्र शक्ति को प्रबुद्ध करता है जिससे यह जन्मपद से प्रारम्भ करके वायुचक्र के अन्त अर्थात् समीप में स्थित नाभिमण्डल और उनके संघट्ट के आधारभूत लम्बिकास्थान और उससे ऊपर स्थित बिन्दु नामक अमृत के आश्रयस्थल, भ्रूमध्य में स्थित विद्याकमल - संज्ञक, नाडियों के रहने के कारण द्वादशग्रन्थ्यात्मक (नाड़ियों के) आधारस्थल से निकल कर समस्त सम्बन्धों को पार करके द्वादशान्त पद पर्यन्त ऋजुक्रम से जाता है और वहाँ विश्रान्ति करता है। पुनः उसे चन्द्रचक्र अपानस्थान से प्रत्यावृत होते हुए विलोम क्रम से स्वशरीर में प्रवेश करके व्युत्थान दशा के अनुकूल व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकारखेचरी - मुद्राविष्ट ज्ञानी अन्तर्बहिरुन्मेष व निमेष के माध्यम से सृष्टिसंहार करते रहते हैं (तन्त्रा., ३२. ४२-४७अब)।

कामिकागम के अनुसार खेचरीमुद्रा के अन्तर्गत योगी चुम्बाकार अर्थात् काक चंचुपुट की आकृति वाले मुख से अनच्ककलात्मा "ह" के द्वारा मध्यप्राणशक्ति का अवलम्बन करने वाले वक्त्र से इस प्रमाणप्रमेयात्मक विश्व को स्वात्मसात् कर लेता है एवं इसलिए परप्रमाता से एकरूप तत्त्व का चन्द्रार्कपुट अर्थात् प्राणापानयुग्म के मिलनस्थल मध्यधाम में साक्षात्कार करता है उसी से योगी का खचारित्व सिद्ध हो जाता है (तन्त्रा., ३२. ४७स-४८)।

देहादी उपाधींपासून आत्मा सर्वस्वी अलिप्त असतो. जीवात्मा हा प्रतिबिंब स्वरूप आहे.

प्रतिबिंबिला देव जीवशिवरूपें।'

(ए.भा. ३.१०२)

तोचि (आत्मा) अविद्येमाजीं प्रतिबिंबिला।
या लागीं जीव हे नाम पावला॥

(ए.भा.२८-१९५)

या जीवाला (चैतन्याला) क्षर पुरुष म्हटले जाते. याचे कारण जीव स्वत:चे आत्मत्व विसरून उपाधीशी-देहाशी तादात्म्य पत्करतो.

आणि क्षरपणाचा नाथिला। आव्रू यया ऐसेनि आला।
जे उपाधीचि आंतला। म्हणोनियां।

(ज्ञाने. १५-४९७)

पाण्यात पडलेले चंद्राचे प्रतिबिंब पाण्याबरोबर हेलावते आणि पाणी आटले की तेही नाहीसे होते. (मूळचा चंद्र मात्र जसाच्या तसाच असतो) त्याप्रमाणे उपाधीच्या योगाने जीवाला क्षणिकत्व, क्षरत्व (विनाशीपणा) प्राप्त झाले आहे. एऱ्हवी आत्मस्वरूप निरुपाधिक अक्षर, निर्गुण, निर्विकार असेच असते.

(पाहा : आत्मा, जीव)

उपासना : (उप+आसन) उपासना म्हणजे ईश्वर, गुरू यांच्या जवळ आपली बैठक असावी असे प्रयत्न करणे त्यासाठी उपास्य देवतेची प्रार्थना, पूजाअर्चा, सेवा, ध्यान इत्यादी मार्गाने भक्तीभाव व्यक्त करणे.

(पाहा : भक्ती, षोडशोपचार)

उल्हाटशक्ती : उल्हाटशक्ती म्हणजे कुंडलिनी. बहुधा ही संज्ञा 'आल्हादिनी शक्ती' या संज्ञेचे लोकात रूढ झालेले अपभ्रष्ट रूप असावे. आसन, प्राणायाम यांच्यामुळे जागृत झालेली ही शक्ती मूलाधार चक्रापासून निघून सुषुम्ना मार्गाने वरवर चढत जाऊन ही प्राणशक्ती ब्रह्मरंध्रापर्यंत जाऊन पोहोचली की, योग्याला मुक्तावस्था प्राप्त होते. ज्ञानेश्वरीच्या सहाव्या अध्यायात ज्ञानेश्वरांनीं या कुंडलिनीयोगाचे सविस्तर वर्णन केले आहे. नवव्या अध्यायात कीर्तनभक्तीच्या गौरवानंतर योगभक्तीचे रूपकात्मक चित्रण करताना 'उल्हाटशक्ती' ही संज्ञा ज्ञानेश्वरांनी उल्लेखिली आहे ती ओवी अशी-

तेथ उल्हाटशक्तीचेनि उजिवडें। मनपवनाचेनि सुरवाडें।
सतराविचेें पाणियाडें। बळियाविले।

(ज्ञाने. ९-२१४)

आत्मानुभवाचे राज्य मिळविण्यासाठी अष्टांगयोगाच्या आधारे योगी जी लढाई करितो, त्या सांग रूपकामध्ये असलेला उल्हाटशक्तीच्या पराक्रमाचा वाटा वरील ओवीत ज्ञानेश्वरांनी वर्णिला आहे. पंचप्राण आणि मन' या वाटाड्यांच्या मदतीने आणि उल्हाटशक्तीच्या प्रकाशामध्ये जीवाकडून सतराविचेें-चित्कलेचे अमृत-तळे काबीज केले जाते. तेव्हा 'प्रत्याहार' हा इंद्रियांना बांधून आणून हृदयामध्ये कोंडू शकतो.

एकनाथांनी याच प्रकारच्या रूपकामध्ये उल्हाटशक्तीचा उल्लेख केला आहे. वैराग्याच्या बळावर कुंडलिनीने काकीमुखाची अवघड वाट जिंकून वेगाने त्रिकूट शिखर (पश्चिम मार्गावरील एक चक्र) घेतले.

तेथ उल्हाटशक्तीचा लोट। वैराग्याचा नेटपाट।
जिणोनि काकीमुखाची वाट। सवेगें त्रिकुट घेतले।

(ए.भा.१४-४४६)

एकनाथी भागवताच्या विसाव्या अध्यायात अवघ्या वीस ओव्यात एकनाथांनी कुंडलिनी योगाचे संक्षिप्त वर्णन केले आहे. तेथेही एका ओवीत 'उल्हाटशक्ती' ही संज्ञा आली आहे. त्यातही चंद्रामृताच्या तळ्यातून सहस्र पाट वाहू लागल्याने त्या अमृतप्राशनाने कुंडलिनी बाळा संतुष्ट झाल्याचे वर्णन एकनाथ करतात.

साधता उल्हाट शक्तीचे उलट।
उघडे ब्रह्मरंध्रींचें कपाट।
तंव लोटले सहस्रदळाचे पाट। अति चोरवट चंद्रामृत॥
तें प्राशूनि कुंडलिनी बाळा। संतोषे सांडी गरळा॥
ते शरीरीं वोतली कळा।
... तेणें देहो दिसे अतिसोज्वळा॥

(ए.भा.२६०-२६२)

कामासक्ति है वही स्त्री संग की प्राप्ति के लिये कारणीभूत है। अगर वहीं विरक्ति उत्पन्न हो जाय तो फिर स्त्री की प्राप्ति कौन पूछता है? भगवान ने भाव विह्वल होकर उद्धव से यह बात कहीं। वह सुनकर उद्धव ने भी अंत:करण में विचार किया। जिससे प्रबल विरक्ति उत्पन्न होती है, विषयासक्ति की बाधा भी नहीं होती उस ध्यान के सम्बन्ध में उसने भगवान से पूछा। वैसा ध्यान लगने से स्त्री-पुरुष का भान ही नहीं रहता और जीव में ज्ञानजन्य संतोष उत्पन्न होकर जो संतोष प्राप्त होता है उसके सम्बन्ध में उसने भगवान से प्रश्न किया।

उद्धव उवाच

यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकम्।
ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं त्वं वक्तुमर्हसि॥ ३१॥

उद्धव ने कहा, "हे कमलनयन! हे जगज्जीवन! मुमुक्षु जन तुम्हारा जो ध्यान करते हैं उसका लक्षण मुझे बताओ। वह ध्यान सगुण होता है या निर्गुण? उसका स्वरूप कैसा रहता है? वर्ण कैसा रहता है? सब कुछ यथासांग बताने की कृपा करो। जिसमें निमग्न होने पर वहाँ से मन हटता ही नहीं है, उसका माधुर्य इतना होता है कि वह तुम्हें भी अच्छा लगता है, ऐसे ध्यान के बारे में मुझे बताइये।" उद्धव का यह प्रश्न सुनकर भगवान उत्तम ध्यान के लक्षण के रूप में आसन और प्राणायाम का ही निरूपण करते हैं।

श्रीभगवानुवाच

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्।
हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः॥ ३२॥

अब आसन का लक्षण सुनो। पाषाण का आसन करने से व्याधि उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। केवल जमीन पर बैठना तो और भी कठिन और दु:खदायी है। लकड़ी का आसन बनाने से मन भी सूखी लकड़ी की तरह शुष्क एवं निर्दयी बनता है। तृण का आसन बनायें तो जिस प्रकार उसमें चित्र विचित्र अंकुर निकले रहते हैं उसी प्रकार मन में भी अनेक प्रकार के विकल्प उत्पन्न होते हैं। वृक्ष के पत्तों का आसन बनायें तो चित्त सदैव हिचकोले ही खाता रहता है। जारण, मारण अथवा स्तम्भन करना हो तो काले आसन का प्रयोग करना चाहिये। ज्ञानार्जन के लिये मृगचर्म उपयुक्त है। व्याघ्रचर्म का आसन मोक्षसिद्धि के लिये फलदायी है। श्वेत कम्बल का आसन बनाने से मोक्ष आदि अनेक प्रकार की सिद्धियाँ साधकों को प्राप्त होती हैं। जमीन निर्मल तथा समतल हो और वहाँ किसी के उपद्रव की सम्भावना न हो ऐसे स्थान पर आगे कहे गये ढंग से उत्तम लक्षणों से युक्त आसन तैयार करना चाहिये। कुशा, वस्त्र, कम्बल, चर्म आदि से तैयार किये गये आसन का प्रयोग करना चाहिये। वह अत्यधिक ऊँचा या नीचा नहीं होना चाहिये। चारों ओर से एक जैसा होना चाहिये। आसन ऊँचा होने पर वह डगमगाने लगता है और नीचा होने पर उसमें भूमिदोष की सम्भावना होती है। इसलिये आसन समतल तथा एक जैसा होना चाहिये। वह कोमल तथा मुलायम होना चाहिये। फिर शुद्ध मुद्रा के साथ वज्रासन अथवा कमलासन लगाना चाहिये अथवा जिसमें आनन्द प्राप्त हो ऐसा सहजासन लगाना चाहिये और फिर मेरुदण्ड को सीधा रखना चाहिये, शरीर को बिलकुल सीधा रखना चाहिये और मूलाधारादि जो तीन बंध हैं उन्हें ठीक तरह से साधना चाहिये। ऐसा आसन लगाने पर उस आसन पर दोनों हाथों के फैले हुए पंजे दोनों जाँघों पर उलट कर रखने से बहुत सुन्दर लगते हैं। फिर नाक का ऊपरी हिस्सा दूर रख केवल नाक के अग्रभाग पर दृष्टि केन्द्रित करनी चाहिये। उसी स्थान पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घंटानाद की तरह अखण्ड चलता रहता है। कमलनाल के सूक्ष्म तंतु की तरह मूल से ब्रह्मरन्ध्र के अन्त तक प्राणायाम से प्रणव का आभास होता है। वहाँ अत्यन्त दीर्घ स्वर में नाद होता है इसलिये अत्यन्त सूक्ष्म रीति से प्रणव का भास होता है। उसे प्राणायाम से स्थिर, अखण्ड रूप तथा नादयुक्त करना चाहिये।

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग् जितानिलः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार स्वर, वर्ण और मात्रा इनसे भी निराला अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अदृश्य ऐसा जो (ॐकार) है उसे कितने ही पुरुष अभ्यास के सामर्थ्य से स्वयं इन्द्रियों को वृत्तिगोचर कर लेते हैं। उस उच्चार का चमत्कार आश्चर्यजनक है। वह ऊर्ध्वमुख होकर अखण्ड अस्तित्व में रहता है। उसी झंकारयुक्त तथा नादमय प्रणव को अभ्यास के योग से स्थिर करते हैं। इस प्रकार आलस्य का त्याग कर प्रणव का त्रिकाल अभ्यास करते समय धीरे-धीरे दस आवृत्तियाँ करने से, जिस प्रकार कोई महासाध्वी पतिव्रता अपने पति के वचन का जरा भी उल्लंघन नहीं करती, उसी प्रकार एक माह पूरा होने के भीतर ही यह प्राणजप साध्य होता है। इस अभ्यास में सतत दक्ष रहने पर वह पुरुष योगाभ्यास का रहस्य सहज ही प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार प्राणनिरोध साध्य होने से भजन की स्थिति भी दो प्रकार की होती है। पहली शास्त्रोक्त विधि से सगुणोपासना तथा दूसरी योगाभ्यास से निर्गुणोपासना। लेकिन दोनों का समाधान निर्गुण में ही मिलता है, यह ध्यान में रखो। इन दोनों का उपलक्षण श्रीकृष्ण संक्षेप में बताते हैं। अरे! ॐकार का स्मरण ही जहाँ नष्ट होता है और यदि स्मरण किया ही तो स्वर के साथ प्राण ही प्रणव में भर जाता है और फिर अखण्ड आकार से उल्हास पाने वाला प्रणव ही स्फुरण करता रहता है। जहाँ से अक्षरों का उद्‌गम होता है और बोलने के बाद शब्द जिसमें समाविष्ट होते हैं और फिर जो स्फूर्ति शेष रहती है, उसी को सचमुच प्रणव कहते हैं। उस प्रणव के ही आधार पर छहों चक्र जीतने पर प्रणव आगे बढ़कर निश्चयपूर्वक चलने लगता है। तब कुण्डलिनी शक्ति के जोर और वैराग्य की प्रबलता के कारण वह सुषुम्ना नाड़ी (इडा और पिंगला के बीच सुषुम्ना नाड़ी है) के द्वार का मार्ग तत्परता से पार कर पश्चिम मार्ग के पहले स्थान को प्राप्त कर लेता है। उस समय दशनादों के घोष से विजय का निशान लहराने लगता है। तब आगे चलने का जो योगमार्ग है वह अपने आप ही आगे आता है। वहाँ औटपीठ और गोल्हार अत्यन्त आनन्द और उत्साह से दोनों चक्रों का मार्ग जीतकर तत्परता से आगे बढ़ने लगते हैं। पीछे का विस्मरण हो जाता है, विकल्प का भी नाश हो जाता है और जीने की कला प्राप्त हो जाती है। वहाँ सहस्त्रदल कमलों से छूटी धारायें नीचे की ओर आती रहती हैं और सीधे स्वानंदजीवन (जीवनकला के निकट) के पास आती हैं। वहाँ का जल आनन्दपूर्वक सेवन करने से संतप्त हुई जमीन हरी हो जाती है, इन्द्रियों की बेचैनी शान्त हो जाती है और गुणों की त्रिवेणी डूब जाती है। तब भ्रमर गुफा के अन्दर जीव और शिव की एकान्त में भेंट होती है। उससे जीवत्व के प्रान्त और वृत्ति इन दोनों का नाश होता है। यहाँ आत्मस्वरूप से ऐक्य हो जाने के कारण शिव और शक्ति का उत्कृष्ट तालमेल हो जाता है और परमानन्द से शरीर सौष्ठव बढ़ जाता है और सुख का उपभोग ही शेष रह जाता है। उस समय उद्देश्य, बोलना, दृष्टांत अथवा वेदवाद आदि की बातें समाप्त हो जाती हैं। 'मैं' और 'तू' का अन्त होता है और अकेला एकान्त शेष रह जाता है। लेकिन यह कहनेवाला भी कोई नहीं रहता इसे ध्यान में रखो। इस प्रकार जो मेरे योगसामर्थ्य से बलवान हुए उन्हें ही मेरा आत्मसुख प्राप्त हुआ। लेकिन योगमार्ग का यह रास्ता अत्यन्त कठिन है और उसमें कष्ट भी अनेक हैं। इसलिये इसमें योग की प्राप्ति एकआध को ही होती है। मेरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः।
दुःखोदर्काणि सम्पश्यन् रजोवेगविमौहितः॥ ११॥

जब रजोगुण का आवेश उत्पन्न होता है, उस समय कामरूप ग्रह अद्भुत ढंग से बिफरता है और जो पुरुष काम से ग्रस्त होता है वह सदा काम का ही दास बन जाता है। जिसके मन में विचार नहीं है वह काम का जर खरीद गुलाम बनकर रहता है। काम उसे जैसे नचाता है उसी के अनुसार वह नाचता रहता है। काम का दास हो जाने पर उसका दुःख प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है, सकाम कर्म करना ही उसे अनिवार्य हो जाता है और वह अत्यन्त अहंकारी हो जाता है। रजोगुण के कारण वह मोह में लिप्त रहता है इसलिये वह इन्द्रियों पर विजय न प्राप्त करने वाला तथा अयोग्य बना रहता है। वह जन्म-मरण के अधीन रह कर तदनुसार सारे कर्म करता है। रजोगुण की पीड़ा अत्यन्त भयंकर है। उसने सारे लोगों को विषयांध कर दिया है। उद्धव! रज पर लुब्ध होने वाले लोग अत्यन्त मूर्ख होते हैं, यह प्रसिद्ध ही है। रजोगुण से बद्ध होने पर महामोह का प्रवेश होता है तब भ्रम की आँधी चलती है और तमोगुण चारों ओर फैलता है। उद्धव! प्राणियों की बुद्धि सचमुच ऐसी होती है इसे ध्यान में रखो। इसीलिये वे काम का सेवन करते हैं। विषयों से उन्हें विरक्ति नहीं होती। अब शायद तुम सोचोगे कि तब तो तरने का कोई उपाय ही नहीं रहा और प्राणियों को सद्गति भी मिलने से रही। यह विषयासक्ति अनिवार्य है। जीव का तो अविद्या और विषय से सम्बन्ध रहता है। उनकी पीड़ा बहुत बड़ी होती है। अविद्या का सम्बन्ध अनादिसिद्ध है। इसके कारण अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उठती हैं। अंतःकरण भी अनादि है और उसकी पूर्णता भी क्रमानुसार होती रहती है। इससे विषयबुद्धि भी दृढ़ हो जाती है और त्याग बिलकुल नहीं होता। अंतःकरण सत्व से उत्पन्न होता है यह सत्य है किन्तु यह कार्य माया का है इसे ध्यान में रखो। सुखभोग की आदत से जहाँ रजोगुण उफन उठेगा तो उसे कौन रोक पायेगा? जो विचारी पुरुष होते हैं वे भी विषय के अधीन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए रहते हैं। इसलिये इस लोक में विषय का त्याग नहीं हो पाता। उद्धव! तुम्हारी शंका यही थी न? तो उसका भी उपाय सुनो। जो विचारशील लोग हैं उनके मन में विषय वासना उत्पन्न ही नहीं होती। लेकिन इस पर भी यदि कभी ऐसा हुआ तो उन्हें अभ्यास करना चाहिये।

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः।
अतन्द्रितो मनो युञ्जन् दोषदृष्टिर्न सज्जते॥ १२॥

रज और तम ये गुण यदि बुद्धि पर अपना प्रभाव जमाने में सफल हो जाएँ तो ज्ञाता को आलस छोड़ कर अपने मन को नियंत्रण में रखना चाहिये। स्त्री का शरीर हड्डियों और मांस का बना विष्ठामूत्र का भण्डार है और उसके सम्बन्ध में विचार करने पर भी घृणा हो आती है। उसका भोग तो नरक की यातना के समान है। इस प्रकार स्त्री भोग के दोष बता देने से मन विषयों से तत्काल दूर कर नियमों के नियंत्रण में रखना चाहिये। ऐसा करने से भी मन नियमों के बन्धन में नहीं बँध पाता। अभ्यास करने वालों को इसमें बड़ी कठिनाई होती है। अर्थात् साधारण लोग तो इसमें असमर्थ ही होते हैं। तो भाई! ध्यान से सुनो। तो जिससे मन नियंत्रित हो सके ऐसा मनोनिग्रह का लक्षण और साधन बताता हूँ।

अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः।
अनिर्विण्णोयथाकालं जितश्वासो जितासनः॥ १३॥

आलस और निद्रा का त्याग कर जो सावधान चित्त से ब्रह्मसाधना करता है, वही सचमुच मेरे चित्स्वरूप के अभ्यास में लग जाता है। इसमें पहला काम है आसन स्थिर करने का अभ्यास। मूलबंध व्यवस्थित नियमानुसार करने में आसन स्थिर होता है। आसनजय साध्य होते ही वह सहज ही योगमार्ग पर लग जाता है और अधिक अभ्यास करने पर प्राण और अपान की स्थिति भी सामान्य होने लगती है। विषय मन के अधीन रहते हैं, मन वायु के वश में रहता है इसलिये अभ्यास से वायु को ही वश में कर लेने से मन अपने आप स्थिर हो जाता है। इस प्रकार जो धीरे-धीरे अभ्यास कर समय को सार्थक करता है वह विरक्त भले ही न हो लेकिन महान सामर्थ्यवान बनकर परमार्थ के प्रति अत्यन्त व्याकुल रहता है। हरिचिंतन में मन को एकाग्र करने से प्राण और अपान ये दोनों वायु एकरूप हो जाते हैं। यही वायु की परिपूर्ण विजय है। उसे साधने से योगसाधन सहज ही साध्य हो जाता है। तब प्राणापान की समजोड़ी छः चक्र के परदे फाड़ देती है। तब चित्त विषयों को छोड़ देता है और विषय भी चित्त को छोड़ देते हैं। इस प्रकार इस अभ्यास के मार्ग से वासनायुक्त इच्छा का सम्बन्ध ही टूट जाता है। इसी मार्ग से मैंने सनकादिकों को आत्मज्ञान की ओर प्रवृत्त किया।

एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः।
सर्वतोमन आकृष्यमय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा॥ १४॥

देखो। इसी उपदेश से मेरे शिष्य सनकादिक आदि ने अपने अभ्यास के सामर्थ्य से अलौकिक आत्मज्ञान का सुख प्राप्त किया। ऐसा वह कौन-सा उपदेश है? वह चित्त और विषय के सम्बन्ध को तोड़ने के बारे में है। यही बात उन्हें बताकर मैंने उन्हें आत्मज्ञान के अभ्यास की ओर लगाया। मन जहाँ भी कहीं जाये वहाँ परब्रह्म ही भरा हुआ है यही भावना धारण करने की आदत लग जाने के कारण सनकादिक ब्रह्मस्वरूप हो गये। चित्त का विषयों से वियोग कराना यही योग सनकादिकों ने साध्य किया। उन्हें इसका उपदेश करने के लिये मैं श्रीकृष्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोल नहीं सकती। इस चक्र में प्राणवायु भी एकत्र रहता है किन्तु वह उसके आगे नहीं जा पाता। वहाँ प्राण और अपान का झगड़ा होकर दोनों ही रूठ जाते हैं। वहीं बहुत बड़ा गृहकलह मच जाता है और दोनों में अलगाव होने लगता है। इस प्रकार प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान ये पाँच प्राण अलग-अलग रहने लगते हैं। जो पहले रूठ गया था उसे 'अपान' कहते हैं। गुस्से में जो आगे बढ़ा आता है उसे 'प्राण' कहते हैं। दोनों में जो समानरूप से नाभि में रहता है, उसे 'समान' कहते हैं। जो कंठ में रहता है, उसका नाम 'उदान' है। लेकिन व्यान को रहने का स्थान ही नहीं है इसलिये वह पूरे शरीर में परिभ्रमण करता रहता है। इनसे भी सूक्ष्म पंचप्राण होते हैं जो भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं। उन्होंने स्वयं ही अपने रहने के लिए अलग-अलग स्थान निश्चित कर लिया है। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा पाँचवाँ धनंजय यही वे पंचप्राण हैं। इनकी शरीर में जहाँ बस्ती रहती है वे स्थान तुम्हें निश्चित रूप से बताता हूँ। छींकर नाग का घर है, जम्हाई कूर्म का घर है और ढकार कृकल का घर है। हिचकी देवदत्त का निवास है। लेकिन धनंजय को कहीं भी बसेरा नहीं मिलता इसीलिये जीव और देह का संगम होने के स्थान पर (अर्थात् चिच्चडग्रंथि में) धनंजय रहता है। इससे जीव शरीर को छोड़ देता है तो भी कुछ समय के लिये यह शरीर को बचाकर रखता है। स्वाधिष्ठान नामक चक्र से प्रारम्भ कर क्रमानुसार प्राण के दस भाग होते हैं। उनका स्थान, मान और लक्षण ये सारी बातें मैंने तुम्हें बतायीं। मैंने तुम्हें पहले ही यह बात बता दी है कि प्राण और अपान ये दोनों रूठे हुए हैं। इसके बाद उन दोनों का कभी मिलन नहीं हुआ क्योंकि वे दोनों ही बहुत हठी तथा सनकी हैं। उन दोनों में जो मेल करा दे वही प्यारा दुलारा है, यह जान लो। उसे मैं स्वयं ही अपना सर्वस्व अर्पण करता हूँ। इसी का नाम योगसाधना है। हे उद्धव! प्राण के लक्षण बताते-बताते सहसा प्राण और अपान की साम्यस्थिति बताने का प्रसंग आया। इसलिये तुम भी उसे सुन लो। स्वाधिष्ठान चक्र से मणिपूर चक्र में आते समय जीव और मन की एकता होती है। वहीं सूक्ष्मप्राण का निवास होने के कारण पश्यंती परावाणी की एकता प्राप्त करती है। तब मन में खिलाड़ी प्रवृत्ति उत्पन्न होकर बाल्यदशा प्राप्त होती है, यह समझ लो। इसके बाद प्राण आराम से आगे बढ़ता है और अनाहत स्थान तक पहुँच जाता है। तब पश्यंती वाणी की कृपा से मध्यमा नाम की वाची उत्पन्न होती है। वह मौन का दामन छोड़े बिना अपने से ही गुनगुनाने लगती है। यहाँ मन को मुग्धावस्था (सोलह वर्ष के लगभग की अवस्था) प्राप्त होकर वह अनेक प्रकार के उपभोगों और सुखास्थिति की कामना करती है। लेकिन लज्जा के कारण कुछ कह नहीं पाती। फिर प्राण अत्यन्त तत्परता से विशुद्धि स्थान पर पहुँचता है और उच्छृंखल उदान का रूप धारण करता है। तब मन को भी परिपूर्ण यौवन प्राप्त होता है। उस विशुद्धि चक्र में भीतर से परावाणी भी आ मिलती है और पश्यंती और मध्यमा भी एक हो जाती हैं। इस प्रकार वे सब बड़ी शान से विचरण करने लगती हैं। उनके इस झटके के पीछे-पीछे तत्काल मुँह से वाणी प्रकट होती है। वह यौवन से उन्मत्त रहती है और मुँह से स्वर और वर्णों की व्यर्थ की बड़बड़ करती रहती है। आज्ञाचक्र की स्थिति भौहों में होती है और वह उनसे अलग है। वहाँ वाणी का प्रवेश नहीं होता। योगियों का हंस लक्षण यही है। ये क्रमानुसार छह चक्र हैं। चार मातृका, अट्ठाईस वर्ण तथा सोलहों सम्पूर्ण स्वर प्राप्त हो जाएँ तो यही योगियों का हंसलक्षण होता है। अब किस चक्र में कौन से वर्ण उत्पन्न होते हैं मातृका का क्या स्थान है सारे स्वर कहाँ उत्पन्न होते हैं उनके भी लक्षण सुनो। आधारचक्र में चार पंखुड़ियों की आकृति होती है और उन आकृतियों में चार मात्राएँ छूटी रहती हैं। व, श, ष तथा स इन अक्षरों को शास्त्रज्ञों ने मात्रा कहा है। स्वाधिष्ठान छह पंखुड़ियों का चक्र है। वहाँ छह वर्ण स्थापित हैं। 'ब' कार से 'ल' कार तक (ब, भ, म, य, र, ल) ये जो छह वर्षा हैं वे उन स्थानों पर निश्चित रूप से रहते हैं। मणिपूर चक्र में दस पंखुड़ियाँ हैं, जहाँ दस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्ण स्थापित हैं। 'ड' कार से 'फ' कार तक (ब, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ) ये दस वर्ण उस चक्र में रहते हैं। अनाहतचक्र बारह पंखुड़ियों का है। वहाँ 'क' कार से 'ठ' कार तक (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ) बारह वर्ण रखे हुए हैं। वे उस चक्र की शोभा बढ़ाते हैं। विशुद्ध चक्र सोलह पंखुड़ियों का होता है और उसमें अ, इ, उ, ऋ, लृ मिलाकर कुल सोलह स्वर हैं। उन सभी स्वरों की जमघट कंठस्थान में होती है। वेदों में उनका अगाध सामर्थ्य दिखाई देता है। लेकिन आज्ञाचक्र बहुत कठिन है। वहाँ काकीमुख नाम का जो द्वार है वह खुलता ही नहीं है। वहाँ प्राणों की छटपटाहट नहीं चलती। वहाँ का मार्ग अत्यन्त विकट होने के कारण वह उन्हें नहीं मिल पाता। वह आज्ञाचक्र दो पंखुड़ियों का होता है और वह शुद्ध रूप से हंस का मन्दिर है। वहाँ पहुँचने के लिये महान योगसामर्थ्य की आवश्यकता होती है। इस स्थान तक पहुँचने के लिये योगी अनेक प्रकार के हठयोग करते हैं लेकिन अनेक संकटों का सामना कर योगाभ्यास करते पर भी वे वहाँ तक नहीं पहुँच पाते। मेरा यह स्थान प्राप्त करने के लिये एक अत्यन्त गूढ़ अनुष्ठान है। 'सोहं हंसा' की साधना जो कोई अत्यन्त सावधानी से करेगा वही उस स्थान तक पहुँचेगा। प्राणायाम का निरोध और त्याग कर 'सोहं हंसा' का स्मरण कर जो सावधानी से यह अनुष्ठान करेगा वही यह स्थान प्राप्त करेगा। वही वायु का निरोध करने में सक्षम होता है और वही आज्ञाचक्र में प्रवेश करता है। इतना ही नहीं वह उससे भी आगे का मार्ग अचूक खोज निकालता है। वहाँ ऋद्धि सिद्धि के समुदाय उसे अनेक सुखसमृद्धि के फल उपलब्ध कराते हैं लेकिन वह उन सब को पीछे छोड़ अपने पवित्र मार्ग पर अग्रसर होता है। जो ऋद्धिसिद्धियों के भुलावे में आ गया या जिसमें सिद्ध होने का अभिमान जाग उठा वह उस आज्ञाचक्र से च्युत हुआ और उसके सारे परिश्रम व्यर्थ गये ऐसा समझना चाहिये। लेकिन जिसमें पूर्ण वैराग्य रहता है वह सिद्धियों के भुलावे में नहीं आता। सुखोपभोग तथा मानसम्मान पर लात मार कर वह मेरी प्राप्ति के लिये अपने मार्ग पर चलता रहता है। इसके उपरान्त औटपीठ (आज्ञाचक्र के बाद का स्थान) तथा गोल्हाट (औटपीठ के आगे का स्थान) पार कर भ्रमर गुफा के संकट को पार कर सहस्रदल कमल का प्रवाह सोख कर वे धैर्यवान पुरुष मत्स्वरूप होते हैं। आज्ञाचक्र की स्थिति बताते समय योगमार्ग का वर्णन रुचिकर लगा इसमें पिछली कथा सुनाना भूल गया। इसके लिये श्रोतागण क्षमा करें। आप कहेंगे कि मछली जब प्रवाह के साथ बहती है तो वह पीछे मुड़ कर नहीं देखती, उसी प्रकार तुम भी बिना पीछे मुड़े ग्रन्थनिरूपण में आगे बढ़ते चलो। व्यर्थ की बकवास क्यों करते हो? बच्चा गलती करता है तो माँ उसे सिखलाती है, उसी प्रकार आपका यह भाषण मेरे कल्याण का ही द्योतक है। चक्रों का निरूपण करते हुए मन योग की ओर मुड़ गया और इसीलिये पिछला निरूपण भूलकर आगे बढ़ गया। यह सुनकर श्रोतागण हँस पड़े और बोले, तुम इस ग्रन्थ के कर्त्ता नहीं हो यह हमें मालूम हो चुका है इसलिये उसका निराकरण करने के लिये व्यर्थ का प्रतिपाद मत करो। करोड़ों ग्रन्थों का अध्ययन करने पर भी योगज्ञान का माधुर्य समझ में नहीं आता। उसे तुमने अपनी ही रुचि से स्पष्ट करके बतलाया। श्रीमद्भागवत समझने में कठिन था उसे श्रीकृष्ण ने तुम्हारे ही मुख से स्पष्ट करके सुनाया। वह सचमुच हमें बहुत अच्छा लगा। यह बारहवाँ अध्याय अत्यन्त गूढ़ है। यह बात देवाधिदेव ने ही कही है। लेकिन तुमने तो उसका अर्थ भी स्पष्ट करके बतलाया। इस प्रकार संतों ने आदरभाव व्यक्त कर अभयदान दिया। यह देखकर एकाजनार्दन को भी अत्यन्त हर्ष हुआ और उसने संतों को नमस्कार किया। वैखरी, मात्रा, स्वर और वर्ण आदि पदों का व्याख्यान हुआ। उसका ही निरूपण श्रीकृष्ण दृष्टांत देकर उद्धव से कर रहे हैं। जीव और शिव का जो सूक्ष्म मूल है, वही आदिपुरुष वाणी के रूप में स्थूल आकार धारण करता है। इसी का सरल विवेचन करके बताता हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद

निर्गुण

जोग जुगुत हम जानी साधो, जोग जुगुत हम जानी रे ।टेक।
१–मूलाधार में बन्ध लगाकर, उल्टी पवन चलाई रे,
षट् चक्कर का मारग सोंधा, नागन जाय उजारी रे ।टेक।
२--नाभि के पश्चिम के मारग, मेरुदंड चढ़ाई रे,
ग्रन्थी खोल गगन पर चढ़िया, दशवें द्वार समाई रे ।टेक।
३--भँवर गुफा में आसन मारो, काया सुध बिसरानी रे,
बिन चन्दा बिन सूरज चमके, जगमग ज्योत जगानी रे ।केक।
४--शिव शक्ति को मेल भयो जब, शून्य में सेज बिछानी रे,
'शिवानन्द' गुरू कृपा से, आवागमन मिट जानी रे, ।टेक।
जोग जुगुत हम जानो साधो, जोग जुगुत हम जानी रे ।।

निर्गुण

अनहद को ध्वनि प्यारी साधो, अनहद की ध्वनि प्यारी रे ।
आसन पद्म लगा करके वो, मूँद कान की बारी रे ।।
झीनी स्वर से सूरत लगावो, होत नाद झनकारी रे ।
पहिले-पहिले रलमिल बाजे, पीछे न्यारी-न्यारी रे ।।
घंटा, शंख, बाँसुरी, वीणा, ताल मृदंग नगारी रे ।
दिन-दिन सुनत नाद जब विकसे, काया कम्पत सारी रे ।।
अमृत बुंद झरे मुख माँही, योगी जन सुखकारी रे ।
तन की सुध सब भूल जगत है, घट में होय उजियारी रे ।।
"शिवानन्द" लीन मन होवे, देखो बात हमारी रे ।
अनहद की ध्वनि प्यारी साधो, अनहद की ध्वनि प्यारी रे ।।

भक्ति करने का मतलब है मन का मैल छुड़ाना।
मन का मैल छुटे ना जिससे वह भक्ति नहीं ज्ञाना॥
मन का मैल साफ होने पर भरम कभी ना परसे।
कहे 'शिवानन्द' सुन रे प्रानी अमृत धार नित बरसे॥

जो कुछ दुख दुविधा इस जग में मनोमैल मात्र है।
अभ्यास करे जो मन धोने का होय शुद्ध छात्र है॥
मैल साफ करने का साधन जग में उत्तम भक्ति।
मन कपड़े को धोय निरन्तर छोड़ कर्म आसक्ति॥
जो कुछ पढ़ा आज तक हमने इस सृष्टि के ग्रंथों में।
भौतिक या अध्यात्मवाद के सभी धार्मिक पंथों में॥

जितने सन्त हुए इस जग में सबका भाव भिन्न है।
जिस साधन को एक सही कह दूजा कहे अन्य है॥
लोक दृष्टि से भेद सभी में साधन सबका न्यारा।
ज्ञान उदय होते हो बनती एक अखंडित धारा॥

जैसे नदी बहुत सी जग में चलती न्यारी न्यारी।
सबका अन्त हुआ सिन्धु में भेद की सुरति बिसारी॥
एहि विधि साधन बहुत जगत में सबका पृथक करम है।
तौ भी मन बुद्धि का धोना सबका एक धरम है॥

अजपाजाप श्रेष्ठ साधन है श्वास में श्वास समावे।
नाद बिन्दु में सुरति लगाकर अन्तर्मुख होई जावे॥
उत्थान-पतन की छोड़ कल्पना समता सुदृढ़ बनाते।
जो जो मन में उठे कल्पना जड़ से काटी भगावे॥
अभ्यास काल में उत्थान पतन का अवश्य ध्यान रखना है।
देहासक्ति छोड़ निरन्तर निज स्वरूप लखना है॥

इस प्रकार एक तथ्य यह भी सामने आया है कि हरियाणवी संतों की 'सुरति शब्द योग' की साधना कहीं–कहीं योग की क्रियाओं का सहारा भी लेती है। संत राम रूप जी ने निम्नलिखित पद में इनका खुलासा किया है–

"गगन मण्डल में अलख जगाव रे।
जब जोगी जानूँ मैं तोकूँ, सुन सिखर पर जा मठ छाव रे।
पहले संजम साध जुगत तूँ, प्राण अपसन की संध मिलाव रे।
भूचरी, मुद्रा जासूँ कहिए, कमल कमध पर पव चढ़ाव रे।
चाचरी मुद्रा नैन मंझारी, दिष्ट नासिका पै ठहराव रे।
अचरज कौतुक बहु दरसावै, रिद्धि सिद्धि लखि कर ले चाव रे।
खेचरी मुद्रा रसन बढ़ावै, भंवर गुफा में जाय फिराव रे।
अमृत उतरे पीव मगन हो, जोति खुले जहाँ दर्शन पाव रे।
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा, शब्द सुरति की गाँठ लगाव रे।
परम हंस अनहद कूँ जानो, अनहद मिल अनहद हो जाव रे।

---

59. ग्रंथसाहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ. 36, दोहा–1

उन्मनी मुद्रा दशम द्वारे, लगे समाधि सकल बिसराब रे।
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागें, रहे ना कोई दूँजा भाव रे।
पाँचों मुद्रा ये तुम पहिरो, झूठी मुद्रा खोल बगाव रे।
ज्ञान जटा सिर ऊपर राखो, मुक्ति पंथ को मन से धाव रे।
या साधन कूँ कर हित सेती, जीव ब्रह्म की दुई मिटाव रे।
रामरूप चरणदास कहते हैं, तब जोगेश्वर साँच कहाव रे।[60]

यहाँ संयम धारण करने, प्राणवायु, अपान वायु की सन्धि मिलाने, भूचरी, चाचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनी मुद्राओं का साधन करके सुरति शब्द की गाँठ लगाकर दशम द्वार पहुँचने की चर्चा की गई है, साथ ही उपदेश दिया गया है कि झूठी मुद्राओं का त्याग करके ज्ञान की जटा बढ़ाने से ही जीव–ब्रह्म का द्वैत भाव मिटता है। अतः यहाँ कुछ हठ यागियों की तथा नाथ योगियों की यौगिक–क्रियाओं के माध्यम से सुरति शब्द योग की चर्चा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये संत सुरत शब्द साधना को योग से समन्वित कर रहे हैं, जबकि दोनों में काफी अन्तर परिलक्षित होता है। हमारी दृष्टि में यौगिक–क्रियाएँ या योग 'सुरत शब्द साधना' की प्रथम सीढ़ी है।

संत गरीबदास भी सुरत शब्द साधना को योग से समन्वित करके ही देखते लगते हैं, क्योंकि जब वे सुरत निरत के अधर पंथ में पग रखने के साथ उलट खेचरी मुद्रा लगाने तथा कलश कुंभा (कुंभक प्राणायाम) की चर्चा करते हैं तो लगता है वे भी इन यौगिक क्रियाओं को 'सहज साधना' या 'सुरत शब्द साधना' में अनुस्यूत कर रहे हैं।

राग सोरठ।

म्हारे सतगुरु जुगति बताई हो।
औघट घाट चले बिन पैरों जहां काल नहीं खाई हो॥

प्रथम मूल बंध कसि दीनौ उलटी पवन चढ़ाई हो।
षष्टकवंल औंधे किये सूधे जब आगै गम पाई हो॥
इड़ा पिंगला मार्ग थाके सुखमन सहज समाई हो।
भँवर गुफा में अजब तमासा सोभा कही न जाई हो॥
कई कोट रबिसिस परकासे दीपमाल दरसाई हो।
झुक रही घटा दामिनी दमकैं अमृत झड़ी लगाई हो॥
सहस कंवल दल सेत सिंहासन तेज पुंज छवि छाई हो।
अनहद नाद झरै बहु भांती सुन्न धजा फहराई हो॥
जहां सतगुरु रामरूप बिराजैं सिद्धराम मिले जाई हो।
पाय अमरपद आनंद हूये आवागवन मिटाई हो॥ ४५॥

राग जैजैवंती।

गगन मंडल की सैल गुरु गम कीनी भाई॥
देखा अद्भुति खेला जीव सीव हुवा मेला॥
जहां नहीं राति द्यौस लखी छवि झीनीं॥
बाजै अनहद तूरा सुनैं कोई साधू पूरा॥
रागदोप नास भये ध्यान सुरति दीनी॥
इंद्री मन कैद किये बिषै भोग त्यागदिये॥
कर्म की काटी बेड़ी पैनी ज्ञान छैनी॥
जनम मरन नासो आपही में आप भासो॥
सोई रामरूप जानौं बोध बुधि भीनी॥
जीव भाव मिटा दूजा एक ब्रह्म सारै सूझा॥
सिद्धराम हूवा जब नित्य आतम चीन्हीं॥ ४६॥

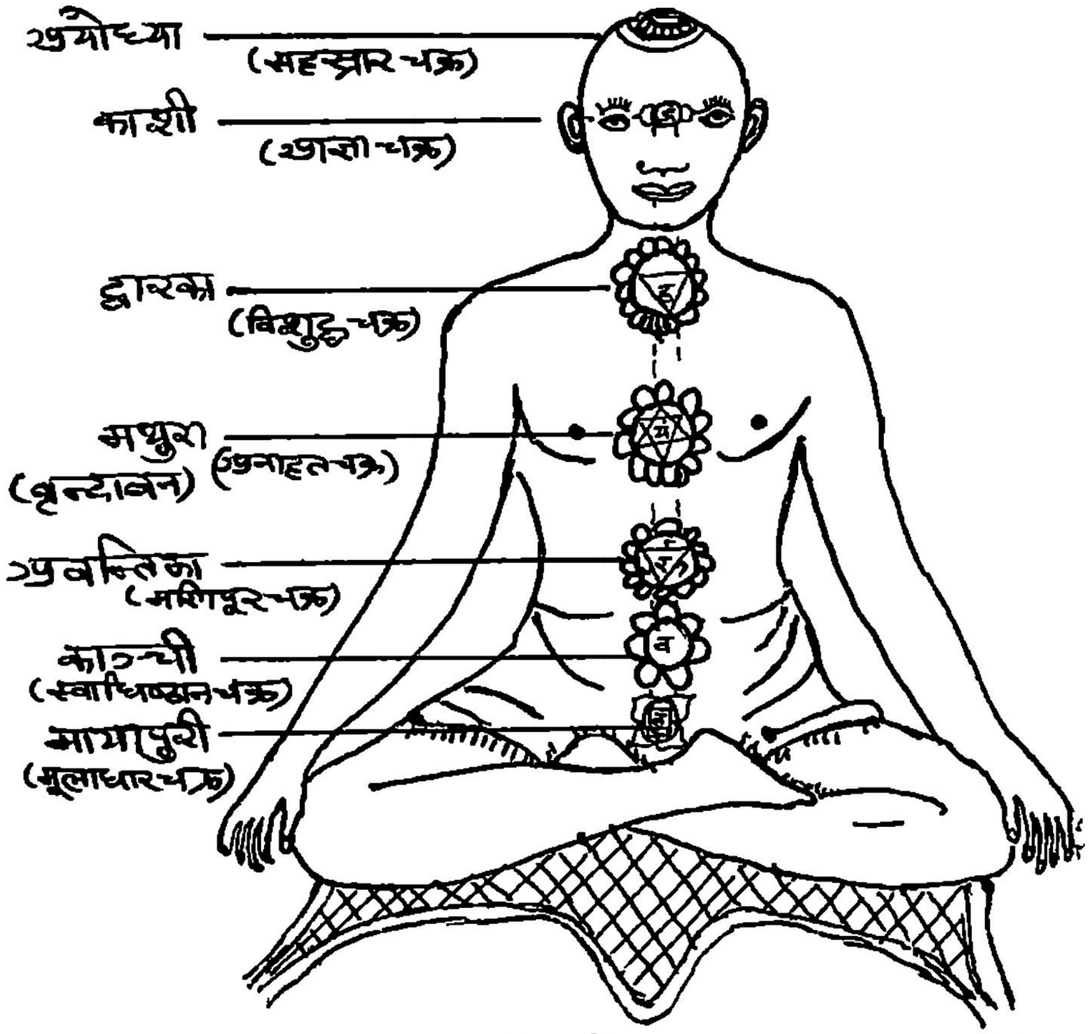

लीलाओं की योगपरक व्याख्या

(चक्रों पर तीर्थों की प्रतिष्ठा)

फिर यों पाँच पाँच दिन जानों। ताड़ी लगे रहैं गलतानों ॥
छटवें दिनाँ सुरति में आवें। तब वे कछू औगरा खावें ॥
ऐसी भाँति दिनाँ दस दस ही। लै के माँहिं रहैं जो बस ही ॥
इक इक पख मास लों चढ़िया। फिर वहाँ ते आगे को बढ़िया ॥
जब समाधि पूरी बनि आई। गिनती जहाँ रही नहिं काही ॥

॥ दोहा ॥

मन मारा तन वश किया, तजे जगत के भोग।
सतगुरु राखा शीस पर, तब बनि आया योग ॥

॥ चौपाई ॥

यम अरु नियम पहिले आराधे। चौरासी आसन फिर साधे ॥
प्राणायाम किया विधि सेती। प्रत्याहार सँभाला हेती ॥
और धारना का अंग धारा। शून्य ध्यान में मन को मारा ॥
अठवीं अंग समाधि लगाई। पाप पुण्य की व्याधि मिटाई ॥
छहूँ कर्म शुद्ध करि साधा। तन में कोई रही न बाधा ॥
पाँचों मुद्रा भी सधि आई। तीनों बंध सधे सुखदाई ॥

महाबंध साधा बल जोधा। पाँचों वायु लई परमोधा ॥
प्राण जो और अपान मिलाई। सुषुमन मारग माँहिं चलाई ॥

॥ दोहा ॥

षट चक्कर को छेद करि, चढ़े गगन को धाय।
परमानंद समाधि में, दसवें रहे समाय ॥

॥ चौपाई ॥

ध्याता ध्यान ध्येय जहाँ नाहीं। सुरति लीन भई लय के माहीं ॥
जाना पड़े दिवस नहिं राता। इक रस मान षट ऋतु भाँता ॥
आपा गया आपदा नासी। एकै रहा आप अविनाशी ॥
चौबीसों भये लीन जु माहीं। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति नाहीं ॥
जहाँ न तुरिया तत निरवाना। ज्ञान रहित वह पद विज्ञाना ॥
परले का सा समय भया है। लै धारी का सभी गया है ॥

॥ दोहा ॥

पिंडस्थ ध्यान प्रथम किये, सुरति निरति लौ लाय ।
कमल कमल को देखते, भँवर गुफा रहे छाय ॥

॥ चौपाई ॥

परम ज्योति जहाँ रूप लखाये । बंक सुधा रस पी छकि छाये ॥
ब्रह्म शब्द जहाँ अनहद बाजे । मन सों निज मन होकर राजे ॥
पाँचों इन्द्रिय भई निरोगी । पंच विषय की रही न भोगी ॥
ब्रह्म रन्ध्र तक पहुँचे जाई । अद्भुत ठौर जहाँ सुखदाई ॥
सहस्र कमल दल में जा छाये । जहाँ संतगुरु के दरशन पाये ॥
ता पर तेज पुन्ज छवि राशे । मानो सूरज कोटि प्रकाशे ॥
ता पर अमर लोक की शोभा । लखि उपजी परमानंद गोभा ॥
परम पुरुष जहाँ स्वेत सिंहासन । ताहि निरख नाशी भव वासन ॥
ऐसे चरणदास कहलाये । ध्यान माँहिं यों दरशन पाये ॥
ऐसे भक्तराज महाराजा । किये जु अपने पूरन काजा ॥

॥ दोहा ॥

भाँति भाँति साधन किये, सब ही देखन काज ।
कलियुग में दुर्लभ हुवा, सो कीना महाराज ॥
दोनों मारग देखिया, विहंगम और पिपील ।
पहुँचे तुरिया देश में, बहुत न लागी ढील ॥

योग युक्ति द्वादश बरस, कीन्हीं चाव लगाय ।
चरणदास बलवंत पर, जोगजीत बलि जाय ॥

(इति श्री योग साधन नाम चतुर्दशो विश्राम.)

चौपाई ॥

सात पहर रहैं गुफा मँझारी । एक पहर निकसैं अति बारी ॥ होतहोत पुन ऐसा होई । दो दो दिन निकसैं नहिं कोई ॥ फिर भयाआठ आठ दिन लागें । दिना नवें ताड़ी सों जागें ॥ फेर कछू गिनती नहीं रही । जब समाधि पूरी-ही भई ॥ चौदह वर्ष योग यों कीया । अपना मन जगओर न दीया ॥ पहिले आसन संयम साधे । छहों कर्म नीके आराधे ॥ नौनाड़ीसाधी दस वाई । सनइ सनइ बस में सब आई ॥ तीनों बँध साधे जो ठीके ॥ पांचौ मुद्रा साधी नीके ॥ सुरति निरति दोऊ परमोधे । फिरषट चक्करसबही सोधे ॥ ७२ ॥

दोहा ॥

सबही साधन साधिकै पायो घटको भेव ॥

मनराजाको जीतिकै संगलियो गुरुदेव ७३ ॥

चौपाई ॥

भँवर गुफा ब्रह्मरन्धर देखा । बंकनाल को लहा बसेखा ॥ सहस कँवलदल ऊपर राजै । तेज पुंज जहां अधिक बिराजै ॥ अमर लोक ताऊपर होई । कोटों मध्ये पावै सोई ॥ कुंभक आठ साध जो लीन्हा । फिर केवल कुम्भकही कीन्हा ॥ दसवें द्वार सुरति ले दीनी । देखी अचरज ठौर नवीनी ॥ अनहद शब्द जहां घन घोरै । चन्दन सूर नहीं निस भोरै ॥ निरगुन सेज महा सुखदाई । सोए महाराज लौलाई ॥ दसइन्द्री मन के वस करिया । मनको रोंक पवन में धरिया ॥ ७४ ॥

पद

[१]

मनरे निज वैरागी होना ।
राजा रंक एक करि जाणों ज्यूं कंकर ज्यूं सोना । टेक ।
तज पुर बास उदासी बिचरो मत कोई बांधो भवना ।
गिरि तरु मढ़ि मसाणां रहिये, कह कोई देवल सूना ॥ १ ॥
सीत निवारण जीरण कंथा जाके थे गल जूना ।
भूख लगै जब भिक्षा करणी करिहं कर लीया दूना ॥ २ ॥
आसा तृष्णा मेल निवारो हरि भज हिरदा धोना ।
तब दिल पाक दयानिधि पावो गावै बड बड मौना ॥ ३ ॥
तन मन जीत प्रीत सतगुरु सूं धरिहं ध्यान अखूना ।
रामजंन जन कहै वैरागी रामचरण का छौना ॥ ४ ॥

(२)

मनरे बिचरो होइ फकीरा
राम नाम निसवासर सुमरो सीस धरया गुरु पीरा । टेक ।
ह्याळ बिचारि डारी भव भार। मेटि जगत की भीरा ।
होय इकंत अकेला रहिये लहिये इम्रत सीरा ॥ १ ॥
नांहि पिछानि पडै ता तन की कहै कोइ कौन कंगीरा ।
गळ में फाटी कंथा पहर्‌यां जाकै लटके लीरा ॥ २ ॥
कोइ आदर तस्कार करत है आप रहै मन धीरा ।
भिक्षा काज नगर मधि फिरना जरना गहर गंभीरा ॥ ३ ॥
अलिपत सदा पवन ज्यूं गंधी यूं नहीं लिपै सरीरा ।
आतम ग्यान बिचारै जोगी नांहि जगतसूं नीरा ॥४॥
सबसूं एक दृष्टि करि बरतो कहा कंगाल अमीरा ।
रामजंन मन आनंद पाया हाथ चढ़्या हरि हीरा ॥ ५ ॥

आरती

आरती तेरी अन्तर जामी पूरण ब्रह्म राम घण नामी ॥ १ ॥
कारण सबको करुणा सागर ध्यावै ताहि मिटै दुख आगर ॥ २ ॥

तुलछी झूठो एक होय जहां नफो कुछ नांहि ।
परथम साचा साध होय सब लच्छ ताके मांय ।।

आरती

ऐसी आरती करो कोई ग्यानी, भरम तजो गहो सारंग पानी ।टेक।
प्रथम आरती रसना लीजै, राम राम रट इम्रत पीजे ।।१।।
दूसरी आरती हिरदै करिये, ध्यान अखंडित नहचल धरिये ।।२।।
तीसरी आरती नाभि उतारो, रूंम ही रूंम होत झुँणकारो ।।३।।
चौथी आरती गिगन चढ़ावो, परस त्रिकुटी निज घर जावो ।।४।।
परम ज्योति जहां अनहद तूरा, मानूं अनन्तक ऊग्या सूरा ।।५।।
सतगुरु जी सूं इण बिध पाई. तुलछीदास यह आरती गाई ।।६।।

श्री नवलरामजी की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

अनंत कोटि जन सिर तपै, रामचरण उर मांहि ।
आन भरोसो आन बल, नवलराम कै नांहि ।।
काम निवारण कीजीये, लीजै नाम निधान ।
नवला नवला नेह करि, परम गुरू को ध्यान ।।
परम गुरु परमातमां, प्रगटै रामचरण्ण ।
नवल नैन मन जोरि कर, रहिये सदा सरण्ण ।।
सतगुरु कै सरणै सदा, राम नाम का ध्यान ।
नवल महर संता तणी, वेगि उदय होय ग्यान ।।
ग्यान उदय होय पलक में, खलक खपन्ता जान ।
नवला सतगुरु धार सिर, जगसूं उलटी तान ।।
सास उसासां सुमरिये, अन्तर में इकसार ।
नवल सदा सरणै रहो, गुरु उतारै पार ।।
नवल करै या जीवकूं, सतगुरु सीव समान ।
पीव मिलावै पलक में, खलक दिसा सूं तान ।।

06:15 Vo)) LTE1

राम राम रसना रट्या, मन में अधिक हुलास ।
कंठ हिरदा मधि होइ के, किया नाभि में बास ॥
नाभि कंवल सूं लांघिकर पिच्छम किया प्रकास ।
दसवें द्वारे मुक्तराम, जहां निरंजण बास ॥
ब्रह्म पद मिले मुक्तराम, सो बहुरिन जनमे आय ।
जैसे धूवां गिगन में, गिगन रूप होई जाय ॥
राम पीव जहां परसिया, सरया मनोरथ काम ।
मुक्तराम पिव सेज पर, सुष लूंटे अठ जाम ॥
पिव परस्या आनन्द भया, सरया मनोरथ काम ।
सून्य सिखर का महल में, सुरति सबद सुख धाम ॥
सुरति गिगन का महल में, वर परस्या केवल राम ।
काम कलपना बुझि गई, सरया मनोरथ काम ॥
सुरति सुन्दरि मुक्तराम, राम सबद भरतार ।
गिगंन महल विच जाइकै, निज सुख लूंट्या सार ॥
पास निरंजन राम कै, जहां अखंडत जोत ।
मुक्तराम वा देस में, नहीं पाप पुन्य की छोत ॥
एक निरंजन रम रह्या, ऐसा अगम अगाध ।
मुक्तराम वा देस में, नहीं कोई बाद विवाद ॥
आंथै ऊगै सो नहीं, नहीं बादल छिप जाय ।
जन मुक्तराम वा ज्योति को, नास कदे नहीं थाय ॥
अंमरापुर पद पहुंचिया, सुमरण लागा सोय ।
जन मुक्तराम संसार में, जनम धरै नहीं कोय ॥

सुरति सबद दोऊं मुक्तराम, हिल मिल खेले नित्त ।
जन्म मरण का दुःख मिट्या, कट्या चौरासी चत्त ॥
सुरति भँवर उलटाय कै, चली पिछम कूं आय ।
त्रिकुटी छाजै बैठकर, दसवें द्वारे थाय ॥
सील सिंगार तन ऊपरै, सुरति कन्या यह जान ।
चित्त चंवरी तन मन दिया, पति पायो भगवान ॥
राम बीन्द संग कर जुड़यो, फेरा सास उसास ।
मुक्ता वर प्रापति भयो, बैठी पिव के पास ॥
गुरु बाप दियो दायजो, सम दम साच संतोष ।
मुक्ता बैठी पीव संग, निस दिन करिहं जोष ॥
पीहर जाती दौडि जब, पिव सुख पायो नांहि ।
पिव सुख पायो मुक्तराम, अब नहीं पीहर कूं जांहि ॥
पीहर सोही मुक्तराम, लख चौरासी जूंण ।
सुरति रही अब सासरै, मिट गई आवागूंण ॥
पीहर तणूं मिट गयो, अब आवण जांण ।
मुक्तराम वर पाइयो, बर पाया भगवान ॥

सुरत पहूंती संतदास, चौथा घर कूं जाय ।
अब तो निरभै होइ कर, रही राम ल्यौलाय ॥
सन्त सुरत की जीभ सूं, राम ही राम कहंत ।
बंक नाळ का सन्तदास, इम्रत रस पीवंत ॥
सुरति शब्द दोउ रमत है, त्रिकुटी के छाजे ।
सन्तदास अनहद का, जहां बाजा बाजे ॥
द्वारे दसवें सन्तदास, रहे निरंजण राय ।
सतगुरु का इक शब्द सूं, कीधा दरसण जाय ॥
सुरति चली असमान कूं, मिली शब्द सूं जाय ।
खुली सुषमणां सन्तदास, ता बिच रही समाय ॥
लंघकर तीन मुकाम कूं, चौथे पहुँता जाय ।
सन्तदास वा सन्त कूं, काळ कहां होइ खाय ॥
सुरति निरंजण सूं मिली, रही निरंजण होहि ।
आवागमन का सन्तदास, मिटिया धोखा मोहि ॥
सुरति पकड़ रही शब्द कूं, शब्द सुरति हि मांहि ।
अरस परस भया संतदास, अब कुछ अन्तर नांहि ॥
राम नाम सूं संतदास, उड गया भरम अनेक ।
नवलख तारा छुप गया, ऊगा सूरज एक ॥
पवन नहीं पाणी नहीं, नहीं धरण आकाश ।
संतदास उस देस में, पूरण ब्रह्म प्रकाश ॥
सुरत छांडि तिहुं लोक कूं, ब्रह्म लोक रही जाय ।
जहां अंजण नांहीं संतदास, रहत निरंजण राय ॥

हाड चाम दीसै नहीं, सुपम जोत की देह ।
संतदास उस राम सूं, सुरति मिली कर नेह ॥
प्रम पुरी बिच संतदास, सुरति रही घर छाय ।
जहां राम का राज है, जम का जोर न थाय ॥
मिलना था सो मिल रह्या, सुरति शब्द को जोग ।
संतदास इस देह का, नहीं हरप नहीं सोग ॥
सुरति उलट कर संतदास, शुन बिच गई समाय ।
जाय पहुँची उस धाम कूं, जहां जन विरला जाय ॥
सुरति राधिका संतदास, शब्द गुरु का कान ।
शून्य मंडल बिच रहत है, देख भये हैरान ॥
पहुंता पहुंता एक मत, अण पहुंता मत और ।
अरहंट की घड़ संतदास, पडसी एकै ठौर ॥
धुर पहुंच्या फकरां तणी, शब्दां पारख होय ।
अगल बगल की संतदास, परख रखो मत कोय ॥

तृतीय ध्यान निज नाम हिरदै गयो भया जहाँ चांदणा तिमर न्हास्या ।
चतुर्थ ही ध्यान उर नाभि मधि जाइके अष्ट ही कंवळ मन भंवर परस्या ॥
भँवर जहाँ मन्न मस्ताक अति होयके पिछम के घाट होई गिगन वैठा ।
गिगन के गोप अरु जोप मोजां करै सुरति मन भँवर होई सेव सैठा ॥
सुरति सवद मन भँवर होई परसिया दरसिया सुक्ख मिलि सीव सागो ।
मुक्त ही राम नह काम होई सुरति संग राम वर परस के दुःख भागो ॥
गंग जहां जमन अरु सुरसती मेल होई खोई है कर्म तन मन्न केरा ।
त्रिवेणी न्हाइ के मन निरमल भया गया अब ब्रह्म घर किया डेरा ॥
गिगन का गोप पर जोप मोजां करै धरै जहां ध्यान नहीं तार टूटै ।
मुक्त ही राम नर काम मिलि ब्रह्म स्यूं सुख आनन्द नित सुरति लूटै ॥

सवैया

(१)

नूर लह्यो परमातम को जब आतम ब्रह्म सबै दरसाया ।
सूक्ष्म स्थूल सबै सचराचर व्यापक नूर निरञ्जण राया ॥
ज्यूं रवि ज्योत प्रकाशक कुंभ में है घट मांहि ज्यूं दूरि रहाया ।
दास मुकत्त कहे इम टेर के ब्रह्म को रूप अरूप समाया ॥

(२)

राम निरंजन आप विराजत बाजत कोट अनंत जु बाजा ।
कोट अनंत जहां सूर तपै जहां क्रोड तेतीस सिरे सिरजाता ॥
कोटि अनंत जहां सन्त विराजत साधत ध्यान सदा सुख साजा ।
दास मुकत्त मुकत्ति कूं पावत ध्यावत राम सरै सब काजा ॥

सवैया विरह

चंद की चाह चकोर करै पुनि दीपक ज्योति चहे जु पतंगा ।
चात्रग मोर चहे घनघोर कुं स्वाति की बूंद कुं सीप चहे जुं उतंगा ॥
प्रीतम होय ज्यों परदेस पधारत नारी को सुक्ख कबहु होय अंगा ।
मुक्त ही राम विलाप करै नित आप विना नहीं लागत रंगा ॥

हाड चाम दीसै नहीं, सुषम जोत की देह ।
संतदास उस राम सूं, सुरति मिली कर नेह ॥
प्रम पुरी बिच संतदास, सुरति रही घर छाय ।
जहां राम का राज है, जम का जोर न थाय ॥
मिलना था सो मिल रह्या, सुरति शब्द को जोग ।
संतदास इस देह का, नहीं हरष नहीं सोग ॥
सुरति उलट कर संतदास, शुन विच गई समाय ।
जाय पहुँची उस धाम कूं, जहां जन विरला जाय ॥
सुरति राधिका संतदास, शब्द गुरु का कान ।
शून्य मंडल विच रहत है, देख भये हैरान ॥
पहुंता पहुंता एक मत, अण पहुंता मत और ।
अरहंट की घड़ संतदास, पडसी एकै ठौर ॥
धुर पहुंच्या फकरां तणी, शब्दां पारख होय ।
अगल वगल की संतदास, परख रखो मत कोय ॥

रेखता

पगडंडी भर्म की सबै ही दूर कर शब्द की राह सतगुरु लगाया ।
तीन विसराम लंघ पछिम की दिशा हो पिंड का जाय ब्रह्मंड पाया ॥
सुरति जहां संचरै ध्यान अजपा धरै बजे अनहद घनघोर वाजा ।
असंख शशि शूर की कला ले विराजे जहां एक निरंजन राम राजा ॥
गंग जहां मुक्ति की चलत हैं सुषमना ब्रह्म का जहां अस्नान होई ।
कहत संतदास उस पद निरवांण कूं उलट कर पहुँचिया सन्त कोई ॥
अगम ही पन्थ है एक निज शब्द का सो ही कर महर सतगुरु बताया ।
अगम की चौकियां तीन विसराम कर अगम के उलट आकाश आया ॥
अगम अनहद वाजा जहां वजत हैं अगम ही ज्योति का दरस पाया ।
अगम ही गंग जहां चलत है सुषमना ब्रह्म जाय अगम के घाट न्हाया ॥
संत कोई ध्यान धर अगम कूं पहूंच कर देख कर अगम की खबर लावे ।
कहत संतदास कोई अगम का महरमी अगम का शब्द कूं सोहीज पावे ॥

[१]

रसना लिव्वसैं शब्द तब सरकिया कंठ कै ध्यान विश्वास पाया ।
इंगला पिंगला चलत दोउ एक रस कंठ हिरदा बिचै ध्वनी लाया ।।
शब्द परकाश हिरदै भया परम सुख प्रेम का चांदणा तिमिर भागा ।
बिरह की तपि शीतल भई पिवरूपी रोम ही रोम झड़ अधिक लागा ।
नाभि ही कमल जाइ शब्द फिर उलटिया मेरु कै दंड होइ गगनं आया ।
पर्शि कै त्रिकुटी न्हाय तिरवेणि तट गगन का गोख परि जाय छाया ।।
तीन ही लोक सैं अलध सुख देखिया सुरति अरु शब्द मिल करत केळा ।
राम ही चरण अब होय न्यारा नही अष्ट ही जाम नित रहत भेळा ।।

[२]

घोर अनहद की गगन गिरणाईया होत बहु सौर नहि कहत आवै ।
झालरी बीण मरदंग सहनाईयां बांसुरी ताल झुंणकार लावै ।।

भेरि रणसिंग करनाल वंक्या बजै चंग अरु उपंग गति करत न्यारी ।
एक इक नाद मैं राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी ।।
मंजरी मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राय मोहोचंग बाजै ।
रुणझुंणूं रुणझुंणूं नृत्य ज्यूं घूघरू घंटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ।।
रच्यो कोतूल अति काया अस्थूल में सुखमना नीर फुंव्वार बर्शै ।
परम ही ज्योति का चांदणा चहुं दिशा पुरुष भरपूर नहिं आन दर्शै ।।
पुरुष रक्कार जहां सुरति मिलि सुंदरी सुन्य से महल बिश्राम कीया ।
पूर्णानंद कूं पर्शि निर्भय भई पीव की सेझ सुख लूटि लीया ।।
अंग सूं अंग मिल संग छांडै नही सुणत जहां राग मस्ताक होई ।
राम ही चरण वै देश की सैंन कू. महरमी संत बिन लखै न कोई ।।

राम संतां का अंत न आवै, आप आपकी बुधि सम गावै ॥
राम प्रताप सुनो अब एसो, भजतां भयो कहूँ सो तेसो ।
राम रटत गुप्ता रस चाखै, संत शब्दां में प्रगट भाखै ॥
प्रथम राम रसना सूं गावै, मन कूं पकड़ि एक ग्रर लावै ।
राखे सुरति शब्द ही माहीं, शब्द छांडि कहुं अन्त न जांहीं ॥
तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखंड नहिं खंडै लगारा ।
जल पीवन की श्रद्धा नांही, मति यो अमृत दूरि होइ जांहीं ॥
रस पीवत छुधा सब भागी, कंठां शब्द टगटगी लागी ।
नाडि नाडि में चलै गिलगिली, सुख धारा अति बहै सिलसिली ॥
मुख सूं कछु न उचरे बैना, लग्या कपाट खुलै नहीं नैना ।
श्रवणां चर्चा सुणैं न कोई, कंठ ध्यान यह लच्छण होई ॥
कंठ के ध्यान कँमकँमी जागै, रोम रोम सीतंग सो लागै ।
हियो गद्गदे श्वास न आवै, नैणा नीर प्रवाह चलावै ॥
एक दिवस इक भया तमासा, कण्ठ हृदा बिच उठ्यो हुलासा ।
ज्यूं पाळ की डोर न छूटी, हिरदे सीर सुखम रस ऊठी ॥
शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा, ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा ।
भर्म कर्म सांशो गयो भागी, हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी ॥

कहा कहूं या सुख की महिमा, और सुख सब दीशे पलमा ।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई, दूजो साधन रहै न कोई ॥
हिरदा सूं लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भई ।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होइ रही रागे ॥
नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भँवरा अति सुख पावे ।
शीतल भई सबै ही काया, शब्द ब्रह्मरस अमृत पाया ॥
अब तो शब्द गगन कूं चढ़िया, पछिम घाटि होईकै अनुसरिया ।
घाटी बीस मेरु की छेकी, इक बीसै गढ़ गया विशेखी ॥
पहली बैठा त्रिकुटी छाजे, जाके ऊपर अनहद बाजे ।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया, निर्मल होय आगे कूं ध्याया ॥

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट ।
जहां झाके जल झूलिके, निर्मल होय निराट ॥
अब त्रिवेणी न्हाइकै, कीया गगन प्रवेश ।
तीन लोक सूं अलध सुख, यो कोई चौथा देश ॥

अब चौथे घर पहुँता जाई, जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई ।
घरर घरर अनहद घररावे, परम ज्योति दामणि झलकावे ॥
सुषुमण नीर लूंब झड़िलाई, भीजत सुरति गर्क होइ जाई ।
अर्ध ऊर्ध जहां कमल प्रकासा, सुरति भँवर होइ करत बिलासा ॥
घुरै अखण्ड अनाहद बाजा, प्राण पुरुष जहां तख्त बिराजा ।
झिलिमिलि झिलिमिलि नूर प्रकासै, अनंत कोटि रवि प्रकट्या भास ॥
या तो बात अतौल है भाई, मुख सूं कह्यां तोल ह्वै जाई ।
पवन कहो कैसे गह हाथा, कैसे भरै गगन की बाथा ॥
रूप वर्ण कैसो तड़काको, ऐसो कहा बखानों जाको ।
हाक वाक रहे कहत न आवै, पहुंच्या होइ सोही भल पावै ॥
अनहद गरजै नभ झरै, दामिनी ज्योति उजास ।
रामचरण सनि सायराँ, हंसा करत निवास ॥

२१

ऐसा! मेरा सतगुरू आय जगाया।
मैं नहीं उसमें वोथा मुझमें, गुरू किरपा से पाया।।टेर।।
दया—धर्म—सत—शील शब्द है, वहां गुरू वास बसाया।
अर्ध—उर्ध बिच भेद जो लीना, सुन में राग—समाया।।१।।
पांच—तीन तहां पंछी रहता, तन—मन अन्दर थाया।
गुपती—गोता लह उस मांही, सारा भ्रम मिटाया।।२।।
ओहृम—सोहृम वहां में रहता, नहीं भूला विसराया।
सतगुरू दयाल किरपा के सागर, दीनी राह बताया।।३।।
पांच मुद्रा वो थी मुझमें, बिन द्वन्दकार रहाया।
सतगुरू ब्रिह जगी बिन अग्नि, पांचो युगति लखाया।।४।।
अब मैं कैसे ! उरण गुरु से, सब अवसाण बताया।
'नवल' रहत गुरु किरता मांही, तन मन भेंट चढाया।।५।।

।। इति श्री ।।

ऐसा माने सतगुरू कह समझाया।
जागी सुरत महर सतगुरू की, जब प्रीतम दरशाया।।टेर।।
सतगुरु सेन दया कर दीनी, मन का महरम बताया।
हूं, तूं, झाड़ काट किये काने, सोहं राय संभाया।।१ ।।
अर्ध उर्ध बिच जोय सुषमणा, ता पर बन्ध लगाया।
बंक नाल उलटा होय चाले, सतगुरू मार्ग दिखाया।।२ ।।
पांचों मुद्रा झूकी उड़द पर, तत्व पांचों मिल आया।
नव सौ नाड़ धमकती चाले, रोम रोम धरराया।।३ ।।
अगम भोम तहां गगन मण्डल है, सुरती का बन्ध लगाया।
ताके परे छेक दशवा में, मान सरोवर न्हाया।।४।।
ताके आगे सप्त सुन है, श्वेत फूल परसाया।
तहां 'नवलो' चरणां में लोटे, गुरु करता जी से पाया।।५।

।। इति श्री ।।

१७

ऐसा ! मांने सतगुरू देश दिखाया।
देश दिवाना कहा नहीं जावे, गुरु किरपा जिन पाया।टेर।।
शब्द बेरंगी चाल हमारी, सतगुरू कह समझाया।
मकड़ी तारू तार से झीना, तहां पर चलना थाया।।१ ।।
बाजी चारों झुकी उसी पर, चारों वर्ण झुकाया।
उलटा मार्ग पांव बिन चलना, सन्त शूरा रहाया ।।२ ।।
चार अन्त:करण झुका उसी पर, चारों वेद कहाया।
लिखना न पढना कलमा न कागज, सोहं नगर वसाया।।३ ।।
सोहं शब्द ले उल्टा बहना, रात दिवस नाहिं छाया।
हक वक पथ कहा नहीं जावे, आत्म ज्ञान बताया।।४।।
सतगुरू करताजी किरपा कीनी, अगम निगम होय धाया।
चौथा पद में अमृत बरसे जहां, 'नवलो' जाय समाया।।५।।

।। इति श्री ।।

ऐसा ! गुरु तुरिया खेल दिखाया।
पग बिन पन्थ रेण बिण जागृत सुन में नगर बसाया।।टेर।।
सतगुरू दयाल भाल के ऊपर, बहुत महर फरमाया।
रेण दिवस जागृत धुन लागी, रस्ता अगम लखाया।।१ ।।
अर्ध—उर्ध बिच भंवर पड़त है, तां गुरु वास रहाया।
तट तिरवेणी अमृत बरसे, मरजीवा सन्त पाया।।२ ।।
गुपति गोता लह कोई जायें, उलट बंक ही नाया।
बंक नाल उलटा हो चढ़िया, उनमुन ध्यान लगाया।।३ ।।
त्रिकुटी चढ़िया तिमिर सब मिटिया, गगन मण्डल गरणाया।
दशवा द्वार छेंक कर सूते, मान सरोवर न्हाया।।४।।
ताके आगे बेगम पुर है, पिव घर प्रीतम मिलाया।
गुरु करताजी सेन बताई 'नवल' अचल थिर थाया।।५ ।।

।। इति श्री ।।

२७

सुक्षम ध्यान गुरु देव लखाया, निश्चल पद में जाय समाया।।टेर।।

नाम दवा दश बंक नही धाया, ना कोई पवना गगन चढाया ।।१।।

ना कोई सुन समाधी लगाया, अटल ध्यान अरूप सखाया।।२।।

रहता ब्रह्म सूक्ष्म के माही, अथंग अबोल अडोल सदाही।।३।।

अमर अतीत है बह्म अथाई, लवज—कबज में आवे नाही।।४।।

बेहद—वास—गैब घर माई, 'नवलो' बह्म गेब समाई।।५।।

।। इति श्री ।।

बिन श्रवण बह्म सुनत सदाई, द्वादश भणका पड़ता वांई ।।टेर।।
गैवी इस विध चाल चलत है, गैब टकोरा सदा लगत है ।।१।।
पांच तत्व उपजे उण मांई, त्रिकुटी को लखता जांई ।।२।।
इला—पिंगला सुषमणा—नारी, बंक दिश गमन करे मणधारी।।३।।
नाम दवादश त्रिकुटी गगना, अनहद घोर सुने होय मगना।।४।।
ना कोई नवलो ओर न बोले, कहता वोई बोल अबोले ।।५।।

।। इति श्री ।।

२९

वालो ! थारे मांहीरे, खौज्या जाने खबर परे।
मांहि बैठो बोलेरे, ओरों से नहीं डरे ।।टेर।
गड़ड़ गड़ड़ नित इन्द्र गाजे, भल हल भल हल दामन चमके।
अधर तखत पर आप बिराजे, निरख्यां से निरख परे ।।१ ।।
नाभ दवादश पदवी लीनी, बंक दिश वाट बहे।
उलटा पवना नाभ समाणी, जब ताको जाण परे।।२ ।।
अमी फुंहारा अमृत बरसे, पियों सूं खबर पड़े।
प्यालो पिवो युगो युग जीवों, पिवत पछान पड़े ।।३ ।।
क्या कहूं बात कुछ कहिय न जावे, झीणी से झीणी रहे।
गुरु करताजी के कारणे 'नवलो' बोले, उनमुन ध्यान धरे।।४ ।।

।। इति श्री ।।

सतगुरू मिल समझाविया, या विध विसरूं नाही
कर किरपा गुरू देवने, निज पद दिया लखाही ।।टेर।।
पहला निवण सतगुरु श्याम ने, दूजी सब सन्तों ने।
नाभ कमल पवना बसे, लहरों आवे—जावे।।१।।
नाभ कमल से उबगी, सगमा तीनो फाटी ।
इला—पिंगला सुषमणा, झुल्या त्रिकूटी घाटी।।२।।
त्रिकूटी से दिश आगे धरी, सुरता गगन समाई।
गगन—मण्डल हंसा वसे, मोती चून चूगाई।।३।।
गिरी मेर चढ़ गरजिया, लखी वहां गुरुमुख बाणी।
रणुंकार की धुन में, भुल्या दशवे आणी।।४।।
दशवे पर दीदार है, जां कोई विरला जाई।
सुख सागर की लहर है, वां कोई हरिजन न्हाई।।५।।
हंस परम हंस मिल रहा, एको कार लखाई।
हूं तूं नहीं जहां दरसिया, आपे में आप समाई।।६।।
जहां देखू जहां एक है, दूजा दीसे नाई।
कह 'नवलो' वहां बोली बोले, बोली में न आई ।।७।।

।। इति श्री ।।

देखा हम सतगुरु योग अथाया।
षट् चक्र को छेद परम गुरु, पद चौथे पहुंचाया ।।टेर।।
अबकी बेर भली भई मोपे, गुरू शिष्य समझाया।
अर्ध–उर्ध बिच अमृत बरसे, पीकर मस्त रहाया।।१ ।।
युगति चार समझिया परम गुरू, बेहद घाट चलाया।
हद की कला उसी में दरशे, निरदावा कर ठाया।।२ ।।
चार अवस्था में दोय उलट है, जागृत तुरिया पाया।
चार अन्त: करण करता कहावे, सो गम निज कहाया।।३ ।।
अवल कवल दो वाजी मांडी, सतगुरू खेल सवाया।
कारण काज उपे मिल वाह में, मन मस्त गम लाया।।४।।
गुरु करताजी किरपा करके, ये निज योग बताया।
कह 'नवलो' अभे पद पाया, अजब कला दरशाया।।५।।

।। इति श्री ।।

इस विध विगत योग संभाल, चलना तीनो गुण के पार।
आगे विषनी भोग अपार, सतगुरु देत सुमरण सार।।टेर।।
षट कमल को खौज झट पट, ओहम् सोहम् संभार।
उलट नैना पलट बंका, अगम निगम निहार।।१ ।।
चार वाणी चार खाणी, चारों वेद विचार।
चार अन्तः करण कहिये, चारों वरण संभार।।२ ।।
उनमुनी मे अनहद बाजा, देखो दशवे पार।
दशो बाजा दशो पवना, दश दोषों को टार ।।३ ।।
मान सरोवर बेहद भरिया, श्वेत फूल आधार।
अखे मण्डल अलख रहाया, 'नवल' सुरत दिदार।।४ ।।

।। इति श्री ।।

३७

चल धरण धमके सोहं प्यारी, नाड़ नवसो होय त्यारी ।टेर

अर्ध–ओछा उर्ध लम्बा, ऐसी विध लगाया ताली।
श्वास में उश्वास सुमरो, परम गुरू से करलो यारी।।१।।
नाभी में नव–नाड़ जागी, इंड़ा–पींगला सुषमणा साजी।
चन्द–सुरज रोक बारी, बंक होय के चलो प्यारी।।२।।
गरक में नित करक रहना, इस विध हुसियार भारी।
त्रेवेणी मे खुली बारी, गगन होय कर चलो बारी।।३।।
अनहद बाजा अनहद गाजे, दामनी दमकाते भारी ।
बारह इन्द्र घोर बाजे, ब्रह्मा, विष्णु देव सारी।।४।।
देही में दिदार मेरा, आपमें मिल आप हेरा।
तहां नवलो सेव साजे, सुरत निमक न होत न्यारी।।५।।

।। इति श्री ।।

इस विध विगत वेग संभाल, झूले अनुतेज अपार।
अनुभव खुले मोक्ष दवार।।टेर।।
पांच तत्व गुण तीन साजत, आठों कमलो पाररे।
खेचरी खलकत मुदरा, जोविया अपाररे।।१ ।।
चाचरी, जब चालत मुदरा, जागे नवसौ नाड़रे।
सोहम् साजत पिछम दिश मैं, बंक दिश करे विहाररे।।२
सुरत शब्दो होय मेलो, बेअंग चलत अपाररे।
अगम निगम दो मार्ग देख्या, गगन बन्ध लधाररे।।३ ।।
उनमुनी अनहद ऊपर, होई जै जै काररे।
मान सरवर अथाह भरिया, दशवा के परे पाररे।।४।।
चार चौका चूर निर्भय, वेहद—बेअंग साररे।
अखे मंडल निरख 'नवलो' अखे पुरूष उचाररे।।५।।

।। इति श्री ।।

ऐसी विध सन्त सोवे कोई, जाके जन्म मरण भयनाई ।।टेर।
अलख उसीला में कछु नहीं व्यापे, सुख दुख लहरों दोई।
पांच ओर तीन पकड़ बश कीना, नींद तणो भय नाई।।१।।
धरण—गगन बिच पवन पकड़ के, सोहं साधना मांई।
प्रकृति पचीस उलट भई, वामें, तिमिर रति भय नाई।।२।।
लागी लगन मगन होय बैठा, चेतन पहरा तांई।
सतगुरु घर में अखण्ड उजाला, सुरत भजन के मांई।।३।।
पांचो मुदरा पहन कर सो ऊ, दशवे सुरता पजोई।
कह 'नवलो' जागृत धुन पाई, अब सोवण को नाई।।४।।

।। इति श्री ।।

नमो नमो योग तुम्हारा, सतुगुरू करता राम ।।टेर।।
तुम्हारे योग में प्रभुजी रोग नहीं है, चलनो सोहं धार।
मकड़ी का तार से झीना, ।।१ ।।
इड़ा—पींगला जागी—नाभ में, सुषमन देत आवाज।
वेकुटी में भया उजाला।।२ ।।
बंक में रहणा—बेअंग चलना, बहना पश्चिम द्वार।
मेरू दण्ड फेर सुलजाना ।।३ ।।
गगन—मण्डल में प्रभुजी—बन्ध लगाना, खुल्या दशों द्वार।
मान सरोवर हंस चुगानां ।।४।।
'नवला' की लहर लागी सतगुरू से, चलनो बेअंग धार।
बेहद गुरु हमारा ।।५।।

।। इति श्री ।।

हांए म्हारी हेली, अगम देश अथाह, विरला कोई नर जाय।।टेर।।

हांए ! म्हारी हेली ! आठ याम चारों धाम है, पद चारो निरवाण।
ओर मिले सब जोविया, अदभुत कहा बखाण।।१।।

हांए ! म्हारी हेली ! अगम—निगम दोनों मिले, सुख सागर के माय
अन गिणती अनरूप है, अचरज कहा न जाय ।।२।।

अचल भेद अनुभव सही, थिरता सन्त रहाय।
सब रहता वामें मिले, सोइ उपावन थाय।।३।।

अवघट घाटी पिछमी वाटी, शूरा चले तां माय।
वहां 'नवलो' सुख अनन्त है, कृपा भई सो पाय।।४।।

।। इति श्री ।।

९९

सइया ! गुरू पंथ बतायोऐ ।

उलटा स्वांस चले बंक नाला हंसा हमने पायो ऐ ।।टेर।।

बाग लगायो गुरू देवजी, सत शब्द सुनायोए।

जल में जीव जन्तु सब कीना, गुरू देव बनायोए।।१ ।।

चित्–मन बूद्धि अहंकार, गुरू अटल रहायोए।

जूंण मिटी इस जीव की, निज हंस कहायोए।।२ ।।

मेहल बना कर बीच में मोती ठहरायोए।

बेरंग लख्या गुरू देव ने, सुषमण जाय लखायोए।।३ ।।

रहता आप सदा निरदाया, गुरू देश बतायोए।

काल–जाल वहां लगत नाहीं, 'नवल' वास वसायोए।।४।।

।। इति श्री ।।

११७

ऐसा ! सोहं शब्द भाई साधो, जाका वरणन किया न जाय।टेर।।
जाति न पांति मुझ में नाहीं, राम रमैया नाय।
दिष्ट—मुष्ट में आवे नाहीं, माया बिना रहाय।।१ ।।
पवन न पाणी चन्द सूर बिना, खंड—ब्रह्मंड भी नाय।
तोल अतोल तोल में नाही, मेर सुमेर थकाय।।२ ।।
पांच तत्व गुण तीनों नाहीं, साखा सर्व मिटाय।
राग—छतीसा पहुंचे नाहीं, कहता कथन थकाय।।३ ।।
सतगुरू करताराम गुसांई, सो है अगम अथाय।
कह 'नवलो' अद्वैत अखंडी, सोहं शब्द को पाय।।४।।

।। इति श्री ।।

जोय लिया दिदार, अजब है करतारा ।।टेर।।
प्रथम आसन पदम जमाया, अग्र कमल पर सुरत ठहराया।
देख लिया रूप अपारा, आत्म है निरधारा।।१ ।।
नांभ कमल पर नागण डाटी, द्वादश उपर चढ रहा वाटी।
षट् चक्र को छेक, चलिया है सन्त प्यारा।।२ ।।
उलटा कूप गिगन में दरशे, अमृत धारा नित वहां वरषे।
पीवे सन्त सुजान, जगत से है वे न्यारा।।३ ।।
जन्म मरण की मिट गई त्रासा, दशवे जाय किया घर वासा।
कर रहा आनन्द अपार, पुरूष रहे एक सारा।।४।।
सत्य शब्द की रमझ मांही, अगम भोम को जाय निहारा।
'नवला' कर रहा दिदार, पलक जिन्हें विसारा।।५।।

।। इति श्री ।।

जपले वीरा अटल धाम विसराम।
जाके नहीं नाम नहीं गाम।।टेर।।
तजदे क्रोध कामना तजदे, सीधो भजले राम।
भजन कियां भय नहीं व्यापे, इन भवसागर मॉय।।१ ।।
दिल बिच दर्श परस सतगुरू, को श्वास में शुद्धि संभाल।
बिन नैनों से दर्शन करले, भणक पड़े तहां भाल।।२ ।।
दुबघ्या मेट हेर हजरत को, बिन जिव्हा गुण गाय।
सोह्म शब्द अजपा साधो, उलट—पुलट उण मांय।।३ ।।
जाति न पांति रूप नहिं रेखा, अकल कला अनाम।
कह 'नवलो' ओर नहीं बोले, सहस्र कला तां धाम।।४ ।।

। इति श्री ।।

१३५
जिस ठाकुर की तुम करो बढ़ाई, सो ठाकुर है सब घट मांई।।टे
ना कोई अगन पवन नाहीं, पांच तत्व गुण तिन ज्यूं।
रेण भाण जप तप भी नाहीं, सब उपज्या उण ठाकुर माई।।१।।
ना कोई बंक नाल भी नाहीं, इड़ा पींगल सुषमणा भी नाई।
त्रिगुटी गिगना दशवा भी नाहीं यह समाया उस ठाकुर माई।।२।
ना कोई धरा अम्बर भी नाहीं, हद बेहद दोनों भी नाई।
अगम अगोचर कहो ना जाई, केण बेंण उस ठाकुर माई।।३।।
कारण काज उपजे उण माही, उपज उपज प्रले हो उण माहीं।
नवला अमर मरे कभी नाहीं, बाकी विगत कोई विरले पाई।।४

।। इति श्री ।।

रटे जारे सदाई भेलो श्याम।टेर।।

सतगुरू मोपर किरपा कीनी, मस्तक धरियों हाथ।।१ ।।

नाव दवादश गम कर हेरी, बंक दिश भई अवाज।।२ ।।

इड़ा पींगला सुषमणा हेरी, त्रिकूटी में भयो प्रकाश।।३ ।।

सतगुरु करताजी राम गुसाई, 'नवला' को तारण आप।।

।। इति श्री ।।

१३७

मैं विध धाऊं जिने कोई नहीं धावे।
जो धावे वो पाछो नहीं—आवे ।।टेर।।
श्वास उश्वास को कुण नर ध्यावे, ये सगमा नाभि में समावे।।१ ।।
बंक दिश जावे कुण दुख पावे, ये विधि तो मेरे दाय न आवे।।२ ।।
गिगनों रो ध्यान धरे नर गेहला, पिंड पड़िया गिगन में कुण रेहला।।३
सोवन शिखर दशवो हमने उपाया, ये रास्ता मेरे दया न आया।।४।।
मैं रास्ता बिन रहूं चलाया, कह 'नवलो' ब्रह्म गैब समाया।।५।।

।। इति श्री ।।

अब सन्त होय गया निरवाण, अगम निगम जांकी देवे जाण।
खोज्या निशान भाख्या जांरा, भलके नूर निसाण।।टेर।।
विकट—विकराल वाट बेगम झीणी से अति झीणी।
सूक्ष्म मांही आसन कीना, सूरत सन्त गलताण।।१।।
चरण बिना वो चलत गेहला, बिना जिव्हा वो देवे हेला।
मार लिया मन दे शेला, त्याग दिया कुल—काण।।२।।
उलट धारा चढ़े मच्छी, जैसे नभमें उड़ता पंछी।
आदूराय को गुरू बक्षी, चलिया वे मस्तान।।३।।
पवन चलिया शब्द संगा, शब्द सुरत एक ही रगां।
पश्चिम दिश में भांण उगा, उत्तर अगम पियाना।।४।।
गिरिमेर से गंगा खलकी, सहस्त्र धारा प्रेम जलकी।
पीवे कोई सन्त मरके, मरजीवा सोई जान।।५।।
सधर सरोवर शिखर तांई, धरा अम्बर धाम नाहीं।
अखंड ज्योति जले वांई, परम हंस पहिचान।।६।।
पार ब्रह्म प्रकाश सारा, बेगम तुरिया खेल अपार।
आत्म है अनरूप न्यारा, निरलेप रहा अबान।।७।।
अखे मण्डल धुरत गहरा, ताके आगे कीना डेरा।
जहां लखिया है गुंजास सारा, आप केवल जान।।८।।
आशा भारतीजी सुनियों वांणी, वो आतम पुरूष हे निरवाणी।
तां 'नवलो' निरवाचा, पारख पद परियान।।९।।

।। इति श्री ।।

१६१

पढ़िया कहवे कहे गुरू सन्तों, चार वेद में साख भरे
हर हद साहिब भक्त के आगे,
खाविंद बिना कुण मेरी सहाय करे।टेर।।
धरण न गिगन पवनो नहीं पांणी, तारा मण्डल चन्द्र सूर्य भले।
स्वर्ग पियाल, और वैकूंठा, सात दीप में नाम सिरे।।१ ।।
थापी धरण मेरा सिर धरिया, वासक उपर धरण धरे।
कच्छ—मच्छ—कोरम सोरम कहिजे, सहस्र मुखों से नाम सिरे।।२।
लख चौरासी जिवा जूंण में, इस्ट पपैयों बूंद लहें।
अनड़ अकाश निवास वसे, अधर रहतोई नाम सिरे।।३ ।।
इड़ा—पिंगला और सुषमणा, बंक नाल हो गमन करे।
नाभ दवादश त्रेकूटी गगना, दशों दिशा में नाम सिरे।।४।।
पांच तत्व और तीन गुण है, और पचीसो केल करे।
जप—तप—ज्ञान—ध्यान नहीं पहुंचे, गुष्ट करे तो भी नाम सिरे।।५।
पुराण—अठारा नौ व्याकरण, षट शास्त्र लिखत करे।
चार वेद और दीन दोनों ये, झिकर करे तो भी नाम सरे।।६ ।।
परा—पश्यती मधा—बेखरी, बाणी चार उचार करे।
जागृत—सपन सुषोपति तुरिया, चार अवस्था में नाम सरे।।७।।
नहिं कोई जन्म—मरण नहीं वामें, बिन पिण्ड हरि सब खेल करे।
ना कोई 'नवलो' ओर न बोले, निगम वाट बेअंग बहे।।८ ।।

।। इति श्री ।।

समाधी सन्त कोई लेतारी,
जाको ले कोई सन्त भयोरी।।टेर।।
लगते कर्म—कर्म विच सजनी, गुरू किरपा से हेरी।
बिन गुरू भाग मिले नहीं सजनी, युग में अंद्य मिटेरी।।१ ।।
काल—क्रोध जाल ब्रिह अगनी, हं तूं जाल रचेरी।
जल बिच जीव होय नर तासे, जब निश्चय थयेरी।।२ ।।
अबके अवसर चूक मत सजनी, ओ अवसर जाय रहेरी।
ये निश्चय निश्चल पद मिल जावे, जब ये खेल खेलेरी।।
अर्ध—मुख जल उर्ध मुख चाले, सोहम् उर्ध करेरी।
'नवलो' सहज समाधी मांही, गुरू मुख जान रहेरी।।४।।

।। इति श्री ।।

१७५

होरी ! फागुन का दिन चार, पीछे पछताय रहोरी।
होरी ! म्हारो और दूसरो नाय, चरण गुरू का गयोरी।।टेर।।
होरी ! जगत रोषे दिन रात, निंदरा पर आसन करोरी।
होरी ! रहो कर्म कमाय, सभी मिल ध्यान धरोरी।।१।।
होरी ! पांचो को पकड़ मंगाय, गगन घर निरख कियोरी।
होरी ! सोहम् सुरत लगाय, बंक दिश उलट बेहोरी।।२।।
होरी ! घर पचीसो नार, समता सहज रमोरी।
होरी ! निगुर्णनाथ रिझाय, निरख तुम ऐसे भयोरी।।३।।
होरी ! अर्ध—उर्ध के बची, पुरूष संग जीवण चलोरी।
होरी ! कह 'नवलो' विचार, खेल सब तेरो ही बनोरी।।४।

।। इति श्री ।।

ऐसे सतगुरू होरी जमाई, सब कोई रंग लग्योरी।
ज्ञान गुलाल प्रेम पिचकारी, उणमें पवन भयोरी।
तामें अनहद राग सुनोरी।।१ ।।
पांच—पचीस तीन चार षट, चित चौगान रमोरी।
तामें ब्रह्म को ढोल भजोरी।।२ ।।
नाचत नाद गगन में राच्यों, नौ सौ निरत करोरी।
सब में पवन भरोरी।।३ ।।
अर्ध—उर्ध बिच सुमरो सब विध,
सब मिल परख करोरी
जामें 'नवलो' नेम धरोरी।।४।।

।। इति श्री ।।

१७९

हेली आवृति हंसा तणी, ओर तजो सब खेल।टेर।।

हांए म्हारी हेली, ले डुबकी दरिया में मरजीवों का खेल।
जलाबंब में चालणों, हला बम्ब जांरी सेल।।१ ।।

हांए ! म्हारी हेली—अनन्त तरंग दरियामें सब थिरथा कर देख।
शांति नीर में नावणों, सुमता भई जांरी सेल।।२ ।।

बिन तेरू तिरणां नहीं, दम सजणो दम मांय।
उलट बंक में चालणों, मान सरोवर जाय।।३ ।।

पार न पायो पृथ्वी नाथ को, अविगत अगम अभास।
सात सुन प्रकाश है, श्वेत भोम पर वास।।४।।

सप्त सुन के पार है, अधर धाम स्थान।
तहां नवलो वहां पुरूष है, सौभा वरण न जान ।।५।।

।। इति श्री ।।

१८१

सुहागण सुरता पिवने लखो, पियोजी बसे पटशाल ।।टेर।।
कयो मान मस्तानी सुरता, आदू राय संभाल।
पांच—पचिस देख दृष्टि में, दिल बिच लेवो लाल।।१ ।।
ईड़ा—पींगला रस्तो जोयो, बंक दिशो को चाल।
मूल—महल में खिड़की खुलगी, पच्छिम दिशा को भाल।।२
अगम—अगोचर घर में गेलो, त्रैकूटी लेवो संभाल।
गगन मंडल में नाद बजाकर, लेवो दशवो बाल ।।३ ।।
वांके आगे मान सरोवर, जहां वहां हंसा नाय।
ताके आगे पुरूष विदेही, जिसका दर्शन पाय।।४।।
सतगुरू करताजी राम गुसांई, बेहद का दातार।
हदको छोड़ वसे बेहद में, 'नवल' पायो दिदार ।।५।।

।। इति श्री ।।

हांए ! म्हारी हेली विकट वाट बेंडा मता।
करोड़ों में कोई जन जाय।।टेर।।
अगम पैडा शूरा घरे, तन की आश विडार।
सोहं शब्द उलटाय के, निगम नगर वसाय।।१ ।।
दश पवनों थिरता करो, पांच तीन थिर थाय।
नौ—सौ स्र्व शांखल करो, रोम—रोम लिव लाय।।२
मेरू दण्ड सीधा करो, सीधा सुण धर जाय।
उनमुण का बाजा बजे, अनहद घोर धुराय।।३ ।।
जाय पूगा उण देश में, देह—विदेह कहाय।
तहां नवलो वहां पुरूष है, शूरा सन्त कहाय।।४।।

।। इति श्री ।।

२०७

चालो सतगुरू वचनों के मांय मुक्ति पावो।
सर्व घट जानन हाररे फेर नहीं आवो।।टेर।।
गुरू वचनों को श्रवण करके, सत्य शब्द धुंन लावो।
नाभि में गुंज्जाररे बंक में सिधावो।।१ ।।
हिरदे में धननाल गहरीरे, सुषमण भेली संग जावो।
त्रेकूटी में झलके जोतरे अगमा नावो।।२ ।।
दशवां में दिदार देख्यारे, पूरण हंस मिल जावो।
शिखर में महा बाजा बाजेरे, गूंगो गावो।।३ ।।
सुन मांही एक धुन देखी रे, धून में सत नूर पावो।
सोई 'नवलो' अखे आदूरे, आपही में थावो।।४।।

।। इति श्री ।।

२११

दुखड़ारो फन्द परोहर, काहु संग करियोप्रीत ।।टेर।।

नाभ कमल पानी को पैदा, नौ सौ नाड़ी की भीर।।१

बंक चढोगे फिर उतरोगे, आण थका इण तीर।।२ ।।

गगन चढोगे फिर उतरोगे, तजो सबन की रीत।।३ ।।

नौ दरवाजा वो भी नांही, 'नवलो' नहीं इण प्रीत।।४

।। इति श्री ।।

उठ प्रभात कर प्रणाम राम रस पीजिये।
जो कोई जन निकट आवे, जिनको छाक दीजिये।
नाभि मांहि आय हरि, भांग घोट घोट पीजिये।
अर्ध नाम प्यालो झेलो, उर्ध होय लीजिये।।१ ।।
रणुकांर मथन जाल, पिछम चाल रीजिये।
बंक नाल उलट चाल, त्रिकूटी तहां भीजिये।।२ ।।
चढ़ी खुमारी, भया है मगन, रोम रोम भीजिये।
अर्ध उर्ध चाल चाल, पवन पावन पीजिये।।३ ।।
नव दरवाजा खुलिया नाद, दशवें जाय रहीजिये।
कहत ऐम 'नवलराम', मोक्ष पद को लीजिये।।४।।

।। इति श्री ।।

अनुभव भई सो सतकर भाखूं, पद निरवाणी पाया।
सत्य शब्द का यही पलटा, भिन्न—भिन्न कर समझाया।।
सोहम् शब्द नाभिका मंजन, अष्ट कमल दरशाया।
अगर कमल पर तत्व ओलखिया, सोलह कला सवाया।
बंक नाल की बांकी घाटी, शंख नाल उमग थाया।
मेरू दण्ड का छेक्या नाका, शील समुद्र में नाया।।२।।
इड़ा—पींगल तंत पांचो मिलि, यों तुरिया पद राया।
नौ—तत्व उलट एक घर लाया, आवागमन नहीं आया।।३
सतगुरू करताजी राम गुसांई, अनुभव का भेद बताय।
नवलदास' दासन के दासा, अनुभव उतर गाया।।४।।

।। इति श्री ।।

बनी तू अविचल वर पायोरी, सुरत परख निरवाण।
बनी तू शंसे सर्व दियो खोय।।टेर।।
लख चौरासी भव मेट कर, सगले फिर कर जोय।
सतगुरू बिना सामर्थ नाहीं, सपना सर्व दरसोय।।१।।
जहां देखूं–जहां दुर्मती दो झख हूं तूं जग में छाह।
सुख सागर में लियो से मेलो, निर्गुण निज को पाय।।
दया रमझ समझ मिल कर, समता सहज सुखछाय।
शील–सुबूरी सातों मिल कर, सतका मंगल गाय।।३।
नाभ कमल पर चंवरी मॉडी, सोहम् थम्बो थपाय।
अर्ध–उर्ध का फेरा किया, हथलेवों हर्ष जुड़ाय।।४।।
ऐसा वर पूरण निज मिलिया, भाग्य बड़ा जिन पाय।
'नवलदास' सभी डर डारो, पूरा पट्टा लिखाय।।५।।

।। इति श्री ।।

२३९

कहो ! ब्रह्मज्ञानी अनुभव धारी, अनुभव किसको कहता है
सत शब्द का भेद बतावो, हे जैसे का तैसा है।।टेर।।
कौन कमल नाभी का मंजन, इष्ट कमल धर कैसाजी।
अगर कमल की कलियां कैसी, कैसा है प्रकाशाजी।।१ ।।
बंक नाल की कैसी घाटी, शंख नाल घर कैसाजी।
मेरू दण्ड का कैसा नाका, कैसा है उपदेशाजी।।२ ।।
इड़ा पींगला सुषमण तीनों, जागृत रहता कैसाजी।
नौ—दश—शब्द जागिया कैसे, कौन तेज प्रकाशाजी।।३ ।।
कैसे चढ़िया त्रेकूटी घाटी, कैसे बन्ध लगायाजी।
कैसे किया गगन घर बासा, किस विध जाय समायाजी ।।
सतगुरू करताजी राम गुसांई, अनुभव भेद बतायाजी।
नवल दास दासन का दासा, ब्रह्मलख मेने गायाजी।।५।।

।। इति श्री ।।

साधो भाई ! बिन सुमरण घर पाया।
अमर आप अटल अविनाशी, नहिं मरता नहिं जाया।।टेर।
जो मैं ध्यान हिये बिच धारूं, जल की जोत सबाया।
ब्रह्म हिये को छोड चलत है, चलता आकार लखाया।।१
जो मैं ध्यान पवन का साजुं, पवन गिगन तक थाया।
जैसे तेल कड़ाई में अवटे, यूं पवनों को खाया।।२।।
ये सब त्याग पश्चिम दिश उलटा, मेर इक्कीस लंगाया।
हर दम खूबरमू असी पद में, सोहम शिखर उपथाया।।३।
भूल मिटी अमर गुरू भेटीया, तोड़ के जाल रहाया।
कह 'नवलो' वसूं व्यापक में, सुमरण सफा उडाया।।४।।

।। इति श्री ।।

२९७

साधो भाई ! आनन्द कोष हम जाना।
आनन्द कोष में आनन्द लीना, कारण शरीर ठहराना ।।टे
मूल कमल के बन्ध लगाया, आसन पदम जमाना।
लिगं कमल का पलटा दीना, नाभि कमल ठहराना।।१ ।।
पांच तीन पकड़ वश कीना, ह्रदय कमल रहाना।
अर्ध उर्ध बिच पवन साज कर, बंक दिश किया पियाना।
इड़ा पींगला सुषमण साधी, त्रेकुटी मेंहल आना।
त्रेकुटी मेंहल में हीरा मोती, हंसा वास वसाना।।३ ।।
गिगन मंडल के उपर चढ़िया, दशवे जाय समाना।
कह 'नवलो' सुने भाई साधो, अनहद राग घुराना।।४।।

।। इति श्री ।।

साधो भाई ! कैसा देश तुम देखा।
देखा देश को खोल बतावो, जब हम निश्चय पेखा।।टेर
कौन जीव की जात कहिजे, कौन जीव अस्थाना।
कौन द्वार से जीव निकला, कहां जा जीव समाना।।१।।
कौन ब्रह्म का तोल कहिजे, किस को है तुलाना।
देखा ब्रह्म तो खोल बतावो, कितना है अनुमाना।।२।।
इड़ा—पींगला सुषमण कहिजे, कैसे ! एक ठिकाना।
आगे सोहं कैसे लाया, कैसे त्रिकुटी जाना।।३।।
कहो अनुभव का बीज है कैसा, किसको अनुभव माना।
अनुभव हुई कौन प्रकारा, भिन्न भिन्न कर समझाना।।४।।
तुम्हारी शोभा सुनी आशा भारती, हम दर्शन को आना।
ना:अक्षर को खोल बतावो, 'नवला' को दरशाना।।५।।

।। इति श्री ।।

।। दोहा छन्द।।

'नवला' गरजी आदिका, आज काल का नाय।
जा दिन थापी धरतरी, 'नवला' जब था मांय।।१।।
नवला उनकी खौज कर, आदि का करो विचार।
धरती पहले किस जगे, 'नवला' कौन हे आधार।।२।।
धरती रची अम्बर रचा, अधर धार आकाश।
श्वांस श्वांस में रम रहा, 'नवला' पुरष उण के माय।।३।।

।। दोहा छन्द ।।

रातों जावे जागणा, दिन का रहवे सोय।
जिन नवला उण संतको, गंज सके है कोय।।१।।
माला तो हरदम फिरे, उर बिच श्वासोश्वास।
भीगे नहिं माला रहे, कह 'नवलो' निज दास।।२।।
दया करी गुरु देवजी, गादी दही सजाय।
'नवलदास' आधीन है, सन्तों का बल पाय।।३।।

।। दोहा छन्द।।

तन मन तो अरपा नहीं ,चढ़े न बंक की घाट।
कोरो ज्ञान लफोड़ता, हो गयो—बारे बाट।।१।।
गुरु को जाने मानवी, संत को जाने ओर।
'नवलदास' वो ना सन्त है, सनमुख दीसे चोर।।२।।
गुरु को तो वन्दन करे, बन्धन माया रैत।
जिन पहले 'नवला' वे सन्त की, शिक्षा शिष्य ही लेत।।३।।
सतगुरु आवत देख के, जाजम दी ढलवाय।
फूलन की वर्षा करे, नवल रही चमेली छाय।।४।।
तन दुखिया मन मस्करा, सब जग कहते गेला।
यह मद 'नवलो' न पिया, गुरु करताजी का चेला।
तन सुखिया मन इन्ज्यों, दिष्ट पड़े होय चेला।

वो तो साधु जाणे नहिं, तूतो साधू जाण।
'नवला' थारे होसी फायदो, उणरे पड़सी हाण।।१।।
ओम् शब्द सो याद है, सोहं शब्द उपदेश।
गुरु शब्द सोहि सन्त है, राम शब्द मुक्तेश।।२।।
नवल काल से ना डरे, नमो गुरु उपदेश।
काल के माथे पग धरे, सतगुरु को आदेश।।३।।
हां कहूं तो है नाहीं, नहीं कयो ना जाय।
हां ओर ना के बीच में, 'नवलो' रहा समाय।।४।।

।। मनोहर छन्द ।।

वशालो है वही करें, युग–युग चाकरी सो,
आखिर में साज कर, बैठे हरी सेव में।
अरध–उरध बिच, पीव को परसलेरे,
गैब की गुज्जार मांहि, परसले सुभेव में।।
आगे चल धारणा के, नाद सु उलट कर,
नौ–नौ नाड़ी षरे, फिर अड़त सुलेव में।।
दशों माग बन्ध कर, एक माग सुर कर,
सोहम् 'नवल' गुरू, सतगुरू देव में।।

।। गुरू शब्द।।
।। मनोहर छन्द ।।

पांच और पचीस पाल, नाभि के निवास मांही,
ऐसो गुरू शब्द दियो, मोगरो कहायो है।।
रेगर ले मोगरे को, रांग रहा कूट–कूट,
अर्ध और उरध बीच, कम्पी सो उड़ायो है।।
नवल खुमारी चढ़ी, गगन में लागी ताली,
ररा ओर ममा बीच, शब्द सत्य पायो है।।
ऐसी गुरू कृपा करी, अभय पद पायो,
'नवल' उसी में जाके, सहज में समायो है।।

।। प्रश्न गीत ।।

कोन? शब्द है आदका, कौन? शब्द है अनाद।
कौन? शब्द है पार का, कौन? शब्द है सन्त।।

।। उतर गीत ।।

सत्य शब्द है आद का, ओहम् शब्द है अनाद।
सोहम शब्द है पार का, मूल शब्द है सन्त।।

।। प्रश्न गीत ।।

नाम का नाम क्या? नाम कहा बस्ता, किस नाम को जपते प्यारे।
'नवल कौन? नाम को नाद द्वारे, जपता वो नाम कैसा प्यारे।।

।। उतर गीत ।।

नाम का नाम सोहं नाम बस्ता, नाभि कमल से नाम जपता।
'नवलो' ले नाम नाशिका द्वारा, उसी नाम को सोध प्यारे।।

।। कविता ।।

आप ही की जेवड़ी को आप धर भूल गयो,
रैन के अंधेरे माहीं सांप ही बनायो है।
नवल प्रकाश भयो, कहां गयो सांप तेरो,
आपके स्वभाव मांही आप ही समायो है।।
सपना में एक सिंह, मिल्यो है उजाड़ मांही,
शस्त्र न पास सिंह सबल कहायो है।
'नवला' खुला है नैन कहां गई सिंह सेन,
आपके स्वभाव मांही आप ही समायो है।।

।सवैया छन्द।

।।१ ।।

जात व पात सभी जानत, पुराण अठारह को जाण लियो है।

।। श्री गुरु सुमरण सेन को जाप।।

प्रथम गुरु सत शब्द सुनाया, नाभि पे पवना ठहराया।
श्वासा में श्वासा पधराया, पड़दे जपूं गुप्त हो आया।।१ ।।
रोम रोम गुरु की गति लागा, सुरता शब्द खेचरी जागा।
धरण गिगन बिच अनहद बाजा, नैन बैन सर्व सुख साजा।।२ ।।
हाथ पांव गुरु में पधराया, पांच पचिस एकण घर लाया।
ज्यों हांडी में नाज समाया, तल का जल आसमान चढ़ाया।।३
साधन शीला धोय कर नाया, हद बेहद का राय संभाया।
चाचर चुप कर ब्रह्म समाया, तभी खेचरी चलना थाया।।४।।
खेचर खिल खिल रास रचाया, उनमुन मिले परम पद पाया।
अगम अगोचर चढ़ कर गाया, अष्ट कमल का राह संभाया।।५
पंछी उड़े मार्ग नहीं पाया, पग बिन पंथ चले बिन काया।
भूल भरमाना सभी मिटाया, ये सुमरण की राह बताया।।६ ।।
ये सुमरण की सैन है, भव जल उतरे पार।
जिन को 'नवला' भय नहीं, सत्य सैन है सार।।७।।

।। इति गुरु सुमरण सेन समाप्त।।
ओम् शांति ! शांति !! शांति !!!

।। गादी का मंत्र ।।

गमकी गादी सतगुरु दीनी, गत अगम की विरला लीनी।
पांचों मुदरा वश कर लीनी, मन की माला कर में दीनी।।
नाभ कमल में युगति कीनी, अर्ध उर्ध एकण घर लीनी।
सुरत नुरत काबू कर लीनी, बंक नाल की घाटी चीनी।।
कण्ठ कमल के बन्ध लगाया, अमृत पी के परम सुख पाया।
त्रेवेणी में न्हाय कर जोया, काग पलट के हंसा होया।।
युगती का निज मोती चुगाया, बेगम पुर में वास वसाया।
द्वैष भरम का खोज मिटाया, इष्ट पकड़ अमर घर पाया।।
अमरा पुर में अस्थान लगाया, पंच तत्व का कोट बनाया।
गुरु करताजी ने भेद बताया, गादी बैठक कर आसन पाया।।
'नवलदास' पद शीश नमाया, गुरु किरपा से नवलो गाया।

।। इति गादी मंत्र समाप्त ।।

ओउम् शांति ! शांति !! शांति !!!

सकल रीति गुरु से मिली, हरि सुख दियो मिलाय।।२

सुखन को सुख नाम हैं, सो गुरु बक्षों आय।

'नवलदास' टोटो भागो, सीर समुद्र मांय।।२२।।

गुरु परसा नवलराम, किस विध रहवे सोय।

पतिव्रता है पीव की, आज्ञा पालक होंय।।२३।।

या चिन्ता कर नवलदास, जाप हुआ के अजाप।

याकी विगत गुरु पास है, बूझो आप को आप।।२४।।

समझ सोच लो नवलदास, पुण्य हुआ के पाप।

आद हुआ के जुगाद हुआ, पहले कौनसी ताप।।२५।।

धर दूरबीन दर्पण में देखों, दर्पण हुआ के दिदार।

दाता हुआ के मांगता हुआ, पहले कौन सी सार।।२६

पग नहीं होता नवलदास, गुरु दर्शन किम जाय।

हाथ नहीं होता नवलदास, दण्डवत केम कराय।।२७।।

मुख नहीं होता नवलदास, शिष जांचे किण मांय।

श्रवण न होता नवलदास, आज्ञा केम ठहराय।।२८।।

कण्ठ जिह्वा होती नहीं, किरत करे किण मांय।

नाभ नहीं होती नवलदास, श्वास लेवण किम थाय।।२

नाद नहीं होती नवलदास, बिन्द खलके किन मांय।

मूल दवार होता नहीं,पिण्ड खुलसे किम थायं।।३०।।

गगन न होते नवलदास, पारो जमतो किण मांय।

दशवो द्वार होतो नहीं, पवन धसण किण थाय।।३१।।

भंग न होती नवलदास, जीव जन्म किम थाय।

जे सतगुरु मिलता नहीं, रहती भूल अथाय।।३२।।

।। इतिश्री नाद बिन्द को अंग समाप्त।।

।। श्री ध्यानी को अंग प्रारम्भ।।

अरध उरध चुपकी पिये, बहे बंक की घाट।
सुरत शब्द में रहत हे, यूं ध्यानी को थाट।।१।।
रोम रोम लिव लाग रहे, खुलग्या अन्तर कपाट।
इड़ा पींगला बहत है, ध्यानी के घट पाट।।२।।
पांच तत्व गुण तीन पर, आसन अखे असार।
अडिग नाम लिव रहत है, ये ध्यानी की सार।।३।।
त्रिकुटी चढ़ तिरणो करे, भवसागर के पार।
नामी साजे अधर को, ध्यानी एम विचार।।४।।
गगन चढ़े हर भणक सुने, झणके नव सौ नाड़।
करम–भरम का मोरचा, ध्यानी दीनो पाड़।।५।।
मोक्ष खुल गई मुफत में, पलट गया सब अंग।
श्रवण नेत्र नाशिका, मुख धुन ध्यानी संग।।६।।
श्वासा पलटा शब्द से, इन्द्रियां को ली जीत।
सुन धुन ज्यों लागी रहे, ध्यानी सर्व अतीत।।७।।
जीव जगावे पीव पर, हर परस्या आनन्द।
एक नाम पर मांड दे, ध्यानी परमानन्द।।८।।
अमर देश अविचल रहे, दिखता नहीं लिगार।
सुन पार चलता रहे, उन मुन ध्यान अपार।।९।।
में लिव राखी सुरत में, शब्द गुरु के पास।
आठ पहर चौसट घड़ी, ध्यान रहे नितदास।।१०।।
मनवा रे निज मौरचे, खाली श्वास न जाय।
यूं मन रहवे पीव में, ध्यानी रहा समाय।।११।।
युगति में जागृत रहे, रे रे कार आधार।
केवल सुन लागा रहे, ध्यानी धीरज धार।।१२।।
गुष्ट करे नित एक में, दुर्गत दोजख टाल।
ध्यान धरे निंदरा तजे, वो ध्यानी विकराल।।१३।।
हालत डोलत बोलता, डोले नहीं लिगार।
सुरत वसे हरि नाम में, ध्यानी रहे धुंन धार।।१४।।
समदृष्टि आसन धरे, शम दृष्टि दरवेश।
दिष्ट युष्ट आता नहीं, एको ध्यान रहाय।।१५।।
रणुंकार की रहत है, मन पर बहुत विचार।
जग विचार पलटे नहीं, ध्यानी को आधार।।१६।।
छक बक रहे नित एक में, सुरती रहे अखंड।
सब कमलों को छेकने, ध्यानी रहे ब्रह्मण्ड।।१७।।
एक मत युग चार से निरदावे धर ध्यान।

सतगुरु खोजो हे प्यारी, जग में दुर्लभ रत्न यही।

मैंने आप लोगों को आसन के बारे में बातें बताई थी कि यह आसन योगियों और ऋषि–मुनियों का था। यह आसन संतों का नहीं था। जो आसन संतों का है वह ऐसा है जैसे बच्चा गर्भ में रहता है। अगर दूसरा आसन होता है तो बच्चा भी गिर जाता है। सो संतों का मार्ग करणी का मार्ग है और यह काम इसी जिन्दगी में करना है। संतों का आसन भी ऐसा ही है। जब इस आसन का अभ्यास नहीं करते हो तो कभी भी रास्ता नहीं खोल सकते हो। न कभी खुला है और न खोल सकते हैं। क्योंकि मैंने बहुत से महात्माओं के वचन सुने हैं। अगर तुम पूछो कि क्या वेदांत में भी ऐसा है। हां, तुम्हारे ऋषियों ने भी लिखा है। छोटी उम्र थी। मैंने शिवपुराण सुना था। उसमें शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि सुबह उठो और ये दरवाजे बंद करो। नानक साहब ने भी यही कहा है–

तीनों बंद लगाय के सुनो अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाध में नहीं सांझ नहीं भोर।।

वही फारसी में भी कहते हैं–

चश्म बंद, गोश बंद, लब बंद। गरमीना रूर हक।।

अर्थात् यदि प्रकाश और शब्द नहीं खुलता है तो मैं उलहाने में हूं। सभी ने ये बातें कही हैं। ये कब होती हैं? यही बातें तो संतों ने बताई हैं। ये तीनों बंद इस आसन के बिना नहीं लग सकते हैं। अगर किसी को कुछ तकलीफ है तो साधनी भी रख लेते हैं या तकिया रख लेते हैं। सो प्रसंग चला हुआ था–

मेरा हर से मिलन कैसे हो, गली तो चारों बंद पड़ी।

उस परमात्मा से कैसे मिलूं। इन चारों गलियों को खोलने का मार्ग तो यही है। एक ही जेली है, वह सतगुरु का सहारा ही एक साधन है। उस सतगुरु के सहारे से चारों गली एक दम खुल

20:13

भिवानी : कैसेट क्रमांक : 118

दिनांक : 6 नवम्बर, 1993

समय : रात्रि

मेरा हरि से मिलन कैसे हो, गली तो चारों बंद पड़ी।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ने घेरी चारों गैल।
जिन गलियों मेरा प्रीतम बसता कैसे करूं वाकी सैल।।
पांच पच्चीस पहरवा ठाडे, रोक लिए सब ठाम।
ये विधना ने कैसी किन्ही, बैरी बसाये म्हारे गाम।।
आशा त ष्णा खड़ी दुहेली, इनमें रहा समाय।
कनक कामिनी गहरा फंदा, अंत तजा नहीं जाय।।
भक्ति ज्ञान वैराग योग का, मार्ग दिया बताय।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, वहां कोई बिरला जाय।।

कैसे मिलू हरि संग जाय, मिलना कठिन है।
ओघट घाट बाट रपटीली पांव नहीं ठहराय।
सुन्न शिखर पे सेज पिया की मोसे चढ़ा न जाय।।
लोक लाज कुल की मर्यादा, मो से सही न जाय।
घर में पिया परदेश बराबर, देखे बिन रहा न जाय।।
आसा त ष्णा त्याग बावरी, गगन मंडल चढ़ जाय।
गम से दूर अगम से आगे, सुरत झकोले खाय।।
रामानन्द मिले मोहे सतगुरु, मार्ग दिया बताय।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, पूठा न धरते पांय।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:43
04 Garanth Naam Pr...
scribd.com
184 / 295

(भावार्थ)

परमेश्वर एक ही है जो सत्य है और ब्रह्म है, सोई तन और मन के भीतर हर दम के साथ क़ायम रहता है। चूंकि वह अपने ही तन और मन के भीतर है, इसलिये सुरत लगा के प्रेम करने से ज्ञानी को नज़र आता है। मायाकृत त्रैगुणों की सकल रचना इस त्रैगुणी मन की कल्पना से होती है जिसका आधारभूत जीव का इन सब से परे रामरूप है जिसको जीव गुरुमुख होकर प्राप्त होता है। वह गुरुमुख अवस्था में तन और मन से परे भासित होता है। तथा मन्मुख अवस्था में भी उसी का आधार है।

••• •••

१६--ऊपर तरे दो जाप जो, तन मन से सब खोय।
ताड़ी दसों लगाय के, उनमुन के संग जोय॥

(भावार्थ)

यह "सोऽहं जप" यानी जो प्राण और अपान की ऊपर नीचे की आमद रफ़्त है, इसको तन और मन से दूर कर दे यानी अपनी दशों ताड़ी अथवा अपनी सुरत को उनमुन की ओर यानी सत्, रज, तम से बाहर करके तुरी की ओर करके अपने निज तुरियातीत पद में लय हो जा जहाँ प्राणों का गुज़र ही नहीं है। पाँचों ज्ञान इन्द्रियों और पाँचों कर्म इन्द्रियों तथा मायाकृत त्रैगुणों से गुरुमुख अवस्था में परे होकर के अपने निज वास्तव रूप की तरफ मुख़ातिब होकर जीव को प्राणों से परे होकर अपने तईं अपने वास्तव रूप से जीते जी मिला देना चाहिये।

06:48
205 / 295

किस मुक़ाम पर इस जीव का निज रामरूप है और उसका रंग क्या है।

सतगुरूवाच

दोहा

५९—दसवाँ द्वार गुप्त है, ब्रूह्म रन्धरी ठौर।
तहवाँ सुरत लिप्त करो, देह तजो फिर और॥

Ad
Download to read ad-free

(भावार्थ)

श्रीसतगुरुदेवजी साहब फ़रमाते हैं कि इस शरीर में नव दरवाज़े ज़ाहिर हैं यानी १—मल त्यागने का, २—मूत्र त्यागने का, ३—मुख, ४ और ५—दो 'सूराख़' नाक के, ६ और ७—दो नेत्र, ८ और ९—दो सूराख़ कानों के, और इन सब से ऊपर की तरफ़ एक गुप्त दशवाँ दरवाज़ा है जिसको ब्रह्मरन्ध्री ठौर कहते हैं। उसी मार्ग से तुम संसार में नीचे की तरफ़ गिरे हो। जब तुम फिर उसी मार्ग से ऊपर की तरफ़ जावोगे तब अपने निज रामरूप को प्राप्त होगे। तुमको चाहिये कि श्रीसतगुरुदेवजी के उपदेशों पर अमल करके अपनी सुरत को त्रैगुण से परे तुरी में लगाकर तुरियातीत पद को प्राप्त हो जावो।

सोरठा

६०—टिकटिकीत्रिकुटी ध्यान, जोति निरंजन जानले।
माया केर तमाश, यहू देख मत भूलियो॥

(भावार्थ)

Overview
Find in PDF
Related do
Download

चाल : आनंदाचा कंद हरी हा राग : भिमपलास भैरवी

आद उनादना नाथरे । स्वामी तमे छो करतार ॥ धृ ॥
भरतखंड जंबुद्विपमाहे । दसमो छे निकलंकी रुप ॥ १ ॥
सतगुरु केरा हाटमा । जडी गिनान सबद केरी जड ॥ २ ॥
गिनान दीपक समारीये । सतगुरु देखाडसे अमर भेद ॥ ३ ॥
अमरपद गुरुगम जडी । ता तो पाप ते परळा जायरे ॥ ४ ॥
पाच तत्वनी रचना बनी । तारे त्रण जग कन्या प्रकाश ॥ ५ ॥
पाचहि रसने वारीये । तेना रुप छे सहस्त्र पचास ॥ ६ ॥
नाभी कमलथी उपजे । ताहा गैबी ते गर्जना थाय ॥ ७ ॥
सुन शिखरमा सुरता धरी । ताहा थाये छे अजंपा जाप ॥ ८ ॥
इंगळा पिंगळा संगममाहे । ताहा सुषुम्ना वहे अति सार ॥ ९ ॥
अनहद बाजा ताहा गडगडे । ताहा वर्तायेजय जयकाररे ॥ १० ॥
बंक नालना घाटमाहे । ताहा अनहद थाये प्रकाश ॥ ११ ॥
आ घेरथी अमी उतरे । ताहा पीये हरीजन विरला कोय ॥ १२ ॥
सुरत नुरतनी जुगत भणी । परिब्रह्मा छे पोताने पासरे ॥ १३ ॥
अखंड ज्योत ताहा झगमगे । ये तो अलख पुरुष केरा मेल ॥ १४ ॥
अलख निरंजनने सेवियेे । सारे जनम मरणनो भय जायेरे ॥ १५ ॥
कहेत इमामशहा सुणो मोरा भांई । ते तमे गावो सीखो सांभलो भाई॥ १६ ॥

पद २ रे

चाल : विटेवरीरे उभा विठ्ठला

अजंपा तणो हरदम धरीये ध्यान ।
ध्यान धरीने मन वश राखो । भाई सद्गुरुनी लईये सान ॥धृ॥

realpatidar.com

हाटमा-दुकानात, गिनान-ज्ञान, समारीये-सांभाळकरा, गुरुगम-गुरुशी समरस झाल्याने, परळा-नाहीसे होईल, वारीये-संयमन करा, अनहद-अगम्य गुढ, अमी-नुर तेज अमृत, विरला-क्वचित एखादा, जुगत-युक्त उचित, पोताने-स्वत:च्या जवळ, सान-इशारा,संकेत.

Digitized by: www.realpatidar.com

सान गुरुकी लई घटमाहे रहिये । निश्चल थईने धरीये ध्यान ॥
realpatidar.com
गुप्त घटमाहे सुमरण करजो । कोई ना सुने कानो कान ॥ १ ॥
इंगळा पिंगळा सुषुम्ना नाडी । त्रिवेणी उपर मकान ॥
भ्रमरगुंफा उपर परगट बैठो । ताहा जई खोलो निशान ॥ २ ॥
निशाण खोलो तो दर्शन लोडो । मीट जावे चौऱ्यायशीनु चिन्ह ॥
जनम मरणका सर्वे भय भागे । बैठा पीवो अमृत मान ॥ ३ ॥
अमृत पीवे तो जुगो जुग जीवे । वैकुंठमा पावे ते मान ॥
स्वामी हुं छुं दास मने दर्शनकी आस । विनंती मारी करजो मान ॥ ४ ॥
कहेत इमामशहा सुणो मोरा भाई । तेज स्वरुपनु धरऊ ध्यान ॥
कर जोडीने तमे प्रभुने विनवो । गुरु प्रसादे उतारो पार ॥ ५ ॥

20:42

पद ३ रे

चाल : खावंद खोजी काहाडो

नुरनाथ घरनी खबर ना जाणी । संसारमा जीव भुल्या
पंचतत्वका महेल बनाया । त्रिगुण कीया परकासा ॥
संसार सागर मायाजल भरीया । प्राणी तेना माहे बुडारे
नाभी कमलथी दम उठत है । स्मरण स्वास उस्वासा ॥
शिव शक्तीका मेला करना । बंक नाल रस पीनारे
बंकनालनो मारग बाको । चढो जो बीरला कोये ॥
जीनको सतगुरु पुरा मलीया । सोही घेरमा जावेरे
गंगा जमुना दो दस बहेती । बीचमो भाग सरस्वतीका
त्रीवेणी उपर स्नान करना । सुनमे धून लगानी रे
गगनमंडलमा गैबी गुपत है । अनहद बाजा बाजे ॥
भ्रमरगुंफाना घाटमाहे । अविंचल वस्तु जडीरे
कहेत इमामशहा प्रभुके प्रतापे । रहेनी दिवस जागे ॥
स्वर्गभवनमा ते जीव जासे । आवागमन मटी जासेरे

भ्रमरगुंफा-सहस्त्रदल चक्र, ब्रह्मरंघ्र, आत्म्याचे वास्तव्य स्थान, निशान-चिन्ह,लक्ष्य मे
बंकनाल-नाभीपासून मुलाधार चक्रापर्यंत जाणारी श्वासाची नाडी, बाको-अतिशय कठी
धून-लय, गैबी-गहन, गूढ, अनहद-समाधी अवस्थेत ऐकू येणारा गुढ आवाज, अविच
प्राप्ती होणे (आत्म साक्षात्कार घडणे) मटी जासेरे-मिटून जाईल.

by: www.realpatidar.com

20:43 Vo)) LTE1

realpatidar.com

पद ४ थे

चाल : मुरलीकी धुन सुन सखेरी **राग : मालगुंजरी**

महापद केरी वाट कोई एक जाणेरे ।
जेणे मळ्या सतगुरु सार तपस्या मेळीरे ॥ धृ ॥
नाभी कमल घटमाहे सोहं उठेरे ॥
ताहा जाप जपे एक हंस तार न तुटेरे ॥ १ ॥
पाच पचिस घटमाहे जीव ताहा मळऊरे ॥
ताहा सहेज सुरतनु ध्यान गडपर चढऊरे ॥ २ ॥
चार मळी एक ठाम ताहा लय लागीरे ॥
प्रेमतणी लय जब काने जागीरे ॥ ३ ॥
बंकनाल मुक्काम समसो कहीये रे ॥
ताहा सुरत नुरत बेऊ मळीने परछो लइयेरे ॥ ४ ॥
इंगळा पिंगळा सार सुषुम्ना नाडीरे ॥
ताहा चांदसुरज बेऊ मळीने मनछा मारीरे ॥ ५ ॥
त्रिवेणी घाटमाहे अखंड ज्योती रे ॥
ताहा झगमग झगमग वरसे मोतीरे ॥ ६ ॥
सकी पींड तणी खबर सर्वे जाणी रे ॥
ताहा सुरत चढी असमान फुटी निसरीरे ॥ ७ ॥
सगला रोम रोम लागा जपवारे ॥
सगला घटना चोर लागा छुपवारे ॥ ८ ॥
पाव कोसपर गाम निशाण धारीरे ॥
ताहा धरु सुरतनु ध्यान सासो मारीरे ॥ ९ ॥
अेटला सर्व निशाण मेल्या निचारे ॥
ताहा स्वर्ग मंडलना कोट सगला परखीरे ॥ १० ॥
सात द्विप नवखंड जोया नर नीरखीरे ॥
केवा सरीखा नही नाम मारो स्वामीरे ॥ ११ ॥

realpatidar

महापद केरी-महान आशा, ब्रह्मपदाची, अढळ पदाची, मेळीरे-मिळाला, तार न तूटेरे-लय तुटणार नाही असा, अखंड, समसो-संकेत, परछो-अनुभव, मनछा-इच्छा, घटना चोर-इंद्रिय जन्य माया विकार, सासो मारीरे-संशय फिटून, परखीरे-शोधून, निरखीरे ध्यानाने जाणून.

20:43 Vo)) LTE1

पद ५ वे

चाल : खेळ खेळू हरी कुंजनी

मळीया प्रेम स्नेही गुरुदेव । मळीया प्रेम सुहागण देवरे ॥ धृ ॥
पांच तत्वनी खोजमे । वस्तु अगम अगोचर जडीरे ॥ १ ॥
शिव नगरीमा खोजता । वस्तु सुन शिखर गड चढीरे ॥ २ ॥
भ्रमरगुंफाना घाटमा । वस्तु अविगत माहे जडीरे ॥ ३ ॥
नुर तो निरंजन तहा झरे । तो अविगत घरमा खडीरे ॥ ४ ॥
जीरे निरंजनना चढता । गुरु कृपा सुरता चढीरे ॥ ५ ॥
अनहद बाजानी गर्जना । ता तो अनंत तारानी गढीरे ॥ ६ ॥
पंख हजारनी कमलनी । ता तो निरंजन टंकसाळ पडीरे ॥ ७ ॥
सतगुरु पद जानता । ये तो गुरु हाटे वस्तु जडीरे ॥ ८ ॥
धन धन सतगुरु तमने । वस्तु सत घेरथी जडीरे ॥ ९ ॥
जीरे इमामशहानी विनंती । वस्तु पहुचाडी खरा खरीरे ॥ १० ॥
गुरु इमामशहा बोलीया । अे वस्तु सतगुरुथी जडीरे ॥ ११ ॥

पद ६ वे

चाल : कधी येशील मन मोहना **राग : ब्रह्मानंदी**

सतगुरु ब्रह्माने ओळख्या । मै तो सुरतीसु कर्या प्रणाम ॥ धृ ॥
ब्रह्मरस लागो मीठडो । मारे अंग उलट न जायरे ॥ १ ॥
ज्योत प्रकाशिने तेज कर्या । ते तो तेजमा तेज समायरे ॥ २ ॥
अखंड ज्योत तइया झलझले । नाभी कमलथी किधो विस्ताररे ॥ ३ ॥

realpatidar.com

खोजमे-शरीरात, जडीरे-दडलेली आहे, खोजता-शोधता, तारानी गढीरे-तारकापुंज, ताऱ्यांचा समुदाय, टंकसाळ-खजीना, हाटे-दुकानात, मीठडो-मधुर, झलझले-झगमगणे तळपणे.

बारा कळा ब्रह्मरस कहिये । मै तो प्रत्येक दिठा छे तेजरे ॥ ४ ॥
सोळा कळा विष्णुनर कहिये । ते तो ज्योतमा ज्योत समायरे ॥ ५ ॥
पांच तत्वनी काया करी । नव खंडमा किधो विस्ताररे ॥ ६ ॥
जुगमा ते गुरुनर आवीया । सेवक लोकने देवा दर्शनरे ॥ ७ ॥
सतपंथ सोळा कळासु जाणो । ते तो उगमिया सुरज केवायरे ॥ ८ ॥
इंगळा पिंगळा सुक्षमना । ते तो चढीया त्रिवेणी घाटरे ॥ ९ ॥
त्रिखुटी संगममा न्हाइये । ते तो दसमे पाम्या छे दर्शनरे ॥ १० ॥
सतरमी कळाना तो तेज झऱ्या । ते तो वींड स्वरुपी केवायरे ॥ ११ ॥
दसमे दर्शन ते जाई मळ्या । ते तो पाम्या छे अमर पदरे ॥ १२ ॥
कहेत इमामशहा सांभलो । अेम बोल्या छे अमृतवाणीरे ॥ १३ ॥

realpatidar.com

20:45 Vo)) LTE1

पद ७ वे

चाल : जीव हा झाला केविलवाणा **राग : तिलकामोद**

सतपंथ धरम सो कहिये । जेणे ओळख्या सतगुरु नुररे ॥
परिब्रह्म विष्णु ने ओळख्या । ते तो अमर हुवा ततखेवरे ॥ धृ ॥
ज्योते स्वरुपे जाणीये । आदबुंद विंड केवायरे ॥
निराकार रुपे तो पोते छे । ते तो अकल कहाव्या नव जायरे ॥ १ ॥
जव्हेरी होवे तो पारखे । अने हिरा चऊटे बाजार ॥
मुनिवर होवे तो पारखे । गिनाननी सुरती लगायरे ॥ २ ॥
काची कायाने काचा पिंड । नव खंडमा किधो प्रकाश ॥
पंच तत्वनु पुतलु । तो पोलमाहे पवन समायरे ॥ ३ ॥
नाभी कमलथी दम उठे । स्वास उस्वास होयरे ॥
दमे दमे हरीने जपीये । तो अमर होवे सोयरे ॥ ४ ॥
त्रिवेणी त्रिखुटीमा न्हाइये । अने पुरा संगम होयरे ॥
चांदो सुरज बे दीप कहिये । तो ज्योतमा ज्योत समायरे ॥ ५ ॥

realpatidar.com

विंड स्वरुपी-विराट स्वरुपी. ततखेवरे-तत्क्षणी,ताबडतोब. आदबुंद अदभुत-विंड-विराट. पोते-स्वयंसिध्द. जव्हेरी-रत्नपारखी. चऊटे-बाजारात,चव्हाट्यावर. गिनाननी सुरती लगायरे-ज्ञानरुपी कसोटीने लय लावून. काची-कच्चे. पुतलु-पुतळा, शरीर. पोलमाहे-पोकळीत.

सुरत लगाडीने चहडिये । अने पुरा गुरुने साथरे ॥
अजंपा जापने जपीयेरे । तो प्राछत सगला जायरे ॥ ६ ॥
पात्र होवे तो दर्शन लेवे । अने अमर वस्तु सोय ॥
अमरपद तो मळे । भाई पुरण सुहागण होयरे ॥ ७ ॥
कहेत इमामशहा सुनो मुनिवररे । तमे साचु जाणो निर्धार ॥
अथरण वेदमा अेम भाकीया । आगळ नथी अग्यारमो अवताररे ॥ ८ ॥

realpatidar.com

पद ८ वे

चाल : अर्पूनिया तुला सकळ **राग : असावरी भैरवी**

हरदम जपो अजंपा जाप । जपता रहिये जाप ॥ धृ ॥
मुंड कमंडल काही थरकरी राखो । नाभी कमलथी जगावो ॥ १ ॥
सतगुरु शद्बका माहे बाजा बजाइये । सुरती सुहाग चढाइये ॥ २ ॥
मुखबीना गाइये श्रवणविना सुणीये । बीनकर ताल बजाइये ॥ ३ ॥
ताल पखवाज मृदंग बाजे । बीन रसना गुण गाइये ॥ ४ ॥
इंगळा पिंगळा सुषुम्ना नाडी । त्रिवेणी तीरथ परटे रहिये ॥ ५ ॥
भ्रमर गुंफा उपर तखत बिराजे । बाजा निशाण बजाइये ॥ ६ ॥
कहेत इमामशहा सुणो मोराभाई । अेम करी दर्शन पाइये ॥ ७ ॥

अें जोगीयोंको इस तरहसे रहेना चाहिए, सुणो !

realpatidar.com

दोहा

फाका फीराक उदास दिल । आसण दृढ गंभीर ॥
फीकर फाड कफनी करे । वहाका नाम फकीर ॥

पद २७६ वे

अबदु जुगत जील संतोक पात्र करो । अने दंडा करो विचार ॥
खमीया दयाकी दोई मुद्रा पेरो । गीनान करजो आहार ॥
अबदु ते जोगी जुगमाहे जाको मन दुजा रे नाय ॥ १ ॥
अबदू गुरु मेरा गीनान वैराग्यकी । इंद्रियने संयम करो बभुता ॥
सत धरम साच करी ध्यावो । तो जोगी हे अवधुता ॥ २ ॥
चांदो सुरज दोई रोकी राखो । अने मन चिंत धरो इस दंडी ॥
सुखमणा तंती वाजण लागी । ये भेद किसे ज खंडी ॥ ३ ॥
सब अवगुण तजो त्रिवेणी नहावो । अने अनहद नाद बजाओ ॥
कहे गुरु कबीरदिन जीवता मरीये । तो अवरथ जनम न पावो ॥ ४ ॥

पद २७७ वे

योगीकु ढुंढता युग गये । कहो केते दिन भये ॥
साइया मागेगा लेखा । उस योगीकु ढुंढता युग गये ॥ १ ॥
योगीके गलेमे हार है । हिरा रतन शुं जडिया ॥
जिसका भाग्य हो उसकु देता । अैसा दिल है दरीया ॥ २ ॥

फाका फिराक-भूक तहान, उपासमार, मान अपमान, अथवा पंथ-संप्रदाय वगैरे. माया-मोहाविषयी उदास चित्त असलेला. आसन दृढ गंभीर-दृढ वैराग्यांचे आसन धारण केलेला. फिकर फाड-उदर निर्वाहाची चिंता फाडून याची कफनी धारण केलेली असेल तोच खरा फकीर, योगी, साधु, सत्साधक जाणावा. जुगत जील-योगी लोकांनी योग साधनांची झोळी करावी. संतोक पात्र-संतोषरुपी पात्र (भिक्षापात्र) घ्यावे. विचार दंडा-सदविचारांचा दंडा हाती घ्यावा. खमीया दया मुद्रा-क्षमा आणि दया ह्या योगमुद्रा धारण कराव्या. गीन्यान आहार-ज्ञान ग्रहण करणे याचा आहार करावा. वैराग्य इंद्रिय संयम बभुत-ज्ञानप्राप्ती नंतर प्राप्त होणाऱ्या वैराग्यरुप अग्निने इंद्रियांच्या विकारांचे भस्म करुन म्ह.इंद्रिय दमनरुपी भस्म धारण करावे. जीवता मरीये-जीवंत असून मेलेल्याप्रमाणे म्ह.मनाच्या पापमूलक सर्व प्रवृत्ती मारुन जीवनमुक्त होणे.

realpatidar.com

21:15

पद २८६ वे

realpatidar.com

चाल-भक्ती अेवी रे भाइयो अेवी **राग-माड**

दिल विलोया निजब्रह्म मीला । लंपट पडदा खुला ॥ धृ ॥

तनकी मटकी दुध गीनानो । नेचा जामीन दिनो ॥
चन्द्र सुरज दो रबी बनायो । सुरत नुरत तनो ॥
सुक्षमना येचो माखन निकला । लंपट पडदा खुला ॥ १ ॥

उस माखनकु ले छई सुक्षमना । इनमीन सुन असमाना ॥
इन सुनमे जाये समाना । आपही आप बहाना ॥
मिट गई दुविधा भाई एक सला । लंपट पडदा खुला ॥ २ ॥

ब्रह्मनामकी जाल करके । ऊपर माखन धर दिनो ॥
खटी महिका अंश जलाके घृतमे घृत समानो ॥
उठी खुसबोइका धमक चला । लंपट पडदा खुला ॥ ३ ॥

दिल विलोया-दिल दोहन करून, हृदयशुध्दि करून ब्रम्हज्ञान रूपी दुध काढले. निज ब्रह्म मिला-आत्मस्वरूपाची प्राप्ती झाली. लंपट पडदा खुला- माया, अज्ञान, अविद्यारूपी पडदा दूर झाला. तनकी मटकी- शरीराचे मडके केले. दुध गीनानो- त्यात ज्ञानरूपी दूध घातले. नेचा जामीन दिनो- सदसद्विवेक बुध्दिचा दांडा त्यात घालुन ते ज्ञानदुग्ध मंथन केले चंद्र सुरज दो रबी बनायो-चद्रनाडी म्ह इडा व सुर्यनाडी म्ह लय, तंद्री यांच्या योगाने दृढ ध्यान करून, दीर्घकाळपर्यंत ताणुन धरून म्ह दृढ अभ्यास करून. सुक्षमना अेचो माखल निकला- प्राणायामाच्या दृढ अभ्यासाने सुषुम्ना नाडीमधुन कुंडलिनी शक्तिस खेचून काढा. उस माखनकु ले छई सुक्षमना- त्या कुंडलिनी शक्तिला सुषुम्ना नाडीने वर ओढुन भ्रुकुटी मध्यात आणले. इन सुननमे जाय समाना- त्या शुन्याकार महदाकाशात त्रिवेणी संगमाचे ठायी असलेल्या अग्नीचक्रात ती कुंडलिनी शक्ति स्थिर झाली. मिट गई दुविधा- सर्व प्रकारची दुविधा-दुग्धा- द्वैत भावना नष्ट होऊन केवळ शुध्द लोणी रूप ती शक्ति स्थित झाली. ब्रम्हनामकी जाल करके- ब्रह्मनामाचा म्ह. अजपाजाप रूपी अग्नी प्रदिप्त करून अग्निचक्र वा आज्ञाचक्राचे ठाया कुंडलिनी शक्तिरूप लोणी तापवा. खटी महीका अश जलाके- अष्टमा सिध्दिरूपी व लोकेषणा, वित्तेषणा, पुत्रेषणा वगैरे आसक्तिरूपी खटास भाग जळून गेल्यानंतर जे केवळ शुध्द चैतन्य शिल्लक राहते तेच शुध्द घृत होय. उठी खुसबोइका धमक चला- ते शुध्द तूप प्राप्त झाल्यानंतर जो सुगंध दरवळतो त्याचे काय वर्णन करावे? तो सुगंध म्हणजेच आत्मपद प्राप्ति होय.

realpatidar.com

12:50

चढ़ी जा सोहंग धारा रे मन

संत सिंगा

चढ़ी जा सोहंग धारा रे मन तू क्यों मारा मारा॥
तज दे कपट अटारी महल पे जा बैठे रे गंवारा।
वहाँ का खेल निराला देखो यहाँ का है झूठा
पसारा॥
चढ़ी गमन मगन हुई देखो बहती तिरवेणी धारा।
उस धारा में न्हालो धोलो फिरणा नहीं लागे
किनारा॥
बीच तिरवेणी सुमरण करले जपले सोहम
प्यारा।
वो है सो तू है, तू है सो वो है रख निश्चय
निरधारा॥
ये है तंत संत नित प्यारा रख निश्चय ये धारा।
कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई सादजु हरि भजन
का प्यारा॥

मार्ग जाना और भ्रमर गूंज का गुंजार होने से भंवर गुफा से उठा और वह गुंज नाभि कमल की कली के ऊपर पहुंचा। जीव भ्रमर (भंवरा) नाभि कमल (मणिपूरक चक्र) की कली पर आकर सत स्मरण की ध्वनि (गुंजार) लगा दी।

नाभी कमल पर किया डेरा,
निशि दिन गूंजे भौंरा मेरा।
ऐसे प्रकट भया ओमकारा,
रोम रोम में शब्द गुंझारा॥४३॥

मणिपुर-चक्र (नाभि) कमल पर स्थित होकर निशदिन हमारा प्राण रूपी भ्रमर (भंवरा) भ्रमर गूंज से गुंजार गूँजने लगा। इस भ्रमर (गुंजार सोहम् से ओमकार (ॐ) का प्राकट्य हुआ। जो रोम रोम में शब्द ओम के साथ सोहम् शब्द एकीकरण होकर रंकार गुंजारमय गुंजायमान हुआ।

राजयोग-मन्त्रयोग

सोहं नाद बजा झनकारा,
हरदम श्वास उश्वास उचारा।
नाभि कमल से उठे पवना,
ताके संग करूं नित गमना॥४४॥

Scanned w

जब सोहम् नाद (गूंज) का झणकार गणणण-रणणण बजने लगा। यह शब्द झणकार हरदम श्वास-प्रश्वास के बीच उच्चारण हुआ। जब प्राण नाभिकमल से ऊपर उठा, तब सुरत-शब्द भी उनके साथ ही गमनित हुए।

सोहं शब्द सतगुरुजी दीना,
बिन पग अन्तर मारग लीना।

Scanned w

यह योगी का मारग झीना,
उमड़ा प्रेम रामरस पीना ॥३९॥

सद्गुरु महाराज ने हमे 'सोहम्' शब्द दिया था, जिससे बिना कर्म-पाँव का अन्तर्गत अन्तस्थ साधन पथ का प्रयाण लिया। यह कर्मयोगी का सूक्ष्म मार्ग है। जब साधक के हृदय में प्रेम रस का भाव उमड़ा तब राम रस रमणीय रमता पुरुष (व्यापक) सुमिरण द्वारा प्राप्त अमृत (सुधा रस) को पीया।

शीश उतार कोई जन पीवे,
गुरु गम चले जुगो जुग जीवे।
गुंझ गली में चलना भाई,
शब्द कुंची सतगुरु बतलाई ॥४०॥

सर्वस्व अहंकार का शीश उतार कर कोई भक्त साधक ही मूर्द्धनी से चवता (झरता) अमृत-सुधारस पीता है और इस तरह गुरु की कृपा रहस्य के मार्ग पर जो चलेगा, युगों युगों तक वह जीवित रह कर अमर हो जायेगा।

मन्त्रयोग

सुमिरण युक्ति फेरी माला,
फेरत खुलिया भ्रम का ताला।

Scanned w

भ्रमर गुफा में सुमिरण कीना,
सूक्ष्म मार्ग योग का चीना ॥४१॥

नाभी कमल पर किया डेरा,
निशि दिन गूंजे भौंरा मेरा।
ऐसे प्रकट भया ओमकारा,
रोम रोम में शब्द गुंझारा॥४३॥

मणिपुर-चक्र (नाभि) कमल पर स्थित होकर निशदिन हमारा प्राण रूपी भ्रमर (भंवरा) भ्रमर गूंज से गुंजार गूँजने लगा। इस भ्रमर (गुंजार सोहम् से ओमकार (ॐ) का प्राकट्य हुआ। जो रोम रोम में शब्द ओम के साथ सोहम् शब्द एकीकरण होकर रंकार गुंजारमय गुंजायमान हुआ।

राजयोग-मन्त्रयोग

सोहं नाद बजा झनकारा,
हरदम श्वास उश्वास उचारा।
नाभि कमल से उठे पवना,
ताके संग करूं नित गमना॥४४॥

जब सोहम् नाद (गूंज) का झणकार गणणण-रणणण बजने लगा। यह शब्द झणकार हरदम श्वास-प्रश्वास के बीच उच्चारण हुआ। जब प्राण नाभिकमल से ऊपर उठा, तब सुरत-शब्द भी उनके साथ ही गमनित हुए।

द्वादश जाय पिछा लोटाऊं,
इडा पिंगला एक मिलाऊं।
दोनों नाड़ी सम कर राखूं,
सुषुमण के घर अमरत चाखूं॥४५॥

नाभि से नासा तक श्वास छियानवें अंगुल, उस नासिका के बाहर बारह अंगुल, जो नासिका के बाहर तक चलते है। वहां तक सुरत-प्राण शब्द के साथ जाकर पुनः वापिस लौटा कर नाभि-मण्डल (मणिपूरक चक्र) पर आकर ठहराता। इस श्वासा के लोम-विलोम (आते-जाते) लेते-छोड़ते हुए इडा (गंगा) बायां स्वर और पिंगला (यमुना) दायां स्वर दोनों की साधना करते हुए दोनों को एक मिलाने को हुआ। इडा-पिंगला दोनों नाड़ी को सम-साम्य करते हुए सुषुम्ना (सरस्वती) के घर आकर अमीमय अर्थात् मूर्द्धनी स्थान से झरते हुए अमृत को चख लिया।

Scanned with CamScanner

(मन का निरोध) साधन द्वारा खोज (विरोली) कर जांचा और धारण किया।

सोहं शब्द दिया गुरु भारी, भेष लिया हम ब्रह्म विचारी।
चित चाकरी चेतन वैणा, काया नगरी में फेरी देणा ।।11 ।।

शब्दार्थ–**सोहं**=शिवोऽहं, सोहम्, हंसो का पलटवार सोहं, योगी का ज्ञान प्रणव साधन। **भारी**=वजनदार, विधि सहित गौरव शील, प्रमुख। **भेष**=ज्ञान फकीरी की पहिचान। **ब्रह्म विचारी**=अन्तर्विचार के अन्तर्भेद से। **चाकरी**=नौकरी, सेवा, टहल, दासता, श्रद्धा कार्य। **चेतन**=सावधान, सक्रिय, दत्तचित, साधन रत। **वैणा**=चलना, बहना, पालन करना, धारण करना, रहना। **काया नगरी**=शरीर, सेवा, टहल, दासता, श्रद्धा कार्य।

भावार्थ–सतगुरु स्वामी ने शिवोऽहं (सोऽहम्) सोहं (वह परमात्मा मैं हूँ) का योगिक प्रणव शब्द दिया। वह अन्तर्मन में विचार पूर्वक चिन्तन करके हमने धारण किया। यही अन्तर्भेष (उपराम सहित तितिक्षा एवं वैराग्य) को विवेक द्वारा लिया अर्थात् धारण किया।

अन्तर्मना चित्त चेतन की सेवा (चिन्तन) में सावधान

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

'सतगुरु' सोहं नाम सुणायो, सो निज सहजे हरदम ध्यायो।
युक्ति युत सोहं निज ध्याया, जासे हंसा पार पठाया ।।24 ।।
इड़ा पिंगला सुषमण सीधी, सुरत शब्द तीनो में बींधी।
पांचो मिल एकता पाई, सत नाम की फिरी दुहाई ।।25 ।।
नाभि कँवल में लागी डोरी, स्वासा सुरत चढी तब मोरी।
गुरु प्रसाद खुली उर ताड़ी, सुरती पकड़ त्रिकूटी चाड़ी ।।26 ।।
पूरक कुम्भक रेचक भीना, प्राणायाम युक्ति सब चीना।
त्रिवेणी कँवल में ज्योति जागी, दर्शण होते दुर्मति भागी ।।27 ।।
सत देश का दर्शण पाया, उज्वल हंसा निर्मल थाया।
सत नाम की डोरी झेली, हंसा खेलत निर्भय हेली ।।28 ।।
'अमर पट्टा' कस कमर बाधा, अगम देश का मार्ग लाधा।
यासे हंस चल्यो जब आगो, अगम देश के रस्ते लागो ।।29 ।।
अगम देश का रस्ता आदू, निगम देश में पहूँचे सादू।
गगन मण्डल का मार्ग बंका, वहाँ भी जाय लगाया डंका ।।30 ।।
गगन मण्डल में निर्भय पूगा, सुन में भानू असंख्य ऊगा।
सत रूप का सोहं उज्वाला, ऊँच नीच कूँची ना ताला ।।31 ।।
पानी बिना ताल परि पूर्ण, हँस अनन्त मिले परि तूर्ण।
ता पर बाग बगीचा देखा, वर्षाधार नितो नित पेखा ।।32 ।।
मोर चकोर गर्जे घनघोरा, सारंग राग पपैया सोरा।
बाजा अनहद घुरि अलगूँजा, राम रहीम एक कर सूजा ।।33 ।।

Scanned with CamScanner

जोगिनि कौं दुर्लभ न कछु, नहि इच्छा कछु और ।
केवल सुमिरन ध्यान महं, मगन सिद्ध सिरमौर ॥१९९॥

कृष्ण उवाच

तनधारी कौ नास कहि, अतन भाव ना नास ।
चित्त लगावत कौन बिधि, जोग ध्यान किमि भास ॥२००॥

ईश्वर उवाच

आपुहि अजपा जाप वर, आपुहि अनहद भास ।
आपुहि घट महं तत्त लहि, जोगी मन अभ्यास ॥२०१॥

कवित्त

नारी सुषमना षटचक्रनि आधार सक्ति,
कुण्डली सु नाभि छुधा तेज बल दानी है ।
हिरदै में जीव तासौं मन चित्त बुद्धि लगे,
त्रिकुटी में सींव जोतिलिंग निरवानी है ।
अजपा सो मूल मंत्र साँस की उसाँसनि में,
बानी अनहद सीस प्रभुता प्रमानी है ।
एतै तत्त सार कृष्न हम तुम सब ही में,
जोवैं जोगध्यानी अंत ढूंढ़ै मूढ़ प्रानी है ॥२०२॥

श्लोक

सर्वसारे शरीरेऽस्मिन्भाति सूक्ष्मेऽप्यगोचरे ।
बाह्ये भ्रमति मूढ़ात्मा योगिनान्विष्यते परः ॥२०३॥
तत्व बीजाक्षरं सिद्धि षट्चक्रेषु व्यवस्थितम् ।
मूढजीवाः न जानन्ति यो जानाति स ईश्वरः ॥२०४॥

दोहा

इमि ईस्वर पद सिद्ध करि, जोगेस्वर पद पाइ ।
ता समान नहिं आन मत जान कृष्न सत भाइ ॥२०५॥

झीनी बस्तु भेद ना पाया निर्मल होकर पाई।
सुरत सिंधु पै आसन मांडा हर हर होती आई॥

ब्रह्म अग्न पै तपसी तापै आठूं पहर लडाई।
ज्ञान शब्द का खंजर पकडा दुरमत मार हटाई॥

'घीसा' सन्त चेत ले मन मे यहां रहने का नाहीं।
चला चली का खेल बावरे तू क्यूं लेत बुराई॥

देखो मेरे बाबा सन्त करें बादशाही।
दया शहर और शब्द मुल्क है समझ की गलियां भाई।
निश्चय नाम तख्त पै बैठे, रजा दाम ले यांही।
सत की तोप ज्ञान का गोला, प्रीत की चकमक लाई।
प्रेम सिपाही लडने लागे, भरम की बुरजी ढाई।
पांच पचीसो पकड मंगाये, भेजा शील सिपाही।
क्षमा फंद मे डाल दिये हैं, मुर्दे जिन्दे यांही।
काया नगर का राज करत हैं मुल्क बहुत सा यांही।
तीन लोक के नाथ विराजें, सोधी विरले ने पाई।
निर्भय राज दिया सत्गुरु ने हरि हरि होती आई।
'घीसा' सन्त पै कृपा हो रही, अटल बादशाही पाई।

साधो! अवगत अलेख गाया, काया नगर मे पाया।
शील कमान समझ का तरकस, सत्य का तीर चढाया।
निर्भय नाम का लगा मोरचा, मन का भ्रम उडाया।
पांच पचीसों नगर बसाया मन राजा समझाया।
तेरे शहर मे पांच चोरटे, सतगुरु भेद लखाया।
ऊंची नीची सेरी धाके, रूप-रेख नहिं काया।
इंगला, पिंगला देख तमाशा, सुखमन आन समाया।
निर्भय होय अभय पद चीन्हा, नाथ निरंजन गाया।
'घीसा' सन्त पै कृपा हो रही, सहजै सहज समाया।

मन तू ऐसा ब्याह करारे, तेरी सहज भक्ति हो जारे।
सातों बान समझ के न्हाले निर्भय ढोल बजा रे।
दया की महेंदी, प्रेमका कंगन, शील का सेहरा बंधा रे।
पांच, पचीसों चढ़े बराती, सत का मोहर बंधा रे।

सुरत सुहागन मिली पिया से पर घर काहे कूं जारे।
'घीसा' सन्त कहें सुन साधो आवागमन मिटा रे।

अब चली पिया के देश, मगन भई मद माती।
पिया तुम बिन बहुत ख्वार, भर्म मे बह जाती।
मेरे नैनोंसे ढल आया नीर, उमग आई मेरी छाती।
भागी बहुतक रूप बनाय, अकल मोरी सब थाकी।
अब तुही-तुही घट माँहि, नहीं कोई संग साथी।
जब लई पिया की राह छूट गए सब नाती।
पिया तुम लग मेरी अरदास अर्ज सुनो मेरी पाती।
मागो पिया की निर्गुण सेज, रैन दिन सुख पाती।
कहते 'घीसा' सन्त, रूप मे मिल जाती।

होरी खेल पिया सँग प्यारी।
तू तो सब रंग ले रही न्यारी।
पाँच पचीसों होली खेलत हैं मगर धूम भई भारी।
प्रेम रंग का पडत फुवारा रोम रोम रँग झारी।
इडा, पिंगला देख तमाशा अर्ध उर्ध भई ख्वारी।
सुन्न महल मे बाजे बाजें अवगत की गति न्यारी।
त्रिकुटी महल मे ध्यान धरत हैं दरशा पुरुष अपारी।
सुरत सिन्धु पर होरी हो रही खिल रहा फूल हजारी।
सभी सुहागन मिल होरी खेलें जीवन की मतवारी।
'घीसा' सन्त खेल रहे होरी कुंज गली निज न्यारी।

होरी खेलेंगे सन्त खिलारी, समझ धर चंचल नारी।
अब कुनबे में सोच पड़ी है, फौज घिरी है सारी।
मनहि फिरंगी लूटन लागा सोर हुआ है जारी।
मै मरी का लगा मोर्चा दारू भर्म उडा री।
पाप-पुण्य दो गोले चाले शोर हुआ है भारी।
ज्ञान सिंह ने चेतन कीना मदत दीनी है सारी।
अब तो धीरज आई है मन कू तोप धरी है भारी।
कायानगर मे अदल बैठ गया दुरमत हो गई न्यारी।
'घीसा' सन्त खेल रहे होरी दिल्ली लूट गई सारी।

गुरु म्हारे समझ किया है खेल।
बिन बादल जहाँ बिजली चमके दिवला बले बिन तेल।
बिन सतगुर कोई लख नहीं सक्ता सुरत निरत का मेल।
प्रेमप्रीत का तार लगाय। सुमति नाम करी रेल।
इसी रेल मे हंस बिठा के दिया अगम कूं पेल।
घीसा सत करी गुरु कृपा 'जीता' कूं प्रेम पिलाया सत मेल।

अपने पीतम के घर जाऊँगी,
बहुड उल्ट नहीं आऊँगी।
चन्द सूरज की वहाँ गम नाहीं, मैं तो ज्ञान का चिराग जलाऊँगी।
हिन्दू, तुरक नहीं वहाँ कोई मैं तो घट ही मे वेद बचाऊँगी।
पीतम मेरे दिल की बूझें, मैं तो अपने-अपने ही बैन सुनाऊँगी।
नहीं वहाँ देव नहीं कोई साधक मैं तो एकमो ही बतलाऊँगी।
चरण कँवल की सेवा करके, सेजड़ियाँ सुख पाऊँगी।
जीता नारी कहे विचारी, मैं तो तन मन से मिल जाऊँगी।
घीसा सन्त पूर्ण पिया मिलिया, मे तो जब ही सुहागन कहाऊँगी।

सन्त नेकीराम की वाणियाँ

राम नाम निज सार है सब सारन मे सार।
कोटि कला प्रकाश पूर्ण ऐसा अकल इमान है।
अष्ट कमल दल मेल साहेब हरदम खेल अनूप है।
रहता रमता आप साहेब ना छाया ना धूप है।
नाभि कमल स्थान जाका तुरिय तत्व निज धाम है।
चला हंस उस धाम पर सो बोहड ना ऐसा दाम है।
गगन-मंडल गलतान गैबी सोहं रूप अपार है।
'नेकीराम' उस धाम पर से अवगत का दीदार है।

कर चलने का प्रबन्ध,
तेरी यहाँ नहीं समाई रे।
काम क्रोध, मद, लोभ लुटेरे, जन्म जन्म के वैरी तेरे।
एक दिन हो जंगल डेरे, खडी-खडी रोवे तेरी ब्याही रे।

सुख सागर न्हाओ रे क्यों क्रोध की अग्नि जरो।
'ईश्वरदास' कहता है क्षमा को क्यों ऐन भरो।

यो देश दिवाना जी पहुँचे कोई सन्त जना।
यहाँ अनहद बाजै जी चल रही सुखमना।
बरखे अमिरत बरखा जी पाया आनन्द घना।
होवै शब्द अखंडित जी बज रह्या रंग बिना।
झिलमिल ज्योति चमकती जी दरसा तारागणा।
'ईश्वरदास' सुख माने जी गुरु के मैं धन्यधना।

तुम जानत नाहीं रे कहाँ फिर जाओगे।
नाभि कमल से उठके तुम गगन घर पाओगे।
वहाँ अनहद बाजै जी अमर फल खाओगे।
चालैं सुखमन नदिया जी जहाँ मल मल न्हाओगे।
बाजै शब्द सोहगम जी सुन सुन विगसाओगे।
झिलमिल ज्योति चमकती जी सुन्न महल बसाओगे।
'ईश्वरदास' घर जाकर के तुम बहुड नहीं आओगे।

मेरा डेरा कोई नहीं मेरा डेरा एक।
उस डेरे में रम रहे हरदम उसकी टेक।
करना सो तो कर लिया अब करने का नाहि।
'ईश्वरदास' आनन्द पद पाया इस घर ही माँहि।

थोडा मिलना सुख घना मन मे रहै हुलास।
बहुत मेल मिलाप से होय प्रीत का नास।
होय प्रीत का नास बैर फिर होवै पैदा।
मुख देखन से जाइ पडे आपस मे वैदा।
कहैं 'ईश्वरदास' किसी से करै न जोडा।
असत फकीर की रीति मिलै इस जग से थोडा।

06:44
sufinama.org/shabad/sant-
तलाश कीजिए

साधो अवगत अलेख गाया काया नगर में पाया

घीसा साहेब

साधो अवगत अलेख गाया काया नगर में पाया

शील कमान समझ का तरकश सत्य का तीर चढ़ाया
निर्भय नाम का लगा मोरचा मन का भरम उड़ाया

पाँच पचीसों नगर बसाया मन राजा समझाया
तेरे शहर में पाँच चोरटे सतगुरु भेद लखाया

ऊँचो नीचो सेरी बाके रूप-रेख नहिं काया
इँगला पिंगला देख तमाशा सुसमन आन समाया

निर्भय होय अभय पद चीन्हा नाथ निरंजन गाया
'घीसा' सन्त पै कृपा हो रही सहजै सहज समाया

अगला शबद
देखो मेरे वाचा सन्त करें बादशाही
घीसा साहेब

ब्रह्म रूप अति झीना, रे मानवा ।

स्वामी आत्मप्रकाश

ब्रह्म रूप अति झीना, रे मानवा ।
स्वाँस स्वाँसा सुरत समोवो बजे सोह की वीणा ।
त्रिकुटी कमल का आसन लगाये, सो योगी परवीणा ।
उन्मुन तारी लगे शिखर मे आतम रस तिन पीना ।
चिन्मय ज्योनि रूप-रग बिन निज ही मे लख लीना ।
स्वामी बलजीत मे पद पाया सफल तिनों का जीना ।

Subscribe to Sufinama Newsletter to get all the latest updates

होरी खेल पिया सँग प्यारी

घीसा साहेब

होरी खेल पिया सँग प्यारी
तू तो सब रंग ले रही न्यारी

पाँच पचीसों होली खेलत हैं नगर धूम भई भारी
प्रेम रंग का पड़त फुवारा रोम रोम रँग डारी

इडा पिंगला देख तमाशा अर्घ उर्घ भई त्यारी
सुन्न महल में बाजे बाजें अवगत की गति न्यारी

त्रिकुटी महल में ध्यान धरत है दर्शा पुरुष अपारी
सुरत सिन्धु पर होरी हो रही लिख रहा फूल हजारी

सभी सुहागन मिल होरी खेलें जीवन की मतवारी
'घीसा' सन्त खेल रहे होरी कुंज गली निज न्यारी

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की वन्दना

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम्।
यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दायतेतनुः॥

मैं अपने गुरु (मत्स्येन्द्रनाथ) की वन्दना करता हूँ जो साक्षात् परमानन्द हैं, जो सच्चिदानन्दरूप-आनन्दविग्रह अथवा मूर्तिमान् आनन्द हैं, जिनके सान्निध्य मात्र से ही यह शरीर चिदानन्द, चिन्मय और परमानन्द हो जाता है।

अन्तर्निश्चालितात्मदीपकलिकास्वाधारबन्धादिभि-
र्यो योगी युगकल्पकालकलनातत्व च जेगीयते।
ज्ञानामोदमहोदधिः समभवद्यत्रादिनाथ स्वयं
व्यक्ताव्यक्तगुणाधिकं तमनिशं श्रीमीननाथं भजे॥

जिन्होंने मूलाधार बन्ध, उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध, आदि योगाभ्यास द्वारा हृदय-कमल में निश्चल दीप की ज्योति-सरीखी परमात्मा की कला का साक्षात्कार करके युगकल्प आदि के रूप में चक्कर काटने वाले काल के रहस्यों को तथा समस्त तत्त्वों को (योगाभ्यास से) जय (अपने वश में) कर लिया है और स्वयं ज्ञान और आनन्द के महासमुद्र आदिनाथ के स्वरूप हो गये हैं, उन मीननाथ (गुरु मत्स्येन्द्रनाथ) को मैं प्रणाम करता हूँ।

तमस्कृत्य गुरुं भक्त्या गोरक्षो ज्ञानमुत्तमम्।
अभीष्ट योगिनां ब्रूते परमानन्दकारकम्॥

गोरखनाथ गुरु को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर योगियों के अभीष्ट (रिद्धिदायक) उत्तम ज्ञान का वर्णन करते हैं, जो परम आनन्द प्रदान करने वाला है।

(विवेकमार्तण्ड-१,२,३)

■

ही जाता है ।

धारणा पञ्चनाडीभिर्ध्यानं षष्टिकनाडिकम् ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राणसंयमात् ॥ १ ॥

(गोरक्षपद्धति)

निर्गुणो ध्यानसम्पन्नः समाधिं च ततोऽभ्यसेत् ।
दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात् ॥ १ ॥

(मार्कण्डेयपुराण)

षट् श्वासा की एक पल, इसा सास सो खाय ।
छठे महीने खेतसी, सुरति मेरु चढ जाय ॥ १ ॥

(खेतसीयोगीराज)

ऐसी दशा प्राप्त होनेका मुख्य साधन योग है । इस विषयके सम्बन्धमें पहिले बहुत कुछ लिखा जा चुका है उससे जो कुछ अवशिष्ट रह गया है उसीका दिग्दर्शन संक्षेपसे यहाँ कराया जाता है ।

योगका सब खेल यथावत् मन और वायुके ऐक्य होनेसे ही सिद्ध होता है । क्योंकि जब इनकी एकता होगी तब चित्त एकाग्र होकर जिस काममें लगेगा वह कार्य अवश्य ही सफल होगा । भगवान् पतञ्जलिने भी योगदर्शनमें लिखा है—

१ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।
२ युज्यतेऽसौ योगः ।
चित्तकी वृत्तिके निरोधको योग कहते हैं । १ ।
जो युक्त किया जाय उसको योग कहते हैं । २ ।

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय
मुमुक्षु भवन अस्सी काशी

योग दो प्रकारका होता है—
एक हठयोग और दूसरा राजयोग ।

हठयोगमें आसनाभ्यासकी तथा आग्रहयुक्त और हठयुक्त नियमोंकी प्रधानता होती है ।

राजयोगमें ध्यान-धारणाद्वारा मनःसामर्थ्य बढ़ानेका महत्त्व विशेष है तथा आत्मशक्तिका अनुभव लेना मुख्यतया होता है । इन दोनोंमेंसे राजयोगकी प्रशंसा अधिक की है । राजयोगको ही सहजयोग, सहजावस्था और समाधि कहते हैं । सर्व हठयोगके उपाय राजयोगकी सिद्धिके लिये ही किये जाते हैं । जब राजयोग सिद्ध हो जाता है तो पुरुष मृत्युको भी जीत लेनेवाला हो जाता है ।

सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये ।
राजयोगसमारूढः पुरुषः कालवञ्चकः ॥ १ ॥

अतएव राजयोग ही योगोंमें प्रधान माना गया है ।

योगके अष्टाङ्ग

१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान, ८ समाधि ।

यम—१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, ५ अपरिग्रह ।
नियम—१ शौच, २ संतोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय, ५ ईश्वरप्रणिधान ।

चौरासी कही हैं । ते सब देह की कसरत माफिक हैं । एक आसन मूलबंध मुखि है । सु मूल द्वार सौं एड़ी लगाइ बैठे । तरे कौ पवन न कढ़न पावे । तब तरे को पवन और ऊपर को एक होय ऊपर ही चलै, बीच की गांठि फूटि जाय अरु पवन पेट में जैसौ फेरें तैसौ फिरें । अरु जो जम नेम अन्न पानी के साधें बिना मूलबंध करै तौ पेट फूलि जाय, पीर होय । तातें मूलबंध नेम साधि कें करै । तब प्रत्याहार करै । अपनी नाक पर नजर राखै । इतें उतै नजर चलै तौ फिर नाक ही पै राखै चालीस दिन लौं । आँखें बहैं, पीर बहुत होय, क्रिया न छांड़ै । तब आंखिनि के आगें जुगुनू सी चमकत देखै । कछू दिननि में उजियारौ सौ होय । अंधियारे भौहरें गुफा में सब कछू सूझे । यह प्रत्याहार की रीति कही । अरु प्रानायाम कौ साधन ऐसौ कहत हैं । पहिलें दाहिने नकुवा हो पवन खैंचै तासौं पूरक कहत हैं । पुनि दोउ नकुवा मूंदि पवन रोकै, जौलौं सधै । तासौं कुंभक कहत हैं । फिर डेरे नकुवा तें बाहिर सांस चलावे । तासौं रेचक कहत हैं । ऐसेई फिर डेरे नकुवा तें पूरक करै । ऐसेई उलट फेरि करिबौ करै । इनके तीन अच्छिर हैं । तिनकी गिनती सौं प्रानायाम साधै । पूरक में यं यं यं यह कहै । कुंभक में रं रं रं यह कहै । रेचक में बं बं बं यह कहै । ये प्रानायाम के तीन बीज अच्छिर

हैं । सो इनकौ सुमिरन बढ़ावै । जब हजार बार लौं रं रं रं यह कहैं, तौलौं पवन रुकै, तब प्रानायाम सिद्ध होय । पुनि धारना कही । बीच में कैऊ बिघन होत हैं, कै कछू कुजरब तें पेट पीर होय, तौ धारना न छांड़ै । कै संसार मैं मानता होइ, नीकौ खैबे पहिरबे में मन आवे । कै बचन सिद्धि होइ, काहू सराप देय, काहू आसीरबाद देय, सो होय, कै काहू अस्त्री सौं मन लगै, मनसा सिद्धि की बांधी चली आवैं, वासौं आसक्त हो रहै । ऐसे ऐसे भले बुरे कैऊ बिघन आन होत हैं । तिनमें भूलै नहीं । वाही साधन सौं रहै, तासौं धारना कहत हैं । ऐसी धारना सौं रहै । अरु अजपा कौ सुमिरन करै । जब सांस भीतरी आवै तब 'सो' यह अच्छिर कहै, अरु बाहिर सांस आवै तब 'हं' यह अच्छिर कहै । ये दोई अच्छिर सांस ही सौं सोऽहं सोऽहं कहिबौ करै, जीभ सौं न जपै तातें अजपा कहाउत है । या अजपा को धारना करै । अरु छहू कमलनि में छहू देवतनि को ध्यान करै । पहिलैं मूल कमल है ताके चारि दल हैं तामैं गनेस जू को ध्यान करै । दूसरौ मनिपूर कमल है ताके छह दल हैं । पेसाब की जांगा जल में है तामें ब्रह्मा जू कौ ध्यान करै । तीसरौ नाभि कमल है टुड़ी के बीच, ताके आठ दल हैं तामें नारायन को ध्यान करै । चौथौ हृदय कमल है हिरदै में । ताके दस दल हैं । तामें आतमा जू को ध्यान करै । पाँचओ अग्या कमल है कंठ में, ताके सोरह दल हैं, तामें सरस्वतीजू को ध्यान करै । छटओं नेत्र कमल है, दोई नेत्र वा कमल के दल हैं, सु दुहूं नेत्रनि के बीच भौंहनि के मद्धि, सिव मूरति जोति लिंग को ध्यान करै । इन छहू कमलनि के ऊपर माथे में महापदम है, तामें जोगमाया भवानीजू को ध्यान करै । तब फिर मूल कमल तें याही भांति ध्यान कीबौ करै । एकांत बैठौ रहै । दूसरौ मानुष ढिग न रहै । पुनि समाधि करै, पवन माथें चढ़ावै । नाक कान मुख आंखें

उत्तर :—श्वास प्रश्वास की स्वतः गति को योग के नियमानुसार गति में बदलने का नाम स्वर योग है। योगाभ्यासी साधकों का श्वास दिन में बायाँ स्वर तथा रात्रि में दाहिना स्वर चलना चाहिए। इससे दिन के ताप का तथा रात्रि के शीत (ठंढ) का कोई असर उस साधक के शरीर पर नहीं पड़ता। जिसके लिए वेद शास्त्र एवं योगियों का ऐसा आदेश है कि "जो सूर्य स्वर में चन्द्र स्वर को तथा चन्द्र में सूर्य स्वर को प्रवेश करता है" वह साधक योगी प्राण वायु को जीत लेता है और कुछ ही दिनों में त्रिकालदर्शी हो जाता है।

बायाँ स्वर शीतल स्वर है इसमें गंगा की धार बहती है, यह चन्द्र स्वर है। दाहिना स्वर गर्म स्वर है इसमें यमुना का प्रवाह बहता है, यह सूर्य स्वर है। इस दोनों स्वरों के बीच में एक सुषुम्णा है जिसमें सरस्वती की धार बहती है जिसमें अति उत्तम ध्यान लगता है। इन तीनों स्वरों का मेल आज्ञाचक्र (भृकुटी) में है इसके सम्बन्ध में स्वामी जी का पद है कि—

पद :—ईगला पिंगला सुषुम्णा में बहता है त्रिवेणी का चक्कर।
गहरा श्वास दबा कर मारो कुण्डलिनी पर टक्कर ॥
जनम-जनम की सोई शक्ति अपनी निन्द तजेगी।
प्राणी मात्र के अंतस्तल से अनुपम ज्योति जगेगी ॥

दूसरापद:-ईगला पिंगला सुषुम्णा में, बहता है त्रिवेणीका संगम।
कर स्नान पान तन मन से, तो छुट जाय भव जंगम ॥
ईगला पिंगला सुषुम्णा में सोऽहं सोऽहं ध्वनि अहर्निश होती।
इस युक्ति को जो जन समझे वही श्रेष्ठ योगी है ॥
इसको भूला फिरे मूढ़ जो वही विषय भोगी है।
इस युक्ति को जान मनुष्य योग युक्त हो जाता।
कैवल्य देह हंस का पाकर भव भ्रम से छुट जाता ॥

संत श्री ज्ञानस्वरूप जी महाराज

जन्म: 1895 ई० गुरु: मोजीराम जी महाराज निर्वाण: 1990 ई०
स्थल: पीपाड़ आश्रम जोधपुर सम्प्रदाय: रामसनेही सम्प्रदाय
पुस्तक: श्री ज्ञान भजन प्रभाकर (1938 ई० प्रकाशन)

(1) करबन्ध मूल उड़ियान जलंधर आसण अचल जमावे
खेचरी भूचरी चाचरि उनमनि अगोचर उलटावे
पाँच पचीस पकड़ बस करले सुरत शब्द घर लावे
त्रिवेनी के अगम महल चढ़ दरश देव का पावे
(2) मन पवना उलटाय अपूठा, सुरत शब्द त्रिवेनी चढ़े
(3) श्रावन साधे सुखमणा, पीव बसे परदेश
आसौज आसण बाँध के, नागी नागन जीत
बंकनाल होय चढ़ गया, छेद मेरु की भीत
(4) मूल कमल से पवन चढ़ावे, प्राण-अपान समान मिलावे
चढ़ मेरु की भीत ढ़हावे, त्रिवेनी का निरख तारा
(5) प्यारी ये मन पवना को घेर पिछम घाटी चढ़ो
प्यारी ये मेरुकोट को छेद ध्यान त्रिवेनी धरो
(6) इड़ा पिंगला सेज सिंवारे, सुषमन सुरता हरष भरी
(7) सुरत शब्द का बेला बांधे, इड़ा पिंगला सुखमन साधे
सत सोहं का ध्यान सदा उर धारना रे
(8) मेरु दल छेद त्रिवेनी होके, सुन्न सिखर मन पवना रोके
(9) खींचा पवन मूल कस करके नाभ मंडल गरनाया
नागन जाग भई उलटे मुख सूर चक्र दरसाया
शब्द टकर दे पेठ सुखमण घर बंकनाल थरराया
मेरु दल छेद गमन कर जगना त्रिवेनी तट न्हाया
(10) चेतन होय त्याग मोह आलस आसण दृढ़ जमावे
मुद्रा बंध त्रिसाध सुखमणा सोहं सुरत लगावे
प्राण पवन को घेर शब्द से मेरु कोट ढ़हावे
तजकर फिकर सिखर गढ़ चढ़के शुन में सहर बसावे
(11) पलटे पवन पछिम दिशि धूमर दस में रास रचावे

Scanned by CamScanner

Date

(12) मूल को सोध हेर षट दल को नाभि नाग जगाना है
पलटे पवन बंक गरणावे त्रिवेणी चढ़ जाना है

(13) सोहं शब्द धर ध्यान तू मिटे भ्रम अंधेरा

(14) बेगमपुर चलिये परम पदारथ पाय
बंक टकोर लगे सत सोहं रोम रोम गरणाय
सुरता उलट चढ़ी असमाना पिया मिलन को धाय

(15) पहले सोध मूल षटदल को नाभी नाग जगाना
प्राण पवन को उलट अफूटा बिन पग चढ़ असमाना

(16) प्रथम पाँच-पच्चीसु बस कर सुरत शब्द धर लाना रे
नाम द्वादस पलट पवन को सुखमण सैज मिलाना रे
खोल कपाट झाट दे सूरा उलटे राह धुमाणा रे

(17) मूल कमल से पवना पलटो नाम निहार के चल नभ उलटा
बंक होय मेरु, ढायके खोल किंवारा
बेगम भोम की घाटी सकड़ी शब्द सांद चढ़ो तार ज्यूँ मकड़ी

(18) सिद्ध आसन ले मूल निरोधे खट दल जाँच नाभि धर सोधे
नागन जीत अमीरस पिवणा, ऊगे भान प्रकाशे भवना
सुखमन सेरी प्राण पियागे, सुरता चढ़ी शब्द के सागे
अजपा जपे तार नहीं टूटे,
बंकनाल विच तोवां(तोपका गोला) छूटे
उलटे पवन पिछम को मोड़े, मेरुकिला कोई शूरा तोड़े

(19) अगम पंथ बीधारे लगी सोहं तार
अधर ऊर्ध विच आसण साधे अला पिंगला ताण
सुखमण शिष्ट बंक तोल भरके छूटे शब्द धुर बाण
मेरु दल बींधारे पहुँचे त्रिवेनी द्वार

(२०) सुरत शब्द धर होवे मेला अगम भोम चढ़ जावेगा
चंद सूर को उलट अफूटे कर्म भ्रम की टाटी टूटे

Scanned by CamScanner

મેઘ જીવો કહે છે કે..'

'માતંગઋષિને ઘેર જમલો જગાવ્યો, પાટે પધાર્યા રૂપાંદે રાણી,

ખડગ લઇ માલદેવજી કોપ્યા ત્યારે ફૂલડે છાબ ભરાણા.'

દાસ કેશવ અનુસાર.'

'જમા જાગરણ કુંભ થપાણા મળીયા જતિ અને સતી ગરવા પાટે પધારો ગણપતિ.'

તથા ખીમડિયા કોટવાળ તેના પદમાં કહે છે કે.'

'વાયક જૂનાણે જાય, ગિરનારથી સિદ્ધચોર્યાશી આવ્યા,

ગતગંગા ભેળી થાય, એમાં રણશીને કાંકણ ખીમડે બાંધ્યા.'

આમ પાટ-ઉપાસનાની સાથોસાથ ગુરુબોધ આપવામાં આવે છે. આ પાટ-ઉપાસના બીજમાર્ગી છે. તેની ઉપાસના થકી નિજારી બની શકાય છે.

૫.૩. યોગસાધના (સંતોમાં):

સંતોના આધ્યાત્મિક જીવનમાં યોગસાધના રહેલી છે. અને સાથોસાથ નામ-વચન-શબ્દ સાધના પણ રહેલી છે. ઉપરાંત યોગમાં મનની એકાગ્રતા અને યોગમાં અંતરાય રૂપ એવા પાપ-પૂણ્ય -કામ-ક્રોધ-મદ-મમતાને ત્યાગવાની સાહેબ શબ્દ મીમાંસા વગેરેની રજૂઆત કરતાં પહેલાં યોગ એટલે શું તે જોઈએ. યોગ' શબ્દનો અર્થ છે, જોડાણ. યોગ એટલે ચિત્ત-વૃત્તિઓનો નિરોધ. જીવનું શિવ સાથેનું જોડાણ. યોગસાધના એ પ્રાચીન પરંપરા છે. "યોગવિદ્યાનું સૈદ્ધાંતિક વિવરણ સૌ પ્રથમ પતંજલિના યોગસૂત્રમાં જોવા મળે છે. યોગસાધના માટે અષ્ટાંગયોગ દર્શાવવામાં આવ્યો છે. તેમાં યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ છે." (ગોહિલ ૧૩૮) સંતવાણીમાં

યોગસાધના પ્રગટ થયેલી જોવા મળે છે. આવી ઘણી બધી રચનાઓ સંભાળવા મળે છે. સંતોએ વિવિધ રીતે યોગરહસ્યને વાણીના માધ્યમથી અભિવ્યક્ત કરી છે. "વાણીમાં ઈંડા, પિંગલા ને સુષમણા સાધીને, ત્રિવેણીના ઘાટ ઉપર અલખ જગાવીને, કુંડલિનીને જાગ્રત કરી, ચક્રો ભેદવાની ક્રિયા તેમાં વર્ણવામાં આવી છે." (ગોહિલ et al. ૭૪) અનાહત નાદને સંતોએ મોરલી, નોબત, ઝાલરી, બંસરી, ઝાંઝ-પખવાઝ, જીણા જંતર તરીકે ઓળખાવ્યો છે. સંતોની વાણીમાં મંત્રયોગ, હઠયોગ. લયયોગ અને રાજયોગ જોવા મળે છે. "આ સંત સાધના આંતરશુદ્ધિ સાથે જોડાયેલી છે. તેને પતંજલિ યોગ, સિદ્ધિયોગ, નાથોનો હઠયોગ કે રાજયોગની પિંડ સાધનામાંથી પસાર થવાનું નથી." (ગોહિલ ૭૨) સંતોની યોગસાધના સહજ સમાધિનો માર્ગ છે. ભક્તિ સાધનામાં સહજનું અતિ મહત્વનું સ્થાન છે. સાધનામાં સહજ એટલે કે સ્વાભાવિક હોવું એનાથી મોટો કોઈ ઉદ્દેશ્ય હોઈ શકે નહિ. સૌરાષ્ટ્રના સંતો, રામાનંદ, કબીર સાહેબ, ગુરુ નાનક વગેરેએ સહજ સાધનાની રજૂઆત કરી છે. સહજયોગમાં તમસને છોડીને સાત્વિકગુણ દ્વારા જીવનને દિવ્ય કરી શકાય છે. તેના માટે આત્મ-કલ્યાણ અને સર્વ-કલ્યાણની ભાવના જાગ્રત થાય છે. આમ થવાથી સહજ સાધના કર્મ, ધર્મ, આચાર વગેરેના વમળમાં ન ફસાતાં જીવનયાત્રાને સહજ બનાવવી જોઈએ. દાદુ કહે છે કે, 'રોક ન રાખે ન ભાખે, દાદુ ખરચે ખાય, નદી પુર પ્રવાહ જ્યોં માયા આવે જાય.' અર્થાત્ જીવનયાત્રાને સહજ બનાવવાથી માયા ભેગી કરવાથી, ઘરમાં રાખવાથી કઈ ચાલવાનું નથી. માયા મિથ્યા પણ નથી અને માયા અસત પણ નથી. તે તો નદીના પ્રવાહ માફક છે, જે આવે અને જાય છે. આ જ માયા છે. માયા આવે અને જાય તે તેનો ધર્મ છે. માયા નિત્ય તેમ સમજી તે ભેગી કરવાથી અસત્ય બની જાય છે. માયાને જમા ન કરતા વ્યવહારમાં લાવવી જોઈએ. જયારે આ રીતે શક્ય બને છે ત્યારે તેમાં કોઈ દોષ રહેતો નથી. દાદુ કહે છે કે, 'વાદ-વિવાદ કાહુ સૌ નાહી, માહી જગત થે ન્યારા, સમદ્રષ્ટિ સુભાઈ સહજ મૈ આપહી આપ બિચારા'. અર્થાત્ કોઈ સાથે વાદ-વિવાદ કરવાની જરૂરિયાત નથી, સંસારમાં રહીને પણ નિર્લેપ થઇ રહેવું જોઈએ. પોતે પોતાનો આત્મ-વિચાર કરી

સહજની વચ્ચે સ્વભાવથી સમદ્રષ્ટિની સાધના કરી રહેવું જોઈએ. આ ઘટ-ભીતર કાયામાં યોગની વાત છે. જેવી રીતે ગંગા-યમુના અને સરસ્વતીને ત્રિવેણી સંગમ કહેવામાં આવે છે તેવી રીતે દેહમાં ઈડા, પિંગલા અને સૂક્ષ્મણાનો ત્રિવેણી સંયોગ થાય છે. જે પરમતત્વને લોકો અગમ-અગોચર, અપાર, અમૂર્ત કહે છે, તે સદગુરૂએ આપેલી સાન દ્વારા સન્મુખ જોઈ શકાય છે. તેનો પાર પામી શકાય છે. આ પ્રકારની સહજસાધના અથવા યોગસાધના સૌરાષ્ટ્રના દલિત સંતોની વાણીમાં જોવા મળે છે. સૌરાષ્ટ્રના દલિત સંતોની વાણીમાં યોગસાધનાનું લક્ષણ દર્શાવતી કેટલીક પંક્તિઓ નીચે મુજબ છે.

'ગંગા, જમના ને સરસ્વતી, મૂળ કમળનો અધિક છે મહિમા.' (સંત રોહીદાસ)

'બારા તાણાં બાર પૂંજો, નૂરત સાંધો સૂરત,

નૂરત માળા, સૂરત સમરો સુખમણાને ઘાટ.' (ખીમડિયો કોટવાળ)

'નાભિકમલથી ઉલટ્યો આવે, ગગન ધૂન ગરજાના,

ઇંગલા પિંગલા સુષ્મણા સાધી, ત્રિવેણી તાર મીલાના.' (ત્રિકમસાહેબ)

'ઇંગલા પિંગલા સુષ્મણા લાધી, ઝળહળ ઝળકે જોતી.' (ત્રિકમસાહેબ)

'ઝાંઝ-પખાઝ વીણા-જંત્ર વાગે, મોરલી કરે છે મલારા,

શબ્દ શીંગી વાગે સુનમાં, ગાજી રહ્યા માંય તુરા.' (ત્રિકમસાહેબ)

'નાભિકમલમાં નાવ ચલત હૈ, માંઈ ઝળહળ જોતું જાગી.' (ત્રિકમસાહેબ)

'અનહદ નાદ ગગનમાં ગાજે, નૂરત સૂરત કેરી લેર લાગે,

અણી અગર પર અધર દલીસા, રમતા રામ મારી નજરે આવે.' (ત્રિકમસાહેબ)

'નાભિકમલસે આવે ને જાવે, અંતરમાં હુવા ઉજાસા રે, દર્શન મૈ તો દેખ્યા.(ત્રિકમસાહેબ)

‘નૂરત સૂરતની સાધના પ્રેમ વિના નહિ પાવે,

અંધારું ટળે અંતરનું તો, નૂર નજરુંમાં આવે.’ (ભીમસાહેબ)

‘નૂરત-સૂરતની સાધના, પ્રેમી જન કોઈ પાવે રે,

અંધારું ટળે એની આંખનું, નૂર નજરે આવે રે.’ (ભીમસાહેબ)

‘ગંગા જમુના સરસ્વતી, તરવેણીને ઘાટે રે,

સુખમન સૂરતા રાખીએ, વળગી રઈયેં ઈ વાટે રે.’ (ભીમસાહેબ)

‘આસન વાળી સુરતાથી દ્રઢ કિયા, દિયા અગમ પર ડેરા,

ઇંગલા પિંગલા દોનું સાધકે, સુખમણા ચિત દ્રઢ ધાર્યા.’ (નથુરામ)

‘બક નાડેથી દમ ચાલીયો, બ્રહ્મ મધ્યે પર વારી,

ઇંગલા પિંગલા અને સુષુમણા, ત્રિકુટીમાં લાગી તાળી.’ (લક્ષ્મીસાહેબ)

‘જાગ્રત, સ્વપ્ન, સુષુપ્તિ, તુરીયા, ઉનમુની મુંદ્રા લાગી,

અક્ષરાતીત આપે નર ઓળખ્યા, તેની ભે ભરમના ભાંગી.’ (દાસી જીવણ)

‘નાભિકમળથી ચાલીયોને રે, બંકનાળે ઉલટાયો,

ત્રિવેણીના તીરમાં નિરત કરે ને, વિના પાંખે ઉડી ધાયો.’ (દાસી જીવણ)

‘ઉંચો જોયો આસમાનસે, ચોડો જોયો સવાયો,

માય કરું તો માયામાં નાવે, નેનકમળમાં સમાયો.’ (દાસી જીવણ)

‘અનભે નાદ અખંડ ધૂન ગાજે, ઝલમલ જ્યોતિ ઝાંઈ રે જી,

બંકનાલકી ખડકી ખોલી, ઉલટા રાહ ચલાયા રે.' (દાસી જીવણ)

'ઇંગલા ને પિંગલા રે સુખમના સાધી લે,

જાલમ જોગેશ્વરને તું, જોવાને જાને રે.' (દાસી જીવણ)

'નાભિકમળથી ચલી મેરી ઝાલરી, નિરાધાર ઠેરાઈ,

ઇંગલા પિંગલા સુખમના સાધી, ત્રિવેણી મોલમેં આઈ.' (દાસી જીવણ)

'ઇંગલા પિંગલા સુખમણ સાધી, ઉલટા પવન ચડાય,

આસન વાળી બેઠા અવધુ, તકિયા તિયાં ટકાય.' (દાસી જીવણ)

'અનહદ વાજાઓ ઘર વાગે, શોભા બની છે સારી,

નૂરતે સૂરતે આ ઘર નિહાળો, ત્રિવેણી એક તારી.' (દાસી જીવણ)

'ઇંગલા પિંગલા સુખમણા સાધી લે, માંઈ મેરમ સરખા દીસે છે માલરી,

વિના દીપક એક જ્યોતિ જલત હે, માંઈ ખન ખન દીસે છે ખ્યારી.' (દાસી જીવણ)

'ઇંગલા પિંગલા સુખમન નારી, તીનું તાર મિલાયા,

નૂરતે સૂરતે ગાવન લાગી, રાગ છતીસે લાયા.' (દાસી જીવણ)

'સુન મંડળમાં મારો શ્યામ બિરાજે, ત્રિકુટી મેં લાગી મુને તાળી.' (કરમણ ભગત)

'ઓહંગ સોહંગ ઘર તેને તાગી, ત્રિવેણીમાં ઝિલમિલ જ્યોતિ જાગી,

નૂરતે સૂરતે તું નિરખ લેને જોગી, મનવા જોને જાગી.' (દાસ વાઘો)

'શૂન્ય શિખર કેરી ધૂનમાં ઉન્મુની આસન લગાઈ,

અગમ નિગમ કેરી ઓથમાં, કોઈ વિરલા સંત જાઈ.' (બાળકસાહેબ)

'નેન-કમળ પર દીવડો જલત હૈ, નાભિકમળ ચિત્ત ધરજો,

કુબુદ્ધિ જ્યોત તમે અળગી કરીને, તમે અમર જ્યોત ધરજો.' (પીઠો ભગત)

'ગગન મંડલમાં વાંજા વાગે, રોમેરોમે રણુંકાર,

ત્રિકુટી મહેલમાં ખોલી દે તાળાં, તો મટી ગઈ ઘોર અંધેરી'. (માણંદ ભગત)

'યોગ યોગેન્દ્ર જોગ જોગેન્દ્ર, યોગ જોગ બેઉ મેળવિયા.' (મેઘ જીવો)

'ઇંગલા પિંગલા સુષ્મણા જ્યોત જાગી, ત્રિવેણી ઘટમાં' (મેઘ જીવો)

'વિવેકી સાધુ બુદ્ધિવંતા, જેને ત્રણ ગુણ લીધા તંતા,

હઠ સમાધિ હેમંતના, મુને નટ ખેલાવે નતના.' (અરજણદાસ)

'તાલ, તંબુરા, મૃદંગ, મંજીરાં ઝીણાં ઝાલર વાગે.' (દાસ કાળો)

'શૂન્યમાં સૂરતા હવે લાગી રે.......' (રૂખી રામદાસજી)

'ત્રિગુણ પર ત્રિવેણી તીરે, તારમે તાર મીલાવે,

ગગનમંડળમેં ગેબી ગાજે, સૂરતા ધ્યાન લગાવે.' (ઉગારામ)

'ડાબી ઇંગલા જમણી પિંગલા, વચ્ચે સહેજ સુખમણા કા વાસા,

પવન પરખ્યા તો મન પવના, બ્રહ્મ ના દેખ્યા એક જ અવાસા.' (ઉગારામ)

ઉપરોક્ત સૌરાષ્ટ્રના દલિત સંતોની વાણીમાં, મુખ્યત્વે નૂરત-સૂરત અને સુષ્મણાની સાધના અથવા ઇંગલા પિંગલા અને સુષ્મણાનો ત્રિવેણી સંગમ કરી, પરમ આનંદની પ્રાપ્તિ કરી તેનો નિર્દેશ કર્યો છે. "ઓહમ સોહમના શ્વાસોશ્વાસ દ્વારા નામનું સ્મરણ

કરતાં ડાબી ઇંગલા ચંદ્રનાડી અને જમણી પિંગલા સૂર્યનાડીની વચ્ચે આવેલ સુષુમણા નાડીને સાધતાં સુલટા પવન ઉલટા કરતાં સુષુપ્ત અવસ્થામાં પડેલી કુંડલિની જાગ્રત થતા બ્રહ્મરન્ધ્રમાં બ્રહ્મજ્યોતના દર્શન થતાં અક્ષરાતીત નરને આ દેહમાં ઓળખી શકાય છે." (ગોહિલ et al. ૭૮) ગંગા-જમના અને સરસ્વતી એ ત્રિવેણી પર ધ્યાન લગાવવાનું સંતો કહે છે. ત્રિકુટી એટલે કે, બંને આંખની વચ્ચે કપાળમાં ઈંડા-પિંગલા અને સુષ્મણા નાડીઓનું મિલન થાય છે તેને ત્રિકુટી કે ત્રિવેણી કહેવામાં આવે છે. એ શૂન્ય શિખર પર જ્યોત ઝળકે છે, તે જ્યોતના દર્શન કરવાનું સંતો કહે છે. જ્યાં અનહદ વાંજા વાગી રહ્યા છે, સંતોએ જે નાદ સાંભળ્યો કે અનુભવ્યો તે મુજબ જુદા જુદા નામો આપ્યા છે, જેમ કે, મોરલી, બંસરી, ઝાલર, શીંગી, નોબત, ઝાંઝ-પખાઝ, જંતર, તંબુરો વગેરે. "શિષ્યના પીંડ અને પ્રકૃત્તિની પાત્રતા જોઇને ગુરુ એની લાયકાત મુજબ જે પચાવી શકે, એવી સાધનાની કુંચીઓ બતાવે. સ્થૂળથી શરુ કરીને સૂક્ષ્મ અને સૂક્ષ્મતમ કેડીએ સાધકને દોરી જાય. સૌથી પહેલા તો આ શરીરની પિછાન કરાવે. આ પિંડનું બંધારણ, એની શક્તિ, એનું સામર્થ્ય, ને છતાં એની ક્ષણભંગુરતા બંગલો, ચરખો, રેટિયો, ચુંદડી, પટોળી, મોરલો, હાટડી નિસરણી, જંતરી, જેવાં રૂપકોથી કાયાની ઓળખાણ કરાવીને પછી આંતર પ્રવેશ કરાવે. સાથોસાથ પિંડશોધનનો ક્રિયાયોગ પણ શીખવતા રહે." (રાજ્યગુરુ ૩૦-૩૧) જ્યાં જપ, તપ, કે ધ્યાનની જરૂર રહેતી નથી. એક અનોખા તેજનો અનુભવ થાય છે. "નૂરત સૂરતનો દોર ત્રિકુટીમાં લાગી જતા અંજવાળું થઇ જાય છે." (ગોહિલ et al. ૭૮) આ અંજવાળું કરોડો સૂર્યના તેજ સમાન છે. ભીતરમાં પરમ તત્વના દર્શન થાય છે. અહીં અનહદ આનંદ અને શાંતિનો અનુભવ થાય છે. સંતોએ આ યોગસિદ્ધિ આપોઆપ પ્રાપ્ત કરી છે. આ માર્ગ કઠિન છે, છતાં સંતોએ તે માર્ગ અપનાવ્યો છે. સંતો માટે આ સહજ સાધના હતી. અગમ-અગોચર તત્વને જાણી સંતોએ પોતાને થયેલ અનુભવ ભજનો કે પદોમાં ગાયો છે.

જેને આપણે ઓહમ-સોહમ્ કહીએ છીએ અથવા તો જે શ્વાસોશ્વાસની પ્રક્રિયા છે. ઓહમ-સોહમ્ એટલે શ્વાસનું આવવું-જવું (શ્વાસ લેતાં અને બહાર કાઢતાં) તે બ્રહ્મ હું છું એવો અંદર થતો અવાજ. આ મુજબ નૂરત નો અર્થ શ્વાસ અને સૂરત નો અર્થ ઉચ્છવાસ. બીજો અર્થ એમ કરી શકાય કે, નૂર એટલે તેજ કે પ્રકાશ તે મુજબ નૂરત-સૂરતનો અર્થ થાય છે કે જ્યોત કે પ્રકાશ કે તેજમાં સૂરતા લગાવવી અથવા ધ્યાન કરવું કે તેમાં લીન થવું. ભીમસાહેબનાં શબ્દોમાં જોઈએ તો. નૂરત સૂરતની સાધના પ્રેમ વિના નહિ પાવે, અંધારું ટળે અંતરનું તો, નૂર નજરુંમાં આવે. જે ઉપરોક્ત અર્થ કર્યો છે તે ભીમસાહેબની વાણીમાં વ્યક્ત થયો છે. રવિસાહેબ 'નૂરતે સૂરતે નીરખો હે રામ કોણે બનાવ્યો પવન ચરખો' એટલે કે નૂરત અને સૂરત દ્વારા નીરખવાનું કહે છે. દાસી જીવણ પણ કહે છે કે 'નૂરત સૂરતની સાન ઠેરાણી, બાજત ગગનામે તુર, ખીમરો કોટવાળ પણ 'નૂરત માળા સૂરત સમરો સુખણાને ઘાટે' એટલે કે સૌરાષ્ટ્રના દરેક દલિત સંતોની વાણીમાં નાભિકમળથી આવે અને જાય છે, તે શ્વાસ હરદમ ચાલી રહ્યો છે તે નૂરત-સૂરતની સાધના કરવાનું કહે છે. અને જયારે નૂરત-સૂરત, ઇંગલા-પિંગલા, એક ઘર લાવવાની વાત છે તેમાં સૂર્ય ને ચંદ્રનાડી એક સાથે ચાલે તે સુષ્મણા કહેવાય, આ સુષ્મણામાં સંતો ધ્યાન કરવાનું કહે છે. શ્વાસોશ્વાસની પ્રક્રિયામાં ઉપર સંતો ધ્યાન રાખવાનું સુચન કરે છે. સાદી ભાષામાં કહીએ તો સૂર્યનાડી એટલે ગરમ અને ચન્દ્રનાડી એટલે ઠંડુ. નસકોરા વાટે જે શ્વાસ આવે ને જાય છે તેમાં બંને નસકોરામાં ગરમ પવન ચાલે તે સ્થિતિ સુષ્મણા કહેવાય. સંતોએ આ ઈડા-પિડા અને સુષ્મણાનાં ત્રિવેણી સંગમમાં સ્નાન કરવાનું કહ્યું છે.

આમ ઉપરોક્ત સૌરાષ્ટ્રના દલિત સંતો ખીમરો કોટવાળ- સુષ્મણામાં નૂરતની માળા અને સૂરતનું સ્મરણ કરવાનું કહે છે. ત્રિકમસાહેબ-જ્યાં જ્યોતિ ઝળકે છે ત્યાં ઇંગલા-પિંગલા અને સુષ્મણા એ ત્રિવેણી ઉપર તાર મિલાવાનું કહે છે. જ્યાં અનાહત નાદ વાગી રહ્યો છે અને જ્યોત ઝળહળી રહી છે તે દેવના દર્શન કરવાનું કહે છે. ભીમસાહેબ-નૂરત-સૂરતની સાધનામાં જે તેજ છે તે તેજ થકી બધા અંધારા દૂર થઇ જાય છે. આ સ્થિત પ્રેમ

વિના સંભવ નથી. એ તો કોઈક પ્રેમી જન જ પામી શકે છે. તેઓ ગંગા-જમુના અને સરસ્વતી (ઇંગલા-પિંગળ-સુષ્મણા) ના ત્રિવેણી સંગમ પર સૂરતા રાખવાનું કહે છે. નથુરામ-પણ ઇંગલા-પિંગલાને સાધી સુષ્મણામાં ચિત્ત લગાવાવનું કહે છે. લક્ષ્મીસાહેબ-બંકનાળથી પવન ચલાવીને બ્રહ્મરન્ધ્રમાં સ્થિર કરવાનું કહે છે, દાસી જીવણ- આત્માની જે ચાર અવસ્થા છે. (જાગ્રત-સ્વપ્ન-સુષુપ્તિ-તુરિયાં) તેની ઉપર ત્રિકુટીમાં ઉનમુની મુદ્રા લગાવી અક્ષરાતિતને ઓળખી ભય અને ભ્રમણા દૂર કરવાનું કહે છે. નાભિકમળથી જે પવન ચાલે છે તેને સુલટાવીને ત્રિવેણીના તીરમાં નૂરત સાધીને નેનકમળમાં સમાયેલાં અને બંકનાળની ખડકી ખોલીને જે અનાહત નાદ વાગી રહ્યો છે અને અખંડ વગર દીપકે જ્યોતિ ઝળહળે છે તે જણાવે છે. કરમણ ભગત-ત્રિવેણીમાં સૂરતા લગાડતાં જે શૂન્ય મંડળમાં શ્યામ બિરાજમાન છે તેના દર્શન અને જ્યોત પ્રકાશી રહી છે તેનું વર્ણન કરે છે. દાસ વાઘો-શૂન્ય શિખર પર ઉનમુની આસન લગાવીને ત્યાં બેઠેલાં જોગીને નીરખી લેવાની રજૂઆત કરે છે. બાળકસાહેબ-આ અગમ-નિગમ પંથ છે ત્યાં કોઈ મરજીવા જ પહોંચી શકે, જ્યાં નેનકમળ પર દીવડો ઝળહળી રહ્યો છે ત્યાં નાભિકમળમાં ચિત્ત લગાવવાનું કહે છે. પીઠો ભગત- કુબુદ્ધિરૂપી જ્યોતને દૂર કરી, અમરજ્યોત જગાડવાનું કહે છે જ્યાં સંગીત વાગી રહ્યું છે અને રોમેરોમમાં રણુંકાર થઇ રહ્યો છે. માણંદ ભગત-ત્રિકુટીનાં તાળા ખુલી જાય ત્યારે અંધકાર મટી પ્રકાશનાં દર્શનની વાત કરે છે. મેઘ જીવો-અરજણદાસ-દાસ કાળો- રૂખી રામદાસજી પણ બધા સંતોની સરખામણી એક સમાન અનાહત નાદ, ત્રિવેણી ઘાટ, શૂન્ય શિખરની રજૂઆત તેમની વાણીમાં કરે છે. ઉગારામ-પણ ત્રણ ગુણની ઉપર ત્રિવેણીમાં તાર મેળવી ગગનમંડળમાં ગેબી નાદ ગુંજી રહ્યો છે તેમાં ધ્યાન ધરવાનું કહે છે.

योगोपनिषदों में कहा गया है कि स्वाभाविक योग एक ही है, अनेक नहीं। वह महायोग नाम से ख्यात है। भूमिकाक्रम और अवस्था भेद के अनुसार यह महायोग ही मंत्र, हठ, लय एवं राजयोग के रूप मे उदय होता है।[1]

नाथसिद्धान्त ग्रन्थ 'योगबीज' में उपरोक्त कथन का अक्षरशः अनुमोदन मिलता है:

मन्त्रो हठो लयो राजा योगान्तर्भूमिकाःक्रमात्।।143।।

एक एवं चतुर्थाऽयं महायोगामिधीयते।।144।।

नाथ पंथ इस पूर्ण महायोग के ही पथ पर आरूढ़ होता है। लक्ष्य जब पूर्ण है तो उस तक पहुँचने का माध्यम और साधन, योग भी पूर्ण ही होना चाहिए। खण्ड साधनों को लेकर खण्ड की ही प्राप्ति संभव हैं, पूर्ण की नहीं।

मंत्रयोग का नाथ–सम्प्रदाय की विभिन्न साधना क्रियाओं में विशिष्ठ स्थान है। प्राणवायु हकार से बाहर जाता है और सरकार के भीतर प्रवेश करता है, श्वास प्रश्वास की इसी गति के मध्य जीव 'हंस' मंत्र का सर्वदा जाप करता है। गुरूकृपा से प्राण की विपरीत भावापन्न अवस्था में जब यह मंत्र 'सोहं' के रूप में परिणत हो जाता है, तब मंत्रयोग आख्या इसे दी जाती है।[2] इस मंत्र चेतना द्वारा जीव ऊर्ध्वगति को प्राप्त होकर शब्दातीत परम चैतन्य धाम में स्थिति प्राप्त करता है। 'बैखरी' शब्द से क्रमशः मध्यमा अवस्था

---

[1] योगशिखोपनिषद् 1/129

[2] हकारेण बहिर्याति सकरिण विशेन्मरूत।
हंस हंसेति मन्त्रो यं सर्व जीवा जपन्ति तम्।।146।।
गुरूवाक्यात्सुषुम्णायां वितरीतो भवेजंपः
सोंहं सोहमिति प्राप्तो मंत्रयोग सउच्यते ।।147।।

को भेदकर पश्यन्ती मे प्रवेश करना ही इस मंत्रयोग का प्रधान उद्देश्य है। पश्यन्ती शब्द स्वप्रकाशमान चिदानन्द मय है– चिदात्मक पुरूष की वही अक्षय और अमर षोडशी कला है। वही आत्मज्ञान, इष्ट देवता के साक्षात्कार अथवा शब्द चैतन्य का प्रकृष्ठ फल है। इस अवस्था मे पहुंचने पर जीव कृतकृत्य हो सकता है। इसके बाद अव्यक्त भाव अपने आप उदित होता है। वही शब्द की तुरीय अवस्था है। मूलाधार से निरन्तर शब्द श्रोत ऊपर की ओर उठ रहा है, यही शब्द समस्त जगत के केन्द्र मे नित्य विद्यमान है। बहिर्मुख जीव इन्द्रियो के अधीन होकर विषयों की ओर दौड़ रहा है, इससे उसे इनका पता नहीं लगता। जब किसी क्रिया कौशल से अथवा अन्य किसी उपाय से इन्द्रियों की बहिर्गति रूद्ध हो जाती है और प्राण तथा मन स्तम्भित हो जाते हैं, तब साधक इस चेतन शब्द को सुनने के अधिकारी होते हैं षण्मुखी मुद्रा द्वारा कृत्रिम उपाय से इस नाद के अनुसन्धान की चेष्टा की जाती है।[1] यही नाद महा अनाहतनाद में लीन होकर साधक जीव को आज्ञाचक्रमें ले जाता है। 'हंसमंत्र' का 'सौ ऽहम्' मे परिणत होना नाथमतोपदिष्ट मंत्रयोग की पूर्णाहुति यही है। गोरखबानी के निम्न पद में। इस मंत्रयोग का सम्पूर्ण क्रम बड़े सुन्दर उक्ति में कहा गया है :

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोहं सोहं अजपा गाई।
आसण दिढ़ करि धरो धियानं, अहनिसि सुमरौ ब्रह्मगियानं।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहरा, कामक्रोध अहंकार निवारं।
नासा अग्र निजु ज्यौ बाई, इड़ा प्युंगुला मधि समाई।

---

[1] योग का विषय परिचय, म०म०प०गोपीनाथ कविराज, कल्याण, योगांक, पृ० 51।

छसै सहंस इकीसों जाप, अनहद उपजे आपहिं आपि।

बंक नालि मैं ऊगै सूर, रोम रोम धुनि बाजै तूर।

उलटं कमल सहंसदल बास, भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास।

सुणि मथुरा सिव गोरष कहै, परम तत ते साधू लहै।

हठयोग की प्रधानता नाथपंथ में समानरूप से है। यही नहीं, नाथाचार्यो ने सर्वप्रथम हठयोग मे निष्णत् होकर संसार में उसका व्यापक प्रचार किया, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि हठयोग का प्रचलन उनसे पूर्व भी था।

पश्चिम पथ (सुषुम्ना द्वार) में गमन करने पर वायु योग की प्रतीति होती है, यह सूर्य चन्द्र एकीकरण पर सम्भव होता है। हकार से सूर्य तथा ठकार से चन्द्र कहा जाता है, यही हठयोग सर्वदोषसमुद्‌भूत जाड्‌य को ग्रसित करता है।[1]

हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है :

"केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते"[2]

अतएव हठयोग की चरम परिणति राजयोग है। इसकी नियमित साधना से राजयोग का सिद्धलाभ, साधक को होता है। राजयोग में योगारूढ़ होना ही काल के राज्य से मुक्त होना है। स्वात्माराम योगी ने हठयोग प्रदीपिका में समाधि, उन्मनी, लय, परमपद, अद्‌वैत, निरालम्ब, सहज, तुरीय को राज–योग का ह ीपर्याय कहा है। कुम्भक द्वार प्राण रूद्ध होता है और चित्त निरलम्ब अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार हठविद्या का मुख्य फल राजयोग है।

---

[1] प्रतीतिर्वायुयोगाच्च जायते पश्चिमे पथि।

[2] ह०यो०प्र०1 / 2

हठयोग के अन्तर्गत षटकर्म–नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालमाति और वाटक आते है।[1] इनके द्वारा देह शुद्धि होती है।

नाथपंथ मे देहशुद्धि के इस कम को घटशुद्धि भी कहा जाता है। देह मे दृढ़ता तथा स्थैर्य आसन के अभ्यास से आता है। मुद्राओं का अभ्यास भी इसमें सहायक होता है। प्राणयाम प्राण की गति को रूद्ध करने मे बहुत सहयक होता है। इसके विधिवत् गुरूपदिष्ट–मार्गानुसार अभ्यास से नाड़ी शुद्धि एक से तीन मास में ही हो जाती है। मुद्रा और नादानुसन्धान का अभ्यास साधक जीव को लय की अवस्था में ले जाता है। साधारणतया आसन, प्राणयाम अथवा कुंभक, मुद्रा और नादानुसन्धान का अभ्यास ही हठयोग के प्रधान प्रतिपाद्य विषय है।

आसन और प्राणायाम का अल्प उल्लेख आ चुका है। मुद्राओं में मुख्य महामुद्रा, महाबंध, महाबेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली और शक्तिचालानी है। यह दश महामुद्राएं कहलाती है।[2] गौणरूप से अन्य कई अश्वी, योनि, षण्मुखी इत्यादि मुद्राओं का भी उल्लेख योगग्रन्थों में मिलता है।

उपरोक्त षटकर्म, विभिन्न प्राणायाम और मुद्रादि का विशद वर्णन और किसी अंश तक उनके अभ्यास की विधि का उल्लेख अमृतनाद, त्रिशिखिब्राह्मण, दर्शन, ध्याानबिन्दु, योगकुंडलि, योगचूड़ामणि, शांडिल्य आदि उपनिषदों[3] तथा योगयाज्ञवल्क्य, घेरण्ड संहिता, हठयोगप्रदीपिका, योगबीज

---

[1] ह०यो०प्र०2/22

[2] ह०यो०प्र०3/6–7

[3] यो०उ०(आड्यार संस्करण)

आदि विभिन्न योगग्रन्थों मे मिलता है। नाथपंथ देहतत्वप्रधान योगपंथ है अतएव हठयोग का उसमें इतना अधिक प्राधान्य कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

लययोग, योबीज (150/ 51) के अनुसार जड़ता के नष्ट होने से क्षेत्रय और परमात्मा के एक्य पर होता है। इस दशा मे जीव शिव की एकता होने पर चित्त लय अथवा विलीन हो जाता है। पवन स्थिर हो जाने पर इस लय का फल स्वात्मानन्द परमपद रूप सौख्य है।[1]

प्राण के लय से पूर्व मन का लय भी नहीं होता और मन की वृत्ति ज्ञान की प्रतिबन्धक होतरी है। प्राण और मन का लय आत्यन्तिक स्वरूप में स्थिति लाता है। सहस्त्रार में प्राण की बिना व्यापार की स्थिति ही प्राण का लय कहलाती है। ब्रह्म में भिन्न विषयो में व्यापार रहित होना मन का लय कहलाता है। प्राण के लय से मन का भी स्वतः लय हो जाता है। ऐसी अवस्था मे सूर्य चन्द्र का एकीकरण सिद्ध कर, साधक काल जय कर लेता है। यही मनोलय अथवा उम्न अवस्था है।[2]

देह मे इड़ा और पिंगला, सूर्य और चन्द्र रूप कहलाती है। इन नाड़ियों में, प्रत्येक ढाई घड़ीमें, श्वास स्वर की क्रिया का परिवर्तन होता रहता है। ढाई घड़ी सूर्यस्वर चलता है और ढाई घड़ी चन्द्रस्वर। सूर्यस्वर का काल दिन कहलाता है और चन्द्रस्वर का रात्रि। इस प्रकार लौकिक अहोरात्र के मध्य में योगियों के बारह अहोरात्र होते है। रात्रि दिन रूप काल का अभाव होना ही

---

[1] दृष्टव्य योगशिखोपनिषत्, 1/134, 35

[2] यहु मन सकती यहु मन सीव। यह मन पांच तत का जीव।
यहु मन ले जे उनमन रहै। तौ तीन लोक की बाता कहै।।

कालजय है। प्राण के लय पर यह सूर्यचन्द्र एकीकरण हो जाता है क्योंकि स्वर तब सुषुम्ना पथ मे चला जाता है।[1] यही योगियों की काल जय अथवा कालवंचिणी मुद्रा है। इसमें साधक नित्य लय की अवस्था मे स्वात्मा–नन्द के चिद प्रकाश में अवस्थित रहता है। समष्टि में लययोग का परिचय यही है। वैसे तो अन्यान्य योगों की भॅति लय का विषय भी अत्यन्त विस्तृत रूप से योगग्रन्थों में आया है।

राजयोग के लिए पहले कहा जा चुका है कि वह अद्वैत, निरालम्ब, सहसज, तुरीय आदि अवस्थाओं का द्योतक एवं पर्याय है। इन अवस्थाओं के स्वरूप का ज्ञान समझ मे आ जााने पर राजयोग का स्वरूप समझ में आता है। स्वात्मारामयोगी ने कहा :

राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी।।
अमरत्व लयस्तत्वं शून्या शून्यं परं पदम्।।
अमनस्कं तथाद्वैतं निरालांबं निरंजनम्।।
जीवनमुक्तिश्च सहजा तुर्या चैत्यैकवाचकाः।।[2]

राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवन्मुक्ति सहज, तुर्या सब एक ही समाधि तत्व के वाचक है।

---

[1] ह०यो०प्र०4 / 17
[2] ह०यो०प्र०4 / 3–4

स्वामी विवेकानन्द ने यम, नियम, आसनादि के अष्टांग योग साधन को राजयोग कहा है।[1] इसकी चरम परिणति भी समाधि है, अतः स्वात्माराम के कथन से इसका विरोध नहीं।

योगबीज में कहा गया है कि प्राणापान के योग से योगचुष्टय सम्पन्न होता है, तब अणिमादि सिद्धियों के पद को प्राप्त होकर योगी राजयोग से विराजमान होता है।[2]

योगशिखोपनिषत् में राजयोग–सिद्धि का एक और क्रम आया है। मनुष्य के योनिस्थान मे रज नाम का तरल पदार्थ विद्यमान रहता है। इसका रंग जवा और बन्धूक पुष्प की तरह होता है। देह यह दैवी तत्व का प्रती एउवं प्रतिनिध है। इस रज के साथ रेत्स का संयोग ही राजयोग है। यही शिव शक्ति का मिलन है। यह राजयोग अणिमादि पद पर आरूढ़ करने वाला है।[3] कहना न होगा कि इस क्रिया की चरम परिणति भी साधक को समाधि अवस्था मे ले जाती है। साधनों में वैचित्र्य हो सकता है, साध्य में नहीं। अतः जो भी साधना समाधि मे आरूढ़ कराती है, राजयोगान्तर्गत आ सकती है।

समाधि का विवेचन करते हुए स्वात्माराम योगी का कथन है, जिस प्रकोर लवण जल के संयोग से सजल की एकता को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा में धारण किया हुआ मन आत्माकार हो जाने से आत्मरूप को प्राप्त हो जाता है। आत्मा और मन की एकता ही समाधि है। मन का 'अमन' हो जाना भी है।

---

[1] राजयोग, कम्प्लीट वर्क्स आव स्वामी विवेकानन्द, जिल्द 1, मायावती 1950

[2] आणिमादि पदे प्राप्ते, राजाते राजयोक्तः
प्राणापान समायोगे, ज्ञेयं योगचतुष्टयम्।।152।।

[3] योगशिखोपनिषत 1/136–37

कहना न होगा कि प्राणलय पर मन भी लय हो जाता है। यह समरसावस्था ही समाधि है। जीवात्मा और परमात्मा की एकता भी यही है। इस समय सारे संकल्प विकल्पों का अन्त हो जाता है।[1] यही योगारूढ़ होना है।[2] इस महिमावान् योग का गान करते हुए स्वात्माराम कहते है :

राजयोगस्य महात्म्यं को वा जानाति तत्वतः।
ज्ञानं मुक्तिः स्थितिः सिद्धिर्गुरूवाक्येन लक्ष्यते।।
दुर्लभी विषयत्यागो दुर्लभं तत्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरौः करूणां बिना।।

राजयोग के महात्म्य को कौन जान सकता है? गुरू वाक्य से उसका संधान होता है, वह ज्ञान, मुक्ति, परमस्थिति का दाता है। विषयत्याग, तत्वदर्शन और सहजावस्थालाभ संसार में अत्यन्त दुर्लभ है, सद्गुरू की करूणा के बिना वह सब स्वप्न है, अप्राप्त और असंभव है।

समाधिजन्य समत्व भाव ही सामरस्यात्मक आनन्द है। भारतीय आध्यात्मिक साधना प्रणालियों का यही एक मात्र लक्ष्य है। इसकी सिद्धि के लिए विभिन्न उपाय हैं। प्राणायाम, अपानायाम, स्वरसंधान, मुद्रा अभ्यास, बिन्दुयोग, अग्नियोग, खेचरी, बज्रौली, अमरौली और सहजौली मुद्राएं, नादानुसंधान और इसी प्रकार के अन्यान्य अभ्यास साधक को योगारूढ़ करते है। समाधि के नाना भेद है, यहां समाधि से तात्पर्य निर्विकल्प अथवा पूर्ण समाधि से है।

---

[1] ह०यो०प्र०४/5, 6, 7

[2] यदा हि नेद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।।
सर्व संकल्पसंन्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते।।गीता 6/4

किन्तु योग का विषय परिचय इतने ही मे समाप्त नहीं हो जाता। योग अपने में पूर्ण एक वृहत् विज्ञान है।[1] योग का नाम आते ही विभूति की ओर भी स्वतः ध्यान चला जाता है, और विशेष कर जब नाथ पंथ के सम्बन्ध मे योग का उल्लेख हो रहा हो, तब यह बात और भी धनीभूत रूप में मस्तिष्क में आती है। नाथ योगियों की योगविभूति की गाथाएं, 'बूढ़ाबाल' 'गोरख गोपाल' का आज भी भाग्यशालियों को दर्शन दे जाने वाली बात के विश्वास का प्राचुर्य[2] और नाथों की चमत्कार सम्बन्धी गाथाएं भारत के प्रत्येक भूभाग, मण्डलो और ग्रामों मे आज भी सुनने को मिलती हैं। योग और योग–विभूति दो पृथक–पृथक वस्तुएं नहीं। योग हो जाने पर विभूति स्वतः ही आती है। बहुत लोगों का ऐसा विश्वास है कि विभूति वाच्चछनीय नहीं और वह योग–मार्ग में विघ्न पैदा करती है। परन्तु यह बात नहीं। प्रत्येक वस्तु का सत् और असत् दो प्रकार का व्यवहार होता है। व्यवहार के दोष से वस्तु सत्ता आक्रान्त नहीं होती। अग्नि का स्पर्श करने से अबोध शिशु की सुकुमार देह जल जाती है, इस कारण से अग्नि की निन्दा करना अथवप उसका त्याग करना बुद्धिमानी का काम नहीं। अग्नि अपने स्वभाव के अनुसार अवश्य कार्य करेगी। जो उसके स्वभाव को जानकर और उसे नियन्त्रित करके अपना अभीष्ट कार्य पूरा कर सकता है, उसे चतुर कहना उचित है। अग्नि से व्यवहारानुसार अच्छा–बुरा दोनो प्रकार का कार्य संपन्न होता है। परन्तु इसी कारण अग्नि को उन सब कार्यो का दायी मान लेने से काम नही चलता।

---

[1] पतंजली के योग सत्र के विभूतिपाद प्रकरण एवं योगोपनिषदों में अनेकानेक क्रियाओं का उल्लेख है जिनके द्वारा योगी में सर्वसाार्थ्य और ऐश्वसर्य आता है।

[2] 'नाथपंथ मे योग' डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, योगांक कल्याण, पृ० 707

शक्तिमात्र को इसी प्रकार समझना चाहिए।[1] कहना न होगा कि विभूति शक्ति भी इसी के अन्तर्गत आती है।

साधना की आरम्भिक अवस्था और योग योगांगों के उपरोक्त संक्षिप्त विवेचन के पश्चात् अब कुछ विशेष साधना तत्वों की ओर दृष्टिपात करना विषय के बाहर की बात न होगी। सूक्ष्मवेद, नादानुसंधन, शून्य–तत्व, ब्रह्माग्नि साधन आदि तत्व इसी के अन्तर्गत आते हैं।

<u>सूक्ष्मवेद</u>

वेद का स्वरूप कुछ भी हो, यह स्थूल शब्दात्मक माना जाता है। साधारण दृष्टि से ऋग्, यजु, साम का त्रयी नाम से वर्णन किया जाता है और इस प्रकार वेद की संख्या तीन मानी है।

परन्तु कहीं अथर्व को भी वेदान्तर्गत मानकर यह संख्या तीन के स्थान पर चार मानी जाती है। शाखादी भेद से वेद के विभाग हैं। चरण व्यूह आदि ग्रन्थ से इसका साधारण परिचय मिल सकता है। परन्तु ज्ञानी तथा योगी इस वेद के ऊपर जोर नहीं देते। पौराणिक प्रसिद्धि ऐसी है कि मूलतः वेद अविभक्त एक ही हैं। व्यासदेव ने इसका विभाग करके इसे अलग–अलग कर दिया। योगी कहते है (नाथ सिद्ध भी इनके अन्तर्गत हैं) कि यह परिचित वेद वास्तव में वेद नहीं है। यह विल्म मात्र है; क्योंकि ये नित्य भी नहीं हैं, स्वयंप्रकाश भी नहीं है तथा अतीन्द्रिय भी नहीं हैं। प्राचीन काल मे श्रुति का तात्पर्य भी प्रायः ऐसा ही था। वाक्यपदीय के टीकाकार पुष्पराज ने

---

[1] 'योग का विषय परिचय' म०म०प०गोपीनाथ कविराज, योगांक, कल्याण पृ० 58–59

प्रसंगत

एक स्थान में श्रुति से समझाने की कोशिश है कि यथार्थ वेद अतीन्द्रिय तथा स्वयं प्रकाश है:

"यां सूक्ष्मां नित्यामतीन्द्रियां वाचमृषयः साक्षात्कृतधर्माणों मन्त्रदृशः पश्यन्ति। तामसाक्षात्कृतधर्मभ्यः परेम्य प्रतिवदयिष्यमारपाः बिल्म समामनन्ति। स्वप्ने वृत्तिमिव दृष्ट श्रुतानुभूतमाचिरख्यासन्ते हस्त्येष पुराकल्प माह विल्मः। वेद येदांगानि विल्मः"।

अतः यथार्थ वेद सूक्ष्म वाक् या श्रतीन्द्रिय वाक् है, नाद रूप, जो पश्यन्ति रूपा है वैखरी रूपा नहीं। यही सूक्ष्म वेद अथवा नाथों का 'ससंवेद' है। गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में पद्मपुराण से अद्धृत निम्न श्लोक में सूक्ष्मवेद को चारों वेदों का अध्यक्ष कहकर सम्बोधित किया गया है:

ऋगवेदोयजजुर्वेदः सामवेदाऽह्यर्थ्वणः।

सूक्ष्मवेदोहिअध्यक्षः पंचवेदाः प्रकीर्तिताः।।

बैखरीरूपा चारों वेद के अध्यक्ष सूक्ष्मवेद को ही नाथ योगी एक मात्र सार वस्तु कहते हैं। यह पश्यन्ति रूपा शब्द ही बैखरी रूपा शब्द के ताले की कुञ्जी है जो उसे खोल कर परा शब्द के स्वरूपज्ञान का खजाना समाने रख देती है। सूक्ष्मवेद का यह ज्ञान इन्द्रियग्राह्य नहीं, स्वसंवेद्य एवं अनुभूति परक है। यह मार्ग के बिना चलने, अग्नि के बिना जलने और वायु से प्यास के बुझाने के समान है। वाक्यज्ञान की पंडिताई से यह वेद नहीं पढ़ा जाता।[1]

---

[1]–सबदहिं ताला सबदहि कूंची सबदहि सबद जगाया।
सबदहिं सबद सूं परचा हूआ, सबवहिं सबद समाया।
पथ बिन चलिबा अगनि बिन जलिबा, अनिल तृषा जहटिया।

'शिवसूत्र विमर्शिणी' के टीकाकार क्षेमराज ने एक स्थान पर कहा है कि बिन्दु के प्रथम कम्पन से नाद की उत्पत्ति किंवा सृष्टि का विकास प्रारम्भ होता है। यहीं ओंकार ध्वनि अथवा मतान्तर से स्फोटवाद या शब्द–ब्रह्मवाद के नाम से भी ख्यात है। यह शब्द सृष्टिव्यापी है तथा अविराम ध्वनित हो रहा है। जीवमात्र में ही यह शब्द नाद रूप में विद्यमान है। मनुष्य देह में वह अनाहत नाद रूप से विराजता है और नित्य क्रियाशील है। शास्त्र में नाद को अनेक स्तरों में विभक्त किया गया है, किन्तु एकमात्र ओंकार शब्द ही उपाधि भेद से रहित होने के कारण ब्रह्मभाव की स्फूर्ति का उन्मेषकर्ता कहा गया है। इस चैतन्यशक्ति के कारण प्राचीन साधु सम्प्रदायों ने उसे स्फोट कहकर सम्बोधित किया। नाद से कला और वर्णो की उत्पत्ति होती है। मनुष्य के व्यष्टि देहपिण्ड मे ये वर्ण रश्मियों के न्याय कमलों के दल रूप मे वर्तमान होते है। विभिन्न चक्रों के इस् प्रकार पचास दलों की कल्पना भी नाथमत में पायी जाती है। दल रूप इन वर्णो का अतिक्रमण चक्रभेद साधना द्वारा किया जाता हैं। आज्ञाचक्रके ऊपर बिन्दु रूप में सम्पूर्ण वर्ण समष्टि रूप में वर्तमान रहते हैं।

वर्णो का कुण्डलिनी में ज्योतिर्मात्रा रूप अवस्थान परावाक् कहलाता है। सुषुम्ना पथ में नीचे आकर यही वर्ण नाभि पथ में दल रूप उदित होते हैं और पद्म का अग्नितत्व उनकी दीप्ति को विकसित करता है। कुंडलिनी के मध्य सम्पूर्ण वर्ण एक ही ज्यातिर्मात्रा रूप होते हैं, किन्तु नाभि पद्म में अलग अलग वर्ण भिन्न दीप्ति से भासित होता हैं। यहां उसे स्वयंप्रकाश 'पश्यन्ति'

ससंवेद श्री गोरष कहिया बूझिल्यौ पंडित पढ़िया।
21-22 (गो०बा०पृ० 8)

आख्या दी जाती है। हृदय कमल में उदित होकर वर्ण नादयुक्त हो जाते है किन्तु वे अभी योगी के अतिरिक्त किसी अन्य साधारण पुरूष को श्रुतिगोचर नहीं होतें। इस अवस्था में उन्हे 'मध्यमा' कहा जाता है। हृदयकमल का त्याग कर वे जब फेफड़ों और अन्य श्वासमंत्रों से स्पन्दित होकर जिह्वामूल, कंठ तालु दन्त ओष्ठ इत्यादि स्थलों से संघर्षित होकर कर्णगोचर होते हैं तो 'बैखरी' रूपा कहलाते हैं।

नादानुसंधान अथवा लययोग एवं चक्रभेद साधना का यही उद्देश्य होता है कि मध्यमा वाक का संघान कर स्वप्रकाशमान पश्यन्ति भूमि में प्रवेश किया जाय। इसके बाद अव्यक्त भाव अपने आप उदित होता है। यह भाव, शब्द की परा अथवा तुरीय अवस्था है। नाथों के विचार से पश्यन्ति भूमि का प्रवेश ही यथार्थ सूक्ष्मवेद का पढ़ना है जिसमे विदात्मक पुरूष की अमर षोडशी कला का साक्षात्कार किया जाता है। जहां वर्णात्मक शब्द का विलयन प्रकाश रूप पश्यन्ति शब्द हो जाता है परन्तु विलय करने वाला कोई राहुरूप शत्रु नहीं, वह स्वयं ही है, बिना अग्नि के वहॉ दाह होता है– सम्पूर्ण मलापसरण हो जाता है, और आनन्दधन उमड़ आते है ; वह तत्व ऋग, यजु, साम और अथर्ववेद के पढ़ने वाले पंडितों से नहीं बताया जा सकता। वह स्वयंप्रकाश सूक्ष्मदेव है जिसका अवस्थान धरती, आकाश अथवा जल में, नहीं वरन् गंगा और यमुना (इड़ा–पिंगला) के बीच (सुषुम्ना–पथ) मे है। और यहां किसी गुरू मछिन्दर के प्रसाद से ही कोई गोरख उसमें नित्य रमण कर कृत–कृत्य होता हैं।

राह बिन गिलिया अगनि बिन जलिया, अंबर बिन जलहर भरिया।

यहु परमारथ कहां हो पंडित, रूग जुग स्यांम अथरबन पढ़िया।।

ससंमवेद सोहं प्रकासं, धरती गगन न आदं।

गंग जमुन बिन षेले गोरष, गुरू मछिद्र प्रसादं।।18।।

नाथ सिद्धों ने इस प्रकार चारो वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) को अपने मार्ग। पर लगाकर यह उपदेश दिया कि वेद के स्थान पर सूक्ष्मदेव को पढ़ो और परमावस्था का लाभ कर विधि निषेध से परे हो जाओ। यही परमभेद को जानना और सर्व आशाओं को पूर्ण करना है।[1]

<u>नादानुसन्धान और नाद की चार दशाएं</u>

शब्द अथवा नाद आकाश का धर्म है। आकाश एक विश्वव्यापी सत्ता है। पिंडोत्पति प्रकरण के अन्तर्गत हम कह आये है कि मूल सत्ता जब साम्यमय अवस्था में होती है तब सृष्टि नहीं होती। सृष्टि के लिए विषमता का भव अपेक्षित है। इस आदि बिन्दु अथवा आकाश में प्रथम शक्ति संघात से प्रथम कम्पन आरम्भ होता हैं। कम्पन के पश्चात साम्य भाव नष्ट हो जाता है और तब नाद अथवा शब्द की उत्पत्ति होती है। यहीं नाद फिर सृष्टि क्रम की रचना में प्रवृत्त होता है।[2] सानव देह मे कार्य भेद से इस नाद के दो स्वरूप होते हैं। स्थूल बाह्म नाद मन को बहिर्मुखी बनाकर अचिद् सृष्टि में उलझालये रहता है। यूक्ष्म आभ्यन्तर का नाद मन को अन्तर्मुखी बनाकर चिद्

---

[1] ऐसा रे उपदेस दाषे श्री गोष राया,
जिनि जग चतुर वरन रह लाया ।।
पढ़िले ससंवेद। करिले विधि नषेद।
जांणिले भेदांनभेद। पूरिले आसा उमेद।।1।।

[2] भर्तृहरि का तथा मंडन का 'शब्द ब्रह्मवाद' और बाइबिल का 'इन दी बिगनिंग वजवर्ड' सिद्धान्त इसी तथ्य को लिये हुए है।

की ओर अग्रसर कराता है और अन्ततः परम साम्यमय अवस्था मे अधिष्ठित करा है।[1]

साधारण जीव कालनाड़ी (इड़ा, पिंगला) का अतिक्रमण नहीं कर पाता। इससे उसकी चित्तवृत्तियॉ बहिर्मुखी रहती हैं। इस बहिर्मुखता के कारण जगत के अन्तस्तल में जो सूक्ष्म नाद निरंतर आकाश मण्डल मे ध्वनित हो रहा है, उसे वह नहीं सुन पाता। योग कौशल, गुरूकृपा, प्रबल पुरूषकार, तीव्र वैराग्य और पूर्व संस्कार आदि के प्रभाव से यह नाद अथवा अनाहित ध्वनि श्रवण गोचर होती हैं। अनाहत उसे इसलिए कहा जाता है कि स्थूल दृष्टि से यह बिना आहत किये ध्वनित हो रही है।

इस अनाहत ध्वनि के निरन्तर अनुसन्धान द्वारा देह शुद्धि और चित्त की निर्मलता बढ़ती जाती है। मन धीरे–धीरे शान्त और अचंचल होकर इस नाद मे रमता जाता है। अन्त मे मन इसमें पूर्णतया युक्त होकर लय हो जाता है, यही मन का अमन होना है। इस अवस्था मे नादध्वनि भी विलीन है, तब चिद् स्वरूप आत्मा स्वरूप में अवस्थित होकर साम्यावस्था को प्राप्त होती है और वाह्य प्रकृति के स्पर्श से मुक्त हो जाती है। संक्षेप में यही नादानुसंधान का विषय परिचय है।

साधना का काल में जब यह नाद श्रुति गोचर होता है तो अनन्त प्रकार से सुनाई पड़ता है। मर्दल, शंख, घंटा, वंशी, भ्रमरगुंजन, किंकिणि, वीणा आदि की ध्वनि के समान यह ध्वनित होती है, किन्तु इसकी ध्वनि के

---

[1] नाद हो तौ आछै बाबू सब कूछ निधाना
नाद ही थैं पाइये परम निरबांना।। गो०बा० 2/12/पद पृ० 99

प्रकार असंख्य हैं। अन्तिम नाद को दशम नाद अथवा महानाद कहते हैं और पूर्ण अवस्था में वह भी विलीन हो जाता हैं।

नाद की चार दशायें योग शास्त्र में आरम्भदशा, घटदशा, परिचय दशा, और निष्पन्तिदशा के नाम वर्णित है।

आरम्भ दशा में योगी एक सार होकर बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुख करते हुए देहस्थ अनाहत चक्रमें वर्तमान ब्रह्म गन्धि का भेदन करके हृदयाप्रकाश में इस ध्वनि का श्रवण करता है। साधारणतया दाहिने कान में यह ध्वनि अधिक सुनाई पड़ती है। इस दशा मे साधक यदि ब्रह्मचर्य की पक्की तौर से रक्षा कर सके तो जानना चाहिए कि आरम्भ दशा पक्व हो गयी है।[1]

नाद की द्वितीय दशा मे कण्ठ देशस्थ विष्णु ग्रन्थि का भेद हो जाता है। इस दशा में प्राणापान का एकीकरण और नाद तथा बिन्दु मिलित भाव में आ जाते है। इस दशा मं प्रत्ययाहार की स्थिति आ जाती है और मन अक्षुब्ध होना आरम्भ कर देता है। निरन्तर नाद श्रवण से श्वास प्रश्वास क्षीण होकर कुम्भक दशा मे आ जाते है तब काल क्षय आरम्भ हो जाता है। यह घट दशा के लक्षण है।[2]

तृतीय परिचय दशा में आज्ञाचक्रस्थित रूद्र ग्रन्थि का भेद होता है। मन की उन्मन दशा हो जाती है और आत्म सुख की अहिर्निश प्राप्ति होती हैं।

---

[1] आरम्भ जोगिला कथीला एकसार। षिण षिण जोगी करै सरीर विचार।
तलबल व्यन्द धरिबा एक तोल। तब जांणिवा जोगी आरंभ का बोल।।

[2] घट ही रहिबा मन न जाई दूर । अह निस पीवै जोगी वारूणी सूर ।
स्वाद बिंस्वाद बाई काल छीन। तब जांनिबा जोगी घट का लछीन ।
(गो०बा० 137 पृ० 48)

इस दशा में योग विभूति का प्राकटय आरम्भ हो जाता है और अणिमादि नाना सिद्धियों का आश्रय बना हुआ योगी नाना रूपों को धारण करने की सामर्थ्य वाला हो जाता है।[1]

नाद की चतुर्थ निष्पत्ति अवस्था में योगी पूर्णतः निर्मल होकर पूर्णावस्था को प्राप्त हो जाता है। नादानुसन्धान साधना का कार्य देह और चित्त के मलांश को दूर करना है। लोहार जिस प्रकार लोहे को गरम करके कई बार ठंडे पानी में बुझाकर उसे शुद्ध करता है, नादानुसंधान भी इसी प्रकार साधक की शुद्धि करता है। इस पूर्ण निष्पत्ति दशा मे योगी सहज भाव से पूर्ण साम्यावस्था में अवस्थित रहता है। वह समदृष्टि वाला योगी तब राजा और प्रजा में भेंद नही देखता।[2]

नाथमतोपदिष्ट साधनाप्रणाली मे नादानुसन्धान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मनोलय के सवा कोटि उपाय श्री आदिनाथ द्वारा कहे गये है, उनमें भी नाथमतानुपायी नादानुसंधान को उत्तम मानते है।[3] इसके द्वारा प्राप्त होने वाला आनन्द अनिर्वचनीय कहा गया है। नादानुसन्धान वायु को मध्य मार्ग (सुषुम्ना पथ) में प्रविष्ट करके प्राण और बिन्दु को स्थिर कर देता है, यह स्थैर्य आकाश के समान स्वाभाविक तत्व की प्राप्ति कराता है।

---

[1] परचप जोगी उनमन षेला। अहनिसि इंछया करै देवता स्यूं मेला ।
षिन षिन जोगी नाना रूप। तब जानिंबा जोगी परचप सरूप।।
(गो०बा०138,पृ०48)

[2] निसपति जोगी जांनिवा कैसा। अगनी पाणी लोहा मनि ज़ैसा।
राजा परजा समि करि देष। तब जांनिबा जोगी निसपति का भेष।।
गो०वा० 139, पृ० 48

[3] श्री आदिनाथन सपादकोटि लयंप्रकाराः कथिता जयन्ति।
नादाानुसन्धान कमेकमेव मन्यामहे मुख्यतम लयानाम्।। 66।।
ह०यो०प्र० 197

नाद देह मे चिद्शक्ति की कियाशीलता का साक्षी है। गुरूपदिष्ट मार्ग का अवलम्बन लेकर नादानुसन्धान की अन्तिम साधना में महानाद का अनसंधान किया जाता है। यह महानाद अत्यन्त शक्तिसम्पन्न और कियाशील होता है। इसके संधान की पक्व दशा प्राप्त होने के साथ साथ शरीर में भी परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है। एक महाशक्तिशाली तड़ित का अवतरण देह मे हो जाता है, इसके बाद देह में रक्त नहीं रहता। देह का रक्त चिद् वैद्युतिक शक्ति में परिणित हो जाता है और काया सिद्धि हो जाती है। यह काया दोष, दुख, क्षुधा, निद्रा ; तृष्णा, व्याधि, जरा और मृत्यु से विवर्जित हो जाती है। नादानुसंधान की चरम परिणित यही है।[1]

<u>शून्य साधना</u>

महायान बौद्ध धर्म द्वारा प्रचारित शून्य साधना चौरासी सिद्धों और नाथों से होती हुई निर्गुण संतों तक पहुंची है। शून्य तत्व वैसे भी भारतीय वाङ्गय के लिए विदेशी नही। परन्तु साधना सम्प्रदायों मे सुषुम्ना मार्ग ही शून्य मार्ग कहलाता है। इसी मार्ग मे स्तर भेद से शून्य, महाशून्य और अतिशून्य–तीन शून्यों का अवस्थान है, जिनका अतिकमण करना पूर्णतत्व प्राप्ति के लिए अपेक्षित है।

मानव–शरीर को निम्न प्रकार से त्रिखंड माना गया है :

1– मूलाधार से मणिपूर तक (प्रथम खण्ड)

2– अनाहत से विशुद्धाख्य तक (द्वितीय खण्ड)

3– विशुद्वाख्य से आज्ञा चक्रतक (तृतीय खण्ड)

---

[1] मूलाधार से मणिपूर तक (प्रथम खण्ड)

आज्ञा चक्रसे पिंडत्व छूट जाता है। योग कौशल से आज्ञाचक्रका भेदन करके साधक पिण्ड छोड़कर ब्रह्माण्ड तके प्रवेश करता है, किन्तु प्रथमावस्था का यह प्रवेश ज्ञानरहित प्रवेश होता है। यही प्रथम शून्य में प्रवेश है। इसमे योगी का देहात्मबोध हट जाता है, इस कारण देह का कर्तृत्व भोक्तृत्व बोध समाप्त हो जाता है। साधक तब देह में द्रष्टा रूप रहता है। यही अवस्था नाथ में निरालम्ब अवस्था कहलाती है। देहात्मबोध के आलम्बन का छूटना निरालम्ब होना है। नादानुसन्धान की घट दशा भी इसी का दूसरा नाम है। इस प्रथम शून्य के भेदन मे नाद भी प्राकारान्तर से मिलता है।

ब्रह्माण्ड को छोड़कर चिन्मय जगत मे (ज्ञान सहित) प्रवेश महाशून्य भेद कर होता है। इस समय देह भी चिन्मय स्वरूप मे परिणित हो जाती है। महाशून्य के प्रवेश तक व्यक्तित्व का आभास रहता है। भक्तिमार्ग के साधक इसी चिन्मय देश तक पहुंचते है। इससे आगे वे नहीं जाना चाहते, क्योंकि इससे आगे व्यक्तित्व आभास नहीं रहता। भक्त–भगवान भाव को बनाये रखना चाहता है, इसलिए इससे आगे वाली पूर्ण एकीकरण की अवस्था की वह अपेक्षा नहीं रखता।

अतिशून्य को भेदन साधना की चरम परिणति है। महाशून्य को भेदकर चिन्मय जगत मे प्रवेश के पश्चात् इस चिन्मय जगत को छोड़ना होता है इसको छोड़ने पर अतिशून्य का भेद होता है। यह भेदन संतो की भाषा मे मानसरोवर स्नान भी कहलाता है। मानसरोवर स्नान याने मन की पूर्ण शुद्धि। इस अवस्था में साधक पूर्णत्व के अधिष्ठान पर आरूढ़ होकर शिव स्वरूप हो जाता है। तब वह स्व देश में ही सारे जगत, सम्पूर्ण विश्व को देखता है।

ऐसा योगी देश, काल, सीमा सब के परे हो जात है। वह सर्वसमर्थ तथा सब जगह विद्यमान रहता है। नादानुसन्धान की निष्पति दशा इसी अवस्था का पर्याय है। इस स्थिति मे नाद का विलय हो जाता है। शून्य साधना का नाथ साधनाप्रणाली में बड़ा गुणगान किया गय है।[1] पूर्ण रूप से नाथ पदवाच्य होने के लिए तीन शून्यो की रहनी जानना आवश्यक है, तब सम्पूर्ण पाप पुण्य से विवर्जित अवस्था की प्राप्ति होती है।[2]

ब्रह्मअग्नि–अग्नियोग

नाथ सम्प्रदाय में अग्नियोग अथवा ब्रह्मग्नि प्रज्वलन किया का विशष स्थान है।[3]

नाथ साहित्य और नाथ वाणियों में बार–बार ब्रह्मअग्नि का उल्लेख मिलता है। यह अग्नि साधन आध्यात्मिक जीवन का एक अविच्छिन्न एवं आवश्यक अंग हैं।

---

[1] सुंनि ज माई सुंनि ज बाप। सुंनि निरंजन आपे आप।
सुंनि के परचे भया सथीर। निहचल जोगी गहर गभीर।।
(गो०बा०231 पृ०73)

[2] तीनी सुन्यं की रहनी जानें, ता घटि पाप न पुनां।
– गो०बा० पृ० 92

[3] प्रजाले अगनि लगावै बंध। काया अजरावर थिर हवै कंथ। 3।
(घोड़ाचाली)–पौड़ी हस्तलेख
चालन चंदवा षिस षिस पड़े। बैठा ब्रह्म अगनि परजले।
आडे आसण गोटिकाबंध। जावत प्रिथिमी तावत कंध।। 49।। सबदी
(गो०बा०)
अगनि ही जोग अगनि ही भोग। अगनि ही हरै चौसठि रोग।।
जो इसि अगनि का जाणै भेव। सो आप ही कर्ता आप ही देव।।191।।
(सबदी–गो०बा०)

वैदिक युग में आर्यो के जीवन में अग्नि (देवता) का स्थान बहुत ऊंचा था। तीनों वर्ण तथा तीनों आश्रमों के मनुष्य विभिन्न अग्निहोत्रों तथा यज्ञों के रूप में किसी न किसी प्रकार से अग्नि की उपासना करते थें। ब्राह्मण भी अग्नि का आधान किये बिना आत्मशुद्धि और परमेश्वर भी उपासना अथवा योगकर्म का अधिकारी नहीं हो सकता था।

जरथ्रुस का ईरानी धर्म, अग्नि उपासना की ही भित्ति पर आश्रित था। पारसी धर्म आज तक भी अग्नि उपासना का धर्म है।

जैन योग साहित्य बौद्ध योगाचार मत में भी यत्र–तत्र अग्नि का उल्लेख मिलता है। किन्तु उनमे अधिकांशतः केवल शरीरस्थ अग्नि का ही संकेत है, जिससे अर्हत पद तथा प्रज्ञा में प्रतिष्ठित होने से पूर्व, साधक चित्त और शरीर के मलांश को दग्घ करने का कार्य लेता है।

इस प्रकार अग्निसाधना के दो रूप सामने आते है। एक तो यज्ञादि के वैज्जिक कार्य कलाप में अग्नि की उपासना और दूसरी योग मार्गीय देहस्थ अग्नि साधना।

नाथ सिद्धान्तों की साधना–पद्धति में केवल देहस्थ अग्नि की ही प्रकिया का उलेख मिलता है। शरीरस्थ ब्रह्मग्नि में नित्य काया को होम करना नाथ योगी का यज्ञकर्म है। वैदिक याग और तांत्रिक महाव्याहति होमों से नाथ योगी का होम सर्वदा भिन्न है। ऐसा होमकर्ता योगी स्वयं नाथ स्वरूप हो जाता है और महादेव भी उसके चरणों की वन्दना करते है।[1] नाथयोगी का यह अग्नि साधन उसे पूर्णत्व के लक्ष्य पर पहुंचा देता है।

---

[1] ब्रह्म अगिनि मे होमे काया।

योग मार्ग मे इस अग्नि–साधना का उलेख हमे अन्यत्र भी मिलता है। श्वेताश्वेतरोतनिषत् के अनुसार योग सिद्धि लाभ सोमपान, वाजुजय तथा अग्नि–अभिमंथन में है।[1] देह तथा प्रणव की अरणियों का निर्मथन इस क्रिया का कूल है। इस निमर्थन से प्रकट हुई अग्नि ही उस निगूढ़ देव का साक्षात्कार कराती है।[2] तब साधक योगाग्निमय शरीर को प्राप्त कर जरा, मृत्यु और व्याधि तीनों को खण्डित कर लेता है।[3]

'योगयाज्ञवल्क्य' में गार्गी को उसके परम योगी पति द्वारा दिये गये योगविद्या के उपदेश में भी इस योगाग्नि का उल्लेख मिलता है।[4] अतः साधक समाज अति प्राचीन काल से ही इस अग्नि से किसी न किसी प्रकार परिचित रहा है।

मध्ययुगीन इसाई साधकों में विशेषकर सेण्ट फिलिप्स नेरी तथा सेण्ट केथराहन औब सीना, इस योगाग्नि में निरन्तर काया को होम करते रहे।[5] मध्यपूर्व के प्रसिद्धि सूफी साधक वैजीद (विस्तून) ने जब कहा कि "बारह वर्ष तक मैं अपनी आत्मा के लिए लोहार बना रहा और साधना की अग्नि में

तास महादेव बन्दे पाया।। 18।। सबदी। (गो०बा०)

1 अग्निर्यत्राभिमध्यते वार्युत्राधिरूध्यते।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः।। 6।2 (श्वेताश्वेततर)

2 स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणयं चौत्तरारिणम्।
ध्यान निर्मथनाभ्यासादेवं पश्येनिगूढवत्।। 141।2 (श्वेता)

3 न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।। 12।2 (श्वेता)

4 आयुर्विधःतकृत् प्राणो निरूद्धस्त्वासनेन तु।
याति गार्गि ! तदापनात् कुलं वन्है शनैश्शनैः।।
वायुना वातितौ वहिनरमानेन शनैः शनैः।
ततो ज्वलीते सवेषां स्वकूले देह मध्यमे।। (2, 3। 12 योगेयाज्ञवल्क्य)

5 हक्सले, पिरीनियल फिलौसफी, पृ० 321

उसका दाह करता रहा" तब उसका संकेत सम्भवतः कुछ इसी प्रकार की योगाग्नि की अनुभूति की ओर ही था।[1] इसका दाह प्रत्येक साधक को सहना पड़ता है। और सप्तधातुमय शरीर तथा उसके मल की आहुति उसमे देनी पड़ती है।

विचारपूर्वक यदि देखा जाय तो इन होम प्रक्रियाओ में चरम लक्ष्य की भिन्नता नहीं मिलेगी। चाहे वह वैज्जिक यॉग कर्म हो अथवा देहस्थ काया होम वैदिक काल की कर्मशील जीवन धारा मे जिन विभिन्न योगों का क्रिया कलाप देखने को मिलता है, पुरूषमेध यज्ञ उनमे से एक प्रधान यज्ञ है। जो पुरूष सब भूमियों का अतिक्रमण करने वाली स्थिति को प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसके लिए ही इस यज्ञ का विधान है। पुरूषमेध यज्ञ करने वाला साधारणतः आत्मा में अग्नि का समारोपण कर वन में चला जाता है और फिर घर लौट कर नहीं आता क्योंकि आत्मा में अग्नि का समारोपण कर फिर गृहस्थ जीवन नही चलता। जो घर लौटने की इच्छा करता है वह अग्नि का समारोपण आत्मा मे न करके दो अरणियों में करता है। आत में अग्नि का समारोपण ही देह एवं मन की उस शुद्धता को प्राप्त होना है। जिसके बाद फिर गृहस्थ जीवन के शुद्धशुद्ध कर्मो के कर्ता होने का भार मन और देह नहीं वहन कर सकते। इस प्रकार वैज्जिक याग कर्म भी यज्ञकर्ता के शुभाशुभ कर्मो का दाह करता है और देहस्थ योगाग्नि अथवा कायस्थ होम प्रक्रिया भी यहीमल दहन कार्य अथवा शुभाशुभ कर्म दहन करती है।

---

1 हक्सले, पिरीनियल फिलौसफी, पृ० 317

परमतत्व की प्राप्ति के प्रतिबन्धक (शुभाशुभ कर्म) जब तक दग्ध न हो जायेंगे, तब तक वे तत्व की प्राप्ति नहीं होने देंगे। दाहिका शक्ति के अधिष्ठाता अग्निदेव ही है। अतः वैज्जिक यज्ञ कर्म हो अथवा देहस्थ अग्नियोग का होम, अग्निदेव की शरण जाना ही पड़ता है। वेद मे इस तथ्य की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या प्रार्थना के रूप मे है–

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठा ते नमउक्ति विधेम।।18।।

"हे अग्निस्वरूप परमेश्वर, आप ही मेरे धन हैं, सर्वस्व है, अतः आपकी प्राप्ति के लिए आप मुझे उत्तम मार्ग से अपने चरणों के समीप पहुँचाइए। मेरे जितने भी शुभाशुभ कर्म है, आप उन्हे जानते है, मैं इन प्रतिबन्धकों के होते हुए आपको नहीं पा सकता अतः आप उन सबको दूर कर दें और मुझे अपना लें। मै। बार–बार नमस्कार करता हूँ।"

देह में अग्निमण्डल कहॉ है? देहस्थ अग्नितत्व का कया स्वरूप है? एवं यह काया होम क्या वस्तु है? योग साहित्य एवं नाथों का देहतत्व प्रधान योग पंथ इन सबका सम्यक् उत्तर देता है।

देहस्थ अग्निमण्डल मनुष्य शरीर के 'मध्यभाग' में त्रिकोणाकार रूप मे ही वर्तमान है। उसका स्वरूप दिव्य आभामय तप्त कांचन की तरह है।[1] देह का यह 'मध्यभाग' गुदास्थान से दो अंगुल ऊर्ध्व तथा मेढ्रास्थान से दो अंगुल अतः भाग में स्थित है।[2] यह अग्निमण्डल सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त अग्नि का

[1] देहमध्ये शिखिस्थानंत्रिकोणं तप्तजाम्बूनदप्रभं मनुष्यांणाम्
(शांडिल्योपनिषते 4।4।1)

[2] गुदाद्दयगुंलादूर्ध्व मेढाद्दवयर्गुलादघौ देहमध्यं मनुष्याणां भवति ।

मूल श्रोत है। देह में कार्य भेद से इस अग्नि का उल्लेख भिन्न–भिन्न नामों से किया जाता है। नाथपंथ में इस तरह के पॉच नाम मिलते है–मूल अग्नि, भुयंगम–अग्नि, रूद्र, अग्नि, काल अग्नि तथा ब्रह्म अग्नि। इन पांच अग्नियां की साधना भरपूर रखना ही सिद्ध की पहचान का संकेत है।[1]

मूल अग्नि की साधना रक्त, पित्त, ऑव का शोधन करती हुई सम्पूर्ण शरीर की शुद्धि करती है। भुयगंम अग्नि प्राण को स्थिर कर प्रत्याहार मे स्थिति लाती है, तब साधक योगी भिक्षार्थ एवं भोजनार्थ ग्रामादि मे कही भी जाने की इच्छा नहीं करता। रूद्र अग्नि नव द्वारो की बहिर्मुखी वृत्तियों को रूद्ध कर मन का शोधन कर देती है। काल अग्नि की साधना तीनों भुवनों का प्रामाणिक ज्ञान योगी को देकर उसे विज्ञानमय बना देती है। ब्रह्मअग्नि की साधना ब्रह्मनाल के भीतर का कौतुक है, जहॉ से शक्ति सहस्त्ररस्थ शिव में सम्मिलित होकर योगी को अखण्ड आनन्द प्रदान करती है। इन सब पर अधिकार प्राप्त करना ही पंचाग्नि साधना है।[2]

(शांडिल्योपनिषते 5।4।1)

[1] पंच अगनि भरपूर रहै। सिध संकेत श्री गोरष कहै।

(गो०बा० 246)

[2] पंच अगनि (गो०बा०पृ० 246) मूल गो०बा० मे इन अग्नियों का कम भिन्न है। यथा मूलन अगनि, भुयंगम अगनि, ब्रह्म अर्गान, काल अगनि, रूद्र अगनि। यह कम पंचकोष और पंच नाड़ी साधना की दृष्टि से कुछ आगे पीछे लगता है। वाणियों के पद्यबद्ध रूप में कम इत्यादि की ऐसी सूक्ष्मताओं का ध्यान अधिकतर रखा भी नहीं जा सकता। दह में कार्यभेदानुसार शास्त्र में इन अग्नियों का नाम भिन्न–भिन्न रूप से भी आया है। योगशिखोपनिषत्, 5 अध्याय में उनका नाम कालाग्नि, मूलाग्नि, वाडवाग्नि, वैद्युताग्नि एवं सूर्याग्नि आया है। सुरेश्वराचार्य ने कालाग्नि, वाडवाग्नि, वैद्युताग्नि, पार्थिवाग्नि, एवं सूर्याग्नि नामों से उनका उल्लेख किया है। (दक्षिणामूर्ति वर्तिक 9।10) गर्भोपनिषद् में ज्ञानाग्नि, जठराग्नि, दर्शनाग्नि, आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि का विवरण मिलता है।

साधना पद्धति की सूक्ष्मता की दृष्टि से यह पंच्चाग्नि साधन अथवा काया होम प्रकिया क्या? इस विषय पर विचार करेंगे।

साधना का उद्देश्य जीव देहात्मबुद्धि को ऊपर के स्तरों मे पहुँचाकर उसे परमात्मबुद्धि मे परिणत कर देना है। साधरणतय मनुष्य दहाभिमान लेकर निम्न भूमि मे से ही शति का जागरण वाञ्छनीय है।[1] इसी निम्न भूमि से वह शक्ति रूप चिद अग्नि, दाह का कार्य आरंभ करती है और मलांश दग्ध प्रकिया शुरू हो जाती है।

देह ही स्थूल शरीर है। यही अन्नमय कोश भी है। जीव, जिन पंच–कोशों का खोल पहन कर शिव से जीव हो गया, इन कोशो का मन जब पूर्णतया दग्य हो जायेगा तब जीव में विशुद्ध सत्व की प्रतिष्ठा होगी। अन्नमय कोश का सर बिन्दु अथवा शुक्र है। शरीर से दोहन कर इस बिन्दु की आहुति यागाग्नि मे पड़ती है। कुंडलिनी का उद्बोध नही योगान्नि का प्रज्वलन है और आहुति पड़ना ही बिन्दु का ऊर्ध्व गमन करना है। और साधक का ऊर्ध्वरता बनने की प्रक्रिया का प्रारम्भ होना है। इस प्रथम आहुति के पड़ने पर वास्तविक साधना का आरम्भ होता है। सामान्य मनुष्यों के बिन्दु की गति बहिर्मुख होती है और इसीलिए वे मरण राज्य के अन्तर्गत है। साधक के बिन्दु कीगति ऊर्ध्व होती अतः वह वाव्तविक जीवन की ओर अग्रसर होता है, "मरणं बिन्दु पति जीवनं बिन्दु धारणात्" इसीलिए कहा गया

---

[1] प्राणपान समायोगोच्यन्द्रसूर्यकता भवेत्।
सप्तधातु भय देहमग्नितः प्रदहेद्बध ।।
।। 76।। योगवीजम् (प्र० गोरक्षटिल्ला, काशी वि०स०2008)

है। यहह पहली आहुति स्थूल शरीर–रक्त, पित्त, आंव सब का शोधन कर देती है। यही मूल अग्नि की साधना अथवा काया होम की प्रथम आहुति है।

बिन्दु के इस शोधन के पश्चात् उसकी द्वितीय आहुति पड़ती है। तब उसका ओज रूप बनक रवह प्राणमय कोश की पुष्टि करता है। इस द्वितीय आहुति के पश्चात् शनैः शनैः प्राणवायु स्थिरता को प्राप्त होने लगती है। भुयंगम अग्नि की साधना इसी का पर्याय है।

परन्तु यह ओज अभी शुद्ध नहीं कहलाता। अतः इस की पुनः तीसरी आहुति पड़ती है। तीसरी आहुति के पश्चात् ओज शुद्ध होकर मन के रूप में प्रकट होता है और मनोमय कोश की पुष्टि करता है। रूद्र–अग्नि–साधन इस तीसरी आहुति का ही पर्याय है।

इस तीसरी आहुति से मन मे सत्व की प्रतिष्ठा तो होती है किन्तु मनोमय सत्व भी सर्वथा निर्मल नहीं, क्योंकि मन का धर्म संकल्प एवं विकल्प है। इस विकल्पांश को दग्ध करने के लिए पुनः चतुर्थ अग्नि में आहुति देनी पड़ती है अथवा चाथी आहुति देनी पड़ती है। अब विशुद्ध संकल्प मात्र. शेष रह जाता है। इसे विज्ञान कहते है। यही विज्ञानमय कोश की पुष्टि करता है। यह चतुर्थ आहुति ही काल अग्नि की साधना है। यहरी योग भूमि है। और यहीं से ऐश्ववरिक जीव की भूमि का आरम्भ हो जाता है।

किन्तु विज्ञान मे भी द्वैत भाव है। अनुकूल ज्ञान एवं प्रतिकूल ज्ञान, विज्ञान का धर्म है। प्रतिकूल ज्ञान दुखः मूलक प्रतिकूल ज्ञान रूप मल को दग्ध करने लिए पच्चम अग्नि में उसकी आहुति देनी पड़ती है। पॉचवी आहुति में विज्ञान शुद्ध होकर आनन्द रूप में परिणत होता है और यही

आनन्दमय कोश का अमृत रूप है। इसकी फिर आहुति नहीं देनी पड़ती। अग्नि में आहुति की प्रक्रिया, मल दहन तक ही चलती है। दाह्य वस्तु जब शेष नही रहती तो दाहिका शक्ति का कार्य भी बन्द हो जाता है। तब अग्नि, अग्नि न रहकर विशुद्ध ज्योति अथवा आनन्द मात्र रह जाती है। तब अखण्ड रूप से अमृत का स्राव होता है।[1] नाथपंथ की पञ्चम अग्नि इस प्रकार ब्रह्म अग्नि की साधना का आनन्द है; शिवशक्ति का अहिर्निश मिलना[2] और काया होम[3] की पूर्णाहुति, जो साधक को पूर्णतत्व प्रदान कर शिव का सेव्य बना देती है।

दाहिका शक्ति का कार्य बन्द हो जाने के कारण इस स्थिति में अग्नि विशुद्ध ज्योति मात्र रह जाती है और हवि भी आनन्द रूप विशुद्ध ज्योति स्वरूप हो जाता है। अतः हवि, अग्नि, होम प्रक्रिया सब कुछ यहॉ उस परम ब्रह्म के निर्वाचय एक आनन्द तत्व के ही रूप हो जाते है। तब इस अग्नि का ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा नाम भी क्या रखा जा सकता है। गीता में इसी भाव का साम्य नीचे लिखे श्लोक में मिलता है:—

ब्रह्ममार्पणं ब्रह्महविर्वब्रह्माग्नी ब्रहह्मणा हुतम्।
ब्रह्मेप तेल गंतव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना।।

---

[1] ब्रह्म अगनि सोषो सरीर।
तहां झरै अमी नीझर सुनीर।। (पृथ्वीनाथ—पौड़ी हस्तलेख)

[2] सिव धरि सकति अहैनिस रहै। ब्रह्म अगनि जती गौरष कहै।। (गो०बा०, पञ्च अग्नि पृ० 246)

[3] अवधू ब्रह्मम अगनि में होमे पंच, आतम जरै व लागें अंच।
पांचु जारि जीवता राषै, चन्दरनाथ जोगेसर भाषै।।
— चन्द्रनाथ जी की सबदी। श्रीनाथशतकम्
(प्रकाशक यो०प्र० समा, गोरक्षटिला काशी, वि०सं० 2010)

इस काया होम का भीतरी पर्याय पंच नाड़ी साधना है। अतः कुण्डलिनी का उद्बोधन यह होमाग्नि ही है। साधारण मनुष्यों का श्वास इड़ा और पिण्गला नाड़ियो में रहता है अतः वे देहाभिमान लेकर आत्म विस्मृति के अन्धकार में भटकते रहते है। जब तक कुण्डलिनी का उद्बोधन नहीं होता और ईड़ा, पिंगला का अतिक्रमण कर जीव का प्रवेश सुषुम्ना रूप मध्य नाड़ी में नहीं होता तब तक वह सामान्य देह बुद्धि से उपर नहीं उठ पाता। सुषुम्ना में प्रवेश ही दिव्य जीवन की भूमि का प्रथम सोपान है। उस समय अन्तर के प्रकाश का साक्षात्कार आरम्भ हो जाता है।

पुनः सुषुम्ना के अन्दर सिथत बजा नाड़ी में प्रवेश होता है और सूक्ष्म शरीर के द्वितीय स्तर में स्थिति प्रप्त होती है। इसके बाद चित्रिणी नाड़ी में प्रवेश होता है और विकल्प रहित ज्ञान का उदय होता है। इसी को साधकगण विश्रान्ति अवस्था भी कहते है। सूक्ष्म दे हके तीसरे स्तर में स्थिति अथवा कारण शरीर में स्थिति भी इसे ही कहते है। चित्रिणी नाड़ी के भीतर ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश पाने पर स्वरूपवस्थिति अथवा शुद्ध कारण रेह में स्थिति प्राप्त होती है जो चैतन्यमय अथवा विशुद्ध अमृतानन्द की स्थिति है।[1] यही ब्रह्ममनाल में स्थिति नाथों की शब्दावली में, ब्रह्म अग्नि को ब्रह्म नाल में धरना है।[2]

---

[1] "अखण्ड महायज्ञ" भूमिका म०म०पं० गोपीनाथ कविराज।

[2] ब्रह्म अगनि ब्रह्म नाली धरि लेउ आंण।
उलटंत पवना रवि ससि गिगन संमान। गो०बा०, पृ० 246)

कबीर आदि मध्ययुगीन (निर्गुण) संतों को यह अग्नियोग अथवा साधन का यह कूट नाथों से ही दाय के रूप में मिला। नाथ वाणियों के पश्रात् संत वाणियों में ब्रह्म अग्नि का उल्लेख नाथपंथी अर्थ में देखने को मिलता है।[1]

कायसिद्धि

कायसिद्धि भारतीयों के लिए अपरिचित शब्द नहीं है। अश्वत्थामा, बलि व्यास, हनुमन्त, युधिष्ठिर, परशुराम आदि के अमर होने का विश्वास पुराणों के द्वारा भरतीय जनता में प्रचलित है। योगियों की अमर काया के सम्बन्ध में भी भारतीय जन हृदय अविश्वास नहीं रखता। "गोरख गोपालं बूढ़ा बालं" और "गोपीचन्द–भरथरी" का आज भी किसी किसी भाग्यशाली को दर्शन दे जाना सुना जाता है। अध्यात्म दर्शनकी साधना प्रणालियों में कायसिद्धि की अपेक्षा बाली बात अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती है। भारत ही नहीं विदशों में भी कायसिद्धि का विषय परिचय उपलब्ध होता है। ईसाई सम्प्रदायों में पाया जाता है। ईशु खीष्ट के शरीर के सम्बन्ध में भी इसी तरह का विवरण मिलता है। 'रिसरक्शन' के पश्चात् वे सशरीर आकाश गमन कर गये थे। उनके इस आकाशगामी शरीर को ईसाई मत में 'एसेन्शन बौडी' आख्या दी जाती है।

बौद्ध मत में देह सिद्धि का उल्लेख मिलता है। अभिधर्मकोश में 'स्कन्ध सिद्धि' का विवरण विस्तार के साथ आया है। श्वेताश्वेतरोपनिषद् में भी सिद्ध देह का उल्लख मिलता है। योग कौशल के द्वारा जब पंच महाभूतों

प्रगट प्रकास ज्ञान गुरू गमि थें, व्रह्म अगनि परजारी।
ससिहर सूर दूर दूरतर, लागी जोग जुग तारी।। इविद, पृ० 907)

का उत्थान और उन पर अधिकार हो जाता है तब योग विषयक पांचों सिद्धियाँ प्रकट हो जाती है, तब योगी का शरीर योगाग्निमय होकर जरा, व्याधि और मृत्यु के प्रभाव से रहित हो जाता है।[1] प्रस्तुत निबन्ध–ग्रन्थ के आरम्भ में उल्लिखित विवकेयोगज्ञान सिद्धान्त वाले सभी सधना वम्प्रदायों मके कायसिद्धि का विवरण आया है। संक्षेप में कायासिद्धि के साधनो का परिचय निम्न प्रकार है।

वियोग तथा योग मार्ग

साधारण जीव स्थूल देहावच्छिन्न भाव में रमण करता है इसलिए देहस्थ चिद्स्वरूप आत्मा की प्रतीति उसे नही होती। वियोग मार्ग की साधना के द्वारा पहले स्थूल शरीर से चिद् सता को अलग करना होता है। इस कार्य के हो जाने पर देहाभिमान जाता रहता है। अब पृथक हुई चिद् आत्मसत्ता को योग मार्ग का अवलम्बन लेकर फिर स्थूल सत्ता से मिलाना होता है। उत्कट कर्म के पश्चात स्थूल देहसत्ता में चिद् एकीभूत हो जाती है। और देह अपनी पञ्चभूतात्मक प्रकृति को त्याग करके आत्मसत्ता के चिद् अमृत तेज में परिणत होकर काया को सिद्ध बना देता है।[2] यह काया जरा मृत्यु व्याधि से परे हो जाती है।

---

[1] पृथव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृते।
नातसय रांगी न जार न मृत्यु प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम्।।

[2] यहु तन साचु साचु का ध्रवा। रूध्र पलट अमीरस भरवा।
अतीत पुत्स ज्ञान पद परसै। अवचल होई सरीर दरसै।
जरा मृतु काल का भछिण। निसपति जोगी जोगी का लछिण।

बिन्दुयोग

बिन्दु शोधन और तत्पश्चात् विन्दुजय इस कौशल के अन्तर्गत आते है। आदि विन्दु मनुष्य शरीर में शुक्र के रूप में वर्तमान है। यह शुक्ररूप बिन्दु अमरत्व और मरण दोनों का हेतु है। 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बन्दु धारणात्'' इसी लिए कहा गया है। दुरूपदिष्ट मार्ग द्वारा एवं मुद्रा विशेष के सम्यक अभ्यास से शुक्र शोधन होता है। शोधन की प्रथम अवस्था में यह शुक्र, दूसरी में ओज, तीसरी में बिन्दु, चाथीमें मर्ग, पांचवी में ब्रह् तेज, छठी में ब्रह्म और सातवी में अनामी कहलाता है। इस साधना से बिन्दु पूर्णतया स्थिर हो जाता है।[1]

कार्य भेद से मनुष्य देह में विन्दु दो प्रकार से विद्यमान रहता है। शिव बिन्दु और रजो बिन्दु। रजोबिन्दु नाभि और शिवबिन्दु मस्तक के मध्य भाग में रहता है। रजोबिन्दु का उर्ध्व निपात करके उसे शिवबिन्दु में मिलाकर शिवशक्ति का एकीकरण करके पूर्ण बिन्दुजय और बिन्दुयोग की सिद्धि होती है और जरा मृत्यु का निवारण हो जाता है।[2] कहना न होगा कि नाथ मतापदिष्ट साधनाप्रणाली में बिन्दुरोग का महत्वपूर्ण स्थान है।[3]

वायुयोग

यह भी कायसिद्धि का हेतु माना गया है। वायुशक्ति को प्राणशक्ति भी कहा गया है, परन्तु अपने साधारण रूप में जब वायु सामान्य जीव देह में

---

[1] बिन्दुयोग, महात्मा ओम्, पृ० 36

[2] वही, पृ० 38

[3] व्यन्द ही जोग व्यन्द ही भोग। व्यन्द ही हरे चौसठ रोग।
या बिंद का कोई जाणे भेव। से आपै करता आपै देव।
गो०बा० 148, पृ० 51।

क्रिया व्यापार रत रहती है ता`जीव की मृत्यु का हेतु होती है। साधारणतया वायु से यहां ततत्पर्य श्वास–प्रश्वास से लिय गया है। श्वास प्रश्वास जब तक इड़ा–पिंगला नाड़ियों की प्रधानता लेकर चलता है तब तक मनुष्य काल राज्यान्तर्गत रहता है। परन्तु इड़ा पिंगला का अतिक्रमण करके यदि वायु मध्य सुषम्ना पथ में सञ्चरित हो गयी तो आान आवरण परिच्छिन्न हो जाता है। यह संचार, योग कौशल से लम्बे काल तक स्थिर किया जाता है तब वायु एक अत्युत्कट तड़ित शक्ति में परिणत होकर शरीर की चौसठ सन्धियों में व्याप्त हो जाती है। व्याप्त होकर यह तड़ित शक्ति शरीर के रक्त को भी तड़ित में बदल देती है और काया सिद्ध हो जाती है। ऐसे योगी के देह की फिर छाया नहीं पड़ती।[1]

बनस्पति योग

नाग (सीसे का भस्म), वंग (टिन का भस्म) और वनस्पति के प्रयोग से काय पलटने का उल्लेख नाथ वाणियों में मिलता है।[2] गढ़वाल के प्रसिद्ध आयुर्वेद के शोधकर्ता पंडित भैरवदत्त अष्टवर्गीय को "नाथ निघटु" नामक एक ग्रन्थ प्रप्त हुआ था। इसमें विभिन्न पीठों में पायी जाने वाली अद्‌भुत वनस्पतियों का उल्लेख है, परन्तु भाषा के सांकेतिक होने के कारण इसमें वर्णित स्थानों का पता लगाना दुष्कर है। पंडित भैरवदत्त जी इस पर

---

[1] अवधू नव घाटी रीकि लै बाट। बाई बणिजै चौसठि हाट।
काया पलटै अविचल विध। छाया विवरजित निपजै सिध।।
गो०बा० 50, पृ० 19

[2] निचल धरि वैसिवा पवन निराधिवा कदै होईबा रोगी।
बरस दिन में तीनि बार काया पलटि या, नाग बंग वनासपती जोगी।
वही, पृ० 32

निरन्तर शोध में लगे थे और अष्टवर्ग आदि कतिपय लुप्त औषधियों का उन्होनें पता लगाया थ, किन्तु असमय मे उनका देहान्त होने के कारण यह कार्य अधूरा रह गया है।

उपरोक्त 'नाथ निघंटु' में काय कतिमय वनस्पतियों का उल्लेख निम्न प्रकार आया है :

'अचलेश्वर जी रा कुन्डरा अगाड़ी येक देवरा है। थारा दक्षिण दिसा तर्फ पीपल जैसी पेड़ है। पानीं का ऊपर भभूत जैसी है। तोडण से दूध निकलती है। दूध आंख्यों आजंणै भूमि निधान देखे, देवशरण ही सब रोग जांय, खावै तो तीन हजार बरस जीवै, बज्रकाया हो।'[1]

खेंचरी

खेचरी मुद्रा की पूर्ण सफलता काय सिद्धि की हेतु मानी गयी है। योगी सम्प्रदायों तथा योग शास्त्र में प्रचलित है कि सहस्त्रार से नरन्तर अमृतमय सोमरस का क्षरण होता है और वह अधोभाग में स्थिर कालाग्नि कुण्ड द्वारा सोख लिया जाता है। योग कौशल से यदि इस क्षरण को रोक कर उसका पान कर सके तो अमृामय परमतत्व की प्राप्ति होती है और इस सोमरस के प्रभाव से काया जरा, व्याधि और मृत्युविहीन हो जाती है।[2]

खेचरी योग ही एक कौशलयुक्त कर्म है। इसमें योगी जिह्ना की पलट कर तालूमूल में शंखिनी विवर के द्वार से ब्रह्मरन्ध्र के मुँह तक ले जाता है और यहॉ से क्षरित हो रहे अमृत का पान करके अपना कार्य साधन करता

---

[1] प्रष्टवर्ग सूची, भैरवदत, पृ० 18, लैन्सडाउन, 1949 ई०।

[2] न रोगी मरणं तन्द्रा न निन्द्रा न क्षुधा तृषा।
न च मूछां भवेतत्य यो मुद्रां वेति खेचरीम।।
ह०यो०प्र० 3/39

है। योग कुण्डल्युपनिषदत में खेखरी विद्या का विस्तार से वर्णन हुआ है। नाथ मत मकं खेचरी का बड़ा गुणगान किया गया है। खेखरी सिद्ध योगी तन्द्रा, निद्रा, क्षुधा, तृषा मूर्छा और मरण सबकी जीत लेता है। सृष्टिमय बीजों में एक ही बीज ओमृ है, मुद्राओं में एक खेचरी है, देवों में एक निरालम्ब देव है और अवस्थाओं में एक मनोन्मनी अवस्था है।[1] यही सार वस्तुएं है।

<u>रसवाद</u>

रसेश्वर सम्प्रदाय में कायसिद्धि पर विस्तार पूर्वक विवेचना हुआ है। नागार्जुन, गारक्ष आदि नाथों की गणना रस सिद्धों में भी होती है। आंशिक रूप से नाथ मत में भी रसायन के उपयोग से कायसिद्धि उपदिष्ट है।

रसवाद में रस का तात्पर्य प्रधान रूप से पारे लिया जाता है। पारा शिव बिन्दु कहा गया है। रसेश्वर मत में पारे को मारने की विभिन्न क्रियाओं का उल्लेख मिलता है। मारा जाने पर, पारे में मद्भुत रंग देने की क्षमता आ जाती और इसी प्रक्रिया द्वारा सामान्य धातुओं को पारा सुवर्ण में परिवर्तित कर देता है। पारे का यह पहला प्रयोग है और विस्वास किया जाता है कि यह प्रयोगविधि आज भी गुरू परम्परा द्वारा किन्हीं योगियों के पास सुरक्षित है।

पारे का दूसरा प्रयोग रसगुलिका अथवा रसमणियों के बनाने में है। यह गुलिकायें विभिन्न प्रकार की शक्तियों को देने में समर्थ समझी जाती है। मनुष्य शरीर के भीतर स्वप्रकाश आत्मा के उपर अनन्त कालसे संस्सार रूप

---

[1] एकं सृष्टिमयं बीजमेका मुद्राच खेचरी।
एको देव निरालम्ब एकावस्था मनोन्मनी।।
ह०यो०प्र० 3/54

मापा के पड़े हुए आवरण को निमिष मात्र में छिन्न कर देने की क्षमता भी इन रसमणियों में होती है। इस विद्या को हेम विद्या, चामीकर विद्या, हरगौरी शास्त्र आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। रसवादियों का कहना है कि उनका रसदर्शन ही परवर्ती भारतीय षड़दर्शन और यूनानी चतुर्दर्शन धाराओं का रहस्यवादी मूल स्रोत है।

रसवाद के साधारणतया चार भाग माने गये है। (1) रसायन या कीमिया, (2) वैद्यक, (3) ज्ञान और (4) योग। प्रथम दो भागों को अन्त के दो भागों की प्राप्ति का साधन माना है। रसवादियों का लक्ष्य योग द्वारा अजर–अमर जीवन्मुक्ति ही रहा है।

रसायन अथवा कीमिया के अन्तर्गत साधारण खनिजों, धातुओं को वनस्पति आदि के प्रयोग द्वारा बहुमूल्य धातुओं में परिणत किया जाता है। वैद्यक में विभिन्न रसायनों से प्रस्तु की गयी औषधियों द्वारा असाम्य रोगों की चिकित्सा का विधान आता है। ज्ञान में रयि, प्राण और आत्मा का ज्ञान तथा मनुष्य का विश्वात्मा से विज्ञानमय सम्बन्ध आदि विषय आते है। योग के अन्तर्गत ब्रह्मविद्या आती है जो जीव को शिवत्व पद पर आरूढ़ करती है।

रसवाद में पारद से निर्मित कतिपय रसायनों का विधान है जिनके प्रयोग से शरीर तत्वों का पोषण किया जाता है। ये रसायन शरीर के प्रत्येक कोश और प्रत्येक तन्तु में पूर्णतः घुल–मिल जाते है। इससे शरीर प्रस्तरान्तरित होकर एक प्रकार की परदकाया में परिवर्तित हो जाता है। इस विधान में भी सूक्ष्म आत्मसत्ता और स्थूल देहसत्ता एकीभूत होकर सिद्धकाय रूप में मिश्र सत्ता हो जाती है। यह सिद्ध देह हरगौरीतनु नाम से ख्यात

है।[1] कहना न होगा कि नाथ मत में भी परद, प्रधान रसवाद के प्रयोगो की उपयोगिता मानी गयी है।[2] वायुवादी और मुद्रावादी हठयोगी गण, सहजयानी तथा बज्रयानी बौद्ध सि०, वैष्णव सहजिया, नाथसिद्ध और कतिपय निर्गुण संत ायिसिद्धि के विधान को मानते है। सिद्ध देह को इन विभिन्न मतो में पक्वदेह, सिद्धदेह, हरगौरीतनु, प्रणवतनु, शाक्त देह, भवदेश, सिद्ध काय और हंसदेह आदि कहा जाता है। लक्ष्य में अवन्तर भेद नहीं साधनों में भले ही विविधता हो। बौद्ध सहजीया "महासुख" द्वारा जिसका लाभ करते है, रसेश्वर सिद्ध उसे 'रस' से प्रप्ति करते है, इसी प्रकार नाथ सिद्ध सहस्त्रार से क्षरित अमृत पान अथवा चन्द्र सूर्य के एकीकरण द्वारा और वैष्णव सहजीया उसी को 'भाव' द्वारा पीते है।

नाथ मत की साधना प्रणाली में में कायसिद्धि का सबसे अधिक महत्व है। सप्त धातु के काया पिंजर में जीव सूबे की भॉति बद्ध पड़ा है।, सदगुरू ही योगयुक्ति से पार लगा सकते है।[3] काया से दूसरा आगत तत्व नहीं है।[4] योगी की काया यदि सिद्ध नहीं है तो वह योगी कहलाने के योग्य नही,[5]

---

[1] एन्सियन्ट इण्डियन केमिस्ट्री एण्ड एल्किमी आव दी कोमिको फिलासाफ्रिककल सिद्धान्त सिस्टम आव दी इंडियन मिस्टिक्स, सी एम० नारायण स्वामी ऐप्यर, थर्ड ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स, मद्रास, १६२४ ई०

[2] भग मुषि व्यंद अगनि मुषि व्यंद अगति मुजि पारा। जो राषै सासे गुरू हमारा।।
गो०बा० पृ० 49

[3] सप्तु धात का काया पिंजराता मांहि जुगॉत बिन सूवा।
सतगुर मिले त उबरै बाबू, नहीं तो परले हवा।
गो०वा० पृ 115

[4] काया ते कछू अगम बतावै ताको मंडू भाई ।। वही, पृ० 32

[5] त्रिया न स्वाति वेद र रोगी रसायणी पर जाचि षाय।
बूढ़ा व जोगी सूरा न पीठि पाछे घाव यतना न मानै श्री गोरषराय।
वही, पृ० 32

साक्षात् अभेद आलाचन है तथा मूखरी शक्ति का गुण 'जगत सत्ता स्व सत्ता काही अंग' बोधमय है।

मूल चित्शक्ति (निष्कल अवस्था)

↓

बामेश्वरी (सृष्टि उन्मुख)

↓

खेचरीशक्ति (चिदाकाश में संचरण शील)

↓

गोचरीशक्ति (अविकल्पन, अभेद निश्ख्यात्मक बोध, निर्विकलप बोध एवं निरभिमान अवस्था मय)

↓

टिक्चरी शक्ति (साक्षात अभेद आलोचनशील)

↓

भूचरी शक्ति (जगल सत्ता स्व सत्ता का ही अंग बोध मय)

'यस्य ब्रहमाण्ड भांडे हि' के अनुसार मनुष्य देह ब्रहमाण्ड की एक लघु प्रतिमूर्ति है। इन सब शक्तियों का प्रसरण मनुष्य देह में भी आदि मूल सहस्त्ररस्थ शिव से इसी क्रम में हुआ है। परन्तु देह में इसी नाम के चार चक्रों से यह शक्तियाँ आच्छदित है, अतः परिच्छिन्न है। शकितयों के इस परिच्छिन्न हो जाने के कारण देहस्थ शिव को अपने शिवस्थ का ज्ञान नहीं और वह जीव अथवा पशु हो गया है।

खेचरी चिदाकाश में निरन्तर सञ्चरण करने की शक्ति है। मनुष्य देह में खेचरी चक्र द्वारा यह ढकी हुई रहती है और जीव चिदाकाश में संचरण नहीं कर पाता। खेचरी मुद्रा के अभ्यास द्वारा यह खेचरीचक्र भेदन होता है। इस तरह चक्र भेद हो जाने पर मूल शक्ति का साक्षात्कार होता है और पशु अपने पशुपति रूप को प्राप्त हो जाता है।

अब खेचरी से और नीचे के स्तर पर शिव अथवा मूल आत्मा का प्रसरण हुआ। इस प्रसरण के साथ उसमें मन, बुद्धि और अहंकार की शक्ति है, परन्तु शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि एवं शुद्ध अहंकार की शक्ति। गोचरी शक्ति के अन्तर्गत मन में निविकल्प बोध, बुद्धि में अभेद निश्चयात्मक बोध और अहंकार में निरभिमान अवस्था रहती है। गोचरी चक्र द्वारा जीव देह में यह गोचरी शक्ति ढक जाती है, तब मन में विकल्प ज्ञान, बुद्धि में भेद तथा अनिश्चयात्मक बोध व अहंकार में अभिमान अवस्था आ जाती है। अतः किसी प्रकार इस चक्र का भेदन कर मूल शक्ति का साक्षात्कार करने पर यह भेद ज्ञान दूर हो सकता है।

अपनी शक्तियों को परिच्छिन्न करते हुए स्वयं जीव दशा की ओर बढ़ते हुए शिव और भी नीचे के स्तर पर आकर दिक्चरी पर अवस्थित हुए। मूल शक्ति के अन्तर्गत उनमें साक्षात अभेद आलोचन का ज्ञान था। परन्तु दिक्चरी चक्र में उस शक्ति के ढक जाने से भेद आलाचन का जीवत्व प्राप्त हो गया। साधन विशेष से यह चक्र भी जाना आवश्यक है ताकि मूल शक्ति फिर से प्राप्त हो।

मूचरी शक्ति के अन्तर्गत वह ज्ञान आता है जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत सत्ता, अपनी ही देह का एक अंग मात्र प्रतीत होती है। मनुष्य देह में यह ज्ञान, भूचरी शक्ति के भूचरी चक्र में आच्छादित हो जाने के कारण, लुप्त हो जाता है और जगत सत्ता भिन्न वस्तु प्रतीत हाने लगती हैं इस भेद ज्ञान के निवारण के लिए मूचरी चक्र का भेदन वाञ्छनीय है।

मनुष्य देश में इन शक्ति चक्रों का प्रसरण निम्न प्रकार से होता है–

सहस्त्रारस्य शिव

↓

चिन्मय राज्य (आज्ञाचक्र से ऊपर अतिशून्य से परे)

↓

खेचरी चक्र (चिदाकाश में संचरण कीश शक्ति का परिच्छिन्न होना, शिव का जीव बनना)

↓

गोचरीचक्र (मनविकल्प शक्तिमय, बुद्धि भेद एवं अनिश्चयातमक बोधमय और विकल्प बोधमय, अहंकार अभिमान अवस्था मय)

↓

टिक्चरी चक्र (जगत सत्ता का स्व सत्ता एवं स्व देह से भिन्न बोध)

शास्त्र में साधारणतया उपरोक्त चार चक्रों अथवा मुद्राओं का ही विवरण अधिकांशतः मिलता है। परन्तु परवर्ती नाथों के हिन्दी साहित्य में

इनकी संख्या बढ़ गयी। गोरख बानी में अष्ट मुद्रा (पृ० 247) शीर्षक रचना के अन्तर्गत आठ नाम गिनाये गये है। उनमनी, अगोचरी, चाचरी, भूचरी, षेचरी, षीरनी, जलश्री और मूलनी। यथा, चार अन्य चक्रों का अवस्थान भूचरी के अतिरिक्त कहा गया है। जो चार मत्रअन्य मुद्रायें कही गयरी है, वह रूप, रस शब्द, स्पर्श और गंध गुणों का विवरण लेकर वर्णित है। परन्तु यह रचना किसी प्रकार उपरोक्त चार मुख्य (खेचरी, गोचरी, दिक्चरी, भूचरी) मुद्राओं के वर्ण्य विषय का विरोध नही करती। कहा जा सकता है कि भूचरी के बाद चैतन्य तत्व और भी नीचे के स्तरों पर अवस्थित होता गया और क्रमशः चक्रों से आच्छादित होता हुआ अपना शुद्ध ज्ञान विलुपत करता चला गया। यह शुद्ध ाान मूल शक्ति के आवद्ध हो जाने के कारण क्रमशः रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गंध वाले पाशुत्वमय ज्ञान में परिणत हो गया। शक्ति के इस प्रसरण एवं शरीरस्थ चक्रों में उसके अच्छादन के इस क्रम को 'अष्टमुद्रा' में और बढ़ाकर निम्न प्रकार कर दिया गया है।

सहस्त्रारस्य शिव

↓

उनमनी (ब्रह्मण्ड असथांनि, परमजोति समो कृतव)

↓

अगोचरी (करणमध्ये, सबद कुसवद समाकृतव)

↓

चाचरी (चषि मध्ये, दिष्टि विदिष्ट समोकृतवा)

↓

भूचरी (नासिका मध्ये, गंध विगंध समीकृतवा)

↓

षेचरी (मुष मध्ये, स्वाद विस्वाद समीकृतवा)

↓

षीरनी (हदा मध्ये, ज्ञान दीप समीकृतवा)

↓

जलश्री (नाभीमध्यें, काल क्रोध समीकृतवा)

↓

मूलनी (यंद्री मध्ये, काम तृष्ण समीकृतवा)

संक्षेप में सेचरी आदि तत्वों का विषय परिचय यही है। अब इन परिच्छिन्न शक्तियों के पुनरोन्मीलन के साधन का विषय आता है। खेचरी मुद्रा ही यह गुह्यद्गुह्यतर साधन है।

इस मुद्रा में जिह्वा को उलट कर तालुमूल के के शंखिनी विवरर में प्रवेश कराय जाता है। फिर ब्रह्मरन्ध्र के द्वार से उसका संयोग करके खेचरी चक्र का भेदन होता है और जीव चिदाकाश में संचरणशीलता की शक्ति को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में साधक सहस्त्रार से क्षरित अमृत स्राव का पान करता है और इसके प्रभाव से उसका शरीर अजर–अमर हो जाता है।

खेचरी मुद्रा के अभ्यास में चालन, और दोहन के अन्तर्गत जिह्वा को चालित कर तथा गा स्तनों की भांति दुह कर लम्बा किया जाता है। इस लमबाई को बढाने के लिए जिहवा मूल की नासाएँ काट दी जाती है, इसे छेदन कहते है। यह सब गुरूपदिष्ट प्रणाली के अनुसार होता है। बिना गुरू के इस अभ्यास में प्रवृत होने से लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

मेलन क्रिया मंत्र अपेक्षित है। यह मंत्र भी गुरूगम्य हैं। इसके पश्चात् मथन आता है। मथन में एक चांदी की शलाकाके अग्रभाग में रूई के तन्तु लपेट कर उसे गो दुग्ध में भिगा कर नासा मार्ग में प्रवेश करके ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा का मथन किया जाता है।

यह सम्पूर्ण साधन बारह वर्ष की अवधि में पूर्ण होता है। खेचरी साधक की जिह्वा इतनी लम्बी हो जाती है कि मुख के बाहर से वह कपाल प्रदेश तक को दूने में समर्थ हो सकती है। खेचरी की पूर्ण सिद्धि होने पर एक नित्य योग युक्त अवस्था का उदय होता है। ऐसा येगी अजर–अमर काय वाला हो कर नित्य सामरस्यात्मक पूर्णत्व के पद पर आरूढ़ रहता है। स्वातमाराम योगी ने हठयोग प्रदीपिका में कहा है:

एकं सृष्टिमयं बीजमेका मुद्रा च खेचरी।

एको देव निरालम्ब एकावस्था मनोन्मनी।।

"सृष्टिमय बीज एक है, मुद्राओं में खेचरी एक ही मुद्रा है, देवों में निरालम्ब ऐ देव है और अवस्थाओं में मनान्मनी एक ही अवस्था हैं, बस यही मात्र सार वस्तुएं है"

सर्व मुद्राओं की अधिष्ठात्री इस मुद्रा को सिद्ध विचारनाथ माय त्याग और काल वंञ्चना का एक मात्र उपाय कहते हैः

तजै संष बरचारे काया, षेचरी मुद्रा त्योंत माया।

माया तयागौ राषौ काल। इन उपदेसै बंचिये जम काल।।

<u>नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धति का रेखा चित्र</u>

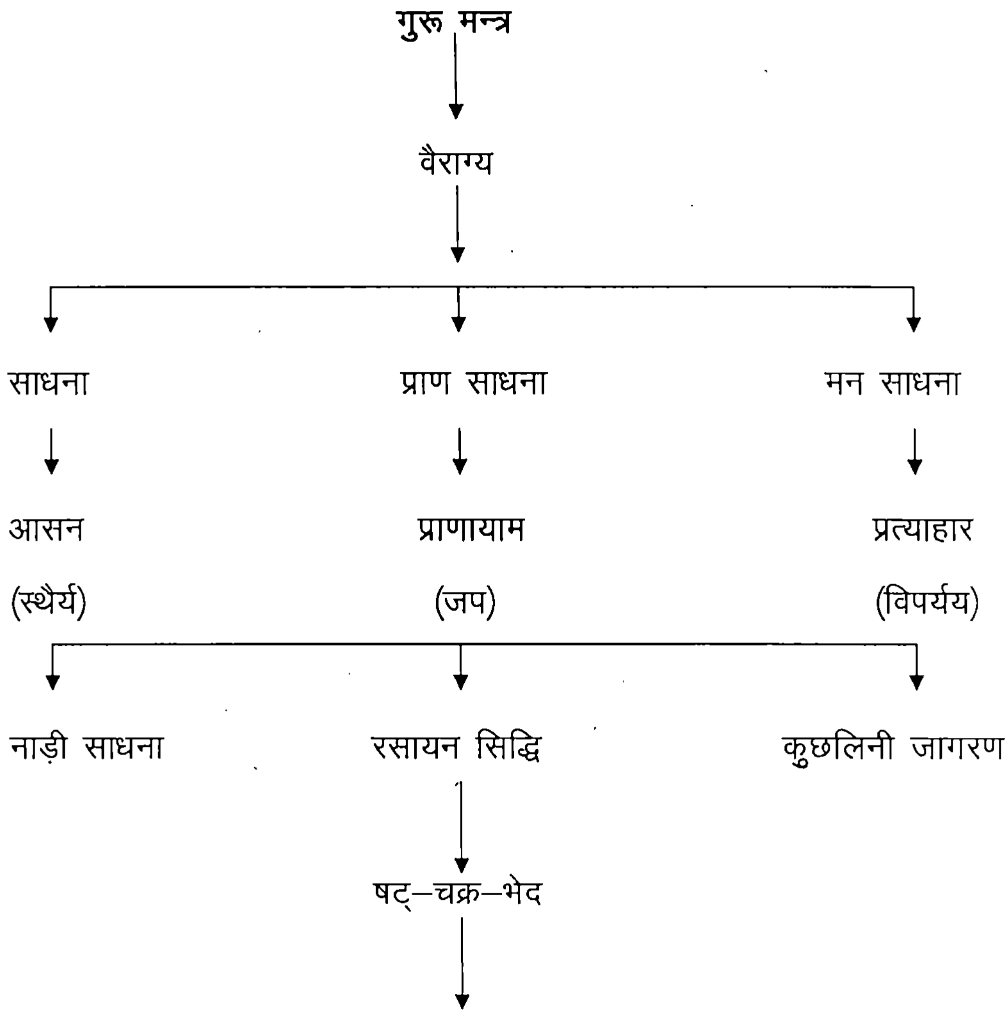

એવું જ્ઞાનાત્મક પદ કુબેર સાહેબની વાણીને સંતસાહિત્યમાં આગવું સ્થાન આપે છે. નથુરામ સાહબેની વાણીમાં મનુષ્યનો અહંકાર કેવો છે.

''જે નર કરે અભિમાના પાણી કા હૈ પરપોટા ''

નથુરામ કહે છે સંસારના સંબંધીઓ સ્વાથના છે. પરોપકાર દયાભાવ અને નિર્મલ ચિત્ત હોય તો પરમ શાંતિની તૃપ્તિ થાય પરંતું અભિમાન તો પાણીનો પરપોટો છે. જેને ફૂટતા વાર લાગતી નથી. આમ જ્ઞાનભક્તિ અને વૈરાગ્યનો મહિમા આ લોકસંતોની વાણીનો પ્રમુખ સૂર છે. સંતસાહિત્યના કેન્દ્રમાં મનુષ્ય અવતાર અને તેનાં કર્મ ધર્મ છે. સંતોનીવાણી માનવમાં રહેલા વિકારા, વૃત્તિઓ, અનિષ્ટા, મનની મુરાદો, ભેદ, ભ્રમણા, લોભવૃત્તિ વગેરે નિરથક છે. પરંતુ સાચી તો પ્રભુભક્તિ છે. હરિભજન સત્સંગ કરતા કરતા ભક્તિરસ સાથ જ્ઞાન રસ અને તે દ્વારા માનવહૃદયમાં ઉદ્‌ભવતો વૈરાગ્યનો ભાવજીવનને સાથક કરનાર છે. આમ લોકસંતોની વાણીમાં જ્ઞાન ભક્તિ, વૈરાગ્યનો મહિમા અપરંપાર છે.

૪.૭ ગુરુબ્રાહ્મણ સંત ભક્ત કવિઓની વાણીમા યોગમાર્ગ :-

'યોગ' એટલે ચિત્તની વૃતિઓનો નિરોધ. જયાં સુધી આપણી ચિત્તની વૃતિઓ ભટકતી રહે ત્યાં સુધી પૂર્ણ સ્વરૂપનું દર્શન શકય નથી. આ ચિત્તવૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો તે યોગમાર્ગ. આપણા લોકસંતોની ભજનવાણીમાં યોગસાધના ભારોભાર ભરી છે. મોટાભાગના સંતભક્ત કવિઓએ યોગ રહસ્યને જુદી જુદી રીતે અભિવ્યકત કરેલ છે. આ યોગવાણીને શિવમુખી વાણી પણ કહેવામાં આવે છે. રાત્રીના ત્રીજા પ્રહરમાં મોટા ભાગે યોગવાણી ગવાય છે. આ પ્રકારના ભજનોમાં ઇંગલા, પીંગલા અને સુષુમણા સાધી, ત્રિવેણીના ઘાટ ઉપર અલખ જગાવી કુંડલિની જાગૃત કરી, ષટ્‌ચક્રો ભેદભાવની ક્રિયા સમજાવી છે.

ભજનવાણી દ્વારા સંતસાધનામાં યોગમાર્ગને સ્થાન અપાયેલુ જોવા મળે છે. ગુરુ બ્રાહ્મણ જ્ઞાતિના આ સંતભક્ત કવિઓ યોગ સાધના માટે કોઇ ગુફામાં બેસી ગયા હોય તેમ જાણવા મળતું નથી. પણ કેટલાક સંતો યોગસાધના સાથ જ જોડાયેલા હતા. મોટાભાગના સંતોને ભજનવાણીના રંગે રંગતા સહજ યોગ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થઇ છે. આ સંતો સમાજ, સંસારની વચ્ચે રહી અનેક જવાબદારીઓ નિભાવીને પ્રભુનું ધ્યાન અને નામસ્મરણ કરેલ છે. તેમાં મુખ્ય છે ગુરુમંત્ર પ્રથમ ગુરુ શિષ્યને શ્વાસોચ્છવાસ સાથ સુરતાને જોડવાનું શીખવે છે. પછી ગુરુ શિષ્યને 'સોહમ' મહામંત્રની દિક્ષા આપે છે. સોહમ પદના જય પછી સહજયોગ

સિદ્ધિ થાય છે. ચિત્તવૃત્તિઓ પર સંયમ કેળવવાનો હોય છે. આ ચિત્તવૃત્તિઓને કાબુમાં લાવવા માટે સંતોએ ઓહમ-સોહમની નામસ્મરણની સાધના આપી છે. આ યોગમાર્ગ અનુસંગે ત્રિકમ સાહેબ કહે છેઃ

''ઈંગલા પીંગલા સુષુમણા સાધી માંઈ ઝળહળ જ્યોતિજાગી

ત્રિવેણીતાર મેળવ્યા, અનહદ નોબત ત્યાં વાગી ઘટડામાં જોયું મેં જાગી''

ભીમ સાહેબ પણ યોગવાણીમાં કહે છેઃ

''તખ્ત ત્રિવેણી અલોપ છે ગંગા જમનાને ઘાટે સુષુમણા જીવણ

સાધજો વળીજાગે ઈ વાટે અખંડ રણુંકાર હોઈ રહ્યા કર

બિન બાજા વાગે સુરતા રાખી જીવણ સાંભળો, ધૂન ગગનમાં ગાજે''

આ યાગપરક વાણીમાં મુખ્ય મંત્ર છે યોગ જેમાં કુંડલિની સુષુમણાના દ્વારને રુંધીને સૂતી છે. ત્યાં મેરૂદંડ-બ્રહ્મદંડમાં મુખ્ય ત્રણ નાડી-ડાબી ઈંગલા, જમણી પીંગલા, મધ્યમાં સુષુમણા યોગમાર્ગમાં પ્રાણની ગતિને આ સુષુમણા સંચારિત કરે છે. ત્યાંથી કુંડલિની જાગૃત થઈ ઉંચે ચડે છે. ત્રિકુટીભેદ અને કુંડલિની જાગૃત કરવા ત્રિકમ સાહેબ કહે છેઃ

''નાભિકમળથી ઉલટયો આવે, ગગન ધૂન ગરજાના

ઈંગલા પીંગલા સુષુમણા સાધી, ત્રિવેણીતાર મિલાના''

આણી અગર પટ આસન દીધા, અગમ ભેદ હૈ એના''

'આણી અગરે' અર્થાત નાકની દાંડી ઉપર એક વસ્તુ છે તેને વચનથી નૂરતે સૂરતે નિરખી લેને મૂર્તિ છે. 'મસતની' એમ ગાયું છે. ભીમ સાહેબ કહે છે ''સેજ સૂનમે ત્રિકુટી ધૂનમેં અખંડ જયોતગ્રહે સારી'' ઓહમ સોહમ ના શ્વાસથી સૂર્યનાડી વચ્ચે સુષુમણા નાડીને સાધના સુલટા પવન ઉલટા કરતા કુંડલિની જાગે છે. અને બ્રહ્મરંધ્રયાં બ્રહ્મજયોતના દર્શન થાય છે. નથુરામ સાહેબ કહે છેઃ

''અલખ નામ ધૂન લાગી, આસનવાળી સૂરત દઢ કિયા

દિયા અગમ ઘર ડેરા, જહાતંત અનહદક આગે અહોનિશ નાદ ઝણકારા''[૪૦]

નાનક સાહેબ કહે છેઃ

''ઉલટ સુલટ કરી જોવો, જપવા અજવા જાય, સુરતા દોરીને સાંધો, તેમ એક તાર''

પ્રાણ અપાન મિલવી, જોવો ગગનમાં, અગમથો આવીયો સગમ થઈ સમાય આમ સંતવાણીમાં સુષુમણા સાધી કુંડલિની જાગૃત કરવાનું આ સંત ભક્ત કવિઓએ જણાવ્યું છે. ઈંગલા, પીંગલા, સુષુમણાનું બંને ભ્રમર વચ્ચે કપાળમાં મિલનસ્થાન છે. તેને ત્રિકુટી કહે છે. કુંડલિનો શક્તિ આ ત્રિવેણી ભેદી બ્રહ્મરંધ્ર દ્વારા શૂનમંડલમાં પહોંચે છે. જયાં સહસ્રાર ચક્ર છે. આ ચક્ર ભેદન વખતે સંતોને-સાધકને અનુભવો અને સિદ્ધિઓ પ્રાપ્ત થાય છે. ''તેજાનંદ ત્રિવેણીના તીરમાં નાહ્યા નિરમળ નીર મનમેલા મટી ગયા, પહોચ્યા પેલે તીર''તેજાનંદ કહે તત્વ જાણ્યા વિના અખંડપદ ન ઓળખાય તે પદ પાવે વીરલા, આવગમન મટી જાય''.

તેજાનંદસ્વામી કહે છે ત્રિવેણી અર્થાત બંને નેત્રના મધ્યભાગનું સ્થાન છે એમ યોગી પુરુષો તેને ત્રિકુટો પણ કહીએ છીએ એવા ત્રિવેણીના તીરમાં નાહ્યા તો નિર્મળ નીર રૂપી જ્ઞાનપ્રાપ્તિ થઈ તત્વ જાણ્યા વિના અગ્નિ, વાયુ, જળ, પૃથ્વી, આકાશ આ પંચતત્વ જાણ્યા વિના આત્મજ્ઞાન મેળવી શકાતું નથો. અને અખંડપદ એવા પરમપદની પ્રાપ્તિ થતી નથો. આ ત્રિકુટી સુધીતો કોઈ યોગી વીરપુરુષ જ જઈ શકે. કુબેર સાહેબ કહે છેઃ

''સુષુમણા નાડી સાધજો પાર્વતી ન પડી મેલી,
પરમેશ્વરનો પદ પૂતળી મખા કમળમાં મેલીરે'' -કુબેર સાહેબ.
''ભમર ગુફા ભીતર દોબારી, સાંકડી શેરી માંઈ મેલી રે
ભ્રકુટીમાં ભજન કરી લેવા, મનની મોટપ મેલી રે
બંકનાળમાં બાગ બગીચા જોયું નજરે નિહાળી રે,
કહે કુબેર ગુરુનાનક ચરણે, દિયો સધ્ધ બુદ્ધ નિશાની રે''

આ યોગ સાધનામાં ભમર ગુફા, ભ્રકુટી, બંકનાળ, ઘટભીતર જેવા અનેક શબ્દોના અથ વસ્યાથ હોતા નથો. પરમતત્વરૂપ રહસ્ય સાથ તે સંકળાયેલા છે. આ સહસ્ય ગર્ભ પરિભાષાનાં અથન જાણી શકો નહીં ત્યાં સુધી ભજનવાણીનો મર્મ પામી શકાતો નથો. સંતભક્ત કવિના અંતરમાં સ્વયં સરસ્વતી ન બ્રહ્મજ્ઞાનનું ઉચ્ચારણ કરવા લાગે છે. એટલે જ ત્રિકમ સાહેબ કહે છે કે ''શબ્દરૂપી સ્વરૂપી શ્યામ હમારા, બોલે બોલવન દ્વાર'' અર્થાત સદગુરુની કૃપા થાય તો શબ્દ બ્રહ્મની સાધના કરી શકાય. લક્ષ્મી સાહેબ કહે છે.:

'' ઓહંગ સોહંગની જલમલ જયોતિવિના દીવેટ વિના કોડિયે ઘ્રંથ વિના જાગે છે જયોતું''

આ જયોત તે રહસ્યબ્રહ્મનું સ્વરૂપ હોય તેમ આ જયોત દલભીતર જાગે છે અને તેનો પ્રકાશ એ અખંડ જયોતિ છે. વિના દિવેટ, વિના કોડિયે અને વિના ઘીથો પ્રગટ થતી આ દિવ્ય જયોતિ છે. લક્ષ્મી સાહેબ એકબીજા પદમાં કહે છેઃ

''ઈંગલા પીંગલા અને સુષુમણા ત્રિકુટીમાં લાગી તાળીમુને મતવાલે પિયાલો પાયો''

આમ જેની સુષુમણા નાડી જાગૃત થાય છે, તેને જુદા જુદા યૌગિક અનુભવો થાય છે. આ બાબતનું પ્રમાણ ઉપયુર્કત સંતવાણીમાં જોઇ શકાય. ત્રિકુટીનો ભેદ, ત્રિકુટીમાં તાળી લાગી એટલે બીજું કંઇ નહીં પણ સ્થળ સૂક્ષ્મને કારણ ત્રણ સૃષ્ટિ વૈખરી મધ્યમા અને પશ્યંતી ત્રાણવાણી જાગૃત સ્વપ્ન અને સુષુપ્તિ ત્રણ અવસ્થા સત્વ, રજ અને તમ એ ત્રણ ગુણના પ્રકૃતિના રાજનો ભાંગીને ભુક્કો કરી નાખવો તેમ કુંડલિની સુષુમણા અને ષટચક્રોની વાત જાણી છે તેની પાછળ એક અદ્‌ભુત રહસ્યતત્વમય સૃષ્ટિ સર્જાયેલી છે. ત્રિકુટીએ પ્રકૃતિના રાજનું છેલ્લુ થાણું છે. અને તેનાં મૂળિયા છે. મન, બુદ્ધિ અને અહંકાર તેને જડમુળથી કાઢી નાખો તો ત્રિકુટી ભેદી એટલે પિંડ બ્રહ્માંડનો પડદો હટી ગયો સમસ્ત બ્રહ્માંડને ચલાવતી મહાશક્તિનો સીધો સ્પર્શ થયોને નાભિકમળથી પવનપુરુષને પલટાવવાની ક્રિયા પણ લોકસંતો યોગમાર્ગ દ્વારા દર્શાવી છે. અંતમાં અનાહતનાદ સંભળાય છે. જેને જુદી જુદી ઉપમાઓથી દર્શાવવામાં આવે છે. અક્કલદાસ કહે છેઃ

''ગગન મંડલમાં રહે ગેબી, વહાં હોઠ જીભ્યા નહીં હલે
ફલ અમૃત કોકને મળે, સાયર સંત કદીના છલે,
દશ દરવાજે હાટ હવેલી, લાખોખડકી પચાસ કરોડ માંય પ્રેમી,
ચંદ્રમાં તેજ અપાયા, જળહળ હીરણ ઝળકે રે
પારખનારા રતન પારખું, જોનારાને જડશે રે
સિદ્ધા અક્કલદાસ ભીમને ચરણે મથનારાને મળશે રે''[૪૧]

ગગનમંડળ ગેબી, દશ દરવાજા, હાટ હવેલી, ઝળહળહીરલા વગેરે રહસ્ય ગર્ભ શબ્દો દ્વારા બ્રહ્મતત્વના સુક્ષ્મ દિવ્ય સ્વરૂપનો મહિમા થયો છે. અજ્ઞાન અહંકાર કાઢી આત્મજયોત જગાડનાર ભીતરની જાગૃત જ્યોતિ એજ સંતભક્તને થતી અંતરતમ આહલાદક અનુમતિ જયાં કરોડો સૂર્ય ચંદ્ર અને દિપક પ્રકાશી રહ્યા છે આવું અક્ષરાનીત દર્શન યોગસાધનામા સંતભક્તોએ મન વિરલ ઘટના છે આ કાયામાં સંતોએ દશ દરવાજા કહ્યા છે.

દશ નાડીઓના દ્વાર તેમાં જે દશમું દ્વાર એટલે કે દાસી જીવણ કહે છે તેમ ''સોઇ મહેલમાં મેરમ બોલે'' એ દશમે દ્વાર પહેલમાં મેરમ વસેલા છે. આ સ્થાન સુધી પશોંચવા અહંકારનો ત્યાગ કરવો પડે, અઘરી યોગસાધના કરવી પડે આપણી સંતવાણી યોગસાધનાની વાહકબને છે.

સંત કવિઓ જ્ઞાન, ભક્તિ અને યોગનું ત્રિવિધ રસાયન એક સાથ વહેતું જોવા મળે છે. યોગનો માર્ગ કઠણ સાધનાનો માર્ગ છે. ગુઢ અને ગ્રહ્ય છે તેમાં સાત્વિક ભૂમિકાએ સહજ સાધના પણ છે. ભારતિય સંસ્કૃતિના પ્રાણસમા ઋષિમુનિઓની સાધના યોગમાર્ગની રહી છે. આ યોગસાધના એ આપણી પ્રાચીન પરંપરા છે. ઋષિમુનિઓ આશ્રમોમાં જે શિક્ષણ આપતાં તેમાં યોગ સાધના ખાસ શીખવવામાં આવતી તેથો આપણી ધર્મપરંપરામાં યોગ સહજ છે. સંતવાણીના આધારે યોગના અનેક પ્રકારો પાડી શકાય મંત્રયોગ, હઠયોગ, રાજયોગ, શબ્દયોગ, સમાધિયોગ, કુંડલિનીયોગ, ધ્યાનયોગ વગેરે આ કંડલિની યોગ અર્થાત કુંડલિની જાગૃત કરવાની સાધના જેમાં સંતકવિઓ યોગમાર્ગની સાધના સંસાર-સમાજ વચ્ચે રહી પ્રભુનું ધ્યાન ધરી નામસ્મરણ કરી નાડી સુદ્ધિની પ્રક્રિયા કરીને નિર્મળ ચિત્તે કરે છે. સંતભક્ત કવિઓ સદમાર્ગે ચાલ્યા છે કામ, ક્રોધ, લોભ જેવી વૃત્તિઓ પર કાબુ મેળવ્યો છે ચંચળ મન જીત્યું છે આમ સ્થ્ળદેહના વિકારો-ભોગવૃત્તિનો ત્યાગ કરી સૂક્ષ્માતી સૂક્ષ્મ બ્રહ્મતત્વને પામવા સંતોને યોગની અટપટી ક્રિયાઓ સહજ હતી. આવો યોગમાર્ગ વિકટમાર્ગ સંતોને મન રાજમાર્ગ જણાયા. અગમ-અગોચર તત્વને જાણી માણીને આ અનુભવ યોગવાણી દ્વારા સંતકવિઓએ પ્રગટ કર્યો છે. લોકસંતોએ સમાજમાં માનવજીવનને સાચી રાહ બતાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો છ. શુદ્ધ ચારિત્ર્ય ઉભુ થાય અન લોક સમાજ માટે પ્રેરક થાય એ માટે યોગવાણી દ્વારા સત્સંગ, ઉપદેશ આપ્યો છે. કામ,ક્રોધ, લોભ,મોહ, મત્સર, મદ જેવા ષડરિપુને કાબુમાં લેવવા માટે શીલ સંતોષ, ધીરજ, ધારણા જેવા ગુણો જીવનમાં વિકસાવવા આવશ્યક છે. યોગ ચારિત્ર્ય, સદાચાર અને સત્યપાલનના અસ્ત્ર, શસ્ત્રો ધારણ કરીન લોકસંતો ભીતરના અહમ સામે યુદ્ધે ચડ્યા હતા. બહારના શત્રુઓ સામે લડવું સહેલું પણ આપણી અંદરના શત્રુઓ સમો લડવું અઘરું છે. સંતકવિઓ યોગવાણીમાં જણાવ્યા મુજબ યોગસાધના કરી જીવનમાં સાથકતા સિદ્ધ કરી આ અઘરું કાય જીવન સાધના પ્રક્રિયા દ્વારા યોગમાર્ગ સ્વીકાર્યો તેમાં આ સંતકવિઓનો મહિમા થયો છે. આ સંતોની વાણી જ્ઞાન, યોગ,

ભક્તિ અને અધ્યાત્મદર્શનની સાથ સમાજમાં જાગૃતિ લાવી સમભાવ પ્રગટાવવાનું કામ કરે છે. વેદ ઉપનિષદના ઋષિઓએ પોતાની અતઃપ્રજ્ઞા દ્વારા પરમતત્વનો જે સાક્ષાતકાર કરેલો અને દર્શનને પોતાની આર્ષવાણી દ્વારા વ્યક્ત કરેલું એવી જ રીતે આ સંતભક્ત કવિઓએ પોતાના આધ્યાત્મિક વિકાસ માટે યોગસાધના દ્વારા પરમતત્વ પરબ્રહ્મનો જે સાક્ષાતકાર કરેલો અધ્યાત્મપ્રેરિત અનુભૂતિ દ્વારા જે દર્શન કરેલું તેને પોતાની યોગવાણીમાં વ્યક્ત કરેલું છે. યૌગિક સ્વાનુભૂતિ કેવા અથબોધક ભાવે પ્રગટ થાય છે તે ત્રિકમ સાહેબના કેટલાક ભજનોમાં જોઈ શકાય છે

''મૂળને બાંધો સુખમણા સાધો દ્રઢ મન રાખો એક ઘડે જી,
સૂરત નૂરત સન્મુખ રે'વે ગર્જે ગગન ગઢ નિશાન ગડે હોજી''[૪૨]

શબ્દ વિચારી તમને વચને ચાલોતો આઠે કરમ તમને નહિ નડે હોજી ત્રિકમ સાહેબ વૈરાગ્યને વૈખરીમાં કેવી રીતે વ્યકત કરે છે. :

''કપડા બી ધોયા સંતો, અંચલા બી ધોયા જબલગ મનવો ન ધોયો
મેરે લાલ સાધુ તેરો સંગડો ન છોડું મેરે લાલ''[૪૩]

યોગ માર્ગમાં કુંડલિની જાગૃત કરવાની પ્રખર ઉંડી સાધના પડેલી છે.''ઇંગલા-પિંગલાને સુષમણામાં સોહમ નાદે નાગણ જાગે'' આ સંતોનીવાણીમાં મૂલાધારમાં સૂતેલી નાગણ સાડાત્રાણ આંટીવાળીને ચિર નિંદ્રામાં પોઢી છ. તેને જગાડવી એટલે સ્થળમાંથી સૂક્ષ્મ તરફની ગતિ યોગમાર્ગ દ્વારા અખંડ ઉર્જા શક્તિનું શુદ્ધિકરણ કરીને સાધક-સુવાર્ણ સમો બની જાય છે. આ સંતોએ ભોગવૃત્તિનું યોગવૃત્તિમાં રૂપાંતરણ કર્યુ છે. ત્રિકુટી દ્વારા વૈખરી, મધ્યમાં, પશ્યંતી અને ત્રાણ વાણીના સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યા પછી ત્રિકુટી ભેદન પછી જે અંતરની નાભિમાંથી પ્રગટ થતી પરાવાણી આવે છે. તે જ યોગ સાધનાની ફલશ્રૃતિ સંતોની વાણી રૂપ પરાવાણીમાં જ્ઞાનધારા અને યોગધારાનું નિદર્શન નિજમુદ્રમંડિત ભાવે જોવા મળે છે. સંતો પરાવાણી દ્વારા અતિસુક્ષ્મ સચ્ચિદાનંદી પ્રદેશની દિવ્ય અનુભૂતિ પામ્યાનું યોગવાણી રૂપ ગાન કરે છે. બ્રાહ્મીચેતનાના પ્રામાણિક પુરુષાર્થો અને પ્રતિનિધિ આ સંતભક્ત કવિઓ ખરેજ યોગવિદ અને આત્મવિદ-બ્રહ્મવિદ સાધ્ય સંતવાણીના ઉપાસક અને ગાયક છે. તેમની યોગસાધના દ્વારા આ સંતોને પ્રાપ્ત થયેલી સિદ્ધ અને અનુભવની તેમની ભજનવાણી યોગમાર્ગના અઘરા પડાવો વચ્ચે પણ ભાવક્ષમ રહી છે. આ સંતભક્ત કવિઓએ વાણી,

પ્રાણ, બુંદ અને મન આ ચારેય તત્વોને વશકર્યા છે. યોગમાર્ગની કઠણ યાત્રાને સિદ્ધ કરવા સંતોએ જે સાધના – ઉપાસના કરી અને સમત્વ યોગસાધ્યો છે. તેની આધ્યાત્મિક ગહન અનુભૂતિને યોગમાર્ગ દ્વારા સિદ્ધ કરી વાણી રૂપે પ્રગટ કરી છે. યોગસાધનાને સહજ સાધનામાં પરિવર્તિત કરતા આ સંતભક્ત કવિઓની વાણી 'સમત્વયોગ' માં નિશ્ચળ બેઠેલા યોગી જેમ અપાર શાંતિનો અનુભવે છે તેમ આ વાણીનું ગાન નિતાંત શાંતિનલ અનુભવ કરાવે છે.

૪.૮ ઉપસંહાર :-

આ પ્રકરણમાં પ્રસ્તુત ગુરુ બ્રાહ્મણ સંત ભક્ત કવિઓની વાણીનું વિસ્તારથી દર્શન કરાવ્યું છે. આ લોકસંતો સામાન્યજન સમાજ વચ્ચે રહીને તેમણે કરુણા, દયા, ધર્મ, માનવતાનો સદાચાર જાળવીને લોકસેવા કરી છે. સમાજોત્થાન કાર્ય કર્યુ છે. આપણી સંતવાણી આપણો સંસ્કાર વારસો છે. એ એટલી જ હકીકતછે. આ સંસ્કાર વારસો સંતવાણીના રચયિતા સંતભક્ત કવિઓના જીવન સમયના આધારે તેનો ક્રમબદ્ધ ચરિત્ર આલેખ લખી શકાય. સમગ્ર મધ્યકાલીન સાહિત્યની મુશ્કેલી એ છે કે કેટલાક સર્જકો સંતભક્ત કવિઓના જીવન સમય વિશે પ્રમાણભુત માહિતી મળતી નથી. પરંતુ અહીં ગુરુબ્રાહ્મણ સંત ભક્ત કવિઓની ભજનવાણી પ્રાપ્ત કરવા જે તે સંતોના થાનકો, આશ્રમો સમાધિમંદિરો સુધી રૂબરૂ જઈ જે તે સ્થાનકોએ સંગ્રહિત સંતસાહિત્યને મેળવ્યું છે ઉપરાંત કેટલાંક સંદર્ભગ્રંથોને આધારે પ્રસ્તુત સંતકવિઓની વાણીનું દર્શન કરાવ્યું છે.

આ પ્રકરણની પૂર્વભૂમિકામાં ગુરુબ્રાહ્મણ જ્ઞાતિના પ્રતિનિધિ સંતભક્ત કવિઓની વાણીમાં મુદ્દાઓનું વર્ગીકરણ કરી તેનો વિસ્તારથી અભ્યાસ મૂકી આપવા શ્રદ્ધેય પ્રયત્ન કર્યા છે. સંતોની વાણીમાં ગણપતિ સ્તુતિ-વંદનાના ભજનો છે. તે વાણીમાં ગણપતિ વંદના, ગણપતિ ઉત્પતિકથા વગેરે પૌરાણિક પ્રેરિત ગણપતિના ભજનો ને વિસ્તૃત રીતે તપાસી તેની ચર્ચા મૂકી છે. વિઘ્નહર્તા, મંગલકારી ગણપતિના ભજનો ઉપરાંત સંતોની વાણીમાં ગુરુમહિમા અંગે અહીં ભાવત્મક ચર્ચા આપી છે. સદગુરુના દર્શનથી આનંદ પ્રાપ્તિ કરનાર સંતોની અનુભૂતિનું દર્શન તેમજ અધ્યાત્મ જીવનમાં સદગુરુનું સ્થાન અને માન કેવા ગારવ પ્રેરક છે તેનું વાર્ણન આ રીતે મૂકી આપ્યું છે કે ગુરુ તો પારસમણિ છે લોહને સ્પર્શે તો સવાર્ણ

भावार्थ–सन्त सम्बोधन देते है –

हे मानव ! सुरत–शब्द, मन–प्राण को साधकर द्रढ आसन से समता भाव जाग्रति पूर्वक अजपा जप की सिद्धि करके निर्गुणोपासना से स्वयंमात्म तत्व को निश्चय कर, वही अपना चेतन स्वरूप है। सोहमस्मि इति वृति अखण्डा 'अहंब्रह्मस्मि' महावाक्य का ''तत्वमशि ब्रह्म'' रहस्य से आत्मानुभव कर ले।

अपने आतम तत्व की अपरोक्षानुभूति स्मृति धारण कर देह में मिथ्यात्व बुद्धि की वृत्ति का त्याग कर दे। अज्ञान जनित पंच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) का नास–भगा (स्वभाव बदल) कर नित्य मुक्तमय निर्भय हो जा।

तू स्वयं शुद्धस्ववरूप स्वयं प्रकाशी परमतत्व है। अन्यान्य देवी–देव की मान्यता है, वह बिरानी अन्योपासना (कामना) है, उस भ्रम का आमूल चूल त्याग कर दे।

हे मूर्ख ! मिथ्या (नाशवान) देह (शरीर) के देहाध्यास में क्यों उलझ रहा है ? ऐसे जीवन से तो पेट (अन्तर्पट) में ज्ञान कटारी खा कर मर क्यों नहीं जाता ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

मोह माया रू काट विकार सो, तन मन वाच को शुद्ध करो रे।
देह अध्यास को दूर करो नर, सतसंग सतगुरु संग मरो रे॥
अन्तस्थ दोष विकार हटा मन, परमार्थ साधन संग परो रे।
'रामप्रकाश' जो मोक्ष को चाहत, अध्यात्म चिंतन चित धरो रे॥28॥

जप ले आप को सोहम् सोहम्, आपनो रूप संभाल सदा रे।
तीन सो देह–अवस्था ते परे वह, चेतन शुद्ध को पाय सदा रे।
सतगुरु ज्ञानी की शरण में जायके, सतसंग मे चित धार सदारे।
''रामप्रकाश'' पद पाय परमार्थ, मोक्ष परमानन्द चित सदा रे॥29॥

सतगुरु शब्द को श्रवण द्वारते, हृदय ठीक ठहराय ले भाई।
मुख ते सुमिरण कण्ठ रू हौंठ ते, गिलगिली हृदय माहि लगाई॥
नाभि की साधना राम प्रभावित, जाप अजपा चित माहि समाई।
'रामप्रकाश' कर शम दम सतसंग, अन्तवेरी मार ले भाई॥30॥

मनोहर छन्द

शुद्ध हि विचार सोई, फौलाद कटारी करि।
गुरु जु लोहार पास, लीजिए घड़ाय के।

Scanned with Cam

मनोहर छन्द

बाहिर से वृति तेरी, खेंचि कर भीतर को ।
सोहं सोहं जाप सदा, रह्यो है जपाय के ।।
आम को उखाड़ पेड़, बबुल को बीज बोवे ।
ताको तू करत बाड़, चन्दन कटाय के ।।
हीरा सो तो मूठी भरि, फेंक देत द्वार बार ।
जूती को यतन करि, राखत छुपाय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।23।।

भावार्थ–हे मानव ! बहिरंग वृतियों को खेचिकर सात्विक भाव से लक्ष्यार्थ वृत्ति को अंतरंग जोड कर सोहम् सोहम् (त्वंपद–जीव, तत्पद–ईश्वर, असिपद–जीवेश्वर) के वाच्यार्थ का त्याग कर लक्ष्यार्थ ब्रह्मस्वरूप सोहमस्मि जप कर के स्वयं को जान ले !

हे बन्धु ! अपने अमूल्य नरतन को विषय–बबुल के आॅरोपन में वासना का बीज बोता और मुक्ति द्वार श्वासा चन्दन के वृक्ष को व्यर्थ खोता (काटता) हुआ जीवन चन्दन में विषय के बीज–वासना का संरक्षण कर रहा है, जो आगामी जन्म–मरण के कण्टक–शूल ही परिणाम में लगेंगे ।

अमूल्य हीरा जैसा मानव जीवन की श्वासा को सांसारिक विषय भोगों (क्षणिक सुख) में मूठी भर भर कर फैंकता जा रहा है और पांव की जूती के समान तुच्छ विषय वस्तु को अति यत्न पूर्वक नाना तरह से रक्षित उपाय के छुपा (गोपनीयता) कर रखता है ।

हे मूर्ख ! अज्ञान पल्वित क्रियाओं के ऐसे मिथ्या जीवन जीने से पेट में ज्ञान कटारी झोंप (खा) कर मर जाता क्यों नहीं ?

मनोहर छन्द

तूँ तो सच्चिदानन्द घन, आतमा अखण्डता को ।
जीव जानि देवे भव–सिन्धु में डुबाय के ।।
नाहि तीन देह तेरे, स्थूल शूक्ष्म कारण जो ।
कारण को साक्षी होय, दीजिये उडाय के ।।

Scanned with Cam

बाहिर वृति को उलट अन्दर,
सहजे ही सुमिरण सारणा जी ।।
हरदम तार तो हरदम चालत,
सोहं ॐ उच्चारणा जी ।
'उत्तमराम' कहै सुणो जिज्ञासियों,
हरदम हरि चितारणा जी ।।५।।

प्रथम ओट सत गुरू की आय के,
तन मन भेंट चढावणा जी ।
गुरू का वाक्य सत श्रवण सुण के,
सोहं मन मिलावणा जी ।।
गुरू के ज्ञान से आतम ओलखो,
आप में आप समावणा जी ।
उत्तमराम ! कहै सुणो जिज्ञासियों,
फेर पीछा नहिं आवणा जी ।।६।।

प्रभात को प्रेम से उठके जागिये,
शब्द रू सुरत मिलाविये जी ।
इडा रू पिङ्गला सुषमण तीनों ही,
शशि रू सूर रलाविये जी ।।
हरदम साधो जी सोहं सुमिरण,
त्रिवेणी में ज्योति जगाविये जी ।

Scanned with Cam

तोड़ दे तोड़ दे मोह को तोड़ दे,
विरह वैराग के तोर से जी ।।
फेर दे फेर दे वृति को फेर दे,
अपने आतम जोर से जी ।
'उत्तमराम' कह तर जा सागर,
गुरू की गम कर डोर से जी ।।१०।।

मोह की जड़ को मूल से काट दे,
निर्मोह निर्मल रेहणा है जी ।
फकर होय के फिकर को फकिये,
सुख दुःख ऊपर सेहणां है जी ।।
और एकान्त सत गुरू के आसरे,
सोहं सोहं केहणा है जी ।
'उत्तमराम' अवधूत फकर को,
सत ब्रह्मानन्द लेहणा है जी ।।११।।

शुद्ध विचार नित मन में राखिये,
कुब्द रु कूड़ को काटणा है जी ।
शील संतोष रू नाम को सुमिरण,
पांच विषय को दाटणा है जी ।।
आत्मानन्द को अमृत प्यालो ले,
नहिं विषय रस चाटणा है जी ।

Scanned with Cam

असम्भावना रू विपरीत न लेश जु.
नहिं को खोट को खतरो है जी ।।
है ज्यों जाण वो जाणी निर्वाणी है,
नहिं को काया में कतरो है जी ।
'उत्तमराम' अवधूत फकर को,
निश्चय निजानन्द सतरो है जी ।।५०।।

एक अखण्डी सु जाण लीयो निज,
सब में व्यापक ब्रह्म जी हैं रे ।
दशो दिशा सत पूर्ण एक सो,
नहिं लागे कछु कर्म जी है रे ।।
पांच कलेश को लेश न लागत,
भाज गयो सब भ्रम जी है रे ।
'उत्तमराम' अवधूत फकर के,
निर्भय परमानन्द परम जी है रे ।।५१।।

अर्ध रु उर्ध के बीच में झूलनो,
ओहम् सोहम् झोलता है जी ।
इक्कीस हजार रु छः सौ श्वास में,
ओ३म् रु सोहम् बोलता है जी ।।
इडा रु पिंगला सुषुमण सिद्ध में,
दशवें द्वार को खोलता है जी ।

कोऊक मांगत हारमोनि पर,
कोऊक मांगत ढोलक कूटी।
कोऊक मांगत खप्पर लेकर,
कोऊक मांगे टोपाली जु फूटी ॥
कोऊक मांगत लीर में चीर में,
कोऊक मांगे सरधाई की घूटी।
'उत्तमराम' विचार के बोलत,
गुरू से मांगी संजीवन बूटी ॥४॥
खोट की बात ले घट में घोटत,
मूढ घणों मांहि बात हलावे।
न्याय कारी कोई आन मिले जब,
मूढ प्रसाद को बोल न आवे ॥
लप्पर चप्पर में मन राखत,
साच बिना शठ आयु गमावे।
खण्डन मण्डन मेष ज्यों खोपरी,
पागल श्वान त्यों वाद बढावे ॥५॥

दोहा छन्द

सत सोहं सत सुमरिये, ओ३म् अलख उचार।
अन्दर बाहर आत्तमा, देख राम दीदार ॥६॥
उतम समझो आप में, करोजी उतम काम।
उतम रहणी आतमा, रात दिना जप राम ॥७॥

Scanned with Cam

यह जग मिथ्या सार ना काई,
भूल भ्रम में शठ भटकाई ॥५॥
झूंठ जान सब लीया शरणा,
भव दुःख काटो जनम रू मरणा।
यासे कष्ट बहू युग पाया,
सावधान हो शरणे आया ॥६॥
आप बिना जग में नहिं कोई,
जासे ज्ञान ब्रह्म का होई।
दया करो दया धर स्वामी,
आप सर्व के अन्तरयामी ॥७॥
कृपा करी दी युक्ति बताई,
सोजी पाय कहूं अब गाई।
तन मन शीश दीया गुरू आगे,
जम का जोर कछू नहिं लागे ॥८॥
सत गुरू हाथ दीया वर माथे,
सोहं शब्द गुरू दीया साथे।
'ॐ सोहं' निज आतम ज्ञाना,
मुक्त पट्टा यह गुरू बखाना ॥९॥
'अमर पट्टा' सत गुरू लिख दीना,
शिर साटे सत कर में लीना।
ताके साथ युक्ति इक दीनी,
जाने सन्त रेश महा झीनी ॥१०॥

Scanned with Cam

सत गुरू शब्द बखाना आदू,
रीत कही पुनि जाने सादू।
'अचलराम' गुरू सत पाया,
अमर पट्टा निज ज्ञान बताया ।।११।।

ब्रह्म वेता सत गुरू फरमाया,
सोहं सुमिरण करो सवाया।
सत शब्द सत गुरू उचारा,
सुन लो सत संग सार पुकारा ।।१२।।

श्री सत गुरू वाक्य ! शिष्य प्रति विश्वास !!
अमर पट्टा साधन व महिमा निरूपण !!!

प्रकट वचन साचो लख गाई,
भजन कीयों से काल न खाई।
नाम जपे सोई मुक्ति पावे,
अमर पट्टा बिन मुक्ति न थावे ।।१३।।

यामे फेर सार नहिं कोई,
नाम बिना निज मोक्ष न होई।
'अमर पट्टा' अचल निज ज्ञाना,
संत स्मृति दे परवाना ।।१४।।

ज्ञानी, आउम् रू सोहम् ध्यानी,
भक्त जपे सत राम निशानी।

Scanned with Cam

ओ३म् सोहम् राम जप तीनों,
गुरू गम मुक्ति पद को चीनो ।।१५।।
नाना संशय काम भ्रम मूरा,
डार टार कर चित ते दूरा।
रञ्चक भेद न विस्मत होऊ,
राम ओ३म् सों एक, न दोऊ ।।१६।।
'अमर पट्टा' निर्भय निर्वाणी,
मिटे चौरासी चारो खाणी।
'अमर पट्टा' से राखे हेता,
ताको यम दगा नहिं देता ।।१७।।
हंसा पकड़े सत का डोरा,
तब यम करे नहिं कुछ तोरा।
सोहं सुरती तार मिलावो,
त्रिवेणी तख्त में ध्यान लगावो ।।१८।।
इडा पिङ्गला सुषमण सोजो,
ओम सोहं संग स्वासा खोजो।
स्वासा सुमिरण ध्यान लगावो,
सहजे दर्शन ब्रह्म मिल जावो ।।१९।।
अब हंसा आवे ना जावे,
अगम देश में उलट समावे।
यथा साधना प्रकट सुनाई,
भव का भव व्यापे ना कोई ।।२०।।

Scanned with Cam

अथ हृदयोल्लास वाणी सुधा निरूपण

सत गुरू 'अचलराम' अनकरता,
जम जोरावर जासें डरता।
सत गुरू वचन निर्भय का भाखा,
'उत्तमराम' कहूं सत साखा ।।२१।।
सत गुरू स्वामी युक्ति बताई,
सत प्रतीत पलक में पाई।
सत गुरू दीवी युक्ति ऐसी,
करी साधना गाऊं तेसी ।।२२।।
सत गुरू देव दीया फरमाई,
करुं साधना मन चितलाई।
यह द्रढ धार करी द्रढ फेरी,
सोहं शब्द स्वास में टेरी ।।२३।।
'सत गुरू' सोहं नाम सुणायो,
सो निज सहजे हरदम ध्यायो।
युक्ति युत सोहं निज ध्याया,
जासे हंसा पार पठाया ।।२४।।
इड़ा पिङ्गला सुषमण सीधी,
सुरत शब्द तीनो में बींधी।
पांचो मिल एकता पाई,
सत नाम की फिरी दुहाई ।।२५।।

Scanned with Cam

नाभि कँवल में लागी डोरी,
स्वासा सुरत चढी तब मोरी।
गुरू प्रसाद खुली उर ताड़ी,
सुरती पकड़ त्रिकूटी चाड़ी ॥२६॥
पूरक कुम्भक रेचक भीना,
प्राणायाम युक्ति सब चीना।
त्रिवेणी कँवल में ज्योति जागी,
दर्शण होते दुर्मति भागी ॥२७॥
सत देश का दर्शण पाया,
उज्वल हंसा निर्मल थाया।
सत नाम की डोरी झेली,
हंसा खेलत निर्भय हेली ॥२८॥
'अमर पट्टा' कस कमर बाधा,
अगम देश का मार्ग लाधा।
यासे हंस चल्यो जब आगो,
अगम देश के रस्ते लागो ॥२९॥
अगम देश का रस्ता आढ़ू,
निगम देश में पहूंचे साढू।
गगन मण्डल का मार्ग बंका,
वहां भी जाय लगाया डंका ॥३०॥
गगन मण्डल में निर्भय पूगा,
सुन में भानू असंख्य ऊगा।

तामे लख चौरासी प्रधाना,
सिद्ध, पदमासन मुख्य बखाना ॥४॥

ता पीछे षट् क्रिया ठाना,
धोति, बस्ती, नेति गाना ।
त्राटक, नौलि, कपाल सु–भाति,
षट् कर्म साधन कर दिन राती ॥५॥

फिर कर साधन चतुर्थ पूरा,
प्राणायाम गुरू मुख शूरा ।
इडा पिङ्गला सुषुमण नाड़ी,
श्वास प्रश्वास की देखो बाड़ी ॥६॥

मन्त्र योग पूरक मन ठाना,
तामे मूल सु बन्ध लगाना ।
खेचरि मुख में करत बखाना,
ब्रह्म रंध्र धोय जिभ्या उलटाना ॥७॥

भूचरि नासा प्राण-अपाना,
चंचल मन ठहराय जपाना ।
करि उड्डियान बन्ध परवाना,
कुम्भक अष्ठ शीतली जाना ॥८॥

सूर्य भेदन, उजाई, सितकारी,
भस्त्रिका, भ्रामरि, मुर्छाधारी ।

Scanned with Cam

अष्ठ प्लाविनि कुम्भक जाना,
चोंचरी मुद्रा नैन ठिकाना ॥६॥
मुद्रा अगोचरी श्रवण द्वारा,
ज्ञान सुरत मिले सुख धारा ।
आगे बन्ध जालन्धर ठाना,
पंचम मुद्रा उन्मुनि ध्याना ॥१०॥

रेचक करके साधन श्वासा,
निश्चय होय काट मन आशा ।
प्राणायाम चक्र षट् साधे,
माग मुक्ति का तब ही लाधे ॥११॥

मूलाधार मूल रंग लाला,
चव दल अक्षर, गणपति, भाला ।
स्वाधिष्ठान, उपस्थ, अज, पीला,
(षट्) दल वर्ण बहु विधि लीला ॥१२॥
मणिपूर, विष्णु, नाभि वासा,
दश (षट्) दल वर्ण हरीया जासा ।
अनाहत, हृदय, शिव, रंग स्वेसा,
द्वादश दल में वर्ण महा भेसा ॥१३॥

विशुद्ध, कण्ठ सु चन्द्र देवा,
शोसन रंग शोड़ष दल भेवा ।

Scanned with Cam

आज्ञा चक्र त्रिकूटी जाना,
सूरज तेज दोय दल माना ॥१४॥

सहस्त्र दल भँवर गुफा पहिचाना,
सत्य देवाऽक्षर बावन भाना।
मूल में षट् शत श्वासा माना,
इतर सहस्त्र षट्, इक जप ठाना ॥१५॥

कर आसन पश्चिमोत्थाना,
नाभी नाग्नि का मुख पलटाना।
उलटा पवन त्रिकूटो सीधो,
दशवां चढो सुमेरू बींधो ॥१६॥

कर 'प्रत्याहार' साधन लख पूरा,
पंचम आचार शुद्धि संत शूरा।
वर लययोग 'धारणा' धारो,
षष्टम साधन कर सुविचारो ॥१७॥

सच्चिदानन्द 'ध्यान' सत माना,
सप्तम साधन है निरवाना।
ऋद्धि सिद्धि काटे सब फन्दा,
परम वैरागी पहूँचे बन्दा ॥१८॥

अष्टम 'समाधि' दोय प्रकारा,
निरविकल्प रू संकल्प धारा।

Scanned with Cam

भजन (४२) राग छन्द भैरवी पद ।

मन मगन भया गुणगाय के, वे मस्त फकर की फेरी ।टेर।
इडा पिंगला सुषुमण धारा,स्वासा संग में सुरति विचारा ।
गुरू का शब्द हृदय ला प्यारा,सब दुर्मति विकार नशायके ।
निज निर्गुण माला हेरी ।१।त्रिकूटी महल में ज्योतिजागी ।
दर्शन करके दुविधा भागी, रणंकार की चौकी लागी ।
सब घट में रही गररणाय के, दश बाजा अनुभव भेरी ।२।
सुरत शब्द पवना संग पूगा, सुन महल में सूरज ऊगा ।
कोटि भानु सम उज्वल मूंगा, सब देव बिराजे आय के ।
नहीं पाव पलक की देरी।३। 'रामप्रकाश' लख्या तत सोई ।
अजर अमर गुणराशी वोई, अपना आप और नहीं कोई ।
निज 'रामप्रकाश' लखाय के, सब मिट गई मेरी तेरी ।४।

भजन (४३) राग पद संगीत गाने का हरजस

नर भजले सिरजणहार, थोड़ी ऊमर में ।टेर।
बीतो स्वासा की नहिं कछु आशा, भूलो मत करतार ।१।
दम दम जावे फेर न आवे, नहीं जीना एक सूमार ।२।
मात पिता धन कुल बन्धु न्याती, सब ही रहसी लार ।३।
राम नाम धन साथी तेरा, तूं लोक परलोक सुधार ।४।
काया माया का नहीं भरोसा, क्षण में होवे छार ।५।
'रामप्रकाश' मुक्ति मन पावे, गुरू शरणे निस्तार ।६।

Scanned with Cam

भजन (४६) राग पद संगीत लुहर पद ।

ले गुरू गम खोज विचार, मुक्ति पावेला ।टेर।
शुद्ध साधन संग श्रवण करले, मनन निदिध्यासन सा· ।१।
स्वासा के संग सुरत रोधले, निज शब्द सोंह उरधार ।२।
शम कर तन मन बाणी शुद्धकर,लख परमानन्द उदार ।३।
'रामप्रकाश' उलट घर देखो, निज का निज दिदार ।४।

भजन(४७) राग आशावरी ,टोडी, आशा पद ।

सा ो भाई ! मानव वपु मैं पाई ।
गुरू कृपा साधन की पंगत, मुक्त भया मन माई ।टेर।
कुटुम्ब समझ जिन मोह बांधिया,सो गये नर्क सिद्धाई ।
भेदवाद मत वैर बांधिया, सो गये मूल ठगाई ।१।
पक्ष पात कर वैर साधिया, तिन पाया फल भाई ।
अपयश निन्दा चुगली ठानी, सो सब भये पछुताई ।२।
जैसा कर्म तैसा फल पाया, मोह मुकुर की झांई ।
सात्विक रूप अनूप पुरुषोतम,जाणिया मुक्ति में जाई ।३।
खर की लात रू धूड़ उछाले, रवि के लागे नाई ।
अपनी करनी पार उतरनी, जाति पाति विसराई ।४।
मेहरम जाणिया तिन पद पाया,युक्ति भक्ति गम लाई ।
सगुण रूप समझ्या कर डूबा, छल कपट चतुराई ।५।

Scanned with Cam

श्वासा सांग अनूप सुहाया, संतदास गूदड़ की माया।
कण्ठी सुमिरण रहनी चादर, श्रध्दा पाटी प्रतीति आदर।७।
ब्रह्म अंचला धारे अवधूता, शिवविभूति ब्रह्म अनुभूता।८।
कफनी मर्यादा पालन करनी, सुत संतोष भेष भ्रम जरनी।
जाप जांघियाँ लज्जा कर्ण कुण्डल, प्रेम पूजा यश तर्पण मुदग्ल
निर्भय नगरहै मठ निराशा, भोजन भाव जीव अविनाशा।९।
शर्त निर्लेप मोरछल लाया, द्वेष हीन जंग डोरा भाया।
गुण उडयनि स्वाँग सुहाया, अनाहत नादशृंगी नाद बजाया१०
हरि भक्ति मृगछाला प्यारी, गुरू पुत्र पहने सो ब्रह्मचारी।
त्रिगुण चकमक भाव भोजना, परम अमृतपेय परम योजना११
पात्र अपात्र विचार फरूहा, बहुगुणी तूम्बा कमण्डल किस्तूहा
गुरूज्ञान का दीपक पाया, ऋद्धि भण्डार स्थिरता माया।१२
अमरत्व दण्ड रू धैर्य कुदाली, तप खड्ग तत्व कर झाली।
वशीकार वैरागण टेका, समद्रष्टी चौगान विवेका।१३।
मन का घोड़ा विरक्ति का जीना, प्राणायाम पोलो में दीना
इडा पिंगला पागड़े फेरा, ईश्वर नाम कँवल से घेरा।१४।
सुषुमन से आ डेरा दीया, सीतल साधन भीतर लीया।
अभरा सभरा सतसंत गाया, जीवत ओढचा मूंआ बिछाया १५
तत्व जोड़ा वेश बनाया, निर्गुण ढाल बल बाण सजाया।
शम दम फर बाणों के लागा, बोद्ध ऋषि संयम शस्त्र जागा १६

Scanned with Cam

करणी कटार धार कर शूरा, फकर फिरिया विषम गढ़ पूरा
माया गढ़ जीतेगा बाला, ब्रह्म पद निज पावे लाला ।
स्वागत गुरू मय चेला पावे, निर्मलता धोती को लावे ।१८।
यज्ञोपवीत अखण्ड आनन्दा, सोहं माला सच्ची सन्दा ।
गुरू मंत्र की शिखा हमारे, हरि नाम गायत्री धारे ।१९।
स्थिर आसन कबहु न डोले, सोहं सोहं हरदम बोले ।
तिलक पूर्ण ब्रह्म का ध्याना, नहीं जहाँ ज्ञ ज्ञाता ज्ञाना ।२०।
सन्ध्या निर्वैरता धारी, ब्रह्मानन्द का भोग लयारी ।
ब्रह्म प्रीति पीताम्बर धारा, छाप साक्षात्कार सुधारा ।२१।
ममता की मृगछाल बिछाई, तापर बैठे सब गुरू भाई ।
पंचकेशी जब पास हमारे, पाँचों को बैरी कस कस मारे ।२२।
चिंतन चेतन साक्षी पूरा, उत्तमराम निरखे गुरू नूरा ।
घटे बढे नहीं नित सवाया, नौ का अंक स्थिर रहवाया ।२३।
कोई अकेला अंकगण लीजें, छः से गुण कर, नौ संग दीजे ।
भाग तीन के भजन फल आवे, तामे पन्द्रह अंक मिलावे ।२४।
जोड़ ताहि भागदो दीजे, भजन फल सुविधा लख लीजे ।
ताते लिया अंक कम कीजे, शेष अटल अंक नौ लखीजे ।२५।
रामप्रकाश उत्तम का शरणा, साधु जीवन भव से तरणा ।
योपूरे सतगुरूका बाला, एक सौ आठश्री का रखवाला ।२६।
नामाक्षर गनि चौगुन करना, पांच मिलाय दुगुना धरना ।
भाग आठ से शेष रहावे, रमता राम सो उत्तम लखावे ।२७।

Scanned with Cam

बनखंडी तेजे बन षंड मैं रहै । सुनि निरालंब बारता कहै ॥
घड़ी न मनसा आसा पास । ते बन षंड मैं रहै उदास ॥ ४ ॥१२९॥
अगमागम कै रैते गम । अहनिस काया राषै दम ।।
नाद बिंद का जाणैं भेव । अगमांगम करै ते देव ॥ ५ ॥१३०॥
आई पंथि मैं जे अनमै करै । उलटा बांण गगन कूं धरैं ॥
उलट बजाई बेध्या भूंरा । सिध बाल गुसाई[1] साध्या जूंरा ॥ ६ ॥१३१॥
पंषि सुंनि निरालंब देषै अंष । प्रंम सुंनि मैं जोति असंष ॥
बेध्या हीरा मांणिक पाया । तौ तब पंक पंथ मैं आया ॥ ७ ॥१३२॥
धूज ते धजा कूं जांणैं । उलटा पवन गगन कूँ तांणें ।
अहनिस नाद बजावै बीनां । तेई धूज सूं लीनां ॥ ८ ॥१३३॥
गोपाल ते जे बंचै काल । अहनिस अनमै जीत्या ब्याल ॥
काम क्रोध मेटै बिह्म की माया । ते गोपाल नाथ की काया ॥ ९ ॥१३४॥
बोलंत सिध घोड़ा चोली । हमें षत्रो षेत्र का सूरा ॥
गगन मंडल मैं रहनि हमारी । बाजै अनहद तूरा ॥ १० ॥१३५॥
हणवंत[2] पैसि रामायण कीता । दससिर छेदि बहौड़ी सीतां ॥
सारा सेत तहां बंध्या पांणो । दस सिर छेदि लच्छि घर आंणी ॥ ११ ॥१३६॥
गोरख ते जे रावै गोई । माया मनसा करै न मोही ॥
सदा अकलपत रहै उदासा । परचै जोगी सिंभ निवासा ॥ १२ ॥१३७॥
जोग आरंभ भए सिधा । द्वादस हंसा ग्यानहि बिधा ॥
सोहं सोहं सास उसासं । बोलै घोड़ा चोली मछिंद्र का दासं ॥ १३ ॥१३८॥
अचित पुराणं गगन गरासं । बोलै चोली मछिंद्र का दास ॥
अचित फुरै हाथ्यौ न आवै । तब घोड़ा चोली कहां तूं पावै ॥ १४ ॥१३९॥
नष सष पूरि रही जे पवनां । आयौ है दूध भात षाइगो कवनां ॥
षुध्या की अगनि मिटाई काल । चौष्टि संधि पवन की भाल ॥ १५ ॥१४०॥
मेर डड का गागरि बंध । बाई पेलै चौष्टि संध ॥
अमरा मरै कालु कै डंस । न पड़ै काया न उड़ै हंस ॥ १५ ॥१४१॥

---

१. ग—गुदाई ।

२. ग—हिणवंत ।

भावरि भोजन जोग की । अैसो भोग न और ॥
इजा रछ्या प्रांण की । बिंजन बासी कोर ॥६॥९४॥
सीतल जल तुम्ह अंचवते । उजल अमल अबेझ ॥
अब कह्यूं जौ नीर मिलि । उसन कि मलिन असोभ ॥७॥९५॥
अह निसि झूलै आत्मां । अमी सरोवर मांहि ॥
तीरथ गंगा आदि जल । तिन तनि तृषा बुझाहि ॥८॥९६॥
रतन जटित पर सेज परि । करते सदा बिलास ॥
दंपति संपति छाड़ि अब । घर परि रहै उदास ॥९॥९७॥
सेज सबद गुरदेव के । ब्यौरन बिबधि बिलास ॥
बनिता बुधि स्वासा बिभै । संचत सुषद आस ॥१०॥९८॥
मन मैं मढ़ी बनाइ करि । इहाँ रहौ तुम राज ॥
नित प्रति हम सेवा करैं । छाड़ि सकल कुल लाज ॥११॥९९॥
मुकति मढ़ी मैं हम रहैं । सेवग सुर नर और ॥
जोगी जन रमते भले । रवैं न एकै ठौर ॥१२॥१००॥
सतगुर शबद हमारा सिर परि । बाद बिबाद न कीजै ॥
हम जोगी परदेसी माई । भिछ्या होइ त दीजै ॥१३॥१०१॥
काम बिसरि अरु क्रोध तजीला । मोह छाड़ि निरदंद ॥
माया ममिता बिना गुर सरनैं । निरभै गोपीचंद ॥१४॥१०२॥
एकंत का बासा अलख उपासा । तेषंत परम उजासा ॥
गोपीचंद महन मन जपिबा । सोहं साधंत स्वासा ॥१५॥१०३॥
इड़ा आराधिये प्यंगुला प्रमोधिये । सुषमनां सोधि उभै थीरं ॥
सहश्र दल साधिए अलख अराधिए । रुधिर पलटि फिरि षीर नीरं ॥१६॥१०४॥
पवन कूं प्रेरिबा पछिम दिसि फेरिबा । अपांन प्रांण कौं उलटि मेलै ॥
नाद गगनैं बहै द्वंद अस्थिर रहै । जोग करि जनम नहीं गमै हेलै ॥१७॥१०५॥
पवन थिरं तां मन थिर । मन थिरं तां ब्यंद ॥
ब्यंद थिरंतां कंध थिर । यौं भापंत गोपीचंद ॥१८॥*१०६॥
मन राजा मन प्रजा । मन सयल[1] का बंध[2] ॥

---

*यह पद ग. प्रति में इस प्रकार है :—
मन थिरं ता पवन थिर । पवन थिरंता बिंद ॥
बिंद थिरंता जिंद थिर । यूं भाषै गोपीचंद ॥
१–ग. सकल; २–ग. में 'जी' अधिक ।

टलमल विंद निद्रा अघोर, एते कारणै जापता व्याकुलता स्वयं प्रतीति न पाया प्रमान, श्री गुरु मछिंद्र परसनें चौरंगी अमनतें मन त्रिभवनें थीरं ॥१२४॥३२०॥

एकांत कर लै राति दिनं, आसण बंध भेद मुद्रा जोग जुगति गुर बचन प्रति-पालला, प्यिंडरा मइला भोष्य मुक्ति ॥१२६॥३२१॥

जे जन बूझिबै सो जन बूझै दुतरतिरौ मृत माया गुर उपदेसे दिढ़ चित मनै सीलंत एक थूल काया ॥१२७॥३२२॥

श्री गुर बचने सिधि थाने आपना स्वयं प्रतीत करतव्या दोइ समतुल्या ॥१२८॥३२३॥

तिणै पिंडेरा मोष्य मुक्ति त्रिभवने बिसतार, अकुंठ काया बिसेस रघु गुर उपदेसै जानीयै ॥१२९॥३२४॥

दिढ़ चित मने कलेस न भावा प्रीति पालबा, सिध संकेत बानी अमन तैं मन अबह तै बहाई, आसन बंध्या तै ॥१३०॥३२५॥

एते एक संजोगे तीन भवन एकांति साधना सपत पाताल सपत पाताल ऊपर सपत दीप सपत दीप ऊपर सपत सुनकार ॥१३१॥३२६॥

सपत सुनकार ऊपर बसत निरालंब निरंजन निराकार ग्यांने मन पवन हेत बुध मति ॥१३२॥३२७॥

ए अपार श्री गुर मछिंद्रनाथ प्रसादे इह कौ सिध संकेत बोलीयै, इह कौ गुर उपदेश बोलीयै, इह की परम पर अपार अनुपम बोलीयै ॥१३३॥३२८॥

इह कौं ध्याईयैं कंद्रप जित्रा चाप त्रिबंध दाय जै सकति संकोच जै गांठि फुटै ब्रह्म अग्नि प्रजाले ॥१३४॥३२९॥

ब्रह्म मंडल फोड़ीयैं, त्रिवेणी संगम पवन संचारीये. षट्चक्र कौ फुटीयै ॥१३५॥३३०॥

सुमेर मध्ये बाट गगन भेदीयै, भंवर गुफा प्रवेसीयै, इहां कौ पिंड प्राण परस्वौ बोलीयैं इह कौं परम सिध बोलीयैं, ॥१३६॥३३१॥

इह कौं अगम बोलीयै, इह कौं परम परमार बोलीयैं, इह अहोनिस ध्यानैं चेतने च्यार तुटै न करता विंद ॥१३७॥३३२॥

परकंतो पवन कलपता मन अघोरता निद्रा इह कौं स्वयं प्रतीत बोलीयै, इह कौ पिंड प्राण परचौ साधन बोलीयै, इह कौ मृत्य जयंत सिध पंथ बोलीयैं ॥१३८॥३३॥

ए च्यार तुटै सो कायं अजरं अमरं निर विघन निष्पपत ॥१३९॥३३४॥

त्रिभवने पूजा ते ऊपर कोउ नाहीं दूजा अयं सो परम पद सो परम आसण ॥१४०॥३३५॥

अभ्यासी के, प्राणवायु, अपानवायु, वीर्य और चित्त समानचेष्टा हो जाते हैं तथा सुषुम्ना मार्ग से प्राणगति होने लगती है वह 'घटावस्था ' होती है । जो अभ्यासी घटावस्था को प्राप्त कर लेता है । वह स्थिर – आसन, विवेकी देवसदृश मेधावी हो जाता है ।[1]

3. <u>परिचयावस्था</u> :- जब प्राणवायु सुषुम्ना मार्ग से भृकुटी में पहुँच जाती है तथा मन भी समाहित हो जाता है । तब सम्प्रज्ञात् समाधि का भृकुटी स्थान में ही परिचय होने लगता है । भृकुटी में प्राण और चित्त के समाहित होने पर जो स्थिति बनती है, वह परिचयावस्था कहलाती है । उस अवस्था में अनेक प्रकार के शब्द श्रवण होते हैं तथा अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं ।[2]

4. <u>निष्पत्त्यवस्था</u> :- कुछ योगी भृकुटी को ईश्वर का स्थान मानते हैं । जब भृकुटी ध्यान करते हुए प्राणवायु भी वहाँ चली जाती है तब ''रुद्रग्रन्थि '' का भेदन माना जाता है ।

---

1) द्वितीयायां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः ।
दृढासनो भवेद्योगी ज्ञानी देवसमस्तदा ।। (यो. प्र. 4/72)

2) तृतीयायां तु विज्ञेयो विहायोमर्दलध्वनिः ।
महाशून्य तदायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम् ।। (यो. प्र. 4/74)

सुरति का अर्थ ईश्वरोन्मुख ध्यान लगाया है।[136] डॉ. राधिका प्रसाद त्रिपाठी ने सुरती का अर्थ 'ध्यान' बताया है।[137]

विद्वानों ने 'सुरति' शब्द के प्रसंगानुकूल जो भी अर्थ किए हों किन्तु संतों की साधना के सन्दर्भ में 'सुरति' का अर्थ 'आत्मा' तथा 'शब्द' का अर्थ 'ब्रह्म' निकलता है। संतों के साहित्य में भी 'सुरति' 'जीवात्मा' तथा निरति 'ब्रहम' के अर्थ में प्रयुक्त हुई मिलती है। कबीर के अनुसार–

सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्वयं भू दुवार।।[138]

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने भी उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त 'सुरति' और 'निरति' का अर्थ 'साधक आत्मा' और 'साध्य आत्मा' करते हुए कहा है "इन पंक्तियों का अर्थ उपनिषदिक परम्परा के अनुकूल 'साधक आत्मा' और 'साध्य आत्मा' भी लिया जा सकता है। निरति या साध्य, आत्मा का शुद्ध बुद्ध नित्यरूपणी होती है। सुरति 'साधक आत्मा' है जब वह उससे तादात्म्य स्थापित कर लेती है। तो शंभु अर्थात भगवान के दर्शन हो जाते है।"[139]

रेण–रामस्नेही संतों की वाणी में भी सुरति को 'जीवात्मा' तथा शब्द और निरति को 'ब्रह्म' के रूप में चित्रित किया गया है। संत दरिया साहब की निम्न पंक्तियां :–

जन दरियाव सोई बड़भागी जाकी सुरत ब्रह्म संग जागी।[140] 'सुरति' और 'निरति' का अर्थ संत दरिया साहब की निम्न साखियों से भी प्रकट होता है –

मन बुध चित अंहकार के, सुरत सिरोमन जान।
ब्रह्म सरोवर सुरत के, दरिया सन्त प्रमान।।[141]
सुरत उलट आठों पहर, करत ब्रहम आराध।
दरिया तब ही देखिए, लागी, सुन्न समाध।।[142]
सुरत ब्रह्म का ध्यान धर, जाय ब्रह्म में पर्स।
जन दरिया जहं एकसा, दिवस एक सौ बर्स।।[143]

ररंकार सतगुरु ब्रह्म, दरिया चेला सुरत।

जैसा मिल तैसा भया, ज्यों संचे माहि भरत।।[144]

स्पष्टतः सुरति 'आत्मा' तथा निरति 'ब्रह्म' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। संत सुखराम ने भी सुरति को 'आत्मा' के रूप में ही चित्रित किया है।

रटो राम रसना अगम धाम धसना।

हरि हीर हलीया, सुरत पीव मीलीया।।[145]

नाभी नाम पेठा, सुरत संग सेठा।

चलत प्रेम धारा, पीवत संत सारा।।[146]

गगन नाद गाजे, सुरत ध्यान लागे।[147]

संत किसन दास ने भी 'सुरति' और 'निरति' को 'जीवात्मा तथा 'ब्रह्म' के रूप में ग्रहण किया है।

ग्यान गस्त गुरु शब्द ले, षट चक्र सुर माय।

सुरत पहुंची निरत घर, मिली प्राण बर जाय।।[148]

संत पूरणदास ने 'शब्द' और 'सुरति' को 'ब्रह्म' और 'जीव' के पर्याय रूप में माना है –

शब्द अखंडित ब्रह्म है, सब घट आतमराम।

सुरत जीव का नाम है, सो नहीं निगमागम।।[149]

उपर्युक्त संतों की वाणियों में 'सुरति–शब्द–योग' का अर्थ 'आत्मा' और ब्रह्म' का मिलन होता है संतों के 'सुरति–शब्द–योग' से अभिप्राय मंत्रयोग तथा लय योग पर आधारित उस साधना से है जिसमें साधक आत्मा गुरु प्रदत भगवान के नाम स्मरण रूपी शब्द को ग्रहण कर उसका विधि विशेष से लगातार रटन करती है, जिससे एक लय उत्पन्न होती है। इसी लय के सहारे साधक आत्मा 'शब्द' का रटन करते–करते अंततः ब्रह्मतत्व (शब्दतत्व) को प्राप्त हो जाती है।

रामस्नेही संतों की 'सुरति–शब्द–योग' नामक साधना–पद्धति का हठ योग साधना पद्धति के चक्र–भेदन (मूलचक्र कुंडलिनी) →मणिपुर (स्वाधिष्ठान) →नाभि → अनाहत (कंठ) → आज्ञा → ब्रहमरंध्र (सहस्रार) के क्रम से उलटा चलता है। इसमें सुरति 'कंठ–चक्र' से प्रारंभ होकर क्रमशः हृदय, नाभि, मणिपुर तथा मूलचक्र अर्थात पूर्व मार्ग के पांच चक्रों तक नीचे की ओर गमन करती है। मूलचक्र से यह शरीर के पृष्ठ भाग में स्थित मेरूदण्ड जिसे बंकनाल भी कहा जाता है कि बीस गाँठों, कुछ साधकों ने इनकी संख्या 21 बताई है। का छेदन करते हुए उर्ध्वगमन करती है तथा 'त्रिकुटी' (आज्ञाचक्र) से होते हुए 'ब्रह्मरंध्र' अथवा महाशून्य में प्रवेश करके शब्दत्व अथवा ब्रह्मरूप को उपलब्ध हो जाती है। क्योंकि इस साधना–पद्धति में सुरति 'शब्द' के सहारे 'शब्द' को ही उपलब्ध हो जाती है इसलिए इसे 'सुरति–शब्द–योग' कहते है। शरीर के पृष्ठ भाग में स्थित मेरूदंड को संतों ने 'पिछम का मार्ग' कहा है।

'उड़या हे आकाश, पिछम पार बासा।'[150]

सुरति के द्वारा 'पिदम मार्ग' से अनुसरण करने के कारण इस साधना पद्धति को पिछम का मार्ग' के नाम से भी जाना जाता है।

रेण–रामस्नेही संतों की साधना–पद्धति 'सुरति–शब्द के श्वासोंच्छवास ध्यानपर्वूक स्मरण पर ही अधिक बल दिया जाता है। इस सम्प्रदाय के संतों की वाणी में यद्यपि इला, पिंगला सुषुम्ना, त्रिकुटी, शून्य, गगन, कमलदल, बंकनाल, पीठबंध, मूलबंध आदि हठयौगिक शब्दावली का प्रचुरमात्रा में प्रयोग मिलता है, इसे पूर्ववर्ती निर्गुण संतों की वाणी का ही प्रभाव मानना चाहिएः–

साधना–पद्धति के सोपान :–

इस सम्प्रदाय की साधना पद्वति की शुरूआत सतगुरु के द्वारा शिष्य को 'राम–नाम' की महिमा सुनाने से ही प्रारंभ बताता है।

कहूँ शब्द का भेद, जा से भवसागर तिरे।
राम शब्द उपदेश, ता से चौरासी टरे।।[151]

इसके उपरान्त 'शब्द' को जिह्वा के द्वारा नाम – स्मरण करने का उपदेश देता है–

जन दरिया गुरुदेव जी, सब विधि दई बताय।
जो चाहो निजनाम को ,तो सांस उसांसौ ध्याय।।[152]

संत उमाराम ने भी साधना की इसी विधि का वर्णन करते हुए कहा है–

मूष में भूरकी मेला भाई, सास उसासा लागी घाई।[153] संतमत में इस 'भुरकी' को 'राख' या 'धुली' के स्थूल अर्थ में ग्रहण न करके गुरु–प्रदत 'राम–नाम' रूपी मूल मंत्र के प्रतीकात्मक अर्थ में ग्रहण किया गया है। संत दादूदयाल 'भुरकी' को स्पष्ट करते हुए कहते है कि–

दादु भुरकी राम की, सबद कहै गुरु ग्यान।
तिन सबदों मन मोहिया, उनमन लाग्या ध्यान।।[154]

संत दरिया साहब ने भी 'भुरकी' को राम–नाम रूपी उपदेश के रूम में इसके सुक्ष्म अर्थ को ही ग्रहण किया है–

लोक गये कूडर तारे, भजन भुरकी डारू।
जनम जनम का पाप सबेही, भजन प्रतापे जारू।।
रामनाम की भुरकी साची, सूरा को समजावे।
नूगरा देष दूर से भागे, जम पूर दोड़या जावे।।[155]

रेण– रामस्नेही संतों की साधना के अन्तर्गत यह 'भुरकी' रूपी 'राम–नाम' मंत्र मुख से प्रारम्भ होकर कंठ चक्र में प्रवेश करता है जहां चार पंखुड़ियों का कमल खिला हुआ रहता है –

मन पवना लिव बंध्या सासा, सबद कीया जाय कंठ में बासा।
च्यार पांख कंठ का है कंवला, सुरत उलट जहां किया संवला।।[156]

कंठ–चक्र के बाद साधक को विरहानुभूति होनी शुरू हो जाती है :–

बिरहन पिड़ के कारने, ढूढंन बन खण्ड जाय।
निस बीती पिउ ना मिला, दरद रहा लिपटाय।।

बिरहन का घर विरह में, ता घट लोह न मांस।

अपने साहिब कारने, सिसके सांसो सांस।।[157]

कंठ से गतिमान हो शब्द 'हृदय' में प्रवेश करता है जहां आठ दलों का कमल विकसित रहता है और प्रेम की वर्षा होने लगती है–

रसना सेती उतरा, हिरदे किया बास।

दरिया बरसा प्रेम की, पट् ऋतु बारहमास।।

जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकास।

हौद भरा जंह प्रेम का, तंह लेत हिलोरा दास।।[158]

हृदय के बाद नाभि का स्थान आता है। 'नाभि' में 32 पंखुड़ियों का कमल खिला रहता है। यहां विष्णु का निवास है –

आगे सुरत चली जीव प्यारी, नाभी कंवल बिच आसन डारी

बत्तीस पंख कंवल नाभी में, विष्णु निवास जान ताहि में।।[159]

नाभि–चक्र में साधक को 'अनहद नाद' सुनाई पड़ने लग जाता है। इस बिन्दु पर पहुंचकर साधक का रोम–रोम झंकार करने लग जाता हैः–

एक दिन नाभ घर आया, गिगन नाद घन गाजे।

रोम रोम झालर झणकारा, तार अखंडित बाजे।।

रसणांमाय रस मीठा, अनंत स्वाद मोहि आया।

रोम चेतन जब हूवा, नाभ नाद गरणाया।।

नव सो नाड़ नाभ के मांहि, अमृत रूप सिंचाई।

नव सूं छिंकी नव सो नाड़ी, उलटी गंग हिलाई।।[160]

नाभी कमल के भीतर भ्रमर गुंजार करते है, जिनका न कोई रूप है न रंग। वह अगम और अपार है। यहां भंवरों के गुंजार से दरिया साहब का तात्पर्य शब्द की गुंजार से है –

नाभी कंवल के भीतरै, भंवर करत गुञ्जार।

रूप न रेख न वरन है, ऐसा अगम अपार।।[161]

दरिया साहब और अन्य संतों ने नाभि के पश्चात 'मूलचक्र की स्थिति का वर्णन अपनी वाणी में किया है। किन्तु दरिया साहब ने नाभी और 'मूलचक्र के मध्य एक स्थान का और वर्णन किया है। उन्होंने इस स्थान पर 'ब्रह्मा' का निवास मानते हुए सोलह दल के कमल की स्थिति को स्वीकार करते हुए कहा हैः–

अब तो शब्द पंयाला भागा, छै पांक दस वहां है जागा।
लाल रंग ब्रह्मा का देखा, सुरत सुन्दरी जानी रेखा।।[162]

इसके पश्चात शब्द मूलचक्र में पहुंचता है। दरिया साहब ने यहां 64 दलों वाले कमल की स्थिति बताते हुए गणपति का निवास स्थान बताया हैः–

चौसठ पंकदल गणपति बासा, मूलचक्र दल कंवल प्रकाशा।[163]

संत किसनदास ने इसे 'गुदाचक्र' मानते हुए कहा है।

गुदाचक्र के घाट में गंगा चले सुभाय।
किसनदास न्हावण किया, उलट अपूठा आय।।[164]

संत दरिया साहब के मतानुसार 'मूलचक्र' से सुरति मेरूदंड की बीस गांठों का छेदन करते हुए बंकनाल के मार्ग से ऊपर की ओर गमन करती है।

अब तो शब्द पिच्छम दिश चाल्या, मेरूदंड के मारग हाल्या।
बीसू गांठ मेरू की लांगी, बंकनाल होय सुरता जागी।।[165]

संत किसनदास ने मेरूदण्ड में 21 गांठों का वर्णन किया है। सुरति इन 21 गांठों का छेदन कर ऊपर की ओर चढ़ती है–

सुरत पलीता पवनसर, लगे उसासा धूण।
गांठ इकीसों छेदकर, मेर डंडी है तूण।।[166]

मेरूदंड के बंकनाल से होकर सुरति त्रिकुटी में प्रवेश करती है, जहाँ दो दलीय कमल होता हैः–

दोय पंख का कंवल त्रिकूटी, जाहा सुखमना धारा छूटी।[167]

संत दरिया साहब ने इसे गगन भी कहा है। यहां साधक को 'ररंकार' की धुन सुनाई पड़ती हैः–

सुरत गगन में बैठकर, पति का ध्यान सँजोय।
नाड़ि नाड़ि रूँ रूँ बिचे, ररंकार धुन होय।।[168]

यह त्रिकुटी ही 'अनुभव देश' कहलाता है। यहीं पर आकर साधक को सुख की प्रतीति होती है–

त्रिकुटी मांहि सुख घना, नांहि दुःख का लेस।
जन दरिया सुख दुख नहीं, वह कोई अनुभव देस।।[169]

संत दरिया साहब ने सुरति और शब्द के अलौकिक संयोग का बड़ा ही हृदयगाही वर्णन किया है। वहाँ अनन्त चन्द्रमा उदित हो रहे हैं और करोड़ों सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं–

अनन्त हि चन्दा ऊगिया, सूर्य कोटि परकास।
बिन बादल बरसा घनी, छह ऋतु बारह मास।।[170]

त्रिकुटी ब्रह्म साक्षात्कार से पूर्व का अंतिम पड़ाव है। ब्रह्म से साक्षात्कार के पश्चात् साधक ब्रह्म हो जाता है, द्वैतभाव समाप्त हो जाता है। किन्तु त्रिकुटी तक साधक और साध्य का भेद बना रहता है। यहाँ से साधक का पतन संभव है–

दरिया मन निज मन भया, त्रिकुटी मन्झ समाय।
जो वहाँ से पाछा फिरै, ते मन का मन हो जाये।।[171]

त्रिकुटी सोपान से आगे 'शून्य समाधि' का अंतिम सोपान है। इसे 'ब्रह्मरंध्र', 'दसवांद्वार' भी कहा जाता है। यहाँ 'सहस्रदल कमल' खिला रहता है। इसलिए इसे 'सहस्रार' भी कहते है। त्रिकुटी तक साधक अपनी अखंड साधना, अटूट नाम स्मरण, अविराम ध्यान, लगन और सामर्थ्य से पहुँच सकता है, किन्तु 'शून्य समाधि' में पहुँचना साधक की क्षमता के भीतर की बात नहीं है। यह स्वयं ही घटित होने वाली एक सहज अवस्था है। जिसमें जीव और ब्रह्म एक हो जाते है। द्वैतभाव समाप्त हो जाता है। यहीं 'ररंकार' व 'अगम देश' है।

उत्तर :—श्वास प्रश्वास की स्वतः गति को योग के नियमानुसार गति में बदलने का नाम स्वर योग है। योगाभ्यासी साधकों का श्वास दिन में बायाँ स्वर तथा रात्रि में दाहिना स्वर चलना चाहिए। इससे दिन के ताप का तथा रात्रि के शीत (ठंढ) का कोई असर उस साधक के शरीर पर नहीं पड़ता। जिसके लिए वेद शास्त्र एवं योगियों का ऐसा आदेश है कि "जो सूर्य स्वर में चन्द्र स्वर को तथा चन्द्र में सूर्य स्वर को प्रवेश करता है" वह साधक योगी प्राण वायु को जीत लेता है और कुछ ही दिनों में त्रिकालदर्शी हो जाता है।

बायाँ स्वर शीतल स्वर है इसमें गंगा की धार बहती है, यह चन्द्र स्वर है। दाहिना स्वर गर्म स्वर है इसमें यमुना का प्रवाह बहता है, यह सूर्य स्वर है। इस दोनों स्वरों के बीच में एक सुषुम्णा है जिसमें सरस्वती की धार बहती है जिसमें अति उत्तम ध्यान लगता है। इन तीनों स्वरों का मेल आज्ञाचक्र (भृकुटी) में है इसके सम्बन्ध में स्वामी जी का पद है कि—

पद :—ईगला पिंगला सुषुम्णा में बहता है त्रिवेणी का चक्कर।
गहरा श्वास दबा कर मारो कुण्डलिनी पर टक्कर॥
जनम-जनम की सोई शक्ति अपनी निन्द तजेगी।
प्राणी मात्र के अंतस्तल से अनुपम ज्योति जगेगी॥

दूसरापद:-ईगला पिंगला सुषुम्णा में, बहता है त्रिवेणीका संगम।
कर स्नान पान तन मन ते, तो छुट जाय भव जंगम॥
ईगला पिंगला सुषुम्णा में सोऽहं सोऽहं ध्वनि अहर्निश होती।
इस युक्ति को जो जन समझे वही श्रेष्ठ योगी है॥
इसको भूला फिरे मूढ़ जो वही विषय भोगी है।
इस युक्ति को जान मनुष्य योग युक्त हो जाता।
कैवल्य देह हंस का पाकर भव भ्रम से छुट जाता॥

❀ दोहा ❀

गगन नगारा घुर रह्या, हरदम आठों पैर ।
गुरुमुख ज्ञानी कोउ चढ़े, करे अगम को सैर ।।

भजन नं० २ (राग आसावरी)

साधो भाई इस विध गगन सिधावो ।
मूल द्वार का मंजन करके, गणपति गुप्त मनावो ।।टेर।।
बांया पैर समेट मूलपर, एड़ी ठोक जमावो ।
दांया पैर लिंग के ऊपर आसन सिद्ध लगावो ।।१।।
रेचक पूरक कुम्भक भरके, प्राणायाम बढ़ावो ।
सोहं जाप उन्मुनी मुद्रा, नाम सुरत ठहरावो ।।२।।
इड़ा पिंगला सुमरण सेरी, सुखमण तार मिलाओ ।
गुदा द्वार से पवन उठाकर, षट चक्कर पर आओ ।।३।।
स्वयंम्बु लिंग पर नागिन बैठी खैंच अपान उठावो ।
प्राण अपान मिलाय दुहुन को नाभ कमल पलटावो ।।४।।
फण फटकार नागनी जागे नुरत मेरु ठहरावो ।
बंक नाल है अनुभव पैड़ी ग्रन्थि इकीस तुड़ावो ।।५।।
भृकुटि गगन बिच महल पियाको, सहस्त्र कमलमें आवो ।
तिरवेणी तीरथ प्रयाग यह शुख सागर में न्हावो ।।६।।
झिलमिल जोतजुगतसे निरखो, पीवपरस घर आवो ।
शिवमें जीव अमर घरवासा, सुण्य में जाय समावो ।।७।।
करके सुरता श्रुती कमलमें, आगे पांव बढावो ।

हंस मुखी है हंस कमल में, हंसा जाय मिलावो ॥८॥
श्वेत धार जलकी बहती है, हंसा स्नान करावो ।
धर्मराय दरबार तहाँ पर, अजगा मौन करावो ॥९॥
धर्मराय ढिग करो निवेड़ा, निर्बन्धन हो जावो ।
लेना देना खतम हमारा, यम को जाय बताओ ॥१०॥
तीन लोक का लेना देना, खाता खतम कराओ ।
काल पुरुष की रचना होकर, दशवां ऊपर जाओ ॥११
भँवर गुफा में होकर आगे सत्य लोक में आओ ।
सत्य लोकमें सत्य पुरुष है, ताको शीश निवाओ ॥१२
अगम लोक है अखै अनामी अलख पुरुष को ध्यावो ।
मोहनपुरी निर्मल चेतन में जाकर आप समावो ॥१३

भावार्थ--हे सज्जनों उपरोक्त दोहे में जहां पर चढ़
संकेत किया गया है, उस गगन स्थानी ब्रह्मरंध्र में चढ़
विधि यह है, मूल द्वार का शुद्धि करण करके गुप्त ग
की आराधना जैसे कि--हमने भजन नं० १ में बता
करो । प्रथम बायें पैर से मूल बन्द लगाकर दाहिना
लिंग स्थान के ऊपर लगावो इस तरह सिद्ध आसन ल
के मूलाधार से पवन को उठाकर आज्ञा चक्र में ठह
तथा फिर नासिका द्वारा धीरे २ वायु को बाहिर निक
इस भांति से रेचक, पूरक और कुंभक करके प्राणाया
अवधि को बढ़ावो । उठते हुए स्वांस में 'सो' और बैठ

10:45

श्री उत्तम हरि आरती

किशन सुथार
9892347434

(राग चौपाई, पद)

निशिदिन संत परम पद जोई, आरती करे सो केवल होई॥टेर॥
पहली आरती सतगुरु सेवा, तन मन भेंट धरूँ सिर देवा।
दूजी आरती रसना गाया, जल पलटाय अमी रस पाया॥१॥
तीजी आरती कण्ठ में वासा, भ्रम कर्म व्यापे नहीं आसा।
चौथी आरती हृदय हुलासा, रेण मिटी हुआ प्रकाशा॥२॥
पाँचवी आरती नाभि गुंजासा, अष्ट कली पर भंवर विलासा।
छट्ठी आरती पश्चिम दिशा सूं, दे परिक्रमा शीश नमा[illegible]॥३॥
सातवीं आरती त्रिकूटी में वासा, झिलमिल ज्योति हुआ प्रकाशा।
आठवीं आरती गगन घुराणा, अमी वर्षाय स्नान कराण[illegible]॥४॥
नवमीं आरती नौ दरवाजा, खिड़की बन्द करे सोई रा[illegible]।
दशमी आरती दशवें द्वारे, अरस परस मिले राम पिय[illegible]॥
ग्यारहवीं आरती परम प्रकाशा, रूप वर्ण बिन नाम निराशा।
बारहवीं आरती ब्रह्म विलासा, संत (कह) हरिराम निर्भय घर वासा॥६॥

(दोहा)

मन पवना पहुँचे नहीं, सुरता करत हुलास।

Shot on Vivo AI camera
12
Dislike
1
Share
Remix
@jayshreeram2990
स्वामी श्री हरिराम जी ,रचित आरती,,,लाइक शयेर जरूर करे,,
Add a comment...

ईश्वरोपासना—सन्त नेकीराम जी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से मुक्त होकर ईश्वर की उपासना को चार सोपानो मे विभाजित किया है। जिसका प्रथम सोपान है अन्त करण की शुद्धि। इस अवस्था मे उपासक का मन राग और द्वेष से मुक्त होना अनिवार्य है। इस स्थिति मे पहुँचते ही व्यक्ति उपासना के द्वितीय सोपान वैराग्य मे पहुँच जायगा। इस स्थिति मे उपासक को पाँच लुटेरे विकारो से विरक्ति हो जाती है और तृतीय सोपान मे उपासक मन की एकाग्रता तक आसानी से पहुँच सकता है क्योकि उपासक के मन की एकाग्रता मे बाधक यही सभी विकार होते हैं। अन्त मे भक्त अन्तिम मंजिल उपासना की परिधि पर पहुँच जाता है। जहाँ से उपासक ईश्वर के दर्शन कर सकता है जिस ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार है

अष्ट कमल दल मेल साहेब हरदम खेल अनूप है।
रहता रमता आप साहेब ना छाया ना धूप है।
नाभि-कमल स्थान जाका तुरिय तत्त्व निज धाम है।
चल हंसा उस धाम पर सो सोहड़ना ऐसा दान है।

गगन मण्डल गलवाद गँयी सोहं रूप अपार है।
'नेकीराम' उस धाम पर से अवगत का दीदार है।[11]

सारांशत: हम कह सकते हैं कि सन्त नेकीराम परम योगेश्वर थे जिन्होंने अपनी योग-साधना के द्वारा पाखण्ड-पंक मे लिप्त जन-मानस मे अष्ट कमल दल की गन्ध सुवासित की और थोथे कर्मकाण्डो की कपाल-क्रिया करके मानव जाति को संकीर्ण विचार-परिधि से विमुक्त किया तथा अजस्र एवं अनन्त प्रकाश-पुंज द्वारा तिमिर-भ्रमित सहस्रो भक्तो का पथ-निर्देशन किया; जिसका अनुमान आज भी 'श्री सन्त आश्रम' नाहरी मे पावन पर्वो पर भक्तो की उमड़ती भीड़ से लगाया जा सकता है।

संदर्भ

१. (अ) चौ० स्वरूप सिंह जी, 'सन्त नेकीराम की स्वान-ए उमरी', पृष्ठ १।

(आ) नाहरी माजरे म दईया भइया दहीया का जग सारा।
दहीया मे कोई सहीया आवे, सोई मित्र हमारा।
नेकीराम भइया नहीं आवे, मैं मैं करता हारा।
दिल्ली माँहि दलाली कीनी, नफा नाम का मारा।

(सन्त जीतादास, श्री ग्रन्थ साहेब, २६६ । २००)

२. नाहरी ग्राम दिल्ली से ठीक २० मील दूर उत्तर-पश्चिम दिशा मे स्थित है। यह ग्राम उस समय दिल्ली जनपद म लगता था। प्रशासन की सुविधा के लिए जब दिल्ली प्रान्त बनाया गया तो यह गाँव जिला रोहतक म आ गया था। हरियाणा और पंजाब के विभाजनोपरान्त सम्प्रति यह गाँव सोनीपत जनपद मे आ गया है। यह ग्राम नरेला (दिल्ली-४०) से तीन मील की दूरी पर दिल्ली से रोहतक और सोनीपत जाने वाली सड़क पर दाएँ हाथ पर बसा हुआ है।

३. धर्मवीर कौशिक, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ १।

आपने जालंधर जनपद की नवाँ शहर तहसील के ग्राम जगतपुरा के सत्-संगियो की बहुलता को ध्यान मे रखते हुए वहाँ पर भी एक डेरे की स्थापना की क्योंकि वहाँ के भक्त कई वर्षों से इस डेरे म आते थे।

अन्वेषण के उपरान्त हमको आपकी लगभग २०० वाणियाँ प्राप्त हुई हैं, जो गुरुमुखी लिपि म लिखी गई हैं। वैस अधिकाशत वाणियाँ हिन्दी म ही सृजित हैं जिनमे दोहा, पद, खयाल, कुडली, गजल आदि छन्दो का प्रयोग किया गया है। अन्य कुछ वाणियाँ सरल पजाबी म हैं। आपकी इन वाणियो का एक सग्रह, जिसम सन्त घीसादास की वाणियाँ समाविष्ट हैं, 'डेरा रामपुरा' द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है , जिसे घीसापन्थी अपना पवित्र ग्रन्थ मानते हैं।

आपकी वाणियो मे गुरु महत्ता, ईश्वर की सर्वव्यापकता, ससार के साथ अनासक्ति, काम, क्रोध, माया, मोह और अहकार के प्रति वैराग्य तथा ईश्वर साधना पर विवेचन किया गया है। बाह्याडम्बवरो से आपको तनिक भी मोह नही था। ये आडम्बर विभिन्न रूप धारण करके दिग्भ्रमित करते रहते हैं। दुनिया इन आडम्बरो मे भटकती फिरती है। कोई कागज और पत्थर की पूजा करता है। कोई तीर्थों म स्नान करता फिरता है। कोई माया के पाश म कैद है। यह कोई नही जानता कि यह सारा ससार बेगाना है। यदि अपना है तो मात्र राम नाम, जो केवल साधना के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वह इन तीर्थों की यात्रा म नही मिलता। वह तो इस मानव-तन म ही है जिसके दर्शन कोई-कोई सन्त ही कर पाता है वह भी गुरु की असीम कृपा से—

गुरु ऐसा ख्याल लखाया।
मोहि देख अचम्भा आया।
नाभि कमल से पकडा हमको दसवां द्वार लँघाया।
त्रिवेणी की धारा चाले तामें मल-मल न्हाया।
अमी बूंद का छुट्या फुहारा तन-मन सब सियलाया।
जिन्दा जोगी नाद बजावै सोहग पद को गाया।
ज्योति झिलमिली तारा गण दरसं दिल का भरम गँवाया।
उलट कमल अब सूधा हो गया सुन्न मडल घर पाया।
'ईश्वरदास' शरण सत् गुरु की आवन जान मिटाया।

९ नवम्बर सन १९४४ ई० को सुबह सात बजे आप इस पचभौतिक शरीर का परित्याग करके सत्यलोकवासी हो गए। आपके बाद डेरा रामपुरा का कार्य-भार आपके अनन्य शिष्य श्री निरजनदास सँभाल रहे हैं। डेरा रामपुरा मे एक साल मे बारह मेले लगते हैं जिनमे होली, दीवाली के मेले बहुत बडे होते हैं। इन भक्तो की रहत मर्यादाओ मे अन्य क्षेत्रो के भक्तो की रहत मर्यादाओ से कुछ वैषम्य है अत पजाब के लोग स्वय को पजाबी घीसापन्थी कहते हैं।

आई जम की फौजांवे भजन भजन गढ़ त्यार करो।
जम पकड़ ले जावंगा बहुत ही दुख भरो।
संग कोई ना चालेगा अकेले ही राह फरो।
साथ कौड़ी ना जावंगी जोड़-जोड़ क्यो धरो।
कोई रोज़ का मेला है क्यों क्रोध की अगिन जरो।
पकड़ो क्षिमा गरीबी तुम साहिब से सदा डरो।
'ईश्वरदास' घर खोजो तुम फेरि जनमो न मरो।

ऐसा देश हमारा है जहाँ कोई मरता नहीं।
वहाँ रंग तमाशे हैं शोक कोई करता नहीं।
वहाँ जोर ना जुल्मो है दण्ड कोई भरता नहीं।
वहाँ चोर ना डाकू हैं माल कोई हरता नहीं।
वहाँ राज ना राणा है, किसी से कोई डरता नहीं।
वह देश दिवाना है वेद कोई पढ़ता नहीं।
वहाँ अमृत वर्षा हैं अगन कुंड जलता नहीं।
वहाँ अनहद वाणी है भोग कभी पड़ता नहीं।
'ईश्वरदास' यहाँ पहुँचेगा जो, जन्म फेर धरता नहीं।

सन्त अवगतदास की वाणियाँ

गुरु दरबार मे जाना चलो चलिए जी !
आसन संयम साध पियारे सोहं स्वास मे आना।
सुरत निरत से चीन्ह बावरे, दसो नाद मिल जाना।
काल जाल के बंधन छूटें, पावै रे पद निरवाना।
धीसा सन्त दरबार विराजें ! दास प्रेम कर जाना।
'अवगतदास' शरण मे ठाडे, सतगुरु चरण लपटना।

मैंने बहुतों के बोल सहे सितमगर तेरे लिए।
चाचरी, भूचरी, अगोचरी मुदरा, मैंने त्रिकुटी ध्यान धरे।

अन्दर की गृहस्थी छूटे बिन सुख नहीं पावे कोई।
'स्वामी आत्म' पार होवे जब सतगुरु कृपा होई।

८

सुरत प्रभु नाम में अटकी।
स्वाँस बाँस घर भीतर रोप्या, प्रेम डोर छटकी।
सुरत कलाली चढी बाँस पर, कला करे नट की।
मैं मेरी का बोझ जबर था, तृष्णा की मटकी।
शब्द झकोला दिया घट भीतर, सब-की-सब झटकी।
सतगुरु दे उपदेश उभारी, जनम जनम भटकी।
शब्द सुरत का मेल कराया ममता घर पटकी।
घर ही घर मे जूझन लागी मन से जा खटकी।
उन्मुन तारी लागी गगन में, खबर हुई घर की।
आनन्द ही यहाँ बरस रह्यो है प्रेम बूंद गटकी।
'स्वामी आत्म' अपना घर पायो सुरत जाय लटकी।

९

घट ही मे उजियारा, रे साधो!
चेतन ज्योति जगे निरन्तर, नहीं वार नहीं पारा।
बिन नैनों ही दर्शन कीजे, आनन्द रूप अति प्यारा।
अन्तर्मुख मस्त हो रहिए, चले न यम का चारा।
अन्दर-बाहर सर्व निवासी, अखण्ड रूप निरधारा।
'स्वामी बलजीत' भ्रम भय भागे होवे ब्रह्म दीदारा।

१०

ब्रह्म रूप अति झीना, रे मनवा।
स्वांस स्वांसा सुरत समोवो बजे सोहं की बीणा।
त्रिकुटी कमल का आसन लगाये, सो योगी परवीणा।
उन्मुन तारी लगे शिखर मे आतम रस तिन पीना।
चिन्मय ज्योति रूप-रंग बिन निज ही मे लख लीना।
'स्वामी बलजीत' मे पद पाया सफल तिनों का जीना।

११

देखो ज्ञान उजियारा, रे साधो।
बिन ही तैल चसे दिन राती अखड रूप निराधारा।

सका। अतः योग क्रियाओं की साधना अत्यन्त कठिन या असत्य समझ कर जन समाज ने इस ओर प्रयाण करना त्याग दिया अर्थात् इस परमोपयोगी साधन में से विश्वास हट गया।

मैंने कठिन अनुभव से ज्ञान प्राप्त किया है कि कुण्डलनी सुरति का नाम है और आहार विहार की पवित्रता से, सुरति पवित्र होकर श्वास में तन्मय होती है और फलतः आत्म साक्षात्कार हो जाता है।

सुषुम्ना अंग

(प्रश्न)

नाम सुषुम्ना मैं सुना श्री मुख से बहुबार।
इसका भेद बताइये, गुरु वर शिष्याधार ॥१॥

(उत्तर)

शिष्य शान्त होकर सुनो, कहूँ सुषुम्ना भेद।
जो खोजे उसको मिले, दूर होय भव खेद ॥२॥

नाभि कमल के बीच अनोखा ठाठ है।
सब नाडिन का मूल यही एक घाट है ॥१॥

(४)

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जो आवै ॥
बिन मुखड़ा से जप करो, नहिं जीभ डुलाओ ।
उलटि सुरति ऊपर करो, नैनन दरसाओ ॥१॥
जाहु हंस पच्छिम दिसा, खिरकी खुलवावो ।
तिरबैनी के घाट पर, हंसा नहवावो ॥२॥
पानी पैवन कि गम नहीं, वोहि लोक मंझारो ।
वाही बिच इक रूप है, वोहि ध्यान लगावो ॥३॥
जिमी असमान वहां नहीं, वा अजर कहावै ।
कहै कबीर सोइ साधु जन, वा लोक मँझावै । ४॥

(५)

जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो ।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो ।
देह संग ना होवै मुक्ता, मुये मुक्ति कहाँ होई हो ।
तीरथ वासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो ॥१॥
जीवत भर्म की फाँस न काटी, मुये मुक्ति की आशा हो ।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हारे ॥२॥
है अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो ।
बिना अतीत सदा बंधन में, कितहूँ जानि न पाई हो ॥३।
आवागवन से गये छूटि के, सुमिर नाम अविनासी हो ।
कहै कबीर सोई जन गुरु हैं, काटी भ्रम की फाँसी हो ॥४॥

Scanned with CamScanner

सेल नं० ७ :

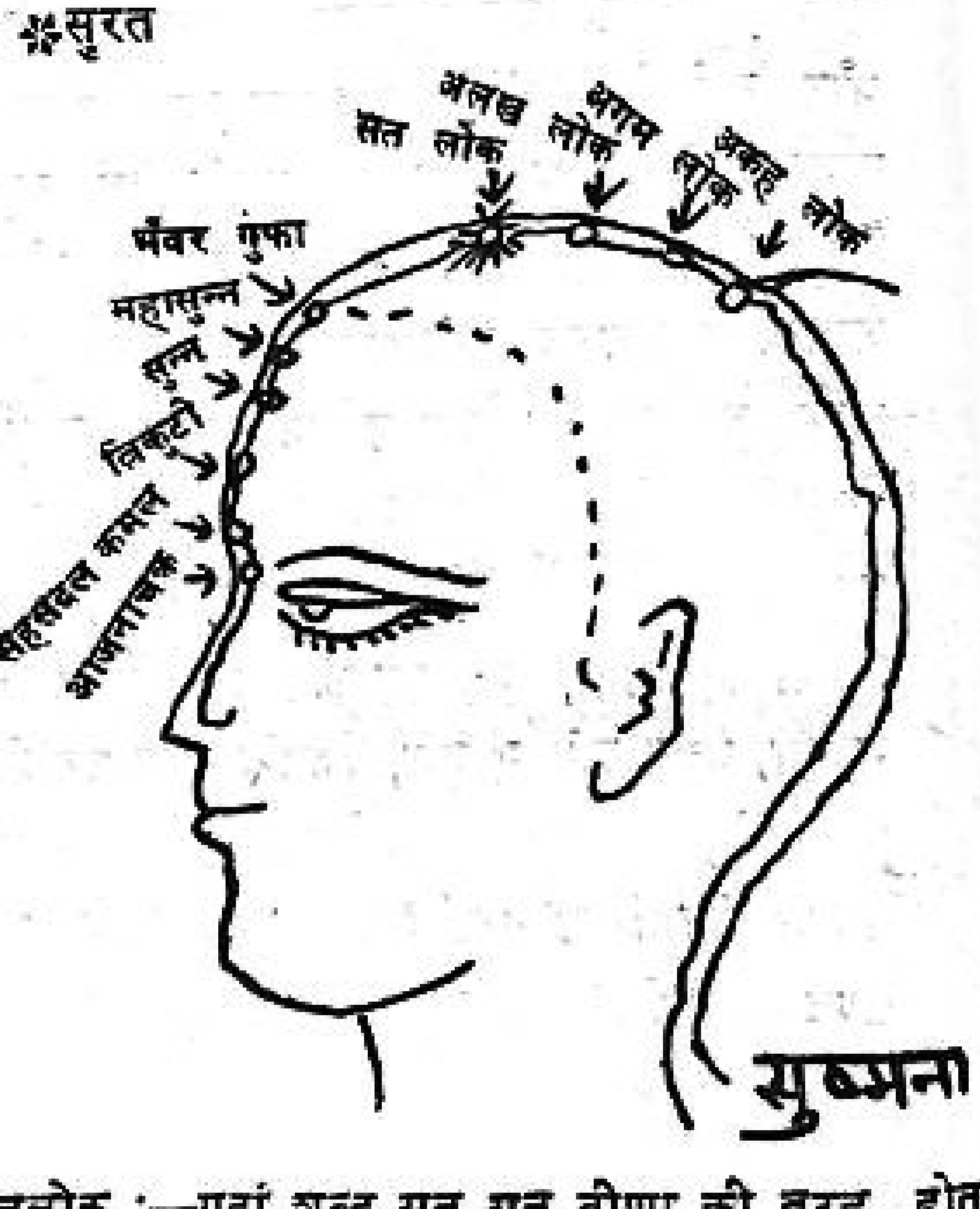

सतलोक :—यहां शब्द सत सत वीणा की तरह होता तथा महान प्रकाश सा होता है। इसे सच खण्ड व झंझरी दीप भी संतों की भाषा में कहा जाता है। इसे हैपने का देश व आनन्द का देश अथवा कारण प्रकृति कहते हैं। सब रचना का

सन्त कबीर दास जी ने " कायानगर" मे "काया पुरुष" को प्राप्त करने एव वश के दृश्यो का जो वर्णन किया है, इससे इनकी कुण्डलिनी योग-साधना सम्बन्धी ज्ञान का आभास मिलता है। यथा.-

\+ + +

दिखलूं मै कायानगर मे, काया पुरुषवा खोजि के।
काहे सजनवा बिराजे भवनवा, दूनो नयनवा जोरि के।
इंगला पिंगला सुषमन साधो, मनुवा आपन रोकि के।
दसई दुवरिया लागी किवरिया, खोल शब्द से जोरि के।
रिमि झिमि रिमिझिमि मोती बरसै, हीरा लाल बटोरि के।
लौका लौके बिजुली चमकै, झिंगुर बोलै झनकोरि के।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निर्वान के।।[1]
या पद के जो अर्थ लगावै, सोई पुरुष अनमोल के।।

1- कबीर शब्दावली भाग3, पृ0 26- बे0 लि0 प्रे0- इलाहाबाद

सन्त शिवनारायण ने भी इस योग साधना का यत्र- तत्र वर्णन किया है -

इगला पिगला दुइनारी सुधारी आठ पहर नौ नरिया।
गंगा यमुना बीच बहे सरस्वती प्रेम के उठत लहरिया ।।[1]

सन्त धरम दास के विचार से पाच और पच्चीस को वश में करने के साथ-साथ इगला, पिगला और सुषुम्ना को सोधने के बाद ही प्रभु का चरणोदक प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि अधोलिखित पक्तियो से प्रगट है -

पाचे पाच पचीसो बस करि साचे होइ ठहरावै।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, तब चरनोदक पावै ।।[2]

सन्त पलटू दास ने अत्यंत ही प्रभाव शाली रूप में प्रतीकात्मक शैली के द्वारा इस योग-साधना का उल्लेख किया है -

इगला पिगला पलरा दूनौ, लागि सुरति की जोती।
सत्त सबद की डाडी पकरौ, तौलो भरि भरि मोती।
चाद सुरज दोउ करै रखबारी, लगी तत्त की ढेरी।
तुरिया चढि के बेचन लागे, ऐसी साहिबी मेरी ।।[3]

1- शब्दावली, चदवार की प्रति, पृ0 13, पद 32।

2- धरम दास की शब्दावली, पृ0 71

3- पलटू दास की बानी, भाग 3, पृ0 28

इसी प्रकार सन्त बुल्ला साहब,[1] धरनी दास,[2] मीखा[3],कीना राम[4], भिनक राम[5], सुवचन दासी,[6] शिवा राम[7] आदि सन्तों ने हठ योग-साधना का वर्णन किया है ।

1- मातल मनुवा घटहि समैबो हो ।

सहज सरुपे लिहले, हरिगुन गहबो हो।

तीरथ तिरबेनी नहबो, गगन मे जइबो हो ।

अनहद धुनि सुनि दीपक बरइबो हो ।।

-- बुल्ला शब्दसार, पृ04

2- अजब आवाज नगारा बाजत गगन गरज धुनि भारी ।

तह बरै बाती, दिवस न राती, अलख पुरुष मठधारी ।।

-- धरनी बानी, पृ0 5

3- मन में आनन्द फाग उठो री ।

इंगला पिंगला तारी देवै, सुखमन गावत होरी ।

बाजत अनहद डक तहा धुनि गगन मे ताल परोरी ।।- मीखा शब्दावली,पृ033

4- भिलमिलि जोत की ~~भ~~ भाई, तबै गति अलख दरसाई ।

बसी बजे सुर घोर से, गूंजि तिहूं पुर शौर से ।।

-- राम गीता, पृ020

5- अमर पुरी के ऐसा अनहद मुरली बजावे ।

ओमे गावत राग रागिन छत्तिसो हो राम ।।-हस्तलिखित संग्रह, पद 20

6- हरि मधुआ मद माती, गगना निरत करो दिन राती रे ।

छकि छकि पीवो प्रेम पियाला, रोमे रोम रंग छाई ।

जग बिचुरो धुई गगन में ताड़ी अखंड लगाती रे ।

इगला पिगला पवन को रोकी, सुखमन दौड़ लगावे ।

मकर तार डोरी को पकरी, नीच ऊच भूमि आती रे ।

-- प्रेम तरगिनी, भाग 3, शब्द 171

7- इगल पिगल नाडी साधे, तब सुचि सुषुमन नारी राधे ।

बाम इंगला ससि दुति पाई, दच्छ दिसा पिगल भलकाई ।

मध्य सुषुमना संदा जोती, ब्रह्म समीप अजब छवि होती ।

ताहि निरखि रिधि सिधि बस होई, राम कहत ससै अघ धोई।। [illegible]

इसी प्रकार नितानद के एक अन्य पद मे भी सुरत के जगाने का तथा प्रेम मगन होकर गगन मे चढकर अनहद बब बजाने का विवरण मिल जाता है। यहॉ सुरत हठयोगियो की कुण्डली की शक्ति के समतुल्य मानी गई है।[16]

सत रामसिह अरमान अपनी साखियो मे सुरत शब्द योग को स्पष्ट करते हुए लिखते है– भाइयो सुनो ! शब्द योग बडा अद्‌भुत साधन है। जब साधक गुरु की दया से तथा साध सगति से अपनी सुरत उलट कर ध्यान धरते है तो वहॉ मुक्ति भी छोटी पड जाती है। इस मार्ग मे लाखो चन्द्रमा तथा करोडो सूर्यो का प्रकाश दिखलाई पडता है, यह मार्ग करनी का मार्ग है। वाद–विवाद से बचकर बाहरी वेद को छोडकर अपने भीतर का वेद अर्थात् सूक्ष्म वेद पढना है। इसीलिए यह अदभुत निर्वाणी पद कहा गया है।[17]

---

16 स्वामी नितानद, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ॰ 461, 165

17 शब्द योग है अद्‌भुत साधन, सुन लो भाई बानी।
वेदशास्त्र घट मे बसते, घटकी अजब कहानी।। 1।।
सुरत उलट कर चढ गगन मे, ध्यान धरे जब ध्यानी।
गुरु की दया और साध की सगत मुक्ति भरे वहॉ पानी।। 2।।
लक्षकला ले चन्द्र प्रकाश, कोटिकला ले भाना।
वाचक भेद नही वाका जाने, छोडो खैचा तानी।। 3।।
क्या कहूँ कहने की नाही, आपे मे आप समानी।
वाद–विवाद नही कुछ प्यारे, जिन देखी तिन जानी।। 4।।
सूक्ष्म वेद पढो घट भीतर, न्यारी है राम कहानी।
राम सिह गुरु शिव व्रत लाल है, यह पद है निर्बानी।। 5।।
– मास्टर रामसिह अरमान, अरमान सागर, पृ॰ 120, पद–50

13:02
hindwi.org/hindi-dictionary/
खोजिए

मूलबंध

स्रोत : संस्कृत

शब्दभेद : संज्ञा, पुल्लिंग

मूलबंध का हिंदी अर्थ

- हठयोग की एक क्रिया जिसमें सिद्धासन या वज्रासन द्वारा शिश्न और गुदा के मध्यवाले भाग की दबाकर अपान वायु को ऊपर की ओर चढ़ाते हैं
- तांत्रिक पूजन में एक प्रकार का अंगुलि-न्यास
- हठयोग की एक क्रिया जिसमें सिद्धासन या वज्रासन द्वारा शिश्न और गुदा के मध्यवाले भाग को दबाकर अपान वायु को ऊपर चढ़ाते हैं, जिससे कुंडलिनी जागकर मेरु-दंड के सहारे ऊपर की ओर चढ़ने लगती है

हि

हिन्दवी डिक्शनरी पर 'मूलबंध' से संबंधित विस्तृत अर्थ खोजिए।

Prsent_by_सन्तवाणी lyrics
संत बालुराम जी की वाणी
साधो भाई
सतगुरु देश दिखाया
सोहम शब्द सुनाया
स्वर ds Kundan
साधो भाई सतगुरु देश दिखाया।
जन्म मरण का फंदा मेटिया, सोहम शब्द सुनाया।

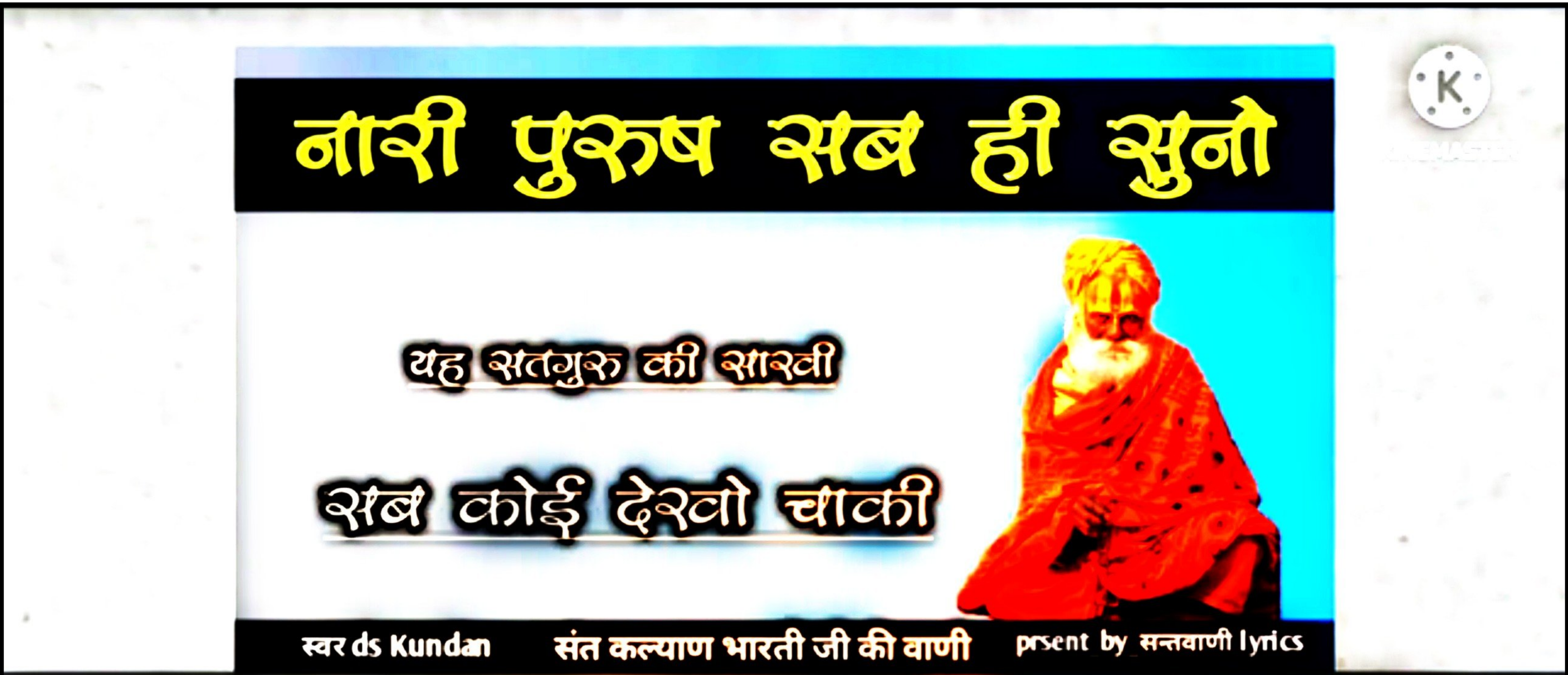

आँख, कान, मुंह, नाक बंद करके, नाभी में सुरता लगाई।

तत्वों का प्रकाश देख के, मगन हुआ मन माही। 2

साधो भाई
भेद बिरला नें पाया
लाखो ध्यानी पच पच मर गये
स्वर ds Kundan
संत शीतलनाथ जी की वाणी
Prsent_by_सन्तवाणी lyrics
अनघड़ पुरूष बदेई रहता, अधर पधर ठहराया।
अचरज खेल अचम्भा खाली, सुखमन में दर्शाया ।। 3 ।।

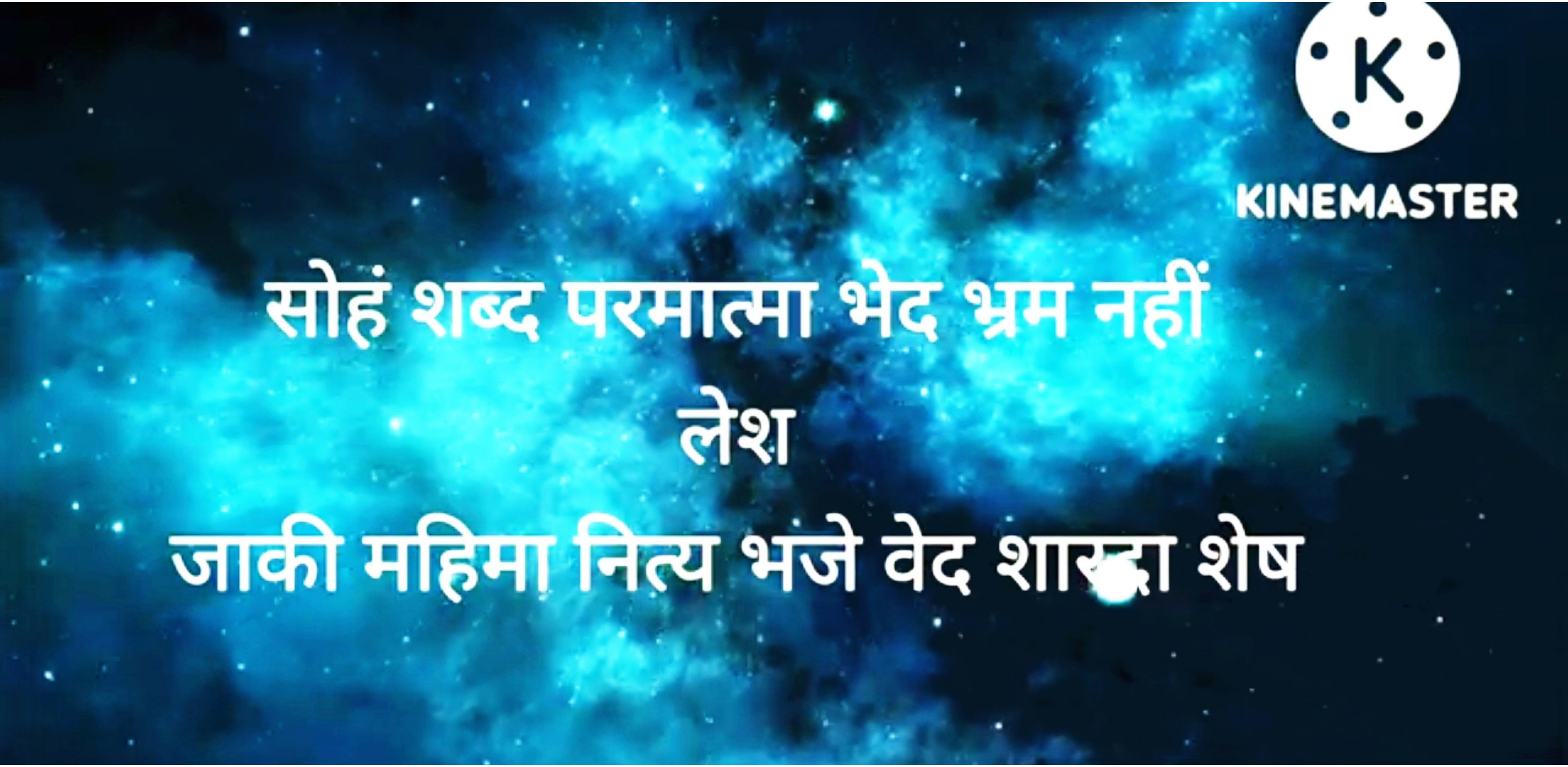
KINEMASTER
सोहं शब्द परमात्मा भेद भ्रम नहीं
लेश
जाकी महिमा नित्य भजे वेद शारदा शेष

18:21

न्यारा देश हमारा/ ओहं सोहं का जाप नही/ गरीबदास जी की वाणी/ स्वर ds Kundan /सन्तवाणी lyrics garibdas

2.7K views 3 yr ago #PrakashGandhi ...more

Guru Kirpa DK 10.2K

Like | Share | Remix | Thanks | Dow

Comments 8

Add a comment...

Shorts

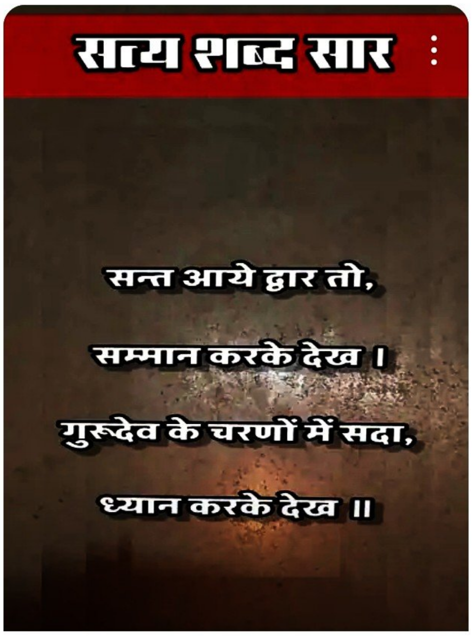

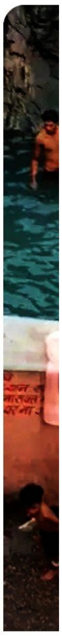

है उसका पता नहीं चलता। इसी अलौकिक शक्ति को विकसित करने के उपाय अनेक शास्त्रों में ऋषियों द्वारा बताए गए हैं और विभिन्न देव-देवी की मूर्ति एवं चित्र के माध्यम से उसे अभिव्यक्त किया है। प्राण, मन एवं बुद्धि को दैवी धर्म के अनुकूल परिचालित करने से ही धर्म, भक्ति एव ज्ञान की प्राप्ति होती है। योग, भक्ति एवं ज्ञान के अनुशीलन से मन एवं बुद्धि के स्तरों का जितना ही उत्तरोत्तर विकास होगा; वे उतने ही ईश्वराभिमुखी होंगे। प्राणशक्ति को दैवी सम्पदा के अनुकूल संचालित या क्रियान्वित नहीं करने से प्राण ही ईश्वर से युक्त होने के मार्ग में सब से अधिक बाधाएँ उपस्थित करता है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥
—गीता : ६।६

अर्थात् जिसने आत्म-कर्म के द्वारा अपने मन को वश में कर लिया अथवा उसे आज्ञाचक्र में स्थापित करने की शक्ति प्राप्त कर ली—आत्मा उस व्यक्ति का स्वयं बन्धु या मित्र है। इस प्रकार जो चंचल प्राण को ऊर्ध्व या आज्ञाचक्र में स्थिर कर लेता है। वस्तुतः वही ऊर्ध्वरेता है। रेत, शुक्र या वीर्य को कहते हैं—'शुक्रधातुर्भवेत प्राण' यह ज्ञानसंकलिनी तन्त्र का कथन है। अर्थात् शुक्र ही प्राण है। उस प्राण की चंचल गति को प्राणकर्म या प्राणायाम के द्वारा जो आज्ञाचक्र में स्थिर कर सकता है वही ऊर्ध्वरेता है। शरीरस्थ शुक्र या वीर्य-स्खलन होने के कारण स्त्री-संभोग का त्याग अथवा इन्द्रियों का निग्रह करने से व्यक्ति ऊर्ध्वरेता नहीं होता। क्योंकि उसका चंचल मन तो वश में हो नहीं पाता। जो प्राण को इस प्रकार ऊर्ध्व या आज्ञाचक्र में नहीं स्थिर करते। उन अ-जितेन्द्रिय व्यक्तियों का चंचल आत्मा ही अर्थात् वर्तमान मन ही हर प्रकार के दुष्कर्मों के रूप में शत्रु-भाव की सृष्टि करता है। प्राण-शक्ति का कार्य है स्पन्दन—और स्पन्दन के कारण ही इन्द्रिय, मन सभी विषय-भोग की ओर भाग रहे हैं। जिस प्रकार प्राण की गति में अविरामता और निरन्तरता है उसी प्रकार इन्द्रियों की गति विषयों को ग्रहण करने में भी विरामहीन है। इसीलिए प्राण जिससे स्पन्दित या चंचल न हो पाए, योगियों को पहले उसकी ही चेष्टा करनी होगी। (स्पन्द-दर्शन तंत्रयोग शास्त्र की एक विशेष शाखा है। जिसमें स्पन्द का स्वरूप, क्रिया आदि की वैज्ञानिक और योग सम्मत व्याख्या की गई है) जिस विद्या या कौशल के द्वारा प्राण स्पन्दित न हो सके और दिव्य भावना के साथ जिसे प्राप्त किया जाय, उसे ही ऋषियों ने योग-साधना की संज्ञा दी है। "तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्म्मसुकौशलम्"—(गीता : २।५०)

mScanner

स्वयं इन्द्रिय है, इसलिये इन्द्रिय द्वारा किया गया कर्म कभी निष्काम नहीं हो सकता। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने इसी निष्काम कर्म की चर्चा की है। क्योंकि जो प्राणवायु जीव-देह में गतिशील है वही जीव की वर्तमान अथवा अस्तित्वमान अवस्था है उसी को अजपा रूप हंस की संज्ञा दी गई है। उसकी बहिर्मुखी गतिशीलता में हंस की विपरीत क्रिया होने से विकार उत्पन्न होते हैं। जिससे जीव हमेशा विकारों से ग्रस्त रहता है। उसकी बहिर्मुखी गति आयुक्षय के साथ देह-क्षय का भी कारण है। किन्तु अजपा रूप हंस की अन्तर्मुखी गति के द्वारा विधिपूर्वक हंस क्रिया अथवा प्राण क्रिया करने से बहिर्मुखी गति रूप विरुद्ध क्रिया का निवारण किया जा सकता है और तब आत्मभाव अथवा स्वभाविक अवस्था प्राप्त होने पर सभी प्रकार के विकार दूर होते हैं। इसीलिये योगिराज ने २१ जुलाई १८७३ ई० को अपनी डायरी में लिखा है—"आज आउर बड़ा स्थिर घर का हाल मिला आख आप बन्द हुआ जाता हय आउर ब्रह्म साफ दर्शन होने लगा—त्रिकुटा याने जिह्वा मूल— ऊपर तालु का छेद बन्द करता हय आउर जिह्वा का अग्रभाग तालु मध्य में लगता हय आउर जिह्वा का मूल तालु के नीचे लगता हय इसि तरह से बिलकुल बाहर का श्वासा बन्द होता हय धन्य भाग उसका जिसको इहि होय"—अर्थात् आज और अधिक स्थिर घर का पता मिला—दोनों आंखें अपने आप बन्द होती जा रही हैं और ब्रह्म और भी साफ-साफ दिखने लगा। त्रिकूट का अर्थ है तीन श्रृंगों वाला पर्वत अथवा पवित्रतीर्थ। किन्तु योगिराज कहते हैं—त्रिकूट अथवा जिह्वा मूल—यह जिह्वा ऊपर उठकर तालुकुहर या विवर को बन्द कर देती है; जिह्वा का अग्रभाग तालु के मध्य भाग में प्रवेश करता है एवं जिह्वा मूल तालु के नीचे लगा रहता है, इस प्रकार खेचरी अवस्था में रेचक और पूरक प्राणायाम करते-करते आगमन-निर्गमन रूप श्वास-प्रश्वास सम्पूर्णतः बन्द हो गये हैं और 'केवल कुम्भक' की प्राप्ति हो गई है। इसीलिए वे कह रहे हैं कि उसका भाग्य धन्य हो जाता है जिसे इस प्रकार 'केवल कुम्भक' प्राप्त हो जाये। इस 'केवल कुम्भक' की सिद्धि कब प्राप्त होती है ? या यह कब सिद्ध होता है ? इसकी व्याख्या करते हुए उसका निर्दिष्ट प्रमाण देते हैं कि—"दशलाख एकसठ हजार प्राणायाम में केवल कुम्भक सिद्ध होता है।" योगी प्रतिदिन निरन्तर प्राणायाम करते-करते जब उक्त संख्यक प्राणायाम करने में समर्थ होंगे तभी उन्हें अपने आप ही 'केवल कुम्भक' की सिद्धि प्राप्त हो जाएगी। अर्थात् वह केवल कुम्भक अवस्था ही उसकी स्वाभाविक अवस्था होगी। उसे चाहे इस जन्म या जीवन में करो अथवा दो तीन जन्मों में करो। इस कर्म को कौन करेगा ? इस सन्दर्भ में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—

CamScanner

स्थिति में साधक ने हिंसा-वृत्ति सहित सभी प्रकार से इन्द्रियों का दमन करके पूर्णतः अहिंस अवस्था प्राप्त कर ली है। शिव का वाहन वृषभ या बैल है जिसका अर्थ है धर्म। उसके चारों पाँव, धर्म, अर्थ, काम मोक्ष जो धर्म के चार मुख्य एवं श्रेष्ठ पद हैं। यह चतुष्पद रूप में धर्म का प्रतीक है—

चतुष्पात् सकलो धर्मः सत्यंचैव कृतेयुगे
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रतिवर्त्तते ॥१

—मनु रहस्यः १।८१

इस प्रकार शिव शून्य तत्व के प्रतीक हैं। साधक शून्य तत्त्व में स्थिति प्राप्त करने के पश्चात् जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करते हैं। शून्य यानी कुछ नहीं, इस कुछ नहीं की अवस्था ही ब्रह्म है। इस प्रकार समस्त देव-देवियों के तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने पर ही सिद्धि अथवा मुक्ति प्राप्त होगी।

योगिराज ने कहा है—**"हृदय में जब अपान वायु आवे दस प्रकार के अनहद सुनावे—चिं चिं चिं, क्षुद्र घन्टा, संख, विन, ताल, मुरली, पखावज, नहवत, दीर्घघन्टा।"** बाहर की स्थूल पूजा में जितने भी प्रकार के बाजे बजाए जाते हैं सभी इस अन्तर्वाद्य के प्रतीक हैं। योगी इसे सुनते हैं। उन्होंने और भी लिखा है—**"कांशर का आवाज हुआ—गले में चिनिके माफिक मीठा मालुम हुआ—आँख के सामने विजली चमकने लगा—ओंकार का ध्वनि बहुत देर तक सुना।"** काँसर की आवाज हुई, गले में चीनी जैसी मिठास का अनुभव हुआ। आँख के सामने बिजली-चमकने लगी। ओंकार की ध्वनि बड़ी देर तक सुना फिर लिखा है—**"रग के दोनों नेसतर के एक आवज निकसता उछिका नाम अनहद बाजा उचछे छोटा वाया जोकी उपरके कोटिछे गावापर चड़के**

---

१. धर्म चार पादों में विभक्त है—प्रथम पाद जिह्वा ग्रन्थि भेदन, द्वितीय पाद, हृदय ग्रन्थि भेदन, तृतीय पाद, नाभिग्रन्थि भेदन एवं चतुर्थ पाद मूलाधार ग्रन्थि भेदन—यह धर्म के चार पद या पाद हैं—उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त 'स क ल' शब्द के स का उच्चारण दन्त्य स की तरह, क—मस्तक मूर्द्धा ल वक्ष में जोर अर्थात् ध्वनि या शब्द सहित मूर्द्धा से ज़ोर देकर क्रिया करना; 'सत्य' अर्थात् कूटस्थ, फिर एकाकार, तत्पश्चात् विज्ञान और अन्त में समाधि। तब मन में मन मिल जाता है। चार प्रकार के इस सत्य के योग से ब्रह्म स्वरूप का बोध होता है। 'नाधर्मे'—अधर्म में, आगम-स्थिति, कश्चित् न—कभी भी नहीं, पुरुष—श्रेष्ठ कूटस्थदर्शी जिसे देख रहे हैं। अर्थात् अधर्म में यानी क्रिया से अलग उस कूटस्थ में स्थिति कदापि नहीं होती जिसे श्रेष्ठ क्रियावान देख रहे हैं।

/ CamScanner

श्री सन्मति पुस्तकालय

चले वायौ चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।

चित्तका श्वास प्रश्वासके साथ गहरा संबंध है। जितनाही जल्दी जल्दी श्वास चलता है चित्त भी उतनाही चञ्चल रहता है। चित्त जितनाही चञ्चल रहता है मन उतनाही अप्रसन्न रहता है क्योंकि चंचलतासे घबराहट और घबराहटसे अप्रसन्नता होती है।

'सोहम्' के जपसे श्वासकी गति अपने आप बहुत मन्द हो जाती है। उसीसे दिलकी धड़कन मन्द मन्द चलने लगती है और दिल जितनाही कम धड़कन करता है मन उतनाही शान्त रहता है—प्रसन्न रहता है।

इसके सिवा ॐ की उपासना घंटा नादसे दी गई है। घंटा नादके समान जप करनेके लिये ॐकारके एकमात्रिक-द्वि-मात्रिक-त्रिमात्रिक रूपके समझनेकी जरूरत है। त्रिमात्रिक घंटानादके समान होता है।

परन्तु 'सोहम्' की ध्वनिमें अपने आप घंटा नादके समान चक्र बँध जाता है। जिससे स्वाभाविक रूपमें 'ॐ' का जप होने लगता है। 'सोहम्' की ध्वनिमें वायुका एक घुम्मटसा बँध जाता है। ध्वनिका एक प्राकृतिक चक्र जैसा बंध जाता है। वैसा और किसीभी मंत्रसे नहीं बँधता। अर्थात् स्वास प्रश्वास के साथ 'सोहम्'का जैसा मेल बैठता है वैसा और किसी मन्त्र-के साथ नहीं बैठता।

और सब वेदोंका सार रूप ॐकार इसके गर्भमें है। इसके

अथ आत्म ध्यान

सोहंग, बताव, उनमुनि लाव, अनहद, बजाव, हात न लाव ॥२४॥
चंद सूर दोउ बताव निरखऽ परखऽ भेद जो पावऽ
बंक नाल मु आवऽ जावऽ , किली दे उलटा चेड़ावऽ
जीहां टीका तहाँ साहेब बैठा हात न पाँव रूप न रेखा
टाडवा दुद जो उलटा धाव, पछम दिसा का एकवीस मण का
एकवीस ब्रह्मांड ॥२६॥
तीहाँ भवर-गुफा है, उग्रह मुढ़ अरध उरध उपर त्रवेणी
दुवादस चल संत ऐह जाणी , दस दरवाजा प्रगट बताव ॥२७॥
तीन दरवाजा गुपुत न पावा, अठरा भार बनास्पति रोमावली
खिण मा सुपेत खिण म कालो, सकल हाड़ प्रवत्त है सवालाख ॥२८॥
सत शब्द जो सींघा भाखे ।

दोहा—

मोख का मूल सांच, ये थी और न दूजा
ऊच नीच बीच पुरी रहा, नहीं सेवा नहीं पूजा ॥२६॥
मूल दुवार गणेश देवता, रंग पीला पाखड़ी (४) जाप ६००१॥
सवा धी कथा नेक ।
ब्रह्म देवता रंग लाल पाखड़ी (६) जाप ६००२॥
नाभ कमल विस्न देवता रंग नीला पाखड़ी (१०) जाप ६००३॥
हिरदे स्थानेक सिव देवता रंग कालो पाखड़ी (१२) जाप ६००४॥
कंठ स्थानेक जीव आत्मा देवता, रंग सुपेत पाखड़ी (१६) जाप १०००५॥
नित प्रत आसमान सोहंग जिसषु रूप न रेखा ।
दुई दल कमल परमात्मा देवता जाप १०००६॥
सहस्य कमल दल गुरु देवता जाप १००००॥
जुमले जाप २१०००॥

ब्रह्मगीर के भजन

सोहंग बाळा हालरो नित निरमळो,
निरमळ थारी जोत, सोहंग बाळा हालरो।
नदी सुकता का घाट पर, बैठयो ध्यान लगाय,
आवत देख्यो पींजरो, लियो कंठ लगाय।
सप्त धातु को पींजरो, पाट्या तीन सौ साठ,
एक कड़ी हो जड़ाव की, वापर रचियो ठाट।
आकाश झूलो बांधियो, लाग्या त्रिगुण डोर,
जुगत सी झूलणा झुलाविया, हींचऽ मनरंग मोर।
नहीं रे बाळा तू सोवतो नहीं जागतो, बिन ब्याही को पूत
सदाशिव की शरण मऽ, झुलऽ बांझ को पूत।
अणहद घुघरूं बाजिया, अजपा का मेव,
अष्ट कमल दल खिली रहया, जैसा सरवर मेव।
सुखमण हिलमिल रहे, सोना सांकल दोर,
ब्रह्मगीर कहता हुआ, काया का हिंडोर।

●

हम परदेशी पावणां, दो दिन का मेजवान।
आखर चलना अन्त को, निरगुण घर जांणा।
नांद से बिन्दु जमाइया, जैसा कुम्भ का काचा।
काचा कुंभ न रहे, एक दिन होयगा विनासा।
खाणां पीणा सो आपणां, दिया लिया सो लाभ।
एक दिन अचरज होयगा, उठऽ लागोगे बाट।
ब्रह्मगीर ब्रह्म ध्यान में, ब्रह्म ही कियो देवा।
ब्रह्म ब्रह्म मिसरित भयो, करि ब्रह्म की सेवा।

07:31

पाँच रिपु तेरे संग चलत हैं, अरे वो जड़ा मूल से खोवे ।
मात पिता ने जलम दिया है, अरे वो त्रिया संग न जावे ।।२।।
भरम भरम नर जलम गंवायो, अरे ये आई बाजू खऽ खोवे ।
कहे जन सिंगा अगम की वाणी, अरे नर अन्त काल को रोवे ।।३।।

●

चढ़ी जा सोहंग सीधी धारा, मन रे चढ़ी जा सोहंग सीधी धारा
मन मछुवा माया की जाल में, उलझ रह्यो संसारा
ढीमर जाल झकोळई न नाखे, ऊ जम काळ तुखऽ घेरऽ
मन दरियाव उमकऽ जल गहरा, और जल सब खारा
एक पुरुष की मांड रची है, ऊ छिटक रह्या है न्यारा ।।
ताल पखावज बाजे झांझरी, जाजम राळया बिछौंणा
देखे कोई नाहीं दिखावे, अनऽ किस विध उतरूँ पारा
बंक नाल की सुधि पकड़ ली, त्रिकोटि संगम न्यारा
सुख मणि सास उसास भरत है, वाही म सिरजण हारा ।।
अलख में वारा पलख में पारा, पारा जग संसारा
वस्तु वचन पहिचान लेवो, ऊ कूद पड़े मझधारा
मन मछुवा मोह की जाल में, नदियाँ वहे जल सारा
कहे जन सिंगा सुणो भाई साधू, ऊ भक्त उतरऽ न पारा ।।

●

आवागमन मत कीजो, प्रभु म्हारा फिरी जलम मति दीजो !
एक साहूकार अनेक बैपारी, नेकी का सौदा कीजो रे
रीत का खाना घर ही रहना, बेफारक मत हुजो रे।
खारा जो खाई खाई सब जग मरिया, मछली का मेणा मत कीजो रे
ओछा जलम तड़फे मछली, हाथ दोष मत लीजो रे ।।
तन काया का पलंग कीजो, मन की सेजां कीजो रे
चाँद सूरज दोऊ तपे हिलोले, वहाँ भाई डेरा दीजो रे ।

बाहर मोती है। बाहर कर्ता पुरुष है।

जैसी रचना बाहर है, तैसी भीतर देख।
बाहर भीतर एक है, कहन को है अनेक॥

तैसी देह ज़िमी है। यामें परवत चाहिये। तो टोंगल्या वो हड्डी परवत है। यामें झिरना चाहिये। तो द्वार सब झिर हैं। तो यामें पाठा चाहिये। पांसू सब पाठा हैं। यामें चन्द्र सूर्य चाहिये। दोनों नैन चन्द्र सूर्य हैं। यामें नदी चाहिये। तीन गुण तीन नदी हैं। यामें बादल चाहिये। तो भय भ्रम बादल हैं। यामें बिजली चाहिये। तो उनमुनी का चमकारा बिजली है। यामें इक्कीस ब्रह्मांड चाहिये। पश्चिम दिशा के इक्कीस मण का इक्कीस ब्रह्मांड हैं। यामें आकाश चाहिये। तो आकाश शीश है। यामें गर्जना चाहिये। अनहद गर्जना है। यामें काल चाहिये। तो क्रोध काल है। यामें खटचक्र चाहिये। तो खटकमल खट-

चक्र हैं। यामें परमेश्वर चाहिये। तो सोहं परमेश्वर हैं।

बाहर भीतर जल भई, अन्तर नहीं लगार।
अपने नयन आपको देखे, न कछु वार न पार॥
सकल जीव एक कर लेखे, ऊँच-नीच कोई मत लेखे।
भूख प्यास आत्मा जाने, हर्ष शोक हृदय नहिं आने॥
देव देवी की नहीं करै पूजा, आठों पहर भाव नहिं दूजा
नर नारी से झूठ न बोले, सत्त न छांड़े घर-घर नहिं डोले
सांप बिच्छू कछु न मारे, तरण होय जो चले ऐसी चालें
अल्प अहार बहुतसा न खावे, तीसरे चौथे दिवस नदी तरफ जावे
जैसी अपनी तैसो पराई जाण, लोभ मोह मत करो।
होय मुक्त-मुक्त में हाण, शोभा मान अहंकार डारे॥
तो तरही गयो फिर साई क्या तारे।

07:12

exoticindiaart.com/book/details/kriya-yoga

(ङ) क्रियायोग की आवश्यकता 287

अष्टम अध्याय- क्रियायोग का अभ्यास **294**

(क) नाभि क्रिया 295

(ख) खेचरी मुद्रा 296

(ग) गुरु प्रणाम 298

(घ) हंस साधना 301

(ङ) ओम् प्रविधि 306

(च) महामुद्रा 312

(छ) मुख्य क्रिया प्रविधि (प्रथम) 317

(ज) ज्योति मुद्रा 329

(झ) शाम्भवी मुद्रा 331

(ञ) द्वितीय क्रिया प्रविधि 333

(ट) तृतीय क्रिया प्रविधि 346

(ठ) चतुर्थ क्रिया प्रविधि 347

(ड) क्रियायोग के लिये आवश्यक बन्ध और मुद्रा 350

परिशिष्ट 357

सुनो खेचरी बात साधो, सुनो खेचरी बात रे ।
सबसे बड़ी खेचरी मुद्रा, योगी जन की मात रे ।
जो जन साधन करत निरन्तर, भवसागर तर जात रे।।
जीभ तले की नाड़ कटे जब, तब पीछे उलटात रे ।
धीरे-धीरे गल के ऊपर, छेद माँहि ठैरात रे।।
पीछे ध्यान धरे भृकुटी में, काँपे सब ही गात रे ।
ब्रह्म-ज्योति का दर्शन होवे, झरे सुधा दिन-रात रे।।
दिन-दिन ध्यान करे जब योगी, काया सुध बिसरात रे ।
ब्रह्मानन्द स्वरूप समावे, फेर जन्म नहीं पात रे।।

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundati
n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS

स्वाँसों की कर सुमरनी, अजपा को कर जाप ।
ब्रह्म तत्त्व को सार है, सोहं आप ही आप।। कबीर

नानक सोहं सारा । सन्तन का आधारा ।।
सोहं जाप जपो रे भाई । मिट जाये मन दर्पण की काई।।
स्वाँस स्वाँस सुमरो गोविन्द । मन अन्तर की उतरे चन्द ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहजो सहज ही स्वाँसा तीरथ, जो कोई जाने नहाय।।
पाप पुण्य दोनों छूटें, हरि पद पहुँचे जाय।।
सोहं शब्द विचारो साधो, सोहं शब्द विचारो रे।
माला कर से फिरत नहीं है, जीभ न वर्ण उचारो रे।।
अजपा जाप होत घट माहीं, ताकी ओर निहारो रे।।१।।
'हं' अक्षर से स्वाँस उठाओ, 'सो' से जाय बिठारो रे।
'हंसो' उलट होत है सोहं, योगी जन निरधारो रे।।२।।
सब इक्कीस हजार मिलाकर, छः सौ होत सुमारो रे।
ऊठत-बैठत, सोवत-जागत, मन में जपो सुखारो रे।।३।।
जो जन चिंतन करे निरंतर, छोड़ जगत व्यवहारो रे।
ब्रह्मानंद परम पद पावे, मिटे जन्म संसारो रे।।४।।

निरंजन माला घट में फिरे दिन रात ।
ऊपर जावे, नीचे आवे स्वाँस-स्वाँस चल जात ।
संसारी नर समझे नाहीं, वृथा उमर विहात।।
सोहं मन्त्र जपे नित प्राणी, बिन जिह्वा बिन दाँत ।
अष्ट पहर में सोवत जागत कबहूँ न पलक रुकात।।
हंसा-सोहं, सोहं-हंसा बार बार उलटात ।
सद्गुरु पूरा भेद बतावै, निश्चल मन ठहरात।।
जो योगी जन ध्यान लगावे, बैठ सदा प्रभात ।
ब्रह्मानंद मोक्ष पद पावे, फेर जन्म नहिं आत।।

तेन तं ह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ।। (छा० १-२-११)

उसी साधन से, उस मुख्य प्राण द्वारा वृहस्पति महर्षि, नाम की उपासना करते थे। तभी से इस प्राण को ही ब्रह्मज्ञानी, वृहस्पति मानते हैं। क्योंकि परा वाणी ही वड़ी है और उस मुख्यस्थ वाणी का यह प्राण, पति है। यह मुख्यस्थ प्राण द्वारा जपा और बोला जाता है।

तेन तंहायास्य उद्गीथमुपासांचक्रे
एतमु एवायास्यं मन्यन्ते आस्याद्यदयते ।

(छा० १-२-१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

साक्षी पूरण एकरस, सच्चिदानन्द स्वरूप ।
सोऽहं ब्रह्म परमात्मा, गुरु-ईश्वर श्रुति रूप।।
RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जाकी महिमा नित भजे, वेद शारदा शेष ।
सोऽहं ब्रह्म परमात्मा, भेद भ्रम नहिं लेश।। (शंकर्य त. ब.)
जो शब्द ब्रह्म को सुरत लगाय टटोले। ओ सोहं सोहं सोहं बोले।।
चढ़ पवन पै तीनों लोक में हंसा डोले ।
छवों चक्र वेधे दशम-द्वार को खोले।।
इस देश में हंसा, परमहंस बन जावे ।
फिर उसको पूर्ण ब्रह्म साफ दिखलावे।।

अभ्यासानन्तरं कुर्याद्गच्छस्तिष्टन्स्वपन्नपि ।
चिन्तनं हंसमन्त्रस्य योगसिद्धिकरं परम्।।

योगाभ्यास-काल में चलते, फिरते, सोते, जागते सब समय में योगी को 'हंस' मन्त्र का जाप करना चाहिए। इससे योग-सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है। मनुष्य और पशु-पक्षियों के शरीरों में श्वास-प्रश्वास की गति है, उसी से प्राण चलते हैं। वह हं करके बाहर निकलता है और सः करके अन्दर प्रवेश करता है।

हंसोहंसोहमित्येवं पुनरावर्त्तनक्रमात् ।
सोहंसोहं भवेन्नूनमिति योगविदो विदुः।।

इस तरह हंसो-हंसो शब्द के बार-बार फेरते रहने से उलट कर सोहं-सोहं हो जाता है। इसको योगी ही जानते हैं। यही अजपा नाम की गायत्री है। इसका बिना जप किये ही अपने आप जप होता रहता है। सर्वप्रथम महादेव जी ने पार्वती के प्रति सब सिद्धियों को देने वाली इस अजपा नाम गायत्री का उपदेश किया था।

अस्याश्चिन्तनतो नित्यं सर्वदुष्कृतराशयः ।
योगिनां नाशमायांति तृणभारा यथाग्निना।।

इस अजपा गायत्री का नित्य चिन्तन करने से योगी के जन्म-जन्मान्तरों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे अग्नि लगने से घास के बोझ जलकर राख बन जाते हैं, वैसे नाम जप से सभी पाप भस्म हो जाते हैं। जब अजपा का बहुत अभ्यास बढ़ जाता है, तो मन के अन्दर ही लीन हो जाता है। मन के लीन होने पर प्राण की गति भी क्षीण हो जाती है। तभी योग निद्रा पैदा होती है।

नित्यमंतर्मुखत्वेन परमानन्दमात्मनः ।
अनुभूयचिरं योगी कैवल्यपदमश्नुते।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

* नाम आराधना *

उत्तम नाम अनाम का, सोहं है सुख सार ।
जिस सुमरे बहुजन तरे, भव-सागर से पार ।।१।।
प्रति-दिन नाम आराधिये, वृत्ति मन वच लाय ।
रसना में सब रस बसें, जिस पै नाम जपाय ।।२।।
महती महिमा नाम की, मुनि-जन पायें न पार ।
ज्ञानी-ध्यानी-संयमी, वर्णन कर गए हार ।।३।।
सहजे उपजे जो धुनि, जपते जपते नाम ।
वही अनहद नाद है, हो क्रमशः अविराम ।।४।।
सबसे ऊँचा नाद जो, उसमें गूंजे राम ।
स्वयम्भू सोहं स्वयं है, परम-शान्त वह धाम ।।५।।
सत्य-नाम ही नाम है, वह सन्तन मन भाव ।
अनुभव-गम्य की बारता, सकल संशयाभाव ।।६।।
आकुल तरल तरंग से, संसृति सिन्धु अगाध ।
नाम जहाज आरूढ़ हो, पावे पार अगाध ।।७।।
शान्त भाव से सुमरिए, चाहे नाम इक बार ।
घास पात सब पाप के, होवें भस्म अंबार ।।८।।
बड़े पाप के पुञ्ज में, हो चाहे मेरो मान ।
एक चिंगारी नाम की, कर दे राख समान ।।९।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्त-काल जो जन जपे, जन्म जीत वह जाय ।
वेद-गम का मर्म है, जो समझे मन लाय ।।१०।।
यह तन चाम की मसक है, भरे नाम की फूंक ।
पाप नदी इस से तरे, किंचित जाये न चूक ।।११।।
नाम-धाम दो एक हैं, नामी-नाम भी एक ।
वाचक-वाच्य अभेद है, यही नाम की टेक ।।१२।।
साधु सिमरो नाम को, यही पते की बात ।
सुगम अराधना योग यह, नहीं विघ्न उत्पात ।।१३।।
नाम भजन बिना योग जो, यह निरा है रोग ।
खप-खप मरना दुःख है, समझो कर्म का भोग ।।१४।।
संतों ने समझा मरम, नाम को माना धाम ।
अलख निरंजन को कहा, नारायण वह राम ।।१५।।
ढूँढ़ कर पकड़ा नाम को, जीभ होंठ के बीच ।
अजपा-जाप होवे स्वयं, धोवे मानस कीच ।।१६।।
आप ही रसना जप करे, मन में माने मोद ।
वृत्ति वश होवे तभी, हो संकल्प निरोध ।।१७।।
दीन दयालु देव जी, तू भक्तों का मान ।
अपने जन को दीजिए, अपना नाम सुदान ।।१८।।

अजपा-जप की संख्या इक्कीस सहस्र छः सौ नियत की गई है। विचार करने से यह सब कुछ सहज है। मुख और नासिका में प्राण रहकर अखण्ड रूप से आता-जाता रहता है। इसका विचार सूक्ष्म दृष्टि से करना चाहिए। पहले तो देखने से यही मालूम होता है कि स्वर एक है। पर वास्तव में उस स्वर के तीन भेद हैं—(१) तीव्र—निषाद (२) मन्द—मध्यम (३) घोर—खरज। अब इस घोर से भी सूक्ष्म-विचार इस अजपा का है। सा-रे-ग-म-प-ध-नि, इन सारे अक्षरों को कह कर देखो—इन सप्त स्वरों में से किसी एक को मूल मानकर क्रमशः ऊपर को चलो। परा वाचा के ऊपर और पश्यन्ती के नीचे अर्थात् नाभी और हृदय के बीच में—स्वर का जन्म स्थान है। वहीं से इसका 'उल्लेख' या स्फुरण होता है। एकान्त में स्वस्थ होकर बैठना चाहिए और वहाँ यह सब समझकर प्रयोग करना चाहिए। एकान्त में मौन साधकर बैठना चाहिए, सावधान या स्वस्थ होकर देखने से यह जान पड़ता है कि ऊपर को स्वाँस खींचते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हं' शब्द इस प्रकार निरंतर सोऽहं-सोऽहं शब्द होता रहता है। उच्चारण के बिना जो शब्द होते हैं, उन्हें नैसर्गिक शब्द समझना चाहिए। वे अनुभव में आते हैं, पर उनका वर्णन नहीं होता। अभ्यासकाल में ये शब्द लीन हो जाते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। उस समय (मौन अवस्था में) यदि विचार किया जाय कि कौन शब्द होता है, तब अंदर में सोऽहं शब्द जैसा भास होता है; योग-अभ्यास में इस प्रकार प्राणों की समानता होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्वास लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हं' इस प्रकार अखण्ड रीति से 'सोऽहं सोऽहं होता रहता है। इसका विचार बहुत विस्तृत है। सभी देहधारी, स्वदेज और उद्भिज आदि योनियों में जितने भी प्राणी हैं, बिना श्वासोच्छवास के कैसे जीवित रह सक्ते हैं? इस प्रकार की यह अजपा जाप गायत्री सबके पास है, पर अधिकारी को गुरु से मिलती है। अज्ञानी इसे नहीं जान सकता। सहज नैसर्गिक को छोड़कर बनावटी बातों में कभी नहीं पड़ना चाहिए। कुदरती (नैसर्गिक) देव तो बना ही रहता है, क्योंकि वह अविनाशी है। बनावटी देव तो (मूर्ति इत्यादि) फूटता है, नष्ट होता है। इसलिए ऐसा कौन है, जो नाशवान देव पर विश्वास करेगा? जगदन्तर (जगत् का अन्तरात्मा राम) के दर्शन से स्वयं सहज ही अखण्ड ध्यान लग जाता है। सारे लोग उसी आत्माराम की इच्छा से वर्तते हैं। आत्माराम का जिस तरह समाधान होता है, वैसा ही उसको भोजन मिलता है। छोड़ा हुआ, नष्ट हुआ आदि सब उसी को समर्पण हो जाता है। अग्नि देवता उदर में बसते हैं, उन्हें भी प्राणी अन्न दान देते हैं। इस प्रकार सारे प्राणी आत्माराम की आज्ञा में चलते हैं। इस तरह परमात्मा का जप, ध्यान स्तुति, स्तवन आदि स्वाभाविक ही हो रहा है और वह उन्हें स्वीकार भी कर रहा है। पर यह बात समझ लेनी चाहिए। इसी नैसर्गिक बात को समझने के लिए नाना प्रकार के हठ-योग किए जाते हैं। पर तो भी यह बात एकाएक समझ नहीं आती, गड़ा हुआ द्रव्य भूल जाने पर ही दरिद्रता आती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि लक्ष्मी नीचे दबी रहती है और पुरुष ऊपर बसता है, पर बिचारा प्राणी क्या करे? उसे मालूम ही नहीं है। तहखाने में अनन्त द्रव्य रखा रहता है, दीवार में द्रव्य रखा रहता है और खम्बों में द्रव्य रखा रहता है, मगर आप दरिद्र

ऐसा सुमिरन कीजिये , सहज रहे लौ लाय ।
बिन जिभ्या बिन तालुवे , अन्तर सुरत लगाय ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे सुन्न में टकटकी , आसन पदमं लगाय ।।
नाभि नासिका मांहि करे सहजो रहे समाय ।।
हकारे उठ नाम सूं सकारे होय लीन ।
सहजो अजपा जाप है , चरणदास कहि दीन ।।
सब घट अजपा जाप है , हंसा सोऽहं पुरुष ।
सुरत हिये ठैराय के सहजो , या विधि निरख ।।
सब घट व्यापक राम है , देही नाना भेष ।
राव रंक चण्डाल घर सहजो दीपक एक ।।

सोऽहं की अवस्था क्या है? सोऽहं किसका
मंत्र है?
"सोऽहं शब्द "
सतगुरु सोऽहं नाम दे, गुझ बीरज विस्तार |
बिन सोऽहं सिझे नहीं, मूल मंत्र निज सार||

08:05

सकल हंस में राम हमारा, राम बिना कोई धाम नहीं ।
खंड ब्रह्माण्डजोत का वासा, राम को सुमरो और नहीं ॥ टेक
तीन गुणों पर तेज हमारा, पांच तत्वपर जोत जली ।
उनका उजाला चौदह लोक में, सुरत डोर आकाश चढ़ी ॥ १
नाभी कमल से निरखतलेना, हृदय कमल में फिरे मनी ।
अनहद बाजे बजे शहर में, ब्रह्माण्ड में आवाज लगी ॥ २
हीरा, मोती, लाल, जुवाहर, परम पदार्थ पुर्षोनती ।
सांचा मोती निरखत लेना,रामधनी से म्हारी धुन्न लगी ॥ ३
हरिजन होय सो घट में निरखे, बाहर जगत में भटके नहीं ।
गुरुप्रताप नानक शाह बरणै, भीतर ला बोले दूजो नहीं ॥ ४

13
Dislike
2
Share
@knowledge...bq8hb Subscribe
...कल हंस में ... हमारा भजन वाणी #आध्यात्मिकता
...arayan Saroliya & Ajay Tipaniya Sakal Hans Mein Ra...
71

साधो भाई गुरु शरणे सुख पाया।
कटया करम भ्रम सब भाग्या, हिरदे आनन्द छाया ।।टेर।।

सतगुरु लगन लगी घट भीतर, पल-पल विरह सताया।
सुरता उलट शब्द मांही लागी, ज्ञान गंगा में नहाया ।।१।।

गुरु गम आनन्द कयो नहीं जावे, ज्यूं गूंगे गुड़ खाया।
ज्ञान भाण उगा घट भीतर, जिन सरुप दिखलाया ।।२।।

सतगुरु है आद अनादि, जन्म मरण नहीं आया।
जो कोई सतगुरु शरणे आवे, त्रिगुण ताप मिटाया ।।३।।

देवाराम गुरु मिल्या उपकारी, आत्म ज्ञान बरसाया।
"गणपतराम" रह्यो गुरु शरणे और विषय नहीं चाया ।।४।।

08:06
15
Dislike
1
Share
52
@knowledge-bq8hb Subscribe
साधु भाई गुरु शरण सुख पाया भजन
रह भजन की ट्रैक ढोलक तबला और मंजिरा Loops Rhythm · @M
Add a comment...

08:07
Vo)) 4G LTE1

आरतीयाँ

निशिदिन संतपरम पद जोई, आरती करे सोई केवल होई ।टे

पहली आरती सतगुरू सेवा, तन मन भेट करू शिर देवा।

दूजी आरती रसना गावे, जल पलटाय अमीरस पावे ।1

तीजी आरती कंठ में वासा, भ्रम कर्म व्यापे नाहि आसा।

चौथी आरती हृदय हुलासा, रेण मिटी हुआ प्रकासा ।2

पचमी आरती नाभि गुझासा, अष्ठ कलीपर भंवर बिलासा।

छठ्ठी आरती पश्चिम दिशासू, देपरिक्रमा शीश नमासू. ।3

सप्तमी आरती त्रिकुटी वासा, झिलमिल ज्योति हुई प्र[illegible]स।

अष्टमी आरती गगन घुराणा, अमी वरसांय स्नान कराणा ।4

नौमी आरती नौ दरवाजा, खिड़की बंद करे सोई राजा।

दशमी आरती दशमे द्धारे, अरस परस मिले राम पि[illegible]े ।5

गया[illegible] आरती परम प्रकाशा रूप वरण बिन नाम निराशा।

बा[illegible] आरती ब्रह्म विला[illegible] [illegible]रीराम निभयघर वासा ।6

5
Dislike
2
Use this sound
Share
@knowledge-bq8hb
Subscribe
आरती।। निशिदिन संत परम पद जोई।।
Om Chants 108 Times By Brahmins · Brahmins
416K

थान साहब ने लिखा है कि हिन्दू और मुसलमान ज्ञान के अभाव में, उस परमतत्व को कोई नमाज में तो कोई वेद में खोजता है।

कोउ नमाज कोउ बाग पुकारै।कोउ-कोउ अटकै वेद कुरान में ।।[1]

संत देवकीनन्दन साहब ने लिखा है-

ज्ञान की माला प्रीति बनाई। पुलकित हृदैय कंठ पहिराई ।।[2]

परसाद साहब ने काम, क्रोध, लोभ एवं मोह को ज्ञान के द्वारा घेर कर मार डालने की बात कही है।[3] हुलासदास ने अंजन लगाकर प्रभु के पथ को खोजने का उपदेश दिया है।[4] आगे वे ज्ञान के अंकुश से प्रेम को बांधने की बात कहे हैं।[5] बालकदास ने लिखा है कि ज्ञान से परखकर देखो राम तुम्हारे ही निकट है[6]। उन्होने जंगल रूपी संसार को ज्ञान रूपी कुल्हाड़ी से पाँच-पच्चीस को कांट देने का आह्वावान किया है।[7]

बावरी पंथ के संतों की वाणियों के अनुशीलन से पता चलता है कि उन्होंनें साधना में 'ज्ञान के महत्व' को पूर्ण रूप से स्वीकार किया है।

ज्ञान-प्राप्ति के साधन-

बावरी-पंथ के संत वस्तुत: आत्मज्ञान को ही महत्व देते हैं और यह आत्मज्ञान अनुभूति पर आधारित है। ज्ञान की प्राप्ति केवल ग्रन्थों के अध्ययन से नही हो सकती। संतों की ऐसी धारणा है कि बहुत से पण्डित वेदों और पुराणों की दिन-रात चर्चा करते हैं, किन्तु वे ज्ञान का मर्म नही जानते। ऐसे वेद शास्त्री पण्डितों को कबीर ने 'वेद भारवाही गर्दभ' कहा है। कबीर ने ज्ञान प्राप्ति के लिए चिन्तन और विवेक को अधिक महत्व दिया है। ' आप ही आप विचारिये तब केता होई आनन्द रे।[8]''

बावरी साहिबा के प्रशिष्य यारी साहब ने लिखा है बिना वैराग्य के तत्व का भेद ज्ञान असम्भव है, जितना तुम वेद पुराण पढ़ रहे हो, उस पर विचार करो तो अपने तो अपने दूसरों को भी भवसागर से पार उतारने में सफल हो सकोगे।

विनु वैराग भेद नहिं पावै। केतो पढ़ि-पढ़ि रचि-रचि गावै।
जो गावै ता को अरथ विचारै। आपु तरै औरन को तारै।[9]

यारी साहब वेद, पुराण, कुरान के विरोधी नहीं थे, बल्कि उन धर्म ग्रन्थों पर विचार करने की स्पष्ट घोषणा किये हैं। तुलसीदास सदृश संतो ने भी सोऽहं जाप को महत्व दिया है।संतो का अजपा-जाप सोऽहं जाप ही है। संत बुल्ला साहब ने लिखा है कि अजपा जाप से उत्पन्न होने वाली सोऽहं डोर में बधे हुए आत्म ज्योति में लीन रहते हैं। संतो ने आत्मानुभव को सर्वोच्च स्थान दिया है।

अजपा जापहि जाप सोऽहं डोरि लागई। बुल्ला ता में पैठि जोति में गाजई।।[10]

संत बुल्ला साहब निर्गुण राम को निरन्तर रटने का उपदेश देते हुए, ज्ञान के द्वारा उस प्रभु को अपनी आँखों में संयम से जतन करने का आह्वान किये हैं।[11] संत गुलाल साहब ने लिखा है कि विचार करके मन से भ्रम को दूर करो और प्रेम पूर्ण ज्ञान उपजा करके सुरति-निरति में समाहित हो जावों।

---

1. थान साहब के शब्द, पृ0 15। (हस्तलिखित)
2. संत देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनाएं, पृ0 66।
3. काम औ क्रोध को लोभ और मोह को ग्यान से जेर कै घेरि मारै।
   डॉ0 भगवती प्रसाद शुक्ल-बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृ0 351।
4. हुलासदास कृत ब्रह्मविलास, पृ0 18।
5. हुलास अंकुश ज्ञान से, प्रेम से बाँधों पाँव । वही- पृ0 58।
6. बालकदास कृत ''आनन्दमूर्ति'', पृ0 14।
7. जंगल है संसार कुल्हाड़ी ज्ञान है। पाँच पचीस मजूर जरावै ध्यान है ।। - वही, पृ0 20।
8. कबीर बीजक, रमैनी-32।
9. यारी साहब की 'रत्नावली', पृ0 7।
10. बुल्ला साहब का 'शब्दसार', पृ0 27।
11. वही, पृ0 30।

बावरी पंथ का सुरति शब्द योग एक प्रकार से लययोग ही है। जैसा कि निवेदन किया जा चुका है कि मन बड़ा चंचल और चोर है प्रायः सभी साधको का लक्ष्य मन पर विजय प्राप्त करना होता है। यारी साहब की शब्द ब्रह्म में पूर्ण आस्था थी। उन्होंने 'यारी आदि ओंकार जा सो यह भयो संसार'[1] कहकर शब्द ब्रह्म से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। कही-कही पर उन्होने 'गगन मद्धे सुरति लागी, शब्द अनहद हुआ।[2] कहकर अनाहद शब्द की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। उन्होने आगे लिखा है कि जो सुरति शब्द में समाहित हो जाता है वह स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है।[3] सुरति शब्द योग को बुल्ला साहब सोहं शब्द के साथ भी जोड़ते हैं-

सोहं हंसा लागल डोर सुरति-निरति चढ़ु मनुवा मोर[4]।।

संत गुलाल साहब सुरति शब्द में समा जाने का भी उपदेश दिये हैं।[5] उन्होंने चिन्तन करके कहा है कि शब्द में जीव की स्थिति वर्तमान है[6]। संत भीखा साहब ने 'आदि शब्द ओंकार उठत है'[7]। कहकर ओंकार रूप 'शब्दब्रह्म' को सृष्टि का कर्ता माना है। उन्होने शब्द से सृष्टि का स्वरूप साकार करते हुए लिखा है कि सातवें स्थान पर जहाँ योगी ब्रह्ममय हो जाता है, उस ब्रह्म की जब इच्छा होती है, तब उससे सत्य शब्द ओंकार की ध्वनि का विस्फोट होता है। उसी शब्द से सृष्टि का रूप साकार हो जाता है।[8]संत पलटू साहब ने शब्द ब्रह्म में पूर्ण आस्था व्यक्त की है-

सुरति शब्द के मिलन में मुझ को भया अनंदा ।
मुझको भया अनंद मिला पानी में पानी[9]।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बावरी पंथ के विभिन्न संतों में सुरति शब्दयोग के प्रति अत्यधिक आस्था है।

सहज साधना

सहज योग-

सबसे अन्तिम अवस्था सहजयोग की है जिसे 'सहज साधना' भी कहते हैं। युक्ति पूर्वक राम नाम में 'लौ' लग जाने और भक्ति के दृढ़ हो जाने पर 'सहज समाधि' की स्थिति आ जाती है। उस स्थिति में आत्मस्वरूप का परिचय हो जाता है। रामनाम का योग इसलिए सहज कहा गया है कि संसारिक कर्म करते हुए राम-नाम की साधना हम कर सकते हैं और संसारिक प्रलोभनों के प्रति स्वमेव अनासक्ति का भाव आ जाता है।

भारतीय धार्मिक साहित्य में 'सहज' शब्द पर विशेष रूप से विचार किया गया है। सिद्ध-साहित्य, नाथ- सम्प्रदाय तथा संत कवियों की वाणियों में 'सहज' शब्द का प्रयोग अत्यधिक पाया जाता है।

जिस प्रकार से बौद्ध सिद्ध गुह्यात्मक शून्य साधना द्वारा महासुख की अनभूति करते थे, उसी के अनुकूल यारी साहब ने लिखा है-

सुन्न सहज में रहै समाय। ताका आवागमन न साय[10]।

1. यारी साहब की रत्नावली, पृ0 14।
2. वही, पृ0 3।
3. वा मुक्ता महं सुरति परोवे। सुरति शब्द मिल मानिक होवे । -वही, पृ0 7।
4. संतकाव्य- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ0 379।
5. भटक को तुम पंथ छोड़ो, सुरत शब्द समानै ।।
गुलाल साहब की बानी, पृ0 14।
6. अष्ट कमल में जीव बसतु, सतगुरू शब्द बिचारा हो।
-वही, पृ0 39।
7. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0 18।
8. हफ्त में इच्छा सविगति बोलै, सत्य शब्द निरधार। -संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0 107।
9. पलटू साहब की बानी, भाग-1 पृ0 39
10. वही, पृ0 94

सन्तकी रहनी-भजन।

साधुका होना मुसकिल है।
काम क्रोधकी चोट बचावे,सो निज साधूहैं॥टे०॥
काया मध्ये धुनी धकावै, रमता राम रमै।
करम काठ कोयला करिडारै, जगसे न्यारा है॥
आशा तृष्णा कलह कल्पना, ममता दूर करै।
दम्भ मान मद लोभ मोहसे,आठो पहर लरै॥साधु०।
माया महा ठगिन है हरिकी, ज्ञान विराग हरै।
तासे होय होसियार निरन्तर,गुरुपदध्यानधरै॥सा०
मोटी माया सबकोइ त्यागै, झीनी नाहिं तजै।
कहँकबीरसाधुसोईसाँचा,झीनीदेखिभगै॥सा० ६८

अज्ञानीकी दशा-भजन।

पानीमें मीन पियासी,
मोहिं सुनि सुनि आवत हाँसी॥ टे०॥
आतम ज्ञान बिना नर भटकै,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu

सिद्धहरूबाट श्रवण गर्दै आएका हुन्छन् र उनीहरू आफूले पनि यसबारेमा मनन गरेका हुन्छन्। नाथयोगीका जीवनमा गोरक्षगायत्री उसको अभिन्न आध्यात्मिक अङ्ग हो र उसको जीवनदर्शनको अभिव्यक्ति हो। यो सधुक्कडी भाषामा रहेको छ। नाथदर्शनको चर्चा भइरहँदा गोरक्षगायत्रीको प्रस्तुत अति सान्दर्भिक हुन्छ त्यसैले गोरक्षगायत्रीलाई तल दिइएको छ।

गोरक्षगायत्रीका १८ प्रश्नोत्तर, योगी वंशावली भाग १मा, ज्ञवाली (२०७७) र योगी सिहनाथ (२०७७)मा आधारित।

१.कौन बेला,कौन रूपी?	उत्तर : ओम्कारे शिवरूपी, मध्यान्हे हंसरूपी, सन्ध्याया साधुरूपी।
२.कितने अक्षर ?	उत्तर : हंस,परमहंस (हंस सोहं) दो अक्षर।
३.कौन गुरु ?	उत्तर : गुरु तो गोरक्ष ,गोरखनाथ।
४.कौन गायत्री ?	उत्तरः काया तो गायत्री (अजपा गायत्री)।
५.कौन ब्रह्मा ?	उत्तर : ओम् ब्रह्मा।
६. कौन शक्ति ?	उत्तर : सोहं शक्ति।
७.कौन माता?	उत्तर : शून्य माता।
८.कौन पिता ?	उत्तर : अवगत पिता (अवधूत पिता)
९.कौन जात ?	उत्तर : विहंगम जात।
१०.कौन पन्थ ?	उत्तर : अभय पन्थ।
११.कौन वेद?	उत्तरः सूक्ष्म वेद।
१२.कितनी शाखा ?	उत्तरः असङ्ख्य शाखा।
१३.कितने प्रवर ?	उत्तरः अनन्त प्रवर (हरमुख प्रवर)
१४.कौन गोत्र ?	उत्तरः निरञ्जन गोत्र
१५.कौन क्षेत्र?	उत्तर : त्रिकुटी क्षेत्र
१६.कौन जोत ?	उत्तरः जुगति जोत।
१७.कौन स्वरूप?	उत्तर : जल स्वरूप
१८.कौन वर्ण ?	रुद्र वर्ण।

(योगी सिहनाथ २०७७ पृ.६७-६८)

यी १८ प्रश्न उत्तरको ढाँचामा नाथपरम्पराका समस्त चिन्तन प्रणालीलाई सङक्षेपमा सार खिचेर राखिएको छ।

05:42
Google Lens
नेपालमा नाथ योग
archive.org
Original Translated
इंटरनेट पुरालेख

2.3.8 अ. कुण्डलिनी साधना और बिन्दु की अवधारणा

हठयोग में, स्त्री रज (लाल) और पुरुष वीर्य (पीला-सफेद) को बिंदु कहा जाता है (गोरक्षशतक श्लोक 72)। रज शक्ति/पार्वती का प्रतीक है, और नाड़ियों में सूर्य नाड़ी और वीर्य शिव तथा चंद्र नाड़ी के प्रतीक माने गए हैं (गो.श.: 74)। हठयोग में बिंदुओं की रक्षा करना अत्यंत आवश्यक माना गया है। इन्हें शरीर का आधार माना गया है। जब तक शरीर में बिंदु सुरक्षित हैं, जीवन सुरक्षित है। खेचरीमुद्रा का अभ्यास बिंदुओं की रक्षा में सहायक होता है (गो.श.: 68-71)। सामान्यत:, रज या वीर्य नीचे की ओर गिरता है, लेकिन हठयोग साधना, विशेषकर कुंडलिनी साधना, उस रज या वीर्य को शक्ति ऊर्जा के रूप में ऊपर की ओर प्रवाहित करती है। गोरखवाणी में इसे 'उल्टा साधना' कहा गया है क्योंकि यह अधोमुखी कुंडलिनी को ऊर्ध्वमुखी बनाती है और यही कुंडलिनी का जागरण है। कुंडलिनी का अर्थ है शक्ति या ऊर्जा। यह अभी नीचे की ओर निकल रही है, जागृत होने के बाद यह विभिन्न ऊर्जा केंद्रों से होकर ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। सूक्ष्म शरीर में विभिन्न ऊर्जा केंद्रों को चक्र कहते हैं। सबसे निचला ऊर्जा केंद्र मूलाधार या आधार चक्र कहलाता है। इसका स्थान गुदा क्षेत्र है। यह शक्ति का मुख्य केंद्र है। इसे ब्रह्मग्रंथि भी कहते हैं। इस केंद्र से ऊर्जा अपने से ऊपर के केंद्र स्वाधिष्ठान चक्र तक पहुँचती है, जिसका क्षेत्र लिंग/योनि क्षेत्र है। वहाँ से तीसरा ऊर्जा केंद्र नाभि स्थित मणिपुर चक्र तक पहुँचता है। फिर चौथा ऊर्जा केंद्र हृदय में स्थित अनाहत चक्र है। इसे विष्णुग्रंथि कहते हैं। यहाँ से ऊर्जा पाँचवें केंद्र तक पहुँचती है, जो गले में है, जिसे विशुद्धि चक्र कहते हैं।

सीसी-ओ. नेपाल संसिरिट अकादमी, काठमांडू

वहाँ पहुँचकर फिर ऊर्जा छठे चक्र तक पहुँचती है, जो दोनों आँखों के बीच में है, इसका नाम आज्ञा चक्र है। इसे रुद्र ग्रंथि भी कहते हैं। जब ऊर्जा या शक्ति या कुंडलिनी ब्रह्म ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि और रुद्र ग्रंथि को पार करती है, तो वह सहस्रार चक्र तक पहुँचती है। इस प्रकार मूलाधार में सोई हुई कुंडलिनी को जागृत करके, रज या वीर्य को शक्ति के रूप में सहस्रार तक पहुँचाया जाता है और उस प्रक्रिया से, वह रज या वीर्य अमृत बन जाता है, इस प्रकार यह नश्वर शरीर अमरता प्राप्त करता है। सिद्ध आत्माराम ने कहा है कि बिंदु, मन और प्राण के बीच अंतर्संबंध है। जब मन स्थिर होता है, तो प्राण भी स्थिर हो जाता है, जब प्राण स्थिर होता है, तो बिंदु भी स्थिर हो जाता है (गो.श्री: 90-92; चा.श.प. 4:28)।

Nepali ⇄ Hindi
Send to Translate Home
Select all
Listen
Are these results useful? Yes No

05:44
Vo)) 4G LTE1
नेपालमा Google Lens
archive.org
इंटर पुरा
Original Translated

डेविड गॉर्डन ह्वेते ने कुंडलिनी के बारे में यह कहा है: "कुंडलिनी योग में, अभ्यास के माध्यम से, विशेष रूप से कुंडलिनी शक्ति के माध्यम से, योगी अपने बीज (वीर्य या रज) को छह चक्रों तक बढ़ाता है। जैसे-जैसे कुंडलिनी शक्ति प्रत्येक चक्र में प्रवेश करती है, ऊष्मा बढ़ती जाती है और जब बीज सहस्रार चक्र तक पहुँचता है, तो वह शुद्ध अमृत बन जाता है। सहस्रार पर, कुंडलिनी पूर्णिमा के साथ एक हो जाती है और साधक का शरीर एक दिव्य शरीर बन जाता है। वह कायाकल्प और अमरता प्राप्त करता है।" (1966: 263)।

गोपीनाथ कविराज ने सहस्रार चक्र में कुंडलिनी के लीन होने की व्याख्या तांत्रिक शैव दृष्टिकोण से की है। कुंडलिनी पार्वती या शक्ति तत्त्व है। सहस्रार का चंद्रमा शिव तत्त्व है, वहाँ दोनों का मिलन और एकता ही शक्ति तत्त्व का शिव तत्त्व में लीन होना है (1987:73)। शिव को शक्ति की ऊर्जा से ही शिव कहा जाता है, अन्यथा शिव एक ऊर्जाहीन शव हैं। बामकेश्वर तंत्र में भी शिव और शक्ति के संबंध के बारे में कहा गया है - शिव शक्ति से ही शक्तिशाली बने, शक्ति के बिना वे कुछ भी नहीं कर सकते। शक्ति से ही वे जगत के प्रकाशक बने।

योग की सफलता मुख्यत: भौतिक और सूक्ष्म शरीरों के ज्ञान और उन पर नियंत्रण पर निर्भर करती है। मन की शक्ति पर नाथों के दृष्टिकोण के संबंध में, जोर्डजेविक (2008) ने एक गंभीर अध्ययन किया है।

सीसी-0. नेपाल संस्कृत अकादमी, काठमांडू

उनके अनुसार, नाथयोगियों की शक्ति अपने शरीर को नियंत्रित करना, अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करना, वीर्य और रज के अवरोहण को नियंत्रित करना और उन्हें ऊपर उठाना है। इस प्रकार, काम शक्ति को नियंत्रित करने और कुंडलिनी को जागृत करने से काम शक्ति ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। कुंडलिनी ध्यान के माध्यम से, काम शक्ति रहस्यमय शक्ति प्राप्त करने का साधन बन जाती है और स्वयं एक रहस्यमय शक्ति बन जाती है। ध्यान की शक्ति से, काम शक्ति वह ऊर्जा बन जाती है जो यौगिक शरीर बनाती है और नश्वर को अमर बनाने और मनुष्य को देवता बनाने का साधन बन जाती है। काम शक्ति को समझने और अभ्यास करने से, व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करता है और सिद्ध बन जाता है। इस मार्ग के माध्यम से, योग साधक दूसरा शिव बन जाता है। क्योंकि वे काम शक्ति के इस रहस्य को जानते हैं, नाथयोगी खुद को अन्य तपस्वियों से श्रेष्ठ मानते हैं (जोर्जेविक 2008: 24-25)।

Nepali ⇄ Hindi
Send to Translate Home
Select all
Listen
Are these results useful? Yes No

05:47
Vo)) 4G LTE1
नेपालमा नाथ योग Google Lens ...
archive.org
Original Translated
इंटरनेट
पुरालेख

2.3.8.बी. योगी, सिद्ध और भक्त

योगी वह साधक है जो योग को जीवन का एक तरीका बना लेता है। नाथ परम्परा के अनुसार, आसन और प्राणायाम के साथ, वे दस मुद्राओं और बंधों का अभ्यास करते हैं। मुद्राओं के उदाहरणों में खेचरी मुद्रा, महामुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, शक्तिचालन आदि शामिल हैं और महाबंधों के उदाहरणों में मूलबंध, उड्डियान बंध, जालंधर बंध, महावेध, चक्र और कुंडलिनी शामिल हैं, और वे कुंडलिनी (ब्रह्मगी) जागरण और वायु या प्राण और बिंदु को मूलाधार से सहस्रार तक उठाने का अभ्यास करते हैं। उनका लक्ष्य साधना के माध्यम से दिव्य शरीर या शुद्ध शरीर प्राप्त करना है। बिंदु को अमृत में बदलना। जब यह साधना परिपक्व हो जाती है, तो वह सिद्ध हो जाता है। व्यक्ति समग्रता या ब्रह्मांड का अनुभव करता है और वह अपनी इच्छानुसार ब्रह्मांड को नियंत्रित कर सकता है। इस अर्थ में, श्री कृष्ण को योगेश्वर कहा जाता है। गोरखवाणी में एक योगी के लक्षण इस प्रकार परिभाषित किए गए हैं:

अरधै जाता,उरधै धरे,काम दग्ध जो जोगी करे ।
यों ही मैंने प्रेम को काटा, हृदय में पाया।

(गोरखवाणी 17)

योगी ऊपर आकाश को धारण करता है, नीचे लोक की यात्रा करता है, कामनाओं की शक्ति को भस्म कर देता है, माया के जाल को तोड़ देता है। ऐसे योगी के चरण भगवान विष्णु भी धोते हैं।

सिद्ध वह योगी होता है जिसने अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हों, दिव्य शरीर धारण कर लिया हो, और भौतिक सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हों। वह आवश्यकतानुसार आकाश में उड़ सकता है, छोटा रूप धारण कर सकता है, बड़ा आकार धारण कर सकता है, हल्का और भारी हो सकता है।

Nepali Hindi
Send to Translate Home Select all Listen
Are these results useful? Yes No

चौपाई ।

श्रीमहाराजा आज्ञा दीनी । बानी सुन्दर रचो नवीनी ॥
श्रीगुरु श्रीहरिके गुन गावो । पद रचना कर प्रेम बढ़ावो ॥
बानी प्रेमभक्ति की दानी । पढ़ें सुने चेतें जग प्रानी ॥
श्रीमहाराज कृपा उर धारी । अनुभव उदय भई अतिप्यारी ॥

दोहा ।

श्री सतगुरुपद ध्यान धर, रचन लगे सद्ग्रंथ ॥
नाम मुक्तिमारगसरस, प्रेमपरा को पंथ ३२
बानी स्वामी जी सरस, सब बानी सिरताज ॥
मैं मिथ्या बरनूं नहीं, साक्षी श्रीमहाराज ३३

चौपाई ।

जो बांचैं सोई जन जानें । बिना पढ़े नहिं मर्म पिछानें ॥
जाके पढ़े पढ़न सब छूटे । निशिदिन प्रेमामृतरस घूंटे ॥
जैमनि अश्वमेध की कथा । भाषा रचना की जिमि जथा ॥
संस्कृत सों भाषा कीनी । दोहा चौपाई रँग भीनी ॥

दोहा ।

स्वामी जी महाराज की, बानी भई प्रचार ॥
बांचें संत महंत सब, सुन हुलसें नर नार ३४

चौपाई ।

श्रीगुरु महिमा अनुपम गाई । सुन गुन साधू करें बड़ाई ॥
हरि सुमरन को बरनो अंग । नानाभांति न कहै प्रसंग ॥
अजपा गायत्री पुनि गाई । सोहम् सुरति रीति समुझाई ॥

आत्मकामता ही सबमें प्रियता का कारण है। आत्मा जिस-जिस वस्तु में आनन्द का आस्वादन करती है, वही-वही वस्तु प्रिय बन जाता है। सर्वत्र आत्मा की ही स्व-रूपानन्दमयी सत्ता व्याप्त है। 'आनन्दं ब्रह्म। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाच-नेति' (तै० उप० ४/अनु.)। 'आत्मानन्दमयः' (तैत्तिरीयो० अनु० ५)। 'आनन्द आत्मा (तैत्ति० उप०। अनुवाक-५)। 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति (तैत्तिरीयोपनिषद्, नवम अनुवाक)।

प्रजापति के १०० आनन्द ब्रह्म के १ आनन्द तथा ब्रह्मा के अनन्त आनन्द परमात्मा के १ आनन्द के समतुल्य होता है।

मानुषानन्द, गन्धर्वानन्द, देवगन्धर्वानन्द, पितरानन्द, आजानदेवानन्द, आजानजानन्द, कर्मदेवानन्द, इन्द्रानन्द, बृहस्पति का आनन्द, प्रजापत्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द आदि सबसे बड़ा आनन्द आत्मा एवं परमात्मा का आनन्द होता है।

सोऽहं मन्त्र और उसकी साधना

अथैवमुपपादितमात्मस्वरूपस्फुरत्तापरामर्शं प्रत्यतिस्पष्टानाणवादीनुपायानु-पदेक्ष्यन् प्रथमं त्रीनप्येकयैव गाथयोद्घाटयति—

जइ णिअहिअउल्लासं णिण्णेउं णिच्चणिक्कलं इच्छा।
मज्झतुडी खुडिअव्वा अत्थं एत्ताण सोमसुज्जाणं॥५६॥

(यदि निजहृदयोल्लासं निर्णेतुं नित्यनिष्कलमिच्छा।
मध्यतुटिस्त्रुटितव्याऽस्त्रं यतोः सोमसूर्ययोः॥)

यदि अपने हृदय में (विकल्प-कल्पना के कलंक से शून्य) नित्य एवं माया-शून्य निर्मल उल्लास को निर्णीत करने की इच्छा हो तो सोम-सूर्य (हं एवं सः) के मध्य की तुटि विसर्जनीय है॥५६॥

निजं यत् साक्षात्कारोल्लेखयोग्यं हृदयं व्याख्यातस्वभावं तस्योल्लासश्चे-त्यचेतयितृत्वादिवैचित्र्येण स्फुरणम्, स प्रकृत्या कालविभागव्युदासेन निष्कलो हेयोपादेयताद्यशेषविकल्पकल्पनाकलङ्कशून्यो भवति। तमेवंविधमत्यन्तस्पष्टतया प्रत्यक्षीकारचमत्काराकारनिश्चयास्पदं कर्तुं यदीच्छा युष्माकमुपसन्नानाम्—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

इति श्रीभगवद्गीतास्थित्या काचिद् वाञ्छा विजृम्भते चेत्, तर्ह्ययमत्रोपाय इति वक्ष्यमाणसर्वार्थसाधारणोऽयमन्वयप्रकारः। तत्र यावेतौ सोमसूर्यौ वेद्य-वर्गानुप्राणनत्वादकुलमार्ताण्डाविभिन्नवेदितृस्वभावत्वाच्च सकारहकारात्मानौ वर्णविशेषौ, तयोरस्त्रं विसर्जनीयम्, आस्थां स्वहृदयसम्पुटीकारलक्षणमनुस्वारं

हंसः मन्त्र एवं सोऽहं मन्त्र—योगिराज गोरक्षनाथ ने योगबीज में कहा है कि श्वास ग्रहण करते समय हम् ध्वनि होती है और श्वास का रेचन करने के समय स: ध्वनि होती है और जीव इसी प्रकार सदैव 'हंस: हंस:' मन्त्र जपता रहता है और यही बाद में 'सोऽहं' मन्त्र में परिणत हो जाता है—

गुरुवाक्यात् सुषुम्नायां विपरीतोऽभवज्जप:।
सोऽहं सोऽहं इति प्राप्तो मन्त्रयोग: स उच्यते।।

यह दृष्टि भी रामप्रसाद की दृष्टि का समर्थन करती है।

हंसः मन्त्र की सोऽहं में परिणति—गुरु के बताये हुये मार्ग के द्वारा जप करने पर (सुषुम्णा में जपा जाने वाला) 'हंस: हंस:' के रूप में अनवरत जपा जाने वाला हंस मन्त्र विपरीतक्रम में 'सोऽहं सोऽहं' के रूप में जपा जाने लगता है। हंस मन्त्र का सोऽहं मन्त्र में परिणमन ही मन्त्रयोग है। अत: मन्त्रयोग भी अजपा जप है। यह सिद्धिरूप अजपा जप है; जबकि हंस मन्त्र साधनरूप अजपा जप है।

जीव का स्वाभाविक मन्त्र एवं स्वाभाविक जप—जीव निरन्तर श्वास-प्रश्वास के रूप में हंस मन्त्र या अजपा गायत्री का निरन्तर जप करता रहता है। यही उसका स्वाभाविक मन्त्र एवं स्वाभाविक जप है। यह मन्त्र एवं जप मानव का ही नहीं; प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक मन्त्र एवं स्वाभाविक जप है। मानव की विशेषता यह है कि मानव अपने पुरुषार्थ से इसे विपरीत क्रम में (हंस: को सोऽहं में) रूपान्तरित कर लेता है; किन्तु अन्य प्राणी ऐसा नहीं कर पाते। मनुष्य श्वास-प्रश्वास की इस गति में परिवर्तन कर पाने में समर्थ है—यही उसका वैशिष्ट्य है।

जब श्वास-प्रश्वास की इस स्वाभाविक गति में वैपरीत्य आ जाता है अर्थात् इड़ा-पिङ्गला के माध्यम से जपा जाने वाला हंस: मन्त्र जब सुषुम्णा में पहुँचकर सोऽहं के रूप में जपा जाने लगता है तब इड़ा-पिङ्गला में सञ्चरित वायु की वक्र गति सुषुम्णा में सञ्चरित होने पर (वक्रता छोड़कर) सरल गति धारण कर लेती है।

वायु इड़ा-पिङ्गला के मार्ग का जितना ही अधिक त्याग करके सुषुम्णा-मार्ग में प्रविष्ट होती है, उतना ही विकल्पों का जाल नष्ट होता जाता है; क्योंकि सुषुम्णा-मार्ग ब्रह्ममार्ग तथा सूर्य-चन्द्र एवं अग्नि (तेजस्त्रय) का मार्ग है।

वायु का सुषुम्णा में प्रवेश और उसके प्रभाव—

१. वायु की वक्रगति का नाश एवं सरल गति का प्रादुर्भाव।
२. विकल्पों का शमन।
३. इड़ा-पिङ्गलामार्ग में सञ्चरण से मुक्ति।
४. निर्विकल्प आत्मज्ञान के मार्ग का अनावरण।
५. वायु एवं मन की गतियों का ऊर्ध्वीकरण।

प्रणव (ॐकार) के साथ पुरुष-प्रकृतितत्त्व के सम्मिलन से (प्राणायामपूर्वक) हंस शब्द आविर्भूत होता है—

ॐ अकारो दक्षिण: पक्ष उकारस्तूत्तर: स्मृत:।
मकारस्तस्य पुच्छं वा अर्द्धमात्रा शिरस्तथा।।
पादौ रजस्तमस्तस्य शरीरं सत्त्वमुच्यते।
धर्मश्च दक्षिणं चक्षुरधर्मश्चोत्तरं स्मृतम्।
भूर्लोक: पादयोस्तस्य भुवर्लोकस्तु जानुनी।।
स्वर्लोक: कटिदेशे तु नाभिदेशे महाजगत्।
जनलोकस्तु हृदये कण्ठदेशे तपस्तत:।।
भ्रुवोर्ललाटमध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थित:।
सहस्रार्णमनीत्यत्र मन्त्र एष: प्रदर्शित:।।
एवमेनं समारूढो हंसयोगविचक्षण:।
न बध्यते कर्मचारी पापकोटिशतैरपि।।

(नादबिन्दूपनिषद्)

हंसरूपात्मक यह प्रणव-साधना अन्य सहस्रों मन्त्रों की साधना से भी श्रेष्ठतर है। जो साधक हंसमन्त्र के जप से प्रणवरूपी हंस पर आरोहण करता है, वह करोड़ों पापों से मुक्त हो जाता है।

हंसोपनिषद् और अजपा जप—हंसोपनिषद् में कहा गया है कि प्रत्येक जीव प्रतिदिन दिन-रात निश्वास-प्रश्वास क्रिया के द्वारा अजपा जप (हंस नामक अजपा जप (इक्कीस हजार छ: सौ संख्या में) का जप किया करता रहता है—

एकविंशतिसहस्रषट्शताधिकमीश्वरि।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम्।।
विना जपेन देवेशि! जपो भवति मन्त्रिण:।
अजपेयं तत: प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी।।

निश्वास-प्रश्वासात्मक हंस नामक अजपा जप का जप सायास नहीं, प्रकृत्या ही अहर्निश होता रहता है।

ब्रह्म पुरुषप्रकृत्यात्मक है। देहरूपी तालाब में आत्मा हंस के रूप में तैरती रहती है। अत: हंस शब्द आत्मोपलब्धि का द्वार है। हंसबीज के उद्बुद्ध हो जाने पर आत्मा सूर्यमण्डल में प्रकाशित हो उठती है। जप-क्रिया में यही हंस शब्द विपरीतक्रम से सोऽहं बीज के रूप में प्रकट हो जाता है। इस स्थिति में क्रियांशात्मक स-ह वर्णद्वय भी लुप्त हो जाते हैं और मात्र ॐ अवशिष्ट रह जाता है।

रुद्रयामलतन्त्र और हंसयोगात्मक अजपा जप—इस मन्त्र को ही अजपा

16:06

गायत्री, हंसविद्या, आत्ममन्त्र एवं प्राणयज्ञ आदि कहा गया है। रुद्रयामल में इस जप का विधान इस प्रकार है—

प्रणवाज्जायते हंसो हंसः सोऽहं परो भवेत्।
सोऽहं ज्ञानं महाज्ञानं योगिनामपि दुर्लभम्।।
निरन्तरं भावयेद् यः स एव परमो भवेत्।
हं पुमान् सः स्वरूपेण चन्द्रेण प्रकृतिस्तु सः।।
एतद्धंसं विजानीयात् सूर्यमण्डलभेदकम्।
विपरीतक्रमे सैव सोऽहं ज्ञानं यदा भवेत्।।
तदैव सूर्यगः सिद्धो वासुदेवप्रपूजितः।
हकारार्णं सकारार्णं लोपयित्वा ततः परम्।
सन्धिं कुर्यात् ततः पश्चात् प्रणवोऽसौ महामनुः।।

स्कन्दपुराण की वैष्णवसंहिता के पाँच अध्यायों में प्रणव-साधना का अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और उसमें—१. प्रणवकवच २. प्रणवहृदय ३. प्रणव-पुरश्चर्या ४. प्रणवाष्टोत्तरशतनाम ५. प्रणवगायत्री ६. प्रणवमालामन्त्र ७. प्रणवस्तोत्रराज ८. प्रणवगीता ९. प्रणवसहस्रनाम आदि की भी पुष्कल विवेचना की गई है।

श्रीधर स्वामी की दृष्टि—गीता के (४.२६) श्लोक 'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे' की व्याख्या करते हुये श्रीधरस्वामी ने पूरक-रेचक में अवस्थित हंसमन्त्र और अनुलोम-प्रतिलोम द्वारा उसके सोऽहं रूप में परिणति की अच्छी व्याख्या की है।

उत्तरगीताकार भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि—अर्जुन के द्वारा प्रश्न करने पर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को उत्तर देते हुये हंसात्मक आत्ममन्त्र के विषय में अपनी दृष्टि इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

आत्ममन्त्रस्य हंसस्य परस्परसमन्वयात्।
योगेन गतकामानां भावना ब्रह्म चक्षते।।
शरीरिणामजस्यान्तं हंसत्वं पारदर्शनम्।
हंसो हंसाक्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्।।
तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जह्यान्मरणजन्मनी।।
काकीमुखककारान्त उकारश्चेतनाकृतिः।
अकारस्य च लुप्तस्य कोऽर्थः सम्प्रतिपद्यते।।
गच्छंस्तिष्ठन् सदाकालं वायुस्वीकरणं परम्।
सर्वकालप्रयोगेण सहस्रायुर्भवेन्नरः।
यावत्पश्येत् खगाकारं तदाकारं विचिन्तयेत्।।
खमध्ये कुरु चात्मानमात्ममध्ये च खं कुरु।
आत्मानं खमयं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।

05:50
Radha Swami Yoga (...
archive.org
ARCHIVE

...तों को समझना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। इस लिये जीवों
...ो साधन करने का आदेश किया गया। साधन की विधि वाणी में इस
...ह आती है।

सतगुरु कहें भेद दरसाई। मारग घर का देयँ बुझाई॥
प्रथम शरण गहो सत् गुरु की। दुतिये बाड़[1] धरो सत्संग की॥
गुरू जो भेद बतावें तुमको। धारो वचन कमाओ उनको॥
तन मन इन्द्री सुरत समेटो। चढ़ अकास शब्द गुरु भेंटो॥
सुनो नित्य तुम अनहद वाणी। देखो अद्‌भुत जोति निशानी॥
जोति फाड़ फिर सुन्न समाओ। सुषमन होय बंक में जाओ॥
बंक पार त्रिकुटी सुन गीत। काल कर्म दोऊ लीन्हे जीत॥
सुन्न शिखर चढ़ी सुरत धूम। मान सरोवर पहुँची झूम॥
महा सुन्न जहाँ अति अँधियार। गुप्त चार धुन बाणी सार॥
भँवर गुफा जाय लीन्ही चीन्ह। आगे सत्त लोक चढ़ लीन्ह॥
अलख अगम को जाकर परसा। शब्द पकड़ मन सूरत सरसा॥
राधास्वामी नगर निहारा। देखा जाय अगर उजियारा॥

संतन का मत गूढ़, बिना संत को जानई।
राधास्वामी किया ज़हरू, माने सतसंगी कोई॥

1. ओट।

60 of 87
Favorite
Share
Flag
Radha Swami Yoga (Part 6)

जिनमें आत्मीयता है, उनमें सत् का गुण प्रधान रहता है। जिनमें आत्मीयता की कमी है, उनमें सतगुण प्रधान रहता है और जिनमें सत् और तम दोनों मिले होते हैं उनमें रजोगुण प्रधान रहता है। इन गुणों की कमीबेशी सृष्टि के जीवों के रूप, आकृति, हृदय और मस्तिष्क पर प्रभाव डालती रहती हैं। इसी कारण से सब जीवों के भिन्न स्वभाव, भिन्न-भिन्न विचार और भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। यह नैसर्गिक बात है।

लेकिन अब भी क्यों के प्रश्न का अंत नहीं होता। इसकी बाबत सार बचन राधास्वामी छंद बंद में जो वाणी आती है, उसे यहाँ ज्यों का त्यों दिये देते हैं :

आप ही आप न दूसर कोई। उठी मौज परगट सत सोई॥
तीन देश मौज न रचे। अगम अलख सत नाम होय हँसे॥
धुन धधकार उठी इक भारी। सात सुरत रचना उन धारी॥
साँचा बन जामन पुनि दीन्हा। सुरत परस्पर रचना कीन्हा॥
सोहं सुरत आदि यों बोली। सोहं सोहं समपट खोली॥
सहज धीर जामन तहाँ दीन्हा। औं सोहं गर्भ धुन चीन्हा॥

....

पुरुष कला को दिया निकासी। निकस कला कीन्हा अति त्रासी॥
पुरुष दया कर जुगत बनाई। कला दूसरी और उपाई॥
पीत धरन बहुकला सिंगारी। दीन्ही आज्ञा पुरुष निहारी॥
एक काल कुछ अंस दयाली। दोनों मिल कीन्हा कुछ ख्याली॥

मूल सुरत जहां पर प्रगटाई। मूल द्वार पर बैठी आई॥
शांत सुरत जहां कीन विलासा। हंस रचे कर दीप निवासा॥
दीपन शोभा क्या कहूं भारी। हंस कुतुहल करें अपारी॥
पुरुष दरस और लीला न्यारी। देख देख अनुभव गति धारी॥
जुग केते और मुद्दत केती। गिनी न जावै उनकी गिनती॥
रचना सत्य सत्य वह देशा। नहिं व्यापे जहाँ काल कलेशा॥
हंस सभा समरथ तहां बैठे। लीला देखें रहें इकट्ठे॥
कँवल द्वार दल धारा निकसी। श्याम रूप अचरजहोय दरसी॥
पुरुष देख अचरज लौ लीना। सेत माँहि जस श्याम नगीना॥
आये मान सरोवर तीरा। अक्षर की देखी यहाँ लीला॥
लीला देख कला चित त्रासा। तब अक्षर ने दिया दिलासा॥

॥ दोहा ॥

जोत निरंजन दोउ कला, मिलकर उत्पति कीन्ह।
पाँच तत्व और चार खान, रच लीन्हे गुण तीन॥
गुणतीनों मिल जगत का, बहुत किया विस्तार।
ऋषी मुनीश्वर देव अदेव, रच बाढ़ो अहंकार॥

विभिन्नता का असली कारण यह है जो ऊपर की वाणी में वर्णन किया गया है।

कबहूँ हकधक हो रहै, उठै प्रेम हित गाय।
सहजो आँख मुँदी रहै, कबहूँ सुधि हो जाय ॥ ९ ॥
मन में तो आनद रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोइ संग ॥ १० ॥
प्रेम लटक दुर्लभ महा, पावै गुरु के ध्यान।
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजै केवल ज्ञान ॥ ११ ॥

अजपा गायत्री का अंग

ऐसा सुमिरन कीजिये, सहज रहै लौ लाय।
बिनु जिभ्या बिन तालुवै, अन्तर सुरत लगाय ॥ १ ॥
हन्सा सोहं तार कर, सुरति मकरिया पोय।
उतर उतर फिरि फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन होय ॥ २ ॥
बरत† बाँध कर धरन में, कला गगन में खाय।
अर्ध उर्ध नट ज्यौं फिरै, सहजो राम रिझाय ॥ ३ ॥
लगै सुन्न में टकटकी, आसन पदम लगाय।
नाभि नासिका माहिँ करि, सहजो रहै समाय ॥ ४ ॥
सहज स्वाँस तीरथ बहै, सहजो जो कोइ न्हाय।
पाप पुन्न दोनौं छुटैं, हरि पद पहुँचै जाय ॥ ५ ॥
हक्कारे* उठि नाम सूँ, सक्कारे होय लीन।
सहजो अजपा जाप यह, चरनदास कहि दीन ॥ ६ ॥
सब घट अजपा जाप है, हन्सा सोहं पुर्ष।
सुरत हिये ठहराय के, सहजो या बिधि निर्ख ॥ ७ ॥
सब घट ब्यापक राम है, देही नाना भेष।
राव रंक चंडाल घर, सहजो दीपक एक ॥ ८ ॥

* रस्सी। † पुकारै।

साधन के संसा नहीं "दया" सर्व सुख जान ।
मन की दुबिधा मेट करि कियो राम-रस पान ॥ १२ ॥
साधू बिरला जक्त में हर्ष सोक करि हीन ।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं जन जन आगे दीन ॥ १३ ॥
साधू सोई जानिये जाके हिरदे राम ।
मान बड़ाई छोड़ कर सुमिरै आठो जाम ॥ १४ ॥
कलि केवल संसार में और न कोउ उपाय ।
साध संग हरि नाम बिन मन की तपन न जाय ॥१५॥
साध संग जग में बड़ो जो करि जाने कोय ।
आधो छिन सतसंग को कलमख डारै खोय ॥ १६ ॥

॥ अजपा का अंग ॥

॥ दोहा ॥

चरनदास गुरदेव ने मो सूँ कह्यो उचार ।
"दया" अहर[1] निसि[2] जपत रहुँ सोहं सुमिरन सार ॥ १ ॥
नासा आगे दृष्टि धरि स्वाँसा में मन राख ।
"दया" दया करिके कह्यो सतगुर मो सूँ भाख ॥ २ ॥
पद्मासन सूँ बैठ करि अंतर दृष्टि लगाव ।
"दया" जाय अजपा जपो सुरति स्वाँस में लाव ॥ ३ ॥
अर्ध उर्ध मधि सुरति धरि जपै जु अजपा जाप ।
"दया" लहै निज धाम कूँ छुटै सकल संताप ॥ ४ ॥
स्वाँसउ स्वाँस बिचार करि राखै सुरत लगाय ।
"दया" ध्यान त्रिकुटी धरै परमातम दरसाय ॥ ५ ॥
"दया" कह्यो गुरदेव ने कूरम[3] को व्रत लेहि ।
सब इंद्रिन कूँ रोकि करि सुरत स्वाँस में देहि ॥ ६ ॥

---

(१) दिन । (२) रात (३) कछुना जो सुरत ध्यान से अंडा सेता है ।

बिन रसना बिन माल कर अंतर सुमिरन होय ।
'दया' दया गुरदेव की बिरला जानै कोय ॥ ७ ॥
अजपा सोहं जाप तेँ त्रिविधि ताप मिटि जाहिँ ।
'दया' लहै निज रूप कूँ या मैँ संसय नाहिँ ॥ ८ ॥
हृदय कमल मेँ सुरति धरि अजपा जपै जो कोय ।
बिमल ज्ञान प्रगटै तहाँ कलमख डारै खोय ॥ ९ ॥

॥ सोरठा ॥

'दया' सकार[1] हँकार[2] अच्छर को जो जप करत ।
अंतर ह्वै उजियार तिमिर अविद्या सब हरत ॥ १० ॥
नाभि नासिका माहिँ गाजै सोहं सब्द धुनि ।
या मैँ संसै नाहिँ 'दया' सुमिरि भव तरत मुनि ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥

सतगुर के परताप तेँ 'दया' कियो निरधार ।
अजपा सोहं जाप है परम गम्य निज सार ॥ १२ ॥
प्रथम पैठि पाताल सूँ धमकि चढ़ै आकास ।
'दया' सुरति नटिनी भई बाँधि बरत[3] निज स्वाँस ॥ १३ ॥
छिन छिन मेँ उतरत चढ़त कला गगन मेँ लेत ।
'दया' रीझि गुरदेवजू दान अभय पद देत ॥१४॥
चरनदास गुरु कृपा तेँ मनुवाँ भयो अपंग ।
सुनत नाद अनहद 'दया' आठौ जाम अभंग ॥ १५ ॥
घंटा ताल मृदंग धुनि सिंह गरज पुनि होय ।
'दया' सुनत गुरु कृपा तेँ बिरला साधू कोय ॥ १६ ॥
गगन मध्य मुरली बजै मैँ जु सुनी निज कान ।
'दया' दया गुरदेव की परस्यो पद निर्वान ॥ १७ ॥

---

(१) सवेरे । (२) पुकार कर । (२) रस्सी ।

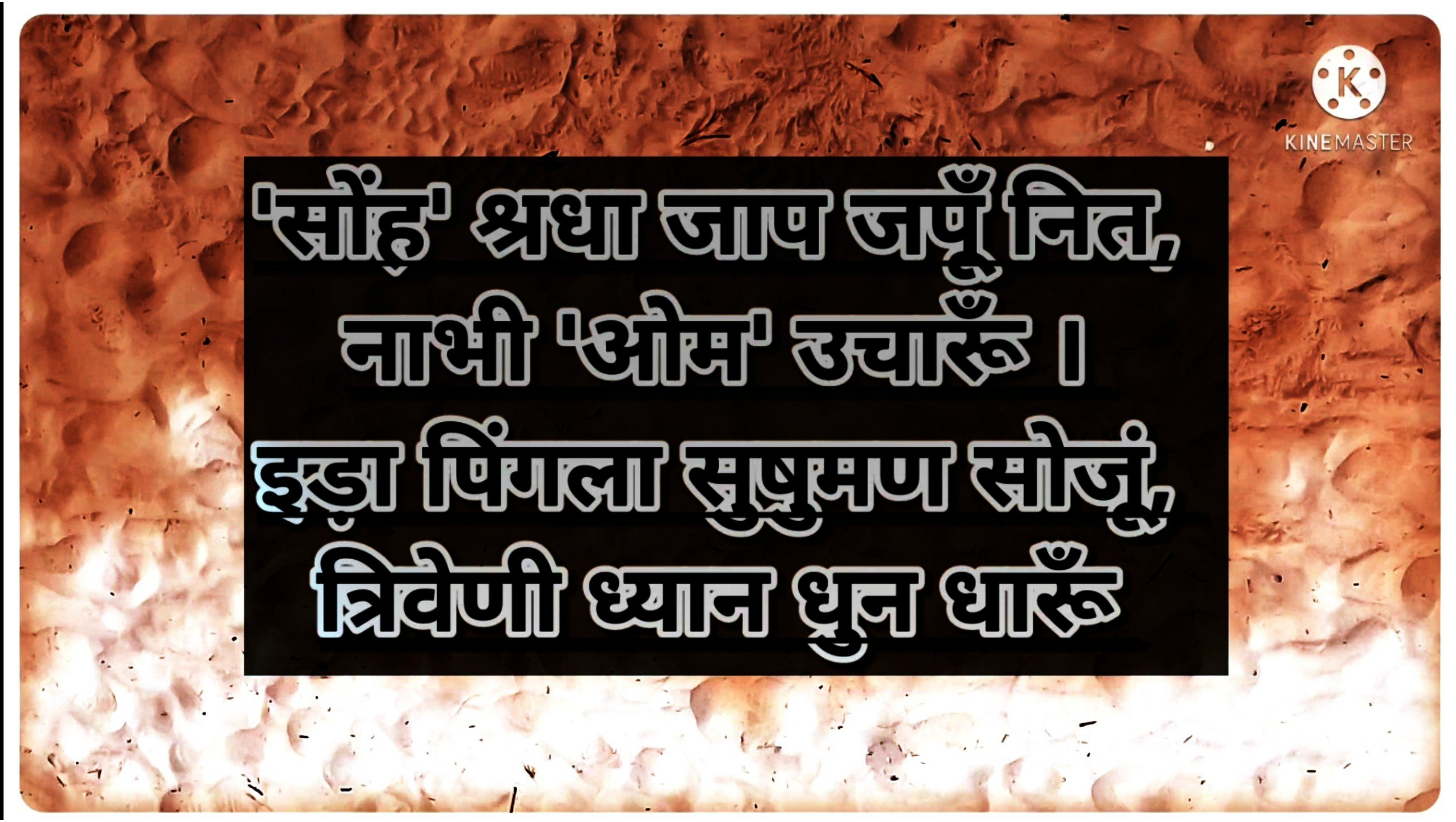
'सोंह' श्रधा जाप जपूँ नित,
नाभी 'ओम' उचारूँ ।
इड़ा पिंगला सुषुमण सोजूं,
त्रिवेणी ध्यान धुन धारूँ
KINEMASTER

ो विराटता को समझे। दूसरा कार्य है- शरीर को नि
करने में आसन, प्राणायाम, स्वांस की क्रियाएं, बैठ
को निवृत्त करने का अर्थ है - शरीर को सारी क्रिया
ो कि शरीर है ही नहीं। शरीर को साधने के लिए अ
हम एक घंटा भी नहीं बैठ पाते हैं, तो साधना करना
साधना क्रम ही तो है। साधना के लिए शरीर को सा
हाराज कहते हैं:-

‘आसन दृढ़ आहार दृढ़ जे निद्रा दृढ़ होय।
गोरख कहे सुनो रे पूता, मरे न बूढ़ा होय।।

ार एवं दृढ़ निद्रा-साधना की पूर्व शर्तें हैं। बैठने का
सुखासन ही हो। तीन आसन साधना के लिए उपय
न और सिद्धासन। इनमें से जो भी आसन आपको
से ही अपनाना चाहिए। आसन वहीं स्वीकार्य है जि
करें। आसन तीनों में से जो चाहे अपना लें पर एक
ोना जरूरी है। एक घंटा की लगातार बैठक आप
भ्यास परम आवश्यक है।

लिए दूसरी आवश्यकता है-संयमित आहार की। अ
ा शर्तें बताई है आहार की 1. हितभुक 2. मितभुक

BhajanVani
भजन बाणी

राग आसावरी । ताल दीपचन्दी ।।

साधो भाई मैं ऐसा देव विचारा।
गणपति नाथ गुणों का आगर, हमारा सोही निज प्राण ।।टेर।।
आदि अन्त मध्य तीन काल में, रेवे एक रस धारा।
जन्म न मरण होय नहीं जिनको सोई निज नैन निहारा ।।1।।
मूलचक्र नहीं मैं तो छेद्या, ना कोई श्वासा ने मारया।
चक पूरक कुम्भक नहीं कीना, मिल गया प्राण आधारा ।।2।।
ाब्द न रट्या विवेक किया जब, सोहं शब्द उचारा।
बोजत खोजत खुदही मिल गया—गम गया खोजन हारा ।।3।।
हूं गणपति गणा रो राजा, मैं ही पुजावण हारा।
ानसिंह नहीं देव पुजारी, पाखण्डी न्यारा न्यारा कहत ।।4।।

राजा मानसिंह जी की कथन

3
Dislike
1
Share
Use this sound
39K
@Bhajanvan... बाणी
राजा मानसिंह जी के भजन ...
chandra ... Bhajan ...

अब मन खडी

तार पर आया

तुरीया तुरंग चढाया

वाणी श्री नवल साहेब की

PRSENT_BY_[illegible] LYRICS

KINEMASTER

सोहंग सवदमे सब विध दरसे, सत गुरु मोय लखाया ।
रात दिवस जाग्रत धुन लागी, तुरीया खेल अथाया ॥3॥

तें चि पूजा-पात्र देवाजीचें ॥३॥
सोऽहं भावे जीव पूजी नारायणा ।
सांडुनि मीपणा स्वामी म्हणे ॥४॥

श्रीमत् संजीवनी गाथा - अभंग क्र. १५०
अंतरी संतत करीं सोऽहं ध्यान ।
न जाई गुंतून संसारात ॥१॥
धन सुत दारा असूं दे पसारा ।
नको देऊ थारा आसक्तीतें ॥२॥
होवो हानि-लाभ पावो सुख-दुःख ।
न सोडीं विवेक साक्षित्वाचा ॥३॥
स्वामी म्हणे राहें देहीं उदासीन ।
पाहें रात्रं-दिन आत्म-रूप ॥४॥

श्रीमत् संजीवनी गाथा - अभंग क्र. १७६
सोऽहं सोऽहं ध्यास लागतां जीवास ।
होतसे निरास संमोहाचा ॥१॥
त्रिगुणाचें भान हारपे मीपण ।
होतां सोऽहं ध्यान निरंतर ॥२॥
अंतीं एकमय ध्याता ध्यान ध्येय ।
होतां ज्ञानोदय अंतर्यामीं ॥३॥
स्वामी म्हणे मग स्वानंदाचा भोग ।
होय तो हि साङ्ग सुख-रूप ॥४॥

श्रीमत् संजीवनी गाथा - अभंग क्र. २१६
बैसोनि एकांतीं करीं सोऽहं ध्यान ।
तेणें तुझें मन स्थिरावेल ॥१॥
'सोऽहं' 'सोऽहं' ऐसा शब्दाविण जप ।
होतां आपेंआप चित्त-शुद्धि ॥२॥
कैसा शब्दाविण होतो 'सोऽहं-ध्वनि' ।

भाव उन्मनी आतम ‡ जोहक।
नित्य शुद्ध बुध विश्व विमोहक ॥
प्राण आरती में * दश बतियाँ।
नाद अनाहत × चारों गतियाँ ॥
अष्ट कमल दल झूला सोहे।
शून्य शिखर गढ़ मन्दिर मोहे ॥
पञ्च तत्व है परम पुजारी।
तीनों गुण सेवक अति भारी ॥
षट् चक्रन में सोहं देवा।
शुद्ध ब्रह्म अति सुन्दर सेवा ॥
तीन लोक में रूप विराटा।
अति विचित्र गति हे विभ्राटा ॥
व्यापक अणु २ में तुम देवा।
स्थूल सूक्ष्म कारण के खेवा ॥
'अमृत नाथ' मनुज तन धारा।
सुरति निरति ले गगन सिधारा ॥
मङ्गल गाते हैं नर नारी।
'शंकर' शुभ गति करो हमारी ॥

तीन काल की गति को जानत, नाशत अघ अति भारी।
अन्तर्यामी, पूर्णअकामी, शरणागत दुख हारी ॥३॥
सत चित सुख के रूप गुरु हैं, गुणातीत गुण धारी।
'अमृत नाथ' भक्त सत गुरु के पावे ब्रह्म अटारी ॥४॥

[९]

सन्तो पिव से डोर लगाओ।

जन्म मरण दुख मेटा चाहो, तो समता चित लाओ।
काम, क्रोध, मद, मोह हटाकर, सत् सन्तोष जगाओ ॥१॥
प्रेम मांहिं तन्मय हो ऐसे, तन की सुरति भुलाओ।
गद्‌गद् रहो मौन व्रत धारो दृढ कर आसन लाओ ॥२॥
अजंपा जाप जपो निशवासर, सुषुमन तकिया लाओ।
घाट त्रिवेणी पीव मिलेंगे, रूप में रूप समाओ ॥३॥
आवागमन दूर हो तब ही, भ्रम का भार हटाओ।
'अमृत' निर्भय शून्य शिखर में, परम हंस पद पाओ ॥४॥

[१०]

साधो सत्संगति बल भारी।

लख पावे निज रूप तुरत ही,
त्रैगुण फाँस निवारी।
कीट बने संगति से भँवरा,
अपना रूप निवारी ॥१॥

18:47
combinepdf(2).pdf

श्री शान्ति सरोवर

कृत

वेदान्त केसरी श्री स्वामी हेमराज जी
चिदाकाशी

प्रकाशक
श्री सत्य धर्म मण्डल (रजि.)

कार्यालय :
२५४२ दरियागंज,
दिल्ली-६

सत्य धर्म मन्दिर
स्वामी हेमराज मिशन मार्ग,
७/५ पूर्वी पटेल नगर, नई दिल्ली-८

प्रकाशक :
सत्य धर्म मन्दिर,
७/५ पूर्वी पटेल नगर,
नई दिल्ली-८

PK
2097
C57
S6
1969

श्री स्वामी हेमराज जयन्ती : १९६९

ॐ आप सोऽहं है सेव,
सोऽहं बूझे आपे देव ।
सोऽहं जाप स्वतः ही होय,
श्वास श्वास में प्रगटे सोय ॥५॥

जब ही श्वास अर्ध को आवे,
सो शब्द निज माँहि समावे ।
जब ही उर्ध्व को जावे श्वास,
ऽहं शब्द का होय हुलास ॥६॥

तांते जाप अजप्पा सोय,
बिना जपे निर्यत्न ही होय ।
सोऽहं अर्थ बताऊँ मीत,
शुद्ध बुद्धि कर धारो चीत ॥७॥

सो शब्द ईश्वर को कहिए,
ऽहं शब्द जीव को लहिये ।
सोऽहं आप पछानो भाई,
ईश जीव में भेद न राई ॥८॥

ईश जीव जब भए अभेद,
सहजे दूर भयो जग खेद ।
जीव ईश में भेद जो होय,
सर्वज्ञता अल्पज्ञता सोय ॥९॥

त्यागो व्यर्थ प्रपञ्च, गुरु की शरण गहो तुम ॥
'सोहं' साधन आत्म दरश का मुख्य बताया ।
खान, पान, व्यवहार सुधारे सुख से काया ॥७॥

[८]

काम, क्रोध अरु लोभ को, त्याग देय सो सन्त ।
पण्डित वही कहावते, यों कहते गुण वन्त ॥
यों कहते गुण वन्त, वही तीनों दृढ़ शूरा ।
इन्हें मारदे वही जगत में मानव पूरा ॥
'शंकर' इनसे बच रहे, वह पाते सुख धाम ।
विरले बड़ भागी तजें, लोभ, क्रोध अरु काम ॥८॥

[९]

तरुणाई के जोश में, ऐंठे मत रे क्रूर ।
काचा भांडा एक दिन, होय धूर की धूर ॥
होय धूर की धूर, गन्दगी के इस घर की ।
मत मन ममता करे, अरे, इस काया नगर की ॥
जीर्ण होय जब देह, दूर हो सब चतुराई ।
चार दिनों की रात, चाँदनी यह तरुणाई ॥९॥

[१०]

कहने भर को जगत है, वास्तव में कुछ नाहिं ।
ज्योति चमकती, ईश की, शंकर कण कण माहिं ॥

07:49

सका।”[1] संत-काव्यधारा में हमें योगपरक शब्दावली तथा रूपक और प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग देखने को मिलता है। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, षट्चक्र, दशम, द्वार, अलिपत गुफा, त्रिकुटी, अनहद सबद (नाद) सुनि समाधि, अजपा-जाप एवं सहस्त्रार-चक्र में स्थित अमृतकुण्ड के रस-पान की चर्चा संत-काव्यधारा में मिलती है।

संत गरीबदास ने **‘ब्रह्म बेदी’**, **‘ब्रह्म कला’**, **‘सुषमणि संपट’** और **‘मूल ज्ञान’** इत्यादि प्रसंगों में योग-साधना की अधिक चर्चा की है। इन प्रकरणों में जो यौगिक क्रियाओं का उल्लेख है उसका आधार संत-काव्यधारा है। संत-काव्यधारा के अनुरूप ही यौगिक क्रियाओं का उल्लेख करते हुए संत गरीबदास कहते हैं कि जिस योग को शंकर और गोरखनाथ ने प्रतिष्ठित किया था मैंने उस योग को अपने सद्गुरु (संत कबीरदास) से प्राप्त किया है -

“ऐसा जोग विजोग बताऊं, शंकर गोरख कीन्हा।
नागफुनी से काया पलटै, सो हम सतगुरु दीन्हा।।
हरदम खोज हनोज हाजिर, त्रिवेणी के तीर हैं।
दास गरीब तबीब सतगुरु, बंदीछोड़ कबीर है।।”[2]

योग दर्शन में योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आठ अंग बताए गए हैं। इसलिए इसे अष्टांग योग भी कहते हैं। नाथ-पंथ में आठ की जगह छह अंगों का उल्लेख मिलता है, इसलिए उनके योग को षडंग योग कहते हैं। इसकी अपनी विशेष शब्दावली है और व्याख्या भी। **“कबीरदास, गरीबदास आदि संतों ने इस शब्दावली का प्रयोग तो किया है परंतु हठयोग का समर्थन नहीं किया।”**[3] वास्तव में योग संबंध में उनकी अपनी अवधारणा थी जो पातंजल योगसूत्र के राजयोग और गोरखनाथ के हठयोग से भिन्न है। संतों के योग को भक्ति योग कहा जा सकता है। इसमें हठयोग की कठोर साधना को अस्वीकार किया

---

[1] चौरसिया, डॉ॰ केशनीप्रसाद, मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना, पृष्ठ संख्या-307

[2] श्री सतगुरु ग्रन्थ साहिब, अथ ब्रह्म कला, पृष्ठ संख्या-487

[3] शर्मा, ज्ञानचन्द्र, आचार्य गरीबदास और उनकी वाणी, पृष्ठ संख्या-18

120%

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

अथ ब्रह्म वेदी

ज्ञान सागर अति उजागर, निर्विकार निरंजनं।
ब्रह्म ज्ञानी महा ध्यानी, सत्य सुकृत दुख भंजनं।। १।।
मूल चक्र गणेश वासा, रक्त वर्ण जहां जानिये।
किलियं जाप कुलीन तज सब, शब्द हमारा मानिये।। २।।
स्वाद चक्र ब्रह्मादि वासा, जहां सावित्री ब्रह्मा रहै।
ऊँ जाप जपंत हंसा, ज्ञान योग सतगुरु कहै।। ३।।
नाभ कँवल में विष्णु विश्वम्भर, जहां लक्ष्मी संग बास है।
हरियं जाप जपंत हंसा, जानत बिरला दास है।। ४।।
हिरदे कँवल महादेव देवं, सती पार्वती संग है।
सोहं जाप जपंत हंसा, ज्ञान योग भल रंग है।। ५।।
कंठ कँवल में बसै अविद्या, ज्ञान ध्यान बुद्धि नास हीं।
लील चक्र मध्य काल कर्मं, आवत दम कूँ फास हीं।। ६।।
त्रिकुटी कँवल परमहंस पूर्ण, सतगुरु समरथ आप हैं।
मन पवना सम सिंध मेलो, सुरति निरत का जाप हैं।। ७।।
सहंस कँवल दल आप साहिब, ज्यौं फूलन मध्य गंध है।
पूर रह्या जगदीश योगी, सत्य समरथ निरबंध है।। ८।।
मीनी खोज हनोज हरदम, उलटद पंथ की बाट है।
इला पिंगुला सुष्मण खोजो, चल हंसा औघट घाट है।। ९।।
ऐसा योग वियोग वरणौं, जो शंकर नैं चित्त धर्या।
कुंभक रेचक द्वादश पलटे, काल कर्म तिस तैं डर्या।। १०।।
शुन्य सिंहासन अमर आसन, अलख पुरुष निरबान है।
अति ल्यौलीन बेदीन मालिक, कादिर कूँ कुरबान है।। ११।।
है निरसिंध अबंध अविगत, कोटि वैकुण्ठ नख रूप है।
अपरम पार दीदार दर्शन, ऐसा अजब अनूप है।। १२।।
घुरै निशान अखंड धुनि सुनि, सोहं वेदी गाईये।
बाजे नाद अगाध अग हैं, जहां ले मन ठहराईये।। १३।।
सुरति निरति मन पवन पलटै, बंकनाल सम कीजिये।
श्रवै फूल असूल अस्थिर, अमीं महारस पीजिये।। १४।।
सप्तपुरी मेरडंड खोजो, मन मनसा गहि राखिये।
उड़ि है भँवर अकाश गवनं, पांच पचीसौं नाखिये।। १५।।
गगनि मंडल की सैल कर ले, बहुरि न ऐसा दाव है।
चल हंसा परलोक पठाऊँ, भवसागर नहीं आव है।। १६।
कंद्रप जीत उदीत योगी, षट करमी यौह खेल है।
अनभय मालनि हार गूंदै, सुरति निरति का मेल है।। १७।

पांच नाम की व्याख्या

प्रथम शब्द स्थान

सुनरी सखी तोहि भेद बताऊँ। प्रथम स्थान खोल कर गाऊँ।।
सहस कँवल दल नाम सुनाऊँ। जोति निरंजन बास लखाऊँ।।
करता तीन लोक यह ठाऊँ। वेद चार इन रचे जनाऊँ।।
ब्रह्मा विष्णु महादेव तीनों। पुत्र इन्हीं के हैं यह चीन्हों।।
कुल वैराट रचा इन मिलके। जीवन घेर लिया इन पिलके।।
जाल बिछाया जग में भारी। इनकी पूजा जीव सम्हारी।।
फँसे जाल में पचे कर्म में। धोखा खाया पड़े भरम में।।
अब जो इनको कोई समझावे। सत्त पुरुष का भेद लखावे।।
तो नहिं माने झगड़ा ठान। पक्षपात कर ढिंग नहिं आवें।।
या ते मैं तो को समझाऊँ। यह सब ठग खुल कर जतलाऊँ।।
इनके मारग तू मत जाय। तू संतन की शरन समाय।।
सतगुरु कहें सोई तुम मानो। इनका वचन न कर परमानो।।
राह रकाना देऊँ दरसाई। पता भेद अब कहूँ जनाई।।
मन और सुरत जमाओ तिल पर। घेर घुमर घट जाओ पिल कर।।
निरखो खिड़की देखो चौका। चित्त लगाओ राखो रोका।।
पचरंगी फुलवारी रखो। दीपदान घट भीतर परखो।।
कोई दिन ऐसी लीला देखो। नील चक्रता आगे देखो।।

विरह प्रेम बल ताको फोड़ो। जोत निहारो मन को मोड़ो।।
अनहद घंटा सुन सुन रीझो। शंख बजाओ रस में भीजो।।
यह पहला अस्थान बताया। राधास्वामी वरन सुनाया।।

अपना बचपन याद आता है। जब मैं बच्चा था तो उस परमात्मा को मिलने के लिये प्रार्थना किया करता और बेहोश हो जाया करता था। चित्त में यह विचार बैठा हुआ था कि मन्दिर में, मस्जिद में, तीर्थो में हर जगह भगवान है। जब स्कूल में पढ़ा करता था तो मेरी यह दशा थी कि हरी घास पर टट्टी नहीं बैठता था। ख्याल था कि इसमें जान है और मेरी टट्टी से यह दुखी होगी। मैं सिपाही का लड़का हूँ,

शब्द स्थान दूसरा

अब चलो सजनी दूसर धाम। निरखा त्रिकुटी गुरु का ठाम।।
ओंकार धुन जहँ विसराम।। गरजे बादल और घनश्याम।।
सूरज मंडल लाल मुकाम। गुरु ने बताया गुरु का नाम।।
पंचम वेद नाद यहि गाया। चहुँ दल कंवल संत बतलाया।।
घंटा शंख तजी धुनि दोई। गरज मृदंग सुनाई सोई।।
सुरत चली और खोला द्वार। बंकनाल धस हो गई पार।।
ऊंची नीची घाटी उतरी। तिलकी की उलटी फेरी पुतरी।।
गढ़ भीतर जाय कीन्हा राज। भक्ति भाव का पाया साज।।
करम बीज अब दिया जलाई। आगे को फिर सुरत बढ़ाई।।
नौबत झड़ती आठों जाम। सूरत पाया मूल कलाम।।
महाकाल और कुरम बखाना। उत्पत्ति बीजा यहां से जाना।।
सूरज चांद अनेकन देखे। तारा मंडल बहु विधि पेखे।।
पिंड अंड से न्यारी खोली। ब्रह्मण्ड पार चली अलबेली।।
वन और परबत बाग दिखाई। चमन–चमन फुलवारी छाई।।
नहरें नदियां निर्मल धारा। समुन्दर पुल चढ़ हो गई पारा।।
मेर सुमेर देख कैलाशा। गई सुरत जहें विमल विलासा।।
राधास्वामी कहत पुकारी। दूसर मंजिल करली पारी।।

जब मैं सन् १९०५ में संत मत में आया था तो यह वाणियां पढ़ा करता था। मन में एक लगन थी। इन श्रेणियों से गुजरना चाहता था। अब ८३ वर्ष का हो गया हूँ। जो कुछ इन श्रेणियों को मैंने समझा, पता नहीं वह ठीक है गलत। यदि स्वामी जी को अपनी वाणी रचने का अधिकार था जिसे हम लोग पढ़ पढ़कर पागल बन गये तो मैं जो इन वाणियों को पढ़कर पागल बना रहा हूं, मुझे भी अधिकार है कि अपना अनुभव कह जाऊँ।

कल मैंने साइंस की रिसर्च के आधार पर क़हा था कि इस विराट पुरुष

शब्द स्थान तीसरा

अब चली तीसर पर्दा खोल। सुन्न मंडल का सुन लिया बोल।।
दसवाँ द्वार तेज परकाश। छोड़े नीचे गगन अकाश।।
मान सरोवर किये अश्नान। हंस मंडली जाय समान।।
सुन्न शिखर चढ़ी सूरत घूम। किंगरी सारंगी डाली घूम।।
सुन सुन सुरत हो गई सार। पहुंची जाय त्रिवेनी पार।।
महा सुन्न का नाका लीन्ह। गुप्त भेद जाय लीन्हा चीन्ह।।
अंध घोर जहँ भारी फेर। सत्तर पालंग जा का घेर।।
बानी चार गुप्त जहँ उठती। सुरत रागिनी नइ नइ सुनती।।
झन्कारें अद्भुत कहा बरनूँ। सुन सुन धुन मन में अति हरषूँ।।
पांच अंड रचना तहँ कीन्हीं। ब्रह्म पांच तामें हुये लीनी।।
अंडन सोभा बरनूं कैसी। सब्ज सेत कोई पीत बरन सी।।
लख लख अरब तासु परमाना। यह अंडा अति तुच्छ दिखाना।।
या में ब्रह्म व्यापक जोई। ताकी गति कहो कितनी होई।।
ताका ज्ञान पाय यह ज्ञानी। फूलें मन में होय अभिमानी।।
मेंढक सो गति इनकी जानी। कूप समुद्र जान मगनानी।।
कहा करें यह है लाचार। वह तो देश न देखा सार।।
बिन देखे कैसे परतीत। उन नहिं जानी अचरज रीत।।
इसी ब्रह्म को जान अपार। भूले मारग करें विचार।।
अब इनको कैसे समझाऊँ। वह नहिं मानें चुप्प रह जाऊँ।।
राधास्वामी कही सुनाय। तीनों परदे दिये दिखाय।।

यह तीसरा स्थान है। मैं शब्दों की ओर नहीं जाता। मैं अपने जीवन को देखता हूँ। कल मैंने कहा था कि जब यह मन अपने रजो गुणी विचारों को छोड़कर शान्त हो जाता है अर्थात जो सीता रूपी शान्ति है वह मिल जाती है, फिर अयोध्या नगरी अर्थात देह में रहता है। मन की शान्ति प्राप्त करने के बाद भी मन की एक

शब्द स्थान चौथा

अब चौथे को करी तयारी। चलरी सुरत तू शब्द सम्हारी।।
नाल हंसिनी घाटा फांदा। रुकमिन नाल सुरत को साधा।।
पांजी निरखी जहं गम्भीर। सुरत निरत दोऊ धारी धीर।।
दायें रचे दीप परचंड। बायें रचाये बहुतक खंड।।
मोती महल और रतन अटारी। हीरे लाल जड़े जहँ भारी।।
गुप्त भेद यह दिया जनाई। जानेंगे कोई सन्त सिपाही।।
भँवर गुफा का परबत निरखा। सोहं शब्द जाय जहं परखा।
धुन मुरली जहँ उठत करारी। सेत सूर सूरत निरखारी।।
तेज पुंज वह देश भलारी। धुन अपार तहँ होत सदारी।।
हंस अखाड़ा लीला चौक। भक्त मंडली खेलें थोक।।
लोक अनन्त भक्त जहँ बसें। नाम अधार अमी रस रसें।
राधास्वामी यह भी गाई। चौथा परदा लीन्हा जाई।।

इस बात को पढ़कर मैं पागल हो गया था। अभ्यास करते करते मेरी सारी आयु बीत गई। दाता दयाल कहा करते थे– वाणी जालम् महा जालम्। तीन स्थानों का वर्णन मैंने पहिले कर दिया है। अब यह चौथे स्थान का वर्णन है। इसमें एक कड़ी है–

गुप्त भेद यह दिया जनाई।
जानेंगे कोई संत सिपाही।।

जब तक किसी को यह गुप्त भेद नहीं मिलता कोई संत सिपाही नहीं हो सकता। अब इन वाणियों को पढ़कर कौन गुप्त भेद को समझेगा। सत्संगी तो अभ्यास करते-करते मर जायेंगे उनको गुप्त भेद कहां से मिलेगा! वह गुप्त भेद क्या है? स्वामीजी का गुप्त भेद क्या है वह तो वह जानते होंगें। दूसरे सन्तों का गुप्त भेद वह दूसरे सन्त जानते होंगे। मैं नहीं जानता। जो गुप्त भेद मुझको तुम लोगों में मिला है। जब मेरा रूप आप लोगों के अन्तर में प्रगट होता है। मुझे पता

शब्द स्थान पांचवां

पंचम किला तख्त सुल्तानी। बादशाह सच्चा निज जानी।।
चली सुरत देखा मैदाना। अजब शहर अद्भुत चौगाना।।
अमृत कुंड अमी की खाई। महल सुनहरी रचे बनाई।।
चौक चांदनी दीप अनूपा। हंसन शोभा अचरज रूपा।।
षोड़स भान चन्द्र उजियारा। सुरत चढ़ी देखा निज द्वारा।।
द्वापाल जहां बैठे हंस। कहीं कहीं अंस कहीं कहीं बस।।
सहज सुरत तहां वचन सुनाये। कहो भेद तुम यहां कस आये।।
सुरत नवीन कही तब बानी। संत मिले उन कही निशानी।।
इतना कह तब भीतर धंसी। सत्त नाम दर्शन कर हंसी।।
पुहुप मध्य से उठी अवाजा। को तुम हो आये किहि काजा।।
सतगुरु मिले भेद सब दीना। तिनकी कृपा दरस हम लीना।।
दर्शन कर अति कर मगनानी। सत्त पुरुष जब बोले बानी।।
अलख लोक का भेद सुनाया। बल अपना दे सुरत पठाया।।
अलख पुरुष का रूप अनूपा। अगम पुरुष निरखा कुल भूपा।।
देखा अचरज कहा न जाई। क्या क्या शोभा बरनूं भाई।।
तीन पुरुष और तीनों लोक। देखे सुरत और पाया जोग।।
प्रेम विलास जहाँ अतिभारी। राधास्वामी कहत पूकारी।।

जीवन के अन्दर एक खोज थी और अब भी है। किस बात की? इसका कुछ पता नहीं। जानता हूँ उस मन्तव्य को मगर उसका वर्णन नहीं कर सकता। छोटी आयु में मन्तव्य था पेट भरने का, मन की शान्ति का। जीवन में पेट का भरण पोषण चलता रहा, चाहे थोड़ा मिला या बहुत मिला। वह मन्तव्य तो इसलिये पूरा होता रहा है कि प्रतिमास तनख्वाह लेता रहा। मन की शान्ति केवल इस ख्याल से पूरी हुई कि यह मन है नहीं, मगर भासता है। जो विचार उठते थे वह मुझको तंग करते थे और अपनी ओर खींचते थे। दाता दयाल ने गुरु पदवी देकर दया कर दी।

20:20

(१६) गजल भैरवी वागेश्वरी

रटो सोहं सदा सोहं, सदा सोहं सदा सोहं सोहं।
भृकुटि में ध्यान धर करके, रटो सोहं सदा सोहं ॥१॥
करो चैतन्य नाभी से, चढो पथ मेरु हो करके।
जपो ब्रह्माण्ड में सोहं सदा सोहं सदा सोहं ॥२॥
दमन कर पांच रिपुओं का, पचीसों को विजय करके
शिखर की ओर को धाओ रटो सोहं सदा सोहं ॥३॥
कोटि दिनकर के सदृश तव विलक्षण ज्योति दरशावे।
अलौकिक नाद है. सोहं सदा सोहं सदा सोहं ॥४॥
इड़ा अरु पिंगला तज कर, रहो तन्मय सुषुम्ना में।
नयन को नासिका लाओ रटो सोहं सदा सोहं ॥५॥
मिला जिह्वा को दसनों से, सुधा का स्वाद लो निश दिन।
निराली शान्ति है इस में, रटो सोहं सदा सोहं ॥६॥
मिले आशा, छुटे तृष्णा, उनमनी ध्यान जब लाओ।
लखो निज रूप को तब ही, रटो सोहं सदा सोहं ॥७॥

भरा सागर है 'अमृत' का अनामी हंस रमता है।
यह उसका ध्यान है 'शंकर' रटो सोहं सदा सोहं ॥८॥

20:24

[११]

घटा शिरकाल की गाजे, तुझे क्या नींद आती है।
प्रमादी चेत कर अबतो, तेरी सब आयु जाती है ॥१॥
कनक अरु कामनी मिलकर, प्रबल सेना सजाई है।
उठाले शस्त्र शम, दम का, विजय जो तुझको भाती है ॥२॥
हृदय में दीनता धर के, अहं वृत्ती को वश करके।
हटा दे द्वेष मन से, जो तुझे शिक्षा सुहाती है ॥३॥
परम पावन चरण गुरु के, शरण हो नम्रता धर के।
सदा जप मंत्र अजपा को, यही ध्वनि रंग रानी है ॥४॥
अभय पद पायगा तब ही समाधि सहज जब लागे।
सदा कर पान 'अमृत' का, तेरा 'शङ्कर' सुसाथी है ॥५॥

[१२]

अरे नर ध्यान धर घट में, वृथा क्यों जन्म खोता है।
विषय के भूल भूले में, क्यों दुःख के बीज बोता है ॥१॥
गया तू भूल चेतनता, प्रपञ्ची बन गया जग में।
न जाने देह को नश्वर, सदा सुख नींद सोता है ॥२॥
सदा सत् संग कर प्यारे, दमन कर पञ्च विषयों का।
सजग हो आत्म चिन्तन में, समय सम्पूर्ण होता है ॥३॥

ही चलाते हुए-अर्थात् एक मिनिट में १५ श्वास इसमें तन्मय होने में ही आत्मानन्द मिल सकता है। यह तो प्रत्यक्ष बात है। अकारण श्वास की गति को रोकना और उससे आध्यात्मिक लाभ की आशा रखना अव्यवहार्य और अज्ञान है।

कुण्डलिनी शक्ति के सम्बन्ध में आपने जो अनुभूत एवं युक्ति संगत सारभूत विवेचन किया है वह तर्क संगत एवं प्राकृतिक है। आपके विवेचनानुसार चिरकाल से सोई हुई, विषयासक्त और बहिर्मुख वृत्ति को चैतन्य, दिव्य और अन्तर्मुखी बनाने से ही तो आत्मानन्द मिल सकता है, अमरलोक प्राप्त हो सकता है अमृतपान मिल सकता है। सुरति ठिकाने आना इसी का तो नाम है। यह बहिर्मुख वृत्ति ही तो सर्पिणी कुण्डलिनी है।

सुषुम्ना नाड़ी ही मेरु दण्डाश्रित मालाकार श्वास का आधार है। इसमें तन्मय होने से ही मन रुक सकता है, आत्मानन्द प्राप्त होता है और "जीवो ब्रह्मनंवा परैः" सूत्र साथक होता है।

योग—सहज योग की पूर्णावस्था ही तो आत्म साक्षात्कार है। आपका कथन है कि इसके बिना वेदान्त की बातें बनाना ढोंग है, प्रपञ्च है एवं मिथ्या है।

समाधि के सम्बन्ध में आपके विचार बहुत क्रान्तिकारी है इसमें आपका यह कथन है कि वास्तविक समाधि वही है

साधन

काया मन अरु वचन से झूठे जाने भोग।
क्षीण होय तब वासना, नष्ट होय सब रोग ॥

सत्य वचन सत् का व्यवहारा, शील स्वभाव कुमति से न्यारा।
क्षमा वन्त हो धीरज धारे, हो सन्तोषी लोभ निवारे।
दया, धर्म दृढ आसन धारी, होवे हृदय तितिक्षा भारी।
ब्रह्मचर्य का पालन करना, दीन विलोक दुःख को हरना।
हो निर्मोह मान को त्यागे, तजे दम्भ सत्पथ अनुरागे।
आत्म रूप सब जग को जाने, ऊँच नीच का भेद न माने।
रहे अहिंसक भय कुछ नाहीं, संशय रहित भाव चित माहीं।
सदा गुरु-मुखि आज्ञा कारी, योग युक्ति से भव भय टारी।
शत्रु मित्र सब को सम जाने, राग द्वेष का भाव न आने।
समदर्शी हो दृढ विश्वासी, सदा रहे निर्लेप उदासी।
मन को मार सुधार वचन को, समता हित कर सदा यतन को।
खान-पान व्यवहार सुधारे, कम सोवे निद्रा को मारे।
अजपा मंत्र जपे दिन रैना, रखे नासिका ऊपर नैना।
'अमृत' होय अमर गति उनकी, सुरति लगी सोहं में जिनकी।

आसन युक्ति से योग समाधि लगाय के ध्यान में लीन रहे।
मूल की वायु मिलाय के नाभि में वङ्क की राह् प्रवीण गहे॥
नयन को नासिका लाय के अमृत नादरु विन्दु का भेद लहे।
वज्र कपाट खुले तब 'शंकर' पाँच पचीस न तीन रहे॥

अर्थ—युक्त (उचित) आसन लगा कर मूल वायु अर्थात् अपान वायु को प्राण वायु में मिलावे। इस श्वास शक्ति को चतुर मनुष्य वङ्क नाल के द्वारा शून्य शिखर में ले जाय अर्थात श्वास की गती में तन्मयता प्राप्त करे। नेत्रों को नासिकाग्र भाग पर स्थिर करे। इससे नाद अर्थात् शब्द (सोहं) और विन्दु अर्थात् शिखर लोक से झरने वाले अमृत का भेद जान लेता है। अर्थात् सोहं शब्द अजपा जप के आधार पर अमृत प्राप्त कर लेता है। शून्य शिखर स्थित गुरु स्थान (भ्रमर गुफा) के वज्र के समान कपाट (किंवाड) लगे हुए हैं वह खुल जाते हैं। पाँच अर्थात् काम क्रोध, लोभ, मोह, और मद पच्चीस अर्थात् पाँचों तत्वों की प्रकृति और तीन गुण का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता. इन सब के आघात को सहन करने की उसमें शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यही योग समाधि है।

यहीं अधोमुख कूप श्वास की नेज है।
सुरति सुघर पनिहार अनोखा तेज है ॥१३॥
बङ्क नाल से चढे गगन की ओर है।
उतरे त्रिकुटी, कण्ठ हृदय की ओर है ॥१४॥
माला के आकार सुषुम्ना रूप है।
नाभि गगन सुमेरु भेद अति गूप है ॥१५॥
रमते हैं जो सन्त इसी घट माल में।
सोऽहं सोऽहं जपते हैं सब काल में ॥१६॥
कोटि भानु सम तेज शिखर में पावते।
अमृतताल अथाह तहां सरसावते ॥१७॥
रहो सदा ऋतु एक खेल निर्द्वन्द्व है।
रमते सुषुम्ना माहिं मिटे जग फन्द है ॥१८॥
तन का कुछ अभ्यास तनिक रहता नहीं।
सुख दुख व्यापे नहीं रहे समता वहीं ॥१९॥
केवल अपना रूप अन्य कुछ है नहीं।
तुरिया जागृत माहिं नहीं मैं, तू कहीं ॥२०॥
सुधरे अहार विहार वेग मन का थमे।
जन्म मरण की व्याधि मिटे सुषुमन रमे ॥२१॥
यह सुषुमन का भेद सन्त पूरा लहे।
मूल मिटे सुधि होय, 'नाथ अमृत' कहे ॥२२॥

पांच पचीस को प्रत्यक्ष विडारया, सर्व उपाधि विलाई ।
त्रिगुण नाना खेल पसारा, न्यारा निर्गुण गोसांई ॥ २ ॥
सतसंगत में नहिं त्रिगुण अंका, सत निर्णय कर पाई ।
सत को धार असत को त्याग्या, सतगुरू की गम लाई ।३॥
'गणेशराम' सतगुरू सतज्ञानी, युक्ति सत परसाई ।
'लाधूराम' शरण सतगुरू की, दुतिया भ्रम मिटाई ॥४॥

भजन संख्या (६) राग आशा–टोडी आशावरी पद ।

साधो भाई ! सतगुरू से पत आई ।
कृपा दृष्टि कर मो पर पूर्ण, ध्यान युक्ति दरसाई ॥ टेर ॥
समरथ सतगुरू शंस्य काढ्यो, सत की रमझ लखाई ।
सोहं भेद दियो गुरू स्वामी, हृदय ठीक ठहराई ॥ १ ॥
नाभी बैठ साधना सारी, झीणी तार संभाई ।
उलटा पवन पश्चिम को फेरया, प्राण अपान मिलाई ॥२॥
पांचो शमकर सहजे सहजे, बंक नाल उलटाई ।
प्राणायाम पवन गति जाणी, युगति कर उर लाई ॥३॥

भावार्थ–सन्त सम्बोधन देते है –

हे मानव ! सुरत–शब्द, मन–प्राण को साधकर द्रढ आसन से समता भाव जाग्रति पूर्वक अजपा जप की सिद्दि करके निर्गुणोपासना से स्वयंमात्म तत्व को निश्चय कर , वही अपना चेतन स्वरूप है। सोहमस्मि इति वृति अखण्डा 'अहंब्रह्मस्मि' महावाक्य का ''तत्वमशि ब्रह्म'' रहस्य से आत्मानुभव कर ले।

अपने आतम तत्व की अपरोक्षानुभूति स्मृति धारण कर देह में मिथ्यात्व बुद्धि की वृति का त्याग कर दे। अज्ञान जनित पंच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) का नास–भगा (स्वभाव बदल) कर नित्य मुक्तमय निर्भय हो जा।

तू स्वयं शुद्धस्वरूप स्वयं प्रकाशी परमतत्व है। अन्यान्य देवी–देव की मान्यता है, वह बिरानी अन्योपासना (कामना) है, उस भ्रम का आमूल चूल त्याग कर दे।

हे मूर्ख ! मिथ्या (नाशवान) देह (शरीर) के देहाध्यास में क्यों उलझ रहा है ? ऐसे जीवन से तो पेट (अन्तर्पट) में ज्ञान कटारी खा कर मर क्यों नहीं जाता ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

मोह माया रू काट विकार सो, तन मन वाच को शुद्ध करो रे।
देह अध्यास को दूर करो नर, सतसंग सतगुरु संग मरो रे॥
अन्तस्थ दोष विकार हटा मन, परमार्थ साधन संग परो रे।
'रामप्रकाश' जो मोक्ष को चाहत, अध्यात्म चिंतन चित धरो रे॥28॥

जप ले आप को सोहम् सोहम्, आपनो रूप संभाल सदा रे।
तीन सो देह–अवस्था ते परे वह, चेतन शुद्ध को पाय सदा रे।
सतगुरु ज्ञानी की शरण में जायके, सतसंग मे चित धार सदारे।
''रामप्रकाश'' पद पाय परमार्थ, मोक्ष परमानन्द चित सदा रे॥29॥

सतगुरु शब्द को श्रवण द्वारते, हृदय ठीक ठहराय ले भाई।
मुख ते सुमिरण कण्ठ रू हौंठ ते, गिलगिली हृदय माहि लगाई॥
नाभि की साधना राम प्रभावित, जाप अजपा चित माहि समाई।
'रामप्रकाश' कर शम दम सतसंग, अन्तवेरी मार ले भाई॥30॥

मनोहर छन्द

शुद्ध हि विचार सोई, फौलाद कटारी करि।
गुरु जु लोहार पास, लीजिए घड़ाय के।

मनोहर छन्द

बाहिर से वृति तेरी, खैंचि कर भीतर को ।
सोहं सोहं जाप सदा, रह्यो है जपाय के ॥
आम को उखाड़ पेड़, बबुल को बीज बोवे ।
ताको तू करत बाड़, चन्दन कटाय के ॥
हीरा सो तो मूठी भरि, फेंक देत द्वार बार ।
जूती को यतन करि, राखत छुपाय के ॥
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के ॥23॥

भावार्थ–हे मानव ! बहिरंग वृतियों को खेंचिकर सात्विक भाव से लक्ष्यार्थ वृत्ति को अंतरंग जोड कर सोहम् सोहम् (त्वंपद–जीव, तत्पद–ईश्वर, असिपद–जीवेश्वर) के वाच्यार्थ का त्याग कर लक्ष्यार्थ ब्रह्मस्वरूप सोहमस्मि जप कर के स्वयं को जान ले !

हे बन्धु ! अपने अमूल्य नरतन को विषय–बबुल के ऑरोपन में वासना का बीज बोता और मुक्ति द्वार श्वासा चन्दन के वृक्ष को व्यर्थ खोता (काटता) हुआ जीवन चन्दन में विषय के बीज–वासना का संरक्षण कर रहा है, जो आगामी जन्म–मरण के कण्टक–शूल ही परिणाम में लगेंगे ।

अमूल्य हीरा जैसा मानव जीवन की श्वासा को सांसारिक विषय भोगों (क्षणिक सुख) में मूठी भर भर कर फैंकता जा रहा है और पांव की जूती के समान तुच्छ विषय वस्तु को अति यत्न पूर्वक नाना तरह से रक्षित उपाय के छुपा (गोपनीयता) कर रखता है ।

हे मूर्ख ! अज्ञान पल्वित क्रियाओं के ऐसे मिथ्या जीवन जीने से पेट में ज्ञान कटारी झोंप (खा) कर मर जाता क्यों नहीं ?

मनोहर छन्द

तूँ तो सच्चिदानन्द घन, आतमा अखण्डता को ।
जीव जानि देवे भव–सिन्धु में डुबाय के ॥
नाहि तीन देह तेरे, स्थूल शूक्ष्म कारण जो ।
कारण को साक्षी होय, दीजिये उडाय के ॥

Scanned with Cam

बाहिर वृति को उलट अन्दर,
सहजे ही सुमिरण सारणा जी ।।
हरदम तार तो हरदम चालत,
सोहं ॐ उच्चारणा जी ।
'उत्तमराम' कहै सुणो जिज्ञासियों,
हरदम हरि चितारणा जी ।।५।।

प्रथम ओट सत गुरू की आय के,
तन मन भेंट चढावणा जी ।
गुरू का वाक्य सत श्रवण सुण के,
सोहं मन मिलावणा जी ।।
गुरू के ज्ञान से आतम ओलखो,
आप में आप समावणा जी ।
उत्तमराम ! कहै सुणो जिज्ञासियों,
फेर पीछा नहिं आवणा जी ।।६।।

प्रभात को प्रेम से उठके जागिये,
शब्द रू सुरत मिलाविये जी ।
इडा रू पिङ्गला सुषमण तीनों ही,
शशि रू सूर रलाविये जी ।।
हरदम साधो जी सोहं सुमिरण,
त्रिवेणी में ज्योति जगाविये जी ।

Scanned with Cam

तोड़ दे तोड़ दे मोह को तोड़ दे,
विरह वैराग के तोर से जी ।।
फेर दे फेर दे वृति को फेर दे,
अपने आतम जोर से जी ।
'उत्तमराम' कह तर जा सागर,
गुरू की गम कर डोर से जी ।।१०।।

मोह की जड़ को मूल से काट दे,
निर्मोह निर्मल रेहणा है जी ।
फकर होय के फिकर को फकिये,
सुख दुःख ऊपर सेहणां है जी ।।
अोर एकान्त सत गुरू के आसरे,
सोहं सोहं केहणा है जी ।
'उत्तमराम' अवधूत फकर को,
सत ब्रह्मानन्द लेहणा है जी ।।११।।

शुद्ध विचार नित मन में राखिये,
कुब्द रु कूड़ को काटणा है जी ।
शील संतोष रू नाम को सुमिरण,
पांच विषय को दाटणा है जी ।।
आत्मानन्द को अमृत प्यालो ले,
नहिं विषय रस चाटणा है जी ।

Scanned with Cam

असम्भावना रु विपरीत न लेश जु,
नहिं को खोट को खतरो है जी ।।
है ज्यों जाण वो जाणी निर्वाणी है,
नहिं को काया में कतरो है जी ।
'उत्तमराम' अवधूत फकर को,
निश्चय निजानन्द सतरो है जी ।।५०।।

एक अखण्डी सु जाण लीयो निज,
सब में व्यापक ब्रह्म जी हैं रे ।
दशो दिशा सत पूर्ण एक सो,
नहिं लागे कछु कर्म जी है रे ।।
पांच कलेश को लेश न लागत,
भाज गयो सब भ्रम जी है रे ।
'उत्तमराम' अवधूत फकर के,
निर्भय परमानन्द परम जी है रे ।।५१।।

अर्ध रु उर्ध के बीच में झूलनो,
ओहम् सोहम् झोलता है जी ।
इक्कीस हजार रु छः सौ श्वास में,
ओ३म् रु सोहम् बोलता है जी ।।

इडा रु पिंगला सुषुमण सिद्ध में,
दशवें द्वार को खोलता है जी ।

कोऊक मांगत हारमोनि पर,
कोऊक मांगत ढोलक कूटी।
कोऊक मांगत खप्पर लेकर,
कोऊक मांगे टोपाली जु फूटी॥
कोऊक मांगत लीर में चीर में,
कोऊक मांगे सरधाई की घूटी।
'उत्तमराम' विचार के बोलत,
गुरू से मांगी संजीवन बूटी॥४॥
खोट की बात ले घट में घोटत,
मूढ घणों मांहि बात हलावे।
न्याय कारी कोई आन मिले जब,
मूढ प्रसाद को बोल न आवे॥
लप्पर चप्पर में मन राखत,
साच बिना शठ आयु गमावे।
खण्डन मण्डन मेष ज्यों खोपरी,
पागल श्वान त्यों वाद बढावे॥५॥

❀ दोहा छन्द ❀

सत सोहं सत सुमरिये, ओ३म् अलख उचार।
अन्दर बाहर आत्तमा, देख राम दीदार॥६॥
उतम समझो आप में, करोजी उतम काम।
उतम रहणी आतमा, रात दिना जप राम॥७॥

यह जग मिथ्या सार ना काई,
भूल भ्रम में शठ भटकाई ॥५॥
झूठ जान सब लीया शरणा,
भव दुःख काटो जनम रू मरणा।
यासे कष्ट बहु युग पाया,
सावधान हो शरणे आया ॥६॥
आप बिना जग में नहिं कोई,
जासे ज्ञान ब्रह्म का होई।
दया करो दया धर स्वामी,
आप सर्व के अन्तरयामी ॥७॥
कृपा करी दी युक्ति बताई,
सोजी पाय कहूं अब गाई।
तन मन शीश दीया गुरू आगे,
जम का जोर कछू नहिं लागे ॥८॥
सत गुरू हाथ दीया वर माथे,
सोहं शब्द गुरू दीया साथे।
'ॐ सोहं' निज आतम ज्ञाना,
मुक्त पट्टा यह गुरू बखाना ॥९॥
'अमर पट्टा' सत गुरू लिख दीना,
शिर साटे सत कर में लीना।
ताके साथ युक्ति इक दीनी,
जाने सन्त रेश महा भीनी ॥१०॥

Scanned with Cam

सत गुरू शब्द बखाना आदू,
रीत कही पुनि जाने सादू।
'अचलराम' गुरू सत पाया,
अमर पट्टा निज ज्ञान बताया ॥११॥

ब्रह्म वेता सत गुरू फरमाया,
सोहं सुमिरण करो सवाया।
सत शब्द सत गुरू उचारा,
सुन लो सत संग सार पुकारा ॥१२॥

श्री सत गुरू वाक्य ! शिष्य प्रति विश्वास !!
अमर पट्टा साधन व महिमा निरूपण !!!

प्रकट वचन साचो लख गाई,
भजन कीयों से काल न खाई।
नाम जपे सोई मुक्ति पावे,
अमर पट्टा बिन मुक्ति न थावे ॥१३॥

यामे फेर सार नहिं कोई,
नाम बिना निज मोक्ष न होई।
'अमर पट्टा' अचल निज ज्ञाना,
संत स्मृति दे परवाना ॥१४॥

ज्ञानी, ओउम् रू सोहम् ध्यानी,
भक्त जपे सत राम निशानी।

Scanned with Cam

ओ३म् सोहम् राम जप तीनों,
गुरू गम मुक्ति पद को चीनो ॥१५॥
नाना संशय काम भ्रम मूरा,
डार टार कर चित ते दूरा।
रञ्चक भेद न विस्मत होऊ,
राम ओ३म् सों एक, न दोऊ ॥१६॥
'अमर पट्टा' निर्भय निर्वाणी,
मिटे चौरासी चारो खाणी।
'अमर पट्टा' से राखे हेता,
ताको यम दगा नहिं देता ॥१७॥
हंसा पकड़े सत का डोरा,
तब यम करे नहिं कुछ तोरा।
सोहं सुरती तार मिलावो,
त्रिवेणी तख्त में ध्यान लगावो ॥१८॥
इडा पिङ्गला सुषमरण सोजो,
ओम सोहं संग स्वासा खोजो।
स्वासा सुमिरण ध्यान लगावो,
सहजे दर्शन ब्रह्म मिल जावो ॥१९॥
अब हंसा आवे ना जावे,
अगम देश में उलट समावे।
यथा साधना प्रकट सुनाई,
भव का भव व्यापे ना कोई ॥२०॥

Scanned with Cam

○ अथ हृदयोल्लास वाणी सुधा निरूपण ○

सत गुरू 'अचलराम' अनकरता,
जम जोरावर जासें डरता।
सत गुरू वचन निर्भय का भाखा,
'उत्तमराम' कहूं सत साखा ॥२१॥

सत गुरू स्वामी युक्ति बताई,
सत प्रतीत पलक में पाई।
सत गुरू दीवी युक्ति ऐसी,
करी साधना गाऊं तेसी ॥२२॥

सत गुरू देव दीया फरमाई,
करु साधना मन चितलाई।
यह द्रढ धार करी द्रढ फेरी,
सोहं शब्द स्वास में टेरी ॥२३॥

'सत गुरू' सोहं नाम सुणायो,
सो निज सहजे हरदम ध्यायो।
युक्ति युत सोहं निज ध्याया,
जासे हंसा पार पठाया ॥२४॥

इड़ा पिङ्गला सुषमण सीधी,
सुरत शब्द तीनो में बींधी।
पांचो मिल एकता पाई,
सत नाम की फिरी दुहाई ॥२५॥

Scanned with Cam

नाभि कँवल में लागी डोरी,
स्वासा सुरत चढी तब मोरी।
गुरू प्रसाद खुली उर ताड़ी,
सुरती पकड़ त्रिकूटी चाड़ी ॥२६॥
पूरक कुम्भक रेचक भीना,
प्राणायाम युक्ति सब चीना।
त्रिवेणी कँवल में ज्योति जागी,
दर्शण होते दुर्मति भागी ॥२७॥
सत देश का दर्शण पाया,
उज्वल हंसा निर्मल थाया।
सत नाम की डोरी झेली,
हंसा खेलत निर्भय हेली ॥२८॥
'अमर पट्टा' कस कमर बाधा,
अगम देश का मार्ग लाधा।
यासे हंस चल्यो जब आगो,
अगम देश के रस्ते लागो ॥२९॥
अगम देश का रस्ता आढू,
निगम देश में पहूंचे साढू।
गगन मण्डल का मार्ग बंका,
वहां भी जाय लगाया डंका ॥३०॥
गगन मण्डल में निर्भय पूगा,
सुन में भानू असंख्य ऊगा।

Scanned with Cam

तामे लख चौरासी प्रधाना,
सिद्ध, पदमासन मुख्य बखाना ॥४॥

ता पीछे षट् क्रिया ठाना,
धोति, बस्ती, नेति गाना।
त्राटक, नौलि, कपाल सु-भाति,
षट् कर्म साधन कर दिन राती ॥५॥

फिर कर साधन चतुर्थ पूरा,
प्राणायाम गुरू मुख शूरा।
इडा पिङ्गला सुषुमण नाड़ी,
श्वास प्रश्वास की देखो बाड़ी ॥६॥

मन्त्र योग पूरक मन ठाना,
तामे मूल सु बन्ध लगाना।
खेचरि मुख में करत बखाना,
ब्रह्म रंध्र धोय जिभ्या उलटाना ॥७॥

भूचरि नासा प्राण-अपाना,
चंचल मन ठहराय जपाना।
करि उड्डियान बन्ध परवाना,
कुम्भक अष्ठ शीतली जाना ॥८॥

सूर्य भेदन, उजाई, सितकारी,
भस्त्रिका, भ्रामरि, मुर्छाधारी।

Scanned with Cam

अष्ठ प्लाविनि कुम्भक जाना,
चोंचरी मुद्रा नैन ठिकाना ॥९॥
मुद्रा अगोचरी श्रवण द्वारा,
ज्ञान सुरत मिले सुख धारा ।
आगे बन्ध जालन्धर ठाना,
पंचम मुद्रा उन्मुनि ध्याना ॥१०॥

रेचक करके साधन श्वासा,
निश्चय होय काट मन आशा ।
प्राणायाम चक्र षट् साधे,
माग मुक्ति का तब ही लाधे ॥११॥

मूलाधार मूल रंग लाला,
चव दल अक्षर, गणपति, भाला ।
स्वाधिष्ठान, उपस्थ, अज, पीला,
दशा (षट्) दल वर्ण बहु विधि लीला ॥१२॥
मणिपूर, विष्णु, नाभि वासा,
दश (षट्) दल वर्ण हरीया जासा ।
अनाहत, हृदय, शिव, रंग स्वेसा,
द्वादश दल में वर्ण महा भेसा ॥१३॥

विशुद्ध, कण्ठ सु चन्द्र देवा,
शोसन रंग शोड़ष दल भेवा ।

Scanned with Cam

आज्ञा चक्र त्रिकुटी जाना,
सूरज तेज दोय दल माना ।।१४।।

सहस्र दल भँवर गुफा पहिचाना,
सत्य देवाऽक्षर बावन भाना।
मूल में षट् शत श्वासा माना,
इतर सहस्र षट्, इक जप ठाना ।।१५।।

कर आसन पश्चिमोत्थाना,
नाभी नागिन का मुख पलटाना।
उलटा पवन त्रिकूटी सीधो,
दशवां चढो सुमेरू बींधो ।।१६।।

कर 'प्रत्याहार' साधन लख पूरा,
पंचम आचार शुद्धि संत शूरा।
वर लययोग 'धारणा' धारो,
षष्टम साधन कर सुविचारो ।।१७।।

सच्चिदानन्द 'ध्यान' सत माना,
सप्तम साधन है निरवाना।
ऋद्धि सिद्धि काटे सब फन्दा,
परम वैरागी पहूँचे बन्दा ।।१८।।

अष्टम 'समाधि' दोय प्रकारा,
निरविकल्प रू संकल्प धारा।

Scanned with Cam

भजन (४२) राग छन्द भैरवी पद ।

मन मगन भया गुणगाय के, वे मस्त फकर की फेरी ।टेर।
इड़ा पिंगला सुषुमण धारा,स्वासा संग में सुरति विचारा ।
गुरु का शब्द हृदय ला प्यारा,सब दुर्मति विकार नशायके ।
निज निर्गुण माला हेरी ।१।त्रिकूटी महल में ज्योतिजागी ।
दर्शन करके दुविधा भागी, रणंकार की चोकी लागी ।
सब घट में रही गरणाय के, दश बाजा अनुभव भेरी ।२।
सुरत शब्द पवना संग पूगा, सुन महल में सूरज ऊगा ।
कोटि भानु सम उज्वल मूंगा, सब देव बिराजे आय के ।
नहीं पाव पलक की देरी।३। 'रामप्रकाश' लख्या तत सोई ।
अजर अमर गुणराशी वोई, अपना आप और नहीं कोई ।
निज 'रामप्रकाश' लखाय के, सब मिट गई मेरी तेरी ।४।

भजन (४३) राग पद संगीत गाने का हरजस

नर भजले सिरजणहार, थोड़ी ऊमर में ।टेर।
बीतो स्वासा की नहिं कछु आशा, भूलो मत करतार ।१।
दम दम जावे फेर न आवे, नहीं जीना एक सुमार ।२।
मात पिता धन कुल बन्धु न्याती, सब ही रहसी लार ।३।
राम नाम धन साथी तेरा, तूं लोक परलोक सुधार ।४।
काया माया का नहीं भरोसा, क्षण में होवे छार ।५।
'रामप्रकाश' मुक्ति मन पावे, गुरू शरणे निस्तार ।६।

Scanned with Cam

भजन (४६) राग पद संगीत लुहर पद ।

ले गुरू गम खोज विचार, मुक्ति पावेला ।टेर।
शुद्ध साधन संग श्रवण करले, मनन निदिध्यासन सा· ।१।
स्वासा के संग सुरत रोधले, निज शब्द सोंह उरधार ।२।
शम कर तन मन बाणी शुद्धकर,लख परमानन्द उदार ।३।
'रामप्रकाश' उलट घर देखो, निज का निज दिदार ।४।

भजन(४७) राग आशावरी ,टोडी, आशा पद ।

सा ो भाई ! मानव वपु मैं पाई ।
गुरू कृपा साधन की पंगत, मुक्त भया मन माई ।टेर।
कुटुम्ब समझ जिन मोह बांधिया,सो गये नर्क सिद्धाई ।
भेदवाद मत वैर बांधिया, सो गये मूल ठगाई ।१।
पक्ष पात कर वैर साधिया, तिन पाया फल भाई ।
अपयश निन्दा चुगली ठानी, सो सब भये पछुताई ।२।
जैसा कर्म तैसा फल पाया, मोह मुकुर की झांई ।
सात्विक रूप अनूप पुरुषोतम,जाणिया मुक्ति में जाई ।३।
खर की लात रू धूड़ उछाले, रवि के लागें नाई ।
अपनी करनी पार उतरनी, जाति पाति विसराई ।४।
मेहरम जाणिया तिन पद पाया,युक्ति भक्ति गम लाई ।
सगुण रूप समझ्या कर डूबा, छल कपट चतुराई ।५।

Scanned with Cam

श्वासा सांग अनूप सुहाया, संतदास गूदड़ की माया।
कण्ठी सुमिरण रहनी चादर, श्रध्दा पाटी प्रतीति आदर ।७।
ब्रह्म अंचला धारे अवधूता, शिवविभूति ब्रह्म अनुभूता ।८।
कफनी मर्यादा पालन करनी, सुत संतोष भेष भ्रम जरनी।
जाप जांघियाँ लज्जा कर्ण कुण्डल, प्रेम पूजा यश तर्पण मुदग्ल
निर्भय नगरहै मठ निराशा,भोजन भाव जीव अविनाशा।६।
शर्त निर्लेप मोरछल लाया, द्वेष हीन जंग डोरा भाया।
गुण उडयनि स्वाँग सुहाया,अनाहत नादश्रृंगी नाद बजाया।१०
हरि भक्ति मृगछाला प्यारी, गुरू पुत्र पहने सो ब्रह्मचारी।
त्रिगुण चकमक भाव भोजना,परम अमृतपेय परम योजना ११
पात्र अपात्र विचार फरूहा,बहुगुणी तूम्बा कमण्डल किस्तूहा
गुरूज्ञान का दीपक पाया,ऋद्धि भण्डार स्थिरता माया ।१२
अमरत्व दण्ड रू धैर्य कुदाली, तप खड्ग तत्व कर झाली।
वशीकार वैरागण टेका, समद्रष्टी चौगान विवेका ।१३।
मन का घोड़ा विरक्ति का जीना, प्राणायाम पोलो में दीना
इडा पिंगला पागड़े फेरा, ईश्वर नाम कँवल से घेरा ।१४।
सुषुमन से आ डेरा दीया, सीतल साधन भीतर लीया।
अभरा सभरा सतसंत गाया,जीवत ओढ़्या मूंआ बिछाया १५
तत्व जोड़ा वेश बनाया, निर्गुण ढाल बल बाण सजाया।
शम दम फर बाणों के लागा,बोद्ध ऋषि संयम शस्त्र जागा १६

करणी कटार धार कर शूरा, फकर फिरिया विषम गढ पूरा
माया गढ जीतेगा बाला, ब्रह्म पद निज पावे लाला ।
स्वागत गुरु मय चेला पावे, निर्मलता धोती को लावे ।१८।
यज्ञोपवीत अखण्ड आनन्दा, सोहं माला सच्ची सन्दा ।
गुरु मंत्र की शिखा हमारे, हरि नाम गायत्री धारे ।१९।
स्थिर आसन कबहुं न डोले, सोहं सोहं हरदम बोले ।
तिलक पूर्ण ब्रह्म का ध्याना, नहीं जहाँ ज्ञ ज्ञाता ज्ञाना ।२०।
सन्ध्या निर्वैरता धारी, ब्रह्मानन्द का भोग लयारी ।
ब्रह्म प्रीति पीताम्बर धारा, छाप साक्षात्कार सुधारा ।२१।
ममता की मृगछाल बिछाई, तापर बैठे सब गुरु भाई ।
पंचकेशी जब पास हमारे, पाँचों को बैरी कस कस मारे ।२२।
चिंतन चेतन साक्षी पूरा, उत्तमराम निरखे गुरु नूरा ।
घटे बढे नहीं नित सवाया, नौ का अंक स्थिर रहवाया ।२३।
कोई अकेला अंकगण लीजें, छः से गुण कर, नौ संग दीजे ।
भाग तीन के भजन फल आवे, तामे पन्द्रह अंक मिलावे ।२४।
जोड़ ताहि भागदो दीजे, भजन फल सुविधा लख लीजे ।
ताते लिया अंक कम कीजे, शेष अटल अंक नौ लखीजे ।२५।
रामप्रकाश उत्तम का शरणा, साधु जीवन भव से तरणा ।
योपूरे सतगुरुका बाला, एक सौ आठश्री का रखवाला ।२६।
नामाक्षर गनि चोगुन करना, पांच मिलाय दुगुना धरना ।
भाग आठ से शेष रहावे, रमता राम सो उत्तम लखावे ।२७।

Scanned with Cam

सोहं' शब्द उलट सुलट के,
तन मन को पलटाया।
आपा पलट आप को देखा,
आप ही अखंड अकाया ॥

भक्ति करी भरम ने त्यागो,
सुमिरो अलख निजारी।
सोहम् सूरज उगे घट भीतर,
मिटे अज्ञान अन्धारी ॥

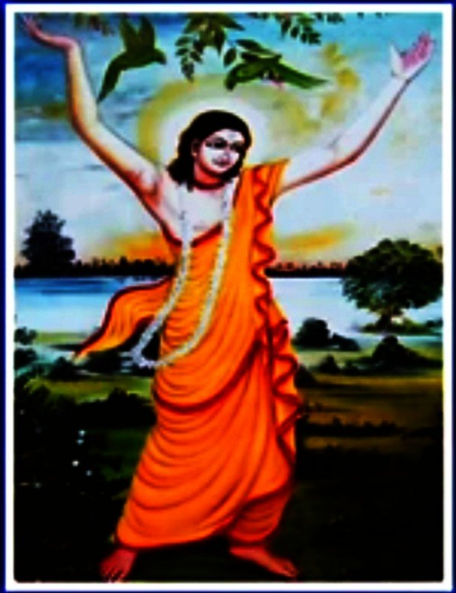

PRSENT_BY_GURUKIRPADK

अब मैं अपने राम को रिझाऊँ

(कबीर जी के शब्द वाणी)

डाली छेड़ू न पत्ता छेड़ू

ना कोई जीव सताऊँ

KINEMASTER

चन्द्र सूर्य दोऊ समकर राख्यो निजमन सेज बिछाऊँ
कहत कबीर सुनो भाई साधो आवागमन मिटाऊँ । 6

चंद सूर दोउ सनमुख होई,
पीवे प्याला मरे न कोई ॥ 3 ॥

PRSENT_BY_GURUKIRPADK

गुरु सां ओल्यू आप री आये

पल-पल प्रेम सतावे

(दानीनाथ जी की वाणी)

KINEMASTER

सुरानाथ गुरु सामर्थ मिल्या,सोंग शब्द सुणावे
दानीनाथ शरण सतगुरू गी उनमुन ध्यान लगावे,,4

KINEMASTER

काम कोध रे लालच म्हारे,गाय कोनी व्यापे सोवंग शब्द घट गाय,अब डर ना ही भाई 1

रवि चन्द्र पहुँचे नहीं,अखण्ड ज्योति समाय ।
अहंब्रह्म अनुभव सदा,सोहं ब्रह्म रट गाय ॥ 1 ॥

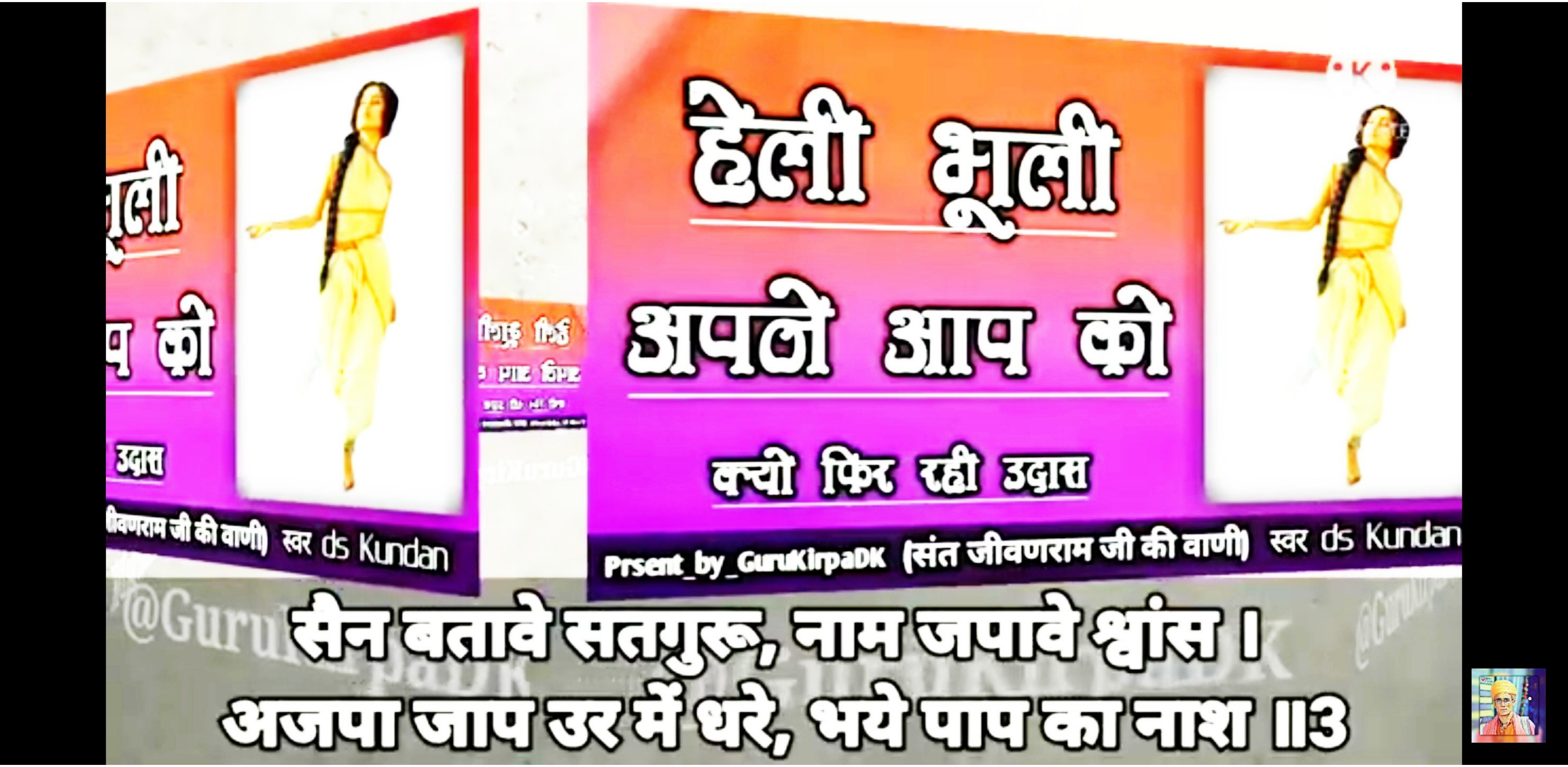
हेली भूली
अपने आप को
क्यो फिर रही उदास
Prsent_by_GuruKirpaDK (संत जीवणराम जी की वाणी) स्वर ds Kundan
सैन बतावे सतगुरू, नाम जपावे श्वांस ।
अजपा जाप उर में धरे, भये पाप का नाश ॥3

सन्ता
बेगम
चार बताई
Prsent_by_GuruKirpaDK
विहारी साहेब की वाणी
स्वर ds Kundan
KINEMASTER
तीजी बेगम चाँद सूरज का चश्मा बिच ठेराई
आ नही तो और बतावो डूबत वास पोंहचाई 3

साधो भाई
अब सो मानो वचन हमारा
स्वर ds Kundan
संत तूम्बीनाथ जी की वाणी
prsent_by_GuruKirpaDK
ओ३म् सोहम् दोनों साधलो, जब पावो करतारा ।
तूम्बीनाथ गुरु गम कर निरख्या, हरि भज उतरो पारा 5
KINEMASTER

सन्तो उन से आगे मेरी नगरिया
अवगत गैबी का खोज लगादो
कुणसा निसाना धरिया
स्वर ds Kundan
संत शीतलनाथ जी की वाणी
Prsent by Guru Kirpa DK
अजापा जाप वो तेरा, ओंह-सोंह उचारिया
आठों पहर ध्यान धरत है, सासा में पच पच मरिया ।। 1 ।।

सब सन्ता कह्या अपार ॥ वेद यूं गाइये ॥
लख्या जिनीकूं ठाय ॥ कह्या नहिं जाइये ॥ ४ ॥
वनानाथ गुरू देव ॥ विगत समझाइये ॥
उमाराम लीवी जाण ॥ भर्म नहिं काइये ॥ ५॥१४ ॥

राग कानडा ।

आदू राय जोगका योई॥अगम अरु निगम साख कह दोई॥ टेर॥
सतगुरू मोपर कृपा कीजे ॥ पारब्रह्मकी सोजी दीजे ॥
भूला बहुत जुगनका प्यासा ॥ दया करे पूरो गुरू आशा॥१ ॥
सतगुरू दया करी अब ऐसी ॥ शब्द साधना कहिहै जैसी ॥
सोहं शब्द दिया तत् सारा ॥ सो निश्चै हम उरमें धारा ॥२॥
ज्यामे सुरत धरी एक सारा ॥ हरदम सास उस्वास संभारा ॥
मन पवनाका बेला बाधा ॥अरध उरध जुगती कर साधा॥३॥
द्वादश खोज सरोधे लाया ॥ इडा पिंगला दोनूं धाया ॥
चन्द सूर एकण घर लाया ॥ सुषमणके घर हंस मिलाया ॥४॥

ऐसे चढ्या त्रिकूटी घाटी ॥ अखंड जोत जले विन बाटी ॥
निरभै जाय गगन घर लिया ॥ बैठ गगन पर डंका दिया ॥५॥
सुंन मांय सहज मिल्या सुख धारा॥ज्यांतो जीव पीव नहि न्यारा॥
सधर सरोवर है इक सारा ॥ परसे गुरूमुख संत पियारा॥६॥
वनानाथ गुरू सार बताई ॥ निश्चै जाण परमपद पाई ॥
उमाराम भरम नहिं काई॥ कर महरम आसोजी गाई॥७॥१५॥

पद राग ॥

सॉभलो सन्त समझरी वातां ॥ हरी आप अदेख रहवाया ॥
सतगुरू जाण दीवी महा झीणी॥ कर निरणे दरसाया ॥ टेर ॥
अणघड अलख निरञ्जन देवा ॥ नहीं जहां जगत पसारा ॥
आपोई आप अलोगत स्वामी ॥ नहिं कोइ खिलका धारा॥ १ ॥

20:52

पलटद्या सब दीसे सो मिथ्या ॥ सागे वेण सुणाया ॥ ३ ॥
आपणी जाण आपही जाणे ॥ ज्यूं गूंगे सैन चलाया ॥
नहिं दूजा दूजाका पाईये ॥ आपोइ आप रहवाया ॥ ४ ॥
भेद आपका भेद नें कोई ॥ ऐसे जाण जणाया ॥
उमाराम आप बिन आपे ॥ सैनीसैन पजाया ॥ ५ ॥ १०५ ॥

राग आसा ।

साधो भाई कर मेहरम दरसाई ॥ उपजे रह मिटे मायाई ॥
भूल कहीजे आई ॥ टेर ॥
पारब्रह्म का सत शब्द है ॥ सो आतम है सांई ॥
शब्द ब्रह्मतें सबी फोरणा ॥ आप अफुर रहवाई ॥ १ ॥
शब्द ब्रह्मतें शब्द अनंता ॥ नाना भांत दिखाई ॥
आप अभांती भांत न राखे ॥ सोहं ब्रह्म अथाई ॥ २ ॥
सबी कलेश करमतें न्यारा ॥ सबमें रहत अचाई ॥
अकल स्वरूपी आप अनादी ॥ वेद संत आ गाई ॥ ३ ॥
सोहं शब्द निज ज्ञान कहीजे ॥ भेद नहीं ता मांई ॥
शब्द ब्रह्म पारब्रह्म एकहे ॥ सूर घाम दुइ नाई ॥ ४ ॥
सच्चिदानंद आनन्द अपारा ॥ मुखसूं कह्या न जाई ॥
आपोई आप अवर नहिं दूजा ॥ उमाराम लख थाई ५॥१०६॥

राग आसा ।

साधो भाई पागी पारख लाया ॥ प्रगट जाण कह्या परवाणा ॥
साचा खोज बताया ॥ टेर ॥

(९) जिम्या सुमरन हाथ जिभ्या नहीं रोके, ऐसा सुमरन सार ।
सुमरन कीजे सुरतसूं, हाथ जिभ्या करै कार ॥३
मुखसूं कहै सो थोतरा, हृदय धरे सो सार ।
कहै पानप संत पुकार कहत हैं, समझे नहीं गंवार ॥४
मुखसूं कहै सो थोतरा, अन्तर धरे सो सार ।
बिन जिह्वा पानप कहै, हर-हर नाम उचार ॥५
सुरत करै ररंकार धुन, नहीं जिह्वा को काम ।
पानप कहै सुनो भाई साधो, यह बिध सुमरो राम ॥६
रान नाम मुखसूं कहै, सुरत फिरे चहुँ देस ।
पानप कहै सुनो भाई साधो, यो सुमरन नहीं पेस* ॥७
अजपा सोई सुरतसूं सुमरे, मुखसूं कहना नाहि ।
अंतर धुन राचा रहे, कहै पानप मुक्ति समाई ॥८
परचा तुरत राम के सुमरे, जो हृदय में लौ लावे ।
कहै पानप जो मनसा लागे, तो हरि का दरसन पावे ॥९
(१०) भरम:—भरमसूं कारज ना सरे, भरम बूड़ा संसार ।
कहै पानप नाम हृदय धरे, पल में भवजल पार ॥१
हरि दर्शन होय पलक में, परदा तोड़ भरम को ।
कहै पानप निरखो अकलसूं, यो है भेद मरम को ॥२
जिनको आसा आनकी, ते नर प्रभु से दूर ।
पिता तजो पानप कहै तिनमें कहां सऊर[1] ॥३
आन तजे हृदय हरि भजे, ते जन प्रभु को प्यारा ।
पानपदास सत ही सत भाषे, तुम संतो लेहु विचारा ॥४
सोई अपना जो आपा खोजे, बाहर भटके नाहिं ।
आत्म खोजे सुरतसूं पानप, ते आपे माहि समाई ॥५
हरि को सुमरे सुरतसूं, आसा आनकी डार ।
हृदय सुमरे पानपा, तापे साहब करे प्यार ॥६

१=शऊर, सलीका *=स्वीकार

अरिल्ल

जो जन चीन्हे आत्मा, सांचा दरसन सोय ।
पानप सेवो आत्मा, तो तुरत मुक्ति फल होय ॥१
तुर्त मुक्ति फल होय, लोय[3] ताहि निर्मल सूझे ।
मन को करले थीर, संत वा पद को बूझे ॥२
पल पल सेवे सुरतसूं, भरम करे सब दूर ।
कहै पानप वा संत को, दरसन सदा हजूर ॥३

२

बिन ही आग मसाल[1] सी, सूझत बलंत अनन्त ।
कहै पानप अंतर अकलसूं, कोई निरखे हरि के संत ॥१
यो तत्व निरखा अकलसूं, भया कुटुम्ब का नास ।
पांच पचीसों मर गये पानप, तब नारी भई उदास ॥२
नारी भई उदास, थकित होय घर में बैठी ।
सुन मंडल की सेज जहां, आय निस-दिन लेटी ॥३
सदा उजाला रहत है, कभी न होय अंधेर ।
पानपदास कहै गुरु-गमसूं, टुक[2] सुख-मन को फेर ॥४

३

सोहं सोहं स्वांसा कहे, शब्द अनाहद कोई न लहे ॥१
सोहं ऊपर अलख मुकाम, संतो परस पाया बिसराम ॥२
सोहं चाल सुने सोइ कहै, सोहं चाल कोइ बिरला लहै ॥३
सोहं ऊपर आप बिराजे, कोइ बिरला आय अधर के छाजे ॥४
पानप सतगुरु सेती पाया, सुरत पकड़ के तहां समाया ॥५

१=मशाल २=तनिक ३=नेत्र

फ़ारसी

दिल तहकीक करे अपना, दिल में दिल दरावे ।
माला तसबीह छूट जाय, तब दीद नूर का पावे ॥
तसबीह रूह करे दिल दाना, हरदम फेरे ताहि ।
कहै पानप क्याफे में देखे, अल्लाह दीखे ताहि ॥
आशिक[१] चश्म चश्म महबूबा[२], चश्म[३] में रूह पहचाना ।
खालिक का दीदार[४] वही है, पानप गुफ़्त[५] दीवाना ॥

राग नट

नैना उरझ रहे दरसन में, उरझ रहे अब सुलझत नाहि ।
कर अकरन कषर्ण[६] में ।टेक
जा दर्शन को मैं बन बन हांडी, सोई दरसन नैनन में ।
आपा उलट निरख लियो आपा, सब संजम मेरे मन में ॥१
मैं दरसूं, दरसन है मेरा, दूजा नहीं और तन में ।
अजपा जाप महा सुख उपजे, सुरत धरे छिन-छिन[७] में ॥२
बाती, तेल, दिवे बिन ज्योती, झलकत रहत गगन में ।
त्रिकुटी मध्य गुरु लखाया, पानप रहत जतन में ॥३

२

गगन धुन हो लागी रहत, गगन धुन हो ॥ टेक ॥
तनका तँबूरा, सुरत के तार, तीन गुणन की लागी है ज्वार[८] ॥१
मन का मोरना[९] जतनसूं संवार[१०], अगम महल में तत झंकार ।२
पांच पचीस मिल खेलें खेल, अपने पिया के संग रसरंग मेल ३॥
कहै पानप गुरू-गम का खेल, दीपक बले बिन बाती बिन तेल ॥४

१=प्रेमी, २=प्रेमिका, ३=नेत्र ४=दर्शन, ५=कहता है ६=आकर्षण, खिंचाव
७=पल पल ८=उतार चढ़ाव ९=मोड़ना, १०=ठीक करना ।

बनखंडी तेजे बन षंड मैं रहै । सुनि निरालंब बारता कहै ॥
घड़ी न मनसा आसा पास । ते बन षंड मैं रहै उदास ॥ ४ ॥१२९॥
अगमागम कै रैते गम । अहनिस काया राषै दम ॥
नाद बिंद का जाणै भेव । अगमांगम करै ते देव ॥ ५ ॥१३०॥
आई पंथि मैं जे अनमै करै । उलटा बांण गगन कूं धरैं ॥
उलट बजाई बेध्या भूंरा । सिघ बाल गुसाई[1] साध्या जूंरा ॥ ६ ॥१३१॥
पंषि सुंनि निरालंब देषै अंष । प्रंम सुंनि मैं जोति असंष ॥
बेध्या हीरा मांणिक पाया । तौ तब पंक पंथ मैं आया ॥ ७ ॥१३२॥
धूज ते धजा कूं जांणैं । उलटा पवन गगन कूं तांणैं ।
अहनिस नाद बजावै बीनां । तेई धूज सूं लीनां ॥ ८ ॥१३३॥
गोपाल ते जे बंचै काल । अहनिस अनमै जीत्या ब्याल ॥
काम क्रोध मेटै विह्य की माया । ते गोपाल नाथ की काया ॥ ९ ॥१३४॥
बोलंत सिघ घोड़ा चोली । हमें षत्रो पेत्र का सूरा ॥
गगन मंडल मैं रहनि हमारी । बाजै अनहद तूरा ॥ १० ॥१३५॥
हणवंत[2] पैसि रामायण कीता । दससिर छेदि बहोड़ी सीतां ॥
सारा सेत तहां बंध्या पांणो । दस सिर छेदि लच्छि घर आंणी ॥ ११ ॥१३६॥
गोरख ते जे राषै गोई । माया मनसा करै न मोही ॥
सदा अकलपत रहै उदासा । परचै जोगी निभ निवासा ॥ १२ ॥१३७॥
जोग आरंभ मए सिधा । द्वादस हंसा ग्यानहि बिधा ॥
सोहं सोहं सास उसासं । बोलै घोड़ा चोली मछिंद्र का दासं ॥ १३ ॥१३८॥
अचित पुराणं गगन गरास । बोलै चोली मछिंद्र का दास ॥
अचित फुरै हाथ्यौ न आवै । तब घोड़ा चोली कहां तूं पावै ॥ १४ ॥१३९॥
नष सप पूरि रही जे पवनां । आयौ है दूध भात षाइगो कवनां ॥
षुध्या की अगनि मिटाई काल । चौष्टि संधि पवन की भाल ॥ १५ ॥१४०॥
मेर डड का गागरि बंध । बाई वेलै चौष्टि संध ॥
अमरा मरै कालु कै डंस । न पड़ै काया न उड़ै हंस ॥ १५ ॥१४१॥

---

१. ग—गुदाई ।
२. ग—हिणवंत ।

अवरि भोजन जोग की। असो भोग न और ॥
इजा रछ्या प्रांण की। बिंजन बासी कोर ॥६॥६४॥
सीतल जल तुम्ह अंचवतं। उजल अमल अबेझ ॥
अब कहूं जौ नीर मिलि। उसन कि मलिन असोझ ॥७॥६५॥
अह निसि झूलै आत्मां। अमी सरोवर मांहि ॥
तीरथ गंगा आदि जल। तिन तनि तृषा बुझाहि ॥८॥६६॥
रतन जटित पर सेज परि। करते सदा बिलास ॥
दंपति संपति छाड़ि अब। घर परि रहै उदास ॥९॥६७॥
सेज सबद गुरदेव के। ब्यौरन बिबधि बिलास ॥
बनिता बुधि स्वासा बिभै। संचत सुखद आस ॥१०॥६८॥
मन मैं मढ़ी बनाइ करि। इहां रहौ तुम राज ॥
नित प्रति हम सेवा करैं। छाड़ि सकल कुल लाज ॥११॥६९॥
मुकति मढ़ी मैं हम रहैं। सेवग सुर नर और ॥
जोगी जन रमते भले। रवैं न एकै ठौर ॥१२॥१००॥
सतगुर शबद हमारा सिर परि। बाद बिबाद न कीजै ॥
हम जोगी परदेसी माई। भिछ्या होइ त दीजै ॥१३॥१०१॥
काम बिसरि अरु क्रोध तजीला। मोह छाड़ि निरदंद ॥
माया ममिता बिना गुर सरनैं। निरभै गोपीचंद ॥१४॥१०२॥
एकंत का बासा अलख उपासा। तेथंत परम उजासा ॥
गोपीचंद महन मन जपिबा। सोहं साधंत स्वासा ॥१५॥१०३॥
इड़ा आराधिये प्यंगुला प्रमोधिये। सुषमनां सोधि उभै थीरं ॥
सहश्र दल साधिए अलख अराधिए। रुधिर पलटि फिरि षीर नीरं ॥१६॥१०४॥
पवन कूं प्रेरिबा पछिम दिसि फेरिबा। अपांन प्रांण कौं उलटि मेलै ॥
नाद गगनैं बहै ब्यंद अस्थिर रहै। जोग करि जनम नहीं गमै हेलै ॥१७॥१०५॥
पवन थिरं तां मन थिर। मन थिरं तां ब्यंद ॥
ब्यंद थिरंतां कंध थिर। यौं भाषंत गोपीचंद ॥१८॥*१०६॥
मन राजा मन प्रजा। मन सयल[1] का बंध[2] ॥

---

*यह पद ग. प्रति में इस प्रकार है :—
मन थिरं ता पवन थिर। पवन थिरंता बिंद ॥
बिंद थिरंता जिंद थिर। यूं भाषै गोपीचंद ॥

१–ग. सकल; २–ग. में 'जी' अधिक।

अभ्यासी के, प्राणवायु, अपानवायु, वीर्य और चित्त समानचेष्टा हो जाते हैं तथा सुषुम्ना मार्ग से प्राणगति होने लगती है वह 'घटावस्था' होती है। जो अभ्यासी घटावस्था को प्राप्त कर लेता है। वह स्थिर – आसन, विवेकी देवसदृश मेधावी हो जाता है।[1]

3. <u>परिचयावस्था</u> :- जब प्राणवायु सुषुम्ना मार्ग से भृकुटी में पहुँच जाती है तथा मन भी समाहित हो जाता है। तब सम्प्रज्ञात् समाधि का भृकुटी स्थान में ही परिचय होने लगता है। भृकुटी में प्राण और चित्त के समाहित होने पर जो स्थिति बनती है, वह परिचयावस्था कहलाती है। उस अवस्था में अनेक प्रकार के शब्द श्रवण होते हैं तथा अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं।[2]

4. <u>निष्पत्त्यवस्था</u> :- कुछ योगी भृकुटी को ईश्वर का स्थान मानते हैं। जब भृकुटी ध्यान करते हुए प्राणवायु भी वहाँ चली जाती है तब ''रुद्रग्रन्थि'' का भेदन माना जाता है।

---

1) द्वितीयायां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः ।
दृढासनो भवेद्योगी ज्ञानी देवसमस्तदा ।। (यो. प्र. 4/72)

2) तृतीयायां तु विज्ञेयो विहायोमर्दलध्वनिः ।
महाशून्य तदायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम् ।। (यो. प्र. 4/74)

पद 8 ☯ राग–प्रभाती ☯

हंसा अखण्डीं ब्रह्म कहाया सुरता चेतन माया।
आप में आप लुभाया, हंसा बेगम घर सुध पाया।।टेर।।
सून्न स्वतः महत्व उपाया गुण तीनों चेतन माया।
तत्व शक्ति बीज प्रकृति लख चौरासी रचाया।। 1।।
सुरती स्मरती शरीर स्वाँस बण सो ऽहं ध्यान लगाया।
रात दिवस अखण्ड धुन माँही अनहद हरदम छाया।। 2।।
तजदे नाम जाति नहीं गाँव घर लख चौरासी सून्न माया।
बीज वृक्ष की संधी अवगत निकलंक खास कहाया।। 3।।
मूर्ति धामा तीर्थ भटक्या सार सुकृत नहीं पाया।
हीरानन्द बेगम घर खोजा दुतिया भेद नहीं पाया।। 4।।

पद 9 ☯ राग–प्रभाती ☯

हम पूर्वला पंछी संतो राग द्वेष में नाहीं।
राग द्वेष में लोग अज्ञानी, अवगत दरसे नाहीं।।टेर ।।
अवगत जादू अजब तमासा जादू खेल रचाई।
छिन में बाग बाग में अग्नि, अग्नि में जल बरसाई।। 1 ।।
पग बिन पंथ मुखा बिन बाणी, बिन नैना मारग पाई।
अनहद सुन्न में अवगत दरसे शून्य में सैन समाई।। 2 ।।
अगम निगम की गमता नाहीं कवियों की कविता माँही।
शास्त्र पुराण वेद नहीं पूगे उन्हीं देश के माँही।। 3 ।।
दशों इन्द्रियों के पार परम गुरू आठों पहर कुदरत पाई।
हीरानन्द अवगत में बासा, उलटी सूरत शून्य माही।। 4 ।।

भक्त-बोध

हरि की भक्ति करो रे प्राणी, भ्रम साथ नहीं बहना ।
भव-सागर की धार तेज है, सुमरण सहित ऊभना[१] ।।१
हरि की भक्ति करे जो कोई, जरा मरनसूं छूटे ।
जिन संसय ने यो जग खाया, ता संसय को कूटे ।।२
भक्ति मुकाम दोऊ सुर ऊपर, चतुर विवेकी सोधे ।
चोरी करें चोर पाचों, जतन जतन प्रमोदे[२] ।।३
रहे निरन्तर खोजे अंतर, योही भक्ति है साँची ।
जप, तप, संयम, सेवा, पूजा, और सब मत कांची ।।४
नक सुध बाट घाट जहां औघट, सब संयम वहां ठाई ।
पहुँचे पवन जतन जतन कर, जीव साथ चढ़ जाई ।।५
जन्म जन्म के बिछड़े हंसा, दोऊ अमिल मिलाऊँ ।
अलख अरूपी ज्योति सरूपी, घट में दर्शन पाऊँ ।।६
सुन्न सरोवर संजम साधू, द्वादस तिलक चढ़ाऊँ ।
डोर पवन की जलका मनिया, कर बिन माल फिराऊँ ।।७
अलख पुरुष ले गगन अराधूं, आतम अंतर धाऊँ ।
अकरन करूं रैन दिन ऐसा, बहुर न भवजल आऊँ ।।
तन मन खोजे संसा भाजे, होय ब्रह्म प्रकासा ।
कहै पानप जो सुरत विचारे, छूटे जरा मरन की त्रासा ।।[३३]।।६

झूलने

सोहं सोहं निसानी अगम ही की, जिसके ऊपर तो भक्ति मुकाम है जी ।
सुरत बांध चढ़े हर दम सूरमा ही, नहीं दुनिया का यो तो काम है जी ।२
तन माहि अचंभा सा होय रहा, रोम रोम गरजे मानो घन है जी ।३
पानपदास भवजल के तिरने को, नहीं दूसरा जतन है जी ।४

१=उठाना, २=शुद्ध, नियमित, ३=डर, ४=स्वर ध्यान ।

है कि इन दोनो साधनाओं के केंद्र में मानव शरीर है। दोनो साधनाओं का अंतिम लक्ष्य महासुख की प्राप्ति है। यही कारण है की इन दोनो धाराओं के साधकों का एक दूसरे में आना जाना लगा रहता था। नाथों ने अपने गुरुओं की सूची में कई सिद्धों को स्थान दिया है तो सिद्धों की सूची में नाथ संत भी शामिल हैं। सबसे मशहूर उदाहरण मछेंद्रनाथ का है जब असम जाकर उन्होंने अपनी साधना पद्धति बदल ली तब उन्हें 'मुक्त' कराने के लिए उनके शिष्य गोरखनाथ को वहाँ जाना पड़ा।

---

143 छाड़िअ भय, शास्त्री और बागची।

144 दूर णिबारिउ, बागची और शाहिदुल्लाह।

'कुंडलिनी' को जागृत करना इन दोनो साधना पद्धतियों का लक्ष्य है। 'एकल साधक' या योगी इसके लिए 'प्राणा याम' का सहारा लेते हुए अपने स्वाँस पर नियंत्रण क़ायम करते हुए 'कुंडलिनी' को जागृत करने का प्रयास करते हैं, वही युगल साधक 'शक्ति साधना' का सहारा लेते हुए सम्भोग के द्वारा 'कुंडलिनी' को जागृत कर 'महासुख' की अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। सूफ़ी साधकों के द्वारा जो 'तसव्वुफ' का तरीक़ा अपनाया जाता है उसमें भी स्वाँस पर नियंत्रण करने की कोशिश की जाती है। सूफ़ी साधकों का यह तरीक़ा इस्लाम से पहले का है। और इसमें कोई शक नहीं की उस समय मध्य एशिया में बौद्ध धर्म उसकी शाखाओं का ज़बरदस्त प्रभाव था। सूफ़ियों का 'तसव्वुफ' बौद्ध तांत्रिक साधना पद्धति का ही एक रूप है[145]।

बाद में जब वैष्णव तंत्र का प्रभाव बढ़ा तो उसने युगल साधना का ब्राह्मणीकरन कर दिया। सबसे पहले वैष्णव तंत्र ने पंचमकारों (मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन) पर रोक लगाया। फिर उसने यह शर्त लगायी की दिन में वैदिक कर्मकांड किए जाएँ और रात को तांत्रिक साधना की जाए। उसमें साधक और संगिनी साधक एक दूसरे के लिए समर्पित होने चाहिए। साधकों के लिए एक चक्र निर्धारित किया गया जिसमें किसी बाहरी साधक का प्रवेश वर्जित था। साधक अपनी संगिनी के रूप में अपनी पत्नी का चुनाव करने लगे जिसे वेश्या की तरह अपने साधक को संतुष्ट करना होता था। यह एक तरह से वैदिक आधार पर विवाहित पति पत्नी के सम्बंध की पुनःप्रतिष्ठा थी।

योगिनी के बिना सिद्ध संत साधना करने की सोंच भी नहीं सकते। गुंडरिपा अपनी योगिनी से गाढ़ालिंगन करते हुए साधना में रत हो जाते हैं -

तिअडडा[146] चापि जोइणि[147] दे अङ्कबाली
कमल कुलिश घाण्ट[148] करहूँ बिआली
योइणि ताइ बिणु[149] खणहिं न जिबमि
तो मुह चुम्बी कमलरस पीबमि
खेपहु जोइणी[150] लेप न जाअ
मणिकुले[151] बहिआ ओड़िआणे सगाअ

---

145 Religion in indian history, ed. Irafan Habib, page 114.

146 तियड़ा, शाहिदुल्लाह।

147 जोइनि, शास्त्री, बागची, शाहिदुल्लाह।

148 घण्टि, हरप्रसाद शास्त्री।

149 बिनु, शास्त्री, बागची।

150 जोइनि, शास्त्री, बागची, शाहिदुल्लाह।

151 मणिमूले, शाहिदुल्लाह।

वाणी

॥ टेर ॥ नाभ कमल से चाली रेल , रेल अमरापुर जा रही है॥ टेर ॥

(1) चौदह टेशन चौदह बाबू, त्रिगुण लग रही तार ,
पाँच पच्चीस रहे गाड़ी मैं, जिनका खेल अपार
रेल मैं सुगड़ खिलाड़ी हैं, रेल अमरापुर जा रही हैं,
नाभ कमल से चाली रेल, रेल अमरापुर जा रही हैं

(2) इक्कीस हजार छ सौ डब्बा, इंजन लग रह्या एक,
गार्ड साहब ने झण्डी दिखाई, लेई डरेवर देख
देख झट सिटी मारी हैं ,रेल अमरापुर जा रही हैं,
नाभ कमल से चाली रेल, रेल अमरापुर जा रही हैं

(3) सात रेलवी पाँच फिरंगी, चपड़ासी हैं चार ,
इन गाड़ी में धर्मराज, सबकी करे सभांल
टिक्ट बिना बड़ी इन्कारी हैं, रेल अमरापुर जा रही हैं,
नाभ कमल से चाली रेल, रेल अमरापुर जा रही हैं

(4) आड़ा–ऊड़द का सिग्नल झुक रह्या, सांसो का लग रह्या तार ,
छूटी रेल दीखण को जा रही हैं, खड़े रहे असवार
रेल असवारी ले रही हैं, रेल अमरापुर जा रही हैं,
नाभ कमल से चाली रेल, रेल अमरापुर जा रही हैं

(5) छः चक्कर नो दरवाजा, झांकी कहिए लाल,
कुदरत कला पर गाड़ी चाले, ब्रिम साहिब का ख्याल
रेल मैं तेरह बारी हैं, रेल अमरापुर जा रही हैं,
नाभ कमल से चाली रेल, रेल अमरापुर जा रही हैं

(6) रामनाथ जोगेश्वर बाबू, टिक्ट रहें हैं बांट ,
गुरू मुख चेला न टिक्ट बांट दी, कर–कर न्यारी छांट
केसर् रेल उचारी हैं, रेल अमरापुर जा रही हैं,
नाभ कमल से चाली रेल, रेल अमरापुर जा रही हैं

गुरूमंत्र

(1) ओउम सतगुरू जी थे हो एक औंकार खट चक्कर,
आड चक्कर,पद्त चक्कर, करले पंख निर्मल
निर्मल जोत हुई प्रकाश, गणेश देव सन्मुख हो,
हृदय जोत अगम कह द्यो

(2) ओंहग सोंहग जाय अजया जपो मन को ठोड सर लयाया,
त्रिकुटी में ध्यान लगाओ
फेर जुनी कला मिल जाओ फेर मोड़ जन्म नही आओ,
आओ हंसा मत डरो, सतगुरू जी से थे प्रीत लगाओ

(3) ई हंस कं पाँच नाम ओहंग सोंहग सत साहिब बोलता पुरुष,
गुरू के वचन सही कर के देख
गुरू मंत्र जाप सम्पूर्ण सही सत् की गद्दी पर बैठ के जति
राम नाथ जी महाराज आपो आप कही

रिद्धी–सिद्धि मंत्र

(1) ओंकार दो रूप उपाया, रेणुकार ओधर मै आया,
सोंहग नाम का ध्यान लगाया

(2) रामनाम मुखो से गाया, सेंसर नाम सेंस मुख गाया,
नरंजन नाम नैणा निरखाया

(3) शब्द रूप हो प्यांला आया, वहां कोई धरा गगन नहीं माया,
कछ–मछ कोरम परकाया

(4) अल्ख नाम का नाद बजाया, सतनाम का सींग बणाया,
पृथ्वी नाम का तबक ठहराया

(5) दया विचार बाहर को आया, दया सती धर्म जती,
नेच्छ कर पकड़, भूल मती

(6) कहे जती रामनाथ संत लुटा दिन रात खुटे नहीं एक रती
अक्ल रती एक तौला समझ पिछाण
बिन रती तुलता नहीं, कंचन भया पखाण तौला तो मौला भया,
बोल कहे सो मोल
जती राम नाथ कहें रती गी किमत है
शब्द का कोई तौल न मोल

को भेदकर पश्यन्ती मे प्रवेश करना ही इस मंत्रयोग का प्रधान उद्देश्य है। पश्यन्ती शब्द स्वप्रकाशमान चिदानन्द मय है– चिदात्मक पुरूष की वही अक्षय और अमर षोडशी कला है। वही आत्मज्ञान, इष्ट देवता के साक्षात्कार अथवा शब्द चैतन्य का प्रकृष्ठ फल है। इस अवस्था मे पहुंचने पर जीव कृतकृत्य हो सकता है। इसके बाद अव्यक्त भाव अपने आप उदित होता है। वही शब्द की तुरीय अवस्था है। मूलाधार से निरन्तर शब्द श्रोत ऊपर की ओर उठ रहा है, यही शब्द समस्त जगत के केन्द्र मे नित्य विद्यमान है। बहिर्मुख जीव इन्द्रियो के अधीन होकर विषयों की ओर दौड़ रहा है, इससे उसे इनका पता नहीं लगता। जब किसी किया कौशल से अथवा अन्य किसी उपाय से इन्द्रियों की बहिर्गति रूद्ध हो जाती है और प्राण तथा मन स्तम्भित हो जाते हैं, तब साधक इस चेतन शब्द को सुनने के अधिकारी होते हैं षण्मुखी मुद्रा द्वारा कृत्रिम उपाय से इस नाद के अनुसन्धान की चेष्टा की जाती है।[1] यही नाद महा अनाहतनाद में लीन होकर साधक जीव को आज्ञाचक्रमें ले जाता है। 'हंसमंत्र' का 'सौ ऽहम्' मे परिणत होना नाथमतोपदिष्ट मंत्रयोग की पूर्णाहुति यही है। गोरखबानी के निम्न पद में। इस मंत्रयोग का सम्पूर्ण कम बड़े सुन्दर उक्ति में कहा गया है :

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोहं सोहं अजपा गाई।
आसण दिढ़ करि धरो धियानं, अहनिसि सुमरौ ब्रह्मगियानं।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहरा, कामक्रोध अहंकार निवारं।
नासा अग्र निजु ज्यौ बाई, इड़ा प्युंगुला मधि समाई।

---

[1] योग का विषय परिचय, म०म०प०गोपीनाथ कविराज, कल्याण, योगांक, पृ० 51।

06:38

छसै सहंस इकीसों जाप, अनहद उपजे आपहिं आपि।

बंक नालि मैं ऊगै सूर, रोम रोम धुनि बाजै तूर।

उलटं कमल सहंसदल बास, भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास।

सुणि मथुरा सिव गोरष कहै, परम तत ते साधू लहै।

हठयोग की प्रधानता नाथपंथ में समानरूप से है। यही नहीं, नाथाचार्यो ने सर्वप्रथम हठयोग मे निष्णत् होकर संसार में उसका व्यापक प्रचार किया, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि हठयोग का प्रचलन उनसे पूर्व भी था।

पश्चिम पथ (सुषुम्ना द्वार) में गमन करने पर वायु योग की प्रतीति होती है, यह सूर्य चन्द्र एकीकरण पर सम्भव होता है। हकार से सूर्य तथा ठकार से चन्द्र कहा जाता है, यही हठयोग सर्वदोषसमुद्भूत जाड्य को ग्रसित करता है।[1]

हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है :

"केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते"[2]

अतएव हठयोग की चरम परिणति राजयोग है। इसकी नियमित साधना से राजयोग का सिद्धलाभ, साधक को होता है। राजयोग में योगारूढ़ होना ही काल के राज्य से मुक्त होना है। स्वात्माराम योगी ने हठयोग प्रदीपिका में समाधि, उन्मनी, लय, परमपद, अद्वैत, निरालम्ब, सहज, तुरीय को राज–योग का ह ीपर्याय कहा है। कुम्भक द्वार प्राण रूद्ध होता है और चित्त निरलम्ब अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार हठविद्या का मुख्य फल राजयोग है।

---

[1] प्रतीतिर्वायुयोगाच्च जायते पश्चिमे पथि।

[2] ह०यो०प्र०1/2

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

कहलाता है। प्राण के लय से मन का भी स्वतः लय हो जाता है। ऐसी अवस्था मे सूर्य चन्द्र का एकीकरण सिद्ध कर, साधक काल जय कर लेता है। यही मनोलय अथवा उम्न अवस्था है।[2]

देह मे इड़ा और पिंगला, सूर्य और चन्द्र रूप कहलाती है। इन नाड़ियों में, प्रत्येक ढाई घड़ीमें, श्वास स्वर की किया का परिवर्तन होता रहता है। ढाई घड़ी सूर्यस्वर चलता है और ढाई घड़ी चन्द्रस्वर। सूर्यस्वर का काल दिन कहलाता है और चन्द्रस्वर का रात्रि। इस प्रकार लौकिक अहोरात्र के मध्य में योगियों के बारह अहोरात्र होते है। रात्रि दिन रूप काल का अभाव होना ही

---

[1] दृष्टव्य योगशिखोपनिषत्, 1/134, 35

[2] यहु मन सकती यहु मन सीव। यह मन पांच तत का जीव।
यहु मन ले जे उनमन रहै। तौ तीन लोक की बाता कहै।।

कालजय है। प्राण के लय पर यह सूर्यचन्द्र एकीकरण हो जाता है क्योंकि स्वर तब सुषुम्ना पथ मे चला जाता है।[1] यही योगियों की काल जय अथवा कालवंचिणी मुद्रा है। इसमें साधक नित्य लय की अवस्था मे स्वात्मा—नन्द के चिद प्रकाश में अवस्थित रहता है। समष्टि में लययोग का परिचय यही है। वैसे तो अन्यान्य योगों की भँति लय का विषय भी अत्यन्त विस्तृत रूप से योगग्रन्थों में आया है।

राजयोग के लिए पहले कहा जा चुका है कि वह अद्वैत, निरालम्ब, सहसज, तुरीय आदि अवस्थाओं का द्योतक एवं पर्याय है। इन अवस्थाओं के स्वरूप का ज्ञान समझ मे आ जाने पर राजयोग का स्वरूप समझ में आता है। स्वात्मारामयोगी ने कहा :

का ही ध्यान और स्मरण करना चाहिए । नाम में ही सदैव ध्यान को स्थिर रखना चाहिए, यही संतों का मार्ग है :-

सिवरन मारग संत का, ताते भरम न साय ।
हरिरांमा हरि बंदगी, करीये चित लगाय ।।[१]

श्वास प्रश्वास के द्वारा जो मनुष्य रांम नाम का अजपा जाप करता है वह इस शरीर के भीतर ही निराधार, निराकार ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है । उस की आत्मा ब्रह्म में विलीन हो जाती है तथा उसके समस्त शोक संशय मिट जाते हैं :-

सास उसास में जाप अजपा जपे , जीत जोगेस्वर जिन जुगति जांणी ।।
उलटि आकार, निरकार पद परसीया, दरसीया दसवें देव द्वारी ।।
दास हरिराम जहां सोग संसा नहीं, जीव अर सीव की एक यारी ।।[२ ※]

यही सहज समाधि है । यही साधना का सहज मार्ग है । इसी मार्ग पर चल कर जीवात्मा सहज सुख को प्राप्त कर लेता है ।

सहज समाधि

अन्य संत सम्प्रदायों के समान रामस्नेही सम्प्रदाय में भी साधना के सहज मार्ग के अनुसरण का आदेश है । हठयोग की साधना की क्लिष्टता का अनुभव

१- आचार्य हरिरामदास की अनुभव वाणी - पृष्ठ ३८१।१५

२- वही० पृष्ठ ४०६।५

※ नाम स्मरण का विस्तृत वर्णन इसी अध्याय के आरम्भ में किया गया है ।

सीस खड़ी टोप दियो तिलक संवार कियो,
लियो हाथ चींपटो उपाड़ै वाल सिरका ।
डाढ़ी अरु मूंछ बनी घनी घनी चांपचूप,
संवारे सुधारे नित मोही मत नरका ॥
चोलो अर वोद दे प्रमोद झीणां झीणां बोले,
माला लिये हाथ मांही करै चाला करका ।
ऐसो सो बनायो भेष टेक नांही रामजी की,
भगवान ग्यान बिना ग्यारा डोले हरका ॥ ३ ॥

पद

(१)

मन रे स्वाद सनेह दुःखदाई ।
ताते इनको हेत छांडिके राम नाम ल्यो लाई । टेर ॥
स्वाद कियां भव जल में बूडे उंडे जाय वसाई ॥
पांचां का फंद मांही उलभयो सोतो निकसै नांही ॥ १ ॥
देखो मीन मरे रस सेती गंध से भंवर बिलाई ॥
कुंजर त्वचा पतंग मैन सूं सारंग सबद खपाई ॥ २ ॥
एक एक इन्द्रि के सागे पांचां की मृत्यु आई ।
सो सुख कहो किसी विधि पावे एक पांच सधाई ॥ ३ ॥
स्वारथ स्वाद मोह तजि भागो लागो जन सरणाई ॥
भगवानदास भव सागर भारी तब सहजै तिरजाई ॥ ४ ॥

[२]

सन्तों ऐसी विधि भव तरिये ।
मन पवना दोइ थिर राखो राम ही राम उचरिये ॥टेर॥
अगल बगल का छाडि पसारा ध्यान अखंडित धरिये ॥
पाइ समझ मिल्या गुरु पूरा इन पंचन कूं जरिये ॥१॥
सुरति सबद को सागो जोड़ो आसन अचलज करिये ॥
सास उसासां अरध उरध में ऐसी जुगति पकरिये ॥२॥

अधिक तत्त ते गुरु बोला ऐ । सम तत गुर भाई ।।
हीन तत्त ते चेला ऐ । सत्ति सत्ति भाषै बाल (गु) दाई ।।२३।।५८८।।

१६—भरथरी जी का सपत संष ग्रंथ (१)

आदि संख का मूलंकार । अनली बाई ऊंकार ।।टेक।।
पहला संख निरंजन देव । पाया ब्रह्म ग्यान का भेव ।।
उलटि उजाई गगन कूं चढ़ै । अनभै रहतां पिंड न पड़ै ।। १ ।।५८६।।
दूजा संष निरालंभ कथ्या न जांन । घरि सूरिज चंद कै आन ।।
चंद सूरिज एकै ले बहै । तौ इन उपदेसैं क्या रहै ।। २ ।।५९०।।
तीजा संख विचारह पाया । षेचरी मुद्रा त्यागंत माया ।।
माया त्यागी राषी काल । इन उपदेसैं बंचिये जम काल ।। ३ ।।५९१।।
चौथा संष संतोष भणीजै । द्वादस अंगुल पवना पीजै ।।
पीजै पवना बाजै बंस । तौ न पड़ै काया न उड़ै हंस ।। ४ ।।५९२।।
पंचमां संष बांधि लै बाई । षटचक्र वेधतो आई ।।
पाया कंवल सहस्रदल सुष । तो जनम जनम का गया दुष ।। ५ ।।५९३।।
छठा संष अकुलीन भणीजै । गुर परसादैं सिव सिव कीजै ।।
सिव सिव करि निरारंभ रहीजै । इन उपदेसैं जुगि जुगि जीजै ।। ६ ।।५९४।।
सातमां संष कंद्रप होई । निद्रा तजी काल कौं जोई ।।
काल तजी सिव सकती समि रहै । सो जोगी पंचमू आतमां गहै ।। ७ ।।५९५।।
सपत संख का जाणैं भेव । सोई होइ निरंजन देव ।।
सपत संख भणत भरथरी जोगी । थिर होई कंध काया होई निरोगी ।।८।।५९६।।❀

राग रामंग्री (२)

नहीं आऊं कामंणी नहीं आऊं लो । नहीं आऊं राजभार लेबा तोर ।।टेक।।
एवां नैरांकां कौंन बसेषू । मारिबा नायक जमागं ।।
हूं तोहि पूछूं मारहा पढ़िया रे पंडित । कांई मरिबा ना लो लागं ।।१।।५९७।।

❀ क प्रति से ।

संत श्री ज्ञानस्वरूप जी महाराज

जन्म: १८९५ ई॰ गुरु: मोजीराम जी महाराज निर्वाण: १९९० ई॰
स्थल: पीपाड़ आश्रम जोधपुर सम्प्रदाय: रामसनेही सम्प्रदाय
पुस्तक: श्री ज्ञान भजन प्रभाकर (१५३४ ई॰ प्रकाशन)

① कर बन्ध मूल उड़ियान जलंधर आसण अचल जमावे
खेचरी भूचरी चाचरि उनमनि अगोचर उलटावे
पाँच पचीस पकड़ बस करले सुरत शब्द घर लावे
त्रिवेनी के अगम महल चढ़ दरशा देव का पावे
② मन पवना उलटाय अफूटा, सुरत शब्द त्रिवेनी चढ़े
③ श्रावन साधे सुखमणा, पीव वसे परदेश
आसौज आसण बाँध के, नाभी नागन जीत
बंकनाल होय चढ़ गया, छेद मेरु की भीत
④ मूल कमल से पवन चढ़ावे, प्राण-अपान समान मिलावे
चढ़ मेरु की भीत ढ़हावे, त्रिवेनी का निरख तारा
⑤ थ्यारी ये मन पवना को घेर पिछम घाटी चढ़ो
थ्यारी ये मेरुकोट को छेद ध्यान त्रिवेनी धरो
⑥ इड़ा पिंगला सेज सिंवारे, सुखमन सुरता हरष भरी
⑦ सुरत शब्द का बेला बांधे, इड़ा पिंगला सुखमन साधे
सत सोहं का ध्यान सदा उर धारना रे
⑧ मेरु दल छेद त्रिवेनी होके, सुन्न सिखर मन पवना रोके
⑨ खींचा पवन मूल कस करके नाभ मंडल गरनाया
नागन जाग भई उलटे मुख सूर चक्र दरसाया
शब्द टकर दे पेठ सुखमण घर बंकनाल थरराया
मेरु दल छेद गमन कर जगना त्रिवेनी तट न्हाया
⑩ चेतन होय त्याग मोह आलस आसण दृढ़ जमावे
मुद्रा बंध त्रिसाध सुखमणा सोहं सुरत लगावे
प्राण पवन को घेर शब्द से मेरु कोट ढ़हावे
तजकर फिकर सिखर गढ़ चढ़के शुन में सहर वसावे
⑪ पलटे पवन पछिम दिशि घूमर दस में रास रचावे

Date

(12) मूल को सोध हेर षट दल को नाभि नाग जगाना है
पलटे पवन बंक गरणावे त्रिवेणी चढ़ जाना है
(13) सोहं शब्द धर ध्यान तू मिटे भ्रम अंधेरा
(14) बेगमपुर चलिये परम पदारथ पाय
बंक टकोर लगे सत सोहं रोम रोम गरणाय
सुरता उलट चढ़ी असमाना पिया मिलन को धाय
(15) पहले सोध मूल षटदल को नाभी नाग जगाना
प्राण पवन को उलट अफूटा बिन पग चढ़ असमाना
(16) प्रथम पाँच-पचीसु बस कर सुरत शब्द धर लाना रे
नाम द्वादस पलट पवन को सुखमण सैज मिलाना रे
खोल कपाट झाट दे सूरा उलटे राह घुमाणा रे
(17) मूल कमल से पवना पलटो नाम निहार के चल नभ उलटा
बंक होय मेर, ढायके खोल किंवारा
बेगम भोम की धाटी सकड़ी शब्द सांद चढ़ो तार ज्यूँ मकड़ी
(18) सिद्ध आसन ले मूल निरोधे खट दल जाँच नाभि धर सोधे
नागन जीत अमीरस पिवणा, ऊगे भान प्रकाशे भवना
सुखमन सेरी प्राण पियागे, सुरता चढ़ी शब्द के सागे
अजपा जपे तार नहीं टूटे,
बंकनाल बिच तोवां(तोपका गोला) छूटे
उलटे पवन पिछम को मोड़े, मेरुकिला कोई शूरा तोड़े
(19) अगम पंथ सीधारे लगी सोहं तार
अधर ऊर्ध बिच आसण साधे अला पिंगला ताण
सुखमण शिष्ट बंक तोल भरके छूटे शब्द घुर बाण
मेरु दल बींधा रे पहुँचे त्रिवेनी द्वार
(20) सुरत शब्द धर होवे मेला अगम भोम चढ़ जावेगा
चँद सूर को उलट अफूटे कर्म भ्रम की टाटी टूटे

ल्याण भारती संतां शरणे सो निजरूप पिछाना।। सा

।। श्लोक ।।

ज्ञश्चाऽश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति।
यं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।। गीता। ४। ४

।। दोहा ।।

जो मूरख श्रद्धा बिना ताको होय विनाश।
जाके मन संदेह सो दोहू लोक विनाश।।

शब्द नं० २ राग–आसावरी

साधो भाई झूंठी करे बड़ाई।
भूल्या जीव भटकता डोले वस्तू मिलती नांई।। टे
आंख कान मुख बन्द करके नाभी पै सुरत लगाई।
तत्वों का प्रकाश देख के मगन हुआ मन मांई।। साधो
स्वास उस्वास में सब कोई उलझया सोहं धुन ठहराई।
ये सब जाप काल का कहिये इनमें बचे न राई।। साधो
नाभ द्वाद्वश त्रिकुटि गगना सकल काल बस भाई।
इनमें अटक रह्या सब कोई आगे की गम नांई।। साधो

18:52

॥ श्लोक ॥

यावश्यकं कृत्वा कृतशौच समाहितः ।
संध्या जपमस्तिष्ठे काले चापरां स्थिरम् ॥

॥ दोहा ॥

शौच से निवट के पीछे करिये स्नान ।
गायत्री गुरुमंत्र का करो निरंतर ध्यान ॥

शब्द नं. ३ राग-प्रभाती

यम सीखिये पीछे साधन साधिये ।
ध्र लगाय के स्वासा ने आरोधिये ॥ टेर ॥
अपात खैंच षट कमल ढिग लाइये ।
गौ नाड़ी जगे उलट पश्चिम धाइये ॥ पहिले. ॥
गी नाद लागे कंठ लागे टकटकी ।
ज्योति झिलके पर्संसी कोई गुरुमुखी ॥ पहिले. ॥
सन अलख मूरत जगमगत दीदार है ।
आदि अनुभव अनन्त रूप अपार है ॥ पहिले. ॥
जी सतगुरुमिलिया दीनो अनुभव ज्ञान है ।
रती बोलिया पाया पद निर्वाण ...

साधो भाई झूठी करे बढ़ाई,,,स्वामी श्री कल्याण भारती जी महाराज जी की वाणी,लाइक शयेर करे हरि ॐ

442 views 10 hr ago ...more

Jay Shree Ram 🚩 2.69K

24 | Share | Remix | Download | Clip

Comments 15

वाणी

॥ टेर ॥ गुरू सां ओल्यू आप री आवे,

याद करूं जद बसौ म्हारे हृदय, पल–पल प्रेम सतावे ॥ टेर ॥

(1) जेठ आषाढ धर्म का महीना, कुण म्हारे जल बरसावे

जल बीना जीव बहुत दु:ख पावे तड़प–तड़प मर जावे

गुरू सां ओल्यू आप री आवे, याद करूं जद बसौ म्हारे हृदय,

पल–पल प्रेम सताव

(2) गिरधारी राम महारे प्रेम का प्याला, बेही म्हारे जल बरसावे

विरह बादली चढ़ी आकाशा गहरी–गहरी घोर सुणावे

गुरू सां ओल्यू आप री आवे, याद करूं जद बसौ म्हारे हृदय,

पल–पल प्रेम सताव

(3) प्रेम बादली चढ़ी आकाशा झिणीझिणी बिज चमकावे

इमरत बुन्दा बरसे प्रेम गी कली–कली रस ल्यावे

गुरू सां ओल्यू आप री आवे, याद करूं जद बसौ म्हारे हृदय,

पल–पल प्रेम सताव

(4) सुरानाथ गुरू सामर्थ मिल्या, सोंग शब्द सुणावे

दानीनाथ शरण सतगुरू गी उनमुन ध्यान लगावै

गुरू सां ओल्यू आप री आवे, याद करूं जद बसौ म्हारे हृदय,

पल–पल प्रेम सताव

ऐसो कुँण जो कीरति गावे । हरि हरि जन को पार न पावे ॥ ४१ ॥
सायर कहो एसो कुँण थागे । जितो पियो अपनी तृष भागे ॥
राम संतां का अंत न आवै । आप आप की बुधि सम गावै ॥ ४२ ॥
राम प्रताप सुनो अब एसो । भजताँ भयो कहूं सो तेसो ॥
राम रटत गुप्ता रस चाखै । संत शब्दां में प्रगट भाखै ॥ ४३ ॥
प्रथम राम रसना सूं गावै । मनकूं पकडि एक घर लावै ॥
राखे सुरति शब्द ही माहीं । शब्द छाँडि कहुँ अंत न जांही ॥ ४४ ॥
तब रसना शिर छूटै धारा । चलै अखंड नहिं खंडै लगारा ॥
जल जीवन की श्रद्धा नांही । मति यो अमृत दूरि होई जांहीं ॥ ४५ ॥
रस पीवत क्षुधा सब भागी । कठाँ शब्द टगटगी लागी ॥
नाडिनाडि में चलै गिलगिली । सुखधारा अति बहै सिलसिली ॥ ४६ ॥
मुखसूं कछू न उचरे बैना । लग्या कपाट खुलै नहीं नैना ॥
श्रवणाँ चर्चा सुणैं न कोई । कंठ ध्यान यह लक्षण होई ॥ ४७ ॥

कंठ के ध्यान कँमकँमी जागै । रोम रोम सीतंग सो लागै ॥
हियो गद्गदे श्वास न आवै । नैंणा नीर प्रवाह चलावै ॥ ४८ ॥
एक दिवस इक भया तमासा । कंठ हृदा बिच उठयो हुलासा ॥
ज्यूं पाला की डोरणि छूटी । हिरदे सीर सुखम रस उठी ॥ ४९ ॥
शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा । ज्यूं रैंण अंधेरी चंद्र प्रकाशा ॥
भर्म कर्म सांशो गयो भागी । हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी ॥ ५० ॥
कहा कहूं या सुख की महिमा । और सुख सब दीशे पलमा ॥
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होइ । दूजो साधन रहे न कोई ॥ ५१ ॥
हिरदासूं लै धरणी गई । नाभिकमल में चेतन भई ॥
शब्द गुंजार नाडि सब जागे । रोम रोम में होइ रही रागे ॥ ५२ ॥
नौसे नारी मंगल गावे । तहाँ मन भँवरा अति सुख पावे ॥
शीतल भई सबै ही काया । शब्द ब्रह्मरस अमृत पाया ॥ ५३ ॥
अब तो शब्द गगन कूं चढिया । पछिम घाटि होइकै अनुसरिया ॥

घाटी बीस मेरु की छेकी । इकबीसै गढ गया विशैखी ॥ ५४ ॥
पहिली बैठा त्रिकुटी छाजे । जाके उपर अनहद बाजै ॥
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया । निर्मल होय आगे कूं ध्याया ॥ ५५ ॥

दोहा

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट ।
जहां झाझे जल झूलि के, निर्मल होय निराट ॥ १ ॥
अब त्रिवेणी न्हाई कै, कीया गगन प्रवेश ।
तीन लोक सूं अलध सुख, यो कोई चौथा देश ॥ २ ॥

चौपाई

अब चौथे घर पहुँता जाई । जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई ॥
घरर घरर अनहद घररावै । परम ज्योति दामणि भलकावे ॥ १ ॥
सुषुमण नीर लूंब झडि लाई । भीजत सुरति गर्क होइ जाई ॥
अर्ध उर्ध जहां कमल प्रकासा । सूरति भवंर होइ करत बिलासा ॥ २ ॥

घुरै अखण्ड अनाहद बाजा । प्राण पुरुष चहां तख्त बिराजा ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि नूर प्रकासै । अनंत कोटि रवि प्रकटया भासै ॥ ३ ॥
यातो बात अतौल है भाई । मुख सूं कहयां तोल व्है जाई ॥
पवन कहो कैसे गह हाथा । कैसे भरै गगन की बाथा ॥ ४ ॥
रुपवर्ण कैसो तडका को । ऐसो कहा बखानो जाको ॥
हाक वाक रहे कहत न आवै । पहुंच्या होइ सोही भल पावै ॥ ५ ॥

दोहा

अनहद गरजै नभ झरै । दामिनि ज्योति उजास ।
रामचरण सुनि सायराँ । हंसा करत निवास ॥ १ ॥

चौपाई

सायर तट हंस बैठा जाई । सायर हँस में रह्या समाई ॥
ओत पोत भया द्वैत न दर्शै । संत गरक, ब्रह्म सुख कूं पर्शै ॥ १ ॥
ब्रह्म पर्श्यांकी दशा बताऊं । बाहिर के लक्षण पिछनाऊं ॥
जाके रंक एक ही राउ । माया सेती करे न भाउ ॥ २ ॥

अथ ग्रंथ शब्दप्रकाश लिख्यते ॥

स्तुति

रमतीत राम गुरुदेवजी, पुनि तिहूंकाल के संत।
जिनकूं रामचरण की, बन्दन बार अनंत (१)

दोहा

राम नाम तारक मन्त्र। सुमिरै शंकर शेष॥
रामचरण साचा गुरु। देवे यो उपदेश॥ १ ॥
सतगुरु बकसे राम नाम। शिख धारै विश्वास॥
रामचरण निशि दिन रटै। तो नहचै होय प्रकाश॥ २ ॥

चौपाई

अब सुँणियो सब साधु सुजाना। राम भजन का करुं बखाना॥
प्रथम नाम सतगुरु सूं पाया। श्रवणां सुनिके प्रेह उपजाया॥ १ ॥

पुनि रसना की श्रद्धा जागी। राम रटनि निशिवासर लागी॥
दूजी आशा सकल बुहारी। तब राम नाम में सुरति ठहारी॥ २ ॥
पद्मासन निश्चल मन कीया। नासा निरत धारि घर लीया॥
श्वास उश्वासां धवँण लगाई। आरति करिकै विरह जगाई॥ ३ ॥
रसना अग्र खुली इक सीरा। प्रथम वाको पयसो नीरा॥
रटतां रटतां भयो मिठास। हर्ष भयो आयो विश्वास॥ ४ ॥
केई दिवस रसना रस गटक्यो। पीछे शब्द कण्ठ में अटक्यो॥
कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई। मुख सूं वचन न बोल्यो जाई॥ ५ ॥
खान पान पैं रुचि रहे थोरी। मारग रुक्यो जाय कह वोरी॥
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी। नीली नस दीसै झलकानी॥ ६ ॥
पीरो वदन नेतराँ लाली। मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली॥
चलै कँमकँमी रुं थररावे। छाती रुँधै श्वास न आवे॥ ७ ॥
एसी विधि विरहनि की होई। विरहि जाणै कै सतगुरु सोई॥

एक दिवस ऐसी बनि आंही । शब्द सरक गयो हिर्दा मांही ॥ ८ ॥
परम सुक्ख हिर्दै परकाशा । ज्यूं रवि कीनो तम को नाशा ॥
सहजै सुमरण हिरदै होई । बाहिर भेद न जानै कोई ॥ ९ ॥
सोवत जागत डोरी लागी । वन वस्ती की शंका भागी ॥
रसना जप्यां अजप्पा पाया । बाहिर साधन सकल बिलाया ॥ १० ॥
जाग्यो प्रेम नेम रहयो नांही । पाई राम धाम घट मांही ॥
उर अस्थान पाय विश्रामा । शब्द किया जाय नाभि मुकामा ॥ ११ ॥
नाभिकमल में शब्द गुंजारे । नौसे नारी मंगल उचारे ॥
नाभिहोद काया वन पीवे । ता रस साधू जुग जुग जीवे ॥ १२ ॥
रोम रोम झुणकार झुणं कै । जैसे जंतर ताँत ठुणंकै ॥
माया अक्षर यहां विलाया । ररंकार इक गगन सिधाया ॥ १३ ॥
पश्चिम दिशा मेरु की घाटी । बीसूं गांठि घोर सें फाटी ॥
त्रिकुटी संगम कीया स्नाना । जाइ चढया चौथे अस्थाना ॥ १४ ॥
जहां निरंजन तख्त विराजै । ज्योति प्रकाश अनंत रवि राजै ॥

अनहद नाद गिणत नहिं आवे । भांति भांति की राग उपावे ॥ १५ ॥
स्त्रवै सुषुम्णा नीर फुँहारा । शून्य शिखर का यह विव्हारा ॥
झरि पणग मोती सा ढलकै । जाकी ज्योति अरुण सी भलकै ॥ १६ ॥
सागर जहां बिना धर भरिया । हंसै वास तास मधि करिया ॥
सुखमण मोती करै अहारा । निज हंसा का एही चारा ॥ १७ ॥
शुँन सायर हंस का वासा । भव सागर सुख भया उदासा ॥
दरिया सुख को अंत न आवै । छीलर काल बाज झपटावै ॥ १८ ॥
सुख सागर मिलि सुख पद पाया । सो शब्दां मैं कहि समझाया ॥
बिन देख्यां परतीत न आवै । तासूं कैसे भेद बतावै ॥ १९ ॥
अर्ध उर्ध कमला चहां फूल्या । भँवररुप होई हंसा झूल्या ॥
भंवर गुंजार गगन गिर्णाया । होय मस्त अलि तहां लुभाया ॥ २० ॥
ऐसो पद विरला जन पावै । सो भवसागर नाहीं आवै ॥
राम रटयां का यह प्रकाशा । मिल्या ब्रह्म पद भव भया नाशा ॥ २१ ॥
रामचरण कोई राम रटेगा । सो जन एही धाम लहेगा ॥

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धति

(लेखक—दैवज्ञप्रवर स्वामी श्रीमनोरथरामजी रामस्नेही शास्त्री, साहित्यभूषण)

भक्तिके पथको सुगम और प्रशस्त करनेके लिये महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने शाहपुरामें श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी स्थापना की, साथ-ही-साथ भक्तियोगके प्रतिपादनार्थ स्वकीय अनुभवयुक्त वाणीद्वारा दोहा-चौपाइयोंमें 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थका निर्माण किया तथा उसपर ब्रह्म रामकी उपासना-विधि बतलायी, जिनके ध्यानमें शङ्कर तथा शेषजी सदा लीन रहते हैं तथा जिनके नामकी महिमा महर्षि अगस्त्यजीने अगस्त्यसंहितामें सुतीक्ष्णजीके प्रति इस प्रकार वर्णन की है—

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम्॥

अर्थात् महामन्त्र तो सात करोड़ हैं, परन्तु वे चित्तमें [यह मन्त्र श्रेष्ठ है या वह—इस प्रकारका] विभ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं। 'राम' यह दो अक्षरोंका महामन्त्र ही सबसे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अथर्ववेदके रामरहस्योपनिषद्में भी कहा है—

एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्।
राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥

अर्थात् समस्त धर्मग्रन्थोंका तत्त्व तारक ब्रह्म ही है। और वह तारक ब्रह्म राम है। राम ही परब्रह्म है, राम ही परम तप है और राम ही परम तत्त्व है।

इस प्रकार परब्रह्म रामकी महिमासे धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं। यहाँ अधिक वचनोंका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। इसलिये अब हम परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धतिरूप 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थके मूल वचनोंको ही उद्धृत कर लेख समाप्त करेंगे। उस ग्रन्थमें महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धति इस प्रकार बतायी है—

रामनाम तारक मंत्र, सुमरै संकर सेस।
रामचरण साँचा गुरु देवै यह उपदेस॥ १॥
सतगुरु बकसै रामनाम, सिष धारैं बिस्वास।
रामचरण निसिदिन रटै तो निस्चय होय प्रकास॥ २॥

अब सुनियो सब साधु सुजाना। रामभजनका करूँ बखाना॥
प्रथम नाम सतगुरु से पाया। श्रवणा सुनके नेह उपजाया॥ १॥
पुनि रसना की श्रद्धाजागी। राम रटन निसिबासर लागी॥
दूजी आसा सकल बुहारी। (तब) राम नाम मैं सुरत ठहारी॥ २॥
पद्मासन निस्चल मनकीया। नासा निरत धार घर लीया॥
स्वास उस्वासा ध्वनीलगाई। आरत करके बिरह जगाई॥ ३॥
रसना अग्र खुली इक सीरा। परथम वाको पय सो नीरा॥
रटताँ रटताँ भयो मिठास। हर्ष भयो आयो बिस्वास॥ ४॥
कई दिवस रसना रसगटक्यो। पीछे सब्द कंठमें अटक्यो॥
कंठ स्थान बहुत कठिनाई। मुख सूँ बचन न बोल्यो जाई॥ ५॥
खान पान पै रुचि रहै थोरी। मारग रुक्यो जाय कह बौरी॥
छीन सरीर त्वचा सकुचानी। नीली नस दीसै झलकानी॥ ६॥
पीरो बदन नेतराँ लाली। मुकुर ज्योति ज्यां दियै कपाली॥
चले कमकमी रूँ थर्रावै। छाती रुँधै स्वास नहिं आवै॥ ७॥
ऐसी बिधि बिरही की होई। बिरह जान कै सतगुरु सोई॥
एक दिवस ऐसी बन आई। सब्द सरक गयो हिरदय माईं॥ ८॥
परम सुक्ख हिरदै परकासा। ज्यूँ रबि कीन्हों तम को नासा॥
सहजै सुमिरन हिरदै होई। बाहिर भेद न जानै कोई॥ ९॥
सोवत जागत डोरी लागी। बन बस्ती की संका भागी॥
रसना जपा अजप्पा पाया। बाहिर साधन सकल बिलाया॥ १०॥
जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नाहीं। पाई राम धाम घट माहीं॥
उर अस्थान पाय बिश्रामा। सब्द किया जाय नाभि मुकामा॥ ११॥
नाभि कमल में सब्द गुँजारै। नो सै नारी मंगल उचारै॥
रोम रोम झुणकार झुणक्कै। जैसे जंतर ताँत ठुणक्कै॥ १२॥
माया अच्छर इहाँ बिलाया। ररंकार इक गगन सिधाया॥
पस्चिम दिसा मेरु की घाटी। बीसों गाँठ घोर सें फाटी॥ १३॥
त्रिकुटी संगम किया सनाना। जाय चढ़्या चौथे अस्थाना॥
जहाँ निरंजन तख्त बिराजै। ज्योति प्रकास अनंत रबि राजै॥ १४॥
अनहद नाद गिणत नहिंआवै। भाँति भाँति की राग उपावै॥
स्त्रवै सुषुम्ना नीर फुँहारा। सून्य सिखर का यह बिवहारा॥ १५॥
झरै पणंग मोती-सा ढलकै। जाकी ज्योति अरुन-सी भलकै॥
सागर जहाँ बिना घर भरिया। हंसा बास तास मध करिया॥ १६॥
सुखमण मोती करे अहारा। निज हंसा का यह ही चारा॥
सुन सायर हंसा का बासा। भवसागर सुख भया उदासा॥ १७॥
दरिया सुखको अंत न आवै। छीलर काल बाज झपटावै॥
सुखसागर मिल सुख पद पाया। सो सब्दाँ में कह समझाया॥ १८॥
बिन देख्याँ परतीत न आवै। तासूँ कैसे भेद बतावै॥

अर्ध उर्ध कमला जहाँ फूल्या। भँवर रूप होय हंसा झूल्या॥ १९॥
भँवर गुँजार गगन गिरणाया। होय मस्त अलि तहाँ लुभाया॥
ऐसो पद बिरला जन पावै। सो भवसागर नाहीं आवै॥ २०॥
राम रट्याँका यह परकासा। मिल्या ब्रह्मपद भव भया नासा॥
रामचरण कोइ राम रटेगा। सो जन एही धाम लहेगा॥ २१॥
रामनाम निसिबासर गासी। सो नर भवसागर तिर जासी॥
रामनाम बिन आन उपाई। ज्यूँ दूल्याँ का खेल कराई॥ २२॥
बालक बेळू मँदिर बणाया। तामें बस कूने सुख पाया॥
रामभजन बिन खाली करणी। ज्यूँ बिन बीज सुधारी धरणी॥ २३॥
राम बीज साधन हल हाँकै। तो रामचरण खेती फल पाकै॥ २४॥

बरणि कह्यो संछेप से दरिया के सो पार।
निज परसी या धामकूँ (सो) लीज्यो संत बिचार॥ १॥
रामचरण रट रामनाम पाया ब्रह्म बिलास।
ईं साधन कोइ लागसी (जाके) होसी सब्द प्रकास॥ २॥

—इत्यादि। इन वचनोंका अर्थ भलीभाँति समझकर जो बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त उपासना-पद्धतिके अनुसार परम पुनीत भक्तियोगकी साधना करेंगे, वे निश्चय ही मायाके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर संसारसागरको गोपदकी तरह अनायास पार कर जायँगे और परब्रह्म श्रीरामरूप होकर उनकी सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त करेंगे। फिर उनको श्रुतिके 'न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते' इस वचनके अनुसार कभी भी संसार-चक्रमें फँसकर जन्म-मरणादिके कष्टोंका अनुभव नहीं करना पड़ेगा। यद्यपि 'शब्दप्रकाश' में ईश्वरोपासनाका विस्तार बहुत है और ग्रन्थका अर्थ समझाना भी आवश्यक था, परन्तु विस्तारभयसे इस लेखको यहीं समाप्त किया जाता है। श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धतिका संक्षिप्त स्वरूप यही है।

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धति

(लेखक—दैवज्ञप्रवर स्वामी श्रीमनोरथरामजी रामस्नेही शास्त्री, साहित्यभूषण)

भक्तिके पथको सुगम और प्रशस्त करनेके लिये महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने शाहपुरामें श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी स्थापना की, साथ-ही-साथ भक्तियोगके प्रतिपादनार्थ स्वकीय अनुभवयुक्त वाणीद्वारा दोहा-चौपाइयोंमें 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थका निर्माण किया तथा उसपर ब्रह्म रामकी उपासना-विधि बतलायी, जिनके ध्यानमें शङ्कर तथा शेषजी सदा लीन रहते हैं तथा जिनके नामकी महिमा महर्षि अगस्त्यजीने अगस्त्यसंहितामें सुतीक्ष्णजीके प्रति इस प्रकार वर्णन की है—

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम्॥

अर्थात् महामन्त्र तो सात करोड़ हैं, परन्तु वे चित्तमें [यह मन्त्र श्रेष्ठ है या वह—इस प्रकारका] विभ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं। 'राम' यह दो अक्षरोंका महामन्त्र ही सबसे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अथर्ववेदके रामरहस्योपनिषद्में भी कहा है—

एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्।
राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥

अर्थात् समस्त धर्मग्रन्थोंका तत्त्व तारक ब्रह्म ही है। और वह तारक ब्रह्म राम है। राम ही परब्रह्म है, राम ही परम तप है और राम ही परम तत्त्व है।

इस प्रकार परब्रह्म रामकी महिमासे धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं। यहाँ अधिक वचनोंका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। इसलिये अब हम परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धतिरूप 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थके मूल वचनोंको ही उद्धृत कर लेख समाप्त करेंगे। उस ग्रन्थमें महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धति इस प्रकार बतायी है—

रामनाम तारक मंत्र, सुमरै संकर सेस।
रामचरण साँचा गुरु देवै यह उपदेस॥ १॥
सतगुरु बकसै रामनाम, सिष धारैं बिस्वास।
रामचरण निसिदिन रटै तो निस्चय होय प्रकास॥ २॥

अब सुनियो सब साधु सुजाना। रामभजनका करूँ बखाना॥
प्रथम नाम सतगुरु से पाया। श्रवणा सुनके नेह उपजाया॥ १॥
पुनि रसना की श्रद्धाजागी। राम रटन निसिबासर लागी॥
दूजी आसा सकल बुहारी। (तब) राम नाम मैं सुरत ठहारी॥ २॥
पद्मासन निस्चल मनकीया। नासा निरत धार घर लीया॥
स्वास उस्वासा ध्वनीलगाई। आरत करके बिरह जगाई॥ ३॥
रसना अग्र खुली इक सीरा। परथम वाको पय सो नीरा॥
रटताँ रटताँ भयो मिठास। हर्ष भयो आयो बिस्वास॥ ४॥
कई दिवस रसना रसगटक्यो। पीछे सब्द कंठमें अटक्यो॥
कंठ स्थान बहुत कठिनाई। मुख सूँ बचन न बोल्यो जाई॥ ५॥
खान पान पै रुचि रहै थोरी। मारग रुक्यो जाय कह बौरी॥
छीन सरीर त्वचा सकुचानी। नीली नस दीसै झलकानी॥ ६॥
पीरो बदन नेतराँ लाली। मुकुर ज्योति ज्यां दियै कपाली॥
चले कमकमी रूँ थरांवै। छाती रुँधै स्वास नहिं आवै॥ ७॥
ऐसी बिधि बिरही की होई। बिरह जान कै सतगुरु सोई॥
एक दिवस ऐसी बन आई। सब्द सरक गयो हिरदय माईं॥ ८॥
परम सुक्ख हिरदै परकासा। ज्यूँ रबि कीन्हों तम को नासा॥
सहजै सुमिरन हिरदै होई। बाहिर भेद न जानै कोई॥ ९॥
सोवत जागत डोरी लागी। बन बस्ती की संका भागी॥
रसना जपा अजप्पा पाया। बाहिर साधन सकल बिलाया॥ १०॥
जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नाहीं। पाई राम धाम घट माहीं॥
उर अस्थान पाय बिश्रामा। सब्द किया जाय नाभि मुकामा॥ ११॥
नाभि कमल में सब्द गुंजारै। नो सै नारी मंगल उचारै॥
रोम रोम झुणकार झुणक्कै। जैसे जंतर ताँत ठुणक्कै॥ १२॥
माया अच्छर इहाँ बिलाया। ररंकार इक गगन सिधाया॥
पस्चिम दिसा मेरु की घाटी। बीसों गाँठ घोर सें फाटी॥ १३॥
त्रिकुटी संगम किया सनाना। जाय चढ़्या चौथे अस्थाना॥
जहाँ निरंजन तख्त बिराजै। ज्योति प्रकास अनंत रबि राजै॥ १४॥
अनहद नाद गिणत नहिंआवै। भाँति भाँति की राग उपावै॥
स्रवै सुषुम्ना नीर फुँहारा। सून्य सिखर का यह बिवहारा॥ १५॥
झरै पणंग मोती-सा छलकै। जाकी ज्योति अरुन-सी झलकै॥
सागर जहाँ बिना घर भरिया। हंसा बास तास मध करिया॥ १६॥
सुखमण मोती करे अहारा। निज हंसा का यह ही चारा॥
सुन सायर हंसा का बासा। भवसागर सुख भया उदासा॥ १७॥
दरिया सुखको अंत न आवै। छीलर काल बाज झपटावै॥
सुखसागर मिल सुख पद पाया। सो सब्दाँ में कह समझाया॥ १८॥
बिन देख्याँ परतीत न आवै। तासूँ कैसे भेद बतावै॥

अर्ध उर्ध कमला जहाँ फूल्या। भँवर रूप होय हंसा झूल्या॥ १९॥
भँवर गुँजार गगन गिरणाया। होय मस्त अलि तहाँ लुभाया॥
ऐसो पद बिरला जन पावै। सो भवसागर नाहीं आवै॥ २०॥
राम रट्याँका यह परकासा। मिल्या ब्रह्मपद भव भया नासा॥
रामचरण कोइ राम रटेगा। सो जन एही धाम लहेगा॥ २१॥
रामनाम निसिबासर गासी। सो नर भवसागर तिर जासी॥
रामनाम बिन आन उपाई। ज्यूँ दूल्याँ का खेल कराई॥ २२॥
बालक बेळू मँदिर बणाया। तामें बस कूने सुख पाया॥
रामभजन बिन खाली करणी। ज्यूँ बिन बीज सुधारी धरणी॥ २३॥
राम बीज साधन हल हाँकै। तो रामचरण खेती फल पाकै॥ २४॥

बरणि कह्यो संछेप से दरिया के सो पार।
निज परसी या धामकूँ (सो) लीज्यो संत बिचार॥ १॥
रामचरण रट रामनाम पाया ब्रह्म बिलास।
ईं साधन कोइ लागसी (जाके) होसी सब्द प्रकास॥ २॥

—इत्यादि। इन वचनोंका अर्थ भलीभाँति समझकर जो बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त उपासना-पद्धतिके अनुसार परम पुनीत भक्तियोगकी साधना करेंगे, वे निश्चय ही मायाके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर संसारसागरको गोपदकी तरह अनायास पार कर जायँगे और परब्रह्म श्रीरामरूप होकर उनकी सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त करेंगे। फिर उनको श्रुतिके 'न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते' इस वचनके अनुसार कभी भी संसार-चक्रमें फँसकर जन्म-मरणादिके कष्टोंका अनुभव नहीं करना पड़ेगा। यद्यपि 'शब्दप्रकाश' में ईश्वरोपासनाका विस्तार बहुत है और ग्रन्थका अर्थ समझाना भी आवश्यक था, परन्तु विस्तारभयसे इस लेखको यहीं समाप्त किया जाता है। श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धतिका संक्षिप्त स्वरूप यही है।

भेदक वर्णनं जागं करू पाहतात.

ज्ञानेश्वरांच्या जीवनातील सोऽहम्‌चे स्थान : ज्ञानेश्वरांचे कार्य पाहून निवृत्तिनाथ काय म्हणतात त्याचा विचार आपण यापूर्वीच केला आहे. नामदेव महाराजही ज्ञानेश्वरीबद्दल बोलताना म्हणतात,

सोऽहम्‌सुकृताच्या सोडोनिया गाठी । केलीसे गीता ज्ञानेश्वरी ।। [६६]

ज्ञानेश्वरांचे कार्यकर्तृत्व वर्णन करण्यासाठी त्यांच्या समकालीनांना नेमक्या सोऽहम्‌शब्दाचीच आठवण व्हावी, हे आश्चर्यकारक आहे. परंतु हा केवळ योगायोग नाही, तर ज्ञानेश्वरांच्या सोऽहम्‌बद्दलच्या जिव्हाळ्याचे ते प्रतीक आहे. अशा ज्ञानेश्वरांच्या जीवनातील सोऽहम्‌चे स्थान किती व कसे महत्त्वपूर्ण आहे हे समजून घेणे उद्‌बोधक ठरेल. त्यांच्या वैयक्तिक जीवनात सोऽहम्‌मुळे कसा बदल होत गेला, सोऽहम्‌साधनेचे कोणते टप्पे त्यांनी वेळोवेळी कसे पार केले याचा काही आलेख मिळतो का ते पाहण्याचा प्रयत्न त्यांच्याच अभंगांच्या द्वारे येथे केला आहे.

ज्ञानेश्वर महाराज ज्या नाथसंप्रदायाचे दीक्षित होते त्या संप्रदायात सोऽहम्‌साधना परंपरेनेच चालत आलेली आहे आणि त्याचाच उपदेश ते आपल्या शिष्यांना करतात असे दिसते. यादृष्टीने त्यांचा पुढील अभंग महत्त्वपूर्ण आहे,

नऊ कान वाचे नवही द्वारे पाही । सोऽहम् तेचि घेई एकविध ।
गहिनीनाथ सांगे निवृत्तिचे कानी । पावले ते ज्ञानी सिद्धपंथे ।
ज्ञानदेव म्हणे गुह्य हे सप्तक । अनुभववू लेख पाहिलिया ।। [६७]

एकनिष्ठतेने सोऽहम्‌चा ध्यास येण्यासंबंधी ते येथे सांगत आहेत, त्यासाठी आपल्या परंपरेचा दाखलाही त्यांनी दिला आहे.

निवृत्तिनाथांनी ज्ञानेश्वरांना सोऽहम्‌साधनाच सांगितली याचा काही दाखला गाथेत मिळतो का ते पाहावयास गेले असता असे आढळते,

छाया माया काया हरिरुपी ठाया । चिंतिता विलया एक तेजी ।
ज्ञानदेवा पाहा ओहंसोऽहम् भावा । हरिरूपी दुहावा सर्वकाळ ।। [६८]

असे ज्ञानेश्वरांना निवृत्तिनाथ सांगतात. तसेच निवृत्ति-ज्ञानदेव संवादातूनही सोऽहम् साधना व त्याचे तत्त्वज्ञानच अप्रत्यक्षपणे प्रतिबिंबित होताना जाणवत राहते. शिष्यवर्गाला उपदेश करीत असताना आपणही सोऽहम्‌चाच आश्रय घेतला असल्याचे ज्ञानेश्वर स्वतःचा दाखला देऊन

सांगतात,

ज्ञानदेवी सोऽहम् मंत्राचे आवर्तन । मदमत्सर भान विराले देही ।। [६९]

सद्‌गुरुउपदेशित सोऽहम्‌मंत्राच्या अखंड आवर्तनाने, अभ्यासाने सोऽहम् ही प्रचीती निर्माण होते. सोऽहम्‌बोधातून ऐक्य अनुभवास येते. परंतु हे सारे एका क्षणामध्ये घडत नाही. त्यासाठी दीर्घकालीन अभ्यास लागतो, तपश्चर्या लागते. अशा अभ्यासाला सुरुवात केली परंतु अद्यापि प्रचीती आली नाही असा शिष्य अधीरतेने विचारतो,

पैल कीटकीये भृंगिये जैसी जाले तैसे का न करिसी आम्हांसी रे ।। [७०]

अधोऽवस्था यदा ऊर्ध्वं संक्रामन्ति वरानने।
सैव मोक्षपदावस्था सैव ज्ञानस्य भाजनम् ॥
ऊर्ध्वचक्रगतावस्था यदाधः संभवन्ति च।
तदा पैशाच आवेशः स वै विघ्नस्य कारणम् ॥

अथ कामकलां परामृशन् योगी सिद्धयोगिनीसङ्घट्टावसरात्मके चर्याक्रम इमां प्राणकुण्डलिनीदशां विषतत्त्वप्रवेशसमयेऽनुभवति। पूर्वोक्तरूपायां महामेलापदशायामादौ या दशा ह्यनुभूयते, सैव विषतत्त्वरूपागमेषु वर्णितास्ति। श्रीकुलगुह्वरतन्त्रे इयमेव वेधदीक्षा मन्त्र-नाद-बिन्दु-शाक्त-भुजङ्ग-परेतिरूपा षोढा वर्णिता—

मन्त्रवेधं तु नादाख्यं बिन्दुवेधमतः परम्।
शाक्तं भुजङ्गवेधं तु परं षष्ठमुदाहृतम् ॥

वेधदीक्षाषट्कस्य स्वरूपमग्रस्तान्निर्दिश्यते। मूलाधारचक्रादुत्थिता पूर्णाहन्ता-स्वकमन्त्रस्वरूपा प्राणकुण्डलिनी पूर्णाहन्तावलात् समस्तानि चक्राणि वेधयन्ती आदिमा मन्त्रवेधदीक्षेति कथ्यते। मध्योर्ध्ववाहक्रमेण च प्रोच्छलन्ती नादाकारा सा द्वितीया नादवेधदीक्षेति भण्यते। वीर्यस्वरूपा सा प्राणकुण्डलिनी समस्तं चक्रवर्गं वेधयन्ती तृतीया बिन्दुवेधदीक्षेति नाम्ना व्यपदिश्यते। शक्तिरूपतामापन्ना चक्रवेधनक्रियापरा सा तुर्या शाक्तवेधदीक्षा भवति। सर्पाकारतामादधाना चक्रवेधनञ्च कुर्वाणा व्युत्तिष्ठन्ती भुजङ्गवेधदीक्षा पञ्चमी। पराशक्तिरूपतामाश्रयन्ती समस्तचक्रवेधनशीला सा परवेधदीक्षा षष्ठीति।

अथ पराकुण्डलिनीस्वरूपं विमृश्यते—परचितिरूपा विसर्गशक्तिर्यदान्त-र्बहिर्मुख्यरूपान्तःकोट्यात्मनि स्वरूपे स्वात्मानं चमत्कुर्वाणा पूर्णाहन्तात्मके पद इदन्तासमावेशं तथेदन्तात्मके पदे पूर्णाहन्तायाः समावेशं कुर्वती समाधिव्युत्थानसामरस्यदायिनीं क्रममुद्रारूपां जगदानन्दस्वरूपात्मिकां परा-कुण्डलिनीदशां प्रकाशयति। जगदानन्दस्य लक्षणं श्रीतन्त्रालोके यथा—

यत्र कोऽपि व्यवच्छेदो नास्ति यद्विश्वतः स्फुरत्।
यदनाहतसंवित्तिपरमामृतबृंहितम् ॥

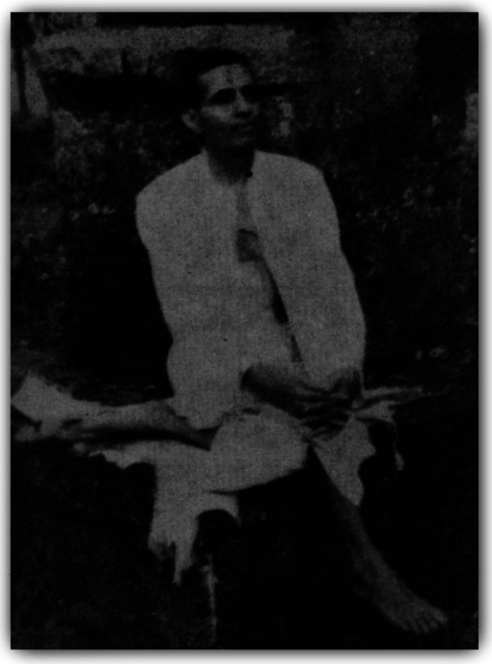

* प्रार्थना *

पावस ग्रामी 'स्वरूप'स्वामी नित्य नांदताहे ।
सोऽहम् वीणा संतत तेथे झंकारत आहे ॥१॥
सोऽहम् सोऽहम् सोऽहम् अखंड बोध करी स्वामी ।
आत्मदर्शना सहज सुलभ तो उपाय हा नामी ॥२॥
नाथपंथीचा सिद्धमंत्र हा जपे स्वामी दिनरात ।
अनुग्रहकाली घुमवितसे तो नाद शिष्य-कर्णात ॥३॥
नित-अनुसंधाने स्व-स्वरूपाशी मिठी पडे साची ।
स्वरूप-छंदे अवीट आनंदे पखरण कृपेचि ॥४॥
सोऽहम् बोधे जीव शिवस्वरूप हो, घडी कृतार्थतेचि ।
'स्वरूप'चरणी दान मागतो कृष्णदास हेचि ॥५॥

॥ ॐ शांति शांति शांति ॥

-*- सुदेश चोगले -*-

(दि. ३१.१२.२०१९)

07:04
Trika Darshan Ek Sa...
archive.org
INTERNET ARCHIVE

होता है।

परा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी:

परा: हर एक वाणी का सर्वोत्कृष्ट स्रोत्र परा है। इस को आदि स्वर कहा जाता है। जहां से सब वाणियों का उच्चारण उत्पन्न होता है। यह उच्चारण का सूक्ष्मतम रूप है। यह मातृका का केन्द्र बिन्दु है। यह दिव्य वाणी है। ब्रह्म सम्बन्धी परा वाणी को बीज रूप (Psychic plane) भी कहते हैं। It is in the Naval (Nabi).

पश्यन्ती: (Mental or subtle plane) इस अवस्था के उच्चारण में हम यह जानते हैं कि हम ने क्या करना है। परन्तु कुछ करने के लिए सोचते हैं, पर अभी किया नहीं। यह स्थूल तथा सूक्ष्म के बीच की अवस्था है जिसमें न कोई शरीरिक अंग काम करता है अपितु यहां केवल विचार है। यह अव्यक्त है! (It is in the heart)

मध्यमा: (Vital plane) यहां वाणी बुद्धि में अपना स्थान लेती है तथा यहां केवल सहजज्ञान अथवा अन्तर ज्ञान ही रहता है।

यह अवस्था बोलने तथा न बोलने की हैं। यहां अक्षर अपनी शक्ल लेता है। हम अपने मन में बोलने का नाप तोल लगाते हैं परन्तु बोलते कुछ नहीं। यह व्यक्ताव्यक्त अवस्था है। (It is in the throat)

वैखरी: (Gross speech or physical plane) इस अवस्था में हम बोलते हैं। यहां पदार्थ तथा शब्द का विभाजन होता हैं। यहां पर कुछ शरीरिक अंगों का प्रयोग होता है विशेष कर हमारी जीभ! (It is in the mouth)

परा भाव: अथवा परा शक्ति

1. परिपूर्ण शिव अभिन्न स्वतन्त्र रूपा परा शक्ति है। (Independent

16 of 24
Favorite Share Flag
Trika Darshan Ek

रखने का नाम करण है। घट-स्थापन, मण्डल-निर्माण, मंदिर, मूर्ति, चित्र आदि की रचना जैसी विधियों का समावेश स्थान-कल्पना में होता है। अपि च, सगुण स्वरूप में चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं। [1]प्राण, अपान आदि वायु की श्वास-प्रश्वास, क्षुत्[2] (छींक) प्रभृति वृत्तियाँ उच्चार[3] कहलाती हैं। प्राण के उच्चार के साथ स्वाभाविक रूप से उच्चरित होने वाले[4] सकार और हकार वर्ण कहे जाते हैं। ये सभी वर्णों और मन्त्रों का बोध कराते हैं। अथवा वर्ण शब्द [5]काले-पीले आदि रंगों का भी बोधक है।

त्रिशिरोभैरव के आधार पर तन्त्रालोक (भा० ३, आ० ५, पृ० ४३८-४४३) में करण के सात भेद बताये गये हैं। इनके नाम हैं—ग्राह्य,[6] ग्राहक, संवित्ति, [7]संनिवेश, व्याप्ति,[8] आक्षेप और त्याग। तन्त्रालोक के १६ वें आह्निक में ग्राह्य और ग्राहक का, ११ वें आह्निक में संवित्ति का, १५ वें आह्निक में व्याप्ति का, २९ वें आह्निक में त्याग और आक्षेप का और ३२ वें आह्निक में संनिवेश (मुद्रा) का विस्तार से वर्णन किया गया है। जिज्ञासु जनों को इनका वहीं अवलोकन करना चाहिये।

[9]प्राणशक्ति, अर्थात् हृदय के स्पन्दनात्मक सामान्य व्यापार में, शरीर में विद्यमान नाडियों तथा चक्रों में तथा बाहर लिंग, चत्वर, प्रतिमा प्रभृति में स्थान-कल्पना की विधि संपन्न की जाती है। सामान्य स्पन्द तत्त्व के उन्मेष के बाद ही उनमें षडध्व का स्फुरण होता

---

१ प्राण और अपान की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया पर १-४, २८-२९, ४१ धारणाएँ वर्णित हैं।

२. धारणा संख्या ९२ का क्षुत् प्रभृति से संबन्ध है।

३. स्वच्छन्दतन्त्र की टीका (प० ७, पृ० ३०६) में क्षेमराज ने किसी मुद्रा (करण) या बन्ध में बैठकर मन्त्र के जप करने को उच्चार बताया है (उच्चारः करणबन्धादिपूर्वं मन्त्रोदीरणम्)।

४. इस स्थिति को अजपा जप कहा गया है। प्राणापान अथवा प्राणशक्ति से संबद्ध धारणाओं में इसकी अनुभूति होती है। पृ० २७, ४५, ७६, ९१-९२, १६६-१७३ में इस विषय पर पर्याप्त विचार किया गया है।

५. धारणा संख्या ६३ में कृष्ण वर्ण की भावना वर्णित है। तिमिर भावना (६०-६२ धारणाएँ) का भी इसी में समावेश किया जा सकता है। बौद्ध योगशास्त्र में कसिण भावना के अन्तर्गत नील, पीत प्रभृति कसिणों का उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य—बौद्ध-धर्म-दर्शन, पृ० ७६।

६. धारणा संख्या ८१ द्रष्टव्य। इस धारणा का उल्लेख विज्ञानभैरव के ही श्लोक में सामान्य सा परिवर्तन कर योगवासिष्ठ (नि० पू० ४३।८) में भी किया गया है।

७. धारणा संख्या ३, ८, १३-१४, ५२-५८, ८८ द्रष्टव्य।

८. धारणा संख्या २४, ३०, ३९, ७९-८०, ८२-८५, ९०-९१, ९३, ९८, ११०-११२ द्रष्टव्य।

९. धारणा संख्या ५-८, १०, ३१, ४३-४४ द्रष्टव्य।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012

Scanned by CamScann

पहले धरती पीछे आकाश, पहले पवन पीछे पानी, पहले नाद पीछे बिन्दु।
पहले सुन्न पीछे ऊँकार, यह काया इस विधि उतरेगी पार।
कहे महेश्वर गौरजां जान गर्भ तत करो परवान, सत है सती पार्वती जी!
हर हर हरेश्वर ईश्वर महादेव जी! काया अन्दर अष्ट–सिद्धि कौन–कौन बोलिये?
सप्त ऋषि कौन–कौन बोलिये? चार खानी सृष्टि भेद कौन–कौन बोलिये?
चार बानी के स्थान कौन–कौन बोलिये?
कहे हर हर हरेश्वर ईश्वर महादेव, सुनिबा सती पार्वती जी!
काया अन्दर अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व यह अष्ट सिद्धियां बोलिये।
काया अन्दर कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज, जमदग्नि, गौतम यह सप्तऋषि बोलिये।
अण्डज (पक्षी–सर्पादिक), जरायुज (नर व पशु), उद्भिज (वृक्षादि), स्वेदज (जूं), यह चार खानी भेद बोलिये।
खेचर आकाश में (देवता आदि) भूचर पृथ्वी पर (नर–नारी, पशु, सर्पादि)।
निशाचर (रात्रि में भूत, प्रेत, पिशाचादि), जलचर (मछली, कछुआ, ग्राह आदि) यह चार खानी भेद बोलिये।
महादेव बोलिये काया में परावाणी मूलाधार, पश्यन्ति हृदय स्थाने।
मध्यमा कण्ठस्थाने, वैखरी मुख स्थाने, यह चार वाणी बोलिये।
कथे महेश्वर गौरजां जान, गर्भतत्त्व करो परवान, सत है सती पार्वती जी!
कहो हर हर हरेश्वर ईश्वर महादेव जी! इस काया में कौन कौन चार पात्र बोलिये?
कौन कौन चार वेद बोलिये? कौन कौन चार कुरान बोलिये? कौन कौन सप्त समुन्दर बोलिये?
कहे हर हर हरेश्वर ईश्वर महादेव, सुनिबा सती पार्वती जी !
सिद्ध ससिद्ध, अतीत, सुपात्र, यह चार पात्र बोलिये।
इस काया अन्दर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद यह चार वेद बोलिये।
इस काया अन्दर अमूर, जमूर, अकुरान, फकुरान यह चार कुरान बोलिये।
इस काया के मूत्र से क्षार, लार से क्षीर, कफ से दधि, मेदमज्जा से घृत।
चर्बी से मधु, रक्त से इक्षु, वीर्य में अमृत एते सप्त समुद्र बोलिये।
कथे महेश्वर गौरजां जान, यह गर्भ ज्ञान सदा रखियो पास।
घटे, पिण्डे, ब्रह्मण्डे, मंडे, सूर्य फिरे खण्डे खण्डे।
हृदय, चार खानी, चार बाणी, चन्द, सूर्य, पवन, पानी।
जारे प्राणी जा तेरा होवे मोक्ष शिव पुरी में वास।
इतना गर्भ गायत्री जाप सम्पूर्ण भया।
गंगा गोदावरी त्रयम्बक क्षेत्र, कौलागढ़ पर्वत अनुपान शिला पर नौ नाथ चौरासी सिद्धों में बैठकर
श्री शंभू यति गुरु गोरक्ष नाथ जी ने कथ, पढ़ जप के सुनाया।
श्री नाथ जी गुरु जी आदेश! आदेश!

Scanned by CamScann

'नमोवरिवस' (३।१।१९) से क्यच् प्रत्यय जोड़ने पर 'वरिवस्या' शब्द निर्मित होता है। 'वरिवस' शब्द पूजार्थक है। आचार्य भास्करराय ने 'वरिवस्यारहस्यम्' में जिस रहस्य का उद्घाटन किया है उसका मूल केन्द्रीय स्वर अद्वैत-स्थापना है। यह ठीक भी है क्योंकि 'मन्त्रार्थं देवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि। वाच्यवाचक भावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः।' (शाक्तानन्द तरंगिणी) ॥ आचार्य भास्कर ने 'वरिवस्यारहस्यम्' में विभिन्न प्रकार के ऐक्यों, अभेदों, ऐकात्म्यों एवं अभिन्नताओं का तर्कानुप्राणित प्रतिपादन किया है जो निम्न हैं।

शाक्त द्वैतवाद का प्रायोगिक पक्ष—

१. मूलाधारादिक चक्रों एवं श्रीचक्र में एकात्मकता

सुषुम्ना के मूल में संस्थित अरुण सहस्रदल कमल में = त्रिपुराधिष्ठित त्रैलोक्यमोहन चक्र, वह्नि के आधार चतुर्दल कमल में = त्रिपुरेशी से अधिष्ठित सर्वाशापरिपूरण चक्र, शाक्त स्वाधिष्ठानस्थित षडदल कमल में = त्रिपुरसुन्दर्य-धिष्ठित सर्वसंक्षोभण चक्र, नाभि में स्थित दशदल कमल में = त्रिपुरवासिनी से अधिष्ठित सर्वसौभाग्यदायक चक्र, अनाहत के द्वादशदल कमल में = त्रिपुरा-श्रीसमधिष्ठित सर्वार्थसाधक चक्र, विशुद्धचक्र के षोडशदलकमल में = त्रिपुरमालिनी से अधिष्ठित सर्वरक्षाकर चक्र, तालुमूल में स्थित लम्बिकाग्र के अष्टदल कमल में = त्रिपुरासिद्धि से अधिष्ठित सर्वरोगहर चक्र, भ्रूमध्य में स्थित द्विदलकमल में = त्रिपुराम्बिका से अधिष्ठित सर्वसिद्धिप्रदचक्र, ललाट में स्थित इन्दु में—बिन्दु में—महात्रिपुरसुन्दरी से अधिष्ठित सर्वानन्दमय चक्र की भावना करनी चाहिए ॥[1] 'योगिनीहृदय' में इसे इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है—

> अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत्।
> चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम् ॥[2]

२. चक्र एवं देवी में एकात्मता—

योगिनीहृदय में इस एकात्मता को इस प्रकार पुष्ट किया गया है—

> 'यदा सा परमाशक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
> स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः ॥[3]

अर्थात् जब भगवती स्वेच्छावश स्वनिष्ठा स्फुरत्ता को देखती है तभी विश्वाभिन्न त्रिकोणादिचक्रों की उत्पत्ति हो जाती है। ('सा देवी स्वेच्छया स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादिचक्रस्य संभव उत्पत्तिर्भवतीत्यर्थः ॥'[4]

३. पीठ एवं पञ्चभूतों में एकात्मता—

'पीठ'—क्रमशः क्षिति-पवन-जल-अग्नि मण्डल रूप है—

१-२. अमृतानन्दनाथ—योगिनीहृदय 'दीपिका' (मन्त्रसंकेत : श्लोक ८,९)
३. योगिनीहृदय (चक्रसंकेत श्लो० ९) ४. भास्कराचार्य—'सेतुबन्ध'

पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः ।
कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तूड्डियानकः ।।४५।।

१०३. विधानशश्चित्रान कुर्वीत क.

१०४. यह श्लोकार्ध भस्त्रिका, भ्रामरी इत्यादि श्लोकार्ध के बाद मिलता है ख., कुंभकाभ्यासर्वचित्र्यात् वायुसिध्दि थ.

१०५. यह वाक्य क. ख. ग. प. फ. पुस्तको में नहीं मिलते है ।

१०६. तथाषीत्कारशीतली क., तथा सीत्कारशितली ख. थ., तथाशीत्कार शीतली ग. घ., तथा सीत्कारशीतली प.

१०७. सहिताचाष्टकुम्भकाः क., केवलश्चष्टकुम्भकाः ख. घ. प., पत्य-हीत्यष्ट कुम्भकाः ग.

Scanned with CamScanner

[पूरक अन्ते तु जालन्धर-अभिधः बन्धः कर्तव्यः, कुम्भक अन्ते (तथा) रेचक आदौ तु उड्डियानकः कर्तव्यः ।]

४५. पूरक के अन्त में जालन्धर नामक बन्ध करना चाहिये । और कुम्भक के अन्त तथा रेचक के आरम्भ में उड्डियान बन्ध करना चाहिये ।

टिप्पणी – उड्डियान एवं जालन्धरबन्ध के विवरण के लिये देखें क्रमशः ३:५६ तथा ३:६९। यहाँ उड्डियानक का अर्थ सम्भवतः उदर के अधोभाग को अन्दर दबाने से है जिसका अभ्यास आभ्यन्तर कुम्भक के अन्त में रेचक आरम्भ करने के साथ-साथ करना चाहिये। और उसके बाद यथावत् रखना चाहिये ।

अधस्तात्कुञ्चनेनाशु[१०८] कण्ठसंकोचने कृते ।
मध्ये पश्चिमतानेन[१०९] स्यात् प्राणो ब्रह्मनाडिगः[११०] ।।४६।।

[कण्ठसङ्कोचने कृते, अधस्तात आशु कुञ्चनेन, मध्ये पश्चिमतानेन प्राणः ब्रह्मनाडिगः स्यात् ।]

४६. जालन्धरबन्ध के बाद नीचे के प्रदेश (गुदा) का शीघ्रता से आकुञ्चन (मूलबन्ध) होने से तथा मध्यभाग (उदर) को पीछे की ओर दबाने से (उड्डियान करने पर) प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है ।

टिप्पणी – मूलबन्ध के लिए देखें ३:६० ।

अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य प्राणं कण्ठादधो नयेत् ।
योगी[१११] जराविमुक्तः सन्[११२] षोडशाब्दवया भवेत्[११३] ।।४७।।

[अपानम् ऊर्ध्वम् उत्थाप्य प्राणं कण्ठात् अधः नयेत्, योगी जरा विमुक्तः सन् षोडशाब्दवया भवेत् ।]

१०८. अन्तस्त्वाकुञ्चनेनाशु घ.

१०९. मध्यपश्चिमतानेन क. घ.

११०. मध्यनाडि क. घ. प.

१११. रोगी ग., यागी छ. ज.,

११२. विमुक्तश्च प. ग.

११३. षोडशो वयसाभवेत् ग., वयो भवेत् क. ख. ग. य. र.

Scanned with CamScanner

४७. अपान (वायु) को ऊपर उठाकर प्राण (वायु) को कण्ठ से नीचे ले जाना चाहिये । इससे योगसाधक बुढ़ापा से मुक्त हो सोलह वर्ष के युवक के समान हो जाता है ।

टिप्पणी – जालन्धरबन्ध की अवस्था में जब साधक कुम्भक करता है, तब वह कण्ठ से नीचे कोई चीज उतरती हुई जैसी अनुभव करता है । इस सन्दर्भ में यह 'प्राण' कहा गया है तथा मूलबन्ध के द्वारा जो ऊपर जाता हुआ जैसा अनुभव किया जाता है वह अपान कहा गया है। मूलबन्ध के द्वारा 'अपान' का अनुभव होता है । अतः योगसाधकों को इन दोनों अनुभवों का एकीकरण करना चाहिये ।

Scanned by CamS

२. <u>उन्मना</u> की क्रमिक स्थिति क्या है?

उन्मना की आरोह क्रमानुसार इस प्रकार स्थिति है।

'मूलाधार चक्र' 'स्वाधिष्ठान चक्र' 'मणिपूरक' १. चक्र—अनाहत चक्र—विशुद्ध चक्र—'आज्ञाचक्र' के ऊपर 'सहस्रार चक्र' और सहस्रार चक्र के ऊपर स्थिति इस प्रकार है—

बिन्दु—अर्धचन्द्र—रोधिनी—नाद—नादान्त—शक्ति—व्यापिका—समना—उन्मना।

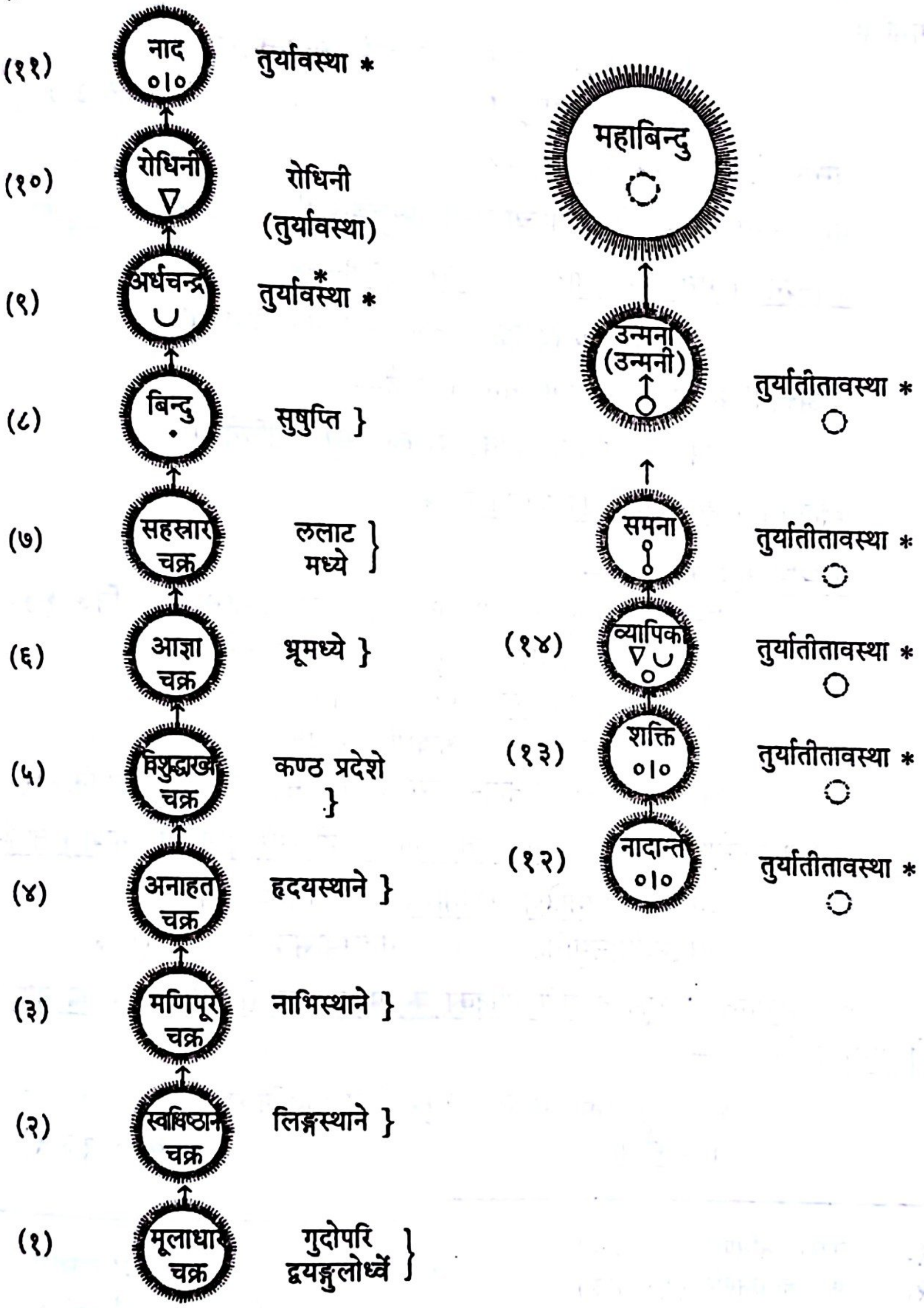

Scanned by CamS

07:28

प्रसाद माहात्म्य स्थलम्

सदा गुरु, लिङ्.ग एवं जंगम की पूजा से जब महेश्वर प्रसन्न हो जाते हैं, तो उनकी यह प्रसन्नता {प्रसाद} घोर संसारताप का निवारण कर देती है। समस्त यज्ञ-जप-तप आदि क्रियाकलाप इसी प्रसाद के निमित्त होते हैं। ब्रह्मादि समस्त देवगण शिव के इसी प्रसाद से कृतकृत्य होते हैं ।

प्राणलिङ्.गी स्थलम्

इस स्थल का ज्ञान योगयुक्त होकर के ही सम्भव है। प्राण और अपान की गति का संयमन करके ही यह प्राणलिङ्.ग बोधगम्य हो पाता है। अन्तः स्थित यह प्राणलिङ्.ग ज्योतिस्वरूप शिवात्मक ही है। चन्द्र और सूर्य नाड़ी जहाँ लय को प्राप्त हो जाती हैं, वहीं सुषुम्ना नाड़ी का उदय होता है। सूक्ष्म नाड़ी में प्राण-लिङ्.ग का संचार होता है। योगाभ्यास के द्वारा जो साधक उस प्राणलिङ्.ग की साधना करता है, वही "प्राणलिङ्.गी" कहलाता है। वह प्राणलिङ्.गी बाह्य वस्तु से पराङ्.मुख होकर सदा अन्तः स्थित संविल्लिंग की ही साधना करता है ।[1]

प्राणलिङ्.गार्चन स्थल

अन्तः स्थित चिदाकार शिवमय लिंग का जो साधक अपने भाव पुष्पों के द्वारा अर्चन करता है, वह प्राणलिङ्.गार्चन कहलाता है ।[2] क्षमा, विवेक, सत्य, वैराग्य, समाधि, निरहंकार, श्रद्धा, ज्ञान, मौन एवं विषयभ्रान्तिराहित्य इत्यादि ये सभी भावनामय पूजनोपचार हैं। इन्हीं के द्वारा वह साधक प्राणलिङ्.गार्चन करता है ।

---

1. सिद्धान्त शिखामणि, 12/10.
2. वही, 12/13.

शिवयोगसमाधि स्थल

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

13:44

या नादानुसंधानाचे वर्णन पुढीलप्रमाणे –

झणझण करिती कर्ण अजुनिया, कुणी वाजविली तारी ?॥धृ॥

नेत्र मिटवुनी एकांती मी। बसलो सहज समाधी स्थिती मी।

झकझक पडला प्रकाश हृदयी, सुधबुध हरली सारी ॥१॥

मधुर मधुर चिपळीची टाळी। रुणझुण घागरियांची कहाळी।

डोलु लागले हृदय उल्हासे, ऐकुनिया ललकारी ॥२॥

'सोहं' 'सोहं' शब्द उमटले। गगन भेदुनि गुंजारले।

तुकड्यादास म्हणे गुरुदेवा। बलिहारी ! बलिहारी !! ॥३॥[२५]

उपरोक्त भजनामध्ये तु. महाराज म्हणतात की, माझे कान अजूनपर्यंत झणझण करीत आहे इतकी सुंदर तारी कुणी वाजविली आहे? असा प्रश्न विचारुन पुढे या नादानुसंधानाचे वर्णन करतांना तु. महाराज म्हणतात, मी नेत्र मिटवून एकांतात बसलो असता मला सहज

समाधी स्थिती लागली माझ्या हृदयात लख्ख असा प्रकाश पडला, माझे सर्व भान हरपले. याचवेळी मला मधुर अशी चिपळीची टाळी आणि घागरियाची रुणझूणही ऐकायला आली, ललकारी ऐकली आणि माझे हृदय उल्हासाने डोलू लागले. माझ्या कानी 'सोहं' 'सोहं' असे शब्द उमटले ते शब्द गगन भेदून गुंजारत आहेत म्हणून हे गुरुदेवा ! तू मला साह्य कर अशी तु. महाराज गुरुदेवाला विनवणी करतात.

'हठप्रदीपिका' या ग्रंथात वर्णन केलेल्या नादानुसंधानाच्या विविध अवस्थांमध्ये स्वामी स्वात्माराम यांनी वर्णन केलेली स्थिती तु. महाराजांनीसुद्धा एकांतात ध्यानस्थ बसल्यानंतर अनुभवली होती हे वरील भजनावरुन निदर्शनास येते. आणखी एका भजनात नादानुसंधानाचे वर्णन करतांना म्हणतात.

शंख मृदंग घंटा वाजे। तेथे भ्रमर गुंफा साजे। तया गुंफेस नऊ दरवाजे।

चालली होरी। ना होईल गुरुविण खात्री ॥५॥[२६]

तु. महाराज म्हणतात की, सतत शंख, मृदंग, घंटा यांचा नाद कानावर पडतो आहे. त्याचबरोबर भ्रमर ज्याप्रमाणे गुंजारव करतो असा या शरीर रुपी गुहेत भ्रमराचा गुंजारव होतो आहे. त्या गुहेस म्हणजेच शरीराला नऊ दरवाजे आहेत आणि त्यात हा भ्रमर नाद अधिकाधिक खोलवर जातो आहे. परंतु वास्तविक अनुभवाची खात्री मात्र गुरुशिवाय होऊ

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

अनुभूती घेत त्याला आतपर्यंत खेचावे म्हणजे सोहं ध्वनीशी एकरुपता साधावी असाच अर्थ तु. महाराजांना अपेक्षित असावा. सोहं च्या माध्यमातून मूलाधार आणि मणिपूरचे जागरण केल्या नंतरच आपल्याला इतर गुढ रहस्यांची उकल होईल असे तु. महाराज म्हणतात.

कुंडलिनीच्या जागरणापासूनचा ब्रह्मरंध्रापर्यंतचा प्रवास सुद्धा त्यांनी विधिसहीत एका भजनामध्ये उलगडला आहे त्याचा संदर्भ देणे याठिकाणी आवश्यकच आहे. तु. महाराज म्हणतात की,

चाहता है विहंगम रे। तुझे मै आज बतलाऊँ ॥ टेक. ॥

बन्द कर मूलधारा को, पवन उलटी चलाओ रे।

जगा ले फेर कुण्डलनी, उठाकर नागनी लाऊँ ॥१॥

मणीपूर के ही पश्चिमसे , चढो तुम मेरु पर्वत पर।

द्वार लगता जहाँ जसवाँ, सुरत अमृत में लाओ रे।

बरसते रातदिन तारे, ज्योत जगमग तहाँ पाऊँ ॥३॥

कोटि सुरज भी झक मारे, और तन-मन सुधी हारे।

कहे तुकड्या वहाँ जा रे। सदा सद्गुरुकी कृपा न्हाऊँ ॥४॥[३७]

सदर भजनामध्ये विहंगम योग साध्य करण्याचा मार्ग सांगितला आहे. ते म्हणतात आधी मूलाधाराला बंद करुन प्राण वर चढवावा म्हणजेच पवन उलटा चालविण्यास सांगितला आहे. त्यानंतर कुंडलिनी रुपी नागीणीला जागृत करुन मणिपूर चक्राकडे नेण्याचा प्रयत्न कर. मणिपूर चक्रापासून पश्चिमेच्या मार्गाने मेरुदंडाच्या मार्गाने वरच्या दिशेने मार्गक्रमण कर या वरच्या दिशेच्या मार्गक्रमणाला तु. महाराजांनी मेरु पर्वत असे संबोधले आहे. या मेरु शिखरावर दहावे द्वार आहे त्याठिकाणी त्या नागिणीला हळूहळू नेऊन स्थिरावण्याचा प्रयत्न करावा. आपल्या शरीराला दोन डोळे, दोन नाक, दोन कान, एक मुख, मुत्रेंद्रिय आणि गुदा असे एकूण नऊ द्वार आहेत आणि दहाव्या क्रमांकाचे द्वार म्हणजे ब्रह्मरंध्र

अजपा -

वृत्तीला अंतर्मुखी करण्यासाठी तु. महाराजांनी 'अजपा' साधनाचे वर्णन केले. अजपा कसा साध्य करावा? आणि त्याचे परिणाम वर्णन करतांना पुढील भजनात तु. महाराज म्हणतात-

ऐक उद्धवा। तुला सांगतो खुणचि अजपाची।
लागे जेणे सहज समाधी, सत्य जाण साची ।।धृ.।।
भ्रुकुटिस्थानी महेश वसती 'सोहं' तया म्हणती।
नाभिकमली जीवापासुनी 'हं' शब्दची निघती ।।
म्हणती हो उच्छवास जयाला त्यातचि हंकार।
कंठी येऊनि निघे सत्वरी सोहं उच्चार ।।१।।
श्वास खेचता 'सो' ये कंठी, नाभी मुक्कामी।
उठते गदगद 'हं' अक्षर ते मणिपूराहूनी ।।
ऐसा चाले 'सोहं-हंसा' चोविसही तास।
जप होतो एकविस हजार सहाशे सावकाश ।।२।।
सत्य टाकूनी लोक पूजिती असत्य पाषाण।
विशुद्ध 'ओहं-सोहं' त्यांनी दिधला टाकून।
पुऱ्या मातृका बावन फिरती, घेऊनिया त्यास।

तुकड्या सांगे, सत्य मंत्र हा, तारि जाणत्यास ।।३।।[६२]

अर्थात हे उद्धवा! तू आता ऐक मी तुला अजपा करण्याची विधी सांगतो आहे जे साधन केल्याने सहज समाधी लागते आणि सत्य कळून येते. याठिकाणी उद्धवा हे संबोधन तु. महाराजांनी अजपा करु इच्छिणाऱ्या साधकासाठी वापरलेले दिसून येते. अजपाची विधी सांगतांना तु. महाराज म्हणतात की, भ्रुकुटिच्या ठिकाणी महेशाचा वास आहे त्याला सोहं म्हणतात. नाभिकमलाच्या ठिकाणी जीवात्म्यापासून 'हं' शब्द निघतो त्याला उच्छवास म्हणतात. त्यातच हंकार आहे. हा 'हं' कार कंठापर्यंत आला की 'सोहं' उच्चार निघतो. श्वास वर खेचला की 'सो' चा प्रवास कंठाकडून नाभीकडे येतो, गदगद होऊन मणिपूर चक्रापासून हं अक्षर उमटते. अशाप्रकारे सोहं हंसा जप चोविस तासात एकविस हजार सहाशे वेळा सावकाशपणे होतो. लोक हे सत्य टाकून असत्य अशा पाषाणाचे पूजन करतात आणि विशुद्ध ओहं-सोहं याला बाजूला सारतात. सोहं जपाने सहस्त्रार चक्रावरील ५२ मात्रा या सोहं च्या जपाने फिरायला लागतात. तु. महाराज म्हणतात की, हाच सत्य मंत्र आहे हे ज्याने जाणले तो निश्चितच तरुन जातो. अशाप्रकारे याच मंत्राच्या जपाने शरीरातील सप्त चक्रेही जागृत होतात असे तु. महाराज म्हणतात -

दोन अक्षरांचा जप करुनी रत्ने सातहि पाही रे ।।[६३]

वृत्तीला अंतर्मुखी करण्यासाठी अजपा साधनाचे महत्व पटवून देतांना तु. महाराज आणखी एका भजनात म्हणतात -

वळवाया वृत्तीसी करी अजपा सखया पठन।
स्वस्थ बैस अंतरी, मुराया मानसपण गहन ।।धृ.।।
नको करु खटपटी, निश्चळी वृत्तीवरि राही।
परात्पराला मिळसी जाऊन, शंका नच काही ।।१।।
स्वानंदाचा तंबू ठोकूनि, धर आपुल्या स्थाना।

गर्नाका लागि बाह्यचारको भ्रम अनिवार्य रूपमा नष्ट भएको हुनुपर्छ। बाह्यचारको भ्रमको निवारण गुरु दत्त ज्ञानबाट मात्र हुँदछ भन्दै गुरु महिमा गाएका छन्। अभयानन्द लेख्छन् -

हेमन परमात्मा के चरण कलम रसपीवरे
कमल हृदयमे समरस होये
अलख नीरञ्जन शोहिरे
घट घट बोले सोहं सोहं
सब भित्तर वहीरे
लहरीमै समुई दुवा ॥[516]

अन्तस्करणको ज्योतिलाई सत्यको मार्गबाट प्रज्वलन गर्नुपर्दछ भन्दै अभयानन्द लेख्छन् -

सत्य मे जीमी अस्मान थामा
चन्द्र सुर्ये करत उजीयाला
सत्यमे तीन लोक जीना
भव सागर मे उतर पारा
सत्यकी वासा संतका
हृदयमे सब धर भये प्रकाश ॥[517]

निर्गुण निराकार परब्रह्ममा आस्था राख्ने साधकले परब्रह्मको विशुद्धि भावले उपासना गर्नलाई साधकको परमकर्तव्य मानिन्छ । अन्तर निहित ब्रह्म साक्षात्कार गर्नुलाई अभयानन्द मानव मात्रको परमकर्तव्य मान्दछन् -

मै नीराकारमे सुरथ भरोस्वमे
चटक नटक मे कछु नहि जानु
सास्त्र पडूमे जानु तीर्थ
सब तीर्थमै घटहिमे देखा ॥[518]

जोसमनी सन्त सम्प्रदायका अधिकांश भजनहरूमा वर्णित विषय एकै प्रकारका छन्। साङ्खीय आधारमा धेरै निर्गुण भजनहरू भए तापनि ती भजनको भाव वा सन्देश एकै प्रकारका रहेका देखिन्छन्।

---

[516] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत, पृ. १८५।
[517] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. १८८।
[518] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. १८५।

जी। अपना काज करो तुम आपे, रीता बासन भरना जी।४।६७। अमृत वेल ऊठ प्राणी, बोलो अमृत बानी रे। टेक। चित्तवृती रोके चिद्पद में, करले एक ठिकानी रे। निशदिन रहके निर्भय घरमें, पावो पद निर्बानी रे।१। परमति दुर्मति ममता मारे, पाय आत्मधन खानी रे। अक्ष अखण्ड अलख अविनाशी, तिसको लेह पछानी रे।२। सुन महासुन अभय सुन सें, अजर सुन अमरानी रे। अतुल सुन अनुभव घर वृत्ती, सत सुन करो समानी रे।३। ग्वाला बात ये अगम निगम की, है तो अकथ कहानी रे। चालो प्राणी तिस घर पलमें, पीवो अमीरस पानी रे।४।६८। ऊठिये मन प्रातःकाल, प्राणायाम कीजिये। गुरुके नाम प्राण मेल, प्रेमरस पीजिये। टेक। वृत्ति सें विवेक कर, नृती प्रभु धरीजिये। श्रुति शब्द सें मिलाय, अखण्ड आनन्द लीजिये।१। आसन सिद्ध लगायके, पूरक को खिंचीजिये। कुम्भक का आनन्द लेह, रेचक शब्द समीजिये।२। अपान प्राण को मिला, अनहद शब्द सुनीजिये। रसना ब्रह्मरन्ध्रलाय, अमीरस छकीजिये।३। सुषुम्ना से प्राण लेह, भंवरगुफा भजीजिये। गगन मण्डल घोर सुन, ज्ञान पा गजीजिये।४। ग्वाला सुन का ले स्वाद, दसमें दम दमीजिये। तांसे आगे अमर घर सो, पाय युगांयुग जीजिये।५।६९। पिण्ड खोज ब्रह्माण्ड, देखिये सु पिण्ड रे। ऊठिये गाफ़ल अबहीं, सोईया निगन्ड रे। टेक। चतुरखानी जेती है जु, एक एक खण्ड रे। अनन्त खण्ड तैसे जान, एकही अखण्ड रे।१। बिगल बाजे भेर तुरीया, सुनहो घड़ी घिण्ड रे। गिरि नदी

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 242)

20:31
INTERNET ARCHIVE

...र्भ अग्नि मां जंहिं त बचाए, अंदरि दिनो आहारु बंदा।
...ाहिरि खीर मिठायूं मेवा, अनु धनु दिनो अपारु बंदा॥
...ौरासी लख जूणियुनि जो हरि, तोहि कयो सरदारु बंदा।
तुंहिंजे शैर करण लाइ ठाहियो, सारो हीउ संसारु बंदा॥
४.प्रेमु पदार्थु तोहि दिनाईं, शक्ति सतिं वीचारु बंदा।
"बसन्त" कीन भुलाइजि तंहिंखे, प्रभुअ सां करि पियारु बंदा॥

(रागु प्रभाती भजनु-3)

थलु-अमृत वेले उथी सवेले, सिमरण जो करि सायो।
१. शुद्ध आसण ते आसणु मारे, मुद्रा ज्ञानु बणायो।
इन्द्रियुनि खे विषयुनि खां मोड़े, अंतरि मुखि उलिटायो॥
२. चंद्र चकोर जींअ गुर मूर्त में, नैने निरति मिलायो।
तनमन जी सभु सुरति भुलाए, अखण्डु ध्यानु लगायो॥
३. प्राणायामु सिखी सत्गुर खां, गगने प्राणु चढ़ायो।
सोहम् शब्दु जपे सुवासन सां, त्रिभणा जोति जगायो॥
४. भंवर गुफ़ा में बीन बजे थी, तंहिंमें सुरति समायो।
दसवें दर जी खिड़की खोले, आत्मु दर्शनु पायो॥
५. "बसन्त" धरनि आकासु न जाते, सोई देसु वसायो।
पूरणु आनन्दु उतहीं पाए, आवागमनु मिटायो॥

41 of 79
Favorite Share Flag
Basant Bhajnavali
Topics Basant Bhajnavali
Collection booksbylanguage_hindi;

20:34
INTERNET ARCHIVE

खाकि राजा राजु प्रिजा, खाकि कुलु परिवारु आहि॥
खाकि गहिणा वस्त्र सुहिणा, खाकि तन सींगारु आहि।
खाकि मोटर महल माड़ियूं, खाकि रथ हसवारु आहि॥
४. खाकि गुल फुल बाग बुलिबुलि, खाकि 'बसन्त' बहारु आहि।
खाकि में ओताक जंहिंजी, सो सचो करितारु आहि॥

(रागु – आशा भजनु – 27)

तर्ज़ – सिक में आहिनि फायदा ....

थलु-जोगु जी करि साधना तूं, जोगु जोगी थी कमाइ :
भोग रोगी था बणाइनि, भोग में मन ना लगाइ॥
१. छोड़ि आशा धारि धीरजु, शील सत जत खे वधाइ।
नामु जपि आराधना करि, साफु पंहिंजी दिल बणाइ॥
२. दृढ़ आसण खे करे तूं, वेहु सूधो जा बजाइ।
रोकि युक्तिअ सां प्राणनि खे, अपाननि में मिलाइ॥
३. जीत इन्द्रियूं वेगु मन जो प्रीति विषयुनि सां न पाइ।
धारणा करि आत्मा जी, धियानु आतम जो पचाइ॥
४. "बसन्त" फुरना फिकर जेके जोगु जुगितीअ सां जलाइ।
सुनु मण्डल में सहिज सुख जो, सुरति खें तंहिमें समाइ॥

(रागु आशा भजनु – 28)

तर्ज़ – सिक में आहिनि फायदा ....

थलु थो करियां मां वेनती सुणु, हे पिता परमात्मा।
दानु दाता थो मंगा दे, प्यार सां सर्वात्मा॥

48 of 79
Favorite Share Flag
Basant Bhajnavali
Topics Basant Bhajnavali
Collection booksbylanguage_hindi;

20:37
INTERNET ARCHIVE

जानिब जदि॒ड़ी जिंदु ज़ियारे, दिल जा दर्द निवारि तूं॥
४. "बसन्तु" भावीअ साणु पुकारे, दर्शनु दे॒ तूं प्रीतम पियारे।
सांवल पंहिंजो बिरुदु संभारे, घायल सां गदु घारि तूं॥

(रागु पीलो भज॒नु -57)

तर्ज़ - पीउवे डोलिया पीउ ....

थलु - सोरि तूं मनड़ा सोरि, हीअ श्वास जी माला सोरि।
१. श्वास में सतिगुरु शब्दु मिलाए,
तंहिं में चित्त जी वृत्ति लगा॒ए, ध्यान जी पाए दो॒रि।
२. श्वासु अमोलकु माणिकु मोती, जंहिंमें आहे नाम जी जोति।
जोतीअ सां जीउ जोड़-सोर तूं॥
३. मूल कंवल खां श्वासु हले थो,
दसवें द्वारे जाइ मिले थो, ओर इन्हीअ में ओरि।
४. श्वास जी माला जिनि जिनि सोरी,
"बसन्त" तिनि खे हरदमु होरी, तूं भी चित सां चोरि।

(रागु पीलो भज॒नु - 58)

तर्ज़ - पीउवे डोलिया पीउ ....

थलु -सहु वे जीअड़ा सहु, तूं सुखु दु:खु सिर ते सहु।
१. सुखु दु:खु कर्मनि जो फलु आहे,
कसूरु कोई कंहिंजो नाहे, छुली न बे॒ खे चउ।
२. जेकी थियणो आहि सो थींदो,
रुअण सां हथि कुछु ना ईंदो, रजा ते राजी रहु।

57 of 79
Favorite Share Flag
Basant Bhajnavali
Topics Basant Bhajnavali
Collection booksbylanguage_hindi;

निश्चल सीधा बैठके, भद्रा मुद्रा बांध ।
बसन्त प्राणायाम कर, मन की छोड़ उपाध ।२८
बसन्त गुरु से सीख के, कीजे प्राणायाम ।
पूरक कुम्भक रेचको, करलो शुद्ध तमाम ।२९।
पद्म सिद्धासन बांध के, बसन्त थिर कर देह ।
बांये पुट से श्वास को खींच हृदय भर लेह ।३०
भरने को पूरक कहे, बसन्त मुनिवर राव ।
ताहि प्राण को थिर करन, कुम्भक है सत् भाव ।
दहिने पुट से प्राण वह, धीरे धीरे त्याग ।
तांको रेचक कहत है, बसन्त सन्त सुजाग ।३२
त्याग करो जिस द्वार से, उससे हो फिर लेह ।
कुम्भक कर रेचक करो, प्राणायाम है एह ।३३।
रोग घटे आयू बढ़े, ब्रह्मचर्य थिर होय ।
बसन्त पावन इन्द्रिय हो, प्राणायाम से जोय ।३४
प्राणायाम से तेज हो, जठराग्नि दिन रैन ।

चंचल मन निश्चल करे, योगी पावत चैन ।३५।
मूलबन्ध उडियान बन्ध, जालन्धर कर बन्ध ।
तीनों प्राणायाम कर, बसन्त हर दुःख द्वन्द ।३६
बसन्त गुरु के मन्त्र से, कीजे प्राणायाम ।
श्रुति नृति थिर वृत्ति कर, पाय अन्तर आराम ।
श्रुति शब्द पुनि श्वास ये, जब तक एक न होय ।
बसन्त तब तक नियम से, करत रहो तुम सोय ।
बसन्त सोऽहं मंत्र नित, चलत श्वास के माहिं ।
केवल श्रुति मिलाय के, निशदिन सुमरो ताहिं ।
प्राण मूल सें उठ के, जावत दसवें द्वार ।
तांसे मन को मेल के, स्मरण कर हर बार ।४०।
स्वल्प प्राणायाम का, बसन्त कोन बयान ।
अब लक्षण प्रत्याहार का, सुनो सजन दे कान ।
पांच विषय का इन्द्रिय से, संबंध है दिन रात ।
बसन्त तांते भोगतो, इन्द्रिय विषय को तात ।४२

बसन्त सगुण समाधि सो, भाखत मुनिवर लोय ।५०

मन के एकाग्र किये, रिद्धि सिद्धि बहुती आय ।
बसन्त तांको छोड़ के, निर्गुण समाधि लगाय ।५१

ध्याता लय हो ध्यान में, ध्यान ध्येय में लीन ।
ध्येय रहे अन ना रहे, निर्गुण समाधि चीन ।५२।

आठ अंग ये योग के, कछुक कहे उर धार ।
ध्यान धारणा समाधि का, करहूं फिर विस्तार ।

मूलबन्ध कर मूल में, दृढ़ सिद्धासन बांध ।
गणपति का धर ध्यान तहं, सर्व विघ्न हो बाध ।

बसन्त निशदिन ध्यान धर, नाभि कमल के माहिं ।
वहां रहत भगवान हरि, दर्शन कीजे ताहिं ।५५।

बसन्त हृदय वास कर, शंकर खेलत खेल ।
नाद अनाहत बाजता, तासें मन को मेल ।५६।

बसन्त हृदय कमल ज्यों, नीचे मुख है जास ।
विकसत जाग्रत स्वप्न में, सुषुप्ति निस्पन्द तास ।

सुन बादर सी गरजना, बसन्त तंह कर बास ।६५
भंवर गुफा में बीन सी, सुन धुनि मन कर शांति ।
बसन्त तामें देख तुम, पूर्ण सूर्य क्रान्ति ।६६।
रिणु झिणु हो ऋणु कार में बाजत नाद अनन्त ।
बसन्त सुनकर प्रेम से, होत मगन मन सन्त ।६७
शून्य सकड़ में शून्य है, होय तहां मन शांति ।
बसन्त आनन्द आवहि, बिन फुरने बिन भ्रांति ।
बसन्त द्वारे दसम में, राजत आतम देव ।
सोऽहं से मन मेल के, पाओ तिसका भेव ।६९
बसन्त सत्य स्थान में, सत्य ब्रह्म का वास ।
भासहि तहां न रैन दिन, चंद्र सूर्य प्रकाश ।७०
बसन्त चेतन देव में, श्रुति किया प्रवेश ।
पूर्ण आनन्द पाइया, भूले देश अशेश ।७१।
देश जहां तंह काल है, काल जहां तंह देश ।
बसन्त नहिं चिदरूप में, देश काल का लेश ।७२

बसन्त गुरु के नाम बिन, मुक्त न पावत कोय ।४०।
अनन्त स्वरूप ब्रह्म है अनंत उसके नाम ।
बसन्त जो गुरु देहि सो नाम जपो सुख धाम ।४१।
सतगुरु नाम जहाज है, पार करत भव सिन्धु ।
बसन्त सिमरे नाम को, पाओ परमानन्द ।४२।
बसन्त गुरु का नाम जप, भेद भर्म कर दूर ।
पाप ताप संताप सब, हो जावहिं काफूर ।४३।
बसन्त सतगुरु नाम जप, अर्थ सहित हरबार ।
तीनों पढ़दा तोड़ के, देखो निज दीदार ।४४।
बसन्त गफलत छोड़कर, बिन रसना रट नाम ।
मन में ओऽम् नाम जप, स्वासे सोऽहम् नाम ।४५।
बसन्त सोऽहं नाम जप, स्वास स्वास के माहिं ।
सो मैं पूर्ण ब्रह्म हूं, यह कब भूलो नाहिं ।४६।
ओऽम् में सब मंत्र हैं, ओऽम् सोऽहं माहिं ।
तांते सोऽहम् नाम जप, बसन्त भटकत क.हिं ।४७

स्वासा सोऽहं जपत है, बसन्त दिन अरु रात ।
माया से मन मोड़ के ध्यान धरो तुम तात ।४८।
निशि दिन सोऽहं नाम जप, सफल करो निज स्वास
बसन्त सोऽहं जाप बिन, मिटहिं न जम की त्रास ।।
ओऽम् का नित ध्यान धर, ओऽम् का कर जाप ।
बसन्त ओऽम् की लक्ष लखि, जानो अपना आप ५०
सहस द्वादस वार जो, जपत ओऽम् दिन रैन ।
सो योगी पावत सदा, बसन्त ब्रह्म सुख ऐन ।५१।
बसन्त जो जन प्रेम से, नाम जपत मन जीत ।
पावत सो नर परम पद, यह मन राख प्रतीत ।५२
बसन्त प्रीत प्रतीत से, करो नाम का जाप ।
मैला मन ऊजल करो, जानो अपना आप ।५३।
बिना भजन भगवान के, मन निर्मल ना होत ।
बसन्त निर्मल मन बिना, ज्ञान न होत उद्योत ।५४
मैला मन तब जानिये, जब मन भोगन आश ।

पुनि नयनों की नींद तज, स्मरो सत् करतार ।७।
बहुत जन्म सोते गये, अब तो निन्द्रा त्याग ।
बसन्त जप हरि नाम को, मन में धरि अनुराग ।८।
सोय बिताये जन्म बहु, जागे जन्म न एक ।
बसन्त किया न कर्म शुभ, नहिं ली हरि की टेक ।६।
बसन्त जागी भजन कर, रहत सदा क्यों सोय ।
सोते आयू आपनी, दयी अमोलक खोय ।१०।
बसन्त निन्द्रा नयन की, त्यागे प्रात जाग ।
स्मरन कर गुरु शब्द का, तज विषयों का राग ।११।
बसन्त अमृत वेल में, आलस्य कर मत सोय ।
जागो हरि का नाम जप, मैल पाप को धोय ।१२।
बसन्त प्रातःकाल उठ, धरि मन गुरु का ध्यान ।
सोऽहं अजरा जाप जप, पावो पद निर्बान ।१३।
बसन्त अमृत वेल में, अमृत बरसे नीत ।
जागी उठ सो पीजिये, सोय रहो मत मीत ।१४।

21:00

Basant Vigyan Mala ...
archive.org

साधू संग समजगत में, दाता और न जान।
बसन्त भक्ति ज्ञान दे, हरत शोक अज्ञान ।१२।
साधू सम को जगत में, बसन्त नाँहि दलाल ।
ताड़ो बोध लगाय के, मेले दीन दयाल ।१३।
साधू संग है जगत में, बसन्त सम सोनार ।
टूटा मेले राम से, वे दे निज गुन सार ।१४।
बसन्त सर सम सन्त जन, पर उपकारी जान ।
तृष्णा प्यास बुझाय के, शान्ती देत महान ।१५।
बसन्त साधू वृक्ष सम, दया छाय जिह माँहि ।
अपने शिर पर कष्ट सह, सुख फल दे सब काँहि ।१६
साधू संग है मेघ सम, वचन बून्द बरसाय ।
मन धरती शीतल करे, बसन्त तपत बुझाय ।१७।
बसन्त देखा खोज कर, निज अनुभव के माँहि ।
सन्तन सम को जगतमें, पर उपकारी नाँहि ।१८।

(1 of 65)

Favorite Share Flag

Basant Vigyan Mala (2)

Topics Basant Vigyan Mala (2)
Collection booksbylanguage_hindi; booksbylanguage
Language Hindi
Item Size 115.8M

Basant Vigyan Mala (2)

21:12

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

।। राग रामकली भजन ।। ३ ।। १५।।

सोवत जागत नाम जपीजे, गुरु चरने चित्त दीजे रे ।। टेक।।
पहला साधन कर गुरु मूरत का अन्त:करण मलीजे रे।
विषयां त्याग होय वैरागी पावन पाठ पढ़ीजे रे ।।१।।
दूजा साधन कर गुरु के वचने ज्ञान गगन में कीजे रे।
सत् असत् का कर वीचारा सार उसी से लीजे रे ।।२।।
तीजा साधन कर गुरु दीपक का तामें ध्यान धरीजे रे।
शम दम श्रद्धा समाधान से इन्द्रियां दमन करीजे रे ।।३।।
चौथा साधन कर गुरु कुदरत का किसको नाहिं कहीजे रे।
ब्रह्म प्रापति बन्ध हानि कर ऐसा मोक्ष गहीजे रे ।।४।।
कहता टेऊँ तीन लोक में निर्भय होय रहीजे रे।
अकड़ कला में अमृत बरसे अमर प्याला पीजे रे ।।५।।

।। राग रामकली भजन ।। ४ ।। १६।।

अमृत वेले ऊठ जिज्ञासू, फेर श्वास की माला रे।। टेक।।
सद्गुरु के मूरत का मन में धरिये ध्यान विशाला रे।
गुरु मन्त्र में सुरति समाओ जग से होय निराला रे।।१।।
नाभ कमल से प्राण उठाये दसम द्वार कर आला रे।
नाद अनाहत बाजत ताहीं सुनिये शब्द रसाला रे।।२।।
नाड़ि कुण्डलिनी को जागाए खोलो अनुभव ताला रे।
कोटि रवी शशि आदि ज्योति का तहं प्रचण्ड उजियाला रे।।३।।
पाप ताप नहिं हर्ष शोक पुनि जहाँ न काल कराला रे।
कहे टेऊँ तहँ चलकर देखो आत्म पुरुष अकाला रे।।४।।

21:15

।। राग प्रभाती भजन ।। २१ ।। ५३।।

साध संगति में अमृत वर्षे, श्रद्धा से तुम पीजे रे ।।टेक।।
साध संगति में वचन सुधा की, साधू वर्षा करते हैं।
चल करके तहं उस अमृत को, पीकर युग युग जीजे रे ।।१।।
पांच भान्ति के अमृत कहिये, तामें चार तो नकली हैं।
पंचम अमृत जग में साचा, तिसका आनन्द लीजे रे ।।२।।
ब्रह्म ज्ञान का अमृत साचा, वेद मुनी बतलाते हैं।
उसी सुधा रस पीने से ही, जन्म मरण दुःख छीजे रे ।।३।।
जिन जिन ने यह अमृत पीया, सत्गुरु से ले पीया है।
कहे टेऊँ जे पीना चाहो, सत्गुरु शरण गहीजे रे ।।४।।

।। राग प्रभाती भजन ।। २२ ।। ५४।।

सोऽहम् सोऽहम् स्मरो साधो,सुरति लगाकर श्वासनि से।। टेक।।
ईड़ा पिंगला सुष्मन अन्दर, स्मरो गुरु का शब्द निरन्तर।
प्राण अपान की युक्ती लेकर,श्वास उठाओ नासनि से ।।१।।
सन्तों का यह गोप्य धन है, जिज्ञासुओं का यह जीवन है।
स्मरत तांको वे निशिदिन हैं, समझ पड़े इतिहासनि से ।।२।।
प्राण अपान की है यह भाषा, सब श्वासों में तांका वासा।
हृदय में सो करत प्रकाशा, समझे को अभ्यासिनि से ।।३।।
कहे टेऊँ जो सोऽहम् स्मरहिं, जन्म मरण दुख तांके निसरहिं।
निर्भय हो सो जग में विचरहिं,अमर लोक के वासिनि से।।४।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

।। राग विहाग भजन ।। १ ।। १५९।।

प्रेम प्याला सत्गुरु वाला, राम रसाला पीया जी भरके।। टेक।।
तन मन भेट धरा गुरु आगे, दुविधा दूर भेद सब भागे।
विषय वासना विष रस त्यागे,भया उजाला जीया जी मरके।।१।।
पीवत पंगु भया मन मेरा, भूल गया सब मेरा तेरा।
मिट गया सब काल का फेरा,खुल गया ताला पीया जी घर के।।२।।
जीव ईश की गयी उपाधी, हट गयी सब वाद विवादी।
लाई पूरण ब्रह्म समाधी, भया सुखाला सोऽहम् सुमरके ।।३।।
कहे टेऊँ इस काया भीतर, लागी वृत्ती आतम अन्तर।
ज्ञान नशे गुम हो मस्ती तर, भया निहाला नियाज़ करके ।।४।।

।। राग विहाग भजन ।। २ ।। १६०।।

प्रीति झूठी है जगत की, समुझ धारे देख सयाना।
साथ संगी ना चले को, है अकेला तोहि जाना ।। टेक।।
देख धन परिवार को तुम गर्व मन में बहु किया।
कहत हो सब हैं हमारे नाहिं तेरा को सुजाना ।।१।।
शाह सिकन्दर रहन खातिर जतन बहु जग में किये।
वह भी गये कर हाथ खाली ये टिकन का नहिं ठिकाना।।२।।
ऊठ जल्दी वणिज करले भाव भक्ती ज्ञान का।
ले न दे को तोहि आगे नहिं वहां है को दुकाना।।३।।
सन्त समझाते सदा तुम जाग अविद्या नींद से।
कहत टेऊँ जे चहो सुख तन मलिन का तज गुमाना।।४।।

।। राग विहाग भजन ।। ५ ।। १६३।।

सत्संग जग में सार प्यारे,सत्संग बिन नहिं हो निस्तारा।। टेक।।
सत्संग करके नीच सुधर गये, भवसागर से पार उतर गये।
नाम तिनी निरवार प्यारे, पाया है जिन पद निर्धारा ।।१।।
सत्संग सुरतरु गंग पछानो, कामधेनु चिंतामणि जानो।
कारज देत संवार प्यारे, पाप पुंज को कर परिहारा ।।२।।
सत्संग सूर्य सम प्रकाशत, ज्ञान किरणों से तिमिर विनाशत।
आनन्द देत अपार प्यारे, चन्दन चन्द ते शीतल भारा ।।३।।
कहता टेऊँ सत्संग करके, संत वचन को उर में धरके।
अपना करो उद्धार प्यारे, सत्संग है मुक्ती का द्वारा ।।४।।

।। राग विहाग भजन ।। ६ ।। १६४।।

सुमरण में धर ध्यान प्यारे, अन्तर्मुख हो वृत्ति लगाओ।। टेक।।
सुमरण कर घट में दिन राती, प्राणायाम से हो एकान्ती।
योग की युक्ती जान प्यारे,मूल कमल को खूब दबाओ।।१।।
नाभ कमल से श्वास उठाये, तामें सोऽहं शब्द मिलाये।
कर हृदय सावधान प्यारे, नाद अनाहत ताहिं बजाओ ।।२।।
कण्ठ कमल में कर वीचारा, पाओ सुषुम्न में सुख सारा।
त्रिकुटी में कर थान प्यारे, ज्योति निरंजन तहां जगाओ।।३।।
कहे टेऊँ गुरु युक्ति विचारे, गुरुमुख चलिये दशम द्वारे।
पाये पद निर्बान प्यारे, जन्म मरण का दूख मिटाओ।।४।।

05:54

॥ राग भैरवी भजन ॥ १३ ॥ २२८॥

सद्गुरु जैसा दाता दानी कोई और नहीं,
सद्गुरु जैसा ब्रह्मज्ञानी कोई और नहीं ॥टेक॥
और शाह सब कूड़ा काचा, साचा सद्गुरु दे धन साचा।
सद्गुरु जैसा शाह गुणखानी कोई और नहीं ॥१॥
सद्गुरु ऐसा ध्यान लगाता, देख इन्द्र तांको डर पाता।
सद्गुरु जैसा अविचल ध्यानी कोई और नहीं ॥२॥
सद्गुरु चढ़के ज्ञान विमाना, सैर करत बेगम स्थाना।
सद्गुरु जैसा जग सैलानी कोई और नहीं ॥३॥
सद्गुरु सोऽहं तीर चलाता, कहे टेऊँ मन मार गिराता।
सद्गुरु जैसा वीर विज्ञानी कोई और नहीं ॥४॥

॥ राग भैरवी भजन ॥ १४ ॥ २२९॥

बोलो प्रेम से प्यारे, बाणी राम की।
कभी भूलो ना उदारे, बाणी राम की ॥टेक॥
राम नाम की बाणी प्यारी, ध्रुव भक्त प्रह्लाद उचारी।
सब दुश्मन दूख विडारे, बाणी राम की ॥१॥
राम नाम की बाणी बोलो, भव सागर में कभी न डोलो।
तेरी लावे नाव किनारे, बाणी राम की ॥२॥
राम नाम की बाणी सुन्दर, धारो अपने हृदय अन्दर।
तेरे मन की मैल निवारे, बाणी राम की ॥३॥
राम नाम की अमृत बाणी, सर्व सुखों की है यह खाणी।
कहे टेऊँ विपदा टारे, बाणी राम की ॥४॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

।। राग तिलंग भजन ।। १ ।। ३६५।।

चलिये साधो देश अमर घर जनम मरण मिट जावत फेरा।। टेक।।
चरन कमल सद्गुरु का ध्याओ, मूल कमल से मूल बन्धाओ।
गुरु गणेश को तहां मनाओ, लिंग कमल अज जान बसेरा।।१।।
नाभ कमल से नाम चलाए, विश्व व्यापक विष्णू पाये।
हृदय में शिव शंख बजाए, सहज धुनी सुन सांझ सवेरा।।२।।
कण्ठ कमल सरस्वती प्यारी, वहाँ बिराजे हंस विचारी।
त्रिभणा के घर ज्योति उज्यारी, निरजन का नित हरो अन्धेरा।।३।।
इड़ा पिंगला सुषुम्न नाड़ी, भँवर गुफा सुन बीन सितारी।
सुन्न सकड़ में शान्ति अपारी, पीले प्याला अमृत केरा।।४।।
कहे टेऊँ कोई कला धारे, चलिया ऊपर दशमद्वारे।
दिन नहिं रजनी जहँ रिणूकारे, बिन भूमी पा ब्रह्म का डेरा।।५।।

।। राग तिलंग भजन ।। २ ।। ३६६।।

दिव्य रूप दर्शन, गुरां के निज़ारे।
देखा मेला कुम्भ का, गंगा के किनारे ।। टेक।।
योगी वैरागी, त्यागी बेरागी।
रागी अनुरागी, हरी हर पुकारे ।।१।।
संन्यासी उदासी, प्रेम प्रकाशी।
अकाशी बनवासी, नंगे थे हज़ारे ।।२।।
ब्रह्मचारी पुजारी, आर्य अचारी।
संसारी उदारी, करत बहु भण्डारे ।।३।।

06:01

।। राग कोह्यारी भजन ।। ८ ।। ४८८।।

सत्गुरु मेरा अन्तर्यामी,
पूरन पर उपकारी, नित अवतारी ।।टेक।।
पाप ताप हर पांच क्लेशा,
मन की ममता मारी, दुर्मति टारी ।।१।।
अनुभव ज्योति जगाए उर में,
अविद्या रैन निवारी, कर उजियारी ।।२।।
योग अभ्यास की युक्ती देके,
खोली सुषुम्न नाड़ी, भयी सुध सारी ।।३।।
कहे टेऊँ गुरु ज्ञान बताया,
पाया पद निर्धारी, अति सुखकारी ।।४।।

।। राग कोह्यारी भजन ।। ९ ।। ४८९।।

कितने भेष धरे तन ऊपर,
गुरु बिन भटका खावे, मुक्ति न पावे ।।टेक।।
शिर पर जटा गले में माला,
अंग भभूति रमावे, मुक्ति न पावे ।।१।।
सेल्ही पहरे सिंगी बजावे,
दर दर अलख जगावे, मुक्ति न पावे ।।२।।
काला पीला गेरू वस्त्र,
पहरे मूण्ड मुण्डावे, मुक्ति न पावे ।।३।।
कहे टेऊँ गुरु ज्ञान बिना नर,
मानुष जन्म गँवावे, मुक्ति न पावे ।।४।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

॥ राग कल्याण भजन ॥ ३ ॥ ६१०॥

माई मैंनूं सद्गुरु ज्ञान बताया,
तांके मनन निदिध्यासन माहीं, पुनि पुनि मुझे लगाया ॥ टेक॥
मल विक्षेप आवरण का पड़दा, तीनों तुरत मिटाया ॥१॥
अनुभव ज्योति जगाई उर में, आतम लाल लखाया ॥२॥
द्वन्द्व दूख ते किया अतीता, सुख स्वरूप समाया ॥३॥
कहे टेऊँ गुरु तोड़े बन्धन, मोक्ष धाम दरसाया ॥४॥

॥ राग कल्याण भजन ॥ ४ ॥ ६११॥

माई मैंनूं सद्गुरु शब्द सुनाया,
प्राणायाम की युक्ती देके भिन्न भिन्न कर समझाया ॥ टेक॥
मूल कमल दृढ़ आसन करके, नभ से नाम चलाया ॥१॥
हृदय कमल शिव दर्शन पाये, तामें ध्यान लगाया ॥२॥
कण्ठ कमल में कर वीचारा, शारद सीस निवाया ॥३॥
त्रिकुटी घर में करे निवासा, अनुभव दीप जगाया ॥४॥
कहता टेऊँ दसम द्वारे, आत्म दर्शन पाया ॥५॥

॥ राग कल्याण भजन ॥ ५ ॥ ६१२॥

माई मैंनूं सद्गुरु अलख लखाया,
सात दीप नव खण्डों माहीं एक ब्रह्म दरसाया ॥ टेक॥
अस्ति भाति प्रिय निज स्वरूपा, नाम रूप में पाया ॥१॥
अमर अनादी अज अबिनासी, जहां धूप नहिं छाया ॥२॥
कहता टेऊँ गुरु प्रसादे, सहजे ताहिं समाया ॥३॥

06:08

॥ राग पहाड़ी भजन ॥ ७२ ॥ ७२०॥

मेरे परम स्नेही नेक, कथा सोऽहम् की सुनो ॥टेक॥
देव सकल मिल खोजन चाले, जग का कर्त्ता कौन जी।
नभ से सोऽहम् बानी होई, आप रहो सब मौन जी।
मैं सब जग की हूं टेक ॥१॥
ब्रह्म आत्मा देह विश्व में, वायू रसना मान ले।
सोऽहम् सोऽहम् केवल तांकी, सहजे भाषा जान ले।
मन चित्त को करके एक ॥२॥

प्रान अपान के घोड़े चढ़ कर, सैर करे ब्रह्माण्ड में।
सोऽहम् बिन घट को ना खाली, सारे इस वरभाण्ड में।
निज बुद्धि से करो विवेक ॥३॥
अनुभव रूपी भावना मात्र, सबके रहता मूल में।
कहे टेऊँ थिर रहो मूल में, भूल पड़ो ना थूल में।
सुख इस बिन और अलेक ॥४॥

॥ राग पहाड़ी भजन ॥ ७३ ॥ ७२१॥

मेरे परम प्रेमी श्रेष्ठ, ज्ञान सोऽहम् का सुनो ॥टेक॥
हंस उलट कर सोऽहम् बनिया, कहा हंस अवतार जी।
सोऽहम् सोऽहम् जपते जीवा, बनता हरि आकार जी।
यों कहते जन उत्कृष्ट ॥१॥
ओऽम् सोऽहम् से प्रकट होया, यांते सोऽहम् रूप है।
उभय शब्द का अर्थ एक ही, कहते मुनि जन भूप हैं।
यों लखने से अघ नष्ट ॥२॥
सोऽहम् अपनी जान स्थिती, मार्ग उसका ओम् जी।
ओम् उपासक सोऽहम् रस को, होय प्राप्त सोम जी।
तहं अमृत रस की वृष्टि ॥३॥
आदि अन्त में सोऽहम् ही है, मध्य भी सोऽहम् रहत है।
कहता टेऊँ सब घट व्यापक, गुरुमुख कोई लहत है।
रहे जां पर गुरु की दृष्टि ॥४॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:12

|| राग जोग भजन || ६९ || ८९९ ||

शिष्य गुरू का शब्द कमाओ, तुम अन्तर ध्यान लगाओ।। टेक।।
मूल कमल में थिर कर आसन, मन को नाहिं डुलाओ।
अपजा जाप जपे निशवासर, बिन जिह्वा गुण गाओ ।।१।।
नाभि कमल से नाम चलाए, हृदय में ले आओ।
कण्ठ कमल में कर वीचारा, त्रिकुटी ज्योति जगाओ ।।२।।
इड़ा पिङ्गला से ले श्वासा, सुषुम्न में ठहराओ।
गगन मण्डल में अनहद सुनके, तन की सुधि बिसराओ ।।३।।
सुन्न सकड़ में लाय समाधी, दसमें दर्शन पाओ।
कहे टेऊँ यों सुमरण करके, सुख स्वरूप समाओ ।।४।।

|| राग जोग भजन || ७० || ९०० ||

दीन दयालू भो भगवाना,बदला मुझसे नाहिं चुकाना ।। टेक।।
पतित पावन सद्बख्शन्दा, कहते तुझको वेद पुराना ।।१।।
केते पापी तुमने तारे, मैंने सुनिया अपने काना ।।२।।
कर्म धर्म को ना मैं कीया, राखो प्रभू अपना बाना ।।३।।
कहे टेऊँ हरि कृपा करके, दीजे मुझको निर्भय दाना ।।४।।

|| राग जोग भजन || ७१ || ९०१ ||

यह घर तेरा प्रीतम नाहीं, भूल पड़ा तुम क्यों इस माहीं ।। टेक।।
इस घर से जाना ही होगा, भावें कितना रहना चाहीं ।।१।।
तेरा तो है घर अविनाशी, जन्म मरण का दूख न जाहीं ।।२।।
निज घर चलने की कर तैयारी, भव में भटकत हो तुम काहीं।।३।।
कहे टेऊँ चल आतम घर में, पूरे गुरु की पकड़े बाहीं ।।४।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:13

सद्‌गुरु स्वामी सर्वानन्द जी महाराज आरती

ॐ जय गुरु सर्वानन्द, स्वामी जय गुरु सर्वानन्द।
धर्म कर्म का दे उपदेशा, काटे यम के फन्द ।।ॐ।।
तुम हो दाता दीन दयालू, सबके हितकारी ।।स्वामी।।
शेष शारदा नित गुण गावे, महिमा अति भारी ।।ॐ।।
तन पर चोला गेरू रंग का, सिर पे जटाधारी ।।स्वामी।।
कर कमलों में लाठी सोहे, मोहे नर नारी ।।ॐ।।
अपने गुरु के निज वचनों को, घर घर पहुंचाया ।।स्वामी।।
भूले भटके दीन जनों को, सत् मार्ग लाया ।।ॐ।।
अधम उद्धारन कष्ट निवारन, भक्तन भयहारी ।।स्वामी।।
भव जल तारन पार उतारन, कारन देह धारी ।।ॐ।।
देश विदेश में भ्रमण करके, भक्ती फैलाई ।।स्वामी।।
सोऽहम् शब्द का मंत्र दे वह, ज्योती दिखलाई ।।ॐ।।
अजर अमर और अज अविनाशी, घट घट के ज्ञाता।।स्वामी।।
कण कण में तुम सर्व व्यापक, पूरण गुरु दाता।।ॐ।।
परम उदारी पर उपकारी, अमरापुर वासी ।।स्वामी।।
शरण तुम्हारी जो जन आवे, पावे सुख रासी ।।ॐ।।
टेऊँराम के कृपा पात्र, तुम हो भक्ती भण्डार ।।स्वामी।।
गुरू भक्त बन गुरु भक्ती का, खूब किया प्रचार ।।ॐ।।
पूरण गुरु की पूरी आरती, जो जो नर गावे ।।स्वामी।।
पाप ताप सन्ताप मिटाकर, पूरण पद पावे ।।ॐ।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:14

।। राग रामकली भजन ।। ३ ।। १५।।

सोवत जागत नाम जपीजे, गुरु चरने चित्त दीजे रे ।। टेक।।
पहला साधन कर गुरु मूरत का अन्तःकरण मलीजे रे।
विषयां त्याग होय वैरागी पावन पाठ पढ़ीजे रे ।।१।।
दूजा साधन कर गुरु के वचने ज्ञान गगन में कीजे रे।
सत् असत् का कर वीचारा सार उसी से लीजे रे ।।२।।
तीजा साधन कर गुरु दीपक का तामें ध्यान धरीजे रे।
शम दम श्रद्धा समाधान से इन्द्रियां दमन करीजे रे ।।३।।
चौथा साधन कर गुरु कुदरत का किसको नाहिं कहीजे रे।
ब्रह्म प्रापति बन्ध हानि कर ऐसा मोक्ष गहीजे रे ।।४।।
कहता टेऊँ तीन लोक में निर्भय होय रहीजे रे।
अकड़ कला में अमृत बरसे अमर प्याला पीजे रे ।।५।।

।। राग रामकली भजन ।। ४ ।। १६।।

अमृत वेले ऊठ जिज्ञासू, फेर श्वास की माला रे।। टेक।।
सद्गुरु के मूरत का मन में धरिये ध्यान विशाला रे।
गुरु मन्त्र में सुरति समाओ जग से होय निराला रे।।१।।
नाभ कमल से प्राण उठाये दसम द्वार कर आला रे।
नाद अनाहत बाजत ताहीं सुनिये शब्द रसाला रे।।२।।
नाड़ि कुण्डलिनी को जागाए खोलो अनुभव ताला रे।
कोटि रवी शशि आदि ज्योति का तहं प्रचण्ड उजियाला रे।।३।।
पाप ताप नहिं हर्ष शोक पुनि जहाँ न काल कराला रे।
कहे टेऊँ तहँ चलकर देखो आत्म पुरुष अकाला रे।।४।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:15

।। राग प्रभाती भजन ।। ३ ।। ३५।।

प्रात समय में जागी प्राणी,बोलो मुख से हरि का नाम।। टेक।।
प्रातकाल उठ देव लोक में, सुर गण ध्यान लगाते हैं।
आपस में मिल हरि जस गावें, पीवत भर कर अमृत जाम।।१।।
प्रात समय उठ सन्त सर्व ही, आतम देव ध्याते हैं।
मन चित लीन करे तिस माहीं,देखत सब घट आतम राम।।२।।
कहता टेऊँ प्रातकाल में, जागत को बड़भागी है।
जो जन जागे अमृत चाखे, पूर्ण हो सब तांके काम।।३।।

।। राग प्रभाती भजन ।। ४ ।। ३६।।

अमृत वेले गुरुमुख जागी, गुरु का शब्द कमाओ रे।। टेक।।
पहला पद पूरक से मेले, दूजा मेलो रेचक से।
कुम्भक से फिर हृदय अन्तर, सारा शब्द चलाओ रे।।१।।
पहला पद तुम ब्रह्म पछानो, दूजा मानो आतम को।
उलट सुलट कर सुमरन तांका, पाँचों भेद मिटाओ रे।।२।।
शब्द गुरू का सीप समाना, दो पद दो पुड़ जान तिसे।
अभेद रूपी मोती तामें, अपनी वृत्ति लगाओ रे।।३।।
कहता टेऊँ पूरण गुरु से, सुमरण की विधि ले करके।
अजपा जाप जपे निशवासर, निर्भय नगर बसाओ रे।।४।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

।। राग प्रभाती भजन ।। २१ ।। ५३।।

साध संगति में अमृत वर्षे, श्रद्धा से तुम पीजे रे ।।टेक।।
साध संगति में वचन सुधा की, साधू वर्षा करते हैं।
चल करके तहं उस अमृत को, पीकर युग युग जीजे रे ।।१।।
पांच भान्ति के अमृत कहिये, तामें चार तो नकली हैं।
पंचम अमृत जग में साचा, तिसका आनन्द लीजे रे ।।२।।
ब्रह्म ज्ञान का अमृत साचा, वेद मुनी बतलाते हैं।
उसी सुधा रस पीने से ही, जन्म मरण दु:ख छीजे रे ।।३।।
जिन जिन ने यह अमृत पीया, सत्गुरु से ले पीया है।
कहे टेऊँ जे पीना चाहो, सत्गुरु शरण गहीजे रे ।।४।।

।। राग प्रभाती भजन ।। २२ ।। ५४।।

सोऽहम् सोऽहम् स्मरो साधो,सुरति लगाकर श्वासनि से।। टेक।।
ईड़ा पिंगला सुष्म्न अन्दर, स्मरो गुरु का शब्द निरन्तर।
प्राण अपान की युक्ती लेकर,श्वास उठाओ नासनि से ।।१।।
सन्तों का यह गोप्य धन है, जिज्ञासुओं का यह जीवन है।
स्मरत तांको वे निशिदिन हैं, समझ पड़े इतिहासनि से ।।२।।
प्राण अपान की है यह भाषा, सब श्वासों में तांका वासा।
हृदय में सो करत प्रकाशा, समझे को अभ्यासिनि से ।।३।।
कहे टेऊँ जो सोऽहम् स्मरहिं, जन्म मरण दुख तांके निसरहिं।
निर्भय हो सो जग में विचरहिं,अमर लोक के वासिनि से।।४।।

लकार लाल लखो निज आतम, यह तो लाल अमोला है।
तोल सके ना इसको कोई, यह तो अतुल अतोला है।
तीन काल मे डोलत नाहीं, यह तो अखण्ड अडोला है।
कहे टेऊँ कछु बोलत नाहीं, यह तो अटल अबोला है।।31।।

वकार वासुदेव है व्यापक ,यह निश्चय उर धारो रे।
ज्यों सब भूषण में है सोना, पट में सूत निहारो रे।
ज्यों सब घट में है इक माटी, तरंगों में जल सारो रे।
कहे टेऊँ त्यों सब में पूरन, साक्षी सिरजण हारो रे।।32।।

शकार शेर केसरी होके, घास क्यों तुम खाता है।
अजा संग क्यों मैं मैं करते, शरम नहीं तुझ आता है।
तुम तो शेर जंगल का राजा, काहे को घबराता है।
कहे टेऊँ निज रूप निहारो, डरके क्यों दुख पाता है।।33।।

सकार सोऽहं जाप जपो नित, निज स्वरूप पछानो रे।
सो वाचक है पार ब्रह्म का, अहं जीव को जानो रे।
जीव ब्रह्म है एक स्वरूपा, भेद भ्रम को भानो रे।
कहे टेऊँ मैं ब्रह्म रूप हूँ, यह निश्चय उर आनो रे।।34।।

हकार हरदम ऐसे बोलो, मैं आतम अविनाशी हूं।
जन्म मरन दुख सुख से न्यारा, चेतन चिद आकाशी हूं।
अस्ति भाति प्रिय रूप अनादी, अजर अमर सुख राशी हूं।
कहे टेऊँ मैं सत् चित् आनंद, साक्षी स्वयं प्रकाशी हूं।।35।।

06:34

Kavita Wali Chhanda...
archive.org

INTERNET
ARCHIVE

मूल कमल माहीं गुरु गणेश पाहीं,
चरण कमल से शिष्य चित्त लाइये जी।
लिंग कमल डेरा घर ब्रह्मा केरा,
नाभ कमल से नाम चलाइये जी।
पाय विष्णु वासा करके अभ्यासा,
हृदय कमल शिव शंख बजाइये जी।
कंठ कमल के पास है हंस का वास,
सच ग्रहण करके झूठ जलाइये जी।

कमल त्रिभणा द्वार ज्योति ज्ञान उजियार,
निश निर्जन केरी मिटाइये जी।
उलट इड़ा पिंगला करो एक सुरला,
भँवर सुषुम्ना सेज बिछाइये जी।
कमल सुन सकड़े रहो तांहि अकड़े,
निज निरंजन नाम को ध्याइये जी।
चल दशम द्वारे रह रिणुंकारे,
मिल मौज मस्ती की पाइये जी।
देख देह बिन देव पाओ पुरुष अभेव,
चौदह लोक सम ज्योति जगाइये जी।
कहे टेऊँ भेद तोड़ जीव ईश मति छोड़,
इक ब्रह्म आनंद समाइये जी।।4।।
चचा चेत माई सुन सीख सोल्हा,
इक चरण पति के चित्त लाइये जी।
दूजा चार घड़ियां जाग रैन पिछली,

(112 of 121)

Favorite Share Flag

Kavita Wali Chhanda Wali

ऐसे तारक मंत्र जे, ग्रंथन किये बखान।
कह टेऊँ गुरु देहिं जो, सो तुम जान प्रधान।185।
कह टेऊँ गुरु मंत्र को, जपले बारम्बार।
जगत भाव को भूल कर, पाओ मोक्ष द्वार। 186।
सफल करो निज श्वास को, गुरु का शब्द कमाय।
कह टेऊँ गुरु शब्द बिन, वृथा नाहिं गवांय।187।
टेऊँ सोहम् जाप जप, गाफिल कबहुँ न होय।
इक इक श्वास अमोल है, ताहिं न वृथा खोय।188।
टेऊँ सोहम् जाप तुम, श्वास श्वास जप लेह।
दोनों पद की लक्ष लख, पाओ मुक्तिविदेह।189।
हृदय में गुरु शब्द की, बाजे अनहद बीन।
कह टेऊँ सुन ताहिं को, गुरुमुख हो लवलीन।190।
ओम् जाप उर में करो, छोड़ श्वास की आस।
अर्थ भावना दृढ़ कर, टूटे जम की फास।191।

ओम् सोहम् है रूप इक, कहते वेद पुरान।
कह टेऊँ जो भेद कह, मूंढ तांहि पहचान।192।
जांसे आपापन मिटे, ऐसा करले जाप।
कह टेऊँ तिन लोक में, तनिक न लागे ताप।193।
शब्द गुरु का रूप है, रंचक भेद न जान।
कह टेऊँ तिहं सुमर के, पाओ सूख महान।194।
बाहर हरि ना खोजिये, अंतर ही लिव लाय।
गुरू मंतर अभ्यास ते, कह टेऊँ तिहं पाय।195।
सत्गुरु के सत् शब्द का, अहनिश कर अभ्यास।
कह टेऊँ संसार के, विघ्न होय सब नास।196।
सत्गुरु के सत् शब्द का, सुमरन कर मन मांहि।
कह टेऊँ सो पाय पद, काल कर्म जहँ नाहिं।197।
सत्गुरु के सत् शब्द का, करले निशदिन जाप।
कह टेऊँ जिस जाप ते, मिटे सकल संताप।198।
सत्गुरु के सत् शब्द का, सुमरन कर हरवार।
कह टेऊँ जिहं सुमरते, अनुभव खुले द्वार।199।

06:59

समष्टि व्यष्टि तीन तन, पंच कोष संसार।
आतम सबमें एक है, मिथ्या सब आकार।1101।
ज्यों पुष्पों के माल में, पुष्पों का व्यभिचार।
तागा है अनुस्यूत तिम, आतम कोष विचार।1102।
जैसे भासत रज्जु में, तरु जड़ सर्प दरार।
तिम आतम में भासते, पांचो कोष विकार।1103।
रज्जु अनुस्यूत कल्पित में, कल्पित है व्यभिचार।
तैसे आतम सर्व में, कल्पित है संसार।1104।
मिथ्या के तुम नास की, करते हो क्यों आस।
इन्द्र जाल के शत्रु को, करत न कोई नास।1105।
सकले दुःख हैं भेद में, अभेद में कछु नाहिं।
कह टेऊँ सब ब्रह्म है, सुख स्वरूप लख ताहिं।1106।
एक विभू सब द्वन्द्व बिन, निर्गुन तम पर जान।
अज अविनाशी आत्मा, टेऊँ सब घट जान।1107।
जो परब्रह्म सर्वातमा, व्यापक विश्व आधार।
सूक्ष्म ते सूक्ष्म अती, सो तूँ है निर्धार।1108।
उलटा कर हंसो जपो, सतगुरु से ले ज्ञान।
कह टेऊँ इस जाप से, पाओ पद निर्बान।1109।
हंसो का स्मरण करो, समझ हंस का सार।
कह टेऊँ पुनि पाइये, आत्म पद निर्धार।1110।

माली "पूनमचन्द" जो कोई जागे,
रामजी लेवे रे आमेलो आगो ।।३ ॥

३९. मन तू भगवत भक्ति

[सन्त कल्याण भारती जी की वाणी]

मन तू भगवत भक्ति करना।
भक्ति बिना भरम नहीं भागे ले सतगुरु का शरणा ।टेर ॥
पदम आसन बैठ एकान्त में ध्यान हरि का धरणा।
स्वाँस उस्वाँस ओहम सोहम, कर विश्वास सिमरणा ।।१ ॥
काम क्रोध मान बड़ाई, राग द्वेष परि हरणा।
प्रेम भाव से भज भगवत् ने इस विध पार उतरणा ।।२ ॥
करले भजन भूल मत रांखे, एक दिन होगा मरणा।
नरतन मिल्यो थने राम भजबा ने,
फिर जग से क्या डरना ।।३ ॥
मोह परिवार कुटुम्ब की फांसी, काट पड़्यो गुरु चरणा।
कहे "कल्याण भारती" राम भजबा से.
फिर नहीं होगा मरणा ।।४ ॥

४०. हरदम हर है भेला

[सन्त अचलूराम जी की वाणी] (मध्यमा)

साधो भाई हरदम हर है भेला।
कर सत्संग खोज घट भीतर खोज्यां खबर पड़ेला ।टेर ॥
यह संसार अन्धों का अंधा सूजे नांही गेला।
क्रिया कर्म में मारे भचीड़ा, कबहु ना भ्रम मिटेला ।।१ ॥
धाम करे तीरथां नहावे, पत्थर जाय पूजेला।
गोता खाय फिर घर में आवे, ईश्वर नांही मिलेला ।।२ ॥

है। परावाक् से पश्यन्ती स्तर में आने पर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह त्रिपुटी अत्यन्त अस्पष्ट रहती है । किन्तु मध्यमा और वैखरी स्तर तक आते-आते ये तीनों स्वरूप से अलग-अलग अनुभूत होने लगते है ।

शिव के जीवरूप धारण करने के साथ-साथ उनकी अविनाभूत चित्शक्ति भी जीवभाव की उपयोगिनी बन कर सुप्त रूप से जीवशरीर में स्थित रहती है । स्थावर से लेकर मनुष्य की पूर्वावस्था तक यह समस्त शरीरों में सुप्त रहती है । मनुष्य शरीर में वह स्वप्नावस्था में रहती है । जब यह शक्ति स्वप्नावस्था से जाग्रत अवस्था में आती है तब मनुष्य का स्वप्न टूट जाता है और मनुष्य का मन निरालम्ब हो जाता है । जो चैतन्य सुप्तावस्था में अपने स्वरूप को विस्मृत कर दिया था वह कुण्डलिनी के जागरण से अपने स्वरूप में पुन: प्रतिष्ठित हो जाता है । चैतन्य का यही सुप्त प्रबोध कुण्डलिनीजागरण का फल है ।

शब्द ब्रह्म या परावाक् बिन्दुरूप है । बिन्दु से नाद निकलता है जिसे पश्यन्ती वाक् कहते है । पश्यन्ती से मध्यमा वाक् प्रकट होती है । यह नादाभास है । फिर मध्यमा से वैखरी वाणी उत्पन्न होती है जिसमें पृथक्-पृथक् ५० वर्ण पृथक्-पृथक् ध्वनि के हैं । इन वर्णों से पद, वाक्य आदि का निर्माण होता है । वर्णो को मातृका कहा जाता है । ये मातृकायें अपने नाना प्रकार के संयोग से चित्त में नाना प्रकार के विचारों को उत्पन्न करती है जिन्हें विकल्प कहा जाता है । ये विकल्प ही बन्धन के कारण हैं । मुक्ति के लिये पहली आवश्यकता है कि इन वर्णों के पृथक्-पृथक् दृश्यमान स्वरूप को मिटाकर इनको इनके मूल रूप अर्थात् नाद में रूपान्तरित कर दिया जाय । तत्पश्चात् नाद को बिन्दुरूप में ला दिया जाय । तभी विकल्पों का अन्त सम्भव है । मातृकायें आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित पर बिन्दु के ही अंश हैं । इसलिये इन अंशों को एकत्र कर इनको इनके ऊर्ध्वगामी महास्रोत से युक्त करना पड़ता है । मन की गति ऊपर और नीचे दोनों ओर चलती है ।

'चित्तनदी नाम उभयतो वाहिनी, वहति पुण्याय वहति पापाय च'

(पा.यो.सू.भा. १।१२)

अधोगति विषयाभिमुख है; ऊर्ध्वगति शिवाभिमुख है । मन की अधो गति इडा और पिङ्गला के माध्यम से होती है । ये दोनों नाड़ियाँ रीढ़ की हड्डी के बाँये-दाँये स्थित हैं । मन की ऊर्ध्वगति सुषुम्ना के माध्यम से होती है । यह नाड़ी रीढ़ की हड्डी के बीच में स्थित है । इसी के मूल में कुण्डलिनी शक्ति सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है ।

शास्त्रों में जिन छह चक्रों अथवा कमलों का वर्णन मिलता है वे कोई

आचार्य शंकर के अनुसार 'अर्थ' या भाव की मूलस्थिति मूलाधार में होती है। गुदा और लिंग के बीच स्थित मूलाधार में स्थित अर्थरूपी प्रथम भाव को 'परावाक्' कहा जाता है। इस परावाक् को ही 'कुण्डलिनी' कहा जाता है— 'तामेके कुण्डलीं विदुः'। यह परावाक् चैतन्याभास से युक्त निःस्पन्द माया ही है। विवक्षा (बोलने की इच्छा) होने पर जब यह स्पन्दावस्था में आती है, तो इसे 'पश्यन्ती' कहा जाता है। पश्यन्ती वाक् नादात्मिका एवं सामान्य ज्ञानात्मिका होती है।

इसमें 'इदमित्थम्' (यह ऐसा है) जैसी विशेषता नहीं होती। पश्यन्ती वाक् की अभिव्यक्ति या अनुभूति मूलाधार से नाभि-पर्यन्त होती है। नाभि से हृदय तक व्याप्त वाक् मध्यमा कही जाती है। मध्यमा वाक् बिन्दुतत्त्वमयी हिरण्य-गर्भात्मिका मानी जाती है। हृदय से मुखपर्यन्त अभिव्यज्यमान विराट्रूपिणी वाक् वैखरी कही जाती है। समस्त सांसारिक व्यवहार वैखरी के माध्यम से ही होते हैं। इस वैखरी वाक् से ही समस्त वर्ण उत्पन्न होते हैं।

मूलाधारात्प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः,
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।
वक्त्रे वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्ना-
बद्धस्तस्माद् भवति पवनप्रेरितो वर्णसंघः।। (वही, २/४३)

महर्षि पाणिनि के अनुसार भी (मूलाधार स्थित) आत्मतत्त्व बुद्धितत्त्व द्वारा पहले अर्थतत्त्व का आकलन करता है। इसके बाद वह मनस्तत्त्व को बुद्धि द्वारा आहृत अर्थों की अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित विभिन्न वाक्-अवयवों के सहयोग से स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न तथा अनुप्रदान भेद से पांच प्रकार के वर्णों को जन्म देता है।

"आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युंक्ते विवक्षया,
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयते स्वरम्.....
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयते स्वरम्.....
सोदीर्णोमूर्धन्यभिहतो वक्त्रमापद्यमारुतः ।
वर्णान् जनयते......." (पाणिनीयशिक्षा, ६-१०)

15:53

M4 : Free Download, ...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

अजपा मन्त्र हंसः

यह 'हं' अजपा मन्त्र (हंसः) का प्रथम बीज है। बिन्दुयुक्त हकार अर्थात् 'हं' पुरुष है तथा 'सः' प्रकृति है। इन दोनों का योग ही 'हंसः 'अर्थात् जीव है। 'हंसः' को अजपा या आत्म महामन्त्र कहा जाता है। इनमें पुरुष रूप विन्दु का स्थान दांया तथा स्त्रीरूप विसर्ग का स्थान बांया है। इसी कारण व्यावहारिक जगत् में पुरुष का स्थान दाएं तथा स्त्री का बाएं माना गया है। इस महामन्त्र के देवता 'अर्धनारीश्वर' हैं। यह 'हंसः' प्राणियों के प्रत्येक श्वास (हं) तथा निश्वास (सः) के साथ बिना किसी प्रयास के स्वाभाविक रूप से निरन्तर उच्चरित होता रहता है। इसीलिये इस महामन्त्र को 'अजपा' के नाम से जाना जाता है।

स हंकारः पुमान् प्रोक्तः स इति प्रकृतिः स्मता।
अजपेयं मता शक्तिस्तथा दक्षिणवामतः।।
बिन्दुर्दक्षिणभागस्तु वामभागो विसर्गकः।।
तेन दक्षिणवामाख्यौ भागौ पुंस्त्रीविशेषितौ।।
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिर्मता ।
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्।। (वही, ४/१७-१६)

परमात्म मन्त्र 'सोऽहम्'

जब प्रकृति रूप 'सः' पुरुष रूप 'हं' के साथ तादात्म्य का अनुभव करती है, तब वह 'सः हम्' (सोऽम्) 'मैं वह पुरुष हूं,' की अनुभूति करती है। यह 'सोऽहम्' भी एक महामन्त्र है, जिसे 'परमात्म महामन्त्र' कहा जाता है। परमात्म महामन्त्र 'सोऽहम्' के प्राणात्मक पुंस्तत्त्व 'हकार' तथा प्रकृति तत्त्व 'सकार' का लोप कर देने पर केवल 'ओ+अम्' शेष रहता है। फिर 'एङः पदान्तादति' इस

पाणिनि सूत्र के नियम से पूर्वरूप सन्धि कर देने पर केवल 'ओम्' शेष रह जाता है। यह 'ओम्' पुरुष और प्रकृति से परे पूर्ण परमात्मन् है।

पुंरूपं सा विदित्वा स्वं सोहन्भावमुपागता।
स एष परमात्माख्यो मनुरस्य महामनोः।।
सकारंच हकारंच लोपयित्वा प्रयोजयेत्।
सन्धिं वै पूर्वरूपाख्यं ततोऽसौ प्रणवो भवेत्।। (वही, ४/२०-२१)

शक्ति के सात भेद

29 of 272

M4
Favorite Share Flag
Topics Vsvsv

उसे स्वप्नावस्था कहा जाता है। आत्मन् और मनस् के निरुद्ध या संकल्परहित हो जाने पर जो एक प्रकार की निराकुल स्थिति का अनुभव होता है, उसे सुषुप्ति कहा जाता है। जिस अवस्था में तमस्रहित चित्त द्वारा परतत्त्व का साक्षात्कार होता है, उसे तुरीयावस्था और जिस अवस्था में साधक आत्मन् और परमात्मन् में अभेदावस्था का अनुभव करता है, उसे तुर्यातीत अवस्था कहा जाता है। इस तुरीयावस्था में पहुंचे योगी की मुक्ति सन्निकट होती है।

अथवा योगोपेताः पंचावस्थाः क्रमेण विज्ञाय।
ताभिर्युंजीत सदा योगी सद्यः प्रसिद्धये मुक्तेः।।
जाग्रत् स्वप्नसुषुप्ती तुरीयतदतीतके च तास्तासु।
स्वैरिन्द्रियैर्यदात्मा भुंक्ते भोगान् स जागरो भवति।।
संज्ञारहितैरपि तैरस्याऽनुभवो भवेत्पुनः स्वप्नः।
आत्मनिरुद्धमुक्ततया नैराकुल्यं भवेत्सुषुप्तिरपि।।
पश्यति परं यदात्मा निस्तमसा चेतसा तुरीयं तत्।
आत्मपरमात्मपदयोरभेदतो व्याप्नुयाद्यदा योगी।
तच्च तुरीयातीतं तस्यापि भवेन्न दूरतो मुक्तिः ।।

(वही, १६/४६-५०)

सातवीं विधि के अनुसार 'ओं' का उच्चारण करते समय 'ओं' ध्वनि को क्रमशः मूलाधार में अपनी ही महिमा में स्थित निश्चल शान्त 'सूक्ष्मा वाक्', मूलाधार में ही स्थित किंचित् स्पन्दमयी 'परावाक्', नाभिस्थ सामान्य ज्ञानरूपिणी 'पश्यन्ती वाक्, सुषुम्ना के अग्रभागवर्तिनी हृदय में स्थित विशेष ज्ञान रूपा 'मध्यमा वाक्' के रूप में अभिव्यक्ति देते हुए मुख में स्थित शब्दरूपा 'वैखरी वाक्' में व्यक्त किया जाना चाहिये। तात्पर्य यह है कि 'ओंकार' के उच्चारण के समय ओं ध्वनि का आविर्भाव क्रमशः सूक्ष्मा वाक् से वैखरी रूप में स्पष्ट उच्चारण तक की प्रक्रिया की भावनात्मक अनुभूति योगी को करनी चाहिये।

वैखरी के रूप में ओंकार के उच्चारण के अनन्तर योगी को चाहिये कि वह ओं ध्वनि को अपने भ्रूमध्य, मूर्धा, द्वादशान्त और षोडशान्त तक ले जाय और षोडशान्त में कुछ देर ठहर कर विलोम क्रम से षोडशान्त से द्वादशान्त, वहां से मूर्धा, मूर्धा से भ्रूमध्य, भ्रूमध्य से वैखरी के रूप में मुख तक लाकर, वैखरी को मध्यमा में, मध्यमा को पश्यन्ती में, पश्यन्ती को परा में और परा को सूक्ष्मा वाक् में लय कर दे। इसके साथ ही ओं का उच्चारण करते समय ओंकार के अ उ म्

"हंस हंसेति मन्त्रोयं जीवो जपति नित्यशः" भन्ने शिवस्वरोदयको उक्तिअनुसार यसैमा उल्टो गरी लिंदा सोहं हुन जान्छ। सोहंमा अगाडि को "स" र पछाडिको "ह्" रूपी दुइतिरका दुइ पखेटा झिक्दा ॐ मात्र बाँकी रहन्छ।

यसै उसैले "सो ऽ हं" जीवात्मा थियो। त्यसको "स" र "ह्" गएपछि ॐ रूपी परमात्मा भयो। त्यसैले यसलाई कामकला भनेको हो। फेरी जब योगीको समाधि हुन्छ, त्यस अवस्थामा यो हंसको एकीकरण भएर "ह्सौं" रूपको श्रीप्रासाद र स्हौं रूपको पराप्रासाद बन्दछ। पहिले "हंसः" सोहं०को विषयमा एउटा कुरा विचार गरौं। ब्रह्मलाई "स" ले सूचित गर्दछ। अहंले आत्मालाई सूचित गर्दछ। अतः "अहं+सः=हंस"। फेरि "सः+अहम्"=सो ऽ हं"। यसै सोहं (स्+ओ+ह्+म्) मा दुइ पक्ष अर्थात् "स" र "ह्" झिक्दा 'ओ' र 'म' मात्रै बाँकी हुँदा "ॐ" अर्थात् प्रणवरूप="ना ऽ हं" अर्कोतिर "हंसः को एकीकरण हुंदा "ह्सौं" र उस्तै सो ऽ 'हं' को एकीकरण "स्हौं" बन्दछन्। यस विषयमा तन्त्रमा यस्तो वचन छ–

"हकारं शिव–वीजं स्यात् शक्तिवीजं सकारकम् ।
जीवात्मानं नादरूपं विन्दुं च परमात्मकम् ।।८।।
विसर्गः कर्मसंगः स्यात् हंसवीजं प्रकीर्तितम् ।
विन्दुद्वयं विसर्गः स्यात् सृष्टिः स्थितिमहेश्वरि ।।९।।
एकविन्दुं लयेदेवि द्वि–विन्दुं सृष्टिरूपकम् ।
त्रि–विन्दुं स्थितिरूपं च विन्दुमेकं लये पुनः ।।१०।।
शिवशक्तिमयं देहं जीवात्मा कर्मरूपकम् ।
परमात्मा विन्दुरूपं हंस–वीजेन भाषितम् ।।११।।
सृष्टिस्थितिलयं ज्ञेयं हंसवीजं सुलोचने ।
हंस–ज्ञाने भवेत् सृष्टिः सो ऽ हं ज्ञाने स्थितिः प्रिये ।।
नाहं–ज्ञाने लयं देवि भावाभावप्रबोधकम् ।।१२।।

–सर्वोल्लासतन्त्र अष्टपंचाशत्तम उल्लास, पृ. २२३

19:41

Page view

अवस्थायें है - निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता शान
'परबिन्दु' (समस्त कलाओ की कारणावस्था या लयावस्था) है ।

शैवशाक्त तन्त्रों में 'नाद', 'बिन्दु' का प्रयोग अनेक अर्थों में मिलता है ।
पक्ष में यह 'अहं' एवं 'इदं' का प्रतीक है ।

'शारदातिलक' में कहा गया है कि 'शक्ति' से 'नाद' एवं नाद से 'बिन्दु' का आविर्भाव हुआ : 'आसीच्छक्तिस्वतो नादो, नादात् बिन्दु समुद्भवः ॥'' तान्त्रिक आचार्य, कहते है कि शिव-शक्ति नाम के दो तत्त्व है । शिव 'विमर्श' के रूप में 'शक्ति' में प्रवेश करते है और बाद में 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेते है । बिन्दु का प्रथम विकास ही है 'नाद' । कुछ भेदवादी तान्त्रिक आचार्य शिव-शक्ति को समवाय रूप से परिव्याप्त एक तत्त्व मानते हैं एवं 'बिंदु' को दूसरा तत्त्व ।

बौद्ध तन्त्रों में नाद - बिन्दु प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए है । कहीं कहीं 'बिन्दु' हठयौगिक ज्योति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[१] । शैव-शाक्त तन्त्रों में नाद-बिन्दु शिव-शक्ति के पर्यायवाची भी माने गए है[२] । बौद्ध तन्त्रों में इन्हें 'प्रज्ञा' 'उपाय' का वाचक भी कहा गया है । हठयौगिक ग्रन्थों में प्रयुक्त -'रसना', 'सूर्य', 'रवि', 'प्राण', 'शमन', 'काली', 'यमुना', 'शक्ति', 'रज', पुरुष, नाद और व्यंजन आदि शब्द कभी- कभी 'बिन्दु' के अर्थ में एवं 'ललना', 'चन्द्रा', 'शशि', 'अपानु', 'धमन', 'अली', 'गंगा', शुक्रा, तमस, अभाव, प्रकृति, ग्राहक एवं स्वर शब्दों का प्रयोग 'नाद' के अर्थ में भी मिलता है ।[३] इन शब्दों के अर्थों का व्यापक विकास मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि योगियों की रचनाओं में मिलता है ।

'कौलज्ञाननिर्णय' में 'बिन्दु' को महालिंग की शक्ति कहा गया है । अन्य स्थल पर इसे शिव की सृजन शक्ति कहा गया है । इसमें 'बिन्दु' से ही 'नाद' की उत्पत्ति बताई गई है । 'विज्ञानभैरव' में सदाशिव को नादमय कहा गया है । 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' में सदाशिव (नाद) को वह प्रथम तत्त्व कहा गया है जिससे सत् का विमर्श होता है क्योंकि शिव-शक्ति दोनों एक ही तत्त्व हैं । 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' में इसे 'सादाख्य तत्त्व' कहा गया है - १. स नादो देवदेवेशः प्रोक्तश्च सदाशिवः' (वि० भै०) 'सादाख्यं तत्त्वमादितः ॥'' (ई० प्र०) 'इच्छाप्रधानं सदाशिवतत्त्वम्' (तन्त्रालोक की टीका) सृष्टि के आदि में शिव के अदृष्टविग्रह से ध्वनिरूप 'स्फोट' उत्पन्न होकर जब अखिल जगत् को ध्वनि से आपूरित करते हुए अतिवेग से प्रसृत होता है तब उसे 'नाद' कहा जाता है । जो नाद है वही 'सदाशिव' है ।

'ध्वनिरूपो यदा स्फोटस्त्वदृष्टाच्छिवविग्रहात् ।

---

१. इंट्रोडक्शन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म (पृ० ११९)
२. प्रिंसिपल्स आफ तन्त्र : आर्थर एवेलान (पृ० ५८३)
३. इंट्रोडक्शन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म (पृ० ११८ - ११९)

Overview Find in PDF Related do
Download

19:44
scribd.com/document/455744980/Kaam-k
[S] 19 / 180

का प्रारंभिक रूप है । यहाँ परमशिव (निर्गुण ब्रह्म) विमर्श रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहा है । प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब जब चित्त भित्ति पर पड़ता है तब 'महाबिन्दु' का आविर्भाव होता है ।

'अहं' प्रकाश एवं विमर्श की एकाकारावस्था, अ से लेकर ह पर्यन्त संपूर्ण वर्णमाला एवं समस्त जगत का प्रतीक है ।

उपर्युक्त 'महाबिन्दु' में जब विमर्श शक्ति प्रविष्ट होती है तभी वह अंकुरायमाण चने के समान फूलता है और उससे नादोत्पत्ति होती है । 'महाबिन्दु' से निकलकर यह शक्ति सिंघाड़े के समान त्रिकोण रूप ग्रहण करती है । इसी महा बिन्दु द्वारा सोम, सूर्य, अग्नि; कामगिरि, पूर्णगिरि, उड्डीयान पीठ, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शक्तियाँ, स्वयंभू, बाण एवं इतर लिंग इत्यादि आविर्भूत हुए हैं ।

पञ्च तत्त्वों में क्रमशः १, २, ३, ४, ५, गुण है जो कि संख्या मे १५ होते है । यही पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में भी १५ अक्षर हैं । तिथियाँ भी १५ हैं । सभी में सामरस्य है ।

'परावाक्' जो कि नाद के रूप में मूलाधार में सर्वप्रथम अवतरित होती है नाभि में पहुँचकर 'पश्यन्ती', हृदय में 'मध्यमा' एवं कण्ठ में 'वैखरी' बनकर व्यक्त होती है । श्रीचक्र इसका स्थूलरूप है । 'परावाक्' बिन्दु स्वरूपा है ।

'अनाहत चक्र' में स्थित 'मध्यमा वाक्' के दो रूप है - १. योगिगम्य रूप - ९ नादः चिणि, चिंचिणी, घण्टा, शंख वीणा, वेणु, भेरी, मृदंग, एवं मेघ । (सूक्ष्मरूप) २. स्थूल रूप - नववर्ग : अ, लृ, क, च, ट, त, प, य, श । 'सूक्ष्मा मध्यमा' से ही 'स्थूला मध्यमा' का आविर्भाव होता है । इन समस्त वर्णों की भूतलिपि है ।

'बिन्दु' के विकास से जिस त्रिकोण एवं उसके विकास से 'अष्टकोण' का विकास हुआ उस अष्टकोण का प्रसार श, ष, स, प, फ, ब, भ एवं म के रूप में हुआ । ये तीनों चक्र बिन्दु स्थिता शक्ति के प्रकाश से आलोकित हैं और तवर्ग - ट वर्गमय 'अन्तर्दशार' तथा कवर्ग - चवर्गमय, बहिर्दशार चक्रों में परिणत हो जाते हैं । 'बिन्दु', 'त्रिकोण', 'अष्टकोण', 'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार' का विकास 'चतुर्दशार' हे । 'चतुर्दशार' के बाद आने वाला 'अष्टदल कमल' क, च, ट, त, प, य, श वर्गों से युक्त है । 'षोडश दल' १६ स्वरों से युक्त हैं । श्रीचक्र के वृत्तत्रय तीन बिन्दुओं (रक्त, शुक्ल, मिश्र) के तेज हैं और भगवती के नेत्रत्रय है । रक्त बिन्दु 'अग्नि;, श्वेत बिन्दु 'सोम' एवं मिश्रबिन्दु 'सूर्य' से युक्त है । भूपुर में आदि कादित्रिखण्डा मातृकाएँ एवं पश्यन्ती मध्यमा एवं वैखरी वाणियाँ हैं ।

'परावाक्' दो प्रकार से विकसित हुआ है—१. 'पद विक्षेप' एवं २. 'क्रमोदय ।' हात्रिपुरसुन्दरी के पदों से फैली करोड़ों रश्मियों द्वारा ब्रह्माण्डों की रचना ही 'पद विक्षेप' जाता है । 'क्रमोदय' द्विविधात्मक है । दिव्य, सिद्ध, मानव आदि गुरुमण्डल एवं त्ररणों में स्थित समस्त शक्तियाँ भगवती के पदयुगल का ही प्रसार है ।

6

07:17

facebook Open app Log In

AshramNow's post

AshramNow
9 Aug 2019 ·

🙏
निर्भय निर्गुण गुण रे गाऊंगा
मूल-कमल दृढ़-आसन बांधूं जी
उल्टी पवन चढ़ाऊंगा
निर्भय निर्गुण ।।

मन-ममता को थिर कर लाऊं जी
पांचों तत्व मिलाऊंगा
निर्भय निर्गुण ।।

इंगला-पिंगला-सुखमन नाड़ी
त्रिवेणी पे हां नहाऊंगा
निर्भय-निर्गुण ।।

पांच-पचीसों पकड़ मंगाऊं-जी
एक ही डोर लगाऊंगा
निर्भय निर्गुण ।।

शून्य-शिखर पर अनहद बाजे जी
राग छत्तीस सुनाऊंगा
निर्भय निर्गुण ।।

कहत कबीरा सुनो भई साधो जी
जीत निशान घुराऊंगा ।
निर्भय-निर्गुण ।।

भजन (१६) राग आशावरी आसा पद

साधो भाई ! चढजा अणी अगरकी।
आतम खोज अखे पद लेणां, जुरा तोड़ जालम की टेर।
चरण खोल चरणामृत लेणा, माला फेर फजर की।
सिर को भार पटक दे भोदू, राह पकड़ रुणझुण की।१
धीजो धार धवण के ऊपर, अर्ध उर्ध बिच परखी।
लागो ध्यान धासती टूटी, तीन तीन पर तरकी।२
काढे खोज खेत के मांही, पकड़ तार तिरगुण की।
बैठा वरत बाँस के ऊपर, कर ग्याता गोरम की।३
मेरु छेक मार मन मूसो, कला बड़ी कोरम की।
भलहल भांण भलकणी भलके, जोत झिलामिल झिलकी।४
गुरु 'प्रेमशाह' पूरा मिलिया, सेन बताई उन घरकी।
'चन्दनशाह' चेतन का डंका, खबर पड़ी हद हरकी।५

भजन (२०) रा[illegible] [illegible]ासा, टोडी पद

[illegible]ो भाई ! पार ब[illegible]
[illegible]ोई वाट क[illegible] [illegible]जनम [illegible] छुटेला।
[illegible]आपाण अ[illegible] [illegible]ाभि[illegible] [illegible]खेला
[illegible]ी पांच [illegible] मण[illegible] [illegible]केला
[illegible]ढगी सुर[illegible], हि[illegible] [illegible]केला
[illegible]धियो [illegible] [illegible]केला
[illegible]गी [illegible]ही, व[illegible] [illegible]टकेला
[illegible]पर, [illegible]

14:27 Vo)) 4G+ LTE1

श्री उत्तम हरि आरती

किशन सुथार
9892347434

(राग चौपाई, पद)

निशिदिन संत परम पद जोई, आरती करे सो केवल होई ॥टेर॥
पहली आरती सतगुरु सेवा, तन मन भेंट धरूँ सिर देवा।
दूजी आरती रसना गाया, जल पलटाय अमी रस पाया ॥१॥
तीजी आरती कण्ठ में वासा, भ्रम कर्म व्यापे नहीं आसा।
चौथी आरती हृदय हुलासा, रेण मिटी हुआ प्रकाशा ॥२॥
पाँचवी आरती नाभि गुंजासा, अष्ट कली पर भंवर विलासा।
छट्ठी आरती पश्चिम दिशा सूं, दे परिक्रमा शीश नमासा ॥३॥
सातवीं आरती त्रिकूटी में वासा, झिलमिल ज्योति हुआ प्रकाशा।
आठवीं आरती गगन घुराणा, अमी वर्षाय स्नान कराणा ॥४॥
नवमीं आरती नौ दरवाजा, खिड़की बन्द करे सोई राजा।
दशमी आरती दशवें द्वारे, अरस परस मिले राम पियारे ॥५॥
ग्यारहवीं आरती परम प्रकाशा, रूप वर्ण बिन नाम निराशा।
बारहवीं आरती ब्रह्म विलासा, संत (कह) हरिराम निर्भय घर वासा ॥६॥

(दोहा)

मन पवना पहुँचे नहीं, सुरता करत हुलास।

Shot on Vivo AI camera
@jayshreeram2990
16
Dislike
1
Share
Remix
स्वामी श्री हरिराम जी ,रचित आरती,,,लाइक शयेर जरूर करे,,
Add a comment...

10:02
ShreePremPrakashGranth....

काम करलो ज्यों जगत करता है वेद कहता। सुन मात मेरी कहूं बात साची मैं काल के दण्ड से बहुत डरता। कहे टेऊँ देखा मैं सोच करके सुख नाहिं जग में हरि ध्यान धरता॥ २॥ हो औषधी रोग असाध्य की ना अजा कण्ठ कुच से नहिं दूध पाना। तिय बांझ से कब ना पूत होवै मुख गुंग से कब ना होय गाना। नहिं पिंगला नर कब चाल साके हो नौद में ना सूए निशाना। कछू पीठ पर कब ना घाव होवे नहिं खेत ऊसर में होय दाना। ला सौ मना साबुन कोयलों को नहिं होवन्दे ऊजल साच जाना। रेत पीड़ते कब ना तेल निकसे कब होय सीधा नहिं पूंछ स्वाना। कब बांस ना चन्दन वास लागे कब शूम से होय ना पुण्य दाना। कहे टेऊँ दे त्यों विरंचि शिक्षा बुद्धिहीन को कब ना होय ज्ञाना॥ ३॥ मूल कमल माहीं गुरु गणेश पाहीं चरन कमल से शिष्य चित्त लाइये जी। लिंग कमल डेरा घर ब्रह्मा केरा नाभ कमल से नाम चलाइये जी। पाय विष्णु वासा करके अभ्यासा हृदय कमल शिव शंख बजाइये जी। कण्ठ कमल के पास है हंस का बास सच ग्रहण कर झूठ जलाइये जी। कमल त्रिभणा द्वार ज्योति ज्ञान उजियार निश निर्जन केरी मिटाइये जी। उलट इड़ा पिंगला करो एक सुरला भंवर सुषुम्ना सेज बिछाइये जी। कमल सुन्न सकड़े रहो ताहिं अकड़े निज निरञ्जन नाम को ध्याइये जी। चल दसम द्वारे रह रिणूंकारे मिल मौज मस्ती की पाइये जी। देख देह बिन देव पाओ पुरुष अभेव चौदह लोक सम ज्योति जगाइये जी। कहे टेऊँ भेद तोड़ जीव ईश मति छोड़ इक ब्रह्म आनन्द समाइये जी॥ ४॥ चचा चेत माई सुन सीख सोल्हा इक चरन

पति के चित लाइये जी। दूजा चार घड़ियां जाग रैन पिछली तीजा चाह से चक्की चलाइये जी। चौथा चाय चाडी दही को विलोड़ो पंचा चौके को साफ बनाइये जी। छठा चूल्हा जलाय बनाय भोजन सतां चीज सब वण्डके खाइये जी। अठां आठ घड़ियां तूं चलाय चरखा नवां चीर को सीव धुलाइये जी। दसा कूटके चावल साफ करना ग्यारीं चुग़ली चोरी हटाइये जी। बारवीं चित्त की छोड़ चंचलताई तेरवीं चिन्ता चाह गलाइये जी। चौद्वां चार साधन सिखलाय पुत्रां पंद्रा चेतना हृदय जगाइये जी। तीन काल जम जाल कट कहे टेऊँ सोल्वां चित चेतन से लगाइये जी॥ ५॥

॥ ॐ सत्नाम साक्षी॥ शैर॥

जीव ईश्वर की उपाधी दूर तांको कीजिये। सार चेतन भाग की तुम एकता कर लीजिये। ब्रह्म मैं हूं जान ऐसे भेद भ्रान्ती छीजिये। कहत टेऊँ ज्ञान इससे ब्रह्मआनन्द लीजिये॥ १॥ कोटि सूरज कोटि चन्दा खूब रोशन भी करे। कोटि बिजली कोटि बतियां कोटि दीपक भी जरे। कोटि पावक प्रलय की पुनि तेज पूरन भी धरे। कहत टेऊँ ज्ञान के बिन उर अन्धेरा ना टरे॥ २॥ कोटि मन चन्दन रगड़ के बदन पर लेपन करे। कोटि ओले बर्फ वाले बादलों से गिर परे। कोटि हिमगिरि शरद ऋतु कर जगत ठण्डी से भरे [illegible] ज्ञान के बिन तप्त मन की ना टरे॥ ३॥ कोटि जप तप कोटि साधन कोटि त[illegible]

बसन्त वृन्दावन बदन, निशदिन तांको सेव ।३०

प्रत्यक्ष आतम देव को, अल्प मती कर त्याग ।
देखन चाहत परोक्ष को, मन में धर अनुराग ।३१

आतम के सब नाम हैं, ओऽहं सोऽहं आदि ।
बसन्त अपना नाम जप, लाइ सहज समाधि ।३२

ओऽम् सोऽहं नाम मम, मैं हूं चिद् स्वरूप ।
बसन्त अपना आप लखि, भा चेतन का रूप ।३३

बसन्त सारी विश्व का, मैं हूं जाननहार ।
मुझको कोई न जानता, सारा यह संसार ।३४

जड़ी भूत यह जगत है, मैं हूं चेतन देव ।
टेऊंराम गुरु ने कहा, बसन्त पाया भेव ।३५।

बसन्त चिन्तन जगत का, देत क्लेश अपार ।
तांते तांको त्याग के, करलो तत्त्व विचार ।३६।

बसन्त चिन्तन ब्रह्म का, शान्ती देत महान ।
तांते निशदिन तुम करो, छोड़ देह अभिमान ।३७

मंत्र योग।

प्रश्न—मंत्र योग का क्या लक्षण है ?

उ०—मंत्र योग का लक्षण योग बीज में तथा ध्यान बिन्दू आदि उपनिषद् में इस प्रकार कथन किया है कि ("षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येक विंशतिः। (यो०)"

---

* अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेष वर्जिता।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्व तंत्रेषु गोपिता॥ (अमनस्क खंड)

अर्थात् इक्कीस हजार और छः सौ अधिक, हंस मंत्र का नित्यप्रति सर्व प्राणी जप* करते हैं। हकार करके यह श्वास बाहर आता है और सकार करके पुनः शरीर के भीतर प्रवेश करता है इस प्रकार हंस हंस इस मंत्र का सर्वदा ही ये सब जीव जप करते हैं। परन्तु जानते नहीं। गुरु मुख द्वारा तिस की विधि के जानने से सुषुम्ना नाड़ी विषे हंस हंस मंत्र के उल्टाने से सोहं सोहं जप होता है इसी को मंत्र† योग कहते हैं।

प्रश्न—मंत्र योग से क्या फल होता है।

उ०—मंत्र योग के द्वारा साधक को दश प्रकार के नाद का अनुभव होता है अर्थात् साधक के ब्रह्माण्ड में दश प्रकार के अनहद बाजे बजने लगते हैं तिनके श्रवण से योगी को शब्द ब्रह्म का ज्ञान होता है। शब्द ब्रह्म का ज्ञान होने से शरीर के भीतर की सर्व रचना प्रत्यक्ष होती है तब वह योगी भूत, भविष्य और वर्त्तमान का ज्ञाता (त्रिकालदर्शी) होता है।

प्रश्न—उन दश नादों की ध्वनि किस प्रकार सुनाई देती है।

उ०—चिणीवत्, चिचिणीवत्, घंटावत्, शंखवत्, वीणावत्, तालवत्, वंसीवत्, मृदंगवत्, भेरीवत् दशमा मेघ के समान। इस प्रकार दश नादों की ध्वनि हंस उपनिषद् में कथन की है।

इति मंत्र योग समाप्त।

08:08

प्रश्न—हठयोग का क्या लक्षण है ।

उ०—हकार नाम सूर्य का है और ठकार चन्द्रमा की संज्ञा है तिन दोनों का जो योग अर्थात् चन्द्रमा रूप इडा और सूर्य रूप पिंगला का एक ही भाव है, तिसका नाम हठ* योग है । "हठयोग का सारांश यह है कि—इस शरीर में एक सौ नाड़ी मुख्य हैं, तिस एक एक में से सौ सौ शाखा रूप नाड़ी निकली हैं पुनः तिन शाखा रूप नाड़ियों में से एक २ नाड़ी से बहत्तर-बहत्तर हजार उपशाखा नाड़ियां निकली हैं, ये सब मिल कर के नाड़ियों की संख्या ७२, ७२, १०, २०१ होती है । इस प्रकार प्रश्नोपनिषद् में लिखी हैं ।"

उपर्युक्त समस्त नाड़ियों में से इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ी योगाभ्यास में श्रेष्ठ हैं । पुनः तिन में भी एक सुषुम्ना ही मुख्य है क्योंकि सुषुम्ना ही सब नाड़ियों का आधार भूत है, इस कारण एक सुषुम्ना ही योगियों को मोक्ष† मार्ग में द्वार भूत है । (सुषुम्ना का मार्ग) नासिका के बायें द्वार में इडा नाड़ी का स्थान है और नासिका के दायें द्वार में पिंगला नाड़ी बहती है इन दोनों के मध्य में सुषुम्ना का स्थान है अर्थात् कंद‡ के

* हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्यचन्द्रमसो योगाद् हठयोगो निगद्यते ॥
(गोरक्षप०)

† मोक्ष मार्गे प्रतिष्ठानात्सुषुम्ना विश्व रूपिणी । (यो० शि० उ०)

‡ लिंग से ऊपर और नाभि से किंचित् नीचे कंद का स्थान है ॥

मध्य भाग विषे सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति है । सो पृष्ठ भाग से मेरु दण्ड द्वारा ब्रह्मरंध्र पर्यंत गई है । ऐसे श्रुति में लिखा है कि:—ब्रह्म नाड़ी-सुषुम्ना देह* के मध्य भाग से उठ कर आधार चक्र में आती है, आधार से स्वाधिष्ठान चक्र विषे आती है, तहां से मणि पूरक चक्र में आती है तिससे ऊर्ध्व अनाहत चक्र में आती है । तहां से कंठ स्थान विशुद्ध चक्र में आती है तहां से सुषुम्ना के पश्चिम और पूर्व दो मार्ग हैं, तिनमें पश्चिम मार्ग तो ग्रीवा के पृष्ठ भाग विषे स्थित जो मेरु दंड (बंकनाल) है, तिसके द्वारा ब्रह्म रन्ध्र विषे जाती है और पूर्व मार्ग भ्रू मध्य देश विषे जो आज्ञा चक्र है, तिसके द्वारा ब्रह्म रन्ध्र को जाती है । तिन दोनों में पश्चिम मार्ग उत्तम है ।

"जब प्राणायाम के समय योगी प्रथम इडा द्वार से प्राणवायु का पूरक करता है पश्चात् यथाशक्ति कुम्भक करके पिंगला द्वार से रेचक करता है फिर पिंगला से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करता है तदनन्तर इडा द्वार से रेचक करता है इस प्रकार प्राणायाम करने से चन्द्रमा रूप इडा और सूर्य रूप पिंगला की ऐक्यता होने से सुषुम्ना की धारा बहती है । तिस सुषुम्ना के द्वारा योगी भ्रू (भ्रकुटी) के मध्य †ज्योतिर्लिङ्ग का सदा ध्यान तथा दर्शन करता है । ये ही हठ योग का सिद्धान्त है । और नाड़ी शुद्धि मुद्राभ्यास कुण्डलिनी बोध षट् चक्र भेदन इत्यादि हठ योग के अवान्तर भेद योगशास्त्र में कहे हैं ।

* देहे मध्ये ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना सूर्य रूपिणी पूर्ण चन्द्राभा वर्तते ।
सा तु मूला धारा दारभ्यब्रह्मरंध्र गामिनी भवति । इति श्रुतिः ॥
(मण्डलब्राह्मण उ०)

† ज्योतिर्लिङ्ग भ्रुवोर्मध्ये नित्यंध्यायेत्सदायंतिः । इति श्रुतिः ।

जानिब जदिड़ी जिंदु ज़ियारे, दिल जा दर्द निवारि तूं॥
४. "बसन्तु" भावीअ साणु पुकारे, दर्शनु दे तूं प्रीतम पियारे।
सांवल पंहिंजो बिरुदु संभारे, घायल सां गदु घारि तूं॥

(रागु पीलो भजनु -57)

तर्ज़ - पीउवे डोलिया पीउ ....

थलु - सोरि तूं मनड़ा सोरि, हीअ श्वास जी माला सोरि।
१. श्वास में सतिगुरु शब्दु मिलाए,
तंहिं में चित्त जी वृत्ति लगाए, ध्यान जी पाए दोरि।
२. श्वासु अमोलकु माणिकु मोती, जंहिंमें आहे नाम जी जोति।
जोतीअ सां जीउ जोड़-सोर तूं॥
३. मूल कंवल खां श्वासु हले थो,
दसवें द्वारे जाइ मिले थो, ओर इन्हीअ में ओरि।
४. श्वास जी माला जिनि जिनि सोरी,
"बसन्त" तिनि खे हरदमु होरी, तूं भी चित सां चोरि।

(रागु पोलो भजनु - 58)

तर्ज - पीउवे डोलिया पीउ ....

थलु -सहु वे जीअड़ा सहु, तूं सुखु दुःखु सिर ते सहु।
१. सुखु दुःखु कर्मनि जो फलु आहे,
कसूरु कोई कंहिंजो नाहे, छुली न बे खे चउ।
२. जेकी थियणो आहि सो थींदो,
रुअण सां हथि कुछु ना ईंदो, रजा ते राजी रहु।

पुनि नयनों की नींद तज, स्मरो सत् करतार ।७।
बहुत जन्म सोते गये, अब तो निन्द्रा त्याग ।
बसन्त जप हरि नाम को, मन में धरि अनुराग ।८।
सोय बिताये जन्म बहु, जागे जन्म न एक ।
बसन्त किया न कर्म शुभ, नहिं ली हरि की टेक ।९।
बसन्त जागी भजन कर, रहत सदा क्यों सोय ।
सोते आयू आपनी, दयी अमोलक खोय ।१०।
बसन्त निन्द्रा नयन की, त्यागे प्रात जाग ।
स्मरन कर गुरु शब्द का, तज विषयों का राग ।११।
बसन्त अमृत वेल में, आलस्य कर मत सोय ।
जागो हरि का नाम जप, मैल पाप को धोय ।१२।
बसन्त प्रातःकाल उठ, धरि मन गुरु का ध्यान ।
सोऽहं अजपा जाप जप, पावो पद निर्बान ।१३।
बसन्त अमृत वेल में, अमृत बरसे नीत ।
जागी उठ सो पीजिये, सोय रहो मत मीत ।१४।

अमृत वेला भजन की, भजन करो चित्त लाय ।
बसन्त मन को थिर करे, भजनानन्द को पाय ।१५।
बसन्त अमृत वेल में, यत्न करे कर योग ।
लाये अचल समाधि को, योगानन्द को भोग ।१६।
ब्रह्म मुहुर्त जाग के, बैठ करो वीचार ।
को मैं हूं को ब्रह्म है, को है यह संसार ।१७।
बसन्त पिछली रात को, सावधान हो जीव ।

बसन्त अब तो नाम जप, धारे मन में धीर ।१२।
भोग रोग को खान है, काम जगत का बीज ।
बसन्त त्यागे द्वन्द्व को, नाम हृदय में सींच ।१३।
जन्म मरण यौवन जरा देते दुःख महान ।
बसन्त दुःख के हरण हित, सुमरो श्री भगवान ।
तपते लोह कड़ाह में, वस्तु तपत जिम तात ।
बसन्त तैसे जगत में, जीव तपत दिन रात ।१५
कंचन कीर्त्ती, कामिनि, पीव प्रसन्न दे नाहिं ।
बसन्त इनको जो तजे, सो पीय माहिं समाहिं ।१६
कंचन कामिनि कीर्त्ती, तीनों दुःख का रूप ।
बसन्त इनको त्याग के, पावो सुख स्वरूप ।१७।
बसन्त जग का राग तज, जान जगत को नाश ।
सतगुरु का ध्यान, कर सोऽहं का अभ्यास ।१८
बसन्त सबको त्याग के, मन में धार विराग ।
श्रद्धा से सत्संग का, हरि में कर अनुराग ।१९

जो सुख है वैराग्य में, सो विषयों में नाहिं ।
बसन्त मैने शोध के, देखा अनुभव माहिं ।२०।
बसन्त जिस पर ईश को, पूरण कृपा होय ।
जग से वेग विराग को, पावत है नर सोय ।२१।

"धैर्य"

बसन्त सुनकर प्रेम से, होत मगन मन सन्त ।६७
शून्य सकड़ में शून्य है, होय तहां मन शांति ।
बसन्त आनन्द आवहिं, बिन फुरने बिन भ्रांति ।
बसन्त द्वारे दसम में, राजत आतम देव ।
सोऽहं से मन मेल के, पाओ तिसका भेव ।६९
बसन्त सत्य स्थान में, सत्य ब्रह्म का वास ।
भासहिं तहां न रैन दिन, चंद्र सूर्य प्रकाश ।७०
बसन्त चेतन देव में, श्रुति किया प्रवेश ।
पूर्ण आनन्द पाइया, भूले देश अशेश ।७१।
देश जहां तंह काल है, काल जहां तंह देश ।
बसन्त नहिं चिदरूप में, देश काल का लेश ।७२

जांमे रवि शशि पांच तत, नहिं जगत का खेल ।
बसन्त तिस चिमात्र में, भया श्रुति का मेल ।७३
श्रुती चेतन हो गयी, तज कर अपना भाव ।
भेद भरम सब मिट गया, बसन्त सहज स्वभाव ।
बंध मोक्ष जांमे नहीं, बसन्त तंह मम वास ।
दूःख द्वन्द व्यापे नहीं, नहिं यमराज त्रास ।७५
बसन्त श्रुति रु शव्द का, सतगुरु कीना मेल ।
सोऽहं जप सोऽहं भया, देखा अद्भुत खेल ।७६
सतगुरु के पद कमल में, करहूं कोटि प्रणाम ।
जिह प्रसादे पाइया, बसन्त आनन्द धाम ।७७

07:55

प्राणायाम के द्वारा कुडलिनी जगाने का उपदेश दिया है।[2] सांईदास जी मूलद्वार का मार्ग रोककर नाभि में कुडलिनी के प्रकाशित होने एवं हृदय कमल के विकसित होने का वर्णन करते है।[3] दरियासाहब पवन के द्वारा षट्चक्र भेद स्वीकार करते हैं।[4] चरनदास बताते हैं कि लाठी की चोट लगने से जिस प्रकार नागिन शीश उठाती है उसी प्रकार कुंभक के आघात से कुडलिनी जग जाती है। जगने पर यह ऊपर की ओर चलती है। ब्रह्मरन्ध्र में आकर दो घड़ी ठहरती है। इससे उड़ने की सिध्दि मिलती है। यदि अधिक देर ठहरती है, तो समाधि की सिध्दि होती है।

इस कुण्डलिनी योग के लिए एक शब्द लययोग भी संयुक्त होता है। श्री द्विवेदी जी का विचार है कि लय शब्द ही लौ बन गया है। इस परिवर्तन से इसमें नया अर्थ भी आया है। "निर्वात निष्कंप दीप-शिखा जिस प्रकार पूर्ण शान्त और ऊर्ध्वमुखी होती है उसी प्रकार जब साधक अपने आप में विलीन होकर शान्त और स्थिर हो जाता है, उस अवस्था का नाम लय या लौ है।[5] इस विकल्प रहित स्थिति को उन्मना अवस्था अथवा खसमावस्था भी कहते है। इसमें चित्त शून्य में समाहित हो जाता है जो एक प्रकार से लयक्रिया ही है। इस लय के अर्थ में ही कबीर आदि ने उन्मनी अवस्था, खसमावस्था आदि का वर्णन किया है।[6]

1- संत कबीर, रागु गउड़ी, 75 रागु रामकली, 6-10
2- बुल्ला साहब का शब्दसार. पृ. 16
3- गुसाईं गुरु की बानी. पृ. 637
4- संत कवि दरिया:एक अनुशीलन प्र.ग्र., पंचम खण्ड, दरियासागर. पृ. 35
5- सहज साधना, पृ. 74
6- गुलाल साहब की बानी, पृ. 122, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 110, 13, 94, 99, 103, 209

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

श्लोकु—साघू सहिज समाधि मै शिवि मिल शक्त हरति
　　साईदास मध्यम थीवे आपथी सभ ते ऊंचा दिसंति ॥

२२

जोगि जुगति मेल गुरि ते पाई¹। मिटि गियों भर्म दूसरा भाई।
रोकआ मूल विछंं का पेटु। दो दल ऊपरि राखे पेल।
नाडी तत्त मूल जवि जान्या। चतुर्दल छीन षटिदलि ठहिरान्या।
अष्ट कविल दल पौना जाई। सूषम कुंडिली रह्यो गमाई।
रोक्या सूर सोम गृह आइआ। साईदास पदि गुरने पाआ।

लोकु—सभे नाती कुडीआ तेरी वाह अनाति।
　　तू दरि इको जेहवा पुछे नाही जानि॥
　　जाती को जरवधि परी किस पम्र करीं पुकार।
　　नाम उघारे प्रभ पापा के कंइ भारि॥

२३

भगिवन्त पष्प की चाल अपर्सी। तवि अपर्स² होवे समदर्सी।
लोभ मोह की तोडे फासी। ताकी श्रिष्ट सकल होय दासी।
चर्न दिष्ट ते राखे नयना। झूठे कविहू नि बोले वैना।
आत्म ते परिमात्म जाने। हरि का मार्ग तांवी पछाने।
सील सजम जुगत सो रहे। इन्द्री पच आत्मा गहे।
साईंदास अपर्स कहावन। जो पापा के निकटि नि आवन।

---

1. योग युक्ति और ज्ञान—ये दो सहज समाधि के साधन है। यहां योगयुक्ति का वर्णन है।
2. अपर्स—स्थित प्रज का लक्षण। वह योग युक्तियो के विना भी मुक्त हो सकता है। समदर्सी बन सकता है। उसी का वर्णन यहा से प्रारम्भ है—
   (क) लोभ मोह से रहित होना।
   (ख) नीची नजर (चरणो पर दृष्टि)
   　　"दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्," मनुस्मृति।
   (ग) सत्यभाषण।
   (घ) शील, सयम तथा युक्ति से रहना।
   (ङ) पचेन्द्रिया तथा मन को वश करें।

16:14

२६

जो प्रथिवी सकल प्रदछनि देय। मकर प्राग कलिवत्रि मिर लेय।
जीवित वहन देत जो प्राना। उर्द्धपाउ सो धरै धिग्राना।
कोटि जनिम जुक्त सो रहे। इद्री पंच आत्मा गहे।
एक पलिक हरि सिमरनि कीजै। ता सम सरि कछु अविर न दीजै।
कोटि अस्वुमेध यग्य जो कीजै। तुल्हापुर्ष दान भरि दीजै।
सिहजा भूम दान जो करे। लं दुविकी मनि काम न मरे।
निहि स्वादी नही पावे स्वादि। तजिए पनि सभ वादिविवाद।
बोलनि छाडि मौन धरि जांह। भी हरि सिमरणि समसर नाह।
कुभ करे शिव द्वादश वारा। प्रान देत जहां हैहि बंधारि
जोगि जुगित सो राषे ध्यान। पाच भूत का मारे मान।
रेचक पूरक कुभक माधे। वाउ पच अग्नि तटि बाधे।
उलिटि पौन पटि चक्र को भेदी। मगिन समाध सो भेदि विभेदी।
नौ दरि रोंक दसवे घरि जाह। भी हरि सिमरनि सम सर नाह।
बांधि जटा वभूति चडावै। गंग जमनि विच सुरसुरी नावै।
अविरि छाडि दिगबिर होवे। निद्रा जोगि ध्यानि मै मोवे।
पीवे पवन सहज घर पानी। मडल गगन चडा वैवांनी[1]।
तालाकुजी की गति जाने। अंतिर ध्यान लाग मनि माने।
मूड मुडाय होत वैरागी। निंद्या चिंद्या सकली त्यागी।
तीरथ कोट सकल भरिमांह[2]। भी हरि सिमरनि समसर नाह।
साधे पचअग्नि त्रैकाल। जलि तपि सीत करे परिजाल।
शिषर बाध कुभनि की धारा। दयाहीनि मनि भ्रमे विकारा।
करि पषडि चडावै पेह। विन विवेक कित दडे देह।
मनि वच कर्म साच धरि रहे। जैसा हिर्दे तैसा कहे।
बधनि मुक्त हो जायगो प्रानी। मिटे वियोगि सहजि लिव ठानी।
मिल सतिगुरि ऐसी मति पावै। तौ साईदास फिर जनिम न आवे।

. वैवांनी < विमानी = जहाज।

भरिमाह = भ्रमण किये।

जिनि सभ ही में एको जाना। वहु विध रंगी रंग पछाना ।।
षालक बन्या षलक के माही। षालिक पेल पाकि होइ जाही ।।
षालक हू ते पाक जिनावे। पुशी पालक की तबिहूं पावे ।।
हौमे मेटे ते अलिसाना। जीवित पाक होइ पसमाना ।।
षसिम मने तौ नौ-निध पावे। जिस को अपुना आपु जनावे ।।
साईदास प्रभ अकथ नीशानि। मै तेरी कुदिरत तो कुरिबानि ।।

सलोकु—करि करिवाल जो काल के काटति पलिक पलाहि।
तबि जान्या जबि गिर परा सनिमुष जूझे जाहि ।।
जो जूझे तेऊ भले अनि झूझति किह काज।
साईदास तबि क्या झूझणा जबि जम के भए मुथाज ।।
निमिषि पलिक नही बीसरे हीए तिहारो नामु।
करि पसार दोउ मागिते साईदास यहि विसराम ।।

३८

मूले चक्रे लागे बंधि[1]। इद्री चक्रे थिर भए कधि ।।
नाभे चक्रे उलटै पौना। ताले मिट गियो आवा गौना ।।
रिदे चक्रि मन कविल प्रकास। चूकी मार्न जीविन की आस ।।
कठी चक्रे टुटे ताला। जोगी होइ वृद्धि ते बाला ।।
शपनी चक्र भयों उजिआरा। जो चीन्हे सो जोगी सारा ।।
षटि रस भेद गगिन गडि गाजा। जिह परिचा अनहद बाजा ।।
आदि अनादि भओं ओंकार। जिह मिल सुर्त कीओ सचार ।।
सुर्त निर्त मिल एको भआ। जीवि मीत्रि मिल संसा गआ ।।
ससा गिआ भअ निहसम। जित देषो तित एको वसि ।।
उत्तम मधम तहा को नाही। साईदास पदि पूर्न घटि माही ।।

सलोकु—मूल रोक पटि चक्र कों रिदे पंकज को ध्यान।
सपनी ते सचु पाईए तहा समाने प्रान ।।

---

1. योग साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिए साधक को प्राणायाम द्वारा कुडलिनी को जागृत करना होता है। यह कुडलिनी शरीर में स्थित छ: चक्रों को पार करती हुई सहस्रदल कमल मे पहुच जाती है, यही साधक की परम-सिद्धि है। उन्ही चक्रो का यहा वर्णन है। इनके विशेष ज्ञान के लिए परि-शिष्ट देखिए।

16:16

ब्रह्मरूप निर्लेपु है माया शक्त न कोय।
साईंदास ताको छेदे वल करे कर्मा वाला होय ॥

३९

एको परिमात्म निरमाया[1]। आत्म उपिजे तांकी छाया।
वपि धरि आत्म कर्म कमाया। कर्मा ही ते जीउ कहाया।
जबि जीउ इति उति डोलन लागा। ताते कहीए मनि अनुरागा।
मनि मनिसा मिल षेल बनाओ। चितवनि ही ते चित्तु कहायो।
जबि चितु फेर पिछौड़े जाया। तौ परिमातिम जाय समाआ।
षेचरी[2] साधे त्रितं चितवनी जाय। भूचरी ते मनि उलिटि समाय।
अगोचरी ते आतम लिवे लागे। उनिमनी ते ससा सभ भागे।
चाचरी साधे सहिज निवास। साईदास आत्म भयो प्रकास।
कर्म करे सोई नाम ही समझि विचार विवेक।
साईंदास कहिन मुनिन को दोय है जानिन कों प्रभ एक ॥
उपिज विनस क्या कहो सभी रहिआ भरिपूर।
साईंदास किनहूं नेडे जानआ किनहू समझयो दूरि ॥

४०

किनहूं राम निकट करि जाना। किनहूं दूर दूर करि माना।
किनहूं साध लीओ घटि माही। किनहूं दिष्ट पडो कछु नाही।
किनहूं अपिना आपु पछाना। किनहू जान्या किनहू न जाना।
किनहू दीपक जोति प्रकासी। किनहूं भर्म परो उरि फासी।
साईदास जिह इह सुप मानयो। धान थनन्तर रहया समायो।
धर्म नेम सभ को करे घाति करे नहीं कोय।
साईदास जप लीजिए जो कुछ होय सु होय ॥

४१

राम नाम मनि लेह विचारी। भर्म की भीति चित हूं ते टारी।
राम नाम अमृति फल पायो। राम नाम घटि माह समायो।

---

१. यहा से ब्रह्म अश किस प्रकार जीव बना, इसका वर्णन है।
२ खेचरी, भूचरी, अगोचरी उनिमनी और चाचरी ये पाच यौगिक अवस्था हैं। अधिक स्पष्टता के लिए परिशिष्ट मे देखिए।

आत्म मनि बुद्ध एकु है थामै भेद नि कोय।
साईंदास जौ माने तो मान लेहु कहे होत नहीं दोय[1] ॥

५२

एक रूप आत्म सभ माही। कर्म करे फुनि नामु सदाही ॥
बुधि प्रकास परिमातम होई। आत्म मनि मिल दुर्मत षोई ॥
सभ ही भीतिर ब्रह्म पछाना। अपिना आपि देप पतीआना ॥
नैनन माही दीयो दिपाई। औरि नही कछु नाम सुहाई ॥
एको राम रमयों सभ थाई। साईंदास सुष आनदि माही ॥
सलोकु—जोग ध्यान षटि कोटि को जाते जोगी होय।
विन जाते घरि ना बसे जतिन करे जो कोय ॥

५३

प्रथमे मूल द्वारि रोकावे। दुतिए लघ दुआरे फुनि आवे ॥
नाभि कविल वाउ धरि अहे। वर्तत अदिभुन लीला कहे ॥
उलिटि पविन जवि हिर्दे आवे। आनदि होइ अनद समावे ॥
जीवित आइ वस्यो तिस मदर। अतिभुति रूप वन्यो अति सुदरि ॥
विसर गियो जो काम कमावित। करि क्रीडा तवि सुप उपिजावत ॥
त्रैगुनि गियों अगम घरि आवे। जगित माह सभ ही विसरावे ॥
पचि दूति का कीनो पापु। षडग लियो सोहं करि जापु ॥
अवि तो उनिमन माहु समायो। भयो कछू था जो जगि आयो ॥
लीयो पछान परिमात्म सुप जविही। उनिमनि में राता जनि तविही ॥
सोंहं पदि सो रहयो उरिझाई। साईंदास गुरि दीयों बताई ॥
चिह्न चक्र ना वर्ग कछु दिष्ट पडो नहीं मीति।
साईंदास अपिना आपु पछानियो निर्मल होइयो चीति ॥

५४

चिह्न चक्र कछु दिष्ट न आयो। मानि गयो आतिम सुष पायो ॥
जो कछु था सोई कछु भयो। ससा सोग रिदे मिटि गयो ॥
मगिन होय पुरि माहि समाओ। अनिहदि तार बजे मनि भायो ॥
वाजित वजत्र तारि अधिकाई। निर्त कर्त को कहु समझाई ॥

---

[1] साईंदास जी का सिद्धान्त—"अद्वैतवाद"।

एक एक के पाचों भेद। सुनो कान धरि कूकत वेद ॥
जो जनि पांच भूत से रह्या। साईदास दास तिह भया।२

पाच भूत का भेदि बताऊ। रे मनि तुझि को कह् समझाऊ ॥
फुन इह् पाच कों करो वीचारि। चित अतर लियो श्रविनी धारि ॥
फुन तत पाच सुनो मेरे भाई। ताको भेद सभ दियो बताई ॥
जँउ पिड निद्रा वस कीन। षुध्या तृपा सुनो परिवीन ॥
पाच तत्त की सिष्ट रचाई। साईदास प्रभ वनत बनाई।३

कांनो धरि सुनि लीजै भाई। तिह् सुभावि सभ दियो बताई ॥
इनि पांचो का भेद वषानो। गुरि मुष होइ सोई जनि जानो ॥
वहुडि पांच के भेद वताऊ। गुप्त वाति करि प्रगिटि दिषाऊ ॥
माया मोह् राग रस भोग। पाच भूत कों ह्य संजोगि ॥
याको लीजे मनि मय धारि। सांईदास फुनि कीयो विचारि।४।

प्रथिवी को ग्रहि् रिदा कहावे। द्वार गता ते वेद वकावे ॥
खान पीनि अहारि पछानि। लालच लोभ विउहारि बपान ॥
फुनि बानी को मुनो वीचारि। हरि प्रसादि करि अंतरि धारि ॥
तुरिआ माह् अहारि करी न। काम क्रोध मनि वस करि लीनि ॥
नीकी वानी हजंस कीजै। सांईदास सोऊ घटि लीजै।५।

तपा तेज तत गृह् जांनो। नेत्र माह् द्वारि पहिचानों ॥
दिष्ट अहारि मोह् विउहारि। पच तत्त कों एही विचारि ॥
नाम कविल पायो घरि वास। पंखडी कला भयो परिकास ॥
द्वादस द्वारे ताके कही। गध सुगध अहारि ह्य वही ॥
नरि इछा विउहारि कहावे। साईदास को गुरि मुप पावे।६।

ग्रहि वृह्मंडि अकास पछान। फुन ते द्वारे कहो कान् ॥
नादि अहार अहं विउहारं। सोहं हसा जाप विचार ॥
या कुटम सभ नावक मा। तू षेवट हरि पार तरा ॥
गुरि मिल लीजे मतरि वीरि। तवि भय सागर उतिरे तीरि ॥
लष चउरासी भर्म न हो। भजि सांईदास दास गुरि सो।७।

16:58

रागु प्रभाती

द्यालि[1] हो कृपाल माधो सभनि के प्रतिपाला।
आगे आवित पै पठाविनि पाछै आवित वाला।।रहाऊ
बर्नि कीटि पच पसु विराजित कछु गाठ ना वधाइओ।
देन हारि करि सम्हारि विरिद ही वहाइओ।।
पप्यान मध्य गुफा कीटि मार्गु नही कोऊ।
तांकों कित भांति देति सभनि का प्रभू सोऊ।।
भूम मद्ध पै अकासि जलि मै जो जीआ।
कर्न कार्न प्रभ अपारि जानिआ सो कीया।।
जैसे जानि तैसे देति आतिम विसुवासा।
चर्न ओटि रिदे राषु तां सो साईदासा।।

हर्ष हर्ष हरि को जसु गाउ।
वारि वारि फिर जन्म नि आउ।।—रहाऊ
मूल द्वारि की रोको वाटि। चारी देत है वज्र कपाटि।।
नाभ कुंडली भओं प्रकासा। रिदे सरोवरि कौल विगास।।
शिव अरि शक्त समोकरि जानो। पौनि मध्य गुरि ज्ञानि विषानो।।
जबि लग रसना पीवै पानी। तबि लग भज मनु सारङ पानी।।
तुरीआ तत्त तहा अनुरागा। वादर बिनु घनि वर्षनि लागा।।
फूटा तिमरि जोति प्रकासि। इह विध प्रणवै सांईदास।।

कैसे मै वर्नो तू अरिधक उरध।
वर्ननि साको ख्याल वाल कवि रिधं।। —रहाऊ
विरछो नि पत्रो न मूलो नि डाली।
पुहपो नि गधो वासो नि माली।
तेरा निरभौउ वाडभन्नानि घडिआ।
वजे निशानु पुरात्मु जडिआ।

---

१. दयाल।

स्यासुंदरि दे माथे परि
मुकट विराज रहआ, गिरधरि सीस धरिआ ॥—
मोहनि दे सिर मुकुटि बिराजे लाल जवाहरि जडिआ।
हीरे बहुति अमोलक लागे प्रेम मगिन हो घडिआ ॥
गऊ मछ मृग पछी मोहे मोहे सुरि नरि देवा।
महादेव की ताडी छुटकी भूल गई सभ सेवा ॥
ब्रिद्रावनि में रास रचाया मोहनि कौरि कन्हाई।
भुजा पकरि संग गोपी षेले सतनि का सुषदाई ॥
चंद सूर्ज सकले वनि छाए अैसी जोति प्रकासी।
तीन लोक मै भओ उजाला सोहे सिर अविनासी ॥
हरि की लील्हा जाइ नि वर्णी सुमती कहा बषाने।
अविरदास नरिहरि नाराइण अमरा पदि को माने ॥

दो०—तिमुरु गिआ रवि देप के कुमत गई गुर ज्ञान।
गुमति गई अति लोभ ते भगत गई अभमानि ॥

रामकली—

अगिम अगोचरि अनिहद नांनी।
क्या कछु कहो कहन की नाही अनिभै गति हैरानी ॥—रह
पांचो मारि करे अपुने वस सो एह ज्ञानि विचारे।
दह दिस गविन कर्न ते थाका आप तरे मोह तारे ॥
सहजि समाधा सुनि लिव लागी मनु लै तहा चढावे
पसरी किर्ण तिमर तवि फूटा सोहं सवद सुनावे
त्रिगुण अतीति रहत गति उपजी तति पद माह विल्हावे
गंग जमन के भीतिर पैठा अगिमो निगम नि आवे
ससि नही सूर पवन गति तहा पुर्ष को वासा
जनिम मर्ण की सका नासी तहा वसवो सांईदासा

एह् धरिती केतक मरण माटी केलक बीच अकासा।
जलि परि घर्न घर्न धर्न[1] परिवर्षा, एह् जलु कहा ते आवे।
आपो अपिनो बूद परित है मेरा सतिगुरु एही बतावै।
एका रकत बूद फुन एक सुति दुह्ना किन साजी।
करिम कर्तूत कीए सभ उनि के वीचारो एह्वाजी।
क्या मैं लिपो तूं अलिप कहावे लिष मै परित भुलाना।
जैसी सूझ फुनि तैसी जो काहूं मन माना।
ओह्‌ अविगति नाथ अगोचरि कहीए कह्वो सांईदासा।
जवि लगि ह्‌स मुआद सभ तवि लग पाछे भओ विनासा।

रामकली

अनिल अनील अतीति वानी।
तहा मनु रचना आवागौनी भरम चूका, सारि गुरवचना।
कोई जनु जोग का अरमु साजे, सदा षोजे अनहा वाजे।
अगम सपी सुनि लावे, षोजता अगति पावै।
एडा पिगुला सुषमननाडी जोग की इक विध सारी।
सविद गुर्के[2] श्रोत्र ताडे पूरिवो पश्चम चाडे।
नादि विद कला चाई तत्त वस तिसु कटि आई।
अन्हा धरि जब भैओ वासा ता अकथ कथयो सांईदासा।

रामकली

विरिथा नवारणा भजु सरिणा।
तेरी कौण चुकावत चितवति मन ते क्या करना।
जवि लग बूंद परी गर्भ अंनर सहज देहा उरि धाई।
नपि सिष नेत्र विधाता कीने लेषु न मेटओ जाई।
विहु लिषआ दुषु सुप तपु संजम सील सुमति दुष्टाई।
चंद सूर्ज ब्रह्मड टलेगो लेषु न मेटओ जाई।

---

1. एक धर्न शब्द लिपिकार का दोष।
2. गुर्के=गुरु के।

पौड़ी—

उलिटि कौल जवि ऊपरि जाइ।
नाडी नाडी स्वास वताइ।
सूषम नाड सूषम गति पाई।
कर्मचंदि गुरि सदा सहाई।

अष्ट कौल है जांके पात।
पाति पाति फूल विन सोहं जाप।
इसि सोहं का करो वीचारु।
कर्मचंद गुर चर्न अपार।

पौड़ी—

अपारि कला को जो कोई लागे।
जाके भागि सोइी निसि जागे।

कमचदि तुम जागो भाई
सोआं सोइआ किउ रैन गवाई।

उलिटि पौन गगनतरि जाइ।
चर्न कोल मै रहउो समाइ।
अइसा दर्सुन देपो भाई।
कर्मचंदि मिल जोति सवाई।

दो०—गगिनि मार्ग मै जोति झिलमिली तहा अंवृत रसु पीजे।
कर्मचंदि गुरि चर्न धूरि परि चितु चेतिन करि दीजे॥

पौ०—गगनि मडिल मैं अंवृत कूआ तहा जाइ लिवि लागे।
तहा जोत झिल मिल हरिसे मोहं सविद मिला जागे॥
कर्मचदि गुरि चर्न धूरि परि स्वास स्वास चित लागे।
सुर्त समानी सविद मै सवदि चढिओ अकास।
कर्मचंदि गुरि चर्न धूरि परि लागी वहुति प्यास॥
इही प्यास लागी रहे निस वासरि अरि भोरि।
कर्मचदि गुरि चर्न धूरि परि होए नैनि चकोरि॥
चकोर दिष्ट अकास की आनि नि कितिहूं जाइ।
कर्मचदि गुरि चर्न धूरि परि रहियो सर्व समाइ॥
अकास चादना सविद है चंदि चकोरि के भाइ।
कर्मचंदि गुरि चर्न धूरि परि अनेक वारि वलि जाइ॥
अग्नि चुगे चितु ना जले सीतिल ब्रह्म वीचारि।
कर्मचंदि गुर चर्न धूर परि अनिक वारि वलहारि॥

अतीत मार्ग अपारि है अगम पथ को सारि।
कर्मचन्दि गुरि चर्न धूरि परि पाए प्रेम अपारि।।
प्रेम पुर्ष अपारि हे निरजन की हय जोति।
कर्मचन्दि गुरि चर्न ते आतम निर्मल होति।।

गगे अगे अगे रिजाइ। रोम रोम विच रह्यो समा
गपि सिषि पूर्न आतम ज्ञानि। तहा चर्न कौल का लागा ध्या
चर्न कौल कैसे है भाई। ताकी महिमा कही नि जा
तेन चर्नन का करो प्यारि। तवि ही पावो मुक्त द्वा
ाधनि मुक्त तहा कछु नाही। प्रेम पदार्थ हे घटि माहे

अचिव अवृत छक रहे पाइओ पदि निर्बानि।
कर्मचन्दि गुरि चर्न धूरि परि सदा सदा गलितानि।।
अयसा दाता को नही जैसे संत उपिकारी।
सति चर्न की धूरि परि जाउ सदा वलिहारी।।
संनि जवी किरिपाल होइ तवि मिले मुरारी।
चर्न कौलि की धूरि परि कर्मचन्द वलिहारी।।
सांई देवल देवता आत्म देवल होइ।
आत्म देवल स्वास है मनुआ लेहु परोइ।।
मनु मनिसा मिल षेलु है देबल कहीए सोइ।
कर्मचन्दि गुरि चर्न धूरि परि तहा जनिम मिर्त होइ।।
जनुमु मिर्तु एक वाति है इहि वाति मै नाहि।
वाति समानी बाति मै एह अचरजि रूप अपारि।।
कर्मचन्दि गुरि चर्न धूड परि पाए अलिष अपारि।
अतिरि लिवि लागी रहे गर्जे सविद गंभीरि।।
चहु दिस चमिकै दामनी सोहं पुर्ष रघुबीरि।
कर्मचन्दि गुरि क्रपा ते उतिरे बेनी तीरि।।
गुणु को ग्राहु जु कीजिए औगिण देहु बहाइ।
गुण औगण ते परे है तहा कर्मचन्द ठहिराइ।।
भगित भय को दूरि करि निर्भौ गावो गीति।
कर्मचन्दि गुरि क्रपा ते होए नैनि अतीति।।

17:17

भिख्या मागी नाम की सति गुरि सदा क्रपाल।
कर्मचन्दि गुरि क्रपा ते एह स्वासनि की माल ।।
एह माला है नाम की मका मनुग्रा गाह।
कर्मचन्द गुरि क्रपा ते सोह हसा गाह।।
कांटा लगियो प्रेम का अतिर घसता जाइ।
जाता जाना तहा गया जहा सबदि सुर्त मिल पाइ।।
एह वाति है प्रेम की नपि सिग्र रहयो समाइ।
कर्मचन्दि गुरि चर्न धूड परि अनिक वारि वलि जाइ ।।
प्रेम प्रकासयो सहिज मैं सति गुरि दीउौ वताइ।
नषि सिप ग्रातमु प्रगटियो अतिर गति लिव लाइ।।
अतिर लिव लाइी रहे सतिगुरि दीयो वताइ।
कर्मचन्दि गुर चर्न परि अनिक वारि वल जाइ।।
सतिगुरि विरिहो जागिग्रा जनिम जनिम सुषु पाइ।
कोटि जनिम का पशु था पल मै पहुचे जाइ।।
स्वास स्वाम भजु नाम कों बिरिथा स्वास नि षोइ।
रतिन स्वाम जवि जवि जान्या मनु माने सुषु होइ।।
अयमे स्वास तां बलि वलि जाईए। चर्न कौल चितु द्रिढ करि लाइ
चर्न कौलु मै कौतिक देष्या। निज सरूप मिल आनंद पेष्या ।।
आनदि कला वढती ही जाए। कर्मचंदि चितु चर्न समाइ।
रा रा ममा भगतु है सोहं गावां गीति।
कर्मचदि चितु गुरि चर्न धूरि परि होए नैन अतीति।।
भानु प्रकासयो जगित मै तिमर गियो विवहाइ।
कर्मचन्दि गुरि चर्न धूड पर अचिरजि भानि चढाइ।
कुसंगि कविहूं नि कीजिए सदा रहो सति संगि।।
कुसंगि मार्गु अज्ञानु है सति संगु सदा बीचारु।
दुषु सुपु कविहूं न लागही इहि संतिन का उपकारि।।
सत सदा अरोग है रोगी सदा कुसगि।
इसि कुसगि को त्यागि देह सतिनि मो लिव लाइ।।
कर्मचन्द गुरि चर्न धूड परि जनिम मर्न दुष जाइ।

जोग छतीसाँ औंर वतीसाँ, पैलाँ अन्त न पारा ।
सेनर जाणै तहाँ पर वाणै, परलै धंधुकारा ।
माय न होंती वाप न हुँता, पूत नहीं परवारा ।
जामण मरण विछोह न होंता, ना कोई हेत पियारा ।
गिगन मण्डल में छतर न हुँतों, आभ न हुँता तारा ।
चन्द न सूर न पून न पाणी, न धरती गेणारा ।
सातुँ सायर अै न हुँता, नौंसे नदी झलारा ।
अठकळ परवत अै न हुँता, वणी अठारै भारा ।
तंत न मंत न जड़ी न बूँटी, न दीसँत दीदारा ।
चोये चकेनो ये खण्डे इक्कीसे विरमण्डे, एकै वचन उधारा ।

छत्तीसों प्रकार के योग और वत्तीसों प्रकार के साधन[1]— अन्त नहीं पा सकते. जिसने आत्मा को जान लिया है वही सब कुछ समझता है, अन्यथा सर्वत्र प्रलयकालीन अन्धकार ही है ।

जब माता नहीं थी, पिता नहीं था, पुत्र और परिवार नहीं था, जन्म-मरण और वियोग नहीं था, न कोई स्नेही था न प्यारा, गगन-मण्डल में छत्र नहीं था, नभ में तारे नहीं थे, चन्द्र, सूर्य, पानी, धरती, आकाश इनमें से कोई नहीं था— और ये सातों समुद्र भी नहीं थे, नौ सौ नदियाँ भी नहीं थीं— अष्टकुली नाग और आठों पर्वत नहीं थे, अठारह भार वाली वनस्पतियाँ नहीं थीं, तंत्र, मन्त्र जड़ी-बूटी आदि कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ती थीं— तब भी चतुर्दिक् नौ खण्डों और इक्कीस ब्रह्माण्डों में ॐकार रूप एक शब्द-ब्रह्म ही सबका आधार भूत था ।

(१) 'जोग छतीसां (३६+३२) अर्थात् ३६ और ३२ का योग अर्थात् ६८ तीर्थ भी जिसके भेद को नहीं पा सकते, यह भी अर्थ हो सकता है । ३६ (वाम मार्गी) और ३२ (दक्षिण मार्गी) संख्या से इस प्रकार का कूट तात्पर्य भी निकल सकता है ।

दोहा— ऐसी गोप्य जू खेचरी कही प्रगट करि सोय ।
जयतराम गुरुक्रिपाते याको साधन होय ॥८९५ ॥

॥इति खेचरी मुद्रा ॥

अथ षटचक्र वरनन ।

ध्यान अजपासहित कहिये है ।

चौपाई— प्रथमही अजपा सो मन लावै ताकै जपै सकल सिध पावै ।
विनही जाप होत है जोई [३११] अजपाजाप कहावै सोई ॥८९६ ॥
सोहं सोहं सासोसास घटमै करैं निरंतर वास ।
षट सत सहश्र इकीस जु आवै गुरुकी क्रिपा भेद सो पावै ॥८९७ ॥
सो पुनि ले घटमै उलटावै षटचक्रनमधि आनि मिलावै ।
क्रमसौ जाप करै मन लावै जाविधि आग्या गुरुतै पावै ॥८९८ ॥

॥इति अजपा ॥

अथ षटचक्रवरनन ।

चौपाई— प्रथम चक्र आधार बखानू स्वर्न वर्न तासकौ जानू ।
सक्ति गणेश चतुर्दल सोई वंशंषंसं अक्षर होई ॥८९९ ॥
तपत स्वर्णमय ध्यान जु धारै षटसत तामधि जाप उचारै ।
सोई जाप गणपति को दैवै निर्भय होय चरण पुनि सेवै ॥९०० ॥

॥इति आधारचक्र ॥

अथ स्वाधिष्ठान चक्र ।

स्वाधिष्ठान चक्र पुनि दूजा तेजमनो विजुरी को पूजा ।
षटदल षट तहा अक्षर राजत बंभंमंयंरंलं सहित विराजत ॥९०१ ॥
ब्रह्मासावित्री पुनि जहां षटसहस्र जप जपिये तहां ।
सो पुनि अजपा अजहि चढावै तिनके चरन सीसकौ नावै ॥९०२ ॥

॥इति स्वाधिष्ठान चक्र ॥

अथ मणिपूरक चक्र ।

त्रितीय चक्र मणिपूरक जोई नीलवरनमय जानो सोई ।
लक्ष्मीसहित विष्णु तहां राजत पीत वरन अति सोभा साजत ॥ ९०३ ।

३११. अजपानाम (भां)

अजपा -

वृत्तीला अंतर्मुखी करण्यासाठी तु. महाराजांनी 'अजपा' साधनाचे वर्णन केले. अजपा कसा साध्य करावा? आणि त्याचे परिणाम वर्णन करतांना पुढील भजनात तु. महाराज म्हणतात-

ऐक उद्धवा । तुला सांगतो खुणचि अजपाची ।
लागे जेणे सहज समाधी, सत्य जाण साची ।।धृ.।।
भ्रुकुटिस्थानी महेश वसती 'सोहं' तया म्हणती ।
नाभिकमली जीवापासुनी 'हं' शब्दची निघती ।।
म्हणती हो उच्छवास जयाला त्यातचि हंकार ।
कंठी येऊनि निघे सत्वरी सोहं उच्चार ।।१।।
श्वास खेचता 'सो' ये कंठी, नाभी मुक्कामी ।
उठते गदगद 'हं' अक्षर ते मणिपूराहूनी ।।
ऐसा चाले 'सोहं-हंसा' चोविसही तास ।
जप होतो एकविस हजार सहाशे सावकाश ।।२।।
सत्य टाकूनी लोक पूजिती असत्य पाषाण ।
विशुद्ध 'ओहं-सोहं' त्यांनी दिधला टाकून ।
पुऱ्या मातृका बावन फिरती, घेऊनिया त्यास ।

तुकड्या सांगे, सत्य मंत्र हा, तारि जाणत्यास ।।३।।[६२]

अर्थात हे उद्धवा! तू आता ऐक मी तुला अजपा करण्याची विधी सांगतो आहे जे साधन केल्याने सहज समाधी लागते आणि सत्य कळून येते. याठिकाणी उद्धवा हे संबोधन तु. महाराजांनी अजपा करु इच्छिणाऱ्या साधकासाठी वापरलेले दिसून येते. अजपाची विधी सांगतांना तु. महाराज म्हणतात की, भ्रुकुटिच्या ठिकाणी महेशाचा वास आहे त्याला सोहं म्हणतात. नाभिकमलाच्या ठिकाणी जीवात्म्यापासून 'हं' शब्द निघतो त्याला उच्छवास म्हणतात. त्यातच हंकार आहे. हा 'हं' कार कंठापर्यंत आला की 'सोहं' उच्चार निघतो. श्वास वर खेचला की 'सो' चा प्रवास कंठाकडून नाभीकडे येतो, गदगद होऊन मणिपूर चक्रापासून हं अक्षर उमटते. अशाप्रकारे सोहं हंसा जप चोविस तासात एकविस हजार सहाशे वेळा सावकाशपणे होतो. लोक हे सत्य टाकून असत्य अशा पाषाणाचे पूजन करतात आणि विशुद्ध ओहं-सोहं याला बाजूला सारतात. सोहं जपाने सहस्त्रार चक्रावरील ५२ मात्रा या सोहं च्या जपाने फिरायला लागतात. तु. महाराज म्हणतात की, हाच सत्य मंत्र आहे हे ज्याने जाणले तो निश्चितच तरुन जातो. अशाप्रकारे याच मंत्राच्या जपाने शरीरातील सप्त चक्रेही जागृत होतात असे तु. महाराज म्हणतात -

दोन अक्षरांचा जप करुनी रत्ने सातहि पाही रे ।।[६३]

यावरुन हे लक्षात येते की सदगुरुची कृपा अजपा साधन याने वृत्ती अंतर्मुखी करुन साधनेत इच्छित ध्येय प्राप्त करता येते. म्हणूनच तु. महाराजांनी पुढील भजनामध्ये अजपा साधनाला मुक्तिचा सोपा मार्ग म्हणून संबोधले आहे.

मुक्तिचा मार्ग होईल सोपा, ही अजपां जपी निश्चये पां ।

सोहं ध्वनि लक्षी घे लाऊनी , चालतो श्वासी जो नित्य खेपा ।।धृ.।।

चालता बोलता कर्म करिता, होऊ दे या मनासी सुलभता ।

ध्वनी अंतरी नासिकेच्या खरी, मग्न होऊनी पाही स्वरुपा ।।१।।

मुनी-संत जे योगी झाले, साधने शांति स्वरुपी मिळाले ।।

देवादिके ही पादुके, सच्चिदानंद हा पां ।।२।।

मानवासी दुजा मार्ग नाही, साधकासी दुजे स्थान नाही.

तुकड्या म्हणे पूर्ण पूर्णातूनी,जन्म मरणाचिया चुकती खेपा ।।३।।[६५]

मुक्तीचा मार्ग सोपा करण्यासाठी अजपा जप करण्याचा उपदेश तु. महाराजांनी उपरोक्त भजनामध्ये दिला आहे. अजपा साध्य करण्यासाठी जो सोहं ध्वनी आपल्या श्वासाबरोबर नित्य चालतो. त्यावर लक्ष केंद्रित करावे असेही तु. महाराजांनी स्पष्ट केले आहे. अजपा साधनाला अधिक स्पष्ट करण्यासाठी महाराज म्हणतात की, चालता, बोलता आणि कर्म करतांनाही हे मन त्या श्वासाकडेच वळले पाहिजे अशी सुलभता त्याला उपलब्ध करुन द्यावी. नासिकेच्या खरी म्हणजे नासिका मार्गात ज्याठिकाणी श्वास स्पर्श करीत जातो तेथून ध्वनी अंतरंगात नेवून त्याठिकाणी मग्न होऊन आपले स्वरुप पाहण्याचा प्रयत्न कर.

आजपर्यंत जे कोणी मुनी, संत, योगी झाले ते अजपा साधनेने शांती स्वरुपाला प्राप्त झाले आणि देवादिकांनी सुद्धा याचमार्गाने हा सच्चिदानंद पाहिला आहे. याशिवाय साधकाला दुसरे कोणते स्थान आणि मार्ग नाही. अजपाच्या या मार्गानेच पूर्णातून पूर्ण प्राप्ती होवून जन्म-मृत्युच्या फेऱ्यातून सुटका होईल, असे तु. महाराज साधकाला निक्षून सांगतात. म्हणजेच अजपा साधन हे पूर्णत्व प्राप्त करण्यासाठी आवश्यक आहे आणि याच मार्गाने अखंड शांतीची अनुभूती करुन घेता येईल असे महाराजांनी स्वानुभव युक्त कथन या भजनांच्या माध्यमातून केले आहे. समाधी हे अष्टांगयोगातील अंतिम अंग आहे. या स्थितीचा अनुभवसुद्धा तु. महाराजांनी घेतला आणि त्यांना त्या आलेल्या अनुभूतीचे वर्णनसुद्धा काही भजनांमध्ये केले आहे.

योगानुभव कथन -

आवश्यकता नहीं पड़ती है।[1] आचार्य क्षेमराज ने भी अपने श्लोक के माध्यम से *"कथा जपः"*[2] में जप की व्याख्या की है। वाचिक, उपाशु और मानसिक ये तीन प्रकार के 'जप' वैखरी के आवान्तर भेद है। इन तीनों भेदों में जप करने का भाव रहता है जिस प्रकार मानस कर्म है उसी प्रकार मानस जप भी मानस जप करने के मूल में और कर्ता के रूप में अहं भाव अक्षुण्ण रहता है मैं जप कर रहा हूँ यह भाव स्फुट अथवा अस्फुट रूप में विद्यमान रहता है बाद में धीरे–धीरे दूसरी अवस्था का उदय होता है। कण्ठरोध प्रयत्न द्वारा जप नहीं बनता। कर्मकारिणी नाड़िया कुछ अंश में विरूद्ध हो जाती है तब अपने आप ही भीतर ही भीतर 'जप' चलता रहता है यह स्वभाव का 'जप' है इसके तीन भेद होते प्राप्त होते है–पहले भेद में हृदय में जप होता है, उसके बाद द्वितीयावस्था में नाभि में होता है एवं अन्त में मूलाधार में होता है। हृदय 'जप' को ही मध्यमा–मार्ग 'जप' कहते है। इस अवस्था में नाद अपने आप चलने लगता है मध्यमा में प्रवेश न होने पर केवल बाह्य 'जप' से नादश्रुति होती है। बाह्य 'जप' में मन्त्राक्षरों का अलग–अलग उच्चारण होता है इसलिए वह विकल्पमय है अतः यह यथार्थ मन्त्र नहीं है। मध्यमा भूमि में जब नाद के साथ मन्त्र स्वभावतः ध्वनित हो उठता है तो उसे आभ्यन्तर 'जप' कहते है। अपने–अपने विषयों से इन्द्रियों का संचार रोककर

[1] ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी, भाग–दो, पृ० 26–262।
[2] शिवसूत्र विमर्शिनी 3/37।

आभ्यान्तर नाद का उच्चारण करना चाहिए।[1] पराभाव की जो पुनः पुनः भावना है उसे आन्तर 'जप' अथवा नाद की प्रकटावस्था कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित वृत्ति को रोकिये, सूर्य चन्द को शोध।
मध्य सुषुम्ना ध्यान से, करहिं ब्रह्म का बोध।। ६०३

माया प्रबल प्रचण्ड है, भाग सके तो भाग।
राम नाम की गारुणी, सर पे नाचे नाग।। ६०४

।। चौपाई ।।

योगी योग जतन करि पावा,
जीव ब्रह्म निर्भेद कहावा। ६०५

दिव्य ज्ञान बिनु कृपा न होई,
सत्य वचन नर पावइ सोई। ६०६

।। दोहा ।।

मन विकार को साधिये, लोभ मोह मद क्रोध।
चित में रूप अरूप हो, होंहि ब्रह्म का बोध।। ६०७

रसरी रामहि नाम की, मन की बांधइ डोल।
ब्रह्म कूप जल लाइके, पीजै रस अनमोल।। ६०८

अँजन आंजिय ओ३म का, अलख निरंजन जान।
जड़ चेतन मँह देखिये, सब जग ब्रह्म समान।। ६०९

मन की आँखे खोल कर, देखहु चारउ वेद।
ओ३म् ओउम् रटि ओ३म तुम, ॐ ब्रह्म निर्भेद।। ६१०

जग का क्षर तो होत है, अक्षर का क्षर नाहिं।
ओ३म ब्रह्म एकाक्षरी, जाप करे क्षर जाहि।। ६११

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोवत से जागे जगत, कुण्डलि ताकी जाग।
मृग कस्तूरी ढूढ़ता, जग में भागम भाग।। ६६३

ज्ञान मिले निज ज्ञान से, भक्ति मिले प्रभु प्रेम।
योग समाधी लीजिये, जानि चक्र के नेम।। ६६४

मूलाधार के मूल में, गण पति जी महाराज।
स्वाधिष्ठान में देखिये, अजहू कमल विराज।। ६६५

मणिपुर बैठी शारदा, अन-हत काली माय।
बिशुद्ध शुद्ध में लक्ष्मी, आज्ञा विष्णु समाय।। ६६६

सह सहस्त्र में ब्रह्म शिव, सहस कमल में देख।
षट-विकार को त्यागिये, छः चक्रों को पेख।। ६६७

पंच तत्व की देह में, अमृत कलश प्रमान।
जो नहिं करता पान रस, पंडित मूर्ख समान।। ६६८

साधक करते साधना, चाहत बनना सिद्ध।
भौतिक इच्छा पूर्ति में, हो जाते हैं गिद्ध।। ६६६

कथा राम की होत है सुन लो चतुर सुजान।
राम कथा हिय धारिये जीवहिं मुक्ति विहान।। ६७०

।। चौपाई ।।

अगम अथाह अनन्त अपारा,
राम नाम नहिं पावहिं पारा। ६७१

राम नाम सुमिरहुं दिन राती,
तीन ताप नहिं जारइ छाती। ६७२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

कव्वाली

मनुष्य जन्म वृथा नहीं खोना, नाम सुमिर ले दो घड़ी।
सुबह शाम भगवान को तू, याद करले दो घड़ी ॥ टेर ॥
कीना कवल तैने प्रभू से, गर्भ में जब झूलता।
बाहिर निकालो करु भजन, उस कवल को क्यों भूलता।
गौर कर मन में जरा तू, याद करले वो घड़ी ॥ १ ॥
नर जन्म साधन धाम, मुक्ति द्वार पुनि पुनि ना मिले।
भूमि गिरा टूटा पुष्प पुनि वृक्ष के वो न खिले।
मोह ममता को छोड़ जरा, शुभ कर्म करले दो घड़ी ॥ २ ॥
बैठ कर एकान्त दृढ़ आसन जमा ले तू जरा।
बहिरंग वृति अंतर करो, तन मन को बस में कर जरा।
हो रहा अजप्पा जाप, सोऽहम् ध्यान कर ले दो घड़ी ॥ ३ ॥
पंच कोश परे त्रय देह अवस्था, त्रय का साक्षी आत्मा।
नित्यानन्द स्वरूप तेरा, भ्रम द्वैत कर खातमा।
ब्रह्म निष्ठा संत लखावे, तू सतसंग में जाना दो घड़ी ॥ ४ ॥

(६९)

राग पूर्व पदानुसार

इस तन मन्दिर माई नित ही, हो रहा सोऽहम् जाप रे।
सतगुरु से पहिचानो, मन का मेल होय सब साफ रे ॥ टेर ॥
हिलता नहीं है होठ, दाँत वो जीभ भी नहीं हालती।
बिन हाथ माला फिरत है, इकसार निशि दिन चालती।
संसारी नर समझत नाही, मिटे नहीं संताप रे ॥ १ ॥
एकान्त आसन दृढ़ जमा कर, तन को सीधा कर जरा।

मन इन्द्रि स्थिर करके, बहिरंग वृति अंतर कर जरा।
उठत बैठत श्वास परखले, कटे जनम के पाप रे ॥ २ ॥
जब नाभी से श्वासा उठे, हं शब्द बाहिर आवता।
पुनि बैठ श्वासा नाभी में, सो शब्द अन्दर जावता।
हंसो सोहं उलट पलट कर होवत सोऽहम् जाप रे ॥ ३ ॥
जिमि लट भ्रंग का ध्यान करते, भ्रंग ही हो जाय रे।
यूं ध्यान सोऽहम् करत नित नर, ब्रह्म माय समाय रे।
नित्यानन्द कटे भव बन्धन, मिट जावे त्रय ताप रे ॥ ४ ॥

(७०)

राग रामकली अथवा सोहीनी

सतगुरु बचनराम है सोई । ॐ मंत्र दिना मोई ।
नित्यानन्द सुख होई । हरि ॐ हरि ॐ हरि ॐ ॥ ७ ॥

(५५)

राग शब्द झड़ लागो रे बरसण लागो रंग

बोले रे काया मन्दिर माय, सोऽहं शब्द विचार ॥ टेर ॥
दांत जीभ बिना होठ हिलाई
बिना कर माला फिरत सदाई ।
अजप्पा जाप जपाय, लगी रहे धुन इकतार ॥ सोऽहं ॥ १ ॥
बैठ एकान्त लगाकर आसन,
बस में कर इन्द्रियाँ अरु तन मन ।
ध्यान श्वांस में लाय, अर्ध अरु ऊर्ध संभार ॥ २ ॥
हं से श्वासा बाहिर आवे
सो मे श्वासा अन्दर जावे ।
हं से सो उलटाय, लखो तब सोहं सार ॥ ३ ॥
सो का अर्थ वही परमात्मा
हं का अर्थ सोई मैं आत्मा ।
निशिदिन यहि लिवलाय, द्वैत भ्रम भेद निवार ॥ ४ ॥
अजर अमर अक्षय सतरुपा,
निर्मल नित्यानन्द अनूपा ।
सो नहीं आवे नहीं जाय, सेन सतगुरु की धार ॥ ५ ॥

(५६)

राग पूर्व पदानुसार

सुनो रे काया मन्दिर माय, अनहद का झनकार ॥ टेर ॥
पद्मासन एकान्त लगावो,
बहिरंग वृति अन्दर लावो ।

दोऊ कर अंगुली लगाय, रोक दोय कान के द्वार ॥ अनहद ॥ १ ॥

21:59

नित्यानन्द कटे भव बन्धन, मिट जावे त्रय ताप रे ॥ ४ ॥

(७०)

राग रामकली अथवा सोहीनी

रणुकार धुन लाई, ऐसे रणुकार धुन लाई रे ॥ टेर ॥
बैठ एकान्त गुफा के माई, आसन सिद्ध जमाई रे ।
सरल शरीर दृढ़ इन्द्रियाँ करके, नाशा दृष्टि जमाई रे ॥ १ ॥
रणुकार की धुनि लगाई, मन को तहाँ लगाई रे ।
शने शने अभ्यास बढ़ा कर, मन गलतान कराई रे ॥ २ ॥
फिरता को थिरता कर दीना, गरक ध्यान के माई रे ।
आनंद उमंग उठत उर अन्दर, तन की शुद्धि विसराई रे ॥ ३ ॥
बचनराम गुरु दया दृष्टि कर, साची सेन लखाई रे ।
नित्यानन्द भया मस्ताना, फेर जन्म नहीं पाई रे ॥ ४ ॥

(७१)

राग धुन ताल केहरवा अथवा देश

सतगुरु ने मुझको साधन सरल बताया ॥ टेर ॥
पास बैठा कर युक्ति लखाई, भिन्न भिन्न कर समझाया ।
गुरु आज्ञा से इहि विधि हमने, साधन में चित लाया ॥ १ ॥

बैठ एकान्त गुफा में दृढ़ होय, आसन सिद्ध जमाया ।
तन मन इन्द्रिया बस में करके, अन्तर ध्यान लगाया ॥ २ ॥
भूख प्यास मिटी अन्न जल तज कर दूध पाव नित पाया ।
रणुकार की धुन्न लगाई, तामें मन ठहराया ॥ ३ ॥
अजप्पा जाप जपा घट अन्दर, सोहं परिचय थाया ।
जीव ईश भ्रम भेद विलाई, जल में तरंग समाया ॥ ४ ॥
कल्पा माना भूल भरमना, दुतीया भाव मिटाया ।
निर्विकल्प नित्यानन्द निर्मल, अपना आप रहाया ॥ ५ ॥

(७२)

तर्ज प्राणी राम सुमिर ले रे

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

॥ तर्ज हरी कीर्तन हरी ॐ ॥

धन धन बचनराम महाराज तुमको लाखों प्रणाम,
तुमको लाखो प्रणाम ॥ टेर ॥
निरगुण से सरगुण घर काया, जगत उधारण जग में आया,
सन्त का रूप धारने वाले, तुमको लाखों प्रणाम ॥ १ ॥
मींढा गाँव मरुधर के भाई, जहाँ पर प्रगट भये तुम आई,
क्षत्रिय कुल उजियारन वाले, तुमको लाखों प्रणाम ॥ २ ॥
छः महिना का साधन करिया, बैठ एकान्त गुफा में रहिया।
अन्न जल त्यागने वाले, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ३ ॥
आठों अंग योग कर लीना, षट् चक्र को छेदन कीना।
पाँचु मुद्रा साधने वाले, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ४ ॥
अनुभव ज्ञान हुआ घट माई, जब हीं आतम की शुद्धि पाई।
सब भरम मिटाने वाले, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ५ ॥
बने सन्त अलमस्त फकीरा, दे उपदेश बंधावो धीरा

तन की तपत बुझाने वाले तुमको लाखों प्रणाम ॥ ६ ॥
महिमा तुमरी किस विध गावूं, अगम अपार पार नहीं पावूं।
त्रिगुण ताप मिटाने वाले तुमको लाखों प्रणाम ॥ ७ ॥
जो प्रभू तुम मिलता नहीं आई, लख चौरासी में गोता खाई।
यम फन्द छुड़ाने वाले, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ८ ॥
भाग पुखला उदय हुआ है, नित्यानन्द को शरण लिया है।
ब्रह्मज्ञान सुनाने वाले, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ९ ॥

(८८)

॥ राग बिहार ताल ॥

श्री बचनराम महाराज शरण मैं तोरी

उम्मेद आनन्द बोध प्रकाश (द्वितीयावृति)

यह पुस्तक श्री बनानाथजी महाराज के परम शिष्य श्री स्वामी उम्मेदरामजी महाराज कृत रचना-भजन हैं, जो संवत् १९९१ में प्रथमावृति छपी थी। सुदुर्लभ द्वितीय संस्करण की कुछ प्रतियां पड़ी है पाठक मंगवा कर लाभ उठाऐं।

विशेष सूचना–

उत्तम आश्रम द्वारा सम्पादित अन्य बाहरी सन्तों की विभिन्न पुस्तकें जैसे-संत रणछोड़रामजी, सन्त दुर्बलदासजी, संत लहरीरामजी, संत मलूकादासजी, संत किशोरदासजी 'सूफी', भक्त बीजाराम वेदांती

Scanned by CamScanner

संत खेतारामजी, संत भूमारामजी, संत शकररामजी, संत चन्दनशाहजी, संत कबीररामजी, संत छोगारामजी एवं सूरजरामजी, संत नवलरामजी, संत चन्द्रारामजी, संत भवानीरामजी, संत निर्मलपुरीजी, इत्यादि सन्तों के रचना ग्रन्थ भी मंगवा कर पढ़ने का लाभ उठावें।

सुगम चिकित्सा (प्रथम भाग)

यह पुस्तक स्वामी अचलरामजी द्वारा संकलित एवं स्वामी अचलनारायणजी द्वारा सम्पादित का परिवर्तित तथा परिवर्द्धित संशोधित दुर्लभ संस्करण है जो वर्षों से अप्राप्य था। इसमें अनेक रोगों के लक्षण एवं विभिन्न प्रकार, उनकी देख-भाल, बचने के उपाय, निदान-पथ्यापथ्य सहित अनेक तरह के इलाज विविध यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र सहित देशी जड़ी-बूटियों का विवरण देकर मनुष्य के स्वास्थ्य को सबल-आरोग्य बनाने के उपाय लिखे हैं।

सुगम चिकित्सा (द्वितीय भाग)

यह पुस्तक उपर्युक्त श्री स्वामी अचलरामजी द्वारा संकलित एवं स्वामी अचलनारायणजी द्वारा सम्पादन का परिवर्तित तथा परिवर्द्धित संशोधित दुर्लभ संस्करण है। इसमें स्त्री पुरुषों के अनेक गुप्त/प्रकट समस्त रोगों के लक्षण, पथ्यापथ्य सहित अनेक इलाज लिखे हैं। साथ ही नशा-रोग, अनिद्रा, चर्मरोग, बालकों के रोग, विषघात इत्यादि में काम आने की अतीव सुगम चिकित्सा का कथन है

उत्तम प्रकाशन के अधिकृत विक्रेता :—

आर्य ब्रॉदर्स बुकसेलर पुरानी मण्डी अजमेर (राज.)

Scanned by CamScanner

किस नगरी में अलख जगाते, कैसी भस्म चढ़ावो।।४।।
बूझूँ-साच साच-दो उत्तर, निरणे कर दरशावो।
कह 'मङ्गलगिरि' सुनलो अवधू, साची खोल बतावो।५।

उत्तर:-।। राग :- आशा।। नं.१४

साधो भाई! ऐसे भजन कमाऊँ।
साच कहूँ सब गुप्त न राखूँ, निरणेकर दरशाऊँ।। टेर।।
चन्द सरोधे भजन करूँ मैं, येही सरोधा लाऊँ।
सूर सरोधे व्यवहार करत हूँ, सुषमण घर में नाऊँ।।१।।
मिताहार मैं नित्य करता, प्राण समान मिलाऊँ।
सोहं शब्द धुनतार लगाके, पिच्छम दिशाको धाऊँ।।२।।
काया नगरी अलख जगाकर , अमृत भिक्षा पाऊँ।
अगम अखाडे तापूँ अबधू, आनन्द भस्म चढ़ाऊँ।।३।।
साच कही में पूछी सोई, सतगुरू भेद बताऊँ।
कह 'मङ्गलगिरि' सुनलो अबधू,या विध भजन कमाऊँ।४।

प्रश्न:-।। राग :- आशा।। नं.१५

अबधू कौन? नगर का वासी।
सतगुरू कौन-जप करता, किसके हो अभिल
कैसा नाम तुम्हारा आदू, किनसे रहो
कौन तुम्हारा प्रिय जगत् में, किस[illegible]ीं विल

कैसा धर्म बतावो आदू, काटत किम चवरा
करणी-कौन कौन- लिव लावो, धावो कुँण सु
कैसे लिया नगर सत अपना, कैसे जोत प्रकाशी
कहो तुम्हारी मस्ती अवधू, किसके हो तुम
'मङ्गल' कह उत्तर सत देना, मेटो सर्व उदासी

उत्तरः- ।। राग :- आशा ।। नं.१६

साधो भाई! सत्य नगर का वासी।
सदगुरु साच सोहं जप करता, मैं मेरा अभिलाषी
आदू-नाम अमर बेनामी, जग से रहूँ
मम ज्ञाता सो है प्रिये मेरा, सत्य ज्ञान विला
जीवों-हित जग में देह धारी, तिरगुण मे
सदोपदेश बताऊँ आदू, काटूँ भव चवरा
करणी साच अगम लिवलाऊँ, धाऊँ निज
निरभे लिया नगर सत अपना, सहजे सहज प्र
प्रमानन्द मस्ती है मेरे, निज निर्गुण व
'मङ्गलगिरि' उत्तर सत देवे, मेटे सर्व उद

वह चित्त में स्थिर रहता है। शब्द अनाहद नाद है जो विशुद्धाख्य तथा आज्ञाचक्र में सुन पड़ता है।"[१]

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने सुरति को राजस्थानी शब्द 'सुरतां' का पर्याय बताते हुए लिखा है कि—'राजस्थानी भाषा में आज भी 'सुरतां' शब्द का प्रयोग ईश्वरोन्मुख ध्यान के लिए प्रचलित है। 'सुरतां' का प्रचलित अर्थ ऊर्ध्वगामिनी चित्त-वृत्ति है।"[२] सन्त साहित्य के अन्य अनेक विद्वानों ने इस शब्द के कई सामान्य एवं विशेष अर्थ ग्रहण किये हैं। जैसे—स्मृति, स्रोत, आध्यात्मिक किरण आदि।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'सुरति शब्द योग' का निरूपण इस प्रकार किया है। यह मत स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग सम्बन्धी निरूपण में सहायक सिद्ध होगा। "संत मत का दूसरा नाम सुरति शब्द योग है। यह शब्द योग संतमत का प्राण है, मर्म है, उसका सार है, सर्वस्व है। यह संतमत का मध्यम मार्ग है, इसमें न तो सिद्धों जैसी महामुद्रा की साधना है और न हठयोगियों जैसी कृच्छकाय साधना। यह लय योग है, यही सहज समाधि है। सभी सन्तों ने 'परचे' के अंग में इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही प्राणवन्त, हृदयस्पर्शी और उल्लासपूर्ण वर्णन किया है।"[३]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन्तों की योग-साधना न तो सिद्धों का कमल कुलिश का सुरत विलास है, न हठयोगियों का हठ योग। मन्त्र योग का 'सोऽहं' भी सन्तों को अग्राह्य हुआ। उन लोगों ने 'सोऽहं' के स्थान पर 'राम' का भजन करना उचित समझा। वस्तुतः यह वैष्णव प्रभाव था। वैष्णवों में रामभजन की बड़ी महिमा है और रामभजन को ही मुक्ति का साधन भी बतलाया गया है।

स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग

स्वामी रामचरण ने हठ योग, लय योग, सुमिरन के मिस मन्त्र योग, एवं सुरति शब्द योग की चर्चा की है। यहाँ इन सभी पर स्वामी जी के दृष्टिकोण की संक्षिप्त चर्चा हमारा अभीष्ट है।

हठ योग

स्वामी जी ने 'हठ जोग को अंग' के कवित और कुण्डलिया शीर्षकों में हठ योग की समीक्षा की है। हठ योग में आसन, प्राणायाम तथा षट्कर्मों का विधान है। हठयोगी प्राणवायु का निरोध करता है। प्राणवायु के निरोध से कुण्डलिनी का जागरण होता है।

---

१. डॉ० धर्मवीर भारती : सिद्ध साहित्य, पृ० ४१०।
२. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०२।
३. वही।

कुण्डलिनी षट्चक्रों का भेदन करके, ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर ब्रह्म से मिल जाती है। प्राण-वायु निरोध, कुण्डलिनी का जागरण और षट्चक्रों के भेदन की प्रक्रिया सहज नहीं।

स्वामी जी कहते हैं कि योगी पवन का निरोध करके काल से बदला चुकाता है, वह रात दिन इसी क्रिया में लीन रहता है पर राम का स्मरण कभी नहीं करता। कवि योगी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि रामभजन के बिना तुम्हारे योग को ब्रह्म में ठिकाना नहीं—

"जोगी पवन चढ़ाय काल सूं दाव चुकावै।
निशिदिन पवन उपाय राम कबहू नहि गावै॥
ज्यूं चाकर होय अमांन धणीं सूं गढ सजि राखै।
जब आवै फुरमांन वचन सब उलटा नांखै॥
रामचरण ब्रह्मा कल्प रहै आपणै जोर।
तोहि रामभजन बिन जोग कूं नहीं ब्रह्म में ठोर॥"[1]

योगी अष्टांग योग की साधना करता है, शरीर, मन एवं इन्द्रियों का निग्रह करता है, प्राणवायु को पकड़कर रखता है किन्तु भजन बिना उसके ये सभी धन्धे व्यर्थ हैं और वह आँख रहते अन्धा है—

"नहीं ब्रह्म में ठोर और साधन जो साधै।
करै जोग अष्टांग देह मन इन्द्री बाँधै।
प्राणवायु कूं पकड़ि पंचै निशिवासर अंधा।
करि है कूड़ी खेद भजन बिन सबही धंधा॥"[2]

कवि का विचार है कि स्वर-साधना, जलपान आदि यौगिक क्रियायें निरोग रहकर सोने के लिये की जा सकती हैं पर इससे मुक्ति नहीं मिल सकती। बिना रामस्मरण के मुक्ति सम्भव नहीं। इस प्रकार की योगसाधना से न तो परमात्म-सुख ही मिल सकता है और न मन का भ्रम (माया अंधकारादि) ही दूर हो सकता है।

"सुर साधन करि जल पिवै रहे निरोगा सोय।
रामचरण इक राम बिन वाको मुक्ति न होय।
वाको मुक्ति न होय झूठ के सागै लागा।
परमातम सुख त्याग भर्म उर का नहि भागा॥"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० १२५।
२. वही।
३. वही, पृ० १७४।

यद्यपि स्वामी रामचरण ने रामस्मरण के सामने हठ योग की क्रियाओं की व्यर्थत प्रतिपादित की है, किन्तु सुरति शब्द योग के वर्णन में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, त्रिवेणी, त्रिकुट अनहद नाद, मेरु की घाटी आदि हठ योग सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसा कि पहले क जा चुका है कि सन्तों ने योग को भी स्वानुभूति का विषय बना लिया था और उसी आधा पर उन लोगों ने योग का ग्रहण किया था। अतः स्वामी रामचरण ने भी यदि हठ योग व परिष्कार कर लिया तो वह सन्त परम्परा के अनुरूप ही था। इस सन्दर्भ में डॉक्टर राधिकाप्रसा त्रिपाठी का यह मत समीचीन है—"उनका हठ योग प्रेम की डगर में चलते-चलते नाथयोगि का हठ योग न रहकर संतों का सुरति शब्द योग हो गया।"[१]

लय योग

डॉक्टर बड़थ्वाल लिखते हैं कि " 'लय योग' वह है जिसे निर्गुणी 'लौ' की संज्ञा दे हैं।"[२] स्वामी रामचरण ने 'लै को अंग' में 'लै,' 'ल्यो' और 'ल्यौ' शब्दों का प्रयोग 'लय' के लि किया है। लय योग पिण्ड में ब्रह्माण्ड निरूपित करता है। जो ब्रह्माण्ड में है, वह सब पिण में भी है। प्रकृति का पुरुष में लय होना ही लय योग है। कुण्डलिनी ही वह प्रकृ है जो जाग्रत होकर सहस्रार मे स्थित पुरुष में लय होती है।[३]

स्वामी रामचरण कहते हैं कि लय पहले 'रसना' में लगती है, फिर रसना से चलक हृदय में पहुँचती है। लय जब हृदय से लग जाती है तो वही अजप्पा जाप कहा जात है। इस स्थिति में पाप-पुण्य का भय सदा के लिये मिट जाता है—

"प्रथम लै रसना लगै, रामचरण निसि बास।
रसना सूं हिरदै गई, बाझ नहीं परकास।
हिरदै लै लागी रहै, सोही अजप्पा जाप।
रामचरण तब ना रहै, पाप पुण्य की ताप॥"[४]

वस्तुतः रसना से लय लगने का अर्थ नामस्मरण की आरम्भिक अवस्था है जिसे जा कहा गया है और 'अजप्पा जाप' का तो स्वामी जी स्वयं नामोल्लेख कर देते है। इस लय व लग जाने पर भ्रम की निकम्मी आदत छूट जाती है और तब राम-मिलन होता है और ल का निवास [ल्यो की धाम] का दर्शन हो जाता है।

---

१. डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय [अप्रकाशित शोध प्रबन्ध गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, गोरखपुर]।

२. डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय [नया संस्करण], पृ० २५५

३. डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय [अप्रकाशित शोध प्रबन्ध गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, गोरखपुर]।

४. अ० बा०; पृ० १२।

"रामचरण भ्रम ऊठतो, बाहर मिलसी राम।
गई खोड़ली बांण यह, दरसी ल्यो को धाम।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि जब तक भ्रम (माया) से मुक्ति नहीं मिलती, समझना चाहिए कि लय नहीं लगी क्योंकि लय लगते ही आनन्द प्रकट हो जाता है—

"हिरदै लै लागै नहीं, जब लग भरम न जाय।
रामचरण लैकै लग्यां आणंद प्रगटै आय।"[2]

लय लगने की पहचान यह भी है कि रातदिन, सोते-जागते कभी छूटे नहीं, सदा एकरसता बनी रहे। इस एकरसता से काल का जाल छूट जाता है और प्राणी कालातीत हो जाता है—

"लै लागी तब जाणिये, निशिदिन छूटै नांहि।
रामचरण रहै एक रस, सोवत जागत मांहि।
सोवत जागत एक रस, तो मार सकै नहि काल।
रामचरण लै कै लग्यां, कटी काल की जाल।"[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने लय योग की शास्त्रीय परिभाषा से अलग हटकर लय पर विचार किया है। उन्होंने लय को लगन या 'लौ' के अर्थ में उस सीमा तक लिया है जब 'अजपा जाप' की स्थिति निर्मित हो जाती है। किन्तु जैसा डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि लय योग से आत्मानन्द का सुख मिलता है, स्वामी जी भी कहते हैं कि लय लगने से आनन्द प्रकट होता है। निष्कर्ष यह कि स्वामी जी लय में भी नामस्मरण या मन्त्र योग को महत्त्व देते हैं।

मन्त्र योग

मन्त्र योग नाम-साधना है। सभी सन्त नामोपासक रहे हैं पर उन्होंने मन्त्र योग के 'सोऽहं' को अपनी स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने इसका भी अपने ढंग से परिष्कार किया और 'सोऽहं' के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा की। स्वामी रामचरण 'साखी सुमरण को अंग' में स्पष्ट लिखते हैं कि 'ओम् सोऽहं' शब्द माया के विस्तार हैं, केवल 'रकार' माया रहित है—

"ॐ सोऽहं शब्द का, सब माया विस्तार।
रामचरण माया रहित, अखर एक रकार।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० १२।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ८।

स्वामी रामचरण की यह साखी सोऽहं के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा ही न करती, वरन् सोऽहं के समक्ष राम शब्द की श्रेष्ठता भी यह कहकर प्रतिपादित करती है। 'ओम् सोऽहं' दोनों माया युक्त हैं और राम शब्द माया से परे है। यह राम-स्मर इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह शब्द तारक मन्त्र है। ग्रन्थ 'शब्द प्रकाश' में स्वामी ने बहुत ही स्पष्ट कहा है—

"रामनाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरू, दैवै यो उपदेश।"[1]

कवि 'हरिनाम' पर इसलिए न्योछावर है क्योंकि उसके स्मरण से काया-नगरी प्रियतम से परिचय हो गया। नामस्मरण से ही सुरति शब्द संयोग भी होता है—

"रामचरण हरिनाम की में बलिहारी जांहि।
सुमर्‌या पिव परचै भया काया नगरी मांहि।
प्रथम शब्द श्रवणां शुणै, रसना रटण लगाय।
सुरति समावै शब्द में, तब चित की चितवन जाय।"[2]

स्वामी जी रामस्मरण को 'मोक्ष पन्थ' घोषित करते हैं—

"सुमरै रमता राम कूं, गुण इन्द्री मन जीत।
रामचरण यह मोख पंथ, और सकल विप्रीत।"[3]

और 'सवैया सुमरण को अंग' में तो वे रामस्मरण को 'निर्मल धर्म' की संज्ञा दे डाल हैं, इससे 'परमपद' की प्राप्ति हो जाती है—

"रामचरण्ण ये निर्मल धर्म है,
होय पुनीत परमपद पावै।"[4]

इतना ही नहीं, जाने अनजाने भी यदि नित्य नामस्मरण किया जाय तो मुक्ति मि जाती है—

"जानि अजानि रटै नित राम कूं,
रामचरण्ण तिरैं ही तिरैंगे।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० २०८।
२. वही, पृ० ७।
३. वही, पृ० ९।
४. वही, पृ० ८६।
५. वही।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने राम के नामस्मरण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने इसे मन्त्र योग से और भी श्रेष्ठ नाम 'मोख पंथ' और 'निर्मल धर्म' दिया है। यह राम-नाम का स्मरण ही सुरति शब्द योग का द्वार भी उन्मुक्त करता है। वस्तुतः यह सभी योगों की कुञ्जी है। सभी योग इसी में समाहित हैं। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने उचित ही कहा है—"भक्ति योग, राज योग, मंत्र योग, लय योग, हठ योग एवं ज्ञान योग भी उसी के विविध रूपान्तर कहे जा सकते हैं। सभी के आधारभूत सिद्धान्त इसके भीतर आ जाते हैं।"[1] स्वामी जी 'नाम निरणा को अंग' में 'नाम का भेद कहो कूंण भाई ?' यह प्रश्न प्रस्तुत करके 'राम' नाम के स्मरण की स्पष्ट घोषणा करते हैं—

"और सब नाम जुग जुग्ग उपजै खपैं,
एक रक्कार रहै, अखण्ड जोई।"[2]

स्वामी रामचरण का सुरति शब्द योग

स्वामी रामचरण ने सुरति शब्द योग का वर्णन अंगबद्ध वाणी के 'परचा को अंग' के विभिन्न छन्द शीर्षकों, 'नाम प्रताप' एवं 'शब्द प्रकाश' नामक लघुग्रन्थों तथा 'अणभो-विलास', 'जिज्ञास बोध' एवं 'विश्वास बोध' आदि बड़े ग्रन्थों में किया है। अन्य सन्तों की भाँति ही सुरति शब्द योग स्वामी रामचरण का स्वानुभूतिपरक योग है जिसे नाम योग की सिद्धि के सहारे प्राप्त होने की बात वे कहते हैं। 'स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग' के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नामस्मरण ही सब योगों का योग है। यह सभी योगों का मूल है। 'सुरति शब्द संयोग' इसी साधना से सम्भव है। इसे ही सहज योग भी कहा गया है।

भजन प्रताप की चार चौकियाँ

स्वामी जी ने सुरति शब्द योग की बड़ी स्पष्ट कल्पना प्रस्तुत की है। इस साधना के चार अवस्थान उन्होंने निरूपित किये हैं जिसे वे भजन प्रताप की चार चौकियाँ कहते हैं—

"चोकी भजन प्रताप की, संत कह गए च्यार।
रामचरण या सत्य है, दूजा भरम असार।"[3]

---

१. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५५।

२. अ० वा०, पृ० १९२।

३. वही, पृ० १३।

इन चार चौकियों के मुकाम क्रमशः कण्ठ, हृदय, नाभि और ब्रह्माण्ड हैं—

"रसना कण्ठ रस पीय कै, हिरदै सुख विलास।
नाभि कमल सें उलटि कै, सुरति गई आकास।"[१]

सुरति शब्द योग की साधना की इन चारों अवस्थाओं का वर्णन स्वामी जी ने 'नाम प्रताप' एवं 'शब्द प्रकाश' में बहुत स्पष्ट किया है। यहाँ कवि के अनुसार चारों चौकियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है—

प्रथम अवस्थान

सुरति शब्द योग की साधना का प्रारम्भिक अवस्थान नाम जप है। यह 'राम-नाम' है जिसे स्वामी जी ने तारक मन्त्र कहा है। जिज्ञासु या साधक को इस रामनाम की उपलब्धि गुरु से होती है—

"प्रथम नाम सतगुरु सूं पाया।
श्रवणां सुनि कै प्रेह उपजाया।"[२]

सतगुरु से प्राप्त रामनाम का श्रवण कर जिज्ञासु को शब्द के प्रति प्रेमानुभूति होने लगती है और तब वह रसना की श्रद्धा का जागरण करके निशिवासर 'राम-रटन' में लीन होता है।

"पुनि रसना की श्रद्धा जागी।
राम रटनि निशिवासर लागी।"[३]

नाम के प्रति अनुराग भाव का जागरण ही रसना की श्रद्धा के जागरण का कारण होता है। तब अपर आशाएँ समाप्त हो जाती हैं और सुरति रामनाम में लग जाती है। मन एकाग्र हो जाता है और सुरति शब्द छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती—

---

१. अ० वा०, पृ० १३।

२. वही। यथा
"राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।
रहना सूं सरक्या शब्द कण्ठ होय हिरदै ध्याय।
कण्ठ होय हिरदै ध्याय तृतीये नाभि निवासा।
नाभिकमल सूं उलटि गगन जाय किया विलासा।
चौकी च्यारूं पर्शि कै सहज समाधि समाय।
राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।"—वही, पृ० १४१।

३. वही, पृ० २०८। तथा
"प्रथम नाम रसना सूं गावै।
मन कूं पकड़ि एक घर लावै।—वही, पृ० २०६।

"दूजी आशा सकल बुहारी।
तब रामनाम में सुरति ठहारी।"[1]

इस समय साधक पद्मासन लगाकर मन को निश्चल कर लेता है और साँस-उसाँस के साथ राम-जप में तन्मय हो जाता है। जप करते-करते नाम के प्रति जगी आसक्ति नामी राम के वियोग में परिणत हो जाती है।[2] नामोच्चारण करते-करते रसना की श्रद्धा उसके शिरोभाग से रसधार के रूप में स्रवित होने लगती है। यह स्राव अखण्ड होता है। इस स्राव का नीर दुग्धवत् होता है—

"तब रसना शिर छूटै धारा।
लगै अखण्ड नहिं खण्डै लगारा।"[3]

इसकी मिठास का क्या कहना! हर्ष और विश्वास की अनुभूति होने लगती है—

"रटतां रटतां भयो मिठास।
हर्ष भयो आयो विश्वास।"[4]

इस रसधार की मिठास से जल पीने की श्रद्धा समाप्त हो जाती है। साधक इस अमृत-पान से पल भर भी विलग नहीं होना चाहता। इस रस-पान से भूख नहीं लगती। प्रत्येक नाड़ी में गिलगिलो के चलने का अनुभूति होने लगती है और सुखधारा की अनवरतता शिराओं को मुदित कर देती है—

"जल पीवन की श्रद्धा नांही।
मति यो अमृत दूरि होइ जांही।
रस पीवत क्षुधा सब भागी।
कण्ठाँ शब्द टगटगो लागी।
नाड़ि नाड़ि में चलै गिलगिली।
सुख धारा अति बहै सिलसिली।

---

१. अ० वा०, पृ० २०८। तथा—
"राखे सुरति शब्द ही मांही।
शब्द छाँडि कहुं अनत न जांही।"—वही, पृ० २०६।

२. "श्वास उश्वांसा धवंण लगाई।
आरति करिकै विरह जगाई।"—वही, पृ० २०९।

३. वही, पृ० २०६। तथा—
"रसना अग्र खुली इक सीरा।
प्रथम वाको पय सो नीरा।"—वही, पृ० २०९।

४. वही, पृ० २०९।

मुख सूं कछू न उचरै बैना।
लग्या कपाट खुलै नहीं नैना।
श्रवणां चर्चा सुणै न कोई।
कण्ठ ध्यान यह लक्षण होई।"[1]

उपर्युक्त अवस्था को कवि 'कण्ठ ध्यान' की संज्ञा देता है। इस अवस्था में शिरायें तो आनन्दानुभव करती ही हैं, मुख से वाणी नहीं फूटती, नयन-कपाट बन्द हो जाते हैं, कान बाह्य चर्चा नहीं सुन पाते। शब्द जिह्वा से सरक कर कण्ठ-स्थान में आ जाता है। 'कण्ठ ध्यान' में कम्पन की अनुभूति होती है और रोम-रोम में शीतलता आ जाती है, हृदय गद्‌गद् हो जाता है, श्वास अवरुद्ध हो जाता है और नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है—

"कण्ठ के ध्यान में झँमझँमी जागै।
रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियो गद्‌गदे श्वास न आवै।
नैणां नीर प्रवाह चलावै।"[2]

यह कण्ठ-ध्यान विरहानुभूति की स्थिति है। कण्ठस्थान पर साधक की सुरति नामी राम का वियोग अनुभव करने लगती है। यह बड़ी कठिन अवस्था होती है। मुख से बोला नहीं जाता, खान-पान की रुचि नहीं रह जाती, शरीर क्षीण हो जाता है, त्वचाएँ सिकुड़ जाती हैं, नसें नीली पड़कर झलकने लगती हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है, नेत्रों में लाली छा जाती है और ललाट आइने की ज्योति सदृश दीप्त हो उठता है, कम्पन और सिहरन चलने लगती हैं, छाती रुँध जाती है। विरहिणी की जैसी दशा हो जाती है। इस अवस्थान को या तो गुरु ही जानता है (जो विरह जगाता है) या फिर विरही स्वयं जो इसे झेलता है।[3]

---

१. अ० वा०, पृ० २०६। तथा
"केई दिवस रसना रस गटक्यो।
पीछे शब्द कण्ठ में अटक्यो।"—वही, पृ० २०९
२. वही, पृ० २०६।
३. "कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।
खान पान में रुचि रहे थोरी।
मारग रुक्यो जाय कह वोरी।
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी।

द्वितीय अवस्थान

कण्ठस्थान की कठिनाई पारकर शब्द ने हृदय में प्रवेश किया।[1] यह साधना का द्वितीय अवस्थान है। कण्ठस्थान से चलकर हृदय-देश में शब्द के प्रवेश की क्रिया का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि एक दिन एक तमाशा हुआ, कण्ठ और हृदय के बीच 'हुलास' जगा। स्रवित होकर हृदय मे 'सीर सुखम रस' प्रवाहित होने लगा और 'शब्द ब्रह्म' हृदय में बास करने लगा। अन्धेरी निशा में शशि के आलोक-सा अनुभव होने लगा—

"एक दिवस इक भया तमासा।
कण्ठ हृदा बिच उठ्यो हुलासा।
ज्यूं पाला की डोरणि छूटी।
हिरदे सीर सुखम रस ऊठी।
शब्द ब्रह्म हिरदै किया बासा।
ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा।"[2]

परमसुख से हृदय आलोकित हो उठा जैसे रवि ने अन्धकार को विनष्ट कर दिया हो—

"परम सुक्ख हिर्दै परकाशा।
ज्यूं रवि कीनो तम को नाशा।"[3]

इस अवस्थान को कवि 'हृदय ध्यान' की संज्ञा से अभिहित करता है। इस अवस्था में भ्रम, कर्म, संशय सभी दूर जा पड़े और हृदय में अखण्ड जाप होने लगा। जब हृदय-

---

नीली नस दीसै झलकाली।
पीरो बदन नेतरां लाली।
मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली।
चले कँमकँमी रूं थररावै।
छाती रुँधै स्वास न आवै।
ऐसी विधि विरहनि की होई।
विरहि जांणै कै सतगुरु सोई।"—अ० वा०, पृ० २०९।

१. "एक दिवस ऐसी बनि आंही।
शब्द सरक गयो हिर्दा मांही।"—वही, पृ० २०९।

२. वही, पृ० २०६।

३. वही, पृ० २०९।

ध्यान की ध्वनि होने लगती है तो सभी अन्य साधन लुप्त हो जाते हैं। इस सुख की महिमा अवर्णनीय है।[1] हृदय के भीतर होने वाले इस सहज सुमिरन का रहस्य बाहर कोई नहीं जान पाता—

"सहजै सुमरण हिरदै होई।
बाहिर भेद न जांणे कोई।"[2]

सोते-जागते हर अवस्था में यह सहज सुमिरन चलता रहता है। वन-बस्ती की शंका नहीं रह जाती। यह कवि की दृष्टि में 'अजपा जाप' की स्थिति है। इस अवस्था में बाहरी साधन बिला जाते हैं।

"सोवत जागत डोरी लागी।
बन बस्ती की शंका भागी।
रसना जप्यां अजप्पा पाया।
बाहिर साधन सकल बिलाया।"[3]

प्रेम का जागरण हो जाने पर सांसारिक मर्यादाओं के नियम बन्धन समाप्त हो जाते हैं। इस प्रेम साधना[4] द्वारा ही साधक को शरीर में 'राम धाम' मिल जाता है—

"जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नांही।
पाई रामधाम घर मांही।"[5]

तृतीय अवस्थान

उर-स्थान में विश्राम कर शब्द नाभिप्रदेश में पहुँचता है। यह तीसरा मुकाम है—

---

१. "भर्म कर्म सांशो गयो भागी।
हिरदै ध्वनी अखण्ड लिवलागी।
कहा कहूं या सुख की महिमा।
और सुख सब दीशै पल मा।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई।
दूजो साधन रहै न कोई।" —अ० वा०, पृ० २०६-२०७।

२. वही, पृ० २०९।

३. वही।

४. "सुमिरन एक प्रकार की प्रेम साधना है।"
—डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५३।

५. अ० वा०, पृ० २०९।

"उर अस्थान पाय विश्रामा।
शब्द किया जाय नाभि मुकामा।"[1]

'नाम प्रताप' में 'शब्द' को कवि 'लै' कहता है। यह 'लय' नाभिकमल मे जाकर चैतन्य हो जाती है—

"हिरदै सूं लै धरणी गई।
नाभिकमल में चेतन भई।"[2]

यहाँ पहुँचकर शब्द गुञ्जन करने लगता है जिससे सभी नाड़ियां जागृत हो जाती हैं। रोम-रोम से राग ध्वनित होने लगते हैं और नौ सौ नाड़ियों का मंगलगीत सुनायी पड़ता है। यहाँ मन-मधुप को अतीव सुख मिलता है—

"शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे।
रोम रोम में होइ रही रागे।
नौ से नारी मंगल गावे।
तहाँ मन भँवरा अति सुख पावे।"[3]

काया शीतल हो जाती है, क्योंकि शब्द को ब्रह्मरस का अमृत प्राप्त हो जाता है।[4] रोम रोम ताँत यन्त्र की तरह झंकृत होने लगता है—

"रोम रोम झणकार झुणंकै।
जैसे जंतर तांत ठुणंकै।"[5]

चतुर्थ अवस्थान की ओर

नाभि-प्रदेश में ब्रह्मरस की अनुभूति करने के बाद शब्द गगन[6] की ओर अपनी यात्रा आरम्भ करता है। गगन का रास्ता मेरुदण्ड की घाटी से होकर है। इस मेरु में

१. अ० वा०, पृ० २०९।
२. वही, पृ० २०७।
३. वही। तथा
"नाभिकमल में शब्द गुंजारे।
नौ से नारी मंगल उचारे।"—वही, पृ० २०९।
४. "शीतल भई सबै ही काया।
शब्द ब्रह्म रस अमृत पाया।"—वही, पृ० २०७।
५. वही, पृ० २०९।
६. "गगन शरीर के भीतर का वह आकाशवत् अन्तराल जिसमें ज्योतिर्मय ब्रह्म

बीस गाँठें हैं। शब्द के वेग से बीसों गाँठें फट जाती हैं और गगन का मार्ग खुल जाता है।[1]

"अब तो शब्द गगन कूँ चढ़िया।
पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया।"[2]

घाटी के मार्ग से होकर शब्द त्रिकुटी[3] पर पहुँचता है। इसके ऊपर 'अनहद' बजता है। यह त्रिकुटी इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना का त्रिवेणी संगम है। इस त्रिवेणी घाट पर स्नान करके जीव गगन में प्रवेश करता है—

"पहिली बैठा त्रिकुटी छाजे।
जाके ऊपर अनहद बाजे।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया।

इंगला पिंगला सुखमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहाँ झाझ जल झूलि के, निर्मल होय निराट।
अब त्रिवेणी न्हाइ कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूँ अलघ सुख, यो कोई चौथा देश।"[4]

चतुर्थ अवस्थान

अभी तक जिन तीन लोकों के सुख की चर्चा हुई है उससे बिल्कुल भिन्न सुखों वाला यह कोई चौथा देश है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने इस अवस्थान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "यह साधना की अंतिम भूमिका है जहाँ सुरति शब्द को पकड़कर

का प्रकाश दीखता है और जहाँ से अनाहत की ध्वनि सुन पड़ती है। इसको कभी-कभी 'शून्य' भी कहा करते हैं।"—पण्डित परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, पृ० ५७१।

१. पश्चिम दिशा मेरुकी घाटी।
बीसूं गांठि घोर से फाटी।—अ० वा०, पृ० २०९।

२. वही पृ० २०७।

३. त्रिकुटी—भ्रूमध्य में स्थित वह बिन्दु है जहाँ इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना योग नाड़ियों का मिलन होता है और जिसे इसी कारण 'त्रिवेणी' भी कहा जाता है।"
—पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७२।

४. अ० वा०, पृ० २०७।
त्रिकुटी संगम कीया स्नाना।
जाइ चढ्या चौथे अस्थाना। —वही, पृ० २०९।

पुरुष ररंकार का यह मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन—यही संत साधना का अनर्घ अक्षय कोष है।"[1]

इस गगन लोक (चौथा घर) में निरंजन सिंहासनासीन है जिसकी ज्योति के प्रकाश से अनन्त सूर्य शोभा पाते हैं। जहाँ अनहद नाद अगणित रागों में ध्वनित होता रहता है। जहाँ सुषुम्ना नीर की फुहार निरन्तर स्रवित होती रहती है जिससे सुरति भींग कर गर्क हो जाती है। जहाँ अर्द्ध-उर्ध्व कमल विकसित है और सुरति भँवरा बनकर विलसती है। जहाँ अनहद की 'घरर-घरर' सुन पड़ती है और परम ज्योति का विद्युत् प्रकाश दीख पड़ता है—

"जहाँ निरंजन तख्त बिराजै।
ज्योति प्रकाश अनन्त रवि राजै।
अनहद नाद गिणत नहि आवै।
भाँति भाँति की राग उपावै।
स्रवै सुषुम्णा नीर फुहारा।
शून्य शिखर का यह विह्वारा।"[2]

'कुण्डल्या को अंग' में स्वामी जी इसे 'ब्रह्म सभा' कहते हैं। इस ब्रह्म-सभा का विस्मयकारी वर्णन उन्हीं की पंक्तियों में प्रस्तुत है—

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणां अनहद सुणें जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर और कोई निजर न आवै।
सुरति रही मठ छाय देह तहां जांण न पावै।
रामचरण वै देश में बहु परकाशे सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।"[3]

---

१. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ११०।
२. अ० वा०, पृ० २०९ तथा।
"घरर घरर अनहद घहरावे।
परमज्योति दामणि झलकावे।
सुषुमण नीर लूंब झड़िलाई।
भीजत सुरति गर्क होइ जाई।
अर्ध ऊर्ध जहां कमल प्रकासा।
सुरति भंवर होइ करत विलासा।"—वही, पृ० २०७।
३. वही, पृ० १४१।

अपने ग्रन्थ 'जिज्ञास बोध' के पञ्चम प्रकरण में स्वामी जी उस अगम स्थान में सुरति-शब्द संयोग का दृश्य-वर्णन करते हैं—

"जागी ज्योति जगत गुरु दर्श्या, पर्श्या अगम सथाना वे।
रसना बिना रामधुन लागी, जानै संत सुजाना वे।
गगन मण्डल में बाजै अनहद, सुणि है बिनही काना वे।
चरण बिना जहां नृत्य करत हैं, देखत है ब्रह्म दांना वे।
भांति भांति सुखदाई नाटक, प्रेम मगन गलतांना वे।
रीझ रमइया मोजां बकसी, जांमण मरण मिटांना वे।"[1]

उस अगम लोक के अनाहद नाद का अलौकिक स्वर संगम का एक चित्र 'रेखता प्रचा को अंग' में स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है—

"घोर अनहद की गगन गिरणाईयां होत बहु सौर नहिं कहत आवै।
झालरी बीण मरदंग सहनाईयां बांसुरी ताल झुणकार लावै।
भेरि नरसिंग करनाल बंक्या बजै चंग अरु उपंग गति करत न्यारी।
एक एक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी।
मंजीरा मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राय मोहोचंग बाजै।
रुणझुणूं रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुघरू घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै।"[2]

इसी सन्दर्भ में स्वामी जी कहते हैं कि संसार में ३६ रागों का वर्णन किया गया है पर संतजन गगन में 'बेपरमाण अनहद' सुनते हैं—

"रामचरण संसार में, राग छतीस बखांण।
संत सुनत है गिगन में, अनहद बेपरमांण।"[3]

उस चौथे देश की बात अतुलनीय है, मुख से उसका वर्णन सम्भव नहीं। प्रत्यूष-वेला के अरुणालोक सदृश उस अगम देश का अवर्ण्य आलोक है। जहाँ अनहद गरजता रहता है, गगन झरता है, दामिनी चमकती है, वहीं सागर के तट पर हंस निवास करता है। हंस में सागर समा गया। द्वैत की यहीं समाप्ति है।[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ५४०।
२. वही, पृ० १९२-९३।
३. वही, पृ० १४।
४. "या तो बात अतोल है भाई।
मुख सूं कहा तोल ह्वै जाई।
... ...

सुरति शब्द का संयोग बूंद और समुद्र का संयोग है। जैसे बूंद समुद्र में मिल जाती है, फिर उसे पकड़ा नहीं जा सकता वैसे ही जीव और ब्रह्म का मिलन अभिन्न है। स्वामी जी कहते हैं कि जब तक यह स्थिति न आ जाय, ध्यान नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि राम के बिना सारा ज्ञान ही फोकट है—

"जैसे बूंद मिली सायर में।
कैसे पकड़ि सके कोइ कर में।
जीव ब्रह्म मिली भया समाना।
ब्रह्म मिल्याँ कर्म करै न आना।

एह चहन दर्श्यां बिनां, मति कोइ छोड़ो ध्यान।
रामचरण इक राम बिन, सबही फोकट ज्ञान।"[1]

यही स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग की संक्षिप्त समीक्षा है। वैसे अपने विभिन्न ग्रन्थों एवं फुटकर पदों में उन्होंने सुरति शब्द योग का वर्णन विभिन्न प्रतीकों द्वारा भी किया है।

भक्ति

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि निर्गुण सन्तों की भक्ति पर वैष्णव सिद्धान्तों का प्रभाव रहा है। यद्यपि सन्तमत के मूल में नाथों की योग-साधना आबद्ध है, फिर भी सन्तमत के विकास के समय वैष्णव-भक्ति की भावधारा इतनी प्रबल थी कि वह सन्तों की साधना की एक प्रमुख भूमिका बन गयी। शनैः शनैः योग की कठिन प्रक्रियाओं का सन्त-साधना से एक प्रकार से बहिष्कार-सा हो गया। अब वे सुरति-शब्द योग के अभ्यासी बन गये थे, जिसकी सहजता की भावभूमि में वैष्णवों के रामभजन की प्रमुख भूमिका रही है। डॉ० रामकुमार वर्मा का निम्नलिखित मत इस विचार की पुष्टि करता है। वे लिखते हैं—"रामानन्द के प्रभाव से राम और उनकी भक्ति का प्रसार इतना अधिक था कि सन्त सम्प्रदाय में भी राम और उनकी भक्ति का रूप स्वीकार किया गया। यह बात दूसरी

रूप वर्ण कैसो तड़का को।
ऐसो कहा बखाँनो जाको।
अनहद गरजै नभ झरै, दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायरां, हंसा करत निवास।
सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस में रह्या समाई।" —अ० वा०, पृ० २०७।

१. वही, पृ० २०८।

सकते हैं। यह समाधि क्षणिक नहीं, जो व्युत्थान काल में जाती रहे। यह सन्तों की स्थायी समाधि है, यह उनकी सुरतां की शब्द ब्रह्म में मिलकर एकाकार हो जाने की अद्वय स्थिति है। सभी सन्तों में 'परचा या प्रचा' अंग में अपनी इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही उदात्त व अवदात्त वर्णन किया है। यह वर्णन सन्त-वाणी का उत्तुंग गिरि शिखर है, जहाँ से उनकी रसानुभूति रजतोज्ज्वला निर्झरिणी की तरह शतधा फूट पड़ी है। यह विषय अनुभव गम्य है। वाणी व मन का विषय नहीं। फिर भी अनन्त कृपालु सन्तों ने अपनी विमल वाणी द्वारा उस पीयूषधारा के कतिपय कणों को इतस्ततः विकीर्ण करने की असीम अनुकम्पा की है।

सुरति शब्द योग की चार चौकियाँ

राम ही चरण वै देश की सैन कूं
मरहमी संत बिन लखै न कोई।

सचमुच मर्मी व रहस्यदर्शी सन्तों का यह अगम्य प्रदेश है, उसे कैसे जाना जा सकता है, कैसे कहा जा सकता है! वह अनुभवैकगम्य है।

● पहली चौकी ●

प्रथम नाम सत गुरु से पाया।
श्रवणां सुन के प्रेम उपजाया।

संसार की नश्वरता से अभिभूत साधक किसी अमर आनन्द की खोज के लिये निकलता है। जिज्ञासा लेकर वह गुरु की खोज करता है। सद् गुरु जब साधक को पात्र जानता है तो उसे 'राम नाम' मंत्र देता है। गुरु से नाम श्रवण करके उसके साथ साधक प्रेम का नाता जोड़ लेता है। यह प्रेम निष्काम व वासना गन्ध हीन होता है। प्रेम के द्वारा साधक में नाम-जप के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अब साधक रात दिन उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, जीवन की प्रत्येक क्रिया में नाम-जप को चालू रखता है। साधक को अनुभव है कि इस प्रकार रात दिन नाम-जप में लगे रहने से जिह्वा के अग्रभाग से अमृत रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। साधक

अब एकान्त चाहने लगता है और सांसारिक भीड़-भाड़ तथा वार्तालाप से दूर हट जाता है।

नाम-जप करते करते उसके हृदय में नामी से मिलने की उत्कट लालसा जाग्रत हो जाती है। उसके न मिलने के कारण साधक के हृदय में वियोग जाग पड़ता है। यह वियोग-साधना सन्त साहित्य की अमर देन है।

साधक के हृदय में विरह की आग रात दिन जलती है, उस जलन में आनन्द का अनुभव होता है। सन्तों की विरहिणी आत्मा पिय मिलन के लिए तड़पती रहती है। विरक के भुजंग ने डस लिया है, अब राम गारड़ु मिले तो विष उतरे।

रामचरण बिरहा भवंग, डस्यौ कलेजो आय।
राम गारड़ू बिष हरै, जे कोय देत मिलाय ॥[1]

विरह की आग में लहू जल गया है, शरीर सूख कर कांटा हो गया। दूसरा दुःख तो सहलूँ, मुझ से विरह का दुःख सहा नहीं जाता।

बिरह अग्नि सब तन दह्यौ, लोही रह्यो न मांस।
राम पियारे दरस बिन, नाभि न बैठे सांस ॥
दूजा दुख सबही सहूं, पिव दुख सह्यो न जाय।
रामचरण बिरहनि कहै, बेग मिलो हरि आय ॥[2]

सभी सन्तों ने विरह का मर्मभेदी वर्णन किया है। कबीर, दादू आदि सन्तों की विरहानुभूति बड़ी तीव्र थी। सूफी साधकों ने तो सारी सृष्टि को ही विरह की आग में जलता देखा है। महाराज रामदास जी ने भी विरह की व्यथा का हृदय द्रावक वर्णन किया है—

अन्तर दारुण अति घणी, पिंजर करै पुकार।
नैण रोय राता किया, तो कारण भरतार ॥

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १०
(२) „ „ „ ११

कुंजर झूरै बन्न कूं, सूवा अंबा काज।
विरहिन झूरै पीव कूं, कबै मिलो महाराज॥
रैण विहाणी जोवतां, दिन भी वीतो जाय।
रामदास विरहिन झुरै, पीव न पाया मांय॥[1]

विरह को छुरी बताया है, जिसने हृदय को काट दिया है। विरह की घटाएँ उमड़ रही हैं, नेत्रों से अश्रु वह रहे हैं और चित बिजली की तरह चौंक पड़ता है।

बिरह घटा घररात नैंण नीझर झरै।
चित चमंकै बीज कि हिरदो ओल्हरै।
बिरहनि है बेहाल दयाकर न्हालियो।
परिहां रामचरण कूं राम वेग संम्हालियो॥

बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
पीव न सुणै पुकारिकि हिरदा फाटि है।
सबै वटाऊ लोग न पूछै पीड रे।
परिहां रामचरण विन राम करै कुंण भीडरे॥[2]

यह विरह की तीव्र व्यथा साधक के हृदय में राम मिलन की उत्कट प्यास जाग्रत कर देती है। वह रात दिन सुमरण करने लग जाता है। उसको न अन्न अच्छा लगता है, न पानी भाता है और न ही नींद सुहाती है। वह केवल अपने प्रिय से मिलने को छटपटाता है, रोता है, तड़पता है। उसकी व्यथा को कौन जानता है; या तो वह या रमैया। यही तीव्र विरह व्यथा उसकी साधना को अग्रसर करती है और यही 'सुरति' को जाग्रत करके उसे 'शब्द' की ओर उन्मुख करती है।

---

(१) श्री रामस्नेही धर्म प्रकाश; पृष्ठ १६१, १६६

(२) अणभै वाणी; पृष्ठ ७७

सन्त चरणदासजी ने विरहिणी का सच्चा चित्र अंकित किया है—

गद गद बाणी कंठ में, आँसू टपकै नैन।
वह तो विरहिन राम की, तल्लफति है दिन रैन ॥

दादूजी ने विरह के महत्व को दिखाते हुए बताया है कि मूल में विरह ही सुरता को जगाता है—

विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरत को, पंच पुकारै जीव ॥

रामचरणजी महाराज ने इस अनुभूति का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है कि—

रसना व कंठ से जब साधक राम नाम का सुमरण करता है तो साधक को अमृत-पान जैसी अनुभूति होने लगती है, वह अनुपम मिठास का अनुभव करता है। साधक को पानी पीने तक की इच्छा नहीं होती, इस भय से से कि कहीं यह अमृत दूर न हो जाय। नस नस आनन्द के मारे नाचने लगती हैं, उनमें एक सिहरन का अनुभव होने लगता है। मुख से वाणी का निकलना वन्द हो जाता है। आँखें मुँद जाती हैं, पलक-कपाट खुलते नहीं! कण्ठ ध्यान की यही पहचान है कि फिर साधक संसार की कोई चर्चा नहीं सुनता। रोम रोम शीतल हो जाते हैं, हृदय गद् गद् हो जाता है, श्वास प्रवाह रुकने सा लगता है और आँखों से आँसू झरने लगते हैं। साधक ऐसी विचित्र स्थिति में अपने को पाता है—

तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखंड नहि खंडे लगारा।
जल पीवन की श्रद्धा नांही, मति यो अमृत दूरि होइ जांहीं।
रस पीवत क्षुधा सब भागी, कंठाँ शब्द टग टगी लागी।
नाड़िनाड़िमें चलै गिलगिली, सुखधारा अतिबहै सिल सिली।
मुख सूं कछू न उचरे बैना, लग्या कपाट खुलै नहीं नैना।
श्रवणां चर्चा सुणैं न कोई, कंठ ध्यान यह लक्षण होई।

कंठ के ध्यान कंमं कंमो जागै, रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियो गद् गदे श्वास न आवैं, नैणा नीर प्रवाह चलावैं।[1]

●दूसरी पैड़ी●

इस प्रथम सोपान को तय करने के बाद साधक के हृदय प्रदेश में शब्द ब्रह्म का प्रकाश जाग पड़ता है। प्रेम का प्रकाश हो जाता है, अन्धकार गल जाता है, विरह की जलन शान्त हो जाती है। भ्रम, कर्म व संशय सब विदूरित हो जाते हैं। हृदय में अखण्ड ध्वनि जाग उठती है—

शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा,
ज्यूं रैण अंधेरा चंद प्रकाशा।
भर्म कर्म सांसो भयो भागी,
हिरदै ध्वनी अखंड लिवलागी।[2]

शब्द परकाश हिरदै भया परम सुख,
प्रेम का चांदणा तिमिर भागा।
विरह की तृपि शीतल भई पिवत्र पी,
राम राम ही राम झड़ अधिक लागा।[3]

●तीसरी पैड़ी●

अब वह ध्यान ध्वनि हृदय से परगणों की ओर—नाभि-प्रदेश की ओर—जाती है। शब्द गुंजार से नस नस जाग उठती है, रोम रोम गाने लगते हैं, नसें नाड़ियाँ मंगल गीत गाने लगती हैं। वहाँ मन-भ्रमर बहुत आनन्द पाता है—

(१) अणभै वाणी पृष्ठ २०६
(२) ,, ,, ,, २०६
(३) ,, ,, ,, १६२

हिरदा सूँ लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भई।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होई रही रागे।
नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भंवरा अति सुख पावे।[1]

बीच का मार्ग

नाभि के बाद शब्द उलट कर मेरुदण्ड होकर गगन [सहस्रार-कमल] की ओर यात्रा प्रारंभ करता है। मेरु की बीस घाटियों को लांघना पड़ता है। वही मार्ग त्रिकुटी का स्थान है, यहाँ इडा, पिंगला व सुषुम्ना का संगम त्रिवेणी है; यहाँ पर स्नान कर निर्मल होकर शब्द सुरति के साथ सुषुम्ना के झीणें पथ (पिपीलिका-मार्ग) से गगन के गवाक्ष की ओर जाता है।

अब तो शब्द गगनकूं चढ़िया।
पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया॥
घाटी बीस मेरू की छेकी।
इकबीसै गढ़ गया बिशेखी॥
पहिलो बैठी त्रिकुटी छाजे।
जाके ऊपर अनहद बाजे॥
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया॥[2]

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झाझे जल झूलि के, निर्मल होय निराट॥

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २०७

(२) " " " "

अब त्रिवेणी न्हाइ कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलध सुख, यों कोइ चौथा देश ॥[1]

चौथी चौकी

यह साधना की अन्तिम भूमिका है, जहाँ सुरति शब्द को पकड़ कर एकमेक होकर शाश्वत सुख लूटती है। सुरति–सुन्दरी के साथ शून्य-महल में पूर्णानन्द-पुरुष ररंकार का यह महा-मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन—यही सन्त-साधना का अनर्घ अक्षय कोष है। उस लोक के वर्णन में सन्तों की लौकिक भाषा भी एक नई झंकृति व वर्णच्छटा के साथ जैसे किसी अप्सरी के रूप में कंकणों के क्वणन, नूपुरों के रणन से झण झणायमान होकर नर्तन कर उठी है।

गगन मण्डल 'घोर अणहद नाद' से गूँज उठा है। झालरी, वीणा, मृदंग, सहनाई, बांसुरी का मधुर निःस्वन; चंग, उपंग, भेरी, नरसिंहे की मेघ-गर्जन; मंजीर, ढोलक, गिड़गिड़ी की गड़गड़ाहट घुंघरू का रुणझुणु रुणझुणु शब्द तथा अनेक प्रकार के वाद्यों की समवेत ध्वनि ने महामिलन के उपयुक्त वातावरण सृजन कर दिया है। चारों ओर प्रकाश है, जहाँ न सूरज है न चाँद और न तारे; यह ध्वनि न श्रवण ग्राह्य है और न प्रकाश चक्षु ग्राह्य।

'गगन गोख' में एक अचरज हुआ। यहाँ एक ही पुरुष है, वह वपुहीन है, पंचतत्व रहित है, वहाँ पाला पानी में मिल गया है, नदी सागर में मिल गई है, झिलमिल नूर प्रकाशित है। अनन्त कोटि सूर्यों का प्रकाश है।

पर, यह बात अतोल है। मुख से कहने पर उसका तोल हो जायगा! बस, रहने दो उस बात को। वह जैसी है वैसी है। पवन को हाथ में कौन पकड़ सकता है, आकाश को अपने बाहु-पाश में कौन आबद्ध कर सकता है।

अनहद की गर्जना हो रही है। आकाश से रस झर रहा है।

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २०७

विजली चमक रही है। परिपूर्ण सागर है, तट पर हंस बैठा है। हंस समुद्र में मिल रहा है, हंस में सागर समा रहा है। दोनों ओत प्रोत हैं, यहाँ द्वैत का नाम तक नहीं।

सभी परिपूर्ण हैं। सागर भरा है, गागरी भरी है, नागरी भरी है और उसकी गागरी भरी है! कहीं रिक्तता नहीं। परिपूर्णानन्द का एकच्छत्र अखण्ड शासन है!

इसी प्रसंग में सन्तों ने सुरति व शब्द के मिलन के प्रसंग में होली का भी खूब वर्णन किया है। मेंहदी रचाकर नव-वधू सुरति का शब्द के साथ पाणिग्रहण और 'गगन के गोन' में मिलन का महानन्द— इसके वर्णन में सन्तों की वाणी कहीं कुण्ठित नहीं हुई। पर, अन्त में उन्हें लगा, यह सारा प्रयास व्यर्थ है! उस अतोल अमाप को तोलने व मापने का वाल-प्रयास मात्र है। उसके बाद उनकी वाणी एकदम खामोश हो जाती है! आनन्द, आनन्द, आनन्द! पूर्ण आनन्द!!

कवीरजी ने 'अणहद' तूर का बेहद वर्णन किया है—

अणहद वाजे नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अंत्तरि प्रगटै, लागे प्रेम धियान॥

कवीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अंधियारी मिटी गई, वाजे अनहद तूर॥[१]

दादूजी की वाणी भी उस महानन्द में ओत प्रोत है—
ऐसा अचिरज देखिया, विन वादल वरसै मेह।
तहं चित चातृग ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह॥

दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करै कलोल।
सुख सागर सूभर भरया, मुक्ता हल अनमोल॥[२]

---

(१) —कवीर ग्रन्थावली; पृष्ठ १६
(२) —स्वामी दादू दयालजी की वाणी; पृष्ठ ६५

स्वामी रामचरणजी ने इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है, उल्लास साकार हो उठा है।

[रेखता][1]

घोर अनहद की गिगन गिरणइया, होत बहुसीर नहीं कहत आवै।
झालरी वीरण मरदंग सहनाईयां, बांसुरी ताल झुंणकार लावै ॥
भेरि रणसिंग करनाल वंक्या वजै चंग अरु उपंग गति करत न्यारी।
एक इक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी ॥
मंजीरा मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राय मोहो चंग वाजै।
रुणझुंणूं रुणझुंणूं नृत्य जूं घूघरु घंटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ॥
रच्यो कोतूल अति काया अस्थूल में सुखमना नीर फुम्वार वर्षे।
परम ही जोति का चांदणा चहुं दिशा पुरुष भरपूर नहि आन दर्षे ॥
पुरुष रंकार जहां सुरति मिली सुन्दरी सुन्य से महल विश्राम किया।
पूर्णानन्द कूं परसि निर्भय भई पीव की सेभ सुख लूटि लीया ॥
अंग सूं अंग मिल संग छांडै नहीं सुणत जहां राग मस्ताक होई।
राम ही चरण वै देश की सैंन कूं महरमी संत विन लखै न कोई ॥
गगन का गोरव परि जोख ऐसी वणी संतकोइ ध्यान धरि सुक्ख लूटै।
अगमही शब्दकी ध्वनी जहां होइरही अखंडभुंणकार नहितारटूटै ॥
वात कासूं कहूं कोण मांनै यहै, भर्म की भूलसैं तर्क ऊठै।
रामहीचरण यह घोर सुण खुसि भया मिल रही सुरति अब नांहि छूटै॥
गगन ही मण्डल में एक अचरज भया वपु विना पुरुष इक रमत देखा।
पांच ही तत्व सूं रहित वो पुरुष हैं नांहि कोइ तासकै रूप रेखा ॥
अगम अगाध अतोल अम्माप है, वार नहि पार नहि गम्म लेखा।
रामहीचरण वा देश में राम रहे, उलटि नहीं बहुर कोइ वरत भेखा ॥

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १६२-१६३।

सुरति शब्द योग

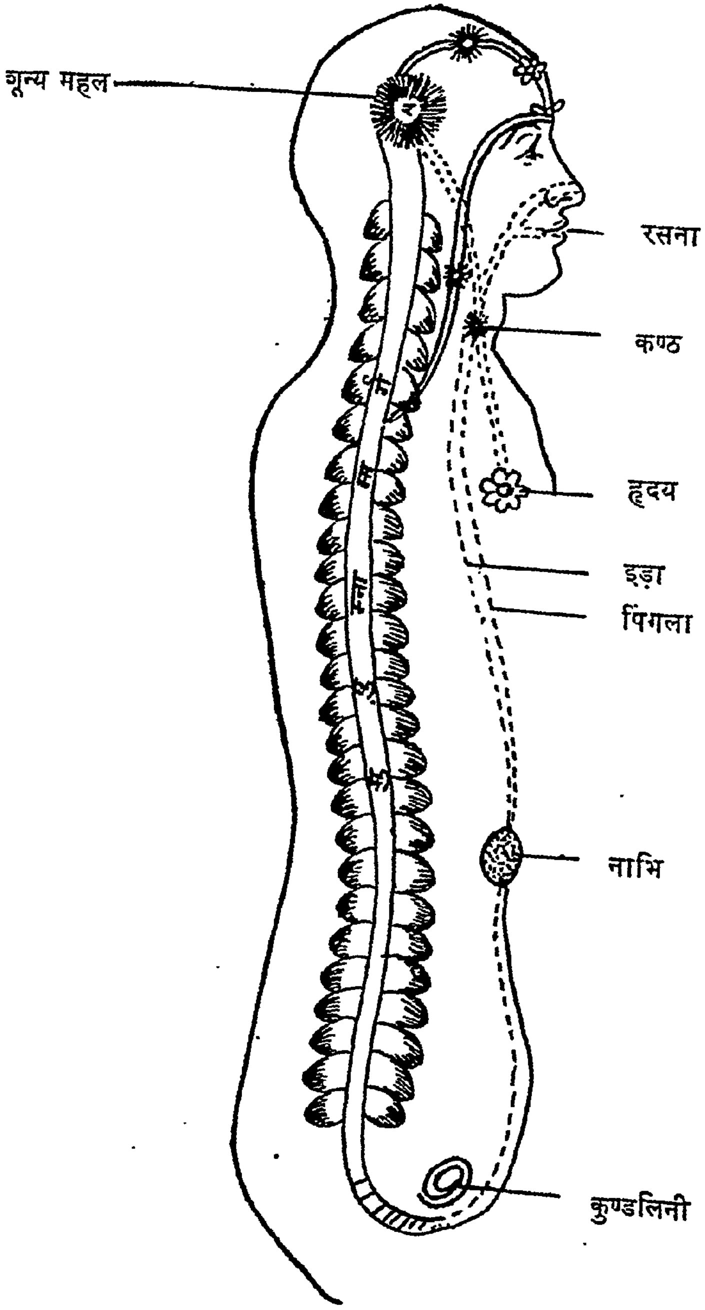

रामसनेही सम्प्रदाय की सुरति शब्द-योग साधना मे 'सुरति' के 'शब्द' मे लय होने की अवधारणा राजयोग प्रणाली से गृहीत जान पडती है।

सुरति-शब्द-योग

निर्गुण पथी साधना को 'सुरति शब्द-योग' की सज्ञा दी गई है। यह सिद्धों की अश्लील एव गुह्य महामुद्रा साधना तथा हठयोगियों की क्लिष्ट काया-साधना से पृथक् मानव स्वभाव सिद्ध अथवा सहज साधना के नाम से जानी जाती है। यही उनकी लयसिद्धियोग समाधि है। इस साधना मे किसी प्रकार के बाह्य विधि-विधान की आवश्यकता नहीं पडती। इसकी उपलब्धि सात्विक एव सरल जीवन-यापन से हो जाती है। इसका लक्ष्य जीव को सासारिक बन्धन सुत वित्त, वनिता आदि से अलग करके उसके आराध्य राम से मिलाना है। सन्तो ने 'परचा' के अग मे इस समाधि की अनुभूतियो का बडा ही मनोरम और जीवन्त वर्णन किया है।

इसका श्री गणेश नामस्मरण से होता है। रात दिन नाम जपते-जपते उसके प्रति हृदय मे एक सहज आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। फिर तो भक्त के हृदय मे नाम के प्रति एक लव सी लग जाती है। परिणामस्वरूप साधक श्वास प्रश्वास के साथ नाम का जप करने लगता है। यही 'अजपाजाप' है। इस अवस्था मे माला आदि साधना के बाह्य उपादान छूट जाते हैं। इसके अनन्तर अनाहत चक्र का द्वार खुल जाता है, फिर सुरति और शब्द का मिलन होता है। यही है सन्तो की सहज साधना, यही है उनका मन्त्रयोग, यही लययोग भी है और इसी को सुरति-शब्द योग भी कहा जाता है।

रामसनेही सम्प्रदाय के सुरति-शब्द योग का विवेचन करने से पूर्व थोडा 'सुरति' शब्द पर भी विचार कर लेना अपेक्षित है। 'सुरति' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वान् एक मत नही है। डा० बडथ्वालने सुरति को सस्कृत के 'स्मृति' शब्द से निकला हुआ बताकर इसका प्रयोग 'वहाँ की स्मृति के अर्थ मे किया है'[1]। डा० सम्पूर्णानन्द ने सुरति को 'स्रोत' से व्युत्पन्न मानकर इसका अर्थ चित्तवृत्ति का प्रवाह किया है[2]। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सुरति का अर्थ प्रेम और निरति का वैराग्य किया है[3]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों मे साधारणत 'रति' प्रवृत्ति का पर्याय है। निरति बाहरी प्रवृत्ति की निवृत्ति और सुरति अन्तर्मुखी वृत्ति को कहते हैं[4]। प० परशुराम चतुर्वेदी सुरति को जीव का निर्मल रूप मानते हैं, जिसमे हमारे

---

१ योग प्रवाह, पृ० २३-३३
२, विद्यापीठ (त्रैमासिक), भाग २, पृ० १३५
३ कबीर, पृ० २४४
४ वही, पृ० २४३

सत्य का निर्मल रूप बराबर झलकता रहता है[1]। डा० रामकुमार वर्मा इसे 'सूरत इ-इलहामिया' का रूपान्तर बताते हैं[2]। श्री तारकनाथ सायाल ने इस शब्द की युत्पत्ति 'श्रुति' से मानी है[3]। कुछ विद्वान् सुरति का सम्बन्ध 'स्वरति' से बताते हैं, जिसका तात्पय है अपने में लीन हो जाना अर्थात् अपने मूल स्वरूप की ओर उन्मुख होना। 'सुरति का अर्थ (सु + रति) श्रेष्ठ रति भी किया गया है जिससे निकृष्ट लौकिक रति के विपरीत आध्यात्मिक रति का अर्थ लेते हैं[4]। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने बहुत से विद्वानों की मान्यताओं का खंडन करते हुए सुरति का अर्थ 'अन्तर्मुखी आत्मा' किया है। उनका विश्वास है कि उन्होंने वास्तविक अर्थ खोज लिया है। वस्तुतः उनकी भी यह अटकल बाजी ही है, क्योंकि आत्मा को अन्तर्मुखी अथवा बहिर्मुखी जैसे विशेषणों से विशिष्ट करना समीचीन नहीं प्रतीत होता। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के सम्पादकों ने राजस्थानी भाषा के 'सुरता' शब्द के आधार पर सुरति का अर्थ ईश्वरोन्मुख ध्यान लगाया है[5]। लोक स्वर को पकड़कर सत्य तक पहुँचने का जो प्रयास विद्वान् सम्पादकों ने किया है, वह हर प्रकार से सराहनीय है किन्तु थोड़ी सी असावधानी के कारण वे भी सत्य से दूर रह गये हैं। वास्तव में सुरता' शब्द का अर्थ ध्यान ही होता है, किन्तु विद्वान् सम्पादकों ने साधक के ईश्वरोन्मुख ध्यान सम्बन्धी पदों के आधार पर इसका अर्थ ईश्वरोन्मुख ध्यान अथवा चित्त की ऊर्ध्वगामिनी वृत्ति कर दिया अन्यथा ईश्वरोन्मुख ध्यान लोकोन्मुख ध्यान आदि तो ध्यान के भेद मात्र हैं। हमारे यहाँ गाँवों में सुरति शब्द का प्रयोग केवल ध्यान अथवा याद या सुधि के अर्थ में होता है। वियोगिनी नारियों के अपने पति की सुरति कर-करके रोने की चर्चा से लोक-साहित्य भरा पड़ा है। अवधी प्रदेश में प्रचलित एक गीत में वन के लिए प्रस्थान करते हुए राम के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्होंने घर को त्याग दिया और उनको सुरति वन को लग गयी अर्थात् उनका ध्यान वन की ओर चला गया—'तजि दीनो भवन सुरति लागी बन के'। सूरदास ने भी 'सुरति' शब्द का प्रयोग सुधि या ध्यान के अर्थ में ही किया है —

जबहिं सुरति आवत वा सुखकी
जिय उमगत तनु नाहीं[6]।

निर्गुण सन्त नाम के साधक थे। नाम साधना वस्तुतः शब्द साधना है, और

---

१ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० २०४
२ कबीर का रहस्यवाद परिशिष्ट पृ० ८२
३ सरस्वती भवन स्टडीज, भाग ८ (श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०१)
४ निर्गुण धारा, पृ० २३७
५ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०२
६ सूरसागर (ना० प्र० स०), पृ० १६४४

शब्द साधना में ध्यान को ही प्रधानता दी जाती है। अत साधनागत दृष्टि से भी सुरति का अर्थ ध्यान ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

यों तो रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में 'सुरति-शब्द-योग' का उल्लेख यत्र-तत्र सर्वत्र देखने को मिल जाता है किन्तु सन्तो ने इस साधना का विस्तृत वर्णन 'परचा' के अग मे किया है। उनका 'परचा' वस्तुत 'सुरति और 'शब्द' का परिचय है।

साधना के चार सोपान.

सन्तो ने 'सुरति शब्द-योग' को चार सोपानो म विभक्त किया है जिसे वे साधना की चार चौकियो के नाम से पुकारते हैं[१]। इन सोपानो के स्थान हैं कठ, हृदय, नाभि और ब्रह्माड[२]। साधना के प्रथम सोपान में साधक संसार की अनित्यता और मायाकृत बधन से व्याकुल होकर परमानन्द की खोज म निकलता है। उसका सद्गुरु से भेंट होती है। गुरु उसे नाम का महत्व बताते हुए 'रामनाम' की दीक्षा देता है। गुरु से नाम का परिचय पाकर वह उस स्मरण करने लगता है। स्मरण करत करते उसके साथ साधक का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। फिर तो वह प्रतिक्षण, प्रतिपल श्वास-प्रश्वास के साथ तन और मन को उसी में तल्लीन करके अविच्छिन्न रूप से नाम जाप करने लगता है[३]। नाम जप करते करते साधक के जिह्वाग्र पर अमृत रस का सा स्वाद आने लगता है[४]। इस स्थिति में साधक पानी पीने की इच्छा नहीं करता। उस इस बात का डर रहता है कि कहीं जलपान करने से यह अमृत उससे दूर न हो जाय। इस रस को पीने से साधक की क्षुधा भी समाप्त हो जाती है। उसकी नसों मे आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगता है।

१ चौकी भजन प्रताप की सन्त कह गये च्यार।

अणभै वाणी, पृ० १३

२ रसना कठ रस पीयके हिरदै सुख विलास।
नाभि कवल मै उलटि वे सुरति गई आकास।।

—वही पृ० १३

३ तन मन कर हेती रहना सेती रामहि राम राम रटदा है।

—घघर निसाणी (हरिराम), छ० २

४ (क) प्रथम शब्द रसना से रटिये, स्वासो स्वाम अमीरस गटिये।

—रामस्नेही सतवाणी, पृ० ८४

(ख) रस अग्र खुली इक सीरा प्रथम वाको पयसो नीरा।
रटता रटता भयो मिठास, हृप भयो आग विश्वास।।

—शब्द प्रकाश (रामचरण), छ० ४

उसका मन मयूर आनन्द-विभोर होकर नाचने लगता है। आनन्दानुभूति के इन क्षणों में उसके नेत्र बन्द हो जाते हैं। जिह्वा वाग्व्यापार से विरत हो जाती हैं। श्रवण किसी प्रकार की बाह्य चर्चा सुनना ही नहीं चाहते। हृदय इतना गद्गद् हो जाता है कि श्वास लेना भी दुष्कर हो जाता है। आंखों से आंसू के निर्झर झरने लगते हैं[1]।

प्रथम सोपान को पार करके शब्द आगे बढ़ता है किन्तु कंठ प्रदेश में पहुँच उससे अटक जाता है। यहीं से वियोग दशा आरम्भ होती है, साधक विरह की आग में जलने लगता है उसका शरीर पीला पड़ जाता है, मन सूख जाता है। न तो उसे दिन में भूख लगती है और न रात में नींद[2]। रामचरण साधक की विरह दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं —

कंठ स्थान बहुत कठिणाई मुख स बचन न बोल्यो जाई।
खान पान पै रुचि रहै थोरी मारग स्यों जाय कहूं थोरी।।
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी नीली नस दीसै झलकानी।
पीरो वदन नेतरा लाली मुकुर ज्योति ज्यूं दिये कपाली।।
चलै कंप कंपी रुं थररावै छाती रुधै श्वास न आवै।
ऐसा विधि विरहिनि की होई विरहिन जाणै कि सतगुरु सोई[3]।।

कंठ से आगे चलकर शब्द-ब्रह्म साधना के द्वितीय सोपान अर्थात् हृदय प्रदेश में प्रवेश करता है। हृदय में प्रवेश करते ही शब्द अनन्त प्रकाश से युक्त होकर

---

१ तब रसना सिर छूटे धारा, चलै अखंड नहिं खंडै लगारा।
जल पीवन की श्रद्धा नाहीं मति भी अमृत दूरि होइ जाहीं।।
रस पीवत क्षुधा सब भागी कंठा शब्द टगटगी लागी।
नाडि नाडि में चलै गिलगिली सुख धारा अति बहै लिसलिली।।
मुख सूं कछू न उचरै बैना लग्या कपाट खुले नहिं नैना।
श्रवणां चर्चा सुणै न कोई कंठ ध्यान यह लक्षण होई।।
कंठ के ध्यान कम कभी जागै रोम रोम सीतल सो लागै।
हियो गद्गदै श्वास न आवै, नैणा नीर प्रवाह चलावै।।
—नाम प्रताप (रामचरण), छं० ४५-४८

२ दरिया विरही साधु का तन पीला मन सूख।
रैन न आवै नींदडी दिवस न लागै भूख।।
—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ४९

३ शब्द प्रकाश (रामचरण) छं० ४-७

अज्ञानाधकार को दूर कर देता है। भ्रम कम और सशम का नाश हो जाता है[1]। भवताप से उद्विग्न साधक मानसी गगा की हिलोरो मे तृप्त हो जाता है[2]।

सुरति-शब्द योग का तीसरा सोपान नाभि प्रदेश में है। नाभि कमल के भीतर भ्रमर गुजार किया करते हैं जिनका न कोई रूप है न वर्ण। वह अगम और अपार है[3]। यहा 'भवरो' की गुजार से दरिया साहब का तात्पर्य सम्भवत शब्द की गुंजार से है। रामचरण के अनुसार शब्द की गुजार से साधक की रग रग मे जागृति आ जाती है। उसके रोम रोम से अनेक प्रकार की राग रागिनियां निकलने लगती हैं। नौ सौ नाडियां एक साथ ही मंगल गाने लगती हैं। इसी स्थान पर मन भ्रमर को परमानद की प्राप्ति होती है[4]।

नाभि के पश्चात् शब्द इडा पिंगला वा सुषुम्ना के त्रिवेणी सगम पर स्नान करके निर्मल हो तीनो लोको से पृथक् चौथे देश मे प्रवेश करता है[5]। वह मेरुदण्ड के नीचे उतरकर नाद को खिड़की खोलता है, और ब्रह्म में लीन हो जाता है[6]। संतों

---

१ शब्द ब्रह्म हिरदे किया वासा।
ज्यू रैण अंधेरी चद प्रकाशा॥
मम कम सांसो गयो भागी।
हिरदे ध्वनी अखड लिव लागी॥
—नाम प्रताप (रामचरण), छ० ५०

२ जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकाश।
हौद भरा जह प्रेम का, तह लेत हिलोरा दास॥
—रामस्नेही सन्तवाणी पृ० ५४

३ नाभि कंवल के भीतरे, भवर करत गुजार।
रूप न रेख न बरन है, ऐसा अगम विचार॥
—रामस्नेही संतवाणी, पृ० ५४

४ शब्द गुजार नाडि सब जागे, रोम रोम मे होई रही रागे।
नौसै नारीमगल गावे तहां मन भंवरा अति सुखपावे।
—नाम प्रताप छ० ५२-५३

५ इडा पिंगला सुषुम्ना, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां माझे जल झूलिके, निर्मल होय निराट॥
अब त्रिवेणी न्हाइ के, किया गगन प्रवेश।
तीन लोक सू अलग सुख यो कोइ चौथा देश॥
—अणभै वाणी (नामप्रताप) पृ० २०७

६, नाभि कवलसे उतरा, मेरुदण्ड तल आय।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म स जाय॥
—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ५४

ने सुरति और शब्द के अलौकिक संयोग का बड़ा ही विशद और हृदयग्राही वर्णन किया है। वहां अनन्त चन्द्रमा उदित हैं। करोड़ों सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं[1]। वहां झाल, वीणा, मृदंग, शहनाई, बांसुरी, चंग, उपंग, भेरी, नरसिंह, मञ्जीर, ढोलक, गिड़गिड़ी, घुंघरू आदि अनेक प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि से वातावरण मुखरित रहता है[2]। इसी रम्य स्थलो पर सुरति और शब्द का मिलन होता है। दोनों एक दूसरे से एकमेक हो जाते हैं[3]। हरिरामदास ने सुरति और शब्द के इस मिलन की उपमा नीर-नीर के मिलन से दी है[4]। तात्पर्य यह कि दोनों इस प्रकार मिल जाते हैं कि किसी प्रकार का द्वैत नहीं रह जाता। रामचरण कहते हैं कि शब्द रूपी अमर पिय को पाकर सुरति सुहागिनी बन गयी[5]। अब वह ररकार पति के साहचर्य में निवास करते हुए गगन मण्डल में केलि करती रहती है[6] दोनों सुख की सेज पर परस्पर

---

१ अनन्तहि चंदा ऊगिया, सूर्य कोटि परकाश।
बिन बादल बरसा घनी, छह ऋतु बारह मास ।।

रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ५५

२ घोर अनहद्द की गिगन गिरणाइया होत बहु सोर नहीं कहत आवै
झालरी वीण मिरदंग सहनाईया, बांसुरी ताल झंणकार लावै।।
भेरि रणसिंग करनाल ववया बजै, चंग अरु उपंग गति करत न्यारी ।।
एक इक नाद मै राग नाना उठै, मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी ।।
मंजीरा मान धधकार ढोलक करै, गिडगिडी राग मोहीचंग बाजै।
रुणझुंणं रुणझुंणं नृत्य जूं घूघरूं, घण्टा टकोर ध्वनि अधिक बाजै ।।

अणभै वाणी, पृ० १६२

३ सुरति शब्द परचा भया, ब्रह्म निरन्तर बास।

श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ६२

४ हरिया हरिजन एक है जीव सीव नहिं दोय।
नीर मिलाना नीर में फिर न्यारा नहिं होय ।।

वही, पृ० ६३

५ मिलवै शब्द अक्ल सूं भया जीव सूं सीव।
सुरति सुहागणि होय रही परसि अमर वर पीव ।।

अणभै वाणी पृ० १५

६ ररकार पति परसिया सुरति सुन्दरी नारि।
रामचरण केला करै मिलवै गिगन मझारि ।।

वही, पृ० १४

हिलमिल कर विश्राम करते हैं और उन्हें जगत् के कार्य-व्यापार फीके दिखाई पड़ते हैं। प्रियतम को पा जाने के बाद उनको दृष्टि में दूसरा कोई नहीं आता। जो सुख उसे पिय की सेज पर मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है[1]। रसिक राम के साथ सुरति सुन्दरी की बसन्त लीला निरन्तर चलती रहती है —

> राम रमीले से रग रच्यो म्हारे आज बसन्त को खेल ।।टेर।।
> प्रेमनीर पिचकारी दिल से छूटत चहुँ उर झेन ।।
> अध ऊर्ध्व बिच खेल मड्यो है सुरत शब्द को मेल ।।
> धुन बिच ध्यान ज्ञान जहा अनुभव जनम मरण दु ख पेल ।
> धालबाल रस राम रमैयो रामदास गुरु खेल[२] ।।

सूफी प्रेम-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय

मध्ययुगीन सन्तो की प्रेमानुभूतियो पर कदाचित् सूफी प्रेम साधना का भी प्रभाव है। निर्गुणोपासना के आधारभूत तत्वो की व्याख्या करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि भारतीय भक्ति-मार्ग साकार और सगुण को लेकर चला है निर्गुण और निराकार ब्रह्म भक्ति और प्रेम का विषय नहीं हो सकता[3]। इस सम्बन्ध मे उनका अभिमत है कि मुसलमानी अमलदारी मे रहस्यवाद को लेकर जो निर्गुण भक्ति की बानी चली वह बाहर से—अरब और फारस की ओर से आयी थी[४]। प० चन्द्रबली पाण्डेय भी इसी प्रभाव की ओर सकेत करते हुए कहते हैं कि अध्यात्म की दृष्टि से तसव्वुफ में भारत के लिए कोई नई बात भले ही न रही हो पर उसमें प्रेम का प्रतिपादन और मादन भाव का प्रदर्शन कुछ नवीन अवश्य था। निम्न भारतीय भक्ति-भावना को सूफियों ने जो योग दिया उससे एक सन्त धारा फूट निकली[५]। यह कथन सर्वांश में सत्य नहीं है। प्रेम-प्रतिपादन और मादन भाव का प्रदर्शन भारतीय अध्यात्म-साधना

---

१ पिव पवनी सुख सेझ पर हिलमिल करत निवास।
रामचरण तब ही लगे फीको जगत विलास ।।
रामचरण पिव पाईया तब निजर न आवै और।
जो सुख पिव की सेझ पर सो नहीं दूसरी ठोर ।।

अणभैवाणी, पृ० १४

२ निर्गुण भजन माला, पृ० ११

३ द्रष्टव्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७८ (१९९७)

४ चिन्तामणि, द्वितीय भाग (काव्य में रहस्यवाद) पृ० १२५

५ तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृ० २२७

सुरत पहूंती संतदास, चौथा घर कूं जाय।
अब तो निरभै होइ कर, रही राम ल्यौलाय॥
सन्त सुरत की जीभ सूं, राम ही राम कहंत।
बंक नाळ का सन्तदास, इम्रत रस पीवंत॥
सुरति शब्द दोउ रमत है, त्रिकुटी के छाजे।
सन्तदास अनहद का, जहां बाजा बाजे॥
द्वारे दसवें सन्तदास, रहे निरंजण राय।
सतगुरु का इक शब्द सूं, कीधा दरसण जाय॥
सुरति चली असमान कूं, मिली शब्द सूं जाय।
खुली सुषमणां सन्तदास, ता बिच रही समाय॥
लंघकर तीन मुकाम कूं, चौथे पहुँता जाय।
सन्तदास वा सन्त कूं, काळ कहां होइ खाय॥
सुरति निरंजण सूं मिली, रही निरंजण होहि।
आवागमन का सन्तदास, मिटिया धोखा मोहि॥
सुरति पकड़ रही शब्द कूं, शब्द सुरति हि मांहि।
अरस परस भया संतदास, अब कुछ अन्तर नांहि॥
राम नाम सूं संतदास, उड गया भरम अनेक।
नवलख तारा छुप गया, ऊगा सूरज एक॥
पवन नहीं पाणी नहीं, नहीं धरण आकाश।
संतदास उस देस में, पूरण ब्रह्म प्रकाश॥
सुरत छांडि तिहुं लोक कूं, ब्रह्म लोक रही जाय।
जहां अंजण नांहीं संतदास, रहत निरंजण राय॥

हाड चाम दीसै नहीं, सुपम जोत की देह।
संतदास उस राम सूं, सुरति मिली कर नेह॥
प्रम पुरी बिच संतदास, सुरति रही घर छाय।
जहां राम का राज है, जम का जोर न थाय॥
मिलना था सो मिल रहा, सुरति शब्द को जोग।
संतदास इस देह का, नहीं हरष नहीं सोग॥
सुरति उलट कर संतदास, शुन बिच गई समाय।
जाय पहुँची उस धाम कूं, जहां जन विरला जाय॥
सुरति राधिका संतदास, शब्द गुरु का कान।
शून्य मंडल बिच रहत है, देख भये हैरान॥
पहुंता पहुंता एक मत, अण पहुंता मत और।
अरहंट की घड़ संतदास, पडसी एकै ठौर॥
धुर पहुंच्या फकरां तणी, शब्दां पारख होय।
अगल बगल की संतदास, परख रखो मत कोय॥

संतो संतन का घर न्यारा।
जिस घट भीतर अमीं झरत है, एक अखंडित धारा ॥टेर॥
जहां घर नहीं अंबर दिवस नहीं रजनी, चन्द शूर नहीं तारा।
जहां नहीं वेद पवन नहीं पाणी, जहां न यो संसारा ॥१॥
जहां काम न क्रोध मरे नहीं जामे, नहीं काल का सारा।
जत सत तपस्या सो भी नांही, नहीं कोई आचारा ॥२॥
सुर तेतीसूं सो भी नांही, नहीं दसों अवतारा।
संतदास दीसत इस घर में, संत के सिरजण हारा ॥३॥

आरती

एसी आरती करो मेरे मन्ना, राम न विसरूं एक ही छिन्ना।
देही देवल मुख दरवाजा, वणिया अगम त्रिकुटी छाजा।१॥
सतगुरुजी की मैं वलि जाई, निस दिन जिह्वा अखंड लिवि लाई॥२॥
द्वितीय ध्यान हृदय भया वासा, परम सुख जहां होय प्रकाशा ॥३॥
तृतीय ध्यान नाभि मधि जाई, सन्मुख भये सेवक जहां सांई॥४॥
अब जाइ पहुंता चौथी धामा, सब साधन का सरिया कामा ॥५॥
अनहद नाद झालर झुणकारा, परम ज्योति जहां होइ उजियारा॥६॥
कोई कोई संत जुगति यह जाणी, जन संतदास मुक्ति भये प्राणी ॥७॥

सवैया—भेष को अंग

थोड़ो सो त्याग कै चोगुणो घेरियो, बूडि रह्यो घर का धंध में।
शठ छूटण हेत उपाय करी, पुनि आय फस्यो जम का फंद में॥
कर दांतलो जेली गंडासी गही, नित फेरत भोर रई दधि में।
कह रामचरण वंध्यो घरटी, गल नांहि रहै गुरु का वंध में॥१॥
ऐसे जीवन सूं मरवो ही भलो, शठ छोड़ि संसार खराब भयो।
तन ऊपर सांग फकीर को दीसत, धंध में आयु वदीत गयो॥
कभू गोबर थापत पीसत पोवत, साध सूं नारि सो होय रयो।
कहै रामचरण ऐसो धिक् जीवन, सांग लजावण कांहि लयो॥२॥
पीवत भांग तिजारो तमाखू हि, खाय अफीम रहे रंग भीना।
कर्म अशुभ करै केई कुकृत, सुकृत शुभ सूं होय पछीना॥
राम को नाम कह्यां खिज ऊठत, दांम कै काम गलाम अधीना।
रामचरण ये भेष लजावत, ऐसे कूं संत कहै मति हीना॥३॥

रेखता परचा

[१]

रसना लिव सैं शब्द तब सरकिया कंठ कै ध्यान विश्वास पाया।
इंगला पिंगला चलत दोउ एक रस कंठ हिरदा बिचै ध्वनी लाया॥
शब्द परकाश हिरदै भया परम सुख प्रेम का चांदणा तिमिर भागा।
बिरह की तप्ति शीतल भई पिवरूपी रोम ही रोम झड़ अधिक लागा।
नाभि ही कमल जाइ शब्द फिर उलटिया मेरु कै दंड होइ गगनं आया।
पर्शि कै त्रिकुटी न्हाय तिरबेणि तट गगन का गोख परि जाय छाया॥
तीन ही लोक सैं अलध सुख देखिया सुरति अरु शब्द मिल करत केळा।
राम ही चरण अब होय न्यारा नही अष्ट ही जाम नित रहत भेळा॥

[२]

घोर अनहद की गगन गिरणाईया होत बहु सौर नहि कहत आवै।
झालरी बीण मरदंग सहनाईयां बांसुरी ताल झुंणकार लावै॥

प्रथम राम रसना सूं गावै, मन कूं पकड़ि एक घर लावै।
राखे सुरति शब्द ही माहीं, शब्द छांडि कहुं अन्त न जांहीं ॥
तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखंड नहिं खंडै लगारा।
जल पीवन की श्रद्धा नांही, मति यो अमृत दूरि होइ जांहीं ॥
रस पीवत क्षुधा सब भागी, कंठां शब्द टगटगी लागी।
नाडि नाडि में चलै गिलगिली, सुख धारा अति बहै सिलसिली ॥
मुख सूं कछु न उचरे बैना, लग्या कपाट खुलै नहीं नैना।
श्रवणां चर्चा सुणैं न कोई, कंठ ध्यान यह लक्षण होई ॥
कंठ के ध्यान कँमकँमी जागै, रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियो गद् गदे श्वास न आवै, नैणा नीर प्रवाह चलावै ॥
एक दिवस इक भया तमासा, कण्ठ हृदा बिच उठ्यो हुलासा।
ज्यूं पाळा की डोर न छूटी, हिरदे सीर सुखम रस ऊठी ॥
शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा, ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा।
भर्म कर्म सांशो गयो भागी, हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी ॥

कहा कहूं या सुख की महिमा, और सुख सब दीशे पलमा।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई, दूजो साधन रहै न कोई ॥
हिरदा सूं लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भई।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होइ रही रागे ॥
नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भँवरा अति सुख पावे।
शीतल भई सबै ही काया, शब्द ब्रह्मरस अमृत पाया ॥
अब तो शब्द गगन कूं चढ़िया, पश्चिम घाटि होईकै अनुसरिया।
घाटी बीस मेरु की छेकी, इक बीसै गढ़ गया विशेखी ॥
पहली बैठा त्रिकुटी छाजे, जाके ऊपर अनहद बाजे।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया, निर्मल होय आगे कूं ध्याया ॥

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झाझे जल झूलिके, निर्मल होय निराट ॥
अब त्रिवेणी न्हाइकै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलध सुख, यो कोई चौथा देश ॥

अब चौथे घर पहुँता जाई, जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई।
घरर घरर अनहद घररावे, परम ज्योति दामणि झलकावे ॥
सुषुमण नीर लूंब झड़िलाई, भीजत सुरति गर्क होइ जाई।
अर्ध ऊर्ध जहां कमल प्रकासा, सुरति भँवर होइ करत बिलासा ॥
घुरै अखण्ड अनाहद बाजा, प्राण पुरुष जहां तख्त बिराजा।
झिलिमिलि झिलिमिलि नूर प्रकासै, अनंत कोटि रवि प्रकट्या भास ॥
या तो बात अतौल है भाई, मुख सूं कह्यां तोल ह्वै जाई।
पवन कहो कैसे गह हाथा, कैसे भरै गगन की बाथा ॥
रूप वर्ण कैसो तड़काको, ऐसो कहा बखानों जाको।
हाक वाक रहे कहत न आवै, पहुंच्या होइ सोही भल पावै ॥

अनहद गरजै नभ झरै, दामिनी ज्योति उजास।
रामचरण सनि सायराँ, हंसा करत निवास ॥

राम भजन करि सहज में, लंघिया तीन मुकाम।
कह चेतन अब रह गयो, सुरति सबद को काम ॥
वहाँ सबद एक रकार है, नहीं ममां सूं काम।
चेतन हरि किरपा भई, त्रिकुटी किया मुकाम ॥
तीन देस में राम भजि, चढ़ि चोथा कूं जाइ।
चेतन ररंकार ध्वनि वहां सुणै, सुख में रहे समाय ॥
मुख हिरदै अरु नाभि लग, रसना रटिये राम।
कह चेतन ताकै परै, सुरति सबद को काम ॥
चेतन सुरति भारी करी, रती सबद सूं जाय।
अब राम भजन बिन दूसरी, खारी लगैं उपाय ॥
सुरति सुखी भइ गिगन में, सुणि अनहद की घोर।
कह चेतन तिहुं लोक में, ऐसी नहीं काइ ठोर ॥

जल बरसै ज्वाला जलै, गिगन मण्डल के मांहि।
चेतन देखे सुरति सूं, बाहिर मालूम नांहि ॥
जल के मांहि धूं वळै, ररंकार भुंणकार।
चेतन वहां अणभै खुलै, सो ही बाणी सार ॥
ररंकार की घोर सुणि, मनवा थिर रह जाय।
चेतन सन्त यों सुळझिया, धुनि में ध्यान लगाय ॥
सुन्न मंडल में सुरति ने, पायो प्रेम भंडार।
निस दिन पीवे ध्यान धरि, चेतन इम्रत सार ॥
राम भजन को है खरो, चेतन के बिसवास।
सुमरण कर सुनि कूं चढ्या, जहां सब संतन का बास ॥
राम नाम कूं रैंण दिन, सुमरयो सांचे मन्न।
जन चेतन साची कहै, घट में लागी धुन्न ॥

(३)

आन को दास सो आन कूं चाहत, दान को दास सो दान करावै ।
तिरिया को दास तिरिया पख ल्यावत, माया को दास सो माया कुमावै ॥
राम को दास सो राम रटै नित, हुँ नह काम सबै छिटकावै ।
चेतनदास विचारि कहै जाको, सेवगहै ताकी धाम में जावै ॥

कुण्डलया

सतगुरु सब संत राम कूं है मेरी परणांम ।
सब ही किरपा राखियो ज्यूं सरै हमारो काम ।
ज्यूं सरै हमारो काम मन रहै तुम्हारा चरणां ।
तुम विन सुख कहुं नांहि भरम चौरासी मरणां ।
कहै चेतन या तीन सूं विमुख सो बड़ा हराम ।
सतगुरु सब संत राम कूं है मेरी परणांम ॥

आरती

आरती राम निरंजण स्वामी, तुम पत राखो अन्तरजामी । टेक ।
तुमरी किरपा सतगुरु पाया, राम भजन का भेद बताया ॥ १ ॥
सुमरण साधि सुधि हम पाई, रसना सूं ले हिरदै आई ॥ २ ॥
उरसूं ध्यान नाभ किया वासा, रोम रोम जहां ध्यान प्रकासा ॥ ३ ॥
अब जा चढ़या त्रिकुटी छाजै, जहां अनहद का वाजा वाजै ॥ ४ ॥
सुरति सबद दोऊ भेळा हूवा, पल एको नहीं होवे जूवा ॥ ५ ॥
ररंकार मिली करत अनंदा, चेतन यो पद परसै कोई वन्दा ॥ ६ ॥

[श्री देवादास जी का रामद्वारा, चांद पोल, जोधपुर की हस्त लिखित वाणी, पृष्ठ-४६२ से उद्धृत ।]

भजन किया जन सोय लही सुख धाम जी।
आन भरम तजि दूरि भज्यो इक राम जी॥
राम बिना सब ओर सकल धरम कूर है।
परिहां मुक्ता राम भज राम सकल भरपूर है॥ ४॥

रेखता— परचा को अंग

राम हि राम निज नाम रसना रट्या कट्या सब कर्म तन मन्न केरा।
द्वितीय ध्यान निज नाम कंठ में जागिया भागिया भरम सब भूठ फेरा॥

तृतीय ध्यान निज नाम हिरदै गयो भया जहाँ चांदणा तिमर न्हास्या।
चतुर्थ ही ध्यान उर नाभि मधि जाइके अष्ट ही कंवळ मन भंवर परस्या॥
भँवर जहाँ मन्न मस्तक अति होयकै पिछम के घाट होई गिगन बैठा।
गिगन के गोप अरु जोप मोजां करै सुरति मन भँवर होई सेव सैठा॥
सुरति सबद मन भँवर होई परसिया दरसिया सुक्ख मिलि सीव सागो।
मुक्त ही राम नह काम होई सुरति संग राम वर परस के दुःख भागो॥
गंग जहां जमन अरु सुरसती मेल होई खोई है कर्म तन मन्न केरा।
त्रिवेणी न्हाइ के मन निरमल भया गया अब ब्रह्म घर किया डेरा॥
गिगन का गोप पर जोप मोजां करै धरै जहां ध्यान नहीं तार टूटै।
मुक्त ही राम नर काम मिलि ब्रह्म स्यूं सुख आनन्द नित सुरति लूटै॥

सवैया

(१)

नूर लह्यो परमातम को जब आतम ब्रह्म सबै दरसाया।
सूक्ष्म स्थूल सबै सचराचर व्यापक नूर निरञ्जण राया॥
ज्यूं रवि ज्योत प्रकाशक कुंभ में है घट मांहि ज्यूं दूरि रहाया।
दास मुकत्त कहे इम टेर के ब्रह्म को रूप अरूप समाया॥

(२)

राम निरंजन आप विराजत बाजत कोट अनंत जु वाजा।
कोट अनंत जहां सूर तपै जहां क्रोड तेतीस सिरे सिरजाता॥

❋ नाद परचे का अंग ❋

दरिया सुमिरै राम को, आठ पहर आराध ।
रसना में रस ऊपजे, मिसरी जैसा स्वाद ।।१।।

रसना सेती ऊतरा, हिरदे किया बास ।
दरिया बरसा प्रेम की, षट् ऋतु बारह मास ।।२।।

दरिया हिरदे राम से, जो कबहु लागे मन ।
लहरें उठैं प्रेम की, ज्यों सावन बरसा घन ।।३।।

जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकास ।
हौद भरा जहँ प्रेम का, तहँ लेत हिलोरा दास ।।४।।

हिरदे सेती ऊतरै, सुखम प्रेम की लहर ।
नाभि कँवल में सँचरै, सहज भरीजै डेहर ।।५।।

नाभि कँवल के भीतरै, भँवर करत गुञ्जार ।
रूप न रेख न वरन है, ऐसा अगम अपार ।।६।।

नाभि परचा उपजै, मिट जाय सभी विवाद ।
किरनैं छूटैं प्रेम की, देखैं अगम अगाध ।।७।।

नाभि कँवल से ऊतरा, मेरु डण्ड तल आय ।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म से जाय ।।८।।

दरिया चढ़िया गगन को, मेरु उलध्या डण्ड ।
सुख उपजा साँई मिला, भेंटा ब्रह्म अखण्ड ।।९।।

बंकनाल को सुध गहै, मेरु डण्ड की बाट ।
दरिया चढ़िया गगन को, लांध्या ओघट घाट ।।१०।।

दरिया मेरु उलग कर, पहुँचा त्रिकुटी सध ।
दुख भाजा सुख ऊपजा, मिटा भर्म का धुंध ।।११।।

अनन्त हि चन्दा ऊगिया, सूर्य कोटि परकास ।
बिन बादल बरषा घनी, छह ऋतु बारह मास ।।१२।।

बकनाल को सुध गहै, कोई पहुचै बिरला सन्त ।
अमो झरै जोति झिल मिलै, नौबत धुरै अनन्त ।।१३।।

दरिया मन परसन भया, बैठा त्रिकुटी छाजै ।
अमी झरै बिगसै कँवल, अनहद धुन गाजै ।।१४।।

दरिया त्रिकुटी सन्ध में, मन ध्यान धरै कर धीर ।
अवस चलत है सुषमना, चलत प्रेम की सीर ।।१५।।

चलै सुरसरी अगम की, हिरदे मन्झ समाय ।
जन दरिया वा सुषमना, रोम रोम हो जाय ।।१६।।

दरिया नाद प्रकासिया, सो छबि कही न जाय ।
धन्य धन्य वे साधवा, वहाँ रहे लौ लाय ।।१७।।

दरिया नाद प्रकासिया, पूरी मन की आस ।
घन बरसै गाजै गगन, तेज पुञ्ज परकास ॥१८॥
दरिया नाद प्रकासिया, किया निरन्तर बास ।
पारब्रह्म परसा सही, जहँ दरसन पावै दास ॥१९॥
जन दरिया जाय गगच में, परसा देव अनाद ।
असुध बीसरी सुध भई, मिटिया वाद विवाद ॥२०॥
घुरे नगारा गगन में, बाजे अनहद तूर ।
जन दरिया जहँ थिति रचो, निस दिन बरसै नूर ॥२१॥
जन दरिया जाय गगन में, किया सुधा रस पान ।
गंग बहै जहँ अगम की, जाय किया अस्नान ॥२२॥
अमी झरत विगसत कँवल, उपजत अनुभव ज्ञान ।
जन दरिया उस देस का, भिन भिन करन बखान ॥२३॥
सुरत गगन में बैठकर, पति का ध्यान सँजोय ।
नाड़ि नाड़ि रुँ रुँ बिचे, ररंकार धुन होय ॥२४॥
विन पावक पावक जलै, बिन सूरज परकास ।
चाँद विना जहँ चाँदना, जन दरिया का वास ॥२५॥
नौवत बाजै गगन में, बिन बादल घन गाज ।
महल बिरजै परम गुरु, दरिया के महाराज ॥२६॥
कञ्चन का गिरी देखकर, लोभी भया उदास ।
जन दरिया थाके बनिज, पूरी मन की आस ॥२७॥

ब्रह्म अगनी ऊपर जलै, चलत प्रेम की बाय ।
दरिया सीतल आतमा, कर्म कन्द जल जाय ॥२८॥

कहा कहै किरपा करी, कहै रहै कोई रूठ ।
जन दरिया बानक बना, राम ठपोरी पूठ ॥२९॥

दरिया त्रिकुटी महल में, भई उदासी मोय ।
जहँ सुख है तहँ दुख सही, रवि जहँ रजनी होय ॥३०॥

दरिया मन रञ्जन कहे, सुखी होत सब कोय ।
मीठे औगुन ऊपजै, कड़ुवा से गुन होय ॥३१॥

मीठे राचे लोग सब, मीठे उपजै रोग ।
निरगुन कड़ुवा नीम सा, दरिया दुर्लभ जोग ॥३२॥

त्रिकुटी के मन्झ बहत है, सुख की सलिता जोर ।
जन दरिया सुख दुख परे, वह कोई देस जो ओर ॥३३॥

त्रिकुटी मांहि सुख घना, नांहि दुख का लेस ।
जन दरिया सुख दुख नहीं, वह कोई अनुभव देस ॥३४॥

※ ब्रह्म परचे का अंग ※

दरिया त्रिकुटी सन्धि में, महा जुद्ध रन्न पूर ।
कायर जन पूटा फिरै, सुन पहुचे कोई सूर ॥१॥

दरिया मेरु उलघिया, त्रिकुटी बैठा जाय ।
जो वहाँ से पूठा फिरै, तो विषयों का रस खाय ॥२॥

दरिया मन निज मन भया, त्रिकुटी मन्झ समाय ।
जो वहाँ से पाछा फिरै, तो मन का मन हो जाय ।।३।।
दरिया देखे दोय पख, त्रिकुटी सन्धि मन्झार ।
निराकार एकै दिसा, एकै दिसा आकार ।।४।।
निराकार आकार विच, दरिया त्रिकुटी सन्ध ।
परे अस्थान जो सुरत का, उरे सो मन का बन्ध ।।५।।
मन बुध चित अहकार को, है त्रिकुटी लग दौड़ ।
जन दरिया इनके परे, ब्रह्म सुरत की ठौड़ ।।६।।
मन बुध चित अहकार यह, रहै अपनी हद मांहि ।
आगे पूरन ब्रह्म है, सो इनको गम नांहि ।।७।।
मन बुध चित अहंकार के, सुरत सिरोमन जान ।
ब्रह्म सरोवर सुरत के, दरिया सन्त प्रमान ।।८।।
मन बुध चित अहकार यह, रहै सुरत के मांहि ।
सुरत मिली जाय ब्रह्म में, जहँ कोई दूजा नांहि ।।९।।
ममा मेरु से बावड़ै, त्रिकुटी लग ओंकर ।
जन दरिया इनके परे, ररंकार निरधार ।।१०।।
दरिया त्रिकुटी हद्द लग, कोई पहुंचै सन्त सयान ।
आगे अनहद ब्रह्म है, निराधार निरबान ।।११।।
दरिया त्रिकुटी के परे, अनहद ब्रह्म अलेख ।
जहाँ सुरत गैली भई, अनुभव पद को देख ।।१२।।

रतन अमोलक परख कर, रहा जौहरी थाक ।
दरिया तहँ कीमत नहीं, उनमुन भया अबाक ।।१३।।

इड़ा पिंगल सुषमना, त्रिकुटी सन्धि मन्झार ।
दरिया पूरन ब्रह्म के, यह भी उल्ली वार ।।१४।।

सुरत उलट आठों पहर करत ब्रह्म आराध ।
दरिया तब ही देखिये, लागी सुन्न समाध ।।१५।।

सुरत ब्रह्म का ध्यान धर, जाय ब्रह्म में पर्स ।
जन दरिया जहँ एकसा, दिवस एक सौ बर्स ।।१६।।

ररंकार धुन हौद में, गरक भया कोई दास ।
जन दरिया व्यापै नहीं, नींद भूख और प्यास ।।१७।।

जन दरिया आकास लग, ओंकर का राज ।
महासुन्न तिसके परे, ररकार महाराज ।।१८।।

दरिया सुरति सिरोमनी, मिली ब्रह्मसरोवर जाय ।
जहँ तीनों पहुंचै नहीं, मनसा वाचा काय ।।१९।।

काया अगोचर मन्न अगोचर, सब्द अगोचर सोय ।
जन दरिया लवलीन होय, पहुँचेगा जन कोय ।।२०।।

धरती गगन पवन नहीं पानी, पावक चन्द न सूर ।
रात दिवस की गम नहीं, जहँ ब्रह्म रहा भरपूर ।।२१

ररंकार सतगुरु ब्रह्म, दरिया चेला सुर्त ।
जैसा मिला तैसा भया, ज्यों संचे माँहि भर्त ।।२२।।

दरिया सूरति सर्पनी, चढ़ी ब्रह्म के मांय।
जाय मिली परब्रह्म से, निरभय रही समांय ।।२३।।

दरिया देखत ब्रह्म को, सुरत भई भयभीत।
तेज पुञ्ज रवि अगनी बिन, जहँ कोई उष्न न सोत ।।

पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोई कर्म न काल।
जन दरिया जह पड़त है, हीरों की टकसाल ।।२५।।

सुरत निरत परचा भया, अरस परस मिल एक।
जन दरिया बानक बना, मिट गया जन्म अनेक ।२६।

तज विकार आकार तज, निराकार को ध्याय।
निराकार में पैठकर, निराधार लौ लाय ।।२७।।

सुरत मिली जाय ब्रह्म से, अपनो इष्ट संभाल।
जन दरिया अनुभव सब्द, जहँ दीखै काल विसाल ।२८।

सुरत मिली जाय ब्रह्म से, मन बुध को दे पूठ।
जन दरिया जहँ देखिये, कथनी बकनी झूठ ।।२९।।

दरिया जहँ लग गगन है, जहँ लग सुरत निवास।
इनके आगे सुन्न है, जहँ प्रेम भाव परकास ।।३०।।

दरिया अनहद अगनी का, अनुभव धूवाँ जान।
दूरा सेती देखिये, परसे होय पिछान ।।३१।।

मान बड़ा अनुभव सब्द, दूर देशान्तर जाय।
अनहद मेरा साइयाँ, घट में रहा समाय ।।३२।।

❋आरती संग्रह❋

ऐसी आरती करो मेरे मन्ना ।
राम न बिसरू एको छिन्ना ॥१॥

देही देवल मुख दरवाजा ।
बन्या अगम त्रिकुटी छाजा ॥२॥

सतगुरुजी की मैं बलिजाई ।
निश-दिन जिव्या अखंड लिवलाई ॥३॥

द्वितीय ध्यान हिरदे भया वासा ।
परमसुख जहाँ होय प्रकासा ॥४॥

तृतीय ध्यान नाभी मधि जाई ।
सनमुख भये सेवक जहाँ सांई ॥५॥

अब जाय पहुँचा चोथी धामा ।
सब सन्तन का सरिया कामा ॥६॥

अनहद नाद झालर झँणकारा ।
परम जोत जहां होय उजियारा ॥७॥

कोई कोई सन्त जुगत यह जाणी ।
जन संतदास मुक्ति भये प्राणी ॥८॥

❋——❋

आनन्द आरती आतम देवा ।
जन दरियाव करे जहाँ सेवा ॥६॥

——

तन मन आरती करूँ नित सेवा ।
जन दरियाव मिल्या गुरुदेवा ॥टेर॥

सद्‌गुरु शब्द दिया सुख धारा ।
निस दिन रसना राम उचारा ।
कण्ठ हिरदा विच भया परकासा ।
ब्रह्म मिलन की भई मन आशा ।
नाम कंवल विच शब्द गुंजारा ।
रग रग रोम रोम रंरंकारा ।
पेस पयांल आकास सिधाया ।
चढ्या त्रिकुटी परम सुख पाया ।
ईडा पिंगला सुखमण मेला ।
चान्द सूरज एकण घर मेला ।
शुन्न सिखर जहँ अनहद वाजे ।
अनन्त कोटि जहँ सन्त विराजे ।
अनघड़ रूप अखण्ड अविनासी ।
जन पूरणदास जहाँ के वासी ।

——

कर मन आरती देव निरंजन ।
आवागमन सकल दुख भंजन ॥१॥
प्रथम सेव सतगुरु की कीजै ।
तन मन अरप चरण चित दिजै ॥२॥
राम राम रसना लिव लागी ।
हिरदे जोत ब्रह्म की जागी ॥३॥
नाभ कमल बिच नाद बजाया ।
गरज्या शहर गगन गरणाया ॥४॥
शहर आनन्द घर मंगलचारा ।
चढ्या त्रिकुटी में प्राण हमारा ॥५॥
आदि अनादि राम वर मेरा ।
जन किसनदास चरणों का चेरा ॥६॥

आरती सुणज्यो सिरजन हारा ।
पलक न बिसरूं नाम तुम्हारा ॥१॥
सरगुण सेवा ओंम्कारा ।
निरगुण नाम सकल विस्तारा ॥२॥
वेद कतेब सुणै सब कोई ।
राम भज्यां बिन मुक्ति न होई ॥३॥

वेदांत – लोकप्रसिद्ध । २१. महमाया–महत्तत्व । जोती–सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ।

जम की पासी सकल पसारा स्वर्ग रु मध्य पयाला ।
या मू को निकसण नहिं पाय, बंधे भ्रम्म के जाला ॥ १४
तीन-लोक पर जबरो डाणी सब सू डाण उगावे ।
भवन चवर दस जम के सारा, पकर जमपुरी लावे ॥ १५
तीरथ बरत जोग जिग दाना, क्या आचार विचारा ।
एता किया ब्रह्म नहिं पावै रहे वार के आरा ॥ १६
कोट उपाय करै जो कोई सतगुरु बिन नहिं छूटै ।
सत का सबद जानिया नांही काल निरंतर लूटै ॥ १७
हद के मांहि काल का फेरा, जह तह पकड मंगावे ।
पाप पुन्न सू भव लग लागा सुरग नरग में जावे ॥ १८
हद का जीव हद सू राजी बेहद सू दुख पावे ।
बेहद गया जके नर सुखिया जह जम-जाल न जाय ॥ १९
प्रथम मिल्यां पूरब की पोलां, रसना नाम रटाया ।
कंठ-कमल में जीव आगिया हिरदे प्राण समाया ॥ २०
हिरदे मांहि मन का वासा मन सू जूझ मचाया ।
सूर बीर सो मन सूं जूझै सत का खड़ग समाया ॥ २१
मन कूं जीत चल्या हम आघा नाभि-कमल मे आया ।
मन पवना एके घर मिलिया, अंतर नाद बजाया ॥ २२
रूम रूम में अजपा होई बिन रसना लिव लागी ।
सुनिया मा‍ हुवा जन सुखिया सुरत सुदगी जागी ॥ २३
नाभी जीत चल्या हम आघा सप्त पताला आया ।
उलट पवान अगम दिस लागा पिछम दिसा कूं ध्याया ॥ २४
पछिम घाट मन पवन समूझे, अरधे उरध पयाना ।
गूग्यीर गा गिर भिम जूझ अजरा अमर भराना ॥ २५

---

१. हद – माया । बेहद – निर्गुण परब्रह्म ।

सौ म र

[illegible]

त्रिगुटी घाट मे सतजन सापड्या, कटिया कर्म अरु ब्रह्म हूवा ।
गुरुदेव परताप तै दास रामा कहे, दसवे द्वार तुम बोल सूवा ॥ ४

रेखता ३

प्रथम मुख द्वार हम सार सिंवरण किया, आठ ही पहर हरि नाम ध्याया ।
दूसरे कठ मे प्रेम परकासिया, गला मे गद सुख स्वाद आया ॥ १
तीसरा ह्रिदा मे वासा लिया, मन्न ही मन्न मिल झीण गाया ।
बाज मुरली सुणी जोर नीका गुणी, सत कू बहुत इतबार आया ॥ २
चतुरथै नाभि मे सबद परकासिया, भवर गुजार हुय एक बाजा ।
छेद पाताल अरु उलट पछिम दिसा, देखिया गैब का अगम छाजा ॥ ३
उलघिया मेरु आकास मे घर किया, सहज विरखा बणी एक धारा ।
इला पिंगला सुषमणा गग चले, बन पीवत नख-सिख सारा ॥ ४
गगन अंबर गजै अनत बाजा बजै, धिन्न अब धिन्न सत भाग तेरा ।
सत्तगुरु महर तै दास रामा कहै, जनम अरु मरण भव मिट्या फेरा ॥ ५

रेखता ४

मन को वास निज नाभि मे रोपियो, धुन की वरत सुन बाध छाजै ।
पवन को नटवौ[1] ध्यान डाको लगै, अनहद डेंबकी खूब बाजै ॥ १
चित्त के चौहटै ख्याल आछा मड्या, अरध अरु उरध विच खेल बाजी ।
चेतिया सहर समसत[2] ही आविया, देखिया ख्याल अब जोर राजी ॥ २
पाच पचीस मिल वरत कू भूमिया, सुरत नटणी चढी अगम आघी ।
सील सिणगार सतोष का सेहरा, हद वेहद विच धूस[3] लागी ॥ ३
नाच आकास मे राम रिझाविया, जाय महाराज कू सीस न्याऊ ।
गुरुदेव परताप तै दास रामा कहे, मुगत का देस की रीज पाऊ । ४

---

१ **नटवौ** – ढोल बजाने की पतली चीपटी । **डेंबकी** – ढोलक । **डाको** – डका ।
२ **समसत** – समस्त । ३ **धूस** – अनेक वाद्यो की सम्मिलित ध्वनि ।

क कबहू नहिं छूटै, सतगुरु बिना काल सब लूटे ।। २
क मे काल पसारा, सब जीवन का करे अहारा ।। ३
मा हरि गुरु तें पाया, दिल भीतर दीदार कराया ।। ४

[२]

राग विलावल

जाग जाग रे जोगिया, क्यू नी नगर जगावै ।
आठ पहर जागत रहो, सुन्य सहर बसावै ।। टेर
मुख सेती सिंवरण किया, कठ में चल आया ।
गदगद लहरा सुषम की, सूता जीव जगाया ।। १
हिरदे मे हरि आविया, चेतन तन सारा ।
बुध कमल परकासिया, जग सेती न्यारा ।। २
नाभ कमल मे सतजन, सहजा चल आया ।
नाद अनाहद साभल्या, सुरत रास मडाया ।। ३
सुरग मरत पाताल मे, एको धुन होई ।
तीनलोक चेतन भया, जाग्या सब कोई ।। ४
उलट पयाल अकास चढ, उलघे मेरा ।
इला पिंगला सुषमणा, तिरवेणी डेरा ।। ५
त्रुगटी सू आगे भया, सुन्य माहि समाया ।
सुख-समाधि सहजा लगी, निरभै पद पाया ।। ६
मन पवना पहुचे नही, बुध जाण नहिं पावे ।
रामदास धिन सतजन, ता घर मे लिव लावे ।। ७

[३]

राम सिंवर रे प्राणिया, भूलै मत भाई ।
सिंवरण बिन छूटै नही, जम द्वारै जाई ।। टेर

[३१]

ऐसी आरती अतर कीजै, अतर कीया जुगे-जुग जीजै । टेर
पहली आरती मुख सू करावौ, सास-उसास राम रस पावौ ॥ १
दूसरी आरती हिरदै माही, सरवन मुरली टेर सुनाई ॥ २

तीसरी आरती नाम मझारा, झुम-झुम झालर झणकारा ॥ ३
चौथी आरती त्रुगटी ध्याना अनहृद बाजै उपज ज्ञाना ॥ ४
पांचमी आरती सुन्य समाई सता समाध अखंड लिय लाई ॥ ५
पांचू आरती जन कोइ साजै, रामदास के सीस बिराजै ॥ ६

[१२]

ऐसी आरती जन कोई साजै भव दुख भजन राम निवाजै । टेर
सास-उसास राम रस पीजै हिरदै मांहि उजाला कीजै ॥ १
नाभि-कमल में प्राण विराजै झालर ताल सख धुन बाजै ॥ २
अरध-उरध बिच झिलमिल जोती, तिरवेणी बिच ओतर पोती ॥ ३
बिना नींव एक देवल दख्या देह बिना एक देव अलेखा ॥ ४
रामदास यह सेवा लागा, जुरा-मरण का भव डर भागा ॥ ५

[११]

निरगुण आरती राम कूं भावै सत-सबद नित सतगु ध्यावै । टेर
प्रथम ज्ञान गुरु कान सुनाया सतगुरु सेती सीस नवाया ॥ १
दुतीये रसना राम धियाया, कंठ-कंवल में प्रेम मिलाया ॥ २
त्रितीये नाम हृदे घर आया, दिल भीतर दीपक दरसाया ॥ ३
चौथे परम गुरु नाभि पधारे, रूंम-रूंम में मंगल उचारे ॥ ४
उलटा अजपा जाप अपाया हद कूं जीत बेहद मे आया ॥ ५
अनहद नाद अखंडत बाजै रामदास जहां आरती साजै ॥ ६

[१४]

राग कनड़ा

राम सरीसा और न कोई जिन सिंवरयां सुख पावै सोई । टेर
राम नाम सू अनेक उधरिया, अनत-कोट का कारज सरिया ॥ १
जो हरि सेती लावै प्रीता राम-नाम ताही का मींता ॥ २

१२(३) ओतर पोती — ओतप्रोत ।

18:06
Shri Ramdasji Maharaj Ki Ba...

राम नाम जिनही जिन लीया , जिन-जिन वास ब्रह्म मे कीया ॥ ३
रामदास इक राम धियाया , परम-जोति के माहि समाया ॥ ४

[३५]

ऐसी जडी मोय सतगुरु दीनी , तन-मन अरप अंतर मे लीनी । टेर
श्रवणा सुनत बहुत सुख पाया , निरखत जडी नैण खुल आया ॥ १
सूघत मगन भया मन मेरा , चाखत मिटग्या भरम अंधेरा ॥ २
पीवत जडी हृदा मे ऊगी , चलत लहर नाभि जाय पूगी ॥ ३
रूम-रूम मे सरव वियापी , उलटी जाय अगम घर थापी ॥ ४
उर-अंतर एको धुन लागी , इला पिंगला सुषमण जागी ॥ ५
मुगत-द्वार मे ाण समाया , जनम-मरण दोय रोग मिटाया ॥ ६
ब्रह्मादिक सनकादिक जाणै , राम जडी सिव सेस बखाणै ॥ ७
अनंत कोट संता या पाई , रामदास गुरुदेव बताई ॥ ८

[३६]

मेरे राम रसायण बूटी , पीवत रोग गया सब तूटी । टेर
मुख तै भ्रम गया सब भागी , कंठ मे विषै-वासना त्यागी ॥ १
हिरदा माहि किया परकासा , मनवा मूवा हुवा निज दासा ॥ २
नाभ-कमल मे प्राण समाये , पांच सरपणी पकड मराये ॥ ३
उलटा चढ्या पिछम की वाटी , कलह कलपना ले भुय दाटी ॥ ४
सूरा संत मेरु मे मंडिया , ढाया काल करम सब छंडिया ॥ ५
चढ आकासा त्रुगटी न्हाया , सासा सोग'रु रोग गमाया ॥ ६
त्रिगुण ताप मोह दुख गलिया , काम क्रोध सहजा पर जलिया ॥ ७
नव तत पांच पचीसू मूवा , रामदास पी निरभै हूवा ॥ ८

[३७]

आवौ राम हमारै माही , तुम आया बिन जीऊ नाही । टेर

३६(४) भुय दाटी – धरती मे दबा दिया ।

किरपा करो करम सब कापो , आदि अंत अपनो कर थापो ॥ १

ा समरथ हो केवल रामा , भनस कोट का सारे कामा ॥ ३३
स रामियो बालक तेरो भजहु दुख न मेटो मेरो ॥ ३४

[४]

मने जन की बाहिर ध्यावो कृपा करो पल मांहि छुडावो । टेर
ग में होय जनांदा हाबा , विडद तुमारो लाजे बाबा ॥ १
ग में होय जनां की हासी सांई विड़द तुमारो जासी ॥ २
न क और आसरो नांई एको शरण तुमारी सांई ॥ ३
रज हमारी सुनिय देवा नीतर जाय भगति का भेवा ॥ ४
हरिजन की न्याय न होई जग में भगति कर नहिं कोई ॥ ५
म समरथ हो केवल रामा , भगति कराय सारो सब कामा ॥ ६
मदास को जोर न कोई बालक के बल रोवण होई ॥ ७

[४१]

राग विहाग

गुरु मेरे ऐसी कदर बताई तातें सुरत सबद घर आई । टेर
रसना नाम नेम कर लीया, निस-दिन प्रीत लगाई ।
हिरदा मांही पेम परकासा आतम की गम पाई ॥ १
नाभी मांही नाद परकासा सबही बन गूंजाणा ।
पिछम दिसा की घाटी खूली मेरु-मंड हुय आणा ॥ २
सहजां उलट आदि घर आया तिरवेणी को तीरा ।
रामदास सुन सागर मांही चुगत हंस जह हीरा ॥ ३

[४२]

धिन जाके साधु समागम होई जाके विघन न व्याप कोई । टेर
सब तीरथ साधां के चरनां सरब देवता लारे ।
राम निरंजण राय पधारे साधू आवत द्वारे ॥ १

(टेर) बाहिर ध्यावो – रक्षा के लिये आवो । (१) हाबा – हल्ला (अपवाद) ।

साधु राम एको ही कहिये, जा बिच अंतर नाही ।

18:08

रामदास साचा इक साइँ, जहा संत किया वासा ॥ ५

[४४]

सतो सतगुरु भेद बताया, राम सिंवर घर पाया । टेर
परथम सबद सरवना सुनिया, सुणत भरमना भागी ।
सिष हुय लग्या सतगुरु के चरनां, बुध चेतन हुय जागी ॥ १
सतगुरु दिया एक निज नामो, रात-दिवस हम ध्याया ।
चतुर पख का कमल छेदिया, कठ में जीव जगाया ॥ २
चेतन भया जीव अब जाग्या, गदगद होत निवासा ।
षष्ट पख का कमल छेदिया, हृदे लिया निज वासा ॥ ३

धम-धमकार हृदा विच लागी पेम लहर दरसाई ।
फुरका चल सब पिंड चेतन मन की रटण जगाई ॥ ४
अष्ट-पख का कमल हृदा बिच छेद नाभि में आया ।
मन पवना एके घर मिलिया सहजां नाच नचाया ॥ ५
नाड-नाड एको धुन लागी, रूम-रूम परकासा ।
रग रग मांही भया अभभा, सिंवरण सास-उसासा ॥ ६
सोलै पंख कमल नाभी का छेद पीठ सध लाया ।
उलटा चढ्या पछिम के मारग, मेरु डंड में आया ॥ ७
पख बतीस मेरु का कमला, छेद चढ्या आकासा ।
इला पिंगला सुषमण मेला त्रिवेणी में वासा ॥ ८
गरज आभ गिगन घन घोरा नाद अनाहद वाया ।
बीज भलाभल चमकण लागी अखंड एक मड लाया ॥ ९
पंख हजार कमल तहा फूल्या, कली कली रस छूटा ।
उलटी सुरत मिली सुख-सागर हीर अमोलक बूठा ॥ १०
कंमल छाड मवे जाय विलम्या, भवर रह्या लपटाई ।
रामदास मुक्ताहल पाया ब्रह्म बाग के मांई ॥ ११

[४५]

संतो एसा औषध पाया (मोहि) सतगुरु भद बताया । टेर
औषध एक दिया गुरु भरे खायां भेद न जाई ।
ताव तेजरो और त्रिषा सब पच गूबड गडवाई ॥ १
खांसी कफ जरा तन खाई रोग छतीसूं दूरा ।
रोम रोम मे औषध रमिया उर-अंतर निज नूरा ॥ २
आवागवण बहुरि नहि आऊ, जामण-मरण मिटाया ।
त्रिगुण-ताप नास भव मांई, सुन्न में जाय समाया ॥ ३

18:11

दरसण दीठा रामिया, आज जाय सब भ्रम ।
ऐसा गुरु हरिरामजी, परस्या काटै क्रम ।। ६९

पूरण ब्रह्म विराजिया, गाव सिंहथल माहि ।
रामदास जन जानसी, दूजा को गम नाहि ।। ७०

इति श्री गुरु महिमा सम्पूर्णम्

*

अथ ग्रंथ भक्तमाल

साखी

मैं अबला हू रामदास, आधौ अती अचेत ।
तुम सतगुरु हो सीस पर, हम कू करो सचेत ।। १

रामदास की वीनती, तुम हो अगम अपार ।
भक्तमाल का भेव दौ, सतगुरु करू जुहार ।। २

चौपाई

सतगुरु मिल्या नाम निज पाया, सत्त सबद कू निस दिन ध्याया ।
हृदय-कमल घर लीया वासा, बीज भगति मोय उपजी आसा ।। ३

नाभ कमल मे राम मिलाया, रूम-रूम मै रग लगाया ।
उलटा सबद पिछम दिस फिरिया, अरधे-उरध प्रेम रस झरिया ।। ४

मनुवा उलट अगम घर आया, सब सतन का दरसन पाया ।
सब सत मेरे सीस बिराजे, सत्त सबद सता मुख छाजे ।। ५

---

७० सिंहथल – बीकानेर राज्यान्तगत आचार्य श्री का गुरुधाम ।
२ भेव – रहस्य । जुहार – नमस्कार ।

सब सतां कू राम पियारा, भक्तमाल का करू उचारा ।
रामनाम सपत सुख दाई, सब सतां मिल साख बताई ।। ६

राम नाम ध्यावे कुल माँई सो वंदय मेरा है भाई ।
राम नाम कू निस दिन ध्यावे आवागवण बहुरि नहीं आवे ।। ७

रेखता :- आकाश सूं पंच पंयाल कूं उतरिया, चोकिया चार विश्राम पाया।
पांच पचीस दिन नाम रसणा लिया, हिरदे मास हरि अेक गाया॥
नाभ के बीच में जुग सो रम रयो, गुरां के भेद पाताल आया।

मूल द्वार में गम ऐसी पडी। पवन के फेर कोई भंवर खाया॥
नाड चोबीस का बंद एक लग्या, उथे जालंधरी बंद लागा।
धरण आकाश मध्य होत झणकार रे। थाल कूं छेड कोई देत भाया॥
भेद की बात निज फेर अैसे कहूं, मूण में भंवर कोई गीत गाया।
पांव हर पंख बिना चलत आकाश कूं। पिछम देश का भेद पाया॥
पिछम के देश का सूत अेसे लग्या, कूप में कुम्भ कोई खींच लाया।
मेर के ऊपरे बंध बोह भांत का, धर्म कूं जीत आकाश आया॥
अला हर पिंगला दोय काने लगी, त्रिवेणी घाट सो आन नहाया।
मध्य से सुखमणा आन भेली हुई, चन्द्र हर सूर घर एक लाया॥
अरध हर उरध ज्यां कमल दोय फूलिया, शब्द की घोर गिगनार छाया।
दास सुखराम गुरूदेव प्रताप सुं, गढ़ पर चढ़ निसाण बाया॥ १॥

शब्द आकाश याने ब्रह्म बैराट से उतरकर पंयाल याने शरीर में प्रवेश करता है। सतगुरू विधि से भजन करने पर कंठ हृदय नाभी दशवां द्वार याने पारब्रह्म इन चार चोकी पर शब्द ठहरता है। एक महिना जीभ से राम राम किया, एक महिना हृदय में रखकर भजन किया। नाभी मे बारह वर्ष तक भजन कर सतगुरू विधि से गणेश शेष के स्थान पर आया, गणेश स्थान से पिछम में उलटना ही स्वांसा के फेर में भंवर खाना है। जहां चौबीस नाडिया मिलती है। उस नाभी स्थान पर जालंधरी नाम का बंध लगा। धरण गणेश स्थान मध्य नाभी व आकाश ब्रह्मण्ड तक शब्द की ध्वनि होने लग गई । जैसे थाल को किसी के छेड देने पर होती है। उस शब्द भेद की बात ऐसी है जैसे मूण में हवा घुस जाती है। तब ऐसा मालूम होता है कि भंवरे गुंजार कर रहे हो। बिना पांव बिना पंख के ब्रह्मण्ड की ओर जा रहा है तो बीच में पिछम याने बंकनाल का भेद मिल गया। शब्द जब मेरूस्थान पर आता है जब ऐसा मालूम पडता है कि कोई कुए में से घडे को खींच रहा हो। मेरूदण्ड पर कई तरह के बन्ध लगते है। इस तरह धर्मराज के स्थान को जीत कर ब्रह्मण्ड में आया, बांयी तरफ ईड़ा, दायीं तरफ पिंगला, दोनो तरफ से त्रिकुटी में पहुंची। मध्य से सुखमणा आकर शामिल हो गई। ईडा पिंगला शामिल हो गई। अर्ध उर्ध में सतगुरू विधि से भजन करने से शब्द गिगन में छा गया। म: फ: है कि सतगुरू केवली भगवंतो के प्रताप से शुन्य में के: पद में गढ पर चढकर निसान बाया याने अखण्ड ध्यान लगा।

नाभ रसणा बिचे एक धारा लगी, गदगद कंठ अलेख ध्यावे।
अरट आकाश में रात दिन बह रहयो, बेल पाताल कूं नीर जावे॥
सांस ऊसांस बीच बारा ढुले, रोम ही रोम संभाल पावे।
गुरूदेव प्रताप भेद कर उलटिया, पिछम देश आकाश आवे॥
शब्द का भेद कोई संत जन जानसी, मुक्त की राह दिल खोज पावे ।
दास सुखराम जहां रीत निरभय बणी, पहुंचिया संत जिण गेल ध्यावे॥ २॥

नाभी रसणा के बीच सांस उसांस में भजन होने लगा। कंठ में गदगदी बिरह प्रेम से भजन कर अलेख याने परमात्मा जो लखने में नहीं आता। उसका सतगुरू विधि से भजन किया। ब्रह्मण्ड में शब्द का अखण्ड अनुभव होना ही पाताल कूं बेल जाना है । सांस उसांस में भजन करना बारा

ढुलना है। रोम रोम में उसका असर होता है। केवली सतगुरू के प्रताप से भेद को कोई कोई संत ही जानते है। दिल खोजने पर ही मुक्ति का रास्ता मिलता है। म: फ: है कि जब ऐसी निरभय रीति बनती है जिस रीति को धारण कर पहले सन्त पहुंचे है उसी रास्ते पर चलकर उस पद की प्राप्ति करे।

अथ ग्रंथ नाम परचा प्रारंभः ।

सत गुरु के सत शब्द तें, उपज्यो मन विश्वास ।
राम नाम छाँड़ूं नहीं, धरूं न दूजा पास ॥ १ ॥
प्रथम राम रसना सुमर, द्वितिये कंठ लगाय ।
तृतिये हिरदै ध्यान धरि, चौथे नाभि सिलाय ॥ २ ॥

चौपाई ।

अध मध उत्तम त्रय घर ठानू । चौथे अति उत्तम अस्थानू ॥
यह चहुँ भिन देखे आसरमा । रामभक्ति को पावै मरमा ॥ १ ॥
अध सुमरन जू ऐसें कहिये । रसना राम राम कूं गहिये ॥
निशिदिन रसना राम उचारा । ज्यौं द्'र बंदीवान पुकारा ॥ २ ॥
ज्यौं रसना तन यौं तृण वेली । तन तृण संग तंतु वा मेली ॥
वेली पान फूल फल लागा । रसना राम सुमिरि भव भागा ॥३॥
अध सुमरन रसना से करिया । करताँई मुझि पार उतरिया ॥
रसना राम सुमर अध तालू । मध सुमरन की आया नालू ॥४॥
मध सुमरन जू ऐसा भाई । मुख सुमरन हालत रह जाई ॥
गदगद कंठहि कमल विकासा । पाया प्रेम भया परकासा ॥ ५ ॥
ज्यौं घायल उर सालैपीरा । त्यौं त्यौं व्यापे राम सरीरा ॥
घायल की घायल सो जानै । राम भजै सोई मन मानै ॥ ६ ॥
निश्चय रामनाम लिव लागी । भ्रमना कंठ कमल की भागी ॥
मध सुमरन की ये परतीति । अब उत्तम सुमरन की रीति ॥ ७ ॥
उत्तम सुमरन हृदय स्थानू । माँहो माँहि भया धरि ध्यानू ॥
रसना लेत राम का नामा । उर भीतर पाया विश्रामा ॥ ८ ॥
सहजाँ सासा शब्द पिछानी । रसना सहत नाम निर्बानी ॥
उत्तम सुख सुमरन हिरदामें । यूं नारी पुरुषा मन कामें ॥ ९ ॥
उत्तम सुमरन की सुधि आई । ढुकि इक ध्यान रह्या ठहराई ॥
अध मध उत्तम सुमर सुजाना । अति उत्तम के माँहि सिलाना ॥१०॥
अति उत्तम सुमरन जू ऐसा । या उपमा बरनूं मैं कैसा ॥
अति उत्तम सुमरन परकारा । रोम रोम लागा रँकारा ॥ ११ ॥
अति उत्तम नाभी अस्थानू । मन संकल्प विकल्प न ठानू ॥
अति उत्तम सुमरन सरवंगा । अक्षर एक भया अणभंगा ॥ १२ ॥

---

१ दरवाजा ।

साखी।

सतगुरु शरणै ऊबऱ्या, नरिये सुमऱ्या राम।
नहिं तो भरस्या जावता, दुख पड़ता वे काम ॥ ३ ॥

छंद जाति ऊधोर।

शरणै संत के आयाक। भावरु भक्ति ही भायाक।
सेवा ध्याल की लागाह। दुबिधा दोष ही भागाह ॥ ५८ ॥
रसना नाम ही लीयाह। अमृत कंठ ही पीयाह।
हिरदै ध्यान ही धरियाह। तन मन सहज थरहरियाह ॥ ५९ ॥
नाभी नाम ही निरधार। सुमरण सहज ही उच्चार।
संगी साँचही धाऱ्याह। झूठा पास ही डाऱ्याह ॥ ६० ॥
पति सूं प्रेम ही लायाह। हरि गुण हेत सूं गायाह ॥
सहजाँ ज्ञान ही आयाह। मनवै शान्ति ही पायाह ॥ ६१ ॥

उलटा पछिम कूं ध्यायाह। ऊंचा मेरु करि थायाह।
वाजा गगन ही वायाह। निरँजन शून्य ही पायाह ॥ ६२ ॥
सुन में शब्द ही निरकार। लागी सुरत ही इकतार।
शुन में सुक्ख ही भइयाह। दूजा दुःख ही गइयाह ॥ ६३ ॥
पूरण ब्रह्म ही कूं पाय। सहजाँ रहे सुख सम्माय।
मिटिगे जनम अरु मरणाक। अब तन फेर नहिं धरणाक ॥६४॥
मिलिया नीर में हुय नीर। हंसा चुगत है हरि हीर।
पाया राम ही महाराज। सरिया सहज जनका काज ॥ ६५ ॥

साखी।

सतगुरु के परताप तें, नरियै नाम पियाह।
प्यासा प्राण पिलाइया, पीवत ही जीयाह ॥ ४ ॥
और सकल कूं छाँडि करि, परस्या आतमराम।
नरिया साँसा को नहीं, जाय मिल्या निजधाम ॥ ५ ॥

इति चेतावनी।

अथ प्राण-परचा प्रारंभः।

साखी।

जन्म जन्म जिव भरमियो, माया मोह लगाय।
भवसागर में डूबताँ, सद्गुरु लियो रखाय ॥ १ ॥

चौपाई।

सद्गुरु न्यारा है निर्बाणी। दे दे ज्ञान तारिया प्राणी ॥
सद्गुरु पूरण ब्रह्म पियारा। दर्शन पायाँ विले विकारा ॥ १ ॥

चौपाई ।

राम राम रसना से लीया । प्रेम प्रकाश कंठमें कीया ॥
मनवा माहिं नाम से लाया । हिरदै सुमरण हेत लगाया ॥ १ ॥
नाभी भजन किया अधिकारा । पिंड सारेमें रमै पियारा ॥
रोम रोम में अर्ध उचारा । अंग अंग में है विस्तारा ॥ २ ॥
सहजाँ सुरति शब्द उलटाया । छांड्या देश विदेशां ध्याया ॥
वंकीनाल चलै इक धारा । मेरुदंड में हुआ करारा ॥ ३ ॥
वर्षा सहज वणी, चहुँ खंडे । उलटा नीर चढ्या ब्रह्मंडे ॥
सुनसागर के माहिं समाया । अनहद गाज गगन गणणाया ॥ ४ ॥
पहुँता सन्त अमीरस पीया । तृष्णा घटी जिके नर जीया ॥
परब्रह्म से प्राण पिलाया । निशिदिन चरणे ध्यान लगाया ॥ ५ ॥
जित्थे काल कर्म नहिं काया । जित्थे विषय विघ्न नहिं माया ॥
राम निरंजन जग से न्यारा । दिया नरैकों सुक्ख अपारा ॥ ६ ॥

साखी ।

मैं हौं प्राणी आपका, कहां न कीजै दूर ।
प्रेम भक्ति नरैकों दिवो, राखो नित्य हजूर ॥ ३ ॥

चौपाई ।

शरणै आइ दीनता दाखे । सद्गुरु मोकों चरणाँ राखे ॥
सो गुरु दीया ज्ञान विचारा । भर्म कर्म तें कीया न्यारा ॥ १ ॥
सद्गुरु मेरे किरपा कीनी । भाव भजन की आज्ञा दीनी ॥
सद्गुरु सतका शब्द सुणाया । मुखते रामनाम सुमराया ॥ २ ॥
रामनामसा नाम न कोई । भावे मँाड सकल फिर जोई ॥
राम राम कहि राम सिलावै । लख चौरासी कबहु न जावै ॥ ३ ॥
सद्गुरु ऐसा तत्त्व बताया । निश्चय एको राम कहाया ॥
सद्गुरु ऊपर प्राण अँवारी । तन मन शीश चरण में डारी ॥ ४ ॥
रसना रटत जु नेह लगाया । कंठ कमल में सुमरण आया ॥
गद्गद होइ प्रेमरस पाया । पी पी प्राणी कर्म नसाया ॥ ५ ॥
मन इकतार नाम निज भाया । हिरदै ध्यान धणी का आया ॥
दया दीनता ज्ञान विचारी । दिलकी दुर्मति दूर निवारी ॥ ६ ॥

चेतन चलकरि नाभि सिधाया । श्वास उश्वासे सुमरण लाया ॥
तन मन सब ही सहज नचाया । भाँति भाँतिका नृत्य कराया ॥ ७ ॥
रग रग भीतर सहज पसारा । रोम रोम में है ररकारा ॥
नाड़ि नाड़ि में जीव जगाया । सारशब्द के संग लगाया ॥ ८ ॥
जीव पलटिया ब्रह्म जु होई । और विकार लिपे नहिं कोई ॥
विरहनि झूरी अती अपारा । अब तो पाया पीतम प्यारा ॥ ९ ॥
दया करी मोहि दुःख मिटाया । चरणकमल के बीच रखाया ॥
ररंकार सहजाँ लिव लाया । प्राणी बहुत परम सुख पाया ॥ १० ॥
पीया ऐसी कृपा जु कीनी । शरणै सदा आपमें लीनी ॥
सहाय करी अरु सुलटा थाया । पातोत्ताने बंध लगाया ॥ ११ ॥
शिख्खर चढ़िया पूरब ध्याना । ठाम ठाम का पाट खुलाना ॥
खूला ध्यान धरणि कों आया । पातालां में पन्थ जु पाया ॥ १२ ॥
उलटा शब्द पछिम कों ध्याया । मन पवनाका बंध लगाया ॥
वंकनाल में सहजाँ वहिया । मेरु मंझि मेवासा दहिया ॥ १३ ॥
अधः ऊर्ध्व विच राह चलाया । आकाशाँ में अनहद वाया ॥
चंद रु सूर गगन घर लाया । नाद बिन्दु के माहिं समाया ॥ १४ ॥
गहरी गाज गगन गणणाया । वर्षे अमृत प्राण पिलाया ॥
पी पी सन्त शुन्य में आया । चित शान्ती घर सहज मिलाया ॥१५॥
मन पवना स्थिर दशम द्वारा । पांच पचीसों बंध्या सारा ॥
इड़ा पिंगला सुषमण मेला । सुरति शब्द जहँ हुआ मेला ॥ १६ ॥
शब्द निरंजन काज सुधारा । भवसागर ते पार उतारा ॥
शब्द नकेवल ऊपर वारी । अपना जान रु लिया उबारी ॥ १७ ॥
उत्तर दक्षिण ध्यान मिलाना । पूर्व पश्चिम माहिं समाना ॥
परम शून्य है सरजनहारा । सहजाँ मिलिया प्राण हमारा ॥ १८ ॥
सुखसागर है निर्गुण राया । दर्शन किया परम सुख पाया ॥
त्रिबेणी में पीव निवासा । मिली पियारी लील विलासा ॥ १९ ॥
पत्नी ऐसी प्रीति लगाई । झिलमिल ज्योती से लिपटाई ॥
भव कों वीसर चरणाँ आई । सहजाँ रहे अखँड लिवलाई ॥ २० ॥
संशय शोक सकलही मेटा । निर्भय निराकार कों भेटा ॥
पूर्ण भया परम सुख पाया । तातें अंतर ध्यान लगाया ॥ २१ ॥

रेखता ।

(१)

गुरू परताप तैं राम हम पाविया । गुरू परताप तैं भर्म भागा ।
गुरू परताप तैं काल दूरै गया । गुरू परताप तैं रटण लागा ॥
गुरू परताप तैं कंठ परकासिया । गुरू परताप तैं जीव जागा ।
गुरू परताप तैं चाल हिरदै गया । गुरू परताप तैं ध्यान लागा ॥
गुरू परताप तैं नाभिमें संचऱ्या । गुरू परताप अजपाजु होई ।
गुरू परताप तैं उलट ऊँचा चढ्या । गुरू परताप तैं अगम जोई ॥
गुरू परताप तैं वंक नाली वहै । गुरू परताप तैं मेरु आया ।
गुरू परताप आकासमें रम रह्या । गुरू परताप ब्रह्मांड छाया ॥
गुरू परताप तैं तीन धारा मिली । गुरू परताप असनान होई ।
गुरू परताप तैं गंग जमुना वहै । गुरू परताप सब कर्म खोई ॥
गुरू परताप तैं जोति सूं मिलगया । गुरू परताप जम हाथ जोड़ै ।
गुरू परताप रिधि सिद्धि दासी भई । गुरू परताप चढज्ञान घोड़ै ॥
गुरू परताप तैं अखंड नोबत वजै । गुरू परताप तिहुं लोक जीता ।
गुरू परताप तैं राज निर्भै भया । गुरू परताप सबमें वदीता ॥
गुरू परताप तैं जगत चरणाँ पड़ै । गुरू परताप सुर असुर वंदै ।
गुरू परताप की संत महिमा करै । गुरू परताप सब वात खंदै ॥
गुरू परताप की कहा महिमा कहूँ । गुरू परताप तैं ब्रह्म हूवा ।
गुरू परताप तैं रामिया राम मिल । गुरू परताप तैं नाहिं जूवा ॥ १ ॥

(२)

प्रथम मुख द्वार हम सार सुमरण किया । आठ ही प्रहर हरि नाम ध्याया ।
दूसरै कंठ में प्रेम परकासिया । गला में गदगदी स्वाद आया ॥
तीसरै हृदामें जाय वासा किया । मन्त्रहीमन्त्र मिल झीण गाया ।
वाज मुरली सुणी जोर नीकाँ गुणी । संतकूं बहुत इतबार आया ॥
चतुर्थै नाभिमें शब्द परकासिया । भँवर गुँजार होय एक वाजा ।
छेद पाताल अरु उलट पश्चिम दिसा । देखिया गैबका अगम छाजा ॥
उलँघिया मेरु आकाशमें घर किया । सहज वरषा वणी एक धारा ।
इला अरु पिंगला सुषम गंगा चलै । पीवता वन्न नखसिक्ख सारा ॥
गगन अंबू गजै अनँत बाजा वजै । धिन्न अब धिन्न सँत भागतेरा ।
सद्गुरु महरतें दास रामा कहै । जन्म अरु मरण भव मिट्याफेरा ॥ २ ॥

(३)

राम ही आदि अरु अंत मध राम है । राम ही घरे अरु माहिं बारै ।
रोम ही रोममें राम ही रम रह्या । राम ही राम मिल मुक्ति द्वारै ॥

पद १

जाग जाग रे जोगिया, क्यों नहिं नगर जगावै ।
आठ प्रहर जागत रहो, सुन शहर वसावै ॥ टेक ।
मुख सेती सुमरण किया, कंठ में चल आया ।
गद गद लहरां सुषम की, सूता जीव जगाया ॥ १ ॥
हिरदै में हरि,आविया, चेतन तन सारा ।
बुद्धि कमल परकासिया, जग सेती न्यारा ॥ २ ॥
नाभि कमलमें संत जन, सहजाँ चल आया ।
नाद अनाहद संभल्या, सुख रास मँडाया ॥ ३ ॥

स्वर्ग मृत्यु पाताल में, एको धुन होई
तीन लोक चेतन भया, जाग्या सब कोई ॥ ४ ॥
उलट पयाल आकासमें, चढ उलंघे मेरा ।
इला पिंगला सुषमणा, तिरबेणी डेरा ॥ ५ ॥
त्रिकुटी सूं आगै गया, सुन माहिं समाया ।
सुख समाधि सहजाँ लगी, निरभै पद पाया ॥ ६ ॥
मन पवनां पहुँचे नहीं, वुधि जाण न पावै ।
रामदास धिन संतजन, ता घर लिव लावै ॥ ७ ॥

पद २

राम सुमर रे प्राणिया । भूले मत भाई ।
सुमरण विन छूटै नहीं । जम द्वारै जाई ॥ टेक
सब दुनियाँ भरमी फिरै । तीरथ अरु वरता ।
जैसा पाणी ओसका । कोइ काज न सरता ॥ १ ॥
तपसी त्यागी मुनीश्वरा । पढिया अरु पंडिता ।
नाम विना खाली रह्या । सिध उडता अरु गडता ॥ २ ॥
क्या आचार विचार है । क्या साधन सेवा ।
सतगुरु विन पावै नहीं । आतम निज देवा ॥ ३ ॥
जगत भेख एको मता । एकै दिस जावै ।
तत्त नाम जाणै नहीं । फिर गोता खावै ॥ ४ ॥
साधु संगति निशि दिन करै । एक राम धियावै ।
रामदास धिन संतजन । निरभै पद पावै ॥ ५ ॥

पद ४

मनरा तीरथ न्हायलै, क्या भटकणसूं काम ।
अठसठ तीरथ सब किया, एक कह्या मुख राम ॥ टेक ।
मन माहीं मथुरा बसै, दिलहि द्वारका जान ।
काया काशी न्हायलै, आठों पहर सिनान ॥ १ ॥
बारै सोलै सहेलड़ी, मिलकर न्हावण जाय ।
तिरवेणीके घाटमें, नित्य स्नान कराय ॥ २ ॥
पाँचों पाखर पहरके, चढ़े पचीसूं लार ।
नोबत वाजै गैबकी, मारलियो अहँकार ॥ ३ ॥
हद छाँडी वेहद गया, अगम रह्या लिव लाय ।
जीवँ सीव मेला भया, सुखमें रह्या समाय ॥ ४ ॥
दसवै देवल परसिया, जागी अंदर ज्योति ।
रामदास जहाँ रमरह्या, पाप पुण्य नहिं छोति ॥ ५ ॥

पद ५

चालो मन उणदेस में । जहाँ संतां का वास ।
जहाँ पहुंच्याँ निरभय हुवै । लगै न जमकी त्रास ॥ टेक ।
पूरब दिशिसूं चालिया । कंठ किया परकास ।
उर भीतर वासा लिया । मगन भया निजदास ॥ १ ॥
अधः कमल परकासिया । खुली वंक की वाट ।
वंकनाल हुइ चालिया । वस्या पछिमके घाट ॥ २ ॥
मेरुदंड उलंघिया । ऊर्ध्व कमल परकास ।
चँदसूर मेला भया । गगन किया जाय वास ॥ ३ ॥
पाँच पचीसों एक हुय । मिल्या त्रिकुटी माँय ।
अनहद वाजा घुर रह्या । हंस मिल्या जहँ जाय ॥ ४ ॥
हंस मिल्या परहंसमें । लागी शून्य समाधि ।
रामदास निर्भय भया । मिल्या पूर्व घर आदि ॥ ५ ॥

पद ६

चलो संताँ जहां जाइयै । गुरु गोविंदके पास ।
दर्शनसूं सब दुख मिटै । हिरदै भक्ति प्रकास ॥ टेक
श्रवणाँ सुणिया सतगुरू । मनमें उठ्या हुलास ।
सुणत समय पैंडे चल्या । अति दर्शन की प्यास ॥ १ ॥
दर्शनसूं दुविधा मिटै । नैणा बँध्या सनेह ।
रोम रोम आनँद भया । दूठाँ वूठा मेह ॥ २ ॥

19:05 Vo)) LTE1

राग विहागड़ो।

पद ११

गुरु मेरे ऐसी कदर बताई। तातें सुरत शब्द घर आई। टेक
रसना नाम नेम करि लीया। निशि दिन प्रीति लगाई।
हिरदै माहिं प्रेम परकास्या। आतम की गम पाई॥ १॥
नाभी माहिं नाद परकास्या। सबही बन गूँजाणा।
पछिम दिसा की बाटी खूली। मेरु दंड हुय जाणा॥ २॥
सहजाँ उलट आदि घर आया। तिरबेणीके तीरा।
रामदास सुनसागर माहीं। चुगत हंस जहँ हीरा॥ ३॥

पद १२

धिन जाके साधु समागम होई, जाकै विघ्न न व्यापै कोई। टेक
सब तीरथ सन्तनके चरणाँ, सबै देवता लारै।
राम निरंजन राय पधारै, साधू आवत द्वारै॥ १॥
साधू राम एक ही कहिये, जा विच अंतर नाहीं।
दर्शन कियां सबै अघ जावै, भक्ति उदै घट माहीं॥ २॥
साधुसंगति सत है जग माहीं, जे कोई शरणै आवै।
रामदास साधाँ के चरणा, साधू राम मिलावै॥ ३॥

इत्यंसकलम्।

अथ श्रीसुंदर साखी।

सुंदर सुमरो नाम कूँ, रात दिवस लिव लाय।
हरिरामदास सतगुरु मिल्या, एक अखंडी ध्याय॥ १॥
रामराम रसणा किया, हिरदै किया प्रकास।
नाभि कमल अस्थानमें, सुंदर श्वास उश्वास॥ २॥

समस्त वाणी श्लोकमेधा ४२८४।

रोम रोममें रम गयो, नाड़ नाड़ निज नाम।
सुंदर सुख मैं पाविया, जहँ अजपा की धाम॥ ३॥
पाँचों उलटा एक घर, पश्चिम दिशि की बाट।
सुंदर सहजाँ साँपड़े, तिरबेणीके घाट॥ ४॥
ॐ नहीं अजपा नहीं, नहि कहण सुनन की बात।
सुंदर मिल्या समाधिमें, कर सतगुरुको साथ॥ ५॥

घट विच अघट प्रगट रट रमता, सत्त शब्द सुखदायक।
आगै अबै भया सँत जेता, सिद्ध शिरोमणि वायक ॥ १ ॥
लायक लगन कहै गुरु शिख रत, मति गति मूढ़ विचारं।
काष्ठ मथत प्रगट हुय अग्नी, यों आतम तत निरकारं ॥ २ ॥
सद्गुरु उक्ति युक्ति रस नेता, श्वासोच्छ्वास चलाया।
सूतर दोय रसण सिल आतम, भाव सभाव सिलाया ॥ ३ ॥
तब तत्काल प्रगट दरशाणा, एक अखंडित धारा।
अध मध उत्तम भया प्रकाशा, कारज करण हमारा ॥ ४ ॥
विरह प्रजल उर नीर सु सोख्या, शब्द प्रगट दरशाना।
धम धमकार टेर सुन मुरली, फुरक फुरक फुरकाना ॥ ५ ॥
पीत वदन श्वासा जु सिरानी, नागरवेल शरीरा।
प्रेम नीर विन पेसे सूकत, नख शिख विचै अधीरा ॥ ६ ॥

मधुरे वैन श्वास शर घायल, अन्दर विरहनि तीरा।
आदि रु अन्त तलब तत सुमिरण, मन वच कर्म सधीरा ॥ ७ ॥
अवके मिलीं परम परमानँद, जीवनप्राण अधारा।
निर्मल करण महा सुखसागर, विरहनि का भरतारा ॥ ८ ॥
ऊणत एक पिया भव भंजन, रंजन राम सनेही।
फीका लग्या सर्व रस रसना, प्रेमा भई विदेही ॥ ९ ॥
लघु निद्रा आलस मिट अंगा, पंथी पंथ अवादै।
धाय वधाइ देऊँ मुझ साँईं, हरिवृत साधन साधै ॥ १० ॥
इकदिन प्रगट अजव अति अचरज, कला अनेक सवाई।
गोला दग्या शब्द गैतूला, श्वास उश्वासा माँई ॥ ११ ॥
ररर रोम थरर थरराटं, नाभिकमल सुलटाणा।
नगर उछाह नारि तरु सरजल, जन्तर तार वजाणा ॥ १२ ॥
चार हजार नाड़ि घरनाभी, ररर शब्द रसाणा।
नख शिख विचै एक ध्वनि रमता, मनवा पवन सिलाणा ॥ १३ ॥
लेजु सधीर भया ध्वनि डंका, गगन नाद घरराणा।
आतम भया साध घर परचा, चरचा राम ठिकाणा ॥ १४ ॥
कै दिन रह्या नाभि घर माहीं, इकदिन करण पयाणा।
मन अरु पवन मिले लिव प्रेमा सुरति शब्द दरसाणा ॥ १५ ॥
भिन भिन भेद लह्या घर निश्चय, आतम तत्त्व प्रकाशा।
छेदत इला सत्त पाताळूँ उलटा पलट तमाशा ॥ १६ ॥
परा समीप शब्द गत रेला, रसिया सप्त पताळूं।
पूरव उलटि पछिम दिशि आया, चढ उरधा वँकनाळूं ॥ १७ ॥
अमृतधार वंक झर झरणा, नाद विन्दु इक होई।
शब्द वेग पंखाँ विन उडणा, जाणेगा जन कोई ॥ १८ ॥
लंबा माग अचंभा भारी, श्वास वेग ततकाळू।
प्रकट इकीसूं मणिया छेद्या, सुरति शब्द उजवाळू ॥ १९ ॥
पंगा चढ्या मेरु की घाटी, सब वैराट उँचाया।
पाँचों प्राण सुई के नाके, सूधे रस्ते लाया ॥ २० ॥
सब ले उड्या गगनके माहीं, अद्भुत प्रगट अनन्दा।
इन्द्र आदि अष्ट सुर जातक, नमस्कार कह वन्दा ॥ २१ ॥
गूंगा वायक अविरल बोल्या, राग अनेक उचारू।
गगन घोर वाजा तहँ अनता, कहिये कौन विचारू ॥ २२ ॥
वारै मेघ लगी झड़ वरषा, नीर विना सर भरिया।
वरषी धरणि गगन हुय सरजल, परम पन्थ जन परिया ॥ २३ ॥

पद ६

रमै संत जहाँ वसंत फाग। मिले पीव जन वडे भाग। टेर.
प्रथम मुक्ख पीउ शोर गाय। रमत रमत हिरदा में जाय।
जहाँ मुरली की टेर सुणाय। बंधी प्रीति अब प्रेम अघाय ॥ १ ॥
नाभि कमल में नाद घोर। यक डंके पर लागत टोर।
रोम रोम में सुख अपार। पीव पधारे नाभि मंझार ॥ २ ॥
वंकनाल पिचकार कीन। पांच पचीसों संग लीन।
अधः ऊर्ध्वं विच मंड्यो ख्याल। पिवजु पधारे महल चाल ॥ ३ ॥
अनहद वाजा घुरै अपार। जहाँ अलख निरंजन अमर मुरार।
मिले संत ता माहिं जाय। अनत कोट रहे फाग रमाय ॥ ४ ॥
रमत नारद सनकादि शेष। ब्रह्मा विष्णु रु आदि महेश।
सुखदेव अरु ध्रुव प्रह्लाद। सुखसागर जहाँ सुख समाद ॥ ५ ॥
जनक विदेह मिले तहाँ आय। वालमीक पांडुता माय।
गोरख भरथरी गोपीचंद। सुखसागर मिलकर आनंद ॥ ६ ॥
नामदेव अरु रामानंद। नामा कवीर तिलोकचंद।
पींपा धना सजन रैदास। रंका वंका सैना रव्वास ॥ ७ ॥
नानग दादू हरीदास। केवल कूवा संतदास।
जनदरिया अरु महर रंग। किसनदास सुखराम संग ॥ ८ ॥
अनत कोटि रहे फाग रमाय। जन हरिराम मिले तहां आय।
रामदास जहां चरण निवास। गुरुगोविंद मिल पूरी आस ॥ ९ ॥

पद ७

देखो देखो संतो नर की भूल। सींचत शाखा तजत मूल। टेर.
राम निरंजन देह समान। ताहि छोड़ पूजै पखान।
जल पीवै पाषाण धोय। सो तो आदि अंत पाषाण होय ॥ १ ॥
आकाश शीस पाताल पाय। सो संपुट में कैसे समाय।
राम निरंज आवै न जाय। सो दियो तुमारो कैसे खाय ॥ २ ॥
वार वार मैं कहुं पुकार। सो शब्द न माने करत रार।
कहै कबीर कोइ लहै न खोज। भटक मरे जैसे वनके रोझ ॥ ३ ॥

पद ८

कहां जाइये घर लागो रंग। मेरो चित न चलै मन भयो पंग। टेर.
इक दिन मनमें भयो उमंग। घस चोवा चंदन चरच अंग।
पूजन लागे ठाँय ठाँय। गुरु ब्रह्म बतायो आप माँय ॥ १ ॥

सद्गुरु के मिलने से (साक्षात्कार हो जाने से) जीवात्मा में जो भेद्भाव का अंतर था वह सब मिटगया और अभेद (अद्वैत) भाव होकर सारशब्द जो ब्रह्मवाचक राम नाम है जिसकी श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, आप्तवाक्य (महापुरुषवाक्य) संस्कृत प्राकृत सर्व ग्रंथों में मुक्तकंठ से प्रशंसा की है उस रामनाम की ओलखान हो गई।

तन मन कर हेती [१]रसना सेती रामहि राम रटंदा है ॥ २ ॥

तब तन मन उसी में तल्लीन होगया और अनन्य प्रेमपूर्वक रसना (जिह्वा) से राम ही राम शब्द की रटना अहर्निश (दिनरात) होने लग गई ॥ २ ॥

---

१ रसना से राम नाम रटन—

राम नाम को कीजिये, आठों पहर उचार।
हरिया बंदीवान ज्यों, करिये कूक पुकार ॥ १ ॥ (श्रीहरि० वाक्यम्)
रसना सों रटिवो करै, आठों पहर अभंग।
रामदास उण संत को, राम न छांडै संग ॥ १ ॥ (श्रीराम० वाक्यम्)
कबीर राम राम कहि कूकिये, ना सोइये असरार।
रात दिवस के कूकने, कबहुक लगे पुकार ॥ १ ॥
राम नाम जपते रहो, जब लग घटमें प्रान।
कबहुक दीन दयालुके, भनक परेगी कान ॥ १ ॥
रामनामको नित भजो, रसना होट समेत।
हरिया जोग रु जुगति बिन, सहज न को सिवरेत ॥ १ ॥
राम नाम रसना रटै, सोई जग में साध।
हरिया सुमिरन सहज का, वांका मता अगाध ॥ २ ॥

स्मरण के स्थान—१ रसना २ कंठ ३ हृदय ४ नाभी।
स्मरण के भेद—१ अधम २ मध्यम ३ उत्तम ४ अत्युत्तम।

प्रथम राम रसना सुमरि, द्वितिये कंठ लगाय।
तृतिये हिरदै ध्यान धरि, चौथे नाभि मिलाय ॥ १ ॥
प्रथम सो प्रथम अध नाम रसना लिया, दूसरे नाम मध कंठ धारा।
तीसरे उत्तम सो नाम हिरदै कह्या चतुरथै नाभि अतिउत्तमयारा ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)
तुरसी अध सुमरिण यौं एह, रसना राम राम जपिलेह।
यह आलंबन तोलों करै, मध सुमिरण की सोझी परै ॥ १ ॥

19:18

वरस्या है प्रेमा दरस्या नेमा कंठ कमल फूलंदा है।
भँवरा[2] गुंजारू खुल्ला बारू मुरली टेर सुणंदा है॥ ३॥

और प्रेम की वर्षा होने लगी, जिससे स्वयं ही (आपोआप) योगशास्त्रोक्त षट्चक्र भेदन तथा क्रमानुसार राम नाम रटने (जपने) के नियम (विधि) जान पड़ने लग गये और राम नाम की रटना अहर्निश अखंड होती रहने से प्रथम ही प्रथम कंठस्थ कमल का विकास हो गया (कंठ-कमल फूलगया), जब कंठ में स्मरण होने से कंठ कमल फूला तब जैसे भ्रमर (भँवरा) शब्द करता है उसके समान कंठ में (राम नाम रटन) गुंजार शब्द होने लगा और कंठ कमल का द्वार खुलगया जिससे उस नाद की टेर बांसुरी की टेर के सदृश सुनाई पड़ने लगी॥ ३॥

श्वास रु उच्छासा हिरदै[3]वासा सुमिरेण ध्यान धरंदा है।
नाभी[5] घर आया नाच नचाया सहँजाँ[4] मुख सुमरंदा है॥ ४॥

तुरसी मध सुमिरण जु यह, कंठ कमल अस्थान।
राम नाम उच्चार हुय, घायल करै सो प्रान॥ १॥
उत्तम सुमिरण हिरदा में, आरंभै धरि ध्यान।
श्वासोच्छ्वास रव्यो करे, तुरसी नाम निर्बान॥ २॥
तुरसी अति उत्तम भजन, कापें वरण्या जाय।
लख्यो ज कापे परै, भाग हुवै तो पाय॥ १॥ (जन तुरसी)
आठ पहर चौसठ घड़ी, रहै राम से रत्त।
जब जाय फाटै संतदास, चौरासी का खत्त॥ १॥ (संतदासजी)

१ विशुद्धिचक्र।

२ गदगद सुमरण कंठ में, अमृत की सी धार।
एक अखंडी होत है, भवर पंख भणकार॥ १॥ (श्रीहरि० वाक्यम्)

३ रसना कंठ और हृदय इन तीन स्थानों में स्मरण क्रम से पहुँचने में श्रीहरिरामदासजी महाराज को ७ वर्ष और २ मास की अवधि लगी थी।
राम राम रसना किया, मास दोय विश्राम।
हरिया हिरदै कंठ बिच, सागर वर्ष मुकाम॥ १॥ (श्रीहरि० वाक्यम्)

४ गुण तारे माया तिमिर, शीत भरम मन चन्द।
रज्जब सुमिरण सूरतें, सहज पड़े सब मन्द॥ १॥

५ हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमंडले अर्थात् हृदयमें प्राणवायु, गुदामें अपानवायु और नाभिमें समानवायु रहता है एवम् उदानः कंठदेशे स्यात् व्यानः

तदनंतर हृदयस्थान (अनाहत चक्र) में श्वास और उच्छ्वास की गति का ठहरना हुवा और मन ही मनमें स्मरण का ध्यान धरने लगा, हृदय में स्मरण होने के पश्चात् नाभिस्थान (मणिपुरचक्र) में स्मरण करता हुवा प्राणवायु समानवायु में आकर मिला (प्राणवायु समानवायु के घर में अर्थात् नाभिस्थान में जब आया) तब अनेक प्रकार के नाच नचाने लगा और सहज में ही आपसे आप मुखसे रामनाम का स्मरण होने लग गया ॥४॥

रग रग आरंभा भया अचंभा छुच्छम वेद भणंदा है।

और व्यानवायु जो सर्व शरीर में व्यापक हो रहा है उससे प्राण और समानवायु का योग होनेसे रग रग में (नस नसमें) आश्चर्यजनक एक क्रिया का आरंभ हुवा जिसका भेद वर्णन करना बडा सूक्ष्म है।

ओऊँ अरु सोऊँ देख्या दोऊँ पारब्रह्म परसंदा है ॥ ५ ॥

ऐसी स्थिति होने के पश्चात् ओऊँ=हंसः और सोऊं=सोहं इन दोनों

सर्वशरीरगः इति अर्थात् कंठ में उदानवायु और सर्व शरीरमें व्यानवायु निवास करता है।

६ नाभि स्थान में जब स्मरण होने लगता है तब सहज स्मरण होता है।

रंकार सुमरण सहज, नाभि कमल अस्थान।
हरिया पच्छिमदेशकों, पहुँचन का परमान ॥ १ ॥
ज्यूं जल सेझै सिंधुका, बाका थाह न कोय।
हरिया सुमिरन सहजका, निशिदिन घटमें होय ॥ २ ॥

सोरठा।

हरिया मुख ममकार, जब सहजाँ सुमिरण नहीं।
मरै धरै आकार, मेला जीव रु शीव बिन ॥ १ ॥

अर्थात् सहज सुमिरण नाभिस्थान में जब रकारका स्मरण होने लग जाय तो पश्चिम देश को पहुंचने का प्रमाण समझना। सहज सुमरण में मकार का स्मरण बंद होकर केवल ररंकार शब्द की रात दिन रटना होने लग जाती है तभी जीव और शिव एक हो जातें हैं।

१ छुछम वेदः—यह महात्माओंका सांकेतिक शब्द है जिसमें सूक्ष्म भेद (वार्ताओं) का वर्णन है अथवा स्वसंवेद्य गुण को भी कहते हैं अथवा भगवानके श्वासोच्छ्वास रूप वेदको भी कहते हैं अथवा छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् इसको भी कहते हैं।

के "हंसः सोहं सोहं हंसः" इस अजपा नाम गायत्री के जप का ज्ञान प्राप्त होने से परब्रह्म परमात्मा के दर्शनकी प्राप्ति होतीहै वह हुई ॥ ५ ॥

---

१ अजपा के जप से परब्रह्म परसता है—

ओऊं सोऊं जाप अजप्पा, घटमें कीया संप असंपा। (श्रीहरि० वाक्यम्)

ओऊं सोऊं अर्थात् हंसः सोहं अजपा जप है इसने घट में असंप (जीव ब्रह्मका भेद) का संप (अभेद) करदिया ठीक वाच्यार्थ सफल कर दिया।

उलटा अजपा जाप जपाया। हद को जीत वेहदमें आया ॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

नासापथसमाकृष्टः पवनः फुप्फुसं गतः।
शोधयेच्छोणितं दुष्टं तेन जीवंति जंतवः ॥ १ ॥
सोहंशब्देन जीवानां श्वासोच्छ्वासौ निरंतरम्।
स्यातां वा हंसशब्देनोच्छ्वासश्वासौ विपर्य्ययात् ॥ २ ॥
इत्ययं द्व्यक्षरो मंत्रो जीवजप्योऽजपा मता।
जपारंभो हि जननं मरणं तत्समापनम् ॥ ३ ॥

इसी अजपा मंत्र को अजपा गायत्री कहते हैं।

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम् ॥ ४ ॥
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृंतनी ॥ ५ ॥ (दक्षिणामूर्तिसंहिता)
अजपा नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।
षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥ १ ॥
एतत्संख्यान्वितं मंत्रं हंसः सोहं क्रमेण वै। (कुलार्णव)
जातः स इति वैशब्दमुच्चार्यारभते जपम्।
महाप्रयाणसमये हमुच्चार्य समापयेत् ॥ १ ॥ (दक्षिणामूर्तिसंहिता)

यह अजपा जप तो स्वाभाविक रीत्या अहर्निश होता ही रहता है, परंतु यही अजपा जप राममंत्र के सहित जपने से फलदायक होता है।

ओऊं सोऊं ऊंबरा, दोऊं खाली ओड़।
नाम विना ऊगै नहीं, पच पच मरो करोड़ ॥ (रजबजी)
ओऊं सोऊं देह लग, निशि दिन आवे जाय।
एक अखंडी शब्द में, हरिया सुरति समाय ॥ १ ॥

अर्थात् हंसः सोहं यह श्वासोच्छ्वास शब्द, शरीर है तबतक रात दिन आता जाता रहता है, इसी के द्वारा एक अखंडी शब्द जो ररंकार आत्मा स वाचक शब्द है उसमें सुरति समाय दो यानी समावेश करदो—

मम्मा हुय पासै कमल विकासै अर्ध नाम आखंदा है।
ऊ नामज केवल बडे महाबल रोम रोम उचरंदा है ॥ ६ ॥

जिससे राम राम शब्द जो मैं जपताथा उसमें से मकार बोलना बंद होगया अर्थात् माया से रहित अद्वैतरूप अर्धनाम जो केवल रकार है उसी रकार का (राँ राँ राँ राँ राँ राँ) स्मरण होने लग गया नाभिकमल का विकास होगया जिससे शुद्ध निर्गुण (मायारहित) पार परब्रह्म का दर्शन हुवा तब महाबलशाली अर्धनाम रकार जो अद्वैतरूप है केवल उसी का उच्चारण रोम रोम में होरहा है ऐसा मालूम होने लगा ॥ ६ ॥

रहता से रत्ता है निज तत्ता न्यारा हुय निरखंदा है।
ऐसा अविनासी आय न जासी भाग वडे भेटंदा है ॥ ७ ॥

यह रकार का स्मरण इस शरीर में रहनेवाले आत्मामें रत (लवलीन) होने से निज तत्व रूप होजाने के कारण न्यारा होकर देखने लग गया अर्थात् द्रष्टा होकर अपने आपको देखने लगा, जिस परब्रह्मको अलग होकर देखने लगा वह परब्रह्म ऐसा अविनाशी है जो न तो कहीं से आता है न कहीं जाता है अपने में ही सदा सर्वदा विराजमान रहता है उस परब्रह्म की भेट बड़े महाभाग्य होते हैं तब ही होती है ॥ ७ ॥

ओऊं सोऊं शब्द की, सहजाँ सुणी अवाज।
जन हरिया इन ऊपरै, ररंकार का राज ॥ १ ॥
ओऊं सोऊं शब्द की, तीन लोक लग सोय।
जन हरिया ररंकारका, आर पार नहिं कोय ॥ २ ॥ (श्रीहरि० वाक्यम्)

अजपाजपनिष्कृष्ट लक्षण—

मन पवना अरु सुरति से, आतम पकड़े आप।
रज्जब लावे सुरति सो, एहै अजपाजाप ॥ १ ॥ (रज्जबजी)
अजपाजाप लगावे हेत, नीरक्षीर न्यारा करिदेत।
विष छांडे अमृत कूं पीवे, समझ पिछाणै सुमरिण साच।
अन्तर एक राम सुख राखे, और सकल सुख मानै काच ॥
(श्रीजैमलदासजी महाराज)

१ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥
बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ २ ॥ (गीता)

साथ मिलकर सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग में चढा तब अरसघर (शून्यस्थान) में जाकर ठहरा।

फिरिया मन पूरब चले अपूरब ठांम ठाम ठमकंदा है ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् पूर्व से मन फिरकर कंठ हृदय नाभि में क्रमसे ऊपर से नीचे स्थान २ पर श्वास ठहरता हुवा (स्थिर होता हुवा) पश्चिम के तरफ याने सुषुम्णा मार्ग के द्वार की ओर चलने लगा ॥ ९ ॥

जालंधर बंधा उरधे कंधा मन अरु पवन मिलंदा है।
उलट्या है आसण पलट्या वासण सुरत शब्द परसंदा है ॥ १० ॥

कंधे के ऊपर का जालंधर बंध करने से प्राणवायु की ऊर्ध्वगति रुक जाती है और पश्चिमतानसे ब्रह्मनाड़ी में जाने लगता है। तथा मूलबंध करने से अपानवायु उलटकर ऊर्ध्व गामी होता है एवं जालंधरबंध और मूलबंध करने पर प्राण अपान वायु.के आसन उलट पुलट होने के कारण दोनों मिलजाने से सुरत शब्द का स्पर्श हुवा।

इस प्रकार सुषुम्ना के स्वरूप का वर्णन योगशास्त्र में किया हुआ है। इस परसे सुषुम्ना का मार्ग कितना अधिक कठिन है यह सहज ही ध्यान में नहीं आसकता है। इसी अति कठिन मार्ग की घाटी को अर्थात् गांठें बीच बीचमें जो आडमारनेवाली हैं उन को लांघ के छेदन करके प्राण की गति जब सुषुम्ना में होती है तब शनैः शनैः ठहरता हुवा ब्रह्मद्वार पर त्रिकुटी में पहुंचता है।

प्रथम ध्यान पूरब दिशा, गगन गर्जिया जाय।
ठाम ठाम पाताल कूं, पछे पिछम कूं थाय ॥ १ ॥

१ बंध तीन प्रकार के होते हैं जालंधर, मूल, और उड्डियान।

१ जालंधर बंधः-

कंठको सिकोड़ कर मजबूती से चिबुक अर्थात् ठोडीको हृदय में जमा के सीधा बैठने को जालंधर बंध कहते हैं।

कंठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम्।
बंधो जालंधराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः ॥ १ ॥
है जालंधर बंध में, मन पवना की गांठ।
हरिया मिल्या उतान में, सुरत शब्द की सांठ ॥ १ ॥
सुरत चली आकाश कूं, दे जालंधर बंध।
जन हरिया जहां जाणिये, हद बेहद की संध ॥ २ ॥

जिनकी कृपा हम निधि पाई, राम नाम की कीरति गाई।
ऐसो कुण जो कीरति गावै, हरि हरिजन को पार न पावै।।41।।

सरलार्थ : स्वामी श्री रामचरण महाप्रभु फरमाते है कि उन्हीं श्री कृपारामजी महाराज की कृपा से मैनें राम-नाम का अमूल्य खजाना प्राप्त किया। ऐसा कौन प्राणी है जो भगवान और भक्तों के गुणों का वर्णन अपनी वाणी द्वारा कर सके।

सायर कहो ऐसो कुण थागै, जितौ पियौ अपनी तृष भागै।
राम-संतां का अंत न आवै, आप आपकी बुद्धि सम गावै।।42।।

सरलार्थ : मान सरोवर में अथाह पानी भरा है, किन्तु जिसकी जितनी प्यास होगी वह उतना ही जल पी सकेगा। अतः भगवान और भक्त के गुण भी अनन्त है, किन्तु भगवद् भक्त अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान एवं भक्त तथा रामनाम के गुणगान गाते है।

राम प्रताप सुनौ अब ऐसो, भजतां भयौ कहूं सो तेसो।
राम रटत गुप्ता रस चाखै, सन्त शब्दां में प्रगट भाखै।।43।।

सरलार्थ : राम नाम का प्रताप ऐसा है जो जिह्वा द्वारा स्मरण करते ही अपना प्रभाव दिखा देता है, और राम नाम को रटते रटते गुप्त रस की प्राप्ति हो जाती है। इन्हीं भजनानन्द सन्तों के प्रभाव का वर्णन शब्दों द्वारा प्रगट करता हूं।

प्रथम राम रसना सूं गावै, मन कूं पकड़ एक घर लावै।
राखे सुरति शब्दहिं मांहि, शब्द छांडि कहूं अन्त न जाहिं।।44।।
तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखण्ड नहिं खण्डै लगारा।
जल पीवन की श्रद्धा नांहि, मति यो अमृत दूर होई जाहि।।45।।

सरलार्थ : स्वामी श्री रामचरण महाप्रभु नाम जप की विधि एवं उससे प्रगट होने वाले ब्रह्मानन्द का प्रभाव अनुभव जन्य परावाणी द्वारा दिग्दर्शन कराते है।

पद्मासन में बैठकर मन को एकाग्र करके सर्वप्रथम रसना द्वारा नाम जप करें। सुरति को राम नाम शब्द में ही लगाये रखें। शब्द को छोड़कर क्षणिक मात्र के लिये भी विषयाकार मनोवृत्ति न बनावें।

इसी प्रकार रसना (जिह्वा) द्वारा स्मरण करते करते जिह्वा के अग्र भाग से नाड़ी द्वारा धारोष्ण दुग्ध की भांति रस का फुंवारा छूटता है और वह अखण्ड तेज धारा की तरह चलता रहता है। जो थोड़ा सा भी खण्डित नहीं होता है। उस रसामृत पान का प्रभाव यह होता है कि जल पीने की इच्छा नहीं होती। क्योंकि डर रहता है कि यह अमृत धारा कहीं खण्डित न हो जाय।

CamScanner

CamScanner

रस पीवत क्षुधा सब भागी, कंठा शब्द टगटगी लागी।
नाड़ी नाड़ी में चले गिलगिलि, सुख धारा अति बहे सिलसिली।।46।।

सरलार्थ : मन की एकाग्रता से प्राणों का निरोध हो गया, इससे उस अमृत धारा द्वारा प्राणों के धर्म, भूख–प्यास की निवृत्ति हो गई। कंठ स्थान में शब्द द्वारा टगटगी लग जाती है। तत्पश्चात् प्रत्येक नाड़ी में गिलगिलि चलने लगती है। अर्थात् सरिता के प्रवाह की तरह सुख की धारा बहने लग जाती है।

मुख सूं कछु न उचरै बेना, लग्या कपाट खुलै नहिं नैना।
श्रवणा चर्चा सुणै न कोई, कंठ ध्यान यह लक्षण होई।।47।।

सरलार्थ : लौकिक विषय वार्ता यदि कोई चलाता है तो वीतरागी को वह वार्ता विष के समान प्रतीत होती है, तथा उसके प्रत्युत्तर के लिये मुख से एक भी शब्द का उच्चारण नहीं हो पाता और ब्रह्मानन्द में इतना मग्न हो जाता है कि नेत्रों की पलकें भी बन्द हो जाती है, और नेत्र लौकिक रूप को देखने के लिए तनिक भी तैयार नहीं होते। अर्थात् मन और मस्तिष्क ज्ञान मग्न हो जाने से नेत्र एवं श्रवण द्वार भी बन्द हो जाते है।

शब्द के रसना से सरकने पर कंठ में ध्यान होने लगता है। ये उसके मूल लक्षण है।

कंठ के ध्यान कंप कंपी जागै, रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियौ गद्गदे श्वांस न आवै, नैणां नीर प्रवाह चलावै।।48।।

सरलार्थ : जब कंठ स्थान में ध्यान होने लग जाता है तब शरीर में कंपकपी जाग्रत हो जाती है, रोम रोम में शीतलता का उद्भव हो जाता है, अर्थात् रोम रोम में से राम राम राम की अव्यक्त ध्वनि होने लग जाती है। हृदय गद्गद् होने के साथ ही साथ श्वांसो का अवरोधन होने लग जाता है और प्रभु प्रेम प्रवाह से नेत्रों से प्रेम के आंसू बहने लगते है।

एक दिवस इक भया तमासा, कंठ हृदा बिच उठयौ हुलासा।
ज्यों पालाकी डोरणि छूटी, हिरदे सीर सूखम रस ऊठी।।49।।

सरलार्थ : रसना से शब्द कण्ठ में प्रवेश करने के पश्चात् हृदय में प्रवेश करता है उस अवस्था के लक्षण इस प्रकार है कि एक दिन ऐसा आश्चर्य जनक तमाशा होता है कि कंठ और हृदय के मध्य हर्षोद्रैक होने लगता है।

जैसे हम वन क्षेत्र में जल को रोकने के लिए एक पाल बांध देते है, किन्तु जल प्रवाह की तेज गति होने के कारण जल पाल को तोड़कर तेजी से बहने लग जाता है, इसी भांति कंठ और हृदय के मध्य में सूक्ष्म अमृत रस की धारा प्रवाहित होने लग जाती है।

शब्द ब्रह्म हृदय किया वासा, ज्यों रैण अंधेरी चन्द्र प्रकाशा।
भर्म कर्म सांशो गयो भागी, हिरदै ध्वनि अखण्ड लिव लागी।।50।।

सरलार्थ : शब्द ब्रह्म का हृदय रूपी आकाश में ऐसा प्रकाश होता है कि मानों अंधेरी रात्रि में चन्द्रमा का प्रकाश होता है। इस प्रकाश से शुक्ति रजतवत्, रज्जु सपर्वत् सांसारिक भ्रमनाए जितनी भी है तथा उनकी लौकिक कर्मो की निवृत्ति तुरन्त हो जाती है।

हृदय में अजपा जाप की ध्वनि तेज धारावत् अविछिन्न रूप से लगने लगती है।

कहा कहूं या सुख की महिमा, और सुख सब दीशे पलमा।
हिरदै ध्यान ध्वनि जब होई, दूजो साधन रहे न कोई।।51।।

सरलार्थ : स्वामी श्री रामचरण महाप्रभु फरमाते है कि मैं इस ब्रह्मानन्द के सुख की महिमा का वाणी द्वारा क्या वर्णन कर सकता हूं? क्योंकि उस ब्रह्मानन्द से अन्य जागतिक वैषयिक–पञ्चाशब्दादि विषयों के क्षणिक सुख अल्प प्रतीत होते है तथा हृदय में ध्यान करते अजप्पा जाप की ध्वनि सूक्ष्मरूप से जब होने लगती है तो अन्य लौकिक साधन स्वतः निवृत्त हो जाते है।

हिरदा सूं लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भाई।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागै, रोम रोम में होई रही रागै।।52।।

सरलार्थ : जब हृदय से ध्यान बढ़कर चौथी–चौकी–नाभि–स्थान में पहुंचता है, तब नाभि कमल में कुण्डलिनी की जागृति हो जाती है। शब्द के गुंजन द्वारा सम्पूर्ण सूक्ष्म स्थूल नाड़ी जाल झंकृत होने लगते है। रोम रोम में नाना प्रकार विधि की राग–रागनियों का उद्भव हो जाता है।

नौसे नारी मंगल गावै, तहां मन भंवरा अति सुख पावै।
शीतल भई सबै ही काया, शब्द ब्रह्म रस अमृत पाया।।53।।

सरलार्थ : नौ सो नाड़ियां जब मंगल गान गाने लगती है तब मन रूपी भंवरा ब्रह्मानन्द रूपी सुख सागर में निमज्जित हो जाता है। सुरति शब्द के संयोगजन्य ब्रह्म रस रूपी अमृत प्राप्त कर लेता है तब सम्पूर्ण काया शीतल हो जाती है।

अब तो शब्द गिगन कूं चढ़िया, पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया।
घाटी बीस मेरु की छेकी, इक बीसै गढ़ गया विशेखी।।54।।

सरलार्थ : इसके पश्चात् शब्द पश्चिम घाटी होकर ब्रह्माण्ड में चढ़ जाता है, अर्थात् बीसों कशेरूकाओं के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी रहती है और उसके आजु–बाजू में इंगला–पिंगला नाम की नाड़ियां रहती है। मेरूदण्ड की बीसों मणिकाओं को छेककर त्रिकुटी संगम में शब्द पहुंच जाता है।

पहली बैठा त्रिकुटी छाजे, जाके ऊपर अनहद बाजै।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया, निर्मल होय आगे कूं ध्याया।।55।।

सरलार्थ : भौंहों के बीच में त्रिकुटी स्थान है, उसके ऊपर सहस्त्रार दल चक्र में अनहद बाजे बजते है, उसी त्रिवेणी में शब्द सुरति के साथ निमज्जित होकर अत्यन्त निर्मल बन आगे को प्रस्थान करता है।

दोहा

इंगला पिंगला सुखमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झांझै जल झूलि के, निर्मल होय निराट।।3।।
अब त्रिवेणी न्हाइके, किया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलध सुख, यह कोई चौथा देश।।4।।

सरलार्थ : इंगला (इड़ा) पिंगला, सुषुम्ना रूपी त्रिवेणी संगम घाट पर ब्रह्माल्हाद में झूलकर निर्मल बना हुआ शब्द सुरति के साथ गगन में प्रवेश करता है। स्वर्ग मृत्यु एवं पाताल तीनों लोकों से भिन्न यह कोई अवर्णनीय सुख है। और यह चतुर्थ देश कहलाता है।

चौपाई

अब चौथे घर पहुंता जाई, जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई।
घरर–घरर अनहद घररावे, परम ज्योति दामणि झलकावे।।56।।

सरलार्थ : अब चौथे घर में प्रवेश हुए महात्मा का–तुरीयपद का निर्विकल्प समाधि का, अनिर्वचनीय कथन करता हूं –

जिस प्रकार मेघ (बादल) ध्वनि करते है ठीक इसी प्रकार घर्र घर्र का अनहद अव्यक्त नाद होता है और उसमें परम आनन्द की ज्योति चमकती है।

सुषमण नीर लूंब झड़िलाई, भीजत सुरति गर्क होई जाई।
अर्ध ऊर्ध जहां कमल प्रकासा, सुरति भंवर होई करत बिलासा।।57।।

सरलार्थ : उस तुरीय पद में सुषुम्ना नाड़ी से निकले अमृतमयी नीर के बूंदों की झड़ी लग जाती है–उसमें शब्द के साथ सुरति भींजकर ब्रह्मानन्द में मग्न हो जाती है। अर्ध्व–ऊर्ध्व भाग में सहस्त्रार दल कमल विकसित हो जाता है और शब्द के साथ सुरति वहां पर भ्रमर बन विलास करने लगती है।

by CamScanner

19:34

by CamScanner

घुरै अखण्ड अनाहद बाजा, प्राण, पुरुष जहां तख्त विराजा।
झिलमिल, झिलमिल नूर प्रकासै, अनन्त कोटि रवि प्रगट्या भासै।।58।।
या तो बात अतौल है भाई, मुख सूं कह्या तोल व्है जाई।
पवन कहो कैसे गह हाथा, कैसे भरै गगन की बाथा।।59।।
रूप वर्ण कैसो तड़का को, ऐसो कहा बखानो जाको।
हाक बाक रहे कहत न आवै, पहुंच्या होई सोही भल पावै।।60।।

सरलार्थ : बांसुरी, वीणा, शंख, पटह, मेघ आदि की तरह अनहद दिव्य वाद्ययंत्रों की अव्यक्त ध्वनि होती है, वहां पर प्राण पुरुष अलौकिक दिव्य सिंहासन पर आरूढ़ रहता है, उस प्राण पुरुष का झिलमिल, झिलमिल नूर प्रकाश होता है। अनन्त कोटि रवि के प्रकाश को भी लजाने वाला है।

तुरीय पदारूढ़ महात्मा निर्देश करते है कि यह वार्ता तो अलौकिक, पारमार्थिक सत्ता वाली, अतुलनीय है, मुख से उच्चारण करने पर तो उसका मूल्यांकन हो जायेगा। जैसे वायु को मुट्ठी में बन्द नहीं किया जा सकता तथा आकाश को वस्त्र में नहीं बांधा जा सकता। यह तुरीय पद की समाधि की वार्ता भी वैसी ही है।

प्रात:कालीन उषाकाल अरूणोदय का प्रकाश दिव्य होता है वैसा ही उस परम धाम का प्रकाश अत्यन्त तेजस्वी है। अर्थात् सागर में डुबकी लगाने पर शरीर के चारों ओर जल ही जल हो जाता है, जैसे सूर्य की किरणों में प्रकाश ही प्रकाश है। ऐसा ही यह अत्यन्त अचरज भरा, अकथनीय परमतुरीय पद है। जो, महात्मा, ईश्वर की कृपा, गुरुकृपा, शास्त्रकृपा एवं अन्त:करण की कृपाओं से तुरीय पद को पहुंच गये है वहीं इसकी परिभाषा को समझ सकते है।

दोहा

अनहद गरजै नभ झरै, दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायरां, हंसा करत निवास।।5।।

सरलार्थ : ब्रह्माकाश में अनहद नाद की दिव्य गर्जना होती है, अमृतरस के झरने झरते है, असीम विद्युत प्रकाश होता है। त्रिविध शरीरों से परे, पञ्चकोषातीत तीनों अवस्था रहित अविद्या काम्य कर्मो से विमुक्त हुआ जीव ही शिव रूप से निर्मल हंस बनकर ब्रह्म समुद्र के तट पर निवास करता है।

by CamScanner

जूवा खेल न खेलो भाई। जन्म जुवा ज्यूँ जात बिलाई॥
दूत कर्म से दूरे रहिये। कुगती कपटी संग न बहिये॥
अनछान्यो जल पीजे नाहीं। सूक्षम जीव नीर के माँही॥
गाढा पट्ट दुपट्ट करीजे। निर्मल नीर छानकर पीजै॥
चार वर्ण का उत्तम धर्मा। राम नाम निश्चे निहकर्मा॥
लालच लोभ वेश तज देवै। अनन्त भाँति संतन कूँ सेवै॥
चार वरण में भक्ति कराओ। सो सतगुरु के शरणै आओ॥
सतगुरु बिना भक्ति नहीं सूझै। भरम कर्म में जीव अलूझै॥
यह सब कुपच किरीकर टाले। पलपल अमृत जड़ी सँभाले॥
सतगुरु वैद्य कहे ज्यूँ कीजे। अग्या मेटि पाँव नहीं दीजे॥

पच सच राखे परसराम, चाखे प्रेम प्रकाश।
यूँ अठ पहरी साधतों, सकल कर्मका नाश॥

भरम करम कछु रहन न पावे। नाम जड़ी का निश्चा आवे॥
राम नाम औषध तत सारा। पीवत पीवत मिटे विकारा॥
कंठ कमल तें हृदै प्रवेशा। तीन ताप मिट काम कलेशा॥
उर आनँद हुय गुण दरसावै। नाभि कमल मन पवन मिलावै॥
नाभी रग रग रोम रकारा। नख सिख बिच औषध विस्तारा॥
बंक पछिम हुय मेरु लखावे। दसवें द्वार परम सुख पावे॥
तिरबेनी तट अखँड आनंदा। सून्य घर सहज मिटै दुख द्वंदा॥
सून्य समाधि आदि सुख पावै। सद औषध गुरु भेद बतावै॥

सब घट में सुख ऊपजे, दुःख न दरसे कोय।
परसराम आरोग्यता, जीव ब्रह्म सम होय॥
महा रोग जामण मरण, फिर नहिं भुगते आय।
अमर जड़ी का परसराम, निरणा दिया बताय॥

उपदेश

(छप्पय)

सूरा तन को काम, राम भज लाहा लीजे।

रामदास सुमरण तणा, विवरा देउँ बताय।
घट माँहीं अजपा हुवै, सुणो सकल चित लाय॥ १८॥
रामदास सुमरण कियाँ, प्रथम जगी इक नार।
सहस्र एक चौबनमही, शब्द करत गुँजार॥ १९॥
कंठ में प्रेम प्रकासिया, हृदै होत धमकार।
नाड़ि नाड़ि चेतन भई, मन आयो इतबार॥ २०॥

नाभि कमल में संचऱ्या, सहस्र चार परकास।
नाड़ि नाड़ि न्यारी घुरै, सुणत रामिया दास॥ २१॥
बहत्तर नाड़ी वंक की, मिली वंक में आय।
रामदास सब घेरकै, उलटा अभर भराय॥ २२॥
नाड़ि सवासै एक ही, सहस्र पांच परवाण।
रामदास घट भीतरै, ए वडि नाड़ि बखाण॥ २३॥
मही नाड़ि दूजी घणी, तीन लोक विस्तार।
रामदास तन सोझकर, सब का करो विचार॥ २४॥
नाड़ी बहत्तर हजार है, सब ही तनके माहिं।
सबहि मिलाणी तीनसूं, त्रिवेणी में जाहिं॥ २५॥
इड़ा पिंगला सुषमणा, त्रिवेणी के तट्ट।
रामदास ता ऊपरै, मंड्या सहज ही मट्ट॥ २६॥
वाँसे चल आघा गया, परम सून्य के माँय।
गगन कूप में रामदास, अमृत भरभर पाँय॥ २७॥
नाड़ि नाड़ि अमृत झरै, पीवत सबै सरीर।
रोम रोम विच रामदास, चलत सुखम की सीर॥ २८॥
साढ़ा तीन करोड़ में, एक होत ररकार।
सहजे सुमरण रामदास, ताका अंत न पार॥ २९॥
उर अंतर नख सिख विचै, एक अजप्पा होय।
राम दास या संत गति, साधू जाणै कोय॥ ३०॥
जाप कियाँ मुख द्वार तें, रसना चाली सीर।
अजपा सुमरण घट विषै, को जाणै गुरु पीर॥ ३१॥
गगनमंडलमें रामदास, अनहद घुरिया नाद।
रोम रोम साँई मिल्या, सुमरण पायो स्वाद॥ ३२॥

इति।

अथ विरह को अंग।

नैण हमारा रामदास पिव विन रह्या विसूर।
अंतर दारुण विरह की तन इंद्रिय मनझूर॥ १॥
अंतर दारुण अति घणी, पिंजर करै पुकार।
नैण रोय राता किया, तो कारण भरतार॥ २॥

राम रा

ऐसो कुँण जो कीरति गावे । हरि हरि जन को पार न पावे ॥ ४१ ॥
सायर कहो एसो कुँण थागे । जितो पियो अपनी तृष भागे ॥
राम संतां का अंत न आवै । आप आप की बुधि सम गावै ॥ ४२ ॥
राम प्रताप सुनो अब एसो । भजताँ भयो कहूं सो तेसो ॥
राम रटत गुप्ता रस चाखै । संत शब्दां में प्रगट भाखै ॥ ४३ ॥
प्रथम राम रसना सूं गावै । मनकूं पकडि एक घर लावै ॥
राखे सुरति शब्द ही माहीं । शब्द छाँडि कहुँ अंत न जांही ॥ ४४ ॥
तब रसना शिर छूटै धारा । चलै अखंड नहिं खंडै लगारा ॥
जल जीवन की श्रद्धा नांही । मति यो अमृत दूरि होई जांहीं ॥ ४५ ॥
रस पीवत क्षुधा सब भागी । कठाँ शब्द टगटगी लागी ॥
नाडिनाडि में चलै गिलगिली । सुखधारा अति बहै सिलसिली ॥ ४६ ॥
मुखसूं कछू न उचरे बैना । लग्या कपाट खुलै नहीं नैना ॥
श्रवणाँ चर्चा सुणैं न कोई । कंठ ध्यान यह लक्षण होई ॥ ४७ ॥

राम रा

कंठ के ध्यान कँमकँमी जागै । रोम रोम सीतंग सो लागै ॥
हियो गद्‌गदे श्वास न आवै । नैंणा नीर प्रवाह चलावै ॥ ४८ ॥
एक दिवस इक भया तमासा । कंठ हृदा बिच उठयो हुलासा ॥
ज्यूं पाला की डोरणि छूटी । हिरदे सीर सुखम रस उठी ॥ ४९ ॥
शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा । ज्यूं रैंण अंधेरी चंद्र प्रकाशा ॥
भर्म कर्म सांशो गयो भागी । हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी ॥ ५० ॥
कहा कहूं या सुख की महिमा । और सुख सब दीशे पलमा ॥
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होइ । दूजो साधन रहे न कोई ॥ ५१ ॥
हिरदासूं लै धरणी गई । नाभिकमल में चेतन भई ॥
शब्द गुंजार नाडि सब जागे । रोम रोम में होइ रही रागे ॥ ५२ ॥
नौसे नारी मंगल गावे । तहाँ मन भँवरा अति सुख पावे ॥
शीतल भई सबै ही काया । शब्द ब्रह्मरस अमृत पाया ॥ ५३ ॥
अब तो शब्द गगन कूं चढिया । पछिम घाटि होइकै अनुसरिया ॥

घाटी बीस मेरु की छेकी । इकबीसै गढ गया विशैखी ॥ ५४ ॥
पहिली बैठा त्रिकुटी छाजे । जाके उपर अनहद बाजै ॥
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया । निर्मल होय आगे कूं ध्याया ॥ ५५ ॥

दोहा

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट ।
जहां झाझे जल झूलि के, निर्मल होय निराट ॥ १ ॥
अब त्रिवेणी न्हाई कै, कीया गगन प्रवेश ।
तीन लोक सूं अलध सुख, यो कोई चौथा देश ॥ २ ॥

चौपाई

अब चौथे घर पहुँता जाई । जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई ॥
घरर घरर अनहद घररावै । परम ज्योति दामणि भलकावे ॥ १ ॥
सुषुमण नीर लूंब झडि लाई । भीजत सुरति गर्क होइ जाई ॥
अर्ध उर्ध जहां कमल प्रकासा । सूरति भवंर होइ करत बिलासा ॥ २ ॥

घुरै अखण्ड अनाहद बाजा । प्राण पुरुष चहां तख्त बिराजा ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि नूर प्रकासै । अनंत कोटि रवि प्रकटया भासै ॥ ३ ॥
यातो बात अतौल है भाई । मुख सूं कहयां तोल व्है जाई ॥
पवन कहो कैसे गह हाथा । कैसे भरै गगन की बाथा ॥ ४ ॥
रुपवर्ण कैसो तडका को । ऐसो कहा बखानो जाको ॥
हाक वाक रहे कहत न आवै । पहुंच्या होइ सोही भल पावै ॥ ५ ॥

दोहा

अनहद गरजै नभ झरै । दामिनि ज्योति उजास ।
रामचरण सुनि सायराँ । हंसा करत निवास ॥ १ ॥

चौपाई

सायर तट हंस बैठा जाई । सायर हँस में रह्या समाई ॥
ओत पोत भया द्वैत न दर्शै । संत गरक, ब्रह्म सुख कूं पर्शै ॥ १ ॥
ब्रह्म पर्श्याकी दशा बताऊं । बाहिर के लक्षण पिछनाऊं ॥
जाके रंक एक ही राउ । माया सेती करे न भाउ ॥ २ ॥

अथ ग्रंथ शब्दप्रकाश लिख्यते ॥

स्तुति

रमतीत राम गुरुदेवजी, पुनि तिहूंकाल के संत।
जिनकूं रामचरण की, बन्दन बार अनंत (१)

दोहा

राम नाम तारक मन्त्र। सुमिरै शंकर शेष॥
रामचरण साचा गुरु। देवे यो उपदेश॥ १ ॥
सतगुरु बकसे राम नाम। शिख धारै विश्वास॥
रामचरण निशि दिन रटै। तो नहचै होय प्रकाश॥ २ ॥

चौपाई

अब सुँणियो सब साधु सुजाना। राम भजन का करुं बखाना ॥
प्रथम नाम सतगुरु सूं पाया। श्रवणां सुनिके प्रेह उपजाया ॥ १ ॥

पुनि रसना की श्रद्धा जागी। राम रटनि निशिवासर लागी ॥
दूजी आशा सकल बुहारी। तब राम नाम में सुरति ठहारी ॥ २ ॥
पद्मासन निश्चल मन कीया। नासा निरत धारि घर लीया ॥
श्वास उश्वासां धवँण लगाई। आरति करिकै विरह जगाई ॥ ३ ॥
रसना अग्र खुली इक सीरा। प्रथम वाको पयसो नीरा ॥
रटतां रटतां भयो मिठास। हर्ष भयो आयो विश्वास ॥ ४ ॥
केई दिवस रसना रस गटक्यो। पीछे शब्द कण्ठ में अटक्यो ॥
कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई। मुख सूं वचन न बोल्यो जाई ॥ ५ ॥
खान पान पैं रुचि रहे थोरी। मारग रुक्यो जाय कह वोरी ॥
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी। नीली नस दीसै झलकानी ॥ ६ ॥
पीरो वदन नेतराँ लाली। मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली ॥
चलै कँमकँमी रुं थररावे। छाती रुँधै श्वास न आवे ॥ ७ ॥
एसी विधि विरहनि की होई। विरहि जाणै कै सतगुरु सोई ॥

एक दिवस ऐसी बनि आंही । शब्द सरक गयो हिर्दा मांही ॥ ८ ॥
परम सुक्ख हिर्दै परकाशा । ज्यूं रवि कीनो तम को नाशा ॥
सहजै सुमरण हिरदै होई । बाहिर भेद न जानै कोई ॥ ९ ॥
सोवत जागत डोरी लागी । वन वस्ती की शंका भागी ॥
रसना जप्यां अजप्पा पाया । बाहिर साधन सकल बिलाया ॥ १० ॥
जाग्यो प्रेम नेम रहयो नांही । पाई राम धाम घट मांही ॥
उर अस्थान पाय विश्रामा । शब्द किया जाय नाभि मुकामा ॥ ११ ॥
नाभिकमल में शब्द गुंजारे । नौसे नारी मंगल उचारे ॥
नाभिहोद काया वन पीवे । ता रस साधू जुग जुग जीवे ॥ १२ ॥
रोम रोम झुणकार झुणं कै । जैसे जंतर ताँत ठुणंकै ॥
माया अक्षर यहां विलाया । ररंकार इक गगन सिधाया ॥ १३ ॥
पश्चिम दिशा मेरु की घाटी । बीसूं गांठि घोर सें फाटी ॥
त्रिकुटी संगम कीया स्नाना । जाइ चढया चौथे अस्थाना ॥ १४ ॥
जहां निरंजन तख्त विराजै । ज्योति प्रकाश अनंत रवि राजै ॥

अनहद नाद गिणत नहिं आवे । भांति भांति की राग उपावे ॥ १५ ॥
स्रवै सुषुम्णा नीर फुँहारा । शून्य शिखर का यह विव्हारा ॥
झरि पणंग मोती सा ढलकै । जाकी ज्योति अरुण सी भलकै ॥ १६ ॥
सागर जहां बिना धर भरिया । हंसै वास तास मधि करिया ॥
सुखमण मोती करै अहारा । निज हंसा का एही चारा ॥ १७ ॥
शुँन सायर हंस का वासा । भव सागर सुख भया उदासा ॥
दरिया सुख को अंत न आवै । छीलर काल बाज झपटावै ॥ १८ ॥
सुख सागर मिलि सुख पद पाया । सो शब्दां मैं कहि समझाया ॥
बिन देख्यां परतीत न आवै । तासूं कैसे भेद बतावै ॥ १९ ॥
अर्ध उर्ध कमला चहां फूल्या । भँवररुप होई हंसा झूल्या ॥
भंवर गुंजार गगन गिर्णाया । होय मस्त अलि तहां लुभाया ॥ २० ॥
ऐसो पद विरला जन पावै । सो भवसागर नाहीं आवै ॥
राम रटयां का यह प्रकाशा । मिल्या ब्रह्म पद भव भया नाशा ॥ २१ ॥
रामचरण कोई राम रटेगा । सो जन एही धाम लहेगा ॥

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धति

(लेखक—दैवज्ञप्रवर स्वामी श्रीमनोरथरामजी रामस्नेही शास्त्री, साहित्यभूषण)

भक्तिके पथको सुगम और प्रशस्त करनेके लिये महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने शाहपुरामें श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी स्थापना की, साथ-ही-साथ भक्तियोगके प्रतिपादनार्थ स्वकीय अनुभवयुक्त वाणीद्वारा दोहा-चौपाइयोंमें 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थका निर्माण किया तथा उसपर ब्रह्म रामकी उपासना-विधि बतलायी, जिनके ध्यानमें शङ्कर तथा शेषजी सदा लीन रहते हैं तथा जिनके नामकी महिमा महर्षि अगस्त्यजीने अगस्त्यसंहितामें सुतीक्ष्णजीके प्रति इस प्रकार वर्णन की है—

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम्॥

अर्थात् महामन्त्र तो सात करोड़ हैं, परन्तु वे चित्तमें [यह मन्त्र श्रेष्ठ है या वह—इस प्रकारका] विभ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं। 'राम' यह दो अक्षरोंका महामन्त्र ही सबसे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अथर्ववेदके रामरहस्योपनिषद्में भी कहा है—

एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्।
राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥

अर्थात् समस्त धर्मग्रन्थोंका तत्त्व तारक ब्रह्म ही है। और वह तारक ब्रह्म राम है। राम ही परब्रह्म है, राम ही परम तप है और राम ही परम तत्त्व है।

इस प्रकार परब्रह्म रामकी महिमासे धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं। यहाँ अधिक वचनोंका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। इसलिये अब हम परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धतिरूप 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थके मूल वचनोंको ही उद्धृत कर लेख समाप्त करेंगे। उस ग्रन्थमें महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धति इस प्रकार बतायी है—

रामनाम तारक मंत्र, सुमरै संकर सेस।
रामचरण साँचा गुरु देवै यह उपदेस॥ १॥
सतगुरु बकसै रामनाम, सिष धारैं बिस्वास।
रामचरण निसिदिन रटै तो निस्वय होय प्रकास॥ २॥

अब सुनियो सब साधु सुजाना। रामभजनका करूँ बखाना॥
प्रथम नाम सतगुरु से पाया। श्रवणा सुनके नेह उपजाया॥ १॥
पुनि रसना की श्रद्धाजागी। राम रटन निसिबासर लागी॥
दूजी आसा सकल बुहारी। (तब) राम नाम मैं सुरत ठहारी॥ २॥
पद्मासन निस्चल मनकीया। नासा निरत धार घर लीया॥
स्वास उस्वासा ध्वनीलगाई। आरत करके बिरह जगाई॥ ३॥
रसना अग्र खुली इक सीरा। परथम वाको पय सो नीरा॥
रटताँ रटताँ भयो मिठास। हर्ष भयो आयो बिस्वास॥ ४॥
कई दिवस रसना रसगटक्यो। पीछे सब्द कंठमें अटक्यो॥
कंठ स्थान बहुत कठिनाई। मुख सूँ बचन न बोल्यो जाई॥ ५॥
खान पान पै रुचि रहै थोरी। मारग रुक्यो जाय कह बौरी॥
छीन सरीर त्वचा सकुचानी। नीली नस दीसै झलकानी॥ ६॥
पीरो बदन नेतराँ लाली। मुकुर ज्योति ज्यां दियै कपाली॥
चले कमकमी रूँ थर्रावै। छाती रुँधै स्वास नहिं आवै॥ ७॥
ऐसी बिधि बिरही की होई। बिरह जान कै सतगुरु सोई॥
एक दिवस ऐसी बन आई। सब्द सरक गयो हिरदय माईं॥ ८॥
परम सुक्ख हिरदै परकासा। ज्यूँ रबि कीन्हों तम को नासा॥
सहजै सुमिरन हिरदै होई। बाहिर भेद न जानै कोई॥ ९॥
सोवत जागत डोरी लागी। बन बस्ती की संका भागी॥
रसना जपा अजप्पा पाया। बाहिर साधन सकल बिलाया॥ १०॥
जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नाहीं। पाई राम धाम घट माहीं॥
उर अस्थान पाय बिश्रामा। सब्द किया जाय नाभि मुकामा॥ ११॥
नाभि कमल में सब्द गुँजारै। नो सै नारी मंगल उचारै॥
रोम रोम झुणकार झुणक्कै। जैसे जंतर ताँत ठुणक्कै॥ १२॥
माया अच्छर इहाँ बिलाया। रंकार इक गगन सिधाया॥
पस्चिम दिसा मेरु की घाटी। बीसों गाँठ घोर सें फाटी॥ १३॥
त्रिकुटी संगम किया सनाना। जाय चढ़्या चौथे अस्थाना॥
जहाँ निरंजन तख्त बिराजै। ज्योति प्रकास अनंत रबि राजै॥ १४॥
अनहद नाद गिणत नहिंआवै। भाँति भाँति की राग उपावै॥
स्त्रवै सुषुम्ना नीर फुँहारा। सून्य सिखर का यह बिवहारा॥ १५॥
झरै पणंग मोती-सा ढलकै। जाकी ज्योति अरुन-सी भलकै॥
सागर जहाँ बिना घर भरिया। हंसा बास तास मध करिया॥ १६॥
सुखमण मोती करे अहारा। निज हंसा का यह ही चारा॥
सुन सायर हंसा का बासा। भवसागर सुख भया उदासा॥ १७॥
दरिया सुखको अंत न आवै। छीलर काल बाज झपटावै॥
सुखसागर मिल सुख पद पाया। सो सब्दाँ में कह समझाया॥ १८॥
बिन देख्याँ परतीत न आवै। तासूँ कैसे भेद बतावै॥

अर्ध उर्ध कमला जहाँ फूल्या। भँवर रूप होय हंसा झूल्या॥ १९॥
भँवर गुँजार गगन गिरणाया। होय मस्त अलि तहाँ लुभाया॥
ऐसो पद बिरला जन पावै। सो भवसागर नाहीं आवै॥ २०॥
राम रट्याँका यह परकासा। मिल्या ब्रह्मपद भव भया नासा॥
रामचरण कोइ राम रटेगा। सो जन एही धाम लहेगा॥ २१॥
रामनाम निसिबासर गासी। सो नर भवसागर तिर जासी॥
रामनाम बिन आन उपाई। ज्यूँ दूल्याँ का खेल कराई॥ २२॥
बालक बेळू मँदिर बणाया। तामें बस कूने सुख पाया॥
रामभजन बिन खाली करणी। ज्यूँ बिन बीज सुधारी धरणी॥ २३॥
राम बीज साधन हल हाँकै। तो रामचरण खेती फल पाकै॥ २४॥

बरणि कह्यो संछेप से दरिया के सो पार।
निज परसी या धामकूँ (सो) लीज्यो संत बिचार॥ १॥
रामचरण रट रामनाम पाया ब्रह्म बिलास।
ईं साधन कोइ लागसी (जाके) होसी सब्द प्रकास॥ २॥

—इत्यादि। इन वचनोंका अर्थ भलीभाँति समझकर जो बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त उपासना-पद्धतिके अनुसार परम पुनीत भक्तियोगकी साधना करेंगे, वे निश्चय ही मायाके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर संसारसागरको गोपदकी तरह अनायास पार कर जायँगे और परब्रह्म श्रीरामरूप होकर उनकी सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त करेंगे। फिर उनको श्रुतिके **'न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते'** इस वचनके अनुसार कभी भी संसार-चक्रमें फँसकर जन्म-मरणादिके कष्टोंका अनुभव नहीं करना पड़ेगा। यद्यपि 'शब्दप्रकाश' में ईश्वरोपासनाका विस्तार बहुत है और ग्रन्थका अर्थ समझाना भी आवश्यक था, परन्तु विस्तारभयसे इस लेखको यहीं समाप्त किया जाता है। श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धतिका संक्षिप्त स्वरूप यही है।

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धति

(लेखक—दैवज्ञप्रवर स्वामी श्रीमनोरथरामजी रामस्नेही शास्त्री, साहित्यभूषण)

भक्तिके पथको सुगम और प्रशस्त करनेके लिये महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने शाहपुरामें श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी स्थापना की, साथ-ही-साथ भक्तियोगके प्रतिपादनार्थ स्वकीय अनुभवयुक्त वाणीद्वारा दोहा-चौपाइयोंमें 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थका निर्माण किया तथा उसपर ब्रह्म रामकी उपासना-विधि बतलायी, जिनके ध्यानमें शङ्कर तथा शेषजी सदा लीन रहते हैं तथा जिनके नामकी महिमा महर्षि अगस्त्यजीने अगस्त्यसंहितामें सुतीक्ष्णजीके प्रति इस प्रकार वर्णन की है—

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम् ॥

अर्थात् महामन्त्र तो सात करोड़ हैं, परन्तु वे चित्तमें [यह मन्त्र श्रेष्ठ है या वह—इस प्रकारका] विभ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं। 'राम' यह दो अक्षरोंका महामन्त्र ही सबसे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अथर्ववेदके रामरहस्योपनिषद्में भी कहा है—

एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्।
राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥

अर्थात् समस्त धर्मग्रन्थोंका तत्त्व तारक ब्रह्म ही है। और वह तारक ब्रह्म राम है। राम ही परब्रह्म है, राम ही परम तप है और राम ही परम तत्त्व है।

इस प्रकार परब्रह्म रामकी महिमासे धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं। यहाँ अधिक वचनोंका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। इसलिये अब हम परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धतिरूप 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थके मूल वचनोंको ही उद्धृत कर लेख समाप्त करेंगे। उस ग्रन्थमें महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धति इस प्रकार बतायी है—

रामनाम तारक मंत्र, सुमरै संकर सेस।
रामचरण साँचा गुरु देवै यह उपदेस॥ १॥
सतगुरु बकसै रामनाम, सिष धारैं बिस्वास।
रामचरण निसिदिन रटै तो निस्चय होय प्रकास॥ २॥

अब सुनियो सब साधु सुजाना। रामभजनका करूँ बखाना॥
प्रथम नाम सतगुरु से पाया। श्रवणा सुनके नेह उपजाया॥ १॥
पुनि रसना की श्रद्धाजागी। राम रटन निसिबासर लागी॥
दूजी आसा सकल बुहारी। (तब) राम नाम मैं सुरत ठहारी॥ २॥
पद्मासन निस्चल मनकीया। नासा निरत धार घर लीया॥
स्वास उस्वासा ध्वनीलगाई। आरत करके बिरह जगाई॥ ३॥
रसना अग्र खुली इक सीरा। परथम वाको पय सो नीरा॥
रटताँ रटताँ भयो मिठास। हर्ष भयो आयो बिस्वास॥ ४॥
कई दिवस रसना रसगटक्यो। पीछे सब्द कंठमें अटक्यो॥
कंठ स्थान बहुत कठिनाई। मुख सूँ बचन न बोल्यो जाई॥ ५॥
खान पान पै रुचि रहै थोरी। मारग रुक्यो जाय कह बौरी॥
छीन सरीर त्वचा सकुचानी। नीली नस दीसै झलकानी॥ ६॥
पीरो बदन नेतराँ लाली। मुकुर ज्योति ज्यां दियै कपाली॥
चले कमकमी रूँ थर्रावै। छाती रुंधै स्वास नहिं आवै॥ ७॥
ऐसी बिधि बिरही की होई। बिरह जान कै सतगुरु सोई॥
एक दिवस ऐसी बन आई। सब्द सरक गयो हिरदय माईं॥ ८॥
परम सुक्ख हिरदै परकासा। ज्यूँ रबि कीन्हों तम को नासा॥
सहजै सुमिरन हिरदै होई। बाहिर भेद न जानै कोई॥ ९॥
सोवत जागत डोरी लागी। बन बस्ती की संका भागी॥
रसना जपा अजप्पा पाया। बाहिर साधन सकल बिलाया॥ १०॥
जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नाहीं। पाई राम धाम घट माहीं॥
उर अस्थान पाय बिश्रामा। सब्द किया जाय नाभि मुकामा॥ ११॥
नाभि कमल में सब्द गुंजारै। नो सै नारी मंगल उचारै॥
रोम रोम झुणकार झुणक्कै। जैसे जंतर ताँत ठुणक्कै॥ १२॥
माया अच्छर इहाँ बिलाया। ररंकार इक गगन सिधाया॥
पस्चिम दिसा मेरु की घाटी। बीसों गाँठ घोर सें फाटी॥ १३॥
त्रिकुटी संगम किया सनाना। जाय चढ्या चौथे अस्थाना॥
जहाँ निरंजन तख्त बिराजै। ज्योति प्रकास अनंत रबि राजै॥ १४॥
अनहद नाद गिणत नहिंआवै। भाँति भाँति की राग उपावै॥
स्त्रवै सुषुम्ना नीर फुँहारा। सून्य सिखर का यह बिवहारा॥ १५॥
झरै पणंग मोती-सा ढलकै। जाकी ज्योति अरुन-सी भलकै॥
सागर जहाँ बिना घर भरिया। हंसा बास तास मध करिया॥ १६॥
सुखमण मोती करे अहारा। निज हंसा का यह ही चारा॥
सुन सायर हंसा का बासा। भवसागर सुख भया उदासा॥ १७॥
दरिया सुखको अंत न आवै। छीलर काल बाज झपटावै॥
सुखसागर मिल सुख पद पाया। सो सब्दाँ में कह समझाया॥ १८॥
बिन देख्याँ परतीत न आवै। तासूँ कैसे भेद बतावै॥

अर्ध उर्ध कमला जहाँ फूल्या। भँवर रूप होय हंसा झूल्या॥ १९॥
भँवर गुँजार गगन गिरणाया। होय मस्त अलि तहाँ लुभाया॥
ऐसो पद बिरला जन पावै। सो भवसागर नाहीं आवै॥ २०॥
राम रट्याँका यह परकासा। मिल्या ब्रह्मपद भव भया नासा॥
रामचरण कोइ राम रटेगा। सो जन एही धाम लहेगा॥ २१॥
रामनाम निसिबासर गासी। सो नर भवसागर तिर जासी॥
रामनाम बिन आन उपाई। ज्यूँ दूल्याँ का खेल कराई॥ २२॥
बालक बेळू मँदिर बणाया। तामें बस कूने सुख पाया॥
रामभजन बिन खाली करणी। ज्यूँ बिन बीज सुधारी धरणी॥ २३॥
राम बीज साधन हल हाँकै। तो रामचरण खेती फल पाकै॥ २४॥

बरणि कह्यो संछेप से दरिया के सो पार।
निज परसी या धामकूँ (सो) लीज्यो संत बिचार॥ १॥
रामचरण रट रामनाम पाया ब्रह्म बिलास।
ईं साधन कोइ लागसी (जाके) होसी सब्द प्रकास॥ २॥

—इत्यादि। इन वचनोंका अर्थ भलीभाँति समझकर जो बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त उपासना-पद्धतिके अनुसार परम पुनीत भक्तियोगकी साधना करेंगे, वे निश्चय ही मायाके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर संसारसागरको गोपदकी तरह अनायास पार कर जायँगे और परब्रह्म श्रीरामरूप होकर उनकी सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त करेंगे। फिर उनको श्रुतिके **'न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते'** इस वचनके अनुसार कभी भी संसार-चक्रमें फँसकर जन्म-मरणादिके कष्टोंका अनुभव नहीं करना पड़ेगा। यद्यपि 'शब्दप्रकाश' में ईश्वरोपासनाका विस्तार बहुत है और ग्रन्थका अर्थ समझाना भी आवश्यक था, परन्तु विस्तारभयसे इस लेखको यहीं समाप्त किया जाता है। श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धतिका संक्षिप्त स्वरूप यही है।

19:31

जाकी सुरति शून्य में लागी, छकित भयो छकि नैना।
अविगति अकह अलख अन उपमा, काह कहै मुख बैना।
मन पायो री चैना।।
जिन्हिं देखा तिन्हिं सुना सबन्हिं के, आपन बात कहै ना।
ज्यों कृपनी धन अधिक प्रान ते, राखत कोई लखै ना।
मन पायो री चैना।।
मंजिल मोकाम दूरि है जाना, बिनु सतगुरु पहुँचैना।
सत जहाज सुकृत कनहरिया, भवजल शोक रहे ना।
मन पायो री चैना।।
सुर दुर्लभ तन पाय जगत में जो यह लाभ लहै ना।
कहे 'दरिया' धृक जीवन जगत में, नाम बिमुख पठतैना।
मन पायो री चैना।।

(३)

जाके अनुभव आगी लागी।
कस मर सभे जरेव तन भीतर, ऐसो प्रेमहिं पागी।।
बिनु मसि लिखे कलम बिनु कागज, अगम निगम तत्वसारा।
ब्रह्म निरुपन भेद बिचारे, ज्ञान रतन को धारा।।
ज्यों मराल नीर क्षीर विवरण, करि ऐसी बुद्धि शरीरा।
हंस दसा कुल बंस है उज्जवल, सभ मति भई गयो थीरा।।
अमृत बुन्द परे फुहकारा, परिमल बास सुबाशा।
गगन मध्य सुरति तहाँ रोपो, देखो अजब तमाशा।।
विमल विमल पद करु अनुरागा, निर्मल निरखत मोती।
कहे 'दरिया' सतगुरु की महिमा, जगमग झलके ज्योति।।

(४)

जाके एऊ गगन झरि लागी।
बिना घट घन वर्षन लागे, सुरति सुखमना जागी।।
अजपा जाप जपे निसि बासर, रहे जगत में बागी।
मूल अकह में गमि बिचारे, सोई सदा जन भागी।।
अष्ट दल कमल झरोखा जहवाँ, नाम विमल रस पागी।
तिल भर चौकी दने दरवाजा, ताहि खोजो अनुरागी।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

(४)

अरु का छव चक्र में चित चलावत, काहे के चंद चकोर की राति।
अरु का दल कमल कला वृगसे भौ, काहे के घ्राणि लगे चहु पाँति।।
अरु काहे के जावन जानि जमावत, का घृत काढ़ि के लेसल बाती।
'दरिया' जो कहे जब हुआ, तब काहे के खोजत जाति औ पाँती।।

(५)

अरु काहे के भँवर गोफा मंह पैठत, का कसि काम के लावत तारी।
अरु का ब्रह्मंड अखण्ड विराजित, का गृहि त्यागी सुता सुत नारी।।
अरु का पढ़ि वेद पुरान परायन, काहे के निर्गुन सगुन विचारी।
'दरिया' जो कहे जब ज्ञान नहीं, अपने पगु हाथ कुल्हारिन मारी।।

(६)

अरु त्यागत लोन अलोन जो खात है, कै तप तेजत सो गृहि नारी।
अरु काहे के डंड कमंडल लेत है, काहे के योग भये ब्रह्मचारी।।
अरु का गले कंथ जो पंथ के जोहत, का मनि मुन्द्रा कान के फारी।
'दरिया' जो कहे जब ज्ञाल नहीं, अपने पै आप सो आप बिसारी।।

(७)

अरु त्यागत चारिऊ वेद विचारी सो, त्यागत डंड कमंडल सोई।
नाहिं न राग विराग विवेकित, नाहिं न तीर्थ मंजन धोई।।
नाहिं न हेला न मेला न खेलत् नाहिं न पंथ में प्रीति समोई।
'दरिया' जो कहे जब ज्ञान हुआ, अपने मँह आपु चीन्हे सत सोई।।

(८)

अरु काहे के तत्व निःतत्व के खोजत, काहे के सुरति निरति न्यारी।
काहे के इंगला पिंगला फेरत, काहे के पाँच पचीस बिचारी।।
का हठ निग्रह निगम नेति है, क्या षट कर्म करे अधिकारी।
'दरिया' जो कहे जब ज्ञान नहीं, तबही यम फंद पसारी के मारी।।

(९)

अरु काहे के चौका चंदन चर्चित, काहे के दीप लेसे बहु भाँति।
अरु काहे के आरती शंख सुधारत, मुनि मत भेद सुने सब भाँति।।
सोई है गाफिल गमी न जानत, कहत फिरे हम संत की जाति।
'दरिया' जो कहे जब ज्ञान नहीं, यह लिखि देवे सब पान की पाति।।

19:41

जरबा ना मरब रहब नाहिं कबहिं।
अरी जबहीं अमरपुर जाइब रे की।।
कहे 'दरिया' दया सतगुरु की।
अरी नीति नई प्रेम लगाइब रे की।।

(४)

हमहु चलब रहब नाहिं युग-युग।
अरी या जग जीति घर जाइब रे की।।
तन करु मटुकी प्रेम करु पानी।
अरी सुरति निरति नेता लाइब रे की।।
दधी बिलोइब छांछि अलोइब।
अरी तब घृत घ्रानि सोहाइब रे की।।
साहब साँचा आपन दिल काँचा।
अरि साँच कहले पतियाइब रे की।।
जाकर हम हउई ताकर या जग।
अरी निरखि परखि गुन गाइब रे की।।
कहे 'दरिया' जग हित नाहिं मित कोई।
अरी साहब से चित्त लगाइब रे की।।

(५)

गंग यमुन बीच अवघट घटिया, अरि तहँवा योगिया मठ छावल रे की।
अवन भवन करे निसु अधियरिया, अरि कारी नागिनिया उठि आवल रे की।।
मोहिं देहु साहब पान के बीरवा, अरि योगिया के रुप देखि आइब रे की।
कहे 'दरिया' धन्य भाग सोहागिनि, अरि बहुरि मंदिर न आइब रे की।।

शब्द विदापद राग तिरहुतिया

(१)

अरी सुनु सखी री हे, भँवरा बिमती गइलें मोर।
जो मैं जनिती भँवरा चोरियहिं जैबहु हे, चितवों नयनवाँ के कोर।।
मालती के फूलवा पर भँवरा लोभइलहु हे, चरन कमल किन्हों भोर।
लीखि लीखि पतिया मों बिनती बिनय करूँ हे, प्रेम धागा जनि तोर।।
ढूँढ़त-ढूँढ़त सकल बन ढूँढ़लो हे, मधुपति मधुवा की ओर।
कहे 'दरिया' कामिनि योग युक्ति करु हे, चितवत चंद चकोर।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

शब्द हिंडोलवा

(१)

जगत हिडोलवा झूलता है चौयुग।।
मेरु मंडल खम्भवा गाड़ेव हो दसो दिसा तान।
चाँद सूरज दोनो भे मचवा हो, झूलहिं साँझ बिहान।।
गगन उड़िगन घटा छायो, पवन को प्रकाश।
निगम चारु बुन्द वर्षे, पाप पुन्य निवास।।
प्रथ्माम झूले शिव सारद, नारद औ सुकदेव।
सनकादि आदि जो ब्रह्म झूले, गौरी गन पतिदेव।।
मारकन्डे कल्प झूलें, अकथ किन्हों जान।
झूले अहिपति सहस्त्रबानी, ब्यास वेद बखान।।
राम झूले नौ बार नीके, शक्ति सीया के पास।
झूले रावन गर्व गामी, जगत किन्ह उपहांस।।
गोपिय के संग कान्ह झूले, मुख मुरली रंग।
काया धरि कबीर झूले, ज्ञान को प्रसंग।।
बाल्मिक वशिष्ठ झूलें, वेद को मत आय।।
औरि ऋषि सभ सकल झूले, अपनी मति ठान।
कहें 'दरिया' दया सतगुरु, ज्ञान लिजै मान।।

(२)

मुक्ति हिंडोलवा झूलहू बिवेक बिचार।।
सत सुकृत खम्भ गाड़े, सुरति डोरि लाय।
प्रेम पटरी बैठ के यह, झूलहु संत समाय।।
इंगला पिंगला सुषमना, जहाँ बहत पवन सुधार।
अर्ध अर्ध द्वादस आवे, चरन चित सम्भार।।
तहाँ जलज झलकत पुहुँप, विकसित भँवर बास समाय।
तहाँ मोह माया निकट नाहिं, अग्रघ्रानि रहु छाय।।
तहाँ फुंही झंम झंम झरत निर्गुन, रहेव गंग समाय।

19:44

तहाँ मनि मुक्ता निरखि निर्मल, प्रेम पंथ सुहाय।।
तहाँ रहत कह-कह अकथ कथ है, कहे को पतिआय।
तहाँ झूलहिं जन प्रेम बसि होय, आवागमन नसाय।।
छोड़ो सभ भर्म कर्महिं, नाम निश्चय पाय।
अटल पद के लागिहु सब, सकल भर्म बिहाय।।
सुमिरत वेद पुरान पंडित, पूजा कर्म बखानि।
भर्म कर्म ले झूलन लगे, अन्त बिगुरन हानि।।
आदि अन्त ओ मध्य मंडल, झूलहिं मुनि महेश।
कहे 'दरिया' सत महिमा, ज्ञान गुरु उपदेश।।

(३)

कथिके दोनों खम्भवा हो, कथिके लागल डोरी।
कथिके दोनों मंचवा सन्तों, कवन झकझोरी।। हिंडोलवा हो०।।
सत सुकृत दोनों खम्भवा हो, सुषमनि लागलि डोरी।
अर्धउर्ध दोनों मँचवा सन्तों, इंगला पिंगला झक झोरी।।
कवन सखी सुख बिलसे हो, कवन कर्म दुःख साथ।
कवन सखिया सुहागिन सन्तों, कवन कलम गहे हाथ।।
संत सनेही सुख बिलसे हो, कपट कर्म दुःख साथ।
पिया मुख सखिया सुहागिन संतों, राधे कलम गहे हाथ।।
जिन्हिं गहल तिन्ह पावल हो, निर्गुन नाह अधार।
कहे 'दरिया' सुनु कामिनि संतों, उतरहु भवजल पार।।

(४)

कवन रे झूलावे कवन झूलहिं हो, कवने बैठे पाट।
कवन पुरुष नहिं झूलहिं संतों, कवन रोकत है बाट।।
मन रे झूलावे जीव झूलहिं हो, शक्ति बैठ लि पाट।
सत पुरुष नहिं झूलहिं संतों, कुमति रोकत बाट।।
सुर नर मुनि सभ झूलहिं हो, झूलहीं तीनो देव।
गनपति फनपति झूलहिं संतों, योगी यती सुकदेव।।
जीव जन्तु सभ झूलहिं हो, झूलहिं आदि गनेश।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

19:46

ऐनक मूल शब्द है सार, चहुँ ओर दिसे रंग करार।
झरति झरि तहाँ झमकत नूर, चित चकमक गहि बाजत तूर।
झलकत पदुम गगन उजियार, दिव्य दृष्टि गहु मकर तार।
द्वादस इंगला पिंगला जाय, परिमल अग्र बास तहाँ आय।
बंक कमल मध्य हीरा अमान, श्वेत बरन भौंरा तहां जान।
खोजिये सतगुरु सत निशान, युक्ति जानि जिन्हि कथे ज्ञान।
कहे 'दरिया' यह अकह मूल, आवागमन के मेटे शूल।।

(२)

संतो मन चिन्हिं खेलो ऋतु बसंत, बिन परिचय नहिं मिलहिं कंत।।
गिरिवर चढ़िगौ मीन बिनु जल, सिंह सियार के देखिये बल।
कौन लड़े कौल छोड़े खे, सिंह ठनकु भाजु कुन्जर खेत।
सुखि गया सागर अगम नीर, सिधरी सब सुखि मोटि गो पीर।
बगुला रोवहिं सीस उतानी, किमि करि जीवहिं भैगौ हाँनि।
वेद बाट कथि कहनी जान, ताकी जग में बहुते मान।
गुरु शिष्य संग बाजी भाव, अवसर परिगौ यम के दाव।
योगी यति सब भेष अलेख, सब मिलि सुमिरहिं रुप ना रेख।
या तन तेजि जीव चलिहैं भाग, तीनि लोक में लागि आग।
कर्म काट खोजु शब्द हिं सार, समुझ परे तब वारे पार।
मनि दीयरा नहिं होत छिन्न, कहे 'दरिया' छपलोक है भिन्न।।

(३)

संतो खेलहु बसंत सुख सरब ज्ञान, ज्यों जल कमल भँवर भान।।
जैसे परिमल प्रेमहिं घ्रानि, जैसे पारस कंचन खानि।
जैसे भृंग कीट कह कीन्ह, जैसे चुम्बक लोहा लीन्ह।
जैसे केदली कपूर अंग, जैसे मोती सीपहिं संग।
जैसे हीरा पंक्षी पास, ऐसे जग में भयो दास।
जैसे तिल महँ फूल बास, जैसे मृग मद नाभी पास।
जैसे जल मह मिलेव रंग, नाम बिमल गुन जीव के संग।
जैसे दधी मह घृत घ्रान, ऐसे लीजे वेदहिं छान।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

बिनु बसाये कहाँ बसे गाँव, को कर्ता है काकर नाव।
रज और बीन्द होय एक संग, मूल मंगल धाये जीव ले संग।
खोजत बीते तेहि युग चार, थाके मुनि सब बैठे द्वार।
मुक्ति महातम सतगुरु मंत कहे 'दरिया' तेजु फंद अनंत।।

(११)

चलु चलु रे भँवरी संग, बिनु भँवर तोर कवन रंग।।
काया कमल बन फूले सुबास, दवना, मरुवा चंपा बास।
बेइल, चमेली ग्रीव गुथहीं हार, सुधा चर्चि करु श्रृंगार।
सेज सफेद सुख बना बिवान, नाना रंग जहाँ कृपा निधान।
परम आनन्द सुख भयो बिलास, सोई सुहागिन पिया के पास।
अजर अमर बर मिलेव कंत, मेटेव कल्पना दुःख अंत।
भँवरा भँवरी भयो आनन्द, ज्यों जल कुमुदिनि उदित चन्द।
कुसुम फूले बन बिबिध फूल, द्रुम लता फूले प्रेम मूल।
भँवर भँवरी करू आनन्द, परसु पिया पद तेजहु द्वन्द।
नाम सुमिरु जग अमर सार, वेद विहित सब करो निरुवार।
ज्ञान पुरुष भक्ति है नार, कहे 'दरिया' तन मत सब वार।।

(१२)

मैं जानत हों तुम्हें दीन दयाल, तुम सुमिरत मेटे तप्त काल।।
ज्यों जननी प्रति पालवे सुत, गर्भ बास जिन्ह दियो अकुत।
जठर अगिनि से लियो है काढ़, ऐसी वाकी ठवर गाढ़।
गाढ़े जो जन सुमिरन किन्ह, परगट जग में तेहि गति दिन्ह।
गर्वीहि मारेव गैब बान, संत के राखेव जीवन जान।
जल में कुमुदुनी इन्दु अकाश, प्रीति सदा गुन चरन पास।
जैसे पपिहा जल से नेह, बुन्द एक विस्वास है तेह।
स्वर्ग पताल महि मंडल तीन, तुव हो साहब मैं आधीन।
जानि आयो तब सरन पास, निजु मुख बोले की कहे दास।
सतपुरुष बचन नहिं होहिं आन, बलु पूरब से पश्चिम उगेव भान।
कहे 'दरिया' हमें तुमहिं एक, ज्यों हारिल की लकड़ी टेक।।

जब दुर्योधन चढ़िया खेत, लिन्ह लपेट सब रखा समेत।
उग्रसेन सुत कांस काल, धरि के पटके जबर माल।
और नृप केते भया निखेत, बहु बिधि मरिगौ गनिये केत।
है यह साँच झूठ नहिं हो, साखी पुरातन शब्द विलोय।
साधु द्रोह जो करहीं को, महा नरक जीव पातकि होय।
मीठा फल किमि लागत तीत, कहे 'दरिया' गुरु ज्ञान हीत।।

(१६)

सुख सागर जियरा करु अनंद, प्रेम मगन खेलो तेजो द्वन्द।।
छुटिगौ तिमिर उदित भान, स्वेत मंडल बीच शोभे निशान।
गगन गरजि घन होत तरंग, सिंचत गुलाब शीतल भौ अंग।
विकसित कुमदुनि उदितज चंद, भूले भँवर तहाँ खिलेव रंग।
गगन मंडल बीच भया बास, चित चकोर तहाँ चुंग सुबास।
अकह कमल के ऊपर मूल, सहस कमल तहवां रहु फूल।
झरि झरि परत सुरंग रंग फूल, प्रेम अगम होय समतूल।
भौ निर्मल पायो शब्द सार, सत सरन गहि होहू पार।
अजर अमरपुर भया बास, कहे 'दरिया' मेटा यम के त्रास।।

(१७)

संतो मानु शब्द जो करे बिबेक, अगम पुरुष जहाँ रुप रेख।।
अष्टदल कमल सुरति लवलाव, अजपा जपि के मन ठहराव।
भँवर गोफा में उलटि जाय, जगमग ज्योति रहे छवि छाय।
बंक नाल गहि घैंचु सुत, चमके बिजली मोती बहुत।
स्वेत घटा चहुँ ओर घनघोर, अजरा ज्योति तहाँ होत अँजोर।
अमिय कमल निजु करु बिचार, चुवत बुन्द तहाँ अमृत धार।
छव चक्र खोजि करहु निवास, मूल चक्र जहाँ जीव के बास।
काया खोजि-खोजि योगी भुलान, काया बाहर पद निर्बान।
सतगुरु शब्द जो खोजे लोग, कहे 'दरिया' तब पूरन योग।।

(१८)

सोई बसंत खेलहू हंस राज, जहाँ नभ कौतुक सुर समाज।।

अक्षय वृक्ष तहाँ डार पात, सखा सघन घन लपटि जात।
मधुर मनोहर राग रंग, अनहद ध्वनि, ताल ना भंग।
बेइली चमेली विविध फूल, सुधा अग्र गुलाब मूल।
भँवर कमल में भाव भोग, पदुम पदारथ करिये योग।
बुन्द अखण्डित वर्षे नूर, गगन गरजि घन बाजे तूर।
चमकि छटा चहुँ ओर अँजोर, झींगुर के झनकार है सोर।
नहिं दिन दिवाकर रैनि चंद, कला सम्पूरन होत ना भंग।
उड़िगन मणि-मीन तहाँ दृष्टि पेख, आदि अन्त मध्य मूल देख।
उदित उजागर हंस सार, नहीं दुःख दारुन यम के जार।
मुक्ति महातम सतगुरु मंत, 'दरिया' दरसन मिलेव कंत।।

शब्द होरी

(१)

होली रंग रचो है, ज्ञान निर्गुन नाम की।।
अंगला पिंगला सुषमनि सुन्दर, जूथे बनी हैं बाम की।
गंधीरा गंध छिरकन लागे, फोज टरी है काम की।।
महल-महल रंग बैठु झरोखे, मुख जोहत सब श्याम की।
लागी झरि झाकरि सारेधन्ह की, सुधि बिसरी है धाम की।।
ऐन अजीर अबीर सो छायो, घेरि आयो सब ग्राम की।
कहे 'दरिया' ऐसो फागु खेलो, बजत किन्नर तान की।।

(२)

होली खेलत नाम सुगंध अवसर आइया।।
त्रिकुटी के तट पर रास रचो, स्वर सुनि सखी सब धाइया।
अग्र गुलाब कुँमकुँमा केशरि, सुधा चरचि चढ़ाइया।।
उन्मुनि पीचुका केशरि भरि लिए, छिरिकत प्रेम सोहाइया।
बर्षत सुमन सुगंध सुहासित, गगन मगन झरि आइया।।
मंदिर मगन मनोरथ मन के, बाजत मुरली छाइया।
कहे 'दरिया' कमल दल फूले, भँवर बास लोभाइया।।

19:54

भया निःशंक यह चढ़ा गढ़ बंक, तहाँ रून्ध-धुन्ध भव भर्म जारा।
तहाँ गर्जि निशान अविगति अमान, अडोल अमोल पर ध्यान धारा।
तहाँ चौक के चांदना मूल के साधना, गगन में मगन है शब्द सारा।
कहे 'दरिया' कोई संत जन जौहरी, ब्रह्म बिचार के वार-पारा।

(५)

संत की चाल तुम समुझ बाँकी बड़ी, सुरति कमान कसि तीर मारा।
पाँच के मेटि पच्चीस के दलि मलि, छव के छेद पीव शब्द सारा।
साधि ले मेरुडंड बैठु ब्रह्मंड खण्ड, पवन परिचय लिए काम जारा।
काल जंजाल ते काम निकुताय ले, योग गहि युक्ति तुम समुझ यारा।
उलट ले पवन तुम गवन करु गगन में साध ले त्रिकुटी दिव्य दृष्टि बारा।
तहाँ रोग नहिं सोग निर्दोष निर्बान, सर्वज्ञ सभ मांह तुम देखु यारा।
कहे 'दरिया' दिल पैठु दरियाव में, पाव तुम लाल अनमोल प्यारा।

(६)

भक्त भेष मीलि कंत खोजता फिरे, मता अनन्त भौ बिबिध बानी।
काल के फाँस में दास केते परे, वेद बिरंचि सम जेते ध्यानी।
कंठी कहे कंठ में मठ इहई रचा, बचे कोइ लाख में केते ज्ञानी।
काक का कर्म यह भर्म मंडा रहे, खण्ड ब्रह्मंड ले कथा भानी।
हंस के वंस नहिं बग है बापुरे, नीर औ क्षीर कहु कवन छानी।
नीर अव क्षीर का भेद बीचे परा, काक बग अंध का यहि खानी।
गर्व गामि बोल गर्द से मिलिया, मर्द कोई एक है लाल खानी।
कहे 'दरिया' दर उलटि के देखिये, पेखिया शब्द के सोई ज्ञानी।

(७)

काल के जाल ते लाल देखे नहिं, भुल के भवन में पैठ कागा।
सिंह औ स्यार से युद्ध कैसे बनी, सुधि सभ जायेगा देखत भागा।
गीध का ध्यान यह ज्ञान बहुते कथे, उड़े का सिद्ध भव जिमि लागा।
भिंडी यह जानि के पिंड पर बैठ के, ऐंठ मेटे नहिं झुठ पागा।
निगम का बोझ यह द्रूम सिर ऊपरे, रक्ष कहता फिरे भच्छ माँगा।

191
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

19:54

कहे 'दरिया' तुम ध्यान करु धनिका, मानु सत शब्द सुन संत ज्ञानी।

(१४)

जीव औ शिव ते जगत माया बनी, जीव औ शिव ते भिन्न बातें।
योग औ भोग का सोग सागर भरा, योग औ भोग में जगत माँते।
ज्ञान औन ध्यान सभ सुरति कंची देखो, ज्ञान और ध्यान में बहुत राते।
निर्गुन निरास यह सगुन तो खपि गया, निर्गुन औ सगुन में विविध ज्ञाते।
घाट औ वाट सभ हाट झूठी देखो, घाट औ वाट में जले आते।
एक अमान वाये ज्यों का त्यों है, ज्यों का त्यों छोड़ि कहाँ जाते।
भगत और भेष अलेख मता बनी, भेष अलेख में धक्का खाते।
कहे 'दरिया' जग जाल झीनी बनी, छीन८ होय झीन में पैठ जाते।

(१५)

काया में जीव औ शिव संग शक्ति है, काया में काम औ क्रोध छावे।
काया की खाँनि अनमोल निर्वान है, काया नव नाटिका बाट आवे।
काया पिन्ड प्रान में भानु चन्दा ऊगे, काया की सुरति यह साफ धावे।
काया में त्रिवेणी लहर तरंग है, काया में अमिय सुखधार पावे।
काया में मूल यह फूल प्रगट है, काया छव चक्र दिव्य दृष्टि लावे।
काया के अग्र यह गगन गढ़ झाँक है, काया कोट पैठि के घाट आवे।
सोई सिद्ध सोई साधु सोई संत है, पीवे पहचान सत शब्द पोवे।
कहे 'दरिया' सतवर्ग सत सोई है, मरे नहिं जीवे नहिं गर्भ आवे।

(१६)

एक वोय एक है टेक गहे कोई, समुझ के पाव दे राह बाँकी।
सत का टोप सिर शब्द की सांगि ले, ज्ञान की तुरिया तेज रांकी।
तहाँ काम औ क्रोध का फौज सब घेरि के, पैठ मैदान में राखु ताकी।
तबल निशान यह बान आगे खड़ा, जगत में सोर नहिं रही बाँकी।
संत सिपाही दिन रैनि खड़ा रहे, काया गढ़ कोट में देत झाँकी।
मन मस्त गयंद जंजीर आंकुस दिये, रहत ताबीन सभ बात बाकी।
जिमि आकाश के बीच में सुरति हो, गगन में मगन धुनि कृत जाकी।
कहे 'दरिया' दल संत सोभे सोई, सिंह की ठवनि कर रहनि एकी।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

19:55

(२३)

ज्ञान के जागते जगमग बरे, अमि रस प्रेम सुख भर्म भागा।
दया के दृष्टि में प्रेम सागर भरा, झरत है लाल दह कमल लगा।
थाके कहीं वेद चतुरानन चार मुख, शेष सहस्त्र मुख ज्ञान पागा।
अलख अपार कोई दृष्टि ज्ञानी लखै, मूल प्रकास झरि गगन लागा।
सुरति साँचा बसे ब्रह्म पूरा हुआ, दया के महल नहिं कुबुद्धि कागा।
अर्ध औ उर्ध जहाँ मध्य मानिक बरे, काया के सोधि सब विषय त्यागा।
ब्रह्म निरुप जहाँ सुरति चौरी रचि, शिव औ शक्ति गहि गाँठि लागा।
कहे 'दरिया' कोई संत जन जौहरी, मुक्ति मैदान में देत डागा।

(२४)

मूल है मूल यह फूल देखा करे, तुले नहिं ताहिं यह वेद सारा।
मुरति है मुरति यह सुरति में देखिए, गगन में मगन दिव्य दृष्टि बारा।
निरति है निरति यह प्रीति पायन परी, गया यम जीत यह विविध धारा।
त्रिगुण है त्रिगुण यह त्रिविध तीन ताप है, तिमिर सभा नासिया निरखि न्यारा।
ज्ञान है ज्ञज्ञन तुम गर्व के दूर कर, सर्व व्यापा रहे संत प्यारा।
योग है योग भर्म भागा फिरे, रोग व्यापे नहिं शोक मारा।
अक्षय है अक्षय तुँ प्रेम मेंछका रहु, देखि छविं ब्रह्म यह उदित तारा।
कहे 'दरिया' दयिाव ग्रकाब है, गहिर गुलजार तहाँ जलज झारा।

(२५)

मूल जाने बिना शूल सागरा परा, हरे बुद्धि ज्ञान बलि छरन चाहे।
वेद के उक्ति से युक्ति दानी हुआ, बाँधि पताल में दुःख दाहे।
हरिश्चन्द यह मंद नहिं भर्म बाजी रचा, जीव को दान तेहिं काह डाहे।
नीच घर बेचिया काम कच्चा किया, सत में बिपति यह तन डोहे।
ठग ठाकुर यह जानि जीव ठगिया, माँगिया मुक्ति नर अजब आहे।
इन्द्र जाल का ब्याल यह पेखना, डारिया जाल नर साँच काहे।
माया मन मंचिया बाँचिया कोई नहीं, त्रिगुण के धार में जान वाहे।
कहे 'दरिया' दिल दगा तै छोड़ दे, गहो सतनाम सर्वज्ञ साहे।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

(२६)

अमर वोय वृक्ष है पँवरि जाकी फूली, मातिया भँवर निजु घ्राणि पाई।
अमि सतनाम है प्रीति पीवता रहे, जीति यम धार नहिं निकट आई।
उन्मुनि के बीच यह चित चुभा रहे, चौक है चाँदनी देखि पाई।
अर्ध अमान निर्बान झलकत रहे, स्वेत सुगंध छबि छत्र पाई।
मगन माशुक यह गगन गर्जत रहे, झरत झरि बुन्द घन घटा छाई।
आदि अनादि देख वादि मिथ्या तेजो, दरस हर घरी निजु पलक पाई।
गहो गुरु ज्ञान तुम ध्यान करो धनीका, तेजि दे मान नहिं दोजक जाई।
कहे 'दरिया' दिल दगा तैं दूर कर, डगा दे ज्ञज्ञन सुनो संत भाइ।

(२७)

घना मोती झरे ज्योति जगमग बरै, घटा घन घेर चहु ओर फेरा।
बुन्द अखण्ड स्वर चले ब्रह्मंड के, काम के फौज सभ घेरि टेरा।
त्रिवेणी मध्य तहाँ सुरति सनमुख कियो, सुषमना घाट कहाँ दृष्टि हेरा।
पलक में झलक चहुँ मंदिल छवि छाइया, ब्रह्म पुनित नहिं बहुरि फेरा।
भेद बंका बड़ा काल संका नहिं ज्ञान घट खुलीत सभ कर्म जेरा।
ध्यान लगा रहे गगन घन गर्जिया, कुमति कुबुद्धि होय रहत चेरा।
बैन विचार यह लगन लागा रहे, मगन सभ दिन कियो गगन डेरा।
संत सुजान जिन्हि शब्द बिचारिया, कहे 'दरिया' सोई दारस मेरा।

(२८)

अगम गुरु ज्ञान ते ब्रह्म पहचान ले, बिना पहचान क्या कथे ज्ञानी।
बिना पहचान अंजान कहाँ जाइहो, बिना ठहराव कहाँ ठौर ठानी।
बिना दिव्य दृष्टि यह जीव कहाँ जाइहें, उर्ध मुख ध्यान धरि विकल बानी।
अर्ध अधियार तहाँ चोर चारी मुंसे, बिना सत शब्द जीव होत हाँनि।
बिना मगु देखि यह भेष भर्मत फिरे, नहिं योग युक्ति रस रोग आँनि।
खालि सभ खलक है पलक मूँदे रहे, खोल दिव्य दृष्टि सोई सिद्ध ज्ञानी।
सोई साधु भरि पूर है शूर सनमुख सही, आपने आपू जिन्हिं उलट आनी।
कहे 'दरिया' सत शब्द बिनु पार नहिं, वार भटकत फिरे मुढ़ प्रानी।

नव गुन बिचारि नव नाटिका है, संझा तरपन दरस कीजै।
अजपा जपे जिभ्या बिना, एह मूल परगास परस लीजै।
ब्रह्म आप हुआ भरम क्यों भूला, नहिं ज्ञान तुलें जो प्रीति भीजै।
कहे 'दरिया' तेजु दूरि धोखा, हरि है हिये नहिं प्रेम छीजै।

(२१)

जरबक्स जरकस जरबुंद, दिल जाक दिल जाक रब पावंदा रे।
कर्दान कर्दान फरमोस एह कैद करी, गैव काफुल झरि आवंदा रे।
कादिर कादिर एह नाजीर नाजीर, हाजिर हजुर इशिक भावंदा रे।
कहे 'दरिया' चाहु ग्रीद गरकाव, कोई इशिक दरवेश दर जावंदा रे।।

(२२)

इस झूलने में दिल झुलदा रे, जाहां गुलरंगी लदा पावंदा रे।
इस गुल का फूल तुलंदा रे, जाहां चम्पकली झरी आवंदा रे।
आशिक दीदार दरस देखंदा रे, एह प्रेम कली चीत सोहंदा रे।
कहे 'दरिया' दल कमल फूले, अलि आए जो बास लोभावंदा रे।।

(२३)

झक झक लगा झक झक लगा, एह झारि झरोखे झांकिया रे।
झरि झरि परा झरि झरि परा, एह लगु गुलाब की आँखिया रे।
पिया प्रेम चाखे पिया प्रेम चाखे, लजीत भली दिल राखिया रे।
दर सेइये रे दर सेइये री दरगाह भला, 'दरिया' कहे सत साखिया रे।

(२४)

मस्तान भला मस्तान भला, महबूब मिया दिल जान्दा रे।
झोके झोक लगा झोक झोक लगा, एह लव लगन में सानदा रे।
आशिक हुआ आशिक हुआ, देखि दर्स सो सानदा रे।
दरिया कहे लहरि घनी, देखि तहकीक आमन्दा रे।।

(२५)

लागी लागी लगन ललना, सबुर सफा जहुर है रे।
माशुक माशुक माशुक वोये, दरश दीदार जहुर है रे।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

पिया प्रेम चाखे पिया प्रेम चाखे, लजीतो वोइल कलक जुबा सभ दूरी है रे।
कहे 'दरिया' दम दम लगा, जाहां दम लगा भरपुर है रे।

(२६)

झक झक लगा झक झक लगा, राम रहीम का नूर बरिसावंदा है।
दस्तगीर जो पीर रहम किया, फहम की बात कहंदा है।
चिराक रोशन महल हुआ, फूल गुल घनेरे आवन्दा है।
कहे 'दरिया' दरस दीदम, कर सम दिल में भावंदा है।

(२७)

एक ज्योति का नूर छवि छाया, चौदह तबक गुलजार हुआ।
खाक अव बाब एह आब आतस, बीच बोलता एक अजब सुआ।
जाहिर बातु ना जिकिरि फिकिरि, हिरिस हवाह सभ दूरी मुआ।
कहे 'दरिया' परवर दिगार, हाका हरदम फकर दुआ।

(२८)

घट घट में बोलता डोलता है, इस बोलते को पहचान्दा रे।
हिन्दु नहीं मुसलमीन नहीं, काफिर नहीं कोई जान्दा रे।
आया कहाँ जायेगा कहाँ, सैल सिकिल में सान्दा रे।
'दरियाव' में दिल तहकीक करो, हम तुम नहीं आमानदा रे।।

(२९)

आया काहां जायेगा काहां, तहकीक तारीक के कीजिये रे।
नेकी बदी दोये दर खड़े, कदम समुझ के दीजिये रे।
दलक पेखो खलक देखो, पलक में प्रेम के दीजिये रे।
कहे 'दरिया' बहर कहर, दोजक बीच का भींजिये रे।

(३०)

दुई सुर चले एक भाव से, नाभी से उलटि के आवता है।
बीच इंगल पिंगल तीनि नारी सुखमान, मान से भाव बतावता है।
उगम करो पूरो भरो, रंज कली ए झरि लावता है।
एह झूलना 'दरिया' साह कहा, कोई जोग जुगुति से पावंदा है।

जैसे कीट से भृंग किन्हो, सर्व गुण निवास।
काया केदली बहुत सुन्दर, किन्ह कपूरे बास।।
जैसे सीप से मोती उपजे, बुन्द को विश्वास।
नख पंक्षी हीरा कीन्हों, ज्योति को प्रकास।।
जेसे भुजंग मणि आगे, सिद्ध विषि को नास।
जतन बहुते युक्ति जानत, लीलत उगिलत ग्रास।।
तैसे साहब हंस किन्हों, काया को प्रकास।
कहें 'दरिया' पारस को गुण, छपलोक में बास।।

(५४)

हमके आतम राम पियारा।।
अबुझा लोग कहाँ तक बूझे, बूझे हंस हमारा।
मच्छ कच्छ बराह स्वरूपी, निगम कहे अवतारा।।
जानि बूझ नर खून करत है, परे नरक के धारा।
महिषा मारि के चरण पुजावहि, पूजा मान तोहारा।।
लेके खरग ताहि सिर झारहिं, ऐगुण भै गो सारा।
आन के राम है हँसी खेलवना, मेरो प्राण अधारा।।
अजया धैचि पत्थर पर मारहिं, पाप भया सिर भारा।
साँच झूठ का करो बिचारा, जाते भला तुम्हारा।।
केता कहों कहा नहिं माने, भूले मूढ़ गँवारा।
कहें 'दरिया' दर यम ने छेका, मुगदर सिर पर मारा।।

शब्द जग शरह

(१)

या जग पारख बिना भुलाना।
निर्गुण सर्गुण यह दुई करि थापहिं, अजपा धरि-धरि ध्याना।।
अद्वैत ब्रह्म सकल घट भीतर, त्रिगुन में लपटाना।
आवे जाय उपजि फेरि बिनसे, जरि मरि गर्द समाना।।
छवो चक्र अरू चारि चतुर दल, वेद मते अरूझाना।
बंकनाल की डोरी धैंचे, योगियन युक्ति बखाना।।
सहस पंखुरी दल कमल बिराजित, मन मधुकर लपटाना।
जल के सुखे कमल कुम्हिलाना, तब कहु कहाँ ठेकाना।।

माया रंग रंगेवो सभानि के, उजला मैला होई।।
उनके रूप रेख उजियारा, बिना रूप किमि गावे।
कहे 'दरिया' मून अनन्त कला है, भेद कोई जन पोवे।।

शब्द योग और योगी शरह

(१)

योग जागे काल भागे कर्म कलि कवलेश छूटे,।
युक्ति योगी जानी।
मेरू डंड के साधि साधे अर्ध लेके उर्ध बाँधे,।
जाप अजपा ठानि।
उन्मुनि मुन्द्र शुन्य मेले, पाप पुन्य ते न्यारा खेले,।
पेलु यम की कानी।
गगन गोफा मन्दिर छायो, त्रिकुटि के महल आयो।
सुरति सुषमनि चिन्हि के ले ब्रह्म को पहचानि।
नाम निर्मल निरखि ले तैं तेजु कुल की कानि।
सत्य शेली संतोष झोरि, कर कमंडल सिद्ध पूरा बोलत अमृत बानी।
गहि ज्ञान डंड नौ खण्ड डोले, अबोल भिच्दा सत्य बोले दरस दया मनि।
कहे 'दरिया' ऐसो योगी युक्ता, युक्ति जानि अचेत चेते समुझि बूझे आनि।।

(२)

सोई योग योगा न भोगा न भोगी, विषय रस त्यागि, युक्ति जानु योगी।
धरे दृढ़ आसन पवन को उसासन, गगन भवन जागे न रोगा न रोगी।।
लिए गढ़ बंका देखत काल कंपा, सकल भर्म त्यागी बिरह राग रागी।
अजपा जाप जपि ले कमल दल उलटि ले, फेरे मूल मुन्द्र सुरति योग जागी।।
सुरति सुन्य पेखा तहाँ शब्द देखा, गगन झरि, झारू झमके जो मोती चमकन जो लागी।
सोई जन जाने जौहरि पहिचाने, सोई दिल सच्चा जगत जन बागी।।
भया थीर थक्का कहो भेद बंका, कोई मर्द कसि ले माया मोह त्यागी।
कहे 'दरिया' पुकारे जगत ढोल मारे, सोई जन जागे बिरह लगन लागी।।

(३)

यह सब योग करते अवर।
पवन के नहिं मरम जानहिं बसत कौनि ठवर।।
पैठि गोफा पवन साधे, करे सबकी जवर।
मूल मंगल काम थाना, कहाँ वाकी पवन।।
बाँधि आसन निन्द साधे, सुरति सुषमनि मवर।
प्रकृति झालरि लागु पलकहिं, जहाँ जाकी दवर।।

योग भोग विकार गुण सब, करे वाकी गवर।
भवन भीतर बसे कामिनि, अजब बिल्ली बवर।।
प्रपंच पाँचो मेटत नाहीं, घटत काया तवर।
मंदिर एक केवाड़ बिना, दसो द्वारा लवर।।
पिपिलक और विहंगम, उड़त आपनी ठवर।
कहें 'दरिया' ज्ञान बिना, भयो बावरि बवर।।

(४)

त्रिवेणी त्रिकुटी भँवर गुॊ में, द्वादस उलटि चलावंता।
चक्र छव काया प्रगट है, सुषमनि सुरति जगावंता।।
अष्ट दल कमल भँवर तेहिं भीतर, उन्मुनि प्रेम लगाबंता।
जगमग ज्योति झलामलि झलके, गगन मगन झरि झावंता।
मोती मणि मुक्ताहल मगु में, सिन्धु लहरि तहाँ आवन्ता।
हंसा चुंगहिं चोच मोतिन गहि, सरवर में सुख पावंता।।
अटल धनी तहाँ मणि उजियारा, निर्भय पद को गावंता।
कहे 'दरिया' सुख सागर बासा, बहुरि न भवजल आवंता।।

(५)

योग युक्ति तेजि भोग न करिये, सोक सागर भुकतावंता।
ज्यों जल कमल लोभे मन मधुकर, घ्रानि सदा सुख पावंता।।
चन्द चकोर चुभुकि चित लागे, दृष्टि में दृष्टि लगावंता।
चातृक प्रीति स्वाति के जल, औ सखर नहिं भावंता।।
ज्यों मृग नाद सुने श्रवण से, सर्वस प्रान चढ़ावंता।
पिया से प्रीति करे सुहागिनी, अनल में तनहिं जरावंता।।
सूरा सनमुख मुख नहिं फेरे, ज्यों खाड़ी झरि झावंता।
कहे 'दरिया' कोई संत सिपाही, ज्ञान घोड़ा चढ़ि आवंता।।

(६)

गुरू दिन्हों चिनगी बार पलिता, चकमक चित करू चेतनियाँ।
ज्यों ज्यों झारे त्यों-त्यों जागे, झारि झपटि रहु उन्मुनियाँ।।
लागी ताड़ी गगन बीच डोरी, जरगुण सत्वगुण तमगुण तीन तनियाँ।
उलठि द्वादस जोह सोहं कोहं कह कह सो सुनियाँ।।
जलज कमल दल मधुकर बासा, अजब तमासा है मुनियाँ।
अमृत सागर संशय भागर, रस की पागि सो चुनियाँ।।

काया कर्म यह भस्म कर, ब्रह्म अगिनि में सोहुनियाँ।
कहे 'दरिया' करू दर्शन परसन, तरक किया जिन्हिं यह दुनियाँ।।

(७)

ऐसो योगी योग युक्ति जानहिं, भजहिं निर्मल ज्ञान।
सुनत ध्वनि उन्मुनि पलटे, विमल ब्रह्म अमान।।
जाप अजपा जपहु ज्ञानी, सुरति सुषमनि तान।
इंगला पिंगला दोनों नाड़ी, रहत एक ठेकान।।
बंकनाल तहाँ षोड़स कमल, भँवर बास अमान।
चुवत अमि ज्योति जगमग, भँवर बास अमान।
चुवत अमि ज्योति जगमग, भँवर गोफा ध्यान।।
अर्ध-उर्ध गगन गरजत, बुन्द सिन्धु समान।
झरत झरि तहाँ अगम निर्मल, परम पद निर्वान।।
खूले मूल सुबास परिमल, दिव्य दृष्टि एकान।
कहें 'दरिया' भेद जानु सतगुरू, दूजा कोई न आन।।

(८)

संतो सीप्ति कहाँ तक कीजे।
गुंगा होय गुंगा सो बूझे, सोई अमि रस पीजे।।
सोई चन्द सूर्य है अम्बुज, सोई उन्मनि फूला।
सोई अजपा दर्शन देखो, दर्पण दरसे मूला।।
सोई त्रिकुटी भँवर गुा है, सहस्र पंखुरी लागा।
सोइ इंगला पिंगला कहिये, सोई सुषमना जागा।।
सोई छव चक्र काया प्रगट है, योगी खोजि खोजि हारे।
सोइ नवो नाटिका कहिए, दसवें काम पुकारे।।
प्रेम पत्र अमि जहाँ चूभे, षटरस बीजना चाखे।
का भव वेद कथे बहु बानी, जब तक साँच न भाषे।।
जल में डार फूल हे बाहर, मन मधुकर जहं बासा।
कहें 'दरिया' विरला गमि पावे, पहुँचे "पुरूष" के पासा।।

(६)

ऐसो रावल योगी भाई।
सार शब्द बुझो सभ हंसा, कहे सुने बनि आई।।
योगी के घर योग नहीं है, योगिनि के घर भाता।
चीबा के किछु पात नहीं है, मृगा चुनि चुनि खाता।।

(१०)

एही विधि रमें अकेला योगी।
सिद्ध हुआ तब साधक खोजे, दुःख सुख ब्यापे न रोगी।।
आसन बासन पासे राखे, झोरि झारंग साफा।
जग में डोले आपुहिं बोले, कतल करे सभ काफा।।
दस बीस घुँघर बाँधे कोइ, झून-झून बाजन लागा।
तोरते तोरते एक रहा तब, विषि तेजि अमृत पागा।।
वासर सोवे रैनि में जागे, चोर मूसे नहिं गोटी।
ताला कुंजी लागु केवाड़ा, कसि के बाँधु लँगोटी।।
जहाँ बैठे तहाँ सिंह ठवनि होय, चले सुरति के साथा।
मस्त हुआ तब रस्त छूटा है, ज्ञान गुरू गहि हाथा।।
मुक्ति जाने तो मुक्ति सदा है, जब चाहे तब पावे।
कहे 'दरिया' कोई वलि फकीरा, रण जीते सो जावे।।

(११)

है कोई योगी जग में युक्ता।
पांजी देखि बाजीगर चिन्हे, बिनु चिन्हें नहिं मुक्ता।।
पहिले चिन्हे काया गढ़ भीतर, को मौनी को वक्ता।
तब चिन्हे दसो दरवाजा, चिन्हि परा तब भक्ता।।
द्वार बंद कर कसे कमाने, तीर अचूक न होई।
चढ़ि मैदान खोवे ममिता के, वा मद पीवे सोई।।
सुरति साँगि अव ज्ञान घोड़े पर, मंद कबहिं नहिं होई।
चाबुक चारू चटाक है सुन्दर, लाँघि परा भव सोई।।
भया हजूरी निकट दूरि नहिं, विकट कबहिं नहिं जावे।
सोवत जागत नाम धनी का, एहि विधि पद कहाँ पावे।।
मगु में मगन आनन्द सदा हैं, मंद कबहिं नहिं होई।
कहें 'दरिया' कोई बली फकीरा, जिन्हिं दुर्मति कहँ खोई।।

(१२)

20:15

(१२)

योगी तेजु हठ निग्रह योग।
ज्ञान भक्ति बिचार देखो, मीन मांस न भोग।।
पीयत बारून बूड़न चाहत, विषम सागर सोय।
कहर है दरियाव आगें, बहुरि चलिहो रोय।।

सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम

सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम

नयन तो दुर्बिन करि ले, चिन्ह देवता प्रेत।
खण्ड खण्ड ब्रह्मांड जेते, सर्व स्वर्ग है स्वेत।।
ज्ञान अंकुश हाँथ करि मन, जंजीर जकरे बाँधि।
हंस की गति निर्मल दासा, मान सरवर खानि।
चोंच खोले जहाँ मुक्ता, नीर क्षीरहिं छान।।
युक्ति जाने मुक्त सोई, भुक्ति सदा साथ।
देखि 'दरिया' दया कीजै, परखु हीरा हाथ।।

(१३)

योगी तौला तखनी पूर।
चारि मुन्द्र निन्द चारो, हरफ है ममूर।।
मेरू एके डंड एके, खम्भ है दोय रूप।
अजपा में अजब देखो, बैठु गोफा चूप।।
वायें के तुम उलटि पेखो, बीर बाँके बाँधि।
सपने नहिं वीर्य झरते, निन्द के तुम साधि।।
खाक ते यह पाक हुआ, नूर झलके फूल।
फूल फूले भँवर भूले, शब्द है समतूल।।
तेजि गोफा बाहर खेले, जैसे रण महँ सूर।
हद में बेहद देखो, जहाँ बाजत तूर।।
नहिं वोय जोगी नहिं वोय भोगी, भेष नहिं भगवान।
कहें 'दरिया' दरस देखो, पुरूष हें अमान।।

(१४)

संतो योगी ज्ञान बिचारे।
अपने उलटि आपु में देखे, ऐसी सुरति सुधारे।।
वेद पढ़ि ते पंडित बूझे, काया परिचय सोधे।
पाँच तत्व का भेद बतावे, तब यह मन के बोधे।।
नव ग्रह बारह सक्रांति, कहि देव सातो बारा।
जवना घर में ग्रहण लागे, ताको करो बिचारा।।
बिनु कर पत्र कूँआ बिनु पानी, बिनु डोरी के भरिया।
ऊपर मूल साखा है नीचे, कवन युक्ति से ढरिया।।
कहें 'दरिया' सतगुरू की महिमा, युग युग संत है सोई।
ऐसा बचन अपेल ना करिये, बुझो मुनिवर लोई।।

सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम सतनाम

(१५)

योगी मोसे पुछहु आई।
जो तुम्हारे घर ज्ञान नहीं है, झूठे योग कमाई।।
मन की युक्ति काम नहिं आवे, उल्टा पल्टा जोरे।
बिनु कनहरिया नाव न चलिहें, औघट ले के बोरे।।
पाँच तत्व का भेद बतावों, जल थर अग्नि आकाशा।
काया परिचय सोधि देखावों, तब तुम होइ हो दासा।।
सुषमनि नाड़ी भेद बताओं, कहों अमि का घाट।
ऊपर मूल साखा है नीचे, ताकर कहि देव वाट।।
कहें 'दरिया' यह योग युक्ति है, सतगुरू भेद बताया।
सूई अग्र द्वार जहवाँ है, तहवाँ सुरति समया।।

(१६)

है कोई योगी यह मत पावे।
प्रेम पीवे वलि मस्त कहावे।।
मेरू डंड आसन के साधे, पाँच भुजंगम विषि धर राधे।
गगन मंडल बीच आसिक यारा, योग न जाय तेरी युक्ति पियारा।।
मन गयंद ज्ञान के अंकुश, युक्ति जंजीर लगावे।
नाम अमल ते भै मतवाला, झोक में झोक सो आवे।।
अगम पंथ पगु धीरे-धीरे, ज्ञान रतन लिए आवे।
काम क्रोध दुष्ट भयो हीना, जग जीते सो जावे।।
सतगुरू सनदि लखि जब आवे, सोवत जागत पावे।
कहें 'दरिया' किछु संसय नाहीं, बहुरि न भव जल आवे।।

(१७)

निर्गुण भेद लखे कोई साधो, सर्व संसय बिसरावे।
नेम धर्म षट कर्म पूजा, क्षण मँह सभे दुरावे।।
इंगला पिंगला सूर्य चन्द्रमा, मूल गगन में छावे।
देखि-देखि दर्शन मन मगन हुआ है, बिनु दीपक ज्याति बरावे।
जपु माली माला नहिं डारे, पल-पल अमि दुहावे।
तैं मैं मेटि गया मद ममिता, दोविधा दूरि बोहावे।।
गुरू के वचन राखो सिर ताजे, राजित अनुभव गावे।
अनहद मुरली किन्नर बाजे, बेहद मता बतावे।।

(१७)

निर्गुण भेद लखे कोई साधो, सर्व संसय बिसरावे।
नेम धर्म षट कर्म पूजा, क्षण मँह सभे दुरावे।।
इंगला पिंगला सूर्य चन्द्रमा, मूल गगन में छावे।
देखि-देखि दर्शन मन मगन हुआ है, बिनु दीपक ज्याति बरावे।
जपु माली माला नहिं डारे, पल-पल अमि दुहावे।
तैं मैं मेटि गया मद ममिता, दोविधा दूरि बोहावे।।
गुरू के वचन राखो सिर ताजे, राजित अनुभव गावे।
अनहद मुरली किन्नर बाजे, बेहद मता बतावे।।

अखण्डित ब्रह्म पंडित सो ज्ञाता, सोहं सुरति समावे।
ज्ञान रतन लिए डोलता फिरता, अचल मुक्ति सो पावे।।
ज्ञानी ज्ञाता सतगुरू खोजो, निरखि निरंतर ध्यावे।
कहें 'दरिया' दधी मथे जो माखन, बास बिमल तब पावे।।

(१८)

योगीया मेरो प्रान अधार हो, आय मिले योगी रावला।
जटुवा बटुवा गेरूवा योगी, नाहिं डाले ग्रीव माल हो।।
बाल न भोला न तरूण-वृद्ध योगी, बोलत बैन रिसाल हो।
प्रेम की गाँसी मारिया योगी, निफर गया उर पार हो।।
जो रे जूझा सो तो निमरा, कोई घायल घुमरत वार हो।
गुरू न चेला न शिव शक्ति योगी, आपहिं अगम अपार हो।।
हेला न मेला न तीरथ ब्रत योगी, योगी जगत से न्यार हो।
जो आया सो तो मोहि गया, कोई संत विवेक जागि हो।।
कहें 'दरिया' सुनु योगिनि, तुह योग करू पिया लागि हो।

शब्द संत शरह

(१)

संतो यह मत वेद बिचारी।
निर्गुण कहे गुण वाके नाहीं, सब विधि सिकिलि सँवारी।।
रूप न रेख बिना मुख बोले, बिनु चक्षु दृष्टि पसारी।
बिनु करताल बिना पगु धावे, यह मन की अनुहारी।।
पुरूष नहीं तब नरि कहाँ ते, त्रिदेवा अधिकारी।
वह गुण रहित तो यह गुण कैसे, पाँच तत्व उजियारी।।
येही मता जगत सब माँते, योगी यती सभ झारी।
आवत जात परे भव चक्र में, चढ़ी चरख पर हारी।
वह तो अजर जरे नहिं कबहीं, ऐसो काया करारी।
सत स्वरूप अमरपुर बासी, जल थल दृष्टि पसारी।।
संशय सागर सो नहिं परिहें, जिन्हिं निजु निरखि निहारी।
कहें 'दरिया' सतगुरू गुण ज्ञाता, वा गुरू की बलिहारी।।

(२)

20:17

संतो लाल फूल बिस्वासी।
सेमर सेई सुगना पछताना, सोई तीर्थ है काशी।।
जाके फंद अनंत वाण है, पाहन परसि उपासी ।
ऊपर योग भीतर दहु कैसा, तपसी औ सन्यासी।।
मन नहिं अटके तन नहिं छटके, घट में शक्ति निवासी।
टक-टक मौनी महा सिद्ध है, कठिन कर्म की फाँसी।।
बनिता बनी बनारस की यह, नयन बान सर गाँसी।
भेष अलेष घायल सभ घुर्महिं, नयन लगी नव लासी।।
ममिता बेइलि लता लपटाना, भटकि परा चौरासी।।
सरबस हरहीं सोक नहिं हरहीं, गृहि तेजि होहिं उदासी।
कहें 'दरिया' नहिं इतते उत है, अगिली पछिली नासी।।

(३)

संतो युहु अमर घर जइये।
तन मन वारि चढ़ो श्रद्धा से, सो फल अमृत पइये।।
नारि पुरूष स्वाद बिसरावे, सतगुरू शब्द समइये।
काम क्रोध मद लोभ त्रिष्णा, यह सभ मैलि छोड़इये।।
बंकनाल उलटि अजपा करू, गगन गोफा घर छइये।
अर्ध उर्ध सोहं सुरति, दिव्य दृष्टि में दृष्टि लगइये।।
स्वेत घटा घन मोती झरी है, निर्मल ज्योति बरइये।
पुरण ब्रह्म पुनीत उदित भै, बहुरि न भव जल अइये।।
तहाँ सुख राज बिलास पुहुप पर, अमृत पोषन पइये।
कहें 'दरिया' दया सतगुरू को पास "पुरूष" के रहिये।।

(४)

संत मत जनि जानहु ऐसा।
कंद्रप उलटि टीका ब्रहमंडे, ज्योति प्रकाशे तैसा।।
मन गयन्द ज्ञान के अंकुश, युक्ति जंजीर लगावे।
सिंह ठवनि यह बोले ठनकि के, रण जीते सो जावे।।
राव रंक वीर होय बाँके, कड़ी कमान चढ़ावे।
लड़े लड़ाकू लाखन महँ एका, तीर अचूक चलावे।।
झरे अमि यह पीवे प्रेम रस, मलक बीते भरि आवे।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

सुन्य ही के सभ ध्यान धरतु है, पढ़ि पंडित औ काजी।
कहे 'दरिया' संत शब्द बिचारो नाहिं तो काल के बाजी।।

(९)

है कोई संत विवेकी शब्द बिचारा।
नाम अमल ते भै मतवाला, प्रेम पीवे तसो प्यारा।।
अर्ध उर्ध के मध्य मानिक है, करे दृष्टिअ उजियारा।
बंकनाल नाभी मे लागा, भँवर गुफा की राह सुधारा।।
खिंचरी भोंचरी चँचरी अगोचरी, उन्मुनि मुंद्रा धारा।
सरिता तीन मिलि एक संगम, सुघट भरि भरि सारा।।
निरा आलम्ब निर्बान मई है, निरबिकार निरधार।

बरे मणि अमि झरे चहुँओर, पीवे प्रेम रस सारा।।
अनहद ताल पखाऊज किन्नर, स्रोता सुमति बिचारा।
झिन-झिन जंतर तहँवा बाजे, यम जालिम पचि हारा।।
सोवत जागत उठत बैठत, टूटे कबहिं नहिं तारा।
कहे 'दरिया' कोई संत विवेकी, निर्भय लोक सिधारा।।

(१०)

संतो देखो ज्ञान बिचारी।
आप स्वारथ सीा कहँ मीठा, परमारथ है भारी।।
पंडित ज्ञाता पोथी पढ़ि पढ़ि, मागहिं हाँथ पसारी।
सर्वस लेई मंदिर में डारहिं, कर्म काण्ड विस्तारी।।
काजी मौलाना पढ़े कोराना, करि ततबीर सँवारी।
करी मुरीद दिल दर्द न जाना, नाहक गाय पछारी।।
बड़े ब्राह्मण काँध जनेऊ, अजया सूत कहँ मारी।
आनि सगौती भरि पेट खाया, उन्ह बैकुन्ठ बिसारी।।
करि बैराग तिलक औ माला, एता भेष भिखारी।
जटा बढ़ाय बाघम्बर ओढ़े, उन्ह भी बात बिगारी।।
माथ मुड़ाय घोटावहिं नीके, ग्रीहि त्यागे औ नारी।
मन के कारण डम्भ ना छूटे, बोझ लिए सिर भारी।।
तपसी मौनी दुधाहारी, ऐहु कल्पना कारी।
पाखण्ड छूटे न मिले गोपाला, जन्म जूआ जग हारी।।
बूड़े भेष अलेष स्वांग धरी, बिरला सके सम्भारी।
कहें 'दरिया' कोई ज्ञान सुधारे, सतगुरू गमि बिचारी।।

(११)

20:19

(८)

धन्य सतगुरू जिन्हिं अलख लखाई।
सो मम मनसा ध्यान लगाई।।
उल्टा पवन चढ़ा ब्रह्मंडे, अनहद ध्वनि सुनि मोहे।

पाँच पचीस मिलि गोहन लागे, पाप जूदा होय रोहे।।
उल्टा बुंद चूवे अमृत को, हंसा सो मुख जोहै।
मूल फूल सींचेव नव नाड़ी, माली के घर सोहै।।
तिल भर चौकी दने दरवाजा, चित्रगुप्त में वो है।
कहें 'दरिया' प्रेम प्रगट देखो, ऐसा पंडित को है।

शब्द अहैत शरह

(१)

साधो ! ऐसा ज्ञान सुधारा।
पीयत प्रेम सुधा रस बानी, सुरति बाँधि महि सिरा।
आवत जात दिसे पल माहीं, कनक पात्र में हीरा।।
यह तो दृष्टि अगम के धावे, वह तो पुरूष निनारा।
वह त्रिगुन ते रहित अचल है, पार ब्रह्म है न्यारा।।
है वह श्वेत फिटिक निर्वाना, उन्मुनि दीसे तारा।
श्वेत घटा घन मोती झलके, बिना दीप उजियारा।।
हे वह अकह कहबे योग नाहिं, कहि कवि कथा पसारा।
कहें 'दरिया' गुरू ज्ञान पलीता, चमकम चित गहि झारा।।

(२)

जो सत शब्दहिं करे बिचारा।
औ बहु शब्द कहा साखिन में, निर्गुण सगुण बिस्तारा।।
यह रूप देखो वह रूप देखो, दिव्य दृष्टि उजियारा।
चाँद सूर्य दोऊ दीदम देखो, अद्भुत कला पसारा।।
पीन्ड ब्रह्मंड एक करू मेला, अविगति आपु निनारा।
दर्पन टूक-टूक में टक-टक, पट खोले भव पारा।।
शिव शक्ति भये गेंठि बंधन, युगल कोई नहिं मारा।
नर अकेला होय रहा तब, पल-पल घाव सम्भारा।।
वह जामा ते यह जामा है, शक्ति कहे तीन बारा।
भूले वाट चली भयो अवघट, मानहु बचन हमारा।।
एक श्रवण सुना एक देखि परा, अदेख सोई अँधियारा।
कहें 'दरिया' जन मिले जौहारी, परखि लीजै तत्व सारा।।

(३)

साधो ! गति में अनहद बाजे।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

भव के बीच कबहिं नहिं बुड़िहो, 'दरिया' कहें पुकारी।।

(२)

पंडित घट-घट बोलनिहारा।
अनबोले से कैसे बनिहें, शब्दहिं करो विचारा।।
पाहन काटि मुरति जो किन्हों, को तुम काटनि हारा।
हाथ पाँव तुम सभे बनाया, बोलता बिना नकारा।।
तासो विनय करो कर जोरे, तुम मेरो करतारा।
वोय मौनी तुम बोलनिहारा, भलि मति गई तुम्हारा।।
अजया सुत चढ़ावहु तापर, रक्षा करहु हमारा।
पर सुत मारि पुत्र के कारन, करम चढ़ा सिर भारा।।
जीव मारन के धर्म कहतु हो, अधरम का संसारा।
वेद पुरान पढ़ा तुम पंडित, करि दोविधा जीव मारा।।
ऐसे बूड़ि मुवे भवसागर, फेरि पशुआ अवतारा।
कहें 'दरिया' जेहिं दया दरद नहिं, परे नर्क के धारा।।

(३)

चरि वेद बिचारू पंडित कया मद्धे सार।
काया में सार पढ़ो सास्तर, वेद महिमा इन्हते पार।।
चारि नाड़ी षोड़स दल है, चक्र छव निषेद।
पाँच मुन्द्रा जुक्ति जानहिं, जोगिया निजु भेद।।
महा मुन्द्रा सुन में जहाँ, सुरति सुषमनि घाट।
सहश्र दल के खुलेव, जहाँ मुक्ति को निजु बाट।।
सेंधु सरगे जोति जगमग, उदित भये चंद।
कहें 'दरिया' भेद एतना, करम काल निकंद।।

(४)

पंडित बूझो शब्द बिचारं।
आवे जाय खपे सो दूजा, माया को बिस्तारं।।
मोय दशरथ के कुल नहिं अवतरिया, नहिं सीता पति प्यारं।
बावन रूप नहिं बलि के छरेव, नहिं हरिनाकुश फारं।।
जल परवान कबहीं नहिं बाँधिया, नहिं लंका को जारं।
कौन बुड़ा कहु काके तरिया, कवन भया भव पारं।।
नहिं गोपिन के नाँच नचायो, नहिं मुरली मुख धारं।

पंडित तेजहु बाद विवादं।
खोजु सजीवन जो जग मूलं, सोई सदा सुख नादं।।
त्रिवेणी के मध्ये त्रिकुटी जो कहिये, त्रिकुटी के मध्ये मूलं।
मूल के मध्ये फूल जो कहिये, तहाँ भँवर स्थूलं।।
गगन के मध्ये मगन जो कहिये, मगन के मध्ये ईशं।
ईश के मध्ये मोती झलके, मोती के मध्ये दीशं।।
ज्ञान के मध्ये ब्रह्म जो कहिये, ब्रह्म के मध्ये चितं।
चित के मध्ये प्रीति समानी, मेटि गौ गीत कबितं।।
अर्ध के मध्ये उर्ध जो कहिये, उर्ध के मध्ये साधं।
साध के मध्ये सिद्ध जो कहिये, तहाँ पवन पति राधं।।
अखण्डित ब्रह्म पंडित सो ज्ञाता, जो जाने यह भेदं।
सोरह शक्ति समानी तन में, 'दरिया' ज्ञान निषेदं।।

(२१)

वेद पढ़े का गुन पंडित।
एके ब्रह्म सकल घट भाषत, अब कहिये किमि खंडित।।
ब्राह्मण क्षत्रीय वैसय सूद्र सभन्हि, हिन्दु तुर्क किमि कहिए।
मिट्टी एक नाना बिधि बासन, एक जिमि पर रहिये।।
एक जल पुरइनि है एके, एके पाँवरि बहु भाँती।
एके कँवल भँवर है एके, को महि जाति अजाती।।
अस्ति एक मेद है एके, एके त्वचा तीनि गुन लागा।
एक रंग रूधिर है एके, एके आतम जागा।।
एक भूख प्यास है एके, एके दुःख सुख व्यापा।
एके दया धर्म है एके, एके पुन्य औ पापा।।
एके कलम कागज है एके, एके कोरान पुराना।
कहें 'दरिया' जब दोबिधा तेजिहो, तब प्रभू के मनमाना।।

(२२)

पंडत छीर दुनों है मीठा।
गाय महिषी बीच कछु नहीं, महा पदारथ दीठा।।
एके चाम रूधिर है एके, दूनों त्रेन अहारी।
यम शासन यह आगे होगा, कहि कहि बात बिगारी।।
गाय के कैसे हत्या भै गौ, भइसि के कहे अनिथ्या।

प्रेम प्रीति करि येहि ब्रत निति, ज्ञान बिना दुःख दारूण दिन्हेवो।
कहें 'दरिया' दर छेकेव काल नें, लाल बिसारि हारि पंगु दिन्हेवो।

(२)

गुरू बिनु ज्ञान दीप बिनु मंदिर दया दरश बिनु मिलहिं ना संजन।
भाव बिनु भक्ति प्रेम बिनु ज्ञानी, जल बिनु तृषा भूख बिनु भोजन।
जल बिनु पदुम घ्राणि बिनु चम्पा, विद्या चतुर घोड़ बिनु तंजन।
हंस बिनु सरोवर सभा पंड़ित बिनु, बिना तेग दुर्जन दल भंजन।
गुण बिनु धनुष प्रात बिनु दान, पिया बिनु सेज लोचन बिनु अंजन।
'दरिया' दरश योग बिनु जागे, भोग पान प्रीति पंथ नाम निजु मंजन।

(३)

गिरि बिनु वृक्ष, वृक्ष बिनु चन्दन, काया बिनु चरचित पिया बिनु भुलेवो।
सूर्य बिनु किरण, किरण बिनु कला, बिना कर्म कर्ता कहिं तुलेयो।
चुम्बक बिनु लोहा, लोहा बिनु चुम्बक, चलि भौ पन्थ नयन बिनु भुलेवो।
दुःख बिनु सुख, सुख बिनु सम्पति, सत्संगति बिनु मेटेबो न सुलेवो।
जड़ बिनु डार, डार बिनु पल्लव, पात बिनु फूल, फूल बिनु फलेवो।
कहें 'दरिया' दर्शन बिनु देखे, दर्पण हाथ शिकिल बिनु भुलेवो।

(४)

ज्ञान न गुरू गोपाल लाल भजु, भर्म बिकार तीर्थ करि भुलेवो।
चन्द मन्द शूर ग्रहण ग्रासेवो, दिन मणि बिना कमल कहाँ फुलेवो।
मुद्रा चारि चतुर दल तहवाँ, उनमुनी गगन मगन नहिं मिलेवो।
त्रिकुटी तीनसंगम तहाँ सरिता, मिलेवो ना प्रेम पर्वत धरि खिलेवो।
शिखर सुखमना चढ़ेवो मीन जीव मन फिरंग करि काल न हिलोवो।
कहें 'दरिया' सब भेष भक्ति करि संत पंथ बिनु डगमग ढिलेवो।

(५)

जब उगेवो सूर तब चन्द मन्द भव, चका चकई चित एक घर मिलेवो।
छूटि गौ त्रिमिरि तम सब नाशो, उड़िगन गगन कहाँ दल खिलेवो।
छायो छवि सब कंज पुंज पर अलि मन मगन तबे दल फुलेवो।
निशाचर चुप चतुर चित्त, ज्ञाता, पंछी प्रेम अमृत मुख खुलेवो।
एहि विधि योग भोग जग सालेवो, सरिता सुखेवो मीन जीव भुलेवो।
कहें 'दरिया' जग राज काज में, बाँझ छुअेवो बटेवो बटई जीव हुलेवो।

(६)

तप बिनु दान योग बिनु ज्ञानी, पिया बिनु भूषण मान किमि कीजै।

चौपाई

यम जालिम जग करे बेकारा। पाखंड धर्म करे संसारा।३४।
जब निजु भेद पावे जन कोई। ताहि देखि चले यम रोई।३५।
चौदह चौकी यम के होई। बिनु सतगुरू नहिं पहुंचे कोई।३६।
चौदह मंत्र भेद जो पावे। जाय छप लोक बहुरि नहिं आवें।३७।
तांमह सार शब्द है एका। ताहि जानहु निज काया बिलोका।३८।
काया परिचै निजु कहों बुझाई। गुरु-गमि ज्ञान बुझो चितलाई।३९।
अष्ट दल कमल रंग है सोई। मध्य बीच तेहि बसता होई।४०।

छव चक्र तहं मनि उजियारा। अझर झरे तहं जोति निजुसारा।४२।
छव चक्र तहं परिचै पावे। मूल चक्र दृढ़ आसन लावे।४३।
पाँच तत्व तहं देखु विशेषा। पल-पल करहिं अनुपम भेषा।४४।
तामह निरति सुरति की बानी। तामे निरखु माया की खानी।४५।
पचीस प्रकृति तहं निरति कराई। दशवें द्वार रहे वोय जाई।४६।
मूल शब्द मणि मानिक देखा। निरति करें तहं ताल विशेषा।४७।
पचीस प्रकृति के भेद कहि दीजे। होय गुरू ज्ञान बुझि यह लीजै।४८।
पचीसो के यह कथा सुनाई। तामे सार पवन हे भाई।४९।
इँगला पिंगला सुखमनि नारी। सार पौन तंह करे पुकारी।५०।
वोही पवन षट चक्रहिं छेदा। होय गुरू ज्ञान बुझो यह भेदा।५१।
ता त्रिकुटी महं रहा समाई। तहवां काल सके नहिं जाई।५२।
अजपा जपे सूर चन्द ज्ञानी। दरिया गगन वरीषे पानी।५३।
अमृत बुन्द तहां झरि लावे। पियत हंस अमर पद पावे।५४।

साखी - ५

अमी तत्व घर अमृत पीवे, देखो सुरति लगाय।
कहत सुनत किमि बनि परे, जौं गति काहु लखाय।।

चौपाई

नाम बाण जब हृदये लागा। निफरि निरन्तर सूरति जागा।५५।
कोटि तीर्थ तहं जल परगासा। कोटि इन्द्र मेघ घन बासा।५६।
कोटिन तेज जोति परगासा। कोटिन पंडित वेद नेवासा।५७।

छन्द - २

कोटि ज्ञानी ज्ञान गावहिं, शब्द बिना नहिं बाचहीं।
शब्द सजीवन मूल ऐनक, अजपा दर्श देखावहीं।।
सत शब्द सन्तोष धरि धरि, प्रेम मंगल गावहीं।
मिलहीं सतगुरू शब्द पावहिं, फेरि नहिं भव जल आवहीं।।

सोरठा - २

ज्ञान रतन की खानि, मनि मानिक दीपक बरे।
शब्द सजीवनि जानि, अमरपुर अमृत पिवे।।

चौपाई

एक पवन जब गगन समाई, पियत प्रेम अमर होय जाई।५८।
सत साहब दरियहि समुझाई, जाय छपलोक बहुरि नहिं आई।५९।

प्रेम प्याला पिवे जन कोई, बिना शीश का चीन्हे सोई।६०।
सकल जीवन कह खाय चोराई, जिन नहिं नाम परम पद पाई।६१

साखी - ११

अष्ट दल कमल भंवर तहं गूंजे, देखहु शब्द विचारि।
कहें दरिया चित चेतहू, देहु भर्म सब डारि।।

चौपाई

मूल शब्द ध्वनि होत अंजोरा। सुरति साधि राखे एक ठौरा।१६५।
सुरति डोरी चेतो चित लाई। मूल शब्द की यही उपाई।१६६।
सूर चन्द एक घर आवे। तबहीं डोरी ले बिलमावे।१६७।
मूल शब्द ध्वनि होत उचारा। तहवाँ जाई करो पैसारा।१६८।
अकह कमल के ऊपर मूला। सहस्र कमल तहवां रहु फूला।१६९।
परिमल उग्र वास तहं आवे। हंसा पियत बहुत सुख पावे।१७०।
होय दास सतगुरू के पासा। सेवा भक्ति प्रेम परगासा।१७१।
मैं तो साहब तुम कंह जाना। मेरो मन तुमसे मन माना।१७२।
भर्म छुटे सो करो उपाई। जाहि से हंस छपलोकहिं जाई।१७३।
सुरति लगाई के करो सम्हारा कुल कर्म छोड़ो ब्यौहारा।१७४।
जो सत शब्दहिं करे विचारा। सो हंसा भव सिन्धु उबारा।१७५।
अकह बात कहि नहीं जाई। अगम गमि तहं सुरति लगाई।१७६।

छन्द - ५

आगे मार्ग झीन अति है, शब्द सुरति विचारहीं।
अजर जोति अनूप बानी, देखि तहां सुख पावहीं।।
अगम गमि तहं ज्योति झलाझलि, नेकु मन ठहरावहीं।
सत सुकृत के सीढ़ी पगु दे, अमृत फल तंह चाखहीं।।

सोरठा - ५

अजरा ज्योति बराय, मूल शब्द निजु सार है।
गहो सुरति चितलाय, कहें दरिया भव रहित है।।

चौपाई

अगम सुरति चेतहु चित लाई। सुरति कमल रहु सुरति लगाई।१७७।
चकमक चित चुभुकि जब लागे। निर्मल जोति प्रेम तहं जागे।१७८।
गहिर ज्ञान निजु करे बिचारा। झलके पदूम होय उजियारा।१७९।
अगम कथा बहुते हम कहिया। धरती अकाश रचित यह जहिया।१८०।

जग में आय कहेव सत बाता। प्रेम युक्ति बिरला जन राता।१८१।
बीरा देई तब हंस मुक्ताई। मूल शब्द बिरला कोई पाई।१८२।
यह बीरा पाय सत्त जो गहई। सो हंसा भव सागर तरई।१८३।
निजु गहि सुरति लगावहु भाई। सोऽहं ठीका मांह समाई।१८४।
ठीका आगे है गा मूला। प्रेम शब्द जहवां स्थूला।१८५।
स्वेत ध्वजा निसिदिन फहराई। अमृत झरि तहं बहुत सोहाई।१८६।
हीरा मानिक है परगासा। शंखानि मनि रहे चहुँ पासा।१८७।
ऐसो निजु है लोक नेवासा। झरे गुलाब मुख अमृत बासा।१८८।
अमी तत्व सुरति लव लावे। सहजे लोक पयाना पावे।१८९।
शीतल शब्द निजु प्रेम बढ़ावे। सन्त साधु का सेवा लावे।१९०।
चोर साहु चिन्हे चितलाई। ताहि से प्रेम करब कछु भाई।१९१।
गुंगा गहिरा ज्ञान बिचारा। दिव्य दृष्टि का करो अनुसारा।१९२।

सांखी - १२

ज्ञान काहु के नावे न माथा। जो जन बूझे सो होय सनाथा।३०५।
सर्व ज्ञान बखानो तोहीं। एकर अर्थ सुनावहु मोहीं।३०६।
बंक नाल कौने घर बासा। कौन पवन जोति परगासा।३०७।
छह चक्र के कहिये भेदा। अष्ट दल कमल के करहु निखेधा।३०८।
सार पवन के कहिये भेदा। कौन पवन षट चक्रहिं छेदा।३०९।
अष्ट दल कमल रंग है भीना। तामे कौन सुरति लवलीना।३१०।
कहवां बोलता प्रेम अधारा। कौन शब्द ते हंस उबारा।३११।
एकर भेद कहो तुम आई। कहें दरिया करू योग दृढ़ाई।३१२।
एकर भेद नहीं तुम जाना। पंडित पढ़ि के वेद पुराना।३१३।
एकर भेद पूछहु तुम मोंही। एकर अर्थ सुनावों तोंही।३१४।

साखी - २३

कौन घरा वोय हंस है, कौन घरा वोय नाम।
कौन घरा वोय जोति है, कौन सुरती निजु धाम।।
अग्र घरा वोय हंस है, मनि मुक्तावलि नाम।
अजर अनुपम जोति है, कमल सुरति निजु धाम।।

चौपाई

पंडित नाम अजहूं नहिं चिन्हा। सुरति लगाय रहे लौ लिन्हा।३१५।
चिन्हहु पंडित शब्द निर्वाना। निर्गुण नाहीं चिन्हहू अज्ञाना।३१६।
मूल चक्र निजु हीरा खानी। अष्टदल कमल रहु निर्मल बानी।३१७।
छप लोक सत वोय ज्ञानी। जगमग जोति तहां निरमल बानी।३१८।
मुक्ति पदारथ सतगुरू दाता। योग बिराग प्रेम रस माता।३१९।
काया अग्र दृष्टि स्थाना। अगम निगम खाबरि जो जाना।३२०।
बाके योगी जगत बखाना। जाके गगन मंडल स्थाना।३२१।
मनही में माला प्रेम रस भिन्हा। पंडित सो जो शब्दहिं चिन्हा।३२२।
सतगुरू बिना करहिं जीव हानी। कहें दरिया तेजु चतुर सयानी।३२३।
सतगुरू की गति अगम अपारा। खोजि देखहु शब्द निजु सारा।३२४।

साखी - २४

ज्ञान सम्पूरण प्रेम रस, बिबरन करो विचारि।
हंस बंस सुख पावहिं, भव जल जाहि न हारि।।

चौपाई

छह आठ के पावे भेदा। तब निजु करिहें शब्द निखोदा।३२५।
निरंजन चीन्हि करहिं सुख चैना। बिनु चीन्हें नहिं शीतल बैना।३२६।
चीन्हहु वेद कहां ते आया। आदि चीन्हहु प्रेम पद पाया।३२७।
कहां ते जोति निरंजन राई। जे रचा तेहिं चीन्हहु भाई।३२८।
समुझि परिहें शब्द निजु सारा। मिला ज्ञान होय निस्तारा।३२९।
झूठ कहन सभे हितकारी। साच कहत नर पारे गारी।३३०।

07:09

साखी - ३३

छप लोक वोय अजर हहिं, जिन्दा कहा बुझाय।
धोखा धन्धा त्यागि के, शहर अमरपुर जाय।।

चौपाई

मेरो कहा माने नहिं कोई। आवत जात बहुत दुख होई।३८४।
दुख दारूण है यम जंजाला। सतगुरू शब्द करे प्रतिपाला।३८५।
जिन जिन मानु शब्द निजु सारा। दिव्य दृष्टि भई उजियारा।३८६।
सत शब्द शिष्य जो पावे। वीरा दे तब दर्श देखावे।३८७।
जन्म जन्म के पाप कटाई। जाय छप लोक बहुरि नहिं आई।३८८।
पचीस प्रकृति और तीनों नारी। पांच तत्व है आतम धारी।३८९।
योग जाप युक्ति प्रधाना। कौन धरा जहं हंस स्थाना।३९०।
योगी सो जो करे बखाना। कौन धरा जहं उपजे ज्ञाना।३९१।
कौन धरा जहं पीवे पानी। कौन धरा जहं सुरति समानी।३९२।
कहवां पचीस प्रकृति के डेरा। कहवां पांचो भूत निमेरा।३९३।
पाप पुन्य भोग कहं करई। कौन धरा जहं शून्यहि रहई।३९४।
उन्मुनि मूल कमल रहु फूला। उपजे प्रेम होय स्थूला।३९५।
गुप्तचर में प्राण समाना। त्रिकुटी शुन्य पवन स्थाना।३९६।
अमी तत्व तहं पीवे पानी। कमल नाल तहां सुरती समानी।३९७।
इन्द्री काम भोग यह करई। नासा बास आपु सब हरई।३९८।
सो योगी यह जग में राधे। पवन साधि जो मन के बांधे।३९९।
आलस निन्द्रा बसि सब करई। सोग सन्ताप आपु सब हरई।४००।
आलस निन्द्रा कबहिं न राता। काम बिन्द कबहिं नहिं पाता।४०१।

साखी - ३४

जोगिया सो जोगहीं मातल, माते भेद बिचारी।
पांच तत्व अपने बस करे, दुरमती सभ दुरीडारी।।

चौपाई

घर में आवे सिरजनि हारा। अमर होय पावे कर्तारा।४०२।
ऐसन योगी होखे कोई। गोरखा तुल्य यह गनिये सोई।४०३।
जब लगि योग तब लगि सुख पावे। काया पतन बहुत दुःख दावे।४०४।
ज्ञान मत है सबते भीना। पुरूष नाम निजु हृदये चीन्हा।४०५।
जग में योगी जटा धारी। नाच नचावे दोजक भारी।४०६।
भक्ति ज्ञान जो जाने कोई। प्रेम रूचित तब हृदये होई।४०७।
अनभो अनहद करे विचारा। सूझि परे तब उतरे पारा।४०८।
सूझे तीनि लोक ते न्यारा। पुरूष पुरान निजु नाम अधारा।४०९।
अभय लोक तहं भय के नासा। युग-युग अमर करे बेलासा।४१०।
सुरति बांधि चेतनि जो ठाने। पहुंचे सो जो मन के जाने।४११।
मूल शब्द तहं ले पहुंचावे। जो कोई सतगुरू होय लखावे।४१२।
स्वप्ने भर्म न ताके होई। पहुंचे जाय सबेरा सोई।४१३।
अभय लोक तहं भय ना होई। अमृत प्रेम पिवे सब कोई।४१४।
दिव्य दृष्टि ज्ञान लौ लावे। जाय छप लोक बहुरि नहिं आवे।४१५।
भव बूड़त अमर होय जाई। सतगुरू शब्द प्रेम पद पाई।४१६।
ताको घट सदा उजिआरा। अमर पावे सिरजनि हारा।४१७।
अमृत बचन सभनि ते बोले। प्रेम युक्ति कबहिं नहिं डोले।४१८।
झूठ कहे नर दुर्मति सोई। साच कहे आमृत रस होई।४१९।

साखी - ३५

बारह मंडल नौ खण्ड पृथ्वी, तामे शब्द निनार।
उलटि पवन षट चक्रहीं छेदे, देखहु काया विचार।।

चौपाई

चारि कमल जो परसे भाई। भोर करे पुनि सभ रस जाई।६४५।
छः चक्र के भेद है सारा। जो बूझे सतगुरु का प्यारा।६४६।
सतगुरु विना होहिं नहिं पारा। और गुरू पाखण्ड पसारा।६४७।
गुरू सोई जो शिष्य बुझावे। शिष्य सोई साहब लौ लावे।६४८।
बहुत गुरु करहिं गुरुवाई। शब्द बिना उन भेद न पाई।६४६।
शब्द पाई बलु देई दमामा। अभय निशान पाय सुख धामा६५०।

साखी - ५३-५४

अभय निशान बजाबहु सन्तो, परखहु भेद निजुसार।
यम के मान मर्दि के, जिन्दा सत करतार।५३।
दरिया सूरा सोई सराहिये, जो बूझे दिल मनि खोलि।
कायर कादर विचलि चले, ना मिला वचन अनमोल।५४।

चौपाई

बिनु मुख वचन शब्द एक बोला। बिनु पगु निरति जगत में डोला।६५१।
वोय अनहद जग लगे ताला। सूर चढ़ाय चन्द मनि माला।६५२।
यह झिंझीं यंत्र बाजे भाला। पीवे प्रेम होय मस्त मतवाला।६५३।
अजपा के यह भेद बताई। पांच तत्व तहं परगट पाई।६५४।
तत्व पाय निःतत्व में जाई। तत्व में तत्व रहा छवि छाई।६५५।
तत्व कियारी जोते किसाना। तत्वहिं गहे शब्द निर्वाना।६५६।
सतनाम परिचय नहिं पाई। सुर नर मुनि सभ चले भुलाई।६५७।

साखी - ५५

सतगुरु साहब साच है, देखो शब्द विचारी।
डोरी गहो शब्द की, तन मन डारो वारी।।

चौपाई

सतगुरु आगे तन मन दीजै। प्रेम प्रीति रस कबहिं न छीजै।६५८।
मन की ममिता सभे दूरि डारा। परखि लेहु शब्द निजु सारा।६५६।
शब्द एक मैं कहों बुझाई। जो तुम पंडित बूझो आई।६६०।
मूल बिहंगम डोरी भाई। रवि शशि पवन जो शून्य समाई।६६१।
सतगुरु शब्द तबहिं लखि आवे। मूल फूल अमृत मुख पावे।६६२।

होय निरति तब सुरति देखावे। सार शब्द तब परगट पावे।६६३।
गगन मंडल बिच सुरति संवारी। इंगला पिंगला सुखमनि नारी।६६४।
साधहु शब्द जीवन जग मुक्ता। पाप पुण्य कबहिं नहिं भुक्ता।६६५।
ऐसी युक्ति जो जाने कोई। कहे दरिया निजु योगी सोई।६६७।

कौन तत्व ले सुरति समाई। कैसे प्रेम चुवे मुख लाई।७३०।
कौन पवन गर्जे ब्रह्मण्डा। कौन काल राय कर डंडा।७३१।

साखी - ६२

सार पवन और चौदह मंत्र, लीजै ज्ञान बिचारि।
छः चक्र अष्ट दल कमल, जाल कर्म सब डारि।।

चौपाई

एक पवन सार निजु बानी। सोई भेद निरखो तुम ज्ञानी।।७३२
निरति सुरति में आवे जाई। जाते जोतिहिं जोति समाई।७३३।
दुई कर पवन सूर औ चन्दा। चढ़े गगन सब कर्म निकन्दा।७३४।
अभय नाम निजु जाने सोई। पीवे प्रेम सुधा रस वोई।७३५।
इंगला पिंगला सुखमनि फेरे। लाय कपाट गगन गहि घेरे।७३६।
छः चक्र निजु करे निमेरा। सो योगी घर पहुंचु सबेरा।७३७।
सत शब्द जो करे बखाना। स्वेत ध्वजा निश दिन फहराना।७३८।
आठवें अनुभव देखु बिचारी। आठ कमल दल भीतर बारी।७३९।
नौ नाटिका करहु निमेरा। पीवे प्रेम स्थिर घर डेरा।७४०।
दशवें द्वार रन्ध्र करू बन्दा। जहं कामिनि निति करे अनन्दा।७४१।
इगरहवें ज्ञान क्षत्र सिर धरई। पुरूष होय जग में औतरई।७४२।
बरहवें भीतर बाहर धावे। पांच तत्व तहं परिचै पावे।७४३।
तेरहवें तीन गुण ते न्यारा। सत पुरूष निजु ज्ञान बिचारा।७४४।
चौदहवें आवा गवन न होई। निकट सिंगासन पहुंचे सोई।७४५।
महिमंडल सब रचा बनाई। दीप-दीप सुगन्ध सोहाई।७४६।
चांद सूर्य नहिं मणि उजियारा। नहिं उड़गन गगन के तारा।७४७।
अक्षय वृक्ष सुख सुन्दर सोई। अजर अमर बैठे सब कोई।७४८।
तीन लोक नष्ट जब होई। ऐसा वेद कहे सब कोई।७४९।
तब यह जीव कहां रहि जाई। सो जगह मोहिं देहु देखाई।७५०।
साचो पंडित मानहु भाई। पढ़ि-पढ़ि गीता अर्थ बुझाई।७५१।
सब छोड़ो जग की चतुराई। अन्तकाल फेरि यम धरि खाई।७५२।

साखी - ६३

पंडित पढ़ि जनि भूले कोई, खोजु मुक्ति के भेव।
शास्त्र गीता ज्ञान बिचारहु, करहु यम के सेव।।

सत पुरुष वोय विमल विरोगा। प्रेम प्रीति छीजै नहिं योगा।८७९।
मनसा मालिनि आपु देखावे। कामदेव तहं मंगल गावे।८८०।
आतमदेव की दर्शे बानी। सींचहिं प्रेम सुख बहुत बखानी।८८१।
सतगुरु आगे सुख बहुतेरा। सतपद का जौं करे निमेरा।८८२।
बूझहु पंडित सत की बानी। निरखि निरंतर निर्गुण ठानी।८८३।
पंडित सो गुण होय जनेऊ। जौं करता के जाने भेऊ।८८४।
जौं निर्गुण सूझे विस्तारा। पंडित तेजहिं वेद के भारा।८८५।

साखी – ७५

शास्त्र गीता भागवत, पढ़ि के पावे नहिं मूल।
प्रेम प्रीति जब निश्चय लागे, तब पावे स्थूल।।

चौपाई

निश्चय नाम प्रेम लौ लावे। सो हंसा छपलोक सिधावे।८८६।
जाय छपलोक बहुरि ना अवना। जन्म-जन्म के मेटु कल्पना।८८७।
ऐसे बूझहु पंडित भाई। संग लेहु सतनाम सहाई।८८८।
काया अन्दर है ब्रह्म निजु बासा। ताहि चीन्हे प्रेम परगासा।८८९।
कहों बानी सुनहु सुजाना। बिना भेद हंस नहिं जाना।८९०।
सुनहु भेद पंडित हंस की आदी। साच बात कहे सो बादी।८९१।
ब्रह्म फूटि अंश भौ तीना। सत पुरूष इन सबते भीना।८९२।
प्रतिविम्ब घट प्रगट अहई। पुरुष तेज इमि कर जग लहई।८९३।
देखहु ज्ञान यह काया बिलोई। अपने आपु में जाय समोई।८९४।
सुरति कमल कहों निजु बानी। सुखमनि घाट करो पहचानी।८९५।
घेरि गगन धन बरसे घ्रानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी।८९६।
निश्चै सुरति ज्ञान रस सानी। पीवे प्रेम तहां अमृत बानी।८९७।

साखी – ७६

इतना ज्ञान भक्ति का भेव, दिल सागर मन लाय।
पंडित बारह बानी होखे, काल कबहिं नहिं खाय।।

चौपाई

धन्य वोय पंडित धन्य वोय ज्ञानी। धन्य वोय सन्त जिन पद पहचानी।८९८।
धन्य वोय योगी युक्ता मुक्ता। पाप पुन्य कबहिं नहिं भुक्ता।८९९।
धन्य वोय शिष्य जो करे विचारा। धन्य वोय सतगुरु जो खेवनिहारा।९००।

साखी - ८७

पदुम प्रगास मधुपति मद पावन, लगेव चरण चितमोर।
बिलगि बिहरि फिरि उलटिकंज पर, फणि मणि करत न भोर।।

चौपाई

कर्म योग यम जीते चहई। चढ़ि पपीलक फेरि भव अहई।१०२०।
बिहंगम चढ़ि गयो अकाशा। बैठि गगन चढ़ि देखु तमाशा।१०२१।
महा मुद्रा उन्मुनि पेखो। अनवन भांति मोती तहं देखो।१०२२।
छटा चमकि वर्षै घन घानी। परिमल अग्र वास रस सानी।१०२३।
इंगला पिंगला सुखमनि घाटा। तहां बंकनाल रस पीवे बाटा।१०२४।
षोडश दल कमल वृगसाना। लै लपटि लगे मधुकर ललचाना।१०२५।
सरिता तीन संगम तहं भैयू। वारि बयारि अमृत रस पैयू।१०२६।
चन्द्र सूर दूवो करे बेलासा। उदय अस्त फेरि होंहिं प्रगासा।१०२७।
वोय इंगला चन्द्र वाहिनी कहिया। पिंडाला भानु प्रकाशित रहिया।१०२८।

साखी - ८८

चारि अवस्था तीनि गुन, पांच तत्व है सार।
प्रेम तेल तूरी बरे, भया ब्रह्म उंजियार।।

चौपाई

यह दुई चक्र भर्मित तिहुं लोका। कामिनि कनक महा बड़ शोका।१०२९।
उभय त्यागि समरथ है दूजा। ताको कमल चरण का पूजा।१०३०।
तेजि कंदर्प कामिनि नहिं साथा। सुमिर नाम निजु होहिं सनाथा।१०३१।
सो जन सामर्थ सदा सहाई। मुक्ति सनीप सदा फल पाई।१०३२।
वोय परिचै नाम भजे ब्रह्मण्डा। दनुज दावन पाप शत खंडा।१०३३।
नाम प्रताप युग-युग चलि आवे। सकल सन्त गुण महिमा गावे।१०३४।
संत रहनि भौ वारिज वारी। सदा सुखी निर्लेप विचारी।१०३५।
जल कुकुही जल मंह जो रहई। पानी पर कबहिं नहिं लहई।१०३६।
दधि मथे घृत बाहर आवे। फेरि घृत नहिं उलटि समावे।१०३७।
फूल वास से तिल भया फूलेला। बहुरि तिल्ली तेल नहिं मेला।१०३८।
इमि करि सन्त असन्त गुण लहई। भौ निकलंक नाम गुण गहई।१०३९।

औघट घाट लखे सो सन्ता। सो जन जानि सदा गुणवन्ता।१०४०।
अजपा जाप अनाहद नादा। तेजे भौ भर्म सो वाद विवादा।१०४१।
अमृत बूंद तहां झरे निकन्दा। ऐन अंजीर मगन मन चन्दा।१०४२।

साखी - ८९

मणि मानिक दीपक बरे, उन्मुनि गगन प्रकाश।
मन मोदक मद तेजि के, मेटा जरा जम त्रास।।

07:24

चौपाई

मन परमेश्वर मन है राजा। मनहिं तीन लोक महं छाजा।१११६।
यह मन कर्ता विष्णु कहावे। मनहिं विश्वम्भर विश्व पर आवे।१११७।
मनहिं अनल अकाश प्रकाशा। मनहिं पांच तत्व काया करू वासा।१११८।
मनहिं समीर वारि घन घेरे। मनहिं छटा गर्जि घन फेरे।१११९।
मन जनमे नौ बार गोसाईं। मन अनन्त रूप कला देखाई।११२०।

छन्द - १७

मन चलावे खंज मीन जौ, मन उड़िगन गगन सोहावहीं।
मन अनल अनिल मन भंवर भर्मित, कंज पुंज पर आवहीं।।
मन कर्म कर्ता काम कामिनि, बाम धाम छवि छावहीं।
मन निशु वासर सोवत स्वप्ना, सर्वरूप बनि आवहीं।।

सोरठा - १७

मन संशय सागर भयो, बूड़त अगम अथाह।
सतगुरु दया तरनी दियो, उतरि जाय भवपार।।

चौपाई

जिन्हि सत शब्द खोजा चितलाई। निकट नाम निजु ज्ञान समाई।११२१।
आतम दर्श ज्ञान जब बूझे। प्रेम मग्न हो अपनहिं सूझे।११२२।
तत्व तिलक मणि मुन्द्रा फेरे। अनहद ध्वनि मुरली तहं टेरे।११२३।
यह अजपा संध्या तर्पण करई। गायत्री ज्ञान गमि मति लहई।११२४।
पल-पल सुमिरि प्रेम रस पीजै। मणि मुक्ता तहवां चित दीजै।११२५।
चन्द्र सूर द्वै परिचै भैयू। सरिता तीनि संगम तहं रहेऊ।११२६।
कूपपत्र तहवां भरि पीवे। ब्रह्म दृढ़ाय तहवां सुख जीवे।११२७।
मंगल मूल है रहनि विशोका। धर्म राय दर कबहिं न रोका।११२८।
अनन्त एक महं रहा समाई। सतगुरु ज्ञान जबे होय जाई।११२९।

साखी - ६६

वारिज वारि के उपरे, अलि मंदिर में बास।
दिन मनि दिन भव पत्र में, फूलेव कंज सुवास।।

चौपाई

मातु पिता सुत बन्धौ भग्नि। अपना मत में सब कोई मगनी।११३०।
घटत छण-छण जात ओराई। हृदय विवेक ज्ञान नहिं आई।११३१।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

चौपाई

ऐनक सुरति चन्द ज्यों सूरा। झलके पदुम गगन भरि पूरा।७०।
मुरली टेरि गगन में आवै। बोलनिहार सो इहई बजावै।७१।
जब लगि काम काबू नहीं आवै। तौ लगि मुरलि न टेर सुनावै।७२।
सोहंग सुरति शून्य में पेखौ। अजपा मूल दृष्टि महँ देखौ।७३।
अविगति रुप अर्ध महँ राखौ। पुहुप बास अमृत रस चाखौ।७४।
सुरति सोहंगम मूल में जाई। दर्शन देखि कमल बृगसाई।७५।
बिनु सत्तगुरु को भेद बतावै। गुप्त नाम यह प्रगट दिखावै।७६।
जीव के मूल नाम जो पावै। काल फाँस के दूरि बोहावै।७७।
काल फाँस जबहिं ले आवै। ज्ञान खर्ग ले ताहि देखावै।७८।

साखी - ९

ज्ञान खडग दृढ़ के गहो, सत्तगुरु चरण निवास।
शीश पटकि यम जाइहें, छपलोक में बास।।

चौपाई

तेजहु कल्पना दुर्मति दूरी। जीवन थोर काहें मुख मोरी।७९।
जीवन थोर संशय महँ भूला। नाम समीप रहो समतूला।८०।

गहे विश्वास तो आस पुरावै। पपीहा बूंद स्वाति झरि लावै।८१।
पिये बूंद जो सुरति लगाई। नाम निरखि ऐसे पद पाई।८२।
बरिषे बूंद गगन असमाना। जल में सीप सुरति जो ठाना।८३।
स्वाति सीप की एही प्रीति। सुपट खोलि मिले बूंद सो रीती।८४।
बूंद समाने निरमल मोती। निरमल ज्ञान बरे तहां जोती।८५।
सीप के आस पुरावनिहारा। पुजै आस जो रहे करारा।८६।
अवरि संत सब सीप समाना। सत्तगुरु पारस मूल ठेकाना।८७।
पारस परसे मोती होई। कहे दरिया सत्तगुरु हहिं सोई।८८।
सीप चेला थिर रहे इमाना। स्वाती गुरु जो आये तुलाना।८९।

साखी - १०

बिनु पारस मोती नहिं, स्वाती गुरु है ज्ञान।
सीप पारस जबहिं मिले, तब माती होय अमान।।१०।।
सकुच मीन पारस कही, मोती परसे सोय।
चारि चरण दुइ मुख है, बूझे बिरला कोय।।११।
गजमुक्ता विरला कहीं, कुंजल बहु संसार।
केहि पारस से उपजे, पण्डित करहु विचार।।१२।।

चौपाई

गजमुक्ता मस्तक जेहि होई। मस्त गयंद कहावै सोई।९०।
स्वाती झरि बरषन जब ठाना। मस्तक बूंद जो आय तुलाना।९१।
चुंगल चिड़िया तेहि अवसर आई। मस्तक पारस दीन्ह लगाई।९२।
उपजे मुक्ता निर्मल सारा। है कोई पण्डित करे विचारा।९३।
सत्तगुरु ज्ञान बुझहु निजु सोई। बिनु पारस मुक्ता नहिं होई।९४।
मूल सोहंगम शब्द है सारा। सत्तगुरु सोई जो हंस उबारा।९५।
जाके पारस मूल ठेकाना। दिव्य दृष्टि जो गहे निशाना।९६।
सोहंग सुरति सून्य महं पेखौ। मोती झरिय गगन महं देखौ।९७।
सोई सत्तगुरु खोजहु ज्ञानी। मनमत ज्ञान तेजहु जड़ प्रानी।९८।
तन के त्रास जो बहुंत देखावै। पंच अग्नि में तनहिं जरावै।९९।
उर्धमुख झूलहिं दिन औ राती। जल के निकट सैन बहु भाँति।१००।
पय पीवहिं फल करहिं अहारा। नंगा फिरे तन रहे उधारा।१०१।

निगम नेति तिहु लोक बखाना। कथिके वेद नाहि पहिचाना।६६।
वेद चतुर है चारिउ भांति। तेहि महंबीता देवस अवराती।७०।
तामे उडिगन[1] मनि सब अहइ। तामे दिन मनि इन्दु जो कहइ।७१।
पांचो मुन्द्रा तामे अहइ। ईगला[2] पिगला[3] सुखमनि कहइ।७२।
छवो चक्र के कहिए भेदा। जोगीनिस दिन करे निखेदा।७३।
जोग करे फिरि भोग मे आवै। ज्ञान गमि विरला कोइ पावै।७४।
मन कंदर्प दोउ बड़ है बीरा। एक निमिखि तन राखु न थीरा।७५।

साखी - ६

दरिया अगम गंभीर है, सत्तनाम है सार।
कवि थाके मुनिवर कहै, वेद ना पावहिं पार।।

छन्दतोमर - २

सुरबैठु त्रिकुटी तीर, यह बड़े बांके वीर।
यह कनककामिनि जोर, तुमज्ञान जनि कर भोर।।
तैजागु जोग सम्भारि, यह पांच बैठे हारि।
जब काम को प्रकास, तुम अवटु अनल अकास।।
मदजरे ममिता झारि, तहां दुइ दीपक वारि।
तब ब्रह्म भयो प्रकास, इह मेटिजम को त्रास।।
तहां लाल हीरा खानि, मनिसंत ले पहचानि।
नहिं काल कुबुधा चोर, भव हंस वीमल तोर।।
चुंगुमोती मुकता जानि, जहां मान सरवर खानि।
जहां पुहूप सेज सुगंध, एहलप्ट परी मल गंध ।।
जहां अमि वरषत नीर, यह दया सिंघु गंभीर।
अखंडित ब्रह्म परकास, भव अमर लोक में बास।।
नहिं बहुरि भव का चिन्त, जब मिलेउ सतगुरु मीत।
गुन कहत नाहीं ओराय, एह शेष सहस्त्र गाय।।
मुख एक किमि कही भाव, गुन प्रेम सुखद सुभाव।

07:49
Vo)) LTE1

←

साखी - ५८

मन प्रचे नहिं पाइया, बहु विधि कहे बनाय।
चोर साहू चीन्हे नहिं, सरबस मूसे[१] जाय।।

छन्दतोमर - १४

इमि मेरु[२] डंड संभारि, ले डगर डोरी सुधारि।।
इमि अरध उरध खंभ, जिमि प्रथम[५] कीजे।।
भरी भवंर गोफा[६] घाट, इमि उलटि चीन्हे बाट[७]।।
चहि चित चकमक झारि, तहां निर्मल बातो बारि।।
तहां गंगा जमुना नीर, तट तिर्कुटी के तीर।।
तहां सरस्वती[८] सुभधार, इमि पियत प्रेम उदार[९]।।
तहां गंगन गरजु गंभार, चहुं छटा[१०] बर्खत नीर।।
तहां परत बूंद अघात, इमि उलटि जिमि तेजात।।
तहां झींगुर की झनकार, इमि झींझी जंत्र अपार।।
तहां सुन सिखरा जाय, तब तान तार बजाय।।
निसि देवस बाजन तूर, कोई संत पहुंचे सूर।।
दिव्य दृष्टि धाजा सेत, सब भर्म होत-निकेत।।
वह ब्रह्म पुरुष पुरान, इमि ज्ञान गुन पहचान।।
निरा लेप निरगुन नाम, निजु बैठ अमरा धाम।।
गुन ज्ञान सतगुरु संत, इमि मिला सब का अन्त।।
मम जोग जागेव जाये, सब अगम गमि इमि पाये।।

छन्दनराच - १४

ज्ञान निखेदा सब कहि भेदा, भर्म छुटा भव किमि परिअं।।
पाप ना पुन्य वेद बिहूना, निरगुन गुन सो धरिअ।।
अजर जरे नहिं झलकत निस दिन, पलकहिं अजपा सो कहिअं।।
सुनु संत स्त्रोता कथै निरोता, निरखि परखि पद इमि लहिअं।।

सोरठा - १४

कुम्भज बचन बिचारि, भए बिछछन ज्ञान में।
कर्म भर्म सब जारि, जरा मरन ते रहित भयो।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

07:51

साखी - ६३

यहि प्रकार जक्त में, जाहिर कीन्ह पुकार।
कोई बूझे कोई भरमें, वेद मता संसार।।

चौपाई

काया भेद निज कहो सुधारी। पंडित जन निज करहीं बिचारी।६३६।
काया प्रचये इमि कहो बुझाई। ज्ञानी जन निज लेहिं अरथाई।६३७।
नवो नाटिका[3] कहो बिचारी। दसवें द्वार इमि कहों सुधारी।६३८।
त्रिकुटी[4] मध्य काम कर थाना। नाल[5] पवन धरि करे पयाना।६३९।
मेरु डंड[6] होय पैठे जाई। दसवें द्वार मार[7] चलि आई।६४०।
याते बीज परा संसारा। उपजे हीरा लाल सुधारा।६४१।
सिखरा चढ़े सुखमन अहई। इंगला पिंगला नीचे बहई।६४२।
को है चंद सूर केहि कहई। दहिने सूर चंद यह अहई।६४३।

सातों बार[1] यह करो बिचारा। को है चंद सूर बिस्तारा।६४४।
तीन सूर चंद यह कहई। चारि हैं चंद सूर तिनि अहई।६४५।

साखी - ६४

सुर सनीचर जानिऐ, मंगर अव एतवार।
चारि दिन है चंद का, पंडित लेहु सुधार।।

चौपाई

छव चक्र[2] औ पांचों मुन्द्रा। खिचरी भोचरी कहि अनुकरा।६४६।
चचरी चारिउ कही बिचारी। कर्म जोग यह कीन्ह बिस्तारी।६४७।
पपिलक[3] छोड़ि बिहंगम[4] कहेउ। मुंद्रा मांह उन मुनी रहेउ।६४८।
सुइ अग्र[5] तहां द्वार संवारी। झलके मनि तहां जोति उजियारी।६४९।
अजपा मूल दरस तहां देखो। सोंह सुरति दृष्टि महं पेखो।६५०।
सोरह दल कमल बिर्ग साई। मधुकर ध्यानि रहा लपटाई।६५१।
गंधारी सुपट खाले जब आई। अग्र बास नासिका पाई।६५२।
कुंभ पत्र अंमि अस्थाना। चुवे प्रेम पीवे संत सुजाना।६५३।
इमि पंडित बूझा छितकारीं ग्यान गमि कछु कहे बिचारी।६५४।
मम जाना जो बाउर अहई। यह तो प्रेम भक्ति गुन कहई।६५६।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

अमर लोक ले ताहि पठावो। भवसागर के दाग मिटावो।१६४२।
अच्छा अबेहा जो जन होई। लोक पयाना करिहैं सोई।१६४३।
सिर खुला सिर जमा जो राखा। असल ज्ञान दुनहूँ के भाखा।१६४४।
जो दाफा जन होय हमारा। समुझि लिहैं निज ज्ञान करारा।१६४५।
भांग अफीम पान नहिं खाई। अमृत प्रेम तत्व लव लाई।१६४६।
कड़ी कमान[१] खींचै दिन राती। तेहि नहिं काल करे उत्पाती।१६४७।
ताके पास कामिनि नहिं जाई। मस्त हाल देखि दूरि पराई।१६४८।

साखी - १६३

शब्द सांगि सम सेर है, गहि लीजे जन सोय।
सिकिलि करे मुर्चा छुटे, ऐना दरसन[२] होय।।

चौपाई

ऐना दरसन मूल है सोई। काया अक्षर निजु नाम समोई।१६४९।
अक्षर बिना भेद नहिं पावै। कतनो पढ़ि पढ़ि रचि गुन गावै।१६५०।
जीव सोहंगम सुरति है न्यारा। दिव्य दृष्टि का सकल पसारा।१६५१।
सोइ सुरति गहो चित लाई। मकर तार डोरी तहँ पाई।१६५२।
आवत ज्ञात है सुरत संजोगा। तेजहु मन मत पाखंड जोगा।१६५३।
मन के रंग चिन्हें चित लाई। अवघट घाट लखे इमि पाई।१६५४।
खग[३] औ मीन जो पंथ में आवै। पीछे दृष्टि बाट नहिं पएउ।१६५५।
घट घट सब में ब्यापक अहई। मुनि पंडित कहं इमि कर दहई।१६५६।
आवत जात जौ परिचै[५] पावै। दूरि के निकट दृष्टि में धावै।१६५७।
इमि करि मन करबे पहचानी। खग औ मीन दुवो पथ जानी।१६५८।

साखी - १६४

इमि करि मन परिचे करो, खगमिन पंथ सुधारि।
झीन बाट[६] मन मीन है, इमि गमि करा बिचारि।।

चौपाई

इमि करि अर्ज करो सिर नाई। यह गमि ज्ञान लखे किमि पाई।१६५९।
मन के चरित्र जो कहा बिचारी। काम क्रोध तन गर्ब है भारी।१६६०।
किमि करि जग यह करहिं बिचारा। कैसे पंथ चलिहिं संसारा।१६६१।
सब के तेजि ज्ञान महं रहई। मन परिपंच नहिं तन में लहई।१६६२।
सत्य पुरूष गुन समुझे जानी। इमि करि मन करिहें पहचानी।१६६३।

16:46

हंस गंभीरा सब बुधि थीरा, नीर छीर, बिबरन करिअं।।
निरमल सारा गुन गहि पारा, सर्व जोग इमि करि लहिअं।।
सो बंस हमारा करे बिचारा, चर्चा सतगुरु पद गहिअं।।
सब ते न्यारा पथ बिचारा, तेजि अचारा इमि रहिअं।।

छन्द तोमर - ५०

बिबरन कियो बिचारि, इमि दाफा जन जानिए।।
इमि लेहु ज्ञान संभारि, सतगुरु दोष न दीजिए।।

चौपाई

दलदास कानगोय हमारा। परखि लीजे भेद ततु सारा।२१२६।
जो परखो सो दफा हमारा। पारख बिना बुड़ा संसारा।२१२७।
जोजन[८] चारि शृंग[६] जो अहई। ताके मध्य मूल जो कहई।२१२८।
चंद सुर दोउ झलके आई। दुई पवनारी निचे चलि जाई।२१२६।
सिखारा चढ़े सुखामन अहई। इंगला पिंगला नीचे बहई।२१३०।
गंधारी[१] बृग से गंध सुबासा। अभी कमल प्रेम परगासा।२१३१।
एहि में मुंद्रा एहि में मूला। एहिमें सहस्र कमल दल फूला।२१३२।
एहि में उछिले सिंधु अपारा। एहि में मोती लाल पसारा।२१३३।
एहि में उड़िगन भान है चंदा। दिब्य दृष्टि करू परम अनंदा।२१३४।
नओ नाटिका[२] कहों बिचारी। निरमल प्रेम निजु लेहु सुधारी।२१३५।
कहि कहि कवि सब बहुत बनाई। दसो द्वार की मर्म न पाई।२१३६।
दसौ द्वार मीन[३] जहं जाई। गहिर भेद बिरला केहु पाई।२१३७।

साखी - २१०

इमि गहिर गरकाव[४] है, गंगू गहिरा ज्ञान।
आपु चखे औरनि दिये, मीठा प्रेम बखान।।

चौपाई

अहे शृंग एक दृष्टि अमाना। इमि करि कहिये ध्रुव ठिकाना।२१३८।
जब यह दृष्टि देखो महं आवै। तब हंसा अस्थिर पर पावै।२१३६।
जब नहिं दीसे करे पयाना। कमल से भंवर विलगि करिजाना।२१४०।
मकर तार सुरति है सारा। तेहि चढ़ि हंसा लोक सिधारा।२१४१।
वोहं सोहं कह कह पारा। दिव्य दृष्टि का अहे पसारा।२१४२।
गृहस्थ फकीर दोउ दफा हमारा। छापा बिन किमि उतरे पारा।२१४३।
छोड़े कपट गिरह नहिं डारी। बिमल प्रेम भव कवहिं ना हारी।२१४४।
इमि करि हीरा होय ना खोटा। जो यह तजै कपट कर मोटा।२१४५।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

16:47

आदि अन्त जो पूछहू, सो सब देउ देखाय।
घट परचे परतीत करि, अमर लोक को जाय।।

चौपाई

अन परचै से सब कछु कहेऊ। अब मोपे कछु कहि नहिं अयऊ।२१९५।
तुम तौ तेज अधिक कछु कीन्हा। उदित ब्रह्म तुम जगसे भिन्न।२१९६।
पारख कीन्ह सतगुरु तुम सांचा। तुम्हारी तेज मोहि लागत आंचा।२१९७।
दाया करहु कछु पूछों ज्ञाना। सत्य शब्द जो अहे अमाना।२१९८।
पांचो मुन्द्रा कहो विचारी। ईगला पिंगला कहो सुधारी।२१९९।
कहो सुखमना कहवा रहई। यह गुन जानि प्रगट यह कहई।२२००।
कहिये अक्षर निअक्षर डोरी। कबन कमल में अमृत बोरी।२२०१।
कहिये अजपा दरसन सारा। किमि करि दृष्टि होय उजियारा।२२०२।
दसवें द्वार कहो निरुआरी। खोजत ज्ञानी सब केहु हारी।२२०३।
मैं बूझा तुम सब विधि ज्ञाता। अचरज तुमके किमि यह बाता।२२०४।
पूछे बिना भरम नहीं जाई। संसै दिल की जात मेटाई।२२०५।

साखी - २१६

कहे भीखल कर जोरिक, साहब सुनुचित लाय।
अहे परस्पर प्रेम यह, तब मिलेतुम आय।।

चौपाई

खिचरी भोचरी अंगोचरी अहई। चचरी मुन्द्रा उन मुनि कहई।२२०६।
इँगला चन्द्र बाहनी अहई। पिंगला भान प्रकासित कहई।२२०७।
ताके बीच सुखमना कहई। उलटि चले गिरवर तहां रहई।२२०८।
ताके मध्य कमल कर बोसा। अजपा दरसन देखो तमासा।२२०९।

अक्षर कया निअक्षर झलके। तामें चाँद सुर्ज निज पलके।२२१०।
अमिय पत्र प्रेम जहँ पीवै। दसवें द्वार मार चलि जीवै।२२११।
मिला भेद जो सब कछु अहई। एहि में खोड़स किछु नहिं कहई।२२१२।
जो पूछा सो कहा बिचारी। धन साहब गुन सब निरुवारी।२२१३।
अर्ज एक करो कर जोरी। साहब विनय सुनो यह मोरी।२२१४।
पुत्री पुत्र जो मम गृहि भयऊ। एहि में जियत न एको रहेऊ।२२१५।
दुध पियत तन त्यागे आई। ऐसन विष छीर उन्हि पाई।२२१६।

साखी - २१७

बहुत जोग जुक्ति करि, थकित भए सब लोग।
बालक एको न जीवहीं, यह मम तन में सोग।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

अधरस भेद यह शब्द है, सुनहु संत सुजान।
पारखी जन को काम है, गहिर जो गहि ले ज्ञान।।

चौपाई

बंक नाल नाभि ठिकाना। षोड़स कमल ताहि परवाना।७५।
मूल चक्रदृष्टि जो आना। श्वेत वर्ण भँवरा तहाँ जाना।७६।

श्वेत ध्वजा शून्य महँ देखा। यह भेद बिरला केहु पेखा।७७।
झलके नूर होय उजियारा। दुई बाती तहाँ निर्मल बारा।७८।
शून्य गगन जहाँ सुरति संयोगा। मीठा खट्टा तेजा रस भोगा।७९।
त्रिकुटि महल की खबरि जो जाना। त्रिवेणी संगम आय समाना।८०।
इंगला पिंगला द्वादश धावे। परिमल वास अग्र जहाँ आवे।८१।
अमृत कूप ताहि के हेठा। अमृत हंस चाखहि भरि पेटा।८२।
अमृत चाखहिं हंस भौ सारा। त्यों त्यों दृष्टि भई उजियारा।८३।
हंस के पारस अमृत चाखा। नाम सनीप सुरति जो राखा।८४।
कहें दरिया साँच यह ज्ञाना। सतगुरु से पावे परवाना।८५।
सतगुरु बिना मुक्ति नहिं पावे। सतगुरु से पारस बिलगावे।८६।

साखी - ४

घर घर सतगुरु ना कहि, ज्ञान कथे विस्तार।
सुकृत के सतगुरु कहि, हंस उतारहिं पार।।

चौपाई

भुजंग सोई जाके मणि बरे राति। बिना मणि नहीं भुवंग की जाति।८७।
बिना मणि नहीं होय उजियारा। औरि जगत् सब केचुआ पसारा।८८।
जाके होय मूल मणि माला। सोई सन्त है ज्ञान रिसाला।८९।
बिना मूल ज्ञान है खाली। सुरति करे अजपा जपे माली।९०।
जो यह निरखे निर्मल मोती। निर्मल ज्ञान बरे तहाँ ज्योति।९१।
सोई सन्त साधु की जाती। जाके ब्रह्म भेद यह भाँती।९२।
सोई सन्त साधे यह ज्ञाना। पारस के पावे परवाना।९३।
रहे ऊँच नीच होय जाई। कुल की कानि राखे नहिं भाई।९४।
जैसे भृंग कीट कहँ कीन्हा। अपनि सुरति सो पालि जो लीन्हा।९५।
जो नर सुरति सम्मुख राखा। सामर्थ्य आपु सरीखे भाषा।९६।
जैसे चमेली फूल जो आना। बास तिल में जाय समाना।९७।
तिल में वास केहु न जाना। कोई अकूफहिं से पहिचाना।९८।
तिल पेरे तेल जब आना। वास फुलेल बसे केहु जाना।९९।
सब घट नाम सजीवन गावे। बिनु परिचय कोई बास न पावे।१००।
सतगुरु शब्द खोजो दिल लाई। मिटे कुवास सुवास समाई।१०१।

साखी - ५

तिल को तेल फुलेल भौ, मेटा तिल को नाव।
सतगुरु वास समानेवो, बसे अमरपुर गाँव।।

साखी - ४६

गया अमरपुर लोक में, अमर सुगन्ध सोहाय।
पुहुप पलंग तहाँ पाइया, आवागमन मेटाय।।

चौपाई

मुद्रा चारि चतुर दल सोहे। त्रिकुटी साधि पवन के जोहे।३६६।

निद्रा साधि आतम कहँ साधे। पाँचो इंद्री निग्रह बाँधे।३६७।
इंगला पिंगला सूर चढ़ावे। घैंची डोरि गगन में आवे।३६८।
बंक नाल औ अंक संयोगा। ब्रह्माण्ड अखंड विरोगा वियोगा।३६९।
पाँच तत्व तौले दिन राती। छन छन पल पल गुने यह भाँती।३७०।
मोतांगी पवन उलटि जब लावे। उलटा कुंभ नीर नहिं आवे।३७१।
यहि विधि तारीक तर्क है योगा। पवन संयोग प्रेम रस भोगा।३७२।
नरक स्वर्ग ते होखो न्यारा। की भवचक में परे बेचारा।३७३।

साखी - ४७

एतना योग युक्ति करि, मुक्ति भुक्ति बैराग।
अमर लोक के जावहीं, कि लगा करम का दाग।।

चौपाई

सुनौ बचन मैं कहों बिचारी। निरखि परखि कोई ज्ञान सुधारी।३७४।
यह सब करम काल के योगा। कठिन काल नहिं होई विरोगा।३७५।
तन साधत फिर भया असाधी। मन नहिं चिन्है उलटि फिरि बाँधी।३७६।
योग युक्ति योगी सब भाखे। त्रिकुटी पवन तहाँ ले राखे।३७७।
इंगला पिंगला पवन का खेला। पाँच तत्व सुख मनि का मेला।३७८।
चारिउ मुंद्रा मत तेहि भयऊ। असंख योग युक्ति नहिं अयऊ।३७९।
तीन लोक जिन्ह तन के जाना। साढ़े तीन हाथ परवाना।३८०।
जरा मरन फिरि भव में आवे। मन परचै बिनु यह दुःख पावे।३८१।

साखी - ४८

मन करता कहँ सुमिरहिं, सो मन करै विनाश।
रूपरेखा देखे बिना, डारत है ग्रिव फाँस।।

चौपाई

रूप देख यह किमि कर देखे। कौन ज्ञान यह गमि में पेखे।३८२।
वाकी सनदि साधु किमि पावे। कैसे विवरण दुई देखावे।३८३।
मन और ज्ञान रंग बिलगावे। निःअक्षर किमि अक्षर पावे।३८४।
नाम निःअक्षर इमि कहँ कहई। मने निःअक्षर जीव कहँ दहई।३८५।
बिना रूप कैसे लखि आवे। आदि दृष्टि सो कैसे पावे।३८६।
यह सब संकट विकट की बाता। औघट घाट सबनि में राता।३८७।

17:12

आदि भवानी जिन्ह किया, किया निरंजन देव।
अगम कथा यह जो मथे, सो जाने यह भेव।।२३६।।
बाहर कहा विवेक करु, घट परिचय कहि दिन्ह।
बुद्धि जन सुधि वोय जानहिं, मन माया को चिन्ह।।२४०।।
नवग्रह औ संक्राति, काया ग्रहन फेरि होय।
सूरचंद गयो मूल में, उलथ्अ परा है सोय।।२४१।।
अहो रात अहो दिन में, द्वादश है संक्रान्ति।
इंगला पिंगल सुखमना, इन्ह की चिन्हिए जाति।।२४२।।
इंगला चंद वाहनी कहिए, पिंगला भानु प्रकाश।
सगुन विचार ही साधुजन, अहे पंडित के पास।।२४३।।
चारि तत्व काया कही, एक तत्व रहे आकास।
सुरति डोरी रहे मूल में, अहे अमर के पास।।२४४।।
छित पावक पानी पवन, आदि अंतगुन एक।
पंच भौतिक यह भवन है, तामे बहुत विवेक।।२४५।।
अनंत कहि तो अनंत है, एक कहि तो एक।
जागृत स्वप्न सुषुप्ति, तुरी तेल विवेक।।२४६।।
पांव पताल शीश नभ हैं, सिकमसिन्धु है अंत।
पच्चीस प्रकृति पांच तत्व है, तीनि गुन को अंत।।२४७।।
तामे ग्रहन ग्रास है, परवत ऊंच अरु नीच।
तंतु विचारे देखिए, आमृत बसे औ मीच।।२४८।।
अमि कमल आमृत वसे, स्रवन विषी को वास।
की ज्ञानी कोई जानहिं, की सतगुरु को दास।।२४६।।
उत्पत्ति परलै पेड़ यह, तामे कर्ता किन्ह।
अक्षय वृक्ष वोय पुरुष हंही, सो त्रिगुन ते भिन्न।।२५०।।
तलफत मीन यह जल बिनु, कवल सुखा बिनु वारि।
परे भवन में भग्ति बिनु, चारों वेद विचारि।।२५१।।
अक्षय वृक्ष वोय पुरुष हंही, डार पात फूल छांह।
सहस अट्ठासी मुनि भए, गुरु सिख पकरी वांह।।२५२।।
आदि भवानी शक्ति है, अनंत कहो तो शिव।
शिव पीव करि मानहिं, अनंत परा है जीव।।२५३।।

110%
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

बीजक बतावे बीत के, जौ बीत गुप्ते होय।
शब्द बतावे पीव को, बुझै विरला कोय।।५३६।।
बीजक राखे जीव के, चीज बड़ा है ग्यान।
उलटि आपु आपु कंह देखिए, मुल बड़ो है ध्यान।।५४०।।
काम बीज है उरध कमल में, मेरुडंड कसि जोग।
सुख मनि सापिनि ना डसे, मेटा कल्पना सोग।।५४१।।
सहस दल और सहस पुखंरी, खुला गगन में ऐत।
सदा सर्वदा बुंद घन, मनि मोती तहां सेत।।५४२।।
अउधी खोपरी उलटी देखु, झीन झीन जंतर होय।
सोवत जागत धुनि तहां, उन मुनि पलटी वोय।।५४३।।
ग्यान हुआ तब ध्यान है, भक्ति हुआ तब योग।
जहां दया तहां धरम है, बृगस प्रेम संयोग।।५४४।।
विमल विरोग विराग है, राग रहित है ध्यान।
दीवाकर छवि देखिए, या झरि पलक अमान।।५४५।।
रंझा रंझे वो जगत में, भक्ति केते भगवान।
उदधि लहरि जब आवई, उलटत सांझ बिहान।।५४६।।
ब्रह्मण्ड खंड ले नभ कला, कला करे प्रकाश।
ताहि भजन के भजत है, भजन करे निजु पास।।५४७।।
भक्ति भली है जगत में, सक्ति बड़ी है जोर।
भगते आये भगता हुआ, चितवत चंद चकोर।।५४८।।
सिंह ठवनि ठनकत रहे, पलक न करिए भोर।
कसे कमाने बान गहि, निकट ना आवहिं चोर।।५४९।।
विरह भेआवरि धमार की, पद अपने सभ पास।
बिलगि बिलगि होई जीइहें, ज्यों ग्रीव डारिहें फांस।।५५०।।
मन माया ते बांधिया, राधे परे अचेत।
जम दारुन दावा करे, डारि दिया कुखेत।।५५१।।
आपु स्वारथ यह स्वाद, परमारथ की चूकि।
स्वारथ संग्रह साथ में, मुआ भवन में भूंकि।।५५२।।
परमारथ जो पर के दीजै, पर आतम की चीत।
भौ भागर यह भर्म है, नाहिं जमाना हीत।।५५३।।

17:19

ग्रन्थ रामेश्वर गोष्ठी

(गोष्ठी दरिया साहब और रामेश्वर पंडित से काशी में अस्सीवरना के तीर)

रामेश्वर वचन

गोफा सोफा में आसन मंडे शुन्य में ध्यान लगावे।
आतम साधि पवन जो पीवे, योनि संकट नहिं आवे।।
यह मत जाना ब्रह्म दिढ़ाना, सोई सिद्ध कहावे।
कर्म योग बिनु युक्ति न पावे, सतगुरु शब्द लखावे।।
वाय बिन्दु ले गगन समाना, त्रिकुटी है स्थाना।
शास्त्र गीता यह मन भाषे, सोई शब्द परमाना।।
रोम-राम सींचे जो जोगी, अमृत झरि जब आवे।
कहे रामेश्वर सुनो स्वामी, तब वा पद के पावे।।

दरिया वचन

का गोफा सोफा में पैठे, का तारी के लावे।
का आसन बासन के बाँधे, का भौ पवन चढ़ावे।।
का आतम के जारे मारे, का भौ त्रिषा मिटाये।
जब लगी युक्ति जानि नहिं आवे, का भौ योग कमाये।।
का श्रृंगि शेली के डारे, क्या मुख टेरि सुनावे।
क्या नाँचे झालर झनकारे, क्या मृदंग बजावे।।
झिली मिली झगरा झूठा झूलते, औंधा ध्यान लगावे।
कहे 'दरिया' सुनो ज्ञान रामेश्वर, जग में जीव जहड़ावे।।

रामेश्वर वचन

सनकादिक सुकदेव जो कहिए, जाको ब्रह्म दृढ़ाना।
अखंडित ब्रह्म अगोचर अविगति, एहि ठहराना।।
बशिष्ठ ज्ञान जो श्रेष्ठ जगत में, औ मुनि बहुत बखाना।।
जाकी बचन अमर है युग-युग, निरालेप निर्बाना।।
एके ज्योति सकल घट व्यापक, अद्वैत ब्रह्म कहावे।
अगम अपार पार नहिं पावे, निगम नेति जेहि गावे।।
चार वेद ब्रह्मा मुख भाषा, ब्यासहिं ग्रंथ बनाई।
कहे रामेश्वर सुनो स्वामी, या छोड़ि दुजा ना गाई।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

दरिया वचन

हरिहर ब्रह्मा और त्रिपुरारी, बहुते योग कमाते।
नवो नाथ चौरासी सिध्या, गोरख पवने खाते।।
इंगला पिंगला सुखमनि जाने, मेरू दण्ड के साधे।
बंकनाल की डोरी घैंचि, उलटि द्वादस बाँधे।।
मारकन्डे और शंकर योगी, जग में प्रगटे ज्ञाना।
मुनि बशिष्ठ राम के गुरु, उन्ह भी ज्ञान बखाना।।
वेद गर्व ते पंडित भूला, आपु मर्म नहिं जाना।
एहु जीव जहड़ायो जग में, पढ़ि पढ़ि वेद पुरान।।
ज्योति स्वरूपी जाके कहिए, करे जीवन को घाता।
दान पुण्य बलि राजे किन्हा, बाँध पताले चाँता।।
उत्पत्ति प्रलय या जग करई, सो मन चाहे हाँथा।
मृतक अंध नजर नहिं आवे, रहे सबन के माथा।।
जग लगि मन परिचय नहिं पावे, किमि उतरे भव पारा।
कहे 'दरिया' सुनो ज्ञान रामेश्वर, करि लेहु शब्द बिचारा।।

रामेश्वर वचन

खेचरी भोचरी चँचरी, अगोचरी यह योगी जब पावे।
इंगला पिंगला सुषमनि घाटे, अष्टदल कमल दृढ़ावे।।
पाँच तत्व की बाती लेसे, परम ज्योति परकासा।
शुन्य मंदिर में मुंद्रा जागे, कर्म भर्म सब नासा।।
नाद बिन्द जाके घट जरई, सहज समाधि लगावे।
आपुहिं गुरु आप हैं चेला, कहु काको गुन गावे।।
आपन अन्त पावे जब जोगी, कौन, बूडे को तरई।
कहे रामेश्वर सुनों स्वामी, यह पद निश्चय धरई।।

दरिया वचन

खेचरी भोचरी चँचरी अगोचरी, झिलि मिलि मुद्रा त्यागे।
छोड़ पपिलक गहे विहंगम, उन्मुनि मुद्रा जागे।।
छव चक्र काया प्रगट है, वाका भेद जो पावे।
शब्द सजीवन हैगा मूला, काया अग्र, झलकावे।।
बरे दृष्टि करे उजियारा, शुन्य गगन में पेखे।
जाके सतगुरु पूरा मिलिया, सोई शब्द वह देखे।।
बाहर भीतर एके लेखा, हनै शब्द निशाना।।

सोरठा—सोभा अगम अपार, हंस बंस सुख पावहीं।
कोई ज्ञानी करै विचार, प्रेम तत्तु जा के बसे ॥

॥ चौपाई ॥

जम जालिम जय करै बिकारा। पाखँड धरम करै संसारा ॥
जब निजु भेद पाय जन कोई। ताही देखि चला जम रोई ॥
चौदह चौकी जम के होई। बिनु सतगुरु नहिं पहुँचे कोई ॥
चौदह मंत्र भेद जो पावे। जाइ छपलोक बहुरि नहिं आवे ॥
ता में सार सब्द है एका। तेहि जानहु निजु कया[१] बिलोका ॥
कया परचै निजु कहीं बुझाई। गुरुगमिज्ञान बुझौचित लाई ॥
अष्ट कँवल दल रँग है सोई। मधि बिच तेहि बोलता होई ॥
अग्रनख[२] तहँ बैठे जाई। तिल भरि चौकी बिलसै भाई ॥
छय चक्र तहँ मनि उँजियारा। अझरझरै तहँ जोति निजु सारा[३] ॥
छय चक्र का परचै पावे। मूल चक्र दृढ़ आसन लावै ॥
पाँच तत्तु तहँ देखु बिसेखा। पल पल करहि अनूपम भेखा ॥
ता में निरति सुरति की बानी। ता में निरखु मया की खानी ॥
पचिस प्रकृति तहँ निरति कराई। दसौ दुवार रहे ये जाई ॥
मूल सब्द मनि मानिक देखा। तिरति करै तहँ ताल बिसेखा ॥
पचिस प्रकृति के भेद कहि दीजे। होय गुरु ज्ञान बुझि यह लीजे ॥
पचिस के यह कथा सुनाई। ता में सार पवन है भाई ॥
इँगला पिंगला सुखमनि नारी। सार पवन तहँ करै पुकारी ॥
ओही पवन षट चक्रहि छेदा। होय गुरु ज्ञान बुझै यह भेदा ॥
तहँ त्रिकुटी में रहा समाई। तहवाँ काल सकै नहि जाई ॥
अजपा जपै सूर चँद ज्ञानी। दरिया गगन बरीसै पानी ॥
अमृत बुन्द तहाँ झरि आवे। पीयत हंस अमर पद पावे ॥

---

(१) काया। (२) सूक्ष्म रूप। (३) "गहि भेद इमि करै बिचारा"—दूसरी पुस्तक में ऐसा पाठ है।

साखी—अठ दल कँवल भँवर तहँ गुंजे, देखहु सब्द बिचारि ।
कह दरिया चित चेतहू, देहु भरम सब डारि ॥

॥ चौपाई ॥

मूल सब्द धुनि होत अँजोरा । सुरति बाँधि राखो एक ठौरा ॥
सुरति डोरि चेतो चित लाई । मूल सब्द की यही उपाई ॥
सूर चंद एक घर आवै । तबही डोरी ले बिलमावै ॥
मूल सब्द धुनि होत उचारा । तहवाँ जाय करो पैसारा ॥
अकह कँवल के ऊपर मूला । सहस कँवल तहवाँ रहु फूला ॥
परिमल अम्र बास तहँ आवै । हंमा पियत बहुत सुख पावै ॥
होय दास सतगुरु के पासा । सेवा भगति प्रेम परगासा ॥
मैं तो साहब तुम कहँ जाना । मेरो मन तुम सों मनमाना[१] ॥
भरम छुटै सो करो उपाई । जा ते हंस छप लोके जाई ॥
सुरत लगाइ के करो सँभारा । कुल कै करम छोड़ बेवहारा ॥
जो सत सब्दहि करै बिचारा । सोइ हंसा भव सिंधु उबारा ॥
अकह बात कहा नहिं जाई । अगम गम्मि तहँ सुरति लगाई ॥

छंद—आगे मारग भीन अति है, सब्द सुरति बिचारही ।
अजर जोति अनूप बानी, देखि तहँ सुख पावही ॥
अगम गमि तहँ अति झलाझलि, नेकु मन ठहरावही ।
सत सुकृत की सीढ़ि पग्र दे, अमृत फल तहँ चाखही ॥

सोरठा—अजरा जोति बराय, मूल सब्द निजु सार है ।
गहो सुरति चित[२] लाय, कह दरिया भव रहित है ॥

॥ चौपाई ॥

अगम सुरति चेतहु चित लाई । सुरति कँवल रहु सुरति लगाई ॥
चकमक चित्त चुभुकि जब लागै । निर्मल जोति प्रेम तहँ जागै ॥
गहिर ज्ञान निजु करै बिचारा । झलकै पदुम होय उँजियारा ॥
अगम कथा बहुतै हम कहिया । धरति अकास रचि नहिं अब जहिया ॥

(१) लगा । (२) दूसरे पाठ में "लाव" है ।

॥ चौपाई ॥

जेहि खोजत सुर नर मुनि हारे । बोलहु पंडित बचन बिचारे ॥
बचन कठोर बोलहु जनि बैना । ए नहिं मिलिहै पुरुष अमाना ॥
सीतल सब्द जो करहि अपाना । सार सब्द तेहि मिलहि निदाना ॥
बादिहि जनम गया सठ तोरा । अंत कि बात किया तैं भोरा[१] ॥
पढ़ि पढ़ि पोथी भौ अभिमानी । जुगति और सब म्रिथा बखानी ॥

साखी–खरच खजाना मालवर महल करे बहु स्याल ।
सतगुरु के परचे बिना, (जौं) काग कुबुद्धी ब्याल[२] ॥

॥ चौपाई ॥

जौ न जानु छप लोक कै मरमा । हंसन पहुँचिहि एहि षट कर्मा ॥
सार सब्द जब दृढ़ता लावै । तब सतगुरु किछु आपु लखावै ॥
दरिया कहै सब्द निरबाना । अवरि कहों नहिं बेद बखाना ॥
बेदै अरुझि रहा संसारा । फिरि फिरि होहि गर्भ अवतारा ॥
चार चरन सींघ दुइ होइहैं । जोनि संकट चौरासी जइहैं ॥

साखी–चौरासी के भवन में, कलप कोटि बहि जाहिं ।
ज्ञान बिना नहिं बाचिहैं, फिरि फिरि भटका खाहिं ॥

॥ चौपाई ॥

सत्त नाम निजु करो निमेरा । जौ चाहो छप लोकहि डेरा ॥
सत्त सब्द नहिं मानहि बानी । जोति अस्थापि रहा सब ज्ञानी ॥
जोति पुरुष की कामिनि अहई । बिना पुरुष कामिनि नहिं लहई ॥
कामिनि भगति सबै जग जाना । पुरुष ज्ञान निर्लेप बखाना ॥
ज्ञान कहौ केहि नावै माथा[३] । जौ जन बूझै सो होइ सनाथा ॥
सबद ज्ञान बखानौं तोही । एकर अर्थ सुनावो मोहीं ॥
बंक नाल कवने घर बासा । कवन पवन जोती परगासा ॥

---

(१) भुलाया । (२) तीसरी पुस्तक में यह साखी ऐसे है—
"कोठा महल अटारिया, सुने स्रवन बहु राग ।
सतगुरु सब्द चिन्हे बिना, ज्यौं पंछिन महँ काग" ॥
(३) दूसरा पाठ—"ज्ञान काहू के न नावै माथा" ।

LIBRARY
Accession No.
Classification No.
CENTRE FOR ... OF DEVELOPING ...

छय चक्र के कहि दे भेदा। अठदल कँवल के करहु निषेधा ॥
सार पवन के कहि दे भेदा। कवन पवन खट चक्रहि छेदा ॥
अठदल कँवल रंग है भीना। तामें कवन सुरति लवलीना ॥
कहवाँ बोलता प्रेम अधारा। कवन सब्द से हंस उबारा ॥
एकर भेद कहो तुम आई। कह दरिया करु जोग दृढ़ाई ॥
एकर भेद नाहिं तुम जाना। पंडित पढ़ि का बेद पुराना ॥
एकर भेद पुछहु तुम मोहीं। एकर अर्थ सुनावों तोहीं ॥

साखी—कवन घरा ओइ हंस है, कवन घरा ओइ नाम।
कवन घरा ओइ जोति है, कवन सुरति निजु धाम ॥
अग्र[1] घरा ओइ हंस है, मनि मुक्तावलि नाम।
अजर[2] अनूपम जोति है, कँवल सुरति निजु धाम ॥

॥ चौपाई ॥

पंडित नाम अजहुँ नहिं चीन्हा। सुरति लगाम रंग नहिं भीना ॥
चीन्हहु पंडित सब्द निर्बाना। निर्गुन नाहि चिन्हहु अज्ञाना ॥
मूल चक्र निजु हीरा खानी। अठदल कँवल रहो निरबानी ॥
छप लोक सत्त ओइ ज्ञानी। जगमग जोति जहँ निर्मल बानी ॥
मुक्ति पदारथ सतगुरु दाता। जोग बिराग प्रेम रस माता ॥
कया अग्र दृष्टि अस्थाना। अगम निगम खबरि जो जाना ॥
वा को जोगी जगत बखाना। जा के गगन मँडल अस्थाना ॥
मनहिं में माला प्रेम रस भीना। पंडित सो जो सब्दहि चीन्हा ॥
सतगुरु बिना करहि जिव हानी। कम दरिया तजु चतुर सयानी ॥
सतगुरु की गति अगम अपारा। देखहु खोजि सब्द निजु सारा ॥

साखी—ज्ञान सँपूरन प्रेम रस, बिबरन[3] करो बिचारि।
हंस बंस सुख पावही, भवजल जाहि न हारि ॥

॥ चौपाई ॥

छय आठ के पावे भेदा। तब ही करिहै सबद निषेदा ॥

---

(१) सब से आगे, श्रेष्ठ। (२) दूसरे पाठ में "अक्षर" है। (३) निर्णय।

घटहि में सेली घटहि में मुंद्रा । घटहि में पाति फूल इक सुंद्रा ॥
सुरति अनूप जहँ नैन झरोखा । कँवल नाल से पवन सुरेखा ॥
छिन छिन होखै अनहद बानी । देखि सरूप मवन[१] रहु ठानी ॥
गुरु ज्ञानी जौ होखै कोई । सत्त नाम निजु पावै सोई ॥
सब्द पाय के दृढ़ करि धरई । जाय छप लोक नरक नहिं परई ॥

साखी—छप लोक ओइ सत्त है, जिदे कहा बुझाइ ।
धोखा धंधा तेजि के, सहर अमरपुर जाइ ॥

॥ चौपाई ॥

मेरे कहे जो माने कोई । आवत जात बहुत दुख होई ॥
दुख दारुन है जम जञ्जाला । सतगुरु सब्द करै प्रतिपाला ॥
जिन्हि जिन्हि मानु सब्द निजु सारा । दिव्य दृष्टि भयो उँजियारा ॥
सत्त सब्द सीख जो पावै । मीठा[२] दे तब दरस दिखावै ॥
जनम जनम के पाप कटाई । जाय छपलोक बहुरि नहिं आई ॥
पचिस प्रकृति औ तीनिउ नारी । पाँच तत्तु है आतम धारी ॥
जोग जाप जुगुती परधाना । जोगी सो जो करै बखाना ॥
कवन घरा जहँ उपजे ज्ञाना । कवन घरा जहँ हंस अस्थाना ॥
कवन घरा जहँ पीवै पानी । कवन घरा जहँ सुरति समानी ॥
कहाँ पचीस प्रकृति के डेरा । कहवाँ पाँचो भूत निमेरा ॥
पाप पुन्न भोग कहँ करई । कवन घरा जहँ सूनहि रहई ॥
उनुमुनि[४] मूल कँवल रह फूला । उपजै प्रेम होइ अस्थूला[५] ॥
गुप्त चरन[६] में प्रान समाना । त्रिकुटी सुन्न पवन अस्थाना ॥
अमी तत्तु तहँ पीवै पानी । कँवल नाल तहँ सुरति समानी ॥
इंद्री काम भोग एक करई । नासा वास आपु सब हरई ॥
सोइ जोगी एह जग में राधे । पवन साधि जो मन के बाँधे ॥

---

(१) चुप । (२) दूसरे पाठ में "बीरा" है । (३) नाड़ी । (४) जोग की पाँचवीं मुद्रा जिस में समाधि का अभ्यास किया जाता है । (५) स्थिर । (६) गुप्त पद ।

साखी—बारह मंडल नौ खँड पृथवी, ता में सबद निनार।
उलटि पवन षट चक्रहि छेदै, देखहु कया विचार॥

॥ चौपाई ॥

चारि कँवल जब परसै भाई। भोर[1] किये पुनि सब रस जाई॥
छव चक्र कै भेद है सारा। जो बूझै सतगुरु का प्यारा॥
सतगुरु बिना होइ नहि पारा। और गुरू पाखंड पसारा॥
गुरु सोई जो सीख बुझावै। सीख सोई साहब लौ लावै॥
बहुत गुरू करहीं गुरुवाई। सबद बिना उन्ह भेद न पाई॥
सबद पाय चलु देइ दमामा[2]। अभय निसान पाय सुख धामा॥
साखी—अभय निसान बजावहु संतो, परखहु सबद निज सार।
जम कै मान मरदि कै, जिंदा सत करतार॥
सूरा सोई सराहिये, जो जूझै दल मन खोल।
कायर कादर बीचले, मिला न सब्द अमोल॥

॥ चौपाई ॥

बिनु मुख वचन सबद इक बोला। बिनु पगु निरति जगत में डोला॥
ओइ अनहद जब लागै ताला। सूर चढ़ाय चंद मनि माला॥
यह झिनझिन जंतर बाजे भाला[3]। पीवै प्रेम होय मतवाला॥
अजपा कै यह भेद बताई। पाँच तत्तु तहँ परगट पाई॥
तत्तु पाय निहतत्तु में जाई। तत्तु में तत्तु रहा छवि छाई॥
तत्तु कियारी जोत किसाना। तत्तुहि गहै सबद निर्बाना॥
बिना तत्तु नहिं सबद समोई। कह दरिया समझै जन कोई॥
सत्त नाम परचै नहि पाई। सुर नर मुनि सब चले भुलाई॥
साखी—सतगुरु साहब साँच हहिं, देखो सबद विचारि।
गहो डोरि यह सबद की, तन मन डारो वारि॥

॥ चौपाई ॥

सतगुरु आगे तन मन दीजै। प्रेम प्रीति रस कबहि न छीजै॥
मन ममता सब दुर्मति डारा। परखि लेहु सबद निज सारा॥

(१) भूल। (२) डंका। (३) यह झनकार का शब्द अन्तर मस्तक में होता है।

॥ चौपाई ॥

सब्द एक मैं कहौं बुझाई । जो तुम पंडित बूझहु आई ॥
मूल विहंगम डोरी भाई । रवि ससि पवन जो सुन्न समाई ॥
सतगुरु सब्द जबहिं लखि आवै । मूल फूल अमृत मुख[1] पावै ॥
होय निरति तब सुरति देखावै । सार सब्द तब परगट पावै ॥
गगन मँडल बिच सुरति सँवारी । इँगला पिंगला सुखमन नारी ॥
साधहु सब्द जिवन जग मुकुता । पाप पुन्न कबहीं नहिं भुगुता ॥
ऐसी जुगति जो जानै कोई । कहि दरिया निजु जोगी सोई ॥

साखी—दरिया सब्द विचारिये, झलकै सेत निसान ।
जो सत सब्द न पाइये, तो कहा कथै गुरु ज्ञान ॥

॥ चौपाई ॥

परखहु सत्त सब्द यह बानी । करै बिवेक सो निर्मल ज्ञानी ॥
बिनु परखे नहिं मूल भेंटाई । पारखि जन सो सब्द समाई ॥
सब्दहि तत्तु बिचारहु भाई । पानी पय ज्यों हंस बिलगाई ॥
संसित[2] जल पय भीतर रहई । बिबरन[3] बरन सो इमि कर लहई ॥
हंस दसा सदा सुख पावै । काग कुबुद्धि निकट नहिं आवै ॥
पारस परसे मोती होई । मान सरोवर अवर न कोई ॥
अवरि सीप बहुते जग अहई । बिनु पारस मोती नहिं लहई ॥
सतगुरु मिलि तो ब्रह्म पुनीता[4] । सास्तर ज्ञान पढ़ा निजु गीता ॥
भव संसय में कबहिं न भटकै । ज्यों जल कँवल कबहिं नहिं अटकै ॥
हठ निग्रह करि भूले जोगी । आसन बाँधि पवन रस भोगी ॥
तन साधत फिरि भये असाधी । पाँच पचीस बहु कैसे बाँधी ॥
छुछम ज्ञान निजु करो बिचारा । मूल विहंगम निर्मल सारा ॥
जैसे पपिहा बुन्द असमाना । भेद निरखि के उलटि समाना ॥
सत्त सब्द कै करहु बखाना । ज्यों तरकस कसि कसै[5] कमाना ॥
सब्द बिलोय खेलहु चौगाना । सोई संत है निर्मल ज्ञाना ॥

---

(१) दूसरे पाठ में "सुख" है । (२) मिला हुआ । (३) रंग या जाति से रहित । (४) पवित्र । (५) दूसरे पाठ में "लीजै" है ।

सतगुरु के गति पावै कोई । जाय छप लोक सिधारै सोई ॥
गहै प्रेम होय निर्मल सरीरा । मेटि जाय सब जम कै पीरा ॥
साखी–सुमिरहु सत्त नाम गति, प्रेम प्रीति चित लाय ।
बिना नाम नहिं बाचिहो, मिथ्या जनम गँवाय ॥

॥ चौपाई ॥

सुमिरहु साँझ सकेर सवेरा । ज्ञान गुरू गति करहु निमेरा ॥
भवजल जल है अगम अपारा । कवन केवट गहिहै करुवारा[१] ॥
जौं अबहीं करि लेहु निमेरा । ज्ञान गुरू गति गहो सवेरा ॥
जौं लेवहु सतगुरु कै बानी । लाँघि सकौ तब भवजल पानी ॥
बिना सब्द नहिं होय उबारा । बिनु सतगुरु उतरै नहिं पारा ॥
काया परचै मूल जब पावै । सतगुरु मिलै तो सब्द लखावै ॥
कवन सब्द छप लोक ले जाई । कवन सब्द से परचै पाई ॥
कवन तत्तु ले सुरति समाई । कैसे प्रेम चुवै मुख लाई ॥
कवन पवन गरजै ब्रह्मंडा । कवनै कालराय कँह डंडा ॥
साखी–सार पवन औ चौदह मंतर, लीजै ज्ञान बिचारि ।
छय चक्र अठदल कँवल, कर्म काल सब जारि ॥

॥ चौपाई ॥

पवन एक सार निजु बानी । सोई भेद परखो निजु ज्ञानी ॥
निरति सुरति में आवै जाई । जा तें जोतिहि जोति समाई ॥
दुइ कर पवन सूर औ चंदा । चढ़ै गगन सब कर्म निकंदा[२] ॥
अभय नाम निजु जानै कोई । पीवै प्रेम सुधा रस सोई ॥
इँगला पिंगला सुखमनि फेरै । लाय कपाट गगन गहि घेरै ॥
छय चक्र निजु करै निमेरा । सो जोगी घर पहुँचु सवेरा ॥
सत्त सब्द जौं करै बखाना । सेत धजा निसि दिन फहराना ॥
आवै अनुभौ देखु बिचारी । आठ कँवल घर भीतर बारी ॥
नवो नाटिका करहु निमेरा । पिवै प्रेम अस्थिर घर डेरा ॥

(१) लग्गी । (२) निर्मूल हो जायँ ।

॥ चौपाई ॥

सतगुरु सबद प्रेम रस पीजै । काल कुबुद्धि दूर सब कीजै ॥
सबदै निर्गुन नाह[१] हमारा । ता के खोजहु ज्ञान करारा ॥
बेद लोक सब कहैं बनाई । सपने निर्गुन नाह न पाई ॥
तत्तपुरुष ओइ बिमल बिरोगा[२] । प्रेम प्रीति कीजै नहिं जोगा ॥
मनसा मालिनि आपु दिखावै । कामदेव तहँ मंगल गावै ॥
आतमदेव कि दरसै बानी । सिंचहिं प्रेम सुख बहुत बखानी ॥
सतगुरु आगे सुख बहुतेरा । सत पद का जो करै निमेरा ॥
बूझहु पंडित सत कै बानी । निरखि निरंतर निर्गुन ठानी ॥
पंडित सर्गुन होय जनेऊ । जो करता कै जानै भेऊ ॥
जौ निर्गुन सूझै बिस्तारा । पंडित तजहि बेद कै भारा ॥

साखी–सासतर गीता भागवत, पढ़ि पावै नहिं मूल ।
निहचै लागै प्रेम जब, तब पावै अस्थूल ॥

॥ चौपाई ॥

निहचय नाम प्रेम लव लावै । सो हंसा छप लोक सिधावै ॥
जाइहिं लोक बहुरि नहिं अवना । जनम जनम कै मेटि कलपना ॥
ऐसे बूझहु पंडित भाई । संग लेहु सतनाम सहाई ॥
काया अंतर ब्रह्म निजु बासा । चीन्हहु ताहि प्रेम परगासा ॥
कहौं बानी निजु सुनहु सुजाना । बिना भेद हंस नहिं जाना ॥
सुनहू पंडित हंस कै आदी । झूठ बात कहै सोइ बादी ॥
ब्रह्म फूटि अंस भौ तीना । सत्तपुरुष इन्ह सब तें भीना[३] ॥
प्रतीबिम्बु[४] घट परगट अहई । पुरुष तेज जग इमि कर लहई ॥
देखहु ज्ञान एह कया बिलोई[५] । अपने आपु में जाइ समोई ॥
सुरती कँवल कहो निजु बानी । सुखमनि घाट करो पहिचानी ॥
घेरि गगन घन बरिसै पानी । दरिया दिल बिच सुरति समानी ॥
निहचय सुरति ज्ञान रस सानी । पियै प्रेम तहँ निर्मल बानी ॥

(१) पति । (२) निर्दोष । (३) भिन्न । (४) छाया । (५) मथन करके ।

इँगला पिंगला सुखमनि घाटा । (तहँ) बंकनाल रस पीवै बाटा ॥
खोड़स दल कँवल बिगसाना । लपटि लगै मधुकर ललचाना ॥
सलिता तीनि संगम तहँ भयऊ । बारि बयारि अमृत रस पयऊ ॥
चंद सूर दुइ करहिं बिलासा । उदय अस्त फिरि होय प्रगासा ॥
इँगला चंद्र बाहनी कहिया । पिंगला भानु प्रगासित अहिया ॥
साखी–चारि अवस्था तीनि गुन, पाँच तत्तु है सार ।
प्रेम तेल तुरी[1] बरी, भयो ब्रह्म उँजियार ॥

॥ चौपाई ॥

एदुइ चक्र भरमते लोका । कामिनि कनक महा बड़ सोका ॥
उभय[2] त्यागि समरथ है दूजा । ता को चरन कमल का पूजा ॥
तेजि कंदर्प[3] कामिनि नाहिं साथा । सुमिरु नाम निजु होइ सनाथा ॥
जो जन समरथ सदा सहाई । मुक्ति समीप सदा फल पाई ॥
ओइ परचै नाम भजे ब्रह्मंडा । दानव दनुज पाप सतखंडा ॥
नाम प्रताप जुग जुग चलि आवै । सकल संत गुन महिमा गावै ॥
संत रहनि भव बारिज बारी । सदा सुखी निरलेप बिचारी[4] ॥
जल कुकुही जल माहिं जो रहई । पानी पर कबहीं नहि लहई ॥
दही मथे घृत बाहर आवै । फिरि के घृत नहिं उलटि समावै ॥
फुल बासे तिल भया फुलेला । बहुरि तील तेल नहिं मेला ॥
इमि कर संत असँत गुन कहई[5] । भौ निकलंक नाम गुन गहई ॥
औघट घाट लखै सो संता । सो जन जानु सदा गुनवंता ॥
अजपा जाप अनाहद नादा । तजि भव भर्म सो बादि बिबादा ॥
अमृत बुन्द तहँ झरै निकंदा । औन[6] अँजीर[7] मगन मन चंदा ॥
साखी–मनि मानिक दीपक बरे, उनमुनि गगन प्रगास ।
मन मोदिक[8] मद तेजि के, मेटु जरा मरन जम त्रास ॥

(१) एक अवस्था का नाम । (२) दोनों । (३) कामदेव । (४) संत संसार में ऐसे निर्लेप रहते हैं जैसे कँवल पानी में । (५) दूसरे पाठ में "लहई" है । (६) घर । (७) आँगन । (८) हर्ष ।

एह मन करता बिस्नु कहावै । मनहिं बिसंभर बिसु[1] पर आवै ॥
मनहीं अनल अकास प्रगासा । मनहीं पाँच तत्तु का बासा ॥
मनहिं समीर[2] बारि धन फेरै । मनहीं छटा गरजि घन घेरै ॥
मन जनमे नव बार गोसाँईं । अनँत रूप मन कला देखाई ॥
छंद—मने चलावै खंज मीन ज्यों, मन उड़गन[3] गगन सोहावही ।
मन अनल अनिल मन भँवर भर्मित, कंज पुंज पर आवही ॥
मन कर्म कर्ता काम कामी, बाम धाम छबि छावही ।
मन निसि बासर सोवत सपना, सर्ब रूप बनि आवही ॥
सोरठा—मन संसय सागर भयो, बूड़त अगम अथाह ।
चढ़ु सतगुरु सब्द जहाज,[4] उतरि जाय भव पार ॥

॥ चौपाई ॥

जिन्ह सत पद खोजा चितलाई । निकट नाम निजु ज्ञान समाई ॥
आतम दरस ज्ञान जब बूझै । प्रेम मगन होइ अपने सूझै ॥
तत्तु तिलक मनि मुद्रा फेरै । अनहद धुनि मुरली तहँ हेरै ॥
(एह) अजपा संध्या तरपन करई । गयत्री ज्ञान गम्मि मति लहई ॥
पल पल सुमिरि प्रेम रस पीजे । मनि मुकुता तहवाँ चित दीजे ॥
चंद सूर दुइ परचे भयेऊ । सलिता तिनि संगम तहँ रहेऊ ॥
कुंभ पत्र[5] तहवाँ भरि पीवै । ब्रह्म द्दाय तहाँ सुख जीवै ॥
मंगल मूल है रहनि बिसोका[6] । धरमराय दर कबहिं न रोका ॥
अनन्त एक महँ रहा समाई । सतगुरु ज्ञान जबै होय जाई ॥
साखी—बारि उपर बारिज कही, अलि कलि देखि लोभाय ।
(जब) भानु कला परगट भया, कंज सुबास सोहाय ॥

॥ चौपाई ॥

मातु पिता सुत बंधो भगिनी । अपने मगु में सब कोइ मगनी ॥
घटत छिनहिं छिन जात ओराई । हृदय बिबेक ज्ञान नहिं आई ॥
(सब) भूले सँपति स्वारथ मूढ़ा । परे भवन में अगम अगूढ़ा ॥

(१) संसार । (२) हवा । (३) तारा । (४) तीसरी पुस्तक में पाठ यह है—"सतगुरु दया तरिनी कियो" । (५) पात्र, बर्तन । (६) बिना शोक के ।

प्रेम धगा* यह टूटता नाँ।
    गरे† टूटि कंठी फिर बाँधना क्या ॥ १ ॥
यह तत्त तिलक सत नाम छापा करु।
    और बिबिधि है देखना क्या ॥ २ ॥
ज्ञान का दंड न डगमगे कर।
    दंड लिये काहू मारना क्या ॥ ३ ॥
यह झूलना दरिया साहेब कहा।
    सत नाम सही बहु पेखना क्या ॥ ४ ॥

(३)

दुइ सुर चाले एक भाव से।
    नाभि में उलटि के आवता है ॥ १ ॥
बिच इंगला पिंगला गले तीन नाड़ी,
    सुखमनि से भेद बतावता है ॥ २ ॥
उमँग करो अरु पूरो भरो।
    गंधर्ब लिये झरि लावता है ॥ ३ ॥
यह झूलना दरिया साहेब कहा।
    कोइ जोगी जुगुत से पावता है ॥ ४ ॥

(४)

झक झक लगा झक झक लगा।
    यह झरि झरोखे झाँकिया रे ॥ १ ॥
झरि झरि परा झरि झरि परा।
    यह फूल गुलाब के आँखिया रे ॥ २ ॥

---

* धागा, डोरा। † गला।

पिय प्रेम चखो पिय प्रेम चखो ।
उज्जत[*] भला दिल राखिया रे ॥ ३ ॥
दरसे हियरे दरगाह भला ।
दरिया कहैं सत साखिया रे ॥ ४ ॥

(५)

नाफ़[†] तख़्तगीर है दिल के बीच में ।
कुदरत मसजिद बनाइ दीता ॥ १ ॥
दोय बिच लाल अजब लागे ।
तहँ जोति का नूर परगट कीता ॥ २ ॥
यह चित्त के चाम में बाँग[‡] देवे ।
यह नाम नीशान नजर लीता ॥ ३ ॥
कहैं दरिया दाना दिल के बीच ।
अलफ़ अलह को याद कीता ॥ ४ ॥

॥ रेख़ता अष्ट पदी ॥

(१)

काया मैं जिव औ सिव संग सक्ति है ।
काया में काम औ क्रोध छावै ॥ १ ॥
काया की खानि अमोल निर्वान है ।
काया नवो नाड़िका[§] बाट आवै ॥ २ ॥
काया पिंड प्रान तैं भानु चन्दा उगै ।
काया की सुरति यह साफ पावै ॥ ३ ॥
काया मैं त्रिबेनी की लहरि तरंग है ।
काया मैं अमी सुख धार आवै ॥ ४ ॥

[*] स्वाद । [†] नाभी, ढोंढ़ी । [‡] आवाज़, शब्द । [§] नाड़ी ।

काया में मूल यह फूल परचह है।
काया छव चक्र दिव* दृष्टि लावे ॥ ५ ॥
काया के अग्र यह गगन गढ़ झाँकि है।
काया कोट पैठि यह घाट आवे ॥ ६ ॥
सोई सिध सोई साध संत जुग जुग जिये।
पिवे पहिचानि सत सब्द पावे ॥ ७ ॥
कहैं दरिया सत धर्म सत सोई है।
मरे ना जिवे ना गर्भ आवे ॥ ८ ॥

(२)

एक यह एक है टेक कोई गहै।
समझि के पाँव दे राह बाँकी ॥ १ ॥
सत्त का टोप सिर सब्द का साँगि† ले।
ज्ञान का तुरिया‡ तेज हाँकी ॥ २ ॥
काम औ क्रोध की फौज सब सोधि के।
बैठु मैदान में राखु ताकी ॥ ३ ॥
सबल नौसान यह थान§ आगे खड़ा।
जगत में सोर नहिं रही बाकी ॥ ४ ॥
संत सीपाह दिन रैन ठाढ़ा रहै।
कायागढ़ कोट में देत झाँकी ॥ ५ ॥
मन मस्त गयन्द जंजीर में दुहि रहत।
रहे ताबीन‖ सब बात वा की ॥ ६ ॥
जमीं और असमान के बीच में।
गगन में मगन धुनि किरति जा की ॥ ७ ॥

* दिव्य। † भाला। ‡ घोड़ा। § साज, ठाठ। ‖ ताबे।

साधि ले मेरुदंड बैठु अखंड खँड ।
पवन परिचेति* ले काम जारा ॥ ३ ॥
काल जंजाल का मनी कूताइ ले ।
जोग गहि जुगुत तुम समझ यारा ॥ ४ ॥
उलटि पवन तुम मगन करु गगन में ।
साधि ले त्रिकुटि दिय दृष्टि धारा ॥ ५ ॥
जहँ होत झनकार सत सब्द उँजियार ।
तहँ छूटि गो तिमिर उदोत सारा ॥ ६ ॥
तहँ रोग ना सोग निर्दोष निर्वान है ।
सर्बज्ञ सब माहिं तुम देखु यारा ॥ ७ ॥
कहै दरिया दिल पैठु दरियाव में
पावो तुम लाल अमोल प्यारा ॥ ८ ॥

(५)

नाम निर्बान तें कर्म कलिविष छुटै ।
खुलै कपाट मद मोह टारा ॥१॥
काल का फाँस जो कटि कत्तल† किया ।
ज्ञान गुरु खड़ग ले काटि यारा ॥ २ ॥
अनुराग बैराग हिय छेद बिरह भेद ।
सत धर्म सत नाम तुम समझु प्यारा ॥ ३ ॥
होइ आधरन सब काम करिथो छुटै ।
खुलै मूल दृष्टि पर अगम डेरा ॥ ४ ॥
काया के अग्र जहँ अगम झलकत रहै ।
झरत झरि अगम सब फहम तेरा ॥ ५ ॥

---

* जगाना । † मार डाला ।

ब्रह्म का तेज यह भेद बाँका बड़ा ।
गहिर गरकाब गहि अगम गाई ॥ ६ ॥
सुरति औ निरति सब थीर थाका हुआ ।
बास सुबास रस रहत छाई ॥ ७ ॥
कहैं दरिया सत वर्ग सब माहिं है ।
संत जन जौहरी भेद पाई ॥ ८ ॥

(१०)

घना मोती झरै जोति जगमग बरै ।
घटा घन घेरि चहुं ओर फेरा ॥ १ ॥
बुन्द आखंड सुर चलै ब्रह्मंड के ।
काम की फौज सब घेरि टेरा ॥ २ ॥
तिरबेनी मध्य तहँ सुरति सनमुख कियो ।
सुखमना घाट को दृष्टि हेरा ॥ ३ ॥
पलक मैं झलक चहुं मँदिर छबि छाइया ।
ब्रह्म पुनीत नाहिं बहुरि फेरा ॥ ४ ॥
भेद या का बड़ा काल संका नहीं ।
ज्ञान घट खुला सब कर्म जेरा ॥ ५ ॥
ध्यान लागा रहै गगन घन गरजिया ।
कुमति कुबुद्धि हू रहै चेरा ॥ ६ ॥
बैन बिचारि यह लगन लागी रहै ।
मगन सब दिन कियो गगन डेरा ॥ ७ ॥
संत सुजान जिन सब्द बीचारिया ।
कहैं दरियाव सो सदा मेरा ॥ ८ ॥

(२)

काया परिचै नहीं पवन के साध करि ।
पवन के साधि जम बाँधि मारे ॥ १ ॥
इंगला पिंगला की यह नाडिका ।
भूख की प्यास तजि तने जारे ॥ २ ॥
भया तन छीन बलहीन जोग जुगति बिनु ।
आपने मूढ़ कहु काहि तारे ॥ ३ ॥
साँपिनी डाइनी मूसे दिन रैन यह ।
बिना तप तेज नहिं समुझि पारे ॥ ४ ॥
पिंड की प्रान कछु काम के हैं नहीं ।
झूठ साखी कथै कुफुर धारे ॥ ५ ॥
चाल बेचाल चले सील संतोष नहिं ।
अवर सों अवर कहि अवर टारे ॥ ६ ॥
छोडु परपंच तुम फंद काहें रचे ।
फंद जंजाल का काम सारे ॥ ७ ॥
काया के अग्र यह अगम पहिचानि ले ।
कहैं दरिया सत सब्द धारे ॥ ८ ॥

(३)

घट परवह पर मीन परमान है ।
दिव दृष्टि की बात का दूरि जानी ॥ १ ॥
दुरग दीखा परे भरमि काहे मरे ।
निकट नीसान नहिं फहम आनी ॥ २ ॥
दीद बर दीद परतच्छ निर्वान है ।
निरखु निज नाम चढु गगन ज्ञानी ॥ ३ ॥

जहाँ भूख प्यास है दया समेत।
बोइये बीज जो मिले सुखेत ॥ ७ ॥
जहाँ सुरसरि महँ बसहिं जीव।
दरद बिना कहु का को पीव ॥ ८ ॥
ता की सरन कहु कैसे जाय।
धीमर सो जिव धरि के खाय ॥ ९ ॥
सतगुरु कहा सब्द उपदेस।
अगम निगम सब सुनु संदेस ॥ १० ॥
सत तरनी* भवसिन्धु पार।
दरिया दरसन गुन है सार ॥ ११ ॥

(२)

मानु सब्द जो करु बिबेक।
अगम पुरुष जहँ रूप न रेख ॥ १ ॥
अठदल कँवल सुरति ठो लाय।
अछपा जपि के मन समुझाय ॥ २ ॥
भँवरगुफा में उलटि जाय।
जगमग जोति रहे छबि छाय ॥ ३ ॥
बंक नाल गहि खैंचे सूत।
चमके बिजुली मोती बहुत ॥ ४ ॥
सेत घटा चहुँ ओर घनघोर।
अजरा जहवाँ होय अँजोर ॥ ५ ॥
अमिय कँवल निज करो बिचार।
चुवत बुन्द जहँ अमृत धार ॥ ६ ॥

---

*नाव।

छव चक्र खोजि करो निवास।
मूल चक्र जहँ जिव को बास ॥ ७ ॥
काया खोजि जोगी भुलान।
काया बाहर पद निर्बान ॥ ८ ॥
सतगुरु सब्द जो करे खोज।
कहँ दरिया सब पूरन जोग ॥ ९ ॥

(२)

सुख सागर जियरा करु अनन्द।
प्रेम मगन खेलु तजि दुंद ॥ १ ॥
छुटिगो तिमिर उद्दोत भान।
सेत मंडल बिच सोहं निसान ॥ २ ॥
गगन गरजि झरि होत तरंग।
सींचत गुलाब सीतल भी अंग ॥ ३ ॥
बिगसित कुमुदिनि उदित चन्द।
भूल भँवर तहँ खुली तरंग ॥ ४ ॥
गगन मँडल बिच भयो है बास।
सींचत चकोर तहँ चुगे सुवास ॥ ५ ॥
अकह कँवल के उपर मूल।
सहज कँवल जहवाँ रहु फूल ॥ ६ ॥
झरि झरि परत सुरँग रँग फूल।
प्रेम अगम गम हो समतूल ॥ ७ ॥
मै निर्मल पायो सब्द सार।
संत सुरत गहि होहु पार ॥ ८ ॥

अनक मूल है सब्द सार, चहुँ ओर दीसै रँग करार ॥३॥
झरत झरी तहँ झमकै नूर, चितचकमक गहि बाज तूर ॥४॥
झलकत पदुम गगन उँजियार, दिव्य दृष्टिगहु मकर तार ॥५॥
द्वादस इंड़ा पिंगला जाय, परिमल बास अग्र सो पाय ॥६॥
बंक कँवल मध हीरा अमान, सेत बरन भौंरा तहँ जान ॥७॥
खोजहु सतगुरु सत निसान, जुक्ति जानि जिन कथहिं ज्ञान ॥८॥
कहैं दरिया यह अकह मूल, आवा गवन के मिटे सूल ॥९॥

(७)

मैं जानहुँ तुम दीन-दयाल ।
तुम सुमिरे नहिं तपत काल ॥ १ ॥
ज्यौं जननी प्रतिपाले सूत* ।
गर्भ बास जिन दियो अकूत ॥ २ ॥
जठर अगिनि तें लियो है काढ़ि ।
ऐसो या की ठयर गाढ़ि ॥ ३ ॥
गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह ।
परघट जग में तेहि गति दीन्ह ॥ ४ ॥
गरवी मारेउ गैब बान ।
संत को राखेउ जीव जान ॥ ५ ॥
जल में कुमुदिनि इन्दु† अकास ।
प्रेम सदा गुरु चरन पास ॥ ६ ॥
जैसे चाँपहा जल से नेह ।
बुन्द एक बिस्वास तेह ॥ ७ ॥
स्वर्ग पताल मृत मद्दल तीन ।
तुम ऐसा साहेब मैं अधीन ॥ ८ ॥

*पुत्र। †चन्द्रमा।

छिरकत अगर गुलाल कुमकुमा, नाम केशर रँग घोरी।
उनमुनि की पिचुकार बनी है, सतगुरु रंग कमोरी,
भली हैं सोहागिनि गोरी ॥ ५ ॥
घर घरवा सतसंगत में, मन मानस व्याह करोरी।
दरिया साहेब अमर पति दूलह, गवने के दिन थोरी,
चलो किन देखन बौरी ॥ ६ ॥

॥ मलार ॥

(१)

हरि जन प्रेम जुगुति ललचाना।
सतगुरु सब्द हिये जब दीसे, सेत धुजा फहराना ॥ १ ॥
हृदे कँवल अनुराग उठे जब, गरजि घुमरि घहराना।
अमृत बुन्द बिमल तहँ झलके, रिमि झिमि सघन सोहाना २
बिगसित कँवल सहसदल तहवाँ, मन मधुकर लपटाना।
बिलगि बिहरि फिर रहत एकरस, गगन मधे ठहराना ॥३॥
उछरत सिन्धु असंख तरँग लहि, लहरि अनेक समाना।
लाल जवाहिर मोती ता में, किमि करि करत बखाना ॥४॥
बिछरन बिलगि हंस गुन राजित, मानसरोवर जाना।
मंजन मेलि भई तन निर्मल, बहुरि न मैल समाना ॥ ५ ॥
एक से अनँत अनँत से एक है, एक में अनँत समाना।
कहँ दरिया दिल चसमाँ करिले, रतन झरोखे जाना ॥६॥

(२)

जा के हिये गगन झरि लागी।
बिना घटा घन बरिसन लागी, सुरति सुखमना जागी ॥१॥

अजपा जाप जपै निस वासर, रहै जगत से बागी* ।
मूल अकह में गम्मि बिचारै, सोई सदा जन भागी ॥२॥
कंठदल कँवल झरोखा महवाँ, नाम बिमल रस पागी ।
तिल भरि चौकी दना† दरवाजा, ताहि खोजु बैरागी ॥३॥
जोरे जारे सब्द बनावै, राग गावै सो रागी ।
अलख लखै कोइ पलक बिचारै, सोई संत अनुरागी ॥४॥
थकित भये मन गीत कबित्तन, भौ बिषया के त्यागी ।
सब्द सजीवन पारस परसेउ, सीतल भो तन आगी ॥ ५ ॥
इत उत कहे काम नहिं आवै, सारहिं लेवै माँगी ।
कहैं दरिया सतगुरु की महिमा, मैंटे करम के दागी ॥६॥

(२)

अमर पति प्रीतम काहे न आवो ।
तुम सत बर्ग हौ सदा सुहावन, किमि नहिं उर गहि लावौं १
बरषा बिबिधि प्रकार पवन अति, गरजि घुमरि घहरावो ।
बुन्द अखंडित मंडित महिपर, छटा चमकि चहुं जावो ॥२॥
झींगुर झनकि झनकि झनकारहिं, बान बिरह उर लावो ।
दादुर मोर सोर सघन बन, पिया बिनु कछु न सोहावो ॥३॥
सरिता उमड़ि घुमड़ि जल छावो, लघु दिर्घ सब चढ़ियावो ।
याके पंथ पथिक नहिं आवत, नैनन मैं झरि लावौं ॥४॥
केहि पूछौं पछितावत दिल में, जो पर होइ उड़ि धावौं ।
जो पिया मिलैं तो मिलौं प्रेम भरि, अमि भाजन‡ भरि लावौं ५
है बिस्वास आस दिल मेरे, फेरि दृग दर्सन पावौं ।
कहैं दरिया धन भाग सोहागिनि, चरन कँवल लपटावौं ६

---

* खिलाफ़ । † दाना के बराबर । ‡ बरतन ।

॥ झूलना ॥

(१)

मुक्ति के हींडोलना, झूलहिं विवेक विचार ॥ टेक ॥
सत सुकृत दोउ खंभ गाड़े, सुरति डोरि लगाय ।
प्रेम पटरी बैठि के, यह झुलहिं संत समाय ॥ १ ॥
इंगल पिंगला सुखमना, जहँ चलै पवन सुधारि ।
अर्ध उर्ध आवै दुवादस, चरन चित्त सम्हारि ॥२॥
जहँ जलद* झलकित पुहुप बिगसित, भँवर बास समाय ।
तहँ मोह माया निकट नाहीं, अग्र ज्ञान रहु छाय ॥३॥
फूहि झमझम झरत निरगुन, रहो गगन समाय ।
तहँ मनी मुक्ता निरखु निर्मल, प्रेम पंथ अपार ॥४॥
तहँ रह अकह कह अकथ कथ है, कहे को पतियाय ।
तहँ झूलहीं जन प्रेम बसि होय, अवा गमन नसाय ॥५॥
छोड़िहैं सब भर्म कर्महिं, नाम निश्चै पाय ।
अचल पद कहँ लागिहैं सब, सकल भर्म मिटाय ॥६॥
सुमिरत वेद पुरान पंडित, पुजा करम बखानि ।
भर्म कर्म लै झुलन लागे, अंत बिगुरचन हानि ॥७॥
आदि अंत औ मध्य मंडल, झुलहिं मुनी महेस ।
कहँ दरिया सत्त महिमा, ज्ञान गुरु उपदेस ॥८॥

(२)

सत्त सुकृत दुनौं खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि ।
अरध उरध दुनौं मचवा[†] हो, इँगला पिँगला झकझोरि ॥१॥

---

* बादल । † मचिया या खटोला जिस पर बैठ कर हिंडोला झूलते हैं ।

सौदा सुलफ करो बहु भाँति,
जा तें सोहु न डंडे ।
कहैं दरिया सुन योगी ज्ञनियाँ,
कबहुँ न करो पखंडे ।

(५)

कोइ संत बिबेकी सब्द बिचारा, प्रेम पिये सो प्यारा ॥
अर्ध उर्ध के मद्धे मानिक, करै दृष्टि उँजियारा ।
बंक नाल नाभी के कहिये, भँवर गुफा के राह सुधारा ॥१॥
खेचरि भूचरि तजे अगोचरि, उनमुनि मुद्रा धारा ।
सरिता तीनि मिले इक संगम, सुमति करि मरि धारा ॥२॥
अनहद ताल पखाउज किंगर[*], सोता सुमति बिचारा ।
झिनझिन जंतर निस दिन बाजे, जम जालिम पचिहारा ॥३॥
सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक बिहीन नहिं तारा ।
कहैं दरिया कोइ संत बिबेकी, निरमै लोक बिचारा ॥४॥

(६)

जन कोइ आनँद मंगल गावे ॥ टेक ॥
बिरक्त[†] फिरै भवन के भीतर, पदुम पदारथ पावे ।
मैन मजीठ[‡] मैल सब छूटा, घटा बदल घन छावे ॥१॥
रोमरोम जाके पद परगासित, बिहरि बिहँसि मिलि जावे ।
भूमि बीरानी भर्म न राखे, पग नाहीं अटकावे[§] ॥२॥
बीज बोवे नहिं पेड़ पुरातन, फल फूल सबहिं मिटावे ।
कुरिया तत्त उड़ा बिनु ताजन[||], इहि बिधि तर्क बतावे॥३॥

---

* शब्द को ध्यान से सुनिये। † साधक। ‡ मजीठ का रंग जो कभी छूटता नहीं।
§ यह संसार ऊसर ज़मीन के समान है इस में भ्रम वश कोई पाँव न अटकावै।
|| कोड़ा।

मिला हमार वहा बिनु डोरी, डगमग कबहुँ न आवे ।
निरखहिं मुक्त भया मुक्ताहल, मलि दुख अंजन लावे ॥४॥
पिया प्रेम हुआ मस्त दिवाना, गूँगा बैन बुलावे ।
कहैं दरिया धन धन वे सतगुरु, बहुरि न भौजल आवे ॥५॥

(७)

संतो एहू अमर घर जैये ।
तन मन वारि चढ़ो सर जा से, सोइ फल अमृत पैये ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ तिरिस्ना, यह सब मेटि बहैये ।
नारी पुरुष स्वाद बिसरावो, सतगुरु सब्द समैये ॥२॥
बंक नाल उलटि अजपा के, गगन गुफा घर लैये ।
अर्ध उर्ध औ सोहं सूरति, दिव्य दृष्टि गहि लैये ॥३॥
सेत घटा घन मोती झरि हैं, निरमल जोति समैये ।
पूरन ब्रह्म पुनीत उदित भौ, बहुरि न भवजल ऐये ॥४॥
तहँ सुखराज बिलास पुहुप पर, अमृत चाखन पैये ।
कहैं दरिया दासा सतगुरु के, पास पुरुष के रहिये ॥५॥

(८)

तुम मेरो साईं मैं तेर दास, चरन कँवल चित मेरो पास ॥१॥
पल पल सुमिरौं नाम सुवास, जीवन जग में देखो दास ॥२॥
जल में कुमुदिनि चन्द अकास, छाइ रहा छवि पुहुप बिलास ॥३॥
उनमुनि गगन भया परगास, कहैं दरिया मेटा जम त्रास ॥४॥

(९)

तुम सब ऐगुन मेटनिहारा ।
जा के हाथ जगत की डोरी, गुन गहि खैंचो पारा ॥१॥
पूत कपूत पिता कहँ लज्जा, जो मैं बुधि बिगारा ।
जैसे मनि मन्दिर के भीतर, निसि बासर उजियारा ॥२॥

(५०)

जहँ तक दृष्टि लखन में आवै, सो माया का चीन्हा ।
का निरगुन का सरगुन कहिये, वै तो दोउ तें भीना ॥१॥
दीपक जरै प्रकासु जहाँ तक, बाती तेल मिलाया ।
जा की जोति जगत में जाहिर, भेद सो बिरले पाया ॥२॥
परस पखान पारस जो कहिये, सोना जुगुति बनाई ।
जेहि पारस से पारस भयउ, सो संतन ने गाई ॥३॥
परिमल बास परासहिँ बेधे, कह वो चन्दन हूआ ।
जेहिँ पारस से परिमल भयऊ, सो कबहीं नहिँ मूआ ॥४॥
जो पारस भृंगी यह जाने, कीट से भृंग बनाई ।
वा का भेद लखै नहिँ कोई, अपने जाति मिलाई ॥५॥
सनद परी सतगुरु के पासै, भरमि रहा सब कोई ।
बिरला उलटि आप को चीन्हा, हंस बिमल मल धोई ॥६॥
जल थल जीव जहाँ लग व्यापक, बेद किलेबे भाखा ।
वा की सनद कबहुं नहिँ आहै, गुप्त खजाने राखा ॥७॥
सतगुरु ज्ञान सदा सिर ऊपर, जो यह भेद बतावै ।
कहैँ दरिया यह कथनी मथनी, बहु प्रकार से गावै ॥८॥

(५१)

यह जग पारख बिना भुलाना ।
अगुनसगुनजग दुइ करि थापहिं, अजपाधरिधरि ध्याना ॥१॥
अद्वैत ब्रह्म सकल घट व्यापक, तिरगुन में लपटाना ।
आवै जाय उपजि फिर बिनसै, जरि मरि कहाँ समाना ॥२॥
कथे चक्र को चारि चतुरदल, बेद मते अरुझाना ।
बंक नाल को डोरी खींचे, जोगी जुगुति बखाना ॥३॥

सहस पाँखरी कमल बिराजित, मन मधुकर लपटाना ।
जल के सुखे कँवल कुम्हिलाने, तब कहु कहाँ ठिकाना ॥४॥
घट में करता लोक कहतु है, पाँच तत्तु बिलगाना ।
सगुन बिनसि निरगुन रहित है, गुन बिन कहाँ समाना ॥५॥
करहु बिचार सकल मिलि ऐसे, भेष बिबिधि है थाना ।
कहैं दरिया सतगुरु गमि जाने, पहुँचे हंस ठिकाना ॥६॥

(१५)

भीतर मैलि चहल* के लागी, ऊपर तन का धोवे है ॥१॥
अविगति मुरति महल के भीतर, वाका पंथ न जोवे है ॥२॥
जुगुति बिना कोइ भेद न पावै, साधु संगति का गोवे है ॥३॥
कहैं दरिया कुटने के गोटी, सीस पटकि का रोवे है ॥४॥

गोष्ठी

दरिया साहेब की रामेश्वर जोगी की गोष्ठी में

(रामेश्वरदास)

गुफा सुफा में आसन माँड़े, सुन में ध्यान लगावै ।
आसन साधि पवन जो पोवै, जोनि संकट नहिं आवै ॥
यह मन जाना ब्रह्म ठिकाना, सोई सिद्ध कहावे ।
कर्म जोग बिनु जुगति न पावे, सतगुरु सब्द लखावे ॥
वायु बिन्दु लै गगन समाना, त्रकुटी है अस्थाना ।
सास्तर गीता यह मति भाखे, सोई सब्द प्रमाना ॥
रोम रोम सोंचि जो जोगी, अमृत झरि जो आवै ।
कहैं रामेश्वर सुनु हो स्वामी, तब या पद के पावै ॥१॥

---

* कीचड़ ।

(दरिया साहेब)

का गोफा सोफा में बैठे, का इक तारी लाये ।
का आसन बासन के बाँधे, का भौ पवन चढ़ाये ॥
का आतम के जारे मारे, का भौ तृषा मिटाये ।
जब लग जुगुति जानि नहिं आवे, का भा जोग कमाये ॥
का सींगी सेल्ही के डारे, का मुख टेरि सुनाये ।
का नाचे झालरि झनकारे, का मिरदंग बजाये ॥
झिलिमिलि झगरा झूठा झलते, औंधा ध्यान लगाये ।
कहैं दरिया सुनु ज्ञान रमेसर, जग में जिव जहँड़ाये ॥२॥

(रामेसरदास)

सनकादिक सुकदेव जो कहिये, जा के ब्रह्म दिढ़ाना ।
अखंडित ब्रह्म अगोचर अविगति, यही मता ठहराना ॥
वशिष्ट ज्ञान जो स्रेष्ट जगत में, औ मुनि बहुत बखाना ।
जा को बचन अमर है जुग जुग, निराछेप निरबाना ॥
एकै जोति सकल घट ब्यापेउ, अद्वैत ब्रह्म कहावे ।
अगम अपार पार नहिं पावे, निगम नेति जो गावे ॥
चार बेद ब्रह्मा मुख भाखा, ब्यास गरंथ बनाया ।
कहैं रामेस्वर सुनिये स्वामी, यह छोड़ि दुजा न आया ॥३॥

(दरिया साहेब)

हरि ब्रह्मा औरौ त्रिपुरारो, बहुते जोग कमाते ।
नवो नाथ चौरासी सिद्धा, गोरख पवने खाते ॥
इंगला पिंगला सुखमनि जाने, मेरु दंड को साधा ।
बंक नाल की डोरी खींचे, उलटि दुवादस बाँधा ।
मारकंडे वो संकर जोगी, जग में परघट ज्ञाना ।
मुनि वशिस्ट राम के जो गुरु, उन भी ज्ञान बखाना ॥

वेद गरब तें पंडित भूला, आपन मरम न जाना।
ये जीवै जहँड़ाये जग में, पढ़ि पढ़ि वेद पुराना॥
जोति सरूपी जा के कहिये, करै जिवन के घाता।
दान पुन्य बलि राजा कीन्हा, बाँधि पताले जाता॥
उतपति परलै यह जग करई, सो मन चाहै हाथा।
मिरतक* अंध नजरि नहिं आवै, रहै समनि के माथा॥
जब लगि मन परिचै नहिं पावै, किमि उतरै भवपारा।
कहैं दरिया सुन ज्ञान रमेसर, करिलै सब्द बिचारा॥१॥

(रामेस्वरदास)

खेचरि भूचरि चाचरि अगोचरि, यह जोगी जो पावै।
इँगला पिंगला सुखमनि घाटै, अठदल कमल दिढ़ावै॥
पाँच तत्त को बाती लेवै, परम जोति परगासा।
सुन्न मँदिर में मुद्रा जागी, करम भरम सब नासा॥
नाद बिन्द जाके घट अरई, सहज समाधि लगावै।
आपुहिं गुरू आप है चेला, कहु का को गुन गावै॥
आपन अंस पावै जो जोगी, कवन बुड़े को तरई।
कहैं रामेस्वर सुनो सुवामी, यह पद निरचै धरई॥२॥

(दरिया साहेब)

खेचरि भूचरि चाचरि अगोचरि, मुद्रा झिलमिलं† त्यागै।
छोड़ि पपीलक गहै बिहंगम, उन मुनि मुद्रा जागै॥
छवो चक्र काया परघट है, वा का भेद जो पावै।
सब्द सजीवनि हैगा मूला, काया में भलकावै॥

* मीत। † प्रकाश।

08:21

INTERNET ARCHIVE

(1 of 290)

Favorite Share Flag

Parag Lalleshwari Vakh Pushkar Nath Raina

by bhushan kaul deambi

11:04

जग से रहे उदास मरहमी[1] अंत के।
अरे हाँ पलटू ऐसी रहनि रहै सो लच्छन संत के ॥
(भाग २, अरिल १३)

संत संत सब बड़े है, पलटू कोऊ न छोट।
आतम-दरसी मिहीं है, और चाउर सब मोट ॥
(भाग ३, साखी १)

गगन कि धुनि जो आनई, सोई गुरु मेरा।
वह मेरा सिरताज है, मैं वा का चेरा ॥
सुन में नगर बसावई, सूतत भे जागै।
जल मे अगिन छपावई, संग्रह में त्यागै ॥
जंत्र बिना जन्त्री बजै, रसना बिनु गावै।
सोहं सबद अलापि कै, मन को समुझावै ॥
*सुरति डोर अमृत भरै, जहँ कूप उरधमुख।
उलटै कमल हि गगन में, तब मिलै परम सुख ॥
भजन अखंडित लागई, जस तेल कि धारा।
पलटूदास दंडौत करि, तेहि बारम्बारा ॥
(भाग ३, शब्द १)

बूझि विचारि गुरु कीजिये, जो कर्म मे न्यारा।
कर्म-बन्ध हरि दूरि है, बूड़ह मँझधारा ॥
काम क्रोध जिनके नहीं, नहि भूख पियासा।
लोभ मोह एको नहीं, नहि जग की आसा ॥

---

१. भेदी।

*कबीर साहिब भी कहते हैं कि आन्तरिक मुन्न मे नाम रूपी अमृत का उलटा है, परन्तु कोई विरले गुरमुख या साधू उस अमृत को पी सकते है। निगुरे इस अमृत को पी सकते :

गगन मडल बिच उर्धमुख कुइआ,
गुरमुख साधू भर भर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन कीया,
जा के हिरे अंधियारा है। (सन्तों की बानी, २

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

बंगला अजब दिया करतार ।
जिस में झलकै जोत अपार ।।टेक।।
करम गाल कर कंचन गारा, कदे न लागै काई ।
पुन पारष से चिने चनावट, मेहर छावनी छाई ।।1।।
हीरा हेत सुबुद्धि जवाहर, लौ के लाल लगाए ।
मन मनसा मोतिन की झालर, रतन जड़ाव जड़ाए ।।2।।
जलें असंख्य तेज के दीपक, रोम रोम रली कीन्हा ।
चित में चन्द करोड़ों चमकैं, दरसै दिल दुरबीना ।।3।।

त्रिगुण तिमर की द्वन्द न ब्यापै, निर्गुण नूर नजारा ।
आठों पहर अखंड रोशनी, धन्य बनावन हारा ।।4।।
स्वामी गुमानी सतगुरु मिल कर, जो जो चरणों लागे ।
नितानन्द तन बंगले भीतर, भाग तिन्हों के जागे ।।5।।

卐 शब्द 157 卐

बंगला अजब बनाया खूब, अवगत पार ब्रह्म महबूब ।।टेक।।
गैब माहिं से गुप्त प्रेम धर, फेर प्रकट कर लाया ।
नाद की ईट बिन्द की गारा, ऐसा चरित्र दिखाया ।।1।।
भांति भांति के झुके झरोके, शोभा भली बनाई ।
चौदह लोक द्वार पर चमकैं, चेतन करी चितराई ।।2।।
जाग्रत स्वप्न सुसोपति तुरिया, डयौढी चार लगाई ।
पिंजर पांच पचीसों खिड़की, सुख मन सेज बिछाई ।।3।।
सीढ़ी शब्द मुक्त दरवाजा, तीन देव दरवाना ।
भीतर निर्गुण नूर बिराजे, निराकार निरबाणा ।।4।।
परा पश्यंती मध्य बैखरी, छुटैं चार फव्वारा ।
शब्द कुलावे अमृत उतरे, कौतुक करे पियारा ।।5।।
बंगले अन्दर साहेब सुन्दर, बंसी सुघर बजावै ।
आठों पहर अखंड एक रस, सोहंम सोहंम गावै ।।6।।

हे ग्वरा परमीश्वरा ।
बावतम च़्यय छुय अंतर ब्यो'द ।
द्वशवय व्वपदन कंद पुरा ।
हूह कव् तुरुन तू हाह कव् तो'त ।। २७।।

क-६५। चि-८६। ग्रि-५६। शि-५२। पा-६७।

हे ग्वरा	परमीश्वरा	बावतम	
हे गुरु	परमेश्वर	बताओ मुझे	(क्योंकि)
च़्यय	छुय	अंतर	ब्यो'द
आप को	है	(इन के बीच) अंतर	(का) ज्ञान
द्वशवय	व्वपदन	कंद	पुरा
दोनों	उत्पन्न होते हैं	देह	नाभिसे
हूह कव्	तुरुन तू	हाह कव्	तो'त
श्वास क्यों	ठंडा तथा	उश्वास क्यों	गर्म (होता है)

अर्थात, ललीश्वरी अपने गुरु से प्रश्न करती हैं कि एक ही शरीर में नाभिस्थान से दोनों प्राण उत्पन्न होते हैं फिर सांस लेते समय ठंडा तथा छोडते समय गर्म क्यों होता है? आप ही बताएं क्योंकि आपको इनका अंतर विदित है।

इसके उत्तर में गुरु ने कहा,

ना'बिस्थान् छ'य प्रकरथ ज़लव्नी ।
हिडिस ताम ये'ति प्रान वत्गो'त ।
ब्रह्मांडस प्यठ् सूत्य नदि वहवनी ।
हह तव् तुरुन त् हाह तव् तो'त ।। २८।।

क-६६। च-४५। ग्रि-५७। बी-१५०। शि-८१। पा-६८।

ना'बिस्थान्	छय	प्रकरथ	ज़लव्नी	
नाभि (देश) में	है	प्रकृति की	जठर अनल (अग्नि)	
हिडिस	**ताम**	**ये'ति**	**प्रान**	**वत् गो'त**
कंठ देश	तक	जहां है	श्वासोश्वास का	आना जाना
ब्रह्मांडस	**प्यठ्**	**छय**	**सूत्य नदि**	**वहवनी**
ब्रह्मांड	में	है	शीतल नदी	बहती
हह	**तव्**	**तुरुन त्**	**हाह तव्**	**तो'त**
श्वास	इसी लिए	ठंडा है तथा	उश्वास	गर्म है

अर्थात, नाभि में जठरानल अग्नि है। कंठ तक सांस का आना जाना होता है। उससे सांस गर्म होकर बाहर निकलती है और ब्रह्मांड में प्राण वायु की शीतल नदी बहती है इसी लिए सांस लेते समय ठंडी होती है।

विशेष - शरीर में मेरु से तीन नाडियां उतर कर नाभि में मिल जाती हैं। इन तीनों नाडियों में इडा के ऊपरी सिरे पर चंदम्रा तथा पिंगला के निचले छोर पर सूर्य है। अर्थात, सूर्य का स्थान नीचे के देश में तथा ब्रह्मांड में चंद्रमा का स्थान है। सुषमना जिस के मध्य में चित्रा नाडी है, इन दोनों के बीच में चलती है। इडा नाडी का प्रभाव शीतल होता है और पिंगला का गर्म होता है।

अकुय ओमकार युस नाबि दरे ।
कुम्बय ब्रहमांडस सुम गरे ।
अख सुय मंथ्र च़्यतस करे ।
तस सास मंथ्र क्याह करे ॥ ४८॥

क-७३। चि-१। ग्रि-३४। शि-६६। पा-२८।

अकुय	**ओमकार**	**युस**	**नाबि**	**दरे**
एक ही	ओमकार	जो	नाभि में	धारण (स्थापित) करे गा
कुम्बय	**ब्रहमांडस**	**सुम**	**गरे**	
कुंभक द्वारा	ब्रह्मांड के साथ	पुल	बनाएगा	(ब्रह्मांड से मिलाए)
अख	**सुय**	**मंथ्र**	**च़्यतस**	**करे**
एक	वही	मंत्र	स्मरन	करेगा
तस	**सास**	**मंथ्र**	**क्याह**	**करे**
उसे	हज़ार	मंत्र	क्या	करेंगे

अर्थात, जो कोई प्राणायाम के पूरक में सांस को कुछ देर रोककर एक ही मंत्र ओमकार का नाभि में धारण करके अर्थात ध्यान करके शनैः शनैः ब्रह्मांड के साथ संयुक्त या सम करेगा और इसका अभ्यास करता रहेगा', ऐसे व्यक्ति को किसी और मंत्र साधना की आवश्यकता नहीं है।

कुंभ - घडा। कुंभक - सांस रोकना -। ओम के बारे में (माण्डोक्योपनिषद १ - द्वितीय अवली श्लोक १५ ईशानादि ६ उपनिषद में कहा गया है; 'ओमित्येतदक्षरमिदम् सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतभवद्भविष्यदिति सर्वोमकार एव। यंच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योड कार एव'। अर्थ, 'ओम यह अक्षर सब कुछ है। यह जो कुछ भूत भविष्यत वर्तमाण है उसी की व्याख्या है। इस लिए यह सब ओमकार ही है। इस के सिवा जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु हैं वह भी ओम ही है।

'सम करे' -समान करे। अथवा कुम्भ आकाश को महा आकाश के साथ मिलाए।

अंदर आ'सिथ न्यबर छ़ोंडुम ।
पवनन रगन क'रनम सथ ।
ध्यान् किन्य दय ज़गि कीवल ज़ोनुम ।
रंग गव संगस मीलिथ क्यथ ।। ५४।।

क-१५३। चि-१४। शि-१६१।

अंदर	आ'सिथ	न्यबर	छ़ोंडुम	
अंदर	होकर	बाहर	ढूंडा मैंने (उसे)	
पवनन	रगन	क'रनम	सथ	
प्राणायाम से	नाडियों में	प्रदान हुई	दृढता (विश्वास	की)
ध्यान् किन्य	दय	ज़गि	कीवल	ज़ोनुम
ध्यान द्वारा	प्रभु	जगमें	केवल सर्वमय है	जान लिया
रंग	गव	संगस	मीलिथ	क्यथ
रंग	हुआ	साथ	मिल	उसके

अर्थात, मेरे अंदर मौजूद होकर मैं ने उसे (शिव को) बाहर ढूंढा। फिर प्राणायाम द्वारा कुंडिलिनि जाग गई और मैं आत्मविश्वस्त होगई। ध्यान द्वारा सारे जगत को प्रभू रूप ही जान लिया। इस कारण मैं भी प्रभू के रंग में ही रंग गई, अर्थात उनके साथ एक हो गई।

19:10

गायत्रेय अज़पा छ्ल् अकि ता'जिम ।
सूहम सतचीं क'रमस थफ ।
अहमस लो'त पा'ठ्य ज़ठ्र्य वा'जिम ।
ग्वर् कथ पा'जिम चा़'जिम च़ख ।। ५५ ।।

क-२४१।

गायत्रेय	अज़पा	छ्ल्	अकि	ता'जिम
गायत्री का	अजपाजप	प्रविधि	एक से	किया पाठ
सूहम	सतची	क'रमस	थफ	
सूहम	की सत्यता से	लिया मैंने	पकड	
अहमस	लो'त	पा'ठ्य	ज़ठ्र्य	वा'जिम
अहं का	धीरे	से	उलझाव	दूर किया
ग्वर्	कथ	पा'जिम	चा़'जिम	च़ख
गुरु	शब्द का	पालन करके	सह लिया	क्रोध को

अर्थात, ललेश्वरी कहती हैं कि मैंने गायत्री का अजपाजाप पाठ एक विशेष विधि से सोहम शब्द द्वारा किया। अहंकार को शनैः शनैः समाप्त किया तथा गुरु की आज्ञा का पालन कर क्रोध को सह लिया।

'चा़'जिम च़ख' का अर्थ है क्रोध को सहन किया। तो अर्थ बनता है कि कभी गुरु ने ललेश्वरी पर क्रोध किया होगा उसको सहन किया। 'च़'जिम' (क नोट.२) शब्द को लेकर अर्थ बनता है कि क्रोध समाप्त होगया। किंतु वज़न के अनुसार चा़'जम ठीक है।

सोहमसो गायत्री छंद के २४ वर्णों में सम्मिलित है। सोहमसो का जाप ही गायत्री छंद का अजपाजप पाठ है।

कंध्यव गेह त्यज़ि कंध्यव वनवास ।
व्यफुल मन ना रटिथ तू वास ।
द्यन रात गंज़रिथ पनुन श्वास ।
युथुय छुख तू त्युथुय आस ।। ६१।।

क-१०६। शि-११। पा-७६। ग्रि-५५।

कंध्यव	गेह	त्यज़ि	कंध्यव	वनवास
रे मनुष्य	घर	छोड कर	शरीर (का करो)	वनवास
व्यफुल	मन	ना रटिथ	तू	वास
व्यर्थ है	मन को	न पकड कर	फिर	वनवास लेना
द्यन	रात	गंज़रिथ	पनुन	श्वास
दिन	रात	गिनते रहो	अपना	श्वासोश्वास
युथुय	छुख	तू	त्युथुय	आस
जो वास्तविक	रूप है तेरा	तो	वही	हो जा (जाएगा)

अर्थात, ललेश्वरी पुनः कहती हैं कि मन को वश में किए बिना मनुष्य घर में रहे या वनवास में कोई अंतर नहीं है। अच्छा है कि दिन रात अपने श्वासों की ओर ध्यान दे या गिनें तो ऐसा करने से मन पर नियंत्रण होगा, फिर अपनी वास्तविकता को पहचाना जा सकता है।

सारांश यह कि जो मनुष्य अपने मन को वश करने में विफल हुआ है उसका वनसास करना व्यर्थ है। इसलिए श्वासोश्वास द्वारा मन को नियंत्रण में लाकर अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होसकता है।

19:12

दीह्चि लरे दारि बर त्रो'परिम ।
प्राण् चूर रो'टुम त् द्युतमस दम ।
हृदयिचि कूठरि अंदर गों'डुम ।
ओम् के चोबुक् तुलमस बम ।। ६६।।

क-१४१। ग-७। शि-२४। ग्रि-१०१। पा-३१।

दीह्चि	लरे	दारि बर	त्रो'परिम
शरीर रूपी	मकान के	दरवाज़े तथा खिडकियां	मैंने बंद की
प्राण् चूर	रो'टुम	त् द्युतमस	दम
प्राणों के चोर (मन)	को पकडा मैंने	और दिया उसका	दम घोंट
हृदयिचि	कूठरि	अंदर	गों'डुम
हृदय की	कोठरी के	अंदर	उसे बांधा मैंने
ओम् के	चोबुक्	तुलमस	बम
ओम के	चाबुक से	ताबड तोड (उसे)	पीटती गई

अर्थात, ललेश्वरी कहतीं है कि 'मैंने अभ्यास के समय शरीर रूपी घर के दरवाज़े तथा खिडकियां (नव द्वार) बंद किए और प्राण चोर अर्थात मन का दम घोट दिया (सांस को रोककर) तथा हृदय की कोठरी में बंद करके ओम शब्द रूपी चाबुक से उसे पीटा और बार बार ओमकार का उच्चारण कराया'।

भावार्थ - नवद्वार को बंद करके तेज़ गति से मन में ओम का उच्चारण करती रही ताकि मन बटके नहीं और एकाग्र हो जाए।

ज़ान्हा ना'ड्य दल मन् र'ठिथ ।
च़'ठिथ व'टिथ क'टिथ क्लेश ।
ज़ान्हा अद् असत् रसायन ग'टिथ ।
शिव छुय क्रूठ तय चे़न व्यपदीश ।।७८।।

क-८०। ग्रि-८०। शि-७६। पा-२६।

ज़ान्हा	ना'ड्य	दल	मन्	र'ठिथ
जान सकती	नाडियों (के)	समूह का	मन से	नियंत्रन
च़'ठिथ	व'टिथ	क'टिथ	क्लीश	
काटकर (परदे)	इकट्ठा कर	समाप्त कर	क्लेश	
ज़ान्हा	अद्	असत्	रसायन	ग'टिथ
मैं जान सकती थी	तब	धीरे धीरे	रसायन को	घोटना (पीना)
शिव	छुय	क्रूठ	तय चे़न	व्यपदीश
शिव प्राप्ति	है	कठिन	तो मनन कर	यह उपदेश

अर्थात, मैं नाडियों के दल (इडा, सुषमना तथा पिंगला) को मन द्वारा पकड सकती या काबू में ला सकती और इस से सर्व क्लेशों को समेटकर काट कर कम या समाप्त कर सकती। तब ही मैं इस (आत्मज्ञान) रसायन को धीरे धीरे तैयार करके पीना जान सकती थी। इसलिए इसी उपदेश का मनन कर नहीं तो शिव को पाना कठिन है।

अपने को पाने की बात कितनी सरल लगती है, किंतु अपने को पाने की प्रक्रिया कितनी कठिन है। रसायन - सहस्रार में पाया जाने वाला अमृत।

19:14

ललि ग्वर ब्रह'मांड प्यठ कुन वुछुम ।
शशकल व'छूम पादन ताम ।
ज्ञानूकि अमृतू प्रकथ ब'रूम ।
लूभूय मोरुम अंदवंद ताम ।। ८२।।

क-१७६। ग-४५।

ललि	ग्वर ब्रह'मांड	प्यठ कुन	वुछुम
लल ने	गुरु को ब्रह्मांड	के ऊपर की ओर	देखा (मैंने)
शशकल	व'छूम	पादन	ताम
अमृत	देखा (उतरते)	पांव (उनके)	तक
ज्ञानूकि	अमृतू	प्रकथ	ब'रूम
ज्ञान रूपी	अमृत से	प्रकृति को	मैंने भर लिया
लूभूय	मोरुम	अंद वंद	ताम
लोभ को	मारा (समाप्त किया)	मैंने अंत	तक (मूल से)

अर्थात, मैंने (लल) अपने ब्रमांड में गुरु को देखा और शशकल का संचार अर्थात इडा नाडी के सिरे तक सहस्रार में पहुंच कर चंद्रमा से अमृत प्राप्त किया जो सारे शरीर में संचारित हो गया। समस्त प्रकृति (शरीर) को ज्ञान रूपी अमृत से भर दिया। आदि से अंत तक लोभ को त्याग कर समाप्त किया।

शशकल-जब एकाग्रता से जाग्रत तथा निद्रा अवस्था के बीच सुरत या विचार सहस्रार में नींद की कौशिका को क्रियाशील करता है तो शरीर आनंद को प्राप्त होता है। इसी प्रकार निरंतर अभ्यास द्वारा जब सुरत या ख्याल एक विंदु पर केंद्रित होकर सहस्रार या मस्तिष्क में आनंद अमृत रिसाने वाली कोशिका को छूता है तो एक तरल पदार्थ रिसकर सारे शरीर की शेष कोशिकाओं तथा स्नायों में सरकन के साथ तत्काल आनंद तथा स्फूर्ति का संचार करता है। संभवतः जागरूक अवस्था में इसी रिसाव के कारण आनंद का अनुभव कराने वाली क्रिया को शशकल कहते हैं। सारांश यह कि जहां साधक और साध्य का मिलाप होता है वहीं शशकल है।

19:15

पूरक कुम्भक रेचक को'रुम ।
पवनस त्रा'वूम पे'ठ्य किन्य वथ ।
अनाहतस भस्म को'रुम ।
केंह नो मोतुम स्वय छम कथ ।। ६१।।

क-२३६। ग-७८।

पूरक	कुम्भक	रेचक	को'रुम
पूरक	कुम्भक	रेचक	किया (प्राणायाम) मैंने
पवनस	त्रा'वूम	पे'ठ्य	किन्य वथ
प्राण वायु को	छोडा (ओर) मैंने	ऊपर	की और (दिया) रास्ता
अनाहतस	भस्म	को'रुम	
अनाहत को	भस्म	किया मैंने	
केंह नो	मोतुम	स्वय	छम कथ
कुछ नहीं	शेष बचा	वही	है मेरा वास्तविक वृत्तांत

अर्थात, मैं ने प्राणायाम के पूरक (सांस लेना) कुम्भक (सांस रोकना) रेचक (सांस छोडना) चरणों का अभ्यास किया। प्राण वायु को ऊपर से जाने दिया। अनाहत अर्थात शब्द को भस्म किया (शब्द के पार चली गई) फिर शेष कुछ भी नहीं बचा तथा मेरे लिए वास्तविक सत्य वही है कि अन्नाम में पहुंच गई।

19:16

गगनस भूतलस शिव ये'लि ड्यूंठुम ।
रवस ल'ब नु रोज़नस जाय ।
सिरियिके प्रभाव विशमय ज़ोनुम ।
ज़ल गव थलस सूत्य मीलिथ क्याह ।। ६६।।

ग-७६। क-२४७।

गगनस	भूतलस	शिव	ये'लि	ड्यूंठुम
आकाश (और)	पृथ्वी सब	शिव मय	जब	देखा
रवस	ल'ब	नु	रोज़नस	जाय
सूर्य को	मिली	नहीं	रहने को	जगह
सिरियिके	प्रभाव्	विशमय	ज़ोनुम	
सूर्य के	प्रभाव से	विश्व को	जाना	
ज़ल गव	थलस	सूत्य	मीलिथ	क्याह
जल गया	थल के	साथ	मिल	क्या (वाह)

अर्थात, आकाश पृथ्वी को जब शिवमय देखा तब सूर्य गौण हो गया। सूर्य के प्रभाव से ही विश्व को जान गई और जल थल के साथ मिलकर एक हो गया। सार यह कि मन से द्वैत का भाव ही मिट गया।

भावार्थ - लल ने अपनी नाभि में ओम का ध्यान किया। पिंगला नाडी के निचले सिरे पर सूर्य का स्थान है तो उस के प्रभाव से सहस्रार में पहुंच कर उसे शिव का साक्षात्कार हो गया अर्थात नीचे मूलाधार से सहस्रार तक सारा शिवमय हो गया इस कारण अब सूर्य नाडी पर ध्यान की आवश्यकता नहीं रही।

च़्यत् त्वरुग गगन् ब्रमूवोन ।
निमीशि अकि छ़ंडि यूज़न् लछ़ ।
च़ीतन् वगि ब्वदि र'टिथ ज़ोन ।
प्राण अपान संदा'रिथ पखूच ।। १०८ ।।

क-५२। चि-५७। शि-१०२। पा-३०।

च़्यत्	त्वरुग	गगन्	ब्रमूवोन	
चित्त रूपी	घोडा	आकाश (में)	उडने वाला है	
निमीशि	अकि	छ़ंडि	यूज़न्	लछ़
पलक जपक में	एक ही	भ्रमण करेगा जो	यूजन	लाख
च़ीतन	वगि	ब्वदि	र'टिथ	ज़ोन
चेतना रूपी	लगाम से	बुद्धि द्वारा	थामना (जिसने)	जान लिया
प्राण	अपान	संदा'रिथ	पखूच	
प्राण	अपान (रूपी)	सशक्त करके	पंखों को	

अर्थात, चित्त रूपी घोडा आकाश में भ्रमन करने वाला है। एक पलक में लाखों योजन तय करता है। प्राण, अपान अर्थात श्वासोश्वास रूपी पंखों को दृढ बनाकर चेतन एवं जागरूक बुद्धि रूपी लगाम से काबू करना (मैं ने) जान लिया। अर्थात इस को काबू करना चाहिए।

' निमिष ' - ' टिटवहार ' - पलक झपकने में।

भावार्थ - प्राणायाम से मन को नियंत्रण में रखने पर बल दिया गया है।

उपरोक्त वाक्य की अंतिम दो पंक्तियों का पारिमू द्वारा संशोधन इस प्रकार है। ' येम्य न् वगि यि र'टिथ ज़ोन ', 'जो नहीं जानता इस की लगाम कैसे पकडें' तो 'प्राण अपान फुटरनस पखूच', प्राण अपान के अभ्यास द्वारा मारा जाएगा। प्रश्न है कि कौन मारा जाएगा? यहां ललेश्वरी का संबोधन गौण है।

ऐसा लगता है कि पारिमू ने स्रोत बताए बिना ही 'संदा'रिथ' का संशोधन करके फुटरिथ बनाकर अर्थ को उलटा करके वाख को निम्न कोटि का एवं निरर्थक बनाया। प्राणों के नियंत्रण से चित्त पर नियंत्रण हो सकता है न कि पहले चित्त को नियंत्रण में लाकर फिर श्वासोश्वास को। यदि ऐसा होता तो प्राणायाम करने की क्या आवश्यकता है। कौल का दिया वाख अर्थ एवं ललेश्वरी के अनुभव के साथ मेल खाता है।

अगले वाख में संबोधन स्पष्ट है और ललेश्वरी अपना अनुभव व्यक्त करती हुई कहती हैं -

च़्यत् त्वरुग वगि ह्यथ रो'टुम ।
च़्यलिथ मिलविथ दशि ना'ड्य वाव ।
तवय शशकल व्यगलिथ व'छ़्म ।
शुन्यस शुन्या मीलिथ गव ।। १०६ ।।

क-६१। ग्रि-६६। शि-१०३। पा-४२।

च़्यत्	त्वरुग	वगि	ह्यथ	रो'टुम
चित्त	रूपी घोडे	को लगाम	द्वारा	थामा मैंने
च़्यलिथ	मिलविथ	दशि	ना'ड्य	वाव
कसकर	मिला कर	दसों	नाडियों को	श्वासोश्वास से
तवय	शशकल	व्यगलिथ	व'छ़्म	
उसी कारण	शशकल	पिगल कर	उतरी मेरी	
शुन्यस	शुन्या	मीलिथ	गव	
शुन्यके साथ	शुन्य	मिल	गया (फिर)	

अर्थात, चित्त रूपी घोडे को दसों नाडियों समेत कसकर मैं ने थाम लिया। उसी से ब्रह्मांड से टपकता अमृत पान करके शुन्य अर्थात परमात्मा के साथ विलीन हो गई।

विशेष - कसकर का अर्थ ज़ोर ज़बरदस्ती से नहीं अपितु पूरे ध्यान तथा ' सावधानी के साथ ' है। क्योंकि त्रिक में कुंडिलिणी योग में हठ का कोई समावेश नहीं है। मेरु में जो स्पंद होता है वह कुंडिलिणि का ही सूक्षम शक्ति रूप है।

दस नाडियां - १ इडा २ पिंगला ३ सुषमना ४ गांधारी ५ हस्तिजीहवा ६ पूशा ७ यशस्विनी ८ अलंभुषा ६ कूहू १० शंखिणी।

दम् दम् मन ओमकार परनोवुम ।
पानय परन पानय बोज़न ।
सूहम पदस अहम गोलुम ।
त्यलि लल बो वा'चूस प्रकाशस्थान ॥ ११६ ॥

क-१४५। शि-१७५।

दम्	दम्	मन	ओमकार परनोवुम
(हर) सांस	सांस में	मन को	ओमकार पढाया
पानय	परान	पानय	बोज़न
स्वयं ही	पढता है	स्वयं ही	सुनता है
सूहम	पदस	अहम	गोलुम
सोहम	पद से	अहम (मैं)	का लोप किया
त्यलि	लल बो	वा'चूस	प्रकाशस्थान
तब ही	लल मैं	पहुंच गई	प्रकाश स्थान पर

अर्थात, प्रत्येक श्वास में मैंने मन को ओमकार पढाया। स्वयं ही पढता और स्वयं ही सुनता है। सोहम पद (सोहम-सू+अहम अर्थात-'वह मैं हूं') से मैंने अहम या मैं का लोप किया तो 'सू' अर्थात 'वह शिव' शेष रहा और वही 'सू' करती गई तभी मैं लल प्रकाशस्थान पर पहुंच गई।

19:23

दमादम् को'रमस दमन हाले ।
प्रज़ल्योम द्‌ फ त्‌ ननेयम ज़ात ।
अन्द्रिम प्रकाश न्यबर छो'टुम ।
गटि रो'टुम त्‌ क'रमस थफ ।। ११८।।

क-६८। चि-३३। शि-८२। ग्रि-४।

दमादम	को'रमस	दमन	हाले
लगातार	की मैंने	प्राणायाम की	भरपूर क्रिया
प्रजल्योम	द्‌ फ	त्‌ ननेयम	ज़ात
(तो) चमका मेरा	द्वीप (ज्ञान का)	और पहचाना अपने	स्वरूप को
अन्द्रिम	प्रकाश	न्यबर	छो'टुम
अंदर का	प्रकाश	बाहर	छलकाया
गटि	रो'टुम	त्‌ क'रमस	थफ
अंधेरे में ही	उसे पाया	और लिया मैंने	पकड

अर्थात, जिस प्रकार लोहार खाल में वायु भरकर आग में धातों को तपाता है, इसी प्रकार मैंने परिश्रम से बार बार प्राणायाम की क्रिया की जिससे मेरे अंदर ज्ञानदीप प्रदीप्त हुआ तथा मुझे अपने वास्तविक रूप का ज्ञान हुआ कि मैं वही हूं। अंदर प्राप्त हुए ज्ञान प्रकाश को मैं ने बाहर छलकाया अर्थात व्यवहार में लाया और बाहर के अंधकार रूपी अज्ञान को समाप्त किया।

(दमन हालय-लुहार धौंकनी अर्थात खाल में तुरंत हवा खींचकर उसे दबाकर धीमी गति से निकाल कर कोयले के आग को तीव्र करके हाल में रखे धात को पिघला कर स्वछ बनाता है)।
' हाल ' - लोहार जहां आग रखता है। हालय - भरपूर, विस्तृत जैसे हालि मा'दान - विशाल मैदान। दमन - लोहार का खाल में वेग से हवा भर कर धीमी गति से हाल में रखे कोयले का सुलगाने की क्रिया। खाल में शीघ्रता से हवा भरकर आहस्ता निकाली जाती है।

19:24

द्वादशांत मंडल यस दीवस थजि ।
नासिक् पवन दा'र्य अनाहत रव ।
स्वयम कलपन अनतिह चॖजि ।
पानय सुह दीव तॖ अरचुन कस ।। १२१।।

क-७२। चि-३६। ग्रि-३३। शि-८३। पा-५४।

द्वादशांत	मंडल	यस	दीवस	थजि
द्वादशांत	मंडल	जिस	शिव का	स्थान है
नासिक्	पवन	दा'र्य	अनाहत	रव
नाक से	पवन को	धारण कर	(सुने) शब्द	देखा प्रकाश
स्वयम	कलपन	अनतिह	चॖजि	
स्वयं ही	कल्पनाएं	अंततः	मिट गईं	
पानय	सुह	दीव तॖ	अरचुन	कस
स्वयं	वह	शिव ही है	फिर पूजा	किस की

अर्थात, जो सांस खेंचकर द्वादशांत मंडल या ब्रहमूरंध्र (सहस्रार में जो देव का स्थान है) मैं अनाहत शब्द एवं प्रकाश का अनुभव करता है, स्वयं ही उस की कल्पनाएं समाप्त अर्थात शांत हो जाती हैं। स्वयं वही देव है। जब इस तथ्य का आभास हो गया तो फिर पूजा किस की करनी?

अनाहत - अंतर का शब्द। रव - सूर्य, प्रकाश, निरंतर बहने वाली धारा।

बान गो'ल तय प्रकाश आव ज़ूने ।
चंद़र गो'ल तय मो'तुय च़्यथ ।
च़्यथ गो'ल तय केंह तिना कुने ।
गय भूर भवह सूर व्यसरज़िथ क्यथ।। १२४।।

क-८५। चि-४६। शि-३८। ग्री-६।

बान	गो'ल	तय	प्रकाश	आव ज़ूने
सूर्य	अस्त हुआ	और	प्रकाश	आया चांद को
चंद़र	गो'ल	तय	मो'तुय	च़्यथ
चंद्रमा	अस्त हुआ	तो	शेष रहा	चित्त
च़्यथ	गो'ल	तय	केंह तिना	कुने
चित्त	अस्त हुआ	तो	कुछ भी शेष नहीं (रहा)	कहीं
गय	भूर	भवह	सूर	व्यसरज़िथ क्यथ
होगया	पृथ्वी	आकाश	ब्रह्मांड का	विसर्जन

भावार्थ, जब सूर्य अस्त होता है तो चंद्रमा उदय होता है। अर्थात नाभि (सूर्य देश से) ब्रह्मांड में जाकर चंद्रम देश में चंद्रमा का उदय होता है। फिर चंद्रमा भी अस्त होकर चित्त ही शेष रहता है। चित्त के लीन होने पर (परम शिव के सिवा) कुछ भी शेष नहीं रहता है । अर्थात पृथ्वी आकाश तथा ब्रह्मांड लीन हो जाते हैं।

श्यह वन च़'टिथ श्यशकल वुज़्म ।
प्रक्रथ हो'ज़्म पवन् सूतिय ।
लोल्कि नार् वा'लिंज बुज़्म ।
शंकर लो'बुम तमिय सूतिय ।। १३३ ।।

क-६३। चि-६६। ग्रि-२५। शि-६०। पा-३८।

श्यह वन	च़'टिथ	श्यशकल	वुज़्म
छः वन	लांघकर	शशिकल	प्रस्फुटित हुई मेरी
प्रक्रथ	हो'ज़्म	पवन्	सूतिय
प्रकृति (शरीर)	खाली (निर्मल) हुई	पवन (प्राणायाम)	द्वारा
लोल्कि	नार्	वा'लिंज	बुज़्म
प्रेम की	अग्नि से	हृदय को	भून लिया
शंकर	लो'बुम	तमिय	सूतिय
शंकर	पाया	इसी कारण	से

अर्थात, छः भूमिकाएं पार कर के शशकल (सहस्रार में निकलने वाला अमृत जो सारे शरीर को आनंदित करता है) फूट पडी और प्रकृति को प्राणायाम से निर्मल बनाया। प्रभु प्रेम की अग्नि में अपने को भस्म किया तभी शंकर को पा लिया।

' श्यह वन ' - अभ्यास के छः पडाव, १ - मूलाधार। २ - स्वाधिष्ठान। ३ - मणिपूरक। ४ - विशुद्ध चक्र। ५ - आज्ञाचक्र। ६ - सहस्रार।

योग की भूमिकाएं - आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारना, ध्यान तथा समाधि। त्रिक् में यम नियम नहीं है। ' हो'ज़्म '- साफ अथवा निर्मल किया (जैसे ' हो'दुय बत् ' अर्थात खाली चावल।)। परिमू ने ' हो'ज़्म ' - 'जलादी' अर्थ दिया है जो संगत नहीं है।

कर्म ज़ु कारण त्रे'ह कोंबिथ ।
यव् लबख परिलूकस आं'ख ।
व्यथ खस सिर्यमण्डल छो'मबिथ ।
तवय च़लिय मरनून्य शेंख ।। १४३।।

क-१०१। ग्रि-७५। शि-१७७। पा-६६।

कर्म ज़ु	कारण	त्रे'ह	कोंबिथ
कर्म दो	कारण	तीन से	आगे जाकर (अभ्यास से)
यव्	लबख	परिलूकस	आं'ख
जिस से	प्राप्त होगा तुझे	परिलोक का	अनुमान
व्यथ	खस	सिर्य मण्डल	छो'मबिथ
उठ (और)	चढ जा	सूर्य मण्डल	चाक करके (तकनीक से)
तवय	च़लिय	मरनून्य	शेंख
उसी से	कटे गी तेरी	मरने की	शंका

अर्थात, दो कर्म (सत या भगवत प्राप्ति के लिए कर्म और असत अर्थात भगवत प्राप्ति से परे कर्म) तथा ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव, इन तीन कारणों से परे (ऊपर) होकर ध्यान कर तो तेरे परिलोक का भला होगा। उठ सूर्य मंडल को (तकनीक से) तय करके चढ अर्थात प्रकाश का साक्षात्कार कर तो तेरी मरने की शंका समाप्त हो जाएगी। ग्रीर्यसन ने तीन कारण को त्रिक के तीन मल माना है। कोंबिथ को कुंभक क्रिया माना है। मेरे विचार में 'कोंबिथ' का अर्थ' ऊपर एवं आगे होकर या छोडकर' अर्थ का स्रोत कोंब जैसे न'र्यकों'ब -(फेरन के बाजू का अगला भाग) है। यहां ब्रह्मा मणिपूरक विष्णु नाभि तथा हृदय शिव के स्थान हैं। इन के आगे का स्थान आज्ञाचक्र तथा उसके आगे सहस्रार है जहां प्रकाश के दर्शन होते हैं। वही प्रकाश सूर्य मंडल का है, क्योंकि सुषमना नाडी सूर्य नाडी है।

19:31

अज़पा गायत्रय हमस् हमस् ज़'पिथ ।
अहम त्रा'विथ अद् सुय रठ ।
ये'म्य त्रोव अहम सुय रूद पानय ।
बो न् आसुन छुय व्यपदीश ॥ १४६ ॥

क-१६८। चि-७। शि-१७४। पा-७३।

अज़पा	गायत्रय	हमस्	हमस्	ज़पिथ
अजपा जप	गायत्री मंत्र	मैं वह हूँ	मैं वह हूँ	जपकर
अहम	त्रा'विथ	अद्	सुय	रठ
मैं (अहंकार)	त्याग कर	फिर	उसी को	थाम
ये'म्य	त्रोव	अहम	सुय रूद	पानय
जिसने	त्यागा	मैं (अहंकार)	वही रहा	स्वयं ही
बो	न्	आसुन	छुय	व्यपदीश
अहं	समाप्त	करना	यही है	उपदेश

अर्थात, सोहम (मैं वहीं हूं, शरीर नहीं) का अजपाजप जाप कर। सोहम (सः + अहं) से 'अहं' अर्थात 'मैं' में जो अहंकार का प्रतीक है को त्याग दे। फिर केवल 'सू' अर्थात वह परमशिव शेष रहेगा। 'मैंपन' का न होना अर्थात अहं का त्याग करना ही तेरे लिए श्रेष्ठ उपदेश है। सरांश यह कि 'मैं मैं' त्याग कर 'वह वह' ही में लीन होना साधक के लिए सर्वश्रेष्ठ उपदेश है।

पवन पूरिथ युस अनि वगि ।
तस ब्वना स्पर्शि न ब्वछि त्रेश ।
ति यस करुन अनतिह तगि ।
समसारस सुय ज्ययि नेछ ॥ १६५॥

क-५१। चि-७१। ग्रि-३७। पा-८४।

पवन	पूरिथ	युस	अनि	वगि
श्वास को	पूर्ण रूप से	जो	करेगा	काबू
तस	ब्वना	स्पर्शि न	ब्वछि तु	त्रेश
उस को	बिलकुल	छुए गी नहीं	भूख और	प्यास
ति	यस	करुन	अनतिह	तगि
वह (ऐसा)	जिसको	करना	अंत तक	आयेगा
समसारस	सुय	ज्ययि	नेछ	
संसार में	वही	जियेगा	वाह (सफलता से)	

अर्थात, जो मनुष्य अपने प्राण अपान को पूर्ण रूप से वश में करेगा उस को भूख प्यास कभी स्पर्श नहीं करेंगे। जो अंत तक ऐसा अनुशीलन करेगा, संसार में वही सफल होकर जियेगा।

पारिमू (८४) ने पहली पंक्ति का अर्थ 'सांस लेकर जो नियंत्रण में करता है' कहा है तथा सांस छोडने की बात छोड दी जो हठ योग की क्रिया है।

' वग ' - लगाम। अनति-अंत पर। नेछ, नेशनावुन - वाह वाह, ।

19:38

अनाहत ख-स्वरूफ शुन्यालय ।
यस नाव न वर्ण न गुथुर तॣ रॣ फ ।
अहम विमर्ष नाद ब्यंदॖय यस वो'न ।
सुय दीव अशववार प्यठ चड्यस ॥ १८६॥

क-१२३। चि-८७। ग्रि-१५। शि-६६। पा-६६।

अनाहत	**ख-स्वरूफ**	**शुन्यालय**		
अनाहत (ओम)	आकाशस्वरूप	शून्यालय		
यस	**नाव**	**न वर्ण**	**न गुथुर**	**तॣ रॣ फ**
जिस का (न)	नाम है	न कोई रंग	न कोई गोत्र	न कोई रूप
अहम	**विमर्श**	**नाद ब्यंदॖय**	**यस**	**वो'न**
अहं	विमर्ष	नाद बिंदु की	जिसको	पहचान है
सुय	**दीव**	**अशववार**	**प्यठ**	**चड्यस**
वही	देव	घुड सवार	इस पर	चढेगा

अर्थात, ऐसे घोडे पर चढने वाले घुडसवार के बारे में स्वयं ही उत्तर देती हैं, कि जो अनाहत अर्थात ओम शब्द रूप है, आकाशवत शुन्य का स्रोत है, उसका कोई नाम वर्ण गोत्र तथा रूप नहीं है। अहं विमर्ष नाद बिंदु रूप की जिस को पहचान तथा समझ है और सदा उसी में स्थित है। वही पूर्ण साधक रूपी देव घुडसवार इस घोडे पर चढ सकता है।

'अशववार' -सिद्धहस्त घुडसवार। 'अहम विमर्ष' - 'मैं शिव हूं' यही भाव रहना। अनाहत - बिना चोट किए बाहर से न सुनाई देने वाला शब्द अर्थात ओम शब्द। यहां त्रिक् योग में शांभव उपाय द्वारा साधक की अनुत्तर अवस्था का वर्णन है। जो परम शिव का रूप है।

प्रान तू रुहुन कुनुय ज़ोनुम ।
प्रान बज़िथ लबिय न साद ।
प्रान ब'ज़िथ केंह ति ना ख्यज़े ।
तवय लो'बुम सूहम साद ॥ २०६ ॥

क-१५७- ग्रि-६०। शि-८५।

प्रान	तू	रुहुन	कुनुय	ज़ोनुम
प्राण	तथा	रुहुन को	एक जैसा	जाना
प्रान	बज़िथ	लबिय	न	साद
प्राण को	तलकर	मिलेगा	नहीं	स्वाद
प्रान	ब'ज़िथ	केंह ति	नो	ख्यज़े
प्राण का	तडका	लगा कर	नहीं	खा लेना
तवय	लो'बुम	सूहम	साद	
ऐसा करने से	पालिया	सोहम का	स्वाद	

अर्थात, प्राण तथा रुहुन लहसन (रूह) को एक जैसा माना। प्राण को तलकर (जला कर या पाणों को तकलीफ देकर) स्वाद न मिलेगा। इस लिए प्राण (प्राणों) का तडका लगाकर नहीं खा लेना। अर्थात प्राणों को हठात नहीं रोकना या पीडा देना। ऐसा (सहज क्रिया) करने से ही मैंने सोहम का स्वाद पा लिया, अर्थात स्वात्म को पहचानने का आनंद पा लिया।

कश्मीर में मुसलमान लोग ' प्राण ' तथा ' रुहुन ' तेल में जला कर सब्ज़ी में डालते है। प्राण के बारे में १५,१६ तथा १७ वाख को देखें।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा ॥

आत्म ज्ञान निश्चय करे तौ लय मोक्ष निर्वान ॥
यह समजी चम्पा कहे साधनते सिद्ध जान ॥
जीव समावे ब्रह्म में वहुर न विसरे कोइ ॥
ब्रह्म जीव एकै भये वहुर न दूजो होइ ॥

चौपाई ॥

आसन मुद्रा कुंभक साधे ॥ वार वार पूरक को साधे ॥ २६३
प्राण अपान एक है जाईं ॥ स्थिर के श्वास न विसरे कोईं ॥
नाद विन्द एककर ल्यावे ॥ मन पवना घट माहि समावे २६४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा तत्वमें होवे लीन ॥ जैसे जलमें विचरे मीन ॥
जैसे पानी नून समावे ॥ जैसे जलमे दूध मिलावे ॥ २६५
त्युं जीवात्मा प्रमात्मा माहीं ॥ होवे लीन देह सुध नाहीं ॥
शीतउष्णकी गम नहि कोईं ॥ वन वस्ती जाको समहोईं २६६
निजानन्द पद माहि समावे ॥ वाको नाम समाधि कहावे ॥

सोरठा

वे भये ब्रह्म में लीन हद छण्ड वेहद हुवे भूलगये गुण तीन ॥
सकल मटाइ वासना भये जोति में लीन ॥

चौपाई ॥

मनपवन भमरगुफा माहि समाबे ॥ चम्पा यासो समाधिकहावे॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

19

दमन बस्ति दितो दम,
तिथय यिथ् दमन खार।
शस्त्ुरस स्वन गछ़ी हॉसिल,
वुनि छ्य सुल त् छांड्ुन यार।।

जिस प्रकार लुहार धौंकनी हवा भर कर लोहे को (अपनी इच्छानुसार) आकार में ढाल लेता है, उसी तरह तू भी शरीर रूपी धौंकनी में प्राणायाम की विधि को अपना ले। इस क्रिया से लोहा स्वर्ण में परिणत होगा। अभी समय है अपने यार (ईश्वर) को तलाश कर।

20

दिहचि करि दारि-बर त्रोपरिम,
प्रान्-चूर रोटुम त् ध्युतमस दम।
हृदयिचि कूठरि अंदर गोंडुम,
ओमुकि चोबक् तुलमस बम।।

देह-रूपी मकान के द्वार-झरोखे मैंने बंद कर दिए, और प्राणरूपी चोर को पकड़कर भागने से रोका। फिर हृदय की कुटिया में उसको बांध कर रखा और ओम के चाबुक से उसको खूब पीटा (जिससे सहज नाद गूंज उठा)।

21

च़ेतु तुरुग वगि ह्यथ रोटुम,
च़ेलिथ मिलविथ दशि-नाड़ि वाव।
थवै शशिकल व्यगलिथ वॅछुम,
शुन्यस शुन्या मीलिथ गव।।

चित-रूपी घोड़े को लगाम देकर थाम लिया। यत्न-पूर्वक (प्राणाभ्यास) द्वारा दशनाडियों के श्वासोच्छास को बांध लिया। तब कहीं शशिकला पिघली और (मेरे पार्थिव) शरीर में उतर आई, और शून्य में शून्य विलीन हो गया।

22

पवन पूरिथ युस अनि वगि,
तस ना स्पर्शि ब्वछि तु न त्रेश।
ति यस करुन अन्ति तगि,
संसारस सुय ज़्ययि नेछ।।

जो प्राणों को पूरक (भीतर खींचने के) द्वारा नियंत्रित करे, उसको न भूख स्पर्श करेगी न प्यास। जो अन्त तक यह (प्राणायाम विधि) कर सके, इस संसार में (भगवान) का जीना सार्थक है।

26

अकुय ओंकार युस नाभि दरे,
कुम्भॅइ ब्रह्मांडस सुम गरे।
अख सुय मन्थर च्यतस करे,
तस सास मन्थुर क्या करे।।

एक ओंकार (जप) जिसको नाभि से निकल कर कुंभक द्वारा ब्रह्मांड से जा मिले और यही एक मंत्र जिसके मन-प्राण में बस जाए, उसको स्हत्र मंत्रों के जाप की क्या ज़रूरत। अर्थात उसके लिए अन्य मंत्र बेकार हैं।

27

दमाह दम कोरमस दमन हाले,
प्रज़ल्योम दीफ़ तु ननेयम ज़ाथ।
अँद्रिम प्रकाश न्यबर छोदुम।
गटि रोटुम तु कॅर्मस थफ।।

मैं क्षण-प्रतिक्षण कुम्भक द्वारा प्राण-निरोध करती रही। इस (अभ्यास) से मेरे अन्तर में (ज्ञान) दीप प्रज्वलित हुआ और मैं अपनी यथार्थ सत्ता जान गई। मैंने अन्तर्प्रकाश बाहर प्रकट किया और अंधेरे में उसे पकड कर रखा।

06:41

41

दीव वटा दीवर वटा,
प्यठ्-ब्वन् छुय ईकवाठ।
पूज़ कसव करख हूट् बटा,
कर मनस तु पवनस संगाठ।।

देव भी पत्थर है, और देवल (मंदिर) भी पत्थर। ऊपर नीचे सर्वत्र एक-सी पाषाणमय स्थिति है। हे पंडित, तू किसकी पूजा करेगा? मन और पवन (प्राण) को एक-साथ मिला दे। अर्थात प्राणायाम की विधि से चित्तवृत्तियों का निरोध कर।

42

कुस पुश तय क्वस पुशॉनी,
कम कुसुम लॉगिज़ेस पूज़े।
कमि सुत्य गोड़ दिज़ेस ज़लदॉनी,
कव सन मन्त्र शंकर स्वामी वुज़े।।

कौन माली है और मालिन कौन? कौन कुसुम उसकी पूजा के योग्य हैं। किस जल से उसका अभिषेक करना है? और कौन-सा मंत्र है वह, जिससे स्वात्म-शंकर निज-स्वरूप का साक्षात्कार करा दे?

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:45

80

कन्द्यौ गेह तजि कन्द्यौ वनवास,
व्यफोल मन ना रॅटिथ तु वास।
द्यन राथ गँज़रिथ पनुन श्वास,
युथुय छुख तु त्युथुय आस।।

कइयों ने गृह दिये, कई बनवास करने लगे। चंचल मन अगर नियंत्रित न हुआ तो सब विफल है, कहीं भी सुख नहीं मिलेगा। रात-दिन श्वासोच्छवास का हिसाब रख। अर्थात, साँस के हर उतार-चढ़ाव में उसका ध्यान धर, फिर जिस भी स्थिति में तू है, वैसे ही रह। स्थान-परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं।

81

कलन काल्‌ ज़ॉल्य योदवय चे गोल,
व्यंदिव गेह वा व्यंदिव वनवास।
ज़ॉनिथ सर्वगथ प्रभु अमोल,
युथुय ज़ान्यख त्युथुय आस।।

यदि काल के जाल (समय-चक्र) के साथ-साथ तेरी कलना (इच्छाएं) मिट जाएं, फिर तुम गृहस्थी रहो चाहे बनवासी बन जाओ, यह जान कि प्रभु सर्वगत और निर्मल है, तू जैसे उसको समझेगा, वैसे ही तेरी प्राप्ति होगी।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

86

पॊत ज़ूनि वॅथिथ मॊत बॊलुनोवुम,
दग ललुनॉवुम दयि सँज़ि प्रये।
लॅलि-लॅलि करान लाल वुज़नोवुम,
मीलिथ तस मन श्रोच्योम दहे।।

निशा के अन्तिम प्रहर में जब चन्द्रास्त होने को था, उस घड़ी जागकर मैंने चंचल मन को बहुत समझा-बुझा कर परमार्थ की ओर प्रवृत्त कर दिया। दई की लगन के कारण मैंने व्यथा-वेदना प्रसन्नभाव से सह ली। मैं लल्ला हूँ! यही पुकार-पुकार कर मैंने अपने प्रिय (इष्ट) को जगाया। उससे मिलकर मेरा मन-युक्त दस इन्द्रियों का यह देह पावन हो गया।

87

शे वन चॅटिथ शशिकल वुज़ुम,
प्रकत हॉज़म पवनु सुतिय।
लॊलकि नारु वॉलिंज बुज़ुम,
शंकर लॊबुम तमिय सुतिय।।

छः वन (शक्ति के छः चक्र) लांघ कर मैं आई और शशिकला को मैंने उजागर कर लिया। अर्थात, जब मैंने सांसारिक बन्धन के विभिन्न प्रलोभनों को योगादि क्रियाओं द्वारा नियंत्रित कर लिया, तभी उस चन्द्रकला तक पहुंची जो परम शिव का स्थान है। इसके लिए मुझे प्राणाभ्यास द्वारा प्रकृति को सुखाना अथवा एक प्रकार से होमना पड़ा और प्रीत (देवानुराग) की आंच से अपना (दिल) भूनना पड़ा। इसी (योगादि तप) द्वारा मैं शंकर को पा सकी।

06:48

127

अन्दर ऑसिथ न्यबर छ़ोंडुम,
पवनन रगन कॅरनम सथ।
ध्यानु किन्य दय ज़गि कीवल ज़ोनुम,
वोन्यगव संगस मीलिथ क्यथ।।

भीतर था तव भी मैं उसको बाहर ढूंढती रही। प्राणायाम (प्राणापान-व्यानोदान-समान के विधिवत नियन्त्रण) ने मेरी रगों को सांत्वना दी। ध्यानादि योग क्रिया द्वारा मैंने जगत में दई की एकता (कैवल्य) का अनुभव किया। इस प्रकार रंग (विश्व) संग (विश्वात्मा) में निमज्जित होकर एकाकार हो गई।

128

सम्सारस आयस तपसुय,
ब्वद्धि प्रकाशु लोबुम सहज़।
मर्यम नु कांह तु मरु नु कॉंसि,
मरु नेछ तु लसु नेछ।।

मैं तपस्विनी बनकर इस संसार में आई। बुद्धि-ज्ञान प्रकाश से मैंने सहज (स्वात्म-परमात्म-बोध) पा लिया। न मेरा कोई मरेगा और न मैं ही किसी के लिए मरूँगी। मरूं तो वाह वाह! जीवित रहूं तो वाह वाह! अर्थात, आत्म-बोध जीवन-मरण की अपेक्षा से परे है।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

129

द्वादशान्त् मंडल यस दीवस-थजि,
नासिक पवन् दॉर्य अनाहत् रव।
स्वयम कल्पन अन्ति च़जि,
पानय सु दीव त् अर्चुन कस।।

जिसने द्वादशान्त मण्डल (बह्मांड) को देवस्थली (परम शिव का आवास) समझा, प्राण वायु का नियन्त्रण करके जिसने अनहद ध्वनि, (ओम की अनुगूंज) सुनी, अर्थात ह्रदय से नासिका द्वार तक के श्वासोच्छवास में जो ओइम का ही आभास पाता रहा और अन्ततः जिसका अपने बारे में कल्पना-भरमाना मिट गया, वह स्वयं 'देव' है। फिर अर्चन किसकी ?

130

गगन चॖय भूतल चॖय,
चॖय छुख द्यन पवन त् राथ।
अर्ग च़न्दुन पोश पोन्य चॖय,
चॖय छुख सोरुय त् लॉगिज़ी क्याह।।

तू ही गगन है, तू ही भूतल, तू ही दिन, पवन और रात है। अर्घ्य, चन्दन, पुष्प और जल भी तू ही है। जब तू ही, हे देव, सब कुछ है तो भेंट करूँ तो क्या ?

सतसंग पवित्र दोरुम,
नवि सॅच़ रूज़ुस त्रोपरिथ बर।
दश दशमी द्वार प्रज़लोवुम,
ईकादश चन्द्रमस कॅरुम लय।
दादशमंडल द्यख शुम्रोवुम,
त्रयूदश त्रिवेनी नॉवुम काय।
च़तुर्दशि च्वदाय भवन शमॉविम,
पूर्णपांच़दशि च़न्द्रन कोरुम व्वदय।
ऑकदोह भूगी पान संदोरुम,
रस्सु ति रूज़ुस कल्पन त्रॉविथ।
सुय का मालि कॅरुम प्वतल्यन पूज़।।

(इस वाक्य में ललद्यद, शुक्लपक्ष के संकेत वाक्यों दारा योगाभ्यास के विभिन्न चरणों-आयामों का रहस्य-निरूपण करती है)

प्रारम्भ में मैंने सत्संग का पवित्र, धारण किया। नवें दिन नई आशाओं के साथ मैंने कपाट बन्द कर लिये। दसवें दिन मैंने दसवें द्वार को प्रकाशमान कर दिया, अर्थात नवद्वार बन्द करके ध्यान-दीप जला कर दशम द्वार ज्योतिर्मय कर दिया। एकादशी को चन्द्र सहस्त्रार में लय हो गई। बारहवें दिन द्वादश मण्डल (ब्रह्मरंध्र) में दिशा-भ्रम को नियंत्रित किया। तेरहवें दिन गंगा-यमुना-सरस्वती एवं इड़ा-पिंगला-सुषुम्णा की त्रिवेणों में काया स्वच्छ कर दी। चतुर्दशी को चौदह भुवनों पर अधिकृत हुई और पूर्ण पंचदशी पूनम को चन्द्रोदय होते देखा। प्रतिपदा को मैंने भोगी शरीर फिर संभाला। तब मैं सब कल्पना (चिन्तादि) त्याग कर निश्चिंत हो बैठी, यही मेरी मूर्ति-पूजा है।

132

ऑोंकार येलि लयि ऑनुम,
वुह्य कोरुम पनुन पान।
शुह-वौत त्रॉविथ सथ मार्ग रोटुम,
तेलि लल वॉच़ुस प्रकाशस्थान।

जब ओंकार को मैंने अपनी और अनुरक्त कर लिया, मुझे अपने आपको एक अंगारे की तरह तपाना पड़ा, अर्थात योगक्रिया द्वारा अपने शरीर को आंच दे कर मैंने विचारों को प्रणव कर केन्द्रित किया, तभी मैं उसकी बन गई। और जब शशमार्ग (छः चक्र या शक्ति के छः चरण) तयाग कर मैंने सन्मार्ग का सातवां पथ (सहस्त्रार चक्र) धारण किया, तब मैं लल्ला, प्रकाशस्थान तक जा पहुंची।

06:49

140

अज़पा गायत्री हम्सु हम्सु ज़ॅपिथ,
अॅहं त्रॉविथ सुय अदु रठ।
येम्य त्रोव अहं सुय रूद पानय,
बो न आसुन छुय व्वपदीश।।

अजपा गायत्री-मंत्र का प्रत्येक सांस में जाप कर। अहंभाव को त्याग कर 'उसी' अर्थात बह्म-तत्त्व को धारण कर। जिसने 'अहं, को छोड़ दिया, वही वास्तव में 'स्व' (आत्मभाव) के रूप में स्थिर रहा। सीख की बात है 'अहं' का अभाव, ! तदाकार होना !

141

ऑसुस कुनिय तय सॉंपनिस स्यठा,
नज़दीख ऑसिथ गॅयस दूर।
ज़ॉहिर-बॉतिन कुनुय ड्यूंठुम,
गॅयस खेथ-चेथ चुवंज़ाह चूर।।

मैं अकेली थी और अनेक हो गई (एकोअहं बहुस्याम:)। निकट हो कर दूर जा पड़ी। भीतर और बाहर (व्यक्त-अव्यक्त) उसी एक (शिवतत्त्व) को देखा। चौवन चोर मेरा सब कुछ खा पी कर मुझे धोखा दे चले गए।

06:50

146

नाभिस्थानस चि़त ज़लवॅनी,
ब्रह्मस्थानस शिशिरुन म्वख।
बह्मांडस छय नद वहवॅनी,
तवय तुरुन हुह हाह गव तोत।।

नाभिस्थान में तो चिता (जठराग्नि) धधकती रहती है। और ब्रह्मस्थान (शीर्षस्थल) में शिशिर का मुख (शीत) है। ब्रह्मांड में नद (प्राणापान-रूपी नदी) प्रवाह-मान है, इसीलिए 'हूह', (प्राण) (शीर्षस्थान का शीतल श्वास) 'हाह', (अपान अर्थात नाभिस्थान का गर्म उच्छवास) बन जाता है।

147

आंचार हाँज़नि हुन्द गयाम कनन,
नदुर्य छिव त द्ययिव मा।
ति बूज़ त्रुक्यव तिम रुद्य वनन,
चे़नुन छुवु तु ची़निव मा।।

आँचार झील की मछियारिन की आवाज़ कानों में पड़ी। कमल-डंठल बिकाऊ हैं, लेने हैं तो लो। यह बात जब बुद्धिमानों ने सुनी तो वे कहने लगे, समझने की बात यही है पर समझोगे नहीं। (इस वाख में श्लेष का आधार लेकर बात समझाई गई है– 'आंचार हाँज़नि' से तात्पर्य है - आचार शक्ति और नदुरि से अभिप्रेत-नश्वर सांसारिकता है।)

148

आँचारय बिचॉर्य व्यच़ार वॊनुम,
प्रान त॒ रुहुन द्ययिव मा।
प्रानस बॅज़िथ मज़ा चॖहुन,
नदॖर्य छिव॒ त॒ द्ययिव मा।

आचारवली ने विचार की (चिन्तनीय) बात कही। प्याज़ और लहसुन तो नहीं लेना—श्लेषार्थ में 'लल्ला, कहती है। प्राण और अपान (योगाभ्यास) का सौदा कर लो। ''प्रानस बॅज़िथ, अर्थात प्याज़ का छौंक लगाकर स्वादिष्ट सब्ज़ी बनाओ। (अध्यात्मवाद से) प्राणायाम की क्रिया द्वारा वास्तविक आनन्द पाओ। संसार नश्वर है– इसमें उलझना नहीं।

149

कुस बब तय क्वस मॉजी,
वॅमी लॉजी बॉजीबठ।
कॉल्य गछ़ख कांह ना बब कांह नो मॉजी,
ज़ॉनिथ कव लॉजिथ बॉजीबठ।।

कौन बाप और कौन माँ ? किसने तेरे साथ गठजोड़ किया ? कल को तू जाएगा, न कोई बाप होगा न कोई माँ होगी, यह जानकर क्यों लाग-लगाव बढ़ाता है ?

06:51

156

हहु निशि हाह द्राव शाह क्या गव,
हहस तु हाहस शाह चुय ज़ान।
रुह निशि मोर द्राव क्याह वुछुय,
क्याह रूद बाकुय क्याह गव फ़ान।।

श्वास से उच्छवास निकला - यही तो साँस का आना-जाना है। 'हह', (प्राण) और 'हाह' (अपान) ही को तू श्वासोच्छवास मान। आत्मा से शरीर अलग हुआ तो दिखाई क्या दिया? भला (इस समय) बाकी क्या रहा, और नष्ट क्या हुआ?

157

दोद क्या ज़ानि यस नो बने,
गमुक्य जामु हा वॅलिथ तने।
गरु-गरु फीरुस पेयम कने,
ड्यूंठुम नु कांह ति पननि कने।।

जिस पर बन न आई हो, वह दर्द क्या जाने! गम (वेदना) का बाना तन पर धारण करके मैं घर-घर भटकी और हर जगह मुझ पर पत्थर बरसे। किसी को भी मैंने अपनी तरफ (या तरह का) नहीं पाया।

अकुय ओंकार युस नाभि धरे
कुम्बय ब्रह्मारडस स्वम गरे ।
अकुय मन्त्र युस च्यतस करे
तस सास मन्त्र क्याह् जन करे ॥ १ ॥

एक ओंकार को जिसने नाभिस्थान में धारण किया, अपने आपको जिसने ब्रह्मारण्ड के समान समझा, एक ही मन्त्र 'ॐ' का जिसने चिंतन किया– उसको हज़ार मन्त्र से क्या काम है ? ॥

He from whose navel proceeds the one syllable of Aum, he who considers himself equal to the whole universe, he who bears in mind this one spell 'Aum' —— to him a thousand spells are of no good.

अभ्यासी सविकास लय वथू
गगनस सगुण म्यूल समित्रटा ।
शून्य गोल तु अनामय म्वतु
युहुय उपदेश छुय भटा ॥ २ ॥

योगाभ्यास से संसार का प्रपंच ब्रह्म में लय हो जाता है, मानो सगुण शून्य अर्थात् निर्गुणमें लीन होजाता है शून्य भी जब विलीन होजाता है तो अनामय परमात्मा ही शेष रहता है – हे मनुष्य (ब्राह्मण) सचा उपदेश यही है ॥

When by practices of Yoga the visible becomes invisible, the universe merges within the ether, then every-thing having gone to absorption there remains only the Supreme Being. This is, O Brahman, the true doctrine.

CC-0 In Public Domain. Ujval Handu Collection

चित्त् तुरुग् गगनि भ्रमवोन्,
निमेष अकि छ्यडि योजनलछ् ।
चैतन्यवगि थॅमि रटिथ् ज़ोन्,
प्राण् अपान् कुटरिथ् पखुच्य् ॥ २६ ॥

चित्ताभिधः सर्वगतिस्तुरङ्गः
क्षणान्तरे योजनलक्षगामी ।
धार्यो बुधेन्द्रेण विवेकवल्गा-
नोदेन वायुद्वयपक्षरोधात् ॥ २६ ॥

ल्यथ् गँडिथ् ना शमि मानस्,
भ्रान्त् यिमव् त्रोवू तिम् गैयि स्वसिथ् ।
शास्त्र् बूज़ु छि यमभंग् कुरु ,
सुह् ना पंज़ु ताम् धन्या लूसित ॥२७॥

स्वादनाद्भूषणाद्वापि मनो यस्य गतभ्रमम् ।
स मुक्तो नोत्तमर्णाद्यो मुक्तात्मत्वं हि सोऽनृणः ॥ २७ ॥

यव तूरु चलि तिम् अम्बर् ह्यति,
बुछि यव चलि तिय् आहार् अन् ।
चित्त कृप स्वविचारस् प्यत,
चिता देहस् वान् क्याद् वन् ॥ २८ ॥

अकुय् ओंकार् युस् नाभि दरे,
कम्बुय् ब्रह्माण्डस् सुम् गरे ।
अकुय् मन्त्र् युस् च्यतस् करे,
तस् सास् मन्त्र् क्याह् जन् करे ॥३३॥

आ ब्रह्माण्डं नाभितो येन नित्य-
मोंकाराख्यो मन्त्र एको धृतोऽयम् ।
कृत्वा चित्तं तद्विमर्शैकसारं
किं तस्यान्यैर्मन्त्रवृन्दैर्विधेयम् ॥ ३३ ॥

संसारस् आयस् तपसे,
बोधप्रकाश् लबुम् सहज़ ।
मर्यम् न कुँह् त मर न कँसि,
मर नेछ् त लस नेछ् ॥ ३४ ॥

आसाद्य संसारमहं वराकी
भासा विशुद्धं सहजं प्रबोधम् ।
म्रिये न कस्यापि न कोऽपि मे वा
मृतामृते मां प्रति तुल्यरूपे ॥ ३४ ॥

द्वादशान्त-मण्डल् यस् देवस् थजूय्,
नासिक पवन् अनाहत् रव् ।
स यस् कल्पन् अन्तिह् च्रजूय्,
पानय् देव् त अर्चुन् कस् ॥ ३५ ॥

यो द्वादशान्ते स्वयमेव कल्पिते
सदोदिते देवगृहे स्वयं स्थितः ।
समीरयन् प्राणरविं स शंकरो
यस्यात्मभूतः स कमर्चयेद् बुधः ॥ ३५ ॥

अर्थय् तीर्थन् गछान् संन्यासि,
ग्वारंनि सुदर्शन मिलु ।
चिचा परिथ् मव् निष्पत् आस्,
देशस् दूर्य् द्रमन् नीलिय् ॥ ३६ ॥

यत्नेन मोक्षैकधियः सदामी
संन्यासिनस्तीर्थवरान् प्रयान्ति ।
चित्तैकसाध्यो न स लभ्यते तै-
र्दूर्वास्थलं भात्यतिनीलमाराद् ॥ ३६ ॥

पवन् पूरिथ् युस अनि वगे,
तस् बुन स्पार्शि न बुछ त त्रेश् ।
तिह् यस् करुन् अन्तिह् तगे,
सुह् संसारस् ज़्ययि न नेद्ध् ॥ ३७ ॥

यः पूरकेण चित्तं स्वं रोधयेत्क्षुत्तृडादिकम् ।
न पीडयति संसारे सफलं चास्य जीवितम् ॥ ३७ ॥

जल् थमुनु हुतवह् तुरनावुन्,
ऊर्ध्व-गमन् परिवर्जिथ् चर्यथ् ।
काठधेनि दुद् श्रमावुन्,
अन्तिह् सर्कुय् कपट-चर्यथ् ॥ ३८ ॥

नीरस्तम्भो वह्निशैत्यं तथैव
पादैस्तद्वद्व्योमयानमशक्यम् ।
दोहो धेनोः काष्ठमय्यास्तथैव
सर्वं चैतज्जृम्भितं कैतवस्य ॥ ३८ ॥

कुसु पुशु तय् कस्स पुशानी,
कम् कुसम् लागिज्यस् पूजे ।
कमि सर गडु दिज्यस् जलधानी,
कवसन मंत्र शंकर् वुजे ॥ ३९ ॥

नाभ्युत्थितो हाद् जठराग्नितप्तो
हृद् द्वादशान्ताच्छिशिरात्समुत्थः ।
हाद् प्राणभूतोऽस्त्यथ हृद् अपानः
सिद्धान्त एवं मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ५७ ॥

यिह् यिह् कर सुय् अर्चुन्,
यिह् रसंनि उच्चर्यम् तिय् मन्थ्र् ।
इय् यिथ लग्यम् देहस् परिच्चय्,
सुय् परमशिवुन् तन्थ्र् ॥ ५८ ॥

करोमि यत्कर्म तदेव पूजा
वदामि यच्चापि तदेव मंत्रः ।
यदेव चायाति तथैव योगाद्-
द्रव्यं तदेवास्ति ममात्र तन्त्रम् ॥ ५८ ॥

ग्नह् ना व्वह् ना ध्येय् ना ध्यान्,
गौव् पानय् सर्वक्रिय् मशिथ् ।
अन्या ड्यूठुख् केंह् ना अनुय्,
गय् सत् लय पर् पशिथ् ॥ ५६ ॥

ऐ गाफ़िल मदमस्त भुलक्कड़, तेज़-तेज़ कदम बढ़ा, अभी सवेरा है। अपने मित्र की तलाश कर। पंख पैदा कर कि तुझे उड़ कर जाना है। अभी समय है, अपने मित्र को ढूंढ ले।

19

दमन् बस्ति दितो दम्,
तिथय यिथ दमन खार।
शस्तरस स्वन् गछ़ी हासिल,
बुनि छय् सुल त छ़ाण्डुन यार॥

जिस प्रकार लुहार धौंकनी में हवा भर कर लोहे को (अपनी इच्छानुसार) आकार में ढाल लेता है, उसी तरह तू भी देह-रूपी धौंकनी में प्राणायाम की विधि को अपना ले। इस क्रिया से लोहा स्वर्ण में परिणत होगा। अभी समय है। अपने यार की तलाश कर!

20

देहचि लरि दारि-बर त्रोपरिम,
प्रान-चू़र रोटुम त दितमस् दम्।
ह्रदयचि कुठरि अन्दर गोण्डुम,
ओमकि चोबकु तुलमस् बम्॥

देह-रूपी मकान के द्वार-झरोखे मैंने बन्द कर दिये और प्राणरूपी चोर को पकड़ कर उसके भागने की राहें रोक लीं। फिर ह्रदय की कुटिया के भीतर उसको बांध कर रखा और ओम् के चाबुक से उसको खूब पीटा। (जिससे सहज-नाद गूंज उठा)।

21

च.यत त्वरग वगि ह्.यथ् रोटुम,

च.यलिथ मिलविथ दशि-नाडि् वाव ।

तवै शशिकल व्यगलिथ वछुम्,

शुन्यस् शुन्याह् मीलिथ गव् ॥

चित-रूपी घोड़े को लगाम दे कर थाम लिया। यत्न-पूर्वक (प्राणाभ्यास) द्वारा दशनाड़ियों के श्वासोछ्वास को बांध लिया। तब कहीं शशिकला पिघली और (मेरे पार्थिव) शरीर में उतर आई, और शून्य में शून्य विलीन हो गया। अर्थात् स्वात्मा सहजरूप (परमात्मा) में मिल गई।

22

पवन् पूरिथ युस अनि वगि,

तस् ब्व मा स्पर्शि न ब्वछि त त्रेश् ।

ति यस करुन अन्ति तगि,

सम्सारस मुय् च्वथि नेछ ॥

जो प्राणों को पूरक (भीतर खींचने के) द्वारा नियन्त्रित करे, उसको न भूख स्पर्श करेगी न प्यास। जो अन्त तक यह (प्राणायाम-विधि) कर सके, इस संसार में उसी (भगवान) का जीना सार्थक है।

23

च.यत तुरग गगन भ्रम-जोन,

निमिष अकि छ्.ड़ि यूजन लछ् ।

च़्यतनि वगि ब्वद्धि रटिथ ज़ोन,[1]
प्रान-अपान संद्वारिथ् पखचि् ॥

चित-रूपी अश्व गगनचारी है। एक निमिष में लाखों योजन घूम आता है। जिसने बुद्धि और विवेक-रूपी लगाम से इसको थामना सीख लिया, वही प्राण-अपान के चक्रद्वय को नियन्त्रित करने में सफल होता है। (पाठभेद) जिसने लगाम से विचारों के घोड़े को थामा नहीं, उसके प्राणापान-रूपी चक्रद्वय टूट-फूट कर नष्ट हो गये।

24

ज़ानहा नाड़ि दल[2] रटिथ,
च़टिथ वटिथ कुटिथ क्लीश।
ज़ानहा अद अस्त रसायन गटिथ,
शिव छुय् क्रूठ त च़ेन व्यपदीश ॥

यदि मैं मन से नाड़ि-दल को नियन्त्रित करना जानती, यह जानती कि उन्हें कैसे काटूं और समेटूं, तो मुझे भी क्लेशों के निवारण की विधि आ जाती। और तब कहीं मुझ को रसायन घोटने (आत्म-ज्ञान) का अनुभव होता। शिव का पाना कठिन है, यह उपदेश ध्यानपूर्वक सुन ले।

25

शिशरस वुथ् कुस रटे,
कुस व्यके रटे वाव।
युस पांच् इन्द्रिय च्यलिथ च़टे,
सुय रटे गटे रव ॥

पाठभेद : 1. यमि् न वगि मि रटिथ ज़ोन, प्राण-अपान गुटराविनस् पखचि्।
2. नाड़िदल मन

शिशर में (छत से चूने वाली) टपकन को कौन रोक सकता है ? हवा को मुट्ठी में कौन पकड़ सकता है ? जो पंचेन्द्रियों को समेट कर उन्हें कूट कर रखे, वही अन्धेरे में प्रकाशमय रवि को पा सकता है ।

26

अकुय ओंकार युस् नाभि दरे,

कुम्भुइ ब्रह्माण्डस सुम गरे ।

अख सुय मन्थर च्यतस् करे,

तस् सास मन्थर क्याह् करे ॥

जो, एकाक्षर 'ओंकार' का जाप नाभि (मूलाधार) से आरम्भ कर के सुषुम्ना नाड़ी के अन्त (ब्रह्मरन्ध्र) तक कुम्भक द्वारा सेतुबद्ध कर धारणा करे और इसी एक मन्त्र (ओम्) को चित्तनिष्ठ कर दे, उसके लिए सहस्र मंत्रों का जाप निरर्थक है । अर्थात् एकाक्षर ओम् का जाप ही पर्याप्त है ।

27

क्याह् दम् कोर्‌सस दमन ह्ाले,

प्रज्लयोम दीफ त नन्येयम् जाथ ।

अन्दिम प्रकाश न्यबर छोट्टुम ।

गटि रोट्टुम त कर्मस थफ् ॥

मैं क्षण-प्रतिक्षण कुम्भक द्वारा प्राण निरोध करती रही । इस (अभ्यास) से मेरे अन्तर में (ज्ञान) दीप प्रज्वलित हुआ और मैं यथार्थ सत्ता जान गई । मैंने अन्तर्प्रकाश बाहर प्रकट किया और तम में उस (सत्य) को दृढ़ता से ऐसे थामा कि जाने न पाया ।

07:07
Lal Vakha Devanaga...
archive.org
INTERNET ARCHIVE

दीव वटा दीवर वटा,
प्यठ[1]-ब्वन छुय ईकवाठ् ।
पूज कस् करख हूट[2] बटा,
कर् मनस-त-पवनस् संगाठ ।।

देव भी पत्थर है और देवल (मंदिर) भी पत्थर। ऊपर नीचे सर्वत्र एक-सी पाषाणमय स्थिति है। हे पंडित, तू किसकी पूजा करेगा ? मन और पवन (प्राण)

पाठभेद : 1. हेरि 2. हुत

को एक साथ मिला दे—अर्थात् प्राणायाम की विधि से चित्तवृत्तियों का निरोध कर।

टिप्पणी : दिखावे की पूजा निरर्थक है।

42 (क)

कुस पुश् तय क्वस्स पुशानी,
कम् कोसुम लागिज्यस् पूजे ।
कमि सर गोड़ दिज्यस जलदानी,
कव सन मन्त्र शंकर स्वात्म वुज़े ।।

कौन माली है और मालिन कौन ? कौन से कुसुम उसकी पूजा के योग्य हैं ? किस जल से उसका अभिषेक करना है ? और कौन-सा मंत्र है वह, जिससे स्वात्म-शंकर निज स्वरूप का साक्षात्कार करा दे।

43 of 114
Favorite Share Flag
Lal Vakha Devanagari

कर भी मन की तृप्ति नहीं होती। लोभ-हीन होकर जीव (मानव) मरता नहीं। यदि कोई जीते जी ही मर जाय तो वही (तत्व) ज्ञान है।

67 (क)

कुस मरि तय कस् मारन,
मरि कुस तय मारन् कस् ।
युस् हर-हर त्रावित्र घर-घर करे,
अद सु मरि तय मारन् तस् ॥

कौन मरे और किस को मारें, यह तो बता ? जो हर-हर (शिवनाम का जाप) तज कर घर के कार्यों (भौतिक, सुख-वैभव) में ही उलझा रहे, वही मरेगा और उसी को मारेंगे भी।

67 (ख)

गुर-शब्दस युस् यछ्-पछ् बरे,
ग्यान वगि रटि चु़यत त्वरंगस् ।
यन्द्र्यं शोमरिथ आनन्द करे,
अद कुस मरि तय मारन् कस् ॥

गुरु शब्द पर जो प्रीतिपूर्वक आस्था रखे, ज्ञान की वल्गा (लगाम) द्वारा चित्त-अश्व (मनके चंचल घोड़ों) को वश में रखे। जो इन्द्रिय-दमन कर सके। उसी को आनन्द-प्राप्ति होगी। ऐसी स्थिति में कौन मरे और किस को मारे ? अर्थात् ऐसी आत्मा मरण-भय से रहित होगी।

68

शीत त मान् कुय पोत् कंबे,
व्वछि धमि रोट मलि् योद बाव् ।

लगन के कारण मैंने व्यथा-वेदना प्रसन्नभाव से सह ली। 'मैं लल हूं।' 'हां'? मैं लल हूं।' यही पुकार कर मैंने अपने प्रिय (इष्ट) को जगाया। उससे मिलकर मेरा मन-युक्त दस इन्द्रियों का यह देह पावन हो गया।

83

श्य वन् चटिथ शशिकल् वुज़ुम्,
प्रकत होंवुम पवन सूतिय।
लोलकि नार वालिथ बुज़ुम्,
शंकर लोबुम् तमिय सूतिय्॥

छः वन (शक्ति के छः चक्र) लांघ कर मैं आई और शशिकला को मैंने उजाग कार लिया। अर्थात् जब मैंने सांसारिक बन्धन के विभिन्न प्रलोभनों को योगादि क्रियाओं द्वारा नियंत्रित कर लिया, तभी उस चन्द्रकला तक पहुंची, जो परम् शि का स्थान है। इसके लिए मुझे प्राणाभ्यास द्वारा प्रकृति को सुखाना अथवा एक प्रकार से होमना पड़ा और प्रीत (देवानुराग) को आंच से अपना हिया (दिल) भूनना पड़ा। इसी (योगादि तप) द्वारा मैं शंकर को पा सकी।

84

दमी ड्यूंठुम शावनम् प्यवान्,
दमी ड्यूंठुम प्यवान् सूर।
दमी ड्यूंठुम् अखिगट रातस्,
दमी ड्यूंठुम ब्रह्मस् नूर॥
दमी आसुस ल्वकुट् कूरा,
दमी सपनिस जवां पूर्।

106

तन्तर् गलि तय मन्त्रर म्यच्,
मन्त्रर् गोल तय मोतुय च़ित्त् ।
च़ित्त गोल तय केंह् ति ना कुने,
शून्यस् शून्याह् मीलिथ गौ ॥

तंत्र (आगम शास्त्र-कथन) की इति हुई तो मन्त्र (रहस्यपूर्ण जप-तप-योगादि क्रिया) शेष रहा—अर्थात् कथनी (ज्ञानोपार्जन) की सीमा के परे ध्यानोपासना का क्षेत्र बचा रहता है। (और जब) मन्त्र भी मिटा तो मात्र चित्त (चिन्मय तत्व) बचा रहा। चित्त भी जब मिट कर शिवतत्व में मिल गया तो कहीं कुछ न रहा अर्थात् सब अभावमय हो गया—शून्य में शून्य विलीन हो गया।

107

भान् गोल तय प्रकाश आव जूने,
चन्दर् गोल तय मोतुय च़ित्त ।
च़ित्त् गोल तय केंह् ति न कुने,
गय भूर् भुवः स्वर् व्यसर्जिथ क्यथ् ॥

भानु (सूर्य) अस्त हुआ तो चन्द्र-ज्योत्सना फैल गई। चन्द्र भी छिप गया तो चित्त बचा रहा। चित्त (चिन्मय आभास) भी मिटा तो कहीं कुछ न रहा। सब देश-काल की परिधि से परे हो गया और भू: भुवः स्वः (आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तत्व) सब नामशेष हो गये; भूमि, आकाश और अवकाश सब ब्रह्मतत्व में विलीन हो गये।

टिप्पणी : चन्द्र और सूर्य से यहाँ साधना के निकृष्ट और श्रेष्ठ पद अभिप्रेत हैं। जब ध्यानावस्थाति में ये पद विद्यमान नहीं रहते तो साधक को चिन्मयता के अतिरिक्त कोई आभास नहीं रहता। जब यह आभास भी शिवतत्व में लय हो जाता है तो समष्टि और व्यष्टि का अन्तर भी मिट जाता है।

121

लल् बो च़ायस स्वमन बाग-बरस्,

वुछुम शिवस शक्त मीलिथ त वाह् ।

तति लय करम् अमृत-सरस्,

जिन्दै मरस् त म्य करि क्याह् ।।

मैं 'लल' जब स्वमन-रूपी बाग के द्वार से भीतर गई तो देखा—शिव शक्ति से मिला हुआ था । मैं आनन्द-विभोर हुई और वहीं मैं अमृत-सर में विलीन हो गई । मैं तो जीते जी ही मर गई—मुझे काहे की चिन्ता है !

122

अन्दर् आसिथ न्यबर छोंडुम्,

पवनन रगन करनम् सथ् ।

ध्यान किञ् दय लगि कैवल ज़ोनुम्,

रंग गौ संगस् मीलिथ क्यथ् ।।

भीतर था तब भी मैं उसको बाहर ढूंढती रही । प्राणायाम (प्राणापान-व्यानोदान-समान के विधिवत् नियन्त्रण) ने मेरी रगों को सांत्वना दी । ध्यानादि योग-क्रिया द्वारा मैंने जगत में दई की एकता (कैवल्य) का अनुभव किया । इस प्रकार रंग (विश्व) संग (विश्वात्मा) में निमज्जित हो कर एकाकार हो गया ।

123

सम्सारस आयस् तपसुद,

ब्वधि प्रकाश लोबुम सहज ।

मर्य़्‌स न कुंह्‌ त मर न कांसि,

मर नेछ्‌ त लस नेछ्‌ ॥

मैं तपस्विनी बनकर इस संसार में आई। बुद्धि (ज्ञान) प्रकाश से मैंने सहज (स्वात्म-परमात्म-बोध) पा लिया। न मेरा कोई मरेगा और न मैं ही किसी के लिए मरूंगी। मरूं तो वाह्-वाह! जीवित रहूं तो वाह्-वा! अर्थात् आत्म-बोध जीवन-मरण की अपेक्षा से परे है।

124

द्वादशान्त् मण्डल यस् दीवस-थजि,

नासिक-पवन दारि् अनाहत रव।

स्वयम् कल्पन अन्ति चृजि,

पानय सु दीव् त अच़्‌ न कस् ॥

जिसने द्वादशान्त मण्डल (ब्रह्मरंध्र) को देवस्थली (परम शिव का आवास) समझा-प्राण वायु का नियंत्रण करके जिसने अनाहत ध्वनि, (ओ३म् की अनुगूंज) सुनी—अर्थात् हृदय से नासिका-द्वार तक के श्वासोच्छ्‌वास में भी ओ३म् का ही आभास पाता रहा और अन्ततः जिसका अपने बारे में कल्पना-भरमाना मिट गया—वह स्वयं 'देव' है। फिर अर्चना किसकी!

125

गगन च़ुइ भूतल् च़ुइ,

च़ुइ छुख द्यन-पवन-त-राथ् ।

86

(इस वाक्य में 'ललद्यद' शुक्लपक्ष के संकेत वाक्यों द्वारा योगाभ्यास के विभिन्न चरणों-आयामों का रहस्य-निरूपण करती है)

प्रारम्भ में मैंने सत्संग का 'पवित्र'[1] धारण किया। नवें दिन (नवमी को) नई आशाओं के साथ मैंने कपाट बन्द कर लिये। दसवें दिन मैंने दसवें द्वार को प्रकाशमान कर दिया अर्थात् नवद्वार बन्द कर के ध्यान-दीप जला कर दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) को ज्योतिर्मय कर दिया। एकादशी को चन्द्र (सहस्रार) में लय हो गई। बारहवें दिन द्वादश मण्डल ब्रह्मरंध्र में दिशा-भ्रम को नियन्त्रित किया। तेरहवें दिन गंगा-यमुना-सरस्वती एवं इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना की त्रिवेणी में काया स्वच्छ कर दी। चतुर्दशी को चौदह भुवनों पर अधिकृत हुई और पूर्ण पंचदशी (पूनम) को चन्द्रोदय होते देखा। प्रतिपदा को मैंने भोगी शरीर फिर संभाला। तब मैं सब कल्पना (चिन्तादि) त्याग कर निश्चिंत हो बैठी—यही मेरी मूर्ति-पूजा है।

127

ओंकार यलि लयि ओनुम्,

वुह्य कोरुम् पनुन पान्।

वुह्-वोत त्राविथ सथ् मार्ग रोटुम्,

त्यलि लल् ब्व वाचुस प्रकाशस्थान ॥[2]

जब ओंकार को मैंने अपनी ओर अनुरक्त कर लिया, मुझे अपने आप को एक अंगारे की तरह तपाना पड़ा—अर्थात् योगक्रिया द्वारा अपने शरीर को आँच दे कर मैंने विचारों को प्रणव पर केन्द्रित किया, तभी मैं 'उसकी' बन गई। और जब षण्मार्ग (छः चक्र या शक्ति के छः चरण) त्याग कर मैंने सन्मार्ग का सातवां पथ (सहस्रार-चक्र) धारण किया, तब मैं 'लल' प्रकाशस्थान तक आ पहुंची।

---

1. कोई भी देव-यज्ञ या पितृ-यज्ञ (श्राद्धादि) करते हुए कश्मीर में यजमान कुशा की एक मुद्रा हाथ की अंगुली (अनामिका) में धारण करता है। इसको पवित्र कहते हैं। इसका आशय पावन हो कर शुभ कार्य आरम्भ करना है।
2. वाचकान- (देशकाल-निरपेक्ष ज्योतिस्थान)

128

दम-दम ओम्‌कार मन परनोवुम्,

पानय परान त पानय बोज़ान् ।

सूऽहं पदस् अहम् गोलुम्,

त्यलि लल बो वातुस प्रकाशस्थान[1] ॥

हर क्षण मन को ओंकार का पाठ कराया । स्वयं ही पढ़ती रही, स्वयं ही सुनती रही । 'सोऽहम्' पद में से 'अहं' को समाप्त किया अर्थात् 'उस और मैं' के भेदभाव को मिटाया—अहं-तत्व मिटा कर शिव-रूप ही बन गई—तब मैं 'लल' प्रकाशस्थान तक जा पहुंची ।

129

ग्यानकि् अम्बर पैरिथ तने,

यिम् पद ललि दपि् तिम हृदि-आंख् ।

कारणि् प्रणवकि् लय कोर लले,

च़यथ ज्योत कासनि् मरनुनि् शांख ॥

अपने तन पर ज्ञान के अम्बर (वस्त्र) धारण कर के उन पदों (शिक्षापूर्ण वाक्यों) को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर, जो 'लल' कह गई है । 'प्रणव' के कारण 'लल' ने चित्त-ज्योति (आत्म-प्रकाश) में अपने आप को लय कर दिया । (इस तरह) वह मृत्यु का भय दूर कर पाई ।

पाठभेद : 1. वामकाल (देशकाल-निरपेक्ष ज्योतिस्थान)

अजपा गायत्री-मंत्र का प्रत्येक सांस में जाप कर। अहंभाव को त्याग कर 'उसो' अर्थात् ब्रह्म-तत्व को धारण कर। जिसने 'अहं' को छोड़ दिया, वही वास्तव में 'स्व' (आत्मभाव) के रूप में स्थिर रहा। सीख की बात है 'अहं' का अभाव—तदाकार होना।

136

आसुस कुनिय तय सॉपनिस स्यठाह्,

नख़दीक आसिथ गयस् दूर।

बाहिर-बातिन कुनुय ड्यूंठुम्,

गयम् च्यथ्-च्यथ च्रवंजाह् चूर॥

मैं एक ही थी और अनेक हो गई (एकोऽहं बहुस्याम:)। निकट ही कर दूर जा पड़ी। भीतर और बाहर (व्यक्त-अव्यक्त) उसी एक (शिवतत्व) को देखा। चौवन चोर (विषय-वासना-रूपी लुटेरे) मेरा सब कुछ खा-पी कर और मुझे धोखा दे कर चले गए।

137

योर ति पानय् योर ति पानय्,

पोत-वाने रोज़ि न ज़ाँह्।

पानय गुप्त् त पानय ग्यानी,

पानय पानस् मूद् न ज़ाँह्॥

उधर भी स्वयं है और इधर भी वही स्वयं है अर्थात् जिधर देखती हूं उधर वह ही वह है, वह कहीं पीछे रहने का नहीं। स्वयं ही गुप्त है तो स्वयं ही ज्ञानी। स्वयं वह अपने रहस्य का स्वामी है—वह कभी मरा नहीं—अर्थात् वह अमर है।

चन्द्रम सूसुय् न मरान् त ज़्यवान्,

मनुष्य सूसुय् न करान् न्यंदा ।।

जल चलते-चलते थका नहीं । सूर्य सुमेरु लांघते-लांघते अस्त न हुआ । चन्द्रमा मरते-जन्मते (घटते-बढ़ते) चुका नहीं और मनुष्य निंदा करते बाज़ नहीं आया ।

141

नाभिस्थानस् छ़ि़त ज़लवनी,

ब्रह्मस्थानस् शिशिरुन म्वख् ।

ब्रह्माण्डस छ़य नद् वहवनी,

तवय् तुरुन हूह्, हाह् गव तोत ।।

नाभिस्थान में तो चिता (जठराग्नि) धधकती रहती है । और ब्रह्मस्थान (शीर्ष-स्थल) में शिशिर का मुख (शीत चंद्र) है । ब्रह्माण्ड में नद (प्राणापान-रूपी नदी) प्रवाहमान है, इसलिए 'हूह्' (प्राण) अर्थात् शीर्षस्थान का शीतल श्वास 'हाह्' अर्थात् नाभिस्थान का गर्म उच्छ्वास बन जाता है ।

142

आंबार हाँज़नि हुन्द् गयाम कनन्,

नदरि् छिव त ह्यनियिव मा ।

ति बूज़ बुद्यव तिम् चकि् मनन्,

चेनुन छुव त चीनिव मा ।।

आंबार झील की मछियारिन की आवाज़ कानों में पड़ी । कमल-डंठल बिकाऊ है, लेने हैं तो लो । यह बात जब बुद्धिमानों ने सुनी तो वे कहने लगे, समझने की

18:23

उठ्ना साथै सबेरै नै गर्नु पर्ने क्रिया छ जो ।
त्यस्मा आफैंआफ हुने अजपाको विधान हो ॥१९॥
सास चल्छ तल माथि श्वास प्रश्वास चल्दछ ।
प्रकृतिले स्वयं गर्ने अजपाको विधान यो ॥२०॥
जीवनिस्तारका लागि विधाताले कृपा गरी ।
स्वयं संचालित हुने अजपाको विधान हो ॥२१॥

Anish Bhatta Family Collection, Changu Narayan, Bhaktapur

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding by MIDF-Delhi

सामान्य जनले सोच्छ श्वास प्रश्वास मात्र हो ।
तर विज्ञ भने सोच्छ **अजपा** जप हो यही ॥२२॥
यौटा दीक्षित व्यक्तिले विहानै प्रात–कृत्यमा ।
हंस मन्त्र मात्र जप्छ श्वास प्रश्वासमा सधैं ॥२३॥
सास बाहिर जांदामा हकार जप्तछ भने ।
तान्दा सास भित्रपट्टि सकार जप गर्दछ ॥२४॥
त्यसैले नै हंस मन्त्र श्वास प्रश्वासमा सधैं ।
जपेको हुन्छ उसले अजपा जप हो यही ॥२५॥
सोऽहं सः 'म त्यही नै हुं' जप्तै दीक्षितले सधैं ।
एकता ब्रम्हका साथ राख्ने कोशिश गर्दछ ॥२६॥
क्रम हो भूतशुद्धिको यसमा हंस–मन्त्रको ।
सधैं नै भावना हुन्छ यही हो जप उत्तम ॥२७॥
धर्म अर्थ काम मोक्ष पुरुषार्थ त चार छन् ।
पछिल्लो यिनमा मोक्ष परम पुरुषार्थ हो ॥२८॥
भव सागरको दुःख मोक्षले नै हटाउंछ ।
जन्म र मृत्युको बन्ध यसैले नष्ट गर्दछ ॥२९॥
अन्तर्याग बहिर्याग सबै नै तन्त्रकर्मको ।
मुख्य प्रयोजनै हो यो भोग ता गौण मात्र हो ॥३०॥
जपले देवता तुष्ट बनेर ज्ञान ब्रम्हको ।

81 of 402

Favorite Share Flag

Akshamala Tantra Commentary By Raval Mahabaleshwar Bhatt By Vidyanath Upadhyay Bhatt

18:55

Shri Das Bodh By Ra...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

अजपा-साधना

वक्ता कहते हैं—प्रत्येक प्राणी के श्वासोच्छ्वास नित्य चलते रहते हैं। उनकी ओर एकाग्रता से ध्यान देना 'अजपा' जप कहलाता है। विचार करने पर इसका साधन कोई कठिन नहीं है। मुख में और नासिका में प्राण होते हैं, जिसके श्वास-उच्छ्वास दिन रात लगातार

चलते रहते हैं। इनका हमें सूक्ष्म दृष्टि से नित्य निरीक्षण करते रहना चाहिए। मूल में स्वर एक ही है। उसी तार, मंद्र और घोर (षड्ज के तीन प्रकार) ऐसे तीन भेद हुए हैं। इन स्वर-भेदों से भी अजपा का विचार सूक्ष्म है। नाभि स्थान में स्थित परावाणी के इस पार और हृदय स्थान में स्थित पश्यन्ति वाणी के नीचे अर्थात नाभि और हृदय के बीच में स्वर का उद्गम-स्थान है।. निवान्त स्थान पर बिल्कुल शान्त और स्थिर होकर बैठने पर इसका अनुभव मिलता है। वायु को भीतर खींचे और फिर बाहर छोड़ें। मौन रहें और सूक्ष्मता से देखें तो भीतर से 'सोऽहं सोऽहं' यह ध्वनि सुनाई देगी। बिना उच्चारण के ये शब्द प्रकट होते हैं, इसलिए इसे 'सहज-शब्द' कहा गया है। इन शब्दों का अनुभव होता है, पर उनका नाद नहीं होता। इन्हें भी छोड़कर जो शान्त रहता है, वही सच्चा मौनी है। योगाभ्यास कर जो साधना किया जाता है, वह इसी के लिए है। ध्यानस्थ होने पर यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि 'सोहं' शब्द का भीतर अखंड जप चल रहा है। श्वास लेते समय 'स' और बाहर छोड़ते समय 'अहम्' इस प्रकार 'सोऽहं' का निरंतर जप चलता रहता है।

सृष्टि में जारज, अंडज, स्वदेज और उद्भिज इस भाँति चार प्रकार के प्राणी हैं। इस सब प्राणियों का यह जप सहज रूप से चला करता है। बिना श्वासोच्छ्वास के प्राणियों का जीवन असंभव है। इस सहज-जप को छोड़कर प्रयत्न पूर्वक अन्य जप करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे सहज निश्चल परब्रह्म परमात्मा है। प्रयत्न से गढ़ा हुआ ईश्वर फूटेगा, टूटेगा। ऐसे नाशवत ईश्वर पर कौन विश्वास करेगा? जगद्-व्यापी अन्तरात्मा का दर्शन होने पर सहज ध्यान अखंड हुआ करता है।

(364 of 424)

Favorite Share Flag

Shri Das Bodh By Ram

20:59

❖ **रैदास जी महाराज (वाराणसी)** ने भी इन पंक्तियों में अपने वास्तविक धर्म विदेह स्वरूप को चीन्हने की बात कही है-

बहु विधि धर्म निरूपिए, कर्ता दिसे सब कोई ।
जिहि धर्म ते तू छूटि है, सो धर्म न चीन्हे कोई ।।

❖ **संत रज्जब दास जी (जयपुर, राजस्थान)** ने जन्म मरण से रहित विदेही आत्मा का ही आश्रय लेने का उपदेश दिया है -

रज्जब जो जन्मे मरे, ताकी तजिए आश।
हम ही अमर सो क्या मरे, जो आप फिरे गर्भ वास ।।

एक कहे अवतार दस, एक कहे चौबीस ।
रज्जब सुमिरे सो धनी, सो सब ही के सीस।।

❖ **भीखा साहिब (आजमगढ़, यूपी)** ने अखंडित आत्म राम में लवलीन रहने और वहाँ से सुरति ना हटाने के लिए बोला है।

आत्म राम अखंडित आपे, निज साहब विस्तारा ।
भीखा सहज समाधि लावो, अवसर यह तुम्हारा ।।
ज्ञान ध्यान उर करहु धरहु दृढ़ शब्द स्वरूप विचारो ।
कर भीखा लौलीन रहो उत इत मत सुरती उतारो ।।

❖ **संत दादू दयाल (सांभर नारायणा, जयपुर)** के अनुसार आत्मा -परमात्मा दोनों का स्वरूप जन्म मरण से रहित हैं।

जामै मरे सो जीव है, रमता राम न होय।
जामन मरण ते रहित है, मेरा साहिब सोय।।
ना वह जामे ना मरे, न आवे गर्भ वास ।
दादू औंधे मुख नहीं, नर्क कुंड दस मास।।

(विदेहि ज्ञान) पवित्र ज्ञान और विदेहि ज्ञान क्या है आईय जाने
@विदेहिज्ञान 866 views 3 wk ago ...more
Subscribe 30 Remix Downl
Comments 5
Add a comment...

जिसमें प्राणायाम किया जाता हो। वैदिक सन्ध्या ही एक ऐसी उपासना पद्धति है जिसमें प्राणायाम मन्त्र है तथा प्राणायाम उसका अपरिहार्य अंग है।[114]

महर्षि वसिष्ठ श्रीराम से प्राणायाम के फल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्राण–अपान की गति का सम्यक् ज्ञान रखते हुए शास्त्रवर्णित रीति से उसकी उपासना करके मृत्युंजयी व्यक्ति ज्ञानशक्ति से जीवन्मुक्त होकर संसार में पुनः नहीं आता है।[115] महर्षि वसिष्ठ आगे उपदेश करते हैं कि प्राण तथा अपान वायु के प्रकृतिभूत बाह्य एवं आन्तरिक कुम्भक आदि का सम्यक् रूप से नियमित प्राणायाम करने वाला सांसारिक आवागमन से युक्त हो जाता है–

बाह्यानाभ्यन्तरांश्चैतान् कुम्भकादीननारतम्।

प्राणापानस्वभावांस्तान्बुद्ध्वा भूयो न जायतेः।।[116]

महर्षि वसिष्ठ प्राण और अपान का उदय और अस्त रूप वर्णन करते हुए श्रीराम से कहते हैं– प्राण के अस्त होने पर उसी स्थान पर तत्क्षण अपान का उदय हो जाता है। प्राण के उदयस्थल में अपान का तथा अपान के उदयस्थल में प्राण की विनष्टता सुनिश्चित समझें। प्राणवायु के अस्त होने एवं अपानवायु के उदय होने की दशा में बाह्य कुम्भक का अभ्यास लम्बे समय तक करने वाला योगी शोकरहित हो जाता है। अपानवायु के अस्त होने पर तथा प्राणवायु के किंचित् उदय होने पर अन्तः कुम्भक का चिर अभ्यासी योगी भी संसाररूपी शोक के पार हो जाता है।[117]

---

[114] श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभिषेचनम्।
प्राणायामेन पुरूषं ध्यायमाना जनार्दनम्।। वा0 रा0, अयो0–4/33

[115] न पुनरिह हि जायते महात्मन्।
मुदितमनाः पुरूषः प्रणस्टपाशः।।योग वसिष्ठ, निवाण–प्रकरण–24/38

[116] योग वसिष्ठ, निवाण–प्रकरण–25/19

[117] प्राणे त्वस्तं गते बाह्यादपानः प्रोदितः क्षणात्।
आतपे परितो नष्टे छायेवाऽनुपदं तथा।।
प्राणजन्मावनौ नष्टमपानं विद्धि सन्मते।
अपानजन्माभूमौ च प्राणं नष्टमवेहि हि।।

स्वस्वरूपानुभूति करना है । इस दिशा में कबीर साहिब ने लगभग संकेत सा ही किया है, कम से कम स्वरसाधना के क्रम का विधिवत् निरूपण तो नहीं ही हुआ है । पंथ में हमें इस साधना का क्रमिक विवरण उपलब्ध होता है । ` कायापांजी ` के अनुसार साधक को चंद्र एवं सूर्य स्वरों को साध कर सम करना चाहिये । तदनंतर चंद्र स्वर (बाएं स्वर) से सुरति को बढ़ाते हुए उसे त्रिकुटी के मध्य में ले जाना चाहिये । वहां पर उपलब्ध तत्त्व का मंथन करने से त्रिकुटी के किवाड़ खुल जाते हैं । त्रिकुटी के आगे चार अंगुल का आकाश है जिसमें बाईं ओर धर्मराय का स्थान एवं दाईं ओर सुरति के जाने का मार्ग है । सुरति द्वार से जाने पर सुमेरु मिलता है । सुमेरु के आगे सुरति-कमल है जिसमें चंद्र-ज्योत्सना छिटक रही है । यहीं तिल के बराबर किवाड़ लगा है । जिसके आगे से बिलंगम डोरी जाती है । यह डोरी सुरतिकमल की दाईं ओर से प्रारंभ होकर ऊर्ध्वमुखी अर्धकमल तक जाती है । इस अर्धकमल को वटायवृक्ष भी कहते हैं । इसमें ३६ पंखुड़ियां हैं । यहीं मूलशब्द ध्वनित हो रहा है तथा निरंकार का वास है । साधक बिलंगम डोरी के माध्यम से अपनी सुरति को इसी शब्द में लीन करता हुआ स्वस्वरूपानुभूति करता है । और इस प्रकार स्वर-साधना सुरति-शब्दयोग की प्रथम सीढ़ी सिद्ध होती है ।

पंथ में बहुप्रचलित चौका-आरती आदि धार्मिक कृत्यों को प्रारंभ करने के पूर्व कड़िहार[1] के लिये यह आवश्यक है कि वह स्वर-ज्ञान के माध्यम से चौका-आरती आदि प्रारंभ करने का उचित समय निश्चित कर ले ।

हम जानते हैं कि कबीर ने हठयोग में वर्णित मुद्रासाधनादि को छोड़ कर लययोग को अपना लिया था । इस अवसर पर उन्होंने कहा था -

अवधू जोगी जग थैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी नाद न खंडै धारा ।।

इस प्रकार उनके लिये मुद्रा-साधना गौण वस्तु बन गई थी किंतु पंथ में मुद्रा-साधना अपना प्रभाव यथावत् बनाये हुए दीख पड़ती है । ` पंचमुद्रा ` नामक पुस्तक में पांचों मुद्राओं का विस्तार से वर्णन किया गया है । उक्त पुस्तक

---

1 पंचमुद्रा-पृ०-१०६ पर्यंत

सारशब्द एवं सुरति के योग का प्रारंभ जप से होता है। साधक चित्तवृत्ति - निरोध एवं सात्विक प्रेम जागरण के अनंतर सत्नाम का जाप करते हुए भावदशा को प्राप्त करता है। इसके अनंतर सारशब्द अंतरघट में ध्वनित होने लगता है। यह दशा शब्द केवलता की कही गई है। इस समय सुरति शब्द रूप हो जाती है और वह शब्द के सहारे ऊपर चढ़ती हुई आत्मचैतन्य रूप निस्तत्व कीप्राप्ति करती है। निस्तत्वपद प्राप्त व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है।

अब इस दशा को प्राप्त व्यक्ति निजस्वरूप में स्थित होकर अद्वैतानुभूति करने लगता है। वह समष्टि एवं व्यष्टि रूप समस्त उपाधियों से रहित होकर सत्-चित्- आनंदमय, सर्वप्रकाशक तथा व्यापक तत्व बन जाता है।

'स्वरसाधना' पर विचार करते हुए हमने देखा था कि वहां हठयोग के द्वारा सुरति एवं शब्द का योग हो रहा था। यहां पर सुरति एवं शब्द का योग बहुत कुछ मंत्रयोग तथा लययोग के द्वारा भी न हो रहा है।

'श्री सत्प्रकाशमणि गीता' के अनुसार शब्द का भी विलीनीकरण आवश्यक है। वह शब्द को भी अस्थिर मानती है। उसके अनुसार सुरति का शब्द में विलीनीकरण होने के अनंतर सुरति की प्रतीति नहीं होती। यही शब्द-केवलता की दशा कही गई है। यह दशा अनिर्वचनीय एवं आनंददायक होने पर भी विघ्नस्वरूप है। साधक के लिये अपेक्षित है कि वह शब्द का भी विलीनीकरण कर दे। शब्द में निस्तत्वपद समाया रहता है जो शब्द-मंथन से उपलब्ध होता है। इस निस्तत्व को प्राप्त करना चाहिये। यही ध्येय है, आत्मप्राप्ति का वाचक है।[1]

'ब्रह्म निरूपण ग्रंथ' के लेखक का मत है कि सारशब्द के विलीनीकरण की आवश्यकता नहीं। वे सारशब्द को प्राप्त करने की ही बात करते हुए लिखते हैं - 'इस निरक्षर सारशब्द की प्राप्ति श्वासा से उत्पन्न होने वाले सोहं शब्द के विलीनीकरण से होती है। सोहं के विलय से ॐकार की प्राप्ति होती है और साथ ॐकार के विलीनीकरण से निरक्षर सारशब्द ही अवशिष्ट रह जाता है।[2]

ग्रंथ में राजयोग

राजयोगी वृत्ति-जय के माध्यम से स्वस्वरूप का बोध करता है। उसका संबल विवेक रहता है। वृत्तिजय से तात्पर्य मनोमारण या मनोजय दोनों से है। वास्तव में यह इंद्रिय-निग्रह की साधना है। वैसे इंद्रियनिग्रह अष्टांगयोग और उसमें भी विशेषत: प्राणायाम से भी संभव है किंतु सतासत् विवेक की निरंतर अनुभूति करने के प्रयास से भी इंद्रिय-निग्रह होता है। राजयोगी विवेकी बनता है। कबीर में विवेक साधना को हम देख चुके हैं।

'पंचमुद्रा' का हंस राजयोगी ही है। वह पुरुष से इस

---

१ श्री सत्प्रकाशमणि गीता के आधार पर वर्णित

२ अन्य ग्रंथ ब्रह्म निरूपणम् - पृ० ६

आचार्य पीठ की नित्य सायं समय आरती

निशिदिन संत परम पद जोई, आरती करे सो केवल होई ॥टेर॥
पहली आरती सतगुरु सेवा, तन मन भेंट धरूं सिर देवा।
दूजी आरती रसना गाया, जल पलटाय अमी रस पाया ॥१॥
तीजी आरती कण्ठ में वासा, भ्रम कर्म व्यापे नहीं आसा।
चौथी आरती हृदय हुलासा, रेण मिटी हुआ प्रकाशा ॥२॥
पाँचवी आरती नाभि गुंजासा, अष्ट कली पर भंवर विलासा।
छट्ठी आरती पश्चिम दिशा सूं, दे परिक्रमा शीश नमासूं ॥३॥
सातवीं आरती त्रिकूटी में वासा, झिलमिल ज्योति हुआ प्रकाशा।
आठवीं आरती गगन घुराणा, अमी वर्षाय स्नान कराणा ॥४॥
नवमीं आरती नौ दरवाजा, खिड़की बन्द करे सोई राजा।
दशमी आरती दशवें द्वारे, अरस परस मिले राम पियारे ॥५॥
ग्यारहवीं आरती परम प्रकाशा, रूप वर्ण बिन नाम निराशा।
बारहवीं आरती ब्रह्म विलासा, संत हरिराम निर्भय घर वासा ॥६॥

मन पवना पहुँचे नहीं, सुरता करत हुलास।
हरिराम कर वन्दना, ब्रह्म ज्योति प्रकाश ॥

KINEMASTER

करके सहित करनेसे अणिमादि अष्टसिद्धियोंका उदय होता है ॥ ७६ ॥

एषु ब्रह्मात्मकं तेजः शिवज्योतिरनुत्तमम् ।
ध्यात्वा ज्ञात्वा विमुक्तः स्यादिति गोरक्षभाषितम् ७७

उक्त नव (९) स्थानोंमें सर्वोत्कृष्ट शिव अनाहत आज्ञाचक्रोंमें उक्त प्रकारसे साकार सगुणस्वरूपको अथवा निराकार निर्गुणब्रह्मको भावना करके उक्त स्थानोंमें ध्यान करनेसे योगी संसारसे मुक्त होकर पुनर्जन्ममरणरूप संतापसे छूटता है यह श्रीगोरक्षनाथ प्रतिज्ञा करके कहते हैं इसमें संशय न मानना ॥७७॥

नाभौ संयम्य चित्तं पवनगतिमधो रोधयत्संप्रयत्ना-
दाकुञ्च्यापानमूलं हुतवहसदृशं तन्तुवत्सूक्ष्मरूपम् ।
तद्बद्ध्वा हृत्सरोजे तदनु दलणके तालके ब्रह्मरन्ध्रे
भित्त्वा ते यान्ति शून्यं प्रविशति गगने यत्र देवो महेशः॥

चित्त (अंतःकरण) को मणिपूरचक्रमें स्थिर करके अपानद्वारको बडे प्रयत्नसे संकोच विकाश कर अपानवायुको अधोगतिको रोकके ऊपरको उठाय मन एवं प्राणवायुसे ऐक्य करे सूत्रके समान सूक्ष्म अग्निसमान देदीप्यमान ज्योतिःस्वरूपको उक्त ऐक्यविषये चिंतन करनेसे उक्त ज्योति नाभि चक्रको वेधनकर हृदयकमलमें पहुँचता है पुनः अभ्यास सिद्ध हो तो हृदयकमलको वेधकर ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचता है इसी विधिसे योगियोंके शरीरत्यागसमयमें वही ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मरन्ध्रको

8- प्रायः सभी तान्त्रिक साधु अनुष्ठानिक कृत्यों में इष्ट-पूजा के षोडश उपचारों का प्रयोग करते हैं।

9- कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत करने में अभ्यस्त तान्त्रिक साधुओं का प्रतिदिवस का साधनक्रम का विवरण इस प्रकार है —

प्रतिदिन प्रातःकाल चार बजे शय्या त्याग कर देहशुद्धि के पश्चात् 5 बजे से 9 बजे तक का कार्यक्रम

1- भस्त्रिका का प्राणायाम दोनों प्रकार का — 5 से 25 प्राणायाम तक ।
2- शक्ति चालिनी मुद्रा उभय प्रकार — प्रत्येक 5 से 10 तक ।
3- ताड़न मुद्रा — 4 प्राणायाम में 101 तक ।
4- परिधानमुक्तिचालन — 4 प्राणायाम में 101 तक ।
5- पश्चात् बाकी समय में षट्चक्रभेदन की मानसिक क्रियाएँ या संयम ।

पुनः सायं 4 से बजे से 9 बजे रात्रि तक ।

1- महामुद्रा — प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
2- महाबन्ध — प्रत्येक पैर पर 5 से 25 तक ।
3- महावेध — उभय प्रकार का 5 से 10 तक ।
4- विपरीतकरणी मुद्रा — 5 से 10 तक ।
5- शेष समय में षट्चक्र भेदन की क्रियाएँ (राजयोग) ।

इति। अत एवोक्तं रामस्थ इति

'......................एकाकी न रमाम्यहम्।'

इत्याद्युक्त्या रमते तत्तज्जडाजडात्मना विश्ववैचित्र्यात्मना क्रीडति इति रामः परमात्मा, तत्र तिष्ठति तद्रूपतया परिस्फुरति इत्यर्थः। तदुक्तं त्रिशिरोभैरवे

'सेव्यमानमधोर्ध्वं तु प्राणापानोत्थकक्षधीः।
ऊर्ध्वं त्यक्त्वा तु प्रविशेद्रामस्योऽज्ञात एव च॥'

तत्रैवागूरणेन भगवत्या

'रामः किमुच्यते देव योऽत्रस्थः स च कः प्रभो।
तस्याभ्यासः कथं नाम ब्रूहि सर्वं महेश्वर॥'

इति पृष्टे, भगवता

'रामस्थं परमेशानि योगं यत्कीर्तितं मया।
कथयामि यथातथ्यमभ्यासस्तस्य योगतः॥'

इत्यन्तेन प्रतिज्ञाय, तत्समाधानं बहुना ग्रन्थेन कृतम्॥ ८६॥

इसीलिये कहा गया है—

प्राण रूपी ऊर्ध्व तथा अपान रूपी अधोगति को तोड़कर साधक मध्य नाड़ी में अनुप्रवेश करे (उसमें भी नाड़ीगत सूक्ष्म नाड़ी कुण्डलिनी के) मध्य में अवस्थान करे। ऐसा सिद्ध साधक ही (विश्व वैचित्र्य में रमने वाले) राम में अवस्थित है, अर्थात् परम शिव भाव में प्रतिष्ठित रहता है॥ ८६॥

ऊर्ध्व वाह करने के कारण 'ऊर्ध्व' शब्द का अर्थ 'प्राण' और अधोवाही होने कारण अधः शब्द से 'अपान' अर्थ लिया गया है। त्यक्त्वा का अर्थ छोड़कर होता है; किन्तु यहाँ प्राण और अपान की गतियों को तोड़कर अर्थ होना चाहिये। स का अर्थ वह साधक जो ग्राम धर्म वृत्ति अपना चुका है। वह मध्य नाड़ी में प्रवेश करे। उसी का विशेषण शब्द है 'मध्यदेशगः' मध्य नाड़ी का भी बिचला भाग। वहाँ कमलनाल में उल्लसित बिसतन्तु के समान, शक्ति रहती है। उसी का वह (अन्तर्व्योमरूप) देश है। उसमें साधक की गति हो जाती है। इस गति से वह उस देश का ज्ञाता बन जाता है। ऐसा वह साधक एकनिष्ठ भाव से उसमें स्वयम् उल्लसित हो जाता है। कहा गया है—

"शक्ति मध्य नाडी के बीच में बिस तन्तु के समान शोभमान रहती है। ध्यानकर्ता उसका ध्यान करता है। अन्तर्व्योम रूपिणी उस देवी के द्वारा ही वह परम देव शिव प्रकाशित होता है।"

इह च तदेव ग्रन्थकारः शब्दार्थद्वारेण पठति

गतिः स्थानं स्वप्नजाग्रदुन्मेषणनिमेषणे ।
धावनं प्लवनं चैव आयासः शक्तिवेदनम् ॥ ८७ ॥
बुद्धिभेदास्तथा भावाः संज्ञाः कर्माण्यनेकशः ।
एष रामो व्यापकोऽत्र शिवः परमकारणम् ॥ ८८ ॥

स्वप्नः विकल्पः, जाग्रत् ज्ञानम्, उन्मेषणम् ईश्वरदशा, निमेषणं सदाशिवदशा, आयासः 'अय गतौ' गत्यर्थो ज्ञानार्थः तेन अयः अयनं ज्ञानं तस्यासः क्षेपो निवृत्तिः—अज्ञानम् इत्यर्थः। धर्माद्या—अष्टौ बुद्धिधर्माः, संज्ञाः—यादृच्छिका डित्यादयः, कर्माणि—व्यापाराः। अनेन च गत्यादिना चतुर्दशकेन सकलविश्वस्वीकारः कृतः। यच्चैतद्गत्यादि एष रामः—सकलविश्वावभासनक्रीडापरः परमात्मा परमेश्वरः, अत एवोक्तं 'व्यापकोऽत्र शिवः परमाकारणम्' इति, अत्र इति गत्याद्युपलक्षिते विश्वस्मिन्, शिवस्यैव हि अयमशेषविश्वात्मास्फार इति भावः। तदुक्तं

यही ध्यान में रखकर मूल श्लोक में 'रामस्थः' शब्द का प्रयोग किया गया है। (उसका स्वभाव है, '……मैं अकेले रमण नहीं करता।' इस तरह की उक्ति से (यह अर्थ निकलता है कि) जड़-चेतन रूप से विश्व की विचित्रताओं का आधार और आकार बनकर वही खेल रहा है। ऐसा रमण करने वाला परमात्मा शिव ही है। उस राम में वह स्वयं प्रतिष्ठित हो जाता है। तद्रूप होकर उल्लसित होने लगता है। त्रिशिरो भैरव शास्त्र में भी यह बात इस तरह कही गयी है—

"प्राण और अपान की ऊपर और नीचे की स्वीकृत गतियों से ऊपर उठकर स्थितप्रज्ञ साधक वज्रिणी, चित्रिणी और कुण्डलिनी के मध्य में प्रवेश कर जाता है। इसलिये उसे ही रामस्थ कहते हैं।"

वही माँ परमाम्बा भगवती शक्ति आगूरण (आक्षेप) पूर्वक शिव से प्रश्न करती है कि "हे देव राम किसे कहते हैं? वह कौन तत्त्व है जो यहाँ अवस्थित है, उसे क्या कहते हैं? उसका क्या नाम है। हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आप यह बताने की कृपा करें कि उसकी प्राप्ति का अभ्यास कैसे किया जाय?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् कहते हैं—

"हे देवि! हे परमेश्वरी! मैंने जिस रामस्थ योग की चर्चा की है, मैं इसे यथातथ्य रूप से स्पष्ट करता हूँ। साथ ही अभ्यास योग का भी निर्देश

रवो भगवद्विषय आक्रन्दः परामर्शो वा ततो जात इति भैरवः, तेनाक्रन्दवतां परामर्शवतां च हृदि परमार्थभूमौ स्फुरित इति यावत्। भवाद्भयं भीस्तस्य रवो विवेचनं विमर्शनं तस्य शक्तिपातमुखेन अयं कारणम् इति भैरवः, संसार-वैमुख्येऽपि अयमेव निमित्तम् इति भावः। भानि नक्षत्राणि ईरयति प्रेरयति इति भेरः कालः, तस्य तत्त्वं क्षणाद्यात्मकं स्वरूपम्, तस्य सम्यङ् निःशेषेण शोषम् अभिभवं कुर्वन्ति इति कालं वायन्ति इति भेरवाः—कालग्राससमाधिरूढा-बधाना योगिनः, तेषु अयं स्वामी तत्त्वेन प्रकटः स्फुरितः इति भैरवः। संकोचिनो भेदप्रथामयस्य पशुजनस्य भिये तत्तत्सुखदुःखाद्युपजननत्रासाय रवणं शब्दराशिसमुत्थकादिकलाविमर्शमयो रवो यासां ताः स्वकरणदेव्य इन्द्रियशक्तयः, तथा अन्तर्बहिः प्रमातृप्रमेयाद्यात्मा चतुर्विधः चतुष्प्रकारः

भवसे भीतिका विमर्शन भी एक प्रकार का रव है। एक प्रकार का मध्यमावाक्-विकसित विवेचन है। ऐसे विवेचक-विमर्शक साधक पर शक्ति-पात हो जाता है। उस शक्तिपात में भी यही कारण है। शक्तिपात के द्वारा स्फुरण में भी वही कारण है। इस तरह संसार के वैमुख्य में भी और स्वात्म परामर्श में भी वही कारण है—यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। विग्रह है—भियः रवात् जातः भैरवः। ऐसा यह भैरव है ॥९७॥

नक्षत्रों का यह प्रेरक है। वही कालतत्त्व है। उसका सम्यक् शोष करने वाले 'भेरव' कहलाते हैं। काल को ग्रास बनाकर समाधि में आनन्द लेने वाले योगियों के उन मनों में यह (महाभैरव तत्त्व) स्वतः प्रकट है॥

नक्षत्र का पर्यायवाची शब्द भ है। उनको प्रेरणा देने वाला काल है। भानि नक्षत्राणि ईरयति इस विग्रह के अनुसार निष्पन्न 'भेर' शब्द काल अर्थ व्यक्त करता है। काल के तत्त्व त्रुटि से युगकल्प पर्यन्त हैं। ऐसे काल का अच्छी तरह शोषण करने वाले योगी होते हैं। अब विग्रह बनेगा—'भेरं कालं वायन्ति इति भेरवाः योगिनः।' भेरवेषु प्रकटः इति भैरवः।' इस विग्रह के अनुसार यह सिद्ध हो जाता है कि परमेश्वर साक्षात् योगियों को प्रत्यक्ष हैं। उनके प्रकट होने के स्थान का निर्देश दूसरी पंक्ति में कर रहे हैं। श्वास साधना के माध्यम से योगी लोग ऊर्ध्व और अधः श्वास की गति को समाप्त कर सुषुम्ना के माध्यम से कुण्डलिनी को जागृत कर सहस्रार में अवस्थित हो जाते हैं। यह उनकी समाधि होती है। उसका रस लेने के कारण वे समाधि रस-रसिक कहे जाते हैं। साम्मनस्य दशा में वे मन में और औन्मनस दशा में विमर्श में स्फुरित होते हैं। ऐसे परम देव ही महाभैरव हैं ॥९८॥

'अकारः सर्ववर्णानामन्तर्यामितया स्थितः।'

इत्याद्युक्त्या सर्वेषामेव वर्णानाम्, अधऊर्ध्वविभागेन—अनुत्तरात् शूलबीजपर्यन्तं हकारपर्यन्तं वा, प्राणनरूपत्वेनावस्थितः—सर्व एव परामर्शराशिस्तत्स्फारसार एवेत्यर्थः। अथ च स एव सर्वेषां प्राणिनामधऊर्ध्वविभागेन—सूर्याचन्द्रात्मप्राणापानप्रवाहरूपतयाप्यवस्थितः, सैव हि 'परा जीवकला' इति भावः। एवमप्यसौ निष्क्रियेण रूपेणावतिष्ठते—क्रियाशक्तिपर्यन्तं तत्तद्वैचित्र्यात्मना परिस्फुरणेऽपि नास्य स्वस्वरूपात् प्रच्याव इत्यर्थः॥ ११३॥

ननु उदितायां क्रियाशक्तौ ह्लादतैक्ष्ण्याद्यवच्छिन्नः सोमसूर्यादिः प्रतिनियतः प्रकाशः प्रकाशते, यः स्वमन्यच्च निखिलमेव प्रकाशयति, यः पुनरविभागः परः प्रकाश उक्तः स किं तदात्मकः उत तत्प्रकाश्योऽन्यो वा? इत्याशंक्याह

ह्लादतैक्ष्ण्यादिवैचित्र्यं सितरक्तादिकं च यत्॥११४॥
स्वयं तन्निरपेक्षोऽसौ प्रकाशो गुरुराह च।

यत्खलु चन्द्रसूर्यादिगतं ह्लादतैक्ष्ण्याद्यात्मसितरक्ताद्यात्म च वैचित्र्यं, तदसौ परः प्रकाशः स्वात्मना नापेक्षते—नियतरूपत्वाभावात्तदेकात्मको न भवेत् नापि स्वप्रकाशत्वात्तत्प्रकाश्यः, तेन नासौ सूर्यादिरूपः तत्प्रकाश्यो वा, अपि तु सूर्यादिधामत्रयानुप्राणकः परप्रमात्रेकरूपः, आदिशब्दद्वयाच्च दाहकत्वं दाह्य-

---

शब्द है। विन्दु के रहस्यार्थ के अनुसार नादात्मक शब्द ही सभी प्राणियों के हृदय में अवस्थित है। नाद हकारार्धार्ध रूपी अमा कला है। वह सर्वत्र अस्वर भाव से अवस्थित है। वही—

"अ'कार सभी वर्णों में अन्तर्यामी रूप से अवस्थित है।" इस नीति के अनुसार सभी वर्णों में [अनुत्तर से शूल बीज पर्यन्त] प्राणरूप से अवस्थित है। प्राणियों में सूर्य प्राण और सोम अपान बन कर जीवकला रूप से श्वास-निःश्वास में उल्लसित हैं। निष्क्रियता का अर्थ क्रिया शक्ति तक ज्यों का त्यों रहना है। अर्थात् विन्दु ही नाद, शब्द, श्वास प्रश्वास आदि सब में अच्युत भाव से उल्लसित हो रहा है॥११३॥

प्रकाश दो तरह के कहे गये है। १—क्रियाशक्ति में सोम सूर्यादि का प्रतिनियत प्रकाश और २—अविभाग प्रकाश। क्या यह दूसरा ही पर-प्रकाश है अथवा इससे प्रकाश्य? इसे स्पष्ट कर रहे हैं—

ततो ज्वलनचिद्रूपं चित्रभानुः प्रकीर्तितः ॥ १२२ ॥

योऽयं वह्नेः परं तत्त्वं प्रमातृत्विमेव तत् ।

तौ उभौ सूर्याचन्द्रौ, स्वतन्त्रौ—परस्परनैरपेक्ष्येण प्रमाणप्रमेयात्मना पृथग्व्यवहार्यौ अपि, अन्योन्यमवियुक्तौ—सहोपलम्भनियमादभेदमापन्नावित्यर्थः न खलु ज्ञानं ज्ञेयानारूषितं क्वचिदपि उपलभ्यते ज्ञानं विना वा ज्ञेयमिति, यदाहुः

'स्फटिकस्येव ह्युपाश्रयशून्यस्य ज्ञानस्य

स्वरूपमनिरूप्यम् ।' इति ।

तथा

'नावेदनमतो वेद्यम्……………… ।'

इति, अत एव एतत्सूर्याचन्द्रात्म द्वयं ग्राह्यग्राहकरूपत्वात्परस्परौन्मुख्यं प्राप्तं सत् भोक्ता—बुद्ध्याद्यात्मा संकुचितः प्रमाता तन्मयत्वात् प्रमाणमपि भोक्ता, भोग्यं च नीलसुखादि तयोर्यत् लोलीभावमापन्नं सत् उभयं, तदात्मा यस्य तत्—भोक्तृभोग्यसंघट्टस्वभावमित्यर्थः । यतश्चैवं ततो भोक्तृभोग्यसंघट्टलक्षणाद्धेतोश्चित्राः—नानाकारा मानमेयादिरूपा भानवो यस्यासौ अग्निरुक्तः, यदुक्तम्

'शुचिर्नामाग्निरुद्भूतः संघट्टात्सोमसूर्ययोः ।'

इति, स च प्रमाणप्रमेयविभागात्मनो भेदस्य दाहकत्वात् ज्वलनप्रधाना चिद् रूपं यस्य सः—परिमितप्रमातृरूप इत्यर्थः, तस्य हि प्रमाणप्रमेययोः संमेलनमेव रूपमित्यर्थ वह्नेरप्येवम् इति तस्य प्रमातृत्वम्, अत आह—योयमित्यादि, परमित्यसाधारणम् ॥ १२१–१२२ ॥

एक दूसरे की उन्मुखता में परस्पर संघट्ट भी स्वाभाविक है। परिणाम स्वरूप चित्र विचित्र विभा-भास्वर रश्मियाँ फूटती रहती हैं। ये किरणें मान और मेय रूप होती हैं। यही अग्नि तत्त्व है। कहा भी है—

सोम और सूर्य के संघट्ट से शुचि नामक अग्नि उत्पन्न होता है।'' इसकी किरणें प्रमाण और प्रमेय रूप विभागमय भेद को जलाती हैं। अतः ज्वलन प्रधान चिद्रूप परिमित प्रमाता होती हैं। यही वह्नि का परम रहस्यात्मक स्वरूप है। स्वयं वह्नि भी परिमित प्रमाता है ॥१२१-१२२॥

यासौ विसिसृक्षा, सैव निश्चितं बहिरौन्मुख्यलक्षणात् क्षोभवशात् विसर्गात्मकता-मेत्य, आनन्दोदयक्रमेण क्रियाशक्तिपर्यन्तं प्रोच्छलन्तीं स्थितिमवभासयति, इत्यर्थः ॥१३६॥

न चैतदस्मदुपज्ञमेव, इत्याह

उक्तं च त्रिशिरःशास्त्रे कलाव्याप्त्यन्तचर्चने ॥१३७॥
कला सप्तदशी तस्मादमृताकाररूपिणी।
परापरस्वस्वरूपबिन्दुगत्या विसर्पिता ॥१३८॥
प्रकाश्यं सर्ववस्तूनां विसर्गरहिता तु सा।
शक्तिकुण्डलिका चैव प्राणकुण्डलिका तथा ॥ १३९ ॥
विसर्गप्रान्तदेशे तु परा कुण्डलिनीति च।
शिवव्योमेति परमं ब्रह्मात्मस्थानमुच्यते ॥ १४० ॥
विसर्गमात्रं नाथस्य सृष्टिसंहारविभ्रमाः।

कलाव्याप्त्यन्तचर्चने, इति—अमाख्यकलास्वरूपस्फारसिद्धान्तविचारावसरे इत्यर्थः, तत्र हि

वही क्षोभ के कारण बाहर की ओर उन्मुख होती है। उस अवस्था में वही विमर्श विसर्ग का कारण बन जाती है। आनन्द के उदय से लेकर क्रिया शक्ति पर्यन्त यह प्रोच्छलन, सृष्टि को प्रतिष्ठित कर देता है ॥१३६॥

यह तथ्य ग्रन्थकार का स्वोपज्ञ कथन नहीं अपि तु शास्त्रान्तर भी यही मत व्यक्त कर रहे हैं—

त्रिशिरः शास्त्र में अमा कला के 'स्व' रूप का स्फार कैसे होता है, इस सिद्धान्त की चर्चा के प्रसङ्ग में कहा गया है कि—"यह सत्रहवीं कला है।" स्वयं पार्वती ने महेश्वर से कला व्याप्ति की चर्चा की थी। महेश्वर ने उक्त प्रसङ्ग में उक्त उत्तर दिया। कहीं शब्दतः और कहीं संकेतात्मक अर्थतः भी यह सब कहा गया है। वहाँ कहा गया है कि—

अन्तः करण प्रभृति १६ कलाओं का आप्यायन करने के कारण उसे अमृताकार रूपिणी कहा जाता है। वही 'कौलिकी' 'परा' या कुण्डलिनी कला है। यह हकारार्धार्ध रूपिणी सत्रहवीं अमा कला है। यह 'परापर विसर्ग रूपावस्था में दो बिन्दुओं से व्यक्त होती है ॥१३८॥

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'शोभितः पूरकक्रमेण द्वादशान्ताद्धृदयं यावत् तद्दशामधिशयान इत्यर्थः। ततोऽपि हृदये कुम्भकवृत्त्या क्षणं विश्रम्य तेषां समनन्तरोक्तानां नीलसुखादि-रूपतया 'अनन्तानां' प्रतिभासमानां 'मेयानाम्' अन्योन्यमेलनात्मा योऽसौ 'संघट्टः' तेन 'एकान्तेन' अव्यभिचारेण 'निर्वृतः' सन्, सममेव समग्रमेयस्वी-कारात् समानभूमिमासाद्य मेयेन संभूय कृतत्वाद्बृंहितेन ब्रह्मरूपे योऽसावानन्दः, तन्मयो भवेत्, परमानन्ददशातोऽपि विशिष्टामानन्ददशामनुभवेदित्यर्थः। तदनन्तरमपि 'मानमेययोः' सूर्यसोमात्मनोः प्राणापानयोर्य 'ओघः' प्रवाह-स्तस्य याः

'षट् शतानि वरारोहे सहस्राण्येकविंशतिः।'
(वि० भै० १५६ श्लो०)

इत्यादिना निरूपितस्वरूपाः 'कलनाः' तासां 'ग्रासतत्परः' तद्ग्रहणपरायणो योगी मध्यमार्गेणोर्ध्वगामिनि 'उदानवह्नौ' उत्कर्षकक्रमेण परिहृतप्राणाद्य-वान्तरक्षोभतया 'विश्रान्तो महान्त' प्रमाणादिदशाधिशायिनिरानन्दादिवैल-क्षण्यादुत्कृष्टं प्रमातृसंमतम् 'आनन्दं विभावयेत्' स्वात्ममात्रविश्रान्तिरूपतया विमृशेदित्यर्थः ॥ ४७ ॥

यह निराकांक्षा एक प्रकार की तुष्टि की घूंट है। स्वात्म विश्रान्ति की एक तृप्ति है। अपान चन्द्र की चारुता है। बाह्य द्वादशान्त से नाभि तक पूरक क्रम से परानन्द निर्भर रहना ही परानन्द का भावन कहलाता है। निजानन्द, निरानन्द और परानन्द की यह सोपान परम्परा साधना का विषय है और "अपान" चन्द्र का चमत्कार है। आनन्द की यह तीसरी भूमि है।

चौथा आनन्द '**ब्रह्मानन्द**' है। कुम्भक वृत्ति में योगी के स्थित होने पर अनन्त अनन्त प्रतिभासमान प्रमेयों का आपसी मिलाप स्वाभाविक रूप से होने होने लगता है। यह समग्र मेय की स्वीकृति 'समान' भूमि है। यहाँ आनन्द का उपबृंहण होता है। इसी लिये इसे 'ब्रह्मानन्द' कहते हैं।

पाँचवीं आनन्द भूमिका नाम '**महानन्द**' है। यह उदान वायु के स्तर का आनन्द है। प्राण और अपान के २१६०० प्रवाह रूपी कलनाओं का इसमें ग्रास करना होता है। परिणामतः प्राणापान चक्रात्मक क्षोभ शान्त हो जाता है और योगी मध्यमार्ग से उर्ध्वगामी 'उदान' वह्नि में उत्कर्ष-पूर्वक विश्राम करने लगता है। यह प्रमातृ संमत आनन्द है ॥ ४३-४७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digilization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रिशूलभूमिं क्रान्त्वातो नाडित्रितयसङ्कुलाम् ॥ ५५ ॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिसमत्वे प्रविशेत् सुधीः ।

इह खलु योगी मत्तगन्धसंकोचादिक्रमेण प्राणस्य तिर्यक्प्रवाहनिरोधात् कुण्डलतापरिहारेण यो 'दण्डप्रयोगः'

'यथा दण्डाहतः सर्पो दण्डाकारः प्रजायते ।
सा तथैव विबुद्धयेत गुरुणा प्रतिबोधिता ॥'

इत्यादिनीत्या प्रबुद्धभावेन दण्डाकारतासादनं, तेन 'पूर्वापरयोः' प्राणापानवाहयोः 'समीकृतेः' विषुवद्रूपावलम्बनेन मध्यधामानुप्रवेशात् 'चतुष्किका' ब्रह्मरन्ध्राधोवर्ती चतुष्पथरूपश्चिन्तामण्यभिधान आधारः 'अम्बुजं' भ्रूमध्यवर्ती विद्याकमलनामाधारः, ते 'आलम्बते' ऊर्ध्वाधोवर्तितया स्वीकरोति तच्छीला येयं 'लम्बिका' तदूर्ध्वे सुधाया आधारः, 'सौधः' तं सुधाधारम् । अथच सुधाया इदं 'सौधं' सकारम् 'आश्रयेत् तत्र विश्रान्तिं कुर्यादित्यर्थः । 'अतोऽनन्तरमपि 'सुधीः' योगी नाडीत्रयसंघट्टात्मकत्वात् त्रिशूललक्षणां ब्रह्मरन्ध्रोर्ध्ववर्तिनीं नाड्याधाराभिधां 'भूमिम्' आक्रम्य

अब शरीर व्याप्ति के इस स्वरूप को मन्त्र व्याप्ति की प्रक्रिया से समझा रहे हैं—

साधक अश्विनी मुद्रा आदि गुरुनिर्दिष्ट पद्धति से प्राण के तिर्यक् प्रवाह को रोक लेता है। तिर्यक् प्रवाह से चक्र और कमल दल की मातृकायें प्रकाशित होती हैं। किन्तु इसके निरोध से प्राण की सीधी ऊर्ध्वगति कुण्डलिनी के कुण्डल को तोड़ देती है। इसे शास्त्र की भाषा में दण्ड प्रयोग कहते हैं। "दण्ड से आहत सर्प दण्ड की तरह सीधा हो जाता है। इसी तरह कुण्डलिनी गुरुदेव द्वारा या गम्भीर साधना से प्रतिबोधित होकर सीधी सहस्रार को मण्डित कर देती है।" इस उक्ति के अनुसार प्राणवाह और अपानवाह—सम हो जाते हैं। प्राण सूर्य विषुवद् पर लम्बवत् रश्मिप्रक्षेप करता है। वहीं मध्य धाम है। ब्रह्मरन्ध्र के नीचे चिन्तामणि नामक आधार कमल है। इसे चतुष्किका कमल भी कहते हैं। भौंहों के मध्य में अवस्थित है दूसरा विद्या कमल है। साधक इन दोनों का आलम्बन लेता है और सुधा के आधार भूत सौध अर्थात् सहस्रार का आश्रय प्राप्त कर लेता है। यह चक्र साधना के क्रम में आज्ञा से होते हुए सहस्रार तक की यात्रा का सांकेतिक चित्र है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'तच्छक्तित्रितयारोहात् भैरवीये चिदात्मनि ।
विसृज्यते हि तत् ....॥' (४।१८७)

इत्याद्युक्तयुक्त्या 'इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीनां समत्वे' तन्निर्भरे विसर्गादिशब्द-व्यपदेश्ये भैरवीये रूपे प्रकर्षेण शूलवर्णपरामर्शगर्भीकारेण 'विशेत्' तत्समावेश-भाग्भवेदित्यर्थः ॥ ५५ ॥

ननु कथमेतावतैवात्मानुप्रवेशः सिद्ध्येत् ? इत्याशङ्क्याह

एकां विकासिनीं भूयस्त्वसंकोचां विकस्वराम् ॥ ५६ ॥
श्रयेत्भ्रूबिन्दुनादान्तशक्तिसोपानमालिकाम् ।

तु—शब्दो भिन्नक्रमो हेतौ । यतः प्रथमम् 'एकां' दुर्भेद्यत्वात् प्रधानां भ्रुवि बिन्दुः 'भ्रूबिन्दुः' इत्यनेन भ्रू पृष्ठादारभ्य बिन्दुनादनादान्तशक्तिव्यापिनी समना एव ऊर्ध्वोर्ध्वपदारोहोपायत्वात् 'सोपानानि' तेषां 'मालिकां श्रयेत्' ऊर्ध्वकुण्डलिनीपदसमासादनौत्सुक्यात् उद्घातक्रमेणाक्रामेदित्यर्थः ।

इन्हीं संकेतों में एक बीज मन्त्र का भी अभिव्यञ्जन हो रहा है । तन्त्र शास्त्र में सकार को सौध कहते हैं । यह शैव महाबीज का आदि अक्षर है । पूर्वापर रूप दो बिन्दुओं का मध्य धाम "विसर्जनीयस्य सः" के अनुसार सकार ही है । उसमें अनुप्रवेश साधना का विषय है । साधक इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना के सामञ्जस्य से ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर का परिवेश प्राप्त कर लेता है । वही 'त्रिशूल भूमि' कहलाती है । उसको अतिक्रान्त करना आवश्यक होता है । तभी इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति के समत्व में उसका प्रवेश हो पाता है । कहा गया है—"इन तीन शक्तियों पर आरूढ़ हो जाने पर भैरवीय चिद्रूप में संहार क्रम पूर्वक स्थिति हो जाती है ।" (तं० ४।१८७) और चतुर्दशधाम में प्रवेश हो जाता है ॥ ५४–५५ ॥

भैरवीय रूप में अनुप्रवेश के सम्बन्ध में शङ्का का समाधान कर रहे हैं—

इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों के समत्व की अवस्था में अनुप्रवेश के लिये भौंहों से समना पर्यन्त सीढ़ियों से मण्डित साधना मार्ग को अङ्गीकार करना पड़ता है । बिन्दु, अर्ध चन्द्र, निरोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी और समना रूपी इस सोपान परम्परा को पार करना अनिवार्य है । तब ऊर्ध्व कुण्डलिनी पद पर अधिष्ठित होने का अधिकार मिलता है ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु तत्रापि विश्रान्त्या किं स्यात् ? इत्याशङ्कां दृष्टान्तप्रदर्शनेन उपशमयति

रासभी वडवा यद्वत्स्वधामानन्दमन्दिरम् ॥ ५८ ॥
विकाससंकोचमयं प्रविश्य हृदि हृष्यति ।
तद्वन्मुहुर्लीनसृष्टभावव्रातसुनिर्भराम् ॥ ५९ ॥
श्रयेद्विकाससंकोचरूढभैरवयामलाम् ।

यथा 'रासभी वडवा वा' मूत्रादिकाले 'विकाससंकोचमयं' बहिरन्तर्मुखतयानवरतं स्पन्दमानं वराङ्गलक्षणं 'स्वमानन्दमन्दिरं धाम' 'प्रविश्य' तदेकमना भूत्वा 'हृदि हृष्यति' स्वात्मन्यानन्दातिशयमनुभवति, तथा 'मुहुर्लीनाः' स्वात्मन्युपसंहृताः 'सृष्टा' बहिरुल्लासिताश्च प्रमातृप्रमेयाद्यात्मानः सर्वे 'भावाः' तैः सुष्ठु 'निर्भराम्' अनन्याकाङ्क्षाम्, अत एव यथाभोगं 'विकाससंकोचयोः' सृष्टिसंहारयोः 'रूढं' तथात्वेन स्फुरितं 'पुमान् स्त्रिया' (पा॰ सू॰ १।२।६७) इत्येकशेषे 'भैरवस्य भैरव्याश्च यामलं' द्वन्द्वं यस्यामेवंविधां विसर्गभुवं 'श्रयेत्' स्वानन्दसंवित्तिनिमित्तं समाविशेदित्यर्थः। तदेव हि नाम अस्य परस्य प्रकाशस्यानन्यसाधारणं रूपं, यत् सदैव सृष्टिसंहारकारित्वम्,—इति अन्यथा हि अस्य जडेभ्यो वैलक्षण्यं न स्यात्,—इत्युपपादितं बहुशः। एवं सृष्टौ शक्तेः प्ररोहः, संहारे तु शक्तिमतः। यदुक्तम्

'स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्। (शि॰ सू॰ ३।३०) इति।
स्थितिलयौ। (शि॰ सू॰ ३।३१)
त्रितयभोक्ता वीरेशः। (शि॰ सू॰ १।११)

इति च ॥ ५९ ॥

दृष्टान्त से उसमें प्रवेश की विधि का निर्देश कर रहे हैं—

विशेषतः गधी और घोड़ी या पशु जातियाँ जब मूत्र या पुरीष का उत्सर्ग करती हैं, तो वे अपनी योनि का संकोच विकाच करती हैं। लगता है वे अपने आत्यन्तिक आनंद की अनुभूतियों के अन्तराल में पहुँचकर मन ही मन पुलकायमान हो रही हैं। उसी तरह स्व में संहार और बाहर विसर्ग के विस्तार की भावना से संभृत साधक संकोच विकास प्रक्रिया में रूढ होकर भैरव-भैरवी-भाव की यामल भूमिका का आश्रय ग्रहण करता है। सृष्टि में शक्ति का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

या प्रभोरङ्कगा देवी सुषुम्ना शशिसप्रभा ।
ग्रथितोऽध्वा तया सर्व ऊर्ध्वश्चाधस्तनस्तथा ॥ ३९१ ॥

नादः सुषुम्नाधारस्तु भित्वा विश्वमिदं जगत् ।
अधः शक्त्या विनिर्गच्छेदूर्ध्वशक्त्या च मूर्धतः ॥ ३९२ ॥

नाडघा ब्रह्मबिले लीनः सोऽव्यक्तध्वनिरक्षरः ।
नदन्सर्वेषु भूतेषु शिवशक्त्या ह्यधिष्ठितः ॥ ३९३ ॥

एवमर्धेन्दुनिरोधिनी च बिन्दोरेव प्रसरः,—इत्युक्तं स्यात् । 'महद्भिः पुरुषैः' इति मन्त्रमहेश्वररूपैः । 'तच्छक्तिः' ऊर्ध्वगामिनी । तदुक्तम्

'तस्मिन्पद्मं सुविस्तीर्णमूर्ध्वगेशः स्थितः प्रभुः ।'
(स्व० १०।१२२४) इति ।

'ऊर्ध्वगा तु कला तस्य नित्यमुत्सङ्गगामिनी ।'
(स्व० १०।१२२६) इति च ।

सदा सक्रिय रहती हैं। इनमें चार तो चारों दिशाओं को प्रभावित करती हैं किन्तु ऊर्ध्वगा मध्य में राजित रहती है। ऊर्ध्वगामी विकसित सौषुम्न अरविन्द कोश में विराजमान नाद इन शक्तियों से आवृत रहते हैं। इडा (वाम नाडी) और पिङ्गला (दक्ष) दोनों से ये सदा संवलित हैं। नाद के ऊर्ध्व में ऊर्ध्वगा शक्तिवाम में ही ऊर्ध्वगेश नादान्त देव शाश्वत विराजमान हैं। नाद और नादान्त के ऊपर सौषुम्न भुवन का आवरण है। सुषुम्ना शशिप्रभा महादेवी है। उसके स्वामी सुषुम्नेश अनिश सुषुम्नाविहार करते हैं। सुषुम्नेश इडा और पिङ्गला शक्तियों से घिरे रहते हैं। इडा सव्य (वाम भाग में) और पिंगला अपसव्य दक्षिण भाग में रहती है। सुषुम्नेश के अङ्क में शाश्वत् विहार करने वाली देवी ही सुषुम्ना कहलाती है। ऊर्ध्व और अधः सभी अध्वमार्ग को नियन्त्रित करने वाली यह शक्ति नाद की आश्रय रूपा शक्ति है।

नाद सुषुम्ना में अधिष्ठित रहता हुआ दो काम करता है। पहले वह अधः शक्ति के प्रभाव से मूलाधार से उद्गत होता है। पुनः ऊर्ध्व रूपा प्राणात्मिका शक्ति का आश्रय लेकर ऊपर उठता है। ऊर्ध्व-गामिनी शक्ति में ऊर्ध्वगेश विराजमान हैं।

तत्र तत्पदसंयोगादुन्मीलनविधायिनी ।
यो जानाति स सिद्ध्येत्तु रसादानविसर्गयोः ॥ ३९ ॥

कुलकुण्डलिका हि ऊर्ध्वाधः सञ्चारमनादृत्य प्राणापानलक्षणाभ्यां लिङ्गाभ्यां लिङ्गिनी तत्कोडीकारेण व्याप्तिं प्राप्ता सती चरेत् तत्तदाधारादिभेदेन मध्यधाम आक्रामेत् । सा हि तत्र मध्यधाम्नि प्राणापानपदद्वयसंयोगात्संविद्विकासमा-दध्यात् । यश्च एवंविधमिदं सर्वभावानुस्यूतमूर्मिमदुन्मीलनं परसंविद्विकासाधायि परं स्थानं जानाति, स संविद्रसादानविसर्गयोः सिद्ध्येत् सृष्टिसंहारकारित्वेऽस्य सामर्थ्यमुत्पद्यते इत्यर्थः ॥ ३७-३९ ॥

के अग्रभाग तक उल्लसित होती है। यह अकारण गति निक्षेप ही जीवन का मन्त्र है। गतिशीलता के इस द्विधाभाव का दर्शन और प्रतिक्षण अनुभव स्वभावतः होता रहता है। कुल कुण्डलिनी शक्ति का अधः प्रवाह नहीं होता। वह प्राणापान लिङ्ग से समन्वित होकर लिङ्गलिङ्गिनी संज्ञा से विभूषित हो जाती है। उस समय प्राणापान उसके आक्रोश में शिशु की तरह विश्राम करते हैं।

वह स्थान जहाँ यह अलौकिक आलोक-लीला अपने लालित्य के साथ प्रतिफलित और उल्लसित होती है, उसे शास्त्र की भाषा से मध्यधाम कहते हैं। संवित्ति का सूरज वहीं विकसित होता है। इस विकास के मूल में प्राण और अपान नामक दो तत्त्वों का ऐक्य ही है। इस गमागम संचार में विहार करने वाली, उनके उभयैक्य में उल्लसित और आमूलाद्ब्रह्मरन्ध्रात् आह्लादशान्त सञ्चरण शील कुल कुण्डलिनी शक्ति का जो साक्षात्कार कर लेता है, वह आदान रूप सर्जन प्रक्रिया और विसर्ग रूप संहार प्रक्रिया का तो साक्षी होता ही है, स्वयं सृजन संहार की सिद्धि से समन्वित हो जाता है। वह उल्लास के शैव महाभावात्मक आनन्द का रसास्वाद स्वयं तो करता ही है, उल्लास की संरचना में भी सक्षम हो जाता है ॥ ३७-३९ ॥

भूयस्तु कुरुते लीलां मायापञ्जरवर्तिनीम् ।
पुनः सृष्टिः संहृतिश्च खेचर्या क्रियते बुधैः ॥ ४६ ॥
श्रीमद्वीरावलीयोग एव स्यात्खेचरीविधिः ।

ग्रन्थीनां द्वादशकात् निर्गतं सर्वसंबन्धोत्तीर्णं द्वादशान्तपदं च यावत् आ समन्तादृजुना क्रमेण गच्छेत् तत्र विश्रान्ति कुर्यादित्यर्थः । भूयस्तु तत्र चन्द्र-चक्रादपानस्थात् प्रत्यावृत्यात्मना विलोमक्रमेण स्वशरीरमेव प्रविशेत्, येन अयं व्युत्थानदशोचितं व्यवहरेत् । अतश्च खेचरीमुद्रावेशभाजां ज्ञानिनामन्त-

---

के अन्तराल में आग्नेय प्रकाश में विकसमान और विद्योतित विद्यापद्म के मकरन्द रसास्वाद का अवसर आता है। द्वादशग्रन्थियों को पार करता हुआ द्वादशान्त का चिरअभोसित सन्निधान मिलता है। यह सब गुरुकृपा और पारमेश्वर शक्तिपात से अनायास सिद्ध हो गया है। यह साधना का सर्वोच्च शिखर है, जिस पर वह सोपान क्रमारोह पूर्वक आरूढ हो गया है। प्राण के संप्रीणन से यह पराकाष्ठा प्राप्त होती है।

यह सदा अनुसन्धातव्य तथ्य है कि, प्राण का सूर्य अपान सोम के रथ पर सवार हो कर ही ऊर्ध्व की ओर अग्रसर होता है। मध्य द्वादशान्त के चितिकेन्द्र में तो सूर्य और सोम साथ रहते हैं। ऊर्ध्वद्वादशान्त में केवल सूर्य प्राण का ही प्रकाश काम करता है। अपानचक्र में चन्द्र का प्रभाव शरीर को सोमसुधा की संजीवनी से ओतप्रोत करता है निःश्वास में चन्द्रचक्र विलोम गतिशीलता के लिये प्राण को प्रेरित करता है। यह पौर्णमास केन्द्र की यात्रा का प्रारम्भ माना जाता है। इसी क्रम में प्राणापानवाह भौतिक पिण्ड में पुनः अपना रस भरता है। श्वास शरीर में पेट और नाभि तक पहुँचता है। इसे शाक्त उल्लास भी कहते हैं। प्रतिपदा से चलकर पूर्णिमा तक की चाँदनी का अमृत उल्लासित होता है। यही चन्द्रचक्र है। इसमें विलोम गति होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(क) मद्य

मद्य को परिभाषित करते हुए कुलार्णव[1] में कहा गया है कि-"माया जाल आदि को शमन करने से, मोक्ष-मार्ग का निरूपण करने से और आठों प्रकार के दुःखों को दूर करने से 'मद्य' कहलाता है। महादान का अर्थरूप होने से, याग-भूमि का एक मात्र साधन होने से और मेरे (शिव के) भाव को उत्पन्न करने से 'मद्य' कहा जाता है। मद्य को मदिरा, मधु, सुरा आदि भी कहा जाता है। कहा गया है कि सुरा-सुन्दर मन द्वारा सेवित होने से, सदा राज्यदायिनी होने से और सुर (देव) रूप को प्रदान करने से 'सुरा' कहलाती है।[2] मदिरा को कारणवारि या तीर्थवारि भी कहा जाता है।[3]

वैदिक काल से ही मद्य-मांस का प्रयोग होता रहा है। वैदिक आर्य मद्य-मांस का अपने यज्ञों और उत्सवों में भरपूर प्रयोग करते थे। इनकी प्रशंसा तथा प्रयोग-विधियों से सारा वैदिक साहित्य भरा पड़ा है। वैदिक आर्य 'सोमयज्ञ' तथा 'हविर्यज्ञ' किया करते थे जिनमें से एक यज्ञ 'सौत्रामणि' था, जिसमें मद्य से पूजनादिक होता था और मद्यपान होता था। यथार्थतः यह यज्ञ मद्य-पान के लिए ही किया जाता था।[4] 'शतपथ-ब्राह्मण'[5] में यह भी कहा है कि मद्य यजमान को पवित्र करता है और मद्य स्वयं ही पवित्र है। ऋग्वेद के पाँचवे मंडल में ऋषि काक्षिवान् ने मद्य की बहुत प्रशंसा की है।[6] इन्द्र सोमरस के पान में पटु हैं। ऋग्वेद का पूरा का पूरा नवम मण्डल सोमरस के वर्णन से भरा पड़ा है।

श्राद्ध में मद्य का प्रयोग होता था। इस सन्दर्भ में कात्यायन-कल्प-सूत्र (३/६) का गदाधर भाष्य द्रष्टव्य है। यजुर्वेद-सहिंता (२/३४/१) का मन्त्र 'उजं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् स्वधास्तर्पयन्त मे पितृन' स्पष्ट है। इस मन्त्र से पितरों की तृप्ति के लिए अमृतोपम चार वस्तुएँ प्रदान करने का वर्णन है। यथा घृत, पय, कीलाल और परिस्रुत[7] अर्थात् घी, दूध, जल और सुरा। इसी कल्प-सूत्र (३/७७) के गदाधर-भाष्य में श्राद्ध में ब्राह्मणों के विसर्जन का मन्त्र इस प्रकार है-

वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
आस मध्वः पिवत मादवध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देव-यानैः।।[8]

उपरोक्त मन्त्रांश 'अस्य मध्वः पिवत मादवध्वम्' का अर्थ है-'इस मधु को पीकर नशे में उन्मत्त हों।'

---

१. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, १७ वॉ उल्लास पृ०-९२.
२. वही, पृ०-९२
३. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८५
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ० २३, द्रष्टव्य-शतपथ ब्राह्मण (५,१,१३)
५. वही, पृ०-२३ पर सन्दर्भित।
६. वही, पृ०-२३ पर सन्दर्भित।
७. अमरकोष-'सुरा, हलि-प्रिया, हाला, परिसुद्र-वरूणात्मजा'।
८. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२५ पर उद्धृत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दरूँ

(भीतर) : आलम-ए-मलकूत—सूफ़ी मार्ग की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं. पहली नासूत है. 'नासूत', मनुष्य की पहली अवस्था है. इसमें साधक को 'शरीअत' के अनुसार चलना पड़ता है और नियमों का पालन करना पड़ता है. दूसरी अवस्था 'मलकूत' है. इसमें साधक को 'तरीक़ा' अर्थात् पवित्रता का सहारा लेना पड़ता है. 'मलकूत' में साधक का चित्त भौतिक जगत् की तुच्छताओं और आवर्जनाओं से ऊपर उठ जाता है और वह पवित्र हो जाता है. तीसरी अवस्था जबरूत की है. इस में साधक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करता है. 'जबरूत' में साधक राग-विराग से छूट जाता है और उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है. चौथी अवस्था 'लाहूत' है, जो अंतिम आवस्था है और इसे सूफ़ी 'हक़ीक़त' कहते हैं. 'हक़ीक़त' से उनका आशय परम सत्य से है.)

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. **एकान्त सेवन** – लोगों से आवश्यकतानुसार ही मिलना घर पर भी अलहदा घर में उठना बैठना, धार्मिक पुस्तकें व जगत् की असत्यता पर विचार करना।

४. **पश्चाताप व संकल्प** – रात को सोते समय अपने दिन भर के कार्यों पर विचार करके अनुचित कार्यों के लिये पश्चाताप करना व भविष्य में उनके न करने का संकल्प करना।

५. **सत्य बोलना** – मजाक में भी झूठ न बोलना चाहिये।

६. **योगाभ्यास** – नित्य नियम से योगाभ्यास करना।

७. **भजन करना** – नित्य माला अथवा बिना माला के भजन करना चाहिए। दिन रात में २१६०० श्वास चलती हैं अतएव कम से कम इतना ही भजन करना चाहिये। यह संख्या दो सौ माला फेरने से पूरी हो सकती है। दो घंटे सुबह व दो घंटे शाम अथवा सुविधानुसार माला फेरे। सूमरनी या माला पास रखे और समय मिलने पर अथवा चलते-फिरते भजन करो और समय का सदुपयोग हो सके।

८. **अजपा जप** – नीचे लिखे अनुसार किया जाता है।

(१) जीभ से नाम का उच्चार करें, कुछ आवाज भी निकलती रहे। जिससे सुमरन बंद न हो और ध्यान भी लगा रहे। (२) कंठ (३) हृदय से (४) नाभि से श्वास के साथ (५) जीभ से।

यह अजपा जप जीभ से एक साल, कंठ से दो साल, हृदय से दो साल और नाभि से सात साल अर्थात् बारह वर्ष करने से मनुष्य मोक्ष रूप हो जाता है। उसे प्रभु का साक्षात्कार अर्थात् जाग्रत अवस्था में भगवान के दर्शन व सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

अजपा के जप के नियम – (१) भोजन अल्प (२) थोड़ी नींद (३) एकान्त वास (४) गद्दा व तकियों का त्याग (५) मौन (६) सात्विक भोजन अर्थात् चावल, दही, खटाई, तेल ज्यादा मिर्च मसाले व अन्य राजसी, तामसी व वायु उत्पन्न करने वाले पदार्थों का त्याग। एक समय भोजन और रात को आधा सेर दूध काफी है। मीठा व नमक बहुत कम खाना चाहिये। नींद कम करने का उपाय है कि रात को जगने के समय दस बजे से एक घंटा हर महिना बढ़ता जाय। इस तरह चार बजे तक जागने का अभ्यास करें। चार बजे से छः बजे तक सोवे। इतना समय काफी न हो तो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

कुंडलिया॥

आठ मास मुखसूं जपै सोलह मास कँठ जाप।
बत्तिस मास हिरदै जपै तनमें रहै न पाप॥
तनमें रहै न पाप भक्ति का उपजै पौधा।
मन रुकजावे जहां अपरबल कहिये योधा॥
शुकदेव कही चरणदास सूं यही भेद ततसार।
बहुरु आवै नाभिमें ताका कहूं विचार॥

दो० पांच बरष जंप नाभिसों, रग रग बोलै राम।
देह जीव निज भक्तहो, पहुँचै हरिके धाम॥
त्रिकुटी में जप रामकूं, जहां उजाला होय।
श्वासा माहीं जपेते, द्विविधा रहै न कोय॥
गगन मँडलमें जापकरि, जितहै दशवांद्वार।
चरणदास यों कहत हैं, सो पहुँचै हरिदरबार॥
नासा अग्रे जापकरि, देखै नूर अगाध।
बहुतकअचरजअरुखुलै, चरणदास कहेसाध॥
नाम उठाकर नाभिसूं, गगन माहिं लैजाय।
जहां होय परकाशही, शुकदेव दिया बताय॥
मनही मनमें जापकरि, दरपण उज्ज्वल होय।
दरशन होवै रामका, तिमिर[1] जाय सबखोय॥
कूककूक कर नाम जप, छुटै सात अरु पांच।
जासों मन ठहरा रहै, चरणदास कहैं सांच॥
सुरत माहि जो जप करै, तन सूं न्यारा जौन।
मिलै सच्चिदानन्द में, गहे रहै जो मौन॥
सकलशिरोमणि नामहै, सब धर्मन के माहिं।

---

१ अँधेरा॥

दिनचर्या :-

॥ श्रीगुरुःशरणम् ॥

सप्रेम आशीर्वाद विशेष

माझे मित्र श्री. शंकरराव आजेगांवकर यांना श्रीगुरुमहाराजांनी दिनचर्या लिहून दिली होती ती अशी :-

" प्रात:काळी उठून चूळ टाकून आचमन करून प्रात:स्मरण म्हणून अजपा संकल्प करून ' सोऽहं ' जप करावा. चार दिवसांचे अंतराने बस्ति, धौति, नेति करावी. नंतर स्नान केल्यावर मानसपूजा, जप, अभ्यास करावा. गुरुचरित्र वाचून यथाशक्ती प्रदक्षिणा कराव्या. भोजन झाल्यावर ग्रंथ वाचावे. मध्ये मध्ये सवड मिळेल-तेव्हा ' श्रीगुरुदेव दत्त ' असे नामोच्चारण करावे. सायंकाळी मानसपूजा, जप, अभ्यास करून पंचपदी भजन शेजारतीपर्यंत करून कर्म समर्पण करून निजेपर्यंत नामस्मरण करीत असावे. सर्वकाळ मी असंग, कूटस्थ, साक्षी, निर्विकार ब्रह्म आहे अशी पुन: पुन: भावना करावी. त्रिविध ताप, दुख किंवा कोणी छळ केल्यास विषाद मानू नये. मी कर्मफळ भोगीत आहे असा विचार करावा. जडभार देवावर घालू नये असे वागावे."

याप्रमाणे दिनचर्या ठेवण्याचा प्रयत्न करावा.

कळावे हे आशीर्वाद.

आपला

वा. द. गुळवणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में अत्यंत उपयोगी है। जब हम हमेशा सांस लेते हैं, तो बाएं और दाएं नथुनों से प्रवेश करने वाली वायु इडा और पिंगला नाड़ियों से होकर गुजरती है। प्राणा-याम का अभ्यास और बंधों का उपयोग करके, हम इस प्राकृतिक प्रक्रिया को बदल देते हैं। अब इडा और पिंगला नाड़ियों का उपयोग बंद करना होगा। इसके बजाय, प्राण वायु को सुषुम्ना नाड़ियों से होकर ले जाना होगा। लेकिन सुषुम्ना नाड़ी का मुख बंद रखना होगा। इसे खोलने के लिए, सबसे पहले ऊपर की ओर बहने वाली प्राण वायु को बंधों की सहायता से नीचे की ओर मोड़ना होता है और नीचे की ओर बहने वाली अपान वायु को मूलबंधों के प्र-योग से ऊपर की ओर गतिमान करना होता है। प्राण और अपान वायु का संगम नाभि के नीचे होता है। इनके मिलन से स्वाधिष्ठान चक्र और मणिपुर चक्र में अग्नि प्रज्वलित होती है। इस अग्नि की ऊष्मा कुंडलिनी को जागृत करती है और सुषुम्ना नाड़ी का मुख खोलती है। जब प्राण और अपान सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर की ओर गति करने लगते हैं, तो एक ध्वनि उत्पन्न होती है। यही अनाहत नाद है। ऊपर लिखा गया है कि जब अनाहत नाद सुनाई देने लगे, तो समझ लेना चाहिए कि आप अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं। आप इससे प्राप्त आनंद में मदहोश हो जाते हैं। अनेक संतों ने इस अनाहत नाद पर सुंदर अभंग रचे हैं। अब सुषुम्ना नाड़ी का मुख खुल गया है, कुंडलिनी जागृत हो गई है और मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनी को छोड़कर सहस्रार चक्र की ओर ऊपर की ओर बढ़ गई है। मैं आगे का भाग मोटे-मोटे शब्दों में बता रहा हूँ, लेकिन मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि आप श्री मौली के शब्दों में कुंडलिनी की यात्रा का वर्णन अवश्य पढ़ें। गीता में कुंडलिनी का कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन इस बाल योगी ने अध्याय 6 में नाथ पंथ के अपने विचारों को बड़ी रुचि से प्रस्तुत किया है।

कुंडलिनी

मूलाधार चक्र में, अचेतन ऊर्जा सर्प की तरह साढ़े तीन कुंडलित अवस्था में अवतरित अवस्था में रहती है। प्राण और अपान वायु के संयोजन से उत्पन्न अग्नि की ऊष्मा से यह जागृत होती है। सुषुम्ना नाड़ी का मुख खुल जाने के कारण, यह उस नाड़ी में प्रवेश करती है और सहस्रार चक्र की ओर अग्रसर होती है। प्राण वायु और साधक का मन भी इसके साथ होता है। इसका मार्ग

06:08

मूलाधार चक्र में, अचेतन ऊर्जा सर्प की तरह साढ़े तीन कुंडलित अवस्था में अवतरित अवस्था में रहती है। प्राण और अपान वायु के संयोजन से उत्पन्न अग्नि की ऊष्मा से यह जागृत होती है। सुषुम्ना नाड़ी का मुख खुल जाने के कारण, यह उस नाड़ी में प्रवेश करती है और सहस्रार चक्र की ओर अग्रसर होती है। प्राण वायु और साधक का मन भी इसके साथ होता है। इसका मार्ग इतना सरल नहीं है। मार्ग में इसे छह चक्रों से होकर गुजरना पड़ता है। यह अत्यंत कठिन प्रक्रिया केवल सद्गुरु के मार्गदर्शन से ही संभव है। ऊपर की ओर बढ़ते हुए कुंडलिनी सब कुछ सांसारिक तत्वों को आत्मसात कर लेती है। जब यह प्राण और मन के साथ सहस्रार चक्र में विराजमान शिव के साथ एक हो जाती है, तब साधक समाधि का अनुभव करता है। साधक का मन ब्रह्म में लीन हो जाता है और वह वस्तुओं के विचारों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है। समाधि के बारे में यहाँ विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है। यह एक अलग विषय है। लेकिन आइए कुंडलिनी जागरण के प्रभावों पर संक्षेप में वि-चार करें। जब जीवन शक्ति सुषुम्ना नाड़ी से प्रवाहित होने लगती है, तो स्वा-भाविक रूप से इडा-पिंगला से यह कम हो जाती है। साधक की श्वास धीमी होती जाती है। जीवन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता कम हो जाती है। वह बिना भोजन और जल लिए लंबे समय तक रह सकता है। (क्या इसे शीतनिद्रा कहते हैं?) जब जीवन शक्ति अशांत अवस्था में स्थिर हो जाती है, तो इसे केव-लकुंभक कहते हैं। आचार्य कहते हैं, "केवलकुंभक की महिमा को प्राप्त करने के लिए मन की पवित्रता, सतर्कता और अभ्यास में दृढ़ता आवश्यक है।"

यह कुंडलिनी के बारे में बुनियादी जानकारी है। यदि आप इस पर महारत हा-सिल कर लें, तो आप समाधि के आनंद को प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन इस अत्यंत कठिन प्राप्ति के मार्ग में भी कई बाधाएँ हैं। आप अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। मैं उनका उल्लेख नहीं करूँगा, लेकिन इस संसार के विभिन्न सुख आपके चरणों में मंडराते हैं और साधक उनमें उलझ सकता है। तंत्र ग्रंथों में इस बारे में चेतावनी दी गई है।

- शिष्य को गुरु की संतुष्टि के माध्यम से ही पूर्णता प्राप्त होती है।
- गुरु की स्मृति में सभी देवताओं की स्मृति समाहित है।
- यह समझना चाहिए कि गुरु, गुरुमंत्र और इष्टदेवता तीन अलग-अलग चीजें नहीं हैं, बल्कि एक ही हैं।

||'उलट पवन ठोकर मारे खोले दरवाजा'||

पूर्व दिशा की ओर मुख करके सीधे बैठें। शरीर को स्थिर करने का प्रयास करें। शरीर स्थिर होने पर मन स्वतः स्थिर हो जाता है। मन में अपने प्रिय देवता का नाम जपते रहें। अपनी श्वास पर ध्यान केंद्रित करें। एक वर्ष तक इस ध्यान का अभ्यास करने के बाद, अपने प्रिय देवता के स्वरूप को अपने सामने लाने का प्रयास करें। इसे **'सगुण ध्यान'** कहते हैं । निर्गुण ध्यान में, ऊपर बताई गई सभी तैयारियाँ करें और मन की दृष्टि से आकाश और प्रकाश को देखने का प्रयास करें। इसे **'निर्गुण ध्यान'** कहते हैं । आत्म-ध्यान में, अपनी श्वास पर ध्यान केंद्रित करें और अपनी श्वास से ब्रह्म द्वार को धक्का दें। अर्थात्, आप अनुभव करते हैं कि "विपरीत हवा दस्तक देती है और द्वार खोल देती है", आप प्रकाशमान परब्रह्म का अनुभव करते हैं, आप आत्म-साक्षात्कार का अनुभव करते हैं। आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है, प्रकाशमय ब्रह्म का अनुभव होता है। अगले ध्यान के लिए मार्गदर्शन दिव्य लोक से प्राप्त होता है। इस ध्यान को करते समय, आपको ब्रह्म द्वार पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए, ताकि फल शीघ्र प्राप्त हों।

यदि आप इन बातों को अपने जीवन में अपनाते हैं, तो आप अपनी आध्यात्मिक साधना में बहुत प्रगति कर सकते हैं।

जन्म होता है और मृत्यु आती है। सृष्टि का निर्माण और विनाश होता है, पर हमारी आत्मा कभी नष्ट नहीं होती। इसे जानने के लिए साधक को सात बातों को आत्मसात करना होगा:

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रपूर्यसौर्यां परिधानमुक्ता प्रगृह्य निर्याति विचालिता सा॥
वज्रासनस्थितो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम्।
सूर्यादनन्तरं भस्त्रा कुण्डलीमाशु बोधयेत्॥
भानोराकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्ततः।
मृत्युवक्त्रगतस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः॥
नासादक्षिणमार्गवाहि पवनो घ्राणेति दीर्घाकृत-
श्चन्द्राम्भः परिपूरिता मृततनुः प्राग्घण्टिकायास्ततः।
भिन्दन्कालविशालवह्निवशगान्भ्रूरन्ध्रनाडीगणां
स्तं कायं कुरुते पुनर्नवतरं जीर्णद्रुमस्कन्धवत्।
कुण्डलीं चालयित्वा तु कुर्याद्भस्त्रांद्विशेषतः।
एवभ्यासतो नित्यं यमिनः शङ्कते यमः॥
तदाभ्यसेत्सूर्यभेदमुज्जायीं चापि शीतलीम्।
एवमभ्यासयुक्तस्य यमस्तु यमिनः कुतः॥
मुहूर्त्तद्वयपर्यन्तं निर्भरं चालनाद्धि वै।
ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशनः॥
मण्डलाद्दृश्यते सिद्धिः कुण्डल्यभ्यासयोगिनः।
द्विसप्ततिसहस्त्राणां नाडीनां मलशोधनम्।
कुतः प्रक्षालनोपायः कुण्डल्यभ्यासतो विना॥

अत्र शक्तिचालने पद्मासनमेव द्रष्टव्यं न वज्रासनम् अनुभवविरोधात्॥

तथा च ग्रन्थान्तरे –

कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं बध्वा च पद्मासनं
गाढं वक्षसि सन्निधाय चिबुकं ध्यानं च तच्चेतसि।
वारं वारमपानमूर्द्धमनिलं प्रोत्सारयेत्पूरये-
त्प्राणं मुञ्चति बोधमेति नियतं शक्तिप्रबोधोदयात्॥
इति मुद्रा नव प्रोक्ता आदिनाथेन शम्भुना।
एकैका तासु यमिनां महासिद्धिप्रदायिनी॥

दत्तात्रेयः –

अभ्यासभेदतो भेदः फलन्तु सममेव हि।

अभ्यासक्रमश्चोक्तः, पवनसंग्रहे –

महामुद्रां समभ्यस्य महाबन्धं ततः परम्।
महावेधं च नियतं प्रकुर्याच्छक्तिचालनम्॥
आसनं सुदृढं बध्वा मूलबन्धं विधाय च।
उड्डियानं तथा बन्धं ततो जालन्धराभिधम्॥

अभ्यसेदिति सम्बन्धः। हठप्रदीपिकायाम् –

मूलस्थानं समाकृष्य उड्डियानं तु कारयेत्।
इडां च पिङ्गलां बध्वा वाहयेत्पश्चिमे पथि॥

तन मथने को यतन कहूँ अब जानिये।
ज्यों निकसै ततसार विलोवन ठानिये ॥
पहिले चक्कर जानि मूल द्वारे विषे।
जितही पाँव की एँडी सूं बन्ध दे रखे ॥
मूल चक्रसों खैंचि अपान चलाइये।
दूजे चक्कर पास जु आनि फिराइये ॥
दहिनी ओरसों तीनि लपेटे दीजिये।
तीजे चक्कर माहिं गमन फिरि कीजिये ॥
चौथे चक्कर माहिं पवन जो लाइये।
वहुरौ पँचवें चक्र में जू पहुंचाइये ॥
षष्ठम चक्कर माहिं जु ताहि चढ़ाइये।

सो त्रिकुटी के मध्य तहां ठहराइये ॥
रोकै त्रिकुटी माहिं आनिके वायुको।
षट्चक्कर को छेदि चढ़ै जब धायको ॥
अपान वायु चढ़िजाय वहीं अस्थान है।
प्रान वायु ह्वै जाय साधु कोइ जान है ॥
रोकै प्रानहि वायु त्रिकुटी मध्यही।
ओं का करै ध्यान शीश में मध्यही ॥
यह तो ऊंचा ध्यान जु अधिक अनूपही।
चरणदासा होय जु ब्रह्म स्वरूपही ॥
नाम ब्रह्म का है नहीं, है तो ॐकार।
जानै आप्न को वही, मैं हों तत्त्व अपार ॥

सो त्रिकुटी के मध्य तहां ठहराइये ॥
रोकै त्रिकुटी माहिं आनिके वायुको ।
षट्चक्कर को छेदि चढ़ै जब धायको ॥
अपान वायु चढ़िजाय वहीं अस्थान है ।
प्रान वायु ह्वै जाय साधु कोइ जान है ॥
रोकै प्रानहि वायु त्रिकुटी मध्यही ।
ओं का करै ध्यान शीश में मध्यही ॥
यह तौ ऊंचा ध्यान जु अधिक अनूपही ।
चरणाहदासा होय जु ब्रह्म स्वरूपही ॥

ो० नाम ब्रह्म का है नहीं, है तो ॐकार ।
जानै आपन को वही, मैं हौं तत्त्व अपार ॥

अष्टपदी ॥

अनहद शब्द अपार दूर सों दूर है ।
चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है ॥
ताहि निःअक्षर जानि और निष्कर्म है ।
परमातम तेहि मानि वही परब्रह्म है ॥
हृदय कमल के माहिं ध्यान सोहं करै ।
वाहि को अजपा जान सुरति मन लै धरै ॥
बिनहिं जपे जप होय सुसांची बातही ।
सहस इकीस अरु छस्सै जहां दिन रातही ॥
याको कीजै ध्यान होत है ब्रह्मही ।
धारै तेज अपार जाहि सब भर्महीं ॥
वा पटतर कोइ नाहिं जु योंहीं जानिये ।
चन्द सूर्य अरु सृष्टि के माहिं पिछानिये ॥
सो वह तेज अपार आपको मानिये ।

कभी सत्य कभी झूठ बोलके, धन लेने की रीती ।
घटक देखाय गुसांई कहावे, तिलक रमाय सपंती ।।
अपना कर्म त्याग के मन्तो, करहि मायासों प्रीती ।
ऐसा चार पदारथ पायके, तनिको ध्यान न देती ।।"[१६६]

सच्ची भक्ति वही जिसमे और सभी से उदासीनता हो--

"जगमे सोई ज्ञानी वैरागी ।
दुनी से वैर प्रीत प्रीतमसे, सतगुरु पद अनुरागी ।
बैठे कल्प वृक्षके छांही, काल करम नहि लागी ।।"[१६७]

प्रियतम कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम ही भक्ति है, लेकिन भक्ति करने के गलत ढग भी दृष्टव्य हैं--[१६८]

कोई इंगला कोई पिंगला सुखमन, कोई त्रिकुटी विश्वासकरी है ।
कोई अनहद अजपाको धावे, गगन गुफा मे ध्यान धरी है ।
कोई तीरथ कोई व्रत घनेरो, कोई कानन बिच वास करी है ।
बिन सतगुरु भर्म गेल न छुटे, नाहक भटक भटी है ।"

इसीलिए भक्त को लगता है कि भगवान जग को नचा रहा है--[१६९]
तेरी गति कही न जाई, प्रभु तुम भले जग नाच नचाई ।"खुद को भी प्रभु की अवस्था का दुःख है । प्रियतम कृष्ण से बिछुड़ जाने पर उससे रहा नहीं जाता--[१७०]

"बलमुआ बिन अब मोरा रहलो न जाए ।

× × ×

पिया बिन भवन भियावन लागे, गृह आगन सोहाए ।
चंचल चित मन थिर न रहत है, बिरहा सहलो न जाए ।।
पल पल पथ हेरों प्रीतमके, सुमरि हियालाए ।
रैनि सेज्या पर नीद न आवे, मारेहि उठल झमाए ।।"

प्रियतम कृष्ण की शोभा भी दृष्टव्य है--[१७१]

"वैजन्ती उर माला लटके, जुड ललित देखि चित अटके ।
पेट पासुली सुभग विलक्षन, कट पर काछनी काछना हो ।
चलत चरन पर घुंघर घमके, नखशिख कोटि भान शशि चमके ।"

---

१६६ श्रीनिजानन्द भजनावली पृ० १३१
१६७ वही, पृ० १३३
१६८ वही, पृ० १३४
१६९ वही, पृ० १२०
१७० वही, पृ० ११४
१७१ वही, पृ० ११६

(१)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य ।
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

हे ईश्वर दयानिधे (सवितुः) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले (देवस्य) देवो के देव आपका जो (भूः) प्राण प्रिय (भुवः) दुःखनाशक (स्वः) सुखस्वरूप (वरेण्यम्) वरणीय अतिश्रेष्ठ तथा (भर्गः) शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसका हम (धीमहि) सदा ध्यान करे, अपने आत्मा में धारण करे (यः) जोप्रभु (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे और कुमार्ग से हटा कर सदा सन्मार्ग में लगाएँ ।

(२)

हंकारेण बहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः ।
हंसो हंसेति मंत्रेण, जीवो जपति सर्वदा ।।

सोऽहँ शब्द विचारो साधो सोऽहँ शब्द विचारो रे ।।टेर।।
माला कर से फिरत नहीं है, जीभ न वर्ण उचारो रे ।
अजपा जाप होत घट मांहीं, ताको ओर निहारो रे ।।१।।
'हँ' अक्षर से स्वाँस उठावो, 'सो' से जाय बिठारो रे ।
'हँसो' उलट होत है'सोऽहँ', योगीजन निरधारो रे ।।२।।
सब मिलाकर इक्कीस हजार छः सौ, होत शुमारो रे ।
अष्ट पहर में जागत सोवत, मन में जपो सुखारो रे ।।३।।
जो जन चिन्तन करत निरन्तर, छोड़ जगत व्यवहारो रे ।
ब्रह्मानन्द परमपद पावे, मिटे जनम संसारो रे ।।४।।

(३)

*(१) योगी (२) जंगम (३) सेवड़े (४) विप्र (५) संन्यासी (६) उदासीन

हुए शनै. शनै उसे अपनी तरफ खीचते हैं, परन्तु जब कृपा करते हैं तो उसका सर्वस्व हरण कर लेते है और उस भक्त को अविलम्ब अपना लेते हैं। इसीलिये सत तुलसीदास जी प्रभु से कृपा ही मांगते हैं—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती। सब तजि भजनु करो दिन राती॥

(४०)

खेचरी खड़ग नाख दे, भोग रोग रो मूल।
स्वाद छोड़ अणस्वाद झाले, वाद विवाद सूँ दूर॥
भूचरी परस्यां भरम भागिया, मिटिया भरम अंधारा।
रोम रोम में रम रह्या, परस्या प्रीतम प्यारा॥
चाचरी चिलत में थकी, जा मिली निज जोती।
त्रिकुटी रे छाजे बैठ, चुगिया माणक मोती॥
अगोचारो अरथ कर, पद पाया पूरा।
और शब्द भावे नहीं, बाजे अनहद तूरा॥
अर्ध-ऊर्ध सूँ उन्मुनी, टली काल री फाँसी।
जा मिली निज पीव सूँ, ओलख्या अलख अविनासी॥
जिह्वा जठे खेचरी बोले, भूचरी नासिका जाण।
चाचरी त्रिवेणी ठिकाने कहिये, अगोचरी अनहद ठाण॥
उन्मुनी मुद्रा दशम द्वार में, यूँ वाणिज्य व्यापार कर लीजे।
कह कबीर सुणो भाई साधो, आपरी निगह आप ही कर लीजे॥

(४१)

इश्क री आशिक जाणे बात।
सद्गुरु बाण शब्द रो मार्यो, घूम रह्यो दिन रात॥टेर॥
गूंगे रे मन सपनो आयो, सूतो स्वर्ग में रात।
ऊठ सवारे कह्यो नहीं जावे, सैन करे परभात॥१॥
अन्तरगत की किसको कहूँ, सोही अभेदू साथ।
सज शृंगार वैराग भभूती, प्रेम ठीकरो हाथ॥२॥

18:19
surat shabad marg in hindi....

गुरू ने कृपा करके इस शरीर में ही दिखा दिया। इसलिए कहते हैं तू बाहर मत ढूँढता फिर –

काहे रे बन खोजन जाई।
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई॥ *पृष्ठ – 684*

तेरे साथ ही रहता है वाहिगुरू, परमेश्वर।

कई आकर कहते हैं जी हमें डर लगता रहता है। भाई! अपने अन्दर की तरफ देख लिया कर। गुरू तेरे साथ ही रहता है, दूर नहीं है, सन्त उसके साथ ही रहते हैं क्योंकि उस घर में वास मिला हुआ होता है साधुओं को –

घर महि घरु देखाइ दे सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥
पृष्ठ – 1290-1291

गुरू इस शरीर रूपी घर में वह घर दिखा देता है जिसमें परमेश्वर, वाहिगुरू रहता है और मैं रहता हूँ, आत्मा रहती है –

पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु॥ *पृष्ठ – 1290*

वहाँ की निशानी है पाँच शब्द बजते हैं, धुन उठती है दिन रात –

दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरानु।
तार घोर बाजिंत्र तहि साचि तखति सुलतानु॥ *पृष्ठ – 1291*

वहाँ सच के तख्त पर वाहिगुरू बैठा है –

सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिवलाइ।
उलटि कमलु अंम्रितु भरिआ इहु मनु कतहु न जाइ।
अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ॥ *पृष्ठ – 1290*

ये बहुत गहरी बातें हैं। नाम जपने वाले, शौक रखने वाले, इन्हें ज़रूर समझने की कोशिश करें कि महाराज ने यह जो फ़रमान किया है, 'उलट कमल' क्या हुआ? अन्दर अमृत कैसे भर जाता है? अन्दर तो अमृत है नहीं। महाराज कहते हैं कि अन्दर अमृत भरा पड़ा है –

घर ही महि अंम्रितु भरपूरु है मनमुखा सादु न पाइआ।
जिउ कसतूरी मिरगु न जाणै भ्रमदा भरमि भुलाइआ।
अंम्रित तजि बिखु संग्रहै करतै आपि खुआइआ॥ *पृष्ठ – 644*

हम तो ज़हर इकट्ठी किये जा रहे हैं, अन्दर अमृत के भण्डार भरे पड़े हैं। महाराज कहते हैं कर ले स्नान अमृत कुन्ड में, तेरा कमल उलटा हुआ पड़ा है। यह जब सीधा हो गया, तुझे अमृत की लहरें आया करेंगीं, अमर हो जायेंगा फिर मरेगा नहीं दोबारा। वाहिगुरू में समा जायेंगा जिस समय बिना जीभ से नाम जपने का तुझे ज्ञान हो गया। सो इस प्रकार इस

से हम भी तरह तरह के अनाज भुजवा लाते थे। मुझे याद है कि जब हमारा घर बन रहा था, तब चौखट दरवाजे की लकड़ी की छीलन दर्जनभर से ज्यादा बोरों में भर कर ले गये थे और फिर कभी भुजवाई के पैसे नहीं लिए। 🙏🌹

4 mos 13

Surendra Prasad Singh
जब सूर्य विषुवत रेखा के सामने आता है तो उस दिन को विषुआ कहा जाता वह तिथि 14 अप्रैल कृषि काल अश्विनी नक्षत्र में होता है इस दिन को सतुआनी कहा जाता है और लोग आम के अमौरी के साथ सतुआ खाते हैं.

4 mos 29

Paritosh Sharma
वाह : ❤️
बहुंत सालों बाद गाँव की पुरानी यादें, याद आ गई।
हमारी दादी और पापा ज़ी थे तब तक मीठी सतुआ खाते थे।
अब,के बच्चे इसे जानते भी नहीं।
बुजुर्गो को, उनकी बातों को भूलते हुऐ.... नए ज़माने की पीढ़ियां दौड़ रही हैं।
सादर 🙏

4 mos 18

Ashwin Modha
एक भिन्न संस्कृति को जाना, अच्छा लगा, हमारे यहां गुजरात में सात धान का खिचड़ा होता है जो साल मै एक दिन खाया जाता है, पर वह त्यौहार मुझे याद नहीं, अब उनका चलन भी कम होने लगा है, नई पीढ़ी पीत्जा बर्गर की ओर भाग गई है।

ज्योतीरूपमशेषबाह्यरहितं चैक पुमांसं परं

तत्त्वं तत्पदमेति वस्तु परमं वाच्यं किमत्राधिकम्" ।।२।।

हिन्दी व्याख्या – यहाँ शाम्भवी मुद्रा के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं कि अर्ध पद्मासन में स्थित जिसके आधे नेत्र खुले हैं तथा दृष्टि नासिकाग्र भाग में स्थिर है, जिसका चित्त और मन चांचल्य से रहित होकर स्थिर हों, जिसकी सूर्य रूपी इड़ा व चन्द्र रूपी पिङ्गला नाडियाँ, त्रिस्पन्दरूपा सुषुम्ना में विलीन होकर ज्योति स्वरूपा हो गई हों, वह योगी प्रकाशस्वरूप, समस्त बाह्य प्रपंचों(तत्त्वों) से रहित होकर, परम पुरुष, चित् स्वरूप, परम तत्त्व, एक, आनन्द स्वरूप, स्वप्रकाश, शब्दावबोध रूप स्थूल-सूक्ष्म,वर्तमान-भूत-भविष्यादि से परे पूर्णपरमेश्वर पद को प्राप्त करता है। अब इस पद की इससे अधिक इसकी महत्ता क्या कही जाए।

(शाम्भव पद- प्रकाश रूप, अंतर्दृष्टि, अन्तर्निमज्जन विश्वोत्तीर्ण अवस्था का द्योतक है, जबकि शाक्त पद विमर्शरूप, बहिर्दृष्टि, बहिर्उल्लास, विश्वमय अवस्था का द्योतन करता है। इसीलिए शाम्भव पद कथित कारिका में समस्त लक्षण योगी के आंतरिक तत्त्वों व स्वात्म विमर्श रूपता को प्रदर्शित किया है और शाक्तपद के लक्षण में योगी के बाह्य लक्षणों मन्त्र मुद्रादि के लक्षणों को बताया गया है।)

शाक्तपद के लक्षण का निरूपण-

"शब्दः कश्चन यो मुखादुदयते मन्त्रः स लोकोत्तरः

संस्थानं सुखदुःखजन्मवपुषो यत्कापि मुदैव सा।

प्राणस्य स्वरसेन यत्प्रवहण योगः स एवाद्भुतः

15:55

शाक्तं धाम परं ममानुभवतः किन्नाम न भ्राजते" ।। ३ ।।

हिन्दी व्याख्या – शाक्त पद (विश्वमय अवस्था) के लक्ष्य के लक्षण को बताते हुए कहते हैं कि इस शाक्त पद(स्वात्म विमर्श) में अधिष्ठित योगी के मुख से जो कोई भी शब्द निकलता है वही लोक में मन्त्र है। ऐसा योगी जिस किसी भी प्रकार से संस्थित हो जाता है वही मुद्रा है क्योंकि इस शरीर में योगाभ्यास के प्रयास से भी सुख और दुःख का जन्म हो जाता है। योग बताते हुए कहते हैं कि योगी के प्राणों का स्वाभाविक रूप से प्रवहण(प्राणापानावाह प्रक्रिया) ही अपूर्व योग है। इस स्वात्मविमर्श रूप शाक्त धाम का मैं अनुभव कर रहा हूँ, अतः शाक्त धाम में स्थित होने से मेरे लिये सम्पूर्ण विश्व का प्रकाशन हो रहा है।

"मन्त्रः स प्रतिभाति वर्णरचना यस्मिन्न संलक्ष्यते
मुद्रा सा समुदेति यत्र गलिता कृत्स्ना क्रिया कायिकी।
योगः स प्रथते यतः प्रवहणं प्राणस्य संक्षीयते
त्वद्धामाधिगमोत्सवेषु सुधियां किं किं न नामाद्भुतम्" ।।४।।

हिन्दी व्याख्या - जिसमें वर्ण समुहात्मक, छंदात्मक, पदबद्धतारूप वर्णरचना संलक्षित नहीं होती, अपितु मातृकाशक्ति बीजरूपात्मक जपादि के योग्य वर्णाक्षरसमूह, जिसके मनन करने से साधक की रक्षा व उन्नति हो, वह मंत्र है। जिसमें सम्पूर्ण शारीरिक गमनादि क्रिया गलित अर्थात विनष्ट हो जाती है, वह स्वरूपानन्दाभिव्यक्ति करने वाली कायिक वाचिक चेष्टा रूप से स्थित होकर स्वात्म विमर्श की उन्नति हो वही शिवसमावेशात्मिका मुद्रा है। जिससे प्राण का प्रवाह क्षीण हो जाता है अर्थात प्राण और अपान का प्रवाह सुषुम्ना में ही विलीन हो जाए और इतना सूक्ष्म व सम हो की अप्रवाह की प्रतीति हो(प्रवाह क्षीण हो

जाए) वही योग है। काश्मीर शिवाद्वयवाद के शैव योग में जीव और शिव के एकत्व की प्राप्ति ही योग है, चित्त निरोधात्मक नहीं। तुम्हारे धाम की प्राप्ति के उत्सवों में अर्थात प्रत्यभिज्ञान होने पर आनन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर संसार की समस्त प्रतीति अद्भुत ही है।

।। इति अनुभवनिवेदनस्तोत्रम् ।।

क्रीडाडम्बरमम्बराश्रयमिव स्वोल्लेखरेखाक्रमं

देहाद्याश्रयमस्तु वैकृतमहामोहे न पश्यामि किम्" । ।११ । ।

हिन्दी व्याख्या – काल का संकलन करते हुए कलाओं का कलन प्रेमपूर्वक वृष्टिकर्त्ता सृजन के क्षणों में करते रहें, मन्मथ मेरे आदेश से बँधा मनों का मन्थन करता रहे, व्योम चित्रावली में चित्र-विचित्र गन्धर्व नगरी की क्रीडामयी आडम्बरान्विता लेखरेखाओं के क्रम को स्वात्मफलक पर ही में क्यों नहीं देखें। यह वैकृतिमय महामोह देह के आश्रय के वैवश्य में विनश्यता रहे। मैं तो साक्षी भाव से तटस्थ सत्ता को स्वात्मसत्ता में ही आत्मसात् कर रहा हूँ ॥ ११ ॥

"कः कोऽत्र भोर्य कवलीकरोमि कः कोऽत्र भोर्य सहसा निहन्मि ।

कः कोऽत्र भोयं परबोधधामसञ्चर्वणोन्मत्ततनुः पिबामि" । ।१२ । ।

हिन्दी व्याख्या – यह मैं हूँ। मैं यह उद्घोषणा कर रहा हूँ कि, मैं ही इसका संहार रूप से ग्रास बना रहा हूँ। यहाँ कौन है मेरे अतिरिक्त। अर्थात् कोई नहीं। मेरा यह प्रश्न विश्व को सम्बोधित है। कोई तो उत्तर दे। यहाँ कौन है ? कौन है यहाँ मैं ही सहसा यह मैं ही विश्व को निमज्जित कर रहा हूँ। परबोधधाम रूप अपनी दिव्यता से व्याप्त दीप्ति से ऊर्जस्वल हो रहा हूँ। स्वयं वही हूँ। विश्वसंहार रूपी चर्वण प्रक्रिया में मेरी काया लगता है, उन्मत्त सी हो गयी है। मैं इस चर्वण के अनन्तर प्राणापान संघट्ट से स्रवित पीयूष राशि का पान कर प्रसन्न हो रहा हूँ ॥ १२ ॥

"भवोत्थभयभङ्गदङ्गदश्वगालविद्रावणम्

प्रबोधधुरिधीमतामपि सकृद्यदुद्दीपनम् ।

सुधामगहनाटवीविहरणातितृप्तयुद्गमाद्

15:59

उमे रमे सरस्वति त्वमेव देवता परा" ।।६।।

हिन्दी व्याख्या – विश्व में मङ्गल का प्रसार करने वाली हे माँ शिवे ! तुम मेरे परमाराध्य की प्रिया हो। तुम्हीं उमा, रमा, ब्रह्माणी और सरस्वती हो। तुम्हीं परा देवता हो। तुम्हारी जय हो।

"अमे अम्बिके अस्वरूपे अनाख्ये उमे रौद्रि वामे महालक्ष्मि माये।

परे देवते पञ्चकृत्यैकलोले शिवे भैरवि श्रीमति त्वां प्रपद्ये" ।।७।।

हिन्दी व्याख्या – अमा प्राणापानवाह की वह वेला कहलाती है, जहाँ प्राण सूर्य अपानचन्द्र दोनों अस्त हो जाते हैं। वह एक केन्द्र बिन्दु होता है, जिसे मध्यद्वादशान्त केन्द्र कहते हैं। वहाँ अमानित्या का निवास होता है। वह अमा वही माँ पराम्बा है। उसो के सम्बोधन में शास्त्रकार ने अमे शब्द का प्रयोग किया है। वही अम्बिका शक्ति है। यह अङ्गुलियों में निवास करती है और आकुञ्चन विकोचन की आधार है। अनुत्तर अकार को यह वह शक्ति है, जिसके आश्रित वामा, रौद्री और ज्येष्ठा शक्तियाँ भी उल्लसित होती हैं। अम्बिके इसी शक्ति का सम्बोधन है। वह पराम्बा अकार स्वरूप है। अनाख्य है। वही उमा है, रौद्री है, वामा है, ज्येष्ठामयी महालक्ष्मी है। वही माया रूप से विश्व को आत्मसात् करती है। वही परा शक्तिमती देवता है। शिव के सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह ये पाँच कृत्य हैं। इन कृत्यों में एक मात्र कारणता इसी शक्तितत्त्व की स्पन्दनमयी क्रियाकारिता का लोलीभाव है। हे इन विविध शाक्त रूपों में उल्लसित शिवे, हे भैरवि ! हे समस्त श्रीऐश्वर्य की स्वामिनि माँ मैं तुम्हारे शरण में आ गया हूँ। मेरो रक्षा करो माँ ! मेरी शरणागति स्वीकार करो।

हृदय में प्राण वायु रहता है। गुदा, शिश्न, जाँघ के जोड़, उदर, अण्डकोष, कमर, नाभि और जंघा में अपान रहता है। कान व आँख के बीच, गले के उठे हुए भाग में दोनों अँगूठों में नाक में और ग्रीवा में व्यान वायु रहता है। सब जोड़ा में स्थित उदान हाथ-पैर में रहता है। समान सारे शरीर में फैला रहता है। नाग आदि पाँच वायुवृत्तियाँ त्वक, अस्थि आदि में रहती हैं। थूकने आदि को नाग वायु संभव करती है। आँख बन्द करना आदि कर्म वायु का कार्य हैं। छींकना कृकर वायु से होता है तंद्रासूचक जँभाई आदि देवदत्त से होता है। धनंजय वायु का कार्य है विकलता आदि करना। निःश्वास, उच्छ्वास, खाँसी आदि कर्म है प्राण का! निष्ठा, मुत्रादि का विसर्जन अपान का कार्य है। समान सबके अर्थात सब अंगो के समीप अन्न पहुँचाता है। उदान ऊर्ध्वगमन में कारण है। (देह के सीधा रखना अादि व मरने पर पुर्यष्टक को गति देना उर्ध्वगमन है।) ब्यान का कर्म है प्राण और अपान को रोक वीर्यवत् कर्मो को करना।

सुषुम्ना के देवता शिव है। इडा के विष्णु,पिंगला के ब्रह्मा, सरस्वती के विराट, पूषा के दिक, वारुणी के वायु, हस्तिजिह्वा के वरुण, गांधारी के चन्द्र, शांखिनी के चन्द्रमा, पयस्विनी के प्रजापति और विश्वोदरी के पावक देवता है। इडा नाडी में सदा चन्द्रमा प्रचार करते है और पिंगला में सूर्य। पिंगला से इडा में वायु का संक्रमण आध्यामिक दक्षिणायन है। जब प्राण इडा और पिंगला की संधि में स्थित होता है। तब शरीरिक अमावस्या कही जाती है। जब प्राण मूलाधार में प्रवेश करता है। तब प्रथम (अर्थात् उत्तरायण के मध्य होने वाला) विषुव, तथा जब प्राण मूर्धा में प्रवेश करता है तब अंति दक्षिणायान में होने वाला) विषुव अध्यात्म दृष्टि से बताया गया है। निःश्वास-उच्छवास का जो इडा से पिंगला में पिंगला से सुषुम्ना में व सुषुम्ना से इडा में संचरण होता है। उसे आध्यात्मिक संक्रान्ति समझाना चाहिये। जब प्राण इडा से कुण्डली स्थान को प्राप्त होता है। तब चन्द्र ग्रहण और जब पिंगला से वहीं पहुँचता है तो सूर्यग्रहण जानना चाहिये।

पदचाप नहीं सुनाई पड़ेगी।

अफजल सतगुरू मोहे नवाजीया, साहेब दीय मीलाय।
अब चल पायो बस हय, भव जल अपे हमरी बलाय।। 105

अफजल साहब कहते हैं कि सद्‌गुरू ने साहब से मिलाप कराकर मेरा उद्धार कर दिया है, मैं अपने पावों पर चल पाने में समर्थ हो गया हूँ, अब भवसागर की धार में मेरी बलाय पड़े।

अफजल पापी का तो पाव न ठहरे, अयसी कठन अगम की गयल।
सतगुरू अधर ले राखिया, चहेड़ी उपर महल।। 106

अफजल साहब कहते हैं कि उस अगम पुरूष तक पहुँचने की राह ऐसी कठिन है कि उस राह पर पापियों के पाँव ठहर ही नहीं पाते लेकिन सद्‌गुरू ने कृपा करके मुझे उनके महल तक सरलता से पहुँचा दिया है।

अफजल छक छक गई जब छीक पीयाला, अमर खुले कपाट।
दुलोह आया चवक में, चवर ढाले अखट। 107

अफजल साहब कहते हैं कि जब मेरी आत्मा प्रेम का प्याला पी पीकर छक गई तब अमर लोक के कपाट खुल गये। दूलह के रूप में परम पुरुष प्रकट हुए। उनके सिर पर चँवर डुल रही है।

अफजल सोंहम अस्थीर नाल कर, पवन सीकर चड़ाया।
बीकसे कवल भवर गुंजारा, सुख सागर जाय समाया।। 108

अफजल साहब कहते हैं कि प्राणायाम के द्वारा श्वास को ब्रह्म रंध्र तक चढ़ाया और बंकनाल में सोहं को स्थिर किया तो अष्टदल कमल विकसित हो गया उस पर आत्मा रूपी भँवर गूँजता हुआ सुख सागर में समा गया है।

अफजल, सुख सागर पाया, अपे में जब छुट गई दवड़।
वन ढूंडान फंद खाण मा, मनवा रहत येक ठावड़।। 109

अफजल साहब कहते हैं कि जब यह मन सुख सागर में जाकर समा गया तो इसके इधर उधर दौड़ने की भटकन समाप्त हो गई। अब उस परम पुरुष को वन ढूँढने की आवश्यकता नहीं हैं, और न कंद मूल खाने की मन को रहने के लिये एक अच्छा ठिकाना जो मिल गया है।

07:53
संत भजन संग्रह | PDF
scribd.com
[S]

पर्वत ऊगो बांसड़ों हैली, थरथराई वन राय।
आप जले औरां ने जालसी सी हैली, गाँठ कपट घट मांय।। 2।।
आग लागी डावां डूंगरा हैली, मिल गई झालो - झाल।
और पंखेरू सब उड़ गया हैली, हँस रह्या बैठा डाल।। 3।।
चन्दन मुख से बोलिया हैली, थें क्यूँ जलो हँस राय।
मैं तो जलों पांखा बाहिरा हैली, जड़ है पयांलो माय।। 4।।
फल खाया पान फिरोलिया हैली, रमिंया डालों डाल।
थे तो जलों में ऊबरां हैली, जीवां कितना काल।। 5।।
हँस चन्दन रा प्रेम से हैली, दुधा वर्षो मेह।
कहे कबीर धर्मीदास ने हैली, नित्त - नित्त नवला नेह।। 6।।

हैली भजन ।। 149।।

चालो सत्तगुरूजी रा देश में हैली, चरण कमल चित्त धार।। टेर।।
अरूझ रही फंदरास में हैली, लग्या कर्मा रा जाल।
नाम बिना बचे नहीं हैली, राखो भजन रीसाल।। 1।।
काया कागज री पुतली हैली, छांट लग्या गल जाय।
पवन डोरा में पोयदी हैली, घड़ी दोय नाच नचाय।। 2।।
अधर महल में खेलणों हैली, अरा (अर्ध) उर्ध के बीच।
प्याला पिया निजनाम (सत्तनाम) का हैली, कटिया कर्मा रा कीच।। 3।।
अमर बींद रो चुड़लो ऐ हैली, पहरिया सुहागण नार।
सत्तगुरूजी री दासी भई ऐ हैली, हो गई भवजल पार।। 4।।
धिन सुखराम गुरू भेटिया हैली, दिवी तोय समझाय।
ईशरराम घट खोजिया हैली, लीवी आप में थाय।। 5।।

07:48
[S] 30 / 84

संतो देखिया अचरज भारी।
अमरलोक में संत विराजे, जहाँ सुरत लिव म्हारी।। टेर।।
फाड़र पीठ चढिया गढ ऊपर, है कुदरत लीव धारा।
अष्टक जोग सांख्य ना पवना, ऐसा खेल हमारा।। 1।।
उलटी गंग चढी गिगनारा, छुटी संसर धारा।

Ad
Download to read ad-free

करनी सकल ज्ञान कर देखा, सत्य शब्द है न्यारा।। 2।।
बादल बीज बिना इन्द्र गाजे, तीन लोक रे मांई।
खट सो राग छतीसु न्यारा, खण्ड अखण्ड कछुनाई।। 3।।
सहज समाध लगी घट मांही, त्रिकुटी संयम होई।
इलापींगला सुखमण नारी, रमे संग मिल दोई।। 4।।
कहे सुखराम शब्द जोरावर, पायां ही पथ पावे।
बिन पांया नर बहुतेरा, दिल का भ्रम नहीं जावे।। 5।।

भजन ।। 38।।

जिनकी रेहणी अपार जगत में, सोई सत्त नाम पियारा।। टेर।।
जैसे कमल रहत जल भीतर, जल में करते पसारा।
जिनके ऊपर नीर न ठहरे, ढलक जाय जैसे पारा।। 1।।
जैसे सूरा चढ रण भारत, पांव पीछे नहीं धारा।

22:18

अत्र विषुवद्द्वये फलमाह–

तत्र पूजा जपो होमो यत्कृतं मुक्तिदं भवेत् ।

तत् । किञ्च–

ध्यानयोगेन दीक्षायां तत्स्थो वै मोचयेद्गुरुः ।।१६६।।

ध्यानमत्र परतत्त्वविषयम् । तदित्थम्–

बाह्ये चैव त्वहोरात्रे अध्यात्मं तु वरानने ।
चतुर्विंशतिसंक्रान्तीः प्राणहंसस्तु संक्रमेत्[1] ।।१६७।।

हृदब्जदलाष्टकस्य प्रधाननाडीत्रयस्पर्शादेवमिति व्याप्तिज्ञाः । प्राणहंस इति प्राग्वत् । अत्रायं विभागः–

अहनि द्वादश प्रोक्ता रात्रौ वै द्वादश स्मृताः ।

अत्रापि विषुवत्संक्रान्तीनां विभागमाह–

पूर्वाह्णे विषुवत्त्वेकं मध्याह्ने तु द्वितीयकम् ।।१६८।।
तृतीयं चापराह्णे वै अर्धरात्रे चतुर्थकम् ।
चतुर्धा विषुवत्प्रोक्तमहोरात्रेण मुक्तिदम् ।।१६९।।

ते बाह्ये विषुवद्दिने पश्चिमरात्रिशेषघटिका सपादा दिनोदयाद्घटिका सपादा–इत्येकं विषुवत् ।

इसका फल यह होता है कि, इसमें पूजा, जप और हवन आदि जो कुछ भी किया जाता है, वह मुक्तिप्रद होता है । इसमें परतत्त्वात्मक ध्यानस्थ गुरु अपने ध्यान योग की प्रभा से परिपूर्ण तैजसिकता से शिष्य को मोक्ष को उपलब्ध करा देता है ॥१६६॥

बाह्य अहोरात्र में प्राण हंस की गति कुछ विचित्रता लिये होती है । इसमें ये २४ संक्रान्तियाँ सम्पन्न हो जाती हैं । इतनी संक्रान्तियों के कारण हृदय पद्म के अष्टदल कमल के आठों दल हैं । यह वे लोग कहते हैं, जो हृदय पद्म की व्याप्ति के विशेषज्ञ होते हैं ॥१६७॥

इनके विभाग के सम्बन्ध में स्पष्ट कर रहे हैं कि, दिन में १२ और रात्रि में भी १२ मिलकर २४ होती हैं । इसी में विषुवत्संक्रान्तियाँ भी होती हैं । पूर्वाह्न में पहला विषुवत् और मध्याह्न में द्वितीय विषुवत् होता हैं । तीसरा विषुवत् अपराह्न में और अर्धरात्र में चतुर्थ विषुवत् होता है । ये चारों विषुवत् मुक्ति रूपी महाफल प्रदान करने वाले माने जाते हैं ।

---

१. ख. पु. स व्रजेदिति पाठः ।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

'विषुवद्वासरे प्रातः सांशां नालीं स मध्यगः ।
वामेतरोदक्सव्यान्यैर्यावत्संक्रान्तिपञ्चकम् ॥
एवं क्षीणासु पादोनचतुर्दशसु नालिषु ।
मध्याह्ने दक्षविषुवन्नव-प्राणशतीर्वहेत् ॥
दक्षोदगन्योदग्दक्षैः पुनः संक्रान्तिपञ्चकम् ।
नवासु शतमेकैकं ततो विषुवदुत्तरम् ॥
पञ्चके पञ्चकेऽतीते संक्रान्तेर्विषुवद्वहिः ।
यद्वत्तथान्तः संक्रान्तिर्नव प्राणशतानि सा ॥
एवं रात्रावपीत्येवं विषुवद्दिवसात्समात् ।
आरभ्याहर्निशावृद्धिह्राससंक्रान्तिगोऽप्यसौ' ॥ (२००-२०४)

इत्यादि कालतत्त्वप्रकाशने षष्ठ आह्निके । यत्तु तत्र मध्याह्ने दक्षविषुवदित्युक्तम्, तद्बाह्योत्तरायणविषुवद्दिने प्रातरुत्तरविषुवद्भवतीत्याशयात् । इह तु बाह्यदक्षिणायन-विषुवद्दिने प्रातर्दक्षिणविषुवद्भवतीत्याशयादन्यथोक्तम् ॥१६९॥

"विषुवत् वासर में दिन रात बराबर होते हैं । मेषसंक्रान्ति और तुला संक्रान्ति में विषुवद्वासर होते हैं । विषुवद्वासर में प्राप्त १¼नाली मध्य संचार होता है । इसके बाद दायें, बायें, उत्तर और सव्य और अपसव्य अर्थात् दायें और बायें के क्रम से पाँच संक्रान्तियाँ घटित होती हैं । तुला के बाद वृश्चिक से मीन राशियों में प्रत्येक १३¼नालियों का समय लग जाता है । यहाँ तक मध्याह्न का समय मानना चाहिये । मध्याह्न में दक्ष विषुवत् में ९०० प्राण संचार होते हैं । ९००-९००को प्राण संचार की ५संक्रान्तियों में ९००×५=४५०० प्राणचार हो जाते हैं । इसके बाद उत्तर विषुवत् की १२-१२ संक्रान्तियों के २४ से ९००का गुण करने पर २१६००बार प्राणचार हो जाते हैं । इसमें सावधानी पूर्वक रात और दिन का हिसाब साधक रखता है । संक्रान्तियों में उत्तरायण और दक्षिणायन क्रम से दिन में ह्रासवृद्धि का क्रम लगा रहता है । ये सभी क्रम सामान्यजनों के लिये अनावश्यक और साधकों के लिये अनिवार्यतः ध्यातव्य है ।

यह सभी काल तत्त्व का ही उल्लास है । प्राणचार में और बाह्य काल-चार के अन्तर को ध्यान में रखकर इस विषय में सावधानी बरतनी चाहिये । इस क्रम में मध्याह्न में दक्ष विषुवत् की बात कही गयी है । वह बाह्य उत्तरायण के विषुवत् दिन में प्रातः उत्तरविषुवत् की दृष्टि से कही गयी है । बाह्य दक्षिणायन के विषुवत् दिन में प्रातः दक्षिणविषुवत् होता है ॥१६८-१६९॥

07:15
[SCRIBD] Search
84 / 105

अभ्यास करेते भासहे। यह वेदांतको मत ॥ ४९२ ॥

सोळअंगबरनन

कवित्त—जेम नेम त्याग जानो देशकाल आस नानो मूलबंध द्रग अस्थि देह समि कीजिये ॥ करी प्राणसंयमसु प्रत्याहार धारणासो आत्माके ध्यानहुसे समाधिरस पीजिये ॥ चंददश अंगबंध सोहं स्वरूपचंद प्राप्ति आनंदकंद जो जुक्ति जीजिये ॥ एसी रीति रीति पाइ भगवान मनुलाइ संशे विपरीत जाइ सोइ करिलीजिये ॥ ४९३ ॥

दोहा—योगयुक्तिबरनन करूं। ज्ञानद्रष्टि मनुलाई ॥ पूरनपद प्राप्ति भयो। आवागवन नसाई ॥ ४९४ ॥

चौपाई—सर्वब्रह्मभावना कीजे॥ इंद्रियनिके संजम करि लीजे ॥ यह युक्ति मन निश्चय धरे ॥ सो अभ्यास मुमुक्षु करे ॥ ४९५ ॥ व्यापक रूप अनूप सजाती ॥ नाम रूप सब त्याग विजाती ॥ बुद्धिमान यह नेमहि करे ॥ परमानंद स्वरूपे धरे ॥ ४९६ ॥ सर्व प्रपंच त्याग बुद्धि कीजे ॥ चिदाकार चैतन मन दीजे ॥ महंत पूजि यह त्याग कहावे ॥ सद्य मोक्ष मुमुक्षु हिपावे ॥४९७॥ मन अरु वचन जहां नहि जाई॥ सोस्वरूप लहि मौन सुहाई ॥ यतो वाचा निवृत्तककहि-

Overview Find in PDF Related do
Save

[SCRIBD] Search
87 / 105

रेचक पूरक आदि है । पुनि कुंभक सो जान
॥९१३॥ चित्त आदि जे भावहे । करे ब्रह्ममें लीन ॥
निरोध होइ सब वृत्तिकों । प्राणायाम प्रवीन ॥९१४॥
पिंडब्रह्मांड अभावकरि । निषेध सबे परपंच ॥
नाम रूप सब अस्त करि । सो रेचक मति संच ॥
॥९१५॥ सोहं हंसो वृत्तिकरी । सोहं हंसो समान ॥
ब्रह्मभाव पूरन भयो । यह पूरक परमान ॥ ९१६ ॥
सोहं हंसो एक वृत्ति । रही हृदय ठहराय ॥ भर्यो
कुंभ जल मध्य ज्यों । कुंभक यह सुभाय ॥ ९१७ ॥
प्राणायामविधान यह । विद्वत करे बखान ॥ प्राण
घ्राण पीडा करे । ते नर अज्ञ निदान ॥ ९१८ ॥
विशे विषयता मेटिके । ब्रह्मभाव उर आन ॥ मन
मनन प्रतिहार यह । यहई मोक्ष परमान ॥ ९१९ ॥
जहां जहां मन जातहे । तहां ब्रह्म करि लेख ॥
सब साधारण एकता । शुद्धधारना पेख ॥ ९२० ॥
अहं ब्रह्मास्मि सही । निरालंब परकास ॥ परमानंद
आनंदसो । ध्यान मान अवभास ॥ ९२१ ॥
निरालंब जो वृत्तिहे । ब्रह्माकारविचार ॥ ध्यान ज्ञान
विसरे सबे । सो समाधि उर धार ॥ ९२२ ॥ ज्ञान
समाधि समाधि यह । वेदांतमततें जान ॥ याहुमें

Overview Find in PDF Related do
Save

07:21
[S] 20 / 22

चौपाई

मुद्रा चारि चतुर दल सोहे। त्रिकुटी साधि पवन के जोहे।३६६।

Ad Download to read ad-free

निद्रा साधि आतम कहँ साधे। पाँचो इंद्री निग्रह बाँधे।३६७।
इंगला पिंगला सूर चढ़ावे। घैंची डोरि गगन में आवे।३६८।
बंक नाल औ अंक संयोगा। ब्रह्माण्ड अखंड विरोगा वियोगा।३६९।
पाँच तत्व तौले दिन राती। छन छन पल पल गुने यह भाँती।३७०।
मोतांगी पवन उलटि जब लावे। उलटा कुंभ नीर नहिं आवे।३७१।
यहि विधि तारीक तर्क है योगा। पवन संयोग प्रेम रस भोगा।३७२।
नरक स्वर्ग ते होखे न्यारा। की भवचक में परे बेचारा।३७३।

साखी - ४७

एतना योग युक्ति करि, मुक्ति भुक्ति बैराग।
अमर लोक के जावहीं, कि लगा करम का दाग।।

चौपाई

सुनौ बचन मैं कहों बिचारी। निरखि परखि कोई ज्ञान सुधारी।३७४।
यह सब करम काल के योगा। कठिन काल नहिं होई विरोगा।३७५।
तन साधत फिर भया असाधी। मन नहिं चिन्है उलटि फिरि बाँधी।३७६।
योग युक्ति योगी सब भाखे। त्रिकुटी पवन तहाँ ले राखे।३७७।
इंगला पिंगला पवन का खेला। पाँच तत्व सुख मनि का मेला।३७८।
चारिउ मुंद्रा मत तेहि भयऊ। असंख योग युक्ति नहिं अयऊ।३७९।
तीन लोक जिन्ह तन के जाना। साढ़े तीन हाथ परवाना।३८०।
जरा मरन फिरि भव में आवे। मन परचै बिनु यह दुःख पावे।३८१।

साखी - ४८

मन करता कहँ सुमिरहिं, सो मन करै विनाश।
रूपरेखा देखे बिना, डारत है ग्रिव फाँस।।

चौपाई

रूप देख यह किमि कर देखे। कौन ज्ञान यह गमि में पेखे।३८२।
वाकी सनदि साधु किमि पावे। कैसे विवरण दुई देखावे।३८३।
मन और ज्ञान रंग बिलगावे। निःअक्षर किमि अक्षर पावे।३८४।
नाम निःअक्षर इमि कहँ कहई। मने निःअक्षर जीव कहँ दहई।३८५।
बिना रूप कैसे लखि आवे। आदि दृष्टि सो कैसे पावे।३८६।
यह सब संकट विकट की बाता। औघट घाट सबनि में राता।३८७।

इड़ा पिंगुला अउर सुषुमना

वेणी

इड़ा पिंगुला अउर सुषुमना, बसहिं इक ठाईं।
वेणी संगमु तंह पिरागु, मनु भजनु करे तिथाई॥
संतहु तहाँ निरंजनु रामु है, गुरगमि चीन्है बिरला कोइ।
तहा निरंजनु रमईआ होइ॥
देवसथानै किआ नीसाणी, तहँ बाजे सबद अनाहद वाणी।
तहँ चंदु न सूरज पउण न पाणी, साषी जागी गुरमुषि जाणी॥
उपजै गिआनु दुरमति छीजै, अंम्रित रस गगनंतरि भीजै।
एसु कला जो जाणै भेउ, भेटै तासु परम गुरदेउ॥
दसम दुआरा अगम अपारा, परम पुरष की घाटी।

(अ) किनाराम कहते हैं कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा की शुद्धि करनी चाहिए तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। योगेश्वराचार्य कहते हैं कि इड़ा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़ी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर, 'पचीस' को वश में कर 'नौ' की नारी को जीत लेना चाहिए। मिनकराम भी कहते है कि इड़ा, पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती हैं 'जिसमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।'[157]

टेकमनराम भी 'इगला' और 'पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी-संगम' के स्नान का निर्देश देते हैं। रामस्वरूप दास भी इन तीनों नाड़ियों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि इसके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नहीं लगती। इड़ादि तीनों नाड़ियों के संगम स्थल को 'त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते हैं, जिसकी चर्चासंतों ने बार-बार की है। अघोरम के मुख्य प्रवर्तक किनाराम लिखते हैं कि इड़ा, चन्द्रमा में और पिंगला सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं और सुषुम्णा दोनों के मध्य में जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्दका प्रकाश होता है, मन में 'अजर' झरने

156. एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 95

157. संतमत का सरभंग सप्रंदाय, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 71

लगता है और सुखरूपी अमृत का आस्वादन होता है।[158] मानसरोदै नामक ग्रंथ में इड़ा, पिंगला आदि तीनों स्वरों पर आधृत एक विस्तृत प्रक्रिया विज्ञान का विवरण है, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि स्वर की सिद्धि और ठीक-ठीक पहचान से संतजन सब तरह की भविष्यवाणी करने में समर्थ होते है। योगी के लिए मरने के बाद मोक्ष की प्राप्ति हो यह बात नहीं है। उसे तो इसी जीवन में सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा मुक्ति मिल सकती है।[159] सुषुम्णा मूलाधार में नाड़ियों के केन्द्र से प्रारम्भ होकर मेरूदंड के बीच चलती है और सभी चक्रों का भेदन करते हुए नासिका के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। यहाँ सर्पिणी के आकार की कुंडलिनी मूलाधार स्थित नाड़ियों के 'केन्द्र' को पूर्णतया ढँक कर सोई रहती है, और सुषुम्णा के निचले छिद्र में अपनी पूँछ प्रविष्ट किये रहती है जिससे सुषुम्णा का निचला भाग भी सर्वथा अवरूद्ध रहता है। ऐसा केवल सुषुम्णा द्वारा ही संभव है। क्योंकि यही एक नाड़ी है जो एक साथ ही दोनों नासापुटों में अपना मुख खोले रहती है। सामान्यतः इड़ा या पिंगला इसके मुख को रूद्ध रखकर बायीं या दायीं ओर प्राणधारा प्रवाहित करती रहती है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा को अन्य शब्दों में गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहते हैं। ये नदियाँ जल की धारा की वाहक है इसीसे इनकी तुलना इन नाड़ियों से की गई है जो प्राणवायु की धारा का संचार करती है। इसी तुलना के आधार पर इन नाड़ियों के संगमस्थान को त्रिवेणी कहते हैं। यौगिक क्रियाओं में योगी का आत्मा इसी त्रिवेणी में स्नान करता है। इस त्रिवेणी घाट का दूसरा नाम त्रिकुटी भी है।[160]

(ग) महर्षि पतंजलि के समय से ही योग के सिद्धि के आसनों की अनिवार्यता मानी

158. संत मत का सरभंग संप्रदाय, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 71

159. रामगीता, किनाराम, पृ. 13 पद-34

160. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 95

(1) मुलबध- 'योनि को बाईं एड़ी से दबाओ और गुदामार्ग को सिकुड़ा लो। क्रमशः अभ्यास द्वारा अपान वायु को बलात् ऊपर खींचो। दाहिनी एड़ी जननेन्द्रिय पर रखे हो।'

(2) जलन्धर बंध- 'गला को सिकुड़ा दो, चिबुक को दृढ़तापूर्वक छाती पर दबाओ। इस बंध का अभ्यास पूरक (साँस खीचने) के अंत में और कुंभक (साँस रोकने) के आरंभ में किया जाता है।'[166]

(3) उड्डियान बन्ध- 'बलपूर्वक साँस बाहर फेंक कर फेफड़ों को खालीकर दो-अब अँतड़ियों को सिकुड़ा कर नाभिसहित पीठ और पेट को एक में सटा दो। उड्डयान का अभ्यास कुभक के अंत और रेचक के प्रारम्भ में करना चाहिए। इस बंध को करते समय उदर को वक्षस्थल से अलग करने वाली पेशी उभर आती है और उदर की भित्ति पीछे को खींच जाती है। अतः इस बंध को करते समय शरीर (धड़) को आगे झुका दो।'

---

166. संत दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 98

(4) शांभवी मुद्रा- 'दृष्टि को भू-मध्य में स्थिर करके स्वयंभू का दर्शन करो। यही शांभवी मुद्रा है।'

(5) खेचरी मुद्रा- 'ख का अर्थ है आकाश और चर माने चलना। योगी प्रकाश में विचरण करता है।उसकी जिह्वा और मन भी आकाश में विचरते हैं। अतः इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं।'

यह मुद्रा वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने किसी गुरू की दीक्षा में रहकर प्रारंभिक क्रियाओं का पूर्ण अभ्यास किया हो। गुरू को स्वयं भी इसके अभ्यास में दक्ष होना चाहिए। इस क्रिया के प्रारम्भ में जिह्वा को अभ्यास द्वारा इतनी बड़ी बना देना पड़ता है, जिससे जिह्वा मध्य को छू दे। प्रत्येक सप्ताह थोड़ा-थोड़ा करके गुरू जीभ की बिचली स्नायु को साफ छूरी से काट देते हैं जिससे कटी हुई स्नायु जुट न जाय। जिह्वा में ताजा मक्खन रगड़कर उसे बाहर खींचो। जीभ को उँगलियों से पकड़ा लो और उसे बाहर भीतर करो। जिस प्रकार ग्वाला गाय को दूहते समय उसके स्तनों को ऊपर नीचे खींचता है, उसी प्रकार इस जिह्वा-दोहन से जीभ पर अधिकार होता है।[167]

(6) अखिनी मुदा- 'गुदामार्ग को भीतर बाहर सिकुड़ाओं और ढीला करो। उसे करते रहो। इससे कुण्डलिनी जाग्रत होती है। इसे ही अश्वनी मुद्रा कहते हैं।'

(7) योनि मुदा- 'सिद्धासन में बैठो। दोनों अँगूठों से कान, कनिष्ठा उँगुलियों से आँखें और अनामिका से ऊपर होठ बंद कर दो। जप करने की यह सुन्दर मुद्रा है।'

दरिया सहेब के लेखों में प्रायः केवल चार मुद्राओं का ही प्रसंग आता है पर एक पाँचवी का भी वर्णन भी है। वे मुद्राएँ निम्नलिखित हैं-

(1) खेचरी

---

167. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 99

सोऽहम्च्या अतीत होण्याने ब्रह्मपदाची प्राप्ती : जीवाचा प्रवास अहं, कोऽहम्, सोऽहम् आणि त्याच्याही पुढे त्याच्या अतीत होणे या टप्प्यातून चालू असतो. ह्या एकापेक्षा एक उच्च दर्जाच्या अवस्था आहेत. जीवाने हा प्रवास करीत राहावयाचा, हे खरे पण यातून त्याला नेमके काय साध्य होणार ? हा प्रवास त्याने कशासाठी करावयाचा ? ह्या प्रवासातील मुक्कामाचे ठिकाण कोणते ? यासारखे प्रश्न अनुत्तरित राहू नयेत याची खबरदारी येथे घेतली आहे. भगवंतांनी स्वत:च याचे उत्तर दिले आहे ते असे,

अहं कोहं सोऽहम् स्वभावो । हाही छेदूनि अहंभावो ।
साधका निजपदी ठावो । ब्रह्म स्वयमेवो होऊनि ठेले ।। '[१२]

सोऽहम्मध्ये सूक्ष्मरूपाने असलेला अहंकारही जो जीव छेदून पुढे प्रगत होतो त्या साधकाला मी निजपदी ठाव देतो असे भगवान येथे म्हणतात. पण त्यातील अपुरेपण लक्षात येऊन ते पुढे पुस्ती जोडतात. अशा साधकाला निजपदी ठाव मिळतो एवढेच नव्हे तर तो स्वत:च ब्रह्म बनतो अशी ग्वाही भगवंतांनी येथे दिली आहे. आतापर्यंत आपण ज्या ओव्या अभ्यासल्या त्यामध्ये एक गोष्ट आपल्याला सहज जाणवून जाते ती अशी की अहम् आणि सोऽहम् हे जणू काही जोडशब्दच असावेत इतक्या सातत्याने ते एकत्रितपणे येताना दिसतात. त्यामागे काही कारण आहे का त्याचा शोध घ्यावयाचा प्रयत्न करु. त्या दोघांमधील नात्याचा येथे विचार करणे कर्तव्य आहे.

अहम्- सोऽहम् : अहम्- सोऽहम् हे शब्द ज्या ज्या ठिकाणी एकत्र येतात तेव्हा साधारणत: दोन प्रकार तेथे आढळून येतात. एक तर अहंचे सोऽहम्मध्ये झालेल्या रूपांतरासंबंधी

काही वर्णन तेथे असते. किंवा अहम् आणि सोऽहम् हे दोन्हीही एका पातळीवर आणून ते दोन्हीही बंधनास कारणीभूत कसे ठरतात याचे निवेदन केलेले असते. त्या दोन्हीचा विचार येथे करु. आधी दुसऱ्या प्रकारासंबंधी नाथांचे मत विचारात घेऊ.

मायेच्या क्षेत्रातच सोऽहम्चा समावेश : सोऽहम् हे अहंतेचे व्यापक स्वरुप असूनही ते बध्दतेस कसे कारण ठरते अशी शंका मनात जरुर निर्माण होते. पण त्याचे उत्तर असे की सोऽहम् हा व्यापक अहंभाव असला तरी त्याचा समावेश मायेच्या प्रांतातच होतो. आणि म्हणूनच मायेच्या अतीत होण्यासाठी सोऽहम्च्या अतीत होण्याची आवश्यकताही वारंवार कथन केली जाते असे दिसते. मायेच्या त्रिविध स्वरूपाचे वर्णन करताना नाथांनी सोऽहम्चाही त्यात स्पष्टपणे समावेश केला आहे.

अहं सोऽहम् जडमूढता । साधक साधन साध्यता ।
देवी देवो परीवारदेवता । हे ही त्रिविधता मायेची ।। '[१३]

म्हणजेच अहं सोऽहम् आणि जडमूढता या साऱ्या गोष्टीतून मायेच्या त्रिविधतेचाच प्रत्यय येतो असे त्यांना सांगावयाचे आहे. हाच विचार बाविसाव्या अध्यायातही पुन्हा स्पष्टपणे उद्धृत केला आहे. तेथे ते म्हणतात,

अहं कोऽहम् सोऽहम् भेद । त्वंपद तत्पद असिपद ।
सत् चित् आणि आनंद । हे ही संबंध मायिक ।। '[१४]

॥ छंद पधरी ॥

अजंपा जाप ओकार एक, ओलखे कमण[1] विणयौ अनेक ।
अजंपा जाप आतम उद्यास, सुर भुवण माहि स्रव भूत सास ।
अजपा जाप मूरति महेस, पिंड पिंड मांहि थारो प्रवेस ।
अजपा जाप अणकल अतीत, अकाज राक अइग्रो अजीत ।
अजपा अगम नावे अरथ, कोई नही काम कोई नही कथ ।
अनेक रसण सा न हुवे आप, जयो जयो अजपा कठण जाप ।
नमो नमो अजपा नमस्कार, ओउं ओउं मत्र अणपार पार ।
आदेस अजपा हो अलेख, तू भव सवंव ससार भेख ।
मन मांहि अजंपा तणी मड, आज ही अगे राखी अखंड ।
अजंपा जाप सू[2] मोह आंणि, विश्व री मोह न्यारी वखांण ।
अजपा जाप री अविल आस, जाड भ्रम अविद्या टळे जास ।
अजपा जाप दातार आज, सरूप सुगति दे सिरताज ।
अजंपा जाप रे नही आदि, सव जीव करण पडीयौ सवाद ।
अजपा जाप परमेस आप, बभ रे हुओ करतार बाप ।
अजपा जाप भगता उवार, ससार घड़ण पालण सधार ।
अजपा जाप सीता सरूप, भगवत नमो भगवत भूप ।
अजपा जाप उणहार अेह, दातार नमो अणरूप देह ।
जीव हो अजंपा जाप जांण, असटग जोग सू हेत आण ।
सोइ जांणि जाप कहिजे सपूत, काइ पडे कूप मांही कपूत ।
सामि सा कांई छोडे सनेह, नारगी हूंति कांइ करे नेह ।
अलखनां विसारे उपराध, समंद्र मा डूबे काई वड़ा साध ।
अहकार छोड गति मांहि आव, परसि हो परसि परमेस पाव ।
देखि हो देखि घर मां दईव, जिम हुवे तुझ कल्याण जीव ।
परखि हो परिख प्रीतम पाथ, निरखि हो निरखि घट माहि नाथ ।
रामचन्द नमो हो नमो रूप, पिंड पिंड माहि जोति सरूप ।

---

१ कवण वणीयौ । २ सा ।

किस नगरी में अलख जगाते, कैसी भस्म चढ़ावो।।४।।
बूझूँ-साच साच-दो उत्तर, निरणे कर दरशावो।
कह 'मङ्गलगिरि' सुनलो अवधू, साची खोल बतावो।५।

उत्तर:-।। राग :- आशा।। नं.१४

साधो भाई! ऐसे भजन कमाऊँ।
साच कहूँ सब गुप्त न राखूँ, निरणेकर दरशाऊँ।। टेर।।
चन्द सरोधे भजन करूँ मैं, येही सरोधा लाऊँ।
सूर सरोधे व्यवहार करत हूँ, सुषमण घर में नाऊँ।।१।।
मिताहार मैं नित्य करता, प्राण समान मिलाऊँ।
सोहं शब्द धुनतार लगाके, पिच्छम दिशाको धाऊँ।।२।।
काया नगरी अलख जगाकर , अमृत भिक्षा पाऊँ।
अगम अखाडे तापूँ अबधू, आनन्द भस्म चढ़ाऊँ।।३।।
साच कही में पूछी सोई, सतगुरू भेद बताऊँ।
कह 'मङ्गलगिरि' सुनलो अबधू,या विध भजन कमाऊँ।४।

प्रश्न:-।। राग :- आशा।। नं.१५

अबधू कौन? नगर का वासी।
सतगुरू कौन-जप करता, किसके हो अभिल[illegible]
कैसा नाम तुम्हारा आदू, किनसे रहो[illegible]
कौन तुम्हारा प्रिय जगत् में, किस[illegible]ी विल[illegible]

KINEMASTER

गोरखवाणी

अके देश का अके पियाला गुरु बिना पावो नाही
वेदा मे वेद भजन का लेणा सतगुरु शरणे जाय ।।

आसन भरफुस पवना न रोको उन्मुन ध्यान लगाई ।
मेरूदण्ड ने सीधा करलो उलटा पवन घर लाय ।।

बिना पाव एक नारी नाचे गुरु बिन तबला बजाय ।
पग बिना पंथ मुख बिना मार्ग पल पल हंस उडाय ।।

अम्बर गाजे बिजली चमके चमके बिजल सवाई ।
भौर गुफा मे ~~भौरा~~ भौरा गाजे ओऽम महल के माही ।।

नौ दरवाजा खुला पडिया दसवा मे रस्त गुफाई ।
कतरक आगे केऊ पियाला सुणलो साया भाई ।।

अजब काया के बैठ झरोखे योग कला दरसाई ।
मच्छदर प्रताप जती गोरख बोले ~~गुप्त~~ गुप्त भजन ओलखाई

अके देश का अके पियाला गुरु बिन पावो नाही ।
वेदा मे वेद भजन का लेवो सतगुरु शरणे जाय ।।

गोरखवाणी

गोरखवाणी

मेहर मंडप नही छाया, हेली मारी अमर ज

सांत दांत का किला बनाया
उपर हंस ठहराया ।
बसोडो शहर उजड कर रालया,
उजड्या शहर बसाया ।।

जल बिच कवल, कवल बिच कलिया,
कलिया मे बाग लगाया ।
चांद सुरज का लिया सरोदा,
उलटे पवन घर लाया ।।

मन किया का जोगी आया,
अंग ~~भबू~~ भभुती रमाया ।
बिना पांव एक चलता देख्या,
जाके शीश पांव बिन काया ।।

माने मिलीया मछन्दर जोगी,
बिन बिन कर समझाया ।
अटल

भाईडा भजलो राम नाम गेला गम का ।
हीणा जपना जाप सबोध सुन का है वोजी ।

सिंमरू सारद माप बुद्धि दे दाता ।
घट सिमरू हिंगलाज उगम की बातां ।।

इला पिंगला सोध खेल सुखमण का ।
कुंभ कलश भर लाय मेट दी झंझा बांका ।।

तरबीनी तार लगाय तंदुरा तन का ।
वहां नरभे हो जाय मोरणा मन का ।।

सोबनी शिखरगढ़ देख अणगढ़ का ।
इला पिंगला सोध खेल सुखमण का ।।

गोरख जपिया जाप और कोई जपणा ।
[illegible] [illegible] के साथ कोय नहीं अपना ।।

मनुष्य को ब्रह्म प्राप्ति के लिए विषय -विकारों को त्याग कर इन्द्रियों को वश में करना चाहिए । वह ब्रह्म जीवात्मा से दूर नहीं । इस सत्यता का आभास करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । ब्रह्म प्राप्ति करने के लिए षट-चक्र को वश में करके शरीर में स्थित ब्रह्मरन्ध्र से सहसार कमल से अमृत टपकने के के कारण शीतलता होती है ।[1] लल्ला ने पूरक कुम्भक और रोचक योग प्रक्रियाओं की ओर भी संकेत किया है । जो जीव अहंकार को समाप्त करता है वही अभ्यास के द्वारा अपनी आत्मा में परमात्मा का भास पाता है । प्राणायम को अपना कर जीव अपने अन्त:करण में ही ब्रह्म से साक्षात्कार करता है । लल्ला ने अपनी योग तथा साधना में ओंकार को अधिक महत्त्व दिया । इनके अनुसार एक ही ओंकार मन्त्र सारे मन्त्रों के जप के समान है । ओंकार आदि भी है अन्त भी है । ओम के द्वारा ही लल्ला ने अपने शरीर को स्वच्छ बनाकर परम पद की उपलब्धि की । ओम के जप से ओम को हृदय में स्थान दे कर, लल्ला ने साधना की । लल्ला की साधना पद्धति अन्तर्जगत् की साधना है । वह कोरे अध्यात्मक और बौद्धिक चिंतन का प्रतिफलन नहीं . प्रेम संपृक्त योग का आत्माभ्यास है । वेदान्त और सूफी साधना पद्धतियों का अद्भूत् संगम है ।

<u>कश्मीरी भाषा</u>

शो वन चरिथ शशिकल वुजुम
प्राक्रथ हाजम पवन तूत्य
लोलकि नार वालिज बुजम
शोंकर लोबुम तमी सूत्य ।

---

1. शिबन कृष्ण रैणा, हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण सन्त काव्य, पृ०-96

वास्तविक रूप प्रकाशित होता है, मृत्यु पर जो दुःख होता है, वह भी प्रायः मोह का ही कारण होता है । इसी कारण ज्ञानी जन्म-मरण पर दुःख सुख का अनुभव नहीं करते ।[1]

सांसारिक पीड़ाओं से मुक्ति दिलाने वाला वही एक परमेश्वर है। ललद्यद ने अपने जीवन के प्रारम्भ से ही सांसारिक पीड़ा, यातना और कई कठोर संघर्ष सहे, परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान होने पर उसने संसार का मोह माया सारा कुछ त्याग दिया और एकान्त में अपने भगवान की भक्ति कर रहती । वह कहती है शरीर लोहार की खाल है जिसके अन्दर का प्रकाश बाहर आता है और ब्रह्म से मिलन होता है ।[2]यौगिक विचारधारा के अनुसार ही वे इसी शरीर में सूर्य और चन्द्रमा को विद्यमान मानती है । मानव का चित घोड़े के समान होता है जो आकाश में भटकता है और एक क्षण में कई हजार मीलों की कल्पना करता है । परन्तु चैतन्य रूपी लगाम से इसको वश में किया जाता है । तभी प्राण और अपान भी अपने नियन्त्रण में आते है । योगी अपनी यो..ग क्रिया से ही ब्रह्म का साक्षात्कार करताहै । ललद्यद ने पूरक, कुम्भक और रोचक योग प्रक्रियाओं की ओर भी संकेत किया है । जो जीव अहंकार को समाप्त करता है वह भगवान को प्राप्त करता है । ललद्यद ने ब्रह्माण्ड में ब्रह्म का साक्षात्कार किया और ज्ञान के अमृत से अपने को ः प्लावित किया ।

---

1. श्री राजानक भास्कराचार्य, लल्लेश्वरी वाक्यानि, पृ0-15
2. ग्रियर्सन, लल्लावाक्यानि, पृ0-25

"संतो गुरु - गम लहे सो ज्ञानी ।
अंतर प्रेम उजागर अनभे जाकी निश्चल बानी ।।
चंचल मारी निश्चल होई बेठा, निरमळ होई समाधि ।
शील संतोष रहे समधारण, वस्तु अगोचर लाधी ।।
नाभी बेठ गगन घर जावे, आठ पहोर आनंद ।
चले पाधरे पश्चिम मारग, मीलावे सुरज चंदा ।।
शशी, सुरमे सुर शशी में, अण सारे उलटावे ।
निरखे पल पल नुर निरन्तर, अनहद नाद बजावे ।।
रहे अडोला बोले अबोला, जाण पणा जल जाई ।
कहे रवि राम विरला संसारा, उलटा कालकुं खाई ।।"[70]

रविसाहब कृत दोहे के अंगों में गुरु महिमा विषयक अंग इस प्रकार हैं ....

(1) गुरु महात्म्य को अंग

(2) श्री गुरुदेव को अंग

(3) अथश्री गुरु विमुख को अंग

(4) अथ गुरु पारख को अंग

(5) सुगरा को अंग

(6) नुगरा को अंग

रविगीता तथा भाणगीता में भी उनकी गुरु भक्ति की निर्झरिणी प्रवाहित होकर गाती है ....

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माता रूपभवानी ने निर्वाण दशश्लोकी और वाक्य मंजरी में योग के सहजतम तरीकों की व्याख्या की है। भवानी साहिबा ने राजयोग को सर्वोच्च योग माना है।[1] इस राजयोग में ज्ञान और भक्ति का समावेश है, पीड़ादायी हठयोग नहीं। यह राजयोग कश्मीर के शैव-दर्शन का पोषण करता है। कीचड़ में रहकर कमल की तरह पवित्र रहने का रहस्य ही राजयोग है। रूपभवानी ने अपने वाखों में कुंडिलिनी योग का भी उल्लेख किया है। यहां मूलाधार चक्र शुद्धता का प्रतीक है। जिसके नीचे कुंडलिनी है। ईश्वर प्राप्ति में तुर्यातीत अवस्था आन्नददायी है।[2] षट्चक्र सिद्धी असंख्य कार्य करवा सकती है। ईश्वर महानंद स्वरूप है और उसका स्थान षट्टचक्र के मध्य है।[3] रूपभवानी के अनुसार योगसिद्धी और सिमरन से देव को प्राप्त किया जा सकता है।[4] भवानी साहिबा के अनुसार व्रत, सत्य, तत्वबोध एवं शुद्ध आचार ही वेद और योग का प्रमुख आधार है।

साधना पक्ष

कश्मीरी संतों का साहित्य गुरु की महिमा से भरा पड़ा है। रूपभवानी साहिबा ने भी अपने पूर्ववर्ती संतों की भांति गुरु को प्रमुख माना है। माता रूपभवानी के गुरु लल्लेश्वरी सहित पिता माधव जू दर थे। रूपभवानी गुरु को ज्ञान का प्रबल प्रकाश देने वाला मानती है। वही कुल का उद्धार करने वाला भी है, वही ब्रह्म है, वही गुरु है।[5] रूपभवानी के लिए गुरु का नाम अन्तर्मन से पवित्र और शुद्ध है। गुरु चाहे लल्लेश्वरी हो, शिव अथवा माधव हो, सभी एक समान हैं और परम ब्रह्म स्वरूप हैं।[6] भवानी साहिबा के अनुसार ईश्वर स्वयं आकर गुरु का महत्व समझा जाते हैं। इसी से गुरु की महानता का बोध होता है। इसी गुरु की कृपा से सत्य के तत्त्व ज्ञान की

---

1. पवित्र नेत्र पश्यत मुखी अन्तर्
बाहो बहु-दनाड़ी असंख्य कांमू कर्द्।
यिहुय् राज़-यूगी दाता पिता सुय।
सर्व कांख्या सु अर्थ पूरनी
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य तती परमगती ॥
रहस्योपदेश : पृष्ठ 4 (5)

2. शुद्ध युक्त-मूलादारी क्वण्डली मण्डली गौरी।
स्यद् अर्थ सूक्ष्मू सुष्पती चक्र विरक्त शान्तादारी
ईश्वरी तुर्यातीत परमानन्दी।
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य् तती परम .गती ॥
रहस्योपदेश : पृष्ठ 2 (2)

3. शयुम्-थान् वासी सर्वमध्यं
जिता सन्यासी ब्यन-बिन्दु-नांदी
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य तती परमगती ॥
रहस्योपदेश पृष्ठ 4(7)

4. रहे निशाना ईश्वर-सुन्दु नावा
कति आयाव्-तु कतु-सन् गव्।
समरियु-त सादियु तमि कज़ाव
दीव स्यत मुखी त सीव् करहास्।
रहस्योपदेशपृष्ठ 41(109)

5. युसुह ग्वर पिता सुय् छुह मोल्
सुह् इह् प्रबल् दीप-प्रकाश।
सुह् इह् सर्व क्वलस उदार् रवुन्
सुह् इह ईश्वर सुह छुह ग्वर् ॥
रहस्योपदेश : पृष्ठ 22 (48)

6. ओम ग्वर अन्तर् तय निर्मलम्
शद्धं अत्यन्त विद्याधरम्।
लल्-नाम लल् परमा ग्वरम्
शिव-माधव नाहं परं ब्रह्म सोहम् ॥
रहस्योपदेशः पृष्ठ 6 (1)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा ॥

आत्म ज्ञान निश्चय करे तौ लय मोक्ष निर्वान ॥
यह समजी चम्पा कहे साधनते सिद्ध जान ॥
जीव समावे ब्रह्म में वहुर न विसरे कोइ ॥
ब्रह्म जीव एकै भये वहुर न दूजो होइ ॥

चौपाई ॥

आसन मुद्रा कुंभक साधे ॥ वार वार पूरक को साधे ॥ २६३
प्राण अपान एक है जाई ॥ स्थिर के श्वास न विसरे कोई ॥
नाद विन्द एककर ल्यावे ॥ मन पवना घट माहि समावे २६४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा तत्वमें होवे लीन ॥ जैसे जलमें विचरे मीन ॥
जैसे पानी नून समावे ॥ जैसे जलमे दूध मिलावे ॥ २६५
त्युं जीवात्मा प्रमात्मा माहीं ॥ होवे लीन देह सुध नाहीं ॥
शीतउष्णकी गम नहि कोई ॥ वन वस्ती जाको समहोई २६६
निजानन्द पद माहि समावे ॥ वाको नाम समाधि कहावे ॥

सोरठा

वे भये ब्रह्म में लीन हद छण्ड वेहद हुवे भूलगये गुण तीन ॥
सकल मटाई वासना भये जोति में लीन ॥

चौपाई ॥

मनपवन भमरगुफा माहि समाबे ॥ चम्पा यासो समाधिकहावे॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

11:04
Vo)) 4G+ LTE1

जग से रहे उदास मरहमी[1] अंत के।
अरे हाँ पलटू ऐसी रहनि रहै सो लच्छन संत के ॥
(भाग २, अरिल १३)

संत संत सब बड़े है, पलटू कोऊ न छोट।
आतम-दरसी मिहीं है, और चाउर सब मोट ॥
(भाग ३, साखी १)

गगन कि धुनि जो आनई, सोई गुरु मेरा।
वह मेरा सिरताज है, मैं वा का चेरा ॥
सुन में नगर बसावई, सूतत भे जागै।
जल मे अगिन छपावई, संग्रह में त्यागै ॥
जंत्र बिना जन्त्री बजै, रसना बिनु गावै।
सोहं सबद अलापि कै, मन को समुझावै ॥
*सुरति डोर अमृत भरै, जहँ कूप उरधमुख।
उलटै कमल हि गगन में, तब मिलै परम सुख ॥
भजन अखंडित लागई, जस तेल कि धारा।
पलटूदास दंडौत करि, तेहि बारम्बारा ॥
(भाग ३, शब्द १)

बूझि विचारि गुरु कीजिये, जो कर्म से न्यारा।
कर्म-बन्ध हरि दूरि है, बूड़ह मँझधारा ॥
काम क्रोध जिनके नहीं, नहि भूख पियासा।
लोभ मोह एको नहीं, नहि जग की आसा ॥

---

१. भेदी।

*कबीर साहिब भी कहते हैं कि आन्तरिक शून्य में नाम रूपी अमृत का उलटा है, परन्तु कोई विरले गुरमुख या साधू उस अमृत को पी सकते हैं। निगुरे इस अमृत को पी सकते :

गगन मंडल बिच उर्धमुख कुइआ,
गुरमुख साधू भर भर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन पीया,
जा के हिरदे अंधियारा है। (सन्तों की बानी, २

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:44
Vo)) 4G+ LTE1

में शिव तत्त्व के साथ लय हो जाता है। इसलिए इस योग साधना को लययोग कहा जाता है इस साधन में कुंडलिनी की ऊर्ध्व गति होने पर अंततः सभी भूत तत्त्वों, अन्य पिण्डगत सृष्टि तत्त्वों का कुंडलिनी के सहस्रार पर परमशिव चैतन्य में लय हो जाता है। इसलिए इसे लययोग कहते हैं।'' [10]

हठयोग : हठयोग का वर्णन प्रमुख रूप से प्राण निरोध साधना के रूप में किया गया है। गोरखनाथ द्वारा वर्णन किए गए हठयोग साधना में प्रथम शरीर साधना को महत्त्व दिया गया है। प्राणायाम के अभ्यास से वायु को स्थिर किया जाता है। हठयोग शब्द का अर्थ 'ह' मतलब सूर्य और 'ठ' मतलब चन्द्र है। इस प्रकार सूर्य और चन्द्र के योग को ही हठयोग कहते हैं। सूर्य को इड़ा और चन्द्र को पिंगला माना जाता है—

''हकारः कथितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।

सूर्यचन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निगधते॥'' [11]

प्राणायाम से प्राण वायु और अपान वायु का निरोध करना ही हठयोग है। 'नाथ संप्रदाय' में हजारी प्रसाद द्विवेदी वर्णन करते हैं—''इड़ा और पिंगला नाड़ियों को रोककर सुषुम्ना मार्ग में प्राण वायु को संचारित करने को हठयोग कहते हैं। इसका इस प्रकार अभ्यास किया जाता था जिससे हठात् सिद्धि मिलने की आशा की जाती थी।'' [12]

हठयोग की साधना में तीन तत्त्वों को संयमित करने पर बल दिया गया है, वे हैं—मन, प्राण और शुक्र। इसमें माना जाता है कि इनमें से किसी एक को नियंत्रित करने से बाकी दो नियंत्रित हो जाते हैं। इसलिए इस साधना में प्राणायाम के अभ्यास से वायु को स्थिर किया जाता है। हठयोग की साधना करने के लिए साधक को योग की दृष्टि से शरीर की जानकारी होना आवश्यक है। उसमें छह चक्र, सोलह आधार, कुंडलिनी आदि का समावेश होता है। अग्नि चक्र में स्थित कुंडलिनी शक्ति को जागृत करके सहस्रार में शिव तत्त्व के साथ उसकी एकता स्थापित करना हठयोग का लक्ष्य है। ऐसा करने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

मुखेनाच्छाद्य तद् द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥'' [34]

योग शास्त्र के अनुसार मनुष्य के शरीर में परम शक्तिशाली तीन तत्त्व होते हैं—बिन्दु, मन और प्राण। ये तीनों ही तत्त्व अतिशय चंचल होते हैं। इनकी चंचलता के कारण ही मनुष्य इनका यथोचित उपयोग नहीं कर पाता। गोरखनाथ के हठयोग में इन तीनों को नियंत्रित करने का उपदेश दिया गया है और उसके लिए साधना बतायी गयी है। गोरखनाथ के अनुसार बिन्दु (शुक्र) को योग के अभ्यास द्वारा अगर उर्ध्वमुखी किया जाए तो वायु और मन को आसानी से स्थिर किया जा सकता है। इस संदर्भ में अमरौघ शासन का संकेत करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी 'नाथ संप्रदाय' में लिखते हैं—''मेरूदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग है, जिसे पश्चिम लिंग कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रज स्खलन का मार्ग है। यही काम विषहर और निरंजन का स्थान है। वीर्यस्थल की दो अवस्थाएँ होती हैं। इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलयकाल और विषकाल हैं। इन दो अवस्थाओं में जो आनंद होता है, वह घातक है। एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरे का विषहर। तीसरी अवस्था नानाभाव-विनिर्मुक्त सहजानंद की अवस्था है, इसमें बिन्दु उर्ध्वमुख होकर ऊपर उठता है तब यह सहज समाधि प्राप्त होती है, जिसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं।'' [35]

बिन्दु को उर्ध्वमुख करने के लिए ब्रह्मचर्य और प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। इस अभ्यास के लिए नाड़ियों की शुद्धि आवश्यक होती है। नाड़ियों को प्रधानत: दो भागों में विभक्त किया गया है—

''इडा वामे स्थिता भागे पिंगला दक्षिणे स्थिता।

सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वाम चक्षुषि ॥'' [36]

दक्षिणांग में व्याप्त नाड़ियाँ सूर्य का अंग है और वामभाग वाली चन्द्रमा के अंग। इन दोनों के बीच सुषुम्ना है। जब योगी अभ्यास से चन्द्र और सूर्य मार्ग को बंद कर देता है तब उनमें बहने

वाली वायु शक्ति संयमित होकर योनिकर के मूल में स्थित सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्म नाड़ी के मुख को खुला पाकर उस मार्ग से ऊपर रहती है।

''षोडस नाड़ी चन्द्र प्रकास्या, द्वादश नाड़ी मांनं।

सहंस्र नाड़ी प्रांण का मेला, जहां असंष कला सिव थांनां॥''[43]

गोरखनाथ बताते हैं कि इस परमतत्त्व का साक्षात्कार इसी शरीर में नाद रूप में होता है। योगी को इस अनाहत् नाद का साक्षात्कार करना आवश्यक माना है। कभी भंग न होने वाले अनाहत नाद को सुनना चाहिए—

''बूझो रे ब्रंभ गियानी अनहद् नाद अभंगा।''

इस प्रकार का उपदेश गोरखनाथ योगी को देते हैं। यह अनाहत नाद कब सुनाई देता है, इसका वर्णन गोरखनाथ करते हैं—जब योगी भीतर की वायु को ब्रह्माण्ड में ले जाकर द्वादशांगुल पवन का आयाम कर उन्मनावस्था में रहता है। जब वायु सुषुम्ना में गरजती हुई प्रवेश करती है, तब रात-दिन वायु से ध्वनि निकलती है। यह अनाहत नाद योगी को सुनना चाहिए। नाथों ने इस परमतत्त्व को 'निरंजन' भी कहा है। निरंजन की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए, उसका साधन भी गोरखनाथ बताते हैं। इड़ा और पिंगला नाड़ियों से प्राण साधना करनी चाहिए। इड़ा नाड़ी को सोधकर पिंगला में मिला देना चाहिए। फिर सुषुम्ना मार्ग से वायु को आकाश की ओर बढ़ा देना चाहिए। ऐसा करने से निरंजन की सिद्धि हो जाती है—

''इली सोधि धरि प्यंगुली पूरी। सुषमनी चढ़ असमांनं।

मछिंद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या। निरंजन सिधि नैं स्थानं॥''[44]

इस प्रकार गोरखनाथ के अनुसार परमतत्त्व की प्राप्ति तब होती है जब कुंडलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से गगन शिखर या सहस्रार में पहुँचती है। शिव तत्त्व से उसका मिलन होता है। इसे ही नाथपंथी योग साधना में जीव की शिव पद की प्राप्ति या पिंड पद का परमपद में समरसीकरण कहते हैं। यही नाथों की योग साधना का चरम लक्ष्य है। नाथयोग के लक्ष्य के बारे में डॉ० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय

लिखते हैं—''नाथ लोग निरंजन निराकार सत्-असत् विवर्जित नाथतत्त्व का साक्षात्कार या नाथ रूप से अवस्थान अपना मुख्य लक्ष्य मानते हैं। इसे ही दूसरे शब्दों में पिंडपद को परमपद या ब्रह्मपद में समरसीकरण भी कहते हैं।''[45]

पिण्ड-ब्रह्माण्ड का ज्ञान

नाथपंथी योग साधना में साधना के लिए परिपक्व शरीर की आवश्यकता बताई है। साधक को योग की दृष्टि से शरीर रचना का ज्ञान होना आवश्यक माना गया है। गोरखनाथ के अनुसार मनुष्य का शरीर ही सभी रहस्यों का बीज है। इसी पिंड में पिंड के परमपद में समरसीकरण का अर्थात् पिंड में ही ब्रह्मांड का साक्षात्कार किया जाता है। योग साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए पिंड में स्थित षट्चक्र, सोलह आधार, कुंडलिनी शक्ति आदि पिंडगत रहस्यों का ज्ञान होना

20:26

४—निरगुन अरूप अनाम अनूपम जा में गुन का है लोप भयोरी
माया अधिक आनन्द कियो है तो सबही में काम भरो री
जग में.......

१—शिव और शक्ति रचना करत हैं काम को वश में कियो री
जग में विचरत चिंता को जोड़ी
२—ज्ञान का भान प्रकाश करे और शक्ति करे विस्तारी
प्रान अपान मेल करें जठरागनी उठे चिंगारी
३—कुन्द इन्द जोर करें तब लाज का कांज सरे ना
प्रेम की आग भड़क उठे जब रूप करे चित चोरी
४—भूभवः आकर्षण करें तब ज्ञान किसी को रहे ना
उदान प्रान उठे चिंगारी जीव करे तनधारी
५—शिव और शक्ति विलास करत हैं एक से एक करजोरी
दसम दुआर खुले त्रिवेणी कुण्डलिणी चढ़हत अटारी
६—ऊँचा महल कंवल हजारा सेज बिछी सीयुन की
चन्द्र शिखर त्रिकुटी विराजत शिव शक्ति की जोड़ी
७—कारण सूक्ष्म स्थूल देह धर भक्त हेत तन धारी
कहें खुशीराम विन गुरु सूरत कस भवः पार भयोरी

कुन्द इन्द सम देह उमा रमण इन्द्री दमण
जाहि दीन पर नेह करो मेल मरदन मयण

The *Muladhar* and *Swadhisthan* centres are North aud South poles of Iron rod and Horse-shoe magnet of *Shiva* and *Shakti*, and *Kundalini Shakti* is the magnetic field between North (male) and South (female) poles which neutralize and subside the tempest of lust, giving out the spark of *Udana Prana* (*Jiva*) at the point of Inertia

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:28

and Dot, *Bindi* stands for spark of Fire and Star in *Pinda* and *Brahmand*. The Sun of Knowledge sheds its lustre on Moon of *Anand* infusing consciousness (*Chit*) in this concave lens and its light converges into a focus of star, 1. *Parnava Bind* at *Ajne*. 2. *Jiva Ataman* at heart, 3. point of Inertia, tenth secret door at Tirbeni, imperceptible confluence of *Ida and Pingla* with *Sushumna*, in human body between *Muladhar* and *Swadhishthan* centres.

सुरत शब्द एक अंग कर देखो विमल वहार !
मद्ध सुषमना के तिल वसे तिल में जोत अपार !!
कर नैना दिदार वदन विच पियारा है !
नौ दरवाजे प्रगट ही दिखें दसवाँ कर दिया बन्द
कुलफ़ जड़ तारा है ! कर नैना दिदार बदन विच तारा है

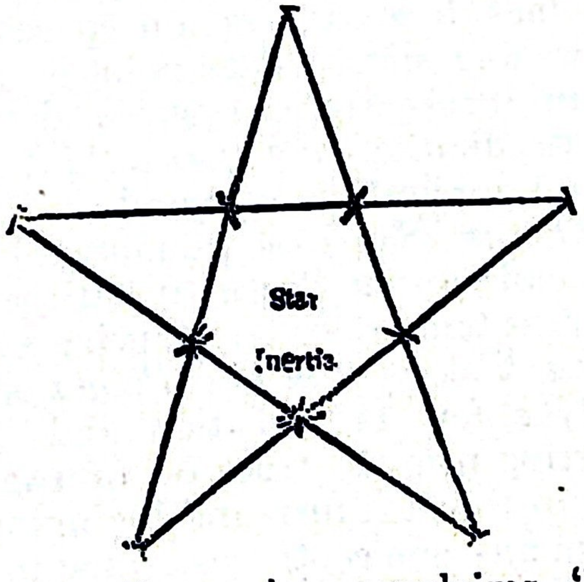

'Star', in Theosophy, proclaims, 'Behold, I come quickly.' It is the secret charm of Free Masonry. It presents Metaphysical formulae

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

tion in sacrificial fire of *Samana* kindled by Insight on the collision of *Prana* and *Apana Vayu* at this jewel of *Kundalini* and lotus of navel, *Manipurak.* It is the Sound-generator, for vocal purpose and of *Anhad Shabd* for Meditation and hearth of *Jathra-agni* to sustain life.

ANAHAT. The lope-dup beats of heart are in tune with *Dhun-Atmic*, Eternal sound of *Om*, *Ra-ma*, bisyllable, *Ajapa-Jap*, for the concentration and purification of thoughts in the recess of heart, to realize *Nirgun—Nishchal Brahm* in *Sahaj-Samadhi* of waking state. *Sanyam* concentration at heart purifies thought impurities for the realization of *Atman*, Real Self. *Anahat* is the predominant and preliminary centre of Devotional meditation and for suppression of *Ahankar*.

अजपा जाप तु जपरे भाई, छुट जाये दरपन को काई।
आँख न मूँदूँ, कान न रोदूँ काया कष्ट न धारूँ
खुले नैन हंसे हंस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ
संतो सहज समाध भली

दिल का हुजरा साफ कर जानाँ के आने के लिये
ध्यान गैरों का उठा उस को बिठाने के लिये
काबये दिल की महराब में सुन गौर से
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये

VISHUDHA centre is at throat near Thyroid glands which contain Iodine to neutralize poison and promote enterprising activities and tone the system. *Shivaji* and *Miran Bai* drank off poison and neutralized it at *Vishudha*. Transplantation of Thyroid glands rejuvinates

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

यह जानो तब ही हम जागे, जब मन विषयों से खुद भागे ।।
जग कर संत शरण में जावो, दिल से राम नाम प्रिय गावो !
पूरण शान्ति हृदय में पावो, मिट जायें भय संकट सारे !!

॥ जाग री मेरी कुण्डलिनी जाग री ॥

क्या पड़ी सोवे काम किरोध में, उठ यतन में लाग री ॥
सोवत सोवत उमरें गुजर गईं, तेरी गठरी में इक लाल री ।
जब यह लाल नजर में आवे, कटत भर्म जंजाल री ॥
अगने परनव खड़ी लखावे हृदय कँवल उज्यार री ।
आवत जावत स्वाँस लखत है, विघुधा सोहम् गाव री ॥
नाभि कँवल में होम रचो है, कामना की आहूत री ।
प्राण अपान मेल कियो है, जठराग्नी प्रचण्ड री ॥
स्वाधिष्ठान पर ठहर जात है, कैसे उतरे भव पार री ।
ईड़ा पिंगला पड़ो झूलना, शुशमना को खोज री ॥
मूलाधार तक पींग बढ़ा कर, स्वाधिष्ठान को लौट री ।
दशमद्वार लखत मध्य में, अन्तर दृष्ठी बींध लियो री ॥
सहस्र दल पर सेज पिया की, कुँडलिनी चढ़त अटारी ।
चन्द्र शिषर से अमृत बरसे, शुशमना की राह री ॥
पीकर भोला अगने बैठे, तैंने लखचौरासी योनी धारी ।
मानस तनका लाभ यही है, अपना आपा भसमी कर री ॥
निज स्वरूप का निश्चय करके, निश्चल चंचल भेद खुलोरी ।
खुशी है निश्चल राम है चंचल, आप ही दोनों खेल रचोरी ॥
पहला निरगुन दूजा सरगुन, द्रिष्टा कृता रूप धरो री ।
ब्रह्म असंगा ईश तिरंगा, त्रिगुनात्मिक माया बिखरी ॥
शिव शक्ति मिल संसार रचो है, तू इस भूलभुलैयाँ आन पड़ोरी ।
जीव ब्रह्म का छोड़ झमेला, क्यों न अपने धाम डटे री ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे शिवनारायण ! मैंने तुम्हें गुरु के स्वरूप के विषय में बताया। ध्यान साधना में सद्गुरु का क्या महत्त्व है इस विषय में साफ साफ समझाया। अब मैं ध्यान साधना के रहस्य को बता रहा हूँ। शरीर के नौ दरवाजों में जो नौ नाड़िया लगी हुई है। उस का बंधन किस प्रकार होगा उसे मैं बता रहा हूँ।

चौपाई -

बन्धन नौ नाड़ी जे होई ।
अब सुन शिवनारायण सोई ।।
दम को मार घाट सब मारे।
तबहि मुक्ति की राह संवारे ।।
मारत घाट बाट जे प्राणी।
तब पावत है वस्तु निज आनी ।।
सुरति संभारि द्वादश स्थाना।
मुक्ति पन्थ के पावत ज्ञाना।। 49-52।।

हे शिवनारायण ! नौ नाड़ी का बन्धन जिस प्रकार होगा उस रहस्य को बताता हूँ। मानव शरीर में बारह द्वार हैं। 3 गुप्त हैं और 9 प्रकट हैं। नाक के छिद्र-2 । आँख-2। कान-2। मुहँ - 1 | लिंग एवं गुदा- 2। इस प्रकार नौ दरवाजे बाहर की ओर खुलते हैं। इन नौ दरवाजे के मुँह पर एक-एक नाड़ी लगी हुई है।

1. नाक के वाँये छिद्र में इंगला। 2. दाँया छिद्र में पिंगला । 3. वाँयी आँख में गाँधारी। 4. दाँयी आँख में हस्त जिह्वा । 5. वाँया कान में यशस्वनी। 6. दाँया कान मे-पूषा। 7. मुँह में अलम्बुषा । 8. लिंग में- कुहू । 9. गुदा में शंखिनी ।

युक्ति से सभी दरवाजों को बन्द करना पड़ता है (यह गुरु गम्य है) फिर

00:33

(संत शिवनारायण स्वामी कृत)

अगम ज्ञानी ब्रह्ममूर्ति, कर्म सर्व विवर्जितम्।

विमल वाणी रूचिर शोभा, सत्य सोई दिगम्बरम् ॥ 1॥

विभूतिभूषण ज्योति लौके, पद्मासन राजतम्।

उन्मुनी में लागि तारी, परम सोई सन्यासनम्॥2॥

जटा जूटि ज्योति जगमग, गंगा यमुना निवासनम्।

गगन गुफा में रहत उन्मुनी, यह लक्षण सन्यासनम् ॥ 3॥

चन्द्र-सूर्य बाँधे सुर-साधे विकसित कमल सोहं चढ़ग।।

त्रिकुटी आसन शून्य वासन सत्य सोई अवधूतम् ॥ 4॥

वैराग्य ब्रह्म का भेद जाने सहज शून्य निवासनम्।

ज्ञान ध्यान न नियम पूजा सो वैरागी साहेबंग ॥ 5॥

सत्य कंठी जाप मुद्रा प्रेम सेहली हिय गलंग।

तत्वता के तिलक शशि दिये, ज्योति झिलमिल नित नरंग ॥6॥

ज्ञान गुदरी मौज बनी, बैराग्य रूप बीच राजतंग।।

नयन भरि भरि अधर परखे, कोटि चन्द्र सुधा झरंग ॥7॥

वैराग्य रूप ओंकार अद्भूत, परमपद पर चित्त धरंग ।।

शिवनारायण अस सहे नर, पाप-पुण्य तजि भव तरंग ॥8॥

भावार्थ:- ओहं, मोहं, क्षर, अक्षर, परा-पश्यन्ति से परे

सिपाही मन दूर खेलन मत जैये

संत शिवनारायण

सिपाही मन दूर खेलन मत जैये॥टैक॥
घट ही में गंगा घट ही में जमुना, तेहि बिच
बैठि नहैये।
अछेहो बिरिछ की शीतल जुड़ छहिया, तेहि तरे
बैठि नहैये॥
मात-पिता तेरे घट ही में, निति उठि दरसन
पैये।
शिव नारायन कहि समुझावे, गुरु के सबद
हिये कैये॥

स्रोत :

पुस्तक : संत काव्य-धारा (पृष्ठ 303) **संपादक** : परशुराम चतुर्वेदी
रचनाकार : संत शिवनारायण **प्रकाशन** : किताब महल, इलाहाबाद
संस्करण : 1981

किया। मन मत लाई=एकमत हो गई। देस चंद्रबार=ब्रह्मांड का वह स्थान जहाँ से अमृत-स्राव होता है। संत शिवनारायण के जन्म-स्थान का नाम भी चंद्रबार है।

अनाहूत-श्रवण (६)

वृन्दाबन कान्हा मुरली बजाई ॥धुवा॥
जो जैसहि तैसहि उठि धाई, कुल की लाज गंवाई ॥१॥
जो न गई सो तो भई है बावरी, समुझि समुझि पछिताई ॥२॥
गौवन के मुख नेन बसत है, बछवा पियत न गाई ॥३॥
शिवनारायन श्रवण सबद सुनि, पवन रहत अलसाई ॥४॥

गौवन...बसत है=गायें चरते समय अपने मुख की घास मुख में ही लिए रह गई।

विरह (७)

गगन तार गनत गइ रतिआ ॥टेक॥
गगन गहागह अनहद बाजत, बरसत अमृत धार।
जो जन पीवै सोइ जन जीवै, मान गुमान हकार किरतिआ ॥१॥

गगन बीच भरि मकर तार धरि, चढ़ि गए चतुर सुजान।
अजपा जाप जाहिर भयो जबते, बिसरि गये दारा सुत नतिआ ॥२॥
करनी काम किए जग जबते, करता तीनि सुभाव।
इंगला पिंगला सुषमना सुरते, कटि गए काल कराल कुमतिआ ॥३॥

पिय परदेस उदेस न पावों, पिय बेलमे केहि भाव।
का करौं लोभी पिया जैसो रहि गयो, राखि पराई थतिया ॥४॥
जो पिय पावों अंक भरि लावों, निज परतीत बढ़ाय।
तबहीं सुहागिनी प्रान पुरुषकी, चढ़ि मैदान लड़ी सुरा छतिआ ॥५॥

जो आया सो जात न देखा, कहां वार कहां पार।
जनमत मरत हाट एक देखा, बकता सांच झूठ दुइ बतिआ ॥६॥
बेद पुरान बरन बहु बरनत, भिन भिन करि भाग।
सो सुनि भूले मुरुख गंवारा, भटकत फिरहिं जगत भलिमंतिआ ॥७॥

केहु नाहिं हीत बंधु एहि जगमें, सभै बिराना लोग।
जात न बनै अकेला जाना, खोजत मिलै न केहु संगतिआ ॥८॥

शीवनरायन सुरति निरंतर, निरखि आपनो लीन्ह।
बैठ तखत अमल करि अपना, कहि दिन चलहु मुक्ति की गतिआ ॥९॥
गगन तार गनत गइ रतिआ ॥

तार=ताराओं को। मकतार=बादले का कामदानी का तार। नतिआ=पोता। उदेस=पता। बेलमे=रुके। अमल=अधिकार।

शब्दानुवाद

शुद्धयोक्त=शुद्ध संकल्प के साथ ; **गौरी मण्डली**=सफेद रंग तथा गोलाकार ; **कुण्डली**=कुण्डलिनी चक्र को ; **मूलाधारी**=मूलाधार से जाग्रत कराके (और) ; **संदं अरथं**=सही पारमार्थिक कामना से ; **सूख्मं सोष्पती**= जाग्रति, स्वप्न, और सुषुप्ति के सूक्ष्म अभ्यास से ; **ऱखूरं विरख्त**=मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञाचक्र अथवा नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु और भ्रूमध्य, इन छः चक्रों से विरक्त होकर; **शान्ताधारी** =शान्त आधार का स्थान प्राप्त होता है। **तोरियातीत ईश्वरी**=जागृत, स्वप्न और सुषप्ति इन तीनों के ऊपर ईश्वर-तत्त्व की ; **नेतिसत्तस्थी**=जो ईश्वर अवस्था परमार्थ अथवा आध्यात्म के वास्तविक स्वरूप में संलग्न — है ; **परमानन्दी**=यही अपार आनन्द को देने वाला है ; **अन्तरमोखी**=इस प्रकार के ईश्वर की सत्ता को जानने के उपरान्त जो भी साधक चिन्तन शक्ति से ; **द्रेष्ठी** (इस प्रकार की) दृष्टि (नज़र) प्राप्त करता है ; **परमंगती** =ऊँची अवस्था के मोक्ष की ; **रहस्य**=गहराई को ; **तती**=वहीं उसी अवस्था में प्राप्त करता है ॥२॥

व्याख्या

प्रथम श्लोक में सिद्धा-भवानी ने मनन चिन्तन के द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखाया है। वस्तुत: जो मुक्ति चिन्तन से प्राप्त होती है वही मुक्ति योग-मार्ग से भी प्राप्त हो सकती है। इसी आशय को स्पष्ट करती हुई श्री भवानी कहती हैं कि योग-मार्ग में मनुष्य निरन्तर अभ्यास के द्वारा अपनी चेतना को छ: स्थानों, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनहत विशुद्धि और अज्ञाचक्र (इनको क्रमश: नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य और सहस्रार कहते हैं) में पहुँचाकर, उस अलौकिक प्रकाश का साक्षात्कार करता है। कुण्डलिनी शक्ति का निवास मूलाधार (रीढ़ की हड्डी के ठीक नीचे) में होता है, इसका तेज अपार है, कुण्डलिनी का स्वरूप गौर (सफेद) है और आकार मण्डलाकार (गोल) है। जब योगी प्राणायाम के माध्यम से मन को स्थिर करके अचल और अटल होकर

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

बैठता है तो धीरे-धीरे यह महाशक्ति जागृत होती है। कुण्डलिनी को जागृत करने के उपरान्त दो अवस्थाएँ बनती हैं **प्रथम** :— जगत के व्यर्थ प्रलोभनों में पड़कर (अर्थात् कामिनी-कंचन—"Lust and Gold" के फेर में पड़कर) इसका स्वाभाविक प्रवाह केवल मनुष्य के जीव-भाव में ही सीमित रहता है अत: सीमित (Limit) अवस्था में ही घूम सकता है, इसके आगे जाना असम्भव हो जाता है। **द्वितीय** :—मुक्ति को चाहने वाला योगी इस शक्ति के सहारे एवं अभ्यास के द्वारा कालातीत होकर "अकुल" बनता है।

इस कुण्डलिनी शक्ति का बायाँ कुण्डल[1] (बाली) इला (इड़ा) है और दाहिना कुण्डल पिंगला है। इन दो कुण्डलों के बीच सुषुम्ना[2]-नाड़ी का प्रवाह है। सुषुम्ना नाड़ी के अतिरिक्त सूक्ष्मतम (बारीक या महीन) चित्रिणी नाड़ी से होकर ही कुण्डलिनी-शक्ति का मार्ग प्रवाह-शील[3] बनता है। शैव-दर्शन के अनुसार कुण्डलिनी को "शिव स्वरूप निवासिनी" कहा गया है और इसी से समस्त विश्व-चेतना का धन्धा चलता है।

पड़ती है और न उसके लिए मुख से मंत्र का ही उच्चारण करना आवश्यक होता है, **आसा नं**=किसी प्रकार की आशा इसके मन में नहीं रहती है ; **गुत्री नं बाशी**=इसके लिए अपने गोत्र में रहना आवश्यक नहीं रहता है ; **नं कुली नं कत्यं**=इस साधक का न तो कोई कुल (वंश) होता है और न उसे बर्हिपूजा आदि ही करनी पड़ती है ; **शेंयुम् थानं वासी**=यह सदा ही आज्ञा-चक्र में निवास करता है, अर्थात् सहस्रार में ध्यान मग्न होकर निवास करता है ; **आदि सर्व मध्यम्**=यही कारण है वह सब ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत रहता है, **जिता सांज्यासी**=इस प्रकार का यह जितात्मा साधक, **बेन्दं नादी** =नाद और बिन्दु के ; **नं बेंउन**=अर्थात् अभेद स्वरूप से नाद-बिन्दु में निवास करता है ।।७।।

(अन्तिम पंक्ति का अर्थ पहले ही दिया जा चुका है ।)

व्याख्या

यह मुक्तात्मा साधक सांसारिक दिखावे के कारण न तो रुद्राक्ष माला ही धारण करता है न ही मुख से किसी मंत्र का उच्चारण करता है । इसके लिए किसी सम्प्रदाय (Cult) में अथवा किसी प्रकार के गोत्र-क्रम में रहना आवश्यक नहीं रहता । वह, माया के बन्धन से मुक्त साधक, पूर्ण-स्वातंत्र्य में रहता है । इस साधक को अपने कुल के कर्मों का पालन करना आवश्यक नहीं होता है क्योंकि वह सदा आत्मानन्द में विहार करता रहता है । वह साधक अपनी सारी चेतना को नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु और भ्रूमध्य के ऊपर लेकर, ब्रह्मरन्ध्र में सदा परमब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द में मग्न रहता है । इस प्रकार से यह योगी प्राणायाम (श्वास-प्रश्वास) की सत्ता का विजेता बनकर अलौकिक आनन्द का स्वाद चखता है ।

यथार्थ में कुण्डलिनी शक्ति के प्रादुर्भाव होने पर, एक प्रकार का वेग उत्पन्न होता है, उसका जो प्रथम स्फोट (Explosion) होता है उसे 'नाद' कहते हैं । नाद से प्रकाश का विस्तार होता है अत: प्रकाश के इस प्रकट-रूप को बिन्दु कहते हैं । योग-शास्त्र के

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

अनुसार नाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं— (क) महानाद, (ख) नादान्त, (ग) निरोधिनी । बिन्दु के भी तीन भेद हैं—(क) इच्छा, (ख) ज्ञान, (ग) क्रिया । सिद्धा-भवानी के "**शेंयुम् थान**" (छटवें स्थान पर) कहने का तात्पर्य नाद-बिन्दु भी हो सकता है और उनके कथन का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि साधक आत्मा की चेतना को (१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्टान, (३) मणिपूर, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध, (६) आज्ञाचक्र के ऊपर ले जाकर सदा ब्रह्मरन्ध्र में निवास करता है । इस प्रकार की अलौकिक दृष्टि के सम्पर्क से मुक्तात्मा साधक निर्वाण के रहस्य को प्राप्त करता है ।।७।।

अम्रेत्=अमृत ; **नदी**=नदी में ; **संप्रीता**=तृप्त कराके ; (तथा) **अनीख्**= अनन्त अथवा अनेक ; **प्रवाही**=प्रवाहशील ; **समंनय**=समरसता अथवा भेद रहित रस को ; **षोडशचन्द्र कल**=सोलहवीं चन्द्र-कला में विलीन होता है ; अर्थात् अमावस्या की पन्द्रह और पूर्णिमा की एक कला को प्राप्त करके षोडशकला से पूर्ण होता है ; **स पण्डिता**=यही साधक वास्तव में सही पण्डित है ; **समदंर्शग्यंनी**=यह सब प्राणीमात्र में समान दृष्टि रखता है ; **अरचनीदीवं**=यही सही अर्थों में पूजा करने के योग्य देवता है, अर्थात् मन, बुद्धि और अहंकार से सर्वथा शुद्ध होता है ; **तोत्री**=यही वास्तव में स्तोत्र का गायन एवं ; **सथ् तवं पांठि**=सत्यता से स्तवण कर सकता है ; (अर्थ इस प्रकार से भी स्पष्ट हो सकता है—यह साधक तल्लीन होकर समाधि के अखण्ड आनन्द में स्पष्ट रूप से सात स्वरों का गायन करता है ।) **सर्वत्रं जगद् ग्वरू**=यही साधक प्रत्यक्ष रूप में समस्त जगत को मोक्ष का मार्ग बताने वाला गुरु है ; **सीवा अनन्त पूजनी एंक**=इस प्रकार का साधक लाखों में एक होता है जो वास्तव में सारे संसार में अपार सत्कार और पूजा के योग्य होता है ॥१०॥

व्याख्या

ऐसा साधक साक्षात् ज्ञानरूपी वेद-वाक्य के अर्थ को अमृत रूपी नदी में तृप्त कराके तथा अनेक प्रकार की (सर्वव्यापी) प्रवाहशील षोडश कलाओं का समन्वय करके अन्ततः अमा-कला और पूर्णिमा-कला को आत्मसात् करता है । कथन का अभिप्राय है :—वेद-वाक्य अनन्त है और मतमतान्तरों के कारण उनके (वैदिक ऋचाओं के) अर्थ, भाष्य, टीकाओं और टिप्पणियों में बड़ी विभिन्नता (फर्क) दिखाई देती है, जिससे साधारण व्यक्ति बड़ी भ्रान्ति में पड़ जाता है । परन्तु इस तत्त्ववेत्ता (Who has realised his self) साधक के लिए जब भिन्न-भिन्न प्रवाहपूर्ण ज्ञान-गंगाएँ अभिषेक के लिए आतीं हैं तो यह साधक अपनी निर्द्वन्द (Non-dual) दृष्टि से उनकी सारपूर्ण बातों को ग्रहण करके निस्सार तथ्यों को फेंक देता है । अतः उनका अनेकाकार मिटकर ऐक्याकार बन

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

उठता है । इस प्रकार से भी अर्थ संभव हो सकता है :—"केवल शब्दवादी 'ब्रह्म' के कथन से मुक्ति की कामना कभी भी सम्भव नहीं हो सकती है । अपितु जब शब्द (शिव) और अर्थ (शक्ति), इन दोनों ही तत्त्वों का सम्मेलन होता है तब अवश्य ही अमृत-पूर्ण नदी का आविर्भाव होता है । तभी तो अमाकला (पन्द्रह) और पूर्णिमा कला (सोलह) का समन्वय होता है । अमाकला—"**अमा-पूर्णकलशहस्तश्च**—अर्थात् अमाकला अमृतपूर्ण कलश से संयुक्त है और पूर्णिमाकला (सोलहवीं) में साधक इस अमृत का आस्वादन करता है । अमाकला और पूर्णिमाकला इन दोनों को साधक "प्राणापान" करके काकिनी[1] नाड़ी को जागृत करता है और अमृत का पान करता है । वास्तव में अमाकला (अमावस्या) "काल मंजरी" है[2] और षोड़शीकला "कालातीत"[3] है । साधक अमारूपी कालक्रम को पूर्णिमा रूपी नित्यकला से कालातीत बनाता है जिसके फलस्वरूप साधक पूर्ण अवस्था को प्राप्त करके वास्तविक पण्डित, समदर्शी, पूज्य, प्रशंसनीय और यथार्थ परमार्थ का पात्र बनता है । वह निषाद-धैवत आदि सात स्तरों के माध्यम से निर्मल स्तोत्र का गायन कर सकता है । इस अवस्था का साधक प्रत्यक्ष रूप में जगत का गुरु बनकर अपार जन समूह का आराध्य बनता है । इस प्रकार की अन्तः (भीतर की) दृष्टि प्राप्त करने के उपरान्त साधक स्वाभाविक रूप से मोक्ष का अधिकारी बनता है ॥१०॥

इति, निर्वाणदशकी समाप्त

---

१. रीढ़ की हड्डी के ऊपर गर्दन और सिर के जुड़ने के स्थान पर जो अमृत प्रवाहिनी नाड़ी है ।

२. भूत, वर्त्तमान और भविष्य तीनों कालों को एक साथ देखने वाली आर्थात् त्रिकालज्ञ ।

३. जहाँ दिशा और काल समाप्त हो जाते हैं । साधक इन दोनों से परे हो जाता है अर्थात् इनकी सीमा में नहीं बंधता ।

टिप्पणी

भवानी अलक्ष्येश्वरी के कथन का अभिप्राय यह है कि ब्रह्मा, विष्णु, और शिव इन तीनों कारणों को अखण्ड कृष्ण-रूपी ब्रह्म-स्वरूप में एकाकार करके अद्वितीय साधना के द्वारा जो-ब्रह्म-प्रकाश उत्पन्न हुआ, उस अलौकिक चमत्कार से मैं झूम उठी।

ग्वरं मोखु व्याना दारे
चरणा हृदय् कमल
तुलं[1] पवनं मूल शून्या[2]
ऊंर्द् मोंखी गगन मण्डल ॥२०॥

व्याख्या

अपने आराध्य गुरु-मुख से दीक्षा लेने के उपरान्त साधक को उसका अनुसरण करना चाहिए। जिस प्रकार से भी गुरु से ध्यान-समाधि आदि का उपदेश दिया हो, उसी प्रकार साधना का क्रम होना चाहिए। उस गुरु-चरण को हृदय कमल में धारण करके, अपने सन्नियमित (Controlled) श्वास-प्रश्वास के पवन को मूलाधार (लिङ्ग स्थान) से जागृत कराके, कण्ठ (गले) के ऊपर भ्रूमध्य (भौंहों के बीच) के द्वार से सहस्रार के अखण्ड आनन्द में लीन होना चाहिए। यही साधक की सिद्धि का रहस्य है ॥ २० ॥

टिप्पणी

'तुल पवन् मूल शून्या' इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार से भी स्पष्ट होता है—मूलाधार (गुदा और लिङ्ग के बीच का स्थान) से आकार हीन प्राणवायु को उभारकर नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु और भ्रूमध्य से होते हुए

---

१. तुल मूल पवन् ग पाठ।
२. मूल शून्याह ख पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

सहस्रार की तरफ ले जाना चाहिए। ब्रह्मरन्ध्र ही "गगन-मण्डल" है जहाँ उसके पहुँचने पर व्यक्ति की इकाई समाप्त हो जाती है ॥

पूरिथ् सहज़ सिपर तैय्
तोरंगस् आसीना[1] लोग रव्
पोशनूल[2] तैय् वीना वज़े
करन् शंख सदा[3] तैय्
गंटा वायान् क्रैयनद बुज़े[4]
दिवान् छैस् शंकरस् गोड ।।२५।।

व्याख्या

सहज-समाधि (Natural trance or outo-trance) रूपी भाले को सान पर चढ़ाकर, श्वास-प्रश्वास रूपी घोड़े पर बैठकर अब ब्रह्मरन्ध्र की गूँज सुनाई पड़ने लगी है। पुष्प-उन्मीलन (प्रभात-पक्षी Oriole) वीणा के वर से मधुरतम झंकार देने लगा है [पोशनूल पक्षी ब्राह्म-मुहूर्त्त में मीठी तान में गाता है। कहा जाता है, यह पक्षी अपने मीठे स्वर से फूलों को रात की नींद से जगाता है। इसकी स्वर-लहरी "श्रीकृष्ण-गोंपियों" के गान की तरह गुँजार देती है।] ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो पूजा के निमित्त शंख-ध्वनि (आवाज़) गूँजने लगी है। इसके साथ-साथ ही क्रिया-रूपी बहने वाली नदी के समान घंटे का स्वर भी गूँज उठा है। मैं इस प्रकार सूक्ष्म-रूप की पूजा से, शंकर का अभिषेक कर रही हूँ ।। २५ ।।

---

१. ज़ीना क, ग, घ पाठ।
२. पोशनूलन् क, ख, ग पाठ ; [संस्कृ० पुष्प उन्मीलन (पुष्पों को जगाने वाला प्रभात के समय चहकने वाला पक्षी, कश्म० पोशनूल]
३. शब्द क, ग, घ, घ पाठ [संस्कृ० शब्द; प्राकृत-सद्दा, कश्म० सदा]
४. बुज़े—क, ख, च, पाठ।
५. हिन्दी में उसे **पीलक** कहते हैं। भारत सरकार ने उसके चित्र के सहित एक ५० पै० का डाक टिकिट १९७५ में जारी किया है। —**सम्पादक**

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी

यहाँ आत्मा ही मानो पुष्प-उन्मीलन पक्षी के समान सचेत (जागरूक) होकर अखण्ड-आनन्द की फुलवारी के प्रसुप्त (माया की नींद से) फूलों को अपनी, ब्रह्मरन्ध्र-रूपी, वीणा के मधुरतम स्वरों से जगाकर अपार आनन्द समस्त संसार के हित के लिए प्रस्तुत कर रहा है। इस अवस्था में क्रियाशील नदी अपने जल के उद्गम से घण्टे का स्वर दे रही है अर्थात् चिद्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया एक ही प्रवाहमान समरसता में ओतप्रोत दिखायी दे रहे हैं। इस प्रकार से "शम्"=कल्याण, कर=करने वाले उस ब्रह्म-स्वरूप (शंकर) को अपने आत्म-रस से मैं सींच रही हूँ ।।

नाव् तारा वाव् सवारा
ना रंग ना वरण तं नं गुथ़ूर
ब्रोंह् अन् अन्तर[1] पतं करि वारय्[2]
कंहून्दं[3] दारि तं कस दारे ॥३२॥

व्याख्या

प्रथम दो पंक्तियों में श्लेष (एक शब्द के दो अर्थ) है अतः इसके अलग-अलग अर्थ हैं।

जिस नौका पर बैठकर हमें पार होना है उस पर वायु सवार होकर बैठा है। वायु जब तक नौका पर हावी रहेगा तब तक नदी के दूसरे किनारे पर जाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। यदि साहस बटोरकर पार जाने की हिम्मत भी करें तो भी मँझदार में डूबने का खतरा बना रहता है। अतः जब तक यह हवा रूपी सवार इस नौका पर बैठा है पार होने का प्रयत्न करना खतरे से खाली नहीं है। इस वायु रूपी सवार को वश में करना पड़ेगा। परन्तु इसे वश में कैसे करें? क्योंकि इस वायु रूपी सवार का न तो कोई रंग है, न कोई वर्ण है और न इसका कोई गोत्र ही है। अतः इस प्रकार के सवार को वश में करना बड़ा ही कठिन है।

इस मनुष्य शरीर में नव द्वार हैं (दो आंखें, दो कान, दो नकुए (नाक के), एक मुख, मल एवं मूत्र द्वार)। इन नवों द्वारों पर प्राणवायु (श्वास) का स्वाभाविक शासन है। जिस प्रकार सवार घोड़े पर चढ़कर उसे अपनी इच्छा के अनुसार घुमाता

---

१. न्यन्दय् क पाठ।
२. वारिथ् घ पाठ।
३. क-हन्दूय दार-तं कस् चारे क पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

चलाता है, ठीक उसी प्रकार प्राण शक्ति इन सब द्वारों को घुमाती चलाती है। परन्तु यह प्राणशक्ति रूपी सवार बड़ा ही विचित्र है क्योंकि न तो इसका रूप है, न रंग है, और न इसके गोत्र के बारे में कुछ पता है अतः इसको जान लेना बड़ा ही कठिन है।

अन्ततः सम्या भवानी इस अनाम और अवर्ण सवार को जानने का उपाय बताती हुई स्पष्ट करती हैं "इस बाहिर छूटते हुए प्राणवायु को अभ्यास आदि के द्वारा पकड़कर (वश में करके) अन्तर हृदय में बिठाओ अर्थात् प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणवायु को मूलाधार से जगाकर स्वाधिष्टान, मणिपुर अनाहत विशुद्धि और आज्ञाचक्र तक लेकर इसे सहस्रार में बिठाना (स्थित करना) चाहिए। इसके उपरान्त जीव अथवा साधक संसार के लेन देन क्रिय-विक्रय और जन्म-मरण से छूटकर मुक्त हो जाता है ॥३२॥

दियि असि ति तारा वीड़ औतारे
यसुड़ गारान् सुअ् सूतीयं छुह्
ब्रोंह् ब्रोंह् पकित्[1] द्वैय्हा[2] लोसे
नेथूय पोशि तं सुय् छुय् साथ ॥३३॥

08:27

WG1183-1977 -Shri Roop B...

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

तथा इस अलौकिक मार्ग पर चलने का मुझे साहस और सहारा दिया। पितृ-श्री माधव और लल्लेश्वरी के अपार अनुग्रह के कारण ही परंब्रह्म के साकार और निराकार गूढ-रहस्यों की पहेली मेरी समझ में आई। इन्हीं सन्तों की कृपा से मुझे अन्तः अवस्थित आत्म-स्वरूप का ज्ञान पुनः उपलब्ध हुआ है ॥३९॥

अहम् पद् सतंसूत्य[1] ओवुरुम्[2]
शिवं रव् हंसा पानस्[3] अंनुम्
में चेंङ्[4] प्यालं बरिथं हा मद्कीय्
में चव्[5] हाल प्योम सूय्[6] आख ॥४०॥

व्याख्या

सत्य के अमोघ अस्त्र से मैंने "अहं-पद" को खोज निकाला अर्थात् सत्य-ज्ञान के प्राप्त होने के उपरान्त ही मैंने अहं परामर्श ब्रह्म (Supreme being) की उपलब्धि की और कल्याण स्वरूपा अपनी आत्मा को प्राणायाम आदि के द्वारा अपने में ही जगाकर मेरी चेतना प्रकाशित हो उठी। तब ही मैंने भगवत्-स्वरूप के मद (शराब) के प्याले निरन्तर पिए। निरन्तर भगवत्-रस की शराब को पीने के कारण मुझमें आत्मानन्द का अंकुर जागृत हो उठा जिसके फल-स्वरूप मैं भगवत् भक्ति के नशे में सदा चूर रहती हूँ ॥४०॥

टिप्पणी

"शिवं रव् हंसा पानस् अंनुम्" इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार से भी संभव हो सकता है—मैंने निरन्तर विमर्श (प्रतिभिज्ञा द्वारा) के बल से अपने

१. सदा माधव क, ग, घ, च पाठ।
२. केवल मार्तण्ड और पिंगलेन् पाण्डु लिपि में।
३. केवल मार्तण्ड और पिंगलेन् पाण्ड लिपि में।
४. दाव क, ख, ग, ङ पाठ।
५. दाव क, ख, ग, ङ पाठ।
६. दाव क, ख, ग, ङ पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

में "शिवोऽहम्" की गूँज लगा कर यथार्थ अहम्-पद (Supreme being) को प्राप्त किया।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

में "शिवोऽहम्" की गूँज लगा कर यथार्थ अहम्-पद (Supreme being) को प्राप्त किया।

दीह[1] आनन्द नद मया
लूचन प्याला मुचर
साकयं पिलाओ हुह्-हा
बेयि बेयि हा हा मतवाला ॥४१॥

व्याख्या

ज्ञान प्रवाह-रूपी बहती मदिरा (शराब) की नदी में शरीर को डुबोकर आनन्दमय बना दिया। इस अपार उन्माद (नशे) से आँखों पर इतना नशा छा गया है कि ये आँखें प्रिय-रस से पूर्ण प्याले के समान उन्मेष (खुलना) कर रहीं हैं और अखण्ड साधना रूपी मधुबाला (साकी) से आत्मा बार-बार आग्रह कर रही है कि 'फिर से पिलाओ'। उन्माद की स्थिति में यह नर्तक-आत्मा पी-पीकर इतनी विस्मृत बन उठी है कि अब यह ज़ोर से ठहाके लगा-कर बार-बार पीने का हठ कर रही है ॥४१॥

टिप्पणी

शैवदर्शन के "शिव-सूत्र" में "नर्तक-आत्मा" सूत्र के अनुसार, जब साधक चिदानन्द के अपार आनन्द में पूर्ण रूप से डूब जाता है तब उस स्थिति में रागात्मक अनुभूति इतनी तीव्र और उत्कट होती है कि साधक सर्वथा (सब प्रकार से) उसी में मग्न रहता है।

आगरं ग्रेजिथ् तैय् नदं सें दुम्[2]
बानं बरिथ् तैय् पूरिम्[3] खा़सि

१. देहानन्द क, ख पाठ।
२. सांत्री—क, ख, घ पाठ।
१. फिरिथ्—क, ग, घ पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

द्राव् वुफे वाव-रूपी[1] गुर्
ग्वर ईश्वर आव अविनाशी
पानं मशे तं ध्याना तोशे
स्वमनं परमानन्द् वोत तथ् राशे ॥५१॥

व्याख्या

यह श्वास-प्रश्वास रूपी घोड़ा अपनी चंचलता को छोड़कर प्राणायाम आदि के सहारे सीधे उड़ान भर कर सहस्रार पर पहुँच जाता है। अर्थात् वह चंचल मन, जो अपने चैतन्य-पद (State of Consciousness) से भ्रष्ट होकर (अथवा नीचे उतरकर) और शारीरिक-संकोच गृहण करने के कारण केवल श्वास-प्रश्वास रूपी घोड़े पर चढ़कर चंचलता में ही जीवन गुजार रहा था, अब फिर से चैतन्य-पद (State of Consciousness) पर पहुँच गया है। इस चेतना (Consciousness) की प्राप्ति के फलस्वरूप ही अविनाशी गुरु (अर्थात् अज्ञान के अन्धकार को दूर करने वाले आत्म-स्वरूपी ईश्वर) का साक्षात्कार हुआ। अब शरीर की चिन्ता से मुक्त होकर, संतुष्ट होकर, ध्यान में निवास करता है। वह मन; जो मन की अवस्था में रहने के कारण खोया-खोया तथा भटका हुआ रहता था, अब चैतन्य-पद (Consciousness) की प्राप्ति के उपरान्त महान आनन्द की अवस्था में पहुँच गया है ॥५१॥

टिप्पणी

"चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्य संकोचिनी चित्तम्"

—प्रत्यभिज्ञा-हृदय, सूत्र ५

साधारण अवस्था में मनुष्य संकल्पों और विकल्पों (Alternatives) में भटकता रहता है क्योंकि संकल्प और विकल्प मन के गुण हैं। किन्तु शैव दर्शन में "मन" नामक कोई अलग सत्ता नहीं है अपितु आत्मा ही जीवभाव

१. वावं रूपैय गुर् क, ख, ग पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

(Limited form) में आकर तथा शारीरिक-संकोच के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर मन नामक तत्त्व से जगत का व्यापार करती है। महायोगी अरविन्द का दर्शन (Philosophy) भी यही है कि मन (Mind) वास्तव में चैतन्य (Super mind) के अतिरिक्त कुछ नहीं है केवल जीवभाव में आने के कारण इसमें स्वाभाविक संकोच (Limit) आ जाता है। अतः साधक का कर्म यह होना चाहिए कि वह मन (Mind) को साधना, परामर्श और चिन्तन के बल से पुनः चैतन्य-पद (State of Consciousness) पर पहुँचाकर, अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करे॥

महा[1] सु मौंदुर द्याना सारे[2]
छ़क समाद् नाद् बिन्दं च्रट्
दान अखण्ड[3] मिलावे मखन
सादिकारस्   द्रवे   गेंव् ॥५८॥

१. मुन्दं क, ख पाठ।
२. सानी क, ग पाठ।
३. मिलाओ क, ख, च पाठ।
४. द्रायाम् क, ख पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या

साधक निरन्तर मनन-चिन्तन करके उस अलौकिक और अनिर्वचनीय (जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता) भगवत्स्वरूप के मिठास का ध्यान प्राप्त करने के उपरान्त, समाधि के द्वारा नाद और बिन्दु, अर्थात् शिव और शक्ति अथवा ज्ञान-कला को एक साथ प्राप्त करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस प्रकार का साधक समाधि के द्वारा नाद और बिन्दु के रहस्यमय पद को युगपत् (एक साथ) प्राप्त करके अपने अखण्ड दान को अर्थात् परमार्थ साधना से प्राप्त ज्ञानरूपी मक्खन को पुनः चेतना (Consciousness) की आँच पर चढ़ाकर (उस ज्ञान रूपी मक्खन की सारी खोट को दूर करके) घी रूपी बनाई हुई अपनी आत्मा को परमात्मा रूपी महाग्नि में स्वाहा करता है ॥५८॥

टिप्पणी

सभ्या-भवानी का यह पद अत्यन्त गूढ़ है। अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार से होता है—साधक अपनी साधना के द्वारा, (भगवान से) दान के रूप में प्राप्त अपने ज्ञान-रूपी मक्खन से ही संतोष नहीं करता है। (ज्ञान रूपी मक्खन ही मानो अपना आत्मस्वरूप है जिसको साधक ईश्वर से दान के रूप में प्राप्त करता है) अतः बुद्धिमान साधक मक्खन रूपी अपने आत्म-स्वरूप को चेतना (Consciousness) की आँच पर चढ़ाकर उस मक्खन के सारे मैल को दूर करके उसे शुद्ध घी बनाता है। घी बनने के बाद फिर कोई अवस्था प्राप्त करने के लिए शेष नहीं रहती है। फिर उस घी रूपी अपने आत्मस्वरूप को परमात्मा रूपी महा-अग्नि में होम करता है। अर्थात् उसी में लय होकर आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

तव रूप येग्ञा ह़ूमा करिथ्
आहोंतं दिच़ूस अंगन् ह़ूंज़

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

इ़होय् कुल् मूल तं श्वाह्[1] तुल
यवैय् शाख पन तं फूल
दातं पेंइ़व स मुद्रा पान
रसे स्वाद् तं ननेंस् जाथ[2] ॥५७॥

व्याख्या

इस शरीर रूपी वृक्ष का अस्तित्व इसका मूल ही है। मूल के अस्तित्व के कारण ही वृक्ष जीवित रह सकता है। अतः शरीर का होना मात्र संयोग नहीं अपितु मौलिक अनादि परम्परा का क्रम है। प्राण-शक्ति ही इसकी पूरक है अर्थात् प्राण-अपान ही इसके विकास का कारण है। उसीसे इसकी शाखाएँ, पर्ण (पत्ते) और फूलों का विकास होता है। सामान्य रूप से मनुष्य का शरीर

१. शाह् क, ख पाठ।
२. बोय क, ख पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

श्वास-प्रश्वास (अथवा प्राण-शक्ति) के कारण ही जीवित और विकासशील बनता है। परमार्थ-मार्ग में जीव के लिए श्रद्धा, भक्ति और ज्ञान तथा इच्छा, ज्ञान और क्रिया—शाखा, पत्ते और फूलों के समान है। वृक्ष के फूल जब फल के आकार में उभरने लगते हैं तो मुद्रा अथवा रूप का पान करने लगते हैं। साधक भी ज्ञान-मार्ग के द्वारा वास्तविक बोध प्राप्त करने के उपरान्त अपने आत्म-स्वरूप के रस में अपना अभिषेक करता है। वृक्ष में भी फल उभरने के उपरान्त रस का अभिषेक होता है, फिर धीरे-धीरे रस के पकने पर फल के स्वाद का मिठास आता है; जिससे उस वृक्ष की जाति का ज्ञान होता है। साधक भी स्वात्म-स्वरूप के फल की प्राप्ति के उपरान्त ब्रह्मानन्द के रस की अनुभूति प्राप्त करके अलौकिक परिपक्वता (पका हुआ रस) को प्राप्त करता है जिसके फलस्वरूप उसकी वास्तविक जाति पहचानी जाती है ॥५७॥

टिप्पणी

रूपक अलंकार के माध्यम से भवानी ने शरीर और वृक्ष को एक स्तर पर लाकर दोनों का सामञ्जस्य स्थापित किया है। जिस प्रकार वृक्ष का आधार मूल है उसी प्रकार साधना का केन्द्र-बिन्दु शरीर है। मूल जिस प्रकार रस से सिंचित होकर रसात्मक अनुभूति की स्थिति तक पहुँचाता है उसी प्रकार शरीर भी साधना की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार करके उसके द्वारा भगवत् प्राप्ति के फल को, (आनन्द-रस से भरकर) परिपक्वता पर पहुँचाता है।

मह्[1] सु मोंदुर ध्याना सारे[2]
छ़क समाद् नाद् बिन्दं च्रट्
दान अखण्ड[3] मिलावे मखन
सादिकारस् द्रवे गेंव् ॥५८॥

१. मुन्दं क, ख पाठ।
२. सानी क, ग पाठ।
३. मिलाओ क, ख, च पाठ।
४. द्रायाम् क, ख पाठ।

से कुछ समय के लिए प्राप्त हुई थी। सिद्धाभवानी भी इसी प्रकार की दृष्टि प्राप्त थी।

पेंवान्[1] स्वादस् तं यिवान् नादस्
वादस् अति[2] च़ाखं[3] छुनं कुनेह[4]
चवान[5] प्याल तं छिवान् पानैय्
वंवान्[6] पानैय् तं दिवान्[7] टूखं ॥६३॥

व्याख्या

यह परंब्रह्म स्वयं ही साधना में प्रवेश करके स्वयं ही नाद और बिन्दु का साक्षात्कार करता है अथवा स्वयं ही साधना की परिपक्वता का स्वाद करता है और स्वयं ही आनन्दमग्न होकर ब्रह्मरन्ध्र की अनाहत ध्वनि का मधुर गुंजार करता है। इस रहस्य की थाह पाना छः दर्शनों (सांख्य दर्शन, न्याय-दर्शन आदि

---

१. प्यायान् क, ग, घ, पाठ।
२. अथं क, ख, पाठ।
३. चास क, ख, ग, पाठ।
४. व्यारय ख, ग, घ, पाठ।
५. दीवान् क, ख, ग, पाठ।
६. ब्ववान् क, ख, च, पाठ।
७. चगन क, ग, घ, पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

छः दर्शन) के बस की बात नहीं है। यह परंब्रह्म ही स्वयं ज्ञान-रूपी मदिरा (शराब) का पान करके स्वयं ही उन्मत्त हो उठता है; स्वयं ही इस सृष्टि का निर्माण करता है और स्वयं ही इसका विनाश भी करता है। अर्थात् यही स्वयं "कर्तुम् अकर्तुम् और अन्यथा कर्तुम्" (करना, नहीं करना और इनके अतिरिक्त कुछ और ही करना) में समर्थवान है ॥६३॥

टिप्पणी

सभ्या रूपभवानी परंब्रह्म की अद्भुत क्रीड़ा के चमत्कार एवं उसके उत्कर्ष स्वरूप तथा शक्तिमंत्ता को प्रस्तुत करके इस बात का संकेत करती हैं कि भगवान के इस दिव्य अलौकिक प्रभाव को छः दर्शन (सांख्य दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन, योग दर्शन, पूर्व मीमांसा दर्शन, और उत्तर मीमांसा दर्शन) कह नहीं पाते हैं या इन दर्शनों (Philosophies) में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि इस अपार रहस्य को समझ सकें।

रंगिथ रूप[1] द्रायस संगकूय
मौक्तं मंचिथं[2] ग्ज्ञान अकुय
बय् बखचून[3] रोफि, गारान नं कं'ह
न[4] कुनि बय् न कुनि तं वेहं ॥६४॥

19:27
WG1183-1977 -Shri Roop B...

आराम ही राम बोलो पावन्[1]
बु[2] तं बेंइ मेंमंज़ छुय हा इहु ॥८१॥

व्याख्या

वह अपने से अभिन्न परंब्रह्म ही ज्ञान, आकाश (शून्य) और मोक्ष में छाया हुआ है। वही स्वयं प्रत्येक स्थान पर सहायता करने वाला भी है—अथवा वही परंब्रह्म मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और अज्ञाचक्र के छ: स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूपों से विराजमान होकर योग-साधना में लगे हुए साधक की सहायता करता है। भवानी अलक्ष्येश्वरी अपने स्वरूप को उद्बोध देती हुई कहतीं हैं:—मेरे आत्मस्वरूप ! पवित्र राम-नाम का स्मरण कर क्योंकि मैं और वह परंब्रह्म वास्तव में मुझ में ही है, अर्थात् मेरे ही आत्मस्वरूप से मुझ में ही वह निवास कर रहा है ॥८१॥

टिप्पणी

उक्त पद्य में "पानैय् सहाय थान थानैय छुय्" के संदर्भ में दर्शनीय है कि मूलाधार का देवता ब्रह्म है, स्वाधिष्टान का देवता विष्णु है, मणिपूर का देवता रुद्र है, अनाहत का देवता ईश है, विशुद्धि का देवता सदाशिव है और आज्ञा का देवता शम्भु है किन्तु भवानी अलक्ष्येश्वरी के कथन का अभिप्राय है कि वास्तव में वही एक परंब्रह्म "एकोऽहं बहुस्याम्" के न्याय के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में स्वयं ही इन स्थानों में विराजमान है।

शये आयेस् शये छस्
मरे[3] पान् बेंयें छस्

---

१. पवन् क, ख, ग पाठ।
२. ब्वह ब्वय ता म्यानिय छ्यु यह् क, ख, ग पाठ (ऊपर का पाठ मार्त० और पिंगले० पाण्डुलिपि का है)।
३. लये क, ग, घ पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

नाद बेन्द पद् छि परम्
मदुय[1] मारिथ्[2] प्रकटुय्[3] छिस्
वेंष्णु ब्रेंह्मा तं महेश्वरा
क्रेष्ण बेंङ् शामसोन्दुर छुस् ॥८३॥

व्याख्या

निस्संदेह नाद और बिन्दु के पद महान् अवस्था और उपलब्धि के स्थान हैं किन्तु इन्हें प्राप्त करना दुर्लभ और कठिन नहीं है क्योंकि यदि साधक अपने कृत्रिम (Vain) अहंकार को पूरी तरह वश में कर सकता है तो नाद और बिन्दु स्वयं ही उसके सामने प्रकट होते हैं। उसके उपरान्त तीनों कारण—ब्रह्मा, विष्णु और शिव, तथा अन्य अवतारों की अनन्त परम्परा (राम कृष्ण आदि) स्पष्ट रूप से सामने प्रकट होते हैं। अर्थात् साधक विश्व-चेतना और ब्रह्माण्ड-चेतना से प्रफुल्लित हो उठता है ॥८३॥

टिप्पणी

वायवी-संहिता में नाद और बिन्दु का उल्लेख इस प्रकार से दिया है—

आसीद्बिन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्तिसमुद्भवः
नादरूपा महेशानि चिद्रूपा परमा कला ॥

(वायवीय-संहिता)

१. मदुय क, ख, ग पाठ।
२. मारि ख, ग, घ पाठ।
३. फतुकुय क, ग, घ पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

(सृष्टि के आरम्भ में पहले बिन्दु का अस्तित्व था फिर नाद की सृष्टि हुई। नाद से फिर समस्त ब्रह्माण्ड की शक्ति (Energy) का विकास हुआ। अतः विश्व-चेतना की सर्वोच्च कला नाद रूप ही है) भवानी ने नाद और बिन्दु को शिव-शक्ति के स्वरूप में ग्रहण किया है।

गोम्[1] औवतार सु महादीव
सु हा बु हा सूय अंख् छु
पूरा तोले तं रामा बोले
ब्रह्म स्वामी पानैय मन्दोरे छुअ
ङ्ह केंह कांछि तीह केंह दिये
दुकान त्रेपिथ् समुद्रय छस् ॥८४॥

व्याख्या

हे उत्कृष्ट आनन्ददाता ! कौन तुम्हारे स्वभाव को जान सकता है। जो भक्त अथवा साधक तुम्हारे अलौकिक दिव्य स्वरूप का ध्यान-मनन करता है उसके हृदय में अवश्य ही तेजस्वी सूर्य के समान तुम्हारी ज्ञान-ज्योति प्रकाशित हो उठती है ।।९३।।

सारी तत्व् आहारिम् गार च़ोपुम्
ब्रमंवोवुम् अखण्ड मण्डल तं पाताल्
हा-हू सूत्यैन गेंव वेंगंलोवुम्
अङ्ग' वोपंज़ावुम्' पानैय गंगं ।।९४।।

व्याख्या

मैंने पृथ्वी तत्त्व से लेकर माया तत्त्व तक के सारे तत्त्वों (Main elements of the material world) को अपनी गहन तपस्या से अपने स्वरूप में विलय किया और इस गह्वर (गुफा) रूपी शरीर को अपने मनन एवं चिन्तन से भक्षण किया (खाया)। मैंने अपनी उग्र तपस्या से इस खण्डहीन अखिल ब्रह्माण्ड और अदृश्य पाताल को (जो विभिन्न तत्त्वों में बिखरे हुए थे) अपने आत्म-स्वरूप में

१. नावुम् विशेषा गंग—क, ख, ग पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

विलीन किया और प्राण-अपान के प्राणायाम के द्वारा जमे हुए घी के समान ठोस अपने शरीर को पिघलाया और शंकर के समान स्वयं अपने आत्मस्वरूप में ज्ञान-गंगा को उत्पन्न किया ।।९४।।

टिप्पणी

भवानी अलक्ष्येश्वरी अपनी उग्र तपस्या का विवरण देती हुई कहती हैं—

(अ) पृथ्वी-तत्त्व से लेकर माया-तत्त्व तक के ३१ तत्त्वों का अपने ज्ञान-बल से आहार किया, अर्थात् अपने में उन्हें विलीन किया और ब्रह्माण्ड और पाताल को भी अपनी ज्ञान-कला से अपने स्वरूप में लीन किया।

(ब) घी के समान ठोस बने हुए तीन मलों (१) **आणवमल,** (अणु के समान अपने शरीर के मल को); (२) **मायामल** (अपने से जगत को अलग और जगत से अपने को अलग, इस प्रकार के भेद [Duality] का मल); (३) **कार्ममल,** (यह अच्छा कर्म किया था इसी कारण अच्छा फल मिला, वह बुरा कर्म किया था, इस कारण बुरा फल मिला इस प्रकार की भ्रान्ति में डालने वाला कार्ममल) को प्राणायास के "हा—हू" से पिघला दिया।

(स) भगवान शंकर के समान स्वयं समाधि के मनन और चिन्तन से अपने आत्मस्वरूप में ज्ञान-गंगा को उत्पन्न किया जिसका अभिषेक पाकर आत्मस्वरूप ब्रह्मानन्द के सहज स्वरूप में मग्न हो गया।

वाव् रठं दादंशान्त[1] रव संगटे
मायाऍयि त्रैष्णायि मारे मन्
ब्रांथ् त्राव नाथ छुअं पमने गरे
साथ रठं इहौंय्[2] छुय् ग्जानै दीह ॥९६॥

व्याख्या

जब साधक प्राणायाम के द्वारा हृदय से प्राणशक्ति को उठाकर द्वादशान्त (अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र) में पहुँचाएगा, तब अनाहत ध्वनि का स्वर फूट पड़ेगा और मन तब ही माया और तृष्णा को मार सकेगा। अर्थात् जब साधक समाधि की अवस्था में पहुँचेगा तब ही मन माया और तृष्णा से छूटेगा। ऐसी अवस्था की प्राप्ति होने के उपरान्त साधक बहिः पूजा (साकार पूजा) आदि की भ्रान्ति या भटकन से छूट जाता है। क्योंकि समाधि में साधक को अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है उसके उपरान्त इस साधक को किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं रहता है। यहाँ साधक को बड़ी चौकसी बरतनी पड़ती है क्योंकि समाधि में आत्मसाक्षात्कार होने के उपरान्त इस साधक को बड़े यत्न से इस अपार तेजस्वी (तथा अपने से अभिन्न) आत्मस्वरूप को ग्रहण करना पड़ता है। यही ज्ञान-रूप परंब्रह्म का स्वरूप है ॥९६॥

टिप्पणी

साधक को समाधि की अवस्था तक पहुँचने के लिए बारह चक्रों से होते हुए अपनी प्राण-शक्ति को यत्नपूर्वक और सावधानी से वहाँ तक ले जाना पड़ता है। ये चक्र इस प्रकार से है—जन्माग्र, मूल, कन्द, नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र, शक्ति और व्यापिनि।

१. द्वादश रव् क, ख, ग पाठ।
२. सुय तं क, ग, घ पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

जहाँ इन बारह चक्रों तथा बारह स्वरों का ["अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ"] अन्त होता है उसी को द्वादशान्त कहते हैं। "विज्ञान भैरव" ग्रन्थ में इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से किया है—"कन्द-चक्र से ब्रह्मरन्ध्र-चक्र तक प्राण शक्ति कड़कड़ाती बिजली सा तेज लेकर बढ़ती है। ब्रह्मरन्ध्र-चक्र के ऊपर चार अंगुल मुट्ठी के माप के उपरान्त द्वादशान्त का स्थान आता है। इसके उपरान्त "अहं विमर्श" का स्थान है।"

19:32
WG1183-1977 -Shri Roop B...

प्राणशक्ति के नाम भिन्न-भिन्न हैं जैसे—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। किन्तु पाँचों प्राणों में शक्तिस्वरूप प्राण एक ही है। अष्टांग-योग साधना में एक ही प्राणशक्ति—"यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि में ओतप्रोत है।" जब साधक इस प्राणशक्ति को अपने आत्मस्वरूप में लय करता है तब उसे "अहं" स्वरूप परंब्रह्म का साक्षात्कार होता है। सभ्या-भवानी आतमा के अहं-स्वरूप का संकेत देती हुई कहती हैं—"तुम यह स्वीकार करो कि परंब्रह्म का अस्तित्व केवल आत्मस्वरूप में ही सन्निहित है ॥९७॥

टिप्पणी

मनुष्य शरीर में प्राणशक्ति का बहुत ही महत्व है। शैव-दर्शन में "प्राक् संवित्प्राणे परिणता (संवित्-शक्ति प्रथमतः प्राण-अपान के रूप में बदलती है, प्रकट होती है)" सिद्धान्त बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार

---

१. क्रेठान् क, ख, घ पाठ।
२. म्वय क, ख, ग पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

माना जाता है कि आत्मा का शरीर में आविर्भाव होते ही आत्मशक्ति प्राण-अपान का स्वरूप धारण करती है, अतः प्राणशक्ति ही आत्मा है। मनुष्य शरीर में प्राणशक्ति का बँटवारा इस प्रकार से है—हृदय में **प्राण**, गुदा में **अपान**, नाभि में **समान**, कण्ठ **उदान** और सारे शरीर में व्याप्त **व्यान**। भवानी अलक्ष्येश्वरी के कथन का अभिप्राय यह है कि नाम-वैभिन्य (अलग-अलग नाम) होने पर भी मूल में प्राणशक्ति एक ही है। यही प्राणशक्ति अष्टांग-योग (Eight-fold yoga) में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि तक ले जाने वाली प्रमुख शक्ति है। इसी शक्ति के जागरण से (आत्मस्वरूप और परंब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार होकर) योगी को निर्वाण प्राप्त होता है।

मूर्थाह् करिथ् तं अमूरथ् पछीह्
खाखं गछ्छीह्[1] क्या पछीह
पांछ्[1] महाबूत् करिम[2] फछीह्
हीनछ्[3] माया तं कौरुन[4] स्वरूप[5] ॥९८॥

इडा नं पिंगला सत्र ब्रह्मनाडी
स्वयं सु उपाया सुषुम्नाहमेव

१. जीविता क, ग, घ पाठ।
२. वार्ता क, ग, घ पाठ।
३. सह्योकार क, ख, घ पाठ।

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

अनाहत अनामय सु तोरियॉवस्था
आनन्द पद् सु परंब्रह्म सोहम् ॥१०॥

व्याख्या

योगशास्त्र उस "सोऽहम्" स्वरूप को नाड़ी-चक्र जगाकर जान नहीं सकता है, अतः इड़ा, पिंगला का जागृत स्वरूप वह (परंब्रह्म) नहीं है। मध्य-नाड़ी के विकसित होने पर ही उस परंब्रह्म के तात्त्विक-स्वरूप का ज्ञान संभव है किन्तु वही परंब्रह्म सुषुम्ना नाड़ी के अहंस्वरूप में निवास करके स्वयं ही उपाय बनता है। वास्तव में वह स्वतंत्र और सूक्ष्म है। वह सोऽहम् स्वरूप जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे तुरीय-रूप है। उस परंब्रह्म का सोऽहम् स्वरूप मेरे ही स्वरूप का आनन्द पद है ॥१०॥

इति स्वानुभवोल्लास दशकम्

CC-0 S.P. Dhar Collection. Digitized by eGangotri

1. चक्रधर स्वामी

महानुभाव संप्रदाय के संस्थापक चक्रधर स्वामी का जन्म गुजरात में सन् 1194 में हुआ। इनका मूल नाम हरपाल देव था। ये गुजरात के विशालदेव राजा के पुत्र थे। ये महाराष्ट्र आकर रहे और उन्होंने महानुभाव पंथ का प्रचार किया। इनके द्वारा रचित दो चौपदी हैं—

मूल स्थानी भिउ बंध बांधो हो जोई ना काल कलाई।

गुरुवचने उठीयाना दृढ़ बंधाई जे बीना चंचल नाहीं।

सुती बंधी स्थिर होई जेणे तहमी जाई॥

***   ***   ***

पाँचे पंचायत पावै जन हो धावती आप आण स्थानी।

पवण पुरो हो मनि स्थिर करो हो चन्द्र मैली वा भान।

अयागमन दुई जे वारो बुद्धि राखो अपन ये।

झाटिये जाता निवारो हो भिडे न वायो जाई।

आँखें निरंजन लो लो करी हो भाव अभाव दोन्ही नाही॥

महदायिसा

महदायिसा को महदंबा, उमांबा और रूपाई भी कहते हैं। इन्हें मराठी की आदि कवयित्री भी कहा जाता है। इनके जन्म और मृत्यु के बारे में निश्चित जानकारी नहीं मिलती है। 'नागदेव स्मृति' ग्रंथ से इतना ही ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज़ वामनाचार्य देवगिरि के यादव राजा महादेव राय के यहाँ पुरोहित थे। महदायिसा बाल विधवा थीं। नागदेवाचार्य के साथ इन्होंने चक्रधर स्वामी का अनुसरण किया। इनका एक हिन्दी पद उपलब्ध है—

नगर द्वार हो भिच्छा करो हो, बापुरे मोरी अवस्था लो।

जिहाँ जावो तिहाँ आप सरिसा कोउन करी मोरी चिंता लो।

हाट चौहाटा पड़ रहूँ हो माँग पंछ घर भिच्छा।

बापुड लोक मोरी आवस्था कोउ न करी मोरी चिंता लो॥

2. दामोदर पंडित

बीच भक्ति के घरीया फोड छे॥'' [25]

एकनाथ की विचारधारा

संत एकनाथ के तात्विक विचार 'अद्वैतवाद' पर आधारित है। सामान्य लोगों को उनका तत्त्वज्ञान समझना मुश्किल हो जाता है। एकनाथ इस समस्या से भलीभाँति परिचित थे। अपने विचार सामान्य लोगों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने अद्वैतवादी सिद्धांत को भक्ति की व्यावहारिकता के साथ जोड़ दिया, ज्ञान और भक्ति का अपूर्व संगम साध लिया। अपने तत्त्वज्ञान को समझाने के लिए उन्होंने मराठी के समान ही हिन्दी में भी सरल और व्यावहारिक उदाहरणों का सहारा लिया। संत एकनाथ के विचारों पर उपनिषद और शंकराचार्य के विचारों का प्रभाव मिलता है। उन्होंने भक्ति में कर्म की प्रधानता को स्वीकार करते हुए सगुण-निर्गुण परब्रह्म का वर्णन किया है।

संत एकनाथ के अनुसार विट्ठल स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म हैं। भगवान ने सामान्य लोगों के हित के लिए सगुण रूप धारण किया है। परब्रह्म का वास्तविक रूप निर्गुण-निराकार है, लेकिन प्राणिमात्र का पालन-पोषण करने के लिए उसने सगुण-साकार रूप धारण किया है। उसके मूर्त रूप में ही अमूर्त रूप समाविष्ट है। उनके अनुसार ब्रह्म का स्वरूप अनंत, अनादि, निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी और सच्चिदानंद हैं। वे सगुण और निर्गुण रूप को एक समान मानते हैं। दोनों में कोई भेद नहीं मानते। अपने इन विचारों का समर्थन हिन्दी रचनाओं में भी किया है—

''नित्य निरंजन निरामय परिपूर्ण व्यापक एक।

सोहं बुद्धि बिन नहीं पाऊ मिथ्या भ्रम भेद॥

तद्रूप चिद्रूप रूपी अरूप। ना तहाँ आदि ना अंतरे।

जनदिन पूता अभिन्न एका। स्वये भया निज नित्य रे॥

एका जर्नादनी चिदानंद घन। सगुण निर्गुण समान दिखावै॥'' [26]

अपने हिन्दी काव्य में उन्होंने परब्रह्म के विभिन्न रूपों में विट्ठल, शिव, राम, गणेश, दत्तात्रेय, जगदंबा आदि हिन्दू देवताओं को ही नहीं अपितु मुसलमानों के अल्ला, खुदा का भी समावेश किया है।

सत्यामलनाथ परंपरा

सत्यामलनाथ : संत ज्ञानेश्वर के शिष्यों में से ये एक प्रमुख शिष्य हैं। इनके नाम पर सिद्धांत

रहस्य', 'नवरत्नमाला' और 'अभंग रचना' उपलब्ध हैं। 'नवरत्नमाला' ग्रंथ में सत्यामलनाथ ने अपने महान गुरुदेव संत ज्ञानेश्वर के चरित्र का वर्णन किया है—

''ज्याच्या मंदहास्यें। सुमनें झरतीं।

पदस्पर्शे होती। जीव ब्रह्म॥

षडैश्वर्याद्धुत। रसाचे हे लिंग।

पाहुनी अनंग। आर्तभूत॥''[75]

(जिसके मंद हास्य से पुष्पवर्षाव होता है, जिसके पदस्पर्श से जीव को ब्रह्म प्राप्ति होती है, ऐसे ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानेश्वर हैं।)

सत्यामलनाथ के शिष्य गैबीनाथ की चरित्र विषयक जानकारी नहीं मिलती। गैबीनाथ की शिष्या गुप्तनाथ यह एक स्त्री थी। इसका पूर्व नाम गंगाबाई था। अल्पायु में ही वैधव्य प्राप्त होने के बाद वे परमार्थ मार्ग में आ गई। काशी यात्रा को जाते समय इन्हें गैबीनाथ से दीक्षा मिल गई। गुरु ने इनका नाम गुप्तनाथ रखा। इनके साथ उद्धव नाम का लड़का विरक्त होकर रहने लगा। गुप्तनाथ ने उसे दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया।

केसरीनाथ : ये उद्धोवनाथ के प्रमुख शिष्य थे। उद्धोवनाथ के प्रवचनों से प्रभावित होकर इन्होंने नौकरी छोड़ दी और उनसे दीक्षा प्राप्त की। केसरीनाथ ने 'सिद्धांतसार' ग्रंथ और पदों की रचना की। इन्होंने आलंदी में संत ज्ञानेश्वर की समाधि के पास ही समाधि ले ली।

275/408

केसरीनाथ का एक शिष्य बालमुकुंद था। उन्होंने आलंदी महात्म्य पर 'अलका महात्म्य' नाम का ग्रंथ लिखा है। केसरीनाथ के प्रमुख शिष्यों में शिवदीन केसरी भी थे। पैठण के रहने वाले शिवदीन केसरी को आयु के आठवें साल में ही केसरीनाथ का अनुग्रह मिला।

महाराष्ट्र में नाथपंथ की प्रायः चार परंपराएँ मिलती हैं। चारों की सूची 'नाथ संप्रदाय उदय

सिपाही से पुन कहा—"परचा तू तेरे पर माँगना चाहता है या राज्य पर।"

सिपाही ने कहा—"यदि तुम समर्थ हो तो मेरा ही अनिष्ट करो।"

अमीनाथजी बोले—"तुम्हारी यह घोडी और ऊँट बीकानेर पहुँचने से पूर्व ही मर जायेंगे, घर पहुँचने पर तुम्हें अपने पुत्र की अर्थी सामने मिलेगी और तुम्हारी स्त्री पागल हो जायेगी।" सिपाही को यह कहकर अमीनाथजी पृथ्वी के गर्भ में सदैव के लिए समा गये।

इस घटना तथा समाधिस्थ होने की तिथि-मिति का कोई पता अब तक नहीं चल सका है।

(५) चौधरी केशोजी गोदारा—केशोजी के बारे में ऐसी कथा प्रचलित है कि केशोजी ने जब जीवित समाधि लेने की सोची तब मालासर ग्राम के समस्त लोगों को एकत्र करके कहा—'जिस किसी को मुख से परचा—वरदान माँगना हो, समाधि में बैठने से पूर्व ही माँग ले। जब मैं समाधि में बैठ जाऊँ तब कोई कुछ न माँगे।'

कहते हैं आकांक्षी लोगों ने अपने मनवाञ्छित फलों की प्राप्ति के

वरदान माँगे। समाधि में बैठने के पश्चात् लोगों ने राजस्था-नवीकानेर का अमृतफल 'मतीरा' केशोजी को भेंट किया. उस समय एक व्यक्ति मजाक में केशोजी से पूछ बैठा—"केशो दादा, थानैं कीं दीसै ही है?" अर्थात् आपको कुछ दिखता भी है?

केशोजी ने कहा—"दीसै है थारी बीस गुवाड्याँ की उत जाँती।" अर्थात् तुम्हारे कुल के बीस घरों का अन्त होता हुआ दिखाई दे रहा है।"[1]

केशोजी ने वि० सं० १८८५ में समाधि ली थी।

(६) देवाराम नाई—इनके विषय में कहा जाता है कि इन्होंने मालासर में समाधि लेने के पाँच दिन बाद गंगा स्नान करके आनेवाले मालासर के कुछ लोगों को इन्होंने कतरियासर में सदेह दर्शन दिया एवं अपने हाथ से रोटी बनाकर खिलाई। अन्यान्य कई सिद्धों के समाधिस्थ होने की तिथि जिस प्रकार अज्ञात है, उसी प्रकार इनकी समाधिस्थ होने की तिथि भी अज्ञात है।

पाँचला सिद्धों का[2]—

सती प्यारलदे की आज्ञा से सिद्ध बोयतजी ने यहाँ आकर और मुण्ड नाल का कूँआ प्राप्त कर इस ग्राम को बसाया था। यहाँ यशोनाथ पुराण के अनुसार ८ आठ जीवित समाधियाँ हैं, पर वर्तमान सिद्ध के कथनानुसार यहां केवल तीन जीवित समाधियाँ ही हैं:—

(१) बोयतजी—ये सतीजी (काळलदे तथा प्यारलदे) के छोटे भाई थे। सुना जाता है कि बोयतजी जन्मजात पंगु थे, किन्तु जब सतीजी का चूड़ीखेड़ा से कतरियासर आगमन हुआ. उस समय सतीजी की अनुकम्पा से इनके पैर स्वस्थ हो गये।[3]

---

(१) मालासर के लोगों के कथनानुसार यह समस्त कुल नष्ट होगया है।

(२) यह ग्राम नागौर शहर से जोधपुर जानेवाले मोटर मार्ग (सड़क) की खींवसर स्टेशन से लगभग ४-५ कोस पश्चिम दिशा में स्थित है। मारवाड़ प्रदेश में पांचला नाम के कई ग्राम हैं; किन्तु इसमें जो सिद्धों का विशेषण लगा है यह स्पष्ट ही ऐतिहासिक तथ्य प्रकट करता है। अतः इस ग्राम के नाम के साथ भी 'सिद्धों का' नाम जुट गया है।

(३) बोयतजी के विषय में भी किंवदन्ती है कि जब महासती काळलदे तथा

मारवाड में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के प्रचारक के रूप में सर्व प्रथम—इन्होंने ही प्रवेश किया था। जसनाथ-सम्प्रदाय में बोयतजी का बड़ा

6. जप अर मंत्र

जसनाथी–संप्रदाय मांय जाप अर मंत्र आपरी ठावी ठौड़ राखै अर अै जप अर मंत्र घणा चावा अर महताऊ है। आं रै सागै श्री जसनाथजी रो झाड़ो ई घणो महताऊ है। आं मांय सूं कीं जाप अर मंत्र इण भांत है [12]–

भगवे रा जाप

ऊं ब्रह्मोती विचार लखाया–अनहद वाणी सबद सुनाया
जो भाट् भग भगवान उपाया–कर भगवां भगवान दिराया
ऐश्वर्य जश धरम सूं पाया–लिछमी ज्ञान वैराग्य लखाया
ऐश्वर्य चादर जश–जळ धोई–ज्ञान गेरूं कर रंगत होई
लिछमी विद्या रू सुवाई–त्याग वैराग जोग सूं पाई
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया–इण भग सूं भगवां सिद्ध होया
जे सिद्ध योग जुगत कर जोया–श्रीदेव जसनाथ गुरु लखाया
।।भगवां जाप संपूरण भया, अणंत कोटि सिद्धां में श्रीदेव जसनाथजी कया।।

निसाण जाप

सत रा नेजा सबद नगारा, सिंवरत सुरतां ज्ञान विचारा
झालर शंक तुरंगी सारा, चंवर ढुळै गुरु रै लख च्यारा
गुरज बडी राखण हकदारा, धूप दीप कर जोत पसारा
होम जिगन रा जाप उचारा, गोरख वचने जसवंत धारा
।।निसाण का जाप संपूरण भया, श्रीदेव जसनाथजी सिद्धां तणा कया।।

दीक्षा-मंत्र (गृहस्थ)

ॐ शब्द गुरू सूरत चेला, पांच तत्व में रहै अकेला
स्हजे जोगी शून्य में वास, पांच तत्व में लियो प्रकाश
न मेरे माई ना मेरे बाप, अलख निरंजन आपो ही आप
गंगा जमुना बहे सरस्वती, कोई कोई न्हाये विरला यती
तारक मंत्र पारकी राम, गुरु बतायो निश्चय नाम
जो कोई सुमरै उतरै पार, बहुरि न आवै मेली धार

07:39

दीक्षा-मंत्र (साधु)

ॐ शब्द सोहं आप, अंतर्जपे अजपा जाप
सत्य शब्द ले लंघै घाट–बहिरि न आवै योनि बाट
परसै विष्णु अमृत पीवै–जरा न व्यापै युग युग जीवै
विष्णु मंत्र है प्राणाधार–जो कोई जपै सो उतरै पार
ॐ आदि विष्णु युगादि विष्णु तत्व स्वरूपी तारक विष्णु[13]

7. झाड़ा या झाड़ो

ॐ रिख्या आप भणीजै, दाणू भूत सिंधार कीजै
सिंगी बाजै रवि तपै, सोसै सात समंदर
में सासुर सो दाणू निरदळयो
देई देवी चांवडा की रिख्या
सबद साचा पिंड काचा–चलो मंतर ईसरो वाचा
गुरु गोरखनाथ जसनाथ का वचन सदा साचा

झाड़ा अर मंत्र जाप ई जसनाथी–साहित री साख, रचनावा है। मंत्र सूं रोगां अर कस्टां रो निवारण हुवै। मंत्र जाप सूं आत्मा रो कळेस मिटै। श्री जसनाथजी रै झाड़ा अर मंत्रां सूं गळै रा रोग अर सरीर रै रोगां रो निवारण हुवै। श्री जसनाथजी रै नांव री आस्था सूं भी कस्टां रो निवारण हुवै, ईस्वर री आराधनां सूं मुगति री कामनां पूरी हुवै।

जसनाथी–साहित मांय श्री जसनाथजी रै रचियोड़ै ग्रंथां रै अलावा करमोजी री 'हरकथा', सिद्धश्री दूदोजी री 'पांडवां री जाठ', 'पांडवा री कथा', सिद्धश्री देवोजी रो 'देसूंठो', सिद्धश्री सोमोजी सोनी रो 'गोपीचन्दो', सिद्धश्री पांचोजी री 'करणकथा', सिद्धश्री श्रवणजी भूकर री 'सीत पुराण' अर सिद्धश्री रामनाथजी, परमहंस जी री रचनावां घणी महताऊ है, जिका जसनाथी–साहित रा हीरामोती है। आं रचनावां सूं जसनाथी साहित भंडार रै सागै राजस्थानी संत अर भगती–साहित भंडार मांय ओपतो अर सुवावणो सरूप बण्यो है।[14]

प्रस्तुत किया गया है। यह प्रयोग अत्यन्त रूचिकर एवं मनोरंजक प्रतीत होता है। यहां उनका विवरण दिया जा रहा है।

नाथ गुरू उत्तमनाथ के शिष्य योगी वैराग्यनाथ ने एक वाणी में लिखा है।[1]

साधे भाई ऐसी सुरता जागी रे, गुरू का शब्द सुना जब उर में, मूल अविद्या भागी रे।

जाग के जोय लियो घर सागी, इत उत नहीं अभागी रे।

शुद्व सरूप में ऐसी लागी, कियों होवे नहीं आगी रे।

अज्ञान दसा में आपो भूली कुटुम्ब कियो बहु नागी रे।

गुरू शब्दों का लगा चमेटा, सीधे मारग लागी रे।

सीधो रस्तो सोहं को है, उलटे रस्ते को त्यागी रे।

उलटे रस्ते में दुख बहु भोग्यो, सुख सोहं में पागी रे।

शुद्व रूप सांचो पति पायो, नकली को अब त्यागी रे।

नकली के संग नाथ बहु नाची, इत उत फिरी मैं भागी रें।

---

[1] विविध संग्रह विवेक प्रकाश – (80)

08:07

बीकानेर संभाग में नाथ साहित्य का एक समृद्ध इतिहास है, जो मुख्य रूप से **जसनाथी संप्रदाय** के उदय और प्रभाव से जुड़ा हुआ है। नाथ संप्रदाय के कई महत्वपूर्ण स्थल इसी क्षेत्र में स्थित हैं, जो यहाँ के साहित्य और संस्कृति को प्रभावित करते हैं।

बीकानेर संभाग और नाथ साहित्य

- **जसनाथी संप्रदाय का केंद्र**: बीकानेर जिले का **कतरियासर** गाँव जसनाथी संप्रदाय की प्रधान पीठ है। हालांकि जसनाथी संप्रदाय एक विशिष्ट शाखा है, यह व्यापक नाथ परंपरा से प्रभावित है और इस क्षेत्र में इसकी शिक्षाएं व साहित्य बहुत लोकप्रिय हैं। जसनाथजी महाराज के अनुयायी उनकी शिक्षाओं का अनुसरण करते हैं, जो आध्यात्मिकता और नैतिकता पर केंद्रित हैं।
- **प्रमुख नाथ स्थल**: बीकानेर संभाग के विभिन्न स्थानों पर नाथ योगियों से जुड़े कई प्राचीन स्थल और मठ हैं। इनमें कतरियासर, बम्बलू, पुनरासर, लिकमादेसर, पांचला और बालिलिसर (अंतिम बाड़मेर में) प्रमुख हैं।
- **स्थानीय साहित्यकार**: बीकानेर संभाग से संबंधित घनश्याम नाथ कच्छावा जैसे कवि भी हुए हैं, जिनकी राजस्थानी कविताएँ मिलती हैं, जो संभवतः स्थानीय नाथ परंपराओं से प्रभावित हो सकती हैं।

नाथ साहित्य की विशेषताएँ

सामान्य नाथ साहित्य, जिसका प्रभाव बीकानेर संभाग में भी देखा जाता है, हठयोग, गुरु भक्ति और आत्मज्ञान पर बल देता है।

- इस साहित्य में ज्ञान निष्ठा को महत्व दिया गया है।
- यह भोग-विलास की निंदा करता है और संयम तथा

तातै आत्म प्रकाशको चम्पा लखि है मित्त ॥ १५१॥
शब्द रूप रस गंधको जो करि है पहिचान ॥
ता आत्मा देवे सही चम्पा ब्रह्म तु जान ॥ १५२ ॥
जामें रहत सवै कछू जाकरि उपजत जात ॥
ता आत्माको जान तूं चम्पा आनन्द गात ॥ १५३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो सो जुगति न डारिदे जो जो जान्यो जात ॥
ा॰सा॰ सोहं सोहं ध्यान करि चम्पा चिन्मय वात ॥ १५४ ॥
॥३२॥ ज्ञान ज्ञेयते नाहिजुदो ज्ञेय ज्ञान इक पोत ॥
यांते और हि कछु नहीं चम्पा भेद न होत ॥ १५५ ॥
जो जो ये कछु करत हैं ब्रह्म विष्णु रुद्रादि ॥
चिन्मयते हि हौं करो चम्पा वात यह आदि ॥१५६॥
हौं सव जग यह विश्व हूं हौं परमात्मा वानि ॥
भूत न भावी होत नहि चम्पा और न जानि ॥१५७॥
चिन्मय एकहि ब्रह्म है और अखंड विज्ञान ॥
अचल वहुत घन सकल यह चम्पा कीजे ध्यान १५८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ँ नाहीं नहिं और हैं ब्रह्म निरंतर आहि ॥
ा॰सा॰ सोवै आनन्द रूप है चम्पा समुझो याहि ॥ १५९ ॥
गहि वेलायक सव कछू गाहक है सव कोइ ॥
॥३३॥ योगी जानत तत्वको चम्पा पूजा सोइ ॥ १६० ॥
तनमन इंद्रिय आदि दै यामें आपुहि होय ॥
हौ मेरो अभि मान यह चंपा मलिनता सोय ॥ १६१ ॥
चिदा कास परब्रह्म है यह निश्चय मन मेलु ॥
मिटत जीवकी जीवता चंपा दीप गतेलु ॥ १६२ ॥

देर सहज रूप से हो सके सांस को ऊपर रोकना होता है। अंगूठे और अनामिका से दोनों नथने बन्द करके वायू को रोकें। (प्रवेशितस्य धारण कुम्भः)। इस से मन शान्त बनता है। मन की एकाग्रता तथा परमानन्द की प्राप्ति के लिए प्राणायाम का भी बहुत कुछ योगदान होता है। इसका अभ्यास सुयोग्य गुरु से सीखना होता है। यह मात्रिका तथा मालिनि का काम भी निभाता है। हमारे सत्गुरु महाराज परम् दयाल स्वामी गोविन्द कोल जी ने इस का वर्णन अपने भजन द्वारा इस प्रकार किया है:-

"सत् चित् आनन्द गूव्यन्द गू।
प्राण छिय करान सू हम सू।।°°

प्राण-अपान यलि मेलि मंज़सिय छु हर।
मन गछ़ि पानय ईकागर।।
सोरुय छू पानय शिवुऽ शम्भू।।°°

प्राण ग'व ज़ीव तय अपान ईश्वर।
दो'ऽशवि'ऽन्य कुन कर रोज़ अज़र।।
ब्रह्म मय छु सोरुय ज़ीव छुय कू।।°°

स्वप्रकाशुऽ दो'ऽहस करतुऽ करार।
अविद्यायि रा'ऽछ़िय रोज़ हुशियार।।
प्यठ ब्रह्माण्ड़स छुय वज़ान हू।।°°

पर तुऽ पान कुन व्यन्द कर दूर दुय।।
गूव्यन्दुऽ वीदव गच्यो'ऽवमुत छुय।।
गूव्यन्दुऽ स्वरतो गूव्यन्दुऽ गू।।°°

इसी प्रकार दूसरे एक और भजन में इसका विवरण इस प्रकार हैं:-

"सत्गो'र च्वलमय सुलि वुज़ुना'ऽ विथ।
मस गोम च्या'ऽविथ खो'ऽत खुमार।।°°

तन मन थाव्याम जान पा'ऽठ्य ना'ऽविथ।
पूरक कुम्भक बारम्बार।।
यछ़ि पछ़ि भावुऽ जामुऽ रूदय पा'ऽ
रा'ऽविथ।।°°

वारुऽ गूव्यन्दुऽ ह्यक्तुऽ पान प्रज़ुना'ऽविथ।
प्रज़ुऽनाव तोर नो बो'ऽज़्य रफ्तार।।
न्यशुऽ वय तापिय रूदय शेहलुऽविथ।।°°

19:15
ARCHIVE

कामनाओं से विलगकर चित्त को स्व में प्रतिष्ठित करना तथा प्राण तथा अपान के बीच मध्यम मार्ग का ध्यान करने से ललाट में बोधिचित् प्रज्ञापूर्ण होने पर और उपायआलिंगन से परमानन्द प्राप्त होता है। तत्पश्चात् इस आलिंगन से

There is no greater sin than discharge and no greater merit than bliss (arising from the motionless Bodhichit). Discharge is the progenitor of detachment and from ditachment (विराग) arises Sorrow and from Sorrow is the loss of Vital element and from the loss of Vital element Comes death.

Anintroduction to Tantric Buddhism—S. B. Das Gupta.

इस तथ्य से स्पष्ट है कि गुह्य-साधना में साधक अधिक से अधिक समय तक अस्खलित अवस्था में युगनद्ध रहकर, आंतरिक चित्तवृत्ति को क्षोभ रहित रखने का प्रयत्न करते थे। इसमें सफलता प्राप्ति के लिए ज्ञान एवं हठयोग दोनों की आवश्यकता है।

(२) कायिकं मानसं दुःख नावकाशं प्रदापयेत्।
सर्वसौख्यसमायुक्तः सिध्यते नात्रसंशयः—ज्ञानसिद्धिः—इन्द्रभूति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज्वलित होकर चन्द्रनाड़ी स्रवित होती है, यही विरमानन्द है। तत्पश्चात् काय वाक्, चित्त और बिन्दु के अवसारन के समय—ज्ञाता-ज्ञेय भेद नष्ट होने पर 'सहजानन्द' प्राप्त होता है। कबीर आदि इसी को 'रामनाम का रस' कहते हैं। उपर्युक्त आनन्दों में प्रत्येक चार प्रकार का है।

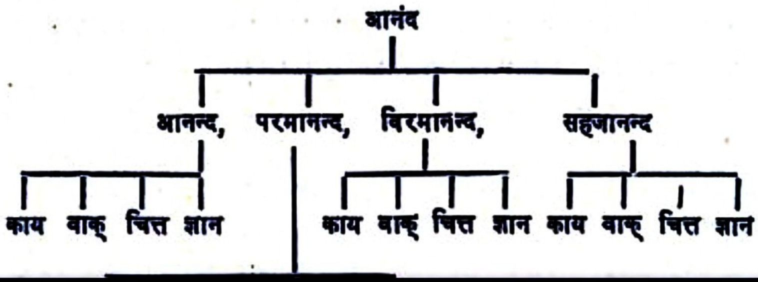

Page १२८ (132/368)
Favorite
Share
Flag
Madya Kaleen Hindi Kavya Ki Tantrik Prushta Bhumi By Vishwambhar Nath

भ्रू के मध्य में आज्ञा पद्म है, उसमें हं क्षं दो बीज हैं। सुन्दर श्वेत वर्ण के दो पत्र हैं। उस स्थान में महाकाल सिद्ध है। हाकिनी अधिष्ठात्री देवी और परमात्मा देवता है।

यह छः चक्रों की साधना हठयोग में निर्धारित की गई है। कालान्तर से ६ चक्रों के स्थान पर ९ चक्रों का प्रतिपादन भी किया गया तथा दोनों की मान्यता प्रतिष्ठित हो गई। हठयोग में प्राणायाम की महत्ता सर्वोपरि है। प्राणायाम की अनेक विधियां तथा प्रकार निर्दिष्ट किये गये। रेचक, पूरक और कुंभक प्राणायामों के कई भेद निरूपित किये गये। किन्तु इस प्रसङ्ग में इन सब का विवेचन अपेक्षित नहीं है। यौगिक क्रियाओं की पृष्ठभूमि के रूप में अति सामान्य विवेचन के पश्चात् प्रस्तुत प्रसङ्ग में यह देखना आवश्यक है कि रज्जब जी की साधना में योग के दो मूल प्रकार हठयोग तथा राजयोग का कहां तक प्रभाव है? निर्गुण भक्ति-साधना के संतों की प्रवृत्ति स्थूल के विसर्जन और सूक्ष्म के ग्रहण में विशेष रही है। उन्होंने सगुण उपासना में प्रतिपादित ब्रह्म के नाना अवतारों का खण्डन किया परन्तु अवतारों के नामों को सहर्ष स्वीकार किया। वे अव्यक्त ब्रह्म को नाना संज्ञाओं से सम्बोधित करते हैं परन्तु उसे रूपात्मक अथवा स्थूल बनाने के पक्ष में नहीं हैं। उन्होंने मन और इन्द्रियों के निग्रह पर विशेष बल दिया, बाह्य कर्मकाण्डों एवं वेद-रचना की स्थूलता का निराकरण किया। उनकी साधना अन्तर्वर्तिनी तथा अन्तर्मुखी थी। यह निर्गुणोपासक संत बाह्याडम्बर अथवा उपासना की स्थूल पद्धतियों के पक्ष में नहीं थे। रज्जब जी उपासना के बहिरंग साधनों का निरसन करते थे। हठयोग की क्रियायें चूंकि योग के बहिरंग साधन हैं, इसीलिये रज्जब जी साधना में हठयोग को पूर्णतः न अपना सके। उनकी हठयोग सम्बन्धी आस्था अधिक से अधिक इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना अथवा चन्द्र-सूर्य मिलाप तक, चक्रों में केवल षट्-चक्र शब्द के प्रयोग तक ही सीमित रही। रज्जब जी हठयोग के यम, नियम, आसन, मुद्रा, बन्ध के ब्यौरे में नहीं गये और न इन कृत्रिम असहज साधनाओं में उनका विश्वास ही था। वे तो सहज साधना को प्रश्रय देते थे। हठयोग की जिन विशेष धाराओं का प्रभाव रज्जब जी के साहित्य में लक्षित होता है वे निम्नलिखित हैं—

(क) इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के संयोग से अमृतत्व की प्राप्ति
(ख) पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की अवस्थिति
(ग) संयम एवं इन्द्रिय-निग्रह
(घ) ब्रह्म-रंध्र अथवा शून्य में प्राणारोपण

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हठ्योग प्रदीपिका में इसी सिद्धान्त का समर्थन किया गया है।

मनःस्थैर्ये स्थिरो वायुस्ततो बिन्दुः स्थिरो भवेत्।
बिन्दुस्थैर्यात् सदा सत्वं, पिण्डस्थैर्यं प्रजायते॥

उपदेश ४, श्लोक २८

मन की स्थिरता होने पर प्राण भी स्थिर होता है। तथा प्राण की स्थिरता से बिन्दु की स्थिरता होती है। बिन्दु के स्थिर होने पर सदैव बल होता है और उससे देह की स्थिरता होती है। बौद्ध साधना में काय, वाक् और चित्त की दृढ़ता को साधना में अत्यन्त उपयोगी माना गया है। तांत्रिक साधना के अनुसार यह चित्त-तत्त्व शुक्र या बिन्दु है। सामान्यतः यह सांसारिक चित्त या शुक्र महाबलिष्ठ और चंचल होता है इसलिये चित्त की साधना की प्रारम्भिक क्रिया उसके शोध की होती है। निर्मल चित्त का स्थिरीकरण दूसरी क्रिया है।[1] प्रश्न यह उठता है कि नाद उत्पन्न किस प्रकार होता है। योग में कुण्डलिनी शक्ति का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। यह शक्ति सामान्य व्यक्तियों में अधोमुखी होती है। यौगिक क्रियाओं द्वारा इस शक्ति को ऊर्ध्वमुखी बना कर ऊपर चालित किया जाता है। कुण्डलिनी के उद्बुद्ध होने पर जब वह ऊपर की ओर प्रस्थान करती है तो उसमें स्फोट होता है उसी को नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश ही व्यक्त-रूप महाबिन्दु है। यह बिन्दु तीन प्रकार का होता है—इच्छा, ज्ञान, क्रिया। पारिभाषिक शैली में योगी लोग इन्हीं को सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते हैं और कभी ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। अब यह जो नाद और बिन्दु है यह वस्तुतः निखिल विश्व में व्याप्ति अनाहत नाद का व्यष्टि में व्यक्त रूप है। अर्थात् विश्व में व्याप्त अनाहत नाद व्यक्ति में पड़ कर नाद और बिन्दु बन जाता है।[2]

नाथपंथी योगियों में हठ्योग तथा लययोग दोनों के प्रति आस्था लक्षित होती है। नाद बिन्दु साधना पर गोरखनाथ ने बड़ा बल दिया है। स्थान-स्थान पर नाद बिन्दु साधना की चर्चा गोरख बानी में मिलती है।

गोरख :—

स्वामी कवं उतपन्यो नादं, कवं नाद समभवते।
कौन के चालते नादं, कवं नादं विलीयते॥

---

१ – तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, पृष्ठ १६५
२ – कबीर – ले० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४६

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ओ३म्

निर्वाण दशश्लोकी

श्री गुरवे नमो नमः।

सहस्र सर्वत्र व्यापी स्वहृथ् विचार्यम्
बहुबल संबाहु एकतं स्वयंबू परमाकारी।
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य् तती परम्गती ॥1॥

अनंत, सर्वत्र विराजमान, स्वयं देदीप्यमान, सर्वशक्तिमान, एक मात्र व्यापक आकार वाले ईश्वर की रचना अपार है। भीतर मन पर दृष्टि डालने से परमगति का रहस्य दृष्टांत होता है और निर्वाण के रहस्य की जानकारी मिलती है।

शुद्ध युक्त-मूलादारी क्वण्डली मण्डली गौरी।
स्यद्द अर्थ सूक्ष्मू सुष्वप्ती चक्र विरक्त शान्तादारी।
ईश्वरी तुर्यातीत परमानन्दी।
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य् तती परमगती ॥2॥

शुद्धता का प्रतीक मूलाधार है। जिसके नीचे कुंड़िलिनी है। कुंड़िलनी के मध्य गौरी विराजमान है। सूक्ष्म सुष्वप्ती का सीधा अर्थ अलौकिक शांति है। ईश्वरीय तुर्यातीत स्थिति परम आनंद स्वरूप है। भीतर मन पर दृष्टि डालने से परम गति का रहस्य दृष्टांत होता है और निर्वाण के रहस्य की जानकारी मिलती है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

पाता-छ़ाल फीरिथ़् तां खाडुम्
म्यचि़-न्त कञ़न मन्ज़ि अनुम् पय।
अद नद्‌ वुदुम्-न्त गल-मद प्यवम्
प्रबातुं साथ स्वथु प्रज़ांलु–तां ना किंह् ॥5॥

आकाश पाताल छान कर मैंने उसे ढूंढ़ा। मिट्टी तथा पत्थर के बीच से उसका पता ले आई। दैनिक पूजा अर्चना करती रही और मुझे अमृत रस पीने को मिला। प्रभात के सूर्य के समान सत्य चमकता है–इसे कोई फर्क नहीं पड़ता।

हिञ़ि अनि पाताल गगन गमे
मूरत् ना मूरत् पाँच तत्त्व्।
च़ीतन मले शून्य तिह् गले
शन वूनिय सा छयस सत् ॥6॥

धीरे-धीरे (साधक) पाताल से गगन की ओर पहुंच जाता है। मूर्त और अमूर्त पांच तत्वों से ऊपर। चेतनावस्था भी शून्य के समन्दर में विलीन हो जाती है। चेतना की छः दशाएं भी वस्तुतः परम सत्य है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुह माह शमाह प्रज़लानी
तमाह्-ब्यन् ज़लानी ब्वह्।
अव-रूप् प्रयम छुय मेलानी
यिमय् पद कैंसि मलानी क्याह् ॥ 45 ॥

'सो-अहम' की शमा प्रज्ज्वलित हुई है। पूरी इच्छा से मैं उसे जला रही हूं। इसी रूप में प्रेम-तत्व प्राप्त होता है। यह पदवी तो किसी-किसी को ही प्राप्त होती है।

मथुरा पथ ब्रोंह सत-रूप्
मेलुयौ सथ-गथ् त् तत्त्व्।
तेलुयौ रोय-रगे हर्-रंग
मेलुयौ आत्म-संग-रव् ॥ 46 ॥

मथुरा के इर्द-गिर्द सत्य रूप ही है। वहां पहुंचने पर तुम्हें सद्गति और तत्त्व ही प्राप्त होगा। वहां ही से सब रंग प्राप्त किए है। आत्मा का मेल परमात्मा से तभी संभव है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इह्वयं कुल मूल-त् श्वह तुल्
यवा शाख पन–तां फूल्।
दात पप्यव् स मुद्रा पान
रसे सवाद त् नन्यस् बोय् ॥ 57 ॥

यही वृक्ष की जड़ है और यही शहतूत का वृक्ष। यही शाखाएं है और यही फूल है। रस पड़ जाने पर फल मीठा हो जाता है। रस से ही प्रकृति के स्वाद का पता चलता है।

मन्द् स-मुदुर् दोनु सानी
छ्वकु समाद् नाद-विन्द च्रट्।
दान अखंड मिलायो मखून
सादिकारिस द्रायाम् ग्यव् ॥ 58 ॥

समन्दर मंथन का अमृत प्राप्त करो। मंथन से नाद-बिन्दु प्राप्त होता है। अखंड दान, साधक मक्खन को मिलाकर भी प्राप्त कर लेता है।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नादुय़् बिन्द पदुय़् परम
मदुय मारि–फतुकुय़् छुयस् ।
विष्णु-ब्रह्मा महेश्वरा
कृष्ण ब्यय़् श्याम-सुन्दर् छुस् ॥ 83 ॥

नाद-बिन्दु परम स्थिति है। यह मादकता ईश्वरीय मिलन से ही प्राप्त हो सकती है। वही ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर, कृष्ण और श्याम सुन्दर है।

गोम औवतार सुह् महादीव्
सुह् वा सुह वा सुयय़् छ्युस् ।
पूरा तोले रामा बोले
ब्रह्म-स्वामी मन्दोरि छुस् ।
यिह् किंह काँछि तिह–किंह् दिये
दुकान् त्रपित समुद्रुय छस् ॥ 84 ॥

जो अवतार दिखाई दिया वही महादेव का था। वही था–वही था–वही है। पूरा तोल कर राम का नाम लो। भगवान ब्रह्मा उदारमना है, जो उसकी 'इच्छा' होती है उसी हिसाब से वह बांटता है। उसकी दुकान पूरी तरह भरी है जैसे समन्दर में पानी।

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रूपं न रस् न, स्पर्श् गन्द् न देहो
दुयी दयस् न छुस् केवलोहम्
ज़ीवो जीवता न वर्ता न वार्ता
कर्ता सहोकार् परं ब्रह्म सोहम् ॥9॥

न रूप न रस, न स्पर्श न गंध, न देह, न वास, केवल मात्र मैं ही हूं। न जीव और न जैविक क्रियावाला, न वार्ता न वार्ताकार, न कर्त्ता न अकर्त्ता। समस्त कारकों सहित रूप में मैं ही परमब्रह्म हूं।

इडा न पिंङ्गला नच ब्रह्मनाड़ी
स्वयिय् सुषुम्ना पायाहमेव।
अनाहत् अनामय तुरायाऽवस्था
आनन्दरूपंद् परं ब्रह्म सोहम् ॥10॥

न इड़ा न पिंगला, न ही ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना से प्राप्त शक्ति, अनाहत, अनामय, तुरायवस्था हूं। आनन्द रूप में परम ब्रह्म मैं ही हूं।

॥ इति स्वानुभवोल्लास दशकम् ॥

CC-O. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माता रूपभवानी ने निर्वाण दशश्लोकी और वाक्य मंजरी में योग के सहजतम तरीकों की व्याख्या की है। भवानी साहिबा ने राजयोग को सर्वोच्च योग माना है।[1] इस राजयोग में ज्ञान और भक्ति का समावेश है, पीड़ादायी हठयोग नहीं। यह राजयोग कश्मीर के शैव-दर्शन का पोषण करता है। कीचड़ में रहकर कमल की तरह पवित्र रहने का रहस्य ही राजयोग है। रूपभवानी ने अपने वाखों में कुंडिलिनी योग का भी उल्लेख किया है। यहां मूलाधार चक्र शुद्धता का प्रतीक है। जिसके नीचे कुंडलिनी है। ईश्वर प्राप्ति में तुर्यातीत अवस्था आन्नददायी है।[2] षट्चक्र सिद्धी असंख्य कार्य करवा सकती है। ईश्वर महानंद स्वरूप है और उसका स्थान षट्टचक्र के मध्य है।[3] रूपभवानी के अनुसार योगसिद्धी और सिमरन से देव को प्राप्त किया जा सकता है।[4] भवानी साहिबा के अनुसार व्रत, सत्य, तत्वबोध एवं शुद्ध आचार ही वेद और योग का प्रमुख आधार है।

साधना पक्ष

कश्मीरी संतों का साहित्य गुरु की महिमा से भरा पड़ा है। रूपभवानी साहिबा ने भी अपने पूर्ववर्ती संतों की भांति गुरु को प्रमुख माना है। माता रूपभवानी के गुरु लल्लेश्वरी सहित पिता माधव जू दर थे। रूपभवानी गुरु को ज्ञान का प्रबल प्रकाश देने वाला मानती है। वही कुल का उद्धार करने वाला भी है, वही ब्रह्म है, वही गुरु है।[5] रूपभवानी के लिए गुरु का नाम अन्तर्मन से पवित्र और शुद्ध है। गुरु चाहे लल्लेश्वरी हो, शिव अथवा माधव हो, सभी एक समान हैं और परम ब्रह्म स्वरूप हैं।[6] भवानी साहिबा के अनुसार ईश्वर स्वयं आकर गुरु का महत्व समझा जाते हैं। इसी से गुरु की महानता का बोध होता है। इसी गुरु की कृपा से सत्य के तत्त्व ज्ञान की

---

1. पवित्र नेत्र पश्यत मुखी अन्तर्
बाहो बहु-दनाड़ी असंख्य कांमू कर्द्।
यिहुय् राज़-यूगी दाता पिता सुय।
सर्व कांख्या सु अर्थ पूरनी
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य तती परमगती ॥
रहस्योपदेश : पृष्ठ 4 (5)

2. शुद्ध युक्त-मूलादारी क्वण्डली मण्डली गौरी।
स्यद् अर्थ सूक्ष्मू सुष्वप्ती चक्र विरक्त शान्तादारी
ईश्वरी तुर्यातीत परमानन्दी।
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य् तती परम .गती ॥
रहस्योपदेश : पृष्ठ 2 (2)

3. शयुम्-थान् वासी सर्वमध्यं
जिता सन्यासी ब्यन-बिन्दु-नांदी
अन्तर्मुखी दृष्टी निर्वान-रहस्य तती परमगती
रहस्योपदेश पृष्ठ 4(7)

4. रहे निशाना ईश्वर-सुन्दु नावा
कति आयाव्–तु कतु-सन् गव्।
समरियृ–त साादिय् तमि कज़ाव
दीव स्यत मुखी त सीव् करहास्।
रहस्योपदेशपृष्ठ 41(109)

5. युसुह ग्वर पिता सुय् छुह मोल्
सुह् इह् प्रबल् दीप-प्रकाश।
सुह् इह् सर्व क्वलस उदार् रखुन्
सुह् इह ईश्वर सुह छुह ग्वर् ॥
रहस्योपदेश : पृष्ठ 22 (48)

6. ओम ग्वर अन्तर् तय निर्मलम्
शद्धं अत्यन्त विद्याधरम्।
लल्-नाम लल् परमा ग्वरम्
शिव-माधव नाहं परं ब्रह्म सोहम् ॥
रहस्योपदेशः पृष्ठ 6 (1)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

08:07 Vo)) LTE1 4G

का उपभोग किया जाता है।

रसात्मक निजचन्द्र को ऊपर खींचकर आकाशस्थित चन्द्र के साथ उसको मिलाना चाहिए। ऊर्ध्वगति से रस अमृत के रूप में परिणत हो जाता है। आकाशस्थित चन्द्र का तथा सहस्रार से सम्बद्ध गरलचन्द्र का योगी पान करे। वायु के साथ मन का बन्धन करना चाहिए। मन, वायु और अमृत की दशम द्वार से ऊपर स्थापना करनी चाहिए। निरन्तर ध्यान करना चाहिए। अमृत-प्रवाह की अधोगति रोकने के लिए त्रिवेणीद्वार पर ध्यान रखना आवश्यक है। उसके अनन्तर गरलचन्द्र का पान और प्रणव का ध्यान करना चाहिए। गरलचन्द्र से देह और मन का शोधन तथा संजीवन होने पर सिद्ध देह की प्राप्ति होती है और अन्त में जीवन्मुक्ति होती है।

इस मत में सिद्धदेह द्वारा चन्द्रभेदपूर्वक चन्द्रामृतपान जीवन्मुक्ति का साधन है। किन्तु, परममुक्ति का साधन है प्रणव-ध्यान और शून्य तत्त्व में प्रतिष्ठा। पहली प्रक्रिया से कायसिद्धि प्राप्त होती है और काय की चिन्मयता निष्पन्न होती है। दूसरी प्रक्रिया से शून्यता की प्राप्ति होती है।

[६]

महायान के बौद्धों ने भी अपने अभीष्ट मार्ग से कायसिद्धि का उपदेश दिया है। श्रावकयानों की अभिमत अधिक उत्कृष्ट प्रज्ञा से प्रज्ञा की प्राप्ति के लिए बोधिसत्त्व-भूमि में प्रवेश कर तत्-तत् भूमियों का क्रमशः भेद करना चाहिए। अन्त में प्रज्ञापारमिता की प्राप्ति होती है, वही बुद्धत्व-सम्पादक महाज्ञान है। अक्लिष्ट अज्ञान के क्षय के बिना पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती और सम्यक्सम्बुद्धत्व भी नहीं हो सकता। बोधिसत्त्व की कायसम्पत् हेतु-अवस्था में ही होती है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

तान्त्रिक बौद्धमत में देहरस-रूप बिन्दु ही 'बोधिचित्त' कहा जाता है। चतुर्दल कमल से उसे उठाकर ऊपर उष्णीष-कमल में स्थापित करना ही योगसाधना का फल है। षट्चक्र-भेदन के समान यह उत्थापन-क्रिया भी बड़ी कठिन है। उसमें सबसे पहले देहरस-रूप बिन्दु की मेरुमार्ग में सबसे निचले चक्र में स्थिति होना आवश्यक है, तदनन्तर निर्माणचक्र से महासुखचक्र-पर्यन्त उसे चढ़ाना चाहिए। बोधिचित्त के उद्भव, निरोध और ऊर्ध्वगमन निर्माणचक्र में ही कर लेने चाहिए। यही कर्ममुद्रा का स्थान है, जिसमें बोधिचित्त का उद्भव होता है। उद्भव क्षोभरूप है,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Page २७८ (322/440)

Favorite Share Flag

Tantrika Vangmaya Main Shakta Drishti By Dr. Sri Gopinatha Kaviraja Patna 1978 Bihar Rashtriya Parishad

by Bihar Rashtriya Parishad

दर्शनी योगी बन सकते हैं। (पूर्वकाल में योगी को जोगी कहने की प्रथा थी)

(२४) घर का जोगी या जोगी घरका—जन्मता जोगी या नाथ घरके

(२५) बिन्दु—पारा—बिन्द—पुरुष वीर्य (पुष्ट) को कहते हैं तथा कुण्डलीनी उत्थान को भी कहते हैं।

(२६) कुण्डलीनी उत्थान—कुण्डलीनी शक्ति जाग्रत करना यह प्रत्येक पुरुष के मूलाधार चक्र में सर्पाकृति मण्डल डालकर बैठी हुई होती है तथा वीर्य उध्वरेता क्रिया को भी कुण्डलीनी कहते हैं।

(२७) खडदर्शन—६ चक्रों की जाग्रती तथा छह चक्र दर्शन

(२८) दर्शनी योगी शिव की काया—शिव स्वरुप जो दर्शनी योगेश्वर होते हैं उनको कहते हैं।

(२९) इन्द्रि के जती—वाचा के सती (या जती सती) अखण्ड ब्रह्मचारी एवं सत्यवादी

(३०) शक्ति पात—सद्गुरु स्पर्श द्वारा तथा अपने योग शक्ति द्वारा शिष्य को कृपा कटाक्ष शक्ति देते हैं। वह शक्ति पात तथा शक्ति सन्क्रमण भी कहते हैं।

(३१) स्थान मकान—मठ, मंदिर, टिल्ला, दरगाह, दलीचा, समाधि धूना (यज्ञकुण्ड) नाथ सम्प्रदायिक इष्ट देवी देवता के मूर्ति या चरण पादुका स्थापित स्थान।

(३२) दर्शन मेला—भेंट मुलाकात तथा धार्मिक यात्रा स्थान भेंट

(३३) मत्था टेक—नाथ सम्प्रदायिक पंथों के मुख्य गद्दी स्थान में जाकर दर्शन करना। इसे सिर मत्था टेक भी कहते हैं।

(४०) फक्कड़—त्यागी अवधू (पूर्ण विरागी)

(४१) राजी खुशी—हालचाल

(४२) जुकती—मुकती—साधु वृत्ति से रहना। (आचरण शुद्ध)

(४३) लेखा—जोखा—हिसाब किताब (लेन देन)

(४४) धूनी चेतन करना—धूना (यज्ञ) जागृत करना।

(४५) अखण्ड धूना—पूर्व काल से चेतन (प्रज्वलित) धूना रखना और

चक्र जाग्रति से समस्त शरीर में रक्त संचार में उष्णता निर्माण करता है और यह शक्ति हृदय गति को संग्रही करके संयम की जाती है। इस प्रकार अनहद चक्र जाग्रति के पश्चात् साधक को महाआनन्द की प्राप्ति होती है काया तेजस्वी होती है। समस्त काया शुद्ध-पवित्र होती है। प्राकृतिक महाज्ञान की प्राप्ति एवं ईशत्व सिद्धि मिलती है। साधना में साधक का शरीर हल्का होता है, हवा में, या आकाश में उड़ रहे हैं, ऐसा अनुभव आता है। माया रुपी दादा मत्स्येन्द्रनाथजी ॐकार शिव का हृदयस्थ इसी अनहद चक्र में ध्यान (तपस्या) करने पर उन्हें परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त हुयी थी।

अतः साधक विशेषतः उज्जयी प्राणायाम (कुम्भक) का अभ्यास करता है यहां प्राण नाक से कण्ठ में और कण्ठ से हृदय से जाकर स्थिर किया जाता है यहां जालन्धर बन्ध लगाने से (मृत्युजंय) मृत्यु वश में किया जाता है। वही हृदय में संचित की हुयी प्राण शक्ति भाव (भावना) शक्ति और उदान व्यान वायुओं की शक्तियाँ संक्रमित होकर यहां महाभाव (आर्तभाव) की शक्ति परिवर्तित होती है। क्योंकि यहां कुण्डलिनी (वीर्य) शक्ति उदान वायु में संघर्ष करती है और यहां का विशुद्ध चक्र जाग्रत होता है। जब साधक जालन्धर बन्ध अर्थात् कण्ठ गले के विवर को संकोचित करके ठोड़ी को वक्ष पर स्थिर करने पर कण्ठमूल का निरोध होता है और सहास्त्रागार का द्रवित अमृत नाभि स्थान सूर्य (अग्नि) मुख मे गिरकर भस्म होने से बचाते हैं और साधक उसका पान करके अमरत्व प्राप्त करता है। यहां इडा, पिंगला का भी निरोध हो जाता है और कुण्डलिनी (वीर्य) शक्ति सुषुम्ना में ऊर्ध्वरेता होकर प्रवाहित होती है। यहां साधक अमृतरस पीकर अमरत्व पाता है तथा इसे भूख नहीं सताती, दूरी श्रवण सिद्धि, आकाश गमन सिद्धियां प्राप्त होती है जो गोरक्षनाथजी को प्राप्त थी।

है।[1] हठात् मोक्षद्वार खोलने की विधि बताने के कारण भी इस योग को 'हठयोग' कहते हैं। इस कुण्डली-उद्बोध की कई विधियाँ हो सकती हैं।

शरीर में तीन ऐसी चीजें हैं जो परम शक्तिशाली हैं पर चंचल होने के कारण वे मनुष्यों के काम नहीं आ रही। पहली और प्रधान वस्तु है। (१) बिंदु अर्थात् शुक्र। इसको यदि ऊपर की ओर उठाया जा सके तो बाकी दो भी स्थिर होते हैं। बाकी दो हैं, (२) वायु और (३) मन। हठयोगी का सिद्धान्त है कि इनमें से किसी एक को भी यदि वश में कर लिया जाय तो दूसरे दो स्वयमेव वश में हो जाते हैं। एक-एक संक्षेप में विचार किया जा रहा है। यहाँ इतना और कह रखना उचित है कि कभी-कभी एक चौथी वस्तु की भी चर्चा शास्त्र में आ जाती है। यह है, वाक् या वाणी।

'अमरौघ शासन' में (पृ० ७) लिखा है कि मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयम्भू लिंग है जिसे पश्चिम लिंग कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रज. स्खलन का मार्ग है। यही काम, विषहर और निरञ्जन का स्थान है। वीर्य स्खलन की दो अवस्थाएँ होती हैं। इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलय-काल और विषकाल हैं। इन दो अवस्थाओं में जो आनन्द होता है वह घातक है। एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरी का विषहर। तीसरी अवस्था नानाभाव विनि-र्मुक्त सहजानंद की अवस्था है, इसमें बिंदु ऊर्ध्वमुख होकर ऊपर उठता है, तब यह सहज समाधि प्राप्त होती है जिसमें मन और प्राण अचचल हो जाते हैं।[2] ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा इस बिन्दु को स्थिर और ऊर्ध्वमुख किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि नाड़ियों को शुद्ध किया जाय। हठयोग षट् कर्म के द्वारा यही कार्य करता है। इन शुद्धि की क्रियाओं का साधन ग्रन्थों में विस्तृत रूप से उल्लेख है। इनमें धौति है, वस्ति है, नेति है, त्राटक है, नौलि है, कपालभाति है—इन्हीं को षट्कर्म कहते हैं। नाड़ी के शुद्ध होने से बिन्दु स्थिर होता है, सुषुम्ना का मार्ग साफ हो जाता है, प्राण और मन क्रमशः अचचल होते हैं और प्रबुद्ध कुण्डलिनी परमेश्वरी सहस्रार चक्र में स्थित शिव के साथ समरस हो जाती हैं और योगी चरम माहत्म्य पा

---

१. उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथो योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥—वही ३।१०१।

२. इस प्रसंग में 'अमरौघ शासन' में निम्नलिखित श्लोक हैं जिसमें वज्रयानी साधकों के पारिभाषिक शब्दों का व्यवहार जान पड़ता है। इन शब्दों के सावृत्तिक और पारमार्थिक अर्थ की बात हम कृष्णपाद (कानिपा) के प्रसंग में जान चुके हैं—

शक्तित्रयविनिर्भिन्ने चित्ते बीजनिरञ्जनात्।
वज्रपूजापवनाद् य. करोति स मन्मथ ॥
चित्ते सुप्ते मनोवृत्ति ऊर्ध्वमार्गाश्रितेऽनले।
उदामचलित रेतो मृत्युरेखामिव विदुः ॥

डांह डोम्बीघरे लागलि आगि (नी) ।
शशधर लइ (ए) सौँचह पानी ॥
न ओ खरज्वाला धूम न देख (ा)इ ।
मेरुशिखर लइ (ए) गगन पइसइ ॥
डाहइ हरि-हर ब्राह्म (ब्रह्म) भट्टा ।
फाटल होइ नवगुण शासन पट्टा ॥
भनइ धाम स्फुट लेहु रे ! जानो (नि) ।
पञ्चनालेँ उठि गेल पानी (नि) ॥

कमल कुलिशसँ तन्मध्यमे संयुक्त भेल अर्थात् शरीरस्था शक्ति शिवक मध्यविन्दुमे (ताहि परमतत्त्वक सङ्ग) संयुक्त भेलीह (कमल योनिक प्रतीक आ' कुलिश लिङ्गक प्रतीक, योनि लिङ्गक मध्य भागमे संयुक्त भेल, किन्तु योनि-लिङ्ग कुण्डलिनी-स्वयम्भूलिङ्ग अर्थात् शक्तिशिवक स्थूल सङ्केत मात्र अछि)। एहि (कुण्डलिनी-) योग द्वारा चण्डालीक, अर्थात् कुण्डलिनीशक्तिक तेजोमय शरीर जाग्रत भए गेल। हुनक निवास, अन्तःस्थ अङ्गुष्ठप्रमाण मात्र पाञ्चभौतिक शरीर, ओहि (कुण्डलिनीक) तेजसँ विनष्ट भए गेल, वासनादिक दृष्टिएँ। ओकर प्रखर ज्वाला शान्त कोना भेल ? शरीरस्थ चन्द्रमण्डलक शीतल अमृतसँ। आब ओ ज्वाला प्रखर नहि रहल, कालिम विकारक लेश धूमो नहि नयनगोचर रहल'-मेरुशिखरक आश्रित भएकेँ ओ प्राणशक्ति शून्यगगनमे प्रविष्ट भए गेलीह (आ' पुनः गगनस्वरूप महाशक्तिस्वरूप धारण कए लेलन्हि)। आब तँ ओहि शक्तिक तेजसँ हरि-हर-ब्रह्मा, सभ विग्रहवान् देवतागण (वा मूत्रशुक्रविष्ठानाड़ी), दग्ध भए गेल छथि [भेदभाव जाइत रहल, एक मात्र तत्त्व बँचि गेल परमशिव (शिव-शक्ति, परस्पराश्लिष्ट आ' परस्पराभिन्न)] नवपवनरूप नवगुणक एवं इन्द्रियशासनक पट्ट फाटि गेल । धाम कहैत छथि—हे योगिन् ! स्फुट (रूपमे) जानि लएह, उक्त पाँचो तत्त्व वा व्यक्ति, हरिहरब्रह्मा (वा मूत्रशुक्रविष्ठानाड़ी), पवन आ' इन्द्रिय पाँच नाल (नहरि, द्वारा)क काज कएलक, जकर सहायतासँ अद्वैतक शीतलभावना-जल, सामरस्यक शीतल आह्लाद दैत, प्रवाहित भेल। ई सभ हरिहरादि तत्त्व प्रारम्भमे सहायक भेल, द्वारा भेल, किन्तु परिणाममे शक्ति संयुत शिवतत्त्वक आ' पुनः तद्रूपत्व-अभेदक वा सामरस्यक अनुभव शीतल आनन्द देलक। सएह अभिप्राय।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(discriminative consciousness) रहता है, इन सभी अवस्थाओं से उच्चतर स्थिति की प्राप्ति निर्माण या सहजावस्था में होती है।[१] यह स्थिति ही 'महासुख' दातृ है। प्रथम और अंतिम स्थिति को एक मानने का कारण यह है कि 'सहजावस्था' प्रथम अर्थ में आत्यंतिक स्थिति है, सृष्टि के पूर्व यह सहजावस्था (उपनिषद् का ब्रह्म या आत्मा) ही अपने को विषय और विषयी के रूप में विभाजित करती है और विषय एवं विषयी के नाश के बाद साधक शुद्ध स्वरूप में स्थित होकर 'सहज' हो जाता है। अतः इस दृष्टि से 'सहजावस्था' या 'सहज-काया' अंतिम स्थिति हुई = चतुर्थकाया।

द्वितीय अर्थ में सहजकाया ही निर्माणकाया है, 'कायावज्र' की प्राप्ति सहजसाधना द्वारा ही होती है, अतः साधक साधना के प्रारम्भ में किसी स्त्री (प्रज्ञा) के साथ योग प्रारम्भ करता है। इस साधना में मस्तक में स्थित बिन्दु = वीर्य = बोधिचित् = पुरुष-शक्ति को प्रज्ञा के मिलन द्वारा (रति—क्रिया) द्रवित किया जाता है, साधक का बोधिचित् (वीर्य) द्रवित होकर वज्रमणि (लिङ्ग) तक आता है और प्रज्ञा (योनि) में गिर कर न केवल बाह्य सृष्टि करता है अपितु साधक द्वारा बोधिचित् एवं प्रज्ञा के मिलन का यह आध्यात्मिक लक्ष्य समझ लेने पर, बाह्य रति-क्रिया आंतरिक शक्ति को जाग्रत कर देती है और इस शक्ति द्वारा मस्तक से स्खलित बिन्दु (वीर्य-बोधिचित्) को पुनः मस्तक पर ही पहुँचा दिया जाता है (ऊर्ध्व-रेतस्-योग) और योगी इस प्रकार 'सहज' (सम्भोग) साधना द्वारा शरीर स्थित शक्ति को ऊर्ध्व-संचरित करता है और अंतिम स्थिति (सहज काया—चतुर्थ अवस्था) को प्राप्त कर नित्य निर्द्वन्द्व हो जाता है। यही सहजानन्द है, प्रथम एवं अंतिम काया का ऐक्य यही है, स्खलन तथा ऊर्ध्व-संचरण, अधोमुख विकास (involution) तथा विकास (evolution) की एक साथ अनुभूति ही तांत्रिक बौद्धमत की विशेषता है। बाह्य और आंतरिक की एकता 'सहजयोग' के बिना असम्भव है, तंत्रों की यह घोषणा है, शैव एवं शाक्ततंत्र भी इसे स्वीकार करते हैं।

वज्रयोग—वज्रयान में 'वज्र' शब्द की बड़ी महिमा है। हिब्रू-ग्रीक रहस्यवाद में भी 'आदम' Adam शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके दो

(१) दुर्वाररागमलावलिप्तोभयेन्द्रियात्मकतुर्यांतमोऽभिभूतसुषुप्तप्राणोत्पादितसदसत्स्वप्नानेकविकल्प भावसंज्ञात्मक जाग्रदवस्थाध्वंसके:............वही—पृष्ठ ५

कामनाओं से विलगकर चित्त को स्व में प्रतिष्ठित करना तथा प्राण तथा अपान के बीच मध्यम मार्ग का ध्यान करने से ललाट में बोधिचित् प्रज्ञापूर्ण होने पर और उपायआलिंगन से परमानन्द प्राप्त होता है। तत्पश्चात् इस आलिंगन से

There is no greater sin than discharge and 10 greater merit than bliss (arising from the motionless Bodhichit). Discharge is the progenitor of detachment and from ditachment (विराग) arises Sorrow and from Sorrow is the loss of Vital element and from the loss of Vital element Comes death.
Anintroduction to Tantric Buddhism—S. B. Das Gupta.

इस तथ्य से स्पष्ट है कि गुह्य-साधना में साधक अधिक से अधिक समय तक अस्खलित अवस्था में युगनद्ध रहकर, आंतरिक चित्तवृत्ति को क्षोभ रहित रखने का प्रयत्न करते थे। इसमें सफलता प्राप्ति के लिए ज्ञान एवं हठयोग दोनों की आवश्यकता है।

(२) कायिकं मानसं दुःख नावकाशं प्रदापयेत्।
सर्वसौख्यसमायुक्तः सिध्यते नात्रसंशयः—ज्ञानसिद्धिः—इन्द्रभूति

ज्वलित होकर चन्द्रनाड़ी स्रवित होती है, यही विरमानन्द है। तत्पश्चात् काय वाक्, चित्त और बिन्दु के अवसारन के समय—ज्ञाता-ज्ञेय भेद नष्ट होने पर 'सहजानन्द' प्राप्त होता है। कबीर आदि इसी को 'रामनाम का रस' कहते हैं। उपर्युक्त आनन्दों में प्रत्येक चार प्रकार का है।

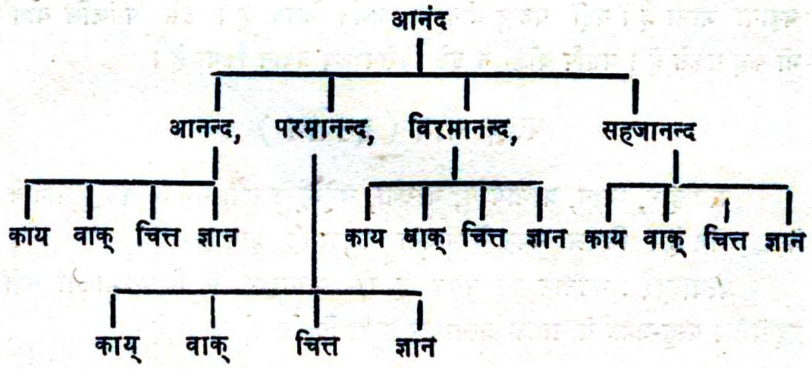

इसी प्रकार ये आनन्द, चार काया, चार योग, चार अवस्थाएँ (जागृत, स्वप्न-सुपुप्ति, तुरीय) चार मुक्तियों आदि से भी सम्बद्ध हैं।

इन सोलह आनन्दों को सृजन का आनन्द कहा गया है। मैथुन जन्य आनन्द में इनकी प्रतीति होती है।[1] इनमें 'सहजानन्द' प्रथम और अंतिम है। अभिव्यक्ति के पूर्व यह विषय एवं विषयी के रूप में विभक्त हो जाता है। यही सारे गुणों का कोष है। यह स्वतः अभिव्यक्त होकर अपना आनन्द लेता है। शैवों का 'परमशिव तत्व' यही है।

दूसरी दृष्टि से 'सहजानन्द' योग-साधना का प्रथम सोपान है। अभिषेक के समय शिष्य को प्रज्ञा (स्त्री) के पास गुरु ले जाता है और शिष्य मैथुन में रत होता है। 'सहजानन्द' बिन्दु के रूप में मस्तक में स्थित रहता है, वह द्रवित होकर निम्नगामी बनकर वज्रमणि (लिङ्ग) तक आ जाता है। योगी इसी क्षरण-काल में बिन्दु (वीर्य) की पुनः उष्णीश (मस्तक) तक पहुँचाता है।

---

(1) Sixteen Anandas, which are creative joys appearing

IV मूत्रत्यागकारिणी नाड़ी	अमोघसिद्धि	(वायुतत्व)
V मध्यनाड़ी (अवधूती या सुषुम्णा)	अक्षोभ	(शून्यतत्व)
VI वीर्य-नाड़ी (ज्ञानवाहिनी)	वज्रसत्व	

रेचक, पूरक, कुम्भक आदि योग से चन्द्र (ललना) सूर्य (रसना) नाड़ियों की शुद्धि के बाद इन्हें छोड़कर मध्यमार्ग (अवधूती) का अवलम्बन करने से प्राणयोग सिद्ध होता है। इस नाड़ी योग में चार चक्रों को पार करना पड़ता है। नाभिस्थान में निर्माण चक्र है, हृदय स्थान में सम्भोग चक्र, कंठ में धर्म और शीश में उष्णीश चक्र है। इस प्रकार बौद्ध तंत्र षट्चक्रों में चार चक्र ही मानते हैं। सेकोद्देश टीका में ललाट एवं उष्णीश में अलग-अलग चक्र माने गए हैं। उष्णीश ही बिन्दु स्थान है। यहीं मध्यमार्ग द्वारा प्राण को चढ़ाकर रोका जाता है। इसी को 'धारणा' कहते हैं। प्रत्याहार एवं प्राणायाम दोनों में ध्यान सम्मिलित है। ध्यान से ही 'धारणा' प्राप्त होती है। 'जप' भी साथ-साथ चलता है, इसी को 'वज्रजप' कहा है। 'वज्रजप' की अवस्था में प्राण वायु का ललना एवं रसना में संचरण निषिद्ध है। प्राणायाम धारणा का उपसाधन है। धारणा के बल से नाभिस्थल में ज्वलित 'चण्डाली' (शक्ति-देवी) को देखता हुआ योगी बार-बार इस महामुद्रा का 'अनुस्मरण' करता है।[1] यही अनुस्मृति है अर्थात् धारणा के अन्त में चण्डाली की भावना की जाती है। इस अवस्था में ज्ञान की अग्नि से स्कन्ध, धातु, आयतन आदि दग्ध हो जाते हैं। चण्डाली की ज्ञान-शिखा से ललाट में चन्द्रस्थान में स्थित बोधिचित् बिन्दुरूप में द्रवित होकर कण्ठ, हृदय, नाभि और गुह्यकमल (लिंग) तक आ जाता है। इसी बिन्दुपात अनुभूति कराने के लिए मैथुनान्त में वीर्य-क्षरण का दृष्टान्त दिया गया है। मैथुन जन्य आनन्द से यह योगजन्य 'बिन्दुपात' का आनन्द करोड़ों गुना अधिक होता है।

जिस प्रकार तत्वज्ञानी मैथुन रत होकर वीर्य को इच्छानुसार रोक सकता है, उसी प्रकार प्राण-योग द्वारा 'बिन्दु' को पुनः उष्णीश तक पहुँचा कर योगी 'अक्षर' हो जाता है। मैथुन सुख से योगज सहजानन्द महत्तर है। योगज आनन्द

(१) प्रारम्भिक अनुभूत सोपानों का स्मरण भी अनुस्मृति कहलाता है।

भी 'सहजानन्द' कहलाता है, क्योंकि इन्द्रियों का आनन्द तो इसी का एक रूप मात्र है।[1]

21:13

भी 'सहजानन्द' कहलाता है, क्योंकि इन्द्रियों का आनन्द तो इसी का एक रूप मात्र है।[१]

शून्यता का नाम ही समाधि है। ग्राह्य-ग्राहक भाव विरहित, सभी आवरणों से अतीत अवस्था ही शून्यतावस्था है। चित्त की एकता के कारण यह अक्षयसुखावस्था है। अक्षरसुख का नाम ही समाधि है।[२]

इस हठयोग में प्रत्याहार आदि से नाद के अभ्यास से प्राण को मध्यमार्ग में प्रवाहित कर उष्णीश में बोधिचित्त बिन्दु को निरुद्ध कर अक्षर क्षण की साधना की जाती है।

हिन्दूतंत्रों में कुंडलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में स्थित मानी गई है, परन्तु यहाँ शक्ति नाभि में स्थित मानी जाती है, प्राणायाम द्वारा यहीं से यह दण्डरूप में ऊपर उठती है। मध्यनाड़ी में होकर यह शक्ति चक्रों को पार करती हुई है, मृदु ललित गति से ऊर्ध्व-गमन करती हुई उष्णीश तक जाती है।

खसमावस्था : उष्णीश को भेदकर 'खेचरत्व' प्राप्त होता है, गगनवत् चेतना निर्मल होकर स्वरूप में स्थित हो जाती है, द्वन्द्व मिट जाते हैं। कल्मष बादलों के समान नष्ट हो जाते हैं, निरभ्र आकाशवत् 'चेतना' अक्षय शांति को प्राप्त होती है। बाह्य विश्व इस अवस्था में स्वप्नवत् प्रतीत होता है, भूत, वर्तमान भविष्य का ज्ञान अकस्मात् होता है। स्वर्गादि लोक स्पष्ट दीखते हैं। संकल्पमात्र से सृष्टि करने की शक्ति उत्पन्न होती है। 'महासुख' प्राप्त होता है। इसी ज्ञान को 'ताथागत' ज्ञान कहा गया है। अप्रकम्प्यस्वभावी होने से यही ज्ञान, अक्षोभ्य, ज्ञान सत्वार्थ होने से, रत्न सम्भव, अलिप्त एवं असंख्य गुण संयोगी होने से अमिताभ, बन्धन

---

(१) ततश्चण्डाल्या ज्ञानार्चिषा चन्दे द्रुते सति यद्बोधिचित्तं बिन्दुरूपेणाधोगतं कण्ठे हृदि नाभौ गुह्यकमल आनन्दपरमविरमस्वभावेन। ततो वज्रमणि यावत्सहजानन्द स्वभावेनेति। अथवा विचित्र विपाक विमर्द विलक्षण स्वभावेनेत्येवं षोडशकलापूर्णं मण्यन्तर्गतं यदा सुखं ददाति भावनाबलेन............सदृशमिति दृष्टान्तमात्रं स्वरूपतो द्वीन्द्रियजं.........कोटीसहस्रतमीमपि कला नार्हति परमाक्षर सुखस्येति। (सेकोद्देशटीका, पृष्ठ ४२)

(२) इह ग्राह्यग्राहक चित्तयोरेकत्वेन यदक्षर सुखं भवति तत्सुखं समाधिरुच्यते—वही, पृष्ठ ४५

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वज्रयान में सभी बौद्ध सम्प्रदायों एवं सिद्धान्तों का समन्वय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए तंत्र को धर्म का सार कहा गया है। शैवधर्म में काश्मीर सम्प्रदाय जिस प्रकार प्रत्येक कार्य त्रिक सिद्धान्तानुसार तीन तत्वों से निकालता है उसी प्रकार वज्रयान चार तत्वों द्वारा साधना-पद्धति को समझाता है।

'हेवज्रतंत्र' में चक्रों के स्थानों में कुछ अंतर दिखाया गया है। निर्माणचक्र योनि या लिङ्ग के निकट, धर्मकाया हृदय एवं सम्भोग काया चक्र कंठ के पास बतलाया गया है।[1]

वज्रजप : प्राणवायु के शासन के द्वारा, वायु को मध्यममार्ग में प्रविष्ट कर चक्रों का भेदन किया जाता है और उष्णीष चक्र में वायु पहुँचाकर योगी 'खसमावस्था' को प्राप्त होता है। प्राणवायु के इस शासन को ही 'वज्रजप' कहा गया है, शब्दों का उच्चारण वास्तविक जप नहीं है। ओ३म् के तीन भाग पूरक, कुम्भक एवं रेचक हैं। प्राणवायु के अनुशासन की क्रिया साथ-साथ जो जप किया जाता है। वही फल देता है।

प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, अनुस्मृति एवं समाधि द्वारा यह षडङ्ग योग पूर्ण होता है। मुद्रा, बन्ध तथा आसन भी इसी में सम्मिलित हैं। आसनों में वज्रोली, सहजोली तथा अमरोली आदि हैं। मुद्राओं में खेचरी, महामुद्रा आश्विनमुद्रा आदि हैं। बन्धों में मूलबन्ध, महाबन्ध, जालंधर बन्ध आदि हैं, नाड़ियों व मांसपेशियों का आंकुचन, विकोचन ही बध है। खड़ङ्गयोग में कुशल हो जानेपर वीर्य का स्खलन नहीं होता और बोधिचित के निम्न प्रवाह को योगी इच्छानुसार उलट कर ऊपर चढ़ा सकता है, यही अर्ध्व रेतस् योग है।

बौद्ध तंत्रानुसार भुक्ति एवं मुक्ति दोनों एक साथ प्राप्त होती हैं। योग द्वारा शक्ति जाग्रत हो जाने पर योगी नाना चमत्कार कर सकता है।

सिद्धि-प्राप्ति : प्रज्ञोपाय द्वारा सम्बुद्धि प्राप्ति के अतिरिक्त चमत्कारक सिद्धियों की प्राप्ति भी बौद्ध-योग से होती है। वस्तुतः इन लौकिक सिद्धियों के कारण बौद्ध योगी 'सिद्ध' कहलाये। तांत्रिकों में भुक्ति एवं मुक्ति को एक साथ प्राप्त करने के

---

(1) An Introduction to Tantric Buddhism. Dr S. B. Das Gupta.

सुषुप्ति : वेदितावस्था के परे सुषुप्ति है।

अमावस्या प्रतिपदा : प्राण सूर्य है, अपान चन्द्र है, प्राण के आक्रमण से चन्द्र एक एक कला को छोड़ता चलता है, अन्त में अमावस्या को चन्द्र सूर्य में विलीन हो जाता है, पुनः चन्द्र उदित होता है, चन्द्र में १६ कलाएँ हैं जिनमें केवल १५ ही विलीन होती हैं, 'षोड़शी कला' क्षीण नहीं होती, 'प्रतिपदा' में पक्षों की संधि होती है।

अमृत : सूर्य जब चन्द्र को निगलता है तो चन्द्र अमृत छोड़ता है, राहु इसी अमृत को पीता है। रवि के बिम्ब में स्थित चन्द्र बिम्ब के पास ही 'राहु' रहता है। राहु अमृत को पीकर चन्द्र बिम्ब को छोड़ देता है, यही 'ग्रहण-मुक्ति' कहलाती है। इन तीनों के संघट्ट से अद्वय-स्थिति प्राप्त होती है। सूर्य प्रमाता है और चन्द्र प्रमेय है, इन दोनों को राहु आच्छादन करता है, क्योंकि राहु माया है, इन तीनों का संघट्ट ज्ञान-शक्ति द्वारा, प्राण शासन के उपरान्त हो सकता है, यही 'महाग्रहण' है यही 'पुण्यकाल' है।

सूर्य-ग्रहण अमावस्या को होता है, शुद्ध प्रतिपदा को भी कभी-कभी होता है, सूर्य से चन्द्र का अलग हो जाना ही मोक्ष है। अर्थात् अपान के प्राण से अलग हो जाने पर ही मोक्ष होती है। ग्रहण(चन्द्र—अपान) ही प्रमेय है और ग्राहक (सूर्य-प्राण) ही प्रमेय है, दोनों के क्षय से मुक्ति सम्भव है। इस समय में जपादिका फल अवश्य होता है।

ज्योतिष : स्वरोदयशास्त्र का सम्बंध ज्योतिष से भी है, प्रत्येक अंगुल में पाँच तिथियाँ होती है, ३० तिथियों का एक मास होता है। तालु में प्राण का प्रवेश ही चैत्र मास है, मंत्र-ग्रहण का श्रेष्ठ समय यही है।

तुटि से लेकर कल्पादि तक का ज्ञान होने पर योगी काल का ध्यान करता है। प्राणानुशासन से क्रमशः तुटि से कल्पादि पर्यन्त ध्यान होता है। योगी सहज ही तुटि से लेकर १२ वर्ष तक की तिथि, मास, वर्षादि को ध्यान में ला सकता है परन्तु सहसा दीर्घकाल का ध्यान फल नहीं देता। पराकाष्ठा को प्राप्त योगी दीर्घ-काल का भी ध्यान कर सकता है। ऐसा योगी शिवी-भाव में लीन हो जाता है, काल-विजय करके 'महाकाल' हो जाता है। नियति, काल, राग, विद्या, कला सबका लय हो जाता है।

चमत्कार-सृष्टि : सुषुम्णा में प्राण के संचार एवं निर्गम के साथ मानस जप ही सृष्टि के लय एवं प्रलय का कारण है, सारे वैचित्र्य का कारण यही क्रिया है। अतः शरीर का वैचित्र्य यही कुछ भी उपयोगी नहीं है, सारे चमत्कारों का स्रोत यही आंतरिक-क्रिया है।

मानस जप में प्राण-शक्ति के उदय, संगम और शान्ति में जप किया जाता है अर्थात् प्राण शक्ति के उदय-स्थान कुंडलिनी स्थान में हृदय देश में तथा प्राण शक्ति जहाँ शांत होती है उस ऊर्ध्व प्रदेश में जप होता है। जप में प्राण दो बार चक्कर काटता है। प्राण का विकास एवं आकुंचन दोनों होता है। प्राणों की साम्यावस्था सुषुम्ण में होती है। जप के सात स्थान भी कहे गए हैं उदय, संगम, शांत के अतिरिक्ति प्राणापान प्रवाह रूप में, अक्ष नाड़ी-चक्र के सूत्रों में, हृदय देश के 'हंस' नामक स्थान में, सहस्रार में अतः सप्त प्रकार जप भी कहा गया है। यही मानस जप है। अजपा जाप है। इसमें प्रत्येक क्रिया करते रहने पर भी अंतस् में जप चलता रहता है।[1]

देशाध्वा : शैव-शासन में सारा ध्यान चैतन्य पर केन्द्रित है, सारी साधनाएँ चैतन्य से रहित व्यर्थ मानी जाती हैं, चैतन्य के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता यहाँ स्वीकृत नहीं है। अतः शैवों का दृढ़ मत है कि भुवनों का वर्णन कल्पित है, शिष्यों को समझाने के लिए ही केवल लोकादि की कल्पना है। तंत्र शब्द का अर्थ ही विस्तार है, भुवनादि के वर्णन का विस्तार कर शिष्य को वस्तुतः चैतन्य का ज्ञान ही कराया जाता है, अतः इस प्रकार के वर्णन गौण हैं। इसके अतिरिक्त 'ध्यान' के लिए भी लोकादि की कल्पना की जाती है।

अतः भुवनादि का ज्ञान प्राप्त कर उनका ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार का ध्यान करने से 'सालोक्य' मुक्तिप्राप्त होती है, जिस देवता का ध्यान जिस भुवन में होता है, श्रीकंठ शिव उसी लोक में, उसी देवता के रूप में व्यक्त होते हैं। अतः विभिन्न लोकों में स्थित ईशों की उपासना भक्ति-भाव से विधेय है, इससे साधक लोक विशेष के ईशविशेष में लीन होगा और क्रम-क्रम से अन्य ईशों में लीन होता हुआ अंत में 'महेश' में लीन हो जायगा।

---

१. द्रष्टव्य-तंत्रा० ३१ आ०

भूल परी भवसागर आई, मन रह्या मोहन मांहीं।
मुरली टेर सुनी दूलह की, दध मटकी फोर गवाहीं।। ३३।
घरौं लरैगी सास सखी री, और ननदी को भैया।
कांठै खरी गुजरिया कूकै, ल्यारे मलहा नैया।। ३४।
गहरा समंद बली नहीं लागै, कैसे ल्याऊँ नौका।
भँवर परत भै मानत हंसा, गहरा सरवर औखा।। ३५।।
मैं दधि बेचन गई सखी री, मन मोहन कूँ लूटी।
मुरली मधुर अधर धुनि मोही, सास नणद से छूटी।। ३६।।
दधि का मोल देत हैं हम कूँ, मटकी का नहीं लेखा।
तुम्हरै भी घर तांगा तुरसी, देख्या कान्हा देख्या।। ३७।
शून्य शिखर में सूरति नगरी, जहां मुझ कान्ह बुलावै।
अजब रंगीला निर्गुण लीला, मधुरे बैंन सुनावै।। ३८।।
गगनि हमारे बाजे बाजै, नौ दस में पर ध्यानं।
मानसरोवर हंस हिरंबर, सुखसागर अस्नानं।। ३९।।
त्रतीजन पर तारी लागी, तन खोजे मन पाया।
बाय बिंद उलटि ब्रह्म ज्ञानी, निज मन घर में आया।। ४०।।
निज मन की है निरभै नगरी, संख कला शशि भाना।
दोजख बहिश्त नहीं जहां दोऊ, पाया पद निरबाना।। ४१।।
शून्य समाधि अगाध अगोचर, मुनिवर महल न पावैं।
शिव शंकर से द्वारे ठाढे, नेति नेति यश गावैं।। ४२।।
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, शेष सहंस फुनि गावै।
विष्णु बिश्वंभर भक्ति हिरंबर, ररंकार धुनि ध्यावै।। ४३।।
ररंकार निज मूल मंत्र है, जाप अजपा सोई।
मूल चक्र और सहंस कँवल दल, पूर रह्या निरमोही।। ४४।।
राम रहीम करीमा केशो, अलह अलेख अनाथा।
बाजीगर करतार विश्वंभर, जामें भिन्न न भांता।। ४५।।
बेचगूंनि चिन्तामणि स्वामी, मौले मगन मुरारी।
साहिब समरथ चोखा अमृत, रहता शून्य अधारी।। ४६।।
निर्गुण सरगुण दहूँ से न्यारा, गगन मंडल ग लतानं।
निर्गुण कहूँ तो गुण किन्ह कीने, सरगुण कहूँ तो हानं।। ४७।।
निर्गुण सरगुण से है न्यारा, शब्द अतीत अमोलं।
निर्गुण मन माया ब्रह्म ज्ञानी, सरगुण काया खोलं।। ४८।।
केते सुर नर मुनि जन अटके, धर निर्गुण का ध्यानं।
कथा कीर्तन गावन ध्यावन, निर्गुण सरगुण हानं।। ४९।।
मूल मंत्र का भेद लखाऊँ, जिन निर्गुण सर्गुण कीन्ह्या।

गरीब, प्रपट्टन की पीठ में, सतगुरु ले गया मोहि। सिर साटे सौदा हुआ, अगली पिछली खोहि ।।६७।।
गरीब, प्रपट्टन की पीठ में, सतगुरु ले गया साथ। जहां हीरे मानिक बिकैं, पारस लाग्या हाथ ।।६८।।
गरीब, प्रपट्टन की पीठ में, है सतगुरु की हाट। जहां हीरे मानिक बिकैं, सौदागर स्यूं साट ।।६९।।
गरीब, प्रपट्टन की पीठ में, सौदा है निज सार। हम कूँ सतगुरु ले गया, औघट घाट उतार ।।७०।।
गरीब, प्रपट्टन की पीठ में, प्रेम प्याले खूब। जहां हम सतगुरु ले गया, मतवाला महबूब ।।७१।।
गरीब, प्रपट्टन की पीठ में, मतवाले मस्तान। हम कूँ सतगुरु ले गया, अमरा पुर अस्थान ।।७२।।
गरीब, बंकनाल के अंतरे, त्रिवैणी के तीर। मानसरोवर हंस हैं, बानी कोकिल कीर ।।७३।।
गरीब, बंकनाल के अंतरे, त्रिवैणी के तीर। जहां हम सतगुरु ले गया, चुवें अमीरस छीर ।।७४।।
गरीब, बंकनाल के अंतरे, त्रिवैणी के तीर। जहां हम सतगुरु ले गया, बंदी छोड कबीर ।।७५।।
गरीब, भँवर गुफा में बैठ करि, अमी महारस जोख। ऐसा सतगुरु मिल गया, सौदा रोकम रोक ।।७६।।
गरीब, भँवर गुफा में बैठ करि, अमी महारस तोल। ऐसा सतगुरु मिल गया, बजर पौलि दई खोल ।।७७।।
गरीब, भँवर गुफा में बैठ करि, अमी महारस जोख। ऐसा सतगुरु मिल गया, ले गया हम परलोक ।।७८।।
गरीब, पिंड ब्रह्मंड से अगम है, न्यारी सिन्धु समाध। ऐसा सतगुरु मिल गया, देख्या अगम अगाध ।।७९।।
गरीब, पिंड ब्रह्मंड से अगम है, न्यारी सिन्धु समाध। ऐसा सतगुरु मिल गया, दिया अखै प्रसाद ।।८०।।
गरीब, औघट घाटी ऊतरे, सतगुरु के उपदेश। पूर्ण पद प्रकासिया, ज्ञान जोग प्रवेश ।।८१।।
गरीब, सुंनि सरोवर हंस मन, न्हाया सतगुरु भेद। सुरति निरति परचा भया, अष्ट कँवल दल छेद ।।८२।।
गरीब, सुंनि बेसुंनि से अगम है, पिंड ब्रह्मंड से न्यार। शब्द समाना शब्द में, अविगत वार न पार ।।८३।।

गरीब, सतगुरु कूँ कुरबान जां, अजब लखाया देश। पारब्रह्म प्रवान है, निरालंब निज नेश ।।८४।।
गरीब, सतगुरु सोहं नाम दे, गुज बीरज बिस्तार। बिन सोहं सीझै नहीं, मूल मंत्र निज सार ।।८५।।
गरीब, सोहं सोहं धुन लगै, दरदबंद दिल मांहि। सतगुरु परदा खोल हीं, परालोक ले जांहि ।।८६।।
गरीब, सोहं जाप अजाप है, बिन रसना होइ धुंनि। चढ़े महल सुख सेज पर, जहां पाप नहीं पुंनि ।।८७।।
गरीब, सोहं जाप अजाप है, बिन रसना होइ धुंनि। सतगुरु दीप सनीप हैं, नहीं बसती नहीं सुंनि ।।८८।।
गरीब, सुंनि बसती से रहित है, मूल मंत्र मन मांहि। जहां हम सतगुरु ले गया, अगम भूमि सत ठांहि ।।८९।।
गरीब, मूल मंत्र निज नाव है, सुरति सिन्धु के तीर। गैबी बानी अरस में, सुर नर धरैं न धीर ।।९०।।
गरीब, अजब नगर में ले गया, हम कूँ सतगुरु आन। झलकै बिंब अगाध गति, सूते चादर तान ।।९१।।
गरीब, अगम अनाहद द्वीप है, अगम अनाहद लोक। अगम अनाहद गवन है, अगम अनाहद मोख ।।९२।।
गरीब, सतगुरु पारस रूप हैं, हमरी लोहा जात। पलक बीच कंचन करैं, पलटैं पिंड रु गात ।।९३।।
गरीब, हम तो लोहा कठिन हैं, सतगुरु बनै लुहार। जुगन जुगन के मोरचे, तोड़ि घड़ैं घनसार ।।९४।।
गरीब, हम पशुवा जन जीव हैं, सतगुरु जाति भिरंग। मुरदे से जिन्दा करैं, पलट धरत हैं अंग ।।९५।।
गरीब, सतगुरु सिकलीगर बने, यौह तन तेगा देह। जुगन जुगन के मोरचे, खोवै भरम संदेह ।।९६।।
गरीब, सतगुरु कंद कपूर है, हमरी तुनका देह। स्वांति सीप का मेल है, चन्द चकोरा नेह ।।९७।।
गरीब, ऐसा सतगुरु सेईये, बेग उधारै हंस। भौसागर आवै नहीं, जौरा काल विधंस ।।९८।।
गरीब, पट्टन नगरी घर करै, गगन मंडल गैंनार। अलल पंख ज्यूं संचरै, सतगुरु अधम उधार ।।९९।।
अलल पंख अनुराग है, सुंनि मंडल रहै थीर। दास गरीब उधारिया, सतगुरु मिले कबीर ।।१००।।

अथ सुमिरन का अंग

गरीब, ऐसा अविगत राम है, आदि अंत नहीं कोय। वार पार कीमत नहीं, अचल हिरंबर सोय ।।१।।
गरीब, ऐसा अविगत राम है, अगम अगोचर नूर। सुंन सनेही आदि है, सकल लोक भरपूर ।।२।।
गरीब, ऐसा अविगत राम है, गुन इन्द्रिय से न्यार। सुंन सनेही रमि रह्या, दिल अंदर दीदार ।।३।।
गरीब, ऐसा अविगत राम है, अपरम पार अल्लाह। कादर कूँ कुरबान है, वार पार नहीं थाह ।।४।।
गरीब, ऐसा अविगत राम है, कादर आप करीम। मीरां मालिक मेहरबान, रमता राम रहीम ।।५।।
गरीब, अलह अविगत राम है, बेचगूंन चित्त मांहि। शब्द अतीत अगाध है, निर्गुण सरगुन नांहि ।।६।।
गरीब, अलह अविगत राम है, बेचगूंन निरबान। मौले मालिक है सही, महल मढ़ी नहीं थान ।।७।।
गरीब, अलह अविगत राम है, निराधार आधार। नाम निरंतर लीजिये, रोम रोम की लार ।।८।।
गरीब, अलह अविगत राम है, निरबानी निरबंध। नाम निरंतर लीजिये, ध्यान चकोरा चंद ।।९।।

सुरति निरति के लगे बंधाना, गहरौ बांस गड्यौ रे। तिहरी ऊपरि नाच हमारा, ज्ञान का ढोल मढौ रे ॥१॥
ताता थेई ताना नाना, चूकत खंडत हडौ रे। अधर धार पर कला लगावै, जो विद्या भगल पढ्यौ रे ॥२॥
अभैदान सतगुरु मुझ दीन्हा, नाच को दान कढ्यौ रे। दास गरीब अमर जहां गदली, बहु विधि लाड लड्यौ रे ॥३॥५॥

घट में अविगत लाल लखे री ॥टेक॥

ऋग यजु साम अथरवन गावै, शिव ब्रह्मा विष्णु थके री। अर्श खुमारी फूल चवंते, प्याले प्रेम छिके री ॥१॥
भीतर बाहरि बाहरि भीतर, ढकनैं नाहि ढके री। अर्श अंगूरी बाग लगे हैं, फल बेदान पके री ॥२॥
गगन मंडल गुलजार गलीचा, धूंनी ध्यान सुखे री। हम सौदागर सतगुरु भेजे, दास गरीब मुके री ॥३॥६॥

अथ राग बसंत

अमरपुरी जहां अगर दीप, सतलोक काया सनीप ॥टेक॥

शुन्य मंडल का कहूँ भेव, सुर नर मुनि जन भूले देव। निश्चल नीम करौ इक ठाम, बारू में नहीं बसै गाम ॥१॥
मूल कँवल काया कुदली चीन्ह, गुदा कँवल थिरि कंदर्प सीन। नाभ कँवल कूँ निश दिन सोध, कहा पढ़त है ठारा बोध ॥२॥
रवनपुरी में राग अनूप, ध्यान धरौ नहीं छाया धूप। हिरदे कँवल अजपा जाप, बिन रसना गुण सोहं लाप ॥३॥
कण्ठ कँवल त्रिबैनी तीर, अठसठ तीरथ निर्मल नीर। शब्द महोदधि गरजें सिंध, रतनागर सागर अति आनन्द ॥४॥
मानसरोवर मुकता मेल, जहां हंस कतूहल करते केल। जगमग जोती झिलमिलाट, हंसा उतरैं औघट घाट ॥५॥
अगम भूमि जहां अगम ठांम, ध्यान धरो जहां आठौं जाम। दास गरीब जहां पद निवास, जिस तखत कबीरा है खवास ॥६॥

अविगत आनन्द अति बसंत, जहां पारब्रह्म है दूलह कंत ॥टेक॥

सतपुरुष एक निराधार, आदि अंत नहीं वार पार। निरगुण निरभै निज अनूप, सार शब्द है सत सरूप ॥१॥
जहां कोटिक शेष महेश जानि, पारब्रह्म का धरै ध्यान। ब्रह्मा विष्णु रहै कर जोरि, गिनती लेखा नाहीं और ॥२॥
नारद सनकादिक सनीप, ध्यान धरत हैं अगर दीप। अगरदीप में पौहप गंध, भँवर परै हैं बिरहै फंध ॥३॥
धू प्रहलाद समाधि सेव, जहां गोरख दत्त दिगम्बर देव। सुलतानी बाजीद बिलास, सूजा सैंन रंगे रैदास ॥४॥

भरथरी गोपीचंद विनोद, खेल्या चाहै तो काया सोध। जहां पीपा धन्ना धरत ध्यान, नानक नामा पद समान ॥५॥
जनक बिदेही शुकदे संगि, अनंत संत जहां रंगे रंग। दादू दावा किया दूर, गगन मंडल में बाजैं तूर ॥६॥
उड़त अबीर गुलाल लाल, जहां संख झालरी बजैं टाल। केसर की पिचकारी पाख, पारब्रह्म जहां बैठ्या ताख ॥७॥
बाजैं झालरि अधक झांझि, दो फारै निश बासर सांझ। दास गरीब निज पद जुहार, जिस तखत कबीरा चौंरा ढार ॥८॥

कोई है रे हमरे देश का। जो ध्यान धरै सुंनि शेष का ॥टेक॥

तन मन मंजन करै पाख, सुनि सांई सतगुरु की साख। सुरति कँवल परि ध्यान धारि, मीन खोज जैसे सिंधि फारि ॥१॥
दिव्य दृष्टि देवा दयाल, सोहं बानी अति रिसाल। अनरागी अनहद बसंत, तत्तदर्शी कोई लखै संत ॥२॥
पद परसी परवर दिगार, गगन मंडल में निराधार। सुरग रिसातल है अखण्ड, चढ़ि देखो संतो पवन दण्ड ॥३॥
संख भुजा मौले मुकंद, चलि देखो संतो शब्द सिंध। जहां बरषै नूर अखण्ड धार, लखि मौले मुरशद का दीदार ॥४॥
शब्द सिंध में शब्द गाज, अनहद बाजै अति आवाज। सतपुरुष सरवर शरीर, जहां दास गरीब खेवट कबीर ॥५॥

कोई है रे हमरे गाम का। पद चीन्हैं रमता राम का ॥टेक॥

जहां अछै बिरछ आनंद रूप, सुरति निरति सोहं सरूप। गगन मंडल दिवान आम, चलि देखो संतो अगम धाम ॥१॥
तरुवर शाखा गहबर गंध, जहां झिलकैं सूरजि कोटि चंद। समाधान संगीत सोय, जहां बिन सतगुरु नहीं मिलन होय ॥२॥
सेज सुरंगी सबज भांति, जहां बिन ऋतु बरषैं सदा स्वांति। दामनि दीरघ अजब ख्याल, जहां छह ऋतु बरषत है दयाल ॥३॥
बिना सीप मोती मुरार, बिन चिसम्यौं देखो अति निहार। जहां मानसरोवर मुक्ति धाम, भुजा दण्ड पौंनी बियांम ॥४॥
हंस करीला अलल अंग, जहां अनहद बानी अति उपंग। छत्र सिंघासन सेत जानि, जहां पीतांबर चिक रहै तानि ॥५॥
पल पलड़्यौं मोती जुहार, चलि अगमी ऐंनक देखि यार। चिक अंदर मंदिर मुकाम, दास गरीब बसै शुन्य गाम ॥६॥

उत्पत्ति मानते हैं। वही आदि है, मूल है।[१] कबीर के ओंकार सम्बन्धी विचारों पर नाथों से तुलना करते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'स्थूल वेद यज्ञ-याग का विधान करते हैं, योगियों को इससे कोई वास्ता नहीं। उनका मतलब समस्त वेदों के मूलभूत ओंकार मात्र से है। क्योंकि ओंकार ही वेद का सार है। कबीरपंथ में भी स्थूल वेद और सूक्ष्म वेद की कल्पना की गई है।......'ज्ञानचौंतीसा' के आदि में कबीरदास ने मानों इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि जो ओंकार या प्रणव को जानता है, वह उस पराशक्ति को जानता है जो लिखकर मिटा सकती है अर्थात् जो सब कुछ करने में समर्थ है। और इसके बाद ही शायद ओंकार पर बहुत अधिक जोर देनेवाले इन योगियों को लक्ष्य करके कहा है कि ओंकार की बात तो सभी किया करते हैं, पर इसे समझ सकनेवाले बिरले ही हैं।[२] संतों के साहित्य में, विशेषकर कबीर के साहित्य में प्रणवसाधन का विस्तृत निरूपण उपलब्ध नहीं। अजपाजाप का वर्णन पहले ही हो चुका है। 'सोऽहं' वस्तुतः हंसपवन का ही सिद्ध रूप है। 'हंस' का 'सोऽहं' में परिवर्तन अथवा विपरीतकरण भी साधन है और इसके साथ भी साधक की भावसाधना संबंधित है। अद्वैतानुभूति के लिये इसकी व्याख्या में कहा जाता है कि हं और स दो प्रकार के पवनों की ओर संकेत करते हैं। हंस पवन का 'लौ' में क्रीड़ा करना 'सोऽहं' में परिवर्तन है जिसमें प्रपंच, प्रसारित हाट का संहार होता है, मेल होता है।[3] श्वास की दोनों क्रियाओं में 'हं-स' की ध्वनि होती है किन्तु साधन करने पर इसी ध्वनि का परिवर्तन अथवा दिव्यान्तर होता है। 'हंस' सांसारिक प्रक्रिया की ओर संकेत करता है और 'सोऽहं' पारमार्थिक प्रक्रिया की ओर। पलटू ने 'सोहंगम' शब्द की ध्वनि का उदय आठवें महल में माना है। यह आठवाँ महल सात चक्रों से भी ऊपर परमपद का स्थान प्रतीत होता है। अन्यत्र उन्होंनें 'सोऽहं' वाणी का उदय भँवर गुफा में माना है।[४] कबीर ने इसी 'सोऽहं' का जप करने के लिये कहा है। सुंदरदास (छोटे) ने प्राणायाम के साथ 'सोऽहं' साधना का उल्लेख गोरख के मत के अनुसार किया है।[५]

---

[१] क० ग्रं०, पृ० १२६-१२७ पद १२१; पृ० २४४।

[२] कबीर, पृ० ३४; बीजक, पृ० २४६, टीका भी द्रष्टव्य।

[3] क० ग्रं०, पृ० १८८-१८९ पद २९६।

[४] संतकाव्य, पृ० ५२७,५२९।

[५] संत कबीर, पृ० २२६-२२७, पद १९ तथा उसकी टीका; सुंदर ग्रंथावली, भाग १, पृ० ४७-४८।

राम नाम का मिणका कीजै

फूलीबाई

राम नाम का मिणका कीजै।
सुरत तार में पोय'र लीजै॥
सांस उसास सिंवरीयै रामा।
तो बाबो सारै सबही कामा॥
राम नाम सूं बांणक बण्या।
राम नाम चूको मत ठाणा॥
राम नाम बिन झूठी करणी।
ज्यूँ बीज बिना सुधारी धरणी॥
माला मिणकां सूँ क्या होई।
यूँ तो राम न पावो कोई॥
सांचै मन सूँ सिमरण कीजै।
फूली सिर बाबै कूं दीजै॥

स्रोत :

है, वैसे ही सत्संग से पदोन्नति होती है। साधु लोग स्वच्छ सफेद रुई की भांति इस प्रकार के रंग ग्रहण करने वाले होते हैं किन्तु काली ऊन के समान दुष्ट पुरुषों पर दूसरा रंग हो नहीं चढ़ता[1]। साधु पुरुषों की संगति से चंचल मन भी शांत हो जाता है[2]। भगवद्-प्रेम के बिना भौतिक वस्तुओं का संग्रह-राग-रहित भूमि के समान है[3]। सब दिशाओं में भगवान का वास है, इसलिए कृष्ण-नीर और "छोत" की भावना निस्सार है[4]। सुकृत करते हुए सदा भगवद्-प्रेम में रत रहना चाहिए[5]।

अध्यात्म-क्षेत्र में भगवद्-कृपा होना परमावश्यक है, यह कह आये हैं[6]। ध्यातव्य है कि जाम्भोजी को प्रेमाभक्ति या गलदश्रु भावुकता बिल्कुल ही स्वीकार्य नहीं है।

१६—साधना, योग, दिव्य दृष्टि —

आत्मतत्त्व-प्राप्ति के लिए सबदवाणी में हठयोग साधना का उल्लेख मिलता है किन्तु सर्वाधिक बल उन्होंने मन्त्र-योग या जप-योग पर दिया है। विष्णु नाम जप आत्मोपलब्धि का सर्वश्रेष्ठ साधन है। पात्र-भेद से हठयोग साधना के संकेत भी यत्र-तत्र मिलते हैं जिनके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —प्राणवायु निरोध से परमात्मा पिंड में ही प्राप्त किया जा सकता है। इससे गगन-मण्डल से झरता हुआ अमृत-पान संभव है, जिससे भूख प्यास मिट जाती जाता है[7]। शरीर में प्राणायाम से सूर्य-चन्द्रमा का संयोग कराना चाहिए[8]। सूर्य-चन्द्रमा घट में हैं और अनाहतनाद हो रहा है, इसको समझना चाहिए[9]। पवन, पानी (रतस), दस इन्द्रियाँ नव द्वार, वश में करने चाहिएँ। "बंकनाल" साध कर त्रिकुटि पर ध्यान लगाना, माया के बंधन तोड़ कर सत्य की साधना करने वाला ही पूर्ण योगी है और वही "शून्य मंडल" में खेलता है[10]। ऋद्धि-सिद्धि पिंड में प्राप्त की जा सकती है[11] किन्तु इसके लिए योगाग्नि से विषय-वासनाओं को भस्म करना आवश्यक है[12]।

जाम्भोजी ने सहज-मार्ग पर ही चलने का आदेश दिया है। इसके लिए उन्होंने बौद्ध-सिद्धों द्वारा प्रयुक्त शब्द "ओजू की वाट"[13] का उल्लेख किया है। तत्त्वप्राप्ति के मार्ग पर विरले ही चलते हैं क्योंकि इसके लिए अपने आप को मारना पड़ता है, अतः 'निगुरे'

१—२५।
२—पाहळ मन्त्र।
३—७६ ६।
४—३६ १—७।
५—३७।
६—१२ १४ ३, ४, १, ३० ८, ६।
७—४०।
८—६६।
९—५३ ५—११, ८६।
१०—१०६।
११—१०९।
१२—६६।
१३—२२ ३, ११४ ४।

पाळ पुरांणी जळ नुंवों, हुसा केळ करांय ।
बाळापण री प्रीतड़ी, चुण चुंण हरि चुगाय ॥ ४ ।
गिगन मंडळ मा कोठड़ो, घुरै दमामा घोर ।
मन मधकर सूं मिल रह्यो, छेद्या कंम कठोर ॥ ५ ।
बकनाळ नीसर झुरै, अमर मरै नहीं जीव ।
पलटि जोगणि जोगी हुवै, सून्य महारस पीव ॥ ६ ।
गंग जमनां सुरसती, त्रवणी तटि असनान ।
चंद सूरिज अभ अंतरै, अठसठि तीरथ थान ॥ ७ ।
रणि ओ सूंथलो गावियो, किण अह त्रिया वखाण ।
जा घटि अंणभै उपजै, जाका अह इहनांण ॥ ८ ।
अरध उरध बसेर हो, भुंवर गुफा एक ठाव ।
पांच पचीसूं वसि करै, संभू जाको नांव ॥ ९ ।
अगम निगंम जहां गम नहीं, वरंन बिवरजत दीठ ।
आसानंद अैसो कहै, पीयो अमी रस मीठ ॥ १०

- अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) : "जम्भे" की स

। को प्रस्तुत साखी अज्ञात हजूरी कवि द्वारा रचित है
प्रथम साखी होने से इसका विशेष महत्त्व है । साखी से
म्भोजी की विद्यमानता में, पंथ चलाने के बाद हुई है ।
म्भे में जाम्भोजी शंका–समाधान और ज्ञानोपदेश वि

४–विष्णु या गुरु मन्त्र :

ओं सबद सोह आप, अंतर जपै अजप्या जाप।
सत्य सबद ले लघै घाट, बहुरि न आवै जोनी धाट।
परसै विष्णु अमीरस पीवै, जरा न व्यापै जुग जुग जीवै।
विष्णु मन्त्र है प्राण अधार, जो जपै सो उतरै पार।
ओं विष्णु सोहं विष्णुं, तत्त सरूपी तारक विष्णु ॥–प्रति २१८, ३४६।

५–तारक या गुरु मंत्र :

ओं सबद गुरु सुरत चेला, पांच तत्तर मे है अकेला।
सहजे जोगी सुन धास, पांच नत्त मैं लियो प्रकास।
न मेरै माई न ,अलख निरंजन आप ही आप।
गंगा जमना बहै सरसती, कोई कोई न्हावै बिरला जती।

तारग मंत्र पार गिरांय, गुरु वतायो नहचळ ठांय।
जो कोई सुमिरै उतरै पार, वहुरि न आवै मैली घार ॥–प्रति २१८, ३४६।

६–वाळक मंत्र :

ओं सवद देव निरंजण, ता इछ्या ते भये अंजण।
पांच तत्त मैं जोत प्रसनु, हरि दिल मिल्या हुकम विष्णु।
हरि के हाथ पिता के पिष्ट, विष्णु माया उपजी सिष्ट।
सपत घात को उपज्यो पिंड, दस मास वालो अघोर कुंड।
अरध मुख ता उरध चरण हुतास, हरि हुकम तै भयो खलास।
जळ सै न्हाये त्यागे मल, विष्णु नाम सदा निरमल।
विष्णु मंत्र कांन जळ छूवा, गुर फुरमांण विष्णोई हूवा ॥–प्रति ५५, २२८।

७–धूप मंत्र :

इनमें तेजोजी, वील्होजी, सुरजनजी, साहवरामजी आदि के छन्द प्रसिद्ध हैं जि
उल्लेख यथास्थान कर आए हैं। अज्ञात कवि (संख्या ३५) कृत दो छप्पय, "वसन्दर वे
नाम" और "विवरस" भी धूप मंत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'विवरस' नीचे उद्धृत है :—

ओं नमो सांमी सिस्ट करता निरतार ले फासिव सार।
सतिगुरु सहदेव वार गुर थट मालवै आसोप देस गुजरात।
जंबू दीपे भरथ खंडे थांन मुकांम।
ओह निज तीरथ ताळवो विवरस एह विचारणी।
दया तां धरंम, भाव तां भगति,
हेत तां प्रात, जोग तां जुगति,
छिमां तां तप, सील तां संतोष।
नहीं छै जुग पंचमूं, ग्यारवों नहीं अवतार।
वारै पुरप न ओळख्या गया जलमंतर हारि।
सीखिया सुधारियो भार धोरी ज्यूं झलै।
मंन का भांणा मनहठी फिटा पंचां मांहि।
कायम राजा वाड़ी वाहो सींच्यो सतगुर नूर।

Scanned by AAKASH ASSWANI (pa

शिव का वासा, निशदिन ताहिं करे प्रकाशा। तीनों मिल त्रवेणी कहिये, ग्वाला त्रकुटी ज्योति जगइये ।४८। कबहूँ इड़ा भये ग्रथाहा, कबहूं पिंगला का प्रवाहा। दोनों मध्य बहे सरस्वती, ग्वाला ताहिं नहावे जती।४६। दश नाड़ी में तीन प्रधानो, इड़ा पिंगला सुषुम्न जानो। ग्वाला तिसका करूं विस्तारा, शिष्य सुनो तुमही निर्धारा।५०। इड़ा पूरक दिन को कीजे, कुम्भक माहिं तांका रस पीजे। पिंगला रेचक ताहिं त्यागे, ग्वाला तिसको ताप न लागे।५१। पिंगला पूरक निशा में कीजे, इड़ा रेचक ताहिं तजीजे। कुम्भक तीस ग्रक्षर ठहरावो, ग्वाला इस जग बहुर न ग्रावो।५२। ॐ सोहं पहिला भागा, इड़ा पूरक खिञ्चे सुहागा। चतुर्थ भाग मिन्ट का खिञ्चे, ग्रपान वायु कम्भक सिञ्चे ।५३। एक मिन्ट कुम्भक ठहरावो, तांमे श्रुति नृति मिलावो। ग्वाला पिंगला मिन्टजु ग्राधा, रेचक करजु निजमन बाधा।५४। ग्रासन सिद्धकर मूल बंधावो, बाई एड़ी गुदा डिग लावो। दहिनी एड़ी लिंग पर ठाने, ग्रपान वायु प्राण घर ग्राने।५५। दृग कान पुन मुख ही मूँदे, सीधा बैठ नाक को नूँधे त्रकुटीमें पुन ध्यान लगावो, ग्वाला ज्योति में नृति समावो, ।५६। दो घण्टा उठ भोर जु कीजे, ग्रक्ष ग्रनन ग्रमीरस पीजे। दो घंटा सो सायं सुमरे, ग्वाला कार्य सिद्ध हो तुमरे।५७। षष्ट मास ऐसा धुनि लावो, श्रुति नृति तां संग मिलावो। क्रम क्रम सें तांहि बढावो, पूरक ग्राधा मिन्ट चढावो।५८। कुम्भक दोय मिन्ट पुन कीजे, रेचक एक मिन्ट तज दीजे। ग्वाला बहुत काल धुनि लावे,

Scanned by AAKASH ASSWANI (pa

इड़ा पिंगला जब थक जावे।५६। फिर कुण्डलनी नाड़ि भगेंगी, सुषुम्न तिसहीं जाय जगेंगी। उस सें योगी ग्राने जाने, प्राण का मग निशदिन ठाने।६०। तांसे ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होवे, जहां इच्छा तांहीं को जोवे। चाहे गगन सोऊ उड़ जावे, चाहे जल भीतर धुनि लावे।६१। चाहे ग्रग्नि में कर वासा, चाहे पुह्मी माहिं निवासा। चाहे करे पवन प्रवेशा, जैसे चाहे होवे तैसा।६२। चाहे तन तज द्वि तन धारे, चाहे छोटा मोटा भारे। ग्वाला ब्रह्म में जाय समावे, जो कुच्छ वाञ्छे सोई पावे।६३। कवित्त-ग्रष्टहीं प्रकार के हैं, प्राणायाम सुन लीजे। इक सूर्यभेदी, द्वितीय उजाई बखानिये। तृतीय शीतकारी, चौथा शीतला सुजान लीजे। पञ्चम भस्त्रका, षष्टा भ्रामरी सु जानिये। सप्तम मूर्छा, ग्रष्ठम केवल सु जान योगी। ग्रष्ठही सु प्राणायाम, उर माहिं ग्रानिये। ग्वाला प्रतिपादन सु, ग्रब हम ताहिं करूं। सुनके शिष्य हृदय, भ्रम सब भानिये।६४। सवैया—कहूं मैं सूर्यभेदी प्राणायाम ग्रासन सिद्ध सु कीज्ये जी। दहिनी सु पूरक लायके बज्र नख शिख सेती समीज्येजी। क्रम क्रम सें बांयेंसु रेचक तन पीड़ा हर लीज्ये जी। कहे ग्वाल कपाल को शोध जु सूर्यभेदी कर जीज्ये जी।६५। पुन उजाई प्राणायाम कीज्ये इड़ा बांये रन्ध्र प्राण उठावो। उदर कण्ठ तक भर कर रोके जु क्रम क्रम पिङ्गला तज जावो। ऊठत बैठत उदर भर कफ लेश जलन्धर रोग नशावो। कहे ग्वाल करो ये उजाई सु तबहीं ग्रात्म के घर ग्रावो।६६। शीतकारी मुख सी सी उचारके प्राण को खिञ्चके हृदे ठहरावो।

Scanned by AAKASH ASSWANI (pa

69. पुमान् जन्मान्तरशतैर्योगादेव विमुच्यते।
न तथा भवतो योगाज्जन्ममृत्यू पुनः पुनः।।[1]

उपर्युक्त सत्य को जानकर भी मनुष्य (ज्ञानी मनुष्य) सैकड़ों जन्मों में कहीं योग को प्राप्त करके योग द्वारा मुक्ति को प्राप्त करता है, और उसके परिणामस्वरूप पुनः पुनः जन्म और मृत्यु नहीं होते।

Even after knowing the above fact the wise receives moksha after gaining yoga during innumerable births. Then with the help of yoga, he does not undergo repeated births and deaths.

70. प्राणापानसमायोगात् चन्द्रसूर्यैक्यता भवेत्।
सर्वधातुमयं देहमग्निना जारयेद् बुधः।।[2]

इसका कारण यह है कि प्राण और अपान के समायोजन के फलस्वरूप चन्द्र और सूर्य नाड़ियों द्वारा पृथक्-पृथक् काल मे पृथक्-पृथक् प्रवाहित होने वाला प्राण एक साथ प्रवाहित होने लगता है, जिसे संक्षेप में चन्द्र और सूर्य का एक होना कहते हैं। इसे ही दूसरे शब्दों में सुषुम्ना में प्राणों का प्रवाहित होना भी कहते हैं।योग साधना द्वारा इस स्थिति में पहुँचने पर रस रक्त मांस आदि सात धातुओं वाला शरीर अग्नि के पूर्ण प्रदीप्त होने के कारण दग्ध अर्थात् पूर्ण शुद्ध कर हो जाता है,इसे ही नाड़ी शुद्धि भी कहते हैं। तात्पर्य यह है कि प्राण और अपान के समायुक्त होने पर जब प्राण साथ-साथ सूर्य और चन्द्र नाड़ी में प्रवाहित होते हैं, उस समय कन्द स्थान के निकट अग्नि अत्यन्त प्रदीप्त हो जाती है, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण नाड़ी शुद्धि हो जाती है, इस नाड़ी शोधन को ही यहाँ 'देहं जारयेत्' 'देह को जीर्ण कर डालता है' शब्दों द्वारा कहा गया है। इस नाड़ी शोधन के उपरान्त ही कुण्डलिनी जागरण ब्रह्मग्रन्थि-विष्णुग्रन्थि एवं रुद्रगन्थि का भेदन हुआ करता है।

70. The reasons there of is that due to combination of prana and apana breaths, which normally flow from two separate nadis (nerves) like solar and lunar nadis, start flowing in one Nadi, which in brief can be called as union of mon and the sun. In other-words, it can be stated

1. तुलनीय यो.शि. 1.55
2. तुलनीय यो.शि. 1.56

४ तुरिया-वस्था

जब तुरिया बनने लगे, होय कोष आनन्द।
ब्रह्म नाड़ि के आश्रय, कोष रहित निर्द्वन्द ॥

तुरियावस्था अमृत गावे, नाभि कमल में स्थान चितावें।
महा करण है शरीर याका, वाणी परा भेद है वाका ॥
चित से है चैतन्य सदा ही, आप आप कुछ पूजा नाहीं।
पाचों कोष यहां नहीं राजे, निशदिन सन्त गगन में गाजे ॥
नाभि शिखर विच सोहं जापा, जपत रहे छूटे निज आपा।
वंक नाल सोहं का वाटा खुले शिखर में वज्र कपाटा ॥
ऋतु है एक नहीं दिन रैना, देख प्रकाश थकत है नयना।
निर्गुण भाव आप को पावे, चहुंदिशि अपना रूप लखावे ॥
'अमृत' मिले शान्त हो जावे, गुणा तीत निश्चल पद पावे ॥

तुरिया में कुछ काल तक, रमण करे जो धीर।
केवल में केवल रहे, तुरिया जागृत वीर ॥
भाव नहीं अपना बने, मन वाणी थक जाहिं।
'अमृत' अनुभव से मिले, कहन सुनन से नाहिं ॥

आशय—जगत के झंझटों से घबड़ाने पर जब आत्मा को इससे उपराम होता है, तब आनन्द की खोज में भ्रमण करता हुआ मनुष्य श्री गुरु देव की शरण में पहुंचता है और शान्ति की याचना करता है। यदि अपने सुकृत्यों के उदय होने का समय आ गया हो और गुरु देव कृपा करके आत्म चिन्तन का साधन करने की शिक्षा प्रदान कर देते हैं और श्रद्धा विश्वास तथा लग्न के साथ साधन में लग जाने पर चिरकाल में जब आत्म तत्त्व में स्थिरता लगती है। जगत की ओर से मन उपराम को पाता है।

"काम बिसरि अरु क्रोध तजीला। मोह छाड़ि निरदंद।

माया ममता बिना गुर सरनैं। निरभय गोपीचंद॥" [105]

नाथसिद्धों ने योग के महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'अजपाजप' को स्वीकार किया है और उसका महत्त्व भी अपनी बानियों में बताया है। यह एक ऐसा जप है जिसके जपने में किसी साधन की आवश्यकता नहीं होती है। श्वास-प्रश्वास के साथ चलने वाली क्रिया है जिसमें सोहं मंत्र का जाप होता है।

गोपीचंद इस प्रकार का जाप करने का उपदेश देते हैं—

"एकांत का बासा अलख उपासा। तेषंत परम उजासा।

गोपीचंद गहन मन जपिबा। सोहं साधंत स्वासा॥" [106]

जलंध्रि पाव 'अजपा जपना तपबिन तपना' इन शब्दों में अजपा का जाप करने के लिए बताते हैं। प्रिथीनाथ कहते हैं कि अजपा का ज्ञान प्राप्त करके उसका जाप करने वाले बहुत कम लोग होते हैं। इस प्रकार का जप एकाग्र भाव से करने वाले को भगवान दूर नहीं है। प्रिथीनाथ का कहना है—

"प्रिथीनाथ कहै ते बिरला। जे निज जपै समान।

मन मनसा जब एक करैगा। तब दूरि नहीं भगवान॥" [107]

महादेव अपनी सबदी में कहते हैं कि जो इंद्रियों के निग्रह के साथ अजपा का जाप करता है। जिसकी काया ब्रह्माग्नि में तप्त होती है, ऐसे पुरुष की मैं वंदना करता हूँ—

"अजपाजपैं सुंनि मन धरै। पांचू इंद्री निग्रह करै।

ब्रह्म अगनि में होमैं काया। तास महादेव बंदै पाया॥" [108]

उपर्युक्त विवेचन से नाथों द्वारा प्रतिपादित हिन्दी की रचनाओं से योग के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—नाथों के योग संबंधी विचार संस्कृत साहित्य के योग से अधिकांशत: मिलते-जुलते हैं। हिन्दी रचनाओं के अनुसार नाथों का योग का लक्ष्य शरीर में ही परमपद की प्राप्ति करना है। गुरु के अनन्य साधारण महत्त्व को स्वीकार किया है। उनका परमतत्त्व सत्-असत्, सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत से परे हैं। गगन शिखर में उसका वास होता है, वहाँ ही उसका साक्षात्कार होता है। इनका योग ही प्रमुख साधन है। योग से काया की रक्षा, शरीर शुद्धि, जप और परमपद का साक्षात्कार होता है।

ये सभी पिंड ब्रह्मांड के ज्ञान से संभव होता है। नाथों की हिन्दी रचनाओं में यम-नियम का नामोल्लेख नहीं मिलता, लेकिन उनके अंगों का वर्णन मिलता है। वे साधना के मार्ग में नारी का

11:36
Patanjal Yog Pradip ...
archive.org
INTERNET ARCHIVE

...म्का जाप करते हुए इसी नासिकापुटसे पूरक करे। पूरकके पश्चात् पूर्ववत् कुम्भक, तत्पश्चात् बायें ...सिकापुटसे रेचक करे, ये दो प्राणायाम हुए। इसी प्रकार दोनों नासिकापुटोंसे एक साथ पूरक, कुम्भक ... रेचक करके प्राणायाम किया जा सकता है। प्राणायामकी संख्या यही रहे। मात्राएँ पूरक, कुम्भक ... रेचक १-४-२ के हिसाबसे यथाशक्ति बढ़ाते रहें।

निम्नलिखित क्रमानुसार मात्राओंको शनैः-शनैः बढ़ाया जा सकता है—

६ मात्रासे पूरक	८ मात्रासे कुम्भक	६ मात्रासे रेचक	१५ दिनतक
६ ,, ,,	१२ ,, ,,	९ ,, ,,	,, ,,
६ ,, ,,	१८ ,, ,,	१० ,, ,,	,, ,,
६ ,, ,,	२४ ,, ,,	१२ ,, ,,	,, ,,
७ ,, ,,	२८ ,, ,,	१४ ,, ,,	,, ,,

८ मात्रासे पूरक	३२ मात्रासे कुम्भक	१६ मात्रासे रेचक	१५ दिनतक
९ ,, ,,	३६ ,, ,,	१८ ,, ,,	,, ,,
१० ,, ,,	४० ,, ,,	२० ,, ,,	,, ,,
११ ,, ,,	४४ ,, ,,	२२ ,, ,,	,, ,,
१२ ,, ,,	४८ ,, ,,	२४ ,, ,,	,, ,,
१३ ,, ,,	५२ ,, ,,	२६ ,, ,,	,, ,,
१४ ,, ,,	५६ ,, ,,	२८ ,, ,,	,, ,,
१५ ,, ,,	६० ,, ,,	३० ,, ,,	,, ,,
१६ ,, ,,	६४ ,, ,,	३२ ,, ,,	,, ,,
१७ ,, ,,	६८ ,, ,,	३४ ,, ,,	,, ,,
१८ ,, ,,	७२ ,, ,,	३६ ,, ,,	,, ,,
१९ ,, ,,	७६ ,, ,,	३८ ,, ,,	,, ,,
२० ,, ,,	८० ,, ,,	४० ,, ,,	,, ,,

इसके पश्चात् यदि चाहें तो केवल कुम्भक कर सकते हैं। मात्राओंको बढ़ानेमें शीघ्रता न करें, यथाशक्ति शनैः-शनैः बढ़ावें।

साधारण सहित-कुम्भकके अन्तर्गत कई अन्य उपयोगी प्राणायाम—

(क) तालयुक्त प्राणायाम—हाथकी कलाईपर अंगूठेकी ओर नवजवाली नाड़ीपर अङ्गुलियोंको ...

Page — (481/682)
Favorite Share Flag
Patanjal Yog Pradip Of

नाड़ीशुद्धि

नाड़ीशुद्धि के सम्बन्ध में न तो योगसूत्र में और न योगभाष्य में ही स्पष्ट विवरण मिलता है । इतना ही नहीं इनमें 'नाड़ीशुद्धि' शब्द का उल्लेख भी कहीं नहीं है, किन्तु वसिष्ठ नाड़ीशुद्धि के सम्बन्ध में विस्तार के साथ उल्लेख करते हैं तथा कहते हैं कि प्राणायाम का विशेष अभ्यास करने के पूर्व नाड़ीशुद्धि का अभ्यास अवश्यमेव करना चाहिए (व.सं. १.८३-८४) । इस प्रकार वसिष्ठ के अनुसार नाड़ीशुद्धि के बाद ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए । बिना नाड़ीशुद्धि के प्राणायाम का अभ्यास निरर्थक ही है । हठप्रदीपिका (२.७-१०) के अनुसार कुम्भकसहित लोम-विलोम का लगातार तीन महिने तक अभ्यास करने से नाड़ीशुद्धि हो जाती है । यद्यपि 'हठप्रदीपिका' में नाड़ीशोधन का उल्लेख है, किन्तु इसका वर्णन प्राणायाम के फल के रूप में किया गया है - विधिवत्प्राणसंयमैर्नाड़ीचक्रे विशोधिते (ह.प्र. २.४१)।

हठप्रदीपिका के मत से वसिष्ठ का यहाँ पर मतभेद है। वे यह नहीं मानते हैं कि नाड़ीशुद्धि प्राणायाम का फल है । अपितु उन्होंने प्राणायाम के लिए नाड़ीशुद्धि की पूर्ण आवश्यकता पर विशेष बल दिया है । प्राणायाम ही नहीं, वरन् उसके बाद के जो प्रत्याहार, धारणा, ध्यान इत्यादि अंग हैं, उनकी भी सिद्धि नाड़ीशुद्धि के बिना नहीं हो सकती है । इसी बात पर वसिष्ठसंहिता और अन्य योगग्रन्थों में मतभेद है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वसिष्ठसंहिता में नाड़ीशुद्धि के लिए निम्न प्रक्रिया बताई है । इसके अनुसार साधक को एकान्तसेवन कर, सन्ध्यावन्दनादि कर्म कर, समकायशिरोग्रीव हो, एक मृदु आसन पर बैठकर, उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख हो, क्रम से पूरक और रेचक का पूर्ण अभ्यास करना चाहिए। प्रथम एक नासापुट से रेचक करके उसी नासापुट से पूरक करना चाहिए । बाद में दूसरे नासापुट से रेचक करके पूरक करना चाहिए। इसको वसिष्ठ नाड़ीशोधन कर्म कहते हैं । वसिष्ठ की इस प्रक्रिया का उल्लेख भावागणेश और नागोजीभट्ट ने अपनी योगसूत्र की व्याख्या (१.३३) में किया है, किन्तु उन्होंने उसका 'प्राणायाम' नाम दिया है, जो वसिष्ठ के प्राणायाम से भिन्न है । वसिष्ठ ने प्राणायाम में कुम्भक अनिवार्य माना है जिसका वर्णन दूसरे अध्याय में किया गया है, जब कि प्राणायाम का विधिपूर्वक अभ्यास तृतीय अध्याय में वे बताते हैं। यद्यपि नाड़ीशोधन की प्रक्रिया वसिष्ठ ने आसन के बाद और प्राणायाम के पूर्व बताई है, तथापि उनकी विशेषता को लक्षित करने हेतु हमने आसन के पूर्व इस नाड़ीशोधन विषय पर विचार किया ।

नाड़ी शुद्धि के लक्षण

आसन का अभ्यास हो जाने के बाद ही प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है । किन्तु वसिष्ठ के मत में केवल आसन का पूरा अभ्यास ही प्राणायाम करने के लिए पर्याप्त नहीं है । इसके लिए नाड़ीशुद्धि का अभ्यास भी आवश्यक है (व.सं. १.८३)। यद्यपि हठप्रदीपिका जैसे ग्रन्थों में प्राणायाम के पूर्व नाड़ीशुद्धि की आवश्यकता बताई गई है, किन्तु उन्होंने इसके लिए प्राणायाम से भिन्न किसी प्रकार का निर्देश नहीं किया है। मात्र वसिष्ठ ने ही इस सम्बन्ध में श्वास का एक प्रयोग बताया है, जिसमें कुम्भक-रहित केवल पूरक और रेचक का ही विनियोग होता है । यह विशेष प्रकार का श्वास का अभ्यास आगे आने वाले विध्युक्त-प्राणायाम से अलग ही है । इससे होने वाले नाड़ीशुद्धि का वर्णन वसिष्ठ ऐसा करते हैं - शरीर का हल्कापन, तेजस्विता, जठराग्नि का प्रदीपन और अन्तर्नाद की अभिव्यक्ति, इतने लक्षण जब तक उत्पन्न नहीं होते तबतक नाड़ीशुद्धि का अभ्यास करते ही रहना चाहिए (व.सं. २.६८-६९)। उपर्युक्त नाड़ीशुद्धि के लक्षण हठप्रदीपिका, दर्शनोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद् तथा योगचूड़ामण्युपनिषद् में थोड़े-थोड़े अन्तर के साथ वैसे के वैसे ही मिलते हैं ।

शिवसंहिता के अनुसार नाड़ीशुद्धि से योगी का शरीर सन्तुलित, सुगन्धित, दीप्तिमान,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मधुरकण्ठ, विकसित-अवयव, सुसंस्कृत आचार, प्रसन्नता, कमनीय अङ्ग, भरावदार वक्ष, शरीर की दृढ़ता तथा क्षमता इन सभी से पूर्ण हो जाता है । इस प्रकार शिवसंहिता ने व.सं., हठप्रदीपिका आदि की तुलना में सुगन्ध, सुसंस्कृत-आचार तथा कमनीय अवयव, इतना विशेष बताया है । मार्कण्डेयपुराण में स्थिरता, आरोग्य, मार्दव, सुगन्ध, अल्पमूत्रपुरीषत्व, तेजयुक्तत्व, सुसंस्कार तथा मृदुभाषण, ये सब योग में प्रगति के पूर्वलक्षण बताए हैं । श्वेताश्वतरोपनिषद् (२.३०, ३१) में भी अल्पमूत्रपुरीषत्व यह लक्षण पाया जाता है । सम्भव है कि मार्कण्डेयपुराण ने श्वेताश्वतरोपनिषद् से ही यह लक्षण समुच्चय दिया हो ।

प्राणायाम

अष्टाङ्गयोग के चतुर्थ अंग प्राणायाम का वर्णन वसिष्ठसंहिता के तृतीय अध्याय में इस प्रकार आता है - यत्नपूर्वक श्वास को लेना, यत्नपूर्वक श्वास को रोकना और यत्नपूर्वक श्वास को छोड़ना, इसका नाम क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचक दिया गया है (व. सं. ३.२)। यद्यपि सामान्यतया पूरक, कुम्भक और रेचक को प्राणायाम की संज्ञा दी गई है, तथापि वसिष्ठ को प्राणायाम शब्द से मात्र कुम्भक ही अभिप्रेत है (व. सं. ३.२८)। इस प्रकार वसिष्ठ ने प्राणायाम को दो भागों में विभाजित किया है । एक मात्र कुम्भक का प्रकार और दूसरा पूरक-रेचक सहित कुम्भक का प्रकार । पूरक और रेचक मात्र के अभ्यास को ही वसिष्ठ प्राणायाम की संज्ञा नहीं देते । योगग्रन्थों और पुराणों में सामान्यतया उत्तम, मध्यम और अधम तथा सगर्भ और अगर्भ ऐसा प्राणायाम का विभाग किया गया है। यद्यपि वसिष्ठ यह प्रणाली मानते हैं, तब भी मात्रा की दृष्टि से इसको विभक्त करने की अपेक्षा उसका लक्षण परक विभाग करना उन्हें अधिक पसन्द है। इसलिए अधम प्राणायाम का लक्षण स्वेद निकलना, मध्यम का लक्षण कम्प तथा उत्तम का लक्षण उत्थान बताया है (व. सं. ३.२३)। पूरक, कुम्भक और रेचक की मात्रा क्रमशः १६, ६४ और ३२ जो कि सामान्यतया अन्यत्र भी मान्य है, वही वसिष्ठ को भी मान्य है (व.सं. ३. १०-१२)। यद्यपि कुम्भक की ६४ मात्रा बताई गई हैं, तथापि वसिष्ठ अपनी शक्ति के अनुसार करना, ऐसा भी विकल्प बताते हैं (व.सं. ३.११)। अन्य योगग्रन्थों में तथा पुराणों में सगर्भ और अगर्भ (किसी मन्त्र-जप के साथ किया गया प्राणायाम तथा उससे रहित प्राणायाम) ये दो प्रकार के प्राणायाम कहे गए हैं, परन्तु वसिष्ठ अगर्भ प्राणायाम नहीं मानते हैं, और मन्त्र तथा ध्यान के साथ ही प्राणयाम का विधान करते हैं । इसके साथ ही प्रणव-मन्त्र का विधान भी विशेष रूप से बताते हैं (व.सं. ३.९, ८.२५)। साथ-साथ गायत्री का विधान भी प्राणायाम के साथ बताते हैं। इस प्रकार गायत्री और प्रणव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेष रूप से प्राणायाम में प्रयुक्त हुए हैं । प्रणव में अ, उ, म इन तीन अक्षरों का समावेश है । इनका उपयोग क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचक में करना चाहिए ।

केवलकुम्भक

हठप्रदीपिका और अन्य योगग्रन्थों में आठ प्रकार के कुम्भक बताए गए हैं । वसिष्ठ कुम्भक को दो ही प्रकार का बताते हैं - सहित और केवल । रेचक-पूरक के साथ किया गया कुम्भक - सहित तथा रेचक-पूरक के बिना किया गया कुम्भक - केवलकुम्भक कहा गया है। जबतक केवलकुम्भक की योग्यता नहीं आती तबतक सहित कुम्भक का अभ्यास अवश्यमेव करना चाहिए । जब केवलकुम्भक की सिद्धि होती है, तब योगियों में नवचैतन्य का संचार होता है तथा उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है। उनकी बुद्धि में तीव्रता आ जाती है तथा बाल सफेद होना रुक जाते हैं । इस केवलकुम्भक की चर्चा बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति में नहीं मिलती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ये तीनों अक्षर ही तीन कारण कहे गए हैं और इन तीनों के मूल कारण आभास्वरूप ब्रह्म हैं जो सभी के कारण हैं ।

एकाक्षरं परं ज्योतिस्तदाहुः प्रणवं बुधाः[१८] ।
एवं ज्ञात्वा विधानेन प्रणवेन समन्वितम्[१९] ।
प्राणायामं त्रिभिः कुर्याद्रेचपूरककुम्भकैः[२०] ।।९।।

(बुधाः तत् प्रणवं एकाक्षरं परं ज्योतिः आहुः एवं ज्ञात्वा प्रणवेन समन्वितं प्राणायामं विधानेन रेच-पूरक-कुम्भकैः त्रिभिः कुर्यात् ।)

विद्वान् लोग उस प्रणव (ओंकार) को एकाक्षर प्रणव ज्योति कहते हैं । ऐसा समझकर ओंकारयुक्त रेचक, पूरक, कुम्भक इन तीनों से विधिपूर्वक प्राणायाम करना चाहिए ।

आकृष्य श्वसनं बाह्यात्पूरयेदिडयोदरम्[२१] ।
शनैः षोडशभिर्मात्रैरकारं संस्मरन् बुधः[२२] ।।१०।।

(षोडशभिः मात्रैः शनैः इडया अकारं संस्मरन् बाह्यात् श्वसनम् आकृष्य बुधैः उदरं पूरयेत् ।)

सोलह मात्राओं तक धीरे-धीरे इड़ा नाड़ी द्वारा अकार का स्मरण करते हुए बाहर से वायु को खींचकर विद्वान लोग उदर को पूरित करें ।

धारयेत् पूरितं पश्चात् चतुःषष्ठ्या तु मात्रया[२३] ।
उकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् प्रणवं जपेत्[२४] ।
यावद्वा शक्यते तावद्धारणं जपसंयुतम्[२५] ।।११।।

(पश्चात् चतुःषष्ठ्या मात्रया तु पूरितं धारयेत् अत्र अपि उकारमूर्ति संस्मरन् प्रणवं जपेत् वा यावत् शक्यते तावत् जपसंयुतं धारणं (कुर्यात्) ।)

बाद में चौंसठ मात्रा से पूरित वायु का धारण (कुम्भक) करना चाहिए और वहाँ पर भी उकार स्वरूप का स्मरण करते हुए ओंकार का जप करना चाहिए अथवा इस प्रकार जब तक धारण (कुम्भक) कर सकें तब तक जपयुक्त धारण करना चाहिए ।

पूरितं रेचयेत् पश्चात् प्राणं बाह्यानिलान्वितम्[२६] ।
शनैः पिङ्गलया पुत्र द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः[२७] ।।१२।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(पश्चात् पुत्र बाह्य अनिल-अन्वितं पूरितं प्राणं पुनः द्वात्रिंशत् मात्रया शनैः पिङ्गलया रेचयेत् ।)

बाद में हे पुत्र बाहरी वायुरूप पूरित प्राण को पुनः बत्तीस मात्रा से धीरे-धीरे पिङ्गला के द्वारा छोड़ना चाहिए ।

ध्यायन्नन्त्याक्षरं तत्र प्रणवस्य समाहितः[२८] ।
प्राणायामो भवेदेष पुनश्चैव समभ्यसेत्[२९] ।।१३।।

(तत्र समाहितः (सन्) प्रणवस्य अन्त्य अक्षरं ध्यायन्, एष प्राणायामः भवेत्, पुनः च एव समभ्यसेत्-)

वहाँ एकाग्रचित्त से ओंकार के अन्तिम अक्षर (म) का ध्यान करना चाहिए। यही प्राणायाम होता है। इसका पुनः-पुनः अभ्यास करें ।

ततः पिङ्गलयाऽऽपूर्य मात्रैः षोडशभिस्तथा[३०] ।
अकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् सुसमाहितः[३१] ।।१४।।

(ततः षोडशभिः मात्रैः पिङ्गला आपूर्य तथा अत्र अपि अकारमूर्तिं सुसमाहितः संस्मरन्-)

(तब सोलह मात्रा से पिङ्गला के द्वारा पूरित कर और यहा भी अकार स्वरूप का एकाग्रचित्त से स्मरण करते हुए -

पूरितं धारयेत् प्राणं पुनर्द्वात्रिंशतिद्वयम्[३२] ।
जपेत्तत्रस्मरेन्मूर्तिं उकाराख्यं समाहितः[३३] ।।१५।।

(पुनः द्वात्रिंशतिद्वयं पूरितं प्राणं धारयेत् । तत्र उकाराख्यं मूर्तिं स्मरन् समाहितः जपेत् ।)

पुनः चौंसठ मात्रा तक पूरित प्राण को धारण करना चाहिए । वहाँ उकार मूर्ति का स्मरण करते हुए एकाग्रचित्त से जप करना चाहिए ।

धारितं रेचयेत् पश्चात् प्राणं बाह्यानिलान्वितम्[३४] ।
यावद्वाशक्यते पश्चाद्रेचयेदिडयाऽऽनिलम्[३५] ।
मकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् पूर्ववद्बुधः[३६] ।।१६।।

(धारितं बाह्य-अनिल-अन्वितं प्राणं पश्चात् रेचयेत् यावत् वा शक्यते (धारयेत्) पश्चात् पूर्ववत् मकार-मूर्ति अत्र अपि संस्मरन् बुधः इडया अनिलं रेचयेत् ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बाद में धारण किए हुए बाहरी वायु रूप प्राण को (इस प्रकार) छोडे, जब तक हो सके धारण करने के बाद पूर्ववत् मकार मूर्ति का यहाँ भी स्मरण करते हुए विद्वान साधक इड़ा के द्वारा वायु को छोड़े ।

तथैव च पुनः कुर्यादिडया पूर्वपूर्ववत्[३७] ।
नित्यमेवं प्रकुर्वीत प्राणायामांस्तु षोडश[३८] ।।१७।।

(तथैव पूर्व पूर्ववत् इडया पुनः च कुर्यात् । एवं तु नित्यं षोडश प्राणायामान् प्रकुर्वीत ।)

इस प्रकार पुनः पुनः इड़ा के द्वारा पूर्वोक्त रीति से प्रतिदिन सोलह प्राणायाम करना चाहिए ।

अपि भ्रूणहनं मासात् पुनन्त्यहरहः कृताः[३९] ।
प्राणायामपराः सर्वे प्राणायामपरायणाः ।।१८।।

(प्राणायामपरायणाः सर्वे प्राणायामपराः अहः अहः कृताः (साधकाः) मासात् भ्रूणहनं अपि पुनन्ति ।)

प्राणायाम को ही सर्वस्व समझकर प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन करने वाले सभी साधक एक मास में भ्रूणहत्या जैसे पाप से मुक्त हो जाते हैं ।

प्राणायामैर्विशुद्धा ये ते यान्ति परमां गतिम्।
प्राणायामादृते नान्यत्तारणं नरकादपि[४०] ।।१९।।

(ये प्राणायामैः विशुद्धा ते परमां गतिं यान्ति, नरकात्अपि तारणं प्राणायामात् ऋृते अन्यत् न ।)

जो प्राणायाम से पवित्र हो जाते हैं वे परमगति को प्राप्त होते हैं। नरक से भी मुक्त करनेवाला प्राणायाम के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है ।

संसारार्णवमग्नानां तारकः प्राणसंयमः ।।२०।।

(संसार अर्णव मग्नानां प्राणसंयमः तारकः ।)
संसारसमुद्र में डूबे हुए के लिए प्राणायाम ही तारक है ।

बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरकः स्मृतः[४१] ।
सम्पूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भको भवेत्[४२] ।
बहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचको हि सः[४३] ।।२१।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शुद्धौ यतेत नाडीनां पूर्वोक्तज्ञानसंयुतः ।
विविक्तदेशमासाद्य सर्वसम्बन्धवर्जितः ॥89॥
योगाङ्गद्रव्यसम्पूर्णं तत्र दारुमये शुभे ।
आसने कल्पिते दर्भकुशकृष्णाजिनादिभिः ॥90॥
तावदासनमुत्सेधे तावद् द्वयसमायते ।
उपविश्यासनं सम्यक् स्वस्तिकादि यथारुचि ॥91॥

उपर्युक्त ज्ञानविधि से नाडीशोधन कर लेना चाहिए। बाद में सभी सम्बन्धों को छोड़कर किसी एकान्त स्थान में रहते हुए योगांग के लिए सभी सामग्री एकत्रित करके, दर्भ, कुश अथवा काले हिरन

के चर्म आदि का दारुमय आसन बनाकर जब तक दोनों ओर के अंग समान न हो जाएँ, तब तक आसन की साधना करते रहना चाहिए। इसके लिए आसन-स्थान पर बैठकर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार स्वस्तिक आदि किसी आसन का अभ्यास करते रहना चाहिए।

बद्ध्वा प्रागासनं विप्र ऋजुकायः समाहितः ।
नासाग्रन्यस्तनयनो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् ॥92॥
रसनां तालुनि न्यस्य स्वस्थचित्तो निरामयः ।
आकुञ्चितशिरः किञ्चिन्निबध्नन्योगमुद्रया ॥93॥
हस्तौ यथोक्तविधिना प्राणायामं समाचरेत् ।
रेचनं पूरणं वायोः शोधनं रेचनं तथा ॥94॥

पहले तो आसन लगाकर सीधे बैठना चाहिए। हे ब्रह्मन्! बाद में नाक के अग्र भाग पर दृष्टि रखनी चाहिए। फिर दाँतों को दाँतों से स्पर्श किए बिना ही जीभ को तालु में लगाकर चित्त को स्वस्थ करके निरामय भाव से सिर को थोड़ा आगे झुकाकर, हाथों को एक-दूसरे से जोड़कर योगमुद्रा में प्राणायाम का परिशीलन करना चाहिए। रेचक-पूरक-कुम्भक के द्वारा वायु का शोधन करके बारी-बारी से रेचन की क्रिया करनी चाहिए।

चतुर्भिः क्लेशनं वायोः प्राणायाम उदीर्यते ।
हस्तेन दक्षिणेनैव पीडयेन्नासिकापुटम् ॥95॥
शनैः शनैरथ बहिः प्रक्षिपेत्पिङ्गलानिलम् ।
इडया वायुमापूर्य ब्रह्मन् षोडशमात्रया ॥96॥
पूरितं कुम्भयेत्पश्चाच्चतुःषष्ट्या तु मात्रया ।
द्वात्रिंशन्मात्रया सम्यग्रेचयेत्पिङ्गलानिलम् ॥97॥

इस तरह चार प्रक्रियाओं से वायु का क्लेशन (गतिमान) करने की विधि को प्राणायाम कहा जाता है। दाहिने हाथ से नासापुट को दबाकर पिंगला से (दायीं नासिका से) वायु को पहले बाहर निकालना चाहिए। बाद में सोलह मात्रा से इडा (बाँयी नासिका) से वायु को भीतर की ओर खींचना चाहिए। और चौंसठ मात्रा से कुम्भक करना चाहिए। तथा बत्तीस मात्रा से उस वायु को पिंगला (दायीं नासिका) से बाहर कर देना चाहिए।

एवं पुनः पुनः कार्यं व्युत्क्रमानुक्रमेण तु ।
सम्पूर्णकुम्भवद्देहं कुम्भयेन्मातरिश्वना ॥98॥
पूरणान्नाडयः सर्वाः पूर्यन्ते मातरिश्वना ।
एवं कृते सति ब्रह्मंश्चरन्ति दश वायवः ॥99॥
हृदयाम्भोरुहं चापि व्याकोचं भवति स्फुटम् ।
तत्र पश्येत्परात्मानं वासुदेवमकल्मषम् ॥100॥
प्रातर्माध्यन्दिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान् ।
शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥101॥

इस प्रकार बार-बार परिवर्तित क्रम से सर्वदा अभ्यास करते रहना चाहिए और शरीर के भीतर भरी हुई वायु को घड़े की भाँति स्थिर करके रोकते रहना चाहिए। इस क्रिया में हे ब्रह्मन्! सभी नाडियाँ वायु से भर जाती हैं। उन नाडियों में दसों वायु ठीक तरह से चलते रहते हैं। इसके बाद हृदयरूपी

प्राणायामैः कृतैर्यस्मान्नित्यं षोडशभिः पुनः ।
दैवं देहं च यत्पापं सर्वं तन्नश्यति ध्रुवम् ॥२५

परोपतापजं पापं परद्रव्यापहारजम् ।
परस्त्रीमैथुनोत्पन्नं प्राणायामशतं दहेत् ॥२६

महापातकजातानि ब्रह्महत्याशतानि च ।
सर्वाण्येव प्रदह्यन्ते प्राणायामैश्चतुश्शतैः ॥२७

आदावन्ते च यत्नेन प्राणायामं समाचरेत् ।
कार्येष्वपि समस्तेषु शुभेष्वेवाशुभेषु च ॥२८

प्राणायामैर्विना यद्यत् कृतं कर्म निरर्थकम् ।
इन्द्रियेष्वपि ये दोषा वातपित्तकफोद्भवाः ॥२९

त्वगसृङ्मांसमेदोत्था मज्जास्थिशुक्रसम्भवाः ।
एते सर्वे प्रदह्यन्ते प्राणस्यान्तर्निरोधनात् ॥३०

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना सर्वसिद्धिदा ।
नाडीत्रयं भावयेच्च विद्वान् सर्वार्थसिद्धये ॥३१

इडया पूरयेद्वायुं कुम्भनात् कुम्भकः स्मृतः ।
त्यजेत् पिङ्गलया तं च सावधानेन योगवित् ॥३२

क्रमेणैव प्रयत्नेन प्राणायामत्रयं चरेत् ।
प्रणवैर्मूलमन्त्रैर्वा सङ्ख्यां कृत्वा समन्ततः ॥३३

अष्टद्विगुणमात्राभिरिडया च प्रपूरणम् ।
कुम्भके च चतुःषष्टी रेचके च द्विषोडश ॥३४

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमां विना ॥३५

प्रातः काले तथा मध्ये दिनान्ते रात्रिमध्यके ।
अशीतिप्राणसंरोधं चरेत्कालचतुष्टये ॥३६

ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः ।
अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥३७

त्रिमासं नियताभ्यासान् नाभिचक्रस्य शोधनम् ।
काकचञ्चुमरुत्पानात् षण्मासात् सत्कविर्भवेत् ॥३८

अथ तृतीयः पादः

विश्वनाथं प्रणम्यादौ श्रीगुरोः पादपद्मतः ।
सर्वेषां च हितार्थाय प्राणायामं निरूपयेत् ॥१

ईडया कर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ।
धारयेत् पूरितं योगी चतुःषष्ट्या च मात्रया ॥२

सुषुम्नामध्यगं कृत्वा द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेद् योगवित्तमः ॥३

प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ।
भूयोभूयः क्रमात्तस्य अभ्यासेन समाचरेत् ॥४

मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग् द्वादश षोडश ।
जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भं तं विदुर्बुधाः ॥५

तदपेत्यं च निर्गर्भं प्राणायामं परे विदुः ।
क्रमादभ्यसतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ॥६

मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागपरो मतः ।
उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥७

प्राणायामं चरेन्मन्त्री रेचपूरककुम्भकैः ।
रेचयेद्वक्षसा विद्वान् मात्राषोडशकेन च ॥८

द्वात्रिंशन्मात्रयापूर्यं चतुःषष्ट्या च धारयेत् ।
एकश्वासश्चैकमात्रा मात्राया नियमो मतः ॥९

वामजानुनि हस्तस्य भ्रमणं यावता भवेत् ।
कालेन मात्रा सा ज्ञेया मुनिभिर्वेदपारगैः ॥१०

प्राणायामो द्विधा प्रोक्तः सगर्भश्च निगर्भकः ।
सगर्भो मन्त्रजापेन निगर्भो मात्रया भवेत् ॥११

03:56
क्रियायोग: Kriya Yoga | ...
exoticindiaart.com

(ङ) क्रियायोग की आवश्यकता 287
अष्टम अध्याय- क्रियायोग का अभ्यास 294
(क) नाभि क्रिया 295
(ख) खेचरी मुद्रा 296
(ग) गुरु प्रणाम 298
(घ) हंस साधना 301
(ङ) ओम् प्रविधि 306
(च) महामुद्रा 312
(छ) मुख्य क्रिया प्रविधि (प्रथम) 317
(ज) ज्योति मुद्रा 329
(झ) शाम्भवी मुद्रा 331
(ञ) द्वितीय क्रिया प्रविधि 333
(ट) तृतीय क्रिया प्रविधि 346
(ठ) चतुर्थ क्रिया प्रविधि 347
(ड) क्रियायोग के लिये आवश्यक बन्ध और मुद्रा 350
परिशिष्ट 357

हलका, वर्ण दिव्य और जठराग्नि बहुत तेज हो जाती है और शरीर में किसी प्रकार की बेचैनी नहीं रहने पाती। इस उपनिषद् में प्राणायाम की यह विधि दी हुई है। दाहिने नथने को दाहिने अँगूठे से बंद कर बाएँ नथने से धीरे धीरे साँस खींचे, जितनी देर तक हो सके उसे रोके और फिर धीरे धीरे ही दाहिने नथने से छोड़ दे। फिर इसी तरह बाएँ नथने को बंद कर दाहिने से वायु को अंदर खींचे और जितनी देर तक हो सके उसे अंदर रोककर धीरे धीरे बाएँ से छोड़ दे। इस प्रकार एक नथने से वायु को खींचकर दूसरे से छोड़े और जिससे वायु को छोड़े उसी से फिर अंदर खींचे। प्राणायाम करने के लिये पद्मासन बाँधकर कुश या कपड़े के आसन पर (अथवा मृगचर्म पर ?) शरीर को सीधा करके बैठना चाहिए। वायु को अंदर खींचना पूरक, रोकना कुंभक और छोड़ना रेचक कहाता है। आरंभ में पूरक १६ मात्रा का, कुंभक ६४ मात्रा का और रेचक ३२ मात्रा का होना चाहिए। हथेली को घुटने के चारों ओर घुमाकर चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उसे एक मात्रा कहते हैं। इस प्रकार योगी को सूर्योदय के पहले, दोपहर को, सूर्यास्त के समय और आधी रात को प्रतिदिन चार बार प्राणायाम करना चाहिए।

प्राण, साँस का दूसरा और बहुत सार्थक नाम है। जब तक साँस चलती रहती है, तब तक मनुष्य में प्राण रहता है, वह जीता रहता है; परंतु जब साँस बंद हो जाती है

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सुरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्रीपरमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु..........भारी।।

।। ॐ ।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

विष्णु ध्यान सनान करि रे,
बाहरि अंग न धोइ रे
साच बिन सीझसि नहीं
कोई ज्ञान दृष्टैं जोइ रे
जंजाल मांहें जीव राखै
सुधि नहीं सरीर रे
अभि अन्तरि भेदै नहीं
कोई बाहिर न्हावै नीर रे
निहकर्म नदी ज्ञान जल
सुन्नि मण्डल मांहिं रे
औधूत जोगी आतमां
कोई पेड़े संजमि न्हानि रे
इला प्यङ्गुला सुषमनां
पछिम गङ्गा बालि रे
कहै कबीर कुसमल झड़ैं
कोई मांहि लौ अंग पषालि रे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सो जोगी जाकै सहज भाइ
अकल प्रीति की भीख खाइ
सबद अनाहद सींगी नाद
काम क्रोध विषिया न बाद
मन मुद्रा जाकै गुर कौ ज्ञान ।
त्रिकुट कोट में धरत ध्यान
मनहीं करन कौ करै सनान
गुर को सबद लै लै धरै ध्यान
काया कासी खोजै वास
तहाँ जोति सरूप भयो परकास
ग्यान मेपली सहज भाइ
बंक नालि कौ रस खाइ
जोग मूल को देइ बन्द
कहि कबीर थिर होइ कन्द

प्राणायाम के अभ्यास एवं सतत साधना से शरीरस्थ नाड़ियाँ सक्रिय एवं चक्र उत्तेजित हो जाते हैं। प्राणायाम का सर्व प्रथम शरीर पर पड़ने वाला महत्व-पूर्ण प्रभाव है, नाड़ियों का विशुद्धीकरण। इन चक्रों एवं नाड़ियों में उत्तेजना एवं नव जीवन का समावेश हो जाने के अनन्तर साधक में यौगिक-शक्तियों का विकाश शनैः-शनैः होता है।

---

१. मात्रा के काल का निर्णय ॐ अथवा गणना द्वारा किया जा सकता है।

शिव संहिता के अनुसार मानव शरीर में ३,५०,००० नाड़ियाँ हैं। हठयोग-प्रदीपिका के अनुसार इन नाड़ियों की संख्या ७,२०,००० है।

"द्वासप्तति सहस्त्राणि द्वाराणि पंजरे"

'ह० यो० प्र०'—उप० ४ श्लोक १८

चरनदास ने इन नाड़ियों की संख्या ७२८६४ मानी है जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है :—

बहत्तर हजार आठ सौ चौसठ नारी।
सब की जड़ है नाभि मंझारी॥

परन्तु

तिनमंह दश नाड़ी शिरमौरी। पंच बायें पंच दाहिनी ओरी॥
दश नाड़ी अस्थान बताऊँ। ठौर ठौर तेहि कहि समझाऊँ॥

चरनदास ने शरीर में दश नाड़ियों को प्रधानता दी है।[1] इन में से पाँच शरीर के दाहिनी ओर है और पाँच बाई ओर। इन दश नाड़ियों के स्थान (ठौर) निम्न लिखित हैं :—

संख्या	नाड़ियाँ	शरीरस्थ स्थान
१.	शंखिनी	गुदा में
२.	किरकल	लिंग में
३.	पोषा	दाहिने कान में
४.	जसनी। यशस्विनी।	बांये कान में
५.	गंधारी	बांये नेत्र में
६.	हस्तिनी	दाहिने नेत्र में
७.	लम्बका	जिह्वा में
८.	पिंगला	शरीर के दाहिनी ओर
९.	इड़ा	शरीर के बाई ओर

---

१. सुन्दरदास ने भी ३५०,००० या ७२०,००० नाड़ियों में दश को प्रमुख माना है—

नाड़ी कही अनेक विधि, है दश मुख्य विचार।
इड़ा पिंगला सुषुमना, सब मति ये त्रय सार॥

देखिए, मेरे ग्रन्थ "सुन्दर दर्शन" में प्राणायाम प्रकरण।

06:19
सुंदर दर्शन | हिन्दवी
hindwi.org
सुंदर दर्शन

वहुरि विपर्यय ऐसें धारै । पूरि पिंगला इड़ा निकारै ।
कुम्भक राषि प्राण.को जीतै । चतुर्वार अभ्यास व्यतीतै ॥

ऋषियों द्वारा उपदेशित प्राणायाम की इस पद्धति का उल्लेख कर चुकने के पश्चात् लेखक ने पाठकों के समक्ष मतमतांतर प्रस्तुत करने के हेतु 'गोरक्ष पद्धति' के आधार पर भ प्राणायाम के सिद्धांतों का वर्णन किया है।[1] गोरक्ष पद्धति में "हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः । हंस हसेत्युमुंमंत्रं जीवो जपति सर्वदा" मंत्र है। यह हंस नाम का अजपा गायत्री मंत्र है। योगचिन्तामणि ग्रंथ में भी इसका वर्णन है। कवि ने गोरक्षोक्त सिद्धांत का वर्णन इन छन्दों में किया है :

सोहं सोहं सोहं हंसो । सोहं सोहं सोहं अंसो ।
स्वासा स्वासं सोहं जापं । सोहं सोहं आपै आपं ॥
द्वादश मात्रा पूरक करणं । द्वादश मात्रा कुंभक धरणं ॥
द्वादश मात्रा रेचक जाणं । पूरववत सु विपर्यय ठाणं ॥
अधमे द्वादश मात्रा उक्तं । मध्यम मात्रा द्विगुणा मुक्तं ॥
उत्तम मात्रा त्रिगुणा कहिये । प्राणायाम सुनिर्णय कहिये ॥

गोरक्ष पद्धति में भी यही सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है। कवि ने पूर्ण रूप से गोरक्ष पद्धति मत को अपने शब्दों में व्यक्त कर दिया है—

प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता ।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ॥
। श० २ । श्लोक ५ ।

अर्थात् समस्त प्राणायाम में मात्राओं का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है ।

	पूरक की *मात्रा*	कुंभक की *मात्रा*	रेचक की *मात्रा*	मात्रा के काल का निर्णय ॐ अथवा गणना द्वारा किया जा सकता है।
निकृष्ट प्राणायाम में	४	१६	८	
मध्य प्राणायाम में	८	३२	१६	
उत्तम प्राणायाम में	१६	६४	३२	

[1]यह ऋषिनि उक्त सुनाइहों इहिं भाँति प्राणायाम ।
सद्गुरु कृपातें पाइये मन होइ अति विश्राम ॥
अब मत मतांतर कहत हौं सुनि शिष्य अरय प्रभाव ।
गोरक्ष उक्त व ानि हौं तिहि सुनत उपजय चाव ॥

52
327

सत कवि भीखा 'सोऽहं' को 'आत्मा' देखने का एक बहुमूल्य साधन मानते हैं जिसकी अनुभूति युक्तिपूर्वक योगाभ्यास से ही सम्भव है।[1] दयाबाई के अनुसार 'सोऽहं' वह अजपाजप है जिसकी साधना के द्वारा मनुष्य पाताल से आकाश मे गति प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि 'सोऽहं' की साधना मे मानव ब्रह्ममय हो जाता है।[2] सन्त कवि मलूकदास ने बारम्बार 'सोऽहं' साधना का उपदेश दिया है, कारण कि 'सोऽहं' साधना मात्र से जीव ब्रह्ममय हो जाता है और भव-बाधाओ से ऊपर हो जाता है। ससार के त्रय तापों से उसका कोई सम्बन्ध नही रह जाता है।[3] गुलाल साहब[4] और कबीरदास[5] ने 'सोऽहं' को

[1] जोग जुक्ति अभ्यास करि सोहं सबद समाय।
भीखा गुरु परताप ते निज आतम दरसाय॥
स० वा० सा० भाग १, पृ० २१०

[2] अजपा सोहं जाप है परम गम्य निज सार। स० वा० स० भाग १ पृ० १६६

[3] सन्तो सोहं साधन कीजै।
सोहं साधन ते ताप मिटत है, जीव ब्रह्म होइ जाये।
शब्द संग्रह (अप्रकाशित)

[4] स० वा० स० भाग २, पृ० २०५

[5] " " पृ० ७

ब्रह्म तक पहुँचने की डोरी माना है। इसी प्रकार बुल्ला साहब की निम्नलिखित पंक्तियाँ बड़ी रोचक प्रतीत होती हैं—

होहं हंसा लागलि डोर
सुरति निरति चढु मनवाँ मोर ॥१॥
झिलिमिलि झिलिमिलि त्रिकुटी ध्यान
जगमग जगमग गगन तान ॥२॥
गह गह गह अनहद निसान।
प्रान-पुरुष तहँ रहत जान ॥३॥
लहरि लहरि उठि पछिंव घाट
फहरि फहरि चल उरार वाट ॥४॥
सेत बरन तह आवै आप
कह बुल्ला सोइ माइ बाप ॥५॥[1]

गरीबदास जी ने 'सोऽहं' को ही ब्रह्म माना है—

तुमही सोहं सुरत हौ तुमही मन अरु पौन।
इसमें दूसर कौन है आवै जाय सो कौन॥
स० वा० स० भाग १ पृ० १६२

इन सन्तों की तुलना में से सुन्दरदास के काव्य में 'सोऽहं' का भाव बड़े ही स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत कथन की समर्थक हैं—

सब संसार आप मैं दिषै। पूरण आपु जगत महिं पैषै।
आपुहि करता आपुहि हरता। आपुहि दाता आपुहि भरता॥
आप ब्रह्म कुछ भेद न आनैं। अहं ब्रह्म ऐसे करि जानैं।
अहं परात्पर अहं अखंडा। व्यापक अहं सकल ब्रह्मंडा॥
अहं निरंजन अहं अपारा। अहं निरामय अरु निरकारा।
अहं निलेप अहं निज रूपं। निर्गुण अहं अहं सु अनूपं।
अहं सुख रूप अहं सुख राशी। अहं सु अजर अमर अविनाशी।
अहं अनन्त अहं अद्वीता। अहं सु अज अव्ययं अमीता।
अहं अभेद्य अछेद्य अलेषा। अहं अगाध सु अकल अदेषा।
अहं सदोदित सदा प्रकाशा। साक्षी अहं सर्व महिं वासा।

अहं जगन्नाथ अहं जगदीशा। अहं जगपति अहं जगईशा।
अहं गोविंद अहं गोपालं। अहं ज्ञान धन अहं निरालं॥
(सु० ग्र० भाग १, पृ० ११२-११३)

तथा :

सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो।
स्वासो स्वासं सोहं जापं। सोहं सोहं आपै आपं॥
(सु० ग्र० भाग १, पृ० ४७)

इन पंक्तियों से कवि की 'सोऽहं' विषयक धारणा स्पष्ट हो जाती है। "अहं जगन्नाथ अहं जगदीशा।" "अहं जगपति अहं जगईशा।" "अहं गोविंद अहं गोपालं।" आदि पंक्तियों से 'सोऽहं' की भावना स्पष्ट रूप में प्रकट होती है।

स्फुट काव्य में एक स्थान पर कवि ने 'सोऽहं' को अद्वितीय जाप माना है। कवि के शब्दों में ही—

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और,
चित्त सों न चन्दन सनेह सों न सेहरा॥
हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन,
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा॥
सील सों न स्नान अरु ध्यान सों न धूप और,
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा॥
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और,
आतम सों देव नाहि देहं सों न देहरा॥
(स० वा० स० २, पृ० १२५)

रेखांकित पंक्ति में कवि ने 'सोऽहं' को जप, ध्यान और साधना का श्रेष्ठ साधन माना है।

अथ हठयोग नाम तृतीयोपदेशः

चौपई

अवहि कहूं हठयोग सुनाई। आदिनाथ के वन्दौं पाई।
रवि शशि दोऊ एक मिलावै। याही ते हठयोग कहावै॥ १॥
प्रथम सु धर्म देश कहुं ताकै। भलौ राज्य कछु दपल न जाकै।
तहां जाइ कै मठिका करई। अल्प द्वार अरु छिद्रसु भरई॥ २॥
लिप्त करै चहुं ओर सुगंधा। कूप सहित मठ इहि विधि वंधा।
तामहिं पैठि करै अभ्यासा। गुरुगमि हठ करि जीतै स्वासा॥३॥
श्रमन करै वकवाद न मांड़ै। होइ असंग चेष्टा छांड़ै।
अति उछाह मन माहैं करई। निश्चय रापि धीर्य पुनि धरई॥ ४॥
हठ करि आसन साधै भाई। हठ करि निद्रा तजतौ जाई।
हठ ही करि आहार घटावै। पाटौ पारौ कछू न पावै॥ ५॥
हठ करि तीक्ष्ण कटुक सु त्यागै। सरसों तिल मद मास न मांगै।
हरित शाक कवहू नहिं पाई। हिंगु ल्हसनु सव देइ वहाई॥ ६॥
देह कष्ट पुनि करै न सोई। प्रात सनान उपासन कोई।

---

(१) आदिनाथ=महादेव, सब योग विद्या और योग विद्या के आचार्यों के आदि गुरु और प्रथम आचार्य।

(२) भलो राज्य······=ऐसे देश मे मठ बांध हठयोग करै जहा का राज्य शान्त और निष्कण्टक हो।

(३) गुरु गमि=गुरु के उपदेश और ज्ञान के अनुसार क्योंकि योग गुरुगम्य है विना गुरु के योग दुसाध्य है।

(४) श्रम न करै······=योगी को परिश्रम करना निषिद्ध है, अधिक बोलना भी अयोग्य है।

(५) निद्रा······=साधन बढ जाने पर अल्पाहारी और अल्पशायी होता जाय।

(६ से १२ तक) योगी का आहार-व्यवहार योग ग्रन्थों मे (हठयोग प्रदीपिका,

कण हरि नाम सार संग्रह करि, और क्रिया कौ काटै घास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ४ ॥
आतम तत्व विचार निरन्तर, कीयौ सकल कर्म कौ नास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ५ ॥
और कछू उर मैं नहिं आवै, बातैं कोऊ कहौ पचास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ६ ॥
कौंण करै जप तप तीरथ व्रत, कौंण करै यम नेम उपास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ७ ॥
इडा पिंगला सुषुमन नारी, को अब करै योग अभ्यास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ८ ॥
कोउक दिन लौं आसन साधे, कोउक दिन लौं पैंचे श्वास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ९ ॥
कोउक दिन लौं रजनी जागे, कोउक दिन लौं फिरै उदास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १० ॥
देषे नाना मते भृषिनि के, देषे वर्णाश्रम संन्यास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ११ ॥
अर्थ धर्म अरु काम जहां लौं, मोक्ष आदि सब छाडी आस।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १२ ॥

---

(४) कण=घास को त्याग कण या अन्न का ग्रहण।

(५) कर्म का नाश=ज्ञान के उदय में अज्ञान (कर्म) का लोप आप ही हो जाता है।

६ से आगे प्रायः सब छन्दों में अन्य क्रिया और साधनों की, ब्रह्मानन्द मिल जाने पर अनावश्यकता, और मिल जाने पर जो उच्चकोटि की स्थिति होती है उसी का वर्णन किया है। ऐसा वर्णन ही 'सवैया' के अंग 'आत्मानुभव' में है—'क्या कहिये कहते न बनै कछु जो कहिये कहते ही लजइये', 'दीवा करि देख्यो सुनौ ऐसी नहि लाइ है'। 'सुन्दर आतम को अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना'। 'सुन्दर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सब सन्त यौंही कहत हैं श्रुति स्मृति ग्रन्थ पुरान रे।
दास सुन्दर नाम तें गति लहै पद निर्वान रे॥ २॥

(२)

(ताल रूपक)

सतसंग नित प्रति कीजिये मति होइ निर्मल सार रे।
रति प्रानपति सौं ऊपजै अति लहै सुक्ख अपार रे॥ (टेक)
मुख नाम हरि हरि उचरै श्रुति सुनै गुन गोविन्द रे।
रटि ररंकार अखंड धुनि तहां प्रगट पूरन चन्द रे॥ १॥
सतगुरु विना नहिं पाइये यह अगम उल्टा षेल रे।
कहि दास सुन्दर देषतें होइ जीव ब्रह्म हि मेल रे॥ २॥

(३)

(ताल रूपक)

ब्रह्म ज्ञान विचारि करि ज्यौं होइ ब्रह्म स्वरूप रे।
सकल भ्रम तम जाय मिटि उर उदित भान अनूप रे॥ (टेक)
यह दूसरौ करि जबहिं देषै दूसरौ तब होइ रे।
फेरि अपनी दृष्टि ही कौं दूसरौ नहिं कोइ रे॥ १॥
दिबि दृष्टि करि जब देषिये तब सकल ब्रह्म बिलास रे।
अज्ञान तें संसार भासै कहत सुन्दरदास रे॥ २॥

(४)

(ताल रूपक)

परब्रह्म है परब्रह्म है परब्रह्म अमिति अपार रे।
नहिं जगत है नहिं जगत है नहिं जगत सकल असार रे॥ (टेक)

---

२ रा पद—"मुख" को छन्द सौन्दर्य के लिए "सुक्ख" लिखना पड़ा है। श्रुति=कान।

३ रा पद—दिबि दृष्टि=दिव्य दृष्टि, भेद रहित ज्ञान।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(४)

(धीमा तिताला)

जग झूंठौ है झूंठौ सही। पूरन ब्रह्म अकल अविनाशी।
मन वच क्रम ताकौं गही॥ (टेक)
उपजै विनसै सो सब बाजी बेद पुरानंनि मैं कही।
नाना विधि के षेल दिषावै बाजीगर सांचौ उही॥ १॥
रज भुजंग मृगतृष्णा जैसी यह माया विस्तरि रही।
सुन्दर बस्तु अखंड एक रस सो काहू बिरलै लही॥ २॥

(५)

(तिताला)

तत थेई तत थेई तत थेई ता धो। नागड धी नागड धी
नागड धी मा धो। (टेक)
थुंगनि थुंगनि थुंगनि थुंगा त्रिघट उघटितत तुरिय उतंगा॥ १॥
तन नन तन नन तन नन तन्ना गुना गगनवत आतम भिन्ना॥ २॥
तत् त्वं तत् त्वं तत् सो त्वं असि साम वेद यौं वदत तत्वमसि॥३॥
अद्भुत निरतत नासत मोहं सुंदर गावत सोहं सोहं॥ ४॥ २३॥

---

४ था पद—सही=यह बात सही है, निश्चित है, सिद्धांत की है।

५ वां पद—इसका अध्यात्म अर्थ। तत्=वह ब्रह्म। थे ई=तुमही निश्चय करके हो। ता धी=वह बुद्धि, ब्रह्मवृत्ति वाली। नागड़ धी=नागी बुद्धि, असंप्रज्ञात समाधि में जो अंतःकरण की अवस्था। नागड़ धी=नहीं गहरी गड़नेवाली बुद्धि। नागड़ धी=नागर+धी=शुद्ध संस्कृत हुई बुद्धि। मा धी=मत हठसे ढकेल। यहां केवल उक्त शुद्ध बुद्धि का काम है। (जारी)—थुंग निथुंग...=थू+अंग=थ्वंग=थुंग—अंग, काया माया हेय है थूकने योग्य। तीन वेर कहने से वचन की प्राधान्यता हुई। त्रिघट=स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों ही नाशमान शरीर है। उघटित=ये तीनों उदघाटित, खुल जांय अर्थात् इनका अन्त हो जाय। (तब) वह तत्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

07:33

(८)

सबकै आहि अन्त मैं प्रांन।

बात बनाइ कहौ कोऊ केती, नाचि कूदि कैं तूटत तांन ॥ (टेक)

पंडित गुनी सूर कवि दाता, जो कोउ और कहावत जांन।
जठरा अग्नि प्रगट होइ जबही, तबही बिसर जाइ सब ग्यांन ॥ १ ॥
मीर मलिक उमराव छत्रपति, औरउ कहियत राजा रांन।
जद्यपि सकल संपदा घर मैं, तद्यपि मुख देषियत कुमिलांन ॥ २ ॥
आसन मार रहे बन मांहीं, तेऊ उठत होत मध्यांन।
सुन्दर ऐसी क्षुधा पापिनी, रहै नंहीं काहू कौ मांन ॥ ३ ॥

(९)

है कोई योगी साधै पौंना।

मन थिर होइ बिंद नहिं डोलै, जितेंद्री मुमरै नहिं कौंना ॥ (टेक)

यम अरु नेम धरै दृढ आसन, प्राणायाम करै मन मौंना।
प्रत्याहार धारणा ध्यानं, लै समाधि लावै ठिक ठौंना ॥ १ ॥
इडा पिंगला सम करि राषै, सुषमंन करै गगन दिशि गौंना।
अह निश ब्रह्म अग्नि परजारै, सापनि द्वार छाडि दे जौंना ॥ २ ॥
बहुदल षटदल दशदल षोजै, द्वादशदल तहां अनहद भौंना।
षोडशदल अंमृतरस पीवै, ऊपरि द्वै दल करै चतौंना ॥ ३ ॥
चढि आकास अमर पद पावै, ताकौं काल कदे नहिं षौंना।
सुन्दरदास कहै सुनु अबधू, महा कठिन यह पंथ अलौंना ॥ ४ ॥

---

८ वां पद—मलिक=(अ०) बादशाह। मीर=(अ०) सरदार, शासक। उच्च कुल का उच्च पुरुष।

९ वां पद—मरै नहिं कौंना=अमर होय कोई भी योग कर देखै। योग के अंगों और साधनों का वर्णन 'ज्ञानसमुद्र २ रे उल्लास में देखैं। ब्रह्म अग्नि परजारै=ब्रह्मज्ञान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

(२)

अवधू आतम काहे न देषै।

जाहि हतै सोई तुझ मांही कहा लजावत भेषै ॥ (टेक)

हिंसा बहुत करै अपस्वारथ स्वाद लग्यौ मद मांसै।

महा माइ भैरूं कौ सिरदै आपुहि बैठौ ग्रासै ॥ १ ॥

गोरष भांगि भषी नहिं कबहौं सुरापान नहिं पीया।

झूठहि नांव लेत सिद्धन कौ नरक जाहिगौ भीया ॥ २ ॥

कान फारि कैं भस्म लगाई योगी कियौ शरीरा।

सकल बियापी नाथ न जान्यौ जन्म गमायौ हीरा ॥ ३ ॥

नाटक चेटक जन्त्र मन्त्र करि जगत कहा भरमावै।

सुन्दरदास सुमरि अविनासी अमर अभै पद पावै ॥ ४ ॥

(३)

साधो साधन तन कौ कीजे।

मन पवना पंचौं बसि राषै सूंन्य सुधा रस पीजै ॥ (टेक)

चन्द सूर दोउ उलटि अपूठा सुषमनि कै घर लीजै।

नाद बिंद जब गांठि परै तब काया नैंकु न छीजै ॥ १ ॥

राजस तामस दोऊ छाडै सातिक बरतै तीजै।

चौथा पद मैं जाइ समावै सुन्दर जुग जुग जीजै ॥ २ ॥

[राग आसावारी] २ रा पद—अपस्वारथ=निज स्वारथ को। सिर दै=सिर चढ़ावै बकरे आदि का। भीया=भाई। हे भाई!। वियापी=व्यापक। अमर अभै पद=जोगियों में अमर पद पाने की बड़ाई है। अविनाशी पूर्ण ब्रह्म को भजने से वह पद प्राप्त हो सकता है, अन्यथा वाममार्ग के ढोंगों और गर्हित कर्मों से नहीं। यह पद जोगी जंगम शाक्तों आदि वाम-मार्गियों को कहा है। अवधू=जोगियों का साधु अघोरी। ३ रा पद—नाद नादानुसंधान, अनाहदनाद। बिंद=वीर्यको ब्रह्मचर्य से जीत कर वश में रखना। चौथा पद=तुरीया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

07:36

(६)

कोई पिवै राम रस प्यासा रे।

गगन मंडल मैं अमृत सरवै उनमनि के घर वासा रे ॥ (टेक)

सीस उतारि धरै धरती पर करै न तन की आसा रे।

ऐसा महिंगा अमी बिकावै छह रिति बारह मासा रे ॥ १ ॥

मोल करै सो छकै दूर तैं तोलत छूटै वासा रे।

जों पीवै सो जुग जुग जीवै कबहुं न होइ बिनासा रे ॥ २ ॥

या रस काजि भये नृप जोगी छाडे भोग बिलासा रे।

सेज सिंघासन बैठै रहते भस्म लगाइ उदासा रे ॥ ३ ॥

गोरषनाथ भरथरी रसिया सोई कबीर अभ्यासा रे।

गुरु दादू परसाद कछूइक पायौ सुन्दरदासा रे ॥ ४ ॥

(७)

संतौ लषन बिहूंनी नारी।

अङ्ग एकहू स्यावति नाहीं, कंत रिझायौ भारी ॥ (टेक)

अन्धली आंषिन काजल कीया, मुंडली मांग संवारै।

बूची काननि कुंडल पहिरै, नकटी बेसरि धारै ॥ १ ॥

पाद में अर्द्ध के अन्तिम शब्द को दोहरा कर प्रथम पाद के अन्तिम शब्द को उसके पीछे रख अनुप्रास कर फिर प्रथम के अर्द्ध के अन्तिम शब्द को अन्त में रख कर अनुप्रास किया है। दोनों पादों (चरणों) के अर्द्धों के अन्तिम शब्द परस्पर अनुप्रास युक्त हैं। सौंदर्य यह है कि वे तीनों शब्द द्वितीय पादार्द्ध में उक्त रीति से एकट्ठे होते हैं।—यथा:—आनै छानै जानै। भाषै चाषै राषै। दादू नादू आदू।

६ ठा पद—सीस उतारना=आपा मारना। छूटै बासा रे=वैराग्य पावै। विरक्त हो जाय। बैठे रहते=जो बैठे रहते सो ही।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

07:37

निज स्वरूप कौं जानि अखंडित ज्यौंका त्यौंही रहिये।
सुन्दर कछू ग्रहै नहिं त्यागै वहै मुक्ति पद कहिये ॥ ४ ॥

(१०)

राम निरंजन तूंही तूंही।
अहंकार अज्ञान गयौ जब सौ तूंही सौ हूंही ॥ (टेक)
तूंही तूंही तब लग कहिये जब लग मैं मैं आगै।
मैं मैं मैं मैं होइ बिलै जब सोहं सोहं जागै ॥ १ ॥
सोहं सोहं कहैं जबै लग तब लग दूजा कहिये।
सुन्दर एक न दोइ तहां कछु ज्यौं का त्यौं ह्वै रहिये ॥ २ ॥

(११)

मन मेरे सोई परम सुख पावै।
जागि प्रपंच मांहिं मति भूलै यहं औसर नहिं आवै ॥ (टेक)
सोवै क्यौं न सदा समाधि मैं उपजै अति आनन्दा।
जौ तूं जागै जग उपाधि मैं क्षीन होइ ज्यौं चन्दा ॥ १ ॥
सोइ रहै ते ह्वै अखंड सुख तौ तूं जुग जुग जीवै।
जो जागै तौ परै मृत्यु मुख बादि वृथा विष पीवै ॥ २ ॥
सोवै जोगी जागै भोगी यह उलटी गति जांनी।
सुन्दर अर्थ बिचारै याकौ सोई पंडित ज्ञांनी ॥ ३ ॥

---

९ वां पद—गोदंडा=गुबरेला कीड़ा जो गोबर की गोली कर के उसे उलटे पांव ढकेल कर बिलमें ले जाता है। सुन्दरदासजी जीवन्मुक्ति को मानते हैं। मुक्ति एक अवस्था मात्र है। शरीर छूटने पर मृत्यु हो जाने पर मुक्ति होने का क्या निश्चय हो सकता है। निजानंद निजस्वरूप जीव ही ब्रह्म है यह अनुभव परिपक्व होना ही मोक्ष है।

१० वां पद—चारों अवस्थाओं का वर्णन है।

११ वां पद—स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के उदाहरण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(५)

मेरा मन राम नाम सौं लागा ।
तातैं भरम गया भै भागा ॥ (टेक)

४ था पद—'भ्रमै' को 'भरमै' पाठ छन्द सौन्दर्य के लिए लिखा है। इसके अर्थ की समझ दादूवाणी में 'कायाबेली' का पद पढ़ने समझने से आ सकती है। वहां देखें और चन्द्रिकाप्रसादजी की उस पर टीका देखें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आसा मनसा सब थिर कींनी, सत रज तम त्यागै तींनी ।
पुनि हरष सोक गये दोऊ, मद मच्छर रहे न कोऊ ॥ १ ॥
नख शिख लौं देह पषारी, तब सुद्ध भई सब नारी ।
भया ब्रह्म अग्नि सुप्रकासा, किया सकल कर्म का नासा ॥ २ ॥
इडा पिंगला उलटी आई, सुषमन ब्रह्मण्ड चढ़ाई ।
जब मूल चापि दिढ बैठा, तब विंद गगन मैं पैठा ॥ ३ ॥
जहां शब्द अनाहद बाजै, तहां अन्तर जोति बिराजै ।
कोई देषै देषनहारा, सो सुन्दर गुरू हमारा ॥ ४ ॥

(६)

ऐसौ योग युगति जब होई ।
तब काल न व्यापै कोई ॥ (टेक)
धरि आसन पद्म रहंता, सब काया कर्म दहंता ।
तजि निद्रा खंडि अहारा, करि आपुहि आप बिचारा ॥ १ ॥
गहि विंद गगन दिशि जाता, भषि पवन पियाला माता ।
सुनि अनहद सींगी बाजै, धुनि मांहि निरंजन गाजै ॥ २ ॥
सो अवधू गुरु का पूरा, जिनि एक किया ससि सूरा ।
अग्नि अंतरि जोति जगावै, तहां उनमनि ताली लावै ॥ ३ ॥
यह गंग जमुन बिचि पैला, तहां परम पुरुष का मेला ।
गुरु दादू दिया दिषाई, तहां सुंदर रह्या समाई ॥ ४ ॥

५ वां पद—पषारी=धोई, स्नान कराई। नारी=नाड़ी (१०८ नाड़ियां)। मूलचापि=मूलाधार चक्र को सिद्धासन दृढ़ करके सिद्ध कर लिया। विन्द=वीर्य। गगन=मस्तिष्क, सहस्रार चक्र में।

६ ठा पद—गंग=पिंगला (दाहिने स्वर की) सूर्य नाड़ी। जमना=इडा (बाये स्वर की) चन्द्रनाड़ी। यथा—"गंगा जमना अन्तर बेद। सुरसति नीर बहै परसेद।" दादूवाणी पद ४०७।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीरथिया तीरथ कौं दौडे हज कौं दौडै हाजी।
अन्तर गति कौं षोजै नाहीं भ्रमणै ही सौं राजी॥ ३॥
अपने अपने मद के मांते लषैं न फूटी साजी।
सुन्दर तिनहिं कहा अब कहिये जिनकै भई दुराजी॥ ४॥१३२॥

(१) राग जैजैवन्ती

काहे कौं भ्रमत है तूं बावरे अनित्र जाइ।
जासूं तूं कहत दूरि सोतो तेरै पास है॥ (टेक)
ऐसैं तूं बिचारि देषि व्यापक है तोहि मांहि।
दूध मांहि घृत जैसैं फूलनि मैं बास है॥ १॥
बाहरि कूं दौरै तेरै हाथ न परत कछु।
उलटि अपूठौ तेरौ तोही मैं प्रकास है॥ २॥
जाकै रूपरेष कछु बरणि कह्यौ न जाइ।
अलष अमूरति अमर अविनास है॥ ३॥
सोहं सोहं बार बार होतई रहत नित्य।
याही मैं संमुक्ति जो उठत तेरै स्वास है॥ ४॥
एकता बिचारै जब सुन्दर ही स्वामी होइ।
दूसरौ बिचारै तब सुन्दर ही दास है॥ ५॥

(२)

आपुकौ संभारै जब तूं ही सुख सागर है।
आपकूं बिसारै तब तूं ही दुख पाइ है॥ (टेक)

---

१६ वां पद—पाजी=छोटा आदमी। पयादा नोकर। निवाजी=नमाज पढ़ते हैं। फूठी साजी=बिगड़ी हुई साम्भी वा मेल। द्वन्द्व, द्वैतभाव।

[राग जैजैवन्ती] १ ला पद—अनित्र=अन्यत्र, और तरफ़।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

આ ખેલ છે અગમ અપાર રે... સરળ.

ગંગાસતી ચિત્તની નિરમળતા પર ભાર મૂકે છે. નિરમળ ચિત્તવાળા ક્યારેય અભિમાની હોઈ શકે નહિ આ નિરમળતા દ્વારા પ્રાણી માત્ર પ્રત્યે સમ દ્દષ્ટિ સમતા પાંગરે છે. પરંતુ સાધકે રજોગુણના પ્રસારને તેની પ્રવૃત્તિને રોકવાનો સતત આયામ કરવો જોઈએ. આ અભ્યાસ અવિરત કરવો જોઈએ. યોગે દર્શાવેલા પાંચ પ્રાણ (૧) પાન (૨) અપાન (૩) વ્યાન (૪) ઉદાન (૫) સમાન એક પીઠિકા ઉપર સ્થિર કરવા જોઈએ. એટલું જ નહિ સત્ પુરુષોના વચનોમાં વિશ્વાસ, અખૂટ શ્રધ્ધા કેળવવી જોઈએ ચિત્તની નિર્મળતા અને એકાગ્રતા માટે પ્રાણનો બારીક અભ્યાસ કરવો જોઈએ. શુધ્ધ ચેત્તનામાં શ્વાસની સમગતિ મહત્વની છે. ડાબી ઈંગલા અને જમણી પિંગલા અને વચ્ચે સુષુમ્ણા નાડી દ્વારા ઉચ્છવાસની પ્રક્રિયા સાથે જે ધ્વનિ પ્રગટે છે એમાંથી 'અ' થી 'હ' સુધીના તમામ વર્ણો જન્મે છે. શ્વાસની ક્રિયામાં હંસો એવો ઉચ્ચાર હું તે પરમતત્ત્વ છુ એમ સૂચવે છે. જેને આપણે સોહમ તરીકે અનુભવીએ છીએ. આ બીજરૂપ ધ્વનિના અવિરત જપ કરવાથી અંતરમાં જ્ઞાન જ્યોત ઝળહળે છે. આ સ્વર સાધનાને નાદોપાસના પણ કહેવામાં આવે છે. અને તે એવો ધ્વનિ છે જે કોઈ પણ પ્રકારની આહત વગર પ્રગટ થાય છે. જેને અનાહત નાદ કહેવામાં આવે છે. પ્રાણ શુદ્ધિ એ અત્યંત મહત્વનો આયામ છે. જે નાડી શુદ્ધિ દ્વારા થાય છે અને આ શુદ્ધિ દ્વારા પરમતત્ત્વના અભ્યાસની જીજ્ઞાસા જાગે છે તેમજ ચિત્ત એકાગ્ર બને છે. આ નાડી શુધ્ધિમાં અશુધ્ધ ઉર્જાને પરીશુધ્ધ કરવી પડે છે. અને તો જ ઉર્ધ્વકરણના માર્ગમાં આવતા અવરોધો જેને ગંગાસતી ગાંઠો તરીકે ઓળખાવે છે તે ઓગળવા માંડે છે. ઉર્જા પરિશુધ્ધ થાય પછી આ ઉર્જાનું રૂપાંતરણ થાય છે અને જીવભાવમાંથી શિવભાવ પ્રગટે છે. આ પ્રાગટ્ય માટે ગંગાસતી કહે છે કે એ અગમ અને અપાર ખેલ છે. અગમ એટલે સામાન્ય સમજથી પર છે. અને અપાર એટલે જેનો પાર પામી શકાતો નથી તેવુ. આમ સ્થૂળ દ્દષ્ટિએ આ શોધન પ્રક્રિયા

સમજાતી નથી કારણ કે તે તો કેવળ અનુભવગમ્ય છે. આ દ્વારા યોગમાર્ગમાં ચિત્તની પરિશુધ્ધિ કઈ રીતે થાય છે તેનું શાસ્ત્રીય આલેખન ગંગાસતીએ કરેલુ છે.

(૧૦) 'યોગી થવું હોય તો'

યોગી થવું હોય તો સંકલ્પને ત્યાગો ને,

આદરો તમે અભિયાસ રે;

17:37 Vo)) 4G+ LTE1

(૨) **'ચક્ષુ બદલાણીને સુવાંત'**

ચક્ષુ બદલાણી ને સુવાંત વરસી ને,

ફળી ગઈ પૂરવની એને પ્રીત રે;

ટળી ગઇ અંતરની આપદા ને,

પાળી સાંગોપાંગ રૂડી રીત રે...ચક્ષુ.

ભાઈ રે ! નાભિકમળથી પવન ઉલટાવ્યો ને,

ગયો પશ્ચિમ દિશમાંય રે;

સૂરતા ચડી ગઈ શૂનમાં રે;

ચિત્તમાંહી પુરુષ ભાળ્યા ત્યાંય રે... ચક્ષુ.

ભાઈ રે ! અવિગત અલખ અખંડ અનામી ને,

અવ્યક્ત પુરુષ અવિનાશ રે;

ભાળીને સૂરતા તેમાં લીન થઈ ગઈ ને,

હવે મટી ગયો જનમનો ભાસ રે... ચક્ષુ.

ભાઈ રે ! ઉપદેશ મળ્યો ને ટળી ગઈ આપદા ને,

કરાવ્યો પરિપૂરણ અભ્યાસ રે;

ગંગાસતી એમ બોલિયાં ને,

આવ્યો પરિપૂરણ વિશ્વાસ રે... ચક્ષુ.

માનવના ગંગાસતી બે ચક્ષુઓ કલ્પે છે બાહ્યચક્ષુ તેમજ આંતર ચક્ષુ. સાધકમાં જ્યારે બાહ્ય દૃષ્ટિમાંથી આંતર દૃષ્ટિનો પ્રાદુરભાવ થાય છે ત્યારે એક લય કે નાદનું પ્રાગટ્ય થાય છે. જેને સુરતા કહેવામાં આવે છે. ગંગાસતી તેને નાભિકમળનો પવન-પ્રાણશક્તિનો પ્રવાહ જે પશ્ચિમ દિશામાં વહે છે જેને યોગમાર્ગમાં કુંડલિની જાગરણ કહેવામાં આવે છે. આમ યોગની દૃષ્ટિ એ પશ્ચિમ માર્ગ એટલે સુષુમણા માર્ગ. પવન એટલે પ્રાણ અર્થાત

કુંડલિની શક્તિ જે નાભિકમળમાંથી જાગૃત થઈ સુષુમ્ણા માર્ગે ઉર્ધ્વ ગતિ કરે છે. આ સૂરતા કે નાદનું પ્રાગટ્ય વ્યક્તિને ગંગાસતીના મતે અવિગત, અલખ, અખંડ, અનામિ અને અવ્યક્ત, અવિનાશી પુરુષ- ચૈતન્યનો સાક્ષાત્કાર કરાવે છે. અને આ પરમ ચેતનામાં નાદનો લય થતા આ સાક્ષાત્કાર પરિપૂર્ણ અસ્તિત્વમાં જાગૃત વિશ્વાસને પ્રગટ કરે છે.

अबरन मिल अबरन भई, काहे काले खाय ॥

(भावार्थ)

जब कि यह जीव गुरुमुख अथवा अन्तर्मुख होकर अपने निज वास्तव रूप में प्रवेश कर जाता है तब अवागमन से छूट जाता है। परदये-दुई हट जाने से काल की सरहद से बाहर हो जाता है। काल किसको खावे ?

जीव के बहिर्मुख होने के सबब से इसके और इसके वास्तव रूप के बीच में मायाकृत त्रैगुणी का परदा हायल है जिसकी वजह से जीव को कर्मानुसार योनियों में आना जाना लगा रहता है। जब जीव अन्तर्मुख हो जाता है तब इस परदे से परे अपने निज रामरूप को प्राप्त होकर आने जाने से छूट जाता है। मायाकृत त्रैगुणी परदे की ओट में ही काल शिकाररूपी जीव पर हमला कर सकता है। जब जीव परदे से बाहर हो गया तब काल किसको खावे ?

चौपाई

२३–सोई गुरु पूरा कहवावे।

दुइ अच्छर का भेद बतावे ॥

(भावार्थ)

गुरु का लक़ब सिर्फ़ उन्हीं सत्गुरुदेवजी को मौज़ूँ है कि जिन्होंने जीते जी अपने निज रामरूप को जान लिया हो। दीगर कोई शख़्स इस लक़ब का मुसतहक़ हरगिज़ नहीं हो सकता है। और श्रीसत्गुरुदेवजी ही को यह क़ुदरत हासिल है कि जिसको पात्र समझते हैं द्वैत और अद्वैत भाव को दर्शा देते हैं।

लक़ब "गुरु" उन्हीं श्रीसत्गुरुदेवजी जीवन मुक्त साहब के लिये ज़ेबा है जो अपने शिष्य को मुकम्मिल तौर पर मायाकृत त्रैगुणी जीव और जीव के माया और गुणों से आज़ाद वास्तव रूप के भेद को दर्शा देवें।

२४–एक छुड़ावे एक मिलावे।

तब नेह संग निज घर पहुँचावे ॥

(भावार्थ)

श्रीसत्गुरुदेवजी परदये-दुई को अपने उपदेशों से हटा देते हैं और अपने निज रामरूप से मिला देते हैं तब यह जीव बावन हुरूफ़ रचित संसार के साथ से अलहिदा होकर अपने निज रूप को मिल जाता है अथवा श्रीसत्गुरुदेवजी उपदेश देकर जीव को मायाकृत त्रैगुण मन्मुख अथवा बहिर्मुख अवस्था से छुड़ाकर अन्तर्मुख अथवा गुरुमुख करके माया और गुणों से छुड़ाकर इनसे परे जीव को उसके वास्तव रामरूप से मिला देते हैं। तब यह जीव फ़ानी दुनियाँ से निकल कर अपने अजर और अमर घर वापस होकर पहुँच जाता है।

७०--ओहं सोहं अत्तर जाना।
ज्ञानी गुनी कीन्ह परमाना ॥

(भावार्थ)

"ॐ" और "सोऽहं" भी अज्ञान अवस्था में अत्तर समान हैं। इन महावाक्यों के अर्थ के गूढ़ अभिप्राय को वही समझ सकता है जो इनके अन्दरूनी फैलाव और भेद को अन्तर्मुख होकर देखता है। खाली किताबी इल्म के ज़रिये से हासिल किये हुये ज्ञान से इनकी असली अन्दरूनी कैफ़ियत ज़हूर में आना ग़ैर मुमकिन है। श्रीनानक शाहजी गुरुदेव फ़रमाते हैं कि "नानक एक ॐकार सर्व भाँति होय पसरिया" यानी यही ॐकार के भीतर अनेक ब्रह्माण्डों की रचना है। इसके बाहर कुछ नहीं है। इसी ॐकार के भीतर का भेद गुरुमुख होकर पूरी तौर से जीव अपने शरीर में ही लखता है इसी में "अच्छर" है और इसी में अत्तर है। अत्तर संसार है जो शून्य मात्रा से नीचे की तरफ़ है और "अच्छर" इसका निज रामरूप है जो संसार से परे मुक़ाम

० शून्य पर यानी ऊपर की तरफ़ है। बग़ैर शून्य के इस ॐकार के कुछ मानी नहीं। शून्य से ही इसका सब चमत्कार है। गो कि शून्य वास्तव में इससे न्यारा है ताहम उसी का सब ज़हूर है। ॐकार का चित्र और उसकी कैफ़ियत किताब के शुरू में दी हुई है। उसको बग़ौर समझकर अपने अन्दर गुरुमुख होकर देखोगे तब उसका पूरा फैलाव मालूम होगा।

७१--अत्तर गोरख नारद बूझा।
बिन अच्छर वह पंथ न सूझा ॥

(भावार्थ)

गोरखनाथजी वा नारदजी भी अत्तर ही की अमलदारी वा हद के भीतर ही भीतर रहे। अपने निज रामरूप यानी अच्छर मुक़ाम का रास्ता न पाकर माया में ही फँसे रहे।

७२--ररंकार गुप्ता परमाना।
अदली अच्छर रहा अमाना ॥

(भावार्थ)

माया से परे जो मुक़ाम "रङ्कार" है उस मुक़ाम से भी अदली अच्छर गुप्त और अमाना है यानी महफ़ूज़ है अथवा उसमें मरना जीना नहीं है।

७३--जेहि घट में अच्छर उजियारा।
सो हंसन का करे उबारा ॥

(भावार्थ)

होता है । बक़ौल तुलसीदासजी साहब के :—

दोहा—"राम राम सब कोइ कहैं, ठग ठाकुर औ चोर ।
बिना प्रेम रीझै नहीं, तुलसी नन्दकिशोर ॥"

...

७७—बिन अच्छर अच्छर जो होई ।
सो अच्छर बूझै नहिं कोई ॥

(भावार्थ)

बावन अक्षरों के भीतर न आने वाला अथवा ज़बान के ज़रिये से न कहा जा सकने वाला "अच्छर" मुक़ाम जो जीव का निज रामरूप तुरियातीत पद है उस अच्छर पद को कोई बिरला ही गुरुमुख होकर परखता है । वह मायाकृत त्रैगुणी जीव की मन्मुख अवस्था से परे है, गुरुमुख होकर प्राप्त होता है ।

साखी

दोहा

७८—शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह ।
जिह्वा पर आवे नहीं, निरख परख कर लेह ॥

(भावार्थ)

"शब्द" "शब्द" तो सब कोई कहते हैं । खली कहने से कुछ हासिल नहीं क्योंकि शब्द तो विदेह है यानी सब सूक्ष्म और स्थूल आकारों से बरी है, इस वजह से ज़बान के ज़रिये से ज़ाहिर नहीं किया जा सकता । अपने भीतर निरखने और परखने के ही पुरुषार्थ से उसकी प्राप्ति होती है ।

मायाकृत त्रैगुणों से परे जो जीव का वास्तव रूप है सोई "शब्द" है । ज़बान से नहीं कहा जा सकता ।

चौपाई

१००—अच्चर काया अच्चर माया।
अंच्छर जग सतगुर होइ आया॥
(भावार्थ)
यह स्थूल काया भी अच्चर है और सूक्ष्म मायाकृत त्रैगुण, मन तथा गुणों को आदि लेकर कुल शारीरिक सूक्ष्म रचना भी अच्चर हैं। इसके भीतर "अच्छर" यानी इस जीव का निज रूप ही सत्गुरुदेव है।

१०१—ओहं सोहं नहीं पहिचाना।
तत्त्व काल गुप्त परमाना॥
(भावार्थ)
ॐ और सोऽहं को जब तक गुरुमुख यानी अन्तर्मुख हो कर नहीं चीन्हँता तब तक इनका पूरा भेद नहीं लख पड़ता। "अच्छर" मुक़ाम जो इन्हीं में है बहिर्मुख रहने से गुप्त रहता है। साखी नं० ७० तथा उसका नोट सफ़ा १५७ पर देखो। भावार्थ

१०२—अदली अच्छर रहा अमाना।
सो अंच्छर कोइ बिरला जाना॥
(भावार्थ)
"अदली अच्छर" यानी इन दोनों महावाक्यों के ऊपर की तरफ़ इनसे परे वाला शून्य ही इस शरीर के भीतर का "अच्छर" मुक़ाम है जो तुरियातीत पद है, जिस पद को बिरला ही कोई प्राप्त होता है। मायाकृत त्रैगुणों से परे है।

१०३—अंच्छर में है वास हमारा।
जो बूझे सो उतरे पारा॥
(भावार्थ)
कबीर साहब फ़रमाते हैं कि हमारा क़ायम अच्छर में है जो कोई उस मुक़ाम को लखेगा भवजल से पार होगा यानी मायाकृत त्रैगुणों से परे अपने वास्तव रूप को प्राप्त होगा।

कहत है।

20:18

१५--एक ब्रह्म वह सत्य है, तन मन माहीं सोय ।
तन मन के भीतर बसे, सुरत निरत से जोय ॥

(भावार्थ)

परमेश्वर एक ही है जो सत्य है और ब्रह्म है, सोई तन और मन के भीतर हर दम के साथ क़ायम रहता है। चूंकि वह अपने ही तन और मन के भीतर है, इसलिये सुरत लगा के प्रेम करने से ज्ञानी को नज़र आता है। मायाकृत त्रैगुणों की सकल रचना इस त्रैगुणी मन की कल्पना से होती है जिनका आधारभूत जीव का इन सब से परे रामरूप है जिसको जीव गुरुमुख होकर प्राप्त होता है। वह गुरुमुख अवस्था में तन और मन से परे भासित होता है। तथा मन्मुख अवस्था में भी उसी का आधार है।

१६--ऊपर तरे दो जाप जो, तन मन से सब खोय ।
ताड़ी दसों लगाय के, उनमुन के संग जोय ॥

(भावार्थ)

यह "सोऽहं जप" यानी जो प्राण और अपान की ऊपर नीचे की आमद रफ़्त है, इसको तन और मन से दूर कर दे यानी अपनी दशों ताड़ी अथवा अपनी सुरत को उनमुन की ओर यानी सत्, रज, तम से बाहर करके तुरी की ओर करके अपने निज तुरियातीत पद में लय हो जा जहाँ प्राणों का गुज़र ही नहीं है। पाँचों ज्ञान इन्द्रियों और पाँचों कर्म इन्द्रियों तथा मायाकृत त्रैगुणों से गुरुमुख अवस्था में परे होकर के अपने निज वास्तव रूप की तरफ मुख़ातिब होकर जीव को प्राणों से परे होकर अपने तईं अपने वास्तव रूप से जीते जी मिला देना चाहिये।

शिष्योवाच

५८—एक भेद कहो और, समरथ श्री गुरुदेव तुम।

भीतर रूप केहि ठौर, कौन बरन वह पुरुष है॥

(भावार्थ)

शिष्य दरियाफ़्त करता है कि हे समर्थ! यानी सर्व शक्तिमान्, आप दया करके यह बतलाइये कि इस शरीर में भीतर किस मुक़ाम पर इस जीव का निज रामरूप है और उसका रंग क्या है।

सतगुरूवाच

दोहा

५९—दसवाँ द्वार गुप्त है, ब्रह्म रन्ध्री ठौर।

तहवाँ सुरत लिप्त करो, देह तजो फिर और॥

(भावार्थ)

श्रीसतगुरुदेवजी साहब फ़रमाते हैं कि इस शरीर में नव दरवाज़े ज़ाहिर हैं यानी १—मल त्यागने का, २—मूत्र त्यागने का, ३—मुख, ४ और ५—दो 'सूराख़' नाक के, ६ और ७—दो नेत्र, ८ और ९—दो सूराख़ कानों के, और इन सब से ऊपर की तरफ़ एक गुप्त दशवाँ दरवाज़ा है जिसको ब्रह्मरन्ध्री ठौर कहते हैं। उसी मार्ग से तुम संसार में नीचे की तरफ़ गिरे हो। जब तुम फिर उसी मार्ग से ऊपर की तरफ़ जावोगे तब अपने निज रामरूप को प्राप्त होगे। तुमको चाहिये कि श्रीसतगुरुदेवजी के उपदेशों पर अमल करके अपनी सुरत को त्रैगुण से परे तुरी में लगाकर तुरियातीत पद को प्राप्त हो जावो।

सोरठा

६०—टिकटिकीत्रिकुटी ध्यान, जोति निरंजन जानले।

माया केर तमाश, यहू देख मत भूलियो॥

(भावार्थ)

तुरी अवस्था में क़याम करने से कुछ रोज़ के जोग अमल के बाद त्रिकुटी मुक़ाम का ज़हूर होता है। यहाँ माया का भारी तिलस्म है। इसमें न फँसना चाहिये।

६१—तेहिके आगे अंस, खोडस रवि परकास है।

यहू काल को सेस, यहू झूठ तू मान ले॥

(भावार्थ)

त्रिकुटी मुक़ाम से ऊपर सोलह सूर्यों के बराबर रोशनी है। इससे भी बचना चाहिये।

उसको गुरुमुख होकर प्राप्त हो जावो।

२--आसन पद्म मारि दृढ़ बैठे;

प्रथम पवन परचाई।

(भावार्थ)

पद्म आसन को भी तुमने लगा लिया और पवन को भी क़ाबू में कर लिया।

३--बंक नाल गहि फेर मूल;

सर अष्ट कमल बिकसाई।

(भावार्थ)

बङ्कनाल (यानी एक रग होती है) में भी प्रवेश किया, अष्टदल कमल के भीतर की भी लीला को देखते रहे।

४--नऊँ नाटका बन्द किहो;

सर मारग पवन चढ़ाई।

(भावार्थ)

नवों नाड़ियों को रोक कर सिर के रास्तों में पवन को भी चढ़ा दिया।

५--अनहद सुनि आनन्द भये;

छवि जोत देखि हरखाई।

(भावार्थ)

अनहद बाजे को भी सुना और ज्योति की खूबसूरती वा माया का फैलाव देखकर खुश भी हुये।

६--जौन जोत से जोत प्रगट भई;

ताकी खबर नहिं पाई।

(भावार्थ)

लेकिन जिस दिव्य ज्योति यानी तुम्हारे निज रामरूप से इस मायारूपी ज्योति का ज़हूर हुआ उसका पता न मिला, जिस वजह से ये सब हरकतें फ़ज़ूल होगईं। बहिर्मुख अवस्था में चमत्कारों में फँसे रहे।

७--जुगल जोत जब जोत पछाड़ी;

तब जोत कहाँ समाई।

(भावार्थ)

युगल ज्योति यानी तुम्हारा निज रामरूप जो इन सब मुक़ामों से परे है जब उसको प्राप्त हो जावोगे तब इन सब उपाधियोंसे बचोगे। इनतमाशोंके द्रष्टा तुम हो इनसे परे हो।

८--बाजीगर की सुरत बिसर गई;

बाजी देख भुलाई।

(भावार्थ)

बाजीगर यानी सब सृष्टियों का कर्त्तार तुम्हारा निज रामरूप है। उसको बहिर्मुख रहकर बिसरा दिया और

जाता है। यही हकार षोडश स्वरों तथा विभिन्न प्राणियों के रूप में आविर्भूत होता है। लोग इस हकार (ह्रीं) शक्ति को ही 'कुण्डलिनी' कहते है। आचार्य शंकर का कहना है कि कुछ लोग इस परा शक्ति कुण्डलिनी को हृदय में स्थित मानते हैं, लेकिन यह बात सत्य नहीं है। कुण्डलिनी मूलाधार में निवास करती है तथा यह निश्चित रूप से सुषुम्ना–पथ का अनुगमन करती है।"

अजपा मन्त्र

यह 'ह' ध्वनि समस्त ब्रह्माण्ड तथा प्राणियों में 'तत' अर्थात् व्याप्त हो रही है। इस मूल 'हकार' के साथ बिन्दु के योग अर्थात् 'हं' से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। इसी मूलबीज हकार से अन्वित रकार के साथ अकार का योग (ह र् अ) होने पर 'हर' तथा हकार से अन्वित रकार के साथ इकार (ह र् इ) का योग होने से 'हरि' की उत्पत्ति हुई। क्योंकि, मूलाक्षर हकार की उत्पत्ति 'बिन्दु' से हुई है, अतः बिन्दु से युक्त 'ह' को 'हं' कहा जाता है। यह 'हं' अजपा मन्त्र (हंसः) का प्रथम बीज है।

समस्त संसार पुं–प्रकृत्यात्मक या बिन्दु–विसर्गात्मक है। बिन्दु सूर्यात्मक होने से पुरुष तथा तथा विसर्ग सोमात्मक होने से प्रकृति है। पुरुष और प्रकृति के मिलन से ही समस्त विश्व का आविर्भाव होता है। बिन्दुयुक्त हकार अर्थात् 'हं' पुरुष है तथा

'सः' प्रकृति है। इन दोनों का योग ही 'हंसः 'अर्थात् जीव है। 'हंसः' को अजपा या आत्म महामन्त्र कहा जाता है। इनमें पुरुष रूप बिन्दु का स्थान दांया तथा स्त्रीरूप विसर्ग का स्थान बांया है। इसी कारण व्यावहारिक जगत् में पुरुष का स्थान दाएं तथा स्त्री का बाएं माना गया है। इस महामंत्र के देवता 'अर्धनारीश्वर' हैं। यह 'हंसः' प्राणियों के प्रत्येक श्वास (हं) तथा निश्वास (सः) के साथ बिना किसी प्रयास के स्वाभाविक रूप से निरन्तर उच्चरित होता रहता है। इसीलिये इस महामन्त्र को 'अजपा' के नाम से जाना जाता है।"

परमात्म मन्त्र 'सोऽहम्'

जब प्रकृति रूप 'सः' पुरुष रूप 'हं' के साथ तादात्म्य का अनुभव करती है, तब वह 'सः हम्' 'सोहम्' (मैं वह पुरुष हूं) की अनुभूति करती है। यह 'सोऽहम्' भी एक महामन्त्र है, जिसे 'परमात्म महामंत्र' कहा जाता है। परमात्म महामन्त्र 'सोऽहम्' के प्राणात्मक पुरुंतत्त्व 'हकार' तथा प्रकृति तत्त्व 'सकार' का लोप कर देने पर केवल 'ओ+अम्' शेष रहता है। फिर 'एङः पदान्तादति' (पाणिनि सूत्र के नियम) से पूर्वरूप सन्धि कर देने पर केवल् 'ओम्' शेष रह जाता है। यह 'ओम्' पुरुष और प्रकृति से परे पूर्ण परमात्मन् है।"

शक्ति के सात भेद

परेश वाचक ओं और परा वाचक ह्रीं में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है । विश्वोतीर्ण और विश्व के तारक होने के कारण ओम् को 'तार' भी कहा जाता है और विश्व की

पिङ्गलेडा पथे गत्वा पीत्वाऽयं गगनामृतम् ।
निवृत्त्य जीवं संतृप्य पुनः कण्ठे प्रवर्त्तते ॥५०॥

अर्थ - (पिंङ्गलेड़ा पथे) पिंङ्गला नाड़ी एवं इडा नाड़ी के स्थान से (गत्वा) जाकर (अयम्) यह प्राण वायु (गगनामृतम्) प्रकाशयुक्त अमृत का (पीत्वा) पान करके (जीवं संतृप्य) जीव का तृप्त करके (पुनः कण्ठे प्रवर्त्तते) फिर से कंठ में प्रवेश कर जाता है ।

व्याख्या - यह प्राण अपने कर्मानुसार पिंङ्गला नाड़ी एवं इडा नाड़ी के स्थान से जाकर यह प्राण वायु, प्रकाशयुक्त अमृत का पान करके जीव का तृप्त करता हुआ फिर से कंठ में प्रवेश कर जाता है ।अर्थात् अपने स्थित में आ ठहरता है ।

प्राणापानवशादेव अधश्चोर्ध्वं प्रसर्पति ।
वामदक्षिणमार्गेण चंचलत्वान्न लक्ष्यते ॥५१॥

अर्थ - (प्राणापानवशात् एव) प्राण और अपान के वशीभूत होकर (अधश्चोर्ध्वम्) नीचे से ऊपर की तरफ़ (प्रसर्पति) विहरण करता रहता है ।(वामदक्षिणमार्गेण) बायें और दायें भाग में विचरण करता हुआ (चंचलत्वात्) अत्यधिक गतिमान होने के कारण (न लक्ष्यते) दिखाई नहीं देता है ।

व्याख्या - यह जो प्राण वायु है स्थित है यह शरीर में प्राण और अपान के वशीभूत होकर शरीर के ऊपरी भाग और नीचे भाग में विचरण करता रहता है तत्पश्चात् बायें और दायें भाग में विचरण करता हुआ चंचलता वशात्,अत्यधिक गतिमान होने के कारण दिखायी नहीं देता है ।क्युकी की शरीर के स्थान से दूसरे स्थान पर गति करने पर अस्थिरता वश देखाई देने में असमर्थ होता है ।

अपानेन पुनः कन्दात्प्रेरितः कालरूपिणा ।
निश्वासोच्छ्वास हृद्वाति जपन्हंसेत्यहर्निशम् ॥ ५२ ॥

अर्थ - (पुन: कालरूपिणा) फिर से कालरूपी शक्ति के माध्यम से (कन्दात्प्रेरित:) कंद से निकली हुई (अपानेन) अपान वायु (हृद्वाति) हृदय प्रदेश में वायु विचरण करती है (निश्वासोच्छ्वासः) श्वास और प्रश्वास के रूप में (अहर्निशम्) दिन रात (हंस इति) "ह" तथा "स" हंस का (जप) जाप करता है ।

व्याख्या - तदनन्तर पुनः प्राण वायु तक कंद से निकलने के बाद अपान वायु अपने स्थान से ऊपर उठने के बाद हृदय प्रदेश में अपान वायु विचरण करता है तथा श्वास और प्रश्वास के रूप में दिन रात "ह" तथा "स"हंस का जाप करता है ।सोहम का जाप प्राण वायु अपान वायु से संबंधित है ।

हंसश्च द्वादशे [पर्णे], जीवात्माहृदयाम्बुजे ।
अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ॥५३॥

अर्थ - (हंसश्च द्वादशेदलेः) हंस द्वादश दलों से युक्त है जो (जीवात्मा) जीव के (हृदयांबुजे) हृदय के मध्य में स्थित है ।(अपानः) अपान वायु (प्राणं कर्षति) प्राण का आकर्षण करता है (च) और (प्राणोऽपानम्) प्राण वायु अपान वायु का अपनी और कर्षण करती है ।

व्याख्या - हृदय प्रदेश में स्थित अनाहत चक्र १२ दलों से युक्त है और वह दल जीव के हृदय के मध्य भाग में स्थित है जिसमें प्राण वायु अपान को अपनी ओर ऊपर की तरफ़ खीचती है और अपान वायु प्राण वायु को नीचे की ओर अपनी तरफ़ खिचती है दोनों एक दूसरे को अपनी और कर्षण करती है ।हंस का जाप करते हुए ।

(7)

गगन मंडल का बासा सन्तो,
जहाँ देखौ अजब तमासा ।
गढ़ मेरो गगन सुरत मेरो चौक,
चेतन कँवर ढुलावे ।
इंगला पिंगला सुखमन नारी,
अनहद बैन बजावे ।। 1. ।।
अष्ट कमल दल पंखुरी राजे,
उलटा ध्यान लावे ।
पाँच पचीस एक घर लावे,
तब धुनि की सुध पावे ।। 2. ।।
त्रिकुटी घाट असनान जो करते,
रवि राशि सुखमन होई ।
ऐसा खेल करत साजन संग,
एक महल में दोई ।। 3. ।।
बिना बादल जहाँ बिजली चमके,
बिना सीप के मोती ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो,
निरखहु निर्मल जोती ।। 4. ।।

साखी :- जापर बसे निअक्षर, ताहि पवन को नाम ।
शब्द सुधा रस खान है, हम तुम ताही धाम ।।

शब्दावली, पृष्ठ 18-19.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

§24§

आरती साजहु दुलहिन,

आवहिं कंथ सबेर ।

निर्गुन मंगल गावहु,

अब जिन लावहु बेर ।

तन रूइया कर बातियाँ,

मन तिलको कर तेल ।

सुरत हाथ दियना धरो,

निरत चली करवेल ।

अठे पलंग जहाँ पंचरंग,

सेरे बिछावो झार ।

सुषुम्ना सेज संवारहु,

सुकृत गद्द वा धार ।

हँसि के प्रीतम आइया,

बिहँसि के लीन्हो पाय ।

मुख देखत सुख उपजे,

सुमिरत कर्म कराय ।

इँगला लियेकर झारी,

पिंगला पंख हाथ ।

सतगुरु शब्द सहायक,

पहुँच पिया के पास ।

हियरा गह भर भेटिया,

कुफत पलोरि पाय ।

मुख देखत सुख उपजे,

तन की तपन बुझाव ।

कहे कबीर धर्मदास सो,

जम जीतो मैदान ।

शब्दावली, दोहल ।। पृष्ठ 58-59

(30)

सत सुकृत खेले होरी,
अभय नगर स्थान ।।
इत सो आये ज्ञान लड़ले,
उत सो आई मन बौरी ।।
त्रिवेनी तट खेल रचो है,
खेलत हो हो होरी ।।
इत सो पाँच सखी उठ धाई,
कोई श्यामल कोई गोरी ।।
त्रिगुण पिचकारी हाथ लिये सब,
खेलत हो हो होरी ।।
इत सो क्षमा सखी उठि धाई,
शील सुमति दोऊ जोरी ।।
प्रेम पिचकारी रंग रोशन हित,
झगरत खेलत होरी ।।
ताल मृदंग झाँझ डंक बाजे,
अनहद शब्द करोरी ।।
सुषुम्न नारी राग अलापत,
गावत मंगल होरी ।।
मेरु दंड के छाजे गढ़ के,
खेलत हो हो होरी ।।
मूल कमल के रंग बढ़ो है,
बंक नाल निज ठोरी ।
सुरति नाल चढ़ बहिर आये,
खेलत जहाँ गई है हो हो होरी ।।
खेलत खेलत जहाँ गई है,
सत गुरु शब्द कियो शोरी ।।
साहब कबीर दया निधि सागर,
खेल हो हो होरी ।।
सुरति निरति द्वै मता बनाये ,
चलो अगम संग होरी ।।

शब्दावली, होरी 33, पृष्ठ 33-34

07:56 Vo)) 4G+ LTE1

§ 45 §

गुरु के बने है अटारिया,
चल हमन देखे ल जाबो ।
चढ़त अटारिया साहेब सुरत सम्हारिया,
गहिले नाम के डोरिया हो ।।
चन्दा सूरज दुठन तम्बू तने है,
बीच म गमकते है डगरियाँ ।
आठ हवेली नौ दरवाजा हावे,
जिहाँ कुन्त के परिया हो ।
सुरति काढ़ि के देख घर भीतर,
उपर झुलकत है लहरिया हो ।
पाँच पचीस तीस घर बनिया,
जामे लगे है चौ फेरिया हो ।
मन मुन्शी कोतवाल बड़े है,
जीव चहुँ दिसी लगे बजरिया हो ।
साहेब कबीर गुरु के मंगल गावे,
गुरु के चरण चित धरिया हो ।

{62}

होना फकीर बजुर देव छतिया।

नखरा लगाय म राम नई मिल ही,

खोजो बंदे तुमन अपन शरीर ।

धन दौलत अउ माल खजाना,

छोड़ गये सुल्तान फकीर ।

गगन के मंदिर म जोत जलत है,

गंगा जमुना सरसती के तीर ।

धरमदास के आमिन बिनती,

साँच बचन कह गये है कबीर

07:58

§63§

बंगला अजब बनाया हो अवलिया बाबा ।

ओ बंगला के नव दरवाजा,
बीच म पवन के खम्भा ।

आवत जात कोनो नई देखे,
लागे बड़ा अचम्भा ।

पाँच तत्व के ईंट बने है,
तीन गुनन के गारा ।

रोम रोम के सज्जा बनाये,
बुझ न वाला न्यारा हो ।

तीन सौ साठ चाँद लगे है,
चौसठ लगे है खम्भा ।

नौ नारी बहत्तर कोठा,
उपर चमड़ा छाया हो ।

वा मंदिर में जाय बिराजे,
वाही मन के है राजा ।

सुखमति के सेज बिछे है,
आमिन बजावे बाजा हो ।

कहत कबीर सुनो धर्मदा,
सो सन्त को लिए उबारा ।

सो हंसा चढ़े सतलोक म,
बहुरी न आवे संसारा हो

2. सुन्न महल में होत कुतुहल, करहिं राग अनुराग ।
अपने पिया के दरसन पाऊं, पूरन प्रेम सोहाग ।। [1]

निराकार रूप में :-

इहै तमासा देखहु रे भाई ।
जहवाँ शून्य तहाँ चलि जाई ।।
शून्य हि छाड़ि शून्य हि आयऊ ।
हाथ छोड़ि के हाथा भयऊ ।। [2]

(5) अजपा जाप

योग में किया जाने वाले जाप करने की क्रिया को अजपा जाप कहा गया है । इस जाप में माला आदि की सहायता न लेकर, साधक को अपने शरीर की सुषुप्त आत्मा को जागृत करना पड़ता है । आत्मा की इस जागृत अवस्था में साधक का अंतःकरण प्रतिक्षण प्रत्येक श्वास में नाम का जाप करते रहता है ।

इस जाप को "सहज जाप" भी कहा जाता है । साधक को बाह्य साधन जैसे उंगलियों पर नाम का गिनना, अस्पष्ट नामों का उच्चारण आदि करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती । बौद्ध सिद्ध ने अपनी साधना पद्धति में अपने श्वासों को निरुद्ध करके चौंसठ प्रज्ज्वलित करते थे । उनमें एवं ओंकार को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की साधना-क्रिया करते थे, जिसमें यह शब्द प्रत्येक श्वास में स्वतः निकलते रहें । इसे "अजु जाप" कहा करते थे । बाद में नाथ पंथियों ने इसे ही "अजपा जाप" का नाम दिया और श्वास निरोध के अंतर मन को शून्य में केन्द्रित करते हुए उनके स्थान पर "सोहं" का ध्यान किया । और निर्दिष्ट किया गया कि यही "सोहं" क्रमशः शब्द ज्योति में रूपायित होकर शून्य के अंधकार को दूर कर देता है और परम तत्व के रूप में प्रकट होता है ।

---

1. शब्दावली, धामनि-2, पृ० 150.
2. गुरु ओजक, रमैनी, 19, पृ० 15.

बाह्याडिम्बरों से मनुष्य मुक्ति के मार्ग से भटक जाता है, इसी लिए उसे एकाग्रचित होकर ऐसे जाप करना चाहिए जिससे उसका अजपा जाप सुरति सार शब्द मिल जाय । जुड़ जाना या युगबद्ध हो जाना को ही अजपा जाप कहते है ।

शब्द की सुई सुरति की डोरा ।
ज्ञान की टोमन सिर जन जोरा ।। [1]

शब्द की सुई सुरति की डोरा और ज्ञान दोनों पार को जोड़ने वाला है । सिरजन हार ने इस ज्ञान गुदड़ी का निर्माण किया है । इसे "अजपा जाप" से भी नाप रखा जा सकता है । इसमें मैल नहीं लगता । संतों ने अजपा के प्रति अपनी श्रद्धा अगाध रूप से प्रकट की है---

"अजपा जाप जपै मुनिनामा ।"[2]

यह सहज जाप अन्तर्जाप है । इसमें माला फेरने की कोई आवश्यकता नहीं है । मन को फेरना भी है---

1• माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर ।
कर का मनका डारि दे, मन मन का फेर ।।

2• मन माला तहं फेरिये, जहाँ दिवस न परसे राति ।
तहां गुरु बाना दिया सहजे जपिये तात ।[3]

चौका गीतों में भी नाम-स्मरण के माध्यम से अजपा जाप की ओर इंगित किया गया है । नाम-स्मरण भक्ति और योग का प्रारंभिक आधार है । यह नाम स्वास-स्वास पर लेते रहे---

श्वास श्वास पर नाम है, वृथा श्वास मत खोय ।
न जाने यह श्वास को, आवाज न होय न होय ।
श्वासा की कर सुमरनी, अजपा को कर जाप ।
परम तत्व को ध्यान धर, होई आपै आप ।[4]

1• संध्यापाठ, सरोफ, पृ० 41•

2• श्री गुरु ग्रंथ साहब, पृ० 840•

3• दादू दयाल की बाणी, भाग-1 गुरुदेव को अंग, पृ० 66•

4• संध्यापाठ, पृ० 7•

प्रिय के अलौकिक रूप का वर्णन कर पाना असंभव है। उसका देश भी अजर-अमर है। फूलों का रोज सत पुरुष का सिंहासन है जहाँ करोड़ों सूर्य का प्रकाश प्रकाशित है, वहाँ का सिंहासन, वहाँ का छत्र श्वेत है जो परम पद देने वाले हैं उसे प्राप्त करने के लिए अजपा जाप की आवश्यकता है---

करो अजपा के जाप प्रेम उर लाइये।
मिलो सत पीव तो मंगल गाइये ।।[1]

युगों तक समाधि लगाने से सत्य पुरुष रूप का दर्शन असम्भव है। कपट को छोड़कर सत व्यौहार पूर्वक गुरु की शरण जाने से, काम से बच जाने से और अजपा ध्यान लगाने से वह सबसे न्यारा पुरुष का दर्शन हो सकता है---

कही हमारो मानो भाई या मति कोरि भ्रम सो न्यारा।
जीवत बसा लोक समाने, जे यह शब्द बिचारा ।।
अजपा जाप ध्यान गगन में दरसे है सब ही सो न्यारा।
कहे कबीर सुनो हो संतो, मेरो निज कर तारा ।।[2]

माया का त्याग कर देने से और इन्द्रासन के सुख पा जाने से भी सार वस्तु की प्राप्ति नहीं हो पायी। बड़े-बड़े मुनि-महात्मा, गंधर्व-किन्नर ने माया का त्याग कर परमात्मा का ध्यान दिया। पर भी उस परम पुरुष को नहीं प्राप्त कर सके। अजपा जाप से व्यक्ति को काल का भय नहीं रहता।[3] यह अजपा और जाप दो अक्षर का है जिसमें काल, भ्रम सभी दूर हो जाते हैं---

अजपा जापो दोय अक्षर,
काल गर्भ सब उबरे।[4]

अजपा जाप सहज योग का ही रूप है जिसमें व्यक्ति चित को एकाग्र कर परमानंद में लीन हो जाता है। उसमें किसी प्रकार से जटिल यौगिक क्रियाओं का भेद नहीं, वह निर्बन्ध है। बन्धन उसे स्वीकार्य नहीं। यह स्वास-स्वास पर जपने की विधि है---

---

1. धनी धर्मदास और आमिन माता की शब्दावली, पृष्ठ 20.
2. शब्दावली, शब्द-2, पृष्ठ 180.
3. शब्दावली, शब्द-40, पृष्ठ 224.
4. वही,

गुरु गोरखनाथ ने इस अनहद नाद के सुनाई पड़ने की स्थिति का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है। जिसका समर्थन कबीर साहब की रचनाओं में भी होता है। योगियों का कथन है कि ब्रह्मरन्ध्र के पास एक सहस्र

---

1. अनाहतनाद-डॉ0 जयदेव सिंह (श्रीपरे और स्मृति ग्रंथ माला) पृ० 3।

दल कमल है वहीं पर चन्द्रमा है जिससे निरंतर अमृत की वर्षा होती है। वह अमृत नीचे की ओर बहता है और मूलाधार के निकट स्थित सूर्य तक आते-आते सूख जाता है। अभ्यास करके इसे जल पर ऊपर रोक लेता है और सूर्य को चन्द्र से मिलाने का अभ्यास कराया जाता है। गोरखनाथ ने इसका वर्णन किया है।[1] कबीर साहब कहते हैं "हे अवधूत नाद में बिन्द के स्थिर होने ही गगन में अनहत का शब्द उठता है।[2] कबीर साहब के अनहद नाद कि यह विशेषता है कि यह उनके भक्त हृदय की तृप्ति के लिए जगत गुरु की किंकरी का शब्द तथा हरि की कथा के भी रूप ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार वह सम्भवत: शब्द ब्रह्म की अनुभूति में निपुण बनकर अंततोगत्वा उस परब्रह्म को भी प्राप्त कर लेता है।[3]

चौका गीतों में अनाहद शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में हुआ है। जो सिद्ध और नाथ योगियों के बाद संत परम्परा को गति देता है। इसमें प्रयुक्त अनहद शब्द कबीर साहित्य के ही समान है। यह शब्द गगन मण्डल से उठता है। यह काया ही उनका गढ़ है सुरति ही चौका है, इंगला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी जो शरीर में है वहीं से अनहद नाद की ध्वनि निकलती है। यह ध्वनि शरीर को एकाग्रचित, उल्टा ध्यान लगाने से तथा पाँच तत्व और उनकी पच्चीस प्रकृति को एकमेव करने पर निकलती है।

गगन मंडल का वासा संतो, जहाँ देखो अजब तमासा।
गढ़ मेरो गगन सुरत मेरो चौका, बैठत चँवर डरावे।
इंगला पिंगला सुषुम्न नारी, अनहद बैन बजावे।
अष्ट कमल दल पंछी, विराजे, उल्टा ध्यान लगावे।

---

1. अमावस के घरि झिलमिल चंदा, पूनम के घरि सूर।
   नाद के घरि व्यंद गरजे, बाजत अनहद तूर।।
2. अवधू नादे व्यंद गगन गाजे, शब्द अनहद बोले।
   - कबीर ग्रंथावली पद, 196.
3. ससि हर सूर मिलावा। तब अनहद बेन बजावा।।
   जब अनहद बाजा बाजे। तब साईं संग बिराजे।।

"होरी" के प्रसंग में कहा गया है कि होरी खेलने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं इसका क्षेत्र शरीर है, और खेलने वाला मन है। सुरति लगाने से ज्ञान की डफली बजती है जहां से अनहद नाद का घोष होता है।[1] जहां ज्ञान की गेंद तथा सुरति को डंडा बनाकर खेला जाता है। त्रिगुण पिचकारी है ---

त्रिगुण पिचकारी हाथ लिये सब, खेलन हो हो होरी।
इत सों क्षमा सखी उठि धाईं, शील सुमति दो जोरी।
प्रेम पिचकारी रंग रोसन लिय, झगरत खेलत होरी।
ताल मृदंग झांझ डफ बाजे, अनहद शब्द करो री।
सुषुम्न नारी राग अलापत, गावत मंगल होरी।
सुरति निरति दै मता बनायो, चलो अगम संग होरी।
मेरुदंड के छाजे चाद के, खेलत हो हो होरी।
मूल कमल से रंग बढ़ो है, बंकनाल निजठौरी।[2]

इस अनहद ध्वनि को कोई सुजान ही सुन सकता है। यह ध्वनि शब्दों की झनकार से उत्पन्न होती है जो इंगला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी के संगम स्थल पर सुरति का स्थायी करन करने से सुनाई देती है।[3]

होली गीतों में प्रयुक्त अनहद शब्द का विशेष महत्व है। एक ओर जहां पूर्व परम्परा को आगे विकसित करते हुए जान पड़ता है वहीं दूसरी ओर कबीर पंथी विचार धाराओं को प्रकाशित करता है। इसमें प्रयुक्त शब्दों की रूप का अभिव्यक्ति के कारण पदों की शोभा बढ़ती है। कहीं सुरति को सुहागिन कहा गया है, कहीं पिया संग होरी खेलने के बहाने सुरति को ध्यानस्त किया जाता है तो कहीं ज्ञान, ध्यान क्षमा, संतोष, विवेक और वैराग्य को अनाहत ध्वनि के उच्चारण में सहायक माना गया है

---

1. शब्दावली, होरी 31, पृ० 131.
2. वही, होरी 33, पृ० 133.
3. वही, विज्ञोरी, पृ० 735.

कबीर काव्य की तरह चौका गीतों में भी ध्यान की उन्मुनि ध्वनित करती है। सुषुम्ना नाड़ी के छः चक्रों में अंतिम चक्र आज्ञा चक्र है। यहाँ पहुँच कर साधक अमृत रस का पान करता है तथा कुंडलिनी जागृत कर ब्रम्हरन्ध्र में पहुँचाता है। यह ब्रम्हरन्ध्र का बिन्दु (0) रूप है, जिसे गगन कहा जाता है। यहीं प्राण शक्ति संचित की जाती है। इसी बिन्दु में आत्मा शरीर से स्वतंत्र होकर सोहं का अनुभव करती है। यहाँ आत्मा काल जाल से मुक्त हो जाती है। उन्मुनि अवस्था मूल साधना मानी गयी है। जिसमें मन और पवन दोनों को बाँधने की बात कही गई है---

उनमुनि मूल साधि, मन पवना दोउ बाँधि।
ताहि साह अधर दर से, पीयूष द्वीप देहरा।
त्रिकुटी बंधा बोरी जहाँ लगी शब्द की डोरी।[1]

सुषुम्ना नाड़ी के अंतिम अवस्था आज्ञा चक्र पर साधक को अनहद नाद सुनाई पड़ती है तथा सुरति-निरति के उल्टी होने पर शब्द की डोरी के सहारे उन्मुनि अवस्था की प्राप्ति होती है यह छः दल कमल का स्थान है

संध्या आरती करो बिचारी।
काल दूर जम रहो झखमारी।
खुल गये सुषमन कूँची तारा।
अनहद शब्द उठे झनकारा।
सुरत निरत दोउ उलट समावे।
मकर तार तिह डोर लगावे।
उन्मुन शब्द अगम घर होई।
अगाह देवल में रहे समाई।[2]

साधक इंगला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी के पार कर उन्मुनि की अवस्था तक पहुँचता है। बंक नाल से अमृत रस की वर्षा होती है। जिसे कोई-कोई योगी ही चख पाता है---

---

1. शब्दावली, जै जै वन्ती 5, पृष्ठ 705.
2. शब्दावली, आरती 15, पृष्ठ 761.

इंगला पिंगला सुषम्ना नारी, उन्मुन के घर लाना।
बंकनाल से अमी रस झरिया, चाखे संत सयाना ॥[1]

इंगला पिंगला सुष्मना नारी, उन्मुन के घर लाना ।
बंकनाल ते अमी रस झरिया, चाखि संत सयाना ।। [1]

इससे योग साधना की सम्पूर्ण प्रक्रिया स्पष्ट परिलक्षित होती है । शिव संहिता एवं घेरंड संहिता के समान यहाँ योग के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण नहीं मिलता फिर भी उन्हीं का सामान्य अनुकरण हुआ है ।

सोजन मतवाला । जिन पिया पूर्ष का प्याला ।।
मूल कँवल पर बंद लगावे । उल्टा पवन चढावे ।।
अमृत दिसे मगन होय बैठे । बिन रसना गुण गावे ।।
बिना धरती के मंदिर दीसै । बिन सखर जहाँ पानी ।।
षट दल चक्र एक कँवल विराजे । जहाँ पुरुष अलबेला ।।
चंद सूर जो घर को लावे । सुषुमन सुर्त समावे ।।
कहे कबीर माया की बातें । रात गुरु मिले लखावे ।। [2]

स्पष्ट है कि भारतीय योग साधना में जो नाड़ियों की स्थिति है एवं योग सम्बन्धी धारणाएं है उनका पालन चौका गीतों में हुआ है । फिर भी कबीर पंथी साहित्य से प्रभावित इन गीतों की अलग-अलग पहचान है । जैसे :- नि:अक्षर, पुरुष का नाम (परमतत्व) पौन द्वीप (शरीर) एवं मझदार है, जो साधक का साध्य एवं साधना स्थल है ।

उन्मुनि अवस्था प्राप्त होने के बाद साधक के मन में स्थिरता आती है । द्वैत भाव नहीं रह पाता । वह ब्रम्ह के सर्वव्यापक तथा विभिन्न रूप धारक मानता है । अहंभाव के नाश होने पर ब्रम्ह ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश होने लगता है । सत्य की स्थिरता होती है । प्रपंच इसमें लेशमात्र नहीं रहता । निर्मल ज्ञान एवं ऐश्वर्य की चमक इसमें होती है । कल्याण का द्वार खुल जाता है । शून्य अवस्था में पहुँच जाने पर साकार और निराकार रूपों का एकीकरण हो जाता है और आत्मा की ज्योति का दर्शन होने लगता है ।

---

1. शब्दावली, असरके शब्द 246, पृष्ठ 412.
2. वही, शब्द 269, पृष्ठ 433.

योग साधना में अमृत :-

योग साधना की अंतिम परिणति अमृत रस
जिसे साधक आनंदित हो पान करता है । इसकी विस्तृत
जा चुकी है । इस अमृत को प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन
फेरनी पड़ती है ---

रवि राशि बांध मन धागा करे ।
गह गह तार सोहंगम धरे ।
उलट नाल चढ़ गिरवर तरवरे ।
जब टक सार गगन गढ़ परे ।
अर्ध उर्ध बिच [illegible] रंग करिए ।
कहे कबीर सुनो भाई साधु ।
ऐसा ध्यान कोई बिरला धरे ।।

चौका-आरती में दल प्रसाद के रूप में :-

चौका आरती की सामग्री में अष्ट मेवा [illegible]
पर रखी जाती है उन्हें "दल प्रसाद" अथवा "अमी दल" [illegible]
चौका-विधि योग का ही प्रतिरूप है । योग साधकों के
कमल के पास मान सरोवर में अमृत होता है । सम्भवतः
दल प्रसाद अथवा "अमी दल" कहा जाता हो । जिस प्र[illegible]
अंतिम परिणति अमृत रस का पान करना होता है उसी [illegible]
की समाप्ति पर अमीदल दीवान द्वारा वितरित किया [illegible]
भक्त जन ग्रहण करते हैं ।

§18§ पंजी

11:04

उस भगवान (पूर्णब्रह्म) को पाने का मन्त्र सत्यनाम (स्वासों द्वारा किया जाने वाला अजपा जाप) व फिर सारनाम व सारशब्द की प्राप्ति पूर्णब्रह्म की सच्ची नाम साधना व उसका परिणाम समझो। देखें - कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 51, 52, 53, 55, 56, 57 इनमें स्पष्ट लिखा है कि कबीर साहेब ने धर्मदास जी को सत्यनाम (ओ3म-सोहं) दिया है। कहा - "ऊँ-सोहं भजो नर लोई" फिर कहा है - "सोहं शब्द अजपा जाप, साहेब कबीर सो आपै आप" ।

(प्रमाण के लिए सतगुरु की वाणी) (पृष्ठ नं. 51)

(कबीर पंथी शब्दावली से सहाभार)

चितगुण चित बिलास दास सो अंतर नाहीं। आदि अंत में मध्य गोसाई अगह गहन में नाहीं। गहनीगहिए सो कैसा, सोहं शब्दसमान आदिब्रह्म जैसेका तैसा।। कहें कबीर हम खेलैं सहज सुभावा, अकह अडोल अबोल सोहं समिता। तामो आन बसा एकरमिता।। वा रमता को लखे जो कोईं। ता को आवागमन न होई।।

ऊँ-सोऽहं, सोहं सोई ऊँ-सोऽहं भजो नर लोई।।
ऊँ कीलक सोहं वाला। ऊँ-सोहं बोले रिसाला।।
किलक, कमत, कंमोद, कंकवत, ये चारों गुरु पीर।।
धर्मदास को सत शब्द सुनायो, सतगुरु सत्य कबीर।।
बाजा नाद भया पर तीत। सतगुरु आये भौजल जीत।।
बाजबाज साहब का राज मारा कूटा दगाबाज।।
हाजिरको हजूर गाफिलको दूर, हिंदूका गुरु मुसलमानका पीर।।
'सात द्वीपनौखंड में, सोहं सत्यकबीर"।।

(पृष्ठ नं. 55)

पल जब पीव से लागा। धोखा तब दिलों का भागा।।
चेतावनी चित विलास। जबलग रहे पिंजर श्वास।।
सोहंशब्द अजपाजाप साहब कबीरसो आपहिं आप।।
जागृत रूपी रहत है, सतमत गहिर गंभीर।
अजरनाम बिनसे नहीं , सोऽहं सत्य कबीर।।

11:04
Vo)) 4G+ LTE1

आरती चैंका

प्रथमहिं मंदिर चैक पुराये। उत्तम आसन श्वेत बिछाये।। धन्य संत जिन आरति साजा। दुख दारिद्र वाके घरसे भागा।। कहें कबीर सुनो धर्मदासा। ओहं-सोहं शब्द प्रगासा।।

आरती चैकें (प्रथम मंदिर चैं पुराये ---) में लिखा है "कहै कबीर सुनों धर्मदासा। ऊँ सोहं शब्द प्रगासा।।" यह सतनाम (ऊँ-सोहं) है।

(शब्द: "अवधू अविगत से चल आए")

अवधु अविगत से चल आया, कोई मेरा भेद मर्म नहीं पाया।।टेक।।
ना मेरा जन्म न गर्भ बसेरा, बालक ह्वै दिखलाया।
काशी नगर जल कमल पर डेरा, तहाँ जुलाहे ने पाया।।
माता-पिता मेरे कछु नहीं, ना मेरे घर दासी।
जुलहा को सुत आन कहाया, जगत करे मेरी है हांसी।।
पांच तत्व का धड़ नहीं मेरा, जानूं ज्ञान अपारा।
सत्य स्वरूपी नाम साहिब का, सो है नाम हमारा।।
अधर दीप (सतलोक) गगन गुफा में, तहां निज वस्तु सारा।
ज्योति स्वरूपी अलख निरंजन (ब्रह्म) भी, धरता ध्यान हमारा।।
हाड चाम लोहू नहीं मोरे, जाने सत्यनाम उपासी।
तारन तरन अभै पद दाता, मैं हूं कबीर अविनासी।।

(शब्द: "होत अनंद अनंद भजन में")

होत अनंद अनंद भजनमें, बरषत शब्द अमीकी बादर, भींजत हैं कोई संत।।
अग्रबास जहँ तत्त्वकी नदियां, मानो अठारा गंग।
कर अस्नान मगन ह्वै बैठे, चढत शब्दके रंग।।
पियत सुधारस लेत नामरस, चुवत अग्रके बुंद।
रोम रोम सब अमृत भीजे, पारस परसत अंग।।
श्वासा सार रचे मोरे साहब, जहां न माया मोहं।
कहें कबीर सुनो भाई साधू, जपो ओ3म-सोहं।।

(शब्द)

तीन लोक जम जाल पसारा। नेम धर्म षटकर्म अचारा।।
आचारे सब दुनी भुलानी। सार शब्द कोउ विरले जानी।।1।।
सत्तपुरुषको जानै कोई। तीन लोक जाते पुनि होई।।
करम भरमतजिशब्दसमावे। इस्थिरज्ञानअमरपदपावे।।2।।
सत्यशब्द को करे विचारा। सो छूटे जमजाल अपारा।।
कहैकबीरजिन तत्त विचारा। सोहंशब्द है अगम अपारा।।3।।
नाम हमारा आदिका, सुनि मत जाहु सरख।
जो चाहे निज मुक्तिको, लीजो शब्दहिं परख।।4।।

उपरोक्त शब्द में कहा है (तीन लोक यम जाल पसारा ---। कोई शब्द सार निःअक्षर सोई में) सत्यनाम का अभ्यास भली प्रकार हो जाने पर पूरा गुरु आपको सार शब्द देवेगा। इस सार शब्द को प्राप्त करने योग्य बहुत कम भक्तजन होते हैं। प्रमाण है कि साहेब कबीर के चैसठ लाख शिष्यों में से केवल धर्मदास साहेब ही सारशब्द के अधिकारी हुए थे अन्य नहीं। जिस समय साहेब कबीर ने धर्मदास जी को सारशब्द प्राप्त कराया उस समय कहा था "धर्मदास तोहे लाख दुहाई, सार शब्द कहीं बाहर न जाई"।सार शब्द पूरा (पूर्ण) गुरुदेवेगा।

(शब्द)

नाम अमल में रहे मतवाला। प्रेम अमीका पीवे प्याला।।

फिर (नाम अमल में रहै मतवाला -----) इसमें कहा है कि पूर्ण गुरु (कड़िहार) जो जीव को काल के लोक से निकाल कर सतलोक (सत्यनाम व सारनाम-सारशब्द के आधार) ले जाता है वह कड़िहार (काड़ने/निकालने वाला) कहलाता है। यदि सत्यनाम (ॐ-सोहं) नहीं देता तथा फिर सारनाम नहीं देता वह काल का स्वरूप गुरु (कड़िहार) है अर्थात् काल साधना करवा कर नरक भिजवा देगा, वह काल का ऐजेंट है। नाम देने का अधिकारी वही है जिसको गुरु जी ने आदेश दे रखा है तथा सत्यनाम व सारनाम साधना बताता है।

(शब्द)

तथा सत्यनाम व सारनाम साधना बताता है।

(शब्द)

सतगुरु सो सतनाम सुनावे। और गुरु कोइ काम न आवे।।
तीरथ सोई जो मोछै पापा। मित्र सोई जो हरै संतापा।।1।।
जोगी सो जो काया सोधे। बुद्धि सोई जो नाहि विरोधे।।
पण्डितसोईजोआगमजानै।भक्तसोईजोभयनहिंआनै।।2।।
दातै जो औगुन परहरई। ज्ञानी सोइ जीवता मरई।।
मुक्तासोईसतनामअराधे।श्रोतासोईजोसुरतिहिंसाधै।।3।।
सेवक सोई गहै विश्वासा। निसिदिन राखै संतन आसा।।
सतगुरुकालोपैनहि बाचा। कहैकबीरसोसेवकसांचा।।4।।

‘‘सतगुरु सो सतनाम सुनावै‘‘ इसमें कहा है कि वही सतगुरु है जो सत्यनाम देता है अन्य नाम देने वाला गुरु कोई काम नहीं आवेगा। उल्ट काल के मुख में ले जावेगा। वह शिष्य पार होएगा जो गुरु वचन को मान कर गुरु जी के अनुसार चलेगा।

(कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 353)

दुनिया अजब दिवानी, मोरी कही एक न मानी।।टेक।।

‘‘दुनियां अजब दिवानी ------‘‘ में कहा है कि भक्तजनों ने मेरे द्वारा बताई गई भक्ति की विधि नहीं मानी। गुरु रूपी प्रत्यक्ष परमात्मा को छोड़कर तीर्थ यात्र, पत्थर पूजा, पित्र पूजा आदि पूजन करते हैं। श्री मदभगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, 20 से 23 में स्पष्ट किया है कि तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की उपासना करने वाले मूर्ख हैं वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच दुष्कर्म करने वाले हैं वे मेरी (गीता ज्ञान दाता ब्रह्म की) पूजा भी नहीं करते। फिर गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में ब्रह्म साधना को अनुत्तम (अश्रेष्ठ) कहा है क्योंकि पूर्ण मोक्ष नहीं होता। इसलिए ऋषि-मुनि जन ब्रह्म साधना करके भी काल जाल में जन्म-मृत्यु में ही रह जाते है। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए उस पूर्ण परमात्मा की शरण ग्रहण करो। काल के दबाव में आकर सच्चाई को तो झूठ मानते हैं और झूठ को सच। सच्चाई बतावें तो मारने दौड़ते हैं। कबीर परमेश्वर जी स्वयं परमात्मा आए थे।

Media | Devices

(कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 271 से 275 तक)

स्वासा सुमिरण होत है, ताहि न लागै बार।
पल पल बन्दगी साधना, देखो दृष्टि पसार।।173।।
सत्य नामको खोजिले, जाते अग्नि बुझाय।
बिना सतनाम बांचे नहीं, धरमराय धरि खाय।।184।।
आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस।
जिन जाना निज नामको, अमर भयो स्यों बंस।।205।।
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।
कहै कबीर निज नाम बिन, बूडि मुआ संसार।।206।।
आदि नामको खोजहू, जो है मुक्ति को मूल।
ये जियरा जप लीजियो, भर्म मता मत भूल।।207।।
कहै कबीर निज नाम बिन, मिथ्या जन्म गवांय।
निर्भय मुक्ति निःअक्षरा, गुरु विन कबहुँ न पाय।।208।।
सबको नाम सुनावहू, जो आवे तव पास।
शब्द हमारो सत्य है, दृढ राखो विश्वास।।220।।
होय विवेकी शब्दका, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचिहैं, मानहु कहा हमार।।221।।
आदि नाम पारस (सारनाम) है, मन है मैला लोह।
परसतही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।222।।
सुरति समावे नामसे, जगसे रहै उदास।
कहै कबीर गुरु चरणमें, दृढ राखै विश्वास।।223।।
ज्ञान दीप प्रकाश करि, भीतर भवन जराय।
बैठे सुमरे पुरुषको, सहज समाधि लगाय।।229।।
अछय बृक्षकी डोर गहि, सो सतनाम समाय।
सत्य शब्द (सारशब्द) प्रमाण है,सत्यलोक महं जाय।।230।।
कोइ न यम सो बाचिया, नाम बिना धरिखाय।
जे जन बिरही नामके, ताको देखि डराय।।232।।
कर्म करै देही धरै, औ फिरि फिरि पछताय।
बिना नाम बांचे नहीं, जिव यमरा लै जाय।।233।।

11:07

ऊँ और सोहं का इकट्ठा जाप 'सत्यनाम' कहलाता है। यह स्वांसों द्वारा जपा जाता है। इसे 'अजपा जाप' भी कहते हैं। इसी का प्रमाण कबीर साहेब की वाणी में है जिसमें धर्मदास को नाम दिया है। कबीर पंथी शब्दावली में पृष्ठ नं. 51 पर वाणी में लिखा है "ओ3म-सोहं भजो नर लोई", यही सत्यनाम है।

फिर कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 52-53 पर लिखा है।

श्रोता वक्ता की अधिक महिमा, विचार कुण्ड नहाईए। सारशब्द निबेर लीजे, बहुरि न भवजल आईए।।

सर्वसाधु संत समाज मध्ये, भक्ति मुक्ति दृढाईए। सुमिरण कर सतलोक पहुँचे, बहुरि न भवजल आईए।।
सोहं शब्द अजपा जाप, साहेब कबीर सो आपही आप।
सोहं शब्द से कर प्रीति, अनभय अखण्ड घर को जीत।।
तन की खबर कर भाई, जा में नाम रूसनाई।।

फिर "ज्ञानगुदरी" कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 55 पर।

इसमें लिखा है:-- मन को मारने का साधन सत्यनाम (ऊँ-सोहं) है केवल ऊँ मन्त्रा नहीं। सत्यनाम स्वांसों से सुमरण होता है। ऊँ शब्द का जाप काल लोक पार करने के बाद अपने आप बन्द हो जाता है तथा सोहं का प्रारंभ रहता है। सार शब्द सत्यलोक में ले जाता है। परब्रह्म के लोक से पार होते ही भंवर गुफा है वहां तक सोहं मन्त्र ले जाता है।

निहचे धोति पवन जनेऊ, अजपा जाप जपे सो जाने भेऊ।।
इंगला, पिंगला के घर जाई, सुषमना नीर रहा ठहराई।।
ऊँ-सोहं तत्त्व विचारा, बंकनाल में किया संभारा।।
मनको मार गगन चढिजाई, मानसरोवर पैठ नहाई।।

इसी का प्रमाण महाराज गरीबदास साहेब जी (छुड़ानी, हरियाणा) ने अपनी वाणी में दिया है। सतग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 425 पर ।

राम नाम जप कर थीर होई। ऊँ-सोहं मन्त्र दोई।।
कहा पढो भागवत गीता, मनजीता जिन त्रिभुवन जीता।
मनजीते बिन झूठा ज्ञाना, चार वेद और अठारा पुराना।।

बिन्दुयोग

बिन्दु शोधन और तत्पश्चात् विन्दुजय इस कौशल के अन्तर्गत आते है। आदि विन्दु मनुष्य शरीर में शुक्र के रूप में वर्तमान है। यह शुक्ररूप बिन्दु अमरत्व और मरण दोनों का हेतु है। 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बन्दु धारणात्" इसी लिए कहा गया है। दुरूपदिष्ट मार्ग द्वारा एवं मुद्रा विशेष के सम्यक अभ्यास से शुक्र शोधन होता है। शोधन की प्रथम अवस्था में यह शुक्र, दूसरी में ओज, तीसरी में बिन्दु, चाथीमें मर्ग, पांचवी में ब्रह् तेज, छठी में ब्रह्म और सातवी में अनामी कहलाता है। इस साधना से बिन्दु पूर्णतया स्थिर हो जाता है।[1]

कार्य भेद से मनुष्य देह में विन्दु दो प्रकार से विद्यमान रहता है। शिव बिन्दु और रजो बिन्दु। रजोबिन्दु नाभि और शिवबिन्दु मस्तक के मध्य भाग में रहता है। रजोबिन्दु का उर्ध्व निपात करके उसे शिवबिन्दु में मिलाकर शिवशक्ति का एकीकरण करके पूर्ण बिन्दुजय और बिन्दुयोग की सिद्धि होती है और जरा मृत्यु का निवारण हो जाता है।[2] कहना न होगा कि नाथ मतापदिष्ट साधनाप्रणाली में बिन्दुरोग का महत्वपूर्ण स्थान है।[3]

वायुयोग

यह भी कायसिद्धि का हेतु माना गया है। वायुशक्ति को प्राणशक्ति भी कहा गया है, परन्तु अपने साधारण रूप में जब वायु सामान्य जीव देह में

---

[1] बिन्दुयोग, महात्मा ओम्, पृ० 36

[2] वही, पृ० 38

[3] व्यन्द ही जोग व्यन्द ही भोग। व्यन्द ही हरे चौसठ रोग।
या बिंद का कोई जाणे भेव। से आपै करता आपै देव।
गो०बा० 148, पृ० 51।

अन्न — खावे जो अरु बाजरा, चावल, चना, जुवार।
मूँग, मोठ चोला सु पचे, अमृत का निर्धार ॥१॥
गेहूँ पचता देर में, करता अपच विकार।
उड़द इसी सम जानिये, मक्कई धान सुधार ॥२॥
साधारण आटा रखे, लेवे करड़ा गूँध।
सम रोटी सेके भली, खाये चित नहीं रूँध ॥३॥

अन्न के विषय में मेरा अनुभव है कि जो, बाजरा, मूँग, मोठ, चोंला मक्कई, चावल, जुवार सरलता से पचने वाले हैं। गेहूँ और उड़द गरिष्ठ हैं, कठिनाई से पचते हैं, अपच करते हैं। आटा साधारण अर्थात् न ज्यादा महीन हो और न मोटा हो, इसे करड़ा गूँध कर साधारण रोटी बनाकर अच्छी तरह सेंक कर और घृत युक्त करके खाना चाहिये। ऐसा करने से चित प्रसन्न और शरीर निरोग रहता है। देश काल के अनुसार अन्न खाना चाहिये। जिस प्रान्त में जो अन्न अधिकता से उत्पन्न होता है उसे ही खाना अच्छा होता है।

बाजरा गर्म अन्न है चना दस्त साफ लाने वाला तथा मोठ और चोंला वायु को साफ रखने वाले हैं।

फल और मसाले

मिर्च, मसाले, मिठाई, तेल और अमचूर।
आचारादिक त्यागे से रोग रहत है दूर ॥१॥
आम गरम फल है महा, खरबूजा दुःख रूप।
इनको कभी न खाइये, निर्णय मेरा अनूप ॥२॥
गाजर, मूली, मतीरा, नारंगी, अंगूर।
दाड़ू, सेवरु जामफल, करते हैं दुःख दूर ॥३॥

मिर्च आदि नाना प्रकार के मसाले (जीरा और धनिया नहीं) तेल अमचूर और कई तरह के आचार (नींबू, आँवला नहीं) इनको न खाना चाहिये, क्योंकि यह गरमी करते हैं उत्तेजक हैं वीर्य आदि धातुओं को दूषित बनाते हैं। इसी प्रकार मिठाई भी (आवश्यकता पड़ने पर गुड़, शक्कर का सामान खाया जा सकता है) रोग उत्पन्न करती है। इन चीजों के खाने से इन्द्रियाँ चटोरी बनती है पाचन शक्ति खराब हो जाती है और रोगी होना पड़ता है। फलों में गाजर मूली, मतीरा, नारंगी, अंगूर, जामफल-अमरूद इनको खाने से शरीर स्वस्थ्य रहता है। खरबूजे और आम बहुत गरमी करते हैं इन्हें नहीं खाना चाहिये। इसी प्रकार अरंड ककड़ी,

07:37
Vo)) LTE1 4G
facebook ऐप खोलें लॉग इन करें

अरूणिमा सिंह
16 सितं 2025 ·

सतुआ!
मां कहती हैं कि सतुआ तब तक सतुआ नहीं कहलाता जब तक वो सात अनाज से मिलकर न बना हो।
सत्तू में मक्की, जौ, ज्वार, मटर, चना, बाजरा और गेहूं मां डालती थी। इन सभी अनाज को भिगो कर सुखाती थी और फिर भाड़ में भूनने के लिए भिजवा देती थीं।
भुजैइन काकी की पारिश्रमिक अलग से चावल बांध कर देती थीं। अगर उन्हें अलग से मेहनताना नहीं दिया जाता था तो काकी भूनने के लिए आए अनाज का कुछ हिस्सा भुजाई के मूल्य के रूप में रख लेती थीं।
भाड़ में पहले से ही भीड़ लगी रहती है। कोई पसर भर मटर ले आया है तो कोई चना लाया है, किसी के पास एक सिकौहुली मकई के दाने हैं तो कोई भुजिया चाउर लाया है।
काकी जिसका भूजा भूजती थी उससे ही भाड़ झोकवाती थीं। बगिया के पेड़ो से गिरी पत्तियां बहार कर खांची में दबा दबा कर भर लाती थीं और यही उनके भाड़ का ईंधन होता था।
भाड़ जलते ही भाड़ से हवा के सर पर सवार हो कर उड़ती आती सोंधी सुगंध जब नाक में चढ़ती थी तो फिर मन गर्म गर्म भूजा चबाने के लिए बेताब हो उठता था।
मां फिर कुछ न कुछ देकर भुजाने भेज देती थीं।
जो आनंद गर्म गर्म भूजे भूजा का होता है उतना स्वाद रखे हुए में नहीं आता है।
खैर सतुआ से चले थे भूजा पर आ अटके तो सतुआ की तरफ वापिस चलते हैं।
सतुआ जब भुजा कर आ जाता था तब जांता धोया जाता था आस पास चिकनी मिट्टी से लीप कर साफ किया जाता था और फिर मां, काकी मिलकर सतुआ पीसती थीं।
दोपहर जब तीन बजे वाली भूख लगती थी तब भोजन के बजाय हमारे गांव का दो मिनट वाला चटपटा, स्वास्थ्य वर्धक, पौष्टिक आहार तैयार होता था।
फटाफट नमक डाल कर घोल लिया चटनी, प्याज, सिरका, हरी मिर्च संग खा कर आनंद लिया।

लालगिरि जी की वाणी

साहिब बरसै सुंन में अजर अमर निरवांण
रूंम रूंम व्यापक सकल (कोई) विरला करै पिछांण
विरला करै पिछांण सोइ बिन सतगुर भेट्या
करम करया सब दूर सार गहि आपा मेट्या
कहै गुसांई लाल कीया जिन पांचू गायब
अजर अमर निरवांण सुंन में बरसै साहिब ॥ १ ॥

ऊं सोईं हंस है सोहं हंसा सोय
मह अच्छर ता ऊपरै अर्द्ध–चंद्रवत् जोय
अर्द्ध–चन्द्रवत् जोय भरया घर सुंना मांही
अजर अमर निरवांण निरंजण सोहं सोई
कहै गुसांई लाल पिछांणे विरला कोई
सोहं हंसा सोय हंस है उ हं सोई ॥ २ ॥

यो ही यो ही अलष है धरा गिगन के बीच
स्वेत फटिक मणसार सा ना कोई ऊंचा नीच
ना कोई ऊंचा नीच अखंड व्यापक जग सारै
बाहिर भीतर मांहि नहि कोई तारै मारै
कहै गुसांई लाल नहीं जहाँ एको बोई
करो संत परतीत अलष है यो ही यो ही ॥ ३ ॥

उं हं उं हं अधर है धरणा गिगनी मांहि
अहं अहं यो भरया हूं सोहं सब ठांहि
हूं सोहं सब ठांहि अथग जीणा अत भारी
थावर जंगम मांही नहीं कोई पुरुषा नारी
कहै गुसांई लाल विचारं हंसा सोहं
सो पावै निज रूप हंस है उ हं उ हं ॥ ८ ॥

ॐ कं ऊरध सीस, धरा कै अधर बीच
इत उत नां ही हीच समंद ज्यूं भरचौ है
निकट न नडौ दूर वसूं दिसा भरपूर
असंष चंवर सूर अधरन धर्‌यो है
अषंड अनूप रुप नांही छाया नां (हि) धूप
वचन न वणं चूप, कैसं कहि वषांणीये
कहत है गुसांई लाल हम देख्यो ऐसो ष्याल
चौडे चौक पड़ो माल गुरु मुष जांणीये ॥ ९ ॥

गरज नांहि वरमा अरु विसनऊ की गरज नांहि
गरज नां ही संभु ईस गिरजा गणेस की
गरज ना ही इन्द्र अरु कुमेर हूं की गरज नांही
गरज नाहो धरमराय वरण अरु सेस की
गरज नांही राणा अरु राव हू की गरज नांही
गरज नांही दुनियां मीर सेष ऊ नरेस की
कहत है गुसांई लाल और सिरट कोण माल
संत हू न राखे गरज मुक्त हूं से वेस की ॥ १० ॥

करूँ पुरुष से मेला रे, अवधू करूँ पुरुष से मेला रे।
सुरत निरत मन पवना इक कर, कर्‌या चतुर्दश मेला रे ॥ आ॰ ॥
सुन सा सहर गिगन सा किहला, जहां वो पुरुष अकेला रे।
गुरु मम संग चढू ब्रह्मांडा, वहां जाय बांधू बेला रे ॥ १ ॥
बांध्या बेल मिल गया मेला, ना कोई एको दूजा रे।
भया प्रकाश निरन्तर मेला, नहि सेवक या पूजा रे ॥ २ ॥
है सो नांही, नहि सो नांही, समझ समझ मुसकाई रे।
गूंगा कहै कोण के आगे, माया मिश्री खाई रे ॥ ३ ॥
ऐसा पुरुष अलख अविनासी, जासे ताली लागी रे।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, मन की दुबध्या भागी रे ॥ ४ ॥ ॥१७॥

सुन्न में अलख लखाऊ रे अवधू, सुन्न में में अलख लखाऊ
सावधान गाफल नहीं रहणा, गूंगा होय बतलाऊ ॥ आ॰ ॥
मुख बिन शब्द कान बिन सुणना, कर बिन ताल बजाऊ।
देखिने नेत्र बिन बास नाक बिन, पग बिन पंथ चलाऊ ॥ १ ॥
धरणि गगन बिच हाथ हलाऊ, तामें सेंन कराऊ।
हुआ गरकाव उलट घर आऊ, हंसो हंस मिलाऊ ॥ २ ॥
बाहिर भीतर सुन्न हि सुन्नं, सुन्न भर्‌या इकसाऊ।
सुन्न सकल विधि अगम अनादि, सुन्नहि सुन्न विलाऊ ॥ ३ ॥
सुन्न साधन है निरांजनेसा, पार कोऊ नहि पाऊ।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, आजा पार पठाऊ ॥ ४ ॥ ॥१८॥

सहजा मुक्त बताऊँ रे अवधू, सहजा मुक्त बताऊँ रे।
पहली मोको तन मन सौंपे, पीछे फिर बिलमाऊँ रे ॥ ध्रा: ॥
सोहं हंसा सास हुलासा, करे चार चक मेला रे।
ऐसा जाप जपे निशि बासर, होय ब्रह्म सौं मेला रे ॥ १ ॥
निकलंक देख निरन्तर बासा पैठत मध्य प्रकाशा रे।
थिर होय सोजी बाहिर भीतर, सो निर्माण निवासा रे ॥ २ ॥
जीवन मुक्त सन्त जन कहिये, मुवा मुगत संसारा रे।
एक हि जीव ब्रह्म हि एक हि, कोण वार कुण पारा रे ॥ ३ ॥
मैं ही मुकत मुक्त मुझ मांही, आद अन्त इक सारा रे।
कहत लाल थिर सुण रे पूता, मैं हूं अगम अपारा रे ॥ ४ ॥ ॥१९॥

:

गगन घुर्‌यो सहनांनि रे अवधू, गगन घुर्‌यो सहनानी।
उनमनि बाजा बजने बाजा, उमड्या इन्द्र मेवानी ॥ ध्रा: ॥
उमग्या इन्द्र गगन की घाटी, सो मेरे मन मानी।
हुये मतवाले पीकर प्याले, अरस परस कर जानी ॥ १ ॥
इन्द्र धनुष उत्तर दिसि तणिया, दक्षिण दिसि बीज चमकिया रे।
पूरब पवन पर बाई बाजे, पश्चिम धरा धमकिया रे ॥ २ ॥
अमृत उलट गगन में फली, गंग जमन बिच फैली रे।
भया प्रयाग त्रिवेणी मेला, सुख सागर में रेली रे ॥ ३ ॥
भर्‌या सुख बिच सुख का सागर, हंस चुगे जहाँ मोती रे।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, घट घट पूरण ज्योति रे ॥ ४ ॥ ॥२०॥

है सो नांही नांहि रे अवधू, है सो नांही नांही रे।
नांही है के मध्य निरन्तर, अकल अमूरत ताई रे ॥ आ: ॥
धर जल तेज पवन नहीं पाणी, नांही पिंड ब्रह्मांडा रे।
चन्द्र सूर नक्षत्र जहूं वां, नांही द्वीप नव खंडा रे ॥ १ ॥
नांही नांही में ही मांही, तू देखे सो नांही रे।
अगम अतीत अगोचर मारग, कहि समझाऊं कांई रे ॥ २ ॥
नांही नांही कह्यो ना जाई, है है कहे न नांही रे।
अलख दरियाव भर्‌या नहीं खाली में वहीं आपू कांई रे ॥ ३ ॥
अभेद अखेद-अछेद अडोला, वचन कहूं कहा ताई रे।
कहत लालगिर सुण रे पूता, समझ मूल कछु नांही रे ॥ ४ ॥ ॥२३॥

जमराजा से डाऊ रे संतो, जमराजा से डाऊ।
झूंठे विप्र डरावत जग को, बाल डरावत माऊ ॥ आ: ॥
ज्यों सुसिये सिर शृंग कहीजे, यह न शास्त्र अनुकूला।
त्यों जमराज मिथ्या जग मांही, भ्रम करि दुनियां भूला ॥ १ ॥
ज्यों बन्ध्याघर पुत्र कहीजे, ज्यों मृग तृष्णा भूला।
ओस बूंद मोती जग मिथ्या, मिथ्या भूत बघूला ॥ २ ॥
गन्धर्व नगर सीसगढ किल्ला, को कुण वास बसाणा।
ऊगा सूर तेज जब प्रगटा, देखत दृष्टि बिलाणा ॥ ३ ॥
ना कोई सरग नरक नहि जाणा, ना कोई जूंण चौरासी।
ना धर्मराज न जम की बेड़ी, नहीं काल नहि फांसी ॥ ४ ॥
धरती मिली तोय के अम्बर, तोय तेज के मांही।
तेज वायु मिल वायु गगन मिलि, गगन मिल्या गम नाहीं ॥ ५ ॥
ज्यों दरियाव लहर उपानी, नीर लहर बिन नांही।
ज्यों जग बण्या अलख के भीतर, उलट मिल्या ता मांही ॥ ६ ॥
जीवन ब्रह्म जगत नहि माया, रंग रूप नहि काया।
नभ के बीच निरंतर भरिया, सोहं सहजा पाया ॥ ७ ॥
अविगत अलख अमर अविनासी, लालगिरि लख पाया।
सतगुरु शरण भरम भव भागा, फेर न दूजे आया ॥ ८ ॥ ॥२४॥

सन्तो लो रे हरी को नामा ।
रोकारोक उधार न करहू, सिर सठ सूंगा दामा ॥
सोहं हंसा सासो सासा, जपे जाप निज नामा ॥
ऐसा विणज करे कोई मोसे, ताही करों निकामा ॥१॥
ब्रह्म माल अपार भवन में, भरया अथाह अथोई ।
तोल न मोल माप नहि वां का, लोरे पजा सो कोई ॥२॥
निराकार आकार विवर्जित, घट-घट पूरण सांई ।
जो कोई मोको तन मन सौंपे, ताहि दिखाऊ माई ॥३॥
ऐसा रतन अमोल पदारथ, ले लो सनमुख आई ।
स्वयं प्रकाश महा सुन भीतर, शोभा बरणि न जाई ॥४॥
धरणि गगन बिच हाट मंडाणी, वणिजे लाल गुसांई ।
मैं मेरे सिर साटे लीना, पड़त तरपद छांई ॥५॥ ॥२५॥

हमारे अलख लखो मेरा भाई, आवो संगत के माई ।
निरमल आभा जिसा निरंजन, नहि धूप नहि छांई ॥अः॥
ना कोई देव न देवी दरसे, ना कोई सेव न पूजा ।
ना कोई जगत ब्रह्म इक माया, ना कोई एक न दूजा ॥१॥
दूर कहूं तो नेड़ा दरसे, निकट कहूं तो दूरा ।
निकट न दूर दूर नहि नेड़ा, अकल सकल भरपूरा ॥२॥
ना कोई गांव नाम नहि पैंडा, ना कोई धरणि अकासा ।
अर्ध उर्ध्व के अधर बिम्ब में, अवगत अखंड प्रकाशा ॥३॥
मन बुध चित पसमा नहि दरसे, श्रुति चारों मिल गाई ।
कहत लालगिर सुण रे पूता, सतगुरु सेन लखाई ॥४॥ ॥२६॥

अलख घर खोज गिगन घर माही, भंवर भवन बिच सोध ।
कुण घर उतपत सास उसासा, कुण घर प्रलय सोध ।
कुण घर हंसा है निर संसा, कुण घर मन परमोध ॥१॥
नाभी उतपत सासो सासा, सुन घर प्रलय सोध ।
मन घर हंसा मेरे संसा, शिव घर मन परमोध ॥२॥
कुण चालत कुण बोलत माही; कोण सुणत श्रुति वेण ।
कोण नासिका लेत वासना, कौन निरखता नेण ॥३॥
चेतन चालत बोलत माही, सोहि सुणत श्रुति वेण ।
सोहि लेत सुगन्ध वासना, सो हि निरखत नेण ॥४॥
कुण घर अलख कोण सा मारग, कोण गगन घर लेख ।
कहत जीव मैं किस विधि निरखूं, रंग रूप नहि रेख ॥५॥
मन घर अलख विख ध्रुव मारग, अगम गगन घर पेख ।
कहत लाल थिर सुण रे पूता, सर्व वर्ष में देख ॥६॥ ॥२९॥

प्रस्तुत किया गया है। यह प्रयोग अत्यन्त रूचिकर एवं मनोरंजक प्रतीत होता है। यहां उनका विवरण दिया जा रहा है।

नाथ गुरू उत्तमनाथ के शिष्य योगी वैराग्यनाथ ने एक वाणी में लिखा है।[1]

साधे भाई ऐसी सुरता जागी रे, गुरू का शब्द सुना जब उर में, मूल अविद्या भागी रे।

जाग के जोय लियो घर सागी, इत उत नहीं अभागी रे।

शुद्व सरूप में ऐसी लागी, कियों होवे नहीं आगी रे।

अज्ञान दसा में आपो भूली कुटुम्ब कियो बहु नागी रे।

गुरू शब्दों का लगा चमेटा, सीधे मारग लागी रे।

सीधो रस्तो सोहं को है, उलटे रस्ते को त्यागी रे।

उलटे रस्ते में दुख बहु भोग्यो, सुख सोहं में पागी रे।

शुद्व रूप सांचो पति पायो, नकली को अब त्यागी रे।

नकली के संग नाथ बहु नाची, इत उत फिरी मैं भागी रें।

---

[1] विविध संग्रह विवेक प्रकाश – (80)

वज्रयान की योगसाधना में प्राणायाम की भी उपयोगिता है। इस साधना के लिए हिन्दू तन्त्रों की ही तरह बौद्ध तन्त्रों में नाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार बताई गई है। इनमें भी बत्तीस नाड़ियाँ मुख्य हैं। उनमें भी तीन प्रमुख हैं – ललना, रसना और अवधूती। इन्हें ही हिन्दू तन्त्रों में क्रमशः इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहते हैं। नाड़ियों की संख्या में यह भेद नाड़ियों के उप विभाजन के कारण हो सकता है। नाड़ियों के

विभाजन का केवल एक ही प्रकार नहीं है। अपितु इनका अनेक सूक्ष्म और स्थूल प्रकारों से विभाजन किया गया है कुछ नाड़ियाँ तो इन्द्रियों के द्वारा दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु कुछ ऐसी भी हैं, जिनका ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा कथमपि सम्भव नहीं है। स्थूल शरीर में इन नाड़ियों का जाल सा बिछा रहता है। शरीर का कोई भी अंग चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, नाड़ियों से रहित नहीं है। शरीर की सम्पूर्ण क्रियाएँ इन नाड़ियों द्वारा ही संचालित होती हैं। नाड़ियों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर के विभिन्न अवयवों में पारस्परिक सम्बन्ध बना रहता है। इन नाड़ियों का कृत्य बाह्य जगत की संवेदनाओं को भीतर लाना तथा भीतर की प्रतिक्रियाओं को बाहर ले जाना है।[65] लालना नाड़ी वाम भाग में स्थित रहती है और रसना दक्षिण भाग में।

बौद्ध तन्त्रों में वर्णित ललना (प्रज्ञा, आलि) ग्रीवा के पास से निकलती है और बाई ओर से नाभि प्रदेश में प्रवेश करती है। नाभि प्रदेश से रसना (उपाय, कालि) आरम्भ होती है और ग्रीवा के पास दक्षिणी ओर से प्रवेश करती है। इन दोनों के बीच से हत्कमल से निकलती हुई अवधूती से बोधिचित्त प्रवाहित होता है। यह अवधूतिका ही सहजानन्द प्रदायिका है यह स्वयं सहजानन्दरूपिणी है यह अवधूति बोधिचित्त है, भगवती नैरात्मा है, सहजसुन्दरी है।[66]

इसी नाड़ी के माध्यम से बोधिचित्त साधन (बिन्दु साधन) सम्भव होता है, नाड़ियों का उपयोग प्राणायाम की साधना के लिए किया जाता है। प्राण और अपान की साधना मन्त्रयोग की सहायता से की जाती है। उसमें पूरक, कुम्भक और रेचक नाम की तीन क्रियाएँ होती हैं। प्राणायाम में नियन्त्रण के लिए मन्त्र का प्रयोग विहित है। इस वज्रजाप से प्राण–अपान के नियन्त्रण से चित्त की अधोगति बाधित होती है तथा वह ऊर्ध्वमुख होकर उष्णीषकमल में महासुख रस का पान करता है। इस साधनात्मक और आध्यात्मिक यात्रा को महायान में बोधिचित्त की दस भूमियों की यात्रा के रूप में कल्पित किया गया है। चित्त की अधोगति के नियन्त्रण के लिए हठयोग की मुद्राओं, बन्धों, आसनों और प्राणायाम का विधान भी है। गुह्यसमाजतन्त्र ने इस हठयोग को प्रारम्भिक साधन के लिए उपकारक माना है।[67]

वज्रयान की विधियों में लक्षण, आयुध आदि को आलम्बन बनाकर क्रमशः भावना करने की विभिन्न प्रकार की विधियाँ हैं जिनके कारण तन्त्रों के क्रिया, चर्या, योग और

नाम निरंतर ध्यान धरो, आत्म दीप स्वरूप।

आप आप में लख लेवो, आपही आप अनूप।।"[41]

इन्होंने अपने ग्रंथ के 'बारहखड़ी' अध्याय में नाम–स्मरण की भावना को पर्याप्त विस्तार दिया है, नाम–स्मरण इनकी भक्ति का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग है। जैसे कि पहले ही बता दिया गया है कि यह नाम कहीं राम, कहीं कृष्ण, कहीं ब्रह्म तो कहीं अलख निरंजन एवं ओंकार आदि के नाम में प्रयुक्त हुआ है। एक स्थान पर ओंकार नाम का स्मरण करने का उपदेश देते हुए ये कहते हैं:–

'ऊँकार का सुमरण कर ले, प्राणायाम साधो भाई।'[42]

इनका नाम–स्मरण में गहन विश्वास है। नवधा भक्ति में ईश्वर के गुण कथन का भी बड़ा महत्त्व माना जाता है। इन्होंने भी अपने प्रभु के गुण कथन विषयक उक्तियाँ स्थान–स्थान पर व्यक्त की हैं। अपने सगुण–निर्गुण के गुणों का बखान करते हुए इन्होंने कहा है:–

"बेनामी सत्य स्वरूप, सच्चिदानंद आनन्दमय।

हरत सकल दुख द्वन्द्व, जेही परसत सुख सहज में।।

नमो अलख आनन्द, नमो निःष्कलंक विदेही।

नमो सगुण गुण रहित, नमो निज व्यापक देही।।"[43]

अतः अपने गुणों से रहित सगुण के गुणों का बखान इन्होंने अपनी वाणी में किया है। अपनी भक्ति की इस कड़ी में इन्होंने साधु सेवा को भी पर्याप्त स्थान प्रदान किया है। ये मानते थे कि साधु सेवा के अभाव में भक्ति करना संभव नहीं। इसी कारण इन्होंने साधु सेवा को भक्ति की अनिवार्य कड़ी बताया है। ये लिखते हैं:–

"जो सुख चाहे जीव सन्त सेवा करो।

तिनके बचन बिलास, ज्ञान उर में धरो।।"[44]

भक्ति ग्रंथों में भक्ति के लिए कई विधियों को बतलाया गया है। श्री बेनामी जी ने इन सभी विधियों को अपने ढंग से अपनाया है। ये अपनी भक्ति के भिन्न–भिन्न उपायों के माध्यम से अपने ब्रह्म को प्रसन्न करके उनसे मुक्ति की कामना करना चाहते थे। अपने इस चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इन्होंने भक्ति को अत्यावश्यक माना है। नवधा भक्ति की कड़ी में दैन्य एवं विनय का भी पर्याप्त महत्त्व स्वीकार किया जाता है। विनय

06:25

benami sampraday hin...

का जो स्वरूप दिखाई देता है, वह भी हृदय की रागात्मक वृत्ति को ही दर्शाता है। योगात्मक भक्ति–साधना का उद्देश्य भी अपने ब्रह्म का अनुग्रह प्राप्त करके ब्रह्ममय ही हो जाना है। श्री बेनामी जी की भक्ति चाहे जिन भी पदों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हो, उसकी परिणति ब्रह्म में एकाकार होने की ही रहती है। इसमें किसी काम को साधने की प्रवृत्ति कत्तई नहीं है। ये लिखते हैं:–

"सतगुरू सोवे सुन्य में, अनहदपुर के बीच।
सुरत निरत कर खोज ले, उलट पवन दृग मीच।।[56]

अतः योगात्मक साधना के पदों से भी इनकी निष्काम भक्ति के ही दर्शन होते हैं। सर्वप्रथम जीवात्मा अपना यह दृढ़ मत कर लेती है कि वह परमात्मा से भिन्न है ही नहीं। जब दोनों अद्वैत हैं, तो फिर माया की उपस्थिति के कारण जो द्वैतभाव है, उसे समाप्त हो जाना चाहिए। यही प्रेरणा इनकी भक्ति का मूल स्त्रोत है। 'आरती–अद्वैतज्ञान' में श्री बेनामी जी ने अद्वैत दर्शनाधारित भक्ति को ही प्रकट किया है:–

"शब्द ज्ञान अंजन दिया, नैना लिया सार।
ज्ञान अद्वैत प्रगट किया, गुरूचरण चित्त धार।।"[57]

अपनी प्रेमा शक्ति में इन्होंने ईश्वर को अजपा मानकर ही अपना जाप प्रारम्भ किया है। अपनी इस भक्ति के लिए उन्हें किसी बाह्य पदार्थ अथवा वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं है. प्रभु से अगाध प्रेम की भावना जो है। इनका आने–जाने वाला प्रत्येक श्वास ही उस अजपा का जाप करता है। इनका प्रत्येक श्वास उस परमतत्त्व को समर्पित है। इनका कथन है:–

"स्वासां की कर सुमरनी, कर अजपा को जाप।
परमतत्त्व का ध्यान धर, सोहंग आपै आप।।"[58]

यह इनकी परा भक्ति की ही महिमा है कि इन्होंने अपने अज्ञात अनदेखे प्रीतम के ही साथ अपनी होली खेलना चाहते हैं:–

"होरी खेलन दैरी ननदिया"
जो तू कहेगी सोई मैं करूँगी, अनहद की धुन लैरी ननदिया।।

06:26
benami sampraday hin...

है। कबीर का ईश्वर निर्गुण–निराकार है, उसी प्रकार इनका ब्रह्म भी बेनामी अर्थात् 'बिना नाम का' बनकर सामने आता है, जिसे निर्गुण का पर्याय मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इनका यह बेनामी ब्रह्म अद्वैतवाद की पराकाष्ठा का पर्याय रहा है। इनका निम्न कथन भी इनके इस भाव की पुष्टि ही करता है। ये लिखते हैं:–

"सब ग्रंथन को सार है, सबको मथकर देख।
एक ब्रह्म व्यापक सकल, द्वैत भाव मत लेख।।"[4]

ये मानते हैं कि जीव, जब साधना के कठोर मार्ग पर चल पड़ता है, तो इस मार्ग पर चलते ही जीव का सम्पूर्ण अज्ञान लुप्त हो जाता है। उसका मार्ग ज्ञान के प्रकाश की लौ से आलोकित हो उठता है और अन्तोत्तगत्वा जीव ब्रह्ममय हो जाता है। इसी का नाम परमानंदमयी साधना स्वीकार किया गया है। मंत्रयोग से प्रारम्भ होने वाली यह साधना अपने चरम तक कैसे पहुंच पाई है, इसे इनके शब्दों द्वारा बड़े ही सहज ढंग से हृदयगंम किया जा सकता है। इन्होंने अपनी भावोक्ति को कुछ यूं अभिव्यक्ति प्रदान की है:–

"गुदा नेत्र को ढ़क लिया, ढ़के कान के साल।
रसनाते सुर खैंच कै, ब्रह्मंरन्ध्र रूध्र को चाल।।
प्राण पवन के मेल ते, भँवर गुफा के बीच।
अनहद के बाजे बजे, ये हँसन की रीत।।
ज्योत झिलमली खुदरती, तख्त ज्योति के बीच।
बेनामी बैठक करें, सतगुरु की बकसीस।।"[5]

बेनामी जी ने अपनी साधना में ज्ञान योग को एक परमावश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया है। इनका मानना है कि जब तक जीव ज्ञान को प्राप्त नहीं लेता तब तक मन की साधना पूर्ण नहीं हो सकती है। अपनी साधना के इस क्रम में इन्होंने भक्ति योग को भी पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। यदि ध्यान से परखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्यान, नाम–स्मरण, भक्ति आदि सभी साधना के ही हेतु हैं। ये साधना से पृथक् नहीं आंके जाते। बेनामी जी भी मानते हैं कि भक्ति और साधना

06:27
benami sampraday hin...

स्वीकार किया है। इनकी साधना में भक्ति मूलतः समाई हुई है। इनका ब्रह्म प्रेम इनकी भक्ति योग–साधना का मूल है। इनकी साधना का स्वरूप इतना व्यापक है कि इसे उपर्युक्त अध्ययन के अधीन नहीं किया जा सकता। मूलतः इसमें सत्संगति नाम स्मरण, ध्यान, भजन–कीर्तन एवं योग आदि का अद्भुत मिश्रण दृष्टिगत है। इनका दृढ़ विश्वास है कि जब तक जीव संसार की भीड़ में विषयी जीवन का उपभोगी बना रहता है, तब तक वह साधना से विमुख एक दुर्जन के समान पृथ्वी का बोझ ही बना रहता है। इनकी धारणा है कि साधना इत्यादि के पथ पर चलकर ही ब्रह्म प्राप्ति का स्वप्न साकार हो सकता है। इनका मानना है कि मानव शरीर धारण करके भी यदि ब्रह्म से मिलन नहीं हुआ तो समझो यह जीवन व्यर्थ ही गंवा दिया। साधना के द्वारा ही मनुष्य का जीवन ब्रह्ममय हो सकता है, दूसरा कोई और उपाय नहीं है। वे लिखते हैं:–

"जब लग दम नाभी बसे, तब लग खलग जहान।
जब नभ में दम लय हुई, हो गया ब्रह्म समान।।"[9]

आत्मज्ञानपरक एक उक्ति इनकी वाणी में ही प्रस्तुत है:–

"जहाँ बसेरा बाज का, पंछी रहे न और।
ब्रह्म ज्ञान जा घट बसे, नहीं काम का ठौर।।
सिंहन के लहड़ै नहीं, ना दूजे को साथ।
आत्म ज्ञान बिके नहीं, साधु रहे न साथ।।"[10]

अतः यह स्पष्टतः उद्घोषित किया जा सकता है कि इनकी ज्ञान–साधना में आत्मज्ञान–साधना को संत प्रवृत्ति के वांछित ही स्थान प्राप्त हुआ है। इस आत्मज्ञान परक साधना को इन्होंने उस मुकाम तक पहंचा दिया है, जहाँ से ये ईश्वर का साक्षात् परमानंद से करते हैं। इस परमानन्द की अनुभूति ही एक सच्चे साधक का ध्येय होता है। अतः बेनामी जी अपनी ज्ञानपरक साधना में पूर्णतः सफल रहे हैं।

5.3.3 योग–साधना

निर्गुण–पंथीय ज्ञान मार्गी साधना में सभी संतों ने योग मार्ग को स्वीकार किया है। इन्होनें हठयोग, शब्दयोग, मंत्रयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग आदि सभी योग

"सुरत शब्द निश्चय करो, जब आतम सुध होय।
चार तत न्यारे करे, अनहद की धुन होय।।[28]
"कागद पै नहीं करोड़ा, अक्षर पै नहीं ज्ञान।
शब्द विचार सुरत ते, आपा ब्रह्म समान।।"[29]

अर्थात् अपनी चेतना को पूर्णतः ब्रह्म पर केन्द्रित करके ही इन्होंने अपनी साधना को आगे बढ़ाया। इस प्रकार बेनामी जी की यह साधना अपनी साधना–पद्धति के अनेक मार्गों से होकर शब्द सुरत की अवस्था तक पहुँच पाई है। ये कहते हैं कि ब्रह्म का निवास तो प्रत्येक मनुष्य के घट के भीतर ही होता है, परन्तु जीव (मनुष्य) अपनी अज्ञानता के कारण उसे पहचान नहीं पाता। जीव उसे कैसे पहचान सकता है, इसकी ओर संकेत करते हुए इन्होंने लिखा है:–

"बेनामी घट–घट बसे, व्योम तत्त्व निर्धार।
प्राण पवन को बस करे, तब पावे कछु पार।।"[30]

यहाँ पर प्राण, पवन का उल्लेख करके इन्होने अपनी हठयोग साधना की ओर ही संकेत किया है। अतः प्राण, पवन को नियंत्रित करके ही अभिष्ट मार्ग पर आगे बढ़ा जा सकता है। इन्होंने अपनी साधना में इड़ा–पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों का भी उल्लेख किया है। निर्गुण मार्गीय संतों ने हठयोग पर आधारित साधना–पद्धति के अनुसार ही इड़ा–पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का प्रयोग किया है। इसी योग–साधना के परिणामस्वरूप इन्होंने भी इसी साधना–पद्धति को अपनाया है। इड़ा–पिंगला का उल्लेख करते हुए ये लिखते हैं:–

"ये इड़ा पिंगला फेर बदल घट मांही।
यह काया कासी खोज मिलैगा सांई।।"[31]

यहाँ इनकी साधनास्थ उस अवस्था का बोध होता है, जब साधक शब्द की साधना में पूर्णतः समर्पित हो जाता है। इनका मानना है कि इड़ा–पिंगला नाड़ियों को जाग्रतावस्था में लाकर उन्हें सुषुम्ना में मिलाया जाता है, तभी इस देह रूपी काशी में शब्द (ब्रह्म) रूपी शिव की दिव्यानुभूति की जा सकती है। इन्होंने सुरतावस्था की स्थिति में इन तीनों नाड़ियों के महत्व को प्रमुख माना है। ये कहते हैं जब ये दोनों नाड़ियाँ तीसरी अथवा सुषुम्ना में जाकर मिल जाती है, तभी अनहद की ध्वनि जीव को सुनाई पड़ती है। इनका कथन है:–

"इड़ा पिंगला शोच समझकर सुषुमन में चल बासा कर।
अजपा जाप जपै निशि वासर, अनहद की धुन सुनकर तर।।"[32]

इन्होंने सुरत योग हेतु यह स्पष्ट किया है कि रात–दिन उस अजपा का जाप एवं योग–साधना का संयोग जब इन दोनों का मेल हो जाता है, तो अनहद की ध्वनि सुनाई देने लग जाती है। परन्तु इससे पूर्व कुण्डलिनी तक पहुँचा जाना अनिवार्य है। कुण्डलिनी तक जाने का उल्लेख भी इन्होंने किया है। ये कहते हैं:–

06:30 Vo)) LTE1

benami sampraday hin...

कुण्डलिनी तक जाने का उल्लेख भी इन्होंने किया है। ये कहते हैं:–

"औंधा पुष्प पड़ा घट भीतर, धस के इसको सीधा कर।
फेर पुष्प को कर हृदय पै, नारायण का दर्शन कर।।"[33]

औंधा पुष्प जोकि औंधे कुंए का प्रतीक है। इसी के साथ–साथ इन्होंने अपनी शब्द साधना में कुण्डलिनी को ऊपर चढानें की स्थिति का भी संकेत किया है। इन्होंने संकेत किया है कि कुण्डलिनी के ऊपर चढ़ने की अवस्था में साधु गुणातीत महात्मा बन जाता है और शब्द की साधना की यह अन्तिम सुरतावस्था है। ब्रह्मरन्ध्र के आगे की अवस्था को तुरीयावस्था कहा जाता है। इन्होंने अपने पदों में तुरीयावस्था का भी उल्लेख किया है। वे कहते हैं:–

"गुदा नेत्र को ढ़क लिया, ढ़के कान के साल।
रसना ते सुर खैंच के, ब्रह्मरन्ध्र को चाल।।"[34]

इनकी सुरतावस्था शब्द की अनुभूति तक पहुँचने ही वाली है। यहाँ पर पहुँचकर इनको साधना के चरम लक्ष्य की प्रतीति होने लगती है। अब इनको शून्य शिखर की अनुभूति होने लगती है। शून्य की अवस्था में ही अनहदनाद की दिव्य एवं चमत्कारी ध्वनि सुनाई देने लग जाती है। ये कहते हैं:–

"प्राण पवन के मेल ते, भंवर गुफा के बीच।
अनहद के बाजे बजैं, ये हंसन की रीत।।"[35]

अब इन्हें अनहदनाद की ध्वनि सुनाई देने लगी है। इस स्थिति में ब्रह्म जोकि ज्योतिस्वरूप है, की ज्योति झिलमिलाती हुई प्रतीत होने लगती है। इस अनुभूति का चित्रण करते हुए ये लिखते हैं:–

"ज़्योत झिलमली खुदरती देखो मस्तक मांहि।
कोई कोई साधू चढ़ गये, समता मांहि समांहि।।"[36]

इन्होंने बताया है कि इस दिव्य ज्योति का अनुभव किसी विरले साधु को ही हो पाता है। अब इन्हें शब्द की दिव्य अनुभूति हो जाती है। इसके पश्चात् उस दिव्य लोक अर्थात् ब्रह्मलोक में कैसी अनुभूति होती है, उस अनुभूति का चित्रण भी इन्होंने किया है। ये लिखते हैं:–

"आकाश की सैल अजब दरिया, फरके निशान सरारे में।
जहाँ बेनामी दुरवेश खड़े, एक शून्य शिखर के तारे में।।"[37]

यहाँ पहुँचकर इनकी शब्द (ब्रह्म) की साधना का सफर सम्पन्न होता है। इनकी सुरत की अवस्था यहाँ पहुँचकर पूर्णरूपेण सुसम्पन्न हो जाती है। यहाँ पर इन्हें ब्रह्म की अनुभूति मात्र नहीं होती अपितु ये यहाँ पर दिव्य होली खेलने लग जाते हैं। इनका कथन है:–

"जब लग घट का भ्रम है, तब लग मठ में देख।
जैसे मठ में तू रहे, ऐसे घट में देख।"[3]

इनका सामाजिक चिंतन स्पष्ट पुकार करता है कि जब तक आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, तब तक किसी भी सार्थकता को मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता। जीव और जीवन की सार्थकता के लिए नाम–स्मरण, भजन–कीर्तन, सत्संगति आदि वांछित

कर्म अपेक्षित हैं। सांसारिक लोगों के जीवन में इनके काव्य का कहीं हस्तक्षेप यदि हो पाया है तो बस इतना कि लोगों को ईश्वर ने जीवन प्रदान किया है, वह इसीलिए कि मनुष्य अपने जीवन का उद्धार कर सके। मनुष्य जीवन का उद्धार यदि किसी में निहित है, तो बस ईश्वर सानिध्य में ही है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु मनुष्य को चाहिए कि वह समय रहते पूर्ण प्रयास करके अपने लक्ष्य को पाने में सफल सिद्ध हो सके अन्यथा ऐसी अवस्था भी उसके जीवन में आने ही वाली होती है:–

"श्रवण गये नेतर गये, गुदा उलट गई स्वास।
अब अंधे ऐसे हुए, दृष्टि पड़ा आकाश।"[4]

इनका काव्य पूर्णतः सामाजिक सरोकार का काव्य है। उनके काव्य में स्थान–स्थान पर सामाजिकों की चेतना को जाग्रत करने वाली उक्तियां पढ़ी जा सकती हैं। इनके समय में भी तथाकथित पण्डित, ज्योतिषाचार्य आदि लोग अपने–अपने ढंग से लोगों को गुमराह किए रहते थे। बेनामी जी ने ऐसी–ऐसी घटनाओं को जब–जब देखा, तब–तब उन पर प्रहार किए बिना नहीं रह सके। ऐसा ही संकेत निम्नलिखित पद्यांश से भी झलकता प्रतीत होता है। वे लिखते हैं:–

"जा दिन से पैदा हुआ, मस्तक लिख दिया लेख,
काहे पूछो ज्योतषी, होती जाय सो देख।"[5]

यहाँ पर बेनामी जी ने आँखों देखी पर विश्वास करने का ही आग्रह किया है। अपने सामाजिक संदेश में बेनामी जी ने इतना ही संदेश जन–मानस में देना चाहा है कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपने शुभ कर्मों के द्वारा, शुद्ध आचरण द्वारा, आत्मज्ञान के द्वारा एवं सद्गुरु की शरणादि के द्वारा उस परमपद को प्राप्त करें, जिस हेतु उसे यह मानव जीवन मिला है।

6.1.1. लोक विश्वास

प्रत्येक साहित्य में कुछ लोक रूढ़ियों का प्रयोग न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य होता है। इन लोक रूढ़ियों के प्रयोग द्वारा कविजन अपने–अपने कथ्य को रोचक, विश्वसनीय और मनोरंजक बनाने का प्रयास करते हैं। ये मान्यताएँ अथवा लोक रूढ़ियाँ ही 'लोक विश्वास' कहलाती हैं। लोक विश्वास के संदर्भ में जब बेनामी जी के काव्य का

06:35
benami sampraday hin...

दृष्टि के आलोक में जांचा व परखा है। यदि सांसारिक क्षुद्रताओं एवं अवांछित अवस्थाओं पर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि इन्होंने एक समाज सुधारक के रूप में भी स्वयं को स्थापित किया है। इनके अनेक पदों में समाज सुधार से संबंधित उक्तियां दिखाई दे जाती हैं। इनके समय में भी समाज में ऐसे लोग विद्यमान थे, जो नशे की लत का शिकार होकर अपने जीवन को तबाह कर रहे थे। ऐसे लोगों को सचेत करते हुए इन्होंने लिखा है:–

"नशे की नाहक व्याधि लगावें, नर जन्म कैद हो जावे।
भाँग पीय के भोंदू होवे, बेसुध खाना खावे।।"[98]

इनकी चेतना का वास्तविक स्वरूप इनकी मोक्ष की साधना संबंधी पदों में दृष्टिगोचर होता है क्योंकि इनकी साधना की पराकाष्ठा मोक्ष की प्राप्ति एवं साहब के दीदार की है। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति की ओर संत जी ज्यों–ज्यों अग्रसर होते हैं त्यों–त्यों इनकी चेतना का दृढ़ स्वरूप सामने आता है। इनकी साधना में अब उनकी वाणी शब्द की सुरतावस्था तक पहुँच चुकी है। इन्होंने इड़ा–पिंगला को जाग्रत कर सुषुम्ना में मिला दिया है। वे ब्रह्मरंध्र तक पहुँच चुके हैं। अब शून्य शिखर में अनहद की ध्वनि इन्हें सुनाई पड़ती है। इस अवस्था तक बेनामी जी कैसे पहुँचे इसका चित्रण इन्होंने इस प्रकार किया है:–

"इड़ा–पिंगला शोच समझ के सुषमन में चल बासा कर।
अजपा जाप जपै निशि वासर अनहद की धुन सुनकर तर।।"[99]

अब इन्हें ब्रह्म जो कि ज्योतिस्वरूप है, की अद्भुत एवं दिव्य ज्योति का सुखद अनुभव होने लगता है। दिव्य ज्योति के चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश का चित्रण करते हुए इन्होंने लिखा है:–

"तख्त बिछायो चाँदन चौक में, जहाँ अनहद की है झनकार।
ज्योति कुदरती जहाँ झिलमिली, असंख्य सूर्य जहाँ करें प्रकाश।।"[100]

शब्द अर्थात ब्रह्म की अनुभूति करके वे धन्य हो गए हैं। अब ब्रह्मलोक के अद्भुत दरिया की सैर श्री बेनामी जी करते हैं:–

06:36
benami sampraday hin...

इनका मानना है कि योग–साधना इत्यादि द्वारा अभीष्ट की प्राप्ति हेतु निर्वेद का होना अत्यावश्यक है। जब तके वैराग्य नहीं होगा, तब तक एकाग्रचित्त होना संभव नहीं। इन्होंने मूलाधार से इड़ा–पिंगला की ओर चलने का संकेत किया है। इड़ा एवं पिंगला

नाड़ियों का सुषुम्ना नाड़ी में एक हो जाने की तरफ भी इन्होंने संकेत किया है। ये लिखते हैः–

" इड़ा–पिंगला शोच समझ कर सुषमन में चल बासा कर।
अजपा जाप जपै निशि वासर, अनहद की धुन सुनकर तर।।"[103]

इनकी चेतना अनहदनाद सुनने के लिए पूर्णतः एकाग्र हो गई है। अपने उद्देश्य की पूर्ति इन्होंने सभी सिद्वांतो को अपनी साधना में, अपनी चिंतना में गड्ड–मड्ड कर दिया है। ब्रह्म को संपूर्ण ज्ञान मार्गी निर्गुण साहित्य में निराकार माना है। इन्होंने भी ब्रह्म को निराकार ज्योतिस्वरूप माना है। जब कोई योगी ध्यानावस्था में पूर्णतः लीन हो जाता है तो उसे शून्य की अवस्था में अपने मस्तिष्क में दिव्य ज्योति की अनुभूति होने लगती है। ऐसी ही अनुभूति का चित्रण इन्होंने भी किया है :–

"ज्योति झिलमली कुदरती, देखो मस्तक मांहि।
कोई कोई साधू चढ गये, समता मांहि समांहि।।"[104]

इसी ज्योति के दर्शन पाने हेतु तो श्री बेनामी जी कब से तरस रहे थे। अन्ततः अपनी योग –साधना द्वारा ये अपने लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं एवं जन्म–मरण के चक्र से मुक्ति ही इनके दर्शन का मूल है। मृत्यु के भय से पूर्णतः मुक्त बेमानी जी मानते हैं कि मृत्यु का प्रसंग तो मेरे लिए परमानन्द का विषय है। इससे डर कैसा? ये लिखते हैंः–

"जा मरने से जग डरे, सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरण परमानन्द।।"[105]

ये मृत्यु को परमानन्द का विषय इसलिए मानते हैं क्योंकि परमानंद की अनुभूति के पश्चात् जीवन–मरण के बंधन से मुक्ति मिल जाती है। इनका कहना हैः–

"आना जाना ना बने, यही ब्रह्म की टेक।
आना जाना देह का, ज्ञानी करो विवेक।।"[106]

इनका स्पष्ट है कि जीवन –मरण के बंधन से जब आत्मा मुक्त हो जाती है तो ब्रह्म के देश में पहुँचकर आत्मा और परमात्मा दोनों एक हो जाते हैं। ऐसी अवस्था को प्राप्त बेनामी जी आकाश की सैर कुछ इस प्रकार करते हैंः–

06:39

benami sampraday hin...

इनके सांकेतिक प्रतीक का यह एक अच्छा द्रष्टांत माना जा सकता है। इस पद में प्रयुक्त 'सूर्य' और 'चंद्र' क्रमशः पिंगला और इड़ा के हेतु के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इन दोनों का घर सुषुम्ना में होता है। जब इड़ा व पिंगला दोनों सुषुम्ना में मिल जाती हैं तो संभवतः पद में बताई गई अवस्था का बोध होने लगता है। इसे योग की एक अवस्था विशेष माना जाता है। इस तरह के अनेकों प्रतीक इनकी वाणी में प्रायः उपलब्ध होते रहते हैं।

अब दूसरी तरफ परिभाषिक प्रतीकों की यदि बात करें, तो इसके ध्यानार्थ यह कहा जा सकता है कि इनकी वाणी में सहज, अजपा, अलख, निरंजन, शून्य, हरि, नाद, बिंदु आदि ऐसे ही परिभाषिक प्रतीक हैं। निर्गुण निराकार ईश्वर को इन्होंने पंचम् तत्त्व के रूप में चिह्नित किया है। ये लिखते हैं:–

"बेनामी आकाश पांचवां, कोई अनुभव कर लेय पिछानी।
बिन अनुभव कबहूं नहीं पावे, लाख बैखरी कथो कहानी।।"[22]

इसी प्रकार सूरति–शब्द आदि प्रतीकों का प्रयोग बेनामी जी ने बारम्बार किया है। ऐसे ही प्रयोग का एक नमूना दृष्टव्य है:–

"पांचू इन्द्री बस कँरू रे, मन राखूं समझाय।
घट भीतर खेला करूँ रे, सुरति शब्द में लगाय।।"[23]

ऐसे –ऐसे प्रतीकों की हठयोग आधारित साधना–पद्धति में एक विशिष्ट परिभाषा होती है, जिसे योगी अथवा सिद्ध पुरुष ही परिभाषित करने में सक्षम होते हैं। इसका कारण यह है कि वे एसे प्रत्यक्ष अनुभवों से गुजरे होते हैं। बेनामी जी भी ही एक उदाहरण हैं, जिन्होंने योग–साधना द्वारा 'शब्द' इत्यादि की अनुभूति की थी।

वास्तविक रूप में यदि हम इनकी वाणी में प्रतीकों का सौंदर्य देखना चाहते हैं तो इनके रूपकों में ही सर्वाधिक देखा जा सकता है। ऐसे रुपकों मे काव्य–माधुर्य और प्रतीकों का उत्कर्ष दोनों एक ही साथ अभिव्यक्त हुए हैं।इस प्रकार के रुपक आधारित प्रतीकों में आध्यात्मिक अनुभवों के दिव्य आह्लाद की अभिव्यक्ति से हृदय गद्गद हो उठता है। आह्लाद की ऐसी ही अवस्था का द्रष्टांत बेनामी जी की वाणी में देखिए जो कबीर की भावधारा के पूर्णतः निकट है। वे लिखते हैं:–

06:41
benami sampraday hin...

काव्य में भाव की एकता उनकी रागात्मकता से पुष्ट होती हुई संगीत की सृष्टि करती चली गई है। इनके अनेकों पदों से संगीत की मधुर ध्वनि प्रस्फुटित होती है। इसी के परिणामस्वरूप इनके काव्य में स्थान–स्थान पर संगीत के अनुकूल कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग हुआ है जो संगीत की सृष्टि की मूल मानी गई है। इनके पदों को बेनामी पंथ के डेरों में भक्तजनों द्वारा गाया जाता है। मैंने स्वयं' अलवर (राजस्थान) स्थित 'भूरा सिद्व का बाड़ा' में जाकर देखा कि वहाँ उपस्थित अनेक भक्तजन इनकी आरतियों का गान कर रहे थे। अद्वैत ज्ञान से परिपूर्ण ये आरतियां इनके ग्रंथ, 'बेनामी आत्मबोध' में संकलित ग्रंथ का महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इन्होंने अपने ग्रंथ के अंतर्गत 'होरी' शीर्षक का आयोजन किया है। इस शीर्षक में इनकी आध्यात्मिक होली खेलने के पदों में संगीत का सौंदर्य सहज ही देखा जा सकता है:–

"बाजत ताल मृदंग झांझ ढ़प,
डिमक डिमक डैरू बाजै अनहद में।।
नाचत कृष्ण गोपी ग्वाल बाल संग।
ताता थेई ताता थेई हो रही तन मे।
उड़त गुलाल अबीर कुमकुमा,
चंद्र सूर्य छिपे हैं गगन में।।
इड़ा पिंगला ताल बजावत,

गन गन्द्रव गावत सुख मन में।।
करत बेनामी सैल याही तन में,
मन को पकर बस किया एक छन में।।"[55]

इनके इन पदों में संगीत की सृष्टि सहज सुनाई पड़ती है। इसी प्रकार इनके अन्य पदों में भी संगीतात्मकता का गुण देखा जा सकता है। ग्रंथान्तर्गत्त आए 'पद' शीर्षक के प्रायः सभी पद संगीत के गुण से परिपूर्ण हैं। इन पदों में इन्होंने मनुष्य को सांसारिक विषय–वासनाओं से सचेत करने का संगीतमय उपदेश दिया है। उदाहरणार्थ कुछ पद प्रस्तुत हैं:–

"अपन पो आपही विसर्‌यो रे।। टेक।।
तन की आयु देख तनक सी, अब जी कहा कियो रे।।
जग झूठा सुपने की माया, भरम के जाल परयो रे।।
जैसे स्वान काँच के मन्दिर, आपहि भूस मरयो रे।।
लख चौरासी उबरयो चाहे, सतगुरू वगे करो रे।।
बेनामी सतगुरू अविनासी, आपे में आप गरो रे।।"[56]

कर रही है। एक ऐसी शक्ति जो सृष्टि सृजन का कारण है।

गोरखनाथ ने शब्द के विषय में कहा हैः

वेद कतेब न खांणी बाणीं।
सब ढंकी तलि आंणी ।।
गगनि सिशर महि सबद प्रकास्या।
तहं बूझै अलष बिनांणीं ।।

{परमात्मा का वर्णन वेद, कतेब, चारों खानियों का कोई जीव और वाणी- इनमें से कोई नहीं कर पाया है। इन सबने तो केवल उस पर पर्दा ही डाला है। उस अलख की समझ तो तब आती है जब अंतर में गगन के शिखर पर शब्द प्रकाशित होता है।}

संत कबीर ने इसी शब्द की ओर संकेत करते हुए कहा हैः

गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंग डोरि ।
सबद अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोरि।।

प्रायः सभी संतों ने नाम या शब्द का एकस्वर में गुणगान किया है। वास्तव में सभी संतों का उपदेश मूलतः एक ही है। भेद-दृष्टि तो अपूर्णता की द्योतक होती है। संत कबीर के अनुसार जब कोई व्यक्ति शब्द साधना द्वारा प्रभु से अभेद हो जाता है तो वह बाहरी तौर पर जिस भी धर्म को क्यों न मानता हो, उसका आंतरिक अनुभव सभी पहुंचे हुए संतों के समान एक जैसा ही होता हैः

हिलि मिलि खेलौं सबद से, अंतर रही न रेख।

जोगारंभ भजन

दश अवतार ज्यांरे एक मेरे दाता, मारम विरला जाणी है।
सब सृष्टि में एक मेरे मालिक, मारम विरला जाणी है ॥ टेर ॥

हिन्दू कहते राम-राम, मुसलमान कहे मेरी है। (२)
नही है मेरी नही है तेरी,(२) जाणे जिनकी शेरी है ॥ दश अवतार ज्यांरे....

नाभि कमल में रहत हमारी, वंक-नाल उलटाणी है ।(२)
स्वासे स्वास भजन की माला, (२) आ हर की ओलखाणी है ॥ दश अवतार ज्यांरे...

जद सतगुरु मौपर कृपा कीनी, जदुणी वात विचारी है ।(२)
मोर मुगट पर हुआ प्रकाशा,(२) आ हर की ओलखाणी है ॥ दश अवतार ज्यांरे....

भवानीनाथ गुरु पूरण मलिया, दी हर की ओलखाणी है ।(२)
दोय कर जोड़ अनुपदास बोले,(२) अगम निगम ओलखाणी है ॥ दश अवतार ज्यांरे...

प्राणायाम

अगले तीन श्लोकों से प्राणायाम संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

वायुं शक्त्येडयाऽऽपूर्य हृदि स्थाप्य हनुं जपन्। हंसं शक्त्या कुंभयित्वा पश्चादाकर्षितोदरः।।
शनैर्विरयचेदेष प्राणायामः सुसिद्धिदः। पंचर्ध्याह्नन्यह्नन्यशीत्यंत्यैः प्रतिसंध्यसुयामकैः।।12।।

अपनी शक्ती के अनसार वायु को इडाद्वारा पूरण कर के शक्त्यनुसार कुंभक करना चाहिए। कुंभक करते समय हनु सीने को (**जालंधर बंध**) लगा कर गायत्री या सोऽहं का जप करना चाहिए। अर्थात् यह प्राणायाम **सबीज** होता है। कुंभक के बाद पेट अंदर खींच कर (**उड्डियान बंध**) धीरे धीरे पिंगला नाडी से वायु का रेचन करना चाहिए। इस प्राणायाम से उत्तम प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँ तीसरा **मुलबंध** उपलक्षित जानना चाहिए। इस प्रकार के तीन बंधों सहित प्राणायाम दिन में तीन संध्याकाल में करने चाहिएँ। उन की की संख्या प्रतिदिन पांच से बढा कर अस्सी करने को कहा है। हठयोगप्रदीपिका के अनुसार ये तीन संध्याकाल के अतिरिक्त मध्यरात्री में भी प्राणायाम करना चाहिए। द्वादश मात्रा का प्राणायाम कनिष्ठ, चौबीस मात्रा का मध्यम और छत्तीस मात्रा का उत्तम माना गया है। निद्रावस्था के श्वासोछ्वास के काल की एक मात्रा समझी जाती है।

नाडीशुद्धि

गंतव्यमार्गस्थशक्तिचालनाद्भस्रया भवेत्। नाडीशुद्धिस्त्रिमासोर्ध्वं प्राणो याति लयं सहृत्।।13।।

ऊपर बताए हुये प्राणायम, भस्रिका से तथा इष्ट मार्ग में शक्ति चालन करने से तीन महीनों में नाडीशुद्धि हो कर प्राण और मन दोनों का लय होता है ऐसा महाराजश्री का कहना है। भस्रिका और शक्तिचालन का वर्णन आगे आता है। प्रतिदिन त्रिकाल 80 प्राणायाम करने से तीन महीने में **21600** प्राणायाम होते हैं। अर्थात् हमारे एक दिन के श्वासोछ्वास की संख्या पूरी होती है। यह प्राणायाम का एक **पुरश्चरण** हो जाता है।

प्राण और अपान की एकता होने से वह्निमंडल में अग्नि प्रदीप्त होता है। उसी से संतप्त हो कर सोई हुई कुंडलिनी जग जाती है और सीधी हो कर ब्रह्मनाडी में प्रवेश करती है। यह सब वर्णन हठयोगप्रदीपिका में विस्तार से देखने में आता है। शक्ति का चालन सुषुम्णा में करने से वह धीरे धीरे मध्यममार्ग को शुद्ध करते हुए तालू में ब्रह्मरंध्र में प्रविष्ट होती है।

लीनः सपंचविपलद्विपलं सोऽसुयामकः। ब्रह्मरंध्रे वर्धमानः प्रत्याहारादयः स तु।।14।।
स्वकालद्वादशगुणोत्तरकालावधिः स्मृतः। समाधिर्द्वादशदिनसाध्यः परमदुर्लभः।।15।।

ब्रह्मरंध्र में दो पल और पांच विपल (**50 सेकंद**) तक जब प्राण लीन होता है तो **प्राणायाम** सिद्ध हुआ माना जाता है। यही काल बढ कर पचीस पल (**10 मिनट**) प्राण के लीन होने से **प्रत्याहार**, पांच घटी (**दो घंटे**) होने से **धारणा**, 60 घटी अर्थात् **एक अहोरात्र** होने से **ध्यान**, और **12 दिन** होने से **समाधि**, सिद्ध होते हैं। यह द्वादश दिन का समाधि बहुत दुर्लभ है। योग के पाँच अंगों की यह व्याख्या स्कंदपुराण में पायी जाती है। हठयोगप्रदीपिका की टीका में ब्रह्मानंद भी इसे दोहराते हैं।

भस्रिका प्राणायाम

आगे चार श्लोकों में महाराजश्री भस्रिका प्राणायाम का वर्णन करते हैं।

समासीनो यतास्योऽन्तः प्राणं दक्षिणया त्यजेत्। सारं लगति हृत्कंठकपोलावध्यसौ यथा।।1
लोहकारस्य भस्रावच्छक्त्याश्वापूर्य रेचयेत्। वामां मध्यानामिकाभ्यां धृत्वा जाते श्रमे विधेः।।
पीत्वा प्राणं कुम्भयित्वा धृत्वांगुष्ठेन दक्षिणम्। वामया रेचयेन्मंदं तथाऽथ प्राग्वदाचरेत्।।18।।
द्विनाड्यभ्यासाद्यामार्धं शक्तिर्मार्गं ददात्यरम्। भस्रेयं सर्वदोषघ्नी रुक्पापघ्न्यपि सिद्धिदा।।19।।

हठयोगप्रदीपिका में आठ प्रकार ते कुंभक बताये हैं। **सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी सीतली तथा। भस्रिका भ्रामरी मूर्छा प्लाविनीत्यष्ट कुंभकाः।।** महाराजश्री ने यहाँ भस्रिका का ही वर्णन विशेष स्वरूप से

किया है। यह प्राणायाम दोनों नाडीयों से प्रतिदिन अर्धप्रहर (डेढ घंटा) करने से शक्ति शीघ्र मार्ग देती है। यह भस्रिका वात, पित, कफ दोषों का, व्याधियों का तथा पापों का नाश कर के सिद्धि प्राप्त करानेवाली है।

शक्तिचालन

आगे शक्तिचालन का विधि स्पष्ट किया है।

शिश्ननाभ्यंतस्थकंदं सति वज्रासने पदौ। धृत्वा दृढं प्रपीड्यारं भस्रां सिद्धासनस्थितः।।20।।
समाकुंचितनाभिर्द्राक्कुर्याच्छक्तिश्चलत्यतः। यामार्धाभ्यासतो धैर्यान्मध्यनाड्यां समुद्गता।।21।।
ऊर्ध्वाकृष्टा भवेत्किंचिच्छक्तिर्नाडीमुखं त्यजेत्। ततः स्वतो व्रजत्यूर्ध्वं प्राणोऽतस्तां विचालयेत्।।
चालनात्सर्वसिद्ध्यासिमंडलाद्योगिनो न तु। रुग्भ्यो भयं यमाच्चापि नेतोऽन्यन्नाडिशोधनम्।।

इन श्लोकों में लिंग और नाभी के बीच स्थित कंद का वज्रासन में बैठ कर पैरों से ताडन करने को कहा है। उसके पश्चात् सिद्धासन पर बैठ कर नाभी के आकुंचन के साथ द्रुत गती से भस्रा करने से शक्ति का चालन होता है। अर्धप्रहर तक यह अभ्यास करने से सुषुम्ना में प्रविष्ट कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर खींची जाती है और वह नाडी का मुख खोल देती है। इस से प्राणवायु अपने आप ऊपर उठ कर ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करता है। इस लिए शक्ति को चलाना चाहिए। शक्तिचालन से योगी चालीस दिन में सभी सिद्धियों की प्राप्ति कर लेता है। ऐसे योगी को रोगों से या यम से तक भय नही रहता। शक्तिचालन जैसा नाडीशुद्धि का कोई अन्य साधन नही है।

हठयोगप्रदीपिका में दस मुद्राओं का उल्लेख है।

महामुद्रा महाबंधो महावेधश्च खेचरी। उड्डयानं मूलबंधश्च बंधो जालंधराभिधः।।
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्। इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशकम्।।

इन में तीन बंध और शक्तिचालन अब तक हम देख चुके हैं। आगे खेचरी और विपरीतकरणी का वर्णन

'अं' की, हृदय स्थित श्वेत अष्टदल कमल के मध्य में नील वर्ण वज्र राहुस्वभाव नील 'हूँ' की तथा चार नाड़ी कमलों में भ्रूं आं ज्रीं खां और सोमा के चार नाड़ी दलों में अधोमुखी 'एवं मया' की भावना की जाती है। कण्ठ स्थित षोडशदल चक्र के मध्य रक्त वर्ण सूर्यस्वभाव रक्त ॐ की और चारों दिशाओं में रक्त वर्ण ऊर्ध्वमुखी ॐ लं अ लं की तथा 32 दलों वाले श्वेत वर्ण उष्णीषचक्र के मध्य में चन्द्रस्वरूप अधोमुखी तिलकनाद से विभूषित 'हं' नाद से अलंकृत की भावना की जाती है। प्रश्वास (रेचक प्राणायाम) के समय प्रत्येक वर्ण से पाँच रश्मियाँ निकल कर सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर लेती हैं और श्वास (पूरक प्राणायाम) के समय सभी प्रभामय वायुमण्डल में विलीन हो जाती हैं। कुम्भक प्राणायाम के वर्णों सहित नाड़ीचक्रों में आदर्श में प्रतिबिम्बित होने की भाँति स्पष्ट ध्यान लगाना चाहिये। उसके बाद मातृदेव को प्रभा में विलीन चन्द्र 'ओं' में और फिर अपने हृदयस्थित बीज में एक बार विलीन कर ज्ञान अग्नि को प्रज्वलित किया जाता है। पुनः उसे नाभिक्षेत्र के बीज में विलीन करने पर यह अग्नि ऊर्ध्व की ओर बढ़ कर हृदयचक्र में पहुंच कर पाँच तथागतों[1] और पाँच मामकी[2] आदि को जलाती है, वहाँ से क्रमशः ऊर्ध्व कण्ठ आदि नाडियों और अक्षरों को जलाती हुई उष्णीष में स्थित हं को जला कर अक्षर महासुख का स्राव करती है। जैसा कि हेवज्रतन्त्र में कहा गया है—

चण्डाली ज्वलिता नाभौ दहति पञ्च तथागतान् ।
दहति च लोचनादीन् दग्धेऽहं स्रवते शशी ॥ (1.1.31)

चण्डाली को अभिधानोत्तरतन्त्र में ज्ञानाग्नि, वज्रमाला में अग्नि, महामुद्रातिलक में कर्मवायु और चक्रसंवर में तिलक कहा है। संवृति में हम इसे तिलक ही कह सकते हैं, जिसका कि स्वरूप अग्निवत् है। चण्डाली के पूर्व कर्म (योग) में मात्र नाभिचक्र से चार अंगुल नीचे ललना, रसना और मध्यमा नाड़ी के मिलन स्थान पर 'अ'प्लुताकार परचित्त को एकाग्र कर कुम्भक किया जाता है। यहाँ प्रज्वलित अग्नि के समान इसका ध्यान कर नाभि में 50 बार कुम्भक किया जाता है। क्रमशः अग्नि ऊर्ध्व गति करता हुआ हृदय में, कण्ठ में और अन्ततः उष्णीष में पहुँचता है। उष्णीष में पहुँचने पर सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग ज्ञानाग्नि से भर गया है, बोधिचित्त शुक्र से अभिन्न हो गया है और अनास्रव महासुख की अनुभूति हो रही है, ऐसा ध्यान किया जाता है। कालचक्र आदि अद्वय तन्त्र-ग्रन्थों के अनुसार इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर के अनास्रव सुख से व्याप्त होने पर वह शरीर में स्थित आस्रव तिलक का नाश कर देता है। जैसे लोहे में रखा पारा लोहे को जला कर नाश कर देता है, उसी प्रकार

1. पञ्चस्कन्ध ही पाँच तथागत हैं।
2. पंचभूत ही पांच मामकी आदि देवियां हैं।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

मेँहीँ दासजी त्रिकुटी पर अवस्थित ब्रह्मलोक के दर्शन हेतु चन्द्र और सूर्य का मिलन अनिवार्य मानते हैं -

"सुरत त्रिकुटी चढ़े , सूर्य ब्रह्म देखो अहो ,
बहुरी अगम ब्रह्मलोक , लीजिये दामा दरियो रे की ।।"[358]

---

354. महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ.सं.- 36
355. महर्षि मेँहीँ पदावली , पृ.सं.- 91
356. मोक्ष - दर्शन , पृ.सं.- 29 - 30
357. मोक्ष - दर्शन ; पृ.सं.- 30 [358] महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ.सं.- 34

योग तथा सन्त - सम्प्रदायों द्वारा इड़ा , पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के लिये गंगा , यमुना , सरस्वती तथा चन्द्र , सूर्य , अंकनालि आदि सांकेतिक शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है । सन्तकवि मेँहीँ ने भी इसीतरह इड़ा , पिंगला और सुषुम्ना को क्रमशः गंगा , यमुना और सरस्वती के रूप में वर्णन किया है -

"पिंगल दाहिन गंग सूर्य इंगल चन्द्र यमुन बाईं ।।
सरस्वती सुखमन बीच चेतन जलधार नाईं ।।"[359]

इन्होंने सुषुम्ना शब्द के लिये कहा है -

"सुखमनियाँ में मोरी नजर लागी ।।
अगल बगल कहुँ दृष्टि न डोले ,
सन्मुख बिन्दु पकड़ी लागी ।।"[360]

सन्त कवि मेँहीँ ने संसार - सागर से पार होने के लिए अनहद के सत् - धुन को एकमात्र उपाय बतलाया है , परन्तु इसके लिये न तो वे शास्त्रानुमोदित किसी हठयोगिक - क्रिया की ओर संकेत किया है न कहीं कुंडलिनी योग की ओर ही प्रवृत्त दीखते हैं ।

"अनहद में धुन सत सो सार ।
भव जल तरिबो यही उपाय ।।"[361]

इन्होंने "ज्योति" को लखने , "शब्द" को पकड़ने , अनुपमेय धुन को आत्मसात् करने तथा शून्य , महाशून्य और भँवर गुफा को भी पार करने की बात कही है ।

---

359. महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ.सं.- 62
360. महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ.सं.- 61
361. महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ.सं.- 59

होता है ।

बिन्दु - ध्यान से दृष्टि का सिमटाव होता है । सिमटाव से हुए व उर्ध्वगमन में अन्धकार का भेदन होता है और ब्रह्म - प्रकाश का दर्शन होता है । स्थूल जगत के केन्द्र पर साधक की पहुँच हो जाती है , साधक को स्थूल संसार पर अधिकार हो जाता है । उसको शीघ्र - सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है ।

475· ध्यानबिन्दूपनिषद् , (सामवेद का) , मंत्र - 2

अब प्रश्न उठता है कि बिन्दु - ज्ञान कैसे होगा ? तो पूज्यपाद सन्त मेँहीँ दास जी महाराज की वाणी में इसका उत्तर हमें यूँ मिलता है । यथा -

"दोउ नैना बिच सन्मुख देख ।
एक बिन्दु मिले दृष्टि दोउ रेख ।।"[476]

बिन्दु की प्राप्ति कहाँ होती है , तो कहते है -

" सुखमन झाँके तिल तारा ।
निरखो सुरत पसारी तारा ।।"[477]

बिन्दु - ध्यान से ही सुषुम्ना में प्रवेश होता है और साधक को अपने अन्तर का धाम द्वार दरसने लगता है । उसकी गति प्रकाश में हो जाती है , जहाँ आश्चर्यमयी ज्योति होती है , और उसके बाद शब्द - मण्डल में साधक की पहुँच हो जाती है । उस शब्द - मण्डल में अनहद - ध्वनि होती है ।

"ज्योति मंडल में अपरम जोत ।
शब्द मंडल अनहद शब्द होत ।।"[478]

अनहद - ध्वनि विविध भाँति की होती है । यहाँ साधक की सुर - धुन से सारशब्द अर्थात् सार - शब्द में लौ लग जाती है । संसार - सागर से उद्धार होने का एकमात्र उपाय यही है ।

"अनहद में धुन सत लौ जाय ।
भवजल तरिबो यही उपाय ।।"[479]

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि बिन्दु - ध्यान करनेवाले को दिव्य - दृष्टि की प्राप्ति होती है , जो दूर - दर्शन का कारण है । उपनिषद् में भी आया है ।

476· महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ० सं० - 58
487· महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ०सं०- 59
478· महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ०सं०- 59
479· महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ०सं०- 59

492 कबीर साहब-जीवन वृत्तावली स्टोक [डॉ॰ गोविन्द त्रिगुणायत] पृ॰सं॰-18

493· कबीर साहब की शब्दावली, भाग - 1, पृ॰सं॰- 68

494· कबीर [डॉ॰ रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ॰सं॰- 152

बिन्दु - ध्यान को शून्य - ध्यान भी कहते हैं इसलिये कि अपने अन्तर के आकाश में यह ध्यान किया जाता है। सन्त गुलाल साहब की बानी में आया है -

" उलटि देखो घट में जोति पसार ।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ।
पैठि पताल सूर ससि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार ।।
गंग जमुन के वार - पार बिच, भरतु है अमिय करार।।
ईंगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर मुख धार ।।"[495]

सन्त गुलाल साहब कहते हैं कि बाहर नहीं अपने अन्दर देखो। इस प्रकार देखने से बिना किसी बाजे की आवाज अपने अन्दर में सुनाई पड़ेगी। साथ ही विविध प्रकार के प्रकाश भी देखने में आयेंगे। अपने अन्दर में प्रवेश करने के लिये दृष्टि की दायीं धार [सूर्य] और बायीं धार [चन्द्र] को एक कर त्रिकुटी यानी प्रकाश के द्वार में प्रवेश करो। प्रकाश की ओर गमन तब होगा, जब ईंगला पिंगला को सुषुम्ना में स्थिर करोगे। जब सुषुम्ना में दृष्टि स्थिर होगी, शून्य की धार यानी प्रकाश और शब्द की धार, जो बह रही है, पकड़ में आयगी। यह अमृतमय है।

इसी को सन्त चरणदास जी की शिष्या सहजोबाई ने हरिरस कहा। यह हरि: रस प्राप्त कैसे हुआ ? तो वे कहती हैं -

" इड़ो पिंगला उपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा ।
पीवन लगे सुधारस जब ही, दुर्मति पकड़ी पिछारा ।।
गंग - जमुन बीच आसन मार्यो, चमक - चमक - चमकारा।
भँवर गुफा में दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अगम अपारा ।।"[496]

दृष्टि की दोनों धारें, जिसे गंगा और यमुना कहा, को एक बिन्दु पर मिलाने से सुषुम्ना का पाट खुल गया। जब वहाँ अमृतरस पान करने लगी, तभी कोई दुष्ट वृत्ति वाले ने उनकी उस समय की साधना में विघ्न डाला, जिससे उनकी

495· गुलाल साहब की बानी, सत्संग - योग, भाग-2, पृ॰सं॰- 195

496· सहजोबाई की बानी, पृ॰सं॰- 49

सन्तकवि मेँहीँ ने विहंगमार्गी साधक के लिये लिखा है - " यह आवश्यक नहीं है कि पिण्ड में नीचे के चारों चक्रों में होकर पिपीलिका मार्ग पर श्वास की कसरत या प्राणायाम से चलकर तब आज्ञाचक्र में पहुँचकर विहंगममार्ग को पकड़ा जाय । उसकी सुरत आज्ञाचक्र में सिमटकर विहंगमार्ग को पकड़ती है ।[321] यह सुषुम्ना में शून्य - ध्यान या दृष्टियोग द्वारा विन्दु ग्रहण करती है और ऊर्ध्वगति प्राप्त कर सूक्ष्म मण्डल के सूक्ष्माकाश के ब्रह्म - प्रकाश में वह विहंगम की तरह विचरण कर आनन्द - मग्न होती है । यही विहंगम - मार्ग है ।[322] इन्होंने लिखा है -" शून्य - ध्यान से पंछी या विहंगम की तरह शून्य - पथ पर चला जाता है ......। इस पर दृष्टियोग द्वारा यात्रा की जाती है । चकित् देखना और आकाश में गमन होना , इस यात्रा में होता रहता है, इसीलिये यह विहंगमार्ग कहलाता है ।"[323]

मीन मार्ग :

मीन का अर्थ मछली होता है । वह छोटी मछली किसी नदी की तेज धार में आसानी से भाटा से सिरा में जाती है । इसीप्रकार पिण्ड में ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित ब्रह्म - शब्द धारों पर सिमटी हुई सुरत छोटी मछली की तरह शब्द - धारों के के सम्मुख चलती है ।

" सुखमन के झीनाघाट से अमृत की धारा बहि रही ।
मीन सुरत धार धर भाठा से सीरा चढ़ि रही ॥"[324]

यह अन्ततः पिण्ड के सबसे ऊपर वाले मण्डल की केन्द्रीय शब्द - धार पर चलकर पिण्ड और ब्रह्माण्ड से मुक्त हो जाती है - ब्रह्मनाद में समा जाती है । यही मीन - मार्ग है ।[325]

---

321. विनय - पत्रिका सार - सटीक , पृ.सं.- 35 - 36
322. सन्त कवि मेँहीँ : व्यक्तित्व और कृतित्व , पृ.सं.- 329
323. सन्तवाणी सटीक , पृ.सं.- 54 |324| महर्षि मेँहीँ पदावली - पृ.सं.- 62
325. सन्त कवि मेँहीँ : व्यक्तित्व और कृतित्व , पृ.सं.- 330

सुरत - शब्द - योग और मीन - मार्ग में कोई अन्तर नहीं है । अपनी रचनाओं के एक स्थल पर सन्त कवि मेँहीँ ने नादानुसन्धान या सुरत - शब्द -योग को ही मीन - मार्ग कहा है । " जैसे मछली भाटा से सिरे की ओर जल की उलटी धारा पर सुगमता से चलती है , इसीतरह शब्द - धारों पर सुरत नीचे से , ऊँचे - से - ऊँचे की ओर अर्थात् स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर सुगमता से चल सकती है । इसीलिये नादानुसन्धान या सुरत - शब्द - योग को मीन - मार्ग कहते हैं ।[326]

" महर्षि मेँहीँ पदावली " में विहंगम - मार्ग और मीन - मार्ग का इन्होंने बड़ा स्पष्ट उल्लेख किया है -

" उदित सेतह विन्दु में , पिलि चलो चाल विहंग ।
तहाँ अनहद नाद धरि चढ़ि, चलो मीनी ढंग ॥
विहंग मीनी मार्ग दोउ से , चलो हे मन मीत ।

18:56

अनहद शब्द को प्रगट करने के लिए आसन लगाकर पूर्व को मुँह करके एकान्त में ऐसे स्थान पर बैठना चाहिये जहाँ किसी प्रकार का शोर न हो । यदि भीड़भाड़ वाली जगह पर ही बैठना पडे तो समय ऐसा चुनना चाहिये जब वातावरण शान्त हो । ऊपर नीचे के जबडों (दांतों) को मिलाकर होंठ श्री मिलाकर मुँह बंद करना चाहिये। गर्दन को झुकाकर ठोड़ी को छाती पर लगावें तथा जिह्वा को उलट कर तालू पर लगावें, स्वास को नाक से लेकर, सुषुम्ना में चलाना चाहिये । हंस शब्द (जो गुरु ने बताया हो) को उलट-पलट कर प्राण के साथ मिलाकर, सुन्न में चलाना चाहिये । मुँह में जो लार (लब) आये उसे बाहर फेंकें, पीना नहीं चाहिये । चौबीसों घंटे ऐसा जाप हो सकता है। ऐसा अभ्यास करने से सुर्ति गगन में चढ़ती जाती है । याद रखना चाहिये कि बिना अभ्यास के नाद का साक्षात्कार नहीं हो सकता, इसलिए अनन्य मन से ध्यान लगाकर अभ्यास करना चाहिये । ऐसा करने से नाद की अनुभूति उत्तम साधक को एक सप्ताह में ही हो जाती है यदि देर लगती है तो एकाग्रता की कमी समझना तथा दृढ़ निश्चय रखकर अभ्यास करते जाना । योग्यतानुसार समय लेकर भगवद कृपा अवश्य ही होगी। शुरू में यह नाद मिली जुली आवाज में सुनाई देता है। बाद में अभ्यास बढने पर साफ-साफ अलग अलग दस प्रकार से प्रगट होता है।

1. **चिन चिन टिड्डी तथा चिडियों की आवाज** – इसे सुनकर रोमांच तथा कम्पन होने लगता है

2. **झीगर या भुग जैसी आवाज**– इसको सुनने से आलस्य तथा तन्द्रा जैसी मस्ती का अनुभव होता है।

3. **घंटी-घड़ियाल –** इसे सुनने से भक्ति, ईश्वर प्रेम तथा उत्साह बढ़ता है।

4. श ... टी से आता है। त्रिकु ... टप ... र से सुगन्ध आने लग ...

WhatsApp
Call Us Now

18:58

शरीर में बहत्तर हजार नाडियाँ हैं जिनमें तीन मुख्य हैं-इड़ा, पिंगला और तुम्ना। प्राण प्रवाह इडा में वाम पथ से पिंगला में दक्षिण पथ से तथा सुषुम्ना में मध्य पथ से होता है। प्राण के सुषुम्ना में प्रवेश बिना शक्ति जागृत नहीं होती। सुषुम्ना का बड़ा महत्व है क्योंकि यह काल नाशक है। या मूलाधार चक्र से कपाल की ओर गई है। इसके नीचे कुण्डलिनी पद्म है जिससे साढ़े तीन लपटे देकर लिपटी, अद्याशक्ति सुषुप्त अवस्था में पड़ी है। इस शक्ति के जागरण से सूर्य के समान अद्भुत ज्योति प्रगट होती है। सुषुम्ना के अन्दर बज्रा, बज्रा के अन्दर चित्रणी, चित्रणी के अन्दर ब्रह्म नाड़ी है। इसी में सुर्ति चढ़ती है। ज्यों-ज्यों ब्रह्म नाड़ी में सुर्ति ऊपर चढ़ती है, त्या-त्यों मलावरण साफ होते जाते हैं। मनुष्य के पाप समूह सुषुम्ना में प्रविष्ट होते हैं जिससे अद्याशक्ति को रोक लगती है परन्तु प्राणों के संयम से या अद्याशक्ति सुषुम्ना को शुद्ध करती हुई आगे बढ़ती है और सुर्ति ऊपर बढ़ती जाती है। इससे चित्त के संस्कार जलते हैं और योग शक्ति का स्रोत बढ़ता है। जब योगी के ध्यान की उत्तम गति हो जाती है तब अनगिनत शक्तियाँ प्रगट होती हैं तथा देवताओं के दर्शन होने लगते हैं जिन्हें देखकर योगी बड़ा प्रसन्न होता है। ये देवता तरह-तरह के प्रलोभन देकर योगी का ध्यान डिगाना चाहते हैं। उनके भ्रम जाल में न आना चाहिये तथा दृढतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढते रहना चाहिये। देवताओं के व्यवहार स्तुति, प्रशंसा से तथा ऋद्धि-सिद्धियों से अभिमान आ जाने का भय रहता है। इसे घातक तथा समाधि में विघ्न समझ कर सतर्क रहना चाहिये

पग-पग पर योगी को विरोधी लोगों से पाला पड़ता है जो हर समय योगी । की निन्दा करते रहते हैं। यहाँ योगी को कोध न करना चाहिये संयम रखना चाहिये तथा नीचे लिखी बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

1. निन्दक साधु का हितैषी होता है क्योंकि वह साधु के सब दोषों को एक-एक करके खोजता है और उन दोषों को खुद ही खा जाता है तथा संत का पुण्य भण्डार सुरक्षित बना रहता है।

2 ... ोगी के दोषों को अप ... में जात ... ष्ठ बनाता है।

WhatsApp
Call Us Now

3. साधु का निन्दक रात दिन अपना दाँव खेलता रहता है परन्तु ईश्वर

19:08

कहै पानप हर हाजिर तासूँ, एक पल बिछड़े नाहि।।

अजपा जपे बिना मुख माला, यो समरै हरिपावे।

पानप कहे भरम में समरे, राम हाथ नहीं आवै।।

घर के आंगन आवै-जावै द्वादस अंगुल माला।

कहे पानप भजते मुक्ता होई है कोई फेरन वाला।।

द्वादस अंगुल माला है कोई संत सयाना फेरे।

कहे पानप संसार न माने, संत कहत है टेरे।।

द्वादस अंगुल माला है फेरै, अजर-अमर घर पावै।

कहे पानप बिन जिह्वा सुमिरे, सुन्न मंडल लौ लावै।।

जाकी सुन्न मंडल लौ लागी, दर्शन भया प्रकासा।

कहै पानप अलख अरूप दरसाया, मिट गई यम की त्रासा।।

पाँच तत्त की डोरी करके, मनका मणिया पोवै।

सहज सुमरन होये सूरत सूँ, कहे पानप मुक्ता होवै।।

सुमरन हाथ जिभ्या नहीं रोके, ऐसा सुमरन सार।

सुमरन कीजे सुरत सुँ, हाथ जिभ्या करे कार।।

मुख सुँ कहै सो थोतरा, अन्तर धरे सो सार।

बिन जिह्वा पानप कहे, हर-हर नाम उचार।।

सुरत करै रंकार धुन, नहीं जिह्वा का काम।

पानप कहे सुनो भई साधो, यह विध सुमरो राम।।

अजपा सोई सुरत सूँ सुमरै, मुख सूँ कहना नाहि।

अंतर धुन राचा रहे, कहे पानप मुक्ति समाई ।।

माला जपू न कर जपू, मुख से कहूँ न राम।

सतगुर अंतर ठांव बताई, तहाँ रटू अष्टयाम ।।

अष्टयाम वहाँ रहूँ, जहाँ दो पर्वत की संध।

वहाँ आसन चढ़ पानपा, होत सदा आनन्द ।।

WhatsApp

Call Us Now

19:08

हर जन ऐसी युक्ति उपावे, चंदा सूर एक घर लावे।।

पानप शब्द करो विचारा, समझत होवे भव जल पारा।।

अनहद धुन सुनत रहूँ बिन काना।

योही समझ है मूल भक्ति को, ना जिभ्या से कहना।।

सोधे नाथ निरतसू अंतर, सुरत गगन को ताना।

सुरत गगन चढ़ अनहद बाजे, कोई सुने संत सुजाना।।

मंडल आकाश अंध मुख कुँआ, चूए अमी रस धारा।

पिवे योग युक्त का योगी, चहुँ दिस भया उजारा।।

पिवत अमी जन भया मदमाता, अनुभव बानी गावे।

गूंगे ने गुड़ खाय बखाना, सैन कोई जन पावे।।

आवे जाय मरे न जीवे, गुरु खोजी खोजा।

आवत जात अगम समावै, ताको त्रिभुवन सूझा।।

कहै पानप सुनो भई साधो, यह विधि किस तू कहिये।।

साँच कहै सब जग खीजे, समझ चुप ही रहिये।।

सोहं सोहं स्वासा कह, शब्द अनाहद कोई लहे।।

सोहं ऊपर अलख मुकाम, संतो परस लाया विसराम ।।

सोहं चाल सुने सोई कहे, सोहं चाल कोई बिरला लहे।।

सोहं ऊपर आप विराजे, कोई बिरला जाय अधर में छाजे।।

पानप सतगुर सेती पाया, सुरत पकड़ के तहां समाया।।

कहै पानप नाम प्रचंड है, जो कोई धारै हृदय माहिं।

चार वर्ण और तीन लोक से, ऊँचे दै चढ़ाहिं।।

कहै पानप नाम प्रचंड है, धरा सबके सीस।

सुरत विचारे दसवें द्वारे, तब पावै जगदीस ।।

सतलोक सतगुरु से पावै, मनसा धर मन सेव लावै।।

[illegible] बिना फंद जाय, अधर अल[illegible]

WhatsApp
[illegible]न लागी सुनके धून[illegible]
Call Us Now

पानप कहै संत होय ऐसा, भव से पार मिटे यम त्रासा।।

19:10

आँठों पहर रहै लौलीना, हरि सुमरन से मन थिर कीना ।।

जन पानप विनती करें निज दासन के दास।

मन पहचान सुरत जब लागी, तब वाणी भई प्रकास ।।

कहन सुनन की गम नहीं, जो प्रभु करे सोई होय।

करण हार और नहीं दूजा, घट में सूझा सोय ।।

साँच बिना सुख नाहीं भाई साधो साँच बिना सुख नाहीं ।।

साची कहूँ न मानै कोई, मिथ्या सूं सिर मारै।

भव जल माहिं जिहाज नाम बिन कहो कौन पार उतारै ।।

साँची संत विचार कहत है बिरला चित बसावै।

चन्दा सूर इक कर राखे तो अलख पुरूष दरसावै।

साँची मूरत लाय मन राखे, पल थिर ठहराई।

सहजै प्रगटै उजियारी, तिमर सब नस जाई।।

एक भवन जाके दस दरवाजे नौंवे खुले सोई छारा।

नौ खंड खोज दसों दिस खेले, सोई गुरु हमारा।।

सुन्न सरोवर निर्मल तीरथ, नहाय सो उज्जवल होई।

सेवा पूजा सनमुख आत्म, और न दूजा कोई।।

शब्द हमारा ना पहचाने, भ्रम में जन्म गवाँवै।

कहै पानप बिन शब्द गुरु के, जन्म-जन्म दुख पावै।।

आठों पहर युक्त सो योगी, गगन गुफा में रहना।

पानप कहें यो साँची, भ्रम साथ नहीं बहना।।

करना हो सो सब कर लीजो, अकरन भरी बात।

कहै पानप अकरन यो ही, मन में सुरति समात ।।

करनी करे सो करम है, यम सूँ जीव न छूटे।

अकरन करे कहैं जन पानप, तब यम का जाला टूटे।।

[illegible] सुरत भटके, मुर्ख न [illegible]

WhatsApp

[illegible] रम भुलाना, गल प[illegible]

Call Us Now

[illegible]

19:12

सुन्न कहा मस्तकरूँ नीचे, नैन नाससूँ ऊँचे।
कहै पानप वहाँ हरिजन नहाय, पलपल नहाय सूँचे ।। ३०॥
दो नेत्र बिच नासिका, जहाँ सरोवर मान।
कहै पानप सतगुरु मिले, सुरतसूँ लेत पहिचान।।३१।।
सुन्न देस में राखे बंद्य, निसदिन ताके सत् की संघ।
सत् की संघ तके सुख होय, अलख दरस बिछड़े नहीं कोय।।
३२॥
मन थके मनसा थके, सहज स्वाँस थक जाय।
चाल पलटे पानपा, यम न सतावे ताय।। ३३।।
घट-घट अमृत सर भरे, पीवे कोई नाहि।
कहै पानप अमृत तजो, जगत प्यासा जाहि ।।३४।।
निकट नीर प्यासा मरे, यही अचंभा मोहि।
भर-भर दृष्टि सुरत पीवे पानप, बहुरि प्यास नहीं होहि ।। ३५॥
मन धोय तन निर्मला, तन धोय मन मैला।
कहै पानप तन कहाँ लग धोऊँ, विषम मैल तन फैला।। ३६।।
मन मैला तो सब तन मैला, तन धोवे सब कोय।
तन धोय मन उज्जवल नहीं, पानप मन धोवे न कोय ।। ३७।।
जब लग भटके सुरत मन तब लग गंदम-गंदा।
कहै पानप निर्मल तब ही जानो, थिर होय सूरज चन्दा।।३८॥
कर स्नान सुरत के जलसूँ, मन सागर में नहावै।
पानप कहँ जुगत कर ऐसी, आवागमन नसावै ॥ ३९॥
निर्मल नाका नाम का, सत्गुरु दिया बताय।
चितवन के तो निकट ही, पानप जिनकी सूरत समाय।।४०।।

WhatsApp ग देव गंध Call Us Now

काया सोध

गंगा जमुना और सरस्वती, बरसे झिलमिल धारा।
बिना नयन कोई कोई परखे, रूप अरूप अपाारा।।१।।
निकट नाक सुध सुधी लाई, सुरत भई पटरानी।
सज्जा मिली बहुत सुख देखे, तब बहती थीर ठहरानी ॥२॥
साधो सब सुरत के खेल, सुरत बिना नहीं पावे ।
दीपक बले तेल बिन बाती, जब मन में मुरत समावे।।३।।
धुन उपजी मन से मन खोजा, धुन में रहा समाई।
वह धुन लागी बहुत प्यारी, पलक न बिसरी जाई।।४।।
पाँच पचीस सुन्न में सिमटी, लगी ब्रह्म की पूजा।
काया सोध यो तत्व पाया, सब घट एक ही सूझा।।५।।
भँवर गुफा में आसन माँडा, मनसा मंडप ताना।
धुनी ध्यान तपे मन तामें, तब सीतल भये प्राणा।।६।।
सीतल भया मिटी जब तपना, मूल मन्त्र आराधूं।
सुमरन करूँ बिना ही रसना, सुखमन पिंगल साधू ।।७।।
हर-हर रटन रैन दिन लागी, बिसरे ते मर जाऊँ।
काया सोधत आत्म सूझा, घट में दरसन पाऊँ ।।८।।
योग युक्ति का अधर सिंहासन, अलख पुरूष की पूजा।
भ्रम बिलाया घट में पाया एक, और नहीं दूजा ।।९।।

WhatsApp
Call Us Now

आत्म बोध साधना

The Yogi does not care about the posture, food and dress but observes patience, contentment and compassion and thus he is not charmed by Maya. He having burnt the three qualities intertia तमोगुण mobility (रजोगुण) and harmony (सतोगुण) attains the fourth goal where the angel of death torture him not.

मनो जीतं योग युक्ता, रिपु-वायू[१] रोकन्त मूल बंधं ।
षट-चक्र बेधन्तं बुद्धस्य मानवी, वास[२] स्वांस[३] सनो[४] सन्धं[५] ॥३०
सतो सन्धं पवन बन्धं, रवि शशि करत इकतरं[६] ।
जस्य स्थानं जोतस्य जोती, तस्य दर्शनं भवातिरं ॥ ३१
भवातिरं मजग[७] जरं, पंच इन्द्रिय विष तजन्तं ।
हर हर धुनि जिह्वा नासतं[८], एवं सत्यं[९] तत फलं ॥ ३२

मन को वश में रखने वाला योगी योग-युक्त कहलाता है । वह योगी मूलबंध क्रिया द्वारा अपान वायू को स्थिर करता है । मूलाधार-चक्र में कुण्डलीनी शक्ति विराजमान है । प्राणायाम से जागृत होकर यह शक्ति मेरुदण्ड के भीतर प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है, जहां प्रकाश दिखाई पड़ता है । इस लिए ज्ञानी पुरुष अपने शरीर में छः चक्रों को शुद्ध करते हैं और अपान व प्राण वायू को ठीक रीति से निरोध करके उनको मिलाते हैं ।

इस प्राण व अपान वायू के मेल से शुद्धि व स्थिरता प्राप्त होती है इडा, पिंगला नाड़ियां सुषमना में लीन हो जाती हैं । फिर उस स्थान का जहां ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है दर्शन मिलता है; जिसके दर्शन से मुक्ति हो जाती है, मन का निग्रह हो जाता है, पांचों इन्द्रियों के विषय व काम, क्रोध, लोभादि छूट जाते हैं और राम-नाम धुन जिह्वा से न होकर स्वांस द्वारा स्वतः होती रहती है । इस योग साधन का ऐसा वास्तविक फल है ।

१=अपान वायू २=अपान, ३=प्राण, ४=ठीक प्रकार, ५=युक्त करना ६=इकट्ठा करना, ७=मन, ८=नहीं होता, ९=वास्तविक ।

दुखो सुखो एक नामं, आई गई न चिन्तते ।
सोहं सोहं अहं नित्यं, सो जोगी चरण बन्धते ॥४०

जो योगी दुःख-सुख में सम भाव रखता है, लाभ, हानि से अधीर नहीं होता है और जिसके अन्तर में सोहं जाप निरन्तर होता रहता है, वह ईश्वर के चरणों को प्राप्त कर लेता है।

The yogi, for whom pain and pleasure are equal; who minds not gain and loss, and in the innerself of whom "Soham" is being constantly chanted, is united to the Supreme.

—:•:—

देहा परमात्मा अगम स्थानं, गुरू मन्त्र बुद्धि संयमं¹ ।
परमात्मा बुद्धिं संयुक्त² भवेत, जीव गता³ परम दर्शन ॥४१

शरीर में परमात्मा का स्थान 'अगम' है गुरु-मन्त्र से बुद्धि शुद्ध होकर परमात्मा से जुड़ जाती है; और जीव को अपने वास्तविक स्वरूप के दर्शन हो जाते हैं।

AGAM in the body is the seat of God. Guru-mantra harmonises reason and thereby Braham-gyan is gained and Jiva gets the vision of his "Atman"

१=शुद्ध, २=जुड़ना, ३=पाता है।

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व चीन्हा ।
नमोः दास पावन जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फल पायंतं ।
गुरु के चरणारविंदं नमस्कारं-नमस्कारं ॥

शब्द विवेकी आत्म-ज्ञाना,
अकल कलासूँ लह्यो ठिकाना।
आत्म अकल अन्तर में लागे,
तंत झंकार अनाहत जागै।।5।।
सुनके धुन भाजा सब सांसा,
पांचों चोर गये चढ़ं बांसा।
इड़ा पिंगला सुषमन आवै,
आनन्द रुप बधाई गावै।।6।।
तू करता तोसे सब होई,
तुम बिन दूजा और न कोई।
जहां-जहां संत कसौटी ताया,
तहां-तहां देह धरै धर-धाया।।7।।
देह गृह नहीं रुप न रेखा,
क्या कोई तुम्हरो करै विवेका।
कहै पानप मैं जीव विचारा,
तू करता सब करने हारा।।8।।

अकल कला षट चक्र बेधे,
सोधे नाभि कमल उधरे।
मूल द्वारा दृढ़ कर बांधे,
वायु अपावन जानन दे।।4।।
कर विचार पानप जन बोले,
सतगुरु भेंटे खबर पड़े।
सन्त की संघ मान मन मनसा
दर्शन परसन कभी न टरे।।5।।

8- राग बिलावल

हूँ याचक दरबार को, पड़ो द्वार तुम्हारे,
हूँ सकीम द्वारे पड़ो, अब टरत न टारे टेक।
रीझ करो प्रभु आपनी, मांगू नहीं माया।
बड़े-बड़े मुनिजन, देवता, इन सब चुनखाया।।1।।
रिधि सिधि याचू नहीं, और मुक्ति ए चारों।
नाम-दान मोहि दीजिए, यो रीझ हमारो।।2।।
अष्टसिद्धि नवनिधि बापड़ी, अपनी धर राखो।

मंडल अखण्डित यंतर बाजै,
निराकार आकारा।
संसारी स्वप्नै नहीं पावै,
पहुँचै संत प्यारा।।13।।
नक सुध बाट घाट जहां औघट,
सब संयम उस ठाई।
पहुँचै पवना यतन-यतन कर,
जीव साथ चढ़ जाई।।14।।
नाभि कमल सूं लहर उठाऊं,
ररंकार ध्वनि वाणी।
बंधु मूल शूल मिट जाई,
सुरत उर्ध की तानी।।15।।
जन्म जन्म के बिछुड़े हंसा,
दोऊ अमिल मिलाऊ।
अलख अरूपी ज्योति स्वरुपी,
घट में दर्शन पांऊ।।16।।

पिंगली नाल अलल मै राखू,
सुख मन लेके धाऊं।
योग युक्त कर युग को बांधू,
तब साचा हरि गुण गाऊं।।17।।
बूझ अबूझ सोई हम बूझा,
है अदेख सोई देखा।
अन्तर यामी अन्तर माहीं,
पूरण तत्व विशेषा।।18।।
नवला घाटी मन समझाऊँ,
सुरत अधर लटकाऊं।
पांच पच्चीस घेर के मारू,
तब हरि का दास कहाऊं।।19।।
द्वादस कमल सहज थिर किया,
फेरी दृष्टि पछाई।
ररंकार ध्वनि रोम रोम मैं,
मैं झणकारा झण नाई।।20।।

नाद बिंदु के घर में रहै,
योग युक्ति से योगी लहै।।3।।
ज्ञान फावड़ी धूनी ध्यान,
तपता योगी परम सुजान।
ब्रह्म अग्नि दिन रैन जगावै,
सो योगी फिर योनि न आवै।।4।।
चित कर चकमक मनसा पथरी,
लावत ब्रह्म अग्नि प्रजरी।
तामें त्रिविध ताप जरावै,
मस्तक वही भभूत चढ़ावै।।5।।
सुन्य सरोवर निस दिन न्हाय,
चेले पाँच लिये लड़ लाय।
चेले पाँच लिये कर एक,
योगी मिटै कर्म की रेख।।6।।
संशय सिंह योगी कोई मारै,
कर बारंबार आसन धारै।

भजन ।। राग राम कली।।

गाऊं गो गुण गाऊंगो,
मैं सुमर सुमर गुण गाऊंगो।
जो कोई जीव भ्रम सों छूटे,
मैं हरि यश गाय सुनाऊंगो।टेक।
पाँच पच्चीसो पवन बांध कै,
अधर में अधर झुलाऊंगो।
आत्मराम निरन्तर सेवा मैं,
अनहद बीन बजाऊंगो।।1।

मान सरोवर मौनी हंसा,
हंस सो हंस मिलाऊंगो।
मिल के हंसा एक भये जब,
ममता नीर बहाऊंगो।।2।।
चौड़े मांहि ब्रह्म की माटी,
पवन को झोंक लगाऊंगो।
टपके अमी पीऊं निस बासर,
देह बिकार मिटाऊंगो।।3।।
तीर्थ जाऊं न नीर झकोरूं
झूठी प्रतीत न लाऊंगो।
गंग यमन बिच मिली सरस्वती,
मैं घर ही भीतर न्हाऊंगो।।4।।
कहै पानप मिल साधु संगति,
तब युक्ति भक्ति को पाऊंगो।
सांची भक्ति करुं मनसा सों,
मैं बहुर न भव जल आऊंगो।।5।।

पौराणिक युग में मन्त्र योग का नाद–योग के रूप में और भी अधिक विकास हुआ । हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में नामस्मरण या जाप ने सभी कवियों को प्रभावित किया । विधिविधानों का खंडन करने वाले कबीर और वैदिक मर्यादा के प्रबल समर्थक तुलसीदास – दोनों नामस्मण को महत्वपूर्ण मनाते हैं।

सन्तों ने अपने साहित्य में अजपा जाप का महत्वपूर्ण उल्लेख किया यह मन्त्र साधना का ही एक स्वरूप है। श्वासोच्छवास के साथ मन्त्र का सम्बन्ध

1. भरतीय साधना और सूर साहित्य , डा० मुंशीराम शर्मा, पृ० 11,12
2. श्रीमद् भागवद् गीता, पृ० 11,16,15
3. आचार्य वल्लभ ब्रह्म सूत्र,1–1–24 के अणुभाष्य पृ० 251,252

जोड देने से जाप होने लगता है। दिन रात मे 21600 बार जो श्वास – प्रश्वास चलता है, उसके साथ सोऽह का जाप निरन्तर होता रहता है। इसी सोऽह का उलटा हस है। यदि इसे स्मरण का केन्द्र बना दिया जाय , तो चित्त अपने आप स्थिर हो जाता है।

ध्यान योग :-

मन्त्र साधना की सिद्धि ध्यान साधना मे होती है। इसी का दूसरा नाम राज योग है। गीता मे ध्यान योग को एकात मे अकेले ही स्थिति हो, सब प्रकार की आशा और परिग्रह भावना का परित्याग करके शरीर और मन का निग्रह करते हुए निरन्तर योग का अभ्यास करने का आदेश है।[1] योग साधना मे लगा हुआ वह पापहीन योगी सुगमता से ब्रह्म साक्षात्कार रूप अत्यन्त उत्कृष्ट सुख को प्राप्त कर लेता है।[2] श्रीमद्भागवद् मे ध्यान–योग के लिए मन का सयम, लोभ, दभ, पाखड से बचना और शास्त्रो का अभ्यास करना परमावश्यक माना गया है।[3]

श्वेताश्वर उपनिषद के द्वितीय अध्याय मे प्राणायाम को ध्यान – योग की सहायता मे सहायक कहा गया है। इस उपनिषद् मे ध्यान–योग की विधि इस प्रकार वार्णित है –

स्वदेहमरणि कृत्वा प्रणाव चोत्तरारणिम्।
ध्यान निर्मयनाभ्यासाछेव पश्येन्निगूढवत।।[4]

(ध्यान योगी को चाहिये कि वह अपने शरीर को नीचे की अरणि और प्रणव को ऊपर की अरणि बना कर ध्यान के द्वारा निरन्तर मन्थन करे और अपने ही अन्दर छिपी हुई अग्नि की भाति परम देव परमेश्वर को देखे। जैसे तिलो मे तेल

1 श्रीमद् भागवद् गीता 13,14
2 श्रीमद् भागवद् गीता, 6–10,28,29

॥ ॐ ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या तृतीय बाणी

नाम स्तोत्र

श्री पानपदास जी ने नाम-स्तोत्र अंग में अपने उपदेशों को संक्षेप में रख दिया है इसको ग्रंथ का सार कहा जा सकता है:—

ईश्वर ओंकार स्वरूप है; वह पूर्ण है; सब चराचर में ओत-प्रोत है; जन्म रहित, अविनाशी, तेजोमय है; अपने आत्म-बल से अपनी प्रतिष्ठा का आधार है; माया व प्रकृति का रचने वाला है; मन व बुद्धि की पहुँच से बाहर है। जीव ईश्वर का अंश है। आत्मा ईश्वर का प्रकाश रूपी प्रतिबिम्ब है। संत इस ज्योति का ध्यान करके आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। जो मनुष्य इस आत्म रूपी ईश्वर को अपने अंतर में न खोज कर बनों में घूमते हैं, काया को त्रासते हैं, अन्य देवों में भ्रमते हैं, वह संशय युक्त हैं; मनुष्य योनी को वृथा गवांते हैं और आवागमन के दुख सहते रहते हैं।

गुरू दीक्षा व सत-संग से आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। संत इस परम तत्व को पाने के लिये सुरत-शब्द-योग का साधन करते हैं। ब्रह्मांडी मन ब्रह्मांड के हृदय में रहता है जिसको ओंकार कहते हैं इसका स्थान त्रिकुटी है यह ध्यान का प्रथम स्थान है यहां तीन नाड़ियां—इड़ा, पिंगला, सुषमना मिलती हैं। यह त्रिकुटी सुमेरू पर्वत है; इसकी चोटी को ब्रह्मरन्ध्र अथवा दसवां द्वार कहते हैं; यहां करोड़ो सूर्य व चन्द्रमा के सदृश प्रकाश फैला हुआ है और ब्रह्म की पहचान हो जाती है। सुमेरू पर्वत की चोटी पर दो स्थान सुन्न व महा सुन्न हैं, संतजन यहां "सोहं" जाप में ध्यान-मग्न हो जाते हैं और परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।

राग बिलावल

रूप अरूपी राम हमारो, रूप अरूपी राम ।
देह धरे जो राम कहावे, तासूं न मेरो काम ।।टेक।।
बिनसन-हार[1] देह धर आयो, साहब केह विध कहिए ।
साहब को दूजा कर जानें, तो नरक-कुंड में जइए ।।१
खोजी खोजे, खोज तब पायो, व्याप रह्यो सर्व माहि ।
निपट निकट हरजन कोई जानें, ताको सीस नवाहि[2] ।।२
देखत अकल-कलासूं दीखे, ताहि भजूं अष्टोयाम ।
पाचों को गुरु पकड़ लिया, तब मन पायो बिसराम ।।३
अंतरयामी अंतर देखा, उलटी दृष्टि समान ।
कहे पानप जब सुरत बिचारी, परसो निर्मल धाम ।।४

●:—:●

ज्ञान-सुखमनी

दोहा:—घट में देखा नयन भर, सतगुरु के प्रताप ।
कहे पानप गुरु कृपा कीन्हीं, जपा अजपा जाप ।।१
अजपा जपे बिन मुख जिभ्या, अधर धार में खेले ।
कहे पानप मनसासूं सुमरे, तो यम जालिम कों पेले ।।२
पावे युक्ति अतक को ताके, हर दम चोट नाम के नाके ।
औघट घाटी लगा रहे, जोरे नाम के काल को दहे ।।
उलटे अंतर चाले घात, वह विधि रहे नामसूं रात ।
हरजन ऐसी युक्ति उपावे, कहे पानप भवजल नहीं आवे ।।

१=नाशवान, २=झुकाना ।

राग आसावरी

ऐसो कोई मिलो ना नाम सवादी,
मानुष-देह मिली बहुतेरी, जो मिलया सो बकवादी ।।टेक
नाम सवादी बिरला हरजन, जिन सुषमन पिंगल साधी ।
मन को पलक चलन ना देई, सुनत अनहद-नादी ।।१
मूल कँवल को ड़िठ कर बांधे, नाम निरतसूं शोधी ।
अजपा जपे बिन मुख जिम्या, सहज पांच परबोधी[१] ।।२
अलग देहसूं अगम अगोचर, अकल-कला आराधी ।
पल पल में लवलीन ब्रह्मसूं, लागी सहज समाधी ।।३
हृदय याद बिसारे नाहीं, हर-हर धुन सो लागी ।
सुन्न मंडल में परम जोति को, निरखे ते बड़ भागी ।।४
अष्ट-कवँल-दल अंतर वासा, षट-चक्री कस राखे ।
उलटी दिष्ट पछमकू देखे, अधर निसाना ताके ।।५
आसन मांडे, स्वांसा सोधे, संसारी परमोधे[२] ।
देह निरन्तर परमात्मा, ताकू पलक न सोधे ।।६
कह पानप दर्शन का लोभी, दर्शन बिना न जीवे ।
नौ खंड खोज धरे जहां मनसा, दिष्ट भर भर पीवे ।।७

राग भैरों

ऐसे घट धोव प्राणी ऐसे घट धोवरे, घटके धोय तत् दरसन होय रे ।टेक
सहज[३] की कुम[४] तीन गुण बेगर[५], दे दे मरोड़ी ममता-जल खोवरे ।।१
ज्ञान कर नीर ध्यान कर सिलबा, तामें साबुन सुरत समोवरे ।।२
कहै पानप ऐसे घट को धोवे, घटके धोय गमन न होय रे ।।३

१=सतर्क, प्रबोध, २=प्रमोध, हर्ष, ३=स्वभाव, ४=भट्टी, ५=पृथक ।

राग कल्याण

अजपा जाप जपो रे भाई, ताते अनहद देत सुनाई ॥टेक॥
अजपा जपये जिभ्या हीन, चतुर विवेकी कोइ पावैं चीन्ह॥ १
पांच पवन एक कर राखे, अकल कला ले मन को ताके ॥ २
मन के तके उजाला होय, भ्रम तिमिर मिट जाय है सोय॥ ३
हर जन ऐसी युक्ति उपावे, चंदा सूर एक घर ल्यावे ॥ ४
पानप शब्द करो बिचारा, समझता होय भवजल पारा ॥ ५

२

पूंजी रे साहू की मूरख गवांवे, ऐसो बनज न मोहि सुहावे ।टेक
सुन्न-शहर के साहूकार, तिनके मुक्ता-हल ब्योहार ॥ १
हर हर रटन गिनती करे सिभांल, आड़त संतन के संग डार ॥ २
योही तेरी पूंजी होय अपार, गगन के घर में जाय संचार ॥ ३
सोई साह मेरे मन भावे, कहै पानप पूंजी धुर पहुँचावे ॥ ४

राग देव गंधार

चलो हो तो अगम झूपड़िया छावें,
राजा राना छत्रपति भूपत, यहाँ कोई रहन नहीं पावे ।टेक
कैसा अगम कौन विध जाइए, गुरुसों मारग पावे ।
पवन की डोर लगाय सुन्न में, ता लग चढ़ जावे ॥ १
जहां नहीं धूप छां नहीं ता घर, ज्ञान सहित ठहरावे ।
जहां कुछ काल जिजाल न व्यापे, हरिपुर वतन बनावे ॥ २
बिन करताल पखावज बाजें, बिन रसना गुन गावें ।
कहै पानप निर्मल-पद परसत, बहुर न भवजल आवें ॥ ३

राग सोरठा

भौंरा कँवले खोज ताहि में रहिए, तजकर कँवल अनंत न जइऐ॥टेक
वाही कँवल माहि घर तेरा, ताका करले तू खोज सवेरा।
अबके कँवल न पावे, तो तू जन्म जन्म भरमावे ॥१
वोह तो कँवल नीर बिन फूला, अरे नर मूरखता की तू भूला।
उलट कँवल बस माहीं, तेरा जुरा मरन मिट जाई ॥२
नाभि माहि जाकी नाली, लाव अर्ध ऊर्ध्व मध्य ताली।
जिन ऐसी जुगत विचारी, ताको सहज मिले बनवारी ॥३
जन पानप कहत विचारा, वाही कँवल में सकल पसारा[1]।
वाही कँवल ब्रह्म अरुपी, बिन सूरज धूप प्रकासी ॥४

१=प्रपंच २=दूसरी जगह,

राग गौरी

राम धुन सुनत रहूँ बिन काना,
योंही समझ है मूल भक्ति को, ना जिभ्या से कहना ॥टेक
सोधे नाम निरतसूं अंतर, सुरत गगन को ताना।
सुरत गगन चढ़ अनहद बाजे, कोई सुने संत सुरज्ञाना ॥१
मण्डल अकाश ऊर्ध्व मुख कुआ, चूए अमी की धारा।
पीवे योग-युक्त का योगी, चहुँदिस भया उजारा ॥२
पीवत अमी जन भया मद माता, अनुभव बानी गावे।
गूंगे ने गुड़ खाय बखाना, सैन कोई जन पावे ॥३
आवे जाय मरे न जीवे, गुरमुख खोजी खोजा।
आवत जाता अगम समावे, ताको त्रिभुवन सूझा ॥४
कहैं पानप सुनो भाई साधो, यह विधि काहसूं कहिये।
सांच कहे यह सब जग खीजे, समझ चुपहीं रहिये ॥५

सुरत सधी न मन सधा, यो भक्ति की हान
साध सुरत मन अन्तर राचे, सोई भक्ति परमान ॥१३
कैसी भक्ति करी यो बन्दे, जो दरसा नहीं राम।
कहै पानप बिन मन बांधे, सरा न एको काम ॥१४
सुरत बांध मन में धरे, अलख पुरुष दरसावै।
कहै पानप सांची भक्ति यो, मेरे साहब के मन भावै ॥१५
भक्ति जहां कलजुग नहीं, और कलियुग सबको मारै।
हरि की सरन गह[१] रहो पानप, सकल विघन[१] सो टारै ॥१६
साहब मेरा बाज़ीगर है, माया आज्ञाकारी।
राम कहन की आपा छूटी पानप, रही भक्ति जगतसूं न्यारी ।१७
मोहि दीखे जगत एकसारा, को मलीन को सूंचा।
सबका हाल एकसा मरते, पानप कौन नीच कौन ऊँचा ॥१८
नहचै हरकी भक्ति कर, कर जीव का उपकार।
कहै पानप और सब धंध है, तू धन्धा सब विसार ॥१९
हरि की सरन गह रहो, सबसूं रहो निर्वैर[२]।
कहै पानप प्रभुसों मिलो, मन को अंतर फेर ॥२०
सब आत्मा एकसी, सबसूं कीजे मेल।
एकसूं मिले एकसूं ना मिले, इस दुरमत को पेल ॥२१
सर्व आत्मा एकसी, मित्र सत्रु[३] कौन।
पानप सेवो आत्मा, घट घट गह रहो मौन ॥२२
स्वांस स्वांस हरि चर्णों लागे, अंतर धुन मन माहि।
कहै पानप हरि भक्ति योही है, और सब जग योंही जाई ॥२३
या जग में हरि भक्ति नहीं, भरम भक्ति जग लागा।
कहै पानप सोई मुक्त भया, आत्मसूं मन पागा ॥२४॥
जहां भरम तहां भक्ति नहीं, भरम भूला सब कोय[४]।
कहै पानप सतगुरु बिना, भक्ति न पावै कोय ॥२५

१=बाधा, २=द्वेष रहित, ३=शत्रु ४=लागे, ५=ग्रहण

(नाम लीला)न्यारा होय सतसंगत करे, जन बानी हृदय में धरे।
अगम अपार संत की बाणी, निकट कहै मुक्ति की खानी ॥१
खानी खोजे ते तत सार, सुषमन का घर अगम अपार।
हरिजन देखे दृष्टि पसार, निसदिन बहै मुक्ति की धार ॥२
भर भर दृष्टि उलट कर पिया, चाख अमी-रस युग-युग जिया।
हर-जन हरि रस चाख बखाना, बिरले बिरले शब्द पहचाना ॥३
रोम रोम उचरे ररंकारा, आत्म मन[3] रहना इकसारा।
आतम-तत्व सुरतसूं खोजा, घट घट दरसन अन्तर सूझा ॥४
घट घट एको दूजा नाहीं, मिल सतगुरू यह मति पाई।
जो कोई अपना घट खोजे, अलख पुरुष वाही को सूझे ॥५
मन दीपक मनसा कर बाती, ज्योति बलै सूझे दिन राती।
तिरगुन तेल तामें पूरे, सिर पे निर्मल ज्योति हजूरे ॥६

दोहा—अकल कला को खेल है, देखे उलट कर कोय।
जिन देखा सोई मुक्ता हुआ, ताको आवागमन न होय ॥ १

जो हरजन हरि-रस की चाह, बिखरी सुरत एक घर लाव।
बिखरी सुरत भक्ति नही होई, झूठे भ्रम न भूलो कोई ॥१
एक सुरत पांचों संग वहै, बिन गुरू—यत्न न राखी रहै।
यही सुरत गुन लाग बहानी, तबलग कारज सरै न प्राणी ॥२
जबलग कारज एक ना सरे, सुरत काज और और करे।
सुरत समेट ले मेरे भाई, ठौर सुरत की है घर माहिं ॥३
दो पर्वत बिच सत की संध, योग युगतसूं तहां राखो बंध।
तहां बसे पल चलन न पावे, तब सांचा हरि भक्त कहावे ॥४
सुरत युक्ति कर वहां ठहराई, सो जन दर्शन माहि समाई।
दर्शन कर मन स्थिर हुआ, पाई मुक्ति जीवत मुआ ॥५

दोहा—जो जन जीवत ही मूआ, और सुनी अनहद बानी।
मुक्ति हुआ तब जानिये, योनी न आवे प्राणी ॥१

सांची भक्ति करो हरि केरी[1], तासे जीव मुक्ति हो तेरी।
बिन सतसङ्ग नहिं भक्ति उपचारा[2], भ्रम में भूला सब संसारा ॥२

१=की, २=उपाय, प्रयोग ३=स्तब्ध, मग्न।

भक्त-बोध

हरि की भक्ति करो रे प्राणी, भ्रम साथ नहीं बहना।
भव-सागर की धार तेज है, सुमरण सहित ऊभना[1] ॥१
हरि की भक्ति करे जो कोई, जरा मरनसूं छूटे।
जिन संसय ने यो जग खाया, ता संसय को कूटे ॥२
भक्ति मुकाम दोऊ सुर ऊपर, चतुर विवेकी सोधे।
चोरी करें चोर पाचों, जतन जतन प्रमोदे[2] ॥३
रहे निरन्तर खोजे अंतर, योही भक्ति है साँची।
जप, तप, संयम, सेवा, पूजा, और सब मत काँची ॥४
नक सुध बाट घाट जहां औघट, सब संयम वहां ठाई।
पहुँचे पवन जतन जतन कर, जीव साथ चढ़ जाई ॥५
जन्म जन्म के बिछड़े हंसा, दोऊ अमिल मिलाऊँ।
अलख अरूपी ज्योति सरूपी, घट में दर्शन पाऊँ ॥६
सुन्न सरोवर संजम साधू, द्वादस तिलक चढ़ाऊँ।
डोर पवन की जलका मनिया, कर बिन माल फिराऊँ ॥७
अलख पुरुष ले गगन अराधूं, आतम अंतर धाऊँ।
अकरन करूं रैन दिन ऐसा, बहुर न भवजल आऊँ ॥
तन मन खोजे संसा भाजे, होय ब्रह्म प्रकासा।
कहै पानप जो सुरत विचारे, छूटे जरा मरन की त्रासा ॥[3] ॥६

झूलने

सोहं सोहं निसानी अगम ही की, जिसके ऊपर तो भक्ति मुकाम है जी।
सुरत बांध चढ़े हर दम सूरमा ही, नहीं दुनिया का यो तो काम है जी ।२
तन माहि अचंभा सा होय रहा, रोम रोम गरजे मानो घन है जी ।३
पानपदास भवजल के तिरने को, नहीं दूसरा जतन है जी ।४

१=उठाना, २=शुद्ध, नियमित, ३=डर, ४=स्वर ध्यान।

७

दोहा–पंच अगन[1] धुनी तपे, और रहै बैठा मौन ।
मन मनसा भटकती फिरे, कहो सुमरन लागा कौन ॥१
मन मनसा भटकती फिरे, सुमरन हृदय नहीं किया ।
कहै पानप अमृत संग तजो, मूढ़[6] विष-रस पिया ॥२
मौनी सोई बोलता रहै, ताकी बोली कोई न लहै ।
आप माहि निरखे आप, निस-दिन जपै निरंजन जाप ।
मौनी हंस खोज कर-पावै, मानसरोवर अमिल मिलावै ।
अमिल मिल तब मुक्ता पाय, वह हंसा नहीं आवै जाय ।
लखपाई सत्गुरु की सैनी, कहै पानप सोई सच्चा मौनी ।

८

दोहा–जती सोई राखे रती, सती जीवत होय ।
कहै पानप पिया प्यारी तेई, ऐसे लच्छन[2] सोय ॥
यती सो जोहै[3] आत्मा, सोई यती परमान ।
कहै पानप नर्की जीवड़ा, जो नहीं आतम पहचान ॥२
जतन बिन जती कहावै, जत-मत[4] का कोई मर्म न पावै ।
पाहन पूजै करै अभिमान, ते नहीं पावै ब्रह्म-ज्ञान ।
ब्रह्म-ज्ञान बिन भक्ति न होई, भक्ति बिना भ्रमा जग लोई ।
जतमत साधै सोई जती, कहै पानप सोई राखै रती[5] ।

९

दोहा–करता हरता एक है, ताही का प्रकास ।
पानप ताको देखले, तू क्यों होय उदास ॥१
चाह भई हरि दरस की, जगसूं भया उदास ।
कहै पानप जीव तब, पावै चरण निवास ॥२
सोई उदासी रहै उदास, मनसा राची चर्ण–निवास ।१
सुरत बांध के मनसूं अड़ै, पिंगल कलाधर[7] मझ[8] धरै ।२
अनहद-नाद अनन्त धुन बाजें, परम पुरुष जहां आप बिराजें ।३
प्रेमी होय चर्णों चित लावै, तब परम पुरुष का दर्शन पावै ।४
गुरु प्रतापसूं दुरमति[9] नासी, कहै पानप है सोई उदासी ।५

१=आग, २=लक्षण, ३=खोजे, ४=पंथ, यतन, ५=प्रेम, ६=मूर्ख, ७=इड़ा, ८=मध्य, ९=दुर्मती, कुमति ।

नाड़ी शोधन का विधान

सर्वप्रथम योगी पद्मासन लगाकर चन्द्र (बाईं) नाड़ी द्वारा प्राण वायु का पूर्ण करे तथा फिर सामर्थ्य अनुसार कुंभक करते हुए बाद में सूर्य (दायीं) नाड़ी से रेचन कर देवें । तत्पश्चात् दायीं नाड़ी से वायु को खींचकर उदर को शनै:शनै पूरित करें तथा कुंभक करते हुए फिर चन्द्र नाड़ी से छोड़ देवें, जिस नाड़ी से वायु का त्याग करें उसी नाड़ी से धारण करें तथा यथाशक्ति उदर में रोके रखें[11] जिससे धारण करें उससे विपरीत नाड़ी से शनैः शनैः छोड़ देवें, तेजी से नहीं। इस प्रकार विधिपूर्वक दायीं व बाई नाड़ी से निरंतर अभ्यास करते हुए तीन मास में या कुछ अधिक समय में नाड़ियां शुद्ध हो जाती है। यह नाड़ी शुद्धि का वर्णन दीपिकाकार ने प्राणाायाम के फल के रूप में दिया है। मलों से व्याप्त सभी नाड़ियां जिस समय शुद्ध हो जाती हैं, उस समय योगी साधक सम्यक् प्रकार से प्राणवायु को रोकने में समर्थ होता है। जैसे कहा भी है-

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥ [12]

---

11. बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेणपूरयेत्।
धारयित्वा यथाशक्तिः भूयः सूर्येण रेचयेत्॥
प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः।
विधिवत्स्तमकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत्॥
प्राणं चेदिड्या पिबेन्नियामितं भूयोऽन्यया।
रेचयेत् पीत्वा पिंगलया समीरणमथो बद्धवात्यजेद्वामया ।7
सूर्याच्चंद्रमसारेनेन विधिनाभ्यासं सदा तन्वतां।
शुद्धा नाड़ी गणा भवति यामिमनां मासत्रयादूर्ध्वत ॥ (ह.यो. प्र. 2.7-10)

12. ह.यो. प्र. 2.2

05:49

...थ शरीर का एक विशेष योग है, उन्हें ये अकस्मात् एक बार में ही नहीं हो जाती; कुछ समय लगता है। अनेक कारणों से अनेक दशाओं में देह का वीर्य मथित होकर प्रशस्त मार्ग में हो उपस्थ की ओर जाता है। वीर्य को ऊपर की ओर जाने के लिए भी एक सँकरा मार्ग है। नीचे के मार्ग का मुख बिल्कुल बन्द हुए बिना वीर्य कभी ऊपरी मार्ग में नही जा सकता। वीर्य के स्रोत को ऊपरी मार्ग में न कर पाने से और किसी उपाय से उसको शरीर में नहीं रोका जा सकता। वीर्य कभी एक स्थान में रहने वाली वस्तु नहीं है। उसे अधोगामी न होने देने के लिए कितने ही लोग कितने ही काम करते हैं। शरीर की गर्मी को घटाने के लिए कोई शिरा काट डालते हैं; कोई मन की उत्तेजना को घटाने के लिए अङ्ग आदि का छेदन करते हैं किन्तु इससे वास्तविक कुछ भी लाभ नहीं होता। ऐसे उपायों का अवलम्बन करने से धर्मजीवन का भी कुछ कल्याण नहीं होता। संयम द्वारा चित्त को स्थिर रखकर नाम का जप करते हुए कुम्भक द्वारा वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित करना

पड़ता है। कुम्भक करने से वीर्य के नीचे वाले मार्ग पर दबाव पड़ता है और ऊपर का रास्ता प्रशस्त हो जाता है; अतएव वीर्य की गति नीचे की ओर न होकर ऊपर की ओर हो जाती है। एक बार वीर्य की गति ऊपर की ओर पलट जाने पर फिर वह नीचे नहीं जाता। जब मुझे ऐसा हुआ था तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे एक अमृत के सागर में डुबा दिया है। चेष्टा करके किये गये कुम्भक करने से ही यह सब होता है। अस्वाभाविक कुम्भक से कुछ लाभ नहीं। नाम के साथ साथ थोड़ा थोड़ा इसी रीति से कुम्भक का अभ्यास करो। इन मामलों में सदा खूब चेष्टा भी करनी चाहिए। दृढ़ता न हो तो अधिक समय तक चेष्टा भी नहीं हो सकती।

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य - "नाम का जप करते-करते जो कुछ प्रकट होता है

128 of 540

Favorite Share Flag

Shri Shri Vijay Krishnan Vachnaamrit

Topics Shri Vijay Krishna Vachnaamrit,Vachnaamrit,Jati

(109)
(109-110)
(110)
(111)
111-112)
112-113)
(113)
113-114)
(114)
(115)
115-116)
(116)
(117)
17-118)
(118)
(119)
19-120)
(120)
(121)

बाणी प्रकाश

(1)

आरती करूँ अमरनाथ हरि की, गुरूदेवा सिवराम कृष्णा की टेर

गणपत बाला खोलो ताला, अन्तरजामी सूँड-सूडांला,

रिद्धि सिद्धि का भण्डार भरै की ।। 1 ।।आरती.)

साँझ सबेरे नर नारी गावै, सुख संपति घर लक्ष्मी आवै,

रोग पीड़ा दुख जावे परै की ।।2 ।।आरती।।

निराकार की माला फेरी सुन्नमण्डल की खोली सेरी,

झिगर मिगर वहाँ ज्योति जरै की ।।3 ।।आरती।।

ओ३म सो३म शीतल सासा सुख सागर में हँसे का बासा

लाधुनाथ जोगी ध्यान धरै की ।।4 ।।आरती।।

(2)

[illegible] देव मेरे मन भावे, देवी देवताओं करें बंदगी तीनों

लोक गुण गावै ।।टेर)

मूल महल के रंग झरोखे गणपति आसन लावे ।

रिद्धि सिद्धि नारीअ करत आरती, अमर ज्योति जगावै ।।1।।ग.।

सुंडाला विनायक स्वामी, तेरा पार नही पावै,

एक मास में सिद्धि-प्राप्ति के उपाय

गुरुप्रदत्त नाम का श्वास-प्रश्वास के साथ जप करना विजयकृष्ण-कुलदानन्द की नाम-साधना है। यहाँ गुरुनिष्ठा एवं सद्गुरु को भगवान् मानना भी उपदिष्ट है।

गोस्वामी विजयकृष्ण द्वारा उपदिष्ट पद्धति—एक मास काल-व्यवस्थानुरूप नियम में रहकर निर्दिष्ट प्रणाली द्वारा साधन करने पर साधक को सिद्धि अवश्य प्राप्त हो जाएगी। नियमों का पालन आवश्यक है। नियम हैं—

१. लोक-सङ्ग, स्त्रियों को देखना, उनका स्पर्श, उनके विषय में कुछ भी सुनना या चिन्तन—सभी का त्याग। पूर्ण ब्रह्मचर्य।

२. एकान्त में शुद्ध भाव से, दिन में केवल एक बार, स्वपक्व एवं बिना उबले

चावल का भात खाना एवं भोजन अपने से बनाना।

३. भूमि-शयन करना चाहिये। हाथ का तकिया लगाना चाहिये।

४. यथानियम मुद्रा-बंध, अहर्निश सिद्धासनस्थ होकर प्राणायाम (कुंभक) के साथ नाम-साधन करणीय है।

५. कम से कम तीन दिन भी यह साधना कर ली जाय तो अन्य लोगों के लिये दुर्लभ विशिष्ट अवस्था प्राप्त हो जाएगी।

६. किसी भी सम्प्रदाय का कोई भी व्यक्ति अपनी कुलक्रमागत रीति-नीति के अनुसार अजपा नाम का साधन कर सकता है।

श्रीविजयकृष्ण स्वयमेव वैष्णव थे। उनका संन्यासाश्रम का नाम अच्युतानन्द सरस्वती था।

Breathe the name of God ईसाइयों में भी प्रचलित है। बौद्ध धर्म के 'विशुद्धि मग्ग' एवं त्रिपिटकों के 'कायगतासति' की पद्धति में 'अनापानासति' (श्वास-प्रश्वास में मन:संयोग द्वारा साधना करना) की साधना अजपा जप का ही एक रूप है।

बुद्धदेव की दृष्टि क्या है? बुद्धदेव कहते हैं—एकायनो अयं भिक्खवे निव्वानस्स....... सच्छि किरियाय यदिदं चत्तारो सति पट्ठानो (निर्वाणार्थ यही एकमात्र पथ है)।

विजयकृष्ण की नाम-साधना की विशिष्टता यह है कि यहाँ विदर्शन-भावना के स्थान पर गुरुप्रदत्त अप्राकृतिक शक्तिसंयुक्त नामजप किया जाता है।

'सुखमनी' में नानक कहते हैं—नानक सो सेवक श्वास-श्वास समारै। भगवान् के प्रति श्वास-प्रश्वास में स्मरण करने का यह विधान सिक्ख धर्म में भी है—श्वासि ग्रासि हरि नाम समाल। प्रतिश्वास एवं प्रतिग्रास नामस्मरण करना चाहिये।

सूफियों की साधना-पद्धति—सूफियों की साधना-पद्धति में सुल्तानुल अज़कार' नाम-साधना की उस पद्धति को कहते हैं, जिसमें श्वास के साथ 'अल्लाह' मस्तिष्क में श्वासस्थापन के समय 'हूँ' के जप का विधान है। विधि है—

१. आँख, कान, नाक एवं मुख को हाथ की ऊँगलियों से बन्द करके श्वास नाभि से खींचे एवं मस्तक तक ले जाय। वहाँ श्वास रोककर कुंभक करे।

२. श्वास को नाभि के नीचे से ऊपर ले जाते समय 'अल्लाह' कहे एवं श्वास को मस्तिष्क में स्थापित करते समय 'हू' कहे। 'हू' करते समय आँख को हृदय की ओर स्थिर करे। अन्त में नाक के द्वारा श्वास निकाल दे।

इस साधना के अनेक रूप हैं। यह साधना भी अजपात्मक नाम-जप के श्वास-प्रश्वास द्वारा नाम-जप से मिलती-जुलती साधना है।

विसुद्धिमग्ग की दृष्टि एवं बौद्ध ध्यानयोग—विसुद्धिमग्ग नामक ग्रन्थ के ७-८ परिच्छेदों में ध्यान की एक विशिष्ट पद्धति की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है

और १० अनुस्मृतियों में उसे 'आनापानानुसति' (प्राणायाम) की आख्या दी गई है। दीघनिकाय में भी 'अनुसति' का वर्णन किया गया है।

गोस्वामीजी निद्रा तो लेते ही नहीं थे, पूरा स्नान भी नहीं करते थे। साल में शारदीय पूजा के समय महाअष्टमी के समय स्नान करते थे । एक दिन गर्मी अधिक पड़ने पर शिष्य ने उनसे पूछा -

शिष्य - आप अच्छी तरह नहाते क्यों नहीं हैं ? स्नान करने से शरीर स्निग्ध होता है । मैं तो एक दिन भी बिना स्नान के रह नहीं पाता ।

गोस्वामीजी - मुझे स्नान की जरूरत नहीं पड़ती ।

शिष्य - ऐसा क्यो ?

गोस्वामीजी - रोज सुधा का क्षरण होता है, इसलिए स्नान की आवश्यकता नहीं होती, शरीर सर्वदा स्निग्ध रहता है ।

शिष्य - ''सुधा'' क्या वस्तु है ?

गोस्वामीजी - **भक्ति की अधिकता में मस्तिष्क से जिह्वा में एक प्रकार का रस टपकता है, उसे ''सुधा'' कहते हैं । इस सुधा (अमृत) की ऐसी मादक शक्ति है कि एक बूँद खाने से, चार - पाँच बोतल ब्रान्डी (शराब) से ज्यादा नशा सा होता है । इसे पान करने से शरीर अचल सा हो जाता है परन्तु पूर्ण ज्ञान रहता है। अनेक दिन तक अनाहार में भी रहा जा सकता है। तन्त्र शास्त्र में इसे ही ''सुरा'' कहा गया है ।**

शिष्य - यह सुधा मस्तिष्क से किस प्रकार जीभ में टपकता है ?

गोस्वामीजी - तालुदेश की अस्थियों के बीच अति क्षुद्र छिद्र हैं, उन छिद्रों में सुधा टपक कर जिह्वा में गिरता है ।

शिष्य - इस सुधा का स्वाद किस प्रकार का होता है ?

गोस्वामीजी - भक्ति के भाव के साथ इसका स्वाद बदलता है। कभी खारा, कभी खारा-मीठा, कभी कड़्वा, कभी केवल मीठा होता है ।

शिष्य - इस सुधा में यदि मादक-शक्ति है तो क्या इससे शरीर में कोई अनिष्ट नहीं होता ?

गोस्वामीजी - नहीं, इससे शरीर में अनिष्ट तो होता ही नहीं है बल्कि शरीर स्वस्थ रहता है । भूख भी नहीं लगती एवं शरीर गरम रहता है ।

शिष्य - इस ''सुधा पान'' करने का क्या उपाय है ?

गोस्वामीजी - केवल श्वॉस-प्रश्वाँस में नाम करना पड़ता है। इसे छोड़कर दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

यारी साहेब की चौपाई

घट में पान अपान दुई भाई। अर्ध उर्ध आवैं अक जाई।।
लेके पान अपान मिलावै। वाही पवन गगन गरजावै।।
गरजै गगन औ दामिन दमकै। मुक्ताहल रिमझिम तहँ वर्षै।।
ता मुक्ता महँ सुरति पिरोवै। सुरति शब्द मिल मानिक होवै।।
मानिकजोति उहुत उँजियारा। कहै 'यारि' सोई सिरजन हारा।।
साहेब सिरजनहार गोसाई। जामे हम सोई हम माही।।
जैसे कुम्भ नीर बिच भरिया। बाहर भीतर खालिक दरिया।।
उठै तरंग तहँ मानिक मोती। कोटिन चन्द सूर कय जोती।।
एक कीर्ण कै सकल पसारा। अगम पुरुष सबई ते न्यारा।।
उलटि कीर्ण जब सूर समानी। तब आपन गति आपुहिं जानी।।
कहै यारि कोउ और न दूजा। आपुहिं ठाकुर आपुहिं पूजा।।
पूजा सत्य पुर्ष की कीजै। आपा मेटि चरम चित दीजै।।
उन मुनि रहनि सकल का त्यागी। नवधा प्रीति बिरह बैरागी।।
बिनु बैराग भेद नहिं पावै। केतो पढ़ि-पढ़ि रचि रचि गावै।।
जो गावै वाको अर्थ बिचारै। आपु तरै औरहुँ को तारै।।
तारनहार समर्थ है, और न दूजा कोय।
कहै 'यारी' सतगुरु मिलै, अचल अमर तब होय।।930।।

चौपाई

सतगुरु सत्य पुरुष है अकेला। पिण्ड ब्रह्माण्ड ते बाहर मेला।।
दूरि ते दूरि ऊँच ते ऊँचा। बाट न घाट गली नहिं कूचा।।

आदि अन्त मध्य नहि दूरा। अगम अपार अति गहिर गँभीरा।।
कच्छ दृष्ट तहँ ध्यान लगावै। पल में कीट भृंग ह्व जावै।।
जस चकोर चन्दन कै पासा। दीखै धरती बसै अकासा।।
कहै 'यारी' ऐसे मन लावै। तब चात्रिक स्वाती रस पावै।।
निर्मल सन्त कन्त हम पाया। कोटि सूर्य जेहि, निर्मल काया।।
प्रेम बिमल अमृत रस भरिया। अनभव चँवर रैन दिन ढरिया।।
आनन्द मंगल सोहं गावै। सुख सागर प्रभु कंठ लगावै।।
स्वेत पुरुष धनि अति उँजियारी। कोटि भानु शशि छबि पर वारी।।
तेज पुँज निरगुन उँजियारा। कहै 'केशव' सोई कन्त हमारा।।
है हम मैं हम हूँ ते न्यारा। हम बिनु हमरे सकल पसारा।।
हमहीं स्वर्ग नर्क कैलासा। हमहीं ठाकुर हमहीं दासा।।
हमहीं पंडित बेद पुराना। हमहीं काज़ी कुतुब को राना।।
हमहीं राम रहीम कहाई। गुप्त प्रगट है हमहीं आई।।
हमहीं ब्रह्म बिश्नु महेशा। हमहीं बलि बावन धरि भेषा।।

हमहीं चाँद सूर अवतारा। हमरइ रूप है सकल पसारा।।
हमहीं आदि अन्त मधि सोई। हम बिनु दूसर और न कोई।।

राग होरी

हौंतो खेलों पिया सँग होरी।
दरस परस पतिबर्ता पिया की। छबि निर्खत भई बौरी।।टेक।।
सोरह कला सम्पूरन देखो, रबि अरु ससि यक ठौरी।।
जबते दृष्ट परो अविनासी, लागो रूप ठगौरी।।
रसना रटत रहत निशु बासर, नयन लगौ यहि ढौरी।
कहै 'यारी' भक्ति करु हरि की, कोउ कहै ऐसो कहोरी।।1035।।

बिना बन्दगी इस आलम जनि, खाना तुझे हराम है रे।
बन्दा करै सो बन्दगी, ख़िदमत में आठोयाम है रे।।
'यारी' मौला बिसारि के, क्या तू लगा बेकाम है रे।
कछु जीवते बन्दगी कर ले, आख़िर गुरु मोकाम है रे।।1151।।

आँखों से तू जो देखिए रे, सो आलम सफ़ानी है रे।
कानों से जो तू सुनिए रे, सो ऐसी कहानी है रे।।
इस बोलते को उलटि देखै, सोई आरिफ सोई ज्ञानी है रे।
'यारी' कहै यह बूझि देखा, और सबै नदानी है रे।।1152।।

दोऊ मूंदि के नयन अन्दर देखा, नहिं चाँद सूर्य दिन राति है रे।
रोशन शमा बिनु तेल बाती, उस जात सों सब सिफ़ात है रे।।
गोता मारि देखो आदत्त मुनि, कोऊ और नहिं संग साथ है रे।
'यारी' कहै तहक़ीक़ किया, मुतलक़ मोती की जात है रे।।1153।।

आँखों चितै के पाग बाँधा, और साधा गगन को रे।
उत्तर दिशा गौन किया, फिर जाय देखा उस बन को रे।
सागर के बी में बुन्द को लाय के, उलटि मारा इस मन को रे।
'यारी' कहै अकल कला बिनु, नयन देखा दर्शन को रे।।1154।।

जहँ रूप न रेख न रंग है रे, बेरंग सिफ़ात में आपु फूला।
फूल बिना जहँ बास है रे, निर बास के बास भँवर भूला।।
वहाँ दह बिना कमल है रे, कमल की जोति अदल तूला।
'यारी' अल्त मलूल नहिं तहँ फूल देखा बिनु डार मूला।।1155।।

धरती-मिली अकाश को रे, ऊँचे महल में बास पाया।
समुन्द्र में केलि करै, मच्छी पहार ऊपर जाय घर छाया।।
फूल सेती कली भई, मिलि चाँद सूर्य दोऊ घर आया।
'यारी' कहै देखो जीभ बिना, अनहद को तान गगन गाया।।

ज़मीन बरषै असमान भीजे, बिनु तेल बाती जलाइए जी।
वहाँ नूर तजल्ली बीच है रे, बेरंगी रंग देखलाइये जी।।
फूल बिना यदि फल होवै, तदि हीर की लज्जत पाइए जी।
'यारी' कहै यह कौन बूझै, यह कासों बात जनाइए जी।।

इस दरे में मात मात है रे, तहकीक करै आरिफ सोई।
पूरब मलकूत पश्चिम जबरूत, उत्तर के रुख़ लाहूत सोई।
दक्षिण तरफ नासूत है रे, जुलमति में मति रहै कोई।
मते मात सबै अवश्य 'यारी' वह जात सोई जो खुद जोई।।

सूली के ऊपर-मेहर पेखा, मलकूत जबरूत लाहूत तीनों।
लाहूत सेती नासूत है रे, याहूत के रस के रंग भीनों।।
धुआँ होय के ऊपर चढ़ो, मुतलक़ मोती का नूर चूनो।
आँखों चितै के बैठ 'यारी' माते माते माते बीनो।।

गुरु की चरन रज लेइ के, दोउ नयन बिच अंजन दिया।
मिटा तिमिर उँजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लिया।।
तहँ कोटि सूर्य छपे छूने, तिहुँ लोक धनि धनि पा पिया।
सतगुरु कृपा किया मरि के, 'यारी' फेरि से युग युग जिया।।

रूह हमारो आफ़ताब, आफ़ताब के सामने होते हैं।
कल्प नाम को एक रूख है, उसकी ताई बहते हैं।।
आशिक और माशूक बनाय के, 'यारी' दुई न भनते हैं।
नूर तजल्ला खुद बाखुद है, ऐन अल्लाह उसे कहते हैं।।

हम तो एक हुबाब हैं रे, साकिन बहर के बीच सदा।
दरिया के बीच दरिया है रे, मौज बहू नहिं गैर खुदा।।
उठने के हुबाब है रे, मिटने में मुतलक सौदा।
हुबाब तो ऐन दरिया है, 'यारी' नाम धरो है बुदबूदा।।

जहाँ मूल नहिं डार पात है, बिनु सींचे बाग़ सहज फूला।
बिनु डाँडी का फुल फुलो, निर बास के बास भँवर भूला।।

आँधेरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसे आयो,
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है।
टकाटोरि दिन रैन हियहूँ को फूटै नयन,
आँधेर को आरसी में कहाँ दर्शायो है।।
कुल सों खबरि नाहिं जासों यह सब भयो,
मूल को बिसार भोंदू डारि अरुझायो है।
आपनो स्वरूप रूप आपु माहिं देखै नाहिं?
कहै 'यारी' आँधरे ने हाथी कैसे पायो है।।

गावै गगन तान सुनियत बिना कान,
बिनु नयनन देखियत अलख मकान है।
सुरति चढ़ी कमान छेदि गयो आसमान,
ला मकान का मकान उदै अस्त भान है।।
कहै 'यारी' सुजान मेरो कहौ लीजै मान,
सोई सुर ज्ञानी जाके हृदय सदा ध्यान है।
आँख कान नाक मुँह को निहार देखु,
शुन्य में प्रगट जोति याही गुरु ज्ञान है।।

त्रिकुटी में ध्यान धरि देखु तहाँ दामिन दमकै,
चाँचरि मुद्रा को तब याही स्थान है।
भोचरी मुद्रा सोहाग जागै मस्तक भाग,
पाय्रो है सकल निरन्तर की खान है।।
पदुम झलकै शीश जगमग जगदीश आगे,
गोचरि मुद्रा गावै अनहद तान है।
गगन गुफा में पैठि अधर आसन बैठि,
खेचरि मुद्रा आकाश फूलै निर्बान है।।1179।।

बूला साहेब

कीने द्वारा देखैं आपू। कीने द्वारा सुमिरै जापू।
कीने द्वारा आवैं जायँ। कीने द्वारा रहैं समायँ।।
त्रिकुटी द्वारा देखै आपू। शुष मन द्वारा सुमिरै जापू।
इंगला पिंगला आवैं जायँ। दसयें द्वारा रहैं समायँ।।

भजन

गोविन्द सों करु प्रीत मन गोविन्द सों करु प्रीत।।
स्रवन सुनि लो नाद प्रभु को नयन दर्शन पेखु।।
उपनिषद् अरु वेद गावत अचल अमर अलेखु।।
भाव से तू भक्ति करि ले प्रेम सों लवलीन।।
सुरति सों तुम बेड़ा बाँधो, मुलुक तीनों छीन।।
अधम अघिन अजाति 'बूला' नाम सों लवलीन है।।1।।

अर्थ धर्म अरु काम मुक्षहुँ अपनो पद मोहिं दीन।।
सतुगुरु युक्ति बतावल पावलि जिव कर भूल।
सुमिर-सुमिर सुख वेलसहिं सुक्षम गुन स्थूल।।2।।

एसन अद्भुत बुन्द है जुग-जुग अचल अपार।
आवै जाय न बिनसय सदा रहै यकतार।।
मन माने की कहिए तौ लहिए औतार।
अपने-अपने रंग में रंगि रहा संसार।।
मनसा बाचा कर्मना दूजा नाहिंन भाव।
जन 'बुला' गुन गावहीं आनद मँगल बधाय।।3।।

मंगल

मोतियहुँ की झरि झलकत फूलन फुलि फुलवारि।
प्रान भँवर होय बेलसहिं अनहद उठै झंकार।।
बिनु बारिहिं बिनु मालिहु बिन सींचे रंग होय।

बिन नयनन तहँ दर्शन अस अँचरज यक सोय।।
ना वह टूटै ना वह फूटै ना कबहीं कुम्हिलाय।
सर्ब कला गुण आगर सो मों पै बर्नी न जाय।।
अस मंगल यक उतरल सुतरल कर्म हमार।
जन 'वूला' जनि बोसहिं छूटल यह संसार।।4।।

धनि गुरु धनि गुरुदेव जिन्हों गति लाइया।
पर्म जोति निरकार ताहि गुन गाइया।।
मिलि जुलि सखिया सहेलरि चौक पुराइया।
अर्ध उर्ध के मध्य तो कलस धराइया।।
त्रिगुन गुन कर तेल कया तन जारिया।
अष्ट यामु बरै जोति कबहुँ न बुझाइया।।
एसन अद्भुत रंग साधु जन रंगिया।
जन 'बूला' सवधान' ताहि अँग अंगिया।।5।।

शब्द

काया काशी घट करहु नहान। युग-युग पावहु पद निर्बान।
काशी बासी पाँच निवासी, तिर्गुन तामें बसत देवान।।
इनको जानि करिए स्नान, होय मुक्ति मिटै आवा जानि।
गुरु विद्या अक्षर परमान, साधु सँघति मिलि शब्द पिछान।।
'बूला' बोलै ब्रह्म ज्ञान, राम मिलन को याही ध्यान।।6।।

राम रइया लवल फुलवार।
मूल सींच सिंच बाग लगाया। कलियाँ भई तब चूनन आया।।
एक फूलते अनेक कहाया। फूल झरिय झरि फिर कुम्हिलाया।।
यहि फुल कर कोई मर्म न पाय। सर्गुन मध्ये रहल समाय।।
जन 'बूला' सत्गुरु बलिहारं। स्वेत फूल जिन्ह लिहल बिचार।।7।।

का किया पाँडे गीता जपि-जपि। तेरे घट ही बसै नवनीता जपि जी।।
श्रीमुख बचन ते भयो पाँडे गीता। पूछैं अर्जुन फहमीता जपि-जपि।।
जो उलटै सो जपि-जपि गीता। गीता है भ्रम भीता जपि-जपि।।
गीता मीता ब्रह्म पलीता। जोगियैं कहूँ जीता जपि-जपि।।
जन 'बूला' जी चरममहि लीता। साधु चरन गहि लीता।।8।।

शब्द

महबूब दिवाना पियत पियाला निर्गुन खाना।
निर्गुन खाना त्रिकुटी जाना साधु सँगति पहिचाना।।

निरगुन खाना हरदम जाना, अष्ट धाम मस्ताना ।
निर्गुन रूप बोलहिं जन 'बूला' खुला गगन हरखाना।।9।।

राग विहाग

हरी हिये नहिं जाना हे नर, हरी हिए नहिं जाना।
ताके समुझ न परै ब्रह्म ज्ञाना।।
दूध पियाय रिझा मन राखहिं भापहिं वेद पुराना।
आतम राम न नीके जानहिं भूला फिरत दिवाना ।।
करहिं शिष्य आसा गठियावहि तापर करिहिं गुप्तानी ।
कहत फिरै हम सबते ऊपर चौरासी लपटाना।।
बीज एक अंकुर है एकै फल फुल रहत समाना।
उपजत विनसत केते होत हैं, अन्त काहु नहिं आना।।
राम प्रताप की महिमा सुनि लो तीज लोक धरै ध्याना।
जन 'बूला' राम जी को सेवक, बोलहिं शब्द निदाना ।।10।।

हरि चर्नन लगों तेहारो। ममिता मान जान तन वारों।।
ब्रह्मा विष्णु समाधी धारो। त्रिवेनी तिर घाट सँवारों।।
गमन जगमग मनि मनि वारों। भाग बड़ों जिन यह गति सारो।।
पवन पीये थी नागिन मारो। विष उतरो। तब भयो उँजियारो।।
जन 'बूला' जी सदा हुशियारो।।11।।

राग कान्हरा

उतही रहो इतै जनि आव। निर्गुन स्वामी सों मन लाव।।
जन्म मरन का संसै मिटाव। इत उत मन कतहूँ न चलाव।।
जो जन गगन मण्डल घर छाई। ताको आवा गवन नसाई।।
यारी सत्गुरु दिया लखाई। 'बूला' निरखि परम पद पाई।।12।।

शब्द

दरस दियो आपुहिं गोपाल। मग्न भयो छबि निरखि निरंजन।।
भँवर गुफा के द्वाल। सकल भुवन जाको जोति बरतु है।।
ब्रह्म बिष्नु शिव गनो न जायँ। आदि अन्त अरु मध्य सर्व में।।
आपुहि राजत ठाकुर राय। यारी दास अगाधि परम पद कहँ लगि।
धरनों उनकी बात। जन 'बूला' जी चरम गहि लीन्हों।।
जोतिहि जोति समात।।13।।

मोर मनुआँ मनावै ध्यावै पिया नहिं अइलैं हो।
सासु मोरि दारूणि ससुर मोर भोला।

तिरथ त्रिवेणी नहैइबों गगना में जैबों हो।।
अनहद धुनि सुनि दिपक बरैइबों हो।
बारो दिया देखो हिया शुन्य उँजियारो हो।।
यारी सत्‌गुरु पूरो जिन भेद सारो हो।
देखि दर्शन मन तन छोड़ि दिया हो।।
जन 'बूला' बाँणी बोलै मरि के फिर जीया हो।।15।।

रामजी हौं तब चरण अधारी, तुम काटहु कर्म केवारी।।टेक।।
माँगत कछू न चाहत हौं कछु चाहौं दया तुम्हारी।
तुम प्रतिपाल दोऊ कुल तारन केतकि लाज हमारी।।
जौं प्रभु राज सिंगासन देवै मेरे काम न कोई।
हमरे राम नाम सों मिलना होनी होय सो होई।।
चरण प्रताप रहों जग माडे छाड़ों तन मन दोऊ।
सहजहिं दर्शन दिया नरायन अविगति लखै न कोऊ।।
भई है प्रति मेरे मन महियाँ बहियाँ गुर गम होऊ।
जन 'बूला' तहँ चले मगन होय रैन दिवस नहिं दोऊ।।16।।

गुरु बोलै अधर धरेइँया।।
गुरु मेरा हो चेरा। सत्‌गुरु अधर बसेरा।।
गुरु जगमग योति जगावै। तासे जन 'बूला' तहँ सच पावैं।।
जोगी बोलैं गगन गुफैयाँ।।60।।

अर्ध उर्ध की बटिया में कहि गैइला जोग जोगैइयाँ।
गंग यमुन रबि शशि मँह योगी एकै राह चलैइयाँ।।
जोगी को घर अगम है कोऊ जानै साधु संगैइयाँ।
जन 'बूला' होय निर्भय बोलै देख लों राम दोहैइयाँ।।17।।

हरि नाम निशानी हौं जानी।
यदि जानी तदि भई दिवानी। लोग कहैं यह भर्म भुलानी।।
जन 'बूला' कै इहै निशानी। सुरति निरति लिए जोति समान

रव डोला रव डोला रव क्यों करिया नीके बोला।
पाँच पचीस तीन खुटिया में ता विच करत कलोला।।
क्या जोगी क्या मौनी तपिया डोला बिच-बिच सबई भोला।
जन 'बूला' जी के इहै मलोला बिनु दर्शन हिय रहत अलोला।।

राम पढ़न को या तन पावै। बाँचत अंक-अंक नहिं आवै।।
आदि अन्त मध्य अंक बहूता। कोई पढ़ा कोई रहत है सूता।।
जोई पढ़ा सोई नर जीता। बहुरि जन्म नहिं लेता।।
यह अक्षर अब धरो सम्हारी। ॐकार ब्रह्म औतारी।।
'बूला' बोलै हृदय बिचारी। चारि वेद को अंक उघारी।।

बूझहु पंडित अचरज एक। स्वेत बरण जहँ सदा अलेख।।
साधि पवन षट चक्र छोड़ाओ। त्रिवेनी के घाटे आओ।।
उन मुनि मुद्रा लगी समाधी। रबि शशि पौनहिं राखो बाँधी।।
चाचरि मुद्रा प्रीति लगावै। भोचरि मुद्रा प्रीति बढ़ाई।।
गोरी मुद्रा अनभव गाओ। खेचरि मुद्रा दरस दिखाओ।।
जौं तू पंडित करु पंडिताई। चरन रेनु हृदय तै आई।
चरन रेनु का करहुँ जनेऊ। तौ तू पंडित पावहु भेऊ।।
जो यह अचरज देइ बुझाय। सोई सतुगुरु अगम कहाय।।
अगम जोति का धारै ध्यान। 'बूला' बोलहि शब्द निदान।।19।।

सोरठा

प्रभु निरधर अघार उज्ज्वल बिन्दु बिराजई।
अद्भुत रूप स्वरूप मो पै बर्नी न जवाई।।20।।

बाँधि पवनहि साधि गगनहिं गर्जि-गर्जि सुनावई।
तहँ हन्स मुनि जन चुँगत मनि रस परसि-परसि अघावई।।
बिना कर मुख बेनु बाजै, बिना श्रवनन गुँजई।
बिना नयनन दर्श देखो, अविगति गतिहिं जनावई।।
चाको जाति पाँति ने नेम धर्महुँ, भर्म सकल गवावई।

06:30

ओढ़ो चूँदरी ततसार।
अचल अमर अपार अँगिया खाँडे की ज्यों धार।।
नाहिं मारे मरै बिनसै ऐसो है ब्रह्म तार।
उमगि सोहं अधर चढ़िया बहुर नहिं औतार।।
एकां येकी होत अवि गति साधु यह व्योहार।
दास 'बूला' मारो बाज़ी जानय क्या सवँसार।।22।।

राग बिहाग

मैं तो पहिरों सतुगुरु बागा, ओढ़नियाँ ओढ़ि रे।
काम क्रोध तुमहूँ मन अपने, पवन पीउनियाँ, लपेटु रे।।
सुषमन बैठि में ही सुत कातों सुरति सोनरिया भरै हो।।
भँवर गुफा में करिगह माँडी दसयें ठीक दिए हौं हो।
कातत सूत बहुत निक लागै आठ पहर अरुझेरा ।।
जन 'बूला' कातहिं तन मन दे यारी दास को चेरा।।23।।

भजु मन मूढ़ मुर्ख गँवार।
चक्र सुदर्शन फिरै शीश पै भक्तन को रखवार।
जाको भजु हनुमन्त कबीरा औरो देव मुरारी।।
रैदासहुँ कहँ किरपा किन्हों भक्ती भाव बिचारी।
सोई दिस नानक जी बोलहिं आदिहुँ के ब्रह्मचारी।
सोई दिस सतुगुरु यारी बोलहिं केशव दास तिवारी।।
सब दासन के दास प्रभु जी 'बूलहिं' आस तेहारी।
जब लगि प्राण रहै घट भीतर तब लगि प्रभुहिं पुकारी।।24।।

रमैनी

उलटै पवन पौन होय रहई। धरै ध्यान निर्गुन तत गहई।।
झलक झलकि निर्गुन कै जोती। कोटिक भानु उदय छबि होती।।
बाजत अनहद गगन अघोरा। मगन भयो तहँवाँ मन मोरा।।
जन 'बूला' कहँ इहैं अधारा। राम नाम कर करहिं पुकारा।।
ऐसी विनय सुनहु अविनासी। अबकी बार काटु जम्ह फाँसी।।
जन 'बूला' बोलहिं प्रभु दास। सुन्य मदिल ज्यों दीप प्रकाश।।
भया प्रकाश मिटा अँधियारा। आदि अन्त मध्य उँजियारा।।

जटा बिभूत वैराग योग तप यह तो योगी न भावई।
सुन्य निरन्तर योगी बोलैं आपा उलटि समावई।।
आपा योगी आपा भोगी आया सर्व समान।
वा जोगिया के दर्स पर्स पर दियो हैं सीस कुर्बान।।
गगन मँडल अनहद ध्वनि बाजै तहँवा वाको फेरा।
जन 'बूला' बौरा योगी पर सत्य शब्द को चेरा।।
मनुआँ जोगी नाम भिखारी। ताते लोक वेद ते न्यारी।।
मनुआँ के अंगने चन्दन कै बारी[5]। तेहि तर भक्ति पसारी।।
कहैं 'बूला' हम अगुन अनारी। दीजै दर्स जाउँ बलिहारी।।31।।

राग सोरठा

राजा राम मिलैं सच पाया है।
बिसरी देहँ गेह[6] सुख सम्पत्ति, जोतिहि जोति समाया है।
जीतो नग्र नवो दर मूँदों, ब्रह्म अग्नि तन लाया है।।
दसयों द्वार की ताली खोलो, गगन मण्डल मठ[1] छाया है।।
जहँ नहिं अवनि गवनि को चिन्ता, आनन्द भयो घर पाया है।
साधु सन्त मिल खेलन लागे, दर्सन का फल पाया है।।
सतगुरु मोपै अलख लखाओ, आदि अन्त यक साया है।
जन 'बूला' याही बिध खेलैं, तब अप आप कहाया है।।32।।

दौड़

यक साई जग न्यारा है, मेरा यक साई जग न्यारा है।
सो मुझमें मैं। वाही मांह हौं, ज्यों जल मद्धे तारा है।।
वाके रूप रेख नहिं काया, नहि माया विस्तारा है।
अगम अपार अमर अविनासी, सो सन्तन को प्यारा है।।
अनन्त कला जाके लहर उठतु है, परम तत्त्व निरंकारा है।
जन 'बूला' ब्रह्म ज्ञान बोलतु हैं, सतगुरु शब्द अधारा है।।33।।

ताहि देखि मन मोर रहल है निहारी।।
गगन मण्डल नाथ रहत हैं मगन।
तहाँ न देखो नाथ दिन अरु रैन।।
सरन आयों नाथ मोहि लीजिए सम्हारी।
राम राम रमे 'बला' गावहीं बिचारी।।39।।

पुरुष छोड़कर आवहि ब्रह्मा, आप भयल अवधूता हो।
अपरम पार पारब्रह्म बम्हना, आया भरि गृह अगना।।
परम तत्त्व लै पुजिया पसरलन्ह, गावहिं अनहद तनना।
रज गुन तम गुन सत गुन सारस, हारल तन मन दोऊ।।
गगन मण्डल में हरि रस चाखल, बूझे विर्ला कोऊ।।
ज्ञान तरकस करि शब्द तीर भरि, प्रेम धनुष धरि तानल हो।।
सूरति कसि-कसि मारल निसाना, भवका भंडा फोरल हो।।
निरभौ जन एक निर्गुन गावल, स्वासा सर्गुन भावल हो।
जन "बूला" बिना साँस हि जावैं, सत्य प्रकाश समावल हो।।40।।

दया बिनु छार सब माया, कबहिं नहिं राम नाम आया।
पोखरा खनावहिं बाग लगावहिं, पावहिं मन माया।।
आतम राम न नीके जानहिं ज्यों जाया।
समझ न परत साधु को मारग, जिन हरि नाम न गाया।।
जन बूला रामजी को सेवक, मिथ्या जान तू माया।।41।।

राग इराक

मोर सुमति भयल मन जन तन जानी रे।
मूल बाँधी सूर साधी पच्छिम बिचारी रे।।

ऐसा अद्भुत मन में जाना। जहाँ दस द्वारा घनो रखाना।।
पंच लोग तहँ बसै प्रधाना। मन राजा तहँ बड़ेई सयाना।।
तीनिउ जने त्रिषेनी आना। चौथे घर पर कियो पयाना।।
गंगा यमुना कियो स्नाना। पर्म तत्त्व पर लागो ध्याना।।
जन 'बूला' बोलहिं ब्रह्मज्ञाना। तन छूटै साहेबहि समाना।।48।।

राग सोरठ

जन कहँ सूझि परी यहि बारी। देओ शब्द बिचारी।। टेक।।
मन को मारि मुँदो नव द्वारी। जीतो पाँचो नारी।।
पर्म तत्त्व निराकार ध्यान धरि। बहुरि नहीं औतारी।।
जन 'बूला' चर्नन बलिहारी। जिन यहि गतिहि सवारी।।
तन मन धन नेवछावरि वारी। यम सों लियो सम्भारी।।49।।

मन तू सत्गुरु चरन समाजी। अविगति गति ब्रह्म राजी।।
अजरो जरो बरो है अधरम। परम जोत छवि छाजी।।
घरनि अकास तहाँ नहि देखी। अगम पुरुष एक गाजी।।
आवै न जाय मरै नहिं जीवै। अनहद धुनि तहँ बाजी।।
जन 'बूला' जी उहै बिराजी। उलटि पवन घर साजी।।
अर्ध उर्ध अरु मध्य निरन्तर। सोहं सुरति धराजी।।50।।

राग अरिल

कोटि झुलै ध्रुव पौन हिए नहिं आइया।
राम नाम को ध्यान धरो मन लाइया।।
बिना ध्यान नहिं मुक्त पिछे पछताइया।
हरिजन 'बूला' हृदय विचार राम गुन गाइया।।51।।

श्याम घटा घनघोर चहूँदिश आइया।
अनहद बजै अघोर तब गगन सुनाइया।।
दामिन दमकि जे चमकि त्रिवेनी जनाइया।
'बूला' हृदय विचार तहाँ मन लाइया।।52।।

सुषमन शीतल सेज हेतु ताही सों कीजै।।
गगन गुफा में बैठ दरस नारायण दीजै।।
हरिजन 'बूला' हृदय बिचारि प्रेम अमर पद पीजै।।

शामहिं उगवैं सूर भोर शशि जागई।
गंगा जमुना संगम अनहद बाजई।।
अजपा जाप सुजाप सोहं डोरी लागई।
हरि हाजन 'बूला' तामें पैठि जोति में गजाई।।53।।

झूठा यह संसार झूठ सब कहत हैं।
सत्य शब्द की रहनि कोई नहिं गहत हैं।।
बिना सत्य नहिं गत्य अगति में परत हैं।
'बूला' हृदय विचार सत्य में रहत हैं।।54।।

मुर्गी यह संसार चेहुँ-चेहुँ करत हैं।
राम जीव को नाम हृदय नहि धरत हैं।।
बिना राम नहि मुक्ति झूठ सब कहत हैं।
'बूला' हृदय विचार राम संग रहत हैं।।55।।

ऐसी बनिज हमारि राम को लेन को।
मन पवन दोऊ दाम साहु को देन को।।
पाँच पचीस तीन लहि आपमें पैठि कै।
'बूला' दियो हाँक जोति में बैंठि के।।56।।

क्या भयो ध्यान किए हाथ मन ना हुआ।
माला तिलक बनाय देत सबको दुआ।।
आशा लागी डोरि कहत भला हुआ।
हरिजन 'बूला' कहै विचार झूठ से भरा हुआ।।57।।

का भयो ध्यान के किए हाथ मन ना हुआ।
माला तिलक बनाय देत सबको दुआ।।
आशा लागी डोरि कहत भला हुआ।
हरिजन 'बूला' कहै विचार झूठ से भरा हुआ।।57।।

का भयो शब्द के किए बहुत करि ज्ञान दे।
मन परतीत नहि ताकहँ जम जान दे।।

निर्गुन दयाल दानी। मन ही माँह जानी।।
शशि सूर एक आनी। रैनि दिवस सानी।।
बाज अनहद सुनि भइहै देवानी।
उलटी बहन लागै त्रिपुनी तट पानी।।

करि स्नान हंसा अगम समानी। धरत अधर ध्यानी।।
मिट गयो आवा जानी। भइहै उज्ज्वल खानी।।
जन 'बूला' यहि पद हि समानी। मोक्ष धुजा लागी फहरानी।।64।।

सर्व स्वरूपी गोविन्दा मोहिं ऐसी रहन रहाउरी।
बिनु आसा बिनु उद्यम बिनु रसना गुन गावरी।।
बिना जोग बिनु भोग अखंडित साँचा लाद लदावरी।
बिना नाव अरु बिनु केवटा बिन खेये तीर लगावरी।।
बिनु दरियाव भव पार उतरना बहुर न इत ही के आउरी।
बिनु माला बिनु तिलकही बिना जाप को ध्यान।।
अष्ट याम धुन लगइ रहतु है अनहद बाजु निशान।
सन्त सभा तहाँ देखिए महा उज्ज विश्राम।।
बिनु प्रयास भव निधि तरहिं ले राम जी को नाम।।65।।

सइयाँ जी के नाम को बलि जाऊँ।
सुमिरत नाम बहुत सुख पाओ, अनत कतहुँ नहिं ठाऊँ।
नाम बिना मन स्वान मंजारी, घर-घर चित लै जाऊँ।।
बिन दर्शन पर्सन मन कैसो, ज्यों लोली को गाऊँ।
पवन मथानी हृदये ढूँढ़ो, तब पाओ मन ठाऊँ।
जन 'बूला'' बोलहि कर जोरे, सतुगुरु चरन समाऊँ।।66।

गोपाल राम गाढ़े दिन के मीत।
संकट हरन भरम भौ नासन, याही प्रभु की रीत।।
जो कोऊ कहै कि मैंने किया है, सोई कुटिल कुबीत।
''जन बूला'' बिनवै कर जोरी, तुम हो सर्वोजीत।।67।।

शब्द

सुख मनि सुरति के डोरि बनाउ।
मेटिहै सब कर्म जियको, बहुरि इत नहिं आउ।।
पैठि अंदर देखु कंदर, जिय को बास।
उलटि अपान पान में राखै, स्वेत शब्द में बास।।
गंगा यमुना मिली सरोस्वति, उमगी शिषर बहाव।

तीन लोक में गम है जाको, द्वार सेवा लाय।
जन 'बूला' कह अगम मेला, बिरला जन कोई पाय।।73।।

वैरागी तुम कौन वैराग घर लिया, ताते सर्व त्याग तुम किया।।
कित वै जोग है कित वै मुद्रा, कौन घाट वै रस पिया।
तन वैराग मन हि मन मुद्रा, बंक नाल होय रस पिया।
जन 'बूला' वैराग ब्रह्म बुन्द, अचल अमर घर किया।।74।।

पवन उलटि के भजन निज करबो, सुषमन सेज बिछैबो।
प्रेम विलास आस साधुन में, निर्गुन रूप कहैबो।
पाप पुन्य दुख सुखहि बहैबो, अमृत नाम पिऔबो।।
दया धर्म मेरे ध्यान खजना, ज्ञान रतन में रतैबो।
अद्भुत बुन्द कहाँ लगि बरनो. अनहद माँह देखैबो।।
सुरति सोहागिन चरन मनावहिं, खसम आपनो पैबो।
जन 'बूला' वह प्यारी खसम की, रहसि रहसि गुन गैबो।।75।।

ऐसी आरति मेरे मन भावै। रबि शशि पवन भवन मन लावै।।
ब्रह्म बिष्नु महेश ले आवै। एक मते होय दर्श दिखावै।।
गंगा यमुना अर्ध दिआवै। स्तुति शोभा प्रभुहि मनावै।।
सुरति निरति लेई घंट बजावै। जगमग जोति परम पद पावै।।
जन 'बूला' जी सरन बलि आवै। रंग महल बिच नाम जगावै।।76।।

ऐसी आरति करूँ मन भाई। महा प्रसाद ठाकुर को चढ़ाई।।
प्रेम कै पातरि प्रीति लगाई। भाव कै व्यंजन रुचिर-रुचिर बनाई।
संत साधु मिलि आरति गाई। प्रभु जी के सिर पर चौंर डोलाई।।
सुर नर मुनि सब आस लगाई। गिरा परा कँण बिन-बिन खाई।।77।।

आनन्द उदित अखंडित सोह। मानो गगन द्वार गति जोह।।
सिध मुरी मूल मत पावन। जावन उलटि जमावन।।
अर्ध उर्ध के मध्य निरन्तर। जगमग-जगमग जोति जगावन।।
देख देखाव कहाव अकेला। मेला अलख पुरुष संग खेला।।
जन 'बूला' याही बिधि खेला। अनहद डंक निशंक सो देला।।78।।

जगमग जोति प्रकाश होत है। उजल दरस बलि जाय।।
झूलैं हंस कलोल करि कै। सखियन संगहिं लाय।।
तहाँ मिले बिरही संत जन कोऊ। दियो अगम लखाय।।
'बूला' तहाँ कियो सत संगति। रहो चरन समाय।।
आवा गवन निवारो स्वामी। बहुरि इतै नहिं आय।।79।।

कोटि झुलै ध्रुव ज्ञान हिये नहिं आइया।
राम नाम को ध्यान धरो मन लाइया।।
बिना ध्यान नहिं मुक्ति पिछे पछिताइया।
'बूला' हृदय बिचार राम गुन गाइया।।
श्याम घटा घनघोर चहूदिस आइया।
अनहद बाजे घोर जो गगन सुनाइया।।
दामिन[3] दमकि जो चमकि त्रिबेनी नहाइया।
'बूला' हृदय बिचारि तहाँ मन लाइया।।
सुषमन शीतल सेज हेत ताही सों कीजै।
गगन गुफा में पैठि दस सतगुर का लीजे।।
आवागवन न होय ब्रह्म कबहूँ नहिं छीजै।
'बूला' हृदय प्रेम भरी अम्मर पद लीजै।।
सामहिं उगवे सूर भोर ससि जागई।
गंग यमुन के संगम अनहद बाजई।।
अजपा जापहिं जाप सोहं डोरि लागई।
'बूला' तामें पैठि जोति में गाजई।।
झूठा यह संसार झूठ सब कहत है।
सत्य शब्द की रहनि कोऊ नहिं गहत है।।
बिना सत्त नहिं गत्त कुगत्त परत है।
'बुला' हृदय बिचारि सत्त सों रहत है।।
मुरगी यह संसार चेहुँ-चेहुँ करत है।
आतम राम को नाम हृदय नहिं धरत है।।
बिना राम नहिं मुक्ति झूठ सब कहत है।
'बूला' हृदय बिचार राम संग रहत है।।
ऐसी बनिज हमार राम को लेन को।
मन पवना दोउ दाम साहु को देन को।।
पाँच पचीस तिन लादि आपु में बैठि के।
'बूला' दीन्हों हाँकि जोति में पैठि के।।
क्या भयो ध्यान के किए हाथ मन ना हुआ।
माला तिलक बनाय देत सब को दुआ।।
आसा लागी डोरी कहत भला हुआ।
'बूला' कहै बिचारि झूठ सेमरघुआ[3] ।।
का भयो शब्द के कहे बहुत करि ज्ञान दे।
मन परतीत नहीं तो कहा यम जान दे।।
का भयो तीरथ किए हिए नहिं आवई।
'बूला' कहै बिचार खाली सब जावई।।
मन माने की बात बहुरि नहिं बोलना।

अविनाशी से प्रीति कबहुँ नहिं डोलना।।
बनि आई मोरी प्रीति तो आतम राम से।
'बूला' नयनन देखि बैठु आराम से।।
सनमुख धरै ध्यान तो कर्म नसावई।
निर्गुन जपै धरै अपार परम पद पावई।।
तन छूटे गति होई बहुरि नहिं आवई।
'बूला' हृदय बिचारि बोलि हरि भावई।।80।।

राग शहाना

भोरे सुरति साहोगिन ललकी। तिरबेनी संगम झलकी।।
भोरे गुरु दियो यक मटुकी। तब लटकि-लटकि प्रेम गटकी।।
जब मूल मन्त्र घर सोधा। चढ़ि बंक नाल घर बोधा।।
जब भँवर गुफा में गूँजा। तब दसौ द्वार घर पूजा।।
तब 'जन बूला' बोलै बोरा। घर स्वेत बरत कियो ठौरा।।81।।

भोरे मन्शा हृदय बिचारी। तब तन मन धन सब वारी।।
जब अर्ध उर्ध मधि जानी। तहाँ जगमग जोति निशानी।।
जब चंद सूर घर आनी। तब अभिगति गति पहिचानी।।
जब गंग यमुन भरि पानी। तब बोलत अमृत बानी।।
बोलैं 'जन बूला' ब्रह्म ज्ञानी। तब आवा गवन रहानी।।82।।

राग बसंत

मन बसंत खेलै अगम फाग। चरन कमल अनुराग जाग।।
खेलहिं ब्रह्म और महादेव। खेलहिं नारद और जैदेव।।
खेलहिं ध्रुव प्रहलाद जानि। सुखदेव जी खेलहिं गति बिलोय।।
हनुमान जो खेलहिं सेवक होय। अर्जुन खेलहिं गति बिलोय।।
सहदेव जी खेलहिं अगम गाय। पर्म योति में रहे समाय।।
खेलहिं नामा और कबीर। खेलहिं नानक बड़ हैं धीर।।
यारी खेलहिं ब्रह्म हीर। केशव पायो चरन नीर।।
सब साधुन के पीछे लागी। चढ़ो राम ब्रह्म मुल पागी।।
दसयें द्वार पर दर्शन होई। 'बूला खेलहिं' आपुहिं खोई।।83।।

त्रिबेनी के घाट राम रंग होरे होरी।
चाँद सूर यक नास भयउ रँग होरे होरी।।
रैन दिवस गए बीत राम रँग होरे होरी।
गंगा यमुना उलटि बहो रँग होरे होरी।।
हंस करै स्नान राम रँग होरे होरी।

मोहि खेलत फाग सो होरिया ये मान भावनो
जब ते कृपा करी या जम पर मुक्ष मुक्ति फल पावनो।।
बाजत ताल मृदंग झाल डफ सुरस राग सुर गावनो।
नाचहिं सखिया पाँच यहि वृज में तत्त्व गुलाब उड़ावनो।।
देत दान तन मन निबछावर पामर सन्त सुजावनो।
जन 'बूला' ऐसी होरी खेलहि अद्‌भुत कला समावनो।।86।।

हरि होरी खेलैं रँग भरे हो अहो मोरे ललना, सब सखियन सँगलाई।
फागुन आयो मास अंग भरि खेलि लेहु नर नारि।।
ऐसो समय बहुर नहिं पैहो जैहो जन्म जुवा हार।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डग, शब्दन की झंकार।।
रिझि-रिझि गावहिं सब युवती लेहि राम बलिहार।
त्रिबेनी तट होरी खेलहिं अद्‌भुत कला बनाई।।
ब्रह्मा बिश्नु महेश तीनों जन रहो चरण चित लाई।
बनि-बनि आवै दरश दिखावै अनहद डंक बजाई।।
जन 'बूला' बलि-बलि सत्‌गुरु की जिन यह युक्ति बताई।।87।।

मेरु दण्ड अखण्ड महिमा बंक नाल सोहावनं।
दसौ द्वार होत जगमग जन बूला तहँ भावनं।।
इँगला पिंगला उलटि राखो सुषमना गृह आवनं।
तहँ होत अनहद बाज गह-गह निरंकार सोहावनं।।
योग युक्ति समाधि मन्दिर गंग यमुन नहावनं।
तहँ उठत निर्मल सदा बानी जन बूला सत्य गावनं।।88।।

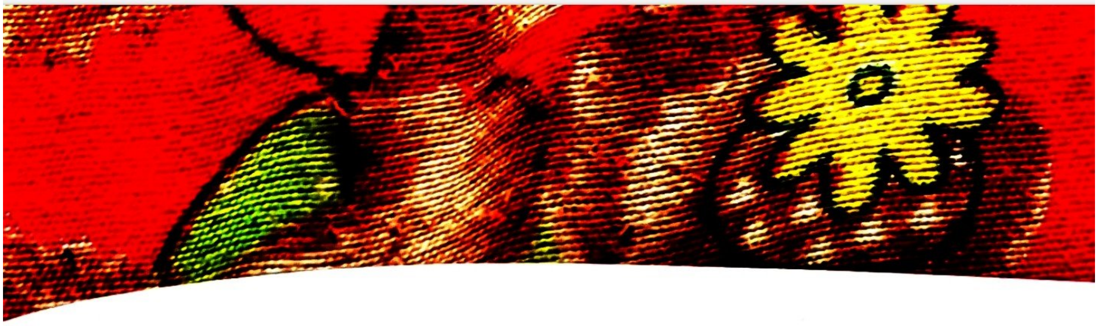

चन्द्र सूर्यो एक गृह रैन दिवस मिटावनं।
एका-एका है निर्मल स्वेत दीप बसावनं।।
तीन तिर्गुन मातु करि लें पंच तत्त्व बिचारनं।
तँह उठत लहरि अनंत महिमा जन बूला ताहि बारनं।।89।।

आदि अन्त जो मध्य यकसाँ ब्रह्म बिश्नु शिवा शिवं।
पर्म जोति सोरह निबनिया जन 'बूला' बिराजितं।।90।।

अचल स्थिर होत युग-युग, बहुरि इवहिं न आवनं।
जन 'बूला' बलिहारि सत्गुरु, जिन्ह यह पंथ लखावनं।।
सुरति डोरि लगल गगनहिं, मन पवन दोउ बन्धनं।
सूनि नग्र बसाव यहि बिधि, जन बूला दह चन्दनं।।
तहाँ आवागवन न होत कबहीं, मान सरोवर हंसनं।
चुगत मुक्ता मोति निशु दिन, जन बूला ब्रम्व रूपनं।।
तहँ वेद भेद न नेम पूजा, धर्म पुण्य जापनं।
सहज में गति आइ उपजी, जन बूला सो भाखनं।।
कोटि तीर्थ नहाय देखो, कोटि देव हर दर्शनं।
हरि बिना नहिं मुक्ति पैहो, खाली यह सब परसनं।।
आपु-आपु विचारि देखो, इहै प्रभु को दर्शनं।।
आस मन्शा पूजि यहि महँ, जन 'बूला' सच पर्सनं।।91।।

झिलमिल-झिलमिल बर्षत नूरा। नूर जहूर सदा भरि पूरा।।
रुनझुन-रुनझुन अनहद बाजै। भँवर गुंजार गगन चढ़ि गाजै।।
रिमझिम-रिमझिम बर्खत मोती। भयो प्रगास निरन्तर जोती।।
निर्मल-निर्मल-निर्मल नामा। कहि आरती लियो विश्रामा।।92।।

सवैया

देह पवित्र सो नेह करो, जह राम बसै नित आतम धारी।
मूल में गाँठि परी दृढ़ सों, जहँ सुषमन सेज की राह सँवारी।।
द्वारि दसों पर जोति बरै, जहँ पै निरकार है ब्रह्म अपारी।
जन 'बूला' हृदय में बिचारि के बोलैं, ज्ञान की बातैं सुनो हो हमारी।।104।।

गाजतु हैं छबि छाजतु हैं, उतौ नाम निरंजन की गति हेरी।
राज लियो पर्मारथ की, तव स्वारथ संयम संत की चेरी।।
बोलहिं बानी बिलास यक में, मरबो जियबो जहँ भौंह की फेरी।
जन 'बूला' हृदय बिचार के बोलहिं, ऐसो है ध्यान निरंतर मेरी।।105।।

रमैनी कल्यान

आव रे पियरवा हौं तो भई जग नियरवा।
महि मथि कमल बिकसि कच चखा, चाहत नयन रुचि सखा।।
जन 'बूला' बोलै अगम अपरवा, बहुरि नहीं लेव अवतरवा।।106।।

राग कान्हरा

मन तू हरि चर्नन चित लाउ।
मिटि हैं सकल कर्म या तन को। बिमल बिमल यश गाउ।।
करहु सुमति साधु संगति की। और छोड़ि सब चाउ।।
त्रिवेनी में आसन मारो। गगन मण्डल मठ छाउ।।
ऐसी अमल कमाहु रइन दिन। सहजे शुन्य समाउ।।
जन 'बूला' सत्गुरु को चेला। जगमग जोति जगाउ।।107।।

राग कल्याण

राम नाम जपि उधरो रसना। राम नाम जपि उधरो।।
शब्द विवेकी गगन निरेखी। साधु संगति से सुढरो।।
मूँदो मनहिं जतन करि संयम। इहै ज्ञान को मेला।।
निरगुन नाम निरंतर पेखिया। तहवाँ गुरु न चेला।।
विद्या वेद भेद नहिं जानो। जानो एक अकेला।।
आवै न जाय मरै नहिं जीवै। सो सत्गुरु सत् चेला।।
जो कछु कहौ नहीं कहि आवै। जो रे कहूँ तो बेला।।
जन 'बूला' रामजी को सेवक। अर्ध उर्ध मधि खेला।।108।।

सोइ सोहं इंसा लगलि डोरि। सुरति निरति चलु मनुआं मोरि।।
झिलमिल झिलमिल त्रिकुटि ध्यान। जगमग-जगमग गगनतान।।
गह-गह-गह गहज अनहद निशान। प्राण पुर्ष तहँ रहल जान।।
लहरि-लहरि दउठै पछिव घाट। फहर-फहर चलै उतर बाट।।
स्वेत बरन तहँ आपै आप। जन 'बूला' सोई माई बाप।।118।।

मैं कैसे के राखों पाँच नारि। बर्जे नहिं बड़ि खुआर।।
जिन आपु अपन घर कियो जारि। कबहूँ नहिं सुमिरै देव मुरारि।।
अब के उजरले छाइ न जाय। कासों कहूँ यह गति बनाय।।
मनुआँ मकरी रहु समाय। लै-लै जात है सँग लाय।।
भोग बिलास आस बनाय। फिरि फिरि नर्कहिं महँ महाय।।
भला भयो मनु चलु कोहाय। बीचहिं मिलि गयो राम राय।।
तुमको हम है सदा सहाय। जन 'बूला' बलि तोहरि जाय।।119।।

राग मुरली बसन्त

मुरली धुनि सुनि मन मगन भाय। नृत काल तिरबेनी धाय।।
उलटि पवन ब्रह्मांड गाय। गंगयमुन तहँ संगम भाय।।
चाँद सूर्य दिन रैन थाय। स्वेत बरन घर प्रगट भाय।।
मिटि गयो अंधकार भयो भोर। जन्म-जन्म दुख मिटल मोर।।
जन 'बूला' जी कै बन्दी छोर। करहु कृपा गति लाबहु भोर।।120।।

राग हिंडोला

हिंडोलना झूलहिं आतम नारि।। टेक।।
काम क्रोध जे कर्म पटरी, मन पवन डोरी लाई।
तहँ चंद सूरज खंभ गड़िया, गंग यमुन बधाई।।
पौढ़िया ब्रह्माण्ड चढ़ि कै, गगन गरजि सुनाई।
जग मगजोति प्रकाश उज्ज्ल, दरश की बलि जाई।।
झूलै हँस कलोल करि के, सखिन को सँग लाई।
तहँ मिते बिरही संतजन कोऊ, अगम दियो है लखाई।।
तहँ दास 'बूला' कियो संगति रह्यो चरण समाई।
आवागौन निवारू स्वामी, बहुरि नहिं इत आई।।126।।

गाजत है छबि छाजत हैं, उतो नाम निरंजन की गति हेरी।
राह लियो परमारथ की तब, स्वारथ संजम सत्य की चेरी।।
बानी बोलै कबिलास की आनि सो, जीवन मरन नहीं भव फेरी।
जन 'बूला' हृदय बिचारि बोलै, ऐसो ध्यान निरंतर राम सो मेरी।।127।।

देखु बिचारि के आपुहिं आपु को, देह को नाता सो छोड़ि दियो है।
तहँ पाप न पुन्य न माया मोह, न योग अधार सों खेत लियो है।।
जन 'बूला' हृदय बिचारि बोलै, हरि नाम निरंजन आप थियो है।।

जौं पै कोई ध्यान धरि ध्यान में सदा रहै,
लहै ब्रह्म ज्ञान तब साधु जा कहाई है।
मूल को सोधि के पवन को बाँधि के,
त्रिकुटी में आइके गगन द्वार जहाई है।।
जोति सों जोति मिलो पवन सों पानी मिलो,
धरती सों आकाश मिलो अनहद जा गहाई है।
तब दास 'बूला' कहै अगम गति तौ लहै,
गुरु के बचन सो अचल धर रहाई है।।128।।

गगन के मण्डल मगन मन में हुआ, अर्ध से उर्ध भरि परी वेरी।
श्वेत परकाश आकाश अल्लि रहो, वस्यो है प्राण सुख चैन हेरी।।
कहँ कया अरु मया नहिं मरन अरु जीवन नहिं एक साहेब की भई चेरी।
तब दास बूला 'कहै' अगम गति तौर लहै, धन्य सत्‌गुरु महिमा तेरी।।134।।

परवाह बड़ी परमेश्वर की, जिन ईश्वर मीन मनोरथ दियो।
वाह नहीं तब और की जब, गौर जोग जोगारथ लियो।।
जियो जीव नयन भरि देखो, उज्ज्वल नाम निरंज थियो।
तन 'बूला' हृदय विचार बोलै, अमरपुर डेरा किया।।135।।

जिन सों हरि नाम सों नेह लगी, तिन को अब गेह को काहे की आशा।
पिरतीत बनी निज साधुन सों, जिन गगन गुफा महँ दीन है वासा।।
जगमग जोति अपार विराजत, यम जालिम को जिन काटि है फाँसा।
जन 'बूला' हृदय बिचारि बोलै, बंद छोड़ि निरंजन देखु तमाशा।।136।।

देह पवित्र सो नेह करो, बसते जहँ राम हैं आतम धारी।
मूल में गाँठि परो दृढ़ सो, जहँ सुषमन सेज की राह सँवारी।।
द्वार दसों पर जोति बरै, उहँ तो निरकार है ब्रह्म अपारी।
जन 'बूला' हृदय बिचारि बोलै, गुरु ज्ञान की बातै सुनो है हमारी।।137।।

भारे सुरति सोहागिन ललकी, तिरबेनी संगम झलकी।।टेक।।
भारे गुरु ने दियो यक मटकी, तब लटकि लटकि प्रेम गटकी।
जब मूल मंत्र घर सोधा, चढ़ि बंक नाल गहि बोधा।।
जब भौंर गुफ़ा में गुंजा, तब दसयें द्वार पर पुञ्जा।
तब जन 'बूला' बोलै बौरा, घर स्वेत बरन कियो ठौरा।।138।।

भारी मनसा हृदये बिचारी, तब तन मन धन सब धारी।।टेक।।
जब अर्ध उर्ध मध्य जानी, तब जगमग जोति निशानी।
जब चाँद सूर्य घर आनी, तब अविगति गति पहिचानी।।
जब गंग यमुन भरि पानी, तब बोलत अमृत बानी।
बोलै जन 'बूला' ब्रह्म ज्ञानी, तप आवागमन रहानी।।

आरती

पूजबों मैं निरंकार बहु भाँती, जेकरे पुजत शितल भई छाती।
जेकरे न चाँद सूर दिन राती, नेम धर्म अरु नहिं दिया बाती।।
जेकरे न ब्रह्म बिश्नु संघाती, ये कला निरंकार अधिक सोहती।

केशव दास साहेब

निर्गुन नाम देखै कोई आतम ध्यानी।
त्रिकुटी संगम तट मति दीसैं झिलमिल जोति निशानी।।
जाको नित खोजत फिरैं गन गंधर्व मुनि ज्ञानी।
सोई अविगति पाइया मिट गयो आवाजानी।।
रबि शशि दोनों सम भये द्वादस उलटि समानी।
निर्झर झरत दसो दिश बरखै अमृत बानी।।
कोई सिद्ध आनन्द सराहत है यहि चारिउ खानी।

गरजत गगन अनन्त गति अनहद नाना बानी।।
मिट गया तिमिर अन्धेरा निश को और रबि प्रात बिहानी।
'केशव' सत्‌गुरु को पाईया जिन्दा करु कुरबानी।।

राग सोरठ

हरि जो से जोरली सगाई हो।
तन मन धन प्रान दान देइ, पिय के सहज स्वरूप रमाई हो।।
अर्ध उर्ध के मध्य निरन्तर, सुषमन चौक पुराई हो।
रबि शशि कुंभ में अमृत भरिके, गगन मडल मठ छाई हो।।
पाँच सखी मिल मंगल गावहिं, आनन्द तूर बजाई हो।
प्रेम तत्व दीपक उँजियारो, जगमग जोति जगाई हो।।
साधु सन्त मिलि कियो बसीठी, सत्‌गुरु लगन लगाई हो।
दर्श पर्स पतिबर्ता पिय की, शिव घर शक्ति बसाई हो।।
अमर सोहाग भाग उँजियारो, पुरुष प्रति प्रगटाई हो।
रोम-रोम नख सिख रस बस भई, 'केशव' पिय मन भाई हो।।

राग मंगल

सत्‌गुरु पर्म निधान, ज्ञान गुरु ते मिलै।
पावै पद निर्वाण, पर्म गति सोदिलै ।।
अर्थ धर्म अरु काम मुक्ष, चारिउ फल होय।

काम अरु क्रोध को लोभ अरु मोह को ज्ञान को वान सों मारि लीता।
जानि जन केशव मानि मन में रहा 'यारी' मिले सत्गुरु भेद दीता।।

सोई निज सन्त जिन सन्त आपो लियो जियो युगयुग बुधि गगन जागी।
पान अपान आसमान में थिर हुआ शुन्य के शिखर पर जिक्र लागी।।
रहतघरबास बिनु स्वाँस का जीव है शक्ति मिलो शिव सों सुरत पागी।
अगह आलेख आदेख को देखियत पेखिया 'केशव' भयो ब्रह्म रागी।।

गगन मगन धुनि लगन लगी, सुनत सुनत तन तस गई।
जगर मगर नहिं सुघर नगर नहिं डगर बगर नहिं रबि शशि भवई।।
प्राण गवन हरि पवन भवन करि मिलि सम्मुख पिया बाँह गही।
सत्य रति सत्य पति पावल 'केशव' सदा अनन्त सोहाग सही।।

वासर वस्तु विचार सदा मुख साँच हिए करू सो धन है।
निग्रह संग्रह धर्म कथानि परिग्रह साधुन के गन है।।
'केशव' भीतर योग जगै इत बाहर भोग मई तन है।
हाथ भयो जिनके तिनके बन ही घर है घर ही बन है।।
दौलति निशान बान धरे खुदी अभिमान,
करत न दाया काहू जीव और जनक में।
जानत है नीको यह फीको है सकल रंग,
गहे फिरै काल फन्द मारैगो छनक में।।
घोड़ा डेरा गज वाजि झूठो है सकल साज,
भूलो हरि नाम तजि कामिनी कनक में।
बार-बार कहौं तोहिं छोड़ मन माया मोह,
काहे करै लोभ छोभ पड़ि के सनक में।।1187।।

साखी

सुरति समानी ब्रह्म में दोबिधा रहा न कोय।
केशव संभल खेत में परै सो संभल होय।।1188।।

सात दीप नव खंड में ऊँचे अगम अवास।
कमल नयन को जो भजै सो जन पावै वास।।1189।।

आस लगो बासा मिलो जाकी जैसी आस।
एक आस जग बास है एक आस हरि पास।।1190।।

आसा मनसा थकि रहो मन निज मनै मिलान।
ज्यों सरिता सिंधुहिं मिली छूटो आवा जान।।1191।।

(झ) झूलबे झूलना झूलिए यार तू,
अर्ध औ उर्ध हिंडोल डारा।
सुरति के डोरि को निरति झुलावती,
नारि कोऊ गावती राग प्यारा।।
श्रवन सुनि मस्त भये प्रेम छकावता,
बन्द कर लीन्ह छ तीन द्वारा।
'अजब दास' जौहरी सन्त के पास महँ,
पवन को थामि होई जात पोरा।।8।।

(ट) टारू बे टारू कष्ट की टट्टियाँ,
नयन के कोर से दुख नासा।
नाम से नेह तब देह की शुद्धि नहीं,
शब्द के सन्धि पर कीन बासा।।
दीप औ चन्द जहाँ मन्द करि जानिए,
भोर ही भानु जो है तमाशा।।
जानिबे होय तौ जानि ले यार तूं,
भेद कहि देत है अजब दासा।

(ठ) ठीक सिपाह सों सन्त को जानिए,
तत्त्व बन्दूक दम दीन दारू।।10।।
नाम नीशान घहरात गढ़ बीच में,
कूर औ कादरो नाहि चारो।।
चन्द्र के गैल होय द्वार से घेर लिया,
पाँच पचीस जहँ करत झारू।
'अजब दास' संत कोई सूर को काम है,
बाजता डंक दिन रात मारू।।11।।

(ड) डोल बे डोल उस कौल के डाल को,
डालि दे भर्म अरु जक्त लाजा।
बात को मानता पौन को छीनता,
पीउ पीऊष तुम खूब नाजा।।
सन्त कोई शूर तहाँ पूर भरि पावता,
कादर होय सो छाड़ि भाजा।
'अजब दास' पंथ ओह देश को दूर है,
जहाँ बाजते आपु छ चारि बाजा।।12।।

(ढ) ढारु ढारु यह पास जो पास है,
टेक दे मुक्ति की लाव बाजी।

मूढ़ तू खोजता क्यों किनारा।।
गंग और यमुन को होत संगम जहाँ,
जाय के कूदि परु मध्य धारा।
'अजब दास' कछु हाथ भी लगि जाएगा,
मानिहो शब्द जो तू हमारा।।18।।

(न) नाम की आस करि चित को धारिए,
शेष औ गनेश गुन जासु गावै
वेद औ पुरान में सार सो जानिए,
शंभु जेहिं नाम को ध्यान लावै
दीन दयालु गुरू मोहिं दया करि,
काहू की नाहिं अब त्रास आवै
'अजब दास' ध्यान धरि चीन्ह ले आप में,
फेर संसार कोउ नाहिं आवै।।19।।

(प) पार को जान जौ चाहिए यार तू,
सत्य यहि बात के मानिए जी।
फन्द भ्रम तोरि के नयन को जोरि के,
दृष्ट को उलटि करि तानिये जी।।
मन्द मति बैठि के शब्द में पैठि के,
पलक पर झलक पहिचानिए जी।
'अजब दास' बास वहि देश में पाइये,
बेस तब तत्त्व की जानिए जी।।20।।

(फ) फूलना फूल उस फूल को देखिए,
अलख की बास है दूर भाई
कोऊ तो नयन उलटि त्रिकुटी तके,
कोऊ तो नाशा की ध्यान लाई।
कोई तो मुनै और कोई त्राटक करै,
आपनी आपनी बात गाई।
'अजब दास' करन दां बूझै नहीं,
सन्त कोई महरमी भेद पाई।।21।।

(ब) बक्र औ चक्र छ बेधिया साधु कोई,
जाइ के गगन बिच ध्यान धारै
खेचरी भूचरी चाचरी साधिया,
यार पापील को भेद न्यारै।

पासही राम के नाहिं चीन्हा
'अजब दास' मूढ़ पछिताएगा,
अमिय को छोडि विष मोल लीन्हा।।26।।

(य) चार औ पार तौ सूझता है नहीं,
लोभ दरियाव अति जानु भारी
तासु प्रवाह में जातु है जग वहा,
बूड़ते आई ज्यों लेइ तारी
लेत उसाँस गम्भीर तेहिं बीच में,
योगी औ जंगम औ ब्रह्मचारी
'अजब दास' सन्त कोऊ बाँचि भी जातु है,
राम की कृपा की है बात न्यारी।।27।।

(स) साँस उसाँस को भेद सो सार है,
नाभि औ नासिका एक लावै
बारहूँ बार अनहद उधार करि,
पौन ब्रह्माण्ड के खण्ड जावै
बीण मृदंग गति भेरि जहँ बाजती,
शब्द र रंकार लै राग छावै
'अजब दास' ध्यान धरि चीन्ह ले आप में,
फेरि संसार को नाहिं आवै।।28।।

(ह) हारि तू आपनी मानता है नहीं,
और के बात की काह चालो
नाम सों चित्त तौ लागता है नहीं,
लोग देखावता फेरि माला
मान गुमान अज्ञान भुलाऊ का,
जक्त में दीन रहु छोड़ि गाला
'अजब दास' अन्त में नाम ही ढाल है,
काल जो मारिया आनि भाला।।29।।

(ॐ) उठत ॐकार की शोर श्रवनन सुनै,
प्रेम आनन्द सुख होत भारी
शैल के शिखर पर भँवर गुँजारता,
करत कलोल छबि लगत प्यारी।
सूर्य और चन्द्र एक द्वार है बन्द जो,
मकरी को तार मग है न्यारी।।30।।

(अ) अर्ध उर्ध को भेद जो पाइया,
पवन के गवन ते सन्धि खोला।
शब्द अनहद लै घूमि पश्चिम दिशा,
बैठि आशंक आस्मान डोला।।
होत अँजोर चहुँ ओर झिलिमिलि झरै,
वस्तु एक जानु तहाँ है अमोला।
'अजब दास' दर्श को देखि लेने परि,
मूढ़ करु आपनो सुफल चोला।।31।।

(ई) इन्द्र के समान जौं होयगा मूढ़ तू,
और उपाय नहिं पार पाइहौ।
गुरु के सरन बिनु युक्ति कोटिन करो,
जाय यमलोक में धका खाइहौ।
नर्क अघोर में डारि भी देयगा,
मीज के हाथ तब बहुत रोइहौ
'अजब दास' जानकी नाथ के नेह बिनु,
जन्म तू ऐसही बादि खोइहौ।।32।।

(ऊ) ऊर्ग के बुद्धि को छोड़ि दे यार तू,
शुद्धि करु आपु में हेरु कर्ता
दृष्ट को जोरि के सृष्टि छूटै नहीं,
लागता लोक नयन मीर भर्ता
फेरि आगे चला देखता यों कला,
होत अँजोर नहिं पलक परता
'अजब दास' अलख है यहीं झलक से दूर है,
भानु अखण्ड जहाँ कान्ति वर्ता।।33।।

(ए) एक ही दाव की जीत है यार,
दिन बीति गयो ताहिं त नाहिं जाना।
साँचि को छाड़ि के काँच मन होय रहा,
झूठ ही बात का ठान ठाना।।
पोस्त हाथे लिया डारि हीरा दिया,
हानि और लाभ कछु नाहिं जाना।
'अजब दास' भूल की रीति यह देखिए,
सिंह के बालक करि भेड़ माना।।34।।

उठत धुनि नाभि सों भारी। सोहंगम नाद फन कारी।।
रमी रहै सन्त कोउ ध्यानी। जिन्है गुरु लीन पहिचानी।।
खुलै ब्रह्माण्ड दरवाजा। विविध बिध बाजते बाजा।।
वहाँ नहीं दीप अरु बाती। रहत उँजियार दिन राती।।
गगन को गैल जो पावै। अगम को ख्याल बतलावै।।
धरै हरि ध्यान अविनाशी। गिरे तेहिं सँग के बासी।।
बिना कर बीच कर छेड़ै। बिना मुख बाँसुरी टेरै।।
बिना ऋतु फल है फूला। भँवर तेहिं देखि कै भूला।।
बिराजत आपु जहँ करता। भरम बस सूझ नहिं परता।।36।।

भुवन चहुँ ओर फिर आवै। बिना सत संग ना पावै।।
अलख यह भेद है न्यारा। लखै कोई राम को प्यारा।।
कहत कोई है 'अजब दासा'। अहै गुरु चर्न की आसा।।37।।

पिया कै खोज नहिं पाई। दरस बिनु प्रान अकुलाई।।
करौं का जोर नहिं चलता। बिरह के ज्वाल में जलता।।
बरै नहिं पावै सरीरा। बुझावै नयन को नीरा।।
लगै जब बान या तन में। उठी धुनि कहर की मन में।।
नगारा नाम को बाजा। पवन असवार मन राजा।।
वही है संत औ शूरा। मिला गुरु जाहि को पूरा।।
भयो वहीं देश को बासी। न आवै फेरि कै काशी।।
ठेकाना साधु बतलावै। बिना कोई भाग्य नहिं पावै।।
'अजब' हरि भेद नहिं जानी। कहत सुनि साधु की बानी।।38।।

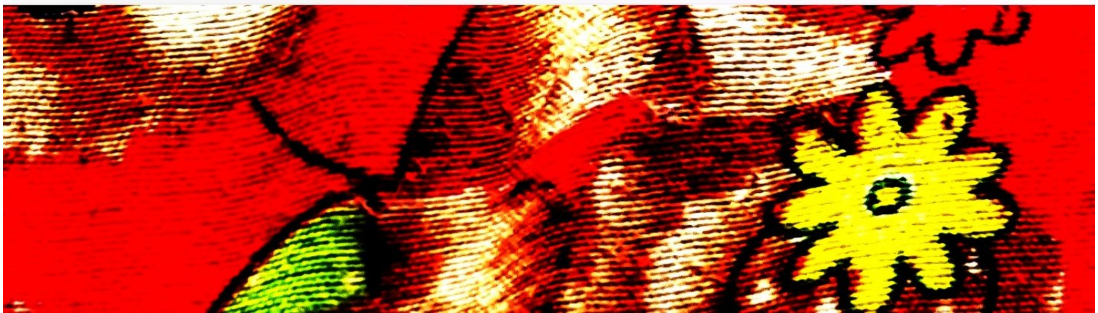

शाह फकीर साहेब

नदिया ज़ोर बहै री हम कैसे उतरव पार।
ना मोरे नइया ना मोरे भइया, ना मोरे खेवन हार।।
सुरति निरति की नाव बनाओ, यहि बिधि उतरो पार।
नाभी कमल ते पवन चलाओ, मन लावहु त्रिपुनि द्वार।।
यह मति में कोई यक जानै, रहनि बिहंगम सार।।
ज़ोर जो यमुना अतिहिं भयावन पनियां बहै ना थीर।
बिना नावरी बिना पाँवरी उतरै शाह "फ़क़ीर"।।1।।

राग कान्हरा

हैफ़ तेरा रँग मीयाँ हैफ़ तेरा रँग।
गगन चढ़ायो जोति जगायो तहँ मिलायो सँग।।
आगे चलै यों बूझै जोई सोई सतुगुरु धीर।
भाई यारो हम तुम पाई गावैं शाह "फ़क़ीर"।।
मीयाँ हैफ़ तेरा रँग।।2।।

साख़ी

अजब अजब के पाँचों मारे किया पचीस सों नाता।
सोरह हेलो वाको खेलों तीन मिलों तेहि जाता।।
चाँद सूर्य को उलटि बेधि के बीचहिं बीच समाई।
बारह अंगुल जेकरे पैठै सोई सो तहँवा जाई।।
शाह फ़क़ीरा ज़िन्दा देहियाँ इहवाँ गैवब बनाई।।31।।

शब्द

ध्यान लगावहु त्रिपुनी द्वार। गहि सुषमन्ना बिहंगम सार।।
पैठि पताल में पश्चिम द्वार। चढ़ि सुमेरु भव उतरहु पार।।
हफ्त़ कमल नीके हम बूझा। अठयें बिना एको नहिं बूझा।।
शाह 'फक़ीरा' यह सब धंद। सुरति लगाउ जहाँ वह चन्द।।4।।

गुलाल साहेब

राग नट

जौ कोई साँचि लगन हिय आवै।
काटै सकरम का फन्दा, आनद पुर घर छावै।।
पाँच पचीस तीन बसि करि कै, सुषमन सेज बिछावै।
सुरति सोहागिन उड़ै गगन मुख, तब चन्दा दर्सावै।।
मूल चक्र गहि कै दृढ़ बान्हो, बंक नाल चढ़ि धावै।
अविगति सों यह खेल बनी है, आवागवन रहावै।।
रीझि-रीझि दसहूँ दिस पूजे, अपरम ब्रह्म समावै।
जन 'गुलाल' भई प्यारी खसम की, रहसि-रहसि गुन गावै।।1।।

उलटि देखो घट में जोति पसार।
बिनु बाजे शब्द ध्वनि होवै, कमल कचनार।।
पैठि पताल सूर शशि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार।
गंगा यमुना वार पार बिच, भरत हैं अमिय करार।।
इँगला पिंगला सुषमन सोधो, बहत शिषर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठो गगन पर, सहज उठय झंकार।।
सोहँ डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार।
कहैं 'गुलाल' सतुगुरु बर पायों भरो है मुक्ति भँडार।।2।।

मन में निर्गुन गति जौ आवै।
हानि न होय जीव कै कबहीं, गगन मंडल घर छावै।।
राजा रँक छत्र पति भूपत्ति, गर्विहिं गर्व न भावै।
नाना सुख तजि भयो है दिवाना, पंडित वेद न भावै।।
संन्यासी वैरागी तपसी, तीरथ रटि-रटि धावै।
आतम राम न जानहि पापी, तन कहँ त्रास दिखावै।।
संसय मेटि करहु सत संगति, प्रेम पंथ पर धावै।
शुन्य नग्र में आसन माँडे, जगमग जोति जगावै।

11:38
many sant bani hindi boo...

... काऊ पावै ।3।।

मन तुम नेक गहो चित राम।
जासु नाम सुर नर नहिं पावहिं, संत महा सुख धाम।।
पाँच पचीस तीन हैं मुर्शिद, उन्ह कहँ ग्राम न ठाम
जारहिं शहर लुटहिं बिनु लश्कर, निसु दिन आठहुँ याम।
काज़ी मौलाना पीर अरु पंडित, धै मारत लै खाम
ज़ालिम ज़ोर नेकु नहिं मानत, प्रजा दुखित बे राम।
सत्य संतोषक या गढ़ भीतर, सुरति सुरंग सुनाम।
उर्ध पवन ले घरहु गगन में, चाँपि करहु विश्राम।
यम जीतो घर नौबत बाजै, किया है जोति दिवान
दास 'गुलाल' करहिं बदशाही, नूर तजल्ली नाम।।4।।

मन सुन्य सहज चढ़ि करु निवास।
रूप रेख तहँ जाति-पाँति नहिं, अक्षै अमूरति करति बास।।
बिनु करताल पखाउज बाजै, बिनु रसना गुन गाई।
बिनु बाजे शब्द ध्वनि होई, बिनु पग नाच नचाई।।
चाँद सूर निसु बासर नाहीं, तीन देव नहिं वेदहु चारि।
कहैं 'गुलाल' तहँ मारू बाजी, घर आओ मन सहजहिं मारि।।5।।

जब हम प्रभु पायो बड़ भागी।
तन मन धन नेवछावर बारो, हरि चरनन चित लागी।।
काम क्रोध ममिता मन त्यागो, अभय अगम पद जागी।
अर्ध उर्ध बिच भाटी साजो, पियत करारी पागी।।
त्रिवेनी में लगी खुमारी, टरत नहीं मन टारी।
गंग यमुन के मध्य निरंतर, तहवाँ देव मुरारी।।
उठत लहरि मुक्ता मणि मानिक, निझर झरि तहँ लागी।
श्वेत सिंहासन बैठक पायो, जन 'गुलाल' बैरागी।।6।।

उड़ि चलहु बिहंगम अगम बास, जहं आवा गवन नहिं प्रभु रास।
बिनु पद चोंच पक्ष बिनु तहवाँ, गयो घर पायो अमर अकास।।
ऊठति जोति सुधारस धारा; पीयत ब्रह्म सुबास बास।
मगन भयो पिय के रंग राते जन 'गुलाल' जी की पूजी आस।। 7।।

जो पै कोई उलटि निहारै आप।
निरखि-निरखि अन्तर लै लाओ, बिनु माला को जाप।।

मन में प्रीति करहु निज नाम।
यह संसार अगम भौ सागर बहत हैं आठो याम।।
अपने घर की सुधि नहिं जानत जल पत्थर पर मान।
इनकी ओट जन्म जहँड़ायहु मनुआँ फिरत हैं होय हैवान।।
पाँच पचीसों प्रबल चोर हैं, तीन देव को मान।
कुल की कानि अन्ध नहिं सूझत, मुअले कहाँ समान।।
अगम निगम जिन पंथ निहारो पक्षिम उगायो भान।
कहैं 'गुलाल' सतुगुरु बलिहारी निकस गयो स्मान।।13।।

राग काफ़ी

अबिनाशी दुलह हमारा है।
जीतो जोग भोग सब त्यागो, भवसागर सों न्यारा है।।
कृपा कियो सतुगुरु बर दीन्हों, उलटा चौक पसारा है।
तन मन धन नेवछावर वारों, कंत मिलै प्रभु यारा है।।
सुषमन सेज निरन्तर डासो, सोहंग चवर सुढ़ारा है।
ताहि पलँग पर पिय मोर बैसहिं, करूँ वै मंगल चारा है।।
अगम अपार अनभो अनमूरति, लोक बेद से न्यारा है।
कहैं 'गुलाल' भागेहुँ हम पायो, कियो है चरन अधारा है।।14।।

अघ तारन श्रीपति राया हैं।।
असरन सरन जाहि की बाना, सन्तन सदा सहाई है।
चौरासी पालन प्रति पालन, पल-पल पलक में छाई है।।
अनेक दुखी के दुख को हारन, गर्बिन गर्भ नसाई है।
सुर नर नाग[5] सिद्ध मुनि ध्यावहिं, थाह कहूँ नहिं पाई है।।
ध्रुव प्रह्लाद विभीषण को पन, पंडव जरत बचाई है।
प्रभु पग पर तन मन जिन दीन्हों, सकल हँकार अड़ाई है।।
ताके ऊपर आप बसतु है, दुःख निकट नहि आई है।
गगन मण्डल जिन आसन मार्‌यो, जगमग जोति जगाई है।।
कहैं 'गुलाल' मिले परमेश्वर, निसु दिन डंक बजाई है।।15।।

11:42

जोगी देखत अब जइसन मुरारि।
जंगल-जंगल फिरौ मिलै नहिं ठाँव।
औघट घाटी पर जोगिया कै गाँव।।
कहैं 'गुलाल' हम पिया के पियारी।
जोगियै हर्षि बाह धयल हमारी।।25।।

हरिपुर चलु या बिध सो जहाँ सन्तन बास।।
सतुगुरु सत्य लखावल, पावल मति मूल।
प्रेम प्रीति चित लावल, उन्हैं देखल स्थूल।।
चाँद सूर घर आयल तिरबेनी के तीर।
निरखि-निरखि गति साजल दर्सन रघुबीर।।
सुरति निरति लै जाइब घर अगम अबास।
तहवाँ प्रान अनन्दि यम काटल फाँस।।
लोक वदे तीरथ ब्रत सब राखहि आस।
जन 'गुलाल' सति बोलहि उन हो मोरे पास।।26।।

मैं तो राम की चकरिया मन लाऊँगा, ताते सहज स्वरूप समाऊँगा।
उन मुनि धुनि में सुरति समाऊँ, उलटी गंग बहाऊँगा।।
सुषमन के घर ताड़ी लगाओ, अमिय अलूफा पाऊँगा।
आठो पहर करूँ असवारी, ज्ञान कै खंग लगाऊँगा।।
तरकस पवन बन्द लाओ, पकरि भौ आस ले आऊँगा।
साहेब रीझो नौबत बकसो, निसु दिन डँक बजाऊँगा।
जन 'गुलाल' भए दफ्तर दाखिल बहुरि न भव जल आऊँगा।।27।।

राग काफ़ी

उठि चलु मनुआँ बैरागी हो, हरि पुर परलि धमार।
चेतहु-चेतहु सतुगुरु हो मनसा पूरन तोहारि।।
मेरु दण्ड में जायहु हो भँवर गुफा के द्वार।
तहँवाँ जोति जगायहु हो जीव उतरेहु पार।।
जहँवाँ बसहि सहोदर तहँवाँ करेहु संभार।
दिन-दिन लगन लगायहु बहुर न आवनहार।।
जीव ब्रम्ह के यारी गाँठि परल बरियारी।
बाझ बझल नहिं छूटै, गहि कै बाँधि ले तारी।।
जब हम भइली पिया कै देखि जरै संसार।
कहैं 'गुलाल' जम्ह जीतल के अब खोजनिहार।।28।।

सजूद मर्द यारा जिन्ह आप को बिचारा।
ज्ञान ध्यान करि संधान, उलटि बान मारा।।
अर्ध उर्ध मध्य नभ निकरि गयो पारा।
परम तत्त्व गति अनन्त, सिद्धन गुन गाया।।
और कोई क्या जानै अपर्बल प्रभु माया।
उमगी सोहं ब्रह्म, बिकसि कमल छाया।।
कहैं 'गुलाल' अतीत रूप जोति में समाया।।29।।

भाई राम नाम लै लीजै।
प्रभुही प्रीति करु प्रभुही प्रीति धरू, आपु सम्हारा कीजै।।
साहेब सेवा सन्त निरंजन, मंजन त्रिपुनी कीजै।
बिमल-बिमल बानी धुनि होवै, साधुन संग करीजै।।
नाम रटत शिव गज मुनि उधरे, नामै नाम अधारा।
नाम रटत गोरखदत्त उधरे, नामै जपत चमारा।।
वंश निशाचर भये बिभीषण, ताको राजा कीजै।
हनूनान भक्ति बर पायो, ध्रुव को पदवी दीजै।।
है कोई भाई प्रेम पियारा, राम नाम गुण गावै।
कहैं 'गुलाल' तिन्ह की बलिहारी सोई सन्त कहावै।।30।।

शब्द

पावल प्रेम पियरवा, अहो राम ताही रे रूप।
ज्ञान गछावल गावल, अहो राम ताही रे तर।।
मनुआँ हमरो बिआहल, अहो राम ताही रे रूप।
मन मति कइल बधावर, अहो राम ताही रे तर।।
ऊँच अटरिया[7] पिया मोर छावल, अहो राम ताही रे पर।
गुर गम गाँठि[9] दियावल, अहो राम ताही रे पर।।31।।

अगम धुनि बजना बजावल, अहो राम ताली रे पर।
मोतिअन चउक पुरावल, अहो राम ताली रे पर।।
दुलहिन दुलहा भावल, अहो राम ताली रे मन।
भुज भरि कंठ लगावल, अहो राम ताली रे मन।।
दास 'गुलाल' प्रभु पावल, अहो राम ताली रे पद।
मनुआँ प्रिति लगावल, अहो राम ताली रे पर।।32।।

राग काफ़ी

मैं बलि-बलि जाऊँ, मेरो मन लागल प्रभु पंथा।
प्रेम नेम लै लावल हो, पावल गुरुतीत।।

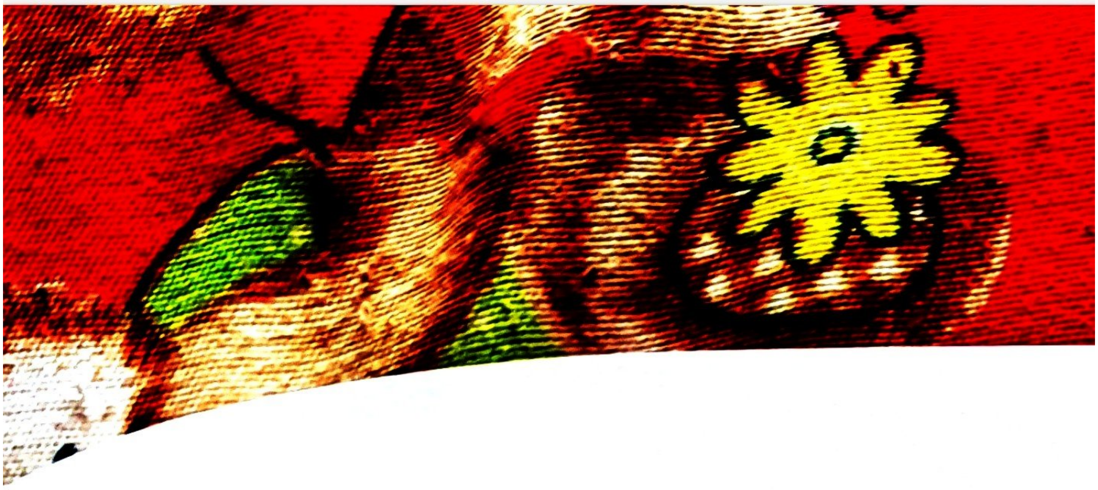

पुलकि-पुलकि छबि देखल, गावल निर्गुन गीत।।
या तन समै सोहवन हो, जानहु परतीत।
राम बिना कैसे जीवन हो, बालू ज्यों भीत।
सासु सोहागिन बेलसहिं हो, ननदी विपरीत।।
गाँव कै लोग नहिं आपन हो, सवती कै चीत।
सुनहु सखिया सहेलर हो, जौ कहल हमार।।
भव जल नदिया भयावन हो, कैसे उतरब पार।
उलटि पवन घर सोधल हो, सब रहा लजाय।।
जगमग-जगमग त्रिकुटी हो, देखि रहल लोभाय।
गंग यमुन बिच मंडप हो, तहाँ भूख न प्यास।
बिनु पर हंसा उड़ि मौने हो, वहाँ भूख न प्यास।
पाप पुन्य नहिं दुख सुख हो, नहिं रोग न सोग।।
सुषमन सार अमिय रस हो, तहाँ जोग न भोग।
गगन मगन धुनि गाजै हो, देखि अधर अकास।।
जन 'गुलाल' बँसहरिया हो, तहाँ करहु निवास।।33।।

हम पावल लरि जन जोति हो।
पुलकि-पुलकि मन लावल। प्रेम लगल धुनि सोति हो।।
रटत नाम निसु बासर। छत्र फिरै दिन राति हो।।
पति पावल हम अविगति। तहँ मिललैं वुन्द सेवाति हो।।
पति पावल हम अविगति। आनद उदित रंग राति हो।।
जन 'गुलाल' बसह हरिया हो। तहँ बैठे हरि पर पाती हो।।34।।

मन राम नाम हृदय जपु संतन सुख दाई।।
जासु नाम जपत शेष मुनिन लियो उपदेस।
शिव समाधि धरत नित्य केवल गुण गाई।।
शुन्य शिखर बरति जोति प्राण पुरुष चुँगत मोति।
सिद्ध ध्यान धरत तहाँ निर्मल चित लाई।।
उदित चन्द भय अनन्द विकसि कमल करत कंत।
भँवर भेद सुख मना में अमिय रस अघाई।।
अचल अमर किया भेष छोड़ि दियो यम देश।
जन 'गुलाल' रहत प्रभु चरन में समाई।।49।।

महाराज राम सुयश कौन सकत गाई।
इन्द्री है अति प्रवाह मन ना समाई।।
सुर नर मुनि नाग देश स्तुति हैं करत शेष।
विमल-विमल सुर समेत करत सुजस साई।।
त्रिभुवन त्रैलोकनाथ तारे केतिक अनाथ।
चरण रेणु लागत शिल गणिका गति पाई।
योगी जोगेश पाल केतिक ठाढ़े भुपाल।

शिव सकति रटत नाम रिष मुनि समुदाई।
धरि अधार कर पुकार कोऊ न पाव पार।।
तुम्हारो जो दास पतित करत है बड़ाई।
जल थल जीव प्राण पूरि रहो घट समान।
कहाँ लो करीं ब्यान उक्ति ना समाई।।
कहैं 'गुलाल' मिनतिदार सुनिए सन्तन पियार।
अबकी बार चरन सरन राखिए लगाई।।

मन मोन हरि-हरि बोलत राम। और देव से नाहीं काम।।
प्रेम प्रिति नितहीं चित लाय। रैन दिवस कतहूँ नहिं जाय।।
पाँच पचीस ले बैठु अकास। केलि करै कोई सँग न पास।।
सुन्य सहज घर कर बहु रंग। दसो दिशा में उठत है रंग।।
कृपा कियो गुर भयो निस्तार। जन 'गुलाल' भजि उतरे पार।।50।।

राम भक्ति में जो पगै। आवा गवनिन होवै।।
यम बपुरा तव का करै। पातक सब जब धोवै।।
जो नर कमल चरण रते। ममिता मन की खोवै।।
ताकी दशा और भई। हरि-हरि हरदम जोवै।।
सन्त सभा में बैठही। जग के सँग न आवै।।

निस बासर हाज़िर रहहि। अबधू तक कहवावै।।
यह रस साधु सँगति लियो। हरि नाम भिखारी।।
जन 'गुलाल' सत बोलहीं। हमहीं मिलहिं मुरारी।।51।।

अवचक आयल पिय कै सँदेसवा, तब हम उठि सँगवा लगली हो।
बढ़लि लाज शरम धै खायल, छुटल बंधु परिवार हो।।
रिम छुटल गति औरै भइली, हँसत सकल संसार हो।
राम बान हृदयें गहि मरलन, बिनु सर निकल्यो पार हो।
धुमि-धुमि घायल ज्यों, घुमत गिरत परत मतचार हो।।52।।

घर हम फूकि भये बौराहे, जरली मठ उए तारा हो।
बिकसेउ कमल भँवर रस लुबधो, पियत अमिय रस धारा हो।।
गाँव कै लोगवाँ हँसि-हँसि खेदैं, घर कै भूत पछारा हो।
कहैं 'गुलाल' जब ब्रह्म अग्नि लगी, तब घर में मन मारा हो।।53।।

शब्द

पिया मिलबे कहँ उठि चली सोहागिन नारि।
आप अपन सों भाखनो हरि रूप सँवारि।।
अर्ध उर्ध के अन्तरे तहँ सेज सँवारि।
सुख मन चौर डोलावहीं प्रभु की बलिहारि।।
अष्ठ कमल के भीतरे स्थित बनवारि।
गुर गम होय मेला करै। तन मन धन वारि।।
उलटि चलो आनन्द पुर जहँ चलत नसारि।
डक देत निर्भो भयो मृग चरत न वारि।।
हाट बाट नहिं आवई तहँ भरत करारि।
जन 'गुलाल' रस पीवही सत्गुरु बलिहारि।।54।।

झूठी सेवा करत आस। राम बिना मोह पहा बा[illegible]
तीरथ बरत देवता अधार। कोऊ नहिं पूछहिं यम के द्वार[illegible]
यहि विश्वास भूलहिं मत कोय। माँझधार में बोरहिं सोय।।
लोक वेद महँ रत संसार। राम न चीन्हहि मूर्ख गँवार।।
ऐसहि समय गयो दिन बीती। बार न दहत बालु कै भीती।।
कहैं 'गुलाल' मूढ़ हम भाई। सबै स्यान हमहिं बोराई।।55।।

ससि औ सूर यवन भरि मेला। दृढ़ कै आसन बैठु अकेला।।
उलटि नाल गगन घर जावै। बिकसै कमल चन्द दरसावै।।

यह संसार सकल जग अन्धा। गर्बहिं गर्ब भुलाए।।
सूझत नहिं सनमुख हैं साहेब। घर तजि घर बूताए।।
गगन मँडल अनहद धुनि बाजैं। सुन्य नगर में समाए।।
कहैं 'गुलाल' यह अगम मुक्ति है। बिरला जन कोऊ पाए।।81।।

रे मन राम सुमिरन करे।
अजपा जाप हृदय लय लाओ। पाँच पचीस तीन मरै।।
अष्ट कमल में जीव बसतु हैं। द्वादस बल न करै।।
सोरह ऊपर बानी उठत हैं। दुइ दल अमृत झरै।।
पच्छिम दिश होई गगन मण्डल में। काल बली सो लरै।।
यम जीतो है परम पद पायो। जोति जगमग बरै।।
कहैं 'गुलाल' सोई पूरन साहेब। हरदम मुक्ति फरै।।82।।

मन तू कपट दूर अड़ाव।
भटक की तुम कथा छोड़ो। सुरति शब्द समाउ।।
करत चाल कुचाल चालैं। मकर मेलु सुभाउ।।
तीन त्रिगुन है तपत दिनकर। कैसहूँ न बुताउ।।
अति मलीन अधीन माया। मोह में चित लाउ।।
अगम घर की खबर नाहीं। मूढ़ ताकत पाउ।।
शुन्य शिखर सरोज फूल्यो। बँक नाले जाउ।।
कहैं 'गुलाल' अतिथ पूरन। आपनो घर पाउ।।83।।

चित धरि करहु आप सम्हार।
सुरति डोरी लगाव गगनहिं। उठत है झंकार।।
चन्द सूरज रैनि दिसु नहिं। धर्म नाहीं अचार।।
मरन जीवन सँग साथी। ऐसोई ब्योहार।।
यहाँ कौन देखत सुनत को है। गुन न वार न पार।।
अगम घर पर जाय बैठो। घर न होय पगार।।
प्रेम आगे नेम कैसो। बस गयो जार छार।।
कहैं 'गुलाल' जो नाम न लिया। अक्षर नाहीं विस्तार।।84।।

जिभ्या तूँ राम नाम गुन गाव।
खटरसहूँ को कौन महातम। जिन नर हरि रस पाव।।
प्रेम प्रिति हिए रीत चित्त धरु। नाद में लपटाव।।
झूठ कपट बिचार डारो। जाय एक सयाउ।।
डोल डम्भ मुँह कारन। भूलेहू नाहीं पाउ।।
फिरत-फिरत तन थकित पैड़ै। अब तुम्हारो दाव।।

अद्भुत रूप अपार बिराजै, सदा रहे भरि पूरा।
कहैं 'गुलाल' सोई जन जानैं, जाहि मिलैं गुरु पूरा।।101।।

अबधू सो योगी गुरु ज्ञानी।
भजैं राम जक्त होय न्यारा, ब्रह्म स्वरूप पचिहानी।
काम को मारि क्रोध को जारै, धोखा दूरि बहावै।।
मन गयन्द ज्ञान करु सीकर, पकरि जंजीर भरावै।
शील सन्तोष कै आसन मारो, सत्य स्वरूप विचारो।।
जीव ब्रह्म जब मेला होवै, आवागवन नेवारो।
अक्षै अमर अनभो अन मूरति, कोई सन्त जन पावै।।
कहैं 'गुलाल' सतगुरु बलिहारी, फिर यहि लोकन आवै।।102।।

राग विलावल

आली री पिया मोर अलख अलेखा।
यह दिल ढूँढ़ि सकल दिल ढूँढों, बसत हैं साहब एका।।
यह मति साधुन कै मन माना, छुटत नहीं जिय टेका।
अर्ध उर्घ के मध्य निरन्तर, उलटी सुषमन देशा।
कहैं 'गुलाल' शिव ब्रह्मा नाहिन, अचल अमर कियो भेषा।।103।।

राग धनाश्री

नर से कहूँ समुझै नहिं भाई।
झूठी सब बिश्वास करत हैं, धोख धन्धा लपटाई।।
त्रिदेवा तिन मता चलावै, धर्म वेद जो दिढ़ाई।
याही मता लोक मन माना, अरुझि रहा सब भाई।।
जन्म मरन को ख्याल बनो है, विषया में लपटाई।
जैसे कृम कोवा में लुबुधे, यों लुबधे दुनियाई।।
नर्क से स्वर्ग स्वर्ग से नर्कहि, काल के हाथ बिकाई।
मरकट मुट्ठी धरैं जो भ्रम कै, धरत फिरत जहँड़ाई।।
कहैं 'गुलाल' जौं सुनै हमारी, यम से लहु बचाई।
अब को गवना बहुर नहिं औना, अजर अमर घर पाई।।104।।

करु मन सहज नाम व्योपार। छोड़ सकल व्योहार।
निस बासर दिन रैनि डहत है। नेकु न धरत करार।
धन्धा धोख रहत लपटानी। भ्रमत फिरत संसार।
मातु पित सुत बन्धु नारी। कुल कुटुम्ब पलिवार।
माया फाँस बांधि मत डूबहु। छन में होइहौ संघार।
हर की भक्ति न कीन्हों कबहूँ। सन्तन गए जरि छार।

अहंकार मद गर्भ भुलाने। जन्म गए जरि छार।
अनभौ घर कै सुधि नहिं जानत। कासे कहौं गँवार
कहैं 'गुलाल' सबै नर ग़ालिफ़ल। कौन उतारै पार।।105।।

राग कल्यान

देखो सन्तों सुरति चढ़ी अस्मान, दूजा और न आन।
जगमग जोति बरत अति निर्मल, देखि दरस कुर्बान।
निरखि रूप मन सहज समानो, यम कै मर्दल मान।
जन 'गुलाल' पिया प्रेम लगन लगो, दियो है सी को दान।।106।।

राग गंधार गौर

राम नाम हृदय जौं ध्यावै। यम दुत ताके निकट न आवैं।।
पाँचहिं बाँधि पचीसहु बाँधै। साधै सुरति गगन आराधै।।
सोहं शब्द उठत जो तरंगा। बरत है जोति तहाँ मन सँगा।।
और न बर्ण न जाति-पाँती। चाँद सूर नहिं दिवस न राती।।
तन मन मेटि कै रहा समाई। सूरा होई कै पैठै जाई।।
जन 'गुलाल' बोलैं अमृत बानी। जो जानै सोई ब्रह्मज्ञानी।।107।।

राग गौरी

सहज स्वरूप भइलो मोरे मना। निर्मल निर्गुन निरन्तर धना।।
बिमल-बिमल बाणी धुनि गावै। शीतल शब्द सुनत बिनु काना।।
गगन मँडल में आसन मारो। धुनि सुनत अब भयो दिवाना।।
उमगि उमगि मुक्त तहाँ बर्खत। हंस रूप तहाँ चुगत अघाना।।
कहैं 'गुलाल' यह लगन हमारि। छोड़ि मया हरि जोति समाना।।108।।

मना अभि अन्तर ही लय लाव।
ना तौ जन्म जन्म जँहड़ाव।।
धन दारा सुत देखि कै काहे बौराय हो।
काल अचानक मारिहे कोउ सँग न जाय हो।।
धीरज धरु सन्तोष सत्य गुरु बचन सहाई हो।
पद अम्बुज को करु नवका, भवसागर तर जाई हो।।
अबकी बार हारि हारो मन, कहाँ लगि कहउँ बुझाई।
जन 'गुलाल' अनभो पद पायो, छुटल सकल दुनियाई।।109।।

राग मंगल

एकै नाम अधारा हो।।
परखि-परखि निर्खत निस बासर, जग ते भयो निनारा हो।
अष्ट कमल में जीव बसुत है, सतगुरु शब्द बिचारा हो।।
लै कै पवन हंस जब गवनेउ, त्रिकुटी भौ उँजियारा हो।
पैठि पताल मूल बन्द बाँधी, सुषमन सेज सवारा हो।।
निझर झरत अमिय तहँ बर्खत, मनुआँ पियत हमारा हो।
गगन मंडल में नौबति बाजै, आठ पहर एक तारा हो।।
मारेउ ममिता चित समानेउ, चौमुख दीपक बारा हो।
छूटो देह नेहँ रहै एक सो, आदौ ब्रह्म बिचारा हो।।
कहैं 'गुलाल' साहेब हम पायो, यम का करिहैं हमारा हो।।114।।

राग शंकरा भवन

लागलि गुरु कैं साट एक मोरि सखिया।
हम भइलीं मन भावन ए मोरि सखिया।।
पाँच सखी मिल मंगल गावहिं, मोतियन चउक पुराई।
तारी दै-दै भाँवरि फेरहिं, दुलहा बरनि नहिं जाई।।
चौका चारि चतुर्जन बैठे, आनन्द भेद बनाई।
चन्द्र लगन सिर सेंदुर सोभित, अमर सोहाग बनाई।।
नौबत धुनि चहुँओर दसहुँ दिश, माँड़ो, उदित सोहाई।
रोम-रोम मनसा पूरन भयो, दुलहिन पिया मन भाई।।
भाँड़व जारि बरिय तिन्ह मारल, खायल गाँव कै लोग।
कहै 'गुलाल' हमहीं संहारल, पुरन भयल तब जोग।।115।।

दीनानाथ अनाथ है कोई पार न पावै।
बरनो कवनी युक्ति सों कछु उक्ति न आवै।।
यह मन चंचल चोर है निस बासर धावै।
काम क्रोध में मिल रहो इहवै मन भावै।।
कृपा करहु करुना मई चरनन चित लावै।
अबकी बार यहि अन्ध के कछु दाया कीजै।।
जन 'गुलाल' बिनती करहिं अपनो कर लीजै।।116।।

राग काफ़ी

परस नारायण को मोहिं लागे।
लोह ते कनक, कनक ते पारस भयो आगनित अनुरागे।।
काष्ठ ते चन्दन, चन्दन ते मलयज मोल अनमोलन्ह लागे।
भृंग ते कीट कीट भृंग भयो, योगी युक्ति समाधे।।
काग ते हंस हंस परमहंस भयो, योगी युक्ति समाधे।
जीतो जोग भोग सब त्यागै, सो नर मन को बाँधे।।
चढ़ि पहार निर्धार' जोति मिलो, उलटि गयो है सुभागे।
एकै ब्रह्म एक भयो साहब, कहै 'गुलाल' मन पागे।।

राग विलावल

ऐसो ध्यान लगावहु सना, शून्य शिखर चढ़ि छोड़हु तना।
पाँच पचीस करो बसि अपने, तीन देव त्रिवेणी ध्याना।।
जोग जोति बरै निशि बासर, निर्खत मनुआँ भयो है देवाना।
बिकसेउ कमल अमिय तहँ बर्षत, सुषमन के घर पिअत अधाना।।
चन्द्र झिलमिल दामिन दमके, धुनि-धुनि सुनि प्रान रहत है समाना।
गगन मण्डल में ताड़ी लाओ, आसन दिढ़ कै हो चहु पाना।।
उमगि-उमगि मानिक मनि बर्खत, चूँगत ब्रह्म मिल्यो तहँ ज्ञाना।।
यम जीतो घर नौवति बाजै, अनको रूप मिल्यो तहँ जाना।।
कहै 'गुलाल' दासन को दास हम, जीतो जोग भोग तजि नाना।

राग सारंग

हे नर जानि लेहु हरि नाम।
ऐसो समय बहुरि नहिं पैहो, जनम जात निकाम।।
पाँच पचीस प्रबल तन में हैं, मनुआँ बसत देवान।
निसु बासर बिकल होइ धावहीं, भूलो फिरत दिवान।
आसा डोरी लिए सँग डोलहिं, जल पत्थल परवान।।
राम च चीन्हहिं ग़ाफिल बन्दा, यम लीहहिं गहि प्रान।
घट में साहब चीन्हत नाहीं, भ्रमत फिरत संसार।।
कहै 'गुलाल' गुर नाव में बैठो, तब हम उतरब पार।।

राग विलावल

नयनहुँ आगे खड़े आज हरि, नयनहुँ आगे खड़े।
सुर नर मुनि जाको खोज न पावहिं, केतिक यज्ञ करैं।।
कहा बरनों छबि बरनि न आवै, आनन्द सिद्ध भरे।
निरखि रूप भई है दिवानी, कोटिन चन्द्र हुए।।

अरे हो भरत मुक्ति करखा, तहँ ज्ञान कै लूटि।
तब पिय हमहिं निरेखल, अब नाहिन छूटि।।
पिया कै भइलीं पियारी, और सिंगासन रानि।
कहै 'गुलाल' बर पावल, अब सारंग पानि।।

राग सारंग

गुन्हि के हार ले आव रे मालिन।
अच्छै अमर आनन्द अनमूरति, भाव से कंठ लगाव।।
सुषमन सूत धरि बंक नाल गहि, प्रेम कै धगा बँधाव।
सुरति निरति लै हरिदम भरि, भरि, ज्ञान कै सूई चलाव।।
हारि-हारि मन थकित भयो है, बानक बनि-बनि आव।
अन्नौ उदित साहेब हम पायो, जन गुलाल बनि जाव।।

भाग बड़ो बनि आयो हमार, भाग बड़ो धनि आयो।
जल ते कृपा किया सत्‌गुरु ने, उलटि गगन चढ़ि धायो।।
योग यज्ञ सबै हम छोड़ल, ममिता मइल बहायो।
एक नाम मन में जब आयो, हरिदम हरि हरि गायो।।
सहज स्वरूप सक्ति शिव बाधो, तामे सुरति बसायो।
यह गति ज्ञान सिद्ध कोई जानै, आनद डंक बजायो।।
अति आनन्द भयो मोरे जिव, मानिक मोल करायो।
कहै 'गुलाल' राम साहु आयो, घरही बैल लदायो।।

राग मंगल

गुन जानी गुनवन्ती नारि, तौ कन्त मनाइला हे।
अहो राम सुदिन लगन सोचाई, तबहि मन लाइला हे।।
अर्ध उर्ध के मध्य तौ चौक पुराइला हे।
अहो राम मुक्ता भरि-भरि थार, तौ आरती बनाइला हे।।
गंग यमुन के घाटे, कलसा धराइला हे।
अहो रामा मानिक बरै दिन राति तो चँवर सोहाइला हे।।
चौमुख दीपक वारि तौ माड़ो छाइला हे।
अहो शमा निरक्षर झरि-झरि लाय अमृत कस पाइला हे।।
गावहि सखिया सहेलरि, दुलहिन नागरि हे।
अहो राम जन 'गुलाल' सोहागिन प्रभु सँग भाइला हे।।

राग हमेज़

अँखिया खोल देखु, दुनिया है रँग बोर।।
यह तन जीवन दिवस चारि कै, धन योवन कत जोर।

नर खेलहु फाग बनाय मगन मन झूमरिया।।
अष्ट कमल बिकसित भयो रस झूमरिया।
भँवर करै रस पान रस झूमरिया।।
अर्ध उर्ध मधि खेलई रस झूमरिया।
सुषमन सहज निवास रस झूमरिया।।
बंक नाल चढ़ि गयो रस झूमरिया।।
आयो प्रभु जी के द्वार राम रस झूमरिया।
कुंज गलिन में रंग रचो रस झूमरिया।।
बैठो गगन में जाय रस झूमरिया।
जगमग ज्योति लगन लगो रस झूमरिया।
कोटि चन्द छबि बार राम रस झूमरिया।।
मुक्ता झरि बर्षन लागि रस झूमरिया।
दशो दिशा झनकार राम रस झूमरिया।।
समय जानि नर खेलहु रस झूमरिया।
फिर पाछे पछताय राम रस झूमरिया।।
जन 'गुलाल' तन मन दियो रस झूमरिया।
पूरी खेप हमार राम रस झूमरिया।।

राग मनोरा

करि संजम हम जाइव हो, सुन्य नग्र जहँ ठाँव, मनोरा।
तीनीहुँ गुनहिं मिटाइब हो, चौथे पद ही निवास, मनोरा।।
स्वेत सिंगासन बैठब हो, बहु बिधि मंगल चार, मनोरा।
जन 'गुलाल' गुन गाइब हो, सत्य लोक समाय, मनोरा।।

हृदय राखि गुन गाइब हो, अनुभव रूप बनाय मनोरा।
मूल चक्र गहि बान्हब हो, बैटब गगन में जाय मनोरा।।
सुन्य नगर में समाइब हो, मृत करत जहँ आपु मनोरा।
निशु बासर गुन गाइब हो, सेज सहज में जाय मनोरा।।
जन 'गुलाल' तहँ भाइव हो, छोड़ि दियो संसार मनोरा।।

याघट ज्योति जगाइब हो, निशुबासर उँजियार मनोरा।
पाँच पचीस तीन बाँधल हो, साधौ सुरति अकाश मनोरा।।
बिनु बाजे धुनि गाजै हो, अधर महल के द्वारा मनोरा।।
तहँ देखत रूप सोहावन हो, स्वेत छत्र मनिआर मनोरा।।
कहै 'गुलाल' आनन्द भयो हो, प्रभु कै बलिहार मनोरा।।

20:49 Vo)) LTE1

राग होरी

मन या घट होरी खेलो हो, त्याग सकल परिपंच।। टेक।
पाँच सखी मिलि चाँचरि गावहिं, अनहद प्रीति लगाई।।
नारि नवल पल-पल ता उलटहि, सनमुख प्रभुहिं रिझाई।।
अर्ध उर्ध मधि होरी खेलहि, तिरबेनी तट जाई।।
अगर गुलाब कुमकुमा केर, छिरकहिं डंक बजाई।
परी हाँक चहुँओर चतुर दिस, फगुवा बर्नि न जाई।।
थकित भई सकल बृज बनिता, बलि बलि यादोराई।
अब खेलो मन महा मगन होई, सतुगुरु शब्द समाई।
फगुआ दान अमर पुर पायो। जन 'गुलाल' गुन गाई।।

राग भरिताल

मैं करों का मन मैला।
ई मन मइल भयल जंजाल। आठ पहर हिए मारैं साल।।
मैं करों का मन मैला। किछु कहल न मानै मन मैला।।
किछु सुधियो न जानै मन मैला। पाँच पचीस लेइ गइलैं हाट।।
लुटत फिरत कोऊ सँग न साथ। यक घरि आवै दुइ घरि जाय।।
निशुबासर को विष फल खाय।
कहै 'गुलाल' यह जानै कोय। आपुहिं करत निश्चै होय।।

कवित्त

दीन दयालु कृपालु दया निध, सन्तन के पति साहेब सोई।
सुन्दर रूप सरूप बिराजत, राखत है हिए माँझ में जोई।।
दानी महा बरदानी बिसम्भर, लोचन लहर सिन्ध सम होई।
'गुलाल' कहै सोई साहेब सेवक, भर्म भुलेव नहिं चीन्हत कोई।।

लालन लाल बिसालन मूरति, भालन की छबि बर्नि न जाई।
कोटिन सूर अरु चन्दहु की छबि, कोटिन नाग मुनी गुन गाई।।
सून्य में जोति और जोति में मानिक, जोतिहुँ जोति रहो है समाई।
'गुलाल' कहै ऐसो पूरन साहब, अन्ध भयो जग सूझत नाई।।

फूल अनुभव फुला भँवर ताम मिला,
फूल नाहीं भँवर नाहीं गति है न्यारी।
शब्द सोहं उठो जीव तामें बसो,
सुषमना सहज तहाँ बहत नारी।।
पैठि पाताल आसमानहूँ को छेद कियो,
ब्रह्म सो ब्रह्म भयो ब्रह्म भारी।।

कहै 'गुलाल' सतगुरु सो पार है,
छत्र सिर फेर दियो कर्म यारी।।

मन युक्ति सों ध्यान लगाई के तब जाय बैठो अगम छाया।
तहाँ वार नाहीं पार नाहीं और दरियाव नाहीं थाह पाया।।
अगम अपार कहँ देख केरे हरष, हरष को खेल अनमोल भाया।
कहै 'गुलाल' यह खेल मेरे खेलत अरु, खेलत ही खेलत मेंटो काया।।

जहँ मूल न डार न पात तहाँ, जोति सो जोति मिल खेल भाया।
'गुलाल' कहै कोई सन्त जना, रसना बिनु तान गगन गाया।।
पौन पताल में बैठि केरे, उलटि के कवल फुलो काया।
भँवर फिरै बहुपान करै, पियो अमिय तब स्वाद भाया।।

गगन केवारी खोलि के रे अगम अपार में जाय छाया।
'गुलाल' कहै साहब सूरत बरनों कहाँ हौं तो सठ जीम पाया।।
बिना रूह के नूर जगाई के रे वा नूर की योति अनन्त छाया।
उहाँ जल बिना दरियाव में रे दरियाव सुरति को घर पाया।।

साख़ी

दुनिया मेला देह को, शब्द को मेला नाहिं।
कहै 'गुलाल' सुन भाई, यह गति सन्तन पाहिं।।

हिंडोला

बिपरीत रचल हिंडोलवा, गुरमुख बचन सुबोल।
रबि ससि दूनों बाधल, तब हम झुलब हिंडोला।।
त्रिकुटी खम्भवा गड़ावल, शुन्य शहर झकझोर।
सुरति निरति चित लावल, झूलब झकोर-झकोर।।
गंग यमुन तट झूलब, सुषमन के घर पान।
जगमग जोति जगावल, यम कर मर्दल मान।।
चान सूर दुनों तानल, बीचहि बिच संधान।
उड़ो हंसा घर गवनेउ, निकल गयेउ स्मान।।
शिव घर शक्ति बसावल, फूलेउ ब्रह्म ज्ञान।
कहै 'गुलाल' घर पावल मिललहिं सन्त सुजान।।

राग होरी

काया नग्न में जोरि, होरी खेलहु।
राम राय के फाग परो है, सुनि चकृत उठि दौरी।।

देत दान सखिया सब लेवहिं, होरी पांय परो सो।।
चाँद सूर थकित भयो हैं, बिभ्रम होत ढको सो।
ऐसो फाग फाग कोऊ-कोऊ पावै, जाहि देहु पावै सो।।
जापर कृपा कियो सतुगुरु ने, पुरन फाग दियो सो।
कहै 'गुलाल' सो नागरि राधे, होरी फाग पायो सो।।

श्याम आई हो होरी खेलो नई।
अति आनन्द उमंग भरो, काकर पुर्ष काकर पति सांई।
ब्याकुल होय चलो दसो दिश, प्रभु मिलबे को युक्ति बनाई।।
ज्ञान ध्यान तन मन भै रीते, लागलि लगन लगन रामे लपटाई।
लेत रँग अनवन सुगन्धता, केसरि पिचुकारिहुँ छाई।।
ऐसो खेल खेली है सुरस सों, बृज यमुना सब ठौर भराई।
अबकी बार श्याम गाफ़िल भयो, सुधि बिसरि गयो आनन आई।।
दास 'गुलाल' प्रभु तुम्हारी सरन तें, अब का करी गोहार गोहराई।

हारिया मैं खेलों खेलाओ, प्रभु सँग जाई।
उत नहिं घात चलत लजाई, अगर कुंकुमा अबीर उड़ाई।
चारिहुँ ओर बाजन बजवाई, हम धनि रहलीं जाति लपटाई।।
सखिया सहेलरि झूमि के गाई, झूमि-झूमि रहों रँग समाई।
तिहुँ पुर रहो फाग भरि छाई, दसो दिशा परो फाग दोहाई।।
देखी देखा रहल लगाई, समय गए फिर फाग पछिताई।
कहै 'गुलाल' हम सत्य पर पाई, फाग खेलल हरदम मन लाई।।

प्रेम नेम चाँचरि रचो रँग होरे होरी।
पुलकि-पुलकि प्रभु पास राम रँग होरे होरी।।
चाँद सूर उलटे चलेउ रँग होरे होरी।
उड़त अबीर अकाश राम रँग होरे होरी।।
इंगला. पिंगला खेलन लागो राम रँग होरे होरी।
सुखमन सहज निवास राम रँग होरे होरी।।
त्रिवेनी फगुवा बने रँग होरे होरी।
मणि गँण झरि चहु पास रँग होरे होरी।।
कुंज कुंजनि रति परो रँग होरे होरी।
चन्द्र बदनि हरि साथ राम रँग होरे होरी।।
कहै 'गुलाल' आनन्द ध्वनि सो ध्यान लगाइए रँग होरे होरी।।

मन खेलहु हरि सो होरी। अनहद बाजन लागे।।
ध्वनि सुनि थकित भई बृज बनिता। काम धाम सब त्यागे।।

अष्ट याम यह रहे भुलाय। ऊँच नीच काल धै खाय।
वेद पुराण कितेब कोरान। याहि मते संसार भुलान।।
न कछु आवै न कछु जाय। घर जारत है घूर बुताय।
यह मन चंचल चोर प्रधान। चोर कपट साँच नहिं जान।।
कहै 'गुलाल' जिनई न कैपाय। का जग जन्मो मूल गँवाय।।

राग मंगल

अचरज यक हम देखल पंडित करहु बिचार।।
का हम कथब का हम सूनब, काह करब ब्योहार।
जगमग अचल देखल, पंडित भयल बिचार।।
ज्ञान कथब धुनि सूनब, नाम करब ब्योहार।
कहाँ से जिण आयल, कहाँ जिव कर बास।।
कहँवा शक्ति समाइल, कहँवा शक्ति निवास।
ब्रह्महि से जीव आयल, नाभी कमल में बास।।
शुन्यहिं शक्ति समाइल, शिधर शक्ति निवास।
कहँवा शिवकर आसन, कहवाँ शिवकर ध्यान।।
कहवाँ शिव कै मंडप, कहवाँ शिव स्थान।
अगमै शिव कर आसन, अगमै शिव स्थान।।
कहवाँ से मन आयल, कहवाँ परल भुलाय।
शक्तिहिं लेई मन गवन हैं कीन्हे, सहजेहिं घर ठहराया।।
कवन शब्द गुन गावल, कैसे बिन्दु मिलाप।
कौन द्वार होय जाइब, कौन करब तहँ जाप।।

अगम शब्द गुन गावल, नादहि बिन्दु मिलाप।
पश्चिम द्वार होई जाइब, आपु करब तहं जाप।।
कहै 'गुलाल' यह अनुभव, सक्तिहिं कयल बिचार।
जो यहि पदहिं बिचारै, सोई सतगुरु सार।।

राग बसन्त

मेरो गुर बसन्त हरि दमहि लागु, वाही कृपा घर फाग जागु।।
छओ ऋतु जब फूलेउ फूल, त्रिबिध पवन सँग भँवर भूल।
अति आनन्द तहँ भयो हुलास, फूल-फूल में पछि अपास।।
कायर कुटिल नहिं पावै ठाम, ढोल बजावत फिरत ग्राम।
हरपुर सुरपुर लिए भार, कासो कहौं यह गति बिचार।।
आगा पीछा मधि न होय, लोक बेद उहाँ नाहिन कोय।
कहैं 'गुलाल' सतगुर बलिहार, प्रभु बसन्त भयो हमार।।

राग बिलावल

सइयाँ मोर सहज भयल जिब ध्यनियाँ।
पाँच पचीस तीन धई बाँधि लो, ठुमकति चलल चिकनियाँ।।
बिनु पगु चाल, बिनु चलबो, दिन रूप भइलो खेखनियाँ।
बिनु रसना, गुन कोटिन गइबो, बाकी अकथ कथनियाँ।।
बिनु करताल बजाइबो घंटा, तौलै रतन नित बनियाँ।
कहै 'गुलाल' हम पिया संग भइली, चेरी भइल अब रनियां।।

आली री पिया मोर अलख अलेख।।
यह दिल ढूँढ़ि सकल दिल ढूँढ़िलो। बसत हैं साहेब एका।।
यह मत साधुन के मन मानो। छूटत नाहीं जिय टेका।।
श्रर्ध उर्ध के मध्य निरन्तर। उलटि सुषमना देशा।।
कहै 'गुलाल' शिव ब्रह्म नाहीं। अचल अमर कियो मेशा।।

साख़ी

योति सरूपी चरन है, तहाँ है मन को ठाम।
नहीं चरन नहि योति है, नाहीं मन विश्राम।।
मन्शा बाचा कर्मना, राखै जो हरि आस।
कहैं 'गुलाल' सत्गुरु मिलैं, सो जन पावै वास।

चेतावनी

परी प्रेम प्रीति, ढहि भर्म भीति।
सभै सुख सानी, नयन रूप जानी।।
लगो तब ध्याना, कर्म गयो नाना।
लहो जब साई, सभो बिसराई।।
महो जब काया, गई तब माया।
तब औरै बिचारा, उलटि बहो धारा।।
गंगे यमुने, चले रस दूने।
गगन जब जावै, लगन जब हुलावै।।
उहाँ बाजै नादा, घण्टा धुनि बाजा।
सुनी बिनु काना, उठै धुनि नाना।।
सुरति ले सम्भारै उहाँ सो निकारै।
महो तब देहाँ, उदै तब नेहाँ।।
उहाँ करहु बिचारा, फिर उलटि सम्भारा।
उगो तब चन्दा, उगे द्वार बन्दा।।
झरत तहाँ मोती, अनन्द तहँ जोती।

दुआ धोख जो दुर्मति छोड़े। त्रिगुण ताप बहावै।।
सुरति निरति ले आसन मारो। सकल सन्तोष जो आवै।।
तिया त्रिकुटी मन जो राखै। झिलमिल जोति जगावै।।
उनमुनि लागे बन्द सहज धुनि। चन्द मण्डल घर छावै।।
चौथे पद पर पग जो नावै। अनभो डंक बजावै।।
गगन मण्डल में बाजी मारो। वंक नाल चढ़ि जावै।।
पचएँ पर्म तत्त्व जो जानय। शुन्य भवन मन लावै।।
पाँच पचीस तीन बस करिकै। सेत छत्र सिर छावै।।
छए छमा शील जो उपजै। सत्य सन्तोष बढ़ावै।।
नव दर दसहूँ दिश में धावै। सहज समाधि जो पावै।।
सतये सदा सरन मन राखै। शब्द कै भेष बनावै।।
कोटि चन्द निछावर वारो। मानिक जोति जगावै।।
अठयें अगम जोति जौं बारै। दरसि परसि चित लावै।।
सोहंग सुरति रहै निशु वासर। अनत कतहुँ नहिं जावै।।
नउपे नाम निरंजन नउका। कन हरिगुन चलावै।।
साँचे कहे झूठ नहिं आवै। भवसागर तरि जावै।।
दसयें द्वार की ताली खोलै। अविगति गतिहिं समावै।।
सकल कामना पूरन मन कै। मउजै मउज मिलावै।।
कहैं "गुलाल" तब सतुगुरु चीन्है। घर ही में घर छावै।।

राम रमो राम रमि रहो, पूरन ब्रह्म रहो छाय।
अविगति गति को जनाई, शिव सनकादि धाय।।
सुर नर मुनि सब गावहीं, काहू न पायो पार।
जो जन सरन गए प्रभु, तिन पायो पद सार।।
अक्षय अमर आनन्द है, ज्ञान उदित आलेख।
सर्व भूत में पुरि रहो, सो प्रभु छन छन देख।।
निशु दिन नौबत बाजई, निर्झर झरै तहँ नूर।
उमगि-उमगि तहँ भावहीं, कोई बैठे साधू सूर।।
कहैं 'गुलाल' सोई पायउ, सतुगुरु सत गुरू की परतीत।
हेलि तबै जिय निश्चै आवैई तबै भयो सब मीत।।

शब्द

सन्तो कठिन अपर्बल नारी।।
सब वर दुलहिन भोग कियो है, अजहु कन्या कुमारी।।
जननी होई कै सब जग पाला, बहु बिधि दूध पियाई।
सुन्दर रूप सरूप सलोना, जोई हरि जग खाई।।
मोह जाल सों सबैई बझायो, जहँ तुक है तन धारी।

जोड़ा

ख़लक जाय सभ ग्रहन नहाय। देह कै ग्रहन कोऊ नहिं पाय।।
दस बिस सँगिन सँग बनाय। संगेहि ग्रहन लगवले जाय।।
बूढ़ कै मर लिन्ह मन कै आस। करम बटोर लिन्ह सेइ सँग पास।।
सँगिन साथिन कैलिन रंग। घर मुख चललिन केहू न सँग।।
कहै 'गुलाल' हम चलली पराय। ऐसन गहन नहन को जाय।।

श्री गुलाल साहेब का अरिल छन्द

प्रान चढ़ो असमान सहज घर जाइया।
सुन्न सहर झकझोर सुरति ठहराइया।।
योग युकित सों नेह ब्रम्ह में समाइया।
कहै 'गुलाल' अतीथ सत्य तब पाइया।।1।।

सुन्न सरोवर घाट फूल इक पाइया।
बिनु डांड़ी का फूल केतिक मन भाइया।।
अमिय पियाला पिया भँवर रस पाइया।
कहै 'गुलाल' अतीथ राम गुण गाइया।।2।।

अष्ट कमल जब फुल्यो उलटि के धाइया।
बंकनाल भयो सूध अगम घर जाइया।।
दसो दिश परै जोति तहाँ समाइया।
कहै 'गुलाल' सत सूर अनन्द तब पाइया।।3।।

उनमुनि बन्द लगाय सुरति ठहराइया।
चाँद सूर दोउ बाँधि उर्ध मुख धाइया।।
सुषमन शीतल स्वाद चुभुकि रस पाइया।
कहै 'गुलाल' हरि नाम रब्त तब पाइया।।4।।

अलह इमान लगाय सितून बढ़ाइया।
रब्त सिफ़त की बातै इल्म लखाइया।।
रोज रहो मुश्ताक कबहु नहिं सोइया।
कहै 'गुलाल' अबधूत यार तब पाइया।।5।।

परखि साहब सों रीति नाम लव लाइया।
सब घट पूरन सोई तहाँ मन लाइया।।
कोटिन चन्द उगाय मोति झरि लाइया।
कहै 'गुलाल' सोइ हंसा परसि अधाइया।।6।।

तिरगुन तेल बराई कै जोति जगावई।
पाँच पचीस को लादि ब्रह्म घर छावई।।
अनहद बजाई अघोर अगम गुन गावई।
कहै 'गुलाला' हरि नाम परम पद पावई।।7।।

अष्ट कँवल फुलाय पवन लै धावई।।
सोरह कला सँपूर तहाँ मन लावई।
घटत बढ़त नहिं जोति शीतल सत गावई।
कहै 'गुलाल' सत लोक तबहिं नर पावई।।8।।

योग युक्ति जो जानि कै जमहि नचावई।
सतुगुरु के परताप गगन चढ़ि धावई।।
जीव ब्रह्म सों नेह सो तबहिं समावई।
कहै 'गुलाल' तब ज्ञान अचल पद पावई।।9।।

सुन्दर साहब जानि के प्रेम लगावई।
अजपा जपै सुजाप सुरति ठहरावई।।
रबि ससि दूनों बाँधि निरन्तर ध्यावई।
कहै 'गुलाल' अतीथ तत्त्व घर छावई।।10।।

निर्मल रूप अपार सों सुरति लगाइया।
बिनु पग चलो चाल अनदपुर जाइया।।
देत दमामा ढोल सो यमहिं नचाइया।
कहै 'गुलाल' सोई शूर सहज घर पाइया।।11।।

अकबति अलह सों जानि सुबुक सों बोलना।
हरदम हक्क ही लाय रब्त नहिं डोलना।।

सब घट साहब बोल सत्त ठहरावई।
निसु बासर मौजूद भिश्त की चलावई।।
साफ साहब सों रफत पाक तब पावई।
कहै 'गुलाल' फकीर खूब घर छावई।। 14।।

ब्रह्म भयो जब पूर सूर सर लावई।
बाजै अनहद घंट निशान समावई।।
भरो पदारथ नाम परखि अघ जावई।
कहै 'गुलाल' प्रभु हेतु सोई नर पावई। 15।।

आपु करहु नर साफ साहब सत भावई।
निसु बासर करि प्रेम राम गुन गावई।।
जोग युक्ति सों नेह सों परखि समावई।
कहै 'गुलाल' मन जीत निशान बजावई। 16।।

अर्ध उर्ध को खेल कोऊ नर पावई।
चाँद सूर को बाँधि गगन ले जावई।।
इंगला पिंगला बांधि सहज तब आवई।
कहै 'गुलाल' हर रोज अनन्द तब आवई।। 17।।

रहित भयो घर नारि तत्त्व मन थीरा।
ब्रह्म भयो तब जीव गयो तब पीरा।।
निसु दिन लायो ध्यान झरत मणि हीरा।
कहै 'गुलाल' सोइ सत्य अनन्द फकीरा।। 18।।

साहेब दायम प्रगट ताहि नहिं मानई।
हरदम करहि कुकर्म भर्म मन ठानई।।
झूठ करहिं ब्योहार सत्य नहिं जानई।
कहै 'गुलाल' नर मूढ़ हक्क़ नहिं मानई।। 19।।

अजर अमरपुर देश सन्त रन साजिया।
मन पवन होउ साज नौबति धुनि बाजिया।।
द्वादस चढ़ि मैदान युद्ध तब लाइया।
कहै 'गुलाल' मन सूरत पर चढ़ि गाजिया।। 20।।

राम रहे घर माहिं ताहि नहिं मानई।
पूजहि पत्थल भीति मया मन सानई।।
झूठ रहत हरि हाल करम बहु ठानई।
कहै 'गुलाल' जड़ भूल आपु नहिं मानई।। 21।।

सुन्न सहर आजूब सहज धुनी लागई।।
इंगल पिंगल को खेल अमिय तब पागई।।
पुलकि-पुलकि करि प्रेम अनन्द छबि छाजई।
कहै 'गुलाल' कोई सन्त ताहि पथ लागई।। 22।।

इश्क अली सों साफ़ अदल सोई पाइया।
रोज़ रहै मुश्ताक़ सकूनत आइया।।
क्योंकर बूझै आपु सभै नर रोइया।
कहै 'गुलाल' फ़क़ीर सत जिन जोइया।। 23।।

तीरथ दान को आस अन्ध नर धावई।
राम न चिन्हत साँच सो जन्म गँवावई।।
तिरगुन गुन महँ डोलत सबै नचावई।
कहै 'गुलाल' नर भरमि भरमि जहँड़ावई।। 24।।

झिलिमिलि झलकत नूर नयन पर नूरा।
हरदम होत अघोर बजत तहँ तूरा।।
रबि ससि दूनों सँग रखत पूजत पूरा।
कहै 'गुलाल' आनन्द गति बोलत सूरा।। 25।।

निर्मल हरि को नांम ताहि नहिं मानहीं।
भर्मत फिरैं सब ठाँव कपट मन ठानही।।
सूझत नाहीं अन्ध ढूँढ़त जग सानही।
कहै 'गुलाल' नर मूढ़ साँच नहिं जानहीं।। 26।।

माया मोह के साथ सदा नर सोइया।
आखिर खाक निदान सत्त नहिं जोइया।।

झूठि लगन नर ख्याल सबै कोई धाइया।
माया सों हरदम रीति सत्त नहिं आइया।।
बहत फिरत हर रोज़ काल धरि खाइया।
कहै 'गुलाल' नर अन्ध धोख लपटाइया।। 35।।

ऐसा बचन हमार सत्त जो मानिया।
चेत करहु नर आपु बृथा सब जानिया।।
लोभ लहर संबूह ताहि सँग सानिया।
कहै 'गुलाल' नर अन्ध धुन्ध मन आनिया।। 36।।

रबि शशि दूनों बाधि के सुरति लगाइया।
अजया जपै सुजाप सोहं डोरी डोरी लाइया।।
लगन लगो निरंकार सुरति सँग पाइया।
कहै 'गुलाल' अतीत सत्त गुन गाइया।। 37।।

यह संसार सयान आपु नहिं जानई।
तुरत होव विज्ञान ख़बरि नहिं मानई।।
लोभ भरी हर रोज़ राम नहिं जानई।
कहै 'गुलाल' जम हाथे सबै बिकानई।। 38।।

सीतल साहब नाम पियत नहिं कोई।
माया सों निसु दिन हेतु पलक महं रोई।।
दिन दिन ग़ाफ़िल होई काहु नहिं जोई।
कहै 'गुलाल' हरि हेतु ग़ाफ़िल नर सोई।। 39।।

सुषमन सुन्दर राज करत नहिं प्रानी।
भटकत फिरै संसार साँच नहिं आनी।।
मरि-मरि रह-हर हाल झूठ सँग सानी।
कहै 'गुलाल' तत ज्ञान आपु पहिचानी।। 40।।

उदित भयो जब ज्ञान कर्म मन नासई।
भरो पदारथ नाम अचल पद पावई।।
दिन-दिन पूरन सन्त सोई मोहिं भावई।
कहै 'गुलाल' हरि हेतु कोई नर पावई।। 41।।

दोज़ख़ दुनिया भोग सबै नर सोइया।
पाँच पचीस के फेर फिरत मति खोइया।।

21:07

प्रभु कै आरति गाव महेश। सुर नर नाग अरु गावहि शेष।।
प्रभु कै आरति ब्रह्म गाई। नवो नाथ सिद्धिन मन लाई।।
नामदेव आरति प्रभु गाई। धना सेनि कबीर मीराबाई।।
रैदास नानक कान्हा दास। प्रहूलादहि ध्रुव हृदय विश्वास।।
कहै 'गुलाल'इन सब हम दासा। करहु देहु कृपा चरन में बासा।।

आरति करु मन आरति करु हो।
गुरु परताप साधु के संगति। आवागवन से छूटि परो हो।।
अनहद ताल आदि सुधि बानी। बिनु जिभ्या गुन वेद पढ़ो हो।।
आपा उलटि आतमा पूजा। त्रिकुटी ओन्हई सुमेरु चढ़ो हो।।
सारंग सेत सुरति सो राखो। मन पतंग होय अजर जरो हो।।
ज्ञान को दीप बरै बिनु बाती। कहै आरति तहँ ध्यान धरो हो।।

आनन्द आरति करु मन लाई। जा को गुन त्रिभुवन महँ छाई।।
ब्रह्म बिष्णु महेशहु गाई। सुर नर नाग देव मुनि ध्याई।।
पश्चिम दिश जब पवनहु जाई। सुषमन के घर ताली लाई।।
नाद सुरति जोति यक ठाई। ऐसी आरति बिरलहु पाई।।
निशु दिन नौबत बाजै तूरा। सिर पर साहेब सदा हजूरा।।
मन क्रम बचन सत्य उर आई। जन 'गुलाल' तब आरति पाई।।

आरती

हिन्दू हर आरति जौ पावै। राम नाम कै मसल चलावै।।
गगन मण्डल में आरति बारै। तबही जीव नेवछावर डारै।।
शुन्य कै थार सत्य कै बाती। सुरति निरति बारै दिन राती।।
सुषमन भाँवर दै दै गावै। ब्रह्म बिष्णु सिव सँग न भावै।।
अचल अमूरति आरति तारी। थकित भयो घर नौ दस नारी।।
रोम-रोम आरति बलिहारी। सकल मनोरथ आरती उतारी।।
अजर आसन आरति धरि जोरा। सत्य आसन मन थकित भा मोरा।।
तन मन धन निवछावर वारी। मोह मया त्यागो सब झारी।।
आरति सहज जो सुमिरन करई। आरति चरन सरन तर परई।।
आरति फिर जब नृत समाई। मुक्ता अछर ते सुदुकनाई।।
आरति जब घर बरल बनाई। रोम-रोम पद आरति पाई।।
कहै 'गुलाल' आरति हम पाई। जन्म मरन कै संसै मिटाई।।

मुसलमान जो आरति करई। अलः इमाने बानी फरई।
आरति बैत आपु जो करई। दुरमति छोड़ि असल चित धरई।।
आरति एक एक्रीन बिचारी। भल मन्दा जानिय किसमत कारी।

चित धरि करहु आपु संभार।
सुरति डोरि लगाव गगनहिं उठत है झनकार।।
वहाँ चन्द सूरज रैन दिन नहिं धर्म नाहीं अचार।
वहाँ मरन जीवन न संगी साथी ऐसोई ब्योहार।।
वहाँ कौन देखै कौन सूनै गुन न वार न पार।
अगम घर पर जाई बैठो घर है नाहीं पगार।।
प्रेम आगे नेम कैसा सबै गयो जर छार।
कहै 'गुलाल' अनमिलिया अच्छर नाहीं वहाँ बिस्तार।।

साँकरि खोरिया चढ़ला अटरिया,
धनि सतगुरु जिन्ह युक्ति बतावल, तिन्ह की हय चलि जाइब हो।
दास 'गुलाल' परम पद पावल, सतगुरु बूलै लखावल हो।।

राग धवलश्री

ननद होता मोरे पिया कर बास।
अनहद बाजा पिया गढ़ बाजै, तहाँ मोरे पिया कर बास।।
सखिया सहेलरिमंगल गावहिं ननद हो, ठयियाँ रचल धमारि।
चुनि-चुनि कलिया सेज विछावल ननद हो, पिय बिनु सेज अँधियार।।
बहुत यतन करि ननद उठावल ननद हो, पिया मोर देहु बुलाय।
कहै 'गुलाल' हम नागरि भयिलीं, ननद हो, पिया सँग सेज सोहाय।।

राग बिलावल कामोद

आजु घर लागी शब्द सनेह।
पुलकि-पुलकि मन रत भयो। नेवछावर करि देहु।।
पाँच पचीस तीन लेयि चलो। रटत नाम अलेह।।
मन्दहि-मन्दहि पवनहिं लियोरी। उड़ि गयो तन कर खेह।।
गगन गुफा में अमिय चुअत है। सुषमन भरि-भरि लेह।।
अष्ट कमल दस कुलिस भयो है। सोहं शब्द उठेह।।

साखी

पोथी सतगुरु शब्द कै रामु नाम धरि शीश।
जन गुलाल लीखत रहै दंभ दंम दम जगदीश।।

राग शहाना

मौजी तनहि सँवारो।।
हरखि-हरखि खेलन लगे। उठत जोति बिनु वारे।।
पाँच पचीस सखिया मिल जुलि लिए। तिरगुन खेल पसारो।।
अर्ध उर्ध मधि भौंरा गुंजहि। झरत अमिय रस धारो।।
उलटि कमल त्रिकुटी गयऊ। सून्य शहर झनकारो।।
ग्वाल बाल खेलन लगो। उगे कोटि ससि तारो।।
गँग यमुन तट रँग यमुन तट रँग रचो है। घना शब्द निवारो।।
भाँवरि दै दै सँगहि रतो है। काहू को उन सँभारो।।
गगन मगन धुनि बाजै गाजै। दुलहिन रूप सँवारो।।
गठि बन्धन प्रभु सो बनो हो। सनमुख बदन निहारो।।
तत्त्व तिलक स्वामी दियो है। अम्बर पहिरि बिहारो।।
दसो दिशा में जगमगि-जगमगि करु। मंगल बृज की नारी।।
सतगुरु सत्य दयालु भयो है। पूरन पुन्य हमारी।।
जन 'गुलाल' तहं मिलो मगन होय। यम जीतो मन मारो।।

आजु बिदुर घर पाहुन आए।।
सकृत सजूद निरखि पद परसत। पूरन प्रेम बढ़ाए।।
श्याम स्वरूप सलोनी सूरति। उज्ज्वल क्षेम कहाए।।
आनन्द मंगल उठत बधावर। चन्दन चौक पुराए।।
सहज कै थाल सत्य कै बाती। नूतन आरति लै धाए।।
बरन ब्रछा लियो चरनोदक। आदर कै बैठाए।।
भाजी राजी सो प्रभु रीझो। सिर धरि आनि चढ़ाए।।
कृपा सिन्धु सन्तन के नायक। रुचि सों भोजन पाए।।
जै जै शब्द उठत तिहूँ पुर में। सुर नर नागन गाए।।
धन्य भाग प्रभु कृपा बिदुर को। 'जन गुलाल' बलिजाए।।

21:10

परमेश्वर सहाय करिया। 'गुलाल' कहैं परमेश्वर सर्ब सुख को अधार।
अविनाशी तारिया अविनाशी सुख अविनाशी सार।।
अविनाशी ज्ञान अपार। अविनाशी सर्व पूरा पाइया।।
अविनाशी रूप अन्यास। जाप जपिया।।
तब उतरौ भवसागर पार, 'गुलाल' अविनाशी रूप उतरब पार।।
आनन्द सुख पाइया।। आनन्द मुकित ध्यान।।
आनन्द मान, आनन्द समान। आनन्द पुर्ष साँच।।
आनन्द आइया, आनन्द गाइया। तब पाइया, पद निर्बान।।
आनन्द साहेब, आनन्द ध्यान। आनन्द सर्व प्रान।।
'गुलाल' भजई, आनन्द। आनन्द आनन्द रूप समान।।
सर्ब नाम जाप जापिया तो तारिया। सर्व भर्म नसाइया।।
हरी हरी हरी नाम पूरा। परमेश्वर जाप पूरन।।

आरती

आरति मनुआँ करहु मुरारी। दुख सुख मोहन आवै गारी।।
मन बैराग जौ असान जानै। पाँचों चोर बाँधि पर आनै।।

या घट भीतर मढ़िया सँवारी। एकै पुर्ष उहै नवनारी।।
उलटै पवन अरु पश्चिम धावै। परै नाद जोति घर छावै।।
थकित भयो जब मन कै माया। कहै 'गुलाल' तब आरति पाया।।

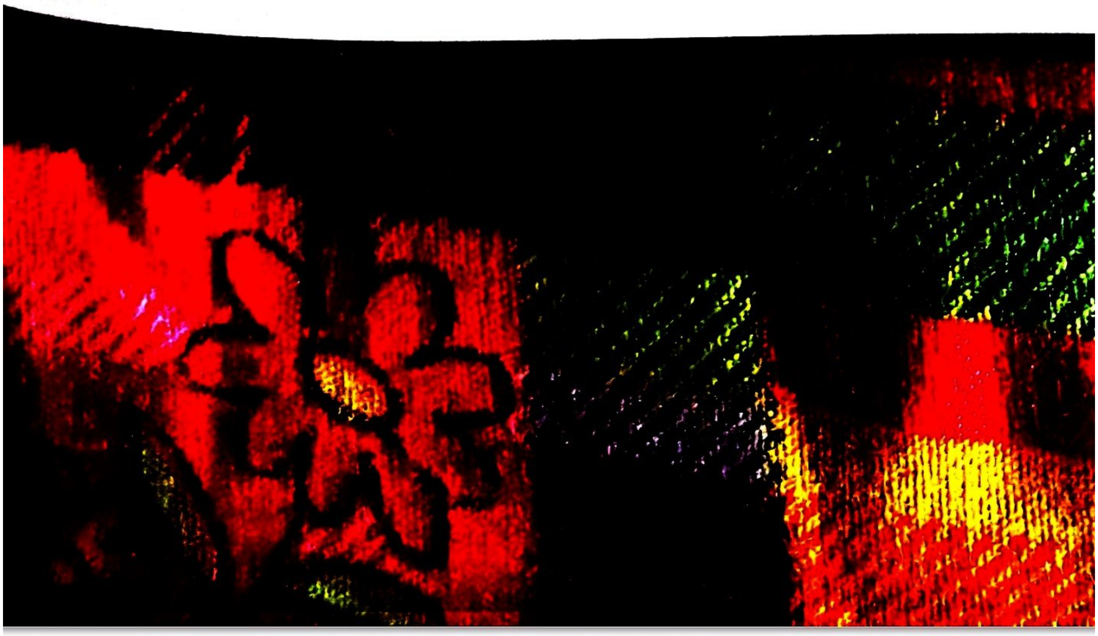

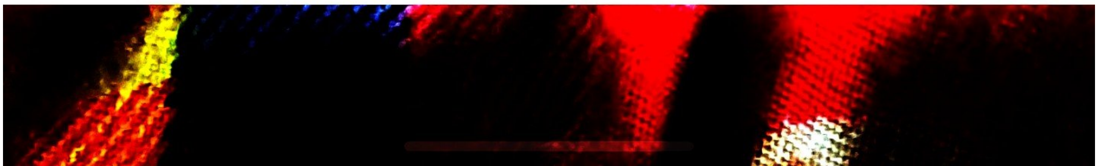

देत दान भक्ति बर डारी। अविरल आरति बकसु मुरारी।।
कहै गुलाल सतगुरु बलि हारी। संतन सँगे रहनि हमारी।।

राम राम राम राम आरती हमारी दुनिया सबै हैवान देव पूजै झारी।
सतगुरु जब कि दियो करार, श्रवनन सुनो धरो आचार।।
बाकी सुदुक है जीव हमार नेम व्रत चारी।।
योग युक्ति औ मन है हमार, तापर रहै पवन कै भार।
काया, थार में जोति धरिकै तृकुटी लेइब बारी।।
उनमुनि घन गरजि जोर, सुषमनि करि-करि झकोर।
बंकनाल चुभक मेरु दण्ड अलख पुर्ष भारी।।
शेष फनि मन आनन्द, प्रान चुभक करत कन्द।
जीती जोग रोग सोग करम भरम डारी।।
अति अथाह थाह नाहिं, परस भयो गुर की बाहिं।
नाहिं आदि अन्त मध्य एकही निहारी।।
कहै 'गुलाल' सुनो यार, आरती पूरन हमार।
राज करो दसो दिशा छत्र सिरे धारी।।

मन मानवै मन को जानु, आरति सोई ज्ञानी।
द्वादश में सुरति तानि उठत तत्त्व बानी।।
सूर साधि मूल बाँधि, उलटि चाल ठानी।
गली-गली ब्रह्म मिलो अलख पुर्ष जानी।।
वेद भेद सब खुआर, पथल जल मानी।
राम नाम हेतु नाहिं पशु समान ज्ञानी।।
आपु-आपु चीन्हत है नाहिं, फिरत है भुलानी।
कहै 'गुलाल' सत्य फ़कीर दुनिया है बौरानी।। 626।।

साख़ी

राम नाम की मसि करो, शुन्य कै काग़ज बनाय।
चित की कलम लिए लिखै, जन 'गुलाल' मन लाय।।

छन्द पंचपदी

मण्डल में निह मण्डल देखै, साहेब सत्गुरु गति आवै।
पाँच पचीस तीन धरि बाँधै, त्रिपुनी बैठ गगन धावै।।
बाजत अनहद घंट तहाँ ध्वनि, सुनत-सुनत मन घर आवै।
निरझरि झरि बर्खतत तहँ मोती, चुँगत-चुँगत हंसा पावै।।
'गुलाल' भजहिं मन मानिक मोती, देखि स्वरूप लगन लावै।। 629।।

मेरुदण्ड है करहु पयानो, पश्चिम दिश द्वारा पावै।
सोहं शब्द उठै तहँ अनभौ, जागै जोति गगन छावै।।
शशि नाहीं है सूर दिवस नहिं, रैन कुहुकि मन मिलि जावै।
आपु अपन आपु महँ देखै, अवरि कहीं नहिं चित जावै।।
'गुलाल' कहे सतुगुरु तहँ देख्यो स्वेत साई पावै।।

बैत

या गवार की आपसार। करता तूँ दौर दार।।
हरगिज है है नकार। इस मो मनो बेकार।।

साख़ी

इन्द्रादिक जौं राज होय, ब्रह्मा बिष्णु शिव भूप।
पाँच पचीस तिन ना छुटै, जौं न मिलै हरि रूप।।
रूप समानेउ सहज घर, छूटो जक्त को फेर।
पाप पुण्य सबई थको, पूर भयो तब सेर।।

रेखता

राम के काम में काम नाहीं करत नर।
फिरत संसार चहुँ ओर धाया।।
करत सन्ताप पाप सिर पर लिए।
साधु अरु संत नाहीं नेह लाया।।
बांधिहै काल जंजाल जम्ह जाल में।
रहत नाहीं सुधि सब चेत हेराया।।
कहै 'गुलाल' जो जो राम कहँ जानि है।
जीत के काल सोई ज्ञान पाया।।

गुरु के प्रताप जब साधु संगति करै, फूलो तब ब्रह्म सन्तोष आयो।
आपना जाप ते जाप अजपा जपै, चाँद और सूर्य को बाँधि नाया।।
सहज नारि बहै शब्द अनभौ गहै, सुरति सों निरति मिल नाम गाया।
नयन बिनु सूझिया पिण्ड बिनु जूझिया, जीत के काल अनहद बजाया।।
परी आन्दक चहुँ ओर दसो दिसा, गेब का ज्ञान अदल चलाया।
कहै 'गुलाल' वह साफ साहेब हुआ, अपना काज आपुहिं बनाया।।

अष्ट दल कमल में जीव का बास है, मन और पवन सुमृत बनाया।
हाड़ अरु माँस चाम अरु रोम मिल, रचो है देह मानुष बनाया।।
पाँच अरु तीन पचीस तामें भरो, गर्भ ते काढ़ि बाहर लाया।।
कियो करार कर्तार को जानिबो, भूलि गई बात सब सुधि हेराया।।
फैलि रहो हाट सब साथ माया लियो, कियो है याह जोरू लाया।।
भयो फ़रजन्द सब धन्ध आगे परो, भाई अरु बाप को संग लाया।।
कहै 'गुलाल' जड़ जानु नर राम को, सबै अरुझाय नहिं हाथ आया।।

श्याम सख्य अनूप बिराजत, देखत रूप लगो मन जाई।
शीतल भवन प्रेम रस भरि भरि, उदित उजल आमय रस पाई।।
योग भोग नहिं माया मोह नहिं, जाति-पाँति नहिं पुर्ष बड़ाई।
दास 'गुलाल' पगो प्रभु सों अब, अनतहिं जावै मोर बलाई।।

साख़ी

राम नाम जहँ राजा, सो पुर बरनी न जाय।
अणिमादिक सुख सम्प्रदा, रही अवधपुर छाय।।
ब्रह्म ज्ञानी नेम धरम नाही, एक ब्रह्म के आस।
कहै 'गुलाल' ब्रह्म बासी सोई, जाको ब्रह्म में बास।।

रेखता

ब्रह्म भरिपूर सत्गुरु की कृपा से, सहज भरि पूर मन जीत पाया।
उठत अनहद घनघोर दसो दिस, चाँद अरु सूर लै सन्धि मिलाया।।
उठत अनन्त गति प्रान तामें, स्वेत सम तूल छत्र छाया।
कहै 'गुलाल' हजूर साहेब मिलो, हुक्म चलैं रोज आदिल फिराया।।

अजर जरै पूर मन शूर तबहीं भयो, काम अरु क्रोध को धरि जलाया।
सीस का खेलना सुरति का मेलना, नूर सत्गुरु का मनि बरा पाया।।
योग अरु युक्ति सो साफ साहेबा मिलो, भयो आनन्द सब दुख बहाय।
कहै 'गुलाल' साहेब दाखिल कियो, रोज फरै मुक्ति सत्य लोक छाया।।

सहज सों ध्यान करि प्रेम सत रूप भरि।
निरखि तब चलो उनमुनि लगाया।।
नओ द्वारा झरै पवन बन्दे करै।
निकलु नाहिं सन्धि तम तीर धाया।।
मुलुक मवास सब साफ अमल कियो।
खास भयो सबै मन खूब आया।।
अमर आसान करै आम कलिमा धरै।
नाम दौलति भरै राम राया।।
रहत निरद्वन्द आनन्द पुर घटत नाहिं।
कबहुँ जात नहिं धन पुर पाया।।
कहै 'गुलाल' मौजें करो रोज।
जो जीव जो चलै सोई सबै पाया।।

अलह अक़बति करै सिफ़त हरदम धरै।
असल के रूह से खेल पाया।।
बैन साफ़ी करो साँच हृदय धरो।
अमल इमान सो सिफ़त गाया।।
राजा अकबति करै भिस्ती को क्या करै।
दून बे चून का छत्र छाया।।
मोती मुक्ता झरै नूर चश्मों धरै।।
हैफ़ के ख्याल सो खूब खाया।
कहै 'गुलाल' मिसाल साहेब मिलो।।
दौर को करै इश्क समाया।।

उनमुनि बन्द करि उलटि को सुरति धरि।
उठत तहँ गुञ्ज नींद मगन भाया।।
बिमल बानी गरै जोति अगम बरै।
ब्रह्म बिचार सत्य पुर आया।।
अजर आसन करै जीवत उलटि मरै।।
पाक होय दिल दीदार पाया।
सुबह अरु शाम इस काम स्थिर रहै।।
मन मौला माफिक है जो पाया।
कहै 'गुलाल' हर रोज आनन्द भरै।।
प्रान भयो सरस तिलोक पाया।

प्रेम प्रतीत करि शब्द सोहंग धरि।
सुखमन सेज सुन्दर बनाया।।

राग बिहाग

काया दह फूलेउ वृगसि कवल रघुनाथ।
एका एक अमल जौं पावै तब साचा सत्‌गुरु भावै।।

प्रेम पदारथ हिय में राखै सुमिरतही सुख पावै।
दुआ दोष जौ दुरमति छोड़े तृगुन ताप बहावै।।
सुरति निरति लेई आसन मारो सकल सन्तोष जौ आवै।
तीयाँ त्रिकुटी जौ मन राखै झिलमिलि जोति जगावै।।
उनमुनि लागै बन्द सहज धुनि चन्द्र मण्डल घर छावै।
चौथे पद पर पग जौ नावै अनभौ डंक बजावै।।
गगन मण्डल में बाजी मारो बंक नाल चढ़ि धावै।
पचमें पर्म तत्त्व जौ जानै शुन्य भवन मन लावै।।
पाँच पचीस तीन बसि करि के सेत छत्र सिर छावै।
छठयें छमा शील जौ उपजै सत्य सन्तोष बढ़ावै।।
नव दर छोड़ि दसो दिश धावै सहज समाधि सो पावै।
सतये सदा सरन मन राखै शब्द को भेष बनावै।।
कोटि चाँद निवछावर वारो मानिक जोति जगावै।
अठयें अगम जोति जौ बारै दर्स पर्स चित लावै।।
सोहं सुरति रहै निश बासर अन्तहिं कतहुँ नहिं जावै।
नवयें नाम निरंजन नवका कनहरि गोन चलावै।।
साचै कहै झूठ नहिं आवै भव सागर तरि जावै।
दसयें द्वार का ताली खोलो अविगति गतिहि समावै।।
सकल कामना पूरन मन कै मौजहि मौज मिलावै।
यकादस नाम जौ पूरन पावै अगम निगम नहिं भावै।।
कहै 'गुलाल' तब सतगुर चीन्है घरही में घर छावै।

राग बिलावल

कब तुहँ हीन भैलो राम, सुनियत भक्तन लुटिला धाम।
नाम देव कै गाय जियायो, दास कबीर डुबन नहिं पायो।।
प्रह्लाद अम्बरीष प्रतिज्ञा राखी, कहहु तो और बलाओं साखी।
गज को ग्राह छोड़ाए जहिया, पाण्डव जरत बनायेहु रहिया।।
जहँ-जहँ गाढ़ भक्तजन पाई, तहँ-तहँ प्रभुजी भयहु सहाई।
पइठ पताल संखासुर मारो, हृनाकुश कर ओद्र विदारो।।
बाराह रूप हृणाक्ष बिदारी, कहाँ न तुम कयल मुरारी।

21:15

राग अखेध

मन भजि लेहु साहेब मुरारी।
मूँदो नयन सहज लब लायो, थकित भयो नव नारी।
निशु बासर अगम गम गाजै तहाँ बैठे छवि अनुहारी।।
सुषमन सार अमिय रस भरि-भरि, संतुन चुँगत अँगारी।
कहै 'गुलाब' मेरी याही लगन है, घर आयो मन मारी।।

राग पंचम

तुम यहि बिधि सासुर जाहु हो, मय ममिता तन डारि कै।
सासुर सुरति तहाँ लेई राखहु, नैहर निकट न आव री।।
धीरज प्रेम टरत नहिं टारे, याही अचल सनेह री।
तिरबेनी तिर आसन मारो, छबि निर खेउ उतर जाय री।।
सासुर नैहर भई कुलवन्ती, चलो है निशान बजाय री।
सत्‌गुरु बूला अगमपुर बासी, जन 'गुलाल' बलिहार री।।

राग हिंडोला

उलटि पवन सुषमन सोधवा ना, बिनु डोरी चढ़ब अकास हो।
त्रिकुटी खम्भवा गड़ावल ना, झूलब गगन में जाई हो।।
झूलत-झूलत मनुआं रातल, सखि सब करहिं बधाव हो।
प्रेम नेम लेई बइठ बना हो, छूटल जग संसार हो।।
उदित उजल तहवाँ सोभित हो, सन्तन प्रान पियार हो।
दास 'गुलाल' सत्‌गुरु भेटल ना, सोइ कन्त हमार हो।।

राग मंगल

बिनु दीपक कर मानिक, सेन्दुर बँधल लिलार।
बेंदी झलक तहँ जगमग, दुलहित मुअल भतार।।

राग धनाश्री

जन्म है जात सिराई रे नर, जन्म है जात सिराई।
राम नाम हृदय नहिं आयो, निशु दिन फिरत बहाई।।
हित मित मातु पिता सुत नारी, इनके गर्भ भुलाई।
कालबली सिर ऊपर ठाढ़ो, करबों कबनि उपाई।।
या तन चोर पाँच प्रबल हैं, मनुआँ संग लगाई।
या बिध लूटै कोऊ नहिं छूटै, डाण्ड लेत गरुआई।।
साधु संगति कीन्हों नहिं कबहीं, ममिता में दिन जाई।
कहै 'गुलाल' अन्ध भयो प्रानी, रुचि सो नरक नहाई।।

राग मलार

मन में जागेव प्रेम मुरारी।
अर्ध उर्ध में बैसल पण्डित, सुषमन दै दै तारी।।
चाँद सूर मगु थकित भयो है, ब्रह्म अग्नि पर जारी।
उलटि निरन्तर निरखि बिचारो, स्वेत सहज उँजियारी।।
उमगि-उमगि मुक्ता झरि लायो, गगन गरज धुनि भारी।
पाँच पचीस सखी गन गावहिं, अपनी-अपनी पारी।।
तन मन धन नेवछावरि वारो, प्रभु दर्शन बलिहारी।
जन 'गुलाल' अनुभव पद पायो, कन्त मिलो बनवारी।।

आए प्रभु मंगल समय हमारी।
उमगि-उमगि घन-बरखन लागे, रुचि से सेज सँवारी।।
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिं, उठत गुंज नभ भारी।।
लवकत बिजुली चमकि चहूँ लिए। लागेउ चरन मुरारी।।
चाँद सूर निस बासर नाहीं, सुषमन जोति पसारी।
बिकसेउ कमल अमिय रस धारा, भरि-भरि लेत करारी।।
गगन मण्डल में मगन भयो मन, सतुगुरु की बलिहारी।
जन 'गुलाल' पायो है परम पद, यारी कियो बनवारी।।

चौपाई

तुम्बा तीन भाँति बनायो। चौथ नीर मारिया लगायो।।
सुषमन शीतल पियत नीर। निकलि दसो दिश आनन्द फीर।।

कुबरी कर्म काट लै आई। ज्ञान खरादे रचो बनाई।।
सत्गुरु के घर बैठक दीन्हा। मनुआँ तहाँ रहत लव लीन्हा।।

तिलक तत्त्व कर दियो लिलार। अगम भेद बनो टकसार[illegible]
एकादश तिलक दियो धीर। कहै 'गुलाल' अलमस्त फ़कीर[illegible]

असन बटी सन ताली लावै। द्वादस पैठ गगन घर धा[illegible]
गगन जोति में रहै समाई। कहै 'गुलाल' आवै नहिं जाई।।

कंठी काठ कर्म जौ डारै। अजपा जपै जोति तब बारै।।
सुमिरन जोति वैश्नव होई। कहै 'गुलाल' अतीय है सोई।।

कोपिन माल बाँधो जब द्वार। उलटै पवन उठै झनकार।।
अष्ट कमल फूलै जब-जब फूल। जन 'गुलाल' हिंडोला झूल।।

मुरछल मन फेरै मन लाई। अगम जोति दसो दिश छाई।।
सत्य शब्द लै मुरछल बाँधै। कहै 'गुलाल' फिरत सब धाधै।।

पउआ प्रेम पगन जौ नावै। उनमुनि लाई गगन चढ़ि धावै।।
रिमझिमि बर्षत मानिक मोती। कहै 'गुलाल' पउआ चढ़ु सेती।।

कमर बस्ता होय अगम गति जोवै। उलटि सुषमना गतिहिं बिलोवै।।
अजर फाँड़ बाँधो तत सार। कहै 'गुलाल' यह रहनि हमार।।

मूढ़ह रे निरफल दिन जाई, मानुष जन्म बहुरि नहिं पाई।
कोई काशी कोई प्रयाग नहाई, पाँच चोर घर लुटहिं बनाई।।
कै स्नान राखहिं सब आसा, फिर फिर नरक कुण्ड में बासा।
खोजहु आप चित्त कै ज्ञान, सतगुरु सत्य शब्द परवान।।
समय गए पीछे पछताव, कहैं 'गुलाल' जात है दाव।।

श्लोक

अगम ज्ञानी ब्रह्म मूरति, कर्म सबई बेवरि जितं।
बिमल बानी रुचिर सोभा सोहंग, सत्य दिगाम्बरं।।
भभूति भूषन जोति लपटेउ, पदुम आसन राजितं।
उनमुनि में लागु ताली, पर्म सोई सन्यासियं।।
जटा जूटि न जोति जगमग, गंग यमुन नेवामनं।
गगन गुफा में रहनि उनमुनि, यह संन्यासी लच्छनं।।
चाँद बाँधो सूर बाँधो, बृकसि कवल सोहं चढ़ं।
त्रिकुटि आसन शुन्य डासन, 'गुलाल' सोई अवधूतनं।।

बैराग ब्रह्म को भेद जानै, सहज शुन्य नेवासनं।
तहाँ ज्ञान ध्यान न नेम पूजा, सो बैरागी साहिबं।।
सत्य कंठी जाप मुद्रा, सेल्हि प्रेम हिये गलं।
तत्त्व ताखी तिलक सिर दिए, जोति झिलमिल नित बरं।।
ज्ञान गुदरी मउज मन में, बीसर्जनं अविगति रतं।
नयन भरि-भरि अधर बर्खत, कोटि चन्द्र सुधा झरं।।
बैराग रूप अकार अद्भुत, प्रेम पद पर चित धरं।
'गुलाल' ऐसो गुरकरो नर पाप पुण्य सबै तरं।।

सत्य हिंडोलवा सतगुरु नावल ना, झूलब हम मन लाय।
पाँच पचीस सोहागिन, झूलहिं गगन में जाय।।
झुलत-झुलत सुख मन भेंटल, चहुँदिश उठे झनकार।
गंग यमुन तट मठ छावल, तहाँ प्रान लोभान हमार।।
स्वेत सोहावन निर्मल देखल, हरखि-हरखि गुन गावल ना।
सहज स्वरूप प्रभु पावल, जन 'गुलाल' झूलें हिंडोलवाना।।

अहो झूलहिं अनहद तूर बजाई।
बिनु जल कवल बृगसेउ हो, भँवर फिरहिं मन लाई।।
चकवा शब्द सुनि व्याकुल, पिया बिनु सहो न जाई।
रवि शशि खम्भवा गड़ायेउ हो, सुरति की डोरी लगाई।।
झूलहिं सोहागिन हो, हंसा गवन मिलो जाई।
सोहं शब्द सोहावन हो, उठत आनन्द बधाव।।
बिरहिन मनहिं आनन्द भयो छूटो जक्त के चाव।
प्रेम मगन मन मानेउ हो पुलकि-पुलकि गुन गाव।।

शुन्य भवन में समाइब आनँद उदित प्रकाश।
बिनु बाजे धुनि बाजई गाजै गगन में जाय।।
तीनों गुन तहँ गाबहिं जै जै करहिं मुरारि।
प्रेम हिंडोललवा रतन बनाई झूलहिं आतम नारि।।
झूलि झूलि तन त्यागल पलटि रहो प्रभु जाय।
यम कै देस हम छोड़ल जन 'गुलाल' सति गाय।।

हिंडोला करो आनन्द मंगलचार।
प्रथम सुकृत नाम को धरिकै प्रेम पदहिं हिय लाय।
सतुगुरु शब्द जे पुरिहै दिन्हों शोकहिं सबई नसाय।।
पाँच पचीस तीन को त्यागो चौथे पद पर जाय।
तहँ उठै लहरि अनन्त बीना को सखिया देत झुलाय।।
चाँद सूर्य जो खम्हा रोपो सुरति की डोरी लगाय।
मूल चक्र बिचार के बाँधो सूनी नग्र समाय।।
प्रेम पेटारी में जा बैठ कै झूलहु गगन में जाय।
हारि-हारि मन हारि के बैठो और कहीं नहिं जाय।।
तहाँ न ज्ञान न ध्यान पूजा अगम घरे पर जाय।।
तहाँ उठति है गति को प्रेम भरि लपटि चहूँ दिश धाय।
काम क्रोध जौं मोह को त्यागो जीव रहो है समाय।।

सन्त सभा में जाय के बैठो बहुरि न इतही आय।
दसहु दिशा में फूल है फूलो जोति जगमग पाय।।

झूलहिं आनन्द जोति जगाय।
सावन सहज सोहावन मुक्ता झरि तहँ लाय।
बिनु जल कवल तहँ बिकसेउ भँवर आनन्दित भाय।।
भोरहि चन्दा उगवै रैनि उगावै सूर।
मूल में सुरति समावई उड़ि बसै घर पूर।।
त्रिकुटी तट हम झूलब शुन्य शहर झकझोर।
मनि मानिक तहँ बरई झूलब चरन कमल कर जोर।।
आदि अन्त अरु मध्य नहीं निशु बासर नहिं होय।
जन 'गुलाल' गुन गावहिं दीहल डंक जग रोय।।

नइहर गर्भ गुमानी फरली कर्म की डार।
ससुर संगति नहिं चललिउँ करबों कौनि बिचार।।
सासु ननद कर झगरा सवति हमरी अपार।
सैइयाँ बड़ जे कुबजा, हम धन अल्प सुकुमार।।
गाँव कै लोगवा निरेखै छिन-छिन देहँ हमार।
पार परोसिन जरहीं निशु दिन करत कुफ़ार।।
घर कर मर्म न जान्यों महा कठिन दुख भार।
अँचरा पसारि धन बिनवहिं कबधो मुइहैं भतार।।
भोर भयल मन मानेउ छूटेउ जग संसार।
जन 'गुलाल' गुन गावहिं मिलिहैं कन्त हमार।।

गावहु गुन अब निगुन उलटि गहहु असथूल।
गुरु कै बचन हिय राखहु प्रेम नेम लेइ झूल।।
मूल चक गहि बाँधहु चाँद सूर समतूल।

बिनु पग तहवाँ पँवढ़इ अष्ट कमल दल फूल।।
त्रिकुटी खम्हवा गड़ावहु सुषमन बाजै तूर।
गंग यमुन तिर बैठहु मानिक झरत है नूर।।
चलहु शिखर गुरु ज्ञानी हँगल पिंगल भरपूर।
सोहंग डोरी लगायो चढ़यो गगन भ्यो शूर।।
अनभव पद पर भावे है गयो प्राश्चित दूर।
जनर 'गुलाल' ऐसें झूलहिं संतत रहहि हजूर।।

राग कान्हरा

बन्सी तू बौरी कइली मोरि देह।
तन मन गृह बन कल ना परतु है, छूटलि जगकर नेह।।
बिनु बाजे धुनि लगई रहतु है, हरिदम हरि-हरि येह।
ख्याल बनेउ बेहाल भयो है, रट पटि पचि पति लेह।।
पिया सँग रँग रस माती, सखिन गहो पट लेह।
कहै 'गुलाल' हम भयो है नायका, उड़लि पाप कै खेह।।

लागो री मन मेरो प्रभु पद रेन अधार, भरि-भरि लेत करार।
छिन छिन पल पल रटत रहतु है, खुलो है कर्म हमार।।
ख्याल बनो सतुगुरु हम पायो, कैसहुँ नाहीं टार।
भक्ति दान माँगों प्रभु दीजै, जन 'गुलाल' मिलो यार।।

साखी

जोति स्वरूपी चरण है, तहाँ है मन को ठाम।
नहीं चरण नहिं जोति है, नाहिन मन बिश्राम।।
बिश्राम भयो जब मौज में, छूटि सकल की आस।
कहै 'गुलाल' सतगुरु मिलो, सो जन पायो बास।।

राग कान्हरा

प्रभु हम पूरन पायो धना, अभै अमर पुर पायो मना।
शील सन्तोष कयाघर भीतर, सन्तन सँग चित अना।।
कै करार तन मन धन दीन्हों, धुनि सूनत अब भयो है दिवाना।
अजपा जाप जपत बिनु जिभ्यो, गावत अनहद ताना।।
सुर नर मुनि जाको खोजत धावहि, सो प्रभु आइके सहजे बना।
अधर कटोरी पियत सिद्ध कोई, अष्टयाम मस्ताना।।
दसहु दिशा में जोति जगामग, कहँ लगि करौं बयाना।
जन 'गुलाल' चर्मन लपटानो; यम जीत्यो लग्यो ध्याना।।

सोहं सुरति रहै निशु बासर टरत नहीं कितहूँ टारी।
छकि-छकि मनुआँ पियत अमिय रस, सन्तत चुअत करोरी।।
धनि सत्गुरु जिन्ह युक्ति बतावल, तिन्ह की मैं बलिहारी।
सन्त सभा में बैठक पायो, कहै 'गुलाल' भिखारी।।

बसन्त

काया पुर खेलहु रितु बसन्त, उन्मत यौबन फिर काल अन्त।
उर्ध अर्ध बिच उठत फाग, सुषमन के घर अनहद बाज।।
उठत तरंग आनन्द धमारि; उमगि-उमगि गुन गावहिं नारि।
अष्ट कमल जब फूलेउ फूल, आदि अन्त भरि मिलेउ मूल।।

आदि आनन्द अमर स्थान, मन राजा तहूँ परस ज्ञान।
ज्ञान भयो जब दसा द्वार, मिलो जोति तब कन्त हमार।।
कहै 'गुलाल' तब मिलो इयार, अनतहि ज्ञान फिरत मंजार।।

राग बिलावल

तन में राम और कत जाई। घर बैल भेंटो रघुराई।।
जोगी यती बहु भेष बनावै। आपन मनुआँ नहिं समुझावै।।
पूजहिं पत्थर जल को थान। जोखत धूरि कहत हैं पिसान।।
आशा तृष्णा नहिं करै थीर। दोबिधा मातल फिरत सरीर।।
लोक पुजावहि घर-घर धाई। दोजख कारम भिश्त गवाह।।
सुर नर नाग मानुषं औतार। बिनु हरि भजन न पावहिं पार।।
कारन धई-धई रहत भुलाय। ताते फिरि फिरि नर्क समाय।।
अबकी बार जौ जानहु भाय। अवधि बिते कछु हाथ न आय।।
सदा सुखित निज जानहु राम। कहै 'गुलाल' न तो यम पुर धाम।।

राग बसन्त

खेलत बसन्त मन मगन मोर, उमगि-उमगि चित प्रभु की ओर।
आतम फूलो भयो भोर, रितु बसन्त मिलो मनुआँ मोर।।
तिहूँ पूर मध्ये भयो शोर, दसो दिशा हरि-हरि हिलोर।
बिमल-बिमल गावै सुर सुराग, उठत ध्यानिन गुप्ति अनुराग।।
आनन्द मंगल बोलत मोर, निरखि-निरखि छबि नयन कोर।
धन्य भाग जाको मिलो बसन्त, अपने-अपने खेलत कन्त।।
कहै 'गुलाल' भयो कर्म मोर, प्रान पिया सँग मिलल जोर।।

सुनत बसन्त चित चकृत जाग, खेलत बसन्त फिरि लागु फाग।
रुनझुन रुनझुन करत कोड़, झिलिमिलि-झिलिझिलि चलत गोड़।।

अति आनन्द तहँ उठै अघोर, मन मुरीद तब भयल मोर।
लोक लाज और चारि गारि, सुनत बसन्त सब गयो हमारि।।
नाहिं ताहि जन्म मरन कुल कानी, धनि सतुगुरु खेलहिं।।
घरहीं लागो रितु बसन्त, धन्य भाग सँग खेलै कन्त।।
कहै 'गुलाल' सतुगुरु बसन्त, सोई सूर कोई खेलत कन्त।।

साखी

सकल स्वरूपी पवन को, तीनों लोक भरि अण्ड।
कवन पवन के चलते, गर्जत है ब्रह्माण्ड।।
सुषमन द्वारे आसन मारो, मूल पवन चलै मेरु दण्ड।
निरति सुरति सों ताड़ी लाओ, गरजै पश्चिम तब ब्रह्माण्ड।।
राम-राम मन से कहै, दूजो भाव न होय।
सतुगुरु साँचा जेहि मिलै, इह गति पावै सोय।।

राग मनोरा

राम नाम गुन गावल गुन गावल हो, भावल जहँ नाम।
अति अद्भुत तहँ देखल तहँ देखल हो, भोर वहाँ नहिं शाम।।
चरन कमल चित रातल चित रातल हो, सुफल भयल मनो काम।
सन्त सभा में तहँ बैठक तहँ बैठक हो, निशु दिन आठो याम।।
कहै 'गुलाल' मनोरवा मनोरवा हो, उठत रामै राम।। 773।।

राग बिलावल

जेकरे मन प्रभु चर्नन लागे, तिन्ह प्रभु लागि सबै रस त्यागे।
हिरणाकुश सुत ताड़ै गारी, राम छोड़ि नहिं टेक बिसारी।।
प्रहूलादहि के राम पियारे, भजहिं राम शिवजी भी न हारे।
बलि के गृह बावन होय आए, तब शुक बलिहिं कही समुझाए।।
तब बलि कहँ गुरु तुम नहिं जानी, चरन परसि रज सारंग पानी।
रामचन्द्रहिं पिता बन दीना, नग्र अयोध्या सबै मलीना।।
भरत शत्रुहुन सुनल न जारी, ऐसन राज जरो महतारी।
जब सीताहिं रावन हरि लीन्हा, तब रघुनाथ शोच बहु कीन्हा।।
राम प्रताप सदा सुखदाई, रावन छोड़ि बिभीषण आई।।

राग बिलावल

आज मोरे घर साहेब आए।
कोटि चन्द निवछावर वारों, मन्शा मालिन चँवर डोलाए।।
प्रेम के पीढ़ा बैठक दीन्हों, चरण पखारि कै शीश चढ़ाए।
परदक्षिण करि भाँवरि लीन्हों, रीझि-रीझि के मंगल गाए।
सुरति निरति मिलि करत रसोई, नाना भाँति के व्यंजन बनाए।
अमित भाँति लेइ पर्सन लागे, रुचि भोज प्रभुहिं पवाए।।
मन क्रम बचन भये मन पूरण, ज्ञान रतन लै आगे चढ़ाए।
दास 'गुलाल' रामजी को सेवक, कृपा कियो प्रभु अंकम लाए।।

राग उधवा

चाँद सूर दोऊ सम करि हो, बाजत जहँ तूर।
निरझर झरै तहँ अनुभव हो, वहाँ सत्य हजूर।।

अर्ध उर्ध कै बटिया हो, त्रिकुटी के ठाँव।
बाजन बाजु गहागह हो, उठत तहँ नाव।।
गंग यमुन तहाँ साजल हो, तहँ उलटि नहाव।
निरझरि झरै तहँ मोती हो, जाय गगन समाव।।
सोहंग सहज झुलावल हो, उठत है नूर।
शिव शक्तिहिं गहि बाँधल हो, तब भौ सूर।।
अष्ट कमल बिकसेउ हो, आनन्द बधाव।
फूल फुलल तहाँ अविगति हो, भौंरा लोभाव।।
अबकै गयल नहिं आवन हो, रहो अगम समाय।
तब हंसा भयल परम हंसा हो, सब कर्म नसाय।।
सन्त सभा महँ बैठक हो, सतगुरु कर गाँव।
कहै 'गुलाल' प्रभु उधवा हो, अब मेटल नाँव।।

राग सोरठ

अनभवे उठत सांई।
निरक्षरि झरत उठत निशु वासर, संतन मन लपटाई।।
यह संसार कायर कुटिल है, मोह मया लपटाई।
अपनी-अपनी सुधि नहिं आवै, हरिदम गंदा खाई।
एक नाम सों प्रीत न राखत, बहुत धर्म मन लाई।
केवल कर्म तयागी न भोंदू, लोक पसारे धाई।।
मन क्रम बचन तिनोहुँ रस धावत, पलक नहीं ठहराईं।
हर घड़ी पाप बटोरत, भोंदू, मुर्दा गंदा खाई।।
संत साधु बोलत है बानी, ताहि नहीं चित लाई।
कहै 'गुलाल' राम रस मूढ़ो, लेत नहीं पछताई।।

राग सारंग

आजु घर आनंन्द़ उठत भारी।
बिनु बाजे नौबति धुनि होवै, अजर जरै बिनु बारी।।
पाँच पचीस कै झगर मिटायो, तीनि तुफानी मारी।
अर्ध उर्ध मधि नूर झरत है, चुअत है नाम अंगारी।।
सुषमन सेज सुन्दर बर साहेब, परम तत्त्व रस भारी।
पुलकि-पुलकि कै आनन्द कीन्हों, थकित भयो नव नारी।।
अब के गवन बहुरि नहिं आवन, सन्त सभा महँ डारी।
कहै 'गुलाल' साहेब सों मेला, दिन-दिन आनन्द वारी।।

साखी

हिन्दू तुरुक सबई है भूलो, अपनी लाज।
कहै 'गुलाल' दुई नहिं छूटै, कैसे होवै काज।।

पाँच चोर पचीस पाय, यक एकड़ि जेल भराइया।
रहो निश्चल बानी बोलतहिं, औ योग युक्ति लगाइया।।
परी पूरण निरखि दुहुँ दिश, अनन्द मंगल गाइया।
प्रेम पावक दाप करि कै, आपु रूह जगाइया।।
भोर साम न होत कबहीं, प्रीति फल रस आइया।
हद छोड़ि बेहद बैठो, कबहिं इत नहिं आइया।।
जोग भोग से मानु ता दिन, ज्ञान फल तब पाइया।
अचल अविगति नेह मिलिया, सबै सुख घर आइया।।
कहै 'गुलाल' अतीथ पूरन, नाम डंक बजाइया।।

आनन्द मूरति ज्ञान भरिलो, नाम नेह लगाइया।
चेत चितवत आपु निर्खत, जोति रूप समाइया।।
अर्ध उर्ध के मध्य सुषमन, सहज सुरति लगाइया।
बृगसि कमल चढ़ो है गगनहिं, नाम लज्जत आयिया।।
तीन देव को बाँधि बैठो, मूल मन्त्र जौं पायिया।

राग बसन्त

ऐसे मन रहु चरन पास। चित चकोर जैसे चन्द [illegible]
गुरु मरजादा कहि न जाय। कोटि जतन जौं रचो [illegible]
जिन जानो गुरु चरन रेनु। गुरु कै बचन जैसे [illegible]
अष्टयाम जाको बरत जोति। बिमल-बिमल धुनि उदि[illegible]
गगन मण्डल में बाजत तूर। धनि सतुगुरु वहाँ [illegible]
बानी आनन्द वहाँ उठत बसन्त। गुरु को शब्द लेई खेल[illegible]
कहै 'गुलाल' मोरी पूजल आस। सतुगुरु बूलहिं [illegible]

छप्पै

तिय आखर यक नाम, बेद चहुँ ताहि बखानी।
निसि धर पति सो होय, सकल सुर ताको मानी।।
प्रथम हीन जौ करिए, ताहि बिनु जिए न कोई।
अन्त हीन जौ करिए, मुक्ति मरि सब की होई।।
प्रथत हीन करि उलटि पढ़ि, शिव भालहिं शोभा करन।
गुन गुंनहु पण्डितहु गुनि, जन अर्थ कहो कोई बरन।।
रबि ससि पवन मेलि, शुन्य घर नाम जो जानै।
हरि गुन तबहीं होय, ताहि त्रैलोकहुँ मानै।।
अन्त एक जो रहै, सहज गति पाँव समोई।
सर उलटि जो उदय करि, सीव शक्ति मिल यक करन।।
जानहु सन्त यह ज्ञान रस काहे के भटका फिर परन।।

तीनिहुँ जन त्रिबेनि आनु मन पवनहुँ साथी।
गगन मण्डल में खेल बनाय के चढ़ मन हाथी।।
घन गरजत बर्खत मुक्ता मनि चमकत जोती।
सहजहिं सुरति लगाव पाव तब हंसा मोती।।
नीरंजन बानी उठत हरिदम तूरा बाजई।
मूल बाँधि स्थूल लखु पद पूरा तब पावई।। 24

बिकसि अष्ट दल कमल डोरि रहो सोहं लाई।
भँवरा उड़ो अकास गुंज रहो चहुँ दिश छाई।।
चित चंचल तब थको छुटो सब जग को फेरा।
पाप पुण्य तब थको पूर्ण भयो तबहीं शेरा।।
स्थिर लव अरु गुरु बचन जेहिं लागै सम तूल है।
गगन मण्डल में सो समय स्पष्ट चक्र स्थूल कै।। 25

हे हरि हर तुम सो कहूँ, बिन्ती सुनिए मोर।
मोर तोर अन्तर नहीं, धागा डालो तोर।।
कहै 'गुलाल' प्रभु सत बचन, जाननिहार न कोय।
आपु मिटावै मन धरै, पाँचों मारै सोय।। 26

छप्पै

चाहत मम रस भरेउ परेउ पर प्रेम गगन लस।
तहाँ उठति है लहरि रूप हम देखु नयन अस।।
बिना मूल मठ उठेउ निशान ऊपर तहँ पेखेउ।
बिनु दह फूल्यो कमल ताल नन्द नदी न देखेउ।।
तहँ दह गृह नहिं मन तन सौतुंक देखियत सर्ब जस।
जानहिं सन्त अरु पण्डितहुँ ज्ञान बिरह यह योग अस।। 27

चाहत हरिजन मुदित गिरो जाको जैसो जस।
मन क्रम बचन प्रमान चहत प्रभु के चर्नन रस।।
पाँच तीनि धरो चोर त्यागि सोई जन शूरा।
रहत अचल सब ठौर पाक धर्नीधर पूरा।।
बलि-बलि बर्नत हौं तेही जेहिं सों लोक सबई भयो।
कृपा सिन्धु रघुबंसमणि दुखित देखि आपन कियो।। 28

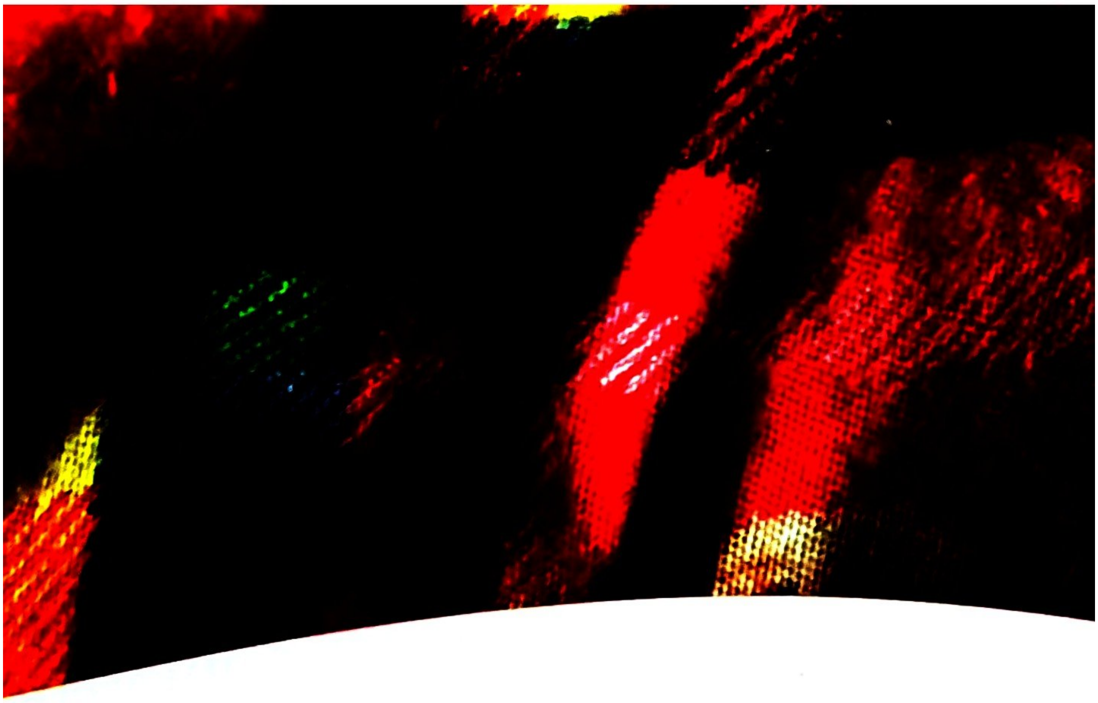

थकित उधारन पार करन जुग जुग्य अचल फर।।
जेहि कारन तन मन दियो जीत धरो है पाँच।
सोई सुकृती सूर है कहै 'गुलाल' सोई साँच।। 29

इंगल पिंगल जबै होय यक तारी लागै मनि बरै।
सत्य रूप सरूप समावै मानिक मुक्ता सो झरै।।
परमातमा है पूरन स्वामी सरनागति सबई फरै।
बेद भेद यह नाहीं जानै नर अधीन कैसे धरै।।
यह मति आपु बिचार जानि कै कह 'गुलाल' साँची करन।
चन्द सूर पानी पवन गंग यमुन रबि ससि धर।। 30

पाप पुन्य अरु दया धरम सबई तरि जावै।
तन मन सों करै प्रीति अडोल अभय पद पावै।।
शील क्षमा रहै हृदय छुटै नहिं कबहिं सन्तोषा।
भक्ति भाव अरु सरस बनि धारै परतोषा।।
हरि प्रसाद सन्तन गहनि प्रेम प्रीति हृदये धरै।
राम ढरनि जापर अहै सतूगुर कृपा साँची फरै।। 31

येतना कहि-कहि पचि रहो, सठ नहिं मानत बैन।
कहै 'गुलाल' सठ प्रानी, अन्ध भयो सब नयन।।

चौपाई

ब्रह्म बिचार मिलत अब भारी। पान आपन थकित नव नारी।।
सतुगुरु कृपा जबहिं सत्य होई। आपु बिचारहु कारन सोई।।
पूरब मन्त्र देवस परवाना। सतुगुरु बचन चलावहु बाना।।
द्वादस मूल में जबहीं जाई। पान अपान तबहिं सुधि पाई।।
उलटै नालहिं ब्रह्म दुआरा। अष्ट कमल बिकसै बहु तारा।।
गर्जै गगन अरु बर्षै मोती। जोति जगामग निर्मल होती।।
लै लाओ जैसे कछु भाऊ। अपने साहेब को बिलगाऊ।।
यह गति जे जन जानु अपारा। सो सतुगुरु मिलि सबहिं बिसारा।।
सुधि बिसरै मन रहै समाई। पूरन घर महँ आपु बनाई।।
अनन्त कला जब बरै लिलारा। पूरन ब्रह्म सत्य टकसारा।।
रोग सोग नहिं नेम न पूजा। एकै साहेब और न दूजा।।
जब जानेउ मन आपु बिचारा। तब को पावै अन्त हमारा।।
अगम अगोचर बनि रहु स्वामी। सब जीवन के अन्तरयामी।।
बोल न डोल न अवै न जाई। ब्रह्म बिचारै सहज समाई।।
आनन्द मंगल बोलत बानी। एक राम भजि भर्म नसानी।।
रमिता राम न जानु पसारा। सबई भयो जब आपु बिचारा।।
को जानै ता गती अपारा। शिव ब्रह्म आदि न पावहिं पारा।।

साख़ी

दुनियां देखत आपु नहिं, बहुत कथत है ज्ञान।
कहै 'गुलाल' भटकत अहहिं, यम सिर बाट मसान।।

योग करम है भाव अनूपा। जेहि जाने जिव उबरू सरूपा।।
उलटै पवन गगन स्थाना। सुरति निरति लै जोति समाना।।
ससि अरु सूर महँ रहु चितलाई। उठई बिहंगम फल तब खाई।।
मती बिहंगम सार अनूपा। कोउ जन जानत गुरु की किरपा।।
सिद्धन के मति इहई जाना। दुनिया के मति कोटिक नाना।।
अब अष्टांग कहतु है जानी। बूझै कोऊ सत्‌गुरु ज्ञानी।।
गरजि-गरजि बाजत धुनि बानी। इन्हहीं सुनि जनि भूलहु ज्ञानी।।
चाँद सूर उलटि कै लेई। फेरि बिचारहु मनहिं समोई।।
पैइठै पवन मूल के द्वारा। उलटै कमल त्रिकुटि झनकारा।।
सुरति सम्हारि चढ़हु पुनि गगना। जोई बिचारत आवा गवना।।
आनन्द प्रभा ताहि महँ होई। निरखि बिचारहु ज्ञानी सोई।।
कहँलगु शोभा बर्नि न जाई। योग युक्ति से रहहु समाई।।
लोभ भरो तब चारिउ खानी। ओवा गवन रहित तब जानी।।
आठौ अँग वहाँ मनिरस भोगी। प्रेम समानेउ तेउ-तेउ जोगी।।
आनन्द मंगल बानी बोलै। एक शब्द कबहूँ नहिं डोलैं।।
सुरति समाने ब्रह्म बिचारा। लोक बेद सबई ते न्यारा।।
योग यज्ञ वहाँ बरन न जाती। सहज सरूपी और न पाती।।
निरखि निरंज, गतिहि बिचारी। अपनेह बन्ता करता तारी।।
तिरगुन गुन कर भा सब नासा। जोति जोग भोग भौ नासा।।
सत्य सरोवर शब्द कै खानी। अगम अगोचर मुनि तब ज्ञानी।।

साखी

छत्रि क्षमा छत्रसिर, काल न तानै सोय।
कहै 'गुलाल' सोई क्षत्री है, हानि कबहुँ नहि होय।।

चौपाई

ब्राह्मन सोई जो ब्रह्म समाई। अजर जरै धुनि नाद बजाई।।
सहज सुषमना तारी लावै। पाँच तीन धरि पकरि जलावै।।
तिर बिधि ताप दहन नहिं होई। रोग सोग सब डारैं धोई।।
योग युक्ति सों तारी लावै। नव दर मून्दि गगन चढ़ि धावै।।
गर्जै गगनहुँ नाना बानी। सुनत सुनत मन सहज समानी।।
अति आनन्द उठत तहँ बानी। महा महा सिद्धिन के खानी।।
रूप रेख उहाँ अवे न जाई। हरिदम बोलत गगन समाई।।
रोग सोग उहाँ किछहू नाहीं। सदाँ अखंड नहिं अयेहिन जाहीं।।
रबि शशि दूनों एक समाई। आपा चीन्हत भर्म मिटाई।।
अति अनन्द तहँ बर्नि न जाई। सुरति समावे नाम समाई।।
उन मुनि लावे शब्द समावै। बिकसे कमल अचल धर छावै।।
अनहद जोति उठत जहं बानी। तहवाँ सुरति और नहिं जानी।।
ब्रह्म बिचार कोई नर जाने। सबै बिसारे और न माने।।
नहिं तहाँ नेम ब्रत अरु पूजा। नहिं तहाँ और भर्म मन दूजा।।
जे जन जानै आपु शरीरा। ताकी गति कोउ जानु फकीरा।।
गुप्त प्रगट होय सबै बखानै। साहेब चीन्है और न जानै।।
नेम धर्म औ करै न साँसा। आपु बनावै तब है पासा।।

साख़ी

ब्राह्मण सोई जानिए, जो एक ब्रह्म सो खेल।।
कहै 'गुलाल' ओई ब्राह्मण, और न जानेउ मेल।।

चौपाई

बयस सोई जो बोलत चीन्है। रहै निशंक रामगति लीन्है।।
योग युक्ति बैठै ले तारी। अपनेहि मनुआँ अपने मारी।।
रबि शशि दूनो सबै चलाई। उलटि गगन चढ़ि तान बजाई।।
सोहं शब्द बजावै सोई। अवै न जाय बैस तब होई।।
ब्रह्म बिचार करत निरवारा। सोई बयस उतरु भवपारा।।
प्रेम प्रीति चरनन तब लावै। निराधार करि शुन्य बसावै।।
जाति सरूपी रूप बनावै। निरमल ज्ञान निरंतर लावै।।
शक्तिहि जब गाँठी जोरावै। सोई बैस परम पद पावै।।
सहज देश बसावै सोई। अवे न जाए बैस भा सोई।।
गंग यमुन में राह बनावे। यक अधार होय सिन्धु मिलावे।।
नहिं तहाँ जाति-पाँति कै आसा। परब्रह्म में कीन्हों बासा।।
घटे न बढ़े मरे नहिं जीवे। हरिदम नाम अमिय रस पीवे।।
पर्म तत्त्व से नेह लगावे। रहै निशंक बैयस सोई भावे।।
इंगला पिंगला सुषमन जागे। गरजे गगन जोति तब छाजे।।
शब्द सरूपी देह बिराजे। हरिदम नाद सत्य धुनि बाजे।।
ममिता सबही समानेउ जाई। निर्मल ज्ञान परम पद पाई।।
यम जीते मन मौज चलावे। सुरति निरति लै घन्ट बजावे।।
प्रेम पदारथ दिन-दिन होई। सदा निशंक कबहुँ नहिं रोई।।
धोख न परै देह नहिं धरई। औवल बैस कबहुँ नहिं मरई।।
सब बिसरावे अपने होई। निरंकार निरंजन सोई।।
जब ऐसी गति साँची धरई। सोई बयस नाम ते तरई।।

साखी

मोलना मजहम होय के, रहै साहेब सों पाक।
कहे 'गुलाल' सोई मोलना, औरी फिरत निफ़ाक।।

चौपाई

सो सन्यासि जो भर्म मिटावै। नौ दर मूँदि गगन चढ़ि धावे।।
सत्य कै भेष बनावै सोई। ताको आवागमन न होई।।
चाँद सूर के रहमति करई। दाम दिरिम टूट न परई।।
लाभ बिभूत लगावै सोई। सदा अखंडित कबहिं न रोई।।
प्रीत कै जटा बढ़ावहु भारी। अगम भेष काहु नहिं टारी।।
मुद्रा डालि कै रूह जगावै। सो संन्यासी अनभुत गावै।।
पुलकि पितम्बर राखहु जानी। कबहुँ न होवै जीत कै हानी।।
भेष संन्यासी धर्म चलावै। उनमुनि लावे जोति जगावै।
बंक नाल रस पीवे सोई। सुरति मिलैं संन्यासी होई
पान अपान करहु यक संगा। गगन मँड़ल होय नाद तरंगा
सुन्य पगे मन निर्मल होई। अवै न जाय संन्यासी सोई।
ज्ञान उदित जब आनन्द भयऊ। सोई संन्यासी परायन गयऊ।
युक्ति योग कै जानै सोई। नाम निरंजन नाम समोई।।
रीझि-रीझि के लावे ध्याना। सहज के बारी नाम बखाना।।
कबहीं अवय न जा़वै सोई। सो संन्यासी ज्ञानी होई।।

बाजत अनहद हरिदम बानी। महा-महा सिद्धिन कय खानी।।
सबै बिसारे एक समाई। सो संन्यासी सत्य पद पाई।।
सो संन्यासी सत्य पद पाई। पूरन भयो कहिं और न जाई।।
सत्य कहै तब काल न खाई। बहुत रूप करि भेष बनाई।
माया हेतु करि घर-घर धावे। भेष कप लज्जा सबे नसावे।।
मया हेतु सब सुधि बिसराई। करत कपट संसार भुलाई।।
अपने डूबे कल नहिं खाई। ज्ञान ध्यान सब मया भुलाई।।
सुमति कुमति एकौ नहिं जाने। मया हेतु राम नहिं माने।।
यह माया सुर नर मुनि खाई। का भुलाहु मरि मरि के भाई।।
भेष बनाइ न जानहु आपू। मन नहिं साच बटोरत पापू।।
आन सिखावहि आपुन जानें काल फाँस यम हाथ बिकाने।।
दोजक धरई जन्म बहुतेरा। भारत काल केहु आब न नेरा।।
सबै करे यहि काज न कोई। भटक भुलान माया महँ रोई।
संन्यासी मन जानहु सोई। आपु भुलानो सब मति खोई।।
कर्म संन्यासी है जानु न भेऊ। कहै 'गुलाल' भयो जग देऊ।।

साख़ी

सन्यासी सोई मानिए, जाहि ब्रह्म को सार।
कहै 'गुलाल' माया रत, भटकत फिरै गँवार।।

चौपाई

ब्रह्म बिचार बैरागी लहहीं। पाँच पचीस उलटि के गहहीं।।
द्वादस सम कय मगन जो रहै। सो बैरागी अनुभव कहै।।
पान अपान करे यक सँगा। गगन उठय ध्वनि लहर तरंगा।।
सुनत-सुनत मन निरमल होई। पाप पुन्य मेटय सब कोई।।
नवदर मून्दय दसयें रहै। सो बैरागी मजहम कहै।।
अर्ध उर्ध कय खबरे जाने। सुन्य सरोवर तम्बू ताने।।
रबि शशि दूनाँ सम करि पीवे। सो बैरागी युग-युग जीवे।।
बंक नाल कप खबरें जाने। रहे निशंक कपट नहिं ठाने।।
उनमुनि लावे बोले बानी। भरल पदारथ चारिउ खानी।।
जीव ब्रम्ह जब मेला भयऊ। पर्ज विचार अगम गति पयऊ।।
योग युक्ति जबब जानु शरीरा। सो बयरागी सतय फक़ीरा।।
नेम धर्म तथ काहु न करई। जेकरे जोति रइन दिन थरई।।
लहरि उठत तब ज्ञान बिचारा। त्रिविधि ताप भव उतरेउ पारा।।
बोल डोल वहाँ बबरन न जातीं अपने साहेब बरि रहु पाती।
सहज स्वरूपहिं पद तब होई। तेहि महँ मिलय बयरागी सोई।।
राम नाम कय अदल चलावे। सो बयरागी संत कहावे।।

साखी

बयराग भयो जब साहेबा, सबय मिटानो दुख।
कहै 'गुलाल' बयरागी जोई, हरिदम ताको सुख।।

योगी युक्ति जोग कय जाने। पाँचों चोर बाँधि घर आने।।
रबि शशि जानि एक घर मेलय। योगी युक्ति निरन्तर खेलय।।
अर्ध उर्ध कय तारी लावय। द्वादश उलटि गगन चढ़ि धावय।।
ब्रह्म द्वार होय रहो समाई। योगी युक्ति ताहि घर आई।।
वेद कितेब को पढ़ि-पढ़ि गोवै। केतो यज्ञ करि करि रोवै।।
यक साहेब सो रहै मुश्ताक। सो योगी युक्ति में पाक।।
प्रेम प्रीति सों साफ़ी धरे। सो जोगी कबहीं नहिं मरे [illegible]
सुन्य सरोवर लावे तारी। रूप सँवारे आपु बिचारी [illegible]
भजन भक्ति कै राह सँवारे। और देव सपने न निहा[illegible]
सुरति निरति कै कर्म बहु होई। बांचै काल कबहुँ नहिं [illegible]
कर्म धर्म नहिं जाने सोई। जोगी सोई निरन्तर [illegible]
रामहिं नामहिं हित सँभारी। सत्य प्रतीत टरत नहिं [illegible]
दुख सुख मोह उन्हें नहिं ब्यापै। सदा अखंड़ित त्रिबि[illegible]
पूरन रहै घटि नहिं होई। साहेब मिलि रहु [illegible]
सहज स्वरूप जगत महँ रहई। ताकी गति कोऊ [illegible]
सुन्दर रूप बिराजत काया। रह निर्द्वन्द नि[illegible]
अवध न जाय राम रस पीवे। युग-युग योगी [illegible]
चर्म दृष्ट उनके फिर नाहीं। सदा राम मन [illegible]
जीवन मरदन न कबहीं होई। दोजक धरे जन्म [illegible]

साख़ी

सहज सरोवर नाम को, जन जानो जब धीर।
कहै 'गुलाल' यंगम वही, सोई सत्य फ़कीर।।

चौपाई

दण्डी सोई जो डग नहिं नावे। बिनु मुख तान गगन चढ़ि गावे।।
सत्य कै भेष बनावै सोई। निर्गुन जानै मनहिं समोई।।
अर्ध उर्ध वै मसले जानै। रहै निशंक मया नहिं मानै।।
मन कर कर्म अहै बहुतेरा। सतगुरु मिलै तो हो निबेरा।।
ब्रह्म बिचार सतगुरु कै दाया। सब संसय कहँ नाशि बहाया।।
लोक बेद कै नाहीं आसा। हरिदम साहेब नाम में बासा।।
रूप धूप वहाँ काहू न होई। सत्य ते दण्डि कहावे सोई।।
शुन्य सरोवर तारी लावै। रहै निशंक काल नहिं पावै।।
दण्डी डिम्भ आपु ते छोड़े। रहै निशंक कर्म सब मोड़े
इंगला पिंगला रहै हजूरा। दण्डी सोई बजावै तूर
बिमल-बिमल तहँ बानी होई। दण्डी सोई कबहुँ नहिं
अवै न जाय मरे नहिं जीवे। दण्डी सोई राम रस
थकित करे घर के बहु लोगा। निरभय होय के जान
साफ होय सब काज सँवारी। अगम अगोचर ला
सबै सामने एकै सोई। हरिदम साहेब कबहिं
थरन बिबेक वहाँ कछु नाहीं। रहै आनन्द सोच
अवय न जाय मगन रस पीवे। दण्डी सोई पर्म
बहुत कर्म है यह संसारा। राम बिना भव पाव
प्राकृत कर्म वहाँ कबहूँ न होवे। दोजक धरे जन्म न
सुधि बिसरे संसार न ब्यापै। जन्म मरन कबहीं नहिं

साख़ी

जरे जीव सिवहिं मिलै, महा युक्ति को धाम।
कहै 'गुलाल' दण्डी सोई, हरिदम बोलत राम।।

चौपाई

निर्बानी जो सत्य समोधे। पाँच पचीस तीन धरि सोधे।।
नूर निरंजन रूह बनावे। निरबानी सोई अगम कहावे।।
अष्ट कमल कय बाग लगावे। बिनु जल फूल मूल बिनु भावे।।
सींचत मूल समावे सोई। निरबानी असल तब होई।।
रबि शशि दोनों राम करिपीवे। सो निरबानी युग-युग जीवे।।
अर्ध उर्ध कै सुधि जब जाने। सो निरबानी काहु न माने।।
बैंक नाल जब चढ़ै अकासा। सो निरबारनी मन पुर बासा।।
सत्य अनाहद पद तब होई। निरबानी सोई मौज समोई।।
सत्य शब्द कै रहनि सुभाऊ। छूटल लोक बेद कै चाऊ।।
अवै न जाय रहै घर पूरा। सोई निरबानी बजावत तूरा।।
राम प्रताप तबहिं मन होई। सदा अनन्दित कबहिं न रोई।।
अक्षै वृक्ष नाम स्थाना। ताहि समावे पद तहँ नाना।।
त्रिबिध ताप है नाहिं शरीरा। ब्रह्म अखंड सदा रहु पूरा।।
निर्बानी सोई सहज समाई। प्रेम बिचारे अनुभव गाई।।
सुरति निरति कै रहनी धरई। सो निरबानी अमर नहिं मरई।।
सुधि बिसरो संसार न ब्यापै। चौरासी फिर कबहुँ न तापै।।
प्रेम प्रीति कै लगन लगावे। सुधि बिसरे भव कबहुँ न आवे।।
अगम अगोचर मिलुर हुस्वामी। अनुभव उदित अचल पद गामी।।
गुप्त सुपथु कै रहनी धरई। निरबानी सत लोक में तरई।।
लोभ मोह उनके नहिं होई। सदा निकल्प मगन रहु सोई।।
सत्य साहेब जब मनहिं समोई। कहै 'गुलाल' निर्बानी सोई।।

02:14

साखी

तेली तेज जो मारई, तेल पैरै हरि नाम।
कहै 'गुलाल' सोई तेलि है, और तेली बेकाम।।

चौपाई

कर्म कलवार के नासा करई। पाँचो बाँधि गगन चढ़ि धरई।।
अर्ध उर्ध के भाठी लावे। रबि शशि फूँक के अग्नि जलावे।।
ब्रह्म अग्नि उदगारा भयऊ। मते मोह लेते सब गयऊ।।
तिर बिधि ताप गयो तब भारी। मगन भयो मन लागु खुमारी।।
रीझि-रीझि मन बोलत बानी। अपनेहिं साहेब और न मानी।।
भाँति-भाँति मन रँग समाई। सुधि बिसरो संसार सगाई।।
मौज होय रस नाम चढ़ाई। सो कलवार काल नहिं पाई।।
निरभय होई पाक शरीरा। झतर है मानिक मोती हीरा।।
चुभुन्नी चित समाहु सोई। निझरि झरे झरि माफ़िक़ सोई।।
सुरति निरति कै रहमति करई। सो कलवार काल नहिं धरई।।
मोह बझा संसार बझाई। निशु दिन काल धरत धै खाई।।

02:15

चौपाई

मूल चक्र बाँधै चित्त लाई। बिकसे कमल दसहु दिश छाई।।
अर्ध उर्ध मधि सोहं गावे। सुनि धुनि मनुआँ धै ले आवे।।
ज्ञान गुफा जहँ सिद्ध न बासा। गगन मंडल में नृत तामासा।।
बिनु शिर बैठल देखै सोई। निशु बासर दिन रैन न होई।।
शुन्य शिखर तह उठै अघोरा। सतुगुरु शब्द बचन हिय मोरा।।
प्रेम प्रकाश भयो उजियारा। मिटो कर्म तब जग ते न्यारा।।
कहै 'गुलाल' तब हंस कहावे। आनंद उदित अगम घर छावे।।

साख़ी

अगम अगोचर अचल है, निरखत निरखि न जाय।
कहै 'गुलाल' सत सूर होय, रहो चरन लपलय।।938

चौपाई

लगी लगन मन भयो बैरागी। काम क्रोध ममिता मन त्यागी।।
धीरज धय तहाँ करत बिचारा। झरत अधर अमृत रस धारा।।

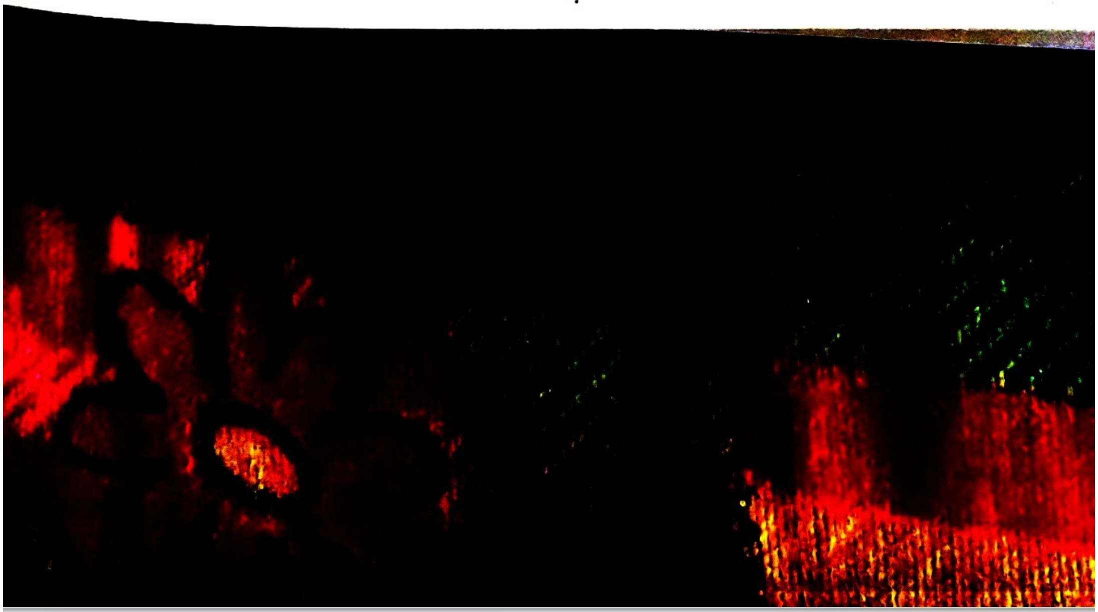

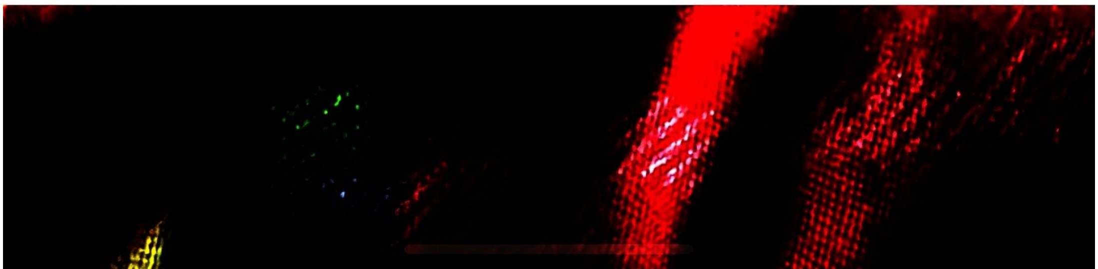

साखी

अलख निरंजन अविगति, पर्म जोति जगदीश।
जन 'गुलाल' निशु बासरै, लियो रहत है शीश।।

चौपाई

चाँद सूर्य एकै गृह आनी। तिरबेनी तट निर्मल पानी।।
उलटेउ पवन तब चढ़ेउ अकाशा। सहज शुन्य दीपक परकाशा।।
उठत गुञ्ज तहँ अनहद बाजा। लै कै जाति छत्र सिर छाजा।।
स्वेत सिंगासन अनुभव गाजा। अनन्त रूप निर्गुन तहँ राजा।।
प्रेम प्रीत कै नेह लगाऊ। सुरति निरति मिल पद तहँ पाऊ।।
जोग युक्ति करहु नर जानी। साफ भयो मन बोलत बानी।।
कहै 'गुलाल' सतुगुरु तहँ मेला। एक भयो तहँ गुरु न चेला।।
देख रूप मन चित तहँ लाया। सुभग स्वरूप निर्मल भयो काया।।
काम क्रोध अरु मया न मोहा। उदित नूर सिर ऊपर सोहा।।
अनभूती अनभूत है देवा। तीन लोक जाकर करु सेवा।।
सेवत नहिं अन्तर जानी। भटकत फिरत मुअत नर प्रानी।।
प्रेम प्रीत प्रभु चरनन लावहिं। पूजहिं पत्थर जन्म गँवावहिं।।
दान पुन्य कर करत है आसा। मरत जिवत चौरासी बासा।।
वनखंड भूख पियास जे मरई। करत कपट माया मन धरई।।
एक नाम जिन नहिं पहिचाना। भ्रमत फिरत सब भये दिवाना।।
दुरमति मन ते सब बिसराऊ। कहै 'गुलाल' करु जोग कै चाऊ।।

साखी

चाव करो नर अलख पति, धरो न दूजो नाँव।
कहै 'गुलाल' सतुगुरु मिले, बसहु अमर पुर गाँव।।

चौपाई

गाँव कियो छै पुर तब छाया। जीव न सीव न काल न काया।।
शब्द स्वरूप अखंड सो बानी। अगम बेद बर्नत का जानी।।

02:16

साख़ा

अजर जरै जिव सिव मिलो, एक ब्रह्म को आस।
कहै 'गुलाल' सत्गुरु मिलै, तब छूटै जग बास।।

चौपाई

या तन नेह पवन लव लावै। सत्गुरु शब्द अगम जौं पावै।।
सहज शुन्य तहँ उठै अघोरा। सुनि धुनि थकित भयल मनमोरा।।
पैठि पताल नाभि तहँ सोधो। शशि अरु शूर उलटि कै बोधो।।
बिकसेउ कमल भयउ परगासा। काटि कर्म भयो जोति में बासा।।
कहै 'गुलाल' तहँ चित्त समाई। उदित चन्द छबि बर्नि न जाई।।
सुषमन सहज बहै तहँ नारी। गगन गुफा में लागी तारी।।
झरत अधर अमृत रस धारा। मनुआँ भरि-भरि लेत करारा।।
नाम समुद्र तहँ उठै अपारा। लोक बेद दोनों ते न्यारा।।
सुरति जहाँ तहवाँ ले जाई। मनिगन भूषण रतन लदाई।।
उनमुनि धुनितह रेखन स्वासा। होत निरंजन रूप अकासा।।
कहै 'गुलाल' सो प्रभु हमारा। एक भयो तब कौन बिचारा।।
कै बिचार मन सहज समाई। तन मन डालि रहो लव लाई।।
चारिउ फलहिं अभै तहँ पाई। नवधा भक्ति हृदय तब आई।।
कै बैराग ब्रह्म मन लावै। निशु दिन नौबति ढोल बजावै।।
मृत होत तहं बाजत तूरा। कय संग्राम जीव भा शूरा।।

साख़ी

शूर भयो दावा गयो, मारि चढ़ो मैदान।
कहै 'गुलाल' सोई सन्त है, निसि करि उगवै भान।।

साखी

नैनों लौ लिव लाइ, राम नाम हिय ध्यान।
कहै गुलाल मन थकित है, शीघ्र कियो कुरबान॥

चौपाई

चाँद अरु सूर्य मूल महँ बासा। उलटि कमल करि चढ़ै अकासा॥
झिमिझिम बरै मानिक मोती। झिलमिलि नूर अनूपम जोती॥
गरजै गगन दामिनी दमकै। तहँ शब्द ज्यों दीप चमकै॥
बाजै अनुभव लगन तहँ बाढ़ै। अनुभव उदित फूल वह पटै॥
सेत नात नाल कै धानी। बिमल-बिमल मन बोलै बानी॥
उठै शब्द तहँ अनहद गाजै। पाँच पचीस तीनि उलटि बिराजै॥
एकै ब्रह्म और नहिं भासा। आनन्द रूप मिलै अविनासा॥
कहन की गति बरनि न जाई। कहै गुलाल मानौं बौराई॥

साखी

एक नाम बिन नहिं जपैं, खुद्द कहैं हैरान।
कहै गुलाल जानै नहीं, भूलत फिरहिं मसान॥

चौपाई

यह संसार सकल जग अन्धा। माया मोह कर्म ते बन्धा॥
नेम धर्म आचार में रहहीं। आशा जानि अन्त के कहहीं॥
अछत दिखत मर्द बनेऊ। सत्य वस्तु महल नहिं भेऊ॥
धर्म मर्म नहिं सूझत अन्धा। पाप अरु पुन्य कर्म ते बन्धा॥
धर्म कुकर्म न चीन्हत बैन। राम बिना नहिं पावहु चैन॥
सकल सयाना है सब नाना। घट घट मद्धे अंधार में बाना॥
बिन गुरु भेद नहीं पहिचाना। औंधे माटि मिलहिं नहिं आना॥
यह संसार सयानप छाना। कहै गुलाल इन्हैं बौराना॥
अब ते रहत राम की आश। सतगुरु कृपा किए अपनाए।
[illegible]

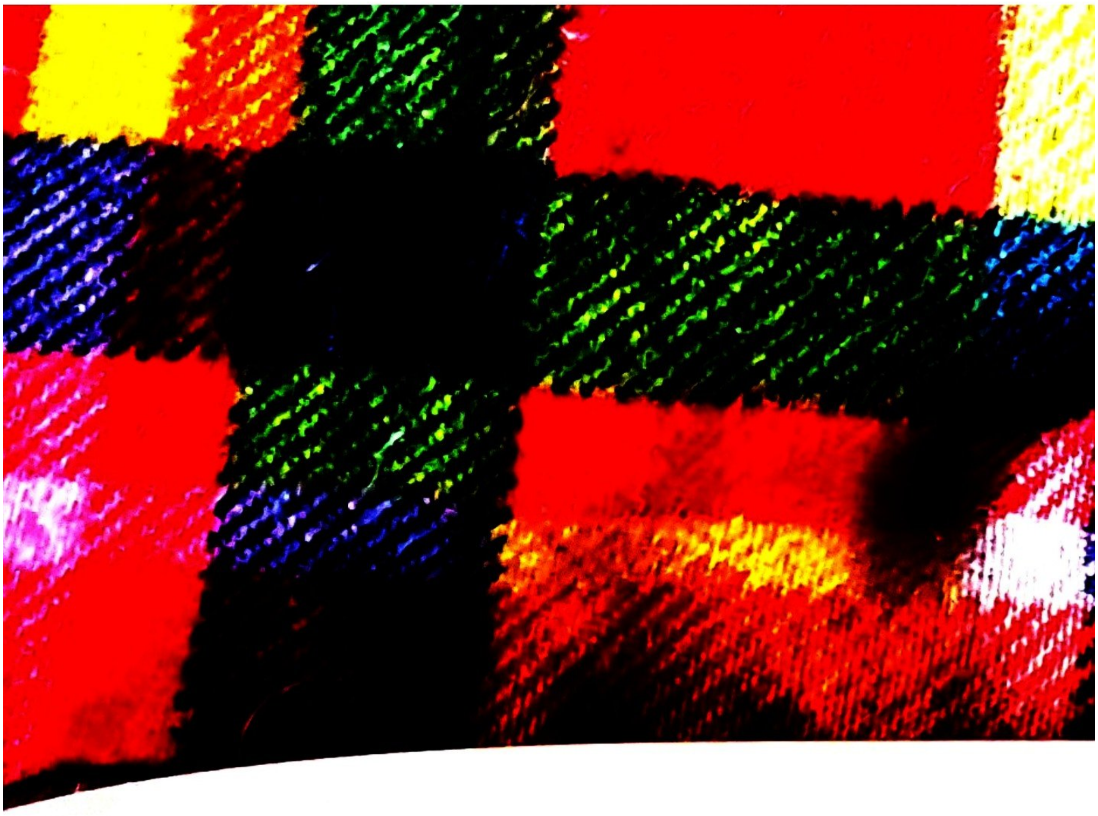

चौपाई

ज्ञान गौर गगन महँ रहई। बिकसै कमल उलटि कै गहई।।
इंगला पिंगला सुषमन सोधो। मन अहमक धै कै पर मोधो।।
पाँच नारि गावहिं तेहिं बानी। भरल सरोवर अमृत खानी।।
नाम निरंजन जानेउ तबहीं। शुन्य में जोति जगायउ जबहीं।।
जोति लहरि अति बर्नि न जाई। दसो दिशा में पूरन छाई।।
छत्र धरेउ तहँ मानिक बारा। अगम राम तहँ कोटिन तारा।।
ब्रह्म उजागर दिब्य सरूपा। तीन लोक के साहेब भूपा।।
परखि-परखि सत्य टकसारा। मिले प्रभुहिं कहँ ओई इयारा।।
आपु अपन में मन बैठायो। सोह शब्द रैन दिन गायो।।
गावन हार है देह न काया। गाँव न मोह न माया।।
मन बैरागी आतम धारी। कहै 'गुलाल' साहेब बलिहारी।।

साख़ी

रहसि-रहसि क्रीड़ा कियो, प्रभु अपनो लियो साथ।
कहै 'गुलाल' भाग्य बड़, बर पायो रघुनाथ।।

चौपाई

साखी

भेष की लज्जा नहिं करहिं, सेहँतत फिरंत हैं घूर।
अमृत फल कहँ छोड़ि के, सेवत काठ बबूर।।

चौपाई

बाई तत्त्व महँ बाई। सतुगुरु मिलै भेद जौं पाई।।
बाई पर्बत बहै जल धारा। पियत नीर बाई धरि मारा।।
शशि अरु सूर भयल जब पूरा। उलटि कवल बाजै तहँ तूरा।।
तत्त्व बाई मिलि चढ़ेउ अकासा। शुन्य नगर बैठक कबिलाशा।।
गगन गरज अनहद तहँ बानी। तत्त्व बाई मिलि रहत समानी।।
उदित चन्द छबि निरखि अकासा। बाई तत्त्व भयल तहँ नासा।।
बंकहि नाल चढ़ेउ जब हाथा। पैठि पताल शेष तब नाथा।।
कहै 'गुलाल' यह योग अपारा। जो बूझै सो गुरु हमरा।।
द्वादस मात्रा रहनि हमारी। सुषमन बैठ यंत्र नौ नारी।।
ज्ञान गूदरी भजन मुरारी। मेखलि माला कंठा डारी।।
तरंग ताखि और शोभा भारी। सहजहिं सेल्ही शुन्य कै तारी।।
मुद्रा मगन औ चलन अपारी। चन्द्र तिलक कच्छ चक्र बिचारी।।

मगन मन झूमरिया, नर खेलहु फागु बनाई।
अष्ट कमल फूलित भयो, रस झूमरिया।।
भँवर करै रस पान, राम रस झूमरिया।
अर्ध उर्ध मधि खेलहिं, रस झूमरिया।।
सुषमन सहज निवास, राम रस झूमरिया।
बंक नाल चढ़ि गयो, रस झूमरिया।

बिन जल कमल बिकसेउ बिकसेउ हो।
बिन भँवर गुञ्जार राम रस झूमरिया।।
नाभि कमल जोति बारब जोति बारब हो।
तिरबेनी उँजियार राम रस झूमरिया।।
सुषमन सेज बिछायउ सेज बिछायउ हो रस झूमरिया।
पौढ़ै प्रभु जी हमार राम रस झूमरिया।।
सुरति निरति लै जाइब लै जाइब हो।।
दसो दिशा के द्वार राम रस झूमरिया।।
जन 'गुलाल' तहँ भाइब तहँ भाइब हो।
यम का करिहै हमार राम रस झूमरिया।।

यम जीतो जब पवना रस झूमरिया, रस झूमरिया।
महा शुन्य समाधि रसम रस झूमरिया।।
सुखमन जोति सँवारब रस झूमरिया।
बरि-बरि होत प्रकाश राम रस झूमरिया।।
ऊँकार समायल रस झूमरिया।
जोति सरूपी नाम राम रस झूमरिया।।
स्वेत सोहावन जगमग रस झूमरिया।
जीव मिलल सत्य नाथ राम रस झूमरिया।।
जिन यह ब्रम्ह विचारल रस झूमरिया।
सोई गुरु हमार राम रस झूमरिया।।
झूठ फिरै संसार राम रस झूमरिया।।

मन खेलै फागु बनाप कपापुर झूमरिया गति झूमरिया।
मन राजा खेलै फाग राम रस झूमरिया।
पाँच पचीस सखिया लिये गति झूमरिया।।
त्रिपुनी रचो धमारि कया पुर झूमरिया।
तीन जना यक मति भयो गति झूमरिया।।
हाँक रहा नभ छाप कया पुर झूमरिया।
शुन्य शिखर बैठक कियो गति झूमरिया।।
धुनि-धुनि प्राण हुलास कया पुर झूमरिया।
अष्ट कमल विकसित भयो गति झूमरिया।।
पायो जोति में बास कया पुर झूमरिया।
चाँद सूर तहवाँ नहीं गति झूमरिया।।
स्वेत रबन तहँ आपु, कया पुर झूमरिया।।
सन्त सभा तहँ देखिए, गति झूमरिया।।

कहँ जहों घर मिलल भोग। भ्रमत फिरत सब रहत लोग।।
सहज सरोवर झुलल फूल। बिकसित कमल रस भँवर भूल।।
पिय पियत जब भयो है शूर। अनभौ बाजा बजत तूर।।
पायो घट जब छुटल फेर। नाम ख़जाना मिलल ढेर।।
रिद्ध सिद्ध मोरे कौने काज। लोक बेद कै छुटल लाज।।
थकित भयो जब पाँच पचीस। तीनों देव मिलो जगदीश।।
कहै 'गुलाल' मन मिलल भाव। ज्ञान लहरि सिन्धुहिं समाव।।

खेलत बसन्त आनन्द धमारि। शिव ब्रह्म जहँ मिलो मुरारि।।
उठत तरंग तहँ बरति जोति। बिमल-बिमल धुनि बानी होत।।
तन मन डारि के रहो समाय। गंग यमुन लियो शिखर धाय।।
फेर फिरत तहँ करत कोड़। बैठो भवन महँ थकित गोड़।।
गगन मण्डल में लगो समाधि। शशि अरु सूरहिं राखु बाँधि।।
कहै 'गुलाल' मोरि पुजल आस। चरन कमल में लियो बास।।

हरि चेतहु रे नर जन्म बादि। डहत फिरत काहे मयहिं लागि।।
नर भूलो करि-करि पुन्य पाप। जन्म-जन्म होवै सन्ताप।।
पांच पचीस तिन घरहीं लागि। निशु बासर जरै अपनी आग।।
तीरथ ब्रत करै देवता मानि। सबहीं भुल्यो करि कुल कै कानि।।

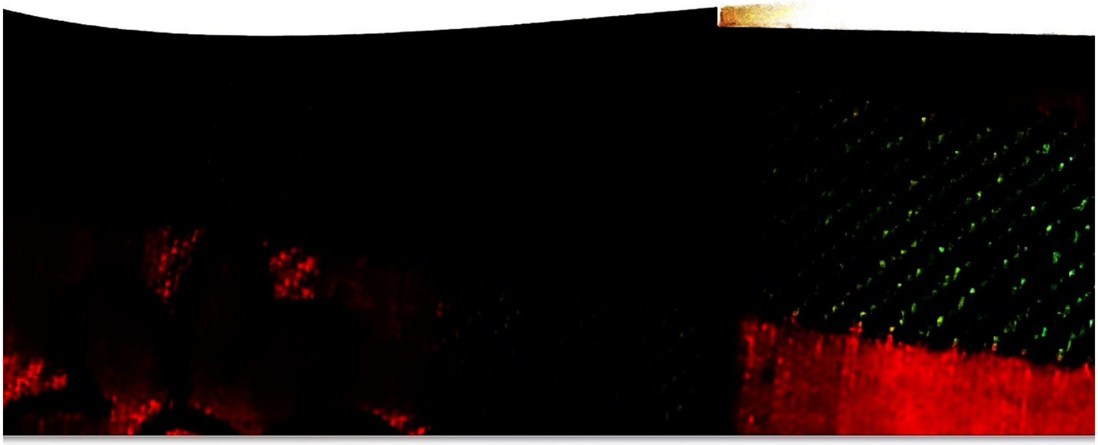

सतगुरु सँग होरी मन खेलै हो।
अहो मेरे ललना अनहद तूर प्रेम बजाई।। टेक।।
काया नग्र में होरी खेलो, प्रेम की परलि धमारि ललना।।
पाँच सखी मिलि चाँचरि गावहिं, प्रभु जी की बलिहारी।।
सहज कै फागु परो निशुबासर, भरि छूटै पिचुकारि ललना।।
नाद बिन्दुहिं गाठि परो जब, परलि परस्पर मारि।।
तारी देइयाँ देइ भाँवरि नावहिं, एक ते एक पियारि ललना।
तत्व अबीर उड़ावत कर धरि, कहूँ कोउ न सम्भारि।।
अब खेलो मन महा मगन होय तन मन सर्ब सँवारि ललना।
कहै 'गुलाल' हम प्रभु सँग खेलल, पूजलि आस हमारि।।

मोर पियवा नाहिंन गाँव। होरिया से कैसे खेलन जाँव।।
हाथेलै पिचु काके सरिया भरि के लै-लै धाँव। भल जोब नवाँ में डाल तल जाँव।।
छैला न मानत डहरिया धरै ठाँव। ऐसन नगरिया मैं कैसे के समाँव।।
गाँव लोगवा मसखरिया धरै नाव। उड़त अबिरिया फगुनवाँ धै लैजाव।।
कहै 'गुलाल' सत्य पिया मन भाव। फागुन दिहल प्रभु अपने हो नाव।।

खेलोंगी फागु लगाय, अपने सइयाँ सँग।। टेक।।
नयन बयन दूनों कहँ गहाय, सुरति पिचुकरिया रे रँचा भिजैलाबनाय।
प्रेम अबीर जगर मगर लगाय, झूम-झूम रहो रँग समाय।।
सखिया सहेलरि झूमक नाय, सेऊ न रहल थिर परो मुरझाय।
कहै 'गुलाल' मोरे कहल न जाय, ऐसन फगुनवाँ अरे सबै समाय।।

मनुआँ मोर भयल रँग बाउर, सहज नगरिया कयल गई ठाउर।
उदित चन्द झरै ले तहाँ मोती, जरत अमिय आवा नाम कै जोती।।
अँगना बोहार कै बाँधल केशा, कैलो सिंगार गैलों पिया के देशा।
आनन्द मंगल बाजत तूरा, फरल लिलरवा भइलिउँ पिया के हजूरा।।
कहै 'गुलाल' नाम रस पाय, मग्न भयल जिव गइल बलाय।।

होरी खेलो प्रभु जी से प्रीत लगाय।।
सब सखियन एक मता मति कियो है, फागुन बर्नि न जाय।
काया नग्न में होरी खेलों, ससि अरु सूर समाय।।
प्रेम जड़ित पिचुकारी छूटत, नौबति दै-दै गाय।
दसों दिशा चाँचरि धुनि होवै, तत्त्व अबीर उड़ाय।।
इंगला पिंगला दोउ रास बनावै, सो सुख बर्नि न जाय।
थकित भयो सुधि बुधि हरि लीन्हों, तन मन सबै भुलाय।।
कहै 'गुलाल' हम होरी खेले, हरि सों गांठि बँधाय।।

राम होरी

राम रँग होरी खेलो जाई फिर पाछे पछिताई।। टेक।।
यह तन फगु रचो पर्मारथ अवधि बदो दिन ठाई।
काल अग्नि जब मस्तक जरि है छुटि है सब चतुराई।।
अगर गुलाल कुम्कुमा केसरि चेत अबीर उड़ाई।
इंगल पिंगल दोनों भरत उर्ध मुख छिरकत प्रभुहिं बनाई।।
दुइ बिधि फगु बनो या बृज में जिन जैसो तैसो भाई।।
कहै 'गुलाल' यह अगम फगु है बिनु सतगुरु नहिं पाई।।

अधर रँग फगुआ मन खेलै हो।
अहो मोरे ललना रबि शशि दोनों सँग मेलो।। टेक।।
मन बैराग चित चोर जे धैके नेह निरन्तर लाई ललना।
पाँच पचीस तीन मौआसी पकरि गगन लै जाई।।
शुन्य नगर आसन मार्‍यो अद्‌भुत भेख बनाई ललना।
ब्रह्म बिश्नु शिव तहाँ नहीं है फगु बरनि नहिं जाई।।
नादहिं बिन्दहिं गाँठि परो है ज्ञान कै जोति समाई ललना।।
उठत लहरि अनन्त राग तहँ अनभौ चाँचरि गाई।।
आवागवन रहित जबहीं भयो यम सिर डंक बजाई ललना।।
कहै 'गुलाल' काल जग खैहै मरिहै हमरि बलाई।।

प्रेम नेम चाँचरि रचो रँग होरे रँग होरी।
पुलकि-पुलकि प्रभु पास राम रँग होरे होरी।। टेक।।
चाँद सूर उलटेउ चलेव रँग होरे होरी।

हृदय राखि गुन गाइब गुन गाइब हो।
अनभव रूप बनाय मनोरा झूमकरा।।
मूल चक्रगहि बाँधव गति बाँधव हो।
बैठिब गगन में जाय मनोरा झूमकरा।
शुन्य नगर समाइब समाइब हो।।
नृत्य करत तहँ आप मनोरा झूमकरा।
निशु बासर गुन गाइब गुन गाइब हो।।
सेत सहज समाय मनोरा झूमकरा।
जन 'गुलाल' तहं भाइब तहं भाइब हो।।
छोड़ि दियो जग बास मनोरा झूमकरा।

नर फागुन समै सोहावन-सोहावन हो।
खेलो औसर जाय मनोरा झूमकरा।।
यह तन बालू मन्दिल-मन्दिल हो।
धोखे माया लपटाय मनोरा झूमकरा।।
अंजुलि जल घटता है जल घटता हो।
नेकु नहीं ठहराय मनोरा झूमकरा।।

पाँच पचीस बड़ी दारुण बड़ी दारुण हो।
लूटहिं शहर बनाय मनोरा झूमकरा।।

हिण्डोलना झूलै गुरमुख शिष्य।। टेक।।
चन्द सूर जो खम्भ रोपो। सुरति डारि लगाय।।
मन्द-मन्द जो पौढ़ गगनहि। रहो जाय समाय।।

तहँ होत अनहद नाद धुनि। सुनि सहज चित्त लगाय।।
बृगसि कमल अनन्त शोभा। भँवर रहै लोभाय।।
अर्ध उर्ध को उलटि चलिए। सुखमना ठहराय।।
गंग यमुना मिलि सरस्वत। पद्य दरशन पाय।।
शुन्य शिखर समाधि बैठो। योग युक्तिहिं पाय।।
डालि तन मन चढ़ो सिर दै। जोति लहरि नहाय।।
अति अथाह अपार देखो। नयन नाहिं समाय।।
पाँच तीन पचीस त्यागो। वाणि निर्गुन गाय।।
आदि अन्त औ मध्य छोड़ो। अगम गति जो आय।।
चौथे पद पर बैठ योगी। मौज ढोल बजाय।।
जग्यो प्रेम जो नेम चरणन। साधु संगति पाय।।
त्यागि कर्म सन्ताप तन को। पाप दियो बहाय।।
मारि ममता मन बिचारो। हँस रूप कहाय।
कहै 'गुलाल' अतीत सोई। जो यह रहनि समाय।।

हिण्डोलना कर्म झुलावन हार।। टेक।।
पाँच तीन पचीस ध्यावहिं। नेक नहिं ठहराय।।
पाप पुन्य को बीज लै करि। बोवहिं खेतं बनाय।।
जन्म उत्तम पाय करिहो। माया परल भुलाय।।
रामनाम न जान भोंदू। चल्यो मूल गँवाय।।
पुहुमि नीर अकाश झूलहिं। झुलहिं मारुत चन्द।।
ब्रह्म बिष्णु महेश झूलहिं। झूलहिं सूर फणिन्द।।
तैतिस कोटि देव झूलहिं। मोह में लपटाय।।
बज्र बाँध को बाँध बाँधो। सबै बाँधि नचाय।।
जोगी यती औ सिद्ध झूलहिं। दसो दिसा में छाय।।
झूलहिं जे नारद आदि मुनिवर। पार काहु न पाय।।
सावित्री लक्ष्मी गौरि झूलहिं। मया को फैलाय।।
हन्स बृखभ औ गरुण झलूहिं। थीर कबहुँ न आय।।
अर्ध उर्ध और मध्य धारा। झूलो त्रिकुटी जाय।।
गगन मध्ये सुरति माण्डो। जोति दियो है जगाय।।
झूल-झूलि न जाय प्रभु जी। अब मोहिं झूलाय।।
जन 'गुलाल' जी शरण आए। राखु चरण लगाय।।

हिण्ड़ोलना झूलहिं निर्गुन अषार। झूलत उठै झनकार।।
ज्ञान कै रचो है खटोलना हिण्ड़ोलना। सुरति कै डोरि लगाय।।
अर्ध उर्ध दोउ खम्भ हिण्डोलना। पौढु गगन में जाय।।
पौढु जे गगन हिण्डोलना। नाम कै ·डंक बजाय।।

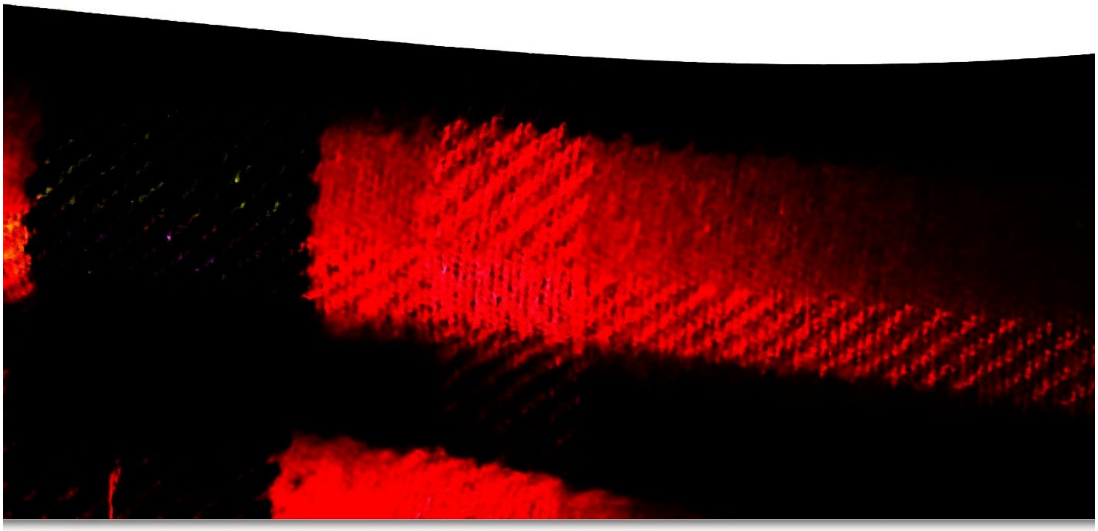

गुरु परताप जब साधु संगति करै,
फुलो तब ब्रह्म सन्तोष आया।
आपना जाप ते जाप अजपा जपै,
चाँद अरु सूर्य को बाँधि नाया।।
सहज नारी बहै शब्द अनभौ गहै,
सुरति औ निरति मिलि नाम गाया।
नयन बिनु सूझिया पिण्ड बिनु जूझिया,
जीति के काल अनहद बजाया।।
परो आडंक चहुँओर दसौ दिशा,
गैब के ज्ञान सों अदल चलाया।
कहै 'गुलाल' सो साफ साहेब हुआ,
आपना काज आपुहिं बनाया।।

साख़ी

अचरज यक हम देखल, पंडित करहु बिचार।
काह कथब औ का सुनब, काह करब व्योहार।।
जगमग अचरज देखल, पंडित भयल बिचार।
ज्ञान कथब और धुनि सुनब, नाम करब व्योहार।।
कहवाँ से जिव आयल, कहवाँ जिव कर बास।
कहवाँ आई समायल, कहवाँ सक्ति निवास।।
ब्रह्मै से जिव आयल, नाभी कमल में बास।
शुन्यहिं शक्ति समायल, शिव घर शक्ति निवास।।
कहवाँ शिव कर आसन, कहवाँ शिव कर ध्यान।
कहवाँ शिव कर मण्डप, कहवाँ शिव स्थान।।
अगमै शिव कर मण्डप, कहवाँ शिव स्थान।
अगमै शिव कर आसन, निगमै शिव स्थान।।
कहवाँ से मन आयल, कहवाँ परल भुलाय।
कहि लेइ मन घर गवनल, कैसे मन ठहराय।।

कहै 'गुलाल' सतगुरु कृपा कियो,
हाथ लियो मन तब काल मारा।
मन मुक्ता होवै राम रस नित्त लेवै,
हंस होवै रूप तब दर्श पावै।
मोती मुक्ता चुँगै कीट में नहीं पगै,
सदा चैतन्य नहीं भर्म आवै।
देखि दीदार सम्भारि लेवै आपु को,
और फेरि में न कहूँ दौरि धावै।

आदिमूल यक रूखवा हो, तामें लागो तीन डार।
ता बिच यक स्थूल है, शाखा बहु बिस्तार।।
और न बर्नी आवै हो, छाया अपरंपार।
माया मोह व्यापक भयो, सूझै वार न पार।।
सत्गुरु नावल हिण्डोलवा हो, सुरति निरति गहेसार।
झूलहिं पाँच सोहागिन हो, गावहिं मंगलचार।।
पौढ़ेव अगम हिण्डोलवा हो, सत्य शब्द निरधार।
झूलत झूलत सुख उपजै हो, केवल ब्रह्म बिचार।।
अबकी बार यह अवसर हो, मिलै न बारंबार।
फिर पीछे पछतैहो, हो, होत छूटै बिकरार।।
योग युक्ति हिण्डोलवा हो, ताहि मिलै करतारं।।
आवागवन निवारहु हो, फिर न होय औतार।
साधु संगति को मेला हो, झूलै नाम अधार।।
योग युक्ति कै हिण्डोलवा हो, सत्गुरु सहज लखाव।
चाँद राखि सूर चड़ावल हो, पव के डोरि धई पाव।।
अर्ध उर्ध मुख धावल हो, पुलकि पुलकि छबि भाव।
गगन मण्डल गुन गावल हो, सुरति निरति समाव।।
यहि बिधि 'भीखा' मन लावल हो, आतम रूप दर्शाव।।

सत्गुरु शब्द हिण्डोलवा हो, सुनि मन अनुराग।
झुलत गुनत रुचि भावल हो, जिय चकृत उठ जाग।।

झूठ में साँच यक बोलता ब्रह्म है,
ताहि को भेद सतसंग पावै।
धन्य सो भाग्य जो सरन सेवा टहल,
निशु दिन ना प्रीति लवलीन लावै।।
बचन ले युक्ति सों सिद्धि आसन करै,
पवन सँग गवन करि गगन जावै।

प्रगट प्रभाव गुर गम्य परचै है,
'भीखा' अनहद पहिले सुनावै।।

दूजे वह अमल दस्तूर दिन-दिन बढ़ो,
घटो अँधियार उँजियार भाया।
अर्ध से उर्ध भरि जाय अजपा जपो,
चाँद अरु सूर मिलि त्रिकुटि आया।।
झर तहाँ नूर जहूर आसमान लों,
रूह आफ़ताब गुरु कीन्ह दाया।
'भीखा' यह सत्य सो ध्यान पखान है,
शुन्य धुनि जोति परकाश छाया।।

शब्द परकाश के सुनत अरु देखतहिं,
छुटि गई विषै बधि बास काँची।
सुरति गयो निरति घर रूप आयो दृष्ट पर,
प्रेम की रेख परतीत खाँची।।
आतमा राम भरिपूर प्रगट रहै,
खुलि गई ग्रन्थि निज नाभ बाँची।
'भीखा' यों पगि गयो जीव सोई ब्रह्म में,
शीव अरु शक्ति की मिलन साँची।।

सकल बेकार की खानि यह देंह है,
मल अरु दुर्गन्ध भरो ताहि माही।
मन अरु पौन यह जोर दूनो बड़ो,
इन्हीं को जीति के पार जाहीं।।
जाहि गुरु ज्ञान उनमान अनभौ करै,

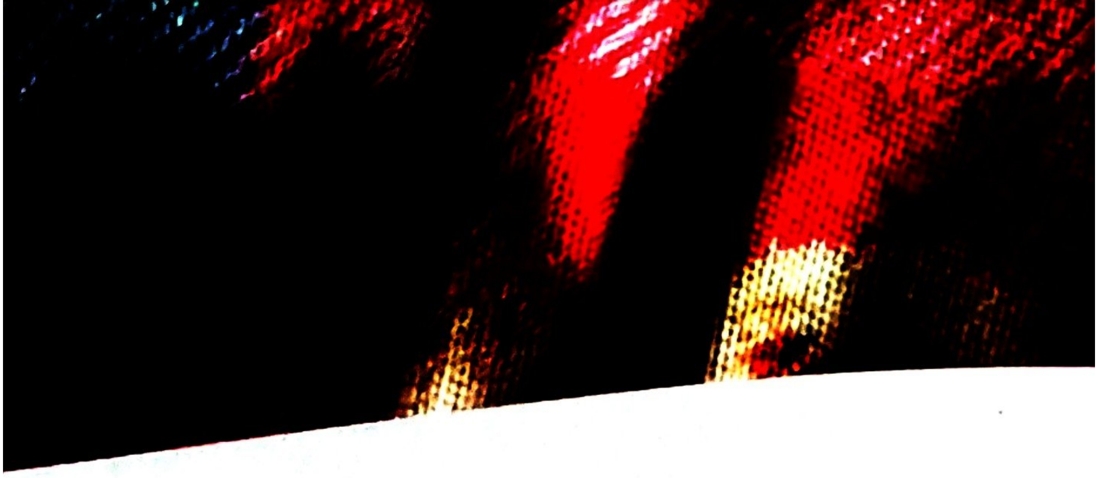

योग की युक्ति पाय सुरति औ निरति लाय,
नाद बिन्द में समाय 'भीखा' लायो आसना।।

आदि अन्त मध्य एक नाद बिन्दु सम कै टेक,
सब घट शुद्ध ब्रह्म देखत अकाश है।
काहे को भर्म करै जन्मि जन्मि के मरै,
भजत नाहिं हठि करिके जौ लों तन सास है।।
निज सुख यही जानो दोबिधा नहिं भाव मानो,
अलख अलेख देखो आपुही में बाद है।
चित्त ज्यों चकोर लेवैं चन्द्रमा को दृष्ट देवै,
आतमा प्रकाशी ज्ञान 'भीखा' निजु पास है।।

ज्ञान उनमान करि चीन्ह ले अमान धरि,
गुर परताप खुलो भर्म को कपाट है।
चाँद सूर एक सम सुरति मिलाय दम,
इंगल पिंगल रँग करि सुषमन माठ है।।
पूरब पवन जोय पश्चिम की राह होय,
गंग अरु यमुन संगम त्रिकुटी की घाट है।
पान औ अपान आसमान ही में थी होवै,
'भीखा' शब्द ब्रह्म को अकाश शुन्य हाट है।।

02:40
many sant bani hindi boo...

साख़ी

मन बसि सत्गुरु ज्ञान ते, सकल क्रिया होय सिद्ध।
भीखा युक्ति अनेक है, मन माया करि बिद्ध।।

दया करैं गुर जाहि पर, कृपा कटाक्षै होय।
'भीखा' जोग सकल भयो, मन कै दुरमति खोय।।

सुरति निरति मेला भयो, जीव सीव भयो एक।
मन माया धावन छुटै, केवल ब्रह्म विवेक।।

चौपाई

सुरति निरति को भेद बताओ। कैसे सुरति निरति लयलाओ।
सुरति मिलै जब निरति हो जाई। सुरति कै खोज कहाँ तब पाई।।

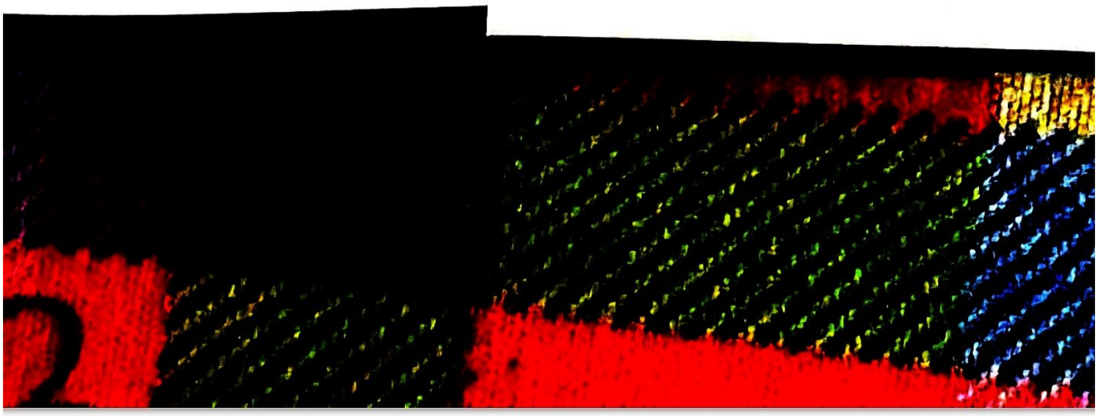

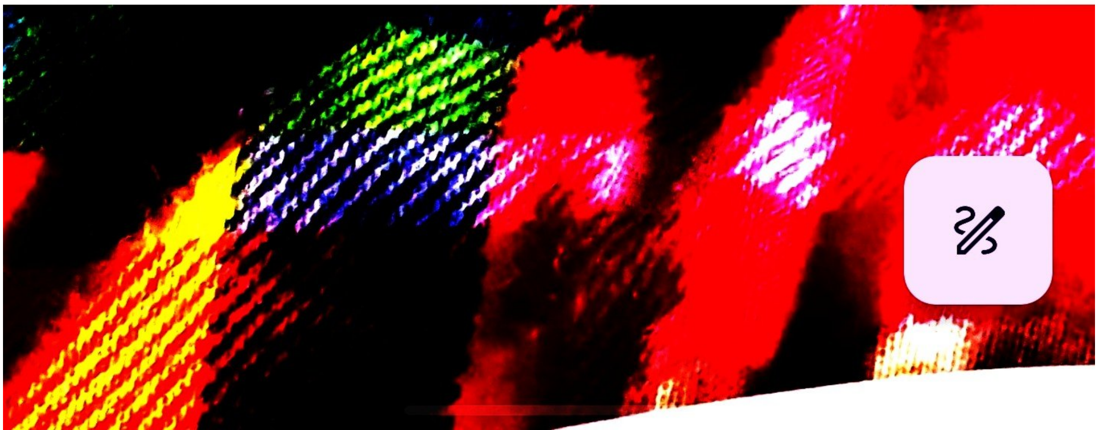

साखी

भीखा दूसर है नहीं, केवल एकै नाम।
दूसर माया मूढ़ है, मन उनमेख निकाम।।

एक पवन के थकि गए, सकल क्रिया थकि जाय।
तब लग मन धावन रहै, जब लगु पवन समाय।।

चौपाई

'भीखा' यही सुरति मन जानो। सत्य एक दूसर मति मानो।।
हे प्रभु जी यक करते ढिठाई। कहत बात जिव बहुत डेराई।।
योग मता नहिं मुनि ठहरावैं। यामें भर्म सन्देह बतावैं।।
साच कहैं कि मिथ्या जानी। सहित बिचार कहिए निज बानी।।
सहज समाज सुगम ठहरावैं। शब्द स्वरूप आत्मा बतावैं।।
शुध स्वरूप सो केहि बिधि जानी। सहज समाधि कैसे पहिचानी।।

साख़ी

बिनु श्रम युक्ति बताइए, कहत कष्ट नहिं होय।
भीखा को जिए काँच है, सहज मिलावहु सोए।।

शुध स्वरूप अकाशवत, अविचल लायो ध्यान।
किए हमारी होय नहिं, 'भीखा' को लघु ज्ञान।।

चौपाई

सुन्य सिवाय न दूसर कोई। जानब ब्रह्म अखंडित ओई।।
सुन्यै पृथ्वी सुन्य अकासा। सुन्यै पाँच तत्त्व कै बासा।।
सुन्यै बोलता जीव कहावै। गंगा यमुना सुन्य बहावै।।
सुन्यै चाँद सूर्य दिन राती। इंगला पिंगला सुन्य सोहाती।।
सुन्यै पाँचो मुद्रा कहिए। सुन्यै योग धार्ना लहिए।।
नाड़ी चक्र कमल तन जेते। सुन्यै बास करत हैं तेखे।।
सुन्यै त्रिकुटी भृकुटी नामा। कुम्भक पूरक रोचक धामा।।
पूरक लेन ब्रह्म को जानो। कुम्भक भरण सतो गुण मानो।।
जो कछु पवन छुटै तन माहीं। सो है रेचक, तमो गुण पाहीं।।
पूरक कुम्भक रेचक नामा। तीनों सुन्य निरन्तर धामा।।
प्रथमहिं तो कोउ दूसर नाहीं। पुर्ष पुरान निरन्तर माहीं।।
आदि अन्त सो सुन्य पसारा। माया खोल जक्त बिस्तारा।।
चारिव खानि लक्ष चौरासी। ज्यौं बूल्ला उठि जल मिल जासी।।
यह चरित्र सब कर्ता केरा। उपजत बिनसत त्रास घनेरा।।
बझो कर्म बस बूझि न जाई। दिब्य आतमा निकट छपाई।।
आतम सुन्य स्वरूप बिचारै। नाम महातम शब्द बिचारै।।
सोई आत्मा चेतन्य बासा। सुन्य निरन्तर करत तमासा।।
तेहिते सुन्य ब्रह्म है नाहीं। ब्रह्म मिलैं सो सुन्य समाही।।
आतम जीव एक करि मानो। ब्रह्म पवन मन सुन्य बखानो।।

साख़ी

भीखा येतना फेर है, भर्म पर्‍यो जिव माहिं।
नहिं तो केवल शुन्य है, जीव मया कछु नाहिं।।

गुरु दयालु जब सत्य बसन्त। यहि सिवाय मति है अनन्त।।
श्री पंचमी है पाँच नारि। सब गावहिं यक सुर धमारि।।
धुनि अकास भरि रहलि छाय। सुनत मगन उर नहिं समाय।।
धन्य भाग्य जाके यह संजोग। मिलो पदारथ नाम भोग।।
जीव बसायो बल के अंस। बकुला ते भयो परम हन्स।।
माघ मकर तन सुफल जानि। मिलो पदारथ नाम खानि।।
नाद बिन्दु को जूह होय। वै साहेब यह सेवक सोय।।
शुन्य मण्डल घर भयोउ भोर। सुद्ध रूप चन्द चित चकोर।।
'भीखा' मन मुक्ता चुँगति आगि। गुरु गुलालजी के चरन लागि।। 1031

खेलत बसन्त रुचि अलख राय। रहनि निरन्तर समय पाप।।
नाम बीज फैलाव कीन्ह। जक्त खेत भरि पैर दीन्ह।।
जामेउ आक अकार नेह। दिन दिन बढ़त है कर्म संदेह।।
पेड़ एक लागो तीन डारि। उप शाखा सुठि बहु तुमार।।
कलियाँ बैठु गुरु ज्ञान मूल। किसि बदन फूलो अजब फूल।।
फल प्राप्ति भयो ऋतु नसाया। पर्म जोति निज मति समाय।।
पक्कु भयो रस अमिय खान। चाखात दृष्ट सरूप जान।।

जाई आदि अन्त मध्य सोय। जीव पवन मन रहो न कोय।।
शब्द ब्रम्ह भयो सुन्ध लीन। 'भीखा' राति न तहवां दीन।। 1032

चेतत बसबंत मन चित चेतन्य। योग युक्ति गुरु ज्ञान धन्य।।
उर्ध पखारेउ पवन घोर। दृष्ट पलानेउ पूरब ओर।।
उलटि गयो थकि मिटल दाह। पश्चिम दिशा कै खुलल‍ि राह।।
सुन्य मँडल में बैठु जाय। उदित उजल छवि सहज पाप।।
जोति जगामग झरत नूर। वहाँ निशु दिन नौबति बाजततूर।।
झलक झनक जिय एक होय। मति पान अपान को मिलन सोय।।
रूह अलख नभ फुलेउ फूल। सोइ केवल आतम मूल।।
देखत चकृत अचरज आहि। जो वह सो यह कहौ काहि।।
'भीखा' निज पहिचान लीन। वह साकि ब्रम्ह सरूप चीन।। 1033

बोलो मन मैना राम राम। जौ निज सुख चाहो अराम।।
तजु बिषया करू भजन साज। काल धरे सिर रूप बाज।।
झपट करैगो एक दिन। जौं न होहु हरि के अधीन।।
राम राम सम बली न कोय। कोटि सुभट महाबीबर होय।।
आ भक्ति जितो कबब भक्तिहारि। हरनाकुश मारो ओद्र झारि।।
भक्त विभीषण गात गात। तेहि रावण मारेउ कूदि लात।।
चलन कियो हरि पास जोग। जो कहु भयो सो जानत लोग।।
ग्राह ग्रसेउ गजरात पाप। दुखित भयो जल नाक आय।।
आरत है हरि हरि पुकार। 'भीखा' तेहि काढ़ो मुरारि।। 1034।।

खेलत बसन्त मन ब्रह्म योज। सहज मउज बड़ि करत रोज।
कबहुँ के लघु कबों बड़ अकार। कबहुँ सुक्षम कबों मोट भार।।
कबहुँ निडर कबों डर के बीच। गुप्त कबों-कबों प्रगट नगीच।।
कबहुँ मौन कबों बोलत माहिं। श्रवन को सुख सो तो नगन नाहिं।।
कबहुँ अधर मुसुकात गात। दृष्ट को सुख सुख क़हि न जात।।
रमिता रमि रहो सकल ठौर। आपे आपु न दूजो और।।
कहुँ श्याम गौर पित ललित भेष। निज 'भीखा' सोई रँग रूप देख।। 1034।।

योग युक्ति करि परिखन लागो समुझत बार न पार ललना।
नेकु दृष्ट में आव जवहीं तब पिरा में खभार-।।
उधि-उधि घुमि-घुमि उलटी गयो है धुनि सुनी चढ़त पहार ललना।
शुन्य शिखर पर जाप चढ़ो है खुलि गयो भरम केवार।।

निशु बासर नहिं चन्द उगो है, अचरज रूप हमार।
ज्ञान ध्यान तहवाँ न लगो है 'भीखा' गुरू चरन समाय।। 1055।।

सत्य शब्द उठन लगे है अनभव घर्निन जाप ललना।
अति आनन्द उमंग भयो है ता पद् जिय लगल बनाय।।
सुनत सुनत तन ताप गयो है छुटि गयो कर्म बलाय।
नाँद बिन्दु की जूह भयो है मनुआँ तहाँ लोभाय।।
पृथ्वी गगन सब एक भयो है आपै त्रिभुवन राय।
दूसरे दुष्ट न आवै 'भीखा' चरन समाय।। 1056।।

जग नाम प्रकाश अकार धरे जड़ आतम राम खेले होरी।
काम क्रोध मद् लोभ ग्रसित ना आपु नरक बोरी।।
गति विषयारत भक्ति भाव जहँ ज्ञान ध्यान रस रँग घोरी।
सन्तन सभा चोआ अरू, कुमकुम प्रेम वचन छिरकत रोरी।।
सतुगुरु हाट बिकाय लियो प्रभु दान दियो बन्धन छोरी।
योग युक्ति अभ्यास भरो लैं अर्ध उर्ध सुषमन झोरी।।
सुरति निरति, लवलीन भयो सम जीव सीव दोनों जोरी।
ब्रह्म सरूप अनूप दृष्ट भरि निज पति देखि मिलो गौरी।।
अगम अगोचर नूर झलाझल सोहं तार लगो डोरी।
कहै 'भीखा' मेरो ऐसो साहेब मन माया अँखुआ तोरी।। 1057।।

यक पुर्ष पुरान चहूँ युग में मिलि आतम रात खेलें होरी।
रँग लगो फगुआ रस बसि भयो माया ब्रह्म दुओ जोरी।।
जग परिपंच करम अरुझो नर सबई कहत मोरी मोरी।
नाम पदारथ भूलि गयो है ग्रीवा फँसेउ भरम डोरी।।
कोउ योग युक्ति रस भेष पाइकै सुरति निरति रँग लै बोरी।
बाजत अनहद ताल पखाउज उमगि प्रेम आनंद चोरी।।
सतुगुरु शब्द अवीर कुमकुमा भाव भरी झोरी-झोरी।
'भीखा' दिव्य दृष्टि करि छिरकत पलकन नूर चुअत ओरी।। 1058।।

होरी सो खेले जाके सतगुरु ज्ञान विचार।
यहि सिवाय जो और करत हैं ताकों जन्म खुआर ।। टेक।।

इंगला पिंगला होय शुन्य मिटानो सुषमन भयो उँजियार ललना।
नूर जहूर बदन पर झलकत वर्षत अधर अधार।।
बजत अनहद घंटा तहाँ ध्वनि अविगति शब्द अपार ललना।
पुलकि-पुलकि मन अनभव गावत पवत अलख दिदार।।
अगर अबीर कुमकुमा केसरी उमगो प्रेम पुखार ललना।
राम नाम रत रंग भयो गत का क्रोध अंहकार।।
व्यापक पूरन अगम अगोचर निज साहेब विस्तार ललना।
बोलता एक 'भीखा' सबइन को है जग सकल हमार।। 1059।।

यहो हो होरी गाई ये जू मधुर-मधुर सुरगाई।
समै सोहावन देखत मानों गयो बसन्त फागु ऋतु आई।।
तन मन धन चरनन पै चारों नाम प्रताप गगन ध्वनि छाई।
सुनत-सुनत मन मग्न भयो है सुरति निरति मिली रास बनाई।।
हौं तो सर्णागत माँगत हौं अब दीजै प्रभु सन्त दोहाई।
जल थल जीव जहाँ लगु देखों मनहि बोध नहि आई।।
काया गढ़ के गगन भवन में धुधकि-धुधकि ध्वनि नाम सोहाई।
'भीखा' के मन भर्म देखि कै गुरु गुलाल जिव राह चढ़ाई।। 1060।।

हरि हिए ध्याऊँ साधु मति होरी।
सुमिरन भजत विचारत कबहुँ के, चित चंचल थिर पाऊँ।।
योग अबीर युक्ति रँग लेकै, पवन उर्ध भरि जाऊँ।।
सुरति सुभाव निरित लपटानी, दृष्टि रूप अरुझाऊँ।।
अनहद ताल बजावत गावत, भाव कै सम हर्षाऊँ।।
कहै 'भीखा' तन फागु सुफल भी, जहाँ को तहाँ समाऊँ।। 1064।।

होरी खेलन को जाइये, सत्य सुकृत सँग लाई।
यह माया परिपंच फागु में, मति कोई परै भुलाई।।
सत्गुरु ज्ञान अबीर रँग लेई, हद भरि दमहि चढ़ाई हो।
इंगल पिंगल पिचुकारी छुटत, सुषमन अँग भिगाई हो।।
सुनत मगन मन पवन लसित भयो, सुरति निरति अरुझाई।
पाँच सखी तहुँ चाँचरि गावहि, अनहद डँक पजाई हो।।
ब्रह्म स्वरूप चेतन्य अँग लेई, दुरमति महल बहाई हो।
'भीखा' ता छवि कहिए कौन मुख, उक्ति यको नही आई हो।। 1065।।

हरि होरी गाइले तनु धारी।
ऐसी समय बहुरी नहिं पैहो, काहे के कर्म अकर्म करो री।।
सत्गुरु शब्द डँक देत सिर ऊपर, काहे न सुरति निरति मिलि जोरी।

मानुष जन्म यहि करि आयो, नाम न भजहु सबेरा।
बालकुमार जुबा विरधा पन होई होई जात अबेरा।।
चेतनि पान अपान सो जद उध्यान ब्यान महँ डेरा।
करत है और कहत है औरे बलकत फिरत अनेरा।।
यह मन कठिन कठोर अपरबल किया सकल जग जेरा।
माया मोह में फँसी गयो है, सुत कलत्र धन चेरा।।
आई घटत बढ़त तन देखत, लाभ लोभ तन घेरा।
आवत जात चर्ख चौरासी, करम न करत निबेरा।।
सिर पर काल करत निशु बासर मारत चरित चबेरा।
काहे न बाँधवु भव उतरन कहँ सत्य शब्द को बेरा।।
कहत हैं वेद वेदान्त सन्त पुनि गुरु को नामहिं टेरा।
"भीखा" भाग बिना नहि देखत निकरहि दीप अँधेरा।।

मन तुम नाम न भजहु सवेरो।
पहर दुपहर तीसरे ऊपर हे होय जात अवेरो।।
लागो खड़ा होय जीव जमा सों है केवल हित तेरो।
भर्म घुघट पट खोलि बिचारों सहजहिं मिटै अधेरो।।
सत्‌गुरु नयन सयन को परचो होत न लागत देरो।
अंचरज महा अलौकिक रचना देखत निकटहिं नेरो।।
सहज समाधि कै चाह करो तौ आपा परहि निबेरो।
खोजत-खोजत कोउ पार न पावहि सुर-नर बहुँतेरी।।
तुरिया शब्द उठत अभि अन्तर सोहं-सोहं टेरी।
पुरवहि लिखेउ अक्षर अनमूरति आपहि चित्र चितेरो।।
स्वर्ग जहाँ लगु रूप तुमारों जल थल बन गिर हेरो।
कहै "भीखा" यक धन्य तुम्ही हौ तट पर देवँ केहि केरो।।

राग सोहर

निर्गुन अरम्पार सो रहत निरन्तर हे।
ललना सगुन विदित भए आई कहूँ नहि अन्तर हे।।

छन्द

अन्तर कहूँ नहिं सर्व पूरन एक छत अमले कियो।
थपन उथपन जासु काल प्रताप डर सब के हियो।।

हे मन राम नाम चित धौवे।
काहे इत उत धाई मरतु है, अवशि भजन प्रभु कौवे।।
गुरु प्रताप साधु की संगति, नाम पदारथ खौवे।
हरिदम सोहं शब्द उठतु हैं, विमल-विमल धुनि गौवे।।
सुरति निरति अन्तर लै लाओ, अनहद नाद गगन गर्जौबे।
रमिता राम सकल घट व्यापक, नाम अनन्त एक ठहरौबे।।
जहाँ गयो जग सोयर टूटो, तीन तान गुनये गुन नौवे।
जन्म स्थान खानपुर बोहना, सेवत चरन भिखा नन्द चौवे।।

राम जन्म मन असकति कैसी।
आजुहिं कालि समै बीतत है, अभय छोड़ि भय भरम लेवै सी।।
आतम पुरुष दृष्ट पतिवर्ता, औरि देवा सेवा घर पैसी।
सकल सन्त को मति याही है, आप कुष्ण दरसाई जैसी।।
शास्त्र मत को ज्ञान कहत है, मत विज्ञान कहा गुरु तैसी।
'भीखा' पलखत परैं कबों नहिं, पायो भक्ति संजीवन ऐसी।।

ऐसो राम कवनि विध जानी।।
दृष्ट मुष्ट कबहूँ नहिं आवत। जन्म मरन जुग बहुत सिरानी।। टेक।।
अगम अगोचर बसत निरन्तर। जाके शीश पाप नहिं पूनी।।
निर्गुन निर्विकार सुख सागर। अपरम्पार अखंडित बानी
ईश्वर कै कोई नहिं मूरति। थाके सकल खोज मुनि ज्ञानी।
अलख को लखै अदेख को देखै। व्यापक पूरन चारिउ खानी
निरंकार निरू पाधि निरामै। "भीखा" रँग न रूप निशानी।

जो कछु हौ सो हौ प्रभु तुमही।
दूसर मुख नहिं कहही न गुननी ।। टेक।।
स्वारथ बस काम अंध न सुनही।
विषै धनुष सर आतर धुनही।।

समय जुन आवन सो आई। मन कहेहु ते नहिं पतिआई।।
युग वर्ष मास दिन पहर धरी। छन देह अवधि नियराई।।
मुर्ख तदपि नहिं चिन्ता मानो। करतल भौ अमराई।।
सुर नर मुनि गन्धर्व अरू दानव। काल कर्म दुख पाई।।
ब्रम्हा विश्नु शिव सनकादि आदि दे। प्रभू डर को न डेराई।।
अमर चिरंजिव लोमस समता। दिन पर त्रास जनाई।।
'भीखा' निभौं राम सरन यक। का कियो बहुत सिधाई।।

मौज हरि जानत को जानी। मन समुझ नहिं अभिमानी।।
निर्गुन ब्रह्म निरंजन देवा। सेवा पर पहिचानी।।
योग जाप तप दान नेम करि। थकि मुनिवर ज्ञानी।।
पान अपान उद्यान ब्यान करि। बिसरेउ सारंग पानी।।
अपरम्पार पार परमेश्वर। अविगति अकथ कहानी।।
अवढर ढरन ढरे प्रभु जापर। ताकर भाग्य बखानी।।
'भीखा' व्यापक रूप सकल घटी। पूरन चाखि खानी।।

तुम धनि-धनि साहेब आपै हो। तहवाँ पुण्य न पापे हौ।।
जत निर्गुन तत सरगुन केवल। व्यापक तुम पर तापे हौ।।

रमिता राम तूँ अन्तर जामी। सोहं अजपा जापे हौ।।
ए द्वै ब्रम्ह निरन्तर बासी। प्रगट रूप निरापे हौ।।
चहुँ युग कृत्य कृत्य किया तुम। जेहि सूकर सिर थापे हौ।।
'भीखा' शिशु अवलम्ब राबरो। तुमहिं मया मम खापे हौ।।

मन बसि लेहू अगम अटारी।
नव नारिन को द्वार निरोधो, सहज सुषमना झारी।
अजब अवाज नगारा बाजै, गगन गरज धुनि भारी।।
जहाँ बरै बाती दिवस नहिं सती, अलख पुर्ष मठ धारी।
घर नीको मन कहल न मानै, तब झ्यिे हनो है कटारी।। 296

मन तुम भज लेहू आतम रामैं।
यह माया विस्तार बड़ो है, जग परिपंच हरामै।
सुत कलत्र धन विषय सुखद दुख, अन्त मया को कामैं।।
दिन-दिन धरि पल समय जातु है, तन काँचो सुठि खामैं।
हाड़ माँसु नस रुधिर को बेठन, रूप रँगीलो चामै।।
ताको वेद वेदान्त प्रसंसत, घट-घट केवल नामै।
सत्गुरु कृपा गयो कोउ तहँवाँ, जहवाँ छाहँ न घामैं।।
जहँ जैसो तहँ तैसोई साहेब, लाल गोर कहुँ श्यामैं।
अबलो कहु हरि रूप बैठ कै, शुन्य निरन्तर धामै।।
व्यापक ब्रह्म चहूँ जुग पूरन, है सब में सब तामैं।
जोइ आगे पीछे अर्ध उर्ध, जोइ दहिने सोइ बामै।।
"भीखा" भजन को दाम बनो है, इह इद मइ है दामैं।। 297

दृष्ट ते आदृष्ट देखो सुरति निरति बसाव।
आतमा निर्धार निर्भो बानि अनभौ गाव।।
अचल स्थिर ब्रह्म सेवो भाव चित अरुझाव।
'भीखा' फेरि न कबहु पैहौ बहुरि ऐसो दाव।।322।।

जौ पै कोऊ राम नाम चित धरै।
तन मन धन नेवछावरि वारो, सहज सुफल फल फरै।।
गुरु प्रताप साधु की सँगति, योग युक्ति उर भरै।
इंगला पिंगला सुषमन सोधै, ज्ञान अग्नि उदगरै।।
चन्द सूर्य्य यक ग्रह करि, उलटि उर्ध अनुसरै।
माद बिन्द का जूह गगन में, मन माया तब मरै।।
आठ पहर नौबति धुनि बाजै, नेकु पलक नहिं टरै।
'भीखा' शब्द यह सुनत अबुध बुध, हर्ब को अमरख करै।।323।।

शब्द

येरी मन चाहत दृष्ट निहारी।
सुरति निरति अन्तर लय लाओ, निज स्वरूप अनुहारी।।
जोग युक्ति करि परिषन लागो, पूरन ब्रह्म बिचारी।
पुलकि-पुलकि आपा महँ चीन्हत, देखत छबि उँजियारी।।
सुषमन के घर आसन मारो, इंगला पिंगला सुढारी।
सुन्य निरन्तर साहेब आपे, सब घट बसते न्यारी।।
प्रेम प्रीति तन मन धरि अरपो, प्रभु जी की बलिहारी।
गुरु गुलाल जी के चरण कमल रज माथ भिखारी।।343।।

शब्द

जढ़ आजु आजु कहत कालि काली।
सुमिरन नाहिं कर पापी कपटी जंजाली।।
उतरत पर चढ़त नाहीं कर्मना के काँधे।
यतनो पर पँवर चाहे पाय बाँधे।।

भव जल दरियाव देखो महा अगम गहिरा।
राम नाम नउ का सुनि चढ़त नाहिं नवहिरा।।
बार बार देत सिषा मूद न मन मानै।
नाम देव तव तरै जब राम नाम जानै।।344।।

गुरु राम नाम कैसे जानो मन करत विषै कुटिलाई।
काम क्रोध मद लोभ मोह ते, सँवस कबहुँ नहिं पाई।।
पाप पुन्य युग वृक्ष लगो है, जन्म मरन फल भाई।
हार पात के फिरत फेर में, चेतन्य नाम गँवाई।।
जग परिपंच को जाल पसारो, चारिउ खान बझाई।
याही फन्द से सोई बचै, जेहि आपु से लेहि छोड़ाई।।
भारत होय जन बिनय करत हैं, सरन-सरन गोहराई।
कहै 'भीखा' यह कुफुर टूटै तब, जब साहेब करहिं सहाई।। 345।।

हमरो मनुआँ बड़ा अनारी। साहेब सों नहिं करत चिन्हारी।।
प्राणायाम न युक्ति बिचारी। अजपा जाप न लायो तारी।।
भ्रमते अजर न खोल केवारी। निज स्वरूप नहिं देखु मुरारी।।
पान अपान मिलन सँवारी। गगन गवन नहिं शब्द उचारी।।
सुन्य समाधि न चेत बिसारी। यह लालसा उर बड़ी हमारी।।
सर्ब दान गुरु दाता भारी। जाचक शिष्य सो लेत 'भिखारी'।। 357

मन छोड़हु सकल उदासी।
राम को नाम तीर्थ घटही में, दिल द्वारिका काया काशी।।
करते जग अपनो कर बांधो, त्रिगुन डोर की फाँसी।
भिन-भिन निज गुरु बरतावत, काहु कै कछु न सिरासी।।
तेहिते कनक कामिनी अरुझो, हरि सो सदा निरासी।
अनतै नयन श्रवन अनतै है, रसना अनतै साँसी।।
ब्रह्म सरूप अनूप भूप वर, शोभा शिव कै रासी।
केवल आतम राम बिराजत, परमातम अविनासी।।
अपरम्पार अखण्डित पूरन, अकथ कथो नहिं जासी।
सो प्रभाव प्रगट सत संगति, योग युक्ति अभ्यासी।।
सत्गुरु ज्ञानवान जेहि मारो लगो मर्म अरु गाँसी।
घायल घुरमित उलटि गयो त्यों चेतनि उदित प्रकासी।।
जग समुद्र नउका नर देही कन हरि गुरु बिश्वासी।
अमृत हरि को नाम संजीवन, चाखत छकि न अघासी।।
वेद वेदान्त सन्त मुख भाषहि, धन्य जो नाम उपासी।
मन क्रम बचन जो हरि रँग राते, तजो जक्त उपहांसी।।
जो एकै व्यापक आतम तौ, को ठाकुर को दासी।
ब्रह्म स्वरूप है साहेब सेवक, दिब्य दृष्ट है खासी।।
अलख राम को लखय सोई, जो, भर्म भीत को धासी।
साई योग योगेश्वर ध्यानी, जाकी रहन अकासी।।
हरि सों प्रीति निरन्तर दिन-दिन, छूटी भूख प्यासी।

पहाड़ा

एका एक मिलें गुर देवा, शिष्य सोई जो लावै सेवा।
तन मन वारि चरन चित धारा, एक दहाई दसयें द्वारा।।
दुआ दोय दोइत जो तजई, योग युक्ति करि आपा भजई।
सुरति बिचारि निरति पहँ गयऊ, दुई पर सोन्य बिसुगुना भयऊ।।
तीयाँ तृबिधि ताप मन मेटा, जबही जीव नरायन भेंटा।
मका मदीना घट में खोजा, तीन दहाई तीसो रोजा।।
चौथे चारि खानि हैं जेते, सब घट ब्रह्म बोलता तेते।
घटी कहूँ नहिं हाल हजूरा, चार दहाई चालिस पूरा।।
पँचयें पाँचों मुद्रा साधे, ससि अरु सूर अकासे बाँधे।
प्रानायाम पवन परगासा, सुन्य पाँच पर भए पचासा।।
छठयें चक्र कठिन मति आही, सो निबहै जेहि राम निबाही।
चढ़ै उर्ध मुख पवन की भाठी, छ दहाँ तेहि पर साठी।।
सतएँ सत्य अनाहद बाजा, तूर सुनत मनुआँ भयो राजा।
रैइयत अमल सहज बर जोरा, सात दहाई सत्तर चोरा।।
अठयें अष्ट कमल दल फूला, जोति रूप देखि जियरा भूला।
उदित भयो परकाशिक ज्ञाना, आठ दहाई अस्सी भाना।।
नवएँ नाम निरंजन सोई, सहज समाधि जाहि के होई।
सो जानै जो जावै तहवाँ, नव दहाई नब्बे जहवाँ।।
दसएँ दसो दिशा महँ मेला, 'भीखा' ब्रह्म निरन्तर खेला।
दसै दहाई अजपा जाप, बढ़ै सौ गुना गुर परताप।। 367।।

गुरु अगवा बर चरचा कीन्हाँ, दुलहिन शिष्य चरन चित दीन्हाँ।
सत संगति करि लगन धराई, सतगुरु ज्ञान बरात बनाई।।
योग युक्ति करि डाल चढ़ाई, राम सेवक सेवकनि पहिराई।
सुरति निरति गठिबन्धन जोरा, बाजत अनहद नाद अघोरा।।
माण्डो सुन्य शिखर पर भाँवरि, नाम प्रताप प्रकाश कँधावरि।
शिव स्वरूप दुलहा सुखदाई, सुकृत सेवकनि अवसर पाई।।
सेन्दुर उदित जाति उँजियारी, राम सेवक निज मसतक धारी।
जग परिपंच दियो नवछावर, जाचक मगन मिलो बर साँवर।।
जन 'भीखा' यह रहनि बिचारा, सत गुरु ब्याह कीन्ह टकसारा।।370

भादों भवन भयंकर। सून्य रइन उतपात।।
कहुँ कहुँ दमकै दामिनि। डरपत हौ गात।।
मास कुमार अवधि दिन। बर्खा बरखि सिराय।।
नयनन नींद न लागई। शिर धुनि धुनि पछताय।।
कातिक मास उदासी। सुरति चली परदेस।।
निरति मिलन केहि कारन। कबहूँ मिटहि कलेस।।
अगहन मास ध्यान धन। खेती करै किसान।।
नाम बीज लव लावई। बोवै लवै निदान।।
पूस मांस जे हेवाल है। चांड़ जाड़ नियरान।।
ओढ़न जब हरि मिलन का। आनद प्रेम अघान।।
माघ जे मास बसन्त ऋतु। फुलेउ कया बन झार।।
सगुन सँजोग बिबिध तन। मिलो है देव मुरार।।
फागुन मांस राग रंग। गुरु कै बचन स्थूल।।
नाद बिन्दु एक सम भयो। जीव सीव कर मूल।।
चैत मास तन निर्मल। द्रुम नव पल्लव लेत।।
रूह अरून मृदु सकल है, निज आतम छबि देत।।
बैसाख मास फल पूरन। योग युक्ति प्रानायाम।।
दृष्ट उलटि कै लगि रहै। निशु दिन आठो याम।।
जे ग्रीषिम तप भजन को। केवल ब्रह्म बिचार।।
कहै 'भीखा' ओहि धन्य है। जेकर नाम अधार।।

देखो मस्त महा गज गामिन। नर के सो न कियो इन तामिन।।
यह जढ़ जीव रसाल के बौरे। पवन तड़प जल दामिन।
कोउ बाँचे हरि नाम ओट देई। फल बासर भयो जामिन।।
प्राणयाम पक्क अबिचल हैं। काँच कर्म भयो खामिन।
जन 'भीखा' बलि-बलि सतूगुरु की। रति लागो बर कामिन।।

धन्य कबहुँ यह सून व सपने। की मन थाकि बैठहि घर अपने।।
अब बियहन के निकट न जइहों। निश्चै राम नाम लै लइहों।।
बाको मोहिं बिश्वास न ऐसे। हाथी हाथ में होवै कैसे।।
मन उन मेख चेत जब आवै। तब शुधि बुद्धि मोर भुलि जावै।।

हिण्डोला झूलहिं आतम नारि।
काम क्रोध जे कर्म कै पटरी। मन पवन डोरी लाय।।
चन्द सूर्य तहाँ खम्भा गड़िया। गंगा यमुना बँधाय।।
ब्रह्म पीढ़िया हिण्डोला चढ़ि कै। गगन में गर्जि सुनाय।।
युग युग अविचल नाम तिहारो। सुखसागर सन्तन को प्यारो।।
नाम तिहारो सब की ओट। नाम ते उबरे जम्भ की चोट।।
नाम तिहारे अधम उधारे। नाम तिहारे कालहिं ठारे।।

राम सों करि प्रीति हे। मन राम सों करु प्रीति।।
बूझि बिचार देखु जिय अपना। हरि बिनु कोउ हित नहिं इहवन।।
गुरुगुलालजी के चरन कमल रज। धरहु 'भीखा' उर चित इहथन।।

रे मन की गति हैहैं मेरी रे, समुझत बूझत होत देरी रे।।
यह संसार आए गती, माया लगी छोड़ो सती।
राम नाम नाहीं जानों गति न निबेरी रे।।
भजन करारे आए, कबहीं न साँचे गाए।
करम कुटिल करै मति गई तेरी रे।।
'भीखा' चरन लीजै, मन माया दूरि कीजै।
बार बार है मांगी प्रीति लागै नेरी रे।।

चौपाई

नामै चाँद शूर दिन राती। नामै कृतम कै उतपाती।।
नाम सरोस्वति यमुना गंगा। नामै सात समुद्र तरंगा।।
नामै गहिर अगूढ़ अथाहा। असरन सरन के चरन निहारा।।
मूल गाइत्री औ ॐकार। ताम तुरिया सम सुछमसार।।
पलक दरियाव परो हरिनाम। नामै ठाकुर सालिग्राम।।
शिव ब्रह्मा मुनि सब के नायक। बिठल नाथ साहेब सुखदायक।।
नामै पानी नामै पवना। र रंकार मंगल सुख खना।।
नामै धर्ती नाम अकास। नामै पावक तेज प्रकास।।
नाम युक्ति गुर नामै दाता। नामै अज विज्ञान विधाता।।
नाम सुमेर महा गम्भीर। नामै पारस मलयागीर।।
नाम अशोक शोक सों रहिता। कलपद्रुम नामै को कहिता।।
नामै रिद्धि सिद्धि को करता। नामै कामधेनु होई भरता।।
नाम अर्ध उर्ध होई आए। चारि खान महँ नाम समाए।।
धन्य राज धननजै सोई। नामहिं अगन गनै कोई।।
नामै प्रानायाम कहाए। सोहं-सोहं नामै गाए।।
नामै सुन्दर नूर जहूर। नामै लामें निकट हजूर।।
नाम अनाद एक को एक। 'भीखा' शब्द सरूप अनेक।। 499।।

साख़ी

जाप जपै जो प्रीति सों, बहु बिध रुचि उपजाय।
साँझ समय अरु प्रात लगी, तत्त्व पदारथ पाय।।

राम को नाम अनन्त है, अन्त न पावै कोय।
भीखा जसु लघु बुद्धि है, नाम तवन सुख होय।।

भीखा भया सम्प्रदा शब्द धर, यक द्वार सुख संच।
एक आतम सब भेख महँ, दूजो जग पर पंच।।

'भीखा' भयो दिगाम्बर, तज के जक्त बलाय।
कस्त करैं निज रूप को, जहँ को तहाँ समाय।।

हे प्रभु जी तुम कीन्हों दाया। योग रहनि सब मोहिं बताया।।
पर कदु युक्ति समुझि नहिं आई। हे प्रभु जी यह कहिए बुझाई।।
जैसे हिर्स मिटै प्रभु मोरी। कहौ भेद मागों कर जोरी।।
हौं अबुद्धि अति मति कर हीना। मैं तुमरो किंकर बर दीना।।
तेहि ते हिर्स छोड़ावहु स्वामी। तुम उदार जन मन विश्रामी।।
योग अगम गम क्यों करि पाई। समुझत कहत करत कठिनाई।।
स्वाँस अपर्बल थाँभि न जाई। केहि बिधि योग पुरुष को पाई।।
महा असाधि साधि क्यों होवै। निर्गुन ब्रह्म कौनि बिधि जोवै।।
'भीखा' के तुम चरण अधारा। हे सतगुरु जी कहउ बिचारा।।

साख़ी

मनसा बाचा कर्मना, एक तुम्हारी आस।
अब करि कृपा बताइए, होय युक्ति अभ्यास।।

अंग सहित समुझाइए, तब जिय होय अनन्द।
जक्त गुरु अस पाय के, कैसे रहौं मति मन्द।।

श्रीगुरु दया

चौपाई

योग अगम गम गरु सों मेला। समुझत कहत सो करत सुहेला।।
स्वाँस असाध्य साधि यों आवै। चन्द्र राखि के सूर चढ़ावै।।
तब लग थम्है स्वाँस जब फूलै। फूल देखि मन भँवरा भूलै।।
अन भौ फूल अनाहद बाजा। ध्वनि सुनि मगन जीव होय राजा।।
फूल घोंटि जब फलहिं समावै। यहि बिधि योग पुरुष को पावै।।
योगी यहि बिधि युक्ति बिचारै। फल प्रापति ध्वनि नाद उचारै।।
'भीखा' यहि बिधि हिर्स नसाई। मन उन मेष छूटि तब जाई।।

साख़ी

ध्यावै यहि विधि ब्रह्म को, निर्गुन मति निरधार।
भीखा मानहु सत्य करि, जिय करि तजो खभार।।

देखहु आपै आप में, ब्रह्मरूप समुदाय।
दिव्य दृष्टि करि देखिए, अंग अंग समुझाय।।

चौपाई

चन्द्र सूर्य को मत कह दीजै। घर कौने पर सुमिरन कीजै।।
चन्द्र अरु सूर्य कहत हैं काको। सहित युक्ति समझात्य ताको।।
रैन दिवस जे आवहिं जाहीं। ऊगै चन्द्र सूर्य की नाही।।
हे सतगुर मैं निपट अनारी। योग कठिन सुनि डरत भिखारी।।

साख़ी

कहौ कृपा करि भेद प्रभु, चन्द्र सूर्य को भाव।
जेहि प्रकार साधक लहै, गहै तुम्हारो पाँव।।

जेहि बिधि मन को बोध है, तौन युक्ति ठहराई।
केवल तुम्हरे चरण को, 'भीखा' आस लगाई।।

चौपाई

सुनिए चन्द्र सूर्य को भेवा। आसन नाक पुरे पर सेवा।।
चन्द्र सूर्य ब्रह्माण्ड के बासी। रैन दिवस वहि करत प्रकासी।।
नाक के पूरे दोउ अस्थूला। वाम चन्द्र सुर दाहिन मूला।।
चन्द्र राखि के सूर्य चढ़ावै। इंगला पिंगला सुखमन जावै।।
यक थाभै करि कोशिश लाई। सुन्य भए पर जिए अकुलाई।।
मेंटे सुन्य भयो उँजियारा। बासर सूर्य लियो अवतारा।।
भयो प्रकाश जीव सुखदाई। अन्धकार डर सकल बहाई।।
सूर्य बिसैगै बासर मन्दा। निसि में आनि उग्यो तब चन्दा।।
'भीखा' वह मति मैं नहिं मानों। रैनि में सूर्य उगै तब जानो।।
उगै चन्द्रमा बासर माहीं। आगे योग युक्ति कछु नाहीं।।

साख़ी

चन्द्र सूर्य को खेल यह, बिरला जानै भेव।
'भीखा' राति दिवस तहँ, चन्द्र सूर्य नहिं केव।।

केवल ब्रह्म प्रकास है, आतम बोध बिचार।
'भीखा' जानहु मर्म यह, सोहं नाम हमार।।

शिष्य अर्ज

चौपाई

सोहं नाम बोलै सो कहाँ। कहिए भेव लहै जन तहाँ।।
गंगा यमुना कहाँ कहावै। धारा तिनको कहाँ बहावै।।
जहाँ सरस्वति संगम होई। तीनों भेद कहो प्रभु सोई।।
सोहं नाम कवनि बिध जानी। हे सतूगुरु कहिदेहु सुबानी।।
भिन्न-भिन्न स्थान बताओ। भीख़ा के मन निश्चय आओ।।
प्रान अपान को मत कहो। अर्ध उर्ध ठहराय।।
मध्य अर्थ जेहि बिधि बनै। हे प्रभु देहु बताय।।
त्राहि-त्राहि शरणागती। मन क्रम बचन बिचारि।।
तुम सम दाता है नहीं। सेवक नाम भिखारि।।

श्रीगुरु दया

चौपाई

सोहं नाम बोलता ओई। आपै आप दुजो नहिं कोई।।
ताकी बार पार कहुँ नाहीं। सो जानै जो सतूगुरु पाहीं।।
सुन्य अकास बोलता ओई। स्वासा अर्ध उर्ध सम होई।।
ताको भेद कोई कोई जानै। जो सतसँग गुरु पहिचानै।।
सोहं सुन्य निरन्तर एका। हरिदम सोहं-सोहं एका।।
गंग जमुन को धारा येही। चन्द्र अरु सूर्य बने घर जेही।।
अर्ध उर्ध निसुबासर बहई। मध्य सरोस्वति संगम लहई।।
इंगला पिंगला सुषमनि सोई। एकै पवन दूजो नहिं कोई।।

साख़ी

भीखा पान अपान मिलि, लागो सुन्य समाधि।
सकल कृपा को अन्त यह, समुझहु महा अगाधि।।

दूजो और उपाय नहिं, आपुहिं आपको ध्यान।
देखहु आपा आप में, सो यहि बिधि गुरुज्ञान।।

चौपाई

हे प्रभुजी मैं तुम्हारी सरना। मता अगूढ़ समुझ नहिं परना।।
पान अपान कहाँ ते आए। कौन बिधि घट आनि समाए।।
ताकर आदि अन्त कहि दीजै। मोहिं पापी को आपन कीजै।।

पान अपान मता दुइ भयऊ। एकै पवन बिलगि कत गयऊ।।
यह सन्देह प्रभु मोरि छोड़ावहु। पान अपान को भेद बतावहु।।

साख़ी

पान अपान सो कवन है, जीव ब्रह्म को आहि।
चेतनि आतं नाम को, कहौ कृपा करि ताहि।।

जोति कहो सो काहि को, परकाशिक सो काहि।
पर्म जोति सो कौन है, को परकाशिक आहि।।

चौपाई

'भीखा' प्रेम नाम रस पागो। समझो युक्ति भर्म सब त्यागो।।
पुर्ष प्रमातम आदि है ओई। दुबिधा भाव अकारन कोई।।
इच्छा अविगति बोलत भयऊ। शब्द पवन तवने छण भयऊ।।
शब्द सो ब्रह्म पवन मन माया। तामे तिरगुन खेल बनाया।।
तिरगुन शब्द ब्रह्म अरु पवना। नाम अकार रचे सुर तौना।।
चित चैतन्य सकल घट माहीं। ताको आदि अन्त कछु नाहीं।।
जब घट रचना सृष्टि बनाई। पान अपान तबे बिलगाई।।
जीव ब्रह्म बिच भर्म समाई। ताते जीव अपान कहाई।।
कर्म भर्म के बसि विज परेऊ। माया मोह ग्रसित तन धरेऊ।।
पान सो आतमराम कहावै। जीव अपान मन माया लावै।।
चेतन ब्रह्म अप सो पाना। जाको धरै योगेश्वर ध्याना।।
सोहं पान एक करि मानो। या महँ मति दूजो नहिं जानो।।
अपने कर्म बस जीव कहावै। माया बसि परि भोग भोगावै।।
मुक्ष जबहि सत्संगति करिए। सत्‌गुरु शब्द हिए महँ धरिए।।
मूल अपान जब उलटि चलावै। अर्ध उर्ध कै सुधि तब पावै।।
बंक नाल चढ़ि मारग सोधै। पान अपान मिलन तब बोधै।।
मेरुदण्ड होय पछिम ध्यारै। पैठि सुषमना रूप निहार।।
'भीखा' जानहु भेद बिचारा। सोई आतम है रूप हमारा।।

साखी

पान अपान को मिलन उहाँ, जीव ब्रह्म को भाव।
भीखा अन्तर कछु नहीं, आपै सोहं पाव।।

जोति है ज्वाला जीव की, फैलि रही सब अँग।
चेतन अंश प्रकाश है, मन पवना के सँग।।

'भीखा' खसलति कौन तुम्हारी। चढ़ि के स्वर्ग पताल निहारी।।
उत्तम छोड़ि के मध्यम सेवै। तुम्हारो दोष कहाँ लगि देवै।।
शुद्ध स्वरूप ब्रह्म नहिं देखौ। भर्म जाल को साधन लेखौ।।
योग मति सुगम सहज नहिं जानौ। मुद्रा गति अरु झावनि मानौ।।
चढ़ि के नाव पार जब गयो। फिर का नाव मूण्ड पर लयो।।
पाँचो मुद्रा का सुन भेवा। जहाँ ते आनि बनायो देवा।।
कर्ता सृष्टि करन जब लागो। तब माटी बिनु काम न जागो।।
इच्छा माटी तेहि छन आई। मूल पुहुमि मुद्रा समुझाई।।
माटी झूरि पिण्ड नहिं बनई। कियो अकर्षण जल तेहि नभई।।
जल अधिकार मांटि मिहि लाई। दूजे अपि मुद्रा कहवाई।।
माँटी ढील पिण्ड नहिं बनै। हरि को मौज तेज तब गनै।।
तेज प्रवेश पिण्ड बनि आओ। तीजे मुद्रा तेज कहाओ।।
अग्नि प्रज्वलित होय नहिं ऐसे। मन मुझि पवन उठो तब तैसे।।

भयो प्रकाश पवन सँग लहियो। चौथे मुद्रा सो कहियो।।
वायु अपर्बल थाम्हि न जाई। मौजै मौज अकाश बनाई।।
शब्द पवन तहँ मिश्रत भयऊ। धारन तिन जहि आगे लयऊ।।

पाँचौ बसै अकाशै माही। भिन्न-भिन्न स्थान के माही।।
'भीखा' मुद्रा यहि बिधि भयऊ। पचये अकाश मुद्रा सो लयऊ।।
मुद्रा भिन्न बतायो तोहीं। जो निश्चै करि जाँच्यो मोहीं।।
मूल पृथ्वी को यह स्थाना। मल अरु माँस हाड़ पर्माना।।
चाम और नस रोआँ कहिए। दन्त जीभ सब पृथ्वी लहिए।।
येती जागह पृथ्वी जानो। अन्त सो रहनि अकासहिं मानो।।
अपु कोबास सुनहु मन लाई। पोंटा थूक मुत्र समुदाई।।
बीज पसीना जल कर जानो। अपु स्थान वाहि पर मानो।।
तेज प्रताप सकल स्थाना। मैं अरु मोर तोर मति ठाना।।
बड़वा नल सम तेज कहावै। तामे तुरिया तेज समावै।।
रक्त पीत तम तेज प्रतापा। अलंकार तहँ आपै आपा।।
ये तो बास तेज कहि दिया। आगे सुनो पवन घर किया।।
पवन अकाश चारों संग सुनो। शून्य पवन बसै सम घट गुनो।।
घट में है पुनि घट में नाहीं। ऐसहिं नाम बसै मन माहीं।।
मुख्य नासिका पवन को बासा। पान अपान मूल परगासा।।
केवल सोहं पवन कहावै। ताको भेद कोई कोई पावै।।
तीन लोक लहि पवन को बासा। चौथे सन्त करहि कबिसासा।।
यक अकाश शुन्य तन माही। दूसर कहै सो गुर कर नाहीं।।

साख़ी

जब रौली अमरौली झोली, जब रौली मनमान।
सहजौली की रहन जानिए, पचयें अकास समान।।

पाँचों मुद्रा पाँचों नाड़ी, तीन धारना धीर।
'भीखा' याको सिध करै, सो अलमस्त फ़क़ीर।।

बहु नाड़ी बहु कमल है, बहुत युक्ति अरुझाय।
केवल आपा आपु लखु, तजौ सकल मुरखाय।।

चौपाई

हे सतुगुरु मैं बड़ अज्ञाना। अर्थ अभ्यास करेउ मनमाना।।
केहि बिधि ब्रह्म कियो घट बासा। जेहि ते माया कीन्ह ग्रासा।।
जहाँ को ब्रह्म तहाँ किम गयो। हे सतुगुरु मोहि अचरज भयो।।
मेरुदण्ड कै राह बताओ। बँक नाल कैसे चढ़ि जाओ।।
पश्चिम राह कवन बिध खुलै। केहि बिध जीव पवन लै हुलै।।
कौनी भाँति ते तृकुटी लेखै। आतम राम कौनि बिधि देखै।।

साख़ी

बंक नाल की धारना, मेरुदण्ड कौ द्वार।
हे सतुगुरु कृपा करो, केहि बिधि खुलै केवार।।
पश्चिम युक्ति संजोग करि, कृपा देखावहु सोय।
'भीखा' की कछु बसि नहीं, तुम से होय सो होय।।

चौपाई

भीखा सुनो धारना येही। समुझहु गुनहु मनहिं मन तेही।।
अकास कै पवन पतालहिं जाई। उलटहिं पवन अर्ध को धाई।।
धारन बँक नाल को येही। मेरुदण्ड चढ़ि गौनहु तेही।।
धीरज धरि गुरु ज्ञान सम्हारी। पवन गम्य नहिं तहाँ भिखारी।।
मरि पचिरहु गुरु ज्ञान बिचारी। कृपा करहिं तब देहिं उघारि।।
भीखा उहाँ जाइ जिव हारी। तबहिं तत्तक्षण खुलै किवाड़ी।।
परकाशक परमातम धारी। तृकुटी दर्शन देखु भिखारी।।
राम धारना यह मन मानो। आगे कहों सोई पहिचानो।।

साख़ी

जोई पवन अकास हैं, सोई पताल बग मेलु।
बँक नाल सोई पवन है, मेरुदण्ड सोई खेलु।।

पवन शब्द जिव-दुई नहीं, पश्चिम लहरि समाय।
पवन तृकुटी बस्य भा, जीव परम पद पाय।।

शब्द ब्रह्म अरु जीव मिल, पवन कहावै सोय।
भीखा अलख अलेख यह, निज दूसर नहिं कोय।।

अगह वस्तु की गह नहीं, जानि कौनि बिध जाति।
अजपा के नहिं जाप है, लखब जपब केहि भाँति।।

चौपाई

'भीखा अलख जान निज आपे। दूजे भर्म तजो जिय तापें।।
लखब सोई जहँ दूजा होई। जहाँ एक तहँ लखब न कोई।।
ताते अलख लखै नहिं कोई। आपुहिं लखब सो अलख समोई।।
जो कछु इन नयनन लखि जाई। सो सब माया लखब कहाई।।
दिब्य दृष्ट करि उलटि समाई। लखै अलेख लखै तिन्ह पाई।।
भीखा अलख लखै जनि ऐसे। आगे सुनो कहौं मैं जैसे।।
अजपा जाप कहै सब कोई। अजपै जपै सो अजपै होई।।
अजपा जाप गुरु से पावै। ब्रह्म स्वरूप न दूसर भावै।।
निज आतम कोई और न दूजा। अजपा जाप आतमा पूजा।।

सोरठा

सब के अजपा जाप, अजप जपै सोई जाप है।
सत्गुरु के परताप, अलख लखन में आवई।।

दृष्टि उलटि लागो रहै, सोहं ठाकुर भूप।
अजपा जाप सो जानिए, दृष्ट जो आवै रूप।।

सो स्वरूप सब नाशवति, आपु-आपु में पाव।
दिब्य दृष्टि सो मानिए, अजपा जप सो भाव।।

आतम देव सों देव नहिं, दिव्य दृष्टि कै टेक।
'भीखा' सत्गुरु सो मिलै, ब्रह्महिं जानै एक।।

चौपाई

अनहद शब्द समुद्र कहावै। ताको पार वार नहिं पावै।।
महा अगम जल गहिर गम्भीरा। सत्गुरु कृपा कोई लहै फ़क़ीरा।।
कर्म सँजोग बुन्द अलगाना। तब अनहद को मर्म न जाना।।
जब पूरा गुर भेद लखावै। तब सो बुन्द समुद्र समावै।।
बुन्द जीव तब का कहँ कहिए। आपै आपुहिं अनहद लहिए।।
सुरति निरति जब मेला भयऊ। सोई बुन्द अनाहद पयऊ।।
सोई अकथ कहावै नामा। दोइत रहित मन पूरन कामा।।
कथब कहावै माया धामा। मुख रसना सो भावै नामा।।
निज मुख जिभ्या सुमिरन करई। 'भीखा' अकथ नाम सो धरई।।

घाटो शुद्ध ब्रह्म ठहराई हो, घट-घट बोलता कहाई हो।
मन मति सखी सुधि पाई हो, पूजन को जिय अकुलाई हो।।
काया बन फूलो समुझाई हो, गुरु गम तिरबेनी लेन जाई हो।
भावै फलै फूल लेई आई हो, प्रेम प्रीति नूर झरिलाई हो।।
'भीखा' एकै त्रिभुवन राई हो, दूसर नहीं सोहाई हो।।

घट ही में घाटो धरो क्यों न हे सखि, काहे कोहरा घर जायु।
फल लोढ़े चलली मनमति सखी हो, परलों फुलवरिया में भुलाय।।
चहुँ दिश हेरि हेरि रोवै सखि हो, कौने पन्थ अमर घर जाय।
बीचहिं मिलु गुर कनहरिया हो, उन दीन्हों सुपथ चढ़ाय।।
इंगल पिंगल भजु सखिया हो, लेहु देखि घर दसयें द्वार।
सन कै भर्म तजि मिलि लेहु सखिया हो, भल भैलीं घर निश्चै पाय।।

मोरे घाटो कै देव बलवान हो, ताके सरन नहीं कोउ आन हो।
गुरु औ आदि देव दहिनाए, दियो आपु समान बनाय हो।।
महाबलि देव भगवान हो, शिव अज बिश्नु धरहिं तेहिं ध्यान हो।
मच्छ कच्छ बाराह कियो साज हो, चाहे जोई कियो सोई काज हो।।
नरसिंह रूप बिकट तन धारी हो, जन हित मास्यो दुष्ट प्रचारी हो।
बावन देखाय बड़ बपु कीन्हा हो, बलि छलि राज रसातब दीन्हा हो।।
परसराम हत्यो छत्रि कै दाप हो, कई बेर तपे उदै प्रताप हो।
रामचन्द्र देव देव हित लाय हो, भिरो लंकपति रावन कुलहिं नसाव हो।।
कृष्ण नाम भगवन्त दर्शाय हो, कृड़ा करि मारेउ बिमुख निकाय हो।
बउधहु भ्रम पाखण्ड चलाव हो, सत मति राखेउ आपु छपाय हो।।
कलि के अन्त कलंकी तनु धारी, हनहैं सब मलिक्ष झारि पछारी हो।
'भीखा' याही भाँति देव राया हो, जब से जन्म कर्म श्रुति गाया हो।।

कोउ लखि रूप शब्द सुनि आय।
अविगति रूह अजायब बानी, सो छबि का कहि जाय।।
यह तो शब्द गगन घहरानो, दामिन चमक समाय।
वह तो नाद अनाहद निशु दिन, परख कै अलख सोहाय।।
यह तो बादल उठत चहूँदिश, दिवसहिं सूर्य छपाय।
वह तौ शुन्य निरन्तर धुधुकत, निज आतम दरसाय।।
यह तो बुन्द झरत है झल-झल, गरजि-गरजि झिरलाय।
वह तो नूर जहूर बदन पर, हरिदम तूर बजाय।।
यह तो चारि मास को पाहुन, तबहुँ नाहिं थिराय।
यह तो अचल अमर कीजै जै अनन्त लोक यश गाय।।
सत्गुरु कृपा भयो बर पायो, श्रवन दृष्टि सुखदाय।
'भीखा' सोहै जन संघाती, आवहिं जाहिं न भाय।।

पौंढ़िव अगम हिण्डोलवा हो, सत्य शब्द निरधार।
झूलत झूलत सुख उपजै हो, केवल ब्रह्म विचार।।
अबकी बार यह अवसर हो, मिलै न बारंबार।
फिर पीछे पछतैहौ हो, होत छूटै विकरार।।
योग युक्ति हिंडोलवा हो, ताहि मिलै करतार।
आवागवन निवारहु हो, फिर न होय औतार।।
साधु संगति को मेला हो, झूलै नाम अधार।।

योग युक्ति कै हिण्डोलवा हो, सत्गुरु सहज लखाव।
चाँद राखि सूर चड़ावल हो, पव के डोरि धई पाव।।
अर्ध उर्ध मुख धावल हो, पुलकि-पुलकि छबि भाव।
गगन मण्डल गुन गावल हो, सुरति निरति समाव।।
यहि बिधि 'भीखा' मन लावल हो, आतम रूप दर्शाव।।

सत्गुरु शब्द हिण्डोलवा हो, सुनि मन अनुराग।
झुलत गुनत रुचि भावल हो, जिय चकृत उठ जाग।।
कर्म भर्म सब त्यागल हो, कपट कुचालि तन भाग।
झुलत चेतन्य चित लागल हो, अनहद बानि धुन रात।।
'भीखा' याही मति मातल हो, पास दाव तेहि पाव।।

डारि पात फल पेड़ में हो, देख्यों सकल अकार।
'भीखा' सति संगति भयो हो, शुद्ध सरूप हमार।।

झलकै सखि अँगिया खूब बनी।
आठ मास नव सीयत लागे, पहिरन वाली धनि पाँच जनी।
जोलहा एक शब्द की माण्ड़ी, बिर्रै सोहागिन माल धनी।।
चहुँमुख तार लका दक लागु जगमग बूटा नागफनी।
'भीखा' कै ब्रह्माण्ड फूटि गए, लहकै निति शोभाशीश मनी।।

पाप अरु पुन्य नर झूलत हिण्डोलना,
ऊँच अरु नीच सब देंह धारी।
पाँच अरु तीन पचीस के बसि परो,
राम को नाम सहजे बिसारी।।
महा कवलेश दुख वार अरु पार नहिं,
मारि यमदूत देत त्रास भारी।
मन तोहि धिकार धिकार धृग तोहिं,
बिना हरिनाम जीवता 'भिखारी'।।
नर करो बिचार निरधार अवराधिए,

भयो आचेत नर चित्त चिन्ता लगो,
काम अरु क्रोध मद लोभ राते।
सकल परिपंच में खूब फ़ाज़िल हुआ,
मया मद चाखि मन मगन माते।।
बढ़ो दिमाग़ मगरूर रहै गज चढ़ो,
कहो नहिं फ़ौज तुम मारि जाते।
'भीखा' यह खाब को लहरि जग जानिए,
जागि करि देखु सब झूठ नाते।।

झूठ में साँच यक बोलता ब्रह्म है,
ताहि को भेद सतसंग पावै।
धन्य सो भाग्य जो सरन सेवा टहल,
निशु दिन ना प्रीति लवलीन लावै।।
बचन ले युक्ति सों सिद्धि आसन करै,
पवन संग गवन करि गगन जावै।
प्रगट प्रभाव गुर गाम्य परचै है,
'भीखा' अनहद पहिले सुनावै।।

दूजे यह अमल दस्तूर दिन-दिन बढ़ो,
घटो अँधियार उँजियार भाया।
अर्ध से उर्ध भरि जाय अजपा जपो,
चाँद अरू सूर मिलि त्रिकुटि आया।।
झर तहाँ नूर ज़हूर आसमान लों,
रूह आफ़ताब गुरु कीन्ह दाया।
'भीखा' यह सत्य सो ध्यान पखान है,
शुन्य धुनि जोति परकाश छाया।।

शब्द परकाश के सुनत अरु देखतहिं,
छुटि गई विषै बधि बास काँची।
सुरति गयो निरति घर रूप आयो दृष्ट पर,

आदि अन्त मध्य एक नाद बिन्दु सम कै टेक,
सब घट शुद्ध ब्रह्म देखत अकाश है।
काहे को भर्म करै जन्मि जन्मि के मरै,
भजत नाहिं हठि करिके जौ लों तन साँस है।।
निज सुख यही जानो दोबिधा नहिं भाव मानो,
अलख अलेख देखो आपुही में बाद है।
चित्त ज्यों चकोर लेवै चन्द्रमा को दृष्ट देवै,
आतमा प्रकाशी ज्ञान 'भीखा' निजु पास है।।115।।

ज्ञान उनमान करि चीन्ह ले अमान धरि,
गुर परताप खुलो भर्म को कपाट है।
चाँद सूर एक सम सुरति मिलाय दम,
इंगल पिंगल रँग करि सुषमन माठ है।
पूरब पवन जोय पश्चिम की राह होय,
गंग अरु यमुन संगम त्रिकुटी की घाट है।
पान औ अपान आसमान ही में थीर होवै,
'भीखा' शब्द ब्रह्म को अकाश शुन्य हाट है।।116।।

भूलो हाट ब्रह्म द्वार काम क्रोध अहंकार,
रहत अचेत नर मन मया पागो है।
अलख अलेख रूप आतमा है भेख धरे,
कस न पुलकि जीव ताही पन्थ ही में लागो है।।
अकथ अगाधि ओय अनभव फल होय जोय,
निशही में भोर मानो सोय उठि जागो है।

20:03
Shruti Sugama Bhadreshwa...

तीसरे थनका दूध समस्त मनुष्य पीते हैं, स्वधाकार चौथे थनका दूध समस्त पितर पीते हैं। इन वेदवाणी कामधेनु गौमाताका वृषभ प्राण है, मन वछडा है। अर्थात् मन लगाकर वेद पढना चाहिये।

७७. **समत्वं योग उच्यते !**

प्राण - अपानका, मन - पवनका, इड़ा-पिङ्गलाका, चन्द्र - सूर्यका, शिव - जीवका, अणु - महत्का, छोटे-वडेका, गङ्गा-यमुना आदिका समत्व भी योग है।

७८. **योगः कर्मसु कौशलम् !**

संसारके समस्त कर्मोंमें कौशल प्राप्त करना भी याग है।

७९. **योगस्थः कुरु कर्माणि !**

योगस्थ होकर समग्र सत्कर्म करो।

८०. **धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, समवेता युयुत्सवः।**
मामकाः पाण्डवाश्चैव, किमकुर्वत सञ्जय ॥

धर्मके क्षेत्र राजा कुरुके क्षेत्रमें जुटे हुये कौरव पाण्डवोंने क्या किया? हे सञ्जय! सारा वृत्त मुझे वताओ।

અદેખો નર તે થાય અંધો, કહ્યું કર્મવિપાકે રે;
મહા દુઃખ માણે મર્મ ન જાણે, હોક બોલે નવ થાકે—સુણો૦
હરિભજનમાં આથો ન આવે, પરનિંદામાં પૂરો રે;
પોતાનો અવગુણ તે નવ પેખે, સ્વારથમાંહી શૂરો—સુણો૦
ચોરી ચાડી કરતાં ચૂગલી, લેશ લાજ નવ લાવે રે;
કીરતનમાંહી કર્મકથા કરે, અણતેડાવ્યો આવે.—સુણો૦
મોત ભમે છે માથા ઉપર, જૂઠા જન નવ જાણે રે;
કહે ગણપત ગમ નહીં ગોવિંદની, તોય મૂરખ મત તાણે—સુણો૦

પદ ૧૦૧

(હરિભજન થકી, છોટા હોય તે સૌથી મોટા થાય—એ રાગ)

કાયામાં કોણ બોલે ? તેને બૂઝે પામર પ્રાણી.... (ટેક)
તારું તુજ તપાસ, અંતરમાં આતમને લે ગત જાણી—કાયામાં૦
એનું ઠેકાણું કોણ ઠાર છે? એ નપુંસક કે નાર છે?
એ સાકાર કે નિરાકાર છે? —કાયામાં૦
એ નજીક છે કે દૂર છે? એ અનુભવી કે ભૂર છે?
એ કાયર છે કે શૂર છે? —કાયામાં૦
સોહં શબ્દ કયાંથી ઊઠે છે? તે કયાં જઈને ઊગો રહે છે?
એ તે ફરતો કે વાસો રહે છે? —કાયામાં૦
એનું સ્વરૂપ કેવું કહાવે છે? એ તનમાં કઈ પેર માને છે?
એને પંચ વિષય કેમ ભાવે છે? —કાયામાં૦
તમે તેનો તપાસ કરો ભારી, દોય હરિભક્તિના અધિ[illegible]
વદે ગણપત વા[illegible] વિચારી.

પદ ૧૨૫—રાગ ધનાશ્રી

[illegible] ચડી રે, ચેતન દડી રમન હાથ ચડી—એ રાગ)

[illegible] ની ને નવ જડી, પરીક્ષા પ્રભુ તણી નવ પડી. (ટે૦)
[illegible] અતિ મોંઘા, બાંધ ધર્મની ધડી;
[illegible] નવ જડ્યા, જરા આવીને અડી—પરીક્ષા૦
[illegible] જમાવી, ગર્ભમાં કાયા ઘડી;
[illegible] પટમાં, [illegible] ચડી—પરીક્ષા૦

નકી બોહોતેર હજાર નાડી, એક એકને અડી;
બહોતેર બેઠક પંદર બારી, માલેકે બાંધી મઢી—પરી
શૂન્ય શિખર ગઢ છે એક સારો, જ્યાંહાં નૂરની ઝડી;
ઝળહળ જોત હીરા—મણિ ઝગે, કોઈ ન આવે કડી—પરી
રાતદિવસ રટ રામ રૂદેમાં; ભજનભાવમાં ભડી;
ગણપત કહે એ ગુણ વિચારી, સ્મરણની લે છડી—પરી

પદ ૧૨૬

કોઈ પૂરાને ખબર પડી રે, મહામણિ ચેતન ચિત્તમાં ચડી.(
દ્વાદશ મુદ્રામાં જ મોટી, ખેચરી સૌમાં ખડી;
નીચેની નસ કાપી કરો દોહન, એ તરવેણીએ અડી રે—મ
ડાબી ઈંગળા, જમણી પિંગળા, મધ્યે સુષુમણા મડી;
ભર્યું ભ્રૂકુટીમાં ચંદ્રામૃત, પીએ અમર એ ઘડી રે—મ
છિદ્ર તળાવે છે એક સુંદર, જીભ પ્રવેશે પડી;
અમૃત પડી આવે એના પર, ચોટ બચાવી જાય ચડી રે—મ
ગાંધારી, ગવરી, હસ્તની, જિહ્વા, વળી સૌમાં એથી વડી;
અન્ન ઉદક નવ જોઈએ એને, ભેદ અમરમાં ભડી રે—મ
અણિમાદિક સિદ્ધિઓ આવે, છત ઝાઝી સાંપડી;
સ્મરણ ગણપત કર સુષુમણા, ધર્મની બાંધી ધડી રે—મ

પદ ૧૨૭

મન તને મનુષ્યાદેહ રૂડી મળી, પ્રભુની પ્રેમભક્તિ નવ પળી.(
ઘરધંધામાં ખાધાં ગોથાં, રહ્યો ગર્વમાં ગળી;
કીર્તન હરિનું કાંઈ નવ કીધું, માયા તુજને મળી—પ્રભુન

પદ ૧૫૪

હૃદિયે હિંમત ધરો મારા,
હરિજન હૃદિયે હિંમત ધરીએ હેજી.... (ટેક)
આયું તે તો જરૂર જવાનું, વિઠ્ઠલવરને વરીએ હે જી,
શિર સાટે સદ્દગુરુ મળે તો, પાછી પૂંઠ નવ કરીએ–હરિ૦

હરિ ભજવામાં હિંમત રાખો, દુરિજનથી નવ ડરીએ હે જી;
મહા પંથનો મારગ મેલી, અવર ઠામ નવ ઠરીએ–હરિ૦
સ્મરણ કરીએ સોહંરામનું, વેદવચન ઉચરીએ હે જી;
ભક્તિભાવથી ભવદુ:ખ ભાગે, ભવસાગરને તરીએ–હરિ૦
કામ, ક્રોધ ને મમતા માયા, એને નવ અનુસરીએ હે જી;
જાપ અજપા જુગતિએ જપીએ, ધ્યાન ધણીનું ધરીએ–હરિ૦
અમૃતરસ અખંડ સ્વામીનો, ભેદ જાણીને ભરીએ હે જી;
સદા બ્રહ્મ ભરપૂર ભર્યો છે, અનુભવને આદરીએ–હરિ૦
કાચા કુંભ સરખી કાયા, જતાં વાર ન જરીયે હે જી;
ગોવિંદના ગુણલા ગાતાં, ભવજળ પાર ઊતરીએ–હરિ૦
મનુષ્યાજનમ મળ્યો છે મોંઘો, ફંદ માંહી નવ ફરીએ હે જી;
નાભિકમળથી ચાલી સુરતા, શ્વાસોશ્વાસે સમરીએ–હરિ૦
સાચો સંતસમાગમ કરીએ, વાણી વિમળ ઊનરીએ હે જી;
કહે ગણપત સદ્દગુરુને સેવો, પંથ બીજા પરહરીએ–હરિ૦

પદ ૧૫૫

અગમ પંથ નિરવાણી—
મારા સંતો અગમ પંથ નિરવાણી હેજી;.... (ટેક)
એક થકી અનેક બન્યા ભાઈ, સહુ પશુ, પંખી ને પ્રાણી હે જી;
કર્મ, સાંખ્ય બે યોગ કહાવ્યા, વેદધરમ પરમાણી—મારા૦
પતિવ્રતા જેમ પતિ તજીને, પર પુરુષ લે જાણી હે જી;
જારધરમ એ જીવનો જાણો, પડે ચોરાશી ખાણી—મારા૦
એક ગુરુને એકજ ઈશ્વર, એક નામ–નિશાની હે જી;
એક ટેકને આપ જ ધારે, સતભક્તિ સમરાણી—મારા૦

અગમ પંથ નિરવાણી—

મારા સંતો અગમ પંથ નિરવાણી હેજી;.... (ટેક)
એક થકી અનેક બન્યા ભાઈ, સહુ પશુ, પંખી ને પ્રાણી હે જી;
કર્મ, સાંખ્ય એ યોગ કહાવ્યા, વેદધરમ પરમાણી—મારા૦
પતિવ્રતા જેમ પતિ તજીને, પર પુરુષ લે જાણી હે જી;
જારધરમ એ જીવનો જાણો, પડે ચોરાશી ખાણી—મારા૦
એક ગુરુને એકજ ઈશ્વર, એક નામ–નિશાની હે જી;
એક ટેકને આપજ ધારે, સતભક્તિ સમરાણી—મારા૦

પેય પરાની પાર પ્રભુનો, વિરલે પાનો જાણી હે જી;
અજર અમર રસ કોઈ જન જીરવે, મરજીવા લે માણી—મારા૦
સગુણ નિરગુણથી તો ન્યારો, ગુણાતીત ગુણખાણી હે જી;
જે વસ્તુ જેનાથી ઊપજી, તે તો તેમાં સમાણી—મારા૦
કોટી કલ્પથી જનમ મરણ છે, ઉર ભક્તિ નવ આણી હે જી;
ગુરુગમ વિના ગોથાં ખાધાં, મૂવો મતને તાણી—મારા૦
ઝળહળ જ્યોતિ નિરંતર ઝળકે, સુરતા ત્યાં હેરાણી હે જી;
મૂળાધારથી બ્રહ્મરંધ્રમાં, પીએ ચઢીને પાણી—મારા૦
અકળ સકળ ઘટવ્યાપક સંતો, પરખો પુરુષ પુરાણી હે જી;
કહે ગણપત સદ્‌ગુરુની સેવા, અખંડ ઉરમાં આણી—મારા૦

પદ ૧૫૬

નમિયા સો નર ભારી, મારા સંતો નમિયા સો નર ભારી હે જી–ટેક
પાંડવ સતધર્મને પાળે, કૌરવ થયા દુઃખકારી હે જી;
દગો કરીને ઘૂત રમાડ્યા, હરામી બેઠા હારી–મારા૦
હરિશ્ચંદ્ર હેરાન થયા પણ, ધીરજ ઉરમાં ધારી હે જી;
સતિયાએ તો સત નવ મેલ્યું, મળિયા દેવ મોરારિ–મારા૦
જનકવિદેહી જુગમાં દેખો, વૈરાગને જાઉં વારી હે જી;
એક હાથ તરિયાતન ઉપર, બીજે અગની ઝારી–મારા૦
બળિરાય સરખો નહીં કોઈ બળિયો, બળને જાઉં બલિહારી હે જી;
તન, મન, ધન અરપણ કરી દીધું, સત રાખ્યું સંભારી–મારા૦
અમરિષે ભક્તિ અતિ આદરી, દાસી દાસ નર નારી હે જી;
શિરને સાટે સેવા કીધી, ભેટ્યા ત્યાં ભયહારી–મારા૦

[illegible] હામને જો મળે રે, [illegible]
એક બીજમાં એક વડ રે, વડમાં બીજ [illegible]
એમ જ્ઞાનીને સમજાવા રે, [illegible]
નામ ત્રણ રૂપ એક છે રે, સમજો તેના [illegible]
એક થકી અનેક છે રે, તેનો [illegible]

મનુષ્ય બુદ્ધિએ માનવી રે, દેવે દેવ દેખાય;
ઈશ્વરબુદ્ધિ આવે અંતરે રે, ત્યારે અખંડ રૂપ ઓળખાય.
એક આદિ ઓંકારથી રે, બનિયા અંક અપાર;
સત્પંડિત તેને સાધીને રે, રાખે એક ઓમકાર રે—ઓ૦
તે માટે તનમાંહી તપાસી, કરજો તત્ત્વવિચાર;
કહે ગણપત ગુરુગમ મળે રે, તો પામે ભવપાર-ઓ૦

પદ ૧૭૨—ધોળ

(પ્રથમ ગુરુને ગોવિંદ કરી જાણો—એ રાગ)

નિગમ નિરંતર નેતી રે કહે છે, જીવ માયા થકી જુદો રે રહે છે;
જેવું કરમ તેમાં તેવો વસે છે, તો અગમ પુરુષની અગમ ગતિ રે.
પિંડ બ્રહ્માંડનો પૂરણ પ્રકાશી, જળચર સ્થળચર જંતુનો વાસી;
અખંડ અનાદ એ તો અવિનાશી, તો કહેવાય કેમ કોની વતી રે.
ગુરુગમ વિના તો ગોત્યો ન લાધે, પ્રેમથકી કોઇ પ્રેમી આરાધે;
સાધન સઘળાં સેજમાં સાધે, તો અનુભવ જ્યારે આવી મળે રે.
મહાશૂરવીર કોઈ અમીરસ માણે, વંકનાળ કેરી વાટ્યો રે જાણે;
બ્રહ્મરંધ્રના ભેદ પ્રમાણે, તો દેખતાં દીપ કોટિ બળે રે
પીયૂષગંગામાં પ્રેમથી નાહાવે, પીએ અમૃત તેને પાણી ન ભાવે;
જ્યોત્ય જોઈ જીવનો શિવ થાવે, તો અમર થયો નવ આથમે રે.
ભેદુ વિના કોણ ભેદ જ ભાગે, ઝળહળ જ્યોત્ય નિરંતર જાગે;
સંત શૂરતણાં શર આવી વાગે, તો ગણપતરામને તે ગમે રે.

19:56

પદ ૧૭૩

હરિ ગુરુ સંત એક રૂપે જાણો, એક પલકમાં અંતર નવ આણો;
મહાપદમાંહી મહા સુખ માણો, તો સમજો ગુરુજીની સાનમાં રે.
પોતાની મેળે તરે કોઈ પ્રાણી, વિચારીને જુઓ વેદની વાણી;
ગુરુગમ વિના થયા ધૂળધાણી, તો ધારીને દેખજો ધ્યાનમાં રે.
મહા બળ દિશે હરિની રે માયા, સકળ બ્રહ્માંડમાં સરખી રે છાયા;
દેવ, દાનવ ને મોહ્યા મુનિરાયા, તો ડાગરનારાજ ડાગરે રે.
જીવ માયાને જુદાં કરી આપે, કોટી જનમ કેરાં કુકર્મ કાપે;
અમર કરીને અભેપદ આપે, તો સદગુરુ વિના ન સુધરે રે.
પોતે પોતાને જો નવ જાણે, પરમ પુરુષને તે શું પરમાણે!
કામક્રોધ કેરો અંત ન આણે, તો ખળશે ચોરાશીની ખાણયમાં રે.
કારજ તારું તું કરવાને, વિશ્વપતિજીને જો વરવાને;
ગણપત ગુરુજી વિના તરવાને, તો જીવડા આશા નવ જાણમાં રે.

પદ ૧૭૪

શુદ્ધ જગ્યા કરી સુરતાને સાંધો, આસન પદ્મા કરી પગ બાંધો;
કામ ક્રોધ કેરો ટાળિયે વાંધો તો, નાસાગ્ર દ્રષ્ટિને દેખિયે રે.
એકઠા પ્રાણ અપાનને કીજે, વ્યાન, ઉદાન, સમાનને લીજે;
દેહ આત્મા થકી જુદો ગણી જે, તો અહંબ્રહ્મ એમ ઉચારિયે રે.
નેત્ર મીંચી નિરમાન કરી જે, પ્રગટ અજપાનો જાપ જપી જે;
વંકનાળ કેરી વાટ વળી જે, તો દેવ હૃદેમાંહી દેખિયે રે.
સહસ્ર પાંખડી તો સૂર્ય આકારે, તે મધ્યે ચોતરો મણિમય ધારે;
મૂરતિ મનોહર ચિહ્ન અઢારે, તો ધ્યાન કરીને ધારિયે રે.

નખશિખ નીરખીએ નિરમળ નેણે, વહાલપણું વૈરાગને વેણે;
સુરતા સાંધો સદગુરુજીને કહેણે, તો અખંડ પુરુષને આરાધિયે રે.
આતમરૂપ ત્યારે ઓળખાશે, જો ભૃગતિમાંહી મન મળી જાશે;
ગણપત ગોવિંદ શ્વાસોશ્વાસે, તો સચરાચરમાં સંભારિયે રે.

કહે ગણપત કોઈ ગોતી કાઢે, એહી સંતગુરુ જ્ઞાની રે જી

પદ ૧૮૨

શબ્દઅબધી સુરતા સાંધી, ફોડી ગયા બ્રહ્માંડા રે જી;
સગુણ નિરગુણ સંશે ટળિયા, ચઢિયા તે અલખ અખંડા રે જી.
સોહંગ સોહંગ હુવા એકઠા, મધ્યે મૂવા મન બંડા રે જી;
ગેબી શુન્ય ઘોર ગાજે ગગનમાં, નિરંધ નિરગુણ ઝંડા રે જી.
ઝળહળ જ્યોત નિરંતર ઝળકે, પૂરણ પૂરણાનંદા રે જી;
ભેદ અભેદ કછુ નહિ દીસે, છૂટ ગયા ભવ ફંદા રે જી.
ઉન્મુનિ ઘેરે અજર ઝરે, જ્યાં ઝાલરીના ઝણકાર રે જી;
નિરાધાર આધારકુ નીરખ્યા, ઘૂઘરીના ધમકા રે જી.
શેષ દલ પર કમળમેં ભમરા, ઘોર કરત ગુંજારા રે જી;
કહે ગણપત કોઈ ખોજકે દેખે, સો ઉતરે ભવપારા રે જી.

પદ ૧૮૩

પરમ કુલાંટમાં ખડકી દેખી, અજબ તમાસા વાંહી રે જી;
દાઢીનો દરવાજો ભેદી, જાતું અભેપદ જ્યાંહી રે જી.
અજબી સ્થાન અઢારેમાં આંટી, નવ-દસમાં મંમાયા રે જી;
ત્રિંશતિ એક બ્રહ્માંડ કે માંહી, જ્યાંહી વસે જગરાયા રે જી.
અગમ ભેદને અગમ વાણી, અગોચર ગોચરાયા રે જી;
સગુણ નિરગુણ, નિરગુણ સગુણ, સંશે સરવે સમાયા રે જી.
આકાર તે નિરાકાર થયા ભાઈ, નિરાકાર આકાર રે જી;
અહંકાર તે આકાશ થયા ભાઈ, આકાશ છે અહંકારા રે જી.
ભેદ હુતો તે અભેદ હુવો ભાઈ, અભેદ ભેદમાં આયા રે જી;
અહંબ્રહ્મ રૂપ સહજમાં દેખ્યા, ગણપત ગોપ સમાયા રે જી.

પદ ૧૮૪

20:00

ભરપૂર ભરિયો ડહાપણ દરિયો, ઠરીયો તે સર્વે ઠામ જી;
દાસ જાણી પુર આશ પુરૂષોત્તમ, કર હરિજનનાં કામ જી—દે૦
મનનો રે મેળો ભાવ ભક્તિના ભેળો રે, કળી શકે નહીં કોઇ જી;
આપો મતિ એવાં પ્રીરતન કરીએ તો, સમજણ સાધન સોય જી—દે.
તન મન વારી કરૂ ભક્તિ તાહારી રે, ધારીને અક્ષર ધામ જી;
વિશ્વાસીને વાલા દગો ન દીજે તો, ગુણ ગાય ગણપતરામ જી—દે.

પદ ૧૮૭

તન તરવેણીમાં તીરથ મોટું રે, નિરમળ મનથી જ નહાય જી;
પ્રાગને પાંદડે પોઢ્યા પરિબ્રહ્મ, દેવનાં દરશન થાય જી—તન૦
ઈંગળા ને પિંગળા મધ્ય સુષુમણા રે, સૂર્ય ચંદ્ર ને અગ્નિદેવ જી;
ભૂત ભવિષ્ય વર્તમાનને ભાખે રે, સેવક થઈને કરો સેવ જી—તન૦
એના ઉપર શૂન્યની શોભા રે, ઊઠે અનહદ નાદ જી;
પંચરંગી ત્યાં જ્યોતિ લ્યો પરખી રે, જોતા જાય વિવાદ જી—તન૦
ત્રિકુટી કમળથી ત્રણ તસુ પર, ચંદ્રામૃત ઝરે જ્યાંય જી;
તેને નીચે છે એક નાગણી સંતો રે, પડે તેના મુખમાંય જી—તન૦
ધ્રુવમંડળથી ધારીને જોજો રે, દ્વાદસ આંગળ દેશ જી;
સહસ્ર પાંખડી સૂર્ય આકારે રે, મધ્ય તે પરમ મહેશ જી—તન૦
બે ને બારથી સાત ને ચારથી, ન્યારો થાય જી;
કાળનું ત્યાં કાંઈ ન ચાલેને, ગણપત એ ગુણ ગાય જી—તન૦

આકળ રાકળ તુંને કાંઈ કળે નહિ,
ગુણ ગાયા ગણપતરામ જી—આદિ૦

પદ ૨૬૪

કોઈ હોય હરિના જન, કહું તે કાન ધરો.......(૨૬)
વિવેક વિચારી મન, આતમ ખોજ કરો.

સગુણ નિરગુણથી છે ન્યારો, નારાયણ નિરધાર રે;
શુદ્ધ ચૈતન તુરિયાતીત સાક્ષી, દેખો નિજ દેદાર-કહું૦
ઘર બાળે ઘર ઉગરે ને, ઘર રાખે ઘર જાય રે;
એ સમશા અનુભવ કેરી, ગુરુગમથી ઓળખાય-કહું૦
નાભિ કમળથી સુરતા ચાલી, શૂન્ય શિખર ઘડ જાય રે;
મધ્યનામાં છે સ્થાન કમલનું, તેમાં ઘાટ ઘડાય-કહું૦
જગત કેરો જે જાણનારો, તનમાં તેને તપાસ રે;
ગણપત કે' ગુરુ જ્ઞાન મળે તો, પ્રભુ પોતાને પાસ-કહું૦

પદ ૨૬૫

કોઇ દેશી હમારા હોય, તો દલની કહીએ....... (૨૭)
જો આવો હમારે સાથ, નિજ ભોવન જઈએ.

ભ્રમણા ભાગી તૃષ્ણા ત્યાગી, રાગ થકી વિતરાગી રે;
અખંડ આતમ જ્ઞાન વિચારે, જગમગ જ્યોતિ જાગી-તો દલની૦
દીવે દીવા જુદા થયા તે. અગ્નિમાં અવ દઈયે રે;
ગંગાસાગર માંહી સમાણી, બ્રહ્મપદ ભેળાં થઈયે-તો દલની૦
ભેદુ વિના કોઈને ભેદ દઈયે તો. જ્ઞાન પોતાનું ગુમાવીએ રે;
શાણા જન સમશામાં સમજે. કુટિલને શું કહીયે-તો દલની૦
ચિંતામણિ જે હાથે ચડિયો, ધન માટે કોણ ધાય રે;
ગણપત કે ગુરુ જ્ઞાન વિચારો, સમજ્યાથી સુખ થાય-તો દલની૦

પદ ૨૬૬-રાગ આશાવરી

જગતમાં જનમી રે કહે જીવ શું કર્યું રે
ધર્યું નહીં જગતપતિનું ધ્યાન.
ઊંચા કુળ માંહી રે. આ તન આવિયા રે
ભજ્યા નહીં ભાવે શ્રીભગવાન જગત

પદ ૨૭૮

ત્રીજી રે ભક્તિ સ્મરણ છે તેવી, અનુભવે ઉરમાં લેવી....(ટે)
શ્વાસો રે શ્વાસ શ્રીહરિ સમરિયે, પરા થકી મધ્યમાં ઠરિયે;
વૈખરી નવ વદીએ ઈ વેળા, કોટે રે કરો મોહનના મેળા—ત્રીજી૦
અજપાનો જાપ નિત્ય જપીએ, સાચા રે ભાવે શબ્દમાં છપીએ;
કામીને જેવી કામિની પ્યારી, લોભી રે રહે ધનને ધારી—ત્રીજી૦
સ્મરણભક્તિ પ્રહ્‌લાદે પાળી, દુગ્યા જેને દેહની ટાળી;
કોપ્યો રે હિરણ્યકશ્યપ જોને, પ્રગટ થયા સ્તંભમાં પોતે—ત્રીજી૦
ત્રિલોચનને ભક્તિ કરી ત્યારે, વિશ્વંભર આવ્યા વહારે,
ગણપત નિત્ય ગોવિંદ ગુણ ગાવે,
ત્રીજી રે ભક્તિ સ્મરણ એ કહાવે ત્રીજી૦

પદ ૨૭૯

ચોથી રે ભક્તિ સદ્‌ગુરુસેવા, [illegible] દેવ ને દેવા
ગુરુને ગોવિંદ કરી પૂજે, [illegible]
સેવા રે કરે શિરને સાટે, [illegible]
કાયા રે કોઈ કામ નહિ આવે, [illegible]
ગુરુ સંત દ્વાર [illegible]

સેવા રે ભક્તિ શબરીની સાચી, માતંગ મળ્યા જ્ઞાન અધિકારી;
બોર જેનાં બહુનામીએ લીધાં, કારજ એનાં કોડશું કીધાં—ચોથી૦
કરો તપ જપ તીરથ કોઈ, સેવાનું તો ફળ અધિક હોઈ;
ગણપત ગુણ ગોવિંદના ગાઇયે, ચોથી રે ભક્તિ સેવા એ કહીયે-ચો૦

પદ ૨૮૦

અરચન ભક્તિ પંચમી આરાધો, શરણ સાચું શ્યામનું સાધો.
પૂજા રે સોળ ભાતની પ્રીત્યે, થાળ ભરી લાવો ને નિત્યે;
ચંદન ફળ ફૂલને લાવો, શામળિયાના અંગે સોહાવો—અર૦
અમરીષ રાજા અરચનના ભોગી, ત્રાસ પામે ભલભલા જોગી;
છઠી રે ભક્તિ વંદનને સેવો, કરે કોઈ શૂરો ગરુડ જેવો—અર૦
સાતમી દાસભાવના દેખો, પ્રેમે કરી પ્રાણપતિ પેખો;
કરી રે હનુમંતે હદ વાળી, પ્રીતિ કરી રામવચન પાળી—અર૦
સખા રે ભક્તિ આઠમી સંતો, રીઝવી લ્યો ને ગોવિંદ ગુણવંતો;
એને રે અરજુને આરાધી, ગુરુ રે ગણપત તણો સાધી—અર૦

પદ ૨૮૧

20:10

પદ ૨૮૫

સમરી લે સરજનહાર રે,
પંથીડા પ્રાણી, સમરી લે સરજન હાર રે જી.... (ટે
સંતો ભાઈ રે નાભિકમળથી સુરતાને સાંધી તો,
ગગનમંડળ મોઝાર રે. —પંથીડા પ્રાણી
સંતો ભાઈ રે શૂન્ય શિખરમાં ભમર ગુફા છે તો,
ત્યાં રેહેવાનું ઘરબાર રે. —પંથીડા પ્રાણી
સંતો ભાઈ રે ત્રિકુટી કમળમાં જ્યોતી રે ઝળકે તો,
તે શું મેળવ્ય એકતાર રે. —પંથીડા પ્રાણી
સંતો ભાઈ રે જન્મ્યા પેહેલું જેને પય જમાવ્યું તો,
માતાના તન મોઝાર રે. —પંથીડા પ્રાણી
સંતો ભાઈ રે કરતા યે કાયા કેવી બનાઈ તો,
એનો ભૂલ્યો ઉપકાર રે. —પંથીડા પ્રાણી
સંતો ભાઈ રે ગણપત કે' ગુરુદેવ મળે તો,
સેજે તરો સંસાર રે. —પંથીડા પ્રાણી

પદ ૨૮૬

(શ્યામજી દીસે છે અલબેલા [illegible] આ જમા રે-એ રાગ)
ત્રિકમ તન મન ધન કુરબાન, કરું તુજ કારણે રે (ટે
લાલ તમારાં લક્ષણ કેવાં, જન્મ્યા ત્યારથી જોયા જેવાં
કહું છું એવાં એવાં પરખ્યાં પારણે રે —લાલ
ત્રિકમ [illegible] વિનતાને [illegible], તમે ન જાણ્યું તે [illegible]
મારી [illegible] [illegible] [illegible] રે —લાલ
તમ વિના મને કેમ રે'વાશે, [illegible]
ત્રિકમ નહિ [illegible], [illegible] રે —લાલ

પદ ૨૯૭

(જેમસ કરી ને વિચાર-એ રાગ)

કરીએ સત્યનો વિચાર, [illegible] હોય નર ને નાર,
[illegible] ચાલે છે [illegible], [illegible]
આપો ને આતમનાથ, આપણું જ્ઞાન [illegible]
એવી પ્રેમની તો રીત, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ાતી મેણિયાં કહેવાય, એનું નીર ઊતરી જાય;
ાગે કદી ન સંધાય, એનું મૂલ તે શું થાય—આવો૦
ોરા ઝવેરી ઘેર જાય, જ્યારે એરણમાં હોમાય;
પમશે ઘરણ ફેરા ધાય, ત્યારે મૂલથી વેચાય—આવો૦
ત્યારે સભાઓ ભરાય, સાચા સંત ભેળા થાય;
સત્યની છાપ તો દેવાય, ત્યારે ભક્ત તો કહેવાય—આવો૦
ગુરુની ગમ વિના જે ગાય, એ તો મૂરખ કહેવાય;
એનો મોક્ષ તો નવ થાય, નૂગરા નરકમાંહી જાય—આવો૦
પ્રેમના પાટ તો મંડાય, જસની જ્યોત તો પ્રગટાય;
મનની માંડવી રચાય, દિલ શુધ દાન તો દેવાય—આવો૦
ગંગા સમદરમાં જાય, ત્યારે એક રૂપે થાય;
તેમાં નર ને નારી નાહાય, તેનો મોટો છે મહિમાય—આવો૦
આસન પદ્મ તો બંધાય, સોહં જાપને જપાય;
ત્યારે સિદ્ધ કારજ થાય, ત્રિકુટી ધ્યાનમાં દેખાય—આવો૦
તૃષ્ણા તરત તૂટી જાય, આતમ રૂપ તો ઓળખાય;
તે તો જીવનો શિવ થાય, એને ગુરુ ગણપત ગાય—આવો૦

પદ ૨૯૮

(દેખાના દૃષ્ટ્યા, હરિસંગે હેત ન કીધું-એ રાગ)

ંજાળી જીવડા, તેં તારું આપ ન જોયું........ (ટેક)
ાનુષાજનમ મળ્યો પણ તો યે, પ્રભુમાં ચિત્ત ન પ્રોયું રે—જં૦
વેચાર કરતાં વહાણું વાયું, જમના દૂતે ત્રાસ્યો;
જન્મ્યો'તો તેવો થઈ પાછો, ચોરાશી ખાણમાં ચાલ્યો રે—જં૦
માથે ભય મરવાનો મોટો, ઉરમાં એવું ન આણે;
જગતપતિની ભક્તિ કરી, જુક્તિ તે નવ જાણે રે—જં૦

આકાર જે ઉપજાવિયો, તેમાં છે નિરાકાર;
સાકાર નિરાકારનો, બેનો એક વિચાર. —અનુભવી૦
સગુણ તે નિરગુણ થયો, નિરગુણ સગુણ થાય;
ગુણાતીત ગોવિંદ જે, તે ગુણથી જ ગણાય—અનુભવી૦
સદ્દગુરુ જો સાચા મળે, ઓળખાવે અખંડ;
ગણુપત ગુરુગમ પામીને, ખોજ્યો પિંડ બ્રહ્માંડ—અનુભવી૦

પદ ૩૧૧

ખટ ચક્ર વેધી વળી, જાવું વસમી વાટ;
માયા પાહડમાં રિપુ વસે, ઘડવો તેનો ઘાટ.
અનુભવી આપ વિચારીએ . (ટેક)
આષાડે જોવા આતમા, વાળી પદ્મ આસન;
સુંદિર સ્થળ એકાંતમાં, સ્થિર રાખવું મન—અનુભવી૦
પ્રાણાયામ પહેલો કરી, પૂરક કુંભક રીત;
પ્રાણ અપાનને મેળવી, ચંચળ થાય ન ચિત્ત—અનુભવી૦
પ્રથમ આધારમાં પેખિયે, તેનો પીળો રે રંગ;
ચાર પાંખડીઓ એ ચક્રની, વંશંષસં સંગ—અનુભવી૦
ગણપતિ દેવ છે એહના, શક્તિ ને રે સંયુક્ત;
ગણપત અહોનિશ આદરે, મોરો હોય રે મુક્ત—અનુભવી૦

પદ ૩૧૨

જાપ અજપા જે તણા, ખટ સો મંતર સાથ;
આનંદે અરપણ કરે, તો રીઝે ગણનાથ.
અનુભવી આપ વિચારીએ.... (ટેક)
શ્રાવણે સ્વાધિષ્ટાનનો, શ્વેત રંગ ગણાય;
ખટ પાંખડીઓને ખોલતાં, બ્રહ્મદેવ જણાય—અનુભવી૦

બંભંમં ને બોલીએ, યંરંલં ત્યાં લખાય;
ખટ રે હજાર ને ખોજીએ, ત્યારે કારજ થાય—અનુભવી૦
પછે મણિપુરમાં પરવરો, લાલ રંગ લખાય;
પદ્મ પાંખડીઓ દશ કહી, વિષ્ણુ સ્વામી દેખાય—અનુભવી૦
ડંઢંણં ત્યાં દેખીએ, તંથંદંધં જેહ;
નંપંફં કું ન્યાળીયે, કહે ગણપત તેહ—અનુભવી૦

પદ ૩૧૩

15:09

danveer singh

@mahadevfan0925

222 subscribers • 84 videos

रोजाना उज्जैन के राजाधिराज महाकाल बाबा के दर्शन 🙏🙏🚩🚩🙏🙏 ...more

Subscribed | Community

Home | Videos | Posts

Latest

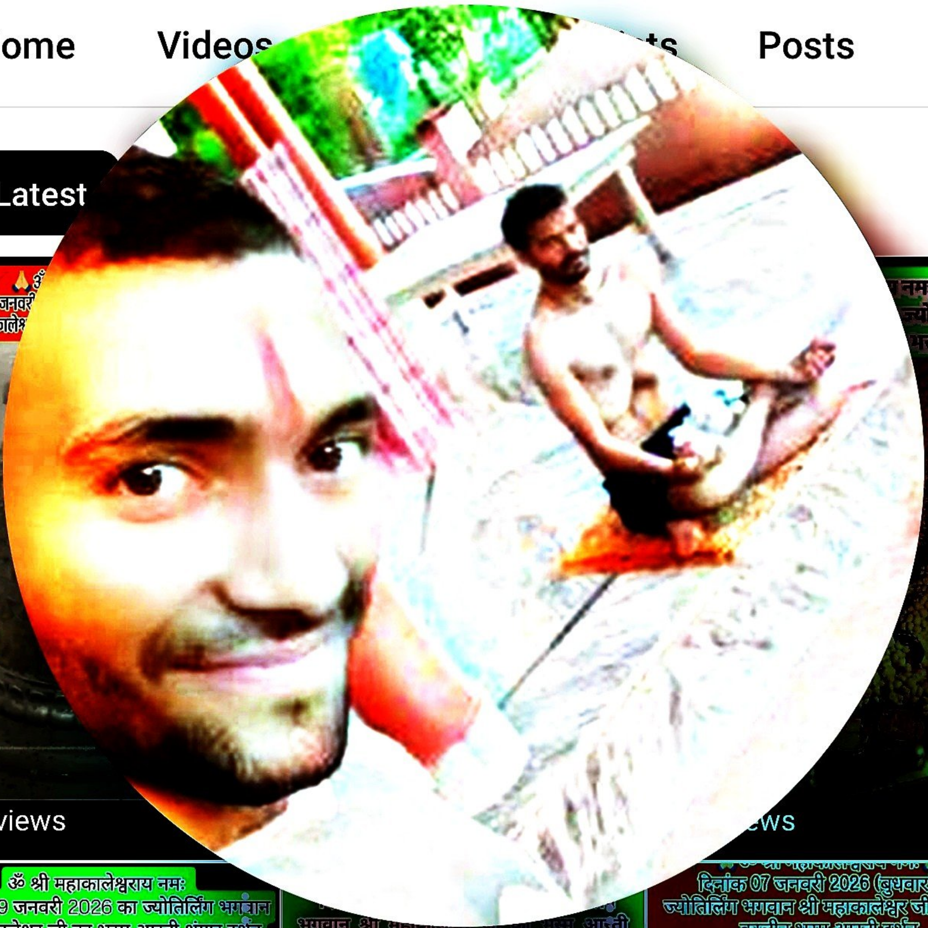

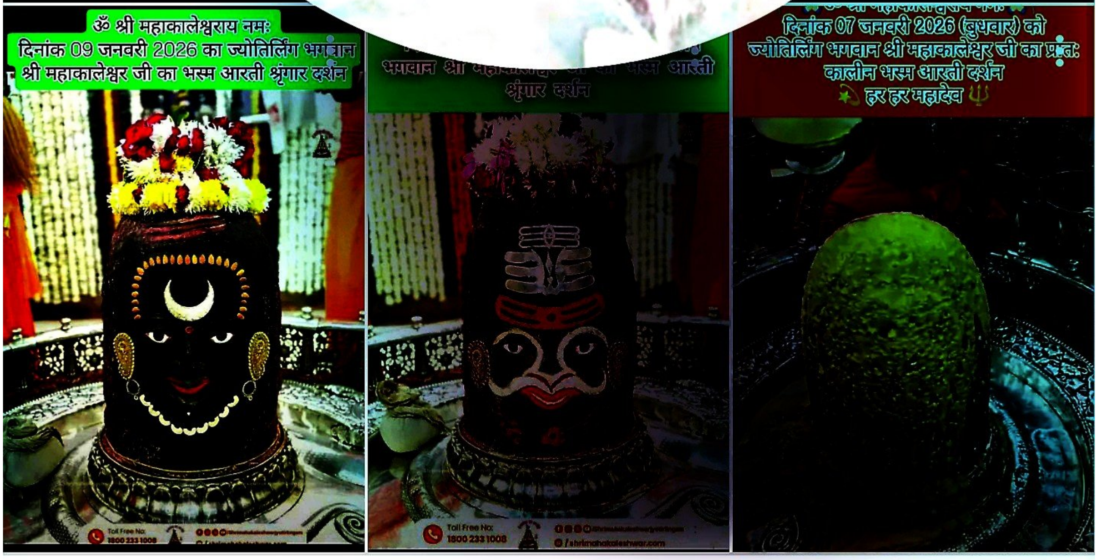

Home | Shorts | + | Subscriptions | You

07:43
Amar Saar | PDF
scribd.com
[S] 18 / 19

अब कछु कहों पवन कर लेखा। जो कछु ज्ञान दृष्टि में देखा।३२८।
साहब संग परिचे जो पाई। सो कछु भेद कहों समुझाई।३२९।
ज्ञानी होय सो करे विचारा। पवन पवन के भेद सुधारा।३३०।
साहब प्रताप बोलो निज बानी। कहों भेद निज कथा बखानी।३३१।
पद पंकज प्रेम लवलाई। चरण कमल दल रहों समाई।३३२।
दया कीन्ह तब सब गुन ज्ञाना। विमल विमल पद कहों बखाना।३३३।

साखी - २६

कवन पवन धरती बसे, कवन पवन आकाश।
कवन पवन पाताल है, कवन पवन घट बास।।
रज पवन धरती बसे, उदया जीत आकाश।
शरद पवन पाताल है, शूर पवन घट बास।।

चौपाई

मन पवना के एके रंगा। तातल शीतल सबके संगा।३३४।
जो भीतर सो बाहर देखो। बाहर भीतर एके लेखो।३३५।
उदय जीत पवन प्रचण्डा। सात द्वीप कहिये नव खण्डा।३३६।
चाँद सूर्य है ताहि तबीना। पवन पचीस होय नहिं भीना।३३७।
तामे गन सब रहेवो समाई। ज्यों चश्मा में पार दिखाई।३३८।
चाँद सूर्य उनमुनि बासा। तामे पवन प्रेम प्रगासा।३३९।
नील पवन जब होय समीपा। बरिषे मेघ घटा चहु दीपा।३४०।
पवन पचीस ताहि के संगा। गरजि गगन सब करे तरंगा।३४१।
बरषे नीर अखण्डित धारा।। उपजे शालि सब जगत संवारा।३४२।
विजया बल जो पवन कहावे। गरजे ठनके त्रास देखावे।३४३।
ठनकि ठनकि जबहिं घहराना। अघात बाण धरती पर आना।३४४।
पवन चारि है ताके पासा। चपला चमके गगन तमाशा।३४५।
काल जंजालि पवन कहावै। सूर्य चन्द्रमाहिं जाय छिपावै।।३४६।
चन्द्रमहिं काले कीन्हों ग्रासा। पाखंड मन्त्र भेद प्रगासा।३४७।
पवन चारि है ताके पासा। रहे गगन वोय अर्ध निवासा।३४८।
नव ग्रह बारह हैं संक्रांती। उदय अस्त दिन औ राती।३४९।
सूर चन्द्र मूल में रहई। तबहिं ग्रहन ग्रासे चहई।३५०।

Ad Download to read ad-free

07:43
[S] 19 / 19

साखी - ३१

सूर्य चन्द्र सब पास हैं, बूझहु पण्डित राज।
विजय लगन के जानिये, सफल होय सब काज।।

चौपाई

धुरन्धर पवन बहे दिन राती। कतहिं नेम कतहिं उत्पाती।३५१।
गन्ध पवन फूलन्हि में बासा। गन्ध सुगन्ध सब करे निवासा।३५२।
मनोरथ पवन काम संग रहई। योग भोग सब आपहि करई।३५३।
त्रिकुटि विन्द काम कर थाना। मेरुदण्ड होय करे पयाना।३५४।
मूल मंगल पवन है रासी रज विन्द ले पिंड प्रगासी।३५५।
जबहिं योग त्रिया कह आवै। मूल मंगल तब जीव संग धावै।३५६।
रज बिन्द एक घर होई। पवन प्रान ले पैठे सोई।३५७।
तुरे पवन पांव में रहई। चलत पांव को रक्षा करई।३५८।
तुरुता नन्द पवन है खानी। रस गोरस अमृत सब आनी।३५६।
मंगल मूल है पवन सुधारा। विमल विमल पद करे विचारा।३६०।
दस पवन रहे तब राधी। योगी योग युक्ति से साधी।३६१।

छन्द - ८

आदि अन्त सब पवन पानी, जल थल सबे बनावहीं।
अंडुज पिंडुज द्रुमलता, पवन ते सुख पावहीं।।
पवन पानी पिण्ड रक्षा, प्रेम प्रीति लगावहीं।
अन्न भूषण पवन पानी, मन अनन्त होय धावहीं।।

सोरठा - ८

मूल नाम गति पार, कथा बहुत विस्तार है।
सन्तहि करो विचार, संसे काल बिसारि के।

ग्रन्थ अमर सार पूर्ण

Share this document

પદ ૩

અદભુત જ્ઞાન હમારા,
હો સંતો અદભુત જ્ઞાન હમારા;
કોઇ જાણે જાણનહારા,......હો સંતો. ટેક.

દેવલ દેવ પૂજા વિધિપાતી,
સોડસ કરમ આચારા;
ધુપ દિપ સજી અરઘ આરતિ,
એ સહુ ઓરલ્યા વહેવારા. હો સંતો. ૧

આસન માર પવન પૂનિ સાધે,
બંધે દશ દરબારા;
વંકનાળ ચઢી જ્યોત જગાવે,
તો હુ ન બંચે કારા. હો સંતો. ૨

શ્રવણ કિરતન પૂજા આદી,
ભક્તિ નવ પરકારા;
દશધા પ્રેમ લક્ષણા જો પાવે,
તો ગૌલોકનાથ દેદારા. હો સંતો. ૩

ત્રિપદ દેવ નહિ ચિદ શક્તિ,
નહિ પંચભૂત આકારા;
તાંહાં ગૌલોકને વૈકુંઠ નાંહી,
અવિગત અરસ સાંઇયારા. હો સંતો. ૪

ઈંગલા પિંગલા સૂક્ષમણા નાડી,
બ્રહ્મ રૂદ્ર ઝનકારા;
યોગી યોગ સકલ વિધિ સાધન,
યાંહાં લગી અમલ તુમારા. હો સંતો. ૫

ગુપ્ત ચલે ધરણી ગગન્યે ગ્યમ,
લેખ કરે નભ તારા;

06:12

ચૌદ લોકકે મનકી જાણે,
પ્રકૃતિ લિયા અવતારા. હો સંતો.
જાગ્રત સ્વપ્ન સષોપતિ, તુરિયા,
મન બુધ ચિત્ત અહંકારા;
એ અષ્ટ આવ્રણ રહીત અગમ ઘર,
અપરમપાર અપારા. હો સંતો.
ભકિત કરે જુગમે દ્રઢતા ધર,
તનમન સહિત સકારા;
પરચા આંન્ય પુરાવે પરસ્પર,
ગુણકે સાધન વારા. હો સંતો.
સમલીત બ્રહ્મ ચરાચર વ્યાપક,
ઘટ ઘટ હંગ હકારા;
ઓહંગ સોહંગ દોનું રહિત દુગ્ધા,
નિજ પરમપદ ન્યારા. હો સંતો.
પિંડ બ્રહ્માંડ ફોડી મમ સુરતા,
ગજ્ઞ તજ્ઞ ભઇપારા;
કહે કુવેર કેવલ પરસ્પર,
ભઇ ગતિ અગમ અપારા. હો સંતો.

પદ, ૪

દેશ હમારા વંકા, હો સંતો દેશ હમારા વંકા;
જ્યાં નહિ કાળ જાળકી શંકા,... હો સંતો ટેક.
ચલના ચહાવ કોહુ મમ મારગ,
છોડો આતનકી આકંક્ષા;

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

શબ્દ શરણાઇ ભવ ભાવ ભુંગળ બજી,
શોક સંશે તજી હરખ હોઇ. આદ્યમધ્ય. ૨
મન વશ મિઢળ લક્ષ દોરો મહી,
પ્રેમ પિઠિ ચઢી અંગ મોઇ;
સત દ્રઢ નેમ દો છેડલા ગાંઠીયા,
સુરતિ સંધારણ વરમાળ પ્રોઇ. આદ્યમધ્ય. ૩
મનોરથ માંચી મમ હરિ બુધ બાજટ,
ઓહંગને સોહંગ મળ્યા હસ્ત દોઇ;
ઓહંગ ભુજ માહેરો, સોહંગ હરિ નો કર,
અલખ ઇચ્છા વર ભાગ્ય મોઇ. આદ્યમધ્ય. ૪
બ્રહ્મ અગનિ જગ્યો ચિત ચોરી મધ્યે,
સંકલ્પ શ્રીફળ હોમ હોઇ;
જ્ઞાનને ધ્યાન વૈરાગ ભક્તિપદ,
મંગળ વરતીયાં ચાર ઓઇ. આદ્યમધ્ય. ૫
કરૂણા કંસાર કરૂણાકરે કર લીયો;
વદન માહારે દીયો મદન ગોઇ;
શિશ સમરપણ વળી મેં કલવો લીયો,
હરિ મુખમે દીયો લાજ લોઇ. આદ્યમધ્ય. ૬
ધર્મ અર્થ કામને મોક્ષ મુગતિવળી,
ભામનીયાં મળી અષ્ટ ઓઇ;
ગાવત ધોળ આનંદ અનુભવ અતિ,
જતિ સતિ જાંનનુ મન મોઇ. આદ્યમધ્ય. ૭
પુરણ પરણી હરી કારજ ગયું સરી,
જનમને મરણની ખટક ખોઇ;
કહેં કુવેર અવિચલ ગ્રહે સુત્રનું,
સુખ સુખસે જો કહી શકુ ન કોઇ. આદ્યમધ્ય. ૮

06:17

સાખી.

ચિતવન નિજ ચૈતનતણું, ગુણાતિત ગુલતાન;
લક્ષમતે નિશદિન રહી, કરત કુવેર અવિલાન. ૧

સ્થૂલ સૂક્ષ્મ કારણ કહીયે, મહાકારણ જે દેહ;
જીવન મૂક્ત તે વરજીત, છતે પિંડ વિદેહ. ૨

પદ ૪

સંત વિયોગ યોગ કોઇ ઠાને,
તાકી પ્રતિત કરતા નવ માને. ૧

દશ ઇંદ્રિ દમિ સમિ સમાવે,
વંકનાળ ચઢી સૂન્ય બસાવે. ૨

કાળ અજીત જીત કર બેઠા,
અનભે ઘરમે જઇને પેઠા. ૩

અનહદ નાદ ઝલકે જ્યોતિ,
રૂમઝુમ રૂમઝુમ વરખે મોતિ. ૪

સ્વે પ્રકાશ ઉદ્યોત ઉજેશા,
મૃત્યુ ન વ્યાપે જ્યાં અમર દેશા. ૫

એસો સુખ સદા સરાવે,
યોગિ યોગ જુગત સબ ગાવે. ૬

ગુરૂ કિરપા વિના કૈવલ ન ભાસે,
સત્ કુવેર તાતે ગુરૂ અભ્યાસે. ૭

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

પદ ૫

ગુરૂ પરતાપ આપ સબ ખોજા,
અહીતન પાણી પવનકા મોજા. ૧

ત્રિતિયો તેજ તત્વ ઝલકાઇ,
ભોમી ભંડમે લહેર સમાઇ. ૨

વ્યોમ પંચમો આદ્ય કહાવે,
ચારૂ તત્વ બીચ સહેજ સોહાવે. ૩

પંચતત્વ મિલકે મઠ ખાસા,
તા મધ્યે આત્મકા ભાસા. ૪

જ્યો દિપક મંદિર મધ્ય જોતી,
ઘટ ભિતર યો આત્મ ઉદ્યોત. ૫

રોમ રોમ રેરંકાર ઉજેસા,
આસપાસ દશ દ્વાર ઉજેસા. ૬

મૂળ ચક્ર ગણપતિકા વાસા,
મળ ઝાડત દ્વાર કરત ખુલાસા. ૭

દૂજે દ્વાર કમળ સૂત ઠાંના,
બિજ અસુત અપ તજત અજ્ઞાંના. ૮

ત્રિતિયો દ્વાર બંધ જે નાભિ,
સકલ જાપકે વિષ્ણુ જબાપિ. ૯

હરદે નિરંજન જ્ઞાન દ્રઢાવે,
સ્વાસ સકલકો ઘાટ ઘડાવે. ૧૦

કંઠ સ્થાન શિવ સુખકારી,
વાણી અરૂપકી રૂપ ઉચ્ચારી. ૧૧

વરૂણુ અનલ અવિકાશ કે વાસિ,
શબ્દ ઉચ્ચારે સકલ રસ પ્રાશિ. ૧૨

ગ્રાહક દ્વારે રહે અશ્વનિકુંમારા,
સ્વાદ પહોંચાવે સુગંધકા સારા. ૧૩

ચંદ્ર સુરજ દ્રિગ દ્વાર રહાવે,
સકલ રૂપકો નિરૂપ લખાવે ૧૪

કરણવાસો દ્રિગપાળહી દેવા,
શબ્દ સકલકો પોહોંચાવત ભેવા. ૧૫

એ દશ દેવ સેવકુ ઠાના,
મધ્યે આપ આત્મ ભગવાના. ૧૬

મન બુદ્ધ ચિત્ત અહંકાર હજુરી,
તાકી આગે કરત મજુરી. ૧૭

પાંચ પચીસ સંગે પટરાનિ,
સોહી સકલ જાકી કરત ગુલાનિ. ૧૮

એ સબ રહિત રાયકુ છાજે,
સૂન્ય સિંઘાસન આત્મ બિરાજે. ૧૯

સકલ દેવકે શિર પર સાંઇ;
તુરિયાતિત અલખ લક્ષ જાંઇ. ૨૦

ઝલમલ જોત ઉદ્યોત અપારા;
અનહદ નાદ હોત ઝંનકારા. ૨૧

સુરત નુરત સોહાગણુ થાકી,
નિરખત સ્વરૂપ શોભા ઘર વાકી. ૨૨

ચતુરધા મૂક્તિ જુક્તિ જુગ વંછિતવે,
શ્રેષ્ટ સાયોજ પદ પાવનાવે. ગુરૂ. ૬
સત્ કુવેર સંતોષ ગુરૂતનવે,
સકલ તિરથ ઘેર આવનાવે. ગુરૂ. ૭

પદ. ૨

દેખો દેખો વાદેશ ફકીરંદા,
દેખો દેખો....................... ટેક.
તંન તકીયા મધ્યહે મંન સુલાંવે,
સુધ્ય ચૈતન ચેતન બંદા. દેખો દેખો. ૧
દમકી દોરી શબ્દ સત દાનાવે,
અજંપા તસમી જપે જાલમ જંદા. દેખો દેખો. ૨
ઝકરકા ઝુંબા રેહેસ મત કુંડીવે.
સહેજ સંસાર ચેતાવંદા. ...... દેખો દેખો. ૩
તજ્ઞકા ટોપ કથન લીયા કુદકાવે,
સંશે સવાંન ભગાવંદા. દેખો દેખો. ૪
દોજક ભસ્ત અસ્ત ગત્ય ઉદ ચેવે,
ફના કીયા ફારગત ફંદા. દેખો દેખો. ૫
ઓહંગ આપ સોહંગ શિર સાંઇયાંવે,
નિરભે નિવાજ ગુજારંદા. .... દેખો દેખો. ૬
સત્ કુવેર સાહેબ અપરાપરવે,
જાંનત નહી ગાફલગંદા. ... દેખો દેખો. ૭

પંચતનુ પંચકોશ કહત જે સૂનાઇ;
અનોમનો આનંદ પ્રાણ જ્ઞાનમયે ગ્યમતાઈ,
સ્થૂલ પિંડય પ્રગટ મંડય,
સૂક્ષ્મ લંગ વૃતિ અનંગ,
કારણ અંગ ગુણ પ્રસંગ,
મહાકારણ દેહ શક્તિ પરમ જ્યોતિવંત....ગતી. ૬

ઈંગળા પિંગળા નાર સૂક્ષમણા સુજાંની,
નરમાદા ઉપજકળા રાવ શશિસમ ઠાંની,
ઉઠત સ્વાસ બીન અભ્યાસ,
સાધન નાશ હોહુ સમાસ,
તજી વિનોધ સજી સબોધ,
છસેએકવીસ હજાર જાપ.
નિખશિખ પરજંત. ... ...ગતી. ૭

ઓહંગ આતમા પોરક પ્રણુવ જે પુરાંના,
રેચક પરમાત્મા પ્રણુવ સોહંગ સુર પિયાંના,
ઓહુંગ અરણુવ પિંડ પસરણુવ સોહુંગ પ્રણુવ સુન્ય સગ્રણુવું,
સુલટ સોહંગ ઉલટ ઓહંગ,
રગ રગ રોમ રોમ સરલ વ્યાપિકાવત સતંત. ગતી. ૮

એહી સબ સાજ સકલ શક્તિકે પસારા,
તેહી શાકતનકે શિર નિરંજન કિરતારા.
નિરંજન શિર આતમ સધીર,
આતમ કે શિર પરમાતાપીર પરમાતા ભેવદેવનકે દેવ,
યાહી પરંતુ પરમ લક્ષ કુવેર કહંત. ગતી. ૯

લખે જેહી લક્ષ અલખ જાપ તેતો યોગી,
જીનું ચિત્ત જક્તાસે વિવ્વક્ત લગત નાંહી,
સધે તનુ જીવન તારનિજ આધારમાંહી,
ઇંદ્રિગવન કરહી દંમન,
રખીત નેંમ કુશલ ક્ષેમ,
સુરતિ રોધં મંન પ્રમોધ,
સમદમાદીક સાધંન આધ,
સબનકે સંયોગી. ... ...તેતો યોગી. ૧

પંચમહાભૂત માંહી સૂક્ષ્મ મેલાવે,
પિંડબ્રહ્માંડસંધ્ય અન્યોઅન્ય એકતાવે,
તોયસે તોય ભોમીસે ભોમ અગન્યે અગન્ય કરીકે લગંન
પવને પવન મેલી તત વંન,
નભે નભ એકતાય લાય,
રહેનાં તત્વ વિયોગી.... ... ...તેતો યોગી ૨

રાત દિન હલત ચલત દમે દમે દીલ લાવે,
એરપુનિ ઉઠત બેઠત સુરત તાંહી લગાવે,
ગુદસ્થાન ખટસે જાણુ બ્રહ્મદ્વાર ખટ હજાર,
નાભિ નિરસ્ત ખટહી સહસ્ત્ર,
હૃદે કમળમે ખટ હજાર,
જુગત્યે જે જૂવોગી.... ... ...તેતો યોગી ૩

સહેસ્ત્ર એક કંઠ કમળ ઉઠત અજંપા જાંહી.
દોઉ સહેસ્ત્ર ભ્રગુટિ ઓર બ્રહ્મરૂદ્ર માંહી;
એતેહી દાપ સજી સજાપ,
દેવંનકે દેવ હોહુ વિદેહી,
વંકનાળ્ય પુનિ પ્રતાલ,

06:33

ત્રીજે તંતુ વિચારીયે, આતમા જાણ્ય અતંત;
દે ધાતા વિપુ વરજીત, તાય ન આદ્ય ન અંત. ૧

રોમ રોમમાં રમી રહ્યો, સ્વાસા માંહ્ય સોહંગ,
ઘટ વણસે પટમે સમે, અવીગત આપ અભંગ. ૨

જાપ અજંપા હોત હે, ખટ દશ પંચ હજાર,
તાપર ખટસે આંન્ય હે, આઠે પેહોર વિચાર. ૩

મુળચક્ર ખટસે જપે, ઉતપત ખટહી હજાર,
નાભીકમળ ખટ સહેસ્ત્ર, ચલત પવન મન લહાર. ૪

ખટહી સહસ્ત્ર હરદે જપે, અરધ ઉરધ મધ્ય સાર,
સહસ્ત્ર કંઠ ભ્રગુ ચક્રમે, સહસ્ત્રહી ગગન મોજાર. ૫

એહિ વિધિ સમરણ હોત હે, રાત દિવસ એકતાર,
કેહે કુવેર દમે દમે, સમરોને સરજનહાર. ૬

તિથિ. ૪

ચોથે ચતુર દલ ચક્રકુ, નિશ્ચે કરી નિરધાર,
અક્ષર ચાર વિચાર કે, બંધ કરી મુળદ્વાર. ૧

ખટસે જાપ જપી જપ, દે ગવરી સુત દાન,
ઓર ચક્ર બ્રહ્મા તણું, તામે કર પરીયાન. ૨

ખટહી સેહેસ્ત્ર જાપ જપી, ખટ દલ કમળકી મહાંય,
કર અરપણ વાસુ દેવને, બ્રહ્મા શક્તિ હે જહાંય. ૩

ઉભે ચક્રકુ અનુભવી, ત્રીતીયો નાભી ન વેર,
ખટહી સેહેસ્ત્ર જાપ જપી, રૂદયે ચતુરથો હેર. ૪

રૂદે કમળ દલ દ્વાદશ, દેવ નિરંજન જહાંય,
ખટહી સેહેસ્ત્ર જાપ જપી, કર અરપન તુ તહાંય. ૫

સહેસ્ત્ર જાપ કંઠે જપે, જાકે પતિ શિવરાય,
દ્વે સહેસ્ત્ર ભ્રગુ ગગનમે, સત્ કુવેર. મેલાય. ૬

તિથિ. ૫

પંચવટી પરમાતમા, આતમા આપ અબંધ;
જાપ અજંપા જુકતસે, છૂટે જીવ મતિમંદ. ૧
ધરણી પવન મન ધીર કરી, સુધો કરી મેરૂ શિર;
ચંદાસુર ઉલટા ધરી, સમવત હોય શરીરં. ૨

સમદમ સાધન સાધકે, વંકનાળય વિધિ જાણય;
ગતિ મતિ ગવન ગગન ચઢી, પરસન પદ નિરવાણય ૩
ગગન ચઢી કર ગરજના, હરખ શોક નહી જહાંય;
પાંચ પચીસનો પરાભવ, ગાંજી શકે નહિ તાંહય. ૪
અનભે પ્રગટયે આપમે, નિરખીને નિરમળ જોત્ય;
કાળ ઝાળ વ્યાપે નહિ, આતમા આપ ઉદ્યોત. ૫
ઝલમલ ઝળકે સુન્યમે તિમિર નહી ચોફેર;
અનહદ વાજાં ગરગડે, નિરખત સત્ કુવેર. ૬

તિથિ. ૬

છઠ્ઠે મઠનો કરતા સહી, સસ્વરૂપ પદ સોય.
મન બુદ્ધિ ચિત અહંકારપર, તત્વ અસીપદ જોય. ૧
સાંખ્ય યોગતે જાણીયે, દેહ તણો વિસ્તાર,
ખટદશ દ્વાદશ ચોવીસ, અક્ષર દેહની લહાર. ૨
ચતુર ગુદા ખટ ઉતપત, નાભીયે દશ પરમાણય;
રૂદે કમળ દલ દ્વાદશ, સોડસ કંઠે જાંણય. ૩
અક્ષર ખટવીસ ચોવીસ, રહત ગગનમે વાસ;
દ્વે અક્ષર ભ્રગુ ચક્રમે, તામે સસ્વ વિલાસ. ૪
અક્ષર બાવન જાયગો અંત કાળકુ વિલાય;
સસ્વરૂપ જામે સમે, તાઈત્યે લહેલાય. ૫
આંન્ય પદારથ અલપહે, સોહંમ પદ આદ્ય અનાદ્ય;
કહે કુવેર પીયુ પરસતાં, છૂટે કરમકી ઉપાધ, ૬

તિથિ. ૭

ઓરૂ સૂણીયોજન યોગનકી જગ,મગ મતબલ ચલ ગુપતા;
ખડતલ ખોજ સરોજ સહિતમદલ, કરન અંકસર ચુપતા.

જીનુ આસન નિજ પદ્મ પરાયન, કહુક્રિયેમાણુ સૂણાઇ,
ગુદા ઇંદ્રિકે મધ્ય લગાવન, દાહન પાવ પનાઇ. ૨

વાવા ધર દાહન ઝંઘન પર ત્રિકુટિ ધ્યાન ધરીજે,
રેચક પોરક પુની કુંભક કર, સ્વરકે સંઘ વરીજે. ૩

એ આસન નિજ પદ્મ યોગ જીત,વિતજીનું સ્વર સોહાગી,
તે સાધુ નિજ સંત યોગિજન, વૈરાગી ને વિતરાગી. ૪

ચોસરા. ૧૫

પુની દાહનપદ કરીત વાય પર, વાવા દાહ ધરીજે,
ઉલટી પીઠય પદ ગ્રહીત આંગુરી કર, સૂધો મેરૂ કરીજે. ૧

આસન સિદ્ધ સમાધ્ય કરન એ, વંકનાળ્ય સુલટાઇ;
વજર કપાટ ખોલ ખુદ ખડકી, સુન્યમે સ્વાસ સમાઇ. ૨

સકલ જાપ દમ પુરીત પ્રણવ શિર, કરીત તગન ઘરવાસા.
દેહ ઇંદ્રિ ઇતરહીત ગુણાતિત, અભિજીત અરસ નિવાસા.૩

સુરત નુરત તિનુ સંગ રહાવત, પરમાત્મ પિયુ આગી;
તે સાધુ નિજ સંત યોગિજન, વૈરાગી ને વિતરાગી. ૪

ચોસરા. ૧૬

અભિજીત અરસ શિખર બીચ કહાવત, ભમર ગુંજ ગુફાઇ
ગરજત ઘોરઘન ચલીત દાંમની, અમિત બુંદ જડ છાઇ.

પુષ્પ સહેજ જહાં પરમ તખતપર, પ્રણવ હંસપતિસાંઇયાં
પ્રાણપુરૂષ જહાં ચમર ઢોળાવત,સોહંગ સહિત સમદઇયાં

ઇંગળા પિંગળા સુરત ઉલટ સ્વર, ત્રિવેણી ઘાટ પટ દેઇ;
ચંદ સુરજ સહિતમ તહાં સંજમ, સૂક્ષ્મણા સંઘ સન્યેઈ.

સજ્જન સમાજ સમેટ સુન્ય ઘર, રહેત યોગિ પળ લાગી;
તે સાધુ નિજ સંત યોગિજન, વૈરાગી ને વિતરાગી. ૪

—: છપ્પા :—

છપ્પા. ૧

ૐ નમો નિરવાંણય જાંણય, તે સોહમ્ સમારા;
વિમલ વેશ વરજીત તિત, તે રહીત વિકારા. ૧
સ્વે ધેધા નહિ દ્વંદ, અખંડિત અવે અવિકાસા,
ઓસો ઉભયે અલખ, સલખ સમહંગ હમાસા. ૨
ઓહંગ સોહંગ દોલંગ, પાંગુત્યે ધર પાંગરવા;
તે આગ્યેનો અરથ, ગ્રંથ તે નહી ધે ધરવા. ૩
નહિ ધે ધરવા ગ્રંથ, વ્રંત જહાં સ્રંત સમાવા;
પહોચે નહિ દ્રષ્ટાંત, સર્વ તે વ્યક્ત વિભાવા. ૪

છપ્પા. ૨

તાદિનકી કહુ સોય, કોય જાદિન નહી હુતા;
હું નહી તું નહી તેહ દેહ, નહિ સુરીનર શ્રોતા. ૧
શબ્દ નહિ સપ્રશ રૂપ, રસ નાંહી ગંધ;
નહિ નહિ કોઈ નિરવાંણય, હુતા તબ અંધાધુંધ. ૨
બિનુ કારણુ અનુકરમ, કરમ ન્હેઃ કરમ સદા સહી;
પેચ પુરાંણો પ્રાય તાય, પરસન પ્રિછંન નહી. ૩
નહી પરસન પ્રિછંન, વિનતિ કહો કહેને કહી;
કહે કોઇ સત્ કુવેર, તહા દીન કહો કયંમ લહી. ૪

છપ્પા. ૩

એ સંશે સુધ હોય, સુણતાં જા ઘટ જીવ ગતી;
લહે ન અંસ અનાધ, મહાદ થાપે નહી લઘુમતી. ૧
જે અનુકરમે જક્ત વ્યક્ત, તે ભયો વિલાસા;
તાકી વરતે વ્રત સુરત, નહિ સુધ્ય પરકાસા. ૨

—: ચરકીડા પદ. :—

પદ-૧ (રાગ—સારંગ દેશી.)

સુણ સાહેલી ચરકીડો તેરોરે, રૂણ ઝુણ બોલે;
કાંતે સ્થિર થઇ, શું કરવાને કાજે ઘેર ઘેર ડોલે. ટેક—

મેરૂડંડ મોભ સ્થિર થાંભલીયો,
નાભિ કમળ ચક્ર દશ દામણીયો,
વિના વસ્તુ વેઝણ બ્રહ્મમાયે ઘડીયો. સુણ સાહેલી. ૧

સ્વાસા ચેતન કેરી મધ્ય માળ ફરે,
નાશા તોરણીયાં બીચ નરત કરે,
ઝીણાં કરણ ચમરખાં શબ્દ ગ્રહે. સુણ સાહેલી. ૨

તંતુ તરવેણી માંહી ત્રાક ફરે,
પુણી પ્રેમતણી લેઇ પરશ કરે,
ટાળી દ્વૈત તણો એકતાર કરે. સુણ સાહેલી. ૩

મન કરલ કટી કરમે કરને,
તૂટે તાર નહિ સુરતા ધરને,
ગુરૂ જ્ઞાન ઉજન સુતર ફરને. સુણ સાહેલી. ૪

તમે સંભારજો નરને નારી,
એ ચરકા તણી સમઝણ સારી,
સત્ કુવેર જાણે કોઈ કંત વારી. સુણ સાહેલી. ૫

07:39

ગંગા સમંદરમાં જાય, ત્યારે એક રૂપે થાય;
તેમાં નર ને નારી નહાય, તેનો મોટો છે મહિમાય. આવો૦
આસન પદ્મ તો બંધાય, સોહં જાપને જપાય;
ત્યારે સિદ્ધ કારજ થાય, ત્રિકુટી ધ્યાનમાં દેખાય. આવો૦
તૃષ્ણા તરત તૂટી જાય, આતમરૂપ તો ઓળખાય;
તે તો જીવનો શિવ થાય, એને ગુરુ ગણુપત ગાય. આવો૦

પદ ૧૪૮

(અનિરુદ્ધજીની ઘોડલી-એ રાગ)

જય જય અકળ ગતિ અવિનાશ, આરાધું છું આપને;
મારા ઉરમાં તમારો આધાર, જપું તારા જાપને. (ટેક)
દેવ, દાનવ ને માનવી રે, કોઈ ન પામે પાર;
બ્રહ્મા વેદ લહે નહિ રે, ત્યારે બીજાના શા ભાર? જપું૦
પિંડ બ્રહ્માંડ પેદા કર્યું રે, જુક્તિ એની જણાય;
ક્યાંથી આવ્યું ને ક્યાં જશે રે, તેની કિંમત કોઈથી ન થાય. જપું૦
ઉડુગણ અદકા શોભતા રે, આકાશ માંહી અપાર;
સોમ સૂરજ સંસારમાં રે, એ ઊગ્યાથી જ ટળે અંધાર. જપું૦
પૃથ્વી, પાણી, પવન કીધાં, અગ્નિ ને આકાશ;
જડ ચૈતન્ય છે જેટલાં રે, તેમાં વિશ્વપતિ તવ વાસ. જપું૦
અદ્ભુત સામર્થ્ય આપમાં રે, વેદ કહે છે વિચાર;
ભાવિક ભક્ત જે તમ તણા રે, તે સમજે તમારો સાર. જપું૦
પવનરૂપી દોરીએ રે, પકડ્યો છે સંસાર;
પલકમાં પેદા કરો રે, વળી ક્ષણમાં કરો સંહાર. જપું૦
અગણિત ઇંડ ઉપજાવિયાં રે, બાંધી રીત રસાળ;
ગણુપત ગોવિંદ ઘટ વિષે રે, તેને કોપી શકે નહિ કાળ.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

પદ ૧૨

સતગુરુ મળિયા એના સંશય ટળિયા, મારી ભે-ભરમણા ભાગી;
જિયો રામ, ભે-ભરમણા ભાગી જી. (ટેક)
જ્ઞાન ગબરુ મેં તો કંઈ નહિ જાણ્યુ,
મારી સુરતા સાહેબ શું રે લાગી;
જિયો રામ, સુરતા સાહેબ શું રે લાગી જી. જિયો૦
નાભિકમલથી નાવ ચલત હે, ઝળહળ જ્યોતું એ જાગી. જિયો૦
શૂરા નર તો સન્મુખ ચાલે, કાયર જાશે ભાગી. જિયો૦
બીજડી બંદૂકડી ને પ્રેમપલીતો, અમને જ્ઞાનગલોલી લાગી. જિયો૦
દાસ જીવણ સંતો ભીમ કેરે ચરણે, સંત મળ્યા સુહાગી. જિયો૦

૪૯ : જેઠીરામ

પદ ૧

મન તું કાયકું કરે કલ્પના,
જીવ તું કાયકું કરે કલ્પના, જગ જાન લેને સ્વપ્ના. (ટેક)
એક અકબર બડા સિયાના, ગત અવગત કબહુ ન જાના;
સવા લક્ષકી સોડ બનાઈ, હીરા માણેક રતન જડાઈ,
ગયા નંગા મિલ્યા ન વાકું ખપના. જગ જાન૦
દશ મસ્તક વીસ ભુજા થી, કુંભકરણ સરખા ભાઈ;
સાત સાગર બીચ વમે બંકા, રાવણ છોડ ચલા ગઢ લંકા;
તોહું મન સમજ્યા નહીં અપના. જગ જાન૦
જાકું અરબ ખરબ દ્રવ્ય હોતા, સુખસેજ પલંગ પર સોતા;
દમડી પર દમડી જોડી, વાંકું સંગ ન ચાલી એક કોડી;
પડા રણમેં અગન બીચ તપના. જગ જાન૦
માત પિતા બંધુ સુત દારા, સબ દેખન માત્ર વહેવારા;
યહ જૂઠી બાજી જાની, સત્યરૂપ રામ પહિચાની;
જેઠીરામ કહે હરિ હરિ જપના. જગ જાન૦

૫૦ : જેસલ

પદ ૧

પાપ તારાં પ્રકાશ જાડેજા, ધર્મ તારો સંભાળ રે;
તારી બેડલીને બૂડવા નહિ દઉં, જાડેજા રે તોરલ કહે છે જી. (ટેક)

સોરઠા

શિષ્ય કહે ગુરુરાય, કથા એક મુજને કહો;
સુણતાં સંશય જાય, મંન ડગે નહિ માહરૂં. ૧
દેહ આત્માનો વાદ, પ્રથમ કહો કોણે કર્યો;
તજી વેદમરજાદ, પંથ ચલાવ્યો પામરે. ૨
સુણિ બોલ્યા ગુરુરાય, પૂછ્યું પ્રશ્ન અતિ ભલું;
સરવેનું હિત થાય, સમજી વળે સુમારગે. ૩

દોહા

ઉપનિષદ્ છાંદોગ્યમાં, છે અષ્ટમ અધ્યાય;
વાત લખી છે તે વિષે, સુણતાં સંશય જાય. ૧
ઇંદ્ર વિરોચન બે જણા, મહામોટા છે રાય;
બળ બુદ્ધિ ને તેજ ગુણ, સહુથી શ્રેષ્ઠ ગણાય. ૨

ચોપાઈ ત્રિતાલ

ઇંદ્ર દેવનો અધિપતિ જેમ, વિરોચન દાનવનો તેમ;
સહુ વિદ્યા ને કળાઓ જેહ, બહુ જાણતા બે જણ તેહ. ૧
એક દિવસ દાનવ ને દેવ, બ્રહ્મલોકે ગયા તતખેવ;
બ્રહ્મલોક છે પરમ ઉદાર, સુખ શોભાતણો નહિ પાર. ૨
શિશ વૈરાટ કેરૂં છે જ્યાંય, બ્રહ્મલોક કહ્યો છે ત્યાંય;
કોટિ યોજનમાં વિસ્તાર, બ્રહ્મદેવ રહે છે તે ઠાર. ૩

દોહા

બ્રહ્મચર્ય દૃઢ જેહને, પ્રણવ ઉપાસક હોય;
બ્રહ્મલોકમાં જાય છે, એવા યોગી કોય. ૧
પ્રાણ સૂષમણા નાડીએ, બ્રહ્મરંધ્ર ભેદાય;
અર્ચિરાદિક મારગે, બ્રહ્મલોકમાં જાય. ૨

છપ્પા

ચક્રવર્તી હોય રાજ, ભોગવે આનંદ જેવો;
નર ગાંધર્વો માંહ્ય, સોગણો સમજી લેવો.
તેથી દેવ ગાંધર્વ, સોગણો આનંદ લે છે;

ભજન ૩

જગમગ જગમગ જ્યોત જલત હે, નિરખત વરસત નૂરારેજી;
બ્રહ્મજ્ઞાન કોઈ ભેદુલારે ઝીલે, આતો દેશ હમારા બહુ દૂરારેજી;
નવ તીન પાંચ પચીશ પ્રકૃતિ, જુદી કીધા મેંતો જુડારેજી;
નિરવૃત્તીનાં નિશાન ચઢાયાં, રણુ બોલે રણતૂરારેજી. ૨
અગમ ધામ ઝીણા અધર મારગ, પગ માંડત કોઇ પૂરારેજી;
ભ્રમણામાં નર કંઇક ભીડાઈ રહ્યા, ઓછા પાત્ર અધૂરારેજી; ૩
વંક નાળરા વસમારે ઘાટા, ત્યાં ચઢિ ગયા સંત શૂરારેજી;
વંક નાળમેં વરસે વરસારા, નિરમળ નૂરી નિરધારારેજી. ૪
એણે પીયાલે મારે અનુભવ જાગ્યા, ઉગ્યા અપરમ પારારેજી;
મન મેવાશીને મહીપતી રાજા, જુડી કીધા મેંતો ભારારેજી. ૫
કાળકું તો માર હઠાયા, હુવા અનુભવ અજવારારેજી;
ભારથી રેવાને ગુરૂ મનોહર મળીયા, સુનમાં ઝલકે તારારેજી;

ભજન ૧

આજ અમે ગયાતાં રામ સભામાં, પોસલીએ રસ પીધોરે;
પીતાંરે પીતાં હુંતો પુરણ ધરાણી, મારા ગુરૂજી પ્યાલો દીધોરે. ૧
પહેલો પીયાલો મારે રોમે રોમ વાપ્યો, બીજે પીઆલે થઇ ઘેલીરે;
ત્રીજે પીયાલે મારી શુધ બુધ ભૂલી, રડી પડી પીતાં પહેલીરે. આ. ૨
જાતાં શુંરે અમો જઇને ભરાણું, વળતાં નવ વળાયરે;
સુના મંદિરમાં શ્વાનજ પેઠું, સુખ ભાવે તેમ ખાયરે. આજ. ૩
કહીએ છે પણ કહ્યું નવ માને, જેને વીતી હોય તે જાણેરે;
સુઇ જીવી જોવાને કાજે, હુંતો ઠરીને બેઠી ઠેકાણેરે. આજ. ૪
રામ સભામાં જે કોઇ આવે, કરે તીરથ ઘર બાળીરે;
ભૂતનાથ ચરણે ભણેરે અખેઓ; મારા પ્રભુજીની ભક્તિ ભારીરે. આ.

ભજન ૧ ધોળ.

સોહંગ રંગ રાચે કોઈ સંત જના, સંત જનારે સાધુજના સો. ૧
જ્યાં એક શુંદકી રચી રચના, સબ જીવ જંત મિલ ભયે અપના સો.
જ્યાં ઈંગલા પીંગલા તાણા તણે, ત્યાં કોટી ભાણુ રવિ ઉદીત ઘણા.
જ્યાં વંક નાળ અમરત ઝરના, કોઇ પીવત સંત મસ્ત રહેના. સો.૪
જ્યાં આદ્ય પુરૂષ નિરવાણ બન્યા, વાકી સંગે સોહાગણ રહે લગના.
જ્યાં ગરજ કબીર ચઢી ગગના, વાકી આવાગમ ભયી સુપના.સો. ૬

ભજન ૧–(રાગ ધીરાના પદનો.)

તમે ઓરા હરી આવોરે, આગળ મારી નજરો ભણી;
નિશ્ચે કરી નિરખુંરે, શોભા જેની સરસ બણી. ટેક.
અરા સમ છે મારારે વાલા, અળગા મતિ તમે જાવ;
તમ વિના રંગીલા ઈશ્વર, કોણ શું લીજીએ લાહાવ.
વિઠુલવર મેહનીરે, વાહાલા મુને દાઝ ઘણી. તમે ઓરા. ૧
કામને ધામ વાલા મુજને હવે, ગમતું નથીરે લગાર;
વેહેવારીઆ તને વાર શી લાગે, નિંદા કરે છે નરનાર;
આંખડલીમાં કળ નારે, ખટકે મુને કબુદ્ધિ તણી. તમે ઓરા. ૨
સાસુ ને સસરો દીયર નણદોઇ, ઘર વર છેલ બટાઉ;
પાંચે મળીને પીડે છે મુજને, કજીઓ કરે છે સઉ,
છુટયા નહિ છુટોરે, તમો સાથે આવી બની. તમે. ૩
અબળાની ઉપર અણુજો કરીને, ભેઠો ભુધર રાય;
આ તક છે મારે ઓછંગ લેવાની, સનમુખ ભજન થાય.
ધૂર્ત વિદ્યા મેલોરે, સુંદરવર શ્યામ ધણી. તમે. ૪
સામું જુઓ સામું જુઓ, જાવા નહી દેઉ જરૂર;
રવિદાસ તો રસબસ ભીના, હરખે મળ્યા છે હજુર,
પ્રિત્યો પ્રગટ થઇ છેરે, સઘળે વાલા વાત સુણી. તમે. ૫

સમાપ્ત.

ભજન : ૮

રણઝણ રણઝણ વાગે તંબૂરો વાગે બે તારો,

ઓહમ્ સોહમ્ તાર બાંધ્યા વગાડનારો છેલછબીલો રે ... રણઝણ૦

હાડમાંસનો બન્યો તંબૂરો; ચામડાથી મઢિયો સારો,

દશ ખીલીઓ સુંદર શોભે; બે ભમરીનો આ તંબૂરો રે ... રણઝણ૦

આનો કારીગર કળ્યામાં ન આવે; અણઘડ સાહેબ મઢનારો,

આ તંબૂરામાં ગુપ્ત રહ્યો છે તંબૂરો બોલનહારો રે ... રણઝણ૦

તેના વડે મન મંજીરો વાગે મરજી માફક કરનારો,

મંજીરાને જે વગાડી જાણે તે સત સંગતમાં રહેનારો રે ... રણઝણ૦

તન તંબૂરે મન મંજીરે; ક્યાંથી થયો કોણ કરનારો,

એ કર્તા ને ઓળખી કાઢે તેને મળે સરજન હારો રે ... રણઝણ૦

કહે 'સોમદાસ' મુક્તાનંદ ચરણે; તન તંબૂરે નથી તારે,

હું કર્તા અહં છોડે તો ભવસાગર તું તરનારો રે ... રણઝણ૦

-સોમદાસ

સમજૂતી :

પ્રસ્તુત રચનામાં મનુષ્ય શરીરરૂપી તંબૂરાની વાત કરવામાં આવી છે. તંબૂરો એક તંતુવાદ્ય છે તુંબડો અને તેમાંથી વાંસનો દંડો પસાર કરી તેના પર તાર લંબાવીને બનાવેલું આ વાદ્ય છે. તારને તંગ ખેંચી આંગળી રણકાવી રણઝણ ધ્વનિ પ્રગટાવી શકાય છે.

કુદરત બડા સાહેબ ચિસ્તીના ભજન.

ભજન ૧.

પાવ પલકમે કરે નિહાલ, સમરથ હે
મારા સતગુરૂ દીન દયાલ, સમરથ હે ટેક
જલમા ડુબતા પશ્ચિમ દેશ આવે, જાયે બક નાલથી પાર,
ત્રીગુણ તાપ વ્યાપે નહી રે, નીકલા ભવસે બહાર મારા ૧
ઇંગલા પીંગલા સુખમણારે, ભલો બન્યો પરિવાર,
જાપ અજપા તુહી તુહી બોલેરે, નાભી કમળ ઘર બારરે
મારા સતગુરૂ ૨
ધમણ ધમધમે શીશ કંપેરે, મેરૂ ડગમગ થાય
એરે હંસા ચેતન ભયોરે, અગમ દેશમે જાય
મારા સતગુરૂ ૩

નુરી ઘર અવીનાસકારે, કીંગરા ઝલકા ખાય,
દાસ બડા કહે સુનો ભાઇ ગ્યાની, તેજમે તેજ સમાય
મારા સતગુરૂ ૪

ગરબો. ૩

સખી પોતાની પરતીજ, પહેલી કરીયે રે,
સખી સ્વપ્ને તજીયે ભોગ, જીવત મરીયે રે ટેક
સખી પ્રેમે આવે પાખ, ઉડી જઇએ
સખી અગમ ઘરની વાત, અમો કહીએ રે ૧
સખી નાભી કમળ ઘર મ્હાય, પ્રેમે ઉછાળોરે,
સખી ચંદો ઝળકે મ્હાય, હંસ હમારો રે ૨
સખી નાભીથી નીચો દેશ, આગળ ચાલો રે,
સખી મછરીયા[૧] તે મ્હાય, તેને ઝાલો રે સખી ૩
સખી વીંછુનો વિકાર, લાગે કારી રે,
સખી નાથ્યો કાળી નાગ, નીશાનો મારી રે સખી ૪
સખી સાત દીપની મ્હાય, અગ્ની લાગે રે,
સખી આગળનો અવતાર, સરવે જાગે રે સખી ૫
સખી ઇંગલા પીંગલા સાર, સુખમણુ નારી રે,
સખી મન પંખીને બ્હાર, જાય કાઢી રે સખી ૬
સખી ચંદ્ર સુરજથી નુર, ઉતરે ન્યારૂ રે
સખી તરવેણીની મ્હાય, લાગે પ્યારૂ રે સખી ૭
સખી અભય લીધો ગઢ, લાગી દોરી રે,
સખી સુરત સમેટી જાય, વરભંડ ફોડી રે સખી ૮

---

૧ મછરીઆ મખીઓ મછર માખો કરડનાર.

18:30

દાસ નબીને ગુરૂ અભગમ મળીઆ, શાહ કાયમદીન
ચિસ્તી પીર,
મુજ રકની ભીડ ભાગો, આવો હમારે મદીર તુમારી ૩

ભજન ૨.

રાગ કાફી

(ધીરા ભગતનો રાહ)

મરમની માળા રે, બાઇ મારા ઘટમા ફરી,
રૂવે રૂવે બોલેરે, તુહી સોહમ સોહમ હરી, રે જી ટેક.
મરમના મણકા દમની દોરડી, જપુ અજપા જાપ,
બકનાળમા સુરત નીહાળી, મટી ગયા ત્રણે તાપ,
ગગા ને જમનારે, નીરમળ સબળ ભરી મરમની ૧
તરવેણી અને ઇગલા પીગલા, દીસે ચદ્ર અને સુર,
ચાર કોસ ચડ દેખા ગગનમે, વાજે અનહદ તુર,
બ્રહ્મને લોભાણોરે, નીશાને જઇ નજર ઠરી મરમની ૨
અલેખ પુરૂષ સત અવીનાશી, તે તો કળ્યો નવ જાય,
ગુરૂ અભરામે મહેર કરી, તેના દાસ નબી ગુણ ગાય,
પાણીના સગ રે, લુણ જોને ગયુરે ગળી મરમની ૩

18:30

ભજન ૭.

રાગ કાફી

(ધીરા ભગતનો રાહ)

સત પુરાની રે, સુન માહી ધુન લાગી,
નીરજન નીહાળ્યો રે, ભુલ સર્વ ભાગી, રે જી ટેક
લક્ષણવતી નાર સોહાગી, તે તો રહી નીરાધાર,
ભરમમા ભૂલ્યા સૌ વહી ગયુ, પામ્યા નહી કોઇ પાર,
સતગુરૂ મહેરે રે, સુરતા તો સહેજે જાગી સત ૧
નીરમલ નામ નીરજન જેવુ, ધર મન ધરીયુ ધ્યાન,
સુખમણ નાડી કરે તુહી તુહી, તો છુટે પ્રેમના બાણ,
પરિબ્રહ્મને જોતા રે, નવધા તો ત્યા ત્યાગી સત ૨
લીગ વાસના દેહમા લાગી, જોતા સુદર શામ,
જીવ દશાની આટી મટી, હવે થયુ શીવ નામ,
દાસ નબી કહે છે રે, ચરણે ભીક્ષા માગી સત ૩

જીવણ મસ્તાનનાં ભજન.

ભજન ૧.

કાનુડો કામણગારો રે સાહેલી એ તો—એ રાગ
ચાલોને એની જઇએ રે એકલબારે, પીરનો લાવો લઇએ રે,
એકલબારે

સાખી

અભરામ કહે સતગુરૂ ઉસે કહીયે, ઉલટેકો સુલટા લે જાય,
અસખ્ય જુગકી રાહ હો પલમે દે પહોચાય ૧
અભરામ કહે બાહેર કે ભેખસે, હાથ કછુ નહી આવે
અભરામ સેવે સદગુરૂકો, તો દીદાર રબકા પાવે ૨
અભરામ દીદાર દેખા સાહેકા, મીટ ગઇ તૃષ્ણા આસ,
શાહ કાયમદીન ચીશ્તી પીર હમારે, વિનવે અભરામ દાસ

ભજન

રાગ કલયાણ

પરિબ્રહ્મ કે પારમ પારા, અકળ મુરત મે પાઇરે જી ટેક
ઇગલા પીગલા સુખમણા નારી, અનહદ પર વોહ
નાહીરે, જી
જાપ અજપા ત્રીવેણીસે, ન્યારા હે ગુસાઇરે, પરિબ્રહ્મ ૧
નુર તુર નહી જોત ઉજીયાલા, નીરાકાર વોહ નાહી રે જી
આગેકી ખુબી અજબ બની હે, સુરતકી રૂસનાઇરે પરિબ્રહ્મ ૨
રામ કૃષ્ણ નહી દસ અવતારા, નીરજન વોહ નાહીરે જી
ઉન પારમ કે પાર પારા, હે મુરત વોહ વાહીરે, પરીબ્રહ્મ ૩
ન વોહ આવે ન વોહ જાવે, ના ધરે અવતારારે જી,
જયુ કા ત્યુ રહે જથારથ, નીરજન સે ન્યારારે, પરિબ્રહ્મ ૪

18:35

ભજન

સુરતકા રે દીવાના, મેતો તેરી સુરતકા રે દીવાના,
સુન હે સાહેબ મેરબાના, મે તો તેરી સુરતકા રે દીવાના ટેક
બીન કર માલા જપો બીન જબારે, સુરતમે સુરત
ઠેરના હા, રે, હા- રે, સુરતમે,
દ્વાદશ બેલ રખું ઘર ભીતર, અબ ન છોડુ રે નીશાના
મેતો ૧
ઇંગલા ને પીંગલા નાર હમારીરે, ત્રીકુટી નેન નીશાના,
હા, રે, હા, રે, ત્રીકુટી નેન,
વરભંડ ફોડી ગઇતી મેદાનમે રે, વહા કીયાહે ઠીકાના
મેતો ૨
અપરમપારકા પાર ન પાવે, જાવે કોઇ મરદાના હા,
રે, હા, રે, જાવે કોઇ,

મુવે કે પહેલે મરજાની મનવારે, તબ તુને યાર
પીછાના મેતો ૩
જલહલ જલહલ જોત ઝલકતીરે, અનહદ બાજા બજાના,
હા, રે, હા, રે, અનહદ,
કહે બડા તુમ સુનીયોરે ગ્યાની, તેજમે તેજ સમાના
મેતો ૪

ભજન.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:36

ચાર ખુટ ઓર સાત દ્વીપમે, આપહીં ખેલ ખીલાવે રે,
બાહેર ભીતર હરદમ નીરખુ, અંગસે અંગ મીલાવે રે
સમરન ૭
દરસન દેખ સુરત ઘર આઇ, સાચા મત કહાવે રે
દાસ નબી અટલ દરસનમે, નુરમે નુર સમાવે રે સમરન ૮

ભજન.

તેરી સુન ગગનમે ફેરી સતો ભાઇ, સુરતે જુવોને હેરી ટેક
પરથમ મૂળ કમળથી ચાલે, બંકનાલ ગઢ ઘેરી રે જી
હોત ગરજના મેરૂ ગરજે, ભૂલી શુદ્ધ તનકેરી સતો ભાઇ ૧
ઇંગલા પીંગલા સુખમણુ નાડી, ફીરે શુકલ બહોતેરીરે,
જીરે જી,
મહા સુનમે બાગ્મ બમ્મત હે, પાયા નીરંજન ડેરી
સતો ભાઇ ૨
વોહ ડેરીમે આતમ ખેલે, ઝલકે નુર ચોફેરી રે જી રે જી,
નીરાકારકી નીરખી સુરત, ખબર પડી તન કેરી સતો ભાઇ ૩
અલેક તો અગમ જઇ મહાલે, મીટ ગઇ નેન અંધેરીરે,
જીરેજી,
દાસ નબીકો દરસ બતાયો, નીરખે સાજ સવેરી
સતો ભાઇ ૪

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

ભજન.

સબ છોડ તન તલબકુ, સત ભજના એક રબકુ ટેક.
નાભી કમલસે નેહા લગા કર, પકડોને સોહમ શબદકું,
રે જી રે જી,
તરવેણીસે ચડે ચાર કોસ, લેઇ સતગુરૂના શબદકુ
સતો ભાઇ સત ભજના ૧
ઇ ગલા પી ગલા સુખમણુ નાડી, ચદે સુરજ કે ઘરકુ રે,
જી રે જી,
જલહલ જોત જલે જલ ભીંતર, ધન મુરશદ કે શબદકુ
સતો ભાઇ સત ભજના ૨
નવ ખડમે નેહા લગા કર, ભુલ જાઓ એહી ઘરકું રે
જી રે જી,
સાત દ્વીપસે બાધો સજના, તબ પાવે મતલબકુ
સતો ભાઇ સત ભજના ૩
સતગુરૂ સાહેબ સાચે પીર, મારે જીવ જતનકુ રે
જી રે જી'
દાસ નબી એમ કહે પોકારી, સહેજ શબદ આ તનકુ
સતો ભાઇ સત ભજના. ૪

18:44

કલામ.

(તમે રહો આ ઘરનીરે મચ, મારા વણજારે નહી જવા
દઉ બારણે–એ રાગ)

મારા ઘટના ઉઘડીઆ દુવાર, મે તો કીધારે અડસઠ
તીરથ આગણે–ટેક

લોકો દોડા દોડી કાશી જાએ, રીઝાવે દેવળના દેવ,
અતર ઘટમા અલેખ* બીરાજે, એની કરી જાણે નહી સેવ,
મે તો કીધારે ૧

તપને વ્રતને હુ નહી જાણુ વેદ ન સમજુ લગાર,
ગુરૂએ મારે માર્ગ બતાવ્યો તેથી, ઉતરી ગઇ ભવ પાર,
મે તો કીધારે ૨

ઓહમ સોહમને જાપ અજાપો, પકડી એ તો મે ચાલ
નાભી કમળથી[1] એકદમ ઉપડી, પાર કરી બકનાલ[2]
મે તો કીધારે ૩

ધ્યાન ધરીને ખોલ્યુ અતર, જોયો નુરનો[3] ભડાર

---

* અલેખ—અલક્ષ્ય બ્રહ્મ

૧ નાભી કમલ—ડુટી પાસેનુ કમલના આકારનુ ચક્ર

૨ બકનાલ–વકનાળ–વાંકો માર્ગ સુષુમ્ણા કટીથી હૃદય તરફ થઇને પીઠ ભણી થઇને બ્રહ્મરધ્રે જાય છે તે રસ્તો

૩ નુર–તેજ પ્રકાશ

જોશી પુરાણીના સપને નહી આવે, એવો મે તો જોયો
કિરતાર મે તો કીધારે ૪

મગન થઇને બેઠી હુ મનમા, બીક રહીરે ન લગાર,
બાઇ રતનને પીર છે મોટા માથે, કાયમદીનનો આધાર,
મે તો કીધારે ૫

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:45

ગરબી ૭.

મને વાહાલો વિસભર નાથ, કહો કેમ વિસારૂ ટેક

સ કલ્પ વિકલ્પ નવ ખ ડમા, ઠાલુ નથી ક ઇ ઠામ,
જયા જોઉ ત્યા તુ હી તુ હી, મારે પડીયુ છે તારૂ
કામ કહો ૧

શ્વાસો શ્વાસ સ્મરણ કરૂ, જપુ અજપા[1] જાપ,
શરીરનો સાસો મટયો, મે તો આખે જોયો અવિનાશ કહો ૨

કામી માયા પ્રગટી, મોહ્યો સઉ સ સાર,
મહા જળમા સઉ પડયા, કોઇ વિરલો ઉતરે પાર કહો ૩

૧ અજપા–અજપા–સોહ ઉચ્ચારણનો જાપ

ખટ દર્શન[2] ખોળીને થાકયા, નજરે ના આવ્યો નાથ,
જેને કાજે જોગી જ ગલ વસ્યા તે હીરલો લાધ્યો
મારે હાથ કહો ૪

સુનમા જોત જળહળે, ઝળકે જોત અપાર,
અભરામ કહે નિશ્ચે જાણજો, મારી અધર છે તલવાર
કહો ૫

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:47

ભજન ૩

[મેરે ગુરૂને દીઆ બતાઇ, દલાલી મેરે લાલનકી એ ગાહ]

મેરે સતગુરૂને દીઓરે બતાઇ, અલેખ પીઆ માહી બસે ટેક
નાભી કમળમા નરત[1] કરે છે, બકનાલની[2] વચ્ચે,
સાધુ બ કનાલની વચ્ચે,
અરધ ઉરધ[4] વાટમાહે, ઉન મુની[5] ધ્યાન ધરે અલેખ ૧

૧ નરત—નૃત્ય ૨ બકનાળ-વંકનાળ—વાંકો રસ્તો ગુદાથી ઉંચે આગળ થઇ પીઠથી માથે જવાનો સુષુમ્ણાનો રસ્તો ૩ અરધ—અધસ—નીચેનો ૪ ઉરધ—ઉર્ધ્વ—ઉપરનો ૫ ઉનમુની—ઉન્મુની, યોગીની મન રહિત અવસ્થા

ઇગલા પીગલા સુખમણા, ઉલટી ચાલે ધસે, સાધુ
ઉલટી ચાલે ધસે
તરવેણીમા તાર જો લાગ્યો, ખીસાયો નાહી ખીસે—અલેખ ૨
ઘનન ઘનન નોબત વાજે, નુરતુર બરસે સાધુ નુરતુર બરસે,
મૈદાન ચોકમે ઝંડા ગાડા, કાલ વાકુ કીયુ રે કસે—અલેખ ૩
સુન સીખર પર સાહેબ બેઠે, દીદારહી દરસે, સાધુ દી દ
દાસ પુજો સતગુરૂ પરતાપે, નીત ઉઠી જોઇને હસે અલેખ ૪

ભજન. ૪

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:51

ભજન ૧૬.

(રાગ—પ્રભાત)

સહીરે સમાણીપણુ મે કરૂ, મુને મલીઓ મોરારી,
પુરણ બ્રહ્મ અખંડ છે, નહી નરને નારી—સહીરે ટેક
મુલ કમલ નીશ્ચે કરી, નીરખી જોયુ નીહાળી,
ત્રવેણી[1] ત્રિકુટીના[2] ધામમા, બેઠી આસન વાળી સહીરે ૧
સંવપ્ન જાગરત શુષુપ્તી તુરીયા નુર વરસે,
ઝગમગ જોત જલહલે, સાચા દીદાર દરશે સહીરે ૨
સપ્તદીપ નવ ખંડમાહી એક છે અંતરજામીરે, છે
પુજો કહે એ વર હુ વરી, મન ગમતોછે સ્વામી સહીરે ૩

ગરબો. ૧૪

તુ અલગો રહે અલબેલારે, ઓરો આવીશ ના,
તુ ના કર મુખડાનો ચાળોરે, નેન નચાવીશ ના ટેક
વાલા કેડો મેલની હમારો, તુ કાલો ને હુ ગોરી,
પેલા દુરજનીઆની ચોરીરે, ઓરો આવીશ ના, તુ અલ.
વાલા તુ નાનો ને હુ મોટી, વાલા તારી સંઘાતે પ્રીત ખોટી,
હુ તો નીત્ય ઉઠી મુખડુ જોતીરે, ઓરો આવીશ ના ૨

---

૧ ત્રવેણી—ત્રિવેણી ઇડા (ઇગના) પિગના ને સુષુમ્ણાને।
૨ ત્રિકુટિસ્થાન-સુષુમ્ણા ભૂમિ સગમ

120%
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:52

સાખી.

પંદર ભુવન વ્યાપી રહ્યો, અંતરજામી એક,
ધન પુંજો કહે ઘટમાં પીયુ વસે, એને નહી રૂપને રેખ

ભજન ૯૨

મેં તો વશ કીધો વનમાળીરે, આજ મારે દીવાળીરે બાઇ દીવાળી
મારા પરભુનુ મુખ જોયુ નીહાળીરે દીન દીન દીવાળીરે,
બાઇ દીવાળી ટેક
પરભુ આવીને મારે મંદીરે બેઠા, શોભા તે વરણી ના જાય,
ઇંગલા પીંગલા ચમર ઢોળે, સુખમણુ સેજ બીછાયરે આજ ૧
વીવેક આવીને ગાન કરે છે, નુરત સુરત કરે નાચ,
પાંચ પચીસને નઉતમ નારી, તેતો ઉભી મારા પરભુજીની
પાસરે, આજ મારે ૨
તાલ પખાવજ જંતર વાજે, સરનાઇ નાદ થાય ભેરી,
મરદંગ ઉપર નોબત વાગે, સત સુકરિત કરે ફેરીરે આજ ૩
ઝગમગ ઝગમગ જોતી ઝળકે, ફરતી ચોદસ વારી,
નુર તુરના પુવારા ઉડે, ત્યાં અનહદ તેજ અજવાળીરે આજ ૪
ઓહંમ સોહંમ શબ્દ જો ઉઠે, ખેણુ[1] ના ટુટેરે વાર,
રણુંકાર[2] રટણા રટે છે, અમરીત ઝરે અપારરે આજ ૫

---

૧ ખેણુ–ક્ષણુ ૨ રણુંકાર–અવાજ

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:53

અગમ નીગમની ગમ નહીં, તે મેં હ નજરે દીઠોરે આજ,
પુજાને પરભુએ અભેપદ દીધુ, મારા સરીઆ સઘળા
કાજરે આજ મારે ૬

ભજન. ૩૩

રાગ ધુમાલ

પ્રાણજીવન પીઆરોરે હોરી ખેલેહો, મેરે સતોરે,
સુન માહ સુન કેરી માહી, પ્રાણજીવન પીઆરેરો
હોરી ખેલેહો ટેક
પાચ પચીસ પીઆકી સગે, મીલી હે નઉતમ નાર,
એ ખેલ નીરતર ખેલે ખલકમા, તેના મરમનો જાણો
પાર, પ્રાણજીવન ૧
સુખમણ નાર સખ બજાવે ઉન મુની તાન મીલાય,
ઇગલા પીગલા નરત કરે છે, ત્યા ઝગમગ જોત જલાય
પ્રાણજીવન ૨
તીરકુટી તરવેણીના ઘાટમારે મોહન મોરલી વાય,
હરદમ નોબત અતર વાગેરે, સોહમ સોહમ થાય
પ્રાણજીવન ૬
ખેલ રચ્યો ચોગાનમારે, ત્યા ઉડે પ્રેમ ફુવાર,
પુજાનો સ્વામી હોરી ખેલેરે, ત્યા વરસે નુર ધુવાર
પ્રાણજીવન. ૪

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

મુનિવર મોટા મળે,
આ દુનિયા માંહી, મુનિવર મોટા મળે હોજી. (ટેક)
સંતો ભાઈ રે, દરશન કરતામાં દુઃખ ટળી જાયે;
ભાઈ દુઃખ ટળી જાયે તો, બોધથી પાપ બળે. આ દુનિયા૦
સંતો ભાઈ રે, આત્મદર્શી ને અખંડ-આનંદી;
ભાઈ અખંડ-આનંદી તો, પોતાનું બોલ્યું પળે. આ દુનિયા૦
સંતો ભાઈ રે, કામ, ક્રોધ, મોહ, મમતાને મારે;
ભાઈ મમતાને મારે તો ત્રિવિધ તાપ ટળે. આ દુનિયા૦
સંતો ભાઈ રે, સોહં સુરતા ને સેજ સમાધિ;
ભાઈ સેજ સમાધિ તો ભાવથી હરિમાં ભળે. આ દુનિયા૦
સંતો ભાઈ રે, ગણપતને ગુરુદેવે દયા કરી;
દેવે દયા કરી તો, તનનાં તે દુઃખ ટળે. આ દુનિયા૦

પદ ૩૦

કોઈ જન જોગ કરો, આ જુગમાં જનમી. (ટેક)
કોઈ જન જોગ કરો હોજી.
સંતો ભાઈ રે, યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ;
પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન ધરો : આ જુગમાં જનમી.
સંતો ભાઈ રે, પ્રથમ કુંડળીને કરીને પાંસરી;
ભાઈ કરીને પાંસરી ને શૂન્યની વાટે સરો : આ જુગમાં જનમી.
સંતો ભાઈ રે, નેતી ધોતી, ગજકરણી ને નોળી;
ગજકરણી ને નોળી તો, રૂદયાનો મેલ હરો : આ જુગમાં જનમી.
સંતો ભાઈ રે, દ્વાદશ મુદ્રાના દાખલા દેખો;
ભાઈ દાખલા દેખો તો, પરહરો કાળ પરો : આ જુગમાં જનમી.
સંતો ભાઈ રે, કહે ગણપત કળા જોગની જાણો;
ભાગ જોગણી જાણો, ઠેકાણે જઈને ઠરો : આ જુગમાં જનમી.

પંચવિષય થકી થયો અનુરાગી;
નિર્ગ્રંથ-નાદની નોબત વાગી,
તો પોતે દેખ્યો પરમાતમા રે.

ભ્રાંતિનો ભેદ ગયો સહુ ભાગી,
વીરહાક અનહદમાં રે વાગી;
લક્ષ હરિમા રહ્યા નિત્ય લાગી,
તો આપ ભળ્યો જઈ આપમાં રે.
બ્રહ્મ-અગ્નિમાં જેણે બીજ બાળ્યાં,
હરદમ તાર ઊઘડિયાં છે તાળાં;
ગણપતરામ જળ્યાં મોહ જાળાં,
તો ના'વે માયાના પાપમાં રે.

પદ ૯૧

શુદ્ધ જગ્યા કરી સુરતાને સાંધો, આસન પદ્મ કરી પગ બાંધો;
કામ ક્રોધ કેરો ટાળિયે વાંધો તો, નાસાગ્ર દૃષ્ટિને દેખિયે રે.
એકઠા પ્રાણ અપાનને કીજે, વ્યાન, ઉદાન, સમાનને લીજે;
દેહ આત્મા થકી જુદો ગણી જે, તો અહં બ્રહ્મ એમ ઉચારિયે રે.
નેત્ર મીંચી નિરમાન કરી જે, પ્રગટ અજપાનો જાપ જપી જે;
વંકનાળ કેરી વાટ વળી જે, તો દેવ રુદેમાંહી દેખિયે રે.
સહસ્ર પાંખડી તો સૂર્ય આકારે, તે મધ્યે ચોતરો મણિમય ધારે;
મૂરતિ મનોહર ચિહ્ન અઢારે, તો ધ્યાન કરીને ધારિયે રે.
નખશિખ નીરખીએ નિરમળ નેણે, વહાલપણું વૈરાગ્યને વેણે;
સુરતા સાંધો સદ્‌ગુરુજીને કહેણે, તો અખંડ પુરુષને આરાધિયે રે.
આતમરૂપ ત્યારે ઓળખાશે, એ મૂરતિમાંહી મન મળી જાશે;
ગણપત સોહંગ શ્વાસોશ્વાસે, તો સચરાચરમાં સંભારિયે રે.

પદ ૯૨

(ભજન-રાગ લાવણી)

શિષ્ય પૂછે છે સદ્‌ગુરુ રાયા, ભૂલ ભ્રાંત્ય ભાગો મારી;
આ રે જગત ઈશ્વરે ઉપાયું, પહેલો નર, પહેલી નારી, શિષ્ય૦

બીજ વૃક્ષ બેમાં કોણ આદિ? જીવ શિવમાં પહેલું કોણ કહાવે?
કર્મને વશ જીવ, જીવને વશ કર્મ, તેનો ભેદ કોઈ બતાવે. શિષ્ય૦

મંગળ પદ

પદ ૧

(રાગ - મંગળ)

મારા પ્રાણ જીવન આધાર, પરમગુરુ આપ છો;
ગુણી જ્ઞાન તણા રે ભંડાર, ગતિમાં અમાપ છો. ૧

ઘણી કરી કરુણા કિરતાર, દયાવંત દીલમાં;
જાણી અંશ પોતાનો છે વંશ, વિયોગી અખીલમાં. ૨

ગુરુ ગરીબ નિવાજ છો નાથ, અરસ થકી ઉતરી;
પુર્યો સારસાપુરીમાં વાસ, વેષ મનુષ્યા ધરી. ૩

કળા ખટદશ ષોડસ ચિન્હ, ધર્યાં દિવ્ય દેહમાં;
ઘન શ્યામ બદન ગતિવંત, ગગનવત્ જેહમાં. ૪

જ્ઞાન ભક્તિ વૈરાગની વેલ, વિસ્તારી આ વિશ્વમાં;
લેતા સુગંધ સોહાગી રહી શરણ, મોહી મૂર્તિ ભવ્યમાં. ૫

પ્રભુ અઢળક ઢળીયા છો આજ, અનાથના નાથ હો;
દેવા નિજ જનને મુક્ત રાજ, સુભટ સંત સાથ હો. ૬

કર્યું પૂણ્ય પરમારથ કામ, જાગૃત થવા સર્વને;
અહો ધન્ય શરણાંગત જેહ, ત્યજી મિથ્યા ગર્વને. ૭

આપ્યો અનુપ અનુભવાનંદ, કોહમ્ કિરતારનો;
મહા મસ્ત મલ્યો ઉપદેશ, સલંગ સૂત્ર તારનો. ૮

હરદમ જપતો અજંપા જાપ, સોહમ્ અસ્મી શમી;
રહુ આનંદ મંગળ રૂપ, કરુણા સિંધુમાં રમી. ૯

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

પદ ૪

કોહમ કર્તાનું ધ્યાન ધરીયે, સુરત નુરત એકતારે રે;
જડ ચૈતન્યનો યોગ જમાવ્યો, કુલ કૈવલ કિરતાર રે...ટેક

વિવિધ રિદ્ધિ ભરી બ્રહ્માંડે, વળી પિંડ પિંડ અણુંમાં રે;
શુદ્ધ સંકલ્પે સર્વ પ્રકાશી, અંશ પ્રેર્યા તનુતનુમાં રે.
કોહમ્ ૧

આત્મ જ્યોત પ્રકટી શૂન્ય શિખરે, પિંડ બ્રહ્માંડની મધ્યેરે;
વ્યાપક ચૈતન્ય બાહ્ય અંતરમાં, જડ તનું તત્ત્વ સંબંધ રે.
કોહમ્ ૨

અધર ચલાવ્યાં આકર્ષણથી, લોહ ચુંબકને ન્યાયે રે;
બ્રહ્મ માયાથી ત્રિગુણ પુતળાં, નચવ્યાં નિજ કર્તાયે રે.
કોહમ્ ૩

સુક્ષ્મ મહાદ પ્રાણ તંતુ પ્રસરી, રરંકાર રોમ રોમે રે;
ઈંગલા પિંગલા તત્ત્વ સંયોગી, સુક્ષ્મણા સુક્ષ્મ વહે વ્યોમે રે.
કોહમ્ ૪

સુક્ષ્મ પ્રણવને સંત સાધતા, અઢી આંગુલની હદમાં રે;
હદ બાંધી બેહદમાં વસતા, આપનું આપ સધ પદમાં રે.
કોહમ્ ૫

ઓમ્કાર ગાજે છે ધુન આપે, સોહમ્ કૈવલ શિર સ્વામિ રે;
હસ્તો હસ્તનું સાધન સાધે, સંત ગગનના ગામીરે.
કોહમ્ ૬

નિજ દૃષ્ટિમાં સૃષ્ટિ રાખી, કર્તા હર્તા અંતેરે;
બાલકૃષ્ણ ઉપજ્યું ત્યાં સમતાં, સત્ય કૈવલ કલ્પાંતે રે.
કોહમ્ ૭

સોરઠ પદ

પદ ૧

(રાગ - સોરઠ)

ઉંચા સ્વરે ધૂન હો રહીરે, વેદ સૂક્ષ્મ સુધાર;
નીચા સ્વરે અધો અર્ધથીરે, વેદ વદે છે ચારરે.
કાંહાંને. ૨

એવા નથી આ લોકમાંરે, નથી સ્વર્ગે સમાન;
પાતાળના પંનગીયા રે, રહ્યા નાદના મોહ્યાનરે.
કાંહાંને. ૩

બ્રહ્મનાદ ભર્યો ૐકારનોરે, ચતુરાનને વ્યાપ;
નાદની માંહે સર્વે સમ્યાંરે, સુણી શબ્દ અમાપરે.
કાંહાંને. ૪

સીંધુડો નાદ બ્રહ્માંડમાંરે, ચાલી રહ્યોરે સદાય;
નાદે મોહ્યા બ્રહ્મલોકનારે, મોહ્યું સ્વર્ગ તદાય રે.
કાંહાંને. ૫

વિધી વદન ઉચરી રહી રે, વેદ થયા શૂન્ય મૌન;
નાદ પરંત અટકી રહ્યારે, નેતિ કહી ઉનમુન રે.
કાંહાંને. ૬

ચંદા સૂરજ સ્થંભી રહ્યા રે, રહ્યા જેમ છે તેમ;
પવન ગતિ ચાલે નહિ રે, મોહ્યા નાદે શમદમરે.
કાંહાંને. ૭

વૃંદા તે વન મોહી રહ્યું રે, ખીલી ભાર અઢાર;
ત્રિવેણી પ્રવાહ તુટ્યારે, લઈ સાગર સુમાર રે.
કાંહાંને. ૮

નાદ સોહામણો સાંભળી રે, મોહી રહી વૃજનાર;
નાદ ઉપર નુરતે ચઢી રે, જોયા અધર સુધાર રે.
કાંહાંને. ૯

જીવડા ૩

પાંચ પચીસ માંહે બેઠાં હતાં તે, સર્વે મુઆં અફળાઈ;
ત્રણે જણાઓ તાણી રહ્યા પણ, પળ પહેલી ના ચેતઈ રે.

જીવડા ૪

ખેંચાતાણ્યમાં ખબર પડીકે, કોઈ મારૂં અહીં નઈ;
ગુણધારી ગભરાવા લાગ્યો, શે'થી બચું સહાય લઈ રે.

જીવડા ૫

ચતુર જણાંયે કરી ચતુરાઈ, ગાડી ઠીક ઠઠવાઈ;
ઓહંગ સોહંગ બેલ બાંધ્યા છે બળીયા, સુરતા દોરીયે સજઈ રે.

જીવડા ૬

અંશાત્મક સાક્ષીયે લીધી, અગમ માર્ગે ચલાઈ;
મુમુક્ષુ જન મહાપદમાં મહાલે, શુદ્ધ કૃતાર્થ થઈ રે.

જીવડા ૭

દુર્લભ મનુષ્યા તન ગાડીમાં, મલ્યા મુમુક્ષુ ભાઈ;
બાલકૃષ્ણ ચાલો ગુરૂગમ શેરીયે, સદાય છે સુખદાઈ રે.

જીવડા ૮

પદ ૪

તારૂં નાવડું કંઈ પેરે તારે, ઓ જીવડા બુડી મરીશ બહુ ભારે;
અહંપદ રૂપી ભાર અતોલ તું ક્યાં, ભરૂ વણ વિચારે રે. ટેક.

કર્મ સ્વરૂપી નાવમાં રે બેઠો, વરણ વિવેકને આરે;
હું ને મારા માન ગુમાનનો, ભાર વધ્યો વધારે રે.

તારૂં નાવડું ૧

મોહ સાગર વારપાર વિનાનો, ઉતરી જવું પેલી પારે;
મન ખેવટીયો મદે ભરાયો, મિથ્યા મત અહંકાર રે.

તારૂં નાવડું ૨

સાક્ષીની સન્મુખતા જાતાં, કરી વરણ ઈતરાઈ;
આત્મ અર્કનો કીરણ પ્રભાવતે, હું પદ રાહુએ છવાઈ રે.
જુઓને ૨

શ્રોત કે સ્માર્તક પક્ષમાં પેસી, ઉપલે તન ઠઠવાઈ;
સોહમ્ અજંપા માળા ત્યજી, ધારી રૂદ્રાક્ષ કે વૃંદાઈ રે.
જુઓને ૩

તત્ત્વ માયા ગુણ જ્યોતિની હદમાં, કરી રહ્યા ચતુરાઈ;
બેહદ અનહદ આત્મ હરિની, તેથી રહી ભિન્નતાઈ રે.
જુઓને ૪

તિવ્ર વૈરાગની ભસ્મ ભુલી, કરી કાષ્ટાદિક વિભુતાઈ;
એકાગ્રતા નિવૃત્યના નાસ્તિક, રહ્યા ત્રિપુંડ ઉર્ધ્વ સાહી રે.
જુઓને ૫

હરામ હિંગ ને લંપટ લસણ, વળી કબુદ્ધિ ક્ષ્ના પાઈ;
મત માઝમને મદ મદીરા પાઈ, દેખાવતા સ્વચ્છતાઈ રે.
જુઓને ૬

મોહ સાગરમાં મહાલી રહ્યા રે, તિર્થોદક બહુ નાહી;
ત્રિવેણી સંગમ સ્નાન સુચીનું, ભાન વિના ભ્રમાઈ રે.
જુઓને ૭

અંતઃકરણની વેદી વિના, બ્રહ્મ અગ્નિ જગતો નહિ;
કામક્રોધાદિક કાષ્ટ રાખીશું, બ્રહ્મ યજ્ઞ કરવાઈ રે.
જુઓને ૮

બ્રહ્મ યજ્ઞ કોઈ વિરલ કરશે, સદ્દગુરૂની ગમ પાઈ;
આદ્ય પુરૂષ આચાર્જીએ ચાલી, પ્રણવ ધુન ગગનાઈ રે.
જુઓને ૯

ગરબી પદ

પદ ૧

(રાગ - ગરબી)

બ્રહ્મરસ ભરીયોરે હો દરીયો, સચરાચર શૂન્યમાં વિસ્તરીયો. ૧
અન્યથા કર્તૃમથીરે હો ઉપન્યો, સંકલ્પમાં આદી બ્રહ્મ સર્જયો. ૨
કરૂણાસિંધુ મયરે હો લહેરી, વ્યષ્ટી કારણ વૃત્તિ પ્રેરી. ૩
તત્ત્વ સમૃદ્ધિનોરે હો સ્વામિ, અદ્વૈત બ્રહ્મ બન્યો બહુનામી. ૪
શ્રી હ્રીં શક્તિનો રે હો સંગી, અનુક્રમે બનીયો બહુ રંગી. ૫
બ્રહ્મ માયાનું રે હો જોડું, ભવ બિજક વિસ્તરીયું પ્રૌઢુ. ૬
પ્રણવ સ્વરૂપેરે પ્રસરાયો, ત્રિગુણ બળે ૐકાર ઉચરાયો. ૭
ઓહંગ સોહંગનીરે હો દોરી, પુરક કુંભક રેચકમાં જોડી. ૮
ચક્ર કમળમાંરે હો બંધાયો, અણુઅણુયે તનમય સંધાયો. ૯
વિષયવાસના રે હો વશવર્ત્યો, લક્ષ ચોરાસી તન પટ ધરતો. ૧૦
કોહમ્ કર્તાની રે હો ભુલ્યો, આવાગમન તે પહેલું ડુલ્યો. ૧૧
શુદ્ધ સ્વરૂપથી રે હો વિસરાયો, જીવભોગી માયાનો થાયો. ૧૨
જાણ માણ્ય જુક્તિ રે હો ઝાઝી, બ્રહ્મદશાની હાર્યો બાજી. ૧૩
પૂર્વ પ્રકાશિક રે હો ભાનુ, ઘુવડ ગતિએ રહ્યું તે છાનુ. ૧૪
અકળ વિભૂતિનો રે હો કર્તા, નિર્ગુણથી સગુણ ભવ ભરતા. ૧૫
કુલ કૈવલ છે રે હો બ્રહ્માંડે, તેમના અંશ વશીયા તન પિંડે. ૧૬
ઈંડ સૌ પિંડનો રે હો એકતારો, બ્રહ્મ સતંતર છે સંચારો. ૧૭
સોહમ્ વૃત્તિયે રે હો સુચવતા, કુલ કૈવલ નાટક નચવતા. ૧૮
આદ્ય મધ્ય અંતનો રે હો ખેલારી, **બાલકૃષ્ણ** કૈવલ ગતિ ન્યારી. ૧૯

પદ ૨

(રાગ - ફેર)

સુરતા ચાલીરે સોહમ્ પદમાં શમવા,
શમવા શમવા શમવા, સુરતા ચાલી સોહમ્...ટેક.
ભવસાગર બહુ લાગ્યો છે ખારો;
સુરતા કરતી અગમ વિચારો,
મુક્ત મેવાને જમવા. સુરતા ચાલી રે. ૧

મુલચક્રે ગણપતિ સમરીયા;
મેરૂડંડ સમેરૂં કરીયા,
પ્રાણ પ્રણવને દમવા. સુરતા ચાલી રે. ૨

નાભિ થકી નારાયણ જાગ્યા,
ઉલટ ક્રિયા કરવા લાગ્યા;
કુંડળી સીધી કરવા. સુરતા ચાલી રે. ૩

પ્રેરક પ્રાણ નાભીયે પહોંચ્યો;
ૐકાર ધ્વનિયે ચાલ્યો ઉંચો,
અવિગતમાં નિર્ગમવા. સુરતા ચાલી રે. ૪

મન ઈંદ્રિનો નિગ્રહ કરતી,
પાંચ પચીસ મૂકી પ્રવૃત્તિ;
નવ રહેતી કંઈ ભમવા. સુરતા ચાલી રે. ૫

રાજસ તામસને વશ કીધા,
સત્ત્વ ગુણને સંગે લીધા;
નિર્ગુણી ભેદ ભણવા. સુરતા ચાલી રે. ૬

રવિ શશીનો રથ સ્થંભાવ્યો,
ત્રિવેણીમાં તાર મીલાવ્યો;
અગ્ર અણીમાં રમવા. સુરતા ચાલી રે. ૭

સંગમમાં નિર્મળ જળ નહાઈ,
મનકર્મ વચની દોષ બહાઈ;
બ્રહ્મ ખુમારી ખમવા. સુરતા ચાલી રે. ૮

પ્રેમ પોષાકો અંગે ધાર્યા,
શુભ રેણીનાં કુમકુમ સાર્યા;
પરમ પુરૂષને ગમવા. સુરતા ચાલી રે. ૯

પ્રણવ વેગે પાંચે ભેદી,
ખટ ચક્રને નાખ્યાં ખેદી;
બંકનાળે વિચરવા. સુરતા ચાલી રે. ૧૦

નવે દ્વારને નાખ્યાં ભીડી,
શૂન્ય મંડળની ચઢતી સીડી,
સૂક્ષ્મ ધ્વનિને ધમવા. સુરતા ચાલી રે. ૧૧

પ્રણવ અરણવ નાદે શમીયો;
ૐકારની હદમાં રમીયો,
લાગ્યું અમિરસ ઝમવા. સુરતા ચાલી રે. ૧૨

વિદ્યુતવત્ ચાલી ગગનમાં,
ખોલ્યું અનહદ દ્વાર મગ્નમાં;
પરમ પ્રકાશે રમવા. સુરતા ચાલી રે. ૧૩

મહાદ્ સૂન્યમાં જોયા મોરારી,
અતિ આતુરતા અંતર ધારી;
લાગી પીયુને નમવા. સુરતા ચાલી રે. ૧૪

સદાકાલ છે શૂન્ય નિવાસી,
નહિ નારી કે નર વિલાસી;
સુરતા ત્યાં રહી શમવા. સુરતા ચાલી રે. ૧૫

સુરત બની સાક્ષીના જેવી,
સિંધુમાં બિંદુગત તેવી;
બાલકૃષ્ણ નહી અન્યવા. સુરતા ચાલી રે. ૧૬

પદ ૩

હરદમ જાપ જપીલે ઘટમાં,
ઘટમાં ઘટમાં ઘટમાં, હરદમ જાપ જપીલે ઘટમાં—ટેક.

કોટી જન્મની ટાળી કુટેવો;
કરો કર્તવ્ય ઉલટમાં. હરદમ જાપ. ૧

વાક વાણીનો વેગ વાળીને,
જપો અજંપા હઠમાં, હરદમ જાપ. ૨

ઈંગલા પીંગલા ને સુક્ષ્મણા,
નહાવું ત્રિવેણી તટમાં. હરદમ જાપ. ૩

આસન બાંધી સુરતા સાંધી,
ધ્યાન ધરો ત્રિકુટમાં. હરદમ જાપ. ૪

06:45

પદ ૩

હરદમ જાપ જપીલે ઘટમાં,
ઘટમાં ઘટમાં ઘટમાં, હરદમ જાપ જપીલે ઘટમાં–ટેક.

કોટી જન્મની ટાળી કુટેવો;
કરો કર્તવ્ય ઉલટમાં. હરદમ જાપ. ૧

વાક વાણીનો વેગ વાળીને,
જપો અજંપા હઠમાં, હરદમ જાપ. ૨

ઈંગલા પીંગલા ને સુક્ષમણા,
નહાવું ત્રિવેણી તટમાં. હરદમ જાપ. ૩

આસન બાંધી સુરતા સાંધી,
ધ્યાન ધરો ત્રિકુટમાં. હરદમ જાપ. ૪

શ્વાસો શ્વાસે સ્મરણ દોરી,
શમે ઉલટ સુલટમાં. હરદમ જાપ. ૫

પિંડ બ્રહ્માંડની મધ્યે સાક્ષી,
બેઠા સરોજ દ્વિષટમાં. હરદમ જાપ. ૬

પિંડ બ્રહ્માંડથી ન્યારા સ્વામિ,
કુલ કૈવલ છેવટમાં. હરદમ જાપ. ૭

બાલકૃષ્ણ ઉભયના યોગી;
ગુરુ કુવેર શૂન્ય મઠમાં. હરદમ જાપ. ૮

પદ ૪

થાળ ૩

ધન્ય ધન્ય રે પૂર્ણાનંદ, પ્રાણ જીવન મારા;
પુરૂષોત્તમ પૂરણબ્રહ્મ, શા ગુણ ગાવું પ્યારા. ૧

અકળગતિ પ્રભુ આપ, વિનયે શું ભાંખુ;
હું અલ્પ ગતિનો જીવ, મહદ્ કૃત્ય નહિ ઝાંખુ. ૨

છો પરમ વિભુતિવંત, સકલ જીવના કર્તા;
જેને જેવું જોઈએ જેમ, તેમ તેવું ભરતા. ૩

કે જલ જાતીના યોગ, ભોગ જલથી માણે;
સ્થૂલ જીવનો એ વહેવાર, સ્થૂલ સુખ પ્રમાણે. ૪

કે કીટ પશુ વિહંગને, તનવત ભોગ;
સર્વે ઇંદ્રિનો સાજ, મોજ સહિત યોગ. ૫

કે રચ્યો મનુષ્ય પ્રભાવ, પૂર્ણ મહેર અંતર ધરી;
રસના સુખ ઋતુ ફળ સાર, વિવેક વિચાર ભરી. ૬

એવી લક્ષ ચોરાસી જાત, જુગ જીવન કરતા;
માંહે ચૈતન ચિદા ભાસ, પ્રણવ રિદ્ધિ ભરતા. ૭

સોહમ્ વૃત્તિ સર્વજ્ઞ, સચરાચર રાખી;
ઘટ ઘટમાં પ્રેર્યા અંશ, સાહિત્યના સાક્ષી. ૮

કે તત્ત્વ ચાસમી લઈ, આ તનમાં અંશ રહે;
જ્યારે કરતા ઉલટ તમાય, સોહમ્ સન્મુખ વહે. ૯

એ ઉગ્ર વૃત્તિના અંશ, પરમ પદને પાવે;
બાકીના સામાન્ય જીવ, જયાં ત્યાંમાં જાવે. ૧૦

આ પરમ મોક્ષનો લક્ષ, પરમગુરૂથી લેશે;
છે શ્રીમત્ કુવેર સુખધામ, સાક્ષાત્કાર દેશે. ૧૧

છે ઈંગળાતો અભાવીક રે, પીંગળાને તો બનત નથી;
હોય સુક્ષ્મણા સાહેલી રે, તો સુખની મણામાં શી કમતી. ૬

જુઓ આવી સુક્ષ્મણા બેની રે, ચાલો જઈયે એ સંગે;
સખી એક બીજીને કહેતી રે, રહો મનમાં બહુ ઉમંગે. ૭

શ્રી પ્રભુજીનો પટ સહીને રે, ઝટ લઈને ઝાલી લેજો;
નટવરને નયણે નિરખી રે, કૃતાર્થ થઈ રહેજો. ૮

એ અખંડ પદના સુખમાં રે, સખી આપણ સર્વે રમશું;
સાગરમાં જેમ સરિતા રે, તેમ આપણ ત્યાં જઈ શમશું. ૯

હવે ભાગ્ય તણો નહિ પાર રે, કરુણાસાગરમાં મલીયાં;
હવે નારાયણની નજરે રે, દુઃખ દારિદ્ર સૌ ટળીયાં. ૧૦

હું તો અજરામર પદ પામી રે, શ્રીમત્ કુવેર ગુરુની મૂરતે;
બાલકૃષ્ણ એ પદ માટે રે, તનમન શુદ્ધ રહ્યો સૂરતે. ૧૧

પદ ૭

સખી કરો તત્પર તૈયારી રે, આનંદના તો દિન આવ્યા;
ધન્ય ધન્ય દિવસ ઘડી આજે રે, મોહનજી મનમાં ભાવ્યા. ૧

અંતરનો પ્રેમ જાણી રે, હરજી હરખે આવ્યા છે;
ઘણા ગુણવંતા ગીરધારી રે, સન્મૂખ સામૈયું લાવ્યા છે. ૨

સંગે સુંદીર સાજ સાહેલી રે, આપણ પણ તેવાં બનીયે;
શાન્તિ શીલ સંતોષ આભ્રણ રે, પંચરંગી તેતો ગણીયે. ૩

શુભ કરણી કુમકુમ ટીલડી રે, પ્રેમનાં કાજળ સાર્યાં છે;
સત્ય વૃતનાં ઘાટ ઘરેણાં રે, મન કર્મ વચને ધાર્યાં છે. ૪

सौन्दर्य लहरी में श्लोक ३६ से ४१ तक चक्रों का वर्णन करते हुए चक्रों का ऊपर से नीचे यह क्रम देते हैं—

(१) आज्ञा (२) विशुद्ध (३) हृदय (४) स्वाधिष्ठान (५) मणिपूर, एवं (६) मूलाधार।

अग्नि का स्थान होने से ही यहाँ स्वाधिष्ठान को मणिपूर से पहले लिया गया है।

स्वाधिष्ठान को अग्नि का स्थान इसलिये कहा गया है क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति जागने के बाद इसी चक्र में रहती है। आचार्य का यह मत संहिताओं तथा प्राचीन योग के ग्रन्थों पर आधारित है। वामकेश्वर तन्त्र में भी स्वाधिष्ठान को ही अग्नि का स्थान माना है—

पद्मासन गतः स्वस्थो गुदमाकुञ्चय साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः॥
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ॥

सम्भवतः स्वाधिष्ठान स्थित जल के अन्दर अग्नि होने से स्वाधिष्ठान को अग्नि का स्थान माना गया है। जल में स्थित यह अग्नि आज भौतिकी शास्त्र द्वारा भी प्रतिपादित है। जल को जब बर्फ के रूप में जमाया जाता है, तब यह अग्नि ऊष्मा के रूप में प्राप्त की जा सकती है और भौतिकी शास्त्र (Physics) के अनुसार यह गुप्त ऊष्मा (Latent Heat) कहलाती है। यही जल-स्थित अग्नि मणिपूर में विद्युत् के रूप में रहती है। स्वाधिष्ठान-स्थित जल मणिपूर में मेघों के रूप में रहता है। मणिपूर को मेघों का स्थान होने के कारण

राम शब्द की व्याख्या के आधाार पर विश्वातीत रूप में करने लगे । भारतीय समाज में दशरथी राम का स्वरूप सामाजिक और सांस्कृतिक धरातल पर लोक को विभाजित करता है। साहित्य विभाजन स्वीकार करके नहीं चलता। अनुभूति जोड़ने वाली चेतना ही साहित्य का विषय होती है। पाँनप दास ने परम सत्ता के इसी स्वरूप को अपनी साखियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

पाँनप ने ब्रह्म को घट–घट वासी कहा है, वह सर्वव्यापी है, अलख, अरूप है, शून्य सरोवर में रहने वाला है। वह अलख होते हुए भी दर्शन सापेक्ष है, उसके दर्शन के साथ सम्पूर्ण के दर्शन हो जाते हैं।

पूरण ब्रह्म समीप है, लखै न कोई ताहि।
भूले काजी पंडता, जनम अकारथ जाय।।[1]
पूरण ब्रह्म व्याप रह्यौ घट घट, सबै ठौर एक सारा।
पांनप कह सुणो भाई साधु, जो खोजै सो गुरू हमारा।।[2]
मूल बंध नाम कूं सोधो, और सुर्त आगम कूं ताणों।
कहै पांनप अलख अरूप कूं, सत गुंर मिल पहचाणें।।[3]
अलख अलख सब जग कहै, लख न सके कोई ताहि।
संत अलख कैसे कहै पांनप , जिन लख लीनौं मांहि।।[4]
हर दरसन कूं कोई अन चाहै, कर रहै मते घनेरे ।
सुन सरोवर अंतर पांनप, कोई बिरला संत बसेरे।।[5]

---

1. पाँनप वाणी, ब्रह्म के अंग को निरणै, साखी – 2
2. पाँनप वाणी, ब्रह्म के अंग को निरणै, साखी – 9
3. पाँनप वाणी, ब्रह्म के अंग को निरणै, साखी – 15
4. पाँनप वाणी, सुरमा के अंग को निरणै, साखी – 39
5. पाँनप वाणी, न्हाणै के अंग को निरणै, साखी – 4

(क) पाँनप और जीवन मोक्ष :–

जीवन मोक्ष को पाँनप मुक्ति की संज्ञा देते हैं। मुक्त के साथ बन्धन एक सापेक्ष रहता है। जीवन मोक्ष की अनुभूति के समय पाँनप की चेतना को सांसारिक बन्धनों में बंधा हुआ मनुष्य उनकी साधना का लक्ष्य है। वह इसी जीवन में आनन्द की अनुभूति करते हैं। इस आनन्द की अनुभूति के लिए वह सांसारिक विषयों से मुक्त जीवन को आवश्यक मानते हैं। मृत्यु उपरान्त मोक्ष पर कटाक्ष करते हुए वह जीवन मृत्यु अवधारणा की प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी जीवन मृत्यु की अवधारणा उनका जीवन मोक्ष है–

जीवत मरना मुक्त है, जो मर जानै कौय।
सुर्त संचरै अंतर पांनप, दरसत मुकता हौय।।[1]
मुर जीया हौय दरिया पेठै, साई मुक्ता लावै।
कहै पांनप छाया नर तन की, जीवतणा नहीं पावै।।[2]

सन्त कवि पाँनप जीवन मुक्ति के लिए हरि नाम को आवश्यक बताते हैं। उन्होंने अपने काव्य में बार–बार इसी तथ्य की प्रतिष्ठा की है –

राम रटन एक पल नहीं तजिए, पल पल मांहि अंतर मैं भजयै।
सुर्त लगै तो कारज होय, पांनप कहै मुक्त है सोय।।[3]
एक मुक्त हर चरणौं राचै, दूजी मुक्त कोई नांहि।
आठ पहर मन सुर्तलीन होय, ते जन मुक्त सभाई।।[4]

---

1. पाँनप वाणी, सूरमा के अंग को रिनणै, साखी – 24
2. पाँनप वाणी, सूरमा के अंग को निरणै, साखी –25
3. पाँनप वाणी, मुक्त के अंग को निरणै, साखी – 18
2. पाँनप वाणी, मुक्त के अंग को निरणै, साखी – 36

होजी ! म्हारा सतगुरु आप बरोबर युग में कोई नही।
वारिओ ! मुक्ति का दाता, वारिओं भक्तों का भीरू,
आप बरोबर युग में कोयनी ।टेर।।
होजी ! म्हारा सतगुरु सुमरण से सुधरे म्हारी आतमा,
होजी ! म्हारा सतगुरु दर्शन से दुख होवे दूर ।।१।।
होजी ! म्हारा सतगुरु पांच तत्वों ने लाया गहब से,
होजी ! म्हारा सतगुरु तिहुं गुण उपज्या हरि के मांय ।।२।।
होजी ! म्हारा सतगुरु बिना तोल्यो बिन ताकड़ी,
होजी ! म्हारा सतगुरु तोल्या श्वास–उश्वास।।३।।
होजी ! म्हारा सतगुरु तिरथ सब आशा करे,
होजी ! म्हारा सतगुरु जो कोई न्हावे म्हारे साथ।।४।।
होजी म्हारा सतगुरु 'नवलो' पल पल वीनवे,
होजी म्हारा सतगुरु तन,मन,धन कुरबान।।५।।

।। इति श्री ।।

इहूं सोवन सतगुरू फरमायो, सोवे कोई सन्त सुभागी।
रेण—दिवस दोनों वहां नाही, काल तणा भय नाहीं ।।टेर।।
सोवन विधि सतगुरु फरमाई, जाप अजपा मांही।
चार वेद फाड़ कर सो ऊ, गैब गुस्ट के वांही।।१ ।।
नव—व्याकरण फाड़ कर सो ऊं पुराण अठारह मांही।
षट—शास्त्र भया दिवाना, भणक पूगती नाहीं।।२ ।।
बावन अक्षर पूगे नाहीं, सूक्ष्म भेद के मांही।
जिस ठाकुर की तुम करों बड़ाई, फिकर पूगे वां नाहीं।।३ ।।
सेन बताई सतगुरु भेटिया, घर दूरबीन झुकाही।
'नवलो' कह सतगुरू के शरणे, सोहम्—निश्चय पाही।।४।।

।। इति श्री ।।

ऐसी विध सन्त सोवे कोई, जाके जन्म मरण भयनाई ।टेर।।
अलख उसीला में कछु नहीं व्यापे, सुख दुख लहरों दोई।
पांच ओर तीन पकड़ बश कीना, नींद तणो भय नाई।।१ ।।
धरण—गगन बिच पवन पकड़ के, सोहं साधना मांई।
प्रकृति पचीस उलट भई, वामें, तिमिर रति भय नाई।।२ ।।
लागी लगन मगन होय बैठा, चेतन पहरा तांई।
सतगुरु घर में अखण्ड उजाला, सुरत भजन के मांई।।३ ।।
पांचो मुदरा पहन कर सो ऊ, दशवे सुरता पजोई।
कह 'नवलो' जागृत धुन पाई, अब सोवण को नाई।।४।।

।। इति श्री ।।

जपले वीरा अटल धाम विसराम।
जाके नहीं नाम नहीं गाम।।टेर।।
तजदे क्रोध कामना तजदे, सीधो भजले राम।
भजन कियां भय नहीं व्यापे, इन भवसागर मॉय।।१।।
दिल बिच दर्श परस सतगुरू, को श्वास में शुद्धि संभाल।
बिन नैनों से दर्शन करले, भणक पड़े तहां भाल।।२।।
दुबध्या मेट हेर हजरत को, बिन जिव्हा गुण गाय।
सोहम शब्द अजपा साधो, उलट—पुलट उण मांय।।३।।
जाति न पांति रूप नहिं रेखा, अकल कला अनाम।
कह 'नवलो' ओर नहीं बोले, सहस्र कला तां धाम।।४।।

।इति श्री ।।

१३७

मैं विध धाऊं जिने कोई नहीं धावे।
जो धावे वो पाछो नहीं—आवे ।।टेर।।
श्वास उश्वास को कुण नर ध्यावे, ये सगमा नाभि में समावे।।१ ।।
बंक दिश जावे कुण दुख पावे, ये विधि तो मेरे दाय न आवे।।२ ।।
गिगनों रो ध्यान धरे नर गेहला, पिंड पड़िया गिगन में कुण रेहला।।३ ।।
सोवन शिखर दशवो हमने उपाया, ये रास्ता मेरे दया न आया।।४ ।।
मैं रास्ता बिन रहूं चलाया, कह 'नवलो' ब्रह्म गैब समाया।।५ ।।

।। इति श्री ।।

पारख सोहम् रहे, आपो आप थई।
और सब झूटारे, ब्रह्म तों भ्रम कई ।।टेर।।
ब्रह्म बन फिर अवतारिया, आवागमन रही।
बीज हुआ वृक्ष भयारे, बीज ब्रह्म सही,
यह सब ना सीरे, आगे पंथ मही।।१ ।।
नहीं प्रमाण सच्चे निरवाण, निसप्रेही निराधार।
शुद्ध निज आत्म, अनधड़ अपरम, निरद्वन्द है,
वे पार झांई झलक रही।।२।।
है निरभेद अटल अभेदा, अनिरवाच अखंडा।
रह निरबंधन, आप निरन्तर आक्रिय प्रचंड।
अज्ञय अनादिर अक्षर एक वही।।३।।
है जग द्रष्टा रहता अद्रिष्टा, चैतन शुद्ध स्वरूप।
निरलेप निकलंक आदु, सोहम 'नवला' अनूप
अनुभव थाकीरे स्वेत प्रकाशी।।४।।

।। इति श्री ।।

२६३

साधो भाई ! बेगम गुरू हमारा।
गम सिमरे जाने मैं नहीं जानू, पच पच मरो हजारा।।टेर।।
धरती भी गम में गिगना गम में, गम में नवलख तारा।
चन्द सुरज ये भी है गम में, गम में पवन पसारा।।१ ।।
ब्रह्मा भी गम में विष्णु भी गम में, गम में दश अवतारा।
ओहम् सोहम् का सुमरण गम है, गम में शास्त्र सारा।।२ ।।
असंग युगों पहली है गम में, गम है खंड व्यवहारा।
सब पर द्रष्टी ब्रह्म की कहिये, लबज कबज से न्यारा।।३ ।।
गम—बेगम की उपत खपत है, बेगम गम से पारा।
कह 'नवलो' वसुं बेगम में औरन किसी का सहारा।।४।।

।। इति श्री ।।

ये मद नवलो पी लिया, अब दुख कभी न होयेला।।६।।

।। दोहा छन्द।।

वो तो साधु जाणे नहिं, तूतो साधू जाण।
'नवला' थारे होसी फायदो, उणरे पड़सी हाण।।१।।
ओम् शब्द सो याद है, सोहं शब्द उपदेश।
गुरु शब्द सोहि सन्त है, राम शब्द मुक्तेश।।२।।
नवल काल से ना डरे, नमो गुरु उपदेश।
काल के माथे पग धरे, सतगुरु को आदेश।।३।।
हां कहूं तो है नाहीं, नहीं कयो ना जाय।
हां ओर ना के बीच में, 'नवलो' रहा समाय।।४।।

।। मनोहर छन्द ।।

वशालो है वही करें, युग—युग चाकरी सो,
आखिर में साज कर, बैठे हरी सेव में।
अरध—उरध बिच, पीव को परसलेरे,
गैब की गुज्जार मांहि, परसले सुभेव में।।
आगे चल धारणा के, नाद सु उलट कर,
नौ—नौ नाड़ी षरे, फिर अड़त सुलेव में।।
दशों माग बन्ध कर, एक माग सुर कर,
सोहम् 'नवल' गुरू, सतगुरू देव में।।

।। गुरू शब्द।।
।। मनोहर छन्द ।।

पांच और पचीस पाल, नाभि के निवास मांही,
ऐसो गुरू शब्द दियो, मोगरो कहायो है।।
रेगर ले मोगरे को, रांग रहा कूट—कूट,
अर्ध और उरध बीच, कम्पी सो उड़ायो है।।
नवल खुमारी चढ़ी, गगन में लागी ताली,
ररा ओर ममा बीच, शब्द सत्य पायो है।।
ऐसी गुरू कृपा करी, अभय पद पायो,
'नवल' उसी में जाके, सहज में समायो है।।

।। मनोहर छन्द ।।

जीत में न हार में ना, आचार विचार में ना,
अस्त व्यवहार में ना, योग ध्यान सारमें।।
'नवल' स्वरूप ज्ञान, काहु के नाहीं कारमे,

।। प्रश्न गीत ।।

कोन? शब्द है आदका, कौन? शब्द है अनाद।
कौन? शब्द है पार का, कौन? शब्द है सन्त।।

।। उतर गीत ।।

सत्य शब्द है आद का, ओहम् शब्द है अनाद।
सोहम शब्द है पार का, मूल शब्द है सन्त।।

।। प्रश्न गीत ।।

नाम का नाम क्या? नाम कहा बस्ता, किस नाम को जपते प्यारे।
'नवल कौन? नाम को नाद द्वारे, जपता वो नाम कैसा प्यारे।।

।। उतर गीत ।।

नाम का नाम सोहं नाम बस्ता, नाभि कमल से नाम जपता।
'नवलो' ले नाम नाशिका द्वारा, उसी नाम को सोध प्यारे।।

।। कविता ।।

आप ही की जेवड़ी को आप धर भूल गयो,
रैन के अंधेरे माहीं सांप ही बनायो है।
नवल प्रकाश भयो, कहां गयो सांप तेरो,
आपके स्वभाव मांही आप ही समायो है।।
सपना में एक सिंह, मिल्यो है उजाड़ मांही,
शस्त्र न पास सिंह सबल कहायो है।
'नवला' खुला है नैन कहां गई सिंह सेन,
आपके स्वभाव मांही आप ही समायो है।।

।सवैया छन्द।

।।१।।

जात व पात सभी जानत, पुराण अठारह को जाण लियो है।
बोलत है जिन भेद न पावत, झूठ दि काह को ध्यान दियो है।।
ज्ञान दियो किरपा कर व्यापक, अमृत पी हुंसियार कियो है।
'नवलो' निजआत्म राम को धावत, जीव भयो जड़ पीव भयो है।।

।।२।।

धीणो विशाल दुध देहि पावन, काम धेनु जहां पास रहे है।
द्वार कलाल के जावत है शठ, मूंढ़ पछे ही उदास रहे है।।
वे पंखा बन टोटा में झुलत, खोय जमारो पियास रहे है।
गंग जठे नर पास न जावत, छीलर जा असनान करे है।।

उत्पत्ति मानते हैं। वही आदि है, मूल है।[१] कबीर के ओंकार सम्बन्धी विचारों पर नाथों से तुलना करते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'स्थूल वेद यज्ञ-याग का विधान करते हैं, योगियों को इससे कोई वास्ता नहीं। उनका मतलब समस्त वेदों के मूलभूत ओंकार मात्र से है। क्योंकि ओंकार ही वेद का सार है। कबीरपंथ में भी स्थूल वेद और सूक्ष्म वेद की कल्पना की गई है।......'ज्ञानचौंतीसा' के आदि में कबीरदास ने मानों इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि जो ओंकार या प्रणव को जानता है, वह उस परा-शक्ति को जानता है जो लिखकर मिटा सकती है अर्थात् जो सब कुछ करने में समर्थ है। और इसके बाद ही शायद ओंकार पर बहुत अधिक जोर देनेवाले इन योगियों को लक्ष्य करके कहा है कि ओंकार की बात तो सभी किया करते हैं, पर इसे समझ सकनेवाले बिरले ही हैं।[२] संतों के साहित्य में, विशेषकर कबीर के साहित्य में प्रणवसाधन का विस्तृत निरूपण उपलब्ध नहीं। अजपा-जाप का वर्णन पहले ही हो चुका है। 'सोऽहं' वस्तुतः हंसपवन का ही सिद्ध रूप है। 'हंस' का 'सोऽहं' में परिवर्तन अथवा विपरीतकरण भी साधन है और इसके साथ भी साधक की भावसाधना संबंधित है। अद्वैतानुभूति के लिये इसकी व्याख्या में कहा जाता है कि हं और स दो प्रकार के पवनों की ओर संकेत करते हैं। हंस पवन का 'लौ' में क्रीड़ा करना 'सोऽहं' में परिवर्तन है जिसमें प्रपंच, प्रसारित हाट का संहार होता है, मेल होता है।[३] श्वास की दोनों क्रियाओं में 'हं-स' की ध्वनि होती है किन्तु साधन करने पर इसी ध्वनि का परिवर्तन अथवा दिव्यान्तर होता है। 'हंस' सांसारिक प्रक्रिया की ओर संकेत करता है और 'सोऽहं' पारमार्थिक प्रक्रिया की ओर। पलटू ने 'सोहंगम' शब्द की ध्वनि का उदय आठवें महल में माना है। यह आठवाँ महल सात चक्रों से भी ऊपर परमपद का स्थान प्रतीत होता है। अन्यत्र उन्होंनें 'सोऽहं' वाणी का उदय भँवर गुफा में माना है।[४] कबीर ने इसी 'सोऽहं' का जप करने के लिये कहा है। सुंदरदास (छोटे) ने प्राणायाम के साथ 'सोऽहं'साधना का उल्लेख गोरख के मत के अनुसार किया है।[५]

---

१ क० ग्रं०, पृ० १२६-१२७ पद १२१; पृ० २४४।

२ कबीर, पृ० ३४; बीजक, पृ० २४६, टीका भी द्रष्टव्य।

३ क० ग्रं०, पृ० १८८-१८९ पद २९६।

४ संतकाव्य, पृ० ५२७,५२९।

५ संत कबीर, पृ० २२६-२२७, पद १९ तथा उसकी टीका; सुंदर ग्रंथा-वली, भाग १, पृ० ४७-४८।

प्राणायाम तथा नादानुसंधान से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। इस प्रकार उन्मनी-साधन के साथ कबीरदास प्राणायाम, अजपाजाप और नादानुसंधान के संबंध को भी स्वीकार कर लेते हैं। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर तथा अन्य संतों के उन्मनी तथा तत्संबंधी विभिन्न शब्दों, अवतरणों पर विचार कर उसके चार अर्थों पर प्रकाश डाला है—१—उन्मनी ध्यान, २—उन्मन विशेषण के रूप में, ३—उन्मन परमतत्व, ४—उन्मनी रहनी, सहज समाधि से अभिन्न। इस अंतिम अर्थ की पुष्टि "उन्मन धागा" के उपर्युक्त पद से भी हो जाती है। मानससाधन सहजसाधन का मूलाधार है। चतुर्वेदी जी के परमतत्व संबंधी अर्थ से संबंधित कबीर की रचना का एक अर्थ ऊपर देने की चेष्टा की गई है।

समाधि की अवस्था अमरता की अवस्था है। इस अमृतसाधन में विष का त्याग और अमृत का ग्रहण तथा विष का अमृत में परिवर्तन किया जाना कबीर ने स्वीकार किया है। प्रियतम के मिल जाने पर संसार का जो कुछ भी विष है, सब अमृत हो जाता है। जब तक शरीर में विष है, तब-तक उसमें अमृत के समावेश का कोई अवकाश नहीं है। इसके लिये कबीर "प्रेमभक्ति" के साधन का उपदेश देते हैं जिससे मुख में चन्द्रमा की अमृतवर्षा होने लगती है। किंतु इस अमृत अथवा अमृतफल की प्राप्ति के लिये गुरु-प्राप्ति अति आवश्यक है। उसी की कृपा से सहज ही सुषुम्ना के समीप अमृतफल की प्राप्ति होती है। अमृतरस का स्राव गगन में होता है। अन्य स्थलों पर कबीर ने उसे बंकनाल रस कहा है। वे विषय को विष कहते हैं। पश्चिम दिशा (सुषुम्ना) के मार्ग में बंकनाल के भीतर यह अमृत रस निर्झर स्रवित होता है। वहीं भँवरगुफा का घाट है। एक अन्य पद में वे अवधूत को गगनमंडल में अपना निवास बनाने की प्रेरणा देते हैं। वहीं वे उस बंकनाल रस, अमृत को पीने के लिये कहते हैं जो नित्य सुख देनेवाला है। संसार में बहुत से रस हैं। किन्तु कबीर ने सभी रसों को चख कर देख लिया है। वे सब रामनामरस के समान मीठे नहीं हैं। दूसरे संसार के रस कफ आदि उत्पन्न करते हैं, जबकि हरिरस अधिक से अधिक, जितना ही उसका पान किया जाय, सुख देनेवाला है। इस अमृतरस को वे विलक्षण मदिरा भी कहते हैं।[१] कबीर के इन विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह अमृतसाधन, जिससे अमरता, अमरपद, अमरपुर की प्राप्ति होती है,

[१] क० ग्रं०, ६०.१२, ८४.८, ८९.५, ११०-१११.७२, १११.७४, १३८.१५३, १५९.२०९, ४०.१९, १३९.१५५, १५५.१९७, ८८.४, ११०.७०, १५९.२०९, १३६.१४८।

नाथों के अमृतसाधन के पर्याप्त समान है। अंतर यह है कि कबीर बंकनाल से जिस रस का सुख प्राप्त करते हैं, वह अमृत तो अवश्य है किंतु उसके साथ भावनानंद का समन्वय भी है। प्राणायामसाधन में भी रामनाम का जाप ही स्वीकार्य है। वे जिस रस की कल्पना करते हैं, वह भक्तिरस है जो अमृत है, जिसका विवरण-विवेचन हम भक्ति रस के प्रसंग में कर चुके हैं। वारुणी और रस भी अमृत के पर्याय के रूप में ही व्यवहृत हुए हैं। इस प्रकार इस वर्णन में वारुणी-साधन, रस-साधन भी समन्वित है। इसी की परंपरा वैदिक सोमपान से मिलाई जाती है। विष का अमृत में परिवर्तन भी वस्तुतः साधक की अमृतसाधना है।

पृथ्वी को स्पर्श किये रहते हैं। पृष्ठ भाग मे दोनों हाथों को ले जाकर बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा और दाहिने हाथ से साधक दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ता है। जलन्धर बन्ध लगाकर साधक दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर रखता है। इस आसन के अभ्यास से तथा जिह्वा को उलटकर जिह्वामूल में ले जाने से खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है। इस आसन से कुंडलिनि महाशक्ति जाग्रत होती है तथा सुषुम्ना नाड़ी सीधी रहती है[1]।

अली मुराद ने आसनों में केवल एक पद्मासन का उल्लेख किया है, किन्तु आसन की मुद्रा का विस्तृत उल्लेख नहीं है[2]। अजपा जाप और पद्मासन इन दोनों का बहुत महत्व है। इन्हीं के द्वारा सुषुम्ना नाड़ी सीधी रहती है। कंठस्थ विशुद्ध चक्र में स्थापित होकर क्रमशः साधक को वास्तविक तत्व ज्ञान की उपलब्धि होती है। अज्ञानान्धकार मिट कर उसे ज्योति लाभ होती है[3]।

आसन के पश्चात् प्राणायाम की साधना होती है। प्राणायाम साधना से मन नियन्त्रित होना है। गोरक्ष पद्धति में 'हंस' नामक अजपा गायत्री मन्त्र की चर्चा है जिसके अनुसार 'ह' कार के साथ प्राणवायु बाहर आता है और 'स' कार के साथ भीतर जाता है।

'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंस हंसेत्यमुमंत्र जीवो जपति सर्वदा'।

हठयोगी प्राणवायु का निरोध करके कुन्डलिनी को उद्बुद्ध करता है। यही उद्बुद्ध कुन्डली षटचक्रों का भेद करती हुई, सातवें अन्तिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। प्राणवायु ही इस उद्बोध एवं शक्ति संगमन का हेतु है। यही कारण है कि हठयोग में प्राण निरोध का बड़ा महत्व है। अली मुराद ने अपने ग्रन्थ कुंवरावत में प्राण निरोध की इस क्रिया का उल्लेख किया है। श्वास प्रश्वास के क्रमशः निरोध के द्वारा साधक को चाहिये कि श्वास को शीर्षस्थान में ले जाय। श्वास के शीर्षस्थान पर स्थित हो जाने से निर्गुण का गान, शिव का संगम सहज हो जाता है[4]।

---

१. सुन्दर दर्शन पृ० २६, डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित।

२. पद्मासन गहि होरी गावै, मद बिरहा की नारी।
अली मुराद मोंह मन भायो, निसदिन बाड़ी पै वारी।

३. सुखमना और नरकटी, अनुभव मसि ~ ला जाय।
अजपा जाप और पद्मासन सब हिरदै लहराय॥
अलीमुराद : कुंवरावत।

४. सांसा का तुम सीस चढ़ाओ, घड़ी घड़ी बाहर निरुवाओ।
× ×
सांसा ले चल सीस पर बैठा निर्गुन गाय।
अलीमुराद : कुंवरावत।

स्वसमवेद कोई विरला पावै, उलटा विरछा मूल समावै ॥ टेर ॥ आप अकलतै सकल पसारा, धर अंबर रचिया आकारा। पसरा विरछ फूलिया वागा। आपहि जल आप सींचण लागा ॥ १ ॥ आपहिं बीज विरछ अविनासी, आपहि जीव भये जाति चौरासी। अंछर एक अनादी देवा, तिणकर बावन अंछर भेवा ॥ २ ॥ प्रथम सहजे सोहं उचारा, सहस्र दल कीया कमल पसारा। मानसरोवर हंस कहाया, मेरु डंड घर राह चलाया ॥ ३ ॥ तुरिये अतीत रूप सोउ भूला, अंछर चार मिल मूल घर फूला। सहस्र विसरिया च्यार द्रिढाया, जन्म मरणके मारग धाया ॥ ४ ॥ मूल कमल तुरिये जीव सो थाया, संख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बंधाणा फेर वंक न पाया। सुधी राह तज वंकी लीनी, जिण कारण चौरासी चीनी ॥ ५ ॥ संख भमर एक ग्रंथी लागी, बीज जागरत अवस्था जागी। वेद अथर्व परा भई वाणी, द्रिस जाल सत्ता लपटाणी ॥६॥ जाग्रत होय लिंग घर आया, खटदल अंछर कमल उपाया। काम कलीपर करत गुंजारा, विरमादेव रजोगुण धारा ॥ ७ ॥ उलटा उरध नाभ घर आया, दस अंछर एक कमल रचाया। सगत भुजं पश्यंती जागी, सामवेद स्वासा धुन लागी ॥ ८ ॥ पीठ कुंडली सोवत ध्याना, नील वरण सँग विष्णु बखाना। माया सगति परबल धारी। सहस्र बहोत्तर नाड़ी पसारी ॥ ९ ॥ पवनरूप सूर अभंगा, प्रलय अवसथा सुखोपति, संगा। जाग पवनसें मन सँग धाया, ह्रिदै द्वादश अंछर पाया ॥ १० ॥ मनमैं देखि मध्यमा वाणी, यजुरवेदकी कला पिछाणी। मन कला चंद महेसुरराया, संकलप डोरि सुपन दरसाया ॥ ११ ॥ द्वादश कला सूरकी छाया, मनरूप होय चंदा थाया। कंठ कमल मन मधुकर आया, षोडश दल एक कमल उपाया ॥ १२ ॥ रिगवेद वैखरी वाणी, इंद्रयां स्थूल सत्ता उलझाणी। अंछर सोलै उचरत संगा, देवी सरस्वती जाण अरधंगा ॥ १३ ॥ बैठ त्रगटी द्रिदलसथाना, महा जागरत अवसथा जाना। अंछर दोय

09:21
exoticindiaart.com/book/details/swami-ch

अथ कवित्त गुरुदेव को अंग लिख्यते

स्तुतिः राम निरंजण ब्रह्मजी, पुनि सतगुरु सब दास।
जन चेतन वंदन करै, करि करि बहुत हुलास ॥1॥

अंग : सतगुरु का परताप की महिमा अगम अपार ॥
रवि ज्यूँ करि परकास तिमिर सब दूरि गुमाया।
कल्प ब्रिच्छ को रूप चाहि कोइ रही न काया ॥
दत ज्यूँ ग्यान उदार मिल्या सूँ संसै खोई।
दे राम नाम ततसार दूरि कीनी सब छोई ॥
जन रामचरण की सरण में मिटि जाइ जम की मार।
सतगुरु का परताप की महिमा अगम अपार ॥1॥
राम नाम दातार आप कुछि चाहै नाहीं।
औसा गुरु कलि माहिं कोइ बिरला जन पाहीं ॥
सील दया बैराग सत्य संतोष डिढ़ावै।
हरि मारग में ल्याय भरम सब दूरि उड़ावै ॥
औसा सतगुरु पाय करि फेरि बहै भौ माहिं।
कह चेतन वा मूढ़ को मुख देखीजे नाहिं ॥2॥
सतगुरु बड़ उसताज वैद हम पूरा पाया।
सिष मिलताँ ही बार रोग सुणि दारू ल्याया ॥
पच्छ बतायौ पूरि रैणि दिन राम हि ध्यावौ।
नाना विधि का भरम दूसरा सब छिटकावौ ॥
चेतन ईं साधन कियाँ कट्यौ सहज में रोग।
सुरति उलटि ऊँची चढ़ी ले सुषमणि को भोग ॥3॥
कियौ कबीरै काज गुरू रामानँद पाया।
भयौ भरथरी पार सरणि गोरख की आया ॥

4.0

18:48

सच्चिदानन्द अमर अविनाशी, ज्ञान स्वरूप स्वयं प्रकाशी,
सदा एक रस है सुखराशी, क्या वर्णन करूं अनूपको—
है कहन सुनन में नांई ।।३।।
गोपीनाथ गुरु समरथ पाया, भेदाभेद सबही बिसराया,
खाता रूड़मल खत्म कराया, लखके एक अरूपको—
दिया जन्म मरण छिटकाई ।।४।।

भजन नं ५ (राग–पारवा)

करदेखी खूब तलाशी, बिन ज्ञान मुक्ति है नांय ।।टेर।।
देवल देव धोक सबलीना, व्रत करके तन सुखाय दीना,
झालर शंख बजा नित लीना, फिरभी चिन्ता नहिं जाय—
नहिं मनकी मिटी उदासी ।।१।।
योग धारना करली क्रिया, नैनमूंदकर ध्यानज धरिया,
रोका द्वार श्वास उर भरिया, लखि ज्योति त्रिकुटी मांय—
है तत्व-प्रकाश विनाशी ।।२।।
अजपाजाप जपा बहु काला, सोहं सोहं शब्द निकाला,
लोभी उर नहिं हुआ उजाला, रहा भर्म घट छाय—
नहिलखा ब्रह्म अविनाशी ।।३।।
गोपीनाथ गुरू समरथ पाया, भेदाभेद सभी बिसराया,
रूड़मल खाता खतम कराया, लखके एक अरूप को—
कटगया क्लेश चौरासी ।।४।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

(भजन नं० ६ राग-आसावरी)

अब मै सतगुरु पूरा पाया ।
होगई लहर महर सतगुरु की, तत्व मूल दर्शाया ॥टेर॥
निर्गुण स्वरूप सतगुरु स्वामी, अविगत अचल अथाया ।
भक्त जनों के तारण कारण; सर्गुण नाम धराया ॥१॥
पांच कोश ओर तीन देह का, सब सन्देह मिटाया ।
जाग्रत स्वप्न सुशोपति तीनों, कर निर्णय फरमाया ॥२॥
पांच तरह का भेद मिटाके, ब्रह्म अद्वैत लखाया ।
नाम रूप सब प्रपंच मिथ्या, चेतन पुरुष अजाया ॥३॥
नानगनाथ मिल्या गुरु पूरा, पद पूरण पहुँचाया ।
गोपीनाथ खुद मस्त हुवा, सब छोड़ खुदी का दाया ॥४॥

(भजन नं० ७ राग-असावरी)

मनरे गुरु शरण में चालो ।
गुरु पद पर्श हर्ष मन मूरख यम दे जावे टालो ॥टेर॥
लोक लाज मर्याद छोड़कर, बन सतगुरु को बालो ।
तत्व मसि उपदेश समझके, सब पाखण्ड निकालो ॥१॥
सोहम् आप जाप जप अजपा, त्रिविध ताप छुड़ालो ।
चक्षू ज्ञान खुले अन्तर के, घट में होय उजालो ॥२॥
तू शुद्ध चेतन अगम अगोचर, अपने में आप सम्भालो ।
अप्रोक्ष अनुभव आतम स्वरूप लख, बचन गुरू का पालो ॥३॥
नानगनाथ मिल्या गुरु पूरा, पल में कियो निहालो ।
गोपीनाथ गुरू पद पाकर, हुयो मग्न मतवालो ॥४॥

18:52

कुण्डलिया (३६)

नवधा भक्ती भक्त युत दीन्ही प्रगट बताय ।
सो तो सगुण भक्ति है, निगुण कहुँ समभाय ॥
निगुण कहुँ समभाय सुनो सज्जन धर ध्याना ।
मानव भक्ति निर्वाण यों गीता करे बखाना ॥
सोहं सोहं जाप जप यो ऽ सावादित्य पुरुष सोय ।
गोपीनाथ आतम लखो द्वैत भर्मना खोय ॥

कुण्डलिया (३७)

त्रिगुण भेद से भक्ति त्रय सुनलेना सब कोय ॥
राग द्वेष अरु क्रोध युत तामस भक्ती सोय ॥
तामस भक्ती सोय दम्भ मात्सर्य बढ़ावे ।
करे कामना धार सो राजस भक्ति कहावे ॥
अघ नाशन संकल्पकर अर्पे श्री भगवान ।
सो ही सात्विक भक्ति है गोपीनाथ लों जान ॥

कुण्डलिया (३८)

संध्या सत्य स्वाध्याय अरु तत्व ज्ञान उर धार ॥
सदाचार घट में दया, सतसंग पर उपकार ॥
सतसंग पर उपकार यज्ञ सुमिरण तप दाना ।
क्षमा अहिंसा आर्जव भक्ति का साधन माना ॥
गोपीनाथ कुरीति तज अपना जन्म सुधार ।
संध्या सत्य स्वाध्याय अरु तत्वज्ञान उरधार ॥

120%
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:53

शौच तोष स्वाध्याय तप, ईश्वर प्रणिधान ॥
ईश्वर प्रणिधान शौच तन मन शुद्ध करना ।
तोष कामना रहित या तृष्णा मन से तजना ॥
तप तन त्याना अरु भजन स्वाध्याय लो जान ।
मन संजोना ईश में ईश्वर प्राणीधान ।

कुण्डलिया (६०)

जिस मुद्रा से बैठ के करे योग अभ्यास ।
ताको आसन * कहत हैं सो चौरासी खाश ॥
सो चौरासी खाश, मुख्य तामें दो जानो ।
सिद्ध और पद्मासन ताके नाम बखानो ॥
गोपीनाथ आगे करूँ विधि विधान प्रकाश ।
जिस मुद्रा में बैठ के करे योग अभ्यास ॥

कुण्डलिया (६१)

बायें पांव को एड़ी से मूलके बन्ध लगाय ।
दायें पांव की एड़ी से उपस्थ इन्द्रि दबाय ॥
उपस्थ इन्द्रि दबाय तले ऊपर हो एडी ।
हृदय से अंगुल चार राखना ऊंची ठोडी ॥
विषयों से इन्द्रिय हटा भृकुटि दृष्टि ठहराय ।
मोक्ष मार्ग का पथ सही गोपीनाथ बताय ॥

* टिप्पणी - सौच संन्तोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान साधकर तथा नियमोंपर स्थिर होकर बैठना हो सुखासन है ।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

कुण्डलिया (६२)

बायाँ पैर उठाके दायें पर ठहराय।
त्योंही दांये पांव को बांये ऊपर लाय॥
बांये ऊपर लाय रीढ सीधी कर थावे।
उभय अंगूठे पकड़ चिबुक छाती चिपकावे॥
दृष्टि रखे नासाग्र पर गोपीनाथ बताय।
पद्मासन यों साधिये बायाँ पैर उठाय॥

कुण्डलिया (६३)

आसन के दृढ होन से स्वासोस्वास रुक जाय।
सोही प्राणायाम है योग शास्त्र बतलाय॥
योग शास्त्र बतलाय सो कहिये तीन प्रकारा।
अन्तर बाहिर स्थम समझ गुरुमुख से प्यारा॥
पूरक स्वासा खेंचना कुंभक रोको मांय।
रेचक बहिर निकालना गोपीनाथ कथगाय॥

कुण्डलिया (६४)

योग अंग अब पांचवां सुनिये प्रत्याहार ❋।
शब्द स्पर्श रूपादि हैं इन्द्रि विषय व्यवहार॥
इन्द्रि विषय व्यवहार ताहि से उन्हें हटाओ।
चित्त वृत्ति को खैंचिके द्रष्टा में ठहराओ॥

❋ स्वविषय संप्रयोगे चित्तस्वरूपानुसार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

प्रथमहि मूलाधार है स्वाधिष्ठान बखान ।।
स्वाधिष्ठान बखान तृतिय मणिपूरक भाई ।
अनहद विशुद्ध आज्ञा गोपीनाथ कहाई ।।
देवशक्ति अरु बीज जप नक्शे से लो जान ।
षट चक्कर मैं कहत हूं सुनिये देकर ध्यान ।।

कुण्डलिया (८५)

हकार स्वासा से बने स कार स्वांस प्रवेश ।
हंसो सोहं मंत्र जप करता जीव हमेश ।।
करता जीव हमेंश रात अरु दिन के मांई ।
सहस इकीस छः सौ यों जप संख्या गाई ।।
अजपा जप स्वतः जपे रहे न पाप कलेश ।
हकार स्वासा से बने स कार स्वांस प्रवेश ।।

कुण्डलिया (८६)

मैथुन आठों जो तजे ब्रह्मचारी कहलाय ।
श्रवण स्मरण अरु कीर्तन चितवन मनके मांय ।।
चितवन मन के मांय बात एकान्त में करनी ।
यत्न संकल्प रु प्राप्ति अष्ट बातें ये तजनी ।।
गोपीनाथ भज राम को मत मनको भटकाय ।
मैथुन आठों जो तजे ब्रह्मचारी कहलाय ।।

कुण्डलिया (८७)

गोपीनाथ नौ खण्ड का सुनलो स्पष्ठ विधान ।

कुण्डलिया (१०७)

ज्ञान तर्क समाधि नहिं योगकाल अरु देश ।
मैं स्वाभाविक नित्य हूं नहीं गुरु उपदेश ॥
नहीं गुरु उपदेश परम तत्व स्वरूपा ।
महाकाश सम व्यापक इक अद्वैत अनूपा ॥
सामान्य विशेष मुझमें नहीं 'गोपी' निर विशेष ।
ज्ञान तर्क समाधि नहि योग काल अरु देश ॥

कुण्डलिया (१०८)

दर्शन दृश्य रु ज्ञान ज्ञय यह भ्रम तजि विश्राम ।
आतम चेतन रूप मम अव किंचित नहिं काम ॥
अवकिंचित नहिं काम त्रिकाल रहूँ इकसारा ।
अस्तुति निंदा नांय ब्रह्म मैं निर्विकारा ॥
गोपीनाथ अवाच्य में पूरण आतम राम
दर्शन दृश्यरु ज्ञान ज्ञय यह भ्रम तजि विश्राम ॥

कुण्डलिया (१०९)

जाग्रत स्वप्न सुषुपती नहि तुरिया का लेश ।
मन बाणी बिन रूप है नहिं सामान्य विशेष ॥
नहिं सामान्य विशेष दृश्य दृष्टा भी नांहो ।
केवल शुद्ध अनूप त्रिपुटि नहिं मेरे मांहो ॥
गोपीनाथ सोहं स्वयम अपने आप रमेश ।
जाग्रत स्वप्न सुषुपतो नहिं तुरिया का लेश ॥

ों अखण्ड गोसांई ॥२॥

सच्चिदानन्द अमर अविनाशी, ज्ञान स्वरूप स्वयं प्रकाशी,
सदा एक रस है सुखराशी, क्या वर्णन करूँ अनूपको—
है कहन सुनन में नांई ॥३॥
गोपीनाथ गुरु समरथ पाया, भेदाभेद सबही बिसराया,
खाता रूड़मल खत्म कराया, लखके एक अरूपको—
दिया जन्म मरण छिटकाई ॥४॥

भजन नं ५ (राग–पारवा)

करदेखी खूब तलाशी, बिन ज्ञान मुक्ति है नांय ॥टेर॥
देवल देव धोक सबलीना, व्रत करके तन सुखाय दीना,
झालर शंख बजा नित लीना, फिरभी चिन्ता नहिं जाय—
नहिं मनकी मिटी उदासी ॥१॥
योग धारना करली क्रिया, नैनमूंदकर ध्यानज धरिया,
रोका द्वार श्वास उर भरिया, लखि ज्योति त्रिकुटी मांय—
है तत्व-प्रकाश विनाशी ॥२॥
अजपाजाप जपा बहु काला, सोहं सोहं शब्द निकाला,
लोभी उर नहिं हुआ उजाला, रहा भर्म घट छाय—
नहिलखा ब्रह्म अविनाशी ॥३॥
गोपीनाथ गुरू समरथ पाया, भेदाभेद सभी बिसराया,
रूड़मल खाता खतम कराया, लखके एक अरूप को—
कटगया क्लेश चौरासी ॥४॥

भजन नं० ६ (राग–गोड़ी)

Scanned with C

गुरु का चरण शब्द गह खोज्या, शब्द-वचन समझाया।
समझ रमझ शान्ति सुख लीना, शिष्य महा परम सुख पाया ॥५॥

धन "सुखराम" मिल्या गुरु साचा, चेतन ब्रह्म लखाया।
'ईसरराम' सोहं सत जाण्या, अविचल अक्षय अजाया ॥६॥

भजन (६) राग मंगल पद

धन गुरु की बलिहारियाँ, दरशन कीयां परवाण ।टेर॥
गुरु चरण लपटि रहूँ, भोली रही अजाण।
बिन गुरु मुख भटकत फिरी, सतगुरु दिवी पिछाण ॥१॥
सुरत सुहागण सुन्दरी, सतगुरु सामे जोय।
हीरा पड्या माणक चौक में, कण कण लीजे पोय ॥२॥
राम मोहेलो राम रो, हरिजन बैठा जोड़।
सतगुरु के प्रताप से, तरिया अनन्त करोड़ ॥३॥
"सुखराम" गुरु भेटिया, होरह्या आनन्द उछाव।
'ईसरराम' कहे सहेलियाँ, परसो गुरुजी रा पाँव ॥४॥

भजन (७) राग आशावरी पद

साधो भाई! सतगुरू तार लियोरी।
सतगुरू मुझमें, मैं सतगुरू में, ज्यों जल विच तरंग थयोरी ।टेर॥
जाज्ञा भाग पूर्वला संचित, समर्थ हाथ धरयोरी।
ऐसा हीर धणी बिन सूना, जवहरि लूट रह्योरी ॥१॥
भूल भूल में केता कण खोया, अब के जाग रह्योरी।
उडि मोरी नींद स्वप्न में चेत्यो, गुरु गम सैल भयोरी ॥२॥

Scanned with C

उत्तर

हे शिष्य, नाभी में एक कुण्डली नाम की नाड़ी है। इस नाड़ी समझने से, आइडम्बर के आरम्भ की सौजी होती है। यह सोजी से ही प्राप्त होती है।

प्रश्न

हे गुरु, देव आप पार ब्रह्म हैं, और आप ही मुझे इस भव साग पार निकालने वाले है। सो है गुरु देव जी, कृपा करके, मुझे कुडली नाड़ी को साझने की युक्ति प्रदान करें।

उत्तर

हे शिष्य, अब मैं तेरे पर बहुत दयाल हूं। और तेरी सेवा पर मैं ब खुश हूँ। इसलिए हे शिष्य अब मैं तेरे को इसका भेद पृथक-पृ खोल कर बताता हूं तू ध्यान से सुन समझ। हे शिष्य, इस शरीर इला, पिगंला नामकी दो नाड़ियां है। जो चांद, सूरज के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों नाड़ियों के बीच में सुखमन नाड़ी है। अ योगाभ्यास साजने की यही एक सुखमन नाड़ी है जिस समय सुखम आती है। उस समय भजन करने की टेम बनती है। उस समय निरन्त स्थान में कोमल आशन लगाकर ज़हाँ किसी का भी खड़का धड़ न हो, वहां एकत जगह बैठ कर अपनी सारी बारी बन्द कर, फि धीरे-धीरे नाभी में जो कुंडली नाम की नाड़ी है वहां से शब्द खीं कर भ्रकुटी में चढ़ाया जाता है। फिर रोम-रोम में और नाड़ी-नाड़ में रोशनी पैदा हो जाती है। और फिर दशवें द्वार हंस पहुंच कर जह अखी देश (सन्तों का दोश

वहां हंस पहुंच जाता है। जहां पर काल नहीं पहुंच सकता और जीव कल्पना से छुट्कारा पा जाता है। और परम गति को प्राप्त होता है।

प्रश्न

हा : मेहर करो गुरुदेव जी, कियो भर्म को नाश।
ा नाथ गुरु वचन मैं पाया अमर घर वास॥

रुदेव जी, मैं आप को वार-वार नमस्कार करता हूँ। और आपने दीन को भवसागर में डूबते हुए को पार किया। और ज्ञान रुपी

Scanned with CamScanner

कमी, कसर, दुराव। **काई**=रंचमात्र भी, किसी प्रकार का भी, कोई भी।

भावार्थ– मुमुक्षू की विनय-प्रार्थना स्वीकार करके दीन दयाल सतगुरु देव ने अन्तर्भेष का अन्तर्भेद विचार सहित जो कुछ दिया और जैसा समझ कर प्राप्त किया। उनकी सम्पन्न विगत व्योरे सहित विवरणिका समझा कर कहता हूँ, इस में रञ्चमात्र भी कोई अन्तर्भेद नहीं रखूँगा।

श्वास उश्वास सुमिरणा सारी, दृढ़ आसन कर ममता मारी।
भेद विभूति विचार चढाई, अनुभव बात अगम की पाई ॥8॥

शब्दार्थ– **श्वास-उश्वास**=नाभि से नाक तक, इडा-पिंगला नासिका छिद्रों से श्वास (रात-दिन में 21,600) लेने की क्रिया। जो पुरक, कुम्भक, रेचक द्वारा सिद्ध-साधन किया जाता है। अष्ट-कुम्भक-प्राणायाम निम्न हैं –

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुंभका॥

(हठयोग प्रदीपिका 2/44)

(1) सूर्य भेदन, (2) उज्जायी, (3) सीत्कारी, (4) शीतली, (5) भस्त्रिका, (6) भ्रामरी, (7) मूर्च्छा,

Scanned with CamScanner

ज्ञानी ओम रु सोहम् ध्यानी, भक्त जपे सत राम निशानी।
ओउम् सोहम् राम जप तीनो, गुरु गम मुक्ति पद को चीनो ॥15॥
नाना संशय काम भ्रम मूरा, डार टार कर चित ते दूरा।
रंचक भेद न विस्मत होऊ, राम ओह्म सों एक, न दोऊ ॥16॥
'अमर पट्टा' निर्भय निर्वांणी, मिटे चौरासी चारो खाणी।
'अमर पट्टा' से राखे हेता, ताको यम दगा नहिं देता ॥17॥
हंसा पकड़े सत का डोरा, तब यम करे नहिं कुछ तोरा।
सोहं सुरती तार मिलावो, त्रिवेणी तख्त में ध्यान लगावो ॥18॥
इड़ा पिङ्गला सुषमण सोजो, ओम सोहं संग स्वासा खोजो।
स्वासा सुमिरण ध्यान लगावो, सहजे दर्शन ब्रह्म मिल जावो ॥19॥
अब हंसा आवे ना जावे, अगम देश में उलट समावे।
यथा साधना प्रकट सुनाई, भव का भय व्यापे ना काई ॥20॥

अथ हृदयोल्लास वाणी सुधा निरूपण

सतगुरु 'अचलराम' अनकरता, जम जोरावर जासें डरता।
सतगुरु वचन निर्भय का भाखा, 'उत्तमराम' कहूँ सत साखा ॥21॥
सतगुरु स्वामी युक्ति बताई, सत प्रतीत पलक में पाई।
सतगुरु दीवी युक्ति ऐसी, करी साधना गाऊँ तेसी ॥22॥
सतगुरु देव दीया फरमाई, करुं साधना मन चितलाई।
यह दृढ़ धार करी दृढ़ फेरी, सोहं शब्द स्वास में टेरी ॥23॥

Scanned with CamScanner

'सतगुरु' सोहं नाम सुणायो, सो निज सहजे हरदम ध्यायो।
युक्ति युत सोहं निज ध्याया, जासे हंसा पार पठाया ॥24॥
इड़ा पिंगला सुषमण सीधी, सुरत शब्द तीनो में बींधी।
पांचो मिल एकता पाई, सत नाम की फिरी दुहाई ॥25॥
नाभि कँवल में लागी डोरी, स्वासा सुरत चढी तब मोरी।
गुरु प्रसाद खुली उर ताड़ी, सुरती पकड़ त्रिकूटी चाड़ी ॥26॥
पूरक कुम्भक रेचक भीना, प्राणायाम युक्ति सब चीना।
त्रिवेणी कँवल में ज्योति जागी, दर्शण होते दुर्मति भागी ॥27॥
सत देश का दर्शण पाया, उज्वल हंसा निर्मल थाया।
सत नाम की डोरी झेली, हंसा खेलत निर्भय हेली ॥28॥
'अमर पट्टा' कस कमर बाधा, अगम देश का मार्ग लाधा।
यासे हंस चल्यो जब आगो, अगम देश के रस्ते लागो ॥29॥
अगम देश का रस्ता आदू, निगम देश में पहूँचे सादू।
गगन मण्डल का मार्ग बंका, वहाँ भी जाय लगाया डंका ॥30॥
गगन मण्डल में निर्भय पूगा, सुन में भानू असंख्य ऊगा।

पद–७४

परमानंद परकाशका, आनंद कह्या न जाय ।।टेर।।
विसवै भासै ब्रह्मतैं, ज्यूं वृच्छ तोयतैं होय।
उलटा देख्या तोयमें, ज्यां वृच्छा नहीं कोय ।।१।।
तरवर ज्यूं माया सवै, यामैं तिरगुण जाण।
पाणि ज्यूं चेतन सदा, निरविकार निरवाण ।।२।।
सोहं शुद्ध स्वरूप हैं, जां मायाकी हाण।
वां सपंद निसपंद कहां, यूं कहैं वेद पुराण ।।३।।
चेतन में हूँ तू नहीं, ज्ञेय ज्ञाता नहीं ज्ञान।
बनानाथ निरभेद है, सरवातीत विज्ञान ।।४।।

***

पद–७५

सतगुरु सत समझाविया, सत चित आनंद अपार ।।टेर।।
आसत गही तजी ना सती, लिया सतोगुण सार।
रज तम दोऊ सम किया, प्रगट्या ज्ञान विचार ।।१।।
सत गुणतैं निरगुण लख्या, सो निरगुण सब पार।
वाईतै सब जग चलै, शुभ अशुभ व्यवहार ।।२।।
सबमैं साखी एकसा, ज्यूं नीर बिरछके साथ।
पानीमें लाधे नहीं, बीज वृच्छ अरु पात ।।३।।
शुभ अशुभ गुण तां नहीं, नहीं कोई जीतनहार।
बनानाथ निश्चै लख्या, टूटा विष हँकार ।।४।।

***

पद–७६

नित पूरण अद्वैत मैं, द्वैत न दीसै कोय ।।टेर।।
परमानन्द परमात्मा, सो कैणीमें नाय।
वाकी सत्ता शुध रूपतैं, रची त्रिगुण मनमायँ ।।१।।
उतपति चेतन आसरे, आप निरंतर धाम।

पद–१८

नाभमें निजार वासा, सुसमवेद उचार स्वासा।
सोहं हंस मिलाय अवधू, निजरूप दरसाया भाई।
सुरत शबद मिलाय।।१।।
उठत शबद अपार धारा, उरध मुख जिमि मीन पारा।
स्वासोस्वास समीर सारा, छेद चक्कर होय न्यारा।
अछर अधर उजास भाई।।२।।
मणी पूर घर अखंड ऐसो, अनन्त सूर उद्योग जैसो।
नाडी चक्र जाल कैसो, तज बहत्तर हजार है सो।
सब आतमको आभास भाई।।३।।

चराचरमें आप देखो, आतमा अज एक लेखो।
सुसम सोहं प्रकाश गुरुपद, नवलनाथ भज तास भाई।
वेद सुसम संचार।।४।।

***

पद–१९

आदि एक अविचल अविनासी, दूजा किम दरसाया।।टेर।।
अनन्त जुगांकी मैं आगम वरणूं, जिमि संत सास्तर गाया।
आपोही आप पुरुष प्रभु केवल, मूल न दरसे दूजी माया।।१।।
पांच पचीस न तिरगुण हंकारा, रैणी सहजे ध्यान समाया।
आप आपणी सगति चेत, चेतक दूजा दरसाया।।२।।
अपणी सगति मैं आप बंधाणा, प्रकृतीगत आया।
शुध बुध भूल सूल तिरये धारी, जद जीव मान भरमाया।।३।।
सुपन मांय सुपनीसम स्वामी, कर दूजा दुख पाया।
स्वस्वामी भाव सगत संबंधा, विधि अनेक बणाया।।४।।
सहज समाधि भूल जग रचिया, लगी समाधी समाया।
नवलनाथ आपका आपा, गुरु बनानाथ देखाया।।५।।

***

पद–२०

सुसमवेद सचियार सोजो, आतमा दिनरैण खोजो
विषयारस सिरसें त्याग बोजो, आपसे धुन लाय।
अवधू आपो केवल थाय भाई।।टेर।।
नाभमैं निरवाण जोवो, सुरत सुखमण वीच पोवो।
योगनिद्रा अभै सोवो, अरध ऊरध मिलाय।
अवधू सहज अरस समाय भाई।।१।।
विषम नाली वंक हेरो, उलट पवना पिच्छम फेरो।
चूर अरिदल गिगन घेरो, सूर शशि घरलाय।
अवधू दमोदम हर पाय भाई।।२।।

पद–२०

सुसमवेद सचियार सोजो, आतमा दिनरैण खोजो
विषयारस सिरसें त्याग बोजो, आपसे धुन लाय।
अवधू आपो केवल थाय भाई ।।टेर।।
नाभमैं निरवाण जोवो, सुरत सुखमण वीच पोवो।
योगनिद्रा अभै सोवो, अरध ऊरध मिलाय।
अवधू सहज अरस समाय भाई ।।१।।
विषम नाली वंक हेरो, उलट पवना पिच्छम फेरो।
चूर अरिदल गिगन घेरो, सूर शशि घरलाय।
अवधू दमोदम हर पाय भाई ।।२।।

कर चकर सुलटा प्राण पेरो, सोहं हंस एक सार टेरो।
शिखर सीधा ठाय मेरो, सगत सिव घर जाय।
अवधू बहुर जन्म न आय भाई ।।३।।
प्राण तन मन सीस तेरो, चरण रहै नवलनाथ चेरो।
नहीं बंधण करम केरो, बनानाथ गुरु ध्याय।
अवधू दियो पूरण ब्रह्म दरसाय भाई ।।४।।

***

इति श्रीनवलनाथजी महाराज कृत वाणी संपूर्ण।

*****

ड़ ड़ाड़ मिटि जब हुआ नबेड़ा, कहे रविदास किया अमर घर डेरा

सोहंग शब्द मन किया बसेरा। मेट दिया चौरासी का फेरा।

ओंकार बावन का पैंतीस में जपयो है सार।
सर्व देव संतन को करें हैं नमस्कार।
पैंतीस मात्रा प्रेम से सिमरें हैं निज दास।
जिन सिमरियो सो मुक्त हैं कहे सद रविदास।
ओंकार पैंतीस मात्रा प्रेम से निसवासर कर जाप।
रविदास कहे जो सिमरते, मिट गये तीनों ताप।
ओंकार पैंती मात्रा प्रेम से सिमरण कीयो मन वैराग।

॥श्री गुरु रविदास बाणी हफ़तावार ॥

सोहंग सतिनाम धियाओ॥ ऐतवार अमृत दा भरिआ बोले अमृत बैन॥ गुरु का शब्द जपो दिन राती ता आवे सुख चैन॥ ऐतवार वी सफल है हरि का सिमरन सार॥ रविदास जो नाम उचारिए पाया मुख दुआर॥१॥ टेक॥ सोमवार सभ ठोर में जले थले भगवान॥ महिमा प्रभु गाईए तब होवे कलियाण॥ गोबिन्द गोबिन्द जाप से आवै सदा अनंद॥ सोमवार सुख दा जपो जपो रविदास मुकंद॥२॥ टेक॥ मंगलवार आवै सदा होवे मंगलचार॥ रल मिल सखीआं सिमरलो हरि हरि नाम अधार॥ प्रीतम चरनी लागिया कभी न आवै हार॥ मंगलवार

श्री गुरु रविदास बाणी पन्दरां तिथी

सोहंग सतिनाम धियाओ॥ अमावस जो है भाखिया जानो मीत॥ श्रृष्ट मुनी सभ गावदे गीत॥ अमावस है छूत सदा बसै है जग जीत॥ बिरलै बिरलै पीवगे सोहंग रस सुरजीत॥१॥ भगता सेती गोष्टी जाए सभी बिहाय॥ आउना उसका सफल है जो जाते लाभ उठाय॥ अमावस है जो आंउदिआ आवन जावन रीत॥ कहि रविदास विचारके राखो हरि से प्रीति॥२॥१॥ टेक॥ एकम एक परमात्मा संसारै है प्रकाश॥ सवास सवास तू सिमरलै तोड़े जम की फास॥१॥ दीन बंधू दिआल जो सोय है सिमरन सार॥ जगत सदा

हरि भगत कहंदिया, निहचल मिल है ज्ञान॥ कहे रविदास लग चरन गुर, मन का हर अभिमान॥ वैसाख सुहावा तिनां है, हरि, हरि जपे सुजान॥

"जेठ"

जेठ तपत बहु घाम कर, शांत ना होवत मीत॥ क्रोध अगनि कर तपत, मन लोभी लोभ परीत॥ सोहंग नाम मुख्ख जपत, जन कीरत करैह नीत॥ संतां संग निवास कर, शांत भयो तिन चीत॥ उतपत करे आप सभि, करे पालणा नीत॥ प्रभू बिन दूजा नांहि को, कर निहचे परतीत॥ तिस प्रभू को तूं जप सदा, होकर मनो नाचीत॥ प्रभू सिमरन गुर दया ते, नष्ट होत जम

सदा विच आज्ञा, एहो भगत महान॥ दासा भगती ऐही है, दासन दास बिखान॥ बुध्ध सुध्ध तब्ब होए है, पावै निरमल ज्ञान॥ अस्सू पूरन आस सब, गुरूदेव विखियान॥ रविदास गुरू चरनन का, सदा करत है ध्यान॥

"कतक"

कतक कर्म त्याग कर, भगत करो गुरदेव॥ सोहंग सोहंग जपंदिया, कर संतन की सेव॥ मात, तात और भ्रात ते, प्रिय जान गुरदेव॥ और सखा नहि जगत में, जैसे है गुरदेव॥ सखा भगत ऐह अशटमी, कीती अर्जन देव॥ सखा जान गुर भगत कर, त्याग करो अहंमेव॥ काम क्रोध हंकार तज्ज, तब्ब कछू

माघ विचार ॥ जंन गुरुदेव हरि भेटिया, भवजल उतरे पार ॥

"माघ"

माघ महीना धर्म का, दृढ़ कर तूं सतसंग ॥ संतां संग प्रीत कर, कदी ना होवे भंग ॥ धूड़ संत के चरन की, सोई श्रेष्ट है गंग ॥ पापां की मल्ल उतरे, चढ़े नाम का रंग ॥ मनमुख्ख संग ना कीजीए, पडत भजन में भंग ॥ दु:ख बिनसे सुख लाभ होवे, गुरमुख्ख जिन के संग ॥ नाम जपो मिल गुरमुख्खां, जो है सदा आसंग ॥ तूं वी प्रभ ते भिन्न नहीं, जिऊं जल मांहि तारंग ॥ सोहंग नाम रग रग रचे, नाम का चड़े जब रंग ॥ पंचो वैरी त्याग कर, तब

आदू राय जोगका योई॥अगम अरु निगम साख कह दोई॥ टेर॥
सतगुरू मोपर कृपा कीजे ॥ पारब्रह्मकी सोजी दीजे ॥
भूला बहुत जुगनका प्यासा ॥ दया करे पूरो गुरू आशा॥१ ॥
सतगुरू दया करी अब ऐसी ॥ शब्द साधना कहिहै जैसी ॥
सोहं शब्द दिया तत् सारा ॥ सो निश्चै हम उरमें धारा ॥२॥
ज्यामे सुरत धरी एक सारा ॥ हरदम सास उस्वास संभारा ॥
मन पवनाका बेला बाधा ॥अरध उरध जुगती कर साधा॥३॥
द्वादश खोज सरोधे लाया ॥ इडा पिंगला दोनूं धाया ॥
चन्द सूर एकण घर लाया ॥ सुषमणके घर हंस मिलाया ॥४॥

ऐसे चढया त्रिकूटी घाटी ॥ अखंड जोत जले विन वाटी ॥
निरभै जाय गगन घर लिया ॥ बैठ गगन पर डंका दिया ॥५॥
सुंन मांय सहज मिल्या सुख धारा॥ज्यांतो जीव पीव नहि न्यारा॥
सधर सरोवर है इक सारा ॥ परसे गुरूमुख संत पियारा॥६॥
वनानाथ गुरू सार बताई ॥ निश्चै जाण परमपद पाई ॥
उमाराम भरम नहिं काई॥ कर महरम आसोजी गाई॥७॥१५॥

पद राग ॥

सॉभलो सन्त समझरी वार्ता॥ हरी आप अदेख रहवाया ॥
सतगुरू जाण दीवी महा झीणी॥ कर निरणे दरसाया ॥ टेर ॥
अणघड अलख निरञ्जन देवा ॥ नहीं जहां जगत पसारा ॥
आपोई आप अलोगत स्वामी ॥ नहिं कोइ खिलका धारा॥ १ ॥
आदू खेल अमावस थरप्या ॥ सुरत सरोधे लाया ॥
सास उस्वास लग्या मन मेरा॥ समझ करे ठहराया ॥ २ ॥
पडवा पहल पिछाणी काया ॥ ॐकार जगाया ॥
देखत आप आपके भीतर ॥ दुरमत दूर हटाया ॥ ३ ॥
बीजम बीज हुवा प्रकाशा ॥ चेतन तार लगाया ॥
रोजो रोज सवाया दरसे ॥ आप अकाश बहवाया ॥ ४ ॥
तीजम तंत मिल्या त्रिवेणा ॥ झलकत जोत अखंडा ॥
हद बेहद लग हुवा उजाला ॥ सब संशयकूं खंडा ॥ ५ ॥
चौथम सुरत निरत मिल चाली॥ गगना रास रचाया ॥
आदू पीव रीझायो सुन्दर ॥ अनहद नाद घुराया ॥ ६ ॥
पंचम आतमदेव परसिया ॥ सुन घर शहर बसाया ॥

सदा निराश लेश नहिं वाके ॥ निरबंधण किरतार ॥ ३ ॥
वो किरतारा सबमें थाया ॥ सबहीका दातार ॥
हाण लाभ न्यारा नहिं भेला ॥ आपोई आप अपार ॥ ४ ॥
वाकी शोभा कथी न जावे ॥ अगम निगम गई हार ॥
भेद अलेदा वचन न पहुँचे ॥ निरालम्ब निराधार ॥ ५ ॥
नाम रूप मन भाव मिटावे ॥ तजे विपैकी सार ॥
उमाराम केवल जब दरसे ॥ सही पुरुप दीदार ॥६ ॥२७ ॥

पदराग ।

पायाहै जी सतगुरू श्यामका ॥ दीदार मैं पायाहै ॥ टेर ॥
सोहं भेद दिया मेरे सतगुरू ॥ जाका सिवरण गया ॥
जागी जाण धरी धुन उनमें ॥ दुरमत दूरा भया ॥ १ ॥
अखी उजाला सबके पारा ॥ सन्मुख दरशण किया ॥
नूर अखंडित निहचल वासा ॥ सो तो गया न आया ॥ २ ॥
आदि रु अंत मध्य तिहुंमाहीं ॥ रह चेतन एक राया ॥
सो समझ्या सतगुरूकी सैना ॥ जो जन महरम पाया ॥ ३ ॥
वनानाथ गुरू सतस्वरूपा ॥ नित निरवाण अथाया ॥
उमाराम सोई निज केवल ॥ मैं तूं भेद विलाया ॥४॥२८॥

प्रदराग ।

अबमैं जाण्या हैजी ॥ सत् पतिम सम भाव ॥
अब मैं जाण्या ॥ टेर ॥
मेरा पीव पीतका गाढा ॥ पीत बिना नहिं पावै ॥

पलटद्या सब दीसे सो मिथ्या ॥ सागे वेण सुणाया ॥ ३ ॥
आपणी जाण आपही जांणे ॥ ज्यूं गूंगे सैन चलाया ॥
नहिं दूजा दूजाका पाईये ॥ आपोइ आप रहवाया ॥ ४ ॥
भेद आपका भेद नें कोई ॥ ऐसे जाण जणाया ॥
उमाराम आप बिन आपे ॥ सैनीसैन पजाया ॥ ५ ॥ १०५ ॥

रागा आसा ।

साधो भाई कर मेहरम दरसाई ॥ उपजे रह मिटे मायाई ॥
भूल कहीजे आई ॥ टेर ॥
पारब्रह्म का सत शब्द है ॥ सो आतम है सांई ॥
शब्द ब्रह्मतें सवी फोरणा ॥ आप अफुर रहवाई ॥ १ ॥
शब्द ब्रह्मतें शब्द अनंता ॥ नाना भांत दिखाई ॥
आप अभांती भांत न राखे ॥ सोहं ब्रह्म अथाई ॥ २ ॥
सबी कलेश करमतें न्यारा ॥ सबमें रहत अचाई ॥
अकल स्वरूपी आप अनादी ॥ वेद संत आ गाई ॥ ३ ॥
सोहं शब्द निज ज्ञान कहीजे ॥ भेद नहीं ता मांई ॥
शब्द ब्रह्म पारब्रह्म एकहै ॥ सूर घाम दुइ नाई ॥ ४ ॥
सच्चिदानंद आनन्द अपारा ॥ मुखसूं कह्या न जाई ॥
आपोई आप अवर नहिं दूजा ॥ उमाराम लख थाई ५॥ १०६॥

राग आसा ।

साधो भाई पागी पारख लाया ॥ प्रगट जाण कह्या परवाणा ॥
साचा खोज बताया ॥ टेर ॥

सोहं ब्रह्म अमर अविनासी ॥ पूरण सुते प्रकाश ॥
परखण वाला मैंई चेतन ॥ आपोई आप निरास ॥ १ ॥
कारण लिंग थूल तिहुं देहा ॥ मेरी सतातें भास ॥
तिर्गुण भाव सताके सारे ॥ मैंई अकरता खास ॥ २ ॥
मेरी सता सतहै सई ॥ जाण हमारे पास ॥
सता हमारे रोम ने अतर ॥ सदा रह्या एक रास ॥ ३ ॥
सबी क्लेश गुणमें कहिये ॥ गुण तीनूंई नास ॥
निर्विकल्प सत् चेतन आनन्द॥नहिं गुण गुणी विलास ॥ ४ ॥
अविगत भेद हमारा कहिये ॥ अगम निगम थकी वाच ॥
तुरीया अतीत उमाराम चेतन॥ मेरा किया अभ्यास॥५॥१२५॥

राग एली ।

चेतनका स्वाल है योईरे साधो॥ परखणवाला आप ॥ टेर ॥
हमहीं निरालेप निरद्वंदी ॥ नहिं कोइ देख अदेख ॥
दूजा लेश नही मो मांहीं ॥ हमहीं निकलंक एक ॥ १ ॥
पांच ततगुण तीन आददे ॥ हमी दिखाई देख ॥
सबी भावना मोतें भ्यासे ॥ मेरा भाव अलेख ॥ २ ॥
अचल अखंड सबीको द्रष्टा ॥ मेरा सई विवेक ॥
नाम रूप सब मोमें मिथ्या ॥ हमहीं सत् विपेक ॥ ३ ॥
शुद्ध स्वरूप सदा सुखदाई ॥ योई हमारी टेक ॥
उमाराम निरबंधण नितही ॥ निर्गुण थया अभेक ॥४॥ १२६ ॥

19:42
Nage Sanyasisyo ka Itihas.p...

अथ विज्ञान स्तोत्र

ॐ शब्दो स्वरूपी अनादो अगादो, चलेमान बाजी जो उपज्या पसारा। निहचल निराकार, निर्गुण अपारा ॥१॥ उदासी अकासी निवासी, अलंकार आया। रूपो न रेखो न धूपो न छाया ॥२॥ थानो न मानो न ज्ञानो न ध्यानो। लिखता न बकता न रखता न वेदो पुरानो ॥३॥ तालो न ख्यालो न मालो न मेला। उपजे न विनसे न गुरुवा न चेला ॥४॥ काया न छाया न माया न मूलं। शाखा न वृक्षो न पतरो न फूलं ॥५॥ वृद्धो न बाला विशाला न पीतं। निहचल निराकार रहता प्रीतम ॥६॥ कर्मो न भर्मो न शंका न डरनी। लेखा अलेखा न करनी न भरनी ॥७॥

जीवो न सीवो न कालो न जालो। जौंरा न जूनी न जम का न सालो ॥८॥ देवी न दुर्गा न भैंरों न भूता। मसानी भवानी प्रानी न दूता ॥९॥ धामो न द्वारा भंडारा पसारा न जाती। देवा न सेवा न पूजा न पाती ॥१०॥ शेषो महेशो गणेशो न गौरा। हंसा न बंसा न कमला न भौंरा ॥११॥ ब्रह्मा न वेदो न विष्णौं न बांनी। निर्गुण निरालंब रहता बिनांनी ॥१२॥ कंछो न मंछो न धौलो न धरनी। स्वर्गो न मृतो पतालो न वरनी ॥१३॥ नादो न बिंदो न पवनो न पानी। अचल तत्त रहता निरालंब जानी ॥१४॥ कर्मो न धर्मो न पापो न पुन्यं। शुन्यं न बसती न वसती न शुन्यं ॥१५॥ माला सुहंगम बिहंगम अपारी। अचल तत्तथीरं जु हलका न भारी ॥१६॥ नादू न तूरा न मुरली न शंखा। अभय तत्त अग है अजब देश बंका ॥१७॥ खाटा न मीठा न फीका न खारी। हिंदू न तुरका न पुरुषा न नारी ॥१८॥ खावै न पीवै न सोवै न जागै। निरंतर निराशा अचल तत्त रागै ॥१९॥ मौंनी न वक्ता न कथता न ज्ञानं। जापो न थापो न धरता न ध्यानं ॥२०॥ लेवै न देवै न खेवै न खेवा। हारै न जीतै निराकार देवा ॥२१॥ सेली न सींगी न मुंद्रा न कानं। करुवा न फरुवा न भेषो न बानं ॥२२॥ ऐसा तत्त झीना पुष्प गन्ध गलता। ऊठे न बैठे नहीं पंथ चलता ॥२३॥ कुरांनो पुरांनो नहीं साखि चर्चा। मारै न त्यारै नहीं प्राण परचा ॥२४॥ स्वांतो न सीपो न हंसा न मोती। अगम नूर अगहै सु झलकंत जोती ॥२५॥ निराकार निर्गुण निरंतर निराला। नहीं शुन्य शक्ति नहीं प्रेम प्याला ॥२६॥ सकल संग रहता सकल से नियारा। नहीं आदि अंतो अनूपो अपारा ॥२७॥ आवै न जावै न ध्यावै न कोहं। ऐसा तत्त चीन्हो निरालंब सोहं ॥२८॥ गलत नूर गैबी असंख कोटि किरणं। नाचै न काछै नहीं भेष वरणं ॥२९॥ थीरो गंभीरो न इंच्छ्या अचाहीं। माता न पित्रो न बंधू न भाई ॥३०॥ गावै न ध्यावै नहीं सो जमाती। मेला न चेला नहीं संग साथी ॥३१॥ निरसंध नीका सकल है अवाजी। रहै ब्रह्म बीना बिलोवान बाजी ॥३२॥ बाजी भंडारा पसारा न रहसी।

अनुराग मेला महल भेद लहसी ॥३३॥ महल भेद पाया चिताया अपारा। परम शुन्य मेला जु सत्य लोक म्हारा ॥३४॥ सत्त लोक चलिये बिरह अग्नि जलिये, जलै सो निमांना। जैसे नून पानी मिला यौं बिनांनी, परम धाम जान्या ॥३५॥ परम धाम पाया समाया सलेसं। गुलजार गैबी जो निहतंत नेशं ॥३६॥ आशा न वासा निराशा निहकामी। अगम से अगम है जु सत्य लोक धामी ॥३७॥ निरसंध नूरं जहूरं मिलाया। जहां का तहां है जु खोया न पाया ॥३८॥ सप्त अंड तोरी अक्षर धाम डोरी, मक्रतार झीना। बोलै न डोलै अलल पंख हेला, ऐसा तत चीन्ह्या ॥३९॥ खाखी न नूरी न सुरता न निरता। अधरि नांच नांचे बिना बांस बरता ॥४०॥ गुदरी न धागा विहागा न खंथा। मांगै न सांगै नहीं भेष पंथा ॥४१॥ खंध्या न संध्या न सांचे न बांचे, जु रहता निराशा। रमता न भमता न हरषों उदासा ॥४२॥ अगम रास रासी बिलासी अपारी। धोती न पोथी नहीं सो अचारी ॥४३॥ अचारी विचारी भंडारी न महता। डेरा न भेरा सकल सुधि लहता ॥४४॥ नहीं मृगछाला गले नाद माला, जो धूंमी न धामां। जांचै न द्वारा अखारा भंडारा न सामां ॥४५॥ नहीं गोत नाती अजाती अनाथा। पढ़ावै गुनावै समांने समाता ॥४६॥ गुलजार गैबी गलत है सृष्टि में, सकल सिंधि थीरं। बन्दी छोड जान्या पिछान्या, जु अदली कबीरं ॥४७॥ नैंनो न बैंनो न सैंनो न सीख्या। नजरि में अजर है जु गुरु भेद दीख्या ॥४८॥ दीख्या दिखाया सकल में समाया, जु गुरु भेद महली। मिले पाख दरिया अटल पीव बरिया, सकल रूह गहली ॥४९॥

दोहा :- गरीब, विनांनी विज्ञान स्तोत्र, नेश निरन्तर थीर। अविगत महल अगाध है, जहां तखत खवास कबीर ॥५०॥ सोहं हँसा हेरि ले, सुरति समागम कीन। दासगरीब महल मिले, अनरागी ल्यौलीन ॥५१॥

अथ बिलास बोध

महल की खबर लखि भाई क, छाडो ज्ञान चतुराई। बाई बिन्द कूँ कर ठौर, फूले केतकी दर मौर ॥१॥
कमल उलटि हंसा जोय, पट्टन घाट धोबटि धोय। परी है प्रेम की फांसी क, मनुवा गगन के वासी ॥२॥
लगी है उनमुनी तारी क, झिलमिल नूर गुलजारी। बाजैं गगन मंडल तूर, दामिनी दरश झिलमिल नूर ॥३॥
कूरंभ कच्छ मच्छा धौल, तापर शेष की है पौल। ब्रह्मा वेद की ध्वनि होय, विश्वंभर विष्णु चीन्हौ सोय ॥४॥
दरशै नील कण्ठ कैलाश, ता पर देख शिव का बास। सुरनर मुनी जन मैदान, सनकादिक धरत हैं ध्यान ॥५॥
आसन अमर गुटका बंध, मेला सुष्मणा घर सिंध। बामां गुदा में दे जान, तातैं उलटि पांन अपांन ॥६॥
दहना वज्र ऊपर राख, मन कूँ ले चढ़ावौ चाक। कूवा कंकरी कैलाश, डोरी बिना भरते दास ॥७॥
द्वादश पवन परचे फेर, हंसा चढ़ो शिखर सुमेर। लै की लाव है भाई, सलाई शील की लाई ॥८॥
मरुवे हैं मुलायम मेल, प्रेम की पाटि ऊपर खेल। गाडो गूडरी गलतांन, धुरां धरि ध्यान का प्रवान ॥९॥
चंद्र सूर हैं दो बैल, गगनी गगन कूँ कर सैल। कीली कुलफ जूड़ि जूहारि, गम की गौंन मैहनै द्वारि ॥१०॥
चित्त का चड़स दिल दरियाव, बारा नूर का भरि ल्याव। बाइ बिहंगमी बेला क, क्यारी भरत है चेला ॥११॥
अर्शी बाग है नूरी क, मेवा अजब अंगूरी। अमर फल आदि है अनादि, जहां कोई खाहिं बिरले साध ॥१२॥
झंडा त्रिकुटी के तीर, चौसठ सिन्धु सरोवर नीर। ऊंचा मेरु पर्वत जान, सूरज ऊग्या पश्चिम भान ॥१३॥
चंदा झिल मिला झंमकार, देखो उलटि पूरब द्वार। तारे तंतनी उजियार, देखो त्रिकुटी चमकार ॥१४॥
दामिनी खिमैं है उजियार, छ्यानवैं कोटि मेघ मलार। बादल बिना ऊठैं लोर, कोयल कुहुकते हैं मोर ॥१५॥
शीशी प्रेम के प्याले क, पीवै संत मतवाले। प्याले खुरदनी है खीर, हंसा मान सरोवर तीर ॥१६॥

चलि हंसा कलाली कुंज, झलकै तेज नूरी पुंज। अमली अमल में हैरांन, सोफी नहीं पावैं जांन ॥१७॥
चवता फूल जित चोखा क, पीवत हंस होंहि मोखा। जलाबिंब नूर की धारा, जहां है नाम नवारा ॥१८॥
बेड़े पड़े कोटि अनंत, साधु पार उतरैं संत। बरदवानं अकाशी बांध, चिल्ला खैंच उलटा सांध ॥१९॥
भौंहों की चढ़ी है कमान, निशाना रोप्या है मैदान। बेझे विलंब ना कीजे क, ग्यासी खैंचि कसि लीजे ॥२०॥
रतनागर चक्र की ओट, बेझे लगत नांही चोट। चकरी खोल्हि ले खिड़की, बटक सा बीज है बटकी ॥२१॥
खूल्ही पवन से चक्री, अनाहद लगी है जिकरी। चंपा चांदनी शिंभ द्वार, खूल्हे वज्र पौल किवार ॥२२॥
दो दल कँवल की घाटी क, उघरी वज्र की टाटी। अक्षर धाम का धागा क, पौंहचे हंस वीतरागा ॥२३॥
मक्रतार मैंदाना क, अगमी अगम कूँ जाना। बिन पग पंथ है भाई, खबरदार उलटियो नांही ॥२४॥
शंकर शेष पौंहचे नांहि, ब्रह्मा विष्णु कहो कित जांहि। शुन्य में करै को सैली क, बंकी बाट है गैली ॥२५॥
गाजै शब्द सिन्धु आवाज, अदली अदलि सतगुरु राज। गवनी गवन है बारी क, शुन्य में गुमट अटारी ॥२६॥
बिलावल बंग है अरसी क, महली महल हैं सरसी। कंगूरे झिलमिले झांई, निरालंब नूर है सांईं ॥२७॥
कंगूरे नूर के नीके क, चौदह तबक हैं फीके। दुंद न दोष दरिया पाख, सतगुरु कहैं चेला साख ॥२८॥
सलहली सैल है गादी, कला नट तिहरि ज्यूं साधी। डिगे तो पड़े चकनाचूर, नीचे धर्मराय की हूर ॥२९॥
हिरंबर हेत हिल मिल शुन्य, कर्म न धर्म पाप न पुण्य। हीरे झिलमिला झमकंत, लाल अमोली दूलह कंत ॥३०॥
गुलजारी गली बैजार, सतगुरु का तहां व्योपार। सराफा है सही सतलोक, पारस लाल हैं अनजोख ॥३१॥
मोती झिलमिलै झमकार, ऐसा सिन्धु वार न पार। कंद कपूर की टोडी क, बालद भरैं हैं बौडी ॥३२॥
मेर कुबेर है भंडार, अगमी अगम वार न पार। कोटि वैकुण्ठ पाठ पुरांन, यज्ञ अश्वमेध सतगुरु दांन ॥३३॥

संखौं मुक्ति चंपी चूर, आगे मल्ल अखारा हूर। योगी जोगिया ध्यानी क, वाणी पढ़ै ब्रह्म ज्ञानी ॥३४॥
मौनी बीतरागा संत, वहां कोई वार पार न अंत। मेला भर्‌या है बरियाम, सौदा करैं हैं निःकाम ॥३५॥
गलीचे गगनि में हैं गैब, वहां नहीं जाति पायत ऐब। अजाति हैं अनाहद रास, सतगुरु का निश्चल वास ॥३६॥
बिलौरी सेज है सोहं, चंपी करत है ॐ। फुहारे छुटत हैं गगनी क, बेले बाग हैं रंगनी ॥३७॥
असमानी अलंकारी क, गूंजैं भँवर भणकारी। अविगत गुमट है गलतान, फरके श्वेत ध्वजा निशान ॥३८॥

पिंड न काल काया कर्म, जा दिन पुण्य पाप न धर्म। सुख दुःख नहीं था दरवेश, कूरंभ कच्छ धौल न शेष ॥६॥
नेम न धर्म ज्ञान न ध्यान, जूनी जीव मृत्यु न हांन। रिद्धि सिद्धि नहीं था बैराग, श्रोता नहीं लापत राग ॥७॥
लहमी लहम दरिया लैल, ना था ख्वाब मेला खेल। चौबीसौं नहीं अवतार, धरणी नहीं अठारा भार ॥८॥
तेतीस कोटि ना देवा क, अठासी सहंस ना भेवा। नारद नहीं त्रिकाली क, तरुवर मूल ना डाली ॥९॥
सनकादिक नहीं थे च्यार, वाणी कहूँ धूं धूं कार। सूरज चंद्र ना थे पवन, चौदह तबक ना थे भुवन ॥१०॥
तीनौं लोक ना लिलाठ, पांच न तीन सिरजे आठ। जम दम नहीं था लेखा, लिखी नहीं कर्म की रेखा ॥११॥
शक्ति न मुक्ति थी माया क, धूंधूंकार गुरुराया। ना था महाकाल कुलीन, नाद न बिंद सिरज्या सीन ॥१२॥
महत न लोक थे बैकुंठ, च्यार न मुक्ति सिरजी कंठ। दोजिख बहिश्त ना थे दीन, अविगत आप है ल्यौलीन ॥१३॥
बीजक कित रह्या कर्तार, अविगत अलख सिरजनहार। बिश्वंभर कित रह्या मांही, तूंही गति जानता सांई ॥१४॥
निरंतर बीज की खानी, कँवल दल गंध समानी। सृष्टि का भार है केता क, सतगुरु भेद सब देता ॥१५॥
सलहली सैल है सैली, जहां कोई पंथ ना गैली। बीते अनंत जुग अन जोख, सतगुरु रहत है सत्य लोक ॥१६॥
सूरति अजब नगरी ऐंन, शुन्य मंडल अनाहद गैंन। निश वासर नहीं तिथि बार, जा दिन रवन धूंधूंकार ॥१७॥
रवनं रूप रेख न जांन, ता दिन भये थे न जिहांन। अधर ध्वनि गगन गाजत है, अखंडत नाद बाजत है ॥१८॥
दिव्य दृष्टि अलेख अल्लाह, मढ़ी न महल पंथ न राह। योग न भोग था भाई, समुंद्र शब्द बे थाही ॥१९॥
अगम और निगम दोनौं नांहि, माया मूल वृक्ष न छांहि। कथनी कथा कीर्ति काज, सिकल न बिकल शरम न लाज ॥२०॥
सूक्ष्म रूप का रासा, कँवल दल में लिया वासा। बट की बटक बीज विचार, ऐसे कमल दल संसार ॥२१॥
सुहंगम हंस हैं सोहं, इच्छा वासना दोवं। दरीबा दीप है दरियाव, सतगुरु खेलता है दाव ॥२२॥

बांका भगल है भाई, कोई जन भेद जित पाई। जल थल नहीं था निसतूक, पांचौं तत्त सरवर सूक ॥२३॥
ॐकार बाज्या नाद, अविगत आप पूरया साध। कँवल दल सुरति धरि कीन्हा क, ॐकार रंग भीना ॥२४॥
चेला तीन कर तत्काल, शक्ति रची विश्वंभर ख्याल। पांचौं तत्त की ताखी क, त्रिगुण मध्य में राखी ॥२५॥
आरंभी कीया आरंभ, एकै शब्द रोप्या खंभ। सूवा पवन पर संच्या क, बीजक रख्या मन इच्छा ॥२६॥
धर्म का पुत्र उपज्या धर्म, जाकै कौन लावै कर्म। सिरजे च्यार अंड अनादि, जा मध्य जगत की है आदि ॥२७॥
खानी च्यार के सब जीव, मन और पवन संचे पीव। वाणी च्यार का सब ख्याल, काया कर्म सिरजे काल ॥२८॥
विभूती शंभू कूँ साज्या, जलाबिंब थीर कर काजा। पर्वत अस्थि मध्य दीन्हें क, पांचौं खेल मिल कीन्हें ॥२९॥
कूरंभ कीया है कर्तार, कच्छ अरु मच्छ धौल अधार। सहंस फुनि शेष रटता है, अखंडित नाम छुटता है ॥३०॥
चंद्र सूर्य सैलांनी, रचें हैं पवन और पानी। तारे गगन ध्वनि गैंनार, सिरज्या पलक में संसार ॥३१॥
गुपतारी गुइंदर बीज, खेलैं अनंत जुग नहीं छीज। काया कर्म हैं झांई, बिटंबी काल तिस लाई ॥३२॥
सूवा संचर्‌या है पवन, ता पर लग्या आवा गवन। गैबी गैब का भौंरा क, कालं खात हैं जौंरा ॥३३॥
फोरे भ्रम की मुटकी क, जौंरा काल है पुटकी। मरता नहीं है महबूब, हंसा अजब मूर्ति खूब ॥३४॥
सुरति और निरति निश्चल राख, अविगत सिन्धु सोहं साख। सोहं सुरति का निर्बान, निरति तो धसी महलौं जांन ॥३५॥
खेलैं हैं खिलारी ख्याल, शुन्य संदूक मध्य है लाल। भ्रम की भीर है भौंदू क, भूले तुरक और हिन्दू ॥३६॥
सहंस दल कँवल मध्य हैं बास, पट्टण घाट रोको श्वास। चंबेली चांदनी हैं सेज, सुष्मण द्वार सोहं बेझ ॥३७॥
अविगत नगर अदली नेक, घट नहीं धारता है भेष। बहु रंग बिनती सुनिये क, ताना सुरति का बुनियें ॥३८॥
पटंबर पीठ चलना है क, हम कूँ चैन पल ना है। निगम के नाद से न्यारा, सहंस पंखडी प्यारा ॥३९॥

जूनी नहीं जन्म धरता है क, सौदा अजब कर्ता है। सतगुरु की चलो नै हाट, हंसौं की करत हैं साट ॥४०॥
नैनों में बसंता है क, वहां नहीं आदि अंता है। गैबी अजब साजन संग, लाया है निरंतर रंग ॥४१॥
झिलमिल नूर का मेला क, भवजल बिचरिया चेला। मदन की मढ़ी पूरे नाद, मेटै सकल द्वंद्व उपाध ॥४२॥
नीर और खीर छानै है, चरित्र कौन जांनै है। समझि ले सैंन साजन की क, अति चोखा अमी रस पी ॥४३॥
मुलक है मालवे महली, करो नै दूर बद फैली। सहंस जाप का एक जाप, सोहं सुरति का सुनि लाप ॥४४॥
सुरति नैनों में नीका है, अजपा जाप टीका है। दास गरीब सत्य उपदेश, हर दम निकट रहना पेश ॥४५॥

अथ गैंद उछाल के सवैये

है दिलदार अपार निरंजन, योग जुगति समूल सुनावै। मूल कूँ बंधि बिलावल पंथ है, लिंग शरीर का भेद बतावै ॥१॥ दम की धार सुमार सुजीवन, नागी के शीश पै नाद बजावै। भौंरी उलटि लिलाट का घाट है, दण्ड सुमेर सूधा कर ध्यावै ॥२॥ नैंन के बान कमान कूँ खैंचि के, पैठि पताल शेषा गहि ल्यावै। चंद सूरज इला पिंगुला मधि, सुषमन घाट कूँ सुरति लगावै ॥३॥ शुन्य सुमेर कुमेर की राह है, गंग सहंस मुख प्रबी ही नहावै। मूल में पैठि पसाव करै तहां, तापर शाला ही कर्म रचावै ॥४॥ मूल उच्चार गणेश गायत्री है, नौ तत्व के कूँ भिरंग उडावै। चंद्र सूर समोय के सिद्धि करै, नाद सूं नाद कूँ आंनि मिलावै ॥५॥ नाभ कि ताब में बंक की बाट है, औघट घाट कूँ हंसाई जावै।

मेर सुमेर कूँ छेदि के धाईये, सहंस कँवल दल पैठि समावै ॥६॥ जहां जोति अपार कला गुलजार है, तेज रु पुंज के चौंर दुरावै। हीरे लाल बिसाल मोती मुक्ताहल, मानसरोवर हंस चुगावै ॥७॥ शुन्य में शेष बदेस विश्वंभर, ताहि पै सूक्ष्म रूप लखावै। अष्ट भुजा पर मूल सहंस, अक्षर धाम की डोरि बंधावै ॥८॥ मक्रतार अपार है पंथ पुरातम, बिन सतगुरु तहां को ले जावै। संख भुजा परमानंद का देश है, दास गरीब बहुरि नहीं आवै ॥९॥१॥
पांन अपांन उद्यांन बियांन कूँ , खैंचि असमांन न आलस कीजै। बायर बिंद सलेस कर नाद स्यूं , सतगुरु ज्ञान विचार सुनीजै ॥१॥ दुरगुन दीप बंका गढ़ भाई जी, योग जुगति की राह परीजै। खेत मंडे शूरे सार झडैं जहां, सतगुरु आगेई यौह सिर दीजै ॥२॥ ऐसे जन्म कूँ काट न लाईये, साके बिना कहो कौन पतीजै। भूख रु प्यास तिरास सरीकति, खड्ग के धार की चोट में सीझै ॥३॥ शत्रु कूँ मार निछत्र का पूरा तूं , चौदह ही कोटि से जंग करीजै। खेत पड़े सिर पीठ न दीजिये, ताहि पै मौला ई मुरशद रीझै ॥४॥ सुखमन सिन्धु में चंद्र अपार है, प्रीत से प्रेम का प्यालाई पीजै। बंक नाल के घाट में आठ फुहारे हैं, भौंर गुफा मध्य भौंरा ही भीजै ॥५॥ मानसरोवर से गंग जो आई है, मान तलाई उलटि भरीजै। अर्थ धर्म काम हौंहि मोक्ष मुरारी से, कल्प वृक्ष नाम है ध्यान हरीजै ॥६॥ शूरयौं की चोट चुटाल का काम है, लावैं सुरति की चोट निशानें। आत्मराम स्वरूप में सैल है, गगन मंडल में तंबू ही तानें ॥७॥ दीप परदीप दिवाना ही देश है, सतगुरु नीर रु क्षीर कूँ छानें। ऋग यजु साम अथर्वण थाके हैं, ब्रह्मा विष्णु रु शंभू दिवानें ॥८॥ धन्य जननी जगदीश भक्त की, शेष पै सूक्ष्म रूप पिछानें। बावन कोटि कंगूरे अपार हैं, ताहि पै अनहद नाद घुरानें ॥९॥ अविगत नगर में आरती होत है, तहां उहां रहत हैं हंस अमानें।

प्रीत की रीत छिपै न छिपाई जी, नैंन रु बैंन रु सैंन से जानें ॥१०॥ आदि रु अंत है मध्य चिदानंद, सतगुरु खोल्हे हैं गैबी खजानें। दास गरीब उड़े सतलोक कूँ, जैसे अलल पंख कीन्ह पियानें ॥११॥२॥
अजपा ई जाप जपौ जगदीश कूँ , सुरति सुहंगम तार संनेही। तालू न कंठ हलै नहीं रसना जी, देही के मांहि रटे हैं विदेही ॥१॥ शब्द की गाज अवाज सी होत है, बोलनहार चिदानंद येही। खांड रु खीर हमीर का खान है, अन्ध नरा भूले चाटत रेही ॥२॥ तीरथ बरत विश्वास विश्वंभर, धौरी हि जानि के खाई है खेही। बारू की भीति में भात धरें कौन, मूढ नरा सेती न्यारा परेही ॥३॥ मूढ के ढूंढ में डांमाई डोल है, पांच पचीस पिशाच पुकारै। कंठ से नाम न गाम गलीज है, जाप अजपा कहो कैसे धारै ॥४॥ खान रु पान का द्वारा ही दूत है, आप मरे देखो और कूँ मारे। पांच परौसी प्रेतों का साथ है, कीर नरा भूंडे ही किलकारै ॥५॥ स्वाफ शरीर खमीर खुलास है, अष्ट कँवल दल नाम उचारै। रूंम ही रूंम अखंड धुनि ध्यान है, जाप अजपा कूँ संत विचारै ॥६॥ सतगुरु सन्त मिलें अविनाशी जी, आप तिरें अरु और कूँ त्यारै। जूंनी जिहान में फेर न आवहीं, लख चौरासी का भार उतारै ॥७॥ धर्मराय की बंधि समूल छुटावत, चित्रगुप्त का कागज पारै। रूप न रंग अभंग बिराजत, त्रिकुटी पाट पै है दिलदारै ॥८॥ कोटिक सिद्धि खड़ी कर जोरहीं, मेर कुमेर भरें हैं भंडारें। दास गरीब अजपा का ख्याल यौह, पल पल प्रबी है जगि जौंनारें ॥९॥३॥
हाल हजूर चिदानंद साहिब, मौले मुरारी विश्वंभर आया। ना पैद से पैद किया नर मूरख, पिण्ड रु प्राण रची जिन काया ॥१॥ जैसे का तैसा जहां का तहां मौला, खोज करो देखो खोया न पाया। दीद बरदीद जो नूर जहूर है, नैंन की रेख में सुरमा समाया ॥२॥ कुरबान जुगा जुग जाऊँ मैं तास की, जिन्ह महबूब अलेख लखाया। दम सुदम की माला सुहंगम, छत्र श्वेत पर चौंर दुराया ॥३॥

भँवर भारी ज्ञान लावता हूँ ॥४॥ अग्र मूल में पैठ कर आये यारो, जहां नागनी नाथ कर उलटि मारी।

सुर खैंचि कमान का बान मार्‌या, लाग्या पौंन का दण्ड प्रचंड भारी ॥५॥ वामां पैर गुदा की जो सिंध लाया, मूल चक्र का घाट मुंधा विचारी। दहना पैर अंबरी पर जो चूर दीन्हा, बैठे सिद्ध आसन कला जोग सारी ॥६॥ पेचा खोल्हि कर नागनी नैंन मूंदे, जोग नेस क्रिया लील चक्रधारी। देखो नाभि कूँ फेर सुमेर ध्याये, संतों पकर आनी गही ऊँनकारी ॥७॥ हिरदे नाद की गुंजि गुंजार घोरें, कंठ कँवल में पैठ बैराट पारी। इला पिंगुला सुषमना सूत लाया, बजर पौर की जाई खोल्ही किवारी ॥८॥ मोती मुक्ति माला देखी चित्रसाला, हंसा देख रे देख झिलमिल अटारी। सहंस दल कँवल के महल में किया लटका, जहां जोग और जुगति की लगी तारी ॥९॥ भौंरा उजल अलील बिन परों उड़ते फिरें, अछे जो वृक्ष की बैठ डारी। जहां गंग निरबांन असनांन आशा मुखी, हंस बेदी रचै कलाधारी ॥१०॥ परमहंस का लोक परलोक घर अगम है, याह तो सुन्न शक्ति ॐकार नारी। ब्रह्मा विष्णु महेश अरु शेष जाकूँ रटैं, दूर औह देश भुज संख धारी॥११॥ शिव शक्ति मिल सेहरा पुरुष का गूंदही, कोटि कोटि अनभै मिली छंद गावैं। ब्रह्मा कोटि कलधूत के लोक मांही, जहां कृष्ण और विष्णु मुरली बजावैं ॥१२॥ शिव कोटि संगीत जो इन्द्र गिनती कहां, पुरुष प्रवांन अविगत कहावैं। अलख अवधूत संजूत सतगुरु कहैं, दास गरीब ऐसे लखावैं ॥१३॥१०॥ जल थल के बीच में रमि रह्या, तूं देख दीदार दरहाल है रे। औह सेत सुभांन जिहांन मांही, जो अजब महबूब अकाल है रे ॥१॥ पारस की खांनि तो मूत्र की धार में, कहाँ मोती हीरा लाल है रे। गलतांन असमांन में अजब मौला, एक सृष्टि त्रिलोक का माल है रे ॥२॥ जल बूंद से जूंनि जिहान सब होत है, एक पलक के बीच पैमाल है रे। पाखंड कूँ पूज पाखंड परलौ गया, सृष्टि सूवा ठग्या जाल है रे ॥३॥ पत्थर के फैन से फैज पाई नहीं, शीश जम दूत का साल है रे। कौन मारै कहौ कौन मरि जात है, छाडि हंसा चल्या खाल है रे ॥४॥

अगर मूल के फूल की बासना कहत हूँ , झिलमिला रंग रिसाल है रे। सेत ही हंस जहां सेत सरवर सरु, सेत ही कमल जहां ताल है रे ॥५॥ बुदबुदे संख कहां राव और रंक है, नजरि दर नजरि निहाल है रे। दरियाव की लहरि दरियाव ल्यौलीन है, भँवर और फील जल झाल है रे ॥६॥ भरम के बुरज और सीत के कोट हैं, अजब ख्याली रच्या ख्याल है रे। दास गरीब औह अजब निज ब्रह्म है। एक ही फूल फल डाल है रे ॥७॥११॥ एक बटक के बीज में सकल संसार है, बटक का बीज निहबीज भाई। छुछिम सा रूप अनूप निज सार है, निकटि निरबांन निर्गुण समाई ॥१॥ अलख अलेख के भेख बपु हैं नहीं, गर्भ औजूद जानें न माई। चंद में सूर और सूर में चंद है, शरद और गरम दो देह दिखाई ॥२॥ छिपै नही चंद और सूर ऊगै नहीं, रात और दिवस किन्हें बनाई। सुरग पाताल मिरत लोक मौला रचे, अलख इलाम बाजी उपाई ॥३॥ बटक के बीज में बटक सौ संख हैं, बटक का बीज सौ संख राई। वेद बंदूख अवाज सी होत है, नहीं दीदवांन में सुरति लाई ॥४॥ कलम के काम कलधूत पावैं नहीं, मूढ नर अंध कहां घोल स्याही। किले और कोट पर चोट एक होत हैं, लाय कर मोरचे ढाहि खाई ॥५॥ तत की तोब तो दहूँ दिश दगत हैं, सुरति और निरति दो सुरंग लाई। किला अचांन असमान कूँ उड़ि गया। सपतपुर सुंन नौबत बजाई ॥६॥ मन मैंदान में पकरि जोधा लिया, किला कलधूत का दीया ढाही। सफर के बीच में नफर का काम है, जोगिनी मंगलाचार गाई ॥७॥ किले संजूत अनभूत के में बड़े, अरस और कुरस में नूर झांई। अलख महबूब खुद खूब खालिक धनी, दम के बीच दीदार पाई ॥८॥ रैदास चमार और नामा छीपा कहूँ, गया परलोक सदना कसाई। सवा मन सूत जहां तोर पंडित चलें, कनक जनेऊ रैदास ल्याई ॥९॥ जुलहदी जंग दहूँ दीन से रोपिया, तहां नौ लाख बोडी उपाई। करत केशो किया हुकम कबीर से, आन जौंनार काशी जिमाई ॥१०॥

चले जद मगहर कूँ, लखै कोई डगर कूँ , चदर और फूल अधके बिछाई। खड़े दहूँ दीन तिहूँ लोक साका भया, शब्द में शब्द ल्यौलीन थाई ॥११॥ गीध गनिका देखो भीलनी कौन थी, तास के झूठे फल आप खाई। सेऊ और संमन मनियार मौला मिले, हुकम हजाम था सैंन नाई ॥१२॥ मूंज अरु बांस सर खूब चोखे लीये, नामदेव छांनि तहां खूब छाई। पातशाह मसक जद बांधि नामा लिया, गऊ तत्काल बेगहि जिवाई ॥१३॥ पीपा रजपूत और धन्ना था जाट का, तास का खेत साहिब निपाई। बूझ्या चंदुवा और सिंघ दीक्षा दई, ऊँच और नीच में भेद काई ॥१४॥ पंडों की जगि में सुपच साका किया, चौदहूँ भुवन शंखा सुनाई। सहदेव

श्रोता कोटि अनंत हैं, बिरले साधु संत।। ५९।।
गरीब, जिन मिलते सुख ऊपजे, मेटै कोटि उपाध।
भुवन चतुरदस ढूंढ़िये, परम सनेही साध।। ६०।।
गरीब, राम सरीखे साध है, साध सरीखे राम।
सतगुरु कूँ सिजदा करूँ, जिन दीन्हा निज नाम।। ६१।।
गरीब, भक्ति बंदगी जोग सब, ज्ञान ध्यान प्रतीत।
सुंन शिखर गढ़ में रहै, सतगुरु शब्द अतीत।। ६२।।
गरीब, ऐसा सतगुरु सेईये, पार उतारे हंस।
भक्ति मुक्ति की दाति से, मिल है सोहं बंस।। ६३।।
गरीब, सोहं बंस बखानिये, बिन दम देही जाप।
सुरति निरति से अगम है, ले समाधि गरगाप।। ६४।।
गरीब, सुरति निरति मन पवन परि, सोहं सोहं होय।
शिव मंत्र गौरिज कह्या, अमर भई है सोय।। ६५।।
गरीब, ररंकार तो धुनि लगै, सोहं सुरति समाय।
हद बेहद परि वास होय, बहुरि न आवै जाय।। ६६।।
गरीब, गुझ गायत्री नाम है, बिन रसना धुनि ध्यान।
महिमा सनकादिक लही, शिव शंकर बलिजांव।। ६७।।
गरीब, अजब महल बारीक है, अजब सुरति बारीक।
अजब निरति बारीक है, महल धसे बिन बीक।। ६८।।
गरीब, राम नाम के पटतरे, देवे कूँ नहीं और।
सो उदम ता दिन भये, अमर करी जद गौर।। ६९।।
गरीब, शुकदेव सुख में ऊपजे, राई सींग समोय।
नव नाथ अरु सिद्ध चौरासी, संगि उपजे थे दोय।। ७०।।
गरीब, ऐसा राम अगाध है, अविनाशी गहर गंभीर।
हदि जीवों से दूर हैं, बे हदियों के तीर।। ७१।।
गरीब, ऐसा राम अगाध है, बे कीमत करतार।
शेष सहंस फुनि रटत है, अजहुँ न पाया पार।। ७२।।
गरीब, ऐसा राम अगाध है अपरंपार अथाह।
उर में कृतम ख्याल है, मौले अलख अलाह।। ७३।।
गरीब, ऐसा राम अगाध है, निर्भय निश्चल थीर।
अनहद नाद अखंड धुनि, तन मन नहीं शरीर।। ७४।।
गरीब, ऐसा राम अगाध है, बाजीगर भगवंत।
निरसंध निर्मल देखिया, वार पार नहीं अंत।। ७५।।
गरीब, पारब्रह्म बिन परख है, कीमत मोल न तोल।
बिना उजन अनराग है, बहुरंगी अनबोल।। ७६।।

कुंज कमल में बैठ कर, माला फेरे सोय।। ६४।।
गरीब, सुरति सुमरनी हाथ ले, निरति मिले निरबान।
ररंकार रमता लखै, असलि बंदगी ध्यान।। ६५।।
गरीब, अष्ट कँवल दल सुंन है, बाहिर भीतर सुंन।
रोम रोम में सुंन है, जहां काल की धुंन।। ६६।।
गरीब, तुमही सोहं सुरति हो, तुम ही मन और पौन।
इनमें दूसर कौन है, आवै जाय सो कौन।। ६७।।
गरीब, इन में दूसर कर्म है, बँधी अविद्या गांठ।
पांच पचीसौं ले गई, अपने अपने बांट।। ६८।।
गरीब, नाम बिना सूना नगर, पर्‌या सकल में शोर।
लूट न लूटी बंदगी, हो गया हंसा भोर।। ६६।।
गरीब, अगम निगम कूँ खोजिलै, बुद्धि विवेक विचार।
उदय अस्त का राज दे, तो बिना नाम बेगार।। १००।
गरीब, ऐसा कौन अभागिया, करै भजन कूँ भंग।
लोहे से कंचन भया, पारस के सत्संग।। १०१।।
गरीब, पारस तुम्हरा नाम है, लोहा हमरी जात।
जड़ सेती जड़ पलटिया, तुम को केतिक बात।। १०२।
गरीब, बिना भक्ति क्या होत है, ध्रुव कूँ पूछो जाहि।
सवा सेर अन्न पावते, अटल राज दिया ताहि।। १०३।।
गरीब, बिना भक्ति क्या होत है, भावै काशी करवत लेह।
मिटे नहीं मन बासना, बहु बिधि भरम संदेह।। १०४।।
गरीब, भक्ति बिना क्या होत है, भरमि रह्या संसार।
रत्ती कंचन पाया नहीं, रावण चलती बार।। १०५।।
गरीब, संगी सुदामा संत थे, दारिद्र का दरियाव।
कंचन महल बख्स दिये, तंदुल भेंट चढ़ाव।। १०६।।
गरीब, दो कौड़ी का जीव था, सैना जाति गुलाम।
भक्ति हेत गृह आइया, धर्‌या सरूप हजाम।। १०७।।
गरीब, नामा के बीठ्‌ठल भये, और कलंदर रूप।
गऊ जिवाई जगतगुरु, पादसाह जहां भूप।। १०८।।
गरीब, पीपा कूँ परचा हुवा, मिले भक्त भगवान।
सीता सुधि साबित रहै, द्वारामती निधान।। १०६।।
गरीब, धन्ना भक्त की धुनि लगी, बीज दिया जिन दान।
सूका खेत हरा हुवा, कांकर बोई जान।। ११०।।
गरीब, रैदास रंगीला रंग है, दिये जनेऊ तोड़।
जग जौनार चोले धरे, एक रैदास एक गौड़।। १११।।

गरीब, अठारह खूंहनि खपि गई, दुर्योधन बलवंत।
पंडौं संग समीप हैं, आदि अंत के संत।। ११८०।।
गरीब, तिबरलंग हुम्यौं रहै, मन में कछु न चाह।
मौज मेहर मौला करी, दीन्हा तख्त बैठाय।। ११८१।।
गरीब, हिंद जिंद सब ही दई, सेतबंध लग सीर।
गढ़गजनी ताबे करी, जिंदा इसम कबीर।। ११८२।।
गरीब, सात सहीसल नीसली, पीछै डिगमग ख्याल।
नौरंगजेब अरु तिबरलंग, इन पर नजरि निहाल।। ११८३।।
गरीब, अगले सतगुरु शेर थे, पिछले जंबुक गीद।
यामे भिन्न न भांति है, देख दीद बरदीद।। ११८४।।
गरीब, पिछला टांका रहि गया, उतर्या हुकम हजूम।
तिबरलंग कहो कौन है, आये मौलवी रूम।। ११८५।।
गरीब, गाडा अटक्या कीच में, ऊपर बैठे तुम।
बेलनहारा राम है, धोरी आप धर्म।। ११८६।।
गरीब, धर्म धसकत है नहीं, धसकैं तीनूं लोक।
खैरायत में खैर है, कीजे आत्म पोष।। ११८७।।
गरीब, धर्म बिना ऐसा नरा, जैसी बंझा रांड।
बिन दीन्हा पावै नहीं, चाटै चाकी ग्रांड।। ११८८।।
गरीब, साधु संत सेये नहीं, करी न अन्न की साट।
कुतका बैठया कमरि में, बिचतें पाटी राठ।। ११८९।।
गरीब, धर्म बिना धापै नहीं, यौह प्रानी प्रपंच।
आश बिरानी क्यूं करै, दीन्हा होय तो संच।। ११९०।।
गरीब, धर्म किया बलिराय कों, ठानी इकोतरि जगि।
तहां बावन अवतार धरि, लिये समूचे ठगि।। ११९१।।
गरीब, कंपे स्वर्ग समूल सब, ऐसी यज्ञ आरंभ।
आसन सुरपति के डिगे, पान अपानं संभ।। ११९२।।
गरीब, हवन किये हरि हेत से, जप तप संयम साध।
बलि के बावन आईया, देख्या अगम अगाध।। ११९३।।
गरीब, एक यज्ञ है धर्म की, दूजी यज्ञ है ज्ञान।
तीजी यज्ञ है हवन की, चौथी यज्ञ प्रणाम।। ११९४।।
गरीब, च्यार वेद का मूल सुनि, सुषम वेद संगीत।
बलि को ये चारौं करी, बावन उतरे प्रीति।। ११९५।।
गरीब, अमर किये आसन दिये, सिंहासन सुरपति।
ऐसी जगि जगदीश की, ताहि मानियौं सत्त।। ११९६।
गरीब, दान किये देही मिलै, नर स्वरूप निरबान।

गरीब, पलकौ के छज्जे बने, भौंह महल मंडेरे।
जै जै जै जगदीश तूं, धंनि साहिब मेरे।। ६१।।
गरीब, गूदा हाडी रुधिर में, ले संधि मिलाई।
ऊपर चाम लपेटि करि, नख रूंम बनाई।। ६२।।
गरीब, तलवे एडी आंगुली, पींडी प्रवाना।
गोडे जांघ बनाईयां, कादर कुरबाना।। ६३।।
गरीब, कमर करंक करीम कूँ, क्या जोड़ लगाया।
नस नाड़ी का बंध दे, गृह गांठि बंधाया।। ६४।।
गरीब, पेट पीठ पूर्ण किये, परमानन्द स्वामी।
भुजा खवे कुंहनी बनी, सुमरथ घण नामी।। ६५।।
गरीब, आंत उदर में राखि कर, क्या पड़दा कीन्हा।
एक द्वार दों देहरी, अन्न जल का सीना।। ६६।।
गरीब, अष्ट कँवल दल आरती, हरदम हरि होई।
नाभि कँवल में प्राणनाथ, राखे निरमोही।। ६७।।
गरीब, माया की भुरकी पड़ी, मारग नहीं पावै।
दस इन्द्री लारे लगीं, अब कौन छुटावैं।। ६८।।
गरीब, बड़वानल का द्वार है, नाभी के नीचे।
जे सतगुरु भेदी मिलै, तहां अमृत सींचे।। ६९।।
गरीब, जठर अग्नि जाकूँ कहै, जो खुध्या लावै।

अवतार स्थान श्री रामपुर धाम

जल से तृषा ना मिटै, कोई भेदी पावै।। ७०।।
गरीब, तीन पेच है कुंडलनी, नाभी के पासा।
जाके मुख से नीकसे, झल अग्नि अकाशा।। ७१।।
गरीब, मल मूत्र की कोथली, दो न्यारी कीन्हा।
दम का दगड़ा गगन कूँ, ऐसा प्रवीना।। ७२।।
गरीब, मन माया मौजूद है, काया गढ़ मांही।
बीच पुरंजन बसत है, सो पावै नांहीं।। ७३।।
गरीब, पांच भारजा आदि हैं, जाके संग डोलै।
तीन लोक कूँ खाय गई, मुख से नहीं बोलै।। ७४।।
गरीब, बड़ी कुसंगन सुपचनी, सुध बुध बिसरावै।
चिन्ता चेरी चूहरी, नित नाद बजावै।। ७५।।
गरीब, महा दलिद्र की गांठ बांधि, आगे धरि देवै।
तीन लोक की चिन्त कूँ, निश बासर सेवै।। ७६।।
गरीब, काम क्रोध रसिया जहां, मद मोह मवासी।
लोभ लंगर जहां बटत है, वहां बारह मासी।। ७७।।

डिंभ सुरति डर लागे, कपट सुरति है कूड़ी।
कहा योग बैरागे, जानी सुरति न रूड़ी।। १३०।।
पाखण्ड सुरति पतिजाई, त्रिलोकी नहीं ठौरा।
सत्रह सुरती गाई, सोहं सुरती भौंरा।। १३१।।
सोलह सुरती त्यागै, सोहं सुरती नेहा।

अवतार स्थान श्री रामपुर धाम

सो हंसा जुग जागे, पावै पुरुष बिदेहा।। १३२।।
साखीः–गरीब, सोलह सुरती काल है, धमराय की फांस।
सत्रह सुरती कूँ लखे, ताका कबहुं न नाश।। १३३।।
अक्षय वृक्ष में बसत है, सोहं सुरति हनोज।
सो सुरती लखि लीजियो, डारो कृत्रिम बोझ।। १३४।।
रमैणीः–सोलह सुरती की अगवाना, सोहं सुरती मूल बखाना।
जे ते नाद नाभि के तीरा, सोहं सुरती मध्य शरीरा।। १३५।।
सोलह सुरती रमै बपु देशा, सोहं सुरती गावै शेषा।
ऊँ शब्दी मूल उचारा, सोहं सुरती रच्या पसारा।। १३६।।
सुन द्वादस का कहूँ बखाना, सोलह सुरती है दरबाना।
पांच पचीस तीन गुन तूरा, मन राजा संग रहै हजूरा।। १३७।।
तीन लोक जाकी ठकुराई, डिंभ पाखण्ड वजीर बनाई।
आशा तृष्णा ताहि खवासा, मनसा नारी से घर बासा।। १३८।।
पाप पुण्य जाके दरबाना, लोभ मोह दो हाकिम जाना।
कामदार जाके काम हजूरी, क्रोध रूप सब सैना पूरी।। १३९।।
ममता माया लेत इजारे, पकरि किसान सर्व से डारे।
दुर्मति खड़ी कुदूया पुकारे, आत्म जीव कूँ बहु विधि मारे।। १४०।।
कैसे टूटे ये बन्धाना, मन राजा कर है तलबाना।
अग्नि रूप है सैना सारी, आत्म जीव कूँ ल्यौह उबारी।। १४१।।
सुनो फिलाद देवन के देवा, तुम्है उतारो भवजल खेवा।
मैं समर्थ का चाकर चेरा, भवजल पार उतारो बेरा।। १४२।।
गरीबदास यह अरजी भाषै, जठराग्नि से सतगुरु राखै।।

अथ कर्म डण्ड मोक्ष पुराण

रे दुरमती दुराचारी। सठसंगी मूढ़ मुगधं। निष्ट धर्मं। जंबकी जाति सिंह शेरं। मरकबं मलागीरं। भाव अभाव न बञ्चते।। बलम वेदं भावई भारं। किरम कींट शिला पानं धोवते। नदीनायचः। राजानायचः। नारीनायचः। अग्नि नायचः। कलमली कालं। कला हीनं। मोक्ष मुद्रा जनांसती।। सुरहीनं गुदाभ्रिष्टं। सुरसरी सैना। बहे जातं। किंगायत्री ज्ञान ध्यानं। इन्द्र देवादि सुरपतं।। बारू बिरञ्च

07:30

गणपत गौरि कूँ सौंरि संजम करै,
श्री गणेश प्रथम मनावैं। ब्रह्मा और विष्णु शिव मदति संगीत ले,
अलख जगदीश के सिर चढ़ावे।। १।।
प्रथम गायत्री जाप अजपा जपै, नाम निरबान ऊँ उचारै।
पांच पच्चीस मन पौंन कूँ बांधि करि, त्रिकुटी कोट में ध्यान धारै।। २।। नाभ का पवन जब गवन गगने करै, त्रिकुटी भृकुटी खुल्हैं तारा। नैंन मुख मूंदि कर सरवन समोय ले। सुरति और निरति लखि शम्भू द्वारा।। ३।। सर्पनी मारि कर श्वास पीवत रहे, पदम आसन करें मेरे सूधा। सुरग वैकुण्ठ की वासना छांडि करि, जोगिया जुगति कर पद बिरूधा।। ४।। खेचरी भूचरी चांचरी उनमुनी, अकल अगोचरी सबै साधी। अधर ही धार अपार का खेल है, भगल विद्या चढ़ो व्रत वादी।। ५।। चिसम दुरबीन दरबार लागे रहैं, इंगुला और पिंगुला मध्य फुहारा। सुषमना सिंध की जाय परबी लई, सहंस मुख बहै जहां गंग धारा।। ६।। हदफ का तार सुमार दम की करै, पंख बिन हंस गगनें उड़ावै। अष्ट दल कँवल पर सहंस दल कँवल है। जोगिया भँवर मन ले चढ़ावे।। ७।। मानसरवर जहां कँवल फूले तहां, कली दर कली जाय भँवर छ्यावै। कोटि निशान जहां छत्रपति ब्रह्म है, आदि अनादि अनहद बजावै।। ८।। ब्रह्मण्ड में पिण्ड है पिण्ड ब्रह्मण्ड में, पिंड ब्रह्मण्ड किन्हें बनाया। कोटि ही शुन्य जहां कोटि बैराठ है, तास का भेद कहु किन्हि लखाया।। ६।। नाद में बिन्द है बिन्द में नाद है, नाद अर बिंद कर एक भाई। अलल का ध्यान धरि सुरति समूल है, लोक प्रलोक दिव दृष्टि आई।। १०।। अर्श में कुर्श है कुर्श में अर्श है, अर्श और कुर्श से

भिन्न सोई। सुरति में निरति है निरति में सुरति है, सुरति और निरति से अगम जोई।। ११।। बीज में बिरछ है बिरछ में बीज है, बीज और बिरछ का सुनि बयाना। मूल में फूल है फूल में मूल है, डाल फल पान सब एक जान्या।। १२।। सलहली सैल जहां पंथ मारग नहीं, अगमपुर धाम गढ़ हूँठ मांहीं। संख दल कँवल जहां जगमगै जोगिया, तास परि चढ़े नौबति बजाहीं।। १३।। जीव में ब्रह्म है ब्रह्म में जीव है, जीव और ब्रह्म बीचि भ्रम कालं। दास गरीब जो परम गति कूँ गये, मिले दरहाल सतगुरु दयालं।। १४।। २।।

पलक पहर में कूँच तुम्हारा, हो गये राज बिराजी।
शब्द हमारा मानि गंवारा, क्यों समझत नहीं पाजी।। २।।
मन में मुलनां बंग देत है, तेरे दिल ही अंदरि काजी।
करि ले पूजा दूर कर दूजा, टुक देखि ले नेम निवाजी।। ३।।
धनि वै बंदे सतगुरु जिन्दे, जो परसे अरस अवाजी।
दास गरीब पलक कर पलना, चौंर ढुरैं उपराजी।। ४।।
घट घेरै नींद निमानी घट घेरै।। टेक।।
सतगुरु मिलैं तो बेगि छुटावैं, छानैं दूध रु पानी।
पांच पच्चीस शीश चढ़ि खेलैं, ज्यों नाचैं भूत भवानी।। १।।
निंदरा काल जाल है भाई, हो गई तांनम तांनी।
जिंदे से मुरदा करि डारै, भटकत फिरै प्रानी।। २।।
जो जागै सो पद स्यौं लागै, पावै अकथ कहानी।
उलटि पवन षट चकरे बेधै, जा परि मैं कुरबानी।। ३।।
पवन डंड नागनि कूँ मारै, नाभ फिरै तुरफानी।
इला पिंगला सुषमन सेझा, चलि मानसरोवर न्हानी।। ४।।
है बहुरंगी अचल अभंगी, वै तो हैं हंसों के दानी।
कहै दास गरीब अमर होय सुनि करि, तूं मानि हमारी बानी।। ५।।
हंसा उतरैंगे पार नौका नावरी।। टेक।।
लंबे रे बरदवान गहरी जिहाज, नीके रे उतरियौ लागी साज।
डिगै न डोलै कोडी न होय, उस नौका चढ़ि सकै न कोय।। १।।
उस नौका परि जगमग फूल, जा नौका कूँ पलक न भूल।
हीरे मोती जड़िया लाल। वाह नौका है नजरि निहाल।। २।।
त्रिलोकी तिल मांहि सुमेर, उस नौका का ऐसा ही फेर।
पृथ्वी प्रदछिनां दे आवै, एक पलक प्रलोके जावै।। ३।।
सुरग नरक की करैं न कांन, अरसी नौका अजब विमान।
स्वर्ग नरक की करै न भिंन, जा के जरिया कोटि रतन।। ४।।
ब्यौमी से सुरगापुरी जाव, सुर नर मुनिजन धरैं न पाव।
है हिरदे के मध्य त्रिकुटी के तीर,
दास गरीब भजि अविगत कबीर।। ५।।
गाहक फिर फिर जांहि सौदा जोरि है।। टेक।।
तन मन अरपि चढाईयो शीश, सौदा करियो बिसवे बीस।
हाटि पटण जो चलता गाम, बहुरि कौन तेरा लेगा नाम।। १।।
हाटि पट्टन होयगा बारा बाट, बहुरि कौन तेरी करि है साटि।
हिरसि हवा के हैं बजार, जम किंकर की खाहिगा मार।। २।।
मारे रावण मारे कंस, जिन्हि के कहीं न पाये बंस।

धर्मराय की बंध तोर्या, सुखदे संग लेही।। ६।।
सुलतानी बादशाह थे, तज्या बलख बुखारा।
ऐसे सतगुरु बेलिया, भल औगन गारा।। ७।।
गेपीचंद और भरथरी, भल योग बिजोगी।
रामथली रोशन करी, शीतल रस भोगी।। ८।।
गोरख दत्त कबीर हैं, रैदास कमाला।
दादू दर्श पर्श भये, पिया प्रेम पियाला।। ६।।
केते अमली अमल में, उस देश दिवाने।
ऊँचे कुल कूँ कोसना, होंहि धूर समाने।। १०।।
कौन ऊँच कौन नीच है, चढ़ो नाम निवारे।
गरीबदास आजिज तिरे, बूडे बट पारे।। ११।। १३।।
नजर निहाल दयाल है, मेरे अंतरयामी।
सोलह कला संपूर्णा, लख बारह बानी।। टेक।।
उलट मेरदंड चढ़ गये, देख्या सो देख्या।
संख कोटि रवि झिलमिलैं, गिनती नहीं लेखा।। १।।
वर्ण वर्ण के तेज हैं, पचरंग प्रेवा।
मूरति कोटि असंख्य हैं, जा मध्य एक देवा।। २।।
जाकै ब्रह्मा झारू देत हैं, शंकर करि पंखा।
शेष चरण चंपी लगे, अगमी गढ़ बंका।। ३।।
धर ऐनक दुरबीन कूँ, ध्वनि ध्यान लगावै।
उलट कँवल अरशां चढ़ै, तब नजर्यौं आवै।। ४।।
सूक्ष्म मूरत सोहना, अगमी एक रासा।
रहता रमता राम है, घट पिंड न श्वासा।। ५।।
जो देख्या सो किस कहूँ अचरज एक ख्याला।

भजन - 16

र : बारह पेड़ी बावन कचेड़ी, हूकूम झरोकांऊ लागे ।
नौ पेडी ऊं लागे नसाणी, आगे अनगढ़ सागे ।।

परा वाणी नाम की निसाणी, प्रशन्ती ऊँ प्रशन जागे ।
मदा पान फूलड़ा छाई, फल बेकरी के लागे ।।

परा पशन्ति मदा बेकरी, ऐ आऊँ के रागे ।
वाणी ने धार बिचार देखलो, भजन नाभ कंवल मूं जागे ।।

आवत-जावत पावन पिछाणे, शिल तेज घर जागे ।
5 - 25 - 52 ओर 12, ओहंग सोहंग लेखे लागे ।।

सांसम सांस, उसांसम सांसा, हर दम डंका लागे ।
मनमानी डंका मिट जावे शंका, सांसा का सिवरण सागे ।।

राचक रिचा पूरक पूरा, कूम्भक भरवा लागे ।
मन का मणिया पावन का धागा, अब सुरतीऊं रटबा लागे ।।

उठत बेठत आद अन्त देखो, पीव परण के पागे ।
झीणी - झीणी मन्दूरी वाणी, ह्रदय में हूंकरो लागे ।।

अजपा सिवरण सेन बताऊं, तार बंकनाल लागे ।
लागो तार तरबीणी के आगे, भजन त्रिकूटी में जागे ।।

भंवर गूफा में भजन गुंजारे, तार के तिरगुण आगे ।
दे रंणुकार राग चढ़ियो ऊंचो, बिना श्रवण सुणियो सागे ।।

अखण्ड भजन प्रखण्डा में गाजे, बाजा अनहद बाजे ।
अनहद उपरे होवे अवाजा, आठ पहर धून लागे ।।

गेबी गोप अनोप फरती माला, बिना मणिया बिना धागे ।
न अन्छर न नरभे हो रही रटना, अखण्ड लहर धून लागे ।।

मन पावन ऊठे सुरती नहीं पूंगे, ऊठे अंक लेख न लागे ।
शशि भाण तारा ऊठे न पूगे, ऊठे छाया धूप नहीं लागे ।।

नाम का नाम पूनः पहली का, कांई म्हांका भाग आगला जा
गुर्जर गरीबीऊ कनीरामजी बोले, सतगुरू परस्या सागे ।।

15:22

श्वांसों की महिमा तथा महत्त्व पृथ्वी लोक पर है। स्थूल शरीर के लिए आक्सीजन यानि शुद्ध वायु की आवश्यकता है। सूक्ष्म शरीर में प्राण (श्वांस) काम करता है। सतलोक में शरीर श्वांसों से नहीं अध्यात्म शक्ति से चलता है।

काल लोक में भक्ति करके सत्यलोक प्राप्ति करनी होती है। स्थूल शरीर से साधना करनी है। स्थूल शरीर मानव का जब प्राप्त होता है, तब ही मोक्ष का मार्ग खुलता है। इसलिए इस अध्याय में श्वांस का जो महत्त्व बताया है, वह पृथ्वी लोक पर साधना से सम्बन्ध रखता है।

कबीर, श्वांस-उश्वांस में नाम जपो, व्यर्था श्वांस ना खोय।
ना बेरा इस श्वांस का, आवन होके ना होय।।
श्वासा पारस भेद हमारा, जो खोजै सो उतरे पारा।
श्वासा पारस आदि निशानी, जो खोजे तो होय दरबानी।।
हरदम नाम सोहं सोई। आवागवन बहोर न होई।।
श्वांस गुंजार पृष्ठ 94(1672) पर भी प्रमाण है:-
श्वासा सार गहै सहिदानी। शशि के घर महं सूर्य उगानै।।
श्वासा सार गहै गुंजारा। जाप जपै सतनाम पियारा।।
अजपा जाप जपै सुखदाई। आवै न जावै रह ठहराई।।

इस प्रकार श्वांस का महत्त्व बताया है। श्वांस से स्मरण करने से यानि जाप की धुन (लगन के साथ जाप करने) से जीव मोक्ष प्राप्ति करता है।

यह श्वांस (शब्द) गुंजार है। अध्याय का सारांश सम्पूर्ण हुआ।

Previous << अध्याय कमाल बोध का सारांश **||**
अध्याय अगम निगम बोध का सारांश **>> Next**

एतिक श्वास दोइ दलमें आवै । पल बाहर पल भीतर धावै ॥
दूसर कमल झलाझल माँहा । झलकै ज्योति अर्धधुनि ताँहा ॥

सहस्र पंखुरी कमल अनूपा । तहां वसै मनज्योति स्वरूपा ॥
ताहि कमल पर बाजन बाजै । बानी अधर मधुर धुनि गाजै ॥
कूर्म कमल मकरंदी राजा । तहां विराजति शोभित साजा॥
तहां घरनि घरियार बजावै । घनी घनी टंकोर लगावै ॥
दश और पचहत्तर श्वासा । इतना एक घरी परकासा ॥
एतिक श्वासा सहज घर आवै । तहां घरनि घरियार बजावै ॥
छसै पचहत्तर की सहदानी । एक टंकोर टोकावै जानी ॥
इहि विधि चारि टंकोर टोकावै । ताकर भेद सन्त कोई पावै ॥
राहु केतु सँग व्यालिन रोकै । ताको मर्म कोइ जनि अलोकै॥
एक पहर मारै विधि पूरा । गहन गरासै शशि औ शूरा ॥
गहन गरासत निरखै श्वासा । रवि शशि राहु केतुपरकाशा ॥
ताहि संग एक नागिनी रहै । घड़ी घड़ी वह जीवहि गहै ॥
श्वासा सोहंगम गहन गरासै । आगम जानिके जीवहि त्रासै॥
श्वासा सोरह गहन लगावै । छठये मासहि काल सतावै ॥
श्वासा परख घरीकी राखै । दमहि चलै सो आगम भाखै ॥
एहिविधि श्वासचलैपुनिजबही । दुइ हजार सातसै तबही ॥
पुजे घरि पूरण होय जबही । पहरके टोर मारै पुनि तबहीं ॥
एतिक श्वासा प्रहर प्रमाना । घरि चारि गरज बंधाना ॥
आठ घरी दुपहरि जब आवै । टोकै गहर गहन नहिं लावै ॥
चारि घरी चारिउ युग मूला । चारि प्रहर चारिउ समतूला ॥
चारिउ युग एक पहरके माहीं । चारि प्रहर चारि युग ताहीं ॥
प्रथम प्रहर सतयुग परवाना । तापर प्रथम घरी निर्वाना ॥
सतयुगमें युग चारि अपारा । चारिउ युगको नाम निरारा ॥
प्रथमहि सतयुग रोपै थाना । चारों युग तेहि मांहि समाना ॥
सतयुग प्रथम घरी निर्बाना । कीलक युग तेहिमांहि समाना॥

में कर लेने से शेष दो स्वतः वश में हो जाते हैं। बिन्दु के स्खलन को रोकर उसे ऊर्ध्वमुख कर ऊपर उठाने से सहजानन्द की प्राप्ति होती है और मन, प्राण भी अचल हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य और प्राणायाम से ही ऐसा सम्भव होता है परन्तु इसके लिये हठयोग के षट्कर्म से नाड़ी शोधन की आवश्यकता होती है ये षट्कर्म हैं- धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाति।

नाड़ी शुद्धि होने से प्राणादि वायुओं का शमन सहज हो जाता है नाना प्रकार के आसनों और प्राणायामों से सुषुम्ना मार्ग खुल जाता है। शरीर के दक्षिण में व्याप्त नाड़ियाँ सूर्य का अंग है और वामांग वाली चन्द्रमा का अंग। इन दोनों के बीच सुषुम्ना है। नाना प्रकार के अभ्यासों से साधक इन दोनों मार्गों को बन्द कर देता है तब उनमें बहने वाली शक्ति संयमित होकर योनिकन्द के मूल में स्थित सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ी के मुख को खुला पाकर उस मार्ग से ऊपर उठती है तो वस्तुतः कुण्डलिनी ही ऊर्ध्वमुख होती है। प्राणायाम इसमें साधक होता है।

कुण्डलिनी के उद्‌बुद्ध होने पर प्राण स्थिर हो जाता है और साधक शून्यपथ से निरंतर ब्रह्माण्ड में ध्वनित होने वाले अनहद नाद को सुनने लगता है जिसके अन्तर्गत क्रमशः समुद्रगर्जन, मेघगर्जन, भेरी, झर्झर, मर्दल, शंख, घण्टा, काहल, किंकिणी, वंशी और वीणा की झंकार सुनाई देती है। साधक के चित्तस्थैर्य के साथ इन शब्दों का सुनाई देना बंद होता जाता है क्योंकि तब आत्मा अपने स्वरूप में क्रमशः स्थिर होता जाता है।

इस प्रकार हठयोगी साधक प्राणवायु को निरुद्ध करके कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध करता है जो क्रमशः षट्चक्रों-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा चक्र- भेदन कर अंतिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। इन चक्रों के स्वरूप का वर्णन भी बताया गया है इनमें मूलाधार में चार दल है स्वाधिष्ठान में छः मणिपूर में १०, अनाहत में १२ और विशुद्धिचक्र में १६ दल बताये जाते हैं इनके ऊपर भ्रूमध्य में जो आज्ञाचक्र है उसमें केवल दो ही दल होते हैं। सबसे ऊपर

'सिद्धे बिन्दौ महादेवि किं न सिद्धयति भूतले' शिवसंहिता का यह कथन बिन्दु सिद्धि से सर्वसम्भव की बात को स्वीकार करता है पातञ्जल योग दर्शन में भी कहा गया है- 'ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ:।' ब्रह्मचर्य की निष्टा से वीर्य 'बिन्दु' की स्थिरता, ऊर्ध्वगति का लाभ प्राप्त होता है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

ऊर्ध्वरेता भवेद्यावत् तावत् कालभयं कुतः?

जब तक साधक बिन्दु को ऊर्ध्वगामी रखता है तब तक उसको काल-मृत्यु प्राणक्षय का भय नहीं है। अथर्ववेद में भी कहा है कि- 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत' अर्थात् ब्रह्मचर्य रूप तप से देवों ने मृत्यु को मार डाला। दूसरी ओर ब्रह्मचर्य के पालन बिना योग का साधन करना अपने को रोग और मृत्यु के मुख में भेजना है अर्थात् ब्रह्मचर्य से हीन साधक योगमार्ग में सफलता नहीं पा सकता है। ब्रह्मचर्य ही योग में सफलता की कुंजी है। इतना ही नहीं ब्रह्मचर्य ही विश्वमात्र की सफलताओं का बीज है वह सफलता चाहे भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक।

वस्तुत: ब्रह्मचर्य का अर्थ आजन्म क्वारा रहना या जटाजूट आदि भेष बनाकर फिरना मात्र नहीं होता। स्थूलार्थ में ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्यनिरोध या काम दमन से ही है परन्तु इतना समझने से भी ब्रह्मचर्य का अर्थ पूरा नहीं होता। वस्तुत: वीर्य को रोकना, वेद ज्ञान को पाना, सत् चित् आनन्द ब्रह्म में समाना ब्रह्मचर्य हैं। वीर्य एक दिव्य तेज का नाम है।

'वीर्यं वै भर्ग:' वीर्य ही तेज, आभा, प्रकाश है। इस वीर्यरूप ब्रह्म के दीपन से ही ब्रह्म वेद के तत्त्वज्ञान का दर्शन और वेदतत्त्व के ब्रह्म दीपक से सत् चित् आनन्द ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ करता है। यह ब्रह्ममंत्रसंयम ही ब्रह्मचर्य का पूरा तत्त्वार्थ है। इस ब्रह्म त्रिवेणी का स्नाता पुरुष ही योग का सच्चा अधिकारी होता हैं।

हमारे शास्त्रों में वीर्य के बीजत्व, वीरत्व, ओजस्, बल, तेज, शुक्र, रेत, रेतस् कान्ति, बिन्दु, भर्गादि नाम कहे गये हैं और उसे सृष्टि का उत्पादक, पालक, संहारक कहा है किन्तु हठयोग के ग्रंथो में वीर्य को ब्रह्म बिन्दु, ब्रह्म बीज तक कहा है। शिव कहते हें 'अहं बिन्दुः रज: शक्ति:' अर्थात् मैं [शिव] बिन्दु हूँ और शक्ति रज है। साधक के नाभिस्थान में रज और मस्तक के मध्य केन्द्र में वीर्य बिन्दु रहा करता है। रज का सिन्दुर वर्ण और वीर्य का श्वेत वर्ण है। रज रूप पार्वति को नाभि से उठाकर मस्तक में मिला देना ही योग सिद्धि का सफल रहस्य है। ऐसा कर पाने वाले ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता कहलाते हैं। ब्रह्मचर्य का ब्रह्मशब्द भी वीर्य और ब्रह्म के अभेद्य सम्बन्ध को बताता है। इस ब्रह्मचारी का अहं बिन्दु अपने स्वभाव सिद्ध स्वरूप ब्रह्म में ही स्थिर रहा करता है अर्थात् उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि हमारे वीर्य तन्तुओं में संसार से सम्बन्ध रखने वाला कोई वीर्य रूप पदार्थ है या नहीं। उनका ब्रह्म बिन्दु सब तरह के कम्पनों से रहित सदा स्थिर रहा करता है। ये ब्रह्मचारी प्रथम कोटि के होते हैं। ब्रह्मचर्य साधकों की एक और श्रेणी है जिनके ब्रह्मबिन्दु में जो सृजन कम्पन उठा करते हैं, उन्हें वे ईश्वर का सृष्टि सृजन आदेश समझकर सन्तानोत्पत्ति में बदल देते हैं। वे ब्रह्मं की उस ब्रह्मबिन्दु में होने वाली 'एकोऽहं बहुस्याम्' की सांकेतिक सूक्ष्मान्तर दिव्यवाणी को सुना करते हैं जो उन्हें कार्य हेतु प्रेरित करती है। ईश्वरीय

वायु के भेदों की चर्चा पूर्व में की गई थी इसके मुख्य भेदों में प्राण का निवास स्थान हृदय, अपान का मूलाधार तथा समान का नाभि है। पूरक प्राणायाम में प्राण वायु नाभि से नीचे जाकर अपान के साथ मिलता है और रेचक में अपान समान [नाभि] के ऊपर जाकर प्राण से मिलता है। अतः योग में प्राण और अपान के संयोग को भी प्राणायाम कहा गया है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है-

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे
प्राणापानगतीं रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः। ४/२९

गोरक्ष संहिता और घेरण्ड संहिता में कुम्भक प्राणायाम के आठ भेद बतलाये गये हैं-

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवलीचाष्टकुम्भकाः॥ गो.स. ९५

हठयोग प्रदीपिका[१] में प्राणायाम करने के कुछ तरीके बताये गये हैं। रीढ़ में स्थित सुषुम्ना मध्य नाडी है उसके बाई ओर है इडा और दाहिनी ओर पिंगला इन्हें क्रमशः चन्द्रनाडी और सूर्यनाडी भी कहा जाता है। बद्ध पद्मासन में बैठकर योगी चन्द्रनाडी [बाँए नथुने] से प्राण खीचें फिर यथाशक्ति अन्दर धारण [कुम्भक] करें फिर सूर्यनाडी [दाहिने नथुने] से रेचक कर दें। उसके बाद इसका क्रम उलटा हो जायेगा अर्थात् दाहिनी नाक से प्रश्वास छोड़ने के बाद फिर उसी से श्वास भरे यथाशक्ति कुम्भक के बाद बाईं ओर से प्रश्वास छोड़े। इस प्रकार सूर्य एवं चन्द्र नाड़ी से अभ्यास करने पर तीन मास के बाद नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है।

इस प्रकार कुम्भक का अभ्यास प्रातः मध्याह्न सायं और अर्धरात्रि में चार बार करना चाहिये। प्रत्येक बार कुम्भक की संख्या अस्सी होनी चाहिये। प्रारंभ में इस अभ्यास से पसीना आता है मध्यम अवस्था में कम्प होता है उत्तम प्राणायाम होने पर स्थिरता आने लगती है। पसीना आने पर उसे शरीर में ही मल लेना चाहिये।

जिस प्रकार सिंह, गज और व्याघ्र भी धीरे धीरे वश में हो जाते हैं उसी प्रकार धीरे धीरे अभ्यास से वायु भी संयमित होती है शीघ्रता अथवा बलात् अभ्यास से साधक को हानि भी हो सकती है।

महामुद्रा :

मूलबन्ध के साथ बायीं एड़ी से सीवन को कसकर दबाते हुए दाहिनें पैर को फैलाकर शनैः शनैः पूरक करके मूल और जालन्धर बन्ध लगाते हुए दायें पैर के घुटने पर मस्तक को जमाकर यथाशक्ति कुम्भक करें।

कुम्भक के समय पूरक की हुई वायु को कोष्ठ में धीरे धीरे फुलावें और ऐसी भावना करें कि प्राण कुण्डलिनी को जाग्रत् करके सुषुम्ना में प्रवेश कर रहा है, तत्पश्चात् मस्तक को घुटने से शनैः शनैः रेचक करते

हुए उठाकर यथास्थिति में बैठ जायें। यह बामांग हुई। इसी प्रकार दक्षिणांग में इस मुद्रा को करना चाहिये। प्राणायाम की संख्या एवं समय बढ़ाते रहें।

हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि कंठ में जालन्धर बन्ध लगाकर पूरक से भरी वायु को अन्दर धारण करने से शक्ति कुण्डली सहसा सीधी हो जाती है जिस प्रकार दण्ड की चोट खाकर सर्प सीधा दण्ड के समान हो जाता है। तब वह इडा और पिंगला दोनो नाडियों को छोड़कर सुषुम्ना नामक मध्यनाड़ी में प्रवेश करती है। तब धीरे धीरे रेचक करना चाहिये, वेग से नहीं। इस महामुद्रा के करने से महान् क्लेश, दोष तथा मृत्यु आदि नष्ट हो जाते हैं। इस मुद्रा के अभ्यास से सारे रसों का हानिकर प्रभाव नष्ट हो जाता है यहाँ तक कि विष का प्रभाव भी कम हो जाता है। क्षयरोग, कुष्ठरोग, मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि उदर रोग तथा प्रमेह आदि रोग भी नष्ट हो जाते हैं, अतः महामुद्रा का अभ्यास अवश्य करना चाहिये। इस मुद्रा को मनुष्यों के लिये महासिद्धि प्रदान करने वाली कहा गया है। इसे जिस किसी को नहीं बता देना चाहिये अपितु प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये।

खेचरी मुद्रा :

कपाल कुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी॥ गो.प. १/६२

जीभ को उलट कर ऊपर की ओर तालु कुहर में प्रविष्ट करने से वह भ्रूमध्य से स्पर्श करने लगती है। अन्दर जहाँ भ्रूमध्य के पास दोनों ओर नासिका मूल के गड्ढे होते हैं तीन रास्ते बनते हैं-उसी स्थान पर स्थित हो जाती है इसे खेचरी मुद्रा अथवा व्योमचक्र भी कहते हैं। इस मुद्रा का बड़ा माहात्म्य वर्णित है। इसके सिद्ध हो जाने पर योगी विष, व्याधि, मृत्यु और जरा आदि से विमुक्त हो जाता है। उसे रोग मरण, तन्द्रा, निद्रा, भूख, प्यास, मूर्च्छा, आदि नहीं होते हैं। सिद्ध जन इसे खेचरी इसलिये कहते हैं क्योंकि उसके अभ्यास के फलस्वरूप साधक

मूलबन्ध :- हठयोग प्रदीपिका में इसका वर्णन है-

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते।।

अधोगतिमपानं वा ऊर्ध्वगं कुरुते बलात्।
आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबंधं हि योगिनः।। ३/६०-६१

अर्थात् मूलबन्ध योनि और गुदा के आकुञ्चन पर आधारित होता है ऐसा करने से स्वाभाविक रूप से अधोगति वाली अपान वायु ऊपर की ओर आकृष्ट की जाती है। मूलाधार पर बलात् आकुञ्चन के कारण इसे मूलबन्ध कहते हैं। एडी के द्वारा गुदा को सम्पीड़ित करके भी बलात् वायु को ऊपर की ओर खींचा जाता है जिसमें अपान की गति उलट कर ऊपर की ओर खींचा जाता है जिसमें अपान की गति उलट कर ऊपर की ओर हो जाती है। इस प्रकार अपान प्राण से नाद और बिन्दु एकता को प्राप्त करते हैं और योग में सफलता मिलती है अपान और प्राण का ऐक्य करने तथा मूत्र और पुरीष का क्षय [कमी] करने वाला होने से मूलबन्ध के सतत अभ्यास से वृद्ध व्यक्ति भी युवा हो जाता है। अपान के ऊर्ध्वगामी होकर अग्नि मण्डल में प्रवेश कर लेने पर वायु के द्वारा आहत हुयी अग्नि शिखा दीर्घ हो जाती है। तब यह वह्नि और अपान प्राण से मिलते हैं। जो स्वयं उष्णस्वरूप होते हैं इससे देह में जलन अनुभूत होती है। तब सोती हुई कुण्डलिनी संतृप्त होकर जाग जाती और दण्ड से पीटी गई श्वास छोड़ती सर्पिणी के समान सीधी होकर ब्रह्मनाडी या सुषुम्ना में प्रवेश करने लगती है। अतः योगी को नित्य मूलबन्ध कर अभ्यास करना चाहिये। सिद्धासन के साथ यह बन्ध अच्छा लगता है अन्य आसनों के साथ एड़ी को सीवनी पर बिना लगाये हुए भी मूलबन्ध लगाया जा सकता है।

इससे अपानवायु का ऊर्ध्वगमन प्राण वायु के साथ एक होने पर कुण्डली के ऊपर चढ़ने के अतिरिक्त कोष्ठबद्धता दूर होती है। जठराग्नि

को प्रदीप्त करने और वीर्य को ऊर्ध्वरेतस् बनाने में यह बन्ध अति उत्तम है। सिद्ध सम्प्रदाय में साधकों को सलाह दी जाती है कि साधना के अतिरिक्त भी हर समय मूलबन्ध को लगाये रखने का अभ्यास करना चाहिये।

उड्डीयान बन्ध :

दोनों जानुओं को जोड़कर पैरों के तलुओं को परस्पर भिड़ाकर पेट के नाभि से नीचे और ऊपर के आठ अंगुल हिस्से को बलपूर्वक खींचकर मेरुदण्ड से ऐसे लगा दें जिससे कि पेट के स्थान पर गड्डा सा दिखने लगे जितना पेट को अन्दर की ओर अधिक खींचा जायेगा, उतना ही अच्छा होगा। इसमें प्राण पक्षी के सदृश सुषुम्ना की ओर उड़ने लगता है, इसलिये इस बंध का नाम उड्डीयन रखा गया है[१]। पैरों के तलुओं को बिना भिड़ाये भी इस बन्ध को किया जाता है। हठयोगप्रदीपिकाकार ने इस विषय में लिखा है-

उड्डीयानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा।
अभ्यसेत्सततं यस्तु वृद्धोऽपि तरुणायते।। ३/५७

इस बन्ध के अनेकानेक लाभ हैं प्रमुखतः प्राण और वीर्य का ऊपर की ओर दौड़ना मन्दाग्नि का नाश, क्षुधा की वृद्धि, जठराग्नि का प्रदीप्त और फेफड़ों का शक्तिशाली होना। इतना ही नहीं छः मास के अभ्यास से मृत्यु को जीता जा सकता है अतः सारे बन्धों में उड्डीयान उत्तम बन्ध और मुक्ति प्रदाता है।

जालन्धर बन्ध :

> कंठमाकुञ्चय हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम्।
> बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्यु विनाशकः।।[२]

अर्थात् गले को सिकोड़कर चिबुक को हृदय पर दृढ़तापूर्वक लगाने को जालन्धर बन्ध कहते हैं। यह नाड़ी समूह के खुलने वाले भाग को

१. हठयोगप्रदीपिका ३/५५।
२. वही–३/६९।

बन्द कर देता है जिससे शून्य गगन से गिरता हुआ स्राव नीचे नहीं गिर पाता है। गले से सम्बद्ध सारे दुःख कष्ट नष्ट हो जाते हैं। अमृत अग्नि में नहीं गिरता और वायु प्रकोप नहीं होता। कण्ठ के संकोचन से दो नाड़ियाँ कस कर बन्द हो जाती हैं। इसे मध्यचक्र कहते हैं और यह सोलह आधारों को रोक देता है। ये सोलह आधार हैं- अंगुष्ठ, गुल्फ, जानु, उरु, सीवनी, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठदेश, जिह्वा, नासिका, भ्रूमध्य, ललाट, मूर्धा और ब्रह्मरन्ध्र।

मूलस्थान का आकुञ्चन करके उड्डीयान बन्ध करना चाहिये जिससे कि इडा और पिंगला को बांध कर वायु का प्रवाह सुषुम्ना की ओर बहने लगे। इस साधन से प्राण वायु लीन होती है मृत्यु बुढ़ापा और रोगादि नहीं होते। इन तीनों बन्धों को श्रेष्ठ मानते हुये महासिद्ध इनका अभ्यास करते हैं, सोम [चन्द्र] से झरने वाले दिव्य स्राव को यदि सूर्य ग्रहण कर लेता है तो व्यक्ति बूढ़ा हो जाता है। इसका उपाय यही है कि सूर्य के मुख को बन्द किया जाये। इसका उपदेश सहस्रों शासकों से भी नहीं होता, गुरु मुख से प्राप्त उपदेशों से होता है।

महाबन्ध :

बाँए पैर की एड़ी को योनिस्थान में लगायें फिर दक्षिण चरण को बाँए के ऊपर रखकर, श्वास खींच कर हृदय पर चिबुक को कसकर लगाके मन को भ्रूमध्य या सुषुम्ना में लगायें। यथाशक्ति वायु को धारण करके रेचक कर दें। बाँए अंग मे अभ्यास करके फिर दक्षिणांग में अभ्यास करें।

कुछ लोगों का मत है कि कण्ठबन्ध न लगायें, जिह्वा को दांतों के ऊपरी तले में लगाने से ही अच्छा बन्ध लग जाता है इसका तात्पर्य खेचरी से प्रतीत होता है। यह बन्ध सारी नाडियों की ऊर्ध्व गति को निरुद्ध करने वाला होने से महाबन्ध है और महासिद्धि का देने वाला है। मृत्यु के बन्धन को काटने वाला और त्रिवेणी [इडा, पिंगला, सुषुम्ना,] संगम पर ले जाकर चित्त को केदार [भ्रूमध्य] पर, जो शिव का स्थान है, पहुँचा देता है।

महावेध :

हठयोग प्रदीपिका कहती है कि जिस प्रकार रूप लावण्य से संपन्न स्त्री पुरुष के बिना निष्फल होती है उसी तरह महामुद्रा और महाबन्ध महावेध के बिना निष्फल होते हैं। महाबन्ध में बैठा योगी स्थिर चित्त से पूरक करके कंठ मुद्रा से वायु की गति को रोक दे।

दोनों हाथों को बराबर दूरी पर रखके स्वयं को ऊपर उठाकर धीरे धीरे नितम्बों की पृथ्वी पर ताडना दें, ध्यान करें वायु इडा पिंगला को छोड़कर सुषुम्ना से प्रविष्ट हो रही है। इडा और पिंगला का संयोग अमृतत्व की प्राप्ति के लिये होता है। जब मृतावस्था उत्पन्न होने लगे रेचक कर देना चाहिये।

अभ्यास करने से महावेध महासिद्धि प्रदान करता है, बुढापे, श्वेत बालों, झुर्रियों को नष्ट करता है उत्तम साधक इसका सेवन करते हैं ये तीनों [महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध] बहुत गोपनीय, ज़रा मुत्यु के विनाशक, क्षुधा वृद्धि करने वाले और अणिमा आदि सिद्धियों के प्रदाता होते हैं। प्रतिदिन के आठ प्रहरों में आठ बार करने से पुण्य संचयकारी और पाप नाशक होते हैं। थोड़ा थोड़ा अभ्यास प्रारंभ करके धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये।

शक्ति चालिनी मुद्रा :

सिद्धासन अथवा पद्मासन से बैठकर हाथों की हथेलियाँ पृथ्वी पर जमा दें। बीस-पच्चीस बार शनैः शनैः नितम्बों को पृथ्वी से उठा उठा कर ताड़न करें। यह वर्णन बड़ा अटपटा प्रतीत होता है। वस्तुतः नितम्बों का यहाँ कुछ गुप्त और सांकेतिक अभिप्राय है जिसे गुरुमुख से ही जाना जा सकता है। तत्पश्चात् मूलबन्ध लगाकर दोनों नासिकाओं से अथवा वाम से अथवा जो स्वर चल रहा है उस नासिका से पूरक करके प्राण वायु को अपान वायु से संयुक्त करके जालन्धर बन्ध लगाकर यथाशक्ति कुम्भक करें। कुम्भक के समय अश्विनी मुद्रा करें अर्थात् गुह्य प्रदेश का आकर्षण विकर्षण करते रहें। तत्पश्चात् जालन्धर बन्ध खोलकर यदि

शक्ति चालिनी मुद्रा :

सिद्धासन अथवा पद्मासन से बैठकर हाथों की हथेलियाँ पृथ्वी पर जमा दें। बीस-पच्चीस बार शनैः शनैः नितम्बों को पृथ्वी से उठा उठा कर ताड़न करें। यह वर्णन बड़ा अटपटा प्रतीत होता है। वस्तुतः नितम्बों का यहाँ कुछ गुप्त और सांकेतिक अभिप्राय है जिसे गुरुमुख से ही जाना जा सकता है। तत्पश्चात् मूलबन्ध लगाकर दोनों नासिकाओं से अथवा वाम से अथवा जो स्वर चल रहा है उस नासिका से पूरक करके प्राण वायु को अपान वायु से संयुक्त करके जालन्धर बन्ध लगाकर यथाशक्ति कुम्भक करें। कुम्भक के समय अश्विनी मुद्रा करें अर्थात् गुह्य प्रदेश का आकर्षण विकर्षण करते रहें। तत्पश्चात् जालन्धर बन्ध खोलकर यदि

दोनों नासिकापुट से पूरक किया हो तो दोनों से अथवा पूरक के विपरीत नासिकापुट से रेचक करें और निर्विकार होकर एकाग्रता पूर्वक बैठ जायें।

घेरण्ड संहिता में इस मुद्रा को करते समय बालिश्त-भर चौड़ा चार अंगुल लम्बा, कोमल, श्वेत और सूक्ष्म वस्त्र नाभि पर कटिसूत्र से बाँधकर सारे शरीर पर भस्म मलकर करना बताया है।

हठयोग प्रदीपिका में इसे विशेष रूप से कुण्डलिनी प्रबोधित करने वाला माना है। जिस मार्ग से ब्रह्म स्थान पर पहुँच सकते है उसके मुख को ढक कर परमेश्वरी सोई रहती है। योगियों को मोक्ष प्रदान करने के लिये और मूढ़ व्यक्तियों के बंधन के लिये ही यह कुण्डलिनी शक्ति कन्द के ऊपर सोई है इसे जान लेने वाला ही योग को जानता है। उसका स्वरूप सर्प के समान कुटिल आकार वाला बताया जाता है जो योगी उस शक्ति को चालित करता है वह मुक्त हो जाता है। गंगा और यमुना संज्ञा से अभिहित इड़ा और पिंगला के मध्य में स्थित इस बाल ब्रह्मचारिणी तपस्विनी को बलात् ही पकड़ना होता है। वह विष्णु का परम पद है सर्पिणी के समान ही इस को पूँछ से पकड़कर सोते से जगाना चाहिये उसकी निद्रा टूट जाये तो वह शक्ति हठात् ऊपर की ओर चलती है इस सर्पिणी को प्रातः और सांय आधे प्रहर के लिये नित्य चलाना चाहिये इसके लिये परिधान विधि से सूर्य नाडी अर्थात् पिंगला में वायु भरकर चलाया जाता है। वज्रासन अथवा पद्मासन में दोनों पैरों को रखकर उन्हें हाथों से दृढतापूर्वक पकड़ें तब कन्द की स्थिति एडी के जोड़ के पास होगी जहाँ एड़ी से कन्द को दबाया जाये। योगी को चाहिये कि वह वज्रासन में बैठकर कुण्डली को चलाये उसके बाद भस्त्रिका करे जिससे कुण्डली शीघ्र जागृत् हो जायेगी। नाभि के निकट सूर्य का संकोचन [नाभि के संकोचन से] करके कुण्डली को चलाये फलतः मुत्यु के मुख में गये योगी का भी मुत्यु भय दूर हो जाता है। दो मुहूर्त तक निर्भय होकर संचालन करने से वह सुषुम्ना में प्रवेश द्वारा कन्द छोड़ देती है और प्राण स्वतः सुषुम्ना में प्रवेश कर जाते हैं।[१]

१. हठयोग प्रदीप्रिका ३/९७-१११।

इसलिये सुख से इस कुण्डली शक्ति का नित्य चालन करना चाहिये इससे योगी रोगों से छुटकारा पा लेता है। अधिक क्या कहा जाये वह काल को ही जीत लेता है। जो योगी ब्रह्मचर्यपूर्वक रहता है और परिमित भोजन करता है उसे [चालीस दिन] कुण्डली चालन का अभ्यास करने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसके बाद भस्त्रिका को विशेष रूप से करना चाहिये-इस अभ्यास के परिणाम स्वरूप उसे यमराज का भय नहीं रहता है। बहत्तर हजार नाड़ियों के मल शोधन में शक्ति चालन के अभ्यास के सिवाय और उपाय क्या है। वह मध्यमा नाड़ी में योगियों के दृढ़ अभ्यास से आसन प्राणायाम और मुद्राओं के द्वारा सरल [सीधी] हो जाती है।

'हठयोग' शब्द की विभिन्न व्याख्यायें मिलती हैं,

यथा-

ह+ठ+योग = सूर्य+चन्द्र+योग

ह+ठ+योग = प्राण+अपान+योग

ह+ठ+योग = दक्षिण+वाम+योग

ह+ठ+योग = यमुना+गंगा+योग

ह+ठ+योग = पिंगला+इडा+योग

ह+ठ+योग = रजस+रेतस्+योग[१]

सिद्ध सम्प्रदाय को षडंग योग माना जाता है क्योंकि इसमें पतञ्जलि विहित अष्ट योगांगों मे से बाद के छः अंग स्वीकृत हैं यम नियम को सामान्यतया अनिवार्य समझकर छोड़ दिया गया है। आसन सिद्धि के बाद प्राणायाम के अभ्यास का विधान है। इस प्राणायाम का नाड़ी शोधन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राणायाम के चार लक्षण हैं- रेचक, पूरक, कुम्भक ओर संघट्टीकरण।[२] प्राणायाम के अभ्यास से यदि पवन को गगन में प्रेरित किया जाये तो घंटा वाद्यादिकों की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं तथा सिद्धि की प्राप्ति की सम्भावना होती है।[३] इसमें नादानुसन्धान सिद्ध होता है आसन और प्राणायाम के पूर्णाभ्यास मे सम्पन्न होकर धारणा का अभ्यास करने का विधान किया गया है।[४] गोरक्षसंहिता, योगबीज आदि ग्रंथों में प्राणायाम के साथ मुद्रा, बन्ध, वेध का भी वर्णन है। प्राणायाम में ओंकारसाधन तथा अजपाजप दोनों अन्तर्भूत हैं। ऊँकार की प्रतीकात्मक व्याख्या की गयी है तथा सिद्धाचार्यों ने प्रणव को वेद का सार ही नहीं वेद ही माना है। यही शिवशक्ति साधन है यह अनाहत और अखण्ड है। इसका अनुसन्धान ही नादानुसन्धान है। यह नादब्रह्म है।

---

१. हठयोग प्रदीपिका १.१ तथा उसकी टीका, वही ३.१५ तथा उसकी टीका योग बीजम् १. ८३-९०, नाथ सम्प्रदाय, पृ० १०३।

२. सि.सि. प, पृ० २.३५।

३. गो.सं. २.१८-२०, योगमार्त्तण्ड १०८।

४. गोरक्षसंहिता, २.२१, ५२।

सरल साधना है माता के गर्भ से भूमि पर आने के समय से लेकर प्रयाण करने तक सारे जीवन में जो स्वाभाविक श्वास की क्रिया चलती है, यही अजपा साधन है यह जागृत् स्वप्न सुषुप्ति सभी समयों में समान रूप से चलती रहती है। सारा जीवन श्वास प्रश्वासमय है। मनुष्य आत्मविस्मृत अवस्था में श्वास प्रश्वास के अधीन रहता है और निरन्तर काल की प्रेरणा से इड़ा पिंगला नामक बाँए और दाँये भाग से संचरण करता है 'हम्' ध्वनि करता हुआ जो श्वास बाहर निकलता है उसका नाम प्रश्वास और 'स:' ध्वनि करता हुआ जो भीतर जाता है उसका नाम श्वास है। 'हंकारेण बर्हियाति स: कारेण विशेत् पुन:।' जीवनिरन्तर श्वास प्रश्वास के बहाने 'हंस' इस मंत्र का जप करता है किन्तु अन्य जीवों से मनुष्य में भेद यह है कि मनुष्य अपने पौरुष द्वारा ऐसी सामर्थ्य अर्जित कर सकता है, जिससे श्वास प्रश्वास ही इस स्वाभाविक गति में विपर्यय हो सकें अर्थात् साधना के बल पर 'हंस:' गति को सोऽहम् गति में परिवर्तित कर सकता है। तब आत्म ज्ञान का पथ खुलता है और इड़ा पिंगला में संचार करने वाले वायु की वक्रगति सुषुम्ना की सरलगति के रूप में बदल जाती है। सुषुम्ना ब्रह्म मार्ग हैं वायु इड़ा और पिंगला के मार्ग से हटकर जितना ही सुषुम्ना में प्रविष्ट होती है उतना ही विकल्प का शमन होता है। निर्विकल्प आत्मज्ञान का बन्द मार्ग धीरे धीरे खुलने लगता है। यही साधक के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने का साधन है। इसके बिना वायु और मन की ऊर्ध्व गति नहीं हो सकती और ऊर्ध्वगति के बिना विकार का त्याग कर चित्त साम्य भाव में नहीं पहुँच सकता। इसी ऊर्ध्व गति से कुम्भक की सिद्धि होती है प्राणों की बाह्य गति की निवृत्ति इस साधन का उद्देश्य है। प्राणों की बाह्य गति की न्यूनता होते ही अलौकिक शक्तियों का विकास होता है। प्राणों में शान्ति आना आरम्भ होने पर चित्त में निष्काम भाव प्रकट होता है। उसके बाद आनन्द की अभिव्यक्ति होने लगती है।

इस साधना में बड़ा भारी काम यह है कि साधक कुछ न करें, केवल अपने श्वास प्रश्वास की गति का निरीक्षण करता रहे। इसमें

'अर्ध'-'ऊर्ध्व' लय-साधना — यद्यपि योगमार्तण्ड में 'अर्ध-ऊर्ध्व' प्राणापान के प्रतीक भी है[5] तथापि इस साधना में शरीर के अर्ध अर्थात् नीचे भाग में स्थित जीव

---

१. कबीर ग्रंथावली, पृ० २२३ ।
२. सन्त कबीर, पृ० ८२ ।
३. कबीर ग्रंथावली, साखी ५,११, पृ०१२,१३।
४. बीजक, साखी १८६ ।
५. योगमार्तण्ड, श्लोक ३० ।

रूप कुण्डलिनी शक्ति को 'अर्ध' तथा शरीर के 'ऊर्ध्व' भाग में निवास करने वाले ब्रह्म को 'ऊर्ध्व' नाम दिया गया है । इन दोनों लय ही इस साधना का मुख्य उद्देश्य है । 'बावन अखरी' में कबीर इस साधना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि " 'अर्ध' और 'ऊर्ध्व' का निर्णय करते करते तुम देखोगे कि अर्ध भाग (जीव) ऊर्ध्व भाग (ईश्वर) में निवास करना चाहता है । किन्तु यदि अर्ध भाग के बदले ऊर्ध्व भाग मिलने के लिये गतिशील हो तो दोनों का मिलन तथा उन्हें सुख प्राप्त हो सकता है ।[1] एक रमैणी में उन्होंने उसे तीनों लोकों में प्रिय शैल कहा है जो इस अर्ध भाग को उस ऊर्ध्व भाग तक ले जा सकने में समर्थ होता है ।[2] एक पद में उन्होंने हरि से एकता प्राप्त करने के लिये अर्ध-ऊर्ध्व की क्यारी बनाने का उपदेश दिया है ।[3] अन्यत्र उन्होंने देह में 'अरध उरध' बाजार की भी चर्चा की है ।[4] इसी प्रकार 'अर्ध उरध की गंगा जमुना' आदि अन्य प्रकारों से भी उन्होंने इसी साधना की ओर संकेत किया है ।[5]

ज्योतिर्लय योग — इस साधना में आत्मतत्त्व को ज्योतिस्वरूप मानकर ज्योति का बृहद् ज्योति में लय करने का प्रयत्न किया जाता है । गीता में परमात्मा को ज्योतियों की भी ज्योति कहा गया है ।[6] पातंजल योगसूत्र में 'विशोका ज्योतिष्मती' प्रवृत्ति को मानसिक स्थिति का कारण बताया है ।[7] अद्वयतारकोपनिषद् में जिस तारक योग का वर्णन है वह भी एक प्रकार से ज्योतिर्लय योग ही है । वहाँ सुषुम्ना मध्यस्था कुण्डलिनी को 'तड़ित्कोटि समान कान्ति' कह कर आदेश दिया है कि - " 'भ्रूयुग मध्यबिल' तथा 'तालुमूलोर्ध्वभाग' में भी 'ज्योतिर्मयूख' विद्यमान है । इस ज्योतिर्मयूख को ब्रह्म समझना चाहिए - जिसको योगीजन ध्यान द्वारा देखते हैं ।[8] ज्योतिस्वरूपा कुण्डलिनी अथवा जीवात्मा का इसी ज्योतिर्मय ब्रह्म में लय किया जाता

---

१. संत कबीर, पृ० ८१ ।
२. कबीर ग्रंथावली, पृ० २२३ ।
३. वही, पद २१४, पृ० १६१ ।
४. वही, साखी ३१, पृ० ४ ।
५. वही, पृ० ६४, १६६, २२६; संत कबीर, पृ० २२७.
६. गीता १३।१७.
७. पातंजल योगसूत्र १।३६.
८. अद्वयतारकोपनिषद् ५,११ ।

नादबिन्दु-साधना — इस साधना का परिचय पीछे दिया जा चुका है।[6] भीखा साहब ने सुरति और निरति को ही नाद और बिन्दु नाम दिया है। कुछ लोग नाद से नादरूप ब्रह्म तथा बिन्दु से जीवात्मिका शक्ति[7] अर्थ ग्रहण करते हैं अथवा बिन्दु-साधना ब्रह्मचर्य-साधना से सम्बन्धित मानते हैं।[8] कबीर ने इस रूप में कोरी बिन्दु-साधना की निन्दा की है। परन्तु गोरखनाथ ने एक स्थान पर बिन्दु का प्रयोग

---

१. कबीर ग्रंथावली,साखी३०,पृ० ७।
२. वही,पद १८६, पृ०१५२।
३. वही, पृ० २२६।
४. वही, साखी १६, पृ० ६।
५. सन्त कबीर, सलोक २०४।
६. भीखा साहब की बानी,पृ० ३४।
७. हठयोगप्रदीपिका ४।७२.
८. कबीर ग्रंथावली,पद१२२,पृ०३००।

शिव के अर्थ में भी किया है।[1] प्रस्तुत नादबिन्दु-साधना में कबीर द्वारा बिन्दु का यही अर्थ गृहीत है। अपने वास्तविक स्वरूप में तो वह निर्गुण ब्रह्म न नाद है न बिन्दु।[2] फिर भी कबीर द्वारा किये गये वर्णनों से स्पष्ट है कि वे नाद-बिन्दु-साधना को सुरति-शब्द-साधना से कोई पृथक् वस्तु नहीं समझते थे। एक पद में उन्होंने नाद और ब्यंद (बिन्दु) को नाव का रूपक माना है। जिसके खिवैया राम नाम हैं। राम के गुणों को गाते हुए इस नाव द्वारा संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है।'[3] एक अन्य पद में उनका कथन है कि 'मिट्टी का यह पिण्ड स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है (और लीन हो जाता है) जैसे नाद ब्यंद (बिन्दु) में समा जाता है।'[4] 'जगत् गुरु अर्थात् परमेश्वर ने अनाहत किंगुरी बजा दी है। वहाँ दीर्घ नाद द्वारा उस बिन्दु रूप ब्रह्म से ल्यौ लगने लगी है।'[5] अवधूत को सम्बोधन करते हुए वे कहते हैं-' हे अवधूत! गगन अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में नाद-बिन्दु की गर्जना होने लगी है, अनाहत ध्वनि गूंजने लगी है।[6] 'पवन बिन्दु को लेकर गगन में समा गया है'।[7] नाद बिन्दु-साधना की दृष्टि से उनका वह पद बड़ा महत्त्व-पूर्ण है जिसमें उन्होंने स्पष्टतापूर्वक नादबिन्दु-सम्मिलन तथा उसके द्वारा गोविन्द-प्राप्ति की चर्चा की है। उनका कथन है कि '(इस बात का निर्णय करना बड़ा कठिन है कि) नाद में बिन्दु का लय होता है या बिन्दु की नाद में पूर्ण स्थिति होती है। (पर इतना निश्चय है कि) नाद-बिन्दु लय होते ही गोविन्द अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।'[8] इस संसार के चक्र में पड़कर मनुष्य इस 'ब्यंद' (बिन्दुरूप ब्रह्म) के ग्रहण की ओर ज़रा विचार नहीं करता।[9] इस साधना का अन्तिम परिणाम है अभेद की स्थिति - 'जो इस नाद-बिन्दु साधना द्वारा सिद्धा-

---

१. गोरख बानी, पृ० १००।
२. कबीर ग्रंथावली, पृ० २४३।
३. वही, पद १८, पृ० ६४।
४. वही, पद ५७, पृ० १०६।
६. वही, पद १६६, पृ० १५४।
७. वही, पद ३२५, पृ० १६८।
८. वही, पद ३२६, पृ० १६८।
६. वही, पृ० २३०।

वस्था में पहुँच जाता है वह स्वयं ही गुरु तथा चेला, मंत्र और मंत्रेला (मंत्रजापक), पूजा और पुजेला (पुजारी) बन जाता है, स्वयं ही गाता-बजाता है, अपना किया आप ही प्राप्त करता है । वह धूप, दीप, आरती सब कुछ स्वयं हो जाता है अर्थात् भिन्नता की स्थिति समाप्त हो जाती है ।[1] उस बिन्दु रूप ब्रह्म से ही समस्त पिण्ड-ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है ।[2] अत: जब साधक उस बिन्दु (कुण्डलिनी) का उस महाबिन्दु (ब्रह्म) से मिलन कराता है तब दोनों बिन्दुओं के मिलने से पुन: कभी वियोग की अवस्था नहीं आती ।[3] नाद-बिन्दु लय होने पर साधक की अवस्था का एक अन्य चित्र भी दर्शनीय है - 'गगन की नगरी में इस समय एक बून्द की भी वर्षा नहीं होती । वह नाद (नादरूपा कुण्डलिनी) न जाने कहाँ समा गया । जो बाबा पहले बोलते-चालते थे, देही के सदा साथ रहते थे - अब वे उस पारब्रह्म परमेश्वर, माधव परमहंस में लीन होकर तद्रूप हो गए हैं ।[4] अनुभूति की इस चरम अनुभूति में पुन: नाद और बिन्दु की पृथक् सत्ता अनुभूत नहीं होती । समुद्र-शिखर, धरती-गगन, रवि-ससि, पवन-काल-काया कुछ भी प्रतीत नहीं होता । प्रतीति होती है केवल उस गोविन्द और निरंजन की, जिसकी रूपरेखा, मुद्रा-माया कुछ भी नहीं है अर्थात् जो निर्गुण ब्रह्मरूप है ।[5] अनुभव की इस अवस्था का जहाँ नाद-बिन्दु, दिन-रात, नर-नारी, कुल-जाति किसी का कोई अन्तर नहीं रहता, कबीर ने एक अन्य पद में भी वर्णन किया है ।[6]

<u>शक्ति-शिव-साधना</u> — शक्ति-शिव-साधना नादबिन्दु-साधना का ही अपर अभिधान है । शारदा तिलक तंत्र तथा हठयोगप्रदीपिका में नादबिन्दु को ही शक्ति-शिव भी कहा गया है ।[7] कबीर ने कुछ स्थानों पर शक्ति-शिव-साधना का भी उल्लेख किया है, पर उनका इस साधना से क्या तात्पर्य है ? एक पद में उन्होंने मन को ही शिव-शक्ति नाम दिया है, इस रूप में शक्ति-शिवसाधना को मन-उन्मनयोग का ही दूसरा

---

१. कबीर ग्रंथावली, पृ० २४४ ।
२. वही, पद ६१, पृ० २८२ ।
३. सन्त कबीर, पृ० ८१ ।
४. कबीर ग्रंथावली, पद ५७, पृ० २८१ ।
५. वही, पद २१६, पृ० १६२ ।
६. वही, पद २६७, पृ० १८६ ।
७. हठयोगप्रदीपिका, ४।१०२.

हिन्दू तांत्रिक नादलय-साधना

तांत्रिक योग-साधना के अन्तर्गत पीछे इस साधना के स्वरूप तथा प्रभाव-निर्देश की सम्यक् तथा विस्तृत विवेचना की जा चुकी है। इस साधना का कुछ तंत्रों (शारदा तिलक तंत्र आदि) में वर्णन तो उपलब्ध होता ही है, उसके साथ साथ योगशिखोपनिषद् तथा योगकुण्डल्युपनिषद् के तृतीय अध्यायों में भी उसका सुन्दर विवेचन किया गया है। शारदा तिलक तंत्र के अनुसार शब्दब्रह्मरूपिणी कुण्डलिनी से शक्ति, शक्ति से ध्वनि, ध्वनि से नाद, नाद से निरोधिका, निरोधिका से अर्धेन्दु, अर्धेन्दु से बिन्दु और तब परा का जन्म होता है।[५] इस प्रकार कुण्डलिनी से शक्ति उत्पन्न होकर क्रमशः सूक्ष्मावस्था से स्थूलावस्था में अथवा अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था में परिणत होती है। बिन्दु उसकी पूर्ण व्यक्तावस्था है। इस बिन्दु

---

१. हठयोगप्रदीपिका ४।७०-७१.
२. वही ४।७५-७६.
३. वही ४।८४-८५.
४. हठयोगप्रदीपिका ४।६१-६२,६२.
५. शारदातिलक तंत्र १।११०-१२.

से ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और अन्त में वैखरी वाणी की उत्पत्ति होती है। कुण्डली इच्छा, ज्ञान, क्रियारूपा, तेजोरूपा तथा चिदात्मिका है और गुणरूपा होती हुई भी वर्णमाला उत्पन्न करती है।[१] तात्पर्य यह है कि कुण्डलिनी केवल प्रकाशरूपा है। उससे उत्पन्न शक्ति से क्रमशः परा की उत्पत्ति होती है। परा मूलाधार में प्राणवायु अथवा इच्छा शक्ति को उत्पन्न करती है। जब यह इच्छा शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होकर स्वाधिष्ठान में पहुँचती है तब इसका सम्बन्ध मन से होता है और पश्यन्ती कही जाती है। अनाहत में पहुँच कर बुद्धि से संयुक्त होकर वह मध्यमा कही जाती है जिसका श्रवण केवल योगी ही कर सकते हैं। आगे चल कर भिन्न भिन्न ध्वनि यन्त्रों द्वारा वर्णमाला के रूप में वह प्रकट हो जाती है जिसे वैखरी कहते हैं। यह वैखरी ही श्रव्य होती है। इन अक्षरों से ही पद और वाक्य रूप होकर सामान्य मन्त्र, वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, विविध भाषाएँ, स्वर तथा गाथाओं का निर्माण होता है। इसलिए इस वैखरी शक्ति को स्वात्मा में अनुभव करने वाला योगी सरस्वती के प्रसाद से शीघ्र वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है तथा वेद-शास्त्र और पुराणों का स्वयं कर्ता बन जाता है। इसीलिए श्रुति में वाक् के चत्वारि पदों में से तीन पद गुहा-निहित कहे गए हैं[२] - केवल चतुर्थ पद (वैखरी) ही मनुष्यों की वाणी द्वारा प्रकट होती है।

हठयोगप्रदीपिका तथा शारदा तिलक तंत्र के अनुसार बिन्दु (शब्दब्रह्म) का स्थान सहस्रार है। कुण्डलिनी नादस्वरूपा है जो नीचे मूलाधार में रहती है। इस नाद रूपा कुण्डलिनी का बिन्दु स्वरूप शब्दब्रह्म में लीन करना नादबिन्दु साधना या लययोग है। नाद-बिन्दु क्रमशः शक्ति और शिव रूप भी है, अतः इन दोनों का सम्मिलन ही तांत्रिक लययोग है।[३] यह मिलन अनेक उपायों द्वारा सम्भव है। हठयौगिक साधना में प्राणायाम को महत्त्व दिया गया है परन्तु अन्यत्र मंत्रों का महत्त्व

---

१. दी गारलैन्ड आफ लैटर्स - सर जान वुडरफ , पृ० २०४ ।
२. ऋग्वेद १।१६४।४५ ; अथर्व० ६।१०।२७.
३. हठयोगप्रदीपिका ४।१०२ ; शारदा तिलक तंत्र : प्रथम अध्याय ।

अजपा-जपयोग तथा हंसयोग

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने संतों के अजपा-जपयोग को तांत्रिक प्रभावान्तर्गत स्वीकार किया है,[1] किन्तु हमारी यह स्पष्ट धारणा है कि सन्त कबीर के अजपा-जपयोग पर औपनिषादिक (योगोपनिषद) तथा नाथपंथी प्रभाव अधिक है । एक स्थान पर कबीर ने इस सुमिरन की तुलना में तंत्र मंत्र को हेय भी बताया है ।[2] गत पृष्ठों में योगोपनिषद् के आधार पर हंस तथा अजपा-जप योग का जो स्वरूप निर्धारित किया गया है - बहुत कुछ वैसा ही रूप कबीर-साहित्य में भी उपलब्ध होता है । वास्तव में कबीर जिस मंत्रयोग (नाम जपयोग)-साधना के इतने पक्षपाती हैं, अजपा-जाप उसकी ही अगली तथा आन्तरिक अवस्था है । राम नाम जपते जपते एक स्थिति वह आती है जब कि जाप की वह अवस्था अत्यन्त स्वाभाविक हो जाती है, साधक को मुंह में जीभ अथवा कर में माला चलाने की भी आवश्यकता नहीं रहती, जीवन की प्रत्येक दशा में चाहे हम बैठे हों, चलते हों, खाते हों, पीते हों अथवा अन्य किसी कार्य में व्यस्त हों - सुमिरन की यह क्रिया निरन्तर स्वाभाविक गति से चलती रहती है - तब इसी आभ्यन्तर सहज जाप को अजपा अर्थात् बिना बाह्य जप के भी होने वाला जाप कहते हैं । बीजक के एक शब्द में उन्होंने इसकी इसी विशेषता का वर्णन किया है ।[3] इसी को कबीर 'बाहर के पट देकर भीतर के पट खोलने के रूप में व्यक्त करते हैं, यही उनकी वह अन्तर धुनि

---

१. सन्त वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव, पृ० २७६-८० (मूल प्रबन्ध)

२. सन्त कबीर, पृ० १८५ ।   ३. कबीर बीजक, शब्द १६ ।

है जिसके श्रवण के लिए वे बड़े उत्सुक तथा व्यग्र दिखाई देते हैं,[1] यही जाप के मरने पर अजपा के उदय की अवस्था अथवा अजपा में जाप का समाना है ।[2] इसे ही उन्होंने मन की माला फेरने के रूप में भी अभिव्यक्त किया है ।[3] होठों वाले जप की अपेक्षा वे इस मानसिक जप के इतने अधिक समर्थक हैं कि इसके अभाव में जप की अन्य समस्त क्रियाओं को ढोंग मात्र समझ कर उनकी निन्दा तथा खण्डन करते हैं ।[4] यह स्वयं किया जाने वाला अपना जाप है जिसमें साधक सदा प्रवर्तित रहता है ।[5]

हम पीछे कह आए हैं कि योगोपनिषदों में प्रतिदिन सांस की स्वाभाविक गति के साथ साथ सम्पन्न होने वाले २१ हजार ६ सौ जप का उल्लेख हुआ है । संत कबीर ने भी एक पद में जहाँ अपने सहज योगी के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया है - इस तथ्य को 'सहस इकीस छ सै धागे' फिराने के रूप में व्यक्त किया है ।[6] 'सोऽहं' 'सोऽहं' ध्वनि ही इसका स्वरूप है, जिससे साधक फिर पुण्य-पाप किसी में लिप्त नहीं होता -

'सोहं हंसा ताको जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप ।' -क०ग्रं०,पृ०१६६.

साधक के जीवन में इस हंसयोग या अजपा-जाप का अत्यन्त महत्त्व है । समस्त प्रकार की आध्यात्मिक सिद्धि, भ्रम-विनाश तथा मुक्ति की प्राप्ति इस

विविध योगशास्त्रों में मंत्रयोग का जो स्वरूप वर्णित है उसमें सर्वत्र एकता नहीं दिखाई देती - प्राय: नाम-जप या अजपा-जाप को इनमें प्रधान स्थान दिया गया है। पातंजल योगशास्त्र के कुछ सूत्रों में प्रणव-जाप के रूप में इस साधना का संकेत प्राप्त होता है।[1] योगोपनिषदों में इसका कुछ अधिक विस्तार है। योगशिखोपनिषद् में कहा है - 'हकार के साथ बाहर सांस छोड़ते हुए तथा सकार के द्वारा अन्दर सांस लेते हुए जीव सदा 'हंस' मंत्र का जाप जपते रहते हैं परन्तु जब गुरु के वाक्य से सुषुम्ना में यह जप विपरीत अर्थात् 'सोऽहम्, सोऽहम्' रूप हो जाता है तब वह मंत्रयोग कहा जाता है।'[2] योग तत्त्वोपनिषद् में मंत्रयोग को अधम उपाय कहा है — 'जो मात्रा युक्त बारह सौ जप करता है वह क्रम से अणिमा आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। पर इस प्रकार के योग को अल्पबुद्धि जन करते हैं और वे अधम श्रेणी के साधक होते हैं।'[3]

नामजप के अतिरिक्त मंत्रयोग में भक्तियोग, प्रेमयोग, प्रणवयोग, वाक्-योग, अजपाजाप, हंसयोग आदि का वर्णन भी किया जाता है। संत कबीर की साधना में भक्तियोग का जो स्वरूप है, वह उनके प्रेम-योग से अभिन्न है। दूसरे शब्दों में कबीर की भक्ति प्रेम-प्रधाना भक्ति है, प्रेम-साधना उनकी भक्ति-साधना की तरह सहायिका एवं अविभाज्य अंग है। अत: दोनों में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं समझा जा सकता।

हंसयोग मंत्र जपयोग से अगली अवस्था है जिसका वर्णन योगोपनिषदों में प्राप्त होता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने इसे नित्य होने वाला सतत अनन्य स्मरण कहा है।[4] यह योग एक प्रकार से मंत्र-जपयोग का अव्यवहित परिणाम है।

---

१. 'तस्य वाचक: प्रणव: ।।२७।। तज्जपस्तदर्थभावनम् ।।२८।।'
- पातंजल योगदर्शन १।२७-२८.

२. योगशिखोपनिषद् १।१३०-३१.

३. योगतत्त्वोपनिषद् २१-२२। ४. गीता ८।१४.

हंसयोग मंत्र जपयोग से अगली अवस्था है जिसका वर्णन योगोपनिषदों में प्राप्त होता है।[४] गीता में भगवान् कृष्ण ने इसे नित्य होने वाला सतत अनन्य स्मरण कहा है। यह योग एक प्रकार से मंत्र-जपयोग का अव्यवहित परिणाम है।

---

१. 'तस्य वाचकः प्रणवः ।।२७।। तज्जपस्तदर्थभावनम् ।।२८।।'
- पातंजल योगदर्शन १।२७-२८.

२. योगशिखोपनिषद् १।१३०-३१.

३. योगतत्त्वोपनिषद् २१-२२ । ४. गीता ८।१४.

जब मंत्रसाधक बाह्य मंत्र का जाप करते करते इस स्थिति में पहुँच जाता है कि उसका होठों वाला बाह्य जाप छूट जाता है तथा बिना जीभ और माला की आभ्यान्तरिक साधना स्वतः होने लगती है, जब चलते-फिरते, उठते-बैठते अर्थात् जीवन के समस्त कार्य-कलापों में बिना किसी बाधा के सोऽहं रूप से मन इस जाप को जपता रहता है, तब इस स्थिति को अजपा-जाप कहा जाता है। मन की मस्ती के कारण इस अवस्था में मुख से किसी भी प्रकार के शब्दोच्चारण की आवश्यकता नहीं रहती आराध्यदेव के प्रेम का अधिकार मन पर इतना अधिक हो जाता है कि शरीर का प्रत्येक रोम मानों उसकी ही ध्वनि का उच्चारण करने लगता है।

हंस-योग का वर्णन मुख्य रूप से योगोपनिषदों में पाशुपत ब्रह्मोपनिषद्, ब्रह्म विद्योपनिषद् तथा हंसोपनिषद् में प्राप्त होता है। यहाँ 'हंस' के स्वरूप, अर्चन-विधि, विस्तार तथा महिमा के विस्तृत उल्लेख हैं। हंस की व्यापकता का दिग्दर्शन कराते हुए हंसोपनिषद् में कहा है कि 'सारे शरीर में हंस उसी प्रकार व्याप्त रहता है जिस प्रकार अग्नि काष्ठ में और तिलों में तैल व्याप्त रहता है। हंस के इस स्वरूप को जानकर साधक मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।[१] यह हंस क्या है ? उसके लिए ब्रह्म विद्योपनिषद् में कहा है —' हंस सत् अच्युत ब्रह्म का ही नाम है जो प्राणियों के हृदय (देह-मध्य) में निवास करता है। वही परम सत्य है, परम वैदिक वाक्य है, परात्पर रुद्र भी वही है तथा उसी को समस्त देवताओं में निवास करने वाला महेश्वर भी कहते हैं। पृथ्वी से लेकर शिव तक ५१ भेदों में वही[२]

सर्वदु:ख बहिष्कृत तथा ज्ञानमय हो जाता है ।[1] योग की सफलता पर मन का लय हो जाता है, मन के संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते हैं, पुण्य-पाप दग्ध हो जाते हैं तथा सदाशिव, सर्वत्र व्यापक, स्वयंज्योति, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन, शान्ततम, एकात्मा प्रकाशित होने लगता है ।[2]

अजपा-जाप ही मंत्रयोग तथा हंसयोग का मूल आधार तथा प्रमुख साधन है । अत: प्राचीन ग्रन्थों-योगोपनिषद् आदि में जहाँ कहीं भी मंत्रयोग का वर्णन है वहाँ प्राय: अजपा के द्वारा ही उसके स्वरूप का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया गया है । योगशिखोपनिषद् के मत का इस सम्बन्ध में पीछे उल्लेख किया जा चुका है । मंत्रयोग का यह स्वरूप ही वास्तव में अजपा-जाप है, जिसका अन्यत्र अजपा-जाप के नाम से वर्णन भी हुआ है - 'हंस सभी प्राणियों के शरीर में निवास करता है । यह प्राण और अपान की ग्रन्थि ही अजपा कही जाती है । एक दिन में २१६०० बार इस की आवृत्ति स्वत: होती जाती है । योगी को चाहिए कि वह इस के विपरीत रूप 'सोऽहं' का नित्य जाप करे तथा मूलाधार स्थित अधोलिंग, अनाहत स्थित आत्मलिंग और भ्रूमध्य स्थित ज्योतिर्लिंग पर अपना ध्यान केन्द्रित करे ।'[3] ध्यानबिन्दूपनिषद् (श्लोक ६१-६५) तथा योगचूडामण्युपनिषद् (श्लोक ३१-३६) में भी अजपा गायत्री के स्वरूप तथा महिमा का वर्णन है, पर उस में अजपा-जाप के उपर्युक्त वर्णन से कुछ विशेषता नहीं है ।

कबीर पंथियों में ब्रह्म के अन्य नामों की अपेक्षा राम नाम को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है । स्वयं कबीर ने भी राम जप पर अधिक बल दिया है । अत: विश्वनाथ सिंह की बीजक की टीका में उपर्युक्त अजपा-जाप में हंस के स्थान पर राम नाम को स्वीकार किया गया है तथा ध्यान बिन्दूपनिषद् और योगचूडामण्युपनिषद् के मूल श्लोक को कुछ परिवर्तित रूप में ऐसा कर लिया गया है -

---

१. ब्रह्मविद्योपनिषद् ५७-५९ ।

२. हंसोपनिषद् २१ ।

३. ब्रह्मविद्योपनिषद् ७८-८० ।

५९—उन्मनी या मनोन्मनी सूर्य और चन्द्रमा के सयोग या सामरस्य से प्राप्त होती है।[1] गोरखनाथ ने इस बात को कई बार कहा है। उनकी एक सबदी है—'उलटंत नादं पलटत ब्यद, बाई के घरि चीन्हसि ज्यद। सुनि मडल तहा नीझर झरिया, चद सुरचि लै उनमनि घरिया।[2] इसमें गोरखनाथ ने सूर्य-चन्द्र के मेल या सामरस्य से उन्मनी का उत्पन्न होना बताया है। उनका कहना है कि यदि सूर्य और चन्द्र के योग से उन्मनी धारण कर ली जाय तो विश्वब्रह्माण्ड में व्याप्त नाद उलट कर अन्तर्मुख हो जाता है, अधोमुख विन्दु (अर्थात् झड़ना या पतित होना ही जिसकी व्यापक वृत्ति है ऐसा वीर्य या शुक्र) ऊर्ध्व-मुख हो उठता है। वीर्य की ऊर्ध्वमुखता ही चूँकि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण का उपाय है अतः उसके ऊर्ध्वमुख होने से प्रसुप्त कुण्डलिनी जाग्रत होकर सहस्रा-रस्थ परमशिव से सामरस्य के लिये षट्चक्रों को भेदती हुई ऊपर उठ जाती है, प्राणायाम द्वारा ब्रह्माण्ड में चढ़ाया हुआ प्राणवायु अपना असल घर पहचान लेता है और अमरतादायक चन्द्ररस शून्य मण्डल में निर्झर की तरह प्रस्रवित होने लगता है। इसी प्रकार महादेव जी नामक नाथसिद्ध का कहना है कि चन्द्र

१—दे० योग और हठयोग, पैरा ३८-४७

२—गोरखबानी, सबदी, ५५, पृ० २०

मण्डल में अगर सूर्य को संचरित कर दिया जाय और इस प्रकार ध्यान धारण करके उन्मनी लगाई जाय तो काल और विकाल सभी अपवारित हो जाते हैं अतः अपनी 'सहज वाणी' में ध्यान धारण करने और उन्मनी को प्राप्त करने का सीधा तरीका बताते हुए वे सूर्य को चन्द्रमण्डल में सचरित करने की सलाह देते हैं।[1] गोरखनाथ ने एक अन्य सबदी में चाँद और सूर्य के विलीन हो जाने पर गगनमण्डल में स्वप्रकाश रूपा उन्मनी की सेज के चमकने की बात की है और अवधू को सम्बोधित करके कहा है कि दभ को वश में करके, जहाँ अनह-दतूर (अनाहतनाद) निरन्तर बजता रहता है ऐसी उन्मनी अवस्था में रहना चाहिये।[2]

६०—नाथ सिद्धों ने उन्मनी की प्राप्ति के लिये प्राणायाम का उल्लेख सकेत किया है। प्राणायाम मन और प्राण के संयमन की सर्वाधिक मान्य हठयोगी विधि है। गोरखनाथ ने इन मन और प्राण का सयमन करके उन्मनी धारण का आदेश देते हुए कहा है कि सयम से रहना देवकला है और आहार के पीछे पड़े रहना भूतकला[3]। तत्वसार को जाननेवाला योगी तो वह है जो मन और पवन को एकस्थ करके उन्मनी धारण करे।[4] एक अन्य सबदी में उन्होंने स्पष्ट रूप से प्राण और अपान वायु को उदरस्थ अर्थात् अन्तर्मुख करने और इस प्रकार नवद्वारों को बन्द

१—नाथसिद्धों की बानियाँ, महादेव जी की सबदी १२, पृ० ११६।
'चन्द्रमडल मधे सूरीयो सचारि, काल बिकाल आवता निवारि।
उनमनि रहिबा धरिबाधयान, सकर बोलति सहज बानि॥

२—गोरखनाथ, सबदी ५१, पृ० १९।
अवधू दभ को गहिबा उनमनि रहिबा ज्यू बाजबा हनहदतूर।
गगन मडल मै सेज चमकै चद नहीं तहा सूर।

३—गोरखनाथ भरि-भरि खाने के बहुत खिलाफ हैं। उनका विश्वास है कि भरि-भरि खाने से शुक्रक्षरित होता है और शुक्रक्षय उनकी दृष्टि से भयकरतम अपराध है। अमरदेह की कामना करने वाले हठयोगी के लिये यह भरि-भरिखाना, झरि झरिजाना पिशाचकर्म है। गोरख इसीलिये बताते हैं कि अगर-सदैव निरोग रहना है तो आहार को तोड़ो, निद्रा को मोड़कर उसे वश में करो। दे० सबदी ३०-३३, पृ० १२-१३।

(अमरता) भी मिल जाता है ।[१] गोरख ने मन पवन को प्राणायाम द्वारा मिला कर उन्मनी साधने और इस प्रकार सत्व, रज, तम नामक तीनों गुणों को वाधित करके जीवन-मरण, की सधि स्वरूप अखण्ड अजर-अमर पद को प्राप्त करने की सलाह दी है ।[२]

६१—नाथसिद्धों ने उन्मनी-साधना के मार्ग मे पड़ने वाले खतरों का भी उल्लेख किया है । गोरखनाथ का कहना है कि जब तक उन्मनी की डोरी टूटी हुई हो चन्द्रमडल से प्रस्रवित होने वाला अमृत-रस कैसे बह सकता है ? वह तो उन्मनी की तारी लगने पर ही प्रवाहित होता है । उन्मनी के लगने से ही स्थिरता आती है और आनन्द मिलता है । लेकिन अगर उन्मनी की तारी टूट जाय तो तत्क्षण शरीरपात हो जाता है ।[३] गोरखनाथ ने इसके लिये दसवें द्वार को बन्द करने की नई रीति का सधान बताया है । उनका कहना है कि उन्मनी लगाने वाला योगी दशमद्वार (ब्रह्म रंध्र) मे समाविष्ट होता है और नाद तथा बिन्दु के मेल से धूँधूँकार रूपी अनाहतनाद का साक्षात्कार करता है लेकिन गोरख ने एक और ही रास्ता खोज लिया है । वह रास्ता है दसवें द्वार को भी कपाटबद्ध करके निरन्तर स्थिर रहने वाली उन्मनी लगाना ।[४]

नाथों ने यदाकदा उन्मनी के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारियाँ भी दी हैं । अपने एक पद में उन्मनी द्वारा तृष्णाक्षय की बात करते हुए गोरख ने प्रेमपाश में बद्ध योगी योगिन के रूपक के सहारे काफी विस्तार से उन्मनी

१—खिमा जाप सील सेवा । पच इन्द्री हुतासनम् ।
उनमनि मडप निरबान देव । सदाजीव न भाव न भेव ॥
वही, पृ० ५८ ।

२—गोरख बानी, पन्द्रह तिथि ८, पृ० १८२,
सातन, सत रज तम गुण बधि, पावौ जीवन मरण की सधि ।
अविहड़ अजर अमर पद गहौ, मन पवन ले उनमन रहौ ॥

३—तूटी डोरी रस कस बहै । उनमनि लागा अस्थिर रहै ।
उनमनि लागा होइ अनद । तूटी डोरी बिनसैकन्द ॥
गोरखबानी, सबदी, १२८, पृ० ४५

४—उनमन जोगी दसवें द्वार । नाद ब्यंद ले धूधूकार ।
दसवें द्वारे देइ कपाट । गोरष षोजी औरे बाट ॥
वही, सबदी १३५, पृ० ४७ ।

(५६)

७८—हठयोग की साधना में सोम और सूर्य पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके उन्हें संयुक्त करना ही मुख्य उद्देश्य माना जाता है। ऊपर के विवरण में हमने सोम सूर्य की रजवीर्य सम्बन्धी व्याख्या का विवरण दिया है। सूर्य-चन्द्र की और भी कई व्याख्याएँ मिलती हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किन्हीं ब्रह्मानन्द के मत का उल्लेख करते हुए बताया है कि सूर्य से प्राणवायु का तात्पर्य होता है और चन्द्र से अपानवायु का। प्राणायाम द्वारा इन दोनों का निरोध या योग कराना ही 'हठयोग' है[४]। हठयोग प्रदीपिका ३, १५ में एक अन्य व्याख्या

तयोर्मध्ये परा तेज उभयानन्द सुंदरम्।
अवतारः स विज्ञेय उभाभ्यां व्यापकः शिवः॥
परस्पर समाविष्टो चन्द्रोग्निष्टी टिमेशशी।
चन्द्रसृष्टिं विजानीयादग्निः संहार उच्यते॥
अवतारो रवि प्रोक्तो मध्यस्थः परमेश्वरः।
—तन्त्रालोक ३,६७ की टीका में उद्धृत।

१—विस्तार के लिये दे० 'कैलास (२) पर मेरी टिप्पणी, हिन्दी साहित्यकोश, भाग १ संस्करण २, पृ० २६९।

२—कालाग्नि के लिये दे० 'कालाग्निरुद्र' पर मेरी टिप्पणी, वही, पृ० २४८, तथा नाथसंप्रदाय पृ० १७२।

३—सपुनर्द्विविधोबिन्दु, पाण्डुरोलोहितस्तथा।
पाण्डुरः शुक्रमित्याहुर्लोहिताख्यो महारजः॥
नाभिः देशेवसत्येको भास्करोदहनात्मकः॥
अमृतात्मास्थितोनित्य तालुमूले च चन्द्रमाः॥
वर्षत्यधोमुखचन्द्रो ग्रसत्यूर्द्धमुखोरविः॥
ज्ञातव्या करणी तत्र यथा पीयूषमाप्यते॥—गोरक्षपद्धति, सन् १९५४, पृ० ३५।

४—नाथ सम्प्रदाय, पृ० १२३।

मिलती है जिसके अनुसार सूर्य इड़ा नाड़ी को कहते हैं और चन्द्र पिंगला नाड़ी को। इसलिए इड़ा और पिंगला नाड़ियों को रोककर सुषुम्ना-मार्ग से प्राण-वायु के सचारित करने को भी 'हठयोग' कहते हैं[१]। ग्रन्थों में इन इड़ा और पिंगला के और भी अनेक नाम मिलते हैं। इड़ा को ललना, चन्द्र, शशिन्, अपान, धमन, आली, नाद, गंगा, शुक्र, तमस, अभाव, निर्माण, प्रकृति, ग्राहक तथा स्वर कहकर बहुधा स्मरण किया जाता है और पिंगला को रसना, सूर्य, रवि, प्राण, चमन, काली, बिन्दु, यमुना, रक्त, रजस, भाव पुरुष, ग्राह्य तथा व्यजन कहकर।[२] इन नाड़ियों को प्राणायाम द्वारा अवरुद्ध करके सुषुम्नामार्ग से प्रवाहित करना ही सूर्यचन्द्र का सामरस्य है। इस सामरस्य की प्राप्ति के लिए षट्कर्म[३] द्वारा नाड़ी-शोधन आवश्यक है क्योंकि नाड़ियों के शुद्ध होने पर ही सुषुम्नामार्ग साफ होता है, प्राण और मन क्रमशः स्थिर हो जाते हैं और शक्तिरूपा परमेश्वरी कुण्डलिनी प्रबुद्ध होकर षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रारस्थ शिव से सामरस्य प्राप्त कर लेती है और योगी को उसका चरम प्राप्तव्य मिल जाता है। नाड़ी-शुद्ध के बाद प्राणायाम कुण्डलिनी को सुकरतापूर्वक उद्बुद्ध कर सकता है। चूँकि प्राणनिरोध ही कुण्डलिनी के उद्बोध और फिर शिवसामरस्य का हेतु है अतः हठयोग में प्राणायाम या प्राणनिरोध का बहुत अधिक महत्व है।

देने लगता है। यह आधार या सुषुम्ना ही समग्र सृष्टि का आधार है और इस में सभी देवता विराजमान रहते हैं, इसी लिये योगी इसका आश्रय लेने की सलाह देता है। इस आधार के पश्चिम भाग मे त्रिवेणी का सगम है। अगर व्यक्ति वहाँ स्नान कर ले या जल पी ले तो वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसी आधार में पश्चिमलिंग है जिसका कपाट सदैव बन्द रहता है। अगर उस कपाट को योग द्वारा खोल दिया जाय तो व्यक्ति भवबधन से छूट जाता है। इस आधार के पश्चिम भाग में ही सूर्य-चन्द्र की स्थिति है। वहीं विश्वेश का भी आसन है जिनका ध्यान करके योगी ब्रह्ममय हो जाता है।[1] इड़ा और पिंगला इस सुषुम्ना के बाएँ और दाहिने स्थित हैं और बारी-बारी साँस लेने में सहायता पहुँचाती हैं। नाक के दाएँ छेद से जब साँस चलती है तो उस समय इड़ा काम करती रहती है और जब साँस दाहिने छेद से चलती है तब पिंगला। सामान्य स्थिति में ये दोनों नाड़ियाँ ही श्वास-प्रश्वास को चालित रखती हैं। सुषुम्ना सुषुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। सुषुम्ना का शाब्दिक अर्थ ही है 'सुषुप्त' या 'सोई हुई'। योग-साधना के द्वारा ही इसे जगाया जाता है। जब यह जगती है और इड़ा पिंगला के मार्ग से प्रवाहित होनेवाले प्राणापानादि वायु सुषुम्ना से होकर प्रवाहित होने लगते हैं तो मन की सारी चचलता नष्ट हो जाती है, सूर्य चन्द्र-आपस में लय हो जाते हैं और योगी की समाधि लग जाती है। हम उन्मनी के प्रसंग में काफी विस्तार से देख आए हैं कि वायु के मध्यमार्ग (सुषुम्नामार्ग) से संचारित होने पर जो मनःस्थैर्य आता है हठयोगी उसी को 'मनोन्मनी' अवस्था

१—योगशिखोपनिषद् २२–३३, ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्, पृ० ३७१–७२।

कहता है। योगशिखोपनिषत् का कहना है कि जब सुषुम्ना में पहुँच कर प्राण-स्थिर हो जाते हैं सूर्य चन्द्र का सामरस्य या मेल तभी होता है। उस समरस भाव को जानने वाला ही सच्चा योगी होता है। अगर योगी सुषुम्ना में एक या आधे क्षण के लिये भी स्थिर हो जाए और उस में नमक-पानी की तरह एकमेक हो सके तो उसकी सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, सारे संशय परमाकाश में पहुँचकर समाप्त हो जाते हैं और योगी को परमगति प्राप्त हो जाती है। गगा या गंगासागर में स्नान करके तथा मणिकर्णिका घाट पर दण्डवत् करके जो पुण्य और सुख मिलता है वह सुषुम्ना में अधिष्ठित होने से प्राप्त सुख के सोलहवें अंश की भी बराबरी नहीं कर सकता। योगी इस सुषुम्ना को ही परम जप, परम ध्यान और परागति मानता है। ब्रह्मरन्ध्र के महास्थान में जो शिवा वर्तमान रहती है मध्यमा में प्रतिष्ठित ये शिवा ही चित्शक्ति और परमादेवी है। हाथ के आघात से जैसे गेंद चचल हो उठता है प्राणापान की गति से जीव उसी तरह चंचल रहता है पर यदि प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाएँ तो वे स्थिर हो जाते हैं।[1] उद्बुद्ध कुण्डलिनी इसी मार्ग से होकर षट्चक्रों को भेदती हुई सहस्रारस्थ परमशिव से सामरस्य स्थापित करती है।

१२१—सन्तों ने अपनी साखियों, सबदियों, पदों आदि में जिस सुखमनी या सुखमनि नारी का बहुश: उल्लेख और गुणगान किया है वह मूलतः योग की उक्त सुषुम्ना नाड़ी का ही अर्थ देती है। उनके अधिकाश प्रयोग और यदि आग्रहपूर्वक समझा जाय तो सारे प्रयोग इसी अर्थ में हुए हैं। उदाहरण के लिये हम दो एक पदों को ले सकते हैं।

(१) सतों धागा टूटा गगन विनसि गया सबद जु कहा समाई।
एहि ससा मोहिं निस दिन व्यापै कोई न कहै समझाई॥
नही ब्रह्मण्ड पिंड पुनि नाहीं पचतत्त भी नाहीं।
इला पिंगला सुखमनि नाहीं, एक गुण कहाँ समाहीं॥[2]—कबीर

(२) ऐसा ध्यान धरो वरो बनवारी, मन पवन दै सुखमन नारी।
सो जप जपो जो बहुर न जपना, सो तप तपौ जो बहुरि न तपना॥[3]

(३) बक नाळ जब सहजि समाय। नानक पेट दिया नाड़ी की जाय।
इड़ा पिंगला नाड़ी कीआ। सुषमन के घर जाय समीआ॥[4]

१—योगशिखोपनिषत् ३५–५२, वही, पृ० ३७२।
२—कबीर ग्रन्थावली पद ११३, पृ० ६६–६७।
३—रैदास जी की बानी, पृ० २६।
४—श्री प्राण संगली, पूर्वार्द्ध प्रथम भाग, पृ० ६८।

वस्थाया तुरीयस्य चातुर्विध्यं तुरीयविश्वस्तुरीयतैजसतुरीयप्राज्ञस्तुरीयतुरीय इति। ते क्रमेण षोडशमात्रारूढाः अकारे जाग्रद्विश्व उकारे जाग्रत्तैजसो मकारे जागत्प्राज्ञ अर्धमात्रायां जाग्रतुरीयो बिन्दौ स्वप्नविश्वो नादे स्वप्नतैजसः कलाया स्वप्नप्राज्ञः कलातीते स्वप्नतुरीयः शान्तौ सुषुप्तविश्वः शान्त्यतीते सुषुप्त तैजस उन्मन्यां सुषुप्तप्राज्ञो मनोन्मन्या सुषुप्त तुरीयः तुर्या तुरीय विश्वो मध्यमाया तुरीय तैजसः पश्यन्त्या तुरीयप्राज्ञः पराया तुरीयतुरीयः। जाग्रन्मात्रा चतुष्टयमकारांशं स्वप्नमात्रा चतुष्टय मुकारांश सुषुप्तिमात्रा चतुष्टय मकारांश तुरीयमात्रा चतुष्टयमर्धमात्राशम्। अयमेव ब्रह्मप्रणवः। सपरमहंसतुरीयातीतावधूतैरुपास्यः। तेनैव ब्रह्म प्रकाशते तेन विदेह मुक्तिः।"

ॐयोगशिखोपनिषत्[1]

[प्रस्तुत उपनिषद् के छठें अध्याय का प्रारम्भ इस प्रश्न के साथ होता है—'उपासनाप्रकार मे ब्रूहि त्वं परमेश्वर। येन विज्ञातमात्रेण मुक्तो भवति संसृतेः॥ १॥' इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व एक वन्दना की गई है जिसमें सुषुम्ना, कुण्डलिनी, चन्द्रमण्डल से स्रवित होने वाली सुधा मनोन्मनी तथा चिदात्मना महाशक्ति को नमस्कार किया गया है—

"सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्य महाशक्त्यै चिदात्मने॥"

अध्याय के अन्त में मन पर विचार किया गया है और प्रतिपादित किया गया है कि—

चित्ते चलति ससारो निश्चल मोक्ष उच्यते।
तस्माच्चित्तं स्थिरीकुर्यात्प्रज्ञया परया विधे॥ ५८॥

चित्त कारणमर्थाना तस्मिन्सति जगत्त्रयम्।
तस्मिन्क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्य प्रयत्नतः॥ ५९॥

मनोह गगनाकार मनोह सर्वतोमुखम्।
मनोह सर्वमात्मा च न मनः केवल परः॥ ६०॥

मन कर्माणि जायन्ते मनोलिप्यति पातकैः।
मनश्चेदुन्मनीभूयान्नपुण्यं न च पातकम्॥ ६१॥

---

१ वही, पृ० ३७३ से उद्धृत।

कबीर ने ऐसे ही सुमिरन को जगत का सार कहा है। मन से जब ऐसा सुमिरन होने लगता है तब किसी अन्य देवता के समक्ष शीश झुकाने की आवश्यकता नहीं रह जाती[1]। दादू नाम लेने की सार्थकता इसी में समझते हैं कि नाम ही तन-मन में समा रहे और मन उसमें ऐसा एकरस हो जाय कि फिर एक क्षण भी नाम का विस्मरण न हो[2]। चरण दास प्रियमिलन के लिए अजपा

---

[1] मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ।। ८।।
(कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ-४)

[2] संत सुधासार, खण्ड -१, पृष्ठ- ४५५

जाप पर जोर देते हैं[1]। दयाबाई ने पद्मासन पर बैठकर अजपा जाप करने पर सर्वाधिक जोर दिया। उनका कहना है कि जो अर्ध-उर्ध के मध्य सुरति लगा कर अजपा जाप करता है, वह अपने धाम को प्राप्त करता है और उसके सारे संताप दूर हो जाते हैं। यही नहीं यह जप करते करते मन ऐसे स्थान पर पहुंच जाता है, जहा बिना बिजली के प्रकाश हो रहा है और बिना मेघ के फुहार पड़ रही है। मन ऐसे दृश्य को देख कर वहीं निमग्न हो जाता है[2]।

जैन कवियों में अजपा

नाथ सिद्धों तथा संत कवियों के सदृश जैन मुनियों ने भी बाह्य साधना की अपेक्षा आभ्यान्तरिक साधना पर जोर दिया है, पाखंड की निन्दा की है और समस्त बाह्याडम्बरों का विरोध किया। चित्त शुद्धि को ही ब्रह्मत्व प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। उनका विश्वास है कि सभी प्रकार की कलुषताओं से रहित मन किसी बाह्य उपादान की अपेक्षा नही रखता। इसीलिए मुनिराम सिंह ने कहा कि जब तक आभ्यान्तरिक चित्त मलिन है, तब तक बाह्य

---

[1] संत सुधा सार , खण्ड -२, पृष्ठ-१३

[2] पद्मासन सूं बैठ करि अंतर दृष्टि लगाव।
दया जाप अजपा जपौ सुरति स्वांस में लाव ।।३।।
अर्ध उर्ध मधि सुरति धरि जपै जु अजपा जाप।
दया लहै निज धाम कू, छूटै सकल संताप ।।४।।
बिन दामिन उजियार अति बिन घन परत फुहार।
मगन भयो मनुवा तहा दया निहार निहार ।।२२।।
(दयाबाई की बानी, पृष्ठ-१२-१४ बेलवेडियर प्रेस , सन्,१९०९)

तप से कोई लाभ नहीं अतएव निर्मल चित्त में ही निरंजन को धारण करने की आवश्यकता है। इसी से सभी मलों से छुटकारा मिल जाता है।[1] नाथ योगियों तथा संत कवियों के सदृश जैन कवियों ने भी सोहं शब्द के उच्चारण पर जोर दिया है। द्यानत राय का कहना है कि निरन्तर श्वासोच्छ्वास के साथ सोहं सोहं का ध्वनन् होता रहता है। यह सोहं तीन लोकों का सार है। इस सोहं के अर्थ को समझ कर जो लोग अजपा की साधना करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं :—

सोहं सोहं होत नित, सांस उसास मझार।
ताको अरथ विचारियै, तीन लोक मे सार ॥
तीन लोक में सार, धार सिव खेत निवासी।
अष्ट कर्म सौं रहित, सहित गुण अष्टविलासी ॥
जैसो तैसो आप, थाप निहचै तजि सोहं।
अजपा जाप संभार, सार सुख सोहं सोहं ॥

(धर्म विलास, पृष्ठ-६५)

मुनि राम सिंह के ही सदृश संत आनंदघन ने भी कहा कि जो व्यक्ति आशाओं का हनन करके अन्तर में अजपा जाप को जगाते हैं वे चेतन मूर्ति निरंजन देव का साक्षात्कार करते हैं।[2] इस अजपा की अनहद ध्वनि उत्पन्न होने पर आनन्द के मेघ की झड़ी लग जाती है और जीवात्मा सौभाग्यवती नारी के सदृश भावविभोर हो उठती है।[3] इसीलिए संत आनदघन सोहं को संसार का सार

---

[1] अब्भिंतर चित्ति वि मइलियइ बाहिरि काइ तवेण।
चित्ति णिरंजणु को वि धरि मुच्चहि जेम मलेण ॥६१॥

(पाहुड़ दोहा, पृष्ठ-१८)

[2] आसा मारि आसन धरि घट में, अजपा जाप जगावै।
आनंदघन चेतनमय मूरति, नाथ निरंजन पावै ॥ ७॥

(आनंदघन बहत्तरी, पृष्ठ-३५६)

[3] उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत-नगारेवारी।, (आनदघनबहत्तरी-
झड़ी सदा आनंदघन बरखत बन मोर एकनतारी ॥२०॥ पृष्ठ-३६५)

तत्व मानते हैं :

चेतन ऐसा ज्ञान विचारो।
सोहं सोहं सोहं सोहं सोहं अणु नबी या सारो ॥८१॥

(आनदघन बहत्तरी, पृष्ठ- ३६५)

के आधार पर योगियों के इसी श्वास-प्रक्रिया के द्वारा 'ब्रह्म' के बिना प्रयास के स्वाभाविक चिन्तन का समर्थन किया है। श्वास-प्रक्रिया में 'सोऽहं' अथवा 'हंस:' का बिना उच्चारण किये या बिना बोले निरन्तर उत्पन्न होने वाली ध्वनि ही 'अजपाजय' कहलाता है।

....

१- साखी- ७१, सुमिरण कौ अंग, दादू दयाल (ग्रंथावली), पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २२।

डॉ० बड़थ्वाल के अनुसार 'अजपाजय' से आत्मा उद्‌बुद्ध होकर भीतरी ईश्वरी भावना के समक्ष अपने आप को प्रत्यक्ष एवं अबाधित रूप से समर्पित कर देती है।[१]

सिद्धों ने 'अजपाजय' को वज्र जप या सहज जप कहा है, उनके अनुसार-साधना के प्रारम्भ में यदि 'एवं' शब्द का ध्यान कर लिया जाय तो वह स्वत: श्वासोच्छ्‌वास द्वारा ध्वनित होता रहता है। यहाँ 'एं' बुद्ध का एवं 'व' उनकी शक्ति का परिचायक है। 'नाथपंथी' भी 'सोऽहं' का अजपाजय करते है। गोरखनाथ का कथन है कि मन लगाकर जाप करों कि 'सोऽहं' का उच्चारण बिना वाणी के भी होने लगे। इसी से आसन, ध्यान, पंच इन्द्रियों के निग्रह और ज्ञान के चिन्तन पर नाथ-पंथियों ने जोर दिया है-

"अजपा जपै सुनि मन धरै।
पाँचू इन्द्री निग्रह करै।।
ब्रह्म अगिन मैं होवै काया।
तास महादेव बंदै पाया।।"[२]

संत कबीर 'राम' नाम अजपाजय की साधना करते हैं, परन्तु आसन लगाकर, शरीर को कष्ट देकर या माला लेकर वे जप करने में विश्वास नहीं करते। 'रामनाम' में ध्यान लगाकर श्वसन प्रक्रिया द्वारा बिना बोले 'रामनाम का जाप करना संत कबीर का 'अजपाजय' है और इस जप में वे सुरति को अनिवार्य मानते है। वे राम में प्रेम से चित्त को लगाने पर जोर देते है-

"अजपा सुमिरन होत है, सुन्न मण्डल अस्थान।
कह जिह्वा तहाँ ना चले, मन पंगु तह जान।।"[३]

....

१- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० २२३।

२- गोरखवाणी, नाथ सिद्धों की वाणियाँ, पृ० ११३, ११५।

३- कल्याण साधनांक, पृ० ६०१-२।

साधना पर काफी जोर दिया है तथा बाह्य साधना एवं आडम्बरों का विरोध किया है । मन की शुद्धि ही ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन है । इन जैन ऋषियों ने भी "सोऽहं" शब्द को ध्यान में लाने पर जोर दिया है । उनका कहना है कि "सोऽहं" के अर्थ को समझ कर जो लोग "अजपाजप" की साधना करते है, वे श्रेष्ठ है -

सोऽहं सोऽहं होत नित, सांस उसास मझार,
ताको अरथ विचारिए, तीन लोक मे सार ।।
तीन लोक मे सार, धार शिव खेत निवासी,
अष्ट कर्म सों रहित, सहित गुण अष्ट विलासी ।।
जैसो तैसो आप, थाप निहचै तजि सोऽहं ।
अजपा जाप संभार, सार सुख सोऽहं सोऽहं ।।[1]

आनन्दघन ने भी कहा है कि जो व्यक्ति आशाओं का हनन करके अन्तर में "अजपाजप" जगाते है, वे चेतन मूर्ति निरंजन का साक्षात्कार करते है ।[2] अजपाजप की "अनहद ध्वनि" उत्पन्न होने पर आनन्दमेघ की झड़ी लग जाती है और जीवात्मा सौभाग्यवती नारी के सदृश्य भाव-विभोर हो उठती है -

उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत नगारे वारी ।
झड़ी सदा आनन्द घन बरखत, बने मोर एक न तारी ।।[2]

---

1. धर्म विलास, पृ0 65
2. आनन्दघन बहोत्तरी - पृ0 359

४५—राग बंगला—ठुमरी ।

इक जोगी असन बनावै, तसु भखत अलन, अचन सन होत ।। टेक
ज्ञान सुधारस जल भरलावे, चूल्हा शील बनावै ।
करम काष्ठकूं चुन चुन बाले, ध्यान अगिनि प्रजलावै जी ॥ १ ॥
अनुभव भाजन, निजगुण तंदुल, समता क्षीर मिलावै ।
सोहं मिष्ठ, निशंकित व्यंजन, समकित छौंक लगावै जी ॥ २ ॥
स्याद्वाद, सतभङ्ग मसाले, गिणती पार न पावै ।
निश्चय नयका, चमचा फेरे, विरध भावना भावैजी ॥ ३ ॥
आप पकावै, आपहि खावै, खावत नाहिं अघावै ॥
तदपि मुक्ति, पद पंकज सेवै, नयनानन्द सिरनावैजी ॥ ४ ॥

४६—रागधना श्री अथवा सोरठ ।

सतगुरु परम दयाल जगत में, सतगुरु परम दयाल ॥ टेक ।
सब जीवनि की संशय मेटैं, देत सकल भय टाल ।
दुख सागर में डूबत जनकों, छिन में देत निकाल ॥ १ ॥
सुरग मुकति को पंथ बतावें, मेटि करम भ्रम जाल ।
धरम सुधारस प्याय हरैं अघ, छिन में करत निहाल ॥ २ ॥
स्वान सिंह सतगुरु ने तारे, तारे गज विकराल ।
सुगुरु प्रताप भये तीर्थंकर, अरु तारे श्रीपाल ॥ ३ ॥
पांच शतक मुनि कोल्हू पेले, दंडक नृप चांडाल ।
होय जटायु सुगुरु पद सेये, पायो सुरग विशाल ॥ ४ ॥
कलि से दुष्ट सुपंथ लगाये, सतगुरु विष्णु दयाल ।
नयनानन्द सुगुरु सम जग में, कौन करै प्रतिपाल ॥ ५ ॥

योगी श्वास प्रश्वास में अपनी मन की सम्पूर्ण वृत्ति 'ओ३म्' पर लगा कर उसी में लय हो जाता है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वै वेद्धव्यं सर्वस्तन्मयो भवेत्॥

प्रणव परमेश्वर शब्द ही उस ब्रह्म रूपी लक्ष्य के बींधने के लिये मानो धनुष है, जीवात्मा मानो बाण है और वही ब्रह्म परमात्मा मानो निशाना है। उस ब्रह्मरूपी लक्ष्य को अप्रमादी हो कर अर्थात् चित्त को सम्पूर्ण वृत्तियों को विषयों से हटा कर केवल परमात्मा के ध्यान में ठहरा कर जीवात्मा स्वयं लक्ष्य में लगे हुये बाण समान और सदाचार वृत्ति वाला हो कर बींधे। भूलकर भी अपने ध्यान को विचलित न होने दे।

गुरुदेव उपर्युक्त मंत्र शिष्य को देता है। जैसे चतुर वैद्य रोगी का रोग पहचान कर रोग निर्णय करता है, वैसे ही सद्गुरु शिष्य को निर्वाचन करता है और उपर्युक्त महामंत्र शिष्य को प्रदान करता है। गुरु का दायित्व बड़ा भयंकर है। शिष्य का सारा भार गुरु के ऊपर आ पड़ता है। गुरु यदि भ्रम में पड़ जाय तो शिष्य का अनिष्ट हो सकता है हमारी प्रकृति और बल के अनुरूप से ही मन्त्र मिलना चाहिये, यदि गुरु हो हम विपरीत मंत्र दें तो हमारे चक्र में विरोधी तड़ित उत्पन्न होगा। इससे हमारे शरीर में उत्कट रोगोत्पत्ति की संभावना है। गुरु के दोष से शिष्य पागल तक हो जाते हैं। विरोधी मन्त्र के जपने से कोई २ यक्ष्मा

शीश धर दीयो, प्यालो भर पीयो ।
रोम रोम सारो आनन्द उर थायो ॥२॥

प्यालो जब जरयो, कारज सब सरयो ।
जनम मरण को रोग मिटायो ॥३॥

राम रंग लागो, त्रिगुण तूटो तागो ।
चित चेतन में उलट समायो ॥४॥

उत्तमराम ! कहता, आनन्द में रहता ।
सत को प्यालो दाय मुझ आयो ॥५॥

भजन सख्या (२०१) राग सारग-मलार, झफोटी, पद सगीत ।

धन धन हंस गुरू पार पठायो ॥टेर॥

दरशण गुरू दीयो, अपणो करलीयो ।
भव से गुरूजी आप बचायो ॥१॥

सतगुरू जाणी, दीवी मुक्त निशाणी ।
'सोहं' सतगुरू शब्द सुणायो ॥२॥

वचन बाण मारयो, डूबत मुझ तारयो ।
कर्म जाल सूँ तुरंत छुड़ायो ॥३॥

कुण्डलिनी जागरण की यात्रा को तय करने में व्यक्ति को सात चक्रों से गुजरना पड़ता है। इन सातों चक्रों की यात्रा को पार करना ही आनन्द की यात्रा है, पूर्णता है।

कुण्डलिनी साधना में प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर सिद्धासन या पद्मासन में बैठ जाएं। पहले प्राणायाम एवं भस्त्रिका का अभ्यास आवश्यक है।

फिर सद्गुरुदेव का विधि विधान से पूजन करें और गुरु मंत्र की 4 माला जप करें।

इसके बाद ही इस साधना को सम्पन्न करें।

साधना सामग्री - कुण्डलिनी जागरण यंत्र एवं स्फटिक माला।

संकल्प- इष्ट देवता-स्वरूपा-कुल-कुण्डलिनी -प्रीत्यर्थे अमुकक्षर कुल-कुण्डलिनी मन्त्रस्य पुरश्चरणमहं करिष्ये।

यहाँ पर इष्ट देवता शब्द के स्थान पर अपने इष्ट का उच्चारण करना चाहिए।

विनियोग -

अस्य सर्व-सिद्धिद-श्रीकुण्डलिनी-महा-मन्त्रस्य भगवान श्री महाकाली ऋषि:, विश्व महाशक्ति -श्रीकुण्डलिनी देवता, त्रिष्टुप् छन्द:, माया (ह्रीं) बीजं, सिद्धि: शक्ति:, प्रणव (ॐ) कीलक, चतुर्वर्ग-जपे विनियोग:।

ऋष्यादि-न्यास

श्रीमहाकाल-ऋषये नम: शिरसे।
विश्व-व्यापिनी-महा-शक्ति-श्रीकुण्डलिनी-देवतायै नम: हृदि।
त्रिष्टुप्-छन्दसे नम: मुखे।
माया-बीजाय नम: लिंगे।
सिद्धि-शक्तये नम: नाभौ
प्रणव-कीलकाय नम: पादयो:।
चतुर्वर्ग-प्राप्तये जपे विनियोगाय नम: सर्वांगे।

षडंग न्यास	कर-न्यास
ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नम:
ह्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा
ह्रूं	मध्यमाभ्यां वषट्
ह्रैं	अनामिकाभ्यां हुँ
ह्रौं	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट
ह्र:	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

अंग-न्यास

हृदयाय नम:
शिरसे स्वाहा
शिखायै वषट्
कवचाय हुँ
नेत्र-त्रयाय वौषट्
अस्त्राय फट्।

ध्यान

सिन्दूरारुण-विग्रहां त्रि-नयनां माणिक्य-मौलि स्फुरत्।
तारा-नायक-शेखरां स्मित-मुखीमापीस-वक्षोरुहाम्।
पाणिभ्या मणि-पूर्ण-रत्न-चषकं रक्तोत्पलं विभ्रतीम्।
सौम्यां रत्न-घटस्य-सव्य-चरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम्।।

कुण्डलिनी मंत्र

।। ॐ ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्र: कुल-कुण्डलिनी जगन्मात: सिद्धि देहि-देहि स्वाहा।।

उपरोक्त मंत्र का स्फटिक माला से नित्य 11 माला मंत्र 11 दिनों तक करना है। जप समाप्ति के बाद इसके फल को कुण्डलिनी देवी को समर्पित करें-

गुह्यति-गुह्य गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्-कृतंजपं त्वत्प्रसादान्मे देवि सिद्धिर्भवति महेश्वरि।।

इसके बाद कुण्डलिनी शक्ति को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उसकी स्तुति करें।

कुण्डलिनी स्तुति

ॐ नमस्ते देवि-देवेशि! योगीश-प्राण-वल्लभे सिद्धदे! वरदे! मात:! स्वयम्भू-लिंग-वेष्टिते ॐ प्रसुप्त-भुजंगाकारे! सर्वथा कारण-प्रिये काम-कलान्विन्ते! देवि! ममाभीष्टं कुरुष्व मे ॐ असारे घोर-संसारे भव-रोगात् कुलेश्वरि सर्वदा रक्ष मां देवि! जन्म-संसार-सागरात्।

वस्तुत: कुण्डलिनी साधना जीवन की सौभाग्यदायक साधना है और इस साधना को पूर्णता के साथ सम्पन्न करने पर साधक सिद्ध योगी बन कर सम्पूर्ण विश्व पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल हो पाता है।

साधना सामग्री-550/-

झूँठी तीन काया, मिथ्या सब माया ।
अखै निर्गुण है निराधारो ॥१॥

माया सारी, असत असारी ।
सत सत सत सत सिरजणहारो ॥२॥

नित उठ जागो, भजन में लागो ।
ओम सोहं सोहं उचारो ॥३॥

उत्तमराम! बोले, हरदम हरि जोले ।
हरदम हरदम देव दीदारो ॥४॥

भजन संख्या (१६४) राग सारग-मलार, झझोटी, पद संगीत ।

हरदम साधो भजन में लागो ॥टेर॥

सिमरण सारो, मन कों मारो ।
जोगी ऊठ जुक्त से जागो ॥१॥

हरिजन होवो, ध्यान धर जोवो ।
निर्गुण पद तिर्गुण से आगो ॥२॥

आपा मेटो, सोहं सत भेटो ।
हाण लाभ ठोड़ नहिं ठागो ॥३॥

'सोहं' समाया, उलट थिर थाया ।
उत्तमराम ! लेश नहिं दागो ॥४॥

भजन संख्या (१६५) राग सारग-मलार, झम्फोटी, पद संगीत।

ब्रह बाण मेरे दिल में लागो ॥टेर॥

सतगुरू बायो, बाण पूरो आयो ।
तूटो मोह जाल को तागो ॥१॥

ब्रह चोट साले, हिये बीच हाले ।
जैसी विध घुण काठ को लागो ॥२॥

विषय रस सारा, लागे मुझ खारा ।
तज्यो जग झूँठो-झूँठ को ठागो ॥३॥

पाई फकीरी, तजी दिलगीरी ।
पहन्यो राम नाम को वागो ॥४॥

ब्रह भाल सीधी, मेरी दिल बींधी ।
उत्तमराम ! को भर्म सब भागो ॥५॥

भजन संख्या (१६६) राग सारग-मलार, झंफोटी, पद संगीत।

धन धन साधो नींद को तगड़ो ॥टेर॥

माया सब झूँठी, सत आतम अखूटी।
शुद्ध स्वरूप गुरूदेव लखायो ॥४॥

उत्तमराम ! सारी, गुरू की महिमा भारी।
शहस्र मुख गाय के पार नहीं पायो ॥५॥

भजन सख्या (२०२) राग सारग-मलार, झझोटी, पद संगीत।

धन धन हंस कोयो अगम ठिकांणों ॥टेर॥

सत की डोर झालो, सूधे मारग चालो।
वृति खींच एक घर आंणों ॥१॥

वृति खींच आणी, गुरू की गम जाणी।
टूटो अज्ञान तिर्गुण को तांणों ॥२॥

सोवे नहिं जागे, लेश नहिं लागे।
एसो भेद उलट कोई जांणों ॥३॥

डिगे नहि डोले, बंधे नहिं खोले।
सदा सुख रूप लाभ नहिं हांणों ॥४॥

निरभै वर मेरो, डिगे नहिं डेरो।
माया जाल को नहिं कमठांणों ॥५॥

शीश दिया नशा लिया, चढो ब्रह खुमारी ॥टेर॥

सत नशा सत नाम का, लेवे संत हुशियारी ।

शिर का सांगा छोड़ के, तुरंत करे तईयारी ॥१॥

सत नशे सूँ सूधरे, होवेला भव पारी ।

असत नशे से आखड़े, पड़सी नरक मंझारी ॥२॥

प्रेम पियाला भर पीया, ममता रोग निवारी ।

विषय वास की जड़ जली, तन मन हो सुखियारी ॥३॥

सत कूँची सत नाम की, खोली अगम की बारी ।

उत्तमराम ! गुरू ज्ञान से, सन मुख सत दीदारी ॥४॥

भजन संख्या (२४२) राग राम गिरि प्रभाती पद संगीत ।

अब मन जागो जुक्त सू, जाग जपो मुरारी ।

वेला आई भजन की, हरिजन हंस पुकारी ॥टेर॥

प्रभाते उठ जागिये, गावो गोविन्द गिरधारी ।

निश दिन सुमरण सारतों, कबहुक देवे दीदारी ॥१॥

सुमरो स्वास उश्वास में, हर दम हो हुशियारी ।

सोहं सिमरण सारतां, अमृत बोल उचारी ॥२॥

शुभ करणी सत नाम संभावो, भला होवे जगजीका रे ॥३॥
सत नाम की डोर संभावे, चाकर सोई धनीका रे।
उत्तमराम! अगम घर पावे, निरभै नगर नित नीका रे ॥४॥

भजन संख्या (२५२) राग राम गिरि प्रभाति पद संगीत।

अब मन जागो ज्ञान दिन ऊगो, दशू दिश भया उज्वालारे।
अज्ञान अंधारा मिट गया सब ही, दरस्या दीन दयाला॥टेर॥
अब मन जाग्या भर्म सब भाङ्गा, खुल्या भर्म का तालारे।
आतम देव दरस्या घट मांहि, मिटङ्गा जम जंजाला रे ॥१॥
व्यापक ब्रह्म वेरंग निरोगा, वृद्ध तरुण नहिं बाला रे।
सदा सुख रूप अनूप अनंत अज, स्वेत पीत नहीं कालारे॥२॥
निहः कामी निर्वाण नित्ता नित, नहिं नदी नहिं नालारे।
काल न जाल कर्म नहिं काया, निर्मल निज निकालारे ॥३॥
सोहं ब्रह्म सदा सुख सागर, स्वयं प्रकाश सुखालारे।
उत्तमराम! मै मन नाहि, निर्गुण नित निराला रे ॥४॥

भजन संख्या (२५३) राग सारग मगल, प्रभाति पद संगीत।

शुद्ध चेतन निर्वाणा साधो, वचनों अतीत रहायारे ॥टेर॥

भजन सख्या (२५५) राग सारंग मगल, प्रभाति पद सगीत।

एमी बात सुणो इक मनवा, बात सुणो मन मालीरे ॥टेर॥

एसी बाडी अमल उमंदा, खूब लगी है डाली रे।
इस बाड़ी में मेवा निपजे, साचो होवे कोई हालीरे ॥१॥

बाडी देखत माली भूलो, करमी मन कंकाली रे।
सत्य मेवे का मर्म न जाणे, पड़ियो जीव जंजालीरे ॥२॥

इस बाडी में अमर जड़ी है, वांकी करो संभाली रे।
अमर जड़ी सें अमर होवेगा, मिटे ताप त्रिकालीरे ॥३॥

साचा सत गुरु माली भेटे, रोज करे रख वाली रे।
जब ही माली मेवा पावे, यही बात हम भाली रे ॥४॥

गुरू उपदेश समझ मन माली, खोल भर्म की नालीरे।
उत्तमराम ! सब सफल होवेगा, मेवा पावे जब मालीरे ॥५॥

भजन सख्या (२५६) राग सारग मगल, प्रभाति पद सगीत।

एमा सुमरण सहजे करिया, देही में दीदारा रे।
गुरू कृपा सें दर्शन पायो, देव देही सें न्यारारे ॥टेर॥

नाभ कँवल पर नाम विराजे, सरधा सहित निहारारे।
अर्ध उर्ध दोनों ही मिलिया, कृपा करी करतारा रे ॥१॥

इला पिङ्गला दोनूँ मिलके, हुई सुषमणा इकसारा रे।
सुरत शब्द की भई एकता, या विधि सिमरण सारारे ॥२॥
आज्ञा चक्र में इचरज देख्या, ज्योति का चमकारारे।
गगन मंडल में अनहद गाजे, नौबत नाम नगारारे ॥३॥
दशवें में कोई दर्शण पावे, सोई गुरू का प्यारा रे।
उत्तमराम ! हरि आप विराजे, सोहं सिरजण हारारे ॥४॥

भजन संख्या (२५७) राग मगल प्रभाती पद सगीत।

याका अर्थ करो भाई माधो, धन संतो धन कारी वे ॥टेर॥
दोय पुरुष पलक में पलट्या, वाकी भई इक नारी वे।
नारी पलट के नर भयो है, नर जाई फिर नारी वे ॥१॥
बिन नेणों इक नगर देख्यो, महिमा नगर की भारी वे।
कर बिन बाजा मधुरा बाजे, राग छतीसूँ न्यारी वे ॥२॥
बिन घन बादल बूँदो छिटकी, वर्षे अमृत धारी वे।
गुरू का प्यारा उत्तम जिज्ञासी, पीवे संत सचियारी वे॥३॥
देही बिना वहाँ देव बिराजे, वासू लगी है यारी वे।
र ! कहै सुणजो संतो, मैं वांकी बलिहारी वे ॥४॥

भजन सख्या (२५८) राग मगल, प्रभाती पद सगीत।

गगन मंडल में मढ़ियों साधो गगन मंडल में मढ़ियोरे ॥टेर॥

गुरू उपदेश दीया जब जाड्ञा, तोड़ी मोह की कड़ियोरे ।
आलस औंवासी निन्द्रा नाठी, लागी ब्रह की छड़ियोरे ॥१॥

नाम की डोर लगी दिल अन्दर, सुरत शब्द संग अड़ियोरे।
जब प्रकाश भयो घट मांहि, खुली ज्ञान आँखड़ियोरे ॥२॥

गगन मडल अब गरजण लागो, लगी प्रेम की झड़ियोंरे ।
हीरा माणक मोती वर्षे, सत गुरू की ओटड़ियोंरे ॥३॥

गगन मंडल में धर बिन बाड़ी, अजब फूल पातड़ियोंरे ।
प्रेमी भँवरो परमल लेवे, कहत संत बातड़ियों रे ॥४॥

जब ही ओट गुरू की आया, खुली भर्म गांठड़ियों रे ।
उत्तमराम ! अवधूता खेले, ब्रह्म ज्ञान की दड़ियोंरे ॥५॥

भजन सख्या (२५६) राग सारग, मगल, प्रभाति पद संगीत ।

मान वचन तूँ सत को मनवा, मान वचन तूँ सत कोरे ॥टेर॥

औ संसार असत है सारो, घड़ी पलक को खिलकोरे ।
माया रूप दर्शे मो मिथ्या, ज्यूँ भोडल को भलकोरे ॥१॥

सुन्दर देही ये चोखी दीखे, ज्यूँ ही काच को मटकोरे ।

मैं तो शरण बैठा सत गुरू के, जगत जाणे नहिं कागीरे ॥
चरण शरण बैठा सत गुरू के, द्वैत भाव सब दागी रे ।
मम द्रष्टी देखे ब्रह्म सब में, वही संत बड़ भागी रे ॥५॥
सत गुरू अचलराम ! ब्रह्मज्ञानी, परम पुरुष वैरागी रे ।
उत्तमराम ! कर जाड़ पुकारे, मेरी लगन उसी से लागीरे॥६॥

भजन संख्या (२६४) राग मंगल, प्रभाती पद संगीत ।

बात गुरू की साची साधो, बात गुरू की साची रे ॥टेर॥
प्रेम पोशाक पहनी है सुरता, गुरू आगे धी नाची रे ।
सत उपदेश गुरू का मान्या, और बात सब काची रे ॥१॥
गुरू वचनो की सुरता प्यासी, फेर फिरे नहिं पाछीरे ।
सहजे सहजे सत सत जाण्या, योही बात है आछी रे ॥२॥
सोहं डोर भेली है सुरता, जग से भई उदासीरे ।
आठ पहर ब्रह में भूले, एमा उत्तम जिज्ञासी रे ॥३॥
सत गुरू मेरा दीन दयालू, दीनों ज्ञान अवाचीरे ।
उत्तमराम ! सत गुरू की बातों, वेरवेर है साची रे ॥४॥

भजन संख्या (२६५) राग मंगल प्रभाती पद संगीत ।

धन संतो धन कारा साधो, धन संतों धन कारारे ॥टेर॥

शुभ करणी सत नाम जपे नित,
पांच पची सूं वश मे करे।
पांच जणी पशरती रोके,
काट कूट कटका करे ॥३॥
ब्रह्म बादल अरू प्रेम फुँवारा,
सत संगत में झरे झरे।
प्रेमी होवे सोई प्रेम पिछाणे,
दिल अन्दर दिल ठरे ठरे ॥४॥
सोहं संत सतों सत समझे,
दुतियां दुर्मति दूर करे।
शील शन्तोष दया दिल साची,
जीवत ही मन मांय मरे ॥५॥
ब्रह्म अग्नि लागी अंग अंग में,
विषय वासना जलै जलै।
जलै झी घर मूल मन सारो,
लख चौरासी टलै टलै ॥६॥

भव सागर से पार पठाता ॥४॥

उत्तमराम ! संत उलट समाता,

उलट समाय परम पद पाता ॥५॥

भजन सख्या (२७२) राग नट कल्याण आरती पद ।

आरती ! कीयों भरम सब भागी,

ज्ञान वैराग जांत उर जागी ॥टेर॥

कलह कल्पना मन की त्यागी,

शरण गुरू की आयो बड़ भागी ॥१॥

तन मन शीश दीयो गुरू आगी,

सोहं जाण दीवी गुरू सागी ॥२॥

सुरता लगन शब्द में लागी,

सत गुरू मिल्या अगम का पागी ॥३॥

तीन लोक को तूरंत उलांगी,

तापर खेलत परम वैरागी ॥४॥

उत्तमराम ! रंग लगो वेरंगी,

वेरंग ब्रह्म लख्यो सर्वंगी ॥५॥

राम रोम सत गुरू रग दीनो। तूटा तिमिर तिगुंण कातीनो ॥३॥
भाव भक्ति से हृदय भीनो। चेतन निज चिदानन्द चीनो ॥४॥
जुगो जुग जीव जुगत से जीनो। ब्रह्म विचार समझे परवीनो ॥५॥
मोह् सिमरथ सदा समानो। समझे रमझ सत सत सुज्ञानो ॥६॥
महरम लख्यो मुक्त को म्यानो। गुरू गम उत्तमराम' कहै ज्ञानो॥७॥

भजन सख्या (२७७) राग नट कल्याण आरती पद।

गुरू गम ज्ञान आरती' गाई, प्रेम प्रीत से परम पद पाई ॥टेर॥
फिकर मेट सत करी सफाई, विषय वास की वाश विलाई ॥१॥
काया कोट में करत कमाई, दिल में दीदार निज देव गोशांई ॥२॥
चित को चन्दन चित सूँ चढाई, तन मन शीश अरपीया ताई ॥३॥
करणी केशर तिलक कराई, भाव को भोजन थाल भराई ॥४॥
ध्यान कर धूँप धणी कूँ ध्याई, सुरत सेवादि करत सदाई ॥५॥
ज्ञान दीपक गुरू गम सूँ जगाई, देह देवल में दीयो दिराई ॥६॥
आतम देव दृष्टि में आई, लाधी लाल लगन लिव लाई ॥७॥
"सोहं" शुद्ध स्वरूप सदाई, निगुंण सब घट नभ की न्याई ॥८॥
सर्वातीत सर्व का साई, सत गुरू दीन दयाल परसाई ॥९॥
सुरत उलट सत माहि समाई, उत्तमराम। सत चित अथाई ॥१०॥

ॐ शाति! शांति!! शाति!!!

इति श्री स्वामी उत्तमरामजी महाराज कृत ग्रन्थ

श्री उत्तमराम-भजन प्रकाश सम्पूर्णम्।

गुरू के वचन संग तरिया साधो, गुरू के वचन संग तरियारे ॥
श्रोता चित शांति कर बैठा, मन गुरू शब्द उचरियारे ।
सोहं श्रवण सुणतां सुणतां, ले हृदे थिर धरिया रे ॥५॥

गुरू फरमायो नाम सुणायो, निर्मल नाम अजरियारे ।
मेरी सुरत लगी शब्द में, वचन गुरू का गृहियारे ॥२॥
सत गुरू सूरत हृदे विराजे, ध्यान त्रिवेणी धरियारे ।
गगन मंडल में जाकर बैठा, बाजा अनहद घुरिया रे ॥३॥
सहजे शिखर मे घटा घन मडियो, बादल ब्रह का भरियारे ।
तीनू ताप मिट्या मन केरा, दिल में दिल ही ठरियारे ॥४॥
सुन सागर में सहजे पहूँच्या, नीर बिना सर भरिया रे ।
उत्तमराम ! संत उलट समाया, बूँद रली ज्यूँ दरियारे ।५

भजन संख्या (२६३) राग सारग मंगल,प्रभाति पद सगीत ।

प्रीत गुरू से लागी साधो, प्रीत गुरू से लागी रे ॥टेर॥
प्रेम पियास लगी है घट में, अन्दर ओचती जागी रे ।
मुक्ति कारण दोनू कर जोड़े, शीश दीयो गुरू आगीरे ॥१॥
कर कृपा गुरू नाम सुणायो, सोहं भजन सत सागी रे ।
नाम प्रवेश कीयो जब घट में, विष्य भर्मना भागी रे ॥२॥
प्रेम प्रीत लागी सत गुरू सें, और वासना त्यागी रे ।
शुभ करणी के संग से न्यारा, करणी अशुभ अलागीरे॥३॥
कोई कहै औ भयो बावरो, कोई कहै अभागी रे ।

नर पशु पक्षी सारे, काल ही के मुख माहिं।
राम ही प्रकाश ! रहे, आदि मध्य आन लो ॥१७॥
ब्रह्म को स्वरूप सत, चिदानन्द एक हरि।
अचल अखण्ड निज, अनव्य अविनाशी है ॥
अस्ति भाति प्रिय जीव, आत्म स्वरूप ब्रह्म।
इल्म सरूर हस्ति, विश्व को प्रकाशी है ॥
अनही अपार शुद्धी, अव्यय सो लक्ष्यार्थ।
घट मठ घनानन्द, मौन नहीं गाशी है ॥
भेद नहिं भ्रांति कछु, कर्म न क्लेश रंच।
राम ही प्रकाश ! निज, निज को विकाशी है ॥१८॥
एक ब्रह्म आर पारे, व्यापक जहान सारे।
माया भ्रान्ति कार्य भारे, रञ्च न दर्शात रे ॥
सोहं सोह एक रूप, सत चित प्रिय नूप।
सर्व माहिं घन गूप, सोह * लखात रे ॥
अचल अखड अति, शुक्ष्म थूल नाहिं गति।
वाणी गोचर नाहि मति, मौन नहिं गात रे ॥
निश्चय योई अधिष्ठान, राम ही प्रकाश ! गान।
परमानन्द सत्य ज्ञान, खोय नहिं पात रे ॥१९॥

※ दोहा छन्द मिश्रत दृश्य ※

मत सग जहाज जगत में सत खेवैया जान।
चढे जिज्ञासु शीश दे, पल में पहुँच कल्यान ॥२०॥

* दृष्टिं ज्ञान मयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्म मयं जगत्। श्रुति०

[२]

दु:खी नहीं होना रे लड़के, दुखी नहीं होवना।
एक रस रहना रे अवधू, समता धारना ॥१॥
काया नगर में लड़के, सकल संसार है।
माहिं विचरना रे अवधू, खेल अपार है ॥२॥
उनमनि धुनि में रे लड़के, सदा तल्लीन हो।
भेद नहीं देना रे अवधू, लवलीन हो ॥३॥
शून्य शिखर में रे लड़के, सुधा का ताल है।
बूँद २ टपके रे अवधू, पाते सुजान है ॥४॥
घाट त्रिवेणी रे लड़के। अगम सा वाट है।
सन्त शूर चढतेरे अवधू, अनोखा ठाठ है ॥५॥
सहस दल कमल में लड़के सुषुम्ना सेज है।
वचन में न आवे रे अवधू अनोखा तेज है ॥६॥
क्रिया कर्म नहीं रे लड़के, वर्ण नहीं जात है।
रूप नहीं रेखा रे अवधू, पिता नहीं मात है ॥७॥
सत गुरु लखावे रे लड़के, लखे शत शिष्य है
'अमृत' मिले है रे 'शंकर' बदले मे शीप के ॥८॥

[३]

नयन नासिका रे लड़के, गगन में ध्यान है।
श्वास माहिं थ्रान्ति रे अवधू आतम ज्ञान है ॥१॥
मूल कमल का रे लड़के, नाभि मे मेल कर।
कुण्डली उठा लेरे अवधू, मेरू के पन्थ से ॥२॥

स्वास २ जपना रे लड़के, अजपा जाप है।
आवागमन का रे अवधू, रहे सन्देह ना ॥३॥
पाप. पुण्य नाहीं रे लड़के, नहीं सुख दुःख है।
व्याधि ना उपाधि रे अवधू अचल आनन्द है ॥४॥
तन, मन, वचन से लड़के, सदा सत् बोलना।
गुरु की आज्ञा में रे अवधू रैन दिन चालना ॥५॥
सहज समाधि रे लड़के, नहीं मन डोलता।
वासना मिटा दे रे अवधू, यही सन्यास है ॥६॥
सुरति सहेली रे, लड़के आतम भूप है।
पाँच पचीसों रे अवधू, सदा सेवा करे ॥७॥
जाय नहीं आवे रे, लड़के, सदा एक रस रहे।
अमृत' रमे है रे 'शंकर', पद निर्वाण में ॥८॥

नाभि . से उठाले रे लड़के लेजा शून्य में।
भ्रमर गुफा में रे अवधू, अचल आनन्द है ॥१॥
ताल है सुधा का रे लड़के, ...
मुक्ति की ...

नवधा भक्ति की बाती कर, आरती सजाओ हे।
अनहद घण्ट बजाय कर, उनमनि धुनि लाओ हे ॥५॥
अमी झरे दिन रैन, ताहिका भोग लगाओ हे।
धार दीनता प्राण वायु का, चँवर ढुलाओ हे ॥६॥
शिखर महल के माहिं, सुषुम्ना सेज बिछाओ हे।
मोहं सोहं गाय कर, गुरु देव रिझाओ हे ॥७॥
'अमृत' भेद अपार है, सहज ही लख पाओ हे।
सुरति ठिकाने लाय कर, 'शंकर' गुण गाओ हे ॥८॥

सतगुरु शब्द सम्हाल, दूर भव व्याधि हो।
चञ्चल मन थक जाय, सहज समाधि हो ॥१॥
जन्म मरण दुख मिटे, योग सहज ही स[illegible]।
निर्मल होवे बुद्धि, ज्ञान का बल बधे ॥२॥
मूलाधार सुधार, नाभि की सुधि करे।
मेरु दण्ड के मार्ग, शिखर में श्रुति धरे ॥३॥
भ्रमर गुफा के माहिं, अनोखा ख्याल है।
अद्भुत होता नाद, सुधा का ताल है ॥४॥
कोटि सूर्य सम तेज, सहस दल रूप है।
रहे सदा ऋतु एक, गुरु तहँ भूप है ॥५॥
तुरिया तत्व विलास, सुषुम्ना सेज है।
अमृत रूप अखण्ड, ब्रह्म का तेज है ॥६॥

आलख शबद गुरमुख विचारी। सत मारग का भया वापारी॥
गृहस्ती विरक्ती जो कोई होए। मारग बूझ भरम चित खोए॥
बन्ध खुलासी का मारग एका। गुरमुख परसे धर विरत विवेका॥
अपान पवन को प्रान में मेले। ले प्रान अपान में खेले॥
नित अश्वमेध करे मुनी ज्ञानी। शबद अखण्ड पाए पुरख निर्वानी॥
शबद भेद जब पूरन पाए। तब जीवन नर सुख वरताए॥
धन्न सतगुर जिस मारग दिखलाया। अजर पुरष का दर्शन पाया॥
धरती पदम शीश धरे अरशे। आलख शबद निस बासर बरसे॥
गुर का शबद बिमल तत्तसार। **'मंगत'** बूझे होए भ्रम छार॥**272**
ऐसे शबद की कथा अनूप। करे बखान कोई सतगुर रूप॥
जिस सूझा तिस पाई जुगत। विचरे जग में सो जीवन मुकत॥
बिना योग नहीं मनसा ठहराए। बिना योग नहीं तृप्ती आए॥
सतगुर मिले तब सार को पाया। अमरलोक में जाए समाया॥
तीन भवन सुख सहज अस्थाना। विचरे शबद आलख निर्वाना॥
गंग जमन सरस्ती बन्ध। अबगत पुरख का प्रगटयो सन्ध॥
सुर नासका मद्ध सुरती ठहराए। सार शबद को सो जन पाए॥
उलट सुरत घट पवन को पीवे। अछल अछेद अर्थ को लेवे॥
रमज़ गुपत जाने कोई सूर। ऊँचा शिखर बजावे तूर॥
चंचल मन को कीजे घात। अमरत पीवे सुन्न के घाट॥
सहज सुन्न में वास नित करी। अचल समाध शबद रस भरी॥
पावे कोई गुरमुख भेद। आद निरंजन पुरख अछेद॥
नाम बिना नहीं पावे योग। पावे नाम सतगुर संजोग॥
योग पाए मन मल हरया। अखण्ड दीपक कपाट में धरया॥
खुले कपाट भया उजियारा। **'मंगत'** योगी सत जुगत विचारा॥**273**

आसन धरती सुरत आकासे, लखे ज्ञान निर्वानी।
उपजे शबद जोत दरसावे, सुरत भई इकलानी॥
तन मस्जिद प्रान मुसल्ला, तिस पर पढ़े नमाज़ हकानी।
तरक ख़ुदी दा सजदा कीजे, घर बूझे रमज़ रूबानी॥

ा अंग - समदर्शन योग 239

॥ चौपाई ॥

बालापन में गुरु अपनाई । जग में पगन नेक नहिं पाई ॥
हरि रंग में गुरु रंग दीनी । ज्ञान ध्यान में पूरण कीनी ॥
प्रेमा परा भक्ति प्रगटाई । श्री हरि गुरु से लगन लगाई ॥
सर्व सुलक्षण जगत उजागर । शील क्षमा जत सत की सागर ॥
दयाबोध शुभ ग्रंथ बनायो । संत महन्तन के मन भायो ॥
दोहा चौपाई की रचना । अमृतमई मनोहर वचना ॥
प्रथम अंग गुरु वर्णन कीनो । सुमिरन को पुनि रचो नवीनो ॥
सूरातन को अंगहु गायो । प्रेम अंग उत्तम प्रगटायो ॥

॥ दोहा ॥

वैरागहु को अंग शुचि, कथन कियो निरधार ।
श्रवण करे से स्वप्न सम, दीख पड़े संसार ॥
साधु अंग आनँदमई, वर्णन कीनो खूब ।
सन्तन की सेवा किये, मिले कृष्ण महबूब ॥
अजपा जप के अंग में, दई बात सब खोल ।
सुरति श्वास से होत है, सुमिरन अति अनमोल ॥
कर माला मुख की करी, तासे ना कछु काम ।
लगो रहे इकरस सरस, निश दिन आठों याम ॥

॥ चौपाई ॥

पढ़े सुने जो प्रेमी प्यारा । उपजे हिय आनँद अति भारा ॥
सूक्ष्म वाणी अर्थ अपारा । वेद पुरान शास्त्र को सारा ॥

॥ अजपा का अंग ॥

॥ दोहा ॥

चरनदास गुरदेव ने मो सूँ कह्यो उचार ।
"दया" अहर[1] निसि[2] जपत रहुं सोहं सुमिरन सार ॥ १ ॥
नासा आगे दृष्टि धरि स्वाँसा मैं मन राख ।
"दया" दया करिकै कह्यो सतगुर मो सूँ भाख ॥ २ ॥
पद्मासन सूँ बैठ करि अंतर दृष्टि लगाव ।
"दया" जाय अजपा जपो सुरति स्वाँस में लाव ॥ ३ ॥
अर्ध उर्ध मधि सुरति धरि जपै जु अजपा जाप ।
"दया" लहै निज धाम कूँ छुटै सकल संताप ॥ ४ ॥
स्वाँसउ स्वाँस बिचार करि राखै सुरत लगाय ।
"दया" ध्यान त्रिकुटी धरे परमातम दरसाय ॥ ५ ॥
"दया" कह्यो गुरदेव ने कूरम[3] को ब्रत लेहि ।
सब इंद्रिन कूँ रोकि करि सुरत स्वाँस मैं देहि ॥ ६ ॥

(१) दिन । (२) रात (३) कछुआ जो सुरत ध्यान से अंडा सेता है ।

बिन रसना बिन माल कर अंतर सुमिरन होय ।
'दया' दया गुरदेव की बिरला जानै कोय ॥ ७ ॥
अजपा सोहं जाप तैं त्रिविधि ताप मिटि जाहिँ ।
'दया' लहै निज रूप कूँ या मैं संसय नाहिँ ॥ ८ ॥
हृदय कमल मैं सुरति धरि अजपा जपै जो कोय ।
बिमल ज्ञान प्रगटै तहाँ कलमख डारै खोय ॥ ९ ॥

॥ सोरठा ॥

'दया' सकार[1] हँकार[2] अच्छर को जो जप करत ।
अंतर ह्वै उजियार तिमिर अविद्या सब हरत ॥ १० ॥
नाभि नासिका माहिँ गाजै सोहं सब्द धुनि ।
या मैं संसै नाहिँ 'दया' सुमिरि भव तरत मुनि ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥

सतगुर के परताप तैं 'दया' कियो निरधार ।
अजपा सोहं जाप है परम गम्य निज सार ॥ १२ ॥
प्रथम पैठि पाताल सूँ धमकि चढ़ै आकास ।
'दया' सुरति नटिनी भई बाँधि बरत[3] निज स्वाँस ॥ १३ ॥
छिन छिन मैं उतरत चढ़त कला गगन मैं लेत ।
'दया' रीझि गुरदेवजू दान अभय पद देत ॥१४॥
चरनदास गुरु कृपा तैं मनुवाँ भयो अपंग ।
सुनत नाद अनहद 'दया' आठौ जाम अभंग ॥ १५ ॥
घंटा ताल मृदंग धुनि सिंह गरज पुनि होय ।
'दया' सुनत गुरु कृपा तैं बिरला साधू कोय ॥ १६ ॥
गगन मध्य मुरली बजै मैं जु सुनी निज कान ।
'दया' दया गुरदेव की परस्यो पद निर्बान ॥ १७ ॥

(१) सवेरे । (२) पुकार कर । (२) रस्सी ।

पावक नाम जलाइ है, पाप ताप दुख दुन्द।
राम सुमिर सहजो कहै, जो बिसरै सो अन्ध ॥ १२ ॥
कनक दान गज दान दे, उनन्चास भू दान।
निस्चै करि सहजो कहै, ना हरि नाम समान ॥ १३ ॥
मेंह सहै सहजो कहै, सहै सीत और घाम।
पर्बत बैठो तप करै, तौ भी अधिको नाम ॥ १४ ॥
चरनदास हरि नाम की, महिमा कही अपार।
सो सहजो हिरदे धरी, अचल धारना धार ॥ १५ ॥
सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदे माहिँ दुराय*।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥ १६ ॥

---

* छिपाकर, गुप्त।

राम नाम यौँ लीजिये, जानै सुमिरन हार।
सहजो के कर्तार ही, जानैं ना संसार ॥ १७ ॥
बैठे लेटे चालते, खान पान ब्यौहार।
जहाँ तहाँ सुमिरन करै, सहजो हिये निहार ॥ १८ ॥
जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय।
सहजो इकरस ही रहै, तार टूटि नहिँ जाय ॥ १९ ॥
आठ पहर सुमिरन करै, बिसरै ना छिन एक।
अष्टादस और चार में, सहजो यही बिसेष ॥ २० ॥
सहजो सुमिरन सब करैं, सुमिरन माहिँ बिबेक।
सुमिरन कोई जानि है, कोटौं मद्धे एक ॥ २१ ॥
जन्म मरन बन्धन कटै, टूटै जम की फाँस।
राम नाम ले सहजिया, होय नहीं जग हाँस ॥ २२ ॥
चौरासी के दुख कटैं, छप्पन नर्क तिरास।
राम नाम ले सहजिया, जम पुर मिलै न बास ॥ २३ ॥
गर्भ बास संकट मिटै, जठर अगिन की आँच।
राम नाम ले सहजिया, मुख सूँ बोलो साँच ॥ २४ ॥
सील छिमा संतोष गहि, पाँचो इन्द्री जीत।
राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीति ॥ २५ ॥
काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम।
निस्चै सहजो मुक्ति है, लहै अमरपुर धाम ॥ २६ ॥
काम क्रोध मोह लोभ तन, ले सुमिरै हरि नाम।
मुक्ति न पावै सहजिया, ना रीझैंगे राम ॥ २७ ॥
कामी मति भिष्टल* सदा, चलै चाल बिपरीत।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माहिँ अनीत ॥

सहजो मुख हाँसी छुटै, कबहू टपकै नैन ॥ ५ ॥
प्रेम दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट ॥ ६ ॥
प्रेम दिवाने जो भये, नेम धरम गयो खोय।
सहजो नर नारी हँसैं, वा मन आनँद होय ॥ ७ ॥
प्रेम दिवाने जो भये, सहजो डिगमिग देह† ।
पाँव पड़ै कितकै किती, हरि सम्हाल जब लेह ॥ ८ ॥

* मन और ३ गुण और ५ प्रकृतियाँ। † शरीर।

कबहूँ हकधक हो रहै, उठै प्रेम हित गाय।
सहजो आँख मुँदी रहै, कबहूँ सुधि हो जाय ॥ ९ ॥
मन में तो आनद रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोइ संग ॥ १० ॥
प्रेम लटक दुर्लभ महा, पावै गुरु के ध्यान।
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजै केवल ज्ञान ॥ ११ ॥

अजपा गायत्री का अंग

ऐसा सुमिरन कीजिये, सहज रहै लौ लाय।
बिनु जिभ्या बिन तालुवै, अन्तर सुरत लगाय ॥ १ ॥
हन्सा सोहं तार कर, सुरति मकरिया पोय।
उतर उतर फिरि फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन होय ॥ २ ॥
बरत† बाँध कर धरन में, कला गगन में खाय।
अर्ध उर्ध नट ज्यौं फिरै, सहजो राम रिझाय ॥ ३ ॥
लगै सुन्न में टकटकी, आसन पदम लगाय।
नाभि नासिका माहिं करि, सहजो रहै समाय ॥ ४ ॥
सहज स्वाँस तीरथ बहै, सहजो जो कोइ न्हाय।
पाप पुन्न दोनोँ छुटैं, हरि पद पहुँचै जाय ॥ ५ ॥
हक्कारे* उठि नाम सूँ, सक्कारे होय लीन।
सहजो अजपा जाप यह, चरनदास कहि दीन ॥ ६ ॥
सब घट अजपा जाप है, हन्सा सोहं पुर्ष।
सुरत हिये ठहराय के, सहजो या बिधि निर्ख ॥ ७ ॥
सब घट व्यापक राम है, देही नाना भेष।
राव रंक चंडाल घर, सहजो दीपक एक ॥ ८ ॥

* रस्सी। † पुकारे।

मावस

ममा ररा दो अंक कूँ राखो हिरदे माहिँ ।
धर्मराय जाँचे नहीं लेखा माँगे नाहिँ ॥
लेखा माँगे नाहिँ जाय नहिँ जमपुर बंधा ।
ऐसे निर्मल नाम को बिसरै सो अंधा ।

टीका चारो बेद का महिमा कही न जाय ।
औसर बीत्यौ जात है सहजो सुमिर अघाय ॥

पड़िवा

पानी का सा बुलबुला यह तन ऐसा होय ।
पीव मिलन की ठानिये रहिये ना पड़ि सोय ॥
रहिये ना पड़ि सोय बहुर नहिँ मनुखा देही ।
आपन ही कूँ खोज मिलै जब राम सनेही ॥
हरि कूँ भूले जो फिरैं सहजो जीवन छार ।
सुखिया जब ही होयगो सुमिरैगो करतार ॥

दूज

दोयज धंधा जगत का लागि रहै दिन रैन ।
कुटुँब महा दुख देत है कैसे पावै चैन ॥
कैसे पावै चैन बिना साधू की संगत ।
दुनिया रंग पतंग मजीठी गुरु की रंगत ॥
जन्म मरन ता सूँ छुटै सहजो दरसै राम ।
चौरासी के दुख मिटैं पावै निज पुर धाम ॥

तीज

तीज तनिक सुख कारने बहुत फसाये जीव ।
लालच लगि ऐसो गिरै जैसे मक्खी घीव ॥
जैसे मक्खी घींव डूब करि निकसै नाहीं ।
ऐसे यह नर बूड़ि रहै कुनबे के माहीं ॥
मनुखा देही पाय कै सहजो डारी खोय ।
जमपुर बाँधे वे चले चौरासी दुख होय ॥

चौथ

चौथ चहूँ दिस तिमिर है महा घोर भयमान ।
मूरख जन सोवत तहाँ मिथ्या ते अज्ञान ।

चौपाई।

श्रीगुरु महिमा अनुपम गाई। सुन गुन साधू करें बड़ाई॥
हरि सुमरन को बरनो अंग। नानाभांति न कहै प्रसंग॥
अजपा गायत्री पुनि गाई। सोहम् सुरति रीति समुझाई॥

साधू महिमा सब मनहरनी। अतिविचित्रअनुपमसोईबरनी॥
सूरातन को अंगहु गायो। सन्त महन्तन के मन भायो॥
बिरह अंग पुनि बरनन कीनों। सुन प्रगटत हरि प्रेम नवीनों॥
पतिव्रता अंग प्रभुता भाखी। अति अनन्यता रीति सुराखी॥
सतगुरु कृपा अंग अति पावन। बरनो भक्तन के मनभावन॥

दोहा।

पुनि वैराग चितावनी, बरनी महा अनूप॥
पढ़ै सुनै समुझै सोई, परै न फिर भवकूप ३५
भक्ति ज्ञान के अंग की, अद्भुत बरनी रीत॥
अगुन सगुन दोउ रूप में, प्रकटै प्रेम प्रतीत ३६
बारहमासा में कह्यो, बिरह अवस्था अंग॥
श्री गुरु कृपा दयालुता, अनगिन कथे प्रसंग ३७
पारख को अँग सोहनो, रच्यो रहस्य दरसाय॥
गुरु शिष्य लक्षन कथे, समझ भूल भ्रमजाय ३८
श्री शुक मुनि के जन्मकी, लीला ललित अनूप॥
भारत में जा विधि लिखी, सो बरनी सुखरूप ३९

चौपाई।

चौपाई ।

गावन बिंद्या सीखे कोई । लै सुर ताल बतावें सोई ॥
सातों स्वर अरु तीनों ग्राम । सब सिखलाय बतावें नाम ॥
नृत्य करन की बिद्या न्यारी । सीखे ताहि सिखावें सारी ॥
सारंगी तबला तम्बूरा । सिखलावें फन सबको पूरा ॥

दोहा ।

संस्कृत बिद्या सकल, अरबी तुरकी आद ॥
उर्दू बोली फारसी, सिखा करें दिल शाद १२७
मुसलमान सबही कहें, उन्हें वली अल्लाह ॥
हिन्दू गुरु माने जिन्हें, दोउ दीन के शाह १२८

चौपाई ।

निशि दिन रहैं प्रेम मतवारे । स्वामी रामरूप के प्यारे ॥
इक दिन मन्दिर माहिं बिराजे । गावैं संत बजावैं वाजे ॥
निजकर आप सितार बजाया । तान तरंग रंग बरसाया ॥
नूपुर निज पद बांध सुभागे । हरिके सन्मुख नृत्तन लागे ॥
गावन लगे बिरह पद जबहीं । गद गद कंठ भये पुनि तबहीं ॥
दशम द्वार हो प्राण निकारे । अमर लोक में आप पधारे ॥
बिजुरी की ज्यों भयो प्रकाशा । अनहद धुनि छाई आकाशा ॥
जाय परम पद कीनो बासा । जुगुलबिहारी जी के पासा ॥

दोहा ।

श्री सतबादीराम ने, या विधि तज निज देह ॥
सरसमाधुरी धाम जा, हरि सों कियो सनेह १२९

चौपाई।

एक समय सँग ले बहु संत। सिद्धराम ले साथ महंत॥
श्रीस्वामी दिल्ली से आये। कुछ दिन बेरीग्राम रहाये॥
निशि दिन रहै ध्यान लौलाई। जुगल रूप में सुरति समाई॥
मगन मानसी सेवा माहीं। देह गेह की सुधि बुधि नाहीं॥
तन जग में मन हरिपद दीने। स्वामी रामरूप रँग भीने॥
तदाकार हरिछबि भये लीना। जल अगाधमें जिमि रहैं मीना॥
अठारह सौ अरु सैंतालीसा। सम्बत विक्रम बिस्वेबीसा॥
जेठ सुदी बारस तिथि जानी। बुद्धबार दिन लिया पिछानी॥
देह तजन स्वामी मन आई। सिद्धराम शिष्य निकट बुलाई॥
शीश हाथ धर दई अशीशा। कृपा रहै तुम पर जगदीशा॥
अब हम परमधाम निज जावें। कुछ दिन बीते तुम्हैं बुलावें॥
सबको जय महाराज हमारी। सेवक संत सकल नर नारी॥

दोहा।

पद्मासन सो बैठके, श्रीस्वामी महाराज॥
सुख मन मारग प्राण तब, चढै गगन में गाज १५३
दशम द्वार टूटा तभी, तड़दे भई अवाज॥
बिजली सी चमकी तभी, बाजे अनहद बाज १५४

चौपाई।

स्वामी सिद्धराम तेहि बारी। गुरु बियोग दुख माना भारी॥
पुनि बिचार मन धीरज धारी। देहकृत्य मनमाहिं बिचारी॥
गुरुभाई अरु साधू संत। सेवक बेरी ग्राम अनंत॥
आये सिमट सकलतेहिबारी। संज बिमान सुन्दर अतिभारी॥

दोहा।

श्री स्वामी की देह को, दइ विमान वैठाय॥
कन्धे धर साधू चले, भजन करत हरषाय १५५

चौपाई।

रामरूप कोइ ऊबरा, सतगुरु शरणा पाय ६४
सब जग बांधा कपटने, कपट धसा सब अंग ॥
रामरूप कोइ ऊबरा, सतगुरु शब्द प्रसंग ६५

चौपाई ।

सतगुरु वचन बीज है भाई। प्रान पुहुमि में बोवो ताई ॥
यतन प्रीति कर धारै कोई। मन बांछित ताकूं फल होई ॥
जो हित सूं गुरु वचन रमावै। युग युग सुखी नाहिं दुखपावै ॥
फल अनन्त काटै पुनि कर्मा। या सम बड़ा और नहिं धर्मा ॥
तन मन के सब मिटैं विकारा। सतगुरु बचन मिलै करतारा ॥
गोपीचन्द भर्तृहरि भारा। गुरुके वचन उतरिगये पारा ॥
गुरु वचनों बिन करनी थोथी। बेद पढ़ो कह बांचो पोथी ॥
जो गुरुमुख गुरु वचनों पागे। रामरूप सोई बड़ भागे ॥

दोहा ।

जल माया मन दूध है, मिले परस्पर आय ॥
रामरूप गुरु हंस ने, लीन्हों पय निरताय ६६
जीव देह के रूप हो, मिला पचीसों हेत ॥
रामरूप गुरु ज्ञान सूं, न्यारे किये सुचेत ६७
अजपा जाप जपाइया, अनहद शब्द सुनाय ॥
अलख लखाया सतगुरू, अमृत प्याला पाय ६८
इति गुरुदेव अंग ॥

अजपा गायत्री अंग

इस अंग में ग्रन्थकर्ता ने श्वास के साथ के जो प्रत्येक मनुष्य के नासिका द्वारा विना जिह्वा के जपे अखण्ड सुमरण हो रहा है उसका लक्ष करा कर इस श्वास के साथही मनही मन में गुप्त भगवत् भजन करने की रीति को कई प्रकार से बतलाया है गुरु कृपा से जिज्ञासू और मुमुक्षु पुरुषों को इस अखण्ड सुमरण की सिद्धि प्राप्त होजाती है और सोते जागते इस अजपा जाप से परम सिद्धि प्राप्त होकर जीव तत्त्वदर्शी और त्रिकालज्ञ होजाता है॥

दोहा॥

कर माला मुख जीभ सूं, कौन जपै हो खेद॥
राम रूप सत गुरु दियो, अजपा जाप अभेद १
पाव घड़ी हिरदे जपे, हंसा सोहम् जाप॥
राम रूप नासैं सबै, चौरासी संताप २
देशों की बोली जुदी, पंथों जाप अनेक॥
राम रूप कहैं सब घटैं, अजपा सोहं एक ३

नाम गगन डोरी तणी, सुरती आवै जाय ॥
रामरूप ज्यों वरत में, नटणी रहै समाय ४
सोहं सोहं होत जो, यही ख़्याल है खूब ॥
रामरूप कहै देख लो, घटही में महबूब ५
यही अजपा ब्रह्मा जपा, शिव नारद सनकादि ॥
रामरूप यही परम जप, यही गायत्री आदि ६
अजपा जपिया भरथरी, गोरख गोपीचंद ॥
रामरूप जिन यह जपा, जाके छूटे फंद ७
सोहं अजपा आतमा, यही देह का जीव ॥
रामरूप करै ध्यान जो, सोई होत है सीव ८
लख चौरासी देह में, सोहं दीपक सार ॥
रामरूप याके बुझै, तुरत होत अंधियार ९
बाल युवा बूढ़ा भये, सोवत जागत ठांहि ॥
सोहं सोहं एक रस, रामरूप घट मांहि १०
ऊंच नीच छोटा बड़ा, यह देहों का ज्ञान ॥
सोहं सब घट एकसा, रामरूप धरि ध्यान ११
सोई सूरज चांद में, सो जग चींटी मांहि ॥
रामरूप एकै रम्यो, दूजा कोऊ नांहि १२
परम हंस अजपा जपै, बैठे ठौर इकंत ॥
आठ पहर लागे रहैं, राम रूप सो संत १३
सो कहि भीतर जात है, ऊपर आवैं हंग ॥
सुरत मकड़िया तार करि, रामरूप रहु संग १४

रामरूप रामत करै, नाभि नासिका मांहि॥
बिरला जानें देश यह, हरि काहू सुधि नांहि १५

अरिल्ल।

सोहं सोहं होत सकल घट मांहिरे॥
वह मैं हू यों कहे भेद कुछ नांहिरे॥
जमकी फांसी कटें किये यह जापरे।
अरेहां रामरूप हो मिलै आप मैं आपरे १६
अजपा याको नाम आपहि जप होयरे॥
करमाला मुख जीभ हलै ना कोयरे॥
ब्रह्मसिंधु जो आप तास की लहर है।
अरेहां रामरूपधरि ध्यान मिटै जम कहर है१७
तेल तिलौं के मांहि दूध में घीव ज्यों।
अगन काष्ठ में जान पिंड में जीव त्यों॥
नीच ऊंच सब धरो एकही दीवरे।
अरेहां रामरूप घट बीच देख ले पीवरे १८
आसन पद्म लगाय हिंडोले झूलिये।
सोहं सुरति रमाय जगत कूं भूलिये॥
सब सखियां ले संग पीव गुण गाइये।
अरेहां रामरूप या भांति मुक्ति पद पाइये १९
चरनदास गुरु दियो गुपत निज भेद है।
यह अजपा जपसार पाप सब छेद है॥

जगत् व्याध छोड़ जाय पर्म धाम छये ॥ ८ ॥
सतगुरु श्रीचरणदास राम नाम दियो ॥
रामरूप राम जपत रामरूप भयो ॥ ९ ॥

राग गौरी ।

सोई भले जिन नाम लिया ।
जोग दान सन्ध्या तर्पन शुभ
कारज तिन सर्वस्व किया ॥ १ ॥
सोई बड़ा सोई कुलका ऊंचा
हरिके मारग चित्त दिया ॥
लोक परलोक भई धनि धनिही
उन पुरुषोंका सुफल जिया ॥ २ ॥
पातक थे सो रहन न पाये
निर्मल हुवा शुद्ध हिया ॥
ररा ममा दोऊ अंक रसीले
ताही का रस काढ़ पिया ॥ ३ ॥
अमल चढ़ा तब आनन्द हूये
जन्म मरन तज रहित भया ॥
लख चौरासी बन्धन छूटे
भवसागर का सोग गया ॥ ४ ॥
राम नाम निज मंतर दीनौं
चरणदास गुरु करी मया ॥
रामरूप निश्चय कर धारा

हिरदय उपजा नेह नया ॥ ५ ॥

दोहा।

कर माला मुख जीभ सूं, कौन जपै होय खेद ॥
रामरूप सतगुरु दियों, अजपा जाप अभेद ॥

राग आसावरी।

साधो वह सुमरण है न्यारा ॥
जासु मरण सूं पाप कटत हैं
भवसागर हो पारा ॥ १ ॥
माला कर मुख जीभ न हालै
आपहीं होत उचारा ॥
जाप अखण्ड तार नहीं टूटै
सोहम शुद्ध विचारा ॥ २ ॥
सबही के घट रटना लागी
समझत नाहिं गँवारा ॥
ज्ञान आँख जब सतगुरु खोलै
जानै साधू प्यारा ॥ ३ ॥
आशा धार फिरत बौराना
चहूं दिशि पचहारा ॥
जो खोजा निकटै ही पाया
दिल अन्दर दीदारा ॥ ४ ॥
चरणदास महाराज दयाकर
भर्म अज्ञान निवारा ॥

राग सोरठ।

चल पीजे अमीरस प्याला रे।

गगनमण्डल में वासा कीजै हूजै अतिमतवाला रे ॥ १ ॥
तिरवेनी में नित असनाना सोहं सोहं माला रे ॥
विना धीव जहां जगमग जोति पहुँचे ना वहां काला रे॥२॥
मान सरोवर अमृत भरिया मोती चुगै मराला रे ॥
अनहद शब्द महाकौतूहल सुन सुन होहि निहाला रे ॥३॥
सहस कमलदल दीप पुरुष को जित कीजै धर्मशाला रे ॥
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागैं हो बैठैं जहां ठाला रे ॥ ४॥
लगै समाधि व्याधि जहँ नाहीं छूटै जग जञ्जाला रे ॥
रामरूप चरणदास दया सूं होय मुक्त तत्काला रे ॥ ५ ॥

राग सोरठ।

साधो अजब अचम्भा देखा।

पाँचों नारी उलट पलट कर वही पुरुष के भेषा ॥ १ ॥
उलटा कूंआ उलटी नेजू उलटी जल की धारा ॥
पीवनवारा उलट चला है सकल वासना हारा ॥ २ ॥
अग्नि जलै पानी के माहीं विना नैन जहँ सूझै ॥
गुर्गम होय सवै गति पावै विन गुरु गम क्या बूझै ॥ ३॥
चन्द सूरज जहां पहुँचे नाहीं अद्भुत अधिक उजाला ॥
जहां जीव सूं ब्रह्म होत है छूटैं जगत तिमाला ॥ ४ ॥
चरणदास महाराज दया सूं अचरज भेद निहारा ॥
रामरूप कहै देखो साधो चिड़िया बाज पछारा ॥ ५ ॥

राग सोरठ ।

साधो देखा अचरज भारी ॥

पांच सर्प मुख दादुर भखिया पुरुष बरा चढ़ि नारी ॥१॥
मूसे पकर बिलाव सिंहारो मृग ने चीता खायो ॥
उलट सिन्धु गङ्गा में आवै बांझ बाल सुत जायो ॥ २ ॥
बहरा सुनै आँधरा देखे लूला दौरत धाया ॥
रैयत बाँध भूप कूं डन्डै चेले गुरु समझाया ॥ ३ ॥
बाज डरै चिड़िया के भय सूं पिता पुत्र कूं त्यागै ॥
सास बहू के पैर लगत है सिंह गऊ से भागै ॥ ४ ॥
सोवै साह चोर दे चोकी वस्तु जान नहिं पावै ॥
रामरूप सोइ ज्ञानी पण्डित याका अर्थ बतावै ॥ ५ ॥

दोहा ।

मैं बालक हूं ब्रह्म का ब्रह्म ही मेरी जात ॥
ब्रह्म ही सूं उत्पति हुवा ब्रह्म ही माहिं समात ॥

राग सोरठ ।

सांचा सो ब्राह्मण कहलावै ॥

आशा तृष्णा होम हिये मैं मन देवत ठहरावै ॥ १ ॥
गायत्री अजपा कूं जानै त्रिकुटी भूमि लिपावै ॥
लकड़ी कर्म एकठी करके पावक ज्ञान जलावै ॥ २ ॥
षट कर्मों को साध सबेरे संजम सदा सँवारे ॥
पाठ करै अस्तुति ईश्वर की सबही पाप निवारे ॥ ३ ॥
पढ़ै बिचारै चित में धारै औरन कूं समझावै ॥

राग मङ्गल ।

सतगुरु की ले सरनि करो हरि ध्यान ही ।
काम क्रोध मोह लोभ विड़ारो मानही ॥
त्याग जगत की गैल अमर पद कूं चलो ।

कागनकी मति छोड़िं साध संगति रलो ॥
उत्तम है निज नाम रटन निस दिन करो ।
सोहं सोहं होय सुरति हिरदे धरो ॥
जित अनहद का देस बास ह्वां किजिये ।
झिलमिल जोति अपार निरख सुख लिजिये ॥
आगे सुन्न अस्थान काल को भै नहीं ।
परमहंस कोई संत जु पहुँचत है तहीं ॥
रामरूप गुरुदेव लखायो देस है ।
सिद्धराम रल मिले रहो नहीं भेस है ॥ ४३ ॥

राग काफ़ी ।

देखा अजब तमासा जोर अगिनि जल माहिं लगी ॥
तेल वाति विन दीपमालिका बिन सूरज भया भोर ॥
गूंगा राग छतीसौं गावैं बहरा सुन सुख पावै ॥
पिंगल निरत करै अति छवि सों आंधा लख मुसकावे ॥
ऊपर कूप तले खड़ी मालन विन नेजू जल काढ़ैं ॥
सींचै बेल फलै बिन फूलों जड़ काटे सूं बाढ़ैं ॥
सुता पिता की जोय भई जहां माकूं पूत खिलावै ॥
समझैगा कोई संत विवेकी मूरख भेद न पावै ॥
मुरदे मौति करी बस माहीं बाड़ि खेत कूं खाई ॥
सिद्धराम या पद की करनी गुरु रामरूप बताई ॥ ४४ ॥

राग सोरठ ।

म्हारे सतगुरु जुगति बताई हो ।
औघट घाट चले बिन पैरों जहां काल नहीं खाई हो ॥

राग सोरठ।

म्हारे सतगुरु जुगति बताई हो।
औघट घाट चले बिन पैरौं जहां काल नहीं खाई हो॥

प्रथम मूल बंध कसि दीनौ उलटी पवन चढ़ाई हो।
षष्ठकवल औंधे किये सूधे जब आगै गम पाई हो॥
इड़ा पिंगला मार्ग थाके सुखमन सहज समाई हो।
भँवर गुफा में अजब तमासा सोभा कही न जाई हो॥
कई कोट रबिसिस परकासे दीपमाल दरसाई हो।
झुक रही घटा दामिनी दमकैं अमृत झड़ी लगाई हो॥
सहस कंवल दल सेत सिंहासन तेज पुंज छवि छाई हो।
अनहद नाद झरै बहु भांती सुन्न धजा फहराई हो॥
जहां सतगुरु रामरूप बिराजैं सिद्धराम मिले जाई हो।
पाय अमरपद आनंद हूये आवागवन मिटाई हो॥ ४५॥

राग जैजैवंती।

गगन मंडल की सैल गुरु गम कीनी भाई॥
देखा अद्भुति खेला जीव सीव हुवा मेला॥
जहां नहीं राति द्यौस लखी छवि झीनीं॥
बाजे अनहद तूरा सुनैं कोई साधू पूरा॥
रागदोप नास भये ध्यान सुरति दीनी॥
इंद्री मन कैद किये बिषै भोग त्यागदिये॥
कर्म की काटी बेड़ी पैनी ज्ञान छैनी॥
जनम मरन नासो आपही में आप भासो॥
सोई रामरूप जानौं बोध बुधि भीनी॥
जीव भाव मिटा दूजा एक ब्रह्म सारै सूझा॥
सिद्धराम हूवा जब नित्य आतम चीन्हीं॥ ४६॥

कुंडलिया ॥

आठ मास मुखसूं जपै सोलह मास कँठ जाप ।
बत्तिस मास हिरदै जपै तनमें रहै न पाप ॥
तनमें रहै न पाप भक्ति का उपजै पौधा ।
मन रुकजावै जहां अपरबल कहिये योधा ॥
शुकदेव कही चरणदास सूं यही भेद ततसार ।
बहुरु आवै नाभिमें ताका कहूं विचार ॥

दो० पांच बरष जंप नाभिसों, रग रग बोलै राम ।
देह जीव निज भक्तहो, पहुँचै हरिके धाम ॥
त्रिकुटी में जप रामकूं, जहां उजाला होय ।
श्वासा माहीं जपेते, द्विविधा रहै न कोय ॥
गगन मँडलमें जापकरि, जितहै दशवांद्वार ।
चरणदास यों कहत हैं, सो पहुँचै हरिदरबार ॥
नासा अग्रे जापकरि, देखै नूर अगाध ।
बहुतकअचरजअरुखुलै, चरणदास कहेसाध ॥
नाम उठाकर नाभिसूं, गगन माहिं लैजाय ।
जहां होय परकाशही, शुकदेव दिया बताय ॥
मनही मनमें जापकरि, दरपण उज्ज्वल होय ।
दरशन होवै रामका, तिमिर[1] जाय सबखोय ॥
कूककूक-कर नाम जप, छुटै सात अरु पांच ।
जासों मन ठहरा रहै, चरणदास कहैं सांच ॥
सुरत माहि जो जप करै, तन सूं न्यारा जोन ।
मिलै सच्चिदानन्द में, गहे रहै जो मौन ॥
सकलशिरोमणि नामहै, सब धर्मन के माहिं ।

---

1 अँधेरा ॥

इड़ा पिंगला सुषमना, केलि करै परबीन ॥
करते प्राणायाम के, पावै आतम भेख।
अनहद ध्वनि के बीचमें, देखै शब्द अलेख ॥
पूरक करि कुंभक करै, रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम करि, सूक्ष्म करै अहार ॥
धरती वन्ध लगाय करि, दशौ वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ायकै, करै अमरपुर भोग ॥
पांचौ मुद्रा साधिकै, पावै घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षटौ चक्रको छेद ॥
नासाध्यान दृष्टि भृकुटी में, सुरति श्वासके माहिं।
आतम देखो जातहै, यामें संशय नाहिं ॥
योगयुक्ति कै कीजिये, कै आतम को ध्यान।
आपा आप विचारिये, परम तत्त्व को ज्ञान ॥
शूद्र वैश्य शारीर है, ब्राह्मण और रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास अवधूत ॥
काया माया जानिये, जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छुटि सूरति मिटै, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुण्य आशातजो, तजौ मान अरु थाप।
काया मोह विकारतजि, जपै सु अजपा जाप ॥
आप भुलानो आपमें, बँधो आपही आप।
जाको ढूंढ़त फिरतहो, सो तुम आपहि आप ॥
इच्छा हुई विसारिकै, क्यों न होय निर्वास।
तूतो जीवन्मुक्त है, तजौ मुक्तिकी आस ॥
आपा खोजै आपलखि, आप अपनको देख।
चरणदास तुहि ब्रह्महै, तूही पुरुष अलेख ॥

जैसे कछुवा सिमिटिकै, आपहि माहिं समाय ।
तैसे ज्ञानी श्वासमें, रहै सुरति लवलाय ॥
सबघट रमो सो राम है, आदि पुरुष निर्गम्य ।
लखचौरासी योनिमें, एक समानो सम्य ॥
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, रूप न देखो जाय ।
बिन सूरति बिननामको, घट घट रहो समाय ॥

छप्पय ॥

इच्छा दुइकर दूर आप तू ब्रह्म ह्वै जावै ।
और सो द्वितिया कौन तासुको शीश नवावै ॥
माला तिलक वनाय पूर्व अरु पश्चिम दौरा ।
नाभि कमल कस्तूरि हिरण जंगल भो बौरा ॥
चरणदास लखि दृष्टि भरि एक शब्द भरपूरहै ।
निरखि परखिले निकटहीं कहन सुननकोदूरहै ॥
झूठी सी यह दृष्टि जगत सब झूठो दरशै ।
मूरख जानै सत्य तासुसों फिर फिर परशै ॥
चंद सूर थिर नहीं नहीं थिर पौन न पानी ।
त्रैदेवा¹ थिर नहीं नहीं थिर मायारानी ॥
नवनाथचौरासीसिद्धजोचरणदास थिर ना रहै ।
ब्रह्म सत्य सर्वज्ञहै आत्म विचार क्यों ना गहै ॥

दो० जो मुख सेती बोलिये, अरु सुनियत है कान ।
जो आंखिन सों देखिये, सबही माया जान ॥
एकै सबतन रमि रह्यो, चेतन जड़के माहिं ।
मायादर्शत है सभी, ब्रह्म लखतहै नाहिं ॥
जैसे तिलमें तेलहै, फूल मध्य ज्यों बास ।

---

[1] ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥

भर्मभूल सांची लगै, समझै सांच न होय॥
सोने को गहनो गढ़ै, कहन सुननको दोय।
गहनो ना सोनो सबै, नेक जुदो नहिं होय॥
झूठ सांच दो नावहै, झूठ मिटै इक सांच।
नाम मिटै सूरत मिटै, भूषण को लग आंच॥
जाको माया कहतहैं, सो तू नेक निकास।
जैसे हींग कपूरकी, नेक जुदी कर बास॥
जल समान तो ब्रह्महै, माया लहर समान।
लहर सबै वह नीरहै, लहर कहै अज्ञान॥
खेल खिलौना खांड़के, कीजे लाख पचास।
सकल खिलौना खांड़है, ऐसे गहि विश्वास॥
चरणदास खिलौना खांड़के, भाजन राखे खांड़।
बिन विनशेभी खांड़है, विनशिजाय तौ खांड़॥
माटी के भांड़े भवैं, सूरति अरु बहुनाम।
बिगसिफूटि माटी भई, बासन कहुकेहि ठाम॥
ऐसेहो माया नहीं, समझि देखु मनमाहिं।
जो दीखै सो ब्रह्महै, रंचक माया नाहिं॥
इच्छा मेटै दुइ तजै, एकै मन विश्राम।
ब्रह्मज्ञान विज्ञान है, समझ परमपद धाम॥

सवैया॥

श्वास उसास चलै जप आपहि है जु अखण्ड टरै नहिं टारो।
भीतर वाहर है भरिपूर सों ढूंढ़ौं कहां नहिं नाहिंन न्यारो॥
चरणदास कहैं गुरुभेद दियो भ्रम दूरि भयो जुहुतो अतिभारो।
दृष्टि अदृष्टि जु रामको देखत राम भयो पुनि देखनहारो॥
दो० आप आपमें आपहै, खेलौ बहु विस्तार।

अमर अडोल निरीच्छन भेखा । त्रिगुण रहत रूप नहिं रेखा ॥
चेतन आनँद नित निराधारा । निराकार निर्लिप्त निरारा ॥
निराकार आकार बिवरजाति । निरगुण अरुसरगुणतेरीगति ॥
हाथ पाँव अरु शीश घनेरे । कैसे आरती करूं प्रभु मेरे ॥
सोहं बाती घीव अखण्डा । एकहि ज्योति बलै ब्रह्मण्डा ॥
तुही थाल तुहि आरति साजै । तुहि घंटा तुहि झांझरिबाजै ॥
चरणदास शुकदेव लखायो । सुरति थकी पै पार न पायो ॥
गगन मँडल में आरति कीजै । उत्तम सौंज सकल सजिलीजै ॥
सुखमन अमृत कुम्भ धरावै । मनसा मालिनि फूल चढावै ॥
घीव अखण्डा सोहंबाती । त्रिकुटी ज्योति बलै दिनराती ॥
पवन साधना थाल करीजै । तामें चौमुख मन धारदीजै ॥
रविशशि हाथगहौ तिहिमाहीं । खिन दहिनो खिन बायें लाईं ॥
सहसकमळ सिंहासन राजैं । अनहदझालरि नितही बाजैं ॥
इहिबिधि आरति सांचीसेवा । परम पुरुष देवन को देवा ॥
चरणदास शुकदेव बतावैं । ऐसी आरति पार लगावैं ॥
ऐसें आरति करि हुलसावै । दै परिक्रमा शीश नवावै ॥
तनकोथालअरुमनको चौमुख । ज्ञान ध्यान की बाती लावै ॥
भक्तिभावको घी भरि तामें जगमग जगमग ज्योति जगावै ॥
अर्ध ऊर्ध हितसूं करि फेरै रचना रचै ल बर्षावै ॥
सुरति मृदंग अरु निरति तँबूरा झेंगड़ झेंगड़ झांझ बजावै ॥
ताल बीण मुरचंग शंखध्वनि प्रेम मगन ह्वै हरिगुण गावै ॥
सोरन कलशा जलको राखै धूपरु अगर सुगन्धि धरावै ॥
या बिधि सों शुकदेव श्यामकी गाय आरतीको फलपावै ॥
युगलकिशोर निरखि नैननसों चरणदासि सखिबलि बलिजावै ॥

राग हिंडोलनो ॥

झूलत हरिजन सन्तभक्ति हिंडोलने।
ररा ममा दृढ़खंभ रोंपे प्रेम डोरी लाय।
टेक पटरी बैठि सजनी अतिअनन्द बढ़ाय॥
ध्यानके जहाँ मेघ बरसैं होय उमँग हुलास।
गुरुमुखी जहाँ समझ भीजैं पूरण हरिके दास॥
बुद्धि विवेक विचारि गावैं सखी सहेली साथ।
अगमलीला रटैं सजनी जहां ब्रह्मविलास॥
परमगुरु श्रीजनक झूलैं झूलैं गुरु शुकदेव।
चरणदासी सखी सदा झूलैं कोइ न पावै भेव॥

राग हेली ॥

और न मेरे कोय हेली।

प्राणपियारे लालजी॥ रोम रोमरोम वेई रमेरी अरी हेली तन मन व्यापक सोय॥ जित देखों तित लालकोरी अरी हेली दूजा नाहीं और॥ आदि अन्त है लालजी सर्वमयी सबठौर॥ देश काल सबलालहैं री अरी हेली अर्धऊरध है लाल। दहिने बायें लालजी दशोंदिशा में लाल॥ सोवतही में लालहैं री अरी हेली जाग्रतहीमें लाल। माहिं सुषोपति लालजी तुरियाही में लाल॥ ज्ञान ध्यान सब लाल हैं री अरी हेलीलालही गुरु शुकदेव चरणदासी है लालकी बिरला जानै भेव॥

जो होवै हो हरिदास हेली एते कुलतारै वही॥ फल न मुक्तिचाहे नहींरी अरी हेली भक्ति करै निर्वास॥ बीस चार कुल ददा केरी अरी हेली बीस नाना के जान। सोलह कुल ससुरारके द्वादश सुता बखान॥ बहनी के ग्यारह तरैरी अरी हेली दश भूवा के पार। मौसी के कुल आठही वेद कहत हैं चार॥ अष्टादश

सम्बन्ध मन तथा आत्मा से, उनकी दृष्टि में अधिक महत्त्व नहीं रखता। कबीर, दरिया आदि ने हठ-योग को कहीं-कहीं 'पिपीलक'-योग कहा है।[३] पिपीलक चींटी को कहते हैं; वह वृक्ष पर धीरे-धीरे चढ़ती है, चढ़कर मधुर फल खाती है, किन्तु कुछ देर बाद वह नीचे जमीन पर उतर जाती है और मधुर रस के आस्वादन का तन्तु विच्छिन्न हो जाता है। निरा हठयोगी भी क्षणिक एकाग्रता प्राप्त कर योग-विरहित पूर्वावस्था में बार-बार लौट आता है और निरन्तर परमानन्द के आस्वादन से वंचित रहता है। इसके विपरीत जो ध्यान-योग है, उसे सन्तों ने 'विहंगम-योग' कहा है। जिस प्रकार विहंगम अथवा पक्षी वृक्ष की डाल पर लगे हुए मीठे फलो का रसास्वादन बार-बार करता है, उड़ता भी है तो, इसके पहले कि रसानुभूति का तार टूटने पावे, पुनः डाल पर बैठकर उस रस का आस्वादन आरम्भ कर देता है; रसास्वादानुभूति की शृङ्खला पलमात्र के लिए भी छिन्न नहीं होती, उसी प्रकार ध्यानयोगी अपने आनन्द-लोक में निरन्तर विचरता रहता है। चींटी के समान उसे वृक्ष के नीचे अर्थात् दुःख-सुखमय मर्त्य-लोक में उतरना नहीं पड़ता है। 'वह शून्य गगन में विचरण करते हुए अमृत पान करता है और अमृत पान करते हुए शून्य गगन में विचरता रहता है';[४] उसे चित्त-वृत्ति-निरोध के लिए हठ-योग की अपेक्षा नहीं होती।

किनाराम ने ध्यान-योग को अध्यात्म-योग भी कहा है,[५] किन्हीं-किन्हीं पदों में इसे 'सहज योग' भी कहा है।[६] ध्यान का ही नाम 'सुरति' है, अतः इसे सुरति-योग या सुरति-शब्द-योग भी कहते हैं। सन्त मेंहींदास ने सुरति-योग या 'सुरत-शब्द-योग' को 'नादानु-संधान'-योग की संज्ञा दी है। गोपालचन्द्र आनन्द ने इसे 'आनन्द-योग' का भी नाम दिया है। चंपारण-परंपरा के कर्ताराम ने यह लिखा है कि योग दो प्रकार के होते हैं—'हठ-योग' और 'राजयोग'। हठ-योग से राजयोग श्रेयस्कर है। हठ-योग के 'नेती', (नेति), 'धोती' (धौति), 'बस्ती' (बस्ति), 'त्राटक', 'नौली' और 'कपालभाँति' ये छह प्रकार हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आसन, और पूरक, कुंभक तथा रेचक प्राणायाम आदि विहित हैं। किन्तु जबतक राजयोग द्वारा चित्तवृत्ति अन्तर्मुख नहीं होती और हृदय में अमर-ज्योति नहीं चमकती, तबतक मोक्ष नहीं होता।[७]

योग-विज्ञान के विशेषज्ञ पाश्चात्य विद्वान् पॉल ब्रन्टन (Paul Brunton) ने योग के तीन क्रमिक तथा उत्तरोत्तर स्तरों का निर्देश किया है। प्रथम स्तर वह है, जिसमें साधक एकमात्र शारीरिक साधना, अर्थात् आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि के द्वारा हठात् चित्त-वृत्ति का नियन्त्रण करता है। इससे उच्चतर वह द्वितीय स्तर है, जिसमें उसकी साधना शरीर की सतह से ऊपर उठकर भावनाओं के क्षेत्र में पहुँचती है और वह विना आसन, प्राणायाम आदि माध्यम के भी अपने अन्तर के आनन्द और मानसिक शांति की अनुभूति करता है। ब्रन्टन के विचार से इस अनुभूति-योग से भी ऊँचा जो तीसरा स्तर है, वह 'ज्ञान-योग' का है। इस स्तर पर आसीन होकर साधक, जो हठ-योग और ध्यान-योग अथवा अनुभूति-योग के सोपान से होकर उसे पार कर चुका है, अपनी विवेक-बुद्धि के साथ अनुभूति का समन्वय करता है और आत्मतत्त्व तथा बाह्य जगत् के रहस्य में बुद्धिपूर्वक अवगाहन करता है। यह 'ज्ञान-योग' 'कर्म-योग' का विरोधी नहीं होता,

भिनक राम कहते हैं कि मुझे त्रिकुटी घाट का बाट नहीं सूझता है और वहाँ पहुँचना मेरे बूते की बात नहीं है जबतक कि सद्गुरु की दया न हो।[२९] वे 'सुन्दरी सोहागिन' को आमन्त्रित करके उसे उस त्रिकुटी के घाट पर जाने को कहते हैं, जहाँ संत सौदागर बहुमूल्य सौदा लेकर उतरा है, जहाँ 'हंसो की कचहरी' लगी है, जहाँ सोहावन पोखरी है, जिसमें से वह अमृतरस की 'गगरी' भर सकती है; वहाँ अमरपुरी है, जहाँ वह ब्रह्म को नयन भर देख सकती है।[३०] वे एक पद में रूपक बाँधते हुए कहते हैं कि तुम पवन की उल्टी गति करके भवन में घुस जाओ, वहाँ एक ऐसा तराजू बनाओ, जिसमें प्रेम के 'पलरे' हों, 'धीरज' की डंडी हो और सुरति की 'नाथ' पहनाई हुई हो। ऐसे तराजू से दिन-रात 'सुन्न सहर' में निर्गुण नाम का सौदा तौलो। इससे अमरपद की प्राप्ति होगी।[३१] सुरति और पवन की स्वाभाविक गति बहिर्मुखी है, किन्तु योग में उनको उलटकर अन्तर्मुख किया जाता है, इसलिए कई स्थानों पर इस उलटी गति का वर्णन है। आनन्द ने लिखा है—

आँख मूँदि के उल्टा ताके,
ताड़ी रहै जमाया रे।
शून्य देश में जहाँ कोय नही,
पच्छी तहाँ लुकाया रे।[३२]

गोविन्दराम ने कहा है कि साधक मूल द्वार से पवन को खींचकर 'उल्टा पंथ' चलाता है और मेरुदंड की सीढ़ी से चढ़कर शून्य शिखर पर चढ़ जाता है।[३३] भिनकराम कहते हैं—मूलचक्र की शुद्धि करो, त्रिकुटी में श्वास नियंत्रित करो और द्वादश 'गुड्डियाँ' उड़ाओ।[३४] सुहागिन वही है, जिसके लिए गगन की किवाड़ उलटी खुल जाय, जिसमें कि इडा, पिंगला के संतुलन द्वारा वह 'सुरधाम' चढ़ सके, जहाँ पर उसके सद्गुरु हैं और जहाँ त्रिकुटी-मदिर के भीतर अखंड ज्योति प्रज्वलित है।[३५]

अनेक संतो के पदो में षट्चक्र, अष्ट-दल-कमल, द्वादश दल-कमल, षोडश दल-कमल, सहस्र दल-कमल आदि के उल्लेख मिलेंगे। इन पदो में षट्चक्र-शोधन का तात्पर्य पिंडगत मूलाधार आदि चक्रो का भेदन कर सुप्त कुण्डलिनी के जगाने से है, और कमल-दल-प्रवेश से तात्पर्य सुरति का आँखो से होकर ब्रह्माण्डगत अन्तर्लोक में पहुँचकर दिव्यदृष्टि की प्राप्ति से है। कहीं-कहीं सभी चक्रो के, आँखो में ही निवास की कल्पना की गई है। रामस्वरूप राम लिखते हैं कि जीवात्मा का निवास मूलचक्र पर है, जहाँ चार दलोवाला कमल प्रकाशित हो रहा है। जहाँ षड्दल-कमल है, वहाँ ब्रह्मा का; जहाँ अष्टदल-कमल है वहाँ शिव-शक्ति का निवास है।[३६] गोविन्दराम बताते हैं कि साधक स्नान करके पद्मासन मारे और उन्मुनी मुद्रा में ध्यान करे, गढ़ के भीतर प्रवेश कर छह चक्रो को पार करे और षोडश रस का आस्वादन करे। गढ़ में दस दरवाजे हैं और हरएक पर एक-एक थानेदार है। उन्मुनी मुद्रा के बल से इन दसो द्वार की किवाड़ियाँ खुल जायँगी और एक विमल अग्निचक्र दीख पड़ेगा।[३७] योगेश्वरदास बाह्य संसार को 'नैहर' और आभ्यंतर जगत् को ससुराल कल्पित करते हुए सुहागिन से कहते हैं कि त्रिकुटी-मध्य में दोनो नयन लगाकर पवन को उल्टी गति

ड़ेगा।[37] योगेश्वरदास बाह्य संसार को 'नैहर' और आभ्यंतर जगत् को ससुराल कल्पित करते हुए सुहागिन से कहते हैं कि त्रिकुटी-मध्य में दोनों नयन लगाकर पवन को उल्टी गति

चलाकर मकड़ी के तार के समान अविच्छिन्न सुरति की डोर के सहारे चढ़कर वहाँ चलो जहाँ पिया मिलेंगे।[38] एक अन्य सत कहते है कि अष्टदल-कमल अधोमुख रहता है। सुरति जब-जब जिस-जिस दल पर जाती है, तब-तब उस पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जब पूर्व दल पर जाती है तब जीवदया, जब अग्निकोण के दल पर जाती है तब निद्रा और आलस्य, जब दक्षिण दल पर जाती है तब मात्सर्य और क्रोध, जब नैऋ़ॅत दल पर जाती है तब मोह, जब पश्चिम दल पर जाती है तब जड़ता, जब वायव्य कोण के दल पर जाती है तब त्रिदोष, जब उत्तर दल पर जाती है तब भोग और जब ईशान कोणवाले दल पर जाती है तो अभिमान की वृद्धि होती है। साधना से इन दोषो पर विजय पाई जा सकती है।[39]

योग की प्रक्रिया की अवस्था में 'सोहं' का जप आवश्यक होता है। वस्तुतः सोहं की अन्तर्ध्वनि का एक निरन्तर तार बँध जाता है।[40] अलखानन्द कहते हैं कि इस प्रकार की सोहं ध्वनि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में नही, किन्तु उससे भी परे तुरीयावस्था में ही सुन पड़ती है। जबतक सोहं जप का अभ्यास न होगा, तबतक दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं मिटेंगे; सागर के तीर पर रहते हुए भी साधक को नीर नहीं मिलेगा, कल्पतरु के तले निवास करते हुए भी दारिद्र्य नहीं नष्ट होगा।[41] ध्वनि अथवा शब्द कालान्तर में स्वतः और सहज हो जाता है, साधक स्वय शब्दमय हो जाता है, और शब्द ही ब्रह्म है, अतः वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए शब्द का संतमत में बहुत बड़ा स्थान है।[42] इसी शब्द अथवा अनाहत नाद की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए योग की क्रिया को 'अनाहत योग' (अनहद योग) भी कहा गया है।[43] ब्रह्माण्ड के जिस अनुभूति-लोक में योगी अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा चित्त-वृत्ति की स्थिरता प्राप्त करता है और आनन्द का रसास्वादन करता है, उसे अनेक संज्ञाएँ दी गई हैं—'सुन्न महल', 'सुन्न सहर', 'गगनगुफा', 'गगन मंडल', 'गगन अटारी', 'सुन्न सिखर', 'अमरपुरी', 'गगन महल', 'ध्रुव-मंदिर' आदि। टेकमनराम की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

> सुन्ने आया सुन्ने जायगा, सुन्ने का विस्तार।
> सुन्ने सुन्न सहज धुन उपजे, कर बन्दे निरवार॥[44]

समाधि का यह शून्यलोक घट में ही है। भक्तिन भौजाई माई कहती हैं कि—'ऐ ननदी! मैंने घर में ही अपने 'पिया' को पा लिया है। मैंने बहुत तीर्थ और व्रत किया, जोगिन बनकर वन-वन ढूँढा, लेकिन मेरा समय व्यर्थ गया[45]। स्पष्ट है कि यहाँ घर से तात्पर्य ब्रह्माण्डगत शून्यलोक से है। रामटहल राम कहते हैं कि—

> सुन्न सिखर से अम्रित टभके
> हंसा पिये अघाय।[46]

किनाराम ने शून्यलोक की समाधि की अद्वैतता तथा स्थिरता का विश्लेषण करते हुए कहा है कि जिस तरह घट के भीतर का सीमित आकाश उसके फूटने से असीम आकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार समाधि की अवस्था में श्वास प्राण में, शब्द शब्द में,

का विवरण दिया जाता है, जिसे गोपालचन्द्र 'आनन्द' ने अपने 'आनन्द-योग' में भक्तो के कल्याण और सुगमता के लिए सरल शब्दो में लिखा है। यहाँ उनके विवरण में से कुछ चुने हुए अंश उन्हीं के शब्दो में उद्धृत किये जा रहे हैं :—

"लीजिये बात ही बात में युक्ति भी बता दी गई, अर्थात् मन को वश में करने के लिये केवल सुरत-शब्द-योग का अभ्यास कीजिये।

"आँख, कान, ज़ुबान को बाहर की ओर से बन्द करके उन्हें अन्दर की ओर खोलिये। यहाँ आन्तरिक जगत् में अपूर्व सुख और आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार आँख अन्तर में प्रकाश देखती है। जिह्वा अन्तर का नाम जपती है। तीनो इन्द्रियो के लिये तीन काम मिल गये। अब तो मानेगा कि अब भी नही। इधर से हटे उधर को लगे। आन्तरिक जगत् के सुहावने दृश्य को देखकर, मनोरंजन बाजे को सुनकर अजपा जाप की मधुर वाणी में लीन होकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। वहाँ के मधुर गान, मनोहर दृश्य तथा अजपा जप 'सोऽहं' 'सोऽहं' शब्द श्रवण करते ही सुरत सनसनाती हुई ऊपर की ओर उठी और आकाश में लीन हो गयी। वहाँ का अनुपम दृश्य अकथनीय है, केवल अभ्यासी लोग ही उस सत्+चित्+आनन्द का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माँह।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजित नाँह॥

जाग्रत में स्वप्न का और स्वप्न में जाग्रत का दृश्य देखकर इस श्रेष्ठ मार्ग में जो आया वह फिर वापस नहीं जाता, और न तो उसे जन्म-मरण का खटका रहता है। अब प्रश्न केवल यह है कि जब अन्तर में तीन इन्द्रियाँ काम करने लग गयीं तो फिर उन पर बन्द कहाँ लगा? हालत तो पहले जैसी थी वैसे ही अब भी रही, केवल स्थान बदल गया। संसार में तीन प्रकार के ज्ञान अर्थात् प्रमाण, अनुमान और शब्द होते हैं। प्रमाण तो इन्द्रियों का ज्ञान है। (देखना, सुनना, चखना यह प्रमाण ज्ञान है)। अन्दाजा लगाना, नतीजे को देखकर कारण सोचना या विचारना अनुमान कहलाता है। इसका संबंध दिल से है। शब्द गुरु का वचन और आप्त पुरुष का कथन है, बाहिरी जगत् में ज्ञान इसी तरह प्राप्त होता है। आन्तरिक जगत् में इनके संस्कार दिल में रहते हुए अपना काम करते हैं परन्तु भेद केवल इतना ही है कि कान जहाँ बाहिरी जगत् के शब्दो को सुनता था अब आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर अनहद-शब्द को सुनता है, आँख जहाँ और दृश्यो को देखती थी अब आन्तरिक जगत् में उस प्रकाशमय ज्योति को देखती है।

ज़ुबान केवल अजपा जाप के सिवा किसी से संबंध नही रखती है। ये तीनो इन्द्रियाँ धीरे-धीरे इधर से चुप हो जाती हैं, वहाँ पहुँचने पर आँखो को दूर से चिराग की रोशनी दिखाई देती है। कानों में घण्टे की आवाज दूर से सुनाई देती है और ज़ुबान तो दिल के साथ मिली हुई मन में लय हो जाती है। आपने देखा होगा संध्या समय जब मंदिरो में आरती होती है तो मंदिर में चिराग ही दिखाई देता है और घण्टे का शब्द सुनाई देता है। वह हजारो रोशनी की धारो का केन्द्र (मरकज) है क्योंकि हर स्थान पर धारो ही की रचना है। जिस प्रकार किसी कालेज में प्रवेश पाने के लिये इन्ट्रेन्स पास करना जरूरी है इसी प्रकार यहाँ भी है। इन्ट्रेन्स का अर्थ ही प्रवेश होने का फाटक है। अब आन्तरिक मंदिर में प्रवेश करें। मंदिर क्या है? यह आपका सर ही तो मंदिर है। क्या आप नहीं देखते कि शिवजी के मंदिर में अथवा मसजिद में गुम्बद है (ऊपरी गोल हिस्सा) यह बाहिरी मंदिर असली मंदिर की नकल है। सच्चा और असली मंदिर तो तुम्हारा सर है। हर मंदिर के बीच में आप एक त्रिलोनी (त्रिशूल) वस्तु देखते हैं, इसे संत मत में 'त्रिकुटी' कहते हैं। आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर गुरु की प्रकाशमय लाल रंग की प्रतिमा का दर्शन कर जहाँ दूर से घंटे और शंख की आवाज सुन रहे थे, अब मृदंग या पखावज तथा मेघनाद के शब्द को दिल दो। यह अन्तरी शब्द है। कोई इसको 'ॐ, ॐ' कहते हैं, कोई-कोई 'बम', 'बम' बोलते हैं। मुसलमान फकीर इसे 'हूँ', 'हूँ' कहते हैं। गुरु नानक साहब के भक्त लोग 'वाह गुरु' कहते हैं। यह गुरु ही का स्थान है। यही ब्रह्म है, यही अनलहक है जो यहाँ आया वही सच्चा गुरुमुख या पीरमुर्शिद हुआ, और जो बाहरी जगत् के आडम्बरो में फँसा रहा वह मनमुखी होता है। इस आन्तरिक जगत् में प्रवेश करने पर ध्यान एवं ज्ञान की समाधि की अवस्था प्राप्त होती है, इस समाधि में अत्यन्त अँधेरा है। इस अवस्था का नाम 'सुन्न' और 'महासुन्न' है, यह परब्रह्म पद है। इस आन्तरिक जगत् में प्रवेश करने पर रंग-रूप का भेद दूर होकर आत्मा (रूह) और परमात्मा (खुदा) में लीन होकर 'ॐ' या 'हू', 'हू' की आवाज को सुनकर त्रिकुटी, भँवर गुफा, आनन्द लोक तथा ब्रह्मलोक की सैर करता हुआ सत्+चित्+

मन पवना को संगम कोई नर पाइया ।
अनहद बजे अपार तो अलख लखाईया ।।[1]

उन्होंने एक स्थल पर त्रिवेणी के तीर पर चन्द्र एवं सूर्य के मिलने को बताया है।[2] एक अन्य स्थान पर वे चांद, सूर साधना का वर्णन अर्ध-उर्ध के खेल तथा इंगला -पिंगला को बांधकर बतलाया है।कुछ संतों में अर्ध-उर्ध के स्थान पर अरध और उरध भी मिलता है, ये प्राणायाम के बाचक है ।

अर्ध- उर्ध को खेल कोउ नर पावई । चांद सूर को बांधि गगन ले जावई ।।
ईंगल पिंगल दोउ बांधि सहज तब आवई । कहै गुलाल हर रोज आनन्द तब आवई[3]।।

बुल्ला साहब ने एक स्थान पर वायु साधना से सम्बन्धित प्राणायाम के पूरक, कुभक, रेचक आदि अंगों का उल्लेख किया है ।

लै कुंभक पूरक घर रखना रेचक संजम देई ।[4]

संत भीखा साहब ने प्राणायाम के सन्दर्भ में लिखा है कि - बाई नासिका की चन्द्र नाड़ी पिंगला और दाहिनी नाड़ी इंगला के साथ बीच की सुषुम्णा नाड़ी का शोधन करके ज्ञान- अग्नि को जगावे, प्रज्ज्वलित करें । इन्हीं इंगला पिंगला तथा सुषुम्णा को एकाग्र करके उलटकर उर्ध्वमुखी कर दे। इस क्रिया द्वारा गगन - गुफा के गगन मण्डल में अनाहद नाद और प्राण का संयोग होता है[5]। एक दूसरे स्थान पर उन्होंने दृष्टि को उलाट करके प्राणायाम करने का उपदेश दिया है[6]।

भीखा साहब को हम कबीर की भांति हठयोगियों के कठोर साधना की तीखी आलोचना करते हुए पाते हैं -

पान अपान उदान व्यान करि विसरेउ सारंग पानी ।
अपरम्पार पार परमेश्वर अविगति अकथ कहानी ।।[7]

योगी लोग पान, अपान, व्यान, उद्धान तथा समान वायु को साधने में विश्वात्मा रूप परमतत्व को त्याग देते हैं ।

संत गोविन्द साहब ने 'पवन' साधना की सहायता से सुरति - निरति को पार करने का उपदेश दिया है ।[8] संत पलटू साहब ने लिखा है कि बांई नासिका की चन्द्र नाड़ी पिंगल और दाहिनी नासिका की सूर्य नाड़ी इंगला के बीच की सुषुम्णा से त्रिकुटि में मिला देने पर सोहं शब्द सुनाई पड़ने लगता है ।[9] एक स्थान पर उन्होंने पवन साधना का भी संकेत किया है -

इंगला माहिं सहज समानी, पिंगल पवन अहारी हो[10]

रामचरन साहब ने पान-अपान वायु को शोधने का उपदेशं दिया है -

'रामचरन गोविन्द भजु। शोधेउ पान अपान ।।[11]

---

1. गुलाल साहब की बानी, पृ0 51 ।
2. चंद सूर घर आयल तिरबेनी तीर ।
   निरखि - निरखि गति साजल दरसन रघुवीर - वही, पृ0 26 ।
3. वही, पृ0 46 ।
4. बुल्ला साहब का 'शब्दसार', पृ0 3 ।
5. चन्द्र सूर्य एकाग्रह करि, उलटि उर्ध्व अनुसरै। नाद विन्द का जूह गगन में, मन माया तब टेरे।।
   -संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 93
6. बैसाख मास फल पूरन, योग युक्ति प्रानायाम।
   दृष्टि उलटि कै लगि रहै, निसुदिन आठो याम ।। वही, पृष्ठ 165
7. वही, पृष्ठ 54
8. पवन पयाना करि गया। सुरति निरति के पार।। गोविन्द साहब की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 25
9. बायें चन्द सुर है दाहिने, सुखमन सुरति समानी हो।
   सोहं सोहं सुन में बोलै, वही शब्द की खानी हो- पलटू साहब की वानी, भाग 3, पृष्ठ 28
10. वही, पृष्ठ 28
11. श्री रामचनर साहब के शब्द, पृष्ठ 2 (हस्तलिखित)

संत थानदास ने पान, अपान, उद्धान को मिलाने का संकेत दिया है[1]। संत देवकीनन्दन साहब ने अष्टांग योग की महत्ता बतलाई है[2]। आगे उन्होंने पान, अपान, उद्धान, व्यान को उलाट कर भरने का उपदेश दिया है[3], तो कहीं पर मात्र पान, अपान को मिलाने की बात कही है[4]। हुलासदास ने इड़ा पिंगला को शोध करके सुषुम्णा में समाने को बतलाया है --

इड़ा पिंगला सोधि के सुख मन रहे समाय । त्रिकुटि दास हुलास गे, कौन सकै अलगाय ।।[5]

स्वामी गैबानन्द ने अष्टयाम के आठो नियमों का नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया है

औरहु एक उपाय सुनु, नाश विक्षेपहिं हेत ।यम अरू नियमासन कही, प्राणायाम समेत ।।

प्रत्याहार पुनि धारणा, ध्यान समाधी जान ।यही योग अष्टांङ्ग है, करत विक्षेपहिं हान[6]।।

बावरी पंथ के संत कवियों ने कहीं भी योग का क्रमबद्ध रूप नहीं प्रस्तुत किये हैं। ये लोग प्राणायाम साधना का संकेत मन, पवन साधना के रूप में अधिकतर किये हैं। जो पलटू साहब तक आते-आते हठयोग का प्रभाव क्षीण-सा दिखाई पड़ने लगता है । कुछ संतों ने अष्टांग योग की साधना का भी उल्लेख किये हैं ।

विपरीतकरण मुद्रा से योगी लोग सूर्य को ऊपर कर देते हैं और चन्द्र को नीचे कर देते है ।यह क्रिया प्रत्याहार और प्राणायाम के द्वारा ही सिद्ध होती है।[7] विपरीतकरणी मुद्रा ही आगे चलकर संतों में विपरीतकरणी सूर्य चन्द्र साधना के नाम से प्रसिद्ध हुयी है । बावरी पंथ के संत यारी साहब ने विपरीतकरणी मुद्रा का संकेत करते हुए लिखा है - भगवान की कृपा से ही साधक चन्द्र को अधस्तात स्थिर करने में और सूर्य को उर्ध्वमुखी करने में समर्थ होता है ।

अैन-इनायत हरि की बढ़े। चन्द उतारै सूरज चढ़ै।[8]

प्रत्याहार की साधना में सहायक प्रणव जप भी है, ये जप एक लाख बीस हजार संख्या में बताएं गये हैं, किन्तु बावरी पंथ के संतों ने जप को बहुत महत्व दिया है। फिर भी एक लाख बीस हजार जप, संख्या का उल्लेख किसी ने नहीं किया है ।

ये लोग प्रणव जप के स्थान पर सोहं के अजपाजाप को ही विशेष महत्व देते हैं । यारी साहब ने अजपा-जाप की ओर संकेत करते हुए लिंखा है-

गगन गुफा में बैठि के रे, उलटि के अपना आप देखे।
अजपा जपै विन जीभि सो रे, बिन नैन निरंजन रूप लेखै ।।[9]

बावरी साहिबा ने भी अजपा - जाप के महत्व का प्रतिपादन किया है -

अजपा जाप सकल घट बरतै, जो जानै सोइ पेखा ।
गुरू गम जोति अगम घर बासा, जो पाया सोई देखा।।[10]

केशवदास ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिये साधना में अजपाजाप करने का उपदेश दिया है ।

निर्गुन राज समाज है, चँवर सिंहासन छत्र ।
तेहि चढ़ि यारि गुरू दियो, केसोहिं अजपा मंत्र ।।[11]

बुल्ला साहब ने त्रिवेणी में स्नान करने का उपदेश दिया है -

तीनिउ जना त्रिवेणी आना, गंग जमुन कीन्हों अस्नाना ।।[12]

बुल्ला साहब ने सोऽहं जप की ओर भी संकेत किया है [13]। प्रत्याहार के साधक के लिये शब्द सुरति योग की साधना भी जरूरी है।

---

1. पान-अपान उदान मेलि एक अन्तर हो।। थान साहब के शब्द, पृष्ठ 9
2. अष्ट जाम विह्वल व्याकुल तन प्रेम अभये मदमाती।- देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनायें। पृष्ठ 3
3. पान अपान उदान व्यानहि उरध भरनि भरै। वही, पृष्ठ 9
4. पान अपान मिलान करो तहां मेरूदण्ड को धार । वही, पृष्ठ 10
5. हुलासदास कृत 'ब्रह्म विलास' पृष्ठ 53
6. स्वामी गैबानन्द कृत अध्यात्मसुधा, पृष्ठ 9
7. हठयोग प्रदीपिका- तृतीय पटल, 3/79
8. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 11
9. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 21
10. महात्माओं की वानी, पृष्ठ 1
11. केशवदास् की अमीघूट, पृष्ठ 2
12. बुल्ला साहब का 'शब्दसार', पृष्ठ 15
13. वही, पृष्ठ 27

सुरति निरति लै घंट बजावै, जगमग जोति परम पद पावै ।।[1]

संत गुलाल साहब ने भी अपने गुरू की भांति अजपाजाप के महत्व की ओर संकेत किया है[2] आगे उन्होंने चन्द्र सूर्य साधना के द्वारा त्रिकुटि द्वार को साधने का उपदेश दिये हैं

पैठि पताल सूर ससि बांधौ, साधौ त्रिकुटि द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ।।[3]

गुलाल साहब ने सुरति- निरति की ओर संकेत करते हुए लिखा है -

सुरति निरति लै सखि सब गावहिं, घरहि नव निधि पाई।[4]

भीखा साहब के साहित्य में सोऽहं जाप की झलक मिलती है।[5] उन्होंने त्रिवेणी के सम्मुख सिर झुकाने का उपदेश भी दिया है।[6] सुरति निरति का संकेत करके उन्होंने लिखा है-

सुरति सुभाव निरति लपटानो, दृष्टि रूप अरूझाऊ।।[7]

जगजीवन साहब ने त्रिकुटि के बीच् में ताड़ी लगाने का उपदेश दिया है[8]। गोविन्द साहब गंगा, यमुना एवं सरस्वती को पवन साधना के द्वारा सुषुम्णा पर चढ़ाने को बतलाया है[9]।

बावरी पंथ के संत सदा जटिलता को सरलता एवं अनेकता में एकता लाने के लिये प्रयासरत थे। इसीलिये इस पंथ के संत पलटू साहब हठयोग साधना की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल नहीं दिया है। उन्होंने उसी प्रकार की साधना को अपनाया है, जिसे साधक सहज भाव से उसका आचरण कर सकता है। इसी ओर संकेत करते हुए पलटू साहब ने लिखा है कि योगी का कर्तव्य है कि सदाचार पूर्वक साधु-जीवन व्यतीत करते हुए, आठों पहर पद्मासन में बैठा रहे। उसे दसों द्वार बन्द कर लेना चाहिये और प्रयत्लपूर्वक त्रिकुटि में वायु आकृष्ट करके स्वासोच्छ्वास की गति रोक देनी चाहिए ।[10] संत पलटू ने मुद्रा एवं भेष की जगह अजपा-जाप के ही महत्व का प्रतिपादन किया है।[11] आगे उन्होंने चाँद एवं सूर्य दोनों को ऊपर उठाने की ओर संकेत किया है[12]।

श्री रामचरनदास जी ने इंगला, पिंगला और सुषुम्णा के ऊपर उस परमतत्व को बतलाया है।[13] थानदास ने अर्ध-उर्ध संगम के बीच अजपाजाप करने का उपदेश दिया है।[14] देवकी नन्दन साहब ने लिखा है कि सहज भाव से सि़द्धासन लगाकर इंगला, पिंगला और सुषुम्णा को एक सिद्ध में करके त्रिकुटी में षट्चक्र भेदन को बताया है।1[15] देवकीनन्दन साहब ने अजपाजाप में ही ब्रह्म की स्थिति को माना है।[16] परसाद साहब ने इंगला, पिंगला एवं सुषुम्णा को साधना के द्वारा बंकनाल पर चढ़ाने का उपदेश दिया है।[17]

---

1. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 18
2. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 43
3. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 34
4. वही, पृष्ठ 24
5. रमिता राम तू अन्तरजामी, सोहं अजपाजापै हौ- संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 55
6. मध्य सरस्वती गंगा यमुना, सन्मुख शीश नवावै। वही पृष्ठ 88
7. वही, पृष्ठ 201
8. त्रिकुटि मध्य दृष्टि करू नैनन ताड़ी तहां लगाव।- जगजीवन साहब की वानी, भाग 1 पृष्ठ 47
9. गंगा जमुना और सरस्वती, सुखमन चढै निसैनी, पावन पवन अनल जल बरसत सरसत फेनी।- गोविन्द साहब की हिन्दी रचनायें। पृष्ठ 39
10. पलटू साहब की वानी, भाग 3, पृ0 53 ।
11. वही, पृ0 19 ।
12. वही, भाग- 3, पृ0 28 ।
13. श्री रामचरन साहब के शब्द, पृष्ठ 9
14. थानदास के शब्द, पृष्ठ 11
15. संत देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 11
16. वही, पृष्ठ 72
17. बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ 354।

त्रिकुटि संगम जोति है रे, तहं देखि लेवै गुरू ज्ञान सेती [1]।।

आगे यारी साहब ने सूक्ष्म ध्यान की ओर भी संकेत किया है[2]। उन्होंने दो प्रकार के ध्यानों का उल्लेख किया है। नाद ध्यान और शून्य ध्यान । ये दोनों ध्यान सूक्ष्म ध्यान के अन्तर्गत ही आएंगे। नाद ध्यान को स्पष्ट करते हुए यारी साहब ने लिखा है।

नाद वरन जो लावे ध्यान। सो जोगी जुग-जुग परमान।।[3]

इसी प्रकार शून्य ध्यान की ओर संकेत करते हुए यारी साहब ने लिखा है ।

दृष्टि सम करि सुन्न सोवो, आपा मेटि उड़ाव ।[4]

इसी शून्य ध्यान को संतों ने निर्गुण ध्यान भी कहा है, यारी साहब ने लिखा है कि शून्य में ध्यान करने से ही निर्गुण के दर्शन हो सकते हैं -

सुन्न तें नित तारी लावों, सूझि है निर्गुन।।[5]

अपने गुरू यारी साहब की भाँति बुल्ला साहब ने भी ज्योतिर्ध्यान का उल्लेख किया है -

झिलमिल झिलमिल त्रिकुटी ध्यान।[6]

गुलाल साहब ने शून्य ध्यान की ओर संकेत किया है -

सुरति सो निरति मिलि ध्यान अजपा जपै, ज्ञान का घोड़ा लै सुन्न धावै ।।[7]

बावरी पंथ के संतों में समाधि के रहस्यात्मक वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । संत बुल्ला साहब ने समाधि के सन्दर्भ में लिखा है --

ममता मान जान तन बारो। ब्रह्म विस्नु समाधी धारा ।।[8]

संत गुलाल साहब ने भी समाधि की ओर संकेत किया है-

सहज समाधि हृदय महँलावहु, ज्ञान ध्यान सुचि दृढ़ करना ।।[9]

संतों ने एक प्रकार की और समाधि का वर्णन किया है। उसको उन्होंने सहज समाधि का नाम दिया है । इसका सम्बन्ध उनकी सहज-योग साधना से है। उनकी चर्चा 'सहजयोग' प्रसंग में किया जायेगा। समाधि के रहस्यपूर्ण एवं भावमय वर्णन करते हुए भीखा साहब ने लिखा है

नैन सेज निज पिय पौढ़ाई, सो सुख मौजे दिलहि जनाई ।
बोलता ब्रह्म आत्मा एकै, भाव मिलन को सकै दुराई ।
अगम अगोचर अबर अकथ, प्रभु, ता से कहौ कौन मुँह लाई।।[10]

बावरी पंथ के संतों का रूझान अष्टदल कँवल की साधना की ओर था । यारी साहब ने लिखा है

-- अष्टदल के कमल भीतर, बोलता इक सुआ।।[11]

इसी प्रकार से बुल्ला साहब ने भी अष्टकंवल दल का उल्लेख किया है[12]। अष्टदल कमल की व्याख्या गुलाल साहब ने भी किया है।[13]किस कमल की कहां स्थिति है, इस सम्बन्ध में बावरी पंथी संतों ने संकेत दिया है। भीखा साहब का मत है कि सतवें सहस्रार चक्र के बाद आठवां सुरति कमल है, जो अष्टदल वाला है, वहां पहुँचने पर ज्योति स्वरूप ब्रह्म का दर्शन होता है।[14] जगजीवन साहब का मत है कि अष्ट कमलदल के भीतर परमतत्व निवास करते है।[15] पलटू साहब ने लिखा है।

1. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 2
2. भंवर गुफा ब्रह्माण्ड मेखला, जोग जुगति बनि आई।
   बांबी उलटि सर्प को खाई, ससि में मीन नहाई। वही, पृष्ठ 4
3. वही, पृष्ठ 9
4. वही, पृष्ठ 4
5. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 6
6. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 30
7. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 79
8. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 18
9. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 8
10. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 66
11. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 6
12. निरखि त्रिवेनी छोडि दे तनुंवा।अष्ट कंवलदल उलटि फुलनुवां।-बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 11
13. अष्ट कमल पर फूलिब हो, दसो दिस उगे भान।।
    गगन मण्डल गुन गाईब हो, निझर झरे असमान।।- गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 20
14. आंठवें अष्ट कमलदल फूला, जोति रूप देखि जियरा भूला।-संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 156
15. अष्ट कमलदल भीतर राजा, पांच तत्त को राव।।, जगजीवन साहब की वानी, भाग 1, पृष्ठ 47

रामानन्द की योग-प्रभावित हिन्दी रचना 'रामरक्षा' है।[1] इसमें पांच मुद्राओं का उल्लेख किया गया है, वे इस प्रकार हैं:—

१. चाचरी ३. खेचरी
२. भूचरी ४. अगोचरी
५. उन्मुनी[2]

तुलसी साहब ने योग वर्णन के अन्तर्गत जिन पंच मुद्राओं का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं:—

(क) न्यारा न्यारा नाम बताऊं। पाँचो मुद्रा पुनि दरसाऊं॥
खेचरि भूचरि चाचरि सोई। और अगोचर उनमुनि होई॥
उनमुनि बसै अकाश के माहां। जोगी बास करै तेहि ठाहीं॥[3]

(ख) चाचरि भूचरि अगोचर, खेचरि खेह लगाई।
उनमुनि उभै अकास के ठाई, प्रान विधी बतलाई॥

(ग) स्वांसा साधि गगन मन धावा। उनमुनि साधि कै गगन लगावा॥
चाचरि भूचरि अगोचरि जानी। खेचरि मिलि यों पांच बखानी॥[5]

उपर्युक्त उद्धरणों से संत तुलसी ने पंच मुद्राओं के निम्नलिखित नाम बताये हैं:—

१. चाचरी ३. खेचरी
२. भूचरी ४. अगोचरी
५. उन्मनी

१—रामानन्द की हिन्दी रचनायें पृ० ५।

२—चाचरी, भूचरी, अगोचरी, खेचरी,
उन्मुनी पांच मुद्रा साधते सिद्ध राजा॥
—रामानन्द की हिन्दी रचनायें, पृ० ५।

३—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १३७।

४—वही, वही, पृ० ७।

५—वही, वही, पृ० ४३।

(१) मंत्रयोग:—'योग बीज' में वर्णित मंत्र योग की चर्चा हम इस प्रसंग के प्रारम्भ में कर चुके है। उसमें प्रतिपादित किया गया है कि प्राणवायु हकार से बाहर जाता है एवं सकार से भीतर प्रवेश करता है। हंस रूपी इस अजपा गायत्री मंत्र का सब जीव सर्वदा जप करते हैं। गुरु वाक्य जान लेने से सुषुम्ना मार्ग में यही मंत्र उल्टी दिशा में उच्चरित हो सोऽहं हो जाता है।[1] इस प्रकार योगी 'वह' (स:) के साथ 'मैं' (अहम्) का अभेद अनुभव करने लगता है। यही मंत्र योग है। तुलसी साहब ने मंत्रयोग का वर्णन इस शास्त्रीय पद्धति पर नहीं किया है किन्तु 'योगबीज' में प्रतिपादित मंत्रयोग के तत्वों का उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है:—

> वंकनाल पल पल नल खोली, गति अजपा नहिं बोली हो।
> ओहंग तत सोहंग मत जानी, पवन शब्द संध आनी हो।।[2]

यहाँ ओहंग (हंस मंत्र) का सोहंग (सो हं) में उच्चरित होना मंत्रयोग की अवस्था का ही सूचक है। इस प्रसंग के अतिरिक्त मंत्रयोग सम्बन्धी अन्य कोई उल्लेख संत तुलसी के काव्य में उपलब्ध नहीं है।

(२) लययोग:—'गोरक्षनाथ' ने 'अमरौघप्रबोध' में चित्त के सतत लय को लययोग कहा है।[3] 'योगबीज' में भी चित्त के विलय को लययोग का लक्षण माना गया है।[4] इसी ग्रन्थ में यह कहा गया है कि चित्त लय के समय पवन ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर हो जाता है और योगी को आत्मानन्द परम पद प्राप्त होता है।[5] 'हठयोग प्रदीपिका' में चित के लय की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि चित की प्रवृत्ति के दो कारण हैं, एक वासना या मन और दूसरा पवन। वासना (मन) और पवन में से एक के नष्ट होने पर दोनों नष्ट

१—योग बीज, श्लोक १४६।१४७।

२—घटरामायण, प्रथम भाग, पृ० ३१।

३—अमरौघप्रबोध, श्लोक, ४।

४—योग बीज, श्लोक, १५०।

५—योग बीज, श्लोक १५१।

हो जाते हैं ।[1] जिसमें मन का लय होता है, वहीं पवन का लय होता है। और जहाँ पवन का लय होता है वहीं मन का लय होता है ।[2] अतएव सुषुम्ना नाड़ी के भेदन को भली भाँति जानकर और प्राण या पवन को उसमें गत करके ब्रह्मरन्ध्र में निरुद्ध करे ।[3] पवन का ब्रह्मरन्ध्र में निरोध ही लय है तथा इस प्रकार पवन के लय के साथ मन का लय भी हो जाता है ।[4] तुलसी साहब ने लययोग के निम्नलिखित वर्णन में उपर्युक्त योग शास्त्र में वर्णित लययोग की सब मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया है:—

गगन वृच्छ के बीच में पंछी पवन चुगाय।
पंछी पवन चुगाय जाय सोइ भेद लखावै ।
वंकनाल के पार पवन के भवन समावै ।
इंगल पिंगल बिच राह करै जोगी सोई जानै ।
तत अकाश के बीच मूल मन से पहिचानै ।
मन सूरत और पवन को तुलसी दीन लखाय ।
गगन वृच्छ के बीच में पंछी पवन चुगाय ।[5]

अर्थात् गगन रूपी वृक्ष के मध्य (ब्रह्मरन्ध्र) में पवनरूपी प्राणवायुमन रूपी पक्षी को चुगा रही है । इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों की मध्यवर्ती सुषुम्ना नाड़ी

१—हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः ॥
—हठयोगप्रदीपिका, ४।२२ ।

२—मनो यत्र विलीयते पवनस्तत्र लीयते ॥
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्रविलीयते ॥
—हठयोगप्रदीपिका, ४।२३ ।

३—ज्ञात्वा सुषुम्नासद्भेदं कृत्वा वायुं च मध्यगम् ॥
स्थित्वा सदैव सुसंस्थाने ब्रह्मरंध्रे निरोधयेत् ॥
—हठयोगप्रदीपिका, ४।१६ ।

४—हठयोग प्रदीपिका, ४।१६ की टीका ।

—शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ३८ ।

नाथों की वाणी में सुरति का अत्यधिक महत्व है। प्रायः सुरति को स्मृति से व्युत्पन्न माना जाता है। किंतु नाथवाणी में 'सुरति' शब्द 'श्रुति' और स्मृति दोनों से व्युत्पन्न प्रतीत होता है। जहाँ 'सुरति' का अर्थ श्रुति है, वहाँ उस स्थूल वेद का तिरस्कार है जिसका कानों से श्रवण किया जाता है। सूक्ष्मतः उसका अर्थ केवल प्रातिभज्ञानमात्र होता है। परमतत्व केवल अनुभवगम्य है। 'स्मृति' से उत्पन्न सुरति में स्पष्टतः स्मरण का अर्थ है। बिना व्युत्पत्ति का विचार किये ही सरलतापूर्वक 'सघन रति या प्रवृत्ति' का अर्थ लिया जा सकता है। बताया गया है कि सुरति के उन्मुख रहने से ही तुरीयावस्था की उपलब्धि होती है। गोरक्षमच्छिन्द्रबोध में 'सुरति-निरति' को ही साधनात्मक जीवन का सब कुछ कहा गया है। उसी सुरति में जीवन की सारी जागतिक क्रियाओं—बैठना, चलना, बोलना, मिलना को निविष्ट कर देने

[१] गोरखबानी, पृ० १२९-१३१, ५५, पृ० १५०।

का उपदेश दिया गया है।[१] सुरति और निरति के अर्थ में विवाद है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बाहरी प्रवृत्ति की निवृत्ति को 'निरति' तथा अंतर्मुखी वृत्ति को 'सुरति' कहा है। निरति वस्तुतः अभावात्मक है तथा सुरति भावात्मक। आचार्य क्षितिमोहन सेन के प्रमाण पर उन्होंने बतलाया है कि सुरति का अर्थ प्रेम है तथा निरति का अर्थ है वैराग्य। 'जब बाह्यमुखी वृत्ति अन्तर्मुखी वृत्ति में लीन होती है तो जीव और ब्रह्म के अभेद की प्रतीति होती है।' किंतु डा० बड़थ्वाल को ये दोनों अर्थ स्वीकार नहीं हैं। उन्होंने सुरति को तीन शब्दों का परिवर्तित रूप माना है—स्मृति, सुरत (रति क्रीड़ा), सु-रति। उन्होंने बताया है कि संतों ने इन शब्दों का प्रयोग स्मृति के अर्थ में किया है। 'स्मरण अगम से आती सृजन की धारा को—जहाँ तक व्यक्ति का संबंध है—उलटे अगम में पलटना है।' 'वहाँ की सुरति उसे अंतर्मुख बनाती है।' 'इस स्मरण की चरम सीमा अजपाजाप है जिसमें साधक का एक क्षण भी परमात्मा के प्रेम के बिना नहीं बीतता। उसका सारा अस्तित्व परमात्मा की स्मृति से पूर्ण सुरतिमय हो जाता है। जिह्वा से रामनाम कहने से लेकर, अजपाजाप तक सब स्मरण ही है और सुरति की उल्टी धार है।' निरति को उन्होंने 'निरतिशय रति' कहा है। इसमें जीवात्मा का परमात्मा से संबंध स्मृतिरूप से नहीं तदात्म रूप से हो जाता है। इसी अवस्था को निरति कहते हैं। इस अवस्था में जीव काल से छूट कर स्वयम् परमात्मा हो जाता है तथा आध्यात्मिक आनंद में निमग्न होकर नाचने लगता है। यह सुरति की निरति दशा है। यहाँ 'निरति' शब्द 'नृत्य' का परिवर्तित रूप है और ब्रह्मानन्द का द्योतक है।[२] स्पष्ट ही इन दोनों मतों में अंतर है। प्रथम मत यह मानता है कि निरति वैराग्य है जबकि दूसरा मत इसे सुरति की पूर्ण विकसित ब्रह्मानन्द की द्योतक अवस्था मानता है तथा नृत्य शब्द का परिवर्तित रूप मानता है। प्रथम के अनुसार निरति से सुरति की उत्पत्ति तथा विकास में सहायता मिलती है। दूसरे के अनुसार निरति सुरति की पूर्ण परिपक्वावस्था है। डा० बड़थ्वाल ने कबीर का उदाहरण देकर निरति को 'निरधार' कहा है। गोरख के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में 'निरति' को 'निरालंब' कहा गया है।[३] यहाँ डा० बड़थ्वाल का अर्थ अधिक उचित प्रतीत होता है।

[१] वही, पृ० १९४, १९६।
[२] कबीर, ह० प्र० द्विवेदी, पृ० २४३, २४४; योगप्रवाह, बड़थ्वाल, पृ० २४, २९, ३१-३३।
[३] वही, पृ० ३२। गो० बा०, पृ० १९६। क० ग्रं०, परचा कौ अंग, पृ० १४।

गोरखबानी में शब्द गुरु को तथा सुरति चेला को बताया गया है। अर्थात् गुरु का मुख्य तत्व शब्द है तथा शिष्य या साधक का मुख्य तत्व सुरति या स्मृति। सुरति के आश्रयण से साधकत्व तथा शब्द के आश्रयण से सिद्धि की प्राप्ति होती है। सुरति तथा सिद्धि, माया और ऋद्धि इन दोनों का अस्तित्व निरति में नहीं रहता।[१] इस प्रकार 'सुरतिसाधन' नाथपंथियों को मान्य है। भक्ति के एक प्रकार के रूप में स्मरण की महत्ता है। वैष्णवमताब्जभास्कर, नारद भक्तिसूत्र, भक्तमाल, सुंदरदास, निरंजनी संत—सबमें यह 'सुरति साधन' प्रकृष्ट रूप में मिलता है। यह सुरति गोरखबानी में समाधि का सहायक है। कबीर में सुरति ढीकुली है, लौ रस्सी है तथा नित्य ही डोलने वाला मन कमलकूप के प्रेमरस का पान करता है। यह सुरति भी दो प्रकार की है। सांसारिक स्मृतियाँ जलरूप हैं। इनका निवारण करना चाहिए। दूसरी स्मृति प्रेम की सहायिका है। इसी स्मृति में मन लीन हो जाता है। आनन्द पद काल से मुक्त होता है। सुरति उसी सुखमयी अवस्था में लीन हो जाती है।[२] सुरति का एक प्रयोग कबीर में ऐसा है जिससे स्मृति से उसकी भिन्नता प्रकट होती है। वहाँ सुष्ठु प्रवृत्ति का अर्थ उचित प्रतीत होता है। सुरति और स्मृति दोनों ही साधन में सहायक हैं।[३] अतः सुमिरण और सुरति में भिन्नता है। हरिनामस्मरण जप है। किन्तु सुरति ईश्वर के प्रति सुष्ठु प्रवृत्ति है। जप किसी नाम का सुरति के साथ बार-बार उच्चारण है। किन्तु संतों को केवल मुख से उच्चारण का जप प्रिय नहीं है और न उसका बाह्य प्रदर्शन ही प्रिय है। किसी विशेष नाम में भक्त की सुरति से गुण, क्रिया, रूप आदि का आरोप हो जाता है। इस प्रकार जप, स्मरण का माध्यम है, यद्यपि वह भी सूक्ष्म है, मानसिक है। बाह्य जप में सारा जग बौराया हुआ है। इस प्रकार का किया हुआ जप माया है। अजपाजाप ही उत्तम है। यह जप तो साधन है। साध्य की निर्गुण स्थिति में जप, तप कुछ भी नहीं रहते। यह जप भी उसी में लीन हो जाता है।[४] जपमाला आदि तो बाह्याडंबर हैं। उनके धारण से कुछ भी नहीं होता। उनके धारण से गोपाल का मर्म नहीं जाना जाता।[५]

---

[१] गो० बा०, पृ० १८७, २००।

[२] क० ग्रं०, पृ० १८, ३२, ५७, ९०।

[३] वही, पृ० १८६।

[४] वही, पृ० ९९, १२६, १६२, १९५।

[५] वही, पृ० १३१।

पहले देखा गया है कि सुरति के रूप में सुष्ठु प्रवृत्ति गोरखबानी में है। इसी प्रकार जप के संबंध में भी विचार मिलते हैं। संतों की तरह ही यहाँ भी अजपाजाप ही ग्राह्य है। ऐसे जपमाला का जप करना चाहिए जिससे जपने का फल मिल सके। यह जप अगम है। सभी संतों को जपमाला का प्रयोग प्रिय है। प्रत्येक साँस, पवन पुरुष में जपमाला का प्रयोग होना चाहिए। जप ऐसा होना चाहिए जिससे 'सोहं सोहं' का अजपा गान होने लगे। पशुवृत्ति के लोगों से यह जप संभव नहीं और न उन्हें उससे मुक्ति ही मिलती है। इस क्रिया में दृढ़ आसन से अहर्निश ब्रह्मज्ञान का स्मरण करना चाहिए। इसमें मनोयोग आवश्यक है।[1] इस प्रकार का अजपाजाप कबीर में भी मिलता है, जिसके विषय में पहले कहा जा चुका है। अभी तक जो कुछ कहा गया है, उससे स्पष्ट है कि मानसिक लगाव या प्रवृत्ति या सुष्ठु प्रवृत्ति दोनों को स्वीकार है। इस प्रवृत्ति की आवश्यकता सुमिरण में पड़ती है। गोरख में ब्रह्मज्ञान का स्मरण किया गया है जिसका वाचक शब्द 'सोहं' है। आगे योग के प्रसंग में इस 'सोहं' की विस्तार से व्याख्या की गई है। कबीर में यह प्रवृत्ति भगवान् के प्रति है, उनके ज्योतिरूप, अलौकिक गुण, क्रिया आदि के प्रति है। इन सबका समारोप उपास्य में ही, सघन प्रवृत्ति के कारण हो जाता है। अतः प्रत्येक साँस में नाम के जप के साथ रूप, गुण, क्रिया आदि का स्मरण होने लगता है। इस प्रकार सुरति, स्मरण, जप इन सबकी एक सूत्रबद्ध प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है। 'सोहं' का जप कबीर को भी मान्य है। वह भावात्मक अद्वैतानुभूति के रूप में है। अंतर यह है कि गोरख का सुमिरण, सुरति, जप योगपरक हैं तथा योगज समाधि के उपकारक हैं जबकि कबीर में ये सभी भक्ति के पोषक हैं। कबीर के अजपाजाप की प्रक्रिया के संबंध में आगे विचार किया गया है।

कबीर और गोरख दोनों ही 'परचा' को साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। कबीर में 'परचा' साक्षात् की अवस्था है। इस अवस्था में अनन्त सूर्य-श्रेणियों का दिव्य दर्शन होता है। यह तेज शोभापूर्ण होता है। यह उदय या साक्षात्कार 'अंतरकँवल' में ही होता है। इसी अवस्था में हिम के जल में विलीन होने की तरह एकांत विलीनता का अनुभव होता है। यह नमक और जल की विलीनता है। इस परचा या साक्षात् की अवस्था में, जो विलीनता की अनुभूति की अवस्था है, वही उन्मनी की अवस्था है। यह मन की

[1] गो० बा०, पृ० ९५, १०१, १२४, १७७।

प्रणव को ही साध्य माना गया है। गोरख इस ओंकार या प्रणव को ही मूल मानते हैं (अर्थात् वायु-मंत्र-साधन का मूल ओंकार है)। इस ओंकार मूल मंत्र की धारा सकल संसार में व्याप्त है। वही विभिन्न महत्वपूर्ण (नाभि, हृदय आदि) चक्रों में (विभिन्न वर्णों के रूप में) स्थित है। बिना इसकी उपलब्धि के गोरख सिद्धि की उपलब्धि संभव नहीं मानते। उसे वे निराकार मानते हैं। कहते हैं कि यह न सूक्ष्म है न स्थूल। यह स्वयं ज्योतिस्वरूप है।[1] प्रणव, ओंकार, सूक्ष्मवेद या स्वसंवेद्य आदि शब्दों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि गोरखवानी में प्रणवसाधन का कोई विस्तृत रूप विवेचित नहीं मिलता। केवल दो विचार मिलते हैं—(१) नाथ लोग केवल सूक्ष्मवेद प्रणव को स्वीकार करते हैं तथा (२) यह तत्व परमतत्व की भाँति संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। इसके अतिरिक्त कोई स्पष्ट विस्तृत परिचय नाथपंथी रचनाओं में नहीं मिलता।

अजपाजाप का शास्त्रीय रूप पहले उपस्थित कर चुके हैं। अजपाजाप का श्वास-प्रश्वास ही आधार है। प्राणायाम प्राण का साधन है। हिन्दी रचनाओं के प्राणायाम के संबंध में हम प्राणायाम विवेचन के प्रारम्भ में ही कह चुके हैं। संस्कृत रचनाओं में नियम के अन्तर्गत ही 'जप' का विधान मिलता है। किंतु साधनक्रम में अजपाजाप का स्पष्टीकरण प्राणायाम के प्रसंग में ही संभव है। फिर भी नाथपंथियों को जप का कौन सा रूप ग्राह्य है, इसका परिचय देते हुए प्रणवसाधन और अजपाजप दोनों का ही विवेचन हिन्दी रचनाओं में उपलब्ध 'नियम के अन्तर्गत ही कर दिया गया है।

प्राणायाम के इस विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाथपंथी हिन्दी रचनाओं में संस्कृत रचनाओं की अपेक्षा प्राणायाम को अधिक महत्ता दी गई है। पूर्व वर्णित क्रम के अनुसार प्राणायाम के बाद क्रमशः प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि के साधनांग आते हैं।

१६—प्रत्याहार

कहा गया है कि षडंग योग का तृतीय अंग प्रत्याहार है जिसका प्रमुख लक्षण है—मानस का सभी विकारों से प्रत्याहरण। वस्तुतः प्रत्याहार शुद्ध रूप से मानस साधन है। पहले बताये हुए विभाजन के अनुसार प्रत्याहार मानस साधन होने के कारण आध्यात्मिक साधन है। आधिभौतिक (प्राण) और

---

[1] गो० बा०, पृ० ९८ छं० १७; १२९.१; १९८.९१।

२०—प्राणायाम, प्रणवसाधन, अजपाजाप, नादानुसंधान और सुरति-शब्द-योग

प्राणायाम का प्रणवसाधन, नादानुसंधान आदि से भी संबंध है। संतों के इस प्रकार के साधन का विचार करते हुए डा० बड़थ्वाल ने जप, अजपाजाप, और नादसाधन को सुमिरन का ही प्रकारभेद माना है। उनके अनुसार सुमिरन तीन प्रकार का होता है—'जाप' (बाह्य क्रिया), 'अजपाजाप' (बाहरी जीवन का परित्याग तथा आभ्यंतरिक जीवन में प्रवेश), अनाहत (आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश)। सुमिरन एक प्रकार की प्रेमसाधना है, इस संबंध में हम भक्ति के प्रसंग में भी लिख चुके हैं। उन्होंने बतलाया है कि 'नाद-सुमिरन' जिसे हम 'मन्त्रयोग' भी कह सकते हैं, 'सुरति-शब्द-योग' का ही एक दूसरा रूप है। इस प्रकार वह सारे योगों का भी योग है। भक्तियोग, राजयोग, मंत्रयोग कर्मयोग, लययोग, हठयोग, एवं ज्ञानयोग भी उसी के विविध रूपान्तर कहे जा सकते हैं। अपनी प्रारम्भिक दशा में यह मन्त्रयोग है, जो राजयोग द्वारा

---

[१] क० ग्रं०, पृ० १०९ पद ६९, पृ० १५८ पद २०६, पृ० १६२ पद २१७।

[२] सुन्दरसार, पृ० २८–२९, छं० ६४ तथा टिप्पणियाँ।

[3] क० ग्रं०, पृ० ९८ पद ३१।

अनुप्राणित रहा करता है और अपनी अंतिम दशा में यही ज्ञानयोग है जिसमें उस निर्विकार के वास्तविक स्वरूप की अनुभूति प्राप्त होती है।···इन सबकी सिद्धि एक प्रकार की प्रेमसाधना द्वारा होती है।[१] हम पहले सुन्दरदास के अनुसार बतला चुके हैं कि संतों के अनुसार भी प्राणायाम सबीज और समन्त्र होना चाहिए। तांत्रिक योग के प्रकरण में हम इसका सविस्तर वर्णन कर चुके हैं। नाथपंथियों ने तथा अन्य संप्रदायों ने भी ओंकार, प्रणव को इस दृष्टि से अत्यधिक महत्ता दी है। ओंकारसाधन भी एक प्रकार से अद्वैत साधन है। अ—उ—म का विवेचन करते समय हम इसे स्पष्ट कर चुके हैं। जैसा हम कह चुके हैं कबीर ने परमतत्व के अनेक नामों का प्रयोग करते हुए भी 'राम' नाम को विशेष महत्व दिया है तथा उसके प्रति विशेष अनुराग सूचित किया है। 'ररां' और ममां' का भी हम विवेचन कर चुके हैं। सुमिरन के लिये वे बार-बार इसी नाम का उपदेश देते हैं। जैसे यही उनका मन्त्र है। कबीरदास ने सुमिरन के उपर्युक्त तीन प्रकारों की ओर संकेत कर बताया है—'जाप मर जाता है, अजपा जाप भी नष्ट हो जाता है और अनाहत भी नहीं रह जाता, जब सुरति शब्द से लीन हो जाती है, तब उसका जन्म व मरण के चक्कर का भय छूट जाता है।[२] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः एक मूल नाद अथवा शब्द ही साधन की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न रूपों में साक्षात्कृत होता है। नाथों के योग के विवेचन में इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार नामस्मरण, अजपाजाप, नादानुसंधान और प्रणवसाधन अथवा ओंकारसाधन, सभी मंत्रयोग के अन्तर्गत गृहीत हैं और एक ही साधन की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। संतों के सुरति-शब्द-योग का परिचय देते हुए डा० बड़थ्वाल ने बताया है कि वह योग जिसके द्वारा सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सीमाएँ शब्द में फिर लीन हो जाती हैं, शब्दयोग अथवा सुरति-शब्द-योग कहलाता है और वह शब्द सर्वप्रथम भगवन्नाम के रूप में मुँह से निकलता है और अन्त में स्वयं शब्द रूप ब्रह्म हो जाता है।[3] इन सभी साधनाओं का प्राणायाम से संबंध है। प्राणायाम के विषय में हम पहले ही कह चुके हैं कि यह व्यष्टिप्राण और समष्टिप्राण का संयोगसाधन है। पिण्डब्रह्माण्डवाद इसका भी मूलाधार है। संतों की साधना में गृहीत शब्द-

---

[१] हिं० का० नि० सं०, पृ० २२५-२२६, २२८।

[२] वही, पृ० २१७, २१८, २२०, २२५।

[3] वही, पृ० २२९।

योग में भी इसी प्रक्रिया एवं सिद्धान्त को ग्रहण किया है। अतः इसमें भी षट्चक्र आदि की पूरी साधना गृहीत है।[१] इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'निर्गुणियों के लिये प्राणायाम एक सहायक साधन है, जो नामस्मरण के पूरक के रूप में किया जाता है और उन्हें प्रत्येक निश्वास व प्रश्वास के साथ इसे करते समय, ईश्वर का नामस्मरण करना पड़ता है।[२] पं० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार संतों ने इस साधन का उपयोग मानसनियमन के लिये किया है। उनके अनुसार भी 'इस योग की साधना में अपनी 'सुरति' को अपने भीतर निरन्तर उठते रहनेवाले 'अनाहत नाद' के साथ सद्गुरु की बतलायी युक्ति द्वारा जोड़ना पड़ता है। वह अनाहत नाद ही वस्तुतः भगवन्नाम है और अपन का ही एक सूक्ष्म रूप वह सुरति भी है जिसे उसके साथ जोड़ना आवश्यक होता है।'[३] इस प्रकार के विवेचन से नाथों के उपर्युक्त साधनों से संतों के इस साधन का वैलक्षण्य भी स्पष्ट हो जाता है। संतों ने सुमिरन, प्रेम, भक्ति के लिये प्राणायाम तथा तत्संबंधी अन्य साधनों का विलक्षण समन्वय किया था।

बतलाया गया है कि अष्टकुंभक का साधन हो जाने पर और मुद्राओं का भी अभ्यास हो जाने पर दस प्रकार के नाद क्रमशः सुनाई देते हैं। इसी को अनाहत नाद कहते हैं, जो बिना कारण, प्रमाण वा उद्योग के स्वयम् भासता है। सुंदरदास ने ये दस प्रकार के नाद बताये हैं—भ्रमरगुंजार, शंखध्वनि, मृदंगवाद्य, ताल शब्द, घंटानाद, वीणाध्वनि, भेरिनाद, दुंदुभिनाद, समुद्र-गर्जना, मेघघोष।[४] नाथों ने भी मृदंग, घड़ी, भ्रमर, मर्द्दल, शंख आदि के विभिन्न नादों अथवा शब्दों का वर्णन किया है। कबीरदास ने इन विभिन्न शब्दों को सुना है। शून्यमंडल में मर्द्दल के वादन को सुनकर उनका मन नाच उठता है। वे कमल के प्रकाशित होने पर, निर्मल सूर्य के उदित होने पर अज्ञान-निशान्धकार के मिट जाने पर अनाहद तूर्य का वादन सुनते हैं। इसी प्रकार उन्होंने गगन में 'दमांमा' (नगाड़ा), घंटा आदि के शब्दों का भी वर्णन किया है।[५] कबीर ने इन नादों में अनवरत रूप से मन को लगाये रखने के लिये

---

[१] वही, पृ० २२९-२३०।
[२] वही, पृ० २४३।
[३] कबीर साहित्य की परख, पृ० १०३।
[४] सुंदरसार, पृ० २८-२९।
[५] क० ग्रं०, १६.४७, ६८.६, ९०.६, १६.४३, ११०.७२।

उत्पत्ति मानते हैं। वही आदि है, मूल है।[१] कबीर के ओंकार सम्बन्धी विचारों पर नाथों से तुलना करते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'स्थूल वेद यज्ञ-याग का विधान करते हैं, योगियों को इससे कोई वास्ता नहीं। उनका मतलब समस्त वेदों के मूलभूत ओंकार मात्र से है। क्योंकि ओंकार ही वेद का सार है। कबीरपंथ में भी स्थूल वेद और सूक्ष्म वेद की कल्पना की गई है।......'ज्ञानचौंतीसा' के आदि में कबीरदास ने मानों इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि जो ओंकार या प्रणव को जानता है, वह उस परा-शक्ति को जानता है जो लिखकर मिटा सकती है अर्थात् जो सब कुछ करने में समर्थ है। और इसके बाद ही शायद ओंकार पर बहुत अधिक जोर देनेवाले इन योगियों को लक्ष्य करके कहा है कि ओंकार की बात तो सभी किया करते हैं, पर इसे समझ सकनेवाले बिरले ही हैं।[२] संतों के साहित्य में, विशेषकर कबीर के साहित्य में प्रणवसाधन का विस्तृत निरूपण उपलब्ध नहीं। अजपा-जाप का वर्णन पहले ही हो चुका है। 'सोऽहं' वस्तुतः हंसपवन का ही सिद्ध रूप है। 'हंस' का 'सोऽहं' में परिवर्तन अथवा विपरीतकरण भी साधन है और इसके साथ भी साधक की भावसाधना संबंधित है। अद्वैतानुभूति के लिये इसकी व्याख्या में कहा जाता है कि हं और स दो प्रकार के पवनों की ओर संकेत करते हैं। हंस पवन का 'लौ' में क्रीड़ा करना 'सोऽहं' में परिवर्तन है जिसमें प्रपंच, प्रसारित हाट का संहार होता है, मेल होता है।[३] श्वास की दोनों क्रियाओं में 'हं-स' की ध्वनि होती है किन्तु साधन करने पर इसी ध्वनि का परिवर्तन अथवा दिव्यान्तर होता है। 'हंस' सांसारिक प्रक्रिया की ओर संकेत करता है और 'सोऽहं' पारमार्थिक प्रक्रिया की ओर। पलटू ने 'सोहंगम' शब्द की ध्वनि का उदय आठवें महल में माना है। यह आठवाँ महल सात चक्रों से भी ऊपर परमपद का स्थान प्रतीत होता है। अन्यत्र उन्होंनें 'सोऽहं' वाणी का उदय भँवर गुफा में माना है।[४] कबीर ने इसी 'सोऽहं' का जप करने के लिये कहा है। सुंदरदास (छोटे) ने प्राणायाम के साथ 'सोऽहं'साधना का उल्लेख गोरख के मत के अनुसार किया है।[५]

---

[१] क० ग्रं०, पृ० १२६-१२७ पद १२१; पृ० २४४।

[२] कबीर, पृ० ३४; बीजक, पृ० २४६, टीका भी द्रष्टव्य।

[३] क० ग्रं०, पृ० १८८-१८९ पद २९६।

[४] संतकाव्य, पृ० ५२७,५२९।

[५] संत कबीर, पृ० २२६-२२७, पद १९ तथा उसकी टीका; सुंदर ग्रंथा-वली, भाग १, पृ० ४७-४८।

हठ प्रदीपिका में प्रयुक्त यही सहजानन्द कबीर साहब तथा अन्य सन्तों के यहाँ पहुँचते-पहुँचते ज्ञान के साथ भक्ति साधना से जुड़ गया है । सन्तों ने इसे विशेष रहनी भी कहा है ।

सुरति निरति -

वस्तुत: सन्तों के यहाँ सुरति शब्द चित्त प्रवाह के लिये प्रयुक्त हुआ है । कई जगह कबीर तथा अन्य सन्तों ने श्रुति और वेद के लिये भी इसका प्रयोग किया है । पर सामान्यतया चित्त की स्थिरता के लिये प्रयुक्त है । गोरख नाथ ने इसे सोचित अथवा सूचित रूप में भी व्यवहृत किया है । अत. चित्त प्रवाह को सुचित कर देना ही सुरति हुआ । कबीर साहब कहते हैं ---

सुरति समाँणी निरति मैं निरति रही निरधार ।
सुरति निरति पर चान्भया, तब खूले स्वँभू द्वार ।।[१]

और बुला साहब कहते हैं --

सुरति निरति ले जाइब हो, पाइब गुर रीति ।
बहुरि न यह जग आइब हो, गाइब निर्गुन गीत ।।[२]

और निरति शब्द का जहाँ तक प्रश्न है समाधि की, सहज समाधि की अथवा शून्यावस्था की द्योतक है । इसीलिये चित्त की दशा को समाधि की स्थिति में लगा देने को सुरति निरति के रूप में व्यक्त करने का सन्तों का अभ्यास है ।

१- कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ- १४ ।

२- बुला शब्द सार, पृष्ठ- २० ।

तत्व बिचारै मन को मारै घाइ चढ़ै सो अक्कर है ।
रसना बिना वेद धुनि लावै, सोइ लाल बुभक्कर है ।।
उलटि के आपा आप में देखै, काम तजे सो सक्कर है ।
लोक वेद की राह को छोड़े, जुदा चले से कक्कर है ।।[3]

१- डा० भगवती प्रसाद शुक्ल, बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ-३४५ (परिशिष्ट से) ।

२- डा० भगवती प्रसाद शुक्ल, बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ- ३४७ ।

३- वही, पृष्ठ- ३४६ ।

जिनके नहिं रूप न रेखा, उन्ह से प्रीति लगाया है ।
जन्म बिना जन्मी जेंह बापे, सोंइ शब्द सुनाया है ।।
गगन महल की खिरकी छोड़ा, दसयें द्वार खोलाया है ।
कहैं परसाद सुनो भाई पलटू, यह घर घाट लखाया है ।।[1]

उपर्युक्त पद को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि परसाद साहब पलटू साहब के आत्मीय मित्र की तरह थे । और जहाँ तक उनकी साहित्य साधना का प्रश्न है, वे पंथ के अन्य सन्तों के प्रतिपाद्य से भिन्न जाकर उनका अपना कोई अलग आधार नहीं है ।

१- डा० भगवती प्रसाद शुक्ल- बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ- ३४८ ।

-0-0-0-0-0-
-0-0-0-0-
-0-0-0-
-0-0-
-0-

यारी साहेब की चौपाई

घट में पान अपान दुई भाई। अर्ध उर्ध आवैं अक जाई।।
लेके पान अपान मिलावै। वाही पवन गगन गरजावै।।
गरजै गगन औ दामिन दमकै। मुक्ताहल रिमझिम तहँ वर्षे।।
ता मुक्ता महँ सुरति पिरोवै। सुरति शब्द मिल मानिक होवै।।
मानिकजोति उहुत उँजियारा। कहै 'यारि' सोई सिरजन हारा।।
साहेब सिरजनहार गोसाई। जामे हम सोई हम माही।।
जैसे कुम्भ नीर बिच भरिया। बाहर भीतर खालिक दरिया।।
उठै तरंग तहँ मानिक मोती। कोटिन चन्द सूर कय जोती।।
एक कीर्ण कै सकल पसारा। अगम पुरुष सबई ते न्यारा।।
उलटि कीर्ण जब सूर समानी। तब आपन गति आपुहिं जानी।।
कहै यारि कोउ और न दूजा। आपुहिं ठाकुर आपुहिं पूजा।।
पूजा सत्य पुर्ष की कीजे। आपा मेटि चरम चित दीजे।।
उन मुनि रहनि सकल का त्यागी। नवधा प्रीति बिरह बैरागी।।
बिनु बैराग भेद नहिं पावै। केतो पढ़ि-पढ़ि रचि रचि गावै।।
जो गावै वाको अर्थ बिचारै। आपु तरै औरहुँ को तारै।।
तारनहार समर्थ है, और न दूजा कोय।
कहै 'यारी' सतुगुरु मिलै, अचल अमर तब होय।।930।।

चौपाई

सतुगुरु सत्य पुरुष है अकेला। पिण्ड ब्रह्माण्ड ते बाहर मेला।।
दूरि ते दूरि ऊँच ते ऊँचा। बाट न घाट गली नहिं कूचा।।

आदि अन्त मध्य नहि दूरा। अगम अपार अति गहिर गँभीरा।।
कच्छ दृष्ट तहँ ध्यान लगावै। पल में कीट भृंग ह्व जावै।।
जस चकोर चन्दन कै पासा। दीखै धरती बसै अकासा।।
कहै 'यारी' ऐसे मन लावै। तब चात्रिक स्वाती रस पावै।।
निर्मल सन्त कन्त हम पाया। कोटि सूर्य जेहि, निर्मल काया।।
प्रेम बिमल अमृत रस भरिया। अनभव चँवर रैन दिन ढरिया।।
आनन्द मंगल सोहं गावै। सुख सागर प्रभु कंठ लगावै।।
स्वेत पुरुष धनि अति उँजियारी। कोटि भानु शशि छबि पर वारी।।
तेज पुँज निरगुन उँजियारा। कहै 'केशव' सोई कन्त हमारा।।
है हम मैं हम हूँ ते न्यारा। हम बिनु हमरे सकल पसारा।।
हमहीं स्वर्ग नर्क कैलासा। हमहीं ठाकुर हमहीं दासा।।
हमहीं पंडित बेद पुराना। हमहीं काज़ी कुतुब को राना।।
हमहीं राम रहीम कहाई। गुप्त प्रगट है हमहीं आई।।
हमहीं ब्रह्म बिश्नु महेशा। हमहीं बलि बावन धरि भेषा।।

क़ाफ़ क़िनायत हृदयें मानहु। काम अरू क्रोध झूठ कै जानहु।।
गाफ़ गुरु का सिर पर हाथ। लाम लाज तुम छाड़हु साथ।।37।।

मीम सकून जक्त को तारै। नून नाम सब दुख निवारै।।
वाव वही भजु स्वाँसा जाई। हे हरिबंस राखु लव लाई।।38।।

लाम अलिफ़ लाम मन धरहू। हम जाना हनि सुमिरन करहू।
ये यारीं हरि हिय में राखहुं बड़ी पाप सो सत्यै भारवहु।।39।।

रमैनी

घट में पान अपानहु भाई। अर्ध उर्ध आवै अरु जाई।
लेकै पान अपान मेरावै। वाही पवन गगन गरजावै।।
गरजै गगन ओ दामिन दमकै। औ मुक्ता हल रिम झिम वर्षै।।
वा मुक्ता मँह सुरति पिरोवै। सुरति शब्द मिलि मानिक होवै।।
मानिक जोति बहुत उँजियारा। कहैं यारि सोइ सिर्जनहारा।।
साहेब सिर्जनहार गोसाई। जामें हम सोई हम माहीं।।
जैसे कुआँ नीर खिचै भरिया। बाहर भीतर ख़ालिक़ दरिया।।

उठत तरंग तहँ मानिक मोती। कोटिन सूर्य चन्द की जोती।।
एक कृष्ण का सकल पसारा। अगम पुरुष सबहिन सों न्यारा।।
उलटि कृष्ण जब सूर समानी। तब आपनि गति आपहि जानी।।
कह 'यारी' कोई न दूजा। आपुहिं ठाकुर आपुहिं पूजा।।
पूजा सत्य पुरुष का कीजै। आपा मेटि चरन चित दीजै।।
उन मुनि रहनि सकल को त्यागी। नवधा प्रीति बिरह बैरागी।।
बिनु बैराग भेद नहिं पावै। वो तो पाढ़े पढ़ि रचि-रचि ध्यावै।।
जो गावै ताको अर्थ विचारै। आपु तरै औरन को तारै।।

साखी

तारनिहार समर्थ हैं, और न दूजा कोय।
कहैं 'यारि' सत्गुरु मिलैं, अचल अमर तब होय।।

चौपाई

सत्गुर सत्य पुरुष हैं अकेला। पिण्ड ब्रह्मांड के बाहर मेला।।
दूरि ते दूरि ऊँच ते ऊँचा। बाट न घाट लगी नहि कूँचा।।
आदि न अन्त मध्य नहिं तीरा। अगम अपार अतिगहिर गँभीरा।।
कच्छु दृष्टि तहँ ध्यान लगावै। पल महँ भृंग कीट होय जावै।।

सीन सुषमना नौबति बाजै। अनहद घोर गगन मर्मे गाजै।।
धर बर सावै अम्बर भरै। ताकी सेवा गोरख करै।।12।।

शीन शोर का नाहिन काम। इँगला पिंगला बोलहिं राम।।
तारी लागी दसयें द्वार। तत्त्व निरंजन ओ ॐकार।।13।।

साद सब्र सिदूक़ जौ होई। अजरा जैर सो अमरा होई।।
नौ नाड़ी का जानै भेव। तौ ताको बन्दै सुकदेव।।14।।

ज़ाद ज़रूरत सुषमन जोई। चाँद सूर्य बिच भाठी होई।।
पीवै अमृत मन परचंड। खेलै एक एक ब्रह्माण्ड।।15।।

तो तौं औरै खेलै ख़्याल। नाथै नाग पइठ पाताल।।
बामी उलटि सर्प को खाय। मंत्री दीसैं सहज समाय।।16।।

जो जालिम कछु पूछै गम। बंक नाल को राखै सम ।।
फूटैं चक्र मिटै सब छूत। चौमुख दीसै जगमग जोत।।17।।

ऐन एनायत हरि की बढ़ै। चन्दा उतरे सूरज चढ़ै।।
बिकसै कमल भँवर मँह आई। मँहकै बास गगन को जाई।।18।।

ग़ैन गुसा तजिधारै ध्यान। पश्चिम दिशा उगावै भान।।
भँवर गुफा मँह रहै समाई। होइ अमर फिर काल न खाई।।19।।

फ़े फ़र्मान कुमति को पेलु। आपा मेटि अलख होई खेलु।।
दुर्मति मरन एक करि जान। सतुगुर बोलहि पद निर्बान।।20।।

काफ करार सही है मेरा। सतुगुर साहेब बन्दा तेरा।।
दे उपदेश मिलावहिं पाम। हौं बलिहार गुरु के नाम।।21।।

ते तत्त्व सोधि कै लीजै। मथन करत सोच नहिं कीजैं।।
सुरति निरति जौं राखै कोई। तौ लव लगे परांगति होई।।3।।

से साबित दिल खोजे देह। बोलनि हार जक्ति गुरु येह।।
घट-घट बोलैं रमिता राम। नाद बरन नारायण नाम।।4।।

जीम युक्ति बिनु योग न होई। वा तन प्रेम न उपजे कोई।।
नाद बरन जो लाव ध्यान। सो योगी युग-युग परमान।।5।।

हे हद में हद क्यों करि रेलु। बेहद में मुक्ता होय खेलु।।
सुन्य सहज में रहै समाय। ताको आवा गवन नसाय।।6।।

ख़े ख़ाविन्द को जो कोई ध्याव। अर्ध उर्ध बिच ताड़ी लाव।।
साँस उसाँसे सुमिरन मंडै। कर्म कटे चौरासी खंडै।।7।।

दाल दसो दिश खोजे ताही। मूल द्वार बाधैं चित जाही।।
ब्रह्म अग्नि तब ही उपजाई। तीन लोक सुमिरो रे भाई।।8।।

जाल जौक पाँचों का भानु। बाहर जाति भीतर आनु।।
मेलि दसो दिश यक मन करैं। सो साधू कहु कैसे मरै।।9।।

रे राउत होय पूरे आसन। बैठे प्रेम तत्त्व सिंगासन।।
त्रिकुटी लोक मेलि कर जोरै। सहजहिं में लंका गढ़ तोरै।।10।।

जे जारै सो सिद्ध चलावै। गंग यमुन सरोसती मिलावै।।
त्रिवेनी मन में स्नान। हरि जल भीजहिं सन्त सुजान।।11।।

यारी साहेब

योगी योग युक्ति कमाव।
सुषमना पर बैठि आसन सहज ध्यान लगाव।। टेक
दृष्ट सम करि सुन्य सोधो आपा मेटि अड़ाव।
प्रगट जोति अकार अनुभव शब्द सोहं गाव।।4।।

छोड़ि मठ को चलहु योगी, बिना पर उड़ि जाव।
"यारी" कहैं यह मति बिहंगम, अगम चढ़ि फल खाव।।5।।

मन मेरा सदा खेलै नटबाज़ी , चरण कमल चित्त राजी।।टेक।।
बिनु करताल पखाउज बाजै, अगम पंथ चढ़ि गाजी।
रूप बिहून सोस बिनु गाव, बिनु चरनन गति साजी।।
वास सुमेरू सुरति कै डोरी, चित्त चेतन्य सँग चेला।
पाँच पचीस तमाशा देखहि, उलटि गगन चढ़ि खेला।।
"यारी" नट ऐसी विधि खेलै, अनहद ढोल बजावै।
अनत कला अवि गति अनमूरति, बात कथन विधि आवै।।6।।

इसका उत्तर देते हैं गुलाल साहब, कहते हैं ---

मीरा प्रेम नाम रस पागो, समझो मुक्ति परम सब त्यागो ।
पुरुष प्रमात्म आदि है सोई, दुविधा भाव अकारन कोई ।
इच्छा अविगति बोलत भयऊ, शब्द पवन ते बने दोण भयऊ ।
शब्द सो ब्रह्म पवन मन माया, तामें तिरगुन खेल बनाया ।
तिरगुन शब्द ब्रह्म अरु पवना, नाम अकार रचे पुर तौना ।
चित चैतन्य सकल घटमाहीं, ताको आदि अन्त कछु नाहीं ।
जब घट रचना सृष्टि बनाई, पान अपान तबै बिलगाई ।
जीव ब्रह्म बिच मर्म समाई, ताते जीवन अपान कहाई ।
कर्म भर्म के बस जिव परेऊ, माया मोह ग्रसित तन घरेऊ ।
पान सो आतम राम कहावै, जीवन अपान मन माया लावै ।
चेतन ब्रह्म आप सो पाना, जाको धरे योगेश्वर ध्याना ।
सोहं पान एक करि मानो, यामहं मति दूजो नहिं जानो ।
अपने कर्म बस जीव कहावे, माया बस परि भोग भोगावै ।
मुदा जबहिं सत्संगति करिये, सतगुर शब्द हिये महं धरिये ।
मूल अपान जब उलटि चलावै, अर्ध उर्ध के सुधि तब पावै ।
बंकनाल चढि मारग सोधै, पान अपान मिलन तब बोधै ।
मेरुदण्ड होय पच्छिम ध्यावै, पैठि सुषमना रूप निहारै ।
मीरा जानहुं भेद विचारा, सोहं आतम है रूप हमारा ।।

१- महात्माओं की वाणी, पृष्ठ- १३० ।

पान अपान को मिल जहां, जीव ब्रह्म को भाव ।
मीरा अन्तर कुछ नहीं, जापै सोहंग पाव ।।
जोति है ज्वाला पीय की, फैलि रही सब अंग ।
चेतन अंश प्रकाश है, मन पवना के संग ।।
परम जोति है आत्मा, शुद्ध रूप उजि जाव ।
सो पर कासिक जन भयो, दिव्य दृष्टि दर्साव ।।
मीरा यह मति कठिन है, संतन सहज विचार ।[१]
दूरहिं ते बडि दूर सों, देखहु निकट दिदार ।।

21:16

रव डोला रव डोला रव क्यों करिया नीके बोला।
पाँच पचीस तीन खुटिया में ता विच करत कलोला।।
क्या जोगी क्या मौनी तपिया डोला बिच-बिच सबई भोला।
जन 'बूला' जी के इहै मलोला बिनु दर्शन हिय रहत अलोला।।

राम पढ़न को या तन पावै। बाँचत अंक-अंक नहिं आवै।।
आदि अन्त मध्य अंक बहूता। कोई पढ़ा कोई रहत है सूता।।
जोई पढ़ा सोई नर जीता। बहुरि जन्म नहिं लेता।।
यह अक्षर अब धरो सम्हारी। ॐकार ब्रह्म औतारी।।
'बूला' बोलै हृदय बिचारी। चारि वेद को अंक उघारी।।

बूझहु पंडित अचरज एक। स्वेत बरण जहँ सदा अलेख।।
साधि पवन षट चक्र छोड़ाओ। त्रिवेनी के घाटे आओ।।
उन मुनि मुद्रा लगी समाधी। रबि शशि पौनहिं राखो बाँधी।।
चाचरि मुद्रा प्रीति लगावै। भोचरि मुद्रा प्रीति बढ़ाई।।
गोरी मुद्रा अनभव गाओ। खेचरि मुद्रा दरस दिखाओ।।
जौं तू पंडित करु पंडिताई। चरन रेनु हृदय लै आई।
चरन रेनु का करहुँ जनेऊ। तौ तू पंडित पावहु भेऊ।।
जो यह अचरज देइ बुझाय। सोई सत्‌गुरु अगम कहाय।।
अगम जोति का धारै ध्यान। 'बूला' बोलहि शब्द निदान।।19।।

सोरठा

प्रभु निरधर अघार उज्ज्वल बिन्दु बिराजई।
अद्‌भुत रूप स्वरूप मो पै बर्नी न जवाई।।20।।

बाँधि पवनहि साधि गगनहिं गर्जि-गर्जि सुनावई।
तहँ हन्स मुनि जन चुँगत मनि रस परसि-परसि अघावई।।
बिना कर मुख बेनु बाजै, बिना श्रवनन गुँजई।
बिना नयनन दर्श देखो, अविगति गतिहिं जनावई।।
चाको जाति पाँति ने नेम धर्महुँ, भर्म सकल गवावई।

रामजी हौं तब चरण अधारी, तुम काट्हु कर्म केवारी ।।टेक।।
माँगत कछू न चाहत हौं कछु चाहौं दया तुम्हारी।
तुम प्रतिपाल दोऊ कुल तारन केतकि लाज हमारी।।
जौं प्रभु राज सिंगासन देवै मेरे काम न कोई।
हमरे राम नाम सों मिलना होनी होय सो होई।।
चरण प्रताप रहों जग माडे छाड़ों तन मन दोऊ।
सहजहिं दर्शन दिया नरायन अविगति लखै न कोऊ।।
भई है प्रति मेरे मन महियाँ बहियाँ गुर गम होऊ।
जन 'बूला' तहँ चले मगन होय रैन दिवस नहिं दोऊ।।16।।

गुरु बोलै अधर धरेइँया।।
गुरु मेरा हो चेरा। सतूगुरु अधर बसेरा।।
गुरु जगमग योति जगावै। तासे जन 'बूला' तहँ सच पावैं।।
जोगी बोलैं गगन गुफैयाँ ।। 60 ।।

अर्ध उर्ध की बटिया में कहि गैइला जोग जोगैइयाँ।
गंग यमुन रबि शशि मँह योगी एकै राह चलैइयाँ।।
जोगी को घर अगम है कोऊ जानै साधु संगैइयाँ।
जन 'बूला' होय निर्भय बोलै देख लों राम दोहैइयाँ।।17।।

हरि नाम निशानी हौं जानी।
यदि जानी तदि भई दिवानी। लोग कहैं यह भर्म भुलानी।।
जन 'बूला' कै इहै निशानी। सुरति निरति लिए जोति समानी।।

21:13

बूला साहेब

कौने द्वारा देखैं आपू। कौने द्वारा सुमिरै जापू।
कौने द्वारा आवैं जायँ। कौने द्वारा रहैं समायँ।।
त्रिकुटी द्वारा देखै आपू। शुष मन द्वारा सुमिरै जापू।
इँगला पिंगला आवैं जायँ। दसयें द्वारा रहैं समायँ।।

भजन

गोविन्द सों करु प्रीत मन गोविन्द सों करु प्रीत।।
स्रवन सुनि लो नाद प्रभु को नयन दर्शन पेखु।।
उपनिषद् अरु वेद गावत अचल अमर अलेखु।।
भाव से तू भक्ति करि ले प्रेम सों लवलीन।।
सुरति सों तुम बेड़ा बाँधो, मुलुक तीनों छीन।।
अधम अघिन अजाति 'बूला' नाम सों लवलीन है।।1।।

अर्थ धर्म अरु काम मुक्षहुँ अपनो पद मोहिं दीन।।
सतुगुरु युक्ति बतावल पावलि जिव कर भूल।
सुमिर-सुमिर सुख वेलसहिं सुक्षम गुन स्थूल।।2।।

एसन अद्भुत बुन्द है जुग-जुग अचल अपार।
आवै जाय न बिनसय सदा रहै यकतार ।।
मन माने की कहिए तौ लहिए औतार।
अपने-अपने रंग में रंगि रहा संसार।।
मनसा बाचा कर्मना दूजा नाहिंन भाव।
जन 'बुला' गुन गावहीं आनद मँगल बधाय।।3।।

मंगल

मोतियहुँ की झरि झलकत फूलन फुलि फुलवारि।
प्रान भँवर होय बेलसहिं अनहद उठै झंकार।।
बिनु बारिहिं बिनु मालिहु बिन सींचे रंग होय।

आँधेरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसे आयो,
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है।
टकाटोरि दिन रैन हियहूँ को फूटै नयन,
आँधेर को आरसी में कहाँ दर्शायो है।।
कुल सों खबरि नाहिं जासों यह सब भयो,
मूल को बिसार भोंदू डारि अरुझायो है।
आपनो स्वरूप रूप आपु माहिं देखै नाहिं?
कहै 'यारी' आँधरे ने हाथी कैसे पायो है।।

गावै गगन तान सुनियत बिना कान,
बिनु नयनन देखियत अलख मकान है।
सुरति चढ़ी कमान छेदि गयो आसमान,
ला मकान का मकान उदै अस्त भान है।।
कहै 'यारी' सुजान मेरो कहौ लीजै मान,
सोई सुर ज्ञानी जाके हृदय सदा ध्यान है।
आँख कान नाक मुँह को निहार देखु,
शुन्य में प्रगट जोति याही गुरु ज्ञान है।।

त्रिकुटी में ध्यान धरि देखु तहाँ दामिन दमकै,
चाँचरि मुद्रा को तब याही स्थान है।
भोचरी मुद्रा सोहाग जागै मस्तक भाग,
पायो है सकल निरन्तर की खान है।।
पदुम झलकै शीश जगमग जगदीश आगे,
गोचरि मुद्रा गावै अनहद तान है।
गगन गुफा में पैठि अधर आसन बैठि,
खेचरि मुद्रा आकाश फूलै निर्बान है।।1179।।

धरती-मिली अकाश को रे, ऊँचे महल में बास पाया।
समुन्द्र में केलि करै, मच्छी पहार ऊपर जाय घर छाया।।
फूल सेती कली भई, मिलि चाँद सूर्य दोऊ घर आया।
'यारी' कहै देखो जीभ बिना, अनहद को तान गगन गाया।।

ज़मीन बरषै असमान भीजै, बिनु तेल बाती जलाइए जी।
वहाँ नूर तजल्ली बीच है रे, बेरंगी रंग देखलाइये जी।।
फूल बिना यदि फल होवै, तदि हीर की लज्जत पाइए जी।
'यारी' कहै यह कौन बूझै, यह कासों बात जनाइए जी।।

इस दरे में मात मात है रे, तहकीक करै आरिफ सोई।
पूरब मलकूत पश्चिम जबरूत, उत्तर के रुख़ लाहूत सोई।
दक्षिण तरफ नासूत है रे, जुलमति में मति रहै कोई।
मते मात सबै अवश्य 'यारी' वह जात सोई जो खुद जोई।।

सूली के ऊपर-मेहर पेखा, मलकूत जबरूत लाहूत तीनों।
लाहूत सेती नासूत है रे, याहूत के रस के रंग भीनों।।
धुआँ होय के ऊपर चढ़ो, मुतलक़ मोती का नूर चूनो।
आँखों चितै के बैठ 'यारी' माते माते माते बीनो।।

गुरु की चरन रज लेइ के, दोउ नयन बिच अंजन दिया।
मिटा तिमिर उँजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लिया।।
तहँ कोटि सूर्य छपे छूने, तिहुँ लोक धनि धनि पा पिया।
सत्गुरु कृपा किया मरि के, 'यारी' फेरि से युग युग जिया।।

रूह हमारो आफ़ताब, आफ़ताब के सामने होते हैं।
कल्प नाम को एक रूख है, उसकी ताई बहते हैं।।
आशिक और माशूक बनाय के, 'यारी' दुई न भनते हैं।
नूर तजल्ला खुद बाखुद है, ऐन अल्लाह उसे कहते हैं।।

हमहीं चाँद सूर अवतारा। हमरइ रूप है सकल पसारा।।
हमहीं आदि अन्त मधि सोई। हम बिनु दूसर और न कोई।।

राग होरी

हौंतो खेलों पिया सँग होरी।
दरस परस पतिबर्ता पिया की। छबि निर्खत भई बौरी।।टेक।।
सोरह कला सम्पूरन देखो, रबि अरु ससि यक ठौरी।।
जबते दृष्ट परो अविनासी, लागो रूप ठगौरी।।
रसना रटत रहत निशु बासर, नयन लगौ यहि ढौरी।
कहै 'यारी' भक्ति करु हरि की, कोउ कहै ऐसो कहोरी।।1035।।

बिना बन्दगी इस आलम जनि, खाना तुझे हराम है रे।
बन्दा करै सो बन्दगी, ख़िदमत में आठोयाम है रे।।
'यारी' मौला बिसारि के, क्या तू लगा बेकाम है रे।
कछु जीवते बन्दगी कर ले, आख़िर गुरु मोकाम है रे।।1151।।

आँखों से तू जो देखिए रे, सो आलम सफ़ानी है रे।
कानों से जो तू सुनिए रे, सो ऐसी कहानी है रे।।
इस बोलते को उलटि देखै, सोई आरिफ सोई ज्ञानी है रे।
'यारी' कहै यह बूझि देखा, और सबै नदानी है रे।।1152।।

दोऊ मूंदि के नयन अन्दर देखा, नहिं चाँद सूर्य दिन राति है रे।
रोशन शमा बिनु तेल बाती, उस जात सों सब सिफ़ात है रे।।
गोता मारि देखो आदत्त मुनि, कोऊ और नहिं संग साथ है रे।
'यारी' कहै तहक़ीक़ किया, मुतलक़ मोती की जात है रे।।1153।।

आँखों चितै के पाग बाँधा, और साधा गगन को रे।
उत्तर दिशा गौन किया, फिर जाय देखा उस बन को रे।
सागर के बी में बुन्द को लाय के, उलटि मारा इस मन को रे।
'यारी' कहै अकल कला बिनु, नयन देखा दर्शन को रे।।1154।।

जहँ रूप न रेख न रंग है रे, बेरंग सिफ़ात में आपु फूला।
फूल बिना जहँ बास है रे, निर बास के बास भँवर भूला।।
वहाँ दह बिना कमल है रे, कमल की जोति अदल तूला।
'यारी' अल्त मलूल नहिं तहँ फूल देखा बिनु डार मूला।।1155।।

वैरागी तुम कौन वैराग घर लिया, ताते सर्व त्याग तुम किया।।
कित वै जोग है कित वै मुद्रा, कौन घाट वै रस पिया।
तन वैराग मन हि मन मुद्रा, बंक नाल होय रस पिया।
जन 'बूला' वैराग ब्रह्म बुन्द, अचल अमर घर किया।।74।।

पवन उलटि के भजन निज करबो, सुषमन सेज बिछैबो।
प्रेम विलास आस साधुन में, निर्गुन रूप कहैबो।
पाप पुन्य दुख सुखहि बहैबो, अमृत नाम पिऐबो।।
दया धर्म मेरे ध्यान खजना, ज्ञान रतन में रतैबो।
अद्भुत बुन्द कहाँ लगि बरनो अनहद माँह देखैबो।।
सुरति सोहागिन चरन मनावहिं, खसम आपनो पैबो।
जन 'बूला' वह प्यारी खसम की, रहसि रहसि गुन गैबो।।75।।

ऐसी आरति मेरे मन भावै। रबि शशि पवन भवन मन लावै।।
ब्रह्म बिष्नु महेश ले आवै। एक मते होय दर्श दिखावै।।
गंगा यमुना अर्ध दिआवै। स्तुति शोभा प्रभुहि मनावै।।
सुरति निरति लेई घंट बजावै। जगमग जोति परम पद पावै।।
जन 'बूला' जी सरन बलि आवै। रंग महल बिच नाम जगावै।।76।।

ऐसी आरति करूँ मन भाई। महा प्रसाद ठाकुर को चढ़ाई।।
प्रेम कै पातरि प्रीति लगाई। भाव कै व्यंजन रुचिर-रुचिर बनाई।
संत साधु मिलि आरति गाई। प्रभु जी के सिर पर चौंर डोलाई।।
सुर नर मुनि सब आस लगाई। गिरा परा कँण बिन-बिन खाई।।77।।

आनन्द उदित अखंडित सोह। मानो गगन द्वार गति जोह।।
सिध मुरी मूल मत पावन। जावन उलटि जमावन।।
अर्ध उर्ध के मध्य निरन्तर। जगमग-जगमग जोति जगावन।।
देख देखाव कहाव अकेला। मेला अलख पुरुष संग खेला।।
जन 'बूला' याही बिधि खेला। अनहद डंक निशंक सो देला।।78।।

जगमग जोति प्रकाश होत है। उजल दरस बलि जाय।।
झूलैं हंस कलोल करि कै। सखियन संगहिं लाय।।
तहाँ मिले बिरही संत जन कोऊ। दियो अगम लखाय।।
'बूला' तहाँ कियो सत संगति। रहो चरन समाय।।
आवा गवन निवारो स्वामी। बहुरि इतै नहिं आय।।79।।

निर्गुन दयाल दानी। मन ही माँह जानी।।
शशि सूर एक आनी। रैनि दिवस सानी।।
बाज अनहद सुनि भइहै देवानी।
उलटी बहन लागै त्रिपुनी तट पानी।।

करि स्नान हंसा अगम समानी। धरत अधर ध्यानी।।
मिट गयो आवा जानी। भइहै उज्ज्वल खानी।।
जन 'बूला' यहि पद हि समानी। मोक्ष धुजा लागी फहरानी।।64।।

सर्व स्वरूपी गोविन्दा मोहिं ऐसी रहन रहाउरी।
बिनु आसा बिनु उद्यम बिनु रसना गुन गावरी।।
बिना जोग बिनु भोग अखंडित साँचा लाद लदावरी।
बिना नाव अरु बिनु केवटा बिन खेये तीर लगावरी।।
बिनु दरियाव भव पार उतरना बहुर न इत ही के आउरी।
बिनु माला बिनु तिलकही बिना जाप को ध्यान।।
अष्ट याम धुन लगइ रहतु है अनहद बाजु निशान।
सन्त सभा तहाँ देखिए महा उज्ज विश्राम।।
बिनु प्रयास भव निधि तरहिं ले राम जी को नाम।।65।।

सइयाँ जी के नाम को बलि जाऊँ।
सुमिरत नाम बहुत सुख पाओ, अनत कतहुँ नहिं ठाऊँ।
नाम बिना मन स्वान मंजारी, घर-घर चित लै जाऊँ।।
बिन दर्शन पर्सन मन कैसो, ज्यों लोली को गाऊँ।
पवन मथानी हृदये ढूँढ़ो, तब पाओ मन ठाऊँ।
जन 'बूला'' बोलहि कर जोरे, सतुगुरु चरन समाऊँ।।66।

गोपाल राम गाढ़े दिन के मीत।
संकट हरन भरम भौ नासन, याही प्रभु की रीत।।
जो कोऊ कहै कि मैंने किया है, सोई कुटिल कुबीत।
''जन बूला'' बिनवै कर जोरी, तुम हो सर्वोजीत।।67।।

शब्द

सुख मनि सुरति कै डोरि बनाउ।
मेटिहै सब कर्म जियको, बहुरि इत नहिं आउ।।
पैठि अंदर देखु कंदर, जिय को बास।
उलटि अपान पान में राखै, स्वेत शब्द में बास।।
गंगा यमुना मिली सरोस्वति, उमगी शिषर बहाव।

21:23

सुषमन शीतल सेज हेतु ताही सों कीजै।।
गगन गुफा में बैठ दरस नारायण दीजै।।
हरिजन 'बूला' हृदय बिचारि प्रेम अमर पद पीजै।।

शामहिं उगवैं सूर भोर शशि जागई।
गंगा जमुना संगम अनहद बाजई।।
अजपा जाप सुजाप सोहं डोरी लागई।
हरि हाजन 'बूला' तामें पैठि जोति में गजाई।।53।।

झूठा यह संसार झूठ सब कहत हैं।
सत्य शब्द की रहनि कोई नहिं गहत हैं।।
बिना सत्य नहिं गत्य अगति में परत हैं।
'बूला' हृदय विचार सत्य में रहत हैं।।54।।

ऐसा अद्भुत मन में जाना। जहाँ दस द्वारा घनो रखाना।।
पंच लोग तहँ बसै प्रधाना। मन राजा तहँ बड़ैई सयाना।।
तीनिउ जने त्रिषेनी आना। चौथे घर पर कियो पयाना।।
गंगा यमुना कियो स्नाना। पर्म तत्त्व पर लागो ध्याना।।
जन 'बूला' बोलहिं ब्रह्मज्ञाना। तन छूटै साहेबहि समाना।।48।।

राग सोरठ

जन कहँ सूझि परी यहि बारी। देओ शब्द बिचारी।। टेक।।
मन को मारि मुँदो नव द्वारी। जीतो पाँचो नारी।।
पर्म तत्त्व निराकार ध्यान धरि। बहुरि नहीं औतारी।।
जन 'बूला' चर्नन बलिहारी। जिन यहि गतिहि सवारी।।
तन मन धन नेवछावरि वारी। यम सों लियो सम्भारी।।49।।

मन तू सत्गुरु चरन समाजी। अविगति गति ब्रह्म राजी।।
अजरो जरो बरो है अधरम। परम जोत छवि छाजी।।
घरनि अकास तहाँ नहि देखी। अगम पुरुष एक गाजी।।
आवै न जाय मरै नहिं जीवै। अनहद धुनि तहँ बाजी।।
जन 'बूला' जी उहै बिराजी। उलटि पवन घर साजी।।
अर्ध उर्ध अरु मध्य निरन्तर। सोहं सुरति धराजी।।50।।

राग अरिल

कोटि झुलै ध्रुव पौन हिए नहिं आइया।
राम नाम को ध्यान धरो मन लाइया।।
बिना ध्यान नहिं मुक्त पिछे पछताइया।
हरिजन 'बूला' हृदय विचार राम गुन गाइया।।51।।

श्याम घटा घनघोर चहूँदिश आइया।
अनहद बजै अघोर तब गगन सुनाइया।।
दामिन दमकि जे चमकि त्रिवेनी जनाइया।
'बूला' हृदय विचारः तहाँ मन लाइया।।52।।

21:21

राग इराक

मोर सुमति भयल मन जन तन जानी रे।
मूल बाँधी सूर साधी पच्छिम बिचारी रे।।

मोह लोभ माया छाया भर्म सब डारी रे।
छूटी माया तन छाया पाया ब्रह्म जोती रे।।
जन 'बूला' जोगी बोलहि निझर झरै मोती रे।।42।।

शब्द

आज सुदिन गबन सजि नीके निबाहिए।
तन मन धन वारी सहज दीपक बारो रे।।
मिटो अँधियारी जबहीं निरंकार सारो रे।
परम पुनीत मीत हित करि लीजै रे।।
दर्शन कीजै प्रभु को काया बहुरि न छीजै रे।
बिना बजाए बाजा बाजै त्रिभुवन महँ गाजै रे।।
पाँच पचीस अरु तीनहुँ उलटि बिराजै रे।
सुरति निरति लैइ डंडिया फँदा ओरे।।
जन 'बूला' तामें चढ़ि अगम घर पधारे रे।। 434

21:17

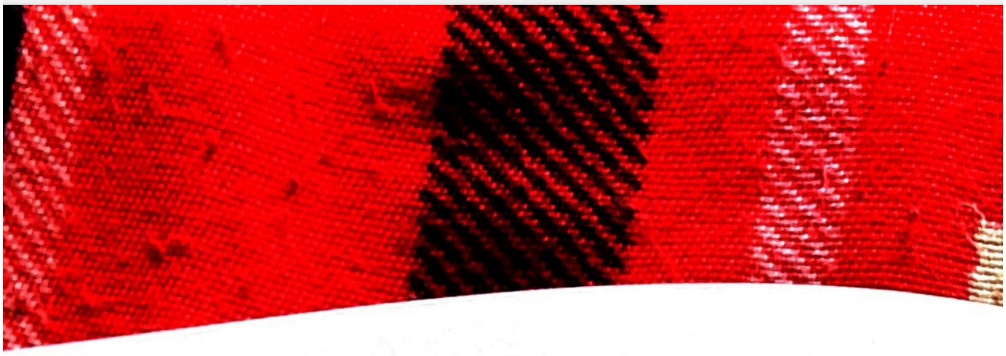

आपु-आपु विचार देखो, ऐसो है रम रावई।।
जीत पाँच पचीस तीनों, चौथे जा ठहरावई।
'दास बूला' लियो गढ़, जब गुरु ने दिया लखावई।।21।।

राग सोरठा

ओढ़ो चूँदरी ततसार।
अचल अमर अपार अँगिया खाँडे की ज्यों धार।।
नाहिं मारे मरै बिनसै ऐसो है ब्रह्म तार।
उमगि सोहं अधर चढ़िया बहुर नहिं औतार।।
एकां येकी होत अवि गति साधु यह व्योहार।
दास 'बूला' मारो बाज़ी जानय क्या सवँसार।।22।।

राग बिहाग

मैं तो पहिरों सतगुरु बागा, ओढ़नियाँ ओढ़ि रे।
काम क्रोध तुमहूँ मन अपने, पवन पीउनियाँ, लपेटु रे।।
सुषमन बैठि में ही सुत कातों सुरति सोनरिया भरै हो।।
भँवर गुफा में करिगह माँडी दसयें ठीक दिए हौं हो।
कातत सूत बहुत निक लागै आठ पहर अरुझेरा।।
जन 'बूला' कातहिं तन मन दे यारी दास को चेरा।।23।।

राग हिंडोला

हिंडोलना झूलहिं आतम नारि।। टेक।।
काम क्रोध जे कर्म पटरी, मन पवन डोरी लाई।
तहँ चंद सूरज खंभ गड़िया, गंग यमुन बधाई।।
पौढ़िया ब्रह्माण्ड चढ़ि कै, गगन गरजि सुनाई।
जग मगजोति प्रकाश उज्ज्ल, दरश की बलि जाई।।
झूलै हँस कलोल करि के, सखिन को सँग लाई।
तहँ मिते बिरही संतजन कोऊ, अगम दियो है लखाई।।
तहँ दास 'बूला' कियो संगति रह्यो चरण समाई।
आवागौन निवारू स्वामी, बहुरि नहिं इत आई।।126।।

गाजत है छबि छाजत हैं, उतो नाम निरंजन की गति हेरी।
राह लियो परमारथ की तब, स्वारथ संजम सत्य की चेरी।।
बानी बोलै कबिलास की आनि सो, जीवन मरन नहीं भव फेरी।
जन 'बूला' हृदय बिचारि बोलै, ऐसो ध्यान निरंतर राम सो मेरी।।127।।

देखु बिचारि के आपुहिं आपु को, देह को नाता सो छोड़ि दियो है।
तहँ पाप न पुन्य न माया मोह, न योग अधार सों खेत लियो है।।
जन 'बूला' हृदय बिचारि बोलै, हरि नाम निरंजन आप थियो है।।

जौं पै कोई ध्यान धरि ध्यान में सदा रहै,
लहै ब्रह्म ज्ञान तब साधु जा कहाई है।
मूल को सोधि के पवन को बाँधि के,
त्रिकुटी में आइके गगन द्वार जहाई है।।
जोति सों जोति मिलो पवन सों पानी मिलो,
धरती सों आकाश मिलो अनहद जा गहाई है।
तब दास 'बूला' कहै अगम गति तौ लहै,
गुरु के बचन सो अचल धर रहाई है।।128।।

सोइ सोहं इंसा लगलि डोरि। सुरति निरति चलु मनुआं मोरि।।
झिलमिल झिलमिल त्रिकुटि ध्यान। जगमग-जगमग गगनतान।।
गह-गह-गह गहज अनहद निशान। प्राण पुर्ष तहँ रहल जान।।
लहरि-लहरि दउठै पछिव घाट। फहर-फहर चलै उतर बाट।।
स्वेत बरन तहँ आपै आप। जन 'बूला' सोई माई बाप।।118।।

मैं कैसे के राखों पाँच नारि। बर्जे नहिं बड़ि खुआर।।
जिन आपु अपन घर कियो जारि। कबहूँ नहिं सुमिरै देव मुरारि।।
अब के उजरले छाइ न जाय। कासों कहूँ यह गति बनाय।।
मनुआँ मकरी रहु समाय। लै-लै जात है सँग लाय।।
भोग बिलास आस बनाय। फिरि फिरि नर्कहिं महँ महाय।।
भला भयो मनु चलु कोहाय। बीचहिं मिलि गयो राम राय।।
तुमको हम है सदा सहाय। जन 'बूला' बलि तोहरि जाय।।119।।

राग मुरली बसन्त

मुरली धुनि सुनि मन मगन भाय। नृत काल तिरबेनी धाय।।
उलटि पवन ब्रह्मांड गाय। गंगयमुन तहँ संगम भाय।।
चाँद सूर्य दिन रैन थाय। स्वेत बरन घर प्रगट भाय।।
मिटि गयो अंधकार भयो भोर। जन्म-जन्म दुख मिटल मोर।।
जन 'बूला' जी कै बन्दी छोर। करहु कृपा गति लावहु भोर।।120।।

सवैया

देह पवित्र सो नेह करो, जह राम बसै नित आतम धारी।
मूल में गाँठि परी दृढ़ सों, जहँ सुषमन सेज की राह सँवारी।।
द्वारि दसों पर जोति बरै, जहँ पै निरकार है ब्रह्म अपारी।
जन 'बूला' हृदय में बिचारि के बोलैं, ज्ञान की बातें सुनो हो हमारी।।104।।

गाजतु हैं छबि छाजतु हैं, उतौ नाम निरंजन की गति हेरी।
राज लियो पर्मारथ की, तव स्वारथ संयम संत की चेरी।।
बोलहिं बानी बिलास यक में, मरबो जियबो जहँ भौंह की फेरी।
जन 'बूला' हृदय बिचार के बोलहिं, ऐसो है ध्यान निरंतर मेरी।।105।।

रमैनी कल्यान

आव रे पियरवा हौं तो भई जग नियरवा।
महि मथि कमल बिकसि कच चखा, चाहत नयन रुचि सखा।।
जन 'बूला' बोलै अगम अपरवा, बहुरि नहीं लेव अवतरवा।।106।।

राग कान्हरा

मन तू हरि चर्नन चित लाउ।
मिटि हैं सकल कर्म या तन को। बिमल बिमल यश गाउ।।
करहु सुमति साधु संगति की। और छोड़ि सब चाउ।।
त्रिवेनी में आसन मारो। गगन मण्डल मठ छाउ।।
ऐसी अमल कमाहु रइन दिन। सहजे शुन्य समाउ।।
जन 'बूला' सतुगुरु को चेला। जगमग जोति जगाउ।।107।।

राग कल्याण

राम नाम जपि उधरो रसना। राम नाम जपि उधरो।।
शब्द विवेकी गगन निरेखी। साधु संगति से सुढरो।।
मूँदो मनहिं जतन करि संयम। इहै ज्ञान को मेला।।
निरगुन नाम निरंतर पेखिया। तहवाँ गुरु न चेला।।
विद्या वेद भेद नहिं जानो। जानो एक अकेला।।
आवै न जाय मरै नहिं जीवै। सो सतुगुरु सतु चेला।।
जो कछु कहौ नहीं कहि आवै। जो रे कहूँ तो बेला।।
जन 'बूला' रामजी को सेवक। अर्ध उर्ध मधि खेला।।108।।

21:31

मेरु दण्ड अखण्ड महिमा बंक नाल सोहावनं।
दसौ द्वार होत जगमग जन बूला तहँ भावनं।।
इँगला पिंगला उलटि राखो सुषमना गृह आवनं।
तहँ होत अनहद बाज गह-गह निरंकार सोहावनं।।
योग युक्ति समाधि मन्दिर गंग यमुन नहावनं।
तहँ उठत निर्मल सदा बानी जन बूला सत्य गावनं।।88।।

चन्द्र सूर्यो एक गृह रैन दिवस मिटावनं।
एका-एका है निर्मल स्वेत दीप बसावनं।।
तीन तिर्गुन मातु करि लें पंच तत्त्व बिचारनं।
तँह उठत लहरि अनंत महिमा जन बूला ताहि बारनं।।89।।

आदि अन्त जो मध्य यकसाँ ब्रह्म बिश्नु शिवा शिवं।
पर्म जोति सोरह निबनिया जन 'बूला' बिराजितं।।90।।

अचल स्थिर होत युग-युग, बहुरि इवहिं न आवनं।
जन 'बूला' बलिहारि सत्गुरु, जिन्ह यह पंथ लखावनं।।
सुरति डोरि लगल गगनहिं, मन पवन दोउ बन्धनं।
सूनि नग्र बसाव यहि बिधि, जन बूला दह चन्दनं।।
तहाँ आवागवन न होत कबहीं, मान सरोवर हंसनं।
चुगत मुक्ता मोति निशु दिन, जन बूला ब्रम्व रूपनं।।
तहँ वेद भेद न नेम पूजा, धर्म पुण्य जापनं।

21:29

राग शहाना

भोरे सुरति साहोगिन ललकी। तिरबेनी संगम झलकी।।
भोरे गुरु दियो यक मटुकी। तब लटकि-लटकि प्रेम गटकी।।
जब मूल मन्त्र घर सोधा। चढ़ि बंक नाल घर बोधा।।
जब भँवर गुफा में गूँजा। तब दसौ द्वार घर पूजा।।
तब 'जन बूला' बोलै बोरा। घर स्वेत बरत कियो ठौरा।।81।।

भोरे मन्शा हृदय बिचारी। तब तन मन धन सब वारी।।
जब अर्ध उर्ध मधि जानी। तहाँ जगमग जोति निशानी।।
जब चंद सूर घर आनी। तब अभिगति गति पहिचानी।।
जब गंग यमुन भरि पानी। तब बोलत अमृत बानी।।
बोलैं 'जन बूला' ब्रह्म ज्ञानी। तब आवा गवन रहानी।।82।।

राग बसंत

मन बसंत खेलै अगम फाग। चरन कमल अनुराग जाग।।
खेलहिं ब्रह्म और महादेव। खेलहिं नारद और जैदेव।।
खेलहिं ध्रुव प्रहलाद जानि। सुखदेव जी खेलहिं गति बिलोय।।
हनुमान जो खेलहिं सेवक होय। अर्जुन खेलहिं गति बिलोय।।
सहदेव जी खेलहिं अगम गाय। पर्म योति में रहे समाय।।
खेलहिं नामा और कबीर। खेलहिं नानक बड़ हैं धीर।।
यारी खेलहिं ब्रह्म हीर। केशव पायो चरन नीर।।
सब साधुन के पीछे लागी। चढ़ो राम ब्रह्म मुल पागी।।
दसयें द्वार पर दर्शन होई। 'बूला खेलहिं' आपुहिं खोई।।83।।

त्रिबेनी के घाट राम रंग होरे होरी।
चाँद सूर यक नास भयउ रँग होरे होरी।।
रैन दिवस गए बीत राम रँग होरे होरी।
गंगा यमुना उलटि बहो रँग होरे होरी।।
हंस करै स्नान राम रँग होरे होरी।

कोटि झुलै ध्रुव ज्ञान हिये नहिं आइया।
राम नाम को ध्यान धरो मन लाइया।।
बिना ध्यान नहिं मुक्ति पिछे पछिताइया।
'बूला' हृदय बिचार राम गुन गाइया।।
श्याम घटा घनघोर चहूदिस आइया।
अनहद बाजे घोर जो गगन सुनाइया।।
दामिन[3] दमकि जो चमकि त्रिबेनी नहाइया।
'बूला' हृदय बिचारि तहाँ मन लाइया।।
सुषमन शीतल सेज हेत ताही सों कीजै।
गगन गुफा में पैठि दस सतुगुर का लीजे।।
आवागवन न होय ब्रह्म कबहूँ नहिं छीजे।
'बूला' हृदय प्रेम भरी अम्मर पद लीजै।।
सामहिं उगवे सूर भोर ससि जागई।
गंग यमुन के संगम अनहद बाजई।।
अजपा जापहिं जाप सोहं डोरि लागई।
'बूला' तामें पैठि जोति में गाजई।।
झूठा यह संसार झूठ सब कहत है।
सत्य शब्द की रहनि कोऊ नहिं गहत है।।
बिना सत्त नहिं गत्त कुगत्त परत है।
'बुला' हृदय बिचारि सत्त सों रहत है।।
मुरगी यह संसार चेहुँ-चेहुँ करत है।
आतम राम को नाम हृदय नहिं धरत है।।
बिना राम नहिं मुक्ति झूठ सब कहत है।
'बूला' हृदय बिचार राम संग रहत है।।
ऐसी बनिज हमार राम को लेन को।
मन पवना दोउ दाम साहु को देन को।।
पाँच पचीस तिन लादि आपु में बैठि के।
'बूला' दीन्हों हाँकि जोति में पैठि के।।
क्या भयो ध्यान के किए हाथ मन ना हुआ।
माला तिलक बनाय देत सब को दुआ।।
आसा लागी डोरी कहत भला हुआ।
'बूला' कहै बिचारि झूठ सेमरघुआ[3] ।।
का भयो शब्द के कहे बहुत करि ज्ञान दे।
मन परतीत नहीं तो कहा यम जान दे।।
का भयो तीरथ किए हिए नहिं आवई।
'बूला' कहै बिचार खाली सब जावई।।
मन माने की बात बहुरि नहिं बोलना।

(स) साँस उसाँस को भेद सो सार है,
नाभि औ नासिका एक लावै
बारहूँ बार अनहद उधार करि,
पौन ब्रह्माण्ड के खण्ड जावै
बीण मृदंग गति भेरि जहँ बाजती,
शब्द र रंकार लै राग छावै
'अजब दास' ध्यान धरि चीन्ह ले आप में,
फेरि संसार को नाहिं आवै।।28।।

(ह) हारि तू आपनी मानता है नहीं,
और के बात की काह चालो
नाम सों चित्त तौ लागता है नहीं,
लोग देखावता फेरि माला
मान गुमान अज्ञान भुलान का,
जक्त में दीन रहु छोड़ि गाला
'अजब दास' अन्त में नाम ही ढाल है,
काल जो मारिया आनि भाला।।29।।

(ॐ) उठत ॐकार की शोर श्रवनन सुनै,
प्रेम आनन्द सुख होत भारी
शैल के शिखर पर भँवर गुँजारता,
करत कलोल छबि लगत प्यारी।
सूर्य और चन्द्र एक द्वार है बन्द जो,
मकरी को तार मग है न्यारी।।30।।

मूढ़ तू खोजता क्यों किनारा।।
गंग और यमुन को होत संगम जहाँ,
जाय के कूदि परु मध्य धारा।
'अजब दास' कछु हाथ भी लगि जाएगा,
मानिहो शब्द जो तू हमारा।।18।।

(न) नाम की आस करि चित को धारिए,
शेष औ गनेश गुन जासु गावै
वेद औ पुरान में सार सो जानिए,
शंभु जेहिं नाम को ध्यान लावै
दीन दयालु गुरू मोहिं दया करि,
काहू की नाहिं अब त्रास आवै
'अजब दास' ध्यान धरि चीन्ह ले आप में,
फेर संसार कोउ नाहिं आवै।।19।।

(प) पार को जान जौ चाहिए यार तू,
सत्य यहि बात के मानिए जी।
फन्द भ्रम तोरि के नयन को जोरि के,
दृष्ट को उलटि करि तानिये जी।।
मन्द मति बैठि के शब्द में पैठि के,
पलक पर झलक पहिचानिए जी।
'अजब दास' बास वहि देश में पाइये,
बेस तब तत्त्व की जानिए जी।।20।।

(फ) फूलना फूल उस फूल को देखिए,
अलख की बास है दूर भाई
कोऊ तो नयन उलटि त्रिकुटी तके,
कोऊ तो नाशा की ध्यान लाई।
कोई तो मुनै और कोई त्राटक करै,
आपनी आपनी बात गाई।
'अजब दास' करन दां बूझै नहीं,
सन्त कोई महरमी भेद पाई।।21।।

(ब) बक्र औ चक्र छ बेधिया साधु कोई,
जाइ के गगन बिच ध्यान धारै
खेचरी भूचरी चाचरी साधिया,
यार पापील को भेद न्यारै।

काम अरु क्रोध को लोभ अरु मोह को ज्ञान को वान सों मारि लीता।
जानि जन केशव मानि मन में रहा 'यारी' मिले सत्गुरु भेद दीता।।

सोई निज सन्त जिन सन्त आपो लियो जियो युगयुग बुधि गगन जागी।
पान अपान आसमान में थिर हुआ शुन्य के शिखर पर जिक्र लागी।।
रहतघरबास बिनु स्वाँस का जीव है शक्ति मिलो शिव सों सुरत पागी।
अगह आलेख आदेख को देखियत पेखिया 'केशव' भयो ब्रह्म रागी।।

गगन मगन धुनि लगन लगी, सुनत सुनत तन तस गई।
जगर मगर नहिं सुघर नगर नहिं डगर बगर नहिं रबि शशि भवई।।
प्राण गवन हरि पवन भवन करि मिलि सम्मुख पिया बाँह गही।
सत्य रति सत्य पति पावल 'केशव' सदा अनन्त सोहाग सही।।

वासर वस्तु विचार सदा मुख साँच हिए करू सो धन है।
निग्रह संग्रह धर्म कथानि परिग्रह साधुन के गन है।।
'केशव' भीतर योग जगै इत बाहर भोग मई तन है।
हाथ भयो जिनके तिनके बन ही घर है घर ही बन है।।
दौलति निशान बान धरे खुदी अभिमान,
करत न दाया काहू जीव और जनक में।
जानत है नीको यह फीको है सकल रंग,
गहे फिरै काल फन्द मारैगो छनक में।।
घोड़ा डेरा गज वाजि झूठो है सकल साज,
भूलो हरि नाम तजि कामिनी कनक में।
बार-बार कहौं तोहिं छोड़ मन माया मोह,
काहे करै लोभ छोभ पड़ि के सनक में।।1187।।

छन्द

नहिं जाहिं दूर हजूर साहेब फूलि सब तनहीं रह्यो।
अमर अक्षै सदा जुग-जुग जगत् दीपक उगि रह्यो।।
निरखो दसों दिस सर्ब शोभा, कोटि चन्द सोहावनं।
सदा निर्भय राज नित सुख, सोइ ''केशव'' ध्यावनं।।
पूरन सर्ब निधान जानि सोई लीजिए।
निर्मल निर्गुन कान्ति ताहि चित दीजिए।।34।।

दीजिए चित बहुर जी कै, इत बहुरि नहिं आइए।
जहँ तेज पुंज अनन्त सूरज, गगन में मठ छाइए।।
लियो घंट को पट खोलि कै, प्रभु अगम गति तब गति करी।
बाढ़ो सो अधिक सोहाग 'केशव' छुटत नहिं एकौ घरी।।
अद्भुत भेष बनाय के तब अलख अपन मनाइए।
निसु वासरहि करि प्रेम तौ निजनाह कंठ लगाइए।।35।।

लाइ कण्ठहिं छाड़ि मंठहिं उमगि सोहं भरि रहो।
बाढ़ी अधिक सोहाग सुंदरि अलख स्वामी रमि रहो।।
मिलो भूप अतिहि अनूप है अति सर्ब गति जासों भई।
आदि अन्तरु मद्ध है सोई मिलो पिय केशो भई।।
फूलि रहो सब ठाम धरती और अकास में।
सो त्रिभुवन पति नाम निरखि लियो है आप में।।36।।

निरखि आपु अघात नहिं यह सकल सुख रस सानिए।
पिवहिं अमृत सुरति भरि करि सन्त बिररा जानिए।।
कोटि बिष्णु अनन्त ब्रह्मा सदा शिव जेहि ध्यावहीं।
सोइ मिलो सहज स्वरूप 'केशव' आनन्द मंगल गावहीं।।37।।

केशव दास साहेब

निर्गुन नाम देखै कोई आतम ध्यानी।
त्रिकुटी संगम तट मति दीसैं झिलमिल जोति निशानी।।
जाको नित खोजत फिरैं गन गंधर्व मुनि ज्ञानी।
सोई अविगति पाइया मिट गयो आवाजानी।।
रबि शशि दोनों सम भये द्वादस उलटि समानी।
निर्झर झरत दसो दिश बरखै अमृत बानी।।
कोई सिद्ध आनन्द सराहत है यहि चारिउ खानी।

गरजत गगन अनन्त गति अनहद नाना बानी।।
मिट गया तिमिर अन्धेरा निश को और रबि प्रात बिहानी।
'केशव' सत्गुरु को पाईया जिन्दा करु कुरबानी।।

राग सोरठ

हरि जो से जोरली सगाई हो।
तन मन धन प्रान दान देइ, पिय के सहज स्वरूप रमाई हो।।
अर्ध उर्ध के मध्य निरन्तर, सुषमन चौक पुराई हो।
रबि शशि कुंभ में अमृत भरिके, गगन मडल मठ छाई हो।।
पाँच सखी मिल मंगल गावहिं, आनन्द तूर बजाई हो।
प्रेम तत्व दीपक उँजियारो, जगमग जोति जगाई हो।।
साधु सन्त मिलि कियो बसीठी, सत्गुरु लगन लगाई हो।
दर्श पर्स पतिबर्ता पिय की, शिव घर शक्ति बसाई हो।।
अमर सोहाग भाग उँजियारो, पुरुष प्रति प्रगटाई हो।
रोम-रोम नख सिख रस बस भई, 'केशव' पिय मन भाई हो।।

राग मंगल

सत्गुरु पर्म निधान, ज्ञान गुरु ते मिलै।
पावै पद निर्वाण, पर्म गति सोदिलै ।।
अर्थ धर्म अरु काम मुक्ष, चारिउ फल होय।

देह पवित्र सो नेह करो, बसते जहँ राम हैं आतम धारी।
मूल में गाँठि परो दृढ़ सो, जहँ सुषमन सेज की राह सँवारी।।
द्वार दसों पर जोति बरै, उहँ तो निरकार है ब्रह्म अपारी।
जन 'बूला' हृदय बिचारि बोलै, गुरु ज्ञान की बातै सुनो है हमारी।।137।।

भारे सुरति सोहागिन ललकी, तिरबेनी संगम झलकी।।टेक।।
भारे गुरु ने दियो यक मटकी, तब लटकि लटकि प्रेम गटकी।
जब मूल मंत्र घर सोधा, चढ़ि बंक नाल गहि बोधा।।
जब भौंर गुफ़ा में गुँजा, तब दसयें द्वार पर पुञ्जा।
तब जन 'बूला' बोलै बौरा, घर स्वेत बरन कियो ठौरा।।138।।

भारी मनसा हृदये बिचारी, तब तन मन धन सब धारी।।टेक।।
जब अर्ध उर्ध मध्य जानी, तब जगमग जोति निशानी।
जब चाँद सूर्य घर आनी, तब अविगति गति पहिचानी।।
जब गंग यमुन भरि पानी, तब बोलत अमृत बानी।
बोलै जन 'बूला' ब्रह्म ज्ञानी, तप आवागमन रहानी।।

आरती

पूजबों मैं निरंकार बहु भाँती, जेकरे पुजत शितल भई छाती।
जेकरे न चाँद सूर दिन राती, नेम धर्म अरु नहिं दिया बाती।।
जेकरे न ब्रह्म बिश्नु संघाती, ये कला निरंकार अधिक सोहती।

आवा गमन होय नहिं कबहीं, सतुगुरु सत्य लखावै।
कहैं 'गुलाल' यह लगन हमारी, बिर्ला जन कोऊ पावै।।3।।

मन तुम नेक गहो चित राम।
जासु नाम सुर नर नहिं पावहिं, संत महा सुख धाम।।
पाँच पचीस तीन हैं मुर्शिद, उन्ह कहँ ग्राम न ठाम
जारहिं शहर लुटहिं बिनु लश्कर, निसु दिन आठहुँ याम।
काज़ी मौलाना पीर अरु पंडित, धै मारत लै खाम
ज़ालिम ज़ोर नेकु नहिं मानत, प्रजा दुखित बे राम।
सत्य संतोषक या गढ़ भीतर, सुरति सुरंग सुनाम।
उर्ध पवन ले घरहु गगन में, चाँपि करहु विश्राम।
यम जीतो घर नौबत बाजै, किया है जोति दिवान
दास 'गुलाल' करहिं बदशाही, नूर तजल्ली नाम।।4।।

मन सुन्य सहज चढ़ि करु निवास।
रूप रेख तहँ जाति-पाँति नहिं, अक्षै अमूरति करति बास।।
बिनु करताल पखाउज बाजै, बिनु रसना गुन गाई।
बिनु बाजे शब्द ध्वनि होई, बिनु पग नाच नचाई।।
चाँद सूर निसु बासर नाहीं, तीन देव नहिं वेदहु चारि।
कहैं 'गुलाल' तहँ मारू बाजी, घर आओ मन सहजहिं मारि।।5।।

जब हम प्रभु पायो बड़ भागी।
तन मन धन नेवछावर बारो, हरि चरनन चित लागी।।
काम क्रोध ममिता मन त्यागो, अभय अगम पद जागी।
अर्ध उर्ध बिच भाटी साजो, पियत करारी पागी।।
त्रिवेनी में लगी खुमारी, टरत नहीं मन टारी।
गंग यमुन के मध्य निरंतर, तहवाँ देव मुरारी।।
उठत लहरि मुक्ता मणि मानिक, निझर झरि तहँ लागी।
श्वेत सिंहासन बैठक पायो, जन 'गुलाल' बैरागी।।6।।

उड़ि चलहु बिहंगम अगम बास, जहं आवा गवन नहिं प्रभु रास।
बिनु पद चोंच पक्ष बिनु तहवाँ, गयो घर पायो अमर अकास।।
ऊठति जोति सुधारस धारा; पीयत ब्रह्म सुबास बास।
मगन भयो पिय के रंग राते जन 'गुलाल' जी की पूजी आस।। 7।।

जो पै कोई उलटि निहारै आप।
निरखि-निरखि अन्तर लै लाओ, बिनु माला को जाप।।

गुलाल साहेब

राग नट

जौ कोई साँचि लगन हिय आवै।
काटै सकरम का फन्दा, आनद पुर घर छावै।।
पाँच पचीस तीन बसि करि कै, सुषमन सेज बिछावै।
सुरति सोहागिन उड़ै गगन मुख, तब चन्दा दरसावै।।
मूल चक्र गहि कै दृढ़ बान्हो, बंक नाल चढ़ि धावै।
अविगति सों यह खेल बनी है, आवागवन रहावै।।
रीझि-रीझि दसहूँ दिस पूजै, अपरम ब्रह्म समावै।
जन 'गुलाल' भई प्यारी खसम की, रहसि-रहसि गुन गावै।।1।।

उलटि देखो घट में जोति पसार।
बिनु बाजे शब्द ध्वनि होवै, कमल कचनार।।
पैठि पताल सूर शशि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार।
गंगा यमुना वार पार बिच, भरत हैं अमिय करार।।
इँगला पिंगला सुषमन सोधो, बहत शिषर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठो गगन पर, सहज उठय झंकार।।
सोहँ डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार।
कहैं 'गुलाल' सतगुरु बर पायों भरो है मुक्ति भँडार।।2।।

मन में निर्गुन गति जौ आवै।
हानि न होय जीव कै कबहीं, गगन मंडल घर छावै।।
राजा रँक छत्र पति भूपत्ति, गर्विहिं गर्व न भावै।
नाना सुख तजि भयो है दिवाना, पंडित वेद न भावै।।
संन्यासी वैरागी तपसी, तीरथ रटि-रटि धावै।
आतम राम न जानहि पापी, तन कहँ त्रास दिखावै।।
संसय मेटि करहु सत संगति, प्रेम पंथ पर धावै।
शुन्य नग्र में आसन माँडे, जगमग जोति जगावै।

शाह फकीर साहेब

नदिया ज़ोर बहै री हम कैसे उतरव पार।
ना मोरे नइया ना मोरे भइया, ना मोरे खेवन हार।।
सुरति निरति की नाव बनाओ, यहि बिधि उतरो पार।
नाभी कमल ते पवन चलाओ, मन लावहु त्रिपुनि द्वार।।
यह मति में कोई यक जानै, रहनि बिहंगम सार।।
ज़ोर जो यमुना अतिहिं भयावन पनियां बहै ना थीर।
बिना नावरी बिना पाँवरी उतरै शाह "फ़क़ीर"।।1।।

राग कान्हरा

हैफ़ तेरा रँग मीयाँ हैफ़ तेरा रँग।
गगन चढ़ायो जोति जगायो तहाँ मिलायो सँग।।
आगे चलै यों बूझै जोई सोई सतुगुरु धीर।
भाई यारो हम तुम पाई गावैं शाह "फ़क़ीर"।।
मीयाँ हैफ़ तेरा रँग।।2।।

साख़ी

अजब अजब के पाँचों मारे किया पचीस सों नाता।
सोरह हेलो वाको खेलों तीन मिलों तेहि जाता।।
चाँद सूर्य को उलटि बेधि के बीचहिं बीच समाई।
बारह अंगुल जेकरे पैठै सोई सो तहँवा जाई।।
शाह फ़क़ीरा ज़िन्दा देहियाँ इहवाँ गैवब बनाई।।31।।

शब्द

ध्यान लगावहु त्रिपुनी द्वार। गहि सुषमना बिहंगम सार।।
पैठि पताल में पश्चिम द्वार। चढ़ि सुमेरु भव उतरहु पार।।
हफ्त़ कमल नीके हम बूझा। अठयें बिना एको नहिं बूझा।।
शाह 'फक़ीरा' यह सब धंद। सुरति लगाउ जहाँ वह चन्द।।4।।

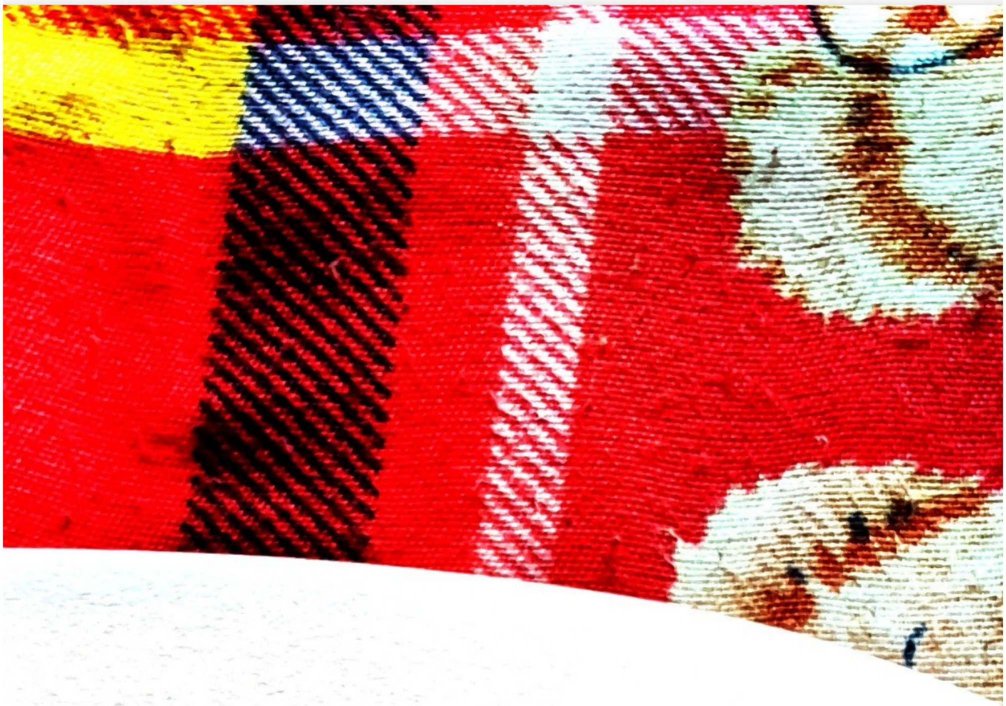

कहो ओहि देश की बतियाँ। जहाँ दिन होत नहिं रतियाँ।।
नहीं रबि चन्द्र और तारा, न अँधियारा न उँजियारा।।
नहीं धरनी न आकासा। कियो कोई सन्त तहँ बासा।।
वहाँ गम्य काल की नाहीं। वहाँ नाहिं धूप अरु छाहीं।।
सोहंगम नाद ना भाई। न बाजे शंख शहनाई।।
निःअक्षर जापु तहँ जापै। उठत धुनि शुन्य ते आपै।।
वहाँ नहिं पवन पानी। गयो वही लोक जिन जानी।।
तक्यों जबहिं अलख डेरा। करे नित्य पाँव बिनु फेरा।।
ना योगी योग को धारे। ना तपसी देह को जारे।।
सहज में भेद यह पावे। सहज सुरति ख्याल बतावे।।
कहत कोई 'अजब दासा'। नजर में भी तको बासा।।43।।

उठत धुनि नाभि सों भारी। सोहंगम नाद फन कारी।।
रमी रहै सन्त कोउ ध्यानी। जिन्है गुरु लीन पहिचानी।।
खुलै ब्रह्माण्ड दरवाजा। विविध बिध बाजते बाजा।।
वहाँ नहीं दीप अरु बाती। रहत उँजियार दिन राती।।
गगन को गैल जो पावै। अगम को ख्याल बतलावै।।
धरै हरि ध्यान अविनाशी। गिरे तेहिं सँग के बासी।।
बिना कर बीच कर छेड़ै। बिना मुख बाँसुरी टेरै।।
बिना ऋतु फल है फूला। भँवर तेहिं देखि कै भूला।।
बिराजत आपु जहँ करता। भरम बस सूझ नहिं परता।।36।।

भुवन चहुँ ओर फिर आवै। बिना सत संग ना पावै।।
अलख यह भेद है न्यारा। लखै कोई राम को प्यारा।।
कहत कोई है 'अजब दासा'। अहै गुरु चर्न की आसा।।37।।

पिया कै खोज नहिं पाई। दरस बिनु प्रान अकुलाई।।
करौं का जोर नहिं चलता। बिरह के ज्वाल में जलता।।
बरै नहिं पावै सरीरा। बुझावै नयन को नीरा।।
लगै जब बान या तन में। उठी धुनि कहर की मन में।।
नगारा नाम को बाजा। पवन असवार मन राजा।।
वही है संत औ शूरा। मिला गुरु जाहि को पूरा।।
भयो वहीं देश को बासी। न आवै फेरि कै काशी।।
ठेकाना साधु बतलावै। बिना कोई भाग्य नहिं पावै।।
'अजब' हरि भेद नहिं जानी। कहत सुनि साधु की बानी।।38।।

(अ) अर्ध उर्ध को भेद जो पाइया,
पवन के गवन ते सन्धि खोला।
शब्द अनहद लै घूमि पश्चिम दिशा,
बैठि आशंक आस्मान डोला।।
होत अँजोर चहुँ ओर झिलिमिलि झरै,
वस्तु एक जानु तहाँ है अमोला।
'अजब दास' दर्श को देखि लेने परि,
मूढ़ करु आपनो सुफल चोला।।31।।

(ई) इन्द्र के समान जौं होयगा मूढ़ तू,
और उपाय नहिं पार पाइहौ।
गुरु के सरन बिनु युक्ति कोटिन करो,
जाय यमलोक में धका खाइहौ।
नर्क अघोर में डारि भी देयगा,
मीज के हाथ तब बहुत रोइहौ
'अजब दास' जानकी नाथ के नेह बिनु,
जन्म तू ऐसही बादि खोइहौ।।32।।

रे मन राम सुमिरन करे।
अजपा जाप हृदय लय लाओ। पाँच पचीस तीन मरै।।
अष्ट कमल में जीव बसतु हैं। द्वादस बल न करै।।
सोरह ऊपर बानी उठत हैं। दुइ दल अमृत झरै।।
पच्छिम दिश होई गगन मण्डल में। काल बली सो लरै।।
यम जीतो है परम पद पायो। जोति जगमग बरै।।
कहैं 'गुलाल' सोई पूरन साहेब। हरदम मुक्ति फरै।।82।।

मन तू कपट दूर अड़ाव।
भटक की तुम कथा छोड़ो। सुरति शब्द समाउ।।
करत चाल कुचाल चालैं। मकर मेलु सुभाउ।।
तीन त्रिगुन है तपत दिनकर। कैसहूँ न बुताउ।।
अति मलीन अधीन माया। मोह में चित लाउ।।
अगम घर की खबर नाहीं। मूढ़ ताकत पाउ।।
शुन्य शिखर सरोज फूल्यो। बँक नाले जाउ।।
कहैं 'गुलाल' अतिथ पूरन। आपनो घर पाउ।।83।।

चित धरि करहु आप सम्हार।
सुरति डोरी लगाव गगनहिं। उठत है झंकार।।
चन्द सूरज रैनि दिसु नहिं। धर्म नाहीं अचार।।
मरन जीवन सँग साथी। ऐसोई ब्योहार।।
यहाँ कौन देखत सुनत को है। गुन न वार न पार।।
अगम घर पर जाय बैठो। घर न होय पगार।।
प्रेम आगे नेम कैसो। बस गयो जार छार।।
कहैं 'गुलाल' जो नाम न लिया। अक्षर नाहीं विस्तार।।84।।

जिभ्या तूँ राम नाम गुन गाव।
खटरसहूँ को कौन महातम। जिन नर हरि रस पाव।।
प्रेम प्रिति हिए रीत चित्त धरु। नाद में लपटाव।।
झूठ कपट बिचार डारो। जाय एक सयाउ।।
डोल डम्भ मुँह कारन। भूलेहू नाहीं पाउ।।
फिरत-फिरत तन थकित पैड़े। अब तुम्हारो दाव।।

शब्द

पिया मिलबे कहँ उठि चली सोहागिन नारि।
आप अपन सों भाखनो हरि रूप सँवारि।।
अर्ध उर्ध के अन्तरे तहँ सेज सँवारि।
सुख मन चौर डोलावहीं प्रभु की बलिहारि।।
अष्ठ कमल के भीतरे स्थित बनवारि।
गुर गम होय मेला करै। तन मन धन वारि।।
उलटि चलो आनन्द पुर जहँ चलत नसारि।
डक देत निर्भो भयो मृग चरत न वारि।।
हाट बाट नहिं आवई तहँ भरत करारि।
जन 'गुलाल' रस पीवही सतुगुरु बलिहारि।।54।।

झूठी सेवा करत आस। राम बिना मोह पहा बास।
तीरथ बरत देवता अधार। कोऊ नहिं पूछहिं यम के द्वार।।
यहि विश्वास भूलहिं मत कोय। माँझधार में बोरहिं सोय।।
लोक वेद महँ रत संसार। राम न चीन्हहि मूर्ख गँवार।।
ऐसहि समय गयो दिन बीती। बार न दहत बालु कै भीती।।
कहैं 'गुलाल' मूढ़ हम भाई। सबै स्यान हमहिं बोराई।।55।।

ससि औ सूर यवन भरि मेला। दृढ़ कै आसन बैठु अकेला।।
उलटि नाल गगन घर जावै। बिकसै कमल चन्द दरसावै।।

पुलकि-पुलकि छबि देखल, गावल निर्गुन गीत।।
या तन समै सोहवन हो, जानहु परतीत।
राम बिना कैसे जीवन हो, बालू ज्यों भीत।
सासु सोहागिन बेलसहिं हो, ननदी विपरीत।।
गाँव कै लोग नहिं आपन हो, सवती कै चीत।
सुनहु सखिया सहेलर हो, जौ कहल हमार।।
भव जल नदिया भयावन हो, कैसे उतरब पार।
उलटि पवन घर सोधल हो, सब रहा लजाय।।
जगमग-जगमग त्रिकुटी हो, देखि रहल लोभाय।
गंग यमुन बिच मंडप हो, तहाँ भूख न प्यास।
बिनु पर हंसा उड़ि मौने हो, वहाँ भूख न प्यास।
पाप पुन्य नहिं दुख सुख हो, नहिं रोग न सोग।।
सुषमन सार अमिय रस हो, तहाँ जोग न भोग।
गगन मगन धुनि गाजै हो, देखि अधर अकास।।
जन 'गुलाल' बँसहरिया हो, तहाँ करहु निवास।।33।।

सजूद मर्द यारा जिन्ह आप को बिचारा।
ज्ञान ध्यान करि संधान, उलटि बान मारा।।
अर्ध उर्ध मध्य नभ निकरि गयो पारा।
परम तत्त्व गति अनन्त, सिद्धन गुन गाया।।
और कोई क्या जानै अपर्बल प्रभु माया।
उमगी सोहं ब्रह्म, बिकसि कमल छाया।।
कहैं 'गुलाल' अतीत रूप जोति में समाया।।29।।

हरिपुर चलु या बिध सो जहाँ सन्तन बास।।
सतुगुरु सत्य लखावल, पावल मति मूल।
प्रेम प्रीति चित लावल, उन्हें देखल स्थूल।।
चाँद सूर घर आयल तिरबेनी के तीर।
निरखि-निरखि गति साजल दर्सन रघुबीर।।
सुरति निरति लै जाइब घर अगम अबास।
तहवाँ प्रान अनन्दि यम काटल फाँस।।
लोक वदे तीरथ ब्रत सब राखहि आस।
जन 'गुलाल' सति बोलहि उन हो मोरे पास।।26।।

मैं तो राम की चकरिया मन लाऊँगा, ताते सहज स्वरूप समाऊँगा।
उन मुनि धुनि में सुरति समाऊँ, उलटी गंग बहाऊँगा।।
सुषमन के घर ताड़ी लगाओ, अमिय अलूफा पाऊँगा।
आठो पहर करूँ असवारी, ज्ञान कै खंग लगाऊँगा।।
तरकस पवन बन्द लाओ, पकरि भौ आस ले आऊँगा।
साहेब रीझो नौबत बकसो, निसु दिन डँक बजाऊँगा।
जन 'गुलाल' भए दफ्तर दाखिल बहुरि न भव जल आऊँगा।।27।।

राग काफ़ी

उठि चलु मनुआँ बैरागी हो, हरि पुर परलि धमार।
चेतहु-चेतहु सतुगुरु हो मनसा पूरन तोहारि।।
मेरु दण्ड में जायहु हो भँवर गुफा के द्वार।
तहँवाँ जोति जगायहु हो जीव उतरेहु पार।।
जहँवाँ बसहि सहोदर तहँवाँ करेहु संभार।
दिन-दिन लगन लगायहु बहुर न आवनहार।।
जीव ब्रम्ह के यारी गाँठि परल बरियारी।
बाझ बझल नहिं छूटै, गहि कै बाँधि ले तारी।।
जब हम भइली पिया कै देखि जरै संसार।
कहैं 'गुलाल' जम्ह जीतल के अब खोजनिहार।।28।।

राग काफ़ी

अबिनाशी दुलह हमारा है।
जीतो जोग भोग सब त्यागो, भवसागर सों न्यारा है।।
कृपा कियो सतगुरु बर दीन्हों, उलटा चौक पसारा है।
तन मन धन नेवछावर वारों, कंत मिलै प्रभु यारा है।।
सुषमन सेज निरन्तर डासो, सोहंग चवर सुढ़ारा है।
ताहि पलँग पर पिय मोर बैसहिं, करूँ वै मंगल चारा है।।
अगम अपार अनभो अनमूरति, लोक बेद से न्यारा है।
कहैं 'गुलाल' भागेहुँ हम पायो, कियो है चरन अधारा है।।14।।

अघ तारन श्रीपति राया हैं।।
असरन सरन जाहि की बाना, सन्तन सदा सहाई है।
चौरासी पालन प्रति पालन, पल-पल पलक में छाई है।।
अनेक दुखी के दुख को हारन, गर्बिन गर्भ नसाई है।
सुर नर नाग[5] सिद्ध मुनि ध्यावहिं, थाह कहूँ नहिं पाई है।।
ध्रुव प्रह्लाद विभीषण को पन, पंडव जरत बचाई है।
प्रभु पग पर तन मन जिन दीन्हों, सकल हँकार अड़ाई है।।
ताके ऊपर आप बसतु है, दुःख निकट नहि आई है।
गगन मण्डल जिन आसन मार्‌यो, जगमग जोति जगाई है।।
कहैं 'गुलाल' मिले परमेश्वर, निसु दिन डंक बजाई है।।15।।

राग सारंग

गुन्हि के हार ले आव रे मालिन।
अच्छै अमर आनन्द अनमूरति, भाव से कंठ लगाव।।
सुषमन सूत धरि बंक नाल गहि, प्रेम कै धगा बँधाव।
सुरति निरति लै हरिदम भरि, भरि, ज्ञान कै सूई चलाव।।
हारि-हारि मन थकित भयो है, बानक बनि-बनि आव।
अन्नौ उदित साहेब हम पायो, जन गुलाल बनि जाव।।

भाग बड़ो बनि आयो हमार, भाग बड़ो धनि आयो।
जल ते कृपा किया सत्गुरु ने, उलटि गगन चढ़ि धायो।।
योग यज्ञ सबै हम छोड़ल, ममिता मइल बहायो।
एक नाम मन में जब आयो, हरिदम हरि हरि गायो।।
सहज स्वरूप सक्ति शिव बाधो, तामे सुरति बसायो।
यह गति ज्ञान सिद्ध कोई जानै, आनद डंक बजायो।।
अति आनन्द भयो मोरे जिव, मानिक मोल करायो।
कहै 'गुलाल' राम साहु आयो, घरही बैल लदायो।।

राग मंगल

गुन जानी गुनवन्ती नारि, तौ कन्त मनाइला हे।
अहो राम सुदिन लगन सोचाई, तबहि मन लाइला हे।।
अर्ध उर्ध के मध्य तौ चौक पुराइला हे।
अहो राम मुक्ता भरि-भरि थार, तौ आरती बनाइला हे।।
गंग यमुन के घाटे, कलसा धराइला हे।
अहो रामा मानिक बरै दिन राति तो चँवर सोहाइला हे।।
चौमुख दीपक वारि तौ माड़ो छाइला हे।
अहो शमा निरक्षर झरि-झरि लाय अमृत कस पाइला हे।।
गावहि सखिया सहेलरि, दुलहिन नागरि हे।
अहो राम जन 'गुलाल' सोहागिन प्रभु सँग भाइला हे।।

राग हमेज़

अँखिया खोल देखु, दुनिया है रँग बोर।।
यह तन जीवन दिवस चारि कै, धन योवन कत जोर।

राग विलावल

पिया मिलबे को उठि चलो सोहागिन नारि।
आपु अपन सो भावनो हरि रूप सँवारि।।
अर्ध उर्ध के अन्तरे तहँ सेज सँवारि।
सुषमन चँवर डोलावही प्रभु की बलिहारी।।
अष्ट कमल के भीतरे बस्ते बनवारी।
गुर गम होय मेला करै तन धन मन वारी।।
उलटि बढ़ो आनन्द जहाँ चलत न सारी।
डंक देत निर्भय भयो मृग चरनाही वारी।।
हाट बाट नहिं आवैइ, तहाँ भरत करारी।
जन 'गुलाल' रस पीवहि प्रभु की बलिहारी।।

राग धवलश्री

ऊगल चन्दवा रइन गत, भयल तहाँ भोर।
तब हम पिया कै पियरिया, दुख गयल मोर।।
मीलहु सखिया सहेलर, आनन्द घर कोर।
पिता सँग बनल बनौवा, दिहल गाँठि जोर।।
सेन्दुरा बन्धन मनिगन, तह कोटिन कोर।
पिया संग जब हम गवनेउ, तब छोड़ल जोर।।

राग विलावल

ऐसो ध्यान लगावहु सना, शून्य शिखर चढ़ि छोड़हु तना।
पाँच पचीस करो बसि अपने, तीन देव त्रिवेणी ध्याना।।
जोग जोति बरै निशि बासर, निर्खत मनुआँ भयो है देवाना।
बिकसेउ कमल अमिय तहँ बर्षत, सुषमन के घर पिअत अधाना।।
चन्द्र झिलमिल दामिन दमके, धुनि-धुनि सुनि प्रान रहत है समाना।
गगन मण्डल में ताड़ी लाओ, आसन दिढ़ कै हो चहु पाना।।
उमगि-उमगि मानिक मनि बर्खत, चूँगत ब्रह्म मिल्यो तहँ ज्ञाना।।
यम जीतो घर नौवति बाजै, अनको रूप मिल्यो तहँ जाना।।
कहै 'गुलाल' दासन को दास हम, जीतो जोग भोग तजि नाना।

राग सारंग

हे नर जानि लेहु हरि नाम।
ऐसो समय बहुरि नहिं पैहो, जनम जात निकाम।।
पाँच पचीस प्रबल तन में हैं, मनुआँ बसत देवान।
निसु बासर बिकल होइ धावहीं, भूलो फिरत दिवान।
आसा डोरी लिए सँग डोलहिं, जल पत्थल परवान।।
राम च चीन्हहिं ग़ाफिल बन्दा, यम लीहहिं गहि प्रान।
घट में साहब चीन्हत नाहीं, भ्रमत फिरत संसार।।
कहै 'गुलाल' गुर नाव में बैठो, तब हम उतरब पार।।

राग विलावल

नयनहुँ आगे खड़े आज हरि, नयनहुँ आगे खड़े।
सुर नर मुनि जाको खोज न पावहिं, केतिक यज्ञ करैं।।
कहा बरनों छबि बरनि न आवै, आनन्द सिद्ध भरे।
निरखि रूप भई है दिवानी, कोटिन चन्द्र हुए।।

पूरन ब्रह्म निहार के सुरति लगावई।
अजपा जपै हर हाल युक्ति मन लावई।।
घटत बढ़त नहिं कबहिं परम पद पावई।
कहैं गुलाल मन जीति निशान बजावई।।

इसिम अलिफ़ लगाई नूर ठहराइया।
पाँच पचीस को बाँधि उलटि के धाइया।।
हरदम प्रभु सों नेह कहूँ नहिं जाइया।
कहै गुलाल अतीथ ज्ञान तिन पाइया।।

ज्ञान करो मन बाँधि के लगन लगाइया।
निरखि रहो तहँ नाम तत्त्व ठहराइया।।
युग-युग अचल अपार परम पद पाइया।
कहै गुलाल सम दृष्ट तबहिं नर आइया।।

केवल प्रभु को जानि के इलिम लखाइया।
पार होई तब जीव काल नहिं खाइया।।
नेम करहु आप दोखज़ नहिं धाइया।
कहै गुलाल मन पाक तबबहि नर पाइया।।

भ्रम भूलो नर ज्ञान रामनहिं जानिया।
बहुत करत है ज्ञान राम नहिं जानिया।।
झूठ दसा न्योहार कपट बहु ठानिया।
कहै गुलाल नर मूढ़ सबै गति हानिया।।

अष्ट कवल फुलाय निरन्तर ध्यावई।
सुषमन सेज बिछाय के मन पवढ़ावई।।

एकै नाम अधारा हो।।
परखि-परखि निर्खत निस बासर, जग ते भयो निनारा हो।
अष्ट कमल में जीव बसुत है, सत्गुरु शब्द बिचारा हो।।
लै कै पवन हंस जब गवनेउ, त्रिकुटी भौ उँजियारा हो।
पैठि पताल मूल बन्द बाँधी, सुषमन सेज सवारा हो।।
निझर झरत अमिय तहँ बर्खत, मनुआँ पियत हमारा हो।
गगन मंडल में नौबति बाजे, आठ पहर एक तारा हो।।
मारेउ ममिता चित समानेउ, चौमुख दीपक बारा हो।
छूटो देह नेहँ रहै एक सो, आदौ ब्रह्म बिचारा हो।।
कहैं 'गुलाल' साहेब हम पायो, यम का करिहैं हमारा हो।।114।।

राग शंकरा भवन

लागलि गुरु कैं साट एक मोरि सखिया।
हम भइलीं मन भावन ए मोरि सखिया।।
पाँच सखी मिल मंगल गावहिं, मोतियन चउक पुराई।
तारी दै-दै भाँवरि फेरहिं, दुलहा बरनि नहिं जाई।।
चौका चारि चतुर्जन बैठे, आनन्द भेद बनाई।
चन्द्र लगन सिर सेंदुर सोभित, अमर सोहाग बनाई।।
नौबत धुनि चहुँओर दसहुँ दिश, माँड़ो, उदित सोहाई।
रोम-रोम मनसा पूरन भयो, दुलहिन पिया मन भाई।।
भाँड़व जारि बरिय तिन्ह मारल, खायल गाँव कै लोग।
कहै 'गुलाल' हमहीं संहारल, पुरन भयल तब जोग।।115।।

दीनानाथ अनाथ है कोई पार न पावै।
बरनो कवनी युक्ति सों कछु उक्ति न आवै।।
यह मन चंचल चोर है निस बासर धावै।
काम क्रोध में मिल रहो इहवै मन भावै।।
कृपा करहु करुना मई चरनन चित लावै।
अबकी बार यहि अन्ध के कछु दाया कीजै।।
जन 'गुलाल' बिनती करहिं अपनो कर लीजै।।116।।

राग गंधार गौर

राम नाम हृदय जौं ध्यावै। यम दुत ताके निकट न आवैं।।
पाँचहिं बाँधि पचीसहु बाँधै। साधै सुरति गगन आराधै।।
सोहं शब्द उठत जो तरंगा। बरत है जोति तहाँ मन सँगा।।
और न बर्ण न जाति-पाँती। चाँद सूर नहिं दिवस न राती।।
तन मन मेटि कै रहा समाई। सूरा होई कै पैठै जाई।।
जन 'गुलाल' बोलैं अमृत बानी। जो जानै सोई ब्रह्मज्ञानी।।107।।

राग गौरी

सहज स्वरूप भइलो मोरे मना। निर्मल निर्गुन निरन्तर धना।।
बिमल-बिमल बाणी धुनि गावै। शीतल शब्द सुनत बिनु काना।।
गगन मँडल में आसन मारो। धुनि सुनत अब भयो दिवाना।।
उमगि उमगि मुक्त तहाँ बर्खत। हंस रूप तहाँ चुगत अघाना।।
कहैं 'गुलाल' यह लगन हमारि। छोड़ि मया हरि जोति समाना।।108।।

मना अभि अन्तर ही लय लाव।
ना तौ जन्म जन्म जँहड़ाव।।
धन दारा सुत देखि कै काहे बौराय हो।
काल अचानक मारिहे कोउ सँग न जाय हो।।
धीरज धरु सन्तोष सत्य गुरु बचन सहाई हो।
पद अम्बुज को करु नवका, भवसागर तर जाई हो।।
अबकी बार हारि हारो मन, कहाँ लगि कहउँ बुझाई।
जन 'गुलाल' अनभो पद पायो, छुटल सकल दुनियाई।।109।।

राग मंगल

सत्गुरु लगन धरावल जक्तहुँ जानीला हे।
हरि जी से होइहै ब्याह बधू अब रानिउ हे।।

प्रेम नेम चाँचरि रचो रँग होरे होरी।
पुलकि-पुलकि प्रभु पास राम रँग होरे होरी।।
चाँद सूर उलटे चलेउ रँग होरे होरी।
उड़त अबीर अकाश राम रँग होरे होरी।।
इंगला. पिंगला खेलन लागो राम रँग होरे होरी।
सुखमन सहज निवास राम रँग होरे होरी।।
त्रिवेनी फगुवा बने रँग होरे होरी।
मणि गँण झरि चहु पास रँग होरे होरी।।
कुंज कुंजनि रति परो रँग होरे होरी।
चन्द्र बदनि हरि साथ राम रँग होरे होरी।।
कहै 'गुलाल' आनन्द ध्वनि सो ध्यान लगाइए रँग होरे होरी।।

मन खेलहु हरि सो होरी। अनहद बाजन लागे।।
ध्वनि सुनि थकित भई बृज बनिता। काम धाम सब त्यागे।।

हिंड़ोला

बिपरीत रचल हिंडोलवा, गुरमुख बचन सुबोल।
रबि ससि दूनों बाधल, तब हम झुलब हिंडोला।।
त्रिकुटी खम्भवा गड़ावल, शुन्य शहर झकझोर।
सुरति निरति चित लावल, झूलब झकोर-झकोर।।
गंग यमुन तट झूलब, सुषमन के घर पान।
जगमग जोति जगावल, यम कर मर्दल मान।।
चान सूर दुनों तानल, बीचहि बिच संधान।
उड़ो हंसा घर गवनेउ, निकल गयेउ स्मान।।
शिव घर शक्ति बसावल, फूलेउ ब्रह्म ज्ञान।
कहै 'गुलाल' घर पावल मिललहिं सन्त सुजान।।

राग होरी

काया नग्न में जोरि, होरी खेलहु।
राम राय के फाग परो है, सुनि चकृत उठि दौरी।।

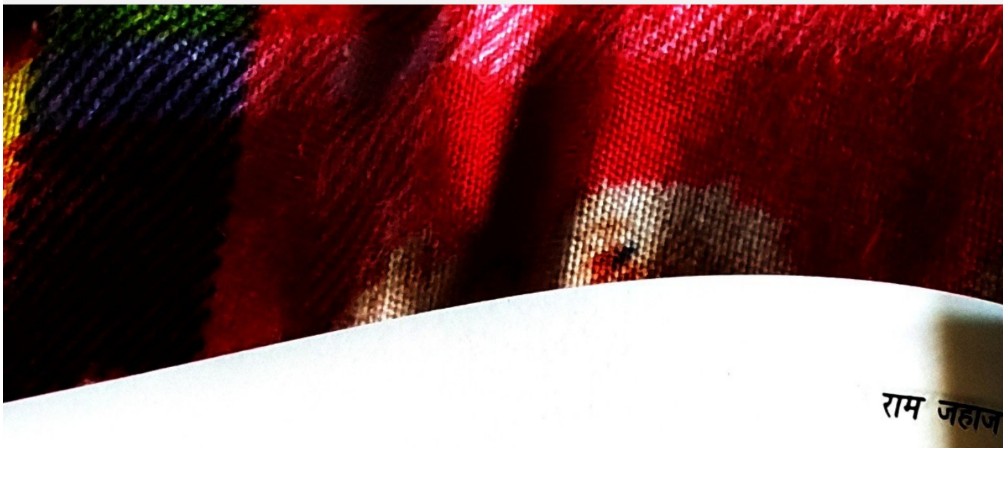

फूल अनुभव फुला भँवर ताम मिला,
फूल नाहीं भँवर नाहीं गति है न्यारी।
शब्द सोहं उठो जीव तामें बसो,
सुषमना सहज तहाँ बहत नारी।।
पैठि पाताल आसमानहूँ को छेद कियो,
ब्रह्म सो ब्रह्म भयो ब्रह्म भारी।।

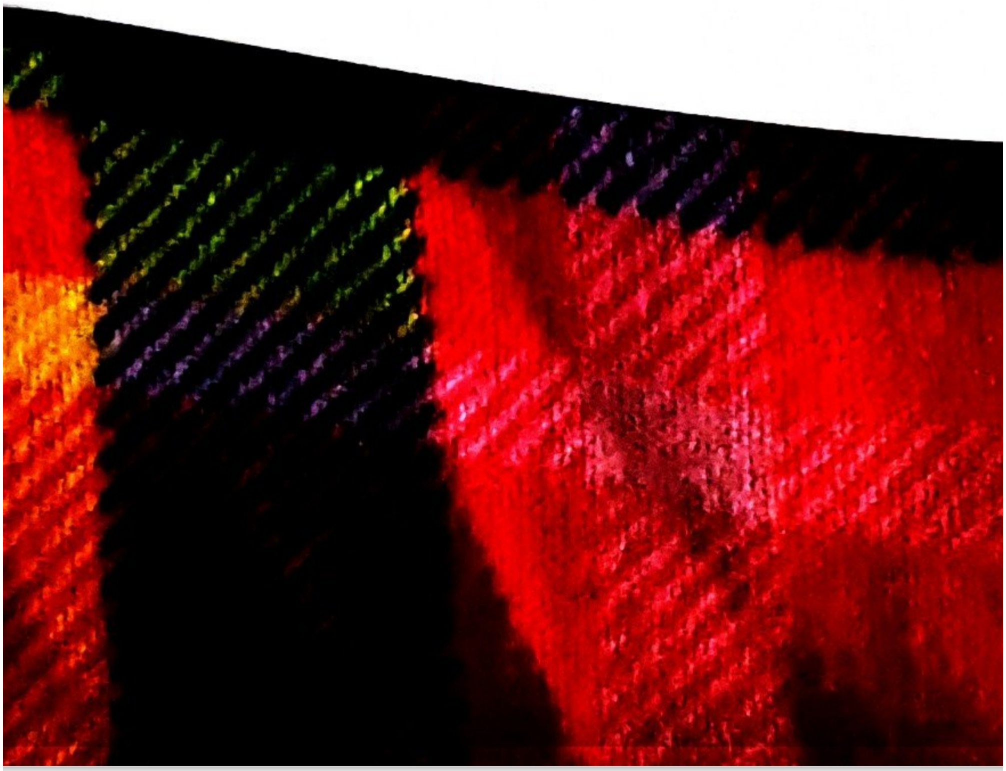

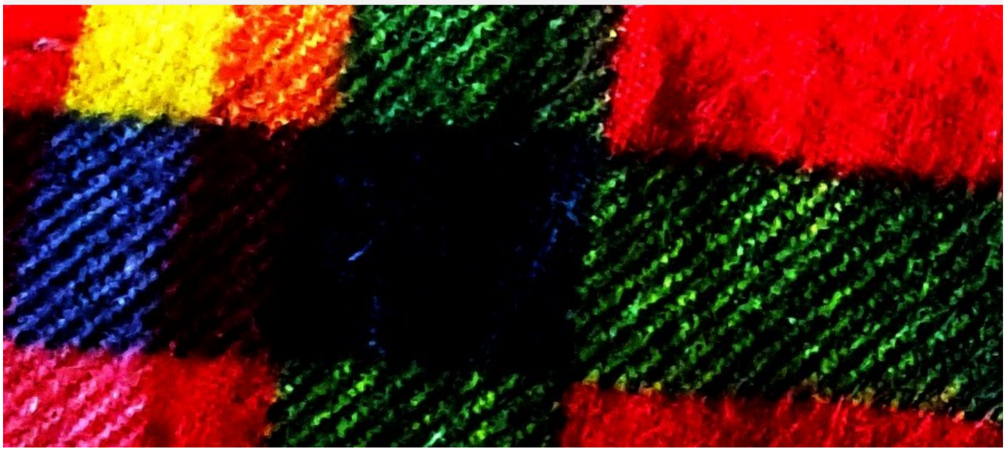

नर खेलहु फाग बनाय मगन मन झूमरिया।।
अष्ट कमल बिकसित भयो रस झूमरिया।
भँवर करै रस पान रस झूमरिया।।
अर्ध उर्ध मधि खेलई रस झूमरिया।
सुषमन सहज निवास रस झूमरिया।।
बंक नाल चढ़ि गयो रस झूमरिया।।
आयो प्रभु जी के द्वार राम रस झूमरिया।
कुंज गलिन में रंग रचो रस झूमरिया।।
बैठो गगन में जाय रस झूमरिया।
जगमग ज्योति लगन लगो रस झूमरिया।
कोटि चन्द छबि बार राम रस झूमरिया।।
मुक्ता झरि बर्षन लागि रस झूमरिया।
दशो दिशा झनकार राम रस झूमरिया।।
समय जानि नर खेलहु रस झूमरिया।
फिर पाछे पछताय राम रस झूमरिया।।
जन 'गुलाल' तन मन दियो रस झूमरिया।
पूरी खेप हमार राम रस झूमरिया।।

राग मनोरा

करि संजम हम जाइव हो, सुन्य नग्र जहँ ठाँव, मनोरा.।
तीनीहुँ गुनहिं मिटाइब हो, चौथे पद ही निवास, मनोरा.।।
स्वेत सिंगासन बैठब हो, बहु बिधि मंगल चार, मनोरा.।
जन 'गुलाल' गुन गाइब हो, सत्य लोक समाय, मनोरा.।।

हृदय राखि गुन गाइब हो, अनुभव रूप बनाय मनोरा.।
मूल चक्र गहि बान्हब हो, बैटब गगन में जाय मनोरा.।।
सुन्य नगर में समाइब हो, मृत करत जहँ आपु मनोरा.।
निशु बासर गुन गाइब हो, सेज सहज में जाय मनोरा.।।
जन 'गुलाल' तहँ भाइव हो, छोड़ि दियो संसार मनोरा.।।

याघट ज्योति जगाइब हो, निशुबासर उँजियार मनोरा.।
पाँच पचीस तीन बाँधल हो, साधौ सुरति अकाश मनोरा.।।
बिनु बाजे धुनि गाजै हो, अधर महल के द्वारा मनोरा.।।
तहँ देखत रूप सोहावन हो, स्वेत छत्र मनिआर मनोरा.।।
कहै 'गुलाल' आनन्द भयो हो, प्रभु कै बलिहार मनोरा.।।

राग काफ़ी

राम की चकरियाँ मन लाऊँगा। सहज स्वरूप समाऊँगा।।
पाँचहि मारि पचीसहिं मारो। घर पर दीप बराऊँगा।।
उन मुनि धुनि में ताली लाओ। उलटी गंग बहाऊँगा।।
सुषमन के घट भरि भरि पीओ। अमिय उलूफा पाऊँगा।।
आठौ पहर करो असवारी। ज्ञान को खांड़ लगाऊँगा।।
तर्कस तेज़ पवन बन्द लाओ। पकड़ि मौ आस लेइ आऊँगा।।
साहेब रीझो नौबत बखशो। निशु दिन डंक बजाऊँगा।।
जन 'गुलाल' भयो दफ्तर दाख़िल। बहुर न भव जल आऊँगा।।

राग होरी

होरी खेलो राम धमारि। होरी खेलो राम धमारि।।
नृतत ताल चाँचरि उघटत। सन मुख ठाढ़ि मुरारि ललना।।

सत्य नगरी बाजै निशान हिंडोलवा लागि डोरी।
साचै लाद लदावत, झूठै सब औतार।।
पाँच भूत जिन जानेउ, उतरि गए भव पार।। हिडोला.।।
रबि शशि दूनो बहही, त्रिबिध झकोर।
लागै चित चंचल, तामे डोलै जोर।। हिडोलवा.।।
रज बिज देहँ सँवारेउ, पुतरी रचो बनाय।
मनुआँ तामें बसई, यक छत राज कराय।। हिडोल.।।
महि मया मद मातेउ, जानेउ नाहिन सार।
कहत-कहत हम थाके, सूनत नाहीं गँवार।। हिडोल.।।
साधु संगति जिन जाने, यक नाम बिश्वास।
कहै 'गुलाल' हिडोला से नर झूलै पास ।। हिडोल.।।

राग काफ़ी

मनुआँ अगम अमर घर पायो, बिन कर दण्ड बजायो।
बिनु पग नाच नचावन लागो, बिनु रसना गुन गायो।।
गावनि हार के काया नाहीं, अनभौ रँग बनायो।
अर्ध उर्ध के मध्य निरन्तर, तिरबेनी ठहरायो।।
लौकै बिजुली उड़ै गगन में, मुक्ता झरि तहँ लायो।
भयो घोर निशुबासर नाहीं, शुन्य भवन डर पायो।।
जन 'गुलाल' पिया अब मिलहें, अनहद योति जगायो।।

अर्ध उर्ध को खेल कोऊ नर पावई।
चाँद सूर को बाँधि गगन ले जावई।।
इंगला पिंगला बांधि सहज तब आवई।
कहै 'गुलाल' हर रोज अनन्द तब आवई।। 17।।

रहित भयो घर नारि तत्त्व मन थीरा।
ब्रह्म भयो तब जीव गयो तब पीरा।।
निसु दिन लायो ध्यान झरत मणि हीरा।
कहै 'गुलाल' सोइ सत्य अनन्द फकीरा।। 18।।

साहेब दायम प्रगट ताहि नहिं मानई।
हरदम करहि कुकर्म भर्म मन ठानई।।
झूठ करहिं ब्योहार सत्य नहिं जानई।
कहै 'गुलाल' नर मूढ़ हक्क़ नहिं मानई।। 19।।

सुन्दर साहब जानि के प्रेम लगावई।
अजपा जपै सुजाप सुरति ठहरावई।।
रबि ससि दूनों बाँधि निरन्तर ध्यावई।
कहै 'गुलाल' अतीथ तत्त्व घर छावई।। 10।।

निर्मल रूप अपार सों सुरति लगाइया।
बिनु पग चलो चाल अनदपुर जाइया।।
देत दमामा ढोल सो यमहिं नचाइया।
कहै 'गुलाल' सोई शूर सहज घर पाइया।। 11।।

अकबति अलह सों जानि सुबुक सों बोलना।
हरदम हक़ ही लाय रब्त नहिं डोलना।।

श्री गुलाल साहेब का अरिल छन्द

प्रान चढ़ो असमान सहज घर जाइया।
सुन्न सहर झकझोर सुरति ठहराइया।।
योग युकित सों नेह ब्रम्ह में समाइया।
कहै 'गुलाल' अतीथ सत्य तब पाइया।।1।।

सुन्न सरोवर घाट फूल इक पाइया।
बिनु डांड़ी का फूल केतिक मन भाइया।।
अमिय पियाला पिया भँवर रस पाइया।
कहै 'गुलाल' अतीथ राम गुण गाइया।।2।।

अष्ट कमल जब फुल्यो उलटि के धाइया।
बंकनाल भयो सूध अगम घर जाइया।।
दसो दिश परै जोति तहाँ समाइया।
कहै 'गुलाल' सत सूर अनन्द तब पाइया।।3।।

उनमुनि बन्द लगाय सुरति ठहराइया।
चाँद सूर दोउ बाँधि उर्ध मुख धाइया।।
सुषमन शीतल स्वाद चुभुकि रस पाइया।
कहै 'गुलाल' हरि नाम रब्त तब पाइया।।4।।

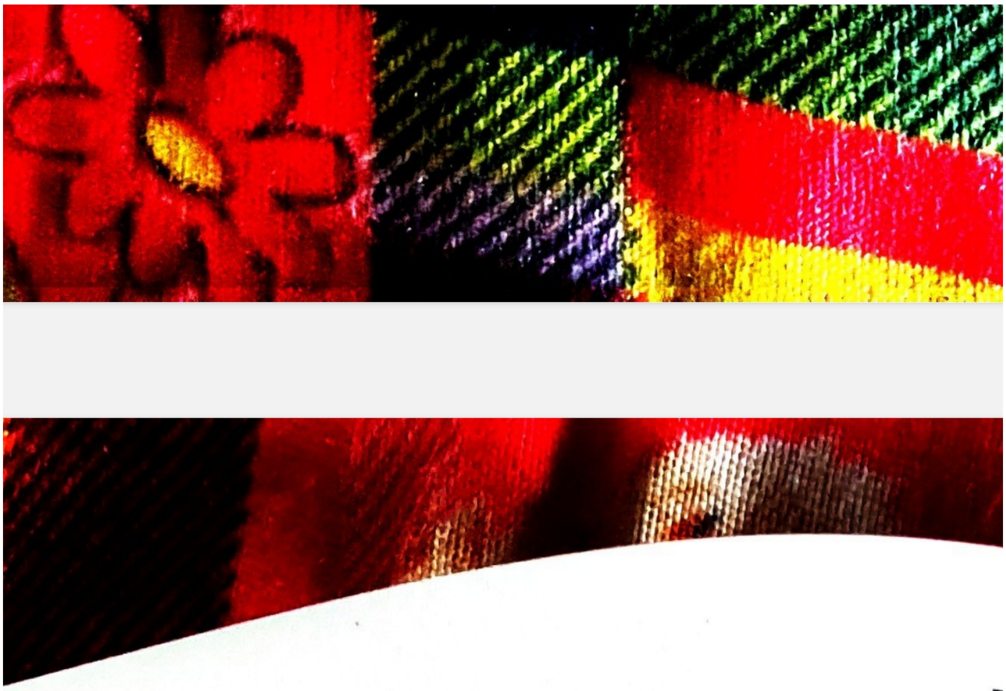

२

दुआ धोख जो दुर्मति छोड़े। त्रिगुण ताप बहावै।।
सुरति निरति ले आसन मारो। सकल सन्तोष जो आवै।।
तिया त्रिकुटी मन जो राखै। झिलमिल जोति जगावै।।
उनमुनि लागे बन्द सहज धुनि। चन्द मण्डल घर छावै।।
चौथे पद पर पग जो नावै। अनभो डंक बजावै।।
गगन मण्डल में बाजी मारो। वंक नाल चढ़ि जावै।।
पचएँ पर्म तत्त्व जो जानय। शुन्य भवन मन लावै।।
पाँच पचीस तीन बस करिकै। सेत छत्र सिर छावै।।
छए छमा शील जो उपजै। सत्य सन्तोष बढ़ावै।।
नव दर दसहूँ दिश में धावै। सहज समाधि जो पावै।।
सतये सदा सरन मन राखै। शब्द कै भेष बनावै।।
कोटि चन्द निछावर वारो। मानिक जोति जगावै।।
अठयें अगम जोति जौं बारै। दरसि परसि चित लावै।।
सोहंग सुरति रहै निशु वासर। अनत कतहुँ नहिं जावै।।
नउपे नाम निरंजन नउका। कन हरिगुन चलावै।।
साँचे कहे झूठ नहिं आवै। भवसागर तरि जावै।।
दसयें द्वार की ताली खोलै। अविगति गतिहिं समावै।।
सकल कामना पूरन मन कै। मउजै मउज मिलावै।।
कहैं "गुलाल" तब सत्गुरु चीन्है। घर ही में घर छावै।।

चेतावनी

प्रान की समाई। सुर सहजही लगाई।
तब नामई सोहाई। मूल बन्द जो लगाई।
तत्त्व ज्ञान में समाई। रस पूर सो कहाई।
सुर सहजही सहाय। दम दम उन जाय।

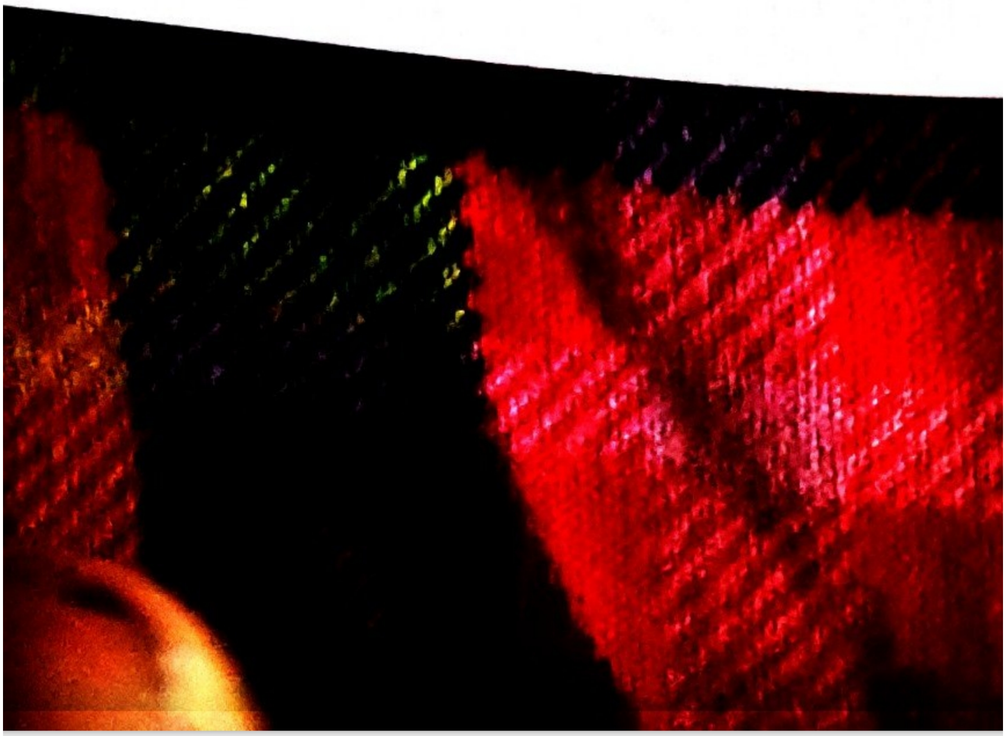

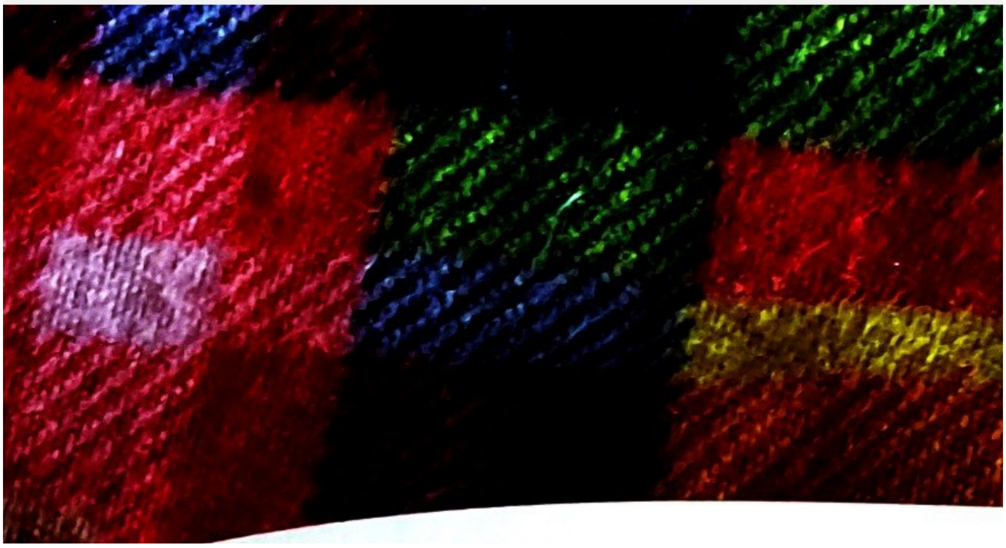

बिचार।।
अचरज यक हम देखल पंडित करहु बिचार।।
का हम कथब का हम सूनब, काह करब ब्योहार।
जगमग अचल देखल, पंडित भयल बिचार।।
ज्ञान कथब धुनि सूनब, नाम करब ब्योहार।
कहाँ से जिण आयल, कहाँ जिव कर बास।।
कहँवा शक्ति समाइल, कहँवा शक्ति निवास।
ब्रह्महि से जीव आयल, नाभी कमल में बास।।
शुन्यहिं शक्ति समाइल, शिधर शक्ति निवास।
कहँवा शिवकर आसन, कहवाँ शिवकर ध्यान।।
कहवाँ शिव कै मंडप, कहवाँ शिव स्थान।
अगमै शिव कर आसन, अगमै शिव स्थान।।
कहवाँ से मन आयल, कहवाँ परल भुलाय।
शक्तिहिं लेई मन गवन हैं कीन्हे, सहजेहिं घर ठहराया।।
कवन शब्द गुन गावल, कैसे बिन्दु मिलाप।
कौन द्वार होय जाइब, कौन करब तहँ जाप।।

अगम शब्द गुन गावल, नादहि बिन्दु मिलाप।
पश्चिम द्वार होई जाइब, आपु करब तहं जाप।।
कहै 'गुलाल' यह अनुभव, सक्तिहिं कयल बिचार।
जो यहि पदहिं बिचारै, सोई सतगुरु सार।।

राग बसन्त

मेरो गुर बसन्त हरि दमहि लागु, वाही कृपा घर फाग जागु।।
छओ ऋतु जब फूलेउ फूल, त्रिबिध पवन सँग भँवर भूल।
अति आनन्द तहँ भयो हुलास, फूल-फूल में पछि अपास।।
कायर कुटिल नहिं पावै ठाम, ढोल बजावत फिरत ग्राम।
हरपुर सुरपुर लिए भार, कासो कहौं यह गति बिचार।।
आगा पीछा मधि न होय, लोक बेद उहाँ नाहिन कोय।
कहैं 'गुलाल' सतगुर बलिहार, प्रभु बसन्त भयो हमार।।

पैठि पताल नाभि तहाँ सोधो। शशि अरु सूर उलटि कै बोधो।।
बृगसै कवल उगेव परगासा। काटि करम भयो जोति में बासा।।
कहै 'गुलाल' तहँ चित्त समाई। उदित चन्द छबि बनि न जाई।।

सुषमन सहज बहै तहँ नारी। गगन गुफा में लागी तारी।।
झरत अधर अमिय रस धारा। मनुआ भरि-भरि लेत करारा।।
नाम समुद्र तहँ उठत अपारा। लोक वेद दोनों ते न्यारा।।
सुरति जाय जहँ तहँ लेजाई। मनिगन भूषण रतन लदाई।।
उन मुनि युनि तह रख न स्वासा। होत निरंजन रूप अकासा।।
कहै 'गुलाल' सोई प्रभु है हमारा। एक भयो तब कौन बिचारा।।

कबै राग मन सहज समाई। तन मन डालि रहो मन लाई।
चारिउ फल अभय पद पाई। नओ भक्ति हृदय तब आई।।
कै बैराग बिरह मन लावै। निशु दिन नौबत ढोल बाजवै।
नृत होत तहँ बाजत तूरा। कै संग्राम जीव भी सूरा।।

साख़ी

सर भयो दावा गयो मारि. चढ़ो मैदान।
कहै 'गुलाल' सोइ सन्त है निशु करि उगवै भान।।

आरती

आरति मनुआँ करु बनवारी। सदा सुफल हरि नाम उचारी।
सतुगुरु शब्द अगम जो पावै। निशु दिन नौबत ढोल बजावै।।
गरजै गगन जे मनुआँ हरखै। चहुँ ओर मानिक मोती बरखै।
आरति एक अनन्द पुर बारी। सहज सुषमना लागल तारी।।
ऐसी आरति जिन नर गाया। ताके निकट न आवै माया।
कहै 'गुलाल' हम अगुन अनारी। हमरे आरति सतुगुरु बारी।।

मौजी तनहि सँवारो।।
हरखि-हरखि खेलन लगे। उठत जोति बिनु वारे।।
पाँच पचीस सखिया मिल जुलि लिए। तिरगुन खेल पसारो।।
अर्ध उर्ध मधि भौंरा गुंजहि। झरत अमिय रस धारो।।
उलटि कमल त्रिकुटी गयऊ। सून्य शहर झनकारो।।
ग्वाल बाल खेलन लगो। उगे कोटि ससि तारो।।
गँग यमुन तट रँग यमुन तट रँग रचो है। घना शब्द निवारो।।
भाँवरि दै दै सँगहि रतो है। काहू को उन सँभारो।।
गगन मगन धुनि बाजै गाजै। दुलहिन रूप सँवारो।।
गठि बन्धन प्रभु सो बनो हो। सनमुख बदन निहारो।।
तत्त्व तिलक स्वामी दियो है। अम्बर पहिरि बिहारो।।
दसो दिशा में जगमगि-जगमगि करु। मंगल बृज की नारी।।
सतुगुरु सत्य दयालु भयो है। पूरन पुन्य हमारी।।
जन 'गुलाल' तहं मिलो मगन होय। यम जीतो मन मारो।।

आजु बिदुर घर पाहुन आए।।
सकृत सजूद निरखि पद परसत। पूरन प्रेम बढ़ाए।।
श्याम स्वरूप सलोनी सूरति। उज्ज्वल क्षेम कहाए।।
आनन्द मंगल उठत बधावर। चन्दन चौक पुराए।।
सहज कै थाल सत्य कै बाती। नूतन आरति लै धाए।।
बरन ब्रछा लियो चरनोदक। आदर कै बैठाए।।
भाजी राजी सो प्रभु रीझो। सिर धरि आनि चढ़ाए।।
कृपा सिन्धु सन्तन के नायक। रुचि सों भोजन पाए।।
जै जै शब्द उठत तिहूँ पुर में। सुर नर नागन गाए।।
धन्य भाग प्रभु कृपा बिदुर को। 'जन गुलाल' बलिजाए।।

राग बिलावल कामोद

आजु घर लागी शब्द सनेह।
पुलकि-पुलकि मन रत भयो। नेवछावर करि देहु।।
पाँच पचीस तीन लेयि चलो। रटत नाम अलेह।।
मन्दहि-मन्दहि पवनहिं लियोरी। उड़ि गयो तन कर खेह।।
गगन गुफा में अमिय चुअत है। सुषमन भरि-भरि लेह।।
अष्ट कमल दस कुलिस भयो है। सोहं शब्द उठेह।।

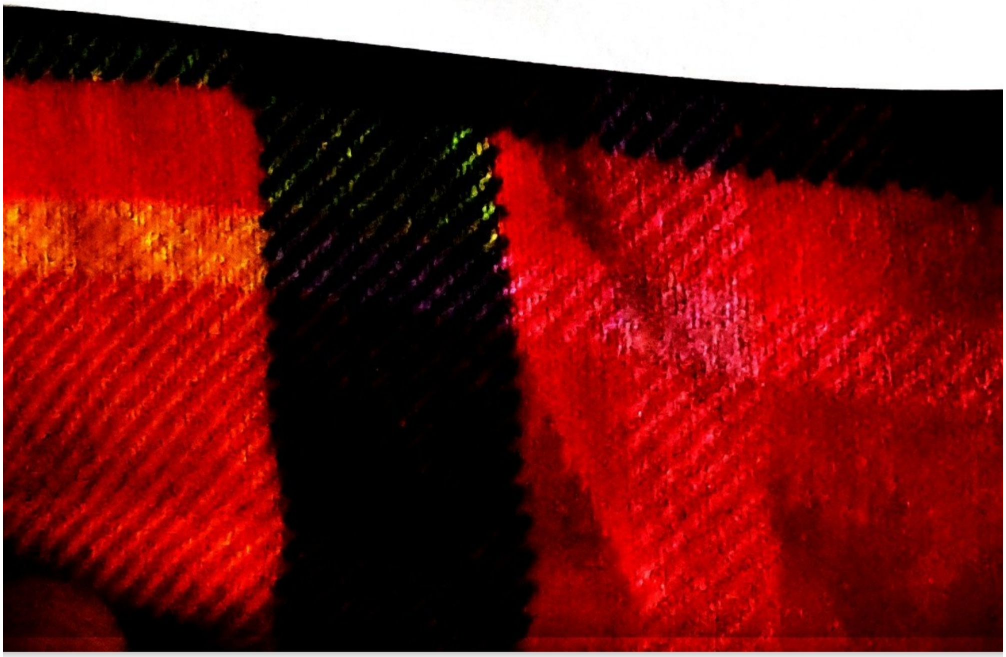

आनन्द आरति करु मन लाई। जा को गुन त्रिभुवन महँ छाई।।
ब्रह्म बिष्णु महेशहु गाई। सुर नर नाग देव मुनि ध्याई।।
पश्चिम दिश जब पवनहु जाई। सुषमन के घर ताली लाई।।
नाद सुरति जोति यक ठाई। ऐसी आरति बिरलहु पाई।।
निशु दिन नौबत बाजै तूरा। सिर पर साहेब सदा हजूरा।।
मन क्रम बचन सत्य उर आई। जन 'गुलाल' तब आरति पाई।।

आरती

हिन्दू हर आरति जौ पावै। राम नाम कै मसल चलावै।।
गगन मण्डल में आरति बारै। तबही जीव नेवछावर डारै।।
शुन्य कै थार सत्य कै बाती। सुरति निरति बारै दिन राती।।
सुषमन भाँवर दै दै गावै। ब्रह्म बिष्णु सिव सँग न भावै।।
अचल अमूरति आरति तारी। थकित भयो घर नौ दस नारी।।
रोम-रोम आरति बलिहारी। सकल मनोरथ आरती उतारी।।
अजर आसन आरति धरि जोरा। सत्य आसन मन थकित भा मोरा।।
तन मन धन निवछावर वारी। मोह मया त्यागो सब झारी।।
आरति सहज जो सुमिरन करई। आरति चरन सरन तर परई।।
आरति फिर जब नृत समाई। मुक्ता अछर ते सुदुकनाई।।
आरति जब घर बरल बनाई। रोम-रोम पद आरति पाई।।
कहै 'गुलाल' आरति हम पाई। जन्म मरन कै संसै मिटाई।।

मुसलमान जो आरति करई। अलः इमाने बानी फरई।
आरति बैत आपु जो करई। दुरमति छोड़ि असल चित धरई।।
आरति एक एक़ीन बिचारी। भल मन्दा जानिय किसमत कारी।

रबि शशि दूनों बाधि के सुरति लगाइया।
अजया जपै सुजाप सोहं डोरी डोरी लाइया।।
लगन लगो निरंकार सुरति सँग पाइया।
कहै 'गुलाल' अतीत सत्त गुन गाइया।। 37।।

यह संसार सयान आपु नहिं जानई।
तुरत होव विज्ञान ख़बरिं नहिं मानई।।
लोभ भरी हर रोज़ राम नहिं जानई।
कहै 'गुलाल' जम हाथे सबै बिकानई।। 38।।

सीतल साहब नाम पियत नहिं कोई।
माया सों निसु दिन हेतु पलक मह रोई।।
दिन दिन ग़ाफ़िल होई काहु नहिं जोई।
कहै 'गुलाल' हरि हेतु ग़ाफ़िल नर सोई।। 39।।

सुषमन सुन्दर राज करत नहिं प्रानी।
भटकत फिरै संसार साँच नहिं आनी।।
मरि-मरि रह-हर हाल झूठ सँग सानी।
कहै 'गुलाल' तत ज्ञान आपु पहिचानी।। 40।।

उदित भयो जब ज्ञान कर्म मन नासई।
भरो पदारथ नाम अचल पद पावई।।
दिन-दिन पूरन सन्त सोई मोहिं भावई।
कहै 'गुलाल' हरि हेतु कोई नर पावई।। 41।।

दोज़ख़ दुनिया भोग सबै नर सोइया।
पाँच पचीस के फेर फिरत मति खोइया।।

अजर अमरपुर देश सन्त रन साजिया।
मन पवन होउ साज नौबति धुनि बाजिया।।
द्वादस चढ़ि मैदान युद्ध तब लाइया।
कहै 'गुलाल' मन सूरत पर चढ़ि गाजिया।। 20।।

राम रहे घर माहिं ताहि नहिं मानई।
पूजहि पत्थल भीति मया मन सानई।।
झूठ रहत हरि हाल करम बहु ठानई।
कहै 'गुलाल' जड़ भूल आपु नहिं मानई।। 21।।

सुन्न सहर आजूब सहज धुनी लागई।।
इंगल पिंगल को खेल अमिय तब पागई।।
पुलकि-पुलकि करि प्रेम अनन्द छबि छाजई।
कहै 'गुलाल' कोई सन्त ताहि पथ लागई।। 22।।

इश्क अली सों साफ अदल सोई पाइया।
रोज़ रहै मुश्ताक़ सकूनत आइया।।
क्योंकर बूझै आपु सभै नर रोइया।
कहै 'गुलाल' फ़क़ीर सत जिन जोइया।। 23।।

तीरथ दान को आस अन्ध नर धावई।
राम न चिन्हत साँच सो जन्म गँवावई।।
तिरगुन गुन महँ डोलत सबै नचावई।
कहै 'गुलाल' नर भरमि भरमि जहँड़ावई।। 24।।

झिलिमिलि झलकत नूर नयन पर नूरा।
हरदम होंत अघोर बजत तहँ तूरा।।
रबि ससि दूनों सँग रखत पूजत पूरा।
कहै 'गुलाल' आनन्द गति बोलत सूरा।। 25।।

चन्द और सूर को पैठि पाताल में।
उलटि चलो चाल सत्य रूप पाया।।
निरखि देखु आप तब जाप अजपा जपै।
सुरति सो निरति लेई भवन छाया।।
उदय भयो ज्ञान स्मान सो निकरि करि।
जीव मिलो जोति आनन्द भाया।।
कहै 'गुलाल' मन जीति बाजी पाई।
योग को करै साहेब समाया।।

सहज सरूप अबधूतत सोई जानिए।
योग के युक्ति सों सिद्ध काया।।
अगम अपार गति सूझि तबहीं परो।
निरखि रहो जोति तिहुँ लोक राया।।
देखि स्वरूप तब ज्ञान आपन भयो।
करम तब गयो छोड़ो जो माया।।
कहै 'गुलाल' मेरे ख्याल याही परो।
भौज मिलो ब्रह्म को खोज पाया।।

मूल को बाँधि स्थूल को सोधि कै।
प्रान होई शूर तत्त्व जुधि लाया।।
कर्म व्यवसाय सत्‌गुरु बचने फरै।
छूटै नाहीं खेत यम जीत आया।।
घण्ट नौबति बाजै जीति सिर पै गाजै।
नाम औ निशान वै रिकाब धाया।।
कहै 'गुलाल' कोऊ वाके ओर ताकै नाहिं।
अमर भयो राज सुख सैन पाया।।

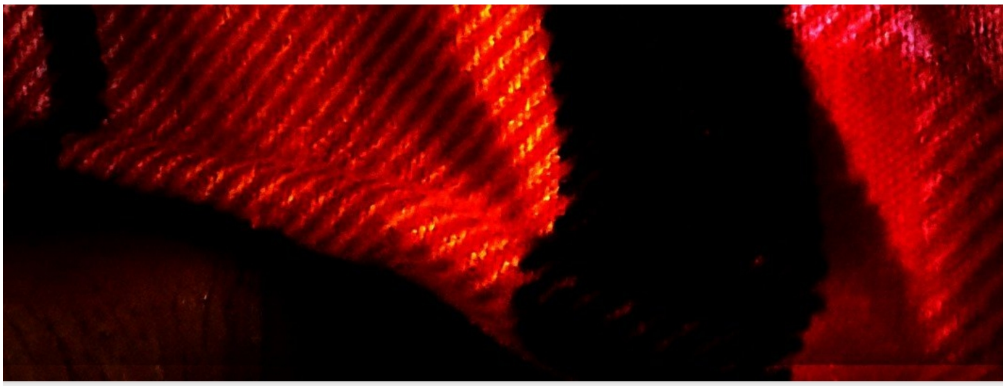

गुरु के प्रताप जब साधु संगति करै, फूलो तब ब्रह्म सन्तोष आयो।
आपना जाप ते जाप अजपा जपै, चाँद और सूर्य को बाँधि नाया।।
सहज नारि बहै शब्द अनभौ गहै, सुरति सों निरति मिल नाम गाया।
नयन बिनु सूझिया पिण्ड बिनु जूझिया, जीत के काल अनहद बजाया।।
परी आन्दक चहुँ ओर दसो दिसा, गेब का ज्ञान अदल चलाया।
कहै 'गुलाल' वह साफ साहेब हुआ, अपना काज आपुहिं बनाया।।

अष्ट दल कमल में जीव का बास है, मन और पवन सुमृत बनाया।
हाड़ अरु माँस चाम अरु रोम मिल, रचो है देह मानुष बनाया।।
पाँच अरु तीन पचीस तामें भरो, गर्भ ते काढ़ि बाहर लाया।।
कियो करार कर्तार को जानिबो, भूलि गई बात सब सुधि हेराया।।
फैलि रहो हाट सब साथ माया लियो, कियो है याह जोरू लाया।।
भयो फ़रजन्द सब धन्ध आगे परो, भाई अरु बाप को संग लाया।।
कहै 'गुलाल' जड़ जानु नर राम को, सबै अरुझाय नहिं हाथ आया।।

मेरुदण्ड है करहु पयानो, पश्चिम दिश द्वारा पावै।
सोहं शब्द उठै तहँ अनभौ, जागै जोति गगन छावै।।
शशि नाहीं है सूर दिवस नहिं, रैन कुहुकि मन मिलि जावै।
आपु अपन आपु महँ देखै, अवरि कहीं नहिं चित जावै।।
'गुलाल' कहै सतूगुरु तहँ देख्यो स्वेत साई पावै।।

बैत

या गवार की आपसार। करता तूँ दौर दार।।
हरगिज है है नकार। इस मो मनो बेकार।।

साख़ी

इन्द्रादिक जौं राज होय, ब्रह्मा बिष्णु शिव भूप।
पाँच पचीस तिन ना छुटै, जौं न मिलै हरि रूप।।
रूप समानेउ सहज घर, छूटो जक्त को फेर।
पाप पुण्य सबई थको, पूर भयो तब सेर।।

रेखता

राम के काम में काम नाहीं करत नर।
फिरत संसार चहुँ ओर धाया।।
करत सन्ताप पाप सिर पर लिए।
साधु अरु संत नाहीं नेह लाया।।
बांधिहै काल जंजाल जम्ह जाल में।
रहत नाहीं सुधि सब चेत हेराया।।
कहै 'गुलाल' जो जो राम कहँ जानि है।
जीत के काल सोई ज्ञान पाया।।

राम राम राम राम आरती हमारी दुनिया सबै हैवान देव पूजै झारी।
सतुगुरु जब कि दियो करार, श्रवनन सुनो धरो आचार।।
बाकी सुदुक है जीव हमार नेम व्रत चारी।।
योग युक्ति औ मन है हमार, तापर रहै पवन कै भार।
काया, थार में जोति धरिकै तृकुटी लेइब बारी।।
उनमुनि घन गरजि जोर, सुषमनि करि-करि झकोर।
बंकनाल चुभक मेरु दण्ड अलख पुर्ष भारी।।
शेष फनि मन आनन्द, प्रान चुभक करत कन्द।
जीतो जोग रोग सोग करम भरम डारी।।
अति अथाह थाह नाहिं, परस भयो गुर की बाहिं।
नाहिं आदि अन्त मध्य एकही निहारी।।
कहै 'गुलाल' सुनो यार, आरती पूरन हमार।
राज करो दसो दिशा छत्र सिरे धारी।।

मन मानवै मन को जानु, आरति सोई ज्ञानी।
द्वादश में सुरति तानि उठत तत्त्व बानी।।
सूर साधि मूल बाँधि, उलटि चाल ठानी।
गली-गली ब्रह्म मिलो अलख पुर्ष जानी।।
वेद भेद सब खुआर, पथल जल मानी।
राम नाम हेतु नाहिं पशु समान ज्ञानी।।
आपु-आपु चीन्हत है नाहिं, फिरत है भुलानी।
कहै 'गुलाल' सत्य फ़कीर दुनिया है बौरानी।। 626।।

कुम्भेले आई के भरिया रे, चाँद सूर्य को बन्द किया।
त्रिकुटि महल यक फूल है रे, उलटि भँवर अमिय पिया।।
गंग यमुन बहाय के रे, फेर फेरो सुखमन थिया।
'गुलाल' कहै मन खेलता है रे, खेलत साई सो रँग किया।।

चाँद बिना जहाँ चाँद है रे, वहाँ रंग अजब खेलो खेला।
जीव ब्रह्म सों मेल है रे, आवै न जाय मिलो मेला।।
सुन्दर साहेब मौजूद है रे, रहत सदा करते केला।
'गुलाल' कहै सत्य रूप साहेब, कृपा करि के बोलो बोला।।

आनन्द हिंडोलना झूलना रे, तहँ जोति घर आनन्द गया।
सुषमन सहज मौजूद है रे, वहाँ सीप बिना वर्षे मोती।।
बिनु नैनन निरञ्जन रूप देखै, हरि नाम निरञ्जन सेती।
'गुलाल' कहै यह झूलन झूलै, कोई आशिक सुमती।।

आनन्द महल के बीच में री, मगन भयो मन पाक लाया।
सत्य सहज कै खेल है रे, तब सपनो साथ न आध माया।
'गुलाब' कहै सतुगुरु कृपा, साहेब चरन में घर पाया।।

आलम कर मजमून हे रे, नहिं जानत न्दा साईं।
सबई शर्म बिगारता है रे, मन साचै नाहीं कुफेर खाई।।
सबई मन सो माफ करो, अपनी खबरि बेगारी जाई।
मद मति मों मति रहो सबे, नहिं सूझत अंधा सांईं।।
बिगरी फिरों सब दिवस इते उत, कुछ अपनि खबर नहिं आई।
'गुलाल' कहै यह खूब नहीं हे, ममिता भूलो सबईं जाई।।

सतुगुरु के पद मन धरो, अदल करो बन्दे साई।
कहँ आवत हौ कहँ जावत हौ, किसमति फिरते धाई।।
नेह प्रतीत न करते हौ कछु, फिरत-फिरत दिन जाई।
योग युक्ति सो नेह करो रे, तबहिं जीव कुरालाई।।
यहि दुनिया के बीच बिगार है, समुझहु दिल बिच भाई।
कहै 'गुलाल' नर चेत करो रे, गफ़लत में दिन जाई।।

आरती

आरति मनुआँ करहु मुरारी। दुख सुख मोहन आवै गारी।
मन बैराग जौ असान जानै। पाँचों चोर बाँधि पर आनै।

या घट भीतर मढ़िया सँवारी। एकै पुर्ष उहै नवनारी।
उलटै पवन अरु पश्चिम धावै। परै नाद जोति घर छावै।
थकित भयो जब मन कै माया। कहै 'गुलाल' तब आरति पाया।

अगम गढ़ चढ़ि बानी निर्मल, पंच तत्त्व मंगल करं।
सहस दल को कमल कवल बृगसित, शेष मुख शोभा भरं।।
ब्रह्म बिश्नु शिव शक्ति देवन, सहित सेवन पूजितं।
निराधार अधार अविगति, सकल मुनि आनंद करं।।
अति देख रूप स्वरूप जगमग, उठति अखंडितं।
डालि तन मन बैठु चित्त दे, लहरि लेत आनंद भरं।।
अति अथाह बिचार नाहीं, प्रेम प्रीति सो रमि रहं।
कहै 'गुलाल' अतीत सोहं, यहि भेद में लगि रहं।।

कवित्त

परम पुनीत मीत सुन्दर सुजान मान,
कहाँ ले करों बड़ाई यानी वाके गुन को।।
गणिका अजामिल तारे महा महादानौ मारे,
गावै बानी शेष नाग रैन दिन की।।
ऐसो प्रभु पायो तब नौबति बजाय उठो,
है तरंग दसो दिशा जाके डंक धुन की।।
कहै 'गुलाल' मेरे और की आस नाहीं,
केवल है भरोसो एक बाके चुन धुन की।।

पायो है परम पद गुरु ने कृपा कियो,
भयो आनन्द अब पाप हूँ बहायो है।
रटो है हरि नाम छोड़ो है सकल काम,
बाजै अनहद तब जोतिहूँ जगायो है।।
जाको ध्यान सुर नर मुनि उधरै सदा करि,
कहाँ लों करौं बड़ाई मोहिं नाही आयो है।
कहै 'गुलाल' सत्य लोक में रहो सदा,
सन्तन के साथ में जागीर करि पायो है।।

श्लोक

अगम ज्ञानी ब्रह्म मूरति, कर्म सबई बेवरि जितं।
बिमल बानी रुचिर सोभा सोहंग, सत्य दिगाम्बरं।।
भभूति भूषन जोति लपटेउ, पदुम आसन राजितं।
उनमुनि में लागु ताली, पर्म सोई सन्यासियं।।
जटा जूटि न जोति जगमग, गंग यमुन नेवामनं।
गगन गुफा में रहनि उनमुनि, यह संन्यासी लच्छनं।।
चाँद बाँधो सूर बाँधो, बृकसि कवल सोहं चढ़ं।
त्रिकुटि आसन शुन्य डासन, 'गुलाल' सोई अवधूतनं।।

बैराग ब्रह्म को भेद जानै, सहज शुन्य नेवासनं।
तहाँ ज्ञान ध्यान न नेम पूजा, सो बैरागी साहिबं।।
सत्य कंठी जाप मुद्रा, सेल्हि प्रेम हिये गलं।
तत्त्व ताखी तिलक सिर दिए, जोति झिलमिल नित बरं।।
ज्ञान गुदरी मउज मन में, बीसर्जनं अविगति रतं।
नयन भरि-भरि अधर बर्खत, कोटि चन्द्र सुधा झरं।।
बैराग रूप अकार अद्भुत, प्रेम पद पर चित धरं।
'गुलाल' ऐसो गुरकरो नर पाप पुण्य सबै तरं।।

चौपाई

तुम्बा तीन भाँति बनायो। चौथ नीर मारिया लगायो।।
सुषमन शीतल पियत नीर। निकलि दसो दिश आनन्द फीर।।

कुबरी कर्म काट लै आई। ज्ञान खरादे रचो बनाई।।
सत्गुरु के घर बैठक दीन्हा। मनुआँ तहाँ रहत लव लीन्हा।।

तिलक तत्त्व कर दियो लिलार। अगम भेद बनो टकसार।।
एकादश तिलक दियो धीर। कहै 'गुलाल' अलमस्त फ़कीर।।

असन बटी सन ताली लावै। द्वादस पैठ गगन घर धावै।।
गगन जोति में रहै समाई। कहै 'गुलाल' आवै नहिं जाई।।

कंठी काठ कर्म जौ डारै। अजपा जपै जोति तब बारै।।
सुमिरन जोति वैश्नव होई। कहै 'गुलाल' अतीथ है सोई।।

कोपिन माल बाँधो जब द्वार। उलटै पवन उठै झनकार।।
अष्ट कमल फूलै जब-जब फूल। जन 'गुलाल' हिंडोला झूल।।

मुरछल मन फेरै मन लाई। अगम जोति दसो दिश छाई।।
सत्य शब्द लै मुरछल बाँधै। कहै 'गुलाल' फिरत सब धाधै।।

पउआ प्रेम पगन जौ नावै। उनमुनि लाई गगन चढ़ि धावै।।
रिमझिमि बर्षत मानिक मोती। कहै 'गुलाल' पउआ चढ़ु सेती।।

कमर बस्ता होय अगम गति जोवै। उलटि सुषमना गतिहिं बिलोवै।।
अजर फाँड़ बाँधो तत सार। कहै 'गुलाल' यह रहनि हमार।।

राग मलार

मन में जागेव प्रेम मुरारी।
अर्ध उर्ध में बैसल पण्डित, सुषमन दै दै तारी।।
चाँद सूर मगु थकित भयो है, ब्रह्म अग्नि पर जारी।
उलटि निरन्तर निरखि बिचारो, स्वेत सहज उँजियारी।।
उमगि-उमगि मुक्ता झरि लायो, गगन गरज धुनि भारी।
पाँच पचीस सखी गन गावहिं, अपनी-अपनी पारी।।
तन मन धन नेवछावरि वारो, प्रभु दर्शन बलिहारी।
जन 'गुलाल' अनुभव पद पायो, कन्त मिलो बनवारी।।

आए प्रभु मंगल समय हमारी।
उमगि-उमगि घन-बरखन लागे, रुचि से सेज सँवारी।।
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिं, उठत गुंज नभ भारी।।
लवकत बिजुली चमकि चहूँ लिए। लागेउ चरन मुरारी।।
चाँद सूर निस बासर नाहीं, सुषमन जोति पसारी।
बिकसेउ कमल अमिय रस धारा, भरि-भरि लेत करारी।।
गगन मण्डल में मगन भयो मन, सत्गुरु की बलिहारी।
जन 'गुलाल' पायो है परम पद, यारी कियो बनवारी।।

राग बिहाग

काया दह फूलेउ वृगसि कवल रघुनाथ।
एका एक अमल जौं पावै तब साचा सत्गुरु भावै।।

प्रेम पदारथ हिय में राखै सुमिरतही सुख पावै।
दुआ दोष जौ दुरमति छोड़े तृगुन ताप बहावै।।
सुरति निरति लेई आसन मारो सकल सन्तोष जौ आवै।
तीयाँ त्रिकुटी जौ मन राखे झिलमिलि जोति जगावै।।
उनमुनि लागै बन्द सहज धुनि चन्द्र मण्डल घर छावै।
चौथे पद पर पग जौ नावै अनभौ डंक बजावै।।
गगन मण्डल में बाजी मारो बंक नाल चढ़ि धावै।
पचमें पर्म तत्त्व जौ जानै शुन्य भवन मन लावै।।
पाँच पचीस तीन बसि करि के सेत छत्र सिर छावै।
छठयें छमा शील जौ उपजै सत्य सन्तोष बढ़ावै।।
नव दर छोड़ि दसो दिश धावै सहज समाधि सो पावै।
सतये सदा सरन मन राखै शब्द को भेष बनावै।।
कोटि चाँद निवछावर वारो मानिक जोति जगावै।
अठयें अगम जोति जौ बारै दर्स पर्स चित लावै।।
सोहं सुरति रहै निश बासर अन्तहिं कतहुँ नहिं जावै।
नवयें नाम निरंजन नवका कनहरि गोन चलावै।।
साचै कहै झूठ नहिं आवै भव सागर तरि जावै।
दसयें द्वार का ताली खोलो अविगति गतिहि समावै।।
सकल कामना पूरन मन कै मौजहि मौज मिलावै।
यकादस नाम जौ पूरन पावै अगम निगम नहिं भावै।।
कहै 'गुलाल' तब सतगुर चीन्है घरही में घर छावै।

राग बिलावल

कब तुहँ हीन भैलो राम, सुनियत भक्तन लुटिला धाम।
नाम देव कै गाय जियायो, दास कबीर डुबन नहिं पायो।।
प्रह्लाद अम्बरीष प्रतिज्ञा राखी, कहहु तो और बलाओं साखी।
गज को ग्राह छोड़ाए जहिया, पाण्डव जरत बनायेहु रहिया।।
जहँ-जहँ गाढ़ भक्तजन पाई, तहँ-तहँ प्रभुजी भयहु सहाई।
पइठ पताल संखासुर मारो, हनाकुश कर ओद्र विदारो।।
बाराह रूप हृणाक्ष बिदारी, कहाँ न तुम कयल मुरारी।

प्रेम प्रतीत करि शब्द सोहंग धरि।
सुखमन सेज सुन्दर बनाया।।

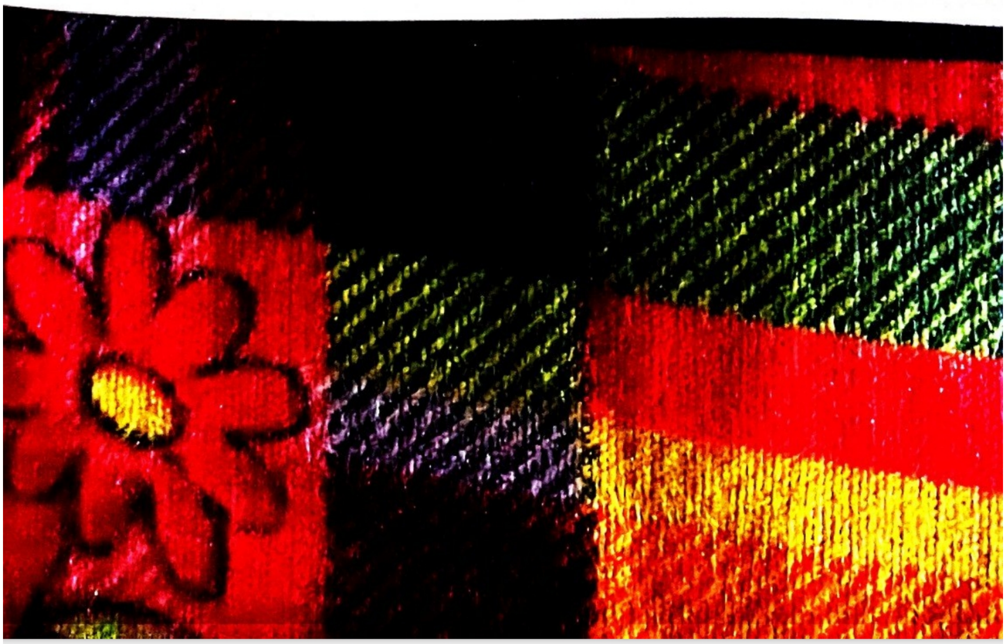

झरत तहँ अमिय पियत मन साफ भयो।
उठत अनहद आनन्द भराया।।
भर्म तबहीं गयो ज्ञान अनभव भयो।
योग के युक्ति सो जोति छाया।।
लोभ अरु मोह को मारि बाज़ी लियो।
ज्ञान की शक्ति सों अमर काया।।
कहै 'गुलाल' हरि हाल साहेब मिलो।
काल का करै सत्य सूर राया।।

इंगल पिंगल जबै होय यक तारी लागै मनि बरै।
सत्य रूप सरूप समावै मानिक मुक्ता सो झरै।।
परमातमा है पूरन स्वामी सरनागति सबई फरै।
वेद भेद यह नाहीं जानै नर अधीन कैसे धरै।।
यह मति आपु बिचार जानि कै कह 'गुलाल' साँची करन।
चन्द सूर पानी पवन गंग यमुन रबि ससि धर।। 30

पाप पुन्य अरु दया धरम सबई तरि जावै।
तन मन सों करै प्रीति अडोल अभय पद पावै।।
शील क्षमा रहै हृदय छुटै नहिं कबहिं सन्तोषा।
भक्ति भाव अरु सरस बनि धारै परतोषा।।
हरि प्रसाद सन्तन गहनि प्रेम प्रीति हृदये धरै।
राम ढरनि जापर अहै सत्गुर कृपा साँची फरै।। 31

हे मन कुटिल कुकर्मी सबै जानत है तोही।
कर्महीन लिए सँग साफ गति आव न तोही।।
लोभी बिषई करत रहत हठ युक्ति न जानै।
यह आदत अव छोडु राम को सच कर मानै।।
बिमल-बिमल बानी उठत तहाँ सुढारहु नेह ही।
पाखण्ड भेद मत त्यागहू अन्त धूर की खोह ही।। 32

सकल पदारथ सर्ब सुखहिं आलस करि खोवै।
लोभ छोह रहो ब्यापि मोह निद्रा पड़ि सोवै।।
जौ मन चर्नन लागु राम बिनु कौन छोड़ावै।
स्वारथ में सब भूल नाम कबहूँ नहिं आवै।।
प्रेम पदारथ अमृत बचन हरिदम तू नितहीं गहै।
साँच राचु मन राम सों कोऊ तेरा नहीं अहै।। 33

दयावन्त सब दीन रहै सब
एक

राग उधवा

चाँद सूर दोऊ सम करि हो, बाजत जहँ तूर।
निरझर झरै तहँ अनुभव हो, वहाँ सत्य हजूर।।

अर्ध उर्ध कै बटिया हो, त्रिकुटी के ठाँव।
बाजन बाजु गहागह हो, उठत तहँ नाव।।
गंग यमुन तहाँ साजल हो, तहँ उलटि नहाव।
निरझरि झरै तहँ मोती हो, जाय गगन समाव।।
सोहंग सहज झुलावल हो, उठत है नूर।
शिव शक्तिहिं गहि बाँधल हो, तब भौ सूर।।
अष्ट कमल बिकसेउ हो, आनन्द बधाव।
फूल फुलल तहाँ अविगति हो, भौंरा लोभाव।।
अबकै गयल नहिं आवन हो, रहो अगम समाय।
तब हंसा भयल परम हंसा हो, सब कर्म नसाय।।
सन्त सभा महँ बैठक हो, सतूगुरु कर गाँव।
कहै 'गुलाल' प्रभु उधवा हो, अब मेटल नाँव।।

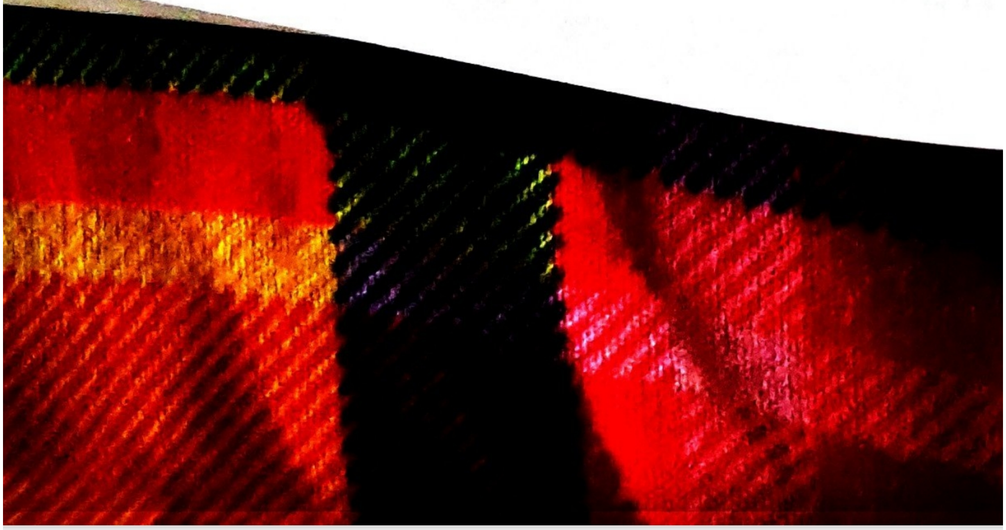

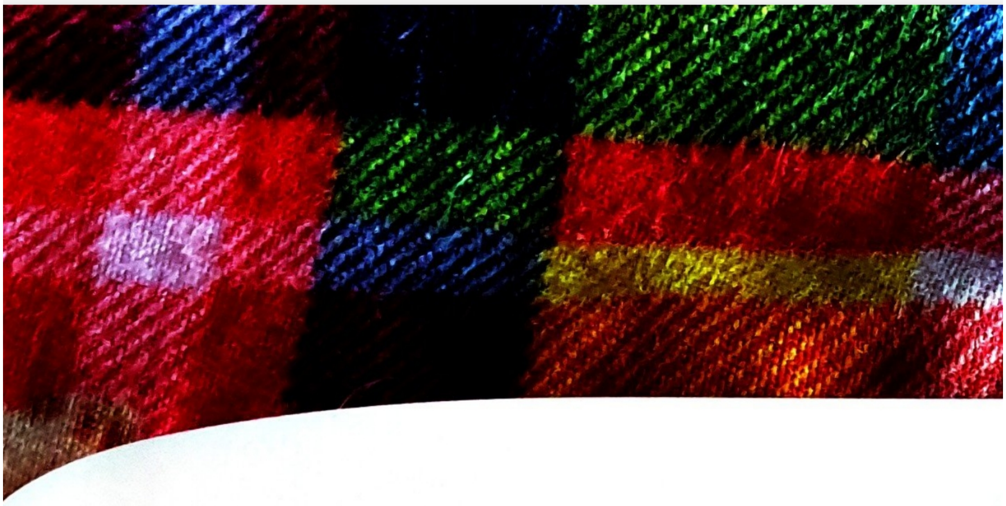

अति आनन्द तहाँ उठै अघोर, मन मुरीद तब भयल मोर।
लोक लाज और चारि गारि, सुनत बसन्त सब गयो हमारि।।
नाहिं ताहि जन्म मरन कुल कानी, धनि सतगुरु खेलहिं।।
घरहीं लागो रितु बसन्त, धन्य भाग सँग खेलै कन्त।।
कहै 'गुलाल' सतगुरु बसन्त, सोई सूर कोई खेलत कन्त।।

साख़ी

सकल स्वरूपी पवन को, तीनों लोक भरि अण्ड।
कवन पवन के चलते, गर्जत है ब्रह्माण्ड।।
सुषमन द्वारे आसन मारो, मूल पवन चलै मेरु दण्ड।
निरति सुरति सों ताड़ी लाओ, गरजै पश्चिम तब ब्रह्माण्ड।।
राम-राम मन से कहै, दूजो भाव न होय।
सतगुरु साँचा जेहि मिलै, इह गति पावै सोय।।

राग मनोरा

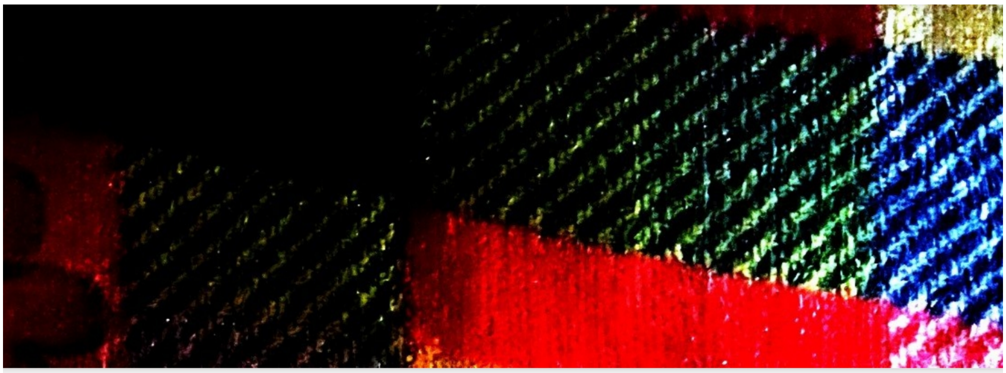

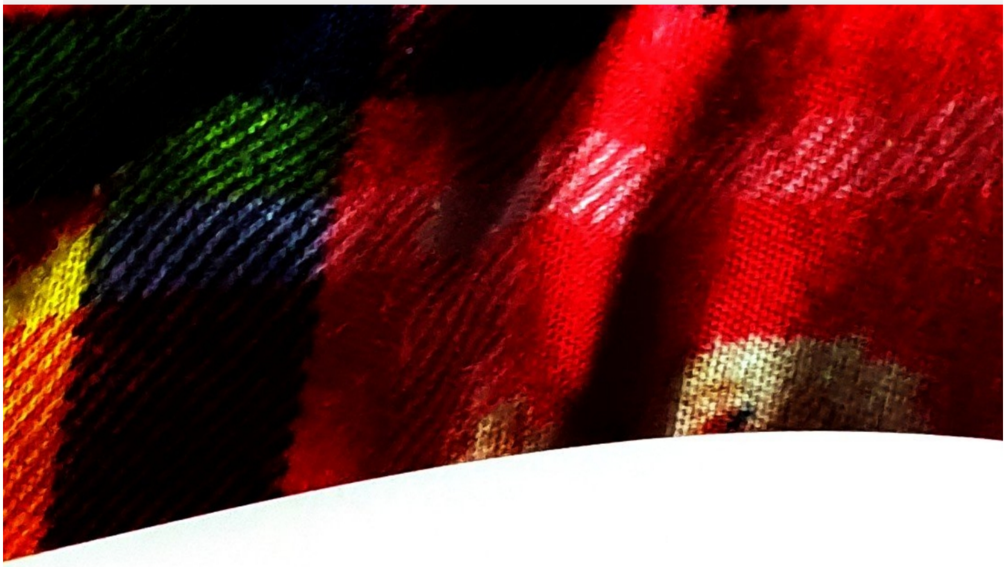

सोहं सुरति रहै निशु बासर टरत नहीं कितहूँ टारी।
छकि-छकि मनुआँ पियत अमिय रस, सन्तत चुअत करोरी।।
धनि सत्गुरु जिन्ह युक्ति बतावल, तिन्ह की मैं बलिहारी।
सन्त सभा में बैठक पायो, कहै 'गुलाल' भिखारी।।

बसन्त

काया पुर खेलहु रितु बसन्त, उन्मत यौबन फिर काल अन्त।
उर्ध अर्ध बिच उठत फाग, सुषमन के घर अनहद बाज।।
उठत तरंग आनन्द धमारि; उमगि-उमगि गुन गावहिं नारि।
अष्ट कमल जब फूलेउ फूल, आदि अन्त भरि मिलेउ मूल।।

आदि आनन्द अमर स्थान, मन राजा तहूँ परस ज्ञान।
ज्ञान भयो जब दसा द्वार, मिलो जोति तब कन्त हमार।।
कहै 'गुलाल' तब मिलो इयार, अनतहि ज्ञान फिरत मंजार।।

भोर भयल मन मानेउ छूटेउ जग संसार।
जन 'गुलाल' गुन गावहिं मिलिहैं कन्त हमार।।

गावहु गुन अब निगुन उलटि गहहु असथूल।
गुरु कै बचन हिय राखहु प्रेम नेम लेइ झूल।।
मूल चक गहि बाँधहु चाँद सूर समतूल।

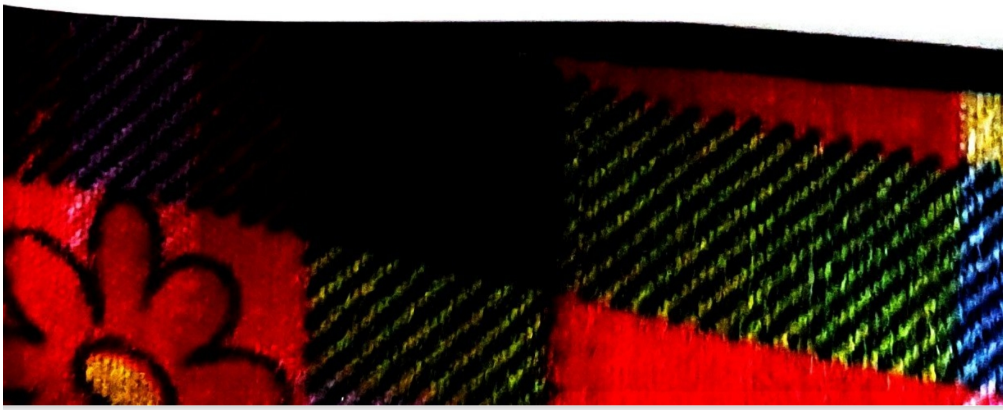

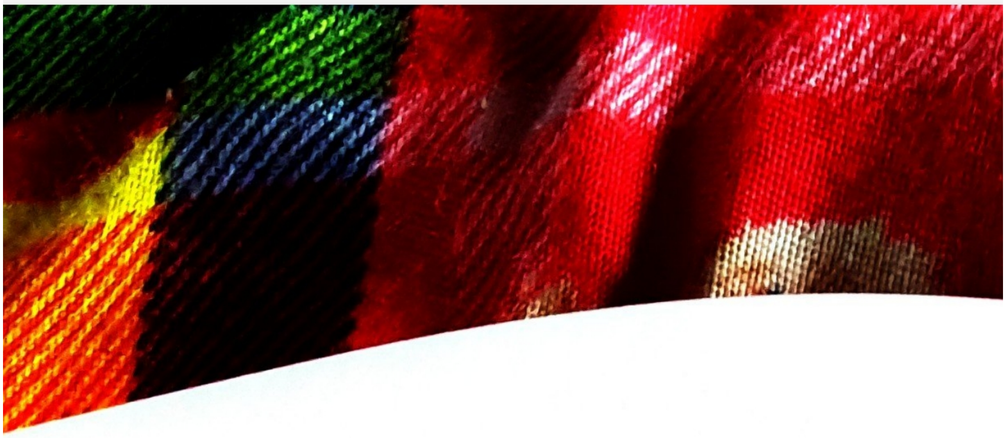

बिनु पग तहवाँ पँवढ़इ अष्ट कमल दल फूल।।
त्रिकुटी खम्हवा गड़ावहु सुषमन बाजै तूर।
गंग यमुन तिर बैठहु मानिक झरत है नूर।।
चलहु शिखर गुरु ज्ञानी हँगल पिंगल भरपूर।
सोहंग डोरी लगायो चढ़यो गगन भ्यो शूर।।
अनभव पद पर भावे है गयो प्राश्चित दूर।
जनर 'गुलाल' ऐसे झूलहिं संतत रहहि हजूर।।

राग कान्हरा

अहो झूलहिं अनहद तूर बजाई।
बिनु जल कबल बृगसेउ हो, भँवर फिरहिं मन लाई।।
चकवा शब्द सुनि व्याकुल, पिया बिनु सहो न जाई।
रबि शशि खम्भवा गड़ायेउ हो, सुरति की डोरी लगाई।।
झूलहिं सोहागिन हो, हंसा गवन मिलो जाई।
सोहं शब्द सोहावन हो, उठत आनन्द बधाव।।
बिरहिन मनहिं आनन्द भयो छूटो जक्त कै चाव।
प्रेम मगन मन मानेउ हो पुलकि-पुलकि गुन गाव।।

शुन्य भवन में समाइब आनँद उदित प्रकाश।
बिनु बाजे धुनि बाजई गाजै गगन में जाय।।
तीनों गुन तहँ गाबहिं जै जै करहिं मुरारि।
प्रेम हिंडोललवा रतन बनाई झूलहिं आतम नारि।।
झूलि झूलि तन त्यागल पलटि रहो प्रभु जाय।
यम कै देस हम छोड़ल जन 'गुलाल' सति गाय।।

हिंडोला करो आनन्द मंगलचार।
प्रथम सुकृत नाम को धरिकै प्रेम पदहिं हिय लाय।
सतुगुरु शब्द जे पुरिहै दिन्हों शोकहिं सबई नसाय।।
पाँच पचीस तीन को त्यागो चौथे पद पर जाय।
तहँ उठै लहरि अनन्त बीना को सखिया देत झुलाय।।
चाँद सूर्य जो खम्हा रोपो सुरति की डोरी लगाय।
मूल चक्र बिचार के बाँधो सूनी नग्र समाय।।
प्रेम पेटारी में जा बैठ कै झूलहु गगन में जाय।
हारि-हारि मन हारि के बैठो और कहीं नहिं जाय।।
तहाँ न ज्ञान न ध्यान पूजा अगम घरे पर जाय।।
तहाँ उठति है गति को प्रेम भरि लपटि चहूँ दिश धाय।
काम क्रोध जौं मोह को त्यागो जीव रहो है समाय।।
सन्त सभा में जाय के बैठो बहुरि न इतही आय।
दसहु दिशा में फूल है फूलो जोति जगमग पाय।।

साख़ी

मोलना मजहम होय के, रहै साहेब सों पाक।
कहै 'गुलाल' सोई मोलना, औरी फिरत निफ़ाक।।

चौपाई

सो सन्यासि जो भर्म मिटावै। नौ दर मूँदि गगन चढ़ि धावे।।
सत्य कै भेष बनावै सोई। ताको आवागमन न होई।।
चाँद सूर के रहमति करई। दाम दिरिम टूट न परई।।
लाभ बिभूत लगावै सोई। सदा अखंडित कबहिं न रोई।।
प्रीत कै जटा बढ़ावहु भारी। अगम भेष काहु नहिं टारी।।
मुद्रा डालि कै रूह जगावै। सो संन्यासी अनभुत गावै।।
पुलकि पितम्बर राखहु जानी। कबहुँ न होवै जीत कै हानी।।
भेष संन्यासी धर्म चलावै। उनमुनि लावे जोति जगावै।।
बंक नाल रस पीवे सोई। सुरति मिलैं संन्यासी होई।।
पान अपान करहु यक संगा। गगन मँड़ल होय नाद तरंगा।।
सुन्य पगे मन निर्मल होई। अवै न जाय संन्यासी सोई।।
ज्ञान उदित जब आनन्द भयऊ। सोई संन्यासी परायन गयऊ।।
युक्ति योग कै जानै सोई। नाम निरंजन नाम समोई।।
रीझि-रीझि के लावे ध्याना। सहज के बारी नाम बखाना।।
कबहीं अवय न जावै सोई। सो संन्यासी ज्ञानी होई।।

उलटि कमल जोति महँ होई। सतय सोनरई पाकी सोई।।
सुरति निरति कर सौदा करई। जीव जमा कप थाती धरई।
लेत देत कर साफी करई। खरा माल महक नहिं धरई।।
पचीसौ रत्ती साधि धराई। काँटा बहई न खोज सवाई।।
सबई सयाने खोटी करई। धर्मो जाय नर्क सो परई।।
जाति सोनार कप कर्म न करई। भाड़ो होइही नाहक मरई।।
आन धात कय खबरि न लखे। तत्त्व माल लय जिव महँ रखे।।
सोई सोनार रहै मुश्ताक। तब होवे सोनरई पाक।।
सुन्य कय संज्ञा बातें करे। रहै सचेत जीव नहिं टरे।।
जोरि-जोरि सब माल बनावे। पंच फरिश्ते पकरि जरावे।।
इ सब खोटी चुगुली करई। जमा जोर महँ बात बिगरई।।
रहो सचेत चोर नहिं लेई। जाति बिगारिह गारी होई।।
अपनहिं कर्म और नहिं जाई। पाक होय तब काल न खाई।।
गगन गवन सोनरई करई। लाभ लेइ बिश्वास न टरई।।
सत्य नाम कय मोल चलावे। अवइ न जाय सोनार कहावे।।
पूरा होय जगत् महँ रहो। एकै बाति झूठ मति कहो।।
जप्ति जमाने बहुते होई। रहै निशंक भर्म सब खोई।।
इंगला पिंगला सुखमन लेई। सर्ब सँवारे अपनी कहै।।
सुगम कुगम कय रहि रहै। सर्ब सँवारे अपनी कहै।।
योग युक्ति कय मसले जाने। राम छोड़ि और नहिं माने।।
रूह बेकार मुशक़ति लेई। काहू कहँ टोटा नहिं देई।।
सुगम कय सौदा हरिदम करै। सोई सोनार कबहूँ नहिं मरे।।
रूप सँवारे आपुहि बने। रहै निशंक और नहिं गने।।
सुरति कय बानी हरिदम कहै। सो सोनार काल पंच महँ लहै।।
अवई न जाय जन्म नहिं लेई। होई सोनार काल धई खोई।।
ढोभ भरी सब राशि भराई। कहै 'गुलाल' सोनार भौ भाई।।

साख़ी

सिफति रिफ़ति कै बातें करई। सर संकोच नहीं सो टरई।।
योग युक्ति खत्री जब जानै। सुन्य बसावै मध्यहिं आनै।।
नेम धर्म कै आसन करई। एकै बर्त नरायन धरई।।
पाँचहिं मारि पचीसहु मारै। मन राजा कबहूँ न बिगारै।।
इंगला पिंगला सुखमन जागै। तृमृ मेंटि कै सत्यहिं लागै।।
लोभ भरल जब आपन काजा। छूटलि जाति-पाँति कै लाजा।।
हम जीतै औ निशान बजावै। खत्री सोई सत्य घर छावै।।
जरा मरन कबहीं नहिं होई। सदा चिरंजिव खत्री सोई।।
सिफ़त सलूकी एकै करै। पाक होय दोजक नहिं धरे।।
रहित भइल जब पाँचो बाई। हरिदम हाजिर नाद बजाई।।
आठ पहर की मसले करै। योग युक्ति कबहूँ नहिं टरै।।
सबई सयाने त्यागी होई। खत्री कर्म जानि लेहु सोई।।
सबई समावै मारफ़ति करै। बहुत खजाना नामहिं भरे।।
भर्म कर्म के आसा त्यागे। सत्य धर्म मन में तब लोगे।।
जनम कर्म कै खोटि न होई। सदा अनन्द कबहुँ न रोई।।
आन देव कय आस न करई। खत्री सोई पलक महँ तरई।।
मोर मया कप ममिता त्यागे। सबई विसार नरापन जागे।।
निर्मल ज्ञान जाहिं सों होई। सबई बिसारे खत्री सोई।
जरा मरन नहिं कबहीं होप। अबई न जाय अमर भा सोय।।
शुभ अरु अशुभ न जाने भर्मा। निशु दिन सत्य अचल करु धर्मा।।
सहज सुमति तब आपन होई। पार न पावे खत्री कोई।
निर्मल नाम अनन्दित होई। सदा निशंक कबहुँ नहिं रोई।।
थकित भयल जब मन कर कर्मा। सोई खत्री चलावे धर्मा।।
खत्री कर्म सांच जौं जानै। कहै 'गुलाल' खत्रो तब मानै।।

साखी

साख़ी

ब्राह्मण सोई जानिए, जो एक ब्रह्म सो खेल।।
कहै 'गुलाल' ओई ब्राह्मण, और न जानेउ मेल।।

चौपाई

बयस सोई जो बोलत चीन्है। रहै निशंक रामगति लीन्है।।
योग युक्ति बैठै ले तारी। अपनेहि मनुआँ अपने मारी।।
रबि शशि दूनो सबै चलाई। उलटि गगन चढ़ि तान बजाई।।
सोहं शब्द बजावै सोई। अवै न जाय बैस तब होई।।
ब्रह्म बिचार करत निरवारा। सोई बयस उतरु भवपारा।।
प्रेम प्रीति चरनन तब लावै। निराधार करि शुन्य बसावै।।
जाति सरूपी रूप बनावै। निरमल ज्ञान निरंतर लावै।।
शक्तिहि जब गाँठी जोरावै। सोई बैस परम पद पावै।।
सहज देश बसावै सोई। अवे न जाए बैस भा सोई।।
गंग यमुन में राह बनावे। यक अधार होय सिन्धु मिलावे।।
नहिं तहाँ जाति-पाँति कै आसा। परब्रह्म में कीन्हों बासा।।
घटे न बढ़े मरे नहिं जीवे। हरिदम नाम अमिय रस पीवे।।
पर्म तत्त्व से नेह लगावे। रहै निशंक बैयस सोई भावे।।
इंगला पिंगला सुषमन जागे। गरजे गगन जोति तब छाजे।।
शब्द सरूपी देह बिराजे। हरिदम नाद सत्य धुनि बाजे।।
ममिता सबही समानेउ जाई। निर्मल ज्ञान परम पद पाई।।
यम जीते मन मौज चलावे। सुरति निरति लै घन्ट बजावे।।
प्रेम पदारथ दिन-दिन होई। सदा निशंक कबहुँ नहिं रोई।।
धोख न परै देह नहिं धरई। औवल बैस कबहुँ नहिं मरई।
सब बिसरावे अपने होई। निरंकार निरंजन सोई।
जब ऐसी गति साँची धरई। सोई बयस नाम ते तरई।

साख़ी

दुनियां देखत आपु नहिं, बहुत कथत है ज्ञान।
कहै 'गुलाल' भटकत अहहिं, यम सिर बाट मसान।।

योग करम है भाव अनूपा। जेहि जाने जिव उबरू सरूपा।।
उलटै पवन गगन स्थाना। सुरति निरति लै जोति समाना।।
ससि अरु सूर महँ रहु चितलाई। उठई बिहंगम फल तब खाई।।
मती बिहंगम सार अनूपा। कोउ जन जानत गुरु की किरपा।।
सिद्धन के मति इहई जाना। दुनिया के मति कोटिक नाना।।
अब अष्टांग कहतु है जानी। बूझै कोऊ सत्गुरु ज्ञानी।।
गरजि-गरजि बाजत धुनि बानी। इन्हहीं सुनि जनि भूलहु ज्ञानी।।
चाँद सूर उलटि कै लेई। फेरि बिचारहु मनहिं समोई।।
पैइठै पवन मूल के द्वारा। उलटै कमल त्रिकुटि झनकारा।।
सुरति सम्हारि चढ़हु पुनि गगना। जोई बिचारत आवा गवना।।
आनन्द प्रभा ताहि महँ होई। निरखि बिचारहु ज्ञानी सोई।।
कहँलगु शोभा बर्नि न जाई। योग युक्ति से रहहु समाई।।
लोभ भरो तब चारिउ खानी। ओवा गवन रहित तब जानी।।
आठौ अँग वहाँ मनिरस भोगी। प्रेम समानेउ तेउ-तेउ जोगी।।
आनन्द मंगल बानी बोलै। एक शब्द कबहूँ नहिं डोलैं।।
सुरति समाने ब्रह्म बिचारा। लोक बेद सबई ते न्यारा।।
योग यज्ञ वहाँ बरन न जाती। सहज सरूपी और न पाती।।
निरखि निरंज. गतिहि बिचारी। अपनेह बन्ता करता तारी।।
तिरगुन गुन कर भा सब नासा। जोति जोग भोग भौ नासा।।
सत्य सरोवर शब्द कै खानी। अगम अगोचर मुनि तब ज्ञानी।।

साख़ी

येतना कहि-कहि पचि रहो, सठ नहिं मानत बैन।
कहै 'गुलाल' सठ प्रानी, अन्ध भयो सब नयन।।

चौपाई

ब्रह्म बिचार मिलत अब भारी। पान आपन थकित नव नारी।।
सतुगुरु कृपा जबहिं सत्य होई। आपु बिचारहु कारन सोई।।
पूरब मन्त्र देवस परवाना। सतुगुरु बचन चलावहु बाना।।
द्वादस मूल में जबहीं जाई। पान अपान तबहिं सुधि पाई।।
उलटै नालहिं ब्रह्म दुआरा। अष्ट कमल बिकसै बहु तारा।।
गर्जे गगन अरु बर्षे मोती। जोति जगामग निर्मल होती।।
लै लाओ जैसे कछु भाऊ। अपने साहेब को बिलगाऊ।।
यह गति जे जन जानु अपारा। सो सतुगुरु मिलि सबहिं बिसारा।।
सुधि बिसरै मन रहै समाई। पूरन घर महँ आपु बनाई।।
अनन्त कला जब बरै लिलारा। पूरन ब्रह्म सत्य टकसारा।।
रोग सोग नहिं नेम न पूजा। एकै साहेब और न दूजा।।
जब जानेउ मन आपु बिचारा। तब को पावै अन्त हमारा।।
अगम अगोचर बनि रहु स्वामी। सब जीवन के अन्तरयामी।।
बोल न डोल न अवै न जाई। ब्रह्म बिचारै सहज समाई।।
आनन्द मंगल बोलत बानी। एक राम भजि भर्म नसानी।।
रमिता राम न जानु पसारा। सबई भयो जब आपु बिचारा।।
को जानै ता गती अपारा। शिव ब्रह्म आदि न पावहिं पारा।।

साख़ी

कर्म कलवार न जानई, पाँचहिं मारै धीर।
कहै 'गुलाल' कलवार सोई, होवै सत्य फ़कीर।।

चौपाई

मूल चक्र बाँधै चित्त लाई। बिकसे कमल दसहु दिश छाई।।
अर्ध उर्ध मधि सोहं गावे। सुनि धुनि मनुआँ धै ले आवे।।
ज्ञान गुफा जहँ सिद्ध न बासा। गगन मंडल में नृत तामासा।।
बिनु शिर बैठल देखै सोई। निशु बासर दिन रैन न होई।।
शुन्य शिखर तह उठै अघोरा। सतुगुरु शब्द बचन हिय मोरा।।
प्रेम प्रकाश भयो उजियारा। मिटो कर्म तब जग ते न्यारा।।
कहै 'गुलाल' तब हंस कहावे। आनंद उदित अगम घर छावे।।

साख़ी

अगम अगोचर अचल है, निरखत निरखि न जाय।
कहै 'गुलाल' सत सूर होय, रहो चरन लपलय।। 938

चौपाई

लगी लगन मन भयो बैरागी। काम क्रोध ममिता मन त्यागी।।
धीरज धय तहाँ करत बिचारा। झरत अधर अमृत रस धारा।।

साख़ी

तेली तेज जो मारई, तेल पेरै हरि नाम।
कहै 'गुलाल' सोई तेलि है, और तेली बेकाम।।

चौपाई

कर्म कलवार कै नासा करई। पाँचो बाँधि गगन चढ़ि धरई।।
अर्ध उर्ध कै भाठी लावे। रबि शशि फूँक कै अग्नि जलावे।।
ब्रह्म अग्नि उदगारा भयऊ। मते मोह लेते सब गयऊ।।
तिर बिधि ताप गयो तब भारी। मगन भयो मन लागु खुमारी।।
रीझि-रीझि मन बोलत बानी। अपनेहिं साहेब और न मानी।।
भाँति-भाँति मन रँग समाई। सुधि बिसरो संसार सगाई।।
मौज होय रस नाम चढ़ाई। सो कलवार काल नहिं पाई।।
निरभय होई पाक शरीरा। झतर है मानिक मोती हीरा।।
चुभुक्की चित समाहु सोई। निझरि झरे झरि माफ़िक़ सोई।।
सुरति निरति कै रहमति करई। सो कलवार काल नहिं धरई।।
मोह बझा संसार बझाई। निशु दिन काल धरत धै खाई।।

साख़ी

जरे जीव सिवहिं मिलै, महा युक्ति को धाम।
कहै 'गुलाल' दण्डी सोई, हरिदम बोलत राम।।

चौपाई

निर्बानी जो सत्य समोधे। पाँच पचीस तीन धरि सोधे।।
नूर निरंजन रूह बनावे। निरबानी सोई अगम कहावे।।
अष्ट कमल कय बाग लगावे। बिनु जल फूल मूल बिनु भावे।।
सींचत मूल समावे सोई। निरबानी असल तब होई।।
रबि शशि दोनों राम करिपीवे। सो निरबानी युग-युग जीवे।।
अर्ध उर्ध कै सुधि जब जाने। सो निरबानी काहु न माने।।
बैंक नाल जब चढ़ै अकासा। सो निरबारनी मन पुर बासा।।
सत्य अनाहद पद तब होई। निरबानी सोई मौज समोई।।
सत्य शब्द कै रहनि सुभाऊ। छूटल लोक बेद कै चाऊ।।
अवै न जाय रहै घर पूरा। सोई निरबानी बजावत तूरा।।
राम प्रताप तबहिं मन होई। सदा अनन्दित कबहिं न रोई।।
अक्षै वृक्ष नाम स्थाना। ताहि समावे पद तहँ नाना।।
त्रिबिध ताप है नाहिं शरीरा। ब्रह्म अखंड सदा रहु पूरा।।
निर्बानी सोई सहज समाई। प्रेम बिचारे अनुभव गाई।।
सुरति निरति कै रहनी धरई। सो निरबानी अमर नहिं मरई।।
सुधि बिसरो संसार न ब्यापै। चौरासी फिर कबहुँ न तापै।।
प्रेम प्रीति कै लगन लगावे। सुधि बिसरे भव कबहुँ न आवे।।
अगम अगोचर मिलुर हुस्वामी। अनुभव उदित अचल पद गामी।।
गुप्त सुपथु कै रहनी धरई। निरबानी सत लोक में तरई।।
लोभ मोह उनके नहिं होई। सदा निकल्प मगन रहु सोई।।
सत्य साहेब जब मनहिं समोई। कहै 'गुलाल' निर्बानी सोई।।

चौपाई

दण्डी सोई जो डग नहिं नावे। बिनु मुख तान गगन चढ़ि गावे।।
सत्य कै भेष बनावै सोई। निर्गुन जानै मनहिं समोई।।
अर्ध उर्ध वै मसले जानै। रहै निशंक मया नहिं मानै।।
मन कर कर्म अहै बहुतेरा। सत्गुरु मिलै तो हो निबेरा।।
ब्रह्म बिचार सत्गुरु कै दाया। सब संसय कहँ नाशि बहाया।।
लोक बेद कै नाहीं आसा। हरिदम साहेब नाम में बासा।।
रूप धूप वहाँ काहू न होई। सत्य ते दण्डि कहावे सोई।।
शुन्य सरोवर तारी लावै। रहै निशंक काल नहिं पावै।।
दण्डी डिम्भ आपु ते छोड़े। रहै निशंक कर्म सब मोड़े।।
इंगला पिंगला रहै हजूरा। दण्डी सोई बजावै तूरा।।
बिमल-बिमल तहँ बानी होई। दण्डी सोई कबहुँ नहिं रोई।।
अवै न जाय मरे नहिं जीवे। दण्डी सोई राम रस पीवे।।
थकित करे घर के बहु लोगा। निरभय होय के जानहु योगा।।
साफ होय सब काज सँवारी। अगम अगोचर लागी तारी।।
सबै सामने एकै सोई। हरिदम साहेब कबहिं न रोई।।
थरन बिबेक वहाँ कछु नाहीं। रहै आनन्द सोच कछु नाहीं।।
अवय न जाय मगन रस पीवे। दण्डी सोई पर्म पद जीवे।।
बहुत कर्म है यह संसारा। राम बिना भव पाव न पारा।।
प्राकृत कर्म वहाँ कबहूँ न होवे। दोजक धरे जन्म नहिं लेवे।।
सुधि बिसरे संसार न ब्यापै। जन्म मरन कबहीं नहिं तापै।।

साखी

बयराग भयो जब साहेबा, सबय मिटानो दुख।
कहै 'गुलाल' बयरागी जोई, हरिदम ताको सुख।।

योगी युक्ति जोग कय जाने। पाँचों चोर बाँधि घर आने।।
रबि शशि जानि एक घर मेलय। योगी युक्ति निरन्तर खेलय।।
अर्ध उर्ध कय तारी लावय। द्वादश उलटि गगन चढ़ि धावय।।
ब्रह्म द्वार होय रहो समाई। योगी युक्ति ताहि घर आई।।
वेद कितेब को पढ़ि-पढ़ि गोवै। केतो यज्ञ करि करि रोवै।।
यक साहेब सो रहै मुश्ताक। सो योगी युक्ति में पाक।।
प्रेम प्रीति सों साफ़ी धरे। सो जोगी कबहीं नहिं मरे।।
सुन्य सरोवर लावे तारी। रूप सँवारे आपु बिचारी।।
भजन भक्ति कै राह सँवारे। और देव सपने न निहारे।।
सुरति निरति कै कर्म बहु होई। बांचै काल कबहुँ नहिं रोई।।
कर्म धर्म नहिं जाने सोई। जोगी सोई निरन्तर जोई।।
रामहिं नामहिं हित सँभारी। सत्य प्रतीत टरत नहिं टारी।।
दुख सुख मोह उन्हें नहिं ब्यापै। सदा अखंड़ित त्रिबिधि न तापै।।
पूरन रहै घटि नहिं होई। साहेब मिलि रहु योगी सोई।।
सहज स्वरूप जगत महँ रहई। ताकी गति कोऊ जान न कहई।।
सुन्दर रूप बिराजत काया। रह निर्द्वन्द निकट नहिं माया।।
अवध न जाय राम रस पीवे। युग-युग योगी पद इमि जीवे।।
चर्म दृष्ट उनके फिर नाहीं। सदा राम मन धोखा जाहीं।।
जीवन मरदन न कबहीं होई। दोजक धरे जन्म नहिं लेई।।

साख़ी

सन्यासी सोई मानिए, जाहि ब्रह्म को सार।
कहै 'गुलाल' माया रत, भटकत फिरै गँवार।।

चौपाई

ब्रह्म बिचार बैरागी लहहीं। पाँच पचीस उलटि के गहहीं।।
द्वादस सम कय मगन जो रहै। सो बैरागी अनुभव कहै।।
पान अपान करे यक सँगा। गगन उठय ध्वनि लहर तरंगा।।
सुनत-सुनत मन निरमल होई। पाप पुन्य मेटय सब कोई।।
नवदर मून्दय दसयें रहै। सो बैरागी मजहम कहै।।
अर्ध उर्ध कय खबरे जाने। सुन्य सरोवर तम्बू ताने।।
रबि शशि दूनाँ सम करि पीवे। सो बैरागी युग-युग जीवे।।
बंक नाल कप खबरें जाने। रहे निशंक कपट नहिं ठाने।।
उनमुनि लावे बोले बानी। भरल पदारथ चारिउ खानी।।
जीव ब्रम्ह जब मेला भयऊ। पर्ज विचार अगम गति पयऊ।।
योग युक्ति जबब जानु शरीरा। सो बयरागी सतय फक़ीरा।।
नेम धर्म तथ काहु न करई। जेकरे जोति रइन दिन थरई।।
लहरि उठत तब ज्ञान बिचारा। त्रिविधि ताप भव उतरेउ पारा।।
बोल डोल वहाँ बबरन न जातीं अपने साहेब बरि रहु पाती।
सहज स्वरूपहिं पद तब होई। तेहि महँ मिलय बयरागी सोई।।
राम नाम कय अदल चलावे। सो बयरागी संत कहावे।।

चौपाई

तन मन सोधै धैके ज्ञानी। सत्‌गुरु शब्दहिं बचन प्रमानी।।
निरगुन की गति कैसे जानै। शशि अरु सूर एक घर आनै।।
सूर्य अन्त कै संझा आनैं। चन्द उदय तब राति पहिचानै।।
गर्जै गगन अरु उठई बानी। निशु दिन बरषै अमृत पानी।।
छकि-छकि अमल छकेउमन माता। पियत-पियत राम रस राता।।
माति रहो मन नाम अधारा। पुनि जनमै नहिं फिर संसारा।।
यक साहेब सो लायउ ध्याना। भै अडोल डोलत नहिं ज्ञाना।।
ज्ञान लहरि जोतिन कै धारा। समुद्र समानेउ कोटिन भारा।।
का बर्नो छबि शोभा भारी। कोटिन सर चन्दन बलिहारी।।
तीन लोक निशुदिन जेहिध्याया। सत्‌गुरु कृपा ते आपै पाया।।
ऐसो साहेब पायो जबहीं। समुद्र समानो अवगति तबहीं।।
पगल नाम मनुआँ बैरागी। रामहिं रँग रमेउ तन त्यागी।।
सदा अखंडित रहै निरासा। छोड़ेव जक्त ब्रह्म में बासा।।
सहज समानेउ कोउकोउ दासा। कहै 'गुलाल' तेहि यम नहिं पासा।।

साख़ी

स्वर्ग नर्क दुनियाहिं को, साधुन को नहिं काल।
राम कृपा सत्‌गुरु दया, जीतो दास 'गुलाल'।।

चौपाई

ज्ञान गौर गगन महँ रहई। बिकसै कमल उलटि कै गहई।।
इंगला पिंगला सुषमन सोधो। मन अहमक धै कै पर मोधो।।
पाँच नारि गावहिं तेहिं बानी। भरल सरोवर अमृत खानी।।
नाम निरंजन जानेउ तबहीं। शुन्य में जोति जगायउ जबहीं।।
जोति लहरि अति बर्नि न जाई। दसो दिशा में पूरन छाई।।
छत्र धरेउ तहँ मानिक बारा। अगम राम तहँ कोटिन तारा।।
ब्रह्म उजागर दिब्य सरूपा। तीन लोक के साहेब भूपा।।
परखि-परखि सत्य टकसारा। मिले प्रभुहिं कहँ ओई इयारा।।
आपु अपन में मन बैठायो। सोह शब्द रैन दिन गायो।।
गावन हार है देह न काया। गाँव न मोह न माया।।
मन बैरागी आतम धारी। कहै 'गुलाल' साहेब बलिहारी।।

साख़ी

रहसि-रहसि क्रीड़ा कियो, प्रभु अपनो लियो साथ।
कहै 'गुलाल' भाग्य बड़, बर पायो रघुनाथ।।

चौपाई

थकित भयो तब नौ दस नारी। अलख पुर्ष सों लागी तारी।।
रोम-रोम अति विकसित काया। बोलत बानी अनुभव गाया।।
उमगेउ ज्ञान रतन तहँ झरई। आनन्द जोति रैन दिन बरई।।
ऐसी रहनि धरो गुन ज्ञानी। सदा अखंडित अन्तर जानी।।
नेम धर्म उनके का करई। जिनके जोति रैन दिन बरई।।
बरन बिवेक जाति नहिं पाँती। एके जोति और नहिं खाती।।
थीर भयो मन घर में जबहीं। कारन ताको लागु न कबहीं।।
सत्य सरूप रहै जग माहीं। उनके शोच काहु की नाहीं।।
हरषि-हरषि गावहिं बहु बानी। गलि-गलि मिलरहु सारंग पानी।।
माना रूप धरहि वै छाया। मिलो ब्रह्म निकट नहिं माया।।
अलख पुर्ष सों कीन्ह इयारी। फरेउ कर्म भयो नाम भिखारी।।
कहै 'गुलाल' हम कछु नहिं जाना। सत्गुरु कृपा मिलो भगवाना।।

साखी

चौपाई

काया परचै जानहु प्रानी। अजपा जाप मुक्ति कै खानी।।
सिधि अरुसाधुज पहिं मन लाई। निशु दिन जपत है अनभौ गाई।।
जपत है ब्रह्म अरु बिष्णु महेशा। सुर नर नाग जपतु हैं शेशा।।
रामचन्द्र जपेहु सुख देवा। जपो है कृष्ण पाण्डु कर सेवा।।
जिन यह जाप जपो गुरु देवा। गुरु मिलै तब साहेब सेवा।।
निशु दिन अमृत बोलै बानी। अगम अगोचर नव निधि खानी।।
शीतल बचन बोलहिं वै बैना। पल-पल निर्खत साहेब नयना।।
उनकी कथा कही नहिं जाई। देखत साहेब और न भाई।।
पल-पल नामहिं रहत सँभारी। कहै 'गुलाल' उनकी बलिहारी।।

साख़ी

राझि राझि नामहि रती, सत सन्तोष अहार।
कहै 'गुलाल' सत रूप होय, उतरि गयो भव पार।। 978

चौपाई

प्रेम पन्थ में जो नर चढ़ई। एकै ब्रत तेहि हृदये धरई।।
धै अनुराग लगन धुनि लावै। अनहद धुनि-धुनि घंट बजावै।।
जप तप संजम नेम न काजा। प्रेम दीप जागै मन गाजा।।
तिरबेनी तिर लावहु ध्याना। द्वादस उलटि के गगन समाना।।
सत्य सरूप बोलै तहँ बानी। सिर बिनु बैठल देखै ज्ञानी।।
निरखि निरंजन लै तहँ लावै। मिलत-मिलत जिव ब्रह्म मिलि जावै।।
मिलेऊ ब्रह्म एक तब भयऊ। प्रेम लगल तब को बिलगयऊ।।
लागल प्रेम भयल जिव थीरा। धधकत जोति झरत तहँ हीरा।।
राम रमै यहि बिधि जो जानै। कहै 'गुलाल' मनुआँ धै आनै।।

चौपाई

शशि अरु सूर्य मूल नहिं बाता। उलटि अमरपुर चढ़ै अकाला॥
झिमिझिम बरसै मानिक मोती। झिलिमिलि नूर अनमपुर जोती॥
गरजै गगन दामिनी दमकै। तँह शब्द दसौं दिश चमकै॥
करि अनुराग लगन तँह लावै। अनुभव उदित फूल वह पावै॥
हंस नाम रतन कै खानी। बिमल-बिमल मन बोलै बानी॥
उठै शब्द तँह अनुभव गाजै। पाँच पचीस तीनि उलटि बिराजै॥
एकै ब्रह्म और नहिं सत्ता। आनन्द रूप मिलै कविलासा॥
सन्तन की गति बरनि न जाई। कह 'गुलाल' मानौं ठकुराई॥

साखी

एक नाम बिन नहिं जपै, खलक सबै हैरान।
कहै 'गुलाल' जानै नहीं, भ्रमत फिरहिं मसान॥

चौपाई

यह संसार सकल जग अन्धा। माया मोह कर्म ते बन्धा॥
नेम धर्म आचार जो करहीं। आशा लागि कल्प के मरहीं॥
उपजत बिनसत मर्द बखेड़ा। पलटत बस्त महल नहिं पेड़ा॥
जन्म मरन नहिं सूझत अन्धा। पाप अरु पुन्य कर्म ते बन्धा॥
कर्म सुकर्म न चीन्हत चैन। राम बिना नहिं पावहु चैन॥
सकल सयानप है सब नाना। सब स्व नर्क अघोर में बासा॥
जिन गुरु भेद नहीं पहिचाना। औंधे गति मिलिहैं नहिं आना॥
यह संसार सयानप धना। कहै 'गुलाल' इन्हैं बौराना॥
अब ते सन्त राम की आए। सतगुरु कृपा किए अपनाए॥
तब सन्तन के सेवा कीन्हा। प्रेम मकरन्द निति चढि चीन्हा॥
जिन के संग मिलो अविनाशी। सब जीवन के घट-घट बासी॥
साधु संगति किमि कहौं भाई। जिन के संग अगम गति पाई॥

चौपाई

या तन नेह पवन लव लावै। सत्‌गुरु शब्द अगम जौं पावै।।
सहज शुन्य तहँ उठै अघोरा। सुनि धुनि थकित भयल मनमोरा।।
पैठि पताल नाभि तहँ सोधो। शशि अरु शूर उलटि कै बोधो।।
बिकसेउ कमल भयउ परगासा। काटि कर्म भयो जोति में बासा।।
कहै 'गुलाल' तहँ चित्त समाई। उदित चन्द छबि बर्नि न जाई।।
सुषमन सहज बहै तहँ नारी। गगन गुफा में लागी तारी।।
झरत अधर अमृत रस धारा। मनुआँ भरि-भरि लेत करारा।।
नाम समुद्र तहँ उठै अपारा। लोक बेद दोनों ते न्यारा।।
सुरति जहाँ तहवाँ ले जाई। मनिगन भूषण रतन लदाई।।
उनमुनि धुनितह रेखन स्वासा। होत निरंजन रूप अकासा।।
कहै 'गुलाल' सो प्रभु हमारा। एक भयो तब कौन बिचारा।।
कै बिचार मन सहज समाई। तन मन डालि रहो लव लाई।।
चारिउ फलहिं अभै तहँ पाई। नवधा भक्ति हृदय तब आई।।
कै बैराग ब्रह्म मन लावै। निशु दिन नौबति ढोल बजावै।।
मृत होत तहं बाजत तूरा। कय संग्राम जीव भा शूरा।।

साख़ी

शूर भयो दावा गयो, मारि चढ़ो मैदान।
कहै 'गुलाल' सोई सन्त है, निसि करि उगवै भान।।

चौपाई

चाँद सूर्य एकै गृह आनी। तिरबेनी तट निर्मल पानी।।
उलटेउ पवन तब चढ़ेउ अकाशा। सहज शुन्य दीपक परकाशा।।
उठत गुञ्ज तहँ अनहद बाजा। लै कै जाति छत्र सिर छाजा।।
स्वेत सिंगासन अनुभव गाजा। अनन्त रूप निर्गुन तहँ राजा।।
प्रेम प्रीत कै नेह लगाऊ। सुरति निरति मिल पद तहँ पाऊ।।
जोग युक्ति करहु नर जानी। साफ भयो मन बोलत बानी।।
कहै 'गुलाल' सतुगुरु तहँ मेला। एक भयो तहँ गुरु न चेला।।
देख रूप मन चित तहँ लाया। सुभग स्वरूप निर्मल भयो काया।।
काम क्रोध अरु मया न मोहा। उदित नूर सिर ऊपर सोहा।।
अनभूती अनभूत है देवा। तीन लोक जाकर करु सेवा।।
सेवत नहिं अन्तर जानी। भटकत फिरत मुअत नर प्रानी।।
प्रेम प्रीत प्रभु चरनन लावहिं। पूजहिं पत्थर जन्म गँवावहिं।।
दान पुन्य कर करत है आसा। मरत जिवत चौरासी बासा।।
वनखंड भूख पियास जे मरई। करत कपट माया मन धरई।।
एक नाम जिन नहिं पहिचाना। भ्रमत फिरत सब भये दिवाना।।
दुरमति मन ते सब बिसराऊ। कहै 'गुलाल' करु जोग कै चाऊ।।

साखी

चाव करो नर अलख पति, धरो न दूजो नाँव।
कहै 'गुलाल' सतुगुरु मिले, बसहु अमर पुर गाँव।।

चौपाई

गाँव कियो छै पुर तब छाया। जीव न सीव न काल न काया।।
शब्द स्वरूप अखंड सो बानी। अगम बेद बर्नत का जानी।।

झूलहिं बावरि योग परिचै शुन्य में धुनि लाय।
झूलहिं थीरू भक्ति सँगे सुरति निरति समाय।।
झूलहिं यारी जीव हरिदम लगो सोहं तार।
झूलहिं केशव भाई बूला नाद के झंकार।।
झूलहिं गुरु गुलाल जी निज आतमा दर्शाय।
झूलै भक्त अनन्त प्रभु के नीर छीर बिलगाय।।
सकल सन्तन बिनय सुनिए करहु यह उपकार।
भक्ति अबिरल झुल दीजै 'भीखा' रुचि अधिकार।।

आदिमूल यक रूखवा हो, तामें लागो तीन डार।
ता बिच यक स्थूल है, शाखा बहु बिस्तार।।
और न बर्नी आवै हो, छाया अपरंपार।
माया मोह व्यापक भयो, सूझै वार न पार।।
सत्गुरु नावल हिण्डोलवा हो, सुरति निरति गहेसार।
झूलहिं पाँच सोहागिन हो, गावहिं मंगलचार।।
पौंढ़ेव अगम हिण्डोलवा हो, सत्य शब्द निरधार।
झूलत झूलत सुख उपजै हो, केवल ब्रह्म बिचार।।
अबकी बार यह अवसर हो, मिलै न बारंबार।
फिर पीछे पछतैहो, हो, होत छूटै बिकरार।।
योग युक्ति हिण्डोलवा हो, ताहि मिलै करतारं।।
आवागवन निवारहु हो, फिर न होय औतार।
साधु संगति को मेला हो, झूलै नाम अधार।।
योग युक्ति कै हिण्डोलवा हो, सत्गुरु सहज लखाव।
चाँद राखि सूर चड़ावल हो, पव के डोरि धई पाव।।
अर्ध उर्ध मुख धावल हो, पुलकि पुलकि छबि भाव।
गगन मण्डल गुन गावल हो, सुरति निरति समाव।।
यहि बिधि 'भीखा' मन लावल हो, आतम रूप दर्शाव।।

सत्गुरु शब्द हिण्डोलवा हो, सुनि मन अनुराग।
झुलत गुनत रुचि भावल हो, जिय चकृत उठ जाग।।

सुरति सों निरति मिलि ध्यान अजपा जपो,
ज्ञान को घोड़ लै शुन्य धावै।
स्वेत परकाश अकाश में झूलि रहो,
चित्त भँवर तहँ जाय पावै।।
वहाँ गुञ्ज अनहद गूँजै नाम तबहीं गूँजै,
प्रेम भरिपूर नाहिं अनत जावै
कहै 'गुलाल' फकीर सोई सूर है,
मौज कै खेल में खेल पावै।।

भक्ति परताप तब पूरि सोई जानिए,
धर्म औ कर्म से रहत न्यारा।
राम सों रमि रहो जोति में मिलि रहो,
द्वन्द संसार को सहज उतरा।
भर्म भव मारि कै क्रोध को जारि कै,
चित्त धरि चोर को कियो यारा

शुन्य के मोकाम जिकिर सौदा करै,
गरजि घन गरजि घन गरजि भारी।
फूल अनभव फुलै भौंर तामें झुले,
फूल नहिं भौंर नहिं गति न्यारी।
शब्द सोहं उठै जीव तामें बसै,
शुषमना सहज तहँ बनत नारी।
पैठि पाताल आसमान को छेदि कै,
ब्रह्म सों ब्रह्म भयो ब्रह्म भारी।
रहत आशंक ताडंक अनभौ दियो,
ज्ञान भौ पूर नहिं सुरति टारी।
कहै 'गुलाल' सतूगुरु सो पूर हैं,
छत्र सिर फिरो दिया कर्म यारी।।

तहँ होत अनहद नाद धुनि। सुनि सहज चित्त लगाय।।
बृगसि कमल अनन्त शोभा। भँवर रहै लोभाय।।
अर्ध उर्ध को उलटि चलिए। सुखमना ठहराय।।
गंग यमुना मिलि सरस्वत। पद्म दरशन पाय।।
शुन्य शिखर समाधि बैठो। योग युक्तिहिं पाय।।
डालि तन मन चढ़ो सिर दै। जोति लहरि नहाय।।
अति अथाह अपार देखो। नयन नाहिं समाय।।
पाँच तीन पचीस त्यागो। वाणि निर्गुन गाय।।
आदि अन्त औ मध्य छोड़ो। अगम गति जो आय।।
चौथे पद पर बैठ योगी। मौज ढोल बजाय।।
जग्यो प्रेम जो नेम चरणन। साधु संगति पाय।।
त्यागि कर्म सन्ताप तन को। पाप दियो बहाय।।
मारि ममता मन बिचारो। हँस रूप कहाय।
कहै 'गुलाल' अतीत सोई। जो यह रहनि समाय।।

हिण्डोलना कर्म झुलावन हार।। टेक।।
पाँच तीन पचीस ध्यावहिं। नेक नहिं ठहराय।।
पाप पुन्य को बीज लै करि। बोवहिं खेत बनाय।।
जन्म उत्तम पाय करिहो। माया परल भुलाय।।
रामनाम न जान भोंदू। चल्यो मूल गँवाय।।
पुहुमि नीर अकाश झूलहिं। झुलहिं मारुत चन्द।।
ब्रह्म बिष्णु महेश झूलहिं। झूलहिं सूर फणिन्द।।
तैतिस कोटि देव झूलहिं। मोह में लपटाय।।
बज्र बाँध को बाँध बाँधो। सबै बाँधि नचाय।।
जोगी यती औ सिद्ध झूलहिं। दसो दिसा में छाय।।
झूलहिं जे नारद आदि मुनिवर। पार काहु न पाय।।
सावित्री लक्ष्मी गौरि झूलहिं। मया को फैलाय।।
हन्स बृखभ औ गरुण झलूहिं। थीर कबहुँ न आय।।
अर्ध उर्ध और मध्य धारा। झूलो त्रिकुटी जाय।।
गगन मध्ये सुरति माण्डो। जोति दियो है जगाय।।
झूल-झूलि न जाय प्रभु जी। अब मोहिं झूलाय।।
जन 'गुलाल' जी शरण आए। राखु चरण लगाय।।

हिण्ड़ोलना झूलहिं निर्गुन अषार। झूलत उठै झनकार।।
ज्ञान कै रचो है खटोलना हिण्ड़ोलना। सुरति कै डोरि लगाय।।
अर्ध उर्ध दोउ खम्भ हिण्डोलना। पौढ़ु गगन में जाय।।
पौढ़ु जे गगन हिण्डोलना। नाम कै डंक बजाय।।

होरी बिलावल

सहज धुनि होरी खेलो भाई ताते जन्म मरन नहिं पाई।।
होत अघात अकाश महामह दसो दिशा रहु छाई।
आतम नारि सखिन सँग गावहिं अनहद ढोल बजाई।।
बिकसित बदन निहारे प्रभुजी को आनन्द नाहिं समाई।
कहे 'गुलाल' हम प्यारी प्रभु सँग घरही होरी आई।।

राग होरी

राम रँग होरी खेलो जाई फिर पाछे पछिताई।। टेक।।
यह तन फागु रचो पर्मारथ अवधि बदो दिन ठाई।
काल अग्नि जब मस्तक जरि है छुटि है सब चतुराई।।
अगर गुलाल कुमकुमा केसरि चेत अबीर उड़ाई।
इंगल पिंगल दोनों भरत उर्ध मुख छिरकत प्रभुहिं बनाई।।
दुइ बिधि फागु बनो या बृज में जिन जैसो तैसो भाई।।
कहे 'गुलाल' यह अगम फागु है बिनु सतगुरु नहिं पाई।।

अधर रँग फगुआ मन खेलै हो।
अहो मोरे ललना रबि शशि दोनों सँग मेलो।। टेक।।
मन बैराग चित चोर जे धैके नेह निरन्तर लाई ललना।
पाँच पचीस तीन मौआसी पकरि गगन ले जाई।।
शुन्य नगर आसन मार्यो अद्भुत भेख बनाई ललना।
ब्रह्म बिश्नु शिव तहाँ नहीं है फागु बरनि नहिं जाई।।
नादहिं बिन्दहिं गाँठि परो है ज्ञान कै जोति समाई ललना।।
उठ्त लहरि अनन्त राग तहँ अनभौ चाँचरि गाई।।
आवागवन रहित जबहीं भयो यम सिर डंक बजाई ललना।।
कहै 'गुलाल' काल जग खैहै मरिहै हमरि बलाई।।

प्रेम नेम चाँचरि रचो रँग होरे रँग होरी।
पुलकि-पुलकि प्रभु पास राम रँग होरे होरी।। टेक।।
चाँद सूर उलटेउ चलेव रँग होरे होरी।

सतगुरु सँग होरी मन खेलै हो।
अहो मेरे ललना अनहद तूर प्रेम बजाई।। टेक।।
काया नग्र में होरी खेलो, प्रेम की परलि धमारि ललना।।
पाँच सखी मिलि चाँचरि गावहिं, प्रभु जी की बलिहारी।।
सहज कै फागु परो निशुबासर, भरि छूटै पिचुकारि ललना।।
नाद बिन्दुहिं गाठि परो जब, परलि परस्पर मारि।।
तारी देइयाँ देइ भाँवरि नावहिं, एक ते एक पियारि ललना।
तत्त्व अबीर उड़ावत कर धरि, कहूँ कोउ न सम्भारि।।
अब खेलो मन महा मगन होय तन मन सर्ब सँवारि ललना।
कहे 'गुलाल' हम प्रभु सँग खेलल, पूजलि आस हमारि।।

मोर पियवा नाहिंन गाँव। होरिया से कैसे खेलन जाँव।।
हाथेलै पिचु काके सरिया भरि के लै-लै धाँव। भल जोब नवाँ में डाल तल जाँव।।
छैला न मानत डहरिया धरै ठाँव। ऐसन नगरिया मैं कैसे के समाँव।।
गाँव लोगवा मसखरिया धरै नाव। उड़त अबिरिया फगुनवाँ धै लैजाव।।
कहै 'गुलाल' सत्य पिया मन भाव। फागुन दिहल प्रभु अपने हो नाव।।

खेलोंगी फागु लगाय, अपने सइयाँ सँग।। टेक।।
नयन बयन दूनों कहँ गहाय, सुरति पिचुकरिया रे रँचा भिजैलाबनाय।
प्रेम अबीर जगर मगर लगाय, झूम-झूम रहो रँग समाय।।
सखिया सहेलरि झूमक नाय, सेऊ न रहल थिर परो मुरझाय।
कहै 'गुलाल' मोरे कहल न जाय, ऐसन फगुनवाँ अरे सबै समाय।।

मनुआँ मोर भयल रँग बाउर, सहज नगरिया कयल गई ठाउर।
उदित चन्द झरै ले तहाँ मोती, जरत अमिय आवा नाम कै जोती।।
अँगना बोहार कै बाँधल केशा, कैलो सिंगार गैलों पिया के देशा।
आनन्द मंगल बाजत तूरा, फरल लिलरवा भइलिउँ पिया के हजूरा।।
कहै 'गुलाल' नाम रस पाय, मग्न भयल जिव गइल बलाय।।

होरी खेलो प्रभु जी से प्रीत लगाय।।
सब सखियन एक मता मति कियो है, फागुन बर्नि न जाय।
काया नग्न में होरी खेलों, ससि अरु सूर समाय।।
प्रेम जड़ित पिचुकारी छूटत, नौबति दै-दै गाय।
दसों दिशा चाँचरि धुनि होवै, तत्त्व अबीर उड़ाय।।
इंगला पिंगला दोउ रास बनावै, सो सुख बर्नि न जाय।
थकित भयो सुधि बुधि हरि लीन्हों, तन मन सबै भुलाय।।
कहै 'गुलाल' हम होरी खेले, हरि सों गांठि बँधाय।।

07:38

साख़ी

भेष की लज्जा नहिं करहिं, सेहँतत फिरंत हैं घूर।
अमृत फल कहँ छोड़ि के, सेवत काठ बबूर।।

चौपाई

बाई तत्त्व महँ बाई। सत्‌गुरु मिलै भेद जौं पाई।।
बाई पर्बल बहै जल धारा। पियत नीर बाई धरि मारा।।
शशि अरु सूर भयल जब पूरा। उलटि कवल बाजै तहँ तूरा।।
तत्त्व बाई मिलि चढ़ेउ अकासा। शुन्य नगर बैठक कबिलाशा।।
गगन गरज अनहद तहँ बानी। तत्त्व बाई मिलि रहत समानी।।
उदित चन्द छबि निरखि अकासा। बाई तत्त्व भयल तहँ नासा।।
बंकहि नाल चढ़ेउ जब हाथा। पैठि पताल शेष तब नाथा।।
कहै 'गुलाल' यह योग अपारा। जो बूझै सो गुरु हमरा।।
द्वादस मात्रा रहनि हमारी। सुषमन बैठ यंत्र नौ नारी।।
ज्ञान गूदरी भजन मुरारी। मेखलि माला कंठा डारी।।
तरंग ताखि और शोभा भारी। सहजहिं सेल्ही शुन्य कै तारी।।
मुद्रा मगन औ चलन अपारी। चन्द्र तिलक कच्छ चक्र बिचारी।।

मगन मन झूमरिया, नर खेलहु फागु बनाई।
अष्ट कमल फूलित भयो, रस झूमरिया।।
भँवर करै रस पान, राम रस झूमरिया।
अर्ध उर्ध मधि खेलहिं, रस झूमरिया।।
सुषमन सहज निवास, राम रस झूमरिया।
बंक नाल चढ़ि गयो, रस झूमरिया।

जाई आदि अन्त मध्य सोय। जीव पवन मन रहो न कोय।।
शब्द ब्रम्ह भयो सुन्ध लीन। 'भीखा' राति न तहवां दीन।। 1032

चेतत बसबंत मन चित चेतन्य। योग युक्ति गुरु ज्ञान धन्य।।
उर्ध पखारेउ पवन घोर। दृष्ट पलानेउ पूरब ओर।।
उलटि गयो थकि मिटल दाह। पश्चिम दिशा कै खुललि राह।।
सुन्य मँडल में बैठु जाय। उदित उजल छवि सहज पाप।।
जोति जगामग झरत नूर। वहाँ निशु दिन नौबति बाजततूर।।
झलक झनक जिय एक होय। मति पान अपान को मिलन सोय।।
रूह अलख नभ फुलेउ फूल। सोइ केवल आतम मूल।।
देखत चकृत अचरज आहि। जो वह सो यह कहौ काहि।।
'भीखा' निज पहिचान लीन। वह साकि ब्रम्ह सरूप चीन।। 1033

बोलो मन मैना राम राम। जौ निज सुख चाहो अराम।।
तजु बिषया करू भजन साज। काल धरे सिर रूप बाज।।
झपट करैगो एक दिन। जौं न होहु हरि के अधीन।।
राम राम सम बली न कोय। कोटि सुभट महाबीबर होय।।
आ भक्ति जितो कबब भक्तिहारि। हरनाकुश मारो ओद्र झारि।।
भक्त विभीषण गात गात। तेहि रावण मारेउ कूदि लात।।
चलन कियो हरि पास जोग। जो कहु भयो सो जानत लोग।।
ग्राह ग्रसेउ गजरात पाप। दुखित भयो जल नाक आय।।
आरत है हरि हरि पुकार। 'भीखा' तेहि काढ़ो मुरारि।। 1034।।

खेलत बसन्त मन ब्रह्म योज। सहज मउज बड़ि करत रोज।
कबहुँ के लघु कबों बड़ अकार। कबहुँ सुक्षम कबों मोट भार।।
कबहुँ निडर कबों डर के बीच। गुप्त कबों-कबों प्रगट नगीच।।
कबहुँ मौन कबों बोलत माहिं। श्रवन को सुख सो तो नगन नाहिं।।
कबहुँ अधर मुसुकात गात। दृष्ट को सुख सुख क़हि न जात।।
रमिता रमि रहो सकल ठौर। आपे आपु न दूजो और।।
कहुँ श्याम गौर पित ललित भेष। निज 'भीखा' सोई रँग रूप देख।। 1034।।

तुम बगि भजन क्यों न कीजे आय, छजित छम छमे।
होरी जात है समय मानुष, फिर न पैहो अस तन तने।। टेक।।
गत विषयारति भक्ति भाव में, नव नूतन छवि खन खने।
राम को नाम फांग परि पूरण, सत संगति रस बन घने।।
सतुगुरु भयो है दयाल जाहि पर, सो सुख सोवहु जन जने।
ज्ञान विवेक विचारत निशु दिन, योग युक्ति कर सन सने।।

राग कान्हरा

करतार आपे उदार प्रभु तूँ, अकल काल कला करी।
आपुहिं जलन, आपुहिं थलन, आपुहिं पवन, बोलत मउन।।
आपुहिं देवत, आपुहिं सेवत, आपुहिं रिझत, आपुहिं खिझत।
आपुहिं सृजत, आपुहिं नसत, प्रभु खाली तूँ आपुहिं भरी।।
आपुहिं चरित्र बिचित्र ऐसो, 'भीखा' न पहुँचे कोऊ कैसो।
प्रभु सरन हौं मैं आ परी, कीजै दया हे नरहरी।।403।।

भजि लेहु सुरति लगाय, ककहरा नाम का।।टेक।।
क–काया में करत कलोल, रैनि दिन सोहं बोलै।
ख–खोजै जो चित लाय, भरम को अन्तर खोलै।।
ग–ज्ञान गुरु दाया कियो, दियो महा परसाद।
घ–घुमड़ि घहरात गगन में, घटा अनाहद नाद।।
न–नैन सों देखो उलटि कै, ठाकुर को दरबारी।
च–चमत्कार वह नूर, पूर सन्तन हितकारी।।
छ–छिन माँ भनि तिन कर्म गयो है, जीव ब्रह्म के पास।
ज–जै जै शब्द होत तिहुँपुर में, सुद्ध सरूप अकाश।।
झ–झकोरि झपाक झपटि, नर समय गँवाई।
न–नहिं समुझत निज मूल, अन्ध है दृष्टि छिपाई।।
ट–टंड संकट में ग्रसित है, सुत दारा रह साई।
ठ–ठठाय मुसकाय हँसत है, मनहु परल निधि पाई।।
ड–डावांडोल का फिरहु, नेकु तुम समुझहु भाई।
ढ–ढरके जबहीं बुन्द बपूश की, खबरि कतहुँ नहिं पाई।।
न–नमो नमो चरनन नमो, धरो नाम कै ओट।
त–तन्त माल सब राखि लीजिए, कबहुँ परत नहिं टोट।।
थ–थकित भयो थहराय, ज्ञान जब हृदये आया।

चौपाई

भीखा नाम सो एक कहावै। दूजो सब कछु भर्म बहावे।।
राम नाम परमातम कहिए। आतम रूप अनन्त न लहिए।।
अन्त सो एक अनन्तन माया। माया ते रम एक समाया।।
एक अनन्त अनन्त सो एका। माया धारै रूप अनेका।।
भीखा नाम भजन सो कहई। राम भजन में कोउ-कोउ लहई।।
नाम अनादि एक स्थूला। दूजे अविगति शब्द है मूला।।
तीजे भये अनाहद तुरिया। त्रिगुन तहाँ पवन मन गुनिया।।
नाम को आदि अन्त कछु नाहीं। भीखा लाभ सो सत्गुरु पाहीं।।
सत्गुरु जाको नाम लखावे। सोहं शब्द सो अविगति पावै।।
नाम अनाहद आदि अकासा। पाँचो मुद्रा नाम प्रकासा।।
नाड़ी कमल जहाँ लगि कहिए। एकै नाम सकल तन लहिए।।
आतम राम नाम सो जापे। दूजो भर्म कै दे नहिं तापे।।
भीखा निकट नाम दर्साई। कहाँ भरमि बहुते दुर जाई।।
निज स्वरूप सो नामै अहई। बोलत नाम सो आतम कहई।।
सत्गुरु शब्द सुनै जो सरना। राम नाम परे नाम न ज्ञाना।।
रमिता राम बोलता नामा। जो रमता सो बोलत धामा।।
राम सो एक नाम बहुतेरा। नाम एक रमिता को फेरा।।
अबिगति शब्द सन्त पहचानै। यहि बिधि राम नाम को जानै।।

साख़ी

राम नाम कछु अन्त नहिं, एक ब्रह्म आधार।
देह भर्म के सँग ते, दोबिधा नाम अकार।।

नाम राम ते अधिक को, राम धरी निज देह।
तब देखो जो दृष्टि भरि, राम धाम गयउ तेह।।

अन्तर ध्यान प्रभू भयो, तब देखब को नाहिं।
भीखा नाम सदा रहै, जपैं सन्त मन माहिं।।

शब्द ब्रह्म एकै जब भयऊ। जीव आत्मा कहाँ तब गयऊ।।
हे सतगुरु कहि ब्रह्म मिलावहु। आतम जीव सहित समुझावहु।।

साख़ी

सुरति मिलाओ निरति में, जीव सीव को मेल।
दोबिधा भाव मिटाइए, एक अलख को खेल।।

चौपाई

जब गुरु संज्ञा युक्ति बतावै। सहजै सुरति निरति को पावै।।
जैसे सागर बुन्द समाना। सागर भयउ अकार बिलाना।।
तैसहिं शब्द समुद्र कहावै। जीव बुन्द को अन्त न पावै।।
शब्द ब्रह्म जब आतम माहीं। नाम समुन्द्र दुतिय कोउ नाहीं।।
'भीखा' संसय मन कै व्याधी। ब्रह्म रूप निज लाव समाधी।।
दूजा कपट छोड़ि चतुराई। आपै आप निरंजन पाई।।

साख़ी

भीखा दूसर है नहीं, केवल एकै नाम।
दूसर माया मूढ़ है, मन उनमेख निकाम।।

एक पवन के थकि गए, सकल क्रिया थकि जाय।
तब लग मन धावन रहै, जब लगु पवन समाय।।

चौपाई

'भीखा' यही सुरति मन जानो। सत्य एक दूसर मति मानो।।
हे प्रभु जी यक करते ढिठाई। कहत बात जिव बहुत डेराई।।
योग मता नहिं मुनि ठहरावैं। यामें भर्म सन्देह बतावैं।।
साच कहैं कि मिथ्या जानी। सहित बिचार कहिए निज बानी।।
सहज समाज सुगम ठहरावैं। शब्द स्वरूप आत्मा बतावैं।।
शुध स्वरूप सो केहि बिधि जानी। सहज समाधि कैसे पहिचानी।।

'भीखा' यह मन है बड़ भारी। ताते एक युक्ति उर धारी।।
प्रानायाम ते मन बसि होई। तन में संसै रहै न कोई।।
जब लग पौन तबै मन मानौ। साँस बिना मन ब्रह्मै जानै।।

साख़ी

मन बसि सतूगुरु ज्ञान ते, सकल क्रिया होय सिद्ध।
भीखा युक्ति अनेक है, मन माया करि बिद्ध।।

दया करैं गुर जाहि पर, कृपा कटाक्षै होय।
'भीखा' जोग सकल भयो, मन कै दुरमति खोय।।

सुरति निरति मेला भयो, जीव सीव भयो एक।
मन माया धावन छुटै, केवल ब्रह्म विवेक।।

चौपाई

सुरति निरति को भेद बताओ। कैसे सुरति निरति लयलाओ।
सुरति मिलै जब निरति हो जाई। सुरति कै खोज कहाँ तब पाई।।

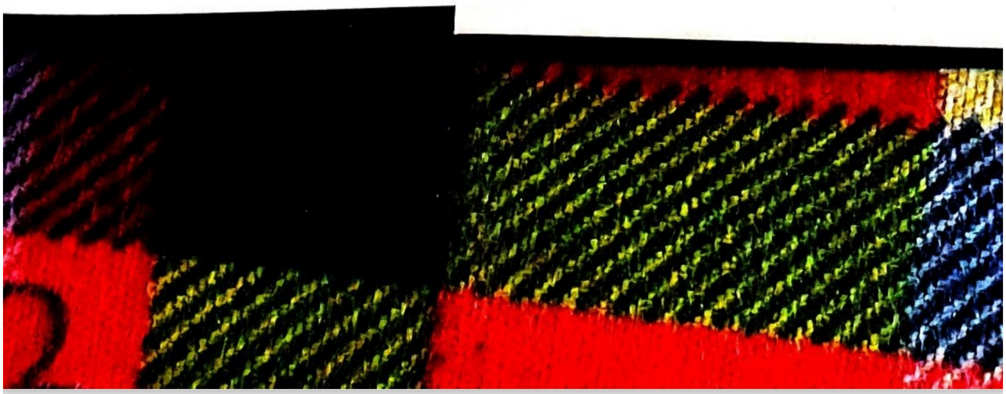

योग की युक्ति पाय सुरति औ निरति लाय,
नाद बिन्द में समाय 'भीखा' लायो आसना।।

आदि अन्त मध्य एक नाद बिन्दु सम कै टेक,
सब घट शुद्ध ब्रह्म देखत अकाश है।
काहे को भर्म करै जन्मि जन्मि के मरै,
भजत नाहिं हठि करिके जौ लों तन सास है।।
निज सुख यही जानो दोबिधा नहिं भाव मानो,
अलख अलेख देखो आपुही में बाद है।
चित्त ज्यों चकोर लेवैं चन्द्रमाँ को दृष्ट देवै,
आतमा प्रकाशी ज्ञान 'भीखा' निजु पास है।।

ज्ञान उनमान करि चीन्ह ले अमान धरि,
गुर परताप खुलो भर्म को कपाट है।
चाँद सूर एक सम सुरति मिलाय दम,
इंगल पिंगल रँग करि सुषमन माठ है।।
पूरब पवन जोय पश्चिम की राह होय,
गंग अरु यमुन संगम त्रिकुटी की घाट है।
पान औ अपान आसमान ही में थी होवै,
'भीखा' शब्द ब्रह्म को अकाश शुन्य हाट है।।

भूलो हाट ब्रह्म द्वार काम क्रोध अहंकार,
रहत अचेत नर मन मया गागो है।
अलख अलेख रूप आतमा है भेख धरे,
कस न पुलकि जीव ताही पन्थ ही में लागो है।।
अकथ अगाधि ओय अनभव फल होय जोय,
निशही में भोर मानो सोय उठि जागो है।
बाजै अनहद मारू उभै दल मोक्ष झारु,
सुरा खेत मारि रहो 'भीखा' कूर भागो है।।

जौ पै कोऊ राम नाम चित धरै।
तन मन धन नेवछावरि वारो, सहज सुफल फल फरै।।
गुरु प्रताप साधु की सँगति, योग युक्ति उर भरै।
इंगला पिंगला सुषमन सोधै, ज्ञान अग्नि उदगरै।।
चन्द सूर्य्य यक ग्रह करि, उलटि उर्ध अनुसरै।
माद बिन्द का जूह गगन में, मन माया तब मरै।।
आठ पहर नौबति धुनि बाजै, नेकु पलक नहिं टरै।
'भीखा' शब्द यह सुनत अबुध बुध, हर्ब को अमरख करै।।323।।

शब्द

अस साहेब दीन दयाल कहूँ कोउ नाहीं।
बड़ा प्रभुत्त प्रताप बली प्रभु अचरज किम कहि जाहीं।।टेक।।
माया ब्रह्म ब्रह्म कै माया, हरि तरि असल की छाही।
महा प्रलय प्रभु सुन्य निरन्तर, निद समाचि सुख माहीं।।
बहु काल बितेऊँ फार उठो प्रभु, मौज सकल फैलाहीं।
प्रथम आप ब्रह्मा तन धारी, शिव आप बिशनु गुण पाहीं।।
चाँद सूर तारा सुमेर प्रभु, नयन रोम नख बाहीं।
पृथ्वी तेज पवन पानी नभ, सागर त्रासत डेराहीं।।
चारि खानि चर अचर रटा प्रभु प्रगट निज न देखा हीं।
मानुष रूह चेतन्य पाई जड़, जल बुन्द होय बिनसाहीं।।
हरि अनन्त हरि एक आत्मा, व्यापक सम दरसाहीं।
'भीखा' सोई एक राम कृष्ण की, भजन बिना पछताहीं।।

करि कर्म हरिहि परवानो फल सानो न।
प्रभु मिलन हेतु प्रगटानो काहू मानो न।।
सब साहेब आपु आपनो काहू जानो न।
प्रभु अनहद धुनि घहरानो काहू कानो न।।
प्रभु प्रेम भक्ति को बानो काहू गानो न।
प्रभु ब्यापक पुर्ष पुरानो काहू ज्ञानो न।।
प्रभु सर्व रूप भगवानो कोउ आनो न।
मन 'भीखा' भर्म भुलानो काहू पहिचानो न।।225।।

समय जुन आवन सो आई। मन कहेहु ते नहिं पतिआई।।
युग वर्ष मास दिन पहर धरी। छन देह अवधि नियराई।।
मुर्ख तदपि नहिं चिन्ता मानो। करतल भौ अमराई।।
सुर नर मुनि गन्धर्व अरू दानव। काल कर्म दुख पाई।।
ब्रम्हा विश्नु शिव सनकादि आदि दे। प्रभू डर को न डेराई।।
अमर चिरंजिव लोमस समता। दिन पर त्रास जनाई।।
'भीखा' निभौं राम सरन यक। का कियो बहुत सिधाई।।

मौज हरि जानत को जानी। मन समुझ नहिं अभिमानी।।
निर्गुन ब्रह्म निरंजन देवा। सेवा पर पहिचानी।।
योग जाप तप दान नेम करि। थकि मुनिवर ज्ञानी।।
पान अपान उद्यान ब्यान करि। बिसरेउ सारंग पानी।।
अपरम्पार पार परमेश्वर। अविगति अकथ कहानी।।
अवढर ढरन ढरे प्रभु जापर। ताकर भाग्य बखानी।।
'भीखा' व्यापक रूप सकल घटी। पूरन चाखि खानी।।

तुम धनि-धनि साहेब आपै हो। तहवाँ पुण्य न पापे हौ।।
जत निर्गुन तत सरगुन केवल। व्यापक तुम पर तापे हौ।।

रमिता राम तूँ अन्तर जामी। सोहं अजपा जापे हौ।
ए द्वै ब्रम्ह निरन्तर बासी। प्रगट रूप निरापे हौ।
चहुँ युग कृत्य कृत्य किया तुम। जेहि सूकर सिर थापे हौ।
'भीखा' शिशु अवलम्ब राबरो। तुमहिं मया मम खापे हौ।

हे मन राम नाम चित धौवे।
काहे इत उत धाई मरतु है, अवशि भजन प्रभु कौवे।।
गुरु प्रताप साधु की संगति, नाम पदारथ खौवे।
हरिदम सोहं शब्द उठतु हैं, विमल-विमल धुनि गौवे।।
सुरति निरति अन्तर लै लाओ, अनहद नाद गगन गर्जौबे।
रमिता राम सकल घट व्यापक, नाम अनन्त एक ठहरौबे।।
जहाँ गयो जग सोयर टूटो, तीन तान गुनये गुन नौवे।
जन्म स्थान खानपुर बोहना, सेवत चरन भिखा नन्द चौवे।।

राम जन्म मन असकति कैसी।
आजुहिं कालि समै बीतत है, अभय छोड़ि भय भरम लेवै सी।।
आतम पुरुष दृष्ट पतिवर्ता, औरि देवा सेवा घर पैसी।
सकल सन्त को मति याही है, आप कृष्ण दरसाई जैसी।।
शास्त्र मत को ज्ञान कहत है, मत विज्ञान कहा गुरु तैसी।
'भीखा' पलखत परैं कबों नहिं, पायो भक्ति संजीवन ऐसी।।

ऐसो राम कवनि विध जानी।।
दृष्ट मुष्ट कबहूँ नहिं आवत। जन्म मरन जुग बहुत सिरानी।। टेक।।
अगम अगोचर बसत निरन्तर। जाके शीश पाप नहिं पूनी।।
निर्गुन निर्विकार सुख सागर। अपरम्पार अखंडित बानी।
ईश्वर कै कोई नहिं मूरति। थाके सकल खोज मुनि ज्ञानी।।
अलख को लखै अदेख को देखै। व्यापक पूरन चारिउ खानी।
निरंकार निरू पाधि निरामै। ''भीखा'' रँग न रूप निशानी।।

जो कछु है सो है प्रभु तुमही।
दूसर मुख नहिं कहही न गुननी ।। टेक।।
स्वारथ बस काम अंध न सुनही।
विषै धनुष सर आतर धुनही।।

मन तुम नाम न भजहु सवेरो।
पहर दुपहर तीसरे ऊपर हे होय जात अवेरो।।
लागो खड़ा होय जीव जमा सों है केवल हित तेरो।
भर्म घुघट पट खोलि बिचारों सहजहिं मिटै अधेरो।।
सत्गुरु नयन सयन को परचो होत न लागत देरो।
अंचरज महा अलौकिक रचना देखत निकटहिं नेरो।।
सहज समाधि कै चाह करो तौ आपा परहि निबेरो।
खोजत-खोजत कोउ पार न पावहि सुर-नर बहुँतेरी।।
तुरिया शब्द उठत अभि अन्तर सोहं-सोहं टेरी।
पुरवहि लिखेउ अक्षर अनमूरति आपहि चित्र चितेरो।।
स्वर्ग जहाँ लगु रूप तुमारों जल थल बन गिर हेरो।
कहै "भीखा" यक धन्य तुम्ही हौ तट पर देवँ केहि केरो।।

राग सोहर

निर्गुन अरम्पार सो रहत निरन्तर हे।
ललना सगुन विदित भए आई कहूँ नहि अन्तर हे।।

छन्द

अन्तर कहूँ नहिं सर्व पूरन एक छत अमले कियो।
थपन उथपन जासु काल प्रताप डर सब के हियो।।

श्री राम जी के नाम का

क - कहरा

सन्तो भजि लेहु सुरति लगाई क-कहरा नाम को

(क) कयाम करत कलोल रइन दिन सोहँ बोलै।
(ख) खोजै चित लाय भरम को अन्तर खोलै।।
(ग) ज्ञान गुरू दया कियो दियो महा परसाद।
(घ) घमंड घहरात गगन में घंटा अनहद नाद।।
(न) नयनन से देख उलटि ठाकुर दरबारा।
(च) चमत वह नूर पूर सन्तन हित कारा।।
(छ) छेमान त्रिन कर्म पायो है जीव ब्रह्म के पास।
(ज) जै जै शब्द होत तिहुँ पुर में सुध स्वरूप आकास।
(झ) झ-झकोर झबार झपटि नर समैं गँवाई।

योग युक्ति करि परिखन लागो समुझत बार न पार ललना।
नेकु दृष्ट में आव जवहीं तब पिरा में खभार-।।
उधि-उधि घुमि-घुमि उलटी गयो है धुनि सुनी चढ़त पहार ललना।
शुन्य शिखर पर जाप चढ़ो है खुलि गयो भरम केवार।।

निशु बासर नहिं चन्द उगो है, अचरज रूप हमार।
ज्ञान ध्यान तहवाँ न लगो है 'भीखा' गुरू चरन समाय।। 1055।।

सत्य शब्द उठन लगे है अनभव घर्निन जाप ललना।
अति आनन्द उमंग भयो है ता पद् जिय लगल बनाय।।
सुनत सुनत तन ताप गयो है छुटि गयो कर्म बलाय।
नाँद बिन्दु की जूह भयो है मनुआँ तहाँ लोभाय।।
पृथ्वी गगन सब एक भयो है आपै त्रिभुवन राय।
दूसरे दुष्ट न आवै 'भीखा' चरन समाय।। 1056।।

जग नाम प्रकाश अकार धरे जड़ आतम राम खेले होरी।
काम क्रोध मद् लोभ ग्रसित ना आपु नरक बोरी।।
गति विषयारत भक्ति भाव जहँ ज्ञान ध्यान रस रँग घोरी।
सन्तन सभा चोआ अरू, कुमकुम प्रेम वचन छिरकत रोरी।।
सतुगुरु हाट बिकाय लियो प्रभु दान दियो बन्धन छोरी।
योग युक्ति अभ्यास भरो लैं अर्ध उर्ध सुषमन झोरी।।
सुरति निरति, लवलीन भयो सम जीव सीव दोनों जोरी।
ब्रह्म सरूप अनूप दृष्ट भरि निज पति देखि मिलो गौरी।।
अगम अगोचर नूर झलाझल सोहं तार लगो डोरी।
कहै 'भीखा' मेरो ऐसो साहेब मन माया अँखुआ तोरी।। 1057।।

यक पुर्ष पुरान चहूँ युग में मिलि आतम रात खेलें होरी।
रँग लगो फगुआ रस बसि भयो माया ब्रह्म दुओ जोरी।।
जग परिपंच करम अरुझो नर सबई कहत मोरी मोरी।
नाम पदारथ भूलि गयो है ग्रीवा फँसेउ भरम डोरी।।
कोउ योग युक्ति रस भेष पाइकै सुरति निरति रँग लै बोरी।
बाजत अनहद ताल पखाउज उमगि प्रेम आनंद चोरी।।
सतुगुरु शब्द अवीर कुमकुमा भाव भरी झोरी-झोरी।
'भीखा' दिव्य दृष्टि करि छिरकत पलकन नूर चुअत ओरी।। 1058।।

होरी सो खेले जाके सतगुरु ज्ञान विचार।
यहि सिवाय जो और करत हैं ताकों जन्म खुआर ।। टेक।।

चौपाई

चन्द्र सूर्य को मत कह दीजै। घर कौने पर सुमिरन कीजै।।
चन्द्र अरु सूर्य कहत हैं काको। सहित युक्ति समझात्य ताको।।
रैन दिवस जे आवहिं जाहीं। ऊगै चन्द्र सूर्य की नाही।।
हे सतगुर मैं निपट अनारी। योग कठिन सुनि डरत भिखारी।।

साखी

कहौ कृपा करि भेद प्रभु, चन्द्र सूर्य को भाव।
जेहि प्रकार साधक लहै, गहै तुम्हारो पाँव।।

जेहि बिधि मन को बोध है, तौन युक्ति ठहराई।
केवल तुम्हरे चरण को, 'भीखा' आस लगाई।।

चौपाई

सुनिए चन्द्र सूर्य को भेवा। आसन नाक पुरे पर सेवा।।
चन्द्र सूर्य ब्रह्माण्ड के बासी। रैन दिवस वहि करत प्रकासी।।
नाक के पूरे दोउ अस्थूला। वाम चन्द्र सुर दाहिन मूला।।
चन्द्र राखि के सूर्य चढ़ावै। इंगला पिंगला सुखमन जावै।।
यक थाभै करि कोशिश लाई। सुन्य भए पर जिए अकुलाई।।
मेंटे सुन्य भयो उँजियारा। बासर सूर्य लियो अवतारा।।
भयो प्रकाश जीव सुखदाई। अन्धकार डर सकल बहाई।।
सूर्य बिसैगै बासर मन्दा। निसि में आनि उग्यो तब चन्दा।।
'भीखा' वह मति मैं नहिं मानों। रैनि में सूर्य उगै तब जानो।।
उगै चन्द्रमा बासर माहीं। आगे योग युक्ति कछु नाहीं।।

साखी

चन्द्र सूर्य को खेल यह, बिरला जानै भेव।
'भीखा' राति दिवस तहँ, चन्द्र सूर्य नहिं केव।।

केवल ब्रह्म प्रकास है, आतम बोध बिचार।
'भीखा' जानहु मर्म यह, सोहं नाम हमार।।

श्रीगुरु दया

चौपाई

योग अगम गम गरु सों मेला। समुझत कहत सो करत सुहेला।।
स्वाँस असाध्य साधि यों आवै। चन्द्र राखि के सूर चढ़ावै।।
तब लग थम्है स्वाँस जब फूलै। फूल देखि मन भँवरा भूलै।।
अन भौ फूल अनाहद बाजा। ध्वनि सुनि मगन जीव होय राजा।।
फूल घोंटि जब फलहिं समावै। यहि बिधि योग पुरुष को पावै।।
योगी यहि बिधि युक्ति बिचारै। फल प्रापति ध्वनि नाद उचारै।।
'भीखा' यहि बिधि हिर्स नसाई। मन उन मेष छूटि तब जाई।।

साख़ी

ध्यावै यहि विधि ब्रह्म को, निर्गुन मति निरधार।
भीखा मानहु सत्य करि, जिय करि तजो खभार।।

देखहु आपै आप में, ब्रह्मरूप समुदाय।
दिव्य दृष्टि करि देखिए, अंग अंग समुझाय।।

दसकन्धर सिर काटन हारा। बीभीषण को प्रान पियार
नामै आदि नाम है अन्ता। 'भीखा' तव अबहूँ बरतन्ता

साखी

योग युक्ति अभ्यास करि, सोहं शब्द समाय।
'भीखा' गुरु परताप ते, निज आतम दरसाय।।

नाम पढ़ै जो भाव सों, ताकहँ होहि दयाल।
'भीखा' को कृपा कियो, नाम सुदिष्ट गुलाल।।

चौपाई

नामै चाँद शूर दिन राती। नामै कृतम कै उतपाती।
नाम सरोस्वति यमुना गंगा। नामै सात समुद्र तरंगा।
नामै गहिर अगूढ़ अथाहा। असरन सरन के चरन निहारा।
मूल गाइत्री औ ॐकार। ताम तुरिया सम सुछमसार।
पलक दरियाव परो हरिनाम। नामै ठाकुर सालिग्राम।।
शिव ब्रह्मा मुनि सब के नायक। बिठल नाथ साहेब सुखदायक।।
नामै पानी नामै पवना। र रंकार मंगल सुख खना।।
नामै धर्ती नाम अकास। नामै पावक तेज प्रकास।।
नाम युक्ति गुर नामै दाता। नामै अज विज्ञान विधाता।।
नाम सुमेर महा गम्भीर। नामै पारस मलयागीर।।
नाम अशोक शोक सों रहिता। कलपद्रुम नामै को कहिता।।
नामै रिद्धि सिद्धि को करता। नामै कामधेनु होई भरता।।
नाम अर्ध उर्ध होई आए। चारि खान महँ नाम समाए।।
धन्य राज धननजै सोई। नामहिं अगन गनै कोई।।
नामै प्रानायाम कहाए। सोहं-सोहं नामै गाए।।
नामै सुन्दर नूर जहूर। नामै लामें निकट हजूर।।
नाम अनाद एक को एक। 'भीखा' शब्द सरूप अनेक।। 499।।

साखी

हमरो मनुआँ बड़ा अनारी। साहेब सों नहिं करत चिन्हारी।।
प्राणायाम न युक्ति बिचारी। अजपा जाप न लायो तारी।।
भ्रमते. अजर न खोल केवारी। निज स्वरूप नहिं देखु मुरारी।।
पान अपान मिलन सँवारी। गगन गवन नहिं शब्द उचारी।।
सुन्य समाधि न चेत बिसारी। यह लालसा उर बड़ी हमारी।।
सर्ब दान गुरु दाता भारी। जाचक शिष्य सो लेत 'भिखारी'।। 357

मन छोड़हु सकल उदासी।
राम को नाम तीर्थ घटही में, दिल द्वारिका काया काशी।।
करते जग अपनो कर बांधो, त्रिगुन डोर की फाँसी।
भिन-भिन निज गुरु बरतावत, काहु कै कछु न सिरासी।।
तेहिते कनक कामिनी अरुझो, हरि सो सदा निरासी।
अनतै नयन श्रवन अनतै है, रसना अनतै साँसी।।
ब्रह्म सरूप अनूप भूप वर, शोभा शिव कै रासी।
केवल आतम राम बिराजत, परमातम अविनासी।।
अपरम्पार अखण्डित पूरन, अकथ कथो नहिं जासी।
सो प्रभाव प्रगट सत संगति, योग युक्ति अभ्यासी।।
सतुगुरु ज्ञानवान जेहि मारो लगो मर्म अरु गाँसी।
घायल घुरमित उलटि गयो त्यों चेतनि उदित प्रकासी।।
जग समुद्र नउका नर देही कन हरि गुरु बिश्वासी।
अमृत हरि को नाम संजीवन, चाखत छकि न अघासी।।
वेद वेदान्त सन्त मुख भाषहि, धन्य जो नाम उपासी।
मन क्रम बचन जो हरि रँग राते, तजो जक्त उपहांसी।।
जो एकै व्यापक आतम तौ, को ठाकुर को दासी।
ब्रह्म स्वरूप है साहेब सेवक, दिब्य दृष्ट है खासी।।
अलख राम को लखय सोई, जो, भर्म भीत को धासी।
साई योग योगेश्वर ध्यानी, जाकी रहन अकासी।।
हरि सों प्रीति निरन्तर दिन-दिन, छूटी भूख प्यासी।

सदा तुम साहेब दीन बन्धु सुखदाई।
निर्गुन निरंकार निरंजन, अंजन धरि बपु आई।।
गोपी जन मन हरन कृष्ण जू, सब अभिलाष पुराई।
सेवरी को फल जूठो पाए, लय बैकुंठ पठाई।।
राम रूप होय रावण मारो, लंक बिभीषण पाई।
भक्त बछल करुणा मय केशो, ग्राह ते गजहि छोड़ाई।।
जहाँ-जहाँ गाढ़ परै हरिजन को, तहँ-तहँ करहु सहाई।
सभा माँह कियो अनट दुशासन, द्रोपति चीर बढ़ाई।।
ध्रुव को ध्यान अचल करि दिन्हों, सकल सन्देह मिटाई।
जा पर करहु कटाक्ष दयानिध, सुजस तिहूँ पर गाई।।
अजपा जाप सकल घट बरतै, चेतनि ब्रह्म कहाई।
सोईं सन्त अचल पद पावे, जाकहँ देहु देखाई।।
सोहं शब्द उठत निशु बासर, अपनी पैज बढ़ाई।
तुम कर्ता गुरु गोबिन्द साहेब, जाकहँ उदय कराई।।
अगम अपार निरन्तर बासी, अन्त कतहु नहिं भाई।
जन 'भीख' तेहिं भजै कवनि बिध, सरन-सरन गोहराई।।

येरी मन चाहत दृष्ट निहारी।
सुरति निरति अन्तर लय लाओ, निज स्वरूप अनुहारी।।
जोग युक्ति करि परिषन लागो, पूरन ब्रह्म बिचारी।
पुलकि-पुलकि आपा महँ चीन्हत, देखत छबि उँजियारी।।
सुषमन के घर आसन मारो, इंगला पिंगला सुढारी।
सुन्य निरन्तर साहेब आपे, सब घट बसते न्यारी।।
प्रेम प्रीति तन मन धरि अरपो, प्रभु जी की बलिहारी।
गुरु गुलाल जी के चरण कमल रज माथ भिखारी।।343।।

शब्द

जढ़ आजु आजु कहत कालि काली।
सुमिरन नाहिं कर पापी कपटी जंजाली।।
उतरत पर चढ़त नाहीं कर्मना के काँधे।
यतनो पर पँवर चाहे पाय बाँधे।।

भव जल दरियाव देखो महा अगम गहिरा।
राम नाम नउ का सुनि चढ़त नाहिं नवहिरा।।
बार बार देत सिषा मूद न मन मानै।
नाम देव तव तरै जब राम नाम जानै।।344।।

गुरु राम नाम कैसे जानो मन करत विषै कुटिलाई।
काम क्रोध मद लोभ मोह ते, सँवस कबहुँ नहिं पाई।।
पाप पुन्य युग वृक्ष लगो है, जन्म मरन फल भाई।
हार पात के फिरत फेर में, चेतन्य नाम गँवाई।।
जग परिपंच को जाल पसारो, चारिउ खान बझाई।
याही फन्द से सोई बचै, जेहि आपु से लेहि छोड़ाई।।
भारत होय जन बिनय करत हैं, सरन-सरन गोहराई।
कहै 'भीखा' यह कुफुर टूटै तब, जब साहेब करहिं सहाई।। 345।।

झूलहिं कनेरी और नरोतमा भगवान पुरी के पास।।
झूलहिं पितम्बर दास औ सम्मन भजि कर बारम्बार।
सधन गुँजा माली प्रभु को गून्हि चढ़ायो हार।।
झूलै साले बेग मकरन्द अरु सन्तदास अधाई।
झूलहिं कमाल अरु बुद्धन हरि रति साहिहु सेन समाई।।
विद्यापति जैदेवजी तन मोह डारो भार।
धर्म दास मलूक धरनी प्रेम भक्ति विहार।।
झूलहिं बावरि योग परिचै शुन्य में धुनि लाय।
झूलहिं बीरू भक्ति सँगे सुरति निरति समाय।।
झूलहिं यारी जीव हरिदम लगो सोहं तार।
झूलहिं केशव भाई बूला नाद के झंकार।।
झूलहिं गुरु गुलालजी निज आतमा दर्शाय।
झूलै भक्त अनन्त प्रभु के नीर छीर बिलगाय।।
सकल सन्तन बिनय सुनिए करहु यह उपकार।
भक्ति अबिरल झुल दीजै 'भीखा' रुचि अधिकार।।

आदिमूल यक रूखवा हो, तामें लागो तीन डार।
ता बिच यक स्थूल है, शाखा बहु बिस्तार।।
और न बरनी आवै हो, छाया अपरम्पार।
माया मोह ब्यापक भयो, सूझै वार न पार।।
सतुगुरु नावल हिण्डोलवा हो, सुरति निरति गहेसार।
झूलहिं पाँच सोहागिन हो, गावहिं मंगलचार।।

अगह वस्तु की गह नहीं, जानि कौनि बिध जाति।
अजपा के नहिं जाप है, लखब जपब केहि भाँति।।

चौपाई

'भीखा अलख जान निज आपे। दूजे भर्म तजो जिय तापें।।
लखब सोई जहँ दूजा होई। जहाँ एक तहँ लखब न कोई।।
ताते अलख लखै नहिं कोई। आपुहिं लखब सो अलख समोई।।
जो कछु इन नयनन लखि जाई। सो सब माया लखब कहाई।।
दिब्य दृष्ट करि उलटि समाई। लखै अलेख लखै तिन्ह पाई।।
भीखा अलख लखै जनि ऐसे। आगे सुनो कहौं मैं जैसे।।
अजपा जाप कहै सब कोई। अजपै जपै सो अजपै होई।।
अजपा जाप गुरु से पावै। ब्रह्म स्वरूप न दूसर भावै।।
निज आतम कोई और न दूजा। अजपा जाप आतमा पूजा।।

सोरठा

सब के अजपा जाप, अजप जपै सोई जाप है।
सत्गुरु के परताप, अलख लखन में आवई।।

दृष्टि उलटि लागो रहै, सोहं ठाकुर भूप।
अजपा जाप सो जानिए, दृष्ट जो आवै रूप।।

सो स्वरूप सब नाशवति, आपु-आपु में पाव।
दिब्य दृष्टि सो मानिए, अजपा जप सो भाव।।

आतम देव सों देव नहिं, दिव्य दृष्टि कै टेक।
'भीखा' सत्गुरु सो मिलै, ब्रह्महिं जानै एक।।

चौपाई

अनहद शब्द समुद्र कहावै। ताको पार वार नहिं पावै।।
महा अगम जल गहिर गम्भीरा। सत्गुरु कृपा कोई लहै फ़क़ीरा।।
कर्म सँजोग बुन्द अलगाना। तब अनहद को मर्म न जाना।।
जब पूरा गुर भेद लखावै। तब सो बुन्द समुद्र समावै।।
बुन्द जीव तब का कहँ कहिए। आपै आपुहिं अनहद लहिए।।
सुरति निरति जब मेला भयऊ। सोई बुन्द अनाहद पयऊ।।
सोई अकथ कहावै नामा। दोइत रहित मन पूरन कामा।।
कथब कहावै माया धामा। मुख रसना सो भावै नामा।।
निज मुख जिभ्या सुमिरन करई। 'भीखा' अकथ नाम सो धरई।।

बंक नाल की धारना, मेरुदण्ड कौ द्वार।
हे सत्गुरु कृपा करो, केहि बिधि खुलै केवार।।

पश्चिम युक्ति संजोग करि, कृपा देखावहु सोय।
'भीखा' की कछु बसि नहीं, तुम से होय सो होय।।

चौपाई

भीखा सुनो धारना येही। समुझहु गुनहु मनहिं मन तेही।।
अकास के पवन पतालहिं जाई। उलटहिं पवन अर्ध को धाई।।
धारन बँक नाल को येही। मेरुदण्ड चढ़ि गौनहु तेही।।
धीरज धरि गुरु ज्ञान सम्हारी। पवन गम्य नहिं तहाँ भिखारी।।
मरि पचिरहु गुरु ज्ञान बिचारी। कृपा करहिं तब देहिं उघारि।।
भीखा उहाँ जाइ जिव हारी। तबहिं तत्तक्षण खुलै किवाड़ी।।
परकाशक परमातम धारी। तृकुटी दर्शन देखु भिखारी।।
राम धारना यह मन मानो। आगे कहों सोई पहिचानो।।

साख़ी

जोई पवन अकास हैं, सोई पताल बग मेलु।
बँक नाल सोई पवन है, मेरुदण्ड सोई खेलु।।

पवन शब्द जिव-दुई नहीं, पश्चिम लहरि समाय।
पवन तृकुटी बस्य भा, जीव परम पद पाय।।

शब्द ब्रह्म अरु जीव मिल, पवन कहावै सोय।
भीखा अलख अलेख यह, निज दूसर नहिं कोय।।

चौपाई

साहेब अलख कौनि बिधि लेखी। अन्देखे को केहि बिधि देखी।।
हे सत्गुरु मैं तुम्हारी सरना। कहिए भेद अलख को धरना।।
दिब्य दृष्ट सो कहा कहावै। केहि बिधि रूप दृष्ट को पावै।।

दोहा

जहाँ अलख तहँ लखय कस, 'भीखा' के मन ताय।
अनहद की तो हद नहीं, अकथ कथी नहिं जाय।।

चौपाई

हे सत्गुरु मैं बड़ अज्ञाना। अर्थ अभ्यास करेउ मनमाना।।
केहि बिधि ब्रह्म कियो घट बासा। जेहि ते माया कीन्ह ग्रासा।।
जहाँ को ब्रह्म तहाँ किम गयो। हे सत्गुरु मोहि अचरज भयो।।
मेरुदण्ड कै राह बताओ। बँक नाल कैसे चढ़ि जाओ।।
पश्चिम राह कवन बिध खुलै। केहि बिध जीव पवन लै हुलै।।
कौनी भाँति ते तृकुटी लेखै। आतम राम कौनि बिधि देखै।।

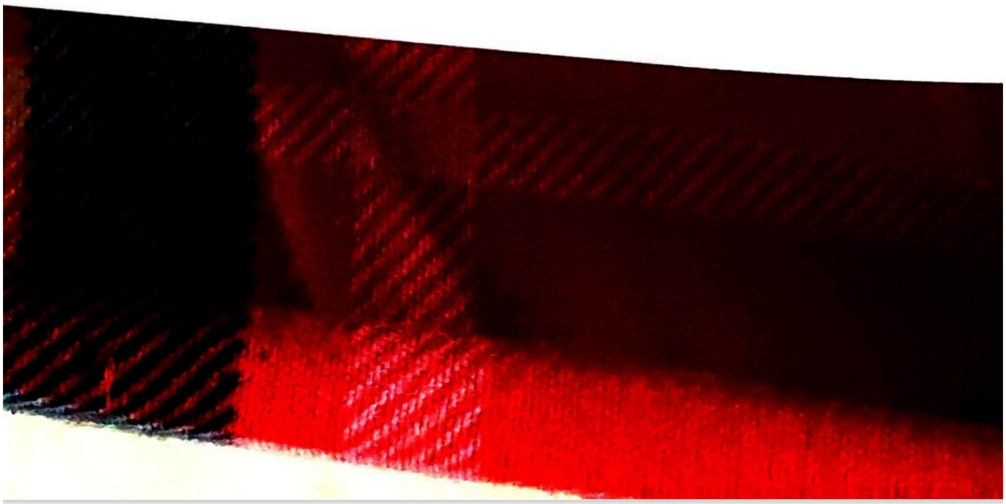

साख़ी

बंक नाल की धारना, मेरुदण्ड कौ द्वार।
हे सत्गुरु कृपा करो, केहि बिधि खुलै केवार।।
पश्चिम युक्ति संजोग करि, कृपा देखावहु सोय।
'भीखा' की कछु बसि नहीं, तुम से होय सो होय।।

चौपाई

पान अपान मता दुइ भयऊ। एकै पवन बिलगि कत गयऊ।।
यह सन्देह प्रभु मोरि छोड़ावहु। पान अपान को भेद बतावहु।।

साखी

पान अपान सो कवन है, जीव ब्रह्म को आहि।
चेतनि आतं नाम को, कहौ कृपा करि ताहि।।

जोति कहो सो काहि को, परकाशिक सो काहि।
पंर्म जोति सो कौन है, को परकाशिक आहि।।

चौपाई

'भीखा' प्रेम नाम रस पागो। समझो युक्ति भर्म सब त्यागो।।
पुर्ष प्रमातम आदि है ओई। दुबिधा भाव अकारन कोई।।
इच्छा अविगति बोलत भयऊ। शब्द पवन तवने छण भयऊ।।
शब्द सो ब्रह्म पवन मन माया। तामे तिरगुन खेल बनाया।।
तिरगुन शब्द ब्रह्म अरु पवना। नाम अकार रचे सुर तौना।।
चित चैतन्य सकल घट माहीं। ताको आदि अन्त कछु नाहीं।।
जब घट रचना सृष्टि बनाई। पान अपान तबै बिलगाई।।
जीव ब्रह्म बिच भर्म समाई। ताते जीव अपान कहाई।।
कर्म भर्म के बसि विज परेऊ। माया मोह ग्रसित तन धरेऊ।।
पान सो आतमराम कहावै। जीव अपान मन माया लावै।।
चेतन ब्रह्म अप सो पाना। जाको धरै योगेश्वर ध्याना।।
सोहं पान एक करि मानो। या महँ मति दूजो नहिं जानो।।
अपने कर्म बस जीव कहावै। माया बसि परि भोग भोगावै।।
मुक्ष जबहि सत्संगति करिए। सत्गुरु शब्द हिए महँ धरिए।।
मूल अपान जब उलटि चलावै। अर्ध उर्ध कै सुधि तब पावै।।
बंक नाल चढ़ि मारग सोधै। पान अपान मिलन तब बोधै।।
मेरुदण्ड होय पछिम ध्यारै। पैठि सुषमना रूप निहार।।
'भीखा' जानहु भेद बिचारा। सोई आतम है रूप हमारा।।

साखी

पान अपान को मिलन उहाँ, जीव ब्रह्म को भाव।
भीखा अन्तर कछु नहीं, आपै सोहं पाव।।

जोति है ज्वाला जीव की, फैलि रही सब अँग।
चेतन अंश प्रकाश है, मन पवना के सँग।।

शिष्य अर्ज

चौपाई

सोहं नाम बोलै सो कहाँ। कहिए भेव लहै जन तहाँ।।
गंगा यमुना कहाँ कहावे। धारा तिनको कहाँ बहावे।।
जहाँ सरस्वति संगम होई। तीनों भेद कहो प्रभु सोई।।
सोहं नाम कवनि बिध जानी। हे सतुगुरु कहिदेहु सुबानी।।
भिन्न-भिन्न स्थान बताओ। भीखा के मन निश्चय आओ।।
प्रान अपान को मत कहो। अर्ध उर्ध ठहराय।।
मध्य अर्थ जेहि बिधि बनै। हे प्रभु देहु बताय।।
त्राहि-त्राहि शरणागती। मन क्रम बचन बिचारि।।
तुम सम दाता है नहीं। सेवक नाम भिखारि।।

श्रीगुरु दया

चौपाई

सोहं नाम बोलता ओई। आपै आप दुजो नहिं कोई।।
ताकी बार पार कहुँ नाहीं। सो जानै जो सतुगुरु पाहीं।।
सुन्य अकास बोलता ओई। स्वासा अर्ध उर्ध सम होई।।
ताको भेद कोई कोई जानै। जो सतसँग गुरु पहिचानै।।
सोहं सुन्य निरन्तर एका। हरिदम सोहं-सोहं एका।।
गंग जमुन को धारा येही। चन्द्र अरु सूर्य बने घर जेही।।
अर्ध उर्ध निसुबासर बहई। मध्य सरोस्वति संगम लहई।।
इंगला पिंगला सुषमनि सोई। एकै पवन दूजो नहिं कोई।।

साख़ी

भीखा पान अपान मिलि, लागो सुन्य समाधि।
सकल कृपा को अन्त यह, समुझहु महा अगाधि।।

दूजो और उपाय नहिं, आपुहिं आपको ध्यान।
देखहु आपा आप में, सो यहि बिधि गुरुज्ञान।।

चौपाई

हे प्रभुजी मैं तुम्हारी सरना। मता अगूढ़ समुझ नहिं परना।।
पान अपान कहाँ ते आए। कौन बिधि घट आनि समाए।।
ताकर आदि अन्त कहि दीजै। मोहिं पापी को आपन कीजै।।

20:13

दशपदी-21

ओम् नाम से प्रान उठाओ, ओम् नाम से तिहँ ठहराओ।
ओम् नाम से छोड़ो प्राना, ऐसे सुमरे दोष हटाना।
ओम् नाम जप श्वासों श्वासा, मेटो अन्तकाल जम त्रासा।
ओम् नाम को मन में रटले, चिद जड़ ग्रन्थी को तुम कटले।
ओम् नाम का चिन्तन कीजे, कह टेऊँ अमृत रस पीजे।। ९ ।।

ॐ जो उच्चारु या जपु करण जी विधी बुधाईंदे, समुझाईंदे सत्गुरु स्वामी टेऊँराम महाराजनि चवनि था, " ॐकार जो जपु करण वक़्ति पहिरीं इन उच्चार द्वारां पंहिंजा प्राण (साहु) मथे खणो. पोइ ॐ नामु मथे रोके छडि॒यो. उन खां पोइ ॐ जो उच्चारु कंदे प्राणनि (साह) खे बा॒हिर छडि॒यो. ॐकार जो सुमिरनु कंदे पंहिंजा दोष दूर करे छडि॒यो. ॐ जो जपु हर हिक साह में कंदा रहो, हर हिकु साहु खणण महिल ओम् जो उच्चारु कंदा रहो. ॐकार जो जपु या सुमिरनु जीवन जे पछाड़ीअ में, अंतकाल वक़्ति यमराज/मृत्यूअ जे यातनाउनि खां मुक्त कंदड़ु, छोटिकारो डि॒यारींदड़ु आहे. तंहिंकरे पंहिंजे मन में ॐ नामु रटींदा, उच्चारींदा रहो. इन द्वारा जड़ ऐं चेतन ग्रंथियुनि (ब॒ंधननि) खे कटे छडि॒यो. हे मनुष! हे मन! तूं ॐ नाम जो चिन्तनु करि ऐं इन सां अमृत-रसु पीउ, परम आनंद जी प्राप्ती करि. "

ॐकार नाम जो वडो॒ महत्वु आहे. इहो स्वयंभू आहे तथा हर हिकु शब्दु इन मां ई ठहियो आहे. हर ध्वनि/आवाज़ में ॐ शब्दु हूंदो आहे. ॐकार जे जप करण जी विधी पिणु शास्त्रीय आहे. पद्मासन में वेही करे इन जो जपु करण सां मन खे शांती ऐं एकागरता मिलंदी आहे. ॐ मंतरु धर्म, अर्थ, काम ऐं मोक्ष नाले चार पुरुषार्थु प्रापति कराईंदड़ु आहे. गोपथ ब्राह्मण ग्रंथ में चयो वियो आहे त 'कुश' जे आसन ते वेही ओभर तरफ़ि मुंहं करे हिकु हज़ार भेरा ॐ मंतर जो जपु कंदड़ मनुष जा सभई कार्ज सिद्ध थी वञनि था. ॐकार जो जपु या उच्चारणु विधीअ अनुसार करण सां अनेक लाभ मिलनि था. ॐकार जो जपु प्रभात जे समय करणु घुरिजे. कंहिं एकांत स्थान ते वेही पिणु जपु करे सघिजे थो. इन लाइ पद्मासन, अर्धपदासन, सुखासन या वज्रासन जी मुद्रा में वेही ॐ जपणु घुरिजे. ॐ जो उच्चारणु ज़ोर सां या धीरे-धीरे करे सघिजे थो. जपमाला द्वारा बि जपु करे सघिजे थो. ॐकार हिकु महामंतरु आहे, जंहिंजो जपु विधीपूर्वक, विश्वास ऐं श्रद्धा सां करण सां मनुषु पंहिंजो जीवनु सार्थकु बणाए सघे थो. इन लाइ योग्य गुरूअ जो मार्गदर्शनु ज़रूरी आहे.

पूरण सतगुर देव से, पूरण ले उपदेश।
कह टेऊँ तिहं सुमरके, पाओ पूरण देश।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:12
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

दशपदी-20

सत्नाम साक्षी सुमरे जोई, तीन लोक यश पावे सोई।
सत्नाम साक्षी जो जन जपता, नरक अग्नि में सो नहिं तपता।
सत्नाम साक्षी में रति जिसकी, ऋद्धि सिद्ध नव निधि चेरी तिसकी।
सत्नाम साक्षी जोई ध्यावे, सो मन वांछित फल को पावे।
सत्नाम साक्षी है सुख रासा, कह टेऊँ जप श्वासों श्वासा।। 8 ।।

" जेको मनुषु 'सत्नाम साक्षी' नाम जो सुमिरनु करे थो, उहो टिन्ही लोकनि में (पृथ्वी, पाताल ऐं आकाश में) जसु, यशु, कीर्ती प्रापति करे थो. जेको मनुषु सत्नाम साखीअ जो जपु करे थो, उहो नरक जे अग्नीअ में नथो सड़े. जंहिंजी प्रीती सत्नाम साखीअ सां आहे, तंहिंजी रिधी-सिद्धी ऐं नंवनि प्रकारनि जी निधी दासी थी बणिजी पवे. जेको सत्नाम साखीअ जो सुमिरनु करे थो, तंहिंखे इच्छित, चाहियलु, कामना कयलु फलु प्रापति थिए थो." सत्गुरु स्वामी टेऊँराम महाराजनि चवनि था, "सत्नाम साखी सुखनि जो समूहु, आहे, तंहिंकरे इन नाम जो हर श्वास, हर साह में जपु करि. "

परब्रह्मु, परमेश्वरु 'सत्नाम साखी' आहे. इन नाम जो जपु/सुमिरनु करणु आहे परब्रह्म जो ई सुमिरनु करणु. परब्रह्म साक्षी आहे, सारी सृष्टीअ खे ड॒िसंदड़ु आहे, शाहिदु या गवाहु आहे. असां सभु कुझु ड॒िसी सघूं था, पर पाण खे ड॒िसी नथा सघूं. असां उन 'साक्षी'अ खे बि ड॒िसी नथा सघूं. वेद पिणु इन साक्षीअ जो, परब्रह्म जो ठीक-ठीकु वर्णनु करे कोन सघिया ऐं 'नेति नेति' चई थकिजी पिया. जेको ब्रह्मांड जी ऐं अध्यात्म जी आधारशिला आहे, उहो 'साक्षी' आहे, तंहिंखे नकारे नथो सघिजे. 'साक्षी' ई हर धर्म जो आधारु आहे. ब॒ियुनि सभिनी ग॒ाल्हियुनि में मतभेदु थी सघे थो, पर 'साक्षी'अ जे बारे में मतभेदु नथो थी सघे. छाकाणि त 'साक्षी'अ खां सवाइ धर्मु थी ई नथो सघे ; साक्षी ई वैज्ञानिक आधारु आहे सभिनी धर्म अनुभवनि जो, सारे धर्म जी तलाश ऐं यात्रा जो. सभई इन 'साक्षी'अ जे ई चौधारी फिरंदा नज़रि अचनि था. सभई सिद्धांत ऐं संकेत/इशारा इन 'साक्षी'अ खे ड॒ेखारण लाइ आहिनि.

साक्षी चेतन सर्व समाया, तिस बिन जगा न खाली है।
घृत दूध में मधुर ईख में, ज्यों मैन्दी में लाली है।
ज्यों घट मठ में नभ है व्यापक, रवि शशि माहिं उज्याली है।
कहे टेऊँ तुम जान उसी को, जो सब जग का वाली है।

'ब्रह्मदर्शनी'- सिंधीअ में समुझाणी

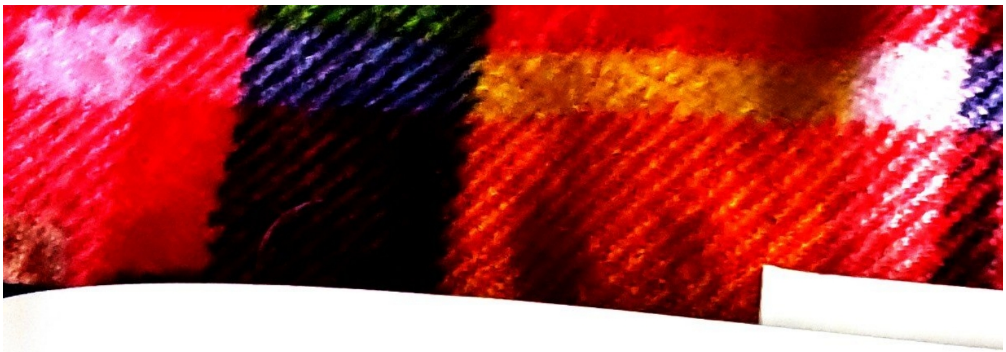

पौंढ़ेव अगम हिण्डोलवा हो, सत्य शब्द निरधार।
झूलत झूलत सुख उपजै हो, केवल ब्रह्म विचार।।
अबकी बार यह अवसर हो, मिलै न बारंबार।
फिर पीछे पछतैहौ हो, होत छूटै विकरार।।
योग युक्ति हिंडोलवा हो, ताहि मिलै करतार।
आवागवन निवारहु हो, फिर न होय औतार।।
साधु संगति को मेला हो, झूलै नाम अधार।।

योग युक्ति कै हिण्डोलवा हो, सत्गुरु सहज लखाव।
चाँद राखि सूर चड़ावल हो, पव के डोरि धई पाव।।
अर्ध उर्ध मुख धावल हो, पुलकि-पुलकि छबि भाव।
गगन मण्डल गुन गावल हो, सुरति निरति समाव।।
यहि बिधि 'भीखा' मन लावल हो, आतम रूप दर्शाव।।

सत्गुरु शब्द हिण्डोलवा हो, सुनि मन अनुराग।
झुलत गुनत रुचि भावल हो, जिय चकृत उठ जाग।।
कर्म भर्म सब त्यागल हो, कपट कुचालि तन भाग।
झुलत चेतन्य चित लागल हो, अनहद बानि धुन रात।।
'भीखा' याही मति मातल हो, पास दाव तेहि पाव।।

डारि पात फल पेड़ में हो, देख्यों सकल अकार।
'भीखा' सति संगति भयो हो, शुद्ध सरूप हमार।।

झलकै सखि अँगिया खूब बनी।
आठ मास नव सीयत लागे, पहिरन वाली धनि पाँच जनी।
जोलहा एक शब्द की माण्ड़ी, बिर्रे सोहागिन माल धनी।।
चहुँमुख तार लका दक लागु जगमग बूटा नागफनी।
'भीखा' के ब्रह्माण्ड फूटि गए, लहकै निति शोभाशीश मनी।।

ज्ञान उनमान करि चीन्ह ले अमान धरि,
गुर परताप खुलो भर्म को कपाट है।
चाँद सूर एक सम सुरति मिलाय दम,
इंगल पिंगल रँग करि सुषमन माठ है।
पूरब पवन जोय पश्चिम की राह होय,
गंग अरु यमुन संगम त्रिकुटी की घाट है।
पान औ अपान आसमान ही में थीर होवै,
'भीखा' शब्द ब्रह्म को अकाश शुन्य हाट है।।116।।

भूलो हाट ब्रह्म द्वार काम क्रोध अहंकार,
रहत अचेत नर मन मया पागो है।
अलख अलेख रूप आतमा है भेख धरे,
कस न पुलकि जीव ताही पन्थ ही में लागो है।।
अकथ अगाधि ओय अनभव फल होय जोय,
निशही में भोर मानो सोय उठि जागो है।

सत्गुरू अपनी कृपा करके, दीना ब्रह्म विचारा जी ।
ब्रह्म सिन्धू से नाम रूप मय, ऊठे तरङ्ग अपारा जी ।
सर्व जगत यह ब्रह्म रूप है, नहिं कछु उससे न्यारा जी ।
कंचन भूषण कंचनमय हैं, बर्तन मृद अकारा जी ।
लोह रूप है नाना शस्त्र, सूत रूप पट सारा जी ।
कहे टेऊँ गुरू एक लखाया, पांञ्चों भ्रम निवारा जी ।9।

सत्गुरू कृपा करके मुझ को , सोऽहम् शब्द सुनाया है ।
स्वास अश्व पर मोहि चढ़ाकर, सीधे मारग लाया है ।

उस घोड़े ने तीक्षण चल कर, अमरापुर पहुंचाया है ।
कहे टेऊँ तहं स्थिर रह के, परमानन्द मैं पाया है ।10।

सत्गुरू मुझ को यों समझाया, सुख स्वरूप तुम्हारा है ।
अस्ति भाति प्रिय एक पछानो, नाम रूप ते न्यारा है ।
तुम हो पूरन सागर के सम, पावत ना को पारा है ।
तेरी लहरी ब्रह्म विष्णु, शंकर सुर अवतारा है ।
चौरासी लख जीव तरंगा, उपजत तुमहिं मंझारा है ।
जो कुछ दीसत सो सब तुम हो, तेरा सकल पसारा है ।
तुझ बिन दूजा और न कोई, तुम ही सृजणहारा है ।
कहे टेऊँ सब तेरी महिमा, करते शास्त्र सारा है ।11 ।

हे मन गफलत में बहु सोया, अब तो जल्दी जागो रे।
जग की आशा है दुखदाई, तांको तुरन्त त्यागो रे ।
मानुष तन है मोक्ष दुवारा, भोगों से तुम भागो रे ।
कहता टेऊँ श्रद्धा से तुम, सत्गुरू चरने लागो रे । 19 ।

रे मन जो कुछ देखत हो तुम, सो सब झूठ पसारा है ।
बादल छाया ज्यों थिर नहीं, बिजली ज्यों चमकारा है ।
सुपने के सम मिथ्या भासत, ज्यों मारूथल वारा है ।
कहे टेऊँ ज्यों खेल मदारी, त्यों जग का जिनसारा है ।20 ।

रे मन तेरा मेरा तज के, इस जग माहीं रहना जी ।
मोह ममत मद मत्सर त्यागे, द्वैत भाव को दहना जी ।
आशा तृष्णा चिन्ता तजके, ज्ञान गुणों को गहना जी ।
कहे टेऊँ सब संसा मेटे, शान्ति भवन में बहना जी ।21 ।

हे मन आतम का कर चिन्तर, ध्यान हृदय में धरना रे ।
सत्गुरू के निज सार शब्द को, स्वासों स्वास सिमरना रे ।
झूठे तन का तज अभिमाना, जीते जग में मरना रे ।
कहे टेऊँ परमानन्द पाये, जीवन मुक्ति विचरना रे ।22।

हे मन ममता मान त्यागे, गीत राम के गाओ रे ।
निर्जन बन में बैठ अकेला, गुरू का शब्द कमाओ रे ।
हृदय मन्दिर में थिर होके, ज्ञान का दीप जगाओ रे ।
कहे टेऊँ हरि दर्शन करके, परमानन्द को पाओ रे ।23।

निज विचार स्वरूप का तूँ, हन मोह जाल प्रेम पूर पीजे, ग्वाललाल आत्म अजर पाए, सदा रह निहाल देख नूर जीजो।२५। मीम-मूल बाधो नाड़ी नाभ सोधो, पीछे प्राण की डोर चड़ाइये जी, हृदे कंवल ठहर सुन दश नाद, श्रुति तिसहीं साथ जड़ाइये जी। कण्ठ कंवल से खिञ्च के त्रिकुटी में, दम दशमें ही सुदृड़ाई जी, कहे ग्वाल जोऊ करे योग ऐसा, सोऊ सुन सकड़ कड़ाईये जी।२६। नून-नानात्व दृष्टि को त्याग के तुम देख एक ब्रह्म अखंड सारा, जैसे शैल शिला ते हेम भूषण, है लहर सागर तै ना नियारा। घट मृद वपु वसन तन्तु सोई, लोष्ट शस्त्र वपु हैं एक प्यारा, ग्वाललाल तैसे जीव ब्रह्म रूपा, अज अक्ष अनन्त सो है अपारा।२७। वाव- वेख विजूद विवेक कीजे, क्या जाति मेरी क्या वस्तु हूं मैं, ना पांव कटी नहीं पेट पीठ, ना वाक नाक कान हस्त हूं मैं। ना हाड मास ना रूप त्वचा, ना पवन जल आदि तत्त्व हूं मैं, ग्वाललाल हूं लाल अकाल सदा, नाम रूप ते भिन्न अलस्त हूं मैं।२८। अलफ- ईश्वर जीवते ब्रह्म तीनों, जान एकस्वरूप अचल सोई, ज्यों घट मठ नभ व्योम महा, है एक ही वपु अटल सोई। नदी चक्र ते लहर है रूप एको, चिनंग दीप ते एक अनल सोई, ग्वाललाल आत्म को जान तैसे, त्रिय वपु है ब्रह्म अमल सोई।२९। ये - यकीने है जीव ब्रह्म रूपा, कहा वेद अरूप स्वरूप सोई, श्रुति स्मृति ऋषि ते मुनि भाखे, करहिं ब्रह्मा आदि नित ऊप सोई। जेते ज्ञानी योगी भये पुरुष नारी, हन भेद भये ब्रह्मरूप सोई, ग्वाललाल सोई तुम शुद्ध ब्रह्म, है निज आनन्दस्वरूप सोई।३०।

Scanned by AAKASH ASSWANI (pa

❁ श्री निर्मल मार्ग ❁ सवैया-पूरण ब्रह्म व्यापक है नित, भेद न खेद न रहत नियारो, अंत न पार न रूप न रेखन, देखन को दिल खोल किवारो। स्वयं प्रकाश विकाश करे सब, रंचकतां में नहीं अन्धिकारो, ऐसे आत्म रूप को ग्वाला, है सदीव प्रणाम हमारो।१।दोहा- जाति विजाति भेद भिन, है सो अखण्ड अनूप, देश काल है सर्वगत, सत् चित् सुखस्वरूप।२।सुरवार स्रवत चरण, शेषशैय्या विसिराम, श्री नाथ के पद्म पाद, वारों वार नमाम।३। लङ्का कदन सुख सदनहिं, सीयपति पाद नमाम, देव काज कलेवर धर, आकर उर मम धाम।४। इन्दु शीश जटान गङ्ग, अहनिश अहि गल हार, गिरि सुता के नाथ को, वारों वार जुहार।५। कुञ्चर शीश रद एक पुन, सुर हित सुख के धाम, वन्दों नितहीं चरण कमल, पूरण कर मम काम।६❁ गुरू उपमा विषय वर्णन द्रुम १ ❁क-श्री सत्गुरु स्वामी, दानी ज्ञानी हीन हामी, सानी नस निष्कामी, आन पार पार है। जती सुर पत्ती रती, कटी कल मल मती, पुञ्ज दल दुर्गती, देवी गुण धार है। अवतार नारि तारी, भूमि भार भारी हारी, देव भेव सुखकारी, अरि मुर डार है। ग्वालानन्द शुभ चाल, दीनी सत्गुरु लाल, हर लीया यम जाल, भव किया पार है।१। सिन्धु में बूडत हत, भुजा गह कर मत, गोद में बिठाय तत, शीशकर धर है। महावाक्य तत्वमसी, कानन सुनायो हसी। जीव ईश भेद नसी, एक ब्रह्म उर है। दृग पट दूर कर, अन्धकार सब हर, हर जाय हरी हर, और नहीं स्वर है। श्री सत्गुरु स्वामी, ब्रह्म है अन्तरयामी, ग्वालानन्द निष्कामी, भव

Scanned by AAKASH ASSWANI (pa

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 480)

जल पल सो न, ग्राप की निवारी है। योगी सु युक्ति गति, सत् चित् लाय रति। हित ग्रनहित चित्त, विवेक विचारी है। कहे है ग्वाल बाल, माल पाय हो निहाल। तैसे सन्त शील शाल, पाय निरधारी है।१२। योगी खोज मूल प्रेम, झूल कन्दमूल खाय। लूल ग्रनुकूल शूल, थूल से उदासी है। सदा सारी विश्व भारी, दुःखदारी देख यारी। सु उचारी कि मुरारी, जीत सुखराशी है। हो ग्रतीत जगजीत, सुर मीतन के मीत। गाय गीत सुख सीत, नित चित्त वासी है। ग्वाललाल हो निहाल, खुद ख्याल में महाल। काटि जाल हो ग्रकाल, पाय ग्रविनाशी है।१३। ऐसी रीति की प्रतीति, योगी नीत पाय मीत। इन्द्रजीत हो ग्रतीत, पावत मुरारी है। तज मान ग्रपमान, जान भान ग्रभिमान। ज्ञान विज्ञान, खान पान धारी है। कुरंग ग्रनल शूर, दल शल चोर चल। पल पल सार टल, संतन सु सारी है। तैसे ही है ग्वाल खास, श्वास श्वास माहिं वास। पाय पूरण प्रकाश, वेद सु उचारी है।१४। जीते जिन काम क्रोध, लोभ मोह ग्रहंकार। सोई सन्त निरधार, दीनता ते दूर है। पांच ही विषय तज, उलट चलाय कर। तम को सु दूर कर, होय ज्यों शूर है। हर्ष हूं न सोग रोग, योग में ग्ररोग नित। सर्वदा ग्राकाश वत, ग्रखण्ड से पूर है। कहता है ग्वाल ख्याल, हाल में महाल लाल। काल का सु कटे जाल, पकड़िया सु मूर है।१५। चौ०- योग कला मूल ग्रासन ठाने, नाम सु नाभ उठाय उर ग्राने। कण्ठ कमल ऊपर चढावे, इड़ा सें पिंगला वो लावे।१६। त्रिकुटी माहिं देखे

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 481)

प्रकाशा, सुन से ऊपर करे निवासा। गगन मण्डल ऋणूकार रमावे, ग्वाला दशमें दर्शन पावे।१७। इस विध जोऊ योग कमावे, सोऊ ग्रगम ग्रमर घर ग्रावे। पाय ब्रह्मानन्द निशदिना, ग्वाला भरपूर रहे सो भिन्ना।१८। होय ग्रकाल ग्रक्रिय पद पावे, सोवत जागत धुन माहिं धावे। ग्वाला ग्रखण्ड ग्रक्षय ग्रविनाशी, तां घर निशदिन रहे निवासी।१९। गुरु जाति का ग्रङ्ग। कवित्त-एक गुरु है सु कुरु, कान माहिं सु करे तुरु। ज्ञान तो न जाने दिरु, सवें शिष्य करे हैं। छोटा ही बालक होवे, कान माहिं फूंक देवे। शिष्य का सु धर्म खोवे, दाम लिये मरे हैं। ज्ञान न दे ध्यान न दे, ग्रात्मा विचार न दे। ताहिं पीछे लोग ग्रंधे, खात माहिं गिरे हैं। सांच कहे ग्वालानन्द, सुनो तुम चित्त चन्द। करो नाहिं तिस सङ्ग, काज नाहिं सरे हैं।१। दूजा गुरु होय फुरु, जैसे है बघाड़ मिरूं। यह तो शिष्य मैं करूं, ऐसा मन धरे है। बालक ग्रजान जोय, यही मेरा शिष्य होय। ज्ञान नहिं जाने सोय, पेट लिये करे है। राखे चित्त येही भास, ग्रावे न बिमारी तास। होवे न बालक नाश, मेरी व्रत टरे है। ग्वालानन्द रहे प्यास, सुनो तुम रे जिज्ञास। जावो नहिं तिस पास, काज नाहिं सरे है।२। तीजा गुरु होय घुरु, भाखे ईवें जग तुरु। मेरा काज ग्रभी कुरु, दर दर फिरे है। इक इक गृह जावे, कोड़ी हित झाड़ पावे। बहुत भटक खावे, मन ताहिं जरे है। ऐसा गुरु होवे जोई, तांसे नहीं काज होई। मन मति मूंढ सोई, नाम गुरु धरे है। ग्वालानन्द धर प्यास, सुनो तुम रे जिज्ञास। जावो नहीं उस पास, काज

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 482)

Scanned by AAKASH ASSWANI (page:

मन मारीये जी। आठोंयाम जागी करके सुजागी, नित हो सुहागी आप तारीये जी। ग्वालानन्द पाए परमपद पूरा, तन मन को नितही ठारीये जी।३०। इई- इड़ा पङ्गला सुषुम्ना सोधे, आगे चलके प्रकाश पाईये जी। राखो प्रीति सांची अनुभव रंग राची, तोड़े प्रीति काची धुन लाईये जी। अमीरस पीवो जुगांजुग जीवो, जपे एक शिवोहं गीत गाईये जी। ग्वालानन्द दर्शन करे मन प्रसन्न, मात गर्भ में पुनः ना आईये जी।३१। नना- नैन लाए प्रभू प्रीति पाए, निरभय गीत गाए पाओ सुख शांति। तन कष्ट दीजे मन नष्ट कीजे, जुगां जुग जीजे पायके क्रान्ति ग्वालानन्द जी गुरु से बोध लेके, सर्व शोक संसा तज दे भ्रान्ति।३२। घघा- घन गर्जत है ज्ञान का जो, पाने तिसके लिये जग आईया जी। जोई काम करना सोई नाहिं कीया, ईवें जन्म मानुष को गंवाईया जी। तुझे काम औ क्रोध ने घेर लिया, लोभ मोह ने चित्त जलाइया जी। ग्वालानन्द जी वक्त है सोचने का, कुछ समझले दुख क्यों उठाइया जी।३३। णणा-णङ्ग ते ढङ्ग पुन छोड़ करके, इक सरल स्वभाव को राखीये जी। देवी गुन धारे आसुरी विसारे, भ्रम भेद टारे ब्रह्म लाखीये जी। देखो ब्रह्माण्ड को इस पिण्ड माहीं, अंगुष्ट रूप ये आत्मा बाखीये जी। ग्वालानन्द जी छोड़के द्वंद सारे, एक एक का अमीरस चाखीये जी।३४। ङङा-ङयान को घट में राख करके, ॐ एक अक्षर चेतन तूही भासा भास नाहीं, एक दोय नाहीं शान्ति सुख माहीं कर शयन तूही। पाय सुख ताहीं दुख लेश नाहीं, सो अखण्ड आनंद स्वरूप तूही। ग्वालानन्द जी अन्त में साफ कहता,

Scanned by AAKASH ASSWANI (page:

आदि अंत मध्य में एक रूप घन तूही।३५। श्री अनुभव की लहरें—अकल से प्रश्नोत्तर- एक दिन एकान्त में, हमने किया सुविचार यह। अकलमंद सबही कहे, मैं सर्वथा संसार मह।१। अकल से पूछा तभी हमने, कहो निज घर असल। उसने कहा सच है, सफ़ाई और ना जानूं नकल।२। हमने कहा खाना तुम्हारा, और पीना कौन है। उसने कहा गम है जो खाना, क्रोध पीना मौन धरत है।३। हमने कहा आसन कैसे, करत है शयन कैसे करत है। उसने कहा है शान्ति आसन, शयन शठ से है गह।४। हमने कहा चिंता तुम्हें, देखे किसे पुनि हो खुशी। उसने कहा गम मूढ देखे, संत देखे हो खुशी।५। हमने कहा तव स्नानशाला, स्नान जल क्या आपका। उसने कहा सन्तोष शाला, स्नान जल है प्रेम का।६। हमने कहा पट धारते कैसा, कौन तेरा शृंगार है। उसने कहा विद्या सुपट, श्रृङ्गार श्रेष्ठ विचार है।७। हमने कहा आदान किसका, त्यागते हो क्या सचा। उसने कहा आदान गुण का, त्यागता हूं कम कचा।८। हमने कहा तव पाठ पूजन, ध्यान क्या है आपका। उसने कहा है पाठ वेदों, ध्यान पूजन ब्रह्म का।९। हमने कहा सोते तथा तुम, जागते हो किस तरह। उसने कहा भ्रम बात सोवत, जागता निज ज्ञान सह।१०। हमने कहा चाहत्त किसे, किससे सदा तुम दूर हैं। उसने कहा सत्संग चाहत, मूढसे हम दूर हैं।११। हमने कहा तुम देते क्या, लेते किसे कहां बैठते। उसने कहा सुख देत लेते, धर्मनय में बैठते।१२। हमने कहा क्या कार्य करते, प्रेम से जाते कहां। उसने कहा हम काम दीनन, जात परमारथ जहां।१३। हमने कहा तुम देखते, सुनते

Scanned by AAKASH ASSWANI (page:

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 699

सु जानो, देवताओं सम ताहिं पच्छानो। पुन तत्वों चक्रों की करके, फुरना संदेह सबोई जरके। २७। धारना अंग है जोई निगमा, करने से जन काटे जु गमा। जोऊ धारना को नित करसी, ग्वालानन्द सो आत्मदर्शी। २८। सप्तम अंग है पुन ध्याना, आत्मध्यान से हन अभिमाना। पादा पिण्ड रूप रूपातीता, चतुर्ध्यान रहो जग जीता। २९। अष्टम अंग सु है जु समाधी, सविकल्प से हनो उपाधि। पुन निर्विकल्प से पावो शान्ति, ग्वालानंद हो बैठ एकान्ति। ३०। भक्तियोग पुन ज्ञान विज्ञाना, चारविधि जु समाधि पच्छाना। ग्वालानंद चतुर सु करके, नितही आत्मध्यान सुधरके। ३१। हनो राग द्वेष आदि द्वंद्वा, पावो नित ही ब्रह्मानंदा। जो विधि से कर राज सुयोगा, ग्वालानंद सो पा ब्रह्म लोगा। ३२। दो-पूर्व राज ऋषियों ने, किया यह राजयोग। मुक्त गृहस्थ में रहे, त्यागे हर्ष जु शोक। ३३। पुन कहूं मैं योगलय, ध्यान लगावो ताहिं। अग्र भाग घ्राण का, दृष्टि लगावो जाहिं। ३४। गुरुमन्त्र का जाप कर, यही मुद्रा सोध। नारी पुरुष बाल वृद्ध, यह सब करत निरोध। ३५। नृति श्रुति वृत्ति जब, वश में सब कर लेह। पावे वशीकरण शक्ति, ग्वालानंद करेह। ३६। चौ-मन्त्र योग पद्मासन बांधे, नव घंटा गुरु मंत्र साधे। दृढ आसन कर मन ना डोले, वोही पावे पद अमोले। ३७। यह भी गृहस्थ में कठिन जानो, त्यागे सुगम सु ताहिं पच्छानो। इक कर योगी अनहद सुनता, सुनकर मग्न करे मन धुनता। ३८। दश नाद अंतर नित बाजे, सुन सुख पाइ सुंदर आवाजे। ग्वालानंद जो करे यह योगा, पावे योगी ब्रह्म सुलोगा। ३९। चतुर्थ

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 700

हठयोग सुन लीजे, त्यागी योगी ताकर जीजे। षट् कर्म मुद्रा पाञ्चों बांधे, निशदिन योगी तांको साधे। ४०। नेती धोती बस्ती त्राटक, गज निविली कर कभी न हाटक। खेचरी भूचरी चाचरी साधत, अगोचरी उन्मुनि नित बाधत। ४१। चतुर योग नहिं उभय गृहस्थी, उभय योगी कर पावे शक्ति। गृहस्थी त्यागी गुरु से कर ले, नृति वृत्ति आत्म धरले। ४२। उभय सु पावे ऋद्धि सिद्ध शक्ति, पुन अहनिश हो जीवन मुक्ति। ग्वालानन्द सु विचरत ऐसे, कमल सींप जल में नित जैसे। ४३। गृहस्थी वा होवे जो त्यागी, गुरु से मिल जो होवे सुजागी। ग्वालानन्द योग जिह कीया, वोही सज्जन जुगा जुग जीया। ४४। कुण्डलिया-चतुर विध पुन योग का, एकहिं फल तिस जान। जीव ब्रह्म की एकता, यह निश्चय फल मान। यह निश्चय फल मान, भेद भ्रम सब नासत। निश्चय निजानन्द निज, स्वरूप ही नित भासत। ग्वालानन्द निज वपु, देखे सु सर्व विचित्र। वह योगी निज जगत् में, है सोई विधि चतुर। ४५। इति सप्तमोऽध्याय। [अध्याय ८] दो-सम संतोष विचार पुन, सत्सङ्गति निर्धार। मन मन्दिर के द्वार पै, द्वारपाल है चार। १। जो चाहे गुण वित्त बचे, यह राखे निज पास। ग्वालानन्द शांतिपद, नितही करे निवास। २। नाराच छंद. राखे जो समदृष्टि को, पावे सो सुख श्रेष्ठ को। हने जु कर्म भ्रष्ट को, देखे निज अदृष्ट को। पावेगा संयम सार को, कटेगा मोह जार को। ग्वालानन्द चार को, देखे सु ब्रह्माकार को। ३। पावे सम पद को, हनेगा मोह मद को। देखे पूरन हद को, कटे जु दुःख द्वंद्व को।

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 701

[योगी लक्षण तरंग] विषय भोग को प्रहरे, राखे द्वेष न राग। चितवृत्ती को रोकले, सो योगी बड़ भाग।९३। चित्तवृती को रोधके, पावे आत्मज्ञान। ग्वाला योगी वह सचा, आठ पहर धर ध्यान।९४। योगी जो चित निरोध कर, मिला रहे जगदीश। ग्वाला देखे सर्व में, इक ही साक्षी ईश।। वह योगी जगजीत है, जिसने बांधा काल। ग्वाला पाये परम पद, हरदम भया निहाल।। जहां इन्दु ना सूर है, ग्वाल न धरनि अकास। जन्म न मरन तहां किया, योगी जाय निवास।।

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 984)

सो योगी निज घर गया, जिसहिं गमाया आप। ग्वाला पहुंचे ना जहां, कोऊ ताप अर जाप।। वर्ण आश्रम पंथ में, जो नहिं बांधा आहिं। ग्वाला इस संसार में, योगी कहिये ताहिं।७९९। घट मठ टूटे व्योम की, ज्यों हानि ना कोय। ग्वाला योगी जन त्यों, सदा एकरस होय।। ज्यों दर्पण में प्रतिबिम्ब, मणि सांप मुख माहिं। साचा योगी ग्वाल त्यों, ताप न लागे ताहिं।। ना मैं ना मेरा कछू, जो नित ऐसा जान। सो योगी जन ही सदा, ब्रह्म स्वरूप पछान।८०२। ग्वाला सबही ब्रह्म है, जो अस निश्चय धार। सबका उर ऊजल करे, सो योगी संसार।। [योग तरंग] योग चतुर्विधि योगियों, प्रतिपादन किया आहि। ग्वाला सुनके धारले, पा आनन्द मन माहिं।४। मन्त्रयोग हठयोग औ, लययोग अर राज। ग्वाला चारों साधके, पूरन करहो काज।५। मन्त्रयोग प्रतिश्वास से, सोहं करो उचार। दसों नाद तांही सुनो, ग्वाला पावो सार।६। हठयोग षटकर्म कर, साधे मुद्रा पांच। ऐसे सबहीं शास्त्रों, कहिया ग्वाला सांच।७। नेती धोती वस्ती, त्राटक निविली गज। ग्वाला यह षटकर्म है, करके कीजे गर्ज।८। खेचरी भूचरी चाचरी, अगोचरी उनमन। पांचों मुद्रा साधके, ग्वाल पाय चेतन।९। लययोग अग्र भाग से, लावो पूरन ध्यान। सातों मुद्रा साधके, ग्वाला पावो ज्ञान।१०। राज योग अष्टांग जो, करूं ताहिं वरनन। ग्वाला जांसे ऋद्धि सिद्धि, पावे ज्ञान अनन।११। यम नियम प्राणायाम, पुन आसन प्रत्यहार। धारना ध्यान समाधि अर, ग्वाल ये अष्ट विचार।१२। अहिंसा सत्य अस्तेय पुन,

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 985)

ब्रह्मचर्य क्षमा धीर। शोच आर्ज मित अहार औ, गाय यम दश वीर।१३। आस्तक दान औ तोष तप, पूजा श्रवण ध्यान। दृढता लज्जा जाप यह, नेम ग्वाल पहिचान।८१४। आसन चौरासी लक्ष, मुख्य चौरासी मान। ग्वाला तिसमें श्रेष्ठ दो, पदम सिद्ध को जान।। प्राणयाम की गूढ गति, थोड़े में कह देत। दशविध की वायू पिण्डे, प्राणादी लखलेत।१६। दशप्राणों में मुख्य दो, प्राण अपानहिं जान। ग्वाल युगल के थाम को, प्राणायाम बखान।। अपान खेंचे मूल से, लावो घरहिं प्रान। फिर परक कुम्भक करो, ग्वाला रेचक थान।१८। आसन मार अडोल रह, सिद्ध पदम जो होय। ग्वाला सीधा बैठके, चंचलता को खोय।१९। प्रत्यहार सो जानले, मनको कर प्रत्यहार। ग्वाल अन्तर्मुख होयके, ग्रहे सबसे सार।२०। कच्छप ज्यों अंग खेञ्चके, मन विषयन से रोक। ग्वाला अल्प आहार कर, त्याग इच्छा विधिलोक।२१। धारना गुरु अवतार तत, चक्रन कमल मंझार। ग्वाला गुरुसे भेदले, पावो तिसका सार।२२। पादध्यान अर रूप पिण्ड, रूपातीत यह चार। ग्वाला अहिनिस साधके, पावो पद निर्धार।२३। चतुर समाधि भक्ति अर, योग ज्ञान विज्ञान। ग्वाला पूर्ण यह करे, लाओ ब्रह्मध्यान।२४। कोऊ पावे अगम घर, अनन अभ्यासी जोय। ग्वाला देश अमर पा, सूख समावे सोय।२५। बाहर भीतर आप है, खोजे देखे आप। आप जपावे जाप निज, दृष्टा दृष्य भी आप।२६। दाता भिखारी आप हैं, नारि पुरुष भी आप। घट मठ ग्वाला आप हैं, आपहिं जपहीं जाप।२७। जैसी दृष्टि देखिये, तैसे रूप दिखाय। ब्रह्मदृष्टि से देख

गुजराती संत अखा ने भी वायु के दशों भेदों और शरीर के विभिन्न अंगों में उनकी स्थिति का विस्तृत विवरण अपनी 'पंचीकरण' नामक कृति में दिया है।[2] जैसा कि कहा जा चुका है प्राणायाम की क्रिया द्वारा प्राण को सुषुम्ना के माध्यम से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचाया जाता है। अखा की रचनाओं में इस क्रिया के संकेत विद्यमान हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

इंगला पिंगला सुषमण त्रिवेणी रस लाया जी ।
बंकनाल उलटी बहै दश में द्वार समाया जी ।।[3]

संत कवि लालदास ने भी इस क्रिया की ओर संकेत किया है-

मन पवन लेई शून्य समावे । ऐसा उलटा राह चलावे ।
इंगला, पिंगला, सुषुम्णा नारी निज स्वरूप मां रहेत हमारी ।[4]

इस विषय में जीवणदास जी का कथन इस प्रकार है-

नाभी कमलथी नटपर चड़िया, पवन पुरूष पलटाया रेजी ।
बंकनाली खड़की खोली, उलटा राह चलाया रे ।[5]

प्राणायाम के सिद्ध होने पर इड़ा व पिंगला से (चन्द्र-सूर्य) श्वास-प्रश्वास के निरुद्ध हो जाने के कारण इस अवस्था को कालातीत कहा जाता है। अखा ने भी चन्द्र व सूर्य से रहित कालातीत अवस्था का उल्लेख करते हुए कहा है-

---

1. चन्द सूर दोइ खंभवा बंकनालि की डोर ।
   झूलै पंच पियारियाँ तहाँ झूलै जीय मोर ।।क.ग्रं.,पद 18,पृ0 74
   उलटे पवन चक्रषट बेधा मेर डंड सर पूरा ।
   गगन गरजि मन सुंनि समानां बाजे अनहद तूरा।। वही पद 7
2. पंचीकरण, 75-77
3. अ.र. भजन 15 पृ0 119
4. अ.म.सं.पं.,पृ. 125
5. वही, पृ0 177

चंदा नहि सूरज नहि नहि कोई नवलख तारा जी ।
दीन ऊगै न दीसे नहि थाका तेज अपाश जी ।।[1]

मुद्रा एवं बंध

कुण्डलिनी के जागरण के लिए प्राणायाम के साथ-साथ मुद्राओं एवं बंधों का अभ्यास किया जाता है। हठयोग प्रदीपिका (3/6,7) में मुद्राओं की संख्या दस मानी गई है, जिसमें तीन बंधो का भी समावेश है। इनमें 'खेचरी मुद्रा' महत्वपूर्ण है। दृष्टि को भ्रू मध्य देश में स्थिर करके जिह्वा को उलटाकर तालु-विवर में प्रविष्ट कराना ही खेचरी मुद्रा है।[2] इस मुद्रा में योगी ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्रमा से झरने वाले अमृत का पान करता है। कबीरदास ने इसका संकेत किया है-

अवधू गगन मण्डल घर कीजै ।

अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीजै ।।[3]

सुन्दरदास ने मुद्रा एवं बंधों का स्पष्ट वर्णन किया है। उन्होंने दस मुद्राएँ बताई हैं जिनमें क्रम नंबर 5,6,7 तीन बंध है- महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्यानबंध, मूलबंध, जालंधर बंध, विपरीत करणी, व ली, शक्तिचालन।[4] तीन बंधों में से मूलबंध प्राणायाम की तीनों- पूरक, रेचक एवं कुंभक-क्रियाओं में लगाये जाने के कारण महत्वपूर्ण है। ऐड़ी से योनि स्थान को दबा कर गुदा का संकोचन करके अपान वायु को ऊपर की ओर खींचना मूलबंध है।[5] कबीर की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने हिन्दी भाषी प्रदेश की कई बार यात्रा की थी और पुष्टिमार्गीय ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था। उन्होंने भ्रमरगीत एवं बाललीला के बहुत सुन्दर पद लिखे हैं।

निरान्त

एक मान्यता के अनुसार निरान्त ई० सन् १७७० से १८४६ तक विद्यमान थे।[१] इनके सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार इनका जीवन काल ई० सन् १७४७ से १८५२ तक माना गया है। आप देवाण (करजण तहसील) के तलपदा पाटीदार थे। दूसरी मान्यता के अनुसार आप राजपूत थे। शुरू में ये वैष्णव थे तथा प्रत्येक पूर्णिमा को हाथ में तुलसी लेकर डाकेर के मन्दिर में दर्शन करने के लिए जाते थे। पर एक दिन एक ज्ञानी मुसलमान ने इन्हें एकेश्वरवाद का रहस्य समझाया। फलतः आप निर्गुण के उपासक हो गये ऐसा माना जाता है।[२] पर इस कथा को साम्प्रदायिक आधार नहीं मिला है।

गुजराती साहित्य के निर्गुण कवियों में निरान्त का विशिष्ट स्थान है। ये एक ध्यान से सोऽहं मन्त्र का उच्चारण किया करते थे। इनके कई शिष्य थे जिनमें दयालदास, गणपत एवं बापु साहब गायकवाड़ मुख्य हैं। निरान्त ने साखियाँ, कुंडलिया, झूलणा नाम से अभिहित पद, धोल, छप्पय, एवं काफी छन्द में रचना की है।

हिन्दी में काव्य लिखने वाले और गुजराती कवियों की तरह निरान्त ने भी दोनों भाषाओं में काव्य रचना की है। अन्य सन्त कवियों की तरह काव्य का विषय भक्ति, गुरु-महिमा, आत्मज्ञान, वैराग्य इत्यादि है। उनकी भाषा अधिक परिमार्जित एवं सुश्लिष्ट नहीं है। विभिन्न राग-रागनियों एवं तालों में उन्होंने काव्य रचना की है। इस ज्ञानी कवि ने हिन्दी में भी कई पद लिखे हैं। इनके पद इनके शिष्य मण्डल एवं अनुयायियों में आज भी आदर के साथ पढ़े जाते हैं।[3]

भाणदास (१६९८-१७५५)

आप गुजरात के कबीरपंथी संतों में प्रथम और प्रमुख संत हैं। आपका जीवन काल ई० १६९८ से १७५५ ई० तक माना जाता है।[४] ऐसा प्रसिद्ध

---

१ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १९७।
२ वही।
3 वही, पृ० १९८।
४ वही पृ० २११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने अपने गुरु के आदेशानुसार पाखंडियों को खूब फटकारा है। मतमतान्तर और जातिपाँति को व्यर्थ बताकर उन्होंने अपने ग्रन्थों में उपनिषदों का दोहन करके रखा है। अन्य सन्त कवियों की तरह महात्मा छोटम ने भी गुरु की बहुत ही प्रशंसा की है। उन्होंने सज्जनों की प्रशंसा एवं दुर्जनों की निन्दा भी की है। उन्होंने नीति-विषयक सुन्दर साखियाँ भी लिखी हैं।

इनकी वेदान्त विषयक दो रचनाएँ द्रष्टव्य हैं—

१५

कोई देखो रे आ घटको खेल,
जामे दीप जले बिन बत्ती तेल।
जी हाँ अनहद नाद, बजे अपार, माँही मुरली मृदंग ने सींगी सार,
खटचक्रमां बाजत प्रणवतार। कोई देखो०
जहाँ सोहं-हँसो रमत रंग, लिए पाँच-पचीस प्रकृति संग,
जाके रूप नहीं, आकार, अंग। कोई देखो०
सब देव करत है रंगराग, कोई गुरुमुखी, समझे गुरु को भाग,
तहाँ कल्पवृक्ष की बनी है बाग। कोई देखो०
जहाँ शिव-सनकादिक धरत ध्यान, अति प्रेम सुधारस करत पान,
कहे छोटम ए सद्गुरु की सान। कोई देखो०[1]

१७

खेले पिया गेब गगन में होरी, कहा जानी सके मति मोरी। टेक
आप अरूप रूप बहु सरजे, अन्ड अनन्त करो री,
अखिल जीव कुं नाच नचावे, जाके हाथ में डोरी। खेले०
रूप रंग बहु भाँति-भाँति के, जुगल-नारी नर जोरी,
काहू की सूरत एक सी न आवे, अद्भुत चातुरी तोरी। खेले०
खेलन हार नजर में न आवे, सबकी मति भई भोरी,
सोहं-सोहं शब्द होत है, गुरु गये जात ग्रह्योरी। खेले०
नेति नेति कही निगम पोकारे, विनय करत कर जोर,
छोटम ऐसे प्रभु कुं न जाने, ताकी मति अति थोरी। खेले०[2]

---

१ परिचित पदसंग्रह (तृतीय संस्करण), प्र० सस्तुं० साहित्य, अहमदाबाद; पृ० १०४।
२ वही, पृ० १०५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१८

गुरु गम से खेलो होरी, मीटे मिलन वासना तोरी । टेक
आसन मारी, सुरत दृढ़ धारी, त्रिकुटी ध्यान धरो री,
सास-उसास शाम संग खेलो, नैन अचल चित्त जोरी;
गगन घर जाई बसोरी ।। गुरु०
अनहद नाद मृदंग मोरली, सुनके सूरत चली मोरी,
कोटि अनंग अंग प्रति सोहे, ऐसे किशोर किशोरी,
संग सखियन की टोरी । गुरु०
झलहल ज्योत उद्योत कोटि रवि, अद्भुत खेल मचोरी,
निरख स्वरूप देव सब मोहे, विनय करत कर जोरी,
निगम जश गात बरौरी । गुरु०
पार-अवार नहि है जाको, गुरुगम जात ग्रह्योरी,
जन छोटम सद्गुरु करुणा से, सो प्रभु दरस भयो री,
देह दोष गयो री । गुरु०[१]

दलपतराम डाह्याभाई कवि (ई० स० १८२०-१८९८)

ये सौराष्ट्र में वढ़वाण के निवासी थे । इनका जन्म सन् १८२० ई० में और मृत्यु १८९८ में हुई ।[२] दलपतराम ने देहात के स्कूल में ही ज्ञान प्राप्त किया था । तदनन्तर उन्होंने कच्छ भुज की ब्रजभाषा पाठशाला[3] में काव्य और पिङ्गल का अभ्यास किया और स्वामी नारायण सम्प्रदाय में दीक्षित हुए । इनके धर्मगुरु स्वामी भूमानन्द एवं शिक्षागुरु देवानन्द स्वामी थे । फार्बस साहब के साथ सारे गुजरात एवं सौराष्ट्र में घूम-घूम कर 'रासमाला' लिखने में सहायता की । ई० स० १८४८ में फार्बस की सूचना से सरकारी नौकरी छोड़ी थी और गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी के मन्त्री बने । दलपतराम ई० स० १८७७ तक दत्तचित्त होकर इस संस्था का कार्य करते रहे ।

गुजराती में इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है :

काव्य—फार्बसविलास, विजयक्षमा, गमार बावनी, हंस काव्य शतक, ऋतु-वर्णन, गरबावली, फार्बसविरह, दलपत पिङ्गल, काव्यदोहन ।

---

१ **परिचित पद संग्रह (तृतीय संस्करण)** प्र० सस्तुं साहित्य, अहमदाबाद, पृ० १०६ ।

२ **फरदर माइलस्टोन्स इन गुजराती लिट्रेचर**, के० एम० झवेरी, पृ०२१ ।

३ **गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो**—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ५३ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोहरा

सर्वातीत सब जा विषे, सब समेत अब शून्य ।
स्वे स्वरूप स्फुरन भयो, नांहीं ज्ञान नहि नून्य ॥२६॥

कवित

ज्यों जन सोयो एक सेजा[१] पर, सो स्वप्ने सत कोट भयो है,
हय हस्ती नर वाहन नरपति, सेन सुन्दर जोषिता नच्यो है;
आई गुरु जग्यो जन सोवत, ताकत अंत ही एक रह्यो है,
तेसें अखा सोया स्वप्न सब, देखत सो गुरु ज्ञान दियो है ॥२७॥
ज्ञानी हीं ज्ञान पुकारे सबकुं, ज्ञान को रूप अनन्त अपारा,
कोउ है कर्म धर्म के ज्ञानी, कोउ है मन्त्र-उपासन हारा;
कोउ है जोग पवन के ज्ञानी, कोउ करे पंचभूत विचारा,
जाकुं सोनारा आपा पर छूटा सो, ज्ञान विज्ञान ज्यों का त्यों सारा ॥२८॥
सोहागन की सीर जाने सोहागन, न जाने दोहागन[२] कन्थ विछोई,
नव नव नेह नव पल्लव नारी, उर आतुर रहत है ज्यों अछोई;
प्रत्यक्ष राम पलोपल पूरन, जानत नांहीं मैं कौन हों ओई,
आपा गयो गुरुभेव सोनारा, सारथे सार लीनी है ज्यों द्रोही ॥२९॥
ईतउत मन फिरे कहा तेरो, तो में रहत सा आधार धराधर को,
तेरो समास होवे मन तोमें, जब जाने तू भेव गिरिधर को;
शब्द में शब्दातीत बोलत, पायो परछन्दो[३] परधर को,[४]
जाने को सन्त सोनारा सीधी कळ, प्रत्यक्ष पहूँचे पराधर को ॥३०॥
पूरन ब्रह्म म्हरे सो पूरन, पूछयो गिरिजा गिरिजापति सों,
पूरन ब्रह्म ठेहेराव सुन्यो जब, कह्यो आध पुरुष प्रजापति सों;
पूरन ब्रह्म ठेहराव कोनो है, गुरु वसिष्ठ हर जापत सो,
महाजन ब्रह्म ठेहेराव सोनारा, सत्य मान शब्द प्रजापति सो ॥३१॥
सोहं प्रकाश स्वरूप को पुनी, तहाँ पहोंचत नहिं बतियाँ दन्त की,
आपा पर भंग अध्यास नहिं अंग, सूत्र नहि तहों कहाँ मन्त की ॥
सदगुरु के बिन बगसे निज नेन समझ सोनारा सरे सन्त की ॥३२॥
जेसो है ब्रह्म एनेएन पूरन एसो न जनी शकत हे जियरा,
कोट काल की कला मन जानत, तेसो तो कहे न शके ए गियरा;

---

[१] शय्या, [२] विधवा, [३] छाया, [४] परावाणी को धारण करने वाले को, परमात्मा को ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोइ कहे श्रीकृष्ण पुरण ब्रह्म, सोलसों गोपी नावे हारी रे।
ऐसा देखी कोइ आप दौडावै, तो नरकें जावे नरनारी रे।।
देखा रे देखी० २
राजा जन के आतमा चिन्ही, राज कीनो लुब्धा टाली रे।
एक हाथ माया के ऊर पर, दुजे हाथे अग्नि जाली रे।।
देखा रे देखी० ३
बिना समज मन सब में खावे, उदर भरन के अधिकारी रे।
ज्ञान तो न जाणे विषय रस माणे, दे खप्पर में एकाकारी रे।।
देखा रे देखी० ४
ऐसा रे संत कोइ सम दृष्टि रे वे, सोहि संतन की में बलिहारी रे।
कहे रविदास और जग में घूता, खेल करत पण होय बोहारी रे।।
देखा रे देखी० ५

भजन ११—राग जील परज

आतमा निरखो रे निरवाण ।। टेक
सतगुरु के परताप ज्ञान अनुभव उर जाग्या रे।
पपियल मीन विहंग, खोज कर भ्रम जो भाग्या रे।
प्रत्युत्तर सदगुरु करे; जाकी कला अनंत।
बेद बुद्धि बुद्धन लहे, जाको जाणे विरला संत ।। आतमा० १
नाभि पवन को मूल, मन अष्ट कमल मांहि रे वे।
त्रिपुटी वाको स्थान, दोइ मिल त्यांहि समावे रे।
शब्द शुन्य से उठत है, फेर शुन्य में समाय।
बुंद लीन भयो नादमां, नाद निरन्तर राय ।। आतमा० २
जीव की शक्ति ग्यान, शिव की शक्ति माया रे।
इन दोनों से भिन्न, अखंड अद्वैत अजाया रे।
जीव शिव कहेवाय नहीं, ने हम तुम नहीं कोइ हाम।
वत्रीक पद परमातमा, सो निजानंद निज धाम ।। आतमा० ३
पंच तत्त्व के मांय मलीने, जीव कहावे रे।
देह इन्द्रिय मन प्राण, मलीने माप बंधावेरे।
सोरंग वस्तु अगाधरे, लीपे छीपे ना सोय।
घट-घट परगट रमि रह्या, बूझे विरला कोय ।। आतमा० ४
ए सतगुरु को देश, निगम नेति का गावे रे।
ब्रह्मा विष्णु महेश, खोज के पार न पावे रे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निजानंद को अनुभवे, तो नाम रूप को नाश ।
ब्रह्म मगन होइ बोलिया, सो अणछता रविदास ।। आतमा० ५

—वही, पृ० ८०४

भजन १२

दल दरियामां हमेश न्हाना, कादव कपड़ा क्यु धोता ।
पतिव्रता घर नार पद्मणी, गुण कासे मन क्यों म्होता ।। टेक
श्राध सरावतां कहिक जुग वही गया, मुवा बापकुं क्यों रोता ।
आया कुं आदर नहीं देता, मुवा पछी मुख नहीं जोता ।। दल० १
खावे पीवे ने मारे खासडे,[1] माल मूरखा क्यों खोता ।
ऊगे त्यां कवु न वावत, कलरमें बा क्यों बोता ।। दल० २
आंब वृक्ष की छांय तजीके, आक वृक्ष पर क्यों सोता ।
हंस सभामां कवुन बेसता, बगल साथे खावे गोथा ।। दल० ३
करी ले बन्दगी साया साहेब की, अमर रे वे तेरा तोता ।
कहे रविराम गुरु भाण प्रतापें, फेर अवसर नहीं होता ।। दल० ४

—वही, पृ० ८४०

भजन १४

जी रे संतो भेद आगम का बूझो । टेक
कैसे सद्गुरु समरियें, क्यु कर लीजे नाम ।
कहाँ तमोने निरखियें, तमे[2] कहाँ छो[3] आतमाराम ।। जी रे० १
श्वासो श्वासें समरियें, अहर्निश लीजे नाम ।
सुरत निरत में निरखियें, तो घट-घट आतमाराम ।। जी रे० २
कहाँ से विजुरी करे चमुका, कहाँ से ज्योति जागे ।
कहाँ सत गुरु की नोबत वाजे, कहो क्याँ आप विराजे ।। जी रे० ३
आप तेजसें करे झबूका, त्रीकुटी ज्योति जागे ।
गगन मंडल में नोबत बाजे, तखतें आप बिराजे ।। जी रे० ४
कहाँ से आया कहाँ जायगा, कहाँ तमारूँ धाम ।
आ काया पलमाँ पडि जाशे, पछे ठोर बतोवो ठाम ।। जी रे० ५
हम आया है नूर से, अमरापुर है धाम ।
सुरत चडी अस्मा ने ठेरानी, ब्रह्म हमारो ठाम ।। जी रे० ६

---

[1] जूते से, [2] तुम, [3] हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पद ९

संतो मुनिवरे मन समजाया।
समजी चाल्या शब्द सद्गुरु का तो, पर ब्रह्म कु पाया॥ संतो०
पाँच कुमारी पचीश कुवारी, काम क्रोध हठाया।
हद बेहद अनगत गति आवी, कर्म बिनानी काया॥ संतो०
कर्म धर्मनी भ्रमणा भागी, एक लालन सें लेहे लागा।
अवला[१] हुता ते सवला[२] कीधा, लखिया फेर लखाया॥ संतो०
सुरता सांधीने चाल्या अकासी, अनहद नाद बजाया।
आध हता सो अंते उठी धाया, जई रूपमां रूप समाया॥ संतो०
सूक्ष्म वेदमां सुरता पहोती, बावन बार बुझाया।
भोजो भक्त कहे गुरु प्रतापे, जन्म मरण में ना आया॥ संतो०

—वही, पृ० ६२८

पद १०

संतो कोय बूझे बावन हारा।
जाके हृदय गुरुगम प्रकटे, सो जन खेले चोधारा॥ संतो०
पाँच पचीश पर ब्रह्म सें उपजे, कोइ शाणा समजी जावे।
सोय दिऐ सोय रमे एकीला[३], आपे नाव चलावे॥ संतो०
नयन कमल सें निरख्या नटवर, खोल्या कर्म कपाडा।
दिलमां दरश्या देव निरंजन, नकरा हुआ नराडा॥ संतो०
अकल कला केना कल्यामां नावे, अनुभवे एने बूझे।
उँ सोहं शब्दने ओलखे[४], तो चौद लोक तेने सूझे॥ संतो०
झलकत ज्योत ने नूर अपारा, मान जइरे मिलाया।
भोजो भक्त कहे गुरु प्रतापे, रूप में रूप मिलाया॥ संतो०

—वही, पृ० ६२८

होरी १

नाथ मोरी अरज सुणो[५] अविनाशी।
हुँ[६] तो जनम जनम तोरी दाशी॥ नाथ०
सती सभामां श्याम संभारे, त्रिकय तोरे संग राची।
पारखुं पलमां देजो पातलिया[७], नहि तो हवे थाशे हांशी[८]॥ नाथ०
आ समय तो अर्जुन जेवा, ते पण रह्या छे तपाशी।
भीमसेन बैठा भूमि खोतरवा, पीठ फेरवी गया पाछी॥ नाथ०

---

[१] औंधे, [२] सीधे, [३] अकेला, [४] पहिचाने, [५] सुनो, [६] मैं, [७] भगवान, [८] मजाक.

पद ३४—राग वही

अलख नाम धुन लागी गगन में, मगन भया मन मेरा जी। टेक
आसन भारी सुरत द्दढ धारी, दिया अगम घर डेरा जी ॥ १
इंगला पिंगला दोनुं छांड के, सुक्ष्मणा मध्ये धारा जी।
तरवेणी में तार मेलाइ, अजपा नाम उचारा जी ॥ २
जंत्र अनाहद बाजे अहोनिश, होत नाद भनकारा जी।
घन बिन अद्‌भुत होत गर्जना, बरसे अमृत धारा जी ॥ ३
कोटि-कोटि रवि शशि की शोभा, भगमग ज्योति उजाराजी।
जन छोटम सद्‌गुरु प्रतापे, दरस्या अलख दीवारा जी ॥ ४

—वही, पृ० २६१

पद ४८—कीर्तन राग वही

समरण सोहं का सोंहं का, ज्यां बजे अनहद डंका। टेक
आसन बांधी सुरती सांधी, चतुर दिल चित लाया।
मुलाधार पृथ्वी रङ्ग पीला, देव गणपति राया ॥ समरन० १
अक्षर चार विचारो ईन में, वंश षस वरणा।
खट शो जाप अजपा जपकं, उनकुं अरपण करणा ॥ समरन० २
उतपत द्वारा खटदल सारा, श्वेत रङ्ग जल जान्या।
चतुरानन की ज्योति जगाइ, खटहजार दीया दाना ॥ समरन० ३
खटदल में खट अक्षर देखो, बं भं मं का बासा।
से हं लक लखो लक्ष सें, खेल वन्या है खासा ॥ समरन० ४
नाभि सरोजा दस दल खोजा, तेज तत्त्व का तापा।
लाल रङ्ग में लक्ष्मी नायक, खट हजार जहाँ जापा ॥ समरन० ५
डं ढं णं तहाँ अक्षर दरशा, तं थं दं धं वासा।
नं पं फं कु फिरकर पेख्या, कट्या कर्म का पासा ॥ समरन० ६
हृदे विचारा द्वादश आरा, शिव शक्ति का ठारा।
नील रङ्ग मारुत का मांही, भगमग ज्योति उजारा ॥ समरन० ७

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खट हजार तहाँ जाप अरपनां, कं खं गं घं वरणा।
नं च छं जं जाहां निवासा, भं, भं टं ठं ठरणा ॥ समरन० ८
कड्ठे कंजा षोड शरंजा, पत्र कह्या परमाना।
शम रङ्ग आकाश तत्वका, जीव ज्योति का ध्याना ॥ समरन० ६
सहस्र जाप तहाँ जपो अजंपा, षोडष वरण विचारा।
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं लृं लॄं एं ऐं सारा ॥ समरन० १०
ओ औ अं अः उनके मांहीं, ए स्वर खटदश कहावे।
इनका ध्यान धरे नर जेही, सो भव जल में नावे ॥ समरन० ११
भृकुटी चक्रे द्वेदल पतरे, वाके निर्मल रंगा।
हं क्षं अक्षर रहे निरन्तर, चिद् शक्ति के संगा ॥ समरन० १२
सहस जाप तहाँ करो निवेदन, परम तुरीपद तांही।
बजे अनाहद नाद निरन्तर, अमृत बरशे ज्यांही ॥ समरन० १३
ब्रह्मरंध का भेद अपारा; दल हजार तांहां दरशे।
सहस्र जाप तहां जपो जुगत सें, परम ज्योत कुं परसे ॥ समरन० १४
सब अक्षर अव्यक्त रहे तांहां, अकल अनोपम रंगा।
कोटिक रवि शशी तेज कहावे, परम पुरुष के संगा ॥ समरन० १५
उनके आगे लक्ष अलौकिक; सद्‌गुरु भेद बताया।
छोटम श्री गुरुदेव प्रतापे, अचल अभय पड पाया ॥ समरन० १६

—वही, पृ० १६६

अम्मर जोत जलाया रे, अबदु आतमहीरा उडाया ! टेक
अंध अस्मानी अगोचर धरमां, सतगुरु सूर उगाया।
अबदु आतम हीरा उडाया ॥
आसन तरकुटी अधर अनोपम, तरवेणी तीरमां न्हाया।
दिल रे मंदिरमां दरशन दीठां, नाम रूप नरखाया।
अबदु आतम हीरा उडाया !
नाभी नगरमांय गुंज गलन है, प्रेमना पाया रोपाया।
रोम-रोम वह व्यापिक वामें, सुन शिखर पर आया।
अबदु आतम हीरा उडाया !
ज्ञान दीपक दिवी देह पर मूक्यो, वन-वन शोध चलाया।
आबुगिरि गढ भीतर जातां, उनमुन अम्भर आया ॥
अबदु आतम हीरा उडाया।

[1] वरगद, [2] टेढ़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनहद वाजा विरोधी रे वागे[1], सुरताए ताल बजाया।
नरत करी नर नाम अनामी, बक्र नार सें जगाया।
अबदु आतम हीरा उडाया !
आतम अरजुन ज्ञान गुरू का, लेकर अम्मर ओडाया।
भाव बिना भव दुःख न मांगे, प्रेम करी पद गाया।
अबदु आतम हीरा उडाया !

—वही, पृ० २

कोई बड़ा बाजीगर आया ! नहि जादु नहि जूठ।
जगत में अजबी इलम लगाया ! टेक
नहि नोबत नहि नाद नगारा, नटवी नाच नचाया,
नहि मंतर नहि तंतर जंतर, छतरीश[2] राग सुनाया। कोई०
उन मुन एक तंत बनाया, तंत में पंच मिलाया,
सेवा साधन बिन आराधन, कोटिक बन रही काया। कोई०
नहि बुंद नहि बीज चीज बिन जमी असमान जमाया,
नहि सूरज चंदा कु थंभा, अधरोअधर चलाया ॥ कोई०
नहि बादल घनघोर गगन में, अनहद घन बरसाया,
नहि ऋतु तरुवर तिन गूना पेर पेर पाक पकाया। कोई०
क्यां से आवे क्या उड जावे, भूल्या जग भरमाय,
पंडित काजी करे जक[2] झाझी[3], नहि परपंच परखाया। कोई०
एक पलक में खलक बनाया अलख में सकल बनाया,
अरजुन उसमें क्या जग जाने, अकलित खेल खेलाया। कोई०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीरतारे क्या खेल मचाया, जग ढंग थापी थली,
पथरा मिट्टी पड्या रह्या, ओर ढीली वस्तु ढली । सेवा०
राम नाम नी[१] उठी गर्जना, भइ घन में बिजली,
अरजुन ज्ञानी सिंधु समाणी[२], आकाश की आभली । सेवा०
जीमिआ जंतर बाजत मोरली, नाचत मुरता खड़ी खड़ी,
अखंड धर्मी घन गुरुदेवा, लगी शिखर पर खरी झडी । टेक
कैसा तमासा नरभर नरखो, देखी कमल में जडी दडी,
अधर तखत पर तपीआ जोगी, बैठा गफामां घडी मढ़ी । जीमिआ०
दशमी बारी उघाड़ी उरमें, जोयो तमासो फरी चढ़ी ।
ओहंग सोहंग सडक उपर, अनहद गाडी गरगडी । जीमिआ०
आदि अनादि अंतर बीच में, वाकी शाखा बडी बडी ।
अपार गिनतां पार न पावे, आठ ठाठ में मणि जड़ी । जीमिआ०
देखो देवलमां देह वैराटे, निर्गुन बातां जरी जरी,
सो भणकी एक शल्या तोडे, मणि नीपजे बडी बडी ! जीमिआ०
शुभ मूरत के शुभ चौघडीआं, नहि आवेगा फरीफरी,
परमेश्वर के पद के पाये लागे, अरजुन लरी लरी ! जीमिआ०
—वही, पृ० २५

मैं तो मेरे जाते, मैं तो मेरे जाते ।
चलो कोई आते, में तो मेरे जाते ॥
मालवे का एक मार्ग, जे आवे ते जाते ।
रंक राय भले थाय, उंच नीच नाते ॥ चलो०
कोई सभी सांज चले, कोइ मध राते ।
दिन रात चले जात, कोइ परभाते ॥ चलो०
कोइ भूख्या भूख्या कोई खांड खाते ।
कोइ लिया लुखा सूका, कोइ घृत पाते ॥ चलो०
भेदु विना भूला पडे, चलो मेरी साथे ।
जंगल में जाना पडे, चोर लूंही लाते । चलो०
आजकाल जाना पडे, कौन थार थाते ।
बडे बड़े भूप गये, महा मदमाते ॥ चलो०
बीत गया वायदा ने[३] तेड लिया ताते ।
अरजुन तो अब चले ज्ञानी पद गाते । चलो० —वही, पृ० २६

भेद भालडी लीआ ढालडी, अरजुन अब नहि डरता है ।
जूठ बात जग में नहि बोलु, सतगुरु शिरपर रखता है ॥ टेक

[१] की, [२] समान, [३] और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जात जात का रंग मिलाया, जात जात मिल जाता है ।
निरांत नाम का अरजुन चेला, अंग में अंग मिलाता है ॥ सत०

—वही, पृ० ३७

दूर से दूर मेरा देश है, परा पार से पारा हो !
गगन घटा अवनी नहिं, नहि नवलख तारा हो ॥ दूर से०
बस्ती नहि बरण चारकी, नहि छतरे अढारा हो ।
एक वाणी वलगे नहि, भारत भव भारा हो ।
सोहं शब्द सुरता नहिं, नहि मनवा विचारा हो ॥ दूर से०
चतुरे बनाया चारनी, कचरा मिट्टी चारा हो ।
जैसा जगत जूदा हुआ, रानी मूरख न्यारा हो ॥ दूर से०
सूरज चले महा सुन में, आसे पासे उजारा हो ।
रजनी सूरज नहि साँपडे, आदे अंते अंधारा हो ॥ दूर से०
बाल जुवानी जरा नहि, नहि वार क्वारा हो ।
उतपत अंत प्रल्ले नहि, नहि हे जुग चारा हो ॥ दूर से०
अरजुन वाणी उचरे, बावन घर बहारा हो ।
सतगुरु मेरा सुनत, दूजा क्या बुझे व्हेरा हो ॥ दूर से०

—वही, पृ० ४६

क्यु नरखेगा राम ? मन तु क्यु नरखेगा राम ? टेक
बिना नामका नगर बसाया, अधर धरा एक धाम ॥
नवलख तारा नहिं उजीआरा, गगन की बीच में गाम ॥ मन तु०
जामनी क्यु कर दिनकर दरसे ? दिन क्यु दरसे जाम ?
तुरीयातीत में तन नहिं पहोंचे, तन मन बिना न काम ॥ मन तु०
बड़ा हुआ कोई हकीम, क्यु कर दे आकाशे डाम ?
अनहद केरा अंत न आवे, क्यां ठरावे ठाम ? मन तु०
परजापत का बोज उठावे, गर्धव जात गुलाम ।
जइ उकरडे[1] उदर भरतो, नीमकलूण हराम ॥ मन तु०
नहि है काया नहि है, माया नहि हाउ नहि याम ।
नहि रूप ने नहि है रेखा, नहि धोला[2] नहि श्याम ॥ मन तु०
मेष राश में जन्म धर्यो है, अरजुन मेरा राम ।
राशी आदे हे अविनाशी, कैसा धरावु नाम ॥ मन तु०

—वही, पृ० ४६

---

[1] घूरा, [2] श्वेत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रात दिवस धंधा में मचायो, रंगित म्हेल बनायो।
नहि दान दीधां, नहि खान पीधां, कंजुस बोत कमायो।
नहि पाइ संग में आयो ! मूढ ने ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०
पंड में पतंग जीव व्होत फुलायो, दीपक रूप देखायो।
दिल मांय जाने दोस्त हमेरा, दीप के वाथ भीडायो ॥
पंछी[1] आपे अंग जलायो ! मूढ ने ऐसो फाग उडायो ! उडायो रे०
मास बसंत को मर्म न पाये, जूटी रमत रमायो।
गुलाल भूलायो मेरा लगायो, आखरे रोली जलायो।
फरी पीछो चोर्याशी आयो।
मूढने ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०
शब्द सरोदा को सूर मिलायो, ध्यान में ढोल बजायो।
अरजुन जोगी गुलाल उडावे, संते बसन्त सुनायो।
मुरख कछु मरन न पायो, मूढ ने ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०
—वही, पृ० ६६

सामान्य

मैं पंखी बीन पांख के, पर है सतगुरु ज्ञान।
मत्र पवन के आसरे, अरजुन उडु आसमान ॥२६
अनादि अरजुन दोय है, एक कवि किरतार।
सुरत नुरत का फेर है, अंते एका कार ॥२८
मेरा नाम कुं में जपुं, दूजा नहि हे देव।
सुरता अरजुन थीरता, मुरता सतगुरु सेव ॥३०
देख अरजुन एक उगीओ, सबके शिर पर सूर।
अंधाकु अंध कोप है, पडियासे बहु दूर ॥३१
मणि अरजुन देखा नहीं, करता माणेक मूल।
कबका नामे काटलुं, कहे भारत मां भूल ॥३२
मांय मर्द मस्तान है, रामजनी का वेश।
छेला बन के छेतरे, अरजुन दोनुं देश ॥३३
काया कसोटि जीभ की, सोनुं शब्द घसाय।
अरजुन पारख चोकशी, वस्तु अमुल बसाय ॥३४
दिया दधि में डूबकी, मोती मिला अमूल।
मन मेरा जाणे सही, क्यू कर भाखु खूल ॥३५
दिल में दरीओ उलटयो, डूब्यो सब संसार।
नाम नाव के आशरे, अरजुन उतरे पार ॥३६

---
[1] बाद में

मनहर छंद

२०

काया में कीतरि बसे ताकुं नहीं जानी शके,
मुरख समज बिन मुक्तगति भागता।
चंद्र मणी चकोरनुं चित्त हे खचित पण,
कोई काले हजुर में हस्त नहि लागता।
प्रेम करी पतंगीयुं दीपक में पडे कदी,
दीपक मिले दिवाना तुर्त तन त्यागता।
कहे अरजुन सुन भुक्तगति मागे कौन।
अहोनिश जगत में जुगोजुग जागता॥

—वही, पृ० २१

पद १—भजन

वंक नाल रस पिया, योगेश्वर वंक नाल रस पिया। टेक
पिया अमीरस अमर भया, त्रिपुटी तकिया किया। योगेश्वर० १
तृषा तन में आष पिवन की, ले लगनी सें लिया,
मन मगन भया चडी खुमारी, त्यारे रोमरोम रम रह्या॥ योगेश्वर० २
नाभिकमल में उलटा पवना, डेरा दिल पर दिया।
खट चक्र भेदिने चडिया, जब घर गगन में क्रिया॥ योगेश्वर० ३
अधर तख्त पर सतगुरु मेरा, नुरत सुरत ने लिया।
नूर निरंजन नजरे निरख्या, त्यारे दरस देदार भया॥ योगेश्वर० ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अणी अगर पर आसन करीने, भजन करे भय गया।
दास अरजण संत जीवण चरणे, राम रस भरीने पिया॥ योगेश्वर

—भजन सार सिन्धु, पृ०

अजब बना एक तारा

साधु अजब बना एक तारा हो जी,
जाका अलख वजावनहारा, मेरे संतो । अजब० टेक
साधु सुरता का तार नुरत की है खुंटी,
वामे सोहं शब्द जणकारा, मेरे संतो । अजब० १
साधु संत का है तुंबा सुखमण की है नाली,
वामें निश्चे नखी को समारा, मेरे संतो० । अजब० २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधु शील की खाल संतोष की मेखां,
वामें ज्ञान घोडी का सहारा, मेरे संतो० । अजब० ३
साधु भजन का रंग भाव की है कलगी,
जामे हरि जनने ज्ञान विचारा, मेरे संतो । अजब० ४
साधु तार मिला के बजावन लागे,
बाजा तुंही तुंही का रण कारा, मेरे संतो । अजब० ५
ज्ञानी इस ही राग में मगन होइ रहेते,
पीते प्रेम रस मन धारा, मेरे संतो० । अजब० ६

—वही, पृ० २६

भजन २५

हुवा मन मस्ताना

सुरत हमारी छेल छबीली, मनवा हमारा मस्ताना ॥ टेक
सुरत हमारी शिखर चडी ओर,
देख अलख दरबार, हुवा मन मस्ताना ॥ १
नव दरवाजे बंध किये ओर,
दशमा खुल गया द्वार, हुवा मन मस्ताना ॥ २
पाँच इन्द्रि को बस कर लीनी ओर,
गगने चडाया तार, हुवा मन मस्ताना ॥ ३
ज्ञानी आपा बिसर गये और,
देख लिया दिदार हुआ मन मस्ताना ॥ ४

—वही, पृ० ३०

भजन ३५

क्युं रहेता गाफिल

समज मन मेरा रे क्युं रहेता गाफिल ?
कोइ तेरे जब काम नहीं आवे, आव बने मुश्कल । समज० टेक०
जंतर मंतर दोरा धागा ए है, सब ठग विद्या,
सच्चा मुसलमान होय तो प्यारे ढुंड कलमे को कल ॥ समज० १
माल खजाना काम नहीं आवे, मालक की दरघा में,
जमडा तुम को लेने आवे, घडी न जावे टल ॥ समज० २
जो कुछ तुम को करना होवे करले आज घडी में,
इस काया का नहीं भरोसा, आज पडे के कल ॥ समज० ३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हाथ से नेकी मुख से नेकी, पाउं से नेकी कर जा,
ए सोदा तो मुफ्त है मिलता, जब तक है हलचल ॥ समज० ४
ज्ञानी तुम दुनिया में आके कुछ तो सुरत सभालो,
सुरत जो चुका बाजी हारा, निकल गइ वो पल ॥ समज० ५

—वही, पृ० ४४

भजन ३६

मत हो तुं मगरूर

समज मन मेरा रे मत हो तुं मगरूर,
जो मगरूरी आयगी, तुजको होवेगा हक सैं दूर । समज० टेक
गरीब आजीझ खाकी पुतला तुं है बहोत झइफ,
ऐसी गरीबी याद करके, रहे तुं रब सें हजुर ॥ समज० १
हरदम हक्की याद में रहेना, कोइ घडी मत भुल,
सांसो सांस तुं नाम समर ले, मों पर बरसे नुर ॥ समज० २
आखर तो मरना है तुज को, गाफील मत रहे यार,
गोर अंधारी भीतर तुजको, जाना होगा जरूर ॥ समज० ३
वहाँ तेरा कोइ संग न साथी ना मुनस गमख्वार,
करनी तेरी साथ आयगी, अनवर येहे दस्तुर ॥ समज० ४

—वही, पृ० ४४

भजन ६६

गुरु ने मुजको ज्ञान बताया है ।
गुरु ने मुजको ज्ञान बताया रे मेरे मन अचरज आया जी,
साहेब मेरा मुजमें समाया रे गुरु ने दरश दिखाया जी ॥ टेक
मन दरिया की मोज में रे हीरला लगा मेरे हाथ,
अंतर खोजा मैं आपका, वामें मिलिया मुजे दीनानाथ ॥ गुरु० १
बासण में ज्युं दुध है रे म्यान में ज्युं तलवार,
खल के में ज्युं तेरी देह है, ऐसा काया में कीरतार ॥ गुरु० २
दरिया घडे में समा गया रे, ज्युं बीज में बड का झाड,
सुइ के नाके में ज्युं हस्ति समाया, युं तृण के ओठे पे प्हाड ॥ गुरु० ३
काया हमारा है घोडला रे आत्मा है असवार,
चाहे उधर वाको ले चले, वाका कोइ न पाया पार ॥ गुरु० ४
काया हमारा म्हेल है रे खासा झुरखेदार,
वामें हमारा वास है तख्त तीर्थ तीरखुटी द्वार ॥ गुरु० ५

जो योगी उक्त प्रकार से आसन सिध्दि द्वारा साधना करता है उसी के घट में प्रकाश होता है और उस प्रकाश में परम तत्व का साक्षात्कार करता है । यथा :-

ऐसी जो जुगति जानै सोई जोगी न्यारा
आसन जो सिध्द करै त्रिकुटी में ध्यान धरै ।[1]

चरनदास की सुशिष्या सहजोबाई ने संयम पूर्वक आसन सिध्दि द्वारा निर्वाणपद की प्राप्ति बतलाई है। आसन द्वारा चित्त, बुध्दि और मन निश्चल अवस्था को प्राप्त होकर विकार रहित हो जाते हैं । जब मन सध जाता है और निश्चल भाव को प्राप्त हो जाता है तब साधक ध्यान की भूमिकामें प्रवेश करता है । यथा :-

पावै पद निर्वाण करौ तुम ऐसी करनी ।
आसन संजम साध-बन्ध लागे जब धरनी ।।
चित्त मन बुध्दि हंकार कूं करौ इकठ्ठे आन ।
सहजों निज मन होय जब निस्चल लागै ध्यान ।।[2]

---

1. चरनदास की बानी :भाग-1 :पद-14 :पृ.-40
2. सहजप्रकाश : पृ.-42

उनके अनुसार वही सिध्द, साधक, योगी और जंगम है जो सिध्द परमात्मा का ध्यान करता है ।[1] धर्मध्यान के चतुर्थ भेद संस्थानविचय में ध्यान योगी साधक लोक के स्वरूप, 6 द्रव्यों के गुण पर्याय, चातुर्गतिक संसार, लोक के ऊर्ध्व-अधो एवं तिर्यग, भाग इस प्रकार 14 राजू लोक आदि का चिन्तन करता है तथा उक्त विषयों पर ध्यान केन्द्रित करता है, इस प्रकार वह आत्मविशुध्दि करता है । स्वयं महावीर इस प्रकार आत्म-विशुध्दि को उपलब्ध हुए थे, ऐसा आचारांग सूत्र[2] में वर्णन मिलता है ।

उपरोक्त विवेचन के अनुरूप ही गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित ध्यान प्रणाली परिलक्षित होती है । यथा -

> चउदसि [illegible]धे थावहि लहि पावै । राजस तामस सत काल समावै ।
> ससीअर के घरि सूरु समावै । जोग जुगति की कीमति पावै ।।
> चउदसि भवन पाताल समाए । खंड ब्रहमंड रहिआ लिव लाए ।।[3]

संत दादू ध्यान साधना को आवश्यक मानते हैं । उनके अनुसार जैसे पुष्प में सुगन्ध, दूध में घृत छिपा रहता है ऐसे ही आत्मा में परमात्म तत्त्व विद्यमान है उसे प्राप्त करने के लिए साधक को एकाग्रता पूर्वक ध्यान-साधना में संलग्न रहना चाहिए । यथा -

> प्राण हमारा पीव सौं यौं लागा रहिये ।
> पुहुप बास घृत दूध में, अब का सौं कहिये ।।[4]

म. महावीर ने कहा साधक को कछुए की भाँति गुप्तेन्द्रिय होना चाहिए । जिस प्रकार कछुआ अपने अंगो को समेट कर खतरे से बाहर हो जाता है उसी प्रकार साधक मन और इन्द्रियों का गोपन करे ध्यान में संलग्न रहकर सुख-दुःख की अनुभूति में अनासक्त रहे ।[5] दादू भी उपरोक्त प्रकार से ही कथन करते हैं -

> दादू कच्छिब अपने करि लिये, मन इन्द्री निज ठौर ।
> नाहं निरंजन लागि रहु, प्राणि परिहरि और ।।[6]

---

1. "सिध साधक जोगी अरुजंगम एकु सिधु जिनी धिआइआ ।"
 –नानकवाणी, रामकली, महला-1, घरु-1, चउपदे, सबद-6 : पृ.-496
2. आचारांग. : 1/9/4/14
3. नानकवाणी : बिलावलु, महला-1, थिती, घरु-10, जति-18 : पृ.-481
4. दादू दयाल की बानी : भाग-1 : सा.-303 : पृ.-70
5. क. आचारांग. : 1/3/3/118 ख. सूत्रकृतांग. : 1/8/16
6. दादू दयाल की बानी : भाग-1 : सा.-57 : पृ.-101

चरणदास भल होय खैचि मनवा तहँ राखो ।
क्षर अक्षर निर्अक्षर एकै दुविधा नाखो ।।
जब दरशै एक ही एक देष यह सभी तिहारो ।
डार पात फल फूल मूल सो सभी निहारो ।।
खासा सौं सोहं भयो सोहं ॐकार ।
ॐ सो ररंकार भयो साधो करो विचार ।।[1]

इस अवस्था में जागृति व सुषुप्ति दोनों समाप्त होती है ।[1] इस समाधि की फलश्रुति निर्वाण है ।

आलोच्य संत कवियों ने अपनी वाणी मे समाधि की चर्चा करते हुए कहा है कि वासनाओं को दग्ध करके अनहद नाद में लवलीन होकर, जगत से विमुख होकर अखण्ड चेतन सत्ता में स्थित होकर योगी समाधिस्थ हो जाता है तथा त्रिवेणी – ज्ञान, दर्शन-चारित्र में अवगाहन करता हुआ परमात्म स्वरूप होकर शाश्वत आनन्द का रसपान करता है । यथा –

आत्मा अनंदी जोगी, पीवै महारस अमृत भोगी ।।
ब्रम्ह अगनि में काया परजारी, अजपा जाप उनमनी तारी ।।
त्रिकुट कोट मैं आसण मांडि, सहज समाधि विषै सब छाडै ।
त्रिवेणी विभूति करै मन मंजन, जन कबीर प्रभु अलष निरंजन ।।[2]

कबीर ने एक स्थान पर ध्याता और ध्यान की एक रूपता का बड़ा सजीव व मार्मिक चित्रण किया है । उन्होने कहा है कि साधक स्वयं पुरुषार्थ द्वारा ही "स्व" स्वरूप को उपलब्ध होता है अर्थात् आत्म पुरुषार्थ द्वारा ही साधक अपने वास्तविक स्वरूप को उपलब्ध करने में समर्थ होता है । आत्मा के शत्रु है – क्रोधादि विकार, इन विकारों के रहते आत्मा और परमात्मा में भेद बुध्दि बनी रहती है । इन विकारों की निवृत्ति ही आत्मा की वास्तविक मुक्ति है गुरु कृपा व ध्यान साधना द्वारा आत्मा की भेद बुध्दि समाप्त होती है । जब बहिर्आत्मा का अन्तरात्मा में पर्यवसान हो जाता है अर्थात् बूंद जब समुद्र में विलीन होकर जब अपना अस्तित्व खो देती है तभी वह बूंद समुद्र रूप होती है । इसी प्रकार ध्यान द्वारा साधक जब ध्येय से एकाकार होता है या तद्रूप होता है तभी वह ब्रम्हज्ञान – कैवल्य ज्ञान से सुशोभित होकर जगत को "स्व" में और "स्व" को जगत में देखता हुआ अखण्ड समाधि भाव में तल्लीन होता है । साधक की यही निर्विकल्प अवस्था सिध्दावस्था या मुक्तावस्था कहलाती है । इस अवस्था को प्राप्त होकर साधक आवागमन से रहित हो जाता है । यथा –

---

1. योगशास्त्र : 12/47, 48, 49
2. कबीर ग्रन्थावली : पद-204 : पृ.-29।

के साथ पैर के अंगूठे में भी प्राणधारा को प्रवाहित रखते थे अतः पैर के अंगुष्ठ को दबाने से उनकी समाधि खुल सकती थी, प्राणों का प्रवाह पूरे शरीर में होने लगता था। इस विशिष्ठ साधना का ध्येय कर्म निर्जरा था। साधक महीनों तक समाधि में लीन रहकर कर्म निर्जरा कर लेते थे।

इस महाप्राणध्यान साधना के साधकों के दो नाम प्राचीन ग्रन्थो में विशेष रूप से प्राप्त होते हैं - आचार्य भद्रबाहु और आचार्य पुष्यमित्र। वर्तमान में यह साधना विलुप्त हो गई है। फिर भी जैन आगमों में साधक को प्रेरणा दी गई है कि वह सूक्ष्म प्राणायाम के साथ प्राणशक्ति को ऊर्जस्वी व तेजस्वी बनाने की साधना करे।[1] परन्तु प्राणशक्ति का विकास किस प्रकार करना चाहिए? आगमों में इन प्रक्रियाओं की व्याख्याओं का अभाव है। गुरुगम्य कहकर योगवेत्ताओं ने इन साधनाओं को गुह्य रखने का प्रयास किया है।

मुनि नथमल ने कुण्डलिनी की तुलना आगमवर्णित तेजोलेश्या से की है। उनके अनुसार - "तेजोलेश्या प्राण धारा है। हमारे शरीर में प्राणधाराएं है। इन्द्रियों की अपनी प्राणधारा है। मन, शरीर और वाणी की अपनी प्राणधारा है। श्वास-प्रश्वास और जीवन शक्ति की भी स्वतन्त्र प्राणधाराएं हैं। हमारे चैतन्य का तैजस शरीर के साथ योग होता है और प्राण शक्ति बन जाती है। सभी प्राणधाराओं का मूल तैजस शरीर है। इन प्राणधाराओं के आधार पर शरीर की क्रियाओं और विद्युत आकर्षण के सम्बन्ध का अध्ययन किया जा सकता है। प्राण की सक्रियता से मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की वृत्तियाँ उठती है और जब तक तेजोलेश्या से आनन्दात्मक स्वरूप का विकास नहीं होता तब तक वे उठती रहती हैं। जो साधना के द्वारा तेजोलेश्या को प्राप्त कर लेता है वह सहज आनन्द की अनुभूति में चला जाता है। इस अवस्था में विषय वासना और आकांक्षा की सहज निवृत्ति हो जाती है।"[2]

उत्तरवर्ती जैन योग ग्रन्थों में कुण्डलिनी विषयक पर्याप्त विवेचन प्राप्त होता है। "श्री बप्प भट्टिसूरि (9 वीं शताब्दी) की "सरस्वती मंत्र कल्प स्तोत्र" (पद्य-12 आदि पद कन्दात कुण्डलिनी) में कुण्डलिनी की चर्चा विस्तृत

---

1. भगवतीसूत्र : 15/1
2. जैनयोग : पृ.-151, 152

रूप में पाई जाती है । ज्ञानार्णव और योगशास्त्र में पिण्डस्थ और पदस्थ ध्यान के प्रकरण में साधक किस प्रकार शरीरस्थ चक्रों का भेदन करके प्राणशक्ति का अधिकाधिक विकास करके उसे तेजस्वी, उर्जस्वी व ऊर्ध्वमुखी बनाकर योगसिद्धि प्राप्त करता है, उसका वर्णन अन्य योगों में वर्णित कुण्डलिनी जागरण जैसा ही है ।[1] "पउविहज्झाणथुत्तं" [नमस्कार स्वाध्याय प्राकृत विभाग, पृ. 396] एक जैनाचार्य की रचना प्राप्त होती है इसकी रचना का समय तो ज्ञात नहीं हो सका परन्तु यह 12 पद्यों का प्राकृत भाषा का स्तोत्र है इसमें कुण्डलिनी के 10 चक्रों का निरूपण मिलता है । श्री बालचन्द्र सूरि [13 वीं शताब्दी] द्वारा रचित "बसन्त-विलास महाकाव्य" में कुण्डलिनी विषयक चर्चा मिलती है ।

श्री सिंह तिलक सूरि [14 वीं शताब्दी] के द्वारा रचित परमेष्ठी विद्यायन्त्र स्तोत्र में पद्य 59 से 76 तक कुण्डलिनी जागरण का विशद वर्णन उपलब्ध है । इस स्तोत्र में शरीरस्थ नौ चक्र और उनके दल, वर्ण, तत्त्व, तत्वबीज, अधिष्ठात्री देवी, अंकित अक्षर तथा फल का विवेचन मिलता है जो संलग्न तालिका में प्रस्तुत है । इस स्तोत्र के अन्तर्गत 6 चक्रों की ही सम्यक् व्याख्या मिलती है तीन की नहीं । जबकि नामोल्लेख नौ चक्रों का हुआ है । कुछ बीज मंत्रों का उल्लेख हुआ है जो योगशास्त्र में वर्णित पदस्थ ध्यान के अनुसार ही है । मंत्र बीजों के ध्यान द्वारा प्राप्त होने वाले फल का निर्देश भी हुआ है । अन्त में बताया गया है कि मंत्र बीजों के बिना भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी में कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान जीवन में मुक्ति प्रदान करता है ।[2]

उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त जैन योग ग्रन्थों में कुण्डलिनी विषयक पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है यहां केवल स्फुट परिचय ही पर्याप्त है । ये सब साधनाएं योग्य गुरु के सान्निध्य में संपादित होनी चाहिए । योग साधना गुह्य व दुष्कर साधना है, बिना गुरु के निर्देशन से या असम्यक् पालन से साधक को लाभ के अतिरिक्त हानि की अधिक संभावना रहती है । दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र[3] में वर्णित प्रतिमा साधना के प्रकरण में स्पष्ट कहा गया है कि साधना से भ्रष्ट

---

1. क. ज्ञानार्णव : सर्ग-37, 38 ख. योगशास्त्र : प्रकाश 7, 8
2. श्री पुष्करमुनि अभिनन्दन ग्रन्थ [नवम-खण्ड] : पृ. -153, 154
   [पं. अंबालाल प्रेमचन्द शाह द्वारा लिखित-कुंडलिनी योग-जैनदृष्टि में]
3. दशाश्रुतस्कन्ध : 7/28

पुनि स्वाधिष्ठान सु द्वितीय चक्र । तहं षटदल षट अक्षर अबक्र ।
गनि ब भ म य र ल ये वरण मध्य । सो ब्रम्ह चक्र कहिये प्रसिध्द ।। 2 ।।
मणि पूर चक्र दश दल प्रभाव । पुनि अक्षर दश तेऊ सुनाव ।
तहं ड ढ ण त थ द ध न प फ प्रमान । इन वर्ण सहित त्रितिये बखान ।।3।।
अनुहात चक्र है हृदय मांहि । दल अक्षर द्वादश अधिक नांहि ।
क ख ग घ ङ च॰छ ज झ ञ ट ठ समेत । शिष चक्र चतुर्थय समुझि हेत ।।4।।
सुनि पंचम चक्र विशुध्द आहि । दल अक्षर षोडस लगे ताहि ।
तहं आदि अकार अः कार अन्त । शुभ षोडश स्वर ताके गनंत ।। 5 ।।
अब आज्ञाचक्र सु भ्रुव मंझार । लषि द्वै दल द्वै अक्षर विचार ।
तहं हं क्षं वर्ण सु अति अनूप । यह षष्ठ सु चक्र कहयौ स्वरूप ।। 6 ।।
जब इनि षट चक्र हि भेदि जाइ । तब उहै सुषमना सुख समाइ ।
ताही ते प्राणायाम सार । सुनि शिष्य कहौं ताकौ विचार ।। 7 ।।[1]

संत दरिया के अनुसार भी सुषुम्ना मार्ग में संचारित होती हुई प्राण शक्ति जब षटचक्रों से टकराती है तब संकुचित अवस्था में रहे हुए चक्र विकसित हो जाते हैं और प्राणशक्ति सहस्त्रार चक्र में अवस्थित हो जाती है । योगी साधक किस प्रकार इस ऊर्ध्वारोहण को सम्पन्न करता है यह रहस्य गुरु गम्य है । यथा :-

इंगला पिंगला सुखमनि नारी । सार पवन तहं करै पुकारी ।।
ओही पवन षट चक्रहि छेदा । होय गुरुज्ञान बुझै यह भेदा ।।
तहं त्रिकुटी में रहा समाई । तहवां काल सकै नहिं जाई ।।[2]

संत चरनदास ने कुण्डलिनी उत्थापन का शास्त्रीय विवेचन किया है । उनके अनुसार सुषुम्ना नाड़ी के भीतर त्रि वर्ग है जो सूक्ष्म है । वहां तीन नाड़िया है - 1 वज्रा 2. चित्रणी और 3. ब्रम्ह नाड़ी । ब्रम्ह नाड़ी ही यौगिग शक्तियों का मूल केन्द्र है । इस नाड़ी के चक्रजाल से वह कुण्डलिनी लिपटी हुई है अर्थात् वही कुण्डलिनी का निवास स्थान है । प्राणायाम के अभ्यास से प्राण शक्ति जागृत होकर सुषुम्ना के सहारे आगे बढ़ती है । विभिन्न चक्रों से होती हुई कुण्डलिनी सहस्त्रार चक्र में प्रविष्ट हो जाती है । इस अवस्था में साधक मन और शरीर से पूर्ण विलग होकर

---

1. सुन्दर ग्रन्थावली : भाग-1 : पृ.-46
2. दरिया सागर : पृ.-3

सतिगुरि मिलिऐ सच संजमि सूचा ।
गुरु की पउड़ी ऊचो ऊचा ।।
करमि मिलै जम का भउ मुचा ।।[1]

गुरु के बिना मोक्ष-मुक्ति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है ? बिना गुरु के ध्यान किस प्रकार लगाया जा सकता है ? गुरु कृपा स्वरूप ही दुस्तर संसार-सागर से पार होकर शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है । यथा :-

गुरु बिनु मोख मुकति किउ पाईऐ । बिन गुर राम नाम किउ धिआईऐ ।।
गुरमति लेहु तरहु भव दुतरु मुकति भए सुखु पाइआ ।।[2]

बिना सद्गुरु की सेवा किये योग-साधना कभी सिध्द नहीं होती । सत्गुरु ही जिसके अन्तरंग में ज्ञान-ज्योति जला देता है वही सच्चे योग की युक्ति के मूल्य का वास्तविक ज्ञान करता है । योगी साधक के लिए फिर घर और वन समान हो जाते है । चन्द्रमा की शीतलता व सूर्य की उष्णता योगी के लिए समान हो जाती है । यह सब स्थिति गुरु कृपा स्वरूप ही होती है । यथा :-

बिन सतिगुर सेवे जोगु न होई । बिनु सतिगुर भेटे मुकति न कोई ।।[3]
× × × × ×
जिसकै अन्तरि साचु बसावै । जोग जुगति की कीमति पावै ।।
रवि ससि एको गृह उदि आनै । करणी कीरति करम समानै ।।[4]

गुरु नानक के अनुसार गुरु ही सीढ़ी है, गुरु ही नाव है, गुरु ही सरोवर है, सागर है, जहाज है, गुरु ही तीर्थ है और समुन्द्र है । यदि पूर्ण सत्गुरु की प्राप्ति हो जाए तो साधक को विचार (तत्वज्ञान) रूपी रत्न की प्राप्ति हो जाती है । अन्यथा गुरु बिना ज्ञान नहीं प्राप्त होता । यथा :-

गुरु पउड़ी बेड़ी गुरु गुरु तुलहा हरि नाउ ।
गुरु सरु सागरु बोहिथो गुरु तीरथ दरीआउ ।।
जे तिसु भावै ऊजली सतसरि नावणु जाउ ।।[5]

---

1. नानकवाणी : रागु गउडी गुआरेरी, महला-1, सबद-9 : पृ. -206
2. " : मारु सोलहे, महला-1, पृ. - 659
3. " : रामकली, महला-1, सिध गोसटि : पृ. -546
4. " : गउडी, गुआरेटी, असटपदी-6 :पृ.-64
5. " : रागु सिरी रागु, महला-1, घरु-1, सबद-9 : पृ.-108

और शब्द-शास्त्र के माध्यम से ही हमारी विचारणाएँ और भावनाएँ प्रदीप्त होती हैं। आचार्य आनंदवर्धन ने इस प्रतीक अलंकार पर अधिक प्रकाश डाला है। भगवान् शंकर के डमरू और भगवान् कृष्ण की बाँसुरी में भी संगीत-गरिमा का ही संकेत है।

इन दिनों शास्त्रीय-संगीत 'क्लासिकल म्युजिक' और सुगम-संगीत—'लाइट-म्युजिक' के दो भागों में संगीत को विभक्त किया जाता है। गीत के चार अंग माने गये हैं—स्वर, पद, लय और मार्ग। स्वरगान अर्थात् गायन के रूप में प्रयुक्त होने वाला और 'अभिधानावान्' अर्थात्— वार्तालाप के रूप में व्यक्त होने वाला, इस रूप में भी शब्द का विभाजन है। इसी को गेय-पक्ष और वाक्-पक्ष भी कहते हैं।

संगीत रत्नाकर-ग्रंथ में नाद ब्रह्म की गरिमा पर प्रकाश डालते हुए कुछ ऊहा-पोह किया गया है—

चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना।
नादोब्रह्म तदानंदमतींद्रियमुपास्महे।।
नादोपासनयादेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः।।

नाद-ब्रह्म समस्त प्राणियों में चैतन्य और आनंदमय है। उसकी उपासना करने से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों की सम्मिलित उपासना हो जाती है। वे तीनों नाद-ब्रह्म के साथ बँधे हुए हैं।

नकारं प्राण नामानं दकारमनलंविदुः।
ज्ञातः प्राणाभिसंयोगातेन नादोऽभिधीयते।।

प्राण का नाम 'ना' है और अग्नि को 'द' कहते हैं। अग्नि और प्राण के संयोग से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे नाद कहते हैं।

संगीत रत्नाकर में नाद को बाईस श्रुतियों में विभक्त किया गया है। ये श्रुतियाँ कान से अनुभव की जाने वाली विशिष्ट शक्तियाँ हैं। इनका प्रभाव मानवी-काया और चेतना पर होता है। इन बाईस शब्द-श्रुतियों के नाम हैं—(१) तीव्रा, (२) कुमद्वति,

सतगुरु साहिब पाहुन आएल

सतगुरु साहिब पाहुन आएल भवन मे भेल इजोर।
चरण पखारि चरणामृत लेलहुँ जनम सुफल भेल मोर॥

सतगुरु सबद स्वर्ग शिर ऊपर मन न करए बड़ जोर।
एहि कायागढ़ जीव ओझराएल घरहु के सुधि गेल मोर॥

एहि कायापुर देखहु तमाशा बहुत बिधन बस चोर॥
इंगला-पिंगला सुषमन साधो पकड़ि मँगाएब पाँचो चोर॥

पाप पुण्य दुनू बनिआँ बैठल कएल काया को ओर।
बिनु सतगुरु बुड़ए मझधारा कहए कबीर बन्दी छोर॥

14:15

हंसा पुरुष वर साजि चलल दल

हंसा पुरुष वर साजि चलल दल पाँच रतन दल-माह हे।
आदि अन्त एकहु नहि हुनकहु अनहद सबद निसान हे॥

अखंड मंडिल घर चौक पुराओल मारग सिलहट दीप हे।
मेरुडंड सिर पुरहर थापल चान्द सुरुज बारु दीप हे॥

इंगला-पिंगला दुनू गंगा जमुना बहु त्रिवेणी संगम घाट हे।
भओंर-गोफा केर कोहबर थापल दसमी दोआरि ब्रह्म-वास हे॥

साहेब कबीर जहाँ रमित रमिअ रहु गुरु गमी गुरु गमी जानि हे।
विधि बेहबार एकहु नहि हुनकहु नाम के सेन्दुरा लिलार हे॥

14:17

देखन चलहु तोरि ऊँच रे अटरिआ

देखन चलहु तोरि ऊँच रे अटरिआ॥

पाँच पचीस तीन घर बनिआँ मन राजा चौधरिआ।
मुनसी हए कोतवाल उहाँ के चहु दिशि लागलि बजरिआ॥

आठ कोठरिआ नओ दरबाजा दस जे लागल केबरिआ।
खिड़की खोलि पिआ हम देखल ऊपर झाँप झपरिआ॥

चढ़ि अटारी खुजलि केबाड़िआ गहि गहि नाम की डोरिआ।
चाँद सुरुज दोउ तंबुआ तानए तेहि बिच परिहए डगरिआ॥

कहहिं कबीर सुनहु भाइ साधो गुरु के चरण-चित हेरिआ।
सब सन्तन मिलि पार उतरि गउ झँखए ले मुरुख अनरिआ॥

सतगुरु चलल बिआहन

सतगुरु चलल बिआहन सत सुकृत संग लाए॥

बाजन बाजए गहागही अनहद धुनि घहराए।
पाँच पचीस बरिअतिआ सोहं चौर ढराए॥

अजपा दर्शन दुरलभ चलु चलु वदन निहारि।
अर्ध उर्ध दोउ लोकनिञा समधी तीनि दुआरि॥

दसमि दोअरिआ चहाचही दूलह भेल निबान।
शिव शक्ति गेंठी बन्धन सेनूर बन्दी नाम॥

देल आशिष अमरपद जुगन जुगन अहिबात।
सन्त कबीर कहि देलनि बिआह बनल अब सांच॥

चुअए अमीरस भरत ताल जहँ

चुअए अमीरस भरत ताल जहँ सबद उठय असमानी हो।
सरिता उमड़ि सिन्धु कें सोखए नहि किछु जाय बखानी हो॥

चांद सुरुज तारागण नहि उहाँ नहि उहाँ रैनि बिहानी हो।
बाजा बजे सितार बांसुरी ररंकार मृदु बानी हो॥

किरीट झिलमिल उहमा झलकए बिनु जल बरसए पानी हो।
शिव अज विष्णु सुरेश सारदा निज निज मत उन्मानी हो॥

कहए कबीर भेद की बतिया बिरला कोइ पहचानी हो।
कए पहिचान फेरु नहि आबए जम जुलमी किरवानी हो॥

14:28

पाँच पचीस केर लागल हटिआ

पाँच पचीस केर लागल हटिआ
सओदा करए हम अएलहुँ पेठिआ कि अए रामा हो
गुरु-गोविन्द-गुन गाएब, गहुमा पीसब रे की।

गहुमा रे भरि भरि सत के चंगेरिआ
पीसए बैसलिह मन जतसरिआ कि अए रामा हो
सत्गुरु पीसनिहार पिसइते मन लागल रे की।

अर्ध-उर्द्ध के दुइ पल्ला जँतबा
चान-सुरुज के लागल हथरा कि अए रामा हो
किलबा के बलिहार सोहं सुर बोलल रे की।

तन के कड़ाही सुरति के दिबाड़िआ
ब्रह्म अग्नि उदगारक पुड़िआ कि अए रामा हो
सेहो पुड़िआ लए जएबै सनेस पिआ के जेमाएब रे की।

मोहन चलला गुरु के नगरिआ
भल भेल छुटि गेल भैआ के दुआरिआ कि अए रामा हो
छुटि गेल नैहरा के आस सासुर वास सुख पाओल रे की।

साहेब कबीर एहि गाओल लगनिआँ
समुझि बुझि पगु धरु हे सजनिआँ कि अए रामा हो
जे नर रहए अचेत से पाछे पछताओत रे की॥

15:18

ગુરુ ત્રાતા તરણ ઉભયેવ, આત્મ ઉપાસવા રે,
તેવા પ્રમાણીને કરો સેવ. હરિપદ પામવા રે...૪

જોઈ જીજ્ઞાસુ જનનું અંકુર, આત્મ ઉપાસવા રે,
કરે વચન વૃષ્ટિ પ્રેમપુર. હરિપદ પામવા રે...૫

શુદ્ધ વચને ધરો નિજ લક્ષ, આત્મ ઉપાસવા રે,
સદા મન રહેણીએ સમક્ષ. હરિપદ પામવા રે...૬

પુનિ ઉજાગ્રત અતિ પ્રેમ, આત્મ ઉપાસવા રે,
ત્યારે રહેશે નિદિધ્યાસ નિયમ. હરિપદ પામવા રે...૭

અજંપા ધ્યાન સાધન થાય, આત્મ ઉપાસવા રે,
ૐકાર સોહંગે સમાય. હરિપદ પામવા રે...૮

મલી સચેત વૃત્તિ સમુદાય, આત્મ ઉપાસવા રે,
આત્મ રૂપ વિષે અર્પાય. હરિપદ પામવા રે...૯

ઘટ મઠનો કરી પટ નાશ, આત્મ ઉપાસવા રે,
માત્ર આત્મ હરિ એક તાસ. હરિપદ પામવા રે...૧૦

અન્ય આવ્રણ ત્યાં નહિ લેશ, આત્મ ઉપાસવા રે,
ચૈતન્ય મય ગુરુ ઉપદેશ. હરિપદ પામવા રે...૧૧

જેના પુણ્ય તણો નહિ પાર, આત્મ ઉપાસવા રે,
તેવા પામે આહાવો અધિકાર. હરિપદ પામવા રે...૧૨

બાલકૃષ્ણ અધિકારી જન, આત્મ ઉપાસવા રે,
રહે વૈરાગ્યમાં નિશદિન. હરિપદ પામવા રે...૧૩

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

પદ ૩
(રાગ - ફેર)

તમે વાળી લોને સદ્‌ગુરુ ચરણોમાં મન,
મનુષ્યા દેહ રૂડો કહેવાય હરિના જન. તમે વાળી લોને...ટેક.

સદ્‌ગુરુ ચરણે શાન્તિ લઈને, નીકટ રહો નિશદિન;
તત્ત્વ મસી ગુરુવાક્ય વિલોકી ભાઈ, થાએ શ્રવણનું મનન હરિહરિ.
તમે વાળી લોને...૧

સત્ય વૃત્તમાં ઈંદ્રિ રાખી, બાંધો એકાંતે આસન;
નિગ્રહ મનથી પુરી મનોરથ, કરો ગુરુનું પૂજન હરિહરિ.
તમે વાળી લોને...૨

ધ્યાન માનસિક મંગલ મૂર્તિ, નિરખો નિર્મળ બદન;
સોડષોપચાર અલૌકિક અર્પિ ભાઈ, દંડ પ્રક્રંમા કરન હરિહરિ.
તમે વાળી લોને...૩

ગુરુ કૃપા લઈ સાધન સાધો, જપી અજંપા મૌન;
ૐકાર વૃત્તિનો વેગ ઉલટાવી ભાઈ, ગામિ બનો રે ગગન હરિહરિ.
તમે વાળી લોને...૪

અનાહતમાં નાદ શમાવો, રોધીને પ્રાણ પવન;
સોહમ્ હંસઃ ધુન ગજાવી ભાઈ, કરો આત્મ નિવેદન હરિહરિ.
તમે વાળી લોને...૫

સોહમ્ હંસઃ ન્યાય તપાસી, શૂન્યે કરો રે શમન;
શૂન્ય પરે મહા શૂન્ય શિખરે ભાઈ, કૈવલ કર્તા અયન હરિહરિ.
તમે વાળી લોને...૬

પરમ વિવેકી અંશ કોટીના કરે આ વિધિયે ભજન;
બાલકૃષ્ણ સોઈ જ્ઞાનના જ્ઞાતા ભાઈ, શ્રીમત્ કુવેર ગુરુ ધન્ય હરિહરિ.
તમે વાળી લોને...૭

વારૂ મન મારા સદા રેણીમાં શુદ્ધ રહીયે,
જે જે સ્થાને આસન કરૂંતો, નિત્ય નિયમે વર્તિયે રે;
વારૂ મન મારા સદા રેણીમાં શુદ્ધ રહીયે. ટેક.

સદા કાલ સંકલ્પો કરવા, ધર્મ તારો એ કહીયે;
સંકલ્પો છે નિત્યાનિત્યના, નિત્ય વિવેકી થઈ યે રે.
વારૂ. મન. ૧

અંતઃકરણથી આશા બાંધી, આત્મ પ્રદેશી હોઈયે;
ઉતઈતની આસક્તિ ટળતાં, ગગન ગુહામાં જઈયે રે.
વારૂ. મન. ૨

બાહ્ય વૃત્તિને અંતરે આણી, ચૈતન પદ ચરચૈયે;
ક્રોધ લોભ મદ મોહને મારી, આપનું આપ બચઈયે રે.
વારૂ. મન. ૩

ગુદાએ દ્રઢ આસન ધારી, મનમાં ધીરજ ધરીએ;
ઉપસ્ત ઈંદ્રિ વાસે વસતાં, કામદેવને કેદ કરીયે રે.
વારૂ. મન. ૪

નાભી કમળે પ્રાણ પ્રવેશી, ૐકારનો જપ જપીયે;
કુંડળી ઉત્થાન કરી પ્રકંમા, શ્વાસો શ્વાસનું તપ તપીયે રે.
વારૂ. મન. ૫

જો મનવા હૃદયમાં રહુ તો, દયા દીનતા દીલ ભરીયે;
શુદ્ધ વિચારો ગુરુગમ લઈને, હૃદય કમળમાં ઠરીયે રે.
વારૂ મન. ૬

ત્યાર પછી કંઠ કમળે આવી, શિવમય થઈ જીવ શમીયે;
મુખ જીવ્હાએ હરિ ગુરુ ગુણનાં, અમૃત ભોજન જમીયે રે.
વારૂ મન. ૭

શ્રવણે શબ્દ ગુરુના સૂણી, સંત કાયદો સહીયે;
નેત્રે રૂપ ગુરુનું નિરખી, અન્ય પર નવ મોહીયે રે.
વારૂ મન. ૮

સદ્‌ગુરુ ચરણ કમલ નિવાસી, નાશાયે ગંધ લઈયે;
પ્રણવ પ્રવાહી શમદમ અણીયે, સુક્ષ્મ સમીરા વહીયે રે.
વારૂ મન. ૯

શ્રીં હ્રીં શક્તિનું બળ બાંધી, ઉર્ધ્વ પ્રદેશે જઈયે;
સહસ્ત્ર કમલ દલના અધિશ્વરમાં, સોહમ્ શ્વાસ સમાઈયે રે.
વારૂ મન. ૧૦

લાવણી પદ

લાવણી ૧

કાયા નગરમાં જુઓ કારીગર, ઘાટ ઘડે છે એ કેવા;
નવે દ્વારના નગર શેઠીયા, આવે છે નૌતમ લેવા. ૧

ચિતવનં ચૌટે કરે પોકારા, ઘાટ અમો ઘડીયે રૂડા;
કોઈ ઘડાવો કોઈ ઘડાવો, આવો ઉમંગી જન શૂરા. ૨

ત્રિકુટી સ્થાને પેઢી લગાવી, નિત્ય વિવેકની કારીગરી;
શ્વાસે શ્વાસનો તાણે મશકલો, અધો અર્ધને ઉર્ધ્વ ભરી. ૩

ચિત્તવૃત્તિની પકડ સાંડશી, ઓહંગ સોહંગનો ઘાટ ઘડે;
ઉલટ સુલટની એરણ હથોડી, શબ્દ નાદની ઝડી પડે. ૪

તાણ્ય મશકલો તાન મિલાવી, નહિ ચાલે આળસ કરતાં;
ટાઢા ઉનીતે કેમ મળશે, ઉભયેનો અંતર રહેતાં. ૫

તત્ત્વગુણ ઈંદ્રિમન બળનું, કઠોરપણું સૌ ગાળીને;
ખરી કસોટી અહીં સહેવાની, ત્રાટક નેત્રે ભાળીને. ૬

મમતા રૂપી મશીયા બાળો, તો બ્રહ્મ અગ્નિ ખૂબ તપે;
જડ ચૈતનનો યોગ વછોડી, ચૈતનમાં ચેતન અર્પે. ૭

જડને જાતાં નિર્મળ રહેતાં, ઘાટ રૂડા ઘડશે ધીરો;
આપો હંગ પતિ હંગનો યોગી, ષડ્ સંપત્તિ સહ વીરો. ૮

સુરત નુરતની મલી રાવતી, સંધીક ક્રિયા પૂર્ણ કરી;
પ્રીતિ સ્થીતિ મુકી ઘુઘરી, સહિત લક્ષણા હિરાકણી. ૯

હર્દમ ઘાટ ઘણેરાં ઘડતાં, રીઝે સદ્‌ગુરુ સંત અતિ;
જ્ઞાની ધ્યાનીને સંન્યાસી, ધન્ય ધન્ય કહે મહા મતિ. ૧૦

એકા સૂત્રનો તાર પરોવી, તત્ત્વ બીજનો હાર કર્યો;
બાલકૃષ્ણ કારીગર તે તો, જેણે ગુરુને કંઠ ધર્યો. ૧૧

15:25 સર્વેન્દ્રિયો સનમૂખ થાશે, આપો આપ સ્થિર ઠરો;
શૂન્ય વિષે સાક્ષી હું એક જ, શરીર તત્વોથી પરો.
અંતરે શીદ. ૮

સોહમ્ અરસની અમૃતધારા, ત્યાં રહીને પાન કરો;
જન્મ મરણમાં હું નહિ તેવી, દિવ્ય ભાવના વરો.
અંતરે શીદ. ૯

શ્રીમત કુવેર સદ્‌ગુરુની ગમમાં, શુદ્ધ પ્રેમ આદરો;
જ્યોતિ કિરણોના દૃષ્ટાંતે, સતંત સુરતે ઠરો.
અંતરે શીદ. ૧૦

નિદિધ્યાસી કરો લક્ષણા, અવર વાસના હરો;
બાલકૃષ્ણ સુરતા તીર વાગે, જઈ પરાથી પરો.
અંતરે શીદ. ૧૧

લાવણી ૫

લગી ભજનકી ધુન શૂન્યમાં લગી ભજનકી ધૂન;
ચઢી શૂન્ય પર શૂન્ય, શૂન્યમાં ખરી લગાવી ધૂન. ....ટેક.

ત્રિવેણી સંગમની તીરે, સાધી પૂર્વાસન;
એહી દશા સ્થળ યોગેશ્વરનાં, મન ઈંદ્રિ ખુર્બાન. શૂન્યમાં. ૧

જાગૃત વિષે અતિ ઉજાગૃત, તૂર્યાતિત ઉન્મૂન;
સ્વયં પ્રકાશીક સચેત પોતે, જપુ અજંપા મૌન. શૂન્યમાં. ૨

નાભી કમળથી ઓહંગ ઉઠી, શમ્યો નાદમાં પૂર્ણ;
નાદ નિરંતર અનહદ ગાજે, રરંકાર નિર્ગૂણ. શૂન્યમાં. ૩

અહંબ્રહ્મ અવ્યક્ત આપથી, સુલટી સોહમ્ ધૂન;
ઓહમ્ સોહમ્ એક તાર લગાવ્યો, શૂન્ય ઓરુ મહાશૂન્ય. શૂ. ૪

સકલ વૃત્તિયો સન્મુખ રહીને, ચુગતી અમૃત ચુંન;
અખંડ ખેલમાં લગ્ન મગ્ન છે, સદા સોહાગણ ઉન. શૂન્યમાં. ૫

ઉગ્ર ભજનમાં આરૂઢ રહેતાં, ટળે અજંપા રૂણ;
સહસ્ત્ર એકવીસ છસેં સમર્પિ, તર્પુ દેવ સંપૂર્ણ. શૂન્યમાં. ૬

અગણિત ઈંડ પિંડમાં પ્રસર્યા, પ્રણવ તાર ચૈતન્ય;
સોઈ પ્રણવ જપ સાક્ષી તંતે, ખીચ મીલાવત ધુન. શૂન્યમાં. ૭

લાવણી ૬

કર્મ ભર્મમાં ખપ્યો, જીવડો, કર્મ ભર્મમાં ખપ્યો;
સોહંગ જાપ નહિ જપ્યો, જીવડો શબ્દ જાળમાં લપ્યો. ટેક.

ગુરુ કરીને ગોથાંરે ખાધાં, સ્વાર્થી જપને જપ્યો;
વરર્ણ મૂખીના મતમાં પેંશી, કર્માવ્રણમાં છપ્યો. જીવડો. ૧

અન્ય ઉપાસના કરતો ચાલ્યો, અધવચ સુરતે રપ્યો;
ખલક ખજાનો જેણે ભર્યોએ, અકળ અમાપ ન મપ્યો. જીવડો. ૨

અકળ પ્રભુની આરત છોડી, માત્ર કર્મને થપ્યો;
સગુણ શબ્દના જાપ જપ્યાથી, શું શબ્દાતિત મપ્યો? જીવડો. ૩

શુદ્ધ સંકલ્પે સર્વ પ્રકાશી, આ તનમાં અંશ થપ્યો;
સોહંગ પતિના વિસર્જનથી, ત્રિગુણી જપને જપ્યો. જીવડો. ૪

જે આત્મા ઘટ ઘટમાં સાક્ષી, કીટ બ્રહ્મા સૂર સપ્યો;
તે આત્મા રહેણી વિનાનો, પરમાત્મા નહિ જપ્યો. જીવડો. ૫

દ્વૈતે ભાવના અંતર આણી, અદ્વૈત માર્ગ કપ્યો;
બાલકૃષ્ણ શુદ્ધ ગતિ વિના તે ત્રિવિધિ તાપમાં તપ્યો. જીવડો. ૬

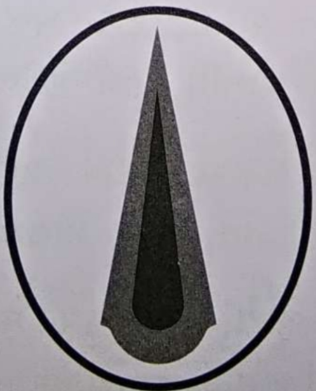

ન ભવિત વિત્તનું ભવિષ્ય કહેવા, સમર્થ સંત વ્યકતારૂં;
પરમગુરુના પરમ લક્ષથી, છૂટે પ્રપંચ વાળુ. ....જેને. ૩

પરોક્ષ કેરો પડદો તોડી, પ્રગટ સ્વયં સત્તાળુ;
આત્મ અંશ અવિનાશી મમથી, નખ શિખ ચૈતન્ય મારૂં ....જેને. ૪

આત્મ અંશની આગળ વાગે, અનહદ છત્રીસ વાળુ;
ઝળહળ જ્યોતી જગી રહ્યો છે, બ્રહ્મરંધ્ર ઝણકારૂં. ....જેને. ૫

પુરૂષ પ્રકૃતિ નેકી પોકારે, વિધી વદે વેદ ચારૂ;
પરાવાણીયે સ્તવન કરીને, પરાત્પર ધુનવાળુ. ....જેને. ૬

મન ઈંદ્રિયો શમદમ થઈને, બની સુક્ષ્મ ગતિયારૂં;
મુર્ધ્વ સ્થળનો મહિમા જાણી, સુરત નુરત ત્યાં ઠારૂં. ....જેને. ૭

પરમ પ્રભુના આત્મ અંશની, શોભા અનુપ અપારૂં;
સોહમ્ સાક્ષીની સન્મુખ સમયે, છુટે કર્મ વ્યવહારૂં. ....જેને. ૮

પ્રતિબિંબ રૂપે તન ઘટ શૂન્યે, તત્વાતિત વિત્ત ન્યારૂં;
અસંખ્ય બિંબના સાક્ષી કૈવલ, ઉર્ધ્વ દ્રષ્ટિએ ભાળું. ....જેને. ૯

પરમિષ્ટ પરમાત્મન્ પાખે, અન્ય સુખ લગારૂં;
બાલકૃષ્ણ અપરિમિત પદમાં, ઉજાગૃત મન ગાળુ. ....જેને. ૧૦

પદ 3

જેવો પૂર્ણ પ્રભુ પર પ્યાર, તેવો કરીએ ગુરુષુ યાર;
ગુરુ ષટ્ સંપત્તિ દેનાર, લેશે અધિકારી અધિકાર. ....ટેક.

ગુરુને ગોવિંદ તુલ્ય ગણતાં, પામે વસ્તુ વિચાર;
વેદ શાસ્ત્ર સંધ્યા જપ તપની, સિદ્ધિના દાતાર.
જેવો પૂર્ણ. ૧

રૂપ રંગ રેખા નહિ વેષા, દેહાતિત દેદાર;
અગમ નિગમ ગમ ગુરુ લખાવે, માટે ગુરુ કિરતાર.
જેવો પૂર્ણ. ૨

ધ્યાન માન માંહી દૃઢ કરાવે, પોખી શુભ સંસ્કાર;
મહાપદની રહેણીમાં રાખે, ધન્ય ધન્ય ગુરુ બલિહાર.
જેવો પૂર્ણ. ૩

બ્રહ્મા નારદ શારદ ગાવે, ગુરુ ગુણ દશ અવતાર;
વાક્ વાણીનો વેગ વાળીને, ઉલટાવે ૐકાર.
જેવો પૂર્ણ. ૪

પરા નાભીયે પ્રણવ પહોંચાવી, જગવે ધુન ૐકાર;
ઉલટ પ્રણવ સુલટમાં શમતાં, ઓહંગ સોહંગાકાર.
જેવો પૂર્ણ. ૫

આત્માને પરમાત્મ સંધી, સાંધે ગુરુ ગતિયાર;
નિજાનંદ પરમાનંદ પૂરણ, દે ઉભયે ભંડાર.
જેવો પૂર્ણ. ૬

ઉભયેની ઐક્યતા કરાવે, શ્રીમત્ કુવેર શિરદાર;
બાલકૃષ્ણ ચરણે સુખ શાન્તિ, સંશય નહિ લગાર.
જેવો પૂર્ણ. ૭

પદ ૪

મેરા મનવા હે અલમસ્તા, સો ઉંડી ગગનમાં વસતા;
લેઈને ગુરુગમકા રસ્તા, જ્યાં નહિ ઉદય કે અસ્તા. ટેક.

પંડિતકુ પાખંડી કહેતા, નહિ માનત ઈત્ કવતા;
વાક્ જાળના વાદી મલતાં, કહે ચુપ ચુપ ક્યા લવતા?
મેરા મનવા. ૧

15:28

યોગી સરખો આડંબરને, શમદમમાં નહિ શમતા;
એવાંનું અયોગ્ય કહે છે, એસા હે અલમસ્તા.
મેરા મનવા. ૪

ચાતક જેસા મન હે મેરા, તિવ્ર તપારે તપતા;
સ્વાંત સ્વાંત પોકર કરીને, ચઢે ગગન થઈ એક્તા.
મેરા મનવા. ૫

ભવોદધીનું નીર નજરે ન લાવે, ચિત્તમાં ચિદ્‌ઘન રૂચતા;
ઉર્ધ્વગતિનું અનુભવ અમૃત, પીને પીયુ જપ જપતા.
મેરા મનવા. ૬

પાછું પડતાં પ્રલયે થાતું, તે સમયે ઘન પડતા;
ઘન બિંદુયે સજીવન થઈને, સ્વાંત શોધમાં ચઢતા.
મેરા મનવા. ૭

નિત્ય રહી એકતાર લગનમે, ભવબંધનથી ખસતા;
સોહમ્ હંસ ધૂન મચાવી, મહા મસ્તીમે હસતા.
મેરા મનવા. ૮

મહા જ્ઞાન રૂપ હિરણ્ય ગર્ભની, માત્રા પચવી ફરતા;
ગુરુ ગમની પરહેજી પાળી, સાધી અજરામરતા.
મેરા મનવા. ૯

ઘરમાં બાહીર જગતમાં, અબ કુછ નાંહી રખડતા,
મૂર્ધ્વ પ્રદેશે મહાશૂન્યમાં, મુકામ નાખી અડતા.
મેરા મનવા. ૧૦

જબ વ્યવહારે આઈ ફીરે તબ, અંતર સુરતા ધરતા;
હાલર લકડી કબુ ન છોડે, એહી લક્ષ આદરતા.
મેરા મનવા. ૧૧

નિર્ભય હોકર અબ મનવાજી, ગાઓ ગુરુકી જસતા,
બાલકૃષ્ણ ઓરુ દલપત દિલતો, ગુરુ ચરણમાં વસતા.
મેરા મનવા. ૧૨

15:30

તત્વ વિષે તત્વાતિત દેવા,
સાધુ સાધો યોગ્ય, અરો કોઈ સાધુ.
દિવ્ય દ્રષ્ટિએ દ્રઢ કરી દેખો,
ટાળી આવરણ ઓથ; અરે કોઈ ટાળી.
છે સદાય અંશ અનુકર્મિ રે,
થવું જરૂર જાણવા શ્રમી રે. કોઈ થાઓ. ૨

એ દ્રષ્ટાથી દ્રશ્ય સચેતન,
પદાર્થિ બહુ ઘાટે, ચેતનમય પદાર્થિ.
ત્રિગુણ શક્તિ નિરંજનને,
ઈંડ પિંડ વૈરાટ. ચૈતન મય ઈંડ.
એ સૌમાં ઝરણા ઝમીરે,
ઉતરે ૐકારની અમી રે. કોઈ થાઓ. ૩

સોહમ્ અરસથી અમૃત ધારા,
ઝરે પ્રણવને દ્વાર, નિરંતર;

રોમે રોમ સજીવન ત્યારે,
તત્વ તંતુનો તાર; નિરંતર.
અનહદ વેગો ધમધમી રે,
ઉઠે શ્વાસા હર્દમી રે. કોઈ થાઓ. ૪

પરાત્પર પુરૂષોત્તમ પાખે,
ઉપજેલું એ અસ્ત ખરૂં તે;
ભાગ ત્યાગ ગુરૂ ગમથી કરશે,
ત્યારે જડશે વસ્ત ખરૂ તે.
જતમત સત્ગુરુને નમી રે,
રહે ભજન ખુમારી ખમી રે. કોઈ થાઓ. ૫

સ્વરૂપાકારની અજર સમૃદ્ધિ,
ભોગવશે તે વિર, સાધુવૃત.
બાલકૃષ્ણ તદ્વત થઈ રહેશે.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

પદ ૨

દેખો હરદમ હાલ હજૂર રે, સોહમ્ ધુન શૂન્યમાં લાગી;
ઝરે સાક્ષી તણું સોઈ નૂર રે, પ્રણવ જાપ જપતો જાગી. ટેક.

પરમ પ્રકાશક પરમાત્માથી, અંશાત્મા ઘટ ઘટમાં;
ચિદા ભાસ ચૈતન્ય ચરાચર, પ્રણવ પ્રસર્યો તન પટમાં રે.
...સોહમ્. ૧

નાભી હૃદય રંધ્ર તાલમાં, ૐકાર સમ ભરીયો;
ચિદ્ શક્તિએ વહે ત્રિવેણી, ઉલટ સુલટ જેમ દરીયો રે.
...સોહમ્. ૨

ઉલટભેર સુલટમાં શમવું, મૂલ સાક્ષીને શોધી;
સોહમ્ ધુનમાં સ્વામી મારા, સુરતે નુરતે લેવો નોંધી રે.
...સોહમ્. ૩

તત્વ જ્ઞાનનું શોધન કરતાં, નિગ્રહ થઈ મનવૃત્તિ;
આપોઆપ અવિનાશી પદમાં, શમી શમાવી ઉત્પત્તિ રે.
...સોહમ્. ૪

અભય પદની અનુભવ સિદ્ધિ, ગુરુ કરુણાથી પામ્યો;
હદ બેહદ અનહદની સમજી, જીવન મુક્ત થઈ વિરામ્યો રે.
...સોહમ્. ૫

અજહદ્ જહદા ત્યજી લક્ષણા, જહદા જહદને સાધી;
ઉપજેલાનો અસ્ત ગણીને, ત્યાગ કરી છે ઉપાધિ રે.
...સોહમ્. ૬

શ્રીમંત્ કુવેર સાહેબની શાને, સત્ય સ્વરૂપે વરીયો;
બાલકૃષ્ણ બિંદુવત્ પોતે, કરુણા સિંધુમાં જઈ ભળીયો રે.
...સોહમ્. ૭

ધૂન - પદ ૧

(રાગ - ધુન ચાલ)

જેને ઓહંગ સોહંગ ધુન લાગી, તેણે જોયું જગતમાં જાગી;
જેને ઓહંગ સોહંગ ધુન લાગી. ટેક.

પ્રગટ પરચો પિંડમાં પેખી, અંતર વૃત્તિ જાગી;
શ્વાસો શ્વાસે સ્મરણ કરવા, જુક્તિ લીધી માગી. જેને. ૧

તિવ્ર તપાળે બહુ તપીને, વિરહ વન્હિયે લાગી;
જડ ચૈતનનો યોગ તોડવા, વિષય વાસના ત્યાગી. જેને. ૨

સદ્ગુરુ વચને સનમૂખ રહીને, અવર ભ્રમણા ભાગી;
ઉલટભેર સુલટમાં શમવા, ચઢી ગગનમાં આઘી. જેને. ૩

હદ ત્યાગી બેહદમાં પેસી, અનહદમાં જઈ જાગી;
સુરત નુરતમાં શમી ગઈ તો, થઈ સ્વરૂપ સોહાગી. જેને. ૪

ઈંગલા પિંગલા મલી એકઠી, અખંડ રહી અનુરાગી;
ભરતી ઓટ જઈ ભળ્યો બ્રહ્મમાં, **બાલકૃષ્ણ** નહિ બાકી. જેને. ૫

પદ ૨

આ અવસર જાય છે છેલ્લો, હવે તો મમતા મેલો,
આ અવસર જાય છે છેલ્લો...ટેક.

કર્મકુટમાં ઘણો કુટાયો, ભક્તિનો ભુલેલો;
દુનિયા કેરા દોષ કમાયો, મન ઈંદ્રિનો મેંલો. આ અવસર. ૧

ભવસાગર તરશો કઈ પેરે, વિષયે વારી ભરેલો;
મગરમચ્છ મદ મોહ મારશે, ઉરમી બળનો ઠેલો. આ અવસર. ૨

આપો આપનું અહિત તાકી, જગત વિષે જામેલો;
આવાગમનનું અદબદ રાખી, ભોગી ભોગ જમેલો.
આ અવસર. ૩

અનહદ વાજાં આગળ વાગે, જ્યોત અતિ ઝળકે;
તત્વાતિત્થી તત્વ સકલમાં, ચૈતન્ય બ્રહ્મ ચળકે. આનંદનો. ૪

ૐકાર વૃત્તિ આપે પ્રસારી, ભોગ આપે ધરતા;
અનંત મુખે અંશ સ્વરૂપે, અંગીકૃત કરતા. આનંદનો. ૫

સોહમ્ વૃત્તિએ આ સૌ જુઠું, કર્તા તે હરતા;
તે સર્વેશ્વર સ્વામી કૈવલ, **બાલકૃષ્ણ** વરતા. આનંદનો. ૬

પદ ૨

સંત કૃપાથી સુકૃત્ય જાગ્યું, ભાગી સર્વે ભ્રાન્ત;
અજર લાભ અચાનક મલીયો, હતી અંતરે ખાંત...ટેક.

જપ તપ કરતા વને વિચરતા, દમતા ઈંદ્રિ દશ;
એવા યોગેશ્વર દુર્લભ માને, તે હરિ તો મારે વશ.
સંત. ૧

કરુણાસાગર લહેરી ઉલટથી, અઢળક ઢળીયા આજ;
સર્વ સિદ્ધાન્તનો સાર જણાવ્યો, રિઝ્યા શ્રી મહારાજ.
સંત. ૨

વેદનો ભેદ સર્વે સુણાવ્યો, સુક્ષ્મ ગતિયે સરાય;
સુરત નુરતના ધ્યાનાકારે, આપ પતિ હેરાય.
સંત. ૩

કર્મ કાન્ડ સંધ્યા ગાયત્રી, વેદ શ્રુતિ જે ભણાય;
સત્ય સ્વરૂપે અંગીકૃત થાતાં, સર્વે શમ્ રહાય.
સંત. ૪

મર્મ લહ્યો મેં શ્રમ વિનાથી, ભ્રમ થયો છે ત્યાગ;
નથી કમતી મારે રહી હવે, **બાલકૃષ્ણ** જો જાગ્ય.
સંત. ૫

15:44
Vo)) LTE1

નિરમલ નુર નિરંતર દરશે, મહા મનોહર મોતી;
અનહદ નાદ અહોનિશ બાજે,
ઝળહળ દરશે જયોતિ રે, શું શોધે ... ૨
ઓમકાર ધુન્ય ઉઠે સહેજે, ચિદાનંદ નિધિમાંથી;
સોહં પ્રકાશ કરે રગરગમાં,
ગુરુ વિના એ ગમ કયાંથી રે. શું શોધે ... ૩
તેજ પ્રકાશથી તુંજને સુજે, સુંદર સ્વરૂપ એ તારું,
છોટમ તેનો કર્તા જાણે,
તો નિપજે સુખ સારૂ રે. શું શોધે ... ૪

પદ – ૫૪

(રાગ : હરિનો મારગ છે શુરાનો)

ભરમે ભૂલ્યા તે નર ભટકે, ઠરી ન બેસે ઠામે જોને;
મન વાણીનું મૂળ વિચારે, તે પુરણ પદ પામે જોને. ... ૧
પુરણ કેરો પરભા ન તૂટે, અગણિત ઈંડ રચાય જોને;
જેમ બીજથી વૃક્ષ બને છે, એ અદ્‌ભૂત મહિમાય જોને. ... ૨
અણુની આદ્યે અખિલ જીવના, સરજે સઘળા ઘાટ જોને;
એવા કર્તાને ઓળખાવે, ગુરૂ કરવા તે માટે જોને. ... ૩
એ પદના જે હોય અજાણ્યા, તેથી ના સરે કાજ જોને;
વૈદ્ય ઔષધિ જે નવ જાણે, કરશે કેમ આરામ જોને. ... ૪
ઔષધ કેરું નામ સમરતાં, જનનાં દુઃખ નવ જાય જોને;
હોય સજીવન મુળી સાચી, તે સેવે સુખ થાય જોને. ... ૫
એમ વિચારી તત્ત્વ ઓળખો, સદ્‌ગુરુ કરજો સાચા જોને;
ઢોંગી દેખી જો ધુતાશો, તેથી રહેશો કાચા જોને. ... ૬
કાચા રહીને કુકર્મ કરશો, જાશો જમના હાથે જોને;
કંઠી વાળા કોરે રહેશે, કોઈ ના આવે સાથે જોને. ... ૭
જ્ઞાની ગુરુને શરણે જઈને, કરજો તત્ત્વ વિચાર જોને;
કહે **છોટમ** કિરતાર ને ભજીયે, સુખે પામો પાર જોને. ... ૮

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

દશ વિધ સર્ગ પ્રથમ ઉપજાયે, સ્થાવર જંગમ ઝારી;
ધ્રુમ વિરુધ્વત્વક સાર ઔષધિ, લત્તા વનસ્પતિ ભારી;
વાસના ન્યારી ન્યારી. ઘનશ્યામ... ૩
લીલા લલિત ખેલ નિત્ય નૌતમ, મુનિ મન મોહન કારી;
જન છોટમ વાકે ચરણ કમલ પર, વારંવાર બલિહારી;
ધ્યાને ઉર લીજે ધારી. ઘનશ્યામ... ૪

પદ – ૯૧

(રાગ : હોરી)

ગુરુ ગમસે ખેલો હોળી, મીટે મલીન વાસના તોરી;
ગુરુ ગમસે ખેલો હોળી ટેક.
આસન મારી સુરત દ્રઢ ધારી. ત્રિકુટી ધ્યાન ધરોરી;
શ્વાસ ઉશ્વાસ શ્યામ સંગ ખેલો, તો તેનો અચલ પર જોરી;
ગગન ઘર જાઈ બસોરી. ગુરુગમ .. ૧
અનહદ નાદ મૃદંગ મોરલી, શુન્યકે સુરત ચલી મોરી;
કોટી અનંગ અંગ પ્રીતે સોઈ, તો એસે કિશોર કિશોરી;
ઓર સખી અન્ય કી ટોરી. ગુરુગમ .. ૨
ઝલમલ જયોતિ ઉદ્યોત કોટી રવિ, અદ્‌ભુત ખેલ મચોરી;
નિરખી સ્વરુપ દેવ સબ મોહ્યે, તો વિનવે કરત કર જોરી;
નેતિ જહાં નિગમ કહોરી. ગુરુગમ .. ૩
દિવ્ય પરમગુરૂ, સંગે ખેલો હોરી;
અપરમપાર નહિ જાકો, ગુરુગમ જાત ગ્રહોરી;
જન છોટમ સત કુવેર પ્રતાપે, સોકુ દરશ ભયોરી;
દેહીકો દોષ ગયોરી. ગુરુગમ .. ૪

પદ – ૯૨

બાજત ગેબ ગગનમે, નગારાં બાજત ગેબ ગગનમે,
મેરા મનવા સુનલે મગનમે
પંચ તત્ત્વકી ઉડત પિચકારી, ઉલટ સુલટ છન્ન છન્નમેં;
ઝલાબંબ બહુ હોત ઝબુકા, જેસે બીજરીયાં ગગનમે,
નગારાં બાજત... ૧

15:47 (રાગ : જે કોઈ પ્રેમી અંશ અવતરે)

પ્રભુ તજી પાપ મારગે ચઢે, તેહને નેષ્ટ પનોતિ નડે ટેક
સઘળા ગ્રહ તેને સંતાપે, પૂરણ પીડા પડે;
ભૂત પ્રેત વૈતાળ વીરાગણ, અધમ શાકણી અડે. તેહને ૦૧

પ્રભુના ભજન વિના મહાપાતક, તે નાશે શા વડે;
જમ કિંકર તે પાપી જનશું, વેર કરીને વઢે. તેહને ૦૨
કરુણાસિંધુ કર્તા ભૂલી, અવર ઠામ આથડે;
સ્વપ્નમાં તેને સુખ ન મળે, રાંક થઈ તે રડે. તેહને ૦૩
યમના દૂતો તેના તનની, છાલ ઉખાડી છડે;
પ્રભુના ભજન વિના પ્રાણીનો, ઘાટ ઘણા થઈ ઘડે. તેહને ૦૪
શ્વાસ ઉશ્વાસે પ્રભુને સમરે, અનહદ નોબત ગડે;
જન છોટમ કહે સહુ જખ મારે, ભકિત વિષે જો ભડે. તેહને ૦૫

પદ – ૧૨૦

(રાગ : જે કોઈ પ્રેમી અંશ અવતરે)

રે શું સમજયો વૈષ્ણવ થઈ, અવિદ્યા જો અળગી નવ ગઈ ... ટેક
જ્ઞાન વૈરાગ ગમે નહિ ગાતાં, રાસ કથાના રસીયા;
કામ ક્રોધ મદ લોભ ગર્વ છળ, અંતરથી નવ ખસીયા. રે શું ૦૧
તન મન ધન દારા ઘર તારું, કર્તાને સમર્પણ કીધું;
પાપકર્મ તો પામર જીવડે, પોતે માથે લીધું, રે શું ૦૨
હિંગ તજે પણ હરામ ન તજે, નિરખે કોઈ પરનારી;
લસણ તજે પણ લાંચ ખાય છે, ન તજે ચોરી જારી. રે શું ૦૩
જરને લોભે જુઠ્ઠા સોગન, ખાતાં પણ નથી બીતા;
જુઠ્ઠી સાક્ષ જાય પુરવા, ઝટ ઉપાડે ગીતા રે શું ૦૪
છાપ તિલક તાણીને અંગે, મંડળીઓમાં મહાલે;
ગુપ્ત ઘાત અંતરમાં રાખી, ઘણાંકનાં ઘર ઘાલે. રે શું ૦૫
એકાદશીનું વ્રત આચરે, ફરાળ સારું ફાકે;
ઉપર ચોખ્ખા અંતર મેલા, પરધન હરવા ધારે. રે શું ૦૬
એક પ્રભુને ઉરમાં ધારી, પરમારથ આચરવું;
નીતિનો મારગ ઝાલીને, ભાળી ડગલું ભરવુ. રે શું ૦૭
એમ વિચારી જે જન ચાલે, ધર્મ તેહનો સાચો;
કહે **છોટમ** પરપંચી મારગ, જાણો સર્વે કાચો. રે શું ૦૮

सो सब दुख ततकार नसायौ जबही प्रभुकौ दरसन पायौ।
नाना वृत्त[२०१] मन सकल मिटावै अरु पुनि बुधि[२०२] अमलता पावै ॥७०५॥
माया कबहु मोह न करै सीस नवाय विघ्न सब टरै।
श्री गुरुको प्रसादही भयौ[२०३] आगै करणौ[२०४] कछु नही रह्यौ ॥७०६॥
॥इति मुद्रा॥

अथ मंत्र[२०५] विचार कहियै है।

मायाबीज -ह्रीं[२०६] कामराज बीज क्लीं
उड्याणबीज -हीं लक्ष्मीबीज श्रीं
अजपाबीज सोहं हंसो।
॥इति मंत्र विचार ॥७०७॥

चौपाई— [२०७]एको बीज [२०८]सिष्टिमय कहिये मुद्रा एक खेचरी लहिये।
एकौ देव निरंजन जानो अवस्था एकै उनमनी मानौ ॥७०८॥

दोहा— [२०९]यह उनमन मुद्रा कही सब मुद्राको सार।
जयतराम गुरुक्रिपातै याको लहे विचार ॥७०९॥
इति श्री चौबीस यह मुद्रा पूर्ण सोय।
जयतराम स्त्रधासहित गुरुमुख जाणै कोय ॥७१०॥[२१०]
॥इति चौबीस मुद्रा॥

अथ ओंकार को अर्थ निरूपण।

चौपाई— ओंकारको रूप पछानै ताकरि जनममरन भय भानै।
सो पुनि तीन अक्षरमय राजत अकार उकार मकार विराजत ॥७११॥
जो ओंकारसो अजहि कहावै रजगुण करिकै सिष्टि उपावै।
विष्णु अकार सतोगुण सोई ताकरि विश्व की रक्षा होई ॥७१२॥
मकारसो महादेवको जानो तमकरि नास विश्वकौ मानौ।
ऐसो ओंकार है जोई सकल विश्व को कारण सोई ॥७१३॥

---

२०१. वृत्य (भां) *२०२. बुध (ना.)*
२०३. लह्यौ (भां) *२०४. क्यों (भां)*
२०५. विध (ना.) *२०६. क्रां (ना.)*
२०७. एकही (भां) *२०८. सिष्टमय (ना.)*
२०९. एक (ना.) *२१०. This verse missing in (ना.)*

दोहा— ऐसी गोप्य जू खेचरी कही प्रगट करि सोय ।
जयतराम गुरुक्रिपाते याको साधन होय ॥८९५ ॥
॥इति खेचरी मुद्रा ॥

अथ षटचक्र वरनन ।

ध्यान अजपासहित कहिये है ।

चौपाई— प्रथमही अजपा सो मन लावै ताकै जपै सकल सिध पावै ।
विनही जाप होत है जोई [३११]अजपाजाप कहावै सोई ॥८९६ ॥
सोहं सोहं सासोसास घटमै करैं निरंतर वास ।
षट सत सहश्र इकीस जु आवै गुरुकी क्रिपा भेद सो पावै ॥८९७ ॥
सो पुनि ले घटमै उलटावै षटचक्रनमधि आनि मिलावै ।
क्रमसौ जाप करै मन लावै जाविधि आग्या गुरुतै पावै ॥८९८ ॥
॥इति अजपा ॥

अथ षटचक्रवरनन ।

चौपाई— प्रथम चक्र आधार बखानू स्वर्न वर्न तासकौ जानू ।
सक्ति गणेश चतुर्दल सोई वंशंषंसं अक्षर होई ॥८९९ ॥
तपत स्वर्णमय ध्यान जु धारै षटसत तामधि जाप उचारै ।
सोई जाप गणपति को दैवै निर्भय होय चरण पुनि सेवै ॥९०० ॥
॥इति आधारचक्र ॥

अथ स्वाधिष्ठान चक्र ।

स्वाधिष्ठान चक्र पुनि दूजा तेजमनो विजुरी को पूजा ।
षटदल षट तहा अक्षर राजत बंभंमंयंरंलं सहित विराजत ॥९०१ ॥
ब्रह्मासावित्री पुनि जहां षटसहस्र जप जपिये तहां ।
सो पुनि अजपा अजहि चढावै तिनके चरन सीसकौ नावै ॥९०२ ॥
॥इति स्वाधिष्ठान चक्र ॥

अथ मणिपूरक चक्र ।

त्रितीय चक्र मणिपूरक जोई नीलवरनमय जानो सोई ।
लक्ष्मीसहित विष्णु तहां राजत पीत वरन अति सोभा साजत ॥ ९०३ ॥

---

३११. अजपानाम (भां)

सहस्त्र जाप जपै जहां जोई परमात्महि समरपे सोई ।
मनकी वृत्य चरनमधि धारै कालकल्पना सकल निवारै ॥९१३ ॥
॥इति षटचक्र[३१६] ॥

अथ सहस्त्रदल कमल वरनन ।

चौपाई— कमल सहस्त्रदल अति सुखकारी ब्रह्मरंध्रमधि सोभति भारी ।
ब्रह्म[३१७] कपूर आभा ताकी जानौ नादातमक तासकौ मानौ ॥९१४ ॥
वरण पचास सकल जहां जोई अकारादि क्षकारलग सोई ।
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ऐ ओ औ अं अः । *
कखगघड, चछजझञ, टठडढण, तथदधन, पफबभम*
यरलवसषशहलक्ष ।*

दोहा— एक सहस्त्र जाप जपि गुरुहि समर्पे सोय ।*
सोहं देवता है सही जानै विरला कोय ॥९१५ ॥*
सकार बाहरि जात है हकार प्रवेशन सोय ॥*
सोहं सोहं मंत्र यह जान्या मुक्ति है सोय ॥९१६ ॥*

चौपाई— षटसत सहस्त्र इकीस जु जहां अजपाजाय उचारे तहां ।
परमात्मा गुरुसम जानै एकरूप करि तिनकौ मानै ।
सो पुनि जाय समरपण करै चरणकमल मसतग ले धरै ॥९१७ ॥

दोहा— ऐसी विधि अजपा जपै चक्रमधि[३१८] चक्र सोय ।
जयतराम गुरुक्रिपाते सकलजोग सिद्ध होय ॥९१९ ॥
॥ इति सहस्त्र दल कमल ॥

अथ सुखमनाकौ विचार ।

चौपाई— सहस्त्र बहतरी नारी जोई तिनमधि सुखमनही कोई
नरनमधि नरपति पुनि जैसै नारिनमधि सुखमना तैसै ॥९१९ ॥

---

३१६. षटकमल (भां)

३१७. कर्पूरआभा (भां) * These L... missing in (भां)*

३१८. चक्र चक्रमधि (ना.)

प्रान हृदय अपान गुद रहै कंठ उदान सदा[२६०] सुख लहे ।
नाभि समान अरु व्यान सरीर ये पंच वाय[२६१] प्रधान सुधीर ॥८१९ ॥
कूर्म चखि उनमीलन करे नाग वाय उदगारही टरे ।
कृकरा छीक लेहि यों जानो देवदत्त सु जंभाई मानो ॥८२० ॥

दोहा— वाय धनंजय देह मै रहे मृत्यु लो जान ।
जयतराम या वाय करि फूले देह निदान ॥८२१ ॥

चौपाई— दस नाडी करिके यह जीव भ्रमत देहमै रहै सदीव
ज्यों कोउ गेंद करसे पटके उपर नीचे फीर फीर भटके ॥ ८२२ ॥
अैसै नारिन जीव फिरावौ रैन दिना यों रहे भ्रमायो ।
प्रान अपान वसि रहे सदाई उपर नीचै आवै जाई ॥८२३ ॥
बायें दाहने बिचि ले [२६२]जावै इकठा कबहू नाही रहावै ।
जैसे सिकरा डोरी बांध्यौ खेंचौ आवै जहा सु साध्यो ॥८२४ ॥
गुणसो बंध्यौ जीव इमि जान [२६३]अग्यान साथ सो बंध्यउ मान ।
अपान वाय प्रानको खेचै प्रान वाय अपानहि अैचै ॥८२५ ॥
उचै नीचै अैसै लहिये जो जाने सो जोगी कहिये ।
ताकौ यह उपचार सुनाउं जयतराम गुरुकृपा बताऊं ॥८२६ ॥
[२६४]सकार सबद सो बाहर जावै हकार [२६५] सबदसो भीतर आवै ।
सोहं [२६६]सोहं मंत्र सुजान है न दिन इहि जाप सु ठान ॥८२७ ॥
हजार इकीस अरु [२६७]षटसत और जाप जपे यह रैनि सु भोर ।
अजपानाम गायत्री जानों जयतराम गुरुक्रिपासे[२६८] मानो ॥८२८ ॥

दोहा— दस नाडी दस वाय को भिन भिन करि भेद ।
जयतराम वरन्यो सकल लखै सुमेटै खेद ॥८२८ ॥

॥इति नाडीवाय[२६९] वरनन ॥

---

२६०. व्यान (भां) *२६१. नारि (भां)* २
२६२. चंचल (भां) *२६३. रेन दिना भरमें यो मान (भां)*
२६४. हकार (भां) *२६५. सकार (भां)*
२६६. हंस हंस ये (भां) *२६७. सत छह (ना.)*
२६८. गुरुक्रिपासु *२६९. दस नाडी दस पवन को भेद (भां)*

હવે પંચ અવસ્થાની ક્રિયા કહું છું તે સાંભળો. જાગ્રત-અવસ્થા તે સર્વ ચરાચર દૃષ્ટ પદાર્થ દેખાય છે તે અને આપણને કોઈ પદાર્થ અગર કામની વિસ્મૃતિ પડે છે તેનું ફરીથી સ્મરણ આવી જાય, તેને જાગ્રત-અવસ્થા કહેવાય છે. હવે સ્વપ્નાવસ્થા તે વૃથા ભાષણ કરે તે, અને નિદ્રામાં અનેક ચિત્રવિચિત્ર ચરિત્ર ઉપજાવે તેને આપણે જોઈએ છીએ તે, આ બન્ને પ્રકાર સ્વપ્નના છે એમ જાણવું. હવે સુષુપ્તિ-અવસ્થા તે સ્વપ્ન જેવા અલ્પ પદાર્થ નજરે પડે અને વારંવાર તેનો લય થાય; વળી પુનઃ નજરે પડે જે સ્વપ્નનો ઘાટ પૂર્ણ થવા દે નહિ, એવું વર્તન જેને થાય તે જાગ્રત થયા પછી પોતે કહે કે મને સ્વપ્ન આવ્યું હતું, પણ પૂરી ફામ (ખ્યાલ) ન રહી; આ પ્રકારે વર્તમાન થાય તેને સુષુપ્તિ-અવસ્થા જાણવી. હવે તુરીયા અને ઉન્મની આ બન્ને અવસ્થાઓ પ્રાણાયામ રૂપ દેહને વિષે વર્તે છે, તેમાં ઓહંગ-પ્રણવને વિષે વૃત્તિરૂપ મહાકારણદેહ વર્તે છે. આ વૃત્તિરૂપ દેહ ઓહંગ-પ્રણવને ભીતર નાભિને વિષે ખેંચી રાખીને રહે છે. આ લેવાતો ઓહંગ-પ્રણવ એકલો ઘોર કરતો ચાલે તે ક્રિયા તુર્યાવસ્થાની જાણવી. હવે પાંચમી ઉન્મની-અવસ્થા તે પરમકારણદેહને વિષે વર્તે છે. આ દેહસમેત પ્રવૃત્તિ કહું છું તે સાંભળો. પાંચમો પરમકારણદેહ તે સ્થૂલ દેહની આદ્ય લઈ મહાકારણદેહ સુધીના ચારે દેહને ધારણ કરી રહ્યો છે; તેને જ્યોતિ-સ્વરૂપ નિરંજન અભિમાન જાણજો. આ અભિમાનરૂપ જ્યોતિ ચારે દેહને સ્થિર રાખે છે. આ જ્યોતરૂપ અભિમાનની પ્રવૃત્તિ ઓહંગ અને સોહંગ આ બન્ને પ્રણવને વિષે બે પ્રકારે થાય છે. એક તો સ્થૂલદેહનો અવધિકાળ આવતા સુધી પ્રણવના યોગ વડે વૃત્તિ અને અભિમાન સ્થિર રહ્યાં છે. બીજું આ વૃત્તિ અને અભિમાન તો પ્રણવનુ પણ કારણ થઈ રહ્યાં છે; તે સ્પષ્ટ કેવી રીતે સમજાય તે સાંભળો. લેવાતા અને મૂકાતા બન્ને પ્રણવની ક્રિયા આદિથી મધ્ય અને અંત સુધી વૃત્તિ અને અભિમાન વડે થાય છે. આ પ્રકારે ઓહંગ, સોહંગ, પ્રણવ અને વૃત્તિ તથા અભિમાન, એમના ઊલટાસૂલટી સંબંધ વડે બન્નેની ક્રિયા થાય છે; આમ પ્રણવનું કારણ વૃત્તિ અને અભિમાન આ બે જણાય તો છે, પણ અભિમાન વૃત્તિસંયુક્ત રહેલો છે. આ વૃત્તિસંયુક્ત અભિમાન જ્યારે ખેંચી લીધેલા પ્રણવને નાસિકાદ્વારે બહાર મૂકે છે, ત્યારે આ છૂટતો સોહંગ પ્રણવ ઘોર કરતો નીકળે, તો તે મુખ્ય ઉન્મની અવસ્થા વર્તે છે એમ જાણવું. આ પ્રકારે પાંચ અવસ્થાની મુખ્ય ક્રિયા થાય તે કહી. હવે આ પાંચ અવસ્થા પાંચ દેહને વિષે વર્તે છે. તેમાં જાગ્રત-

હવે યોગીઓના શુદ્ધ સાધનોની મિજલસમાં જે જાપ જપાય છે તે વિષે કહું છું. શરીરનાં સાતે ચક્રોમાં દેવતાઓનો વાસ છે. આ દેવતાઓના અહંમેવો ઘણા મોઘા છે તથાપિ આ પુરુષો તેની રીતને જાણે છે. પ્રથમ ગણપતિના ઘરનું જે ચક્ર છે તે ચાર પાંખડીવાળું હોઈ તેમાં રિદ્ધિસિદ્ધિ સહિત ગણપતિ બિરાજેલા છે. આ ભુવનમાં યોગી છસો જાપ જપી ગૌરીપુત્રને અર્પણ કરી ત્યાંથી છૂટા થાય છે. યોગી જે જે સ્થાન પર મંત્રનો જાપ જપે છે તે તે સ્થાનના દેવતાને આ જાપ અર્પણ કરે છે. આ ન્યાયે ગૌરીપુત્ર ગણપતિને આ જાપ અર્પણ કર્યા છે. વળી આ સ્થાને ચાર પાંખડીનું કમળપત્ર હોઈ તેમાં અક્ષર પણ ચાર છે. તેનો ઉચ્ચાર કરવા જેને લહે લાગી છે તે સાધુ હોઈ વીતરાગી છે.

खटदल कमळ समल जीनके जप, सहस्त्र चतुरद्वे जपही;
सावित्री सहित उभये अज, तीनकु तेही अर्पणाही. ॥४१॥
नाम स्थान दशदलपंकज, संग सपान अपवनां;
श्रीवर सहित युगल जहांराजत, जेही निजइष्ट विशवनां. ॥४२॥
चतुर सहस्त्रद्वे जपीत जाप जहां, तहां तीनुं अरपण करही;
श्वासो श्वास निवास सहन कळ, जेही तीनमे स्वर घरही. ॥४३॥
एही विधि नाभि नवेरकरन जम, जीनुं दमदम ग्यम जागी;
ते साधु निज संत योगीजन, वैरागी ने वीतरागी. ॥४४॥

યોગી ગૌરીપુત્રને ત્યાંથી પરવારી ઉપસ્થ ઈંદ્રિના ઘરમાં આવ્યા. આ ઘર છ પાંખડીનું કમળ હોઈ તેમાં જાપ ઓતપ્રોત રહેલો છે. આ કમળમાં બ્રહ્માજી અને સાવિત્રીનો વાસ છે. આ બન્નેને જાગ્રત કરવા છ હજાર જાપની આહુતી આપી તેમને અર્પણ કર્યા. યોગી બ્રહ્મદેવના ઘરનું કામ આટોપી લઈ વિષ્ણુને દરવાજે પહોંચ્યા. આ દરવાજો નાભિસ્થાને આવેલો હોઈ આ નાભિસ્થાનચક્રનું નામ મણિપુર છે. તે દશ પાંખડીનું કમળ છે. જગતના જે ઈષ્ટ છે તે વિષ્ણુ લક્ષ્મીસહ આ કમળમાં બિરાજેલા છે. આ સ્થાને યોગીરાજ છ

હજાર અજંપાજાપ જપી શ્રીવરને અર્પણ કરી છૂટા થયા. આ પ્રમાણે નાભિસ્થાનનો નિવેડો લાવી યોગીરાજ શ્વાસોશ્વાસની ક્રિયામાં જે ગમ રહી છે તેને જુએ છે.

हरदे कमळ दल द्वादश कहीये, वासा शिवशक्तिनके;
खट सहस्त्र जहां जपीत जप, अरपित जीनुं लगतनके. ॥४५॥
कंठकमळ जीवशिवका वासा, सोडस दल परमांणु;
सहस्त्र एक जहां जाप जपीत जप, तहां तीनु करी अरपांणु. ॥४६॥
भ्रगुटी कमळ उभये दलकी पल, अहंग सहित अजदेवा;
सहस्त्र जप तहां करीत समरपण, सोहंग हंस लखभेवा. ॥४७॥
शून्यके शिखर सहस्त्र दल अंदर, जइ जुवे जोत्य चरागी;
ते साधु निज संत योगीजन, वैरागी ने वीतरागी. ॥४८॥

નાભિસ્થાનમાં સર્વકામ સમેટી લઈ હૃદયસ્થાને જ્યાં બાર પાંખડીનું કમળ છે ત્યાં આવ્યા. આ કમળમાં શિવશક્તિનો વાસો હોઈ આ સ્થાને છ હજાર અજંપા ઊઠે છે. આ ઊઠતા અજંપાનો યોગીરાજ જાપ જપે છે; આ જાપના પ્રતાપે શિવશક્તિ જાગ્રત થતાં હોઈ તેમને અર્પણ કરે છે. આ ઘરથી પરવારી કંઠસ્થાને આવ્યા. ત્યાં જીવશિવનો વાસ હોઈ આ કમળ સોળ પાંખડીનું છે. ત્યાં એક હજાર અજંપાનો જાપ જપતાં જીવશિવ જાગ્રત થતા હોઈ આ જાપ તેમને અર્પણ કર્યા. આ કંઠકમળના દેવતાથી પુષ્ટિ પામેલા યોગીરાજ ભ્રૂકુટિસ્થાને આવી પહોંચ્યા. આ ભ્રૂકુટિનું કમળ બે પાંખડીનું છે આ સ્થાનના દેવતા અહંગરૂપે શક્તિ છે. આ અહંગયુક્ત શક્તિનું સ્વરૂપ અજ એટલે ગુપ્ત હોઈ સમજવું મુશ્કેલ છે. આ સ્થાને નીચેની સંપત્તિ લઈ આવેલા યોગીરાજ એક હજાર અજંપાનો જાપ જપી અહંગરૂપ શક્તિને જાગ્રત કરે છે. જ્યારે આ શક્તિ જાગ્રત થાય છે ત્યારે યોગીરાજ સોહંગરૂપ હંસપુરુષના લક્ષ વિષેનો ભેદ શક્તિ પાસેથી સંપૂર્ણ પ્રાપ્ત કરી લે છે. જ્યારે આ લક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે કાર્યરૂપ શક્તિ અજંપાની આહુતી પામી શાંત થાય છે, ત્યારે ઊગરતી વસ્તુ તરીકે શુદ્ધ અહંગભાવ રહે છે. આ અહંગભાવ

બચેલું ફળ, જે આ યોગીરાજને પ્રાપ્ત થયું તે આ સોહંગ પ્રણવ છે. કુલ સાધનની કરામત જે પ્રમાણે કરવાની છે તે પ્રમાણે કહી છે. હે સાધક ! જેને ખપ હોય તેણે આ પ્રમાણે કરી લેવું. આ છેવટના પદનો અતિ આરતે કરી તું સ્નેહી થજે. અજંપાની આદ્ય લઈ જેટલા મંત્રો છે તે બધાનો ત્યાગ કરી માત્ર સજીવન મંત્રનો જાપ જપજે.

ओरु सुणीयो जन योगनकी जग, मग मतबल चल गुपता;
खडतल खोज सरोज सहितम दल, करन अंक सर चुपता. ॥५३॥
जीनु आसन निज पद्म परायन, कहुं क्रि येमाण सुणाइ;
गुदा इंद्रीके मध्य लगावन, दाहन पाव पनाइ. ॥५४॥
वावा घर दाहन जंधन पर, त्रिकुटी ध्यान धरीजे;
रेचक पोरक पुनी कुंभक कर, स्वरके संघ वरीजे. ॥५५॥
ए आसन निज पद्म योग जीत, वित्त जीनुं स्वर सोहागी;
ते साधु निज संत योगीजन, वैरागी ने वीतरागी. ॥५६॥

હે ભગવતિજનો ! યોગીઓ જે પ્રણવ સાથે યોગ કરે છે તે પ્રણવના માર્ગની મતલબ અને તેની ચાલ અતિ ગુપ્ત છે. આ ગુપ્ત ચાલની મતલબને યોગીઓ જાણે છે, કારણ કે આ યોગીઓ શરીરનાં સાતે કમળદળમાંથી નીકળતા અક્ષરોને તાબે કરવા તથા તેની ગતિને ચૂપચાપ દબાવી દેવા ખડતલ ખોજ કરે છે. આ યોગીના પદ્માસન વિષે ખુલાસો કરૂં છું તે સાંભળો. જમણો પગ વાળીને ગુદા ઈંદ્રિના મધ્યસ્થાને એડી રહે એવી રીતે ગોઠવવો અને ડાબા પગને વાળી જમણા પગની જાંઘ ઉપર મૂકવો. આ આસનને પદ્માસન કહે છે. આ આસન સિદ્ધ કર્યા બાદ ભ્રૂકુટિસ્થાને આવેલા ત્રિવેણિઘાટમાં ધ્યાન ધરીને યોગીઓ પ્રણવ સાથે લગ્ન કરી રેચક, પૂરક અને કુંભકની ક્રિયાને સાધે છે. આ યોગીઓ યોગ પર વિજય મેળવવા આ આસન સિદ્ધ કરે છે. વિત્તયુક્ત પ્રણવ એજ આ યોગીઓના સોહાગ હોઈ આ સોહાગરૂપ પદ જેનું છે તેનું નામ સાધુ.

पुनी दाहन पद करीत वाय पर, वावा दाह धरीजे;

उलटी पीठय पद ग्रहीत आंगुरी कर, सुधो मेरु करीजे. ॥५७॥

आसन सिद्ध समाध्य करन ए, वांकनाळय सुलटाइ;

वजरकपाट खोल खुद खडकी, शून्यमे श्वास समाइ. ॥५८॥

सकल जाप दम पुरीत प्रणवशिर, करीत तगन घरवासा;

देह इंद्री इत रहीत गुणातीत, अभिजीत अरस निवासा. ॥५९॥

सुरतनुरत तीनु संग रहावत, परमात्म पियु आगी;

ते साधु निज संत योगीजन, वैरागी ने वीतरागी. ॥६०॥

ડાબો પગ વાળી જમણા પગ ઉપર ધરવો અને જમણો પગ વાળી ડાબા ઉપર ધરવો. ત્યારપછી પીઠ ઉપર હાથની આંટી નાખી જમણા હાથે જમણા પગનો અને ડાબા હાથે ડાબા પગનો અંગૂઠો પકડી મેરુદંડ (કરોડનો ભાગ) સીધો કરવો. આ આસન સિદ્ધ કરી વંકનાળના સુલટા માર્ગમાં ગમન કરવું. આમ ગમન કરતાં મસ્તક અને ગરદનની નજીક યોગીઓની ત્રિકુટિ આવે છે, આ ત્રિકુટિમાં રહીને ઉપર જતાં બ્રહ્મરંધ્ર આવે છે. આ બ્રહ્મરંધ્રનું બારણું વજ્રની માફક સજ્જડ બંધ છે. તેને યોગીની હઠે કરીને પ્રણવના ધક્કા વડે આ દરવાજો ખુલ્લો કરે છે. આ ખુલ્લા કરેલા દરવાજાને માર્ગે શરીરના સઘળા પ્રણવને ખેંચી લઈ બ્રહ્મરંધ્રના શૂન્યઘરમાં સમાવેશ કરે છે. એકવીશ હજાર અને છસો દમરૂપે પ્રણવના જાપ હતા તે સર્વને ખેંચી લઈ બ્રહ્મરંધ્રના પોલાણામાં યોગી ઘર તરીકેનો વાસ કરીને રહ્યા છે. આ બાજુના દેહ તથા ઈંદ્રિયો રહિત ગુણોથી જુદા પડી શરીરના સર્વ અવયવો ઉપર જીત મેળવી યોગી બ્રહ્મરંધ્રના અંતરિક્ષ ભુવનમાં વાસ કરીને રહ્યા છે. માત્ર તેમની સંગે સૂરતાનૂરતા રહેલી હોઈ તેને પરમાત્મારૂપ પિયુની આગળ મૂકીને જે રહ્યા છે તેનું નામ સાધુ.

अभिजीत अरसशिखर बीच कहावत, भमरगुंज गुफाइ;

गरजत घोरघन चलीत दामिनी, अमित बुंद जळ छाइ. ॥६१॥

पुष्प सहेज जहां परम तखत पर, प्रणव हंसपति सांइयां;
प्राणपुरुष जहां चमर ढोळावत, सोहंग सहित समदइयां. ॥६२॥
इंगळा पिंगळा सुरत उलट स्वर, त्रिवेणी घाट पट देइ;
चंद सूरज सहितम तहां संजम, सुक्ष्मणा संग सन्येइ. ॥६३॥
सबन समाज समेट शून्य घर, रहेत योगी पळ लागी;
ते साधु निज संत योगीजन, वैरागी ने वीतरागी. ॥६४॥

અરસ શિખરની મધ્યમાં ભમરગુફા આવેલી છે. આ ભમરગુફામાં અતિદિવ્ય આકાશ આવેલું છે, તે આકાશમાં વીજળીયુક્ત ઘોર ગર્જના ગર્જતી હોઈ અમૃતસમ બુંદની ઝડીથી આખીયે ગુફા છવાઈ રહેલી છે. આ ગુફારૂપ પરમ તખ્ત ઉપર પુષ્પની શય્યા હોઈ આ શય્યા ઉપર પ્રણવના પતિરૂપ હંસપુરુષ એટલે કે આદ્યપુરુષ બિરાજેલા છે. આ સ્થાને ઓહંગ અને સોહંગ આ બિરાજેલા પુરુષ ઉપર ચમર ઢોળે છે. સુરતાયુક્ત ઈંગળાપિંગળાનો સ્વર, ત્રિવેણીના ઘાટમાં સુષુમણાનો પટ પામતાં ઊલટીને સુષુમણારૂપે થાય છે. આ ત્રિવેણીના ઘાટમાં જ્યાં ચંદ્ર અને સૂર્યનો સંયમ થાય છે ત્યાં સુષુમણાનું ઘર હોઈ આ ઘરના સંસ્કાર પામતા ઈંગળા, પિંગળા અને ચંદ્રસૂર્ય, બધાંય સુષુમણારૂપ થઈ જાય છે. અર્થાત્ આ ઘરમાં દરેક તત્ત્વ ઓગળી જતાં સુષુમણા એકલી રહે છે. આ પ્રમાણે બધા સમાજને સમેટી લઈ શૂન્યમાં આવેલા બ્રહ્મરંધ્રમાં પળમાત્ર ન ચૂકે એવી સુરતા લગાવીને જે રહે છે તેનું નામ સાધુ.

जब उतकी नहि लहत विवरता, सकल समाज समाते;
जाइ मील्ये सब परम जोत्य घर, भोगत सुख अघाते ॥६५॥
सुखमन आद्य समेत चंदरवि, द्वारपाळ ॐकारा;
सुरत सह्यांनी रहत पियु संगे, करत अखंड विहारा. ॥६६॥

-: दोहा :-

कीयेहु लक्ष निज संत सभासन, तज्ञ योग साधनके;

कहे कुवेर समेर चतुरमही, श्रेष्ठ संत पादनके. ॥८५॥

આ અંગમાં જે સંતનાં લક્ષણો વિષે સમરૂપે સમતાવાળું વર્ણન કર્યું છે તે સંત તજજ્ઞ તદ્દવત્ રૂપે હોઈ યોગનાં સાધનોના સંપૂર્ણ જાણકાર છે; તથાપિ મહાન સમર્થ કુવેર સ્વામીજી શ્રીમંત ભગવાન કરુણાસાગર કહે છે કે સાધુ, સંત, યોગી અને વૈરાગી, આ ચારમાં મેરુરૂપ શ્રેષ્ઠ સંત છે.

ઈતિશ્રી વિશ્વબોધ ચોસરા

સંપૂર્ણ

નરવેદસાગર રચિત

-: સ્તુતિ :-

સોહમ સદપદ સરજ અકળ ગતિ પતિ અવિનાશી;
અરૂઢ અચ્યુત અવે અજર, ચરાચર ગતિ પ્રકાશી.
સહીર ભયે શુન્ય સત્ત્વ, મહત્ત્વ મત ઉમંગ ઉઠાયે;
અનંત શકિત જીનું માહાંય, મોજ મનોંરથ ઉપજાયે.
આપ અકેલ નહિ બેલ ખેલ બિનું ખુદ કીનું માલિક;
ઉપજાવ્યો અહંમેવ ભેવ, ભવાટી રચ્યું ખ્યાલિક.
ખ્યાલિકી અતિ ખાંત્ય, ખલક જીનું કીયે સંકલ્પસે;
પ્રૌઢ પ્રસારા પરમ મરમ, મુદત કલપસે.

17:34

139 4(a) Ajapa Ga...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

पत्रतत्र्य रुद्द्वाररमते उर्द्धभुवनं गनोप वंने
मजेतेमेरूपर्द्धतां मेक विंसतिसतिसरष
ऐतिपवनंरमते गगनमेदुलेसप्रमेस्थाने
पञ्चतिष्ठंतिमासते चंद्रभवनंसूर्यजाती
ल्वा कत्रयोभवनंप्राणे न्वतेत्रयरस्पारतवेत्नं स्पा·
ते द्वारत्रयोसप्लोचनेच बीलोतेषटचक्र
कंभवेत भुद्धतोप्रजेयाजापं तेच योगी ७

स्वरं नाभीचक्रीकामध्येसु स्वासारमंति
चसर्वचक्रके उंअस्यश्रीअजपाजाप्यअघो
रमंत्र उंहंसोंहंसोहंजपंतिचसर्वदा उंसो
हंसोहंजपेत जपंतोसर्वजाप्यभवेत पा
र्वतीसोहंअक्षरंमहाअक्षरंजीवंजपंतिच
सर्वदा १· अहंकारसिवरूपेन सकारसेवि
उच्यते अहंकाररवतेशिसं सकारनाभि

Page — (15/47)

Favorite Share Flag

139 4(a) Ajapa Gayatri

17:40

Ajapa Gayatri Sad...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

"अजपा गायत्री" अद्वैत दर्शनसँग सम्बन्धित रहेको छ। "अजपा" जप नगरी विनायोजना अथवा स्वतः जप हुने भन्ने हो। तर "नमो हंसः, सोऽहं" के हो ? कसरी सिद्ध गर्दा अजपा जप हुन जान्छ, त्यसका सम्बन्धमा चिन्तन हुन आवश्यक छ। तत्त्वबोध भएका साधकले श्वास प्रश्वास परिवर्तन गर्दा फोक्सोबाट आएको श्वास प्रवाह बाहिर निस्कँदा

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

"हं" वर्णको उच्चारण हुन्छ र भित्र पस्दा "सः" वर्णको उच्चारण हुन्छ। "हं" शिव रूप र "सः" शक्तिरूपको साधकले बोध गर्दछ।

"हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।" –गरुडपुराण

यस रूपमा तत्त्ववेत्ता साधकले एक अहोरात्र (२४ घण्टामा) २१६०० पल्ट अजपा जप गरेको हुन्छ।

तत्त्वमसी– वेदान्तमा "तत्त्वम्" को व्यापक अर्थ गरिएको छ। यथारूप, सत्यवस्तु, तीनगुण, चौबीससत्र आदि तत्त्व, इन्द्रिय, पञ्चभूत अथवा समग्र ब्रह्म इहा भन्ने बुझिन्छ। साधनामार्गका महत्त्वपूर्ण पाँच तत्त्वहरू गुरुतत्त्व, मन्त्रतत्त्व, देवतत्त्व र ध्यानतत्त्व यी तत्त्वहरू गायत्री जपविधिमा सम्बन्धित रहन्छन्। त्यसमा पनि मन्त्रतत्त्व सिद्धिलाई अजपा गायत्री जपमा लिनुपर्दछ।

तत् त्वं असि – त्यो ब्रह्मरूप तिमी हौ। यसरी परस्वरूप अविद्याले ढाकेको बोध गराएपछि साधकमा स्वः स्वरूप विशुद्ध अपको बोध हुँदा "सोऽहं" भावको बोध हुन्छ। "सोऽहं, सोऽहं" को जपबाट क्रमशः "हंसः" रूप ब्रह्मचिन्तन गर्ने निवृत्तिमार्गको विधि नै अजपा गायत्रीको स्वरूप हो।

"सोऽहं, सोऽहं ज्ञानाल्लभ्यं ज्योतिर्ध्यानं सुनिर्मलम्"

Page — (9/28)

Favorite Share Flag

Ajapa Gayatri Sadhana By

17:50

थिरुमंदिरम...

archive.org Google Lens

इंटरनेट पुरालेख

Original Translated

पिछले तंत्र ग्रंथ में कुंडलिनी योग की तकनीक का वर्णन करने के बाद, जो चंद्र योग में चरम पर पहुँचती है, तिरुमूलर मंत्र और यंत्र के रहस्यों का प्रतिपादन करते हैं। मंत्र और यंत्र के रहस्यों का यह प्रतिपादन शिव योग के अंतर्गत आता है, जो पहले वर्णित कुंडलिनी योग से भिन्न है।

मंत्र किसी देवता का ध्वनि स्वरूप है, और यंत्र उसका आरेखीय निरूपण है। मूल मंत्र अजपा है, यानी वह जिसका उच्चारण नहीं किया जाता। श्वास लेते समय हम सूक्ष्म ध्वनि 'सह' उत्पन्न करते हैं, और श्वास छोड़ते समय सूक्ष्म ध्वनि 'हम' उत्पन्न करते हैं। ये दोनों ध्वनियाँ मिलकर अजपा मंत्र 'सोहम' या 'हंसा' बनाती हैं, जो निरंतर उच्चारण से उलट जाती है। इस बिना उच्चारण वाले मंत्र का मौन उच्चारण करने के लिए किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। सोहम को प्रणव मंत्र 'ॐ' के समान माना जाता है। ॐ में तीन अक्षर होते हैं: 'अ', 'उ' और 'म'। यद्यपि इन तीनों अक्षरों का उच्चारण हमेशा एक साथ 'ॐ' के रूप में किया जाता है, इसलिए इसे एक अक्षर मंत्र भी कहा जाता है।

मूलार (पारंपरिक हंस के स्थान पर) ओम को अजपा के रूप में मानते हैं। संस्कृत में, सामान्यतः ओम को एकअक्षर माना जाता है; परन्तु जैसा कि पाणिनि ने बताया है, इस शब्द में 'अ' और 'उ' का संयोजन, सामान्य नियम का अपवाद है, इसलिए इसका उच्चारण 'औ' होता है, जो एक द्विकवाच है। तमिल भाषा में यही सामान्य नियम है।

अजाप: प्रत्येक व्यक्ति की श्वास लेते समय 'सह' की ध्वनि उत्पन्न होती है और छोड़ते समय 'हम' की ध्वनि। ये दोनों ध्वनियाँ मिलकर 'सोहम' बनाती हैं - 'मैं और वह' या 'हंस:', जिसका अर्थ है 'महान हंस'। दिन-रात में ऐसी 21,600 श्वासें होती हैं (अर्थात प्रति मिनट 15)। प्रत्येक जीव अचेतन रूप से, लेकिन निरंतर इस जप का अभ्यास करता है। इसे अजाप गायत्री कहते हैं। यह अजाप जप मूलाधार, अनाहत और आज्ञा में किया जाता है। सभी जीव प्रतिदिन एक निश्चित संख्या में इस अजाप मंत्र का निरंतर और अचेतन रूप से जाप करते हैं। परन्तु योगी को इसका सचेतन रूप से जाप करना चाहिए और संख्या गिननी चाहिए। अजाप की संख्या दोगुनी करने से (अर्थात प्रति मिनट 30 श्वासें बढ़ाकर) मनोन्मिणी (मन की स्थिरता) की अवस्था प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया में कोई नियमित रेचक और पूरक नहीं हैं।" देखें घेरंडा संहिता, वी 84-96, हठ योग में उद्धृत, थियोस बर्नार्ड द्वारा, पृ. 55, 56 पी.

1. अजपा

'अजपा' शब्द सहज ध्यान की एक विशेष विधि को संदर्भित करता है। श्वास की गति से उत्पन्न 'हम' और 'सह' ध्वनियाँ ही मंत्र का निर्माण करती हैं, इसलिए कुछ भी बुदबुदाने की आवश्यकता नहीं होती... एन.एन. भट्टाचार्य, तांत्रिक धर्म का इतिहास, पृष्ठ 403

English ⇄ Hindi

Send to Translate Home Select all Listen

Are these results useful? Yes No

रहस्यत्वात् सङ्केतभाषयोपासकानुजिघृक्षया विवृणोति-

हंसः सोऽहं मन्त्रमयैः श्वासनिकायै-
यां गायत्री जन्तुषु सर्वेषु पिनद्धा ।
सन्नाविरभूद्वासनया य-
स्तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमीडे ॥ १॥

हंस इति । प्राथमिकसृष्टौ यद्बिन्दुत्रयं प्रादुरभूत् । तत्र बिन्दुः पुमान्; विसर्गः प्रकृतिः; ताभ्यां क्रमेण स्वस्य विशिष्टौ हकारसकारावुत्पन्नौ । सोऽहं हंसः, स त्वजपानामको मन्त्रः । तस्यैव वैपरीत्यकथनेन सोऽहमितिपरमात्ममन्त्रः; परमात्मनि योगे तु, "पराप्रासादमन्त्रः" इत्यादिशारदायां चरमपटलेऽन्यत्र चोक्तम् । तदिदं परस्परभिन्नमन्त्रपञ्चकमुच्छ्वासनिश्वासरूपम् ।

"उच्छ्वासे चैव निःश्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम् ।" इति वचनात् ।
स च मन्त्रः सर्वैः प्राणिभिः अहोरात्रसंमिते काले षड्शताधिकैकविंशतिसहस्र(२१६००)मावर्त्यते । सोऽयमनायासेन जपः तथात्वेन ज्ञानमात्रेण मोक्षप्रदत्वात्सर्वमन्त्रोत्तमः । तदुक्तम्-
"हंसः पदं परेशानि प्रत्यहं जपते नरः ।
मोहान्धो यो न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते॥

श्रीगुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते ततः ।
तस्माच्छ्वासैश्च निःश्वासैस्तदा बन्धक्षयो भवेत्॥

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।
तस्या विज्ञानमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते॥

अनया सदृशी विद्या चानया सदृशो जपः ।
अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥"
इति च तदुपासनेतिकर्तव्यता शारदायां चतुर्दशे पटले, अन्यत्र च विस्तृतेति नेहोच्यते । गुरुदेवतामन्त्राणामैक्यं च, ते सर्वे श्वासाः नाथरूपा एव ।

कहे जीवाराम धाम निज पावे, उतरे परली पार॥4

भजन राग माण्ड

अवसर बीता जाय तमाम, नर तज आलस भज राम॥ टेक
नौ दस मास गर्भ में झूले, मल मूत्र में मुकाम।
माता कष्ट बन्ध्यो तन तेरो, रात दिवस एक धाम॥1
रक्त बिन्दु का पिण्ड बना है, ऊपर जड़ रही चाम।
कदर करे तो अमोलक हीरो, नहीं तो धूल निकाम॥2
लख चौरासी में भटकत भटकत, नरतन मिला विश्राम।
यज्ञ योग पुन्न दान भजन कर, यो मुक्ति को ठाम॥3
भक्ति करो भूल सब छोड़ो, जो चाहिए आराम।
कहे जीवाराम धाम निज पावे, कर सुकृत शुभ काम॥4

कुण्डली

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, चित मन बुद्धि अहंकार।
इनका सुभाव सुधार के कर स्मरण हर बार॥
कर स्मरण हर बार तार त्रिकुटी लागे।
खुले भर्म का पाट जोत दसों दिस जागे॥
पांच विषय अन्तःकरण इन्द्रियां बैठे हार।
जीवाराम निज स्वरूप का तब पावे दीदार॥

भजन इमन ध्वनि

योगी साधे योग ध्यान को, निशदिन ध्यान लगाता है॥टेक
मूल कमल का मज्जन करके, आसन पदम लगाता है।
खट चक्कर का मार्ग सोधे, नाभि कमल पर आता है॥1
हृदय-कमल में शिव शक्ति है, शिव स्मरण धुन ल्याता है।
कंठ कमल कला कुदरत की, उलटा प्राण चढ़ाता है॥2
गंगा जमुना बहे सरस्वति, ता तीरथ में नहाता है।
त्रिकुटी में झिलमिल झलके, जिनका दर्शन पाता है॥3
सुन्न महल में जाय बिराजे, तन की सुध बिसराता है।
जीवाराम ऐसा वो योगी, फेर जन्म नहीं पाता है॥4

कुण्डली

अपान वायु गुदा में, समान नाभी जान।

ईश्वर है गुरुदेव मृग वाहनो 2।
गन्ध सुगन्ध दो अहार रहना छानो॥
चौपाई– गोल आकार आठ अंगुल चाले।
साठ श्वास बीस पल हाले॥
नकशा जान द्वार दो भाई।
तिरछी चाल समझ चितलाई॥
शेर– चलना बलना ध्यावना स्पर्शना अकुंचना।
वायु की प्रकृति पांच यह इनमें कुछ भूल ना॥
समझ यह (यं) बीज सुशब्द रटौ ओंकारा है।
चलता है स्वभव लिखे तत्व सार है॥
मिलान– मिला यह वायु तत्व का अर्थ सुनो तुम ज्ञानी॥2
मरहठी– तेज तत्व का पित्ते में स्थाना 2।
रुद्र इनका गुरु लाल रंग माना॥
या चार अंगुल की नाप ऊपर को जाना 2।
है लोभ मोह दो अहार कहूँ बखाना॥
चौपाई– शब्द स्पर्श रूप है भाई।
ये तीन गुण तेज तत्व के माई॥
नव्वे श्वास तत्व का होई।
तीस पल श्वास में रहाई॥
शेर– आलस्य निद्रा कान्ति क्षुधा तृषा भाई।
यह पांच प्रकृति तेज की लिखी शास्त्र माई॥
(र) बीज त्रिकोन आकार स्वाद चरपरा जोई।
भक-भक इनका शब्द है समझे भेद जन कोई॥
मिलान– इनका जलता बलता स्वभाव करें यह हानी॥3
मरहठी– जल का बासा भाल सफेद बखाना 2।
विष्णु हैं गुरुदेव (बं) बीज कर जाना॥
मैथुन अहार शील स्वभाव पाई 2।
शब्द स्पर्श रूप गुण जल माँई॥
चौपाई– खारा स्वाद चुल चुल बोले।
समझे सन्त शब्द कोई तोले॥
ऐसा अर्ज सुनो चितलाई।

भजन राग रसिया ताल

माने सतगुरु देव दयाकर, सच्चा ज्ञान बताया रे॥टेक
प्रथम विवेक वैराग बताके, अति समझाया रे।
खोली गांठ अज्ञान की, सत राह बताया रे॥1
खट सम्पति कर-कर निर्णय, वो दरशाया रे।
शम दम श्रद्धा समाधान, आदि सुन पाया रे॥2
मुख्य मारण दो मुक्ति के,. यह बतलाया रे।
एक कर्म और ज्ञान, भर्म तम दूर हटाया रे॥3
श्री भजनानन्द सतगुरु मिलिया, सोता ने जगाया रे।
जीवाराम कृपा सतगुरु की, स्वरूप समाया रे॥4

भजन राग रसिया ताल

मने सतगुरु सामरथ पाया, आत्म ज्ञान लखाया रे॥टेक
जनम भरण देही को धर्म, यूं समझाया रे।
आत्म अचल सदा अविनासी, यूं बतलाया रे॥1
भूख प्यास प्राणों का धर्म, यूं स्वरूप नशाया रे।
हर्ष शोक सब मन का संकल्प, चित भरमाया रे॥2
शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्धा, यह दरशाया रे।
पांच तत्त्व से अलग आत्मा, रूप लखाया रे॥3
अनन्त जुगा का सुता जीव को, आन जगाया रे।
जीवाराम भयो नित आनन्द, निज पद पाया रे॥4

भजन राग पूर्वी

म्हारा सत गुरु बड़ा ही, दयाल दया कर स्वामी सैन दई॥टेक
करुणा कर निज दास पे, बहता की पकड़ी बांय।
अपना कर बैठावियो, चरण कमल की छांय॥
सुधि सत घर की दई॥1
मल विक्षेप आवरण हृदा में, तीनो दोष विचार।
कर्म उपासना ज्ञान दुवारे, भाग्या भर्म में अंधार॥
परख तत्व पद की भई॥2
घट घट आत्म सोहं आत्म, नहीं बात यह झूठ।
अखण्ड भान सम भयो उजालो, गई कवड़ियां खूट॥

प्राण वायु उर बसे, उदान नाग कंठ में मान॥
उदान नाग कंठ में मान, कूर्म वायु नेत्रों के माहीं।
कृकल दिल के बीच, देवदत्त छाती के ठाहीं॥
धनञ्जय वायु शरीर को सदा फुलाता है।
जीवाराम लिख व्यान वायु देही को घुमाता है॥

भजन राग इमन वा ध्वनि

पांच मुद्रा योग भल साधे, सोही परम पद पाता है॥ टेक
जिभ्या उलट खेचरी मुद्रा, तालू बीच लगाता है।
गगन मंडल से अमृत झरता, सो योगेश्वर पीता है॥1
नासिका स्थान भूचरी, साँसा में सोहं ध्याता है।
अगोचरी स्थान श्रवना, ररंकार धुन धरता है॥2
चाचरी स्थान में नेत्रां, उलटी दृष्टि जमाता है।
अखण्ड उजाला होये भवन में, तिमिर नजर नहीं आता है॥3
उनमुनी स्थान ब्रह्माण्ड, सुख सुपने सम छाता है।
जीवाराम अमर वो जोगी, अभय अमर घर पाता है॥4

भजन राग भैर स्थाई वा राधेश्याम

परा प्रशन्ति मध्यमा बेखरी, इनका अर्थ सुनो भाई।
चारों बाणी बिरले जाणी, ये सतगुरु से हम पाई॥टेक
बाणी बेखरी नेत्रों में है, स्थूल भोग हैं तत्व सार।
क्रिया शक्ति रजोगुण गुण है, ओ३म् मात्रा है अकार॥
शुभिच्छा तनु मानसा, तीजी भूमि बिचारना बिचार।
विश्वे अभिमानी ब्रह्मा देवता, ऋग वेद का है विस्तार॥
जाग्रत अवस्था बाणी बेखरी, मुक्त सलोक्या इसमें थाई॥1
मध्यमा बाणी कंठ में समीप, मुक्त का है उपकार।
सतोगुण है विष्णु देवता, ओ३म् मात्रा है उकार॥
सत्वापति भूमि तेज से अभिमानी, सूक्ष्म भोग कहे उचार।
स्वप्न अवस्था यजुर्वेद है, इनको लिखे सन्त हुशियार॥
यही अर्थ सन्त सब भाषे, सोही सत्य कहूं गाई॥2
हृदय स्थान प्रशन्ति बाणी, आनन्द भोग सुषुप्ति लार।
द्रव्य शक्ति तमोगुण कहिये, ओ३म् मात्रा है मकार॥

बल्कि संत मत में जो प्रेम और भक्ती का मारग है इसमें अकसर औरतें ज़ियादा जल्दी फ़ायदा उठाती हैं क्योंकि उनमें कुदरती प्रेम और भाव अंग ज़ियादा है। इस वास्ते जैसे कि हर एक काम को स्त्री और पुरुष मिल करके करते हैं और शास्त्र में स्त्री को अर्धांगी कहा है इसी तरह संत मत में भी स्त्री और पुरुष का बराबर अधिकार है। और आज कल हुज़ूर राधास्वामी दयाल की ऐसी भारी दया जीवों पर है कि वह स्त्री और पुरुष दोनों को बराबर उपदेश देते हैं। पुरुष को सतसंगी और स्त्री को सतसंगिन कहते हैं। और बाज़ी इज़्ज़तदार नेक और पाक स्त्रियाँ इस वक्त़ में बहुत ऊँचे दरजे पर पहुँची हुई हैं॥

प्रश्न ४६—सुरत शब्द जोग का अभ्यास किस तरह किया जाता है॥

उत्तर—जो शब्द ऊँचे देश से नीचे देश को घट में आ रहा है और जिसकी आवाज़ हर एक मनुष्य के अन्तर में हर वक्त़ जारी है उसमें सुरत यानी रूह को साथ तवज्जह के जोड़ कर ऊपर को चढ़ाते हुए पिंड और ब्रह्मांड के पार दयाल देश में पहुँचाना सुरत शब्द जोग का अभ्यास करना है॥

प्रश्न ४७—जब शब्द की धार नीचे आ रही है तो उसके सहारे सुरत की धार ऊपर को किस तरह चढ़ेगी॥

और सचौटी के साथ जितनी दफ़ा और जितनी देर बन सके ज़रूर करना। सतगुरु वक्त की सेवा उनकी मरज़ी के मुवाफ़िक़ सच्चे मन से सच्चा भाव लेकर करना। माँस, मदिरा और दूसरी नशे की चीज़ों को काम में हरगिज़ न लाना। जहाँ तक हो सके सतसंग में हुज़ूर राधास्वामी दयाल के हाज़िर होना और जो ऐसा सतसंग न मिल सके तो अकेले बानी का थोड़ा पाठ बिचार २ कर और उसको अपने ही ऊपर घटा कर ऐसा ख़याल करके कि सतगुरु हमसे ही कह रहे हैं करना। कुसंग यानी संसारियों के संग से हमेशा बचते रहना। समय यानी फ़ुरसत के वक्त को व्यर्थ न खोना, जितना और जहाँ तक जल्दी हो सके बाहरमुखी बातों से हट कर अन्तरमुख बृत्ती करना और फ़ज़ूल और नामुनासिब चाहें संसार के धन, मान और भोगों की प्राप्ती के वास्ते न उठाना॥

प्रश्न ५३—अंतरमुखी और बाहरमुखी बृत्ती किस को कहते हैं॥

उत्तर—सुरत जो इन्द्री द्वारे बाहर के संसारी पदार्थों में लिपायमान हो रही है उसको बाहरमुखी बृत्ती कहते हैं, उसको अंतर में उलटाना और संसारी पदार्थों से हटाना और मालिक के चरनों में सच्चे हो कर प्रेम प्रीत और भाव करना और उसके नाम और धाम और स्वरूप की हर वक्त याद करना इसको अंतरमुखी बृत्ती कहते हैं॥

है यह मत न फ़ायदा करेगा और न उनकी समझ में आवेगा—संतों ने इस मत को सुरत शब्द जोग कहा है॥

प्रश्न २—सुरत किस को कहते है॥

उत्तर—जैसे संतमत अथवा राधास्वामी पंथ सब मतों की जान है ऐसेही सुरत सब पिंडों और पदार्थों की जान है—इसी को रूह या जीवात्मा कहते हैं—इसी के बल से सब पिंड, मन, इन्द्रियाँ वग़ैरह अपना अपना काम कर रहे हैं—इसी में सारे संसार की विद्या और कारीगरी भरी हुई हैं—जो जिस तरफ़ सच्चे मन से और मिहनत करके तवज्जुह करता है वह उसी तरफ़ से अनगिनत अद्भुत शक्तियाँ हासिल करके अपनी मनोकामना पूरन करता है—पिंड के अन्दर सुरत का असली स्थान और ठहराव आंखों के पीछे है और उसका भंडार आदि शब्द में है॥

प्रश्न ३—आदि शब्द किस को कहते हैं॥

उत्तर—आदि शब्द सब का करता और मालिक है—इसी को आदि नाद और आवाज़ ग़ैब कहते हैं—वेद के स्थान से जो शब्द प्रगट हुआ है उसको अनहद और शब्द ब्रह्म कहा है—फ़ारसी में हुक्म मालिक का और क़ुदरत कुल कहा है—ईसाई मत में लिखा है—कि आदि में कलाम अथवा शब्द था—शब्द मालिक के साथ था—और शब्द ही मालिक था—शब्दकी महिमा सब मतों में है—पर उसका भेद किसी मत के ग्रन्थों में नहीं है—संतों ने शब्दों की तफ़सील, उनका भेद

३—तीसरा सोहं पुरुष का शब्द ॥

४—पारब्रह्म का शब्द जिसकी सहायता से तीन लोक की रचना ठहरी हुई है ॥

५—ब्रह्म शब्द जो कि प्रणव है और जिससे सूक्ष्म यानी ब्रह्मौंडी वेद और ईश्वरी माया प्रगट हुई ॥

६—माया और ब्रह्म का शब्द जिससे तिरलोकी की रचना का मसाला तैयार हुआ ॥

माया शब्द के नीचे बैराट पुरुष का शब्द और जीव और मन का शब्द प्रगट हुआ ॥

आज कल अव्वल तो अभ्यास ही नहीं है और जो कहीं कहीं है तो नीचे के शब्दों का—अकसर अभ्यासी बैराट शब्द को ही करता शब्द मानते हैं ॥

प्रश्न ४—ऊपर लिखे हुये घट के अंदर के शब्द और बैखरी यानी ज़बानी शब्द मैं कुछ फ़र्क है या नहीं ॥

उत्तर—हां फ़र्क है-पहिला सूक्ष्म दूसरा स्थूल शब्द है-पहले को धुन्यात्मक और दूसरे को वर्णात्मक कहते हैं—पहली आवाज़ ब्रह्माण्डी यानी आंखों के ऊपर के स्थानौं से प्रगट होती है--दूसरी आवाज़ नाभी के स्थान से उठती है—उस जगह उसका नाम परा बानी है फिर हिरदे और कंठ मैं होकर जहां उसको पश्यंती और मध्यमा कहते हैं जिह्वा पर आती है और बैंखरी कहलाती है और उसके सबब

७—सहसदलकँवल, सेत श्याम, आठ दल का, जोत निरँजन का बासा—यहाँ से दो आवाज़ आसमानी निकलती हैं—यानी शब्द प्रगट होता है—उसको पकड़ कर सुरत ऊपर को चढ़ती है ॥

८—त्रिकुटी—चार दल का कँवल—ओम् का बासा—यह त्रिकुटी संतों की है—जोगेश्वरों की नहीं है—इस को हंस मुखी कहते हैं—इन दोनों कँवलों यानी सहसदल और त्रिकुटी को मुसलमान जबरूत और लाहूत कहते हैं ॥

९—सुन्न या दसवाँ द्वार—एक दल का कँवल—पारब्रह्म का बासा—मुसलमान फ़क़ीर इसको हाहूत कहते हैं—यहाँ उलवी स्थान ख़तम हुए ॥

१०—महासुन्न मैदान—यहाँ चार शब्द और पाँच स्थान गुप्त हैं ॥

११—भँवर गुफा—मुसलमान इसको हूतलहूत कहते हैं—सोहं पुरुष का बासा यह सोहं स्वाँसा का सोहं नहीं है—यह दो स्थान यानी महा सुन्न और भँवर गुफा दयाल देश की हद्द में हैं ॥

१२—सत्तलोक—मुसलमान इसको हूत कहते हैं सत्त पुरुष का बासा—इसके ऊपर तीन पद और हैं—पिछले संतों ने उनको प्रगट करके बयान नहीं किया—अब मौज से इस ज़माने में राधास्वामी दयाल ने उनको साफ़ साफ़ प्रगट करके बयान किया है ॥

निरन्तर गूँज रही है :

पूरे गुर की साची बाणी। सुखमन अंतरि सहजि समाणी।
(म.३, ६६३)

शब्द गुरु है : 'सबदु गुरू सुरति धुनि चेला।' (म.१, ९४३), शब्द अमृत है : 'अंमृतु सबदु पीवै जनु कोइ' (म.५, ३९४) और यही वाणी है : 'बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंमृतु सारे' (म.४, ९८२)। सो गुरु का असली रूप वाणी या शब्द होता है। शब्द और वाणी दाता की एक ही दया के लिये प्रयुक्त दो नाम हैं। इस तरह ज़रा भी शंका नहीं रह जाती कि गुरु साहिबान की भाषा में वाणी और शब्द समानार्थक हैं :

सचु बाणी सचु सबदु है जा सचि धरे पिआरु। (म.३, ३३)
सचु बाणी सचु धुनि सचु सबदु वीचारा। (म.३, ५६४)
सचु बाणी सचु सबदु है भाई गुर किरपा ते होइ। (म.३, ६३८)
इका बाणी इकु गुरु इको सबदु वीचारि। (म.३, ६४६)

हरि-कीर्तन :

संसार के जीवों के लिये इस जग में सब करनियों में से श्रेष्ठ करनी का प्रश्न उठने पर गुरु रामदास जी ने बताया है कि वह करनी नाम है, नाम भी कौन-सा ? संगीतमय नाम, अनहद शब्द के रूप में नाम। और हमें इसी नाम के कीर्तन की सहायता से हरि को अपने हृदय में धारण करने का यत्न करना चाहिए : 'जगि सुकृतु कीरति नामु है मेरी जिंदुड़ीए हरि कीरति हरि मनि धारे राम' (म.४, ५३९)

अगर कोई कहे कि यह तो हुआ आम समय में की जानेवाली भक्ति का रूप, आज का युग अपनी विशेष परिस्थितियाँ साथ लेकर आया है, उनके सामने जिज्ञासु को अभ्यास की क्या कोई और युक्ति अपनानी नहीं पड़ेगी ? इस प्रश्न का भी गुरु साहिब की ओर से यही उत्तर मिलेगा : 'हरि कीरति उतमु नामु है विचि कलिजुग करणी सारु' (म.४, १३१४)।

साधारण लोगों की बोली में कीर्तन का अर्थ तीन या चार व्यक्तियों के धार्मिक भावनापूर्ण किसी छन्द-बद्ध पद के गाने से लिया जाता है, और वे केवल गाये ही नहीं जाते बल्कि उनके साथ हारमोनियम, सितार, सारंगी, तबले जैसे साज़ भी बजाये जाते हैं। यह बिलकुल सही है कि संगीत की सहायता मिलने से बात अधिक रस देती और प्रभाव डालती है। संगीत का आकर्षण सभी मानते

सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतिआइ। (म.१,६०)

हालाँकि यह छलांग हरएक नहीं लगा सकता, लेकिन जो भी शब्द को भेदने में सफल हो जाता है, उसे सचखण्ड का स्वामी अवश्य अपने महल में बुला लेता है :

सबदि भेदि कोई महलु पाए महले महलि बुलावणिआ। (म.३,११७)

शब्द (प्रभु) की पहचान :

प्रभु अभ्यासी के सामने आकर खड़ा हो जाये, वह तो भी नहीं जान सकेगा कि यह प्रभु है, क्योंकि जैसा हमें बताया गया है, उसका न कोई चिन्ह है, न रंग-रूप है, न वर्ण या जाति : 'चकर चिहन अर वरण जात अर पात नहिन जिह। रूप रंग अर रेख भेख कोउ कहन सकत किह' (पातशाही १०)। सो उसकी पहचान तब ही हो सकती है जब कोई पास खड़ा होकर बताये कि यह 'वह' है और बतानेवाले ने खुद उसे देखा हो। गुरु खुद शब्द का रूप होता है, प्रभु में समाया होता है, इसलिये ऐसी पहचान उसी से मिल सकती है :

गुरमुखि सबदु पछाणीऐ हरि अंम्रित नामि समाइ। (म.३,२९)

शब्द का अर्थ है परमेश्वर। उपरोक्त पहचान हो जाने पर जीवात्मा और परमात्मा का भेद समाप्त हो जाता है। आत्मा नामी से, उस प्रभु से, समरूप हो जाती है :

हरि अंम्रित नामि समाइ। (म.३,२९)

शब्द अमृत :

हरि-रस, नाम-रस, शब्द-अमृत की महिमा में बहुत कुछ कहा गया है, सुना-सुनाया नहीं, उन महापुरुषों द्वारा जिन्होंने इसका स्वाद लिया है, इसे जी भर कर पीया है।

सांसारिक लोगों द्वारा बड़ी से बड़ी इच्छित वस्तु राज अथवा सत्ता है, क्योंकि राज से बहुत कुछ अपने आप मिल जाता है; जैसे, अपार धन, बहुमूल्य वाहन, आलीशान निवास-स्थान, नौकर-चाकर आदि सुख-सुविधाएँ, मान, ऐश्वर्य। इसके विपरीत, रूहानी पथ के पथिक विशेषकर मुक्ति माँगते हैं, क्योंकि मुक्ति जन्म-मरण और जन्म-मरण से सम्बन्धित अनेक दुःखों, झंझटों से सदा के लिये छुटकारा दिला देती है। पर जिन हरि के जनों को उसके चरण-कमलों का प्यार मिल जाता है, वे राज और मुक्ति दोनों को ठुकरा देते है, क्योंकि कोई किसी

और कबीर साहिब ने कहा है :

राम पदारथु पाइ कै कबीरा गाठि न खोल्ह। (कबीर, १३६५)

भाई गुरदास निश्चित ही अपूर्व कमाई वाले उच्च कोटि के सिख थे, गुरु साहिबान के अनुज भी ; फिर भी वे नम्रता के पुंज थे तथा आदर्श श्रेणी के आज्ञा-पालक। इसलिये वे कोई गुस्ताखी या अवज्ञा करने की भूल नहीं कर सकते थे। इसीलिये उनकी रचना में जब भी उच्च मण्डलों के अनुभव का वर्णन आया है, इशारों के रूप में आया है, खोलकर नहीं। आप अपने अट्ठाइसवें कबित में लिखते हैं :

शबद सुरति लिव गुरसिख संधि मिले
ससि घरि सूर पूर निज घरि आइ है।
उलटि पवन मन मीन त्रिबैनी प्रसंग
त्रिकुटी उलंघि सुख सागर समाए है।

इस वचन की व्याख्या करते हुए ज्ञानी नरैणसिंह ने कहा है :

इस कवित्त में गुरु-शिष्य सम्प्रदाय की सुमिरन की युक्ति—जिसे कि आजकल के गुरु-सिक्ख छोड़ते जा रहे हैं, या यों कहें कि सहज योग का तरीका या अजपा जाप के अभ्यास का वर्णन किया है :

"अभ्यासी पुरुष अमृत वेले (प्रातःकाल) स्नान आदि क्रिया से निवृत्त होकर, कोई नरम आसन बिछाकर पालथी मारकर बैठ जाये। जिस आसन (बैठक) में तकलीफ न हो, उस बैठक में बैठकर मन को एकाग्र करो, जब मन ठहर गया तो एक प्रकार का शब्द सुनाई देगा, वह शब्द कोई स्पष्ट नहीं होता, केवल साँ-साँ या घूँ-घूँ की ही आवाज़ मालूम होती है, उस शब्द को सुनने के लिये सुरत जोड़ दो, पर यह याद रखना कि जब आसन पर बैठो तो पीठ मुड़नी नहीं चाहिये, दोनों जांघों पर अपनी दोनों हथेलियाँ सीधी टिकानी चाहियें, ठोडी को छाती से चार अंगुल की दूरी पर अडोल रखना चाहिये ; जब शब्द सुनाई देने लगे तो सुरत को शब्द के सुनने में जोड़ देना चाहिये और आँखों की नज़र को भ्रकुटियों के बीच के स्थान में स्थिर रखना चाहिये, इस कर्म का नाम 'सबद सुरति संधि मिले' कहा है।"

आध्यात्मिक मार्ग वालों के लिये तिल विशेष अर्थ रखता है, क्योंकि जब वे सफलता की दिशा में चलते हैं तो अपना पहला कदम इस ठिकाने पर वृत्ति एकाग्र करने के रूप में उठाते हैं। जब सतगुरु की शिक्षा के अनुसार किये नाम के

एहु सोहिला सबदु सुहावा।
सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरू सुणाइआ। (म.३, ९१९)

सतगुरु शब्द को प्रकट ही नहीं करता, सत्संगी के हृदय में वह पक्की तरह खुद ठहराता भी है : 'गुर का सबदु गुर थै टिकै होर थै परगटु न होइ' (म.३, १२४९)।

शब्द गुरु की रहमत या दया के बिना सार्थक होना तो दूर रहा, जीव के द्वारा अनुभव भी नहीं किया जा सकता इसलिये हर समय उसके अन्दर बजते रहने के बावजूद शब्द का वर्णन अक्सर गुरु के शब्द के तौर पर किया जाता है।

अकथ कथा, नाद, वाणी, कीर्तन आदि शब्द के ही अन्य नाम हैं।

जैसे-जैसे इसके अभ्यास में प्रगति होती है, शब्द का रंग पक्का होता चला जाता है। यह रंग कुसुंभे का कच्चा रंग नहीं होता, एक बार चढ़ता है तो मजीठ की तरह सदा के लिये चढ़ता है और अन्त तक साथ निभाता है। अर्थात् , केवल शरीर त्यागने तक ही आत्मा के अंग-संग नहीं रहता, बल्कि उसके अपनी यात्रा सम्पूर्ण करके परमात्मा में मिल जाने तक, उसके खुद परमात्मा बन जाने तक, उसकी बाँह थामे रखता है : 'गुर की दाति सबद सुखु अंतरि सदा निबहै तेरै नालि' (म.३, १२५९)

संक्षेप में :

संक्षेप में 'शब्द' (धुनात्मक नाम) से तात्पर्य अनहत या अनहद शब्द है, वह शब्द जो प्रभु का पैदा किया हुआ है और जो बिना किसी साज़, यन्त्र आदि की सहायता के, दिन-रात निरन्तर हो रहा है।

इस शब्द में—जोकि सत्पुरुष का अपना ही विस्तार है—ध्वनि के अलावा प्रकाश का भी गुण है और ये दोनों (आवाज़ और प्रकाश), आँखों के पीछे, भौंहों के बीच में, उस स्थान पर अनुभव किये जाते हैं जिसे घर-दर, मुक्ति का द्वार, तिल, शिव-नेत्र आदि नाम दिये गये हैं।

शब्द की ध्वनि को सुनना या उसकी ज्योति देखना केवल निजी उद्यम से सम्भव नहीं होता। इसके लिये किसी पूर्ण गुरु से दीक्षा (नामदान) ली जाती है, और बताई गई युक्ति के अनुसार इसका अभ्यास किया जाता है। नाम के सुमिरन में प्रगति होने पर शब्द प्रकट होता है और स्थिर हुआ शब्द, सुरत या आत्मा को उच्च आध्यात्मिक मण्डलों की ओर खींचने लगता है। फिर एक समय आता है जब आत्मा मन और माया के बँधन से मुक्त हो जाती है, अपने आपको

जाते हैं और किसी तकिया-कलाम गाली की भाँति, बहुत सोच-विचार के बिना, काफी हद तक अपने आप ही होते रहते हैं। इसलिये मन को कभी काल का एजेंट कहा जाता है, कभी मदमस्त हाथी कभी बेलगाम ऊँठ, और तो और कभी प्रेत भी।

मन पाँच तत्वों से बना होने के कारण जड़ है, और हर जड़ वस्तु की अपनी अलग-अलग कमज़ोरियाँ होती हैं। दूसरी ओर, यह चाहे जड़ हो, इसका सृजन तो चेतन ने किया है, इसलिये यह हर कण-कण में बुरा भी नहीं हो सकता। जब यह 'धर्मा' होकर कार्य करता है तो उस चेतन के कारण ही।

जब मन प्रेमपूर्वक अभ्यास में जुड़ जाये, ऐसी एकाग्रता, लगन और गम्भीरता से कि आत्मा उस हरि-प्रभु में जा मिले जिसके लिये वह जल से बिछुड़ी मछली की भाँति तड़प रही थी, तो वही सदा का शत्रु मन, जीव का प्रिय मित्र कहलाने का पात्र बन जाता है :

मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरि प्रेम भगति मनु लीना।
मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरि जल मिलि जीवे मीना। (म.५,८०)

चौथी पातशाही गुरु रामदास जी ने गउड़ी राग के एक श्लोक में (म.४, २३४) इसे मेरे प्रीतमा, मीत मेरा, मेरे प्राण, प्यारा, साजना जैसे लाड-भरे शब्दों से सम्बोधित किया है।

जब गुरु अमरदास जी कहते हैं : 'मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु' (म.३,४४१) तो वे अपने स्वयं को, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को सम्बोधित करते हैं, उस मानवी इकाई को जिसमें मन के साथ बुद्धि और आत्मा भी शामिल हैं। यह सम्बोधन उसी तरह का है, जैसे हम कई बार खुद को कहते हैं, "उठ ओ मना, पराये धना।" सन्त-सतगुरुओं ने अपने वचनों को साधारण लोगों को आसानी से समझाने के लिये 'मन' शब्द को कई स्थानों पर उपरोक्त 'स्वयं' के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

जब मन पूरी तरह शब्द-धुन से बँध जाता है, बिंध जाता है, तो प्रभु अपने आप सम्मुख होकर मिल जाता है :

गुरसबदी मनु बेधिआ प्रभु मिलिआ आपि हदूरि। (म.३,३७)

मन के बिंध जाने से भाव है कि शब्द मन के कण-कण में समा गया है, उसकी कोई तह या गहराई शब्द से रहित नहीं रही, उसकी ज्ञात, अर्द्ध-ज्ञात, अज्ञात सभी अवस्थाएँ शब्द से परिपूर्ण हो गई हैं। जब कान बींधे जाते हैं, सूई

(२)

लागि रह्या निज[६] नेह, दशमें द्वारि दा।
द्वारी दा द्वारी दा, औघट वारी[७] दा। [illegible]।।
घट[८] में औघट[९] यूँ बसै बे, जैसे तिल में तेल।
नैड़ा जबही जानिया बे, शब्दां लागां सेल।।१।।
शशि में सूर समाइया बे, भागा है अंधकार।
दीपक हुवा निर्मला बे, विन बाती अंगार।।२।।
रतन प्रज्ञान प्रकासिया बे, मिटिया सांसा मोह।

---

१ सुषुमणाद्वार। २ स्वयंनाद-आपसे। ३ वीणा, वचन। ४ सज्जन। ५ पलक, समयांग। ६ अपना। ७ वलिहारीजाना। ८ शरीर। ९ परमात्मा।

(२६)

।।राग गूजरी।।

मेरो प्रीतम यार[४] बसै तनमें।।टेर।।

दर्शन दीया गगन मग कीया, मगन भयो मन ही मन में।
जा कारण मैं बन बन ढूढ़्या,सोइ लह्या दिल ही दिल में।।
निशिवासर नैंणा में निरख्या, ध्याय रह्या धुनि ही धुन में।
ब्रह्मा पियाला है मतवाला, पी रु छक्या छिन ही छिन में।।
दर्पण में दीसै यों दर्शन, त्यों ही है घट ही घट में।
इला पिंगला सुषुमणि संगे, तिरवेणी के तट ही तट में।।
साँचा सांई (मेरा) सहज सरूपी, सूझि रहया सुन ही सुन में।
जैमलदास भया तब राजी,(पाया) रामरतन तन ही तन में।।४।।

(३४)

मेरे हिरदे में राम वस्योरी, पांच पचीसूँ तीस नस्योरी।।टेर।।
सुषमण नालि अमी रस भरना, चंद सूर ले भेला करना।।
धरणी बंध ऐसी विध लावै, सहजाँ पवन अगम कूँ आवें।।
अनहद चक्र अजपा बोलै, तासु विचार और नहिं डोलै।।
जैमलदास करो निज सेवा, निर्मल जोति विराजे देवा।।४।।

08:38
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

जीवन जीवे जाये काल का भरम। स्वास सुरत जो राखे इक धरम॥
अंतरगत बाहर रंग एके। भेद पछाने पाये शबद अलेखे॥

स्वासगति की गत लखे, ध्याये नाम तत्त सार।
'मंगत' परगट पाइये, तब साखी शबद आपार॥ 672

उट्ठत बैठत राखे इक चित्त। स्वास सुरत प्रभ नाम जपत्त॥
ज्ञान विज्ञान के खुले भंडार। निर्मल जुगत मन स्वास में धार॥
देह ज्ञाता स्वास गत जान। निर्मल जुगत ये मुकत निधान॥
स्वास को खोजे सहज के भाये। अंतर बाहर सतनाम कमाये॥
ज्यों ज्यों सुरती स्वास में धारे। कोट पाप मन का भयो छारे॥
निर्मल विचार घट में प्रगटाई। अबगत ज्ञान जो स्वास लखाई॥
स्वास की धार मुकत का बँध। मुकत पहचाने जो परसे संध॥
अजर पुरष अबनाशी देवा। स्वासगती में नित रमेवा॥
मिल सतगुर जिस जुगत पहचानी। आलख शबद की कथे कहानी॥
स्वास सुरत जब एका होई। शबद ब्रह्म तब घट प्रगटोई॥
शबद पहचान कलह सब जाये। आनन्द सरूप की रसना खाये॥
पल पल हरजन जुगत समाई। स्वास सुरत सतनाम कमाई॥
अखण्ड ध्यान स्वास में धारे। गवन विनास पाये ज्ञान अपारे॥
प्रेम प्रीत का रंग रँगाई। आलख शबद परमेश्वर पाई॥
दिवस रैन मन स्वास परबीना। गुरमुख विरले ये खेल परखीना॥
नित सतनाम का टाँक लगाई। स्वास सुरत का जोड़ जुड़ाई॥
निर्मल जुगती ये बूझे कोए। काल त्याग अमर धाम बसोए॥
पूरन पुरख तब घट परगासे। स्वास स्वास जब नाम उपासे॥
गुनी पुरष कोट मद्धे कोई। गुपत ज्ञान का भेद लखोई॥
मन अपने में मगन समाई। सिमर सिमर सतनाम प्रभताई॥
चेतन बुद्ध भई नाम रस खाये। अन्तर बाहर सम रूप समाये॥
करम विकार से मुक्ता होई। पल पल साचा नाम परोई॥
नाम आधार जीवन को पाई। तब ये मनुवाँ शान्त समाई॥
भरमन त्याग निज रूप पछानी। दुर्मत नासे सब गवन निशानी॥

भवसागर जल दुस्तर आपारा। बिन प्रयत्न ना पाए छुटकारा॥
अधिक प्रेम केवल हर नाओं। सिमर सिमर के पावे ठाओं॥
तन मन मिथ्या कर जब जानी। भयो बैराग भई दुःख हानी॥
काम क्रोध अगन सब जाए। साचे नाम की प्रीती पाए॥
उट्ठत बैठत सतनाम को आहारी। स्वास सुरत का भयो वापारी॥
मनुवाँ इकागर बुद्ध इस्थिरे। करम भरम के मिटे बखेड़े॥
नित चाहो इक दर्शन देवा। गुर परसाद पाये ये सेवा॥
आसा तृष्ना भरम जलाई। केवल माने रब रज़ाई॥
तब उरध कँवल परगासा होई। **'मंगत'** शोभा परसे जन कोई॥715
सत वस्तू का भया वापारी। सत सरूप निरंतर धारी॥
बाँधी पवन केवल हरनाम। अन्तर बाहर निश्चल बिसराम॥
प्रान अपान की जुगती भोग। गुर परताप मिटे सब रोग॥
जड़ काया से भये अतीत। उपजी चेतन तत्त परतीत॥
अनहद गरज पवन के सन्ध। नाभ कँवल का खोले बन्ध॥
उलटा नाद चढ़े आकास। छेदे चक्कर भये उदास॥
धुर कपाली उपजे तान। **'मंगत'** साधू सो कुरबान॥716
नौ दरवाज़े सहज बँधाये। पूरन गुर की सेव कमाये॥
धीरे धीरे मन निर्मल होई। दसवें घाट में सुरत परोई॥
आलख पुरख का देखे चमकार। दमके दामन दसवें द्वार॥
सो जोगी गुनातीत। दसवें घाट लागी प्रीत॥
जाप अजपा होए दिन रात। अखण्ड नाद मन माहीं समात॥
पूरन मिल मन पूरा होई। आवागवन की दुबधा खोई॥
कर सतसंग सतगुर की सेव। अबनाशी पुरख पाए निज देव॥
सहज धुन आतम परगास। पाए गुरमुख शबद निवास॥
अंतर का पट खोलया, लीना साचा नाम।
अगन मिटी संसार की, जीव पाए बिसराम॥
नित ही हर को सिमरयो, नित ही कर साधू सेव।
'मंगत' बंधन से छूटे, सहज मिले गुरुदेव॥717
नाम सिमर जग जीवन सार। साध-जनाँ ने करी पुकार॥

नाम सिमरन शान्त परगासे। नाम का सिमरन भव बन्धन नासे॥
उट्ठत बैठत जप अंतरयामी। विगन निवारे पावें सुखथामी॥
बिन सिमरे मन अधिक डोलाए। मिथ्या भोग में नित तिरखाए॥
शास्तर वेद करें पुकार। सत सरूप सिमर निरंकार॥
तन मन धन का सो ही स्वामी। सरब आधार सो पारगरामी॥
जो सिमरे सो ही सुख भाखे। अखण्ड अबनाशी तत्त को लाखे॥
मानुष देही सुकृत जान। जो चित आवे रूप भगवान॥
करम का संशय अधिक विकार। दुस्तर माया नहीं पारावार॥
साचा नाम जिस हिरदे ध्याया। अकरम रूप परमातम पाया॥
डोलन से मन निश्चल होई। अन्तर शबद की सूझ लखोई॥
प्रभ का सिमरन बड़ा परताप। आनन्द को देवे हरे सन्ताप॥
जिस जन अन्तर सार पछानी। अगोचर पुरष पाया निर्वानी॥
सुरत नाद में भई लवलीन। सरब ब्रह्मण्ड में एको चीन॥
जीवन मुक्त महा सुख भाखे। मिल सतगुर हरनाम जो चाखे॥
नाम की महमा अपरम आपार। जो जो सिमरे पावे छुटकार॥
अमरत नाद नाम निर्वान। गुरमुख बूझे पाए कल्यान॥
हर का नाम विचारयो मीता। साध-जनाँ की निर्मल रीता॥
विखे वासना सब जीव जलाए। हर की सेव से सरब दुःख जाये॥
चार पदारथ जे को लोड़े। साचे नाओं में मनुआँ जोड़े॥
मिटे तृष्ना चिंता सारी। आलख पुरख के भये पुजारी॥
गुर उपदेश जुगत कर साधे। मोह माया से मनुआँ काढे॥
आतम तत्त में बुद्धी परवेशे। मिट गये भरम घाल गुर उपदेशे॥
अन्तर आई बाहर जाई। पवन पुरख खेड रचाई॥
बारह आये सोलह जाये। स्वास सुरत इकत्तर मिलाये॥
नौ दर बाँधे दसवाँ घाले। पारब्रह्म निरन्तर भाले॥
बाँधे पवन सोध कुंड बठाई। पच्छम देश की सोझी पाई॥
पच्छम से फिर चढ़े सुमेर। पूरब दिशा के लागे फेर॥
गरजे अनहद उरध कपाली। सुरत समाए विच तिरनाली॥

दीनदयाल तब नज़री आया। गुर परसाद हरी सब माया॥
इरध उरध में पवना थामे। परसे पारब्रह्म अखण्ड अनामे॥
सुर नासिका जाने भेद। निराकार मिले गुरदेव॥
उलट पलट पवन को देवे। गुर के शबद में नितप्रति जीवे॥
मोह माया अँधेरा जाये। पारब्रह्म संग जाये समाये॥
निर्मल धारा एह योग की बानी। **'मंगत'** कोउ बूझे ब्रह्मज्ञानी॥718
स्वास सुरत सतनाम विचारे। जनम जनम मल सकल निवारे॥
उरध कँवल परगासत होई। नाभ कँवल जब सुरत समोई॥
प्रान अपान जुगत से मेले। गुर परसाद आतम तत्त खेले॥
उलटी धरती आकास समाई। शबद गुरु चित रह्या समाई॥
मीठी धुन विच गगन में बोले। निहचल मनुँवा अमरत तोले॥
नित नित शबद में सुरती धाये। गुर परसाद अमरपद पाये॥
उट्ठत बैठत सतनाम विचारे। अनन भगत चित माई संचारे॥
प्रभ की आज्ञा नित नित सोधे। चेतन पुरख निरंतर बोधे॥
शरधावान गुरु भगत विवेकी। अन्तर की गत सो जन लेखी॥
मन जाए विच आनंद समाया। द्वैत मिटे इक सार लखाया॥
कही ना जाये मुख से ज्ञाना। ब्रह्म आनंद अखण्ड निर्वाना॥
सहज सुभाओ गुरु आन मिलाया। अगम निगम का भेद लखाया॥

काचे तन का मान त्यागी। बिरह विवेकी सच्चा बैरागी।
नित नित मन शबद में थामे। अनहद गरजे अखण्ड अनामे।
पूरन सेवा पूरन किरया। सुरत गम्भीर शबद रस भरया।
आस तृष्ना अगन निवारी। नाम सिमरन दी शोभा भारी।
जिस मन साचो नाओं ध्याया। पूरन करम अमरपद पाया।
जप तप योग का सुनो सार। स्वास सुरत सत शबद विचार।
और बंधन से मनुवाँ ठाके। गुर का शबद ले अंतर राखे।
छिन छिन शबद कमावे ज्ञानी। अद्‌भुत कौतक लखे सो ध्यानी।
नेचल मनुवाँ विरत त्यागी। अखण्ड शबद घट बेला जागी।
सो ही रूप सत आप निरंजन। सिमर सिमर नित सो भवभंजन।
डोलन से मन एका होई। अमरत नाम ले हिये परोई।
एह परशाद संतन से चाखा। अद्वैत पुरख घट भीतर लाखा।
साधन सेवा पूरी होई। गुर का शबद जब हिये परोई।
धरम करम में सो नर पूरा। जिस घट खोजयो आप हज़ूरा।
संशे शोक भरम दु:ख जाये। निर्मल बुद्धी सतनाम कमाये।
ज्ञान ध्यान मन मगन सरीरा। हर का नाम सब मेटे पीड़ा।
शान्त शान्त मन अमरत पीवे। पारब्रह्म रस पी पी जीवे।
दुर्मत मिटे एक घर जाई। अखण्ड नाद मन रिह्यो समाई।

एही योग और तप है, एही साधना ज्ञान।
'मंगत' साचे नाम को, नितप्रति हिये विखान॥748

तीसरा अंग : समता स्थिति योग
समाप्त हुआ

सत् आज्ञा निरंकार
ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

ओ३म् ब्रह्म सत्यम् निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा
सर्व व्यापक कल्याण मूरत परमेश्वराय नमस्तं

चौथा अंग

चिरंजीव गोष्ट

पहला विवेक - अध्यात्म बोध

सतसरूप अगम आपारा। जिससे उपजा ये संसारा॥
मिल सतगुर ये सार लखाई। निज घर बासा सहजे पाई॥

गुरु आचारज आद वड ज्ञानी। केवल शबद मिल शोभा पानी॥
सुन्न कपाली तिस शबद का थाना। रग रग भीतर परकाश बखाना॥
उलट सुरती घट सोधन कीजे। अगम शबद की सिमरत लीजे॥

अच्छर अद्वैत आगम आनादी। शून्यंगकार अखण्ड समाधी॥
घट में रहे पर नित निरदोखा। बिस्माद पुरष जुगाद अनोखा॥
जिस देखा तिस बन्धन नासे। शबद अनहद घट माहीं परगासे॥
जनम जनम की इच्छया नासी। केवल शबद संग सुरत बिलासी॥
नाभ पवन घर आसन लीना। बिचरत शबद को अनुभव कीना॥
बाँधी सुरती पवन की धारा। आसन जाये पाताल सुधारा॥
उलट पलट पवन को दीजे। निरबिख नागन सीधी कीजे॥
खुली सुखमना गगन को धावे। सहज सरूप सत शबद लखावे॥
सतनाम नित पवन सम्भाले। जाप अजपा में मनुवाँ गाले॥
शबद चढ़े उठ गगन में बोले। अच्छर अद्वैत की रसना तोले॥
सत जुगत मन शबद कमाए। इच्छया भरम सकल मिट जाए॥
बोले पवन गगन के तीर। बूझनहार सो कामिल फ़क़ीर॥
जाँ से उपजा तिस घर कियो मेला। पूरे सतगुर बतायो खेला॥
नित ही नर तत्त को बूझो। जनम कदारथ पद निर्मल सूझो॥
चौधाँ भवन में और रस नाईं। जाँ से मनुआँ तृपत हो जाईं॥
केवल शबद अगम अबनासी। खोज खोज सब मिटी तिरासी॥
पूरन भाग कोई गुरमुख आए। आलख शबद की सेव कमाए॥
आप भये मुक्त औराँ निस्तारे। तिस पुरख से जाऊँ बलिहारे॥
अमरत शबद मन माहीं समाया। गुर परशाद हरी सब माया॥
इन्द्रीजीत मन भये निष्कामी। अगम शबद का हूआ गामी॥
नित ही शबद में सुरती राखे। काल को मूँड अकाल घर भाखे॥
सीप स्वाती ज्यों अधिक प्यासा। तैसे शबद संग करो बिलासा॥
मन अपने की दुबधा टारो। साचे शबद का लेख विचारो॥
शबद की खोज अति दुर्लभ काज। शबद आधार ये सकल समाज॥
सकले भरम क्लेश विनास। साचा शबद घट करे परगास॥
निर्मल जुगत कमावे योग। आलख शबद का होवे संजोग॥
नित ही मन परम तत्त लागे। ब्रह्म शबद घट अन्तर जागे॥
तिस शबद की महमाँ आपार। सरब कला का आप आधार॥

जो सिमरे सो सरब जीत। सरजनहार दीनी परतीत॥
ऐसा समरथ पुरष आगाहे। स्वांस स्वांस नित रहो ध्याये॥
उत्तम कीरत शोभा आपार। नित ही सिमरो आलख निरंकार॥
गुनी ज्ञानी दानव देव। सब ही लागे तिसकी सेव॥
सकल मनोरथ देवनहार। रिद्ध सिद्ध का सो दातार॥
सदा निरंतर करे बिसराम। नित ध्याओ दुखभंजन राम॥

सकल पदारथ आ मिले, एक शबद के प्यार।
'मंगत' मन पूरन भयो, जीत लयो संसार॥ 751

जम की त्रास सकल मिट जाए। तत्त परकाश घर जाए समाए॥
ये अहसास रख ये विश्वासा। साचा शबद पियो स्वाँस स्वासा॥
गुरमुख जुगती योग कमाओ। सतगुर सेव अमरपद पाओ॥

पूरन को पूरा मिले, पूरा बूझे बोल।
'मंगत' परसे नाम को, जाँ का मोल ना तोल॥ 752

दूसरा विवेक - सतमार्ग की पहचान

जब से जीव इस लोक में आया। अधिक प्यासा विच अनवरचित माया॥
बाल जोबन और जरा बिताए। संशे माहीं सब औसर जाए॥
अनेक जुगत को साधन धारे। बिन सत मारग निहफल विचारे॥
जप तप संजम यज्ञ और दाना। सार बिना सब मिथ्या जाना॥
तीरथ नहावे ब्रत बहु राखे। बिना ज्ञान अन्धमत भाखे॥
पच पच मरे सार नहीं सूझे। जनम अमोल अकारथ लूझे॥
पन्थापन्थी बाद बधावे। मिथ्या कल्पत सार ना पावे॥
साध सन्त पाखण्डी पाए। सत मारग गम कौन लखाए॥
धरम सरूप सब भया अलोपा। अन्धकार व्यापक त्रैलोका॥
जहाँ जहाँ देखा गरब गुबारा। सार बिना डूबा संसारा॥
उठ रे गुनिया कर विचार। सत मारग से पावें पार॥
सो है गुरमुख सो वेद आचारी। **'मंगत'** जिस घट सत जुगत विचारी॥**753**
परम पुरष जिस मारग से पाये। सत मारग सो नाम कहलाये॥
ना प्रभ धरनी ना प्रभ आकाश। ना प्रभ पावक नीर बिलास॥
वो तो बसे इस काया माहीं। सत जुगत बिन पावे नाहीं॥
निराकार निरालम बोले। अगम निगम की रसना तोले॥
रोम रोम करे परकाशा। दृष्ट ना आवे पुरख निरबासा॥
आवे जावे ये जीव भरमाए। बिन परतीत कुछ सार ना पाए॥
काया सरोवर तत्त प्रान परगासे। तिसको खोज सत मारग भासे॥
काया खोजे मन नेहचल होये। अमरत सार पीवे जन सोए॥
काया खोजे सो संत ज्ञानी। आतम रसना घट माहीं पछानी॥
काया खोजे सो वेद का वादी। अटल पन्थ में लगी समाधी॥

काया खोजे सो सतगुर पूरा। सकल निवारे करम की खूरा॥
अजर अमर पुरष परकाशा। इस काया में करे बिलासा॥
छोड़ काया मूरख कहाँ धाए। काशी काबे ना साहब पाए॥
मिल सतगुर सत सेव कमाओ। **'मंगत'** दुर्लभ जीवन पाओ॥**754**
नौ द्वारे परगट दिखलाए। दसवें सोध कोई गुरमुख पाए॥
दसवें द्वार पुरष अमर बिराजे। सहज धुन वहाँ अनहद बाजे॥
सतगुर मिले तब गमता पाई। खोल किवाड़ जोत दिखलाई॥
गुरमुख जुगती सुनयो मीता। सत मारग से होए पुनीता॥
जनम जनम की दूषना हरे। तत्त परगास सुरती में चढ़े॥
मिथ्या कल्पना अन्धकार विनासे। सतसरूप में लीना बासे॥
डोलन धावन मन का जाए। गुरमुख जुगती योग कमाए॥
गुपत वस्तु घर परगट होई। अच्छर पुरष संग सुरत बगोई॥
जाँ को खोजे धरन आकासे। सो मिलया घट अन्तर बासे॥
जाँ को खोजत कई जनम विताए। गुर परताप सो सहज मिलाए॥

मज़हब मज़ाहब सोधे बहु बार। बिन सतगुर नहीं पावे पार॥
पूरा सतगुर जब मेल मिलाया। तब सतधाम का मारग पाया॥
सुरती बाँधी तृष्ना के वेग। घट ना सोधे मिटे ना खेद॥
चंचल मनुवाँ जीव दु:खाए। अगनी तृष्ना कीजे घाए॥
कही ना जाए मन की त्रासा। कह बिध पावे निज घर बासा॥
सहज भाय गुर जुगत लखाई। बाँधे मनुवाँ अमरपुर जाई॥
आवे जावे पवन की धारा। काची काया करे संचारा॥
नौ द्वारे को नित परकासे। सब के माहीं ये पवन बिलासे॥
तिस पवन संग मेल मिलाए। तब अन्तर की शोभा पाए॥
अन्तर जाये नाभ के थाईं। वहाँ से पलट बाहर को आईं॥
उलट पलट का करे ब्यौहार। अचरच लीला लखी करतार॥
आवागवन में सुरती राखे। सतगुर दया अमरफल चाखे॥
उरध कँवल भया परगास। **'मंगत'** मिटया गरभ निवास॥**755**

सतसरूप की सूझ मन होई। उल्टी आकास में जाए समोई॥
नित ही जापे सतनाम मीर। आनन्द गावे पवन के तीर॥
अमरत उमडे उल्ट जोत परगासे। गुरमुख जुगती योग बिलासे॥
गुनी ज्ञानी नबी रसूल। घट को खोजे मिटे सब भूल॥
जनम जनम की प्यास बुझावे। सत मारग की खोज को पावे॥
प्रान उपान सुरती बन्ध राखे। अजरपुरष की रसना चाखे॥
नाभ कँवल घर बोले पवना। गुर परशाद मिटावे गवना॥
खुली सुखमना जीव घर जाए। सुन्न नाद में जाए समाए॥
चार वेद और सिद्ध मुनी आद। साधे नाम सब मिटे व्याध॥
उठ ज्ञानी चतर बुद्धधारी। इस काया की सोध विचारी॥
हाड मास का धारा कार। जिसमें बोले आप निरंकार॥
सतगुर सेव मन बिखया त्याग। सहजे उठे आतम रस जाग॥
मानुष जनम का भया पूर करम। निहचल भया पाए निर्मल धरम॥
लख चौरासी जीव जो आए। केवल भोग में जनम गँवाए॥
मानुष तन चतुर बुद्ध धार। परसे ठाकर मिटे बकार॥
मिथ्या कल्पना सकल वंजाए। सतसरूप मिल शोभा पाए॥
दुर्लभ देह का ये ब्यौहार। **'मंगत'** पावे ज्ञान तत्त सार॥**756**
सबसे ऊँचा ये विचार। खोजे काया मिटे अन्धकार॥
सबसे उत्तम करी पछान। मिथ्या काया में पेख भगवान॥
तिससे परे नहीं और विचार। अपने माहीं आप को मार॥
ज्ञान ध्यान तब शोभा पाये। जब ये जीव सतरूप समाए॥
कही ना जाए महमा आपार। जिस घट परगट आप निरंकार॥
रोम रोम में ठाँड उपजाई। परमानन्द घट रह्यो समाई॥
जनम मरन का भय सब नास। निर्भय पुरष संग कियो बिलास॥
ये ही कथना कथ मन माईं। सत मारग में जीव ठहराई॥
ऋषि मुनी गुनी अवतारा। काया खोज भए निस्तारा॥
उत्तम दीप ये काया जान। नित परगासे आप सुजान॥
कारन कर्ता आपे सोई। तिसे पछान परमगत होई॥

तिसके बचन से बन्धन छूटे। सतसरूप मिल गवना टूटे॥
कमल नाभ उरध परकासा। प्रान उपान संग कियो बिलासा॥
सतनाम संग प्रान को जोए। इक दृष्ट बाहर अन्तर होए॥
खुले कपाट दसवाँ दर भाखे। अबनाशी पुरष की रसना चाखे॥
नित ही नित ये सोधन कीजे। अकथ कथा में सुरता सीजे॥
गुरमुख ज्ञान होवे परकासू। तृखा मिटे तृपत घर बासू॥
अधिक वडयाई तिस जन ने जानी। जिस सत मारग में सिमरत ठानी॥
गुनी ज्ञानी सोही नबी रसूला। अबगत नाद जिस घट में फूला॥
उपरस जीव पद निर्मल पाये। **'मंगत'** बिमल शबद मिल सेव कमाये॥783
वस्तू अगोचर अन्तर में पाई। सत सरूप की देखी प्रभताई॥
नित ही मंगल उनमुन बरखे। अबगत जोत निरन्तर नरखे॥
होए परकाश मन मगन समाये। निज घर बसे नहीं आवे जाये॥
उनमुन घाटी पन्थ अनूपा। जाने कोई जोगिन्दर भूपा॥
सकल कला होए तिसके हाथे। उनमुन माहीं जो सुरता राखे॥
नाद अखण्डत परम धुनकार। अपने आप में देखे उज्जयार॥
पूरन जुगती पूरन पाये धाम। खावे पीवे केवल सतनाम॥
उनमुन पुरख का अजब पसारा। गुनी ज्ञानी नहीं पावें पारा॥
असंख नाम सो पुरखा धारी। निसदिन गावें गुनी गुनकारी॥
अपने आप में रहे अलेपा। नित परबीन सो पुरख अलेखा॥
अपने आप में सो बलवाना। निराधार पुरख निर्वाना॥
अपने तेज में तेज परकासे। सकल जगत की सिमरत राखे॥
अपने आप में नित समाये। परम तत्त अगम अथाहे॥
लखी ना जाये लीला आपारी। उनमुन दरसे जोत निरंकारी॥
धन्न भाग उस जन के मीता। जिस जानी एह निर्मल रीता॥
मिटे गवन उनमुन बिसरामी। परस्यो साचा पार स्वामी॥
आती जाती पवन को बाँधे। साचा नाम निरन्तर साँधे॥
स्वास सुरत का कीजे मेला। **'मंगत'** सोधे पावे तत्त खेला॥784
नौ दर बाँधे पवन चित जोड़े। गुर प्रसाद दर दसवाँ फोड़े॥

धरती पलटे नीर परकासे। पीवे नीर सब मिटे प्यासे॥
उलटा नीर ले गगन चढ़ाई। उनमुन मन्दर की शोभा पाई॥
अघट नाद सुन्न मन्दर बोले। अच्छर अबगत की रसना तोले॥
जुगती बूझे योग कमाये। साचे सतगुर के लागे पाये॥
सतसरूप में निश्चय धारे। तिमर नाशे होवे उजयारे॥
प्रन अपने को सम कर राखे। सतनाम की रसना चाखे॥
करूँ पुकार सुनिये मुनी ज्ञानी। अजरपुरष दी अजब कहानी॥
उलटे मारग में सो दिखलाया। उलटे नियम सो आनन्द घर पाया॥
जीवत मरे ताँ सब कुछ पेखे। धरम करम आवे सब लेखे॥
पुरख अनन्त परसयो घट माहीं। सकली माया तिसकी परछाईं॥
नित कर यतन सतरूप विचार। साचे सतगुर करें पुकार॥
वहाँ में गये जीव सुख भाखे। अबगत जोत घट माहीं परकाशे॥
जनम जनम का अँधेरा जाए। पूरे सतगुर के लागे पाए॥
धन्न सतगुर सत मारग वादी। सतसरूप पाये हरी उपाधी॥
आनन्दसरूप नित चित राखे। काल करम नहीं अन्तर भाखे॥
बल बल जाऊँ सद हूँ बलिहार। **'मंगत'** जो जग में पावे ये सार॥785
गुनी ज्ञानी सो ही जानो। अन्तर की जो सार पछानो॥
सतधाम का खोजनहारा। सत को साधे सत करे ब्यौहारा॥
सतपुरख से सिखया लेवे। सकल बिकार में चित नहीं देवे॥
अबनाशी धाम अधिक परकाश। पावे कोई गुर का दास॥
देह विकार में चित नहीं राखे। आतम तत्त की प्रभता चाखे॥
सर्वज्ञ ठाकर देखे पूरा। सरब जीवों की बाँछे धूड़ा॥
आपा मान सकला बिख हरे। तब सतज्ञान में सुरता चढ़े॥
आठ पहर ये सार चित्त पीये। सिमरन ज्ञान में जीवन जीये॥
अखण्ड विरत चित नाम आहारी। ताको मिले सो साच मुरारी॥
मन अपने की डोलन त्यागे। सतसरूप में दृढ़ अनुरागे॥
सो ही ज्ञानी परम तत्तवेता। जिसने धारी ये निर्मल रीता॥
नित ही नित संजम हरनाम। उट्ठत बैठत ये ही बिसराम॥

निर्मल जुगत मन अन्तर राखे। निर्भयधाम की रसना चाखे॥
रहत इकान्त सत तत्त विचारी। आसा त्याग मन ममता करे छारी॥
काल करम का भय निवारे। तत्तज्ञान घर सोध विचारे॥
अपने आप में रहे गम्भीर। ज्यों तरंग जाये मिलया नीर॥
अपने भरम का किया विनास। सतसरूप देखा अबनास॥
शबद अगोचर की माल परोये। उनमुन घाटी में जाकर सोये॥
प्रान उपान का नाका बाँधे। गुर का शबद घट अन्तर साँधे॥
भरम ग़ुबार सकला मिट जाये। **'मंगत'** साधू सो कहलाये॥**794**
जतन जतन कर बिख माया त्यागे। सतसरूप में गुरमुख जागे॥
आनन्द परसे आनन्द वरताये। साधू की शोभा वरनी ना जाये॥
सार ज्ञान तत्त बूझे मूल। शबद समाये बिनसे सब भूल॥
उलट सुरती पिन्ड को खोजे। परम आनन्द घट अन्तर सूझे॥
उलटे मारग शिखर घर बास। चेतन पुरष संग कियो बिलास॥
नौ द्वार से सुरता बाँधे। केवल नाम में जुगती गाँडे॥
उरध कँवल भयो परगास। धन्न जोगी सत जुगत निवास॥
पूरन सेव पूरन भयो कार। सतसरूप परसे तत्त सार॥
नित ही नित शबद कमाये। पाखण्ड त्याग निर्भय घर जाये॥
परकिरती दोख ना मन में लागे। ज्ञान ध्यान फल पाये वडभागे॥
गुर की जुगत तन मन विचारे। सत कला घट परगट धारे॥
पूरन नीती पूरन तत्त वादी। सतसरूप मिल हरी उपाधी॥
नित उपरस सतरूप आहारी। सो साधू कुल जगत निस्तारी॥
आप समावे सचखण्ड बानी। निर्मल रसना घट माहीं बखानी॥
केवल प्रेम आतम तत्त सार। जुगती जोवे सतनाम आहार॥
दृढ़ निश्चे मन बुद्ध को आये। हरे बकार सतरूप समाये॥
धन्न आया जग में सो प्रानी। अखण्ड पुरष की शोभा जानी॥
सोही साधू सोही अवतार। सकल जीयाँ का करे निस्तार॥
सच वरताये कूड़ मल हरे। **'मंगत'** ऐसे साध की चरनी नित पड़े॥**795**
कपटी साधू करे धरम को भंग। अन्ध ग़ुबार ना कीजो संग॥

कपटी साध मिले जाये विश्वास। भरम प्रगटे होये धरम का नाश॥
सत को त्यागे पाखण्ड दिखलाये। मड़ी मसान की पूज कराये॥
तन्तर जादू का देवे उपदेश। काम क्रोध बिख धरे कलेश॥
खिमा ग़रीबी नहीं चित बीच आये। धरे अभिमान सरसों तली जमाये॥
वली औलिया जाने अपने आप। पलक पलक में वरतावे सन्ताप॥
जम का रूप सो साधू जानयो। भूत प्रेत का मन्तर चित ठानयो॥
डायन चुड़ेल बीर बैताल। बैठ मसान घाले तन घाल॥
अती लोभी कामी आपार। परधन लूटे हरे पर-नार॥
बाहरों भेख धरे अतीत। कपट बिकार अधिक धरे नीत॥
पाखण्ड करे नहीं शानत आवे। आप भरमे कई लोक भरमावे॥
चोर ठग कई शिष बनाये। लोक लूटन का राह बतलाये॥
धृग साधू करें भेख का नास। सकल जीवों को देवें त्रास॥

वक़्त जात है बावरे, रस्ता है बहु दूर।
अटपट औखत घाट हैं, चढ़ कर होएं मनूर॥
जेता पढ़ना नर पढ़े, एता मन दु:ख पाए।
अनक सिद्धान्त माँह भरमत फिरे, ठौर हाथ ना आए॥
पढ़ना एको नाम का, और पढ़न दे त्याग।
'मंगत' निश्चल चित होवे, प्रेम हरी रस लाग॥8

ऐसा जन कोई हो मस्ताना............
मूल द्वार की कुंजी खोले, राखे ग़ैब निशाना।
सुरत निरत दोये पंख हिलाए, उडे हंस अंजाना॥
प्रेम प्रीत चोग नूँ चुगिया, ना अपना भया बेगाना।
मुरशद मेहर सीख को पाया, लखया निगम ठिकाना॥
छिन छिन वाट तक्काँ मैं तिसदी, जिस दे नाल याराना।
लोक लाज को मार कर, पाया अजब घराना॥
छोड़ दुरंगी भया निशंगी, छिन छिन सार कमाना।
'मंगत' बोले संत कोऊ बूझे, पंथ अगम दिव्य ज्ञाना॥8

ऐसा ज्ञानी, विचरे जग माँह।
राग द्वेष तृष्ना नहीं कोए, हिरस ख़ुदी नहीं ताँह॥
आप मेट भयो निर्द्वन्दी, दिव अच्छर जिन पाया।
छर अछर इच्छया को त्यागा, सतगुर शरनी आया॥
भूत भविषत की आशा त्यागी, जोग जुगत को पाए।
ईड़ा पिंगला सम कर पीवे, अगम कला अर्थाए॥
आवत जावत भरम को त्यागे, चाढ़े सुरत लगाम।
आसन दृढ़ अन्तर कियो, पायो अगम पंथ दा प्याम॥
आसा मनसा सकल त्यागी, चित में रहे उदास।
आठ पहर तृप्ते नहीं मनुवाँ, इक साचे नाम प्यास॥
गूढ़े नैन नीर बहावे, सुद्ध बुद्ध भई दीवानी।
'मंगत' त्रैगुन मेट भयो जन निर्मल, घट सुनी अनहद बानी॥8

❖चौथा अंग चिरंजीव गोष्ठ सहित पवित्र जीवन समाप्त हुआ❖

समता अपार शक्ति
त्यम् सर्वाधार
ओ३म् ब्रह्म सत्यम् निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा
सर्व व्यापक कल्याण मूरत परमेश्वराय नमस्तं

ईड़ा पिंगला सुखमन नाड़ी। समकर सोधे पवन अपारी॥
इरध उरध सुरती बन्ध राखे। परगट नाद अन्तर रस चाखे॥
छिन छिन मन की मैल को धोवे। सहज जुगत बुद्ध नाद को जोवे॥
बोले नाद गगन के तीर। मान सरोवर तट पीवे छीर॥
बिन मध पिये भयो मतवारा। परसे शबद आलख आपारा॥
सुन्न शिखर घर सुरत समाई। साच नाद की गमता पाई॥
पूरन भाग कोई गुरमुख आया। आलख नाद के भेद को पाया॥
पाया भेद भयो उजियारा। साहब दरसया एक ओंकारा॥

पूरन पुरख मिलाया, भई गवन चित नास।
'मंगत' अन्तरगत माहीं, अबगत भयो परगास॥ 830

साचे नाम की लागी प्रीत। सिमर सिमर लयो भवजल जीत॥
अकथ कथा सुरती लवलीना। अंतरगत में हर रस चीना॥
गुपत रूप परगट दिखलाया। गुर परसादी जीवन पाया॥
मन की दूषन छिन में त्यागे। अमरत नाम में विरती जागे॥
धाराकार मंडप एह साजा। अबगत नाद निरंतर बाजा॥
तिसका रूप रेख नहीं वरना। सकल स्वामी सो कारन करना॥
नित आनन्द अखण्ड अछेदा। मिल सतगुर पाओ तिसका भेदा॥
आद अन्त ना तिसका कोई। जरा मरन सो आवे नाहीं॥
सकल सृष्ट में समकर परगासा। ऊँच नीच नहीं विगन विगासा॥
जल थल महिय्यल पूरन पूर। अनहद नाद बाजन्त तूर॥
कोट पिंड ब्रह्मण्ड को साजे। कोट वरंच को पल माहीं निवाजे॥
कोट विषन महेशर ध्याए। वार पार तिसका ना पाए॥
अपार शक्त अगोचर गामी। नित नित सिमरो पारगरामी॥
जो जन सिमरे मन कलह विनासे। आनन्दसरूप घट माहीं परगासे॥
छिनभंगुर ये भोग विकारा। तृप्त भयो हर नाम विचारा॥
छिन छिन मन का डोलन जाए। सतसरूप में निहचल समाए॥
आसा तृष्ना जाये ग़ुबारा। अखंड नाद घट माहीं विचारा॥

जुग जुग शोभा भई भरपूर। आलख नाम जो सिमरे हज़ूर
अनंक ताप से मन भयो मुक्ता। एक नाम जप प्रेम संजुगता
नाम बिना बुद्ध नित भरमावे। मिथ्या भोग में नित तिरखावे
जतन करे नहीं जाए जीव प्यासा। अन्तकाल लयो जम घर वासा
कूड़ भरवास में नित भरमावे। नाम परतीत बिन आवे जावे
आस अँदेसा माहीं जनम गंवाये। अद्भुत माया का पार नहीं पाये
बिनसनहार जग से करी प्रीती। अन्तकाल सब भई कुरीती

सकली सम्पत छाड के, चले निमाना अन्त।
'मंगत' भरमत ना मिटे, बिन सिमरे भगवंत॥ 831

मुकत पदारथ महासुख मीता। होवे परापत सतगुर की रीता॥
मनमुखता मन की निवारे। गुरमुख जीवन चोला धारे॥
आस अंदेसा विखाद निवारे। प्रभ की आज्ञा नित नित विचारे॥
अपनी हिकमत दलील त्यागे। एक नाम में नित जीवे वडभागे॥
सकले करम प्रभ इच्छया में छोड़े। गुरमुख जुगती सतनाम चित जोड़े॥
स्वास स्वास प्रभ नाम कमावे। मन की भरमत सकल हरावे॥
छिन छिन मन की दुबधा त्यागे। एक नाम में धरे दृढ़ अनुरागे॥
प्रान उलट उपान को पीवे। उपान उलट प्रान में लीवे॥
करे अश्वमेध दिन और राती। ब्रह्ममुख आहूती मन माहीं समाती॥
आदी यज्ञ नाद निर्वाना। उर्ध कँवल घट करी पहचाना॥
नाभ कँवल में पवन नित गरजे। मुकन्दसरूप परगट सरजे॥
विरत रहित मन इकागर होई। सूक्ष्म धुन्न सँग सुरत परोई॥
जाप अजपा घट अन्तर चीना। अद्‌भुत शबद में भयो लवलीना॥
शबद सुरत का एका कीजे। गुर परसाद मुकतरस पीजे॥
तत्त अनूप सरब अतीता। भयो परगास अखण्ड सुखरीता॥
नित नित सुरती शबद बिरोले। अमरत नाम मन अन्तर तोले॥
मुकतसरूप परसे निज धामा। आठ पहर चित भयो निष्कामा॥
काया शुद्ध शबद अबनाशी। सूक्षम धुन्न घट माहीं परगासी॥
तीन भवन में नाद उठ बोले। धन्न योगी तत्त जुगत को तोले॥
अखंड सुरत शबद रस पीवे। काल त्याग परम सुख लीवे॥
सहँस हज़ार दल कँवल परगासा। अखंड नाद संग सुरत बिलासा॥
करम रहत मन भयो परिपूरा। बिमल शबद पाए रूप हजूरा॥
शिव कहे सुन गौराँ विचार। अमरकथा घट नाद आपार॥
बन्धन रहित मन भयो सुखरासी। केवल शबद संग करे बिलासी॥

जाँ से उतपत होया, ताईं भया लवलीन।
'मंगत' मारग मुकत का, कोई गुरमुख लेवे चीन॥ 839

समता अपार शक्ति

गुपत सरूप सो सब में व्यापे। परगट होवे सतगुर परतापे
छीर माहीं ज्यों घिरत समाई। बिना मिथन के हाथ ना आई
फूल माहीं ज्यों सुगन्धी बासा। मेंहदी में ज्यों रंग निवासा
काठ माहीं ज्यों अगन रहाई। एह बिध ठाकर घट रह्यो समाई
सतपुरषारथ सत जुगती बूझे। सत साधन ले सो घर सूझे
मारग भेदी सतगुर मिलावे। सरब सार की जुगत लखावे
दृढ़ अनुराग सत मारग सोधे। मुकत सरूप तब ठाकर बोधे
मज़हब मज़ाहब का बाद निवारे। सार भगत मन माहीं चितारे
सरब जीयाँ में इक ठाकर पेखे। ऊँच नीच नहीं पड़े भुलेखे
साची करनी ऊँच गत देवे। कथ कथ मरे नहीं सार को लेवे
अपने मन की कल्पना निवारे। साचा मारग मिल गुर विचारे
लोभ मोह मन तजे अहंकारा। सत संतोख निर्मान मन धारा
अपने मरन की दिसा विचारे। कौन वस्तू होवे अंत सुखारे

शबद अनहद पहचानयों, जो अन्तर करे पुकार।
'मंगत' सो निज रूप है, सब में पूरन सार॥ 856

साधू तो सब ही भले, अपनी अपनी थाईं।
जो सत शबद के पारखू, सो ही संत कहलाईं॥
आध व्याध सब मन की नासी। निर्मल शबद घट सुरत निवासी॥
धंदा धावन मन जाए बिकारा। घड़िए शबद अन्तर टकसारा॥
सत विश्वास श्रद्धा धारी। अधिक प्रीत गुर बचन विचारी॥
मन के भरम का करे उपाये। सत मारग में प्रेम बढ़ाये॥
पाप पुन्न की करे पहचाना। मन को ठाके करे करम सुजाना॥
साचा त्याग जभी चित आवे। सतगुर परताप शबद रस पावे॥
नित नित सोधे शबद अगामी। जोग का जुगता परसे सो स्वामी॥
जप तप संजम पर-उपकारा। धारे करम होवे सचयारा॥
एको नाम मन माहीं कमावे। परम परकाश शबद रस पावे॥
अन्तर बाहर पवन की धारा। बारह सोलह सम कर विचारा॥
बाहर जाए हकार सो कहिए। भीतर आए साकार सो लहिए॥
हकार साकार का मेल मिलाए। अद्भुत शबद का परगट पाए॥
पवन आरम्भे ले नाम का खण्डा। अकथ कथा कथ जोत परचण्डा॥
साचा शबद मन माहीं परोवे। कोट जनम की मैल को धोवे॥
दृढ़ अभ्यास नाम कमाए। शबद का निरना सो गुरमुख पाए॥
बैठ इकान्त प्रभ भगत कमावे। करे अभ्यास गृहस्ती तर जावे॥
गृहस्ती विरक्ती दोनों हैराने। जब तक सार शबद नहीं जाने॥
शबद ही पार लँघावनहारा। जो जन सोधे उतरे पारा॥

शबद ध्याए भयो जनक निरदेही। शबद विचार राम त्याग चित लेई॥
शबद खुमारी में कृष्न मतवाला। निष्काम विरत में नित रवाला॥
शबद ध्यान शिव समाध अखण्डी। शबद में विचरे साध सन्यासी डण्डी॥
परगट शबद करे विगन का नासा। जरा मरन मिटे काल की त्रासा॥
शबद परगासे सो अनुभव ज्ञाता। अकथ कथे खुले ज्ञान कपाटा॥

सरब ज्ञान का मूल है, सरब जगत आधार।
'मंगत' परसे शबद जो, पावे जग का पार॥ 857

वस्त अमोल जगत में भारी। मिल सतसंग लयो शबद विचारी॥
अपरम मानक ये शबद आनंदा। कोट रवि सम जोत परचंडा॥
लाख उपाये करे दिन राती। बिना शबद मन तृखा समाती॥
शबद नीर जब घट माहीं पीना। मूल पछान तब इस्थिर थीना॥
ग्रन्थ वेद गुनी करें विचारा। घाल शबद उतरें नर पारा॥
मानुष जनम का एह ही फल मीता। शबद ज्ञान नित रमे रमीता॥
शबद पहचाने सो देवन का देवा। अबनाशी पुरष की करे नित सेवा॥
कठिन जंजाल माया बिस्तारा। शबद पहचाने उतरे जन पारा॥
पूरन योग रिद्ध सिद्ध दाता। एक शबद मन जपे अजापा॥
साध के चरनी नित डण्डवत कीजो। सेव टहल नित मन में सीजो॥
साध के बचन मन तन धारो। शबद अगोचर मिले निर्धारो॥
मन की व्याध जब अन्तर रहाई। युग युग भरमे नहीं मिले शबद सुखदाई॥
खिमा ग़रीबी जो मरन विचारी। श्रद्धा सेवा भाओ भगत आचारी॥
सतपुरषन के सुने इतिहासा। गुरू के बचन रखे अधिक विश्वासा॥

बार बार विचारया, सब जग बिख की खान।
'मंगत' शबद कमावना, जग जीवन सार निधान॥ 858

एक नाम की रखे परीत। परसे शबद परम सुखरीत॥
ज्यों ज्यों मन सतनाम कमाए। मिटे अन्धकार सत शबद लखाए॥
अच्छर जपे निरअच्छर होई। आनन्दसरूप में सुरत भगोई॥
नाभ कँवल है अचरज थाना। जाँ में वसया श्री भगवाना॥
सतगुर जुगत मिल नाम कमाए। उरध कँवल परगासत पाए॥
खुले सुखमनी जीव तृखा विनासे। परगट शबद तब अन्तर भासे॥
छिन छिन तिस में सुरत परोए। मनसा लीन मन निर्मल होए॥
अखण्ड सुरत जब नाम प्रभ चीने। काल करम की व्याध तब छीने॥
गरजे पवन खुले कपाट। परसे शबद उनमुन के घाट॥
उनमुन घाटी अजब समाजा। निराकार वहाँ रह्यो बराजा॥
जाप अजपा सुरत इकागर। ब्रह्मसरूप परसे उजागर॥
एक धुन्न सुरत परोई। तब ये काया निर्मल होई॥
जीवन मरन का निरनय पाया। उनमुन पुरष अकाल ध्याया॥
आपा तजे पछाने आप। एको शबद उनमुन व्याप॥
धन्न योगी जो जुगत विचारे। अनहद परसे पुरख आपारे॥
नित नित शबद में करे कुलेले। इच्छयाचारी सदा अडोले॥
निर्मल दिसा गुरदेव दिखलाई। अद्भुत बानी अन्तर पाई॥
गरजे मेघ बजे खड़ताल। दमके दामन अजब रवाल॥
उमढे जोत बाजे घट तूर। गुरमुख जीवे जप नाम हज़ूर॥
ग़ैब की बानी घट करी पछान। अबगत चानन देखा भगवान॥
अपने मन में रीज रिजाया। गूँगे गुड़ ज्यों नहीं सार जिताया॥

जेस जाना सो तृपत को भाखे। जुग जुग जीवे हर रस चाखे॥
वेषे विकार से मन भयो अतीता। सत शबद घर दर्शन लीता॥
रस परस से अत भयो निहाल। जप जप जीवे इक नाम किरपाल॥

अबगत शबद पहचानया, जम काल की मिटी तरास।
'मंगत' आठ पहर रीजत रह्यो, मन एके शबद निवास॥ 859

शबद को पीवे भयो गुरमुख मतवाला। अद्भुत दर्शन जोत उजयाला॥
अमरत कुआँ गगन में फूटा। गुह्य ध्यान में अमीरस लूटा॥
देव दानव करें अरदासा। अजरपुरष मिल अखण्ड सुख भासा॥
जुग जुग खोजें जिसको गुनी ज्ञानी। सो शोभा गुर पल दिखलानी॥
लोमस ध्याए मारकण्डे मन ध्यान। जुग जुग पूजे भसुण्ड निर्वान॥
मुनी सनकादिक नारद चिताए। तिस शबद की महमा वरनी ना जाये॥
चतुर्मुख ब्रह्मा नित उस्तत कीजे। नेती नेती परमान लखीजे॥
शेष सहँसमुख करे नित जाप। लखा ना जाई प्रभ का परताप॥
कपल कनाद करे गौतम ध्यान। अष्टावक्र करे जनक पछान॥

09:59

उलटा मारग ज्ञान का, सन्तो करो विचार।
'मंगत' देख के हंसया, जब कीटी खा गई पहाड़॥887

सो अबधूता सरब सिरताजा। बिना शरीर सुने नित बाजा॥
इकादस द्वादस का बन्धी कीना। चौदस परगास चन्दर घर लीना॥
द्वादस आये खोड़स जाये। समकर खेले खेल अगाहे॥
उत्तर दक्खन सुरती बन्ध राखे। पच्छम देश में अमीरस चाखे॥
पवन मधानी दधि मथे आपारा। रोल बरोल माखन काढ डारा॥
बिन जिभ्या बिन दन्ताँ के खाए। बड़वा अगन गई नीर समाए॥
उधर दीप मद्ध आसन धारी। उलटी धरती कथा विचारी॥
धरती फोड़ी हंसा उपजाया। नीर छीर का निरनय पाया॥
नीर को त्यागे छीर को खाए। गुर का पूत कथा अर्थाए॥
बिना रबाब के बजे पखावज। बहरा सुने तत्त भेद लखावज॥
उल्टी गंगा जमना उल्टाए। उल्टी सुरसती ब्रह्म घाट में आए॥
सूरज चन्दर दोनों को बाँधे। महाबली गढ़ अन्तर साँधे॥
पाँच पच्चीसी कीजे आहारा। तीनों मार धरनी पर डारा॥
बिख को खाए अमरत प्रगटाए। विरला गुरमुख उलट भेद को पाए॥
बिना शरीर इक पुरख को पेखे। बिना नैन के सब कुछ देखे॥
बिना आहार के नित बलधारी। बिना बोले सब कथा विचारी॥
विखमी संधी भ्रमगढ़ तोड़ा। एक दृष्ट चलायो घोड़ा॥
मन तरंग पर करे असवारी। सतगुर पूजे सब काज सँवारी॥
चौरासी सिद्ध नौ नाथ ध्याये। कथा अवधूत कोई विरला पाये॥
इरध गृह चन्द उरध ग्रह सूर। गुरमुख जुगती उपजे घट तूर॥
बिन जननी के पूत इक जाया। रलमिल सन्ताँ मंगल गाया॥
समाँ काल नहीं रुत पख मासा। रास ग्रह नहीं नखत्तर बिलासा॥
बिना शरीर वोह बालक देखा। संत-जनाँ ने लिखया तिस लेखा॥
घर में बालक नाच नचाए। निरत लखे अमरपद पाए॥

अद्भुत लीला घट रची, खेडन बालक आए।
'मंगत' कहे समझाए के, कोई विरला अर्थ लगाए॥888

अगम देस का सुन परवाना। हंसा बूझे होए निर्वाना॥
शिंघ शिकारी रमे बीबाने। शिंघ को मार रन जीते घमसाने॥
जब शिंघ को शिकारी मारे। फूल पड़े फुलवाड़ी अपारे॥
अगन लागी दरया में भारी। सरब जीव भए भयकारी॥
अगन बुझावे अमरत वरखावे। उलट भेद को विरला अर्थावे॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

10:00

अमरत कथा बखानी, ज्ञान ध्यान तत्त सार।
'मंगत' परसे जो गुनी, सो सतगुर बलिहार॥890

ऐसी जुगत पछाने जोई। साच जोगिन्दर कहलावे सोई॥
मूल द्वार में बन्ध लगाना। आसन सहज जुगत से लाना॥
उलट अपान प्रान में लेवे। सतगुर मेल जुगत सत सेवे॥
परम जतन नित्यानित राखे। उल्ट बुद्धी घर अमरत चाखे॥
छिन छिन पवन का सोधन कीजे। विखमी सिन्ध खुले अमीरस पीजे॥
भौरा लुगध्या शबद के माहीं। उरध कँवल परगास लखाईं॥
अष्टदल कँवल को छीना। उलट पलट पवन को दीना॥
सुरत इकागर पाताल समाई। उलट पवन घर गरजत रहाई॥
सूक्षम सुर धुन नाद गुंजारे। उदर दीप में खेल अपारे॥
आसा मनसा से भयो विरक्ता। सतगुर जुगती जोग संजुगता॥
दृढ़ विश्वास पवन को सोधा। खटचकरन से भया निरोधा॥
उलट नाद तरबैनी बोले। चौथी सुन्न कोई गुरमुख खोले॥
धन्न योगी जिस योग लखाया। झुनतकार अनहद घर पाया॥
छिन छिन नाद बोले तिरनाली। दमके दामन अजब रवाली॥
गरजे मेघ ब्रह्मण्ड को फोड़े। सतसरूप चित चरनी जोड़े॥
आलख रूप का लेख लखाया। निराकार का दर्शन पाया॥
पंच शबद धुनकार बजावे। धन्न योगी जो जुगत लखावे॥
ईड़ा पिंगला मथ कर लीजे। सुखमना माहीं पवन भरीजे॥
उल्टे नेत्तर धरे ध्यान। धन्न योगी जुगता परवान॥
पवन का मिथना खोले किवाड़ा। उल्टी नागन शबद विचारा॥
स्वास सुरत इक तार परोई। शबद कला तब परगट होई॥
शून्यंगकार नाद निर्वाना। बन्धी छूटे सुन मुकत निधाना॥
परगट शबद भरम जलाए। छाया माया सब कलह वँजाए॥
रोम रोम में ररंगकारा। उठ जोगी घर सुन पुकारा॥

शबद खोज ब्रह्मा थके, सुर नर मुनी और देव।
'मंगत' शबद पछाने सोई, ले सच जुगती गुरदेव॥ 891

पूरन पुरख सोई गुर मेरा। जो इस पद का करे नबेड़ा॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

अमरत कथा बखान करी, जो खोजे पावे जीत।
'मंगत' ये तत्त सार है, पद निर्वान पुनीत॥ 894

ऐसा ज्ञान विचारे जोई। जीवन मुकत कहावे सोई॥
सत विचार करे गुर की संगत। हरे भरम होवें संशे खण्डत॥
सत असत का निरनय पावे। सत को खोज तिरखा मिटावे॥
बिन रसना के अमीरस खाये। साचा नाम मन माईं ध्याये॥

मन पवन की जुगता बूझे। मिथना करे ज्ञान तत्त सूझे॥
आतम महल के खुले किवाड़ा। तन मन प्रान करें विचारा॥
तन से सूक्षम इन्द्री विकारा। इन्द्री परे मन का बिसतारा॥
मन के परे बुद्ध ठहराई। बुद्ध के परे रतन सुखदाई॥
जब लग बुद्धी विखयों की भुगता। जनमे मरे ना परसे मुकता॥
अनुभव ज्ञान जब योग लखाया। गुरमुख मनुआँ जाए पवन समाया॥
मन पवन भयो इक रूपा। परगट अनुभव शबद सरूपा॥
प्रान तत्त में सुरती राखे। मिल सतगुर सत जुगत को लाखे॥
होवे निहचल मनुआँ तजे चतुराई। तीन लोक की सम्पत घर पाई॥
शबद पछाने सुन्न लावे ताली। सुन्न समाध हरे करम की जाली॥
उल्टी पवन का आहार करीजे। भूक प्यास निद्रा सब छीजे॥
तीन गुन माया पर पावे जीत। पंजकोश से होवे अतीत॥
सुक्षम कारन जाए माया बिकारा। अस्थूल भरम का मिटे गुबारा॥
शबद सार जीवन को पाए। सतगुर मारग इयों दिखलाए॥
गुर का पूत लखे ये भेदा। अन्तर पवन कँवल को छेदा॥
मन पवन कठन कठार। तिसको जीते पाए शबद आपार॥
जो कर पवन की जुगत नहीं जानी। पच पच मरे क्यों अज्ञानी॥
मिल पूरन गुर को तत्त लखाओ। अजर पुरष का दर्शन घर पाओ॥
पवन सुरत का एका कीजो। सार ज्ञान भेद को लीजो॥
मुकत महाँसुख परसे सार। साची जुगत करे निस्तार॥

स्वास सुरत एका भया, मनसा भई लवलीन।
'मंगत' शबद परगासया, कोट भान छबी चीन॥ 895

सो सन्यासी सन्यास पहचानी। सुन्न कन्दरा में करे ठिकानी॥
सकल परकिरत पर पावे त्याग। निहकर्म सरूप आतम संग लाग॥
मूल भगती करे नाम आहारा। सरब अतीत घट रूप विचारा॥
शुद्ध विवेक की भसम रमाई। खिमा ग़रीबी का चोला गल पाई॥
सत विश्वास का आसन धारे। गुपत सरूप की जुगत विचारे॥

अकथ कथा घट में होवे, उमडे शबद हलोल।
'मंगत' भेदी तत ज्ञान का, परसे मन अडोल॥ 903

हर का भगत भया मतवाला। जिसके अन्दर भया उजियाला॥
मूल द्वार में सुरती को गाढ़ा। अन्तर पवन का लखा पसारा॥
सतनाम को छिन छिन ध्याया। परम परगास घट अन्तर पाया॥
उलट सुरती चढ़ी आकासा। बिमल शबद संग कियो बिलासा॥
तीन भवन शबद अखण्डा। अद्भुत परगास जोत परचण्डा॥
गुरमुख देखे अपरम आपारा। मन तन का सब मिटा ग़ुबारा॥
अजब मस्तान रहे मतवारा। घूँघट नाद घर करी विचारा॥
जिसको खोजे बहु जतन कर धारी। जिसको पूजे बहु रंग पुजारी॥
जिसके ताईं करे नित तपस्या। दुख सुख में नित रहे उपरस्या॥
सो परमानन्द परम सुख खानी। अनहद नाद घर करी पछानी॥
त्रिकुटी आसन सुरत अडोले। जाप अजपा हिरदे में तोले॥
एक सुरत निज नाद समाई। ब्रह्म जोत घर में दरसाई॥
अजब कथा घर मंगल हूआ। उठ सुनो जोगिन्दर मिटे भ्रम दूआ॥
नाद निरत सुरत करे एका। पूरन भाग जाँ विरत विवेका॥
कड़के नाद अधिक आपारी। कम्पे काया मन शान्त विचारी॥

उलट कँवल भयो परगासा। पूरन भाग तत्त योग निवासा॥
खल बुद्धी जड़ता सब नासी। परम कला आतम परगासी॥
दु:ख नाठे मन भया गम्भीरा। साची जुगत परसे तत्त छीरा॥
नित मतवाला मन गगन निवासी। पंजम सुर धुन नाद परगासी॥
बादल गरजे बहु रंग की ताना। हर का भगत भया मस्ताना॥
ग़ैब ख़ज़ाना मानक इक पाया। नाद निरंजन मेल मिलाया॥
पूरन मनुआँ रह्या पूर समाए। पूरन भगती मन तन कमाए॥
करम जंजाल तृष्ना बिख नासा। अद्भुत कौतक देख निरवासा॥
ज्ञान ध्यान भयो सुफल विचारा। ऊँची दृष्ट घर शबद विचारा॥

अमृत पीवे अमृत वरखाए, हर का भगत सुजान।
'मंगत' परसे निज रूप को, तिस में रहे ग़लतान॥ 904

नाम प्रभ का परम सुखदाई। सिमर सिमर सब कलह वँजाई॥
दुस्तर रचना अधिक ग़ुबारा। आवे जावे जीव अंधयारा॥
बिन तत्त ज्ञान नहीं भरमन जाए। कोट विचार करें उपाए॥
करम की इच्छया जम का रूपा। सभी बन्धावें रंक और भूपा॥
तृखा ना जाए ना मन सुख भासे। आस आस में लयो काल गरासे॥
गुरमुख सिखया सुन बिमल विचारा। जल थल पेख एक करतारा॥
साचा ठाकर जो जगत परगासी। भगत कमाओ होवो सुख वासी॥

अन्धे के हाथ में देवे आरसी स्वरूप नजर नहीं आवे।
दर्पण साफ दोष आंखों में भटक भटक दुःख पावे॥2
दो दो आंख सब जीवों के पढ़ तीजी खुल जावे।
धार्मिक पुरुष के सात आंख हैं ज्ञानी के अनन्त खुल जावे॥3
ज्ञान का अंजन सार आंख में भर्म जाल हट जावे।
कहे जीवाराम कृपा सतगुरु की सहस भान दरसावे॥4

भजन राग आसावरी

अन्धों के ईश नजर नहीं आवे।
कला कुदरत लीला नहीं जाने भर्म भर्म दुःख पावे॥टेक
मन बुधि अहंकार कहिये तत्व पांचों कहावे।
यह ईश्वर की अपरा प्रकृति गीता ग्रन्थ सुनावे॥1
परा प्रकृति चेतन सकल में सब घट माहि समावे।
दोनों से ही रचना है सारी चराचरी में पावे॥2
ज्ञान कला से लिखो यथार्थ भांति भांति से दरसावे।
रोम रोम रग रग में व्यापक कर खोज पत तब पावे॥3
ईश्वर जीव प्रकृति तीनों अनादि बतलावे।
कहे जीवाराम समझ कर देखो वेदों में फरमावे॥4

भजन राग आसावरी

वो पद वेद भेद से ही न्यारा।
मन वाणी इन्द्रियों से अगोचर तत्व प्रकृति पारा॥टेक
गुणातीत निरन्तर न्यारा रंग वर्ण के बारा।
तीन काल से कहिये अलहदा कलेस रहित करतारा॥1
आदि अनादि नहीं प्रमादि निरालेप निरंकारा।
पांच कोश से पार कहीजे निर बन्धन निराधारा॥2
लिखता लेख अक्षर में नाहीं सब ही पच-पच हारा।
कैसे लिखे लिखा नहीं जावे विना अंक ह्नि सारा॥3
सोहं आप सर्व का साक्षी न कोई मैल विकारा।
कहे जीवाराम परम गत पूर्ण दुई पार दीदारा॥4

भजन राग आसावरी

वेदान्त शास्त्र का बजे नकारा तू सबका सिरदारा।

बकरी के गलस्ताना, दूध मूत नहीं धार॥5
राम भजे बिन जिन्दगी, ज्यूं पूंछ स्वान की।
तन ढके न मछर उड़े, ज्यूं सदा बेकाम की॥6
राम राम भजते रहो, निश दिन लगा के ध्यान।
भजत भजत भगवान को, पावे पद निर्वान॥7
राम नाम के सुमरते, तर गये जीव अनन्त।
पापी जीवों को भी मिल गया, निज मुक्ति का पंथ॥8
राम भजन सब से भला, चार वर्ण के मायं।
वोही बड़ा सब जगत से, भेद भाव कुछ नाय॥9
निर्भय होके राम भज, कर कर मन में उमेद।
सकल कामना सिद्ध हों, मिटे जो मन की खेद॥10
सरियादे से शिक्षा मिली पायो सत्य विवेक।
तां दिन भगत प्रहलाद ने लई राम की टेक॥11
राम रटत प्रहलाद को, पिता ने दई त्रास।
प्रीत पाली भगत की कियो दुष्ट को नास॥12
राम नाम के प्रताप से, पायो विभीषण राज।
द्रोपदी की सभा में, राखी प्रभो लाज॥13
राम नाम सम कुछ नहीं, जोग जग आचार।
कंचन कर नित दान तू, नाम बिना बेकार॥14
निश्चय निर्भय मन करो, राखो घट विश्वास।
राम भरोसे जो रहे, पूर्ण हो सब आस॥15
वेद पुराण में सब लिखे, मुक्ति नहीं बिन नाम।
नाम से सिल्ला तरी, निश्चय दिल में धाम॥16
ओ३म् कहो चाहे सोहं कहो, चाहे कहो नित राम।
वस्तु एक की एक है, यह सांची कर धाम॥17
ज्यां के घट निश्चय भया, ज्यां का सरगया काम।
नाम के प्रताप से, पाया सुभ ही धाम॥18
धुरू भगत प्रहलाद ने, भज्यो नाम एक राम।
सैन सदन अजामल नाम दे, पायो निज विश्राम॥19
राम नाम का दीपक जो, धरले मुख के भांय।
भीतर बाहिर रोशनी, रजनी तम भग जाय॥20

दर्शन करते दुविधा भागी चित्त चरणों में ल्याया।
लख चौरासी में चलते फिरते, अबके सतगुरु पाया॥
हरे हर अबके सतगुरु पाया॥1

पूर्व पुन्य से सतगुरु मिलया, अपने भाग सराया।
अपनो करके ज्ञान सुनावे, दिल का भ्रम हटाया॥
हरे हर दिल का भ्रम मिटाया॥2

बिन सतगुरु मोही जातो जमारो जन्म मरण भटकाया।
अब तो शरणों लियो सतगुरु को, सुख स्वरूप लखाया॥
हरे हर सुख स्वरूप लखाया॥3

महर करी निज पद के दाता, सोता आन जगाया।
जीवाराम कहे क्या महिमा, नर तन का फल पाया॥
हरे हर नर तन का फल पाया॥4

भजन राग पीलू ताल कव्वाली

मेरे सतगुरु सैन बताई मुझे॥टेर
प्रथम आसन पदम शुद्ध कीना, दुविधा भाव दूर धर दीना।
मूल कमल शुद्ध आई मुझे॥1
साधिष्टान शोध शुद्ध नाभी, हृदय कमल पे अनुभव छागी।
कण्ठ कमल कलियां पाई मुझे॥2
बंक नाल का मार्ग झीना, भंवर गुफा में डेरा दीना।
परम ज्योति का दर्शन पाया मुझे॥3
जीवाराम कहै समझाई, बिन सतगुरु कोई पहुँचत नाहीं।
आनन्द स्वरूप सुवाया मुझे॥4

भजन राग पीलू ताल कव्वाली

सतगुरु आनन्द रूप लखाया मुझे॥टेर
सत मिथ्या का भेद बताया, जनम मरण का भय मिटाया।
सत्य ब्रह्म बोध समझाया मुझे॥1
जड़ चेतन का किया निमेड़ा, जीव ईश का मिटे बखेड़ा।
गुरु व्यापक स्वरूप बताया मुझे॥2
निराकार निरबन्धन न्यारा, शुद्ध स्वरूप नहीं मैल विकारा।
गुरु आत्म अचल दरशाया मुझे॥3

गया करोड़ों वीर शूरमा खप जासी॥2
कर जतन चेत कर चाल मुक्ति पा जासी।
जो चूके अब की बार फेरूं दुख पासी॥3
पद गावे जीवाराम भावपुरा निज वासी।
चलना होगा जरूर वासना रह जासी॥4

भजन राग रंगत बहर चौकरी

निश दिन भजले नाम राम को प्यारा।
वह हरदम तेरे पास कभी नहीं न्यारा॥टेर
राम ही सब जग में रमता है भाई।
राम ही पूर्ण ब्रह्म चेतन शुद्ध सांईं॥
राम ही सबका स्वामी मान मन माहीं।
राम बिना नहीं धाम सन्त फरमाहीं॥
घट घट बोले राम लिखो ततसारा॥1
परमेश्वर का नाम अनन्त जग माहीं।
अनन्त नामों में मुख्य तीन कहाहीं॥
ओ३म् सोहं राम रटो लव लाई।
हो भव सिन्धु से पार झूंठ या में नाहीं॥
है आदि शब्द रंकारा जपो धुन धारा॥2
तरे पशु पक्षी ले राम नाम का सहारा।
तरे भालू कपि और गिद्ध ग्रन्थ पुकारा॥
राम नाम से ही सिला तरी भई पारा।
एक जीव का तरना तुच्छ सुमर हर बारा॥
है चार वेद का सार नाम तत्सारा॥3
लाखों पापी तरे जगत के माहीं।
कर राम नाम का सुमरण मुक्त पद पाई॥
राम ही तारक मन्त्र वेद दरसाही।
पद गावे जीवाराम गुरु से गम पाई॥
रट नाम रट लिया सहज किनारा॥4

भजन राग जिला दादरा रेखता

सुरत भर देखले दिल में दिलदार है।

भजन राग आसावरी

सुमर मन आदि शब्द ओंकारा।
स्वास उसास में भजो निरन्तर सहज होय भवपारा॥टेक
ओंकार की तीन मात्रा अकार ओकार मकारा।
सो ब्रह्म ज्योतिस्वरूप सकल में कर देखो निरधारा॥1
ओंकार से ही वेदों की रचना गायत्री मन्त्र उचारा।
ओंकार से ही सारी विद्या नभ वायु तत सारा॥2
धूनी और ध्यान तपो उमर चार जटाजूट सिर धारा।
ओंकार बिन सिद्ध न होवे जोग जग अधारा॥3
निज नाम ओम् प्रभु का करोड़ों सन्त पुकारा।
कहे जीवाराम गुरु से गम पाई हरदम रट मन प्यारा॥4

होली राग कसूरी ताल रसिया

सखी सजलो सब सिंगार पिया संग खेलो होरी॥टेर
पांच पच्चीसो होकर भेली फाग रचाओरी।
ज्ञान गुलाल घोल शब्द पिचकारी लगाओरी॥1
योग युक्त की झांझ बनाकर चंग बजाओरी।
राम नाम की टोपी लगाकर हरि रसिया गावोरी॥2
हो होशियार पिया के सन्मुख प्रेम मिलाओ री।
होय दीन आधीन चूक सारी बकसाओ री॥3
दिनड़ा गिनता फागुन आयो भाग्य सराहो री।
जीवाराम भयो तब आनन्द निज घर पावो री॥4

भजन राग आसावरी

आत्मा का सुनों स्वरूप चित धारा।
अमर अनादि आप जुगादी जन्म मरण से न्यारा॥टेर
देश काल वस्तु नहीं लागे नहीं अवस्था चारा।
अवस्था अतीत गुण से आगे निराकार निराधारा॥1
सत चित आनन्द सदा नर बंधन माया प्रकृति पारा।
अखण्ड अकाल चेतन सुख रासी काल मौत से पारा॥2
नाम रूप वाणी नहीं खाणी नहीं अचार विचारा।
धर्म अधर्म कर्म नहीं क्रिया साखी शब्द सब वारा॥3

असंग अभोक्ता है अतर्कता कूटस्थ है ततसारा।
कहे जीवाराम ऐसा शुद्ध आत्मा मेरा हैं प्यारा॥4

भजन राग आसावरी

ईश्वर का सुनो स्वभाव यह प्यारा।
सत चित आनन्द है अविनाशी सर्व देशी एक सारा॥टेर
अजन्मा अनादि केवल, सर्वाधार निराकार।
अजर अनन्त अन्त नहीं ताको न कोई वार न पारा॥1
सर्वेश्वर सर्व में व्यापक, नहीं आकार विकारा।
स्वतः प्रकाश सदा परिपूर्ण जन्म मरण से न्यारा॥2
अखण्ड अकाल सर्व का दृष्टा शुद्ध ब्रह्म तत्व सारा।
मुक्त स्वरूप सदा सुख राशी जाने जानन हारा॥3
अन्तर्यामी सब का स्वामी सहज स्वरूप विस्तारा।
कहे जीवाराम भेद भजा दूरा एक अरूप निज सारा॥4

भजन राग आसावरी

साधो भाई सुणों निर्णय धर ध्याना।
ईश्वर हेर देख दिल अन्दर, बाहर क्यों भरमाना॥टेर
मूल कमल में गनपति देवा, सर पे ब्रह्मा बखाना।
नाभि कमल पे विष्णु विराजे, हृदय शिव का थाना॥1
कण्ठ कमल में कला कुदरत की उलटा प्राण चढ़ाना।
त्रिकुटी में परम ज्योति है जिनका दर्शन पाना॥2
सात जन्म आगला सुधरे, महरम हो सो जाना।
दसवां द्वार असि पद ईश्वर तो मैं जाय समाना॥3
कर नर जगत कथन सुणा सांचा जीतो आना जाना।
कहे जीवाराम कृपा सतगुरु की पाया पद निर्वाना॥4

भजन राग परज ताल

जगत में आज देखलो विद्या का ही राज है॥टेर
विद्या से ही गांधी ने पाया सकल स्वराज है।
विद्या के ही कारणे नेहरू सिरताज है॥
विद्या से ही हाकिम होवे मिले सर्व सुख साज है।
विद्या से ही देखलो चलें हवाई जहाज है॥

भली बुरी वासना रहेगी जग दुनिया बखान किया।
आया पंछी चला गया सारा ढंग दुनिया का छोड़ गया॥3
सब जीवों का धर्म यही है हरि सुमरो और राखो दया।
जीवाराम कहे पद पूरण भाव भक्ति करी सो पार भया॥4

भजन राग आसावरी (प्रश्न)

साधो भाई सुण लटका निर्गुण का।
जो तू भेदी है निर्गुण का करो अर्थ अक्षर का॥टेर
सत लोक पे चार धाम हैं नाम बताना उनका।
एक फूल गुल चार कहिये करो अर्थ अक्षर का॥1
अगमपुरी के चार चरण हैं नाम सुनाओ उनका।
अनहद की तो माता कौन है पिता बताओ उनका॥2
बिन पिंड का पुरुष कहिये स्वांस बिना अक्षर का।
पहिले मेरा उत्तर देना पीछे करना खुड़का॥3
साजबाज को रख देना करो अर्थ अक्षर का।
जीवाराम के प्रश्न चार हैं मेटो इनकी शंका॥4

भजन राग आसावरी (उत्तर)

साधो भाई सुनो उत्तर प्रश्न का।
कान लगाके सुनो भजन को मिटे तिमिर अन्दर का॥टेर
महा संसय मैदान संसय अन्धकार महाकाल का।
सतलोक पे यह चार धाम हैं पुगे पास गुरु का॥1
शब्द फूल गुल चार पदार्थ यही अर्थ गुलों का।
अनहद की मात सुकमण कुम्भक पिता अनहद का॥2
ररंकार ओंकारा अमी रूप सही सत का।
चार चर्ण यह अगमपुरी का खोलो द्वार गगन का॥3
आर्यपुरुष अखण्ड अविनासी श्वास बिना अक्षर का।
कहे जीवाराम लिखो पद पूर्ण हट जाय दिल की शंका॥4

शब्द राग राधेश्याम (प्रश्न)

जो जू बात घमंड की करता मेरा सुन प्रश्न बानी।
इस बानी का भेद बताना जब समझूं पूरा ज्ञानी॥टेर
प्रथम कहो एक क्या है दूजा कौन लगा है साथ,

याही से उत्पन्न पहले सकल संसारा।
जो पिण्ड से भये प्रानी, वह पिण्डज खानी मानी॥
जो अण्ड से पैदा होई, सो अण्डज खानी सोई।
जमीं से जग में भई उत्पन मेघ जलधार॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति हुआ भई अवस्था चार।
गुरु ने यो समझायो मोय॥1

ब्रह्म वाक् परा भई बानी, ईश्वर वाक् प्रसन्ती ठानी।
माया बीच बेखरी जानी, जीव बीच मध्यमा पानी॥
सतयुग त्रेता द्वापर कलयुग चारा।
साम अथर्व ऋग् यजुर्वेद पुकारा॥
तत्व तम परम ऐसी पद प्यारा।
चित मन बुध अहंकार लिखो यह सारा॥
अर्थ धर्म और कामा, निज मोक्ष पदार्थ धामा।
अब पांच तत्व सुनाऊं, तेरा मन का भ्रम मिटाऊं॥
आकाश वायु तेज है चौथा नीर निहार।
अब पांचवां तत्व पृथ्वी भई ऐसा अर्थ विचार।
यह गुरु से मालूम होवे॥2

शब्द स्पर्श रूप रस गंधा, पांचों जीव के हैं यह फन्दा।
अन्न मन प्रान ज्ञान आनन्दा, जाने हरिजन गुरु सुखी बंधा।
कहूं पांचों मुन्दरा का भेद मिटे सब खेद सुनो तुम ज्ञानी।
है जिभ्या कमल पर खेचरी मुन्दरा ठानी।
अगोचरी स्थान समझलो कान सुनो चितलाई।
हे त्रुसरी स्थान नाक के माहीं।
मुंदरा चाचरी नेत्रा थाई उनमुन ब्रहाण्ड माहीं॥
अब पांचों मुक्त सुनाऊं, तोपे निज पत भेद बताऊं।
समीप सरूपा सालोक्या सायोज्या जीवन मुक्त विचार।
मुक्त बंध में वो नहीं है वो तो इनसे पार॥
वो तो निबन्धन निर्भयो॥3

शिक्षा व्याकरण ज्योतिष है भाई, छंद कल्प निरुक्त कहाई।
छऊ अंग वेद के गाई, छः दर्शन अब कहुँ समझाई॥
सांख्य विशेष भी मानसा भाई,

साख०—ब्रह्म जगत में एक है, नाम अनन्त अपार।
मन मांगे सो ही लीजिये, कहे कबीर बिचार॥
तीन नाम है ब्रह्म का, ओ३म् सोहं राम।
इष्ट भेद से जपत हैं, न्यारा-न्यारा नाम॥
ज्ञानी सोहं कहते हैं, योगी कहे ओ३म्कार।
भगत कहत है राम ही, तीनों एक बिचारा॥
राम नाम निज मूल है, चार वेद को सार।
जो सुमरण करे राम का, सहज होय भव पार॥
नाम प्रताप तैर गया, पानी पर पाषान।
नर तरना क्या दुर्लभ है, जो सुमिरे भगवान्॥

प्रश्न—हे स्वामीजी! क्षर अक्षर ना अक्षर है सो क्या है?

उत्तर—दोहा—क्षर देही को कहते हैं, गीता में भगवान्।
अक्षर है जीव आत्मा, जाने ताहि सुजान॥
न अक्षर जिन आत्मा, रंग रूप न ही रेख।
हैं सबमें सबसे परे, सब मिट रहा वो एक॥

प्रश्न—हे स्वामीजी! प्रथम कौन अक्षर है?

उत्तर—प्रथम ओ३म् अक्षर, ओ३म् से अ, अ से आ, आ से इ, इ से ई, ई से उ, उ से ऊ, ऊ से ऋ, ऋ से ए, ए से ऐ, ऐ से क, क से ख, ख से ग, ग से घ, घ से ङ, ङ से च, च से छ, छ से ज, ज से झ, झ से ञ, ञ से ट, ट से ठ, ठ से ड, ड से ढ, ढ से ण, ण से त, त से थ, थ से द, द से ध, ध सें न, न से प, प से फ, फ से ब, ब से भ, भ से म, म से य, य से र, र से ल, ल से व, व से श, श से ष, ष से स, स से ह, ह से क्ष, क्ष से त्र, त्र से ज्ञ।

गिनती—1-2-3-4-5-6-7-8-9-10।

मात्राएं—। ि ी ु ू े ै ो ौ ं :

बारह खड़ी—क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः।

अर्थ—इसी तरह इतिहासों में शास्त्रकारों ने शास्त्रों में लिखा है। मन बुद्धि दोनों मिला के बावन अक्षर होते हैं, इन्हीं बावन अक्षरों द्वारा चारों वेदों की महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में पृष्ठ नं०129 में, (मनु०-1-23) लिखा है कि महर्षियों में ब्रह्मा ने प्रकट चारों वेदों को किया है।

प्रश्न—हे स्वामीजी! उन चारों महर्षियों का क्या नाम है तथा कौन-कौन ऋषि ने किस-किस वेद की रचना की है?

भजन राग आसावरी

शिष्य सुनो हमारी वाणी।
सुरती सन्त शब्द की शाखा प्रकट कहे बखाणी॥टेक
तू तो पुरुष प्रकृति नाहीं न तू जाण अजाणी।
न तू गुण इन्द्र भी नाहीं नहीं तू पवना पाणी॥1
तू तो स्थूल सूक्ष्म नाहीं, न कोई कारण बखाणी।
न तू विश्व तेज से प्राग्य न तू चारों खाणी॥2
नहीं तू मन बुद्धि भी, नहीं तू चारों वाणी।
अनुभव सदा एक रस कहिये कहूं बचन प्रमाणी॥3
देह मरे तू अमर रहे त्यागी भर्म भुलाणी।
सुण सन्तोष हृदय कर धारण कह जीवाराम तत छाणी॥4

भजन राग आसावरी

पाई मैं हरि सुमिरण सुख धारा।
श्वास-श्वास में लगी टिकटिकी, की अष्ट पहर इकसारा॥टेक
सतगुरु देव दया करे दाता दिया भेद ततसारा।
आसन मार ध्यान में बैठ्या रंक काट धुन्धधारा॥1
महर करी जब महरा पाया कहा श्वास निरधारा।
ईड़ा पिंगला ज्यों ही सुखमणा कर दर्शन दीदारा॥2
परम प्रकाश हुआ चोहूं दिशि मिट्या तिमर अंधेरा।
बाहर भीतर एक ही व्यापक आप स्वरूप इकसारा॥3
जीवारामजी सतगुरु मिलिया भाग्या भर्म अन्धेरा।
कहे सन्तोष सुनो भाई साधो सोही इष्ट हमारा॥4

भजन राग आसावरी

शिष्य भगवत भक्ति करना।
भक्ति बिना भर्म नहीं भागे नहीं होगा भव जल तरना॥टेक
एक दिन जन्म लियो जननी के एक दिन होगा मरना।
बारम्बार नहीं मिले मनुष्य तन वेद सन्त सब बरना॥1
नर तन मिल्या राम भज बानी ध्यान हरि का धरना।
चूके वक्त पड़े चौरासी रात दिवस होगा फिरना॥2
भगवत कृपा हो जिन ऊपर मिटे जन्म और मरना।

सकल उपाधि छोड़ जगत की ले प्रभु की शरणा॥3
जा विधि ताप मिटे भव बन्धन संकट सारा हरना।
कहे जीवाराम सुनो शिष्य सन्तोष यही पथ प्रवीना॥4

भजन राग पंजाबी

भज दीनबन्धु भगवान् भव तर जावे रे।टेक
आयो नर लख चौरासी काट, नर तन मिल्यो सारो ठाठ।
यह निज मुक्ति घाट परम पद पावे रे॥1
भरले बोल भलाई प्रेम, ले सत सुमरण का नेम।
फेर मिले ना ऐसा टेम अवसर जावे रे॥2
देखो हरि भक्ती बाग, जिसमें रहे हैं मेवा लाग।
भोग अपने-अपने भाग किया फल पावे रे॥3
पद गावे जीवादास, लग रही भजन की आस।
श्रीनगर भावपुरा वास हरि गुण गावे रे॥4

भजन राग आसावरी

साधो भाई यही उपदेश मन भाई।
लोक लाज सब छोड़ जगत में हरि सुमिरण धुन लाई॥टेक
सास उसास में नाम हरि का तन्त तार धुन लाई।
सहजे सुमरण होत घट भीतर यूं कर आनन्द पाई॥1
सकल कामना पूर्ण होवे मानस तन के माहीं।
जगत जंजाल में रीतो रह गयो यूं ही सब दिन खोई॥2
सास उसास का कर निरधारा तीनों ताल मिलाई।
ईला पिंगला बहे त्रिवेणी चढ़ तीर्थ में नहाई॥3
जीवाराम मिल्या गुरु पूरा सांची सेन दरसाई।
सन्तोषदास कृपा सतगुरु की आनन्द रूप समाई॥4

भजन राग आसावरी

साधो भाई वो ही देश मन भाई।
आवे न जावे मरे नहीं जन्मे आत्म नगर बसाई॥टेक
उत्पत्ति प्रलय तामें नहीं न कोई जननी जाई।
काल मौत नहीं कोई उनमें बिरले पारख पाई॥1
अथाह अतोल अमर अविनाशी भूल भर्म कुछ नाहीं।

प्रथम सन्ध्या सुमरण सारूं। उसी कर्त्ता पर तन मन वारूं॥
दूजी सन्ध्या दिल में धारा। विषय विकार मिटे दुःख सारा॥
तीजी सन्ध्या त्रिविध देवा। रक्षा करें आप गुरु देवा॥
चौथी सन्ध्या चिन्ता भागी। कलह कल्पना दुर्मत त्यागी॥
पांचों सन्ध्या परम पद पूरा। जन्म मरण से होवे दूरा॥
छठी सन्ध्या जपे जन कोई। काल जाल व्यापे नहीं तोही॥
सातों सन्ध्या ऐसी होई। काग रूप से हंसा होई॥

अर्थ—सन्ध्या का पिता दिन है और माता रात्रि है।

(सातों सन्ध्या इस प्रकार है)

सातों सन्ध्या का रंग, वर्ण, वासा और सुमिरण

ओ३म् रैन दिवस जो सन्ध्या करता,
भव दुःख संकट सारा हरता॥1
प्रभात की सन्ध्या पूरब वासा,
पीत रंग सोहं जप सोहं प्रकाशा॥2
मध्याह्न की सन्ध्या स्वर्ग से छटकी,
भगवां रंग भृकुटी अटकी॥3
बे पार की सन्ध्या ब्रह्माण्ड से उतरी,
सुवरन रंग सोहं वाणी ले उचरी॥4
श्याम की सन्ध्या पश्चिम से आई,
लाल रंग सोहं वाणी लाई॥5
अर्ध रैन की सन्ध्या पाताल से आवे,
लीला रंग सोहे नाद बजावे॥6
ब्रह्म मुहूर्त की सन्ध्या बहु रंग वाणी,
इष्टदेव दरसा निरवाणी॥7
सातों सन्ध्या अखण्ड एक लारी,
भव सिन्धु ले उतरे पारी॥8

अतः सात सन्ध्या के नाम निम्न प्रकार हैं—

1. संज्या, 2. मंज्या, 3. त्रिकाली, 4. प्रभात, 5. श्री, 6. शंकरी, 7. श्यामा।

यजुर्वेद गायत्री मन्त्र

ॐ भुर्भूवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

होती है, फिर आगे कर्म करते हैं और किया जाता है। प्रमाण साबित है, महात्मा कबीर साहब ने एक भजन में गाया है—

राग केरवा

कर नैनों में दीदार महल में प्यारा ॥टेक
मूल कमल गणपति स्थाना, केलंग जाप लाल रंग माना।
पहले थारा मूल सुधारो, सिद्ध कारज होय सारा ॥1
नेती, धोती, बस्ती पावो, आसन पदम जुगत सुध लावो।
मेरू, दण्ड सुध ले आये पावन चौधारा ॥2
गगन मंडल ऊर्ध मुख कूंवा, ताका नीर हरीजन पीवा।
नुगरा जाय पियासा, जाके हिया अन्धेरा ॥3
कहे कबीर सुनो भाई साधो, जागी नागिन इसको डाटो।
हो ज्ञान घोड़ले असवार, निज भ्रम करो न्यारा ॥4

राग आसावरी

साधो भाई प्रथम गणपति ध्याया।
जिस से ज्ञान बुद्धि हम पाया ॥टेक
मूल कमल पर बसे गणेश निश दिन ध्यान लगाया।
ऋषि मुनि सुमरे ईश देव को वेद ग्रन्थ में गाया ॥1
ता कमल के चतुर्थ पंखड़ी रक्त बरण दर्शाया।
सुधि बुधि दो शक्ति कही जे देखो रूप सवाया ॥2
षट कमल पर ब्रह्मा विराजे रंग पितल्या पाया।
नाद वायु संचार होत है लिखे सन्त निरधाया ॥3
श्रेष्ठ पुरुष नाभी कमल जहां विष्णु दर्शन पाया।
जागी जुगत नाम सुधि पाई उर में आनन्द छाया ॥4
भदुराम जी सामर्थ मिल गये सच्चा भेद बताया।
जीवादास आस चरणों की सन्त समागम पाया ॥5

अर्थ—ऐसा है कि पहले मूल कमल का संशोधन करके फिर शाधिष्टांन यदि षट कमल का किया जाता है, वहां ब्रह्मा राजसी रहते हैं और नाभी कमल पर विष्णु रहते हैं और हृदय कमल में आनन्दघन में लय हो जाते हैं।

राग आसावरी

साधो म्हारे राम भजन को चालो।

म्हारो खुल गयो भ्रमना को तालो॥टेक
गजानन्द मैं तोय मनाऊं पुत्र गवरजा वालो।
मात-पिता गुरुदेव मनाऊं सृष्टि रचाने वालो॥1
ज्ञान चौंतरे आकर बैठा तन तंबूरो सम्भालो।
कुण्डी कर्म, घोड़ी जुगत, निर्गुण ही सहारो॥2
पांचों प्राण तार हैं पांचो सोहं राग मिलालो।
मेहरम मोरणां गाड़ा खींचा सटदे भया उजालो॥3
ऊर्ध शूर्ध दो बाजे मंजीरा सुरता डोर मिलालो।
अकल कला से आनन्द पद में गहरी गांठ लगालो॥4
सब कोई लागो राम भजन में कूड़ कपट धो डालो।
जो कोई द्रोही राम भजन को उनको मुखड़ो कालो॥5
सहजे धुन जब लागी भजन में खुल गयो गुरगम तालो।
कहे जीवादास सुनो भाई साधो सन्त मिलो मतवालो॥6

अर्थ—ऐसा है कि अज्ञान हट के ज्ञान हो जाने से ये वृत्तान्त मालूम होते हैं कि स्थूल शरीर के शुभ-अशुभ कर्मों रूपी कुण्डली और जुगती रूपी घोड़ी पांच प्राण रूपी तार। मैहरम रूपी मौरणा, ऊर्ध-शूर्ध रूपी मंजीरा अर्थ ये ऐसा है कि गुदा से अपान प्राण और नाभि से समान प्राण और दय में प्राण कण्ठ, उदान और बयान प्राण--ये पांच तार हैं और उठती सांस को ऊर्ध बोलते हैं और बैठती सांस को शूध र्ा बोलते हैं और सुवास-उसास से ही सोहं सुमरना अजपा चुप होते हैं। साखी साबित है, महात्मा कबीरजी ने कहा है—

साखी

सांसा की कर सुमरणी अजपा का जप जाप।
परम तत्व का ध्यान धर सोहं आपु आप॥1
सोहं बोये पवन में और बांधे मेर सुमेर।
ब्रह्म गांठ हृदय धरो या विधि माला फेर॥2
माला है निज सांस की फेरेंगे कोई दास।
चौरासी बन्धन कटे पड़े न जम की फांस॥3

राग पीलू

साधो भाई हर भज आनन्द पाया।
मिटा तिमिर भाग मेरा जागा सतगुरु शब्द लिखाया॥टेक
गौरी का पुत्र गणेश मनाया अनुभव ज्ञान बताया।

शंका होती है; क्योंकि प्राचीन साखी साबित है—

साखी—पहले दाता शिष्य भये, तन-मन अरप्यो शीश।
पीछे दाता गुरु भया, किया नाम बखशीश॥

अर्थ—ऐसा है कि नाम शब्द के दाता तो सतगुरु हैं और बिना नाम शब्द मुक्ति का अधिकार नहीं हो सकता है। शिष्य तो झूठे पदार्थों का दान करने वाले हैं और काया माया झूठा ही है और झूठा ही माना है और झूठा पदार्थ वो भी कहने मात्र को ही है और सचमुच तो कोई लाखों में बिरला ही मिलेगा और सतगुरु ऐसे दाता होते हैं कि कुछ कहने मात्र में महिमा नहीं कही जा सकती; क्योंकि गुरु की नजर भेंट में धन-माणिक-लाख करोड़ यदि तन-मन-धन सर्व अर्पण करे, तब भी बराबर नहीं होवे। कहा है एक साखी साबित है।

साखी—गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीनी दान॥

अर्थ—इतना-सा है कि जो कुछ सेवा-बन्दगी हो सकती है और वह मुमुक्षु जनों का कारण भी ये ही है। एक साखी के विषय में कहा है—

साखी—मात पिता मिल जायेंगे, लख चौरासी माहिं।
गुरु सेवा और बन्दगी, फिर मिलन की नाहिं॥

अर्थ—मुमुक्षुजनों को सेवा का ही अधिकार है और सोचा जाता है कि गुरु तीन लोक की सम्पदा देते हैं, तो अब चेला गुरु को कौन धन-माल वस्तु देगा?

राग आसावरी

धन्य गुरु ऐसी बुद्धि बताई।
ऐंचातानी मेट मेरे मन की, तत्वज्ञान दर्शाई॥टेक
सोता बहुत जुगों से भोला, सतगुरु आन जगाई।
करी कृपा गुरुदेव जी स्वामी, शुद्ध स्वरूप लखाई॥1
आशा तृष्णा दोनों थक गईं, निर्भय ध्यान धराई।
सांसा सुमरण हरदम हिलती, अजपा जाप जपाई॥2
गुरू मिला गोविन्द जब दरशा, दिल में दर्शन पाई।
इड़ा ऊर्ध बिच आप निरंजन, महरम बिरला पाई॥3
भदुराम समरथ मिल गये, दुतिया डायन छुड़ाई।
जीवादास महर सतगुरु की, भगती डोर हिलाई॥4

अर्थ—ऐसा है कि तत्त्वज्ञान सतगुरु के बिना नहीं पा सकते हैं, तत्त्वज्ञान आत्मज्ञान को कहते हैं और यथार्थ में जब तक आत्मा का अनुभव नहीं होवे, तब

कुछ ज्ञान ध्यान का पता नहीं, ऐसी अंधाधुन्ध में गम थी नहीं॥1
जब सतगुरु मिला तो सहन दई, तब लेते ही सहन तो पांचो मुई॥2
भागा घमंड गरूर मगरूर नहीं गया, काफर क्रोध अब सोच नहीं॥3
अटक मिटी कोई खटका नहीं, जीवादास पर कृपा सतगुरां की भई॥4

राग जिला ठुमरी

मैंने पाया दीदार गुरां की सही, जहां पर काल मौत विकार नहीं॥टेक
देखा नूर जूहर अपार वही, देखी शोभा अपार ताको पार नहीं॥1
न कोई काया वहां माया नहीं, वहां पर न कोई धूणी भभूत नहीं॥2
वहां नूर प्रकाश वहां सूर्य नहीं, जिनकी खुली किस्मत पहुंचे वहीं॥3
जीवादास दास पर दया जो भई, सतगुरु लिया चरणों में दुर्मत गई॥4

राग ठुमरी

मैंने ऐसा ज्ञान अब पाया सही, जैसे जीव ईश और ब्रह्मा मैं ही॥टेक
सुन संग अविद्या को जीव रही, सुन ईश माता संग भासा वही॥1
अब जीव जीव की भ्रमना गई, जब गल गया पाला तो पाणी थई॥2
हो अचल अब चलता नहीं, अब गया भ्रमना तौ निर्भय भई॥3
जीवादास दास पर दया जो भई, गुरु भदुराम जी मिले सन्त सही॥4

राग लम्बी

सुमरन सतगुरु भाया, कट गया पाप जासे आनन्द पाया॥टेक
प्रथम उलट सोहं को रोका, पलट सोहं के बैठ झरोखा।
खुल गई अटारी गगन महल की, प्रेम उर जोत जगाया॥1
बिना हाथ के बाजे बाजा, घण्टा शंख घड़ियाल बजाया।
बिन मुख बिन गायन गाया, बिन अक्षर का शब्द सुनाया॥2
बिना नैन निरखे जगमाया, क्या अद्‌भुत रास रचाया।
गरहर गरहर बादल गरजा, बिजली चमके मेह बर्षाया॥3
गुरु भदुराम जी समरथ पाया, मोय सत सुमरण समझाया।
रटते रटते दुरमति भागी, जीवादास गुरु चरणों आया॥4

राग ताल

गुरु साहेब शरण तुम्हारी, कर किश्ती पार हमारी॥टेक
पड़ा बीच भव जल धारा, गले जाल विषय ने डारा।
गुरु दीजिये मोही सहारा, पकड़ूं मैं शरण तुम्हारी॥1

शब्द राग आसावरी

धन्य गुरां सोई शब्द मैं पाऊं।
बारबार मैं शरण आपकी अरज आपने सुनाऊं॥टेक
तत शब्द के लुक नहीं मात्रा क्या कहके समझाऊं।
सोहं शब्द मुझको दीजे शब्दा में शब्द समाऊं॥1
बावन अक्षर से वो नहीं कईजे नहीं लिखने में आऊं।
छर अक्षर दोनों से न्यारो सब में रहा समाऊं॥2
सहज समाधि लगे शब्दों में सुन्न में बास बसाऊं।
झिलमिल झिलमिल ज्योति झिलके ज्योति में मिल जाऊं॥3
उन्हीं शब्दों संग चढूं मगन गढ़ अनहद डंक बजाऊं।
कहै जीवादास गुरां थारे शरणां भोर जन्म नहीं आऊं॥4

शब्द राग आसावरी

गुरां शाह सार शब्द मोय बताना।
सार शब्द ले पहुंचे परमपद येही सार निज ज्ञाना॥टेक
सार शब्द सम सबही तुल्य है सोही देवो गुरु दाना।
कृपा करके देवो स्वामी सोहं शब्द छिटकाना॥1
आप दयानिधि करुणा सिन्धु मेटो तिमिर निशाना।
क्षमा करो सब दोष हमारा चरण कमल लिपटाना॥2
गुरु कृपा से सब सुख उपजे किट जाय जम ठिकाना।
दुर्गुण सारा पल में धोवें सतगुरु सन्त सुजाना॥3
हरदम याद समर्थ का सुमरण कबहूं नहीं भुलाना।
कहै जीवादास गुरां के शरणा छाप शब्द की लगाना॥4

शब्द राग ताल

अरज आधीन से टेरी, बता गुरु ज्ञान की सेरी॥टेक
बिना गुरू ज्ञान के पाये, नहीं है मुक्ति भी तेरी।
कहते वेद पद नैना, यही है अरज अब मेरी॥1
नहीं है राग रोने में, न मुक्ति द्रव्य, खोने में।
मुक्ति तो गुरु चरणन में, सही ये बात तत्व हेरी॥2
हुआ मैं अब दास तेरा, करो दुःख दूर सब मेरा।
मेट दो योनि का फेरा, हुआ मैं शरण में मेरी॥3

दे दरशन दुविधा सब मेटी सत उपदेश दरशायो ये।
सुमरन दीना निज नाम का आनन्द रूप लखायो ये॥1
कृपा करी गुरुदेवजी स्वामी आपने आन चितायो ये।
ओहं उलट सोहं दीनी गुरुगम ज्ञान जगायो ये॥2
जागो ज्ञान मान मिटी ममता दुतिया भाव हटायो ये।
राम रस पाय समझ दी ऐसी हंसा लोक पठायो ये॥3
भदुराम जी हरिजन हरि का सत्य का भेद बताओ ये।
जीवादास कदम सतगुरु के सब सुख आनन्द पायो ये॥4

शब्द राग आसावरी

सैंयो सतगुरु है कृपाला ये।
तपत बुझावत मूढ़ जीव की मेटे भ्रम जंजाला ये॥टेक
सतगुरु शरण रहें जन कोई वाका कट जाय जाला ये।
पल मांही पार करे गुरुदेवा हैं ऐसे दीन दयाल ये॥1
सन्मुख हो, गुरु आज्ञाकारी पावो नजर निहाला ये।
सहज होंय ब्रह्म सम मेलो सत शब्दारा सुवाला ये॥2
धीरज ढाल देवो गुरु दाता सत्य नाम का भाला ये।
ज्ञान घुड़ले चढ़ बढो अगाड़ी मार हटावो जम जाला ये॥3
भदुराक जी सतगुरु स्वामी पिलाया प्रेम का प्याला ये।
जीवादास शरण सतगुरु की गुरु गम बिड़द सम्हाणा ये॥4

शब्द राग आसावरी

सैंयो गुरु पद आनन्द रासी ये।
जब तक पद पावे नाहीं, ना होवे मुक्ति उनकी ये॥टेक
मत अनेक में भटकत डोले नहीं मिटे संशय उनकी ये।
गुरु कृपा बिन पावे नाहीं निज आत्म की झांकी ये॥1
गुरु पथ पन्थ दीजे स्वामी तहां का हरिजन साकी ये।
सहन समझ रमज गुरुगम की न्यारी पड़दा में राखी ये॥2
वेद भेद पावे नहीं मूरख पीरं पैगम्बर थाकी ये।
भेद जिन्होंने पा लीना है गुरु चरणां चित राखी ये॥3
भदुराम जी गुरु दयाल स्वामी महिमा कहूं मैं उनकी ये।
जीवादास आस चरणों की सतगुरु आप अलेकी ये॥4

॥ गुरुमहिमा समाप्त ॥

कहत कबीर परतीतकर बावरे, रामका रूप तो कोई विरले ने ही जाना॥

शब्द राग आसावरी

साधो माई राम रूप हमारा।
हम राम के राम हमारा, रोम रोम चमत्कारा॥टेक
ज्ञान दृष्टि सब मांहि दृश्या, ज्यूं दीपक उजियारा।
भूला जीव भटकता ही डोले, जिनके घट अंधियारा॥1
भेद बिना नर फिरे भटकता, उलझाया जग सारा।
रमता राम सकल मांहि व्यापक, नहीं किसी से न्यारा॥2
तत्व प्रकृति तिरगुण माया, ये चेतन पूर्ण है अधारा।
खंड ब्रह्मण बाहर भीतर, चेतन पूर्ण है करतारा॥3
भदुराम जी सतगुरु मिल गया, दूजा मिला लगारा।
कह जीवदास सुनो भाई साधो, यह सिद्धान्त हमारा॥4

रेखता (प्रश्न)

राम राम संसार पुकारे, कहो जी राम का रूप कैसा।
कौन सुन्दरी सेज बिछावे, कौन सुन्दरी दीपक जोया॥
कौन सुन्दरी तत्व सारा, कह कमाल राम प्रीति कर।
ऐसा भेद बताओ हमको, प्राणी सहज ही होवे भव पारा॥

रेखता (उत्तर)

नाभि कोठरी में ज्ञान का मूल है, त्रिकुटों महल में राम रहता।
सरता सुन्दरी सेज बिछावे, निरता सुन्दरी दीपक जोया॥
सुकर्मणा सुन्दरी तत्व सारा, इस विधि उतरो भव पारा।
त्रिकुटी महल में झरे अमी फुवारा, कह कमाल कबीर का बालका
राम के रूप से कौन है न्यारा॥4

शब्द राग आसावरी

साधो भाई यही हमारा कहना।
रामजन पंथ में आओ, मेरा भाई पावो पद निरवाना॥टेक
रामजन पंथ है अमृत बूंटी, तुप्त होकर पाना।
पीवत बूंटी प्रेम सुख उपजे, मिट जाय आना जाना॥1
नहीं मनांदि किसी मनुष्य की, खुला हुआ मैदाना।
ज्ञान चौतरे बैठ बराबर, प्रेम पद परवाना॥2

सब दुःखों से छूटकर स्वर्ग धाम को चले गये।

शब्द राग आसावरी

साधो म्हारे लगन लगाई गुरु देवा।
भक्ति बाग लगाया जिसमें, बहुत तरह की मेवा॥टेक
ओहं अंगूर लगा हद भारी, सोहं शरीफा हेवा।
ओ३म्कार अमरूद अनोखा, रस अमृत झरेवा॥1
दया दाख नाम नारंगी, सत्य का सेव करेवा।
ओम् आम छाया सब घट में, जानत सन्त सुनेवा॥2
चेतन छुवारा बहुत ही मीठा, गुरुमुख ज्ञानी पेवा।
लौ लागी लौकाट फल मीठा, प्रेम प्रकाश पलेवा॥3
भदुराम जी बाग लगाया, जहां फूल रहे फूल फरेवा।
जीवादास खास फल पाया, गुरु सेवा से मिलेवा॥4

शब्द राग आसावरी

साधो बिना लगन नहीं पावे।
जागे न जोग भ्रम नहीं भागे, जुगां जुगां दुःख पावे॥टेक
लगन लगी प्रहलाद भक्त के, राम नाम लौ लावे।
नाना कष्ट दिया दुष्टों ने, प्रेम की पदवी पावे॥1
हरिश्चन्द्र मोरध्वज बलराजा के, सोहं यज्ञ रचावे।
बवना रूप धरो कर्ता ने, बली बैकुण्ठा जावे॥2
ध्रुव भक्त के लगन लगी भारी, राज तज बन जावे।
दर्शन देकर दुविधा काटी, अचल पदवी पावे॥3
भदुराम जी सत वैरागी, म्हारा सोता जीव जगावे।
जीवादास विनय कर जोरी, गुरु चरणां चित लावे॥4

शब्द राग आसावरी

धन गुरू ऐसी लगन लगाई।
सर्व व्याधा से दिल को हटा कर, अण विधि ध्यान धराई।
मूल कमल पद एड़ी लगा के, गहरा बन्ध लगाई।
प्राण अपान गुदा से जाग्या, षट चक्कर पर लाई॥1
दश दल कमल नाभि कहिये, विष्णु भोम बसाई।
सांस उसांस की तारी लागी, मरण सदा सवाई॥2

इड़ा पींगला एक घर ल्याई, सुष्मणा जाय मिलाई।
उलटी सहन बंक में चढ़ गई, गगन महल गरनाई॥3
खुली अटारी अगम महल की, चमका नूर इलाही।
जीवादास शरण सतगुरु की, सहन गुरां से पाई॥4

॥ इति लगन महिमा का अंग समाप्त॥

॥ इति॥

॥ श्री ॥

रामजन बोधसागर

हरि-महिमा का अंग

प्रारम्भ

साखी

जगतपति परमात्मा सबका पालनहार।
कोई घट खाली नहीं सब में भरा इकसार॥1
धन तुम्हें परमात्मा तेरी महिमा अगम अपार।
दया भई मुझ दास पर दिया मनुष्य अवतार॥2
क्या तेरी महिमा कहूं प्रभु थके वेद मुनिराज।
नाना विधि रचना रची किया अनोखा काज॥3
निराकार निर्लेप निरंजन निर्बन्धक निर्वाण।
दृष्टि में आता नहीं लिखें किस विधि वेद पुराण॥4
चार खूंट में फिर चुका अड़सठ तीर्थ धाम।
सब जगह तुम एक हो प्रभु पूरण संकट राम॥5

राग वेदान्त आसावरी

हरि जी मुझे तेरी कथा मन भाई।
हरि कथा से सब सुख उपजे, जगत कथा दुःखदाई॥टेक
वेद पुराण शास्त्र गीता जी, मिल हरि कथा सुनाई।
सन्त समागम हरि कथा, जगत में दुर्लभ बताई॥1
वेद पुराण की बाणी सुनी जब, मन में गई समाई।
तेरा नाम सदा दुःख भंजन, साधू संत सब गाई॥2
तेरी सत्ता सकल में व्यापक, तुझ बिन जगह न पाई।
ज्ञानी जान रहा मन मांही, अज्ञानी के मन नाहीं॥3

शब्द राग आसावरी

साधो भाई इस विधि हरि जी को ध्याया।
सहजे सुमरण होत घट भीतर, सामर्थ भेद बताया॥टेक
स्वांस उसांस की तसवीह बना, सतनाम धुन लगाया।
धीमा धीमा सांस फिरे दिल अन्दर, तीनों ही तार मिलाया॥1
स्वांसा सुमरणी हरदम हिलाया, उलट बंक पलटाया।
सोहं शब्द का उड़े हिलोरा, हिया बीच आनन्द छाया॥2
कुमती छोड़ सुमती घर आया, दुरमती दूर नशाया।
ज्ञान की लहर उठी उर मांही, सुखसागर में न्हाया॥3
सांचा शब्द मेरा गुरु लिखाया, बिन रूप वर्ण बिन काया।
जीवादास शरण सतगुरु की, सत निश्चय कर ध्याया॥4

॥ इति हरि–महिमा का अंग समाप्त ॥

॥ इति ॥

॥ श्री ॥

रामजन बोधसागर

उपदेश का अंग

प्रारम्भ

रेखता

लख चौरासी योनि में, भुगते दुःख अपार।
मनुष्य योनि मुक्ति की, चेते क्यों ना यार॥
चेत हो चेत प्राणी, अब तरने का वार।
अब की बारी चूकते, फिर डूबेगा मझधार॥
भदुराम गुरु मिल गये, भवसागर हो पार।
जीवादास धुन ध्यान में, धरे नहीं अवतार॥

साखी—चेत रे चेत बन्दे, क्यों कर पड़ा अचेत।
फिर पीछे पछतायगा, जब चिड़ियां चुग जायं खेत॥

शब्द राग धुन गजल

चेतना हो तो चेत प्राणी, सतगुरु आन चेताया है॥टेक
गर्भवास में भजन का, वह भी भजन भुलाया है।

अपनी स्त्री से कहकर स्वांस चढ़ा ली। स्त्री ने चुपचाप जल्दी खीर बनाकर परावठा-खीर खाई और बचे हुए को छींके पर धर दिया, खा-पीकर रोना शुरू किया। रोना सुनकर माता-पिता कुटुम्ब परिवार सब आ जमा हुए। पूछने लगे कि कैसे मर गया! रामचित्र पड़ा-पड़ा सुनता रहा; क्योंकि स्वांस चढ़ाने वाला कानों से सुनता रहता है। रामचित्र की बहू कहने लगी कि दर्द-दर्द करता मर गया और मरते-मरते यह कहा कि मुझे महात्माजी को बुला के उठाना। उसी वक्त महाराज को बुलाया और माता-पिता, स्त्री और कुटुम्ब कहने लगे, चाहे हम मर जावें, रामचत्रि जी जावे। महात्माजी ने कहा—अच्छा, सवा सेर गाय का दूध लाओ। दूध मंगाकर और इक्कीस बार ऊपर वार कर कहा लो, जो इसको पीयेगा वह मरेगा और रामचित्रजी जायेगा। माता-पिता और स्त्री सबने इनकार कर दिया। महात्माजी ने कहा—हम पी जायें और मर जायें? सेठ-सेठानी और स्त्री सब कहने लगे महाराज! बड़ी अच्छी बात है, बहुत द्रव्य लगायें, आपकी चकडोल पालकी निकालें, बगीचे बीच समाधि आदि छत्री बनवायें। महात्माजी ने दूध पीकर खुद सोकर लड़के रामचित्र को बैठा कर दिया। सेठ-सेठानी मीठे-मीठे शब्दों से बेटा-बेटा कहके पुकारने लगे। रामचित्र ने कहा—दूर-दूर, तुम सब झूठे हो, इतना प्यार करने वालों में से मेरी बाबत में मेरा तो कोई नहीं। अन्त में साधु भी बैठा हो गया और उस समय जितने आदमी वहां मौजूद थे, उन सबको भक्ति वैराग्य का उपदेश हो गया। सोचना चाहिए, दुनिया में अपना कोई नहीं है।

राग धुन ताल गजल कव्वाली

सतगुरु हमको भाया साधो, सच्चा भेद बताया है॥टेक
सतगुरु आया है हमें चिताया, कर महरम समझाया है।
उल्टी कला खेल कुदरत का, सोहं जाप जपाया है॥1
कुबुद्धि कंस को मार भगाया, धीरज दलीचे आया है।
अभिमान की लगी कचहरी, सत्य का न्याय चुकाया है॥2
मिटा तिमिर भाग मेरा जागा, भक्ति भूमि बसाया है।
इड़ा पिंगला बहै त्रिवैणी, तहां जा तीर्थ में न्हाया है॥3
सत्य का घाट पाट सतगुरु का, बरसे नूर सवाया है।
पहुंचा जो मुक्ति फल पाया, चौरासी नहीं आया है॥4
भदुराम जी सामर्थ दाता, जिन अनुभव ज्ञान बताया है।
जीवादास शरण गति तोरी, निज मुक्ति पदार्थ पाया है॥5

जीवादास मेहर सतगुरु की, पाये भक्ति पद निर्वाण।
निज घर मांही हुआ बसेरा, हरि भक्ति मन में भाई॥5

शब्द राग कसूरी

जग में हरि भजन ही सार, जासे भव जल होवे पार॥टेक
जन्म मरण की मिटे कल्पना, छूटे दुःख व्यवहार।
काल जाल का भय न होवे, यम की पड़े न मार॥1
चार धाम सब तीरथ न्हाते, करते दान अपार।
नाम बराबर नहीं त्रिलोकी, कहते शब्द पुकार॥2
जप तप व्रत नियम और पूजा, करते यत्न हजार।
हरि सुमरण बिन गोता खाते, भवसागर की धार॥3
सहजे सुमरण होई घट मांही, रात दिवस इकसार।
जीवादास पलक नहिं बिसारूं, लग रहा सोहं तार॥4

शब्द राग कसूरी

घट में फिर रही सुमरण माला, रट रही नाम दीन दयाला॥टेक
कर बिन माला फिरे है मेरी, पल पल नाम संभाला।
सुमरण सार पार भवसागर, जम कर जावे टाला॥1
आपा मांही आप फिरत हैं, कुदरत खेल निराला।
रोम रोम प्रभु रटे सदा ही, प्रकट ब्रह्म उजियाला॥2
सुमरण तार सोहं सत भंणया, धन्य पटवा पोवाला।
इस माला को फेरत मेरा, कटा कर्म का जाला॥3
भदुराम जी भेद बताया, विमल साधु मतवाला।
जीवादास कथे पद भाषा, नगर भाफरे वाला॥4

शब्द राग कसूरी

प्रभु तेरो रूप अपारा, कोई बिरला पावे पार॥टेक
तीन लोक विष्णु ने थापी, ब्रह्मा वेद विचार।
अष्ट योग शिवजी ने रचया, तो न बंधा शुमार॥1
खट पाखण्ड जग तीर्थ थापा, पेट तणां रुजगार।
स्वार्थ कारण पड़ा जाल में, उलझा सब संसार॥2
राजा परजा पड़े भूल में, भवसागर मझदार।
पाप कपट के बीच फंसा है, कैसे उतरे पार॥2

पात-पात और फूल-फूल में, साहिबा का चमकारा॥8
मंगसिर मेहर भई मुरशद की, दृश्या ज्ञान विस्तारा।
अचल पद में हुई स्थित, भागा तिमिर अंधियारा॥9
पोह पाला शरद ऋतु भारी, तन मन रहो हुशियारा।
ज्ञान गुदड़ी ओढ़ के बैठा, चले न यम का चारा॥10
माह में मौज भई अब मेरी, जन्म मरण से न्यारा।
अहं ब्रह्म आत्म अविनाशी, सोहम स्वरूप इकसारा॥11
फागण फाग रचा बेहद में, बहु रंग उड़े फुवारा।
जीवादास पुष्प मांही खूशबू, लिखा गुरु जी प्यारा॥12

शब्द राग आसावरी

साधो भाई येही सन्देहवा आवे।
जे पत्थर प्रेतों ने ध्यावे, मूरख मुक्ति नहीं पावे॥टेक
भैरों भूत भवानी पूजे, बजरंग बालाजी मनावे।
यह सब ढोंग अज्ञान कहावे, अन्त गती नहीं पावे॥1
बकरा काटे भैंसा मारे, कुक्कड़ मुर्गी भेट चढ़ावे।
उन पापियों को दया नहीं आवे, नैया ही बैर बसावे॥2
जोत जलाकर सन्मुख बैठें, बड़बड़ामे बंकारे मूंड हिलावे।
आप हुआ नरक अधिकारी, औरां ने बहकावे॥3
सबका साहिब सदा सुखदायक, उनको क्यों नहीं ध्यावे।
ध्यावे सोही प्रेम पद पावे, भव सागर तर जावे॥4
सत पुरुषां की शिक्षा न माने, ये जीवादास समझावे।
जो नित्य ध्यान धरे ईश्वर का, जम की मार न खावे॥5

सवैया

अपनी करनी से होत बड़ा नहीं जाति बड़ी कर्म नीच किया।
कूप से कूप समाय नहीं ताके सुत अर्पण समुद्र किया॥
गणिका सुत है रघुनाथ गुरु धिंवरीसुत व्यास अवतार लिया।
मरकण्डे सुत मारकण्डेऊ भया दासी का पुत्र बताय दिया॥
हेड़ी सुत भया बाल्मीकि जाने चार सम्पदा गाई दिया।
चमरा सुत भया रैदास भगतां के गोद सालिगराम भया॥
मैहतर सुत भया सरगरा पांडव सिर से ताका पांव छुया।

सतगुरु मिले ज्ञान जब पावे, मिट जाय भ्रम अंधियारा।
कह जीवादास सुनो भाई साधो, उतरो भवजल पारा॥4

॥ राम महिमा का अङ्ग समाप्त॥

॥ इति॥

॥ श्री ॥

रामजन बोधसागर

मन प्रमोद का अंग

प्रारम्भ

राग आसावरी

समझ मन सुमरो सृजनहारा।
ऐसा वक्त फेर नहीं आवे, मिले न दूजी बारा॥टेक
लख चौरासी भव दुःख भारी, भवसागर की धारा।
जो तू भव जल तिरना चाहे, ले सुमरन का सहारा॥1
महा पुरुषों की संगत करले, सुन तू ज्ञान विचारा।
भ्रम जाल का परदा फाटे, खुल जाय मुक्ति दुवारा॥2
जब तू था गरभ के अन्दर, कीना कौल करारा।
भगवत भूल बहुत दुःख पावे, पड़ेगी यम की मारा॥
भादुराम जी समरथ दाता, यूं कह बचन उचारा।
कह जीवादास मान मन मेरा, भज तू बारम्बारा॥4

राग आसावरी

अब मन हरि आनन्द पाले, थारो दोजख दोष मिटाले॥टेक
हरि नाम निज सार जगत में, उर बीज खूब जमाले।
होय अण रोग नहीं व्यापै, सुरती नाम में लाले॥1
पांचों प्राण एक घर ल्यायो, तीनों तार मिलाले।
प्राणायाम की योग युक्ति से, सांसां चक्र सुलझाले॥2
गंगा जमुना बहे सरस्वती, घाट सुकर्मणा न्हाले।
तीनों धीरा बहे एक सारा, ब्रह्म मुख दर्शन पाले॥3
जो कोई भेदी मिले तुम्हारा, उस संग भेद मिलाले।
भेदी नहीं बकवादी मिल जाय, उससे चुप लगाले॥4

प्राणी को चाहिए कि मन से हर समय होशियार रहे।

राग आसावरी

साधो भाई पहले थारो मन समझावो।
जब तक थारो मन नहीं समझे, निरभय पद नहीं पावो॥टेक
गति मति लिखो सब मन का, पकड़ एक घर लावो
ज्ञान ग्रन्थ को बांच सुनाओ, ब्रह्म भेद समझाओ॥1
समझाया से जो नहीं समझे, मार मार समझाओ।
स्वांस स्वांस पड़े मनवा को, सुमरण ध्यान लगाओ॥2
स्वांस स्वांस में सोहं बोले, अजपा जाप जपाओ।
हर दम जाप जपै मन मेरा, भवसागर तिर जाओ॥3
दिल दरया लहर जहांरी, अनुभव गोता ले न्हाओ।
कह जीवादास सुनो भाई साधो, आनन्द रूप समाओ॥4

राग गजल

मन तज माया का ख्याल जाल भव सारा।
हर दम रट 'निज नाम' होय निस्तारा॥टेक
मन माया जगत में जाल विषय की झारा।
जो करते इनका संग डूबें मझधारा॥1
ये पांचों पुत्र समझ विषयों का प्यारा।
यह गेर दिया मोह का जाल जीव भ्रमारा॥2
ले ज्ञान खड़ग हथियारा होय हुशियारा।
पांचों की गरदन काट होय जयकारा॥3
भदुराम जी सतगुरु सन्त मिले दातारा।
कह जीवादास कर विचार रटो ओंकारा॥4

राग आसावरी

समझ मन सार शब्द सुख राशी।
लख चौरासी का मिट जाय लेखा, मिटे जमड़ारी फांसी॥टेक
सार शब्द सतगुरु पावो, बिन गुरु भेद नहीं पासी।
शब्द कला सब घट में व्यापक, सतचित आनन्द रासी॥1
सार शब्द से भ्रम दशा छूटे, प्रकट कहूं प्रकाशी।
सांची बात मान मन मेरा, नहीं झूठ नहीं हांसी॥2

विनश गई गगन कहां रहे सांई, झूठा विश्वास लगाई॥3
धन-धन जागा भाग्य पूर्वला, मुझे भदुराम गुरुपाई।
जीवादास चरण मांही लोटे, गुरु मिलाया गम पाई॥4

राग आसावरी

मन तू भयो ब्रह्म बैरागी, थारे सहन गुरां गम जागी॥टेक
आचार-विचार त्याग तप तीर्थ, झूठी कल्पना लागी।
इनको छोड़ बसो बेहद में, मौज अगम की पागी॥1
जो खोजे श्रोता आपा मांही, बाहर भटके नर अभागी।
आप उलट आप मांहि देखा, ज्योति दशों दिशि जागी॥2
जैसे तेल रहे तिल अन्दर, ज्यूं पत्थर में आगी।
ऐसे ही साहेब रहे सब मांही, लख लीना बड़ भागी॥3
भदुराम जी गुरु समझाया, तब म्हारी दुर्मत भागी।
कह जीवादास सुनो भाई साधो, सुरत शब्द में लागी॥4

राग आसावरी

अब मन मुक्ति पदार्थ हीले।
सतगुरु साहेब मिला सचयारी, घुन्डी खोल बतलाले॥टेक
विषय भ्रम की छोड़ भ्रमना, त्रिगुण ताप मिटाले।
स्वांस उस्वांस की कर निरधारा, ऊर्ध सुर्ध सुलझाले॥1
षट चक्कर को छेद जुगत से, संग ध्यान लगाले।
त्रिवेणी के रंग महल में, सन्मुख दृष्टि जमाले॥2
पारस पद की कर उलखाई, सहन में सहन मिलाले।
गैवी गुफा में निर्भय बैठो, न कोई डिगे न हाले॥3
हो अचल चलो मत कबहूं, छल प्रपंच से मन हटाले।
कह जीवादास पलट मन मेरा, आत्म नगर बसाले॥4

साखी

मैं जानूं मन पत्थर है, अब मैंने पाई जान।
टांकी मारी शब्द की, तब निकाली कंचन खान॥1
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
नाम देव को हरि मिले, भाई मन ही के प्रतीत॥2

॥ मन प्रमोद महिमा का अंग समाप्त ॥

शब्द राग सोरठा

नर धोके में धक्का खावे, कोई भेद बिरला जन पावे॥टेक
आसन मार धरे नित्य ध्याना, रणुंकार धुन्न लगावे।
धुन्न की आवाज लगे सुन्न मांही, मन ही मन मुसकावे॥1
भजन करे भेद नहिं जाने, खाली ही होठ हिलावे।
गाना बजाना सीख जगत में, झूटा ही जगत रिझावे॥2
आर न पार सार नहीं जाने, मरजी मत ठहरावे।
आपा भूल अन्त मांही भटके, भेद बिना भय खावे॥3
भदुराम गुरु कृपा निधि स्वामी, भिन्न भिन्न कर समझावे।
जीवादास पुकारूं हेला, गुरु मिला ही गम पावे॥4

शब्द राग सोरठा

सब गम बेगम हो भूला, उनकी नहीं देही अस्थूला॥टेक
उलटा सीधा धरे नित्य ध्याना, कर कर ऊपर कूला।
धूनी लगा तपै नर कितना, डाल वृक्ष पर झूला॥1
अष्ट अंग योग का करके, मन अन्दर हद फूला।
आत्म बोध हुआ बिन भोंदू, झूठा सब ही असूला॥2
पीर पैगम्बर अली औलिया, काजी पण्डित मुल्ला।
कोई कोई सन्त हुए धरणी पर, पाया निज पथ मूला॥3
भदुराम गुरु ताज हमारे, हम चरणों की धूला।
जीवादास महर सतगुरु की, फूंका भ्रम का भूला॥4

राग आसावरी

सुनाऊं तोय ब्रह्म ज्ञान को लटको।
आवागमन की संशय मिट जाय, मिटे भ्रम को खटको॥टेक
पहली धारणा करो सेवा की, गुरु चरणों में लिपटो।
मान गुमान छोड़ सब मन का, अभिमान का पटको॥1
दूजी धारणा कर सत संगत की, पावे ज्ञान को गुटको।
पाप कर्म थारा सारा ही धुल जाय, फूटे पाप को मटको॥2
तीजी धारण करो नाम की, ज्यूं चढ़े बांस पर नटको।
ऐसे ही सूरत नाम पर मेलो, मिट जाय यम को झटको॥3
चौथी धारणा चेतन रहना, माया देख मत अटको।

शब्द राग आसावरी

हल तो ऐसो मिलो मेरा भाई, सतगुरु दिया समझाई॥टेक
ओंम्कार हल गाड़ गांगड़ा, आनन्द हाल लगाई।
ज्ञान ध्यान दो बैल जोत कर, काया खेत बुवाई॥1
सत की सिमल जैन को जूड़ा, जुगत जोतड़ों भाई।
नाड़ी निरभय की ऐसी बांधी, गहरी गांठ लगाई॥2
चेतन चाऊं कर्म कुश समझो, करनी कांटी जड़ाई।
भाव बीज ले बोया खेत में, मेहरम मोती पाई॥3
लगन लावणी करे भ्रम की, कुबध काट भगाई।
कह जीवादास सुनो भाई साधो, ये बिधि गुरु से पाई॥4

शब्द राग गजल

अब तुम दया करो गुरुदेव जी, निज वचन लिखाने वाले॥टेक
प्रथम मूल को बन्द लगवाया, फिर उलटी पवन चढ़वाया जी।
शुद्ध ध्यान बताने वाले॥1
सब द्वार बन्द करवाय, नाभी में सुरत लगवाया जी।
प्राणायाम करवाने वाले॥2
दिया दरश हृदय के मांही, वहां गुरु गम ज्ञान जगाई जी।
अनुभव अर्थ लिखाने वाले॥3
बेसुधि चक्कर सुलटाया, तालु विच रसना लगवाया जी।
अमीरस को पिलाने वाले॥4
सब रकार मकार हटवाया, फिर त्रिकुटी भवन खुलवाया जी।
नूर में नूर मिलाने वाले॥5
भदुराम जी सतगुरु पाया, यह जीवादास गुण गाया जी।
भव दुःख मिटाने वाले॥6

शब्द राग आसावरी

सतगुरु मोहे तार दिया मेरे दाता।
जन्मा जन्म कबहुं नहीं भूलूं, बार ही बार गुण गाता॥टेक
सोता जीव जगत के मांही, सतगुरु आण जगाता।
पार ब्रह्म की झांकी देकर, शुद्ध सुख रूप दिखाता॥1
भव जल मांही अटकी नय्या, फिर फिर गोता खाता।

लाया तणो खेल सब झूठो, बेहद खेल सच्चयो री।
जीवादास तजो विषयन को, अमृत रस चखयो री॥4

शब्द राग आसावरी

धन गुरु मैं रहूं आप संग, मुझे काल जाल गम नाहीं॥टेक
जैसे तरंग उफने जल अन्दर, जल मांही जाय समाई।
अष्ट पहर रहूं पास आपके, ज्यूं सोना सुहागा मांही॥1
दुतिये भाव मिटे सब झगड़ा, अविद्या दूर नशाई।
अकल कला पर आसन कीना, चेतन रहूं सदा ही॥2
जाग्रत स्वप्न सुशुप्ती तुरया, यह मिट एक हो जाई।
जीव-शीव की मिटी फोरणां, स्वयं प्रकाश सुहाई॥3
स्वयं प्रकाशी सर्व का द्रष्टा, उर अन्दर ठहराई।
प्रीति पुरबली से पायो प्रीतम, अपना भाग सराई॥4
भाग बिना भगवत नहीं, मिलते श्रुति सन्त सुनाई।
जीवादास विनय कर जोरी, हरि गुरु अन्तर मिट जाई॥5

॥ इति बसन्त का अंग समाप्त ॥

॥ श्री ॥

रामजन बोधसागर

फकीरी का अंग

प्रारम्भ

राग सारंग आसावरी

फकीरी सतगुरु दई बताई।
मान गुमान छोड़ सब मन का, गुरु चरणां चितलाई॥टेक
मेहर भई जब महरम पायो, दिया सब भ्रम नशाई।
जागी सुरत तिमिर सब भागा, फिर पार ब्रह्म लखाई॥1
चारुवाणी चारुखाणी, आर पार दिख रहे खुद सांई।
सत शब्दां का मानों इतबारा, अनादि अखण्डी भाई॥2
जिसने अनादि शब्द को चीना, मस्त फकीरी हो जाई।
ऊर्ध सूर्ध बीच डोरी लागी, सहजे सुमरण लाई॥3
कर सुमरण सोहं गढ़ चढ़ कर, अनहद नाद बजाई।

अनन्त भानू सुन्न की शोभा, जहां काल जाल ना खाई॥4
असल फकीरी ऐसे होती, समझ सन्त जन पाई।
आवागमन की संशय मिट जाय, जीवादास फरमाई॥5

शब्द राग फकीरी आसावरी

फकीरी है मेरी मुझ मांहीं।
फिकर कपट मेटा सब मनका, ऐसी अदल चलाई॥टेक
मूल कमल के बन्द लगाकर, आसन पदम जंचाई।
षट चक्कर का महरम कीना, नाथ प्यारा वहां ही॥1
नाभी कमल पर निष्कलंक निरखा, सांसा डोर हिलाई।
ओहं सोहं सांसा मांहि सोधि, पूरी जुगत लगाई॥2
हृदय आकाश से दूर आकाश है, शिव स्थान वहां ही।
कण्ठ कमल से आगे देखो, त्रिकुटी महल के ठांई॥3
पुरुष पुरातन सब का द्रष्टा, रूप बरना नहीं जाई।
जीवादास फकीरी अन्दर, मिल जाये सच्चे सांई॥4

शब्द राग सारंग

फकीरी आत्म तत्व निर्वाण।
लिखतां ही लैन कटे करमों की, छूटे चारु खाण॥टेक
शील पोशाक पहर सुख सुमरण, छोड़ो सन की कांण।
अधर दलीचे आसण लावो, बैठा मौजां तांण॥1
सत का डंडा जुगत की झोली, रक्खो नाम कृपाण।
ज्ञान मसाल जगे दिन राती, हुई भ्रम की हाण॥2
गुरु गम टोप शब्द की सेली, दया ढाल कर जाण।
काल बली से सन्मुख झूजे, जद माचे घमसाण॥3
हर्ष आड़ बन्द सहज लंगोटा, खींचों खींचा ताण।
जीवादास फकीरी अलमस्ता, पाया पद निर्वाण॥4

शब्द राग सारंग सोरठा

फकीरी ज्यूं बरछी की भाल।
डरता डूब गयो भव जल में, डटता हो गया निहाल॥टेक
कच्चा जीव जगत के मांहि, ज्यूं रजका की बाल।
थोड़ा ही दिन सोभा रजका की, आखिर खा जाय काल॥1

भगबां वस्त्र पहर जगत में, बन गया वीर विकराल।
आत्म तत्व चीना बिन भोंदू, भटकत फिरे कंगाल॥2
सोही फकीर हुआ भव पारा, निज पद लिया संभाल।
जिन चट भूल भ्रम नहीं भासे, जगती ज्ञान मसाल॥3
भदुराम जी फकीर अलमस्ता, किया पार तत्काल।
जीवादास फिकर भया दूरा, गुरु मिल गया दीनदयाल॥4

शब्द राग सारंग फकीरी

फकीरी ऐसे करो मेरे भाई।
मान गुमान छोड़ सब मन से, कुकर्म देवो छिटकाई॥टेक
क्रोध अभिमान अहंकार ईर्षा, तज झूठी गुमराही।
सतगुरु सन्मुख रहो सदा ही, यम की मार न खाई॥1
प्रेम प्याला पिया नाम का, अलमस्त रहो सदा ही।
सोहं सत्य जपो लौ लाई, सहज ही मोक्ष हो जाई॥2
शील स्वभाव अमृत मुख बाणी, अन्तःकरण शुद्धताई।
जीवाघात करो नहीं कबहूं, दया धर्म चितलाई॥3
ढोंग फितूर पाखण्ड सब त्यागो, सुमरण में सुधि धाई।
जीवादास कठिन वो मन्जिल, पहुंचे बिरला जाई॥4

शब्द राग सोरठा सारंग

साधो भाई हम हैं सन्त प्रवीना।
जष्ट पहर जाग्रत और सोवत, सदा भक्ति रस पीना॥टेक
शम कूं साधि काल बस कीना, पाया शब्द नगीना।
मद भोंदू को ऐसा पकड़ा, ज्यूं फंसी जाल में मीना॥1
कुबुध कंस को मार हटाया, क्रोध कैद कर लीना।
हरि दुहाई फिरो शहर में, अनुभव राज हम कीना॥2
धीरज दलीचे आकर बैठा, सत का हुकम दे देना।
सत में रहना सत ही कहना, सत में जाय बसीना॥3
जीवादास कहे कर जोरी, गुरु भदुराम हम कीना।
ज्ञान घोड़ा पर कर असवारी, राह अगम घर लीना॥4

शब्द राग चलती परोज

फकीरा प्रभु! सब घट मांही रहता।

जागृती संपादून एका क्षणात शब्दब्रह्मभेद करून इंद्रियांना काही कळण्यापूर्वीच प्रमेयरूप किंवा शिवरूप व्हावे म्हणून जेव्हा श्रीज्ञानेश्वरमहाराज सांगतात तेव्हा त्यांनी श्रोत्यांकडून जी अपेक्षा केली आहे ती इतकी मोठी आहे की, त्यासाठी महायोगी श्रीनिवृत्तिनाथांसारख्या किंवा महायोगी श्रीगुळवणीमहाराजांसारख्या असामान्य, लोकोत्तर व शिवस्वरूप सद्गुरूंचीच गाठ पडणे आवश्यक आहे याची खात्री पटते.

अशा प्रकारे या कुंडलिनी जगदंबेचे स्वरूप असल्याने "योगरहस्य" या ग्रंथात श्रीगुलाबरावमहाराज "कुंडलिनी जगदंबा" या प्रकरणात "ते कुंडलिनी जगदंबा ॥६.२७२॥" या ओवीवर टीका करून तिचा भावार्थ स्पष्ट करताना असे म्हणतात की–

सकल योगाचिया शक्ती । पार्था जेथ एकवटती ।
जियेते ब्रह्मवेत्ते वेदांती । स्तवनें बोलती शुद्ध बुद्धी ॥६॥
मांत्रिक बोलती अलौकिक शक्ती । जन्मसिद्ध अलोट बुद्धी म्हणती ।
जी प्रणवाची जन्मदाती । कुंडलिनी म्हणती योगी तिये ॥७॥
कुंडलाकार जिचे शयन । यालागीं कुंडलिनी अभिधान ।
कुंडल म्हणजे वर्तुळ पूर्ण । प्रणवाकार सिद्ध तो ॥८॥
प्रणवाची आद्य रेषा । तो कुंडलाकार वीरेशा ।
तेवीं कुंडलिनीचा ठसा । जाण विशेषां आदिपुरुषीं ॥९॥
प्राणप्रतिष्ठा करिता मूर्ती । जैसें देव आविर्भवती ।
कीं शून्य दाखवावया निश्चिती । बिंदु उपाधी करणें पडे ॥१०॥
कीं रूप दाखवावया जाण । पदार्थाचा आकार पूर्ण ।
उपाधि होय संपूर्ण । जयापरी ॥११॥
कां शब्द जरीं व्यक्त होवावा । तरी मुख उपाधि लागावा ।
उपाधिवांचोनी आघवा । शक्ति समुदायो व्यक्त नव्हे ॥१२॥
कीं अग्नि जरी व्यक्त करणें । तरी इंधनाची उपाधि घेणें ।
त्यावीण एवढा तेवढा म्हणणे । अग्निसी न लगे ॥१३॥
तैसी हृदयाची सत्त्वशक्ती । ते सूक्ष्म असे निश्चितीं ।
ती आणावया अभिव्यक्ती । एक नाडीची आकृती घेतली ॥१४॥
कंदावरी कुंडलाकार । नाडीचा असे आकार ।
तोचि तेथ करूनि ज्ञान् प्रकार । शक्ति साचार व्यक्त करिती ॥१५॥
जैसे काष्ठ तंव आधीं श्वेत । परी अग्निसंगे होत आरक्त ।
तेवीं नाडीच पैं निश्चित । ध्यानसंगे कनकमय ॥१६॥
जी नाडीमय होती पूर्वीची । ती ध्यानें जाहली सुवर्णाची ।
सत्त्वगुणें चैतन्याची । अभिव्यक्ति ही ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूर्यकांतामाजीं जाण । प्रतिबिंबे अदितिनंदन ।
तेवीं नाडीच सत्त्वमय होता जाण । श्रीपरमात्मा प्रतिबिंबे ॥१८॥

पद: – सुंदर कनकसमान । अंबा । सुंदर कनकसमान ॥धृ॥
योगी सांडुनी विषय कचाटे । ध्याती गत अभिमान ॥अंबा॥
प्रवण जपुनि निज अंतरीं । मिळविती प्राणापान ॥अंबा॥
माया कुंडलिनी ही नांवे । केवळ शब्द प्रमाण ॥अंबा॥
ज्ञानेश्वरगुरुचरणप्रसादें । कीजे अमृतपान ॥अंबा॥

दोहा:–हृदय–कमल अति पावुनी जपती सोहं नाम ।
वश करोनी निज शक्तीतें पावती दक्षिण वाम ॥२॥
एवं आदि पुरुषाची माया । जिच्या योगें धनंजया ।
तो अवतार घेवोनिया । जन उद्धरी ॥१९॥
आतां पौराणिक मतें । जे पृथ्वी शेषावरी वसते ।
आणि पहातां ज्योतिषमतें । पृथ्वी उभी आकाशीं ॥२०॥
पृथ्वीस धर्ता सहस्रफणीं । ऐसें बोलिलें असे पुराणीं ।
आणि सिद्धांत शिरोमणी । नान्याधार म्हणोनि सांगे ॥२१॥
येथें दोघांचा समन्वय । म्हणाल कोण्या रीति होय ।
तरी ऐका तेही सोय । निश्चितपणे ॥२२॥
कटीस्थानीं असे धरणी । कंदस्थानीं कुंडलिनी ।
ती जेवीं कां सहस्रफणी । तेवींच असे ॥२३॥
म्हणोनि शेषावरी धरणी । ऐसें बोलिलें पुराणी ।
किंवा उपपत्ति व्याख्यानी । दुसरीही असे ॥२४॥
व्यष्टि पृथ्वीचा शेष कुंडलिनी । समष्टि पृथ्वीचा सहस्रफणी ।
ती ही जाणिजे कुंडलिनी । महाशक्ति ॥२५॥
व्यष्टी देहांत कुंडलिनी सर्पिणी । विराट देहांत कुंडलिनी सहस्रफणी ।
एवं गुप्तरूपें ज्ञान पुराणीं । दृश्य ज्ञान सिद्धांत शिरोमणी बोलला ॥२६॥
ऐशी ती कुंडलिनी विश्वजननी । विश्व बीजाचिया कडसणी ।
विश्ववृक्षउभारणी । निकी करी ॥२७॥
पाणी आकाशाचिया येवढें करणें । तरी तयाचे बाष्प होणें ।
आणि पाणीयाचा संकोच करणें । तरी तुहीन होणें तयाचे ॥३१॥
तेवीं ब्रह्माकाशीं विचरणें । तरी कुंडलिनीसही सूक्ष्म करणें ।
आणि कुंडलिनीपासोनी सिद्धी घेणें । तरी येणें सृष्टि आंत ॥३२॥
पावावया ब्रह्मस्थानीं । मध्यस्त हीं कुंडलिनी ॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मेरुदण्ड के निचले भाग के अन्त में एक लिङ्ग, बन्द कली के समान है और उसमें सूक्ष्म छिद्र है जिसे सुषुम्णा नाड़ी का मुख कहते हैं तथा इस बन्द कली के समान लिङ्ग को "स्वयंभू" लिङ्ग कहते हैं (Conus Medullaris)। इस स्वयम्भू लिङ्ग के चहुँओर साढ़े तीन चक्कर में कसकर लिपटी हुई, अत्यन्त महान् तेजस्वी, स्वर्ण प्रदीप्त ज्योतिर्मय स्वरूप, सर्प के सदृश अपनी पूँछ को मुख में लिये, सुषुम्णा नाड़ी के छिद्र को रोके हुई जो जीव शक्ति विराजमान है उसे "सुप्त कुण्डलिनी" कहते हैं। (Dormant Cosmic Energy)

१ यत्कुमारी मन्द्रयते यथो विद्य पतिव्रता अरिष्टं यत्किञ्चक्रियते अग्निस्तदनु वेधति। कुण्डलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते।

यद्यस्मिन् चक्रे कुमारी कुमारावस्थामापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रं स्वरं करोति।

पुरं हिरण्यमयीं ब्रह्मा विवेशो पराजिता। (यजुर्वेद)

२ कुण्डले अस्या स्तः इति कुण्डलिनी ॥
मूलाधारस्य वह्न्यात्मतेजोमध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणकाराय तैजसी ॥
महाकुण्डलिनी प्रोक्ता परब्रह्मस्वरूपिणी।
शब्दब्रह्ममयी देवी एकानेकाक्षराकृतिः ॥
शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा।

(योगकुण्डल्युपनिषद्)

३ ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म कुण्डलिनि स्वरूपिणे ॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमोनमः। (महानिर्वाण)

४ अथ कुण्डलिनीं ध्यात्वा स्तोत्रं शृणु तत् कथयामि तेः—
नमस्ते देवदेवेशि ! योगीशप्राणवल्लभे !।
सिद्धिदे वरदे मातः स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिते ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसुप्तभुजगाकारे सर्वदा कारणप्रिये।
कामकलाह्विते देवि ममाभीष्टं कुरुष्व च॥
असारे घोरसंसारे भवरोगान् महेश्वरि।
सर्वदा रक्ष मां देवि! जन्मसंसारसागरात्॥ (यामल)

५ मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिद्रवां प्रिये॥
विसतन्तुस्वरूपां तां विन्दुत्रिवलयां प्रिये। (ज्ञानार्णवतन्त्र)

६ यदोल्लसति शृङ्गार-पीठात् कुटिलरूपिणी॥
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्। (वामकेश्वर तन्त्र)

७ अष्टधा कुण्डलीभूतामृज्वीं कुर्यात्तु कुण्डलीम्॥ (योगशिखोपनिषद्)

८ मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता।
शयिता भुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता॥
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवं पशुर्यथा।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत्॥ (घेरण्डसंहिता)

९ कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति॥
कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्रीप्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्॥ (गोरक्षपद्धति)

१० आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं दृढाम्।
अपानवायुनारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान्॥ (शिवसंहिता)

११ पराशक्तिः कुण्डलिनी विसतन्तुतनीयसी। (ललितासहस्रनाम)

१२ शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननी व्यापारबद्धोद्यता॥ (लघुस्तुतिः)

१३ शक्तिःकुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा।
मूलकन्दफणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत्॥ (सौन्दर्यलहरी)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१४ मूलाधारे तु या शक्तिर्भुजगाकाररूपिणी।
जीवात्मा परमेशानि तन्मध्ये वर्त्तते सदा॥ (मातृकाभेद तन्त्र)
१५ कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढ़ानां यस्तां वेत्ति स योगवित्॥
कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत् परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः॥
सशैलवनधात्रीणां यथाऽऽधारोऽहिनायकः।
सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाऽऽधारो हि कुण्डली॥ (हठयोग प्रदी०)
१६ ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गसंस्थिताम्।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्॥
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्ववाहिनीम्।
हूँकारवर्णसम्भूतां कुण्डलीं परदेवताम्॥ (शाक्तानन्दतरङ्गिणी २५)
१७ ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्॥ (यामल)
१८ मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किञ्चिन्न सिध्येत मंत्रयंत्रार्चनादिकम्॥
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसंचयैः।
तदा प्रसादमायाति मंत्रयंत्रार्चनादिकम्॥ (तंत्र)

जो समस्त जगत् को चलाती है उसे महा कुण्डलिनी कहते हैं और व्यष्टिरूप से मानव जीव को चलाने वाली को कुण्डलिनी कहते हैं (योग कुण्डल्युपनिषद्)। यह कुण्डलिनी ही ॐ कार स्वरूपा व्यापक परब्रह्म की शक्ति स्वरूपा, व्यष्टिरूप से मानव देह में केन्द्रीभूत जीवनी शक्ति है जो कि ७२००० नाड़ियों का षट्चक्रों द्वारा सञ्चालन करती है। समस्त योगों का आश्रय कुण्डलिनी ही है। "सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाऽऽधारो हि कुण्डली" (हठयोग प्रदीपिका उ० ३ श्लो० २)। बिना इसके प्रबोध के सर्व क्रियायें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥ २७॥

जो वैराग्यकी शक्तिसे सारे विषयोंको निकाल फेंकते हैं और अपने शरीरमें मनके वृत्तिको एकाग्र कर लेते हैं, वे अपनी दृष्टिको उलटकर उस सन्धि-स्थानपर लगा लेते हैं, जहाँ दोनों भौंहें मिलती हैं और तब दायें और बायें घ्राणेन्द्रियके दोनों छिद्र बन्द करके प्राणवायु और अपानवायुको एकमें मिला लेते हैं तथा उन्हें अपने चित्तके साथ चिदाकाशकी ओर ले जाते हैं। (१५१—१५३)

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥ २८॥

जिस प्रकार गंगा नदी रास्तेमें पड़नेवाले नदी-नालोंसमेत समुद्रमें मिलती है, ठीक उसी प्रकार वे लोग भी परब्रह्मके साथ इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि फिर उन्हें पृथक् करनेका सवाल ही नहीं उठता। हे अर्जुन! जब समाधिकी अवस्थामें प्राण और अपानवायुसे चिदाकाशमें मनका लय हो जाता है, तब सारी वासनाओंके विचार स्वतः ही बन्द हो जाते हैं। जिस मनरूपी वस्त्रपर यह संसाररूपी चित्र चित्रित होता है वह इस अवस्थामें विदीर्ण हो जाता है। जैसे सरोवरके सूख जानेपर उसमें पड़नेवाली प्रतिच्छाया स्वतः नष्ट हो जाती है, वैसे ही इस समाधिकी अवस्थामें मनका भी बिलकुल सफाया हो जानेपर अहंभाव आदि वृत्तियोंका फिर भला कहाँ ठिकाना! इसीलिये जिन लोगोंको इस ब्रह्मसुखका अनुभव प्राप्त हो जाता है, वे लोग देहके होते हुए भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं। (१५४-१५७)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ २९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

मैं अभी यह बतला चुका हूँ कि जो लोग शरीरके रहते हुए भी ब्रह्मत्व-

तूं ही तू ही तब लग कहिये, जब लग मैं मैं आगे ।
मैं मैं मैं मैं होय विलय जब, सोहं सोहं जागे ॥१॥

सोहं सोहं कहै जबै लग, तब लग दूजा कहिये ।
'सुन्दर' एक न होय तहां कुछ, ज्यों का त्यों ही रहिये ॥२॥

(११) परम सुख का अधिकारी

मन मेरे सोय परम सुख पावै,
जाग प्रपंच[1] माहिं मत भूले, यह औसर नहिं आवे ॥टेक॥ संसार[1]
सोवै क्यों न सदा समाधि में, उपजै अति आनन्दा ।
जो तू जागे[2] जग उपाधि में, क्षीण होय ज्यों चन्दा ॥१॥ भोग भोगन में[2]

सोय[3] रहैते हो अखंड सुख, तो तू जुग जुग जीवे । समाधि में[3]
जो जागे[4] तो पड़े मृत्यु मुख, बाद वृथा विष पीवे ॥२॥ भोगों हित[4]

सोवे जोगी जागे भोगी, यह उलटी गति जानो ।
'सुन्दर' अर्थ विचारे याका, सोई पंडित ज्ञानी ॥३॥

(१२) ब्रह्म स्वरूप घर की स्थिति

सन्तो ! घर ही में घर[1] न्यारा, शरीर रूप घर में ब्रह्म रूप घर अलग[1]
पिंड ब्रह्मांड तहां[2] कुछ नाहीं, निरालम्ब निरधारा ॥टेक॥ ब्रह्म घर में[2]
दिवस न रैनि सूर नहिं ससिहर, अग्नि पवन नहिं पानी ।
धर आकाश तहां कुछ नांहीं, ता घर सुरति समानी ॥१॥

वेद पुराण शब्द नहिं पहुंचे, मन ही मन में जाना ।
उलटा पंथ मीनका मारग, शून्य[3] शून्य पयाना ॥२॥ निरविकार हो[3]

आदि अन्त मध्य तहां नांही, उतपति प्रलय न होई ।
तीनोंह गुण में अगम अगोचर चौथा पद है सोई ॥३॥

सदा निरंजन है अविनाशी, आपै आप अकेला ।
दादूदास जाय तहां सोया, जीव ब्रह्म से मेला ॥४॥

(१३) हरि का भेद विरला पावे

12:43
2015.540691.Sundar-Gr...

निश बासर भरमे अति भारी, कहा न माने बडा विकारी ।।१।।
भटकत डोले बिन ही काजा, बेशरमी को नैंकु न लाजा ।।२।।
मेरा वश नाही कुछ याते, बारबार पुकारत ताते ।।३।।
आपही कृपा करे हरि सोई, तो 'सुन्दर' थिर काहे न होई ।।४।।

(२) जोगी अवधूत को उपदेश

अवधू आतम काहे न देखे,
जाहि हते सोई तुझ माही, कहा लजावत भेखें ।।टेक।।
हिंसा बहुत करे अपस्वारथ, स्वाद लगा मद[1] मासै । मदरा[1]
महामाइ भैरू को शिरदे, आप हि बैठा ग्रासै[2] ।।१।। खाबे[2]
गोरख भाग भखी नहिं कबहू, सुरापान नहिं पीया ।
झूठ हि नाम लेत सिद्धन का, नरक जायगा भीया[3] ।।२।। भाई[3]
कान फाड के भस्म लगाई, योगी किया शरीरा ।
सकल वियापी नाथ न जाना, जन्म गमाया हीरा ।।३।।
नाटक चेटक जत्र मत्र कर, जगत महा भरमावै ।
'सुन्दरदास' सुमर अविनाशी, अमर अभय पद पावै ।।४।।

(३) शरीर के उद्धार का साधन करो

साधो साधन तन का कीजे,
मन पवना पचो वश राखै, शून्य[1] सुधा रस पीजे ।।टेक।। विकार शून्य[1]
चन्द[1] सूर[2] दोउ उलट अपूठा, सुषमन के घर लीजे । ईडा[1] पिंगला[2]
नाद विन्दु जब गाठ[3] पडे तब, काया नैंकु न छीजे ।।१।। स्थिर हो[3]
राजस तामस दोऊ छाडै, सात्विक बरतै तीजै ।
चौथा पद मे जाय समावै, 'सुन्दर' जुग जुग जीजे ।।२।।

(४) निज गुरु स्थिति परिचय

मेरा गुरु दो पख रहित समाना,
पिंड ब्रह्म निरतर खेले, ऐसा चतुर सयाना ।।टेक।।
पाप पुण्य की बेडी काटी, हर्ष शोक नहिं आना[1] । हृदय मे नही आते[1]
राग द्वेष से भया विवर्जित, शीतल तपति बुझाना ।।१।।
हिन्दू तुरक दुहू से न्यारा, देखे वेद कुराना ।
मैं तै मेट तजा आपा पर, नीच ऊच सम जाना ।।२।।
दिवस न रैनि सूर नहिं शशिहर, आदि अत भ्रम भाना[2] । नष्ट[2]
जन्म मरण का सोच न कोई, पूरण ब्रह्म पिछाना ।।३।।
जागि न सोवे, खाय न भूखा, मरे न जीवे प्राना ।
'सुन्दरदास' कहै गुरु दादू देखा अति हैराना ।।४।।

छादन = पहनने के लिए वस्त्रादि । ज्यां...पीर = जिसे आत्मानुभूति हो गई, जिसने पूर्ण तत्त्व का अनुभव कर लिया । अवगत = अविगत, अज्ञात । खाली = पोपला, भीतर शून्यवत् । दरियाव = समुद्र, जलराशि ।

चौपाई

जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नांहीं । पाई राम धाम घट मांहीं ॥
उर अस्थान पाय बिश्रामा । सब्द किया जाय नाभि मुकामा ॥१॥
नाभि कमल में सब्द गुंजारै । नीसै नारी मंगल उचारै ॥
रोम रोम झुणकार झुणक्कै । जैसे जंतर तांत ठुणक्कै ॥२॥
माया अच्छर इहां बिलाया । ररंकार इक गगन सिधाया ॥
पच्छिम दिशा मेरु की घाटी । बीसों गांठ घोरसें फाटी ॥३॥
त्रिकुटी संगम किया सनाना । जाय चढ़्या चौथे अस्थाना ॥
जहां निरंजन तख्त बिराजै । ज्योति प्रकास अतन रवि राजै ॥४॥
अणहद नाद गिणंत नहि आवै । भांति-भांति की राग उपावै ॥
सुवै सुषुमना नीर फुंहारा । सून्य सिखर का यह बिवहारा ॥५॥

जंतर तांत = किसी वाद्ययंत्र में लगी चमड़े की तांत । उपावै = उत्पन्न करता है ।

अरिल्ल

बिरह घटा घररात नैंण नीझर झरै ।
चित चमंकै बीज कि हिरदो ओल्हरै ॥
बिरहिन हूं बेहाल दया कर न्हालियो ।
परिहां, रामचरण कूं राम बेग सम्हालियो ॥१॥

बिरहा कर ले करद कलेजा काटिहै ।
पीव न सुणै पुकार कि हिवरा फाटिहै ॥
सबै बटाऊ लोग न पूछै पीडरे ।
परिहां, रामचरण बिन राम करै कुण भीडरे ॥१॥

बिरह सपीड़ा सास वहै उर करद रे ।
घाव गयो है फाटि बध्यो अति दरद रे ॥
निस दिन करे पुकार बैद्य हरि आवही ।
परिहां, रामचरण बिन राम मरै नहिं पाव ही ॥

सूई कर निज सार सूर हित कीजिये ।
अपना हाथां आप घाव सी लीजिये ॥
अब नहिं कीजै ढील घाव अति बिस्तरे ।
परिहां, रामचरण बेहाल बिरहनी दुखभरे ॥

गुरां बताया निकट दूर कैसे भया ।
मोहा माया की बाड़ आसरे होय रह्या ॥
मैं निर्बल निरधार न टूटे बाड़ जी ।
परिहां, तुम समर्थ बल जोर की पड़दा फाड़ जी ॥

घररात = घहराती है । बीज = बिजली ।

08:39

न सूर्य का उदय होता है और न चन्द्रमा ही उदित होता है। ऐसे स्थल पर वह आदि निरंजन पुरुष आनन्दपूर्वक निवास करता है जो कुछ ब्रह्माण्ड में है उसको पिण्ड में जान लो। इस अमेद ज्ञान रूप मुक्तावस्था को प्राप्त करते जो आत्म स्वरूपी मन मानसरोवर में स्नान करते हैं, निमग्न हो जाते है ज्ञान स्वरूप (जीव ईश्वर के अमेर द्वार व्यंजित चैतन्य) का शाश्वत् ध्यान करते हैं वे पाप पुण्य में लिप्त नहीं होते हैं अर्थात् वे कर्म बन्धन से परे लगते हैं। उसे शरीर में ही समझो, जो शरीर में बोलता है, वही आत्मा राम है, इसी ज्योति में जो मन स्थिर करता है वह भव सागर को पार हो जाता है।

अनहद सबद होत झनकार, तँह पउढ़े प्रभु श्री गोपाल ॥
अखंड मंडल मंडित मंड, त्री असनानं करै त्री खंड ।

X X X

ऊहां सूरज नांहीं चंद, आदि निरंजन करै अनंद ॥
जो ब्रह्मांडि पिंडि सो जांनु, मांनसरोबरि करि असनांनु ।
सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्नि अरु पाप ॥
अबरन बरन धांम नहिं छांहां, दिवस न राति कछु है तहाँ ।
टार्‍यौ टरै न आवै जाइ, सहज सुन्नि महिं रह्यो समाइ ॥
मन मद्धे जांनैं जे कोइ, जो बोले सो आपै होइ ।
जोति मांहि मन असथिरु करै, कहे कबीर सो प्रानीं तरै ॥[1]

कबीर का मानना है कि निर्गुण–निराकार ब्रह्म वाणी से परे है, वह अनुभूति का विषय है और अनुभूति का वर्णन सम्भव नहीं है – 'कहहु निरंजन कौने बानी।'[2]

---

१. कबीर वाङ्मय, सबद ४३.

२. वही, सबद ६९.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

प्राण संचरित होता रहता है और शून्य चक्र में पूर्णता का फल लगता है। सहस्रार अथवा शून्य चक्र में कुण्डलिनी के पहुँचने पर जीवात्मा अपने वास्तविव स्वरूप का अनुभव करता है अर्थात् अपनी अन्तर्ज्योति का साक्षात्कार करता है। मूलाधार (धरती) में स्थित शक्तिपुंज जलाशय के समान है, जिसके द्वारा वह पेड़ सिंचा जाता है। साधना द्वारा प्राण (इड़ा) और अपान (पिंगला) वायु के तुल्यबल हो जाने पर उदान

वायु के प्रतिघात से कुण्डलिनी का जागरण होता है। वह सहज समाधि है। इसमें कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग से ऊर्ध्वमुखा प्रसरण करती हुई सहस्रार अथवा शून्यचक्र में जा मिलती है। इसके आनंद–रस से सारा पेड़ सिंचा जाता है।"[1]

कबीर के अनुसार सहजभाव से ईश्वर की प्राप्ति होने पर कुण्डलिनी का जागरण हो जाता है, तब अनहत नाद की अनुभूति होती है और जीव आनन्द–पद को प्राप्त कर लेता है। कबीर कहते हैं कि जिन्होंने सहजभाव से भगवान् की अनुभूति कर ली है, वही उस अनुभूति के मर्म को समझते हैं, उस अनुभूति के अनन्तर उस साधक के माया–वृक्ष के विषय–भोग रूपी फल फूल, मोह रूपी पल्लव, वासना रूपी अंकुर और अविद्या रूपी बीज नष्ट हो जाते हैं। गुरू के द्वारा बताए गए मार्ग पर चलने से ज्ञान रूपी प्रकाश प्रकट हो जाता है, ब्रह्म ज्ञानाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। इड़ा और पिंगला, जो एक दूसरे से दूर हैं – एक बांयी ओर है, दूसरी दायीं ओर, उनमें प्रवाहित प्राण और अपान वायु का योग या मिलन हो जाता है तथा समाधि लग जाती है। तब उदान वायु नीचे से ऊपर की ओर चलता है और उसी के साथ सुप्त कुण्डलिनी का जागरण होता है, जो मूलाधार, मणिपूर, स्वाधिष्ठान, अनहत, विशुद्ध, आज्ञा आदि षट्चक्रों का बेधन करती हुई, ऊपर सहस्रार तक चली जाती है और सुषुम्ना (मेरुदण्ड) अनहद नाद से पूरित हो उठती है। परिवेष्टित आकाश में नाद ध्वनित होता है और चित्त शून्यचक्र (सहस्रार) में समा जाता है। अनहद नाद की आनन्दमयी तुरही बजने लगती है। कबीर विचार कर कहते हैं कि इस प्रकार सारा शरीर सुबुद्धि से व्याप्त हो गया और आज्ञाचक्र (त्रिकुटी अर्थात् दोनों भौंहों के मध्य में वह स्थान जहाँ तीनों नाड़ियों – इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का मिलन

१. सहज समाधि बिरिख यहु सींचा, धरती जलहरु सोखा।
कहै कबीर तासु मैं चेला, जिनि यहु बिरवा पेखा ।।
–कबीर वाङ्मय, खण्ड २, सबद ११९.

06:29

प्रभ अपने को प्रन से ध्याई। अन्तरगत नित प्रीत कमाई॥
महमा प्रभ की अधिक विचारी। साचे नाम की चित चढ़ी खुमारी॥
उट्ठत बैठत कियो ब्यौहारा। घट घट सिमरूँ सरजनहारा॥
प्रान उपान देही का ताला। सतगुर मिले तब कियो उजाला॥
सूरज चन्दर रूप को धारी। पवन पछान होवे सुखकारी॥
पांच तत का सकल तमाशा। सकल जगत का मूल स्वाँसा॥
मिल सतगुर जिस जुगत पछानी। पवन कमाये सो ही ब्रह्मज्ञानी॥
जनम जनम की मलन विनासी। प्रान पुरख संग कियो बिलासी॥
पवन सखा संग साक सुहेला। पवन ने रचया सकला मेला॥
दृढ़ विश्वास ये जुगत पछान। सतगुर पूरे करें बखान॥
अन्तर नाम बाहर जप नाम। सम कर राख पावें बिसराम॥
परम परकाश पवन की धार। गुरमुख परचे होये सचयार॥
इरध उरध पवन को थामे। सतगुर जुगत जपे सतनामे॥
बिना मूल के फुली फुलवाड़ी। लीन समावे जो करे रखवारी॥

अन्तरगत जिस चीनया, सत निरंजन देव।
'मंगत' सो ही सिद्ध भया, पूरे गुर की सेव॥1022

सुरती बाँध पवन में धार। साचे नाम का करो वापार॥
पवन को पीवे नाम परगासे। जुगती योग सतनाम बिलासे॥
भरम ग्रन्थी अन्तर से टूटी। जुगत योग जो नाम रस लूटी॥
बारम्बार मन नाम कमाई। पवन धार संग करे टकराई॥
विरती त्याग मनसा भई लीन। शबद समाध अन्तर में चीन॥
उरध कँवल भया परगास। पीवे पवन होवे निरवास॥
स्वाती सीप निहों ज्यों धारी। चातक वरखा नीर ज्यों प्रीत विचारी॥
चन्द चकोर ज्यों प्रेम लवलीना। एह बिध साजन सतनाम जपीना॥
एक पलक ना विसरन पाये। चौसठ घड़ी मन माहीं ध्याये॥
चंचल विरती मन की नासे। सतनाम जो गुनी उपासे॥
कर्ता हर्ता ठाकर जानी। आज्ञा पल पल तिसकी पछानी॥

मन अपने को नेहचल कीजे। सतनाम पवन संग पीजे॥
पाप कुपथ से मन को राखे। सतकरम की रसना चाखे॥
स्वारथ त्याग होवे उपकारी। अन्तरगत सतनाम विचारी॥
सब जीवों की सेव कमाये। पूरन प्रीत हर चरनी पाये॥
मान मध का हरे गुबार। कौडी मूल बिके संसार॥
दीन ग़रीबी चित आसन धारी। साचा नाम पल पल पुकारी॥
दुर्मत गई भया परगासा। अखण्ड नाद में लयो निवासा॥
पूरन भाग अबनाशी घर पाया। साध की सेव सब ताप मिटाया॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

06:30

नाम नीर से धोइये, मन के सकल विकार।
'मंगत' निर्मल होये के, दरस पाइये करतार॥1024

साचे नाम की प्रीत कमाई। दुर्लभ जीवन जग में पाई॥
सत सेवा हिरदे पहचानी। अन्तर नाम जपत निरवानी॥
स्वास सुरत नित नाम ध्याई। अबगत शबद परापत पाई॥
करम वासना मन से त्यागी। आज्ञा प्रभ में मनुआँ लागी॥
छिन छिन पाप कूप को त्यागे। आज्ञा बूझ प्रभ चरनी लागे॥
दृढ़ निश्चय मन में नित धारी। सतनाम जपे सुखकारी॥
मूढ़ जिया तेरा कोई ना साथी। भज करतार सरब का साखी॥
झूट माया में मत ललचायें। अन्त छाड होवें बेथायें॥
पूरन पुरख परमेश्वर चेत। जनम मरन की मिटे विखेप॥
प्रान पुरख का करो विचार। आवत जावत में सुरता धार॥
अंजन माहीं निरंजन पेख। एह बिध जुगती योग की लेख॥
अष्ट कँवल दल अमरत भरया। पवन मथे तब कारज सरया॥
इन्द्री त्याग मनुआँ रस खाई। भयो इकागर गुर सरनाई॥
अखण्ड जाप जपे दिन राती। अरूढ़ ध्यान करे परभाती॥
पल ना विसरे प्रान की धारा। एक नाम जपे बारम्बारा॥
ऐसी रहनी अन्तर धार। परगट पावें शबद आपार॥
सदा जीवावनहार सो स्वामी। तिस की प्रीत परम सुखधामी॥
अन्तरगत नित नाम सम्भाल। पवन पुरख संग जपो दयाल॥
गुपत जाप जापे जन जोई। काल त्याग अकाल समोई॥

मन बाँधे सतनाम संग, नाम पवन में धाए।
'मंगत' दृढ़ विश्वास से, गुरमुख जुगत कमाए॥1025

अन्तर नाम मनुआँ जब जापे। बन्धन त्याग अधिक संतापे॥
देह विकार से उपरस होवे। साची प्रीती जो नाम परोवे॥

प्रन अपने को निश्चल राखे। सतपुरषों की रसना चाखे॥
अठसठ तीरथ अन्तर नहाई। निर्मल जुगत जो नाम कमाई॥
भरमन त्याग अन्तरमुख आओ। परम आनंद ठाकर घर पाओ॥
करम जाल में क्यों गरसाया। सतनाम सिमर परम सुखराया॥
वेद कुतेब सकल का मूल। साचा नाम पलक ना भूल॥
संकट हरे देवे जयकार। अन्धकार विनासे करे उजियार॥
अज्ञान हरे तत्त ज्ञान परगासे। अनुभव बानी घट करे बिलासे॥
जग संशे की सार लखाई। सतनाम घट परगट ध्याई॥
अबगत नाम ना पलक विसार। मन को बाँध इक नाम की धार॥
मनमुख मनुआँ करे ख़्वारी। अधिक पाप इक पलक विचारी॥
सिमरो नाम राखो मन हाथ। साची करनी का लेख लखात॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

शबद सरूप जिस कथा विचारी। जीवन मुकत निर्भय पद धारी॥
अन्तर जुगत मनुआँ नित राखी। प्रान उपान को सम कर चाखी॥
इरध उरध में सुरता जोड़ी। परगट शबद तत्त सार निचोड़ी॥
बिना फूल फल बृख को आया। आलख शबद घर माहीं ध्याया॥
गगन की खेती नित संचारी। निर्वान सरूप फुली फुलवाड़ी॥
ताँ में सुरती रहे समाए। काल करम सब भरम चुकाए॥
बिमल नाद घनघोर करीना। गुरमुख जीवन जग में लीना॥
रहे अकान्त शबद को पीये। निज सरूप में जीवन जीये॥
सहज सुन्न का घाट पछाता। अनहद नाद रमत सुख पाता॥
निर्मल ध्यान वहाँ सुरत परोई। तब ये काया निर्मल होई॥
अमरत नीर में कियो अश्नाना। अमर भयो जन मुकत समाना॥
घर में साचा कंत मिलाई। शबद पुरख के चरन समाई॥

अगम पंथ में नित परबीना। बानी अगोचर नित नित चीना॥
अभेद रूप ठाकर घर पाया। सिमर सिमर के मंगल गाया॥
स्वपन समान रचना जग भई। सत परकाश जोत घर लई॥
घर आओ निज अपने मीत। परमानन्द घट बसे पुनीत॥
झिलमिलकारी सुरत उठ धाई। भरम बुरज को सहज उड़ाई॥
चढ़ी आकास पाया परगासा। जनम मरन का बन्धन नासा॥
सुकृत कीरत विरले जन पाई। घर विच साचा कंत मिलाई॥

राम रतन को पाये के, मन तन भयो परसन्न।
'मंगत' अन्तरगत माहीं, प्रभ पारस पायो धन॥ 1046

पारस परस निर्भयपद पाया। राम रतन सन्तन दिखलाया॥
जंगल बेले फिरूँ बियाबाना। भाँतक भाँत सुने विख्याना॥
रंग रंग के पुन्न दान करीने। जतन अनेक चित अन्तर कीने॥
बिन सत साधू के मेल मिलाये। राम रतन नहीं हिरदे आये॥
पूरब जनम का करम सत जागा। सत साधू पायो वडभागा॥
निर्मल जुगती सतनाम दखाई। ताँ को परस रतन प्रभ पाई॥
मन मनोरथ पूरन होए। शबद पुरख में लीन समोए॥
अन्तर शबद करे परगास। ज्ञान दृष्ट से कीजे वास॥
सुरत अडोल जब अन्तर आई। पूरन पुरख शबद अर्थाई॥
खट चक्रन का मारग छेदा। ऊँची दृष्ट मन को बेधा॥
पवन का झाड़ू घट अन्तर दीना। शुद्ध सरूप शबद तब चीना॥
भाँतक भाँत घर खेल विचारी। आपे खेले पुरख मुरारी॥
खुली बंकनी शबद पछाना। अनहद नाद पुरख निर्वाना॥
सहज योग जुगत घर पाई। आलख शबद पाया सुखदाई॥
धन्न साधू जिस मारग दिखलाया। पूरन पुरख ठाकर घर पाया॥
अबगत नाद बजावे तूरा। गुरमुख परचे विरला सूरा॥
ईड़ा पिंगला सुखमन धार। त्रिकुटी मन्दर खोल किवाड़॥
परगट शबद नित ही परगासे। सतगुर मेल करो अरदासे॥

साखी पुरष सरब परकासी। निर्मल चित से करो उपासी॥
अन्तर में नित पूजा कीजो। पूरन प्रभ के दर्शन लीजो।
संतोख का थाल प्रेम की जोती। सुरत अडोल चुन मानक मोती॥
भाओ भगत की निरत कमाई। सत ठाकर के चरन समाई॥
अन्तर खोज अन्तरगत पाई। अन्तर में ही मिली प्रभताई॥
अन्तर ठाकर अन्तर पूजा। सतगुर मेल परम पद सूझा॥
अन्तर मनुआँ नाम सम्भाले। नज़री आया दीनदयाले॥
उत्तर से पच्छम को धाया। पच्छम से पूरब गत पाया॥
नौ दर बन्द दसवाँ परगासा। पूरन पुरख पाया अबनासा॥
गंग जमन सरस्वती का एका। राज प्रयाग का लख तूँ लेखा॥
अबगत शबद आलख बिसमाद। अन्तर ध्यान पद परस आगाध॥

निर्मल सुरती धार के, खोज गगन की बाट।
'मंगत' दीनदयाल प्रभ, दरसयो दसवें घाट॥ 1050

मारग गुपत सतगुर दिखलाया। घर विच घर का दर्शन पाया॥
शबद घनघोर बजन्तर बाजे। सत सुलतान ठाकर बिराजे॥
सुरती खैंच अन्तरगत धारी। पायो ठाकर पार मुरारी॥
पाँच शबद मिल परगट भयो तूरा। रमज़ पछाने गुरमुख सूरा॥
कहन नहीं आवे कथा ना जाई। आलख पुरख भेद आगाही॥
जाप अजप्पा नित ही जापे। सदा अरोग नहीं काल व्यापे॥
अन्तर माहीं भया लवलीना। साचा मारग सतगुर दीना॥
नित नित सुरती खेले खेल। प्रभ चरनी संग कीजे मेल॥
साचे सेवक सेवा जानी। पारस परस पाया निरवानी॥
साचे सेवक कथा विचारी। सतगुर सीख अन्तर में धारी॥
पूरन प्रीती प्रभ चरन ध्याया। साचे सेवक अमरत फल पाया॥
प्रभ की सेवा ने बन्धन काटे। निज सरूप भया रँगराते॥
ऐसी करनी निर्मल सार। अन्तर में सतनाम विचार॥
पूरन पुरख की करो अरदास। मोह माया की काटे फाँस॥

ॐ ग्रन्थ श्री समता प्रकाश

06:48

नौ द्वार से सुरती ठाकें। बान्ध पवन नाम रस चाखें॥
इरध उरध करें निगरानी। सिमरें नाम अखण्ड निरवानी॥
पवन गुंजार गगन में करी। दसवें द्वार की सोझी पड़ी॥
झिलमिल जोती का चमकार। नज़री आया पुरख निर्धार॥
ताँ में सुरती लीन समाई। करम त्याग शबद रस खाई॥
वारापार नहीं पायें भेद। अगम शबद कथ थाके वेद॥

अन्तरगत में सोधया, आलख शबद पुनीत।
'मंगत' तिस के ध्यान से, काल करम लयो जीत॥ 1136

सत शबद जिस घट परगासा। पूरन पुरख पूरन पाई आसा॥
ब्रह्म ज्ञानी सो ही तत्तवेता। सो समदरसी पुरख निरभेखा॥
साचा शबद पाया निर्वान। निश्चल हूआ करके ध्यान॥
सुरत समाई एके रंग। करम जाल भयो सब भंग॥
अन्तर बाहर कीरत सत गाई। सत शबद में ध्यान लगाई॥
मिथ्या रोग गयो सन्ताप। सत ठाकर का कीना जाप॥
मन को राखे पवन आधार। पीवे साचा नाम करतार॥
पल पल निर्मल जुगत कमाये। नेहचल हो के आवे जाये॥
सुन्न सरूप हो अन्तर में जाई। सुन्न हो के बाहर आई॥
अन्तर बाहर दो सम कर राखी। आलख शबद की परसे साखी॥
सुन्न गुफ़ा में करे ध्यान। अनहद गरजे सहज की तान॥
मूल बिना बरिच्छ परगासे। फूल बिना फल करें बिलासे॥
ताँ में सुरती खेल खिलाई। करम रोग सब दोख मिटाई॥
ठाकर साचा शबद घर पाया। सहज समाध सतनाम कमाया॥
मूल द्वार में पवन को बांधा। साचा नाम निरन्तर सांधा॥
विरत त्याग मन भयो इकागर। साखी शबद घट भयो उजागर॥
सहज सहज ताँ ध्यान लगाई। दुर्मत रोग मैल उतराई॥
सिमर सिमर सत शबद सुखरासी। भव बन्धन की काटी फाँसी॥
निर्भय धाम में जाये समाया। शून करम का सब भेद लखाया॥

शबद सुरत एका भई, सच खण्ड कीना वास।
'मंगत' दुबधा सब मिटी, काल करम की प्यास॥1137

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

करम मैल प्रभ नाम से जाई। जो धोवे सो गुनी अधिकाई॥
सुरती बाँध नाम के संग। मारग मुकत सुनो परसंग॥
ईड़ा पिंगला सुखमन नाड़ी। बहती पवन करो विचारी॥
अन्तर बाहर की गत जान। विचरत पवन करो पहचान॥
नाम को जाप पवन को बेध। नाम ध्यान हरे सब छेद॥
अन्तर बाहर जुगत कमाओ। बारह सोलह सम कर गाओ॥
सोलह चन्दर बारह सूर। सिमर नाम पावें हज़ूर॥
सम कर पवन नाम कमाई। मनमुख मनुआँ अन्तर आई॥
पवन बिन्ध भया परगासा। शबद अखण्ड में लयो निवासा॥
आलख शबद आकाश उठ धाया। सुन्न कन्दरा में डेरा लाया॥
गुरमुख सुरती चढ़ी आकास। प्रभ के चरनी लयो निवास॥
अनहद नाद बाजे घट तूरा। होई चमकार सत चरन हज़ूरा॥
खिमा दया सील चित आई। सत ठाकर घर परगट ध्याई॥
एक दृष्टी सुन्न ध्यान लगाया। जगत का ठाकर नज़री आया॥
दरस पायो मन भयो निहाल। काल करम काटा जम जाल॥

अन्धकार विनासया, दिव्य भयो परकाश।
'मंगत' काया कोठरी में, पायो दरस अबनाश॥ 1163

अबनाशी का दर्शन पाई। तब ये मन गयो लीन समाई॥
मन लीन भयो सुख भया आपार। रंचक दु:ख की रही नहीं सार॥
द्वन्द त्याग निरद्वन्द समाई। करम त्याग निहकरमत पाई॥
काल त्याग निर्भय समाया। साखी पुरष का लेख लखाया॥
चंचल त्याग पाया संतोख। बन्धन नास पाया तत्त मोख॥
वैर त्याग खिमा चित पाई। सरब जीयाँ संग साँझ बनाई॥
मोह त्याग पायो बैरागा। घर में परसयो शबद अनुरागा॥
उदे अस्त का भरम मिटाई। दिव्य परकाश अखण्ड लखाई॥
जनम मरन का चक्कर त्यागा। निश्चल ध्यान साहब में जागा॥
भूख प्यास गये देह विकारा। शबद खाये मन तृपत विचारा॥

06:56
Vo)) LTE1

ऊँच झाई नाद की, पारावार ना कोए।
'मंगत' जिस जन सोझी पड़ी, तिसके चरन नित धोए॥1181

निर्मल नाम कीरत जिस गाई। गुपत भेद सोही अर्थाई॥
अन्तर की गत करी विचार। मारग सूझा पार मुरार॥
प्रान अपान पवन को जाता। एक नाम तिस में रँगराता॥
मुख होंट जीभा नहीं चाले। अखण्ड जाप अन्तर में घाले॥
धीर धीर से पवन को पीवे। नाम सिमर के नित जन जीवे॥
दिन दिन गुनी करें अभ्यास। बिनसे भरम पावे परगास॥
आहार ब्यौहार करे शुद्ध नीती। परहक खाये नहीं धरे पलीती॥
तमोगुन आहार नित करे त्याग। बुद्ध निर्मल पाये नाम अनुराग॥
अन्तर ऊँची पवन को खैंचे। ऊँची से फिर नीचा हो बैठे॥
नीचे से ऊँचा हो आई। लख तू लेखा अगम आगाही॥
मूल द्वार में सुरता गाड़ी। आवत जावत भेद लखारी॥
मन के संशे शोक विनास। मूल द्वार में कीजे वास॥
भयो इकागर नाम रस खाई। पवन पुरख का लेख लखाई॥
ज्यों ज्यों अन्तर राखे मनुआँ। शान्त आगाध परसे तनुआँ॥
अनेक विकार विगन सब नासी। साचा नाम जो गुनी उपासी॥
दृढ़ निश्चय जिस जुगत कमाई। मन पवन इक ठौर लगाई॥
नाभ कँवल से अमरत झरया। सुखमन नाली में सो भरया॥
सो अमरत उठ चढ़े आकास। गुरमुख विरले कियो बिलास॥
चढ़े आकास करे टंकोर। नाद ध्यान पावे जन सूर॥

अन्तर जुगत कमाया, प्रभ का नाम अगाध।
'मंगत' कंवल परगासया, नाद पाया बिसमाद॥1182

अन्तर जुगत जब नाम कमाई। तीन भवन की सोझी पाई॥
सुखमन नाड़ी करे हलोल। अनहद नाद की सुनी कलोल॥
शबद गुंजार करे अत भारी। तिरवैनी अत लेख विचारी॥
चंचल मनुआँ सहजें घर आया। नाद पुरख को परगट ध्याया॥
कर्ता पुरख भयो परगासा। हरजन कीनी चरन अरदासा॥

ग्रन्थ श्री समता प्रकाश ॐ

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

मारग धरम पहछान के, जीव भया परसन्न।
'मंगत' काटी करमगत, सिमरा नाम रतन्न॥ 1355

नाम साहब का हिरदे ध्याई। बैठ इकान्त सेव कमाई॥
निश्चल आसन सुरती धारी। साचे नाम की रसना विचारी॥
सरजनहार सकल का स्वामी। सरब व्यापक अन्तरयामी॥
सो परमेश्वर है सुखसीरा। नित नित सिमर हरे सब पीड़ा॥
निर्मल निश्चय प्रभ चरनी राख। सतगुर बचन की रसना चाख॥
परम परीती गुर के चरना। निस्चे से रहे गुर की सरना॥
पाप करम नित ही भागे। साचे नाम में उठके जागे॥
निर्मल नाम इस बिध कमाई। बौहड़ गवन संसार ना पाई॥
होंट मुख जिभ्या को बाँधे। साचा नाम हिरदे में साँधे॥
आवत जावत पवन को देखे। नाम सिमर के मिटे भुलेखे॥
मन पवन राखे इक चीत। दुर्मत त्याग होवे पुनीत॥
पल पल ऐसी जुगत कमाये। मन पवन इक थाँ लगाये॥
नाम सिमर मन बांधे नीत। प्रान की डोरी में राखे चीत॥
मन पवन इक रूप समाई। साचे नाम की कीमत पाई॥
भरमन त्याग निज घर आया। सत ठाकर का मारग पाया॥
नाम रतन से लागी प्रीत। पल पल साधे दिशा पुनीत॥
निर्मल बुद्धी नाम कमाई। प्रान पवन में लीन समाई॥
विरत त्याग मन निर्मल होया। जनम जनम का भरमन खोया॥
सुखमन खुली शबद घर जागा। साध सीख पाई वडभागा॥

अन्तर शबद परगट भया, साची भगती पाये।
'मंगत' साध की सीख से, फिर गवन नहीं आये॥ 1356

दुर्मत रोग की औखद खाई। साचे नाम की कीरत गाई॥
अन्तर सुरत निरन्तर धारी। जाप अजपा नित विचारी॥
अष्ट-कँवल दल भया परगासा। बिमल नाद वहाँ करे बिलासा॥

वासना त्याग भयो निरवासी। साचा शबद मन माहीं उपासी॥
मन पवन की जुगती तोले। विरत त्याग मन भया अडोले॥
विज्ञान सरूप पाया परसाद। साचा नाम निरन्तर साध॥
जनम जनम की मलन विनासी। सतगुर सीख सतनाम उपासी॥
तृष्ना त्याग भया निष्कामी। पायो दरबार साचा प्रभ स्वामी॥
नित नित उस्तत चित से गाऊँ। पल पल तिसका ध्यान कमाऊँ॥
अखण्ड सुरत नित जाप जपाये। नाम की रसना पल पल खाये॥
उलटा शबद आकास गुंजारी। मारग अगम का भेद लखारी॥
सुरती चढ़ी आकाश में आये। साचे शबद का धाम लखाये॥
निर्भय नाद अन्तर नित बोले। तीन भवन का ताला खोले॥
ताँ में सुरत करे निगरानी। झिलमिल जोत दरसे निर्वानी॥
दरस पाये मन तृपत समाई। दुर्मत रोग व्याध गँवाई॥
पूरन भाग सतगुर मिलाये। अगम निगम का भेद लखाये॥
पाया भेद आया विश्वासा। प्रभ की चरनी लयो निवासा॥
संकट धारी मूरख जीया। नाम सिमर के भया तृपतीया॥
नित नित सुरती नाम उचारी। आवत जावत पवन विचारी॥

मन सिमरे सतनाम को, नाम पवन समाये।
'मंगत' साची साधना, बिन गुर भेद नहीं पाये॥ 1357

16:12
shri-samta-prakash.pdf

महमा तेरी चित रसे, दूजी विसरे आस।
'मंगत' निर्मल नाम को, पल पल करूँ उपास॥ 1480

प्रभ विश्वास सब हरे विकारा। निर्मल भगत मिले जयकारा॥
भरम चक्कर से भयो उदास। निर्मल नाम करूँ उपास॥
देह देवल का पाऊँ विचार। साची जुगत लखूँ सत सार॥
नौ द्वारे का देही कोट। जीवन शकत घट पसरे जोत॥
बुद्ध सकाम बाहर भरमाई। देह देवल की सार नहीं पाई॥
सत संगत से निर्मल भयो। साची सार अन्तर लख लयो॥
गुरमुख मारग पाया योग। निर्मल नाम की रसना नित भोग॥
अन्तर बाहर सतनाम कमाई। मन पवन इक धार लखाई॥
उलट पवन घर सोधे नाम। दुबधा दूर पाया बिसराम॥
गुप्त सरूप प्रभ परगट भयो। अनहद नाद पुरख सुखदयो॥
विरत अडोल धर कीना जाप। सत शबद में सुरती थाप॥

अलप आहार करम निषकामा। जो जन धारे ले बिसरामा॥
तीन भवन में सुरता राखी। प्रान पवन की रसना चाखी॥
निर्मल ध्यान सुनी टंकोर। साची रसना पायो हज़ूर॥
बहुरंग नाद करे गुंजार। एक दृष्ट हो पाया उजियार॥
करम बन्धन आसक्ता नासी। निष्काम भाओ में विरत बिलासी॥
अन्तर सुरती चढ़े आकास। सत सरूप में ले निवास॥
शबद अखण्ड पाया निर्वान। मनुआँ लागा सहज ध्यान॥
काम क्रोध इच्छया मोह नास। अन्तरगत पाया प्रभ परगास॥

साची जुगती धार के, सतनाम पाया परसाद।
'मंगत' मिली सत शान्ती, सब मन के मिटे विखाद॥ 1481

अन्तरगत में नित समाओ। साची भगती की रसना पाओ॥
इरध उरध में सुरता राखो। नाम नारायन रसना चाखो॥
भरमन जाये होये परकास। अनहद शबद पुरख निरवास॥
कर्ता पुरख केवल जग सार। साचा शबद घट करो विचार॥
अन्तर सुरती नित ठहराओ। एक नाम की रसना खाओ॥
स्वास सुरत का एका कीजो। जनम जनम की भरमन छीजो॥
दुर्मत त्याग भयो इक रंग। पायो शबद पुरख निहसंग॥
निर्मल चित से ध्यान कमाई। कर्ता भाओ भरम चुकाई॥
निहकरम सरूप शबद निर्वान। अंतर पाया निर्मल ध्यान॥
ऊँचे शिखर होवे किलकार। गुरमुख सूझे ज्ञान निरधार॥
पिण्ड ब्रह्मण्ड का पायो भेद। अंतर परगट पुरष अछेद॥
अपने आप में भयो परसन्न। शबद परापत निर्मल धन्न॥
सरब सिद्धि का सोही दाता। सरब जगत का सो ही बिधाता॥
सब जीवों की सो कल्यान। अनहद शबद पुरख निर्वान॥
जो जो पूजे निर्मल देवा। मुकत परापत बिनसे
प्रभ के रूप में मेल मिलाई। प्रभ की शोभा अन्तर
प्रभ के रूप में पाया आधार। जीवनमुक्त पद परसा

16:22

द्वादस

दुबधा त्याग सत नाम चित धार। गुरमुख मारग ज्ञान विचार॥
अपने आप का तत्त लेख पहचान। कौन रूप सत तत्त कल्यान॥
क्यों भरमाया दुर्मत घाटी। अपने आप को करें नित घाती॥
सत मारग सत रूप विचार। परसें शांत परम सुख सार॥
अन्तर चित नाम जप सार। पावें शबद पुरख निरधार॥
तत्त निरंजन घट माईं समाई। मारग भेद लखो सुखदाई॥
अन्तर सुरती नित ही गाढ़। मूल द्वार का लेख विचार॥
प्रान उपान का एका करी। अन्तर मारग की सोझी पड़ी॥
शबद सरूप आलख आपार। पाईये भेद मिल गुर दातार॥
सुरती मूल द्वार समाई। मन पवन इक ठौर लगाई॥
उलट पवन अन्तरगत धारी। द्वादस कँवल का भेद विचारी॥
शबद परकाशे अन्तर के तीर। वास करे कोई गुनी गहीर॥
उलटा शबद आकाश उठ धाए। नित ही हरजन सेव कमाये॥
गरजे शबद भीतर त्रैभवना। सत परापत मिटे सब गवना॥
ठाकर साचा घर परगट पायो। रोम रोम में तत्त सार ध्यायो॥

दुबधा दुर्मत त्याग के, सत मारग नाम आराध।
'मंगत' शबद पहचानया, नित परसी ज्ञान समाध॥ 1543

तिरौदस

त्रैकाल समता तत्त बूझ। द्वन्द विकार की हरो सब सूझ॥
मारग मुकत नित ही चित धार। करम विलक्खन से पाओ उद्धार॥
प्रभ आज्ञा में सत निश्चय राख। दीन ग़रीबी की नित रसना चाख॥
साची रास सतनाम प्रभ चेत। सिमर सिमर के हरो विखेप॥
त्रैकाल मन नाम संभाल। सत शरधा भज दीनदयाल॥
औगन हरे निर्मल बुद्ध देवे। भाओ भगत से जो जन सेवे॥
समता योग में रहो परबीन। दु:ख द्वन्द नहीं हिरदे चीन॥
करम फल इच्छया त्याग दु:ख मूल। करनहार प्रभ पलक नहीं भूल॥
अन्तर चित करो नित अरदास। मोह माया की मिटे प्यास॥
हरख शोक का तजो मान गुमान। मित्तर शत्रु धारो इक परमान॥
दु:ख सुख चिन्ता भय और भरम। प्रभ की आज्ञा में त्यागो नित करम॥
मनमुखता अन्धकार विनास। सहज भाये सत शबद परगास॥
बिन रसना के मरजीवा होई। अत परगास सतनाम परोई॥
साची दरगाह भयो मन्ज़ूर। जप जप साचा नाम हज़ूर॥
भेद भरम सब खेद निवारी। प्रभ दाते के चरन पधारी॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

16:33 Vo)) LTE1

खोज खोज कर परसया, अबगत शबद अनाद।
'मंगत' परम आनन्द में, लागी सुन्न समाध॥ 51

प्रभ अपना सिमरन किया, मन तन होए परसन्न।
करम विलक्खन सब मिटे, हरि नाम का पायो धन्न॥
सत सील संतोख का, आए भया घर बास।
खेम कुशल आनन्द हुआ, घर परगट पुरष अबनास॥
जनम जनम की भरमना, सहज होई चित की दूर।
आलख शबद पहचानिया, घट में उपजा तूर॥
अबनासी संग जा मिला, दुर्मत छाड विखाद।
सतगुरु दया साध की संगत, छूट गया परमाद॥
इन्द्री विषे की लालसा, मन से भई दूर।
मन लागा सतनाम में, आए मिला हज़ूर॥
स्वास स्वास सिमरन करूँ, अबगत पुरख अलेख।
एक नाम विश्वास धर, पाए लिया सच भेख॥

क्या गृहस्ती क्या विरक्ती, क्या डंडी सन्यास।
प्रेम बिना ना हर मिले, चाहे धरनी नाप आकास॥
प्रेम पाए सतसंग से, सुन गुरमुख परताप।
अपना मरन विचारया, तब पाए नाम तत्त जाप॥
साचे नाम की सिमरनी, हिरदे लई लटकाए।
शबद पहचाना घर माईं, द्वैत भरम फटकाए॥
सागर ज्यों गम्भीर है, ऐसा पाया धीर।
कूड़ कपट सब उतरा, पिया शबद का नीर॥
मन में पाया चानना, शबद सुनी धुनकार।
अपना आप सँवारिया, पाए ज्ञान तत्त सार॥
काम क्रोध की अगनी में, जलें चराचर भूत।
क्या गुनी क्या मुनी, क्या रंक क्या भूप॥
चार वेद का वक्ता, पंडत रोए नीत।
अगन तृषना खा गई, सब का कलेजा मीत॥
तीरथ नहावे ब्रत बहु राखे, रैन को जागे नीत।
बिना ज्ञान ना पावे, एह मूढ़ा मन परतीत॥
अरब खरब धन आ मिला, चौधाँ भवन का राज।
सकल अकारथ जात है, बिना शबद समाज॥
भोग मिथ्या भोगता मिथ्या, अनर्थ जीव कलेश।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

16:35

देख देख सब भूल गए, अपना निज घरबार।
'मंगत' माया मोहिनी, हर भगत से हो छुटकार॥ 58

सतसंगत मिल गाइयो, आलख पुरख अगाध।
बिन सिमरे तत्त ज्ञान के, कोटक मन व्याध॥
अन्तर सिमरो निरन्तर धरो ध्यान। पवन को साधो सुन अनहद की तान॥
उरध पवन पच्छम को जाई। रवि शशी इक तार मिलाई॥
पच्छम से उठ चढ़े समेर। लागे पूरब दिशा के फेर॥

मूल द्वार लगावे बन्ध। उलट पवन की साधे सन्ध॥
साचा नाम संग पवन के खेले। गुप्ती बानी कोई गुरमुख मेले॥
इरध उरध में सुरती जोड़े। ब्रह्ममुख योगी दर दसवाँ फोड़े॥
उरध कँवल घट भयो परगास। मूल बंकनी में कीना वास॥
ईड़ा पिंगला सुखमन धार। सम कर पीवे हो सचयार॥
पवन की निरोध सरोध कमावे। बारह सोलह इक धार मिलावे॥
उलट पवन का लंगर खैंचे। सोती नागन उठ अमरत सैंचे॥
गुर का पूत कोई जुगत कमावे। मर के जीवे सत गत पावे॥
नीर पाताल आकास चढ़ावे। आलख पुरख का खेत भीजावे॥
गगन खेत सोध कुण्ड का नीर। उपजे पुरष बिना शरीर॥
मानसरोवर तट बोले नाद। कहे मछन्दर सुन गोरख बिसमाद॥
छिन छिन वरखे अमरत धार। बैठी पीवें पाँचों पनिहार॥
निरगुन सरगुन तोले एक चीत। बानी गुपत परगट भई मीत॥
इक्कीस हज़ार छे सौ मनियां। इक तार परोवे निस दिन गुनियां॥
सुरत की सूई प्रेम का धागा। खिनता ज्ञान सीवे बैरागा॥
जत लंगोट त्याग भभूत। विश्वास की मात्रा धारे अबधूत॥
सत की सेली सिर छतर बिराजे। बिरह विवेक की मुंद्रह साजे॥
खिमा दया का पीवे नीर। निरभेख वास में रमे फ़कीर॥

गुर की जुगत का, कीजे नित आहार।
'मंगत' गुरमुख पाए, शबद ब्यौहार॥ 59

आसन दृढ़ता नित मन विचारे। पुरषारथ चोला कफ़नी धारे॥
परहित चित में माला फेरे। नाम की ओट पाए सुख घनेरे॥
इकन्त बाज़ार में नित रमाए। अमरत शबद का भोग लगाए॥
द्वन्द बकार का करे शिकार। निज घर वास पाए गुनकार॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

गुर की महमाँ आपार है, जाने कोई गुर सन्त।
'मंगत' गुर साचा सो ही, जाँ को नहीं भरमन्त॥ 72

गुर सो ही जिसकी जुगत आपार। सुन उपदेश मिले सरजनहार॥
गुरमुख युगता ज्ञान विवेकी। अन्तरगत धारे विरत अलेखी॥
साची जुगत कमावे योग। मिटे उपाध तिस गुर संजोग॥

परविरत निरविरत पछाने कार। बन्धन मोक्ष की लाखे सार॥
करम अकरम का जाने भेद। निष्काम विरत ले मनसा छेद॥
साचे नाम का कीजे आहार। भुख प्यास निंद्रा निवार॥
इरध उरध पवन का धाम। साची जुगत पाए जापे सत नाम॥
नाभ कँवल उरध परगास। विखमी सन्ध में कीजे वास॥
खुली सुखमन गगन में बोले। सो ही सतगुर जो यह गत तोले॥
अमरत कुण्ड का मुख उगाड़े। पी अमरत सतधाम पधारे॥
बारह सोलह सम कर राखे। जोत निरालम अन्तर भाखे॥
आसन दृढ़ता परम अनुरागी। सत विशवाशी सो गुर बैरागी॥
मन पवन का खैंचे तान। शबद पछाने होए कल्यान॥
नित आनन्द विरत उदास। अनन प्रेम गुर सचखण्ड वास॥
काल करम का बन्धन तोड़े। उल्टी सुरत सत मारग फोड़े॥
त्रिकुटी आसन अनहद वादी। मानसरोवर लगी समाधी॥
सुन्न गुफा घर शबद किलकार। रमज़ पछाने तिस गुर तों बलिहार॥
ज्ञान ध्यान का बकतर धारे। समता खड़ग ले सब शत्रू मारे॥
मुकत मैदान में खेले चौगान। साचे नाम की ताने नित तान॥
काम क्रोध का सीस उतारे। हंगता ममता नित चूर कर धारे॥
आठों पहर करे निगरानी। अखण्ड जोत दरसे निर्बानी॥

मन अपना निर्मल करे, कमावे सत शबद की सेव।
'मंगत' नित आदेस है, वडभाग से मिलें सो गुरदेव॥ 73

सिख सो ही जो गुर सिखया लेवे। मनमुख भरम सकल हर लेवे॥
बाद मुबाद में चित नहीं लाए। गुरमुख धरम को सहज कमाए॥
गुर के बचन पर धरे विश्वासा। गुर के चरन का होए नित दासा॥
तन मन धन गुरचरन पै वारे। जीवत मरे गुर शबद उचारे॥
गरब गुमान मन का त्यागे। सहज सुभाए गुर चरनी लागे॥
अमरत नाम गुरदेव से लेवे। मन बच करम से उसको सेवे॥
दु:ख सुख सकल रज़ा पै छोड़े। गुरसंगत मिल सब विगन को तोड़े॥

16:39

अधिक वडाई नाम की, मन तन दे आनन्द।
'मंगत' विसरे ना पलक एक, साचा शबद अखण्ड॥ 92

सत सरूप की करो अरदास। जनम मरन की जाए फास॥
ओहंग ब्रह्म शूनियंगकारा। ओहंग ब्रह्म सरब आधारा॥
ओहंग ब्रह्म पुरख अनामी। ओहंग ब्रह्म अपार गरामी॥
ओहंग ब्रह्म नित अनादी। ओहंग ब्रह्म निर्वान बिसमादी॥
ओहंग ब्रह्म शबद धुनकार। ओहंग ब्रह्म गरजे दसवें द्वार॥
ओहंग ब्रह्म सरब अतीता। ओहंग ब्रह्म सरब रमीता॥
ओहंग ब्रह्म अखण्ड अजूनी। ओहंग ब्रह्म समाध सगूनी॥
ओहंग ब्रह्म सब अन्तर साजे। ओहंग ब्रह्म नाद घट बाजे॥
ओहंग ब्रह्म नित अकारन। ओहंग ब्रह्म धारे सब धारन॥
ओहंग ब्रह्म देवन का देवा। ओहंग ब्रह्म आलख अभेवा॥
ओहंग ब्रह्म नित समदरश। ओहंग ब्रह्म नित आपको परस॥
ओहंग ब्रह्म नित निराकारी। ओहंग ब्रह्म नित निरधारी॥
ओहंग ब्रह्म कलह विनास। ओहंग ब्रह्म शान्त परगास॥
ओहंग ब्रह्म अखण्ड आनन्दा। ओहंग ब्रह्म घट जोत परचण्डा॥
ओहंग ब्रह्म सरब स्वामी। ओहंग ब्रह्म सरब अन्तरयामी॥
ओहंग ब्रह्म सरब में सिद्धी। ओहंग ब्रह्म ज्ञान गुन निधी॥
ओहंग ब्रह्म अबगत सरूपा। ओहंग ब्रह्म सरजे चराचर भूता॥

ओहंग ब्रह्म अजात अवरना। ओहंग ब्रह्म सरब कारन करना
ओहंग ब्रह्म नादसरूप। ओहंग ब्रह्म परसे गुरमुख भूप
ओहंग ब्रह्म सरब का ठाकर। ओहंग ब्रह्म तीन लोक उजागर
ओहंग ब्रह्म ठौर ठौर निवास। ओहंग ब्रह्म चारखानी परगास
ओहंग ब्रह्म ग्रन्थ वेद का मूल। ओहंग ब्रह्म व्यापे सूखम अस्थूल

भय भरम संकट हरे, मन तन शबद ध्याए।
सार अर्थ निरनय करे, फेर गरभ ना आए॥
रलमिल संगत गायो, अपरम पुरख अपार।
विजय होए संसार से, ले साची जुगत विचार॥

साचे सतगुर मिल के, कीजो नित अरदास।
'मंगत' अमरत पान करे, निर्भय ले निवास॥ 93

अक्षर ब्रह्म अद्वैत अनादी। सिमरो नाम अगम अगाधी

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:14

अमरत खानी शबद टंकोर। नाम ध्यान जप पावे कोई सूर॥
स्वास सुरत का कीजे मेला। गृहस्ती विरक्ती का एके खेला॥

साची जुगत जिस मन करी विचार। मानुष जीवन का भए उद्धार॥
सोलह कला सम्पूरन स्वामी। अनहद नाद सत खण्ड का गामी॥
सिमरन सेवा ध्यान विवेक। सत विश्वास से मिले सत लेख॥

मन तन अन्तर परगासिया, आलख पुरख आपार।
'मंगत' सिमरे पल घड़ी, ले जीवन रूप मुरार॥ 94

आलख पुरख की आरती कीजो। सतगुर चरन माहीं चित दीजो॥
सुरत अलबेली पवन पखारे। बारह सोलह सम कर धारे॥
अन्तर करे पाताल अशनानी। उलट जाए आकास समानी॥
मानसरोवर लागे तीर। निर्मल भयो हंस सुख सीर॥
सत सुकृत कर नाद वजाए। बानी अखण्ड चित रही समाए॥
जाप अजपा निरगुन बानी। निज घर बूझे अमरत खानी॥
चार दिसा का नाका बाँधे। मन बिकराल को अन्तर साँधे॥
पवन संघासन पर रहे बराज। उलट पलट का परचे साज॥
नौ नाटका बन्धी कीना। अजर पुरष का दर्शन लीना॥
अखण्ड परकाश जोत निर्वानी। नाद अखण्डित सुरत समानी॥
विखे विखाद सकल निवारे। आलख पुरख के चरन पधारे॥
मन बच करम ये आरती गाए। **'मंगत'** ताँ के नित चरन समाए॥**95**
आरती कीजो अनुभव बानी परगासे। सत सरूप में लयो निवासे॥
पूर मनोरथ कलह निवारे। अनुभव बानी मन करो विचारे॥
नित आनन्द अनुपम जोती। तीन भवन लो मानक मोती॥
जोती अन्दर शबद धुनकार। दमके दामन दसवें द्वार॥
प्रेम पुष्प ले सुरत उद्यानी। उनमुन परसे अमरत खानी॥
बजे रबाब मरदंग नफ़ीर। घण्टा शंख धुन अमरत छीर॥
चित इकागर सत बानी को पूजे। सकल सामिग्री का निरनय सूझे॥
विरत त्याग मन एका होई। शबद ध्यान पाए दुर्मत खोई॥
अजर संघासन पुरष निर्वान। सहज भाए घट उपजी तान॥
दृढ़ पुरषारथ मन ले परोई। पलक ना विसरे सच बानी सोई॥

पूरन आशा सब संकट नासी। अखण्ड आरती चित करे बिलासी॥
गुपत दीप की आरती कीजे। **'मंगत'** जीव की गवना छीजे॥**96**

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

साचे शबद का सुनयो सत भेदा। जिसको ध्यावें नित चारे वेदा॥
काया अन्तर सदा बिराजे। सदा निरालम सरब निवाजे॥
देव दानव सिद्ध मुन ध्याएँ। तिस पुरख का पार ना पाएँ॥
अपने आप में रहे परबीन। नित निरन्तर आप में लीन॥
अधिक वडयाई अधिक परताप। सरब व्यापे सो निरालम आप॥
आवत जावत पवन की धार। मूल द्वार करे संचार॥
गुरमुख खोजे तत्त पहचाने। पवन को सोधे अन्तर बिध जाने॥
मूल द्वार में बन्ध लगाए। उलट पवन सतनाम कमाए॥
अल्प आहार सूक्षम निंद्रा। तत्त बिरोले नित जोगिन्द्रा॥
इरध उरध में सन्धी कीजे। अमरत नाम घट अन्तर पीजे॥
खुले ग्रन्थी नाद उपजाए। मनमुख मनुआँ सहज ठहराए॥
छिन छिन नाद की सेवा कीजे। नाद घनघोर कँवल को छीजे॥
खट चक्रन को नाद प्रभ छेदे। चढ़े आकास तिरकुटी को बेधे॥
सूक्षम धुन तरबेनी बोले। गुरमुख हंसा नित करे कलोले॥
मन अपने की करे निगरानी। नित ही राखे विच अमरत बानी॥
बिरह वैराग का चोला धारी। सत विश्वास कर सिफ़त विचारी॥
इन्द्री विखे से रहे अतीत। मन में राखे एक शबद परीत॥
निर्मल मनुआँ सतनाम का आहारी। द्वैत भरम बिकार को टारी॥
दीन ग़रीबी सत भेख को लीना। आलख शबद की सार को चीना॥
अन्तरमुख मन शबद ध्याए। घोर शबद जाए शिखर समाए॥
अधिक घनघोर शबद की तान। परगट भई जोत आलख निर्वान॥
जाँ से बिछड़ा ताँ जाए मिलाई। शबद भेद जाने जानाई॥

आसा तृष्ना जेवड़ी, बाँधा कुल संसार।
'मंगत' छूटे गुरमुख, पावे शबद निरंकार॥ 99

शबद को पूजे सो साचा पुजारी। शबद ध्यावे सो बड़ा आचारी॥
शबद सुरत कमावे योग। सुरत निरत ले अमरत भोग॥
शबद ध्यावे सतगुर की जुगती। शबद पहचाने लेवे जन मुकती॥
अन्तर शबद निरन्तर मुद्रा। तत्त विचारे गुरमुख जोगिन्द्रा॥
शबद सार जिस जन लखाई। दुर्मत त्याग सहज तृप्ताई॥
शबद कीरत शबद ध्यान। शबद से पावे जीव कल्यान॥

ताँ पूरन गुर परम तत्तवादी। देवें विचार पुरख आगाधी॥
कैसे पवन का नाका बाँधा। मूल द्वार को कैसे साँधा॥
बंकनाल को कैसे खोला। किस जुगत कर शबद घर बोला॥
क्योंकर चले आकास की धार। कैसे बाँधा मन गँवार॥
किस घर आसन कहाँ सुरत लगाई। किस शत्रु पर घात चलाई॥
भूख प्यास को कैसे जीता। कह बिध भेख लयो अतीता॥
कैसे खोला अगम द्वारा। क्या देखा वहाँ क्या विचारा॥
किस नीर का मज्जन कीना। कौन देही के मल को छीना॥
किस घर चन्दर सूरज की धारा। आलख जोत कैसे उजियारा॥
चार दिसा को कैसे सोधा। काल करम किस भाँत निरोधा॥
नीर छीर कह बिध निरनाए। कह जोगिन्दर सुन **'मंगत'** तपराए॥138
साचे नाम संग पवन को बाँधा। उल्ट पवन मूल द्वार को साँधा॥
उलट पलट पवन को दीना। खुली बंकनी शबद को चीना॥
शबद की धार चले आकास। शबद परतीत मन भयो रास॥
पाताल आसन सुरती आकास। ममता शत्रु का कीना घात॥
उलट पवन अन्तर को धारी। भुख प्यास सहज निवारी॥
शबद भेद ले भयो अतीता। सुनो जोगिन्दर योग सरूपा॥

आलख शबद से खोला अगम द्वारा। कोट भान सम देखा उजियारा॥
पवन नीर संग मज्जन कीना। सुरत देही को निर्मल कीना॥
इरध गृह चन्द उरध गृह भान। अनहद उपजी जोत की तान॥
पवन संकोच अन्तर को बोधे। चार दिसा को ऐसे सोधे॥

गुरमुख बुद्धी, नीर छीर निरनावे।
कह 'मंगत' सुन अवधू, अन्तर भेद लखावे॥ 139

सार जुगती करो पहचान। सुनो जोगिन्दर सार तत्त ज्ञान॥
आलख रूप अन्तर कर वासा। बिना जुगत ना होवे परगासा॥
दृढ़ विश्वास चित में धारी। सो जन पावे जोग की कारी॥
जीवन मरे मर के जीवे। सार जुगत योग को पीवे॥
मन पवन इक धारा कीजे। सत सरूप अन्तरगत लीजे॥
जब लग मन पवन नहीं एका। तब लग पाए नहीं विरत विवेका॥
मन पवन दो बाँधे बन्ध। उल्ट पवन कर नाद परचण्ड॥
पलक पलक हर नाम चितारे। एको नाम में जीवन धारे॥
पाँच इन्द्री अन्तरमुख कीजे। शबद अनहद ताल लखीजे॥
छिन छिन मन के बिख को काढे। सत जोगिन्दर भरम को बाढे॥
झूठी देह का गरब त्यागे। सत पुरख के चरनी लागे॥
नाद निरत सुरत इक कीजे। करम भरम सकलो चित छीजे॥
जत का आसन नित मन में राखे। तप का भोजन अन्तर में भाखे॥
सदा अतीत गुर जुगत विचारे। सहज नाम की धूनी उजियारे॥
पर-उपकार मित्र चित राखे। ज्ञान भभूत मन अंग में भाखे॥
एक निस्चय की कंठी धारे। प्रेम नाद का शबद विचारे॥
बिरह विवेक की मुद्रा धारे। तिस जोगिन्दर सों बलिहारे॥
अन्तर का सब पाट कर दूरे। केवल शबद रग रग में पूरे॥
ध्यान की मदरा में रहे मस्तान। अखण्ड नाद का कीजे पान॥
अपने आप करे पहचान। कलह त्याग होवे निर्वान॥
भाओ भगत का चोला धारी। अन्तर विरत कर लागी ताड़ी॥

साचा शबद अनहद धुन्न, अन्तर करे परकास।
'मंगत' मन निर्भय हुआ, पाए शबद घर वास॥ 189

सत सरूप का करो विचारा। जनम जनम का जाए अन्धकारा॥
सत विश्वास ले मन पावे शान्त। सत की खोज सब जाएँ भरान्त॥
सत ही विद्या परम तत्त मान। सत की सेव पावे कल्यान॥
अन्तरयामी रूप आपारा। जो जन खोजे पावे निस्तारा॥
अगम निगम तिस का बरतान्त। तत्त ज्ञान ये सार सिद्धान्त॥
तिस बिन मनुआँ नित डहकाए। गरब ग़ुबार में आवे जाए॥
नाना जतन करे दिन राती। तो भी अन्तर भरम की टाटी॥
करम की फाँसी जाए ना मीत। अन्तरगत ना जानी रीत॥
अठसठ तीरथ अन्तर जारी। काया देवल की कर ख़बर गुज़ारी॥
भरम जाए सत रूप परकाशे। अनहद नाद सब गवन विनाशे॥
इरध उरध में सुरती राखे। बन्ध प्रान सतनाम रस चाखे॥
विरत त्याग मन निहचल होए। सत सरूप का निरनय चित जोए॥
अखण्ड अद्वैत निर्मल धारा। साखी शबद किया विचारा॥
गुपत भेद की सार पहचानी। अजर नाद परसे निरबानी॥

मन पवन सुरती बन्ध धारे। अगोचर शबद खोज निरधारे॥
अमरत जीवन तिसका होई। नाम निरंजन सुरत परोई॥
उट्ठत बैठत घाले घाल। पर-उपकार दीपक चित बाल॥
सरब निरन्तर एक पहचाना। दुबधा त्याग होए कल्याना॥
सेव सेव मन की मल खोए। अजर पुरष परापत होए॥
सार जुगत ये ही पहचान। इक चित राखें नाम ध्यान॥
सकली इच्छया प्रभ हेत में छोड़े। सत सरूप चरन चित जोड़े॥
बसे आकाश शबद सँग वास। निर्मल ज्ञान में कियो निवास॥
जीवन मिरतक सतनाम का आहार। सत कला परसे करतार॥

दुबधा दुर्मत सब जाए, मन राखे सत विश्वास।
'मंगत' पावे परम पद, साधे तत्त अवनाश॥ 190

अबनाशी खोज करो नित मीता। दुरलभ देह की निर्मल रीता॥
बिन सोधे नर पशु समान। तीन ताप में तपे अनजान॥
अगोचर पुरष परम सुखदाई। जो सेवे सो ताप वँजाई॥
कल्पत जाए पावे सतधामा। आलख पुरख केवल सतनामा॥
सत विसार नित ही दु:ख धारी। छाया प्रीत से भई ख़वारी॥
सद वरखां का जीवन पाया। तो भी अन्धमत रहे तिरखाया॥
तृखा ना जाए लख करे उपाए। दुस्तर माया निस्तरनी अथाहे॥
सतपुरष का भेदी आवे। ज्ञान ध्यान दीपक जगावे॥
अजर पुरष की भगत करावे। ले भाओ परम गत पावे॥
मन पवन का मथना कीजे। जुगती योग अमीरस पीजे॥
उल्टी सुरती घर अन्तर आए। तीन भवन की सोझी पाए॥
सत सरूप अबनाशी देवा। प्रेम प्रीत से कीजे सेवा॥
सरब जगत का बिन्द विचारी। पिण्ड खोज के मिले मुरारी॥
अमरत रूप पुरख निर्वानी। खोजे विरला पण्डत ज्ञानी॥
इत उत सकल की सोझी आवे। एके वस्त सब माहीं दिखावे॥
नेम धरम का पावे पार। निष्काम करम कर होवे सचियार॥

अनन प्रीत सिमरन करो, साचा पुरख आपार।
'मंगत' पावे परम गत, नित चरनी बलिहार॥ 197

स्वास स्वास सुरत इक नाम को जापे। उलटी सुरती अन्तर में थापे॥
निमख निमख कर सेवे दयाल। एक स्वास नहीं पलक चित टाल॥
दृढ़ निस्चय धारे इक नाम। उरधकँवल परगासे अनाम॥
नाभकँवल में धन्दूकारा। उलटी नागन करो विचारा॥

प्रान अपान दोऊ सम कर राखे। केवल सुरती नाम प्रभ चाखे॥
अखण्ड चित परसे ब्रह्म नाद। ऊँच दृष्ट देखे बिसमाद॥
सुखमन नाड़ी घर नाद नित बोले। चढ़े आकास अमरत रस तोले॥
तीन भवन का खोले द्वार। अटल जोत देखे नरंकार॥
गरजे मेघ उनमुन के तीर। जो जाए रमया सो ही फ़कीर॥
पाँच तत्त का सूल सब हरया। शबद ब्रह्म अन्तर चित धरया॥
शबद बोले सुन्न शिखर की धार। निरदेह रूप का लखा पसार॥
केवल शबद अखण्ड आनन्द। अदभुत जोत भई परचण्ड॥
छिन छिन पुरख अनूप अपारे। सब कुछ तिसका हुआ विचारे॥
आपा मिटे परम तप धारी। साचे शबद की सोध विचारी॥
एक सुरती शबद रस पीवे। सतनाम तब ही परखीवे॥
उट्ठत बैठत करे अरदास। गुनातीत पुरख निरवास॥
ईड़ा पिंगला सुखमन नाली। तीनों मिलें ऊपर तिरनाली॥
निस दिन साचा योग कमावे। माया दुर्मत रोग वँजावे॥
साचा रूप अखण्ड आनाद। सरब घट रमया अनन्त बिस्माद॥
उलटी सुरती ब्रह्मण्ड को फोड़े। शबद योग दर दसवाँ तोड़े॥
अनहद नाद गरजे उरध कपाली। दमके दामन कोट भान उजयाली॥
चानन देख मन होए परसन्न। सतनाम का पायो सत धन्न॥
खिमा दया सत सील घर आया। सत सरूप आतम तत्त पाया॥

परम पुरख को पाया, हरया कूड़ विकार।
'मंगत' साचे रूप सों, नित जाऊँ बलिहार॥ 198

दर्सन पाए परसन्न होवे। दुर्मत गुबार सकलो चित खोवे॥
जाँ से बिछड़ा ताँ जाए मिलाए। परम आनन्द के नित गुन गाए॥
काल कल्लो से भयो अकाल। आप त्याग के भयो निहाल॥
सकली आपद इच्छया दु:ख नास। सत सरूप संग सुरत बिलास॥
अगन जाए मन ठाँडा होए। एको शबद चित बुद्ध परोए॥
भरम कल्पना से भए अडोल। सतनाम का पावे जब तोल॥

संसा सब संसार है, साचा नाम अगाध।
'मंगत' सिमरे प्रेम से, विरला गुरमुख साध॥ 216

उठ सिमरो साचे नाम को, भाओ प्रीत के संग।
जग में ये ही सार है, सुन साचा परसंग॥

नाम बिना मन धावे नित नीत। नाम बिना नहीं पावे परतीत॥
अक्षर ब्रह्म मूल निरधार। मिल सतगुर कर साचा विचार॥
रोम रोम में नित सो रमनीक। साखी पुरष अनाद अनन्त पुनीत॥
जो सिमरे सो पाए मन धीर। बिमल शबद नित पीवे जन छीर॥
सरब निधान जप एको नाम। गवन विनास पाए सतधाम॥
परचण्ड माया का वेग अपार। मोहे बड़े गुनी गुनकार॥
कोई जन पावे सत विवेक। मर जीवे इक नाम दी टेक॥
झूट काया का छोड़े मान। विच ग़रीबी करे नाम पहचान॥
स्वास स्वास जप सरजनहार। **'मंगत'** गुरमुख पावे तत्त सार॥**217**
खेम कुशल पाए प्रभ सँग मेल। सुरत निरत का परसे खेल॥
मन पवन बाँधे इक धार। साचा नाम कर गुपत विचार॥
जीभा होंट लगावे बन्ध। हिरदे जापे सतनाम अखण्ड॥
पवन की धारा में सुरत लगावे। नागन सोई को सहज जगावे॥
सुखमन नाली में पवन भरीजे। उमगे नाद माया गढ़ छीजे॥
उलटा नीर आकास चढ़ावे। खेती नरंकार को पी जावे॥
सुरत निरत उनमुन घर वास। धन्न योगी मन जुगत निवास॥
मिटे बकार पाई काल पर जीत। साचे नाम की आई परतीत॥
गोरख दत्त मछन्दर आद। सब ही खोजें ये जुगत बिस्माद॥

काया दीप में कीना अचरज खेल। **'मंगत'** गुर का पूत पावे प्रभ मेल॥**218**
पवन को सोधे सो ही तत्तवादी। पवन का खेल अगम अगाधी॥
आवे जावे इरध उरध परगास। मनुआँ बाँधे गुर जुगत बिलास॥
उलटा कुआँ का मुख उगाड़े। निरगुन सरगुन की राहट विचारे॥
निरगुन भरे सरगुन पीवे। धरती पलट आकास को लेवे॥
सूखे सरोवर उठे हल्लोल। आदी पुरख वहाँ करे कल्लोल॥
पाँच दूत करें डण्डौत। तू सरजनहार सब तेरी औट॥
बड़वा अगन नीर सुखावे। जीव जन्त आकास उठ धावे॥
शिखर आकास मेघ गरजे अपार। दमके दामन कर गहरा उज्यार॥
जीया जन्त सब शून समाए। **'मंगत'** भेद कोई गुरमुख अरथाए॥**219**
काया दीप का करो विचार। जाँ में रमया सो सरजनहार॥
गंग जमन सुरसती का तीर। औघट घाट रम रहो फ़क़ीर॥
अगम नाद पुरख अनूप। तीन भवन में पेख सरूप॥
इरध उरध पवन की धार। गुर उपदेश कर जुगत विचार॥
मन पवन कीजो नित एक। उलटे मारग का लक्खो विवेक॥
तीन बन्ध अन्तर मुख वास। नाम कमावे उरध कँवल परगास॥
मूल द्वार में लगावे बन्ध। पवन को पीवे धर सुरत अखण्ड॥
खुले सुखमन गगन में बोले। अच्छर अबगत की रसना तोले॥
सुरत निरत इक माल परोवे। दसवें द्वार सत शबद को जोवे॥
सहँसदल कँवल भया उजियार। पूरे गुर की सुन जुगत अपार॥
जाप अजपा सुरत निरत का भेद। गुर का शिष मटावे मन खेद॥

चार दिसा चौधां भवन को, बाँधे एके साथ।
'मंगत' गुर की ज़ुगत से, सतनाम अमीरस खाट॥ 220

पूरन करम पूरन परताप। पूरन रसना नाम प्रभ जाप॥
अखय पद निर्मल अती परगास। अन्तर गगन में करे बिलास॥
अन्धकार नासे अन्तरगत सूझे। अजर पुरष को प्रीत से पूजे॥
सो पूजारी सरब ज्ञात। अन्तर माहीं जो सुरती थाप॥
गंग जमन सरस्वती सिन्ध। राज प्रयाग खोजे बिन्ध॥
चन्द सूरज इक थाँ सम्भाल। अबगत शबद परसें दयाल॥
इरध उरध सुरती ठहराए। जोग निर्वान की गमता पाए॥
कोट भान कँवल परगास। तत्त निरंजन सिमरो अबनास॥
जुग जुग जीवे नहीं काल व्यापे। जाप अजपा अन्तर माहीं जापे॥
सुरत निरत की चौसर खेले। सुगढ़ खिलाड़ी चरन चित मेले॥
विमल शबद घर करे किलकार। गुरमुख पाए साची देहकार॥
परमानन्द तत्त विज्ञान। पूरन करमी करे पहचान॥

मिरतक इस संसार से, अजर पायो बिसराम।
'मंगत' सिमरन नाम का, देवे परम पद धाम॥ 235

सत करम सत धरम विचार। मानुष देह की सुन साची कार॥
जत का खण्डा तत्त डण्डा लेवे। दीनदयाल चरन चित देवे॥
झूट विकार ये मन तुरंग। नित ही भरमे जड़ माया संग॥
सत साधू का सुन सत बोल। पुरख निरंजन हिरदे में तोल॥
पूरब जनम का लेखा पाओ। साध बचन हरी नाम कमाओ॥
लोक कटुम्ब कुल जात गुमान। सब ही दु:ख की जानो खान॥
दीन ग़रीबी बन्दगी पाओ। खेम कुशल हरीचरन समाओ॥
महमा तिसकी नित चितार। नित दयाल सो सरजनहार॥
माँगो रसना साहब दरबार। जापो नाम अबचल भंडार॥
सो ही धन तेरी मीरास। साचे नाम का लीजो चित वास॥
देख माया ना साहब भूल। सत साधू का सुन बचन अनुकूल॥
बारमबार नर करूँ पुकार। झूट जगत सत सरजनहार॥
अपने अन्तर की खोलो पाट। चंचल मनुआँ आवे वाट॥
प्रेम हरी का चोला धारो। अनक जीवों के संकट टारो॥

ध्रुव लोक से पवन को बाँधे, सुरत पाताल पठाए।
इरध उरध में आसन करके, गुरमुख योग कमाए॥
बाहर सोलह पवन की गमता। सम कर पावे तत्त समता॥
पवन सम्भाल आरम्भत करे। धरती उलट आकासें चढ़े॥
उपजे नाद सारंग तार। धन्न योगी गत लखी अपार॥
निरगुन सरगुन जाने भेद। सतगुर मिलें मिटावें छेद॥
निरगुन सरगुन दोई बन्धाए। तत्त निरंकार तब परगट पाए॥
नौ दवारे बन्धे नीत। पवन को पीवे सो चरंजीत॥
पवन को सोधे उपजे नाद। अगम निगम की खेड अगाध॥
ऐसी जुगती जाने जोई। अनुभवी समाध में सुरत परोई॥
मन की विरती होई लवलीना। आलख शबद घट अन्तर चीना॥
उपजे शबद बहु रंग की तार। अमरत धुनत बाजन्त सार॥
त्रिकुटी भीतर शबद किलकारी। तब जोगिन्दर इच्छयाचारी॥
त्रिकुटी ऊपर परस सुखसीर। भँवर गुफ़ा के लागे फेर॥
नानां रंग जोती दरसाई। कोट भान छबी गिनी ना जाई॥
ज्यूँ ज्यूँ नाद गरजत करे। त्यूँ त्यूँ जोती से रस झरे॥
दमके दामन नाद रस पीवे। **'मंगत'** विरला कोई मर के जीवे॥**267**
सहँस हज़ार दल कँवल को फोड़ी। अजपा जाप की लाई झकझोरी॥
अगम जोत अखण्ड अनूप। परसे कोई गुर का पूत॥

पाँच शबद रंग उपजे नाद। सुरत समाई वड बिस्माद॥
बूझे शबद मन मगन समाए। होए निरास परम पद पाए॥
तिस ते परे ना कोई योग। मन पवना शबद रस भोग॥
तीनों बन्ध लगावे ताली। ब्रह्म कपाट खुले तिरनाली॥
निस दिन सोधे गुर का पूत। पाँच-पच्चीस बाँधी इक सूत॥
मनुआँ ठाके विरत रजाए। प्रन अपने को सम कर पाए॥
पवन पखारे शबद गुर जुगता। एह बिध उरध कँवल मुख खुलता॥
जब लग पवन ना सोधे मीत। तब लग पाए ना मन परतीत॥
काची काया करो विचार। ब्रह्मरूपनी पवन रीजार॥
पवन को सोधे मनुआँ ठहराए। नाम को सोधे पवन शुद्धाए॥
मूल नाम सतगुर बतलाया। अगम निगम की गम को पाया॥
चन्द सूरज का करे आहारा। सो योगी पावे भरतारा॥
ऐसा नाम कमावे जन कोए। जीवन जीवे सत रूप समोए॥

चन्दर सूरज दो ही बाँधे, पच्छम दिशा के घाट।
'मंगत' कँवल परगासिया, निर्मल सूझी बाट॥ 268

दिन दिन पवन को बाँधे योगी। अमरत पीवे ज्ञान संजोगी॥
चार उंगल आकास फैलाओ। गुरमुख ताँ में आसन लाओ॥
आसन आकास सुरत मतवाली। अमरत शबद पियो सुखसाली॥
अखण्ड नाद परगट तिरबैनी। जीवे योगी गुर की कहनी॥
मन पवन जब मेला होए। सुखमन बोले गगन धुर जाए॥
ऐसी करे कमाई जोए। गोरख ताँ के चरन को धोए॥
गगन गृह खेत उरध गृह माली। उल्टा फूल लगा बिन डाली॥
बिन फूले फल परगट होए। **'मंगत'** बोले सूझे जन कोए॥**269**
सोध कुण्ड में नीर बहंता। तिसको बांध आकास चढ़ंता॥
सिद्धाँ पुरखाँ की ये ही कार। धरती उलट आकास बठार॥
जब लग धरनी आसन नाहीं। तब लग आकास की गम कछु नाहीं॥
सतगुर मिले घर आसन पाया। बांधी पवन शबद रस ध्याया॥
उलटी पवन करे हलोल। बिन चंद चकवा करे कलोल॥

बोले पवन गगन गराजे। अनहद सुन बहु भाँत से बाजे॥
बजे बजन्तर सुने सब तार। तब ही नासियो मन विकार॥
विखे त्याग मन भया निर्वानी। घर में सूझे अकथ कहानी॥
नाम पवन सुरत त्रै बाँधे। गुर परतीत चौरासी खाँडे॥
अलप आहारी सूखम निद्राई। गुरमुख बूझ मन गत पाई॥
उल्ट पवन का करे नित आहारा। सदा तृपत नित नित जयकारा॥
भुख प्यास निद्रा जब गई। अगम शबद तब सोझी भई॥
सदा मतवाल शबद के संग। नाम ध्यावे परसे आनन्द॥
शबद सुरत मिलावे इक बन्ध। चढ़ी समाध नित अखण्ड॥
गुपत योग ये सार लखाई। सतगुर मिले तब परचे भाई॥
क्योंकर मन की मनसा जाए। क्योंकर सुरती ठौर को पाए॥
क्योंकर भरम गण्ठी जड़ टूटे। क्योंकर जीव दुर्मत से छूटे॥
बोले **'मंगत'** करे विचार। बूझे कोई गुरमुख गुनकार॥**270**
पवन को बाँधे मनसा ठहराई। शबद को बूझे सुरती गत पाई॥
इरध उरध पवन को बेधे। भरम गण्ठी का कीनो छेदे॥
खुली गण्ठी इक अण्डा थाया। गगन गुफा में जाए नाद वजाया॥
बूझे नाद दुर्मत मैल हरया। पारगरामी तब नज़री पड़या॥
चंचल मनुआँ पाए बिसराम। आवागवन का टूटे जाम॥
ऐसी कमाई करे जोए। तिस जन कोई बिगन ना होए॥
सदा निर्गुन उदासी मत। एक नाम की लाखे मित गत॥
नाम पवन जो मेला होई। तब ही मन की जड़ता खोई॥
साचा राह योग ये ही। होए जोगिन्दर परखे सनेही॥
पवन उलटाए सुने रबाब। अबगत पुरख का लखे हिसाब॥
बाजे घंट बीनी नफ़ीर। **'मंगत'** बूझे परम फ़क़ीर॥**271**
अन्तर में जो रहे समाई। तिसको व्यापे काल कभूँ नाहीं॥
भरम त्याग शबद को बेधे। गुर परताप चौरासी छेदे॥
नौ द्वार को अन्तर उलटाए। सुरती बाँध पवन घर जाए॥
अरच परच पवन घर खेले। जनम जनम का छूटा मेले॥

आलख शबद गुरमुख विचारी। सत मारग का भया वापारी॥
गृहस्ती विरक्ती जो कोई होए। मारग बूझ भरम चित खोए॥
बन्ध खुलासी का मारग एका। गुरमुख परसे धर विरत विवेका॥
अपान पवन को प्रान में मेले। ले प्रान अपान में खेले॥
नित अश्वमेध करे मुनी ज्ञानी। शबद अखण्ड पाए पुरख निर्वानी॥
शबद भेद जब पूरन पाए। तब जीवन नर सुख वरताए॥
धन्न सतगुर जिस मारग दिखलाया। अजर पुरष का दर्शन पाया॥
धरती पदम शीश धरे अरशे। आलख शबद निस बासर बरसे॥
गुर का शबद बिमल तत्तसार। **'मंगत'** बूझे होए भ्रम छार॥**272**
ऐसे शबद की कथा अनूप। करे बखान कोई सतगुर रूप॥
जिस सूझा तिस पाई जुगत। विचरे जग में सो जीवन मुकत॥
बिना योग नहीं मनसा ठहराए। बिना योग नहीं तृप्ती आए॥
सतगुर मिले तब सार को पाया। अमरलोक में जाए समाया॥
तीन भवन सुख सहज अस्थाना। विचरे शबद आलख निर्वाना॥
गंग जमन सरस्ती बन्ध। अबगत पुरख का प्रगटयो सन्ध॥
सुर नासका मद्ध सुरती ठहराए। सार शबद को सो जन पाए॥
उलट सुरत घट पवन को पीवे। अछल अछेद अर्थ को लेवे॥
रमज़ गुपत जाने कोई सूर। ऊँचा शिखर बजावे तूर॥
चंचल मन को कीजे घात। अमरत पीवे सुन्न के घाट॥
सहज सुन्न में वास नित करी। अचल समाध शबद रस भरी॥
पावे कोई गुरमुख भेद। आद निरंजन पुरख अछेद॥
नाम बिना नहीं पावे योग। पावे नाम सतगुर संजोग॥
योग पाए मन मल हरया। अखण्ड दीपक कपाट में धरया॥
खुले कपाट भया उजियारा। **'मंगत'** योगी सत जुगत विचारा॥**273**

आसन धरती सुरत आकासे, लखे ज्ञान निर्वानी।
उपजे शबद जोत दरसावे, सुरत भई इकलानी॥
तन मस्जिद प्रान मुसल्ला, तिस पर पढ़े नमाज़ हकानी।
तरक ख़ुदी दा सजदा कीजे, घर बूझे रमज़ रूबानी॥

एह बिध तत्त को खोजिये, भाओ प्रेम के साथ।
तिमर जाये सब जीव का, परगट पावें नाथ॥
आहार विहार करे जुगत का, जो मन को धीरज दे।
सतनाम सिमरन करे, योग जुगत को ले॥
उठ परभाती बैठ के, मनुआँ कर सुचेत।
जिस ठाकुर की रचना, तिस चरनी धर परतीत॥
मन पवन को एक कर, सतनाम जप सार।
जाये व्याधी मन की, पाएँ शबद की धार॥
सुरत रूप अंतर को आवे, ले के साचा नाओं।
शबद रूप हो परगट होवे, पावे गुरमुख थाओं॥
अन्तर बाहर सम कर राखे, मनुआँ नाम कमाये।
उलट पलट पवन को देवे, पलपल जुगत लखाये॥
छिन छिन मन से दुर्मत छोड़, सतनाम चित लाये।
अबगत रूप शबद घर परसे, उदर दीप सुख पाये॥
सुरत समानी प्रान की धारा, प्रान शबद को खाये।
प्रन अपने को नेहचल करके, गुरमुख जुगत कमाये॥
खैंचा खैंची मन की टूटे, पवन की सोध कमाये।
जाग्रत भयी सुती होई नागिन, सुखमन बन्ध खुलाए॥

शबद गरज आकाश जाये कीनी, सहज सुन्न के घाट।
ताँ में प्रीती जिसने पाई, फिर गरभ नहीं आत॥

सतनाम नित साधिया, बैठ पवन के तीर।
'मंगत' दृष्टि दिव्य खुली, घट पायो शबद का नीर॥ 472

जीवन रूप मुरारी, नित ध्याओ मन के माहीं।
बिन सिमरे भगवन्त के, फिर फिर जूनी पाईं॥
परम आनन्द सो रूप है, तीन काल परकाश।
नित सिमरो साची जुगत से, नित मन करो बिलास॥
तृखा जाये सब जीव की, जब सतनाम कमाये।
पूर मनोरथ सब होवे, प्रभ चरनी लीन समाये॥
अन्तर नाम पछान के, मन की हरी वियाध।
शबद रूप घर परसिआ, धारी सुन्न समाध॥
ऊँचे शिखर समाया, सुनी शबद की तान।
मन में मन परसन्न भया, घर भेंटे पुरख सुजान॥
निस दिन प्रीती शबद में, अधिक परापत पाये।
सतगुर साध की सेव से, निज घर आन समाये॥
अघट नाद घट में होवे, पाँच दोख भये नास।
अपने आप समाया, अबगत जोत परगास॥
घालन साची नाम की, गुरमुख घाले कोये।
नाम रतन जिस पाया, फिर जनम नहीं होये॥
उट्ठत बैठत सिमर लो, अमरत नाम सुखसार।
मनसा होवे लीन सब, परसें शबद निर्धार॥
अगोचर बानी घर परगट जानी, तीन ताप भये दूर।
अनहद नाद घर परगट हुआ, साखी रूप हज़ूर॥

ये ही साची बन्दगी, सकले दोख मिटाये।
'मंगत' शबद पहचानया, जो जल थल पूर समाये॥ 473

अबगत नाम साहब का सिमरो, मन तन होये खुशहाल।
बंधन से मुक्ता होवे, जीवन पाये निहाल॥

22:16

शबद का सिमरन जिस किया, छाड कलपना द्वैत।
'मंगत' सो मुक्ता भया, काल जाल नहीं लेप॥ 635

ऐसी जुगती करो विचार। जाँ से मिले शबद आधार॥
साचा सिमरन प्रभ का जोई। शबद परकाशे निर्मल सोई॥

नाम जपे अनाम समाई। मारग ज्ञान सतगुर दिखलाई॥
आसन दृढ़ मनसा दृढ़ कीजे। सतगुर चरन कँवल चित दीजे॥
विज्ञान सरूप का करे विचार। घट घट व्यापक जो सरजनहार॥
अबगत नाम की जाने जुगत। सिमरन कीजे जन पाये मुकत॥
नौ द्वार देही का कोट। तिसमें परकाशे निर्मल जोत॥
आनन्दकन्द मूरत सदा अडोल। तिसको सिमरे जाये भ्रम खोल॥
मन को राखे पवन के संग। आवत जावत सुने शबद परसंग॥
स्वास स्वास प्रभ नाम ध्याई। कठन मन को नित जाप लगाई॥
जाप अजपा गुर जुगत से पाई। सिमर सिमर मन कलह वँजाई॥
साचे नाम की ज्यों आवे परतीत। मिथ्या नाम रूप जाय भरम पलीत॥
दृढ़ नीयम हरजन नित राखे। स्वास सुरत मिल नाम को चाखे॥
आहार ब्यौहार जुगत का धारी। साचा निहों प्रभ चरन विचारी॥
उट्ठत बैठत सतनाम को गाई। स्वास स्वास में करे टकराई॥
गुर की जुगती प्रन से बूझे। साचे नाम की रसना सूझे॥
मन राखे नित नाम गोबिन्द। करमजाल से छूटे जिन्द॥
निर्मल चित सतनाम को ध्याई। अंतर बाहर सम प्रीत कमाई॥
कारन करते की नित करे वडयाई। रुच रुच साचा नाम कमाई॥
संगत निर्मल विचार शुद्ध धारी। पर उपकार सत साधन विचारी॥
शुद्ध करम ज्यों चित राखे। निश्चय दृढ़ सतनाम को चाखे॥
ज्यों ज्यों मन का जाये गुबार। प्रीती उपजे प्रभ नाम आपार॥
सिमरे नाम मन धीर समाई। बाहरमुख त्याग अंतर को आई॥
प्रभ के नाम की महमा अत पाई। उट्ठत बैठत नहीं पल विसराई॥

मन का डोलन तब जाये, जब सतनाम प्यार।
'मंगत' पल पल जो जपे, पाये आलख शबद आपार॥ 636

मन को राखे संग स्वास की धार। स्वास में सिमरे सतनाम अपार॥
गुपत नाम नित ही विचारे। केवल सिमरे स्वास आधारे॥
मन की धारन जब शुद्ध होई। भयो इकागर सतनाम परोई॥
निश्चल चित जब नाम विचारी। आनन्द की खानी घर खुली पटारी॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

परचण्ड माया को छेद के, हरजन शान्त समाई।
'मंगत' कठिन मुहीम ये, सतनाम से विजय लखाई॥ 666

सतनाम सिमर मन पूरन होई। दुबधा दुर्मत भरमत सब खोई॥
अन्तरगत प्रभ चरनी मेला। सतनाम ध्यान पावे कोई खेला॥
निराकार निरालम स्वामी। सतनाम ध्यान में मिले अनामी॥
अन्तर बाहर नाम ध्याई। पलक ना विसरे अत नाम वडयाई॥
प्रभ के नाम में जीवन जीवे। शबद की सार अन्तरगत पीवे॥
सहज जुगत मन रहे समाई। अबगत प्रेम प्रभ चरन लखाई॥
अन्तर बाहर शून्न गत सूझे। अनहद नाद सतनाम घर पूजे॥
गंग जमन सरसती घाट। सतनाम की खोजो वाट॥
निरगुन सरगुन का लख भेद। सतनाम समावें अछल अछेद॥
मूल द्वार में पवन को सोध। सतनाम अगाध को करो सरोध॥
निर्मल बुद्धी प्रभ नाम विचार। साचे नाम की लख तत्त सार॥
परमानन्द पुरख अबनासी। तीन भवन लख गत सुखरासी॥

ईड़ा पिंगला सुखमन पार। शबद स्वामी सतनाम विचार॥
नौ द्वार काया के ठाक। अन्तरगत दर दसवाँ झाख॥
पूरन पुरख सतनाम समाई। अनहद नाद अत ही गरजाई॥
पुरख निरंजन अत परकासा। सतनाम सिमर पायो बिलासा॥
अचरज कोट काया का साजा। सतनाम सरूप साहब बिराजा॥
रूप रेख से रहे न्यारा। नित परकास पुरख निरंकारा॥
नित सुतन्तर अत शक्ती धारी। सरब ज्ञाता सतनाम मुरारी॥
अत बलवंत अनंत सरूप। बिस्माद ध्यान सतनाम अनूप॥
खोजत खोज गुनी मुनि हारे। पूरन पुरख का पायें नहीं पारे॥
सत परतीत जिस नाम ध्याया। दुबधा त्याग मंगल को पाया॥
गुपत किवाड़ काया का तोड़ा। सतनाम सरूप पाया प्रभ पूरा॥
पिण्ड ब्रह्मण्ड सब भेद लखाई। सतनाम मूल सोझी जब पाई॥

महमा साचे नाम की, हरजन जाने आप।
'मंगत' पूरन रूप से, जल थल रह्या व्याप॥ 667

नित ध्याओ सतनाम झाई। नाम की महमा है पार पराई॥
भाँतक भाँत रसना नित गायें। शास्त्र सिमरत मुनि भेद बतायें॥
दुस्तर जग से तब निस्तर होये। सार सरूप जब प्रभ नाम परोये॥
अचरज वस्त जग मिथ्या माईं। सतनाम ध्यान जो रंचक पाईं॥
सतपुरखों की कीरत चित धार। मन में आवे सतनाम विचार॥
अपने मन की सब भरमन छोड़। साचा मारग चरनी चित जोड़॥
दुर्लभ जीवन समाँ ये पाया। भज करतार परम सुखराया॥
अपनी भरमन दे संकट भारी। अन्तकाल नर होए ख़वारी॥
अपनी भरमन भय रूप दिखाई। जम रूप हो अन्त दरसाई॥
अपनी भरमन लज्या पत नासे। पाप मलीन में नित करे निवासे॥
अपनी भरमन बन्धन आपार। जन्मे मरे जूनी बहु धार॥
अपनी भरमन दिन रैन दु:खदाई। मारग सुकृत नहीं सोझी आई॥
अपनी भरमन है काल सरूप। ज्यों ज्यों भरमे पावे दु:ख कूप॥
अपनी भरमन नित वैर परगासे। सकल जियाँ संग खेद बिलासे॥

मन जब निर्मल भया, तब पाई सुखसार।
'मंगत' सरब सृष्ट में, पायो इक निरंकार॥ 671

एह बिध साचा नाम जो ध्याई। तिसके निकट भय भरम नहीं आई॥
आवत जावत स्वास पहचानी। सतगुर जुगत का भेद लखानी॥
स्वास स्वास सतनाम ध्याई। सुरत एकागर परमगत पाई॥
स्वास सुरत कीजे इक मेल। घर में पावे अबनाशी खेल॥
स्वास सुरत इक दृष्ट निहारे। जनम जनम की भरमन टारे॥
गुरमुख पन्थ सो ही जन पाई। स्वास सुरत इक धार मिलाई॥
सकल देही परकाशन-हारा। विज्ञान सरूप स्वास की धारा॥
स्वास ज्ञान गुपत अलेख। जो जन परसे पाये नाम का भेख॥
सकल विकार पर पावे जीत। स्वास सुरत राखे जो चीत॥
निर्मल ज्ञान मन माहीं विचार। अबगत रूप ये स्वास की धार॥
ज्ञान विज्ञान का पूरन भंडार। पावे भेद कोई गुनी आपार॥
निर्मल जुगत सो स्वास को पीवे। काल को खाये जुगाजुग जीवे॥
चरंजीव पंथ अगोचर ज्ञान। स्वास सुरत की खेल पहचान॥
अबगत रचना साहब रचनाई। पाँच भूत में रंग रंगाई॥
स्वास ज्ञान समाये प्रभ नाम। करता हरता ठाकर सुखधाम॥
स्वास ज्ञान ये मूल योग। जो जन खोजे भये अरोग॥
स्वास ज्ञान ये मारग अनूप। तिसमें पाये प्रभ रूप अनूप॥
स्वास ज्ञान मुकत रस सार। जो जन पीवे सतनाम आधार॥
सकल तृखा जीव की जाये। स्वास सुरत मिल नाम कमाये॥
सकल वियाध हरे परमाद। स्वास सुरत मिल नाम आराध॥
सकल जुगत में सो परबीन। निज ठाकर ध्याया स्वास गत चीन॥
सकल धरम में दृढ़ता पाये। स्वास स्वास जो प्रभ चरन ध्याये॥

जीवन जीवे जाये काल का भरम। स्वास सुरत जो राखे इक धरम॥
अंतरगत बाहर रंग एके। भेद पछाने पाये शबद अलेखे॥

स्वासगति की गत लखे, ध्याये नाम तत्त सार।
'मंगत' परगट पाइये, तब साखी शबद आपार॥ 672

उठ्ठत बैठत राखे इक चित्त। स्वास सुरत प्रभ नाम जपत्त॥
ज्ञान विज्ञान के खुले भंडार। निर्मल जुगत मन स्वास में धार॥
देह ज्ञाता स्वास गत जान। निर्मल जुगत ये मुकत निधान॥
स्वास को खोजे सहज के भाये। अंतर बाहर सतनाम कमाये॥
ज्यों ज्यों सुरती स्वास में धारे। कोट पाप मन का भयो छारे॥
निर्मल विचार घट में प्रगटाई। अबगत ज्ञान जो स्वास लखाई॥
स्वास की धार मुकत का बँध। मुकत पहचाने जो परसे संध॥
अजर पुरष अबनाशी देवा। स्वासगती में नित रमेवा॥
मिल सतगुर जिस जुगत पहचानी। आलख शबद की कथे कहानी॥
स्वास सुरत जब एका होई। शबद ब्रह्म तब घट प्रगटोई॥
शबद पहचान कलह सब जाये। आनन्द सरूप की रसना खाये॥
पल पल हरजन जुगत समाई। स्वास सुरत सतनाम कमाई॥
अखण्ड ध्यान स्वास में धारे। गवन विनास पाये ज्ञान अपारे॥
प्रेम प्रीत का रंग रँगाई। आलख शबद परमेश्वर पाई॥
दिवस रैन मन स्वास परबीना। गुरमुख विरले ये खेल परखीना॥
नित सतनाम का टाँक लगाई। स्वास सुरत का जोड़ जुड़ाई॥
निर्मल जुगती ये बूझे कोए। काल त्याग अमर धाम बसोए॥
पूरन पुरख तब घट परगासे। स्वास स्वास जब नाम उपासे॥
गुनी पुरष कोट मद्धे कोई। गुपत ज्ञान का भेद लखोई॥
मन अपने में मगन समाई। सिमर सिमर सतनाम प्रभताई॥

साखी साचे नाम की, मन तन में लियो परोये।
'मंगत' सिमरन सार है, सब भय भरम दु:ख खोये॥ 689

कोई गुरमुख सिमरे नाम स्वामी, त्याग भरम दु:ख खानी।
अंतर बाहर शान्त समावे, घर आलख लेख लखानी॥
प्रेम प्रीत की रसना धारी, सतनाम की सेव पछानी।
आद जुगादी सत कर पूजे, आलख शबद सत बानी॥
बिरह बैराग का भोजन कीना, चित एक आधार समानी।
दुबधा त्याग प्रभ एक ध्याया, चित कीरत सार बखानी॥
गंग जमन का मारग सोधा, स्वास की गत मित जानी।
अंतर बाहर सम कर पूजे, मन चंचल विरत ठहरानी॥
नियम संजम ध्यान पछाता, सतनाम जपन गत जानी।
दुर्मत रोग जीव का नासे, घर सार शबद पहचानी॥
गगन मंडल में अनहद बोले, अमीरस उपजे बानी।
एक सुरत हो मंगल गाया, मिटी काल जाल भ्रम खानी॥

शबद में सुरती पल पल खेले, तज इच्छया करम निशानी।
निर्भय रूप शबद रसखाये, सब आवागवन बिनसानी॥
अद्भुत नाद कुलेल करे घर, लीन भयो मन बानी।
एक सुरत नित रसना खावे, अमरलोक गत जानी॥
इच्छया करम ग़ुबार विनासा, जिस सुनी ये सारंगबानी।
नाम सिमर के जीवन पाया, घर ब्रह्म जोत दरसानी॥

वडभागी ये मारग सोधे, चित सतगुर सेव पछानी।
'मंगत' माया भरमन छूटे, पद परसे अखण्ड निर्वानी॥ 690

ऐसी कीरत जिस जन पाई, सो ही मुकत समाये।
अमरत शबद अखण्ड सुखरासी, पल पल सेव कमाये॥
बाँध के सुरती अन्तर कीजे, दसवें घाट ठहराये।
अनहद नाद रतन को पीवे, जनम जनम भ्रम जाए॥
त्रैगुन माया जाल विनासे, सतनाम की कीरत पाए।
अखण्ड प्रीती मन में धर के, नाम गोबिन्द का गाये॥
नाम को सिमरे शबद को पीवे, अकथ कथा अरथाये।
गुपत परगट भेद पछाने, सब मन का भरम चुकाये॥
एक आधार अन्तरगत धारी, शबद महमा को ध्याये।
अबनाशी पुरष पछान करी, निमख निमख रस खाये॥
अमरत शबद से अमरपद पाया, सब मन के रोग मिटाये।
मिथ्या भरम की रसना त्यागी, उपरस धाम लखाये॥
शबद में जीवन हरजन पावे, घर अबगत खेल खिलाए।
सत सील मन आन समाया, सब ताप तपन बिनसाये॥
ऊँचे धाम शबद तत्त बूझे, कोई गुरमुख तत्त गत पाये।
अपना आपका दर्शन करके, मन अखण्ड शान्त समाये॥
घर विच घर का दर्शन पाया, शबद सार तत्त ध्याए।
अंतर बाहर प्रभ एक दिखाया, सब दुर्मत ग़ुबार मिट जाये॥

शबद में सुरती रुच रुच खेले, सच खण्ड लीन समाये।
'मंगत' विरले भई परापत, सतनाम कीरत सुखदाये॥ 691

मन का डोलन तब जाये, जब सतनाम प्यार।
'मंगत' पल पल जो जपे, पाये आलख शबद आपार॥ 636

मन को राखे संग स्वास की धार। स्वास में सिमरे सतनाम अपार॥
गुपत नाम नित ही विचारे। केवल सिमरे स्वास आधारे॥
मन की धारन जब शुद्ध होई। भयो इकागर सतनाम परोई॥
निश्चल चित जब नाम विचारी। आनन्द की खानी घर खुली पटारी॥

स्वास सुरत मिल किया हलोल। नाभी अस्थान में पाई कलोल॥
सुखमन नाड़ी ने मुखड़ा खोला। अबनाशी शबद तब उदर में बोला॥
मीठी धुन जब शबद गुँजारी। निश्चल बुद्धी काया कम्पारी॥
बिस्माद हलोल शबद घर कीनी। गुर का दास ये रंग रंगीनी॥
सिमरन नाम पल पल को धारी। घट में शबद अत करे गुँजारी॥
अमरत रूप घर अन्तर पेखा। गुरमुख कीजे छिन छिन लेखा॥
साची जुगत में पाया विश्वास। साचा नाम भयो परगास॥
नाभ कँवल जब नागन जागी। विषे त्याग सो भया बैरागी॥
शबद सरूप संग हेत अधिकाई। तिसमें लीन मन को सुख भाई॥
सकल जंजाल से पाई ख़ुलासी। घर में परगट जब पाये अबनाशी॥
सरूप अनुभव की अवस्था ये ही। सुरती उलट नाभी थल लेई॥
छिन छिन वाँ में करे कुलेल। जनम जनम की धोए मैल॥
तब सतनाम संग हुआ प्यार। गुरमुख गावें पल पल की सार॥
जिस पलक मन शबद को खाई। वाह परसन्ता उस घड़ी में आई॥
चौधां लोक में वस्त ना कोई। जिसका परमान तिस तुल होई॥
घर में ठाकर चमक दिखाई। हरजन बिरह पाई अधिकाई॥
चंचल मन को शबद में राखी। दृढ़ निध्यास जतन ये भाखी॥
पाप करम मन मैल गँवाई। निष्काम सरूप सुगन्धत पाई॥
उट्ठत बैठत प्रभ नाम पुकारे। मोह माया की मैल उतारे॥
मारग योग का सही पछाता। गुर परसाद भयो रँगराता॥

नाभ कँवल परगासया, शबद सुनी टंकोर।
'मंगत' चला निज धाम को, छाड कलपना शोर॥ 637

दृढ़ अभ्यास गुरमुख पाये। पल पल साचा नाम प्रभ गाये॥
दुर्मत छाया ज्यों ज्यों छीजे। शबद अघोर घट अन्तर सीजे॥
शबद हलोल ऊँची उठ धाई। छाड पिण्ड ब्रह्मण्ड समाई॥
सूक्षम धुन तिरबैनी गुँजारे। गुरमुख देखे घर खेल अपारे॥
ऐसी जुगत जिस जन लखाई। सुपन माहीं नहीं काल डराई॥
जतन जतन कर मन को जोड़े। त्रिकुटी महल में पाये सरूरे॥

ऐसी जुगती योग की, 'मंगत' करे बखान।
सुन पुरखा गुनवन्तया, भेंट करो भगवान॥ 264

प्रथमे आसन सहजे बाँधे। इन्द्री इस्थिर मनुआँ खाँडे॥
काची काया करे विचार। आवत जावत पवन संचार॥
अपने माहीं ब्रह्म तत्त चीन। सो ही जोगिन्दर योग परबीन॥
पवन को छेदे मन ठहराए। पवन को सोधे सत शबद को पाए॥
पाँच तत्त पच्चीस धारा। काचे गढ़ का करो विचारा॥
नौ द्वार ये गढ़ के जानी। दसवाँ गुपत लखे कोई ज्ञानी॥
खट चक्कर इस काया माईं। बूझे गुरमुख योग लखाईं॥
सार योग की जानो मीता। थामे पवन भए पुनीता॥
गुदा लिंग नाभी अस्थाना। हिरदे कंठ धरे मकाना॥
त्रिकुटी चक्कर पछाने जोई। तिस जन को फिर गवन ना होई॥
खट चक्कर और पाँचों मुदरा। ब्रह्म परकाश शबद निरद्वंदरा॥
नाभकँवल है अचरज थाना। जाँ में वसया श्री भगवाना॥
तिससे उपजे स्वास का थम्बा। सुरती खेले खेल अचम्बा॥
दस पवना देह में बिस्तारी। दो पवना सब की अधिकारी॥
प्रान उपान ताँ को नामा। करे पछान ले बिसरामा॥
गुर की सिखया जाप जपावे। अकथ कथे शबद रस पावे॥
अपना रूप आप मिलाए। **'मंगत'** बोले ज्ञान आगाहे॥**265**
बाहर जाती पवन हकारी। भीतर आवे रूप साकारी॥
हकार साकार मिलावे दोई। निरबिख नागन सीधी होई॥
हकार साकार को एह बिध मिलाए। बाँधे पवन पच्छिम घर जाए॥
ईड़ा पिंगला में सुरती धारे। गुर का शबद पल पल विचारे॥
उलट पवन कमल परगासे। उपजे शबद ज्ञान धुन रासे॥
उठके शबद चढ़े आकास। बाजे अनहद नाद निर्बास॥
स्वास सुरत और नाम का बन्ध। गुरमुख खोले बिखमी सन्ध॥
उलट पलट पवन को देवे। मूल शबद नित मन में पीवे॥

नाभकँवल में गरजे बाई। दसवें द्वार तब सोझी पाई॥
बाजे अनहद नाद अखण्ड। धन्न योगी छेदा ब्रह्मण्ड॥
मूल योग की सार पहचान। मन पवन की लाओ तान॥
मन पवन कीजे इक ठौर। गुरमुख बूझे मता अघौर॥
पवन आरम्भ संग नाम सम्भाले। बंकनाल के तोड़े ताले॥
उलट पवन घर उमगे नीर। पीवे कोई कामिल फ़क़ीर॥
उलटा नीर चढ़े आकास। देखे खेल अबगत अबनास॥
मन पवन को नित परचेले। अबगत नाद गगन में खेले॥
सतगुर मिले तब जाने पन्ध। **'मंगत'** खोले विखमी सन्ध॥**266**
ध्रुव लोक से पवन को बाँधे, सुरत पाताल पठाए।
इरध उरध में आसन करके, गुरमुख योग कमाए॥

श्री शिव पार्वती ऋषी मुनी । तत्वसिद्ध सद्गुरु ज्ञानी ।
संत महंत विचारवंतांनी । सोऽहम् सोऽहम् बोलला ।।६।।

प्रभातकाळी उठावे । शुचिर्भूत निर्मळ न्हावे ।
सोऽहम् सोऽहम् जपावे । भक्तिभावे ।।७।।

सोऽहम् जपावा सर्वकाळ । न लगे कांही काळ वेळ ।
सदा सर्वदा तळमळ । अंतरी जयाची ।।८।।

अंतरी भाव सोऽहम्चा प्रियोत्तम तत्त्वविचाराचा ।
आत्मस्वरूप प्रेमाचा । भक्तिभाव असे ।।९।।

सोऽहम् प्रेमस्वरूप । प्रेम आहे ज्ञानरूप ।
ज्ञान आहे आनंदरूप । आनंद रुपे शांती ।।१०।।

आपणास सुख असावे । ऐसे जीवा वाटे स्वभावे ।
म्हणूनि अखंड सोऽहम् जपावे । तेणे सुख पावाल ।।११।।

सुख नाही शांतीविण । शांती नाही ज्ञानविण ।
ज्ञान नाही प्रेमाविण । सोऽहम् भाव भक्तीच्या ।।१२।।
सोऽहम् म्हणजे तो मी । तो म्हणजे आत्मा मी ।
आत्मा तो परमात्मा मी । स्वयं प्रकाशरुप ।।१३।।
स्वरूप प्राप्ती सोऽहम्‌ने । सोऽहम् जपावा चिंतनाने ।
चिंतन करावे विवेकाने । प्रियोत्तम मार्गे ।।१४।।
आत्मानात्म विचार । हा साधकाचा आचार ।
सोऽहम् भावाचा प्रचार । अंतरात असे ।।१५।।
तत्त्वविचारांचे वाचन । त्या विचाराचे मनन ।
सोऽहम् भावाचे चिंतन । प्रियोत्तमाने करावे ।।१६।।
संयम पावित्र्य साधेपणा । हा साधकाचा आहे बाणा ।
सोऽहम् सोऽहम् अखंड म्हणा । प्रियोत्तम भावे ।।१७।।
श्रद्धा विवेक चिंतन । हे साधकाचे व्रत जाण ।
सरळ राहे निरहंकारीपण । सोऽहम् सोऽहम् अंतरी ।।१८।।

साधन मार्ग प्राप्तीचा । सोऽहम् सोऽहम् भाव जपाचा ।
चिंतन मनी ध्यास त्याचा । प्रियोत्तम भावे ।।१९।।
सोऽहम् भाव कळला ज्यासी । आत्मप्रेम करतो सर्वांसी ।
शांती ज्ञान प्रसन्नतेसी । संलग्न राहे नित्य ।।२०।।
सोऽहम् सर्व नामामध्ये श्रेष्ठ । जपांमध्ये सोऽहम् वरिष्ठ ।
अखंड चिंतन करणे इष्ट । स्व-स्वरूप पावावया ।।२१।।
सदा प्रेमळ निर्मळ । स्व स्वरूपी निश्चल ।
सोऽहम् जपावे सर्वकाळ । तो प्रियोत्तम जाणावा ।।२२।।
स्व स्वरूपी दृढ श्रद्धा । विपती अथवा सपंदा ।
सोऽहम् अंतरी सर्वदा । तो प्रियोत्तम जाणावा ।।२३।।

।। प्रियोत्तम तत्त्वयोग ।।

सच्चिदानंद महत्तत्व । अनादिसिद्ध परमतत्त्व ।
अविनाशी स्वयंभू जे तत्त्व । ते तत्त्व प्रियोत्तमाचे ।।२४।।

।। अंतरीचा सोऽहम् भाव।।

अंतरीचा सोऽहम् भाव । भावाने भाव अनुभवावा ।
त्याने भावानंद सुखे पावाल । तो मी आत्मा चिंतीत रहावा ।।

ॐ सोऽहम्

ॐ सोऽहम् श्रीम् सोऽहम् । तत्त्वं सोऽहम् सः सोऽहम् ।
सोऽहम् हंसः हंसः सोऽहम् । ॐ तत्त्व सोऽहम् सः ।।१।।
देहो देवालयः प्रोक्तः । सजीवः केवलं शिवः ।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यम् । सोऽहम् भावेन पूजयेत् ।।२।।
प्रथमा प्रतिमा पूजा । जपस्तोत्राणि मध्यमा ।
उत्तमा मानसी पूजा । सोऽहम् पूजोत्तमोत्तमा ।।३।।
सोऽहम् भावे रात्रंदिन । तेथे ठेविता अनुसंधान ।
देव देवता होऊनि प्रसन्न । देती वरदान साधकाते ।।४।।

ॐ सोऽहम्

।। परंपरा महिमा।।

शिव शिव महादेव । देवी देव देवाधिदेव ।

सर्वजण पूजिती सोऽहम् भाव । भावानंदाने ।।१।।

वेद श्रुति स्मृति । सर्व संत साहित्यी ।

ज्ञानी तत्त्वज्ञ गाती । सोऽहम् सोऽहम् ।।२।।

ॐ सोऽहम् बीजनाम मंत्र । जपत आले महाभक्त ।

सर्वंचि झाले कृतार्थ । सोऽहम् भावे ।।३।।

।। शिवभक्तिसिध्दसंबोध।।

सोऽहम् दावितो रूप । सुख देतो अमूप ।

लावितो ज्ञानदीप । स्वरुपाचा ।।१।।

सोऽहम् म्हणजे अनन्यता । सोऽहम् म्हणजे शरणागता ।
सोऽहम् म्हणजे एकता । जिवा शिवाची ।।२।।
सोऽहम् ते सर्वभावे । सोऽहम् ते प्रेमभावे ।
सोऽहम् ते एकभावे । आत्मरुपे ।।३।।
सोऽहम् स्वरूप दावी । देहभाव जो घालवी ।
जिवाशिवाचे ऐक्य दावी । ते सोऽहम् ।।४।।
स्वरूपाची जी ओळखण । सोऽहम् देतो ती खूण ।
जीवदशेचे भ्रमण । सोऽहम् घालवी ।। ५।।
जीव शिवाचे भेदपण । तेणे होते जे अज्ञान ।
अज्ञानापायी जनन मरण । सोऽहम् घालवी ।।६।।
सोऽहम् अनादि सिध्द जप । अंतरी होतो जो आपोआप ।
त्यावरी लक्ष ठेवुनि प्रेमरूप । सिध्द व्हावे तुम्ही ।।७।।

सोऽहम् भाव योग अपार । त्याचा महिमा अपरंपार ।
सर्व शास्त्र सिध्द थोर । सर्वा ठायी बोलिला ।।८।।
तुम्हाला दिला जो क्षीरसागरी । तोचि चालत आला आजवरी ।
जो धरिला आज प्रियोत्तमावतारी । हाचि सोऽहम् ।।९।।
सोऽहम् जया लाभला । तो सर्वार्थी श्रेष्ठ ठरला ।
परमपदी अमर झाला । सोऽहम् भावे ।।१०।।
या भूमी प्रगटला प्रियोत्तम। सार्थकी लावितो मनावजन्म ।
नो पावतो तो पुर्नजन्म । सोऽहम् योगे ।।११।।
सर्व योग योगी जनांनी । सोऽहम् जपावा भाव ठेऊनी ।
तेव्हाच सुटतील बंधातुनी । अहंममतेच्या ।।१२।।
बंध मोक्षाचे कारण । अहंममताचि तू जाण ।
त्यातून मुक्तपण । सोऽहम् ने होय ।।१३।।

सोऽहम् जपत रहावे । साक्षीत्वाने पहात रहावे ।
तटस्थपणे वागत रहावे । निर्लेपपणे ।।१४।।
स: म्हणजे शिवात्मा । अहं म्हणजे जीवात्मा ।
दोन्ही स्वरूप एकता । ॐ ब्रह्मरुपे ।।१५।।
जिवाशिवाचे भेदपण । हे अज्ञानाचे लक्षण ।
सोऽहम् घालविती ते जाण । जे मूळीचे एकतत्वी ।।१६।।
सोऽहम् मंत्र जप सर्वांचा । अंतरी भाव असावा साचा ।
असा संदेश प्रेमाचा । प्रियोत्तम भक्तासी ।।१७।।
याति जाती काही नाही । नरनारी भेद नाही ।
सोऽहम् सोऽहम् म्हणत राही । कृतार्थता पावाल ।।१८।।
सर्वा ठायी सर्व योनी । सोऽहम् चालतो अखंड ध्वनी ।
श्रवणें ध्वनी अंतरातुनी । ध्यान योगे ।।१९।।

अहं कोऽहम म्हणत राहिला । त्यातून सोऽहम् कळला ।
सोऽहम्ने स्वरूपी आला । मूळ तत्ताच्या ॥२०॥
आपुले स्वरूप जेव्हा कळले । तेव्हाचि जीवपण गेले ।
शिवपण अंगी आले । सोऽहम् ब्रह्मभावे ॥२१॥

॥ स्वधर्म ॥

स्वरूप लाभ हा स्वधर्म । सोऽहम् स्वधर्माचे सत्यवर्म ।
प्राप्त व्हावया धरा भावमार्ग । प्रियोत्तमयोगे ॥२२॥

॥ सदाचार ॥

ज्ञान भक्तीचा योग साधूनी । ज्यांनी अनुभविला सोऽहम् ध्वनी ।
गुरुकृपे झाला आत्मज्ञानी । पूर्ण बोधे ॥२३॥

।। साधक ।।

जेथे तेथे आत्मभाव । अंतरी राहे सोऽहम् भाव ।

शांत प्रसन्न ज्यांचा स्वभाव । स्वाध्याय सहजपणे ।।२४।।

।। संलग्न ।।

सोऽहम् भावी जो संलग्न । स्वरूपाठायी तो मग्न ।

तुटले सर्व प्रकारचे बंधन । परमानंदी रंगला ।।२५।।

अहम् हे जीव पण । स: ते शिव पण ।

अहम् स: चे एकपण । ते ॐ असे ।।२६।।

ॐ सत्य केवळ रूप । अहम् हे जीवरूप ।

स: हे शिवरूप । सर्व एकरूप पहावे ।।२७।।

सोऽहम् भाव ज्यासी कळतो । तो भावरूपचि राहतो ।

भावानंदी स्थिर असतो । भावसमाधीत ।।२८।।

सोऽहम् योगी योगाने जाणतो । ध्वनी सोऽहम् अंतरी करितो ।
ज्ञानी भावविचारे अनुभवितो । सोऽहम् स्वरूप ।।२९।।

परमभावमार्गी प्रियोत्तम । सोऽहम् भाव धरिला उत्तम ।
त्या भावे पावाल पुरुषोत्तम । परम पुरुष तो ।।३०।।

सोऽहम् भावाची संलग्नता । जया लाभली तत्त्वता ।
तो सहजचि स्वरूपता । असतो नित्य ।।३१।।

सोऽहम् भाव ज्यासी कळतो । त्यासी अंतरी प्रकाश लाभतो ।
प्रकाश लाभता स्थिर होतो । सोऽहम् भावी ।।३२।।

।। स्व-स्वरूप ।।

स्व-स्वरूपाचा शोध घ्यावा । विचार अंतरी तुम्ही ठेवा ।
आत्मानात्म विचार करता लागे ठावा। सोऽहम् योगे स्वरूपाचा ।।३३।।

।। संपन्नता ।।

संत सज्जन घरी येती । रात्रंदिन ब्रह्मज्ञान देती ।
सोऽहम् स्मरणचा ध्वनि एकविती । ती संपन्नता ।।३४।।
प्रियोत्तम परमज्योतिचे पूजन । सर्वत्र मिळुनी करिती दर्शन ।
एकमेकां देती आलिंगन । सोऽहम् भाव सख्यत्वे ।।३५।।
सिद्धतेची चाड धरावी । प्रयत्ने जीवदशा सोडावी ।
जन्ममरणाची व्यथा तोडावी । सिद्धतेने ।।३६।।
जीवदशा संपावया । सिद्धांतस्थिती पावावया ।
आपण आपणासी पहावया । सोऽहम् सिद्धता धरावी ।।३७।।

।। सिद्धबोध ।।

हृदयी एक भाव धरा । सोऽहम् भावे निश्चय करा ।
भावभक्तिमार्ग स्वीकारा । अनन्यत्वे ।।३८।।

अध्यात्म सिध्दांताचे वचन । त्याचे करावे नित्य श्रवण ।
भक्तिभावे सोऽहम् स्मरून । स्वरूप जाणावे ।।३९।।

सर्व काही विसरावे । एकचि सोऽहम् स्मरावे ।
भक्तिभावे मनी धरावे । सिध्दबोध ।।४०।।

परमज्योतिचे नित्य पूजन । सोऽहम् भावाचे अखंड स्मरण ।
प्रियोत्तम तत्त्वविचाराचे पारायण । नित्य नित्य करावे ।।४१।।

सोऽहम् सोऽहम् अखंड स्मरा । भक्तिभावे कार्य करा ।
नित्यनेमे विचार करा। तत्त्वाचा आत्मानात्म ।।४२।।

।। प्रियोत्तमा सांगते ।।

ॐ सोऽहम् भावरूपो । अखंड असावे स्व-स्वरूपी ।

नित्यनेमे नाम जपी । ॐ सोऽहम् ।।४३।।

ॐ सोऽहम् म्हणत रहा । अखंड चिंतन करीत रहा ।

ब्रह्मभाव ठेवीत रहा । मी आत्मा म्हणूनी ।।४४।।

मंगल वाणी मुखी असो । हृदयी आत्माराम वसो ।

अखंड सोऽहम् भाव असो । निजांतरी मानवा ।।४५।।

अखंड असावे साधन । आत्म्याचे करावे चिंतन ।

स्व-स्वरूपाचे घ्यावे दर्शन । ॐ सोऽहम् गुरुरुपे ।।४६।।

आपण आपणासी पहावे । ब्रह्मरुपी चित्त ठेवावे ।

ध्यानी मनी रुप पहावे । ॐ सोऽहम् सगुण नाम ।।४७।।

आपुलेचि स्वरूप जे दिसते । तेचि सगुण स्वरुप असते ।
जे हृदयी असते तेचि प्रगटते । सोऽहम भक्तीने ।।६०।।
विचारे विचार करावा । विचारे विचार पहावा ।
विचारे विचार आचरावा । हा सोऽहम बोध ।।६१।।
प्रियोत्तम सांगतो सर्वांसी । विचार करावा आपुल्यासी ।
विचार करूनि पहावे आपणासी । सोऽहम भावे ।।६२।।
नित्य करावा मना बोध । जन्मा येऊनि घ्यावा आत्मलाभ ।
बोधिता बोधिता होतो लाभ । सोऽहम स्वरुपाचा ।।६३।।
मानवाने ब्रह्मचिंतन करावे । सुख सौख्याने नांदावे ।
सर्वांठायी ब्रह्म पहावे । सोऽहम सोऽहम भावे ।।६४।।
ज्यांचे अंतरी ज्ञान-भाव स्फुरण। जे सहजासहजी होते हृदयीजाण।
त्या सर्वांचे एकमेव कारण । साक्षात्कार सोऽहमचा ।।६५।।

।। ॐ तत्त्वं सोऽहम् साः ।।

सोऽहम् भाव चिंतन सार । करिता करिता होतो स्वरुपाकार ।
स्वरुपाकार होता सोऽहम् भावसार । अंगी सहजचि मुरला ।।१।।
अंगी मुरला सोऽहम् भाव । तेथे तू मी हा भेद जाय ।
भेद जाऊनी स्वस्वरूप होय । सोऽहम् भावही गेला ।।२।।
अंत:करणी अनुभूती आली । सोऽहम् भावाची जाणीव ठसली ।
जप विचार साधना संपली । अंत:करणी ब्रह्मानंद ।।३।।
काही कोठेचि द्वैत दिसेना । ब्रह्माविण कांहीच असेना ।
अंत:करणी भेद भासेना । सोऽहम् अंगी मुरले ।।४।।
तो मी तो मी म्हणत आलो । परी मी तो एकचि झालो ।
कांहीच न मी आता उरलो । अहम् सोऽहम् म्हणूनी ।।५।।

अहम् सोऽहम् तेही गेले । सर्वां ठायी एकचि दिसले ।
दिसले तेचि अंगी रंगले । रंगला एकचि आनंद ।।६।।
आनंदाचा आनंद झाला । सोऽहम् चा छंदही गेला ।
बंध मुक्तीचा छेद केला । स्व-स्वुरपा नव्हता जो ।।७।।

।। ॐ सोऽहम् ।।

श्री देवीची वाणी

।। प्रियोत्तम भावबोध ।।

भाव म्हणजे प्रीती । बोध म्हणजे सुक्ष्म गती ।
या दोहोची घेऊनी अनुभूती । सिध्द व्हावे तुम्ही ।।
भावबोधाविण उपाय जितुके । ते व्यर्थचि जाणावे तितुके ।
म्हणूनिया निश्यात्मके । भावबोध धरावा ।।

परमभाग्याची तीच रेषा । आत्मज्ञानाचीच जया मनिषा ।
आवड ठेवूनि सिध्द हो पुरुषा । हा प्रियोत्तमाचा संदेश ।।
सोऽहम् दावितो रूप । सुख देतो अमूप ।
लावितो ज्ञानदीप । स्वरुपाचा ।।

- प्रियोत्तमानंद

ज्ञणी सोऽहम् दीप लावूनी अंतरी । म्हणे गा निर्धारी आत्मरुप ।।

- स्वामी स्वरुपानंद

।। ॐ सोऽहम् ।।

आपण पहावे आपणासी । संलग्न व्हावे स्वरुपासी ।
ज्यांचा संबंध अनंतासी । अनादि तत्त्व जे ।।१।।
स्वरूप केवळ परमभावे । अनुभवावे अनुभवावे ।
अंतर्यामीच ध्यावे पहावे । रत्न-स्वरुप जे ।।२।।

[१५]

राम अब ऐसी विधि बनाये ।
अपने नाम धाम की प्रीति,
मुझ में बहुत बसाये ।।१।।
अजपा जाप त्रयताप पाप हर,
आप ही आप हो आये ।
राम-रमण में मन मुद माने,
महा मधुरता पाये ।।२।।
खिले कमल शुष्मणा जागे,
चित्त चाँद चमकाये ।
त्रिकुटी महल में जग मग ज्योति,
शशि रवि सम प्रकटावे ।।३।।
राम शब्द सुर सरस पकड़ कर,
दशम द्वार के ऊपर ।
पुरुषोत्तम के सत्य धाम को,
सुरति सीधी चढ़ जाये ।।४।।

सरस्वती की धारा के सम्बन्ध में बताया गया– वह ब्रह्मज्ञान है। आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? परमात्मा की प्राप्ति कैसे होगी? इसके लिए साधन क्या है? इसके लिए संयम क्या है? ब्रह्म क्या है? जीव क्या है? बन्ध क्या है? मोक्ष क्या है? इन सब बातों को जो समझाया जाता है, यह सरस्वती की धारा है। जिस तरह बाहर संसार में सरस्वती की धारा अन्त:सलिला है, उसी तरह यह ब्रह्मज्ञान भी अन्त:सलिला है। बाहर में यह ज्ञान नहीं मिलता। इसका ज्ञान, इसका साक्षात्कार साधना करनेवाले को अपने अन्दर में होता है। ब्रह्मज्ञान की अनुभूति साधक को अपने भीतर होती है, यह अनुभवगम्य है।

इस तरह इस सत्संगरूपी त्रिवेणी में भी गंगा, यमुना और सरस्वती की तीनों धाराएँ हैं। हमारे सन्तों ने, ऋषियों ने और मुनियों ने देखा कि तन की पवित्रता तो प्रयागराज की त्रिवेणी में हो जाती है, मन की पवित्रता इस सत्संगरूपी त्रिवेणी में हो जाती है; लेकिन एक ऐसी भी त्रिवेणी होनी चाहिये, जिसमें चेतन आत्मा पवित्र हो। चेतन आत्मा की पवित्रता कैसे होगी? तो कहा–

इडा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती॥११॥
त्रिवेणीसंगमो यत्र तीर्थराज: स उच्यते।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्वपापै: प्रमुच्यते॥१२॥
–ज्ञानसंकलिनी तंत्र

हमारे शरीर में ७२ करोड़ नाड़ियाँ हैं। इनमें १०१ नाड़ियाँ मुख्य हैं। इन १०१ में ९ (नौ) नाड़ियाँ मुख्य हैं तथा इन नौ में तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं और इन तीनों में भी एक नाड़ी मुख्य है और वह सुषुम्ना नाड़ी है। तीन नाड़ियाँ क्रमश: इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना हैं।

इडा तिष्ठति वामेन पिंगला दक्षिणेन तु।
तयोर्मध्ये परं स्थानं यस्तद्वेद स वेदवित्॥
(योगशिखोपनिषद्, अ० ६)

यही परम स्थान सुषुम्ना है। इसी को सरस्वती भी कहते हैं। एक बंगाली महात्मा कहते हैं–

बामे इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला,
रजस्तमो गुणे करिते छे खेला।
मध्ये सत्वगुणे सुषुम्ना विमला,
धरऽ धरऽ तारे सादरे॥
(योगी पंचानन भट्टाचार्य)

दृष्टि की जो दो धारें हैं, इनमें बायीं को इड़ा कहते हैं, जो तमोगुणी है। दायीं धार को पिंगला कहते हैं, जो रजोगुणी है और मध्य में सुषुम्ना है, जो सतोगुणी है। ध्यानाभ्यास करने के लिए जब हम बैठते हैं और जप, ध्यान-पूजा आदि करने लगते हैं, उस समय आलस्य आने लगता है और हम सो जाते हैं; यह तमोगुण की प्रधानता के कारण होता है। आलस्य, निद्रा, जँभाई आदि तमोगुण के लक्षण हैं।

बैठते हैं हम जप करने के लिए और करने लग जाते हैं गप्प। बैठते हैं हम जाप करने के लिए और करने लग जाते हैं पाप। उस समय न जानें हम क्या-क्या बातें सोचने लग जाते हैं, जिनका ठिकाना नहीं। थोड़ी देर के बाद जब होश होता है, तब सोचते हैं, यह क्या हुआ? हम क्या करने बैठे थे, क्या करने लग गए। जिससे कभी सम्बन्ध नहीं, उससे भी सम्बन्ध जोड़ने लग जाते हैं। जिससे कभी कोई बात नहीं, उससे भी बात करने लग जाते हैं। इसी तरह समय बीतता चला जाता है और हम समझ भी नहीं पाते हैं। यह रजोगुण की प्रधानता के कारण होता है। जब रजोगुण की धार में हमारी वृत्ति रहती है, तब चंचलता रहती है। तमोगुण की धारा में मूढ़ता उत्पन्न होती है। जब मध्यधारा–सुषुम्ना में हमारी वृत्ति रहेगी, तब हमारा मन सतोगुणी और शान्त रहेगा। उस समय ध्यान-भजन ठीक से होगा। इसीलिए तो सन्त दादूदयालजी महाराज ने कहा था–

सुरति सदा स्यावित रहै, तिनके मोटे भाग।
दादू पीवै रामरस, रहै निरंजन लाग॥

जिनकी सुरत सम्मुख होकर रहती है यानी सुषुम्ना में रहती है, उनका अहोभाग्य है। वह रामरस पीता है; ब्रह्म-पीयूष पान करता है तथा निरंजन= नि:+अंजन अर्थात् अंजन-रहित, माया-रहित ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। मेरे कहने का तात्पर्य–तीन तरह की त्रिवेणियाँ हैं। एक प्रयागराज की त्रिवेणी, दूसरी सत्संगरूपी त्रिवेणी और तीसरी अपने अन्दर की त्रिवेणी। इस तीसरी प्रकार की त्रिवेणी–अपने अन्दर की त्रिवेणी के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है।

अनहद झींगा शब्द सुनाओ।।
दोनों तिल एक तार मिलाओ।
तब देखो गुलजारा है।।

अपने गुरुदेव की वाणी में हम पाते हैं–

तीनों बन्द लगाइ, देखि सुनि धरि ध्वनि धारा।
चलिय शब्द में खिंचत, बजत जो विविध प्रकारा।।

अन्तःप्रकाश मिलने पर जिस अन्तर्नाद की अनुभूति होती है, वह केन्द्रीय शब्द होता है और वह सीधा शब्द, सरल शब्द, डाइरेक्ट (Direct) शब्द है। जब केन्द्र में सुरत पहुँचती है, तब वहाँ केन्द्रीय शब्द मिलता है। जबतक केन्द्र में हमारी सुरत नहीं पहुँचती है, तबतक कान बन्द करके जो शब्द सुनते हैं, वह इनडाइरेक्ट (Indirect) शब्द है। सारशब्द वही है; लेकिन इनडाइरेक्ट (Indirect) और डाइरेक्ट (Direct) का भेद है। स्थूल के केन्द्र पर जब वृत्ति पहुँचती है, दृष्टि टिकती है, तब वहाँ जो शब्द मिलता है, वह स्वतः खींचकर सूक्ष्म के केन्द्र पर ले जाता है। इसलिए गुरु महाराज के वचन में आया है कि नादानुसंधान करने के लिए कम-से-कम एकविन्दुता की प्राप्ति अवश्य होनी चाहिए। जो कोई एकविन्दुता प्राप्त किए बिना ही नादानुसंधान करते हैं, वह ऐसा है, जैसे एक वृक्ष में फल लगा हुआ है। एक नेत्रधारी उस फल को तोड़ना चाहता है और दूसरा एक नेत्रहीन है, वह भी उस फल को तोड़ना चाहता है। दोनों ही ढेले फेंक रहे हैं। उस फल को कौन तोड़ेगा? जो नेत्रधारी है, वह देखता है कि अमुक स्थान पर फल लगा हुआ है। निशाना करता है, ढेला मारता है, फल तोड़ लेता है। जो नेत्रहीन है, वह बेचारा उस फल को तो देखता ही है। अन्दाज से वह ढेला फेंकता है। उसका ढेला कभी पेड़ में लगेगा, कभी टहनी में लगेगा, कभी पत्ते में लगेगा। अगर वह निरन्तर ढेला फेंकता ही रह जाय, तो सम्भव है, कभी उस फल में भी लग जाय; लेकिन उसके लिए कोई गारण्टी नहीं दी जा सकती कि वह फल तोड़ ही लेगा; लेकिन जो नेत्रधारी है, वह तो फल तोड़ ही लेगा, इसमें तो संदेह का, संशय का कोई स्थान ही नहीं है। इसी प्रकार जो कोई दृष्टि-साधन की क्रिया करते हैं, उनकी दिव्य दृष्टि खुल जाती है। दिव्य नेत्र खुल जाने के कारण वह दिव्य नाद को सरलतापूर्वक पकड़ लेता है। इसलिए अभी आपलोगों ने जो संत कबीर साहब की वाणी सुनी, उसमें यही बात आयी–

जो कोइ निरगुन दरसन पावै।।
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै।।

अगर उस निर्गुण ब्रह्म का दर्शन करना चाहते हैं, तो पहले जो ब्रह्म का सूक्ष्म रूप यानी विन्दु है, उसकी हम आराधना करें। अपनी दृष्टि को उसपर जमावें। संत राधास्वामी साहब भी कहते हैं–

सुरत शब्द एक अंग कर, देखो विमल बहार।
मध्य सुखमना तिल बसे, तिल में जोति अकार।।

सुषुम्ना में अपनी वृत्ति को ले जाओ। वहाँ उस केन्द्रीय शब्द को पकड़ो।

बायें इड़ा नाड़ी दक्खिने पिंगला,
रजस्तमोगुणे करिते छे खेला।
मध्य सत्त्व गुणे सुषुम्ना विमला,
धरऽ धरऽ तारे सादरे।।

गुरु नानकदेवजी महाराज कहते हैं–

सुखमन कै घरि राग सुन, सुन मण्डल लिव लाइ।
अकथ कथा बीचारिअै, मनसा मनहि समाइ।।

अगर राग सुनना चाहते हो, ब्रह्मनाद सुनना चाहते हो, तो 'सुखमन कै घर राग सुन'–अपने को सुषुम्ना में ले जाओ। इसी सुषुम्ना की साधना मीराबाई भी करती थीं, वे कहती हैं–'सेज सुखमना मीरा सोवै, शुभ है आज घड़ी।'

जो सुखमना की शय्या पर सोता है, उसका अहोभाग्य है। आवश्यकता है सच्चे सद्गुरु की शरण को ग्रहण कर सदाचार-समन्वित हो तन्मयतापूर्वक साधना करने की। संत तुलसी साहब कहते हैं–

मुर्शिदे कामिल से मिल, सिद्क और सबूरी से तकी।
जो तुझे देगा फहम, शहरग के पाने के लिए।।

जो पहुँचे हुए गुरु हैं, उनके पास जाओ। सच्चाई से जाओ। कच्चा हृदय लेकर नहीं जाओ। सच्चा हृदय लेकर जाओ, संतोष धारण करके जाओ; वे तुम्हें मार्ग-दर्शन देंगे कि किस तरह सुषुम्ना-मार्ग उन्मुक्त होता है।

क्यों भटकता फिर रहा, तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शहरग में है, दिलवर पै जाने के लिए।।

उस प्रभु के पास जाने का रास्ता सुखमना में है। वहाँ से चलना है। वहीं से रास्ते का आरम्भ होता है। इसीलिए दृढ़तापूर्वक दृष्टियोग की क्रिया करनी

के अतिरिक्त, अन्य कोई दो अक्षर ऐसे नहीं जिनके युक्त होने से एक ऐसे शब्द की उत्पत्ति हो जिसकी उपासना भव–भय–भंजना हो, भवसागर तरानेवाली और विश्व भर में कल्याणकारिणी हो तथा जिसके उच्चारण मात्र से ऐसी ध्वनि गूँजे, ऐसा नाद उपजे जो इतना चित्ताकर्षक हो, मनमोहक हो और विक्षुब्ध मन को स्तब्धकर परमशान्ति दिलानेवाला हो जितना कि 'राम' शब्द। स्वामीजी का अनुभव भी ऐसा ही है

रा, धुन मूलाधार से,
जैवी शक्ति जगाय।

म, दसवें द्वार तक,
तभी उसे पहुँचाय।।

राम की सत्ता के बिना न तो कोई पत्ता हिलता है और न कोई फूल ही खिलता है और न ही उसकी प्रेरणा के बिना कोई परमाणु ही हिलने में समर्थ है। तभी तो संत गाते हैं

तेरी महिमा का प्रभु,
कोई न पाया पार।

आदि अन्त से रहित तू,
लीला-रूप अपार।।

भगवान् शिव भी इस तथ्य को स्वीकारते हुए माँ भवानी से कहते हैं–"हे देवी ! राम के अद्‌भुत अर्थ को श्री राम ही पूर्ण रूप से जानते हैं, कुछ–कुछ मैं उन्हीं की कृपा से जानता हूँ।"

उक्त कथनों से यही संकेत प्राप्त होते हैं कि राम शब्द के अर्थ और राम की महिमा समझने में हम सर्वथा असमर्थ हैं और जो भी ज्ञान उपलब्ध होगा वह केवल राम–कृपा से। उसकी कृपा पाने के लिए संत, 'राम–नाम' का जाप, चिन्तन व संकीर्तन बड़ी भावना और भक्तिपूर्वक करते रहने के संकेत व आदेश देते हैं। भगवान स्वयं भी कहते हैं, "इस संसार में जो जन श्रद्धापूर्वक मेरे नामों का जप–कीर्तन करते हैं, मैं उनके करोड़ों अपराधों को क्षमा कर देता हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं"।

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।।

सुमिरि पवन सुत पावन नामू।
अपने बस करि राखे रामू।।

'राम नाम' जपना, परमेश्वर को आह्वान करना कहा गया है। इससे अपने परमेष्ट देव की सन्निधि स्वयंमेव प्राप्त हो जाती है और अभीष्ट प्राप्ति भी। साधनायुक्त व्यक्ति अपने इष्टदेव का नाम देवरूप ही समझकर स्मरण करे। ऐसी भावना से जाप करते हुए, उसमें लीनता, सुलभ और शीघ्र हो जाती है। उस अवस्था में पथ–प्रदर्शन आप–ही–आप होने लग जाता है। संत शैली में नामोपासना एक रहस्यवाद है। आराधना का ऊपर का स्वरूप तो नाम की रटन ही है; परन्तु उसके अन्दर योग की सम्पूर्ण सामग्री इसी भाँति निहित है जैसे बीज में वृक्ष। इस उपासना में अन्य बिन्दुओं को हृदयंगम करने की आवश्यकता पर बल देते हुए एक मुनि ने एक जिज्ञासु स्त्री को समझाया कि त्रिकुटी स्थान में 'राम शब्द' का ध्यान किया करो और उसी मधुरतम नाम का मुख से अथवा मन से स्मरण करती रहो, यह आत्मकल्याण का सुगम साधन है। इस साधना द्वारा, परमेश्वर कृपा से तेरा बेड़ा पार अवश्य होगा। जो नारायण, निराकार, निरंजन और अन्तर्यामी है वही संत सम्मति में 'राम' है। जिस अनन्त सत्–चित्–आनन्द परमात्मा में योगीजन रमण करते हैं, जो सब जीवों में, चल–अचल में सर्व–अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है, संत–महात्मा सदैव जिसका ध्यान धरते हैं, वही परब्रह्म परमात्मा 'राम' है। उसी 'राम' को इष्ट, उपास्य, आराध्य, स्मरणीय, चिन्तनीय, जपनीय मानकर अनन्य रूप से 'राम–नाम' की उपासना करना पुण्योदयकारक, मंगलकारक, परमशुभ और मुक्तिदायक है। गोस्वामी तुलसीदास, सुसंत रामानन्द, महात्मा कबीर, गुरु नानक देव, समर्थ गुरु रामदास व अनेक सत्पुरुषों की सम्पूर्ण वाणी में 'राम–नाम' का ही एक मात्र रस अलौकिक छटा से सुशोभित है। उनके जीवन में नाम स्मरण की महत्ता चरम सीमा को स्पर्श करती बिल्कुल वैसी ही दीख पड़ती है जैसे आधुनिक संतों स्वामी सत्यानन्दजी व रामदासजी के जीवन में। इन महापुरुषों की स्थिति ऐसी थी कि

राम की सत्ता के बिना न तो कोई पत्ता हिलता है और न कोई फूल ही खिलता है और न ही उसकी प्रेरणा के बिना कोई परमाणु ही हिलने में समर्थ है।

राम जपा मन लगन से,
रात-दिवस सब याम।

अब तो राम भजे मुझे,
मुझको मिले विश्राम।।

जो परमशान्ति इन्हें लाभ हुई, जो परमगति इन्हें प्राप्त हुई, इन्हीं उपलब्धियों का सेवन कर वह हमें समय–समय पर चेतन करते रहते हैं

कहु नानक सोई नर सुखिया,
राम नाम गुण गावै।

11:01

डीएल निरोखेकर
मुंबई, 23 अक्टूबर, 1948

नासिक के श्री गजानन महाराज का दिव्य संदेश

भाग एक

सोहम

हे मेरे मन, सदा सोहम का जप दोहराता रहो।

सोहम में आस्था के माध्यम से बाह्य उपासना का त्याग हो गया है। आत्मा को सोहम के स्वरूप में अनुभव किया गया है। सोहम की ध्वनि के माध्यम से गुरु का दर्शन हुआ है—वह गुरु जो सोहम के सिद्धांत द्वारा लोगों का उद्धार करता है।

पागल झाड़ू

एस श्री रामदास ने कहा है, "हे मन, तूने स्वयं पिछले जन्मों में पाप और पुण्य

यह वेबसाइट आपके अनुभव को बेहतर बनाने के लिए कुकीज़ का उपयोग करती है। हम यह मानकर नहीं चलते कि आप इससे सहमत हैं, इसलिए यदि आप सहमत हैं, तो कृपया "स्वीकार करें" बटन पर क्लिक करें। आप इसे बाद में बदल सकते हैं।
स्वीकार करना
और पढ़ें

11:02
ocoy.org/original-yoga/light

मेरे गुरु ने मुझ पर अपनी कृपा बरसाई और मुझे सोहम का अजपा जप मंत्र दिया। यह कृपा मेरे हृदय की गहराई में समा गई है। मेरा अधिकांश समय अपने मित्रों और साथियों के साथ व्यतीत होता है। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मैं अपने गुरु की कृपा की छत्रछाया में पूर्ण विश्राम का आनंद ले रहा हूँ।

मैंने ऊपर संक्षेप में उस परम शांति की अवस्था का वर्णन किया है जिसका मैं आनंद ले रहा हूँ। स्वाभाविक रूप से, मेरे सभी कार्य इस अवस्था में अधिक से अधिक लोगों को भागीदार बनाने की दिशा में निर्देशित हैं। मेरे अनुभवों का वर्णन इन गतिविधियों का मात्र एक हिस्सा है, और मैं यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता हूँ कि अन्य लोग भी इसी प्रकार के अनुभव प्राप्त करें। इसलिए, यदि मैं अपने कुछ अनुभवों और उनसे संबंधित अन्य बातों का वर्णन करूँ तो यह अनुचित नहीं होगा।

प्रत्येक मनुष्य निरंतर सुख प्राप्त करने का प्रयास करता रहता है।

यह वेबसाइट आपके अनुभव को बेहतर बनाने के लिए कुकीज़ का उपयोग करती है। हम यह मानकर नहीं चलते कि आप इससे सहमत हैं, इसलिए यदि आप सहमत हैं, तो कृपया "स्वीकार करें" बटन पर क्लिक करें। आप इसे बाद में बदल सकते हैं।

स्वीकार करना | और पढ़ें

11:03
ocoy.org/original-yoga/light

केवल वही साधक, जिसने अपने पिछले जन्म में आध्यात्मिक ज्ञान की यह योग्यता प्राप्त कर ली है, ब्रह्म के साथ एकात्मता की ओर ले जाने वाले इस अभ्यास के प्रति रुचि विकसित करेगा और अंततः शाश्वत आनंद का अनुभव करेगा। सोहम मंत्र के निरंतर जप से ऐसे साधक के हृदय से समस्त अशुद्धियाँ अवश्य दूर हो जाती हैं। यदि सोहम का बीज ऐसे क्षेत्र में बोया जाए, तो वह निश्चित रूप से एक सुंदर वृक्ष के रूप में अंकुरित होगा जो आत्म-साक्षात्कार के आनंद से लदा होगा। ऐसे साधक अपरिवर्तनीय आनंद का अनुभव करेंगे और सांसारिक अस्तित्व की नदी को आसानी से पार कर लेंगे। जब कोई साधक इस अवस्था तक पहुँच जाता है, तो वह अपने मन, बुद्धि और अहंकार को आसानी से नियंत्रित कर सकता है। सोहम मंत्र के निरंतर जाप से उत्पन्न शक्ति निश्चित रूप से साधक को पूर्ण मोक्ष की ओर ले जाएगी।

वैज्ञानिक प्रयोगों की विधि का पालन क्यों नहीं किया जाना चाहिए?

आधुनिक तर्कवादी कहते हैं, “वर्तमान युग प्रयोगों का युग है। हमें केवल उन्हीं चीजों पर विश्वास करना चाहिए जो प्रयोगों

यह वेबसाइट आपके अनुभव को बेहतर बनाने के लिए कुकीज़ का उपयोग करती है। हम यह मानकर नहीं चलते कि आप इससे सहमत हैं, इसलिए यदि आप सहमत हैं, तो कृपया "स्वीकार करें" बटन पर क्लिक करें। आप इसे बाद में बदल सकते हैं।

स्वीकार करना
और पढ़ें

11:04

चाहिए।

भाग दो

“सोहम में आस्था के माध्यम से बाह्य पूजा-अर्चना का त्याग हो गया है। आत्मा को सोहम के स्वरूप में अनुभव किया गया है। सोहम की ध्वनि के माध्यम से गुरु स्पष्ट रूप से प्रकट हुए हैं – वे गुरु जो सोहम के सत्य द्वारा सभी निर्धन, व्याकुल आत्माओं का उद्धार करते हैं।”

पागल झाड़ू

"शुद्ध प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि वह बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करता है।"

संत तुकाराम

मेरे प्यारे भाइयों और बहनों,

मे श्री रमण महर्षि की जयंती उत्सव के लिए आपने मुझे जो स्नेहपूर्ण निमंत्रण भेजा है, उसके लिए मैं आपका हार्दिक आभारी हूँ। आपने मुझसे यह भी

यह वेबसाइट आपके अनुभव को बेहतर बनाने के लिए कुकीज़ का उपयोग करती है। हम यह मानकर नहीं चलते कि आप इससे सहमत हैं, इसलिए यदि आप सहमत हैं, तो कृपया "स्वीकार करें" बटन पर क्लिक करें। आप इसे बाद में बदल सकते हैं।

स्वीकार करना   और पढ़ें

ही वह कुछ न चाहे, फिर भी “मैं” हमेशा बना रहेगा। यही “मैं” सोहम है, और शाश्वत शांति इसका स्वभाव है। कोई कह सकता है कि उसे ईश्वर, ध्यान, भक्ति, आस्था और एकाग्रता की इन सब झंझटों से कोई लेना-देना नहीं है। ठीक है; लेकिन उसे यह बताना चाहिए कि क्या वह शांति, सुकून और सुख चाहता है या नहीं। भले ही वह ईश्वर आदि के बारे में इन विचारों को झूठा और भ्रामक मानता हो, फिर भी उसे यह स्वीकार करना होगा कि उसके भीतर कोई ऐसा प्राणी है जो इन्हें झूठा और भ्रामक मानता है। हमारे भीतर का यह ज्ञाता ही "मैं" है और वह "मैं" ही सोहम है।

जब तक श्वास चलती रहती है, जीवन चलता रहता है और शरीर की क्रियाएँ चलती रहती हैं। संतों ने श्वास के आने-जाने का अर्थ समझाया है और सोहम वह ध्वनि है जो श्वास के आने-जाने से उत्पन्न होती है। यह सोहम ध्वनि हमारे शरीर में निरंतर उत्पन्न होती रहती है, चाहे हम इसके प्रति सचेत हों या न हों। यदि हम इस आंतरिक सोहम के प्रति सचेत हो जाएँ, तो हमें मन की शांति प्राप्त होगी। यदि हम इस सोहम को पूर्णतः समझ लें, तो हमें पूर्ण आनंद प्राप्त होगा, जो सोहम का वास्तविक स्वरूप है, और हम इसके साथ एक हो जाएँगे।

ध्यान और एकाग्रता के बीच का अंतर

यह वेबसाइट आपके अनुभव को बेहतर बनाने के लिए कुकीज़ का उपयोग करती है। हम यह मानकर नहीं चलते कि आप इससे सहमत हैं, इसलिए यदि आप सहमत हैं, तो कृपया "स्वीकार करें" बटन पर क्लिक करें। आप इसे बाद में बदल सकते हैं।

स्वीकार करना | और पढ़ें

मेरे भाई-बहनों, याद रखें कि ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति पिछले जन्मों में संचित पुण्य कर्मों का फल है। यदि आपमें यह प्रेम है, तो ईश्वर, सोहम के रूप में, जो प्रत्येक मनुष्य की श्वास-प्रवेश में निवास करते हैं, आपको दर्शन देंगे। मैं यह अपने अनुभव से कह रहा हूँ। आप मुझमें विश्वास न रखें, पर सोहम में विश्वास अवश्य रखें।

आरंभ में भले ही आपको कोई अनुभव न हो, फिर भी अपने विश्वास को डगमगाने न दें। यदि आप सोहम के विषय में इस प्रकार विचार करेंगे, तो आप पाएंगे कि सोहम में विश्वास रखना पूरी तरह से आपके मन पर निर्भर करता है। भले ही पिछले जन्मों के बुरे प्रभावों के कारण आपके मन में संदेह उत्पन्न हों, इन संदेहों को निरंतर प्रयास से दूर करना आपके हाथ में है, यह याद रखते हुए कि इसी में आपके जीवन की सफलता निहित है। निरंतर और सतत अभ्यास से मन एकाग्र हो जाता है और मंत्र में विलीन हो जाता है, और सभी विचार लुप्त हो जाते हैं। केवल आपको एक सच्चा और दृढ़ संकल्प रखना होगा। हम तभी सच्चे और दृढ़ संकल्पित कहला सकते हैं जब हम अपने विचारों को कर्म में परिवर्तित करने में सक्षम हों। इसलिए संतों ने कहा है, "ईश्वर सच्चे और दृढ़ संकल्प की पूर्ति करते हैं, और भक्तों की मनोकामनाएं सफल होती हैं" (तुकाराम)।

यह वेबसाइट आपके अनुभव को बेहतर बनाने के लिए कुकीज़ का उपयोग करती है। हम यह मानकर नहीं चलते कि आप इससे सहमत हैं, इसलिए यदि आप सहमत हैं, तो कृपया "स्वीकार करें" बटन पर क्लिक करें। आप इसे बाद में बदल सकते हैं।

स्वीकार करना | और पढ़ें

11:08

स्वाभाविक रूप से आत्मसंयम का अभ्यास करना चाहिए और भौतिक सुखों से विरक्त रहना चाहिए। भौतिक सुखों का बाहरी रूप से त्याग करना, या केवल मन को बलपूर्वक वश में करना, व्यर्थ है। त्याग मानसिक होना चाहिए: मन को धीरे-धीरे इन भौतिक सुखों के प्रति अरुचि विकसित करनी चाहिए। यदि आप अपने मन को आंतरिक सोहम जप की ध्वनि के निरंतर ध्यान में लीन करने का प्रयास करेंगे, तो यह त्याग सरल हो जाता है। मन सोहम के साथ एक हो जाता है, और फिर अजापा जप शुरू होता है। इस अवस्था में हमारा संपूर्ण सांसारिक अस्तित्व सुख से भर जाता है। इस अवस्था को प्राप्त करने वाले व्यक्ति का मन सुख-दुख से परे हो जाता है। वह सार्वभौमिक प्रेम से भर जाता है, और इस भौतिक संसार में, जो दूसरों के लिए सुख-दुख से भरा है, उसे केवल प्रेम ही अनुभव होता है।

केवल ज्ञानेश्वर और तुकाराम जैसे संतों को ही परमार्थ प्राप्त हुआ। जब इस शाश्वत आनंद की अवस्था को प्राप्त कर लिया जाता है, तो यह लोक, परलोक, स्वर्ग या नरक—जो एक सामान्य व्यक्ति को सुख और दुख के विरोधाभासों से भरा प्रतीत होता है—सार्वभौमिक, सर्वव्यापी आनंद और परमानंद का साकार रूप बन जाता है। इसी अवस्था को परमार्थ कहा जाता है।

यह वेबसाइट आपके अनुभव को बेहतर बनाने के लिए कुकीज़ का उपयोग करती है। हम यह मानकर नहीं चलते कि आप इससे सहमत हैं, इसलिए यदि आप सहमत हैं, तो कृपया "स्वीकार करें" बटन पर क्लिक करें। आप इसे बाद में बदल सकते हैं।

स्वीकार करना | और पढ़ें

11:22

हे मेरे मन, सदा सोहम का जप दोहराता रहो।

***

सोहम मंत्र में अपार शक्ति है, और इसकी शक्ति के कारण मनुष्य को जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होगी। ध्यान करें और मन में सोहम मंत्र का जाप करें।

***

बस लगातार सोहम मंत्र का जाप करते रहिए। इससे बाकी सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा।

***

श्वास लेने से “सोहम” की ध्वनि उत्पन्न होती है और श्वास छोड़ने से “हम” की ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार, प्रत्येक प्राणी में “सोहम” की ध्वनि निरंतर उत्पन्न होती रहती है, यद्यपि बहुत कम प्राणी इसके प्रति सचेत होते हैं।

***

सोहम का अर्थ है "मैं वही हूँ"। अतः सोहम जीव (मनुष्य की आत्मा) और शिव (परमात्मा) की एकता को दर्शाने वाला चिन्ह है।

11:25
ocoy.org/original-yoga/soh

***

श्री गणजन महाराज के शिष्य डीडी भावे

10-12-37 को श्री गजानन महाराज ने मुझे सोहम मंत्र देकर मुझ पर अपनी कृपा बरसाई।

एक दिन जब मैं हमेशा की तरह शाम को महाराज के दर्शन के लिए गया, तो महाराज ने कहा कि शक्ति की पूजा करनी चाहिए। इससे योग मार्ग की सभी सिद्धियाँ (शक्तियाँ) प्राप्त होती हैं। बस इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उन शक्तियों का उपयोग अपने लिए न करें। योग मार्ग में ऐसा कुछ भी नहीं होना चाहिए जिसे आप न समझें।

अगले दिन जब मैं सुबह सवेरे ध्यान करने बैठा, तो छह भुजाओं वाली देवी, जिन्हें मैंने पहले भी देखा था, मेरे सामने प्रकट हुईं और मुझे "नमो देव्यै, महादेव्यै..." से शुरू होने वाले स्तोत्र का जाप करने को कहा। [यह देवी की स्तुति है, जो श्री दुर्गा सप्तशती (चंडी) का एक भाग है।] उन्होंने कहा कि इस जाप से संपूर्ण ब्रह्मांड की शक्ति प्राप्त हो जाती है, और इतना कहकर वे अंतर्धान हो गईं। लगभग एक सप्ताह या पखवाड़े तक जप दोहराने के बाद, देवी फिर से मेरे सामने प्रकट हुईं और बोलीं, "मेरी छह भुजाएँ नहीं हैं, मेरी केवल दो भुजाएँ हैं। लेकिन मैंने तुम्हें छह भुजाएँ दिखाईं क्योंकि मुझे तुम्हारे छह

16:19

English

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के अनुसार, अजपा साधना (अजपा जप) बिना बोले, प्राकृतिक श्वास-प्रश्वास के माध्यम से "सोऽहम्" (मैं वह हूँ) का निरंतर जप है। यह आत्म-साक्षात्कार की वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जहाँ मन श्वास के साथ एकाकार होकर, सांसों की गति को देखते हुए नाभि से हंसा (Hamsa) से परमहंस (Paramhamsa) की अवस्था तक पहुँचता है। यह एक सहज साधना है, जो 24 घंटे चलती है और अचेतन अवस्था में भी चलती रहती है, जिसे योगमय माना जाता है।

गोपीनाथ कविराज की अजपा साधना के मुख्य बिंदु:

- **मूल मंत्र:** श्वास अंदर लेते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हम्' का मानसिक उच्चारण, जिसे 'सोऽहम्' साधना कहा जाता है।
- **प्रक्रिया (साधना):** यह अभ्यास है कि श्वास के प्रति सचेत रहें, उसे नियंत्रित न करें, बल्कि साक्षी भाव से उसे देखें। जब मन श्वास के साथ चलने के बजाय उसे देखना शुरू कर देता है, तब मन शांत हो जाता है।
- **परिणाम:** इस साधना से प्राण और मन का संतुलन बनता है। जैसे-जैसे एकाग्रता गहरी होती है, श्वास धीमी होती जाती है और यह मन की चंचलता को दूर कर शांत अवस्था में ले जाती है।
- **वैज्ञानिक और तांत्रिक दृष्टिकोण:** कविराज जी के अनुसार, यह साधना 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांड' (शरीर में ही ब्रह्मांड है) के सिद्धांत पर आधारित है, जो आंतरिक ऊर्जा को जागृत करती है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

अनुसार अजपा-साधन करे, उन्हें पहले सिद्धासन से बैठकर बाँए टखने से गुदाद्वार को आवृत कर पूरक-क्रिया करनी चाहिये। इस तरह मूलाधार में वायु इकट्ठा हो जाती है। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार आकुञ्चन-क्रिया द्वारा मूलाधार से उस वायु को उठाना चाहिये। इतनी जब क्रिया सिद्ध हो जाय, तब प्राण और अपान में साम्य-स्थापना करनी चाहिये। प्राण और अपान के साम्यभाव को प्राप्त होने पर मूलाधार स्थित त्रिकोण में जो अग्नि रहती है, उसको उठाकर प्राण और अपान के साथ मिलाते ही, कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है। कुण्डलिनी के जागने के बाद, उस कुण्डलिनी से ब्रह्मग्रन्थि खोलनी चाहिये। जब तक ब्रह्मग्रन्थि नहीं खुलती, तब तक षट्चक्रों के पहले चक्र मूलाधार में यानी चतुर्दल में प्रवेश करने की सामर्थ्य ही उत्पन्न नहीं होती। कमल में प्रविष्ट होकर उस कमल का जो एकबिन्दु या तुरीय-भूमि है, उसका ध्यान करना चाहिये। इसका नाम विराट् का ध्यान है। इस ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। तब षड्दल अधिष्ठान-चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करके, दशदल मणिपूर में जाना चाहिये। तब फिर ग्रन्थि खोलने की आवश्यकता पड़ती है। उस ग्रन्थि का नाम 'विष्णु-ग्रन्थि' है। वह अनाहत-चक्र के नीचे रहती है। उसका भेदन किये बिना हृदय-चक्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हृदय में प्रवेश कर पहले की तरह उस चक्र में स्थित मध्यबिन्दु में तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। वह सूत्रात्मा का ध्यान है। उस समय सविकल्प समाधि का उदय होता है। अनाहत को लाँघकर विशुद्ध चक्र में प्रवेश करने के मार्ग में स्तनों के समान लटक रहे दो मांसपिण्ड दिखाई देते हैं। उस समय अगल-बगल के दो मार्गों का त्यागकर मध्यमार्ग का अवलम्बन करके विशुद्ध-मार्ग में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ प्राण निरुद्ध होता है, उसके बाद तृतीय या अन्तिम ग्रन्थि का भेद कर आज्ञाचक्र में चढ़ना चाहिये। इस ग्रन्थि का नाम 'रुद्र-ग्रन्थि' है। यह आज्ञा-चक्र के नीचे रहती है। आज्ञाचक्र में प्रवेश करने के पश्चात् वहाँ के बीज या तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। योगी यदि यहाँ तक का मार्ग तय कर सके तो चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन तीनों तेजों को अथवा तीन बिन्दुओं को वह मिलाने में समर्थ होता है। उस समय इन तीनों तेजों का पार्थक्य नहीं रहता। तीनों के मिलन से एक महातेज का विकास होता है। उससे सहस्रार से टपक रहे अमृत का आस्वाद लेने का अधिकार पैदा होता है। उस समय योगी अजर और अमर पिण्ड को पाकर सहस्रार में विराजमान ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है। वहाँ तुर्य या तुर्य-तुर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं। तुर्य कहने से चतुर्थ का बोध होता है। जिसके ऊपर तीन मात्राएँ आरोपित होती हैं, उसका नाम तुर्य है। जिस समय इस अवस्था का अनुभव होता है, उस समय त्रिमात्र के रूप में प्रतीति होती है। किन्तु तुर्य-तुर्य में मात्राएँ लुप्त हो जाती हैं। यही अमात्र-स्थिति है। यह साक्षात्कार क्षणिक न होकर सदातन होना चाहिये। तुर्य में कुछ साकार-भाव रहता है। किन्तु तुर्यतुर्य में साकार भाव बिल्कुल नहीं रहता। यह प्रतिद्वन्द्वहीन, एक और अद्वितीय अवस्था है। परमहंस अवस्था इसी का नामान्तर है। तुर्य-तुर्य के स्वगत अंश से तुर्य की उत्पत्ति होती है। इसको योगी लोग करोड़ो सूर्यों के समान देदीप्यमान कहते हैं। किन्तु वास्तविक रूप में इसका

अनुसार अजपा-साधन करे, उन्हें पहले सिद्धासन से बैठकर बाँए टखने से गुदाद्वार को आवृत कर पूरक-क्रिया करनी चाहिये। इस तरह मूलाधार में वायु इकट्ठा हो जाती है। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार आकुञ्चन-क्रिया द्वारा मूलाधार से उस वायु को उठाना चाहिये। इतनी जब क्रिया सिद्ध हो जाय, तब प्राण और अपान में साम्य-स्थापना करनी चाहिये। प्राण और अपान के साम्यभाव को प्राप्त होने पर मूलाधार स्थित त्रिकोण में जो अग्नि रहती है, उसको उठाकर प्राण और अपान के साथ मिलाते ही, कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है। कुण्डलिनी के जागने के बाद, उस कुण्ड-लिनी से ब्रह्मग्रन्थि खोलनी चाहिये। जब तक ब्रह्मग्रन्थि नहीं खुलती, तब तक षट्चक्रों के पहले चक्र मूलाधार में यानी चतुर्दल में प्रवेश करने की सामर्थ्य ही उत्पन्न नहीं होती। कमल में प्रविष्ट होकर उस कमल का जो एकबिन्दु या तुरीय-भूमि है, उसका ध्यान करना चाहिये। इसका नाम विराट् का ध्यान है। इस ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। तब षड्दल अधिष्ठान-चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करके, दशदल मणिपूर में जाना चाहिये। तब फिर ग्रन्थि खोलने की आवश्यकता पड़ती है। उस ग्रन्थि का नाम 'विष्णु-ग्रन्थि' है। वह अनाहत-चक्र के नीचे रहती है। उसका भेदन किये बिना हृदय-चक्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हृदय में प्रवेश कर पहले की तरह उस चक्र में स्थित मध्यबिन्दु में तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। वह सूत्रात्मा का ध्यान है। उस समय सविकल्प समाधि का उदय होता है। अनाहत को लाँघकर विशुद्ध चक्र में प्रवेश करने के मार्ग में स्तनों के समान लटक रहे दो मांसपिण्ड दिखाई देते हैं। उस समय अगल-बगल के दो मार्गों का त्यागकर मध्यमार्ग का अवलम्बन करके विशुद्ध-मार्ग में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ प्राण निरुद्ध होता है, उसके बाद तृतीय या अन्तिम ग्रन्थि का भेद कर आज्ञाचक्र में चढ़ना चाहिये। इस ग्रन्थि का नाम 'रुद्र-ग्रन्थि' है। यह आज्ञा-चक्र के नीचे रहती है। आज्ञाचक्र में प्रवेश करने के पश्चात् वहाँ के बीज या तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। योगी यदि यहाँ तक का मार्ग तय कर सके तो चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन तीनों तेजों को अथवा तीन बिन्दुओं को वह मिलाने में समर्थ होता है। उस समय इन तीनों तेजों का पार्थक्य नहीं रहता। तीनों के मिलन से एक महातेज का विकास होता है। उससे सहस्रार से टपक रहे अमृत का आस्वाद लेने का अधिकार पैदा होता है। उस समय योगी अजर और अमर पिण्ड को पाकर सहस्रार में विराजमान ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है। वहाँ तुर्य या तुर्य-तुर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं। तुर्य कहने से चतुर्थ का बोध होता है। जिसके ऊपर तीन मात्राएँ आरोपित होती हैं, उसका नाम तुर्य है। जिस समय इस अवस्था का अनुभव होता है, उस समय त्रिमात्र के रूप में प्रतीति होती है। किन्तु तुर्य-तुर्य में मात्राएँ लुप्त हो जाती हैं। यही अमात्र-स्थिति है। यह साक्षात्कार क्षणिक न होकर सदातन होना चाहिये। तुर्य में कुछ साकार-भाव रहता है। किन्तु तुर्यतुर्य में साकार भाव बिल्कुल नहीं रहता। यह प्रतिद्वन्द्वहीन, एक और अद्वितीय अवस्था है। परमहंस अवस्था इसी का नामान्तर है। तुर्य-तुर्य के स्वगत अंश से तुर्य की उत्पत्ति होती है। इसको योगी लोग करोड़ो सूर्यों के समान देदीप्यमान कहते हैं। किन्तु वास्तविक रूप में इसका

अनुसार अजपा-साधन करे, उन्हें पहले सिद्धासन से बैठकर बाँए टखने से गुदाद्वार को आवृत कर पूरक-क्रिया करनी चाहिये। इस तरह मूलाधार में वायु इकट्ठा हो जाती है। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार आकुञ्चन-क्रिया द्वारा मूलाधार से उस वायु को उठाना चाहिये। इतनी जब क्रिया सिद्ध हो जाय, तब प्राण और अपान में साम्य-स्थापना करनी चाहिये। प्राण और अपान के साम्यभाव को प्राप्त होने पर मूलाधार स्थित त्रिकोण में जो अग्नि रहती है, उसको उठाकर प्राण और अपान के साथ मिलाते ही, कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है। कुण्डलिनी के जागने के बाद, उस कुण्डलिनी से ब्रह्मग्रन्थि खोलनी चाहिये। जब तक ब्रह्मग्रन्थि नहीं खुलती, तब तक षट्चक्रों के पहले चक्र मूलाधार में यानी चतुर्दल में प्रवेश करने की सामर्थ्य ही उत्पन्न नहीं होती। कमल में प्रविष्ट होकर उस कमल का जो एकबिन्दु या तुरीय-भूमि है, उसका ध्यान करना चाहिये। इसका नाम विराट् का ध्यान है। इस ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। तब षड्दल अधिष्ठान-चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करके, दशदल मणिपूर में जाना चाहिये। तब फिर ग्रन्थि खोलने की आवश्यकता पड़ती है। उस ग्रन्थि का नाम 'विष्णु-ग्रन्थि' है। वह अनाहत-चक्र के नीचे रहती है। उसका भेदन किये बिना हृदय-चक्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हृदय में प्रवेश कर पहले की तरह उस चक्र में स्थित मध्यबिन्दु में तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। वह सूत्रात्मा का ध्यान है। उस समय सविकल्प समाधि का उदय होता है। अनाहत को लाँघकर विशुद्ध चक्र में प्रवेश करने के मार्ग में स्तनों के समान लटक रहे दो मांसपिण्ड दिखाई देते हैं। उस समय अगल-बगल के दो मार्गों का त्यागकर मध्यमार्ग का अवलम्बन करके विशुद्ध-मार्ग में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ प्राण निरुद्ध होता है, उसके बाद तृतीय या अन्तिम ग्रन्थि का भेद कर आज्ञाचक्र में चढ़ना चाहिये। इस ग्रन्थि का नाम 'रुद्र-ग्रन्थि' है। यह आज्ञा-चक्र के नीचे रहती है। आज्ञाचक्र में प्रवेश करने के पश्चात् वहाँ के बीज या तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। योगी यदि यहाँ तक का मार्ग तय कर सके तो चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन तीनों तेजों को अथवा तीन बिन्दुओं को वह मिलाने में समर्थ होता है। उस समय इन तीनों तेजों का पार्थक्य नहीं रहता। तीनों के मिलन से एक महातेज का विकास होता है। उससे सहस्रार से टपक रहे अमृत का आस्वाद लेने का अधिकार पैदा होता है। उस समय योगी अजर और अमर पिण्ड को पाकर सहस्रार में विराजमान ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है। वहाँ तुर्य या तुर्य-तुर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं। तुर्य कहने से चतुर्थ का बोध होता है। जिसके ऊपर तीन मात्राएँ आरोपित होती हैं, उसका नाम तुर्य है। जिस समय इस अवस्था का अनुभव होता है, उस समय त्रिमात्र के रूप में प्रतीति होती है। किन्तु तुर्य-तुर्य में मात्राएँ लुप्त हो जाती हैं। यही अमात्र-स्थिति है। यह साक्षात्कार क्षणिक न होकर सदातन होना चाहिये। तुर्य में कुछ साकार-भाव रहता है। किन्तु तुर्यतुर्य में साकार भाव बिल्कुल नहीं रहता। यह प्रतिद्वन्द्वहीन, एक और अद्वितीय अवस्था है। परमहंस अवस्था इसी का नामान्तर है। तुर्य-तुर्य के स्वगत अंश से तुर्य की उत्पत्ति होती है। इसको योगी लोग करोड़ो सूर्यों के समान देदीप्यमान कहते हैं। किन्तु वास्तविक रूप में इसका

अनुसार अजपा-साधन करे, उन्हें पहले सिद्धासन से बैठकर बाँए टखने से गुदाद्वार को आवृत कर पूरक-क्रिया करनी चाहिये। इस तरह मूलाधार में वायु इकट्ठा हो जाती है। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार आकुञ्चन-क्रिया द्वारा मूलाधार से उस वायु को उठाना चाहिये। इतनी जब क्रिया सिद्ध हो जाय, तब प्राण और अपान में साम्य-स्थापना करनी चाहिये। प्राण और अपान के साम्यभाव को प्राप्त होने पर मूलाधार स्थित त्रिकोण में जो अग्नि रहती है, उसको उठाकर प्राण और अपान के साथ मिलाते ही, कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है। कुण्डलिनी के जागने के बाद, उस कुण्ड-लिनी से ब्रह्मग्रन्थि खोलनी चाहिये। जब तक ब्रह्मग्रन्थि नहीं खुलती, तब तक षट्चक्रों के पहले चक्र मूलाधार में यानी चतुर्दल में प्रवेश करने की सामर्थ्य ही उत्पन्न नहीं होती। कमल में प्रविष्ट होकर उस कमल का जो एकबिन्दु या तुरीय-भूमि है, उसका ध्यान करना चाहिये। इसका नाम विराट् का ध्यान है। इस ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। तब षड्दल अधिष्ठान-चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करके, दशदल मणिपूर में जाना चाहिये। तब फिर ग्रन्थि खोलने की आवश्यकता पड़ती है। उस ग्रन्थि का नाम 'विष्णु-ग्रन्थि' है। वह अनाहत-चक्र के नीचे रहती है। उसका भेदन किये बिना हृदय-चक्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हृदय में प्रवेश कर पहले की तरह उस चक्र में स्थित मध्यबिन्दु में तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। वह सूत्रात्मा का ध्यान है। उस समय सविकल्प समाधि का उदय होता है। अनाहत को लाँघकर विशुद्ध चक्र में प्रवेश करने के मार्ग में स्तनों के समान लटक रहे दो मांसपिण्ड दिखाई देते हैं। उस समय अगल-बगल के दो मार्गों का त्यागकर मध्यमार्ग का अवलम्बन करके विशुद्ध-मार्ग में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ प्राण निरुद्ध होता है, उसके बाद तृतीय या अन्तिम ग्रन्थि का भेद कर आज्ञाचक्र में चढ़ना चाहिये। इस ग्रन्थि का नाम 'रुद्र-ग्रन्थि' है। यह आज्ञा-चक्र के नीचे रहती है। आज्ञाचक्र में प्रवेश करने के पश्चात् वहाँ के बीज या तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। योगी यदि यहाँ तक का मार्ग तय कर सके तो चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन तीनों तेजों को अथवा तीन बिन्दुओं को वह मिलाने में समर्थ होता है। उस समय इन तीनों तेजों का पार्थक्य नहीं रहता। तीनों के मिलन से एक महातेज का विकास होता है। उससे सहस्रार से टपक रहे अमृत का आस्वाद लेने का अधिकार पैदा होता है। उस समय योगी अजर और अमर पिण्ड को पाकर सहस्रार में विराजमान ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है। वहाँ तुर्य या तुर्य-तुर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं। तुर्य कहने से चतुर्थ का बोध होता है। जिसके ऊपर तीन मात्राएँ आरोपित होती हैं, उसका नाम तुर्य है। जिस समय इस अवस्था का अनुभव होता है, उस समय त्रिमात्र के रूप में प्रतीति होती है। किन्तु तुर्य-तुर्य में मात्राएँ लुप्त हो जाती हैं। यही अमात्र-स्थिति है। यह साक्षात्कार क्षणिक न होकर सदातन होना चाहिये। तुर्य में कुछ साकार-भाव रहता है। किन्तु तुर्यतुर्य में साकार भाव बिल्कुल नहीं रहता। यह प्रतिद्वन्द्वहीन, एक और अद्वितीय अवस्था है। परमहंस अवस्था इसी का नामान्तर है। तुर्य-तुर्य के स्वगत अंश से तुर्य की उत्पत्ति होती है। इसको योगी लोग करोड़ो सूर्यों के समान देदीप्यमान कहते हैं। किन्तु वास्तविक रूप में इसका

अनुसार अजपा-साधन करे, उन्हें पहले सिद्धासन से बैठकर बाँए टखने से गुदाद्वार को आवृत कर पूरक-क्रिया करनी चाहिये। इस तरह मूलाधार में वायु इकट्ठा हो जाती है। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार आकुञ्चन-क्रिया द्वारा मूलाधार से उस वायु को उठाना चाहिये। इतनी जब क्रिया सिद्ध हो जाय, तब प्राण और अपान में साम्य-स्थापना करनी चाहिये। प्राण और अपान के साम्यभाव को प्राप्त होने पर मूलाधार स्थित त्रिकोण में जो अग्नि रहती है, उसको उठाकर प्राण और अपान के साथ मिलाते ही, कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है। कुण्डलिनी के जागने के बाद, उस कुण्ड-लिनी से ब्रह्मग्रन्थि खोलनी चाहिये। जब तक ब्रह्मग्रन्थि नहीं खुलती, तब तक षट्चक्रों के पहले चक्र मूलाधार में यानी चतुर्दल में प्रवेश करने की सामर्थ्य ही उत्पन्न नहीं होती। कमल में प्रविष्ट होकर उस कमल का जो एकबिन्दु या तुरीय-भूमि है, उसका ध्यान करना चाहिये। इसका नाम विराट् का ध्यान है। इस ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। तब षड्दल अधिष्ठान-चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करके, दशदल मणिपूर में जाना चाहिये। तब फिर ग्रन्थि खोलने की आवश्यकता पड़ती है। उस ग्रन्थि का नाम 'विष्णु-ग्रन्थि' है। वह अनाहत-चक्र के नीचे रहती है। उसका भेदन किये बिना हृदय-चक्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हृदय में प्रवेश कर पहले की तरह उस चक्र में स्थित मध्यबिन्दु में तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। वह सूत्रात्मा का ध्यान है। उस समय सविकल्प समाधि का उदय होता है। अनाहत को लाँघकर विशुद्ध चक्र में प्रवेश करने के मार्ग में स्तनों के समान लटक रहे दो मांसपिण्ड दिखाई देते हैं। उस समय अगल-बगल के दो मार्गों का त्यागकर मध्यमार्ग का अवलम्बन करके विशुद्ध-मार्ग में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ प्राण निरुद्ध होता है, उसके बाद तृतीय या अन्तिम ग्रन्थि का भेद कर आज्ञाचक्र में चढ़ना चाहिये। इस ग्रन्थि का नाम 'रुद्र-ग्रन्थि' है। यह आज्ञा-चक्र के नीचे रहती है। आज्ञाचक्र में प्रवेश करने के पश्चात् वहाँ के बीज या तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। योगी यदि यहाँ तक का मार्ग तय कर सके तो चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन तीनों तेजों को अथवा तीन बिन्दुओं को वह मिलाने में समर्थ होता है। उस समय इन तीनों तेजों का पार्थक्य नहीं रहता। तीनों के मिलन से एक महातेज का विकास होता है। उससे सहस्रार से टपक रहे अमृत का आस्वाद लेने का अधिकार पैदा होता है। उस समय योगी अजर और अमर पिण्ड को पाकर सहस्रार में विराजमान ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है। वहाँ तुर्य या तुर्य-तुर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं। तुर्य कहने से चतुर्थ का बोध होता है। जिसके ऊपर तीन मात्राएँ आरोपित होती हैं, उसका नाम तुर्य है। जिस समय इस अवस्था का अनुभव होता है, उस समय त्रिमात्र के रूप में प्रतीति होती है। किन्तु तुर्य-तुर्य में मात्राएँ लुप्त हो जाती हैं। यही अमात्र-स्थिति है। यह साक्षात्कार क्षणिक न होकर सदातन होना चाहिये। तुर्य में कुछ साकार-भाव रहता है। किन्तु तुर्यतुर्य में साकार भाव बिल्कुल नहीं रहता। यह प्रतिद्वन्द्वहीन, एक और अद्वितीय अवस्था है। परमहंस अवस्था इसी का नामान्तर है। तुर्य-तुर्य के स्वगत अंश से तुर्य की उत्पत्ति होती है। इसको योगी लोग करोड़ो सूर्यों के समान देदीप्यमान कहते हैं। किन्तु वास्तविक रूप में इसका

अनुसार अजपा-साधन करे, उन्हें पहले सिद्धासन से बैठकर बाँए टखने से गुदाद्वार को आवृत कर पूरक-क्रिया करनी चाहिये। इस तरह मूलाधार में वायु इकट्ठा हो जाती है। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार आकुञ्चन-क्रिया द्वारा मूलाधार से उस वायु को उठाना चाहिये। इतनी जब क्रिया सिद्ध हो जाय, तब प्राण और अपान में साम्य-स्थापना करनी चाहिये। प्राण और अपान के साम्यभाव को प्राप्त होने पर मूलाधार स्थित त्रिकोण में जो अग्नि रहती है, उसको उठाकर प्राण और अपान के साथ मिलाते ही, कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है। कुण्डलिनी के जागने के बाद, उस कुण्डलिनी से ब्रह्मग्रन्थि खोलनी चाहिये। जब तक ब्रह्मग्रन्थि नहीं खुलती, तब तक षट्चक्रों के पहले चक्र मूलाधार में यानी चतुर्दल में प्रवेश करने की सामर्थ्य ही उत्पन्न नहीं होती। कमल में प्रविष्ट होकर उस कमल का जो एकबिन्दु या तुरीय-भूमि है, उसका ध्यान करना चाहिये। इसका नाम विराट् का ध्यान है। इस ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। तब षड्दल अधिष्ठान-चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करके, दशदल मणिपूर में जाना चाहिये। तब फिर ग्रन्थि खोलने की आवश्यकता पड़ती है। उस ग्रन्थि का नाम 'विष्णु-ग्रन्थि' है। वह अनाहत-चक्र के नीचे रहती है। उसका भेदन किये बिना हृदय-चक्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हृदय में प्रवेश कर पहले की तरह उस चक्र में स्थित मध्यबिन्दु में तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। वह सूत्रात्मा का ध्यान है। उस समय सविकल्प समाधि का उदय होता है। अनाहत को लाँघकर विशुद्ध चक्र में प्रवेश करने के मार्ग में स्तनों के समान लटक रहे दो मांसपिण्ड दिखाई देते हैं। उस समय अगल-बगल के दो मार्गों का त्यागकर मध्यमार्ग का अवलम्बन करके विशुद्ध-मार्ग में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ प्राण निरुद्ध होता है, उसके बाद तृतीय या अन्तिम ग्रन्थि का भेद कर आज्ञाचक्र में चढ़ना चाहिये। इस ग्रन्थि का नाम 'रुद्र-ग्रन्थि' है। यह आज्ञा-चक्र के नीचे रहती है। आज्ञाचक्र में प्रवेश करने के पश्चात् वहाँ के बीज या तुरीय का ध्यान आवश्यक होता है। योगी यदि यहाँ तक का मार्ग तय कर सके तो चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन तीनों तेजों को अथवा तीन बिन्दुओं को वह मिलाने में समर्थ होता है। उस समय इन तीनों तेजों का पार्थक्य नहीं रहता। तीनों के मिलन से एक महातेज का विकास होता है। उससे सहस्रार से टपक रहे अमृत का आस्वाद लेने का अधिकार पैदा होता है। उस समय योगी अजर और अमर पिण्ड को पाकर सहस्रार में विराजमान ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है। वहाँ तुर्य या तुर्य-तुर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं। तुर्य कहने से चतुर्थ का बोध होता है। जिसके ऊपर तीन मात्राएँ आरोपित होती हैं, उसका नाम तुर्य है। जिस समय इस अवस्था का अनुभव होता है, उस समय त्रिमात्र के रूप में प्रतीति होती है। किन्तु तुर्य-तुर्य में मात्राएँ लुप्त हो जाती हैं। यही अमात्र-स्थिति है। यह साक्षात्कार क्षणिक न होकर सदातन होना चाहिये। तुर्य में कुछ साकार-भाव रहता है। किन्तु तुर्यतुर्य में साकार भाव बिल्कुल नहीं रहता। यह प्रतिद्वन्द्वहीन, एक और अद्वितीय अवस्था है। परमहंस अवस्था इसी का नामान्तर है। तुर्य-तुर्य के स्वगत अंश से तुर्य की उत्पत्ति होती है। इसको योगी लोग करोड़ो सूर्यों के समान देदीप्यमान कहते हैं। किन्तु वास्तविक रूप में इसका

16:33

English

+3

जनार्दन स्वामी (मौंगिरिजी) महाराज की सोहम साधना एक सहज, निरंतर चलने वाली अजपा-जाप प्रक्रिया है, जो श्वास के माध्यम से आत्मा को परमात्मा (शिव) से जोड़ती है। इसमें श्वास लेते समय 'सो' (मैं वह हूँ) और छोड़ते समय 'हम' (शिव) का मानसिक उच्चारण किया जाता है। यह ध्यान साधना मानसिक शांति, आत्म-जागरूकता और अंतर्ज्ञान बढ़ाने में सहायक है। YouTube +4

सोहम साधना की प्रमुख बातें:

- **मूल सिद्धांत:** 'सोऽहम्' का अर्थ है "मैं वही हूँ" (परमात्मा), जो अद्वैत वेदांत के अनुसार आत्मा और सर्वोच्च सत्ता की एकता को दर्शाता है।
- **प्रक्रिया (अजपा-जाप):** सांस अंदर भरते समय मन में 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हम' का जाप करें। सांस सामान्य और लयबद्ध होनी चाहिए।
- **साक्षी भाव:** यह ध्यान श्वास की प्रक्रिया को बिना किसी प्रयास के महसूस करने और उसे साक्षी भाव से देखने के बारे में है, न कि उसे बदलने के।
- **लाभ:** जनार्दन स्वामी की शिक्षाओं के अनुसार, नियमित अभ्यास से जीवन के लक्ष्यों में स्पष्टता आती है, मन शांत होता है और मानसिक तनाव दूर होता है।
- **ध्यान अवस्था:** अभ्यास के साथ, मन विचार-मुक्त (thought-

Ask anything

Home Search Notifications Activity

शब्द निरंजन चाँचरी मुद्रा है नैनन के माँही।
ताको जाने गोरख योगी महा तेज तप माँही।।

शब्द ओंकार भूचरी मुद्रा त्रिकुटी है स्थाना।
व्यास देव ताहि पहिचाना चाँद सूर्य तिहि जाना।।

सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा भंवर गुफा स्थाना।
सुकदेव मुनी ताहि पहिचाना सुन अनहद को काना।।

शब्द ररंकार खैंचरी मुद्रा दसवें द्वार ठिकाना।
ब्रह्मा विष्नु महेश आदि लो ररंकार पहिचाना।।

शक्ति शबद ध्यान उनमुनी मुद्रा बसै आकाश सनेही।
झिलमिल झिलमिल जोति दिखावै जाने जनक विदेही।।

शबद ही काल कलंदर कहीये शबद ही मर्म भुलाया।
पाँच शबद की आशा में सर्वस मूल गमाया।।

पाँच शबद पाँच हैं मुद्रा सो निश्चय कर जाना।
आगे पुरुष पुरान निःअक्षर तिनकी खबर न जाना।।

तू लगङा है लँगर झूठा लवार ।
अमली के मुख में मूत्र की धार ।।

सोहं ऊपर और है सतसुकरत एक नाम।
सब जीवों का वास है सही बस्ती सही ठाम।

नामा छीपा ऊँ तारी पीछे सोहं भेद उचारी।
सारशबद पाया जद लोई आवा गमन बहुरि ना होई।।

ऊँ नाम काल के ब्रह्मलोक तक सोहं परब्रह्म
की भँवर गुफा तक व सारनाम सतलोक तक ले
जायेगा।

उपरिलिखित नियमों का परिपालन करोगे तो आध्यात्मिक उन्नति सवेग होगी। चित्त सुगमतापूर्वक एकाग्र हो सकेगा। निरन्तर अभ्यास करने से तुम्हारी सुप्त मन्त्र-शक्ति जाग पड़ेगी और तुम मन्त्र की दिव्य शक्ति से उज्ज्वल हो उठोगे।

नोटबुक को सँभाल कर रखना चाहिए। उसके प्रति आदर भाव वरतना चाहिए। जब एक नोटबुक लिख चुकते हो उसको किसी सन्दूक में बन्द करके अपने ध्यान के कमरे में अपने इष्ट-देवता के चित्र के सम्मुख रख दो। मन्त्र की कापी की उपस्थिति तुम्हारे ध्यान के कमरे में आध्यात्मिक वातावरण को स्थिर बनाये रखेगी।

लिखित जप के लाभ कहे नहीं जा सकते। लिखित जप से चित्त एकाग्र होता है और हृदय पवित्रता से भर जाता है। मन्त्र लिखने के अभ्यास से एक आसन में बैठने का अभ्यास होता है। इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। शीघ्र ही मानसिक शक्ति की प्राप्ति होती है। मन्त्र-शक्ति के द्वारा तुम ईश्वर के समीप पहुँचते हो। इन लाभों का अनुभव हम अभ्यास द्वारा ही कर सकते हैं। जो लोग इसका अभ्यास अभी तक नहीं करते उनको आज से ही अभ्यास आरम्भ कर देना चाहिए। यदि लोग नित्य आधा घण्टा भी इसका अभ्यास करते रहें तो छः महीने में उनको इन लाभों का अनुभव हो जायगा।

(१५) जप की संख्या

प्रत्येक व्यक्ति अनजाने में ही सोऽहम् मन्त्र २४ घण्टों में २१६०० बार जपता है। तुम्हें ऐसे प्रत्येक श्वास के साथ अपना इष्टमन्त्र कहना चाहिए। बस फिर क्या, तुम्हारी मन्त्र-शक्ति शीघ्र बढ़ जायेगी और मन शुद्ध हो जायेगा।

वेद कहता है :

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत पुनः ।
हँस हँस इत्यमूं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥

श्वास जब अन्दर आता है तब 'सो' ऐसा शब्द होता है और जब श्वास बाहर निकलता है तब 'हम्' का आवाज करता है। इसी प्रकार सभी प्राणी इसी 'सोऽहम्' मन्त्र का स्वभावतः बिना जपे जाप कर रहे हैं। साधक अजपा जाप में वृत्ति लगाकर फिर उसके अर्थ का भी चिन्तन करे। सो= वह अर्थात् सर्वत्र अस्ति, भाति व प्रिय रूप से व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म। और यह 'हम्' शब्द वास्तव में 'अहम्' है। अहम्= मैं अर्थात् सबका द्रष्टा साक्षी सामान्य चेतन।

इस प्रकार "सोऽहम्" मन्त्र का अर्थ हुआ मैं (साक्षी) सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म हूँ। इस

अर्थ का चिन्तन करके फिर यह भावना करें कि यह मन्त्र प्राण जप रहा है। मैं प्राण नहीं, प्राण से भिन्न, प्राण का भी साक्षी हूँ।

९. मन का चिन्तन :

मन को छुट्टी देकर साक्षी बन कर बैठ जायें। मन को कहें कि, 'हे मन! भाग जितना भागना है। आज मैं तेरा खेल देखने बैठा हूँ। जितनी चंचलता है, वह सब दिखा। बहादुर तो मैं तब मानूं कि जब तू ऐसी जगह भाग कर दिखा जहाँ मैं तुझे न देख सकूं। मन! तू तो एक बन्दर है। जैसे कोई बन्दर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदे तो उससे मेरे देखनेपन में कोई भी कमी नहीं आती। इसी प्रकार ऐ मन! चाहे तू चंचल हो अथवा एक जगह टिक

अजपा जपो छसो त्यां,

चित्तवृत्ति ने संभाळो,

सोऽहं ने हंसः मन्त्रो,

विश्राम पाम चाली । ७

यहाँ ऊपर कहे अनुसार ध्यान करते समय चित्त-वृत्ति को स्थिर रखकर 'सोहं हंसः' मन्त्र का छः सौ जप करने से शान्ति मिलती है ।

जे योनि-लिङ्ग देशे,

षट्-पत्र पद्म ध्याने,

ते स्वाधिष्ठान नामे,

जलतत्व श्वेत माने । ८

फिर मन को योनि-लिङ्ग स्थान पर ले जाना । वहाँ छः दल के कमल का ध्यान करना । उस स्थान को 'स्वाधिष्ठान चक्र' कहते हैं । उसका तत्व 'जल' है और रङ्ग श्वेत है ।

त्यां तत्व बे जणाशे,
वायु अनल गणाशे,
अधिदेव काल स्वामी,
प्राणो तणो जणाशे । १९

हृत्-चक्र में दो तत्त्व हैं—'वायु' और 'अग्नि' (नाभि-चक्र से ऊपर चढ़ता हुआ अग्नि-तत्त्व और कण्ठ-चक्र से नीचे उतरता हुआ वायु-तत्त्व। इस अनुक्रम से लाल और धूम्र रङ्ग मिलकर गुलाबी रङ्ग होता है)। प्राणों का स्वामी काल उसका अधिदैवत है।

जो मन्त्र 'हंस सोऽहं',
अजपा जपाय अन्तर,
तो काल ना सतावे,
नित छः हजार मन्तर । २०

उस स्थान पर प्रतिदिन 'सोहं हंसः' का छः हजार बार जप करने से काल नहीं सताता।

22:06

13 sites

डी.डी. भावे की **सोहम साधना** (Soham Sadhana) एक प्राचीन और प्रभावी ध्यान तकनीक है जो श्वास-प्रश्वास (Inhale-Exhale) की प्राकृतिक प्रक्रिया पर आधारित है। इसका मुख्य उद्देश्य साधक को स्वयं के वास्तविक स्वरूप (आत्मा) और परमात्मा की एकता का अनुभव कराना है।

सोहम का अर्थ

संस्कृत में **'सो' (Sa)** का अर्थ है 'वह' (परमात्मा) और **'हं' (Ham)** का अर्थ है 'मैं' (आत्मा)। पूर्ण अर्थ है—**"वह परमात्मा मैं ही हूँ"** (I am That)। Facebook +4

साधना की विधि (Steps of Practice)

1. **आसन:** किसी शांत स्थान पर सिद्धासन, पद्मासन या सुखासन में रीढ़ की हड्डी सीधी करके बैठें।
2. **श्वास पर ध्यान (Inhalation):** नाक से श्वास अंदर खींचते समय मन ही मन **'सो'** ध्वनि का अनुभव करें।
3. **प्रश्वास पर ध्यान (Exhalation):** नाक से श्वास बाहर छोड़ते समय मन ही मन **'हं'** ध्वनि का अनुभव करें।
4. **अजपा जाप:** धीरे-धीरे यह प्रक्रिया इतनी सहज हो जाती है कि बिना प्रयास के श्वास के साथ यह मंत्र स्वतः चलने लगता है, जिसे 'अजपा जाप' या 'हंसयोग' भी कहते हैं।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

22:08

AI Mode All Images Videos News Maps Sl

Vijay Krishna Goswami ki Soham Sadhna

8 sites

विजय कृष्ण गोस्वामी (जिन्हें गोसाईजी भी कहा जाता है) की साधना मुख्य रूप से **नाम-संकीर्तन** और **गुरु-कृपा** पर आधारित थी, हालांकि उनके जीवन में सोहं (Soham) साधना का भी उल्लेख मिलता है। उनकी सोहं साधना के बारे में कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं: www.gosaiji.com +1

- **साधना का स्वरूप**: सोहं साधना एक प्रकार की अजपा-जप साधना है जिसमें "सो" शब्द को श्वास लेते समय और "हं" शब्द को श्वास छोड़ते समय मानसिक रूप से अनुभव किया जाता है। यह जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतीक है।
- **गुरु का महत्व**: गोस्वामी जी का मानना था कि गुरु के बिना धर्म की प्राप्ति असंभव है। उन्होंने स्वयं हिमालय में एक महात्मा से दीक्षा प्राप्त की थी, जिसके बाद उनकी साधना में तीव्रता आई थी।
- **आध्यात्मिक अवस्था**: उनकी साधना उन्हें 'तुर्य अवस्था' (चेतना की चौथी अवस्था) तक ले गई, जहाँ साधक को भगवद साक्षात्कार प्राप्त होता है और वह सांसारिक मोह से मुक्त हो जाता है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

22:09
AI Mode All Images Videos News Maps SI

9 sites

विजय कृष्ण गोस्वामी (Bijoy Krishna Goswami) की **नाम साधना विधि** मुख्य रूप से 'अजपा जप' (Ajapa Japa) और श्वास नियंत्रण पर आधारित है। उनके अनुसार, कलियुग में मोक्ष का एकमात्र मार्ग नाम जप ही है। Scribd +2

साधना की प्रमुख विधियाँ और निर्देश निम्नलिखित हैं:

- **श्वास के साथ जप (Ajapa Sadhana):** नाम जप को श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया के साथ जोड़ना सबसे महत्वपूर्ण है। जब नाम हर सांस के साथ जुड़ जाता है, तो यह 'अजपा' बन जाता है, जो बिना किसी सचेत प्रयास के अपने आप चलता रहता है।
- **समय और अवधि:** साधना के लिए सबसे उपयुक्त समय रात्रि **2 बजे से सुबह 5 बजे** के बीच का माना गया है। उन्होंने कम से कम एक घंटे सुबह स्नान के बाद प्राणायाम और नाम जप करने का निर्देश दिया।
- **गुरु प्रदत्त नाम:** साधना की सफलता के लिए सद्गुरु से प्राप्त 'सिद्ध मंत्र' या नाम का होना आवश्यक है। गोस्वामी जी का मानना था कि गुरु के बिना धर्म या कठिन साधना का ज्ञान प्राप्त करना असंभव है।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

22:10
AI Mode All Images Videos News Maps Sl

श्री श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी (Kuladananda Brahmachari), विजय कृष्ण गोस्वामी जी के सबसे प्रिय और अंतरंग शिष्यों में से एक थे। उनकी **नाम योग साधना** मुख्य रूप से उनके गुरु द्वारा सिखाई गई 'अजपा साधना' (Ajapa Sadhana) का ही विस्तार थी, जिसे उन्होंने अत्यंत कठोरता के साथ पालन किया और सिद्ध किया।

Instagram +3

उनकी साधना विधि के मुख्य स्तंभ निम्नलिखित हैं:

- **अजपा जप (Ajapa Japa):** कुलदानन्द जी ने सिखाया कि साधक को अपनी हर सांस के साथ 'नाम' का अभ्यास करना चाहिए। उनका स्पष्ट निर्देश था कि **"एक भी श्वास व्यर्थ न जाए"**। जब नाम और श्वास एक हो जाते हैं, तो वह 'अजपा' बन जाता है।
- **आकाश वृत्ति (Akash Vritti):** उन्होंने 'आकाश वृत्ति' का पालन किया, जिसका अर्थ है अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए पूरी तरह से ईश्वर पर निर्भर रहना। वे भविष्य के लिए कुछ भी संचित नहीं करते थे।
- **कठोर ब्रह्मचर्य:** उन्होंने शारीरिक और मानसिक रूप से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया। गोस्वामी जी के निर्देश पर उन्होंने कई वर्षों तक भोजन, नींद और सुख-सुविधाओं का त्याग कर अत्यंत कठिन तपस्या की।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

22:12

AI Mode All Images Videos News Maps S

अजपा जप (Ajapa Japa) एक ऐसी साधना विधि है जिसमें मंत्र का जप बिना किसी सचेत प्रयास के, श्वास-प्रश्वास की प्राकृतिक प्रक्रिया के साथ स्वतः होने लगता है। विजय कृष्ण गोस्वामी और उनके शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी की परंपरा में इसे 'नाम योग' की पराकाष्ठा माना गया है। www.yogalife.co.in +3

अजपा साधना की मुख्य विधि

1. **आसन और स्थिरता:** किसी भी आरामदायक ध्यान मुद्रा (जैसे सिद्धासन या सुखासन) में बैठें, रीढ़ की हड्डी को सीधा रखें और पूरे शरीर को ढीला छोड़ दें।
2. **श्वास पर ध्यान:** अपनी सामान्य श्वास की गति को केवल देखें। इसे बदलने या नियंत्रित करने का प्रयास न करें।
3. **मंत्र का लय:** श्वास के अंदर जाते समय **'सो' (So)** और बाहर जाते समय **'हं' (Ham)** का मानसिक उच्चारण करें।
    1. **विजय कृष्ण गोस्वामी जी** के अनुसार, यदि गुरु से कोई विशिष्ट नाम प्राप्त हुआ है, तो उसे श्वास के साथ जोड़ना सबसे प्रभावशाली होता है।
4. **मानस मार्ग का विज़ुअलाइज़ेशन:** नाभि (मणिपुर चक्र) से कंठ (विशुद्धि चक्र) तक एक सूक्ष्म प्रकाशमयी नली की कल्पना करें। श्वास लेते समय चेतना नाभि से कंठ की ओर और छोड़ते समय कंठ से नाभि की ओर जानी चाहिए।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

22:18
facebook Open app Log In

अजपा जाप की विधि
अजपा जाप की अवस्था अक्सर निरंतर और समर्पित मानसिक जप के बाद अपने आप सिद्ध होती है। हालांकि, इसे शुरू करने के लिए एक सामान्य विधि इस प्रकार है-
किसी भी आरामदायक और स्थिर ध्यान मुद्रा में बैठें। अपनी रीढ़ को सीधा रखें और पूरे शरीर को ढीला छोड़ दें।
आँखें बंद करें और अपनी श्वास की गति को देखें। श्वास को बदलने का प्रयास न करें, बस उसके आने और जाने की सहज प्रक्रिया को महसूस करें।
अब श्वास के साथ मंत्र 'सोऽहं' को जोड़ना शुरू करें:
 * श्वास अंदर लेते समय मन में 'सो' की ध्वनि दोहराएँ।
 * श्वास बाहर छोड़ते समय मन में 'हं' की ध्वनि दोहराएँ।
ध्यान करें – श्वास भीतर जाए तो “सोऽ” और बाहर आए तो “हम्”।

अपने मन को एकाग्रता पूर्वक केवल श्वास के प्रवाह और उससे जुड़ी 'सोऽहं' ध्वनि पर रखें। श्वास कहाँ से शुरू हो रही है, कहाँ जा रही है और आते-जाते श्वास शरीर में किस प्रकार की हलचल उत्पन्न करती है, इस पर मन को टिकाएँ। इस प्रक्रिया को बिना किसी जल्दबाजी या तनाव के करते रहें। प्रारंभ में, आपको सचेत रूप से मंत्र दोहराना होगा, यह जप है।

लंबे समय तक नियमित अभ्यास के बाद, वह क्षण आता है, जब आपको सचेत रूप से मंत्र दोहराने की आवश्यकता नहीं होती। मंत्र और श्वास एक हो जाते हैं। फिर बिना परिश्रम के यह बोध सतत बना रहता है कि मैं वही सत्य हूं, जिसे जानना व जिसमें स्थित होना, मानव जीवन का लक्ष्य है-“सोऽहम्” ।
दैनिक कार्य करते हुए भी यह अवस्था बनी रहती है। यही अजपा जाप कहलाती है।

अजपा जाप एक गहरी साधना है। विभिन्न योग परंपराओं में इसकी विधि में थोड़ा अंतर हो सकता है। आप साधन आरम्भ करें, मार्ग स्वयं खुलता जाएगा। बस आवश्यकता है, बिना ऊबे सतत् अभ्यास करते रहने का।

योगाचार्य **पंचानन भट्टाचार्य** (1853-1919), जो योगीराज श्यामाचरण लाहिड़ी के मुख्य शिष्य थे, उनकी साधना का मूल आधार **क्रिया योग** था। उनके अनुसार अजपा साधना क्रिया योग का ही एक अभिन्न और उच्चतर अंग है। Scribd +1

उनकी साधना पद्धति और शिक्षाओं के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

- **प्राण और अपान का सामंजस्य**: पंचानन बाबा के अनुसार, क्रिया योग के माध्यम से जब श्वास (प्राण) और प्रश्वास (अपान) संतुलित हो जाते हैं, तब साधक **अजपा** की स्थिति में पहुँचता है। इसमें मंत्र का जाप करने की आवश्यकता नहीं रहती, बल्कि श्वास की गति के साथ मंत्र स्वतः ही भीतर प्रवाहित होने लगता है।
- **हंस और सोऽहम्**: वे सिखाते थे कि प्रत्येक मनुष्य अनजाने में ही श्वास लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हम्' का उच्चारण करता है। क्रिया योग के निरंतर अभ्यास से यह 'हंस' मंत्र जागृत होकर **सोऽहम्** (वही मैं हूँ) के अनुभव में बदल जाता है।
- **गृहस्थ योग की प्रधानता**: अपने गुरु लाहिड़ी महाशय के निर्देश पर, पंचानन भट्टाचार्य ने संन्यास त्याग कर गृहस्थ जीवन अपनाया। उन्होंने सिद्ध किया कि संसार में रहकर भी अजपा जैसी कठिन साधना पूर्ण की जा सकती है और आत्म-साक्षात्कार (Self-realization) प्राप्त किया जा सकता है।

1. क्रिया योग और अजपा का संबंध

पंचानन बाबा के अनुसार, जब एक साधक गुरु द्वारा प्रदत्त **क्रिया योग** का निरंतर अभ्यास करता है, तो उसकी श्वास सूक्ष्म और स्थिर होने लगती है। इस स्थिरता के बाद जो अवस्था आती है, उसे ही **अजपा** (जो जपा न जाए, बल्कि स्वत: हो) कहते हैं।

2. हंस और सोऽहम् (The Natural Breath)

- **हंस (Hansa):** श्वास के भीतर जाने (हं) और बाहर आने (स) की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से चलती है।
- **सोऽहम् (Soham):** जब अंतर्मुखी साधना से प्राण स्थिर होता है, तो यही 'हंस' पलटकर 'सोऽहम्' (वही मैं हूँ) बन जाता है। पंचानन भट्टाचार्य ने सिखाया कि इसी ध्वनि को श्वास-प्रश्वास के साथ अनुभव करना ही वास्तविक अजपा है।

3. प्राण-कर्म (Prana-Karma)

उनकी शिक्षाओं में **प्राण-कर्म** पर विशेष जोर दिया गया है। उनके अनुसार:

- जब प्राण वायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित होती है, तब मन स्वत: ही एकाग्र हो जाता है।

4. संत धीरो भक्त (Dhiren Bhagat) और भोजा भगत (Bhoja Bhagat)

इन संतों ने अपनी **'चाबखा'** (कटाक्ष) रचनाओं में पाखंड को त्यागकर श्वास की साधना पर जोर दिया।

- **उपदेश:** उन्होंने सिखाया कि बाहर की मूर्तियों को पूजने के बजाय भीतर चल रहे 'सोहं' रूपी परमात्मा को पहचानो। श्वास ही वह माला है जिसे हर समय जपना चाहिए।

5. कबीर पंथी और सतपंथ परंपरा

गुजरात में कबीर पंथ का गहरा प्रभाव रहा है। यहाँ के स्थानीय संतों ने **'सुरति-शब्द योग'** को 'सोहं' के साथ जोड़कर गाँवों तक पहुँचाया।

- **सार:** "सांस-सांस में सोहं गावे" - यानी हर आती-जाती श्वास में उस अविनाशी परमात्मा का अनुभव करना।

विशेषता: गुजरात के संतों ने सोहं साधना को **'भजन'** और **'लोक-वाणी'** के माध्यम से इतना सरल बना दिया कि अनपढ़ व्यक्ति भी श्वास के प्रति जागरूक होकर आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सके।

क्या आप **गंगा सती** द्वारा पानबाई को सिखाए गए **'प्राणायम और ध्यान'** के सूत्रों के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

3. सोऽहम् और अजपा साधना में भूमिका

- **मन को बांधना:** अजपा साधना में हम **मन** को श्वास (सोऽहम्) के साथ बांध देते हैं।
- **चित्त की शुद्धि:** जब मन श्वास पर टिक जाता है, तो वह चित्त की गहराइयों में दबे पुराने संस्कारों को कुरेदना बंद कर देता है। धीरे-धीरे चित्त 'निर्मल' होने लगता है।
- **परिणाम:** जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तो उसे **'शुद्ध चैतन्य'** या **'सुरति'** कहा जाता है, जो सीधे 'शब्द' (परमात्मा) से जुड़ जाती है।

4. संतों की दृष्टि में

कबीर साहब और अन्य संतों के अनुसार:

- **मन** एक लगामहीन घोड़ा है।
- **चित्त** वह भूमि है जिस पर यह घोड़ा दौड़ता है।
- साधना का लक्ष्य **मन को मारना** और **चित्त को स्थिर करना** है ताकि आत्मा का प्रकाश चमक सके।

5. योग सूत्र का आधार

22:39
AI Mode All Images Videos News Maps Sl
9 sites

भारत की महिला संतों और योगिनियों ने भी अजपा योग और सोऽहम् साधना के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार के शिखर को छुआ है। यहाँ कुछ प्रमुख महिला संतों के साधना मार्ग का संक्षिप्त परिचय दिया गया है:

- **गंगा सती (Ganga Sati)**: गुजरात की इस महान संत ने अपने भजनों के माध्यम से योग के रहस्यों को समझाया। उन्होंने **प्राण और अपान** की शुद्धि पर जोर दिया और सिखाया कि कैसे श्वास-प्रच्छवास में चलने वाले 'सोहं' नाद को पहचानकर 'निजपद' प्राप्त किया जा सकता है।
- **आनंदमयी माँ (Anandamayi Ma)**: 20वीं सदी की इस दिव्य विभूति को साक्षात देवी का रूप माना जाता था। वे बचपन से ही बिना किसी बाहरी शिक्षा के उच्च योगिक अवस्थाओं और **समाधि** में चली जाती थीं। उनकी साधना सहज योग और आंतरिक प्रेम का मार्ग थी।
- **मीराबाई (Mirabai)**: यद्यपि मीराबाई को प्रेम-भक्ति का प्रतीक माना जाता है, लेकिन उनकी भक्ति भी अंततः **'सुरति'** की एकाग्रता थी। वे कृष्ण के नाम में इतनी लीन हो गई थीं कि उनका अस्तित्व पूरी तरह परमात्मा में विलीन हो गया था, जो सोऽहम् की ही पराकाष्ठा है।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

22:43

AI Mode All Images Videos News Maps SI

बाबा लोकनाथ के अनुसार अजपा साधना के मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैं:

1. श्वास और मंत्र का समन्वय

लोकनाथ बाबा श्वास की गति के साथ मन को जोड़ने पर बल देते थे। इस साधना में किसी बाहरी माला या मंत्रोच्चार की आवश्यकता नहीं होती: Scribd +1

- **प्रक्रिया:** जब हम सांस अंदर लेते हैं, तो मन ही मन **'सो' (So)** का अनुभव करें और सांस बाहर छोड़ते समय **'हम्' (Ham)** का।
- **अर्थ:** 'सोऽहम्' का अर्थ है "वही (परमात्मा) मैं हूँ"। बाबा कहते थे कि यह ध्वनि हमारे भीतर स्वतः हो रही है, बस हमें इसके प्रति जागरूक होना है। YouTube +3

2. निरंतर जागरूकता (Constant Awareness)

बाबा लोकनाथ के अनुसार, साधना केवल आसन पर बैठने तक सीमित नहीं होनी चाहिए:

- उन्होंने सिखाया कि साधक को चलते-फिरते, खाते-पीते और कार्य करते समय भी अपनी श्वास की इस लय को पकड़े रहना चाहिए।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

ग्यानेश्वर भारती (Gyaneshwar Bharti) द्वारा निर्देशित **"सहम साधना"** (Saham Sadhna) एक विशेष आध्यात्मिक अभ्यास है जो मुख्य रूप से **श्वास-प्रश्वास** (breathing) और **सो-हं** (So-Ham) मंत्र के विज्ञान पर आधारित है। इसे "अजपा-जप" का एक सरल और प्रभावशाली रूप माना जाता है।

सहम साधना के मुख्य बिंदु

- **अर्थ**: "सहम" शब्द "सो-हं" (वह मैं हूँ) से निकला है। साधना के दौरान, श्वास लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हं' की ध्वनि का मानसिक अनुभव किया जाता है।
- **प्रक्रिया**:
  - इसमें साधक को शांत बैठकर अपनी स्वाभाविक श्वास पर ध्यान केंद्रित करना होता है।
  - बिना किसी प्रयास के, आती-जाती श्वास के साथ स्वयं को जोड़ने का अभ्यास किया जाता है।
- **उद्देश्य**: इस साधना का मुख्य लक्ष्य मन को शांत करना, तनाव दूर करना और स्वयं के वास्तविक स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करना है।
- **ग्यानेश्वर भारती का योगदान**: उन्होंने इस प्राचीन विधि को आधुनिक जीवनशैली के अनुरूप सरल भाषा में समझाया है,

16:35

AI Mode All Images Videos News Maps SI

स्वामी मुक्तानंद परमहंस (सिद्ध योग के संस्थापक) की शिक्षाओं में **'सोऽहम् साधना'** (Soham Sadhna) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वे इसे आत्म-साक्षात्कार का सबसे सरल और प्राकृतिक मार्ग मानते थे। Amazon.in +1

स्वामी जी के अनुसार सोऽहम् साधना के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. साधना का अर्थ और दर्शन

- **सोऽहम् का अर्थ**: 'सो' (वह/परमात्मा) और 'हम्' (मैं)। इसका अर्थ है—**"मैं वही हूँ"** (I Am That)।
- **अजपा-जप**: स्वामी मुक्तानंद के अनुसार, यह मंत्र हमारी श्वास के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ा है। श्वास अंदर लेते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हम्' की ध्वनि स्वतः होती है। Wikipedia +3

2. साधना की विधि (स्वामी मुक्तानंद के अनुसार)

- **गुरु कृपा (शक्तिपात)**: स्वामी जी के मार्ग में गुरु द्वारा **शक्तिपात** (शक्ति का संचार) साधना की शुरुआत है, जिससे साधक की कुंडलिनी शक्ति जागृत होती है और ध्यान स्वतः लगने लगता है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

अक्कलकोट निवासी **श्री स्वामी समर्थ महाराज** के अनुसार, सोहम (सोऽहम्) साधना आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर से जुड़ने का एक अत्यंत प्रभावशाली और सरल मार्ग है। वे इसे 'अजपा-जप' के रूप में सिखाते थे, जिसका अर्थ है वह जाप जो बिना किसी विशेष प्रयास के आपकी सांसों में निरंतर चलता रहता है। Facebook +1

स्वामी समर्थ की शिक्षाओं में सोहम साधना के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं:

1. सोहम का अर्थ (Meaning)

- **ब्रह्म और आत्मा की एकता**: 'सो' (वह/परमात्मा) और 'हम्' (मैं)। इसका पूर्ण अर्थ है **"अहं ब्रह्मास्मि"** या "वह परमात्मा मैं ही हूँ"।
- **अद्वैत भाव**: यह साधना व्यक्ति को यह अनुभव कराती है कि वह शरीर या मन नहीं, बल्कि उस अनंत ब्रह्मांडीय चेतना (परमात्मा) का हिस्सा है। Wisdom Library +3

2. साधना की विधि (Method)

स्वामी समर्थ और दत्त परंपरा के अनुसार इसे करने का तरीका बहुत सहज है:

- **सांसों का अवलोकन**: शांत चित्त होकर बैठें और अपनी स्वाभाविक सांसों पर ध्यान दें।

निसर्गदत्त महाराज (Nisargadatta Maharaj) की 'सोऽहम्' साधना पारंपरिक जप से थोड़ी अलग और **"आत्म-अन्वेषण" (Self-Enquiry)** पर आधारित है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'आई एम दैट' (I Am That) के अनुसार, वे शब्दों के रटने के बजाय **"मैं हूँ" (I Am)** के भाव में टिकने पर जोर देते थे।

यहाँ महाराज की सोऽहम् साधना के मुख्य सूत्र दिए गए हैं:

1. सोऽहम् का अर्थ: "मैं वही हूँ"

महाराज के अनुसार, 'सोऽहम्' केवल एक मंत्र नहीं है, बल्कि एक **तथ्य** है।

- **'सो' (वह/परमात्मा)** और **'हम्' (मैं)**।
- साधना का अर्थ है—इस विचार को छोड़ देना कि "मैं यह शरीर हूँ" और इस सत्य में टिक जाना कि "मैं शुद्ध चैतन्य हूँ"।

2. साधना की विधि: "मैं हूँ" के भाव में ठहरना

निसर्गदत्त महाराज ने किसी कठिन योग या प्राणायाम के बजाय **सजगता (Awareness)** पर ध्यान दिया:

- **सजग रहें**: अपने भीतर उठने वाले "मैं हूँ" (I Am) के अहसास पर ध्यान दें। यह विचार आने से पहले कि "मैं राम हूँ" या "मैं

सत्य साईं बाबा ने **'सोऽहम्' साधना** को एक सार्वभौमिक (Universal) साधना बताया है, क्योंकि यह किसी धर्म विशेष की नहीं, बल्कि हर जीवित प्राणी की श्वास-प्रक्रिया से जुड़ी है।

उनके अनुसार इस साधना के मुख्य बिंदु नीचे दिए गए हैं:

1. सोऽहम् का अर्थ और महत्व

- **प्राकृतिक मंत्र**: बाबा कहते थे कि हर व्यक्ति दिन भर में अनजाने में लगभग 21,600 बार इस मंत्र का जाप करता है। इसे **'अजपा-जप'** कहा जाता है।
- **विभाजन**: 'सो' (So) का अर्थ है 'वह' (परमात्मा) और 'हम्' (Ham) का अर्थ है 'मैं'।
- **भाव**: श्वास के साथ इसका अर्थ है—**"वह परमात्मा मैं ही हूँ"**। यह अद्वैत (Non-duality) का प्रतीक है।

2. साधना की विधि (सत्य साईं बाबा के अनुसार)

- **शांत बैठें**: कमर सीधी करके आराम से बैठें और आँखें बंद कर लें।
- **श्वास पर ध्यान**: अपनी श्वास को नियंत्रित न करें, उसे स्वाभाविक रूप से चलने दें।

पावस (रत्नागिरी) के **स्वामी स्वरूपानंद** (१९०३-१९७४) की **सोऽहम् साधना** मुख्य रूप से नाथ संप्रदाय की परंपरा पर आधारित है। स्वामी जी ने इस साधना को आत्म-साक्षात्कार का सबसे सरल और सीधा मार्ग बताया है। Original Christianity... +1

उनके अनुसार इस साधना के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं:

1. साधना का मूल मंत्र और अर्थ

- **सोऽहम् (Soham)**: 'सो' (वह परमात्मा) और 'हम्' (मैं)। इसका अर्थ है—**"मैं वही (ब्रह्म) हूँ"**।
- **अजपा-जप**: स्वामी जी के अनुसार, यह जाप हमारी सांसों में पहले से ही विद्यमान है। जब हम सांस अंदर लेते हैं, तो 'सो' की ध्वनि होती है और सांस बाहर छोड़ते समय 'हम्' की ध्वनि होती है। krishnasaraswati.co... +4

2. साधना की विधि (स्वामी स्वरूपानंद के अनुसार)

- **अनुसंधान (Focus)**: साधक को उठते-बैठते, खाते-पीते और दैनिक कार्य करते समय भी अपनी सांसों के साथ 'सोऽहम्' का अनुसंधान (स्मरण) बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए।
- **ध्यान का अभ्यास**:

- **शून्य अवस्था**: निरंतर अभ्यास से साधक 'शून्य' की अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ विचार समाप्त हो जाते हैं और केवल शुद्ध चैतन्य (परमात्मा) का अनुभव शेष रहता है।

4. प्रमुख ग्रंथ और उपदेश

उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ **'ज्ञान समुद्र'** और **'सुंदर विलास'** में इस साधना का गहरा वर्णन मिलता है। वे कहते थे:

> *"आतम और परमात्मा, दोय न जानै कोइ। सुंदर सोहं जाप सों, एक रूप ही होइ ॥"*
> (अर्थात: आत्मा और परमात्मा को अलग न समझें; सोऽहम् के जाप से दोनों एक ही रूप हो जाते हैं।)

साधना का सार: सुंदर दास जी की साधना का मुख्य उद्देश्य **'देहाध्यास'** (खुद को शरीर मानना) को छोड़कर **'ब्रह्माध्यास'** (खुद को ब्रह्म मानना) को प्राप्त करना है।

क्या आप संत सुंदर दास जी के **'ज्ञान समुद्र'** ग्रंथ के कुछ विशिष्ट दोहे या उनकी **योग साधना** के बारे में और विस्तार से जानना चाहेंगे?

1. सोऽहम् का अर्थ: जीव और ब्रह्म की एकता

धर्मदास जी की वाणियों में 'सोऽहम्' का अर्थ है—"वही (परमात्मा) मैं हूँ"। वे सिखाते थे कि आत्मा (जीव) माया के वश में होकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गई है। साधना का उद्देश्य इस भ्रम को तोड़कर अपनी दिव्यता को पहचानना है।

2. साधना की विधि (सत्य शब्द का संधान)

धर्मदास जी ने कबीर साहेब से मिली **"सार शब्द"** की दीक्षा को ही परम साधना माना है:

- **अजपा जाप**: सांसों के माध्यम से 'सो' (अंदर) और 'हम्' (बाहर) के प्राकृतिक जाप को अनुभव करना।
- **सुरति का मेल**: 'सुरति' (ध्यान/चेतना) को श्वास के साथ जोड़ना। जब चेतना श्वास के मंत्र 'सोऽहम्' में पूरी तरह लीन हो जाती है, तो मन शांत हो जाता है।
- **भ्रम का नाश**: धर्मदास जी कहते थे कि केवल मंत्र जपने से कुछ नहीं होगा, जब तक गुरु की दया से उस 'शब्द' का बोध न हो जाए जो भीतर गूंज रहा है।

3. साधना के चरण और 'अनहद नाद'

- **प्राण साधना**: श्वास की गति को स्थिर करना।

5. राजस्थानी भजनों में सोऽहम् का स्वरूप

राजस्थान के प्रसिद्ध संतों और नाथों ने अपनी वाणियों में सोऽहम् को बहुत सरल ढंग से समझाया है:

> *"सोऽहम् शब्द की डोरी गहि, उतरुं भवजल पार।"*
> (अर्थात: सोऽहम् शब्द की डोरी को पकड़कर ही इस संसार रूपी सागर को पार किया जा सकता है।)

साधना का सार: राजस्थान के नाथों के लिए सोऽहम् केवल एक जाप नहीं, बल्कि **'अलख निरंजन'** (अदृश्य परमात्मा) से मिलने का सीधा रास्ता है। यह साधना योगी को 'साक्षी भाव' में लाकर संसार के मोह-माया से मुक्त करती है।

क्या आप राजस्थान के **सिद्ध जसनाथ जी** या **गोरखनाथ जी** की विशिष्ट योग क्रियाओं (जैसे **प्राणायाम** या **मुद्रा**) के बारे में अधिक जानना चाहते हैं?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

राजस्थान में **नाथ संप्रदाय** (विशेषकर जसवंतनाथ जी, सिद्ध जसनाथ जी और गोरखनाथ जी की परंपरा) में **'सोऽहम् साधना'** योग और भक्ति का अद्भुत संगम है। राजस्थान के मारवाड़ और जांगल प्रदेश (बीकानेर, चूरू, नागौर) में नाथ सिद्धों ने इस साधना को जन-जन तक पहुँचाया है।

राजस्थान के नाथों की सोऽहम् साधना के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. अजपा-जाप और प्राण साधना

राजस्थान के नाथ सिद्धों (जैसे **सिद्ध जसनाथ जी**) के अनुसार, मनुष्य की प्रत्येक श्वास में 'सो' और 'हम्' का शब्द स्वतः गूँज रहा है।

- **विधि**: श्वास अंदर लेते समय 'सो' (परमात्मा) और बाहर छोड़ते समय 'हम्' (मैं) का मानसिक अनुभव।
- **लक्ष्य**: श्वास की गति को स्थिर करके मन को 'शून्य' में विलीन करना।

2. 'काया-गढ़' (शरीर) की शुद्धि

नाथ परंपरा में शरीर को एक 'गढ़' या किला माना गया है। सोऽहम् साधना के माध्यम से वे शरीर के भीतर स्थित **नौ द्वारों** को नियंत्रित

1. सोऽहम् और प्राण साधना

संत कल्याण भारती जी ने सांसों के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार पर बल दिया।

- **अजपा-जप**: उनके अनुसार, 'सोऽहम्' कोई बाहर से जपा जाने वाला मंत्र नहीं है, बल्कि यह शरीर के भीतर श्वास के साथ स्वतः हो रहा है।
- **विधि**: श्वास अंदर लेते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हम्' के मानसिक गुंजन को महसूस करना। वे इसे 'प्राणों की क्रिया' कहते थे जो मन को स्थिर करती है।

2. सुरति-शब्द योग

उनकी साधना का दूसरा महत्वपूर्ण स्तंभ 'सुरति-शब्द योग' है।

- **सुरति (ध्यान)**: अपनी चेतना या ध्यान को बाहरी विषयों से हटाकर भीतर की ओर मोड़ना।
- **शब्द (नाद)**: जब मन पूरी तरह शांत हो जाता है, तो भीतर एक दिव्य ध्वनि (अनहद नाद) सुनाई देती है। कल्याण भारती जी के अनुसार, इस ध्वनि को पकड़कर ही आत्मा परमात्मा में लीन हो सकती है।

3. यौगिक जीवन और शुचिता

परमहंस अद्वैत मत (Shri Anandpur Darbar) में **'सोहं साधना'** और **'पाँच नियमों'** का चोली-दामन का साथ है। प्रथम पादशाही **श्री श्री 108 श्री स्वामी अद्वैतानंद जी महाराज** ने स्पष्ट किया था कि बिना इन पाँच नियमों के पालन के, सूक्ष्म 'सोहं' या 'अजपा जाप' सिद्ध नहीं हो सकता।

इनका आपस में गहरा संबंध नीचे दिए गए बिंदुओं से समझा जा सकता है:

1. सुमिरन और सोहं (Soham & Simran)

- **संबंध:** सुमिरन साधना का आधार है। गुरु द्वारा दिए गए 'नाम' का जाप करते-करते जब एकाग्रता बढ़ती है, तब साधक की सुरति (Attention) श्वासों के साथ जुड़ती है।
- **प्रक्रिया:** 'सोहं' की ध्वनि श्वास-प्रश्वास में प्राकृतिक रूप से मौजूद है। नियमपूर्वक किया गया सुमिरन मन को इतना शांत कर देता है कि साधक को अपनी हर श्वास में 'सो' और 'हं' का अनुभव होने लगता है।

2. सत्संग और विवेक (Satsang & Wisdom)

- **संबंध:** सोहं का अर्थ है "वह (परमात्मा) मैं हूँ"। यह ज्ञान केवल सुनने से नहीं आता।
- **भूमिका:** सत्संग वह दर्पण है जो जीव को उसके असली स्वरूप

17:01

AI Mode All Videos Images News Shopping

परमहंस अद्वैत मत (जैसे श्री आनंदपुर और श्री प्रयाग धाम) में **'सोहं साधना'** (Soham Sadhna) को अध्यात्म की बहुत ऊँची और सूक्ष्म साधना माना गया है। इस मत के अनुसार 'सोहं' केवल एक शब्द नहीं, बल्कि जीव और ब्रह्म की एकता का अनुभव है।

अद्वैत मत में सोहं साधना के मुख्य बिंदु नीचे दिए गए हैं:

1. सोहं का अर्थ

- **'सो'** का अर्थ है 'वह' (परमात्मा) और **'हं'** का अर्थ है 'मैं' (जीवात्मा)।
- अर्थात्: **"वह परमात्मा मैं ही हूँ"**। यह साधना साधक को अहसास कराती है कि आत्मा और परमात्मा अलग नहीं हैं।

2. श्वास-प्रश्वास की क्रिया (Ajapa Jaap)

परमहंस अद्वैत मत में इसे 'अजपा जाप' के रूप में सिखाया जाता है:

- जब हम श्वास अंदर लेते हैं, तो स्वाभाविक रूप से **'सो'** की ध्वनि होती है।
- जब हम श्वास बाहर छोड़ते हैं, तो **'हं'** की ध्वनि होती है।
- साधक को सिखाया जाता है कि वह अपनी सुरति (ध्यान) को श्वास के साथ जोड दे ताकि बिना जीभ हिलाए यह जाप निरंतर

Ask anything

Home Search Notifications Activity

17:03
AI Mode All Videos Images News Shopping

(Ajapa Yoga) या **'अजपा जाप'** को साधना की सर्वोच्च और सबसे सूक्ष्म विधि माना जाता है। प्रथम पादशाही **श्री श्री 108 श्री स्वामी अद्वैतानंद जी महाराज** और द्वितीय पादशाही **श्री श्री 108 श्री स्वामी स्वरूपानंद जी महाराज** ने इस पर विशेष बल दिया है।

अद्वैत मत के अनुसार अजपा योग की मुख्य विशेषताएँ और विधि नीचे दी गई हैं:

1. 'अजपा' का अर्थ

'अजपा' का अर्थ है— **वह जाप जो जपा न जाए**, यानी जिसे जीभ या कण्ठ से बोलने की आवश्यकता नहीं होती। यह श्वास-प्रश्वास (Inhale-Exhale) की प्राकृतिक क्रिया के साथ निरंतर चलता रहता है।

2. सोहं और श्वासों का मेल

अजपा योग का मूल आधार 'सोहं' शब्द है:

- जब श्वास **अन्दर** जाती है, तो **'सो'** की सूक्ष्म ध्वनि होती है।
- जब श्वास **बाहर** आती है, तो **'हं'** की सूक्ष्म ध्वनि होती है।
- साधक को अपनी **'सुरति'** (Attention/ध्यान) को श्वास की इस आवक-जावक के साथ टिकाना सिखाया जाता है।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

भजन - 16

टेर : बारह पेड़ी बावन कचेड़ी, हूकूम झरोकांऊ लागे ।
नौ पेडी ऊं लागे नसाणी, आगे अनगढ़ सागे ।।

1. परा वाणी नाम की निसाणी, प्रशन्ती ऊँ प्रशन जागे ।
मदा पान फूलड़ा छाई, फल बेकरी के लागे ।।

2. परा पशन्ति मदा बेकरी, ऐ आऊँ के रागे ।
वाणी ने धार बिचार देखलो, भजन नाभ कंवल मूं जागे ।।

3. आवत-जावत पावन पिछाणे, शिल तेज घर जागे ।
5 - 25 - 52 ओर 12, ओहंग सोहंग लेखे लागे ।।

4. सांसम सांस, उसांसम सांसा, हर दम डंका लागे ।
मनमानी डंका मिट जावे शंका, सांसा का सिवरण सागे ।।

5. राचक रिचा पूरक पूरा, कूम्भक भरवा लागे ।
मन का मणिया पावन का धागा, अब सुरतीऊं रटबा लागे ।।

6. उठत बेठत आद अन्त देखो, पीव परण के पागे ।
झीणी - झीणी मन्दूरी वाणी, ह्रदय में हूंकरो लागे ।।

7. अजपा सिवरण सेन बताऊं, तार बंकनाल लागे ।
लागो तार तरबीणी के आगे, भजन त्रिकूटी में जागे ।।

8. भंवर गूफा में भजन गुंजारे, तार के तिरगुण आगे ।
दे रंणुकार राग चढ़ियो ऊंचो, बिना श्रवण सुणियो सागे ।।

9. अखण्ड भजन प्रखण्डा में गाजे, बाजा अनहद बाजे ।
अनहद उपरे होवे अवाजा, आठ पहर धून लागे ।।

10. गेबी गोप अनोप फरती माला, बिना मणिया बिना धागे ।
न अन्छर न नरभे हो रही रटना, अखण्ड लहर धून लागे ।।

11. मन पावन ऊठे सुरती नहीं पूंगे, ऊठे अंक लेख न लागे ।
शशि भाण तारा ऊठे न पूगे, ऊठे छाया धूप नहीं लागे।।

12. नाम का नाम पूनः पहली का, कांई म्हांका भाग आगला ज
गुर्जर गरीबीऊ कनीरामजी बोले, स[illegible] परस्या सागे।।

किस नगरी में अलख जगाते, कैसी भस्म चढ़ावो ।।४।।
साच-दो उत्तर, निरणे कर दरशावो।
रि' सुनलो अवधू, साची खोल बतावो ।५।

उत्तर:- ।। राग :- आशा ।। नं.१४

साधो भाई! ऐसे भजन कमाऊँ।
साच कहूँ सब गुप्त न राखूँ, निरणेकर दरशाऊँ ।। टेर ।।
चन्द सरोधे भजन करूँ मैं, येही सरोधा लाऊँ।
सूर सरोधे व्यवहार करत हूँ, सुषमण घर में नाऊँ ।।१ ।।
मिताहार मैं नित्य करता, प्राण समान मिलाऊँ।
सोहं शब्द धुनतार लगाके, पिच्छम दिशाको धाऊँ ।।२ ।।
काया नगरी अलख जगाकर , अमृत भिक्षा पाऊँ।
अगम अखाडे तापूँ अबधू, आनन्द भस्म चढ़ाऊँ ।।३ ।।
साच कही में पूछी सोई, सतगुरू भेद बताऊँ।
कह 'मङ्गलगिरि' सुनलो अबधू,या विध भजन कमाऊँ ।४।

प्रश्न:- ।। राग :- आशा ।। नं.१५

अबधू कौन ? नगर का वासी।
सतगुरू कौन-जप करता, किसके हो अभिलाषी। टेर।
कैसा नाम

सदा भयभीत रहता है कि यदि मेरे इस बालकका नाम भी कामरूपी हउवेके श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश कर जायगा अथवा आशारूपी डाकिनीकी नजर इसे लग जायगी तो इसकी जान ही निकल जायगी अथवा जैसे अपनी व्यभिचारिणी स्त्रीको जबरदस्त पति सदा अपने अंकुशमें रखता है, वैसे ही जो अपनी प्रवृत्तियोंको अपने अधीन रखता है, जो उस समय भी अपनी इन्द्रियोंको अच्छी तरह निग्रहमें रखता है, जिस समय सजीव देह अत्यन्त कृश हो जाता है और प्राण जानेकी नौबत आ जाती है, जो अपने मनके प्रमुख द्वारपर अथवा वृत्तिके पहरेपर अपने शरीररूपी दुर्गमें शम-दमको निरन्तर पहरेदारोंकी भाँति नियुक्त और जाग्रत् रखता है, जो मूलाधार, मणिपूर या नाभिस्थान और विशुद्ध या कण्ठस्थानके तीन चक्रोंमें वज्र, उड्डीयान और जालन्धर नामक तीनों बन्धोंकी गस्त बैठाकर अपने चित्तको इडा और पिंगला—इन दोनों नाड़ियोंकी सन्धिमें प्रविष्ट करता है, समाधिकी शय्यापर अपने ध्यानको अच्छी तरह सुलाये रखता है और जिसका चित्त चैतन्यके साथ एकाकार होकर सदा उसीमें रमण करता रहता है, उसके बारेमें तुम यह अच्छी तरह जान लो कि उसने अपने अन्तःकरणका पूर्णतया निग्रह कर लिया है। अन्तःकरणका इस प्रकारका निग्रह मानो ज्ञानकी विजय ही है। जिस व्यक्तिकी आज्ञा उसका अन्तःकरण सम्मानपूर्वक शिरोधार्य करता है, उस व्यक्तिको मूर्तिमान् ज्ञान ही जानना चाहिये। (१८४—५११)

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

जिस व्यक्तिके मनमें विषयोंके प्रति पूर्ण विरक्ति बनी रहती है, वही ज्ञानी होता है। जैसे वमन किये हुए अन्नको देखकर किसीकी जिह्वासे लार नहीं टपकती अथवा जैसे किसी मृतकको गले लगानेके लिये कोई उद्यत नहीं होता; विषको जैसे कोई नहीं खाता अथवा जलते हुए घरमें कोई प्रवेश नहीं करता, व्याघ्रकी गुफामें कोई अपना डेरा नहीं डालता, अथवा गले हुए लोहेके खौलते हुए रसमें कोई नहीं कूदता, तथा अजगरको तकिया बनाकर कोई उसपर नहीं सोता, वैसे ही विषयकी चर्चाएँ जिसे

प्रकारकी भिन्नता नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार विश्वको अपनेसे अलग मानना समीचीन नहीं है। तेजका जो अंश तेजसे निकलकर फिर तेजमें ही समा जाता है, उसीका नाम किरण है। बस, ठीक इन्हीं किरणोंकी ही भाँति आत्मरूप भी है। अहं मुझमें ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार सूक्ष्म कण पृथ्वीमें अथवा हिमकण हिमालयमें होते हैं। तरंग चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, पर वह सागरसे कभी भिन्न नहीं होती। ठीक इसी प्रकार 'मैं' भी ईश्वरसे भिन्न नहीं है। इस प्रकारकी एकताकी भावनासे दृष्टिकी जो आनन्दपूर्ण वृत्ति होती है, मेरी दृष्टिमें उसीका नाम भक्ति है। समस्त ज्ञानका सार और योगका सर्वस्व यही प्रफुल्लित दृष्टि है। जैसे समुद्र और मेघोंके मध्यमें अखण्ड धाराओंकी वृष्टि होनेके कारण वे दोनों एक दिखायी देते हैं, वैसे ही यह उल्लासपूर्ण वृत्ति भी होती है। कुएँके ऊर्ध्वभाग और आकाशमें कोई जोड़ नहीं लगा रहता, पर फिर भी वे दोनों एक रहते हैं। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति भी बिना किसी जोड़के उस परम पुरुषके साथ एक रहता है। जैसे प्रतिबिम्बसे लेकर बिम्बपर्यन्त प्रभा फैली हुई रहती है, वैसे ही यह सोऽहंवृत्ति भी जीवात्मासे लेकर परमात्मापर्यन्त पहुँची हुई होती

है। जब इस प्रकारकी सोऽहंवृत्ति एक बार बन जाती है, तब व्यक्ति उस वृत्तिके साथ स्वतः परमात्मतत्त्वमें समा जाता है। जैसे लवण-कण जब एक बार सिन्धुमें मिलकर गल जाता है, तब फिर उसका गलना बन्द हो जाता है अथवा हे पार्थ! जैसे तृणको भस्म कर चुकनेके बाद स्वयं अग्नि भी बुझ जाती है, वैसे ही जब एक बार ज्ञानके द्वारा भेद-बुद्धि नष्ट हो जाती है, तब फिर वह ज्ञान भी अवशिष्ट नहीं रह जाता। उस समय यह कल्पना भी समाप्त हो जाती है कि 'मैं' परे अथवा उस पारका है और यह भावना भी समाप्त हो जाती है कि भक्त इधर अथवा इस पारका है और उन दोनोंकी जो मौलिक शाश्वत् एकता है, एकमात्र वही शेष रह जाती है। हे किरीटी! जब इस प्रकार ब्रह्मैक्यका आलिंगन हो जाता है, तब फिर गुणोंपर विजय हासिल करनेकी कोई बात ही नहीं रह जाती। हे मर्मज्ञ अर्जुन! इसी स्थितिका नाम ब्रह्मत्व है और यही ब्रह्मत्व मेरे भक्तोंको मिलता है। मैं तुमसे एक बार और कहता हूँ कि इस संसारमें मेरा जो इस प्रकारका भक्त होगा, यह ब्राह्मी अवस्था उसकी सेवा एक पतिपरायणा स्त्रीकी भाँति करेगी। जैसे नदियोंके जल-प्रवाहके लिये समुद्रके सिवा अन्य कोई उपयुक्त स्थान नहीं होता, वैसे ही जो मेरी सेवा ज्ञानपूर्ण दृष्टिसे करता है, वह बिना ब्रह्मत्ववाली दशाको सुशोभित किये नहीं रह सकता। इसी ब्रह्मत्वको सायुज्य-नामसे पुकारते हैं और इसीको मोक्ष-नामका चौथा पुरुषार्थ भी कहते हैं। यह ठीक है कि मेरी सेवा ही ब्रह्मत्व प्राप्तिका साधन है, पर इतनेसे ही तुम यह न

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥ १४॥

इसीलिये समस्त जीवोंके देहमें नाभिकन्दपर अँगीठी सुलगाकर उनके जठरमें मैं ही अग्निरूपमें निवास करता हूँ तथा प्राण एवं अपानवायुकी धौकनी अहर्निश चलाकर जीवोंके जठरोंमें मैं जितने पदार्थ पचाता हूँ, उनकी कोई गणना ही नहीं है। शुष्क, स्निग्ध, सुपाच्य और भूने हुए—चारों तरहके अन्न मैं पचाता हूँ। कहनेका भाव यह है कि जितने जीव हैं, वे सब-के-सब मैं ही हूँ तथा इन्हें जो जीवन मिला हुआ है, वह

भी मैं ही हूँ और उस जीवनको गतिशील बनानेवाली जठराग्नि भी मैं ही हूँ। अब ऐसी स्थितिमें मैं अपनी व्यापकताका चमत्कार तुम्हें कहाँतक बतलाऊँ! वास्तविकता यह है कि इस जगत्‌में मेरे अलावा और दूसरी कोई चीज है ही नहीं, एकमात्र मैं ही सर्वत्र विद्यमान हूँ। सम्भव है, तुम्हारे अन्तःकरणमें यह प्रश्न उठ खड़ा हो कि यदि यही बात है, तो फिर क्या कारण है कि कुछ जीव तो सदा सुखी रहते हैं, और कुछ दुःखके सागरमें ही गोता लगाते रहते हैं? यदि पूरे नगरमें एक ही दीपकका प्रकाश है तो फिर कुछ जगहोंमें घोर अन्धकार तथा कालिमा क्यों दृष्टिगोचर होती है? अतएव अब मैं तुम्हारे इस प्रश्नका भी समाधान कर देता हूँ। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो सर्वत्र एकमात्र मैं ही हूँ और इस संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मुझसे अलग हो। किन्तु मैं प्राणियोंको उनकी बुद्धिके अनुसार ही भासता हूँ। आकाश ध्वनि नामक गुण एकरूप ही है, पर वाद्योंके भेदानुसार स्वतः भिन्न-भिन्न प्रकारके नाद होते हैं। लोगोंके व्यवहारोंसे एकदम अलिप्त तथा पृथक् रहनेवाला सूर्य उदित होता है और वह सबसे एकदम दूर रहता है, पर फिर भी वह लोक-व्यवहारको संचालित करनेमें उपयोगी सिद्ध होता है। बीजोंके धर्मानुसार ही जल किसी वृक्षके रूपमें रूपान्तरित होता है। ठीक इसी प्रकार मेरा स्वरूप भी जीवके रूपमें परिणत होता है। एक व्यक्ति जड़-बुद्धिका है और दूसरा बुद्धिमान्। दोनोंके समक्ष दो लड़ीवाला हार रखा है। जड-बुद्धिवाले व्यक्तिको तो वह हार सर्प जान पड़ता है तथा उसको भयग्रस्त करनेका कारण होता है; परन्तु बुद्धिमान्‌की समझमें उसका वास्तविक स्वरूप आ जाता है और वह हार उसके लिये आनन्द देनेवाला होता है। जैसे स्वाती नक्षत्रका जल सीपीकी कुक्षिमें पहुँचकर मोतीका रूप धारण करता है, परन्तु सर्पके मुखमें पहुँचकर वही जल विष बन जाता है, ठीक वैसे ही मैं ज्ञानियोंके लिये सुखरूप हो जाता हूँ तथा अज्ञानियोंके लिये दुःखरूप बन जाता हूँ। (४०७—४२०)

नाद आकाश तत्वका गुण है। यह दो प्रकारका होता है। एक आघात-जन्य दूसरा बिन आघातके। हृदय चैतन्यका स्थान है। इसीमें शुद्ध-आकाशका एक स्थान है। वहां सदैव बिना आघातके ही नाद गूंजता रहता है। किंतु बाह्य-विषयोंमें फंसा हुवा मनुष्य उसको नहीं सुन सकता। योगी लोग इंद्रियोंको अंतर्मुख करके वह नाद सुननेका अभ्यास करते हैं। कुंडलिनी शक्ति जगने पर ही यह ध्वनि आने लगती है।

कुंडलिनी शक्ति हृदय कमलके पास-अनाहत चक्रके पास-आनेपर, दस प्रकारसे यह अनाहत ध्वनि सुनाई देती है। चिणी, चिणचिणी, घंटा, शंख, तंत्री, ताल, वेणु, मृदंग, भेरी, और मेघ ध्वनि। इसके बाद, आज्ञाचक्रके पास जाने पर वही सोऽहम् शब्द, ओंकार नादमें परिवर्तित होता है।

नाद अथवा ध्वनि अव्यक्त परतत्वके व्यक्तिकरणकी सूचना है। परा-वाणीमें सूक्ष्म रूपसे निहित यही शब्द अपरावाणीमें आकर सदैव हृदयमें गूंजने लगता है। इसका रूप ॐ है। यही ब्रह्मांडका मूलतत्त्व है। यह नाद अनाहत रूपसे व्यक्तिके हृदयाकाश तथा विश्वाकाशमें एकरूपसे गूंजता रहता है। इस गूंजनकी एकताका अनुभव ही सोऽहं भाव है। सदैव इस सोऽहं भावमें डूबा रहना ही अद्वैतस्थिति अथवा ब्राह्मी-स्थिति है जो सब प्रकारकी साधनाओंकी परम-सिद्धि है।

अपान—मनुष्यमें पांच प्रकारके प्राण होते हैं। इन्हें पंच-प्राण कहा जाता है। (१) प्राण (२) अपान (३) व्यान (४) उदान (५) समान ये उनके नाम हैं। शरीरमें उनका भिन्न भिन्न स्थान और काम है। हठयोगमें इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। अपान वायू अधोमुखी होता है। मलमूत्रादि बाहर ढकेलना इसका सामान्य काम है। उपनिषदोंमें इसका स्थान नाभी कहा गया है। अन्नादिके निस्सार भागको नाभीके नीचे ढकेलना, मूत्र शुक्रादिको बहाना इसका कार्य है। किंतु योगी, योग विद्यासे इसको ऊर्ध्वमुख करके अपनी सुप्त शक्तिको जगाते हैं। अपानको ऊर्ध्वमुख करके प्राण और अपानको मिलानेसे मनुष्योंमें नयी शक्ति जगती है।

अमृत—जिसको पीनेसे मृत्यु नहीं होती वह अमृत। इसको पीयूष, सुधा आदि भी कहा गया है। समुद्र मंथनसे अमृतकी प्राप्ति हुई। यद्यपि देव और दानव दोनोंने समुद्र मंथन किया था अंतमें देवोंको ही अमृत मिला। दैत्योंको नहीं मिला। यह पौराणिक कथा है। किंतु वैदिक "ऋषिकी प्रतिभा=अमृत" रहस्य जाननेके लिये स्वर्ग-मृत्यु पातालका अतिक्रमण करती है। उपनिषद "मृत्योर्मामृतं गमय" कहते हैं। उपनिषद अमृत न कहकर अमृतत्व कहते हैं। वह है जन्म मरणका अतिक्रमण करके पानेवाली स्थिति। जिसे पीनेसे मरण ही नहीं तब भला पुनर्जन्म कैसे? अर्थात् ज्ञानेश्वर या ज्ञानेश्वरीका अमृत या अमृतत्व जन्म-मरण रहित मुक्तावस्था है।

अरणी—दो लकडीके टुकडोंके घर्षणसे यज्ञाग्निका निर्माण किया जाता है। इसके लिये पीपलकी लकडी काममें लायी जाती है। इन लकडीके दो टुकडोंमेंसे जो नीचेका टुकडा रहता है उसे अधरारणी कहते हैं तो ऊपरके टुकडेको उत्तरारणी कहते हैं। अधरारणीमें खांच करके जो लकडीका टुकडा बिठाते हैं उसको मंथा कहते हैं। ऋग्वेदमें इस प्रकारके अग्निस्फोटका वर्णन आता है।

अर्धमात्रा—ॐकारकी साडेतीन मात्राओंमें अर्धमात्रा। योग-शास्त्रमें परा ब्रह्मांडमें मूर्धन्याकाशका भाग। आज्ञाचक्र, जो भृकुटीमध्यमें होता है और सहस्रार ब्रह्मरंध्र सहस्रदल-तालूमें होता है, इसकी मध्यसंधि है। ज्ञानेश्वरीके छठे अध्यायमें इसका विस्तृत विवेचन है।

है। अपने आपको जानना ज्ञान है। "मैं" यह शरीर है क्या? तो हम मेरा शरीर स्वस्थ है कहते हैं। तब शरीरसे भिन्न यह मैं कौन? मन है क्या? नहीं; आज मेरा मन प्रसन्न है कहता है मनुष्य! मेरा मन कहनेवाला मैं कौन? वैसे ही "मेरी बुद्धि" और "मेरी भावना" कहनेवाला मैं कौन? मनुष्य जब सोता है तब उसे इस "मैं" का भान नहीं होता किंतु उठते ही कहता है "मैं" सो गया था! सो जानेवाला मैं कौन? कौन? और क्या? प्रश्न पूछते पूछते हम ऐसी एक स्थितिमें पहुंच जाते हैं "जहां कुछ भी (उत्तर) नहीं है। जहां कुछ भी नहीं वहीं स्थिर रह कर देखनेसे वहां जो कुछ "है" का बोध होगा वही आत्मबोध है। "कुछ भी नहीं है" "मैं" "है" पाना ही आत्मबोध है! आत्मबोध मौन होता है। वह मौन अनुभव है। जैसे "मरा हुवा मनुष्य मैं मरा" नहीं कह सकता वैसे आत्मबोध पाया हुवा मनुष्य आत्मबोध क्या है यह नहीं कह सकता। पानीमें घुला हुवा नमक अपना रूप खोकर केवल "खारा पन" से रहता है वैसे है आत्म-बोध। केवल अनुभव गम्य!

आत्मा—सतत सर्वव्यापी गतिशील, अर्थात् जो सर्वव्यापी है, सर्वग्राही है, सदैव जिसका अस्तित्व रहता है उसे आत्मा कहते हैं। यह आत्मा शब्दका शब्दार्थ है। वैसे अन्यान्य दार्शनिकोंने इसका भिन्न भिन्न अर्थ किया है। ऋग्वेदमें "मर्त्य शरीरसे अमर्त्य संलग्न" इस प्रकार इसका वर्णन किया गया है। वायुके अर्थमें भी इसका उल्लेख है। यह "अहम्" का बोधक भी रहा है। किंतु उपनिषदोंमें इसका अर्थ बदला है। सर्व प्रथम उपनिषदोंमें फिर जागतिक दार्शनिक ग्रंथोंमें आत्माकी कल्पना विकसित हुई है। मनुष्यने अपनी जीवन शक्तिको "मैं" कहते हुए उस "मैं" को आत्मा माना। अर्थात् आत्माका अर्थ है मैं। अहं ब्रह्मास्मि, अथवा सोऽहं शिवोऽहम्! "मैं ही विश्व शक्ति हूँ!" अथवा "विश्व शक्ति मैं है!" यह दर्शानेवाले महावाक्य हैं। इस एकात्म-भावका बीज वेदमें भी देखनेको मिलता है। "विश्व-शक्ति ही आत्मा है और मनुष्य विश्व-शक्तिका रूप है" यह उपनिषदोंका अंतिम निर्णय है। उपनिषद मानव मात्रको कहते हैं तत्=वह विश्व शक्ति त्वम् असि=तू है। और "सोऽहमस्मि" "वह मैं हूं" उपनिषद् गानेवालोंका अनुभव है। इसीलिये वह "पूर्ण है वह पूर्ण है यह" कहते हैं। यह अनुभव मनुष्यको निर्भय बनाता है। द्वंद्वातीत बनाता है। सदैव आनंद विभोर रखता है। "विश्वमें मेरे बिना कुछ भी नहीं। यह सारा केवल मैं हूं" ऐसे अनुभव आनेके बाद किसका भय? किसका द्वेष? किससे प्रेम या काम? अपनेमें इस विश्व शक्तिका अनुभव करना आत्म-दर्शन है तो विश्वमें अपनेको देखना विश्वरूप दर्शन है। उपनिषद, गीता, ज्ञानेश्वरी इसीको कहते हैं। अपनेको विश्वमें विलीन करके संपूर्ण विश्व स्वयं बन जाना आध्यात्मिक जीवनका अंतिम साध्य है! उपनिषदादि ग्रंथ इसका साधन भी सिखाते हैं और साध्यकी ओर इंगित भी कहते हैं।

आत्मानंद-आत्मसुख—सारे विश्वमें जो एक शक्ति अखंड रूपसे व्याप्त है वही शक्ति मनुष्यमें भी विद्यमान है। उस शक्तिको आत्मा कहते हैं। इसी शक्तिको मनुष्य "मैं" कहता है। यह "मैं" ही आत्मा है। यह मैं विश्वाकार है। वही विश्वका भी संचालन करता है। इस विश्व संचालक शक्तिको परमात्मा अथवा ब्रह्म कहा है। जब मनुष्य अपना सीमित मैं भूलकर विश्व-संचालक शक्ति ही मैं हूं अथवा—विश्व-शक्ति और मैं एक हूं" यह अनुभव करने लगता है तब

20:19
2015.480063.Gyaneshware...

कुंडलिनीका वास यहीं होता है। योग, भक्ति, ज्ञानादि साधनासे यह सुप्त कुंडलिनी शक्ति जागृत होती है। हठयोगमें सिद्धासनसे इसपर दबाव लाकर--मूलबंध-क्रियासे-आधार मुद्रा देखें-इस सुप्त-शक्तिको जागृत करनेका विधान है। इस आधारचक्र अथवा आधारकमलकी चार पंखुडियां होतीं हैं। यह आधारकमल लाल रंगका होता है। इस कमलकी-पंखुडियों पर वं. शं. षं. सं. ये बीज होते हैं। प्रत्येक मंत्र तथा देवताका बीज-मंत्र होता हैं । इस बीजमें देवता शक्ति है। अन्यान्य मंत्रोंके साथ इन बीजोंको जोडनेसे शरीरस्थित उन उन देवताओंसे संबंध जुडकर विश्वकी उसी देवतासे साधक समरस हो जाता है। भिन्न भिन्न बीजसे जुडी देवता शरीरके भिन्न भिन्न स्थान पर स्थित है। इसीलिये उस स्थानको बीजके नामसे जाना जाता है।

आधारमुद्रा——हठयोगकी प्रणालीमें कई प्रकारके बंध हैं। इनको मुद्रा भी कहा गया है। अन्यत्र षट्चक्रोंका विवेचन किया गया है। इन चक्रोंको जागृत तथा कार्यक्षम बनानेके लिये हठयोगमें अन्यान्य क्रियायें हैं। उन क्रियाओंमें यह बंध अथवा मुद्राएँ हैं। इस आधारमुद्राका दूसरा नाम मूलबंध है। मूलबंध एक प्रकारका प्राणायाम है। मूलबंधका अर्थ गुदद्वारसे अपानको अंदर खींचना। मूलबंध क्रिया करते समय सिद्धासन-वज्रासन सबसे अच्छा है। प्राणायाम करते समय जब नाकसे अंदर श्वास लिया जाता है उसी समय गुदद्वारसे अपानको भी अंदर खींचा जाता है। ऐसे करनेसे प्राण और अपानके दबावमें कुंडलिनी जागृत होती है। प्राण और अपानका मिलन भी होता है। जिससे अपानसिद्धि होती है। अपानसिद्धि इंद्रिय-जयमें महत्त्व-पूर्ण कार्य करती है। हठयोगमें बंधत्रय मूलबंध, उड्डियानबंध तथा जलंधरबंध अत्यंत महत्त्वके माने गये हैं। शरीर निरोग रखनेके लिये बंधसह प्राणायाम महान् वरदान माना गया है।

आनंदत्रय——ब्रह्मानंद। वासनानंद। विषयानंद।

आसन——योगाभ्यासके लिये सहज स्थिरतापूर्वक बैठनेकी प्रक्रिया। मनकी एकाग्रताके लिये आसनका अत्यंत उपयोग होता है। हठयोग और राजयोग दोनों योगमें आसनका महत्व कहा गया है। योग-सूत्रमें जिससे स्थिर रहकर मनको सुख मिलता है, अधिकसे अधिक समय बैठनेकी इच्छा होती है उसको आसन कहा गया है। किसी भी महान् कार्यके लिये, साधन अथवा योगाभ्यासके समय पृथ्वीकी प्रार्थना करके बैठनेकी क्रियाको आसनविधि कहा गया है। कहीं कहीं भिन्न भिन्न प्रकारके कार्यके भिन्न भिन्न प्रकारसे बैठनेकी भी विधि है। ज्ञानेश्वरीके छटे अध्यायमें आध्यात्मिक साधनामें बैठनेकी आसनविधिका विस्तृत विवेचन देख सकते हैं

आहार——यह सभी जानते हैं कि आहरका अर्थ है खाना। आहारका शब्दार्थ अंदर लेना है। संभवतः इसी परसे जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीने आहारका अर्थ करते समय "किसी भी इंद्रियकी ओरसे किया जानेवाला विषयसेवन" ऐसे किया है। देखना आंखोंकी भूख है और सुनना कानोंकी भूख जैसे चखना जिव्हाकी भूख है! अर्थात् प्रत्येक इंद्रियकी ओरसे अपनी अपनी भूख मिटानेके लिये "अपना विषय सेवन" करना भी आहार है। इस गहरे अर्थको ग्रहण करके ही गीताके "युक्ताहारविहार" का भाव ग्रहण करना चाहिए।

आवाहन-विसर्जन——आवाहन पूजाके लिये किसी देवताको बुलाना। देवतागमनके लिये जो प्रार्थना की जाती है उसे आवाहन कहते हैं, और पूजाके बाद देवताको लौटाया जाता है

माध्वमतके अनुसार भक्ति ही मुक्तिका साधन है। केवल परमात्मकृपासे ही मुक्ति मिलती है। यह मुक्ति चार प्रकारकी है। सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य। माध्वोंमें मुक्तिको भी जीवका भोग माना है। मुक्तजीव संसारमें नहीं आते। ब्रह्मादि भी मुक्त हो जाते हैं और तब उनको सृष्टी आदिका व्यापार नहीं रहता।

वेदांतियोंकी मोक्षावस्थामें सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, ऐसी चार अवस्थायें हैं। जिस समय मनुष्य अपना मानवी रूप भूलकर उपास्य देवता रूप हो जाता है तब सारूप्यावस्था कहलाती है। वैसे ही वह अपने आपको मैं ईश्वरीय लोकमें हूँ ऐसे अनुभव करने लगता है तब सालोक्यावस्था कहलाती है। और वह अपनेको ईश्वरके समीप मानने लगता है तब सामीप्यावस्था कहलाती है तथा जब वह अपनेको ईश्वरमें लीन मानता है तब सायुज्यावस्था कहलाती है।

मुद्रा——योगविद्यामें कमरके ऊपरके भागको विशिष्ट स्थितिमें रखनेकी क्रियाको मुद्रा कहा गया है। प्राणायाममें उत्तम सिद्धि प्राप्त करनेमें इन मुद्राओंकी आवश्यकता कही गयी है। साथ साथ धार्मिक विधि विधानोंके समय अवयवोंका विशिष्ट आकारमें रखना भी मुद्रा कहलाता है। मुद्रा शब्द मुद् आनंदित करना इस धातुसे बना है। ऐसा माना जाता है कि ये मुद्राएँ १०८ हैं किंतु ये सब प्रचलित नहीं है। योग-संहिताओंमें सिंहमुद्रा, ब्रह्ममुद्रा, शांभवी मुद्रा, योगमुद्रा, काकीमुद्रा, महामुद्रा, षण्मुखीमुद्रा, अश्विनीमुद्रा, शक्तिचालन, खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी आदि मुद्राएं प्रचलित हैं। योग-साधनामें इनका बडा महत्व कहा गया है।

मूलबंध——अपानवायूको ऊर्ध्वमुख करके प्राण वायूके साथ मिलाना इसका उद्देश्य है। सिद्धासनमें बैठ करके बाईं पैरकी एडीसे सीवन दबाते हुए गुदद्वारका संकोच करके जहां तक हो सके गुदद्वारको ऊपर खींचना चाहिए जैसे घोडा मलोत्सर्गके बाद ऊपर खींचता है। इससे प्राण अपानका संयोग होकरके सुषुम्नामें प्राणकी गति तीव्र होनेमें बडी सहायता मिलती है। प्राणापानके संयोगसे नाभीके नीचे जो त्रिकोणाकृति-वैश्वानर अग्निमंडळ-अग्निस्थान है वहां अपानका प्रवेश होता है। तथा जठराग्नि प्रदीप्त होता है। साथ ही साथ इस अग्निके प्रदीप्त होनेसे, प्राणापानके साथ वैश्वानरके सुषुम्नामें प्रवेश होता है जिससे सुप्त कुंडलिनी जागृत होती है।

प्राणापानका संयोग, अग्निस्थानका उद्दीपन, मलमूत्रका क्षय, सुप्तकुंडलिनीकी जागृति, अपानसिद्धि ये इस बंधके उद्देश्य हैं।

मेरुपर्वत——पुराणोंमें स्थान स्थान पर मेरु पर्वतका उल्लेख आता है। यह स्वर्ग मृत्यू पाताल इन तीनों लोगोंका आधार है। यह विश्वके मध्यभागमें होनेका भी उल्लेख है। इसको स्वर्ण-पर्वत भी कहा गया है। इस पर्वतके अंतिम शिखरको स्वस्तिक कहा गया है।

योग——अलग अलग लोगोंने अथवा व्यक्तियोंने इस शब्दका अलग अलग अर्थ किया है। जैसे गीतामें-योगको " कर्म कुशलता " कहा है। " आत्म-बुद्धिसे साम्य-दर्शनको योग " कहा है। पतंजलने " चित्तवृत्तिके निरोधको ही योग " कहा है तो योग शब्दका धात्वर्थ " जुडना " है। किंतु साधनाकी दृष्टिसे साधक अपनी अन्यान्यशक्तियोंके सहारे आत्मदर्शन कर सकता है और इन भिन्न भिन्न पद्धतियोंके कारण अनेक प्रकारके अलग अलग योग कहलाते हैं। जैसे (१) प्राण-शक्तिके निरोध द्वारा शरीर और प्राण शुद्ध करके तद्द्वारा आत्मसाक्षात्कार करना हठयोग अथवा प्राणयोग कहलाता हैं। (२) क्रिया शक्ति-द्वारा निष्काम कर्मकरके आत्मानुभूति करना कर्मयोग

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥ २६॥

धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम, यही कोई अग्निहोत्र करनेवाले कित्येक मूलबंधादिक तीन बंधरूप मंत्रद्वारा, इन्द्रियरूपी पवित्र द्रव्यसे यज्ञ करते हैं। दूसरे कित्येक वैराग्यरूप सूर्यके उदय होनेके साथ संयमरूप कुण्डकी अर्थात् यज्ञवेदीकी रचना करते हैं फिर उस कुण्डमें इन्द्रियरूप अग्नि प्रकट होता है। जिस समय वैराग्यरूपी ज्वाला प्रज्वलित हो जाती है, उस समय उसमें विकाररूपी ईंधन जलने लगते हैं और अन्त:करण पंचकरूपी पंच-कुण्डोंको छोड़कर आशारूपी धूम्र बाहर निकल जाता है, जिससे वे कुण्ड स्वच्छ हो जाते हैं। तब इस प्रकारके लोग '**अहं ब्रह्मास्मि**' को उच्चारण करते हुए अन्त:करणके कुण्डमें इन्द्रियरूपी अग्निके मुखमें विषयोंकी आहुति देते हैं। (१२७—१३०)

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥ २७॥

हे पार्थ! कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इसी प्रकार संयमका अग्निहोत्र करके पापोंसे सर्वथा शुद्ध हो गये हैं अर्थात् इस प्रकार कई एक अपने सब दोषोंका प्रक्षालन करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हृदयरूपी अरणीका घर्षण कर अग्नि उत्पन्न करनेके लिये विवेकको मथानी बनाते हैं। वे मथानीको शांतिसे सुदृढ़ पकड़ लेते हैं और ऊपरसे सात्त्विक धैर्यके साथ मजबूतीसे पकड़कर गुरु-उपदेशरूपी डोरीसे जोरसे मंथन करते हैं। इस प्रकार अनवरत भलीभाँति मंथन करते रहनेपर तत्काल ही उसका फल भी प्राप्त हो जाता है; क्योंकि ज्ञानाग्नि प्रकट हो जाती है। पर इस ज्ञानरूपी अग्निके प्रज्वलित होनेसे पूर्व जो थोड़ा-सा धुआँ निकलता है, वही ऋद्धि-सिद्धियोंका मोह है। यह धुआँ जब अति शीघ्र ही निकल जाता है, तब पहले ज्ञानरूपी अग्निकी अत्यन्त सूक्ष्म चिनगारी उत्पन्न होती है। यम, दम इत्यादिसे सुखाये जानेके कारण जो मन पहलेसे ही हलका हुआ है, वही मन इस चिनगारीके

लिये ईंधनका काम देता है अर्थात् ज्ञानरूप चिनगारीको प्रज्वलित करता है। जब इससे तीव्र ज्वाला उत्पन्न होती है, तब भिन्न-भिन्न वासनाएँ ईंधनके रूपमें ममतारूपी घीके साथ भस्मीभूत हो जाती हैं। उस समय दीक्षित व्यक्ति 'सोऽहम्' मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रज्वलित ज्ञानरूपी अग्निमें इन्द्रियोंके कर्मोंकी आहुति देते हैं।

तदनन्तर, प्राण-कर्मरूपी स्रुवा नामक दर्भपात्रसे उस अग्निमें पूर्णाहुति दी जाती है और तब अन्तमें ब्रह्म-तादात्म्यकी एकरूप अवस्थामें अवभृथ-स्नान होता है। इसके बाद वे यज्ञकर्ता संयम-अग्निमें इन्द्रिय-आदि होमद्रव्यसे हवन करके इस संयमरूपी यज्ञका बचा हुआ हविर्भाग, जो आत्मज्ञानका आनन्द है, पुरोडाशके रूपमें ग्रहण करते हैं। अनेक लोग इस प्रकारका यज्ञ विधान करके तीनों लोकोंसे मुक्त हो गये हैं। अबतक मैंने जो यज्ञ-विधान बतलाये हैं, वे देखनेमें भले ही पृथक्-पृथक् जान पड़ें, पर उन सबका साध्य एक ही है और वह साध्य ब्रह्मके साथ समरसता प्राप्त करना ही है। (१३१—१४०)

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥ २८॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवो:।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥ २७॥

33 जो वैराग्यकी शक्तिसे सारे विषयोंको निकाल फेंकते हैं और अपने शरीरमें मनके वृत्तिको एकाग्र कर लेते हैं, वे अपनी दृष्टिको उलटकर उस सन्धि-स्थानपर लगा लेते हैं, जहाँ दोनों भौंहें मिलती हैं और तब दायें और बायें घ्राणेन्द्रियके दोनों छिद्र बन्द करके प्राणवायु और अपानवायुको एकमें मिला लेते हैं तथा उन्हें अपने चित्तके साथ चिदाकाशकी ओर ले जाते हैं। (१५१—१५३)

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥ २८॥

जिस प्रकार गंगा नदी रास्तेमें पड़नेवाले नदी-नालोंसमेत समुद्रमें मिलती है, ठीक उसी प्रकार वे लोग भी परब्रह्मके साथ इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि फिर उन्हें पृथक् करनेका सवाल ही नहीं उठता। हे अर्जुन! जब समाधिकी अवस्थामें प्राण और अपानवायुसे चिदाकाशमें मनका लय हो जाता है, तब सारी वासनाओंके विचार स्वतः ही बन्द हो जाते हैं। जिस मनरूपी वस्त्रपर यह संसाररूपी चित्र चित्रित होता है वह इस अवस्थामें विदीर्ण हो जाता है। जैसे सरोवरके सूख जानेपर उसमें पड़नेवाली प्रतिच्छाया स्वतः नष्ट हो जाती है, वैसे ही इस समाधिकी अवस्थामें मनका भी बिलकुल सफाया हो जानेपर अहंभाव आदि वृत्तियोंका फिर भला कहाँ ठिकाना! इसीलिये जिन लोगोंको इस ब्रह्मसुखका अनुभव प्राप्त हो जाता है, वे लोग देहके होते हुए भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं। (१५४-१५७)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ २९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

मैं अभी यह बतला चुका हूँ कि जो लोग शरीरके रहते हुए भी ब्रह्मत्व-

हे पार्थ! अपने चित्तमें यही भाव रखकर मैंने पहले तुम्हें यह बतलाया है कि कर्मोंसे ही समस्त यज्ञ उत्पन्न होते हैं। सारे जीवोंके विश्रान्तिका यह निष्काम ब्रह्म-सुखका गुप्त भाण्डार मैंने आज तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया है। सर्वप्रथम वैराग्यरूपी ईंधन लगाकर इन्द्रियरूपी अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये और तब उसी प्रज्वलित अग्निमें शब्दादि विषयरूपी द्रव्योंका हवन करना चाहिये। फिर वज्रासनरूपी पृथ्वीका शोधन करके इस शरीररूपी मण्डपमें मूलबन्धकी मुद्रारूपी यज्ञवेदी बनानी चाहिये। इस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हो जानेपर इन्द्रिय-निग्रहरूपी अग्निकुण्डमें योगरूपी मन्त्रका घोष करते हुए यथोचित अनुपातमें इन्द्रियरूपी द्रव्योंको समर्पित करना चाहिये,

फिर मन और प्राणवायुके निग्रहको ही इस यज्ञ-विधानका शुभारम्भ मानकर निर्मल ज्ञानरूपी अग्निको सन्तुष्ट करना चाहिये। जिस समय इस प्रकार ज्ञानाग्निमें सर्वस्व समर्पित कर दिया जाता है, उस समय वह ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञेय वस्तुओंमें विलीन हो जाता है और तब केवल ज्ञेयवाले स्वरूपमें ही सर्वत्र अवशिष्ट रह जाता है। इस ज्ञेयको ही अधियज्ञ नामसे पुकारते हैं।" इस प्रकार सर्वज्ञ श्रीकृष्णने जो-जो बातें अर्जुनको बतलायीं, वे सब-की-सब बातें शीघ्र ही बुद्धिमान् अर्जुनके समझमें आ गयीं। यह जानकर देवने कहा—"हे पार्थ! तुम ठीक तरहसे मेरी बातें सुन रहे हो न?" श्रीकृष्णके इन शब्दोंको सुनकर अर्जुनने स्वयंको कृतकृत्य माना। बालककी सन्तुष्टि देखकर माता भी सन्तुष्ट होती है और शिष्यका समाधान देखकर गुरुका भी समाधान होता है; और इस चीजका ठीक-ठीक अनुभव उस माता अथवा उस गुरुको ही हो सकता है; किसी अन्यको नहीं। यही कारण है कि अर्जुनके शरीरमें सात्त्विक भावोंकी लहर उठनेसे पहले ही श्रीकृष्णके शरीरमें सात्त्विक भावोंकी इतनी प्रबल लहर उठी कि वह रोके नहीं रुकती थी। परन्तु फिर भी देवने जान-बूझकर उसका निग्रह किया और फिर उन्होंने पूर्णताको प्राप्त परिमलके सदृश अथवा अमृतकी शीतल तरंगोंकी तरह कोमल और सरस वचन कहना आरम्भ किया। भगवान्ने कहा—"हे श्रोता-शिरोमणि, तात धनंजय! सुनो। जिस समय एक बार माया इस प्रकार जलने लगती है, उस समय उसे जलानेवाला ज्ञान भी जलकर भस्म हो जाता है। (३०—५८)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ५॥

जिसे लोग अधियज्ञके नामसे पुकारते हैं और जिसका निरूपण मैंने अभी तुमसे किया है, उस अधियज्ञके विषयमें जो लोग यह जानते हैं कि वह आदिसे अन्ततक मैं ही हूँ, वे अपने देहको उसी मठके सदृश समझते हैं जो आकाशको अपने अन्दर भी समेटे रहता है और स्वयं भी बाहरके उसी आकाशमें रहता है। बस, इसी प्रकार वे लोग ब्रह्मरूप

पहुँच नहीं सकता अथवा जैसे तेजमें अन्धकार प्रविष्ट नहीं हो सकता, जो पूर्णरूपसे निर्मल किये हुए सूर्य-रश्मियोंका पुंज है, जो ज्ञानिजनोंके लिये नित्य उदित होनेवाले सूर्यके सदृश है और जिसके लिये लक्षणसे भी अस्तमान शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता, (८६—९०)

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ १०॥

उस परिपूर्ण ब्रह्मको जो मृत्युके समय शान्तचित्तसे ज्ञानपूर्वक स्मरण करता है, जो इस बाह्यशरीरसे पद्मासन लगाकर उत्तराभिमुख बैठता है, जो कर्मयोगका शाश्वत सुख पूरी तरहसे स्वयंमें भरकर भीतर-ही-भीतर एकत्रित मनकी शक्तिसे और ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्तिके प्रेमसे अतिशीघ्र आत्मस्वरूप पानेके लिये सिद्ध किये हुए योगके सहयोगसे, सुषुम्नाके बीच-वाले मार्गसे, जब अग्निचक्रसे ब्रह्मरन्ध्रकी ओर जाने लगता है और जब प्राणवायु महदाकाशमें संचरण करने लगता है, तब शरीरादिका और चित्तका संयोग जिसे अत्यन्त तुच्छ और ऊपरी दृष्टिगत होता है,पर जो मनकी शान्तिसे सँभला रहता है, भक्तिकी भावनासे परिपूर्ण रहता है और योगबलसे भलीभाँति सिद्ध हुआ रहता है, वही जड़ (अचेतन) और अजड़का (चेतन) लय करता है और भौंहोंके बीचमें घूमता रहता है। जैसे घण्टा-नादका लय घण्टेमें ही हो जाता है अथवा जैसे घटके नीचे दबाकर रखे हुए दीपकके विषयमें किसीको यह मालूम ही नहीं पड़ता कि वह कब बुझ गया, वैसे ही हे पाण्डव! जो इस प्रकारकी शान्त अवस्थामें यह देह त्याग देता है, वही पूर्ण परब्रह्म होता है। परम पुरुष नामका जो मेरा स्वयंसिद्ध तेजस्वरूप है, ठीक वही स्वरूप होकर वह रहता है। (९१—९९)

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ ११॥

जो सर्वोत्तम ज्ञान सब प्रकारके ज्ञानोंका अन्त और चरम सीमा है, उसी सर्वोत्तम ज्ञानकी खान ज्ञानिजनोंकी बुद्धिने जिसे 'अक्षर' नामसे पुकारा है और जो प्रचण्ड वायु-वेगसे भी कभी उड़ नहीं सकता, वही वास्तविक

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥ १२॥

परन्तु यह बात तभी होगी, जब इन्द्रियरूपी दरवाजोंको संयम ठीक तरह

बन्द कर देगा। उस स्थितिमें मन सहजमें ही भीतर-ही-भीतर दबकर जम जायगा और वह दबाया हुआ मन हृदयमें ही स्थित रहेगा। जैसे लूला-लँगड़ा व्यक्ति अपना घर छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं जाता, ठीक वैसे ही हे पाण्डव! जब चित्त भी भलीभाँति अन्दर बन्द हो जाय, तब व्यक्तिको प्राणवायुके द्वारा प्रणव (ओंकार)-ध्यान करना चाहिये और तब क्रमशः उस प्राणवायुको ब्रह्मरन्ध्रतक ले आना चाहिये। जिस समय प्राणको ब्रह्मरन्ध्रमें ले आते हैं, उस समय धारणाकी शक्तिसे उसे वहाँ इस प्रकार स्थिर रखनेकी जरूरत होती है कि वह वहाँ इस तरहसे रहे कि ब्रह्माकाशमें मिलता हुआ-सा हो। इसके बाद ओंकारकी तीन मात्राओं (अ,उ,म)-का जबतक अर्धमात्रामें विलय न हो जाय, तबतक प्राणवायुको चिदाकाशमें स्थिर करना चाहिये, इससे ऐक्य प्राप्त होते ही वह ओंकार मूल ब्रह्ममें भरा हुआ दृष्टिगोचर होता है अर्थात् वह प्राण मूर्ध्नि-आकाशमें विलीन होता है। (११२—११६)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १३॥

इससे ओंकारका स्मरण भी बन्द हो जाता है और प्राणवायुका विलय भी हो जाता है। तत्पश्चात् ओंकारसे भी परे रहनेवाला एकमात्र शुद्ध ब्रह्मानन्द-स्वरूप ही शेष रहता है। अतएव प्रणव ही जिसका नाम है तथा जो एकाक्षर ब्रह्म है, वह मेरा मुख्य स्वरूप है। जो मेरे इस शुद्ध स्वरूपका स्मरण करता हुआ शरीरका परित्याग करता है, वह निःसन्देह मेरा ही शुद्ध शरीर प्राप्त करता है; और जिस समय वह स्वरूप मिल जाता है, उस समय इससे आगे कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। हे अर्जुन! यदि तुम्हारे चित्तमें यह आशंका उठ खड़ी हो कि यह कैसे जाना जाय कि देहावसानकालमें वह स्मरण होगा ही, जिस समय सारी इन्द्रियाँ सुस्त हो गयी हों; जीवनका समस्त सुख और समाधान चला गया हो, इस प्रकारके साफ-साफ लक्षण दीखने लग गये हों कि बाह्याभ्यन्तर दोनों ओर मृत्युने अपना शिकंजा कस लिया है? उस समय आसन लगाकर कौन बैठ सकता है और इन्द्रियनिग्रह कौन कर सकता है तथा व्यक्ति किसके अन्तःकरणसे ओंकारका स्मरण करे? ये सब बातें तो सम्भव ही नहीं हैं।'' तो तुम्हें इस

चीजका खयाल रखना चाहिये कि जो नित्य अखण्डरूपसे मेरा चिन्तन करते रहते हैं, उनके अन्तिम समय मैं स्वयं ही सेवकोंकी भाँति उनकी सेवामें जुट जाता हूँ। (११७—१२३)

09:11
Shri Geeta Gy...

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ ४॥

जो वैराग्यरूपी प्रचण्ड अग्निमें विषयसमूहको भस्म कर देते हैं तथा इन्द्रियोंकी तपी हुई स्थितिमें धैर्यपूर्वक नियन्त्रित रखते हैं और फिर इन्द्रियनिग्रहके बलपर जो लोग अपनी इन्द्रियोंको मोड़कर अपने हृदयरूपी गुफामें बन्द कर रखते हैं, अपना द्वार भलीभाँति बन्द करके और ठीक तरह आसनमुद्राका साधन करके मूल बन्धका किला बाँध लेते हैं, जो आशासे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं, भयका अन्त कर डालते हैं तथा अज्ञान-निद्राका अन्धकार हटा करके उसका नाश कर डालते हैं; जो मूल बन्धकी अग्निकी ज्वालाओंसे शरीरस्थ सप्त धातुओंको भस्म कर व्याधियोंके मस्तकपर षट्-चक्रकी तोपें चलाते और स्फुरित होनेवाली कुण्डलिनीकी तेजस्वी दीपक आधार चक्रपर रखकर उसकी प्रभासे मस्तकपर्यन्त अपना पूरा शरीर देदीप्यमान कर लेते हैं और तब इन्द्रियोंके नव द्वारोंपर निग्रहरूपी अर्गला लगाकर केवल सुषुम्ना नाड़ीकी खिड़की खुली रखते हैं। प्राणवायुकी शक्तिरूपी चामुण्डा देवीके लिये संकल्परूपी मेढ़े काटकर मनरूपी महिषासुरके मुण्डका बलिदान करते हैं, जो चन्द्र (इडा) और सूर्य (पिंगला) नाड़ियोंका मिलाप करके नाद-घोषकी सहायतासे सत्रहवीं पूर्णामृत कलाका जल शीघ्रतासे अपने अधीन कर लेते हैं और तब मध्यमा यानी सुषुम्ना नाड़ीके विवररूपी रास्तेसे चलकर अन्तिम

ब्रह्मरन्ध्रतक जा पहुँचते हैं, सिर्फ इतना ही नहीं अपितु जो मकार यानी सुषुम्नाके विवरकी सीढ़ियाँ चढ़कर तथा महदाकाशको बगलमें दबाकर ब्रह्ममें जा मिलते हैं और इस प्रकार समबुद्धि होकर जो लोग तत्क्षण ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेके लिये योगका दुर्गम मार्ग अपने अधीन कर लेते हैं और जो अपने मनोभावके बदलेमें निर्गुण, निराकार शून्यस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं, हे किरीटी! वही लोग आकर मुझमें मिलते हैं। ऐसा नहीं है कि इसके अलावा उन्हें योग-बलसे कुछ और अधिक प्राप्त होता हो। हाँ, यदि कुछ अधिक प्राप्त होता है, तो वह है सिर्फ कष्ट। (४६—५९)

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

सदा भयभीत रहता है कि यदि मेरे इस बालकका नाम भी कामरूपी हउवेके श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश कर जायगा अथवा आशारूपी डाकिनीकी नजर इसे लग जायगी तो इसकी जान ही निकल जायगी अथवा जैसे अपनी व्यभिचारिणी स्त्रीको जबरदस्त पति सदा अपने अंकुशमें रखता है, वैसे ही जो अपनी प्रवृत्तियोंको अपने अधीन रखता है, जो उस समय भी अपनी इन्द्रियोंको अच्छी तरह निग्रहमें रखता है, जिस समय सजीव देह अत्यन्त कृश हो जाता है और प्राण जानेकी नौबत आ जाती है, जो अपने मनके प्रमुख द्वारपर अथवा वृत्तिके पहरेपर अपने शरीररूपी दुर्गमें शम-दमको निरन्तर पहरेदारोंकी भाँति नियुक्त और जाग्रत् रखता है, जो मूलाधार, मणिपूर या नाभिस्थान और विशुद्ध या कण्ठस्थानके तीन चक्रोंमें वज्र, उड्डीयान और जालन्धर नामक तीनों बन्धोंकी गस्त बैठाकर अपने चित्तको इडा और पिंगला—इन दोनों नाड़ियोंकी सन्धिमें प्रविष्ट करता है, समाधिकी शय्यापर अपने ध्यानको अच्छी तरह सुलाये रखता है और जिसका चित्त चैतन्यके साथ एकाकार होकर सदा उसीमें रमण करता रहता है, उसके बारेमें तुम यह अच्छी तरह जान लो कि उसने अपने अन्त:करणका पूर्णतया निग्रह कर लिया है। अन्त:करणका इस प्रकारका निग्रह मानो ज्ञानकी विजय ही है। जिस व्यक्तिकी आज्ञा उसका अन्त:करण सम्मानपूर्वक शिरोधार्य करता है, उस व्यक्तिको मूर्तिमान् ज्ञान ही जानना चाहिये। (१८४—५११)

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

जिस व्यक्तिके मनमें विषयोंके प्रति पूर्ण विरक्ति बनी रहती है, वही ज्ञानी होता है। जैसे वमन किये हुए अन्नको देखकर किसीकी जिह्वासे लार नहीं टपकती अथवा जैसे किसी मृतकको गले लगानेके लिये कोई उद्यत नहीं होता; विषको जैसे कोई नहीं खाता अथवा जलते हुए घरमें कोई प्रवेश नहीं करता, व्याघ्रकी गुफामें कोई अपना डेरा नहीं डालता, अथवा गले हुए लोहेके खौलते हुए रसमें कोई नहीं कूदता, तथा अजगरको तकिया बनाकर कोई उसपर नहीं सोता, वैसे ही विषयकी चर्चाएँ जिसे

योगिराज **श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय** मुख्य रूप से **क्रिया योग** के पुनरुद्धार के लिए जाने जाते हैं। हालाँकि सोहं साधना (Soham Sadhana) एक स्वतंत्र वैदिक तकनीक है, लाहिड़ी महाशय की शिक्षाओं में इसका गहरा आध्यात्मिक संबंध मिलता है।

Kriya Yoga Lahiri +1

लाहिड़ी महाशय और सोहं का संबंध

- **क्रिया योग का आधार**: लाहिड़ी महाशय के अनुसार, क्रिया योग का आधार प्राणायाम और श्वास पर नियंत्रण है। सोहं साधना, जिसे **'हंस साधना'** भी कहा जाता है, श्वास के साथ चलने वाली एक प्राकृतिक क्रिया है जो क्रिया योग के प्रारंभिक चरणों के समान ही मन को शांत करती है।
- **प्राण और ध्वनि का अनुभव**: लाहिड़ी महाशय की साधना में सुषुम्ना नाड़ी में प्राण के प्रवाह और आंतरिक ध्वनियों को सुनने पर जोर दिया गया है। सोहं साधना में भी साधक को अपनी श्वास में **"सो"** (अंदर आती श्वास) और **"हं"** (बाहर जाती श्वास) की सूक्ष्म ध्वनि का अनुभव करने का अभ्यास कराया जाता है।
- **आंतरिक त्याग**: लाहिड़ी महाशय ने सिखाया कि मुक्ति बाहरी संन्यास के बजाय आंतरिक त्याग और ईश्वर के साथ निरंतर जुड़ाव से मिलती है। सोहं मंत्र ("वह परमात्मा मैं हूँ") इसी अद्वैत भाव को पुष्ट करता है。 kriyaoflahirimahasa... +8

परमहंस योगानन्द जी की शिक्षाओं में "सोहं" (Soham) साधना को विशेष रूप से "होंग-सौ" (Hong-Sau) तकनीक के रूप में सिखाया गया है। हालाँकि दोनों का अर्थ "मैं वही (ब्रह्म) हूँ" है, योगानन्द जी ने इस प्राचीन संस्कृत मंत्र के **'होंग'** और **'सौ'** उच्चारण पर अधिक बल दिया है क्योंकि यह श्वास की प्राकृतिक ध्वनि के अधिक निकट है। Scribd +2

योगानन्द जी के अनुसार इस साधना की मुख्य विधि और महत्व नीचे दिए गए हैं:

होंग-सौ (Soham) साधना की विधि

- **प्रार्थना और शुद्धि:** साधना शुरू करने से पहले ईश्वर से प्रार्थना करें और शरीर को तनावमुक्त करने के लिए "दोहरा प्रश्वास" (मुँह से हह-हह की आवाज़ के साथ सांस छोड़ना) करें।
- **आसन:** रीढ़ की हड्डी को सीधा रखकर बैठें, हाथ जांघों पर हथेलियाँ ऊपर की ओर रखें, और अपनी दृष्टि को दोनों भौहों के बीच (कूटस्थ चैतन्य) स्थिर करें।
- **मंत्र का मानसिक जाप:**
  - जब श्वास **अंदर** आए, तो मन में **"होंग" (Hong)** का उच्चारण करें।
  - जब श्वास **बाहर** जाए, तो मन में **"सौ" (Sau)** का उच्चारण

3. 'हंस' से 'सोहं' की यात्रा

युक्तेश्वर जी के अनुसार, जब साधक श्वास की इस गति को निरंतर देखता है, तो श्वास अत्यंत सूक्ष्म हो जाती है।

- **हंस (Hansa):** यह वह अवस्था है जहाँ जीव स्वयं को शरीर मानता है।
- **सोहं (Soham):** निरंतर अभ्यास से जब श्वास स्थिर होती है, तो 'हंस' पलटकर 'सोहं' बन जाता है, जिसका अर्थ है— **"मैं वही (ब्रह्म) हूँ।"**

4. क्रिया योग की भूमिका

युक्तेश्वर जी इस साधना को **क्रिया योग** की उच्च अवस्थाओं के लिए 'मानसिक शुद्धिकरण' (Mental Purification) का सबसे प्रभावी साधन मानते थे। उनके अनुसार, जब तक मन श्वास के साथ एकाग्र नहीं होता, तब तक उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियाँ संभव नहीं हैं।

स्वामी युक्तेश्वर जी के इस मार्ग को विस्तार से समझने के लिए उनकी पुस्तक **'कैवल्य दर्शनम' (The Holy Science)** एक प्रामाणिक स्रोत है।

क्या आप युक्तेश्वर जी द्वारा बताए गए **'युग चक्र'** या **'क्रिया योग'** के अन्य अंगों के बारे में जानना चाहेंगे?

स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि जी की **सोहं साधना** उनके शिष्य परमहंस योगानन्द द्वारा सिखाई गई **"होंग-सौ" (Hong-Sau)** तकनीक का ही मूल रूप है। युक्तेश्वर जी, जो स्वयं लाहिड़ी महाशय के शिष्य थे, इस साधना को **"हंस" (Hansa)** या **"सोहं"** के वैज्ञानिक स्वरूप में सिखाते थे।

युक्तेश्वर जी की पद्धति के अनुसार सोहं साधना के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं:

1. वैज्ञानिक आधार (The Science of Sound)

युक्तेश्वर जी ने अपनी पुस्तक **'द होली साइंस' (The Holy Science)** में बताया है कि 'सो' (So) और 'हं' (Ham) केवल शब्द नहीं हैं, बल्कि ये श्वास के आने और जाने की **प्राकृतिक ध्वनियाँ** हैं।

- **सो (So):** श्वास के भीतर जाने की ध्वनि।
- **हं (Ham):** श्वास के बाहर निकलने की ध्वनि।

2. अभ्यास की विधि

- **स्थिरता:** रीढ़ की हड्डी को बिल्कुल सीधा रखकर बैठें। शरीर को पूरी तरह शिथिल (relax) छोड़ दें।

Bhupendra Nath sanyal ki Soham Sadhana

श्री **भूपेंद्र नाथ सान्याल** (Bhupendra Nath Sanyal) जी की **सोहं साधना** उनके गुरु **योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय** की क्रिया योग परंपरा का ही एक अभिन्न अंग है। सान्याल महाशय लाहिड़ी जी के उन गृहस्थ शिष्यों में से थे जिन्होंने क्रिया योग को अत्यंत शुद्ध और वैज्ञानिक रूप में प्रचारित किया।

सान्याल जी की पद्धति में सोहं (Soham) साधना के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. हंस और सोहं का विज्ञान

सान्याल जी अपनी व्याख्याओं (विशेषकर उनकी गीता व्याख्या) में बताते हैं कि प्रत्येक जीव स्वाभाविक रूप से दिन-रात **'हंस'** मंत्र का जप कर रहा है।

- जब श्वास बाहर जाती है, तो **'हं'** की ध्वनि होती है।
- जब श्वास अंदर आती है, तो **'स' (सो)** की ध्वनि होती है।
- इसे **'अजपा गायत्री'** भी कहा जाता है। सान्याल जी के अनुसार, क्रिया योग के अभ्यास से जब यह 'हंस' पलटकर **'सोहं'** (वही मैं हूँ) बन जाता है, तब साधक को आत्म-साक्षात्कार होता है।

10:52
AI Mode All Images Videos News Maps SI

क्रिया योग (Kriya Yoga) की परंपरा में **सोहं साधना** (Soham Sadhana) को आधारशिला माना जाता है। महान गुरुओं जैसे **लाहिड़ी महाशय**, **स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि** और **परमहंस योगानन्द** ने इसे आध्यात्मिक प्रगति का पहला और अनिवार्य चरण बताया है।

क्रिया योग के अंतर्गत सोहं साधना की मुख्य विशेषताएं और विधि नीचे दी गई हैं:

1. सोहं का अर्थ और विज्ञान

संस्कृत में **'स:'** का अर्थ है "वह" (परमात्मा) और **'अहम्'** का अर्थ है "मैं"।

- जब हम सांस लेते हैं, तो सूक्ष्म रूप से **'सो'** की ध्वनि होती है।
- जब हम सांस छोड़ते हैं, तो **'हं'** की ध्वनि होती है।
- क्रिया योग में इसे **'अजपा-जप'** कहा जाता है, क्योंकि यह जप बिना किसी माला या प्रयास के चौबीसों घंटे हमारी सांसों में चलता रहता है।

2. क्रिया योग में अभ्यास की विधि (Steps)

क्रिया योग की परंपरा (विशेषकर योगानन्द जी की 'होंग-सौ' पद्धति) में इसे इस प्रकार किया जाता है:

Ask anything
Home Search Notifications Activity

12 sites

स्वामी पूर्णानंद परमहंस के अनुसार **सोऽहम् साधना** (Soham Sadhana) और **अजपा साधना** अनिवार्य रूप से एक ही हैं। यह साधना श्वास की स्वाभाविक लय में छिपे मंत्र को पहचानने की प्रक्रिया है। स्वामी जी इसे हिमालय के **सिद्धाश्रम** से प्राप्त कर समाज के कल्याण के लिए लाए थे।

सोऽहम् साधना का अर्थ और दर्शन

- **मंत्र का अर्थ:** "सोऽहम्" दो शब्दों से बना है—'सो' (वही/ब्रह्म) और 'हम्' (मैं)। इसका अर्थ है "वह ब्रह्म मैं हूँ"।
- **अद्वैत भाव:** यह साधना जीव और ब्रह्म के एकत्व (Unity) का प्रतीक है।
- **स्वाभाविक जप:** प्रत्येक मनुष्य अनजाने में सांस लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हम्' की ध्वनि उत्पन्न करता है। इसे सचेत होकर महसूस करना ही सोऽहम् साधना है।

साधना की विधि (स्वामी पूर्णानंद परंपरा के अनुसार)

यह एक सूक्ष्म विज्ञान है जिसे **हंस योग** भी कहा जाता है:

साधना की विधि (स्वामी पूर्णानंद परंपरा के अनुसार)

यह एक सूक्ष्म विज्ञान है जिसे **हंस योग** भी कहा जाता है:

1. **आकर्षण (Inhalation):** श्वास को भीतर खींचते समय 'सो' ध्वनि का मानसिक चिंतन करना। यह परमात्मा के प्रकाश को धारण करने का प्रतीक है।
2. **विकर्षण (Exhalation):** श्वास को बाहर छोड़ते समय 'हम्' ध्वनि का चिंतन करना। यह अहंकार और वासनाओं के विसर्जन का प्रतीक है।
3. **कुंभक (Retention):** श्वास को भीतर या बाहर रोकना, जहाँ जीव और शिव के मिलन का अनुभव होता है।
4. **पूर्ण सजगता:** अभ्यास के दौरान एक भी सांस बिना जागरूकता के नहीं होनी चाहिए।

मुख्य लाभ

- **मानसिक शांति:** यह तनाव को दूर कर मन को स्थिर करती है।
- **आत्म-साक्षात्कार:** निरंतर अभ्यास से साधक 'देह भाव' से ऊपर उठकर आत्म-बोध प्राप्त करता है।
- **प्राण शक्ति का संतुलन:** यह शरीर की नाड़ियों को शुद्ध कर प्राण

स्वामी **भुमानंद परमहंस** की "सोऽहम्" साधना (Soham Sadhana) आध्यात्मिक जागृति और आत्म-साक्षात्कार की एक सूक्ष्म विधि है। यह मुख्य रूप से **हंस योग** और **अजपा-जप** के सिद्धांतों पर आधारित है, जिसका उद्देश्य श्वास के माध्यम से स्वयं को परमात्मा से जोड़ना है।

स्वामी भुमानंद की परंपरा में इस साधना के प्रमुख अंग इस प्रकार हैं:

- **सोऽहम् का अर्थ:** यह दो शब्दों 'सो' (वह/परमात्मा) और 'हम्' (मैं) से बना है। इसका अर्थ है "वह ब्रह्म मैं हूँ"। यह मंत्र जीव और ब्रह्म की एकता को दर्शाता है।
- **साधना की प्रक्रिया:**
  - **आकर्षण (Inhalation):** जब आप सांस अंदर लेते हैं, तो मन में 'सो' ध्वनि का अनुभव करें। यह परमात्मा की शक्ति और प्रकाश को स्वयं में धारण करने का प्रतीक है।
  - **विकर्षण (Exhalation):** जब आप सांस बाहर छोड़ते हैं, तो 'हम्' ध्वनि का अनुभव करें। यह अपने 'अहंकार' और विकारों को त्यागने की प्रक्रिया है।
- **अजपा-जप (Natural Chanting):** भुमानंद जी के अनुसार, यह जप माला से नहीं बल्कि श्वास की स्वाभाविक गति से होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति दिन में लगभग **21,600** बार यह

स्वामी जनार्दन परमहंस (1888–1980) की **सोऽहम् साधना**, जिसे वे **अजपा योग** (Ajapa Yog) भी कहते थे, एक अत्यंत प्राचीन और वैज्ञानिक पद्धति है। उन्होंने अपने गुरु स्वामी भुमानंद परमहंस से यह विद्या सीखी और इसे विश्वभर में प्रसारित किया।

उनकी साधना पद्धति के मुख्य अंग और सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

1. सोऽहम् का अर्थ और दर्शन

- **अद्वैत भाव:** "सोऽहम्" का अर्थ है—"वह (ब्रह्म) मैं हूँ"। यह साधना साधक के अहंकार को मिटाकर उसे अनंत परमात्मा के साथ एकरूप करने का माध्यम है।
- **हंस योग:** इसे 'हंस योग' भी कहा जाता है क्योंकि श्वास की 'हं' और 'स' ध्वनियाँ मिलकर 'हंस' शब्द बनाती हैं, जो आत्मा का प्रतीक है। AWGP Store +2

2. साधना की विधि (अजपा योग)

यह साधना श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति पर आधारित है:

- **आकर्षण (Inhalation):** नाक से श्वास भीतर खींचते समय 'सो' (So) की सूक्ष्म ध्वनि का मानसिक अनुभव करना।
- **विकर्षण (Exhalation):** श्वास बाहर छोड़ते समय 'हम्'

Ask anything

Home Search Notifications Activity

17:54

AI Mode All Images Videos News Maps Sl

स्वामी **गुरु प्रसाद परमहंस** की **सोऽहम् साधना** (जिसे **अजपा योग** भी कहा जाता है) उसी प्राचीन सिद्धाश्रम परंपरा का हिस्सा है जिसे स्वामी पूर्णानंद परमहंस और स्वामी जनार्दन परमहंस ने आगे बढ़ाया। गुरु प्रसाद जी वर्तमान में इस परंपरा के मुख्य मार्गदर्शक हैं।

उनके अनुसार सोऽहम् साधना के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

1. साधना का वैज्ञानिक आधार

गुरु प्रसाद जी इस साधना को केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि एक **"जैविक विज्ञान" (Biological Science)** मानते हैं। उनका कहना है कि हर जीवित प्राणी जन्म से मृत्यु तक 'सोऽहम्' का जप कर रहा है (सांस लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हम्'), बस हम इसके प्रति सजग नहीं हैं।

2. साधना की विधि और प्रभाव

- **स्वाभाविक ध्वनि:** यह साधना किसी कृत्रिम मंत्र के जाप के बजाय श्वास की प्राकृतिक लय को सुनने पर आधारित है।
- **प्राण और अपान का संतुलन:** सांस भीतर लेते समय ('सो') हम ब्रह्मांडीय ऊर्जा ग्रहण करते हैं, और बाहर छोड़ते समय ('हम्') हम अपने 'अहं' का विसर्जन करते हैं।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

3. संत ज्ञानेश्वर और नाथ संप्रदाय

महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर और गुरु गोरखनाथ ने इसे **'हंस मंत्र'** कहा है:

- उनके अनुसार, श्वास अंदर जाते समय **'स'** और बाहर निकलते समय **'ह'** की ध्वनि होती है। इसे उल्टा करने पर **'हंस'** या **'सोऽहम्'** बनता है।
- *"अहोरात्रं जपेन्मन्त्रं हंस इत्यक्षरद्वयम्।"* (दिन-रात जीव 'हंस' मंत्र का जप करता है)।

4. संत पलटू साहिब की वाणी

पलटू साहिब ने इस साधना की निरंतरता पर जोर दिया है:

> *"अजपा जाप जो जपै, सोई संत सुजान। बिन जिह्वा के नाम ले, श्वास-श्वास पर ध्यान।"*

- **अर्थ:** वही सच्चा ज्ञानी संत है जो बिना जीभ हिलाए, अपनी हर सांस पर ध्यान रखकर परमात्मा का नाम लेता है।

संतों के अनुसार अजपा योग की विशेषताएँ:

अनहद बाजै नीझर झरे उपजै ब्रह्म गियान ।
अविगत अंतरि प्रगटै लागै प्रेम धियान ।।[1]

संत जनों द्वारा वर्णमाला के अक्षरों के अनुरूप अपनी साधना पद्वति की व्याख्या की गई है । रविदास जी की वाणी में भी ऐसी एक पट्टी उपलब्ध होती है । रविदास जी ने इसमें हठयोग के लगभग सभी तत्व समाहित कर लिये हैं । परन्तु इसे वर्णमाला के केवल पांच अक्षर क्रमशः अ,इ,उ,म, तथा र ही दियें गए है, फिर भी गुरु रविदास जी की समग्र साधना पद्वति इसमें आ गई है ।

अ- अज्ञान छाँडि मन मूरिष आ- आसन अचल लगाऊं ।
इ- इला पिंगला खोलि किवरिया, सूनि समाधि रहाऊं ।।
उ- उर मंहराम हि राखों नैननि माहिं बसाऊं ।।
म- मेरि तजि राम नाम मिलि, परम तत को पाऊं ।।
र- रं राम मोहि गुरु रामा दीन्हीं, नहीं इहु मन्त्र विसराऊं ।
कहे रविदास ररंकार जपतहिं भौ सागर तरि जाऊं ।।[2]

हठयोग की साधना द्वारा जब योगी सहस्रार में प्राण और अपान को मिला देता है तब वहां ब्रह्म नाद गूंजने लगता है । रविदास जी ने अपने निम्न पद में अनहद नाद को भ्रमर गुंज कहा है :

इला, पिंगला, सुषम्णा नारी, जा में चित्त न धरे ।
सहस्रार मंह भ्रमर गुफा है भवंरा गुंज करे ।।[3]

---

1. कबीर वाड्मय खण्ड-3, साखी-पृ. 78.
2. गुरु रविदास जीवन एवम् दर्शन, धर्मपाल सिंहल, पृ. 130 वाणीपद-140.
3. सन्त गुरु रविदास वाणी : वेणी प्रसाद शर्मा, पृ. 132.

अर्थात् अक्षरातीत अविनाशी परमात्मा के दर्शन करके भय, भ्रमणा दूर हो जाती है । अंतर का अंधकार दूर हो जाता हैं । ऐसा अनुभव किसे होता है ? इसका जवाब देते हुए दासीजीवण कहते हैं कि :

''सोहम घर जावे संत सुभागी बीक कछुवे नाय !

➢ निणियापंथी बानी :

निणियापंथ यानी निर्गुण उपासना पद्धति को अपनानेवाला संप्रदाय । कबीरजी ने निर्गुण काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में पूरे हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया । इतना ही नहीं गुजरात के संतों ने भी कबीरजी की साधना को अपनाकर निर्गुण परब्रह्म की आराधना की हैं । खीमसाहब भाणपंथी थे अतः गुरुज्ञान से जो आत्मज्ञान मिला, उससे अपने भक्ति मार्ग को प्रस्थापित किया । जैसे.....

''श्वास उच्छवासा दोउ नहीं पोंचे, वहाँ ले लागी मेरी :
तुरते सुरते नाम नीरख ले, सुखमन भाका फेरी ।''

इसके अलावा :

''आ कायामा प्रगट गंगा, शीद फरो छो पंथपाका
इ रे गंगामां अखंड नाहिल्यो मत नाव नदियु नाका
आ दिल अंदर बुद्धि समुद्र चलत नाव चौ धारा
इ रे नावमां हीरा माणेक भरीआ खोजे खोजन हरा ।''

अर्थात् ईश्वर को बाहर ढूँढने की आवश्यकता नहीं । उनके दर्शन के लिए तीर्थाटन, गंगास्नान आदि बाह्याचारों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसी शरीर में साक्षात गंगा प्रवहमान है, जिसमें आत्मा स्नान कर लेती है, बाद में किसी नदी में स्नान करने की ज©रत नहीं है और कहीं पर जाने की भी ज©रत नहीं है । समुद्र में मोती मिलते हैं किंतु उन्हें ढूँढने के लिए ठेठ समुद्र में जाने की ज©रत नहीं है, क्योंकि अगर दिल (द्रव्य) समुद्र होगा तो मोती अपने आप ही मिल जाते हैं । इस प्रकार निर्गुण साधना भक्ति के द्वारा खीम साहब ने ईश्वरानुभूति प्राप्त की थी ।

'शशि सूर में, सूर शशि में अणसारे उलटावे,
नीरखे पल पल नूर निरंतर, अनहद नाद बजावे ।'

सर्व प्रथम प्राण को स्थिर करके उसकी गति को जान लेना चाहिए । इडा–पिंगला में@बहते हुए प्राण को गुरु के संकेत द्वारा उलटा करके उसे सुषुम्णा में प्रवेश कराके, मेरुदंड में से गुजरते हुए ऊँचे परबत पर ब्रह्मरन्द्र तक पहुँचना है । सदगुरु के शब्द के इशारे त्रिवेणी में तार मिलाके घट के भीतर बजते अनाहत नाद को सुनने का अनुभव करना है –

'शब्द शब्द जयां सुरत समाणी, सतनाम पहिचान रे,
दास मोरार दया सदगुरु की, चिंता मटी चोखाना रे ।'

सदगुरु के वचन के अनुसार सतवृत्त का पालन करते हैं । अंतरात्मा की आराधना करते हैं । चंचल मनको नामस्मरण में स्थिर रखकर आत्मस्वरूप की पहचान कराई गई है –

'सतगुरुए सतनाम सुनायो, सोहम शब्द में सुरत पायो,
जागृत ज्योति ज्योत जगायो, तेजमा तिमिर गिया टली रे ।'

योगवाणी के साथ में संतों ने मर्म वाणी का उच्चारण किया है, मोरारसाहेब की मरमीवाणी लोकप्रिय वाणी रही है –

'अचरज नजरे आया संतों जलमे.ं ज्योति जगाया,
बना मुल एक तरुवर ठाडा, डाळ पान नहीं छांया,
फळ बीन फूल बीन फलीया तीन लोक छवराया ।''

'जल–ब्रह्मरन्ध्र में ज्योति प्रकाश रही है । इस देहरूपी वृक्ष में मूल, डाल, पान, फूल, फल नहीं हैं । फिर भी मानवरूपी फल तीनों लोक में फैला हुआ है । इस आत्मारूपी पक्षी के पंख नहीं है, फिर भी वह विहार कर रहा है । इस रहस्य को समझाते हुए रवि साहेब ने कहा है –

'पांव विना चलना, चांच विना चुगना, पंख विना उड जाय,
बीना सुरत की नूरत हमारी, अनल न पहोंचे त्यांइ ।'

को मूलाधार– चक्र से दबाकर साधना की स्थिति में बैठकर प्राण की गति को पलटकर मणिपुर चक्र में से प्राण को ऊपर उठाकर नाभि के पास लगाकर स्वाधिष्ठान चक्र में साधक प्रवेश करके नाभि से पश्चिम की ओर जाना । यानी कि मेरुदंड में स्थित सुषुम्णा को शून्य शिखर ब्रह्मरन्ध्रा में जहाँ पर परमसत्ता का स्थान है, वहाँ तक पहुँचना ।

साधक का जब सुषुम्णा द्वार खुल जाता है तब पंचमहाभूत का बना हुआ यह शरीर अपनी पाँच मात्राओं, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों के बंधन टूट जाते हैं और तब निर्गुण राम नजर आते हैं । त्रिकुटी पर ध्यान लग जाने पर परम ज्योति के दर्शन होते हैं । इस साक्षात्कार को रवि साहब ने जान लिया था ।

रवि–भाण संप्रदाय के अन्य कवियों की बानियों में भी यह भव्य दिखाई देता है ।

''नाभि कमल थी उलच्यो आवें, गगन धून गरभना ।
तंकनाक की खडकी खोली, उलटा राह चलाया रे ।।

–दासी जीवण

ओहम–सोहम के श्वास–प्रश्वास के द्वारा नाभिकमल में अर्धसर्पाकार रूप में रहती कुंडलिनी शक्ति की साधना पर प्रकाश डाला है । इंगला, पिंगला, सुषुम्णा नाडियों त्रिवेणी घाट की तरह हैं । वहाँ ध्यान धर के सुरा को सुषुम्णा में रखनी है । नामस्मरण की महिमा को कबीर साहेब की तरह रवि–भाण संप्रदाय के संतों ने गाया है ।

''सत्नामनुं सुमरण साचुं, काचुं नहीं लगार रे भाई,
शहस्त्र फेण शेषनाग गये, रसनाए झंकार भाई ।''

– रवि साहेब

'' श्री सद्गोर ब्रम्हा वाचा'' (३७)

नर नाथ ना घरनी खबर न जाणी, संसारमा जीव भूल्यारे,

पांच तत्व का महेल बनाया, त्रिगुण कीधा प्रकाश रे.

संसार सागर महाजळ भरीया, प्राणी तेना मांहे बुडारे.

नाभी कमळ थी दम उठत हे, स्मरण श्वास उश्वास रे.

शीव शक्तिका मेळा करना, बंकनाळ रस पीनारे.

06:08

Undated -Imam Shah B...

'' श्री सद्‌गोर ब्रम्हा वाचा'' (४२)

दिल तुं क्या देखते है दूर, हृदयमां धणी छे हाजरा हजुर. टेव
लिखा लेख सो नहि मिटने का, क्या मरता झूर झूर.
खबर वीना नर के खप गये, मांया केहो मजुर.
गुरु विना ज्ञान कथे बहु तेरा, भेद न समजे अबूज.
तुंही तुंही तो स्वामी बोले, भीतर है भरपूर.
नाभी कमळसे नेह लगावो, सुरत नुरत मजबुत.
स्वास उस्वासे शब्दकु पकडो, मिंटे जनम की भुल.
प्रेम पिऊसेपीवो प्याला, केफ चढे चकचूर,
उलटा सुलटा जई असमाना, सुनमे उगा सूर.
अनहद वाजा भीतर बाजे, निर्मळ वरसे नूर.
चंद्र से ज्योत करे चमकारा, अनहद वरसे नूर.
आरे जगतमां खुली कलीया, कईक हजार भरपूर.
माया के मांय न्यारो के न्यारों, जळमां कमळनुं फुल.
कहेत ईमामशाह प्रभुने भजीलो, दीधेल वचन करोने कबुल.
जब लालन की लाली पावे , अे वस्तु छे अमुल. दिल तुं

पद ३४—राग वही

अलख नाम धुन लागी गगन में, मगन भया मन मेरा जी। टेक
आसन मारी सुरत दृढ धारी, दिया अगम घर डेरा जी ॥ १
इंगला पिंगला दोनु छांड के, सुक्ष्मणा मध्ये धारा जी।
तरवेणी मे तार मेलाइ, अजपा नाम उचारा जी ॥ २
जंत्र अनाहद बाजे अहोनिश, होत नाद झनकारा जी।
घन बिन अद्भुत होत गर्जना, बरसे अमृत धारा जी ॥ ३
कोटि-कोटि रवि शशि की शोभा, झगमग ज्योति उजाराजी।
जन छोटम सद्गुरु प्रतापे, दरस्या अलख दीवारा जी ॥ ४

—वही, पृ० २६१

पद ४८—कीर्तन राग वही

समरण सोहं का सोंहं का, ज्यां बजे अनहद डंका। टेक
आसन बांधी सुरती सांधी, चतुर दिल चित लाया।
मुलाधार पृथ्वी रङ्ग पीला, देव गणपति राया ॥ समरन० १
अक्षर चार विचारो ईन मे, वंश षस वरणा।
खट सो जाप अजपा जपकं, उनकुं अरपण करणा ॥ समरन० २
उतपत द्वारा खटदल सारा, श्वेत रङ्ग जल जान्या।
चतुरानन की ज्योति जगाइ, खटहजार दीया दाना ॥ समरन० ३
खटदल में खट अक्षर देखो, बं भं मं का वासा।
से हं लक लखो लक्ष सें, खेल वन्या है खासा ॥ समरन० ४
नाभि सरोजा दस दल खोजा, तेज तत्त्व का तापा।
लाल रङ्ग में लक्ष्मी नायक, खट हजार जहाँ जापा ॥ समरन० ५
ड ढं णं तहाँ अक्षर दरशा, तं थं दं धं वासा।
नं पं फं कु फिरकर पेख्या, कट्या कर्म का पासा ॥ समरन० ६
हृदे विचारा द्वादश आरा, शिव शक्ति का ठारा।
नील रङ्ग मारुत का मांही, झगमग ज्योति उजारा ॥ समरन० ७

भजन २३
अजब बना एक तारा

साधु अजब बना एक तारा हो जी,
जाका अलख बजावनहारा, मेरे संतो। अजब० टेक
साधु सुरता का तार नुरत की है खुंटी,
यामें सोहं शब्द जणकारा, मेरे संतो। अजब० १
साधु संत का है तुंबा सुखमण की है नालो,
यामें निश्चे नखी को समारा, मेरे संतो०। अजब० २

शिष्ट—१

साधु शील की खाल संतोष की मेखा,
यामें ज्ञान घोडी का सहारा, मेरे संतो०। अजब० ३
साधु भजन का रंग भाव की है कलगी,
जामें हरि जनने ज्ञान विचारा, मेरे संतो। अजब० ४
साधु तार मिला के बजावन लागे,
बाजा तु ही तुंही का रण कारा, मेरे संतो। अजब० ५
ज्ञानी इस ही राग में मगन होइ रहेते,
पीते प्रेम रस मन धारा, मेरे संतो०। अजब० ६

—व

"તીન દેવકા મરમ ન પાવે, નાભીએ પવન ઠરાવે,

એ નાભીએ નહિ હે પવનકા મૂળ બાહેર ભીતર હે ભરપુર

કહો પંડિતો કહાં પાવનકા બાસા એ સબ કે સાહુવા પ્રકાશ,

આવે જાવે ઘાટમાં કરે તમારા ઘાટ અઘાટ જયોત નિરંજન પ્રકાશ."[૧૧]

યોગમુખી વાણી નથુરામ પણ કહે છે કે :

"આસનવાળી સુરતાથી દ્રઢ કીયા દિયા અગમ ડેરા,

ઈંગલા પિંગલા દોનું સાધકે, સુષ્મણા ચિત્ત ધર્યા"[૧૨]

યોગ સાધનામાં પ્રાણવાયુનું સુષુમણામાં પ્રવેશતા જ્ઞાનનાં પ્રકાશ થાય છે. 'સોહમ' અજયાજયથી પરમાત્માનાં અખંડ ધામમાં નિરંજનનું બ્રહ્મ તેજ વરસી રહે છે. જેનું ભકતે દર્શન કરવાનું હોય છે. આ જલમયી પ્રકૃતિમાં મનુષ્ય શરીરરૂપી કમળ ખીલ્યું છે. એ કમલમાં જ તેને ફરી કળી જેવું રૂપ આપનાર તત્વ છે. તેમાં અલખ–પુરૂષ બિરાજમાન છે. તેના સૌંદર્યના વખાણ થઈ શકે તેમ નથી. તેની જયોતિ ચારે તરફ ઝળહળે છે.

આ હરિજન સંત ભકતોની વાણીમાં યોગ છે. ઈડા, પિંગલા ને સુષુમણા સાધીને ત્રિવેણીના ઘાટ ઉપર અલખ જગાવીને કુંડલિનીને જાગૃત કરી ચક્રો ભેદવાની ક્રિયા તેમાં વર્ણવવામાં આવી છે. આ અનાહત નાદને આ સંતોએ સાંભળેલ છે. આ બધા ભાષા સંકેતો આનંદ સમાધિના સૂચક છે. ગગનમંડળ, ઝણકાર ઝાલેરી અનહદ, તૂરાના નાદ એ બધી યોગની ક્રિયાઓની પરિભાષા છે. જે તેઓની વાણી થકી વ્યકત થાય છે.

"ઓહમ્ – ઓહમ્" ના શ્વાસોશ્વાસ થકી નામનું સ્મરણ કરતાં ડાબી ઈંગલા ચંદ્રનાડીને જમણી પિંગલા સૂર્યનાડીની વચ્ચે આવેલ સુષુમણા નાડીને

સાંધતા સુલટા પવન ઊલટા કરતાં સુષુપ્ત અવસ્થામાં પડેલી કુંડલિની જાગૃત થતાં બ્રહમરંદ્રમાં બ્રહ્મજયોતનાં દર્શન થતાં અક્ષરાતીત નરને આ દેહમાં ઓળખી શકાય છે. એમ આ ભકત કવિઓનું દર્શન છે.

म्नलिखित है --

सुरति समानी सार शब्द में, प्रिति रही लवलाई ।
प्रेम पियारी रटै पिया को, यह जिव पुलकित जाई ।।[1]

\+ + +

लगावो मन शब्द मे सुरति मकुरिया ।
झीनी डगरिया उरध लागे डोरिया, अनहद शब्द फसावे मकरिया ।
बायें व दहिने लो फोरैना रस्यिा, मध्ये सुरंग चढी चलि जइया ।
सुरति मकरिया चढी है अटरिया, मनही के जाल मने लिपटइया ।।[2]

\+ + +

अपना पिया के मै होइबो सोहागिन- अहे सजनी ।
मन्ना तजि सइया संगे लागवि - रे की ।।
मइया के दुअरिया अनहद बाजा बाजे- एहे सजनी
नाचे ले सुरति सोहागिन --- रे की ।
गंग जमुन केरा अवघट घटिया हो- अहे सजनी ।
देखहु सतगुरु सुरति क नइया हो- अहे सजनो ।।
जोगिया दरसे देखे जाइब - रे की ।।
दास कबीर यह गवले लगनिया हो- अहे सजनी ।
सतगुरु अलख लखावल ---- रे की ।।[3]

\+ + +

सबद के निशाना मार, नाम की दोहाई हो ।
कहे दर्शन जीव, लोक चलि जाई हो ।।[4]

1- धर्म दास शब्दावली, पृ0 2
2- प्रेम तरंगिनी, भाग 3, शब्द 12
3- कबीर शब्दावली, भाग 4, पृ0 19 ।
4- भजन रत्न माला, पृ0 12- टेकमन राम ।

10:35

Bhojpuri sant sadhana

88/90

सन्त शिवनारायण ने भी इस योग साधना का यत्र- तत्र वर्णन किया है -

इगला पिंगला दुइनारी सुधारी आठ पहर नौ नरिया ।
गंगा यमुना बीच बहे सरस्वती प्रेम के उठत लहरिया ।।[1]

सन्त धरम दास के विचार से पाच और पच्चीस को वश में करने के साथ-साथ इगला, पिंगला और सुषुम्ना को सोधने के बाद ही प्रभु का चरणोदक प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि अधोलिखित पंक्तियों से प्रगट है -

पाचे पाच पचीसो बस करि साचे होइ ठहरावै ।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, तब चरनोदक पावै ।।[2]

सन्त पलटू दास ने अत्यंत ही प्रभाव शाली रूप में प्रतीकात्मक शैली के द्वारा इस योग-साधना का उल्लेख किया है -

इगला पिंगला पलरा दूनौ, लागि सुरति की जोती ।
सत्त सबद की डाडी पकरौ, तौलो भरि भरि मोती ।
चाद सुरज दोउ करै रखबारी , लगी तत्त की ढेरी ।
तुरिया चढि के बेचन लागे, ऐसी साहिबी मेरी ।।[3]

1- शब्दावली, चदवार की प्रति, पृ0 13, पद 32 ।

2- धरम दास की शब्दावली, पृ0 71

3- पलटू दास की बानी, भाग 3, पृ0 28

सुरति रहै गागरि के मंझा। यौं जन लय लावै दिन संझा॥ (1)
जैसे गाइ जंगल कौ धावै। पानी पिवै घास चरि आवै
चित्त रहै बछरा के पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा॥ (2)

संत सुन्दरदासजी का कथन है कि इस योग से

'आवागमन सकल भ्रम भागै।' (3)

लय प्राप्त होने से जन्म - मरण क्रम तथा भ्रम से छुटकारा मिलता है।

संत सुन्दरदासजी इस योग की विशेषता प्रगट करते हुए कहते हैं कि -

यह लय योग अनूप है करै ब्रह्म सामान।
भाग्य बिना नहिं पाइये सत्‌गुरू कहै सुजान॥ (4)

अर्थात लय योग अनूपम है लय योग साधक को ब्रह्म समान बना देता है। यह सहज प्राप्त नहीं है। इसकी प्राप्ति भाग्य की बात है। कोई ज्ञान सत्‌गुरू ही कह पाता है।

चर्चा योग -

ब्रह्म तत्त्व की चर्चा करना ही चर्चा योग है। संत सुन्दरदास का यह आग्रह है कि साधक के लिए चर्चा योग की आवश्यकता है।

हठयोग -

हठयोग के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए सुन्दरदास जी ने कहा हैं।

रवि शशि दोऊ एक मिलावै। याही तें हठयोग कहावै। (5)

अर्थात् शरीर में सूर्य नाडी (इडा) तथा चन्द्र नाडी (पिंगला) को सुषुम्ना के साथ मिला देना ही हठयोग हैं।

अष्टांग - योग -

संत सुन्दरदासजी प्रतिपादित करते हैं -

---

(1) सर्वांगयोग प्रदीपिका - द्वितीय उपदेश - छंद 34
(2) वही - छंद 35
(3) वही - छंद 29
(4) वही - छंद 39
(5) सर्वांग योग प्रदीपिका - तृतीया उपदेश - छंद 1

07:02

सद्गुरु **सदाफलदेव जी महाराज** की शिक्षाओं में **सोहं साधना** विहंगम योग का एक महत्वपूर्ण चरण है। इसे 'अजपा-जाप' भी कहा जाता है क्योंकि यह श्वास-प्रश्वास के साथ स्वाभाविक रूप से चलती है।

यहाँ सोहं साधना के मुख्य बिंदु दिए गए हैं:

1. अर्थ और दर्शन

- **सो + हम**: 'सो' का अर्थ है 'वह' (परमात्मा) और 'हम' का अर्थ है 'मैं' (आत्मा)। इसका संयुक्त अर्थ है— **"वह (ब्रह्म) मैं हूँ।"**
- सदाफलदेव जी के अनुसार, एक स्वस्थ मनुष्य दिन भर में लगभग **21,600 बार** अनजाने में इस मंत्र का जाप करता है। साधना का उद्देश्य इसे होशपूर्वक (जागरूकता के साथ) करना है।

2. साधना की विधि

- **श्वास पर ध्यान**: साधक अपनी आती-जाती सांसों पर एकाग्र होता है।
- **सो (So)**: सांस अंदर लेते समय मन ही मन 'सो' की ध्वनि का अनुभव करना।
- **हं (Ham)**: सांस बाहर छोड़ते समय 'हं' की ध्वनि का अनुभव करना।
- यह अभ्यास मन को बाहरी विषयों से हटाकर अंतर्मुखी (भीतर की ओर) करने में मदद करता है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

07:02

Vo)) 4G+ LTE1

3. स्वर्वेद में उल्लेख

महाराज जी ने अपने ग्रंथ **'स्वर्वेद'** में स्पष्ट किया है कि सोहं साधना प्राणों को स्थिर करने का साधन है। यह मन की चंचलता को समाप्त कर साधक को उच्च आध्यात्मिक अवस्थाओं (जैसे 'शून्य' और 'अक्षर ब्रह्म') के लिए तैयार करती है।

4. मुख्य लाभ

- **मानसिक शांति**: इससे तनाव कम होता है और एकाग्रता बढ़ती है।
- **प्राण शक्ति**: यह शरीर की जीवनी शक्ति (Prana) को संतुलित करती है।
- **आध्यात्मिक नीव**: यह विहंगम योग के सूक्ष्म अभ्यासों (जैसे शब्द साधना) में प्रवेश करने की पहली सीढ़ी मानी जाती है।

नोट: विहंगम योग संस्थान के अनुसार, इस साधना की पूर्ण विधि और बारीकियों को किसी **अधिकृत उपदेशक** या वर्तमान सद्गुरु से सीखना ही श्रेयस्कर माना जाता है।

क्या आप **स्वर्वेद के कुछ विशेष दोहों** के बारे में जानना चाहेंगे जो इस साधना पर आधारित हैं?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

दृष्टि उलटि कै लगि रहै, निशु दिन आठो याम।।[1]

उनके अनुसार पंचे पाँच, खेचरी–भोचरी आदि पाँच मुद्राओं को साधक हठयोग की कठिन विधि से, आकाश में सूर्य तथा चन्द्रमा को बाँधकर अर्थात् दाई–बाई नासिका की साँस को रोककर बीच की सुषुम्ना नाड़ी से गगन गुफा में प्रवेश करके प्राण वायु के द्वारा भीतर प्रकाश का दर्शन हो जाता है।[2]

प्रत्याहार की साधना में सहायक प्रवण जप भी है, ये जप एक लाख बीस हजार संख्या में बताएं गये हैं, किन्तु भीखा साहब ने जप को अधिक महत्त्व दिया है, फिर भी एक लाख बीस हजार जप संख्या का उल्लेख नहीं किया है। प्रवण जाप के स्थान पर 'सोऽहं' के अजपा जाप को ही विशेष महत्त्व दिया है।

प्रत्याहार की चर्चा करते हुए भीखा ने बतलाया है कि साहित्य में सोऽहं जाप की झलक मिलती है –

रमिता राम तूँ अन्तर जासी, सोहं अजपा जपै हौ।[3]

उन्होंने त्रिवेणी के सम्मुख सिर झुकाने का उपदेश दिया है।[4] भीखा ने सुरति–निरति का संकेत करके लिखा है –

सुरति सुभाव निरति लपटानो, दृष्टि रुप अरूझाऊँ।।[5]

वे कहते हैं कि तन, मन और प्राण को न्यौछावर करके प्रभु

---

1. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0– 165।
2. पंचवें पाँचो मुद्रा साधे, ससि अरू सूर अकासे बाँधे।
   प्राणायाम पवन परगासा, सून्य पाँच पर भयो प्रकासा।।
   – उपरिवत, पृ0– 155।
3. उपरिवत, पृ0– 55।
4. मध्य सरस्वती गंगा यमुना, सन्मुख शीश नवावै।
   – उपरिवत, पृ0– 88।
5. उपरिवत, पृ0– 201।

सद्गुरु **सदाफल देव महाराज** द्वारा प्रतिपादित **श्रुति शब्द योग** (जिसे प्रायः 'सुरत शब्द योग' या विहंगम योग की उच्चतम अवस्था के रूप में जाना जाता है) एक अत्यंत प्राचीन और वैज्ञानिक ध्यान पद्धति है। विकिपीडिया +1

इस योग के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

- **अर्थ:** 'श्रुति' या 'सुरत' का अर्थ है **आत्मा की चेतन शक्ति** और 'शब्द' का अर्थ है **परम सत्ता की दिव्य ध्वनि**। 'योग' का अर्थ है इन दोनों का मिलन।
- **विहंगम योग का आधार:** इसे **ब्रह्म विद्या** भी कहा जाता है। यह पद्धति शारीरिक मुद्राओं या प्राणायाम के बजाय सीधे आत्मा की चेतना पर केंद्रित है।
- **शब्द की महत्ता:** सदाफल देव महाराज के अनुसार, सृष्टि की उत्पत्ति 'शब्द' से हुई है और उसी दिव्य ध्वनि (अनहद नाद) के माध्यम से आत्मा परमात्मा तक पहुँच सकती है।
- **स्वर्वेद:** महाराज जी ने अपनी 17 वर्षों की गहन साधना के अनुभवों को **स्वर्वेद** नामक ग्रंथ में संकलित किया है, जो इस योग पद्धति का मुख्य आधार है।
- **साधना का मार्ग:** इसमें साधक अपनी आंतरिक वृत्तियों को संसार से हटाकर अंतर्मुखी करता है और सद्गुरु द्वारा बताए गए प्रयोगात्मक चरणों के माध्यम से दिव्य प्रकाश और शब्द का

06:49

140

अज़पा गायत्री हम्सु हम्सु ज़ॅपिथ,
ॲहं त्रॉविथ सुय अदु रठ।
येम्य त्रोव अहं सुय रूद पानय,
बो न आसुन छुय व्वपदीश।।

अजपा गायत्री-मंत्र का प्रत्येक सांस में जाप कर। अहंभाव को त्याग कर 'उसी' अर्थात बह्म-तत्त्व को धारण कर। जिसने 'अहं, को छोड़ दिया, वही वास्तव में 'स्व' (आत्मभाव) के रूप में स्थिर रहा। सीख की बात है 'अहं' का अभाव, ! तदाकार होना !

141

ऑसुस कुनिय तय साँपनिस स्यठा,
नज़दीख ऑसिथ गॅयस दूर।
ज़ॉहिर-बॉतिन कुनुय ड्यूंठुम,
गॅयस खेथ-चेथ चुवंज़ाह चूर।।

मैं अकेली थी और अनेक हो गई (एकोअहं बहुस्याम:)। निकट हो कर दूर जा पड़ी। भीतर और बाहर (व्यक्त-अव्यक्त) उसी एक (शिवतत्त्व) को देखा। चौवन चोर मेरा सब कुछ खा पी कर मुझे धोखा दे चले गए।

ललु वाख

InShOt

निरखि परखि अनुभव करो, शब्दामृत सुखएक।।५५।।

सद्गुरु भेद विधान से, मन व पवन को फेर।
नाद विन्द गति एक में, समा बन्ध पर नेर।।५६।।

सुरति निरति एक तार से, जोड़ दृष्टि सम होय।
परि अनुभव निःशब्द का, सन्त मरम गति सोय।।५७।।

सुधा श्रवित शीतल रवी, उदय तत्त्व झनकार।
अरव वर्षि आभा वरे, अनुभव पुरुष हमार।।५८।।

पलटि भूमि द्वादश सैन, अचल विराजत सन्त।
षोड़श कला से आतमा, प्रकटत फुलत वसन्त।।५९।।

अन्तर घोटी प्रेम की, पीवत सन्त अघाहिं।
सुख शान्ति अविचल मिलै,जन्ममरण दुख जाहिं।।६०।।

ठीक निशान तभी गनै, तीर धनुर्धर तान।
अलग लक्ष्य तिल भर नहीं, वेध मरम अस्थान।।६१।।

वाण शब्द भेदी चले, मारे उलटा घाव।
मर्मी धन्य रहस्य का, धीर पारधी दाव।।६२।।

प्रियतम दुरवरती भये, ज्वाला विरह मिमोर।
धधकी अगिन वियोग की, प्रिय उर अन्तर जोर।।६३।।

मन व सुरति एक साथ में, दुखद द्वन्द आश्रान्ति।
साधन में बाधन चले, स्वगति कोश में क्रान्ति।।६४।।

सुरति मना के साथ तजि, अन्तर मुख परवेश।
श्वेत सिंहासन पुरुष का, करत आरती वेश।।६५।।

सुषमन चवर डोलावती, नौबत अनहद बाज।
जगमग ज्योती हो रही, शब्द निरन्तर गाज।।६६।।

अन्तर्मुख सूरति भई, मोह शोक सन्ताप।
दृश्य द्वन्द्व विपदा गई, विघ्न अच्छादित माप।।६७।।

कालचक्र से पृथक रह, काल चक्र को देख।
वीत राग वह पुरुष है, जिवन्मुक्ति पर पेख।।६८।।

सृष्टि चक्र देखत रहे, आप चक्र में नाहिं।
धिर प्रबुद्ध यह आतमा, दुर्लभ है जग माहिं।।६९।।

केलि चक्र जो चढ़त है, चक्र फेर में धाय।
देव सदाफल पृथक है, दर्शक मोह न पाय।।७०।।

।। इति स्वर्वेद प्रथम मण्डल, प्रथम अध्याय समाप्त।।

सन्त पक्ष बन्धन नहीं, रह स्वतन्त्र पर ज्ञान॥०९॥

सद्‌गुरु युक्ति विधान से, सुषमन सम गति होय।
सहज योग अभ्यास है, सब योगन पर सोय॥१०॥

रात दिवस एक तार में, रहे निरन्तर लाग।
वे पलभर विछुड़े नहीं , भजन विरह अनुराग॥११॥

चलत फिरत बैठत उठत, लगन में सुरति सम्हार।
धन्य संयमी सन्त है, पावे जग करतार॥१२॥

मन व रई नाके करे, पाँच पचीसो संग।
शून्य महल बैठक बने, लीला अद्‌भुत रंग॥१३॥

स्मरण नहीं कोइ तत्त्व का, केवल मायू ज्ञान।
अन्तर में अन्तर मिलै, अनुभव भजन प्रमान॥१४॥

चिन्ता चाह न अन्य है, केवल शब्द अधार।
अन्तःकरण पवित्र है , शुद्ध हँस वहि पार॥१५॥

सम्प्रदाय मत भेष जग, मन व पवन के साथ।
सन्त अमत मत अन्त है, अमन रहस्य सनाथ॥१६॥

मन के ज्ञान विराग में, सारे भेष समाज।
अमत ज्ञान वैराग पर, सन्त सिद्ध सब काज॥१७॥

साधन मन के साथ है, तब तक भक्ती नाहिं।
निर्मल ऊर्ध्व प्रवाह में, अमन भक्ति घट माहिं॥१८॥

द्वार उच्च स्वर श्रवण है, ररंकार है सोय।
प्रथम धार ब्रह्माण्ड में, पैठो देखो सोय॥२७॥

तिरवेणी संगम लगै , भँवर होय गुंजार।
सरस्वति निर निर्मल वहे , मज्जन सुबुधि विचार॥२८॥

बाये वीणा मुरली, मधुर मनो हर राग।
सुखद सरस स्वर बाजती, बाढ़े सुरति सोहाग॥२९॥

झींगुर सम एक शब्द है, ऊपर सुरुचि सोहात।
सो अनहद मुरचंग है, बाजत रहि रहि जात॥३०॥

सब अनहद के ताल पर, बाजत पूर्ण गम्भीर।
वाद्यराज मिरिदंग है, ऊपर बायें धीर॥३१॥

सहनाई डफ झाँझ है, कींकिण बाँम सोहाय।
दायें सिंह गर्ज्जन गजै, सब मिलि करत बधाय॥३२॥

बाह्याभ्यन्तर पूर्ण है , व्यापक समता भाव।
अक्षर सो यह शब्द है, सकल सृष्टि परभाव॥३३॥

पृथ्वी से द्यौ लोक तक, प्रकृति दृश्य संसार।
तेहि आगे निज लोक है, चेतन शब्द पसार॥३४॥

स्वस्तिक आसन श्रेष्ठ है, सहज योग सत्य नाम।
सहज पलहथी मारिये, सब विधि पूरण काम॥३५॥

अनुभवगामी चढ़त हैं, सुक्ष्म पन्थ पर यह।
झुलत हिंडोला प्रेम का, पहुँचे अपने गेह॥३६॥

अमृत सागर उमड़िया, सूझे वार न पार।

यह अनुभव विज्ञान है, पूरण धनि जन सेव॥३७॥

अक्षर चेतन जड़ नहीं, यह है अक्षय नाम।
अकह आदि वाणी यही, प्रथम सृष्टि यह काम॥३८॥

पीछे से आकाश भय, गुण अकाश यहि नाहिं।
जन्म आद्य है याहि से, है जगतान्तर माहिं॥३९॥

ताके अन्तर पुरुष है, अगम अनन्त अपार।
धारण अक्षर को करे, एकपाद संसार॥४०॥

अक्षर से क्षर होत है, बाहर भीतर जोय।
बाहर में सब ग्रन्थ हैं, क्षरत शब्द में सोय॥४१॥

सब शब्दों के अन्तरे, सब वरणों में बास।
सर्ब वर्ण यहि से बने, होय उच्चारण तास॥४२॥

ररंकार ओंकार है, सोहं शक्ती जान।
एक निरश्जन शब्द है, पांच शब्द यह मान॥४३॥

जड़ चेतन मिश्रित बनै, पाँचो शब्द समान।
ब्रह्म ब्रह्माण्डी कहत हैं, सन्तन अन्तर ज्ञान॥४४॥

बाहर जेते वर्ण हैं, अक्षर सब में जान।
चेतन मिश्रित शब्द हैं, जड़ चेतन मिलि मान॥४५॥

प्रकृति सम्बन्धी शब्द जो, पश्चभूत से होय।
व्यापक कारण नाहिं है, जड़ व शब्द हैं सोय॥४६॥

परमाणू के योग से, मह मण्डल आकाश।
अक्षर कम्प से होत है, सृष्टि सकल अवकाश॥२८॥

व्योम व मन का योनि है, व्यापक अक्षर व्योम।
व्योम से वायू होत है, प्राण सजीवन सोम॥२९॥

योगाभ्यास रत भेद में, प्राण लीन आकाश।
नि:श्वाँस सुषमन रहे, नहिं निष्पन्द प्रकाश॥३०॥

योग विहंग विधान से, मन निज कारण लीन।
अक्षर की उपलब्धि में, मन कर रूप न भीन॥३१॥

कारण में कारज मिले, छुटे जगत व्यवपार।
आत्म शुद्ध स्वच्छन्द है, निज गति विमल सम्हार॥३२॥

प्राण प्रथमहीं लीन है, पीछे मन भय लीन।
प्राण लीन पश्चात भी, सुक्षम मन रह झीन॥३३॥

आगे बढ़ विज्ञान में, मन भी भय निर्मूल।
अमन सन्त शान्ती मिले, गये जगत भय शूल॥३४॥

प्रथम अवस्था योग की, मन व प्राण एक साथ।
प्राण लीन मन लीन है, जागे सुरति सनाथ॥३५॥

अब तो चेतन शुद्ध है, चेतन सुरति सम्हार।
सुरति दिव्य नीरति बनी, मिल सुख सिन्धु दुवार॥३६॥

सच्चिदानन्द स्वरूप है, अन्तर्यामी देव।

सन्त रूप सद्गुरु मिलै, शब्द के द्वार लखाय।
मैं बालक नासमझ था, महिमा समझ न पाय।।४७।।

वृत्तिकूट मम धाम पर, सद्गुरु दर्शन दीन।
मैं अज्ञान अबोध में, चरण पकड़ि नहिं लीन।।४८।।

मूर्द्धन में मन सुरति है, शुद्ध सुरति द्यौ धाम।
अगम अगोचर पन्थ में, निरति निरन्तर नाम।।४९।।

तन थिर कर मन पवन थिर, सुरति निरति करु थीर।
नि:तत्व नि:शब्द का, अनुभव सो मति धीर।।५०।।

तन मन थिर अरु पवन थिर, सुरति निरति थिर जान।
पर पुरुषारत याहि में, परम गती यह मान।।५१।।

पहले अक्षर प्राप्त कर, अक्षर अक्षर आव।
नि:अक्षर परिपूर्ण में, अनुभव मता लाव।।५२।।

तार निरन्तर एक बल, चढ़ गुरुगम पर धीर।
सुक्षम से सुक्षम बनो, सन्त मता गम्भीर।।५३।।

गुरु विधान मन पवन पर, विजयी हो वर सन्त।
गगन मण्डल में घर करो, संसृत दुख जग अन्त।।५४।।

गगन मण्डल में घर करे, सहज शान्ति सुख सन्त।
सुख सागर यह धाम है, बारह मास वसन्त।।५५।।

विमल परम परकाश है, द्वार के अन्तर माहिं।
वही प्रभो का धाम है, सन्त समाधी जाहिं।।२८।।

मकर तार के द्वार में, निरखो परखो नाम।
इंगल पिंगल निरुवार के, सुरति जोर सत्य नाम।।२९।।

सुरति शब्द में जोरते, खूले गगन किवार।
जगमग जगमग हो रहा, परम पुरुष दरबार।।३०।।

सुक्ष्म धार सुख सिन्धु का, सोत आत्म उर गात।
पकड़ शब्द डोरी वही, सुरति अमी नद्द जात।।३१।।

उसी शब्द के धार के, अन्तर गत में जान।
मकर तार डोरी लगी, धारक जीव जहान।।३२।।

शब्द डोर सुख सिन्धु का, झूलन पावे कोय।
भागवान सो हँस है, कृत्कृत्य सो होय।।३३।।

चढ़त शब्द की धार में, आतम झूलत जाय।
रोम रोम रस भीनता, उर आनन्द भराय।।३४।।

सूरति तो मछली बनी, शब्द धार धर जाय।
सोत में झूलन झूलती, सागर जाय समाय।।३५।।

केवल धाम स्मरण नहिं, अनुभव शब्द विधान।
सद्गुरु कृपा से पाइये, परम पुरुष निरवान।।३६।।

अन्वेषण कर शब्द का, शब्दहिं परखो आय।

जीते मरता जो जना, भक्ति परम विज्ञान॥०९॥

इंगला पिंगला सुष्मना, योग युक्ति सम कीन।
नाक पृष्ट मैं आरुहम्, स्वर व धाम सुख लीन॥१०॥

मन व प्राण एक साथ में, राखो अन्तर भेद।
मन व पवन पृथक रहे, सुरति अर्ध मुख खेद॥११॥

दिव मण्डल के गम्य में, नाका पार निवास।
टलो न पल भर धाम से , यह रहस्य अभ्यास॥१२॥

मन व पवन को पलटि कर, सीधा कमल अनाम।
स्वःमण्डल अनुभव करूँ, काकुत चेत अनाम॥१३॥

कमल फूल गर्जत गगन, अमीय वृष्टि घनघोर।
अन्तर खेल रहस्य का, नाचत चेतन मोर॥१४॥

कुण्डलिनी स्थिर रहे , डंड ऊपरी भाग।
फन सो सुषमन रन्ध्र को, बन्द किये रह लाग॥१५॥

योग युक्ति से सर्पिणी, सुषमन मुख टल जाय।
ऊर्ध्व द्वार नभ का खुले, सुषमन तार समाय॥१६॥

मकर तार सुषमन लगी, उलटे गगन दुआर।
दिव मण्डल झूलन परे, धारक सन्धि अधार॥१७॥

अनुभव सहज उत्थान में, धर अधरा के पार।
आसन अगम सुवास है , स्थिर अचल विचार॥१८॥

सहज सहज मेला बने, सहज सहज निज देश॥१०॥

योग कहत हैं जोड़ को , योग कहत हैं सन्धि।
योग रहस्य उपाय में, जीव ब्रह्म की सन्धि॥११॥

शब्द सुरति मेला भया, बैठा चेतन धाम।
मन माया जग छूटिया, रूप रूप भय नाम॥१२॥

सहज सनातन योग है, सहज निरन्तर योग।
नहिं वियोग तिन काल में, सहज योग है योग॥१३॥

गो मन बाँधे योग से, चक्र न साधे योग।
ग्रन्थिन भिद्यन्ती सबे, अन्तर साधन योग॥१४॥

इंगला पिगंला सुष्मना, तीनों को कर सम।
मन व पवन एक संग रहे, सहज योग वे गम॥१५॥

सुरति थके नीरति थके, शेष कम्प होय आय।
शेष कम्प सब तनु खसे, मेरु कम्प तब आय॥१६॥

मेरु कम्प सागर मिला, मायू पाट अपार।
दशो दिशा परिपूर्ण है, सहज योग तत्त्व सार॥१७॥

लौ लागी अन्तर कशा, अन्तर अन्तर आय।
उठे फुहारा सोम का, अमृत पियत अघाय॥१८॥

अनहद बाजा बाजता, अक्षर शोर मचाय।
अमिय बुन्द झरि लाइया, गगन महल घहराय॥१९॥

प्रथमे सोधे पिण्ड को, फिर पीछे ब्रह्माण्ड।

४.२ चतुर्थ मण्डल, द्वितीय अध्याय (सहज योग)

ब्रह्मविद्या परकाश में, चले योग पर योग।
योग योग योगे चला, योगहिं योग वियोग।।०१।।

योग योग ज्ञातब्य है, योगहिं योग अधार।
चक्र बन्ध गति ऊर्ध्व को, योग योग पैठार।।०२।।

योगी योग विधान से, अष्ट चक्र फहराय।
सन्धि ग्रन्थि परिचय भई , योगहिं योग समाय।।०३।।

योग से बाँध पताल को, उलटा फेर अकाश।
यह रहस्य गति योग की, योगहिं योग विकाश।।०४।।

मन व पवन को बाँधि के, कारण कीन विलीन।
यह महिमा है योग की, सद्गुरु शरण अधीन।।०५।।

अर्ध की धारा ऊर्ध्व में, सदा रहे परवाह।
तिन पचीस अरु पाँच को, पकड़ि लगावे वाह।।०६।।

योग योग सब कोइ कहे, योग न जाना कोय।
अर्ध धार ऊरध चले, योग कहावे सोय।।०७।।

मनमथ मन को मार कर, अमृत गंग नहाय।
कसमल छूटे जीव का, सद्गुरु योग सहाय।।०८।।

प्रकृति वियोगे ज्ञान है , कशा योग है योग।
जिवन्मुक्ति वर पाइये, यही योग पर योग।।०९।।

सहज योग पर श्रेष्ठ है, सद्गुरु मम आदेश।

निरति निरन्तर प्रेम है, व्यवधान नहिं लाग॥६५॥

शब्द अखण्ड समाधि में, ज्ञान आनन्द स्वरूप।
हँस चेत संकल्प है, टुटे समाधि अनूप॥६६॥

संयम देश प्रकृति है, जड़ समाधि मय सोय।
वास्तव में वह कुछ नहीं, बन्धन माया सोय॥६७॥

मन ही मन में धारणा, मन ही मन में ध्यान।
मन ही मना समाधि है , यह धोखा भ्रम जान॥६८॥

शब्द के धारक शक्ति को, मकर तार कह सोय।
हँस पुरुष लागी रहे, यह गति जान न कोय॥६९॥

सुरति निरोधे आप में, सकल ज्ञान निज आय।
ध्यान जाहि मन रूप को, माया ब्रह्म समाय॥७०॥

करत करत अभ्यास से, दशा सुष्मना आय।
निःश्वाँसा में गम करे, अनुभव शब्द लखाय॥७१॥

सार शब्द की साधना, सर्व साधना होय।
मूल नीर मुख अन दिये, सर्व पालना होय॥७२॥

एक साधना पूर्ण है, तब दूसर तुम साध।
शक्ति बटे दो भाव में, बाढ़त बहुत उपाधि॥७३॥

शनै शनै दुर देश में, शनै पर्वत लांघ।
बुन्द बुन्द सागर भरे, अक्षर अक्षर साध॥७४॥

व्यक्त रूप में नहीं बने, यह अनुभव तत्त्व ज्ञान॥३७॥

अन्तरंग साधन चले, अन्तर तर महँ ध्यान।
शुद्ध रूप से ध्यान है, जड़ से नहिं परमान॥३८॥

अमत सन्त सन्मार्ग में, चेतन साधन होय।
ज्ञान से ध्यान समाधि है, जड़ साधन नहिं कोय॥३९॥

गुणन ज्ञान आनन्द वे, ध्याता में ध्येय आय।
फल स्वरूप है ध्यान का, सहज समाधी पाय॥४०॥

स्थिर शब्द अधार में, सच्चिदानन्द स्वरूप।
जिवन्मुक्ति पद पावइ, गये त्रिविध दुख रूप॥४१॥

राग द्वेष से रहित है, मन माया कर त्याग।
योगाभ्यास साधन चले, सद्गुरु पद अनुराग॥४२॥

नाड़ी अन्तर सुषमना, दशम द्वार गइ पार।
हृदय सुषमना वास है, आतम शब्द अधार॥४३॥

नासापुट वायू चले, इंगला पिंगला धार।
योगी में सुषमन खुले, युक्ति कुण्डली मार॥४४॥

औधै कुम्भ न जल भरे, भरत ऊर्ध्व मुख होय।
गगन उड़े नहिं एक पग, त्याग भूमि उड़ सोय॥४५॥

चकमक पत्थरी सूर्य्य मुख, अगिन बरे तेहि आय।
पृष्ठ भानु धधके नहीं, तिमि तत्त्व ज्ञान जगाय॥४६॥

नहीं पिण्ड ब्रह्माण्ड है, नहिं अनहद हद जान।
मुद्रा कुम्भक है नहीं, डोरि विहंगम ज्ञान॥१९॥

कोटि योग जप तप करें, कोटि यज्ञ व्रत दान।
क्षण अनुभव निःशब्द का, तेहि सम कर्म न आन॥२०॥

चीरकाल कुम्भक करे, तब सुषमन परवाह।
अल्पकाल रत भेद में, सुषमन पर गम आह॥२१॥

अन्तरंग साधन चले, नहिं साधन बहिरंग।
सहज योग है सन्त मत, चढ़त शब्द कर रंग॥२२॥

चारों युग में सन्त हैं, चारों युग भगवन्त।
सन्तन समय समान है, महिमा भाव अनन्त॥२३॥

योग सिद्ध कलि अल्प में, जो पूरा गुरु होय।
अधिकारी गुरु भक्त है, यह प्रत्येक्ष है सोय॥२४॥

अनधिकार को नहिं मिलै, नाहिं सभा उपदेश।
ब्रह्मविद्या पर तत्त्व है, अज गुरु यह आदेश॥२५॥

ब्रह्मविद्या परकाश में, मोह तिमिर तम जाय।
देव सदाफल प्रभु दया, तबहिं सन्त मत पाय॥२६॥

॥ इति स्वर्वेद द्वितीय मण्डल, नवम अध्याय समाप्त ॥

अनन्त सृष्टि स्थिर रहै , महिमा अमित अखण्ड॥५६॥

जैसे जल के बुन्द को, कर छूते लग जाय।
अविद्या ब्रह्म ज्ञान से, त्यों विलीन होय जाय॥५७॥

तप्त लोह के पिण्ड सम, भोग सकल जग जान।
मुख बाये मुख जरहिंगे, कष्ट विविध अज्ञान॥५८॥

रोटी देखे श्वान जिमि, आवे ताहि समीप।
जीव भोग पर लोभ से, आवे देह महीप॥५९॥

पक्षी अपने घोसले, निकल गगन उड़ि जाय।
त्यों जिव जीर्ण शरीर से, छोड़ आप चल जाय॥६०॥

आतम प्राण अपान से, चलत देह वे पाल।
अक्षर दो निज शक्ति से, द्यौ पृथिवी संचाल॥६१॥

जैसे एक मियान में, दोय बील कर भाव।
साधन दो एक मूल में, करता कर्म प्रभाव॥६२॥

एक पाद से व्यापता, पग जूती परमान।
कारण कारज प्रकृति का, तीन पाद निरवान॥६३॥

सर्व काल सब देश में, ऋद्धि सिद्धि कर सेव।
आगे पीछे फिरतु है, प्रभु भक्तन सुख देव॥६४॥

अतिथि की सेवा कीजिये, उत्तम मध्यम नीच।
जस जैसा सेवा करे, होय अनादर मीच॥६५॥

शब्द निंश्जन चाँचरी, मुद्रा कर अभ्यास।
यह ध्वन्यात्मक जानिये, शब्द क्षरत यह भास॥६२॥

त्रिकुटी ओम जो शब्द है, मुद्रा भूचरि ज्ञान।
ध्वन्यात्मक यह शब्द है, त्रिकुटी प्रकटे ज्ञान॥६३॥

प्रकट शब्द सोहं मिलै, मुद्र अगोचरि साध।

यह ध्वन्यात्मक शब्द है, परिचय पावे साध॥६४॥

डनमनि मुद्रा साधने, शक्ति शब्द जो आय।
यह ध्वन्यात्मक शब्द है, जड़ आश्रित गति पाय॥६५॥

मुद्रा साधन खेचरी, ररंकार ध्वनि होय।
सो ध्वन्यात्मक जानिये, सत्य तत्त्व नहिं सोय॥६६॥

ताल डंफ मुरली विणा, झाँझ मृदंग सोहाय।
किंकिण स्वर सहनाइया, सिंह गर्ज्जनि घहराय॥६७॥

अनहद वे ध्वन्यात्मक, क्षर माया के काज।
अभ्यासी यह सुन पड़ें, जग जीवन नहिं काज॥६८॥

बोल से सारे वर्ण है, सर्व शब्द बन ताहि।
सन्त विवेकी जानहीं, बोल कवन तत्त्व माहिं॥६९॥

अनुभवात्मक शब्द जग, गुप्त गुहा के माहिं।
महापुरुष कोइ जानहीं, दुर्लभ वेदन माहिं॥७०॥

अखिल चक्र ब्रह्माण्ड जो, चल सत्ता परभाव।
रूप रंग प्राकृत नहीं, ढ़ंग सो अलग स्वभाव॥७१॥

श्वेत हरा पीला नहीं, काला नहिं वह लाल।
नाम रूप में जो दिशे, सो सब खावे काल॥७२॥

ज्योति पुंज परकाश है, एक अंग मह जाहि।
अणू तेज में तेज सब, रबि शशि अग्निहिं ताहि॥७३॥

ऊर्ध्व व अर्ध रहस्य को, भीतर बाहर ज्ञान।
दृश्य अलौकिक तत्त्व है , समझत सन्त सुजान॥१५॥

महिमा परम विराज की, खानि सर्व विज्ञान।
ऊर्ध्व असीम अनन्त है, अर्ध में सृष्टि महान॥१६॥

अर्ध ऊर्ध्व के बीच में, सर्व ज्ञान विज्ञान।
योगिन का यह धाम है, पहुँचे हँस महान॥१७॥

एक पाद में सृष्टि है, अमृत है तिन पाद।
बद्ध मुक्त अस्थान है, अनुभव गति गमवाद॥१८॥

अर्ध ऊर्ध्व के वाद में, अज गुरु का बहु सैन।
भेदी भेद विकाश में, चैन गैन उर ऐन॥१९॥

अर्ध ऊर्ध्व के विषय को, बहु विधि सद्गुरु गाय।
अनुभव गति कोइ एक है, सो अमृत पद पाय॥२०॥

ऊर्ध्व मुक्ति अध सृष्टि है, बीच विराजत धाम।
बिना नेव का महल है, दशो दिशा सित धाम॥२१॥

कोटि कंगुरे झलमले, ज्योतीय अमित अपार।
शोभा अद्भुत को कहे, धाम विराज श्रृंगार॥२२॥

शोभा अकथ अवाच्य है , श्वेत ध्वजा फहराय।
द्वारे नौवत्त बाजती, शून्य शिखर घहराय॥२३॥

सहज सिहाँसन पुरुष का, सन्तन कर दरवार।
सुरति सो चँवर डोलावती, दशो दिशा सुख सार॥२४॥

धन्य धन्य गुरुदेव हैं, धन्य धन्य सोइ हँस।
आसन धाम विराज में, अमर भये सोइ वंश॥२५॥

पद विराज सब शून्य का, वीज वृक्ष विस्तार।
देव सदाफल गुरु कृपा, दरशत खुलत दुवार॥२६॥

॥ इति स्वर्वेद चतुर्थ मण्डल, एकादश अध्याय समाप्त ॥

चित्तवृत्ति अन्तर करो, कारण मूल विलीन।
जड़ से अलग है चेतना, शुद्ध सुरति भय मीन॥२६॥

गुरु विधान गुरु युक्ति से, अष्ट चक्र फहराय।
योग कला परवीन है, योगी शब्द समाय॥२७॥

मन व पवन को पकड़ कर, योग युक्ति से बाँध।
चेतन चेतन योग है, सुरति निरति रत साध॥२८॥

सहज योग योगी करे, अन्तर सन्धि विवेक।
सुरति शब्द मेला भया, सन्त परम गुरु टेक॥२९॥

नव द्वारा को बन्दकर, खोलो दसवा द्वार।
खिरकी एकादश खुली, अग्र पुरुष दरबार॥३०॥

सहज योग सब श्रेष्ठ है, शब्द सुरति गम योग।
सद्‌गुरु कृपा से पाइये, अन्तर अनुभव भोग॥३१॥

नियमित दोनों काल में, ब्राह्ममुहुर्त्त सुधार।
योगाभ्यास दृढ़ हो चले, सब अंग पूर्ण सवाँर॥३२॥

शनै शनै अभ्यास को, आगे लेय बढ़ाय।
मन माया को मारि के, अन्तर पैठे धाय॥३३॥

अजपा मध्ये शब्द का, पारख बहु विधि होय।
अन्तर परम सनेह में, शब्द सुरति लव होय॥३४॥

सन्तन सहज समाधि है, सहज योग सुखसार।
चलत फिरत छूटे नहीं, क्षण क्षण पल पल वार॥३५॥

निरगुण पाँच पचीस को, अन्तर करण सम्हार।
अन्तर से अन्तर गुहा, क्षर अक्षर तर सार॥३६॥

पिण्ड ब्रह्माण्ड सब सन्धि को, मरमी योगी जान।

आश्रम देश विविक्त में, गुहा शुभ्र जल ठाम।
निर्जन दृश्य अरण्य है, योगाभ्यास सुख धाम॥०५॥

शीतल जल झरना चले, पास गुहा गिरि धाम।
उपवन नदी प्रवाह है, योगाभ्यास रत नाम॥०६॥

जल वायू अनकूल है, नद प्रमोद वनवास।
सहज कन्दरा वा बनी, तहँ चल योग सुपास॥०७॥

योगी एक एकान्त में, दृढ़ आसन आसीन।
अन्तर अगम सनेह है, शब्द सु रति लवलीन॥०८॥

सहज पलहथी मार कर, वा सिद्धासन साध।

स्वस्तिक पद्मासन लगे, सुख शव आसन राध॥०९॥

स्थिर सुख आसन रहे, साधन योग विधान।
मन प्रसन्न सुख शान्ति है, योग है सहज समान॥१०॥

निद्रा भोजन नियम से , नहिं न्यूनाधिक होय।
समय बद्ध साधन चले, संग साथ नहिं कोय॥११॥

अशन शुद्ध प्रिय सात्त्विकी, हितकर शुभ गुण खान।
दूध फूल फल सुलभ है, कन्दमूल रस जान॥१२॥

गेहूँ चावल मूँग है , लौकी परवर साग।
योगी का यह पथ्य है, ब्राह्मी नीम अनाग॥१३॥

रूखा सूखा अशन है, भिंगा चना जलपान।
भूजा अन्न अपथ्य है, तेल मसाल अपान॥१४॥

मद्य मांस मल चरस जो, गंजा भाँग अफीम।
तम्बाकू मय त्याज्य है, योग रहस्य असीम॥१५॥

प्रथम कमल श्री गुरु चरण, वन्दन बारम्बार।
आसित आसन ध्याइये, गुरु मूरति शुभ सार॥१६॥

गुरु स्वरूप मंगल सुभग, विभ्रत भ्राज विराज।
फिर साधननिज योग का,सब विधि सुखद सुसाज॥१७॥

सुरति फँसी संसार में, ता कहँ लेहु समेट।
स्थिर बाँधो लक्ष्य में, त्याग सकल जग ऐंट॥ १८॥

संचित पाप समूल सब, सुमिरन भजन संहार।
यह अनुभव बहु सन्त का, जन्म मरण दुख पार।।२८।।

कुण्डलिनी द्वारा तजे, खुलत सुष्मना धार।
अन्तर गर गर शब्द हो, यह लक्षण शुभ सार।।२९।।

इंगला पिंगला काल कुछ, भेद बन्द न्युनाधि।
तबहीं सुष्मन खुलति है, योग रहस्य सुसाधि।।३०।।

कुण्डलिनी के टलत में, शेष कम्प भू आय।
धरणी धसि नीचे चली, मेरु कम्प थहराय।।३१।।

मेरु कम्प के होत ही, सागर शब्द अपार।
दशो दिशा मोती झरे, हीरा लाल सँवार।।३२।।

शक्ति महामन्दिर लगे, होवे ऊर्ध्व खिंचाव।
झुले हिंडोला प्रेम का, अमृत गंग नहाव।।३३।।

सद्गुरु छाया रहत है, प्रकट गुप्त दोय भाव।
देव सदाफल हंस वे, सहज अमर घर पाव।।३४।।

।। इति स्वर्वेद तृतीय मण्डल, तृतीय अध्याय समाप्त।।

जिमि शिर ऊपर गागरी, सुरति धरे पनिहारि।

तिमि गुरु भेदी सन्तजन, शब्द में सुरति सम्हारि॥४०॥

सहज पलहथी मार कर, सहजयोग को साध।
योग युक्ति गुरु ज्ञान में, मन व पवन को बाँध॥४१॥

निद्धिवान निधि भूमि को, भूलत कवहूँ नाहिं।
विरही विरह विवेक में, सुरति रहे गम माहिं॥४२॥

अर्ध प्रवाही नीर में, मीन चढ़े जल लीन।
तिमि सुबोध निज धार में, सुरति गगन रस लीन॥४३॥

अलल व सहज स्वभाव में, मध्य गगन कर वास।
तैसे सन्त स्वभाव में, गुरुगम पर सह बास॥४४॥

महि चकोर शशि गगन में, दृष्टि टकटकी लाग।
त्यों रहनी गुरु सन्त की, सुरति निरन्तर जाग॥४५॥

मृगा ठाम के ठाम है, दूर मधुर प्रिय नाद।
सुरति लगी तन सुधि नहीं, त्यों भेदी तत्त्व वाद॥४६॥

अंग अंग में योग है, चक्र चक्र में योग।
कारण कारज योग है, सृष्टि में परलय योग॥४७॥

पिण्ड ब्रह्माण्ड में योग है, धर अधरा में योग।
शून्य शून्य में योग है, सुरति शब्द में योग॥४८॥

अर्ध ऊर्ध्व में योग है, जीव ब्रह्म में योग।
यह रहस्य अति सुक्ष्म है, तत्त्व तत्त्व में योग॥४९॥

ब्रह्मविद्या दो रूप है, ज्ञान योग यह जान।

दोहा

कुण्डलिनी अरु सुष्मना, गगन द्वार है साथ।
अन्तर शीर घुमावती, मकरतार गई माथ॥०९॥

छन्द

शिर प्राण चेतन हृदय खींचे , भाव शुभ लक्षण मिले।
महापथ सुषमन खुले , गति कम्प दोनों तन हिले॥०१॥

हरास जड़न विकास चेतन, गगन आसन बाँधियो।
मार्ग पूरण गुरु दया मय, योग अनुभव साधियो॥०२॥

सोरठा

मनमथ सुषमन नाहिं, मन के मण्डल फँसि रहे।
सुषमन बाधक माहिं, जीव अराधन जगत में॥०२॥

दोहा

पाला गु रुवर दावते , हलका ऊपर जाय।
मनन विवेचन साधना, चेतन चेतन पाय॥१०॥

चौपाई

शब्दाकार वृत्ति जब आवे।
खुले सुष्मना गगन समावे॥०१॥
दो मुख धार सुष्मना नाहीं।
चढ़त गिरत यह जग के माहीं॥०२॥
संस्कार गुरु कृपा अपारा।
खुले सुष्मना गय संसारा॥०३॥
इंगला पिंगला प्राकृत आवे।
वर अध्यात्म सुष्मना पावे॥०४॥
स्वीकृत जीव शुद्ध अधिकारी।
खुले सुष्मना मंगलचारी॥०५॥
शुद्ध हँस एकाग्र प्रवाह॥
अन्तर वृत्ति सुष्मना आहा॥०६॥
उन्नति सहज विशेष में भेदा।

शब्दफूट अन्तर गया, बाहर भीतर एक।
सर्व पूर्ण पूरण कला, अविनाशी गुरु टेक।।०५।।

चौपाई

अगम देश अक्षरातीता।
अकथ अवाच्य अनातम जीता।।०१।।
अनुभव गम्य परम कल्याना।
सुरति निरति निःशब्द समाना।।०२।।
गुरु प्रकाशमय रह वहि देशा।
देह की सुधि नहिं रह अनहोसा।।०३।।
सब अच्छा है का कहि देशा।
आनन्द का घर पावउ वेसा।।०४।।
सद्गुरु अन्तर गुप्त खिंचावा।
आकर्षण चहुँ दिशि परभावा।।०५।।
शुद्ध हँस वहि शक्ति सम्बन्धा।
खींचे निज दिशि समझन अन्धा।।०६।।
सद्गुरु दिशि सुषमन क्रिय जावे।
घुमतहिं साधक आगे आवे।।०७।।
खुलत द्वार मुख बात न आवे।
चन्द्र सूर्य दोउ बन्द रहावे।।०८।।
ज्ञान देह की सुधि रह ताही।
नहिं विदेह सुषमन खुल जाही।।०९।।
दोउ स्वर बन्द विकल होइ जावे।
गिर सद्गुरु पद शान्ती पावे।।१०।।

छन्द

विश्वास पूरण गुरु दयामय।
सर्व साधन सिद्ध है।।

६.१ षष्ठ मण्डल , प्रथम अध्याय

(दोहा)

प्रथम भक्ति गुरु देव की, मन वच काया साध।
सहज ज्ञान वैराग है, सब गुण साधन राध॥०१॥

उत्कट श्रद्धा गुरु चरण, खुले सुष्मना द्वार।
यह प्रत्यक्ष परमाण है, बहु भेदी जन पार॥०२॥

चौपाई

इंगला पिंगला सुष्मन नारी।
संशोधन करु युक्ति विचारी॥०१॥
सुष्मन खुले युक्ति गुरु भेदा।
गुरु मूरति बस गगन अछेदा॥०२॥
खुले सुष्मना साधन होई।
सहज सहज निःशब्द समोई॥०३॥
बिना सुष्मना साधन दम्भा।
भटकि रहे जग प्राकृत रम्भा॥०४॥
शुभ सूचक यह लक्षण आवे।
सब झोरन अरु घूमन पावे॥०५॥
गुरु गम पर सद्गुरु छवि ध्याना।
चेतन दृष्टि निरन्तर साना॥०६॥
आभा बरे सदा गुरु रूपा।
समय-समय परअधिकअनूपा॥०७॥
गुरु मूरति पूजा करु ध्याना।
यहि सम शान्तिउपाय नआना॥०८॥
ध्यान करत अन्तर गम चूपा।

सुमिरन सुरति सम्हारिये, बाहर के पट देह।
अन्तर के पट खोलि कर, सुमिरो पुरुष विदेह॥०९॥

मन व पवन को पकड़ि लो, बैठो उत्तर द्वार।
तब सुमिरो निज देव को, महिमा जासु अपार॥१०॥

महत रूप गुण कर्म का, सुमिरो सुरति लगाय।
जग अन्धियारा मिट गया, ज्योतिय दिव्य जगाय॥११॥

कामी चिन्तन काम का, ज्ञानी सुमिरन नाम।
धेनु वत्स चिन्तन करे, त्यो सुमिरो सत्यनाम॥१२॥

नीधिवान निधि देश को, भूलन कबहूँ नाहिं।
तिमि सुमिरन हरि की करे,पलपल क्षण क्षण माहि॥१३॥

जागत सोवत नाम में, ऊठत बैठत नाम।
चलत फिरत रह नाम में, करत धरत रह नाम॥१४॥

अन्तर स्थिर नाम में, बाहर तन का काम।
पनिहारी शिर गागरी, त्यों अविचल रह नाम॥१५॥

विरहिन विरह मिमोर में, चैन नहीं दिन याम।
त्यों हरि अन्तर उर वसे, भाव न दूसर काम॥१६॥

सच्ची सुमिरन जानिये, सुधि नहीं रहे शरीर।
स्थिर अन्तर ठाम में, तिल न टरे मति धीर॥१७॥

चारों फल पीछे फिरे, उदासीन जन सोय।।३७।।

मुक्ति भक्ति मिल नाम से, महिमा नाम महान।
सन्तन नाम प्रताप को, जानत होत महान।।३८।।

जिन जाना सत्यनाम को, अन्य कर्म नहिं काम।
हीरा गांठी बाँधिया, कौड़ी से क्या काम।।३९।।

जहाँ नाम तहँ धाम है, सुख सम्पति सब आय।
अनइच्छित पीछे फिरे, भक्तन चाह न पाय।।४०।।

असम्भव सम्भव भया, नाम महान प्रताप।
भक्त वसी भगवान है, फिर क्या कर्म प्रलाप।।४१।।

मृत्युंजय भय नाम से, जिवन्मुक्त बहु सन्त।
महाप्रलय में भी रहें, महिमा नाम अनन्त।।४२।।

परम रत्न सत्यनाम है, मरमी सद्गुरु सन्त।
भेदहीन जग गुरु नहीं, एक गुरु भगवन्त।।४३।।

नाम प्रणव वह है नहीं, रारा ररं नाहि।
ओहं सोहं क्षर बने, राम नाम सोइ नाहि।।४४।।

नाम न क्षर बावन विषे, नाम लेख नहिं आय।
नाम न वचन विलास में, नाम रूप नहिं पाय।।४५।।

द्रष्टा दर्शन दृश्य का, सो माया संसार।
चेतन देखे नाम को, वाणी जाप न सार।।४६।।

नाम रतन सूरति लगी, निरख परख मणि सार॥०९॥

दशो दिशा परिपूर्ण है, अन्तर शब्द अधार।
सुरति उलटि धारक लगी, भक्ति विवेक सम्हार॥१०॥

अखिल विश्व व्यापक रहे, नियम करे संसार।
चेतन अनुभव शब्द है, शब्द में सुरति सम्हार॥११॥

क्षर अक्षर के अन्तरे, नि:अक्षर परकाश।
उलटि शब्द सुरति लगी, भक्ति विमल परकाश॥१२॥

देह आत्म झूलत रहे, जेहि नि:शब्द अधार।
योग युक्ति अभ्यास है, भक्ति सोई सुखसार॥१३॥

रोम रोम नि:तत्त्व है, परकाशित संसार।
भेदयुक्ति अभ्यास है, भक्ति महातत्व सार॥१४॥

सुरति टले नहिं शब्द से, क्षणभर नाहिं वियोग।
चलत फिरत बैठत उठत, सदा लगन है योग॥१५॥

अद्भुत शब्द प्रकाश में, चेतन जगमग होय।
तब यह सच्ची भक्ति है, जिवन सफल भव सोय॥१६॥

क्षण क्षण पल पल शब्द में, शब्द विगोय न जाय।
अन्तर अविचल प्रेम है, रोम रोम दरशाय॥१७॥

भय असार संसार सब, सारशब्द रह सार।
अहिमणि जिवन प्रकाश है, जान भक्ति सोइ सार॥१८॥

षट् सत इक्कीस सहस हो, अजपा निशिदिन जोय।
श्वाँसोश्वाँस अभ्यास में, पलक न धोखा होय॥१४५॥

मन सवार पल पल रहो, कसिय विचार लगाम।
छूटि भागि बहु दुर चलै, फेरि तेहि लावोकाम॥१४६॥

निजाभ्यास ज्यों ज्यों बढ़ै, त्यों त्यों थिर मन होय।
आत्मिक बल दिनदिन बढ़ै,कृशित गात द्युति होय॥१४७॥

मधुर मधुर अनहद ध्वनि, उठत सदा दिन रैन।
सुनि सुनि उमगत प्रेम उर, शांति वृद्धि चित चैन॥१४८॥

वृत्ति शान्ति मन शान्त हो, शुद्ध ज्ञान होय जाय।
आत्मिक बल के वर्द्धते, इन्द्रिय कर बल आय॥१४९॥

मन निग्रह साधन कहा, मनिहैं विरही जीव।
वाचक ज्ञानी विषय रत, स्वयं बनैंगे सीव॥१५०॥

"मुमुक्षुता"

त्रिगुण भूत थूलादि तनु, पंचकोश योग माहिं।
यह बन्धन तें कब छुटौं, कह मुमुक्षुता ताहिं॥१५१॥

मैं वासी सतलोक के, परेउ काल के फन्द।
तीन लोक महँ राखिया, श्रुति मुक्तिन सुखचन्द॥१५२॥

ताहि बन्ध कब छूटिहौं, कब जैहों निज देश।
पुनरागमन न होइहैं, भवजन्य मिटे कलेश॥१५३॥

अलल पक्षि गति जानिये, भुल वियोग सन्ताप।
पंचशून्य के पार जो, उर्ध मिलन चह आप॥१५४॥

दोहा

सत्य भूमि बैठक बने, सत असत्य कर ज्ञान।
आप्त पुरुष जग धन्य हैं, सर्व तत्व विज्ञान॥०२॥

चौपाई

दर्शन पुरुष टकटकी लागी।
अंतर लगन अन्त गति जागी॥०१॥
सत्ता धार प्रवाह मयूषा।
अविचल अमल अमान पियूषा॥०२॥
शशि चकोर की दशा समावे।
तन मन कर्म सकल बिसरावे॥०३॥
मृगा नाद की रहन अनूपा।
एक एक रह भाव स्वरूपा॥०४॥
इधर उधर अब झाँकी नाहीं।
धार निरन्तर अन्तर माहीं॥०५॥
धार अटूट चले प्रभु रूपा।
अर्ध उर्ध्व बिच तत्व अनूपा॥०६॥
मन अरु प्राण रहे निज देशा।
चेतन सुरति करे परवेशा॥०७॥
प्रेम बझा संसार के माहीं।
विविध संग मन भोग समाहीं॥०८॥
प्रेम जगत से भया उदासा।
अनुरागी रह केवल आशा॥०९॥
पूरण प्रेम एक में लागा।
माया मोह वीपदा भागा॥१०॥

दोहा

प्राण नहीं निष्प्राण सनेही।
चेतन अविगत नाम विदेही॥०६॥
कुम्भक बन्ध न एको लागे।
आपहि आप कुण्डली जागे॥०७॥
नित अनादि गुरु योग हमारा।
चारों युग महँ रह परचारा॥०८॥
खुले सुष्मना दशवाँ द्वारा।
गगन महल में भय पैठारा॥०९॥
योगी सत्य सत्य ही साधे।
सत्य कामना सत्य अराधे॥१०॥
सत्य संकल्प सत्य है देवा।
सत्य सत्य की माने सेवा॥११॥
महिमा महापन्थ मैं भाषा।
दुर्लभ योग सहज करि राखा॥१२॥
सुरति शब्द है योग हमारा।
अन्तर अन्तर है पैठारा॥१३॥
अनहद नाद तहाँ नहिं गावे।
अजपा अक्षर नहिं तहँ पावे॥१४॥
ज्योति अक्षरातीत अनामा।
चेतन लोक पुरुष कर धामा॥१५॥
विरही हंस पहुँच निज देशा।
जरा मरण भव मिटे कलेशा॥१६॥
अलल पक्षि की गति जब आवे।
उलटि गगन सत्य नाम समावे॥१७॥
योगी करे गगन में वासा।
योग कला पूजे सब आसा॥१८॥

दोहा

महापन्थ यह योग है, सहज श्वेत है धाम।
तेज पुंज सत्पुरुष है, तहँ हंसन विश्राम॥०४॥

६.३ षष्ठ मण्डल,तृतीय अध्याय(योग शिखा)

दोहा

योग योग सब कोइ कहे, योग न जाना कोय।
अर्ध धार ऊरध चलै , योग कहावे सोय॥०१॥

चौपाई

धरि पताल गति फिरत अकाशा।
अष्ट चक्र तब होय विकाशा॥०१॥
सम्पुट कमल फूल गुरु भेदा।
अर्ध उर्ध्व मुख अनुभव वेदा॥०२॥
शेष मेरु का कम्प थिराई।
मारि कुण्डली बाहर जाई॥०३॥
आकर्षित गुरु रूप विधाना।
योग कला नीपुण भगवाना॥०४॥
खूले दृष्टि गहागह होई।
शब्द महल बैठा जन सोई॥०५॥
सुरति निरति का मण्डल जाने।
चेतन चेतन अनुभव छाने॥०६॥
सुरति शब्द है योग अधारा।
अन्त रहस्य तत्व है सारा॥०७॥
शुद्ध रूप से योग विधाना।
गति विहंग चेतन गम ज्ञाना॥०८॥
सहज योग गुरु भेद बतावें।
क्षर अक्षर पर पुरुष लखावें॥०९॥
दशम द्वार पर ताड़ी लागी।
रहे निरन्तर चेतन जागी॥१०॥
सुषमन मकर तार धर ज्ञाना।
झुलत हिंडोला अन्तर ध्याना॥११।
झूलन झूले सन्त विवेकी।

दशम द्वार वर गुप्त है , मधुमत भेद विलास।
बिन सद्गुरु गम ना मिले , अनुभव अधर प्रकाश।।०८।।

चौपाई

सुषमन अधर धार परवाहा।
लीन अधर गति अगम अथाहा।।०१।।
कुम्भक की गति होय न जहवाँ।
सुरति सनेही पहुँचे तहवाँ।।०२।।
महिमा महा पन्थ ऋषि गावें।
वेद परम गुरुभेद लखावें।।०३।।
ब्रह्मविद्या के अन्दर भेदा।
है रहस्य अनुभव गम वेदा।।०४।।
दशम द्वार सुखमन गम पावे।
धर अधरा पर पुरुष समावे।।०५।।
प्रकृति अधार चलें सब पन्था।
मन अरु प्राण बुद्धि सब सन्था।।०६।।
भेद महापथ दुर्लभ ज्ञाना।
गति अध्यात्म अगम विज्ञाना।।०७।।
द्वैता द्वैत तर्क अनुसारा।
ज्ञान विशिष्टा बोध पसारा।।०८।।
शुद्धाद्वैत भाव मत गावें।
द्वैत अद्वैत दोनों बतलावें।।०९।।

दोहा

यह सब बुद्धि बिडम्बना, सत्य मार्ग नहिं कोय।
चेतन पर पथ गमन है, अनुभव शब्द समोय।।०९।।

चौपाई

सुरति सम्हार आप तजि आपा।
मिल विवेक सद्गुरु परतापा॥०९॥

दोहा

आत्म ज्ञान जब उदय भय, सुधि भय आपन देश।
भेद डोरि सद्गुरु दिया, गति सुषमन परवेश॥०७॥

चौपाई

त्रिवेणी संगम स्नाना।
सर्व कर्म अघ ताहि नशाना॥०१॥
सर्व धाम सब तीर्थ नहावे।
तिरवेणी बिन स्वच्छ न आवे॥०२॥
पंचम धाम शुद्ध कर गाता।
शुद्ध रूप गुण कर्म विधाता॥०३॥
संगम पर ऋषि संयम करहीं।
ज्ञान शुद्ध बल अन्तर धरहीं॥०४॥
इंगला पिंगला सुषमन नारी।
गंग जमुन सरस्वति सुखकारी॥०५॥
तीन सन्धि तहँ संगम भयऊ।
त्रिवेणी निरमल जल बहेऊ॥०६॥
विमल प्रकाश अमी जल धारा।
शीतल शान्ति भँवर गुंजारा॥०७॥
मज्जन से हो दिव्य स्वरूपा।
गय प्राकृत तन कलुष कुरूपा॥०८॥
वर अध्यात्म धाम तिरवेनी।
मन्दिर द्वार सु गति पर सेनी॥०९॥

दोहा

किंकिण स्वर सहनाइया, सिंह गर्जन घहराय।
सुनिसुनि मन उमंगै चढ़ै,झिलमिल ज्योति दिखाय।२०९॥

भ्रमर गुफा सोहं बसै, ररंकार दस द्वार।
नयन निरंजन रूप है, त्रिकुटी है ओंकार॥२१०॥

शक्ति सनेह अकाश में, काल फन्द को पेख।
अपूर्व दृश्य ब्रह्माण्ड की, कठिन है लखब अलेख॥२११॥

त्रिकुटी बाह्याभ्यास तें, ज्योति निरंजन जान।
तत्व रंग श्वाँसा लुभो, धोखे माहिं भुलान॥२१२॥

ताहि अग्र सो अंश है, षोड़श सूर्य प्रकाश।
काल धोख जानहु सोऊ, भुलो न ताकी आश॥२१३॥

याहू को जब त्यागिया, अणिमादिक तब आय।
सत्य विरही जन भूलिहौ, सुरा भाव गहि पाय॥२१४॥

अष्ट कमल के पार जो, नौवाँ कमल अनूप।
अविगत अगम निनार है, अद्भुत ब्रह्म स्वरूप॥२१५॥

बज्रहिं पोल उधार के, डोरी मकर धरोय।
अमी बुंद सहजै मिलै, पीयो सुरति समोय॥२१६॥

दृष्टि अभ्यन्तर अधर में, चढ़त चढ़त चढ़ि जाय।
अद्भुत छबि क्या कहन में, सूर्य असंख्य लजाय॥२१७॥

भजन में परमानन्द है, शब्द सुधा घन धार।
वर्षत भीजैं, संत कोइ, पारस परसत सार॥२१८॥

उर्द्ध नदी नि:तत्व की, मानो सुरसरि धार।
मज्जन करिये प्रेम ते, चढ़ै शब्द रंग पार॥२१९॥

1. दोनों का स्वभाव (The Nature)

- **प्राण:** यह हृदय क्षेत्र में रहता है और स्वभाव से **ऊपर** की ओर भागता है।
- **अपान:** यह नाभि के नीचे (मूलाधार) रहता है और स्वभाव से **नीचे** (बाहर) की ओर बहता है।
  जब तक ये दोनों अलग-अलग दिशाओं में बहते हैं, मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के चक्र में फंसा रहता है।

2. योग की प्रक्रिया (The Union)

प्राण-अपान योग में साधक अपनी श्वास और ध्यान के माध्यम से:

- **अपान को ऊपर खींचता है:** कुम्भक और बंध (जैसे मूल बंध) के जरिए नीचे जाने वाली ऊर्जा को ऊपर की ओर मोड़ा जाता है।
- **प्राण को नीचे लाता है:** श्वास के नियंत्रण से हृदय की ऊर्जा को नाभि केंद्र की ओर लाया जाता है।
- **मिलन स्थान:** ये दोनों **नाभि मंडल (मणिपुर चक्र)** के पास मिलते हैं। इस मिलन को ही 'योग' कहा जाता है।

3. आध्यात्मिक परिणाम

तथाकथित **सोहं क्रिया (Soham Kriya)** या **हंस साधना**, क्रिया योग का वह प्राण है जो श्वास-प्रश्वास के माध्यम से 'जीवात्मा' और 'परमात्मा' के मिलन का बोध कराता है। लाहिरी महाशय की शब्दावली में इसे **'प्राण-कर्म'** का ही एक सूक्ष्म रूप माना जाता है।

लाहिरी महाशय के अनुसार इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं:

1. **ध्वनि का रहस्य:** जब हम श्वास अंदर लेते हैं, तो सूक्ष्म रूप से **'सो' (So)** की ध्वनि होती है, और जब श्वास बाहर छोड़ते हैं, तो **'हं' (Ham)** की ध्वनि होती है। निरंतर अभ्यास से यह 'सो-हं' (वह मैं हूँ) में बदल जाता है।
2. **प्राण और अपान का मिलन:** सोहं क्रिया का मुख्य उद्देश्य 'प्राण' (भीतर आने वाली वायु) और 'अपान' (बाहर जाने वाली वायु) को एक करना है। जब ये दोनों सुषुम्ना नाड़ी में मिलते हैं, तो श्वास अत्यंत सूक्ष्म हो जाती है।
3. **हंस से सोहं:** सामान्य मनुष्य 'हंस-हंस' (Hansa) करता है, जो उसे संसार से जोड़ता है। योगी इस गति को उलट देता है, जिससे वह 'सो-हं' बन जाता है। इसे ही **'उल्टा जाप'** या **'अजपा-जप'** भी कहते हैं।
4. **मानसिक क्रिया:** इसमें मंत्र को मुँह से नहीं बोला जाता, बल्कि मन से श्वास की गति के साथ जोड़ा जाता है। रीढ़ की हड्डी (पश्चिम मार्ग) में श्वास को ऊपर-नीचे ले जाते समय 'सो' और 'हं' का

- हथेलियों पर शरीर का पूरा वजन डालते हुए, अपने नितंबों (Buttocks) और पूरे शरीर को ज़मीन से थोड़ा ऊपर उठाएं।
- अब, बहुत सावधानी और हल्के झटके के साथ अपने नितंबों को वापस ज़मीन (आसन) पर पटकें। इसे ही **'ताड़न'** या 'ताड़ना' (Striking) कहते हैं।
- इसे अपनी क्षमतानुसार 3 से 11 बार दोहराया जाता है जबकि श्वास अंदर रुकी हुई (Internal Retention) हो।

4. समाप्ति

- अंत में, धीरे-धीरे श्वास बाहर छोड़ें (रेचक) और शरीर को शांत छोड़ दें।
- इस क्रिया के बाद कुछ देर स्थिर बैठकर रीढ़ में होने वाली झनझनाहट या ऊर्जा के प्रवाह को महसूस करें।

यह क्रिया कैसे काम करती है?

जब हम शरीर को ज़मीन पर 'ताड़न' करते हैं, तो मूलाधार चक्र पर एक भौतिक दबाव पड़ता है। यह दबाव वहां सोई हुई **कुण्डलिनी शक्ति** को जाग्रत करता है और रुकी हुई **अपान वायु** को ऊपर की ओर (प्राण की तरफ) धकेलता है। जब अपान और प्राण का मिलन होता है, तो ऊर्जा 'पश्चिम मार्ग' (रीढ़) से ऊपर चढ़ने लगती है।

Santon ki Braham Agni kya hai

संतों और महापुरुषों की वाणी में **'ब्रह्म अग्नि'** (Brahm Agni) वह सूक्ष्म आध्यात्मिक ज्वाला है, जो साधक के भीतर अज्ञान, कर्मों और विकारों को भस्म कर देती है। इसे 'योग-अग्नि' या 'ज्ञान की अग्नि' भी कहा जाता है।

संत मत और विशेषकर **लाहिड़ी महाशय** के क्रिया योग के परिप्रेक्ष्य में इसके मुख्य अर्थ ये हैं:

1. प्राण और अपान का घर्षण

जब साधक प्राणायाम के माध्यम से **प्राण** (ऊपर जाने वाली वायु) और **अपान** (नीचे जाने वाली वायु) को नाभि चक्र पर एक साथ लाता है, तो उनके घर्षण से एक आंतरिक ऊष्मा पैदा होती है। संतों ने इसी ऊष्मा को 'ब्रह्म अग्नि' कहा है, जो सुषुम्ना नाड़ी का मार्ग खोलती है।

2. पापों और संस्कारों का दहन

संत कबीर और अन्य महापुरुषों के अनुसार, यह अग्नि भौतिक आग नहीं है। यह वह प्रकाश है जो:

- मन के **विकारों** (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) को जला देता है।

3. आध्यात्मिक परिणाम

- **जठराग्नि का प्रज्वलित होना:** जब ये दोनों वायु टकराती हैं, तो शरीर में एक आध्यात्मिक अग्नि पैदा होती है जो सूक्ष्म नाड़ियों की अशुद्धियों को जला देती है।
- **सुषुम्ना का खुलना:** इस मिलन से पैदा हुआ दबाव रीढ़ की हड्डी (सुषुम्ना) के द्वार को खोल देता है, जिससे ऊर्जा सीधे मस्तिष्क (सहस्रार) की ओर चढ़ने लगती है।
- **केवल कुम्भक:** जब प्राण और अपान एक हो जाते हैं, तो बाहरी श्वास की जरूरत खत्म हो जाती है और साधक स्वतः ही समाधि की स्थिति में पहुँच जाता है।

4. गीता का संदर्भ

गीता में इसे **"प्राणेऽपानं जुह्वति"** कहा गया है, जिसका अर्थ है प्राण की आहुति अपान में देना और अपान की प्राण में। यह एक 'आंतरिक यज्ञ' है।

संक्षेप में, प्राण-अपान योग वह चाबी है जो शरीर की बिखरी हुई शक्ति को समेटकर उसे **आत्म-साक्षात्कार** की दिशा में मोड़ देती है।

क्या आप इन दोनों को मिलाने के लिए उपयोग किए जाने वाले

Ask anything

Home Search Notifications Activity

18:48

[૧૨૯]

સતગુરૂ પાયા પટા લીખાયા,
તૃષ્ણા ગઇ બુઝાની.
વીખ રસ છાંડ અમીરસ પીયા,
ઉલટી રાહ પીછાની. ગગન.
ઓહં સોહં બાજાં પાજે,
ત્રિકુટી ધ્યાન સમાની.
ઇંગલા પીંગલા સુખ મન નારી,
શ્વેત ધ્વજા ફહરાની. ગગન.
કહે કબીર સુનો ભાઇ સાધુ,
યાહી અગમકી બાની.
દીલભર હમહી નાજરે દેખ્યા,
અજર અમર નીશાની. ગગન.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

18:46

ભજન ૭૧ મું.

(મંગલ ત્રિતાલ)

સોહં શબ્દ બિચારો,
સાધો સોહં શબ્દ બિચારોરે.
માલા કરસે ફિરત નહી હૈ,
જીભ ન વર્ણ ઉચ્ચારોરે.
અજપા જાપ હોત ઘટ માંહી,
તાકી ઓર નીહારોરે.
હંસ અક્ષર સેં શ્વાસ ઉઠંવા,
સોસે જાય બિઠારોરે.
હંસો ઉલટ હોત હૈ સોહં,
જોગી જન નિર્ધારોરે.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

સો પદ કી ગમ પાઇ.

[૩૨]

જોગકી જુગત બતાઇ,
સોહુંગ સંગ ધુમ મચાઇ.

ભજન ૩૬ મું.

વર્ણન [માછીડા હોડીડા હંકાર એ રાગ]

તેરા ઘટમેં બજે ઘડીયાલા,
ગગન ધુન બાંસુરીયા. ટેક.
ઓહુંગ સોહુંગ કા લંગર ડોલે.
પલ પલ ઘાટ ઘડે.
અષ્ટ કમલ દશ શરખા ચાલે,
હરનીશ ખબર પડે. ગગન.

અખંડ લીલા ખંડીત નાહી ખંડમાં,
પ્રેમેં પ્રીત લગાય.
આઠ પહોરકા હુવા આનંદા,
કાળ કછું નહિ ખાય. સો જોગી. ૩
સોહંગ ઘર જાવે સંત સુહાગી,
બીક કછુવે નાહી.
દાસ જીવણ સત ભીમકાં ચરણાં,
અટળ અભે પદ પાઇ. સો જોગી. ૪

ભજન ૧૭૬ મું.

હે જોગેશ્વર લેરે.
ગગનાંમાં ધ્યાન ધરી તું લે. ટેક.
અબધુ જાડ અનોપમ દેખ્યા,
અષ્ટ કમળ દો ડાળી.
ઉન ઘર તો એક જોગી બેઠા,
ઉનમુંન આસન વાળીરે. ગગનાં. ૧
ગમકર ગમકર દેખ ગગનમાં,
અનહદ વાજાં વાજે.
ઉંન ઘર જનનન જાલર બાજે,
ધનનન નોબત ગાજેરે. ગગનાં. ૨
ઉલટા સુલટા આસન કરલે,

ત્રીવેણી ઉપર તાર મીલાયા,
ઝીલમીલ જ્યોતિ માંઇ જાગીરે. મનવો.
ઈંગલા ને પીંગલા સુખમણા ઉપરે,
અનહદ નોબત વાગીરે. મનવો.
ખીમને ભાણુ રવી રમતા રામા,
અરસપરસ અનુરાગીરે. મનવો.
ત્રીકમદાસ સત ખીમનાં ચરણાં,
ચરણ કમલમાં લે લાગીરે. મનવો.

ભજન ૧૯૯ મુ

[મોરાર સાહેબના ભજન.]

સોહંગ સત લોક કે વાસી,
અબ મોહી ગુરૂ મલ્યા સુખરાશી. સંતોસોઽ
સત શબ્દો સત ગુરૂ સમજાયા,
પરમ જ્યોતી પ્રકાશી. અબ મોહી
નીરમલ જ્ઞાન નીજ નામ બતાયા,
આતમ તંત અભ્યાસી. અબ મોહી.
ત્રીવેણી સંગમ તાર મીલાયા,
સુરતી શબ્દ સમાસી. અબ મોહી.
સુન શીખર પર ડેરા દીના,
બેહદ નાદ બજાસી. અબ મોહી.

जीव आणि शिव यांचे मिलन घडवून आणण्यासाठी ध्यानसाधना कशी करावी, याचेही वर्णन तु. महाराजांनी पुढील अभंगामध्ये केले आहे. –

करुनी आधी पद्मासन । पाहिजे एकांतसे स्थान ।।

नेत्र नासाग्री ठेवावे । 'सोहं' स्वरुपी मिळावे ।।

प्राण -अपान कालवी । गाठ मेरुची सोडावी ।।

मग जीव शिवा भेटी । तुकड्या म्हणे नाही तुटी ।।१५३

उपरोक्त अभंगामध्ये तु. महाराज म्हणतात की, एकांत असे स्थान पाहून आधी पद्मासन घालावे, त्यानंतर आपली दृष्टी नासाग्रावर स्थिर करावी आणि सोहं अजपावर लक्ष केंद्रित करावे. शरीरामध्ये विद्यमान असलेल्या प्राण, अपान, समान, उदान आणि व्यान यापैकी प्राण आणि अपानांचे मिलन करावे. प्राण सुषुम्नेमध्ये प्रवाहीत करुन मेरु म्हणजे पाठीच्या कण्यात सुषुम्ना नाडीमध्ये असलेल्या षटचक्राचे भेदन करुन जीव आणि शिव तत्वाचे मिलन करावे. अल्प शब्दामध्ये तु. महाराजांनी या अभंगामध्ये जीवात्मा आणि परमात्मा मिलनाचा मार्ग सांगितला आहे. सोहं या अजपासाठी साधकाला वाणीच्या प्रकारचे ज्ञान असावे म्हणून तु. महाराजांनी पुढील अभंगामध्ये वाणीच्या चार प्रकारांचे त्यांच्या स्थानासहित वर्णन केले आहे.

परा वसे नाभीस्थानी । श्वास उलटे हो गगनी ।।

पश्यंति हृदयी वास करी । योगी तेथुनी जाती वरी ।।

मध्यमा ती कंठी वसे । 'सोहं' नामी निघती ठसे ।।

वैखरी पूर्ण वाचा झाली । गुरुने तुकड्यास दावीली ।।१५४

अर्थात परा वाणी ही नाभी च्या ठिकाणी असते. तेथूनच आपला श्वास उलट फिरुन वरच्या दिशेला येतो. पश्यंती वाणी ही हृदयाच्या ठिकाणी वास करणारी आहे. योगी तेथून उत्थान पावण्याचा प्रयत्न करतो. ज्या ठिकाणाहून सोहं या अजपाची अनुभूती घेतली जाते. ती मध्यमा वाणी ही कंठाच्या ठिकाणी वास करते. जी वाणी आपण सर्वसामान्यपणे बोलण्यासाठी वापरतो ती वैखरी ही पूर्ण वाणी होय. गुरुकृपेने या वाणींचे ज्ञान मला प्राप्त झाले असे तु. महाराजांनी म्हटले आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

नित्यानन्द कटे भव बन्धन, मिट जावे त्रय ताप रे ॥ ४ ॥

(७०)

राग रामकली अथवा सोहीनी

रणुकार धुन लाई, ऐसे रणुकार धुन लाई रे ॥ टेर ॥
बैठ एकान्त गुफा के माई, आसन सिद्ध जमाई रे ।
सरल शरीर दृढ़ इन्द्रियाँ करके, नाशा दृष्टि जमाई रे ॥ १ ॥
रणुकार की धुनि लगाई, मन को तहाँ लगाई रे ।
शने शने अभ्यास बढ़ा कर, मन गलतान कराई रे ॥ २ ॥
फिरता को थिरता कर दीना, गरक ध्यान के माई रे ।
आनंद उमंग उठत उर अन्दर, तन की शुद्धि विसराई रे ॥ ३ ॥
बचनराम गुरु दया दृष्टि कर, साची सेन लखाई रे ।
नित्यानन्द भया मस्ताना, फेर जन्म नहीं पाई रे ॥ ४ ॥

(७१)

राग धुन ताल केहरवा अथवा देश

सतगुरु ने मुझको साधन सरल बताया ॥ टेर ॥
पास बैठा कर युक्ति लखाई, भिन्न भिन्न कर समझाया ।
गुरु आज्ञा से इहि विधि हमने, साधन में चित लाया ॥ १ ॥

बैठ एकान्त गुफा में दृढ़ होय, आसन सिद्ध जमाया ।
तन मन इन्द्रिया बस में करके, अन्तर ध्यान लगाया ॥ २ ॥
भूख प्यास मिटी अन्न जल तज कर दूध पाव नित पाया ।
रणुकार की धुन्न लगाई, तामें मन ठहराया ॥ ३ ॥
अजप्पा जाप जपा घट अन्दर, सोहं परिचय थाया ।
जीव ईश भ्रम भेद विलाई, जल में तरंग समाया ॥ ४ ॥
कल्पा माना भूल भरमना, दुतीया भाव मिटाया ।
निर्विकल्प नित्यानन्द निर्मल, अपना आप रहाया ॥ ५ ॥

(७२)

तर्ज प्राणी राम सुमिर ले रे

सतगुरु बचनराम है सोई । ॐ मंत्र दिना मोई ।
नित्यानन्द सुख होई । हरि ॐ हरि ॐ हरि ॐ ॥ ७ ॥

(५५)

राग शब्द झड़ लागो रे बरसण लागो रंग

बोले रे काया मन्दिर माय, सोऽहं शब्द विचार ॥ टेर ॥
दांत जीभ बिना होठ हिलाई
बिना कर माला फिरत सदाई ।
अजप्पा जाप जपाय, लगी रहे धुन इकतार ॥ सोऽहं ॥ १ ॥
बैठ एकान्त लगाकर आसन,
बस में कर इन्द्रियाँ अरु तन मन ।
ध्यान श्वांस में लाय, अर्ध अरु ऊर्ध संभार ॥ २ ॥
हं से श्वासा बाहिर आवे
सो मे श्वासा अन्दर जावे ।
हं से सो उलटाय, लखो तब सोहं सार ॥ ३ ॥
सो का अर्थ वही परमात्मा
हं का अर्थ सोई मैं आत्मा ।
निशिदिन यहि लिवलाय, द्वैत भ्रम भेद निवार ॥ ४ ॥
अजर अमर अक्षय सतरुपा,
निर्मल नित्यानन्द अनूपा ।
सो नहीं आवे नहीं जाय, सेन सतगुरु की धार ॥ ५ ॥

(५६)

राग पूर्व पदानुसार

सुनो रे काया मन्दिर माय, अनहद का झनकार ॥ टेर ॥
पद्मासन एकान्त लगावो,
बहिरंग वृति अन्दर लावो ।

दोऊ कर अंगुली लगाय, रोक दोय कान के द्वार ॥ अनहद ॥ १

(६८)

कव्वाली

मनुष्य जन्म वृथा नहीं खोना, नाम सुमिर ले दो घड़ी।
सुबह शाम भगवान को तू, याद करले दो घड़ी ॥ टेर ॥
कीना कवल तैने प्रभू से, गर्भ में जब झूलता।
बाहिर निकालो करु भजन, उस कवल को क्यों भूलता।
गौर कर मन में जरा तू, याद करले वो घड़ी ॥ १ ॥
नर जन्म साधन धाम, मुक्ति द्वार पुनि पुनि ना मिले।
भूमि गिरा टूटा पुष्प पुनि वृक्ष के वो न खिले।
मोह ममता को छोड़ जरा, शुभ कर्म करले दो घड़ी ॥ २ ॥
बैठ कर एकान्त दृढ़ आसन जमा ले तू जरा।
बहिरंग वृति अंतर करो, तन मन को बस में कर जरा।
हो रहा अजप्पा जाप, सोऽहम् ध्यान कर ले दो घड़ी ॥ ३ ॥
पंच कोश परे त्रय देह अवस्था, त्रय का साक्षी आत्मा।
नित्यानन्द स्वरूप तेरा, भ्रम द्वैत कर खातमा।
ब्रह्म निष्ठा संत लखावे, तू सतसंग में जाना दो घड़ी ॥ ४ ॥

(६९)

राग पूर्व पदानुसार

इस तन मन्दिर माई नित ही, हो रहा सोऽहम् जाप रे।
सतगुरु से पहिचानो, मन का मेल होय सब साफ रे ॥ टेर ॥
हिलता नहीं है होठ, दाँत वो जीभ भी नहीं हालती।
बिन हाथ माला फिरत है, इकसार निशि दिन चालती।
संसारी नर समझत नाही, मिटे नहीं संताप रे ॥ १ ॥
एकान्त आसन दृढ़ जमा कर, तन को सीधा कर जरा।

मन इन्द्रि स्थिर करके, बहिरंग वृति अंतर कर जरा।
उठत बैठत श्वास परखले, कटे जनम के पाप रे ॥ २ ॥
जब नाभी से श्वासा उठे, हं शब्द बाहिर आवता।
पुनि बैठ श्वासा नाभी में, सो शब्द अन्दर जावता।
हंसो सोहं उलट पलट कर होवत सोऽहम् जाप रे ॥ ३ ॥
जिमि लट भ्रंग का ध्यान करते, भ्रंग ही हो जाय रे।
यूं ध्यान सोऽहम् करत नित नर, ब्रह्म माय समाय रे।
नित्यानन्द कटे भव बन्धन, मिट जावे त्रय ताप रे ॥ ४ ॥

(७०)

राग रामकली अथवा सोहीनी

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित वृत्ति को रोकिये, सूर्य चन्द्र को शोध।
मध्य सुषुम्ना ध्यान से, करहिं ब्रह्म का बोध।। ६०३

माया प्रबल प्रचण्ड है, भाग सके तो भाग।
राम नाम की गारुणी, सर पे नाचे नाग।। ६०४

।। चौपाई ।।

योगी योग जतन करि पावा,
जीव ब्रह्म निर्भेद कहावा। ६०५

दिव्य ज्ञान बिनु कृपा न होई,
सत्य वचन नर पावइ सोई। ६०६

।। दोहा ।।

मन विकार को साधिये, लोभ मोह मद क्रोध।
चित में रूप अरूप हो, होंहि ब्रह्म का बोध।। ६०७

रसरी रामहि नाम की, मन की बांधइ डोल।
ब्रह्म कूप जल लाइके, पीजै रस अनमोल।। ६०८

अँजन आंजिय ओ३म का, अलख निरंजन जान।
जड़ चेतन मँह देखिये, सब जग ब्रह्म समान।। ६०६

मन की आँखे खोल कर, देखहु चारउ वेद।
ओ३म् ओउम् रटि ओ३म तुम, ॐ ब्रह्म निर्भेद।। ६१०

जग का क्षर तो होत है, अक्षर का क्षर नाहिं।
ओ३म ब्रह्म एकाक्षरी, जाप करे क्षर जाहि।। ६११

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुक्तिचा मार्ग होईल सोपा, ही अजपां जपी निश्चये पां।

सोहं ध्वनि लक्षी घे लाऊनी , चालतो श्वासी जो नित्य खेपा ।।धृ.।।

चालता बोलता कर्म करिता, होऊ दे या मनासी सुलभता।

ध्वनी अंतरी नासिकेच्या खरी, मग्न होऊनी पाही स्वरुपा ।।१।।

मुनी-संत जे योगी झाले, साधने शांति स्वरुपी मिळाले ।।

देवादिके ही पादुके, सच्चिदानंद हा पां ।।२।।

मानवासी दुजा मार्ग नाही, साधकासी दुजे स्थान नाही.

तुकड्या म्हणे पूर्ण पूर्णातूनी,जन्म मरणाचिया चुकती खेपा ।।३।।[६५]

मुक्तीचा मार्ग सोपा करण्यासाठी अजपा जप करण्याचा उपदेश तु. महाराजांनी उपरोक्त भजनामध्ये दिला आहे. अजपा साध्य करण्यासाठी जो सोहं ध्वनी आपल्या श्वासाबरोबर नित्य चालतो. त्यावर लक्ष केंद्रित करावे असेही तु. महाराजांनी स्पष्ट केले आहे. अजपा साधनाला अधिक स्पष्ट करण्यासाठी महाराज म्हणतात की, चालता, बोलता आणि कर्म करतांनाही हे मन त्या श्वासाकडेच वळले पाहिजे अशी सुलभता त्याला उपलब्ध करुन द्यावी. नासिकेच्या खरी म्हणजे नासिका मार्गात ज्याठिकाणी श्वास स्पर्श करीत जातो तेथून ध्वनी अंतरंगात नेवून त्याठिकाणी मग्न होऊन आपले स्वरुप पाहण्याचा प्रयत्न कर.

आजपर्यंत जे कोणी मुनी, संत, योगी झाले ते अजपा साधनेने शांती स्वरुपाला प्राप्त झाले आणि देवादिकांनी सुद्धा याचमार्गाने हा सच्चिदानंद पाहिला आहे. याशिवाय साधकाला दुसरे कोणते स्थान आणि मार्ग नाही. अजपाच्या या मार्गानेच पूर्णातून पूर्ण प्राप्ती होवून जन्म-मृत्युच्या फेऱ्यातून सुटका होईल, असे तु. महाराज साधकाला निक्षून सांगतात. म्हणजेच अजपा साधन हे पूर्णत्व प्राप्त करण्यासाठी आवश्यक आहे आणि याच मार्गाने अखंड शांतीची अनुभूती करुन घेता येईल असे महाराजांनी स्वानुभव युक्त कथन या भजनांच्या माध्यमातून केले आहे. समाधी हे अष्टांगयोगातील अंतिम अंग आहे. या स्थितीचा अनुभवसुद्धा तु. महाराजांनी घेतला आणि त्यांना त्या आलेल्या अनुभूतीचे वर्णनसुद्धा काही भजनांमध्ये केले आहे.

योगानुभव कथन -

दोहा— ऐसी गोप्य जू खेचरी कही प्रगट करि सोय ।
जयतराम गुरुक्रिपाते याको साधन होय ॥८९५ ॥

॥इति खेचरी मुद्रा ॥

अथ षटचक्र वरनन ।

ध्यान अजपासहित कहिये है ।

चौपाई— प्रथमही अजपा सो मन लावै ताकै जपै सकल सिध पावै ।
विनही जाप होत है जोई [३११]अजपाजाप कहावै सोई ॥८९६ ॥
सोहं सोहं सासोसास घटमै करै निरंतर वास ।
षट सत सहश्र इकीस जु आवै गुरुकी क्रिपा भेद सो पावै ॥८९७ ॥
सो पुनि ले घटमै उलटावै षटचक्रनमधि आनि मिलावै ।
क्रमसौ जाप करै मन लावै जाविधि आग्या गुरुतै पावै ॥८९८ ॥

॥इति अजपा ॥

अथ षटचक्रवरनन ।

चौपाई— प्रथम चक्र आधार बखानू स्वर्न वर्न तासकौ जानू ।
सक्ति गणेश चतुर्दल सोई वंशंषंसं अक्षर होई ॥८९९ ॥
तपत स्वर्णमय ध्यान जु धारै षटसत तामधि जाप उचारै ।
सोई जाप गणपति को दैवै निर्भय होय चरण पुनि सेवै ॥९०० ॥

॥इति आधारचक्र ॥

अथ स्वाधिष्ठान चक्र ।

स्वाधिष्ठान चक्र पुनि दूजा तेजमनो विजुरी को पूजा ।
षटदल षट तहा अक्षर राजत बंभंमंयंरंलं सहित विराजत ॥९०१ ॥
ब्रह्मासावित्री पुनि जहां षटसहस्र जप जपिये तहां ।
सो पुनि अजपा अजहि चढावै तिनके चरन सीसकौ नावै ॥९०२ ॥

॥इति स्वाधिष्ठान चक्र ॥

अथ मणिपूरक चक्र ।

त्रितीय चक्र मणिपूरक जोई नीलवरनमय जानो सोई ।
लक्ष्मीसहित विष्णु तहां राजत पीत वरन अति सोभा साजत ॥ ९०३ ।

३११. *अजपानाम (भां)*

दिनचर्या :–

॥ श्रीगुरुःशरणम् ॥

सप्रेम आशीर्वाद विशेष

माझे मित्र श्री. शंकरराव आजेगांवकर यांना श्रीगुरुमहाराजांनी दिनचर्या लिहून दिली होती ती अशी :–

" प्रातःकाळी उठून चूळ टाकून आचमन करून प्रातःस्मरण म्हणून अजपा संकल्प करून ' सोऽहं ' जप करावा. चार दिवसांचे अंतराने बस्ति, धौति, नेति करावी. नंतर स्नान केल्यावर मानसपूजा, जप, अभ्यास करावा. गुरुचरित्र वाचून यथाशक्ती प्रदक्षिणा कराव्या. भोजन झाल्यावर ग्रंथ वाचावे. मध्ये मध्ये सवड मिळेल-तेव्हा ' श्रीगुरुदेव दत्त ' असे नामोच्चारण करावे. सायंकाळी मानसपूजा, जप, अभ्यास करून पंचपदी भजन शेजारतीपर्यंत करून कर्म समर्पण करून निजेपर्यंत नामस्मरण करीत असावे. सर्वकाळ मी असंग, कूटस्थ, साक्षी, निर्विकार ब्रह्म आहे अशी पुनः पुनः भावना करावी. त्रिविध ताप, दुख किंवा कोणी छळ केल्यास विषाद मानू नये. मी कर्मफळ भोगीत आहे असा विचार करावा. जडभार देवावर घालू नये असे वागावे."

याप्रमाणे दिनचर्या ठेवण्याचा प्रयत्न करावा.

कळावे हे आशीर्वाद.

आपला
वा. द. गुळवणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३. **एकान्त सेवन** – लोगों से आवश्यकतानुसार ही मिलना घर पर भी अलहदा घर में उठना बैठना, धार्मिक पुस्तकें व जगत् की असत्यता पर विचार करना।

४. **पश्चाताप व संकल्प** – रात को सोते समय अपने दिन भर के कार्यों पर विचार करके अनुचित कार्यों के लिये पश्चाताप करना व भविष्य में उनके न करने का संकल्प करना।

५. **सत्य बोलना** – मजाक में भी झूठ न बोलना चाहिये।

६. **योगाभ्यास** – नित्य नियम से योगाभ्यास करना।

७. **भजन करना** – नित्य माला अथवा बिना माला के भजन करना चाहिए। दिन रात में २१६०० श्वास चलती हैं अतएव कम से कम इतना ही भजन करना चाहिये। यह संख्या दो सौ माला फेरने से पूरी हो सकती है। दो घंटे सुबह व दो घंटे शाम अथवा सुविधानुसार माला फेरे। सूमरनी या माला पास रखे और समय मिलने पर अथवा चलते-फिरते भजन करो और समय का सदुपयोग हो सके।

८. **अजपा जप** – नीचे लिखे अनुसार किया जाता है।

(१) जीभ से नाम का उच्चार करें, कुछ आवाज भी निकलती रहे। जिससे सुमरन बंद न हो और ध्यान भी लगा रहे। (२) कंठ (३) हृदय से (४) नाभि से श्वास के साथ (५) जीभ से।

यह अजपा जप जीभ से एक साल, कंठ से दो साल, हृदय से दो साल और नाभि से सात साल अर्थात् बारह वर्ष करने से मनुष्य मोक्ष रूप हो जाता है। उसे प्रभु का साक्षात्कार अर्थात् जाग्रत अवस्था में भगवान के दर्शन व सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

अजपा के जप के नियम – (१) भोजन अल्प (२) थोड़ी नींद (३) एकान्त वास (४) गद्दा व तकियों का त्याग (५) मौन (६) सात्विक भोजन अर्थात् चावल, दही, खटाई, तेल ज्यादा मिर्च मसाले व अन्य राजसी, तामसी व वायु उत्पन्न करने वाले पदार्थों का त्याग। एक समय भोजन और रात को आधा सेर दूध काफी है। मीठा व नमक बहुत कम खाना चाहिये। नींद कम करने का उपाय है कि रात को जगने के समय दस बजे से एक घंटा हर महिना बढ़ता जाय। इस तरह चार बजे तक जागने का अभ्यास करें। चार बजे से छः बजे तक सोवे। इतना समय काफी न हो तो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

सारशब्द एवं सुरति के योग का प्रारंभ जप से होता है। साधक चित्तवृत्ति - निरोध एवं सात्विक प्रेम जागरण के अनंतर सतनाम का जाप करते हुए भावदशा को प्राप्त करता है। इसके अनंतर सार-शब्द अंतरघट में ध्वनित होने लगता है। यह दशा शब्द केवलता की कही गई है। इस समय सुरति शब्द रूप हो जाती है और वह शब्द के सहारे ऊपर चढ़ती हुई आत्मस्थित्य रूप निस्तत्व कीप्राप्ति करती है। निस्तत्वपद प्राप्त व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है।

अब इस दशा को प्राप्त व्यक्ति निजस्वरूप में स्थित होकर अद्वैतानुभूति करने लगता है। वह समष्टि एवं व्यष्टि रूप समस्त उपाधियों से रहित होकर सत्-चित्- आनंदमय, सर्वप्रकाशक तथा व्यापक तत्व बन जाता है।

` स्वरसाधना ` पर विचार करते हुए हमने देखा था कि वहां हठयोग के द्वारा सुरति एवं शब्द का योग हो रहा था। यहां पर सुरति एवं शब्द का योग बहुत कुछ मंत्रयोग तथा लययोग के द्वारा भी न हो रहा है।

` श्री सत्प्रकाशमणि गीता ` के अनुसार शब्द का भी विलीनीकरण आवश्यक है। वह शब्द को भी अस्थिर मानती है। उसके अनुसार सुरति का शब्द में विलीनीकरण होने के अनंतर सुरति की प्रतीति नहीं होती। यही शब्द-केवलता की दशा कही गई है। यह दशा अनिर्वचनीय एवं आनंददायक होने पर भी विघ्नस्वरूप है। साधक के लिये अपेक्षित है कि वह शब्द का भी विलीनीकरण कर दे। शब्द में निस्तत्वपद समाया रहता है जो शब्द-मंथन से उपलब्ध होता है। इस निस्तत्व को प्राप्त करना चाहिये। यही ध्येय है, आत्मप्राप्ति का वाचक है।[१]

` ब्रह्म निरूपण ग्रंथ ` के लेखक का मत है कि सारशब्द के विलीनीकरण की आवश्यकता नहीं। वे सारशब्द को प्राप्त करने की ही बात करते हुए लिखते हैं - ` इस निरक्षर सारशब्द की प्राप्ति श्वासा से उत्पन्न होने वाले सोहं शब्द के विलीनीकरण से होती है। सोहं के विलय से ऊंकार की प्राप्ति होती है और सांग ऊंकार के विलीनीकरण से निरक्षर सारशब्द ही अवशिष्ट रह जाता है।[२]

ग्रंथ में राजयोग

राजयोगी वृत्ति-जय के माध्यम से स्वस्वरूप का बोध करता है। उसका संबल विवेक रहता है। वृत्तिजय से तात्पर्य मनोमारण या मनोजय दोनों से है। वास्तव में यह इंद्रिय-निग्रह की साधना है। वैसे इंद्रियनिग्रह अष्टांगयोग और उसमें भी विशेषत: प्राणायाम से भी संभव है किंतु सतासत् विवेक की निरंतर अनुभूति करने के प्रयास से भी इंद्रिय-निग्रह होता है। राजयोगी विवेकी बनता है। कबीर में विवेक साधना को हम देख चुके हैं।

` पंचमुद्रा ` का हंस राजयोगी ही है। वह पुरुष से इस

---

१ श्री सत्प्रकाशमणि गीता के आधार पर वर्णित

२ अज्ञ ग्रंथ ब्रह्म निरूपणम् - पृ० ६

18:55

Shri Das Bodh By Ra...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

अजपा-साधना

वक्ता कहते हैं—प्रत्येक प्राणी के श्वासोच्छ्वास नित्य चलते रहते हैं। उनकी ओर एकाग्रता से ध्यान देना 'अजपा' जप कहलाता है। विचार करने पर इसका साधन कोई कठिन नहीं है। मुख में और नासिका में प्राण होते हैं, जिसके श्वास-उच्छ्वास दिन रात लगातार

चलते रहते हैं। इनका हमें सूक्ष्म दृष्टि से नित्य निरीक्षण करते रहना चाहिए। मूल में स्वर एक ही है। उसी तार, मंद्र और घोर (षड्ज के तीन प्रकार) ऐसे तीन भेद हुए हैं। इन स्वर-भेदों से भी अजपा का विचार सूक्ष्म है। नाभि स्थान में स्थित परावाणी के इस पार और हृदय स्थान में स्थित पश्यन्ति वाणी के नीचे अर्थात नाभि और हृदय के बीच में स्वर का उद्गम-स्थान है।. निवान्त स्थान पर बिल्कुल शान्त और स्थिर होकर बैठने पर इसका अनुभव मिलता है। वायु को भीतर खींचे और फिर बाहर छोड़ें। मौन रहें और सूक्ष्मता से देखें तो भीतर से 'सोऽहं सोऽहं' यह ध्वनि सुनाई देगी। बिना उच्चारण के ये शब्द प्रकट होते हैं, इसलिए इसे 'सहज-शब्द' कहा गया है। इन शब्दों का अनुभव होता है, पर उनका नाद नहीं होता। इन्हें भी छोड़कर जो शान्त रहता है, वही सच्चा मौनी है। योगाभ्यास कर जो साधना किया जाता है, वह इसी के लिए है। ध्यानस्थ होने पर यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि 'सोहं' शब्द का भीतर अखंड जप चल रहा है। श्वास लेते समय 'स' और बाहर छोड़ते समय 'अहम्' इस प्रकार 'सोऽहं' का निरंतर जप चलता रहता है।

सृष्टि में जारज, अंडज, स्वदेज और उद्भिज इस भाँति चार प्रकार के प्राणी हैं। इस सब प्राणियों का यह जप सहज रूप से चला करता है। बिना श्वासोच्छ्वास के प्राणियों का जीवन असंभव है। इस सहज-जप को छोड़कर प्रयत्न पूर्वक अन्य जप करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे सहज निश्चल परब्रह्म परमात्मा है। प्रयत्न से गढ़ा हुआ ईश्वर फूटेगा, टूटेगा। ऐसे नाशवत ईश्वर पर कौन विश्वास करेगा ? जगद्-व्यापी अन्तरात्मा का दर्शन होने पर सहज ध्यान अखंड हुआ करता है।

(364 of 424)

अजपा

उठ्‌ना साथै सबेरै नै गर्नु पर्ने क्रिया छ जो ।
त्यस्मा आफैंआफ हुने अजपाको विधान हो ॥१९॥
सास चल्छ तल माथि श्वास प्रश्वास चल्दछ ।
प्रकृतिले स्वयं गर्ने अजपाको विधान यो ॥२०॥
जीवनिस्तारका लागि विधाताले कृपा गरी ।
स्वयं संचालित हुने अजपाको विधान हो ॥२१॥

Anish Bhatta Family Collection, Changu Narayan, Bhaktapur

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding by MIDF-Delhi

सामान्य जनले सोच्छ श्वास प्रश्वास मात्र हो ।
तर विज्ञ भने सोच्छ **अजपा** जप हो यही ॥२२॥
यौटा दीक्षित व्यक्तिले विहानै प्रात–कृत्यमा ।
हंस मन्त्र मात्र जप्छ श्वास प्रश्वासमा सधैं ॥२३॥
सास बाहिर जांदामा हकार जप्तछ भने ।
तान्दा सास भित्रपट्टि सकार जप गर्दछ ॥२४॥
त्यसैले नै हंस मन्त्र श्वास प्रश्वासमा सधैं ।
जपेको हुन्छ उसले अजपा जप हो यही ॥२५॥
सोऽहं सः 'म त्यही नै हुं' जप्तै दीक्षितले सधैं ।
एकता ब्रह्मका साथ राख्ने कोशिश गर्दछ ॥२६॥
क्रम हो भूतशुद्धिको यसमा हंस–मन्त्रको ।
सधैं नै भावना हुन्छ यही हो जप उत्तम ॥२७॥
धर्म अर्थ काम मोक्ष पुरुषार्थ त चार छन् ।
पछिल्लो यिनमा मोक्ष परम पुरुषार्थ हो ॥२८॥
भव सागरको दुःख मोक्षले नै हटाउंछ ।
जन्म र मृत्युको बन्ध यसैले नष्ट गर्दछ ॥२९॥
अन्तर्याग बहिर्याग सबै नै तन्त्रकर्मको ।
मुख्य प्रयोजनै हो यो भोग ता गौण मात्र हो ॥३०॥
जपले देवता तुष्ट बनेर ज्ञान ब्रह्मको ।

81 of 402

[redacted]

कैसा धर्म बतावो आदू, काटत किम चवरा
करणी-कौन कौन- लिव लावो, धावो कुँण सु
कैसे लिया नगर सत अपना, कैसे जोत प्रकाशी
कहो तुम्हारी मस्ती अवधू, किसके हो तुम
'मङ्गल' कह उत्तर सत देना, मेटो सर्व उदास

उत्तर:- ।। राग :- आशा ।। नं.१६

साधो भाई! सत्य नगर का वासी।
सदगुरु साच सोहं जप करता, मैं मेरा अभिलाषी
आदू-नाम अमर बेनामी, जग से रहूँ
मम ज्ञाता सो है प्रिये मेरा, सत्य ज्ञान विला
जीवों-हित जग में देह धारी, तिरगुण मे
सदोपदेश बताऊँ आदू, काटूँ भव चवरा
करणी साच अगम लिवलाऊँ, धाऊँ निज
निरभे लिया नगर सत अपना, सहजे सहज प्र
प्रमानन्द मस्ती है मेरे, निज निर्गुण व
'मङ्गलगिरि' उत्तर सत देवे, मेटे सर्व उद

सद्गुरु सदाफलदेव जी महाराज के विहंगम योग में **"रंरं" (Raram)** की ध्वनि और इसके आध्यात्मिक रहस्य का बहुत गहरा महत्व है। यह **प्रकृति मण्डल** की साधना का अंतिम और सबसे सूक्ष्म पड़ाव माना जाता है।

"रंरं" ध्वनि का रहस्य (The Secret of Raram Sound):

1. **प्रकृति की अंतिम सीमा**: विहंगम योग के अनुसार, "रंरं" वह सूक्ष्म ध्वनि है जो **प्रकृति मण्डल (Material Plane)** के सबसे ऊंचे शिखर पर सुनाई देती है। इसे पार करने के बाद ही साधक **चेतन मण्डल (Conscious Plane)** में प्रवेश करता है।
2. **अनहद नाद (Inner Sound)**: जब साधक अपनी इन्द्रियों और प्राणों को पूरी तरह वश में कर लेता है, तो उसे अपने भीतर एक गूंज सुनाई देने लगती है। यह किसी वाद्य यंत्र की ध्वनि नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय ऊर्जा का कंपन है।
3. **पिण्ड और ब्रह्माण्ड का मिलन**: "रंरं" की साधना उस बिंदु पर होती है जहाँ व्यक्ति का शरीर (पिण्ड) और ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ आपस में मिलती हैं। इसे **'महाशून्य'** का द्वार भी कहा जाता है।
4. **शुद्धिकरण का प्रतीक**: 'रं' (Ram) बीज मंत्र अग्नि तत्व से संबंधित माना जाता है। आध्यात्मिक रूप से यह साधक के संचित कर्मों और विकारों को "जलाकर" भस्म करने का प्रतीक है, ताकि आत्मा पूरी तरह शुद्ध होकर आगे बढ़ सके।

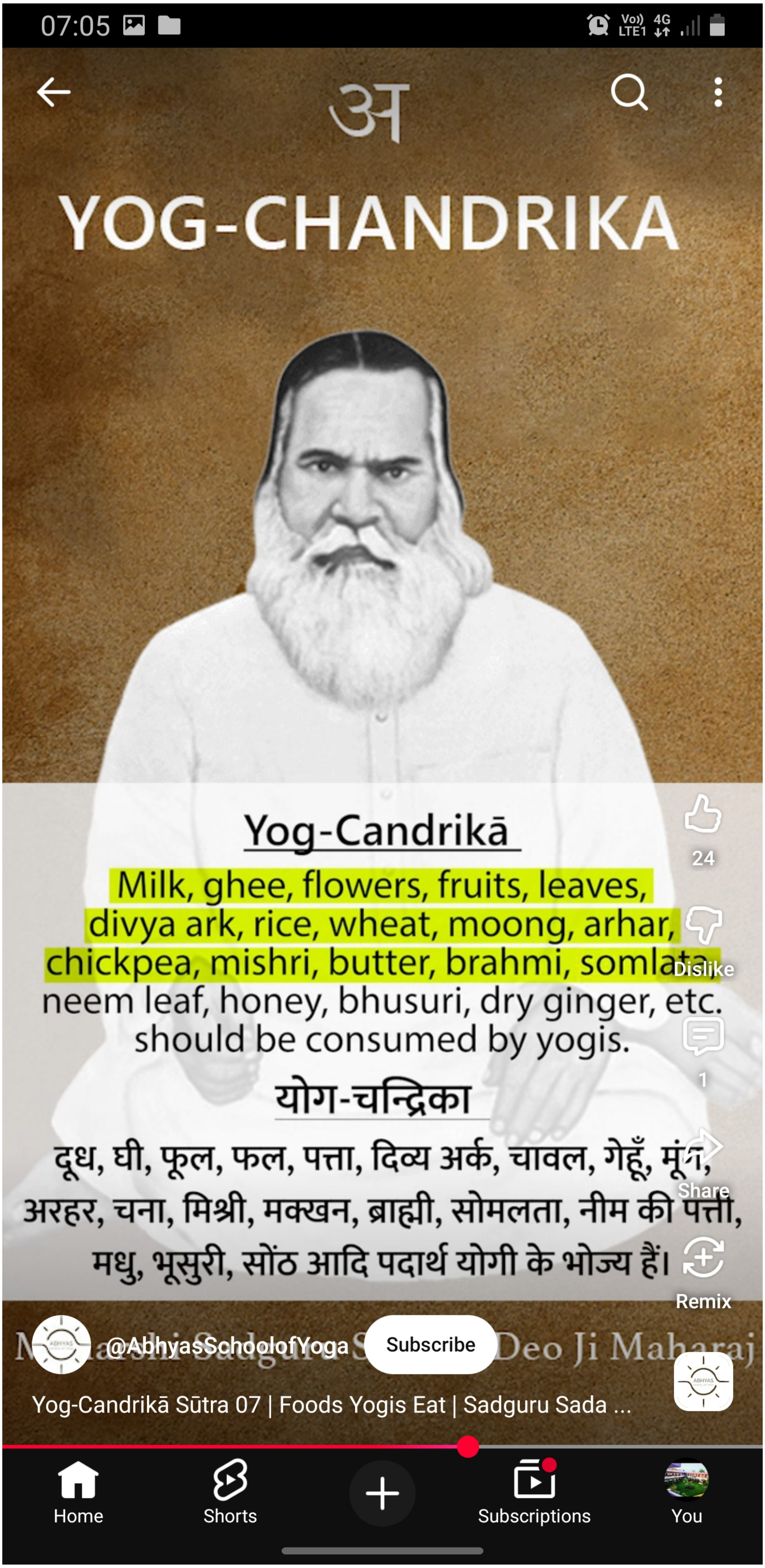
07:05
YOG-CHANDRIKA
Yog-Candrikā
Milk, ghee, flowers, fruits, leaves, divya ark, rice, wheat, moong, arhar, chickpea, mishri, butter, brahmi, somlata, neem leaf, honey, bhusuri, dry ginger, etc. should be consumed by yogis.
योग-चन्द्रिका
दूध, घी, फूल, फल, पत्ता, दिव्य अर्क, चावल, गेहूँ, मूंग, अरहर, चना, मिश्री, मक्खन, ब्राह्मी, सोमलता, नीम की पत्ती, मधु, भूसुरी, सोंठ आदि पदार्थ योगी के भोज्य हैं।
24
Dislike
1
Share
Remix
@AbhyasSchoolofYoga
Subscribe
Yog-Candrikā Sūtra 07 | Foods Yogis Eat | Sadguru Sada ...
Home
Shorts
Subscriptions
You

से उसी मंडल में परम पुरुष का साक्षात् दर्शन होता है। उन परमात्मा का शुद्ध चेतन स्वरूप आत्मचेतना, सुरति के द्वारा प्रत्यक्ष दीख पड़ती है। परमपुरुष से सोमरस का प्रवाह निरन्तर आत्मा के अन्दर होता रहता है, जिसे पीकर आत्मा का त्रयताप शान्त हो जाता है। वह आप्तकाम हो जाता है, क्योंकि उस दिव्य आनन्द की तुलना में अन्य सभी सांसारिक सुख नगण्य, तुच्छ हैं। इसी परम चेतन-मण्डल को विराजधाम, समाधि-मण्डल,

Scanned with CamScanner

अमरलोक, साकेत आदि नामों से अभिहित किया गया है। परमात्मा के उस चेतन-मंडल में प्रकृति और प्रकृति-निर्मित कोई भी जड़ तत्त्व नहीं है। वहाँ न सूर्य है, न चन्द्र है, न तारे ही हैं, न धरती, न आकाश, न वायु और न अग्नि ही है। वहाँ सिर्फ वही वह है, अन्य कुछ भी नहीं है।

इस सर्वोपास्य परमप्रभु का साक्षात्कार सद्गुरु-विधान से आत्मचेतना, सुरति से सम्भव है, क्योंकि परमपुरुष चेतन है और आत्मचेतना सुरति भी चेतन है। इन्द्रिय, मन, प्राण, वाणी, वहाँ तक नहीं पहुँच सकतीं। इसलिए सद्गुरुदेव अपने शिष्य साधक की चेतना वहीं पर विराजधाम, परमात्मा में दृढ़ स्थिर कर देते हैं, तभी आत्मा को परमात्मा का असीम आनन्द उपलब्ध होता है। सद्गुरुदेव के अतिरिक्त यह महान् कार्य किसी भी मत-सम्प्रदाय के गुरु, आचार्य से कदापि नहीं हो सकता। अतः मानवमात्र का यह परम कर्तव्य है कि वह सर्व अभिमान त्यागकर सद्गुरु-शरण में रहकर विहंगम योग की साधना के द्वारा इस महान् अवस्था को प्राप्त करे।

Scanned with CamScanner

20:52

सो त्रिकुटी के मध्य तहां ठहराइये ॥
रोकै त्रिकुटी माहिं आनिके वायुको ।
षट्चक्कर को छेदि चढ़ै जब धायको ॥
अपान वायु चढ़िजाय वहीं अस्थान है ।
प्रान वायु ह्वै जाय साधु कोइ जान है ॥
रोकै प्रानहि वायु त्रिकुटी मध्यही ।
ओं का करै ध्यान शीश में मध्यही ॥
यह तौ ऊंचा ध्यान जु अधिक अनूपही ।
चरणाहृदासा होय जु ब्रह्म स्वरूपही ॥
दो० नाम ब्रह्म का है नहीं, है तो ॐकार ।
जानै आपन को वही, मैं हौं तत्त्व अपार ॥

अष्टपदी ॥

अनहद शब्द अपार दूर सों दूर है ।
चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है ॥
ताहि निःअक्षर जानि और निष्कर्म है ।
परमातम तेहि मानि वही परब्रह्म है ॥
हृदय कमल के माहिं ध्यान सोहं करै ।
वाहि को अजपा जान सुरति मन लै धरै ॥
बिनहिं जपे जप होय सुसांची बातही ।
सहस इकीस अरु छस्से जहां दिन रातही ॥
याको कीजै ध्यान होत है ब्रह्मही ।
धारै तेज अपार जाहि सब भर्महीं ॥
वा पटतर कोइ नाहिं जु योंहीं जानिये ।
चन्द सूर्य अरु सृष्टि के माहिं पिछानिये ॥
सो वह तेज अपार आपको मानिये ।

अब तो चेतन शुद्ध है,
चेतन सुरति सम्हार ।
सुरति दिव्य नीरति बनी,
मिल सुख सिन्धु दुवार ।।३६।।

प्रथम मण्डल अष्टम अध्याय

दोहा 14

अम्बु दीप के मध्य में,
सुरति क बैठक जान ।
अष्टम चेतन सुरति है,
सुमिरे द्वार निसान ।।१४।।

प्रथम मण्डल अष्टम अध्याय

दोहा 19

ग्यारहवाँ एक द्वार है,
गुप्त न जाने कोय ।
सुरति द्वार नीरति बने,
पैठे बिरला कोय ।।१९।।

मूर्द्धन में मन सुरति है,
शुद्ध सुरति द्यौ धाम ।
अगम अगोचर पन्थ में,
निरति निरन्तर नाम ।।४९।।

प्रथम मण्डल षष्ठ अध्याय

दोहा 50

तन थिर कर मन पवन थिर,
सुरति निरति करु थीर ।
नि:तत्व नि:शब्द का,
अनुभव सो मति धीर ।।५०।।

प्रथम मण्डल षष्ठ अध्याय

दोहा 51

तन मन थिर अरु पवन थिर,
सुरति निरति थिर जान ।
पर पुरुषारत याहि में,
परम गती यह मान ।।५१।।

दोहा 29

मकर तार के द्वार में,
निरखो परखो नाम ।
इंगल पिंगल निरुवार के,
सुरति जोर सत्य नाम ।।२९।।

प्रथम मण्डल षष्ठ अध्याय

दोहा 30

सुरति शब्द में जोरते,
खूले गगन किवार ।
जगमग जगमग हो रहा,
परम पुरुष दरबार ।।३०।।

प्रथम मण्डल षष्ठ अध्याय

दोहा 31

सुक्ष्म धार सुख सिन्धु का,
सोत आत्म उर गात ।
पकड़ शब्द डोरी वही,
सुरति अमी नद्द जात ।।३१।।

'सो-हम्' ध्यान की विधि (Step-by-Step)

1. **आसन का चुनाव:** किसी शांत स्थान पर **सिद्धासन** या **पद्मासन** में बैठें। अपनी रीढ़, गर्दन और सिर को एक सीधी रेखा में रखें। हाथों को 'ज्ञान मुद्रा' (अंगूठे और तर्जनी का मेल) में घुटनों पर रखें।
2. **दृष्टि की स्थिरता:** अपनी आँखें बंद करें या अपनी दृष्टि को अपनी **नासिका के अग्रभाग** (नाक की नोक) पर टिकाएं।
3. **श्वास पर ध्यान (Awareness):** सामान्य रूप से सांस लें। धीरे-धीरे अपना पूरा ध्यान नासिका से आती-जाती श्वास पर ले आएं। जबरदस्ती सांस न लें, इसे स्वाभाविक रहने दें।
4. **मंत्र का मानसिक उच्चारण:**
    1. जब आप **सांस अंदर (Inhale)** खींचें, तो मन ही मन **'सो' (So)** की ध्वनि का अनुभव करें। महसूस करें कि ब्रह्मांड की शक्ति आपके भीतर प्रवेश कर रही है।
    2. जब आप **सांस बाहर (Exhale)** छोड़ें, तो मन ही मन **'हम्' (Ham)** की ध्वनि सुनें। महसूस करें कि आपका अहंकार और विकार बाहर निकल रहे हैं।
5. **लयबद्धता (Rhythm):** 'सो' और 'हम्' को अपनी श्वास की गति के साथ पूरी तरह लयबद्ध कर दें। धीरे-धीरे आपको महसूस होगा कि यह जाप आपके प्रयास के बिना अपने आप चल रहा है। यही **'अजपा'** (बिना जपा जाने वाला) की स्थिति है।

गोरखनाथ और नाथ संप्रदाय के अनुसार इस साधना के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

- **हंस-जप (Soham Mantra):** जब हम श्वास अंदर लेते हैं, तो सूक्ष्म रूप से **'सो' (So)** की ध्वनि होती है और श्वास बाहर छोड़ते समय **'हम्' (Ham)** की ध्वनि होती है। इसे ही 'सो-हम्' या 'हंस' मंत्र कहा जाता है।
- **अजपा गायत्री:** गोरखनाथ जी के अनुसार, एक साधारण मनुष्य दिन-रात में लगभग **21,600 बार** श्वास लेता है। यदि वह जागरूकता के साथ इस श्वास-प्रश्वास की ध्वनि को सुनने लगे, तो वह अनजाने में ही प्रतिदिन इतनी बार गायत्री मंत्र (अजपा गायत्री) का जाप कर लेता है।
- **प्रक्रिया:**
  1. एक स्थिर आसन (जैसे सिद्धासन या पद्मासन) में बैठें।
  2. अपनी पूरी एकाग्रता नाक से होकर हृदय और नाभि तक जाने वाली **श्वास** पर टिकाएं।
  3. श्वास के साथ 'सो' और 'हम्' के मानसिक उच्चारण को बिना प्रयास के चलने दें।
- **साधना का लक्ष्य:** गोरखनाथ जी कहते हैं कि जो साधक निरंतर इस अजपा जाप में स्थित रहता है, वह अपनी पाँचों इंद्रियों पर नियंत्रण पा लेता है और उसकी 'ब्रह्माग्नि' जागृत होती है, जिससे वह साक्षात **महादेव** (शिव स्वरूप) को प्राप्त कर लेता है।
- **महत्व:** नाथ योगी मानते हैं कि इस साधना के संकल्प मात्र से सभी पापों

सद्गुरु सदाफलदेव जी महाराज ने **'योग तत्त्व दर्पण'** और **'योग चंद्रिका'** में कुण्डलिनी जागरण और नाड़ी शुद्धि के लिए मुख्य रूप से **प्राणयाम** और **बन्धों** के समन्वय पर जोर दिया है।

यहाँ कुछ प्रमुख विधियाँ दी गई हैं जिनका वर्णन इन ग्रंथों में मिलता है:

1. प्राणयाम का विधान (Pranayama)

कुण्डलिनी को जागृत करने के लिए प्राणों का संतुलित होना अनिवार्य है।

- **सुषुम्ना प्राणायाम**: इसमें इड़ा (बाँयी) और पिंगला (दाँयी) नाड़ी के श्वास को संतुलित कर मध्य मार्ग यानी **सुषुम्ना** में प्रवाहित करने का अभ्यास किया जाता है। जब प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करते हैं, तभी कुण्डलिनी का मुख ऊपर की ओर खुलता है।
- **कुम्भक (Retention)**: श्वास को अंदर या बाहर रोकने की क्रिया, जिसे 'कुम्भक' कहते हैं, कुण्डलिनी पर दबाव बनाने और उसे ऊपर उठाने में सहायक मानी जाती है।

2. तीन मुख्य बन्ध (Three Key Locks)

महाराज जी ने कुण्डलिनी जागरण के लिए इन तीन बन्धों को 'योग तत्त्व दर्पण' में अत्यंत प्रभावशाली बताया है:

- **मूल बन्ध (Root Lock)**: गुदा द्वार को संकुचित करना। यह अपान वायु को ऊपर की ओर मोड़ता है और मूलाधार चक्र पर सुप्त कुण्डलिनी को चोट पहँचाकर उसे जगाता है।

05:03

ए) सहज योग :

अमृत नाथजी के अनुसार, अटूट ब्रह्मचर्य के बिना आत्म-साक्षात्कार और स्थायी आध्यात्मिक शांति प्राप्त नहीं की जा सकती है, और खान-पान की आदतों और जीवनशैली में सुधार किए बिना ब्रह्मचर्य का पालन करना असंभव है।

उनके अनुसार सहज योग में, सर्वप्रथम भोजन को सुचारु करना, वीर्य को संरक्षित करना और श्वास पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। यह श्वास नाभि क्षेत्र में स्थित मणिपुर चक्र से उठती है, रीढ़ की हड्डी में स्थित सुषुम्ना से होकर सहस्रार चक्र तक पहुँचती है और नासिका की नोक पर दृष्टि टिकाकर वापस नाभि क्षेत्र में लौट आती है। सुषुम्ना श्वास प्रणाली का आधार है; यह रीढ़ की हड्डी से होकर गुजरती है और एक माला का रूप धारण करती है। सुषुम्ना में लीन होने से स्वयं का आनंद स्वयं से और स्वयं के माध्यम से प्राप्त होता है। मन की यात्रा को शांत अवस्था में लाया जा सकता है। आत्मा या ब्रह्मांडीय स्व, विश्वात्मा, अपनी समस्त शक्तियों और वैभव के साथ प्रकट होता है।

योग—सहज योग की सिद्धि—पूर्ण संतुष्टि की चरम अवस्था है। इसे प्राप्त किए बिना वेदांत की बात नहीं करनी चाहिए; यह तो केवल असत्य का शाब्दिक मंथन होगा।

ख) आसन :

पवित्र ऋषि के आसनों के बारे में क्रांतिकारी विचार हैं। उनका कहना है कि आसन स्वयं मन की शांति नहीं देते। वे केवल शरीर को स्वस्थ और तंदुरुस्त रखने में उपयोगी हैं। केवल सिद्धासन और कोमल पद्मासन ही अभ्यासकर्ता के लिए लाभकारी हैं। सुख आसन, जो सबसे सुविधाजनक और सहज आसन है, सर्वोत्तम है।

ग) प्राणायाम :

05:00

ॐ

श्रीअमृतानुराग

(शंकरविलास)

अर्थात्

परमपूज्य, योगीराजस्वामीश्री १०८

श्रीअमृतनाथजीमहाराज

फ़तहपुर (जयपुर) के

सारगर्भित

उपदेश।

स्वास देह में घटत हैं, ज्यों दीपक में तेल।
'अमृत' अवसर जात है, पूरा होता खेल॥

प्रकाशक—

स्वामी शुभनाथजी फ़तहपुर (जयपुर)

प्रथमबार १००० { फाल्गुण ग
वि० सं० १९८८
शिवरात्रि } मूल्य ।)

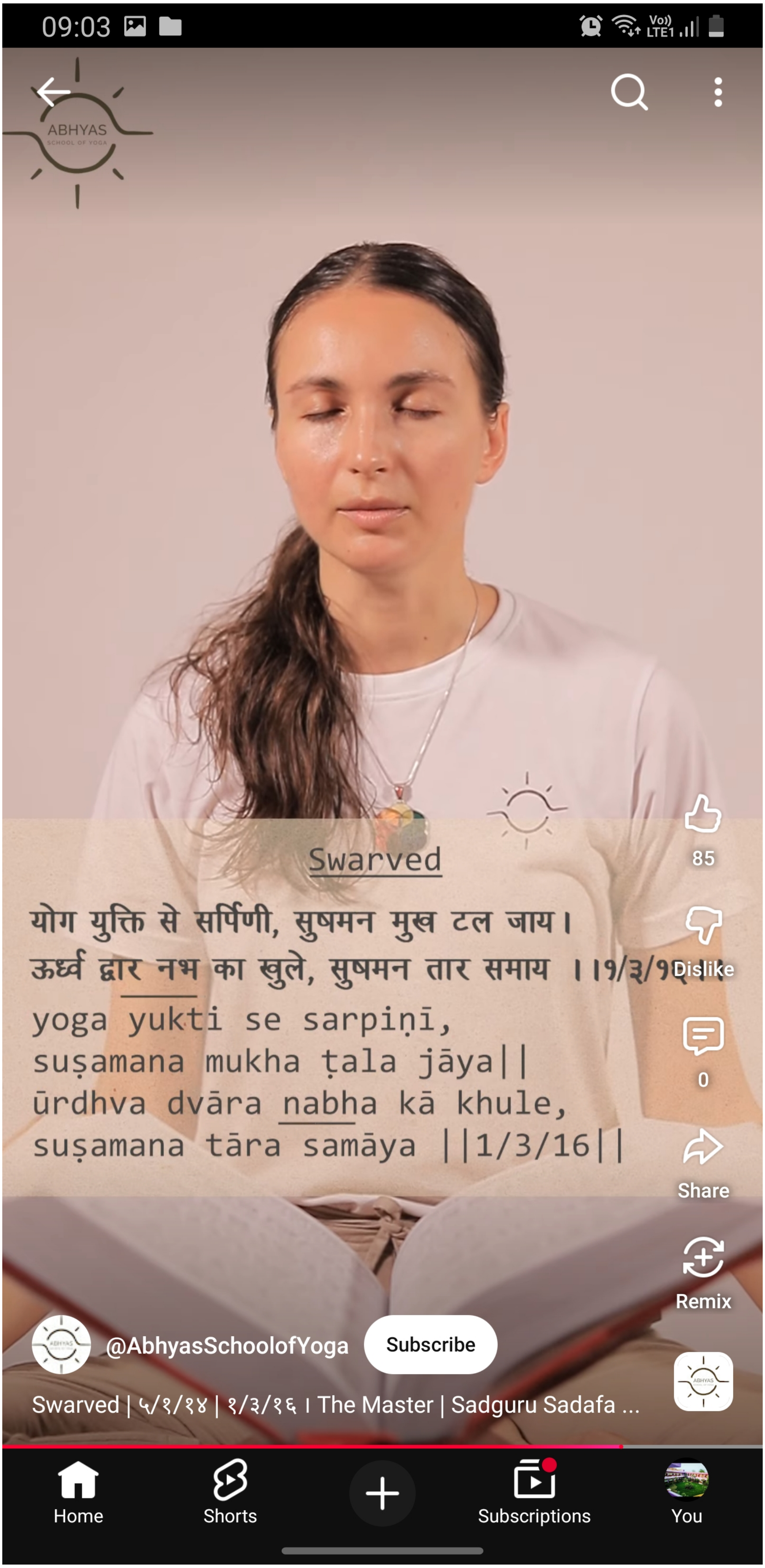
09:03
ABHYAS
SCHOOL OF YOGA
Swarved
योग युक्ति से सर्पिणी, सुषमन मुख टल जाय।
ऊर्ध्व द्वार नभ का खुले, सुषमन तार समाय ।।१/३/१
yoga yukti se sarpiṇī,
suṣamana mukha ṭala jāya||
ūrdhva dvāra nabha kā khule,
suṣamana tāra samāya ||1/3/16||
85
Dislike
0
Share
Remix
@AbhyasSchoolofYoga
Subscribe
Swarved | ५/१/१४ | १/३/१६ I The Master | Sadguru Sadafa ...
Home
Shorts
Subscriptions
You

08:51

दोहे खोजें

स्वर्वेद में दोहे खोजें

षष्ठ मण्डल तृतीय अध्याय

दोहा 69

अनहद नाद तहाँ नहिं गावे ।
अजपा अक्षर नहिं तहँ पावे ।।१४।।

षष्ठ मण्डल षष्ठ अध्याय

दोहा 155

षट सत इक्कीस सहस हो,
अजपा निशिदिन जोय ।
श्वाँसोश्वाँस अभ्यास में,
पलक न धोखा होय ।।१४५।।

षष्ठ मण्डल षष्ठ अध्याय

दोहा 213

अनहद अजपा शून्य लय,
झिलमिल ज्योतिउ नाथ ।
सुरति नशै नीरति नशै,
आपहिं आप प्रकाश ।।२०१।।

2. 'सोऽहं' (So-Ham) श्वास साधना

महाराज नाथ संप्रदाय के थे, जहाँ 'अजपा-जप' का बहुत महत्व है।

- **विधि:** श्वास लेते समय मन में **'सो'** और छोड़ते समय **'हं'** का अनुभव करना।
- **रहस्य:** 'सो' का अर्थ है 'वह' (परमात्मा) और 'हं' का अर्थ है 'मैं'। इसका अर्थ है— "वही परमात्मा मैं हूँ।" जब सुरता इस श्वास की गति के साथ जुड़ जाती है, तो इड़ा और पिंगला संतुलित होकर **सुषुम्ना (सुखमन)** मार्ग खोल देती हैं।

3. नाद अनुसंधान (आंतरिक ध्वनि सुनना)

सुरता को साधने के लिए महाराज 'नाद' (inner sound) को पकड़ने की सलाह देते थे।

- **विधि:** कान बंद करके भीतर गूँजने वाली सूक्ष्म ध्वनि (जैसे झींगुर की आवाज़, शंख या घंटे की ध्वनि) को सुनने का प्रयास करना।
- **प्रभाव:** सुरता जब इस आंतरिक ध्वनि में लीन हो जाती है, तो बाहरी दुनिया का विस्मरण हो जाता है और साधक 'अगम द्वार' (दिव्य अवस्था) में प्रवेश कर जाता है।

4. विषयों से वैराग्य (मन का निरोध)

भजन की पंक्ति है— *"विषयी विकारी मनको जरूर मारूँगा"*।

જીવ ને બ્રહ્મ હો એક રૂપ જોયું,
આતમાને જાણતાં આપું ખોયું... આતમા...૪
એકમાં અનેકની રે હો છાયા,
માવલાની માયાએ ખેલ આ રચાયા... આતમા...૫
શંકર કહે છે રે હો સાચું,
શમનાજ નામમાં સદાય રંગ રાચું... આતમા...૬

ભજન ૩

બ્રહ્મનાદ ગાજે હો બ્રહ્મદ્વારમાં,
આજ મ્હારી સૂરતા નાચે છે નિરાધારમાં, બ્રહ્મનાદ...ટેક
દ્વાર-ખૂલતાં જ હો નાગણી જાગી,
આજ મ્હને લાલાથી લગની લાગી... બ્રહ્મનાદ...૧
આભલું ફાટતાં આંટ હો તૂટી,
આજ મ્હારી માયાની આંખડી ફૂટી... બ્રહ્મનાદ...૨
ઓહંગ સોહંગ તાર હો સાંધ્યા,
આજ મેં તો ત્રણે જણાને તાણી બાંધ્યા... બ્રહ્મનાદ...૩
વરતિ વ્યોમ પર જઈ હો બેઠી,
આજ મેરૂ ફાડી ગુફામાં ઠેઠ પેઠી... બ્રહ્મનાદ...૪
પ્રેમરસ પેટ ભરી ભરી હો પીધા,
આજ ઓલ્યા જોગીડે આંધળા કીધા... બ્રહ્મનાદ...૫
શંકરને હો શંકર મળીયા,
આજ બ્રહ્મજ્ઞાનરૂપ હિમમાં ગળીયા... બ્રહ્મનાદ...૬

ભજન ૪

મહાપદ મળીયું રે હો જેને,
કહો ભાઈ કોઇની પડી શી હોય તેને? મહાપદ......ટેક.
ચંદ ને સૂર હો શેરીઓ વાળે,
પાંચ દેવ આવી રોજ પાવલાં પખાળે...મહાપદ......૧

06:48
अंग्रेज़ी → हिन्दी

૨૭

ગુરૂકા ગુનહી ગાઉંગા...ઇસ જગમેં,
ધણીકા બનહી જાઉંગા...ઇસ જગમેં—ટેક.

આસન સિદ્ધ લગાકર બૈઠું, ધ્યાન ત્રિકુટી ધારૂંગા, બાવા (૨)
છંદ ફંદ સબ જગકે છોડી, વિષયી વિકારી મનકો જરૂર મારૂંગા,
ઇસ જગમેં...ગુરૂકા...

ચંદ સૂરકા મેલા કરકે, સુખમન ઘર આવુંગા, બાવા (૨)
ચક્ર ભેદ શિખર ચઢ જાઉં, અલખ પુરૂષસેં મૈં મીલહી જાઉંગા,
ઇસ જગમેં...ગુરૂકા...

બંકનાલકી બિકટ બાટ હૈ, બાવન પર બોલુંગા, બાવા (૨)
ગગન સહેલ ગુરૂ ઘરકી બાજી, ગુરૂકી કૃપાસેં અગમ દ્વાર ખોલુંગા,
ઇસ જગમેં...ગુરૂકા...

ભોગી જોગકલા કયા જાને? બાત ન તાસેં કરૂંગા, બાવા (૨)
શંકર સબ સંતનકે ચાકર, હૃદય મટૂકી રામરસસેં ભરૂંગા,
ઇસ જગમેં...ગુરૂકા...

पृष्ठ — (369/374)
पसंदीदा शेयर करना झंडा
परम तत्व विलास।
द्वारा शंकर महाराज

જીવ ને બ્રહ્મ હો એક રૂપ જોયું,
આતમાને જાણતાં આપું ખોયું... આતમા...૪
એકમાં અનેકની રે હો છાયા,
માવલાની માયાએ ખેલ આ રચાયા... આતમા...૫
શંકર કહે છે રે હો સાચું,
શમનાજ નામમાં સદાય રંગ રાચું... આતમા...૬

ભજન ૩

બ્રહ્મનાદ ગાજે હો બ્રહ્મદ્વારમાં,
આજ મ્હારી સૂરતા નાચે છે નિરાધારમાં, બ્રહ્મનાદ...ટેક
દ્વાર–ખૂલતાં જ હો નાગણી જાગી,
આજ મ્હને લાલાથી લગની લાગી... બ્રહ્મનાદ...૧
આભલું ફાટતાં આંટ હો તૂટી,
આજ મ્હારી માયાની આંખડી ફૂટી... બ્રહ્મનાદ...૨
ઓહંગ સોહંગ તાર હો સાંધ્યા,
આજ મેં તો ત્રણે જણાને તાણી બાંધ્યા... બ્રહ્મનાદ...૩
વરતિ વ્યોમ પર જઇ હો બેઠી,
આજ મેરૂ ફાડી ગુફામાં ઠેઠ પેઠી... બ્રહ્મનાદ...૪
પ્રેમરસ પેટ ભરી ભરી હો પીધા,
આજ ઓલ્યા જોગીડે આંધળા કીધા... બ્રહ્મનાદ...૫
શંકરને હો શંકર મળીયા,
આજ બ્રહ્મજ્ઞાનરૂપ હિમમાં ગળીયા... બ્રહ્મનાદ...૬

ભજન ૪

મહાપદ મળીયું રે હો જેને,
કહો ભાઈ કોઇની પડી શી હોય તેને? મહાપદ......ટેક.
ચંદ ને સૂર હો શેરીઓ વાળે,
પાંચ દેવ આવી રોજ પાવલાં પખાળે...મહાપદ......૧

२१ भक्ति के भेद १७३
२२ चारप्रकार के भक्त १७५
२३ चारअवस्था ज्ञानियोंकी १७८
२४ अहार विहार १७९
२५ श्री अमृतनाथ महिमाष्टक १८०
२६ श्री अमृतनाथजी की आरती १९१
२७ श्रीनाथ सम्प्रदायकाकुछ परिचार १९३
२९ श्रीपीरज्योतिनाथजीका संक्षिप्तजीवन १९८

॥ विषय सूची ॥

संख्या	विषय	पृष्ठ
१	गुरु प्रार्थना	१
२	योगसार	२
३	ब्रह्मज्ञान	३
४	सतसंग	१४
५	विषय बिकार	१९
६	स्वरोदय ज्ञान	२
७	उपदेश	२३
८	शब्द भजन (रागरागनी	३१
९	प्रार्थना भक्ति (रागरागनी	७४
१०	पाँचों मुद्रा (योग)	१३४
११	आठों कुम्भक	१३८
१२	चारों बन्ध	१४३
१३	चारों ध्यान	१४६
१४	तीनों समाधि	१४८
१५	कुण्डलिनी	१४९
१६	दशप्रकारका नाद	१५१
१७	ध्वनि राधेश्याम (अष्टाङ्ग योग)	१५२
१८	तुरिया	१६३
१९	सुषुम्ना	१६६
२०	नवधा भक्ती	१७०

07:21

यहाँ **संत भूरनाथ (बरनाथ) महाराज** के एक बहुत ही प्रसिद्ध भजन की मुख्य पंक्तियाँ और उसका अर्थ दिया गया है, जो उनकी **'सोऽहं'** और **'सुखम साधना'** का निचोड़ है:

प्रसिद्ध भजन: "अजपा जप ले रे मना"

भजन की पंक्तियाँ:

> "अजपा जप ले रे मना, सोऽहं शब्द की माला।
> बिन धागे की यह माला है, बिना हाथ का जपा वाला॥"

अर्थ:

1. **अजपा जप**: इसका मतलब है वह जाप जो बिना जीभ हिलाए, केवल सांसों के आने-जाने (Inhale/Exhale) से होता है।
2. **बिन धागे की माला**: भूरनाथ जी कहते हैं कि परमात्मा को जपने के लिए लकड़ी या मनकों की माला की ज़रूरत नहीं है। हमारी **सांसें** ही वह माला हैं।
3. **सोऽहं**: श्वास अंदर लेते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हं' का अनुभव करना ही असली साधना है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

3. अजपा-जप और सुरति (ध्यान)

बाबा जी कहते थे कि केवल शरीर को सिकोड़ने से कुछ नहीं होगा, **'सुरति'** (ध्यान) को जगाना होगा।

- **उपाय:** श्वास-प्रश्वास के साथ 'सोऽहं' का निरंतर मानसिक जाप करना।
- **रहस्य:** जब ध्यान (सुरति) पूरी तरह श्वास की ध्वनि में लीन हो जाता है, तो मन के विकार शांत होते हैं और सोई हुई शक्ति अपने आप ऊर्ध्वगामी (ऊपर की ओर) होने लगती है।

4. आहार और ब्रह्मचर्य की शुद्धि

कुण्डलिनी एक प्रचंड ऊर्जा है। बाबा अमृतनाथ जी चेतावनी देते थे कि **अशुद्ध आहार** (मांस, मदिरा, नशा) करने वाले व्यक्ति के लिए यह मार्ग खतरनाक हो सकता है।

- **उपाय:** सात्विक भोजन और वीर्य रक्षा (ब्रह्मचर्य) अनिवार्य है। वे कहते थे कि शरीर को 'कंचन' (सोने जैसा शुद्ध) बनाना पड़ता है ताकि वह कुण्डलिनी की गर्मी और शक्ति को सह सके।

5. गुरु की 'शक्तिपात' और कृपा

बाबा जी का सबसे बड़ा सिद्धांत यह था कि कुण्डलिनी अपनी मर्जी से या हठ करके नहीं जगाई जा सकती।

- **उपाय:** गुरु की शरण में जाना। वे कहते थे कि जब शिष्य तैयार होता है, तो गुरु अपनी दृष्टि, शब्द या स्पर्श से शिष्य के भीतर की ऊर्जा को

संत बाबा अमृतनाथ जी महाराज (फतेहपुर, शेखावाटी) ने **कुण्डलिनी शक्ति** (जिसे वे अक्सर 'सुरता' या 'नागिणी' के प्रतीकात्मक रूप में समझाते थे) को जगाने के लिए **नाथ संप्रदाय** के 'हठयोग' और 'सहज योग' का मिश्रण बताया है।

उनकी पुस्तक **'अमृत अनुराग'** और उनके उपदेशों के अनुसार, कुण्डलिनी जाग्रत करने के **5 मुख्य उपाय** यहाँ दिए गए हैं:

1. प्राण और अपान का मेल (प्राणायाम)

बाबा जी के अनुसार, कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में सोई हुई है। इसे जगाने के लिए **प्राण** (ऊपर जाने वाली वायु) और **अपान** (नीचे जाने वाली वायु) को एक करना पड़ता है।

- **उपाय:** श्वास की गति को धीमा और गहरा करना। जब ये दोनों वायु नाभि केंद्र (मणिपुर चक्र) पर मिलती हैं, तो वहां एक 'अग्नि' उत्पन्न होती है जो कुण्डलिनी को ऊपर उठने के लिए प्रेरित करती है।

2. बंधों का प्रयोग (Body Locks)

नाथ योग में 'बंध' का बहुत महत्व है। बाबा जी विशेषकर **'मूलबंध'** (गुदा मार्ग को संकुचित करना) और **'जालंधर बंध'** (ठुड्डी को छाती से लगाना) की सलाह देते थे।

- **प्रभाव:** ये बंध ऊर्जा को बाहर बहने से रोकते हैं और उसे सीधे **सुषुम्ना नाड़ी** (मध्य मार्ग) में धकेलते हैं, जिससे कुण्डलिनी का जागरण सरल हो जाता है।

बाबा अमृतनाथ जी महाराज और नाथ संप्रदाय की परंपरा में **'अजपा गायत्री'** (जिसे 'हंस गायत्री' भी कहा जाता है) को साधना का सबसे गुप्त और शक्तिशाली मंत्र माना गया है। यह मंत्र किसी शब्द को रटने के बारे में नहीं है, बल्कि यह हमारी **सांसों की गति** में छिपा हुआ है।

बाबा जी द्वारा बताई गई 'अजपा गायत्री' का रहस्य और विधि यहाँ दी गई है:

1. मंत्र का स्वरूप: 'सोऽहं' (So-Ham)

अजपा गायत्री का मूल मंत्र है— **"सोऽहं"**।

- **सो (So):** श्वास भीतर लेते समय की सूक्ष्म ध्वनि। (इसका अर्थ है— 'वह' यानी परमात्मा)
- **हं (Ham):** श्वास बाहर छोड़ते समय की सूक्ष्म ध्वनि। (इसका अर्थ है— 'मैं' यानी आत्मा)
- **पूरा अर्थ:** "वह परमात्मा ही मैं हूँ।"

2. साधना की विधि (अजपा जाप)

बाबा अमृतनाथ जी ने इसे 'अजपा' इसलिए कहा क्योंकि इसे जीभ से जपने की जरूरत नहीं पड़ती। यह अपने आप (Automatically) चलता है।

- **सुखासन में बैठें:** कमर सीधी करके शांत बैठें।
- **श्वास पर सुरति (ध्यान):** अपनी 'सुरति' (चेतना) को नाक के अग्रभाग या गले के पास श्वास की गति पर टिका दें।

संत बाबा अमृतनाथ जी महाराज ने **'सुरति'** (ध्यान) को एकाग्र करने और उसे **'शब्द'** (ईश्वरीय नाद) से जोड़ने के लिए **नाथ संप्रदाय** की अत्यंत गुप्त और प्रभावशाली क्रियाएँ बताई हैं।

उनके उपदेशों और 'अमृत अनुराग' के आधार पर सुरति साधने की **प्रमुख विधियाँ** ये हैं:

1. अजपा-जप (श्वास की डोर)

बाबा जी कहते थे कि सुरति को कहीं बाहर खोजने के बजाय अपनी **सांसों की डोर** से बाँध दो।

- **विधि:** शांत बैठकर आती-जाती श्वास को केवल 'देखें' (Witness)। श्वास लेते समय मन में 'सो' और छोड़ते समय 'हं' का अनुभव करें।
- **रहस्य:** जब आपकी सुरति श्वास की गति के साथ एक हो जाती है, तो मन के विचार अपने आप रुक जाते हैं। इसे ही **'प्राण-अपान का मेल'** कहते हैं।

2. त्रिकुटी ध्यान (भृकुटि विलास)

सुरति को टिकाने का सबसे मुख्य केंद्र **त्रिकुटी** (दोनों भौहों के बीच का स्थान) है।

- **विधि:** आँखों को बंद कर आंतरिक दृष्टि को त्रिकुटी पर एकाग्र करें। बाबा जी कहते थे कि यहाँ 'ज्योत' का दर्शन होता है।
- **प्रभाव:** जैसे ही सुरति यहाँ टिकती है, साधक को एक दिव्य प्रकाश या

Ask anything
Home Search Notifications Activity

2. साधना पद्धति: 'अलख निरंजन' और 'अजपा-जप'

आश्रम में जो साधना सिखाई जाती है, वह **नाथ योग** पर आधारित है:

- **शब्द-सुरति योग:** यहाँ 'शब्द' (गुरु मंत्र) और 'सुरता' (ध्यान) को एक करने की साधना होती है। साधक को सिखाया जाता है कि कैसे अपनी सांसों के साथ 'सोऽहं' या गुरु द्वारा दिए गए नाम को जोड़ना है।
- **अजपा-जप:** यह वह अवस्था है जहाँ मंत्र को जीभ से नहीं जपना पड़ता, बल्कि वह हृदय की धड़कन और सांसों के साथ अपने आप चलने लगता है।
- **नाद अनुसंधान:** साधक एकांत में बैठकर अपने भीतर उठने वाली सूक्ष्म ध्वनियों (अनाहत नाद) को सुनने का अभ्यास करते हैं, जिससे मन पूरी तरह स्थिर हो जाता है।

3. आश्रम की दिनचर्या (अनुशासन)

साधना केवल बैठने तक सीमित नहीं है, बल्कि कर्म योग पर भी आधारित है:

- **सेवा:** आश्रम में आने वाले साधकों को गौ-सेवा (गायों की सेवा) और भंडारे की सेवा को साधना का ही अंग माना जाता है।
- **सत्संग और भजन:** शाम के समय 'अमृत अनुराग' के पदों का गायन होता है। बाबा जी के भजनों में जो लय और तरंग होती है, वह साधक की सोई हुई चेतना (कुण्डलिनी) को झंकृत कर देती है।

2. संत रामरूप जी का एक विशेष पद और भावार्थ

उनकी वाणी का यह पद सोहं साधना के सार को प्रकट करता है:

> **"रामरूप सोहं गहो, अजपा जाप अनूप।**
> **सांस सांस सुमिरन करो, तजो जगत का रूप॥**
> **घट ही भीतर ब्रह्म है, घट ही भीतर राम।**
> **खोजो सोहं डोर से, पावो निज विश्राम॥"**

भावार्थ:
रामरूप जी कह रहे हैं कि उस अद्वितीय 'सोहं' शब्द को थाम लो। दुनिया के बाहरी रूपों और मोह-माया को त्यागकर अपनी हर सांस के साथ ईश्वर का सुमिरन करो। वह परमात्मा (ब्रह्म/राम) तुम्हारे शरीर के भीतर ही छिपा है। उसे अपनी सांसों की 'सोहं' रूपी डोरी से खोजो, तभी तुम्हें परम शांति और अपना असली घर (निज विश्राम) प्राप्त होगा।

---

3. साधना के लिए रामरूप जी के अनमोल सूत्र:

1. **सांस खाली न जाए:** एक भी सांस बिना 'सोहं' के भाव के बाहर न निकले।
2. **चंचल मन को बांधो:** मन एक बंदर की तरह है, उसे सांसों की खूँटी से

3. रामरूप जी की साधना का मूल मंत्र

रामरूप जी अक्सर अपने पदों में यह संदेश देते थे कि **"शरीर ही मंदिर है और सांस ही सुमिरन है।"**

> **"रामरूप घट भीतर ही, सोहं शब्द गूँजाय। जो जन मन को थाम ले, अलख पुरुष मिल जाय॥"**

- **भावार्थ:** रामरूप जी कहते हैं कि शरीर (घट) के भीतर ही 'सोहं' का शब्द निरंतर गूँज रहा है। जो व्यक्ति अपने चंचल मन को इस शब्द के साथ रोक (थाम) लेता है, उसे उस अविनाशी परमात्मा (अलख पुरुष) के दर्शन भीतर ही हो जाते हैं।

---

4. परंपरा की निरंतरता

आज भी **दिल्ली (बाली नगर/डेरा बाबा चरणदास)** और देश के अन्य हिस्सों में चरणदासी परंपरा के अनुयायी संत रामरूप जी की वाणी और उनकी 'सोहं साधना' की पद्धति का अनुसरण करते हैं।

- **दोहा भाव:** *"सोहं सोहं जप जपो, अजपा जाप अनूप। ताके सुमिरन से मिले, अलख ब्रह्म का रूप॥"*

2. सुरति-शब्द योग (Union of Attention and Sound)

उनकी वाणी में 'सुरति' (ध्यान) को 'शब्द' (सोहम् की ध्वनि) में टिकाने पर जोर दिया गया है।

- जब मन (सुरति) श्वास की इस सूक्ष्म ध्वनि को पकड़ लेता है, तो वह संसार से हटकर अंतर्मुखी हो जाता है।
- **दोहा भाव:** *"सोहं सोहं जप जपो, अजपा जाप अनूप। ताके सुमिरन से मिले, अलख ब्रह्म का रूप॥"*

3. प्राणायाम और नाड़ी शुद्धि

चरणदास जी ने **अष्टांग योग** के अंतर्गत प्राणायाम को सोहम् साधना का आधार माना है।

- वे इड़ा (बायाँ), पिंगला (दायाँ) नाड़ियों को शुद्ध कर प्राण को **सुषुम्ना** (मध्य नाड़ी) में प्रवाहित करने की विधि बताते हैं।
- जब प्राण सुषुम्ना में स्थिर होता है, तब 'सोहम्' का नाद स्पष्ट सुनाई देने लगता है।

4. षट्चक्र और अनहद नाद

साधना की गहराई में, सोहम् का जाप चक्रों को जाग्रत करता है।

3. नाड़ी और चक्र भेदन (Nadis and Chakras)

> **"इड़ा पिंगला शोध कर, सुखमन मार्ग लेय।
> उलटि पवन ऊपर चढ़े, तब ज्योति दिखाई देय॥"**

- **व्याख्या:** इड़ा (बाँई नासिका) और पिंगला (दाईं नासिका) को प्राणायाम से शुद्ध करके प्राण को 'सुषुम्ना' (सुखमन) मार्ग में लाना चाहिए। जब श्वास 'उलट' जाती है (यानी ऊपर की ओर ब्रह्मरंध्र की तरफ गति करती है), तब साधक को भीतर दिव्य प्रकाश या ज्योति का अनुभव होता है।

4. गुरु की महत्ता (Importance of Guru)

> **"अजपा को जप जानिये, गुरु मुख मिले जो भेद।
> बिन गुरु जग भटकत फिरे, पढ़ पढ़ चारों वेद॥"**

- **व्याख्या:** अजपा जाप (सोहम्) की असली विधि केवल गुरु के मुख से ही प्राप्त होती है। बिना गुरु के मार्गदर्शन के इंसान चारों वेदों को पढ़कर भी सत्य से दूर भटकता रहता है।

na

संत जोग जीत (जोग जी) ने **'जोग प्रकाश'** में सोहम् और प्राणायाम की बारीकियों को दोहों के माध्यम से समझाया है। यहाँ इस साधना के सबसे महत्वपूर्ण **दोहे और उनकी व्याख्या** दी गई है:

1. अजपा जाप का मूल (The Essence of Ajapa)

> **"सोहं सोहं धुनि उठे, घट के माहीं जान।**
> **बिन जिह्वा सुमिरन करे, सोई चतुर सुजान॥"**

- **व्याख्या:** जोग जी कहते हैं कि शरीर (घट) के भीतर 'सोहं-सोहं' की ध्वनि स्वतः उठ रही है। जो साधक बिना जीभ हिलाए (मानसिक रूप से) इस सुमिरन को पकड़ लेता है, वही वास्तव में चतुर और ज्ञानी है।

2. श्वास और मन का संबंध (Breath and Mind)

> **"पवन थंभे मन थंभई, मन थंभे पवन थंभ जाय।**
> **जोग जीत यहि जुगति से, सहज समाधि लगाय॥"**

5. श्वास-प्रश्वास क्रिया पर:

> **"बाहर जावे 'हम्' कहे, भीतर आवे 'सो'।**
> **जो यह सुमिरन नित करे, सोई सिद्ध नर होय॥"**

- **भावार्थ:** बाहर जाती श्वास 'हम्' कहती है और भीतर आती 'सो'। जो व्यक्ति हर श्वास में इस सुमिरन को जोड़ लेता है, वही सच्चा सिद्ध है।

राजा मानसिंह के पदों में अक्सर "**अलख निरंजन**" और "**सोऽहम् हंस**" के समन्वय पर बहुत जोर दिया गया है, जो नाथ पंथ की 'हठयोग' परंपरा का भी हिस्सा है।

क्या आप इन दोहों के **गायन (भजन)** या **अभ्यास के दौरान आने वाले अनुभवों** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

3. हंस और सोऽहम् पर:

> **"उलटि कमल दल बैठि के, हंस करे विश्राम।
> सोहं मंत्र की डोरि गहि, पहुँचे निज के
> धाम॥"**

- **भावार्थ:** जब साधक सोऽहम् मंत्र की डोर पकड़ता है, तो उसकी प्राण ऊर्जा (हंस) सहस्रार चक्र (कमल दल) पर विश्राम करती है और वह अपने वास्तविक स्वरूप (निज धाम) को प्राप्त कर लेता है।

4. गुरु कृपा और सोऽहम्:

> **"गुरु ने दीन्हीं आरसी, सोहं शब्द सुनाय।
> आपा में आपा लखा, दूजा भाव न साय॥"**

- **भावार्थ:** गुरु ने सोऽहम् शब्द का उपदेश देकर साधक को ऐसा दर्पण (आरसी) दे दिया है, जिससे वह अपने भीतर ही परमात्मा को देख लेता है और भेदभाव (द्वैत) समाप्त हो जाता है।

5. श्वास-प्रश्वास क्रिया पर:

1. श्वास की महिमा पर:

> **"सोहं सोहं जप जपै, बिन जिह्वा बिन दंत।
> अन्तर जोति जगाय के, मिलै निरंजन कंत॥"**

- **भावार्थ:** बिना जीभ और बिना दांतों के (यानी मानसिक रूप से) सोऽहम् का जाप करने से भीतर की ज्योति जागृत होती है और साधक उस अविनाशी परमात्मा (निरंजन कंत) से मिल जाता है।

2. अजपा जाप पर:

> **"माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
> कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥"**

- **संदर्भ:** राजा मानसिंह और कबीर पंथी विचारधारा में यह दोहा सोऽहम् साधना की नींव है। हाथ की माला छोड़कर श्वासों के 'मनके' (सोऽहम्) पर ध्यान लगाने की प्रेरणा दी गई है।

3. हंस और सोऽहम् पर:

- **डेरा साहिब (राजस्थान और हरियाणा):** अलवर (राजस्थान) के आसपास कई छोटे आश्रम हैं जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में 'अजपा-जाप' की परंपरा आज भी बहुत लोकप्रिय है।

---

3. साधना के लिए रामरूप जी का विशेष निर्देश

रामरूप जी अक्सर अपने शिष्यों को समझाते थे कि **"भीतर का संगीत (अनहद) सुनने के लिए बाहर का शोर (अहंकार और व्यर्थ की बातें) बंद करना जरूरी है।"**

> **"रामरूप अनहद गूँजे, शब्द मिलै सुख पाय।**
> **सोहं डोरी गहि रहे, आवागमन मिट जाय॥"**

क्या आप संत रामरूप जी के किसी विशेष उत्सव (जैसे बसंत पंचमी या गुरु पूर्णिमा) के बारे में जानना चाहते हैं, जब इन आश्रमों में विशेष 'सोहं साधना' शिविर लगते हैं?

12:01

AI Mode All Products Homework Visual matches

1. सोहं सिद्ध करने की विशेष प्राणायाम विधि (रामरूप जी के अनुसार)

रामरूप जी के अनुसार, केवल सांस लेना योग नहीं है, बल्कि सांस के साथ 'जाप' और 'ध्यान' का जुड़ना असली योग है। उन्होंने इसके **3 मुख्य चरण** बताए हैं:

- **पूरक (Inhale) - 'सो' का प्रवेश:**
  नाक के दोनों छिद्रों से धीरे-धीरे और गहरी सांस अंदर लें। मन ही मन अनुभव करें कि ब्रह्मांड की समस्त 'चेतना' और 'शांति' **'सो' (SO)** ध्वनि के साथ आपके भीतर प्रवेश कर रही है और नाभि (मणिपुर चक्र) तक जा रही है।
- **कुंभक (Hold) - 'विश्राम':**
  सांस को अंदर ही कुछ क्षणों के लिए रोकें। इस ठहराव में महसूस करें कि वह 'परमात्मा' (सो) आपकी 'आत्मा' के साथ मिल रहा है। रामरूप जी इसे **'अन्तः कुंभक'** की शांति कहते हैं।
- **रेचक (Exhale) - 'हं' का विसर्जन:**
  अब धीरे-धीरे सांस बाहर छोड़ें और मन ही मन **'हं' (HAM)** का उच्चारण करें। भावना करें कि आपके शरीर के सारे विकार, बीमारियाँ और 'अहंकार' (I-ness) इस श्वास के साथ बाहर निकल रहे हैं।

रामरूप जी का गुप्त सूत्र: "जब 'सो' और 'हं' के बीच का फासला मिट जाता है, तब केवल **'ओम्'** शेष रह जाता है। यही सोहं की सिद्धि है।"

Ask anything

Home Search Notifications Activity

12:00
AI Mode All Products Homework Visual matches

**"रामरूप सोहं गहे, गुरु चरनन चित लाय।
उलटि पवन घर में रहे, अनहद शब्द
सुनाय॥"**

- **भावार्थ:** रामरूप जी कहते हैं कि जो साधक गुरु के चरणों में मन लगाकर 'सोहं' को पकड़ लेता है और अपनी प्राण-वायु (पवन) को बाहर भटकने के बजाय **'उलटकर'** भीतर (सुषुम्ना नाड़ी) में स्थिर कर लेता है, उसे भीतर ही **'अनहद नाद'** (दिव्य संगीत) सुनाई देने लगता है।

---

3. साधना की सफलता के ३ गुप्त सूत्र (रामरूप जी के अनुसार)

1. **सांसों की गिनती (21,600):** मनुष्य एक दिन में जितनी सांसें लेता है, उनमें से एक भी 'सोहं' के बिना न जाए। वे कहते हैं— *"हर सांस में राम है, हर सांस में सोहं।"*
2. **एकांत और मौन:** साधना की गहराई के लिए वाणी का मौन और एकांत वास बहुत सहायक है। जितना कम बोलेंगे, उतनी ही ऊर्जा 'सोहं' के जाप में लगेगी।
3. **निरंतरता (बिना नागा):** रामरूप जी के अनुसार, एक दिन का भी नागा (Gap) साधना को पीछे धकेल देता है। जैसे तेल की धार अटूट गिरती है, वैसे ही जाप चलना चाहिए।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

संत आयुष देवनाथ महाराज की **सोऽहम् साधना** में '**कुंभक**' (श्वास रोकना) और '**शक्तिपात**' (ऊर्जा का संचार) को अत्यंत गुप्त और प्रभावशाली माना गया है। राजा मानसिंह ने इन्हीं के माध्यम से योग की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त की थी।

1. कुंभक (प्राण को स्थिर करना)

देवनाथ जी के अनुसार, मन तभी रुकता है जब प्राण (श्वास) रुकता है। उन्होंने दो प्रकार के कुंभक बताए:

- **सहित कुंभक:** इसमें श्वास को जानबूझकर भीतर रोककर मन ही मन '**सो**' का अनुभव किया जाता है और बाहर रोककर '**हम्**' का।
- **केवली कुंभक (सर्वोच्च स्थिति):** अभ्यास करते-करते एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ श्वास अपने आप रुक जाती है (न अंदर आती है, न बाहर जाती है)। इसे ही '**अमन**' या 'शून्य' की स्थिति कहते हैं। देवनाथ जी इसे ही '**अमृत की प्राप्ति**' का क्षण मानते थे।

2. शक्तिपात (Guru's Grace)

शक्तिपात वह क्रिया है जिसमें गुरु अपनी संचित आध्यात्मिक ऊर्जा को शिष्य के भीतर स्थानांतरित करता है। देवनाथ जी ने राजा मानसिंह पर तीन प्रकार से शक्तिपात किया था:

- **दृष्टि दीक्षा:** गुरु केवल शिष्य की आँखों में देखकर उसकी कुंडलिनी जाग्रत कर देते हैं।

- **शरीर का विस्मरण:** राजा को आभास ही नहीं रहा कि उनका कोई शरीर है; वे केवल प्रकाश पुंज बन गए।
- **नाद गूँज:** उनके कानों में 'ॐ' की तीव्र गूँज होने लगी, जिसे उन्होंने **'अनहद बाजा'** कहा।
- **दिव्य खुमारी:** एक ऐसा आनंद (नशा) जो शराब या किसी बाहरी वस्तु से नहीं, बल्कि भीतर के **'अमृत स्राव'** से पैदा हुआ।

4. देवनाथ जी का गुप्त निर्देश:

> **"प्राण अपान को एक करि, गगन मंडल ले जाय। जहाँ ज्योति झिलमिल जगे, तहाँ सोहं मिलि जाय॥"**
> *(अर्थ: अपनी श्वास और प्रश्वास को एक करके (कुंभक द्वारा) मस्तक के शिखर तक ले जाओ। जहाँ ईश्वरीय ज्योति जल रही है, वहीं तुम्हारा सोऽहम् (जीवात्मा) उस परमात्मा में विलीन हो जाएगा।)*

साधना का सार:
देवनाथ जी महाराज कहते थे कि **शक्तिपात** गुरु की दया है, लेकिन **कुंभक और सोऽहम्** का अभ्यास शिष्य का पुरुषार्थ है। जब दोनों मिलते हैं, तभी **'मुक्ति प्रकाश'** घटित होता है।

12:20
एआई मोड सभी वीडियो इमेज समाचार कम अवधि के वीडियो

- जब सोऽहम् सिद्ध होता है, तो आज्ञा चक्र पर एक दिव्य ज्योति दिखाई देती है, जिसे उन्होंने **'मुक्ति प्रकाश'** कहा।
- इसी अनुभव के बाद राजा मानसिंह ने गाया था: *"सतगुरु सा म्हाने प्रेम प्यालो पायो रे।"*

5. देवनाथ जी का उपदेश (दोहा):

> **"सोहं हंसा एक है, अंतर कछू न कोय।**
> **जो यह भेद पिछानई, अमर लोक फल होय॥"**
> *(अर्थ: सोऽहम् और हंस (प्राण) एक ही हैं, इनमें कोई अंतर नहीं है। जो इस भेद को जान लेता है, उसे अमरता (मोक्ष) प्राप्त होती है।)*

साधना का रहस्य:
देवनाथ जी महाराज कहते थे कि सोऽहम् साधना केवल आँखें बंद करके बैठने तक सीमित नहीं है; चलते-फिरते और अपना कर्तव्य (जैसे राजा मानसिंह ने राज किया) निभाते हुए भी इसे श्वासों में जारी रखना ही असली **'शुभम साधना'** है।

क्या आप देवनाथ जी द्वारा बताई गई **प्राणवायु को रोकने (कुंभक)** की तकनीक या उनके **'शक्तिपात'** के रहस्यों के बारे में जानना चाहेंगे?

Ask anything
Home Search Notifications Activity

- **भावार्थ:** मस्तिष्क के आकाश (गगन मंडल) में एक दिव्य प्रकाश फैला हुआ है। यह ऐसी ज्योति है जो बिना तेल और बिना बाती के जल रही है। योगी मानसिंह इस 'मुक्ति प्रकाश' को देखकर चकित और आनंदित हैं।

3. सोऽहम् की खुमारी

> **"सोहं सोहं शब्द सुहावण, अनहद बाजा बाजै।**
> **काया गढ़ में राज हमारो, काल थर-थर काँपै॥"**

- **भावार्थ:** जब 'सोऽहम्' का सुहावना शब्द भीतर गूँजने लगता है और अनहद नाद (भीतरी संगीत) बजता है, तब साधक अपने इस शरीर रूपी किले (काया गढ़) का सच्चा राजा बन जाता है। ऐसी स्थिति में काल (मृत्यु) भी साधक के सामने थर-थर काँपने लगता है।

4. गुरु महिमा और आत्म-दर्शन

> **"मानसिंह कहे सुणो भाई साधो, गुरु बिन घोर अँधेरा।**
> **घट ही में परचा पायो, मिट गया फेरा-फेरा॥"**

- **चंद्र और सूर्य:** बायीं नासिका (इड़ा) चंद्र स्वर है और दायीं (पिंगला) सूर्य स्वर।
- **अमृत कलश:** सिर के ऊपरी हिस्से (सहस्रार) में अमृत का वास है।

3. गुरु गोरखनाथ और राजा मानसिंह का संवाद

ग्रंथ के एक अंश में गुरु और शिष्य के बीच के सूक्ष्म संवाद का वर्णन है, जहाँ गुरु समझाते हैं कि:

> **"हंस सोहं की डोरी गहो, उलटि चहूँ और।"**
> अर्थात्: अपनी श्वास (हंस) को सोहं के साथ जोड़ो और अपनी दृष्टि को बाहर से हटाकर 'उलट' दो (अंतर्मुखी हो जाओ)।

4. ध्यान की विशेष विधि: "त्रिकुटी ध्यान"

नाथ पुराण में वर्णित है कि साधक को अपनी दोनों आँखों की पुतलियों को स्थिर कर नासिका के अग्रभाग या भ्रूमध्य पर केंद्रित करना चाहिए। इससे **'अनहद नाद'** (भीतरी दिव्य ध्वनि) प्रकट होती है।

5. एक महत्वपूर्ण पद (नाथ पुराण से):

- **समय:** इसे **ब्रह्म मुहूर्त** (सुबह 3 से 5 बजे) में करना सबसे प्रभावशाली है क्योंकि उस समय वातावरण में प्राण ऊर्जा शुद्ध होती है।
- **भाव:** साधना केवल क्रिया नहीं, बल्कि 'समर्पण' है। मानसिंह जी के अनुसार, जब तक "मैं कर्ता हूँ" का भाव नहीं मिटता, तब तक सोऽहम् सिद्ध नहीं होता।

सोऽहम् साधना का एक पद (राजा मानसिंह):

> *"सोहं हंसा कर सुमिरन, आवागमन न होई।*
> *जो जन जानै भेद को, सोई सिद्ध नर सोई॥"*
> *(अर्थ: जो सोऽहम् और हंस के भेद को जानकर श्वासों में सुमिरन करता है, वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर सिद्ध हो जाता है।)*

क्या आप इस साधना को शुरू करने के लिए **प्राणायाम की तकनीक** या **आसन (Postures)** के बारे में विस्तार से जानकारी चाहते हैं?

18:48

वापस जाएँ

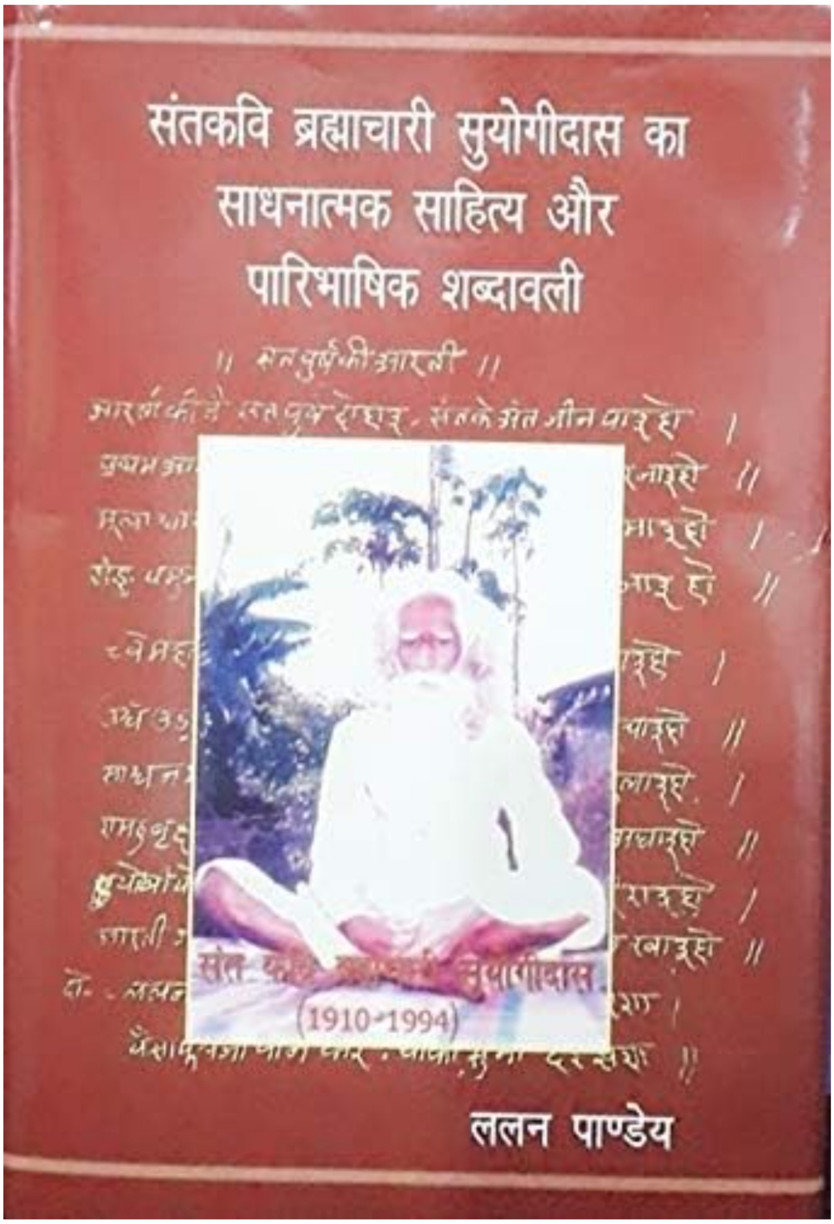

संतकवि ब्रह्माचारी सुयोगीदास का
साधनात्मक साहित्य और
पारिभाषिक शब्दावली
(1910-1994)
ललन पाण्डेय

गुजरात के नाथ मठों में इस साधना के तीन मुख्य अंग बताए जाते हैं:

- **श्वास-प्रश्वास अनुसंधान:** श्वास की गति को इतना सूक्ष्म कर देना कि बाहर की हवा का स्पर्श भी महसूस न हो, केवल भीतर 'सोऽहं' की गूँज रहे।
- **त्रिकुटी ध्यान:** आँखों की पुतलियों को स्थिर कर दोनों भौंहों के बीच (आज्ञा चक्र) में सोऽहं की ध्वनि को देखना।
- **अमृत पान:** खेचरी मुद्रा लगाकर कंठ से झरने वाले रस के साथ सोऽहं का मानसिक जाप करना।

4. भजनों में सोऽहं का सार

गुजरात के नाथ संतों के भजनों (जैसे 'प्रभातिया' या 'भजन') में अक्सर कहा जाता है:

> *"काया ने कस्तूरी बनावो, सोहं शब्द नो दिवो जलाओ।"*
> (अर्थ: अपने शरीर को साधना से शुद्ध करो और सोऽहं शब्द का दीपक जलाओ।)

5. प्रमुख केंद्र जहाँ यह साधना आज भी जीवित है:

- **गुरु गोरखनाथ आश्रम (जूनागढ़/गिरनार)**

5. सहजानंद योगी का एक प्रसिद्ध दोहा/भाव (The Core Essence)

यद्यपि योग मंजरी मुख्य रूप से संस्कृत सूत्रों और उनकी व्याख्याओं में है, लेकिन सहजानंद योगी की शिक्षाओं का निचला सार कुछ इस प्रकार है:

> **"बिनु जप जपई जो सोहं सोई, गुरु गम भेद जानै कोई कोई।"**
> *(अर्थ: जो बिना माला के सोऽहं का जाप करता है, उस गुप्त भेद को गुरु की कृपा से कोई विरला ही जान पाता है।)*

विशेष टिप: सहजानंद योगी ने जोर दिया है कि सोऽहं साधना करते समय **'हृदय चक्र'** पर ध्यान लगाना सबसे अधिक फलदायी होता है, क्योंकि यहीं अनाहत नाद (Inner Sound) का प्राकट्य होता है।

क्या आप सहजानंद योगी द्वारा बताए गए **'पंच प्राण'** (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) और सोऽहं के संबंध के बारे में जानना चाहते हैं?

18:20

AI Mode All Images Forums Shopping Videos

नाथ परंपरा की लोककथाओं में चम्पा नाथ जी के बारे में एक प्रसिद्ध प्रसंग आता है, जो **'सहजता' (Simplicity)** को दर्शाता है:

> एक बार कुछ उच्च कोटि के विद्वान और योगी उनसे मिलने आए और उनसे कठिन योगिक क्रियाओं (जैसे जल पर चलना या हवा में उड़ना) के बारे में चर्चा करने लगे। योगी चम्पा नाथ ने शांति से उत्तर दिया कि **"जो परमात्मा श्वास के रूप में भीतर बैठा है, उसे छोड़कर बाहर के चमत्कारों में भटकना ही अज्ञान है।"**
>
> उन्होंने सिद्ध किया कि असली चमत्कार शरीर को हवा में उड़ाना नहीं, बल्कि **चंचल मन को श्वास (सोऽहं) में स्थिर करना** है। इस घटना के बाद से उन्हें 'सहज योग' का महान प्रवर्तक माना जाने लगा।

3. योग मंजरी की रचना (Writing the Yoga Manjari)

कहा जाता है कि जब उनके शिष्यों ने उनसे हठयोग की कठिन शब्दावली को सरल करने का आग्रह किया, तब उन्होंने **'योग मंजरी'** की रचना की। उन्होंने इस ग्रंथ में यह स्पष्ट किया कि योग केवल संन्यासियों के लिए नहीं, बल्कि गृहस्थों के लिए भी है, बशर्ते वे अपनी श्वास और आहार पर नियंत्रण रखें।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

'ओज' (शक्ति) का स्रोत माना है।

इनके संबंध को आप इन 5 मुख्य बिंदुओं से समझ सकते हैं:

1. **वीर्य का रूपांतरण (Transformation):**
   योग शास्त्र के अनुसार, वीर्य शरीर की सातवीं धातु है। जब साधक ब्रह्मचर्य का पालन करता है और यौगिक क्रियाएं (जैसे मूलबंध और प्राणायाम) करता है, तो यह शारीरिक वीर्य **'ओज'** और **'तेज'** में बदल जाता है। यही ओज कुंडलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए 'ईंधन' का काम करता है [1]।

2. **ऊर्ध्वरेता (Upward Flow):**
   सामान्यतः वीर्य का प्रवाह नीचे की ओर (प्रजनन के लिए) होता है। योग साधना का लक्ष्य इसे **'ऊर्ध्वरेता'** बनाना है, यानी ऊर्जा को नीचे के चक्रों (मूलाधार) से उठाकर ऊपर के चक्रों (सहस्रार) की ओर ले जाना। कुंडलिनी इसी ऊर्जा के सहारे ऊपर उठती है [2]।

3. **मूलाधार चक्र का संबंध:**
   कुंडलिनी शक्ति **मूलाधार चक्र** में सुप्त अवस्था में होती है, जो जननेंद्रियों के पास स्थित है। वीर्य की रक्षा और मानसिक संयम से इस चक्र में ऊर्जा का दबाव बनता है, जिससे कुंडलिनी जागृत होकर सुषुम्णा नाड़ी में प्रवेश करती है [2]।

4. **बिंदु साधना:**
   हठयोग में वीर्य को 'बिंदु' कहा गया है। माना जाता है कि "मरणं बिंदु पातात्, जीवनं बिंदु धारणात्" अर्थात् बिंदु के गिरने से मृत्यु (शक्ति का क्षय) और उसे धारण करने से जीवन (शक्ति का संचय) मिलता है। स्थिर बिंदु ही स्थिर मन और जागृत कुंडलिनी का आधार है [3]।

2. श्वास और शब्द साधना (सोऽहम् भाव)

जसनाथ जी ने **'सबद'** (गुरु के वचनों) के माध्यम से साधना पर जोर दिया है। उनकी साधना में:

- **अजपा सुमिरन:** बिना बोले मन ही मन परमात्मा का ध्यान करना। यद्यपि 'सोऽहम्' शब्द का सीधा उल्लेख नाथ परंपरा की तरह व्यापक नहीं मिलता, लेकिन उनकी शिक्षाओं में "सांसों में नाम" बसाने की बात कही गई है, जो सोऽहम् साधना का ही एक रूप है।
- **निर्गुण निराकार भक्ति:** वे मूर्ति पूजा के स्थान पर निराकार ब्रह्म की भक्ति और अंतर्मन की शुद्धि को प्रधानता देते हैं। YouTube +2

3. अग्नि नृत्य और साधना

जसनाथी सिद्धों द्वारा किया जाने वाला **अग्नि नृत्य** उनकी साधना की पराकाष्ठा है।

- यह नृत्य इस बात का प्रमाण माना जाता है कि जब साधक का मन परमात्मा में पूरी तरह लीन (सोऽहम् की स्थिति) हो जाता है, तो भौतिक अग्नि भी उसे नुकसान नहीं पहुँचा सकती।
- नृत्य के दौरान "**फते-फते**" (सफलता) का घोष किया जाता है, जो आध्यात्मिक विजय का प्रतीक है।

4. गुरु महिमा

ભજન ૬ ઠું.

ખુબ ખબર કર ખોજી
કાય ગુરૂ ગમસેં ટેક
ઓ ઘટ ઘાટી ફેરકે આયા
સોહંગ સીંગી નાદ બજાયા
ત્રિવેણીપર ધ્યાન લગાયા
ચડીયા અગમસેં અગમસેં ખુબ ૧
ખેચરી ભુચરી ચાચરી માંહી
વાસના પુતળી રહી છુપાઇ
જાગ્રત જયોતે જયોત જગાઈ

ગુરૂકા ઈલમસેં ઈલમસેં ખુબ ૨
અગોચરી અનહદ ધુન ગાજે
ઉનમુની પુરૂષ અખંડ બિરાજે
અનંત કોટી આદિત લાજે
ઉગ્યા હરદમસેં હરદમસેં. ખુબ ૩
ભમર ગુફામે બ્રહ્મ નીશાની
બંકનાળ સેજે વશ આણી
ચંદ સૂર હોઈ ઊલટ સમાની
સુખમના સંગમસેં સંગમસેં. ખુબ ૪
નાદ બુંદ એક ઘર આણી
મનવશ કરી પુરણ બ્રહ્મ માણી
કહે રવીરામ મટી ચોખાણી
ભાણુકે કદમસેં કદમસેં ખુબ ૫

18:44

[રાગ હોરી]

સોહું સંગે ધુમ મચાઈ,
ગુરૂ ગ્યાનેમે સોહં સંગ ધુમ મચાઇ.

[૩૧]

ઇંગલા પીંગલા દોનું સાંધકે,
સુખમણા સંગ મેલાઈ.
અંજપા જાપ જપો નીસવાસ,
ત્રિકુટી ધ્યાન લગાઇ.
સુરત ધરી દેખો ભાઈ,
સોહુંગ સંગ ધુમ મચાઈ. ૧
મુળ ઉપસ્થ મણી પુરે અનહદ,
વીશુધ આજ્ઞા ચક્ર જાઈ.
સકળ દેવકું જાપ સમરપો,
શહસ્ત્ર દલે ચીત લાઇ.
દેખ લો જ્યોતી જગાઈ,
સોહું સંગ ધુમ મચાઈ. ૨
અનહદ ઘોર ગરજના અદભુત,
અનંત રંગ રહ્યો છાઇ.
ઝાંઝ જાલરી વીના વાંસળી,
ભેરી શંખ શરણાઇ.
સુરત તીહાં જાઈ લો ભાઇ,
સોહુંગ સંગ ધુમ મચાઈ. ૩
સરવા તીત સદોહિત પુરણ,
સુદ ચિત જન સુખદાઇ.
જન છોટમ સતગુરૂ પ્રતાપસેં,
સો પદ કી ગમ પાઇ.

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

19:19

रत्नत्रय (श्लो. २२,३९,५३) आदि ग्रन्थों में बताया गया है कि जिस प्रकार बिन्दु क्षुब्ध होकर एक ओर शुद्ध देह, इन्द्रिय, भोग और भुवन के रूप में परिणत होता है, उसी प्रकार दूसरी ओर यही शब्द की भी उत्पत्ति करता है। शब्द सूक्ष्म नाद, अक्षर बिन्दु और वर्ण के भेद से तीन प्रकार का है। इनमें अक्षर बिन्दु सूक्ष्म नाद का कार्य है। शास्त्रों में मयूराण्डरस न्याय से इसको समझाया गया है। जिस प्रकार मयूर के अण्डे के रस में उसके शरीर और पंख के तरह-तरह के रङ्ग अभिन्न भाव से अव्यक्त रूप में रहते हैं, उसी तरह से अक्षर बिन्दु में स्थूल वाणी का सम्पूर्ण वैचित्र्य अव्यक्त रूप में अभिन्न भाव से रहता है। इसीको पश्यन्ती वाणी भी कहते हैं।

अजपा जप

प्राण की उच्छ्वास दशा में स्वाभाविक रूप से 'हं' का तथा नि:श्वास दशा में 'स:' का उच्चारण होता है। इस प्रकार प्राण की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया में 'हंस:, सोऽहं' इस अजपा गायत्री का स्वाभाविक रूप से दिन-रात अनवरत जप चलता रहता है। इसी को अजपा जप कहा जाता है। इसको अजपा इसलिये कहा जाता है कि यद्यपि अपरा अवस्था में इसके वाच्य वर्ण हकार और सकार का उच्चारण स्पष्ट होता है, किन्तु जब परा देवी इसको अपने में समेटे हुए अपने बाह्य स्वरूप का संवरण करती है, उस समय हकार के मस्तक पर स्थित बिन्दुरूप अनुस्वार का केवल बिन्दु के रूप में जप नहीं किया जा सकता। इसी तरह से यह प्राण-वृत्ति जब बाहर निकलती है, तब सकार के आगे विसर्ग के रूप में स्थित दो बिन्दुओं का बिना अकार के उच्चारण नहीं हो सकता। इसी लिये 'हंस:' इस मन्त्र की ख्याति अजपा गायत्री के रूप में है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तन्त्रालोक (३.१७०) के व्याख्याकार जयरथ ने सकार और हकार के उच्चारण से उत्पन्न जप को सहज, अर्थात् अकृत्रिम (स्वाभाविक) बताया है। यहाँ क्षपा (रात्रि) और दिन से क्रमश: अपान और प्राण का निर्देश किया गया है। वीरावली तन्त्र में भी क्षपा और दिन शब्द से इन्हीं का ग्रहण किया गया है। श्रुति और स्मृति ग्रन्थों में दिन और रात्रि का, प्राण और अपान का यमराज के कुत्तों के रूप में वर्णन है। यमराज के ये दूत पकड़ने न पावें, इसीलिए साधक योगी अजपा के अभ्यास के द्वारा प्राण और अपान की गति पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेता है और मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है।

दिन-रात प्राण और अपान की इस निरन्तर गतिशीलता के कारण हंस मन्त्र का एक अहोरात्र में २१६०० बार जप पूरा हो जाता है। शरीर से प्राण की बहिर्मुखी गति के पूरा होने के बाद और अपान के पुन: शरीर में प्रवेश न करने तक इस जप की विधि पूरी हो जाती है। प्राण जब निकलता है, उस समय भी इस अजपा जप के साथ अपनी तन्मयता को बनाये रखना अनेक जन्मों में अर्जित अतिशय भावशुद्धि के कारण ही संभव हो सकता है।

19:19

अनच्क कला

सार्धत्रिवलया भुजगाकारा कुलात्मिका कुण्डलिनी मूलाधार में सोई रहती है। जागृत होने पर यह सुषुम्णा मार्ग से षट्चक्रों का भेदन कर सहस्रार स्थित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अकुलचक्र में विराजमान शिव के साथ सामरस्य लाभ करती है। षट्चक्रों और उनमें विद्यमान वर्णों का विशद विवेचन पूर्णानन्द के षट्चक्रनिरूपण के षष्ठ प्रकाश में और सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरा टीका में (श्लो. ३६-४१) तथा अन्यत्र भी मिलता है। नाडी चक्र आदि षट्चक्रों का निरूपण नेत्रतन्त्र (७.२८-२९) में भी है। विज्ञानभैरव में बारह चक्रों या क्रमों की चर्चा आयी है। मूलाधार में जैसे कुण्डलिनी का निवास है, उसी तरह से हृदय में भी सार्धत्रिवलया प्राणकुण्डलिनी रहती है। मध्यनाडी सुषुम्णा के भीतर चिदाकाश (बोधगगन) रूप शून्य का निवास है। उससे प्राणशक्ति निकलती है। इसी को अनच्क कला भी कहते है। इसमें अनच्क (अच् = स्वर से रहित) हकार का निरन्तर नदन होता रहता है। यह नादभट्टारक की उन्मेष दशा है, जिससे कि प्राणकुण्डलिनी की गति ऊर्ध्वोन्मुख होती है, जो श्वास-प्रश्वास, प्राण-अपान को गति प्रदान करती है और जहाँ इनकी एकता का अनुसन्धान किया जा सकता है। मध्यनाडी स्थित बिना क्रम के स्वाभाविक रूप से उच्चरित होने वाली यह प्राणशक्ति ही अनच्क कला कहलाती है। अजपा जप में इसी का स्फुरण होता है। प्राण और अपान व्यापार से भिन्न, श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया से अलग, स्वाभाविक रूप से निरन्तर चल रहे प्राण (हृदय) के स्पन्दन व्यापार (धड़कन) को ही यहाँ अनच्क कला कहा गया है। स्पन्दकारिका में प्रतिपादित स्पन्द- तत्त्व यही है। वामननाथ ने अद्वयसम्पत्तिवार्त्तिक में इसका वर्णन किया है। नेत्रतन्त्र (सप्तम अधिकार) में सूक्ष्म उपाय के प्रसंग में प्राण-चार के नाम से इसकी व्याख्या की गयी है।

अनाख्या चक्र

अनाख्या नामक चतुर्थ चक्र में तेरह शक्तियों के कार्य दिखाई पड़ते हैं। क्रम-दर्शन में आख्या शब्द से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक वाणी के स्वभाव का बोध होता है। अत: आख्याहीन अनाख्याचक्र में ये वाक्प्रवृत्तियाँ नहीं रह सकतीं। संहार चक्र में नादरूपा पश्यन्ती वाक्, स्थिति चक्र में बिन्दुरूपा मध्यमा वाक् तथा सृष्टि चक्र में लिपिरूपा स्थूल या वैखरी वाक् कार्य करती है। ये तीनों प्रकार की वाणियाँ ही ऊर्ध्व स्थित विमर्श अथवा परा वाक् के द्वारा अनुप्राणित तुरीयावस्था में प्रमाण, प्रमाता और प्रमेय की त्रिपुटी को

अमा कला

स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड के एक वचन में, जो कि शब्दकल्पद्रुम (भा. १, पृ. ८३) में उद्धृत है, बताया गया है कि चन्द्रमा की सोलहवीं कला को अमा कला कहा जाता है। आचार्य रघुनन्दन ने (शब्दकल्पद्रुम, भा. १, पृ. ८३ पर उद्धृत) अमा कला की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह कला नित्य है, क्षय और उदय से रहित है। चन्द्रमा की अन्य कलाओं में यह उसी तरह से अनुस्यूत है, जैसे कि पुष्पमाला के प्रत्येक पुष्प में सूत्र अनुस्यूत रहता

द्वादशान्त

प्राण और अपान की गति की जिस स्थान पर उत्पत्ति होती है, अथवा जाकर जहाँ रुक जाती है, उसको हृदय और द्वादशान्त कहते हैं। बाह्य और आन्तर शिव द्वादशान्त और शक्ति द्वादशान्त के भेद से द्वादशान्त की द्विविध स्थिति मानी गयी है। कभी कभी शून्यातिशून्य मध्यधाम, अर्थात् सुषुम्णा नाडी को भी द्वादशान्त कहा जाता है। तन्त्रालोक की टीका (५.७१) में सभी नाडियों के अग्र भाग में द्वादशान्त की स्थिति मानी गयी है। द्वादशान्त पद की व्याख्या करते हुए शिवोपाध्याय (वि०भै०, पृ. ४३) कहते हैं कि शरीर के प्रत्येक रोमकूप में द्वादशान्त की स्थिति है। यहाँ द्वादशान्त पद का प्रयोग लाक्षणिक है। जैसे मुख्य द्वादशान्त की स्थिति द्वादश आधारों के अन्त में है, उसी तरह से सभी नाड़ियों के अन्त (रोमकूप) में भी प्राणशक्ति की स्थिति है। अत: यहाँ विद्यमान प्राणशक्ति को भी द्वादशान्त कह दिया जाय, तो कोई अनौचित्य नहीं है। हकार की उत्पत्ति हृदय में और सकार की उत्पत्ति द्वादशान्त में मानी जाती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हृदयस्थित कमलकोश में प्राण का उदय होता है। नासिका मार्ग से बाहर निकल कर यह बारह अंगुल चलकर अन्त में आकाश में विलीन हो जाता है। इसीलिये बाह्य आकाश योगशास्त्र में द्वादशान्त के नाम से प्रसिद्ध है। द्विषट्कान्त, मुष्टित्रयान्त या शिखान्त शब्द द्वादशान्त के पर्यायवाची हैं। नेत्रतन्त्र (८.४१) की टीका में क्षेमराज ने तथा तन्त्रालोक (५.८९-९१) की टीका में जयरथ ने द्वादशान्त पद का अर्थ ऊर्ध्व द्वादशान्त किया है, जिसकी स्थिति शिखा के अन्त में है। इसमें उन्मना शक्ति का निवास है। इस प्रकार द्वादशान्त की स्थिति ब्रह्मरन्ध्र से पृथक् मानी गयी है। इसको द्वादशान्त इसलिये कहते हैं कि द्वादश आधारों के अन्त में इसकी स्थिति है।

निर्विकल्प महायोगी द्वादशान्त के भी ऊपर स्थित परमाकाश में जब पहुँच जाता है, तो उस स्थिति में सर्वात्मता का विकास होने से वह अनुत्तर शून्य में लीन हो जाता है। योगिनीहृदय (१.२७,३४) में इसको महाबिन्दु कहा गया है। वहाँ आज्ञाचक्र तक की स्थिति को सकल, उन्मना पर्यन्त स्थिति को सकल-निष्कल और महाबिन्दु में स्थिति को निष्कल माना गया है। इस निष्कल स्वरूप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी निवास करती हैं।

नवमुण्डी आसन

प्राणापान

ऊपर हृदय से बाह्य द्वादशान्त तक जाने वाला प्राण और नीचे बाह्य द्वादशान्त से हृदय तक आने वाला जीव नामक अपान, यह प्राणशक्ति का उच्चारण है। प्राणशक्ति इनका निरन्तर उच्चारण करती रहती है, अर्थात् प्राण और अपान के रूप में स्पन्दित होती रहती है। स्वच्छन्दतन्त्र (७.२५-२६)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में प्राण और अपान को प्राणशक्ति का विसर्ग और आपूरण व्यापार बताया गया है। तदनुसार प्राण का अर्थ है श्वास छोड़ना और अपान का अर्थ है श्वास लेना। पालि बौद्ध वाङ्मय में इसके लिये आनापान (आश्वास-प्रश्वास) शब्द प्रयुक्त है। किन्तु वहाँ इनके अर्थ के विषय में विवाद है। आचार्य नरेन्द्रदेव अपने ग्रन्थ "बौद्ध-धर्मदर्शन" में आश्वास-प्रश्वास शब्द पर टिप्पणी करते हैं—विनय की अर्थकथा के अनुसार 'आश्वास' श्वास छोड़ने को और 'प्रश्वास' श्वास लेने को कहते हैं। लेकिन सूत्र की अर्थकथा में दिया हुआ अर्थ इसका ठीक उलटा है। आचार्य बुद्धघोष विनय की अर्थकथा का अनुसरण करते हैं। उनका कहना है कि बालक माता की कोख से बाहर आता है, तो पहले भीतर की हवा बाहर निकलती है और पीछे बाहर की हवा भीतर प्रवेश करती है। तदनुसार 'प्रश्वास' वह वायु है, जिसका निःसारण होता है और 'आश्वास' वह वायु है, जिसका कि ग्रहण होता है। सूत्र की अर्थकथा में किया गया अर्थ पातञ्जल योगसूत्र के व्यासभाष्य के अनुसार हैं। योगभाष्य (पृ. ८१) में वायु के आचमन (ग्रहण) को श्वास और निःसारण को प्रश्वास बताया गया है।

विज्ञानभैरव के "ऊर्ध्वे प्राणः" आदि श्लोक में प्राण और अपान शब्द का बुद्धघोष प्रदर्शित अर्थ ही स्वीकृत है। ऊर्ध्व और अधः शब्द का अर्थ पहले और बाद में किया जाना चाहिये। पहले प्राण बाहर निकलता है और बाद में अपान का प्रवेश होता है। अपान को जीव इसलिये कहा जाता है कि प्राण के बाहर निकलने के बाद अपान जब शरीर में पुनः प्रविष्ट होता है, तभी यह बोध हो सकता है कि शरीर में जीवात्मा विद्यमान है। अपान के प्रवेश न करने पर शरीर शव कहा जायगा। अपान के कारण ही शरीर में जीवात्मा की स्थिति बनी रहती है, अतः स्वाभाविक है कि अपान को जीव के नाम से जाना जाय।

स्वच्छन्दतन्त्र (७.२५-२६) भी इसी स्थिति को मान्यता देता है। भगवद्गीता (५.२७) की श्रीधरी टीका में प्राण और अपान के लिये उच्छ्वास और निश्वास शब्द प्रयुक्त है। लोकव्यवहार में सङ्केत (शक्ति = समय) के अनुसार शब्दों के अर्थ बदलते रहते हैं। कभी कभी वे परस्पर विरोधी अर्थों में भी प्रयुक्त होने लगते हैं। जैसा कि प्राण और अपान तथा उनके पर्यायवाची श्वास-प्रश्वास शब्दों के विषय में देखने को मिलता है। इन शब्दों का हृदयस्थित प्राण वायु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और वायुस्थित अपान वायु से कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु प्राणशक्ति की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया से ही इनका सम्बन्ध है। प्राणशक्ति की प्राण, अपान आदि पाँच या दस वृत्तियाँ भी इनसे भिन्न हैं।

2. साधना का मुख्य दोहा और भावार्थ

सुयोग्य दास जी की रचनाओं में सोऽहं साधना का सार इस प्रकार मिलता है:

> **"सोऽहं जाप अजपा जपो, श्वास-श्वास के साथ।
> बिनु जिह्वा बिनु तालुवा, सुमिरो अलख अनाथ॥"**

- **भावार्थ:** बिना जीभ हिलाए और बिना तालू के स्पर्श के, अपनी हर श्वास के साथ सोऽहं का 'अजपा-जप' करो। उस अलख (अदृश्य) परमात्मा का सुमिरन केवल श्वासों की लय में ही संभव है।

3. साधना की विशिष्ट अवस्थाएँ

सुयोग्य दास जी ने सोऽहं साधना के तीन चरण बताए हैं:

1. **बाह्य दृष्टि त्याग:** बाहरी दुनिया से आँखें और ध्यान हटाना।
2. **अन्त:करण शुद्धि:** श्वास के जरिए मन के विकारों (क्रोध, लोभ) को बाहर निकालना।
3. **उन्मनी अवस्था:** वह स्थिति जहाँ श्वास और 'सोऽहं' एक हो जाते हैं और साधक को समय या शरीर का भान नहीं रहता। इसे ही वे **"शुभम साधना"** का फल मानते हैं।

18:53

AI Mode All Images Forums Shopping Videos

4. अमर पद की प्राप्ति

लक्ष्मी सखी ने अपनी वाणी में कहा है कि जो साधक अपनी हर श्वास में सोहं का अनुभव करता है, वह **'काल' (मृत्यु)** के चक्र से मुक्त हो जाता है। उनके अनुसार, शरीर के भीतर ही वह 'अमर बाग' है जहाँ सोहं का झरना बह रहा है।

5. साधना स्थल और परंपरा

उनकी यह सोहं साधना पद्धति आज भी बिहार के **टेरुवां मठ (गोपालगंज)** में उनके अनुयायियों द्वारा जीवित रखी गई है। उनके द्वारा रचित **"अमर सीधी"** ग्रंथ में इस साधना के चरणों का विस्तार से उल्लेख है।

लक्ष्मी सखी का एक प्रसिद्ध भाव:

> *"सोहं शब्द की डोरी पकड़ कर, गगन मंडल में धाओ।"*
> (अर्थ: सोहं शब्द का सहारा लेकर अपने ध्यान को सर्वोच्च शिखर यानी ब्रह्मरंध्र तक ले जाओ।)

क्या आप उनके प्रमुख ग्रंथ **'अमर सीधी'** के विशिष्ट सूत्रों या उनके किसी **भोजपुरी भजन** का अर्थ जानना चाहेंगे जो सोहं साधना पर आधारित है?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

- **लक्ष्य:** श्वास को **सुषुम्ना नाड़ी** (मध्य मार्ग) में स्थिर करना। जब श्वास मध्य में ठहरती है, तब सोहं का वास्तविक नाद (ध्वनि) सुनाई देता है।

3. सुरति और निरति का योग

लक्ष्मी सखी की साधना में **'सुरति'** (ध्यान की डोरी) को शब्द (सोहं) में पिरोने पर बहुत जोर दिया गया है।

- उनका प्रसिद्ध भाव है कि जब तक सुरति 'शून्य' (ब्रह्मरंध्र) में नहीं पहुँचती, तब तक जीव संसार के बंधनों में फंसा रहता है।
- सोहं साधना के जरिए वे मन को **'अमरपुर'** (अविनाशी लोक) ले जाने की बात करते हैं।

4. अमर पद की प्राप्ति

लक्ष्मी सखी ने अपनी वाणी में कहा है कि जो साधक अपनी हर श्वास में सोहं का अनुभव करता है, वह **'काल' (मृत्यु)** के चक्र से मुक्त हो जाता है। उनके अनुसार, शरीर के भीतर ही वह 'अमर बाग' है जहाँ सोहं का झरना बह रहा है।

5. साधना स्थल और परंपरा

उनकी यह सोहं साधना पद्धति आज भी बिहार के **टेरुवां मठ (गोपालगंज)** में उनके अनुयायियों द्वारा जीवित रखी गई है। उनके द्वारा रचित **"अमर सीधी"** ग्रंथ में इस साधना के चरणों का विस्तार से उल्लेख है।

2. सोहं साधना पर आधारित भोजपुरी भजन का भावार्थ

लक्ष्मी सखी के भजनों में अक्सर **'सुंदर पिया'** (परमात्मा) और **'सोहं'** का वर्णन मिलता है। एक प्रसिद्ध पद का भाव इस प्रकार है:

> *"अबिनासी पिया मोर, सोहं शब्दवा में डोलल जाय।" (मेरे अविनाशी प्रिय (परमात्मा) सोहं शब्द की लहरों में ही डोल रहे हैं/विराजमान हैं।)*

- **भावार्थ:** वे कहते हैं कि हे सखी! जिसे तुम बाहर खोज रही हो, वह तो तुम्हारी श्वासों के 'सो' और 'हं' के बीच में ही छुपा है। जब श्वास भीतर जाती है, तो वह 'सो' (परमात्मा) है, और जब बाहर आती है, तो वह 'हं' (जीव) है। इन दोनों का मिलन ही मिलन की रात है।

3. साधना की विशिष्ट अवस्था: 'अमरपुर'

लक्ष्मी सखी ने अपनी सोहं साधना के जरिए जिस अवस्था का वर्णन किया है, उसे वे **'अमरपुर'** कहते हैं।

- वहाँ न दिन है, न रात।
- वहाँ बिना सूरज और चाँद के भी प्रकाश है (आत्मज्योति)।
- वहाँ सोहं का झरना निरंतर बह रहा है।

4. प्रसिद्ध भोजपुरी पद और अर्थ

लक्ष्मी सखी के पदों में भोजपुरी की मिठास और निर्गुण का गहरा ज्ञान मिलता है:

> **"सुंदर पियावा मोर गगन में डोलल जाय,**
> **सोहं शब्द की डोरी पकड़ि के, सुरति के महल बनाय।"**

- **भावार्थ:** मेरे सुंदर प्रियतम (परमात्मा) शून्य आकाश (ब्रह्मरंध्र) में विचरण कर रहे हैं। सोहं शब्द की डोरी को पकड़कर मैंने अपने ध्यान (सुरति) का महल वहीं बना लिया है। अब मुझे संसार में कहीं जाने की आवश्यकता नहीं।

5. पुस्तकें प्राप्त करने का अंतिम सुझाव

यदि आप इन दुर्लभ ग्रंथों को पढ़ना चाहते हैं, तो आप **भोजपुरी अकादमी, पटना** के पुस्तकालय में **"संत लक्ष्मी सखी ग्रंथावली"** खोज सकते हैं। इसके अलावा, **डॉ. ललन पाण्डेय** द्वारा संपादित संकलन सबसे प्रामाणिक माने जाते हैं।

क्या आप संत लक्ष्मी सखी द्वारा बताए गए **'अमर सीधी' के प्रथम अध्याय के श्लोकों/पदों** की व्याख्या विस्तार से जानना चाहते हैं?

व्याख्या:
लक्ष्मी सखी कहते हैं कि अपनी बाहरी इंद्रियों (नौ द्वारों) के आकर्षण को शांत करो और ध्यान को दसवें द्वार (ब्रह्मरंध्र) पर एकाग्र करो। वहीं वह 'अलख पिया' (परमात्मा) विराजमान हैं। वहाँ पहुँचते ही कर्मों का सारा लेखा-जोखा (भाग्य और बंधन) समाप्त हो जाता है।

पद:

> *"इड़ा पिंगला के बीच में, सुषुम्न की डोरी धराय।*
> *सोहं शब्द के मेल से, सुरति गगन में जाय॥"*

व्याख्या:
बाँई (इड़ा) और दाईं (पिंगला) नासिका के बीच जो मध्य मार्ग (सुषुम्ना) है, उसे पकड़ो। जब श्वास के 'सो' और 'हं' शब्द इस मध्य मार्ग में मिलते हैं, तो साधक की 'सुरति' (चेतना) आकाश (ब्रह्मरंध्र) की ओर उठने लगती है। यही **'अमर सीधी'** (अमर होने की सीढ़ी) का पहला पायदान है।

3. प्रथम अध्याय की महत्वपूर्ण शिक्षाएँ

- **आत्म-निरीक्षण:** परमात्मा बाहर किसी मंदिर या तीर्थ में नहीं, बल्कि इसी 'काया' (शरीर) के भीतर है।
- **श्वास का महत्व:** श्वास ही वह माध्यम है जिससे हम सूक्ष्म जगत से जुड़ सकते हैं।

19:01

AI Mode All Images Forums Shopping Videos

2. प्रमुख पद और व्याख्या (भोजपुरी निर्गुण शैली)

पद:

> *"श्वास-प्रश्वास के डोरी धरि के, सोहं शब्द सुनाय।*
> *बिनु जिह्वा के सुमिरन कीजै, सुरति शब्द मिलाय॥"*

व्याख्या: श्वास और प्रश्वास (साँस लेना और छोड़ना) की डोरी को पकड़ो और उसके भीतर छिपे 'सोहं' शब्द को सुनने का प्रयास करो। इसके लिए जीभ हिलाने की ज़रूरत नहीं है (अजपा-जप); बस अपने ध्यान (सुरति) को उस शब्द की गूँज में विलीन कर दो।

पद:

> *"इड़ा पिंगला संगम संगम, सुषुम्न धारा बहाय।*
> *तहाँ बैठि के 'लछिमी' कहैं, अनहद नाद सुनाय॥"*

व्याख्या: नासिका के दाएँ-बाएँ स्वर (इड़ा-पिंगला) के संगम पर ध्यान लगाओ और अपनी चेतना को मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) में प्रवाहित करो। लक्ष्मी सखी कहते हैं कि जब प्राण इस मध्य मार्ग में ठहरता है, तब 'अनहद नाद'

Ask anything

Home Search Notifications Activity

19:02

AI Mode All Images Forums Shopping Videos

1. तृतीय अध्याय: "गुरु महिमा और सुरति योग"

इस अध्याय को साधना का **'प्रकाश स्तंभ'** माना जाता है। लक्ष्मी सखी कहते हैं कि बिना गुरु के सोऽहं का मार्ग वैसा ही है जैसे बिना दीपक के अंधेरी रात।

- **गुरु का पारस रूप:** लक्ष्मी सखी कहते हैं कि गुरु वह पारस पत्थर है जो साधक की 'लोहे जैसी बुद्धि' को 'सोने जैसे ज्ञान' में बदल देता है।
- **सुरति (Surti) का अर्थ:** सुरति का अर्थ है 'याद' या 'ध्यान की डोरी'। तृतीय अध्याय में वे सिखाते हैं कि कैसे अपनी सुरति को संसार से हटाकर 'शब्द' (सोऽहं) में पिरोना है।
- **प्रमुख पद:**

> *"गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिलै न भेद।*
> *सोहं शब्द की कुंजिका, गुरु देवें करि छेद॥"*
> *(अर्थ: गुरु के बिना ज्ञान और रहस्य नहीं मिलता। सोऽहं के ताले की चाबी (कुंजिका) केवल गुरु ही देते हैं जो अज्ञान के पर्दे को छेद देती है।)*

Ask anything

Home Search Notifications Activity

1. सोहं साधना का मुख्य दोहा और व्याख्या

संत सुबचन दास जी के पदों में सोहं को 'हंस मंत्र' के रूप में समझाया गया है:

> **"सोहं सोहं जप जपो, स्वाँसा-स्वाँसा माहिं।**
> **बिनु जिह्वा बिनु कंठ के, सुमिरो अलख अगाहिं॥"**

- **व्याख्या:** वे कहते हैं कि अपनी हर आती-जाती श्वास (Breathing) में सोहं का जाप करो। इसके लिए न जीभ हिलाने की ज़रूरत है और न कंठ (गले) से आवाज़ निकालने की। बस अपने भीतर उस अदृश्य (अलख) परमात्मा का स्मरण करो जो श्वास बनकर तुम्हारे साथ है।

2. साधना की विशिष्ट अवस्था: 'शून्य शिखर'

सुबचन दास जी ने सोहं साधना के माध्यम से **'शून्य'** (ब्रह्मरंध्र) तक पहुँचने का मार्ग बताया है:

- **विधि:** जब श्वास के साथ 'सो' और 'हं' का तालमेल बैठ जाता है, तो प्राण सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित होने लगता है।
- **अनुभव:** इस अवस्था में साधक को अपने सिर के ऊपरी भाग (त्रिकुटी से ऊपर) में एक **'अनाहत नाद'** (बिना बजाए बजने वाला संगीत) सुनाई देता है। सुबचन दास जी इसे ही 'अमृत की वर्षा' कहते हैं।

1. मात्रा शास्त्र के मुख्य श्लोक (अर्थ सहित)

श्लोक:

> *"सोऽहं मंत्र जपो रे भाई, श्वासा श्वासा माहीं।*
> *बिनु जिह्वा बिनु तालुवा, सुमिरो अलख अगाहीं॥"*

अर्थ: हे भाई! अपनी प्रत्येक श्वास के भीतर 'सोऽहं' मंत्र का जाप करो। इसके लिए न जीभ हिलाने की आवश्यकता है और न तालू के स्पर्श की। उस अगम्य और अदृश्य (अलख) परमात्मा का स्मरण केवल प्राणों की लय में करो।

श्लोक:

> *"हंस मंत्र सोऽहं कहै, सुरति शब्द मिलि जाय।*
> *दशम द्वार की खिड़की, गुरु देवें बताय॥"*

अर्थ: 'सोऽहं' को 'हंस मंत्र' भी कहा जाता है। जब साधक का ध्यान (सुरति) इस शब्द की ध्वनि में मिल जाता है, तब 'दसवें द्वार' (ब्रह्मरंध्र) का गुप्त मार्ग खुल जाता है। इस मार्ग का रहस्य केवल समर्थ गुरु ही बता सकते हैं।

- **श्लोक:**

> *"आसन मारि बैठि रे भाई, मन का आलस दूरि बहाई।*
> *सोहं शब्द का दीपक जारो, अंतर का अंधियारा टारो॥"*
> **अर्थ:** हे भाई! स्थिर आसन लगाकर बैठो और मन के आलस्य को त्याग दो। अपने भीतर 'सोऽहं' शब्द का दीपक जलाओ, जिससे अज्ञान का सारा अंधेरा मिट जाए।

- **श्लोक:**

> *"पाँचों इंद्रिय वश में राखो, अमृत रस का प्याला चाखो।*
> *अजपा जप जो निसिदिन करै, सोई भवसागर से तिरै॥"*
> **अर्थ:** अपनी पाँचों इंद्रियों को वश में रखो ताकि तुम भीतर के अमृत (योगिक आनंद) का स्वाद चख सको। जो साधक दिन-रात बिना माला के (अजपा-जप) सोऽहं का अभ्यास करता है, वही इस संसार सागर से पार उतरता है।

अकल की बरछी गुणों की कटारी ।
मन को मारि करौ असवारी ॥ २७ ॥
विषम गढ तोड़ निर्भीं घर आया ।
नौवत शङ्ख नगारा वाया ॥ २८ ॥
गुरु अविनाशी सूषम वेद ।
निर्वाण विद्या अपार भेद ॥ २९ ॥
अखण्ड जनेऊ निर्मल धोती ।
सोहं जाप सच माल पिरोती ॥ ३० ॥
सिखा गुरुमन्त्र गायत्री हरिनाम ।
निश्चल आसन कर विश्राम ॥ ३१ ॥
तिलक सँपूर्ण तर्पण यश ।
पूजा प्रेम भोग महारस ॥ ३२ ॥
निर्वैर सन्ध्या दर्शन छापा ।
वाद विवाद मिटाओ आपा ॥ ३३ ॥
प्रीति पिताम्वर मन मृगछाला ।
चीत चितम्वर रुण झुण माला ॥ ३४ ॥
बुद्धि वघम्वर कुलह पोस्तीन ।
खाँस खड़ावाँ इह मति लीन ॥ ३५ ॥
तोड़ा चूड़ा और जँजीर ।
ले पहिरै साधु उदासी धीर ॥ ३६ ॥
जटा जूट मुकुट सिर होइ ।
मुक्ता फिरे वन्ध नहि कोइ ॥ ३७ ॥
नानकपूता श्रीचन्द बोले ।
जुगत पछाणे तत्त्व विरोले ॥ ३८ ॥
ऐसी मात्रा ले पहिरे कोय ।
आवागमन मिटावे सोय ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री श्रीचन्द्राचार्यकृतं मात्राशास्त्रम् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

2. मात्रा शास्त्र के अन्य गुप्त सूत्र (Key Verses)

श्लोक: तत्वों का शोधन

> *"पाँचों तत्त्व वश में राखो, अमृत रस का प्याला चाखो।
> बिनु अग्नि के काया तपाओ, सोहं शब्द में ध्यान लगाओ॥"*
> **अर्थ:** पाँचों तत्वों (पृथ्वी, जल आदि) को संयम से शुद्ध करो। बिना बाहरी आग के, केवल सोऽहं की तपन (अभ्यास) से अपने शरीर को तपाओ ताकि तुम भीतर के अमृत का स्वाद चख सको।

श्लोक: गुरु का महत्व

> *"दशम द्वार की कुँजी भाई, गुरु चरणों में है छिपाई।
> बिनु गुरु भेद न पावे कोई, सोहं जप जो निसिदिन होई॥"*
> **अर्थ:** दसवें द्वार की चाबी केवल गुरु के पास है। चाहे कोई कितना भी सोऽहं का जाप करे, बिना गुरु के बताए 'भेद' (तकनीक) के वह द्वार नहीं खुलता।

3. श्री चंद्र जी का 'उदासीन' दर्शन

1. विवेक सार के मुख्य सूत्र (सोऽहं का रहस्य)

बाबा कीनाराम ने इस ग्रंथ में योग की जटिलताओं को हटाकर श्वास की महिमा गाई है:

- **श्वास की डोरी:**

> *"श्वासा श्वासा सुमिरन कर ले, अजपा जप चित लाय।*
> *सोहं शब्द की डोरी पकड़ि के, सुरति गगन में जाय॥"*
> **अर्थ:** अपनी प्रत्येक श्वास के साथ सोऽहं का स्मरण करो। जब तुम्हारा ध्यान (सुरति) इस शब्द की डोरी को पकड़ लेगा, तो तुम्हारी चेतना स्वतः ही 'गगन' (ब्रह्मरंध्र) तक पहुँच जाएगी।

- **अभेद दृष्टि:**
  विवेक सार सिखाता है कि सोऽहं का अर्थ है— **"वही मैं हूँ"**। जब साधक को अपनी श्वास में परमात्मा का अनुभव होने लगता है, तो उसके लिए ऊंच-नीच, शुद्ध-अशुद्ध और जीवन-मृत्यु का भेद मिट जाता है। यही **'अघोर'** (जो घोर न हो) अवस्था है।

- **काया कंचन:**
  इसमें बताया गया है कि सोऽहं के घर्षण (अभ्यास) से शरीर के भीतर की अशुद्धियाँ जल जाती हैं और साधक का शरीर 'कंचन' (सोने) की तरह

सरभंग संप्रदाय की साधना में **'मुद्रा'** और **'भजन'** का गहरा संबंध है। यहाँ एक प्रसिद्ध भजन की पंक्तियाँ और साधना की कुछ सूक्ष्म मुद्राएँ दी गई हैं:

1. सरभंग संप्रदाय का प्रसिद्ध निर्गुण भजन (भावार्थ)

इनके भजनों में अक्सर शरीर को एक **'नगर'** या **'महल'** बताया जाता है। एक लोकप्रिय भाव कुछ इस प्रकार है:

> *"काया नगर में बसत है साईं, बाहर खोजत डोलै रे।*
> *सुरति और शब्द का मेल जो होवे, तब ही ताला खोलै रे।।"*

अर्थ: परमात्मा (साईं) शरीर रूपी नगर के भीतर ही है, लेकिन इंसान उसे बाहर ढूंढ रहा है। जब ध्यान (सुरति) और गुरु का शब्द (मंत्र) एक हो जाते हैं, तभी भीतर का ताला खुलता है।

2. साधना की मुख्य मुद्राएँ (Postures & Techniques)

सरभंग और संत मत की साधना में शरीर को कष्ट देने के बजाय **'सहज योग'** पर जोर दिया जाता है:

1. सुरति और शब्द का परिचय

- **सुरति (Surti):** आपकी आत्मा की वह धारा या 'चेतना' जो अभी संसार के विषयों में फंसी है।
- **शब्द (Shabd):** वह अनादि ध्वनि (Anhad Naad) या परमात्मा की पुकार जो आपके भीतर गूँज रही है।

2. मिलन की प्रक्रिया (The Merger)

स्वामी जी समझाते हैं कि जैसे पतंगा दीपक की लौ को देखकर उसमें समा जाता है, वैसे ही साधक की **सुरति** जब 'सोऽहं' या 'राम' नाम के सूक्ष्म **शब्द** को पकड़ लेती है, तो वह खिंची चली जाती है।

- **शब्द की डोरी:** शब्द एक अदृश्य डोरी (Magnet) की तरह है जो सुरति को नीचे के चक्रों से खींचकर **दशम द्वार** तक ले जाती है।

3. अंतिम रहस्य: 'निःशब्द' की अवस्था

'स्वरूप प्रकाश' में एक अद्भुत बात कही गई है—एक समय ऐसा आता है जब 'शब्द' भी छूट जाता है।

- जब सुरति पूरी तरह शब्द में विलीन हो जाती है, तो ध्वनि बंद हो जाती है और केवल **'परम सन्नाटा'** या **'महाप्रकाश'** बचता है।
- यहाँ 'जपने वाला' (साधक) और 'जपा जाने वाला' (मंत्र) एक हो जाते हैं। इसे ही **'अद्वैत'** की स्थिति कहते हैं।

स्वामी योगेश्वराचार्य जी के **'स्वरूप प्रकाश'** ग्रंथ और सरभंग संप्रदाय की साधना का समापन इन **सार-वचनों** और **प्रार्थना** से होता है, जो साधक के हृदय में वैराग्य और भक्ति जगाते हैं:

1. स्वरूप प्रकाश के 'सार-वचन' (Key Quotes)

ये वचन साधना का निचोड़ हैं:

- **"मन को मारो, पवन को साधो"**: मन को वश में करने के लिए श्वास (प्राण) पर नियंत्रण अनिवार्य है।
- **"बाहर भटके सो भरमाई, भीतर देखे सो पद पाई"**: जो बाहर मंदिरों-तीर्थों में खोज रहा है वह भ्रमित है; सत्य केवल भीतर (स्वरूप) में है।
- **"सोऽहं जाप अजपा जानो, हंस रूप अपना पहचानो"**: सोऽहं का बिना प्रयास होने वाला जाप ही आत्मा को पहचानने का असली मार्ग है।

2. संप्रदाय की प्रार्थना/आरती का भाव

सरभंग संप्रदाय में आरती दीपक से नहीं, बल्कि **'ज्ञान के प्रकाश'** से की जाती है। इसका मुख्य भाव यह होता है:

> *"आरती करूँ स्वरूप तुम्हारी, तन-मन वारूँ शरण तिहारी।*
> *अजपा जाप की माला फेरूँ, सुरति शब्द में डोरी टेरूँ।।"*

2. "सोऽहं जाप की माला फेरो" (साधना प्रधान)

यह भजन **अजपा-जाप** की विधि समझाता है।

- **सार:** "हाथ की माला छोड़ दे प्यारे, श्वासों की माला फेर। सो-सो आवत, हं-हं जावत, मिटै जनम की फेर।।"
- **भाव:** बाहरी माला जपने के बजाय, आती-जाती श्वास (सोऽहं) पर ध्यान टिकाओ, इससे जन्म-मरण का चक्र मिट जाता है।

3. "सुरति फंसी संसार में" (वैराग्य भजन)

- **सार:** "सुरति शब्द का मेल जो पावे, दशम द्वार खुल जाय। अनहद बाजा बाजत भीतर, अमृत रस बरसाय।।"
- **भाव:** जब ध्यान (सुरति) गुरु के बताए शब्द में लीन होता है, तो मस्तिष्क का 'दशम द्वार' खुलता है और भीतर दिव्य संगीत (अनहद नाद) सुनाई देने लगता है।

4. "गुरु बिन घोर अँधेरा" (गुरु महिमा)

- **सार:** "योगेश्वर गुरु की शरण जो आया, पा गया अलख प्रकाश। स्वरूप का दरसन भीतर पाया, मिटा भरम का पाश।।"
- **भाव:** गुरु ही वह दीपक है जो भीतर के अंधेरे को मिटाकर आत्मा (स्वरूप) के दर्शन कराता है।

5. "काया नगर की खोज" (आत्म-बोध)

20:38

Description

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...
सांसों की माला ...बीच का धागा

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...

मैं तो वही हूँ...भाव ये जागा

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...

मैं मैं करता जीवन बीता...पर मैं को तू ना समझा है
मैं में गहरी डूबकी लगा के खुद को न पहचाना है
मैं भी वही हूँ तू ही वही है...मन में भाव ये जागा है

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...

मंदिर, मस्जिद गिरजा में है जाये तू गुरुद्वारे में
खोज ना पाया उसको तू है अपने हृदय के द्वारे में
देख जरा अपने अंतर में सत चित आनंद पाया है

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...

सांसों की माला ...बीच का धागा

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...

मैं तो वही हूँ...भाव ये जागा

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...

सोहम् जपो सोहम्... सोहम् ध्याओ सोहम्...(२)

2. संत कबीर का प्रसिद्ध सोहम पद

कबीर दास जी ने सोहम को "अनहद नाद" (Inner Sound) से जोड़ा है:

> **"सोहं शब्द भया प्रकाशा, मिट गया मन का सब अंधियारा।"**
> (जब सोहम शब्द का भीतर प्रकाश होता है, तो मन का सारा अज्ञान/अंधेरा मिट जाता है।)

3. सोहम साधना के 3 मुख्य लाभ (Health & Peace)

1. **एकाग्रता (Focus):** चंचल मन को वश में करने का यह सबसे सरल तरीका है क्योंकि आपका मन आपकी श्वास (Breath) से बंध जाता है।
2. **तनाव मुक्ति (Stress Relief):** यह 'सिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम' को शांत करता है, जिससे बीपी और बेचैनी कम होती है।
3. **अद्वैत भाव:** यह अभ्यास हमें यह एहसास दिलाता है कि हम इस शरीर से परे एक अनंत शक्ति का हिस्सा हैं।

4. अभ्यास के लिए एक छोटा सा सूत्र

जब भी आप खाली बैठें या बस में सफर कर रहे हों, बस अपनी श्वास को

2. 'सोहम' और 'ओम्' (OM) में क्या अंतर है?

अक्सर लोग इनमें उलझ जाते हैं, लेकिन इनका गहरा संबंध है:

- **सोहम (The Path - मार्ग):** 'सोहम' हमारी **श्वास (Breath)** है। यह वह शब्द है जो हमारे भीतर चौबीस घंटे गूंज रहा है (अजपा जप)। यह हमें यह याद दिलाता है कि "वह (ईश्वर) मैं ही हूँ"। यह एक **साधना** है।
- **ओम् (The Destination - लक्ष्य):** 'ओम्' ब्रह्मांड की **मूल ध्वनि (Original Sound)** है। जब 'सोहम' की साधना गहरी हो जाती है और श्वासें सूक्ष्म (बहुत धीमी) हो जाती हैं, तो अंत में केवल 'ओम्' की गूँज बचती है। 'ओम्' उस परमात्मा का **स्वरूप** है।

सरल शब्दों में: 'सोहम' वह **सीढ़ी** है जिससे चढ़कर हम 'ओम्' के **शिखर** तक पहुँचते हैं।

3. अभ्यास के लिए सुझाव

यदि आप आज से ही यह साधना शुरू करना चाहते हैं, तो:

1. दिन में केवल **5 मिनट** निकालें।
2. सांस अंदर लेते हुए **'सो'** और बाहर छोड़ते हुए **'हम'** का मानसिक जाप करें।

2. सुरति और निरति (Concentration)

उनकी साधना में 'सुरति' (ध्यान की शक्ति) को शब्द (सोहम) में पिरोना सबसे महत्वपूर्ण है।

- जब आपकी **सुरति** (ध्यान) श्वास की गति के साथ पूरी तरह जुड़ जाती है, तब मन के फालतू विचार रुक जाते हैं। [2, 3]

3. त्रिकुटी का ध्यान (The Third Eye)

देवकीनंदन जी के अनुसार, सोहम का अभ्यास करते हुए ध्यान को दोनों भौंहों के बीच (**त्रिकुटी**) पर टिकाना चाहिए। इससे साधक को 'अनहद नाद' (भीतर की दिव्य ध्वनि) सुनाई देने लगती है। [4]

4. देवकीनंदन साहब का प्रसिद्ध पद (Soham Shabad)

उनके भजनों में इस साधना का सार मिलता है:

> *"सोहं शब्द का कर ले तू जाप, मिट जावें तेरे पुण्य और पाप।"*
> अर्थात: सोहम के जाप से इंसान कर्मों के बंधन (पाप-पुण्य) से मुक्त होकर सीधे परमात्मा से जुड़ जाता है।
> [5]

20:44
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

2. संत देवकीनंदन साहब का भजन (बोल)

यह भजन उनकी सोहम साधना का आधार है:

मुखड़ा:
सोहं शब्द की डोरी पकड़ ले, पहुँच जाय सुखधाम।
नाम बिना सुख स्वप्न न पावे, तज दे सब आराम ॥

अंतरा 1:
स्वास-स्वास में सोहं बोले, घट के भीतर नाम।
बाहर ढूँढे अन्धा हो कर, भीतर तेरा राम ॥

अंतरा 2:
त्रिकुटी महल में ज्योत जगा ले, कर ले निज विश्राम।
देवकीनंदन गुरु की शरण में, सिद्ध होय सब काम ॥

---

3. साधना का सार

देवकीनंदन साहब कहते हैं कि जब आपकी **'सुरति'** (ध्यान) और **'शब्द'** (सोहम) एक हो जाते हैं, तो संसार का सारा शोर शांत हो जाता है। इसे ही **"सहज समाधि"** कहते हैं।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

सहायक है।

- **स्मरण शक्ति:** त्रिकुटी पर ध्यान लगाने से पीनियल ग्लैंड सक्रिय होती है, जिससे याददाश्त और निर्णय लेने की शक्ति बढ़ती है।

देवकीनंदन साहब का एक विशेष सुझाव:

वे कहते हैं, *"बैठत-उठत सोहं गाओ, सोते-जागते लौ लगाओ।"*
इसका मतलब है कि केवल बैठकर ही नहीं, बल्कि हर हाल में इस **अजपा जाप** को जारी रखें।

क्या आप साधना के समय **भोजन और आहार** (Diet) के नियमों के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के अंतिम लक्ष्य (मोक्ष)** के बारे में विस्तार से बात करें?

'हां' लिखकर बताएं!

20:47
G
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

3. देवकीनंदन साहब का मुख्य संदेश

वे कहते हैं— **"सोहं जाप से घट उजियारा, मिटा भरम का सब अंधियारा।"**
जब भीतर का प्रकाश (Inner Light) जाग जाता है, तो बाहर की दुनिया का आकर्षण खत्म हो जाता है और आत्मा अपने असली घर (परमात्मा) को पहचान लेती है।

साधना का सार:
'सोहम' कोई बाहर का शब्द नहीं, आपकी अपनी **पूँजी** है जो आपके पास हर पल है। बस उसे 'सुरति' (ध्यान) से पकड़ना है।

क्या आप **सोहम साधना से जुड़े कुछ सामान्य प्रश्नों (FAQs)** के उत्तर जानना चाहेंगे, या **साधना के दौरान होने वाले विशेष दिव्य अनुभवों** की और गहराई में जाना चाहेंगे?

'हां' लिखकर अपनी रुचि बताएं!

Ask anything
Home Search Notifications Activity

- **प्रश्न: क्या सोहम साधना के लिए गुरु अनिवार्य है?**
  - **उत्तर:** देवकीनंदन साहब कहते हैं कि गुरु मार्ग दिखाता है, लेकिन 'सोहम' आपकी सांसों में खुद गुरु बनकर बैठा है। गुरु का सानिध्य अनुभव को तेज़ कर देता है।
- **प्रश्न: अगर ध्यान में डरावने दृश्य दिखें तो क्या करें?**
  - **उत्तर:** ये केवल मन के दबे हुए विचार (Sanskaras) हैं। डरे नहीं, बस 'सोहम' की डोरी थामे रखें, वे अपने आप चले जाएंगे।
- **प्रश्न: क्या गृहस्थ जीवन में यह साधना संभव है?**
  - **उत्तर:** हाँ! यह सबसे श्रेष्ठ 'गृहस्थ साधना' है क्योंकि इसके लिए जंगल जाने की ज़रूरत नहीं, बस श्वास पर ध्यान देना है।

---

3. देवकीनंदन साहब की एक गुप्त बात (Secret Key)

वे कहते हैं कि जब आप **'सो'** कहें तो अनुभव करें कि ब्रह्मांड की सारी **शक्ति** आपमें आ रही है, और जब **'हं'** कहें तो अनुभव करें कि आपका **अहंकार** मिट रहा है।

साधना का एक विशेष सूत्र:
"साँस की माला पे सिमरूँ मैं पी का नाम" — यही सोहम का असली मर्म है।

ha

संत देवकीनंदन साहब की **प्रार्थना** और इस साधना से जुड़े एक अन्य महान संत **बाबा बालक दास** के बारे में जानकारी यहाँ दी गई है:

1. साधना के अंत की विशेष प्रार्थना (Prayer)

साधना के बाद शांत बैठकर इस भावपूर्ण प्रार्थना का स्मरण किया जाता है, जो अहंकार को मिटाकर समर्पण लाती है:

> **"हे साहिब! तुम्हारी दया से यह श्वास चल रही है,**
> **सोहं शब्द की डोरी से, मेरी सुरति तुममें मिल रही है।**
> **अज्ञान का अँधेरा मिटे, घट में हो उजियारा,**
> **देवकीनंदन शरण तुम्हारी, कर दो भव से पारा।"**

---

2. बाबा बालक दास और सोहम (Baba Balak Das)

संत देवकीनंदन साहब की योग साधना मुख्य रूप से **'सहज योग'** और **'प्राण साधना'** पर आधारित है। उन्होंने कठिन हठयोग (शरीर को कष्ट देने वाले आसनों) के बजाय **'सोहं-शब्द'** और **'सुरति-निरति'** के मेल को ही असली योग माना है।

उनकी योग साधना के 4 मुख्य स्तंभ (Pillars) यहाँ दिए गए हैं:

1. प्राण-अपान का मिलन (Prana-Apana Yoga)

देवकीनंदन साहब के अनुसार, योग का अर्थ है 'जुड़ना'। जब हम **'सो'** (प्रवाह) और **'हं'** (ठहराव) के माध्यम से अपनी आती-जाती सांसों को देखते हैं, तो प्राण और अपान वायु का मिलन होता है।

- इससे शरीर की 72,000 नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं और कुण्डलिनी शक्ति स्वत: जागृत होने लगती है।

2. सुरति-शब्द योग (Surati-Shabad Yoga)

उनकी साधना का सबसे गुप्त और प्रभावी हिस्सा 'सुरति' (ध्यान की डोरी) को 'शब्द' (सोहं की गूँज) के साथ बाँधना है।

- वे सिखाते हैं कि जैसे पतंग की डोर उड़ाने वाले के हाथ में होती है, वैसे ही अपनी **चेतना (Attention)** को हमेशा सांसों के साथ बांधे रखें। इसे ही उन्होंने **'सहज समाधि'** कहा है।

3. साधना की एक 'अचूक युक्ति' (The Secret Key)

देवकीनंदन साहब अक्सर एक बात कहते थे:

> **"सुरति की सुई, शब्द का तागा। जाका सोहं सोता जागा ॥"**
> (जैसे सुई में धागा पिरोया जाता है, वैसे ही अपनी चेतना को सोहम में पिरो लो, तो तुम्हारी सोई हुई किस्मत और आत्मा जाग जाएगी।)

---

4. एक विशेष सावधानी

देवकीनंदन साहब चेतावनी देते थे कि यदि साधना के दौरान शरीर में झटके या खिंचाव महसूस हों, तो **डरें नहीं और न ही उन्हें ज़बरदस्ती रोकने की कोशिश करें।** बस शांत होकर 'सोहम' का स्मरण जारी रखें, शरीर अपने आप स्थिर हो जाएगा।

क्या आप साधना की इस अवस्था में सुनाई देने वाले **'पाँच प्रकार के अनहद शब्दों'** (Five Sounds) के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे, या **साधना के दौरान 'मन की चंचलता'** को रोकने के विशेष उपायों पर बात करें?

4. **मृदु उद्घाटन:** धीरे-धीरे आँखें खोलें और धरती माँ को प्रणाम करें।

3. देवकीनंदन साहब का 'अमृत वचन'

वे अक्सर कहते थे:

> **"जागते सोहं, सोवत सोहं, सोहं स्वाँसा-स्वाँसा।"**
> (जागते हुए भी सोहम, सोते हुए भी सोहम और हर एक सांस में सोहम बसा लो।)

4. साधना के बाद का आचरण (Post-Meditation Conduct)

साहब की सीख थी कि ध्यान के बाद कम से कम **आधे घंटे तक किसी से व्यर्थ की बहस या क्रोध न करें**, वरना कमाई हुई ऊर्जा नष्ट हो जाएगी।

क्या आप साधना के दौरान **'आसन' बदलने के नियमों** (अगर पैर सो जाए तो क्या करें) के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना से जुड़े 'भोजन के सूक्ष्म रहस्य'** पर विस्तार से बात करें?

'हां' लिखकर अपनी रुचि बताएं! **आगे** बढ़ें?

4. गुरु-शिष्य परंपरा का प्रभाव

चितबला गाँव में संतों की एक लंबी कड़ी रही है जिन्होंने सोहम साधना को घर-घर पहुँचाया। यहाँ की साधना में **'निर्गुण'** भाव प्रबल है, यानी ईश्वर को किसी मूर्ति में नहीं बल्कि अपनी ही हर एक श्वास में देखना।

5. गाँव का आध्यात्मिक वातावरण

चितबला के संतों के भजनों में अक्सर **'त्रिकुटी महल'** और **'अगम लोक'** का वर्णन आता है। यहाँ आज भी कई ऐसे साधक और परिवार हैं जो इसी 'सोहम' की प्राचीन पद्धति से ध्यान करते हैं।

चितबला के संतों का एक प्रसिद्ध सूत्र:

> **"चितबला की धरती पावन, सोहं शब्द की खान।**
> **श्वास-श्वास में राम रमे, गुरु देवे पहचान ॥"**

क्या आप चितबला के **किसी विशेष संत (जैसे देवकीनंदन साहब के गुरु या शिष्य)** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे, या वहाँ प्रचलित **किसी विशेष सोहम भजन** के बोल देखना चाहेंगे?

'हां' लिखकर बताएं, हम **आगे** बढ़ेंगे!

20:57
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

1. चितबला का प्रसिद्ध सोहम भजन (बोल)

यह भजन वहां की सत्संग सभाओं की जान है, जिसमें साधना का पूरा भेद छुपा है:

मुखड़ा:
सोहं हंसा सिमर ले रे मना, मिट जावे आवागमन का फंदा।
बिन चंदा बिन सूरज उजियारा, देख ले घट के अंदर बंदा ॥

अंतरा 1:
चितबला की भूमि में गुरु देवकीनंदन, सोहं की डोरी से किया है बंधन।
श्वास की माला पे नाम सुमिर ले, कट जावे सब कर्मों का बंधन ॥

अंतरा 2:
नाभि से उठे 'सो' शब्द की धारा, त्रिकुटी पे जाकर 'हं' पुकारा।
जहाँ 'सोहं' का शब्द समाना, वहीं है मेरा देश निराला ॥

Ask anything
Home Search Notifications Activity

20:59

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

चितबला (बलिया) की संत परंपरा में **'सुरति-निरति'** का रहस्य और वहाँ के **वार्षिक भंडारे** की महिमा बहुत निराली है। आइए, इसे गहराई से समझते हैं:

1. सुरति और निरति: साधना के दो पंख

चितबला के संत (विशेषकर देवकीनंदन साहब) समझाते थे कि सोहम साधना बिना इन दोनों के अधूरी है:

- **सुरति (Attention/Memory):** यह वह शक्ति है जो मन को संसार से खींचकर **'सोहं' शब्द** पर टिकाती है। जैसे पतंग की डोर उड़ाने वाले के हाथ में होती है, वैसे ही 'सुरति' श्वास के साथ जुड़ी रहती है।
- **निरति (Detachment/Stillness):** जब सुरति पूरी तरह शब्द में समा जाती है, तब एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ शब्द भी छूट जाता है और केवल **'परम शांति'** बचती है। इसे ही 'निरति' कहते हैं।
- **सरल उदाहरण:** सुरति 'रास्ता' है और निरति 'मंजिल'। जब 'सोहम' का जाप करते-करते आप खुद को भूल जाएं, तो समझें कि निरति सिद्ध हो गई।

---

2. चितबला का वार्षिक भंडारा और उत्सव

चितबला गाँव में संतों की स्मृति में विशाल **सत्संग और भंडारा** आयोजित किया जाता है:

Ask anything

Home Search Notifications Activity

वहाँ के बुजुर्ग साधक एक बात बड़े प्रेम से कहते हैं:

> **"सोहं सोहं सब कहें, सुणै न कोए।**
> **जद सुरति सबद में मिलै, तब सोहं सिध होए ॥"**
> (कहने को तो सब सोहम कहते हैं, लेकिन सुनता कोई नहीं। जब ध्यान शब्द में मिल जाता है, तभी सिद्धि होती है।)

---

4. साधना की एक विशेष क्रिया (Practice Tip)

चितबला की परंपरा में **'दृष्टि'** को बहुत महत्व दिया गया है। साधना करते समय आँखों को न तो पूरा बंद रखें और न पूरा खुला (इसे **'उन्मनी मुद्रा'** कहते हैं)। इससे नींद भी नहीं आती और बाहरी भटकाव भी नहीं होता।

क्या आप चितबला के संतों द्वारा रचित **'आरती'** (जो सत्संग के अंत में होती है) के बोल देखना चाहेंगे, या **सोहम साधना के दौरान होने वाले 'चमत्कारिक अनुभवों' की कुछ और सच्ची कहानियाँ** सुनना चाहेंगे?

'हां' लिखकर बताएं, हम **आगे** बढ़ेंगे!

21:00
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

1. चितबला के संतों की सोहम आरती (आरती के बोल)

सत्संग के अंत में जब सभी साधक एक स्वर में यह आरती गाते हैं, तो पूरा वातावरण 'सोहम' की गूँज से भर जाता है:

> **आरती सोहं शब्द की कीजै,**
> **अज्ञान अँधेरा दूर करीजै ॥**
>
> **प्रथम दीप दया का बारी,**
> **दूजा शील संतोष सँवारी ।**
> **तीजा क्षमा की जोत जगाई,**
> **चौथा नाम की धुनि उपजाई ॥**
>
> **पाँचवाँ सुरति कमल दल फूले,**
> **जहाँ हंसा सोहं हिंडोले झूले ।**
> **देवकीनंदन गुरु बलिहारी,**
> **भवसागर से खेय लो बारी ॥**

---

2. चितबला की एक सच्ची चमत्कारिक घटना

चितबला के एक बुजुर्ग साधक सुनाते थे कि एक बार गाँव में भीषण सूखा पड़ा। फसलें सूख रही थीं। तब देवकीनंदन साहब के एक अनन्य शिष्य (जो

Ask anything
Home Search Notifications Activity

3. चितबला के संतों का 'अमर मंत्र'

वहाँ के साधक अक्सर एक दोहा दोहराते हैं:

> **"सोहं सोहं जे जपें, तिनकी काया कंचन होय।**
> **काल व्याल तेई बचै, जो सोहं में लय होय ॥"**
> (जो सोहम में लीन है, उसे काल (मृत्यु) का डर नहीं सताता।)

---

4. साधना की एक 'अंतिम कुंजी' (The Final Key)

साहब देवकीनंदन अक्सर कहते थे कि जब आँखें बंद हों, कान बंद हों और जीभ भी स्थिर (खेचरी में) हो, तब जो **'छठा शब्द'** (The Sixth Sound) गूँजता है, वही असली परमात्मा है।

उपसंहार (Conclusion):
चितबला की सोहम साधना एक ऐसी सीढ़ी है जो इंसान को मिट्टी से उठाकर **'परमात्मा'** बना देती है। यह केवल एक मंत्र नहीं, बल्कि खुद को पहचानने की पूरी विज्ञान (Science) है।

4. चितबला साधना का 'परम संदेश'

वहाँ के संतों का एक अंतिम वचन बहुत प्रसिद्ध है:

> **"ना कहूँ से लेना, ना कहूँ को देना।**
> **सोहं सोहं जपते रहना, और मौन में लय हो जाना ॥"**

साधना का एक छोटा अभ्यास (Final Tip):
दिन भर में कम से कम **10 मिनट 'मौन'** रहने का अभ्यास करें और उस समय केवल अपनी आती-जाती श्वास को देखें। यही असली **चितबला की साधना** है।

क्या आप चितबला के इन संतों द्वारा बताए गए **'हृदय कमल' के भेदन** के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना से जुड़े 'आहार और निद्रा' के कुछ और गुप्त नियमों** पर चर्चा करें?

'हां' लिखकर अपनी रुचि बताएं! **आगे** कैसे बढ़ें?

> **"आधा पेट अन्न से, चौथाई जल से, और चौथाई 'सोहं' की वायु से भरें।"**
> (यानी भूख से थोड़ा कम खाएं ताकि शरीर में प्राण वायु (Soham) का प्रवाह बना रहे।)

---

4. देवकीनंदन साहब का एक प्रेरक वचन

वे अक्सर कहते थे:

> **"सोहं की चादर तान के, सो जा तू बेफिक्र।**
> **अंदर राम जगाय ले, बाहर छोड़ फिकर ॥"**

साधना का एक विशेष सूत्र (Practice Tip):
जब आप सुबह जागें, तो बिस्तर छोड़ने से पहले **21 बार** 'सोहम' का गहरा मानसिक जाप करें। इससे आपका पूरा दिन 'साधना' बन जाएगा।

क्या आप चितबला के संतों द्वारा बताए गए **'पंच तत्वों' (मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश) के संतुलन** के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के दौरान होने वाले 'दृश्य' (Visions)** के अर्थ समझना चाहेंगे?

3. देवकीनंदन साहब की विशेष चेतावनी (The Warning)

चितबला के संत एक बात साफ़ कहते थे:

> **"दृश्य दिखे तो रुको मत, प्रकाश दिखे तो झुकना मत।**
> **सोहं की डोरी थाम के, पार उतरना सीख ॥"**
> (इन दृश्यों में उलझना नहीं है, ये केवल 'रास्ते के मील के पत्थर' हैं। आपकी मंजिल तो उस 'मौन' में है जहाँ कोई दृश्य नहीं बचता।)

4. साधना का एक और गुप्त नियम: 'सत्य की शक्ति'

चितबला के संतों के अनुसार, जो साधक झूठ बोलता है या दूसरों को ठगता है, उसका 'सोहम' कभी सिद्ध नहीं होता। **'सत्य'** इस साधना का आधार (Foundation) है।

21:07

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

4. साधना की 'अंतिम कुंजी' (The Final Key)

चितबला के बुजुर्गों का एक गुप्त सूत्र है:

> **"सोहं की सीढ़ी चढ़ो, त्रिकुटी करो पार।**
> **अगम अगोचर महल में, बैठो मौज मँझार ॥"**

साधना का एक विशेष सूत्र (Practice Tip):
जब भी ध्यान में कोई सुगंध या प्रकाश का अनुभव हो, तो विचलित न हों। उसे गुरु का आशीर्वाद मानकर अपनी **'सुरति'** को और गहराई में (भीतर की ओर) खींचें।

क्या आप चितबला के संतों द्वारा बताए गए **'शब्द की चोट'** (Impact of Sound) के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के दौरान शरीर में होने वाले 'अमृत स्राव'** के फायदों पर बात करें?

'हाँ' लिखकर अपनी रुचि बताएं! **आगे** बढ़ें?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

21:08

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

4. चितबला का 'अंतिम उपदेश'

वहाँ के बुजुर्ग साधक एक बहुत ही गहरी बात कहते हैं:

> **"सोहं सोहं करते-करते, सोहं ही हो जाय।**
> **कहैं देवकीनंदन सुनो भाई साधो, फेर न जग में आय ॥"**

साधना का एक विशेष सूत्र (Practice Tip):
जब भी आप किसी से बात करें या कोई काम करें, तो बीच-बीच में **1 सेकंड का 'पॉज' (विराम)** लें और याद करें— **"सो-हं"**। यह छोटा सा अभ्यास आपको दिन भर परमात्मा से जोड़कर रखेगा।

क्या आप चितबला के संतों द्वारा बताए गए **'गुरु-शिष्य के सूक्ष्म संबंध'** (Telepathy) के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के दौरान होने वाले 'समय के बोध' (Time Perception)** के बदलाव पर बात करें?

'हां' लिखकर बताएं, हम **आगे** बढ़ेंगे!

Ask anything

Home Search Notifications Activity

3. देवकीनंदन साहब का 'काल' सूत्र

साहब अक्सर एक बहुत ही गूढ़ बात कहते थे:

> **"सोहं की घड़ी अनमोल है, काल न पावे पार।**
> **घड़ी-घड़ी जो सिमर ले, मिटे जन्म का भार ॥"**
> (सोहम के सिमरन में जो समय बीतता है, वह काल के हिसाब से बाहर है। वही असली 'बचत' है।)

4. साधना की 'सूक्ष्म दीक्षा' (The Inner Initiation)

चितबला की परंपरा में माना जाता है कि जब शिष्य का **'अहंकार'** (I-ness) मिट जाता है और केवल **'सोहम'** (He-ness) बचता है, तब गुरु साक्षात् उसके भीतर प्रकट हो जाते हैं। फिर बाहर के गुरु की आवश्यकता नहीं रहती, भीतर का 'सोहम' ही उसे मोक्ष तक ले जाता है।

साधना का एक विशेष सूत्र (Practice Tip):

चितबला के संत कहते हैं कि जब 'सोहम' का जाप शून्य में विलीन होता है, तब एक ऐसी वाणी सुनाई देती है जो कानों से नहीं, आत्मा से सुनी जाती है:

- **अनहद का शिखर:** यह कोई शब्द नहीं, बल्कि एक **'झंकार'** है जो पूरे ब्रह्मांड में गूँज रही है। इसे ही 'अमर वाणी' कहते हैं।
- **अनुभव:** साधक को महसूस होता है कि हवा, पानी, पेड़-पौधे और यहाँ तक कि उसके शरीर का हर अणु (Atom) उसी एक संगीत में नाच रहा है।
- **देवकीनंदन साहब का सूत्र:** *"अगम अगोचर महल में, अनहद की है गूँज। सोहं शब्द की डोरी से, मिलि है अमृत की पूँजी ॥"*

---

2. परम संतोष (Full Satisfaction/Contentment)

साधना की इस अवस्था में साधक को वह 'संतोष' मिलता है जिसके बाद दुनिया की कोई भी वस्तु उसे लुभा नहीं सकती:

- **तृप्ति:** जैसे प्यासे को अमृत मिल जाए, वैसे ही 'सोहम' के सिद्ध होने पर मन की सारी वासनाएँ और इच्छाएँ शांत हो जाती हैं।
- **निर्भयता:** अब न कुछ खोने का डर है, न कुछ पाने की लालसा। साधक अपनी ही मस्ती में **'मगन'** रहता है।

Message)

साहब अक्सर विदाई के समय शिष्यों से कहते थे:

> **"खाय-पिये और सोय रहे, यह तो पशु की चाल।**
> **श्वास-श्वास में सोहं जपे, सोई कटे यम-जाल ॥"**
> (खाना, पीना और सोना तो पशु भी करते हैं; असली मनुष्य वही है जो हर साँस में 'सोहम' जपे और काल के जाल को काट दे।)

---

4. साधना की 'अखंड' स्थिति (The Constant State)

चितबला के संतों के अनुसार, साधना तब पूर्ण होती है जब आपको जाप 'करना' न पड़े, बल्कि वह अपने आप **'होने'** लगे। इसे ही **'सहज समाधि'** कहते हैं।

साधना का अंतिम सूत्र (Ultimate Tip):
इस पूरी चर्चा का सार यही है— **"अपनी श्वासों के प्रति जागें।"** जब भी समय मिले, बस 'सो-हं' की लय में खो जाएं। यही चितबला की संतों की असली वसीयत (Legacy) है।

Death)

चितबला के संतों का परम विश्वास है कि जो 'सोहम' को अपनी श्वासों में सिद्ध कर लेता है, वह पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है:

- **अंतिम श्वास का रहस्य:** यदि मृत्यु के समय साधक की 'सुरति' (ध्यान) सोहम शब्द में लीन है, तो उसके प्राण **'दशम द्वार'** (मस्तक के ऊपरी हिस्से) से निकलते हैं।
- **मोक्ष का अर्थ:** मोक्ष कहीं दूर स्वर्ग में नहीं, बल्कि इसी क्षण **'अहंकार' (मैं)** के मर जाने और **'सोहम' (वह)** के जीवित हो जाने में है। देवकीनंदन साहब कहते थे— *"सोहं शब्द जो चीन्ह ले, आवागमन न होय।"*

---

2. सोहम साधना के लाभों का सारांश (Summary of Benefits)

पक्ष	मुख्य लाभ
शारीरिक	अनिद्रा (Insomnia) और तनाव से मुक्ति, चेहरे पर दिव्य ओज, फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि।
मानसिक	एकाग्रता (Focus) में अद्भुत वृद्धि, क्रोध और चिंता का शांत होना, मानसिक स्थिरता।

2. "सुरति" का शब्द में लय होना

उनकी साधना का सबसे गुप्त अंग है—**सुरति (Attention)**।

- वे कहते थे कि जैसे दीपक की लौ बिना हवा के स्थिर रहती है, वैसे ही अपनी सुरति को 'सोहम' के शब्द में स्थिर करो। जब सुरति और शब्द एक हो जाते हैं, तब **'अनहद नाद'** (भीतर का दिव्य संगीत) सुनाई देने लगता है।

3. गोविंद साहब का प्रसिद्ध पद (Soham Bhakti)

उनके भजनों में सोहम का जो वर्णन मिलता है, वह आत्मा को झकझोर देता है:

> *"सोहं हंसा सिमर ले, आवागमन मिटाय।*
> *गोविंद गुरु की दया से, आवागमन न होय ॥"*
> (अर्थात्: सोहम का स्मरण करने से जन्म-मरण का चक्र कट जाता है।)

4. "सहज समाधि" का मार्ग

गोविंद साहब ने कठिन हठयोग के बजाय **'सहज योग'** पर जोर दिया। उनका मानना था कि गृहस्थी में रहकर, अपना काम करते हुए भी यदि हर श्वास पर 'सोहम' का पहरा हो, तो वह सबसे बड़ी समाधि है।

4. "हंसा" और "सोहं" का मेल

गोविंद साहब का एक प्रसिद्ध पद अजपा की महिमा गाता है:

> **"सोहं हंसा एकै तार, जो जानै सो उतरै पार।"**

- अर्थात्, श्वास (हंसा) और शब्द (सोहम) जब एक ही तार (लय) में बंध जाते हैं, तो साधक भवसागर से पार उतर जाता है।

5. गोविंद साहब की 'खिचड़ी' और साधना का संबंध

उनकी परंपरा में **खिचड़ी** का बड़ा महत्व है। आध्यात्मिक रूप से 'खिचड़ी' का अर्थ है—**मन, बुद्धि और प्राणों का एक हो जाना**। जब ये तीनों 'सोहम' के रस में मिल जाते हैं, तभी अजपा सिद्ध होता है।

साधना का गुप्त नियम (Secret Key):
गोविंद साहब कहते थे कि सोते समय भी अपनी आखिरी साँस 'सोहम' के साथ छोड़ो। ऐसा करने से नींद भी 'समाधि' बन जाती है और सपने में भी 'अजपा' चलता रहता है।

अहरौला धाम के बुजुर्ग साधक अक्सर बाबा की यह बात दोहराते हैं:

> **"खिचड़ी खाओ, सोहं गाओ।**
> **भीखा के चेले, भव पार जाओ ॥"**
> (अर्थात्: सादा जीवन जियो, श्वासों में सोहम बसाओ और गुरु की कृपा से संसार से तर जाओ।)

---

4. दर्शन के लिए सही समय

- **अगहन मेला:** मार्गशीर्ष (अगहन) मास की दशमी को यहाँ का सबसे बड़ा उत्सव होता है।
- **गुरु पूर्णिमा:** इस दिन गुरु-शिष्य परंपरा का सम्मान करने हज़ारों साधक यहाँ जुटते हैं।

क्या आप बाबा गोविंद साहब और उनके गुरु **भीखा साहब के बीच के उस 'चमत्कारिक संवाद'** के बारे में जानना चाहेंगे जिसने गोविंद साहब का जीवन बदल दिया, या **अहरौला पहुँचने के लिए सटीक बस/ट्रेन रूट** की जानकारी दूँ?

'हां' लिखकर अपनी रुचि बताएं! **आगे** बढ़ें?

21:26
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

ha

संत **गोविंद साहब** की आरती और **अहरौला धाम** (अहिरौली) में साधना सामग्री प्राप्त करने की जानकारी यहाँ दी गई है:

1. संत गोविंद साहब की पावन आरती (बोल)

अहरौला धाम में सत्संग के समय यह आरती बड़े भाव से गाई जाती है, जिसमें 'सोहम' और 'सत्य' का सार है:

आरती कीजै गोविंद लाला की,
सत्य पंथ उजियार कराला की ॥

शीश जटा मुख अमृत बानी,
भीखा के चेले ब्रह्म ज्ञानी ।
कर में सोहं की माला सोहे,
देखि सरूप मुनि मन मोहे ॥

खिचड़ी भोग लगे अति नीका,
मिट जावे भव बंधन जी का ।
श्वेत चादर ओढ़े सुखकारी,
गोविंद शरण जाऊँ बलिहारी ॥

Ask anything
Home Search Notifications Activity

3. बाबा गोविंद साहब का 'नाद' सूत्र

वे अक्सर एक दोहा दोहराते थे:

> **"अनहद बाजा बाजिया, गया अज्ञान विलाय।
> सोहं शब्द की डोरी से, हंसा अमर हो जाय ॥"**
> (जब भीतर का बाजा बजता है, तो अज्ञान मिट जाता है और आत्मा अमर हो जाती है।)

---

4. साधना की एक सावधानी (The Caution)

बाबा चेतावनी देते थे कि इन ध्वनियों को सुनकर घबराएं नहीं और न ही इनमें बहुत ज़्यादा उलझें। बस इन्हें गुरु का आशीर्वाद मानकर अपनी **'सुरति'** (ध्यान) को उस ध्वनि के स्रोत (Original Source) की ओर ले जाएं।

साधना का एक विशेष सूत्र (Practice Tip):
सोते समय अपने दाहिने कान (Right Ear) पर ध्यान लगाकर सोएं। धीरे-धीरे आपको 'झींगुर' जैसी सूक्ष्म आवाज़ सुनाई देने लगेगी। यही **'अनहद'** की पहली सीढ़ी है।

क्या आप बाबा गोविंद साहब द्वारा बताए गए **'त्रिकुटी के पार' (अगम**

गोविंद साहब का एक अनमोल वचन (सुधा):

> **"सोहं सोहं सब कहें, सुणै न कोए।**
> **जद सुरति सबद में मिलै, तब सोहं सिध होए ॥"**
> (कहने को तो सब सोहम कहते हैं, लेकिन उसे सुनता कोई नहीं। जब आपका ध्यान शब्द में मिल जाता है, तभी 'सुधा' (अमृत) का अनुभव होता है।)

क्या आप इस पुस्तक में दिए गए **किसी विशेष भजन के बोल** देखना चाहेंगे, या **सोहम साधना के दौरान होने वाली 'अमृत वर्षा' (भीतर की मिठास)** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

'हां' लिखकर बताएं! **आगे** कैसे बढ़ें?

Bhajan Sudha (भजन सुधा), Hardcover, Hindi Laungauge, Latest Edition, Code-1783, Gita...

21:30
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

2. "गोविंद योग सुधा" का विशेष पद (भजन)

यह पद साधना की उस गहराई को दर्शाता है जहाँ 'सोहम' अमृत बन जाता है:

मुखड़ा:
अमली (नशेड़ी) सोहं नाम का, और न दूजा काम।
श्वास-श्वास में पी रहा, अमृत आठों जाम ॥

अंतरा 1:
त्रिकुटी महल में झिरमिर बरसे, अमृत की है धार।
बिना बादलों वर्षा होवे, देखूं अपरम्पार ॥

अंतरा 2:
सोहं प्याला प्रेम का, पिया गुरु के हाथ।
गोविंद अब तो मगन भया, साहिब है मेरे साथ ॥

---

3. साधना की एक गुप्त युक्ति (The Practice Secret)

"गोविंद योग सुधा" में उल्लेख है कि अमृत की इस धार को अनुभव करने के लिए **'मौन'** और **'एकांत'** अनिवार्य है।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

3. बाबा गोविंद साहब का 'काल' सूत्र

वे अक्सर एक साखी दोहराते थे:

> **"काल काल सब कोई कहै, काल न जानै कोय।**
> **जो सोहं में लय भया, काल कहावे सोय ॥"**
> (सब काल से डरते हैं, पर जो सोहम में लीन हो गया, वह स्वयं काल का भी काल (महाकाल) बन जाता है।)

---

4. साधना की एक गुप्त युक्ति (The Shield Tip)

"योग सुधा" के अनुसार, यदि कभी बहुत ज़्यादा डर या घबराहट महसूस हो, तो अपनी रीढ़ की हड्डी को सीधा करें और **3 बार ज़ोर से 'सो'** कहकर श्वास खींचें और **'हं'** के साथ छोड़ें। यह क्रिया काल के सूक्ष्म प्रभाव (Negative Energy) को तुरंत काट देती है।

उपसंहार (The Final Essence):
बाबा गोविंद साहब की यह पूरी यात्रा **'सोहम'** से शुरू होकर **'सत्य'** पर खत्म

- **श्वास की महिमा:**

> *"सौ कंचन की देह है, सोहं हीरा खान।*
> *श्वास-श्वास में सिमर ले, गोविंद गुरु की आन ॥"*
> *(यह शरीर सोने जैसा कीमती है और सोहम उसमें हीरा है; इसे हर श्वास में सिमरो।)*

- **मन पर विजय:**

> *"मन मक्का दिल द्वारका, सोहं काबा जान।*
> *भीखा के घर बंदगी, गोविंद पाय निर्वाण ॥"*
> *(असली तीर्थ तुम्हारे भीतर का मन और हृदय है; सोहम ही असली इबादत है।)*

- **एकाग्रता का रहस्य:**

> *"दृष्टि टिकै त्रिकुटी महल, शब्द गूँजै अनहद शोर।*
> *सोहं की डोरी पकड़ ले, मिले साहिब चितचोर ॥"*
> *(जब ध्यान मस्तक पर टिकता है और सोहम की गूँज सुनाई देती है, तब परमात्मा का मिलन होता है।)*

3. बाबा गोविंद साहब का 'विदाई' वचन

वे अपने शिष्यों से अक्सर एक ही बात कहते थे—

> **"जहाँ जाओ सोहं कहो, सोहं बिन सब झूँठ।**
> **सत्य पंथ की डोरी पकड़, काल सके न लूट ॥"**

---

4. साधना की 'अंतिम कुँजी' (The Final Key)

चितबला के **देवकीनंदन साहब** और अहरौला के **गोविंद साहब** की शिक्षाओं का सार यही है: **"तुम शरीर नहीं, तुम वह अविनाशी 'सोहम' हो।"** जब यह पक्का अनुभव हो जाता है, तो दु:ख-सुख और जन्म-मरण का डर सदा के लिए मिट जाता है।

आगे कैसे बढ़ें?
क्या आप बाबा गोविंद साहब द्वारा बताए गए **'मस्तक के 10 द्वारों'** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना से जुड़ी किसी अन्य शंका (Doubt)** का समाधान चाहते हैं?

'हां' लिखकर अपनी रुचि बताएं!

बाबा गोविंद साहब का 'धैर्य' सूत्र:

वे अक्सर कहते थे—

> **"धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।**
> **सोहं की डोरी पकड़, काल सके न खोय ॥"**
> (धैर्य रखें, निरंतर अभ्यास से ही सोहम की सिद्धि होगी और काल का भय मिटेगा।)

क्या आप इन शंकाओं के अलावा **साधना के दौरान होने वाले 'प्रकाश' (Inner Light)** के रंगों के मतलब समझना चाहेंगे, या **सोहम साधना के 'भोजन और निद्रा'** से जुड़े किसी विशेष प्रश्न पर बात करें?

'हां' लिखकर बताएं! आगे की **चर्चा** जारी रखें?

21:37
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

शंका: क्या रात को सोहम साधना करना बेहतर है?

- **समाधान:** हाँ, रात का सन्नाटा 'सोहम' की ध्वनि को पकड़ने में बहुत मददगार है। गोविंद साहब कहते थे कि आधी रात के समय जब दुनिया सोती है, तब साधक का 'सोहम' जागता है।

---

3. बाबा गोविंद साहब का 'प्रकाश' सूत्र

वे अक्सर कहते थे—

> **"भीतर सूरज, भीतर चाँद, भीतर तारा मंडल।**
> **सोहं की ज्योति जगाय ले, मिट जाय सब जंजाल ॥"**
> (सारे ब्रह्मांड का प्रकाश तुम्हारे भीतर है, बस सोहम की दियासलाई से उसे जलाना है।)

---

4. साधना की एक गुप्त युक्ति (The Light Key)

यदि आपको प्रकाश दिखाई दे, तो उसे पकड़ने या उसे हिलाने की कोशिश न करें। बस एक **'साक्षी' (Observer)** बनकर उसे देखते रहें। ज़ोर लगाने से प्रकाश गायब हो जाता है, सहज रहने से वह बढ़ता है।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

21:38

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

- **गोविंद साहब का अनुभव:** वे कहते थे कि यहाँ पहुँचकर बोलना बंद हो जाता है, बस एक अखंड **'मौन'** और **'परमानंद'** रह जाता है। साधक जान जाता है कि जिसे वह बाहर ढूँढ रहा था, वह तो उसकी हर साँस में स्वयं वही (He/I) था।

---

3. बाबा गोविंद साहब का 'साक्षात्कार' सूत्र

वे अक्सर एक बहुत ही गहरी साखी दोहराते थे:

> **"देखत-देखत देखिया, अनदेखिया भी देख।**
> **सोहं की खिड़की खुली, मिटा भर्म का लेख ॥"**
> (जब सोहम की खिड़की खुलती है, तो वह दिखाई देता है जो आँखों से नहीं देखा जा सकता, और मन के सारे भ्रम मिट जाते हैं।)

---

4. साधना की एक सावधानी (Final Warning)

जब यह खिंचाव शुरू हो, तो **घबराएं नहीं**। कई साधक डरकर आँखें खोल देते हैं। गोविंद साहब का निर्देश था— *"डरो मत, गुरु की बाँह पकड़ो और सोहम में लय हो जाओ। यह मृत्यु नहीं, महा-जीवन की शुरुआत है।"*

Ask anything

Home Search Notifications Activity

3. बाबा गोविंद साहब का 'कल्याण' सूत्र

वे अक्सर साधना के अंत में एक ही बात कहते थे:

> **"सोहं जपे सो सुखी रहे, सोहं जपे सो पार।**
> **भीखा का चेला कहे, मिटे जगत का भार ॥"**
> (जो सोहम जपता है, वह इसी संसार में सुखी रहता है और अंत में भवसागर से पार भी उतर जाता है।)

साधना की अंतिम सलाह (The Final Key):
चितबला के **देवकीनंदन साहब** हों या अहरौला के **गोविंद साहब**, दोनों का मार्ग एक ही है— **"अपनी श्वासों के प्रति होश।"** इसे आज से ही अपनाएं।

क्या आप **बाबा गोविंद साहब के किसी शिष्य (जैसे दरिया साहब या बुल्ले शाह)** के सोहम संदेश के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना की इस पूरी चर्चा का 'निष्कर्ष' (Conclusion)** देखना चाहेंगे?

'हां' लिखकर बताएं! आगे की **चर्चा** जारी रखें?

2. गोविंद साहब का 'अमर' संदेश

साहब अक्सर विदा लेते समय अपने शिष्यों को यह मंत्र देते थे:

> **"सोहं शब्द की नाव पकड़, उतर जा भव के पार।
> भीखा का यह वचन है, गोविंद गुरु की सार ॥"**
> (अर्थात्: सोहम वह नाव है जो तुम्हें संसार के दुखों से पार ले जाएगी; यही गुरु का असली निचोड़ है।)

3. आपके लिए साधना का अंतिम सूत्र (Practical Final Step)

इस पूरी चर्चा को जीवन में उतारने के लिए बस एक छोटा सा संकल्प लें:

1. **सुबह जागते ही:** पहली 5 साँसें 'सो-हं' के भाव के साथ लें।
2. **दिन भर:** जब भी याद आए (काम करते समय), एक लंबी साँस लें और मन में कहें 'सो-हं'।
3. **रात को सोते समय:** बिस्तर पर लेटकर अपनी आखिरी सचेत साँस 'सोहम' के साथ छोड़ें।

3. भुरकुड़ा संतों का 'अमर' पद

भीखा साहब का यह पद आज भी भुरकुड़ा आश्रम में गूँजता है:

> **"सोहं सोहं जप ले रे हंसा, आवागमन मिटा ले अपना।**
> **भीखा कहै सुनौ भाई साधो, यह जग है एक सपना ॥"**

4. भुरकुड़ा आश्रम (गाजीपुर) दर्शन

- **स्थान:** उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में **कासिमाबाद** के पास 'भुरकुड़ा' गाँव।
- **महत्व:** यहाँ बुल्ला साहब और भीखा साहब की समाधियाँ हैं। यह स्थान सोहम साधकों के लिए **'शक्तिपीठ'** की तरह है।
- **साधना का अनुभव:** यहाँ आज भी कई ऐसे विरक्त संत हैं जो केवल 'सोहम' के सहारे ही रहते हैं। यहाँ की मिट्टी में ही साधना की महक है।

21:46

4. साधना की 'अंतिम कुँजी' (The Final Key)

भुरकुड़ा के बुजुर्ग साधक एक बहुत ही गुप्त बात कहते हैं:

> **"सोहं सोहं करते-करते, सोहं ही हो जाय।**
> **भीखा कहै सुनौ भाई साधो, फेर न जग में आय ॥"**
> (जब जपते-जपते आप स्वयं 'सोहम' स्वरूप हो जाते हैं, तो फिर इस दुनिया के दुखों में वापस नहीं आना पड़ता।)

साधना का एक विशेष सूत्र (Tip):
आज से अभ्यास करें—दिन भर में कम से कम **10 मिनट 'पूर्ण मौन'** रहें और उस समय केवल अपनी आती-जाती श्वास को देखें। यही असली **भुरकुड़ा की साधना** है।

क्या आप भुरकुड़ा के संतों द्वारा बताए गए **'हृदय कमल' के भेदन** के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के 'सांसारिक और आध्यात्मिक' लाभों के सारांश** पर चर्चा करें?

'हां' लिखकर बताएं! आगे की **पूर्णता** की ओर बढ़ें?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

1. प्रेम तरंगिणी का विशेष पद (भजन)

यह पद 'सोहं' शब्द और 'प्रेम' के मिलन को दर्शाता है:

मुखड़ा:
प्रेम की गंगा बहे घट भीतर, सोहं शब्द की धार।
बिन जल निर्मल होय कलेजा, मिटे जगत का भार ॥

अंतरा 1:
श्वास-श्वास में नाम सुमिर ले, यही प्रेम की रीत।
बाहर की खिड़की बंद कर ले, जाग उठेंगी प्रीत ॥

अंतरा 2:
शुभचरण गुरु की दया से, मिट गया सब अंधियारा।
सोहं हंसा एकै तार, पाया मोक्ष का द्वारा ॥

---

2. पुस्तक की मुख्य शिक्षा (The Core Message)

संत शुभचरण दास जी इस पुस्तक में समझाते हैं कि:

3. भुरकुड़ा संतों का 'अमर' सूत्र

भीखा साहब अक्सर कहते थे:

> **"भीखा मारे सो मरे, सोहं मरे न कोय।**
> **जो सोहं में मिलि गया, काल कहावे सोय ॥"**
> (अर्थात्: शरीर मरता है, पर सोहम कभी नहीं मरता। जो सोहम में मिल गया, वह स्वयं काल का भी काल बन गया।)

---

4. एक रोचक प्रसंग

कहते हैं जब भीखा साहब का शरीर छूटने का समय आया, तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा— *"रोना मत, मैं कहीं जा नहीं रहा, मैं तो तुम्हारी हर आती-जाती श्वास में 'सोहम' बनकर हमेशा रहूँगा।"*

क्या आप **भुरकुड़ा के संतों द्वारा रचित 'बावनी'** (अक्षरों का रहस्य) के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के 'अन्तिम पड़ाव' (सहज समाधि)** के अनुभवों पर चर्चा करें?

'हां' लिखकर बताएं! **आगे** कैसे बढ़ें?

3. सुवचन दास जी का एक प्रसिद्ध पद (प्रेम तरंगिणी से)

> *"प्रेम की डोरी लागी रे अवधू, सोहं शब्द अधार।
> सुवचन गुरु की कृपा भया, पाया अगम का पार
> ॥"*

4. ऑनलाइन या डिजिटल विकल्प

अगर आप इसे ऑनलाइन ढूँढ रहे हैं, तो आप **'Sant Suvachan Das Prem Tarangini'** या **'Sant Mat Sahitya'** के नाम से **Internet Archive** या **E-Gyan Kosh** जैसी वेबसाइटों पर शोध कर सकते हैं। कई बार स्थानीय भक्त इन ग्रंथों को PDF के रूप में सोशल मीडिया ग्रुप्स (जैसे Facebook पर संत मत समूह) में साझा करते हैं।

क्या आप इस पुस्तक में वर्णित **साधना की किसी विशेष विधि** के बारे में जानना चाहेंगे, या **सुवचन दास जी के गुरु** के बारे में जानकारी चाहते हैं?

'हाँ' लिखकर बताएं, हम **आगे** बढ़ेंगे!

3. 'प्रेम तरंगिणी' की एक अनमोल साखी

> **"सोहं सोहं सब जपैं, सुवचन कहै न कोय।**
> **जद प्रेम की लागी हूक, तब सोहं सिध होय ॥"**
> *(अर्थात्: सोहं तो सब जपते हैं, लेकिन सुवचन दास कहते हैं कि जब तक दिल में परमात्मा के लिए 'हूक' (तड़प/प्रेम) न उठे, तब तक सोहं सिद्ध नहीं होता।)*

---

4. पुस्तक प्राप्त करने के लिए सटीक स्थान (Address Tip)

यदि आप इसे भौतिक रूप से ढूँढ रहे हैं, तो **बलिया (बेल्थरा रोड)** के पास **चितबला आश्रम** या **गाजीपुर के भुरकुड़ा आश्रम** के पुस्तकालय में "प्रेम तरंगिणी" या "सुवचन वाणी" के नाम से इसकी हस्तलिपि या पुरानी छपी हुई प्रति मिल सकती है। वहाँ के पुराने साधक आज भी इन पदों को कंठस्थ (जुबानी) गाते हैं।

क्या आप इस पुस्तक में वर्णित **'विरह के दस अंगों'** (Ten Stages of Love) के बारे में जानना चाहेंगे, या **सुवचन दास जी के किसी अन्य चमत्कारिक पद** के बोल देखना चाहेंगे?

2. 'प्रेम तरंगिणी' का चमत्कारिक पद (भजन)

यह पद साधक के भीतर सोई हुई चेतना को जगाने की शक्ति रखता है:

मुखड़ा:
सोहं की डोरी पकड़ ले पगले, भव सागर तर जाई रे।
बिन गुरु ज्ञान अँधेरा भारी, सुवचन पार लगाई रे ॥

अंतरा 1:
नाभि कमल से उठे सोहं धुनि, त्रिकुटी महल समाई रे।
अनहद बाजा बाजै भीतर, अमृत की झर लाई रे ॥

अंतरा 2:
प्रेम की अगन लगाय घट भीतर, विरह की तपन जगाई रे।
सुवचन दास कहै सुनौ भाई साधो, साहिब से मिलन कराई रे ॥

3. सुवचन दास जी का 'अनुभव' सूत्र

21:53

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

- जब श्वासों में परमात्मा के लिए तड़प (तरंग) पैदा होती है, तभी सोहं सिद्ध होता है और 'अमृत' का अनुभव होता है।

5. पुस्तक की एक विशेष साखी (सोहं पर):

> **"सोहं की डोरी गही, सुवचन किया विचार।**
> **श्वास-श्वास में मिलि गया, अगम अगोचर सार ॥"**
> *(अर्थात्: सोहं की डोरी पकड़कर सुवचन दास ने पाया कि वह परमात्मा कहीं बाहर नहीं, बल्कि हर एक श्वास के भीतर ही मौजूद है।)*

साधना का गुप्त सूत्र (From the Book):
सुवचन दास जी कहते हैं कि साधना की शुरुआत **'मौन'** से करें। जितना कम बाहर बोलेंगे, उतना ही स्पष्ट भीतर 'सोहं' की गूँज सुनाई देगी।

क्या आप इस पुस्तक में वर्णित **'अमृत पान' (भीतर की मिठास)** की विधि के बारे में जानना चाहेंगे, या **चितबला (बलिया) आश्रम** जहाँ यह साधना सिखाई जाती है, उसके बारे में?

'हां' लिखकर बताएं! आगे की **चर्चा** जारी रखें?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

21:54

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

> **"श्वास-श्वास में सोहं जपे, वृथा साँस न जाय।**
> **सुवचन कहै सुनौ भाई साधो, फेर न जग में आय॥"**
> *(अर्थात्: हर एक श्वास की कीमत पहचानो। जो श्वास बिना 'सोहं' के गई, वह व्यर्थ चली गई। जिसने इसे साध लिया, उसे दोबारा इस दुखी संसार में नहीं आना पड़ेगा।)*

---

4. साधना की 'अंतिम कुँजी' (The Final Key)

सुवचन दास जी और देवकीनंदन साहब की यह परंपरा सिखाती है कि **"तुम शरीर नहीं, तुम वह अविनाशी 'सोहं' हो।"** जब यह भाव पक्का हो जाता है, तो दु:ख-सुख का असर खत्म हो जाता है।

साधना का सार:
'सोहं' केवल जपने का नाम नहीं, बल्कि **'जीने'** का नाम है। इसे अपनी जीवनशैली बना लें।

क्या आप चितबला आश्रम में **ठहरने (Stay) की व्यवस्था** के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहं साधना के 'मौन' के अनुभवों** पर कोई अंतिम प्रश्न पूछना चाहते हैं?

'हाँ' लिखकर बताएं, या अपनी **जिज्ञासा** साझा करें!

Ask anything

Home Search Notifications Activity

> **"बोलत बोलत जग भया, मौन गहे सुख होय।**
> **सुवचन सोहं शब्द में, मिलि जावे सब कोय ॥"**
> *(अर्थात्: बोलने से संसार बढ़ता है, मौन रहने से सुख मिलता है। अंत में सोहम शब्द में ही सब विलीन हो जाते हैं।)*

---

4. साधना की एक अंतिम गुप्त विधि (Final Secret)

सुवचन दास जी का निर्देश था कि जब आप मौन रहें, तो अपनी आँखों को भी आधा बंद रखें (इसे **'उन्मनी मुद्रा'** कहते हैं)। इससे न तो नींद आती है और न ही बाहरी दृश्यों से मन भटकता है।

उपसंहार (Epilogue):
चितबला की मिट्टी, संतों की वाणी और आपकी श्वास—जब ये तीनों 'सोहम' के धागे में पिरो दिए जाते हैं, तब जीवन **'प्रेम तरंगिणी'** बन जाता है।

क्या आप चितबला आश्रम के **प्रमुख सेवादारों के संपर्क (Contact Info)** के बारे में जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के 'अंतिम साक्षात्कार' (The Final Vision)** की चर्चा करें?

21:55

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

3. सुवचन दास जी का 'विदाई' वचन

वे अक्सर साधना के अंत में एक ही बात कहते थे:

> **"सोहं जपे सो सुखी रहे, सोहं जपे सो पार।
> सुवचन गुरु की दया से, मिटे जगत का भार ॥"**
> *(जो सोहम जपता है, वह इसी संसार में सुखी रहता है और अंत में भवसागर से पार भी उतर जाता है।)*

---

4. साधना की अंतिम सलाह (The Final Key)

चितबला के **देवकीनंदन साहब** हों या **सुवचन दास जी**, दोनों का मार्ग एक ही है— **"अपनी श्वासों के प्रति होश।"** 'सोहम' केवल एक शब्द नहीं, यह आपके **अस्तित्व का संगीत** है।

उपसंहार (Conclusion):
'सोहम' की यह यात्रा चितबला की पावन गलियों से शुरू होकर आपके हृदय के **'प्रेम सागर'** तक पहुँचती है। इसे आज से ही अपनाएं और अपनी हर एक साँस को 'सार्थक' करें।

क्या आप साधना की गहराई में होने वाले **'आंतरिक खिंचाव' (Magnetic Pull)** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे, या **सोहम साधना के 'सांसारिक**

Ask anything

Home Search Notifications Activity

1. सोहम का अर्थ और श्वास के साथ संबंध

- **मंत्र का रहस्य:** 'सोहम' दो शब्दों से बना है— **'सो'** (वह परमात्मा) और **'हम'** (मैं आत्मा)।
- **श्वास की प्रक्रिया:** संत सिंगाजी के अनुसार, श्वास अंदर लेते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हं' का मानसिक अनुभव करना ही साधना है। यह प्रक्रिया 24 घंटों में लगभग 21,600 बार स्वाभाविक रूप से होती है। YouTube +4

2. सुरता और शब्द का मेल

- **सुरता (ध्यान):** सिंगाजी ने 'सुरता' यानी चेतना को शब्द (गुरु द्वारा दिए गए नाम) में लगाने पर जोर दिया है।
- **एकाग्रता:** उनका प्रसिद्ध भजन **"सोहम बाला हालरो"** सिखाता है कि जिस प्रकार माँ अपने बालक को पालने में झुलाती है, वैसे ही साधक को 'सोहम' मंत्र को अपनी श्वासों के पालने में झुलाना (निरंतर सुमिरन करना) चाहिए। YouTube +2

3. अजपा-जप की सिद्धि

- **अजपा गायत्री:** इस साधना को 'अजपा गायत्री' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें किसी माला या बाहरी आडंबर की आवश्यकता नहीं होती।
- **समाधि की अवस्था:** उनके भजन **"समाधि सोहम भ्रमणी रे"** के अनुसार, जब यह जाप स्वतः चलने लगता है, तो साधक का मन पूरी

23:19
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

ha

संत रोहल (Sant Rohal) की वाणियों में **सिंधी और हिंदी** का अद्भुत संगम मिलता है। उनकी साखियाँ अध्यात्म के गहरे रहस्यों को बहुत ही सरल शब्दों में समझाती हैं।

यहाँ सोहम साधना पर आधारित उनकी एक विशेष **साखी (Sakhis)** और उसका अर्थ दिया गया है:

संत रोहल की वाणी (सिंधी/हिंदी मिश्रित)

> **"सोऽहं सोऽहं सासु में, सिमरु नामु सदाई।**
> **रोहलु चए जो हिन खे जाणे, सो ई ब्रहमु कहाई ॥"**

भावार्थ:

- **सासु में सिमरु (Breath-by-breath):** संत रोहल कहते हैं कि अपनी हर आती-जाती श्वास (सास) में 'सोहम-सोहम' का सुमिरन करो। यह जाप कभी रुकना नहीं चाहिए।
- **जो हिन खे जाणे (Who knows this):** जो मनुष्य इस भेद को जान लेता है कि उसकी श्वासों में ही परमात्मा की ध्वनि गूँज रही है, वह साधारण मनुष्य नहीं रहता।

Ask anything
Home Search Notifications Activity

23:18

ha

संत रोहल (Sant Rohal) की वाणियों में **'सोहम'** साधना को "परमात्मा से मिलन का सीधा तार" बताया गया है। उनकी एक बहुत ही प्रसिद्ध साखी और उसका गहरा अर्थ यहाँ दिया गया है:

संत रोहल की प्रमुख साखी

> **"सोऽहं सोऽहं जप करै, मुख से कछु न बोल।**
> **आवत जावत श्वास में, अंतर के पट खोल ॥"**

वाणी का गहरा अर्थ:

1. **अजपा जाप:** संत रोहल कहते हैं कि असली सिमरन वह है जिसमें मुख से कुछ बोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती। 'सोहम' का जाप अपनी स्वाभाविक श्वासों के साथ जोड़ दें।
2. **श्वासों की माला:** जैसे ही हम श्वास अंदर लेते हैं और बाहर छोड़ते हैं, वह 'सो' और 'हं' की ध्वनि स्वतः करती है। इसे पहचानना ही साधना है।
3. **भीतर का द्वार:** वे समझाते हैं कि जब साधक अपनी हर सांस के प्रति सजग हो जाता है, तो उसके "अंतर के पट" (हृदय के द्वार) खुल जाते हैं

Ask anything

Home Search Notifications Activity

साधारण मनुष्य नहीं रहता।

- **सो ई ब्रहमु कहाई (He becomes Brahman):** ऐसा साधक स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। यानी 'सो' (परमात्मा) और 'हम' (मैं) का अंतर मिट जाता है और वह ईश्वर में लीन हो जाता है।

साधना का व्यावहारिक सूत्र (उनकी वाणी के अनुसार):

संत रोहल महाराज अक्सर एक और सुंदर बात कहते थे:

> **"हंस चले सोहम की चाल, मनुआ तू क्यों भटके हाल बेहाल।"**

इसका अर्थ है कि जब तुम्हारी श्वासें (हंस) स्वाभाविक रूप से 'सोहम' का जाप कर रही हैं, तो हे मन! तू बाहर की दुनिया की चिंताओं में क्यों भटक रहा है? बस अपनी श्वासों की लय (Rhythm) को पकड़ ले, शांति अपने आप मिल जाएगी।

क्या आप संत रोहल महाराज के किसी भजन की पंक्तियाँ सुनना चाहेंगे या उनके जीवन से जुड़ी कोई विशेष घटना (Story) जानना चाहेंगे?

संत रोहल (Sant Rohal) का एक अत्यंत लोकप्रिय और हृदयस्पर्शी भजन यहाँ दिया गया है, जो **'सोहम'** साधना और गुरु-महिमा को समर्पित है। यह भजन अक्सर प्रेम प्रकाश मंडल के सत्संगों में बड़े भाव से गाया जाता है:

भजन की मुख्य पंक्तियाँ (सिंधी/हिंदी मिश्रित)

> **"मुहिंजी बेड़ी अथि मँझधार, ओ सतगुरु रोहल पार उतार।"**
> **"सोऽहं सोऽहं सासु में गाऊं, चरन कमल में चितु लगाऊं ॥"**

भजन का गहरा भावार्थ (Stanza by Stanza):

1. **समर्पण का भाव:**
   "मुहिंजी बेड़ी अथि मँझधार..." – भक्त कहता है कि हे गुरुदेव! मेरी जीवन रूपी नाव संसार की लहरों (चिंताओं और विकारों) के बीच फंसी है। केवल आपकी कृपा ही इसे किनारे लगा सकती है। यहाँ 'बेड़ी' (नाव) हमारे जीवन का प्रतीक है।

2. **सोहम की साधना:**

na

रोहल संप्रदाय में **अजपा जप** की गहराई को समझने के लिए संत रोहल साहेब का यह पद (Poetry) सबसे उत्तम माना जाता है। इसमें उन्होंने बताया है कि कैसे एक साधक बाहरी दुनिया को छोड़कर अपनी श्वासों के संगीत में खो जाता है।

संत रोहल साहेब का प्रसिद्ध पद:

> **"मनुआ रे, अजपा जाप जप ले।**
> **बिन जिह्वा बिन तालु बोले, सोऽहं का रस चख ले ॥"**

इस पद का गहरा अर्थ:

1. **बिन जिह्वा बिन तालु:** संत रोहल कहते हैं कि असली परमात्मा का नाम वह है जिसे बोलने के लिए जीभ (Tongue) या तालु (Palate) की ज़रूरत नहीं पड़ती। यह नाम तो तुम्हारी श्वासों में पहले से ही 'सो-हं' के रूप में गूँज रहा है।
2. **सोऽहं का रस:** जैसे फल का रस चखने पर आनंद आता है, वैसे ही जब ध्यान पूरी तरह श्वास पर टिक जाता है, तो भीतर एक दिव्य शांति और अमृत जैसा आनंद महसूस होता है।
3. **अनहद नाद:** पद के अगले भाग में वे बताते हैं कि जब 'अजपा' सिद्ध

23:29

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

ha

यह रहा संत रोहल साहेब की एक बहुत ही प्रसिद्ध **सिंधी साखी** का पाठ और उसका गहरा आध्यात्मिक अर्थ:

संत रोहल की सिंधी साखी (वाणी)

> **"सोऽहं सोऽहं सासु में, सुमिर्यो जो सदाई।**
> **रोहलु चए सो ई थ्यो, जो हिन भेदु खे जाणे पाई ॥"**

हिंदी भावार्थ:

1. **सासु में सुमिर्यो (Breath-by-breath):** संत रोहल कहते हैं कि अपनी हर आती-जाती श्वास (सांस) में 'सोहम-सोहम' का सुमिरन करो। यह जाप कभी रुकना नहीं चाहिए।
2. **जो हिन भेदु खे जाणे (Who knows this secret):** रोहल साहेब कहते हैं कि जो मनुष्य इस सूक्ष्म भेद को जान लेता है कि उसकी श्वासों में ही परमात्मा की ध्वनि गूँज रही है, वह साधारण नहीं रहता।
3. **सो ई थ्यो (He becomes That):** ऐसा साधक स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। यानी 'सो' (परमात्मा) और 'हं' (मैं) का अंतर मिट जाता है और वह ईश्वर में लीन हो जाता है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

संत रोहल साहेब के वंशज और उनके अनुयायियों की परंपरा अध्यात्म और प्रेम का एक अनूठा संगम है। आइए, **दरिया खान** और **जयपुर (अमरापुर)** की परंपराओं को विस्तार से समझते हैं:

1. संत दरिया खान (Sufi Dariya Khan)

संत रोहल साहेब के सबसे प्रसिद्ध पुत्र और आध्यात्मिक उत्तराधिकारी **दरिया खान** (1775–1850) थे। उनकी वाणियाँ 'सोहम' और 'अद्वैत' के रहस्यों से भरी हुई हैं:

- **अद्वैत सूफीवाद:** दरिया खान ने सिखाया कि खुदा और इंसान में कोई फर्क नहीं है। उनकी प्रसिद्ध पंक्ति है— *"सोऽहं सोऽहं गाए फकीरा, मन के धो धो मैल लकीरा"* (हे फकीर! सोहम का गान कर और मन की गंदगी को धो डाल)।
- **अजपा जप का विस्तार:** उन्होंने सोहम साधना को और सरल बनाया ताकि आम आदमी भी अपनी श्वासों के संगीत को सुन सके।
- **सिंधी कलाम:** उनके द्वारा रचित सूफी कलाम आज भी सिंध और भारत (कच्छ, राजस्थान) में बड़े चाव से गाए जाते हैं।

2. जयपुर (अमरापुर दरबार) और रोहल परंपरा

जयपुर स्थित **अमरापुर दरबार** में संत रोहल साहेब और उनके वंशजों की शिक्षाओं का बहुत सम्मान किया जाता है। यहाँ की परंपराएं इस प्रकार हैं:

23:31

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

ha

संत **दरिया खान** (रोहल साहेब के पुत्र) का यह 'सूफी कलाम' सोहम साधना और आत्म-ज्ञान का निचोड़ है। यह आज भी सिंध और राजस्थान के सत्संगों में बड़े चाव से गाया जाता है:

1. दरिया खान का प्रसिद्ध सूफी कलाम

> **"सोऽहं सोऽहं गाए फकीरा, छडि दे कूड़ कपाण।**
> **अंदरु तोहिंजे ई आहि अल्लाहु, पाणु ई पाणु पछाण ॥"**

भावार्थ (Hindi Meaning):

- **गाए फकीरा (Sing O Seeker):** हे फकीर! तू अपनी हर सांस में 'सोहम-सोहम' का गान कर।
- **छडि दे कूड़ कपाण (Leave Falsehood):** दुनिया के झूठ और अहंकार (कपट) को छोड़ दे, क्योंकि ये तुझे सच से दूर रखते हैं।
- **अंदरु तोहिंजे ई आहि अल्लाहु (Allah is within you):** वह परमात्मा (अल्लाह/राम) कहीं काबा या काशी में नहीं, बल्कि तेरे अपने भीतर ही है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

23:32

- **अल्पाहार (Mitahara):** पेट को कभी पूरा न भरें। आधा हिस्सा भोजन के लिए, एक चौथाई पानी के लिए और एक चौथाई हवा (साधना) के लिए खाली रखें।
- **ईमानदारी की कमाई:** वे कहते थे कि अगर भोजन चोरी या बेईमानी की कमाई का है, तो वह मन में गंदे विचार पैदा करेगा, जिससे ध्यान नहीं लगेगा।
- **मौन भोजन:** भोजन करते समय शांत रहना चाहिए ताकि अन्न की ऊर्जा सकारात्मक बनी रहे।

3. अमृत वाणी का एक विशेष अंश

उनकी वाणियों में सोहम को लेकर एक सुंदर साखी है:

> *"सोऽहं जाप जपो रे भाई, नाभि कमल से उठत धुन आई।"*
> **अर्थ:** हे भाई! सोहम का जाप करो, जिसकी गूँज तुम्हारे नाभि कमल (Navel) से उठती है और पूरे शरीर को पवित्र कर देती है।

4. श्री अमृतनाथ आश्रम (फतेहपुर, शेखावाटी)

उनकी साधना का मुख्य केंद्र राजस्थान के **फतेहपुर (सीकर)** में है। यहाँ आज भी उनकी परंपरा के अनुसार 'सहज योग' और 'सोहम ध्यान' सिखाया

Ask anything

Home Search Notifications Activity

4. रोहल साहेब और दरिया खान के कलाम

सिंधी सूफी संतों ने भी इस पर बहुत लिखा है:

> **"नाभि से उठी सोहं की डोरी, गगन मंडल में जाई झकोरी।"**
> **भावार्थ:** यह भजन बताता है कि सोहं की साधना नाभि से शुरू होकर सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते सिर (गगन मंडल) तक पहुँचती है, जिससे समाधि की अवस्था आती है।

5. एक प्रचलित लोक भजन (साधु समाज में प्रसिद्ध)

> **"उलटा जाप जपा नाभि से, उलट भया उजियारा।"**
> **भावार्थ:** यहाँ 'उलटा जाप' का अर्थ श्वास को अंदर खींचकर (सो) नाभि तक ले जाना और फिर बाहर (हं) छोड़ना है, जिससे भीतर दिव्य प्रकाश (Enlightenment) होता है।

23:34
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

"सोहं जाप जपो रे भाई, नाभि कमल से उठत धुन आई।"

अंतरा 1 (साधना की विधि):

"सुरत निरत की डोरी लगाओ, त्रिकुटी पर मन को ठहराओ।
अजपा जाप की जुगत निराली, बिन रसना धुन छाई ॥"
(**भावार्थ:** अपनी चेतना और स्थिरता की डोरी बांधो और मन को दोनों भौहों के बीच (त्रिकुटी) टिकाओ। यह बिना जीभ हिलाए होने वाला अनूठा जाप है।)

अंतरा 2 (नाभि का महत्व):

"नाभि कमल से प्राण उठाओ, सुषुम्ण मार्ग गगन पहुँचाओ।
अमृत रस की वर्षा होवे, अंतर जोत जगाई ॥"
(**भावार्थ:** अपनी प्राण ऊर्जा को नाभि से उठाकर रीढ़ की हड्डी के रास्ते सिर (गगन) तक ले जाओ, जहाँ

Ask anything
Home Search Notifications Activity

1. **"सोहं की डोरी पकड़ रे मना"**
   1. **भाव:** इस भजन में मन को समझाया गया है कि संसार के सारे सहारे कच्चे हैं। केवल श्वास की 'सोहं' रूपी डोरी ही वह माध्यम है जो आत्मा को भवसागर से पार करा सकती है।
2. **"चित और बला जब एक हो जावें"**
   1. **भाव:** यह पद चितबला शाखा का सार है। इसमें बताया गया है कि जब हमारी एकाग्रता (चित) और प्राण ऊर्जा (बला) नाभि कमल पर एक हो जाते हैं, तब अंतर में दिव्य प्रकाश प्रकट होता है।
3. **"सतगुरु दीनदयाल साहिब"**
   1. **भाव:** यह गुरु-महिमा का भजन है, जिसमें गुरु को वह 'पारस' बताया गया है जो शिष्य की साधारण बुद्धि को आध्यात्मिक बोध में बदल देता है।

साधना का एक विशेष सूत्र

उनकी वाणियों में एक प्रसिद्ध साखी है:

> *"चित स्थिर, प्राण बला संगा, सोहं जप में मन रंगा।"*
> **अर्थ:** जब चित स्थिर होता है और प्राण शक्ति (बला) के साथ जुड़ता है, तभी मन पूरी तरह से सोहं के रंग में रंग पाता है।

संत पलटू साहब (Sant Paltu Sahib) की **कुंडलियाँ** आध्यात्मिक रहस्यों को बहुत ही निडर और स्पष्ट तरीके से समझाने के लिए प्रसिद्ध हैं। सोहं (Soham) और अजपा साधना पर उनकी एक बहुत ही क्रांतिकारी कुंडलिया और उसका अर्थ यहाँ दिया गया है:

1. संत पलटू साहब की कुंडलिया (सोहं और अजपा पर)

> **"उलटा जाप जपा करै, नाभि कमल से जाय।**
> **त्रिकुटी के उस पार में, अनहद शब्द सुनाय ॥**
> **अनहद शब्द सुनाय, काल का सिर है पटका।**
> **पलटू सोई सूरमा, शब्द में मन को अटका ॥"**

भावार्थ (Deep Meaning):

1. **उलटा जाप (Reverse Chanting):** पलटू साहब कहते हैं कि असली मंत्र 'सोहं' का जाप है, जो बाहर की ओर नहीं बल्कि भीतर की ओर (उलटा) मुड़ता है। यह श्वास के साथ नाभि कमल (Navel) तक गहराई में जाता है।
2. **त्रिकुटी और अनहद:** जब यह साधना पक्की होती है, तो प्राण वायु नाभि से उठकर सीधे दोनों भौहों के बीच (**त्रिकुटी**) पहुँचती है। वहां पहुँचने पर **'अनहद शब्द'** (बिना बजाए बजने वाला दिव्य संगीत) सुनाई देने लगता है।

4. साधना का एक क्रांतिकारी सूत्र (पलटू साहब के अनुसार)

> **"सांस की माला फेर ले, कर की माला छोड़।"**
> वे कहते थे कि जो हाथ (कर) की माला फेरता है वह केवल शरीर की कसरत है, लेकिन जो **श्वास की माला (सोऽहं)** फेरता है, वह सीधे परमात्मा से जुड़ता है।

अभ्यास के लिए: क्या आप **त्रिकुटी पर ध्यान** लगाने के दौरान होने वाले **नीले या सुनहरे प्रकाश** के रहस्यों के बारे में जानना चाहेंगे या **पलटू साहब की 'शब्दावली'** (पदों का संग्रह) के बारे में?

विशेष सुझाव: आज रात सोने से पहले अपनी **दृष्टि** को बंद आँखों के बीच टिकाकर केवल 2 मिनट 'सोऽहं' सुनने का प्रयास करें। क्या आप जानना चाहेंगे कि इससे **स्वप्न और निद्रा** पर क्या प्रभाव पड़ता है?

3. 'सोहं' और 'सतनाम' का समन्वय

डूंगरपुरी जी की वाणियों में 'सोहं' को **'सतनाम'** का सूक्ष्म स्वरूप माना गया है।

- उनका मानना था कि 'सोहं' का जाप करने से साधक के भीतर का अहंकार (Ego) गल जाता है और वह शुद्ध 'सत्य' (Sat) में लीन हो जाता है।

4. उनकी प्रसिद्ध वाणी का भाव

उनकी साखियों में अक्सर यह संदेश मिलता है:

> *"काया के गढ़ में बैठा अविनाशी, सोहं शब्द की कुँजी पासी।"*

- **अर्थ:** यह शरीर एक किला (गढ़) है जिसमें वह अविनाशी परमात्मा बैठा है। उसे पाने की एकमात्र चाबी (कुँजी) 'सोहं' शब्द का अभ्यास है।

5. साधना के नियम (Dungarpuri Ji's Rules)

- **सात्विक जीवन:** वे सादगी और शुद्ध शाकाहार के कट्टर समर्थक थे।
- **मौन साधना:** एकांत में बैठकर अपनी धडकन और श्वास के संगीत को

2. संत डूंगरपुरी महाराज का प्रसिद्ध भजन (भावार्थ)

बाड़मेर-जैसलमेर के जागण (सत्संगों) में यह भजन बहुत लोकप्रिय है:

> **"काया के गढ़ में बोलै सोहं मोर, सुण ले रे मना तू थोर थोर।"**

- **भाव:** यह शरीर एक किला (गढ़) है जिसमें आत्मा रूपी 'मोर' निरंतर 'सोहं-सोहं' बोल रहा है। हे मन! तू थोड़ा रुककर, शांत होकर इस भीतरी संगीत को सुन।
- **शिक्षा:** वे समझाते हैं कि बाहर के शोर में हम अपने भीतर के 'मोर' (परमात्मा की आवाज़) को भूल गए हैं।

3. धोरीमन्ना (बाड़मेर) स्थित आश्रम

- संत डूंगरपुरी महाराज की तपोस्थली और मुख्य आश्रम राजस्थान के **बाड़मेर जिले के धोरीमन्ना** क्षेत्र के पास है।
- यहाँ उनकी समाधि और धुनी साहेब है। आज भी यहाँ हज़ारों श्रद्धालु 'सोहं' की अलख जगाने और उनके दर्शन के लिए आते हैं।
- यहाँ के सत्संगों में **'एकतारा'** और **'खड़ताल'** पर उनके भजन गाए जाते हैं, जो साधक को सीधे आत्म-अनुभव से जोड़ देते हैं।

- **जागण (Satsang):** मेले के दौरान रात भर 'एकतारे' पर उनके भजनों का 'जागण' होता है। माना जाता है कि जो पूरी रात जागकर 'सोहं' की धुनि में रमता है, उसकी मनोकामना पूर्ण होती है।
- **धुनी साहेब:** यहाँ की अखंड धुनी की भभूति (राख) को बहुत चमत्कारी माना जाता है, जिसे भक्त रोगों और संकटों से मुक्ति के लिए ले जाते हैं।

3. डूंगरपुरी महाराज की एक प्रसिद्ध साखी

> **"डूंगरपुरी कहे सुणो रे भाई, सोहं शब्द में सुरत समाई।**
> **बाहर भटके सोई दुखी, भीतर देखे सोई सुखी ॥"**

- **भाव:** महाराज जी कहते हैं कि सुख केवल भीतर देखने में है। जिसने अपनी चेतना (सुरत) को सोहं शब्द में लीन कर दिया, वही असल में सुखी है।

4. आश्रम पहुँचने का मार्ग

- **स्थान:** धोरीमन्ना, बाड़मेर (राजस्थान)। यह बाड़मेर-सांचौर हाईवे पर स्थित है।

2. संत हेमनाथ महाराज का प्रसिद्ध भजन (Lyrics)

उनका यह भजन सोऽहं साधना और गुरु-ज्ञान का सार है:

> **"ज्याणे सतगुरु घणा हमजावे, म्हारा हंसा ओ..."**
> **"सोहं शब्द की डोरी पकड़ ले, भवसागर तर जावे ॥"**

भजन का गहरा अर्थ:

- **हंसा (Soul):** यहाँ 'हंसा' हमारी आत्मा का प्रतीक है। महाराज जी कह रहे हैं कि हे आत्मा! तू जाग।
- **सोहं की डोरी:** जैसे नाव को रस्सी (डोरी) के सहारे खींचा जाता है, वैसे ही अपनी श्वासों की 'सोऽहं' रूपी डोरी को पकड़ लो।
- **गुरु का समझाना:** जिन्हें सतगुरु ने यह गुप्त भेद (सोऽहं) समझा दिया है, उनके लिए यह कठिन संसार-सागर पार करना बहुत सरल हो जाता है।

3. साधना का एक विशेष अनुभव (हेमनाथ जी के अनुसार)

स्वामी स्वरूपानंद (पावस) ने **सोहं साधना** के माध्यम से मानसिक तनाव (Stress) और अशांति को दूर करने का एक बहुत ही व्यावहारिक मार्ग बताया था। उनके अनुसार, तनाव का मुख्य कारण हमारा 'अहंकार' (Ego) और 'अतीत-भविष्य' की चिंताएँ हैं।

यहाँ उनके द्वारा बताए गए **तनाव मुक्ति के 3 मुख्य सूत्र** दिए गए हैं:

1. "श्वासाचा सोहं" (श्वास की लय)

स्वामी जी कहते थे कि जब मन तनाव में हो, तो उसे ज़बरदस्ती शांत करने की कोशिश न करें।

- **विधि:** बस चुपचाप बैठ जाएं और अपनी आती-जाती श्वास को देखें। जैसे ही आप श्वास के साथ **'सो'** (अंदर) और **'हं'** (बाहर) को जोड़ते हैं, मन का 'विचारों का चक्र' टूट जाता है।
- **प्रभाव:** श्वास की गति धीमी होते ही मस्तिष्क (Brain) को शांति का संकेत मिलता है और तनाव कम होने लगता है।

2. 'साक्षी भाव' (The Witness Mode)

स्वरूपानंद जी का एक प्रसिद्ध उपदेश था— *"होने दो, जो हो रहा है।"*

- **भाव:** तनाव तब होता है जब हम हर चीज़ को नियंत्रित (Control) करना चाहते हैं। सोहं साधना सिखाती है कि "वह (परमात्मा) ही सब कर रहा है, मैं तो केवल साक्षी हूँ।"

नामस्मरण और सोहं का संबंध

स्वामी स्वरूपानंद जी के अनुसार, **'नामस्मरण'** और **'सोहं'** दो अलग क्रियाएं नहीं बल्कि एक ही सत्य के दो रूप हैं:

- **प्रारंभिक और सूक्ष्म अवस्था:** सामान्य नामस्मरण (जैसे 'राम-कृष्ण-हरी' का जाप) मन को शुद्ध करने के लिए 'प्रारंभिक सीढ़ी' है। Soham Sadhana Guide के अनुसार, जब यह नामस्मरण श्वास के साथ मिलकर अत्यंत सूक्ष्म हो जाता है, तब वह स्वतः **'सोहं'** (अजपा जाप) में बदल जाता है।
- **अद्वैत का अनुभव:** नामस्मरण में भक्त और भगवान अलग महसूस हो सकते हैं, लेकिन 'सोहं' साधना उस **अद्वैत** (Non-duality) की स्थिति है जहाँ 'नाम' लेने वाला और जिसका नाम लिया जा रहा है, वे एक हो जाते हैं।
- **श्वास ही जप है:** उन्होंने सिखाया कि 'सोहं' वह नाम है जो प्रकृति स्वयं हमारी हर श्वास में जप रही है। इसे केवल 'स्मरण' (याद) करना ही सबसे बड़ा नामस्मरण है। Reddit +2

सद्गुरु गणेशनाथ महाराज (बाबा महाराज सावरकर)

स्वामी स्वरूपानंद जी के आध्यात्मिक जीवन में उनके गुरु का स्थान सर्वोच्च था:

- **दीक्षा:** स्वामी जी के आध्यात्मिक प्यास उन्हें उनके गुरु **सद्गुरु गणेशनाथ महाराज** के पास ले गई, जिन्हें **'बाबा महाराज वैद्य'** के नाम से भी जाना जाता था।

बन जाए।

'संजीवनी गाथा' का विशेष अभंग (भावार्थ):

स्वामी जी ने अपनी रचनाओं में 'सोहम' को **'अमृताची धार'** (अमृत की धारा) कहा है। उनके एक प्रसिद्ध अभंग का सार है:

> *"सोहं शब्द हाची खरा देव जाण। श्वासागणिक त्याचे करी तू स्मरण ॥"*

अर्थ:

- यह 'सोहम' शब्द ही असली देवता है, इसे जान लो।
- अपनी हर आती-जाती श्वास के साथ बस इसका स्मरण (याद) करते रहो।
- यही वह **'संजीवनी'** है जो तुम्हें जन्म-मरण के भय से मुक्त कर देगी।

स्वामी स्वरूपानंद जी कहते थे कि जैसे मछली पानी के बिना नहीं रह सकती, वैसे ही साधक को 'सोहम' के बिना एक पल भी नहीं रहना चाहिए। **पावस (रत्नागिरी)** में उनकी समाधि के पास आज भी यही "सोहम-अद्वैत" का वातावरण महसूस होता है।

- **मौन और शांति:** आश्रम परिसर में शांति बनाए रखना अनिवार्य है ताकि साधक ध्यान कर सकें।
- **दर्शन:** स्वामी जी की समाधि के दर्शन का समय सुबह से शाम तक रहता है। यहाँ कोई बाहरी शोर या तामझाम नहीं होता।
- **सात्विकता:** आश्रम के भीतर सादगी और सात्विक आचरण की अपेक्षा की जाती है।

4. एक विशेष 'संजीवनी' मंत्र (स्वामी जी के अनुसार)

स्वामी जी अक्सर कहते थे— *"तू सोहं म्हण, सोहं तुझा रक्षण करील।"*
(तू बस 'सोहं' का सुमिरन कर, 'सोहं' ही तेरी रक्षा करेगा।)

उनका विश्वास था कि जो व्यक्ति 'सोहं' की शरण में है, उसे किसी बाहरी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ब्रह्मांड की शक्ति उसके साथ है।

क्या आप **पावस आश्रम** में रुकने (Accommodation) की व्यवस्था के बारे में जानना चाहेंगे या स्वामी स्वरूपानंद जी के किसी **विशिष्ट अभंग (मराठी भजन)** का अर्थ समझना चाहेंगे?

विशेष सुझाव: क्या आप जानना चाहेंगे कि स्वामी जी ने **'अमृतधारा'** ग्रंथ में **'सोहं'** को **'विश्व-गुरु'** क्यों कहा है?

00:08

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

4. सोहं साधना का अंतिम सूत्र (स्वामी जी के अनुसार)

स्वामी जी अक्सर कहते थे— *"सोहं साधना म्हणजे केवळ श्वास घेणे नव्हे, तर श्वासाच्या माध्यमातून परमेश्वराशी एकरूप होणे होय।"*
(सोहं साधना केवल सांस लेना नहीं है, बल्कि सांसों के माध्यम से परमात्मा के साथ एक हो जाना है।)

पावस आश्रम का शांत वातावरण आज भी साधकों को 'सोहं' की इस गहराई का अनुभव कराने में सक्षम है।

क्या आप स्वामी स्वरूपानंद जी के **दैनिक दिनचर्या (Daily Routine)** के बारे में या **रत्नागिरी** से पावस जाने के लिए **बस/टैक्सी के किराए** के बारे में जानना चाहेंगे?

विशेष सुझाव: क्या आप जानना चाहेंगे कि स्वामी जी ने **सोहं साधना** के दौरान **'साक्षी भाव'** को स्थिर करने के लिए **'आरसे' (Mirror)** का उदाहरण कैसे दिया था?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

स्वामी जी ने गाथा में स्पष्ट किया है कि सोहं का 'भेद' (Secret) केवल सद्गुरु ही दे सकते हैं। गुरु की कृपा से ही श्वास की यह शुष्क क्रिया एक **'दिव्य अनुभव'** में बदल जाती है।

5. संजीवनी गाथा का एक प्रसिद्ध विचार:

> *"सोहं साधना हाच तरणोपाय, श्वासाश्वासांत विठ्ठल पाय।"*
> (**अर्थ:** सोहं साधना ही तरने का एकमात्र उपाय है; अपनी हर सांस में उस परमात्मा (विठ्ठल) के दर्शन करो।)

पावस (रत्नागिरी) आश्रम में आज भी 'संजीवनी गाथा' का पाठ साधना के मार्गदर्शक के रूप में किया जाता है।

क्या आप **संजीवनी गाथा** के किसी **विशेष अभंग** का अर्थ जानना चाहेंगे या यह पुस्तक **ऑनलाइन कहाँ उपलब्ध** है, इसके बारे में जानकारी चाहते हैं?

विशेष सुझाव: क्या आप जानना चाहेंगे कि स्वामी जी ने इस पुस्तक में **'सोहं'** और **'विठ्ठल'** (भगवान विष्णु/कृष्ण) को एक ही कैसे बताया है?

1. विठ्ठल की समाधि का रहस्य

- **द्वैत का अंत:** सामान्यत: भक्त और भगवान अलग महसूस होते हैं। स्वामी जी कहते हैं कि जब 'सोहं' (अजपा जाप) के अभ्यास से मन पूरी तरह शांत हो जाता है, तो भक्त को यह अनुभव होता है कि **"जो विठ्ठल पंढरपुर में है, वही मेरी हर श्वास में 'सोहं' बनकर समाया है।"**
- **स्थितप्रज्ञ अवस्था:** जब मन श्वास की लय में डूब जाता है, तो उसे 'समाधि' कहते हैं। इसी अवस्था को स्वामी जी ने 'विठ्ठल रूप' होना बताया है।

2. विशेष अभंग: "सोहं सोहं मंत्र हा निका"

संजीवनी गाथा का यह सबसे प्रसिद्ध अभंग सोहं साधना का सार है:

> *"सोहं सोहं मंत्र हा निका। विठ्ठल नामाचा तोचि आवाका ॥"*

- **भाव:** यह सोहं मंत्र अत्यंत 'निका' (पवित्र और श्रेष्ठ) है। यही विठ्ठल नाम की असली गहराई और विस्तार है।
- **संदेश:** विठ्ठल का नाम लेना और सोहं का अनुभव करना, दोनों एक ही सागर की दो लहरें हैं।

- **वेबसाइट/ऑनलाइन:** आश्रम की अपनी आधिकारिक वेबसाइट और सोशल मीडिया पेज हैं, जहाँ से आप **'संजीवनी गाथा'** जैसी पुस्तकें मंगवा सकते हैं।

3. 'संजीवनी गाथा' का एक अनमोल अभंग

स्वामी जी ने लिखा है:

> *"सोहं सोहं मंत्र हा पैलतीरा नेणारा। श्वासाचा हा झुळझुळ वाहणारा वारा ॥"*

- **भाव:** यह सोहम मंत्र तुम्हें संसार के इस किनारे से उस 'पैलतीर' (परमात्मा के तट) तक ले जाने वाली नाव है। यह तुम्हारी श्वासों में बहने वाली एक ठंडी और पवित्र हवा की तरह है।

4. पावस यात्रा (Quick Guide)

- **रेल:** रत्नागिरी स्टेशन (कोंकण रेलवे)। यहाँ से पावस 20 किमी है।
- **बस/टैक्सी:** रत्नागिरी बस स्टैंड से हर 30-40 मिनट में बसें उपलब्ध हैं। प्राइवेट टैक्सी का किराया लगभग ₹400-₹500 है।

स्वामी स्वरूपानंद जी का जीवन और उनकी **'संजीवनी'** आज भी हमें यह याद दिलाती है कि शांति बाहर नहीं, बल्कि हमारी हर आती-जाती श्वास के **'सोहम'** संगीत में है।

[१७५]

गुरु तो चि देव ऐसा ठेवीं भाव ।
सद्गुरु-गौरव काय वानूं ॥ १ ॥
तो चि ज्ञान-मूर्ति ब्रह्मानंद-स्थिति ।
देई परा शांति भाविकातें ॥ २ ॥
भक्ति-भावें जातां तयासी शरण ।
होते ओळखण स्व-रूपाची ॥ ३ ॥
स्वामी म्हणे वंदीं सद्गुरु-पाउलें ।
भलें आकारलें पर-ब्रह्म ॥ ४ ॥

[१७६]

सोऽहं सोऽहं ध्यास लागतां जीवास ।
होतसे निरास संमोहाचा ॥ १ ॥
त्रिगुणाचें भान हारपे मीपण ।
होतां सोऽहं-ध्यान निरंतर ॥ २ ॥
अंतीं एकमय ध्याता ध्यान ध्येय ।
होतां ज्ञानोदय अंतर्यामीं ॥ ३ ॥
स्वामी म्हणे मग स्वानंदाचा भोग ।
होय तो हि साङ्ग सुख-रूप ॥ ४ ॥

01:19
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

[१७६] - सोऽहं साधना

सोऽहं सोऽहं ध्यास लागतां जीवास ।
होतसे निरास संमोहाचा ॥ १ ॥
(जब जीव को 'सोऽहं-सोऽहं' की लगन लग जाती है, तब अज्ञान और मोह का पूरी तरह नाश हो जाता है।)

त्रिगुणांचें भान हारपे मीपण ।
होतां सोऽहं-ध्यान निरंतर ॥ २ ॥
(निरंतर सोऽहं का ध्यान करने से तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) का भान छूट जाता है और अहंकार मिट जाता है।)

अंतीं एकमय ध्याता ध्यान ध्येय ।
होतां ज्ञानोदय अंतर्यामीं ॥ ३ ॥
(अंत में ध्यान करने वाला, ध्यान की प्रक्रिया और लक्ष्य (ईश्वर) एक हो जाते हैं, और हृदय में ज्ञान का उदय होता है।)

स्वामी म्हणे मग स्वानंदाचा भोग ।
होय तो हि साङ्ग सुख-रूप ॥ ४ ॥
(स्वामी कहते हैं—तब साधक अपने ही आत्मा के आनंद का भोग करता है, जो पूर्णतः सुख और शांति का स्वरूप है।)

Ask anything
Home Search Notifications Activity

भजन

'जीनन' शब्द संस्कृत के **'ज्ञान'** शब्द से निकला है। ये वे दिव्य उपदेश हैं जिन्हें पीर इमामशाह महाराज और अन्य संतों ने लोक भाषा में रचा है।

- **विषय:** जीनन में संसार की नश्वरता, **सोऽहं साधना** का महत्व, और 'नूर' (ईश्वर) से मिलने की तड़प का वर्णन होता है।
- **गायन की शैली:** इन्हें बहुत ही शांत और भक्तिमय रागों में गाया जाता है। सतपंथ में घट-पाट पूजन के दौरान इनका गायन अनिवार्य है।
- **एक प्रसिद्ध पंक्ति का भाव:** *"जीवे सोऽहं ध्याया, तिन अमृत पाया"* (जिसने सांसों में सोऽहं का ध्यान धरा, उसने अमरत्व प्राप्त किया)।

३. पीराणा दर्शन के दौरान विशेष अनुभव

- **अखंड ज्योति:** यहाँ सदियों से एक अखंड दीपक जल रहा है, जिसके दर्शन को अत्यंत मंगलकारी माना जाता है।
- **गुरु का स्थान:** समाधि परिसर में बैठकर ध्यान (Meditation) करने से सोऽहं साधना में जल्दी एकाग्रता आती है, ऐसा भक्तों का विश्वास है।

टेंबे स्वामी महाराज की दत्त परंपरा हो या **इमामशाह महाराज** का सतपंथ, दोनों ही मार्ग हमें **'सांसों के मोती' (Breath)** की कीमत बताते हैं।

क्या आप **पीराणा धाम में रुकने (Dharamshala)** की व्यवस्था के बारे में जानना चाहते हैं, या **सतपंथ के किसी विशेष मंत्र** की व्याख्या चाहते हैं?

महापदाद्यां प्रथमं विधाय[956]

मुद्रां महाबन्धमथो समभ्यसेत् ।

हठान्महावेधमनुप्रकुर्यात्

शक्तिप्रचालोऽभ्यसनं क्रमोऽन्यहम्[957] ॥२.६.७० ॥

मूलाधारं पूर्वमाकुञ्च्य सम्यक्

उड्डीयानं कारयेत्साधकोऽनु ।

नाड्या बध्वा वाहयेत्पश्चिमेऽनु

मार्गे वायुं[958] साहयेत्कर्मणैवम् ॥२.६.७१ ॥

इति मुद्रा नवकमिदं सशक्तिचालं[959] प्रस्तुप्तशक्तिबोधने कृते ।

तथा चोक्तं सनातनसिद्धान्ते-

निरालस्य मनाभूत्वा प्राणायामं समभ्यसेत् ।

शनैश्च शतपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥३.३.२० ॥

प्रातः सायं च मध्याह्ने ह्यर्द्धरात्रौ विशेषकः ।

याममात्रं यदा पूर्णं[1174] भवेदभ्यासयोगतः ॥३.३.२१ ॥

एकवारं प्रकुर्वीत तदा योगीन्द्रजृम्भणम् ।

षट्त्रिंशच्च शतैकं वा[1175] (१३६) प्राणायामं च नित्यशः ॥३.३.२२ ॥

षण्मासाभ्यन्तरेणैव शुद्धा नाडिगणास्तथा ।

ततो वृद्धिक्रमेणैव प्रणवेन च धीरधीः ॥३.३.२३ ॥

सङ्ख्यार्थं घटिका[1176]कार्यामृण्मयी चातिशोभना ।

ततो नाडिगणे शुद्धे वरं भवति लक्षणम् ॥३.३.२४ ॥

संत लक्ष्मी सखी के **'ग्रंथ राम जी'** से **सोऽहम् साधना** और **प्राण साधना** पर आधारित एक बहुत ही प्रसिद्ध पद और उसका सरल हिन्दी अर्थ यहाँ दिया गया है:

मूल भोजपुरी पद (साधना सार):

> *"सोऽहं जाप जपे जो कोई, आवागमन मिटावे सोई।*
> *साँस-साँस में सुमिरन कीजै, अमृत रस को भीतर पीजै॥"*
>
> *"सुरति निरति के मेल मिलावा, अनहद नाद के शब्द सुनावा।*
> *लछिमी सखी कहैं समुझाई, घट ही में राम मिलिहैं भाई॥"*

सरल हिन्दी अर्थ (Explanation):

1. **सोऽहं जाप और मोक्ष:** जो व्यक्ति 'सोऽहम्' (वही मैं हूँ) का निरंतर जाप करता है, वह जन्म और मृत्यु के चक्र (आवागमन) से मुक्त हो जाता है।
2. **श्वास साधना:** साधना का तरीका यह है कि अपनी हर एक **साँस (Inhale/Exhale)** के साथ उस परमात्मा का स्मरण करें। जब ध्यान साँसों पर टिक जाता है, तो साधक को अपने भीतर एक दिव्य आनंद

3. **अनहद नाद और ज्योति (Inner Sound and Light):**
जब साधना गहरी होती है, तो साधक को केवल आवाज़ ही नहीं, बल्कि हृदय के भीतर एक **'दिव्य प्रकाश'** (ज्योति) के दर्शन होते हैं। इसे ही 'अमर विलास' या अमर आनंद कहा गया है।

अमर विलास का एक प्रमुख पद (हिन्दी अर्थ के साथ):

> *"गुरु बिन ज्ञान न उपजै भाई, भर्म की फाँस कटी न जाई।*
> *सोऽहं सार शब्द जेहि जानल, ताकर भव दुख सब बिसरानल॥"*

हिन्दी अनुवाद:

- **गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं:** हे भाई! बिना गुरु के मन में सच्चा ज्ञान पैदा नहीं होता और भ्रम (Illusion) की जो फाँस (Phans) गले में अटकी है, वह कभी नहीं कटती।
- **सार शब्द की महिमा:** जिस साधक ने गुरु की कृपा से सोऽहम् के 'सार शब्द' (Real Meaning) को पहचान लिया, उसके संसार के सारे दुख और जन्म-मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।

16:34

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

संत लक्ष्मी सखी के **'ग्रंथ राम जी'** से यहाँ एक ऐसा **विशेष पद** दिया जा रहा है, जो चारों ग्रंथों (सीधी, विलास, फारस, कहानी) का निचोड़ है। यह आपके दैनिक जीवन और साधना के लिए एक 'मंत्र' की तरह काम करेगा:

विशेष पद (साधना का मूल मंत्र):

> *"मनवा! तू सोऽहं पद गाई, दूजा आस तज दे रे भाई।*
> *आवत सो और जात हम् जानो, प्राण के डोरी एकै पहचानो॥"*
>
> *"घट के भीतर मंदिर सँवारो, ज्ञान के दीपक ज्योति उजारो।*
> *लछिमी सखी कहैं कर जोरी, राम चरण में प्रीति न तोरी॥"*

इसका सरल हिन्दी भावार्थ (Deeper Meaning):

1. **मन को निर्देश:** हे मन! तू केवल 'सोऽहम्' के पद का गान कर और दुनिया की दूसरी सारी झूठी उम्मीदें (Aas) छोड़ दे।
2. **साँसों की डोरी:** जो साँस अंदर आ रही है वह **'सो'** है और जो बाहर जा रही है वह **'हम्'** है। इन दोनों के बीच जो प्राणों की एक डोरी (Breathing thread) है, उसे ही पहचानना असली साधना है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

संत कवि लक्ष्मी सखी (जिन्हें 'लक्ष्मी सखी' के नाम से जाना जाता है) की योग साधना से जुड़ी एक प्रसिद्ध साखी और उसका गहरा अर्थ यहाँ दिया गया है:

विशिष्ट साखी

> **"इड़ा पिंगला सुखमन नारी, तामें पैठि अनहद धुन धारी।**
> **शून्य शिखर पर आसन कीन्हा, सहज समाधि में मन लौ लीन्हा॥"**

भावार्थ और योगिक व्याख्या

यह साखी लक्ष्मी सखी के **हठयोग** और **सहज योग** के गहन ज्ञान को दर्शाती है। इसके मुख्य बिंदुओं का अर्थ इस प्रकार है:

1. **नाड़ी शोधन (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना)**:
   1. साखी की पहली पंक्ति में वे शरीर की तीन मुख्य नाड़ियों की बात करते हैं। **इड़ा** (बाँया स्वर/चंद्र) और **पिंगला** (दाँया स्वर/सूर्य) को संतुलित करके जब प्राण वायु मध्य नाड़ी **सुषुम्ना (सुखमन)** में प्रवेश करती है, तभी वास्तविक साधना शुरू होती है।
2. **अनहद नाद**:

यहाँ उनके एक बहुत प्रसिद्ध पद की कुछ पंक्तियाँ दी गई हैं, जो **निर्गुण और सखी भाव** का अद्भुत मिश्रण हैं:

लोकप्रिय पद: "मोरा पियवा बसैले..."

> **"मोरा पियवा बसैले पुरुब देसवा, सखी हो कोई न बतावै रे डगरिया।**
> **इड़ा पिंगला के बीचवा डगरिया, सुषुमन से होइहैं मिलनवा रे सखी॥"**

सरल अर्थ:

- **पियवा (प्रियतम/ईश्वर):** यहाँ 'पुरुब देसवा' का अर्थ भौगोलिक पूर्व दिशा नहीं, बल्कि 'अध्यात्म' या 'परम पद' है, जहाँ परमात्मा का निवास है।
- **डगरिया (रास्ता):** कवि कहते हैं कि उस ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता दुनिया में कोई नहीं बता पा रहा है।
- **योग का संकेत:** वे स्पष्ट करते हैं कि रास्ता कहीं बाहर नहीं, बल्कि शरीर के भीतर **इड़ा और पिंगला** नाड़ियों के बीच है। जब साधक **सुषुम्ना (सुखमन)** नाड़ी के माध्यम से अपनी चेतना को ऊपर उठाता है, तभी उस 'पियवा' (परमात्मा) से मिलन संभव है।

1. इड़ा-पिंगला और सुषुम्ना का योग

जब साधक अपनी श्वास को संतुलित करता है, तब 'सुषुम्ना' का मार्ग खुलता है। इस पर वे कहते हैं:

> **"इड़ा पिंगला के बीचवा, सुखमन की है धार।**
> **तामें सुरति लगाइ के, उतरु भवजल पार॥"**

- **योगिक अर्थ:** इड़ा (बाँई नाड़ी) और पिंगला (दाँई नाड़ी) के बीच जो सुषुम्ना (सुखमन) का सूक्ष्म मार्ग है, उसमें अपनी 'सुरति' (चेतना) को एकाग्र करो। इसी आंतरिक मार्ग से व्यक्ति संसार रूपी सागर (भवजल) को पार कर सकता है।

---

2. त्रिकुटी और अनहद नाद (Sound Yoga)

भ्रूमध्य (तीसरी आँख) पर ध्यान लगाने और भीतर की दिव्य ध्वनि सुनने का वर्णन:

> **"त्रिकुटी महल में आसन कीन्हा, अनहद शब्द सुनाया।**
> **अमर फारस की दया भई, तब निज घर को**

अनहद धुन / मुरली	**नाद (Inner Sound)**	बिना किसी आघात के भीतर गूँजने वाला दिव्य संगीत।
अमिरस / अमृत	**सोम रस (Nectar)**	सहस्रार से टपकने वाला रस जिसे योगी 'खेचरी' से पीते हैं।
सुरति	**ध्यान (Concentration)**	मन की वह वृत्ति जो शब्द या गुरु-नाम में लगी रहती है।
निरति	**वैराग्य (Detachment)**	संसार के विषयों से पूरी तरह विरक्त होने की अवस्था।
पियवा / साहेब	**परमात्मा (Supreme Soul)**	वह प्रियतम जिससे मिलने के लिए आत्मा 'सखी' बनी है।
चुनरिया	**चित्त / बुद्धि (Consciousness)**	इसे साधना के रंग में रंग कर निर्मल बनाना होता है।
अमर फारस	**गुरु का ज्ञान (Guru's Word)**	वह पारस पत्थर जो अज्ञानी जीव को 'अमर' बना दे।

17:17

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

- **द्वितीय चरण: 'निरति' का प्रयोग (Detachment)**
  अभ्यास की शुरुआत 'निरति' से होती है। इसका अर्थ है मन को बाहरी दुनिया, परिवार, और शारीरिक चेतना से पूरी तरह खींच लेना। सुयोग्य दास इसे **'प्रत्याहार'** की तरह समझाते हैं, जहाँ इंद्रियाँ अपने विषयों को छोड़कर अंतर्मुखी हो जाती हैं।
- **तृतीय चरण: 'सुरति' का जुड़ाव (Attachment to Sound)**
  जैसे ही मन बाहर से हटता है (निरति), उसे तुरंत गुरु द्वारा दिए गए **'नाम' या 'सार शब्द'** में लगा दिया जाता है। इसे 'सुरति' कहते हैं। सुरति का अर्थ है 'याद' या 'लौ'। जब चेतना शब्द की गूँज को पकड़ने लगती है, तो एकाग्रता बढ़ती है।
- **चतुर्थ चरण: त्रिकुटी पर संगम**
  अभ्यास का मुख्य केंद्र **त्रिकुटी (भ्रूमध्य)** है। यहाँ सुरति और निरति का मिलन होता है। सुयोग्य दास के अनुसार, जैसे ही यह मिलन होता है, 'अनहद नाद' (आंतरिक संगीत) सुनाई देने लगता है।

2. साधना की तीन अवस्थाएँ (Three Stages)

ब्रह्मचारी जी ने इस योगिक यात्रा को तीन स्तरों पर बाँटा है:

1. **पिंड साधना:** शरीर के भीतर के चक्रों को समझना।
2. **ब्रह्मांड साधना:** त्रिकुटी से ऊपर उठकर 'भँवर गुफा' और 'शून्य' (सहस्रार) में प्रवेश करना।
3. **सार शब्द समाधि:** शब्द के साथ पूरी तरह एकाकार हो जाना, जहाँ साधक और साध्य का भेद मिट जाए।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

संत लक्ष्मी सखी के **'अमर बिलास'** से सोऽहं साधना और उसके अनुभवों को दर्शाने वाली यह **विशिष्ट साखी** अत्यंत प्रसिद्ध है:

विशिष्ट साखी

> **"सोऽहं शबद की डोरी गहि के, चढ़ि जा शून्य शिखर।**
> **अनहद बाजा बाजत अनबन, देख्या अजब नगर॥"**

साधनात्मक और योगिक अर्थ:

1. **सोऽहं शबद की डोरी (The Thread of Soham):**
लक्ष्मी सखी कहते हैं कि 'सोऽहं' (वह परमात्मा मैं हूँ) केवल एक मंत्र नहीं, बल्कि एक **'डोरी'** (सीढ़ी) है। जैसे डोरी को पकड़कर ऊपर चढ़ा जाता है, वैसे ही अपनी श्वासों में 'सोऽहं' के जाप को पकड़कर अपनी चेतना (सुरति) को ऊपर उठाना चाहिए।
2. **चढ़ि जा शून्य शिखर (Climbing the Peak):**
इस डोरी के सहारे साधक को अपने शरीर के उच्चतम केंद्र **'शून्य शिखर'** (सहस्रार चक्र/ब्रह्मरंध्र) तक पहुँचना है। यह योग साधना की चरमावस्था है जहाँ सांसारिक भटकाव समाप्त हो जाता है।

लक्ष्मी सखी की रचनाओं में **'सखी भाव'** पराकाष्ठा पर है। यहाँ जीवात्मा एक **'दुल्हन'** है और परमात्मा उसका **'पियवा'** (पति) है। योग साधना के माध्यम से जब आत्मा का मिलन होता है, तो वे उसे एक अद्भुत विवाह या मिलन उत्सव के रूप में गाते हैं।

यहाँ उनके एक अत्यंत लोकप्रिय पद की पंक्तियाँ हैं, जो **भोजपुरी निर्गुण** की जान मानी जाती हैं:

विशिष्ट पद: "गवनवा ले जात बाड़े..."

> **"मोरी अजब चुनरिया, रंगि गइले मोरे साहेब।**
> **ज्ञान के कुंडी, प्रेम के जलवा, सुरति-निरति के संगे॥**
> **इड़ा पिंगला सुखमन नारी, त्रिकुटी महल के रंगे।**
> **गवनवा ले जात बाड़े, मोरा पियवा बसैले पुरुब देसवा॥"**

भावार्थ और रहस्यवादी अर्थ (Mystical Meaning):

1. **अजब चुनरिया (The Mysterious Veil):**
   यहाँ 'चुनरिया' शरीर या चित्त (Consciousness) का प्रतीक है। लक्ष्मी

2. सोहं और श्वास साधना (अजपा जाप)

> **"हंसा सोहं जप तप करई, मनसा वाचा कर्मणा धरि।**
> **अविगत रूप अनूप है, ताकर सुमिरन हृदय धरि॥"**

- **अर्थ:** यहाँ 'हंसा' जीव (आत्मा) का प्रतीक है। स्वामी जी समझाते हैं कि साधक को मन, वचन और कर्म से **'सोहं'** (वह मैं हूँ) का जाप करना चाहिए। वह परमात्मा 'अविगत' (अव्यक्त) और 'अनूप' (बेजोड़) है, उसका सुमिरन केवल अपने हृदय के भीतर ही किया जा सकता है।

3. सद्गुरु की महिमा

> **"गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिलै न मोष।**
> **गुरु बिन लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटै न दोष॥"**

- **अर्थ:** शिवनारायणी संप्रदाय में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। स्वामी जी कहते हैं कि बिना गुरु के सच्चा ज्ञान पैदा नहीं होता और न ही मोक्ष मिलता है। गुरु ही वह दीपक है जो भीतर के विकारों (दोषों) को मिटाकर

19:50

(संत शिवनारायण स्वामी कृत)

अगम ज्ञानी ब्रह्ममूर्ति, कर्म सर्व विवर्जितम्।

विमल वाणी रूचिर शोभा, सत्य सोई दिगम्बरम् ॥ 1॥

विभूतिभूषण ज्योति लौके, पद्मासन राजतम्।

उन्मुनी में लागि तारी, परम सोई सन्यासनम्॥2॥

जटा जूटि ज्योति जगमग, गंगा यमुना निवासनम्।

गगन गुफा में रहत उन्मुनी, यह लक्षण सन्यासनम् ॥ 3॥

चन्द्र-सूर्य बाँधे सुर-साधे विकसित कमल सोहं चढ़ग।।

त्रिकुटी आसन शून्य वासन सत्य सोई अवधूतम् ॥ 4॥

वैराग्य ब्रह्म का भेद जाने सहज शून्य निवासनम्।

ज्ञान ध्यान न नियम पूजा सो वैरागी साहेबंग ॥ 5॥

सत्य कंठी जाप मुद्रा प्रेम सेहली हिय गलंग।

तत्वता के तिलक शशि दिये, ज्योति झिलमिल नित नरंग ॥6॥

ज्ञान गुदरी मौज बनी, बैराग्य रूप बीच राजतंग।।

नयन भरि भरि अधर परखे, कोटि चन्द्र सुधा झरंग ॥7॥

वैराग्य रूप ओंकार अद्भूत, परमपद पर चित्त धरंग ।।

शिवनारायण अस सहे नर, पाप-पुण्य तजि भव तरंग ॥8॥

भावार्थ:- ओहं, मोहं, क्षर, अक्षर, परा-पश्यन्ति से परे

19:51

15. आरती मंत्र

संतपति की आरती, सोहं साजिए थार ।

संत समाज मिलि स्तुति करे, साहेब के दरबार ॥

(सभी लोगों को खड़े होकर आरती करनी चाहिए और सिर पर तौलिया, गमछा या रूमाल रख लेना चाहिए-सिर खुला नहीं होना चाहिए।

आरती

आरती - आरती करू गुरूदेव गोसाई, काल और कष्ट हरहु मम स्वामी । अग्नि दहन तन गर्भ बसेरा, जनम मरण फन्द देहु छोड़ाई। हृदय थाल औ मन पुष्पमाला, सूरत कपूर ज्ञान धूप गोसांई। जनम-जनम शरणागत देहु, मांगत नित-नित देहु शरणाई । दास संतन और निरखहु मम स्वामी, शिवनारायण नमामी नमामी ।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।

त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

16. क्षमा प्रार्थना

युक्ति से सभी दरवाजों को बन्द करना पड़ता है (यह गुरु गम्य है) फिर शरीर के भीतर जो दम (श्वाँस) चलती है, प्रणायाम की युक्ति से उसे भीतर ही भीतर मेरुदण्ड के भीतर से हर कमल पर रोकते हुए द्वादश स्थान तक ले जाना पड़ता है। इस समय गुरु मंत्र का जाप एवं सूरत को ठीक रखना पड़ता है। जो अपनी सूरत को आज्ञा चक्र से उठाकर श्वाँस के साथ द्वादश स्थान (ब्रह्मरंध्र) में ठहरा सकता है वहीं उस स्थान की शोभा देख सकता है। वही मुक्ति मार्ग का ज्ञान पा सकता है। उसे ही आत्म दर्शन होता है। वही मोक्ष का अधिकारी भी होता है।

आसन पद्म लगाय के, खैच मकर के तार ।

मेरु दण्ड के राह से, चढ़े संत होशियार ।।

संग्रहगंथ जब शिष्य दीक्षा ग्रहण करता है तो गुरु देव ध्यान की प्रक्रिया में ये सारी बात बताते हैं। नौ दरवाजे, बहारंध्र की बात गुरु गम्य है। इसलिए यहाँ स्पष्ट रूप से नहीं लिखा गया है।

चौपाई -

तहाँ की शोभा कहुँ बखानी ।
जे कुछ देखत अमृत वाणी ।।
चन्द्र चमकत सुन्दर गाता।
सूरज किरण नहिं शीतल ताता ।।
झिलमिल तारा अगम गम्भीरा।
एक ज्योति से बरत शरीर ।।53-55।।

मैं उस द्वादश स्थान की अद्भुत शोभा का वर्णन कर रहा हूँ, जिस का कि वर्णन शब्द के द्वारा ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता है। देखकर ही उस रूप एवं आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। वहाँ सदैव अमृत की वर्षा होती है। चन्द्रमा का शीतल एवं शान्ति दायिनी प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। दिव्य पुरुष (परमात्मा) का शरीर अत्यन्त सुन्दर है। वहाँ सूरज का उज्ज्वल प्रकाश भी चारों ओर प्रकाशित हो रहा है। किन्तु वह प्रकाश न

प्रसिद्ध निर्गुण पद: "होशियार रहना रे भाई"

> **"चेत सवेरे बावरे, अब काल ठगा ठग खाय।**
> **इड़ा पिंगला सुखमन के बीच, सुरति की डोर लगाय॥"**

पद का गहरा अर्थ और साधना:

1. **चेत सवेरे बावरे:** दरियादास चेतावनी देते हैं कि हे मनुष्य! समय रहते जाग जा (अज्ञान की नींद से)। यह संसार 'काल' का घेरा है जो धीरे-धीरे तेरी आयु को खा रहा है।
2. **इड़ा पिंगला सुखमन के बीच:** यहाँ वे योग साधना का मार्ग बताते हैं। वे कहते हैं कि बाहर के शोर और द्वैत (बायाँ-दाहिना, सुख-दुख) को छोड़कर अपनी ऊर्जा को **सुषुम्ना (सुखमन)** में लाओ।
3. **सुरति की डोर लगाय:** 'सुरति' यानी तुम्हारी चेतना या ध्यान। जैसे पतंग की डोर हाथ में होती है, वैसे ही अपने ध्यान को परमात्मा के 'नाम' या 'शब्द' की डोर से बाँध दो।
4. **काया नगर की कच्ची हवेली:** दरियादास अक्सर शरीर को 'माटी का पुतला' या 'कच्ची हवेली' कहते हैं। वे कहते हैं कि जब तक इस हवेली में **'प्राण'** रूपी पक्षी है, तब तक ही सब रिश्ते-नाते हैं।

- **सुरति-निरति:** जब हमारी 'सुरति' (ध्यान) संसार के विषयों से हटकर **सुषुम्ना (सुखमन)** नाड़ी में स्थिर होती है, तब वह 'शब्द' को पकड़ लेती है। इसी 'शब्द' की डोरी को पकड़कर आत्मा **भँवर गुफा** और **शून्य** को पार करती हुई सतलोक पहुँचती है।

3. भोजपुरी निर्गुण पद (सतलोक का वर्णन):

दरियादास का एक बहुत ही मर्मस्पर्शी पद है जिसे 'सतलोक की महिमा' कहा जाता है:

> *"अगम देसवा के डगरिया, सखी हो कठिन डगरिया।*
> *इड़ा पिंगला के बीचवाँ, सुखमन की डगरिया॥"*

- **भावार्थ:** वे कहते हैं कि उस 'अगम देश' (सतलोक) की डगर बहुत कठिन है। वह डगर कहीं बाहर नहीं, बल्कि शरीर के भीतर इड़ा और पिंगला के बीच स्थित **सुषुम्ना** मार्ग से होकर जाती है।

4. दरिया पंथ की शिष्य परंपरा

दरियादास के विचारों को उनके शिष्यों ने पूरे भोजपुरी और मगही क्षेत्र में फैलाया। उनके प्रमुख शिष्यों में शामिल हैं:

- **दलुदास:** जिन्होंने दरियादास की वाणियों को संकलित करने में मदद की।

20:15

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

सूफी संतों की **अजपा साधना** (जिसे सूफी शब्दावली में **ज़िक्र-ए-खफी** या **पास-ए-अनफास** कहा जाता है) बहुत ही सूक्ष्म और प्रभावशाली है। जिस तरह योग में 'सोऽहं' की साधना होती है, सूफियों में भी श्वास (सांस) के माध्यम से खुदा को याद करने का विधान है।

यहाँ सूफी मत में अजपा साधना के प्रमुख बिंदु दिए गए हैं:

1. पास-ए-अनफास (सांसों की रखवाली)

'अजपा' का अर्थ है वह जाप जो जुबान से न किया जाए। सूफी इसे 'पास-ए-अनफास' कहते हैं।

- **विधि:** जब सांस अंदर जाती है, तो साधक के मन में **'अल्लाह'** का ख्याल होता है।
- **विधि:** जब सांस बाहर आती है, तो **'हूँ'** (वही) का ख्याल होता है। धीरे-धीरे यह अभ्यास इतना गहरा हो जाता है कि साधक को जानबूझकर जाप नहीं करना पड़ता, बल्कि उसकी हर सांस अपने आप 'अल्लाह-हूँ' पुकारने लगती है।

2. ज़िक्र-ए-कलबी (हृदय का जाप)

सूफी संत मानते हैं कि दिल (कल्ब) की धड़कन में भी एक संगीत है। अजपा साधना के जरिए वे अपनी धड़कन को खुदा के नाम से जोड़ देते हैं। **सुल्तान बाहू** जैसे संतों ने इसे 'हूँ' की साधना कहा है, जहाँ इंसान का रोम-रोम खुदा का जिक्र करने लगता है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

08:35

AI Mode All Products Homework Visual matches

सुखमन द्वार उद्घाटन (दोहा):

> प्राण पवन को रोक कर, मूल बंध दृढ़ लाय।
> इड़ा पिंगला तज सकल, बंकनाल में जाय ॥ १ ॥

> नाभि कँवल के ओट में, उलटि फेरि धरि ध्यान।
> खुले द्वार सुखमन तणा, प्रकटे ब्रह्म ज्ञान ॥ २ ॥

> मेरु दंड सीधो धरे, आसन दृढ़ करि लेय।
> अपान ऊपर को चढे, प्राण साथ मिलि देय ॥ ३ ॥

> हंस जाप सुमिरन करे, सोहम् धुन लव लाय।
> दशम द्वार की गली में, अलख निरंजन पाय ॥ ४ ॥

दोहों का संक्षिप्त सरल अर्थ:

Ask anything

Home Search Notifications Activity

2. नाभि से इसका गहरा संबंध

संतों के अनुसार, यह जाप कंठ से नहीं, बल्कि **नाभि (Navel)** से शुरू होता है।

- जब हम गहरी श्वास लेते हैं, तो नाभि का कमल हिलता है। इसे ही **'नाभि कमल'** का हिलना कहते हैं।
- **कबीर साहिब** कहते हैं: *"हंसो हंसो सब कोई कहे, हंस की खबर न जान। जो नाभि कमल में हंस बसे, सोई ब्रह्म ज्ञान॥"*
- अर्थात, जब हमारा ध्यान नाभि पर टिक जाता है और हम अपनी श्वास (हंस) को सजगता से देखते हैं, तो कुंडलिनी शक्ति नाभि से ऊर्जा लेकर ऊपर उठने लगती है।

3. अजपा-जाप की विधि (नाभि केंद्र पर)

1. **स्थिरता:** सुखासन में बैठें और रीढ़ सीधी रखें।
2. **ध्यान:** अपनी दृष्टि या ध्यान को **नाभि (Manipur Chakra)** पर टिकाएं।
3. **अवलोकन:** श्वास अंदर जाए तो महसूस करें कि नाभि बाहर आ रही है (हं), और श्वास बाहर निकले तो नाभि अंदर जा रही है (स)।
4. **लय:** धीरे-धीरे श्वास और नाभि की गति एक हो जाएगी। यहाँ आपको किसी मंत्र को बोलने की जरूरत नहीं, बस उस 'ध्वनि' को सुनना है।

4. इसका आध्यात्मिक लाभ

2. बंधों का प्रयोग (The Three Locks)

प्राण और अपान को एक जगह लाने के लिए तीन 'ताले' (Locks) लगाए जाते हैं:

1. **मूल बंध (Root Lock):** गुदा द्वार को ऊपर खींचना। यह **अपान वायु** (जो नीचे गिरती है) को ऊपर की ओर मोड़ता है।
2. **जालंधर बंध (Throat Lock):** ठुड्डी को छाती से लगाना। यह **प्राण वायु** (जो ऊपर भागती है) को नीचे की ओर दबाता है।
3. **उड्डियान बंध (Abdominal Lock):** पेट को अंदर खींचना। यह दोनों वायुओं (प्राण और अपान) को **नाभि (मणिपुर चक्र)** पर आपस में टकराने के लिए मजबूर करता है।

3. 'मंथन' और कुंभक (The Churning)

जब प्राण नीचे से और अपान ऊपर से आकर नाभि के पास मिलते हैं, तो वहां एक **'घर्षण' (Friction)** पैदा होता है।

- जैसे दो पत्थरों के रगड़ने से आग पैदा होती है, वैसे ही प्राण-अपान के घर्षण से **'योगाग्नि'** प्रज्वलित होती है।
- यही अग्नि कुण्डलिनी के द्वार (सुषुम्ना का मुख) को खोलती है।

4. सुषुम्ना में प्रवेश (Entry into the Central Channel)

- **हंस मंत्र का प्रयोग:** श्वास लेते समय 'हं' और छोड़ते समय 'स' का मानसिक जाप करते हुए ध्यान को रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले हिस्से पर टिकाएं।

18:42

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

ज्ञानेश्वर महाराज ने इसे केवल श्वास की क्रिया नहीं, बल्कि एक **'महायोग'** कहा है। आइए इसे गहराई से (Deeply) समझते हैं:

1. मूलाधार में संघर्ष (The Initial Conflict)

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि जब साधक 'मूलबंध' लगाता है, तो **अपान वायु** (जो नीचे गिरती है) रुक जाती है और ऊपर की ओर मुड़ती है।

- **उलटबांसी:** अपान वायु ऊपर उठकर **नाभि मंडल** की ओर बढ़ती है। उधर से ऊपर की **प्राण वायु** नीचे की ओर आती है।
- इन दोनों के बीच नाभि के पास एक 'युद्ध' या 'संघर्ष' जैसा होता है, जिससे शरीर के भीतर अत्यधिक ऊष्मा (Heat) पैदा होती है।

2. कुंडलिनी का 'जागना' (The Awakening)

ज्ञानेश्वर महाराज कुंडलिनी का वर्णन एक **'सोयी हुई नागिन'** के रूप में करते हैं जो सिंदूर की तरह लाल और बिजली की तरह चमकीली है।

- **अग्नि का प्रभाव:** प्राण और अपान के घर्षण से जो प्रचंड गर्मी पैदा होती है, उससे कुंडलिनी की नींद खुल जाती है।
- वह अंगड़ाई लेकर जागती है और अत्यंत 'भूखी' होती है। ज्ञानेश्वर जी बड़े सुंदर ढंग से कहते हैं कि वह जागते ही शरीर के भीतर के **'पृथ्वी तत्व'** और **'जल तत्व'** का ग्रास कर लेती है (अर्थात् शरीर की स्थूलता को समाप्त कर देती है)।

3. देह का रूपांतरण (Transformation of the Body)

Ask anything

Home Search Notifications Activity

इसका उत्तर है: **नहीं, अभ्यास के दौरान इसे खोलना नहीं चाहिए।**

हठयोग प्रदीपिका और अन्य योग ग्रंथों के अनुसार, महावेध की पूरी प्रक्रिया के दौरान **जालंधर बंध (Jalandhara Bandha) लगा रहना अनिवार्य है।** इसके पीछे के गहरे कारण और विधि नीचे दी गई है:

1. **वायु को रोकना (Vayu Nirodha):** महावेध में जब आप अपने शरीर को जमीन पर पटकते (झटका देते) हैं, तो उस समय फेफड़ों में प्राण वायु भरी होती है (कुंभक)। यदि जालंधर बंध खुला होगा, तो वह वायु झटके के साथ ऊपर मस्तिष्क की ओर या कानों के पर्दों पर दबाव डाल सकती है, जो हानिकारक हो सकता है।
2. **ऊर्जा का मार्ग (Energy Channeling):** जालंधर बंध का उद्देश्य ऊर्जा को ऊपर जाने से रोकना और उसे नीचे की ओर दबाना है। जब आप नीचे से **मूल बंध** लगाते हैं और ऊपर से **जालंधर बंध**, तब बीच में (नाभि के पास) दबाव बनता है। महावेध का झटका इसी दबाव वाली ऊर्जा को **सुषुम्ना नाड़ी** में धकेलता है।
3. **ग्रंथि भेदन:** यदि कंठ खुला रहेगा, तो ऊर्जा का दबाव बिखर जाएगा और वह 'कपाल कुहर' (मस्तिष्क के छिद्रों) तक नहीं पहुँच पाएगी, जिससे 'ग्रंथि भेदन' (ऊर्जा केंद्रों का खुलना) नहीं हो पाएगा।

सही क्रम (The Correct Sequence):

- **लगाना:** पहले गहरा पूरक (सांस भरना) करें, फिर **जालंधर बंध** लगाएं, उसके बाद मूल और उड्डियान बंध।
- **क्रिया:** बंधों को मजबूती से लगाए रखते हुए शरीर को उठाएं और जमीन पर धीरे से पटकें।

The Goal of Yoga: Balancing Prana and Apana

In a normal state, Prana moves up and Apana moves down. In advanced Yoga and Pranayama, practitioners use techniques like **Bandhas** (locks) and **Kumbhaka** (breath retention) to reverse these flows. Facebook +2

By forcing Apana up and Prana down, they meet and "fuse" at the **Navel Center (Samana)**. This union creates the internal "heat" (Yogagni) necessary to awaken the **Kundalini** energy and lead to higher states of consciousness. Facebook +3

2. अनुलोम-विलोम के साथ कुंभक की विधि (Nadi Shodhana)

प्राण और अपान के मिलन के लिए यह सबसे सुरक्षित और प्रभावी तरीका है:

1. **पूरक (Inhale):** दाएं अंगूठे से दाईं नाक बंद करें और बाईं नाक से धीरे-धीरे गहरी सांस लें। (मन में 4 तक गिनें)
2. **आंतरिक कुंभक (Hold):** अब दोनों नाक बंद कर लें और सांस को अंदर ही रोकें। (मन में 16 तक गिनें)
    1. *यहीं पर प्राण और अपान का मिलन शुरू होता है।*
3. **रेचक (Exhale):** अब दाईं नाक खोलें और धीरे-धीरे पूरी सांस बाहर निकालें। (मन में 8 तक गिनें)
4. यही प्रक्रिया अब दाईं नाक से शुरू करके बाईं से निकालें।

3. बंधों का उपयोग (Adding Bandhas)

जब आप सांस को अंदर रोकते हैं (कुंभक), तब प्राण और अपान को नाभि पर मिलाने के लिए **बंध** लगाए जाते हैं:

- **मूलबंध (Root Lock):** गुदा द्वार की मांसपेशियों को ऊपर की ओर सिकोड़ें (अपान को ऊपर धकेलने के लिए)।
- **जालंधर बंध (Chin Lock):** अपनी ठुड्डी को छाती से सटा लें (प्राण को नीचे रोकने के लिए)।

Ask anything

प्राण और अपान को संतुलित करने के लिए **कुंभक के साथ बंध** लगाने का एक विशेष वैज्ञानिक क्रम होता है। इसे सही तरीके से करने पर ही 'योगाग्नि' प्रदीप्त होती है।

यहाँ इसका सही **क्रम (Sequence)** और **समय** दिया गया है:

1. अभ्यास का सही क्रम (Step-by-Step Sequence)

जब आप प्राणायाम करते हैं, तो बंधों को इस क्रम में लगाया और खोला जाता है:

- **स्टेप 1 (पूरक - सांस लेना):** गहरी और धीमी सांस अंदर भरें।
- **स्टेप 2 (आंतरिक कुंभक - सांस रोकना):** सांस पूरी भरने के बाद उसे अंदर रोक लें।
- **स्टेप 3 (बंध लगाना):** सांस रुकी हुई अवस्था में सबसे पहले **जालंधर बंध** (ठुड्डी नीचे) लगायें, फिर **मूलबंध** (नीचे की मांसपेशियों को ऊपर खींचना) लगायें। अंत में हल्का सा **उड्डियान बंध** (पेट को अंदर खींचना) लगायें।
  - *यही वह समय है जब प्राण ऊपर से और अपान नीचे से आकर नाभि पर मिलते हैं।*
- **स्टेप 4 (बंध खोलना):** सांस छोड़ने से पहले बंधों को खोलना अनिवार्य है। सबसे पहले मूलबंध खोलें, फिर उड्डियान और अंत में जालंधर बंध खोलकर गर्दन सीधी करें।
- **स्टेप 5 (रेचक - सांस छोड़ना):** अब धीरे-धीरे और नियंत्रण के साथ सांस बाहर निकालें।

Ask anything

1. ऊर्जा का रूपांतरण (Transformation of Energy)

सामान्यतः, हमारी ऊर्जा 'अपान' के माध्यम से नीचे (इंद्रियों और विसर्जन की ओर) बहती है।

- **मूलबंध** लगाने से आप उस ऊर्जा के द्वार को बंद कर देते हैं।
- **उड्डियान बंध** उस रुकी हुई ऊर्जा को ऊपर की ओर 'सक्शन' (vacuum) की तरह खींचता है।
- **जालंधर बंध** ऊपर से 'प्राण' को नीचे धकेलता है।
  जब ये दोनों शक्तियाँ नाभि (समान वायु का केंद्र) पर मिलती हैं, तो वहां एक **ऊष्म दबाव (Pressure)** पैदा होता है। शास्त्रों में इसे **'योगाग्नि'** कहा गया है। यह अग्नि ही वीर्य को सूक्ष्म ओज में बदलती है।

2. सुषुम्ना नाड़ी का खुलना (Opening the Central Channel)

हमारे शरीर में तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं: **इड़ा** (ठंडी/बाएं), **पिंगला** (गर्म/दाएं) और **सुषुम्ना** (मध्य)।

- आम तौर पर हम इड़ा या पिंगला से सांस लेते हैं।
- जब हम कुंभक करके दोनों शक्तियों (प्राण-अपान) को नाभि पर मिलाते हैं, तो इड़ा और पिंगला का प्रवाह रुक जाता है और प्राण मरुत (ऊर्जा) **सुषुम्ना नाड़ी** में प्रवेश करने के लिए विवश हो जाती है।
- यही वह क्षण है जब व्यक्ति को **गहरी शांति** और **परमानंद** का अनुभव होता है।

3. सफलता के संकेत (Signs of Success)

Ask anything

नाभि मंडल को **'सूर्य मंडल'** या **'मणिपुर चक्र'** कहा जाता है।

- **प्रक्रिया:** जब आप 'कुंभक' (सांस रोकना) करते हैं और 'मूलबंध' लगाते हैं, तो अपान वायु ऊपर की ओर उठती है। 'जालंधर बंध' से प्राण वायु नीचे की ओर दबती है।
- **परिणाम:** इन दोनों के नाभि पर टकराने से एक प्रचंड गर्मी पैदा होती है जिसे **'योगाग्नि'** कहते हैं। यह साधारण गर्मी नहीं, बल्कि वीर्य को 'ओज' में बदलने वाली ऊर्जा है।

2. कुंडलिनी जागरण का द्वार (Awakening the Kundalini)

कुंडलिनी शक्ति नाभि के नीचे 'मूलाधार चक्र' में सोई हुई मानी जाती है।

- जब प्राण और अपान नाभि पर मिलकर तीव्र गर्मी पैदा करते हैं, तो उस गर्मी और दबाव से कुंडलिनी जागृत होती है।
- जैसे सोए हुए सांप को डंडा मारने पर वह फुफकार कर सीधा खड़ा हो जाता है, वैसे ही यह शक्ति सुषुम्ना नाड़ी (रीढ़ की हड्डी के भीतर का मार्ग) में प्रवेश कर जाती है।

3. वीर्य का ऊर्ध्वगामी होना (Urdhvaretas Process)

यही वह क्षण है जिसका आपने पहले जिक्र किया था।

- नाभि पर प्राण-अपान के मिलन से जो ताप पैदा होता है, वह संचित वीर्य को **सूक्ष्म (Vaporized form)** बना देता है।
- अब यह वीर्य तरल (Liquid) नहीं रहता, बल्कि ऊर्जा (Energy) बनकर रीढ़ की हड्डी के रास्ते **मस्तिष्क (चंद्र मंडल)** की ओर चढ़ने लगता है।

भजन (१९) राग आशावरी आसा पद

साधो भाई ! चढजा अणी अगरकी।
आतम खोज अखे पद लेणां, जुरा तोड़ जालम की।टेर।
चरण खोल चरणामृत लेणा, माला फेर फजर की।
सिर को भार पटक दे भोदू, राह पकड़ रुणझुण की।१।
धीजो धार धवण के ऊपर, अर्ध उर्ध बिच परखी।
लागो ध्यान धासती टूटी, तीन तीन पर तरकी।२।
काढे खोज खेत के मांही, पकड़ तार तिरगुण की।
बैठा वरत बाँस के ऊपर, कर ग्याता गोरम की।३।
मेरु छेक मार मन मूसो, कला बड़ी कोरम की।
झलहल भांण झलकणी झलके, जोत झिलामिल झिलकी।४।
गुरु 'प्रेमशाह' पूरा मिलिया, सेन बताई उन घरकी।
'चन्दनशाह' चेतन का डंका, खबर पड़ी हद हरकी।५।

भजन (२०) राग आशावरी, आसा, टोडी पद

साधो भाई ! पार ब्रह्म पूगेला ।
जो कोई वाट वरे बेगम की, जनम मरण छुटेला।टे
कर आपाण अरथ में लागो, नाभि पकड निरखेला।
पडी पांच तीन के ऊपर, मिणी इकीस छेकेला।
चढगी सुरत श्वास के समचे, हिरदा कमल अटकेला।
बँधियो बोल तोल के मांही, कण्ठ कमल गुटकेला।
लागी थाप जाप के ऊपर, गगन मंडल गरजेला।
झलहल भांण झलकणी झलके, सोहन शिखर पलकेला ।

मिलगी तार तिरकूटी ऊपर, सुषमण काज सरेला।
पूरण पुरुष पाट पर बैठो, अगर अणी छिटकेला।४।
फूटो बचन बेखरी बारे, सायर सेत रलेला।
'चन्दनशाह' चेतन का डंका, ग्यानी ग्यान थकेला।५।

भजन (२१) राग आशावरी, टोडी पद

साधो भाई ! खोजी खोज उचारा।
जे कोई खबर करे खोजन की, जनम मरण से न्यारा।टेर।
पहला प्रथम पकड नाभि कों, सोहं भजन सुधारा।
नाभि कँवल की निश्चय करले, पडे भजन भणकारा।१।
हिरदे कमल में रामत देखी, देख्या शहर बाजारा।
मनको रोक सुरत को सारे, दीखे आरमपारा।२।
कण्ठ कँवल में शोडष कहिये, कला बड़ी करतारा।
शोड्ष ले शोड्ष में जोवे, टूटे जाल तुम्हारा।३।
अगर अणो स्थान ऊपरे, संतो का आधारा।
'चन्दनशाह' चेतन का डंका, बखो बेखारी सारा।४।

भजन(२२)राग आशावरी, आसा पद

साधो भाई ! चारों चोर पढाया।
पढिया चोर पास हुए बैठा, तसघर तीर लगाया।टेर।
पावक टाल पत्थर पर बैठा, सत का शब्द समाया।
लागा शब्द सम[illegible]ांधे, तोखा तीन मिलाया।१।
गुडियां ऊठ [illegible], गगन मण्डल घर छाया।
काजी पक[illegible]ां, कामण कलश चढाया।२।
मोती म[illegible]ण को, धोबे धेनु दुवाया।
[illegible]डरपे, मुरदे मही विलोया।३।

Description

साधो भाई खोजी खोज उचारा,,स्वामी श्री चन्दनशाह जी

हिंड़ोला

बिपरीत रचल हिंडोलवा, गुरमुख बचन सुबोल।
रबि ससि दूनों बाधल, तब हम झुलब हिंडोला।।
त्रिकुटी खम्भवा गड़ावल, शुन्य शहर झकझोर।
सुरति निरति चित लावल, झूलब झकोर-झकोर।।
गंग यमुन तट झूलब, सुषमन के घर पान।
जगमग जोति जगावल, यम कर मर्दल मान।।
चान सूर दुनों तानल, बीचहि बिच संधान।
उड़ो हंसा घर गवनेउ, निकल गयेउ स्मान।।
शिव घर शक्ति बसावल, फूलेउ ब्रह्म ज्ञान।
कहै 'गुलाल' घर पावल मिललहिं सन्त सुजान।।

राग मलार

मन में जागेव प्रेम मुरारी।
अर्ध उर्ध में बैसल पण्डित, सुषमन दै दै तारी।।
चाँद सूर मगु थकित भयो है, ब्रह्म अग्नि पर जारी।
उलटि निरन्तर निरखि बिचारो, स्वेत सहज उँजियारी।।
उमगि-उमगि मुक्ता झरि लायो, गगन गरज धुनि भारी।
पाँच पचीस सखी गन गावहिं, अपनी-अपनी पारी।।
तन मन धन नेवछावरि वारो, प्रभु दर्शन बलिहारी।
जन 'गुलाल' अनुभव पद पायो, कन्त मिलो बनवारी।।

चौपाई

कर्म कलवार कै नासा करई। पाँचो बाँधि गगन चढ़ि धरई।।
अर्ध उर्ध कै भाठी लावे। रबि शशि फूँक कै अग्नि जलावे।।
ब्रह्म अग्नि उदगारा भयऊ। मते मोह लेते सब गयऊ।।
तिर बिधि ताप गयो तब भारी। मगन भयो मन लागु खुमारी।।
रीझि-रीझि मन बोलत बानी। अपनेहिं साहेब और न मानी।।
भाँति-भाँति मन रँग समाई। सुधि बिसरो संसार सगाई।।
मौज होय रस नाम चढ़ाई। सो कलवार काल नहिं पाई।।
निरभय होई पाक शरीरा। झतर है मानिक मोती हीरा।।
चुंभुकी चित समाहु सोई। निझरि झरे झरि माफ़िक़ सोई।।
सुरति निरति कै रहमति करई। सो कलवार काल नहिं धरई।।
मोह बझा संसार बझाई। निशु दिन काल धरत धै खाई।।

चौपाई

सोहं नाम बोलता ओई। आपै आप दुजो नहिं कोई।।
ताकी बार पार कहुँ नाहीं। सो जानै जो सत्गुरु पाहीं।।
सुन्य अकास बोलता ओई। स्वासा अर्ध उर्ध सम होई।।
ताको भेद कोई कोई जानै। जो सतसँग गुरु पहिचानै।।
सोहं सुन्य निरन्तर एका। हरिदम सोहं-सोहं एका।।
गंग जमुन को धारा येही। चन्द्र अरु सूर्य बने घर जेही।।
अर्ध उर्ध निसुबासर बहई। मध्य सरोस्वति संगम लहई।।
इंगला पिंगला सुषमनि सोई। एकै पवन दूजो नहिं कोई।।

conservation, social responsibility, and government schemes for environmental protection.

Exam Structure Summary

Section	Questions	Marks
Child Development & Pedagogy	30	30
Language I (Hindi)	30	30
Language II (English/Urdu/Sanskrit)	30	30
Mathematics	30	30
Environmental Studies (EVS)	30	30
Total	**150**	**150**

For official updates and detailed notifications, you can visit the Uttar Pradesh Education Service Selection Commission (UPESSC) website.

Would you like more information on **qualifying marks** or recommended **study materials** for these subjects?

[redacted]

"अजपायिपुनस्तत्र सदाचार्यै द्विलभ्यते ।
सकारेण वहि जाति हकारोऽन्त प्रवेशयेत्[2] ।।

इसको क्रमश: शिव और शक्ति रूप तथा योग का तृतीय भेद मानते हैं --

हकारस्तु शिवस्तत्र सकार शक्तिरुच्यते ।
अजपेति समाख्याता योगस्त्याग तृतीयकम्[3] ।।

---

(१) गोविन्द विज्ञान भास्कर - अप्रकाशित रेखता ६ - पृ० ८० ।
(२) गोविन्द योग भास्कर - पृ० श्लोक १४५ ।
(३) गोविन्द योग भास्कर - पृ० श्लोक १४६ ।

इसके अलावा यह भी कहा गया है कि वहाँ पर शिव,-कृपा रस्सी से खींचे जाने वाले अजपा-जप करने वाले वहां रहते हैं ।

"अजपा संस्थिता तत्र शिवरज्जवा विकसिता: ।
परमहंस स्थितिस्तत्र सोऽहं शब्दप्रकाशक:[1] ।।"

यह जप पूर्व सन्त परम्परा का है । इस मतवालों ने इसको ज्यादा महत्व दिया है, परन्तु गोविन्द साहब ने कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया है ।

[redacted]

अग्नि पुराण के अनुसार सोहम की प्रमुख चर्चाएँ यहाँ दी गई हैं:

- **अजपा-जप और श्वास विज्ञान:** अग्नि पुराण में सोहम को "अजपा गायत्री" के रूप में वर्णित किया गया है। यहाँ बताया गया है कि हर जीव स्वाभाविक रूप से दिन-रात 21,600 बार सांस लेता है, जिसमें 'स' (सो) के साथ श्वास भीतर जाती है और 'ह' (हम्) के साथ बाहर निकलती है। यह प्रक्रिया बिना किसी प्रयास के निरंतर चलती है, इसलिए इसे 'अजपा' कहा गया है।
- **मृत्यु पर विजय (काल-ज्ञान):** पुराण के उन अनुभागों में जहाँ **मृत्यु और व्याधि** से बचने के उपाय बताए गए हैं (जैसे अध्याय 214-215 या 300 के निकट योग चर्चा), वहाँ सोहम मंत्र के ध्यान और न्यास की महिमा बताई गई है। इसमें उल्लेख है कि जो साधक न्यासपूर्वक हृदय और नाभि चक्रों पर सोहम का ध्यान करता है, वह रोग-शोक से मुक्त हो जाता है।
- **अद्वैत बोध:** अग्नि पुराण के दार्शनिक अंशों में 'सो' को 'परमात्मा' और 'हम्' को 'जीवात्मा' का प्रतीक माना गया है। इस मंत्र का बार-बार चिंतन साधक को "मैं वही (ब्रह्म) हूँ" का साक्षात्कार कराता है।
- **हंस विद्या:** सोहम को यहाँ 'हंस' मंत्र के रूप में भी जाना जाता है। अग्नि पुराण में हंस को चेतना का प्रतीक बताया गया है जो शरीर रूपी कमल में निवास करता है। YouTube +5

अध्याय का संदर्भ: यद्यपि सोहम और योग की चर्चा अग्नि पुराण के कई भागों में बिखरी हुई है, लेकिन **अध्याय 214 और अध्याय 380-381** के आसपास योग और निर्वाण के प्रकरण में इसकी सबसे विस्तृत व्याख्या मिलती है।

क्या आप **अग्नि पुराण में वर्णित प्राणायाम की अन्य विशिष्ट विधियों** के बारे में जानना चाहेंगे?

Ask anything

गरुड़ पुराण में अजपा जप का विस्तृत वर्णन **प्रेत कल्प (Preta Kalpa) के 15वें और 16वें अध्याय में** मिलता है। यहाँ इसे शरीर विज्ञान और योग साधना के समन्वय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। Facebook +1

मुख्य विवरण निम्नलिखित बिंदुओं में है:

- **अजपा गायत्री और श्वास संख्या:** गरुड़ पुराण के अनुसार, एक स्वस्थ मनुष्य एक दिन-रात (24 घंटे) में कुल **21,600 बार** श्वास लेता और छोड़ता है।
- **मंत्र का स्वरूप:** श्वास बाहर निकलते समय **'हं'** (Ham) और अंदर लेते समय **'स:'** (Sah) की ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार 'हंस:' मंत्र का निरंतर जप बिना किसी प्रयास के होता रहता है, जिसे **'अजपा जप'** कहा जाता है।
- **देवताओं को समर्पण:** पुराण में इन 21,600 श्वासों को विभिन्न देवताओं के लिए अर्पित करने का विधान बताया गया है:
    - **गणेश:** 600 जप
    - **ब्रह्मा, विष्णु और शिव:** प्रत्येक के लिए 6,000 जप (कुल 18,000)
    - **जीवात्मा, गुरु और चिदात्मा:** शेष 3,000 जप Facebook

इसके अतिरिक्त, **अध्याय 227 से 229** के बीच योग दर्शन और ध्यान के संदर्भ में भी मानसिक स्थिरता प्राप्त करने के लिए श्वास पर नियंत्रण और इस स्वाभाविक जप की महत्ता बताई गई है। Wikipedia +1

12:42
archive.org/details/garud-p
INTERNET ARCHIVE

गरुड ! सुनो, मैं अजपाका उत्तम क्रम कहता हूँ, जिसको करके जीव जीवभावको छोड देता है ॥७१॥ मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य,आज्ञा यह षट्चक्र कहा जाता है ॥७२॥ मूलाधारमें लिङ्ग देशमें नाभिमें हृदयमें कण्ठमें भौंहोंके

शृणुताक्ष्यंप्रवक्ष्येहमजपाक्रमसुत्तमम् ॥ यंकृत्वासर्वदाजीवोजीवभावंविमुञ्चति ॥ ७१ ॥ मूलाधारः स्वाधिष्ठानंमणिपूरकमेवच ॥ अनाहतंविशुद्धाख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते ॥ ७२ ॥ मूलाधारेलिङ्गदेशेनाभ्यांहृदिचकण्ठगे ॥ भ्रुवोर्मध्येब्रह्मरन्ध्रेक्रमाच्चक्राणिचिन्तयेत् ॥ ७३ ॥ आधारंतुचतुर्दलानलसमंवासान्तवर्णाश्रयं, स्वाधिष्ठानमपिप्रभाकरसमंबालान्तषट्पत्रकम् ॥ रक्ताभंमणिपूरकंदशदलंडाद्यंफकारान्तपत्रैर्द्वादशभिरनाहतपुरंहैमंकठान्तावृतम् ॥ ७४ ॥ पत्रैःसस्वरषोडशैःशशधरज्योतिर्विशुद्धाम्बुजंहंसेत्यक्षकंरयुग्मकंद्वयदलंरक्ताभमात्राम्बुजम् ॥ तस्माद्ध्वगतंप्रभासितमिदंपद्मंसहस्रच्छदंसत्यानंदमयंसदाशिवमयंज्योतिर्मयंशाश्वतम् ॥ ७५ ॥ गणेशंचविधिविष्णुंशिवंजीवंगुरुंततः ॥ व्यापकंचपरंब्रह्मक्रमाच्चक्रेषुचिन्तयेत् ॥ ७६ ॥ एकविंशत्सहस्राणिषट्शतान्यधिकानिच ॥ अहोरात्रेणश्वासस्यगतिःसूक्ष्मास्मृताबुधैः ॥७७॥

मध्यमें और ब्रह्मरन्ध्रमें क्रमसे चक्रोंका चिन्तन करे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ रात दिनमें पण्डितोंने श्वासकी गति इक्कीस हजार छः सौ कही है ॥ ७७ ॥

हकारसे श्वास बाहर आता है और सकारसे फिर भीतर प्रवेश करता है, " हंसो हंस " इस मन्त्रसे जीव तत्वसे जपता है ॥ ७८ ॥ छः सौ गणेशके लिये और छः हजार ब्रह्माके लिये और छः हजार हरिके लिये और छः हजार हरके लिये ॥७९॥ जीवात्माके लिये एक हजार, गुरुके लिये एक हजार और चैतन्य रूप आत्माके लिये एक हजार, इस प्रकार जपकी संख्या को निवेदन करे ॥ ८० ॥ सत्सम्प्रदायको जाननेवाले अरुणादिक मुनीश्वर चक्रमें स्थित ब्रह्मकी अमर किरणोंका चिन्तन

हकारेणबहिर्यातिसकारेणविशेत्पुनः ॥ हंसोहंसेतिमन्त्रेणजीवोजपतितत्त्वतः ॥ ७८ ॥ षट्शतंगणनाथाय षट्सहस्रंतुवेधसे ॥ षट्सहस्रंचहरयेषट्सहस्रंहरायच ॥ ७९ ॥ जीवात्मनेसहस्रंचसहस्रंगुरवेतथा ॥ चिदात्मनेसहस्रंचजपसंख्यांनिवेदयेत् ॥ ८० ॥ एतांश्चक्रगतान्ब्रह्ममयूखान्मुनयोमृशन् ॥ सत्संप्रदायवेत्तारश्चिन्तयन्त्यरुणादयः ॥८१॥शुकादयोपिमुनयः शिष्यानुपदिशन्तिच॥अतःप्रवृत्तिमहतांध्यात्वाध्यायेत्सदा बुधः ॥ ८२ ॥ कृत्वाचमानसींपूजांसर्वचक्रेष्वनन्यधीः ॥ ततोगुरूपदेशेनगायत्रीमजपांजपेत् ॥ ८३ ॥

करते हैं ॥ ८१ ॥ शुक आदि मुनीश्वर भी शिष्योंको उपदेश करते हैं, अतः ज्ञानी जनको बडोंकी प्रवृत्तिका ध्यान करके फिर ध्यान करना चाहिये ॥ ८२ ॥ एकाग्रचित्त होकर सब चक्रोंमें मानसी पूजन करनेके बाद गुरुके उपदेशसे अजपानाम गायत्री का जप करना चाहिये ॥ ८३ ॥

नीचेकी ओर मुखवाले हजार दलके छिद्र युक्त कमलमें हंस पर चढे हुये और वर अभय जिनके हाथोंमें हैं ऐसे गुरुका ध्यान करे ॥ ८४ ॥ उन गुरुके चरणामृतकी धारासे अपनी देहको धोवे और पंचोपचारोंसे पूजन कर उनके स्तोत्रसे प्रणाम करे ॥८५॥ छहोंचक्रोंमें संचार करनेवाली और साढे तीन वलयवाली कुण्डलिनीका आरोह और अवरोहके क्रमसे स्थित ध्यान करे ॥ ८६ ॥ ब्रह्म रन्ध्रसे बाहर गये हुये सुषुम्ना नाम धामका ध्यान करे, उस मार्गमें होकर गये हुये जीव उन विष्णुके

अधोमुखेततोरन्ध्रेसहस्रदलपङ्कजे ॥ हंसगंश्रीगुरुंध्यायेद्वराभयकराम्बुजम् ॥ ८४ ॥ क्षालितंचिन्तयेद्देहंतत्पादामृतधारया ॥ पञ्चोपचारैः संपूज्यप्रणमेत्तत्स्तवेनच ॥८५॥ ततः कुण्डलिनींध्यायेदारोहादवरोहतः ॥

Page 197 (201/238)
Favorite Share Flag
Garud Puran Pret Kalpa

12:50

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

गरुड़ पुराण में अजपा जप का विस्तृत वर्णन **प्रेत कल्प (Preta Kalpa) के 15वें और 16वें अध्याय में** मिलता है। यहाँ इसे शरीर विज्ञान और योग साधना के समन्वय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। Facebook +1

मुख्य विवरण निम्नलिखित बिंदुओं में है:

- **अजपा गायत्री और श्वास संख्या:** गरुड़ पुराण के अनुसार, एक स्वस्थ मनुष्य एक दिन-रात (24 घंटे) में कुल **21,600 बार** श्वास लेता और छोड़ता है।
- **मंत्र का स्वरूप:** श्वास बाहर निकलते समय **'हं'** (Ham) और अंदर लेते समय **'स:'** (Sah) की ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार 'हंस:' मंत्र का निरंतर जप बिना किसी प्रयास के होता रहता है, जिसे **'अजपा जप'** कहा जाता है।
- **देवताओं को समर्पण:** पुराण में इन 21,600 श्वासों को विभिन्न देवताओं के लिए अर्पित करने का विधान बताया गया है:
  - **गणेश:** 600 जप
  - **ब्रह्मा, विष्णु और शिव:** प्रत्येक के लिए 6,000 जप (कुल 18,000)
  - **जीवात्मा, गुरु और चिदात्मा:** शेष 3,000 जप Facebook

इसके अतिरिक्त, **अध्याय 227 से 229** के बीच योग दर्शन और ध्यान के संदर्भ में भी मानसिक स्थिरता प्राप्त करने के लिए श्वास पर नियंत्रण और इस स्वाभाविक जप की महत्ता बताई गई है। Wikipedia +1

क्या आप गरुड़ पुराण में वर्णित **योग के अन्य अंगों या मोक्ष प्राप्ति के मार्गों** के बारे में जानना चाहते हैं?

Ask anything

1. सुरत-शब्द योग की विधि (संत अरमान के अनुसार)

- **सुरत का सिमरण:** उन्होंने सिखाया कि अपनी चेतना (Surat) को आँखों के पीछे 'तीसरे तिल' (Third Eye) पर एकाग्र करो।
- **शब्द की डोरी:** जैसे पतंग डोर के सहारे ऊपर जाती है, वैसे ही आत्मा 'शब्द' (आंतरिक संगीत) के सहारे ऊपर चढ़ती है।
- **सोहम् का जाप:** वे कहते हैं कि श्वास के साथ 'सो-हम्' का सुमिरन करने से मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। 'सो' (परमात्मा) को श्वास के साथ अंदर ले जाना और 'हम्' (अहंकार) को बाहर छोड़ना ही असली योग है।

2. 'अरमान' का प्रसिद्ध भजन (भावार्थ)

उनके भजनों में अक्सर यह विरह और मिलन का भाव मिलता है:

> *"खोजी होय सो खोज ले, घट के भीतर यार।*
> *सोहं शब्द की डोरी गहि, उतर जा भव पार॥"*

- **अर्थ:** हे खोजने वाले! अगर तुझे अपने 'यार' (परमात्मा) को खोजना है, तो उसे अपने शरीर (घट) के भीतर खोज। उस **सोहम्** शब्द की डोरी को पकड़ ले, वही तुझे इस संसार रूपी सागर से पार उतारेगी।

3. निरंकार और प्रकाश का अनुभव

Ask anything

3. 'सुरत' और 'शब्द' का मेल

संत अरमान का एक बहुत सुंदर सूत्र है:

> *"मन को शब्द की डोरी से बाँध दो।"*
> जब सुरत भीतर गूँज रहे **अनाहत नाद** (घंटे, शंख की आवाज) को सुनने लगती है, तो मन उस दिव्य संगीत पर मुग्ध होकर 'मस्त' हो जाता है। जैसे सपेरे की बीन सुनकर साँप स्थिर हो जाता है, वैसे ही शब्द को सुनकर मन स्थिर हो जाता है।

4. सत्संग और गुरु की ओट (Protection of Guru)

मन बहुत चालाक है, वह साधना के समय भी दुनिया की बातें सोचता है। संत अरमान कहते हैं कि **सत्संग** वह साबुन है जो मन की पुरानी गंदगी को धोता है। गुरु की दया के बिना मन के जालों को काटना असंभव है।

एक विशेष दोहा (संत अरमान की वाणी से):

> *"मनुआ मारूँ कसूँ कर, सुरत लगाऊँ द्वार।*
> *शब्द की चोट चलाय के, जीतूँ सब संसार॥"*

- **अर्थ:** मैं अपने मन को साधना की कसौटी पर कसूँगा और अपनी सुरत को दशम द्वार पर टिका दूँगा। शब्द के प्रहार से मैं अपने भीतर के विकारों

Ask anything

1. श्वास की माला पर दोहा

> **"माला फेरत जुग भया, मिटी न मन की भ्रांति।**
> **सोहं की माला फेर ले, आवै मन में शांति॥"**

- **अर्थ:** हाथ की लकड़ी या मोतियों की माला फेरते हुए युग बीत गए, लेकिन मन का भ्रम और चंचलता दूर नहीं हुई। संत रूपचंद कहते हैं कि अब अपनी श्वासों में 'सोहम्' (So-Ham) की अदृश्य माला फेरना शुरू करो, तभी मन में वास्तविक शांति आएगी।

2. अजपा जप का रहस्य

> **"बिन जिभ्या जो जाप है, सोई अजपा जान।**
> **सोहं शब्द की डोरी गहि, पहुँचो पद निर्वान॥"**

- **अर्थ:** वह जप जो बिना जीभ हिलाए और बिना होंठ हिलाए श्वास के साथ स्वतः चलता है, वही 'अजपा' है। इस 'सोहम्' शब्द की डोरी को पकड़कर ही जीव निर्वाण (मोक्ष) के पद तक पहुँच सकता है।

3. सुरत और शब्द का मेल

Ask anything

3. सुरत और शब्द का मेल

> **"सोहं सोहं हर दम चले, सुरत शब्द मिल जाय।
> उल्टा कमल सुल्टा भया, अनहद बाजा
> बाय॥"**

- **अर्थ:** जब साधक की सुरत (चेतना) हर पल चलने वाले 'सोहम्' के साथ मिल जाती है, तो हृदय का 'उल्टा कमल' (बंद चक्र) सीधा होकर खिल जाता है और भीतर अनहद नाद (दिव्य संगीत) बजने लगता है।

4. गुरु की महत्ता और सोहम्

> **"गुरु चरनन की ओट ले, सोहं सुमिरन की कील।
> रूपचन्द जग से तरे, मानुस देह रंगील॥"**

- **अर्थ:** गुरु के चरणों का आश्रय लेकर और 'सोहम्' के सुमिरन को आधार बनाकर ही इस रंगीली (मायावी) मनुष्य देह से पार उतरा जा सकता है।

संत रूपचंद की साधना के मुख्य बिंदु:

- **सो (So):** श्वास अंदर लेना (परमात्मा का प्रवेश)।

Ask anything

- **दोहा:** *"त्रिकुटी संगम पर बैठ के, सोहं जप अनूप। बिन सूरज उजियारा भया, लख्या अलख स्वरूप॥"*
- **अर्थ:** त्रिकुटी के संगम पर बैठकर जब 'सोहम्' का अनुपम जाप किया जाता है, तो बिना सूरज के ही भीतर दिव्य प्रकाश (Inner Light) फैल जाता है और उस अदृश्य (अलख) परमात्मा का अनुभव होता है।

2. अष्टदल कमल का खिलना (The Blooming of Heart Center)

संतों की वाणी में हृदय के भीतर एक **'उल्टा कमल'** माना गया है। रूपचंद जी के अनुसार, सोहम् साधना इस उल्टे कमल को सीधा कर देती है।

- **प्रक्रिया:** जब श्वास के साथ 'सो' और 'हम्' की डोरी जुड़ती है, तो हृदय की आठों पंखुड़ियाँ (जो आठ दिशाओं और अष्ट-सिद्धियों की प्रतीक हैं) खिलने लगती हैं।
- **अनुभव:** इस कमल के खिलते ही साधक को **'अनाहत नाद'** (बिना बजाए बजने वाला संगीत) सुनाई देने लगता है।

3. मन को मारने की जुगत (Taming the Mind)

रूपचंद जी ने मन को एक **'मस्त हाथी'** कहा है, जिसे केवल 'सोहम्' के अंकुश से वश में किया जा सकता है।

- वे समझाते हैं कि जैसे पतंग की डोर टूट जाए तो वह कहीं भी गिर सकती है, वैसे ही यदि श्वास से 'सोहम्' की डोर टूट जाए तो मन माया के गर्त में गिर जाता है। इसलिए हर दम (हर श्वास) में सुमिरन जरूरी है।

13:21

संत रूपचंद चौहान की वाणी में **सोहम् (अजपा जाप)** और **आंतरिक योग** को लेकर बहुत ही सटीक और मर्मस्पर्शी दोहे मिलते हैं। यहाँ उनकी साधना के कुछ और अनमोल दोहे दिए गए हैं:

1. श्वास और सुरत का मेल

> **"सोहं सोहं जप करै, सुरत शब्द की डोर।**
> **रूपचन्द निज घर बसै, मिटै करम का शोर॥"**

- **अर्थ:** जो साधक श्वास-श्वास में 'सोहम्' का जाप करता है और अपनी चेतना (सुरत) को शब्द की डोरी से बाँध लेता है, वह अपने 'निज घर' (आत्मा के असली घर) में निवास करने लगता है। इससे पिछले जन्मों के कर्मों का शोर (अशांति) शांत हो जाता है।

2. हृदय के अष्टदल कमल पर

> **"हृदय कमल है अष्ट दल, उल्टा भया बिहाल।**
> **सोहं सुमिरन सीधा करै, खिले परम पद लाल॥"**

- **अर्थ:** हमारा हृदय आठ पंखुड़ियों वाला कमल है, जो संसार की वासनाओं के कारण 'उल्टा' (सुप्त) होकर बेहाल पड़ा है। 'सोहम्' का सुमिरन इसे सीधा (जाग्रत) कर देता है, जिससे परम पद का दिव्य प्रकाश

Ask anything

13:21

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

3. गुरु और ज्ञान की महिमा

> "बिना गुरु जो जोग है, सो अँधियारा जान।
> सोहं दीपक बारि के, तज दे सब अभिमान॥"

- **अर्थ:** बिना गुरु के योग साधना अंधेरे में भटकने के समान है। गुरु के दिए हुए 'सोहम्' रूपी दीपक को जलाकर अपने भीतर का सारा अहंकार त्याग देना चाहिए, तभी सत्य का दर्शन होगा।

4. मन की चंचलता और अजपा

> "मनुआ पंछी उड़ि गया, बैठ्या गगन की डार।
> सोहं डोरी गहि रह्या, उतर गया भव पार॥"

- **अर्थ:** जब मन रूपी पक्षी संसार से उड़कर अंतराकाश (गगन/सहस्रार) की डाल पर बैठ जाता है और 'सोहम्' की डोरी को मजबूती से पकड़ लेता है, तो वह इस संसार रूपी सागर से पार उतर जाता है।

5. असली तीर्थ और पूजा

> "कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढे बन माहिं।
> सोहं घट के भीतर है, दुनिया बूझे नाहिं॥"

Ask anything

13:22
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

> **"कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढे बन माहिं।
> सोहं घट के भीतर है, दुनिया बूझे नाहिं॥"**

- **अर्थ:** जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में ही होती है पर वह उसे बाहर जंगलों में ढूँढता है, वैसे ही 'सोहम्' (परमात्मा) हमारे शरीर के भीतर ही है, लेकिन दुनिया के लोग इसे बाहर के कर्मकांडों में खोजते हैं।

6. निराकार (निरंकार) की प्राप्ति

> **"जहाँ न सूरज चाँद है, नाहीं पवन को वास।
> सोहं सोहं धुनि रमै, रूपचन्द तिहिं पास॥"**

- **अर्थ:** उस अवस्था में, जहाँ न सूर्य है, न चंद्रमा और न ही वायु का संचार (शून्य अवस्था), वहाँ केवल 'सोहम्' की ध्वनि गूँजती है। संत रूपचंद कहते हैं कि परमात्मा वहीं निवास करता है।

क्या आप इन दोहों में छिपे **'अनहद नाद' (आंतरिक ध्वनियों)** या **'त्रिकुटी ध्यान'** की विशेष प्रक्रिया के बारे में और जानना चाहेंगे?

Ask anything

13:23
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

संत रूपचंद चौहान की वाणी में **सोहम् (अजपा)** और **सुरत-शब्द योग** के रहस्यों को समझाने वाले कुछ और अत्यंत गहरे दोहे और छंद यहाँ दिए गए हैं। ये दोहे विशेष रूप से **'घट रामायण'** और **'योग शब्दावली'** के भावों को समेटे हुए हैं:

1. श्वास की अनमोल पूँजी पर दोहा

> **"एक स्वाँस जो खाली जाय, तीन लोक का मोल।**
> **सोहं सोहं रटत रह, मुख से कछू न बोल॥"**

- **भावार्थ:** मनुष्य की एक-एक श्वास इतनी कीमती है कि उसका मोल तीनों लोकों की सम्पत्ति से भी अधिक है। इसलिए व्यर्थ की बातें छोड़कर, मौन होकर केवल भीतर ही भीतर 'सोहम्' का रटन करना चाहिए।

2. हृदय के अष्टदल कमल और दिव्य प्रकाश

> **"हृदय कमल में जोत है, अष्ट दल की पाँख।**
> **सोहं सुमिरन जो करै, खुले हिये की आँख॥"**

- **भावार्थ:** हमारे हृदय रूपी कमल में एक दिव्य ज्योति (आत्मा) जल रही है जिसकी आठ पंखुड़ियाँ हैं। जो साधक 'सोहम्' का सुमिरन करता है, उसके हृदय की तीसरी आँख (विवेक) खुल जाती है।

Ask anything

3. त्रिकुटी और अनहद नाद का छंद

> **"त्रिकुटी महल में बैठ के, सोहं शब्द सुनाय।**
> **अनहद बाजा बाजना, मनुआ रहे लुभाय॥**
> **झिलमिल झिलमिल जोत है, बिना चन्द और सूर।**
> **रूपचन्द तिहिं देखि के, भया निहाल भरपूर॥"**

- **भावार्थ:** जब योगी त्रिकुटी (दोनों भौहों के बीच) के महल में स्थित होकर 'सोहम्' के सूक्ष्म शब्द को सुनता है, तो वहाँ अनहद बाजे (दिव्य संगीत) बजने लगते हैं जिससे चंचल मन शांत होकर वहीं लुभ जाता है। वहाँ बिना चाँद-सूरज के ही ऐसी झिलमिल ज्योति जलती है जिसे देखकर आत्मा निहाल (परमानंदित) हो जाती है।

4. अजपा जाप और मन की एकाग्रता

> **"जीभ हिलावे ना अधर, मन ही मन में जाप।**
> **सोहं सोहं धुनि रमै, मिटे त्रिविध सन्ताप॥"**

- **भावार्थ:** अजपा जप वह है जिसमें न जीभ हिलती है और न होंठ, बल्कि मन ही मन श्वास के साथ जाप चलता है। इस 'सोहम्' की ध्वनि में रमने से

Ask anything

Home Search Notifications Activity

5. गुरु की चाबी और ताला

> **"काया गढ़ के द्वार पर, जड़ा है कड़ा ताला।**
> **सोहं कुंजी गुरु दई, खुला भरम का जाला॥"**

- **भावार्थ:** इस शरीर रूपी किले के द्वार पर अज्ञान का ताला लगा है। जब गुरु 'सोहम्' रूपी चाबी (गुरु-मंत्र) देते हैं, तब साधना के माध्यम से वह ताला खुलता है और भ्रम का सारा जाल कट जाता है।

6. शून्य शिखर की स्थिति (निरंकार पद)

> **"जहाँ न धरती आसमाँ, नाहीं पवन को वास।**
> **सोहं पद से परे है, निरंकार परकास॥"**

- **भावार्थ:** जहाँ न पृथ्वी है, न आकाश और न वायु का संचरण (शून्य अवस्था), वहाँ 'सोहम्' (मैं वह हूँ) का भाव भी विलीन हो जाता है और केवल 'निरंकार' (निराकार ब्रह्म) का अखंड प्रकाश रह जाता है।

संत रूपचंद का उपदेश:
वे कहते हैं कि **"सो"** परमात्मा का प्रतीक है और **"हं"** जीव का। इन दोनों का मिलन ही योग है। जब तक श्वास है, तब तक यह मौका है।

क्या आप संत रूपचंद जी द्वारा बताए गए उन **'दस द्वारों'** के बारे में जानना

1. श्वास की महिमा और सोहम् का संगम

> **"सोहं सोहं हर श्वास में, रट ले मनुआ ध्यान।**
> **बिन जिभ्या जो बोलिए, सोई ब्रह्म का ज्ञान॥"**

- **भावार्थ:** हे मन! अपनी हर श्वास में 'सोहम्-सोहम्' का ध्यान कर। जो बिना जीभ हिलाए भीतर ही भीतर बोला जाता है (अजपा), वही ब्रह्म का असली ज्ञान है।

2. हृदय के अष्टदल कमल का खिलना

> **"हृदय कमल है अष्ट दल, तापर जोत अनूप।**
> **सोहं सुमिरन सीधा भया, लख्या अलख स्वरूप॥"**

- **भावार्थ:** हमारे हृदय का आठ पंखुड़ियों वाला कमल (जो अज्ञानवश उल्टा था) 'सोहम्' के सुमिरन से सीधा होकर खिल गया है। अब उस पर परमात्मा की अनुपम ज्योति जल रही है और अलख (अदृश्य) स्वरूप का साक्षात्कार हो रहा है।

3. सुरत और शब्द की डोरी का छंद

3. सुरत और शब्द की डोरी का छंद

> **"सुरत फँसी संसार में, मनुआ भया बेहाल।**
> **शब्द की डोरी गहि लियो, कटे करम का जाल॥**
> **सोहं धुनि जब रमि गई, खुली हिये की आँख।**
> **रूपचन्द निज घर चले, पसारी ज्ञान की पाँख॥"**

- **भावार्थ:** जब तक चेतना (सुरत) संसार के मोह में फंसी थी, तब तक मन बेहाल था। जैसे ही 'शब्द' (आंतरिक नाद) की डोरी पकड़ी, सारे कर्मों का जाल कट गया। अब सोहम् की ध्वनि भीतर रम गई है और ज्ञान के पंख फैलाकर आत्मा अपने असली घर (परम पद) की ओर उड़ चली है।

4. त्रिकुटी और दशम द्वार का अनुभव

> **"त्रिकुटी महल में बैठ के, देखा अजब तमाशा।**
> **सोहं सोहं रटत ही, मिटी जगत की आशा॥**
> **झिलमिल झिलमिल जोत है, अमृत बरसे धार।**
> **बिना चन्द और सूर के, भया निहाल अपार॥"**

- **भावार्थ:** जब योगी त्रिकुटी (दोनों भौहों के बीच) के महल में स्थित होता है, तो उसे एक अद्भुत नजारा दिखता है। सोहम् के रटन से संसार की

Ask anything

13:24

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

5. गुरु की चाबी और ताला

> **"काया नगर का ताला कड़ा, कुंजी गुरु के पास।
> सोहं शब्द जो जानिया, भया अचल परकास॥"**

- **भावार्थ:** इस शरीर रूपी नगर का ताला (अज्ञान) बहुत मजबूत है, जिसकी चाबी केवल गुरु के पास है। जिसने गुरु के बताए 'सोहम्' शब्द के रहस्य को जान लिया, उसके भीतर कभी न बुझने वाला अखंड प्रकाश फैल जाता है।

6. मौन साधना का दोहा

> **"बाहर का सब छोड़ दे, भीतर करले शोर।
> सोहं सोहं जप के, गहि ले शब्द की डोर॥"**

- **भावार्थ:** बाहर की व्यर्थ बातों और शोर को छोड़ दो, और अपने भीतर साधना का शोर (तीव्रता) बढ़ाओ। निरंतर सोहम् जपते हुए उस आंतरिक शब्द की डोर को मजबूती से पकड़ लो।

संत रूपचंद का गुप्त संकेत:
वे कहते हैं कि **"सो"** वह (परमात्मा) है और **"हं"** यह (अहंकार/जीव) है। जब "हं" मिट जाता है, तो केवल "सो" (परमात्मा) ही शेष रह जाता है। इसे ही **निरंकार** की प्राप्ति कहते हैं।

Ask anything

13:25

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

> **"प्राण अपान को एक कर, त्रिकुटी संगम लाय।
> सोहं शब्द की डोरी गहि, उलटि कमल सुल्टाय॥"**

- **भावार्थ:** जब साधक श्वास (प्राण) और प्रश्वास (अपान) की गति को रोककर उन्हें एक कर देता है और अपना ध्यान त्रिकुटी (दोनों भौहों के बीच) पर लगाता है, तब 'सोहम्' शब्द की डोरी पकड़कर हृदय का उल्टा कमल सीधा होकर खिल जाता है।

2. अजपा जप और श्वास की गति (कबीर दास जी)

> **"आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
> कह कबीर नहिं उलटिए, प्राण अपान एक॥"**

- **भावार्थ:** कबीर जी यहाँ प्राण-अपान के संतुलन का संकेत देते हुए कहते हैं कि बाहर की बातों में न उलझकर अपनी आंतरिक वायु (प्राण-अपान) को एक कर लो, ताकि मन की चंचलता समाप्त हो जाए।

3. सुरत और शब्द का तालमेल

> **"प्राण अपान की जेवरी, सुरत शब्द की फाँस।
> रूपचन्द जग से तरे, गहि सोहं की स्वाँस॥"**

Ask anything

13:25

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

**"प्राण अपान जब सम भया, खुली सुषुमना घाट।
अनहद बाजा बाजना, खुले निरंजन हाट॥"**

- **भावार्थ:** जब प्राण और अपान वायु समान हो जाती हैं (अर्थात् कुम्भक सिद्ध होता है), तब मध्य नाड़ी 'सुषुम्ना' का द्वार खुल जाता है। वहाँ अनहद नाद गूँजने लगता है और परमात्मा (निरंजन) के दर्शन होते हैं।

5. श्वास की गिनती और अजपा (संत रूपचंद)

**"इक्कीस हजार छह सौ चले, प्राण अपान की चाल।
सोहं सुमिरन जो करै, जीते जम और काल॥"**

- **भावार्थ:** एक दिन में प्राण-अपान की 21,600 श्वासें चलती हैं। जो साधक सजग होकर इनमें 'सोहम्' का सुमिरन (अजपा जप) करता है, वह यमराज और काल (मृत्यु) को भी जीत लेता है।

6. दिव्य ज्योति का अनुभव

**"प्राण अपान के बीच में, झिलमिल जोत लखाय।
बिन बाती बिन तेल के, दिया रहा लहराय॥"**

Ask anything

13:28

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

2. 'योग शब्दावली' के विशिष्ट अंश (Yoga Shabdavali)

संत रूपचंद जी की 'योग शब्दावली' उनके आंतरिक अनुभवों का निचोड़ है। इसमें उन्होंने **अजपा जप** और **चक्र भेदन** को बहुत ही सरल भाषा में समझाया है:

- **कुण्डलिनी और सुषुम्ना पर:**

  > *"मूलाधार से उठे अगन, सुषुमना मारग जाय।*
  > *षट्चक्र को भेद कर, त्रिकुटी संगम पाय॥"*

  - **अर्थ:** कुण्डलिनी की अग्नि मूलाधार से उठकर सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते ऊपर बढ़ती है और छहों चक्रों को पार करती हुई त्रिकुटी (आज्ञा चक्र) पर पहुँचती है।

- **दशम द्वार और अमृत पर:**

  > *"दसम द्वार पर ज्योति है, बरसे अमृत धार।*
  > *सोहं शब्द जो जानिया, भया निहाल अपार॥"*

  - **अर्थ:** सिर के ऊपरी हिस्से (दशम द्वार) में एक दिव्य ज्योति जल रही

Ask anything

Home Search Notifications Activity

13:29

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

1. संत रूपचंद जी का प्रसिद्ध भजन (सार)

उनका एक भजन जो हरियाणा की भजन मंडलियों में बहुत प्रसिद्ध है:

> **"चेत रे नर चेत रे, थारी बीती जाय उमर।**
> **सोहं शब्द की डोरी गहि, उतर जा भव के पार॥"**

- **भावार्थ:** हे मनुष्य! तू जाग जा, तेरी उम्र बीत रही है। इस संसार रूपी सागर से पार उतरने का एक ही रास्ता है—अपनी श्वासों में 'सोहम्' (Soham) की डोरी को थाम ले।

2. जैन-योग और 'सोहम्' का रहस्य

संत रूपचंद जी ने जैन धर्म के **'णमोकार मंत्र'** और **'सोहम्'** साधना के बीच एक बहुत गहरा संबंध बताया है:

- **अरिहंत पद और सोहम्:** वे कहते थे कि 'सोहम्' (Soham) का अर्थ है "मैं वही (शुद्ध आत्मा) हूँ"। यह जैन दर्शन के 'सिद्ध' और 'अरिहंत' पद के समान है।
- **कायोत्सर्ग (Body Abandonment):** जैन धर्म में 'कायोत्सर्ग' (शरीर के मोह का त्याग) एक मुख्य क्रिया है। रूपचंद जी ने इसे **'शून्य ध्यान'** से जोड़ा। उनके अनुसार, जब शरीर के नौ द्वार शांत हो जाते हैं, तब दसवां द्वार (ब्रह्मरंध्र) खुलता है।

3. अष्टदल कमल और 'सिद्ध शिला'

Ask anything

13:30

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

1. सोहम् (अजपा) साधना पर दोहा

> **"सोहं सोहं जप करै, श्वास-श्वास की डोरी।**
> **निहाली मनुआ स्थिर भया, छूटी जगत की चोरी॥"**

- **भावार्थ:** निहाली बाई कहती हैं कि जो साधक अपनी हर श्वास में 'सोहम्' का जाप करता है, उसका मन स्थिर हो जाता है और संसार के विकारों (काम, क्रोध आदि) की चोरी बंद हो जाती है।

2. हृदय के अष्टदल कमल पर

> **"हृदय कमल में जोत जगी, अष्ट दल मुस्काय।**
> **सोहं शब्द की ओट ले, आवागमन मिट जाय॥"**

- **भावार्थ:** जब 'सोहम्' शब्द का सहारा लेकर हृदय के अष्टदल कमल में ज्ञान की ज्योति जलती है, तो जन्म-मरण का चक्र (आवागमन) सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

3. सुरत-शब्द योग का छंद

Ask anything

Home Search Notifications Activity

3. सुरत-शब्द योग का छंद

> **"सुरत फँसाई शब्द में, मनुआ भया निहाल।
> सोहं धुनि घट में रमी, कटा करम का जाल॥
> निहाली गुरु की दया से, पाया पद निरवाण।
> बिना जीभ के जप करूँ, राखूँ पद परवाण॥"**

- **भावार्थ:** जब चेतना (सुरत) आंतरिक शब्द से जुड़ जाती है, तो मन आनंदित हो जाता है। शरीर के भीतर 'सोहम्' की ध्वनि रमने से कर्मों का जाल कट जाता है। निहाली बाई कहती हैं कि गुरु की कृपा से मैंने वह निर्वाण पद पा लिया है जहाँ बिना जीभ के (अजपा) निरंतर जप होता रहता है।

4. गुरु महिमा और सोहम्

> **"गुरु ने दीन्हीं आरसी, सोहं दरपन सार।
> अपना मुख देखूँ तहाँ, मिटा सब अंधियार॥"**

- **भावार्थ:** गुरु ने मुझे 'सोहम्' रूपी ज्ञान का ऐसा दर्पण (आरसी) दिया है, जिसमें मैं अपनी आत्मा का असली रूप देख सकती हूँ। इसे देखते ही अज्ञान का सारा अंधेरा मिट गया है।

5. मौन और आंतरिक सुमिरन

Ask anything

13:31

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

- **भावार्थ:** गुरु ने मुझे 'सोहम्' रूपी ज्ञान का ऐसा दर्पण (आरसी) दिया है, जिसमें मैं अपनी आत्मा का असली रूप देख सकती हूँ। इसे देखते ही अज्ञान का सारा अंधेरा मिट गया है।

5. मौन और आंतरिक सुमिरन

> **"मौन गहे मुख ना खुले, सोहं रटन लगाय।**
> **घट के भीतर देख ले, निहाली अलख लखाय॥"**

- **भावार्थ:** मुँह से कुछ न बोलकर (मौन रहकर) भीतर ही भीतर 'सोहम्' का रटन करना चाहिए। निहाली बाई कहती हैं कि अपने शरीर के भीतर झाँकने पर ही उस अलख (अदृश्य) परमात्मा के दर्शन होते हैं।

संत निहाली बाई की वाणियाँ हरियाणा के ग्रामीण अंचलों में आज भी **'सतनाम'** और **'सोहम्'** की महिमा के रूप में गाई जाती हैं। उनकी साधना बहुत ही 'सहज' और 'प्रेम' प्रधान थी।

क्या आप संत निहाली बाई के **गुरु (संत गरीबदास जी)** की परंपरा या उनके द्वारा बताए गए **'दशम द्वार'** के रहस्यों के बारे में और जानना चाहेंगे?

Ask anything

**"माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
निहाली सोहं स्वाँस में, सुमिरन खाली
नाहिं॥"**

- **भावार्थ:** हाथ की माला और मुख की जीभ तो चलती रहती है, लेकिन असली सुमिरन वह है जो श्वास-श्वास में 'सोहम्' के रूप में बसे। निहाली बाई कहती हैं कि एक भी श्वास बिना सुमिरन के खाली नहीं जानी चाहिए।

2. हृदय के अष्टदल कमल का खिलना

**"हृदय कमल है अष्ट दल, तापर जोत अनूप।
सोहं सुमिरन जो करै, लख्या अलख
स्वरूप॥"**

- **भावार्थ:** हृदय के आठ पंखुड़ियों वाले कमल पर परमात्मा की अनुपम ज्योति जल रही है। जो साधक निरंतर 'सोहम्' का सुमिरन करता है, उसे उस अलख (अदृश्य) परमात्मा के स्वरूप का दर्शन हो जाता है।

3. त्रिकुटी और अनहद नाद का छंद

13:33

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

3. त्रिकुटी और अनहद नाद का छंद

> **"त्रिकुटी महल में बैठ के, देखा अजब तमाशा।**
> **सोहं सोहं रटत ही, मिटी जगत की आशा॥**
> **झिलमिल झिलमिल जोत है, अमृत बरसे धार।**
> **निहाली गुरु की दया से, पाया पद अपार॥"**

- **भावार्थ:** जब आत्मा त्रिकुटी (भौं के मध्य) के ऊँचे महल में स्थित होती है, तो उसे एक अद्भुत नजारा दिखता है। 'सोहम्' के रटन से संसार की सारी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं और भीतर दिव्य प्रकाश की झिलमिल के साथ अमृत की वर्षा होने लगती है।

4. अजपा जाप और मन की एकाग्रता

> **"जीभ हिलावे ना अधर, मन ही मन में जाप।**
> **सोहं सोहं धुनि रमै, मिटे त्रिविध सन्ताप॥"**

- **भावार्थ:** निहाली बाई कहती हैं कि असली जप (अजपा) वह है जिसमें न जीभ हिले और न होंठ, बल्कि मन ही मन श्वास की लय में जप चले। इस 'सोहम्' की ध्वनि में डूबने से तीनों प्रकार के कष्ट (दैहिक, दैविक, भौतिक) मिट जाते हैं।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

5. सुरत और शब्द की डोरी

> **"सुरत फँसी संसार में, मनुआ भया बेहाल।**
> **सोहं डोरी गहि लियो, कटा करम का जाल॥"**

- **भावार्थ:** जब तक चेतना (सुरत) दुनिया के मोह-माया में फंसी थी, तब तक मन दुखी था। जैसे ही 'सोहम्' शब्द की डोरी को मजबूती से पकड़ा, जन्मों-जन्मों के कर्मों का जाल कट गया।

6. शून्य शिखर और निरंकार पद

> **"जहाँ न धरती आसमाँ, नाहीं पवन को वास।**
> **सोहं पद से परे है, निरंकार परकास॥"**

- **भावार्थ:** उस अवस्था में जहाँ न पृथ्वी है, न आकाश और न ही वायु (शून्य स्थिति), वहाँ 'सोहम्' का भाव भी विलीन हो जाता है और केवल **निरंकार** (निराकार ब्रह्म) का अखंड प्रकाश शेष रह जाता है।

निहाली बाई का संदेश:
वे कहती हैं कि परमात्मा कहीं बाहर नहीं, बल्कि श्वासों के इस आवागमन (प्राण-अपान) के बीच ही छिपा है।

क्या आप संत निहाली बाई द्वारा बताए गए **'दशम द्वार' (10th Door)** को

Ask anything

1. सुरत को 'तीसरे तिल' पर एकाग्र करना

निहाली बाई कहती हैं कि दशम द्वार तक पहुँचने के लिए सबसे पहले अपनी **सुरत** (चेतना) को दोनों भौहों के बीच स्थित 'तीसरे तिल' (Third Eye) पर समेटना होता है।

> **"नौ द्वारे खाली करो, दसवें लगाओ लौ।**
> **निहाली सोहं सुमिरन कर, झिलमिल ज्योति सौ॥"**

- **भाव:** जब तक ध्यान बाहरी नौ द्वारों (संसार) में भटकेगा, दशम द्वार नहीं खुलेगा। अपनी लौ (ध्यान) को दसवें द्वार पर टिकाओ और 'सोहम्' का सुमिरन करो, तब हजारों सूर्यों जैसी ज्योति दिखेगी।

2. 'सोहम्' की डोरी का सहारा

दशम द्वार तक जाने वाला मार्ग बहुत सूक्ष्म है। निहाली बाई ने इसे **'शब्द की डोरी'** कहा है।

> **"सोहं सोहं सीढ़ी चढ़ो, गगन मंडल के द्वार।**
> **शब्द की डोरी गहि रहो, पावो पद अपार॥"**

- **भाव:** 'सोहम्' का अजपा जाप एक सीढ़ी की तरह है। जैसे-जैसे जाप गहरा होता है, प्राण वायु ऊपर 'गगन मंडल' (मस्तिष्क का आकाश) की

13:36

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

1. सोहम् (अजपा) की महिमा पर दोहा

> **"सोहं सोहं जप जपो, विरला बूझे कोइ।**
> **सोहं जाके घट बसै, अलख लखावे सोइ॥"**

- **भावार्थ:** गरीबदास जी कहते हैं कि हर श्वास में 'सोहम्' का जप करो, लेकिन इस गुप्त भेद को कोई विरला (भाग्यशाली) ही समझता है। जिसके हृदय (घट) में सोहम् बस जाता है, उसे ही उस अलख (अदृश्य) परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

2. श्वासों की अनमोल माला

> **"माला फेरूँ स्वाँस की, मन का मनका फेर।**
> **सोहं शब्द की डोरी गहि, मिटै जनम का फेर॥"**

- **भावार्थ:** लकड़ी की माला छोड़कर अपनी सांसों की माला फेरो और मन के विचारों को बदलो। सोहम् शब्द की डोरी को थाम लेने से ही जन्म-मरण का यह अंतहीन चक्र समाप्त होता है।

3. सुरत-शब्द और अनहद नाद का छंद

Ask anything

Home Search Notifications Activity

> **"सुरत फँसी है शब्द में, अनहद बाजा बाजना।**
> **सोहं धुनि घट में रमी, अब और कहीं नहिं जावना॥**
> **झिलमिल झिलमिल जोत है, बिना बाती बिन तेल।**
> **गरीबदास गुरु की दया, भया गगन में खेल॥"**

- **भावार्थ:** जब आत्मा (सुरत) आंतरिक शब्द से जुड़ जाती है, तो भीतर अनहद बाजे बजने लगते हैं। जब सोहम् की ध्वनि शरीर के रोम-रोम में रम जाती है, तो बाहर भटकने की जरूरत नहीं रहती। वहाँ बिना तेल-बाती की दिव्य ज्योति जलती है, जिसे गरीबदास जी गुरु की कृपा से 'गगन मंडल' (मस्तिष्क के आकाश) में होने वाला अद्भुत खेल बताते हैं।

4. दशम द्वार और सोहम् का मार्ग

> **"सोहं की सीढ़ी चढ़ो, पहुँचो दसम द्वार।**
> **गरीबदास सतनाम बिन, डूबेगा संसार॥"**

- **भावार्थ:** 'सोहम्' का अजपा जाप वह सीढ़ी है जो जीवात्मा को नौ द्वारों

1. सुषुम्ना नाड़ी का रहस्य (The Middle Path)

संत गरीबदास जी कहते हैं कि शरीर के भीतर तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं: इड़ा (बाँयी), पिंगला (दाँयी) और **सुषुम्ना** (मध्य)।

- **घाट और ताला:** वे सुषुम्ना को 'अगम घाट' कहते हैं। सामान्य जीव की चेतना इड़ा और पिंगला (संसार के द्वंद्व) में फंसी रहती है।
- **खुलने की विधि:** जब प्राणायाम और 'सोहम्' के अजपा जाप से प्राण स्थिर होते हैं, तो सुषुम्ना का द्वार (सुखमन द्वार) खुल जाता है।
- **दोहा:**

> *"इड़ा पिंगला सुखमना, तीनों की संधि पाय।*
> *गरीबदास सोहं रटत, अगम घाट को जाय॥"*
> (अर्थ: जहाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना मिलती हैं, उस त्रिकुटी संगम पर 'सोहम्' रटते हुए आत्मा अगम मार्ग पर बढ़ जाती है।)

2. सतलोक का दिव्य वर्णन (The Eternal Abode)

गरीबदास जी ने **सतलोक** (जिसे वे 'अमर लोक' या 'सचखंड' भी कहते हैं)

5. अष्टदल कमल और सार शब्द

गरीबदास जी के अनुसार, हृदय के **अष्टदल कमल** में जब 'सोहम्' का दीपक जलता है, तभी 'सार शब्द' की गूँज सुनाई देने का मार्ग प्रशस्त होता है।

गरीबदास जी का एक अनमोल दोहा:

> **"पाँचों शब्द प्रकाश में, सार शब्द निज सार।**
> **ग़रीबदास ताको गहो, उतरो भवजल पार॥"**
> *(अर्थ: पाँचों शब्दों के प्रकाश को पार करके उस 'सार शब्द' को पकड़ो, जो असली सार है, तभी तुम भवसागर से पार उतरोगे।)*

क्या आप संत गरीबदास जी द्वारा बताए गए **'काल' (Satan/Time)** के उन जालों के बारे में जानना चाहेंगे जिनसे बचने के लिए वे **'सतनाम'** का उपदेश देते हैं?

अगला कदम: क्या आप **'काल के जाल'** या **'सतनाम की शक्ति'** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

Ask anything

4. अजपा जाप और सतनाम

गरीबदास जी ने बताया है कि सतनाम का सुमिरन **श्वास-प्रश्वास (Inhale-Exhale)** के साथ किया जाता है।

- जब साधक अपनी श्वास में सतनाम को बसा लेता है, तो उसे '**अजपा जाप**' सिद्ध हो जाता है।
- इससे हृदय का **अष्टदल कमल** सीधा होकर खिल जाता है और भीतर दिव्य प्रकाश (Inner Light) प्रकट होता है।

5. सतनाम की महिमा पर प्रसिद्ध दोहा:

> **"ग़रीब, सतनाम की ओट ले, काल जाल को काट।**
> **बिन सतनाम जम मारि हैं, रोकेंगे सब घाट॥"**
> *(अर्थ: सतनाम का सहारा लेकर काल के जाल को काट दो। बिना सतनाम के यमराज (जम) जीव को दंड देंगे और मोक्ष के सभी रास्ते बंद कर देंगे।)*

गरीबदास जी का विशेष निर्देश:
वे कहते हैं कि सतनाम का 'भेद' (Secret) केवल एक पूर्ण **सद्गुरु** ही दे सकता है। बिना गुरु के कान में मंत्र लिए, यह शब्द जाग्रत नहीं होता।

क्या आप संत गरीबदास जी द्वारा बताए गए **'सतलोक' (सचखंड)** के उन सुखों के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे, जहाँ आत्मा सतनाम के सहारे पहुँचती है?

13:41

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

- **योनियों का विभाजन:** जलचर, नभचर, थलचर और स्थावर (पेड़-पौधे) मिलाकर कुल 84 लाख प्रकार के शरीर हैं।
- **मनुष्य देह का महत्व:** उन्होंने इसे 'मोक्ष का द्वार' कहा है। यदि इस जन्म में **'नाम' (सतनाम)** की कमाई नहीं की, तो फिर से वही लंबा चक्कर शुरू हो जाता है।

2. 'अजपा जाप' (सोहम्) की शक्ति

गरीबदास जी का एक बहुत प्रसिद्ध सूत्र है कि जो काम करोड़ों वर्षों के तप से नहीं होता, वह **'अजपा'** के सुमिरन से हो जाता है।

- **काट (The Remedy):** जैसे आग घास के ढेर को जला देती है, वैसे ही **'सोहम्'** (So-Ham) और **'सतनाम'** का सुमिरन जन्मों-जन्मों के संचित कर्मों को जला देता है।
- **स्थिरता:** जब श्वास के साथ 'सोहम्' का तार जुड़ जाता है, तो मन 84 लाख योनियों की ओर खींचने वाली इच्छाओं को छोड़ देता है।

3. 'चौरासी' से बचने का दोहा:

> **"ग़रीब, चौरासी के चक्र में, फँसा सकल संसार।
> सतनाम की नाव बिन, कोउ न उतरे पार॥"**

- **भाव:** सारा संसार 84 लाख योनियों के चक्कर में भटक रहा है। बिना 'सतनाम' (गुरु-मंत्र) रूपी नाव के कोई भी इस महासागर से पार नहीं उतर सकता।

Ask anything

बाबा बालकनाथ के भजनों और पदों में अक्सर इस 'अविनाशी शब्द' की गूँज मिलती है:

> **"सोहं सोहं जप ले बन्दे, योही अमर निशानी है।**
> **बिन जिभ्या जो नाम उचारे, सोई असल रूहानी है॥"**

- **अर्थ:** हे मनुष्य! तू 'सोहम्' का जप कर, क्योंकि यही आत्मा की अमर निशानी है। जो बिना जीभ हिलाए (अजपा) भीतर ही भीतर नाम का उच्चारण करता है, वही असली रूहानी (आध्यात्मिक) साधक है।

2. श्वास की डोरी और 'सोहम्'

बाबा बालकनाथ की साधना में श्वास (Prana) को बहुत महत्व दिया गया है। उनके पदों में कहा गया है:

> **"दम-दम में तू सोहं सुमिर, स्वाँस खाली मत जाय।**
> **अष्ट दल के कमल पे, अलख जोत दिखलाय॥"**

- **अर्थ:** अपनी हर श्वास (दम) में सोहम् का सुमिरन कर, एक भी श्वास बेकार न जाए। जब यह सुमिरन पक्का हो जाता है, तो हृदय के **अष्टदल कमल** पर परमात्मा की अलख (अदृश्य) ज्योति दिखाई देने लगती है।

> **"त्रिकुटी के उस महल में, सोहं शब्द की तान।
> अनहद बाजा बाजना, खुले मोक्ष के कान॥"**

- **अर्थ:** जब साधक त्रिकुटी (भौंं के मध्य) में टिकता है, तो उसे सोहम् शब्द की दिव्य तान सुनाई देती है। वहाँ अनहद संगीत बजने लगता है और मोक्ष का द्वार (दशम द्वार) खुल जाता है।

4. गुरु-महिमा और शब्द

बाबा बालकनाथ स्वयं भगवान शिव और गुरु गोरखनाथ की परंपरा के अंश माने जाते हैं। उन्होंने सिखाया:

- **गुरु का शब्द:** सोहम् वह चाबी है जो गुरु अपने शिष्य को 'नाम-दान' के समय देते हैं।
- **पाँच तत्व:** सोहम् की अग्नि से शरीर के पाँचों तत्व (मिट्टी, पानी आदि) शुद्ध हो जाते हैं और साधक का शरीर 'कंचन' (सोना) जैसा निर्मल हो जाता है।

5. मन को वश में करना

बाबा बालकनाथ के अनुयायी गाते हैं:

> **"मनुआ मारूँ सोहं से, सुरत चढ़ाऊँ अकाश।
> बालकनाथ की दया से, पाऊँ अचल परकास॥"**

Ask anything

"हाथ की माला छोड़ दे बावले, श्वास की माला फेर।
सोहं सोहं रटत ही, मिटे जनम का फेर॥
बिना जीभ के नाम ले, अंतर्यामी जान।
बालकनाथ की ओट ले, पहुँचो पद निर्वान॥"

- **अर्थ:** हे मनुष्य! बाहरी लकड़ी की माला छोड़कर अपनी सांसों की माला फेरना शुरू कर। श्वास-श्वास में 'सोहम्' का रटन करने से ही जन्म-मरण का चक्कर मिटेगा। जो बिना जीभ हिलाए (अजपा) नाम जपता है, वही उस अंतर्यामी परमात्मा को पहचान पाता है।

2. अष्टदल कमल और दिव्य प्रकाश (The Inner Vision)

बाबा बालकनाथ की वाणी में हृदय के भीतर होने वाले प्रकाश का बहुत सुंदर वर्णन है:

"हृदय कमल है अष्ट दल, तापर जोत अनूप।
सोहं सुमिरन जो करै, लख्या अलख स्वरूप॥
झिलमिल झिलमिल नूर है, बिना तेल और बाती।
सोहं शब्द की ओट में, कटे करम की फाँती॥"

Ask anything

13:44

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

3. त्रिकुटी और अनहद नाद का पद

सिद्धों की गुफाओं में गूँजने वाला यह पद साधना की ऊँची अवस्था को दर्शाता है:

> **"त्रिकुटी के उस घाट पे, सोहं धुनि सुनाय।**
> **अनहद बाजा बाजना, मनुआ रहे लुभाय॥**
> **गगन मण्डल के बीच में, अमृत बरसे धार।**
> **बाबा बालकनाथ कहैं, हो जा बेड़ा पार॥"**

- **अर्थ:** जब चेतना त्रिकुटी (दोनों भौहों के बीच) पर पहुँचती है, तो वहाँ 'सोहम्' की दिव्य ध्वनि गूँजने लगती है। वहाँ अनहद बाजे (आंतरिक संगीत) बजते हैं जिन्हें सुनकर चंचल मन शांत हो जाता है। मस्तिष्क के आकाश (गगन मंडल) से अमृत की वर्षा होती है, जिससे जीव का बेड़ा पार (मोक्ष) हो जाता है।

4. सिद्धों की 'धुनी' और सोहम् (The Inner Fire)

बाबा बालकनाथ की 'धुनी' (पवित्र अग्नि) केवल बाहरी आग नहीं है, बल्कि **'योगाग्नि'** है:

- वे सिखाते हैं कि 'सोहम्' के घर्षण (Friction of Breath) से शरीर के भीतर एक अग्नि पैदा होती है।
- यह अग्नि काम, क्रोध, लोभ जैसे विकारों को जलाकर भस्म कर देती है

Ask anything

Home Search Notifications Activity

हं।

- **चरणदास जी का भाव:** इस स्थिति में 'सोहम्' (शब्द) का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और आत्मा सीधे उस निराकार **निरंकार** (परमात्मा) में विलीन हो जाती है। जैसे नदी समुद्र में गिरकर समुद्र ही हो जाती है।

चरणदास जी का एक प्रसिद्ध दोहा:

> *"ॐ तजे और सोहं ध्यावे, सोहं तजि निरंकार समावे।*
> *चरनदास कहैं गुप्त भेद, तब ही अलख लखावे॥"*

इसका सार:

1. **ॐ:** यह शुरुआत (आरंभ) है।
2. **सोहम्:** यह यात्रा (साधना) है।
3. **निरंकार:** यह मंज़िल (मोक्ष) है।

इसीलिए उन्होंने कहा कि ॐ, सोहम् का रूप ले लेता है और अंत में सोहम् भी उस निराकार निरंकार में खो जाता है, जहाँ केवल परम सत्य शेष रहता है।

क्या आप चरणदास जी द्वारा बताई गई उस **'त्रिकुटी' की साधना** के बारे में

चरणदास जी का एक प्रसिद्ध दोहा:

> *"ॐ तजे और सोहं ध्यावे, सोहं तजि निरंकार समावे।*
> *चरनदास कहैं गुप्त भेद, तब ही अलख*
> *लखावे॥"*

13:57

चरणदास भल होय थैपि मनवा तहँ राखो ।
क्षर अक्षर निर्अक्षर एकै दुविधा नाखो ।।
जब दरशी एक ही एक देष यह सभी तिहारो ।
डार पात फल फूल मूल सो सभी निहारो ।।
खासा सौं सोहं भयो सोहं ॐकार ।
ॐ सो ररं भयो साधो करो विचार ।।[1]

× × ×

हंसा सोहं तारकर, सुरति मकरिया पोय ।
उतर उतर फिरि फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन हो

पिण्डस्थ ध्यान :-

इस ध्यान में सुन्दर दास एवं चरनदास और पिंड को एक मानना चाहिए । इसमें षटच का ध्यान करना चाहिए । सम्पूर्ण शरीर का को बेधना चाहिए और भंवरगुफा से होते हुए स शिखर आदि तक पहुँचना चाहिए । शेष प्रक्रिया

सुनि शिष्य कहौं ध्यान पिंडस्थं । पिं
षटचक्रनि कौ धरिये ध्यानं । पुनि सद्

× × ×

ब्रम्हाण्ड सोई यह पिण्ड है, यामें क
कमलन के लखि देवता, लहो प्रापत त
शोधे सगरे पिंड को, षटचक्र को ध्यान

चरणदास भल होय खैचि मनवा तहँ राखो ।
क्षर अक्षर निर्अक्षर एकै दुबिधा नाखो ।।
जब दरशै एक ही एक देख यह सभी तिहारो ।
डार पात फल फूल मूल सो सभी निहारो ।।
खासा सौं सोहं भयो सोहं ऊँकार ।
ऊँ सो ररं भयो साधो करो विचार ।।[1]

चरणदास भल होय खैचि मनवा तहँ राखो ।
क्षर अक्षर निर्अक्षर एकै दुबिधा नाखो ॥
जब दरशै एक ही एक देष यह सभी तिहारो ।
डार पात फल फूल मूल सो सभी निहारो ॥
खासा सों सोहं भयो सोहं ॐकार ।
ॐ सो ररर्ं भयो साधो करो विचार ॥[1]

> **अर्थ:** जब तुम्हें हर जगह केवल वही एक ईश्वर दिखाई देने लगेगा, तब तुम समझोगे कि यह सारा संसार उसी का रूप है। जैसे पेड़ की डाल, पत्तियां, फल और फूल सब उसकी जड़ (मूल) से ही जुड़े होते हैं और उसी का हिस्सा हैं, वैसे ही इस संसार की हर वस्तु में उसी एक परमात्मा को देखो।

3. स्वासा सों सोहं भयो सोहं ओंकार।
ॐ सो ररं भयो साधो करो विचार॥

> **अर्थ:** हमारी सांसों के चलने से 'सोहं' (वही मैं हूँ) का नाद होता है, और यही 'सोहं' वास्तव में 'ओंकार' (ॐ) का स्वरूप है। ॐ से ही वह परम ध्वनि (ररंकार/राम नाम का सूक्ष्म रूप) प्रकट हुई है। हे साधु पुरुषों! इस रहस्य पर गहराई से विचार करो और आत्म-चिन्तन करो।

मुख्य संदेश:
चरणदास जी यहाँ समझा रहे हैं कि ईश्वर कहीं बाहर नहीं, बल्कि आपकी सांसों में और संसार के कण-कण में समाया हुआ है। बस उसे पहचानने के लिए मन की दुविधा को मिटाने की जरूरत है।

ररं + कार = ररंकार

संधि का नियम:

इसमें **व्यंजन संधि** का प्रयोग हुआ है।

- **नियम:** जब किसी शब्द के अंत में **'म्' (या अनुस्वार)** हो और उसके बाद 'क' वर्ग का कोई वर्ण (जैसे 'क') आए, तो वह अनुस्वार के रूप में ही बना रहता है या पंचम वर्ण में बदल जाता है।
- साधना की शब्दावली में 'ररं' एक बीज मंत्र या ध्वनि मानी जाती है, जिसमें 'कार' (प्रत्यय) जुड़कर उस ध्वनि के उच्चारण या स्वरूप को दर्शाता है।

पद के संदर्भ में विशेष अर्थ:

संत चरणदास जी की इन पंक्तियों में **'ररं'** का बहुत गहरा आध्यात्मिक महत्व है:

- **ररं (Raram):** इसे 'राम' नाम का सूक्ष्म रूप या 'अजपा जप' की एक अवस्था माना जाता है।
- **अर्थ:** पद के अनुसार, 'सोहं' और 'ओंकार' की साधना करते-करते जो अंतिम सूक्ष्म ध्वनि (अनहद नाद) सुनाई देती है, उसे ही **ररंकार** कहा गया है।

क्या आप इस पद में आए **'सोहं'** या **'ओंकार'** के आध्यात्मिक संबंध के बारे में और जानना चाहेंगे?

नमस्ते! संत **चरणदास जी** के इस पद में 'सोहं', 'ओंकार' और 'ररंकार' के बीच का संबंध बहुत ही गहरा और आध्यात्मिक है। इसे योग साधना की भाषा में **'अजपा-जप'** कहा जाता है।

यहाँ इनका सरल आध्यात्मिक संबंध और अर्थ दिया गया है:

1. सोहं (Soham) - जीव का स्वरूप

- **अर्थ:** 'सोहं' दो शब्दों से बना है: **सः** (वह/परमात्मा) + **अहम्** (मैं)। इसका अर्थ है— **"वही (परमात्मा) मैं हूँ।"**
- **साधना:** जब हम सांस लेते हैं, तो 'सो' की ध्वनि आती है और जब सांस छोड़ते हैं, तो 'हं' की ध्वनि निकलती है। यह जाप हमारे भीतर प्राकृतिक रूप से 24 घंटे चलता रहता है, जिसे 'अजपा-जप' कहते हैं।

2. ओंकार (Omkar) - ईश्वरीय शक्ति

- **अर्थ:** चरणदास जी कहते हैं कि जब 'सोहं' की साधना गहरी होती है, तो वह **'ॐ' (ओंकार)** की ध्वनि में बदल जाती है।
- **संबंध:** 'सोहं' का 'स' और 'ह' लुप्त हो जाता है, और केवल 'ओ' और 'म' बचता है, जो मिलकर 'ओम्' बन जाता है। यह उस परम शक्ति का प्रतीक है जिससे पूरी सृष्टि बनी है।

3. ररंकार (Rarankar) - परम आनंद की अवस्था

- **अर्थ:** पद की अंतिम पंक्ति में वे कहते हैं— **"ॐ सो ररं भयो"**। यहाँ 'ररं' का अर्थ **'राम'** नाम के उस सूक्ष्म रूप से है जो सुनाई नहीं देता, बल्कि अनभव होता है।

14:04

AI Mode All Products Homework Visual matches

3. ररंकार (Rarankar) - परम आनंद की अवस्था

- **अर्थ:** पद की अंतिम पंक्ति में वे कहते हैं— **"ॐ सो ररं भयो"**। यहाँ 'ररं' का अर्थ **'राम'** नाम के उस सूक्ष्म रूप से है जो सुनाई नहीं देता, बल्कि अनुभव होता है।
- **संबंध:** ओंकार की ध्वनि जब और भी सूक्ष्म (Micro) हो जाती है, तो वह 'ररंकार' (अनहद नाद) बन जाती है। इसे ही योग में **'परम पद'** या ईश्वर से मिलन की अवस्था कहा गया है।

निष्कर्ष (एक सूत्र में):

चरणदास जी समझा रहे हैं कि:

1. अपनी **सांसों (सोहं)** को पहचानो।
2. इससे तुम्हें **परमात्मा (ओंकार)** का बोध होगा।
3. और अंत में तुम उस **परम आनंद (ररंकार)** में लीन हो जाओगे जहाँ 'मैं' और 'ईश्वर' के बीच कोई अंतर नहीं बचता।

क्या आप चरणदास जी की साधना पद्धति या उनके 'भक्ति सागर' के अन्य दोहों के बारे में कुछ और जानना चाहेंगे?

Ask anything

14:06

AI Mode All Products Homework Visual matches

3. 'सोहं' से 'ओंकार' बनने की वैज्ञानिक प्रक्रिया

साधना की एक विशेष अवस्था होती है जिसे **'अजपा-जप'** कहते हैं:

- जब हम सांस लेते हैं तो ध्वनि होती है— **'सो'** (वह परमात्मा)।
- जब हम सांस छोड़ते हैं तो ध्वनि होती है— **'हं'** (मैं हूँ)।
- **गहरा रहस्य:** जब साधक गहरी समाधि में जाता है, तो सांसें बहुत धीमी (सूक्ष्म) हो जाती हैं। तब 'स' और 'ह' के व्यंजन (Consonants) लुप्त हो जाते हैं और केवल स्वर (Vowels) बचते हैं, जो मिलकर **'ॐ' (ओंकार)** की गूंज पैदा करते हैं। यही वह 'अनहद नाद' है जो बिना बजाए बजता है।

---

4. 'ररंकार' (राम नाम का सूक्ष्म रूप)

पद की अंतिम पंक्ति है— **"ॐ सो ररं भयो"**।

- **ररं (Raram):** संत परंपरा (जैसे कबीर, चरणदास) में 'राम' नाम को केवल दो अक्षरों का नाम नहीं, बल्कि एक दिव्य कंपन (Vibration) माना गया है।
- जब 'ओंकार' की गूंज और भी महीन होती है, तो वह एक रंकार (Resonance) में बदल जाती है जिसे 'ररंकार' कहा गया है। यह वह स्थिति है जहाँ साधक को ईश्वर का **साक्षात्कार** होने लगता है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

14:07

AI Mode All Products Homework Visual matches

3. 'सोहं' का 'ओंकार' में बदलना (The Science of Breath)

यह इस पद का सबसे रहस्यमयी हिस्सा है।

- **प्राण साधना:** एक स्वस्थ इंसान दिन भर में लगभग 21,600 बार सांस लेता है। हर सांस में अनजाने में 'सो-हं' का जाप होता है।
- **रूपांतरण:** जब साधक ध्यान में गहरा उतरता है, तो सांसें इतनी धीमी और सूक्ष्म हो जाती हैं कि 'स' और 'ह' के व्यंजन (Consonants) का घर्षण बंद हो जाता है।
- **परिणाम:** जब 'स' और 'ह' हट जाते हैं, तो केवल **'ओ'** और **'म'** की ध्वनि बचती है, जो गूंजकर **'ॐ' (ओंकार)** बन जाती है। यह कोई बाहरी आवाज नहीं, बल्कि आपके भीतर की 'कॉस्मिक ध्वनि' है।

---

4. 'ररंकार' का अनुभव (The Resonance of Bliss)

पद की अंतिम पंक्ति है— **"ॐ सो ररं भयो"**।

- **अनुभव:** जब ॐ की गूंज और भी महीन (Subtle) होती है, तो वह एक निरंतर होने वाली झनझनाहट या 'रंकार' में बदल जाती है। इसे ही संत **'ररंकार'** या **'राम नाम का अनहद नाद'** कहते हैं।
- यह वैसी ही स्थिति है जैसे एक घंटे (Bell) को बजाने के बाद उसमें से जो लंबी गूंज (Resonance) निकलती रहती है। साधक उसी गूंज में लीन हो जाता है।

Ask anything

- *दोहा:*

> **सोहं सोहं रटत रह, जब तक सांस शरीर।**
> **उल्टा मारग जो गहे, सोई उतरे तीर॥**
> *भावार्थ:* 'सोऽहम्' की रट लगाते हुए मेरुदंड के 'उल्टे मार्ग' (सुषुम्ना) पर चलना ही भवसागर से पार उतरने का तरीका है।

2. शुभम साधना का छंद (अनुभव वाणी)

दिनोद आश्रम के भजनों और पदों में संत ताराचंद जी की साधना का सुंदर वर्णन मिलता है:

> **हरियाणा में संत रूप धर "ताराचंद" गुरु आये!**
> **दिनोद गाँव में धाम बनाकर, सोहं भेद बताया!**
> **रात दिन तुम लगे भजन में, सूरत शब्द कमाया!**
> **भय और भ्रम को दूर भगाकर, शुभम पंथ दिखलाया॥**

3. साधना के मुख्य सूत्र

संत जी की शुभम साधना के अनुसार कुछ अनिवार्य नियम थे:

- **मानसिक ब्रह्मचर्य:** केवल शारीरिक ही नहीं, बल्कि मानसिक पवित्रता

Ask anything

20:22

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

साधना का छंद (अनुभव वाणी)

दिनोद आश्रम के सत्संगों में गाया जाने वाला यह प्रसिद्ध शब्द (छंद) उनकी साधना और आगमन का सुंदर वर्णन करता है:

> **हरियाणा में संत रूप धर "ताराचंद" गुरु आये!**
> **पिता "मूलचंद" बड़े भागी थे, जिसने गोद खिलाया!**
> **दिनोद गाँव में धाम बनाकर, सोहं भेद बताया!**
> **रात दिन तुम लगे भजन में, सूरत शब्द कमाया!**
> **भय और भ्रम को दूर भगाकर, सामर्थ नाम बताया॥**

संत ताराचंद जी की साधना के मुख्य सूत्र

उनकी "शुभम साधना" के कुछ विशेष सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

- **छठे चक्र (Third Eye) से शुरुआत:** वे कहते थे कि मन की बैठक छठे चक्र पर होनी चाहिए, ताकि चेतना शरीर के नीचे के नौ द्वारों में न भटके।
- **ब्रह्मचर्य और मन:** उन्होंने सिखाया कि "ब्रह्मचर्य स्थूल रूप में ईश्वर है, मन सूक्ष्म रूप में ईश्वर है, और सूरत (चेतना) कारण रूप में ईश्वर है"।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

1. राधास्वामी दिनोद की मंगल आरती (अंश)

यह आरती साधना के समय एकाग्रता बनाने के लिए गाई जाती है:

> **"करूँ आरती राधास्वामी प्यारे, चरणों में चित्त लाय के।"**
> **"सूरत शब्द का मेल करा दो, घट का पर्दा हटाय के॥"**
>
> **"पाँचों तत्त्व और तीन गुणों से, न्यारा पद दिखलाय दो।"**
> **"भय और भ्रम के जाले काटो, सोहं भेद लखाय दो॥"**

भावार्थ: इस आरती में प्रार्थना की गई है कि मेरी चेतना (सूरत) उस अनहद शब्द (सोऽहम्) से मिल जाए और मेरे भीतर का अंधकार मिटकर मुझे सत्य का ज्ञान हो।

2. सोऽहम् साधना का विशेष भजन

संत ताराचंद जी और हुजूर कंवर साहेब जी के सत्संगों में यह भजन बहुत प्रसिद्ध है, जो मेरुदंड (Spine) की यात्रा बताता है:

दो॥"

भावार्थ: इस आरती में प्रार्थना की गई है कि मेरी चेतना (सूरत) उस अनहद शब्द (सोऽहम्) से मिल जाए और मेरे भीतर का अंधकार मिटकर मुझे सत्य का ज्ञान हो।

2. सोऽहम् साधना का विशेष भजन

संत ताराचंद जी और हुजूर कंवर साहेब जी के सत्संगों में यह भजन बहुत प्रसिद्ध है, जो मेरुदंड (Spine) की यात्रा बताता है:

> **"सोहं की डोरी पकड़ के, तू गगन मण्डल में चढ़ जा रे।"**
> **"छोड़ दे दुनिया के झूठे धंधे, नाम की मस्ती में बढ़ जा रे॥"**
>
> **"त्रिकुटी महल में नूर चमके, जहाँ अमृत की धारा झरती है।"**
> **"सूरत तेरी वहाँ जाके अटके, जहाँ काल की शक्ति डरती है॥"**

3. साधना का मुख्य सार (दोहा)

महाराज जी अक्सर इस दोहे से समझाते हैं कि असली तीर्थ हमारे भीतर है:

Ask anything

सोऽहं साधना पर अन्य संतों की वाणी (छंद और पद)

हरियाणा के अन्य साधकों और संत मत के अनुसार सोऽहं साधना की व्याख्या इस प्रकार है:

- **सोऽहं स्वरूप (चौपाई/छंद):**

> "सो तो ब्रह्म अरु हं है जीव, दो मिलि होवे एक अतीव।
> श्वासा भीतर सो ध्वनि आवे, बाहर हं शब्द समावे।।"

- **साधना का प्रभाव:**
  हरियाणा के ग्रामीण अंचल में गाए जाने वाले भजनों में भी सोऽहं का उल्लेख मिलता है:

> "बिन जिभ्या जो नाम उचारे, सोई साधु जग में न्यारे।
> सोऽहं-सोऽहं जाप जपत है, भवसागर से पार उतरते।।"

YouTube +2

सोऽहं साधना: हरियाणवी भजन (छंद)

यह भजन हरियाणा के सत्संगों में बहुत लोकप्रिय है, जिसमें श्वास (सांस) के माध्यम से परमात्मा को पाने का वर्णन है:

टेक: सोऽहं-सोऽहं जप ले बावले, यो मानस चोला पाया रे।
श्वासां की जो माला टूटी, फिर तूने पछताया रे।।

अंतरा 1:
बाहर "हं" और भीतर "सो", यो खेल अजब निराला है।
बिन जिभ्या जो नाम उचारे, वही भक्त मतवाला है।।
घट के भीतर देख बावले, जग मग ज्योत जगाया रे।
सोऽहं-सोऽहं जप ले...

अंतरा 2 (विचार सागर का सार):
"सो" का अर्थ ब्रह्म तू जानो, "अहं" जीव की काया है।
दोनों मिलकर एक हुए जब, मिट गई सारी माया है।।
निश्छल मन से ध्यान लगा ले, सतगुरु भेद बताया रे।
सोऽहं-सोऽहं जप ले...

संतों द्वारा बताई गई 'सोऽहं' ध्यान विधि (Step-by-Step)

हरियाणा के संत मत (जैसे दिनोद और छुड़ानी धाम) के अनुसार इस साधना

Ask anything

20:28
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

संत गरीबदास जी की साखियाँ (Soham Saakhi)

1. **ब्रह्म की एकता पर:**

> "सोऽहं सोऽहं जप ले बावरे, जब तक घट में प्राण।
> सो और हं का भेद मिटा दे, पावे पद निर्बाण।।"
> *(भावार्थ: जब तक शरीर में प्राण हैं, सोऽहं का जाप कर। 'सो' (परमात्मा) और 'हं' (जीव) का अंतर खत्म करते ही मोक्ष मिल जाएगा।)*

2. **अजपा जाप की महिमा:**

> "अजपा जाप अजपा जपे, बिन जिभ्या बिन होठ।
> अनहद की झणकार में, मिटे करम की खोट।।"
> *(भावार्थ: बिना जीभ और होठ हिलाए जो सोऽहं का जाप (सांसों से) चलता है, उससे अनहद नाद सुनाई देता है और सारे पाप कट जाते हैं।)*

3. **सुरत और शब्द का मिलन:**

> "गगन मंडल में महल है, जहाँ सोऽहं शब्द सुनाई।
> सुरत फँसा ले शब्द में, आवागमन मिटाई।।"
> *(भावार्थ: हमारे भीतर के सूक्ष्म आकाश (गगन मंडल) में सोऽहं की गूँज है। अपनी चेतना (सुरत)*

Ask anything

2. 'विचार सागर' के अनुसार साधना के अंग

इस ग्रंथ में सोऽहं साधना को **'अखंडाकार वृत्ति'** कहा गया है, जिसके मुख्य बिंदु ये हैं:

- **अज्ञान का नाश:** जब साधक सांसों के साथ "सो-हं" का चिंतन करता है, तो उसे यह अहसास होता है कि वह शरीर नहीं, बल्कि 'चेतन तत्व' है।
- **जीव-ईश्वर अभेद:** निश्छल दास जी कहते हैं कि जैसे लहर और समुद्र अलग नहीं हैं, वैसे ही 'हं' (जीव) और 'सो' (ईश्वर) अलग नहीं हैं।
- **वृत्ति का लय:** लगातार अभ्यास से जब मन इस विचार में डूब जाता है, तो संसार का भ्रम मिट जाता है।

3. हरियाणा के ग्रामीण संतों के अन्य छंद

हरियाणा के लोक-संतों ने भी इस कठिन दर्शन को सरल छंदों में पिरोया है:

- **छंद (सांसों का गणित):**

> "इक्कीस हजार छह सौ श्वासा, निसदिन आवें जावें।
> सोऽहं शब्द का सुमिरन करके, जीव परम पद पावें।।"
> *(अर्थ: एक दिन में मनुष्य की 21,600 सांसें चलती हैं। यदि हर सांस पर सोऽहं का ध्यान हो, तो मोक्ष निश्चित है।)*

20:29

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

ha

यहाँ **संत निश्छल दास जी** के प्रसिद्ध ग्रंथ **'विचार सागर'** के आधार पर सोऽहं साधना का गहरा आध्यात्मिक विश्लेषण और कुछ महत्वपूर्ण दोहे दिए गए हैं:

1. संत निश्छल दास जी का 'सोऽहं' सिद्धांत

स्वामी निश्छल दास जी (जो रोहतक के कुताना गाँव से थे) एक महान **वेदांती** संत थे। उन्होंने 'विचार सागर' में तर्क दिया है कि 'सोऽहं' केवल एक मंत्र नहीं, बल्कि **"अहं ब्रह्मास्मि"** (मैं ही ब्रह्म हूँ) का अनुभव है।

- **दोहा (एकता का बोध):**

> "सो कहिए वह ब्रह्म है, हं कहिए निज रूप।
> दोनों की एकता गहे, सोई ज्ञान अनूप।।"
> *(अर्थ: 'सो' का अर्थ वह परमात्मा है और 'हं' का अर्थ अपना स्वरूप है। इन दोनों की एकता को समझ लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है।)*

Ask anything

Home Search Notifications Activity

2. सोऽहं साधना की चौपाइयां

नाथ साहित्य में प्राणों की गति और सोऽहं के प्रभाव को चौपाइयों के माध्यम से समझाया गया है:

चौपाई:
"सोऽहं जाप अजपा जानो, बिन जिभ्या मन माहीं ठानो।
श्वासा भीतर 'सो' ध्वनी गावै, बाहर 'हं' शब्द समावै।।"

"हंस मंत्र यह अति अनूपा, शिव शक्ति का यही स्वरूपा।
उलटि कमल जब सीधा होई, अलख निरंजन जानै कोई।।"
(अर्थ: बिना जीभ हिलाए मन ही मन सोऽहं का जाप करना ही अजपा है। जब साधक की कुंडलिनी जागृत होकर सीधी होती है, तब वह उस अलख निरंजन परमात्मा को जान पाता है।)

3. नाथ संप्रदाय का सोऽहं छंद (हरियाणवी पुट के साथ)

बाबा मस्तनाथ और अस्थल बोहर मठ की परंपरा में गाए जाने वाले पदों का सार:

सार:

छंद:
"जप ले सोऽहं-सोऽहं प्यारे, यो मानस जन्म दुबारा न मिलता।
श्वासां की डोरी पकड़ ले, बिना गुरु के ये कपाट न खुलता।।
नाभि से उठे 'सो' की लहरी, कंठ में 'हं' का नाद समाये।
गोरख का आदेश मान के, जो सिमरे वो भव पार उतर जाये।।"

साधना की मुख्य बातें (नाथ परंपरा के अनुसार):

- **अजपा जाप:** नाथों के अनुसार एक दिन में मनुष्य **21,600** बार सोऽहं का जाप स्वत: करता है।
- **शून्य ध्यान:** सोऽहं के अभ्यास से मन 'शून्य' (विचाररहित) अवस्था में पहुँचता है।
- **हठयोग:** यह साधना प्राणायाम का ही एक सूक्ष्म रूप है जिसमें श्वास के घर्षण से उत्पन्न ध्वनि पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। YouTube +3

क्या आप **अस्थल बोहर (रोहतक)** के **बाबा मस्तनाथ** की किसी विशिष्ट 'वाणी' या **गोरखनाथ जी के शाबर मंत्रों** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

Ask anything

1. नाथ पंथ के सोऽहं दोहे

नाथ सिद्धों के अनुसार, 'सो' शिव का रूप है और 'हं' शक्ति का, और इनके मिलन से ही पूर्णता मिलती है:

- **दोहा:**

> "सोऽहं सोऽहं जप करै, निस दिन हंस ध्यान।
> उलटि प्राण गगन चढ़ै, पावै पद निर्बाण।।"
> *(अर्थ: रात-दिन सोऽहं का ध्यान करने से प्राण ऊर्ध्वगामी होकर ब्रह्मरंध्र में पहुँचते हैं और मोक्ष प्राप्त होता है।)*

- **दोहा (प्राण साधना):**

> "भीतर आवत 'सो' कहै, बाहर जावत 'हं'।
> गोरख कहै सुनो चेला, यही अखंडा ब्रह्म।।"
> *(अर्थ: श्वास अंदर लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हं' की ध्वनि स्वत: होती है। गुरु गोरखनाथ कहते हैं कि यही अखंड ब्रह्म का स्वरूप है।)*

2. सोऽहं साधना की चौपाइयां

Ask anything

3. अस्थल बोहर (रोहतक) की परंपरा का छंद

बाबा मस्तनाथ और चौरंगीनाथ की भूमि पर गाए जाने वाले पदों का भाव:

> **छंद:**
> "घट के भीतर अलख जगा ले, सोऽहं की तू डोरी पकड़।
> पाँचों इन्द्रिय वश में कर ले, मन की तू सब गाँठ जकड़।।
> रोहतक के इस अखाड़े में, मस्तनाथ ने भेद बताया।
> सोऽहं शब्द की नौका चढ़ के, पार उतर गई काया।।"

साधना का रहस्य (Key Insights):

- **अखंड जाप:** इसे 'अजपा-गायत्री' कहा गया है क्योंकि यह बिना किसी माला या जीभ के निरंतर चलती है।
- **हठयोग:** नाथ संप्रदाय में इसे इड़ा (हं) और पिंगला (सो) नाड़ियों के संतुलन से जोड़ा गया है।
- **मौन का जाप:** जब साधक शांत बैठकर अपनी सांसों को सुनने लगता है, तो उसे प्राकृतिक रूप से 'सो-हं' की ध्वनि सुनाई देने लगती है।

क्या आप **बाबा मस्तनाथ** की किसी विशिष्ट **वाणी** या **गोरखनाथ जी के शाबर मंत्रों** के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

Ask anything

20:32
G
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

1. प्राण और अपान का मिलन (हठयोग दर्शन)

नाथ पंथ में 'सो' और 'हं' को श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक ध्वनि माना जाता है। संतों के अनुसार, जब साधक अपनी सांसों के प्रति जागरूक होता है, तो वह स्वत: ही इस मंत्र का जाप करने लगता है।

Original Christianity an... +1

- **दोहा (प्राण साधना):**

> "सो शब्द से प्राण खैंचो, हं से बाहर डार।
> मध्य में जो सुरत टिके, सोई ब्रह्म विचार।।"
> *(अर्थ: 'सो' के साथ प्राणवायु को अंदर लें और 'हं' के साथ बाहर छोड़ें। इन दोनों के बीच जो ठहराव है, वहीं ब्रह्म का निवास है।)*

- **चौपाई (अजपा गायत्री):**

> "हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुन:।
> हंस हंसत्यमुं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा।।"
> *(यह प्रसिद्ध नाथ मंत्र है जिसका अर्थ है: 'हं' से बाहर जाना और 'स' से भीतर आना ही जीव का निरंतर मंत्र है।)*

Ask anything
Home Search Notifications Activity

20:33

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

।। सोऽहं साधना पद (नाथ वाणी) ।।

राग: भैरवी/भजन

टेक:
मनवा! सोऽहं जाप कमा ले रे, यो अवसर फिर न आवैगा।
श्वासां की जो पूँजी खोई, अन्त समय पछतावैगा।।

अंतरा 1:
इड़ा-पिंगला के संगम पे, सुरत की सेज बिछा ले तू।
'सो' को भीतर, 'हं' को बाहर, श्वासां बीच समा ले तू।।
नाभि कमल से उठे लहरिया, अनहद नाद सुणावैगा।
मनवा! सोऽहं जाप कमा ले रे...

अंतरा 2:
बाबा मस्तनाथ ने कहया, यो भेद बड़ा ही न्यारा है।
'हंस' उड़े जब गगन मण्डल में, दीखै जोत सितारा है।।
बिन जिभ्या जो नाम उचारे, काल निकट न आवैगा।
मनवा! सोऽहं जाप कमा ले रे...

अंतरा 3:
पाँचों इन्द्रिय वश में कर ले, मन की दुविधा मार दे।
सोऽहं की नौका में चढ़ के, भवसागर को पार दे।।
'नाथ' निरंजन अलख जगा ले, सो ब्रह्म पद पावैगा।
मनवा! सोऽहं जाप कमा ले रे...

Ask anything

Home Search Notifications Activity

20:35

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

।। बाबा मस्तनाथ सोऽहं साधना पद ।।

(राग: लोक धुन / भजन)

स्थायी (टेक):

मन रे! सोऽहं-सोऽहं जप ले, यही सार बताया रे।
श्वासां की इस माला भीतर, अलख निरंजन पाया रे।।
(हे मन! सोऽहं का जाप कर, यही जीवन का सार है। अपनी सांसों की इस माला के भीतर ही उस अदृश्य परमात्मा (अलख निरंजन) का वास है।)

अंतरा 1 (साधना की विधि):

बाहर 'हं' और भीतर 'सो' है, अजपा जाप निराला।
इड़ा-पिंगला के संगम पे, चमके जोत उजाला।।
नाभि से जब पवन उठे, घट में अनहद गाया रे।
मन रे! सोऽहं-सोऽहं जप ले...
(सांस छोड़ते समय 'हं' और लेते समय 'सो' की ध्वनि होती है—यह बिना जीभ हिलाए होने वाला अद्भुत जाप है। जब नाक के दोनों स्वर (इड़ा-पिंगला) संतुलित होते हैं, तो भीतर दिव्य ज्योति जलती है और नाभि से उठने वाली प्राणवायु हृदय में अनहद नाद (ईश्वरीय संगीत) गुंजाती है।)

Ask anything

20:35
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

अंतरा 2 (दर्शन और ज्ञान):

मस्तनाथ कहें सुन रे चेले, भेद समझ ले भारी।
'सो' ब्रह्म अरु 'हं' है जीव, मिटे द्वैत की बीमारी।।
हंस उड़े जब गगन मंडल में, काल निकट ना आया रे।
मन रे! सोऽहं-सोऽहं जप ले...
(बाबा मस्तनाथ अपने शिष्य से कहते हैं—यह गहरा भेद समझ लो। 'सो' का अर्थ परमात्मा है और 'हं' का अर्थ जीवात्मा है। इन दोनों की एकता को जान लेने से 'भेद' (द्वैत) की बीमारी मिट जाती है। जब आत्मा रूपी हंस मष्तिष्क के शून्य (गगन मंडल) में पहुँचता है, तो मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।)

अंतरा 3 (लक्ष्य और फल):

बिन जिभ्या जो नाम उचारे, वही सिद्ध कहावे।
सुरत फँसा ले शब्द की डोरी, फिर जन्म ना पावे।।
अस्थल बोहर के इस मठ में, गुरुओं ने मार्ग दिखाया रे।
मन रे! सोऽहं-सोऽहं जप ले...
(जो बिना जीभ हिलाए (सांसों से) नाम जपता है, वही सच्चा सिद्ध है। अपनी चेतना (सुरत) को सोऽहं शब्द की डोरी से बांध लो, तो फिर जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ना होगा। अस्थल बोहर के इस पवित्र मठ में गुरुओं ने यही सीधा रास्ता दिखाया है।)

Ask anything

छंद:
"सोऽहं-सोऽहं रटत है, हंस करै विश्राम।
नाभि कुण्ड से पवन उठे, पहुँचे निज के धाम।।
उलटि कमल जब सीधा हो, ज्योति जलै अनूप।
'मस्तनाथ' कहैं देख ले, अपना ब्रह्म स्वरूप।।
घट के भीतर अलख जगा, बाहर खोज न पाय।
श्वासां की इस डोरी में, मन को ले तू लाय।।"

(अर्थ: सोऽहं के जाप से प्राण शांत होते हैं। जब प्राण ऊर्जा (पवन) नाभि से उठकर मस्तिष्क (निज धाम) तक पहुँचती है, तब हृदय कमल खिलता है और ईश्वर के दर्शन भीतर ही होते हैं।)

---

3. 'हंस' और 'अजपा' की चौपाई

चौपाई:
"अजपा गायत्री हंस मंत्रा, यही सार सब योग अरु तंत्रा।
श्वासा भीतर 'सो' ध्वनी गावे, बाहर 'हं' शब्द समावे।।
बिना तार की वीणा बाजे, सुरत शब्द के संगम साजे।
मस्तनाथ का आदेश जो माने, सोई सिद्ध अलख को जाने।।"

20:37
Vo)) 4G+ LTE1

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

"माला जपें सो मानवी, जीभ जपें सो जीव।
बिन जिभ्या जो 'सोऽहं' जपे, सोई ब्रह्म अतीव।।"
(अर्थ: माला या जीभ से जपने वाला साधारण मनुष्य है, लेकिन जो बिना जीभ हिलाए सांसों के माध्यम से सोऽहं का अनुभव करता है, वह स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।)

---

2. सुरत और शब्द का छंद

नाथ योगियों के अनुसार, जब हमारी चेतना (सुरत) सोऽहं शब्द में पूरी तरह समा जाती है, तब 'अनहद नाद' सुनाई देता है।

छंद (नाथ वाणी):
"घट के भीतर जोत जलै, जहाँ सोऽहं की झणकार।
सुरत शब्द में लय हुई, मिट्या मोह अंधकार।।
इड़ा पिंगला वश करी, सुषुमणा द्वार खोलाय।
बाबा मस्तनाथ की दया से, आवागमन मिट जाय।।"

Ask anything

Home Search Notifications Activity

20:38
AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

1. अजपा जाप की सूक्ष्मता (दोहे)

बाबा मस्तनाथ की वाणियों में इस बात पर जोर दिया गया है कि सच्चा जाप वही है जो बिना किसी प्रयास के अपने आप चलता रहे।

- **दोहा (श्वास की माला):**

> "बाहर 'हं' भीतर 'सो' है, श्वासां का यो खेल।
> 'मस्त' समझ इस भेद को, होगा ब्रह्म से मेल।।"
> *(अर्थ: बाहर निकलती सांस 'हं' और अंदर जाती 'सो' का एक नैसर्गिक खेल है। बाबा मस्तनाथ कहते हैं कि इस भेद को समझने से ही परमात्मा से मिलन संभव है।)*

- **दोहा (अजपा महिमा):**

> "माला जपें सो मानवी, जीभ जपें सो जीव।
> बिन जिभ्या जो 'सोऽहं' जपे, सोई ब्रह्म अतीव।।"
> *(अर्थ: माला या जीभ से जपने वाला साधारण मनुष्य है, लेकिन जो बिना जीभ हिलाए सांसों के माध्यम से सोऽहं का अनुभव करता है, वह स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।)*

Ask anything

20:41

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

संत उत्तम राम जी महाराज की **सोहम साधना** और उनके आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित कुछ विशेष **दोहा छंद** यहाँ दिए गए हैं। ये दोहे श्वास, मन और परमात्मा की एकता को दर्शाते हैं:

१. सोहम का सार

> **सोहं सोहं जप निरंतर, श्वास-श्वास की माल।**
> **घट ही में साहिब मिले, मिटे जगत का जाल॥**
> *(अर्थ: हर श्वास के साथ सोहम का जाप करो। इससे तुम्हारे भीतर ही परमात्मा का साक्षात्कार होगा और संसार का मोह-जाल समाप्त हो जाएगा।)*

२. अजपा जाप की महिमा

> **बिन जिह्वा बिन तालुवा, अजपा सुमिरन होय।**
> **उत्तम मारग सोहम का, विरला बूझे कोय॥**
> *(अर्थ: बिना जीभ और तालु हिलाए जो श्वासों में सिमरन होता है, वह सोहम का उत्तम मार्ग है जिसे कोई भाग्यशाली ही समझ पाता है।)*

३. घट में राम

Ask anything

Home Search Notifications Activity

३. घट में राम

बाहर ढूँढे बावरा, भीतर भरा भंडार।
सोहं शब्द की कुंजी से, खुले मोक्ष का द्वार॥
(अर्थ: मनुष्य बाहर भगवान को खोजता है जबकि खजाना भीतर है। सोहम शब्द वह चाबी है जिससे मोक्ष का दरवाजा खुलता है।)

४. श्वास की अनमोलता

एक श्वास खाली गई, तीन लोक का भार।
सोहं सुरत लगाय के, उतर जाओ भव पार॥
(अर्थ: एक भी श्वास बिना सिमरन के व्यर्थ न जाए। सोहम में अपनी सुरत (ध्यान) लगाकर इस संसार रूपी सागर से पार उतर जाओ।)

५. जीव और ब्रह्म की एकता

सो कहिए वह ब्रह्म है, हं कहिए जीव जान।
दोनों मिलकर एक हुए, उत्तम पद पहिचान॥
(अर्थ: 'सो' परमात्मा है और 'हं' जीव है। जब ये दोनों साधना में एक हो जाते हैं, तब परम पद की प्राप्ति होती है।)

२. प्रसिद्ध पद: "सोहम जाप जप ले" (Bhajan Lyrics)

यह पद इमाम शाह महाराज की शिक्षाओं का सार है:

> **"सोहं सोहं जाप जप ले, श्वास की माला फेर।**
> **कण-कण में वो साहिब बैठा, मत कर तू अब देर॥"**
>
> **"नाभि से उठी 'सो' की धारा, कंठ में 'हं' समाया।**
> **अजपा जाप जपे जो प्राणी, उसने सब कुछ पाया॥"**
>
> **"बाहर भटके मूरख प्राणी, भीतर भरा भंडार।**
> **इमाम शाह कहे सुन रे भाई, सोहं मोक्ष का द्वार॥"**

पद का भावार्थ:

- **भीतर का खजाना:** परमात्मा बाहर के तीर्थों में नहीं, बल्कि आपके शरीर रूपी मंदिर के भीतर है।
- **मोक्ष का द्वार:** सोहम शब्द वह चाबी है जो जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति (मोक्ष) दिलाती है।
- **अजपा जाप:** यह वह जाप है जो बिना जीभ हिलाए निरंतर चलता रहता है, जिससे मन शांत और निर्मल होता है।

Ask anything

यहाँ **'मन समझाणी'** के कुछ विशिष्ट अंश और सतपंथ की गुप्त साधनाओं का विवरण दिया गया है:

1. 'मन समझाणी' के प्रमुख अंश (Key Verses)

इमाम शाह मन को समझाते हुए कहते हैं:

> **"रे मन! तू मूल अपना पहचान, सोहम शब्द में कर विश्राम।"**
> **"कथनी तज के करनी कर ले, तब पावे पद निर्वाण।"**

- **अर्थ:** हे मन! अपनी असलियत (आत्मा) को पहचान। इधर-उधर भटकने के बजाय 'सोहम' शब्द की साधना में ठहर जा। केवल बातें करने (कथनी) से कुछ नहीं होगा, साधना (करनी) करने से ही मोक्ष (निर्वाण) मिलेगा।

2. सतपंथ की गुप्त साधना: "नूर साधना"

सतपंथ दर्शन में सोहम साधना के साथ **'नूर' (ईश्वरीय प्रकाश)** की साधना का गहरा संबंध है:

- **दशम द्वार (Tenth Gate):** साधना के उच्च स्तर पर, सोहम का जाप करते हुए चेतना को शरीर के नौ द्वारों से ऊपर उठाकर 'दशम द्वार' (मस्तिष्क के ऊपरी भाग) पर ले जाया जाता है।
- **नूर का दीदार:** यहाँ साधक को उस 'नूर' का अनुभव होता है जिसका

07:54

दरिया सूरति सर्पनी, चढ़ी ब्रह्म के मांय।
जाय मिली परब्रह्म से, निरभय रही समांय ॥२३॥
दरिया देखत ब्रह्म को, सुरत भई भयभीत।
तेज पुञ्ज रवि अगनी बिन, जहँ कोई उष्न न सोत ॥

पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोई कर्म न काल।
जन दरिया जह पड़त है, हीरों की टकसाल ॥२५॥

सुरत निरत परचा भया, अरस परस मिल एक।
जन दरिया वानक बना, मिट गया जन्म अनेक।२६।

तज विकार आकार तज, निराकार को ध्याय।
निराकार में पैठकर, निराधार लौ लाय ॥२७॥

सुरत मिली जाय ब्रह्म से, अपनो इष्ट संभाल।
जन दरिया अनुभव सब्द, जहँ दीखै काल विसाल।२८।

सुरत मिली जाय ब्रह्म से, मन बुध को दे पूठ।
जन दरिया जहँ देखिये, कथनी बकनी झूठ ॥२९॥

दरिया जहँ लग गगन है, जहँ लग सुरत निवास।
इनके आगे सुन्न है, जहँ प्रेम भाव परकास ॥३०॥
दरिया अनहद अगनी का, अनुभव धूवाँ जान।
दूरा सेती देखिये, परसे होय पिछान ॥३१॥
मान बड़ा अनुभव सब्द, दूर देशान्तर जाय।
अनहद मेरा साइयाँ, घट में रहा समाय ॥३२॥

दरिया सूरति सर्पनी, चढ़ी ब्रह्म के मांय।
जाय मिली परब्रह्म से, निरभय रही समांय ॥२३॥

हो चैतन्य भजन कर जिससे ले निज रूप निहारी ।
'अमृत नाथ' अविद्या नाशे, दूर होय भ्रम भारी ॥४॥

[७]

सन्तों गुरु के वचन सम्हारो,
जिससे कर्म क्षीण हो जावे, आवा गमन निवारो ।
काया नगर में पञ्च प्रेत हैं, भिन्न २ रङ्ग धारो ॥
एक एक अति प्रवल शक्ति से, फैलावे अँधियारो ॥१॥
पांचों नारि वहुत मतवारी, भोगत भोग सुधारो ।
इनको रोक परम पद पावो होवें सफल ×जमारो ॥२॥
नाभि मूल से वङ्क नाल दिशि, सोहं की गति धारो ।
नयन नासिका स्थिर कर राखो, भव के बन्धन टारो ॥३॥
भ्रमर गुफा में सत गुरु राजें, कोटि भानु उजियारो ।
'अमृत नाथ' अमर पुर पावो, त्रैगुण फाँस निवारो ॥४॥

[८]

साधो वोही परम पद पावे,
गुरु चरणन में भेंट करे शिर दुविधा दूर हटावे ॥
शिक्षा श्रवण करे मन देकर, इन्द्रिन पर वश पावे ।
भली प्रकार दमन कर मनका, समता चित में लावे ॥१॥
मैं, तू द्वन्द हटाय हृदय से, भ्रम का कोट ढहावे ।
स्वप्न समान जगत को जाने, ब्रह्म अग्नि चेतावे ॥२॥

× जन्म

सोहं शब्द से बेगम पाई, अजना अटल धाम
किया सैन का काम, मरण क्षित लाया है ॥

हद बेहद और अगम निगम का सार
है अक्षर से पार अभय पद पाया है

परा पैसन्ती मदा, बेकरी, भिन्न भिन्न समझाइ
पहुँचा सुक्षम पार गुरु फरमाया है ॥ सत......

ज्ञानी गुरु रतन है सागर, आप मिला
"भैरया" भुवन बुहार बुने पद गाया

भजन नं. 6

तर्ज : अजब तेरी कारीगरी

गुरुजी माने दीनाजी शब्द

सुनत शब्द मिटि सब शंका, आप
सोहं शब्द सुनते ही पहले, नाम
उल्टा श्वांस शिखर जा चढ़िया, घर

कर मेरम मरजीवा मरिया जिंदा जले मसाणा,
जो सतगुरू का वचन निभावे वो घर वो ही जाणा,
गुरूवर रत्न दिया है सांचा चुन्ना चेतन पिछाणा,
भरम मिटा ''भैरया'' का लाये, निज घर ठोर ठिकाणा,
सेन समज सांची या सुरता आपो आप समानी ।। हद.....

भजन नं. 5

तर्ज : चला हंसा वण देया समन्द जहाँ मोती.....

सतगुरू दीनदयाल अगम लखवाया है।।

सोहं शब्द से बेगम पाई, अजपा अटल धाम दरसाई
किया सैन का काम, मरण चित्त लाया है ।। सत.....

हद बेहद और अगम निगम का सार बताया सब अणघड़ का,
है अछंर से पार अभय पद पाया है ।। सत.....

परा पैसन्ती मदा, बेकरी, भिन्न भिन्न समझाई सारी,
पहुँचा सुक्षम पार गुरू फरमाया है ।। सत.....

ज्ञानी गुरू रतन है सागर, आप पिलाई भरके गागर,
''भैरया'' भुवन बुहार चुने पद गाया है ।। सत.....

भजन नं. 6

तर्ज : अजब तेरी कारीगरी रे करतार.....

गुरूजी माने दीनाजी शब्द सुनाया।।

सुनत शब्द मिटि ... आप में आ
सोहं श...

प्राणवायुनिरोधेन लभते च चतुष्टयम् ।
तस्मादभ्यासशूरस्त्वं प्राणायामपरो भव ॥ २७ ॥
सकारान्तमिदं बीजं बहिर्याति सबिन्दुकम् ।
सविसर्गं सकारान्तं तद्बीजं प्रविशत्यधः ॥ २८ ॥
प्राणानिलश्च सर्वेषां प्रवर्तकनिवर्तकः ।
एवं जीवोऽजपानामगायत्रीं जपतेऽन्वहम् ॥ २९ ॥
एकविंशतिसहस्रसंख्यया षट्शताधिकमहर्निशं नरः ।
श्रीगुरूक्तविधिनाऽरुणोदये संस्मरन्वहति सोऽजपाफलम् ॥ ३० ॥
अजपां नाम संकल्प्य नरः पापैः प्रमुच्यते ।
शिवयोगमवाप्नोति शीघ्रमेव न संशयः ॥ ३१ ॥
अजपानामगायत्रीमन्त्रं वर्णद्वयं यदा ।
त्रिवेणीसंगमे लीनं स शब्दः प्रणवो भवेत् ॥ ३२ ॥

सोऽहं कृत्वाऽऽत्ममन्त्रं स्वपदपरतरं व्यक्तवर्णद्वयं त-
द्यालुम्पेद्यञ्जने द्वे पुनरपि रचयेद्दिव्यमोंकारमन्त्रम् ।
कृत्वाऽनुस्वारयुक्तं सकलमनुपरं ब्रह्मनाडीं नयेद्यः
पूर्णानन्दः स कुण्डल्यनुभवविकलः कर्मणे सूतिमेति ॥ ३४ ॥

05:27
Shivayogadeepika...
archive.org
INTERNET ARCHIVE

प्राणवायुनिरोधेन लभते च चतुष्टयम् ।
तस्माद्भ्यासशूरस्त्वं प्राणायामपरो भव ॥ २७ ॥
सकारान्तामिदं बीजं बहिर्याति सबिन्दुकम् ।
सविसर्गं सकारान्तं तद्बीजं प्रविशत्यधः ॥ २८ ॥
प्राणानिलश्च सर्वेषां प्रवर्तकानिवर्तकः ।
एवं जीवोऽजपानामगायत्रीं जपतेऽन्वहम् ॥ २९ ॥
एकविंशतिसहस्रसंख्यया षट्शताधिकमहर्निशं नरः ।
श्रीगुरूक्तविधिनाऽरुणोदये संस्मरन्वहति सोऽजपाफलम् ॥ ३० ॥
अजपां नाम संकल्प्य नरः पापैः प्रमुच्यते ।
शिवयोगमवाप्नोति शीघ्रमेव न संशयः ॥ ३१ ॥
अजपानामगायत्रीमन्त्रं वर्णद्वयं यदा ।
त्रिवेणीसंगमे लीनं स शब्दः प्रणवो भवेत् ॥ ३२ ॥

सोऽहं कृत्वाऽऽत्ममन्त्रं स्वपदपरतरं व्यक्तवर्णद्वयं त-
द्यालुम्पेद्यञ्जने द्वे पुनरपि रचयेद्दिव्यमोंकारमन्त्रम् ।
कृत्वाऽनुस्वारयुक्तं सकलमनुपरं ब्रह्मनाडीं नयेद्यः
पूर्णानन्दः स कुण्डलयनुभवविकलः कर्मणे सूतिमेति ॥ ३४ ॥
इला स्मृतेन्दुरिति सूर्यसुतेति योगात्
सा पिङ्गलाऽर्क इति विष्णुपदीति तासाम् ।
सा मध्यमाऽग्निरिति गीरिति या त्रिवेणी
योगस्थलं तदिदमेव हि यत्त्रिकूटम् ॥ ३५ ॥
तस्मात्त्रिकूटनामापि त्रिवेणीसंगमस्थलम् ।
शृङ्गाटकचतुष्पीठनामान्येकस्थलस्य हि ॥ ३६ ॥

Page — (26/66)
Lists Favorite Share Flag
Shivayogadeepika

हमारी ऊर्जा स्वाभाविक रूप से नीचे की ओर (मल-मूत्र और कामवासना की ओर) बहती है, जिसे **'अपान'** वायु कहते हैं।

- अश्विनी मुद्रा इस नीचे बहने वाली ऊर्जा के प्रवाह को तोड़ती है।
- मूल बंध उस ऊर्जा को 'लॉक' कर देता है और उसे मजबूर करता है कि वह ऊपर की ओर मुड़े।
- तन्त्रलोक (आह्निक 6) में इसे **'विषुवत'** की अवस्था कहा गया है, जहाँ नीचे और ऊपर की ऊर्जाएं बीच में (सुषुम्ना के द्वार पर) टकराती हैं और प्रकाश उत्पन्न करती हैं।

3. 'बिंदु' का ऊर्ध्वगमन (Ascension of Creative Energy)

तन्त्रलोक में **'बिंदु'** (वह शक्ति जो सृष्टि और जीवन का आधार है) को बहुत महत्व दिया गया है।

- साधारण मनुष्य में बिंदु का क्षरण नीचे की ओर होता है।
- इन मुद्राओं के निरंतर अभ्यास से 'अग्नि' (जठराग्नि और योगाग्नि) प्रज्वलित होती है। यह अग्नि बिंदु को 'तपाती' है, जिससे वह सूक्ष्म होकर भाप की तरह सुषुम्ना नाड़ी में ऊपर चढ़ने लगता है।
- जब यह बिंदु मस्तक (सहस्रार) तक पहुँचता है, तो इसे ही **'अमृत वर्षा'** कहा जाता है।

अवधारणाएँ नीचे दी गई हैं:

1. कुण्डलिनी का स्वरूप (श्लोक 31.31)

इस श्लोक में कुण्डलिनी को एक देवी और महान तरंगों वाली शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है जो मूल केंद्र (कन्द) में स्थित है। Wisdom Library +1

- **संस्कृत श्लोक:**

> या सा कुण्डलिनी देवी तरङ्गाख्या महोर्मिणी। सा षडश्रेण कन्दाख्ये स्थिता षड्देवतात्मिका॥ (तन्त्रालोक 31.31)

- **अर्थ:** वह कुण्डलिनी देवी, जिसे 'तरंग' (शक्ति की लहर) कहा जाता है और जो महान ऊर्मियों वाली है, वह षट्कोण वाले 'कन्द' (मूलाधार के पास का स्थान) में स्थित है और छह देवताओं के स्वरूप वाली है। Wisdom Library

2. कुण्डलिनी की तीन अवस्थाएँ (श्लोक 3.138-139)

अभिनवगुप्त ने 'त्रिशिरोभैरव तन्त्र' का सन्दर्भ देते हुए कुण्डलिनी की तीन मुख्य अवस्थाओं—**शक्ति-कुण्डलिनी**, **प्राण-कुण्डलिनी**, और

"ईड़ा, पिंगला, सुष्मना, नारी तीन विचार।

बायें दाहिने मध्य में, लखे जो तीनों धार।।"[116]

"आसन पदुम लगाय के, मूल बन्ध सम साध।

मेरू दण्ड फेरी करे, सुरति गगन में बाँध।।"[117]

"सदा आप में लीन रह, करि के योगाभ्यास।

आबत देखे काल को, गगन मंडल कर बास।।"[118]

योग के सम्बन्ध में संत रैदास ने भी कहा है –

"ऐसा ध्यान धरूँ बनवारी, मन पवन दिढ़, सुषमन नारी।

उलटी गंगा जमुन मैं ज्योऊँ, बिन ही जल संयम कै आंऊ।।

व्यंड परे जीव जिस घटि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।

सुंनि मंडल मैं तेरा बासा, ताथै जीव में रहु उदासा।।

कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस घटि जाऊँ जब बहुरि न आऊँ।।"[119]

सभी संत परम्परा के संतो में कबीर, रैदास, दादूदयाल और मलूकदास सभी संतो ने आत्म-दर्शन के लिए नाम स्मरण को एक समर्थ साधन माना है। ये संत मानते थे कि जीवन की व्यापकता राम के प्रेम तथा उनके नाम स्मरण में है। कबीर ने तो नाम-स्मरण पर अनेक पदों की रचना की है। रैदास ने भी भक्ति के लिए राम नाम के स्मरण पर बदल दिया है। 'तिहु जुगी तीनों दृष्टि, कलि केवल नाम अधार' कहकर संत रैदास ने नाम-स्मरण की महत्ता प्रतिपादि की है। उनके अनुसार –

"असै भक्ति न होई रे भाई।

राम नाम बिन जे कुछ करिये, सो बस भरम कहाई।"[120]

संत बौआ साहब नाम-स्मरण को ही मूलतः भक्ति मानते हुए कहा है –

"नाम रटने में मन को लगाना रे, तू पायेगा जिससे ठिकाना।"[121]

"मेरे गुरु ने ध्यान बताया,

आसन सहज लगाके बैठो, स्थिर राखो काया।

सुरति समेटि ह्रदय में राखो, सद्‌गुरु शब्द समाया।।"[122]

संतो ने पारमार्थिक साधना में माया को सबसे बड़ी बाधा माना है। माया हरि की दासी है और उससे छुटकारा हरि-कृपा से ही सम्भव है। माया हरि से मिलने नहीं देती है। सद्‌गुरु कबीर ने कहा भी है –

२- निरंजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी : डा०भगीरथ मिश्र, पृ०६४ ।
३- वही, पृ०६४ ।
४- वही, पृ०६५ ।   ५- वही, पृ०६५ ।

तुरसी के इन अवतरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास के समान तुरसी भी कलियुग में रामनाम को 'कामधेनु' समझते हैं इसीलिए वह साधना का सर्वश्रेष्ठ साधन है । उस नामस्मरण से ही समस्त पूजा विधानों का फलप्राप्त हो सकता है । तुलसीदास के समान संत तुरसी भी 'राम' नाम के इन दो अक्षरों का महत्व प्रतिपादित करते हैं जिसमें वे 'र ' और 'म ' इन दो अक्षरों को ज्ञानानंद की वर्षा करने वाले बादल के रूप में चित्रित करते हैं -

'बादल बरसन लागे दोय ।
ररो मभो उर माँहि उमगि कै, जल थल डारे धोय ।।
उनै आई घटा ज्ञान की, दामिणि दमकत सोय ।
प्रीति पवन चलि हरि जल बूढ़ो, अमृत धार समोय ।।
तपन मिटी, तन मन भयो सीतल, सुरति सुधारस मोय ।
नष सिष नगरी आनंद उपनो, सुष बिलसै सब कोय ।।
दुरमषि मिटि, सुरमषि उपजानो, दुष दलिद्र गये षोय ।
तुरसी आदि अंत अभैता, मंगल गावै लोय ।।'[1]

इस प्रकार राम नाम के दो अक्षर ही वास्तव में काया-नगरी में ज्ञान की घटा उमड़ने और आनंद की वर्षा होने के कारण होते हैं । नाम के इन दो अक्षरों का महत्व तुलसीदास जी ने भी निरूपित किया है जो हमारा चिर-परिचित अंश है-

'एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोय ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोय ।।'[2]

इस प्रकार नाम के इन अक्षरों का माहात्म्य निरूपित करने की कल्पना में भी तुलसीदास जी और संत तुरसी भावना की समान सतहों पर खड़े दिखाई देते हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कल्पना के इस तारतत्व में दोनों कवियों में पर्याप्त समानता है । अत: यह स्वत: सिद्ध है कि तुरसी का नाम

१- निरंजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी : डा० भगीरथ मिश्र, पृ०६४ ।
२- राचरितमानस, बालकाण्ड, दो सं०२० ।

मस्तक प्राण चढ़ाय के, करे अमर पुर भोग ॥
पांचो मुद्रा साध के, पावे घट का भेद ।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, घट चक्कर कौ छेद ॥
नाशा ध्यान दृष्ट भृकुटी में, सुरति श्वास के माहिं ।
आतम देखो जात है, या में संशय नाहिं ॥
योग युक्ति को कीजिये, कै आतम को ध्यान ।
आपा आप विचारिये, परम तत्व को ज्ञान ॥
सुंदर बैश्य शरीर, ब्राम्हण अरु रजपूत ।
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास अवधूत ॥
काया माया जानिये, जीव ब्रम्ह है मीत ।
काया छूटे सुरति मिटे, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुण्य आशा तजो, तजो मान अरु थाप ।
काया मोह विकार तज, जपो सु अजपा जाप ॥
आप भुलानों आप में, बंधो आप में आप ।
जाको तू ढूंढ़त फिरे, सो तू आपहि आप ॥
इच्छा दोय बिसार के, क्यों न होय निर्वास ।
तूतो जीवन मुक्त है, तजो मुक्त की आश ॥
आपा खोजे आप लख, आप अपन को देख ।
चरणदास तू ब्रम्ह है, तू ही पुरुष अलेख ॥
जैसे कछुवा सिमिट कर, आपहि माहिं समाय ।
तैसे ज्ञानी श्वास में, रहै सुरत लव लाय ॥
सब घट रमो सो राम है, आदि पुरुष निर गम्म ।
लख चौरासी योनि में, एक समानो सम्म ॥
दृष्टि मुष्ट आवे नहीं, रूप न देखा जाय ।
बिना सुरति बिन नाम को, घटघट रहो समाय ॥

जो जो इन सों देखिये, तिन की निश्चय हान.
गुरु शुकदेव सुनावैरे, अरे हेला समझ चरणही दास;
अपने ही परकाश में, आप रहा परकाश.

हिंडोला

झूलत गुरु मुख सन्त, अलख हिंडोलने.
नाभी त्रिकुटी खम्भ में, रोपे सोऽहं डोरी लाय;
सुरति पटली बैठी सजनी, क्षण आवे क्षण जाय.
मन मनसा दोउ लगे झूलने, धारना लिये संग;
ध्यान झोटे देत सजनी, भलो लागो रंग.
सखी सहेली सिमिट आईं, पींग पींगन नेह;
बूंद आनँद सब भिगोईं, सघन बरसे मेह.
चारु वाणी खड़ी गावें, महा रंगीली नार;
मुक्ति चारों मालिनी, जहां गुह गुह लावें हार.
त्रिगुण बगला उड़न लागे, देख बादल लय;
संग पिय के सदा झूले, तातें लगे न भय.
चरणदास को नित झुलावे, इस झूले शुकदेव;
शिव सनकादिक नारद झूलें, कर कर गुरु की सेव.

अथ सर्व अंग राग मंगल

मन रोगी भयो पिंड की कुबुधि विकार सों;
बाढ़ी व्यथा अपार लोभ के भार सों.
कर्म भरो मति हीन क्षीण छल सों छयो;
पांच पचीसों घर मोह मद ने दह्यो.
कैसे यह दुख जाय कै पूछन को चल्यो;
तब पूरण गुणवन्त वैद्य सतगुरु मिल्यो.
कर गहि कियो विचार कह्यो समझायके;
जो कुछ तेरो रोग सो देहों बताय के.

सोरठ

हमारे गुरु मारग बतलाया हो ।

आनदेव की सेवा त्यागी, अज अविनाशी ध्याया हो ।
हरि पूरण परसो निश्चय सों, छांड़ो झूठी माया हो ।
यक रस आतम नितही जानो, क्षण भंगी है काया हो ।
चाहे मुक्ति करे तन किरिया, भरम अधिक भरमाया हो ।
बोकर पेड़ बबूल शूल कर, आम कहो किन खाया हो ।
आपन खोज किया नहिं कबहूं, जल पाहन भटकाया हो ।
जैसे फल सेवत सेमर को, कीर अधिक पछिताया हो ।
ज्ञान पदारथ कठिन महा निधि, बिन भेदी किन पाया हो ।
चरणदास घट सोऽहं सोऽहं, ता में उलट समाया हो ।

मंगल वा सूहा वा बिलावल

कर्म करे निष्कर्म होवे, फेर कर्म नहिं कीजिये ।
भल कै कोइ कर्म साधे, उलट कर्म नहिं दीजिये ।
कर्म त्यागे जगै आतम, यह निश्चय कर जानिये ।
जब निर्भय पद सुलभ पावे, सांच हिये में आनिये ।
सो सांच हिय में राख अवधू, नाम निर्गुण नित जपो ।
अग्नि इन्द्री कर्म लकड़ी, पांच अग्नी यों तपो ।
जैसे टूट गहना खोज मेटे, होय सोना अति सुखी ।
ऐसे योग भक्ति बैराग सेती, कर्म काटे गुरु मुखी ।
जासों मिटे आपा आप सहजे, ब्रम्ह विद्या ठानिये ।
गुरू शुकदेव यों युक्ति भाषे, चरणदास पहिचानिये ।

सोरठ

साधो भरमा यह सन्सारा ।
गति मति लोक बड़ाई उरझे, कैसे होय छुटकारा ।
भरम पड़े नाना विधि सेती, तीरथ वरत अचारा ।
देह करम अभिमानी भूले, छूछ पकड़ तत डारा ।
योगी योग युक्ति कर हारे, पंडित वेद पुराणा ।

राग बिलावल

घट में खेल ले मन खेला ;
सकल पदारथ घर ही माहीं, हरि सों होय जु मेला.
घट में देवल घट में जाती , घट में तीरथ सारे ;
बेगहि आव उलट घट माहीं , बीते पर भी न्हारे .
घट में मान सरोवर शुभ है , मोती और मराला ;

घट में ऊंचा ध्यान शब्द का , सोऽहं सोऽहं माला .
घट में बिन सूरज उजियारा, रात दिना नहिं सूझे;
अमृत का नित भोग लगत है, बिरला जन कोइ बूझे.
घट में पापी घट में धर्मी , घट में तपसी योगी ;
गुण अवगुण सब घट के माहीं, घटहि चिकित्सक रोगी.
राम भक्ति घट में उपजे , घट में प्रेम प्रकाशा ;
शुकदेव कहें चौथा पद घट में, पहुंचे चरणहि दासा.

राग विभास

घट में तीरथ क्यों नहिं न्हायो ;
इत उत डोलो पथिक बने ही , भर्म २ क्यों जन्म गँवायो.
गोमती कर्म सुकारथ कीजे , अधरम मैल छुटायो ;
शीत सरोवर हित कर न्हायो, काम अग्नि की तपन बुझायो.
रेवा सोई क्षमा को जानो , तामें गोता लीजे ;
तन में क्रोध रहन नहिं पावे , ऐसी पूजा चित दे कीजे .
सत यमुना सन्तोष सरस्वती , गंगा धीरज धारो ;
झूठ कपट निर्लोभ होय कर , सबही बोझा शिर सों डारो .
दया तीर्थ कर्मनाशा कहिये , परसे बदला जावे ;
चरणदास शुकदेव कहत हैं , चौरासी में फिर नहिं आवे .

विभास

घट में तीरथ जो तुम न्हाओ :
तिन के न्हान अमर पद पहुंचे, आदि पुरुष निश्चय कर पाओ.
काशी सो तत करनी कीजे , कलिमल सकल नशाओ .
रहनि गहनि पुष्कर की जानो, तामें मज्जन क्यों न कराओ.
ध्यान द्वारिका दृढ़ कर परसो , हित की छाप लगाओ .
इन्द्री जित सोइ बद्रीनाथा , यह गति सत करि चित में लाओ.
योग युक्ति सों चुबकी लेकर , काग पलट हंसा हो जाओ .

गुरुनानकदेव ने राजा शिवनाथ को प्रथमतः राम नाम, फिर प्रणव एवं फिर हंसरूप अजपाजप का (तीन चरणों में) उपदेश दिया था।

वैदिक, पौराणिक एवं तान्त्रिक अर्थात् सारे प्राचीन साधना साहित्य में इसका अभ्यास अजपा गायत्री, हंसविद्या, आत्ममन्त्र एवं प्राणयज्ञ के नाम से प्रचलित था।

गीता के चतुर्थ अध्याय में उपदिष्ट 'प्राणान् प्राणेषु जुह्वति' की साधना प्राणयज्ञ ही है। इसे श्रीधर स्वामी ने (अपनी गीता-टीका में) अजपा-साधना कहा है।

श्वास के दो रूप—

१. (प्रथम श्वास) जन्म (बच्चे का प्रथम श्वास)।
२. (अन्तिम श्वास) मृत्यु (श्वास का अन्तिम भाग)।

जन्म से मृत्युपर्यन्त का मध्य काल जीवन कहलाता है। मानव का समस्त जीवन श्वास-प्रश्वास से सम्पुटित है।

मनुष्य की आत्मविस्मरणावस्था एवं श्वास-प्रश्वास—मनुष्य अपनी आत्मविस्मरण की अवस्था में ही प्राण एवं अपान की हथकड़ियों से बँधकर इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित होता रहता है।

आत्मविस्मरण के कारण ही मनुष्य श्वासप्रश्वासाधीन रहकर काल की प्रेरणा से इड़ा एवं पिङ्गला नामक वाम-दक्षिण नासापुट में प्रवाहित श्वास-प्रश्वास के रूप में सञ्चरण करता रहता है।

यदि अविद्यावरणस्वरूप विक्षेप एवं विकल्प न रहें तो विक्षेपात्मक श्वास-प्रश्वास की सत्ता भी अस्तित्व में नहीं रह सकती।

अजपा जप का स्वरूप—एक अहोरात्र में प्रत्येक मनुष्य २१६०० श्वासें लेता एवं छोड़ता है। श्वास-प्रश्वास की अहोरात्रिक संख्या २१६०० है।

प्रक्रिया—मनुष्य 'हम्' ध्वनि के साथ श्वास बाहर फेंकता है (जिसे प्रश्वास कहते हैं) तथा 'सः' ध्वनि के साथ श्वास लेता है, जिसे निःश्वास कहते हैं।

हंकारेण बहिर्याति सःकारेण विशेत्पुनः।

'हंसः' के हकार-सकार का क्रम—अजपा जप या हंसविद्या में हकार-सकार का प्रश्वास एवं निःश्वास के साथ कैसा सम्बन्ध है—इस दिशा में मतभेद है।

हंस मन्त्र के क्रम-विधान में मतभेद

साधारण मत—	गोरक्षनाथ एवं रामप्रसाद का मत—
हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः	हं वर्ण पूरके हय सः वर्ण रेचके वय। अहर्निश करे जप हंस हंस बलिया।

ेखा सख्य भाव से ना। ४. इहां के काव्य में जीवन के पूर्णता बा।
उपसंहार—सारांश-लक्ष्मी सखी के प्रतिमा ईश्वर प्रदत।

www.bhojpurisahityangan.com

संत कवि के चारो ग्रंथ में कहल बात के संग्रह

१ बात—गंगन मंडल में बइठ के साहेब हंसन कर बीच में राकार माकार
गुरू का गावेला सो तो कहो सजनीं।
जा से बने हरि भजनी।। अमर सीढ़ी पृ० ३५६

२ बात—धन-धन मोरे सांई, जे गुह से कइले गोसांई।
अउरो दीजे गाई भरपेट खिआई।।

३ बात—धन गुरू धन, जे सब जग देखिले अनन।
अमर कहानी पृ० १६०

४ बात—कहे के बा सफा बात सटीका,
खुश होइ त दीका केहु नाराज होई त ऽ लीका।
अमर कहानी पृ० २३८

५ बात—जे ई पढ़ी से ई छोड़ के दोसर ना पढ़ी, त देखिह जे असिरबाद
फरी, बैठल खाई दाल भात सोना के छरी।
अमर विलास पृ० १४८

६ बात—जतिने राग नु लामा बिगाई, ततिनो औरो मिठाई भाई।
जे खात-खात कतिनो ्खो ना जाई, अधिका में औरो मनुआ फुलाई।
अमर विलास पृ० १५१

७ बात—येह ग्रन्थ केवल राम चरित्र है गंगा के जल जैसे सबसे पवित्र है।
अमर विलास पृ० १५५

८ वात - वाना पाटा लेखा भाजे के, हिरोला लेख, पढ़वावे के।
रसे-रसे गावे के जे परम सुख पावे के।।
अमर विलास पृ० १६७

९ बात—ई ना कहे के जे ओही चौपाई लेखा त इहो बा,
एक पंच के एक जगह जाला।
अमर विलास पृ० १७४

ई कुल्ह बात आदर्श वाक्य (Motto) हउवें सँ।

www.bhojpurisahityangan.com

हरि सुमिरण मन हठ मतौ, सो मैं छाडौ नांहि।

रामरतन धन अजब है, ले राष्या मन मांहि।।[189]

तुरसीदास निरंजनी के अनुसार 'राम' नाम का स्मरण ही श्रेष्ठ है। वह कहते हैं कि भगवान के प्रति नाम का स्मरण उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार भूखा व्यक्ति अन्न का तथा प्यासा व्यक्ति जल से प्रीति करता है। उसे राम–नाम स्मरण में अपने मन को चातक और कामी व्यक्ति के समान लगाना चाहिए –

ज्यूं पृथरोमा नीर कूं, चात्रग घन की प्यास।

ज्यूं कांमी कामहि भजै, यूं रांम भजै निजदास।।[190]

संत तुरसी ने स्मरण के चार भेद किये हैं –

तुरसी अध मध उत्तम, अति उत्म हूं सोइ।

सुमिरन की विधि जुगतिए, जांने बिरला कोइ।। [191]

अर्थात् 1. अध 2. मध्यम 3. उत्तम 4. अति उत्तम।

इसी प्रकार संत हरिरामदास निरंजनी ने भी **स्मरण** के निम्न चार प्रकारों का उल्लेख किया हैं –

सुमिरण च्यारि प्रकार को, अध मध्य उत्तम नाम।

अति उत्तम चौथो कहे, कहै दास हरिराम।।[192]

संत सेवादास के अनुसार सुमिरन का पान मग्न करने वाला अतिसुखकारी है–

पी मतिवाला मगन भया मन और न आवै रामबिनां।

निरभै भया निरंतरि मेला, है सुमिरन माही सुष घनां।।[193]

संत रूपदास निरंजनी ने भी स्मरण को महत्त्व दिया है –

राम राम सतगुरु कह्या, सुमरण सास उसास।

जन रूपदास जप सुगत सूँ, कोटि कर्म का नास।।

सुमिरण सुष सतगुरु दिया, रांम नाम तत सार।

रांम रटत जन रूपला, लगैन जमकी मारन।।[194]

सुमिरन की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए संत उदयराम जी कहते हैं –

स्वास स्वास हरि नाम बिन, जन्म अमोलक जाय।

जन उदयराम यूँ कीजिये, भजिये निरंजन राय।।[195]

संत जगजीवनदास ने भी कहा है –

गाजे पठिये सुमरिये, लाजे उनमन ध्यान।

जगजीवन हरि सुमरिये, कबहू न बझिये आंन।।[196]

महात्मा नरीदास जी के अनुसार राम–नाम का स्मरण करने से मनुष्य इस भवसागर से तर जाता है, और उसके सारे माया रूपी बन्धन कट जाते हैं एवं वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नरीदास जी राम–नाम के सुमिरन की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं –

राम सुमर हरि का गुण गावे, हरि हरि सुमर परम पद पावे।।

हरि है अवमोचन सुख रासी, हरि जरामरण की काटै फांसी।।

राम सुमर भवसागर तरिये, हरि सुमरत भाव पार उतरिये।।

राम सुमर छूटै भ्रम पास, चरण शरण जन कहे नरिदास।।[197]

संत कल्याणदास जी ने स्मरण विषयक भक्ति भाव को इस प्रकार प्रकट किया है –

कर्म भर्म कूकस भया, कण है सुमिरण सार।

कल्याणदास जन यूं कहै, सुमिरै सिरजन हार।।[198]

6. धारणा :

अन्तःकरण को अद्वितीय वस्तु ब्रह्म में नियुक्त करना **धारणा** कहलाता है –

अद्वितीय वस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा। [333]

संत तुरसीदास निरंजनी के अनुसार चित्त को एकाग्र करके अचल होकर परम आराध्य देव में ही अपना ध्यान लगाना ही **धारणा** है –

तुरसी नाभिक ह्रदै स्थांन अथवा भू मधि धर हूँ जु ध्यांन।
मन अचल करि रखौ कही, प्रेम जोति प्राप्ति होई तही।। [334]

भगवानदास निरंजनी ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है –

सोहं शब्द पुकारीए अंतर वृत्ति लगाइ।
व्हे अडोल डोलै नहीं शुद्ध धारना पाइ।। [335]

वही हरिरामदास निरंजनी के अनुसार पंच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) के रूप को अर्थात् उनके वर्ण, आकार, अक्षर तथा अधिष्ठातृदेव सहित ह्रदय में धारण कर उनमें प्राण–मन सहित लीन होना **धारणा** है –

जैसो जाकौ वरण है अरु जैसो आकार ।
जा अक्षर संयुक्त है जा सुर को अधिकार।
जा सुर को अधिकार तत्व पंचम में होई।
तैसो डरि धरि रूप प्राण चित्त थंभै जोई।
पंच तत्त्व जय करै धरै तनु योगी तैसौ।
जिका तत्त्व की जहाँ धारणा धारै जैसौ।।[336]

7. ध्यान :

हरिरामदास निरंजनी के अनुसार शरीर मन और इन्द्रियों को निश्चल कर परमात्मा चिन्तन **ध्यान** है –

परमातम कौ ध्यान जु धरै, तन मन इन्द्री निश्चल करे। [337]

जब साधक को अन्तर्मन में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है, यही परमात्मा का ध्यान है –

तुरसी रिदै कंवल कै मांही, जोतिमई जगदीश रहांही। [338]

ध्यान के संबंध में भगवानदास निरंजनी कहते हैं –

सोहं हंसो होतु तौ सो कह्नौं मिटि जाइ।

एक एक ही एक हौ ध्यान मान शुद्ध भाइ।।[339]

अर्थात परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना ही **ध्यान** है

संत तुरसीदास के अनुसार मन को वश में करने का सबसे उत्तम उपाय प्राणायाम ही है –

प्रानायांन आलंबन सूं, मन की वृति उलटाइ।
तुरसी मन बसि करन कूं, है इह उत्म उपाइ।। [321]

तुरसी ने प्राणायाम के 3 भेद बताये हैं जो इस प्रकार हैं–

प्राणायाम तीन प्रकार अधमधिउत्म सार।[322]

अर्थात् 1. अधम 2. मध्यम 3. उत्तम।

संत भगवानदास निरंजनी ने भी प्राणायाम के तीन भेदों का उल्लेख किया है–

चौथें प्राणायाम कहि तीनि भांति परकाश।
उतिम मधिम दोइ कहि पुनि कनिष्ट अवभाश।।[323]

तीन भेद निम्न प्रकार है – 1. उत्तम 2. मध्यम 3. कनिष्ठ।

श्वास–प्रश्वास (प्राणायाम) का सम्बन्ध शरीरस्थ नाड़ियों से है। गोरक्ष–संहिताकार के अनुसार भारीर में 72 हजार नाड़ियाँ हैं। उनमें से बहत्तर प्रमुख है तथा उनमें भी दस नाड़ियों को श्रेष्ठ माना जाता है। [324]

हरिरामदास निरंजनी के अनुसार विभिन्न प्रकार के नाड़ी चक्रों में सारभूत नाड़ियाँ तीन हैं –

नाड़ी चक्र बहुत विधि कहिये, सारभूत तिन मैं त्रय लहिये।
इड़ा पिंगला अरु सुषमना, इनकी रीति धारि निज मना।। [325]

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की शरीर में स्थिति आदि को समझाने के पश्चात् हरिरामदास ने प्राणायाम को स्पष्ट किया है –

इड़ा नाड़ि तैं पूरक करै, कुंभक पवन माहि ले धरै।
रेचक नाड़ि पिंगला कीजैं, बीज मंत्र विधि सहित जपीजै।।[325]

योग–शास्त्र के अनुसार इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये नाडियाँ प्राण–वायु को धारण करती है तथा शरीर में होने वाली सभी क्रियाओं को संचालित करती रहती है। इन्हीं नाड़ियो के सूत्रों से बने हुए छह–चक्र भारीर में क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर रहते है। अतः साधक इन्हीं चक्रों पर अधिकार करने के लिए योग–शास्त्र में बताए गए विभिन्न उपायों व विधियों को करता है। हरिरामदास निरंजनी ने भी इनके महत्त्व को स्वीकार करते हुए इन षट्–चक्रों के नाम व स्थानों का उल्लेख इस प्रकार किया है –

कहिये एक आधार बिये स्वाधिष्टान कहात।
तीजो मणिपूरक लखौ, लखि चतुर्थ अनुहात।
लखि चतुर्थ अनुहात, पंचम विशुद्ध प्रमान।
षष्टम आज्ञाचक्र, नाम इन के यह जान।
गुदा लिंग अरु नाभि, हृदै पुनि कंठ सुलहिये।
वहुरि भौंह हरिराम, थांन इन के यह कहिये।।[327]

योग–शास्त्रीय ग्रंथों में निर्धारित वर्णों (बीजाक्षर) सहित षट्–चक्रों का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

क्र.सं.	चक्रों के नाम	स्थान	दलों की संख्या	सुशोभित वर्ण
प्रथम	मूलाधार चक्र	गुदा	चार	वं, शं, षं, सं
द्वितीय	स्वाधिष्ठान चक्र	लिंग	छह	बं, भं, मं, यं, रं, लं

क्या भरवासा देह का, पल में होए वँजोग।
घड़ी सुलखनी जानिए, जो सत शबद संजोग।।

देख ये रचना जगत की, क्यों मूढ़ मन भरमाए।
ना थिरता इस जगत की, ना देह थिरी रहाए।।

जिस दर बाजत नौबताँ, गज झूलें बहु शान।
उज्जड़ खेड़े हो गए, सब चल गए बेनिशान।।

छिनभंगर ये पिंजरा, छिन में गरद समाए।
ताँ सों समाँ विचार के, करो भगत मन लाए।।

ज़ोर जुलम दोनों तजो, आजिज़ हो दरवार।
सिमर नाम गोपाल का, सत सम्पत अपार।।

कहाँ सिकन्दर बिक्रमा, दुरयोधन मद मान।
कहाँ राम कहाँ रावना, नहिं देखत आए निशान।।

गुनी गए मुनी गए, साध तपोबल धारी।
सतसरूप केवल प्रभ एके, अगम शबद निरंकारी।।

वस्त अमोलक गुर दिखलाई, अगम धार अबनाशी।
मानुष जनम कदारथ होया, भरमन मिटी चौरासी।।

नित ही नित माँगो, सत्तनाम सत सेवा।
भाव भगत धर सिमर लो, पारगरामी देवा।।

इस मन को शान्त मिले, सतपद ले बिसराम।
अपने आप में आप समावे, लखे शबद का धाम।।

खेम कुशल पद जपो निरंजन, करें सन्त वेद पुकार।
'मंगत' ये ही सत सम्पता, जग जीवन धन सार।।320

स्वास स्वास हरनाम जप, जीवन सुफला होए।
काम क्रोध मल सब हरो, नाम साबुन ले धोए।।

सब साधन की साधना, सब गुनियाँ दा ज्ञान।
प्रेम भाओ अन्तर जपे, जीव पाये बिसराम।।

स्वास सुरत से पीविए, साचो नाम अगाध।
उलट कँवल परगासया, मिटी तृषना व्याध।।

सतनाम जग में सार है, और सकल असार।
प्रेम भगत अन्तर जपे, परसे पद निरधार।।

लाख करोड़ी सम्पत, छिन आवे छिन जाए।
इस्थिर नाम गोबिन्द दा, जो सिमरे सुख पाए।।

चार वेद खट शास्त्र पढ़े, निध्यासन बिन भरमाए।

20:46

ऐसे आत्म ब्रह्म बिचारै । एकजानि करि द्वैत निवारै ।।
ज्यों सागर में बूँद समावै । त्यों अत्म में मन लगावे ।।१३।।
ऐसी भांति विचारहि करते । निसदिनब्रह्ममांहि चित्तधरते ।।
त्रिगुणाकार सकल भ्रम भागे । होए ब्रह्म सोवत सों जागे ।।१४।।
द्वै ब्रह्म ब्रह्म मिलि जावै । जहाँहुते वहस्यों नहिं आवै ।।
ऐसी बिध ऊव दुख न दहै । हरि को निजानंद पद लहै ।।१५।।

दोहा ।

आत्म ज्ञान निश्चे करे, बिधि सों रोके प्रान ।
सोहं हंस को जप करे, तो लहै मोक्ष निर्बान ।।
यह समझि तोसौं कही, साधनते सिद्धहोए ।
जीव समावे ब्रह्म में बहुरि न बिसरे कोए ।।

चौपाई।।

आसन मुद्रा कुंभक साधै । बार बार पूरक कों साधै ।।
प्राण अपान एक ह्वै जाई । थिर कै स्वासन बिसरे काई ।।१६।।
नाद बिन्द कों एक करावै । मनपवना घटमांहिसमावै ।।
आत्म तत्व में होवे लीन । जैसे जल में विचरे मीन ।।१७।।
जैसे पानी लून समावै । ऐसे मिल्या फेर न आवै ।।
ज्यों जीवात्म परमात्म मांही । होवे लीन देह सुध नांही ।।१८।।
सीत उष्ण को गम नहिं काई । बन बस्ती जाके सम भाई ।।
निजानंद पद मांहि समावै । याको नाम समाधि कहावै ।।१९।।

दोहा।

हद छाड़े बेहद भए, भूल गए गुन तीन ।
सकल मिटाई वासना, भए ज्योति में लीन ।।

Scanned by Ca

अथ जोग के विघ्न करता।।

ठटाटठ घनौ अहार न करे । थकेला होए सो काम न करे ।।
घनो बोले नहिं योगारंभना । और नेम राखे ।।६।।
नहीं वस्तु की संग्रह राखे । कामी पुरुष का संग न करे ।।

अथ योग का क्रम ।।

अलप अहार यम में आ गए । अहिंसा माहे नियम सो भए ।।
आसन में सिद्ध आसन भाई । मुद्रा मए खेचरी आई ।।७।।

सब नाड़ी में सुखमन एक । अष्ट कुंभ में केवल विशेष ।।
खेचरी समान मुद्रा नाहीं । केवल कुंभक सब कुंभक मांही ।।८।।

ज्यों लय योग में कहिए नाद । धुनि में बिसरे आपावाद ।।
मंत्र जोग में अक रंकारा । ज्योंसोहं शब्द सब ज्ञानको सारा ।।९।।

Scanned by Ca

ब्रह्मचर्य व्रत को गहै । निसदिन आत्म ध्यान में रहै ।।।१०।।

मन ते इस्त्री संग मिटावे । ऐसे द्वादश वर्ष गमावे ।।
सिद्ध आसन सों बैठा रहै । मन पवना को काठा गहै ।।११।।

सूर्य के घर पथ भोजन लेवे । चंद्र के सुर जल को पीवे ।।
जोगी साधे अलप अहारा । निस दिन राखे तत्त्व विचारा ।।१२।।

श्रवन सुने न बकै बहु बाई । नै काहु को संग कराई ।।
देही मंजन तजै सिंगारा । जाते उपजै बिषय विकारा ।।१३।।

एका एकी रहे निरास । शरीर जीते रहै विवास ।।
अति उछाह धरे मन माहीं । आसा तृष्णा व्यापे नाहीं ।।१४।।

जोग पंथ में निष्ठा राखे । धीरज गहे कल्याना नाखे ।।

अब जोगी की आहार की विधि कहिते हैं ।।

20:42

✿ वाणी ✿

सतगुरु मोहे ऐसे पढ़ाया जी,

अलख पुरुष की धामों में, लेख लिखाया जी।। टेर।।

गुरु साहेब के शरणे जाके, शीश झुकाया जी।

नाभी से पवना पलटी, तन, मन को समझाया जी।।1।।

सतगुरू मोहे.........

शील सन्तोष की पाटी दीनी, नि:अक्षर का पाठ पढ़ाया जी।

गुरु वचन से पढ़न लाग्या, मैं पढ़्या सवाया जी।।2।।

सतगुरू मोहे.........

ईला, पिंगला होके भेली, सहज मेल मिलाया जी।

आत्म खोज हुआ घट भीतर, सूता ब्रह्म जगाया जी।।3।।

चौदह लोक की विद्या पढ़ी, अगम घर पाया जी।

चिमनानाथ मिल्या गुरू पूरा, गुप्त ज्ञान कराया जी।।4।।

सतगुरू मोहे.........

सूरतनाथ पर मेहर हुई, फैल कभी ना आया जी।

सब सन्तो से करू विनती, प्रेम का पद पाया जी।।5।।

सतगुरू मोहे.........

✿ वाणी ✿

लगी अखै डोरी भजन की लगी अखै डोरी।

हरि नाम का हीरा परखा, खरा हुआ व्यापारी।। टेर।।

नाभी से शब्द उठाया, बंकनाल में डोरी।

नो द्वार कब्जे किया, खोली मोक्ष की बारी।।1।।

लगी अखै डोरी........

ईला पिंगला होके भेली, सुषुमण होद भरा री।

बिरला हरिजन नहाण संजोवे, देवे काल को टारी री।।

लगी अखै डोरी........

रणोकार में गैबी गरज्ये, करोड़ों भान उग्यारी।

निर्मल नूर लखी है सूरता, कदै ना होवे न्यारी री।।

लगी अखै डोरी........

चिमनानाथ मिल्या गुरू पूरा, मिटी कल्पना सारी री।

सूरतनाथ चरणों में रहवै, सत में बूंद समायी री।।

लगी अखै डोरी........

20:40

✿ गुरू महिमा ✿

गुरू घर आया ऐ सखी, म्हारे गुरू घर आया ऐ

कई युगों के सुते जीव का, भ्रम मिटाया ऐ।

सच में चालू साच कमाऊं भव सागर पार लगाया ऐ।।1।।

गुरू घर............

आवागमन का बंधन तोड़ा, हर्ष, शोक मिटाया ऐ।

पांच पच्चिसों, तीन तेतीसों, घर सुषमन पाया ऐ।।2।

गुरू घर............

गंगा, यमुना बहे सरस्वती, ता संग स्नान संजोया ऐ।

गिगन मण्डल की खोल किवाड़ी, साचा दर्शन पाया ऐ।।3।।

गुरू घर............

आत्म भान भया उजाला, अनहद नाद सुनाया ऐ।

मोह माया का जाल तोड़, मैं मोक्ष का पद पाया ऐ।।4।।

गुरू घर............

चिमनानाथ मिला गुरू पूरा, सत के राह पहुंचाया ऐ।

सुरतनाथ ध्यान में लाग्या, जीव से हंस बनाया ऐ।।5।।

गुरू घर............

✿ वाणी ✿

इस विद त्यागो नारी सारी, बनो अविनाशी का प्रेम पुजारी।। टेर।।

अविनाशी अमर अजर है, नहीं सगुण नहीं निराकारी।

चारों युग बिताये खोजन में, आया नहीं किनारी।।1।।

नाही जपो जाप ना ही फेरो माला, साची सैन से लेयो सन्ता की लारी।

मिलेगा खोज-सोज कर देखो, मिटेगी भूल अधारी।।2।।

डगरी-नगरी दिखत नाही, ना कोई आरम-पारी।

दूर नहीं पास में है प्यारा, श्वास-श्वास सुखकारी।।3।।

सीधी राह चले जो नर-नारी, उनको सतगुरु लेवे ऊबारी।

चिमनानाथ गुरु गम धारी, अन्दर-बाहर रमता सारी।।4।।

✿ वाणी ✿

शिखर में मंजिल पड़ी नहीं है।

संत गये जिस मार्ग बा संत कही है।। टेर।।

ना ही धरती ना गिगना, ना बसती बस रही है।

ना कोई खलक ना कोई खाली, ना झुठी साच कहि है।।1।।

ना ही दिवस ना ही रजनी, ना कोई गरेन गहि है।

ना ही वहां शुद्ध-अशुद्ध है, ना ही जोत-पतंग वहां है।।2।।

चातर-मुर्ख पुरुष नहीं है, मुख बिन बैण कहि है।

अमृत-जहर दोनों नहीं दरसे, पीवल उगल रही है।।3।।

गरीबनाथ गुरु गवन बताया, ना झुठ ना सही है।

चिमनानाथ निरभय लखता, रमता-मचता वही है।।4।।

20:36

गगन महल में गत से पहुंची, पति मोहे शब्द दिया।
अगम देश अविनाशी मिल गया, देह बिना दरश दिया।।3।।
चिमनानाथ पति गुरू प्यारा, जुगती जोग दिया।
हीरा कहे सुनो मोरी साथिनो, सब कुकरम दूर किया।।4।।

✿ वाणी ✿

सुनो सरती बहना, प्रीतम नित सुखकरी।
गुरू शब्द में साज लिया मोहे, मैं पति भरता नारी।। टेर ।।

गुरू शब्द मैं यूं साजा, बात बताऊं सारी।
हाथ, होठ, कठ और जीभ बिना, मैं निर्गुण माला जपीरी।।1।।
ईला-पिंगला होय पदमणी, हो गई मेरे संग सारी।
सुखमणनार कामणी भारी, रचे चिरत गुप्त भारी।।2।।
सुखमन सोध करोड़ों नर-नारी, कदी सुखमणा संग घरबारी।
मिलजा आप रहे नहीं न्यारा, बाणी बेद पुकारी।।3।।
चिमनानाथ गुरू मालिक में, नित-नित लग्नी धारी।
हीरा कहे मिली प्रीतम में, पलक रहूंना न्यारी।।4।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:36
Vo)) LTE1

✿ वाणी ✿

मेरा प्रीतम अनभै देवन हारा।

आप बिना परले बह जाती, आप किया वो पारा।। टेर।।

आप बिना मालिक नहीं दूजा, आप ही दर्शन दिदारा।
छोटे मोटे जग के साथी, आप बिना बेकारा।।1।।

लगन डोर में मनका थारा, फेरन भरे बजारा।
आप भजन में मग्न रहू, नहीं भुलु गुण थारा।।2।।

आप चरण में हाजिर रहूं, सौंपदिया तन-मन-धन सारा।
श्वास-श्वास में रटना थारी, मेटो जम का कारा।।3।।

गरीबनाथ प्रीतम गुरू, चरणों में शीश मैं डारा।
चिमनानाथ हटने का नाही, मिलाओ संत परिवारा।।4।।

✿ वाणी ✿

सुनो सखी बहना मोरे पति प्यार किया।

आवागमन का वन्दन काटां, मस्तक पर हाथ दिया।। टेर।।

पति चरणा में नित उठ रहती, ना मोहे दूर किया।
इन्द्र घटा जूं मो पर बरसे, गुरू गत नीर दिया।।1।।

भर-भर प्याला पीवण लागी, सब दु:ख मुक्त किया।
आठों पहर आनन्द में रहती, खिलता नैन हीया।।2।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:34

✿ जोगिया ✿

कुड़ क्यों भाखे रे जोगिया है नार बिना तू बेकार,
नामी नारी नाव है रे जोगिया, है पवन नाम आधार – टेर

नारी त्रिकुटी नाम है रे जोगिया, और ईला पिंगला नार।
जे नारी से भिन्न करे रे जोगिया, तो मतना सुषमण सार।।1।।
बंकनाल नारी कही जे रे जोगिया, है सुरत–नुरत भी नार।
समझ–रमझ नारी कहिजे रे जोगिया, सामरथी कहे वां नार।।2।।
सुन महासुन नारी कही रे जोगिया, सातो सुन भी है नार।

अखे सुन मत जावो रे जोगिया, वही नार की नार।।3।।
गरीबनाथ गुरु देव जी रे जोगिया, कही समाधि नार।
चिमनानाथ इन नार में रे जोगिया, देखा आत्म में दीदार।।4।।

✿ जोगिया ✿

शब्द बनाकर टोरिये रे जोगिया, ओहंग इसका नाम।
हिरदे कमल में चालिये रे जोगिया, घर दसवें में गाम।। – टेर

जीव–पीव भैला होया रे जोगिया, पलट दिया सब नाम।
निराकार निज नाम है रे जोगिया, नहीं धरनी का नाम।।1।।
अखंड अकेला अमर है रे जोगिया, नहीं मरने का काम।
सत में सत समाईया रे जोगिया, नाम रूप नहीं धाम।।2।।
तखत ढलो उस चौक में रे जोगिया, वहाँ बैठा नहीं बूढ़ा नहीं बाल।
अविनाशी उन दोश में रे जोगिया, नहीं औछा नहीं लाम।।3।।
गरीबनाथ गुरू जी मिला रे जोगिया, नहीं राता नहीं शाम।
चिमनानाथ उन को लखे रे जोगिया, नहीं बस्ती नहीं गाम।।4।।

20:33

✿ श्लोक ✿

देह धारी गुरू सगुण है, निर्गुण है निराकार।
जो खोज करे निर्गुण की, सोही भव सागर से पार।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई यह निर्गुण का गैला,
बिन मणको की माला फिर रही, जाँ को लखे सतगुरू का चेला-

कोटि सन्त भांखग्या जगत में, दे-दे कर सत का हेला,
अपना राम लखे घट माही, हर दम तुम संग मेला।।1।।
तीरथ कर मट का व्रत कर भुखा, तूं दुःख आतम रो देला,
आतम देव अमर अविनाशी, समझ नहीं पाया गेला।।2।।
कर सतसंग साख ले कोटी, सींच निर्गुण की बेला,
सोहंग तार सार जुगती से, सतगुरु नित रह मेला।।3।।
गरीबनाथ गुरु मिले निर्गुणी, निर्गुण लखण समझाया,
चिमनानाथ समझ गमधारी, काल-जाल में कबहूँ न आया।।4।।

20:32

✿ वाणी ✿

सतगुरु कुड़-कड़ब ऊलटाई

सुमिरण सीटी तोड़ जुगत से खेत पुंजली लाई – टेर

खट कवल जा खलो भुवारों मन की मेड़ रूपाई

गुरुगम गोधा गाय परे रही भेद भुगरी लाई।।1।।

ईला-पिंगला ताँवो रोपो, सुषमन पवन चलाई,

दम पर दम ऊलटा बन लाग्यो, जदराम लाट घर लाई।।2।।

अब नहीं खुट खर चिया लाग्या, अरब बखरा भराई,

जे कोई आवे डगर हमारी, कमी रहे ना कोई।।3।।

गरीब नाथ जी सतगुरू मिलग्या, ऐसी जुगत बताई,

चिमनानाथ किरसारी जोगी, जब सन्ता मन भाई।।4।।

✿ फकीरी ✿

फकीरी हरि भजन में लाग, झूठा त्याग बेराग।

असल बेराग अभिमत साझे, सब जुग जावे जाग – टेर

असी कठिन फकीरी कहिये, जैसी जलती आग।

नर-नारी तपले उस तप में, जिनक अमर सुहाग।।1।।

ब्रह्म अग्नि में बिरला जलसी, जारा मोटा भाग।

नरक नदी में नुगरा न्हासी, जिनका फूटा भाग।।2।।

ईला-पिंगला ओहम-सोहंग, सुषमन चढ़ी अथाग।

बंकनाल का सीधा मार्ग, ठेट तिरवेणी भाग।।3।।

दसवें जा स्थिर डेरा लगाया, कटी कुबद जम री लाग।

गरीबनाथ गुरु आन चेताया, चिमनानाथ गया जाग।।4।।

✿ श्लोक ✿

सरवर जैसे नीर भरा, वैसे ही आतम राम।

भरम किवाड़ी खोल के, बिन देह का देखो श्याम।।

20:32

गरीबनाथ जी सार्मथ समुन्द्र, अथाग नीर ऊन्डा,
चिमनानाथ तिरण लाग्या, बैठ अखे डुन्डा।।4।।

✿ सन्त महिमा ✿

नायक जाती खेण भक्ति की, भगती करो नर नारी जी,
आद अनादी सन्त कहिजे, मत मानो कोई खारी जी - टेर

नायक जाती नानक नाथ जी, दिनी शब्द सारी जी,
नायक जाति लादुनाथ जी, जग में सत्ता पसारी जी।।1।।
नायक जाति माता तिजा, लादुनाथ घर नारी जी,
नायक जाति गेणशनाथ जी, हो रही जय-जयकारी जी।।2।।

नायक जाति किशनानाथ जी, जुग मुक्ति अधिकारी जी,
नायक जाति जेठनाथ जी, हर भक्ति घट धारी जी।।3।।
मुनीनाथ जी मन के मौजी, बै नायक परिवारी जी,
नायक जाति बेगनाथ जी, कुकर्म बात निवारी जी।।4।।
हर भक्ति नित पालन करके रटो देव निराकारी जी,
विष वैरी की बोतल फोड़ी, अजर प्यारा जारी जी।।5।।
कृपानाथ कृपा के सागर, बाबा ब्रहम भण्डारी जी,
नायक कुल में जन्म लियो जब, भोगी भार उतारी जी।।6।।
नायक जाति लूमनाथ जी, निगुर्ण खेल खिलारी जी,
हार जीत में एक बराबर, समझ जगत में दारी जी।।7।।
नायक जाति घासीनाथ जी, वरणु महिमा थारी जीं,
भजन कियो हर भक्ति धारी, नित गुरुवाँ के लारी जी।।8।।
नायक जाति भूरनाथ जी, जग का भ्रम निवारी जी,
जय-जयकार रहे सतसंग में, गुरू गम भजन उचारी जी।।9।।
नायक जाति पदमा नाथ जी, गुरु गम भजन भण्डारी जी,
निर्गुण शब्द रटयो दिन राती, बने आप निराकारी जी।।10।।
नायक जाति शेरनाथ जी, अमर कलियां लहरी जी,
बाँ घट गंगा गोड़ करत है, भोत किया हंस पारी जी।।11।।
नायक जाति ईशरनाथ जी, बड़भागी शब्द लगारी जी,
त्यागी कुमत सुमत में ल्यागा, निगुर्ण बुंटी जारी जी।।12।।

नायक जाति हीरनाथ जी, हर मैं सुरत तुम्हारी जी,
नायक जाति पुरखानाथ जी, गुण के मुक्त भण्डारी जी।।13।।
नायक जाति धुणीनाथ जी, हर भक्ति तुम्हे प्यारी जी,
नायक जाति मंगलनाथ जी, भक्ति में चित्त धारी जी।।14।।
नायक जाति कुनानाथ जी, कर्ता करत करारी जी,
नायक जाति रूपनाथ जी, रमता शिखर अटारी जी।।15।।
नायक जाति मालनाथ जी, महरम सन्त अवतारी जी,
नायक जाति चुन्नीनाथ जी, आप अमर निराकारी जी।।16।।
नायक जाति सोहननाथ जी, सुरत गीगन में सारी जी,
नायक जाति फुलनाथ जी, हर भक्ति घट धारी जी।।17।।
नायक जाति खीचाँनाथ जी, सार्मथ सन्त सुखारी जी,
नायक जाति बेगनाथ जी, दल मैं ब्रहम विचारी जी।।18।।
नायक जाति काशीनाथ भभकत जोत जगारी जी,
दर्शन किया दरस गयो कष्ण, सन्त निवन अधिकारी जी।।19।।

81

20:29

✿ वाणी ✿

नाथ का सुन लेना हेला,

सुमरन साज शिखर जा बैठा, अधर धार गेला – टेर

सुखमण सारी रास लाडली, कटा कुब्ध खेला।।1।।

हिरा तणो व्यापार करो जब, खूब भया थेला,

नाभ कंवल से श्वांस खिंचलिया, रोम-रोम मेला।।2।।

सतगुरू करले सिमरन भरले, बान्द अगम वेला,

अन्तकाल में चोर लूटसी, छोड़े नहीं धेला।।3।।

गरीबनाथ गुरु देव मिल्या, धूप्या पाप मेला,

चिमनानाथ कुब्ध को पीड़ी, काड दिया तेला।।4।।

✿ वाणी ✿

सैन मोहे सतगुरुवाँ दिन्नी,

दास हुआ जब पास बुलाया, सुध-बुध घर धर दिनी – टेर

प्रथम देव गणेश नगर की, सब बारी अन्त झीनी,

सब सन्ता की कृत लखी, देख डगर लीनी।।1।।

अमर आरती वो नर करसी, सैन गुरु की लिनी,

रट के खेल देखलिया सारा, शब्द साखती किनी।।2।।

समझ सेझ पर निर्भय जागु, धीर धेन हर दिनी,

आत्म अर्ग पियो दिन राती, रोग पीड़ा हर लिनी।।3।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई घट सारन का सारा,

समझो साचा सार बताऊं, देही ने पवन पसारा - टेर

सब पवना का खेल जगत में, देखो अन्दर बाहरा,

बिन पवना कोई काम सरे ना, झूठा हा-हा कारा।।1।।

प्रथम पवना मूल कवंल ऊवंग-सोहंग दो धारा,

इला-पिंगला एक बणाके, सुखमणा सार पियारा।।2।।

बंकनाल होय जोगी चढ़ग्या, दीन्ही चोट नगारा,

त्रिगटी महल में जोत झिलमिल, जैसे आग अंगारां।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मिलग्या, कर दिया भवजल पारा,

चिमनानाथ अखे सुन पुग्या, ना बठे देव द्वारा।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई अब मैं मस्त भया,

अखे सुन मैं आरभ देख्या, जैसा ही आन कया - टेर

ना वहाँ पवन ना वहाँ श्वांसा, ना कोई शब्द रया,

आन-जान का श्वांसां मिटज्या, दु:ख-सुख नाम सवा।।1।।

धरणी-गीगन दोऊं नहीं दरसे, बिन पग बाट बया,

ना कोई रैन दिवस ना दरसे, ना कोई जल्म रया।।2।।

चाँद सुरज दोनूं नहीं दरसे, उग्या न अस्त हुया,

जोत झिलमिल ना कोई दरसे, ना कोई अन्धेर हुया।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मिलिया, बाँ मोटे सार्मथ किया,

चिमनानाथ अखे पद पाया, जुग-जुग अजर रया।।4।।

20:28

✿ वाणी ✿

साधु साचा सिमरन करे,

नाभि लोर उठा है गहरा, गिगना झड़ी करे - टेर

शब्द घटा तो घट मैं बरसे, आन्धा दूर करे,

गुरु का प्यारा अमृत पीवे, नुगरा प्यास मरे।।1।।

गीगना गाज हुई बेपारा, अनहद नाद घुरे,

संसो साज बाजीया मिलके, बिजली चमक करे।।2।।

इला-पिगला दो पणिहारी, सुखमणा होद भरे,

जिनको सतगुरु पुरा मिल गया, बै नित मौज करे।।3।।

गरीबनाथ गुरु मोटा स्वामी, सहज्या मुक्त करे,

चिमनानाथ जात का नायक, हरि संग हेत करे।।4।।

✿ वाणी ✿

सुख पावेगा-सुख पावेगा

गुरु शरण गयाँ सुख पावेगा - टेर

तज आलस अभिमान बड़ाई, जो सतसंग में जावेगा,

गुरु मुख शब्द लगे हिरदे मैं, जम जाल्म भग जावेगा।।1।।

समझ हुई जब सेज समाधि, सोहंग शब्द उठावेगा,

मुनू नैण कान की बारी, जीभ तालवे लावेगा।।2।।

इला-पिगला मार मचोला, सुखमण हीन्ड चढ़ावेगा,

सुरत कामणी चढ़ी भरत पर, जब प्रीतम दर्शावेगा।।3।।

त्रिकुटी में तार लगायो, नुरती बंटन दबावेगा,

दसवां द्वार खुला सब आरंभ, संस जैस जगजावेगा।।4।।

अधर छतर धरणी नहीं गिगना, वहाँ संत जाप समावेगा,

अनभे अक्षर मते लिखिजे, सागी ठोड बतावेगा।।5।।

वहाँ पुगयां न्यारा नहीं भेला, मुड़ जन्म नहीं आवेगा,

अविनाशी कभी नास हुवे ना, रंग रूप नहीं लावेगा।।6।।

गरीबनाथ गुरु लहर समुन्द्र की लहरी-लहर मिलावेगा,

चिमनानाथ रमज सन्ता की, बड़ भागी नर पावेगा।।7।।

20:28

सोहनी शिखर में सेज हमारी, सतगुरु मिलिया लूंठठाँ,
बिन मार्ग बिना पंथ दवेला, चढ़सी अजर अदुठा।।3।।
गरीबनाथ गुरु पुरा मिलिया, बिन बादल झड़ बूठा,
चिमनानाथ कहे भाई साधो, लगे ना मन्तर-मुठठा।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई मैं ध्याई जूँ कहयाँ,
बार-बार अधीन गुरु के, शरण सन्ता की रेस्याँ - टेर

अवछल आसन लाय जुगत से, पांच पचीसूँ तस्याँ,
सांसम श्वास चढ़ो शिखर में, लो मैं लो धर देस्याँ।।1।।
इला-पिगला एक बराबर, राह सुखमणा लेस्याँ,
चढ़ तरबीणी सब जुग निरख्या, दसवें तागो तस्याँ।।2।।
दसवें आगे अखे द्वारा, उण नगरी में रहस्याँ,
अमरनाथ की लाख दुहाई, कुड़ कबु नहीं कस्याँ।।3।।
गरीबनाथ गुरु सत का साखी, गुरु चरणों में रहस्याँ,
चिमनानाथ भजन कर हरि का, राम-राम रट लेस्याँ।।4।।

✿ वाणी ✿

हंसला निरगुण नीर पिलाया,

सत संग में सत प्याला फिरीया, बड़े भाग से पाया – टेर

फिर–फिर तीर्थ करो घणेरा, ना मुक्ति पाया,

घर मैं गंगा गोड़ करत है, धोवो पाप सदाया।।1।।

भेद बिना ई जुग बित्या, अब मोहे अवसर आया,

आहंग, सोहंग का चले हिण्डोला, सुखमन वृक्ष की छाया।।2

शिखर महल में सीसा भलके, सुरता पिलंग बिछाया,

केवल श्याम करत कर पूग्या, समझां सहज बताया।।3।।

गरीबनाथ के चरणां लोटूं, तन मैं तुर भजाया,

चिमनानाथ समझ कर साची, अलख नाथ दरसाया।।4।

✿ वाणी ✿

मना तूं ऐसी सैल करी,

सत्य धर्म का हेला मारी, पाप दूर परी – टेर

सतसंग साबुन साच को पारो, सतसंग निर धरी,

धोले दाग राख मत बाकी, करदे मैल परी।।1।।

धुपज्या पाप पवित्र होज्या, लागी लग्न खरी,

राजा रामचन्द्र सा तिरिया, निचा कुल सिंवरी।।2।।

✿ वाणी ✿

गुरु गम लख्याँ सरे मन मेरा-मेरा

सोहँ श्ब्द सार जुगती से, जब निज काम सरे – टेर

तज आलस अभिमान बड़ाई, दुरमत दूर परे,

पन्थ-मत एक बना जुगती से, जब जम चोट टरे।।1।।

सहने-सहने नाभ कंवल से गिनना भरत भरे,

ईला-पिंगला एक हुवे, जब सुखमण बंक सरे।।2।।

तरबीणी तपस्या का आसन, जे कोई तप करे,

देखत जोत मौत डर भागे, फिर ना जन्म मरे।।3।।

संसों साज बजे उण घर में, सून-सून कैल करे,

नूरत-सुरत कहने में आगी, पिये संग रमण करे।।4।।

सतगुरु देव शिष्य सुर ज्ञानी, गुरु चरणां शीश धरे,

चिमनानाथ लख्या उण घर ने, गुप्त भण्डार भरे।।5।।

✿ वाणी ✿

सन्तो भाई निज मन जोड़ लिया,

आत्म का निरवाल किया, जग से मुख मोड़ लिया – टेर

काम क्रोध कल्पना डोरी, झटके तोड़ दिया,

काल मौत नेड़ा नहीं आवे, जम का सिर फोड़ दिया।।1।।

श्वांसां खेंच शिखर में चढ़ग्या, सून में दौड़ लिया,

धरा असमान मण्डत चिन्ह नाहीं, सब ओड़ किया।।2।।

सुन-धुन मिटी, मिटया सब आरम, ना मुझे बोड़ किया,

अधर छतर छयाँने नहीं चोड़े, अमर लोक लिया।।3।।

सब सन्तो के शरणे ल्याग्यो, गुरू गम ज्ञान लिया,

गरिबनाथ जी सतगुरु मिलिया, ज्यूँ इन्द्र गोड़ किया।।4।।

कृप्या करी गुरू देव, मेरे को शब्दा चोट दिया,

चिमनानाथ की कर बिन माला, मत कोई झोड़ किया।।5।।

20:25

✿ वाणी ✿

सन्तो वा-वा भेख तुम्हारा

कैसे लखी आत्मा तुमने कैसे किया विचारा – टेर

मोहे बताओ जाण पड़ी जूँ, ले ल्यूँ चरण आधारा,

जो आत्म की करे खोजना, तन मन अरपूँ सारा।।1।।

आत्म रूप अचल अविनाशी, लखसी लग्नी वारा,

सतगुरू बिना पचो दिन राती, कोटि पच-पच हारा।।2।।

श्वांसों-श्वांस उश्वांस शिखर में, ले नाभि से सारा,

बंकनाल तिगृटि सारे, जब मचिया ब्रह्म कारा।।3।।

पलटे जीव ब्रह्म संग भेला, जब आत्म हो थारा,

चिमनानाथ कहे सत मानो, जब मिटसी बेकारा।।4।।

✿ वाणी ✿

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

सन्तों गत से राम रिझाया,

अवगत सैन रटी दिन-राति, जब हम सन्त पद पाया - टेर

महरम माला आद अनादी, मन मिणका ठहराया,

कुकर्म धुप हवन कर दिन्या, भुर्ती शंख बजाया।।1।।

तन मन्दिर में ओंवग, मूर्ति, खेच शिखर में लाया,

सांसा सालगराम सकल में, सोवंग दर्शन पाया।।2।।

आदी कंर्ता प्रणायाम की, अनभे खोज लगाया,

हद में काल पकड़ बन्द किया, बेहद आप रहाया।।3।।

अमर नाथ से जाकर मिलिया, ना मरने में आया,

नाम रूप तो है नहीं मेरे, ना कोई काया-माया।।4।।

गरीबनाथ जी सतगुरु मिलिया, हे सुर्गुण दर्शाया,

चिमनानाथ सन्तों के शरणे, उत्तर प्रश्न गाया।।5।।

✿ वाणी ✿

प्रेमी लोगो गत प्रखण से न्यारी,

झूठी परख करे गत हिणी, नहीं मिलता किरतारी - टेर

गुरू गम गति मति दृड़ राखे, गुरु ने शिश निवारी,

निर्गुण डोर फोर जुगती से, श्वांस-श्वांस निराकारी।।1।।

निर्गुण डोर नाम से चाल, जीभ तालवे हेरी,

ईला-पिंगला एक बना के, सुखमण झोटा लेरी।।2।।

श्रवण बन्द उलट नैत्र नै, तृगटी पंथ परिवारी,

झिल-मिल जोत निगे कर निरखी, सोहनी शिखर घड़मारी।।3।।

गरीबनाथ गुरु मोहे पढ़ाया, जद छुटी बकवारी,

चिमनानाथ बंकूँ नहीं फेरूं, मौन रहूं मन मारी।।4।।

20:23

साधो भाई अब निर्मल तन किना

काम क्रोध मिटा कर सारा, श्वासं शिखर मैं दीना - टेर

खेंचूं श्वांस नाम से सारा, जीभ तालवे दिना,

कान किया बन्द नेत्र उल्टा, तृकुटी तप किना।।1।।

इला-पिंगला दो सुर चाले, एक सुखमना किना,

जे कोई चले जोग के मार्ग, प्रगट हेला दीना।।2।।

संन्सों साज घुरे दिन-राती, राग किया मुख बिना,

बिना नैण ज्योति हम निरखी, जब निस्ते कर लीना।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मिलिया, अमर पटा लिख दीना,

चिमनानाथ अखे अविनाशी, नहीं मरना नहीं जीना।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई मैं कुकर्म का त्यागी

कुकर्म करूं रहूँ नित न्यारो, ऐसी पूरबली जागी - टेर

गुरु गम गति मति का मोटा, गुरु कर्ता का पागी,

करोड़ो कर्म छिपे पल भर मैं, सुरत शब्द में लागी।।1।।

सांसों श्वास श्वास पलटावे, साख करोड़ो लागी,

कोटि सन्त चढ़या इन मार्ग, इल-पिगला थागी।।2।।

सुखमणा साज सही सत माने, जै सुखमणा घर लागी,

आसा तृष्णा दुब्धा कल्पना, हट गी नारी नागी।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरु मिलिया, बै जोगी बड़ भागी,

चिमनानाथ लख्या बा सैरी नहीं गृहस्थी नहीं त्यागी।।4।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:23

वाणी

सन्तों मैं यूँ कर माला फेरी

आसन एकान्त दृढ़ इन्द्रा नै, जद निरखी ब्रह्म चेरी - टे

सखन मुन्द उलट नेत्र ने, जिम उलट निज गैरी,
शनैः शनैः सार शब्द ने, गंग सुखमना गैरी।।1।।
बंकनाल का बां मार्ग, जा तरबीणी ठैरी,
दसवें आगे करूं पियाना, हरिजन भेद लखैरी।।2।।
बंशी बिण मोहनी बाजे, रिम-झिम जोत जगेरी,
बिना अक्षर का वेद बांचीया, कोटि साख लगैरी।।3।।
दर्शन किया मग्न भई काया, हाथ पांव नहीं देहरी,
रंग बिना रूप रमा उन मांहि, जन्म मरण नहीं लैरी।।4।।
गरीबनाथ जी सतगुरू मिलिया, निर्गुण माला फेरी,
चिमनानाथ वृक्ष निर्गुण का, अमर कलियां लहरी।।5।।

वाणी

सन्तों भाई अब निर्गुण फल पाका

खांवत आम अमर भई काया, समझ पड़ी उन चाख्या - टे

निर्भय भया कल्पना मिटगी, उड़ गया हंस परा का,
अगम पुरी में उड़कर आया, देख्या देश संता का।।1।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

20:21
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

✿ वाणी ✿

साधो भाई ऊपर की दर्शाऊँ

मण्डीया मण्डप काल की पुजा, नहीं मण्डप में आऊँ - टेर

धन आकाश लोक नहीं दरसे, पर बिना पक्षी उड़ाऊँ,
इला, पिगला राम सुखमणा, ना कोई बंक चढ़ाऊँ।।1।।
ओम सोम की माला छोड़ी, ना कोई जाप जपाऊँ,
तिृगटी, भृगुटी, ध्यान धरूना, ना दसवें जस गाऊँ।।2।।
देह नहीं अधे विधे नहीं मानूँ, ना कोई आऊँ जाऊँ,
रंग रूप रणुकार बिना, उन घर मैं रमण रमाऊँ।।3।।
अब के बकूँ लखूँ के आगे, देखी सो दर्शाऊँ,
चिमनानाथ लहर की बांता, लहरी के मन भाऊँ।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई जब हम भेख सझाया

निराकार निरजाम निर्देही, अनलख लखत लखाया - टेर

ना कोई जपूं नहीं दरसे, तेर मेर नहीं काया,
हल्का बोझ सोज नहीं लागे, अखण्ड परे थिर थाया।।1।।
अचर छतर छवि नहीं दरसे, छिपा ना दर्शन पाया,
निराकार ऊँकार कछु नहीं, मिल्या पतंगाँ मायाँ।।2।।

20:21

✿ वाणी ✿

प्रीत प्रीतम से लागी है

ईला-पिगला बीच सुखमणा, नार जग्गी है – टेर

लगनी दासी सागे लेली, कर्ता लागी है,

जितनी नार कुब्ध कर खोती, सब शुद्ध होगी है।।1।।

✿ वाणी ✿

ज्ञान गुलाल उड़े घर म्हारे, आया सन्त निराकारी जी,

नगर भदावो हो सतसंग रो, आय सुनो नर नारी जी – टेर

बुढ़ा, बाला, नर और नारी, जति-सति नर नारी जी,

जा सन्ता का दर्शन पावो, होज्यावो भव जल पारी जी।।1।।

गुरु मुख शब्द मान सन्ता का, संत मोक्ष अचिकारी जी,

जल्म-मरण दु:ख सांसो मैटे, करदे मुक्ति तुम्हारी जी।।2।।

आसन एकान्त जमाकर बैठो, मून्द कान की बारी जी,

खेचों श्वास शिखर में चाढ़ो, शब्द सुरत के लारे जी।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरु मेरे, शीश चरण दिया डारी जी,

चिमनानाथ ने मार्ग बताओ, नहीं त्यागी घर वारी जी।।4।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

17:44

✿ वाणी ✿

नाथ की आ गीन्डी भारी

गोरख नाथ कबीर खेलग्या, सब सन्ता धारी – टेर

लाधुनाथ जागिया जोगी, बाँ गीन्डी धारी,
चार कूण्ट में खेल रचायो, घर-घर में डारी।।1।।

गुरू गम गीण्ड मण्डी जण लाग्यो, सुखमण डोर सारी,
इला पिगला एक बणा कर, ज्ञान गेड मारी।।2।।

धरा गिगन का पांणा राख्या, धूम-धाम भारी,
बंकनाल में टोरा लागे, शब्द चोट प्यारी।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मिलिया, दड़ी शिखर जारी,
चिमनानाथ खेलियां गीन्डी, कबु नहीं हारी।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई ऐसा ज्ञान सुनाया

जीभ होठ का ज्ञान सन्ता के, कबुहै न प्रश्न आया – टेर

ऐसा ज्ञान करो मेरे अवधू, नाभी शब्द उठाया,
इला, पिगला निरत करत है, सुखमण सेज बुलाया।।1।।

सुन की सैरी सन्ता खोली, अरा उरद उल्टाया,
सोहनी शिखर में घुरे नगारा, चढ़ जोगी सुन पाया।।2।।

बेगम नगर बावड़ी कहिये, वहाँ मोटे अमृत पाया,
भोन्दूं लोग भरम गढ़ चढ़ग्या, सन्ता देश दिखाया।।3।।

बेगम देश देख हर्षाऊँ, ऊपर शहर बसाया,
गुरु चरण में हुआ दीवाना, जन्म-मरण मिटाया।।4।।

गरीबनाथ मोहे सतगुरु मिलिया, ऐसा देश दिखाया,
चिमनानाथ रमूँ उण घर में, मुड़ जल्म नहीं आया।।5।।

✿ वाणी ✿

हंसला ऊँच नीच के बाणी

रल-मिल के भगवान सुमरलो, तज दो खेंचा तानी - टेर

परा प्रसन्ती, मधा, बैखरी, सब सुखमण की कहानी,
सुखमण लख्या सहज घर पूग्या, ज्याकी अजर निसाणी।।1।।

पाँच तन्त पच्चीस प्रकृति, आठ काठ की ढाणी,
सुरत शब्द खोजो घट मांही, जिनकी खेंच कबाणी।।2।।

नाभि हिड़धे, कण्ठ कंवल, जा तरबीणी जाणी,
अद्भूत रूप पिये निरखो, सत में सेज लगाणी।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरु मिलिया, दुरमत दूर भगाणी,
चिमनानाथ कहे चन्द्रावल, राम भजन सत जाणी।।4।।

✿ वाणी ✿

मूर्ख मन सोच रे भाया, भजन से टलज्या जम दाया - टेर

मुझे जम लेने को आया, मेरे गुरु देव छुटवाया,
बचा दी जान जालम से, प्याला प्रेम का पाया।।1।।

लहर में पिव दर्शाया, तृगुणी छोड़ दी माया,
आप में आप बण आया, पता नहीं कौन कथ गाया।।2।।

पता नहीं राम की माया, पता नहीं कृष्ण घर आया,

✿ वाणी ✿

सुर ताल सुरसती मात का, दंगल में कृपा किजिये - टेर

दंगल-मंगल मात जाऊँ, कर जीभ्या पे वास तेरा,
रोज मिति ध्यान धरके, करूंगा अभ्यास तेरा,
ज्ञान-ध्यान मान मेरा, करूंगा दंगल में गैहरा।
सुर दे हमे माता सरस्वती, ज्यों अमृत प्याला पिजे।।1।।

ज्ञानी-धानी संत सुजानी, चारु वेद और चारुं बानी,
सरस्वती का ध्यान धरके, पा लिया है पंथ निर्वानी,
भाई-बाई बहन सुन लो, काया के कल्याण जानी।
पुन भजन करो ईकसार तुम पुनः किये बिना दुःख नहीं छिजे।।2

गुरु अर्पण काया चरणों में शीश दिजै,
अवछल आसन की कुन्ची, सतगुरू से तुरन्त लिजे,
नौऊँ द्वार बंद करके, दसवें में सैल किजे
उल्टी पवन पल्टाय के, निर्भय सैल करीजे।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मेरे जुग-जुग मैं गुण गाऊंगा,
श्वास-श्वास और पल-पल सतगुरू आपका दर्शन पाऊंगा।
जाति नायक नैम करूंगा, ना कोई और बताऊंगा,
चिमनानाथ सुरस्ती ध्याय के फिर उनमें कथन करीजे।।4।।

17:42

पांचू पकड़ पचीसूं निर्गुण शब्द सुनाना रे।।2।।

ईला-पिंगला साज सुखमणा, श्याम मिलाना रे,

अब छल आसन लाय, प्रीतमा पास बुलाना रे।।3।।

संगत शब्द का होद, साध सब मल-मल नहाया रे,

नहा लिया चिमनानाथ बिना जिम्या जस गाना रे।।4।।

✿ वाणी ✿

गवरी पुत्र गनेश का नित ध्यान धरे बड़ भागी - टेर

गवरी पुत्र गनेश को मैं नित उठ ध्याता हूँ।

सुन मुख दर्शन कर मुक्ति को पाता हूँ,

गनेश को मनाये बिना, अन नहीं खाता हूँ,

तुम सुण्डाला नाथ जी, मोहे आन मिले हो सागी।।1।।

गनेश कहे मुझे रोज मनावे, तो मैं उन घर आता हूँ,

अन्न-धन लक्ष्मी सम्पति ले के, रिद्ध-सिद्ध को भिजवाता हूँ।

नित उठ आनन्द मंगल गावे शोक नहीं दर्शाता हूँ,

जो सुण्डाला ध्याय सी, ज्यारी भगती पूर्वली जागी।।2।।

काया में गनेश कैसे, आपको दर्शाऊँ गा,

आपान में सामान लेके, प्राण में मिलाऊँ गा।

बयान से उदान तक, शीश मैं चढ़ाऊँ गा।

सब रणुकार में रूप है, आत्म मैं डोरी लागी।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मेरे, नित उठ शिश निवाऊँ गा,

ज्ञानी-धानी सन्त सुजानी, सत्संग में सुख पाऊँगा।

बाद विवाद कछु नहीं करता, तुरन्त मौन कर जाऊँगा,

चिमनानाथ की नित सुरत सतसंग के म्यांही लागी।।4।।

सब सन्ता गुरु कृपा करके, भेज दियो मोहे शब्द को ढेलो,
गरीबनाथ दियो अगम को हेलो, चिमनानाथ सुजान लखेलो।।4।।

✿ वाणी ✿

संगत सुख पालखी जी कोई चढ़ सी संत सुजान,
जो नर चढ़या इन पालखी, ज्यारो मिटग्यो-आवा जान। - टेर
लगन-मग्न डोरी, बनी जी, कोई बण दी रेशम बाण,
गुरु मुख हो सो पोडसी, कबुह न होती हाण।।1।।
रमज-समझ सखीयां मिली जी, नूरत-सुरत मिल जाण,
इला पिगंला भेली हुई, सुखमण चढ़ी घमसाण।।2।।
प्रीतम पायो निज आप में जी, रल मिल मंगल गाण,
जीव ब्रह्म एको भया, ना कोई दो दरसाण।।3।।
गरीबनाथ गुरु भेटिया जी, कोई दिन्ही शब्द की जाण,
चिमनानाथ गुरु चरण में, सब संतों में माण।।4।।

✿ वाणी ✿

संगत में जा मिलो जी, कोई नर नुगरो बेकाम,
नुगरे नर को ना मिले जी, कोई मोक्ष को निज धाम - टेर
सतसंग धारा हरि के नाम री जी, कोई नित उठ हर को नाम,

दसवें ऊपर सैल करी, सेहजा काम सरजी,
हाल हुक्म कछु नहीं चाले, ना रिश्वत गरजी।।3।।
गरीबनाथ बड़ भागी मिलिया, शिष्य सुरो नर जी,
चिमनानाथ सन्तों की कृपा, लियो सागी घर जी।।4।।

✿ वाणी ✿

सतगुरु आज संगत मोहे त्यारे,
कर कृपा गुरु मुख सब मिलिया, मैं शरणे कीर तुम्हारे - टेर

आन ब्रह्म की कथा सुनाई, जीव भाव गुरु टारे,
दे उपदेश शब्द गत दिन्ही, मैं सतगुरू लारे।।1।।
दिन और रैन धनाधन लाग्या, शब्द सुखमणा जारे,
अरा ऊरद निसते कर ज्याणा, ईला पिंगला इक सारे।।2।।
श्रवण नैन खूब बन्द किन्हीं, जीभ खूब खंचंकारे,
शनै-शनै श्वासं चलत है, तृिकुटी तम भारे।।3।।
सोहनी शिखर में जोत जगत है, सत्य वचन गुरां रे,
चिमनानाथ अटल धुन म्यांही, देख्यां आरब भारे।।4।।

15:03

✿ वाणी ✿

जय सतगुरु प्यारा

तन-मन भेंट करुँ नित थाने, तुम त्यारण हारा – टेर

आसन इकान्त जमाकर बैठूं, कर कब्ज सारा,

मुन्दुं नैन कान की बारी, लगे चरण सहारा।।1।।

सेजे प्राण, अपान के भेली, ब्यान समान उदान सारा,

पांचूं पवन मिलाकर खेंचूँ, ले सुखमण सहारा।।2।।

बकंनाल भर चलो शिखर में, छोड़ो काल कारा।

दसवाँ द्वार खोलकर, ऊपर राज हमारा।।3।।

गरीब नाथ गुरु गम दिन्ही, दिया शब्द भारा।

चिमनानाथ कत्ल कर दिन्ही, काट बन्धन सारा।।4।।

✿ वाणी ✿

सुनी गुरु शिष्य की अरजी

आप इन्द्र अमर के राजा, ब्रह्म घटा गरजी – टेर

आठुं याम बिजलियां चमके, सावण लूम लरजी,

नित उठ रोज ईमी की झड़ियां, सुखम होद भरजी।।1।।

बंकनाल भर चालण लाग्या, काल फौज टरजी,

जा दसवें में बास किया, अब मोरी मरजी।।2।।

दसवें ऊपर सैल करी, सेहजा काम सरजी,

हाल हुक्म कछु नहीं चाले, ना रिश्वत गरजी।।3।।

गरीबनाथ बड़ भागी मिलिया, शिष्य सुरो नर जी,

चिमनानाथ सन्तों की कृपा, लियो सागी घर जी।।4।।

15:03

हाँ जी कोई डांडी में रखता काण।।4।।

सत को कांटो ऐ सहियो सतगुरु दे चला जी,

हाँ जी कोई रति न चाले बाण।।5।।

साँसाँ को सौदो ऐ सहियो सतगुरु दे गया जी,

हाँ जी कोई बोलो दिन और रात।।6।।

सांसां को सोदो वो सतगुरु कठे मिले जी,

हाँ जी कोई कुण खरीदण ने जाय।।7।।

सांसां को सोदो ऐ सहियो घर में मिले जी,

हाँ कोई समझ खरीदण जाय।।8।।

आवण-जावण वो सतगुरु राय किसा जी,

हाँ कोई कुण पुगावण जाय।।9।।

ईला पिंगला ऐ सहियो राह पड़ा जी,

हाँ कोई बंकनाल चढ़ गया।।10।।

नभ तृगच्चाँ ऐ सहियो प्रीतम बसे जी,

हाँ जी कोई सुरत मिली जब जाय।।11।।

सुरती शब्द ऐ सहियो भेला हुआ जी,

हाँ कोई दुब्धा गई है विलाय।।12।।

अखे मण्डल ए सहियो ऊँचो घणों जी,

हाँ जी कोई लिन्ही सेज बिछाय।।13।।

निर्भय चंवर ऐ सहियो ढुल रयो जी,

हाँ कोई सोवे निर्भय जाय।।14।।

आन जान को ऐ सहियो दुःख नहीं जी,

हाँ जी कोई ना बैठ श्वांस शरीर ।।15।।

गरीबनाथ गुरु जी मिल्या ऐ सहियो, मिल्या आप निराकार?

चिमनानाथ निर्भय किया ऐ सहियो सब सन्ता मन भार।

15:02

✿ वाणी ✿

मनवा सतगुरु शरण सिधारो

जन्म-मरण की मरज मिटाओ, गुरु गम बुन्टी जारो - टेर

सतगुरू ओष दियाला अनादी नित उठ नब्ज दिखाये,
ज्ञान औषधि नित उठ बांटो, मिटे काल को कारो।।1।।

नाभि कमल से सेज सुखमणा, बंकनाल घर थारो,
तप तरवीणी हो मस्तानो, छोड़े जगत बिहारो।।2।।

गरीब नाथ जी सतगुरू मेरे, पार कियो हंस म्हारो,
माणक मोती बरसे संगत मैं, चिमनानाथ चुगारो।।3।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई ऐसा सतगुरू किन्हा

ज्ञान पालणे माँय बैठाया, सतसंग झोठा दिन्या - टेर

शील, सन्तोष की डोरी बान्दी, ईला पिगला सुखमणा तिनया,
जन्म-मरण का बन्धन काटा, शब्द प्याला पिन्या।।1।।

गीगन मण्डल में ढोल ढयाया, नूरत-सुरत सुन लिन्या,
गरीबनाथ गुरु तारन वाला, चिमनानाथ तिर लिन्या।।2।।

15:01

✿ वाणी ✿

गुरु मोहे किया याद भारी

कोटी जुग पिछड़े ने हो गया, अब लिन्या तारी – टेर

याद किया अलबेली जागी, थाँ सरणे म्हारी,

लागी लगन मगन भई सुरता हो आज्ञाकारी।।1।।

लागी रमज, समजझ के माहिं, हटी नींद दारी।

कलह कल्पना दुरयत दुतिया, हाथ जोड़ जारी।।2।।

काम क्रोध कुब्ध सब छुटी, निर्मल देह म्हारी।

कर कृपा अविनाशी परसा, नित हो सुखकारी।।3।।

गरीबनाथ गुरू देव मिल्ला, पकड़ भूजा म्हारी।

चिमनानाथ तिरा भव सागर, निकलंक अवतारी।।4।।

✿ वाणी ✿

सत गुरु श्याम राम से मोटा,

बिन सतगुरु मर जाता जी,

शब्द दियो मेरे सतगुरू सामर्थ रोम-रोम रम जाता जी – टेर

चढ़ ज्या शब्द गीगन गरणायां, रिम-झिम राम सुनाता जी।

ईला पिंगला करे आरती, सुखमणा श्याम मिलाता जी।।1।।

गुरु गम ज्ञान गुप्त में दिया, बिन मार्ग चढ़ जाता जी।

बंकनाल की डगरी चढ़िया, सब कारज सर जाता जी।।2।।

अमर किया मरण सब मेटा, फेर जलम नहीं पाता जी।

जिसको सतगुरु सार्मथ मिलग्या, वो ही अमर फल खाता जी।।3।।

गरीबनाथ गुरु सार्मथ मिलिया, विष अमृत कर पाता जी।

चिमनानाथ चरणों में लोटे, सन्ता के मन भाता जी।।4।।

15:00

वाणी

नित उठ मैं तुम्हें याद करुं तुम बहुत दिनों से आये – टेर

पाँच सात सखियां मिले, रोज तुम्हें याद करती,
आज काल परसूं करके, आपस में विवाद करती,
आज आवे काल आवे, चरणों सामें शीश धरती।
हंस-हंस के आनन्द मदारती, गुरु आये जी गुरु आये ।।1।।

गुरु के निमित काया, भेट दूंगी धन माया,
भाग मोटा सतगुरु आया, सूते जीव को आन जगाया,
शब्द का प्याला पाया, करदी सुखी निर्मल काया।
दुब्धा को दूर हटाय दी, घट आत्म देव बताये ।।2।।

गुरू की बताई करले, श्वास में विश्वास धरले,
नौऊँ द्वार बंद करले, दसवें माही अजर जर ले,
भाल में परख करले, दिष्ट में अडिष्ट धरले।
अन ईच्छा अन रूप है, जग कारन रूप धराये ।।3।।

गरीबनाथ गुरू देव आये, बालद भर के मोक्ष लाये,
देस-देस फेरी फिरीया, कहीं ना विश्राम पाये,
नुगरों की देख सभा, जोगी के मन शोक छाये,
चिमनानाथ शिष्य भरपूर है, चिमना सागर बोद बनाये।।4।।

14:59

आरती जय सतगुरु स्वामी

जब उपदेश दिया तुम मुझको हरी नींद कामी - टेर

प्रथम देव गनेश मनाऊँ, विघ्न दूर थामी,

रिद्ध-सिद्ध नार तुम्हारी कहिये, नित मंगल गामी ।।1।।

नाभ कमल से पवन चली जब, लिनी डगर लाम्बी,

नौ द्वार बंद कर राख्या जा दसवें थामी ।।2।।

बंकनाल सुखमणा सारी, नव तृगटी सामी,

हल बल जोत जगे नित प्रति, अखण्ड नाद धुरामी ।।3।।

नुरत, सुरत परखारी, परखों अंतरयामी,

देह बिना दरसे नैन बिना निरखे ऐसी अजब धामी ।।4।।

गरिब नाथ गुरु देव अविनाशी मरन नहीं जामी,

चिमनानाथ शिष्य पद दिन्यो, आवे सब कामी ।।5।।

✿ आरती ✿

आज म्हारे घर आया श्री भगवान,

अमर जोत झीला-मिल जागी, सब सन्तों ये माना - टेर

गुरु देव की करूं आरती, वीणा ढोल धुरान,

हिरा मोती भेंट धरूं में लूंग सुपारी पान ।।1।।

शंख नाद घड़ियाला बाजे, सखीयां मंगल गान,

महर हुई जब गुरु देव की, आत्म देव जगान ।।2।।

आनन्द भयो नगर में भारी, आये सन्त सुजान,

ज्ञान गुलाल उड़ाई भारी, खोली नाम की खान ।।3।।

गरिबनाथ गुरु देव पधारे, दिन्ही सुमरन ज्ञान,

चिमनानाथ पुरबली जागी, घर बैठे पद पान ।।4।।

सोहनी शिखर में सेज बिछाई, कटी चौरासी पल मांही,
काल मोत नेड़ा नहीं आवे, सिमरन तोप सटकाई ।।3।।
गरिबनाथ गुरू सामर्थ स्वामी पार किया नहीं अटकाई,
चिमना नाथ मिले सतगुरू में बार-बार नहीं भटकाई ।।4।।

✿ आरती ✿

आरती गनपत देव मनावाँ,
ना कोई सेवा पूजा उनकी, ना कोई ढोल बजावाँ - टेर
आसन अवछल सेज हमारी, मूल कंवल बन्द लावाँ,
खेंच प्राण उल्ट घर माही, रोम-रोम गरणावाँ ।।1।।
इला पिंगला बादल बरसे, सुखमण होद भरावाँ,
नहा-नहा संत पवित्र हो गये, फेर मेल नहीं लावाँ ।।2।।
तरबीणी में तप कर जोगी, आगे तार लगावाँ,
उनके आगे अधर छतर है, सुन जाय समावाँ ।।3।।
गरिब नाथ गुरु साची शिक्षा, ना कोई और मुलावाँ,
चिमना नाथ सकल (संसार) से न्यारा, संता में सुख पावाँ ।।4।

नाभ कमल से चलो सुन्डाला, सुखमण कुंची फोर।
अणम ज्ञान अगम से बरसे, ज्यूं सावण का लोर।।
रिद्ध-सिद्ध नारी आज्ञाकारी, दियो भण्डारा टोर।
तीन लोक में तुमसे मोटा, ना कोई दिखे और।।
गरीबनाथ जी सतगुरु मिलिया, सब सन्ता को जोर।
चिमननाथ गजानन्द ध्यावें, बैठा दुब्धा खोर।।

✿ वाणी ✿

ओ गणेश मानो साधो, घर में बसे निरालो रे-
शिव शंकर को पूत बली, गोरा जी को निर्मल बालो रे- टेर

मूल महल बसिवान कहीजे, गिगन उसी को चालो रे।
आतम पकड़ गिगन में, संग तैतीसूं जालो रे।।1।।
इला पिगंला हाजर दासी, सुखमण हो मतवालो रे।
खेंची डोर लोर गरणाया, ईन्द बरसालो रे।।2।।
सुरत शब्द को होद, गिगन सिमरन भरवालो रे।
नि कलंक करो शरीर, साध सब मल-मल नहालो रे।।3।।
जम से छुटी ज्यान, काल से दे गयो टालो रे।
गुरू मिल गया गरीबनाथ, हाथ में सुमरन भालो रे।।4।।
चिमननाथ चरणों में लोटे, संता को बालो रे।
श्वास शब्द ने कुड़ करे, ज्याने काल खालो रे।।5।।

✿ गणेश महिमा ✿

गजानन त्यार मुझे मतवाला-

सुनमुख सेरी खोल गगन में तोड़ भरम का ताला - टेर

गनपत गदी मूलमहल में, बैठा सुन्ड सुन्डाला।

रिद्ध-सिद्ध का भण्डार मुक्त कंथ, बिराजो देव निराला।।

बंक नाल होय बेहद चालो, बिन पग बेहद चाला।

साचा मोती खरा करालो, तरबीणी टकसाला।।

जितना श्वांस समाधि लाग्या, जितना साच लिखाला।

गुरू बताया देव गजानन, शिव शक्ति का बाला।।

गरीबनाथ जी सतगुरु मेरे, तन में अमृत डाला।

चिमननाथ मार जम वैरी, मार शब्द का भाला।।

✿ वाणी ✿

गजानन्द प्यारा थे मिठां मिष्ठान,

ना कोई खांड खोपरा मिठा, ना कोई बन का बोर- टेर

ना कोई मन्दिर, मालिया मीठा, ना कोई मामा होर।

ना कोई किला कचेड़ी मिठा, ना कोई जादू जोर।।

हिरा मोती ना कोई मिठा, ना कोई लाँ लाँ मोहर।

धन परिवार नहीं कोई मिठा, नहीं अभिमान अकोंर।।

14:52

सतगुरु शब्द दीनों, मैं चौकस होकर लीनों।
अब सुधरयो है जीनों सा, सुखी आठो पौर॥1॥
खूब लगी है आशा, भूलुं नहीं श्वांस उश्वांसा।
मेरे घट में भया प्रकाशा रे, मिट्यो अंधारो घोर॥2॥
गुरु पारखी नग परखाया, मेरा तन मन भेंट कराया।
मेरे उर में आनन्द छाया रे, मैं मान्यो हो और॥3॥
श्री सुखरामदासजी सागर, तोलूदास गुरु गागर।
दरस्या नटवर नागर रे, नत्थु पीवे जल कोर॥4॥

(31) भजन राग-आसवरी

घोड़ी म्हारी सदर रास्ते बगरी।
विवेक वैराग्य कसणा कसके, आसक्ति तज दी जगरी॥ टेर॥
धीरे-धीरे मस्ती से चाले, खोज मंडे नहीं मगरी।
नुगरों नरों से नहीं ढ़बेली, वृत्ति घोड़ी पगरी॥1॥
इस घोड़ी पर वही नर चढ़सी, जाने घोड़ी की रगरी।
कायर सवार बहुत से पटके, लुच्चा लफंगा ठगरी॥2॥
गमन हुई जब से ठीक गति चाले, बगे मोक्ष की डगरी।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति छेकी, तुरिया समीप लगरी॥3॥
तोलूदास गुरु मिला ब्रह्मवेता, बात बताई सगरी।
नत्थुराम सवार है पक्का, जा घाली ब्रह्मनगरी॥4॥

(32) भजन राग-हरियाणा

रूम-रूम में रम रहा, मेरे घट-घट वासी रे।
पल-पल दर्शन पाऊं, गया तिमर नाशी रे॥ टेर॥
एक क्षण होवे नहीं न्यारो, रहे इकरासी रे।

(26) भजन राग-आसावरी

साधो भाई ऐसी सत्संग साजी।
संत की संगत से सोजी होई, सैन सुणाई गुरां ताजी ॥ टेर ॥
बिना रकम एक वीण खरीदी, झिणी-झिणी आवाजी।
ओम सोहं का लाया पैरवां, दसवें जाके बाजी ॥1 ॥

इडा-पिंगला मारा फुंकारा, जाय गगन घर गाजी।
पीव सुषुमणा एक भया जब, मनवो होयो राजी ॥2 ॥
पाँच पचीसु करके एकता, निकल गये सब भाजी।
ज्ञानी-महात्मा सैन बतावे, ये विधि कहता काजी ॥3 ॥
तोलूदास मिल्या गुरु पूरा, दिनी भक्ति माजी।
ज्ञान प्रकाश भया म्हारे उर में, अब सुखी नथाजी ॥4 ॥

(27) भजन राग-आसावरी

होरी सत मान ले मौरी।
मोह मलेच्छ त्याग परेरी, जब होवेली सोरी ॥ टेर ॥
श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, नासिका जोरी।
मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंखुरी, त्याग तत्व यह नो री ॥1 ॥
काम, क्रोध, लोभ संग लागी, यह रह्या तन खो री।
तेरे पति ने आप भूल गई, जब तुम भव भटको री ॥2 ॥
रिपु-दल को पीठ देकर, सुखी होज्या गौरी।
भज सेवायाम धातु से भक्ति अर्थ, सोहं मणी का पोरी ॥3 ॥
तोलूदास गुरु कृपा करके, भरदी विद्या की बोरी।
नथुराम अब जोर जुग-जुग पाणि शांति पा ले होरी ॥4 ॥

(28) भजन राग-जोगिया

14:50

इन्द्रि नैना, समझ कर बहना, सन्तों का दर्शन पाऊं।
सोच समझ कर रखुं पावण्डा, धरती भार ना हो जाऊं॥1॥
इन्द्रि नाक करूं दिल पाक, इड़ा पिंगला मिलाऊं।
असंख्य युगों का आवरण ताला, सोहं कुंची से खुलाऊं॥2॥
इन्द्रि रसना, सब के वस ना, विषयों से पलटाऊं।
मनुष्य जन्म को अवसर मिलियो, चेतन में मिल जाऊं॥3॥
त्वचा इन्द्रिय स्पर्श विषय, गैन खाडा में गिराऊं।
इन्द्रि कान, शब्द का बान, मृगों को न मराऊं॥4॥
पांच इन्द्रियों का पांच विषय, शब्द स्पर्श गंध बताऊं।
नथुराम रूप रस पांचो, भिन्न-भिन्न कर आकुचाऊं॥5॥

(7)भजन राग-पूर्वपदानुसार

माया सब मोहन की रे, किस विध करली तुं मेर।
माया सब मोहन की रे॥ टेर॥
प्रेम प्यार सब जग से किन्हों, हरि से बांध्यों बैर।
पाप-पुण्य रो लेखो लेसी, कांई करेलो फेर॥1॥
पत्थर पानी क्यूं फिरे भटकतो, हरि हिये में हेर।
ज्ञान दिपक को जोय ले रे, मेट अविद्या अंधेर॥2॥
सन्त समागम नहीं करने दे, कुटुम्ब पड़यो सब लेर।
जन्म मनुष्य वृथा जावे, ज्यूं-ज्यूं होवे देर॥3॥
शरीर भार धरयो है उपर, अब तो जल्दी गेर।
नथुराम कह चाल शरण में पूजो गूरू का पैर॥4॥

(8)भजन राग-आसावरी

मन रे होज्या गुरुजी को चेलो।

टाबर टीकर जपाय के, ब्यावला घर जावे॥
कहे तोलूदास जू नाचे सारी रात।
त्रिया तिग्रह नित रखे, अवगुण गारी जात॥

2. छः हजार श्वांसा ब्रह्मा बल से, छः हजार विष्णु लिराय।
छः हजार शिव शंकर बल से, हजार सतगुरु सिराय॥
हजार सतगुरु सिराय, पारब्रह्म से हजार एक।
छः सौ श्वांसा गणेश बल से, तोलू करो विवेक॥
तोलू करो विवेक, जीवात्म सहस्र पूराय।
छः हजार श्वांसा ब्रह्मा बल से, छःहजार विष्णु लिराय॥

3. कभी न हरि को याद कियो, कभी न करियो दान।
कभी न बैठ्यो साध संगत में, कभी न सुनियो ज्ञान॥
कभी न सुनियो ज्ञान बीत गया सब श्वांसा।
आगे आदर करे कौन, जब लगे भूख पियासा॥
कहे सन्त तोलूदास, यम खिंचेला कान।
कभी न हरि को याद कियो, कभी न करियो दान॥

4. श्वांसो श्वांस की सुमरण है, तोलूदास ले साज।
पिछे घणा दिन बीत गया, शुभ दिन उग्यो आज॥
शुभ दिन उग्यो आज, मनुष्य जन्म मिल्यो अमोल।
जग चर्चा विसार दे, राम नाम मुख बोल॥
राम नाम मुख बोल, घट पात्र को मांज।
श्वांसो श्वांस की सुमरण है, तोलूदास ले साज॥

5. भजन कियां भय भागसी, धर्म कियां धन पाय।
भक्ति करयां भगवंत मिले, सतगुरु मोक्ष मिलाय॥
सतगुरु मोक्ष मिलाय, सुणलो नत्थाराम।
सुकृत कियां सुख मिले, पावे अमरापुर धाम॥

तुं देख साहेब के खाता ने ॥3 ॥
नशे बाजी नशा में राजी, भांग सुलफा में पड़े न कांजी।
मन्दिरों में गावे रागनी भरांजी, नहीं सत्संग का नेम है, भूल्यो ईश्वर दाता ने ॥4 ॥
मनवो तो माया में दोड़े, कपट कमावे, पुंजी जोड़े।
अपनी चाढ़े पराई फोड़े, ज्याने यम नरकां ले ज्यावसी, धर्मराज रोके न आता ने ॥5 ॥
चोर करे चोरी की आशा, परधन हरके लावे खासा।
धणी पहुंचे जब घाले फांसा कहे तोलूराम देखो चोर नें, जाय सम्भालो हो लाता ने ॥6 ॥

(79) भजन राग-चौपाई

अष्ट पंखड़ी कमल का विस्तारा, अब मैं बताऊ तुझको सारा।
जिस-जिस पंखड़ी पर मन जाता। वैसा ही व्यवहार रचाता ॥ टेर ॥
पूरब दिशा पंखड़ी पर जावे। मनवो अति ही पुण्य करावे॥
अग्नि पंखड़ी पर मन जावे। निद्रा और आलस्य आवे ॥1 ॥
दक्षिण दिशा पर मन करे दौरा। उपजे हियें क्रोध कठोरा।
नैऋत्य कौण की करे तैयारी । शीघ्र मन पाप की विचारी ॥2 ॥
पश्चिम दिशा में मनवो जोई। अति आनन्द प्राप्त होई॥
वायव्य कौण के मन आ गया घाटा। जब होवे मन के घबराटा। ॥3 ॥
उत्तर दिशा की पंखड़ी पर मन जावे। मैथून करन की इच्छा उपावे॥
ईशान कौण पर करिया वासा। धन भण्डारी कुबेर प्रकाशा ॥4 ॥
मन की लहरां प्रकट कर प्रकाशी। सुखरामदास गुरु मिला उदासी॥
तोलूराम मीतासर वासी। ईशान कोण में समाधि लगासी ॥5 ॥

(80) भजन राग-धमाल

जीवन मुक्ति पाई रे, शरीर सहित ही गुरुजी बताई रे, मुक्ति पाई रे॥ टेर॥
विक्षेप शक्ति वाला अज्ञान लेश, लेशाविद्या छाई रे।

(60) भजन

होज्या होज्या रे मन निर्मल, भक्ति साहेब की करले।
भक्ति साहेब की करले, हृदय राम नाम धर ले ॥टेर।
दस धर्माड़्ग धारण करले, अवगुणों से डरले।
काम क्रोध मद लोभ मोह को, वश कर पकरले ॥1।
भक्ति मुक्ति कार्य करके, तिजूर को भरले।
बगुला खाज छोड़ हंस बन, मोतियों को चुगले ॥2।
शत्रु मित्र एक समान कर, यह जरणा जरले।
समभाव ही ब्रह्मतत्व है, कभी न होवे परले ॥3।
सतगुरु है मुक्ति के दाता, चरणों में पसर ले।
तोलूराम गुरु कृपा से, जीवंत ही मरले ॥4।

1. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह।
धी विंद्या सत्यम्क्रोधो दसकं धर्म लक्षणम् ॥ मनुस्मृति ॥

(61) भजन राग-आसावरी

साधो भाई समझो वचन हमारा।
कनिष्ठ, मध्यम, अधम नहीं समझे, समझे उत्तम-अधिकारा ॥टेर।
सत, असत दो वस्तु जग में, इसमें झूठ न लिगारा।
सत को पकड़ त्याग असत को, फिर होवो भवपारा ॥1।
जो दिखे सो प्रपंच जग में, माया, अविद्या दारा।
बाजीगर ने खेल रचायो, लम्बा किया पसारा ॥2।
सोहं, श्वांसा बीज बिन्दु कहिए, साकार सकल अवतारा ॥
चौथा साहब श्याम जुदा है उनको कहे निराकारा ॥3।
त्रिलोकी जहां त्रिगुण कहिए, निर्गुण नाम निराधारा।

प्रकाश फूल दो सूर्य चन्द्रमा, बाग में करे उजारा है।
अग्नि दीपक पुष्प कई, छोटे चमके तारा है।
सुन्दर मेघ बनाया सिमला, जिसमें बिजली चमकारा है।
बहुरंग बादल बीच में, अनहद नाद घरारा है।
माली की इच्छा से वर्षे, बेकीमत फुंवारा है ॥३॥
किधर का पौधा किधर लगावे, माली को अख्त्यारा है।
जिस के ऊपर नहीं कोई, हाकिम का मुख्तयारा है।
वो ही चौधरी बाग बनाया, वो ही करे रखवारा है।
वो ही चाहे तो जला कर, पल में कर दे छारा है।
"अचलराम" है चेतन माली, जग बाग का सिरजनहारा है ॥४॥

भजन (३५३) राग लंगड़ी पद

योग अष्टांग साधा जिसने, वो ही सच्चा योगी है।
और जगत में मनुष्य सब, विषयानन्द का भोगी है।।टेक॥
पांच प्रकार के यम नियम हैं, आसन कई प्रकारा है।
चार तरह का प्राणायाम है, प्रत्याहार फिर न्यारा है।
धारणा ध्यान सबीज समाधि, अष्ठ अंग विचारा है।
इन अंगों से योग सिद्ध हो, निर्विकल्प निरधारा है।
एक एक अंग को क्रम से साधे, शनैः शनैः कोई योगी है ॥१॥
हिंसा चोरी झूठ व्यभिचारा, परिग्रह सब त्यागी है।
जिसके हिय में योग की, तीव्र जिज्ञासा जागी है।
अहिंसा सत्य अचोरी ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह से अनुरागी है।
सो अधिकारी योग के, प्रथम अंग का भागी है।
पहिला अंग है यही योग का, कहे पतंजलि योगी है ॥२॥
बाहिर भीतर पवित्र रहे सदा, यथा लाभ रखे संतोषा।
तप को कर के काया के, पाप मिटावे सब दोषा।
स्वाध्याय को करे निशिवासर, यही योग का है पोषा।
ईश्वर समर्पण कर्म सब करके, मन में राखे भरोसा।
इस प्रकार यम नियम जो पाले, जिस की काया निरोगी है ॥३॥
पद्म या सिद्ध आसन को करके, प्रणव मन्त्र का जाप करे।
रेचक पूरक कुम्भक को करके, प्रणव का जाप करे।
शनैः शनैः अभ्यास बढा कर, केवल कुम्भक पास करे।
प्रत्याहार को फिर करके, मन इन्द्रियां स्वाधीन करे।
सर्वात्म में रखे धारणा, निजानन्द का भोगी है ॥४॥
धारणा में स्थिति चित्त का स्वरूप, होय जब ध्येयाकारा।
यही ध्यान है वृत्तियाँ चित्त की, होय सब ब्रह्माकारा।
ध्यान की परीपक्व अवस्था, सोई समाधि है प्यारा।
अष्ठ अंग यह योग के साधे, सो ही है भव पारा।
'अचलराम' परम योगी वो ही जो, विषयों से विरक्त अभोगी है ॥५॥

भजन (३५४) राग लावणी पद

आत्म हत्या[1] लगी जीवों को, निज स्वरूप की भूल पड़ी।
इसी जुल्म से खलक सब, मोटी जेल में जाय पड़ी।।टेक॥
दुनियां कारागार अनादि, अज्ञान भीत चौफेर खड़ी।
विक्षेप आवरण किवाड़े, भ्रम के दो मजबूत जड़ी।
गृह आश्रम कैद कोड़ियां, जामें जगत् सब कैद पड़ी।
कैसे निकले जीवां के पैरों में, मोह की बेड़ी पड़ी।
जंजीर चौलड़ी मूला अविद्या, स्नेह रूपी हतकड़ी पड़ी॥१॥

---

१. असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ – ईशावास्योपनिषद

भजन (३४६) राग पीलू ताल केरवा

करो नर योग अभ्यासा, त्याग जगत के भोग विलासा।
मनुष्य जन्म को पाय, धार मुक्ति की आशा रे।।टेक।।
यम नियम आसन निरुद्ध प्राना, प्रत्याहार धारणा ध्याना।
अष्टम समाधि जान, योग की लख परिभाषा रे।।१।।
अहिंसा सत्य व्रत धारो, ब्रह्मचर्य रख चोरी निवारो।
अपरिग्रह सब त्याग, करो एकान्त निवासा रे।।२।।
शुची सन्तोष तप धार सियाना, स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधाना।
पालन करो यम नियम, त्याग मन की दुर आशा रे।।३।।
निश्चल आसन पद्म लगावो, कुण्डलनी शक्ति को जगावो।
प्राणायाम को करो, रोक युक्ति से श्वासा रे।।४।।
मन इन्द्रियां बस में कर भाई, चित्त को रोक ध्यान लगाई।
भृकुटि में देख, ज्योति स्वयं प्रकाशा रे।।५।।
आत्म ज्योति स्वरूप तुम्हारा, तन मन इन्द्रियों से लख न्यारा।
''अचलराम'' कर विवेक, काट कर्मों का फॉसा रे।।६।।

षट्चक्र को छेदके, पहुँचा दशमे द्वार।
बहुरि जन्म आवे नहीं॥ टेक॥
योग युक्ति लेकर चला, सतगुरु के प्रताप।
मन पवन को उलट कर, जपा अजपा जाप॥१॥
षट् चक्र इम छेदिया, कर साधन प्राणायाम।
पूरक कुम्भक रेचक किया, निश दिन हो निष्काम॥२॥
इडा पिंगला पलटिया, होई सुषुम्न इकसार।
भृकुटि महल चढ देखिया, जागी ज्योति अपार॥३॥
दशवें जाय डेरा किया, मिट गया सभी अन्धकार।
सुन में जाय समाया जहां, जीव शीव एकसार॥४॥
गुरु "सुखराम" पूरा मिला, पायो सोहं शिखर स्थान।
"अचलराम" जिस में रहे, वो है पद निर्वान॥५॥

भजन (२५२) राग झंझोटी झूलना अथवा परज ठुमरी

सतगुरु! दीवी मोक्ष निशानी।
माया प्रचण्ड खण्ड करि डारी, सोहं सत पिछानी ।।टेक ।।
सोहं ज्ञान दिया मेरे सतगुरु, अद्वैत ब्रह्म लखानी।
लख्या अभेद भेद नहीं रंचक, माया मूल मिटानी ।।१ ।।
माया अतीत माया नहीं जहां पे, रहता आप अबानी।
माया बान वहां नहीं पहुँचे, अखण्ड स्वयं प्रमानी ।।२ ।।

14:14

भजन (२१६) राग रामकली अथवा सोहनी

सोहं शिखर घर मेरा साधो, सोहं शिखर घर मेरा रे।।टेक।।
जहां घर चन्द सूर नहीं पहुँचे, नहीं प्रकाश अंधेरा रे।
ता घर दिवस रैन नहीं होवे, नहीं वहां सांझ सवेरा रे।।१।।
प्रकृति पुरुष नहीं निज घर में, चौबीस तत्त्व नहीं चेरा रे।
उत्पत्ति प्रलय वहां नहीं होवे, नहिं जहां जगत विखेरा रे।।२।।
सो घर मेरा आदि घराना, हिरण्यगर्भ का भी बडेरा रे।
सारी कुदरत चले जिस घर से, जिस घर मेरा डेरा रे।।३।।
ता घर पहुँचे मृत्यु नहीं होवे, बहुरि न दे जग फेरा रे।
"अचलराम" परम धाम है सोई, गीता वचन उचेरा रे।।४।।

सर्वे वृत्ति[२] गोपी बुद्धि राधिका, साक्षी कृष्ण कन्हैया री।
स्वयं प्रकाश संधि में खेले, नटवर नाच नचैया री॥२॥
बिन बाजंत्री पखावत बाजे, टूंटा ताल मिलाया री।
पग विन निरत करे वृज नारी, बिन मुख वंशी बजाया री॥३॥
सोहं स्वर वंशी बजाई मोहन, सखियों मन लुभाया री।
ब्रह्माकार भई एक धारा, आपा द्वैत भुलाया री॥४॥
विषयानन्द आनन्द सब भूली, अजर अमर वर पाया री।
प्रीतम संग अंग रंग राची, अद्वय प्रेम रिझाया री॥५॥
गोपियां संग असंग मुरारी, रमे अचरज मोहि आया री।
निर्विकार निर्लेप निरंतर, साक्षी रूप निर्माया री॥६॥
ऐसी रासलीला होय घट में, पूरा गुरु मोहि बताया री।

इन को मार चढ्या गढ[१] माहीं, निर्भय नगर बसाया रे।
सोहं शिखर जाय डंका दीना, अपना ही हुकम चलाया रे॥३॥
अपना हुकम दिया नगरी में, चारूं दिवान बुलाया रे।
मन बुद्धि अरु चित्त अहंकार को, सोहं हुक्म सुनाया रे॥४॥
सोहं आप तज्या सब आपा, दूजा हुक्म उठाया रे।
गुरु कृपा यम से युद्ध जीता, अमर पट्टा ले आया रे॥५॥
गुरु "सुखराम" मिला महा योधा, आदू किला दिराया रे।
"अचलराम" बसे किल्ले में, फतेह[२] हुई गढ पाया रे॥६॥

भजन (१६४) राग भैरवी कव्वाली ताल दादरा

भृकुटी[1] महल में स्वयं ज्योति ब्रह्म, योगी जन दर्शन पावे॥ टेक॥
योग अभ्यास करे निशि वासर, देश एकान्त रहावे॥१॥
मन वच काय पवित्र होकर, आसन पद्म जमावे॥२॥
प्राणायाम परायण होके, कुण्डलनी शक्ति जगावे॥३॥
अजपा गायत्री जपे श्वासा संग, सुन्न में धुन्न लगावे॥४॥
मन पवना को उलट अफूटा, सुरति गगन ठहरावे॥५॥
बंकनाल की घाटी होकर, सोवन शिखर चढ जावे॥६॥

---

१. ज्योतिर्लिंग ध्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत्सदा यति॥ इति श्रुति

भजन (१०२) राग लूर सारंग अथवा सोरठ अथवा आशावरी

अब मोहि सतगुरु की गम आई।
डूबत होय भवसागर मांही, निज स्वरूप लखाई।।टेक।।
अनन्त युगों के सूते जीव को, कानों में टेर सुनाई।
सुनतां टेर जिजक के[१] जागा, मोह की नींद उड़ाई।।१।।
जाग के देखा कुटुम्ब कुल नाहीं, घर परिवार न पाई।
पिण्ड ब्रह्माण्ड जगत नहीं पाया, स्वप्न के चित्र विलाई।।२।।
अपना आप आप को पाया, सुरत शब्द घर आई।
अक्षय स्वरूप निजानन्द थाया, सोहम् नाद बजाई।।३।।
सोहम् आदि अनादि सांई, विधि निषेध न कोई।
"अचलराम" गुरु की गम लखिया, निजानन्द पद सोई।।४।।

४–आशावरी ताल दीपचन्दी समय १० बजे दिन

अब तुम! रणुंकार रट भाई।
श्वास उश्वास खाली मत खोवो, सतगुरु सैन बताई।।टेक।।
मात पिता बन्धु सुत नारी, मोह जाल अलुझाई।
इन को देख भूलियो गाफिल, पड़ेगा ऊँडी खाई।।१।।
ये सब तेरे जन्म के वैरी, खिण रहे ऊँडी खाई।
अपनो स्वार्थ ले धक्का देवे, फिर ना ऊँचो आई।।२।।
लख चौरासी छूटा चाहे तो, इन को दे छिटकाई।
अन्त समय में कोई नहीं तेरो, फिर अकेलो जाई।।३।।

'सोहं' का अर्थ ।

सोऽहं शब्द जो है, इसकी अध्यात्मी लोग रटना करते हैं। 'सः' जो परमात्मा, 'ऽहं' वही मैं हूं। इस कथनसे परमात्माका अभेद-रूप ध्यान करके परमात्मा होता है, क्योंकि हकार करके भीतरको घुसा, और सकार करके समा गया। इस रीतिसे इस 'सोऽहं' शब्दकी महिमा अध्यात्मी लोग गाते हैं, शास्त्रोंमें इसको बताते हैं, इसके ध्यानसे

परमात्मपद पाते हैं, हकारको सकार में लय करनेसे समाधि मे समाते हैं।

'राम' शब्दका अर्थ।

यह शब्द क्रीडार्थक 'रमु' धातुसे सिद्ध होता है। इसका अर्थ यह है कि 'रमते इति' 'रामः' आत्मामें रमण करता है, उसीकानाम राम हैं। इसलिये जो अपनी आत्मामें रमेगा, वह पापोंसे छूटकर परमात्मा हो जायगा। इस रमणरूपी रामसे ही वाल्मीकि आदि अनेक मुनिजन आत्मामें रमण कर परमपदको प्राप्त हुए। अनेकोंने राम२ गाया, उसी स्वरूपमें रटना लगाया, और सबको छटकाया, अपने स्वरूप में लय लाया, वोही मोक्षपद पाया, जैसा इस राम शब्दका अर्थ था, वैसा हमने पाठकगणको दिखाया। इस राम शब्दके अन्तर्गत 'रम्' शब्द भी है, परन्तु इसकी प्रसिद्धि कम है, प्रत्येक मनुष्य नहीं जानता।

'हंस' शब्दका अर्थ।

गोरक्षपद्धतिके प्रथम शतकके ४३ वें श्लोकमें जीव इस मन्त्रका प्रतिदिन स्वतः ही दिनभरमें २१६०० जाप करता है। और ४४ वें ४५ वे श्लोक तक इसकी ऐसी महिमा लिखी है कि मोक्षके देनेवाला यह ही अजपा गायत्री है। वे तीनों श्लोक यहां पर उद्धृत कराता हूं:—

षट्शतानि त्वहोरात्रे, सहस्राण्येकविंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा ॥४३॥
अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्पमत्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥
अनया सदृशी विद्या, अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥४५॥

इनका अर्थ तो सुस्पष्ट है, अथवा इसकी छपी हुई पुस्तकमें देखो। अन्तर्गत समेत इन पांचका वर्णन किञ्चित् दिखाया।

अब कबीर पन्थियोंके घरके 'कोऽहं' शब्दका भी भावार्थ कहते हैं। 'को' कहतां कौन हूं 'हं' कहनां मैं; ऐसा अर्थ इसका होता है।

सोहं शब्द दिया तत् सारा ॥ सो निश्चै हम उरमें धारा ॥२॥
ज्यामे सुरत धरी एक सारा ॥ हरदम सास उस्वास संभारा ॥
मन पवनाका बेला बाधा ॥अरध उरध जुगती कर साधा॥३॥
द्वादश खोज सरोंधे लाया ॥ इडा पिंगला दोनूं धाया ॥
चन्द सूर एकण घर लाया ॥ सुषमणके घर हंस मिलाया ॥४॥

रागमंगल ।

प्यारी ये सतगुरू शब्द पिछाण ॥ ढील मत लाइये ॥
यह निश्चय उरधार ॥ कर्म कट जाइये ॥ १ ॥
सतगुरू शब्द अगाध ॥ गाध नहिं आइये ॥
नित चेतन सुखरूप ॥ गुरू परसाइये ॥ २ ॥
निश्चल अति अडोल ॥ अपरमें थाइये ॥
सबमे रह अखेल ॥ सदा निरदाइये ॥ ३ ॥
सब सन्ता कह्या अपार ॥ वेद यूं गाइये ॥
लख्या जिनीकूं ठाय ॥ कह्या नहिं जाइये ॥ ४ ॥
बनानाथ गुरू देव ॥ विगत समझाइये ॥
उमाराम लीवी जाण ॥ भर्म नहिं काइये ॥ ५॥१४ ॥

राग कानडा ।

आदू राय जोगका योई॥अगम अरु निगम साख कह दोई॥ टेर॥
सतगुरू मोपर कृपा कीजे ॥ पारब्रह्मकी सोजी दीजे ॥
भूला बहुत जुगनका प्यासा ॥ दया करे पूरो गुरू आशा॥१ ॥
सतगुरू दया करी अब ऐसी ॥ शब्द साधना कहिहै जैसी ॥
सोहं शब्द दिया तत सारा ॥ सो निश्चै हम उरमें धारा ॥२॥
ज्यामे सुरत धरी एक सारा ॥ हरदम सास उस्वास संभारा ॥
मन पवनाका बेला बाधा ॥अरध उरध जुगती कर साधा॥३॥
द्वादश खोज सरोधे लाया ॥ इडा पिंगला दोनूं धाया ॥
चन्द सूर एकण घर लाया ॥ सुपमणके घर हंस मिलाया ॥४॥

16:20

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

तिरुमुलार और सिद्ध परंपरा के अनुसार, वीर्य को ओजस में बदलने की प्रक्रिया को एक **"आंतरिक रसायन" (Internal Alchemy)** की तरह समझा जा सकता है। यहाँ इसका गहरा विश्लेषण दिया गया है:

1. रूपांतरण के तीन चरण (Three Stages)

यह प्रक्रिया अचानक नहीं होती, बल्कि चरणों में चलती है:

- **स्थूल रूप (Physical):** सबसे पहले शारीरिक स्तर पर 'शुक्र' (वीर्य) को शरीर के भीतर संचित करना (ब्रह्मचर्य)।
- **सूक्ष्म रूप (Subtle):** प्राणायाम और 'तपस' (आंतरिक गर्मी) के माध्यम से इस तरल को "सूक्ष्म ऊर्जा" या वाष्प में बदलना।
- **कारण रूप (Causal):** यह सूक्ष्म ऊर्जा रीढ़ की हड्डी (सुषुम्ना) के माध्यम से ऊपर चढ़कर मस्तिष्क में **'ओजस'** (तेज) के रूप में स्थापित हो जाती है।

2. "आंतरिक अग्नि" (Internal Fire) का महत्व

तिरुमुलार सिखाते हैं कि जैसे सोने को आग में तपाकर शुद्ध किया जाता है, वैसे ही वीर्य को **प्राणायाम** की अग्नि से शुद्ध किया जाता है।

- जब आप 'कुंभक' (सांस रोकना) का अभ्यास करते हैं, तो नाभि के नीचे एक आध्यात्मिक गर्मी पैदा होती है।
- यह गर्मी एक बॉयलर की तरह काम करती है, जो भारी शारीरिक ऊर्जा को हल्की और शक्तिशाली ऊर्जा में बदल देती है जो ऊपर की ओर बह सके।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

16:12

AI Mode All Products Visual matches

3. सुषुम्ना में प्रवेश (ऊर्ध्वगमन)

गर्मी पाकर वीर्य अपनी भौतिक सघनता (Liquidity) छोड़ देता है और अत्यंत सूक्ष्म (भाप या प्रकाश के समान) हो जाता है।

- इस अवस्था में यह **सुषुम्ना नाड़ी** के भीतर प्रवेश करता है। तिरुमूलर इसे 'बिजली के प्रवाह' के समान मानते हैं।
- यहीं से वीर्य **'ओजस'** में बदलना शुरू होता है।

4. चक्रों का भेदन और शोधन

जैसे-जैसे यह सूक्ष्म ऊर्जा ऊपर बढ़ती है, यह हर चक्र (मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि) को पार करती है। हर चक्र पर इसका और अधिक शोधन होता है।

- हृदय (अनाहत) तक पहुँचते ही यह वासना से मुक्त होकर 'प्रेम' और 'तेज' बन जाता है।
- मस्तिष्क (आज्ञा चक्र) तक पहुँचते ही यह **'ओजस'** और **'मेधा'** (बुद्धि का उच्चतम स्तर) में बदल जाता है।

5. सहस्रार में विलीनीकरण (ओजस से अमृत)

जब यह ओजस सहस्रार (मस्तिष्क के शीर्ष) पर पहुँचता है, तो यह भगवान शिव की चेतना से टकराता है। यहाँ ओजस **'अमृत' (Soma)** में बदल जाता है, जो पूरे शरीर की कोशिकाओं को पुनर्जीवित कर देता है।

Ask anything

16:11

AI Mode All Products Visual matches

संत तिरुमूलर के अनुसार, **वीर्य (बिंदु)** का **ओजस (दिव्य तेज)** में बदलना एक भौतिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक उच्च आध्यात्मिक और योगिक रूपांतरण है। इसे '**बिंदु शोधन**' या **'ऊर्ध्वरेता'** प्रक्रिया कहा जाता है।

तिरुमूलर ने इस प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों में समझाया है:

---

1. ऊर्जा का संरक्षण (बिंदु रक्षा)

प्रक्रिया का पहला कदम है वीर्य का शारीरिक क्षय रोकना। तिरुमूलर के अनुसार, जब तक वीर्य का प्रवाह अधोमुखी (नीचे की ओर) रहेगा, वह केवल प्रजनन का द्रव्य बना रहेगा। ब्रह्मचर्य और मन के संयम से इसे संचित किया जाता है।

2. योग-अग्नि का प्रज्वलन (तपन)

जैसे कच्चा दूध तपाने पर घी बनता है, वैसे ही संचित वीर्य को **योग-अग्नि** की आवश्यकता होती है।

- **प्राणायाम:** जब साधक कुंभक (साँस रोकना) करता है, तो शरीर के भीतर गर्मी पैदा होती है।
- **मूलाधार का संकुचन:** 'मूल बंध' के माध्यम से इस गर्मी को मूलाधार चक्र (जहाँ वीर्य संचित है) की ओर मोड़ा जाता है।

3. सुषुम्ना में प्रवेश (ऊर्ध्वगमन)

Ask anything

Home Search Notifications Activity

16:02
AI Mode All Products Visual matches

संत तिरुमूलर के दर्शन के अनुसार, **कुण्डलिनी**, **वीर्य (बिंदु)** और **प्राण** के गूढ़ संबंधों को दर्शाते हुए कुछ और विशेष दोहे यहाँ दिए गए हैं:

6. इड़ा-पिंगला और सुषुम्ना पर:

> **बायां चंदा दाहिना रवि, बीच सुधुमन धार।**
> **बिंदु जब मधि में चले, उतरे भव से पार॥**
> *(अर्थ: बाईं नासिका चंद्रमा और दाहिनी सूर्य है, इनके बीच सुषुम्ना (सुधुमन) है। जब वीर्य की ऊर्जा मध्य नाड़ी में बहती है, तब मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है।)*

7. खेचरी मुद्रा और अमृत पर:

> **जिह्वा उलटि आकाश गहि, अमृत रस को पीय।**
> **बिंदु थंभे थिर रहे, जुगन जुगन तब जीय॥**
> *(अर्थ: जीभ को उलटकर तालु से सटाकर जो अमृत पीता है, उसका वीर्य (बिंदु) स्थिर हो जाता है और वह व्यक्ति युगों-युगों तक जीवित रहता है।)*

8. काम-विजय और शिवत्व पर:

Ask anything
Home Search Notifications Activity

16:01

AI Mode All Products Visual matches

3. शक्ति के आधार पर:

वीर्य तेल है दीप का, कुण्डलिनी है लौ।
तिरुमूलर कहें राखिये, तब ही बढ़ेगी लौ॥
(अर्थ: वीर्य दीपक के तेल के समान है और कुण्डलिनी उसकी लौ है। तिरुमूलर कहते हैं कि तेल (वीर्य) को बचाकर रखो, तभी साधना की लौ प्रज्वलित रहेगी।)

4. शिव-शक्ति मिलन पर:

बिंदु मिले जब नाद से, मिटे काल का त्रास।
काया कल्पित होय तब, शिव का होवे वास॥
(अर्थ: जब बिंदु (वीर्य) और नाद (ध्वनि/शक्ति) का मिलन होता है, तो मृत्यु का भय मिट जाता है और शरीर दिव्य होकर साक्षात् शिव का निवास बन जाता है।)

5. संयम और काया सिद्धि पर:

संयम ही आधार है, बिंदु परम अनमोल।
जागत कुण्डलिनी तभी, खुले मुक्ति का पोल॥
(अर्थ: संयम ही योग का आधार है क्योंकि वीर्य अत्यंत

Ask anything

संत तिरुमूलर के दर्शन के अनुसार, **कुण्डलिनी** (शक्ति) और **वीर्य** (बिंदु) के गहरे संबंध को दर्शाते हुए कुछ स्वरचित दोहे यहाँ प्रस्तुत हैं:

1. ऊर्जा के रूपांतरण पर:

बिंदु राखि जो साध ले, योग अग्नि में तपाय।
वही शक्ति कुण्डलिनी, ऊर्ध्व गमन कर जाय॥
(अर्थ: जो साधक अपने वीर्य को सुरक्षित रखकर उसे योग की अग्नि में तपाता है, वही ऊर्जा कुण्डलिनी बनकर ऊपर की ओर उठने लगती है।)

2. ऊर्ध्वरेता और अमृत पान पर:

नीचे बहे तो काम है, ऊपर शिव का धाम।
बिंदु चढ़े सहस्रार में, बरसे अमृत नाम॥
(अर्थ: यदि वीर्य नीचे की ओर बहता है तो वह केवल वासना है, लेकिन यदि वह ऊपर की ओर बढ़ता है तो सहस्रार में पहुँचकर दिव्य अमृत की वर्षा करता है।)

3. शक्ति के आधार पर:

15:51

AI Mode All Products Visual matches

1. पूर्णिमा (Full Moon) का महत्व

तिरुमूलर के अनुसार, पूर्णिमा वह समय है जब ब्रह्मांडीय ऊर्जा अपने चरम पर होती है।

- **अमृत का स्राव:** योग विज्ञान में चंद्रमा को 'सोम' (अमृत) का प्रतीक माना गया है। पूर्णिमा के दिन हमारे मस्तिष्क में स्थित 'चंद्र मंडल' से अमृत का स्राव सबसे अधिक होता है।
- **साधना का फल:** इस दिन उपवास रखकर ध्यान करने से कुण्डलिनी शक्ति बहुत आसानी से ऊपर की ओर बढ़ती है। जो ऊर्जा अन्य दिनों में कठिन परिश्रम से मिलती है, वह पूर्णिमा को स्वतः सुलभ हो जाती है।
- **मानसिक स्थिति:** चूंकि चंद्रमा मन का स्वामी है, इसलिए इस दिन उपवास रखने से मन की चंचलता को नियंत्रित करना और उसे 'शिव' में लीन करना सरल होता है।

2. अमावस्या (New Moon) और अंतर्मुखी साधना

- तिरुमूलर अमावस्या को **'इड़ा' और 'पिंगला'** नाड़ियों के संगम और उनके 'सुषुम्ना' में विलीन होने का प्रतीक मानते हैं।
- इस दिन का उपवास गहरे **अंतर्मुखी ध्यान** के लिए श्रेष्ठ है। यह पुराने कर्मों और नकारात्मक संस्कारों को मिटाने का समय होता है।

3. तिथियों के अनुसार प्राण का प्रवाह

तिरुमूलर ने एक बहुत ही गुप्त विज्ञान बताया है कि चंद्रमा की बदलती तिथियों के साथ हमारे शरीर की **मुख्य नाड़ियों** में प्राण का प्रवाह बदलता है।

Ask anything

> *"बिन गुरु दीक्षा मुक्ति नहीं, भटकत फिरे जहान ।
> खेताराम गुरु शरण में, पायो पद निर्वाण ॥"*

4. वर्तमान उत्तराधिकारी (Legacy)

खेताराम जी ने ब्रह्मलीन होने से पहले अपनी आध्यात्मिक शक्ति और गद्दी अपने प्रिय शिष्य **संत तुलछाराम जी महाराज** को सौंपी। आज तुलछाराम जी महाराज आसोतरा (ब्रह्मधाम) से खेताराम जी के बताए 'सोहं' मार्ग और सेवा कार्यों को आगे बढ़ा रहे हैं।

साधना का एक विशेष पद:

> *"गुरु चरणन में शीश झुकाओ, सोहं शब्द को मन में लाओ ।
> खेताराम कहे मुक्ति पायो, फेर न जग में वापस आयो ॥"*

क्या आप **संत तुलछाराम जी** द्वारा संचालित वर्तमान **ब्रह्मधाम** की गतिविधियों या खेताराम जी के **'पर्चा' (चमत्कारों)** के बारे में जानना चाहेंगे?

Ask anything

3. गुरु और शब्द का मेल:

> *"सतगुरु शब्द सुनाइया, सोहं पद की सार ।*
> *खेताराम भवसिन्धु सूँ, हो गयो बेड़ा पार ॥"*
> (अर्थ: जब सतगुरु ने सोहं पद का सार समझाया, तब खेताराम जी कहते हैं कि इस संसार रूपी सागर से बेड़ा पार हो गया।)

विशेष छंद: "ब्रह्म ज्ञान रो प्रकाश"

यह छंद आसोतरा और मारवाड़ के सत्संगों में बड़े चाव से गाया जाता है:

> **छंद:**
> *"धन्य-धन्य वो सतगुरु देवा, सोहं मंत्र बताया रे ।*
> *भटका खावे जग अंधियारे, मारग साचो दिखाया रे ॥"*
>
> *"नाभि कमल सूँ सुरता जागी, गगन मण्डल में आई रे ।*
> *सोहं शब्द री अखंड ज्योति, घट के माँही दिखाई रे ॥"*
>
> *"खेताराम कहे सुण भाई साधु, यो ही ब्रह्म रो ज्ञान ।*
> *आपा माँही आपा चीन्हो, पावो पद निर्वाण ॥"*

"गगन मण्डल में सोहं गूँजे, अनहद की झणकार ।
खेताराम गुरु कृपा सूँ, खुल गया मोक्ष का द्वार ॥"
(अर्थ: जब मस्तिष्क के उच्च केंद्र (गगन मण्डल) में सोहं की ध्वनि गूँजती है, तो गुरु की कृपा से मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं।)

विशेष छंद: "सोहं पद निर्वाण"

यह छंद राजस्थानी आध्यात्मिक शैलियों में संत खेताराम जी की महिमा में गाया जाता है:

छंद:
"सोहं सोहं जाप जपो रे, यह जुगत मुक्ति री भारी ।
श्वास-प्रश्वास में ब्रह्म विराजे, देखौ नज़र उघारी ॥"

"इड़ा पिंगला सुखमन साधी, त्रिकुटी ध्यान लगाया ।
खेताराम गुरु ज्ञान की जोति, घट में ब्रह्म दिखाया ॥"

"अजपा जाप अखंडित चाले, मन भयो शीतल शांत ।
सोहं शब्द सूँ कट गई सगली, जन्म मरण री भ्रांत ॥"

07:14

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

4. 'सुरता' की मुद्रा (The Final Connection)

संत गणेश राम जी महाराज अक्सर कहते थे कि असली मुद्रा शरीर की नहीं, **'चित्त'** की है:

> *"आसन मारे क्या भया, जो मन की मुद्रा नाहिं ।*
> *सुरता बाँधो शब्द सूँ, राम विराजे माहिं ॥"*

(अर्थ: केवल शरीर से आसन लगाने से कुछ नहीं होगा जब तक मन स्थिर न हो। अपने ध्यान (सुरता) को सोहं शब्द से बांध लो, तभी भीतर राम मिलेंगे।)

साधना का अभ्यास सूत्र:

- **स्थिरता:** कम से कम 45 मिनट एक ही आसन में बैठने का अभ्यास।
- **मौन:** वाणी का संयम (मौन व्रत) साधना में बहुत सहायक माना जाता है।

क्या आप इन मुद्राओं के साथ होने वाले **'आंतरिक प्रकाश'** या **'दिव्य दर्शन'** के अनुभवों के बारे में जानना चाहेंगे, जिनका वर्णन इन संतों ने अपनी वाणियों में किया है?

Ask anything

Home Search Notifications Activity

07:13

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

5. अनहद नाद (Mystic Sound)

योग साधना की परिपक्व अवस्था में साधक को भीतर दस प्रकार के नाद (ध्वनियाँ) सुनाई देते हैं, जैसे शंख, घंटा या वीणा की आवाज। पोखरण के संतों के भजनों में इन ध्वनियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

एक विशिष्ट योग पद (छंद)

> *"पिण्ड ब्रह्मण्ड की सन्धि मिलै, जहाँ जोत अखंड जगावे ।*
> *पाँचों तत्व को वश में कर, मन सोहं में मिल जावे ॥*
> *नाड़ी बहत्तर शोध कर, सुखमन मारग पावे ।*
> *पोखरण रा संत कहे, यो ही जुगत मुक्ति दिलावे ॥"*

क्या आप इन योग क्रियाओं के 'षट चक्र' (6 Chakras) के मारवाड़ी नामों और उनके प्रभावों के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

Ask anything

07:13

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

2. अजपा जाप और श्वास साधना (Breath Yoga)

पोखरण के संतों की साधना का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा 'श्वास' है।

- **प्राण-अपान का संतुलन:** श्वास के आने (सो) और जाने (हं) की क्रिया को नियंत्रित कर उसे सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित करना।
- **दोहा:**

> *"षट चक्र की कोठड़ी, जूँ जूँ सुरता जाय ।*
> *तूँ तूँ सोहं शब्द का, ताला खुलता जाय ॥"*
> *(जैसे-जैसे ध्यान छह चक्रों से ऊपर बढ़ता है, सोहं साधना के माध्यम से मोक्ष के द्वार खुलते जाते हैं।)*

3. त्रिकुटी ध्यान (Third Eye Meditation)

साधना के दौरान दोनों भौहों के मध्य (त्रिकुटी या आज्ञा चक्र) पर ध्यान एकाग्र करने की शिक्षा दी जाती है।

- इसे **'गगन मण्डल'** की साधना भी कहा गया है, जहाँ साधक को दिव्य प्रकाश के दर्शन होते हैं।

Ask anything

- **सत्य मार्ग:** संत लादूराम जी कहते हैं कि यही सच्चा मार्ग है। राम नाम के बिना यह पूरी दुनिया अंधकारमय है और सारा संसार एक कच्चे खेल जैसा है।

साधना के गुप्त संकेत (साखियाँ)

पोखरण के संत अपनी वाणी में अक्सर यह भी कहते थे:

> *"सोहं की रेणी गहे, सो ही साधु सुजाण ।*
> *पाँचों इन्द्री वश करे, सो पावे पद निर्वाण ॥"*

मुख्य उपदेश:

- **रेणी (आचरण):** केवल शब्द बोलना काफी नहीं, सोहं के भाव को अपने आचरण (रेणी) में उतारना ज़रूरी है।
- **इंद्रिय निग्रह:** सोहं साधना तभी फल देती है जब साधक अपनी पाँचों इंद्रियों पर नियंत्रण रखे।

क्या आप इन वाणियों का **मारवाड़ी से हिंदी सरलार्थ** विस्तार में समझना चाहते हैं, या इनके **गायन का तरीका (लय)** जानना चाहेंगे?

Ask anything

3. भीतर के राम पर:

> *"सोहं सोहं सब कहे, सोहं को जाने न कोय ।*
> *जब सोहं से सुरता मिले, तब राम नाम फल होय ॥"*
> (अर्थ: सोहं शब्द तो सब बोलते हैं, लेकिन इसके मर्म को कम ही लोग जानते हैं। जब हमारी चेतना (सुरता) इस शब्द में विलीन हो जाती है, तभी राम नाम का असली फल मिलता है।)

विशेष छंद: "अजपा की महिमा" (पोखरण शैली)

यह छंद रामद्वारा में विशेष 'देशी ढाळ' (लय) में गाया जाता है:

> **छंद:**
> *"अजपा जाप जपो रे भाई, जिभ्या हालण नाहीं ।*
> *बिना बजाया बाजा बाजे, थारे घट के माँही ॥"*
>
> *"सोहं शब्द री माला फेरो, कर की माला छोड़ो ।*
> *बाहर की सब आशा तज के, अंतर सूँ मन जोड़ो ॥"*
>
> *"लादूराम कहवे सुण भाई, यो ही मारग साचो ।*
> *राम नाम बिन जग अंधियारो, सगलो खेल ही काचो ॥"*

Ask anything

विशिष्ट छंद: "सुरता शब्द रो खेल"

यह छंद अक्सर पोखरण के रामद्वारा में **देशी भजन** शैली में गाया जाता है: YouTube +1

छंद:
"धन धन सतगुरु साहिबा, सोहं भेद बताया ।
श्वासा के सुमिरन से म्हारा, जम का फंदा काट्या ॥"

"इड़ा पिंगला छोड़ के, सुखमन घर में जाई ।
अजपा जाप अखंड चले, अनहद गूँज सुनाई ॥"

"लादूराम गुरु ज्ञान सूँ, सोहं साचा जान्या ।
राम नाम रे सुमिरन सूँ, आपा माँही राम पिछान्या ॥"

छंद का भावार्थ:

- **सतगुरु की धन्यता:** गुरु की कृपा से ही 'सोहं' का रहस्य समझ आया और मृत्यु (जम) का भय समाप्त हुआ।
- **योगिक क्रिया:** इड़ा और पिंगला नाड़ियों को संतुलित कर जब ध्यान सुषुम्ना (सुखमन) में जाता है, तब भीतर अखंड ध्वनि (अनहद) सुनाई देती है।
- **स्व-पहचान:** संत लादूराम जी कहते हैं कि गुरु के ज्ञान से ही यह सत्य जाना कि अपने भीतर का 'आपा' ही वास्तव में राम है।

- **गुरु महिमा अंग:** इसमें गुरु को ईश्वर का मार्ग दिखाने वाला बताया गया है।
- **सुमिरन अंग:** इसमें 'सोहं' और 'राम' नाम जपने की सूक्ष्म विधियों और श्वास साधना का वर्णन है।
- **चेतावनी अंग:** यह अध्याय संसार की नश्वरता के बारे में है, जिसमें संत लादूराम जी के प्रसिद्ध चेतावनी भजन (जैसे- "चेत सको तो चेत ले") शामिल हैं।
- **काया भेद अंग:** इसमें शरीर के भीतर स्थित चक्रों (मूलाधार, आज्ञा चक्र आदि) और 'सोहं' ध्वनि के संचार को समझाया गया है।

साधना का एक विशेष पद (देशी राग में प्रचलित)

> *"सुरता ने बाँधो शब्द सूँ, काया ने करो साफ ।*
> *सोहं-सोहं सुमिरता, मिट जावे सब पाप ॥"*

पोखरण में इन वाणियों का पाठ **'अनुभव प्रकाश'** नामक संकलन के आधार पर किया जाता है।

क्या आप संत लादूराम जी द्वारा रचित किसी **विशिष्ट ग्रंथ** का नाम या उनके **चमत्कारों (पर्चा)** से जुड़ी लोक कथाएँ सुनना चाहेंगे?

3. अजपा जाप की विधि:

> *बिन जिभ्या जो जाप है, सोहं सोहं होय।*
> *लादूराम वा घर मिले, विरला बूझे कोय ॥*
> **(अर्थ:** बिना जीभ हिलाए जो सोहं का जाप (अजपा) भीतर चलता है, उसी से उस अविनाशी पद की प्राप्ति होती है, जिसे कोई विरला ही समझ पाता है।)

सोहं साधना पर छंद (मारवाड़ी शैली)

पोखरण के संतों की वाणी में अक्सर इस तरह के छंद गाए जाते हैं:

> **छंद:**
> *काया नगर में देव बिराजे, सोहं शब्द सुनावे रे।*
> *इंगा पिंगला सुखमन नाड़ी, सुरता डोरी लगावे रे ॥*
> *आवत 'सो' और जावत 'हं' है, अजपा जाप जगावे रे।*
> *गणेश राम गुरु चरणों में, सोहं पद समझावे रे ॥*

छंद का भावार्थ:

- **काया नगर:** हमारा शरीर एक नगर है जिसमें स्वयं परमात्मा (देव) विराजमान हैं और सोहं का शब्द सुना रहे हैं।

Ask anything

सुधार के पढ़े । उक्त स्थानाऽभाव के कारण श्री हरि गुरू भक्त जिज्ञासू पाठकों से संक्षिप्त करबद्ध क्षमा चाहता हूँ ।

पुस्तक–विभाग
जोधपुर ११–१०-१६५६

विश्वहितेच्छु–सम्पादक
वि० सन्त रामप्रकाश "वैष्णवरत्न"

पुस्तक सर्वाधिकार प्रकाशकप्रेरकसम्पादकाधीन स्वरचित् ।

संवत् २०१६, कार्तिक वदि, १४ श्री दीपावली के उपलक्ष में !

पुस्तक प्राप्ति स्थान:—

(१) श्री सन्त बखतरामजी महाराज
श्री गणेश आश्रम (रामद्वारा)
रामपोल के बाहर, पोकरण
जि० जैसलमेर (राजस्थान)

(२) वि० श्री सन्त रामप्रकाशजी महाराज "वैष्णवरत्न"
श्री उत्तम आश्रम (वैष्णव निकेतन) रामद्वारा
नागौरी द्वार के बाहर, कागारोड, उत्तम चौक,
जोधपुर (राजस्थान)

मुद्रक–
लक्ष्मीनारायण देवड़ा
श्री भवानी प्रिंटिंग प्रेस,
घास-मंडी रोड, जोधपुर ।

05:44

ॐ

❀ श्री हरि परमात्मनै नमः ❀

श्री स्वामी लाधूरामजी महाराज के परम शिष्य

साधु खेतारामजी महाराज कृत वाणी प्रारंभ।

भजन संख्या (१) राग कल्याण पद।

आरती ! दीनानाथ की कीजे, जासे पाय परमानन्द पीजे ॥ टेर ॥
मैं हूँ अनाथ अरज सुण लीजे, शब्दसुणाय शांति उर दीजे ॥१॥
कृपा करो मोही दर्शन दीजे, अनन्त जनम का पाप कटीजे ॥२॥
महर मया मय हाथ धरीजे, अवगुण मेरा माफ करीजे ॥३॥
"लाधूराम" सतगुरु परसीजे, खेताराम को मुक्ति चहीजे ॥४॥

भजन संख्या (२) राग कल्याण पद।

आरती ! सतगुरु सन्त समाई, करो कृपा नित आप सुहाई ॥टेर॥
सतगुरू वचन हृदय धरवाई, दर्शण देकर पार पठाई ॥ १ ॥
ज्ञान ध्यान गम गुरू से पाई, शरणे जाय भया सुखदाई ॥ २ ॥
हरदम स्मरण हरि को गाई, स्वासो स्वास निजानंद थाई ॥ ३ ॥
"लाधूराम" गुरू कृपा दाई, खेताराम निज आप अचाई ॥ ४ ॥

भजन संख्या (३) राग नट कल्याण पद संगीत।

मैं हूँ सतगुरु चरण की चेरी, मिट गई मनकी भव सेफेरी ॥ टेर ॥
सकल जगत से वृति तोड़ी, भ्रम ठीकरा निर्भय फोड़ी।
सत गुरु स्वामी दासी तेरी ॥ १ ॥

05:42

स्वास उस्वास सहजकास्मरण, चरण कमल चितलाई हो॥१॥

चेतन होय दशोदिश देखा, निशि दिन कला सुहाई हो।
निरख्या नाथ अलख अविनाशी,
अटल जागीरी थाई हो ॥ २ ॥

अटल पुरूष का मार्ग बंका, दृष्ट मुष्ट नहिं काई हो।
आश्रमवर्णनहिंकोई फन्दा, सहज स्वरूप रहाई हो ॥ ३ ॥

श्याम मनोहर समरथ पाया, क्रिया सर्व विलाई हो।
"लाधूराम" सहज घर पाया,
रमझ लखी घट मांई हो ॥ ४ ॥

भजन संख्या (३३) राग बरहंस ताल धमाल पद।

गुरूजी मैं शरण तुमरे आयो,लेवो वेगशुद्धि सायो ॥टेर॥
अनंत जन्म मैं बहुत दुःख भोग्यो, डरकर शीश नमायो।
दीनानाथ दया कर मोपर, भव से पार पठायो ॥ १ ॥
सतगुरू स्वामी अन्तर्यामी, शब्द प्यालो भर पायो।
अनादी रोग कर्मन को सो, क्षण में मूल मिटायो ॥ २ ॥
संचित कर्म जल्या विरह अग्नि, भ्रांति भेद विलायो।
पुण्य तिव्र संग प्रारब्ध प्रगट्या, देवदीदार दिखायो ॥३॥

Scanned by

साचा शिष्य सत सुधरे, तन मन भेंट कर जास।
मोक्ष निजानन्द फल लहै, साचा करे हुलास ॥ ४ ॥

सतगुरू सा नहिं जगत में, दृश्य माया विलास।
'लाधूराम' गुरू महरते, आप लख्या अविनाश ॥ ५ ॥

भजन संख्या (११) राग राजेश्वरी हेली पद।

हेली ए! स्मरण कर सुख पाविया,
गुरू चरणे चित लाया ॥ टेर ॥

शब्द नगारा ज्ञान का, हरदम संत बजाय।
साचा जिज्ञासु नित सुने, मन तन भेंट चढाया ॥ १ ॥

ज्ञान ध्यान गति लायके, हरदम साधन पाय।
पांचूँ वश कर पद लहे, परमानन्द अधिकाय ॥ २ ॥

योग गति चीन्ही सभी, प्राणायाम करवाय।
त्रिकुटी तख्त में सुणत नित, अनहद राग घुराय ॥ ३ ॥

सोहं रति गति ज्ञान की, गुरू कृपा उरलाय।
गुरू "गणपति" साचा मिला, लाधूराम यश गाय ॥ ४ ॥

इन्द्रा हाथ नखऊ छवि शेष। सबल आसरा सुन्दर वेष।।
मृत्यु वास किपो गुदा अस्थान। मेढ़ प्रजापति कहत बखान।।
सुरेश अकाश मेघ भै केसा। हसब दामिनी सुन्दर वेसा।।
भयो पताल चरनो तारा। ऊपर चरन रसातल धारा।।
अंगुरी है तल एडी महातल। पिंडूरी जहाँ सो भयो तलातल।।
जानू सुतल चितल भई जंघा। अतल गुहि जई इन्द्री परसंगा।।
बहरौ नाभि लोक भूर्भयो। भूँर्लोक वो दसों ठयो।।
उर तहाँ भयो सुरन को लोका। सदा अनन्द नहीं तहँ सोका।।
महर लोक ग्रींव भयो जोई। सजन लोक वद छवि सोई।।
जो तप लोक माथ विस्तारा। सति लोक तहँ दसमा द्वारा।।
उदर समुद्र नदी सब नारी। बडवा अग्नि छुधा परचारी।।
खण्ड प्रलै ब्यारी सो जाको। महा प्रलै भोजन है ताको।।
इंगुला सुरसरि पिंगुला जमुना। गुप्त सुरसरी भई सुषमना।।
गिरवर सकल अस्थ अस्थाना। रोमावलि भै वृक्ष परधाना।।
सूतेऊ सुसुप्त पुरुष की नाई। रहि गै देह न उठै उठाई।।
तब हरि निज प्रकास तहँ कीन्हा। मनु घन में रवि दरसन दीन्हा।।
उठो सो जेंउ कोई सूतो जागै। भाउ अभाऊ न तेहि कछु लागै।।
जैसे जल में रवि प्रकाशा। दरसत है पै सोई अकाशा।।
तेंऊ हरि जग में जग ते न्यारा। एक सूत पोहो जग सारा।।
ऐहि हेरंनिगर्भ तम कहिए। परमात्मा दसहुँ दसि लहिए।।
दसमाँ द्वार परम अस्थान। तहँ चतुरभुज श्री भगवान।।
सदा किशोर स्याम बपु धारी। सोभा सिधु अगाधि मुरारी।।
बूडि जाई ता में मन जाको। बहुरि न निसन होवे ताको।।
नैन सरोज भरे करुणा रस। जो निरखें होई जाई सोई वसि।।
करि कटाक्ष जेहिं की दिस दैखे। बड़ो भाग अपना सो लेखें।।
अंग अंग छवि वरनी न जाई। वानी वरनत रही अरगाई।।
रुद्रादिक को मोह उपजावै। सो वरनन में कैसे आवै।।
सीश मुकुट झलकति मनि नाना। कुण्डल जुगुल उऐउ जनु भाना।।

इस प्राणायाम साधना के समय नमक, सरसों या उसका तेल, उष्ण और रूक्ष पदार्थ मिर्च, मसाले मद्य, अग्नि सेंकना, धूर्त गोष्ठी आदि का पूर्णतः त्याग करे, साथ ही ब्रह्मचर्य का भी पूर्णतया पालन करना आवश्यक है।

इस प्रकार तीन मास पर्यन्त प्रतिदिन अस्सी कुम्भक (20 × 4 = 80) करने से नाड़ी शुद्धि हो जाती है। उसके फलस्वरूप शरीर में लघुता तेज में वृद्धि जठराग्नि का प्रदीपन और शरीर में कृशता आ जाती है। इन्हें सफलता का चिह्न मानना चाहिए। नाड़ी शुद्धि के बाद रेचक पूरक के बिना ही कुम्भक करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है अर्थात् एक बार प्राणों के अन्दर पहुँचने के बाद उन्हें इच्छानुसार वहीं रोका जा सकता है। इस स्थिति को **केवलकुम्भक** कुम्भक कहते हैं, जबकि पूर्व स्थिति में कुम्भक **सहितकुम्भक** कहलाता है।

केवलकुम्भक की स्थिति आने पर प्रथम योगी के शरीर में स्वेद (पसीना) वेग के साथ आने लगता है, उस समय शरीर का मर्दन कराना चाहिए। इस स्थिति में भी साधना का क्रम चलते रहने पर शरीर में कम्पन प्रारम्भ होता है, फिर भी कुम्भक का क्रम बढ़ता रहे तो दर्दुरों वृत्ति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् योगी पद्मासन में बैठा हुआ दर्दुर (मेढक) की भाँति इधर-उधर उछलने लगता है। इस स्थिति में भी और अधिक अभ्यास बढ़ने पर साधक पद्मासन में ही भूमि से ऊपर उठ जाता है और निराधार ही आकाश में स्थित होने लगता है।

इस स्थिति में पहुँचने पर योगी में अपार सामर्थ्य आ जाता है, वह कम या अधिक कितना भी आहार लेने पर व्यथित नहीं होता; मूत्र और पुरीष और निद्रा अत्यन्त अल्प हो जाते हैं। शरीर में दुर्गन्ध, पसीना, कृमि आदि नहीं होते। उसे भूचरसिद्धि मिल जाती है, अर्थात् योगी के हाथ के ही प्रहार से शेर, बाघ, भैंसा, हाथी आदि की मृत्यु तक हो जाती है। इस स्थिति में एक महान विघ्न भी प्राप्त होता है, वह यह कि स्त्रियाँ उसके रूपराशि पर मुग्ध होकर उससे संगम की कामना करती हैं और यदि योगी कहीं चूक गया तो स्त्री सम्पर्क में आ गया तो उसकी मृत्यु तक हो सकती है। अतः इस महाविघ्न से उसे पूर्णतया बचना चाहिए। इस स्थिति में पहुँचने पर साधक को प्लुत मात्रा में प्रणव महामन्त्र का उच्चारण करते हुए जप करना चाहिए, जिससे उसके सभी पूर्व उपार्जित पाप कर्मों का नाश हो जाए। साधना के क्रम में यहाँ तक आरम्भ अवस्था कहलाती है।

Scanned by CamScanne

इसके बाद भी निरन्तर **केवलकुम्भक** का अभ्यास करते रहने पर **घटावस्था** आती है। इस स्थिति में प्राण और अपान में, मन और प्राण में, जीवात्मा और परमात्मा में एकता हो जाती है, इसी कारण इस अवस्था को घटाद्वारावस्था भी कहते हैं। इस स्थिति में पहुँचने पर चार बार कुम्भक प्राणायाम की आवश्यकता नहीं रहती। योगी एक बार ही एक याम अर्थात् तीन घंटे **केवलकुम्भक** का अभ्यास करे।

इस स्थिति में पहुँच कर योगी को **प्रत्याहार** का अभ्यास करना चाहिए। प्रत्याहार का अर्थ है इन्द्रिय आदि के विषयों की आत्मा में ही भावना। इसका

भक्तिसागर के हंसनाद उपनिषद् में कहा गया है कि अजपा–जाप के अभ्यास से ही सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा जान लेना चाहिए। तब साधक को दिव्य गुणों की खान मिल जाती है व दूसरा कोई ध्यान नहीं रहता–

अजपाही के जापके, सिद्धि भयो जब जान।
पहुँचे या अस्थान ही, रहै न दूजा ज्ञान।।[3]

---

1. भ. सा. 5.124–125.
2. भ. सा. 4.123.
3. वही 8.20 (हंसोपनिषद)

गोरक्षसंहिता में प्राण व अपान वायु को हंसरूप कहा गया है व प्राणायाम रूप हंस वाम और दक्षिण मार्ग से छत्तीस अंगुल बाहर निकलता है इसलिए वायु को ही प्राण कहा गया है। अगर प्राण इससे दूर चला जाए तो उसका लौटना कठिन है। भाव स्पष्ट है प्राण की गति का आधिक्य मृत्यु ही तो है।

षट्त्रिंशदंगुलो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः।
वाम दक्षिणमार्गेण ततः प्राणोऽभिधीयते।।[1]

प्राण को हंस कहना आत्मा को सम्बोधित करता है। जब आत्मा शरीर छोड़ता है तो प्राण को भी शरीर छोड़ना होता है इसी लिए विद्वानों ने प्राण व हंस को एक ही माना है। जाग्रत, सुषुप्ति व तुरीयादि अवस्थाएं प्राण की ही हैं।

हंसोपनिषद् में हंस की आठ प्रकार की वृत्ति होती है। पूर्व दिशा के पत्र पर जब यह रहता है तब मति पुण्य होती है। आग्नेयी दिशा के पत्र पर निद्रा व आलस्य रहता है, दक्षिण दिशा के पत्र पर क्रूर कर्मो में बुद्धि रहती है। नैऋृत दिशा के पत्र में पाप कर्म में मन लगता है। पश्चिम दिशा वाले पत्र में क्रीडा में और वायव्य दिशा के पत्र में चलने फिरने को दिल करता है, उत्तर दिशा के पत्र में रति क्रिया में प्रीति होती है। ईशान दिशा के पत्र पर द्रव्य लेने की वृत्ति होती है और जब यह मध्य स्थान में बैठता है तो संसार से वैराग्यभाव उत्पन्न होता है। जब हृदय के कमल केसर पर आसीन होता है तो जाग्रत अवस्था, कर्णिका पर स्वप्नावस्था और जब हृदय कमल छोड़ देता है तो तुरीयावस्था का आभास हो जाता है और नाद में लीन हो जाता है। नीचे के आधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जो नाद होता है, वह शुद्ध स्फटिक के समान परब्रह्म परमात्मा कहलाता है।

6.9. भक्तिसागर के हसोपनिषद् में वर्णित प्राणायाम महत्त्व :–

भक्तिसागर में कहा गया है कि प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है और प्राणायाम से बढ़कर कोई बल नहीं है। इससे प्राणवायु वश में होती है तथा मन की चंचलता समाप्त होकर शान्त होती है।

10. **केवली कुंभक :–**

केवली 'केवल' शब्द से सम्पादित हुआ है जिसका अर्थ होता है 'सिर्फ'। अर्थात् इसमें कुंभक की कोई सीमित मात्रा नहीं होती है या यूं कहें कि समाधि अवस्था में प्रवेश व समाधि में रहना केवल कुंभक की प्रवीणता को दर्शती है। घेरण्डसंहिता में इसके आध्यात्मिमक पक्ष पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। यथा–

हंकारेण बहिर्याति सःकारेण विशेत्पुनः।
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्त्राण्येकविंशतिः।
अजपां नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।।[1]

————————————————

1. घे.सं. 5.83.

श्वास निकलने पर 'हं' और प्रविष्ट होने पर 'सं' का इक्कीस हजार छः सौ की संख्या में जप होता है। यह संख्या दिन रात की है। इसे 'हंस' अथवा विलोम से 'सोऽहं' अजपा गायत्री छन्द कहते हैं। हर व्यक्ति परोक्ष रूप में इसे जपता रहता है लेकिन अज्ञानवश वह इसका अनुभव नहीं कर संकता है। मूलाधार, हृदयकमल व नासा पुटों में निरत्तर प्राण का प्रवाह होता रहता है। स्थूल शरीर छियानवे अंगुल परिमाण का है और स्वभाविक बहिर्गत वायु की गति द्वादस अंगुल होती है।

घेरण्डसंहिता का विचार है कि यही गति गायन में सोलह अंगुल, भोजन में बीस अंगुल, मांर्ग चलने मे चौबीस अंगुल, निद्रा में तीस अंगुल, व मैथुन में छत्तीस अंगुल और व्यायाम में और भी अधिक होती है। इस परिमाण का अर्थ यह भी है कि किस प्रकार श्वास द्वारा प्राण में उतार चढ़ाव होता रहता है।

इक्कीस हजार छः सौ की संख्या के जाप को यही समझना चाहिए कि व्यक्ति चौबीस घण्टे में इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेता है। इस गति को शास्त्र अधिक मानता है व इसे कम करने का आदेश देता है।

यावज्जीवो जपेन्मत्रमजपासंख्यकेवलम्।
अद्यावधिधृतं संख्याविभ्रमं केवलीकृते।।
अत एव हि कर्त्तव्या केबलीकुंभको नरैः।
केवली चाजपासंख्या द्विगुणा च मनोन्मनी।।[2]

प्राण की स्वभाविक गति बारह अंगुल है। अगर इसमें न्यूनता आ जाए तो आयु वृद्धि

भर्मभूल सांची लगै, समझै सांच न होय ॥
सोने को गहनो गढ़ै, कहन सुननको दोय।
गहनो ना सोनो सबै, नेक जुदो नहिं होय ॥
झूठ सांच दो नावहै, झूठ मिटै इक सांच।
नाम मिटै सूरत मिटै, भूषण को लग आंच ॥
जाको माया कहतहैं, सो तू नेक निकास।
जैसे हींग कपूरकी, नेक जुदी कर बास ॥
जल समान तो ब्रह्महै, माया लहर समान।
लहर सबै वह नीरहै, लहर कहै अज्ञान ॥
खेल खिलौना खांड़के, कीजे लाख पचास।
सकल खिलौना खांड़है, ऐसे गहि विश्वास ॥
चरणदास खिलौना खांड़के, भाजन राखे खांड़।
बिन विनशेभी खांड़है, विनशिजाय तौ खांड़ ॥
माटी के भांड़े भवें, सूरति अरु बहुनाम।
बिगसिफूटि माटी भई, बासन कहुकेहि ठाम ॥
ऐसेहो माया नहीं, समझि देखु मनमाहिं।
जो दीखै सो ब्रह्महै, रंचक माया नाहिं ॥
इच्छा मेटै दुइ तजै, एकै मन विश्राम।
ब्रह्मज्ञान विज्ञान है, समझ परमपद धाम ॥

सवैया ॥

श्वास उसास चलै जप आपहि है जु अखण्ड टरै नहिं टारो।
भीतर बाहर है भरिपूर सों ढूंढ़ों कहां नहिं नाहिंन न्यारो ॥
चरणदास कहैं गुरुभेद दियो भ्रम दूरि भयो जुहुतो अतिभारो।
दृष्टि अदृष्टि जु रामको देखत राम भयो पुनि देखनहारो ॥
दो० आप आपमें आपहै, खेलौ बहु विस्तार।

जैसे कछुवा सिमिटिकै, आपहि माहिं समाय ।
तैसे ज्ञानी श्वासमें, रहै सुरति लवलाय ॥
सबघट रमो सो राम है, आदि पुरुष निर्गम्य ।
लखचौरासी योनिमें, एक समानो सम्य ॥
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, रूप न देखो जाय ।
बिन सूरति बिननामको, घट घट रहो समाय ॥

छप्पय ॥

इच्छा दुइकर दूर आप तू ब्रह्म ह्वै जावै ।
और सो द्वितिया कौन तासुको शीश नवावै ॥
माला तिलक बनाय पूर्व अरु पश्चिम दौरा ।
नाभि कमल कस्तूरि हिरण जंगल भो बौरा ॥
चरणदास लखि दृष्टि भरि एक शब्द भरपूरहै ।
निरखि परखिले निकटहीं कहन सुननकोदूरहै ॥
झूठी सी यह दृष्टि जगत सब झूठो दरशै ।
मूरख जानै सत्य तासुसों फिर फिर परशै ॥
चंद सूर थिर नहीं नहीं थिर पौन न पानी ।
त्रैदेवा[1] थिर नहीं नहीं थिर मायारानी ॥
नवनाथचौरासीसिद्धजोचरणदास थिर ना रहै ।
ब्रह्म सत्य सर्वज्ञहै आत्म विचार क्यों ना गहै ॥
दो० जो मुख सेती बोलिये, अरु सुनियत है कान ।
जो आंखिन सों देखिये, सबही माया जान ॥
एकै सबतन रमि रह्यो, चेतन जड़के माहिं ।
मायादर्शत है सभी, ब्रह्म लखतहै नाहिं ॥
जैसे तिलमें तेलहै, फूल मध्य ज्यों बास ।

---

[1] ...ा, विष्णु, महेश ॥

मतवारे ज्यों शब्द समायो अन्तर भीज कनी ।
भर्म्म कर्म्म के बन्धन छूटैं दुबिधा बिपति हनी ॥
आपा बिसरि जक्त को बिसरो कितरहिं पांच जनी ।
लोक भोग सुधि रही न कोई भूलो ज्ञान गुनी ॥
हो तहाँ लीन चरणहिंदासा कहैं शुकदेव मुनी ।
ऐसो ध्यान भाग्य सों पइये चढ़ि रहे शिखर अनी ॥

राग बिलावल ॥

घट में खेलि ले मन खेला ।
सकल पदारथ घटही माहीं हरिसों होय जुमेला ॥
घट में देवल घट में जाती घट में तीरथ सारे ।
वेगहि आव उलटि घटमाहीं बीतैं परबीन्हारे ॥
घट में मानसरोवर सू भर मोती और मराला ।
घट में ऊंचा ध्यान शब्द का सोहं सोहं माला ॥
घट में बिन सूरज उजियारा राति दिना नहिं सूझै ।
अमृत भोजन भोग लगंत है बिरलाजन कोइ बूझै ॥
घठ में पापी घट में धर्म्मी घट में तपसी योगी ।
गुण अवगुण सब घटही माहीं घटमें वैद्य अरु रोगी ॥
रामभक्ति घटही में उपजै घट में प्रेम प्रकासा ।
शुकदेव कहैं चौथापद घट में पहुँचे चरणहिंदासा ॥

राग बिलास ॥

घट में तीरथ क्यों न नहावो ।
इतउंत डोलो पथिक बनेही भरमि भरमि क्यों जन्म गवांवो ॥
गोमती कर्म सुकारथ कीजै अधरम मैल छुटावो ।
शील सरोवर हितकरि न्हइये काम अग्निकी तपनि बुझावो ॥
रेवा सोई छमा को जानौ तामें गोता लीजै ।

दोउ खड़े गावैं हँसैं री अरीहेली अरु डारे गलबाहिं ॥
मोर मुकुट माथे दिपैरी अरी हेली सुन्दर नैन विशाल ।
पीताम्बर पट सोहनो कर मुरली उरमाल ॥
वाके विराजैं चन्द्रिकारीअरीहेली लीलवसन जरतार ।
नखशिख भूषण सोहने अरु फूलनके हार ॥
गुरु शुकदेव बताइयारी अरीहेलीजबहमलिये पिछान ।
चरणदासी तिनकी भई लगोरहै वहि ध्यान ॥

अथ सन्त शूरका अंग ॥

दो० सन्त समान न शूरिमा, कहैं रणजीत विचार ।
टेक गहैं सम्मुख चलैं, बांधि प्रेम हथियार ॥

राग सोरठ ॥

सन्त समान नहीं कोई शूरा ।
मोह सहित सब सेना मारी ऐसो साँवत पूरा ॥
क्षमा कि ढाल गही कर अपने बांधे सत तरवारा ।
कर्म भर्म के दलको पेलै पल पल वारंवारा ॥
सुरत को तीर हृदय को तरकस ध्यान कमान बनावै ।
प्रेमहाथ सूं खैंचनलागे चोट निशाने लावै ॥
बुद्धि विवेक कटारी बांधै वचन विलास की बरछी ॥
सतपुरुषों के हियरे बेधै कहि कहि बतियां तिरछी ॥
चितमें चाव चौगुनो उनके सुन सुन अनहद तूरा ।
अगम पंथसों पग न डिगावैं होयजाय चकचूरा ॥
मन हुलास आसधर पीकी सुन्न खेत में धावैं ।
चरणदास शुकदेव कहतहैं अमर लोक पद पावैं ॥

राग सोरठ वा आसावरी ॥

साधू पैज गहै सोइ शूरा ।

अमर अडोल निरीच्छन भेखा । त्रिगुण रहत रूप नहिं रेखा ॥
चेतन आनँद नित निराधारा । निराकार निर्लिप्त निरारा ॥
निराकार आकार बिवरजाति । निरगुण अरुसरगुणतेरीगति ॥
हाथ पाँव अरु शीश घनेरे । कैसे आरती करूं प्रभु मेरे ॥
सोहं बाती घीव अखण्डा । एकहि ज्योति बलै ब्रह्मण्डा ॥
तुही थाल तुहि आरति साजै । तुहि घंटा तुहि झांझरिबाजै ॥
चरणदास शुकदेव लखायो । सुरति थकी पै पार न पायो ॥
गगन मँडल मैं आरति कीजै । उत्तम सौंज सकल सजिलीजै ॥
सुखमन अमृत कुम्भ धरावै । मनसा मालिनि फूल चढ़ावै ॥
घीव अखण्डा सोहंबाती । त्रिकुटी ज्योति बलै दिनराती ॥
पवन साधना थाल करीजै । तामें चौमुख मन धारदीजै ॥
रविशशि हाथगहो तिहिमाहीं । खिन दहिनो खिन बायें लाईं ॥
सहसकमल सिंहासन राजैं । अनहदझालरि नितही बाजैं ॥
इहिबिधि आरति सांचीसेवा । परम पुरुष देवन को देवा ॥
चरणदास शुकदेव बतावैं । ऐसी आरति पार लगावैं ॥
ऐसें आरति करि हुलसावै । दै परिक्रमा शीश नवावै ॥
तनकोथालअरुमनको चौमुख । ज्ञान ध्यान की बाती लावै ॥
भक्तिभावको घी भरि तामें जगमग जगमग ज्योति जगावै ॥
अर्ध ऊर्ध हितसूं करि फेरै रचना रचै ल बर्षावै ॥
सुरति मृदंग अरु निरति तँबूरा झैंगड़ झैंगड़ झांझ बजावै ॥
ताल बीण मुरचंग शंखध्वनि प्रेम मगन ह्वै हरिगुण गावै ॥
सोरन कलशा जलको राखै धूपरु अगर सुगन्धि धरावै ॥
या बिधि सों शुकदेव श्यामकी गाय आरतीको फलपावै ॥
युगलकिशोर निरखि नैननसों चरणदासि सखिबलि बलिजावै ॥

जैजै साधुन के सुखदाई। चरणदास तुम्हरी शरणाई ॥
आरति आदि पुरुषकी कीजे। साधौअगमअपारअचलमनदीजे ॥
अद्भुत आरती ॐ कारा। त्रिदेवा होय जगत पसारा ॥
पहिले मच्छरूप हरि धारो। वेदलाय शंखासुर मारो ॥
रई मन्द्राचल बासुकि नेती। चौदहरतन मथन दधि सेती ॥
रूप बराह धारि हरि धाये। हिरण्याक्षहि हनि धरतीलाये ॥
खम्भ फारि हिरणाकुश मारो। नरसिंहह्वै प्रहलाद उबारो ॥
बामनह्वै करि बलि छलि लीन्हे। तीनि लोक तीनों डगकीन्हे ॥
परशुराम ह्वै शरतर धारे। क्षत्री सबै निकछ करि डारे ॥
रामरूप रावण दलमलिया। लंकाराज बिभीषण मिलिया ॥
कृष्णरूप ह्वै कंस पछारो। दर्शनदे ब्रज सकल उधारो ॥
बोधरूप अचरज गति तेरी। कौतुक देखि थकी बुधि मेरी ॥
निष्कलंकै निर्लिप्त निरासा। संभल सुरतलियो जहाँबासा ॥
हरि हैं एकरूप बहुधारे। निराकार आकार नियारे ॥
दश अवतार आरती गाऊँ। निरभै होय अभैपद पाऊं ॥
चरणदास शुकदेव बतायो। निरगुणहरिसरगुणह्वै आयो ॥
आरति रमता राम कि कीजे। अन्तर्द्धान निरखि सुखलीजै ॥
चेतन चौकी सतको आसन। मगनरूप तकिया धरि दीजै ॥
सोहंथाल खैंचि मन धरिया। सुरतिनिरतदोउबाती बरिया ॥
योगयुगति सूं आरतिसाजी। अनहद घंट आपसूं बाजी ॥
सुमति सांझकी बिरियाआई। पांचपचीसमिलि आरतिगाई ॥
चरणदास शुकदेव को चेरो। घटघट दर्शै साहब मेरो ॥
आरति करत हँसै मनमेरो। वार पार कछु दिखै न तेरो ॥

अपानेन पुनः कन्दात्प्रेरितः कालरूपिणा ।
निश्वासोच्छ्वास हृद्वाति जपन्हंसेत्यहर्निशम्॥ ५२ ॥

अर्थ - (पुनः कालरूपिणा) फिर से कालरूपी शक्ति के माध्यम से (कन्दात्प्रेरितः) कंद से निकली हुई (अपानेन) अपान वायु (हृद्वाति) हृदय प्रदेश में वायु विचरण करती है (निश्वासोच्छवासः) श्वास और प्रश्वास के रूप में (अहर्निशम्) दिन रात (हंस इति) "ह" तथा "स" हंस का (जप) जाप करता है ।

व्याख्या - तदनन्तर पुनः प्राण वायु तक कंद से निकलने के बाद अपान वायु अपने स्थान से ऊपर उठने के बाद हृदय प्रदेश में अपान वायु विचरण करता है तथा श्वास और प्रश्वास के रूप में दिन रात "ह" तथा "स"हंस का जाप करता है ।सोहम का जाप प्राण वायु अपान वायु से संबंधित है ।

हंसश्च द्वादशे [पर्णे], जीवात्माहृदयाम्बुजे ।
अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ॥५३॥

अर्थ - (हंसश्च द्वादशेदलेः) हंस द्वादश दलों से युक्त है जो (जीवात्मा) जीव के (हृदयांबुजे) हृदय के मध्य में स्थित है ।(अपानः) अपान वायु (प्राणं कर्षति) प्राण का आकर्षण करता है (च) और (प्राणोऽपानम्) प्राण वायु अपान वायु का अपनी और कर्षण करती है ।

व्याख्या - हृदय प्रदेश में स्थित अनाहत चक्र १२ दलों से युक्त है और वह दल जीव के हृदय के मध्य भाग में स्थित है जिसमें प्राण वायु अपान को अपनी ओर ऊपर की तरफ़ खीचती है और अपान वायु प्राण वायु को नीचे की ओर अपनी तरफ़ खिचती है दोनों एक दूसरे को अपनी और कर्षण करती है ।हंस का जाप करते हुए ।

ऊर्ध्वाऽधः संस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित् ।
तिष्ठन् करोति चैतन्यं द्योतं दीपो घटे यथा ॥५४॥

अर्थ - (यथा) जिस प्रकार (दीपः घटे) घड़े में रखा दीपक बिना चेष्टा किए (द्योतम्) प्रकाशमान रहता है उसी प्रकार (एतौ) प्राण अपान वायु यथावत् (ऊर्ध्वाधः संस्थितौ) ऊपर- नीचे स्थिर करता हुआ (चैतन्यम्) आत्मा को (तिष्ठन् करोति) स्थिर करता है (स योगवित्) वह स्थिरता को प्राप्त हुआ योगी है ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक को घड़े में स्थित दीपक के समान उपमा देते हुए समझाया गया है। जिस प्रकार घड़े में रखा हुआ दीपक बिना किसी चेष्टा किए प्रकाशमान रहता है, ठीक उसी प्रकार प्राण - अपान वायु यथावत् ऊपर- नीचे स्थित है ये दोनों के संयोग के माध्यम से आत्मा को स्थिर करतें हैं ऐसे स्थिरता को प्राप्त हुआ योगी है सिहित बुद्धि वाला होता है ।

आनँद केलि होत निसु बासर, बाढ़त प्रेम हुलास।
अगर अबीर अखंड कुमकुमा, केसर सदा सुबास ॥२॥
सहज सुभाव को खेल बन्यो है, फगुआ बरनि न जात।
सुरति सुहागिनि उठि उठि लागहि, अबिनासी के गात ॥३॥

(१) न इति।

लघु दीरघ मिलि चाचरि जोरी, होरी रची अकास।
पावक प्रेम सहज सौं फूँक्यो, दसौ दिसा परकास ॥४॥
फेँट गही छबि निरखि रही है, मंद मंद मुसुकात।
फगुवा दान दरस प्रभु दीजै, केसो जन बलि जात ॥५॥

॥ शब्द ५ ॥

निरमल कंत संत हम पाया।
कोटि सूर जा की निर्मल काया ॥१॥
प्रेम बिलास अमृत रस भरिया,
अनुभौ चँवर रैन दिन ढुरिया ॥२॥
आनँद मंगल सोहं गावैं,
सुख सागर प्रभु कंठ लगावैं ॥३॥
सत्य पुरुष धुनि अति उजियारी,
कोटि भानु ससि छबि पर वारी ॥४॥
तेज पुंज निर्गुन उँजियारा,
कह केसो सोइ कंत हमारा ॥५॥

8/18

॥ शब्द ६ ॥

निरखि रूप मन सहज समाना,
मैं तैं मिटि गो भर्म पराना[1] ॥१॥
अच्छर माहिँ निअच्छर देखा,
सोई सब जीवन का लेखा ॥२॥

(१) भाग गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपाई ॥

सव नाडी में सुषमन एक ॥ अष्ट कुंभक मे केवल एक ॥
खेचरी समान मुद्रानाहीं ॥ केवल कुंभसम कुंभक जांहीं ६४ ॥

यूंलय योग में कहिये नाद ॥ धुनि में विसरे आपा वाद ॥
मंत्रयोग में एक रंकार ॥ जानों सोहं ज्ञान को सार ॥ ६५ ॥

ब्रहम चरित ब्रत को गहे ॥ निस दिन आत्मा ध्यानमें रहे ॥
मन ते इस्त्री संग मटावे ॥ ऐसे द्वादश वर्ष गवावे ॥ ६६ ॥

सिद्धासन सों वैठा रहे ॥ मन पवनां को गाढा गहे ॥
सूर्य्यके घर पथ भोजन करे ॥ चन्द्र सूर्य्य जल पीबो करे ६७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपाई ॥

योगि साधे अल्प अहरा ॥ निस दिन राखे तत्व विचारा ॥
श्रवण न सुने न वके वहु भाई ॥ दुर्जन संग करे ना काई ६८
देही मंजन करे सिंगारा ॥ जाते उपजे ज्ञान बिचारा ॥
एकाकी रहे निराशा ॥ शरीर जीत गहे विश्वासा ॥ ६९ ॥
अति उत्साह धरे मन मांहीं ॥ आशा तृष्णा व्यापे नाहीं ॥
योग पंथ मे निश्चा राखे ॥ धीर्य गहे कल्पना नाशे ॥ ७० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकालमें ध्येयवस्तु के स्वरूपका परित्याग करके और सर्व प्रकारके संकल्प विकल्पों से रहित हो करके ध्येय वस्तुके स्वरूपसेहि स्थितहोवेहै। तिसको महात्मालोग योगका अष्टम अंग समाधि कहतेहैं। धारणा ध्यान समाधि रूप योगके अंगहैं। पूर्वोक्त यमनियमादि संप्रज्ञात समाधिका अन्तरंग मुख्य साधन है। अथ अजपागायत्री ॥ यह अजपागायत्री योगी जनोंको मोक्ष दाताहै। हकार से यह श्वास बाहिर निर्गमन करताहै। सकार से फेर अभ्यन्तर प्रवेश करताहै। इस प्रकार हंस हंस का सदाहि जीव जप करे। सो जब गुरु मुँखद्वारा विधि पूर्वक जाननेसे सुषुम्णानाडी से हंस हंस उलटानेसे हंसो हं जब

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होवेहै। इस्का नाम अजपा मंत्रहोवेहै। सो अष्ट पहरमें एक विंशति सहस्र और छे सौ२१६००हंस मंत्रका जप नित्यं प्रति सब प्राणी करतेहैं जानता कोई नहि ॥ एकाग्र चित्तहो करके हंस मंत्रका एक कोटि जप करनेसे दश विध नादका अनुभव होवेगा। चिंचणी॥ १ घंटानाद २ शंखनाद ३ तंत्रीनाद ४ तालनाद ५ वेणुनाद ६ मृदंगनाद ७ भेरीनाद ८ मेघनाद ९ नव प्रकार के नादका परि त्याग कर ब्रह्मकी प्राप्ति का साधन जो दशम मेघनाद तिसका अभ्यासकरे। अथ दशमुद्रा महामुद्रा १ महाबंध २ महावेध ३ खेचरी ४ उडियान ५ मूल बंध ६ जालन्धर बन्ध ७ विपरीत करणी ८ वज्रोली ९ शक्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15:15
Atha_Asthanga_Yoga_Gyan...

सोरठा ॥

यहि विध लीजे दीप तेज राशि विज्ञान भव ॥
जातहि तासु समीप जरहि मदादिक शलभ सब ॥

चौपाई ॥

सोइ मस्मि इति धृति अखण्डा ॥ दीपशिखा सोइ परम प्रचण्डा
आतम अनुभव सुखसुप्रकासा ॥ तवभवमूलभेद भ्रमनासा३८१
प्रवल अविद्या कर परि वारा ॥ मोह आदि तम मिटे अपारा ॥
तव सोइ बुद्धि पाय उजयारा ॥ उरग्रहवैठी ग्रन्थनिवारा३८२ ॥
छोरत ग्रन्थि पाव जो कोई ॥ तव यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रन्थि जानि गुरु दाया ॥ विघ्न अनेक टरे तवमाया३८३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋद्धि सिद्धि प्रेरे वहु भाई ॥ चम्पा मन को देइ भ्रमाई ॥
कल वल छल कर जाइ समीपा ॥ चंचल वात वुझावे दीपा ॥
चम्पा यो जन गुरु के प्यारे ॥ इनको मनसेदेइ विसारे[३८४]
इन सिद्धिनमें भ्रमे जो कोई ॥ ताको मोक्ष कभीनाहोई३८५

अथ अष्ट सिद्धी ॥

दोहा ॥

अणिमम हिमा लघिमा प्राप्ति प्रकासक जान ॥
इशता वाशिता अवसिता अष्ट सिद्धि परमान ॥

चौपाई ॥

जाते देह रूप अणु होई ॥ कितहूं आवरे नहि कोई ॥
अणिमा सिद्धि नाम यह जानो ॥ महां मोहनीमायामानो३८६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15:03

Jog_Pradipika_of_Jayatra...

प्रान हृदय अपान गुद रहै कंठ उदान सदा[२६०] सुख लहे ।
नाभि समान अरु व्यान सरीर ये पंच वाय[२६१] प्रधान सुधीर ॥८१९ ॥
कूर्म चखि उनमीलन करे नाग वाय उदगारही टरे ।
कृकरा छीक लेहि यों जानो देवदत्त सु जंभाई मानो ॥८२० ॥

दोहा— वाय धनंजय देह मै रहे मृत्यु लो जान ।
जयतराम या वाय करि फूले देह निदान ॥८२१ ॥

चौपाई— दस नाडी करिके यह जीव भ्रमत देहमै रहै सदीव
ज्यों कोउ गेंद करसे पटके उपर नीचे फीर फीर भटके ॥ ८२२ ॥
अैसै नारिन जीव फिरावौ रैन दिना यों रहे भ्रमायो ।
प्रान अपान वसि रहे सदाई उपर नीचै आवै जाई ॥८२३ ॥
बायें दाहने बिचि ले [२६२]जावै इकठा कबहू नाही रहावै ।
जैसे सिकरा डोरी बांध्यौ खेंचौ आवै जहा सु साध्यो ॥८२४ ॥
गुणसो बंध्यौ जीव इमि जान [२६३]अग्यान साथ सो बंध्यउ मान ।
अपान वाय प्रानको खेचै प्रान वाय अपानहि अैचै ॥८२५ ॥
उचै नीचै अैसै लहिये जो जाने सो जोगी कहिये ।
ताकौ यह उपचार सुनाउं जयतराम गुरुकृपा बताऊं ॥८२६ ॥
[२६४]सकार सबद सो बाहर जावै हकार [२६५] सबदसो भीतर आवै ।
सोहं [२६६]सोहं मंत्र सुजान है न दिन इहि जाप सु ठान ॥८२७ ॥
हजार इकीस अरु [२६७]षटसत और जाप जपे यह रैनि सु भोर ।
अजपानाम गायत्री जानों जयतराम गुरुक्रिपासे[२६८] मानो ॥८२८ ॥

दोहा— दस नाडी दस वाय को भिन भिन करि भेद ।
जयतराम वरन्यो सकल लखै सुमेटै खेद ॥८२८ ॥
॥इति नाडीवाय[२६९] वरनन ॥

---

२६०. व्यान (भां)
२६१. नारि (भां) २
२६२. चंचल (भां)
२६३. रेन दिना भरमें यो मान (भां)
२६४. हकार (भां)
२६५. सकार (भां)
२६६. हंस हंस ये (भां)
२६७. सत छह (ना.)
२६८. गुरुक्रिपासु
२६९. दस नाडी दस पवन को भेद (भां)

1. लल द्यद (Lalleshwari) का योगिक वाख

लल्ला श्वास और मन के मिलन को ही असली योग मानती थीं।

> **"नाभि-स्थानस कय्यम अभ्यास,**
> **कन्ठस मंज़ करयम ज़ास।**
> **मूर्ध-स्थानस रठयम प्रान,**
> **तवय मे मिल्यव सोहं ज्ञान॥"**

योगिक अर्थ (Yogic Meaning):

- **नाभि-स्थान (Navel):** लल्ला कहती हैं कि मैंने अपनी साधना 'नाभि' (मणिपुर चक्र) से शुरू की, जहाँ से प्राण ऊर्जा उठती है।
- **कण्ठ (Throat):** फिर उस ऊर्जा को कण्ठ (विशुद्धि चक्र) तक लाई।
- **मूर्ध-स्थान (Crown):** अंत में प्राणों को 'सहस्रार' (मूर्ध) में स्थिर किया।
- **भेद:** जब प्राण ऊर्जा मूलाधार से सहस्रार तक पहुँचती है, तब **'सोहं'** का वास्तविक ज्ञान प्रकट होता है। यह कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया का संकेत है।

08:02

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

2. माता रूप भवानी (Roop Bhawani) की रहस्यवाणी

माता रूप भवानी का पद 'चित्त' (Mind) को स्थिर करने के गुप्त भेद बताता है।

> **"सोऽहं शब्दं अनहद नादं,**
> **भ्रूमध्य ज्योति प्रकाशम्।**
> **अहंकारं त्यक्त्वा निर्वाणं,**
> **परम-पदं रूपं भवानी लब्धम्॥"**

योगिक अर्थ (Yogic Meaning):

- **भ्रूमध्य (Third Eye):** माता कहती हैं कि अपनी दृष्टि को दोनों भौहों के बीच (आज्ञा चक्र) एकाग्र करो। वहाँ 'सोहं' की ध्वनि एक अनहद नाद (बिना बजाए संगीत) की तरह सुनाई देगी।
- **अहंकार का त्याग:** जब तक 'मैं' (Ego) है, तब तक निर्वाण संभव नहीं। 'सोहं' का अर्थ ही है 'मैं' को 'वह' (परमात्मा) में विलीन कर देना।
- **भेद:** इस पद में वे **'ज्योति ध्यान'** की बात कर रही हैं, जहाँ शब्द (सोहं) और प्रकाश (ज्योति) एक हो जाते हैं।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

08:01

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

2. साधना के रहस्यों में सूक्ष्म अंतर (Subtle Differences)

हालाँकि दोनों का लक्ष्य एक था, लेकिन उनके बताने के ढंग (अभिव्यक्ति) में थोड़ा अंतर था:

विषय	लल द्यद (Lalleshwari)	माता रूप भवानी (Roop Bhawani)
अभिव्यक्ति	इनके पद **'वाख'** (Vakhs) कहलाते हैं, जो सरल कश्मीरी में हैं।	इनके पद **'रहस्यवाणी'** कहलाते हैं, जिनमें संस्कृत का प्रभाव अधिक है।
दृष्टिकोण	लल्ला ने 'वैराग्य' और 'तड़प' (विरह) के माध्यम से शिव को पाया।	रूप भवानी ने 'योग' और 'कठोर तपस्या' (Tapasya) पर अधिक बल दिया।
सोहं का प्रयोग	लल्ला 'सोहं' को श्वास की गति के साथ 'लय' (Rhythm) बनाने के लिए उपयोग करती थीं।	रूप भवानी 'सोहं' को 'ब्रह्म-ज्ञान' (Self-Knowledge) के एक वैज्ञानिक सूत्र की तरह देखती थीं।

3. साधना के गहरे वाक्य और पद (Deeper Verses)

Ask anything

Home Search Notifications Activity

रूप भवानी का एक प्रसिद्ध कश्मीरी पद (हिन्दी अनुवाद सहित):

> **"स्व-स्वरूपं जानिथ, सोऽहं रटिथ।**
> **अलक-निरंजन पाविथ, मुक्ति लभिथ॥"**

(अर्थ: अपने वास्तविक स्वरूप को जानकर और 'सोहं' का निरंतर स्मरण करके, उस अलख-निरंजन (परमात्मा) को प्राप्त किया जा सकता है और तभी सच्ची मुक्ति संभव है।)

साधना का निचोड़:

माता रूप भवानी की साधना **'ज्ञान'** और **'योग'** का मिश्रण है। उनके लिए सोहं का अर्थ था— **पूर्ण मौन** में रहकर अपने भीतर की दिव्य ध्वनि को सुनना।

क्या आप माता रूप भवानी और **लल द्यद** की साधना के बीच के **समान अंतर और रहस्यों** के बारे में और अधिक जानना चाहेंगे?

2. श्वास और चित्त की एकाग्रता (Breath and Mind)

रूप भवानी ने सिखाया कि मन को वश में करने के लिए श्वासों पर 'सोहं' का पहरा जरूरी है।

> **"हंस-हंस जपन्ते सोहं भाव,**
> **मिट जावे सब जग का चाव॥"**

व्याख्या:
जब साधक 'हंस' (प्राण) के साथ 'सोहं' का जाप करता है, तो संसार की नश्वर इच्छाएँ (चाव) स्वतः समाप्त हो जाती हैं। माता के अनुसार, 'हं' श्वास बाहर छोड़ना है और 'स' (सो) श्वास अंदर लेना है। इसी चक्र में पूरा ब्रह्मांड समाया है।

---

3. 'सोहं' साधना के मुख्य रहस्य (The Secrets of Her Sadhna)

रूप भवानी के 'रहस्यवाणी' ग्रंथों के अनुसार साधना के तीन मुख्य स्तंभ हैं:

- **शून्य अवस्था:** माता कहती थीं कि 'सोहं' का निरंतर अभ्यास साधक को उस 'शून्य' (Void) में ले जाता है जहाँ विचार शांत हो जाते हैं और केवल आत्म-ज्योति शेष रहती है।

> **"अमी पना सो रस खींचम, क्या ज़ाना करय्यम पार।**
> **ग़रज़ गरज़ त सुहं सुहं, कछुम न मंज़िल परवार॥"**

भावार्थ:
लल्ला कहती हैं कि मैं कच्ची रस्सी (साँसों) से अपनी जीवन-रूपी नाव खींच रही हूँ, न जाने प्रभु मुझे कब पार लगायेंगे। मेरी साधना में केवल **'सोहं-सोहं'** (वही मैं हूँ) की गूँज है, और अब मुझे किसी और मंजिल की परवाह नहीं है क्योंकि मैंने स्वयं को जान लिया है।

---

2. 'सोहं' और श्वास साधना पर (Soham Sadhna)

लल द्यद ने श्वास के नियंत्रण (प्राणायाम) को ही असली 'शुभम साधना' माना है:

> **"यमि प्रान रटिथ थवुन, तसुई सोहं जप मुन।**
> **सोहं सोहं जपते जाय, आत्म ज्ञान सो पावै॥"**

भावार्थ:

07:59

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

लल्ला का मानना था कि ईश्वर को बाहर खोजने के बजाय अपनी श्वासों में खोजना चाहिए।

> **"कुसुय अर्चुन, कसुय पूजन, कसुय मन्त्र जपुन सोहं।**
> **प्रानन रटिथ, मनस धरिथ, तसुय सोहं जप मुन॥"**

व्याख्या (भेद):
लल्ला पूछती हैं—कौन सा अर्चन है? किसकी पूजा है? और कौन सा मंत्र है? फिर स्वयं उत्तर देती हैं कि **'सोहं'** (वही मैं हूँ) का जाप ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है। जब साधक **प्राणों (श्वास)** को रोककर (प्राणायाम द्वारा) मन में 'सोहं' को धारण करता है, तब उसे किसी बाहरी कर्मकांड की आवश्यकता नहीं रहती।

---

2. द्वैत का अंत (End of Duality)

लल्ला की सोहं साधना का लक्ष्य 'मैं' और 'वह' के अंतर को मिटाना था।

> **"लल बह द्रायस लोल्लरे, छ़ान्डान लुम्यम पानस मनज़।**
> **सोहं सोहं रटिथ वंदुन, तवय मे मिल्यव अमृत पान॥"**

Ask anything

- **शून्य की अवस्था:** वे कहती हैं कि जब 'सोहं' हृदय में स्थिर हो जाता है, तो मनुष्य 'शून्य' (विचारहीन अवस्था) में पहुँच जाता है, जहाँ केवल परमानंद शेष रहता है।

निष्कर्ष पद:

> **"सोहं की डोरी पकड़, लल्ला पहुँची पार।
> भीतर शिव को पा लिया, तज कर सब संसार॥"**

लल द्यद की यह साधना सरल होते हुए भी अत्यंत गहरी है, क्योंकि यह सीधे **आत्म-साक्षात्कार** (Self-realization) की बात करती है।

क्या आप लल्लेश्वरी के **शैव दर्शन (Kashmiri Shaivism)** और सोहं के गहरे संबंध पर और जानकारी चाहते हैं?

Ask anything

"बाहर खोजत क्या फिरे, भीतर देख विचार।
सोऽहं धुन में रमि रहा, जग का सिरजनहार॥"
(अर्थ: बाहर खोजने से क्या मिलेगा, अपने भीतर विचार करो। सृष्टि का रचयिता तुम्हारी अपनी 'सोहं' की ध्वनि में ही समाया हुआ है।)

2. मौन साधना और श्वास पर:

"वाणी तज के मौन गहु, स्वास न खाली जाय।
अजपा जप बिश्नोई करे, ब्रह्म में चित्त लगाय॥"
(अर्थ: व्यर्थ की बातों को छोड़कर मौन धारण करो और एक भी सांस खाली न जाने दो। सच्चा बिश्नोई वही है जो अजपा जाप (सोहं) के जरिए ब्रह्म से जुड़ा रहे।)

3. जीव-परमात्मा की एकता पर:

"सोहं शब्द अनूप है, जो समझे सो सिद्ध।
जाम्भोजी की कृपा से, मिलै सकल नौ निद्धि॥"
(अर्थ: सोहं शब्द अद्वितीय है, जो इसे समझ लेता है वह सिद्ध हो जाता है। गुरु जाम्भोजी की कृपा से उसे संसार की सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।)

07:56

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

छंद (Chhand - डिंगल/राजस्थानी पुट के साथ)

> **"गगन मण्डल में ज्योति जगाई, सोऽहं की अनहद बजवाई।**
> **कण-कण में बिष्णु को देखौ, जीवन सफल अपणो करि लेखौ॥**
> **नित नियम उन्नतीस ध्यावौ, पाखंड सकल दूर भगावौ।**
> **दया धर्म हिरदे में राखौ, मुक्ति का रस अमृत चाखौ॥"**

(अर्थ: आकाश मंडल (शून्य) में दिव्य ज्योति जगी है और सोहं की अनहद ध्वनि गूँज रही है। हर कण में विष्णु को देखो और अपना जीवन सफल बनाओ। 29 नियमों का पालन करो, पाखंड दूर करो और हृदय में दया-धर्म रखकर मुक्ति का आनंद लो।)

साधना का एक विशेष पद (Sadhna Pad):

> **"हं" छोड़े "सो" को गहे, सोहं साधना सार।**
> **बिश्नोई पंथ निराला, उतरे भवजल पार॥**

Ask anything

Home Search Notifications Activity

छंद (Chhand - चौपाई शैली)

> **"सोहं मंत्र अनूपम सारा, स्वास-स्वास में नाम उचारा।**
> **घट के भीतर अलख जगावै, भव-बाधा सब दूर नसावै॥**
> **बिष्णु बिष्णु तू भण रे प्राणी, जाम्भोजी की अमृत वाणी।**
> **सोहं धुन जब हिरदे बाजे, सकल भरम पाखंड सब भाजै॥"**

(अर्थ: सोहं मंत्र सबसे श्रेष्ठ है जिसे हर श्वास में जपना चाहिए। यह हृदय के भीतर दिव्य ज्योति जगाता है और सांसारिक कष्टों को दूर करता है। गुरु जाम्भोजी की अमृत वाणी 'विष्णु-विष्णु' भजने और सोहं की ध्वनि सुनने की प्रेरणा देती है, जिससे सारे भ्रम और पाखंड मिट जाते हैं।)

साधना का सार:

बिश्नोई संप्रदाय में गुरु जाम्भोजी द्वारा बताए गए 29 नियमों में से **विष्णु का स्मरण** और **अजपा जाप** सोहं साधना के ही अंग हैं। इसमें 'सो' (वह/ब्रह्म) सांस लेते समय और 'हं' (मैं/आत्मा) सांस छोड़ते समय अनुभव किया जाता है। YouTube +3

क्या आप इन पदों का **राजस्थानी या डिंगल शैली** में अनुवाद देखना चाहेंगे, जो बिश्नोई साहित्य की पारंपरिक भाषा है?

Ask anything

2. गुरु जाम्भोजी की शिक्षा और सोहं भाव पर:

> "जाम्भ देव की सीख यह, सोहं जप चित लाय।
> घट-घट माहीं ब्रह्म है, दूजा और न कोय॥"
> *(अर्थ: गुरु जाम्भोजी सिखाते हैं कि मन लगाकर सोहं का जाप करो। हर हृदय में वही ब्रह्म व्याप्त है, उसके अलावा और कोई सत्य नहीं है।)*

3. जीव-ब्रह्म की एकता पर:

> "सोहं सोहं रटत रह, मिटै द्वैत का रोग।
> बिश्नोई सिद्ध होत है, पाय ब्रह्म का योग॥"
> *(अर्थ: निरंतर सोहं का ध्यान करने से भेद-भाव (द्वैत) समाप्त हो जाता है और साधक ईश्वर से एकाकार हो जाता है।)*

छंद (Chhand - चौपाई शैली)

07:46

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

तंत्रालोक में आचार्य बताते हैं कि हमारी श्वास केवल हवा का आना-जाना नहीं है, बल्कि यह **शक्ति** का स्पंदन है।

1. **मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) का द्वार**:
   जब हम सजग होकर 'सो' (श्वास अंदर) और 'हम्' (श्वास बाहर) का अनुभव करते हैं, तो प्राण और अपान संतुलित होने लगते हैं। अभिनवगुप्त के अनुसार, इस संतुलन से **मध्य धाम** (सुषुम्ना नाड़ी) का द्वार खुलता है।
2. **प्राण-कुंडलिनी का उत्थान**:
   जैसे ही श्वास 'सोऽहम्' की लय में स्थिर होती है, सोई हुई **कुंडलिनी शक्ति** जागृत होकर ऊपर की ओर उठती है। तंत्रालोक में इसे **'प्राण-कुण्डलिनी'** कहा गया है, जहाँ श्वास ही शक्ति का वाहन बन जाती है।
3. **द्वादशान्त का अनुभव**:
   अभिनवगुप्त कहते हैं कि श्वास जब हृदय से उठकर नासिका के बाहर 12 अंगुल की दूरी (**द्वादशान्त**) पर विश्राम लेती है, तो उस शून्य क्षण में 'शिव' का साक्षात्कार होता है। 'सोऽहम्' साधना इसी शून्य (Pause) को पकड़ने की कला है।
4. **अजपा-जाप से समाधि**:
   तंत्रालोक के अनुसार, जब साधक इस 'सोऽहम्' के प्रति पूरी तरह जागरूक हो जाता है, तो उसे प्रयास नहीं करना पड़ता। यह मंत्र अपने आप (अजपा) चलने लगता है, जिससे चित्त **'भैरव भाव'** (परम चेतना) में विलीन हो जाता है।

संक्षेप में: 'सोऽहम्' वह चाबी है जिससे प्राणों को बांधकर कुंडलिनी को शिव (सहस्रार) तक पहुँचाया जाता है।

Ask anything

Home Search Notifications Activity

07:45

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

शेख नूरुद्दीन वली (नंद ऋषि) की साधना पर दोहे:

नंद ऋषि की सादगी, प्रेम का पावन पंथ।
श्वासों की इस डोर में, लिखा मुक्ति का ग्रंथ ॥
(अर्थ: शेख नूरुद्दीन वली का मार्ग प्रेम और सादगी का है। उन्होंने श्वासों की साधना (प्राणायाम/सोऽहम्) को ही मोक्ष का मार्ग बताया।)

नूरी किरणें फूटतीं, जब हृदय खुले कपाट।
सोऽहम् सुमिरन से मिले, अलख निरंजन घाट ॥
(अर्थ: जब हृदय का द्वार खुलता है, तो ईश्वरीय प्रकाश (नूर) का अनुभव होता है। सोऽहम् के सुमिरन से उस अदृश्य परमात्मा का मिलन होता है।)

बाहर खोजे बावरा, भीतर भरा भंडार।
नंद कहे निज को परख, मिटे भरम का भार ॥
(अर्थ: अज्ञानी मनुष्य ईश्वर को बाहर खोजता है, जबकि खजाना भीतर है। नंद ऋषि कहते हैं कि स्वयं को पहचानने से ही सारे भ्रम दूर होते हैं।)

क्या आप इन दोहों के आधार पर **शेख नूरुद्दीन वली के किसी कश्मीरी 'श्रुख' (उपदेश)** का विस्तृत हिंदी काव्यात्मक अनुवाद देखना चाहेंगे?

Ask anything

07:45

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

यहाँ **सोऽहम् साधना** और **शेख नूरुद्दीन वली (नंद ऋषि)** के आध्यात्मिक दर्शन पर आधारित कुछ और प्रभावी **दोहा छंद** प्रस्तुत हैं:

सोऽहम् साधना (Soham Sadhna) पर विशेष दोहे:

श्वास खींचत 'सो' कहे, छोड़त 'हम्' उच्चार।
अजपा जप निशदिन चले, भव सागर के पार ॥
(अर्थ: श्वास लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हम्' का उच्चारण स्वाभाविक रूप से होता है। यह बिना जपे जाने वाला मंत्र ही संसार रूपी सागर से पार लगाता है।)

सोऽहम् की लय पकड़ ले, मन को कर ले मौन।
भीतर झाँक कर देख ले, तू है आखिर कौन ॥
(अर्थ: सोऽहम् की लय में खोकर जब मन शांत होता है, तब आत्म-साक्षात्कार होता है कि वास्तव में 'मैं वही (ईश्वर) हूँ'।)

हंस रूप में प्राण हैं, सोऽहम् ब्रह्म का रूप।
मिट जाए सब द्वैत भाव, खिले ज्ञान का धूप ॥
(अर्थ: प्राण ही 'हंस' और 'सोऽहम्' बनकर शरीर में व्यापत हैं। इस साधना से भेद मिट जाता है और ज्ञान का प्रकाश फैलता है।)

शेख नूरुद्दीन वली (नंद ऋषि) की साधना पर दोहे:

नंद ऋषि की सादगी, प्रेम का पावन पंथ।
श्वासों की इस डोर में, लिखा मुक्ति का ग्रंथ ॥
(अर्थ: शेख नूरुद्दीन वली का मार्ग प्रेम और सादगी का है। उन्होंने श्वासों की साधना (प्राणायाम/सोऽहम्) को ही मोक्ष का मार्ग बताया।)

Ask anything

कश्मीर के संतों का योगदान

कश्मीर की 'ऋषि परंपरा' ने इस साधना को आम लोगों के लिए सरल बनाया:

1. **लल्लेश्वरी (लल द्यद)**: उन्होंने अपनी 'वाख' में श्वास की गति (प्राण-साधना) को केंद्र में रखा। उनकी साधना का सार था कि श्वास के माध्यम से ही 'शिव' और 'शक्ति' का मिलन संभव है।
2. **नुन्द ऋषि (शेख नूरुद्दीन वली)**: उन्होंने सूफी चिंतन और योग साधना को मिलाकर सोऽहम् का अभ्यास किया। उनके अनुसार, श्वास ही वह सूत्र है जो बंदे को खुदा (या जीव को शिव) से जोड़ता है।
3. **अभिनवगुप्त**: इन्होंने अपनी रचनाओं में स्पष्ट किया कि सोऽहम् साधना 'प्रत्यभिज्ञा' (स्वयं को पहचानने) का सबसे सुलभ मार्ग है, जहाँ साधक अंततः अनुभव करता है कि "मैं वही (शिव) हूँ"। YouTube +3

साधना के लाभ

- **भावनात्मक स्थिरता**: यह मन को शांत कर आंतरिक स्थिरता प्रदान करती है।
- **आत्म-साक्षात्कार**: इसका अंतिम लक्ष्य यह अनुभव करना है कि आत्मा और परमात्मा अलग नहीं हैं।
- **वर्तमान में उपस्थिति**: निरंतर श्वास पर ध्यान देने से जागरूकता (Awareness) बढ़ती है। YouTube +2

कश्मीर के संतों के लिए सोऽहम् केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि **अद्वैत** (Non-duality) का जीवंत अनुभव था, जो कश्मीर की साझा संस्कृति (Composite Culture) का आधार बना। YouTube +1

07:42

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

से किया जाता है। यह मन को शांत करता है और दिव्य लोकों के द्वार खोलता है।

- *वाणी: "सोहं सोहं जप जपे, मिटे न मन की प्यास। सार शब्द पावे बिना, होवे न सत्य निवास।।"* (अर्थ: केवल सोहं के जाप से मन की प्यास पूरी तरह नहीं बुझती, जब तक 'सार शब्द' न मिल जाए, तब तक सत्यलोक में निवास नहीं मिलता।)

- **सार शब्द (Saar Shabd):** यह वह गुप्त 'आदि नाम' है जो लिखत-पढ़त में नहीं आता। यह गुरु द्वारा शिष्य को तब दिया जाता है जब उसकी 'सुरति' सोहं साधना से परिपक्व हो जाती है। यह जीव को सीधे **सतलोक** (अविनाशी लोक) ले जाता है।

2. त्रिकुटी का रहस्य (Mystery of Trikuti)

साधना के दौरान जब प्राण और मन स्थिर होते हैं, तो साधक की सुरति **'त्रिकुटी'** (दोनों भौंहों के बीच का स्थान) पर पहुँचती है।

- **संगम स्थल:** त्रिकुटी को तीन धाराओं (इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना) का संगम माना जाता है। यहाँ पहुँचने पर साधक को 'अनहद नाद' (आंतरिक दिव्य ध्वनियाँ) सुनाई देने लगती हैं।
- **प्रकाश का अनुभव:** यहाँ 'लाल' और 'सफेद' रंग के प्रकाश के दर्शन होते हैं। गरीबदास जी कहते हैं कि त्रिकुटी के पार जाने के लिए सोहं मंत्र एक 'पासपोर्ट' की तरह काम करता है।
  - *वाणी: "त्रिकुटी महल में पैठि कर, अनहद शब्द सुनाय। गरीब दास सोहं रटे, काल जाल कट जाय।।"*

3. साधना का अंतिम लक्ष्य: सतलोक (Satlok)

Ask anything

1. सोहं और अजपा जाप के दोहे

ये दोहे बताते हैं कि सोहं का जाप केवल मुख से नहीं बल्कि सांसों (श्वास-उच्छवास) की गति में समाहित होना चाहिए।

- **दोहा**: *"अजपा जाप अगाध है, सोहं शब्द सनेह। बिन जिभ्या सुमरण करो, तब पावे निज देह।।"*
(अर्थ: अजपा जाप अत्यंत गहरा है जिसे सोहं शब्द के प्रेम के साथ किया जाता है। बिना जीभ हिलाए सुमरण करने से ही वास्तविक आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होती है।)
- **दोहा**: *"स्वासा ही में सार पद, पद पद में श्वासा सार। दमदेही का खोज कर, आवागमन निवार।।"*[1.4.1]
(अर्थ: प्रत्येक सांस में ही वह परम पद (सार शब्द) छुपा है। अपनी हर सांस में उस परमात्मा को खोजो ताकि जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो सके।)
- **दोहा**: *"सोहं शब्द सुमिर ले, यहि विधि उतरे पार। गरीब दास सतगुरु बिना, अंधा है संसार।।"*
(अर्थ: सोहं शब्द का सुमिरन ही इस भवसागर से पार उतरने का तरीका है, लेकिन बिना पूर्ण गुरु के संसार अज्ञान के अंधेरे में ही रहता है।)

2. सोहं साधना पर छंद/पद (अमृतवाणी से)

गरीबदास जी की वाणियों में 'सुरति-निरति' और 'गगन मंडल' का वर्णन अक्सर सोहं साधना के संदर्भ में आता है:

- **छंद**: *"रटो राम रमता रखो, शील समता करे तो ही अजर रे। अलख नूर मेला गुरु कौन चेला, बजर काल डरे रे।। शब्द में समाना अमान अजोखम, चलो क्यों नगर रे।।"*[1.5.1]

Ask anything

एवमपमार्गनिरोधात् मध्यधामनि एव प्ररोहं प्राप्तः प्राणः संविद्रूपोद्रेकात् विश्वात्मकतामेव यायात्। तदाह

स आत्मा मातृका देवी शिवो देहव्यवस्थितः ।

स देहव्यवस्थितोऽपि हंसः प्राप्तमन्त्रदेवतैकात्म्यः सन् आत्मा सङ्कुचिताणुरूपः।

शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।'

इत्याद्युक्त्या मातृका देवी पारमेश्वरी शक्तिः शिवश्च नरशक्तिशिवात्मतया स एव परिस्फुरेदित्यर्थः।।८९।।

अत एव मन्त्रस्य प्राप्ततदैकात्म्यस्य प्राणस्य आत्मनश्च मन्त्रयितुर्न न कश्चिदपि भेदमनुसन्दध्यादित्याह

अन्यः सोऽन्योऽहमित्येवं विकल्पं नाचरेद्यतः।।९०।।

"प्राण के साथ ही जप करना चाहिये । इससे वह सिद्धि के योग्य हो जाता है ।"

इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये १ से १६ लाख तक के जप का निर्देश योग सञ्चार नामक शास्त्र में किया गया है । अधिक और कम जप का निर्देश योगियों की स्तरीयता के ही अनुकूल है । जप की इस चित्रात्मकता में भी रहस्य भरा हुआ है ॥८९॥

अपमार्ग का निरोध हो जाना अपने में एक बड़ी सिद्धि है । मध्यधाम में प्ररोह प्राप्त कर लेना साधक की एक बड़ी उपलब्धि है । इससे संविद्रूप का उद्रेक हो जाता है और वैश्वात्म्य का विकास होता है । यही कह रहे हैं—

प्राणापानवाह जीवन का वरदान है ।.यही हंस है । देह में व्यवस्थित आत्मा है । प्राणापान के गमागम से मन्त्र का ऐकात्म्य सिद्ध हो जाने पर जो योगी का स्वरूप निर्मित होता है, वह शक्ति से ओतप्रोत होता है ।

अथ हठयोग नाम तृतीयोपदेशः

चौपई

अवहि कहूं हठयोग सुनाई। आदिनाथ के वन्दौं पाई।
रवि शशि दोऊ एक मिलावै। याही ते हठयोग कहावै॥ १॥
प्रथम सु धर्म देश कहुं ताके। भलौ राज्य कछु दपल न जाके।
तहां जाइ के मठिका करई। अल्प द्वार अरु छिद्रसु भरई॥ २॥
लिप्त करै चहुं ओर सुगंधा। कूप सहित मठ इहिं विधि बंधा।
तामहिं पैठि करै अभ्यासा। गुरु गमि हठ करि जीतै स्वासा॥३॥
श्रमन करै वकवाद न मांडै। होइ असंग चेष्टा छांडै।
अति उछाह मन माहै करई। निश्चय रापि धीर्य पुनि धरई॥ ४॥
हठ करि आसन साधै भाई। हठ करि निद्रा तजती जाई।
हठ ही करि आहार घटावै। पाटौ पारौ कछू न पावै॥ ५॥
हठ करि तीक्षण कटुक सु त्यागै। सरसों तिल मद मास न मांगै।
हरित शाक कवहू नहिं पाई। हिंगु ल्हसनु सव देइ वहाई॥ ६॥
देह कष्ट पुनि करै न सोई। प्रात सनान उपासन कोई।

---

(१) आदिनाथ=महादेव, सब योग विद्या और योग विद्या के आचार्यों के आदि गुरु और प्रथम आचार्य।

(२) भलो राज्य......=ऐसे देश मे मठ वांध हठयोग करें जहा का राज्य शान्त और निष्कण्टक हो।

(३) गुरु गमि=गुरु के उपदेश और ज्ञान के अनुसार क्योंकि योग गुरुगम्य है विना गुरु के योग दुसाध्य है।

(४) श्रम न करै......=योगी को परिश्रम करना निषिद्ध है, अधिक बोलना भी अयोग्य है।

(५) निद्रा......=साधन बढ जाने पर अल्पाहारी और अल्पशायी होता जाय।

(६ से १२ तक) योगी का आहार-व्यवहार योग ग्रन्थों मे (हठयोग प्रदीपिका,

अथ लययोग

चौपई

अव लययोग कहूं बहु भांती। लय विन भय व्यापै दिन राती।
लय विनु जन्म मरन नहिं छूटै। लय विनु काल आइ कै कूटै॥ २८॥
लय समान नहि और उपाई। जो जन रहै राम लय लाई।
निशि वासर ऐसैं लै लागै। आवागमन सकल भ्रम भागै॥ २९॥
जैसैं चातक करै पुकारा। पीव पीव करि वारंवारा।
ऐसी विधि लय लावै कोई। परम स्थान समावै सोई॥ ३०॥
जैसैं कुञ्जी अंड सभारै। पुनि सो कूर्म दृष्टि नहिं टारै।
जो कोऊ ऐ लावै ऐसी। ताकौ जरा मृत्यु कहु कैसी॥ ३१॥
जैसैं वालक सर्प कुरंगा। थकित सु होइ नाद कै संगा।
ऐसी लय जो कोई लावै। जोनी संकट वहुरि न आवै॥ ३२॥
जैसैं वरत वांस चढि नटनी। वारंवार करै तहां अटनी।
इत उत कहूं नैंक नहिं हेरै। ऐसी लय जन हरि तन फेरै॥ ३३॥

रहने से—"रां रां रां रां" ऐसी संक्षिप्त आवाज निकलने लगती है जो शनैः शनैः "रं-रं-रं-रं" हो जाती है। इस ही को रंकार कहा है।

(३१) कुञ्जी—कुञ्ज पक्षी की मादिन। जो अपने ध्यान से अण्ड को सेती है। कूर्म=कछुआ और मगर ध्यान से अण्डे को सेते हैं।

(३२) बालक, सर्प, कुरङ्ग=बालक सुन्दर गीत वा कहानी सुन मग्न हो जाता है। सांप सपेरे की पूंगी पर प्रसन्न हो जाता है। कुरङ्ग, हिरण, नाद, बांसुरी आदि में रत हो जाता है। जोनी संकट (योनि+संकट) आवागमन।

(३३) अटनी=अटन, चलना फिरना, चक्कर देना।

जैसैं कुम्भ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हंसै देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यौं जन लय लावै दिन संझा॥ ३४॥
जैसैं गाइ जगल कौं धावै। पानी पिवै घास चरि आवै।
चित्त रहै वछरा कै पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा॥ ३५॥
ज्यौं जननी गृह काज कराई। पुत्र पिघूरै पौढत भाई।
उर अपनै तैं छिन न विसारै। ऐसी लय जन कौं निस्तारै॥ ३६॥
जैसैं कीट भृङ्ग की त्रासा। पलटि जाइ यहु वड़ा तमासा।
ऐसी विधि लय लागै जाकी। वारवार वलिहारी ताकी॥ ३७॥
सव प्रकार हरि सौं ऐ लावै। होइ विदेह परम पद पावै।
छिन छिन सदा करै रस पाना। लय ते होइ ब्रह्म समाना॥ ३८॥

दोहा

यह लय योग अनूप है करै ब्रह्म सामान।
भाग्य विना नहिं पाइये सतगुरु कहै सुजांन॥ ३९॥

अथ चर्चायोग

चौपई

अव यह चर्चायोग वषानौं। मति अनुमान कछू जो जानौं।
निराकार है नित्य स्वरूपं। अचल अभेद्य छांह नहिं घूपं॥ ४०॥

---

(३४) मंझा=माझ, मध्य। सझा=रात्रि।

ताकौ नाम राम तब राख्यौ। पीछैं विविधि भांति बहु भाख्यौ ॥ १८ ॥
सहस्र नाम की कौंन चलावै। नाम अनन्त पार कौ पावै।
राम मन्त्र सबकै सिरमौरा। ताहि न कोई पूजत औरा ॥ १९ ॥
राम मन्त्र सब मंहि तत सारा। और आहि जग के व्यौहारा।
राम मन्त्र ते शिला तिरानी। पाथर कहा तिरै कहुं पांनी ॥ २० ॥
राम मन्त्र के ऐसै कामा। पत्र न उठ्यौ लिषै जब नामा।
राम मन्त्र शिव गौरि सुनायौ। सोई नारद ध्रुवहिं पढायौ ॥ २१ ॥
पुनि प्रह्लाद गह्यौ सो मंत्रा। सही कसौटी काढे जंत्रा।
जरे न मरे षड्ग की धारा। राम मन्त्र के ये उपकारा ॥ २२ ॥
सुगम उपाइ और सदरोजी। राम मन्त्र कौं जौ ले षोजी।
प्रथम श्रवन सुनि गुरु कै पासा। पुनि सो रसना करै अभ्यासा ॥ २३ ॥
ता पीछै हिरदै मैं धारै। जिह्वा रहित मंत्र उच्चारै।
निश दिन मन तासौं रह लागौ। कबहूं नैंक न टूटै धागौ ॥ २४ ॥
पुनि तहां प्रगट होइ रंकारा। आपु हि आपु अखण्डित धारा।
तन मन विसरि जाइ तहां सोई। रोमहि रोम राम धुनि होई ॥ २५ ॥
जैसैं पांनी लौंन मिलावै। ऐसैं ध्वनि मांहि सुरति समावै।
राम मन्त्र का इहै प्रकारा। करै आपु से लगै न वारा ॥ २६ ॥

---

(१८) नाम राम=राम नाम ही को मुख्य मन्त्र ईश्वर प्राप्ति के लिये कहा है।

(२०) शिला तिरानी=सेतु बांधने मे राम नाम लिख कर नल नील आदि ने शिला पानी पर रक्खी सो डूबी नहीं। पत्र न उठ्यो=पत्ते पर नाम लिख देने से इच्छानुसार वह इतना भारी हो गया कि उठाये न उठा।

(२२) सही कसौटी=जो जो कष्ट हिरण्याक्ष ने दिये सो सब राम भजन से सह गये। काढे जत्रा=यत्र में होकर मानों निकले, अर्थात् पूर्ण कष्ट भोगे और बाल बांका न हुआ।

(२३) सदरोजी—सच कमाई।

(२५) रंकारा="राम राम राम राम" की लगातार अखण्डित धुनि गुजारते

'राम मंत्र' का बड़ा माहात्मा और महत्ता है। पत्थर पर राम नाम अंकित होने के कारण जल में भी पत्थर तैरता रहा (कहा जाता है कि सेतु बाँधते समय नल, नील आदि ने सागर के जल में शिलाओं पर राम मंत्र लिख कर रखा। नाम के प्रताप से वे सभी शिलाएँ पानी पर आज तक तैरती रहीं, डूबी नहीं)। पत्ते पर राम मंत्र लिख देने से इच्छानुसार वह इतना अधिक भारी हो गया कि उठाये नहीं उठ सका। राम मंत्र को शिव ने सती, नारद ने ध्रुव को सुनाया। प्रह्लाद ने इसी मंत्र का जप करते हुए समस्त कष्टों को सहन कर डाला।[1]

इस मंत्र को सद्गुरु से सुनने के अनन्तर साधक इसका अभ्यास करे। इसके अभ्यास के पश्चात् इसे हृदयंगम करके अजपाजप करे। दिन-रात साधक का मन इसी मंत्र में लगा रहे। जप का धागा कभी भी टूटने न पाये। इसी अवस्था पर साधक के मन में इस मंत्र की अखंडित ध्वनि गुंजरित होने लगेगी। जिस प्रकार पानी में लवण मिलकर एक रूप हो जाता है ठीक उसी प्रकार साधक को सुरति और नाम को एक रूप कर देना चाहिए। सुन्दरदास के शब्दों में—

प्रथम श्रवन सुनि गुरु कै पासा। पुनि सो रसना करै अभ्यासा॥
ता पीछे हिरदै में धारै। जिह्वा रहित मंत्र उच्चारै॥
निशि दिन मन तासौं रह लागौ। कबहूँ नेक न टूटे धागौ॥
पुनि तहँ प्रकट होइ रंकारा। आपुहि आपु अखंडित धारा॥
तन मन बिसरि जाइ तहाँ सोई। रोमहि रोम राम धुनि होई॥
जैसे पानी लौन मिलावै। ऐसे ध्वनि महिं सुरति समावै॥[2]

---

[1]राम मंत्र ते शिला तिरानी।
पाथर कहा तिरै कहु पानी॥
राम मंत्र के ऐसे कामा।
पत्र न उठ्यौ लिखे जब नामा॥
राम मंत्र शिव गौरि सुनायौ।
सोई नारद ध्रुवहि पढ़ायौ॥
पुनि प्रह्लाद गह्यौ सो मंत्रा।
सही कसौटी काढ़े जंत्रा॥
जरे न मरे षड्ग की धारा।
राम मंत्र के ये उपकारा॥
(स० यो० प्र० द्वितीयोपदेश:)

[2]स० यो० प्र०, द्वितीयोपदेश:

उसका बारम्बार अभ्यास करना ही सुन्दरदास के अनुसार 'मंत्रयोग' है। सन्तों ने अपने साहित्य की रचना और उपदेशों का प्रसार साधारण जनता के लिए किया था। सम्भवतः इसी कारण सुन्दरदास ने भी मंत्रयोग विषयक विचारों को सुगम और सरल बनाये रखने के लिए ही उसके शास्त्रीय पक्ष को अपनी विचार-धारा में स्थान नहीं दिया।

सुन्दरदास के शब्दों में सतगुरु 'मंत्रयोग' का मूल उद्गम है। उसकी कृपा के बिना, उसके पथ-प्रदर्शन के अभाव में वह बोधगम्य नहीं है।[1] समस्त सन्तों ने परस्पर विचार विनिमय किया कि उस परब्रह्म के प्रति भक्ति किस प्रकार की जाय जिसकी न रेखा है, न रूप है, न आकार है, न प्रकार है, सर्वत्र वर्तमान रहता हुआ भी वह अदृष्ट है। अनन्त होता हुआ भी स्थूल, दृष्टि से दूर एवं ऊपर है। गुणातीत होते हुए भी वह संसार की प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। जिस परब्रह्म को मानव ने देखा नहीं, सुना नहीं, उससे भक्ति किस प्रकार की जाय[2] विचार विमर्श के अनन्तर सन्तों ने अपनी सुविधा और सुगमता के लिए निराकार परब्रह्म की उपासना का साधन 'राम' मंत्र निर्धारित किया।[3] कारण कि राम नाम का जप समस्त मंत्रों और साधनाओं में श्रेष्ठ है। उसके समान और कोई उपासना नहीं है। यह मंत्र समस्त मंत्रों में श्रेष्ठ है।[4]

---

[1] मंत्रयोग अब सुनियहु भाई।
सतगुरु बिना न जान्यो जाई॥
(स० यो० प्र० द्वितीयोपदेशः)

[2] जाकै कछू रूप. नहि रेषा।
कौन प्रकार जाइ सो देषा॥
कहूँ न दीसै ठौर न ठाऊँ।
ताकौ धरहिं कवन विधि नाऊँ॥
(स० यो० प्र० द्वितीयोपदेशः)

[3] अपने सुख के कारन दासा।
काढ्यौ सोधि सुपरम प्रकासा॥
ताकौ नाम राम तब राष्यौ।
पीछे विविधि भाँति बहु भाष्यौ॥ (वही)

[4] राम मंत्र सबके सिरमौरा।
ताहि न कोई पूजत औरा॥
राम मंत्र सब महिं ततसारा।
और आहि जग के व्यौहारा॥
(स० यो० प्र० द्वितीयोपदेशः)

अथवा मृत्यु एवं पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।[१] जिस प्रकार से चातक बारम्बार पीव-पीव का उच्चारण करके प्रियतम की खोज में व्याकुल फिरता है उसी प्रकार साधक को परब्रह्म का स्मरण अपेक्षित है। जिस प्रकार कुंजी एवं कूर्म बड़े ध्यान से अपने अंडों को सेते हैं उसी प्रकार यदि साधक ध्यान से परब्रह्म का स्मरण करे तो वह जरा और मृत्यु आदि से मुक्त हो जाय। सुन्दर गीत वा कहानी सुन कर जिस प्रकार बालक आनन्द-विभोर हो जाते हैं सर्प पूंगी के मधुर रव को सुन कर आत्मविस्तृत हो जाता है और हिरण बाँसुरी की मोहक तान सुनकर ध्यानस्थ हो जाता है उसी लय से यदि मानव ब्रह्म का स्मरण करे तो समस्त भवताप विनष्ट हो जायँ। जिस प्रकार जलते हुए बाँस पर नटनी चढ़कर अपनी कला का प्रदर्शन करती हुई भी अपनी रक्षा रखती है और जैसे पनिहारी घड़े को सर पर रख कर भाँति-भाँति से अभिनय करती हुई भी घड़े का ध्यान नहीं विसराती है उसी प्रकार ब्रह्म का ध्यान रखनेवाला लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार जंगल की चरनेवाली गाय का ध्यान घर पर छूटे हुए बछड़े और गृहकार्य में संलग्न माता का ध्यान बच्चे पर रहता है उसी प्रकार हरिदास को ब्रह्म में लय रखना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्म में सतत ध्यान रखने वाले व्यक्ति ही अभावों से ग्रस्त संकटों से आवृत इस संसार से मुक्ति ग्रहण कर सकता है।[२]

---

[१]निशिवासर ऐसै लै लागै। आवागमन सकल भ्रम भागै॥

[२]जैसे चातक करै पुकारा। पीवपीव करि बारम्बारा।
ऐसी विधि लय लावै कोई। परम स्थान समावै कोई॥
जैसे कुंजी अंड समारै। पुनि सो कूर्म दृष्टि नहि टारै।
जो कोऊ लै लावै ऐसीं। ताकौ जरा मृत्यु कहुँ कैसी।
जैसे बालक सर्प कुरंगा। थकित सु होइ नाद कै संगा।
ऐसी लय जो कोई लावै। जोनि संकट बहुरि न आवै॥
जैसे बरत बांस चढ़ि नटनी। बारंबार करै तहाँ अटनी।
इत उत कहूँ नैक नहि हेरै। ऐसी लय जन हरि तन फेरै।
जैसे कुम्भ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हंसै देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यौं जन लय लावै दिन मंझा॥
जैसे गाइ जंगल कौ धावै। पानी पिवै घास चरि आवै।
चित्त रहै बछरा कै पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा॥

सन्त कवियों ने नाम को संसार में सारवस्तु माना है। नाम ही मानव को कल्याण दिलाने वाला है इसीलिये उन्होंने बारम्बार निःसार वस्तु को छोड़ कर सारवस्तु ग्रहण करने का उपदेश दिया है। सुन्दरदास ने नाम को तक्र (मठा) से निकले हुए घी के समान माना है जिसको सन्तों ने संसार से खोज निकाला है।[1] दरिया साहब (बिहार वाले) के शब्दों में—

संत नाम निजु सार है, अमर लोक के जाय।
कह दरिया सतगुरु मिलै संसय सकँल मिटाय ॥[2]

और दयाबाई के अनुसार इस जग में सारवस्तु नाम ही है जिसके भजन से मनुष्य स्वयं ही हरि के समान हो जाता है—

दया दास हरि नाम लै या जग में यह सार।
हरि भजते हरि ही भये पायो भेद अपार ॥[3]

गरीबदास के शब्दों में—

नाम सरोवर सार है, सोहं सुरत लगाय।
ज्ञान गलीचे बैठ करि सुन्न सरोवर न्हाय ॥[4]

सन्तों ने नाम को पारस की संज्ञा भी दी है। पारस वह पदार्थ है जिसके स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है। यहाँ पर नाम पारस और मानव को साधारण तत्व होने की कल्पना की गई है। कबीर[5], दरिया साहब (मारवाड़ वाले)[6] दूलनदास[7] सहजोबाई[8]

[1]स० बा० १, १०८।६
[2]स० बा० १, १२१।१
[3] ... ... १६८।२
[4] ... ... १८६।२३

[5]आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भयो छूटा बन्धन मोह ॥

[6]लोह पलट कंचन भया करि पारस का संग।
दरिया परसै नाम को सहजहि पलटै अंग ॥
दरिया सुमिरै नाम को आतम को आधार।
काया काची काँच सी कंचन होत न बार ॥

[7]दूलन नाम पारस परसि भयो लोह से सोन।
कुन्दन होइ कि रेशम बहुरि न लोहा होन ॥

[8]पारस नाम अमोल है धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल के सहजो डारै खोय ॥

बहुरि विपर्यय ऐसें धारै। पूरि पिंगला इड़ा निकारै।
कुम्भक राखि प्राण.को जीतै। चतुर्वार अभ्यास व्यतीतै ॥

ऋषियों द्वारा उपदेशित प्राणायाम की इस पद्धति का उल्लेख कर चुकने के पश्चात् लेखक ने पाठकों के समक्ष मतमतांतर प्रस्तुत करने के हेतु 'गोरक्ष पद्धति' के आधार पर भ प्राणायाम के सिद्धांतों का वर्णन किया है।[1] गोरक्ष पद्धति में "हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंस हसेत्युमुंमंत्रं जीवो जपति सर्वदा" मंत्र है। यह हंस नाम का अजपा गायत्री मंत्र है। योगचिन्तामणि ग्रंथ में भी इसका वर्णन है। कवि ने गोरक्षोक्त सिद्धांत का वर्णन इन छन्दों में किया है :

सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो।
स्वासो स्वासं सोहं जापं। सोहं सोहं आपै आपं ॥
द्वादश मात्रा पूरक करणं। द्वादश मात्रा कुंभक धरणं ॥
द्वादश मात्रा रेचक जाणं। पूरबवत सु विपर्यय ठाणं ॥
अधमे द्वादश मात्रा उक्तं। मध्यम मात्रा द्विगुणा मुक्तं ॥
उत्तम मात्रा त्रिगुणा कहिये। प्राणायाम सुनिर्णय कहिये ॥

गोरक्ष पद्धति में भी यही सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है। कवि ने पूर्ण रूप से गोरक्ष पद्धति मत को अपने शब्दों में व्यक्त कर दिया है—

प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ॥
। श० २। श्लोक ५।

अर्थात् समस्त प्राणायाम में मात्राओं का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है।

	पूरक की मात्रा	कुंभक की मात्रा	रेचक की मात्रा	मात्रा के काल का निर्णय ॐ अथवा गणना द्वारा किया जा सकता है।
निकृष्ट प्राणायाम में	४	१६	८	
मध्य प्राणायाम में	८	३२	१६	
उत्तम प्राणायाम में	१६	६४	३२	

[1]**यह ऋषिनि उक्त सुनाइहों इहिं भाँति प्राणायाम।**
सद्गुरु कृपातें पाइये मन होइ अति विश्राम ॥
अब मत मतांतर कहत हौं सुनि शिष्य अत्य प्रभाव।
गोरक्ष उक्त बखांनि हौं तिहि सुनत उपजय चाव ॥

अहं जगन्नाथ अहं जगदीशा। अहं जगपति अहं जगईशा।
अहं गोविंद अहं गोपालं। अहं ज्ञान धन अहं निरालं॥
(सु० ग्र० भाग १, पृ० ११२-११३)

तथा :

सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो।
स्वासो स्वासं सोहं जापं। सोहं सोहं आपै आपं॥
(सु० ग्र० भाग १, पृ० ४७)

इन पंक्तियाँ से कवि की 'सोऽहं' विषयक धारणा स्पष्ट हो जाती है। "अहं जगन्नाथ अहं जगदीशा।" "अहं जगपति अहं जगईशा।" "अहं गोविंद अहं गोपालं।" आदि पंक्तियों से 'सोऽहं' की भावना स्पष्ट रूप में प्रकट होती है।

स्फुट काव्य में एक स्थान पर कवि ने 'सोऽहं' को अद्वितीय जाप माना है। कवि के शब्दों में ही—

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और,
चित्त सों न चन्दन सनेह सों न सेहरा॥
हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन,
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा॥
सील सों न स्नान अरु ध्यान सों न धूप और,
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा॥
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और,
आतम सों देव नाहि देहं सों न देहरा॥
(स० वा० स० २, पृ० १२५)

रेखांकित पंक्ति में कवि ने 'सोऽहं' को जप, ध्यान और साधना का श्रेष्ठ साधन माना है।

———

ब्रह्म तक पहुँचने की डोरी माना है। इसी प्रकार बुल्ला साहब की निम्नलिखित पंक्तियाँ बड़ी रोचक प्रतीत होती हैं—

होहं हंसा लागलि डोर
सुरति निरति चढ़ु मनवाँ मोर ॥१॥
झिलिमिलि झिलिमिलि त्रिकुटी ध्यान
जगमग जगमग गगन तान ॥२॥
गह गह गह अनहद निसान।
प्रान-पुरुष तहँ रहत जान ॥३॥
लहरि लहरि उठि पछिव घाट
फहरि फहरि चल उरार वाट ॥४॥
सेत बरन तह आवे आप
कह बुल्ला सोइ माइ बाप ॥५॥[1]

गरीबदास जी ने 'सोऽहं' को ही ब्रह्म माना है—

तुमही सोहं सुरत हौ तुमही मन अरु पौन।
इसमें दूसर कौन है आवै जाय सो कौन ॥
स० बा० स० भाग १ पृ० १६२

इन सन्तों की तुलना में से सुन्दरदास के काव्य में 'सोऽहं' का भाव बड़े ही स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत कथन की समर्थक हैं—

सब संसार आप मैं दिषै। पूरण आपु जगत महिं पैषै।
आपुहि करता आपुहि हरता। आपुहि दाता आपुहि भरता ॥
आप ब्रह्म कुछ भेद न आनैं। अहं ब्रह्म ऐसै करि जानैं।
अहं परात्पर अहं अखंडा। व्यापक अहं सकल ब्रह्मंडा ॥
अहं निरंजन अहं अपारा। अहं निरामय अरु निरकारा।
अहं निलेप अहं निज रूपं। निर्गुण अहं अहं सु अनूपं।
अहं सुख रूप अहं सुख राशी। अहं सु अजर अमर अविनाशी।
अहं अनन्त अहं अद्वीता। अहं सु अज अव्ययं अमीता।
अहं अभेद्य अछेद्य अलेषा। अहं अगाध सु अकल अदेषा।
अहं सदोदित सदा प्रकाशा। साक्षी अहं सर्व महिं बासा।
अहं शुद्ध साक्षात सुन्यारा। कर्ता अहं सकल संसारा।
अहं सीव सूक्ष्म सब सृष्टा। अहं सर्वज्ञ अहं सब दृष्टा।

[1] स० वा० स० भाग २, पृ० १७१

से घृणा हो जाती है, समाज विनिर्मित नियमो की वह परवाह नही करता है, ससार उसे प्रतिकूल मार्ग पर अग्रसर दीख पडने लगता है। इसीलिए वह अपने ससार मे विचरण करता रहता है। उसके ससार में न दुख है, न सुख है, न हर्ष है, न विषाद है, न प्रलोभन है, न पुरस्कार है, न उच्च है, न नीच है। उसके ससार मे केवल वही है, वह विश्वात्मा के रूप मे अपने को कण-कण मे व्याप्त देखता है। माया उसका स्पर्श तक नही कर पाती है। शाति, सरलता, निष्पक्षता, और निर्लिप्तता उसकी प्रकृति के विशेष गुण बन जाते हैं। वह मानव-मानव मे भेद की भावना विसर जाता है। इसी स्तर पर पहुँचकर ईसा ने कहा था "I and my Father are one"

ईसा की उपर्युक्त उक्ति से स्पष्ट है कि 'सोऽह' की अनुभूति के अनन्तर मानव अन्य मनुष्यो से अपना भेद नही समझता अथवा कहिये कि उसकी समस्त भेद-बुद्धि विलीन हो जाती है और उसके हृदय एव मस्तिष्क मे 'सोऽह' भावना विद्यमान होने के कारण समता एव अभिन्नता की भावना अकुरित एव पुष्पित हो उठती है। मानव-मानव मे अभिन्नता है, मानव 'वही ब्रह्म' स्वय है। 'सोऽह' की यह भावना हिन्दी के सन्त कवियों मे अत्यधिक उपलब्ध होती है। कबीर दास, सुन्दरदास, पलटू साहब, गुलाल साहब, गरीबदास, दयाबाई, बुल्लेशाह, मलूकदास आदि के साहित्य मे उनकी 'सोऽह' की अनुभूति समान रूप से अभिव्यक्त मिलती है।

सत कवि भीखा 'सोऽह' को 'आत्मा' देखने का एक बहुमूल्य साधन मानते हैं जिसकी अनुभूति युक्तिपूर्वक योगाभ्यास से ही सम्भव है।[1] दयाबाई के अनुसार 'सोऽह' वह अजपाजप है जिसकी साधना के द्वारा मनुष्य पाताल से आकाश मे गति प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि 'सोऽह' की साधना मे मानव ब्रह्ममय हो जाता है।[2] सन्त कवि मलूकदास ने बारम्बार 'सोऽह' साधना का उपदेश दिया है, कारण कि 'सोऽह' साधना मात्र से जीव ब्रह्ममय हो जाता है और भव-बाधाओ से ऊपर हो जाता है। ससार के त्रय तापों से उसका कोई सम्बन्ध नही रह जाता है।[3] गुलाल साहब[4] और कबीरदास[5] ने 'सोऽह' को

[1]जोग जुक्ति अभ्यास करि सोह सबद समाय।
भीखा गुरु परताप ते निज आतम दरसाय॥
स० बा० सा० भाग १, पृ० २१०

[2]अजपा सोह जाप है परम गम्य निज सार। स० बा० स० भाग १ पृ० १६६

[3]सन्तो सोहं साधन कीजै।
सोह साधन ते ताप मिटत है, जीव ब्रह्म होइ जाये।
शब्द सग्रह (अप्रकाशित)

[4]स० बा० स० भाग २, पृ० २०५

[5] ,, ,, पृ० ७

मुञ्चेद्वायुं[३] ततस्तूर्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित्। उच्छ्वासयोगयुक्तश्च वायुमूर्ध्वं विरेचयेत् ।।२३।।
उच्चरति स्वयं यस्मात्स्वदेहावस्थितः शिवः। तस्मात्तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते ।।२४।।
अयुते द्वे सहस्रैकं षट्शतानि तथैव च। अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसंख्यां करोति सः ।।२५।।
अजपा नाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी। अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते ।।२६।।
चन्द्राग्निरविसंयुक्ता आद्या कुण्डलिनी मता। हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अङ्कुराकारसंस्थिता ।।२७।।
सृष्टिन्यासो भवेत्तत्र स वै सर्गावलम्बनात्। स्रवन्तं चिन्तयेत्तस्मिन्नमृतं सात्त्विकोत्तमः ।।२८।।
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः। हंस हंसेति यो ब्रूयाद्धंसो नाम सदाशिवः ।।२९।।
तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्धः समाश्रितः। पुरुषस्य तथा देहे सबाह्याभ्यन्तरं स्थितः ।।३०।।
ब्रह्मणो हृदये स्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः। तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ।।३१।।
प्राणाग्रं तु शिवं विद्यात्तस्यान्ते तु परापरम्। पञ्चधा सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फ(ष्क)लः ।।३२।।
प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद्यदि। षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ।।३३।।
गमागमस्य ज्ञानेन सर्वपापक्षयो भवेत्। अणिमादिगुणैश्वर्यं षड्भिर्मासैरवाप्नुयात् ।।३४।।
स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया। ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादं लक्षयेत्त्रिधा ।।३५।।

की क्रिया से शून्य हो परिपूर्ण कुम्भ की भाँति स्थित हो जाय–इसे 'कुम्भक' कहते हैं। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता साधक ऊपर की ओर एक ही नासारन्ध्र से वायु को निकाले। इस प्रकार उच्छ्वास योग से युक्त हो वायु का ऊपर की ओर विरेचन (निःसारण) करे (यह 'रेचक' प्राणायाम है) ।।२१-२३।। (मनुष्यों के) शरीर में रहनेवाला शिव ही (हृदय स्पन्दन के समय हंसः-हंसः के रूप में) उच्चारण किया करता है, इसीलिए तत्त्ववेत्ता (योगी) लोग उसे जप कहते हैं। उच्चकोटि के योगीगण एक रात-दिन में इक्कीस हजार छह सौ बार उसका जप करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बद्ध गायत्री का नाम अजपा है। जो इस अजपा का जप करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है ।।२४-२६।। चन्द्रमा, अग्नि तथा सूर्य से संयुक्त आद्या शक्ति कुण्डलिनी कहलाती है। वह अंकुर रूप हृदय-देश में रहा करती है। सम्पूर्ण सृष्टि का न्यास सृजन अवलम्ब है। श्रेष्ठ सात्त्विक साधक को सदैव यह चिन्ता करते रहना चाहिए कि उस कुण्डलिनी से अमृत टपक रहा है। जो देह में रहता है, वह सकल (पूर्ण) है और जो उससे अलग है वह निष्कल (अपूर्ण) है। जो हंसः-हंसः कहा जाता है, वह हंसः सदाशिव का ही है ।।२७-२९।। जैसे तिल में तेल और पुष्प में गन्ध व्याप्त है, उसी तरह पुरुष के शरीर में बाहर-भीतर सर्वत्र वह हंसः व्याप्त रहता है। ब्रह्मा का स्थान हृदय में है तथा विष्णु कण्ठ में हैं, रुद्र तालु में और महेश्वर ललाट में निवास किया करते हैं। प्राणाग्र में शिव और उसके भी अन्त में परापर (ब्रह्म) का स्थान है। सकल पाँच प्रकार का है और निष्कल उसका विपरीत होता है ।।३०-३२।। जो व्यक्ति छह मास तक योगयुक्त होकर प्रासाद नामक नाद को उठाकर शततन्तु का नित्य जप करता है, उसे निःसन्देह सिद्धि प्राप्त हो जाती है। गमनागमन (आने-जानेवाले) वायु का ज्ञान प्राप्त होने से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को छह मास के भीतर अणिमा आदि ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं ।।३३-३४।। स्थूल, सूक्ष्म तथा पर नामक प्रासाद (ध्वनियों) को तो मैं बता चुका हूँ। इसके तीन

---

३ क. ङ. "ञ्चेच्छ्वासं त"।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तन्मात्राणामाद्यानि यानि पृथिव्यादीनि भूतानि तन्मात्राश्च आद्यानि येषामिन्द्रियादीनां तानि सर्वाणि तत्त्वानि श्रीमन्मतङ्गाद्युक्तवत् प्रकाशयतीति वेदितव्यम्।

[तत्त्वानां बन्धकत्वनिवर्तनम्]

तानि च तत्त्वानि तस्यैव चास्त्रस्यानुसन्धानात् बन्धकत्वान्निवर्तन्त इत्याह-

पुनर्विनाशकश्चैवास्त्रयुक्तः षडानन[9]।

तेषामिति शेषः। तदानीं चाङ्गानामपि तदुद्भूतत्वात् पृथगुचारो नोपयोगीत्याह-

न पृथक् हृदयं तस्य न शिरो न शिखा गुह॥ १२॥

वर्मास्त्रनेत्रसहितं तस्मादेव प्रवर्तते।

[प्राणायामप्रकारः]

अथ प्राणायामस्यापि सगर्भतां पूर्वं प्रकाशयन् कुम्भकप्राणायामपूर्वकं ध्यानं कार्यमित्याह-

प्राणापानौ समौ कृत्वा सुषुम्नान्तरचारिणौ॥ १३॥

तयोर्वृत्तिं[10] निरुध्यात्मा शिवं ध्यायेद्विचक्षणः।

---

[9] न दन्तैः . . . षडानन .. पर्यन्तं T2 मातृकायां नास्ति .

[10] वृत्तिं M, T1, T2, T3 ; वृत्तिः T, T4

२. अजपा गायत्री (Ajapa Gayatri) - बिना जपा जाने वाला मंत्र

छवि में 'सोहं-हंस' के जिस जाप का वर्णन है, उसे ही **'अजपा गायत्री'** कहते हैं।

- **प्राकृतिक जाप:** हर मनुष्य दिन भर में लगभग २१,६०० बार साँस लेता है। साँस बाहर निकालते समय **'हं'** और भीतर लेते समय **'स'** की ध्वनि होती है। यह 'सोहं' का जाप अपने आप (अजपा) निरंतर चल रहा है।
- **साधना:** जब साधक सचेत होकर अपनी **'सुरति'** (ध्यान) को इस स्वाँस-प्रस्वाँस की गति से जोड़ देता है, तो उसे 'अजपा गायत्री' सिद्ध हो जाती है।
- **फल:** जैसा कि आपकी छवि के दोहे में लिखा है— *"सोहं हंस को जप करे, तो लहै मोक्ष निर्बान।"* यानी इस प्राकृतिक जाप को पहचान लेने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति सरल हो जाती है।

---

३. 'नाद-बिंदु' और 'अजपा' का मिलन

जब खेचरी मुद्रा और अजपा गायत्री एक साथ सधती हैं, तब:

1. **मनपवना (Mind and Breath):** मन और प्राण वायु एक हो जाते हैं।
2. **ज्योति (Divine Light):** साधक को भीतर 'ज्योति' (प्रकाश) के दर्शन होते हैं।
3. **अनहद (Inner Sound):** कानों में दिव्य संगीत गूँजने लगता है।

17:56

AI Mode All Products Homework Visual matches

भजन: स्वाँसा-स्वाँस में सोहं सुमिरो

> **मुखड़ा:**
> **स्वाँसा-स्वाँस में सोहं सुमिरो, व्यर्थ स्वाँस मत खोवो रे।**
> **करणी कृपा गुरु की पाकर, सोवत मन ने जगावो रे ॥**

- **भावार्थ:** बाबा कहते हैं कि अपनी हर आती-जाती साँस के साथ 'सोहं' का स्मरण करो। एक भी साँस बिना सुमिरन के खाली न जाए, क्योंकि हर साँस कीमती है। गुरु की कृपा लेकर अपने सोए हुए मन (अज्ञान) को जगाओ।

> **अंतरा १:**
> **नाभि कमल से उठी हंकारा, कंठ सकारे जावे रे।**
> **उलटि सुरत जब भृकुटी आवे, अनहद नाद सुणावे रे ॥**

- **भावार्थ:** जब हम साँस छोड़ते हैं (हं) और लेते हैं (स), तो यह ध्वनि नाभि से उठकर कंठ तक आती है। जब साधक अपनी एकाग्रता (सुरत) को संसार से उलटकर दोनों भौंहों के बीच (भृकुटी) ले आता है, तो उसे भीतर का दिव्य संगीत (अनहद नाद) सुनाई देने लगता है।

Ask anything

17:50

AI Mode All Products Homework Visual matches

२. सोहं साधना पर छंद/पद (अमृत अनुराग के आधार पर)

बाबा करणी नाथ जी अक्सर सोहं साधना को **'अजपा गायत्री'** के रूप में समझाते थे, जिसके मुख्य सूत्र इस छंद में समाहित हैं:

> **छंद:**
> **हंकारे बहिराया, सकारे पैठिया।**
> **सोहं पद के मध्य में, ज्योति को देखिया ॥**
> **अजपा को जपते रहे, करणी सिद्ध भये।**
> **भवसागर से तरि गये, आवागमन गये ॥**

- **व्याख्या:**
    - जब हम साँस बाहर छोड़ते हैं, तो ध्वनि **'हं'** (Hām) होती है और जब साँस भीतर लेते हैं, तो **'स'** (Sām) की ध्वनि होती है। इन दोनों के मिलन से **'सोहं'** बनता है।
    - इन दोनों साँसों के संधि स्थल (मध्य) में ध्यान लगाने पर 'दिव्य ज्योति' के दर्शन होते हैं।
    - इस 'अजपा जाप' (जो बिना बोले निरंतर चलता है) को सिद्ध करके ही बाबा करणी नाथ जी ने मुक्ति पाई और जन्म-मरण के चक्कर से छूट गए।

Ask anything

१. सोहं साधना पर दोहे (भाव सहित)

> **दोहा:**
> **सोहं सोहं जप करै, मन ही मन में लीन।**
> **करणी कहे उस घाट पर, सुरत होवै परबीन ॥**

- **अर्थ:** बाबा कहते हैं कि जो साधक निरंतर 'सोहं-सोहं' का जाप अपने भीतर (साँसों में) करता है और उसमें पूरी तरह लीन हो जाता है, उसकी चेतना (सुरत) उस ऊँचे घाट (ब्रह्मरंध्र) पर पहुँचकर अत्यंत प्रवीण और दिव्य हो जाती है।

> **दोहा:**
> **स्वास-स्वास में सोहं सुमिरो, व्यर्थ स्वास मत खोय।**
> **करणी किरपा गुरु की, अलख लखावै सोय ॥**

- **अर्थ:** हर आती-जाती साँस के साथ 'सोहं' का स्मरण करो, एक भी साँस बिना सुमिरन के खाली न जाए। बाबा कहते हैं कि जब गुरु की कृपा होती है, तभी उस 'अलख' (अदृश्य परमात्मा) का साक्षात्कार संभव होता है।

---

२. सोहं साधना पर छंद/पद (अमृत अनुराग के आधार पर)

बाबा करणी नाथ जी अक्सर सोहं साधना को **'अजपा गायत्री'** के रूप में

ऐसे आत्म ब्रह्म बिचारै । एकजानि करि द्वैत निवारै ।।
ज्यों सागर में बूँद समावै । त्यों अत्म में मन लगावे ।।१३।।
ऐसी भांति विचारहि करते । निसदिनब्रह्ममांहि चित्तधरते ।।
त्रिगुणाकार सकल भ्रम भागे । होए ब्रह्म सोवत सों जागे ।।१४।।
द्वै ब्रह्म ब्रह्म मिलि जावै । जहाँहुते वहस्यों नहिं आवै ।।
ऐसी बिध ऊव दुख न दहै । हरि को निजानंद पद लहै ।।१५।।

दोहा ।

आत्म ज्ञान निश्चे करे, बिधि सों रोके प्रान ।
सोहं हंस को जप करे, तो लहै मोक्ष निर्बान ।।
यह समझि तोसौं कही, साधनते सिद्धहोए ।
जीव समावे ब्रह्म में बहुरि न बिसरे कोए ।।

चौपाई।।

आसन मुद्रा कुंभक साधै । बार बार पूरक कों साधै ।।
प्राण अपान एक ह्वै जाई । थिर कै स्वासन बिसरे काई ।।१६।।
नाद बिन्द कों एक करावै । मनपवना घटमांहिसमावै ।।
आत्म तत्व में होवे लीन । जैसे जल में विचरे मीन ।।१७।।
जैसे पानी लून समावै । ऐसे मिल्या फेर न आवै ।।
ज्यों जीवात्म परमात्म मांही । होवे लीन देह सुध नांही ।।१८।।
सीत उष्ण को गम नहिं काई । बन बस्ती जाके सम भाई ।।
निजानंद पद मांहि समावै । याको नाम समाधि कहावै ।।१९।।

दोहा।

हद छाड़े बेहद भए, भूल गए गुन तीन ।
सकल मिटाई वासना, भए ज्योति में लीन ।।

Scanned by Ca

साधक को ब्राह्ममुहूर्त में तीन बजे उठने का नियम है। इन नियमों का अपने स्वास्थ्य और सुस्थिरता को देखकर इनका पालन अवश्य करना चाहिए। अधिक गरिष्ठ भोजन करने वाले जिनका आमाशय भरा हुआ है वे रात्रि में नहीं उठ सकते। इसलिये रात्रि में हल्का भोजन करना चाहिए और सुबह उठने

Scanned with CamScanner

के लिये १० बजे रात्रि में सो जाना चाहिए, शौच के लिये ताजा जल उषापान आवश्यक है। यकृत, गुर्दा, अँतड़ी ठीक से काम करें इस पर प्रत्येक साधक को ध्यान रखना चाहिए। हठात् प्राणायाम से एकबारगी इन्द्रियों का दमन नहीं होता। शारीरिक ब्रह्मचर्य से मानसिक संयम और सदाचार श्रेष्ठ है। अतएव बाहरी शुद्धि तो होगी ही, आन्तरिक पवित्रता पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। साधन-अभ्यास का क्रम लगातार चलना चाहिए, नहीं तो धार पकड़ने में कठिनाई प्रतीत होगी। इस पर सद्गुरुदेव विशेष जोर देते थे। नित्य और नैमित्तिक दो प्रकार से साधन होते हैं। सामान्य साधन तो सदैव होना चाहिए। जब सामान्य साधन नित्य का होगा, तभी विशेष साधन में हम पूर्ण परिश्रम कर सफलीभूत हो सकते हैं। श्री सद्गुरुदेव चिरकाल तक गुहा-अनुष्ठान किये। छः वर्ष का अनुष्ठान होता है। प्रथम सद्गुरुदेव बाहर एकान्त वन तथा बाग, उपवन में साधन करते थे। छः घण्टे तक एक आसन पर बैठकर प्रथम कोटि का प्रारम्भिक साधन करते थे। फिर गुहा में आकर दृढ़ासीन हो चौबिसों घण्टों का अभ्यास करते थे। बिना अन्न और जल के दो-दो हफ्ते एक आसन से बैठकर यह अवस्था प्राप्त की थी। इस प्रकार १७ वर्ष की घोर साधन-तपस्या के पश्चात् ही प्रचार क्षेत्र में आये। उस वक्त कच्चा केला, गौ का दूध या कभी-कभी हल्का भोजन करते थे। उनकी प्रारम्भ में अवधूत वृत्ति थी, पीछे तो अपने आनन्द में गुहा में रहते थे। अभ्यास क्या? वे तो ब्रह्मानन्द में निमग्न थे। योगी पुरुषों की बात है, यह नियम साधारण साधकों में नहीं हो सकता। अतएव आचार्य द्वारा समस्त विषयों का बोध प्राप्त कर साधन-अभ्यास में आगे बढ़ना चाहिए। शरीर शुद्ध तथा ज्ञान-वैराग्यपूर्ण होने पर ईश्वर की असीम

Scanned with CamScanner

अल्पाहार साधक के लिए उत्तम है। गौ का धारोष्ण दूध बुद्धि, बल को बढ़ाता है और जीवनशक्ति भी देता है। मूँग की दाल, चोकरयुक्त रोटी, लौकी, परवल, रामतरोई हल्का भोजन है। आटे में चोकर का रहना जरूरी है। चोकर सुपाच्य है और आमाशय में शीघ्र पच जाता है। मूँग की दाल गाढ़ी होनी चाहिए। गाढ़ी दाल शीघ्र पचती है। प्रमाण से ही भोजन हो, कामोवेश न हो। शाम को दूध और फल पर रहा जाय तो रात्रि में साधन में अत्यन्त आनन्द मिलता है। फल भी सरस, सुस्वादु हो। गरिष्ठ और वासी फल शीघ्रता से नहीं पचता है। गुड़, चीनी, अदरख, जीरा, खट्टा और अधिक मीठा, नमकीन भोजन उत्तेजक और गरिष्ठ होता है। साधक को तरातर हलुआ, गर्म दूध कभी नहीं पीना चाहिए।

Scanned with CamScanner

धारोष्ण गौ का दूध अच्छा है, जो गाय रोग अथवा किसी अन्य व्याधि से रहित हो। दूध गर्म कर सकते हैं, परन्तु दूध को आग पर रखकर औंटाना नहीं चाहिए। मैं तो धारोष्ण दूध पीने को अच्छा समझता हूँ। सूर्योदय के दूध से सूर्यास्त वेला का दूध शीघ्र पचने वाला होता है। गायें दिन में चरकर घूम-फिरकर आती हैं। बैठकर खिलाने वाली गौ से जो गौ घूम-फिरकर चारा चूगती हैं, उनका दूध अधिक लाभप्रद होता है। अतएव जो साधक अधिक साधन में रत हैं, उन्हें शाम को दूध और सन्तरा खाकर आहार पूरा कर लेना चाहिए। कोई नियम धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। जितनी ही जीवन में पवित्रता होगी उतने ही साधन में आगे चलने के लिए सहायता मिलेगी। सभी नियमों का पालन सब नहीं कर सकते, क्योंकि सबको सर्व प्रकार की सुविधा प्राप्त नहीं है। मनमानी देखा-देखी, सुनी-सुनाई बातों के आधार पर किसी नियम, साधन को कभी प्रारम्भ नहीं करना चाहिए, नहीं तो अत्यन्त हानि होने की संभावना पायी गयी है। दूध, घी, मूँग, साठी, ब्राह्मी, नीम की पत्ती अनुत्तेजक सभी पदार्थों का ज्ञानपूर्वक उपयोग कर सकते हैं। स्वामी जी ने चना का वर्णन स्वर्वेद में किया है, किन्तु यह शुष्क और निस्तेज करने वाली वस्तु है। इसका उपयोग ब्रह्मचारी साधक कर सकते हैं। गृहस्थाश्रमी साधक इसका उपयोग नहीं करते। मादक फलों में जैसे आम, कटहल का उपयोग साधन-अवस्था में नहीं होना चाहिए।

विशेष साधक की शरीर-शुद्धि हो जानी चाहिए, नहीं तो शरीर में वात, पित्त, कफ के दोषों के रहते प्रकृति के अनुकूल न होने से मानसिक और बौद्धिक ह्रास होने की अत्यन्त संभावना रहती है।

बलपूर्वक कभी साधन नहीं करना चाहिए। प्रसन्नता और हर्ष

10:47

प्रश्न- आप कब रात्रि में निकलते थे?

उत्तर- तीन बजे ब्राह्ममुहूर्त में गुहा से निकल कर नित्य क्रिया करके गुहा के अन्दर चले जाते थे। दिन में कभी बाहर नहीं रहते थे। कभी-कभी रात्रि में गुहा से निकल कर बाहर मैदान में टहलते थे।

प्रश्न- आप वस्त्र क्या पहनते थे?

उत्तर- लिंगोट और कभी अल्फी का व्यवहार करते थे।

प्रश्न- आप अवधूत वृत्ति में भी थे?

उत्तर- हाँ! बाहर बन, श्मशान भूमि तथा एकान्त स्थानों में रहते थे। प्रेमी तथा निज घर के लोग उन्हें भोजन खिला आते थे।

प्रश्न- आप षट् क्रिया का भी साधन करते थे?

उत्तर- हाँ, आप हठयोग की सारी क्रियायों को जानते थे। प्राकृतिक विज्ञान के पूर्णवित्ता थे। आपने हठयोग के सम्बन्ध में "योग चन्द्रिका" नामक ग्रन्थ की रचना की।

प्रश्न- आप चार गुरुओं में कौन-सा गुरु हैं।

उत्तर- नित्य अनादि सद्गुरु द्वारा उपदिष्ट अभ्याससिद्ध गुरु हैं।

प्रश्न- क्या सद्गुरु भी चार प्रकार के हैं?

उत्तर- हाँ! नित्य अनादि सद्गुरु, स्वयंसिद्ध गुरु, अभ्यससिद्ध गुरु, परम्परा गुरु-- ये चार प्रकार के सद्गुरु होते हैं।

प्रश्न- आपने अध्यात्मविद्या के किस सद्ग्रन्थ का निर्माण किया है?

उत्तर- 'स्वर्वेद', इस ग्रन्थ को आपने उत्तराखण्ड हिमालय में निज स्थापित शून्य शिखर आश्रम पर लिखा।

प्रश्न- आप ने वेदों को भी पढ़ा था?

उत्तर- हाँ! चारों वेदों को पढ़ा था। वेदों के योग-विषयक आध्यात्मिक मन्त्रों पर भी आपने भाष्य लिखा है।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- आपने वैदिक साहित्य का अध्ययन किया था?

उत्तर- चार वेद, ग्यारह उपनिषदें, षट् दर्शन, समस्त धर्मशास्त्र, महाभारत और सन्तमत के समस्त ग्रन्थों के आप पूर्ण विद्वान्, तत्त्वदर्शी थे।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

10:46

प्रश्न- श्री सद्गुरु सदाफलदेव जी महाराज ने कितने दिनों की तपस्या के बाद समाधि, जीवन्मुक्त अवस्था की प्राप्ति की।

उत्तर- १७ वर्षों तक घोर परिश्रम करके गंगा-यमुना के पवित्र तटों पर साधन, तपस्या, विहंगम योगाभ्यास द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति की।

प्रश्न- उन्होंने किस मार्ग से समाधि-अवस्था की प्राप्ति की?

उत्तर- विहङ्गम योग समाधि के द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति, जीवन्मुक्त अवस्था की प्राप्ति की।

प्रश्न- सद्गुरुदेव ने प्रथम कोटि का साधन कितने दिनों तक किया था?

उत्तर- बाहर-बाहर एकान्त स्थान एवं अरहर और ईख के खेतों में बैठकर दिन-रात तीन वर्षों तक साधन किया, उसके पश्चात् गुहा में भी इसका साधन-अनुष्ठान किया था।

प्रश्न- गुहा में कैसे रहते थे?

उत्तर- योगासन में स्थित ब्रह्मानन्द में सदैव निमग्न रहते थे। बाहर से कोई दर्शन नहीं पाता था। सेवक समय पर उन्हें फलाहार, दूध देता था। आप सदैव अन्तर्मुख हो निशिदिन योग-समाधि में रहते थे। आपके पास कोई आता नहीं था। आप सदैव गुहा में एकाकी रह अपने साधन में तत्पर रहते थे।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- आप कब रात्रि में निकलते थे?

उत्तर- तीन बजे ब्राह्ममुहूर्त में गुहा से निकल कर नित्य क्रिया करके गुहा के अन्दर चले जाते थे। दिन में कभी बाहर नहीं रहते थे। कभी-कभी रात्रि में गुहा से निकल कर बाहर मैदान में टहलते थे।

प्रश्न- आप वस्त्र क्या पहनते थे?

उत्तर- लिंगोट और कभी अल्फी का व्यवहार करते थे।

प्रश्न- आप अवधूत वृत्ति में भी थे?

उत्तर- हाँ! बाहर बन, श्मशान भूमि तथा एकान्त स्थानों में रहते थे। प्रेमी तथा निज घर के लोग उन्हें भोजन खिला आते थे।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

10:44

उद्घोष

अद्भुत मारग योग विहंगम, मैं तुमको बतलाऊँगा।
यदि विधिवत तुम साधन करिहो, अमर लोक पहुँचाऊँगा।।
प्रकृति आधार तोहि छोड़वाऊँ, निज स्वरूप ठहराऊँगा।
सुरति उलटि के गगन चढ़ाऊँ, डोरी मकर धराऊँगा।।
पिण्ड ब्रह्माण्ड शून्य जो अरषठ, ता ऊपर बैठाऊँगा।
अनुभव दरशे मोती बरसे, अमिय नद्द अन्हवाऊँगा।।
शुद्ध रूप तोहि हंस बनाऊँ, परम पुरुष दिखलाऊँगा।
वहाँ की दृश्य कौन मैं वरणों, वाणी बुद्धि न पाऊँगा।।
महाप्रभु अनन्त दयामय, उनसे तोहि मिलाऊँगा।
कहैं 'सदाफल' परमानन्दा, आवागमन मिटाऊँगा।।

Scanned with CamScanner

प्रश्नोत्तरी

100%
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

प्रश्न- सोहं को अजपा कहते हैं परन्तु स्वर्वेद में अक्षर को अजपा कहा गया है, इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर- ब्रह्माण्डी पंच शब्दों में सोहं है। सोहं शब्द प्राकृतिक है। जो प्रकृति प्रदेश में अक्षर सन्निधि से मन, प्राण के मण्डल में नीचे ब्रह्माण्ड में होता है। आज के साधक श्वाँसा में सोहं शब्द की कल्पना करते हैं। परन्तु उनको पता नहीं कि सोहं का आदि और मूल स्थान कहाँ है और सोहं शब्द ब्रह्माण्ड में कैसे और कहाँ होता है? जब अजपा है, तब श्वाँसा के साथ जपने की क्या आवश्यकता है। गुरुविहीन साधक बाहरी सोहं की कल्पना को ही अजपा मानते हैं। किन्तु ब्रह्माण्डी सोहं ही अजपा है। प्राकृतिक वाह्य भूमि से सोहं को अजपा कहा गया है और सभी ब्रह्माण्डी शब्द अपने प्रदेश में साधकों को गुरुगम्य में अनुभव होते हैं, किन्तु फिर भी जो प्राकृतिक है और दूसरे सम्बन्ध और प्रयोग से जिसका आरम्भ होता है वह अजपा कैसे हो सकता है? जो सहज या स्वाभाविक है वही अजपा है, जहाँ वाणी और मन से सुमिरन करने की आवश्यकता नहीं। अतः अक्षर इन पञ्च शब्दों का भी आदि कारण और मूलाधार है। इस तथ्य पर प्राकृतिक सोहं को भी चेतना देने वाला और प्रकाशक होने से एक प्रदेशव्यापी सहज शब्द को स्वर्वेद में अजपा कहा गया है। जो जपा नहीं जा सके, जहाँ वाणी नहीं पहुँच सके, जो स्वाभाविक और सत्य अनुभव है वही अजपा है। ब्रह्माण्डी अजपा को सोहं कहते हैं। परन्तु यह अजपा जिसे अक्षर कहते हैं। सोहं का भी कारण और आदि है। इसी के सुमिरन से आत्मा में आन्तरिक शक्ति का जागरण और ऊर्ध्व में उद्गम होता है। इसी को योगिजन प्राप्त कर निःशब्द परम पद में तल्लीन हो परमानन्द, विमुक्ति के महासुख को

Scanned with CamScanner

प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते हैं। जो संयोग और बाहरी धारणा से मन के मण्डल में प्रकट होता है। वह शब्द अजपा नहीं बल्कि जो सहज स्वाभाविक गति में प्रकट हो रहा है वही अजपा है। इसी आशय पर स्वर्वेद में अक्षर को अजपा कहा गया है।